

कृष्णदास संस्कृत सीरीज ४७

# ऋग्वेद-संहिता

श्रीधत्तायणाचार्यविरचित-भाषवीयवेदायंप्रकाशसंहिता

सम्पादक :- श्रीमन्मोक्षमूलरत्नः

भाग: 3







B-4







॥ श्रीः ॥

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

ग्रन्थ संख्या ३७



॥ श्रीः ॥

# ऋग्वेद-संहिता

श्रीमत्सायणाचार्यविरचित-माधवीयवेदार्थप्रकाशसंहिता

( सप्तममण्डलादिनवममण्डलपर्यन्तम् )

सम्पादकः

जर्मनदेशोत्पन्न-इङ्गलैण्डदेशवास्तव्यः

श्रीमन्मोक्षमूलरमट्टः

[ तृतीयो भागः ]



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८३



प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : द्वितीय ( भारतीय संस्करण )

© कृष्णदास अकादमी

पो० बा० ११८

चौक, ( चित्रा सिनेमा बिल्डिंग )

वाराणसी-२२१००१ (भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

पोस्ट बाक्स नं० ८, वाराणसी-२२१००१ ( उ० प्र० )

( मा र त )



**KRISHNADAS SANSKRIT SERIES**

**37**  
\*\*\*\*

# **RIG-VEDA-SAMHITĀ**

**THE**

**SACRED HYMNS OF THE BRĀHMANS**

**TOGETHER WITH THE**

**COMMENTARY OF SĀYANĀCHĀRYA**

**EDITED BY**

**F. MAX MÜLLER**

**VOLUME III**

**MANDALAS VII-IX**



**KRISHNADAS ACADEMY, VARANASI**

**1983**



**Publisher : Krishnadas Academy, Varanasi**  
**Printer : Chowkhamba Press, Varanasi**  
**Edition : Second, 1983 ( Indian )**

**© KRISHNADAS ACADEMY**

**Post Box No. 118**

**Chowk, [ Chitra Cinema Building ]**  
**VARANASI-221001 ( India )**

**Also can be had from**

**CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE**

**K. 37/99, Gopal Mandir Lane**

**Post Box No. 8, VARANASI-221001**



## VARIETAS LECTIONIS.

### ABBREVIATIONS.

- A=A 2, Colebrooke's MS., India Office Library, Nos. 2133-2136.  
Af, Fragments of Sâyana's Commentary, containing portions of the 9th and 10th Mandalas, belonging to me.  
B, MSS. of the B class.  
B 1, Stevenson's MS., India Office Library.  
B 4, Dr. Taylor's MS., India Office Library, 1861-1864, from the beginning of the 7th Ashtaka belonging to the A class.  
Bf, A fragment, containing hymns IX, 44 to IX, 67, 32, related to B 4, belonging to me.  
C, MSS. of the C class.  
C 2, Mill's MS., Bodleian Library, Mill 24-26g.  
C 4, Wilson's MS., Bodleian Library, Wilson 78-86. Closely related to C 2.  
Ca, My own MS., the original of the C MSS.  
CB, Dr. Bhao Daji's MS., belonging to the B class.  
D, A fragment, containing Ashtaka V, Adhyâyas 3 to 5, belonging to me.  
M 1, Editio princeps.  
P 1, Pada MS., Bodleian Library, Mill 155-158.  
P 2, Dr. Taylor's Pada MS., India Office Library, No. 2032.  
P 3, Colebrooke's Pada MS., India Office Library, Nos. 20-27.  
P 4, Pada MS., Bodleian Library, Wilson 439-442.  
P 5, Pada MS. of the 5th Ashtaka only, Bodleian Library, Mill 159.  
S, Samhitâ MS. from Calcutta, in Sârada characters. See p. 26.  
S 1, Samhitâ MS., Bodleian Library, Mill 147-150.  
S 2, Samhitâ MS., Bodleian Library, Mill 151-154.  
S 3, Colebrooke's Samhitâ MS., India Office Library, Nos. 129-132.  
S 4, My own Samhitâ MS.  
Brh., Saunaka's Brihaddevatâ, MS. belonging to me. Sv., Sâma-veda.  
For other Abbreviations, see vol. i, Varietas Lectionis, p. 1.



## MANDALA VII.

P. 1. 1. 2. (1) The introduction and the commentary to the first verse are given from B1. Ca and C2.—l. 9. अविवाक्येऽहनि B1. अविवाहनु Ca. The whole passage omitted in C2.—l. 23. (1, 1.) आगम्यमतनवंतं वा ॥ आगम्य तनवंतं वा Ca. B1. अगम्यमतनवंतं वा C2. गम्यं B4.—अपि वा B1. Ca.—हस्तप्रच्युत्या हस्तगत्या Ca. B1. हस्ते च्युत्या हस्ते गत्या C2. हस्तच्युत्या B4.—P. 2. 1. 8. (1, 3.) अनस्रयाशरणशीलया B1. Ca. ०या सरण-शीलया M1. A2 has only प्रकर्षेण शीलया, the words between wanting. Cf. Dhp. 31, 18 and 32, 129.—P. 4. 1. 14. (1, 13.) अप्रीतिविषयात् A. C2. C4. अप्रति° B. Ca.—l. 28. (1, 15.) A. Ca. B1 have सेदपिचो after प्रबोधकं. B4 places समेद्धारं प्रबोधकं after स्रोतारः.—P. 5. 1. 18. (1, 18.) अनवरतः B1. अनवरतः A. अनवरतरः Ca. अनवरतः B4. अनवरत C2.—P. 6. 1. 5. (1, 20.) अथवा B1. यथा वा A. Ca; deest in B.—l. 6. अवि-नाशनाम B1. A. Ca. अदिनाशि° Nir., but see var. lect. and Comm. in Nir. SS. vol. ii. p. 365.—l. 15. (1, 21.) नोपचीयेत ॥ नोपचीयेत A. मो° M1. मापचीयेतां B4. मोपचीयेत Ca. C2. मोपचीयेत B1.—l. 22. (1, 22.) निग्रह° C2. B. Ca. विग्रह° A.—l. 29. (1, 23.) क्वास्ते B4. कास्त A. Ca. B1.—l. 30. ददाति Ca. ददाति धारयति A. B1. M1. दधाति ददाति?

P. 7. 1. 20. (2.) पशाविष्टाविदं ॥ सौविष्टाविदं A. सोविष्टा° Ca. सोविष्टा° B1.—l. 28. (2, 1.) देशं is left out after समुच्छितं in A. B. C.—P. 8. 1. 6. (2, 2.) सौमिका हविःसंस्था-दीनि च C2. C4. सौमिकानि इतराणि च B1. सौमिकानि च A. Ca. इतराणि सौमिकानि च B4.—l. 8. अस्मिन् B1. Nir.; deest in A. Ca. M1.—l. 9. महिमानमेयामुप स्तोषाम यजतस्व A. B1. जातस्व Ca. Cf. Nir.—l. 22. (2, 4.) पादे B4. पादौ Ca. A. B1.—P. 9. 1. 6. (2, 6.) दिव्ये दिवि भवे मही महती from B.—P. 10. 1. 7. (2, 10.) जनानि B4. जानन् A. B1. जनाना Ca. जनान् C2. C4.—ll. 9 and 11. (2, 11.) Both here and Rv. III. 4, 11 the Samhitā MSS. read ०र्न् आस्ता°. In III. 4, 11 the Pada MSS. read आस्ता°, in our passage the whole verse is galita. Aufrecht reads āstām unaccented.—l. 12. अर्वाण° A. B1, as III. 4, 11. अर्वाङ्° Ca.—l. 13. अस्माकं ॥ अस्मान् A. B. C.

P. 11. 1. 15. (3, 4.) खादति ॥ सादति A. Ca. सोदति B.—l. 22. (3, 5.) आहवनीयायतने ॥ आहवनीयायते A. आहवनीयायेति Ca. आहवनीये C2. आयतने B4. आहवनीयायतनेये B1.—P. 12. 1. 14. (3, 8.) रवेः ॥ रव A. B. Ca. रक्षाः C2. C4.—l. 27. (3, 10.) For दिदीहि A. B1. Ca have दीदिहि.

P. 13. 1. 8. (4, 1.) विद्या विद्यानि A. B1. Ca. M1.—l. 15. (4, 2.) भवति A. Ca. भवि-भति भूमिश्च भवति B1. अस्तु भवति?—l. 30. (4, 4.) अयं ॥ चो A. B1. Ca.—P. 14. 1. 10. (4, 5.) वनिमिश्च ॥ वनिमिश्च A. B1. Ca. वनिमिश्च C2.—l. 23. (4, 7.) परिषद्यं to धनं from B4. Ca; deest in A. B1.—l. 28. B1 marg. supplies पित्र्यस्तेव धनस्य and तस्योत्तराभ्यसे निर्वचनाय from the Nir.—P. 15. 1. 11. (4, 9.) त्वमु to पाहि from B4.

P. 16. 1. 3. (5, 2.) वा before वावुधानः by conjecture.—l. 9. (5, 3.) असितवर्णाः ॥ असितवर्णाः A. Ca. B.—l. 26. (5, 5.) महान् A. B. Ca after ०महान्; deest in C2.—हरणाद after हरितः A. B1. Ca; deest in B.—P. 17. 1. 2. (5, 6.) असेवंत ॥ सेवंत A. B. Ca. C2.—



l. 11. (5, 7.) कामान् ॥ कामान्वा A. Ca. C 2. B 1. कामान् B 4. कामान् च M 1.—l. 18. (5, 8.): इषमन्नं C 2. B 1. इषमन्नमिवं A. Ca.—l. 27. (5, 9.) अयस्व A. B 1. Ca for मिथयस्व.

P. 18. l. 20. (6, 3.) वृथा कालस्य नेतृन् । A. B 1. Ca. वृथा कालस्योत्तेष्टृन् B 4.—l. 21. अग्निः to चकार from C 2; deest in A. B 1. Ca. पूर्वः पुरातनः अग्निः अपरान् पुदपान् अयज्यून यागानर्हान् चकार B 4.—P. 19. l. 17. (6, 7.) आंतरिक्षाणि ॥ अंतरि° A. B. Ca. C 2.

P. 19. l. 23. (7.) दशसूक्त उक्तो A. Ca. B 1. दश सूक्तेषुक्तो C 2.—P. 20. l. 15. (7, 3.) For आसनं । बर्हिर्हि A. B 1. Ca read आसनं हि.—l. 16. इडायां Ca. इलायां B 4. इजयां A; deest in C 2.—P. 21. l. 8. (7, 6.) प्र तिरंत ॥ वातिरंत A. B 1. Ca. च ॥ अतिरंत M 1. Cf. above to 5, 7.—l. 9. मानुषाणां was most likely a mistake in the original MS. of Sāyana. There is no various reading in any MS., but what Sāyana intended to write was माषाणां.

P. 22. l. 1. (8, 2.) दीप्तीः B 1. दीप्तिः A. B. Ca. दीप्तः C 2.

P. 24. l. 8. (9, 4.) विभक्तिवचन° B 1. विभक्तेर्वचन° A. Ca.

P. 26. l. 5. (10, 5.) सूर्यस्य A. Ca. C 2. C 4. B 1; left out in B 4.—l. 6. यस्मादूतोम-  
सस्माद्विद्यस्ममध्वर ईळत A. यस्मादूतोमसस्माद्विद्यस्ममध्वर ईलित B 1. तस्मादूतोमवसस्माद्विद्यस्म-  
मध्वरे ईलत Ca.

P. 27. l. 14. (11, 5.) किमर्थमि° ॥ किमि° A. Ca. C 2. B 1.

P. 28. l. 9. (12, 3.) वर्धेति from C 2.

P. 29. l. 13. (14, 1.) प्रायेण सर्वत्र Ca. A; lacuna in C 2. B.

P. 29. l. 31. (15.) From पावकवंतौ to स्वस्त्यय° from Ca. C 2.—l. 32. मग्निनी ॥ मग्नि Ca.  
मग्ना C 2.—P. 31. l. 2. (15, 7.) कस्याणस्तोतृकं Ca. °स्तोत्रिकं A. B 1. M 1.—l. 8. (15, 8.)  
मुस्तोतृको Ca. A. °त्रिको B 1. M 1.—l. 21. (15, 11.) नोऽस्मभ्यं repeated after पाठात् in  
A. C. Ca. B 1; not in B 4.—l. 22. °आग्निनी C. Ca. °आग्नी A. °आग्नि B 1.—P. 32. ll. 4  
and 5. (15, 14.) °प्राकारादिः ॥ °प्राकारादिः A. B 1. Ca. M 1. Cf. VII. 18, 13.

P. 32. l. 29. (16, 2.) वसिष्ठानां B 4. वसिष्ठा A. C. Ca. B 1.—P. 33. l. 19. (16, 5.)  
कामयस्व ॥ कामय स्वं A. B. C. कामय च B 1.—l. 26. (16, 6.) यः before सुशंसो by con-  
jecture.—P. 35. l. 2. (16, 11.) सोमेन पाचं A. Ca. B. सोमपाचं B 1. उत्सिंचध्वं seems to  
be taken by Sāyana in the sense of सिंचध्वं or पूरयत.

P. 35. l. 11. (17.) सप्तापि C 2. सप्तदशापि A. Ca. सदा B 1.—l. 20. (17, 2.) यज्ञगृहस्य  
देव्यो वा A. Ca. B 1. यज्ञस्य गृहस्य देव्यो च C. यज्ञगृहस्य B.

P. 36. l. 17. (18.) यत् A. B 1. Ca, not in Anukr.—चतस्रोऽत्या A. B 1. Ca. चंत्यास-  
तस्रो Anukr.—P. 37. l. 23. (18, 5.) गाधानि तलस्यर्शानि B.—l. 24. बोधमानं A. B. C.  
बाधमानं? cf. Rv. Bh. I. 100, 18.—l. 30. (18, 6.) न तु सनतः B 1. न तु समंत अन A. न तु सतु  
शंत आशुत Ca. न तु सनतः C.—P. 38. l. 1. नियंचिता B. वयंचिता A. Ca. अवयंचिता B 1.  
इवयंचिता C.—l. 3. मत्स्यजनपदा Ca. A. । मत्स्या इव जनपदा B 1.—l. 10. (18, 7.) तपोमिः  
अप्रवृद्धा A. Ca. B 1. तपोमि वृद्धा C. तपोमिः प्रवृद्धा B.—l. 23. (18, 8.) पलायमानः B 4. पाल-  
यमानः A. C. Ca. पालयमानाः B 1. Cf. verse 16.—l. 28. (18, 9.) यथापूर्वं B. C. यथापूर्व्यं  
A. Ca.—अर्थं ॥ मदर्थं A. Ca. मदेत्यर्थं B 1.—l. 30. न्यर्थमगतं B. न्यर्थं आगतं A. C.  
Ca. न्यर्थं आगतं B 1.—l. 32. सुतोक्ता ॥ सुतोक्तामाना A. C. Ca. B 1. सुष्ठु अपत्यसंयुक्ता  
B 4.—P. 39. l. 7. (18, 10.) निमित्तार्थं B 1. निमित्तार्थ A. निमित्तार्थ Ca. निमित्त C.—



l. 15. (18, 11.) युवाध्वर्युरिव etc. ॥ युवाध्वर्युरिव सद्यन् यज्ञगृहे नर्हिर्यस्मिन्नुजे मूर etc. A. Ca. B1.  
 अध्वर्युरिव स यथा सद्यन् यज्ञगृहे नर्हिः यस्मिन्नुजे मूरः etc. B. यथाध्वर्युरिवा सद्यन् यज्ञगृहे नर्हिः  
 यस्मिन्नुजे सपत्नान् नि शिशति नितरां लुनाति तस्मिन्नुजे मूर etc. C2. C4.—l. 30. (18, 13.)  
 प्राकारांश्च B1. प्रकारांश्च A. नगरांश्च Ca.—P. 40. l. 15. (18, 15.) बाधन्ति B1. बाधन्ति A.  
 B4. C. Ca.—l. 17. विद्वानि ॥ विद्वानि विद्वानि A. B1. Ca. M1.—P. 41. l. 1. (18, 17.) अशीन् ॥  
 अशीन् B. अशान् A. C. Ca. B1.—l. 2. वेष्ठादेः कृत्यसूची चाकरो A. वेष्ठादेः कृत्यसूचीचाकरो  
 Ca. वेष्ठादेः कृत्यसूची दे वाकरो C2. वेष्ठादेः कृत्यं सूचीव करो B1; deest in B4. पर्यदेः  
 कृत्यं ?—l. 3. धनानि deest in A. B1.—l. 11. (18, 18.) विंद समस्त यो मेदः ॥ विंद सम सुवतः  
 etc. B. वद समयोरमेदः A. Ca. वा समयोरमेद C. विद समयोरमेदाः B1.—l. 23. (18, 19.)  
 उप जधुः A. B1. Ca.—P. 42. l. 10. (18, 21.) उपगच्छन्ति ॥ उपगच्छन्ति A. C. Ca. अवग B1.—  
 l. 16. (18, 22.) इंद्रं ॥ इंद्रः A. B. Ca. इंद्र C.—l. 17. अतदेवता ॥ अतदेवता C. B1. अतस-  
 देवता A. Ca.—l. 21. (18, 23.) Read निरुक्ते.—l. 23. प्रशस्तातिसर्वना अश्वादिदानांगयुक्ताः  
 Ca. A. प्रशस्तातिसर्वजनश्रद्धादिदानांगयुक्ताः C2. प्रशस्तातिसर्वजनश्रद्धादिदानांगयुक्ताः B1.

P. 44. l. 28. (19, 6.) लया दत्तानि A. B1.—P. 45. l. 29. (19, 10.) शिवः कल्याणः मूरः  
 B4.—P. 46. l. 5. (19, 11.) ऊत्या रक्षणेन from B4.

P. 47. l. 29. (20, 5.) साधकः B1 for सादकः.—P. 48. l. 4. (20, 6.) रेवत नैव चीयत A.  
 रेवत (रेवते B1) नैव चीयते B1. Ca. D.—l. 12. (20, 7.) प्रीणाति MSS. पृणाति Ngh. III.  
 20.—l. 14. दूरं B. दूरः A. C. Ca. D.—पर्यासीत A. पर्यासीत् B1. Ca. D.—चित्रं A.  
 B1. Ca. D for चित्रं; but both A and D, which give also the full text of the  
 Mantras, read चित्रं in the text.—l. 19. (20, 8.) यः before ते by conjecture.—P. 49.  
 l. 5. (20, 10.) Sāyana considers वस्ती वु as one word. In the second explanation  
 Ca in the margin adds after प्रशस्ता, सु सुतिषु, and D reads प्रशस्तासु सुतिषु.

P. 49. l. 8. (21.) सूचितं च is wanting in A. B. C. Ca. D.—l. 25. (21, 2.) गृहमध्यमश्रावा  
 A. C. Ca. गृहः मध्यमध्यमश्रावस्तस्मात् B4; deest in B1. गृहमध्यमश्रावा D. गृहमध्यमश्रावा  
 वा ?—P. 50. l. 16. (21, 5.) उत्सहेत ॥ उत्सहे च A. C. Ca. B4. D. उत्सहेच्च B1.—l. 17.  
 दीव्यन्ति ॥ दीव्यन्ति इति C. Ca. D. दीव्यन्ति इति B1. दीव्यन्ति इति A. दिव्यन्ति इति B4.—क्रीडन्ति  
 A. B1. Ca. D. क्रीडन्ति C.—l. 18. अपिगमन् A. अपिगमयत् B1. अतिगमन् B. C. Ca. D.

P. 52. l. 9. (22, 2.) ऽनुगुणः ॥ गुणः A. B. C. Ca. D.—P. 53. l. 7. (22, 6.) सवना A. B.  
 सोमसोचं सादेवना C. Ca. सोमसोचं सवना D; deest in B1.—l. 8. ऊयति । सौति ॥ सौति  
 ऊयति A. सौव ऊयति Ca. सौता ऊयति आऊयति B4. सौति आऊयति D. सौति ऊयति B1.

P. 54. l. 9. (23, 1.) ततान् व्याप्तवान् D.—l. 16. (23, 2.) नहि चिकित्ते न ज्ञायते ॥ नहि चिकित्ते  
 ज्ञायते B1. चिकित्ते ज्ञायते A. Ca. D.—l. 23. (23, 3.) उपास्युः ॥ उपस्युः A. B1. Ca. D. M1.—  
 l. 24. इंदानि Ca. A. D. इंदिनो B1.—P. 55. l. 8. (23, 5.) दयसे हि । दयां करोषि B4.—  
 l. 14. (23, 6.) वज्रकल्पवाङ् ॥ वज्रकल्पनाहं A. C. Ca. D; not explained in B.

P. 55. l. 26. (24, 1.) मादयस्व ॥ मादय A. B1. B4. C. मादाय D.—P. 56. l. 8. (24, 3.)  
 इमं यज्ञं ॥ इदं यज्ञं A. B4. C. D. इदं यज्ञं B1.

P. 57. l. 8. (25, 1.) युगार्धे before संगच्छन्ति Ca. D.

P. 59. l. 3. (26, 2.) हवन्ते ॥ वहन्ति A. B1. Ca. हवन्ते वहन्ति D.—l. 10. (26, 3.) अथान्वा-  
 न्यानि ॥ अन्याथान्यानि C. Ca. D. अन्याथान्या अन्यानि A. अन्या अन्यानि B. अथान्वा-  
 न्यानि M1.—l. 11. एकोऽसहायः from B4.—l. 16. (26, 4.) बाधमानाः A. B1. बाधनाः B4. C. Ca. D.



P. 60. l. 2. (27, 1.) नेमधिता to संयामे from B 4. D has प्रयुज्यते नेमधिता; then, in the margin, नेमधिता संयामे नरः कर्मणां नेतारः इंद्र इवते आह्वयंतीत्यर्थः. Afterwards the commentary runs on : यमिंद्र इवते ह्वयंति स etc.—l. 3. गोमति गावः संत्यस्त्रित्ति गोमत् तस्मिन् Ca sec. m. D. गोमति ऋयुते B. In B 1 and Ca pr. m. a lacuna is marked after सन्.—l. 30. (27, 5.) मंहनीयायै ॥ मंहनीयाय MSS. It might be मंहनीयाय दानाय सुत्वा यवृत्ताम् ॥

P. 61. l. 2. (28.) पंचमलेन MSS. for चतुर्थलेन.—l. 23. (28, 3.) प्रतिष्ठापयसि B 4. ण्ययति A. C. Ca. D. B 1.—P. 62. l. 2. (28, 4.) तत्प्रसादात् B 4. तत्प्रसादात् A. C. Ca. D. B 1.—l. 9. (28, 5.) प्रायच्छत् ॥ प्रयच्छत् B 1. प्रयच्छत् A. Ca. D.

P. 62. l. 19. (29, 1.) सवनीयो C. सेवनीयो A. तत्सेवनीयो B 4. तत् सेवनीयो D. सवनीयो B 1. Ca has सवनीयो, which may be सेव. Cf. Rv. Bh. I. 173, 11; III. 58, 6.—l. 20. The MSS. vary between तु and नु both here and in the next line, and again in VII. 31, 4.—P. 63. l. 10. (29, 4.) उतापि च A. B 1. Ca. D.

P. 63. l. 27. (30, 1.) महि A sec. m. B. Ca. महि A. D. M 1.—P. 64. l. 5. (30, 2.) सुहंतुनाम्ना C 2. णाम A. B. Ca. D. Possibly it might be सुहंतुना.—l. 11. (30, 3.) चयदा च A. B 1. चयथा च B 4. C. Ca. D.—l. 12. तदा ॥ तथा A. तथा B 1. 4. C. Ca. D.

P. 64. l. 26. (31.) गायत्रं ॥ वैष्टुमं A. B 1. Ca. D.—l. 31. तदर्थाः ॥ तदर्था A. C. Ca. D. तदर्थं B 1.—P. 65. l. 21. (31, 5.) वयं B. वय A. C. Ca. D.—P. 67. l. 1. (31, 12.) सर्वजगत A sec. m. सर्वत जगत A pr. m. (?) Ca. D. सर्वतः जगदंत B 1. सर्वतो जगतः M 1.—l. 2. सोचाणि ॥ सोचीणां C. Ca. D. सोचाणां A. B 1.

P. 67. l. 10. (32.) प्रगाथसु to प्रगाथं D. Ait. Âr.; deest in A. B 1. Ca. M 1.—l. 12. उपसमस्तेद्विपदां Âsv. उपदस्ते द्विपदां A. स्ते द्विपदां Ca. उपसमस्तेद्विपदां D. सविपदां B 1.—l. 13. प्राकृतात् D. प्रकृतात् A. B 1. Ca. M 1.—प्रगाथादनंतरं ॥ प्रगाथानंतरं A. B 1. Ca. D.—l. 14. मरुत्वतीया ऊर्ध्वं Âsv. मरुत्वतीयादूर्ध्वं A. मरुत्वतीयादूर्ध्वं B 1. मरुत्वती ऊर्ध्वं Ca. त्वती ऊर्ध्वं C. D has मरुत्वतीयोर्ध्वं नित्यादिति with त्वया शुभेति च मरुत्वतीये पुरस्तात्सूक्तस्य शंसेत् in the margin.—l. 17. छावा after मैवावदणशस्त्रे A. B. C. Ca. D.—l. 20. आरंभणीयाः Âsv. B 1. आरंभणीयां A. C. Ca. D.—l. 23. The MSS. add इति प्रगाथौ सोचियानुरूपी after सिधासति, apparently a repetition from the preceding line.—l. 25. प्रगाथौ सोचियानुरूपी Âsv. रथंतरस्य सो B 1. सोचियानुरूपी A. D; wanting in Ca.—l. 36. (32, 1.) It would be better to read त्वां instead of त्वया.—अपि B 4. अथेनो A. C. Ca. D. B 1.—सो B 4. मा Ca. D; deest in A. B 1; B 1 omits न also.—P. 68. l. 15. (32, 4.) सुता वगुवः ॥ सुवभू A. Ca; wanting in C. अभिषुतवतः B 4. D marg. सुषुवः B 1. सुवभूः D pr. m.—P. 69. l. 31. (32, 10.) आत्मार्यं Ca. C. D. आत्मानं A. B.—P. 70. l. 12. (32, 12.) सोमपानमस्ति B 1. समानमस्ति B 4. D. सोमानमस्ति A. Ca. सोमोपि C.—l. 19. (32, 13.) सुविहितं C. Ca. D. सुषु निहितं B 4; deest in A. B 1.—P. 72. l. 25. (32, 22.) सर्वदृशं deest in C. Ca. D.—P. 73. l. 10. (32, 24.) हविषः A. C. Ca. B 1. ज्ञातव्यः B 4. आज्ञातव्यः हविषः D.—l. 29. (32, 27.) दुराथः दुष्टचित्ताः B 4.—अशिवासः अशिवाः दुराचाराः मा चक्रमुः B 4 after मावचक्रमुः.

P. 73. l. 31. (33.) सपुत्रेक्षेत्रेण Anukr. सपुत्रेक्षेत्रेण C. Ca pr. m. सपुत्रेक्षेत्रेण A. Ca sec. m. D. सपुत्रेक्षेत्रेण B 1.—P. 74. l. 2. सपुत्रेः B 1. सपुत्रेः A. Ca. D. M 1.—l. 3. न्यायात्



A. B 1. नायात् Ca. परिभाषात् C. परिभाषायात् D.—l. 9. (33, 1.) कपर्दाः चूडा° B. कपर्दा चूडा° A. B 1. C. Ca. D.—l. 12. पुत्राः सुदासराजानः Ca pr. m. D.—नाहंति B 4. अहंति A. B 1. Ca. D.—l. 19. (33, 2.) पल्लवं A. D. पल्लवं B 1. Ca.—l. 29. (33, 3.) सवाख्ये B 4. संसवाख्ये B 1. ख्ये D. संवाख्ये A. Ca.—P. 76. l. 9. (33, 8.) The text is printed from Ca, including all corrections and marginal additions, excepting तव महिमा, which is inserted between अन्येन and अन्येनैवे. The same text is found in D. A has हे वसिष्ठा एषां वो युष्माकं स्तोमोऽपि वातस्तेव प्रजवो etc. So has B 1, where, however, the words from the beginning to वा are put twice. B 4 agrees with A, but has at the end किं युष्माकं वचथः तेजः सूर्यस्तेव सूर्यव्योतिरिव । तथा युष्माकं महिमा समुद्रस्तेव गभीरः गभीरः इव ॥ C has the same as Ca, only ऽपि वा after the first स्तोमो. MS. E. I. H. 2612 marks a lacuna after हे वसिष्ठा वो युष्माकं स्तोमोऽपि वा ---- to हे वसिष्ठाः एषां वो युष्माकं स्तोमोऽपि वा.—l. 18. (33, 9.) कारणान्नात्मा B. D. कारणान्नात्मा A. C. Ca: cf. verse 12.—P. 77. ll. 3 seq. (33, 11.) मनसो and afterwards अधि from B 4.—l. 5. अहंमुवा A. B. Ca. D. अहमुवा MS. E. I. H. 2612. स्वयंमुवा?—l. 7. तत्कुंमे ॥ तत्कुंमे Ca. तत्कुंमे A. D. तत्कुंमे B 1. तः कुंमे Br̥h. MS.—न्यतपत् Ca. D for न्यपतत्.—l. 9. संभूत A. B 1 and Br̥h. MS. संभूत C. Ca. D. संभवूव Br̥h. as quoted in Böhtlingk and Roth's Dict. under अगस्त्यः—अगस्त्यः संभूतो A. Ca. D. अगस्त्यसंभूतो B 1. अगस्त्यसंभूतो Br̥h. MS.—l. 10. The Sloka beginning with यद्वा कुंमात् exists only in A. D. B 1. हि मीयते A. B. D. Br̥h. MS. महीयते Br̥h. l. c. No MS. has वासतीचरे, as Roth reads.—l. 11. च परिमाणं लक्ष्यते A. B 1. परिमाणं च लक्ष्यते D. तु परिमाणं सुलक्ष्यं Br̥h. MS.

P. 78. l. 27. (34, 4.) पूर्वस्वामिन्द्रस्य ॥ पूर्वस्वामि A. C. Ca. D. पूर्वस्वापि B 1.—P. 79. l. 29. (34, 12.) अस्मान् ॥ नोऽस्मान् A. B 1. Ca. D. M 1.—P. 80. l. 16. (34, 16.) सीदंतं B 1. 4. सीदंत A. C. Ca. D.—l. 22. (34, 17.) न चीयेत Ca sec. m. न दोयेत A. Ca pr. m. न चीयेत B 1. न हीयेत C. न चीयेत् D.—P. 81. l. 30. (34, 24.) जिहीतां ॥ जिहातां A. B 1. Ca. D. जिहातु B 4.—P. 82. l. 2. भरणीयं B. भरणीयां A. C. Ca. D.

P. 82. l. 13. (35.) The lacuna at the end of the Viniyoga is marked in A. C. Ca, and supplied in Ca by a later hand, एवमेतासु. D marks no lacuna, but has एवमेतासु. B 1 has एव तमुक्तसु ।—P. 83. l. 3. (35, 3.) धर्ता B 1. विधर्ता A. Ca. D. M 1.—l. 11. (35, 4.) मित्रावरुणा मित्रावरुणावपि A. B 1. Ca. D.—l. 19. (35, 5.) After पूर्वहृत्तौ a lacuna is marked in A. Ca. पूं प्रथमाह्वाने B 4. पूं पूर्वं प्रार्थितौ C. पूं प्रथममाह्वाने Ca sec. m. D. B 1 has पूर्वहृत्तौ भवतां.—l. 27. (35, 6.) जलायः. No explanation is given in A. B 1. C. Ca mark a lacuna after जलायः, which is supplied by सुखरूपः in Ca sec. m. D, and by गंगाधरः in B 4.

P. 86. l. 25. (36, 1.) नान्यस्य चित् MSS. नान्यस्य कस्यचित्?—P. 87. l. 15. (36, 3.) अचि-  
कदत् शब्दयत् B 4.—l. 21. (36, 4.) युंज्यात् ॥ युंज्यान् A. B 1. युंजन् B 4. युज्यान् Ca. D. युजान C.

P. 89. l. 12. (37, 1.) तेन रथेन A. C. Ca. B 1. 4.—l. 21. (37, 2.) धनहेतुभिः मननीये स्तोत्रैः D.—P. 90. l. 12. (37, 5.) विवेधः ॥ विवेध A. B 1. Ca. D.—l. 23. (37, 6.) निवहेत् ॥ न्यवहेत् A. B 1. 4. C. Ca. D.—P. 91. l. 8. (37, 8.) प्रतिपादिता B 4. प्रतिपादका A. C. Ca. D. B 1.



P. 93. l. 17. (39.) प्रउणं Âsv. B I. प्रउण A. C. Ca. D.—l. 24. (39, 1.) सेवेते A. सेवेते B I. Ca. D. सेवाते M I.—l. 31. (39, 2.) आसावत इ° A. B I. आसावमि° Ca. D.—  
P. 94. l. 8. (39, 3.) पृथिव्यां मवाः ॥ पृथिव्यासा A. C. Ca. पृथिव्याः B 4. पृथिव्याः मं B I. पृथिव्याः सा D. See Nir. XII. 43.—l. 24. (39, 5.) गरीयान् ॥ गरीयान् A. B. गरीयान् Ca. M I. गरीया D; deest in C.—P. 95. l. 4. (39, 6.) सचीमहि संगमेमहि B.—l. 11. (39, 7.) The words चंद्रा to ददतु have been restored with the help of Rv. Bh. VII. 40, 7. चंद्रा आह्लादका सर्वे यूयं etc. A. B I. \*रमिष्टता आसन् सूक्ते प्रतिपादिता etc. Ca. C. D. अमिष्टताः आसन् नः अस्मभ्यं अर्के अर्चनीयं उपमं सर्वोत्कृष्टं अन्नं यच्छंतु ददंतु चंद्राः आह्लादकाः सर्वे यूयं etc. B. This shows that the omission after आह्लादकाः existed also in the B copies.

P. 95. l. 20. (40, 1.) युष्मान् ॥ युष्मदीयान् A. C. Ca. D. B I.

P. 97. l. 24. (41, 2.) Instead of प्रातःऽजितं । Sâyana explains प्रातः । जितं ।—l. 25. स्तोता यं ॥ स्तोता B I. Ca. D. स्तो A.—P. 98. l. 17. (41, 5.) वा before वयं by conjecture.—l. 24. (41, 6.) उषोदेवताः B 4. उषोदेवाः A. C. Ca. D. उषसो देवाः B I: cf. the next verse.

P. 99. l. 20. (42, 2.) तांश्च त्वं Ca. D. तां अश्च त्वं A. तां अश्वा B I. तानश्चान् D marg.—सु before युक्त्वा from B. Sâyana took सुते for सु ते, and immediately afterwards जनिमानि सत्तः for जनिमा निसत्तः.—l. 26. (42, 3.) नमस्कारैर्यु° Ca. D. नमस्कारैर्यु° B I. नमस्कारयु° A. M I.—P. 100. l. 3. (42, 4.) वीरकस्य only in A. B I.

P. 101. l. 9. (43, 2.) साधकं ॥ साधुकं A. B. C. Ca. D.—वेदां B 4. वेद्यं B I. मेवा A. C. Ca. वेद्या D: cf. the next verse.—l. 15. (43, 3.) जननीं ॥ जननीयं A. B I. C. Ca. D; not in B 4.—अस्मानं ॥ अस्मानं C. Ca. अस्मान् A. B. D.—l. 17. जुहुः A. B I. जुहुः Ca. D.—l. 27. (43, 4.) यति स्त्र, as well as the explanation of it, is left out in A. B. C. Ca. It could easily be supplied in this way: यति स्त्र यावंतः स्त्र तावंतः etc.

P. 102. ll. 23 and 25. (44, 3.) मँश्चतोः P 3. मँश्चतोः P I sec. m. P 4. P 5. माँश्च° P I pr. m. मँश्च° S 4 sec. m. माँश्च° S I. S 2. S 3. S 4 pr. m. See Prât. 301.—l. 27. मँश्चतोः A. B I. D. मँश्चतोः Ca.

P. 103. l. 14. (45.) The introduction to this hymn is left out in A and B.—l. 16. यात्वित्येषा वपानुवाक्या etc. Ca. D. The lacuna may be supplied in this way: यात् यावेति । आ° ऋ. ऋ. इति ॥ सावित्रे पशावा देवो यात्वित्येषा वपानुवाक्या । etc.

104. l. 30. (46, 1.) देवाय ॥ रुद्राय A. C. Ca. D. B I. B 4 has रुद्राय देवाय भरत

105. l. 5. (46, 2.) चम्यः is probably left out after भवः.—l. 7. अस्मदीयानि from C. Ca. D.—l. 13. (46, 3.) अंतरिचसकाशात् B 4. अंतरिचात्सकाशात् A. B I. C. Ca. D.—l. 14. चित्वा B I. हित्वा A. The whole passage is left out in C. Ca. D.—स्वपिवात् जितप्राण B 4.

P. 105. l. 31. (47, 1.) From सोमाख्यं to तमूर्मि taken from C. Ca. D.—समस्कुर्वत अथे° ॥ सम्यक्कुर्वत अथे° Ca. सम्यक्कुर्वत अथे° D.

P. 106. l. 29. (48.) वैश्वदेवशस्त्र आ° B I. शस्त्रमा° A. Ca. D.—P. 107. l. 6. (48, 1.) मनुष्यहितं ॥ मनुष्य A. B I. C. Ca. D. नराहं B 4.—l. 7. आगमयंतु from Ca. D.—l. 12. (48, 2.) उरु भवन्तीत्युभवः ॥ उरु भवन्तीत्युभवः B I. C. Ca. D. पुह भवन्तीत्युभवः A. उरु भवन्तीत्युभवः



B 4. The original reading might have been something like चरु मवन्तीत्युगवः ।  
 चरुमवः संतः.—l. 24. (48, 3.) मेधतेः ॥ मित्यातिः B. मिध्यातिः A. मिप्रातिः Ca. D.

P. 108. l. 18. (49, 2.) समुद्रार्थाः from B.—l. 22. (49, 3.) सत्त्वावृत्ते इति Pada MSS.  
 See Prāt. 209.—P. 109. l. 1. (49, 4.) साकः A. C and Ca pr. m., सकः Ca sec. m. and D, before सोमः.

P. 109. l. 4. (50.) वैश्वदेवी ॥ वैश्वानरी A. B I. Ca. D.—l. 14. (50, 1.) त्तररुद्रगामी  
 B I. त्तरः इ आगामी A. C. Ca. D. त्तरः सर्पः B 4 : cf. त्तर रुद्रगती Dhp. 15, 46.—  
 l. 21. (50, 2.) गुल्फौ गुल्फौ B 4. गुल्फौ गुप्तौ A. C. Ca. D. गुल्फौ गु B I.—P. 110. l. 4.  
 (50, 4.) या निवतो to उत्ततदेशे गच्छन्त्यः D. या निवतो नीचैर्गच्छन्त्यः । या उद्वतो या ऊर्द्धं गच्छन्त्यः  
 B 4; left out in A. B I. Ca.—l. 7. शिमिर्वधकर्म । अहिंसाप्रदा ॥ शिमिर्वधनकर्म अहिंसा A.  
 शिमिर्वधकर्म अहिंसा B I. शिमिर्वधनकर्म असाप्रा Ca. D.

P. 110. l. 11. (51.) यच्चदादित्यान् Åsv. यच्चदादित्यानां A. B I. Ca. D.—l. 19. (51, 1.)  
 चादितिलेऽदीनले च B 4. वा चादितिलेऽदीनलेन A. C. Ca. D. चादितिलेति अदीनले B I.

P. 113. l. 29. (55.) आद्या गायत्री etc. ॥ आद्या गायत्री द्वितीयाद्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः पंचम्या-  
 बास्तिस्र उप० । A. C. Ca. D and B 4 pr. m. आद्या गायत्री द्वितीयाद्यास्तिस्र उपरिष्टावृत्तः  
 पंचम्याबास्तिस्रोऽनुष्टुभः B 4 sec. m. B I.—l. 30. तल्लक्षणयोगात् ॥ अल० A. अल० Ca. खल०  
 B I. च ल० D.—l. 32. स्वप्नमाचरन् A. Ca. स्वप्नमाचरन् B I. स्वप्नमाचरेत् D. स्वप्न आचरत्  
 Brih. MS.—l. 33. सांतयित्वा ह्यसूषयत् ॥ सांतयित्वा ह्यसूषयत् A. सांतयित्वा प्रसूषयत् B I.  
 सांतयित्वा ह्यसूषयत् Ca. D. सांतयित्वा व्यसूषयत् Brih. MS.—P. 114. l. 1. एवं (एव Ca) प्रस्था-  
 पयामास A. B I. Ca. D. स तं प्रस्थापयामास Brih. MS.—वारुणं A. Ca. D. Brih. MS.  
 वरुणं B I.—l. 2. प्रस्थापित्वं A. B I. Ca. D. नीत्वं Anukr. M. p. 133.—l. 3. कोष्ठागारे  
 A. D. कोष्ठागारे Ca. कोष्ठागारे B I. कोष्ठागार० Anukr. M. p. 133.—l. 8. (55, 1.)  
 कामयते ॥ कामयते A. B I. Ca. D. Nir.—तत्तद्देवा विशन्ति C. D. तत्तद्देवा विशन्ति A. Ca. तत्तद्देवो  
 विशन्ति C. Colebr. तद्भवता भवति B I. तत्तद्देवता भवति Nir.—P. 115. l. 19. (55, 7.) सूर्यः  
 from C. Ca. D.—l. 25. (55, 8.) प्राक्कणे A. प्राक्कणे Ca. D. प्राक् प्रवणे C. प्रांगणे B I. 4.

P. 117. l. 4. (56, 8.) कंपयितुवेगः A. Ca. D. कंपयितुं वेगः (sic) B I pr. m. कंपयितुं  
 वेगः B I sec. m. कंपयितुः or कंपयिता?—ll. 8 seqq. (56, 9 and 10.) The commentary  
 to this and to the next verse is omitted in A. B I. C. Ca and C. Colebr. All the  
 C MSS. have सनेम्यस्यदिति - - - अगन्वचस्त्यक्तः 1. The explanation printed in brackets  
 is written by a later hand on the margin of C. Colebr. B 4 has the following  
 spurious commentary: Verse 9. सनेमि पुराणं परंपरागतं दिव्यं दीप्यमानं वर्धमानमित्यर्थः वः  
 युष्मत्सख्यं अस्मत् अस्मत्तः मा युयोत मा पृथक् कुरुत । किंच इह युष्मत्सख्ये नः अस्मान् दुर्मतिः मा प्रणक्  
 न प्राप्नोतु ॥ Verse 10. इ मरुतः तुराणां यजमानार्थं स्वरया आगच्छतां वः युष्माकं नाम आहुवे  
 आहुयामि यत् येन आहुनेन प्रियाः स्नेहयुक्ताः वावशानाः अस्माकं आहुनं कृतमिति शब्दायमानाश्च संतः  
 तुपन् संतुष्टाः भविष्यत तत् आहुनमिति शेषः ॥ D has the following commentary on verse 9:  
 इ मरुतः सनेमि सनातनं दिव्यं दीप्यमानं अग्न्याख्यं युष्मदीयमायुधं अस्मत्तः सकाशात् युयोत पृथक् कुरुत ।  
 तथा युष्मदीया दुर्मतिः निग्रहबुद्धिः नो अस्मान् इह अस्मिन् लोके मा प्रणक् मा प्राप्नोतु ॥ The comm.  
 of verse 10 in D is identical with that of B 4 : only it reads तुपत् संतुष्टा भविष्यमतत्  
 आ.—P. 118. l. 1. (56, 13.) Sāyana reads वचः सुरक्ताः instead of वचःसु वक्ताः.—  
 P. 119. l. 17. (56, 18.) तदीयं A. B. C. Ca. D.



P. 121. 24. (57, 2.) ये मरुतः MSS.—P. 122. l. 1. (57, 3.) रोचमानैरामरवीरायुधिः ॥ रोचमानैरायुधैरामरवीः A. B. C. Ca. D.—l. 10. (57, 4.) हि प्रमादः ॥ विप्रमदः A. C. Ca. D. विप्रयागः B1.—l. 26. (57, 6.) प्रत्यक्षतुतः A. B1. Ca. D. प्रत्यक्षतः M1. Cf. परोक्षतुतिः Rv. Bh. VII. 21, 7; प्रत्यक्षतुतिः 24, 5 etc.

P. 124. l. 14. (58, 5.) नमंतां ॥ नवंतां A. Ca. नवतां B1. D.

P. 125. l. 23. (59, 4.) न सहते A. B. C. Ca. D.—P. 126. l. 16. (59, 7.) निषीदतु ॥ निषेदतु A. B. C. Ca. D. तु B1.—l. 24. (59, 8.) स जनो A. B. C. Ca. D.—P. 127. ll. 19 seqq. (59, 12.) No commentary is given in A. B1. Ca. Ca Colebr., which mark the omission. C explains the verse: वयं त्र्यंबकं चिलोचनं यजामहे । किं वयं । सुगंधिं शोभनगंधोपेतं पुष्टिवर्धनं पुष्टिः पोषकं । हे इद्र मा मां मृतात् मरणात् मुचीय । मां मोचय । कस्मात्कमिव बंधनात् नात् यत् उर्वारकमिन्द्रवारकमिव बंधनं प्रत्यक्षतुतिः ॥ B has the following: त्र्यंबकं चिलोचनं मातृभूतं । पालकमित्यर्थः । सुगंधिं सुष्ठु व्यापकं पुष्टिवर्धनं यजमानस्य बलं वर्धयितारं एतादृशं इद्रं यजामहे । वयं यजमानश्चिलिजो हविर्भिः पूजयामहे । किमर्थं । मृत्योः सकाशात् मुचीय । मुच्येय । मामृतात् । अमृतात् मोचात् नैव मुचीय इत्येतदर्थं । दृष्टान्तः । बंधनात् वृतात् उर्वारकमिव उर्वारकफलमिव । तद्यथा ईषत्प्रसक्तेन मुंचत इति तद्वत् ॥ The explanation given in brackets is taken literally from D. MS. E. I. H. 2612: त्र्यंबकं चिनेचं महादेवं यजामहे पूजयामः । कीदृशं । सुगंधिं दिव्यगंधोपेतं । marg. पुष्टिवर्धनं पुचपत्यादिपुष्टिहेतुं । अहं तत्प्रसादात्कृत्योर्मुचीय मुक्तः स्थां । मोचने दृष्टान्तः । उर्वारकमिव । बंधनात् यथा चीर्मटं पक्वं स्वयमेव वृतात्मुक्तं भवति तद्वत् अमृतात् मृतावस्थातो वा मा मुक्तः स्थां ॥

P. 128. l. 12. (60, 1.) वयं repeated after अदीनदेव in A. B. C. Ca. D.—l. 21. (60, 2.) वृचसा वृषां मनुष्याणां द्रष्टा from B.—l. 23. स्थितानि B1. स्थितानि A. Ca. स्थितानि D.—P. 129. l. 2. (60, 3.) तदवांतरगोव्यक्तिं ॥ तदवांतरगोव्यक्तिं A. B. तदवांतरगोव्यक्तं C. Ca. D.—l. 24. (60, 6.) सामर्थ्येक्षितयंति from B.—क्रतुं कर्तारं ॥ कृतं कर्तारं C. कर्तारं A. B1. Ca. D, which insert क्रतुं before मुचेतसं.—P. 130. l. 2. (60, 7.) विष्पितस्य व्याप्तिस्तस्य A. B1. Ca. D. विष्पितः विप्राप्तः Nir. VI. 20.—Instead of पर्यन्, A. B1 pr. m. Ca. D read परिपत्.—P. 131. l. 3. (60, 11.) तासां after खोता A. B. C. Ca. D.—l. 4. Sāyana explains उद् चयाय instead of उद् । चयाय ।—l. 5. (60, 12.) For देव here and VII. 61, 7, as for वरुण VII. 61, 1, see Prāt. 312.—l. 10. दुःखेन ॥ दुःखानि A. B. C. Ca. D.—l. 11. शिष्टो गतः A. B. C. Ca. D. See note to VII. 81, 6.

P. 131. l. 28. (61, 2.) यत्कर्म A. B. Ca. D. यत्कर्मणा? B4 has कृत्वा समर्थेन कर्मणा after शोभनकर्मणौ.—P. 132. l. 7. (61, 3.) अध्वयत अध्वसत्वेन यतो विवेकात् ॥ अध्वक् यत् अध्वक् सत्यान् यतः विवेकान् Ca. अध्वक् यत् अध्वक् सत्यानयतः विवेकात् A. D. अध्वक् यत् अध्वक् सत्यानयतः विवेकान् C. अध्वक् यतः अध्वक् सत्यानयतः विवेकात् B1. The emendation given is simpler than it would be to read सत्यान्यतो ('different from truth').—l. 25. (61, 5.) वां from B (not B1).—युवाभ्यां ॥ युवां A. B. C. Ca. D.—l. 26. नामूचन् । न भवंति ॥ भूचन् भवंति A. B1. C. Ca. D. अभूचन् भवंति B.

P. 133. l. 16. (62, 1.) B4 gives a marginal explanation of प्रतिनियतः । नियमेन देवसादृशत्वेनोपादानात् ।—l. 17. कृत्वा ॥ कर्त्वा Ca. कर्त्ता A. D. कर्त्ता B1.—l. 23. (62, 2.) उन्नाः ॥ उदगाः A. D. उदगात् B1. उन्नाः उदगाः Ca.—l. 24. छण्यशवास्तु A. छण्यशतास्तु Ca. छण्यशतास्तु C. D. छण्यशान्युत्तरतो B1.



P. 137. l. 20. (64, 4.) तं seems to have been dropped before अनं.—l. 28. (64, 5.) रचतं from D.

P. 138. l. 11. (65, 2.) पुचादिरूपाः ॥ \*रूपा A. B 1. Ca. D. M 1.—l. 29. (65, 4.) वां युवां प्रति repeated after लोके in A. B 1. C. Ca. D; not in B 4.

P. 139. l. 9. (66.) आबंतौ ॥ आबंतौ A. B. C. Ca. D.—l. 26. (66, 3.) गुहाः ॥ चहाः A. B. C. Ca. D: cf. Rv. Bh. VII. 19, 11; X. 69, 4.—P. 140. l. 9. (66, 6.) रचक added in A. C. Ca. D after अहिंसितस्य.—l. 11. दे Ca. ते A. B 1. D. M 1.—l. 22. (66, 8.) हे विप्राः प्राज्ञाः MSS.—P. 141. l. 29. (66, 13.) प्रजापतिः B 4. D. प्रजातिः A. C. प्रजातिः ४ Ca. प्रजातिः ५ B 1.—P. 142. l. 15. (66, 15.) सूर्यं वहति ॥ अयं वहति A. B 1. Ca. D. अयं वहति C. अयो वहति B 4.—l. 17. सुविताय कस्याणाय B 4. सुविताय प्रकाशाय B 1 marg.; deest in A. B 1. C. Ca. D.—l. 23. (66, 16.) हविःस्त्रीकारस्त्रैतदीनत्वात् B 1. pr. m. \*स्त्रैतदीयाधीनत्वात् B 1. sec. m. \*स्त्रैतदीयाधीनत्वात् D. हविःस्त्रीकारास्त्रैतदीयाधीनत्वात् Ca. हविस्त्रीकारस्त्रैतदीयाधीनत्वात् A; quite corrupt in C; not in B 4.—P. 143. l. 4. (66, 18.) युलोकसं C. Ca. D. युसं A. B.

P. 143. l. 20. (67, 1.) केन साधनेनेति Ca. Colebr. sec. m. and D. केनेति B 1 B 4. All the other MSS. mark a lacuna after शेषः. ---केनेति A. ---वनेति Ca.—P. 144. l. 10. (67, 4.) युवयोः?—l. 12. अतो वां ॥ अतोवा A. अतोवाव C. Ca. अति वा B 1. D; not in B 4.—l. 29. (67, 6.) सख्ये A sec. m. B. D. सख्ये C. Ca; illegible in A pr. m.; perhaps सख्ये.—P. 145. l. 6. (67, 7.) सख्ये ॥ सख्येव A. B 1. Ca. D.—l. 15. (67, 8.) गंगायाः B 1. 4. गंगायाकाः A. C. Ca. D: cf. Pân. VII. 4, 15.—तद्रथानुकूलाः । तद्रथानुकाः B 4. तद्रथान् कूला A. Ca. D; left out in C. तद्रथान्नाः B 1. M 1.

P. 146. l. 10. (68, 1.) उपपथितारौ Ca. D. उपपथितारौ A. B 1. M 1.—l. 21. (68, 2.) तच्छ्रुतं ॥ तं श्रुतं A. B 1. Ca. D.—P. 147. l. 9. (68, 5.) च्छवीसं ॥ च्छवीस A. D. च्छ - स Ca. च्छवा वासं B 1. च्छवि (आ वा) सं B 4.—l. 11. धारयति B 1. धारयत A. C. Ca. D. धारयेत् B 4.—l. 17. (68, 6.) तस्य रूपस्य प्रत्याख्ये ॥ तस्य रूपस्य प्रत्याख्य A. Ca. D. तस्य रूपस्य प्रत्याख्य C. तस्य रूपस्य प्रत्याख्ये B 4 pr. m. तस्य रूपस्य प्रत्याख्यं B 4 sec. m. तस्य रूपस्य प्रत्याख्यं B 1. Perhaps तस्य रूपस्य प्रत्याख्यं. Cf. Rv. Bh. IV. 5, 14.—P. 148. l. 1. (68, 8.) घनादधि ॥ घनादधि A. B 1. 4. C. Ca. D.—l. 4. नदीं तां ॥ नदीनां A. B 1. 4. D. नदीतां C. Ca.

P. 149. l. 13. (69, 4.) अयत A. अयत B 1. Ca. D.—l. 14. पर्यवृणीत ॥ परिवृणीत A. B 1. Ca. D.—l. 29. (69, 6.) C 2 has a lacuna from this verse to the beginning of the sixth Adhyâya.—l. 31. हवते ॥ जरते A. Ca. D. जरते B 1.—मा नियच्छंतु ॥ मा नियंतु A. Ca. मा नियंतु B 4. मा नियंतु B 1. मातियंतु D.—P. 150. l. 5. (69, 7.) विचित्रं A. B 1. 4. Ca. D. निचित्रं?

P. 150. l. 21. (70, 1.) ययं वागमा ॥ यवागमा A. Ca. D. M 1. ययदा आ B 1.—l. 23. अयोऽस्मात् B 1. अयो न अयोऽस्मात् Ca. अयो न अयोऽस्मात् A. अयो न अयः अस्मात् B 4. D.—l. 24. तत्स्थानमय ॥ \*ममत्त्व A. Ca. D. \*ममत्त्व B 1.—l. 25. योनिं स्थानमिव A. Ca. B 4. D. योनि स्थानमिव B 1.—l. 30. (70, 2.) वा वां ॥ वा Ca. D. युवा A. यवां B 1.—l. 31. प्रवर्गय A. Ca. D. प्रकार्यय B 1. Cf. Rv. Bh. I. 164, 26; VII. 103, 8; VIII. 9, 4.—यद्वाँ etc. TÂ. यद्मर्मे इत्यतपत् etc. A. Ca. यद्मर्मे इत्यतपत्तद्मर्मेस्त्वमिति D. यद्वाँ इत्यतपत्तद्मर्मेस्त्वमिति युतिः B 1. Cf. Rv. Bh. I. 164, 26; V. 43, 7.—P. 151. l. 9. (70, 3.) नि seems to have



been dropped before सदा.—l. 15. (70, 4.) देवा देवी MSS.—चनिष्ठं etc. Sāyana explains चनिष्ठं either as a verbal form or as a superlative.—l. 25. (70, 5.) वनाय from B 4, which has not वनस्य.—l. 26. भवतु B 4. भवति A. B 1. Ca. D.

P. 152. l. 10. (71.) एकोनविंशति ॥ एकविंशति A. B 1. Ca. D.—P. 153. l. 9. (71, 4.) यो by conjecture.—l. 11. यद्रथो Ca. D. तद्रथो A. B 1. यवस्य रथो etc. B 4.—l. 12. यववाह B 1. यव आह A. B 4. Ca. D. It may be यव आह; cf. Rv. Bh. VI. 42, 2.—वां ॥ वा A. B. Ca. D.—l. 18. (71, 5.) निरुद्धुः A. B. Ca. D.—l. 19. बंहसः पापात् D.—l. 20. निष्पत्ते A. Ca. D. निष्पत्ते B 1.—न्यपारयतं ॥ निपारयतं A. निपारयतं B. Ca. D.

P. 154. l. 3. (72, 1.) गोप्रदेन ॥ गोप्रदेशेन A. B. Ca. D. गोप्रदेशेन ?—l. 12. (72, 2.) बंधुत्वातिशयं ॥ बंधुत्वातिशयं B 1. बंध्वीतिशयं A. Ca. बंध्वातिशयं D; not in B 4.—l. 15. कक्षपाद° B 1. कक्षपाव° A. Ca. D.—The passage from the Brihaddevatā is quoted by Kuhn in the Zeitschrift für vergl. Sprachforschung I. 442 from a Berlin MS. of the same. Various readings from A 2 are published by Prof. Roth amongst the errata of the same volume. The readings marked M. M. are from a MS. lately (1862) received from India. It generally agrees with the Berlin MS., and the readings of these two MSS. are mostly preferable to those of the MSS. of Sāyana. According to the principles, however, which I have tried to follow throughout this edition of Sāyana, I was not at liberty to receive them in the text, because the MSS. clearly show that Sāyana was either not acquainted or not satisfied with these readings, and that he gave his extracts from the Brihaddevatā either from other MSS. or from memory.—l. 16. सरस्य Kuhn, M. M. सरस्यु A. Ca. B. D.—l. 17. सरस्यं B 1. सरस्यं A. Ca. D. Roth found सरस्यं. सरस्योर्ल° M. M.—जाते ते A. B 1. जातते Ca. D. जज्ञाते Kuhn, M. M.—यस्या च वै यमः Ca. D. यस्या च ते यमः A. रस्या च ते B 1. The Brihad. has तौ चायुनी यमावेव व्यावांस्त्राभ्यां तु वै यमः ॥ M. M.—l. 18. सरस्यः Kuhn, M. M. सरस्युः A. B. सरस्यु Ca. D.—प्रचक्रमे A. B. Ca. D. उपचक्रमे Kuhn. खोपचक्रमे M. M.—अविज्ञातात् Kuhn, M. M. अविज्ञातात् A. अविज्ञाता B 1. अविज्ञातात् Ca. D.—l. 19. राजर्षिर्मवत्सोऽपि M. M.—अपक्रांता A. B. Ca. D. स्वपक्रांता Kuhn, M. M.—सरस्यु A. B. Brih. स्यु Ca. D.—आमरूपिणी A. B. Ca. D. आमरूपिणी Kuhn, M. M.—l. 20. सरस्यु A. स्यु B 1. स्यु Ca. D. सरस्यु Kuhn. सरस्यु M. M.—विज्ञाय Ca. D. विज्ञाय A. B. विदित्वा M. M.—अथरूपिणं M. M. मथरूपिणं A. B. मथरूपिणं Ca. D. सरस्यु Kuhn.—l. 21. तच्छुक्रं Kuhn, M. M. तं शुक्रं A. Ca. B. D.—गर्भकाम्यया Kuhn, M. M. यतकाम्यया A. Ca. B. D.—आघ्रातमावाक्षुक्रात् Kuhn, M. M. (only शुक्र° throughout).—l. 22. अक्षिनाविति Kuhn, M. M.—l. 24. (72, 3.) धिष्ण्येने all Samhitā MSS., Prāt. 174.—l. 28. Sāyana read अक्षिना for अक्षिनीः. The Pada MS. P 1 had indeed अक्षिना pr. m.—l. 29. परिवृढानि ॥ कर्मपरिवृढानि A. Ca. B 1. D; left out in B 4.—P. 155. l. 13. (72, 5.) दक्षिणत B. दक्षिण A. Ca. D.

P. 155. l. 30. (73, 2.) मनुषः सकाशात् D. मनुषसकाशात् A. Ca.; deest in B.—P. 156. l. 19. (73, 4.) सोमाः ॥ सोमा A. Ca. सोमान् D.—समगच्छंत ॥ समगच्छंतं A. गच्छंतं च Ca. संगच्छंतं च D. गच्छंतं B 4. From तस्यार्थः to अंतं आगच्छंतं left out in B 1.

P. 157. l. 11. (74, 2.) A. Ca. D have दधतुः for ददतुः.



P. 158. l. 14. (75) अष्टावु° A. B1. Ca. अष्टा उ° D. Anukr. M.—l. 18. हिरण्णाणि A. Ca. B1. D. हिरण्णादि Rvdh.—गा अष्टान् Rvdh. गावोऽष्टान् A. Ca. B1. D.—धान्यं Rvdh. धन्यार्ण A. Ca. D. धान्यान् B1.—l. 26. (75, 1.) It would be better to read इति तिलोपः.—P. 159. l. 3. (75, 2.) मर्त्तैषु Ca. मर्त्तैषु A. B1. D. M1.—l. 12. (75, 3.) सरंति A. B. प्रसरंति Ca. D.—l. 17. (75, 4.) °मांश्चतुरो वर्णान् ॥ °मांश्चतुरो वर्णाः A. Ca. B1. °मा-  
श्चतारो वर्णाः तान् B4. D.—l. 18. परि जिगति परिगच्छति D.—l. 25. (75, 5.) अचैको योग° ॥  
अचैयो योग° A. अचैको याग° Ca. D. अच योग° B1.—l. 26. °ररमाख्य° ॥ °ररमाख्य° A. Ca.  
B1. D. ररमाख्य° without विचित्र° B4.

P. 160. l. 31. (76, 1.) यागानुष्ठानार्थमि° A. B1. यागानुष्ठानमि° Ca. D.—P. 161. l. 18. (76, 3.) Sâyana took चार for the locative.—l. 19. अत्यज्यैव ॥ अत्यज्यैव A. अत्यज्यैव B1;  
the whole passage is left out in B4. Ca. D.—l. 20. यतो पतिं परित्यज्ये° etc. ॥ यती पति-  
परित्यजेत ततः संचरंतीत्यभिचारिणीव etc. A. यती पतिं परित्यजेत् ततः सचरंतीत्यभिचरणीव (°चरि-  
णीव D) etc. Ca. D. यथा व्यभिचारिणी पतिं न त्यजति तद्वत् सूर्ये अपरित्यजंती त्वं B4. यती पति  
परित्यजेत नः संचरंति व्यभिचरीणीव सूर्यमपरित्यजती त्वं B1.—P. 162. l. 11. (76, 6.) स्तोमैः B1.  
स्तोमिभिः A. Ca. D. M1.

P. 162. l. 29. (77, 1.) वा after बाधमानं A. Ca. B1. D.—P. 163. l. 23. (77, 4.) व्युच्छ  
A. B1. Ca. D.—l. 24. वसूनि to आहर from B4.—P. 164. l. 2. (77, 5.) रथवद्द्रष्टृपेतं  
from B4. D.

P. 164. l. 16. (78, 1.) असम्भं repeated after धनं in A. Ca. B1. D.

P. 166. l. 9. (79, 3.) Ca. D, and probably A pr. m. have प्रयांसि for अयांसि.—  
l. 11. रात्र्यवसानस्य ॥ रात्रिवसानस्य A. Ca. D. रात्रिवसनास्य B1.—l. 27. (79, 5.) धनलाभाय  
A. B1; deest in Ca. D.

P. 167. l. 12. (80, 2.) A. Ca. D read अदृश्यमाना.

C2 begins again from the sixth Adhyâya, but as it does not differ from Ca, it  
is only occasionally mentioned.

P. 168. l. 7. (81, 1.) व्युच्छंती A. B1. Ca. The same in verse 4.—P. 169. l. 18. (81, 6.)  
शिष्टः etc. In all cases, where the masculine is used, पादः has to be supplied. Cf.  
Rv. Bh. VII. 60, 12. 82, 2. 85, 1.—l. 19. A omits all from प्रिय° to the end.

P. 170. l. 8. (82, 2.) वां युवां A. B. Ca. It should be युवाभ्यां, as immediately  
afterwards.—l. 9. शरीरदार्ढ्याय etc. A. Ca. B1. औजः शरीरदार्ढ्यहेतुभूतं संदधुः B.—औजः  
साष्टमी दशेति B1. औजो नाष्टमी दशेति A. औजो नाष्टमी ॥ दशेति Ca.—P. 171. l. 2. (82, 5.)  
जातिमंति ॥ जातिमंति A. जातिमंति B1. संति Ca.

P. 172. l. 15. (83.) ऐंद्रावरुणं ॥ मेधावरुणं A. B1. Ca.—l. 24. (83, 1.) Read अक्षेति  
। ते° प्रा° ३. २. १. १ इति ॥ आक्षेति Ca. अक्षेति A. अक्षेति B1.—P. 173. l. 1. (83, 2.) वीराश्च B.  
वीराश्च A. Ca. M1.—l. 16. and p. 174. l. 3. (83, 4 and 6.) अरचतं ॥ रचतं A. B1. Ca.—  
P. 175. l. 3. (83, 10.) धनं from B1. 4.

P. 176. l. 24. (85, 1.) चोद्दिष्ट B1 and margin of B4. बोद्धस्य A. Ca.—P. 177.  
l. 12. (85, 3.) असांकार्येण A (cf. Wilson, s.v. सांकार्य). असांकार्येण Ca. आसांकार्येण B. असा-  
कार्येण B1.

P. 179. l. 8. (86, 5.) च after विश्लेषय A. Ca. B; not in C.—l. 9. घासादिभिः Ca. B1.



वासादिभिः A. चवसादिभिः B<sub>4</sub>.—l. 15. (86, 6.) स्वमूतं तद्वत् A. B<sub>1</sub>. स्वमूतवत् Ca; not in B<sub>4</sub>.—l. 16. प्रमोद° B. प्रमोद° A. Ca.—l. 20. होव A. B<sub>1</sub>. Ca. उ एव Kaush.

P. 183. l. 10. (88, 3.) अभूव A. Ca. मवाव B<sub>4</sub>. अभूतां B<sub>1</sub>. नभूविव M<sub>1</sub>.—l. 12. दोषायां A. दोषायां B<sub>1</sub>. Ca, and probably A pr. m. Cf. Rv. Bh. X. 143, 5.—l. 20. (88, 4.) Sāyana read स्वपामवोभिः instead of स्वपा महोभिः.—l. 29. (88, 5.) सख्यं B<sub>1</sub>. सख्यं A. Ca.—P. 184. l. 4. (88, 6.) सखा Ca, ससखा A, after सखा.

P. 184. l. 32. (89, 3.) प्रतिकूलमननुष्ठानं Ca. प्रतिकूलितं अनुष्ठानं A. अननुष्ठानं B<sub>4</sub>. प्रतिकूलं अनुष्ठानं B<sub>1</sub>.

P. 186. l. 4. (90, 2.) Sāyana seems to take वाग्यस्व as one word.—P. 187. l. 1. (90, 5.) स्वकीयत्वे विहितेन A. स्वकीयस्व विहितेन Ca. स्वकीयेन विहितेन B<sub>4</sub>. स्वकीयेनैव B<sub>1</sub>.—l. 19. (90, 7.) Sāyana explains सुऽअर्वसे instead of सु । अर्वसे ।

P. 190. l. 3. (92, 1.) उप समीपे from B<sub>4</sub>.—l. 28. (92, 3.) A. B<sub>1</sub>. Ca have राद्यो for राद्यो. Cf. Rv. Bh. I. 48, 2.—P. 191. l. 3. (92, 4.) सूरयः खोतारः A. B. Ca.

P. 192. l. 2. (93, 2.) युवं युवां A. B<sub>1</sub>. Ca.—l. 4. संयोजयतं B<sub>1</sub>. स्वयोजयतं A. Ca. योजयतं B.—l. 12. (93, 3.) भूमिं व्याप्नुवन्ति B<sub>4</sub>. भूम्यां व्याप्नुवन्ति A. भूम्यां चाप्नुवन्ति Ca. B<sub>1</sub>.—l. 20. (93, 4.) From बुद्धिभिः to निर्वाचैः in verse 6 left out here in Ca, but inserted afterwards at the beginning of Sūkta 94 with the remark after it पूर्वाधं लिख्यते.—l. 28. (93, 5.) A. C. Ca omit all from तनूद्वा to हतं. B<sub>4</sub> has सधौ कुर्वन्तौ मूरसाता मूरसातो रणे यतैते यत्नं कुर्वन्तौ वैरिसेने तनूद्वा आत्मीयेन तेजसा सं यत् ये सचा हतं सततं हिंसं तथा सोमसुता सोमममिषुष्यता अनेन यतमानसंधेन देवयुभिः देवान् कामयमानैः सह विदधे यज्ञे अदेवयुं असोमसुतं जनं सं हिंसं ॥ B<sub>1</sub> has तनूद्वा ॥ औक्कि हतं.—P. 193. l. 5. (93, 6.) उपा ॥ उप A. B<sub>1</sub>. Ca. M<sub>1</sub>.—l. 21. (93, 8.) मा before परि ख्यन् by conjecture.

P. 194. l. 6. (94, 3.) पापत्वाय पापवत्त्वाय Ca.—P. 195. l. 4. (94, 8.) यच्छतं Ca. प्रयच्छतं A. B<sub>1</sub>. M<sub>1</sub>.

P. 197. l. 14. (95, 5.) पवित्रेयां B<sub>1</sub>. परिवेयां A. C. Ca.—l. 20. स्वद्विष° B<sub>4</sub>. तृपद्विष° A. Ca. B<sub>1</sub>.—l. 28. (95, 6.) यंतुः ॥ यंतु A. Ca; deest in B<sub>1</sub>. 4.

P. 197. l. 31. (96, 6.) द्वितीया सतोवृहती left out in A. Ca. B<sub>1</sub>. द्वितीया प्रसारपंक्तिः तृतीया सतोवृहती B<sub>4</sub>.—l. 32. सरस्वदेवताकः ॥ सरस्वादेवताकः A. Ca. B.—P. 198. l. 8. (96, 1.) असुराश° ॥ असुराश° A. B<sub>1</sub>. Ca.—P. 199. l. 7. (96, 6.) सरस्वतो A. B<sub>1</sub>. Ca. सारस्वत° M<sub>1</sub>.

P. 200. ll. 28 and 30. (97, 6.) नीलवत् S<sub>1</sub>. S<sub>2</sub>. S<sub>3</sub> sec. m. S<sub>4</sub>. P<sub>1</sub>. P<sub>3</sub>. P<sub>5</sub>. नीलवत् S<sub>3</sub> pr. m. P<sub>4</sub>. M<sub>1</sub>. Cf. Rv. VIII. 19, 31. The MSS. of Sāyana read नीलवत् and नीलं.

P. 202. l. 28. (98, 3.) पप्रक्ष P<sub>3</sub>. P<sub>4</sub>. P<sub>5</sub>. पप्रक्ष P<sub>1</sub>.—P. 203. l. 1. अदिष्टेन्द्रमहत्स्व-खो° ॥ अदिष्ट इन्द्रमादित्यखो° A. Ca. B<sub>4</sub>. आदित्य इन्द्रमादित्यखोक्तवान् B<sub>1</sub>.—पप्राक्ष ॥ पप्राक्ष B<sub>1</sub>. पप्रक्ष A. Ca. M<sub>1</sub>.—l. 9. (98, 4.) अभियुध्य ॥ अभियुध्यस्व A. B. Ca.—l. 16. (98, 5.) यदेवदेव ॥ यदेतत् यदेव A. यदेतत् तदेव B<sub>1</sub>. यदेतत् सदेव Ca.—l. 23. (98, 6.) Sāyana seems to have read तवेदिदं.

P. 204. l. 15. (99, 1.) नावत् B<sub>1</sub>. 4. Ca sec. m. नावत् A. Ca pr. m.—P. 205. l. 7. (99, 3.) वामधोमुखत्वेन from Ca marg.—l. 8. यवैः B<sub>4</sub>. Ca marg. वीससदृशैः यवैः marg.



of C Colebrooke; deest in Ca. B1. A.—l. 25. (99, 5.) सद्य एव B1. संपद्य स एव A. संद्यस एव (perhaps for संद्यश्च एव) Ca.—P. 206. l. 3. (99, 6.) वृज्जिषु आ युत्तु B4.

P. 208. l. 7. (100, 6.) विष्णो प्रख्यातं A. B1. विष्णोः प्र० Ca. विष्णोऽप्र० M1. Nir. Roth and SS.—l. 14. यद्वा seems to have been dropped before तन्नाम.—l. 16. यस्मादन्व-  
रूपो ॥ यस्मात् अन्वत् A. Ca. यस्मात् अन्वत् B1.—l. 20. गूढरूपोऽपि ॥ गूढरूपाणि A. गूढरूपाणि  
Ca. गूढरूपोऽपि B1.

P. 209. l. 6. (101.) तिस्रश्चादिभ्यामुपतिष्ठेत भास्करं A. तिस्रमुपतिष्ठेत भास्कर एताभ्यां Ca.  
तिस्र दीदित्यमुपतिष्ठेत भास्करं B1. तिस्र एताभ्यामुपतिष्ठेद्विवाकरं Rvdh.—l. 17. (101, 1.) प्रवदेतेति  
(Ca. प्रवदेतेति A. B1. M1.—l. 30. (101, 2.) वसंता B1. TS. वसंते A. Ca. M1.

P. 211. l. 19. (103.) पर्जन्यस्तुतिः सं० A. Ca. पर्जन्यः स्तुतिसं० B1. पर्जन्यस्तुतिसं० Anukr. M.—  
P. 213. l. 16. सर्वतो वदंतो ॥ सर्वतः यावदंतः A. सर्वतः यावदंतः B1. Ca.—तद्दिनं ॥ पद्दिनं  
(Ca. पद्दंतं A. यद्दंतं B1.—l. 17. (103, 7.) सर्वतो ॥ तो A. Ca.; deest in B1.—l. 24.  
(103, 8.) प्रवर्गेण A. B1. Ca.

P. 214. l. 19. (104.) पंचिंश्रो B1. Anukr. पंचिंश्रो वा A. चतस्र ऐंश्रो वा Ca.—l. 20.  
दैवत A. B1. Ca. दैवत Anukr.—l. 21. रचोघ्नं A. B1. Ca. राचोघ्नं Brh. MS.—P. 215.  
l. 31. (104, 5.) अरमसारभूतस्त्व B1. अरमसामूतस्त्व A. Ca. अरमसामूतस्त्व?—P. 216. l. 9.  
(104, 6.) कचचंधनी A. कचं चंधनी Ca. M1. कच्यचंधनी B1.—l. 11. यथा before धनेः by  
conjecture. नृपतीव is not explained in A. Ca. B. The omission took place probably  
after स्तोत्राणि, and Sāyana's explanation might have been स्तोत्राणि नृपतीव राजानाविव  
तौ यथा धनेः पूरयतः तथा etc. B4 has at the end दृष्टान्तः नृपतीव राजानी इव तौ यथा  
पूरयतः तद्वत् ॥—l. 17. (104, 7.) द्रोणधुन् B1. B4. Ca. and A pr. m. द्वेष्टुन् A sec. m.—  
P. 217. l. 2. (104, 9.) परिवदंति B1. B4. Ca. परिभवन्ति A.—l. 25. (104, 12.) इदमादिभिः  
B1. इदमाभिः A. Ca.—l. 26. वसिष्ठं ॥ वसिष्ठ A. B1. Ca.—l. 27. दृष्टा वसिष्ठेनेति नः श्रुतं ॥  
दृष्टा वसिष्ठो नेति श्रुतं Ca. दृष्टा वसिष्ठो नेति न श्रुतं A. B1.—l. 29. सत्यभाषणं ॥ असत्यभाषिणं A.  
B1. Ca.—P. 218. l. 3. (104, 13.) इति न मुंचति B1. B4. Ca. इति --- ते A.—l. 14.  
(104, 14.) जायतां B1. जायतु A. Ca. M1.—P. 219. l. 20. (104, 19.) तीक्ष्णीभूतं A. B1.  
Ca. तीक्ष्णीकृतं M1.—l. 27. (104, 20.) परिकरभूतैः A. परिरभूतैः B1. परिगता भूतैः Ca.  
See verse 22.—P. 220. l. 18. (104, 22.) मुमुक्षुकः by conjecture.—l. 27. (104, 23.)  
स्त्रीपुंसं ॥ स्त्रीपुंसं A. B1. B4. स्त्रीपुंसोऽं Ca.—l. 28. विभाशयतु A. B1. विभासयतु  
Ca.—P. 221. l. 6. (104, 25.) स्तो अरणः ॥ स्तोऽपि नरः A. B1. Ca. M1.

### MANDALA VIII.

P. 222. l. 4. (1.) ज्ञायोगिश्च A. ज्ञायो B1. प्रायो Ca.—l. 8. ज्ञयोग B1. प्रयोग A.  
ज्ञायोगि Ca.—l. 12. अघिका A. अघीका Ca. M1. अघीका B1.—l. 14. एकोनविंशत् ॥  
एकोनविंशो Ca. B1. एकोनविंशो A.—l. 33. (1, 2.) वृषमिव A. B1. वृषममिव Ca. M1.—  
P. 223. l. 23. (1, 5.) त्वां ॥ त्वा त्वां A. B1. Ca. M1.—P. 225. l. 19. (1, 12.) इष्कर्ता Pada  
MSS. and Sāyana. Cf. Rv. VIII. 20, 26, and Prāt. 465, 65.—l. 20. अभिज्ञेयणात् B1.  
B4 sec. m. अभिज्ञेयणाः B4 pr. m. अभिज्ञेयणा A. Ca.—द्व्यात् B1. द्व्यान् A. B4.  
Ca.—P. 226. l. 29. (1, 17.) अदाभ्यगहे हिमादासुत ॥ अदाभ्यगहे हिमादासुत A. अदाभ्यगहे हिमा-  
दासुत Ca. अदाभ्यगहे हिमादासुत B1. See Kāty. Sraut. XII. 5, 13 seqq.; Rv. Bh.



VIII. 2. 2; IX. 72, 8; 107, 5.—P. 227. l. 23. (1, 20.) आस्रावणेन B 4. आस्रावणेन A. Ca. आस्रावणेन B 1.—P. 228. l. 3. (1, 21.) ददाति हि अ from Ca.—l. 27. (1, 24.) भूत-  
द्योऽन्ते ॥ भूतयोने A. Ca. भूतयो नो B 1; cf. the following verse.—P. 229. l. 15. (1,  
26.) स इवेन्द्र° ॥ स ह्येन्द्र° A. Ca.; deest in B.—l. 27. (1, 27.) न विद्युक्तो ॥ विद्युक्तो A. B 1.  
विनिद्युक्तो Ca.—P. 230. l. 16. (1, 29.) प्राप्ते ॥ प्रपिते A. Ca.; deest in B.—l. 22. (1, 30.)  
मेधातिथये ॥ मेधातिथये A. B. Ca.—l. 26. चक्षते ॥ वक्षते A. B 1. चक्षते Ca. चक्षते M 1.—  
P. 231. l. 2. (1, 31.) आरोहयं B 4. आरोहयंत A. Ca.; deest in B 1.

P. 232. l. 3. (2.) च after आंगिरसस्य by conjecture.—l. 4. विमिंदो ॥ विमिंद A. B 1.  
Ca. M 1.—l. 21. (2, 2.) भवतीति ॥ भवतीषु A. Ca. भवतिषु B 1. Some omission has  
taken place, which can be supplied from Sāyana's commentary on the same verse  
in Sv. II. 1, 2, 8, 2: परिपूतः शोधितः दशापविचस्र नामिपूततया ऊर्णासुकया हि सोमः परिपूयते ।  
तदुक्तं भगवता आपस्वेन युक्तामूर्णासुकां यजमानाय प्रयच्छति तां शकटे दशापविचस्र नामिं कुरुते मुहं  
वक्ष्याः पविचममोतं भवतीति नदीषु etc. Cf. Rv. Bh. IX. 107, 5.—P. 233. l. 11. (2, 5.)  
नजा च ॥ नजा च A. Ca. नज्या च B 1.—l. 23. (2, 6.) इन्द्र° ॥ यमिन्द्र° A. B. Ca.—P. 234. l. 1.  
(2, 8.) सोमेः ॥ सोमाः A. B 1. Ca.—l. 24. (2, 12.) अपि च पाः कंदांसि A. Ca. अपि च कंदांसि  
B 1. अपि च नपाः । कंदांसि M 1.—l. 32. (2, 13.) तव B. अत एव A. Ca. B 1.—P. 235.  
l. 1. दृढयति A sec. m. दृढयति B 1. दृढयति Ca and perhaps A pr. m.—l. 3. निहीयते ॥  
निहीते A. B 1. नहीति Ca.—P. 236. l. 15. (2, 20.) दुःसहहनं A. दुःसहनं B 1. M 1. दुःसहहनं  
Ca. Cf. Rv. Bh. VIII. 18, 14.—P. 237. l. 9. (2, 25.) अहीनांतर्गते A. आ° B 1. अहानां  
अंतर्गते Ca.—l. 10. कंदोगप्रत्ययं सोमसो° B 1. कंदोगं प्रत्ययं सोमसो° Ca. कंदोगप्रत्ययं सोमे  
सो° A.—l. 24. (2, 27.) The commentary to this verse is left out in A. C. Ca. B 1  
says अस्यार्थः वृद्धितः. B 4 has the following: ब्रह्मयुजा अस्रवंतो शग्मा सुखप्रदौ हरी एतादृशी  
अग्नी युवां इह अस्रवन्ते इन्द्र° आ वचतः आवहतं कीदृशं इन्द्र° अस्रत्सखायं गीर्भिः अस्रत्कृतैः सोचैः श्रुतं  
प्रख्यातं गिर्यणसं गिरां संमत्तारं ॥ The commentary given in brackets is taken from  
Sāyana's commentary to the same verse in Sv. II. 8, 2, 1, 2.—P. 239. l. 15. (2, 36.)  
सखः साधुः A. B 1. सत्सु साधुः Ca. Cf. Rv. Bh. VIII. 16, 8.—l. 20. (2, 37.) अनुकूलो ॥  
अनुकूलवेयो Ca. A. B 1 reads प्रियाः अनुकूला मेधा यज्ञा येषां.—प्रियमेधा A. B. Ca instead  
of प्रियमेधो?—P. 240. l. 10. (2, 40.) काण्वायनि B 1. काण्वायनि A. काण्वायनि Ca. का-  
ण्वायनं Shadvimsa-brāhmana.—भूत्वाजहार ibid. and B 1 sec. m. भूत्वाजहार B 1 pr. m.  
A. Ca. भूत्वाजहार M 1. See Rv. Bh. I. 51, 1.

P. 241. l. 5. (3, 1.) संहितैः ॥ सहितैः A. B 1. Ca.—P. 242. l. 13. (3, 6.) अप्रययत् deest  
in A. B 1.—P. 244. l. 2. (3, 11.) विकल्पात् ॥ विकर्तनात् A. Ca. विकल्पात् B 1.—l. 28.  
(3, 13.) इन्द्रस्य सिंगं deest in B 1.—l. 30. नृद ॥ नृद A. B 1. Ca. M 1.—P. 247. l. 21. (3, 22.)  
तस्याः by conjecture. तां B 4; deest in A. B 1. Ca.—P. 248. l. 6. (3, 24.) वक्षस्य दातारं  
A. B 1. Ca.

P. 249. l. 10. (4, 3.) संपूर्णं ॥ संपूर्णत्वं A. Ca and B 4 pr. m. संपूर्णं च B 4 sec. m.  
B 1.—l. 12. एकयत्नेन ॥ एकयत्नेन A. Ca. एकच B 4. एकयत्नेन B 1.—l. 18. (4, 4.) क्लेदनाः  
from Ca. B. A has a lacuna.—P. 250. l. 5. (4, 6.) परस्मैपदं is supplied from C 2.  
The interpretation of यवीयुधा is left out in A. Ca. B 1. यवीयुधा यज्ञायुधेन युजमानेन  
B 4.—l. 26. (4, 8.) प्रवचनीयत्वं ॥ प्रवचनीयं A. Ca. B.—l. 34. अधवी धेद् पा पान धेद



इक्ष्वेतोबोदिको मुप्रत्ययः तत्संनियोगेन इकारांतादेशस्य पानव्याः सोमा इत्यर्थः Ca after इत्यर्थः.—  
P. 252. l. 13. (4, 13.) वज्रलमिति सप्तम्या अलुक् ॥ वज्र लुक् A. वज्रलुक् Ca. मिति अलुक्  
B I.—l. 24. (4, 14.) गतो वा ॥ गंतोर्वा A. Ca. गंतो वा B I.—l. 27. अध्वरं सेवमानाः B I. A.  
अध्वरे सचमानाः Ca. अध्वरे शोममानाः B 4.—P. 253. l. 14. (4, 16.) तत् कस्य हेतोः B I. 4.  
तत्कस्य हेतोः A. Ca.—P. 254. l. 15. (4, 20.) शुद्धानां ॥ शुद्धां भो A. शुद्धां वां भो Ca. शुद्धां  
B I. 4.—l. 17. तत्प्रतिगृहीतं A. तैः प्रतिगृहीतं B I. Ca. प्रतिगृहीतानि ?

P. 255. l. 20. (5, 2.) नृवतीं B I. नेतृमतीं A. Ca.—P. 256. l. 23. (5, 6.) अपायः ॥ अपायां  
A. Ca. B I. Some words seem to have been left out.—l. 29. (5, 7.) कीदृशैः ॥ ईदृशैः  
A. B I. 4. Ca.—P. 257. l. 16. (5, 10.) वा after इति by conjecture.—P. 259. l. 26.  
(5, 22.) यद्यदा deest in A. B. Ca.—l. 30. (5, 23.) साधू ॥ साधु A. B I. Ca. M I.—P. 260.  
l. 1. बभूवतुरिति B I. Nir.; deest in A. Ca. M I.—P. 261. l. 29. (5, 33.) जनं deest in  
A. B. Ca.—P. 262. l. 2. (5, 34.) अक्षिन् B. अक्षिन् A. Ca.—l. 9. (5, 35.) प्रथमांतरमेव  
नामंचितं ॥ प्रथमांतरमेव सामंचितं Ca. प्रथमांतरमेवमामंचितं A. B I. 4.

P. 263. l. 16. (6.) पारश्वस्य A. पारसव्यस्य B I. पारश्व° Ca. See Anukr. M.  
p. 28.—l. 21. अतिरिक्तोक्त्य ॥ °क्तोक्त्य MSS. both here and Rv. Bh. VIII. 8, 1 and  
VIII. 9, 1. But see Åsv. IX. 11, 13; Rv. Bh. IV. 57, 1-3; V. 76 etc.—l. 22.  
अग्निना Åsv. अग्निनोः A. B I. Ca. M I. See Rv. Bh. VIII. 9.—P. 266. l. 24. (6, 19.)  
एनां ॥ एनं A. Ca; lacuna in B I.—P. 267. l. 1. (6, 23.) उत प्रजां सुवीर्यं is not ex-  
plained in A. B. Ca. उतापि च प्रजां सुवीर्यं सुपुचवीर चाद्रियस्य B 4.—P. 269. l. 6. (6, 32.)  
सेवस्य from B I.—l. 12. (6, 33.) वज्री हस्तः । तद्वा ॥ वज्रहस्तः तद्वत् A. Ca. वज्रहस्त तद्वावी  
B I: cf. Rv. Bh. I. 121, 14.—P. 270. l. 20. (6, 40.) वज्रहस्तेन A. B. Ca. वज्रहस्तेन ?—  
P. 271. l. 3. (6, 43.) अत्यपिष्टोमादिषु ॥ अत्यष्टोमादिषु A. Ca; lacuna in B I, only चा-  
गकिष्टोमादिषु being left. See Åsv. VI. 7, 7. 11, 1.—l. 24. (6, 47.) दशगु° ॥ शतगु°  
A. B. Ca.

P. 272. l. 28. (7, 5.) यद्यदा by conjecture. नि यत् B 4.—P. 273. l. 15. (7, 8.) अग्नि  
रश् च A. B I. Ca. Cf. Un. IV. 56; II. 75; Rv. Bh. III. 7, 9.—P. 275. l. 3. (7, 17.)  
A. Ca have immediately after पृश्निमातरः, येनात्मीयेन etc. of the next verse. B I  
has पृश्निमातरः ॥ अथाष्टादशी ॥ etc., B 4 पृश्निमातरः मरुतः तथा स्तोमैः स्तोत्रैः उदीरते.—l. 23  
(7, 21.) प्रवृत्तयश्चका ॥ प्रवृत्त° A. B. Ca.—P. 276. l. 5. (7, 22.) गौतम (twice) A. B. Ca. गौतम  
Brih. Up., and A pr. m. the first time.—सर्वाणि च Brih. Up. सर्वाणि A. B. Ca.—  
संदृब्धानि Brih. Up. संदृब्धानि Ca. संदग्धानि A. संबद्धानि B I. Cf. Rv. Bh. I. 164, 1.—l. 16.  
(7, 24.) आप्तस्य ॥ आप्तस्य A. B. Ca.—ll. 26 seq. (7, 26.) उशना Pada MSS. उशनाः  
Sāyana.—P. 277. l. 10. (7, 28.) समानवाक्ये निघातयुष्मदस्यदादेशा ॥ समानवाक्येषु युष्मदादेशा  
A. Ca; deest in B: cf. Rv. Bh. I. 31, 3. 32, 12. 34, 11. 48, 3; III. 30, 1.—l. 15.  
(7, 29.) अजीका नाम B. अजीका नामा B I. अजीकानां A. Ca.—तत्संबंधिनि ॥ तत्संबंधि A.  
B. Ca.—l. 17. रथकव्या ॥ कव्या A. Ca. °कव्या B I.—P. 278. l. 12. (7, 33.) आवर्तयामि  
B 4. आवर्तयानि A. B I. Ca.

P. 279. l. 1. (8.) °ष्टुमं त्विति Anukr. °ष्टुमंमिति B I. °ष्टुममिति A. Ca. M I.—l. 16.  
(8, 2.) सोतुभिः A. B I. Ca. One expects सोतुभ्यः.—P. 280. l. 2. (8, 4.) अग्निः ॥ अग्निः A.  
B I. Ca. M I; see verse 8.—l. 12. (8, 5.) पचे ॥ यज्ञे A. B I. Ca.—P. 281. l. 18. (8, 10)



त्रियमाणा ॥ चतुर्माणा A. Ca. त्रियमाणा B 1.—P. 282. l. 4. (8, 12.) अभिप्राप्तावधौष्टां ॥ अभि-  
प्राप्ता औष्टां A. Ca. औष्टो औष्टां B 1.—P. 284. l. 19. (8, 23.) चिसंख्या° B 4. संख्या° A.  
B 1. Ca.

P. 285. l. 29. (9, 5.) इत्यादिना ॥ इत्यादि A. B 1. Ca.—P. 287. l. 13. (9, 10.) यवथा  
after युवां from B 1.—P. 289. l. 4. (9, 17.) वा after होतः by conjecture.

P. 290. l. 15. (10, 1.) अतस्त्रितयादपि स्थानात् B 4. अतस्त्रितया परिख्यादपिनात् B 1.  
अतस्त्रितयादपि नात् A. Ca.—P. 291. l. 4. (10, 4.) यच्चस्य शिरो ॥ यच्चशिरसो A. Ca. स्य  
यच्चशिरसो B 1.—तवेतयच्चशिरः A sec. m. Ca. तावेतेव° A pr. m. तावेतयच्चशिराः B 1.—  
l. 6. A omits all after प्रत्यवायरहितस्य to the end of the fifth Ashtaka.

P. 291. l. 24. (11.) षड्सप्तकाष्टकैव वर्धमाना Ca. षड्सप्तकाष्टकैवर्धमाना B 1. Cf. Rv. Bh.  
VI. 16; Anukr. Paribh. IV. 7; Weber, Indische Studien VIII. 239 seq.

SIXTH ASHTAKA.—Here begins another hand in A 2, and the text is omitted.  
C 2, C 4, and Ca are very corrupt. B 1 and B 4 give both only an extract, but  
B 4 contains marginal additions and corrections.—P. 295. l. 17. (12, 1.) सोमपानञ्च°  
B. सोमपानाय ज° A. Ca.—l. 22. ई A. Ca. ईङ् Dhp. 26, 34.—ईयामहे A pr. m. Ca.  
ईत् A sec. m.—l. 28. (12, 2.) अपनयनेन B 4. अपनयने A. Ca. B 1. अपनयेन C.—P. 297.  
l. 2. (12, 8.) जुङि सिपि मंचे ॥ जुङि सि -- मंचे C. जुङि सिमंधेने A. Ca.—P. 298. l. 6. (12, 12.)  
प्रांचती ॥ प्रांचती MSS.—l. 7. सुत्यगुण° ॥ सुत्यागुण° A. B. C. Ca.—l. 13. (12, 13.) व्यत्येन  
परस्य° A sec. m. व्यत्येन परस्य° A. Ca.: cf. MK. and Kās. on Pān. VI. 1, 8, 2.—  
l. 14. हविः is evidently left out after मुञ्जं.—P. 299. l. 27. (12, 20.) वा after प्रापयितारं  
by conjecture.—P. 300. l. 2. (12, 21.) कीर्त्तयः पूर्वीः B. कीर्त्त (A marg. adds नीयाः)  
विद्या विद्यानि सर्वाणि वसूनि के पूर्वीः A. C. Ca.—P. 301. l. 29. (12, 31.) प्रेरयति A. B 1. Ca.  
प्रेयति प्रेरयति?—P. 302. l. 5. (12, 32.) अथाकिंद्रस्य ॥ अथालिंद्रस्य A. Ca. See TBr. III.  
5, 7, 6; VS. XXI. 47; Rv. Bh. IX. 69, 6.

P. 303. l. 7. (13, 3.) तमे to the end of the verse from Ca. तथा वृधे वर्धनार्थं सखा  
मव B.—l. 14. (13, 4.) बर्हिषो यच्चस्य वि राजसि ॥ बर्हिषो यच्च वि वा रा° A. Ca. बर्हिषः वेद्या  
स्त्रीर्णे बर्हिषि वि रा° B.—l. 20. (13, 5.) ईमहे याचामहे B.—l. 21. वेदितारं ॥ विदि° A. Ca.—  
आहर B. आहर इति A. Ca.—l. 26. (13, 6.) Either अकरोत् is left out after अमर्याः or  
मृधु प्रसहने should stand immediately after अकरोत्.—P. 305. l. 30. (13, 17.) वृषस्य  
शाखा इव from B. Ca.—P. 306. l. 19. (13, 20.) ज्ञायते वर्तते ॥ ज्ञानवर्तते B 4. तानन् वर्तते  
B 1. जावर्तते A. ज्ञानवर्तते Ca.—बखवि° B. बखिवि° A. Ca.—P. 307. l. 19. (13, 25.) अवि-  
मिदत्यादिताभिः by conjecture. अविदच्यतिताभिः A. Ca. अपि -- त्यतिताभिः C.—l. 25.  
(13, 26.) हेतोः B. होतुः A. Ca.—P. 308. l. 1. (13, 27.) प्राप्तवसू C 2. प्रतवसू A. Ca.  
प्रथितवसू or प्रत्तवसू?—l. 12. (13, 29.) स्यः after हिंसित्र्यः A. Ca. Perhaps सत्यः.—l. 15.  
दद्यावरं A sec. m. दाद्यावरं Ca and A pr. m.

P. 309. l. 12. (14.) कात्यायनौ A. Ca. कात्यायनौ Anukr.—P. 310. l. 9. (14, 6.)  
After वर्धमानस्य, at the end of the page, several leaves are wanting in Ca, which  
are supplied by a modern hand. The lacuna extends as far as 17, 6. The sup-  
plementary leaves agree with C.—l. 28. (14, 9.) इडोक्तानि ॥ इडोक्तता A. इ - क्ता C.—



P. 311. ll. 21 to 24. (14, 13 and 14.) The last word of the 13th verse (something like पराजिते) and the beginning of the 14th are wanting in A. C. B has the following, but put in a wrong place: हे इंद्र मायाभिः उत्सिद्धस्यतः सर्वत्र प्रसरतः वां आरुचतः युक्तोऽं आरोहतः द्यून्.

P. 312. l. 19. (15, 3.) शत्रुजातानि ॥ शत्रुहन्नादिजातानि C. शत्रुहनादि° A. शत्रुन् B: cf. verse 11.—l. 29. (15, 4.) येषां after उशब्दः A. C.—P. 313. l. 3. (15, 5.) यद्वा to विशेषेण from C.—ll. 30 seq. (15, 10.) After दातुतमो जज्ञिषे C adds स्तोतुतमो जज्ञिषे, and after दधिषे A. C add स्तोतुतमो जज्ञिषे प्रादुर्भवसि अत एव विद्या सर्वा (सर्वाभ्यो A). In M<sub>1</sub> यद्वा was inserted before स्तोतुतमो by conjecture, and सर्वा corrected to सर्वाणि. But the whole seems to be a gloss, patched up with repetitions.—P. 314. l. 16. (15, 13.) Read शचीऽपति.

P. 315. l. 15. (16, 5.) शत्रुषु deest in B.—प्राप्तिषु ॥ प्रवेष्टु A. प्रवेष्टु Ca; deest in B.—पक्षपातवचनाय only in A.—P. 316. l. 12. (16, 11.) अतिपालयतु A after अतिपारयतु.—l. 16. (16, 12.) न च्छं ॥ छं A. Ca. M<sub>1</sub>.

P. 316. l. 22. (17.) आद्यसृचो ॥ आद्या चा A. आद्या C: cf. Rv. Bh. I. 6, 4; I. 7.—P. 317. l. 3. (17, 3.) Ca wanting.—l. 13. (17, 5.) °दक्षिणमेदेन ॥ °दक्षिणपदेन A. °दक्षिणपदेन C 2.—l. 14. स चासिक्तः wanting in B, placed in A. C after चेति.—l. 19. (17, 6.) Ca begins again.—P. 318. l. 21. (17, 12.) शाचिपूजन ॥ शाचिषा A. Ca. Three verses (11–13) left out in B.—l. 22. यतः by conjecture.—l. 28. (17, 13.) स्वयमेव ॥ स्वयं ते तव A. Ca.—P. 319. l. 7. (17, 14.) °संपादिनां B. °संपादितानां A. Ca.

P. 319. l. 22. (18.) द्वाविंशत्युचं ॥ द्वाविंशर्चं MSS. ut saepe.—l. 27. (18, 1.) देवानां ॥ देवादीनां A. Ca; deest in B.—P. 321. l. 12. (18, 9.) च वातु अनुवर्ततां B. चानुवर्ततां A. Ca.—l. 19. (18, 10.) शिष्यते ॥ शिष्टति A. शिष्टति Ca.—P. 322. l. 11. (18, 14.) अयमर्थः ॥ अयमर्थः Ca. अमर्थः A; deest in B.—l. 31. (18, 17.) विद्यानि सर्वाणि दुरिता B. विद्या सर्वाणि दुरितानि A. Ca. M<sub>1</sub>.—P. 323. l. 14. (18, 20.) स्वामिनां A. Ca; deest in B.

P. 323. l. 27. (19.) सोमरेराधं ॥ सोमरेराधं A. Ca. सोमरिः ऋषिः B. Again Rv. Bh. VIII. 20, VIII. 21, and VIII. 22, A. Ca read सोमरि, B सोमरि, but VIII. 21, 9, A. B. Ca read सोमरिरहं. VIII. 22, 1, A sec. m. B have सोमरिरहं, A pr. m. Ca सौ.—l. 29. After रा (of राजान) two leaves are wanting in Ca, which are supplied from another MS. of about the same date.—P. 324. l. 1. सोमरिः Anukr. सोमरं A. Ca.—पितुर्न द्वि° Anukr. पितुर्द्वि° A. Ca. पितुर्द्वि° M<sub>1</sub>.—l. 10. (19, 1.) लिटि after बहिः C.—ll. 15 seq. (19, 2.) ऋषिः to विभूतरातिं from B.—इमिमम° ॥ इंद्रमम° B.—l. 17. विद्यंतारं from B.—P. 325. l. 5. (19, 5.) यद्य वेदेन to परिचरति from B.—l. 28. (19, 8.) साधकाः समीचीनाः वेमासो धारणान्यपि ॥ साधकसमीचीनाः । (°ना । A sec. m.) त्वेसमाधीरणान्यपि A. Ca. समीचीनाः वेमासः वेमाः रक्षणान्यपि B.—P. 326. l. 1. (19, 9.) मर्तो B. मर्त्यो A. Ca.—l. 10. (19, 10.) यथादिकं, and then स तादृशो जनो to the end, from B.—P. 327. l. 4. (19, 14.) निशान° ॥ निश्यान° A. Ca.—l. 20. (19, 16.) परिचरेमहि from B.—P. 329. l. 2. (19, 22.) प्रयच्छेत्त्यर्थः A. Ca. प्रयच्छेत् इत्यर्थः B. 1. प्रयच्छत इत्यर्थः B, which may be right.—वाग्भिः from B.—l. 27. (19, 25.) ये यथायथा etc. A. Ca, which, however, omit ते after °सते. C-2 has यथापासते तदेव भवतीति ।.—l. 28. मवेयमिति ॥ भवति A. Ca.—P. 330. l. 4. (19, 26.)



पापया after अत एव A. B. Ca.—P. 331. l. 3. (19, 31.) शकटनीडेऽवस्थानात् B. °नीडेऽवस्थान A. Ca.—l. 13. (19, 32.) स्रोतव्यत्वेन ॥ स्रोतव्येन A. B. Ca. M I.—l. 20. (19, 33.) लभेयम् ॥ लभेयमि° A. B. Ca. M I.—l. 30. (19, 35.) यजमानेषु from Ca.—P. 332. l. 11. (19, 37.) No commentary is given in A. C. Ca. B has उतायेतत् यदुक्तं मे मह्यं प्रथियोः अथादियः स्नाम-वर्णानां प्रणेता प्रकर्षेण नेता मह्यमदात् क पुनरसावदात् सुवास्वाः सुष्ठु निवासायाः नवाः अधि तुवनि तीर्थेऽधि एतददात् मह्यं सुवास्तु नाम नदी तुव तीर्थं भवतीति निरुक्तं अयतो गामी भवद्भ्यः भावयता बहूनां पूजितलक्षणः दियानां दानार्हाणां गवां पतिः ताश्च गाः एतत्संख्यायुक्ताः ॥ Cf. Nir. IV. 15.

P. 332. l. 17. (20, 1.) हे प्रस्त्रावानः to मा from B. मरुतः by conjecture.—l. 24. (20, 2.) मह्यंतः ॥ तदातः A. Ca. In B the second explanation is given alone. अमुचाः is one of the मह्यमामानि in Ngh. III. 3.—l. 26. कामयमाना by conjecture; the rest from B.—P. 333. l. 2. (20, 3.) मरुतां to the end from B.—l. 9. (20, 4.) दुःखेन युज्यते B. दुःखे ज्यते A. Ca.—l. 11. सर्वोक्तं after पूर्वोक्तं A. Ca.—l. 24. (20, 6.) आंतरिचं ॥ अंत° A. B. Ca.—P. 334. l. 8. (20, 8.) वलनाय Ca. वल° A. Cf. Rv. Bh. I. 75, 1, etc.—l. 12. (20, 9.) विशेयते ॥ विशेयान्तो A. विशेयान्तौ Ca.—l. 25. (20, 11.) शक्त्यादीन्या° ॥ शक्त्यान्या° A. Ca.—P. 335. l. 16. (20, 14.) ह्रीनः ॥ नहिनः A. Ca; deest in B.—P. 336. l. 22. (20, 19.) शक्तान् ॥ शत्रून् C. सत्कृतान् A. Ca. सेक्तान् B.—P. 337. l. 11. (20, 22.) रुक्मं after आमरणं A. B. Ca.—l. 14. धारयितव्ये स्तोत्रे यज्ञे वा ॥ धारयितव्य स्तोत्र यज्ञे वा A. Ca. धारयितव्ये B.—l. 25. (20, 24.) स्तोत्रोभिः A. Ca after कव्योपीभिः.

P. 338. l. 21. (21, 1.) तदानुरूपतृचस्य वयम् त्वेत्वनुरूपतृचस्य A. Ca.—P. 339. l. 26. (21, 5.) गोविकारे to उच्यते ॥ गोविकारो दधिपयस्या (°स्य A pr. m. °स्य Ca) गोशब्देनोच्यते A. Ca.—P. 340. l. 13. (21, 7.) सुव्य° ॥ सुव्य° A. Ca.—ते त्वां etc. ॥ त त्वं मह्यंतामिति जानन्तो (जानन्ता Ca) वनन्ता वयं भवता रचन्त इति A. Ca.—l. 20. (21, 8.) हे वज्रिन् वज्रिवन् इन्द्र B.—P. 341. l. 5. (21, 10.) हरितवर्णाद्योपेतं from B.—l. 7. य before एवं सति A. Ca.—P. 342. l. 1. (21, 13.) यच्च A. Ca. यच्च B.—l. 9. (21, 14.) The end of the commentary which is wanting in A. Ca is supplied by B: यदा मानवस्य नदगुं दानादिराहित्यं समूहसि निराकरोषि यष्टुत्वं ह्यणोषि करोषि आदित् अनंतरमेव पितेव सन् तेन ह्यसि ॥—l. 26. (21, 16.) धनादिभिः ॥ नादिभिः A. Ca. आ B.—l. 27. कैचित् ॥ कश्चित् A. B. Ca.—P. 343. l. 10. (21, 18.) वर्तते । तान् ॥ चतं ततान् A. Ca. तान् B.—धनैस्सजोति । धनौ सजोति A. Ca. सजोति B.

P. 343. l. 14. (22, 1.) After अनुष्टुप् something like एकादशी ककुब्धादशी मध्येज्योतिः is lost. B1 has अनुष्टुप् भवमी दशमी द्वे ज्योतिषां एकादशी त्रयोदशीर्वचदशीसप्तदशः काकुम्: द्वादशी-चतुर्दशीषोडशीअष्टादशः सतोवृहत्: . See Prāt. 1024.—l. 15. आश्विनं Anukr. अश्विनं Ca. अश्विनी A. M I.—l. 22. (22, 1.) उपचययितारं ॥ उपजनायतारं A. Ca: cf. Rv. Bh. VIII. 24, 25, and दसु उपचये Dhp. 26, 104.—ll. 26 and 28. (22, 2.) पूर्वापुषं S 2. S 3 pr. m. (?) S 4. P 3. P 1. P 4 sec. m. पूर्वापुषं S 3 (sec. m. ?) S 1. P 4 pr. m.—l. 31. युजेयु ॥ युक्तेयु A. यक्तेयु Ca.—P. 344. l. 5. (22, 3.) द्योतन° ॥ द्योतन° A. Ca. M I; deest in B.—l. 13. (22, 4.) मंचांतरं ॥ मंचांतरं सति A. Ca.—l. 30. (22, 6.) वृकेण वृको सांगलं etc. ॥ वृकेण सांग-लेखनं कुर्यः । शुभस्यती उदकस्य पालयिता भवति । विकर्त्तनादिति यास्तः । तेन सांगलेन यवनामकं धनं वां कर्षयः । पुनश्च तस्मै विलेखनं कुर्यः । शुभस्यती etc. A. Ca. वृकेण सांगलेन यवनामकं धनं वां कर्षयः C. वृकेण सांगलेन यवं यवनामकं धान्यं कर्षयः । पुनश्च तस्मै etc. B. The confusion in A. Ca arises from the copyist having originally skipped a line after लेखनं कुर्यः.—



P. 345. l. 2. यज्ञदिने-B. यज्ञदिने A. Ca.—l. 8. (22, 7.) यज्ञान् ॥ यज्ञाकं A. B. Ca.—  
आयच्छत B. गच्छतौ A. Ca.—l. 28. (22, 10.) अवयः to राजानं from B.—l. 30. यद्यत् ॥ यत्  
यच्छत् A. Ca. यत् B 1.—P. 346. l. 4. (22, 11.) अधृतगमनाः ॥ अधृतधनाः A. B. Ca.—l. 15.  
(22, 12.) वंदनो मायाभिः ॥ वंदनमाजाभिः A. Ca.—l. 29. (22, 14.) सूयमानमार्गो ॥ सूयमार्गो  
A. Ca.—l. 31. हृदौ उद्यौ B.—P. 347. l. 4. (22, 15.) सेवनीयशीलो in the sense of  
'whose character is to be honoured'? सेवनीयो A. B. Ca. सचनी C 2. सचनीयो or  
सेवनीयो would be good emendations, if it were likely that शीलो crept into the text  
from a marginal gloss. See Dhp. 6, 2; Rv. Bh. II. 31, 4; IX. 78, 3.—l. 5. सोमरी  
सोमरिरहं B. सोमरिरहं A. Ca. See note to VIII. 19.—l. 13. (22, 16.) कतिमी रक्षामिः  
from B.—l. 26. (22, 18.) प्रयच्छति ॥ प्रच्छति A. Ca; deest in B.—l. 28. स्वत्तो B. C.  
स्वतो A. Ca.

P. 348. l. 26. (23, 4.) उदस्यात् A. Ca. उदस्यात् (meant for उद्यौ) B 1.—P. 349.  
l. 10. (23, 7.) हे देवाः B before चर्षणीनां.—यष्ट्येन ॥ यष्ट्येन B. यष्टु यष्ट्येन A. Ca.—l. 16.  
(23, 8.) यज्ञवति ॥ यज्ञयज्ञं प्रति A. Ca. यज्ञं प्रति B. यज्ञयज्ञं C 2.—P. 350. l. 24. (23, 15.)  
माययापि तस्य ॥ मायापि तस्य A. Ca. मायितस्य B.—P. 351. l. 4. (23, 17.) गृह ॥ सह A. B.  
Ca.—P. 352. l. 16. (23, 24.) परिहारेण ॥ परिपूरेण A. Ca.—l. 21. (23, 25.) वनस्यतिरु-  
पाभिररणीभिः ॥ निर्वारणीभिः A. Ca. M 1. अरणीभिः B.—l. 28. (23, 26.) मानुषाणां after  
मानुषा A. Ca.—P. 353. l. 16. (23, 29.) प्रदातासि from B.

P. 353. l. 26. (24.) विश्वमना ॥ विश्वनाम A. Ca sec. m. विश्वनाम Ca pr. m. वैश्व-  
नाम B 1. वैश्वो नाम M 1.—P. 354. l. 5. (24, 1.) इत्त्वं ॥ इति A. Ca.—l. 17. (24, 3.)  
नानाविधानोपेतं ॥ नानाविधानोपेतं A. Ca. B.—l. 18. आ before संपादय, meant for आपद,  
A. Ca. आ सपा C 2.—l. 24. (24, 4.) निरेकं a second time by conjecture.—  
l. 26. स्वमानः ॥ स्वमानः A. Ca. M 1. स्वमानसः B 1.—P. 355. l. 10. (24, 6.) तथा मनो  
by conjecture. Instead of घनादिप्रदा A. Ca. have घनादिभिः प्रदा and in A the  
words प्राप्तोमीत्यर्थं to घनादिभिः stand in the margin. B 1 is quite corrupt: जरितुः  
सौतुर्ममनः कामं घनादिविषयं आपृण आपूरय.—l. 24. (24, 8.) ते B 1. तव A. Ca. M 1.—l. 30.  
(24, 9.) वर्तयि ॥ वर्तयि A. B. Ca.—P. 356. l. 19. (24, 12.) यशसे deest in B.—l. 31.  
(24, 14.) दधं ॥ रक्षं B 1. Ca. रक्षकं A. M 1.—P. 357. l. 10 (24, 15.) क्षुतिकर्मा C. कर्मा  
A. Ca.—l. 16. (24, 16.) The explanation of सदावृधः from B.—l. 22. (24, 17.) उपलक्षणं ॥  
एलक्षणं A. Ca. उपलक्षणमेतत् would be a more usual phrase.—l. 24. मुम् ॥ वोम A. Ca.  
आगमः M 1.—सर्वैः ॥ वै A. Ca.—l. 30. (24, 18.) A. Ca. have a lacuna after आह्वया,  
which extends to verse 23. This lacuna is supplied in Ca by another hand,  
apparently copying from C 2, which here agrees in all material points with B.—  
P. 358. l. 12. (24, 20.) अलिग्भिः ॥ अलिस्तः Ca. अलिग्भ्यः M 1.—l. 23. (24, 21.) Ca (in  
the supplementary leaf) adds at the end, यद्वा येन दत्तं धनं सर्वं शत्रुजनमभिमवति येन दत्तं  
धनमादायसतः शत्रुजमभिमवतीत्यर्थः ॥—P. 359. l. 2. (24, 23.) दशधा A. Ca. दशमो?—l. 8.  
(24, 24.) संबोधाह ॥ संबोध्य A. Ca.—l. 10. भवन्तीति ॥ भवन्ति A. Ca.—यजमानानामिव ॥ यजमा-  
नामारा A. Ca.—l. 11. परिपदां समानाधिकरणः ॥ परिपदो समानकं A. Ca.—l. 26. (24, 26.)  
संन्यसे ॥ संन्यासे A. संन्यासे Ca. संन्यसे B.—l. 32. (24, 27.) अहन् etc. ॥ अहन् मनुष्यान् अह्योति A.  
Ca. गृह्ण मनुष्यान् अह्योति B.—l. 33. किं पुनस्तं ॥ किं पुना A. Ca. किं पुनः B.—P. 360. l. 15.



(24, 28.) प्रापितवत्यसि ॥ प्रापितवानसि A. Ca.—l. 16. करोषि ॥ करोति A. Ca.—l. 20. (24, 29.) आदत्तवान् ॥ दत्तवान् A. Ca.—l. 30. (24, 30.) यदा या ॥ यदा यथा या A. Ca.

P. 360. l. 35. (25.) विश्वमना ॥ वैयाखनामा B. From \*विस्त्रो to \*गर्मा बद् left out in A. Ca.—P. 361. l. 28. (25, 4.) अतावाना A. B. Ca.—P. 362. l. 2. (25, 5.) बलाहेन ॥ बलाहेन A. Ca. They are the grandsons of बल (श्वस्), and वेग proceeds from बल.—l. 3. वासुखा after वासु A. Ca; not in C.—l. 10. (25, 6.) वृथवेला तदा ॥ वृथवेलाणाद A. Ca.—l. 28 (25, 9.) B has अनुवन्नेन अमे: तेजवत् दुःसहेन चक्षसा व्याप्तैवसी ॥—तद्ददुःसहेन ॥ तद्ददुःसहेन A. Ca.—l. 29. \*होराचयो: ॥ होताचयो: A. Ca; not in B. होचध्वयो: ?—P. 363. l. 13. (25, 12.) पालनवत्तात् ॥ पालनैवत्तात् A. Ca.—l. 16. कर्म ॥ कर्मैक A. Ca.—l. 21. (25, 13.) उदतरं ॥ गुरुतरं A. B. Ca.—वननीयं A. B. Ca.—l. 28. (25, 14.) पालयतां ॥ पालयतां A. B. Ca. M1.—P. 364. l. 10. (25, 16.) व्रतानि कर्माणि B. प्रति कर्मणा A. Ca.—l. 16. (25, 17.) पूर्वाणि B. पूर्वाणि A. Ca. M1.—l. 18. वरुणस्य व्रतानि च ॥ वरुणस्य व्रतानि वा A. Ca; deest in B.—l. 23. (25, 18.) तयोः पर्यंतान् ॥ तयोरपानति A. Ca. तयोः अंतरान् B. B has अंतरान्, as an explanation of अंतान्, in the beginning of the verse.—l. 29. (25, 19.) रूपं by conjecture.—P. 365. l. 4. (25, 20.) One expects तस्मिन् before चक्षः.—l. 12. (25, 21.) जुक् ॥ षष्ठी A. Ca.—l. 17. (25, 22.) उच्यते ॥ उच्यते A. Ca. Cases where the base of a noun is thus quoted are not unfrequent in Sâyana.—l. 18. वृद्धि ॥ वृद्ध A pr. m. वृद्धा A marg. Ca.—l. 26. (25, 23.) नु कुशलं ॥ स्वकुशलं A. Ca. नु to वाचकौ not in B.—l. 27. आयुधं ॥ अधुय A. Ca.—l. 28. मवेतां ॥ मवेन A. Ca; deest in B.—P. 366. l. 2. (25, 24.) अचितौ ॥ अस्थितौ (अस्थितौ) A. Ca. B explains विप्रा मेधाविनी.—l. 5. प्रत्यग्रहीषं ॥ प्रत्यग्रहीतं A. B. Ca.

P. 366. l. 7 (26.) तत्पूर्वा: Anukr. तत्पूर्व: A. Ca. M1.—l. 23. (26, 2.) तनोतीति तनं ॥ तनोति । तनं A. Ca.—P. 367. l. 9. (26, 5.) रोदनशीलौ रवंती वा ॥ रोदनशीले दवलौ वा A. Ca. रोदनशीलौ B.—l. 10. संक्षेपयतं etc. ॥ संक्षेपयतं । इतमित्यर्थः । पशु हिंसासंक्षेपयोरिति च A. Ca: cf. Dhp. 17, 55.—l. 15. (26, 6.) मादनशीलं etc. ॥ मादनशीलवंशरीरकांक्षी ये युवां रूपं पश्यंति वेतुतचैवं A. Ca.—l. 25. (26, 7.) तैरपं ॥ तैरपं A. तैरप्यं Ca. केनापि आचकीयौ B.—P. 368. l. 13. (26, 10.) गवामपनेतुन् ॥ गवामानेतुन् B. गवासानेतुन् A. Ca.—l. 19. (26, 11.) आत्माचत्ततया ॥ आत्माचत्ततया A. Ca.—P. 369. l. 17. (26, 16.) कृतौ, and इति after हवानां by conjecture.—l. 28. (26, 17.) अमनुष्यौ ॥ मनुष्यौ A. Ca.—P. 370. l. 15. (26, 20.) करं etc. ॥ करललास्फालनैराश्वाश्चपेययोया A. Ca. Cf. मुखास्फालनेन Rv. Bh. III. 36, 4.—l. 19. (26, 21.) The Sûtra is given from Âsv. A. Ca leave it out and mark a lacuna after सूचितं च.—l. 28. (26, 22.) After अभिषुत a lacuna in A. Ca, supplied from B.—P. 371. l. 6. (26, 23.) दिशु B. दिक् A. Ca. दिप्सु C 2.—अश्वावाह ॥ अश्वावाह A. Ca.—l. 12. (26, 24.) सुख A. Ca; deest in B.—l. 15. च । यथा and afterwards यावाणं from B.

P. 371. l. 26. (27.) प्रागाथं Anukr. प्रागाथं A. Ca. M1.—P. 372. l. 31. (27, 4.) वा after सर्वज्ञा by conjecture.—P. 373. l. 6. (27, 5.) शुश्रूषतया प्राप्तव्येत्यर्थः । तथा ॥ शुश्रूषणया प्राप्तव्येत्यर्थः । गतया Ca. A. शुश्रूषण प्राप्तव्येत्यर्थः । गतया C 2. प्राप्तव्यतया गतया B. The reading is very doubtful.—l. 7. सद्ने षट् A. Ca.—P. 374. l. 16. (27, 9.) \*णिच्त्वात् and णिच् ॥ णिच्त्वात् and णिच् A. Ca: cf. Dhp. § 34; Rv. Bh. VIII. 96, 9.—P. 375.



l. 10. (27, 12.) वा before चत्वार्येन A. Ca.—l. 26. (27, 14.) उपरं by conjecture. B1 has दिने तु यवै व दिवसेषु अपर किंचनः धनदातारो etc.—P. 376. l. 1. (27, 15.) \*माणात्वादस्यत्वं\* ॥ \*माणात्वादस्यत्वं\* A. Ca.—l. 30. (27, 18.) अनुगमने प्रखे by conjecture. अनुगमनप्रेरण A. Ca. अनु is explained as पर्वत or मेघ. Cf. Rv. Bh. IV. 1, 17; V. 54, 4. Probably, however, some omission has taken place, and रन् formed part of a grammatical explanation.—P. 377. l. 7. (27, 19.) सुचिर्गं ॥ निमुचिर्गं A. Ca. M1. Cf. Dhp. 7, 13.—l. 8. धनं मनवे ॥ धने मञ्जे A. Ca.—P. 378. l. 3. (27, 22.) प्रामुमः A. Ca. is a mistake for प्रामुयाम.

P. 379. l. 17. (29, 1.) \*देवतं\* ॥ \*देवताः\* A. Ca.—सौम्यं TS. सौम्यं A. Ca.—l. 18. श्वन्लं ॥ श्वन्लं A. Ca.; deest in B.—l. 19. किरणैस्तावदुव्रते चंद्रमसि दुःखोपशमनानि ॥ किरणैः तावदुव्रते (तावदुव्रते Ca) चंद्रमसि सर्वस्वदुःखापशमनेन A. Ca. सर्वस्व is only an erroneous repetition of सर्वस्व.—l. 20. रात्रयश्चंद्रनेतुकाः ॥ रात्रयः चंद्रनेतुकः A. Ca.—P. 380. l. 16. (29, 6.) यथा before चोरः repeated by conjecture.—l. 17. स्वसहायेभ्यो suggested in M1 and adopted by Windisch, Zwölf Hymnen, p. 69. स्वसहायेभ्यो C. तस्य सहायेभ्यो A. Ca.; deest in B.—P. 381. l. 3. (29, 9.) From द्वा द्वौ to तेनोक्तेन, in the next verse, left out in A.—l. 7. (29, 10.) From एकेच्यो to एतादृशा चचयः left out in Ca. The words are taken from B.—एतादृशा ॥ एतादृशा अतादृशा B.

P. 381. l. 14. (30, 1.) शिशुर्नास्ति खलु B. शिशुर्नास्ति कल्पनया नास्तीत्यर्थः A. Ca.—l. 23. (30, 2.) लेटि—लुगं ॥ लोटि—लुगं A. Ca.—l. 30. (30, 3.) धनादिमंतश्च ॥ धनादि मंचश्च A. Ca.—l. 31. मानवात् । मनुः etc. ॥ मानवान् मनुः सर्वेषां मनुः पिता नत आगत (आगतात् Ca) परावतेः पिता मुहुरं मार्गं चक्रे तस्मात्पथो etc. A. Ca. मानवात् पित्र्यात् सर्वेषां मनुः पिता ततः आगतात् परावतः दूरात् पथः etc. B. मानवात्पित्र्यात् । सर्वेषां मनुः पिता तत आगतात्परावतः । पिता मनुर्दूरं मार्गं चक्रे तस्मात् पथो etc. M1.—l. 33. अस्मानपनयत ॥ आस्मानपनयत A. Ca. तस्मात् मार्गात् सोमोन् अपनयत । B.—P. 382. l. 6. (30, 4.) विद्वानरोऽपिः ॥ वैद्वान् A. Ca.—l. 8. शृणोति ॥ शृणोति A. Ca. M1.

P. 382. l. 20. (31, 1.) लेख्यहागमाः ॥ \*हागमौ\* A. Ca.—Sâyana reads ब्रह्म for ब्रह्मा.—l. 31. (31, 3.) दीप्तिमान् रथो रंहणशीलः etc. ॥ दीप्तिमान् रथः असत् B. दीप्तिमान् शीलो खंदनः देवानां हविःप्रदानरूपेण पू-यन्नेन असत् Ca. A agrees with Ca, but has only न् instead of दीप्तिमान्.—P. 383. l. 1. येन मे रथो ॥ यो है म रथे A. Ca. हैमरथे C2. Very doubtful.—l. 5. (31, 4.) After \*शीलं\* A. Ca. have चतीत्यर्थः, C2 तीत्यर्थः.—l. 6. येनः before धिनोति A. Ca.—दिवेदिवे etc. ॥ दिवे दिवैर्दुह्यते A. Ca. दिवेदिवे दुहे देवैः दुह्यते B.—l. 15. (31, 5.) अन्नादीन् A. Ca. \*दीनि\* B. Immediately afterwards all MSS. have again अन्नादीन्, though it is grammatically wrong.—l. 20. (31, 6.) प्राशितव्यान् ॥ प्राशव्यान् A. Ca.—l. 22. A. Ca. have सुष्यत इत्यर्थः after न गच्छतः.—l. 25. (31, 7.) नापि ॥ अपि A. B. Ca.—P. 384. l. 1. (31, 8.) तथापि A. B. Ca.—l. 15. (31, 10.) फलपुष्पं B. स्वर्गपुष्पफलं A. स्वर्गफलपुष्पं Ca. स्वर्ग seems a later addition.—युक्तानां from B.—l. 18. भवतो ॥ भवथ A. Ca.; B has only सचामुषो देवैः सहितस्व.—l. 19. वर्तमानह ॥ वर्तमान A. B. Ca. M1.—P. 385. l. 6. (31, 14.) चैवो A. B. Ca.—l. 15. (31, 15.) तद्वत् । यो देवानां from B.—l. 23. (31, 16.) देवानां मन इयचति ॥ देवानां न इयचति Ca. न इयचति A. B reads हे यजमान यः हविर्भिः देवानां मनः इयचति.—P. 386. l. 8. (31, 18.) आनुगमनाश्च ॥ गमनाश्च A. B. Ca.



P. 386. ll. 19 to 22. (32.) A. Ca have between मादनं and प्र कृतानि the passage which is inserted after स्थाने, प्रति to तुचौ । आ० च. १२ । इति ॥—l. 21. अच्चावाकवादे etc. ॥ अच्चावाकः पत्नीयजमानस्थान A sec. m. आच्चादको पत्नीयजमानस्थान A pr. m. Ca. Instead of पत्नीयजमानस्थान we expect प्रत्यक्षा इत्यस्य तुचस्य स्थाने. Cf. Rv. Bh. VIII. 71, 10.—P. 387. l. 29. (32, 9.) अश्विनोऽश्वयुक्तान् कृधि from B.—l. 30. धनवतश्च C. मेघवतश्च A. Ca. धनिनश्च B.—P. 388. l. 9. (32, 11.) इदं to एव from B.—l. 19. (32, 13.) शोमनपारणश्च ॥ शोमनवरणश्च A. Ca. शोमनाचरणश्च B. शोमनवर्णश्च C 2. Cf. Rv. Bh. III. 39, 8. 50, 3.—P. 389. l. 4. (32, 16.) यज्ञा ब्रह्मचारिवासी TS. यद्वा ब्रह्मचारिवासी A sec. m. यद्वा ब्रह्मसू । चारिवासी A pr. m. Ca.—l. 8. (32, 17.) Ca omits all from the first सुत्य एवेन्द्र to ब्रह्माणि । the lacuna is supplied in A in the margin. B has an independent explanation : सुत्य एवेन्द्रः तस्मिन् सामानि उप गायत हे होतारः पन्थे तस्मिन् इद्रे उक्तानि खोचाणि शंसत हे अध्वर्यवः पन्थे इत् तस्मिन्नेव इद्रे ब्रह्म अन्नानि कृणोत कुर्वत जुहुत ॥—l. 21. (32, 20.) वुसं तुग्यमित्यु ॥ वुसं तुग्यं च A sec. m. वुसं : संतुग्यं लु० Ca A pr. m. वुसं तुग्या Ngh. l. 12.—P. 390. l. 3. (32, 22.) पंच before जनान् from B.—P. 391. ll. 4 to 7. (32, 29.) From सोमरूपं to सोमये in the 30th verse taken from B. A. Ca mark a lacuna.

P. 391. l. 14. (33.) सूचितं च to अनु रूपः from Ca and C 2. There is still some mistake, as the third Viniyoga refers to the first.—l. 29. (33, 2.) आगमत् A. Ca ; B has निर्गमने नतारः नीयगमनः वृषमः इव शब्दं कुर्वन् कदा श्रीकः स्थानं आ गमः आगच्छेदिति. Śāyana seems to read इन्द्रः for इन्द्र.—P. 392. l. 4. (33, 3.) देहि from B.—l. 25. (33, 6.) अपरिवृतः ॥ अवृतः A. Ca. आवृतः B. अपवृतः A marg. See verse 10.—अवः ॥ अवं A. Ca ; deest in C 2.—P. 393. l. 5. (33, 7.) पुरः शत्रुपुराणि B.—l. 24. (33, 10.) वृषमिच्छ ॥ वृषाश्च A pr. m. Ca. वृषश्च A sec. m. वृषैश्च B.—P. 394. l. 1. (33, 11.) अश्वरशनाः A. B. Ca.—l. 28. (33, 15.) महान् ॥ महान् A. Ca. M 1. महान् B.—P. 395. l. 4. (33, 16.) तव ॥ ते तव A. B. Ca. M 1.—l. 9. (33, 17.) ज्ञायोगिः ॥ प्रायोनिः A. B. Ca.—l. 10. ज्ञायोगिः A. प्रायोनिः Ca.—l. 11. अपि च स्त्रियाः B 1. अपि स्त्रिया A. Ca. M 1.—l. 22. (33, 19.) ज्ञायोगिं and ज्ञायोगे A sec. m. ज्ञावयोगिं and ज्ञावयोगे A pr. m. Ca. प्रायोनिं and प्रायोगे B 1.

P. 395. l. 30. (34.) वसुरोचिषो B. वसुमत्तोविनो A. Ca.—P. 396. l. 7. (34, 1.) स्वर्गे A sec. m. B. कुर्वस्वर्गे A pr. m. Ca. C.—P. 397. l. 7. (34, 6.) The commentary to this verse is taken from B; left out in A. Ca.—P. 398. l. 3. (34, 10.) अर्यैश्चर A. B. Ca.—l. 9. (34, 11.) उपश्रुत्युपश्रुतौ ॥ उपश्रुति उपश्रुतेः A sec. m. उपश्रुते A pr. m. Ca. उपश्रुति B.—l. 26. (34, 14.) धनानि is probably omitted after वा.—P. 399. l. 3. (34, 15.) वसूनि A. Ca. वसूनि B.—l. 15. (34, 18.) वनस्पतयो before वनस्य A. Ca.—तिष्ठमिति ॥ तिष्ठति A. Ca. तिष्ठ B.

P. 399. l. 17. (35.) औपरिष्ठाज्योतिषं A. Ca. उपरिष्ठाज्योतिषं M 1. See Anukr. M. p. 29.—l. 20. अश्विनोर्यमे A. Ca. अश्विनोर्यमे ?—P. 400. l. 7. (35, 3.) The commentary on this verse, the following, and the 6th verse is supplied from B.—P. 401. l. 16. (35, 9.) गगणं ॥ गगनं B. वा गगनं A. Ca.—P. 403. l. 22. (35, 20.) सर्गानिव B. सर्गाणि A. Ca. वस्त्राणि in the margin of A, marked to be inserted after सर्गाणि.—l. 28. (35, 21.) यज्ञान् A marg. after अध्वरान्.—P. 404. l. 13. (35, 23.) यज्ञ एव यत् Sat. Br. यज्ञ A. Ca.



P. 405. l. 2. (36, 1.) अन्वासु TS. अन्वा A. Ca.—l. 11. (36, 2.) रच ॥ रचसि A. B. Ca.—P. 406. l. 14. (36, 7.) प्राविष ॥ प्रचस्माविष A. Ca. पुर्वकृतपुत्रं प्राविष रचिष B.

P. 406. l. 16. (37.) There is something wrong in the Viniyoga, we should expect पुण्यस्त्रं पंचमेऽहनि निष्कैवल्यशस्त्र इदं सूक्तं. Cf. Rv. Bh. I. 81.—l. 22. (37, 1.) कृतिभिः from B.—l. 23. प्ररच A sec. m. प्ररचः B. रचः A pr. m. Ca. प्रारचः?—P. 407. l. 21. (37, 6.) मवसि अवं A. Ca. B. अवसि अवं C 2.—l. 27. (37, 7.) अचाणि बलानि कामैर्वर्धयन् from B.

P. 408. l. 4. (38.) ओचियसंज्ञकलुचः ॥ ओचियसंज्ञक A. Ca. : cf. Rv. Bh. VI. 60, 7.—l. 5. ओचस्त्र ॥ ओचं A. Ca.—P. 409. l. 16. (38, 10.) साम च्यते B. साम उच्यते A. Ca. M 1.

P. 410. l. 2. (39, 2.) रराव्यां P 1 sec. m. P 2. P 3. P 4. अराव्यां P 1 pr. m. and A. B. Ca in the commentary; lacuna in B 1.—P. 411. l. 14. (39, 7.) अपि ॥ अया A. Ca; lacuna in B.—l. 22. (39, 8.) After सप्तमानुषः B adds सप्तहोता.

P. 412. l. 12. (40.) उद्गमाग ॥ उद्गमीग A. Ca. उद्गमीयं C 2.—l. 14. होचकाः स्वशस्त्रे C 2. होचकस्त्रोशस्त्रे A. Ca.—आरंभणीयाश्च ॥ आरंभणीयारश्च A. Ca. C 2.—l. 23. (40, 1.) इत्तं from B.—P. 413. l. 16. (40, 4.) हे नामाक नमाकवत् ॥ हे नमाकवत् B. हे नामाक नमाकवंती A. Ca. हे नामाक नामाकवंती C 2.—P. 414. l. 1. (40, 6.) वरुणा ॥ वरुणाः B. तमाया A. Ca.—l. 11. (40, 7.) वसुधाम च क्षुमः B.—l. 24. (40, 9.) वस्त्रो वा A. Ca.—l. 25. पूर्वीः । या etc. ॥ पूर्वोर्वचः प्रज्ञां साधंतासाधयन् A. Ca. पूर्वीः वरुणः प्रज्ञाः नः याः धियः अस्मदुच्यते नु चिप्रं साधंत साधयंतु ॥ B.

P. 415. l. 28. (41, 1.) मरुद्गच्छ ॥ मरुद्गच्छ A. Ca. M 1. मरुद्गच्छः च मरुद्गच्छ B 1.—l. 29. After रचति B adds यथा गोपालो गा रचति तद्वत्.—P. 416. l. 5. (41, 2.) Read समीपे च उद्ध्ये ॥ समीप उद्ध्ये A. B. Ca. Sâyana takes उद्ध्ये for a verbal form, and, if so, the relative pronoun must be inserted.—l. 17. (41, 3.) चिषु A. B. Ca. One expects चिषु --- काक्षिषु.—l. 24. (41, 4.) After निर्माता B begins a new sentence with तस्य वरुणस्य.—स्वद्यतं B. स्वगतं A. स्वगतं Ca.—l. 25. स हि B. स इत् A. Ca. M 1.—रचिता ॥ ररचिति Ca. ररचति A. रचति B.—P. 417. l. 9. (41, 6.) चितं भूर्मुव स्तः विस्तानं B.—l. 17. (41, 7.) A. Ca mark a lacuna. यः वरुणः आसु दिव्य अत्क व्याप्तः सन् आशये जायतो वर्तते यः वरुणः एषां शत्रूणां विद्या सर्वाणि परि जातानि परितो भूतानि धामानि पुराणि मर्मुशत् विनाशयत् अस्त्र वरुणस्य पुरो गये रथस्य पुरस्तात् विश्वे सर्वे etc. B.—P. 418. l. 4. (41, 9.) अंतरिक्षेऽधि वसतः ॥ अंतरिक्षाधिवसुतः A. Ca. अंतरिक्षेऽधि विभुतानि B.—तिस्रो etc. ॥ तिस्रो भूमिरधिस्थिता A. Ca. तिस्रो भूमिः द्यौरंतरिक्षं भूमिः चित्तराणि तिसृणां अधिस्थितानि B.—l. 13. (41, 10.) Sâyana explains अधि । निः । निः । 1.

P. 418. l. 20. (42.) इत्येकादशिनः Âsv. ०नः A. Ca.—l. 24. देवेति Âsv.; deest in A. Ca.—l. 32. (42, 1.) B has विश्वेत् बह्वनि संति ॥

P. 420. l. 7. (43.) आद्यमागौ A. Ca; not in Âsv.—l. 28. (43, 3.) वप्सति । मचयंति ॥ वप्सति मचयंति A. Ca. M 1. वप्सति मचयति B.—l. 32. (43, 4.) पृथगिति etc. ॥ पृथगित्यनेन सममव्ययि पृथगितोव वाजं Ca and A pr. m. पृथगित्यनेन सममव्ययं गिति । पृथगित्येव वाजं A by correction. The VS., in Weber's edition, has वृथक्.—P. 421. l. 16. (43, 8.) मन्त्र-ज्ञानवन् A sec. m. and Ngh. I. 17. मन्त्रज्ञानवन् Ca and A pr. m., the latter perhaps मन्त्र.—l. 29. (43, 11.) सोमधृतं ॥ सोमधृते A. Ca. सोमधृतं B.—P. 423. l. 13. (43, 21.) प्रमु प्रमुः A sec. m. Ca. प्रमुः प्रमुः A pr. m. प्रमुः प्रमु प्रमुः B. The MSS. of the text



have here and Rv. VIII. 11, 8, where the same verse occurs, प्रसुः.—अनु by conjecture.—P. 424. l. 25. (43, 30.) गार्ह० ॥ गार्हयितव्यानि A. B. Ca. Cf. Rv. Bh. IV. 18, 2; V. 4, 9.

P. 425. l. 31. (44, 3.) सादयत् A. B. Ca.—P. 426. l. 24. (44, 9.) ज्वलदीप्ति A. B. Ca. ज्वलदीप्ति? See verse 14.—P. 427. l. 19. (44, 15.) तनेति ॥ तना इति A Ca. M<sub>1</sub>.—P. 428. l. 6. (44, 19.) वर्धयंतु ॥ वर्धयन्ति A. B. Ca. The same occurs again in verse 22.—P. 429. l. 12. (44, 28.) तं सुखय वा ॥ तसुखया A. Ca; deest in B.

P. 429. l. 27. (45.) इति सोचं A. Ca; not in Åsv.—P. 431. l. 25. (45, 13.) मंत्तारं ॥ मोत्तारं A. B. Ca.—l. 29. (45, 14.) पणमानं A. Ca. पयिनामानं B.—P. 433. l. 8. (45, 23.) मनुष्या A sec. m. मनुष्याणां A pr. m. B. Ca.—l. 17. (45, 25.) प्रेरितवान् ॥ प्रेरयितवान् A. B. Ca.—P. 434. l. 5. (45, 29.) बुर्बुरमिति ॥ बुर्बुरेति A. M<sub>1</sub>. बुर्बुरेति Ca. See Rv. Bh. I. 33, 15.—l. 15. (45, 31.) किं नाकावीः ॥ किं नाकावीः A. B. Ca.—P. 435. l. 19. (45, 38.) The end of the commentary is left out in A. Ca. It is supplied in B in the following way: असिन्वन् चवन्नन् चघ्नीव कितव इव स सोमः स्वामेव प्राप्तः आवयः दृक्षमानाः सर्वे देवाः निवता अधोमुखाः संतः आचरन् निर्गताः.—l. 29. (45, 40.) हिंषि। अतस्मात् ॥ हिंस्य तस्मात् A. हिंस्य त। तस्मात् Ca. हिंस्य तासां B. हिंस्य च। तासां M<sub>1</sub>.—P. 436. l. 4. (45, 41.) विमर्शनपमे ॥ विमर्शये न चमे A. Ca. विमर्शये न चमे B. See Benfey, Glossary to Sâma-veda, s.v. parsâna. The intended interpretation seems to have been 'able to withstand friction or a blow,' vimris being used in the sense of āmr̥is.

P. 436. l. 19. (46.) अष्टाचरा ॥ अष्टाचरवती A. B. Ca.—l. 20. °चतुर्थयोर्द्वा ॥ °तृतीययोर्द्वा A. B. Ca.—l. 25. नवकाथीकादशष्टिनी A sec. m. नवकाथीकादशष्टिना B. नवकाथीकादशष्टिनाशि A pr. m. Ca. See Anukr. M. p. 4.—l. 33. °दोत्तरे A. Ca. °दोत्तरा M<sub>1</sub>. See Anukr. M. p. 30.—P. 437. l. 28. (46, 6.) रायो from B<sub>1</sub>.—P. 438. l. 18. (46, 9.) अथाथः अवधीयः द्यः B after तारकः. The substantive omitted is मदः.—l. 23. (46, 10.) निपातानिपातद्वयं A sec. m. निपातानिपाततद्वयं A pr. m. Ca. अनिपात, if the reading be right, must be taken in the sense of पद.—P. 439. l. 27. (46, 15.) मम, instead of मम, A. B. Ca.—l. 28. Sâyana seems to have read अय instead of अय. A has अये-दानीं by correction.—l. 29. लिङ्मावात् A. Ca. One expects लिङ्मावात्.—P. 440. l. 5. (46, 16.) अथापि इदानीमपि A. Ca. अथापि इदानीमपि A by correction. अथ अति चित् अनंतरमपि B. Here also Sâyana seems to have read अयय or अयय instead of अयय.—l. 12. (46, 17.) यजनसाधनेः A sec. m. यजमानसा° A pr. m. B. Ca. M<sub>1</sub>.—वा after एव by conjecture.—P. 441. l. 3. (46, 20.) सुसजितः सुष्ठु संमत्तः B after संमत्तः.—l. 4. वा ॥ स्वा A. Ca.—l. 10. (46, 21.) वशायाख्याय ॥ वशायाख्याय A. Ca and Br̥h. MS.—कानीतसु Br̥h. MS. कानीतसु A. Ca.—l. 14. कानीति कनीतपुत्रे कन्यायाः पुत्रे ॥ कानीति पुत्रे कन्यायाः A pr. m. Ca. कानीति कनीतपुत्रे कन्यायाः A sec. m. कानीति कानीतपुत्रे कन्यायाः पुत्रे B.—l. 26. (46, 23.) आश्वः A. B. Ca.—P. 442. l. 21. (46, 26.) सा before संस्वा from B.—नां चिः to सोमसुग्निः सो° from the margin of A. B<sub>4</sub> makes the same addition in the margin from चिः to पुष्टु.—l. 30. (46, 27.) अन्वशात् ॥ अन्वषात् Ca. अतप्सात् A.—P. 443. l. 12. (46, 29.) अजेयं A. B. Ca.—P. 444. l. 7. (46, 33.) योज्यं ॥ योज्य A. Ca.

P. 444. l. 10. (47.) ऐंगिकः by conjecture.—l. 27. (47, 2.) यथा from B.—P. 445.



l. 4. (47, 3.) यथा वयो न is not explained again in A. Ca. तत् वयो न यथा यच्छिः शि-  
मुक्तायां पक्षोपरि यथा तथा वि यंतन etc. B.—l. 20. (47, 5.) अवटधिं ॥ अवटधिं A. Ca. अव  
इति धिं C 2.—l. 29. (47, 6.) Sâyana explains आश्वः instead of आश्व वः.—यं after यूयं  
by conjecture.—P. 446. l. 7. (47, 7.) प्रवृत्तमपरिहारार्थं ॥ अप्रवृत्तं अपरिहारार्थं A. Ca. प्रवृत्तं  
अपरिहारार्थः C. अमिप्रवृत्तं अपरिहारार्थं B.—l. 24. (47, 9.) वक्ष्य ॥ वक्ष्य A. B. Ca.—P. 447.  
l. 29. (47, 14.) श्रेष्ठेण ॥ श्रेष्ठे A. Ca.—उपतिष्ठेत् A. Ca. श्रेष्ठे Åsv. Grihy.—P. 448. l. 22.  
(47, 16.) यदेव ॥ तदेव A. B. Ca.—l. 23. मोक्ष इत्यर्थः ॥ मोक्षरित्यर्थः A. B. Ca.—यदेवापः ॥  
तदेवापः B. देवापः A. Ca.—l. 25. द्वितीय च A. Ca. द्वितीय च पूरणः B.—l. 26. ऋषवत् C.  
ऋषवत् Ca. ऋषवत् A.—P. 449. l. 1. (47, 17.) संदाय ॥ सदाय A. Ca; deest in B.

P. 449. l. 26. (48, 2.) अगाः P 1. 2. 3. 4. अगाः Aufrecht.—l. 28. अदीनः from B.—  
P. 450. l. 7. (48, 3.) ततोऽमृता ॥ ततो मूमा अमृता A. Ca. ततः अमृता B.—l. 15. (48, 4.)  
अस्मिन् पीतस्त्वं from B.—l. 23. (48, 5.) वध्नो ॥ वध्नः A. Ca. वध्नः B 1. वध्नो Prof.  
Aufrecht in Zeitschrift der Deutschen Morgenl. Gesellschaft, vol. xxv. p. 236,  
note.—l. 24. ता B. ते A. Ca.—P. 451. l. 1. (48, 6.) संधुच्येन A sec. m. B. संघुच्येन  
A pr. m. Ca. Cf. Gitagov. III. 12, where न संधुच्यते is explained by दीप्यते सुखं न  
मवति 1.—l. 26. (48, 9.) अष्टान् A. Ca. अष्टः B.—P. 452. l. 4. (48, 10.) B reads चिर-  
वासावस्थानं एमि इन्द्रमपि याचे 1, which is no improvement.—l. 9. (48, 11.) पीडा from  
B.—A. Ca read तविषोचीः.—बलवत्यः पीडाः B.—l. 10. अक्षैषुः त्यक्तं B.—अपयमे C. अपयमे  
A pr. m. Ca. अपराधे A sec. m. B.—यस्यात् ॥ तस्यात् A. B. Ca.—l. 17. (48, 12.) मर्त्यान्  
B. मर्त्यान् A. Ca. M 1.—l. 30. (48, 14.) निःश्रा P 4. निःश्राः Sâyana.—P. 453.  
l. 11. (48, 15.) विश्वतो B. विश्वामिः A. Ca.—l. 12. हे इंदो त्वं जतिमिः [सजोषाः marg.] सह  
प्रीयमाणः सन् जतिमिः सह अथवोतयो etc. A. हे इंदो त्वं जतिमिः सह प्रीयमाणः सन् जतिमिः  
सह अथवोतयो etc. Ca. हे इंदो त्वं जतिमिः सह प्रीयमाणः सन् सजोषाः गंतारो मयतः तैः  
सहितः etc. B 1.

A MS. of the Rig-veda was discovered by Dr. Bühler in Kashmir. It was  
written on birch-bark and in the Śārada alphabet. As it seemed to be of some  
importance Dr. Bühler kindly had it forwarded to me. A collation made by  
Dr. Wenzel showed, however, that the MS. contained no independent readings,  
and that it had by no means been carefully copied. The various readings in the  
Vāṭakhilya hymns are given as a specimen to show the character of the MS.

P. 453. l. 21. (49, 2.) निरिर्वि प्ररसा S.—l. 25. (49, 3.) न S 1. 2. 3. 4. P 3. P 4.  
Aufrecht. नु P 1. M 1.—P. 454. l. 4. (49, 4.) प्रवृद्धेव S.—l. 16. (49, 7.) उय चक्षेत्रि-  
रा S.—l. 24. (49, 9.) यथा प्राव S.

P. 455. l. 11. (50, 2.) शिनिर्ने(?) S.—l. 23. (50, 5.) स्वधावन् स्वधयति S.—P. 456.  
l. 6. (50, 7.) उय for चक्षेत्रि S.—l. 14. (50, 9.) यथा प्रावो S.—l. 18. (50, 10.) अविशासो S.

P. 456. l. 22. (51, 1.) सांख्यरन् S.—P. 457. l. 1. (51, 2.) पार्थिवः and विप्रिमुच्यते S.—  
l. 5. (51, 3.) धिन्वते for विध्वते S.—ll. 6 and 8. अरिध्वतं S 3 by correction. S 4. P 3. P 4.  
sec. m. अविध्वतं S. S 1. P 4 pr. m. अरिध्वतं S 2. अविध्वतं P 1. Cf. Aufrecht, vol. ii.  
p. v.—P. 458. l. 5. (51, 9.) दंशन् S for दासः.—ll. 6 and 8. पवीरवि S 1. 2. 3. 4. P 1. 3. 4.  
पवीरवि Aufrecht.—l. 9. (51, 10.) मधुमंतो घृतघृतो S.



P. 458. l. 18. (52, 2.) मिथं S.—l. 19. चर्वीनसि S.—l. 22. (52, 3.) धृषता पिब S.—  
P. 459. l. 2. (52, 4.) अर्वसुच S.—l. 6. (52, 5.) दाति S.—l. 14. (52, 7.) सर्वनं S for  
हर्वनं.—P. 460. l. 1. (52, 10.) बृहतीरनुषत S.

P. 460. l. 11. (53, 2.) वाजायंतो (?) S.—l. 19. (53, 4.) शीर्ष्व S for शीर्ष्व.—P. 461.  
l. 6. (53, 7.) वीतिहोचामिह देवहतिमिः ससवांसो विमृष्टिरे S. Cf. Rv. VIII. 54. 6.—  
l. 10. (53, 8.) अर्चं मतीनां S.

P. 461. l. 15. (54, 1.) पुत्रासो S for पौरासो.—l. 19. (54, 2.) सांघते S.—P. 462. ll. 9 seq.  
(54, 6.) मधि सुक्रतो । वयं होचामिह देवहतिमि ससवांसो मनामहे S. See Rv. VIII. 53, 7.—  
l. 13. (54, 7.) इन्द्रमायुर्न S.—l. 14. अनुपावसो S.

P. 462. l. 22. (55, 1.) चंखामभ्यर्चति S.—P. 463. l. 2. (55, 3.) चल्वास्तुका S.—l. 7.  
(55, 5.) चर्किरत्नानुनं च महि S.—l. 9. आ । अनु P i pr. m. ? न । अनु P i sec. m. P 3. P 4.  
Aufrecht, vol. ii. p. v, says, 'Die Handschriften lesen carkiran । & । anūnasya.' P i  
has न by correction in the margin, but there is also a correction in the text, so it  
is possible that न was corrected to आ, and afterwards again to न.

P. 463. l. 12. (56, 1.) द्यौर्नः प्रधिना S.—l. 14. (56, 2.) पुतक्रतुस् S for पौतक्रतुः.—l. 16.  
(56, 3.) अधि सजः S.—l. 18. (56, 4.) पुतक्रतायीर्वेता S.—यूथं S.—l. 20. (56, 5.)  
\*क्षिकितिर्ह S.

P. 464. l. 6. (57, 2.) दधिरे S for दृष्टि.—l. 11. (57, 3.) उप यातं S.—l. 15. (57, 4.)  
मधुमंतमधिना प्र दायांसमवयतं S.

P. 464. l. 20. (58, 1.) यो अनुचाना ब्रह्मणे युक्त आसे का S.—l. 23. (58, 2.) समिन्ध and  
प्रभूतं S.—l. 24. \*वोषस्वै\* and वि माह्वैकैवाविर्द् S.—P. 465. l. 3. (58, 3.) मूर्तिमायं S.

P. 466. l. 21. (60, 1.) मवयतु after अनुक्त A marg.—P. 468. l. 15. (60, 8.) मतोय  
मरणधर्माय from B.—l. 22. (60, 9.) च्वा गिरा A. Ca. गिरा B i. गिरा च्वा would be  
better.—P. 469. l. 5. (60, 11.) शंसनीयं from B.—l. 6. माति नो ॥ मातिर्नो B. मानितिर्नो  
A. Ca.—l. 13. (60, 12.) तन्नं ॥ तं धनं A. B. Ca. त धनं C 2.—P. 470. l. 20. (60, 17.)  
B begins हे देवाः.—हे यजमानाः ॥ हे यजमानाः A. Ca. हे यजमानाः यथं B. गृहे यजमानाः  
C 2.—l. 21. अधृतगमनं B. अधृतकर्माणं A. Ca. अधृतगमनकर्माणं A marg. Cf. Rv. Bh. VIII.  
12, 2. 22, 10. 11. 70, 1. 93, 11; V. 73, 2; VI. 45, 20.—l. 24. प्राण्युपकारसिद्धं B. प्राण्यु-  
पकारं सिद्धं A. Ca.—P. 471. l. 14. (60, 20.) यातना ॥ यानां A. Ca.—l. 16. अनिरा A sec. m  
आतरा Ca. अंतरा B i.—l. 17. बाह्यानि A. B. Ca.—च न ॥ च A. Ca. न B.

P. 472. l. 3. (61, 2.) \*दुपकारकाया ॥ \*दुपकारकस्य A. Ca. \*दुपकारस्य क C 2.—l. 18.  
(61, 4.) मवति MSS. मवतु ?—P. 473. l. 1. (61, 6.) पौरः पूरयिता ॥ पूरयि पूरयिता A. Ca.  
पूरयिता A sec. m. पुब्रह्मत् पूरयिता B i, which afterwards has गवां पौर पुब्रह्मत् हे देव etc.—  
l. 6. (61, 7.) बृहतः स्तो\* Ait. Âr. बृहतस्तो\* A sec. m. बृहत्स्तो A. Ca. M i.—P. 474. l. 15.  
(61, 11.) सचा सहिताः B. सचा सहासहिताः Ca. सचा सहायसहिताः A by correction.—  
l. 24. (61, 12.) वेद ॥ देवः A. Ca. देवः वेद B i.—सनिता धनं संमजता B i.—P. 475. l. 22.  
(61, 16.) पश्चात् before पश्चाद्वा\* by conjecture.—\*ज्ञागात् etc. ॥ पश्चाद्वाग्ने पुरः पूर्वो भागो  
ऽधरादधोभाग A. B. Ca.—l. 24. तथा from the margin of A.—आसुराणि ॥ आसुरीः A. B.  
Ca.—l. 31. (61, 17.) रक्षसि ॥ चचास्सि A. Ca.



P. 476. l. 10. (62.) सप्तम्यायाश्च तिस्रो A. B. Ca. च deest in Anukr.—P. 477. l. 1. (62, 3.) चिद्वर्ता ॥ चार्वता A. B. Ca.—l. 9. (62, 4.) अवस्यते B. अवस्यते A. Ca. अवस्यते M 1.—l. 21. (62, 6.) दृष्टा by conjecture. गत्य A. B. Ca. गत्य C 2. आगत्य would not be appropriate.—l. 23. अवेचितं ॥ अवेचितुं Ca. अवेचितुं A.—l. 29. (62, 7.) ददुः from B.—P. 478. l. 1. हे पुरुषुत etc. A. Ca. तेंद्र मद्रा साति समन्वयः । C 2. हे पुरुषुत इंद्र त्वं विश्वस्य पतिः मवसीति समन्वयः । B.

P. 479. l. 9. (63.) गायत्रे A. Ca; not in C. M 1. Cf. Anukr. M. pp. 31, 223.—l. 26. (63, 3.) विद्वानुपायश्च ॥ विद्वानुपाय चाक्षी चः A. Ca. विद्वानुपाय चाक्षी C 2. विद्वान् B.—अपवारितवान् ॥ उपवारितवान् A. Ca. उपवारितवान् A by correction. उत्सारितवान् B.—P. 481. l. 2. (63, 9.) लब्धे लब्धये ॥ लब्धये A. Ca.—l. 12. (63, 11.) अतिशयेन शुभः from B.

P. 482. l. 2. (64, 2.) तव ॥ सतव A. Ca; deest in B. प्रतिनिधि and सदृश are construed with the genitive, according to Pān. II. 3, 72.—B adds at the end अतस्त्वं महानसि ॥—l. 10. (64, 4.) प्रगच्छ C. प्रागच्छ A. B. Ca.—दिवि ब्रुलोकात् किं ब्रयो निवासं A. B. दिवि ब्रुलोकात् । किं ब्रयो निवासं Ca. दिवि ब्रुलोकात् - ब्रयो निवासं C 2.—l. 24. (64, 7.) विस्तीर्णकंधरः from the margin of A.—l. 25. ब्रह्मा स्तोता त्वा त्वां A. Ca. ब्रह्म स्तोतारं वा B 1. Sāyana explains कस्त्वां instead of कस्तं.—P. 483. l. 14. (64, 11.) Sāyana seems to have read अधि श्रितः for अधि म्रियः. B reads अधि आश्रितः and afterwards यः सोमः म्रियः स एवायं etc.

P. 485. l. 8. (65, 10.) पुषतीनामश्चानां B.—l. 17. (65, 12.) इंद्रे प्रीत ॥ इंद्रः प्रीत A. Ca. इंद्रः प्रीतः B.

P. 485. l. 21. (66.) इयं by conjecture.—l. 30. (66, 1.) तमिंद्रं B. त्वदर्धं A. Ca.—P. 486. l. 6. (66, 2.) अन्नस्य सोमस्य from B. A. Ca mark a lacuna.—यः after आबृक्ष by conjecture. B puts it before दाता.—l. 15. (66, 3.) किमस्य कथं जात इति च and then a lacuna in A. Ca. The च is perhaps वचनात्. Or supply इति च व्युत्पत्तिः ।—l. 16. ब्रह्मलस्य from B. After अपवरणीयं some other word like ब्रजं seems to be necessary.—l. 21. (66, 4.) Sāyana explains पुष्ट । संभृतं ।—P. 487. l. 5. (66, 6.) बुच बुमन् B. बुचमन् A. Ca.—l. 15. (66, 7.) हरत ॥ हर वा A. Ca. हर B.—l. 22. (66, 8.) मार्गेषु प्रज्ञानेषु वा Ca. मार्गेषु B. वा A.—l. 23. वृकोऽपि ॥ व्रूपि A. Ca.—P. 488. l. 4. (66, 9.) वृचहृत्वं ॥ वृचहृत्वे A. Ca.—l. 11. (66, 10.) न कदाचिदित्य and then a lacuna marked in A. Ca.—अयं हं अभवदि° C 2. C 4. अहंअभवदि° A. Ca. The lacuna can be supplied in the following manner: न कदाचिदित्यभिप्रायः । सर्वं हंतव्यं हतमभवदित्यर्थः ।—l. 14. A. Ca mark a lacuna after दातव्य. The context may have been दातव्यावित्येवमभिनयेन etc. Cf. Devarāga on Ngh. IV. 3 in Nir. SS. vol. i. p. 452. Durga on Nir. VI. 26 gives no particular explanation.—l. 15. तानहर्दृशः B. ते वाहर्दृशः A. Ca.—l. 17. पश्यति ॥ पश्यति A. B. Ca.—अहानि पश्यति ॥ अहानि पश्यति A. Ca.—l. 18. A. Ca mark a lacuna after अतो. B omits अतो and has ईदृशान् पश्यीन् etc.—l. 20. आपणिकास्तथा कारुकुशीलवान् ॥ आपणिकास्तथा कारुशीलवान् A. Ca. वाणिजकास्तथा कारुकुशीलवान् Manu ed. Jolly. वाणिजि° ed. Mandlik.—l. 28. (66, 11.) °तात्पर्याद्भृति° ॥ °तात्पर्यादुति° A. Ca. तात्पर्यात् B.—P. 489. l. 15. (66, 14.) अमतेर्दारिद्र्यात्मिकायाः B. अ - मतेर्दारिद्र्यात्मिका A. Ca.



P. 489. l. 26. (67.) संमदा° ॥ समदा° A. B. Ca. M I.—l. 27. आदित्यान् ॥ आदित्यं A. B. Ca.—  
l. 28. आदित्या ॥ आदित्यो A. B. Ca.—P. 491. l. 6. (67, 9.) मर्चयता ॥ मर्चयन्ता A. Ca.—l. 7.  
प्राप्ता etc. ॥ प्राप्तां बाधामा जोऽस्माकं etc. A. Ca.—l. 18. (67, 11.) गंभीरं गहनं A. Ca. गहनं  
गंभीरं Ngh. l. 12.—l. 25. (67, 12.) दूरमियमदितिर्भूमिरूपा ॥ दूरयमदंतिर्भूरिरूपा A. Ca.—l. 26.  
After उच्छि something seems left out, unless we change उच्छि into उर्वि लं.—  
l. 27. जीविनापुत्रात्तचित्तुं A. Ca. unintelligible.—l. 30. (67, 13.) उच्छयंतः ॥ उच्छयन्ता A.  
Ca.—P. 492. l. 3. (67, 14.) A. Ca. have क्राणान् before वृकाणां, B क्राणां. This is  
either a repetition of वृकाणां (B I reads क्राणान् वृकारणां) or one has to read जोऽस्माकं  
प्राणान्.—l. 13. (67, 16.) मुंजमहे ॥ मुंजमहे A. Ca.—l. 17. (67, 17.) छगुय B I. छगुन A. Ca.  
छगुत M I.—l. 24. (67, 18.) A. Ca. not B, have after मुंचतु again सुत्वं मवत्वित्यर्थः 1. B  
adds दृष्टांतः बंधात् वद्धमिव वधं पुष्टवं बंधात् यथा विमुंचति तद्वत् ॥—l. 30. (67, 19.) मृकत सुखयत  
B.—P. 493. l. 3. (67, 20.) पुषे पितृशब्दः ॥ पुषे पि ल शब्दः A. Ca; not in B.—l. 10.  
(67, 21.) रिप्रमिति Nir. रिप्र इति A. Ca. M I. See Rv. Bh. I. 157, 4.

P. 493. l. 18. (68.) अंततः ॥ अथ ततः A. Ca.—P. 494. l. 2. (68, 2.) मते ॥ सते B I:  
deest in A. Ca. M I.—l. 7. (68, 3.) तवेत्यर्थः C. म इत्यर्थः A. Ca.—l. 29. (68, 6.) योऽन  
त्वादिच्छा° ॥ योऽगास्वदिच्छा° A. Ca; very doubtful.—P. 495. l. 10. (68, 8.) वलवतिंद्र यस्व  
B. वल --- नि यस्व A. Ca.—l. 14. (68, 9.) कर्तुं after स्नानादिव्यवहारं by conjecture. कुर्वन्  
A. B. Ca.—l. 18. (68, 10.) The Viniyoya has been corrected in accordance with  
Âsv. and Rv. Bh. VIII. 2. ०रिति तुचो मरुत्वतीयप्रतिपनुचभाविति A. Ca.—l. 24. ररचिथ ॥  
रचथ A. B. Ca.—l. 29. (68, 11.) तननीयः ॥ तंतनीयः A. B. Ca: cf. Rv. Bh. VI. 18, 6;  
VIII. 6, 22.—P. 496. l. 1. (68, 12.) तथा तने by conjecture.—l. 10. (68, 14.) Brth.  
VI. 900 has आर्चायमेधयोश्च पंच दानसुतिः पराः ॥—l. 13. पितृपुत्र° ॥ पितृपितृ° A. B. Ca.—  
l. 17. (68, 15.) आतिथिमे ॥ अतिथिमे A. Ca: cf. verses 16 and 17.—l. 18. इंद्रोत ॥ इंद्र  
A. Ca.—l. 23. एवमृचाश्च° ॥ एवं लपृचाश्च° A. Ca.—l. 32. (68, 17.) इंद्रोतदानस्य ॥ इंद्रतदानस्य  
A. Ca.—P. 497. l. 8. (68, 19.) निमित्सुखन to युष्मासु from C. युष्मे युष्मासु मर्तः मनुष्यः चवयं  
निमित्सुः नेतुमिहुः नादीधरत् च नैवोपपद्यते खलु अतो etc. B Left out in A. Ca.

P. 497. l. 20. (69, 1.) उन्नत्तीति ॥ ऊदिति A. ऊदित्तीति Ca.—l. 28. (69, 2.) ०दिंद्र  
सुग्न्येति by conjecture. ०दिंद्रयुग्न्य इति A. Ca. ०दिंद्रं यु इति C 2. C 4.—हि द्वा° to सर्वच  
from C. Cf. Sâyana's commentary on Sv. II. 7, 1, 9, 1.—P. 498. l. 6. (69, 3.)  
दिवीत्यर्थः ॥ दिवीत्यर्थः A. Ca. तेषः C 2.—l. 7. आदित्यस्य C. आदित्य A. Ca.—आरोचमाने ॥  
आरोचने A. Ca.—l. 9. (69, 4.) A. C. Ca mark a lacuna after ऽनुक्षयः, extending  
to the beginning of the verse. This has been supplied in accordance with  
Rv. Bh. VIII. 45.—l. 15. तचानुरक्तत्वात् ॥ तचानुक्तत्वात् Ca. तचानुक्तत्वात् A. ०क्षत्वात् C 2.—  
ll. 24 to 29. (69, 7.) मित्थिषा to यवदा from C. बध्नस्य विष्टपं सूर्यस्य from B.—P. 499. l. 2.  
द्वादश मासाः etc. Cf. Sat. Br. I. 3, 5, 11.—l. 10. (69, 8.) तन्नोवा C. तन्नीवा A. B. Ca.—l. 26.  
(69, 10.) आ पतंतं etc. ॥ सापतितं वृष्टिरस्याय यदा etc. A. Ca.—P. 500. l. 8. (69, 12.) सूर्यं  
सुधिरामिव is not explained in A. C. Ca. यथा सूर्यं प्रति रश्मिजावं तद्वत् B. The verse  
occurs Nir. V. 27, and is explained in Rîg-veda, vol. i. p. 20.—P. 501. l. 7. (69, 16.)  
गृहो रथः A. Ca. It is strange that Sâyana should use here गृह as a masculine,  
though he explains अवतं गृहं, in VIII. 73, 7, by जलयेन पुंलिंगता.—l. 8 ०न्तरं to ०न्तरं



from Ca.—l. 9. पुनः कीदृशं from B. तर्हि A. Ca.—कीदृशं after रथं A. Ca.—l. 17. (69, 17.) खराजं twice, A. Ca, not C.

P. 501. l. 31. (70.) चयोदशुष्णिकं चतुर्दशनुष्टुपं पंचदशी पुरजष्णिगाद्यं ॥ चयोदशुष्णिकं आद्यं A. Ca. चयोदशी पुरजष्णीकं आद्यं B 1.—l. 33. यो राजा etc. supplied from the Ait. Ār. A. C. Ca mark a lacuna.—P. 502. l. 6. (70, 1.) सेनानां C 2. सर्वेभ्रां संयामाणां B; deest in A. Ca.—l. 23. (70, 3.) After अनुकूलं some word like करोति is wanted.—P. 503. l. 10. (70, 5.) मूर्तिप्रतिविंबाय ॥ मूर्तिप्रतिविंबाय A. Ca. मूर्तिप्रतिविंबाय C. विंबाय B.—l. 11. किंचन ॥ किंचमनु A. Ca.—l. 18. (70, 6.) B begins हे शविष्ठ बलवन् मघवन् धनवन् वृषन् etc.—वृषा before आ पप्राथ A. Ca.—l. 27. (70, 7.) मनुष्यः from C.—l. 28. यो मर्त्यो etc. ॥ स मर्त्यो यस्मिंश्च ए० A. Ca. स मर्त्यः यस्मिंश्च ए० B. B begins with यः अदेवः etc.—l. 29. योजयन्ति B. योजयन्ति A. Ca.—After गंतुं there seems to have been a lacuna, which in C 2 is left unsupplied. The commentary given in A. B and Ca is clearly spurious.—P. 504. l. 10. (70, 9.) उत्थापय ॥ उत्थापयत A. B. Ca.—l. 18. (70, 10.) प्रभूतधन B. प्रभूतमिवा A. Ca.—l. 19. नि शिग्रयः B 1. वि शिग्रयः A. वि शिग्रयः Ca.—l. 20. नि शिग्रयो ॥ वि शिग्रयो A. वि शिग्रयो Ca.—l. 26. (70, 11.) सखा B. सखायः A. Ca.—P. 505. l. 23. (70, 15.) हितं शौरदेवं ॥ हितः शौरदेव A. B. Ca.—l. 24. Sāyana read न instead of नः.

P. 506. l. 1. (71, 1.) कस्य महोमिः A. B. Ca after रच.—l. 3. अथवा to संबंधनीयं A. Ca; not in C 2 nor in B.—l. 7. (71, 2.) अस्मादिमी ॥ अस्मादिमी A. Ca.—l. 12. (71, 3.) The commentator must have read in the text, स जो वस्व उप मास्वूर्जो नपात् etc.: cf. verse 9. त्वं जोऽस्माभ्यं विश्वेभिर्देवेभिर्धनं प्रयच्छसि । हे ऊर्जो etc. B. Could विश्वेभिर्देवेभिः have been inserted in order to remove the punarukti pointed out and explained away by Sāyana?—l. 18. (71, 4.) यं ॥ यदा A. Ca. यदा यं B.—P. 507. l. 9. (71, 9.) नपात्त्वं ॥ नपादित्वं A. Ca, which stands perhaps for नपादादित्वं.—l. 10. स सुखत्वेनैव प्र० ॥ सः सुखत्वेन वा प्र० A. Ca. M 1. सः प्र० B.—l. 19. (71, 10.) वामिं after न्वात्वं A. Ca. Cf. verse 14.—P. 508. l. 6. (71, 12.) धीषु सुबुद्धिषु B before प्रथमं.—l. 13. (71, 13.) वा ॥ अतिवा A. Ca. अथवा M 1.—l. 28. (71, 15.) भयानाममग्रवणं ॥ भयानंममग्रवणं A. Ca.

P. 509. l. 19. (72, 3.) अंतः आयतनमध्ये before इच्छन्ति B.—स्वपंतं ॥ स्वपनं A. स्वयनं C. स्वयनं B.—l. 20. स्वप्नेतन्माधमं A. Ca and Nir. var. lect. स्वपनमेतन्माधमिकं Nir. Roth and SS.—ll. 26 seq. (72, 4.) अरुहत् आरोहति and अवधीत् A. Ca. अरुहत् आरोहति and आवधीत् B 1.—l. 32. (72, 5.) इयं दशं चरंश्चे ॥ यं चरंश्चे Ca. हं चरंश्चे A.—P. 510. l. 3. (72, 6.) स्थूलं ॥ स्थूलं A. B. Ca.—l. 4. रथेऽश्वान् etc. ॥ रथेऽश्वान्वाजनिंयोजयतेति सेत्यर्थः । A. Ca.—l. 9. (72, 7.) प्रतिप्रस्थातारौ C. प्रस्था० A. Ca; deest in B.—l. 27. (72, 10.) परिणत्यामं B. परिणेत्यामं A. Ca. परिगंतारं?—नीचीनद्वारं ॥ नीचीनवारं गमूतवारं (i.e. न्यगमूतद्वारं) B. नीचीनवारं A. Ca. नीचीनद्वारं C.—l. 32. (72, 11.) वपुष्करे, cf. Nir. V. 14.—P. 511. l. 2. आसद्यं A. Ca. आसद्यां B.—l. 6. (72, 12.) आरिप्सोः Ca. अरिप्सोः A. C.—l. 7. गवाजयोः ॥ गवाजयोः C. गवा - योः A. Ca.—l. 26. (72, 15.) धारकमाजं ॥ धारकर्माजं A. Ca. धारकं B. धारकमिं C 2.—P. 512. l. 3. (72, 16.) मधुधुक्तं ॥ मधुक्क A. Ca.—l. 7. (72, 17.) तत्र हेतुमाह ॥ तत्र हेतुं A. Ca. तत्र हेतुं B. C.—l. 12. (72, 18.) पवमाने ॥ एवमाने A. Ca. एवं माने B.—l. 13. नु शीघ्रं B at the end of the commentary.

P. 512. l. 19. (73, 1.) हवमाह्वानं यच्च वा A. Ca. हवमाह्वानं B.—P. 513. l. 10. (73, 6.)



The commentary on this verse is omitted in A. Ca. It is printed from C 2. B has हे अग्निनामौ यामहतमा यज्ञे सुखतमौ वेदिष्ठमंतिकतममायं प्राप्तव्यं यामि । प्राप्नोमि । अंति०. It seems an old lacuna, supplied independently by C 2 and B.—P. 514. l. 1. (73, 11.) अर्धमागमनाय ॥ अर्धमागमनाय A. B. Ca.—l. 7. (73, 12.) सजात्वं ॥ संजात्वं B (also the first time). साजात्वं A. Ca.—बंधकः कुवः ॥ बंधककुवः Ca. बंधककुवः A. धंधुकः कुतः B. Cf. Kuhn's Zeitschrift, I. p. 442.—अथर्वविहं ॥ अथ वा यु हं A. अथ वायुरहं Ca. आथा वा युरहं C 2. (अरायु?); deest in B.—l. 18. (73, 15.) अथसमुहे ॥ अथ A. B. Ca.—l. 23. (73, 16.) करोत्यंति A. Ca. करोति B.—l. 27. (73, 17.) निधारयति ॥ निवारयति B. निग्रयति A. Ca.—P. 515. l. 4. (73, 18.) आकर्षया or कर्षया A. B. Ca instead of आकर्षकया

P. 515. l. 7. (74.) पंचमं ॥ चतुर्थं A. B. Ca. The mistake in the number of the Śūktas continues to the end of the Anuvāka.—l. 8. आर्च्यस्व A. pr. m. Ca. Anukr. आर्च्यस्व A. sec. m. M 1.—l. 10. चोमं ॥ त्वाचोमं A. Ca.—l. 17. (74, 1.) यु deest in B.—P. 516. l. 3. (74, 5.) जाततेजआयुं ॥ जाततेजोयुं A. Ca. जातधनं B.—l. 23. (74, 9.) संबधीति ॥ संबन्धिनमिति A. B. Ca.—l. 30. (74, 10.) तूर्वेयं प्रामुष्य तथा etc. B.—l. 31. हिंस्र deest in B.—P. 517. l. 16. (74, 13.) Sāyana seems to have read वृषा for मृषा. B has मृषा मृषाणि केशवंति.—वृक्ष्यंत ॥ वृक्ष्यंति C. वृक्षत A. Ca.

P. 518. l. 18. (75, 3.) सर्वतो ऊताऊत वा ॥ सर्वतो ऊत आऊतो वा Ca. M 1. सर्वतो ऊत आऊतो वा A. सर्वतो ऊत B.—P. 520. l. 5. (75, 13.) अन्यमसोतारं ॥ अन्यसोतारं A. Ca. अन्यं सोतारं B.

P. 521. l. 4. (76, 3.) अपह्वयन् A. B. Ca.—l. 28. (76, 8.) वृदा मनसा भक्त्या from B.—P. 522. l. 1. (76, 9.) अह्वामं ॥ अह्वामं A. Ca.—l. 2. अचून् from B. Ca.—l. 17. (76, 12.) साष्टापदी ॥ साष्टयदीं A. Ca. प्राप्ता B.—l. 18. क्षुतिमहं B. क्षुतिमयां A. Ca. क्षुतिं मया M 1.

P. 522. l. 20. (77.) कुवसुते ॥ युवः A. B. Ca.—P. 523. l. 5. (77, 3.) रज्ज्वेव । तथा ॥ रज्ज्वेवत्या A. वलया B. रज्ज्वेवत्या C 2.—P. 524. l. 5. (77, 9.) नतानि ॥ निता A. Ca. नीतानि B.—l. 6. औत्तानि अत्युत्तुष्टानि तव वलानि भूमेः किल etc. B.—भूमेः कीलवधारणाय ॥ भूमेः किल वधाधारणाय A. Ca. भूमेः किल वधाधारणाय B. भूमेः किल वधाधारणानि M 1. Cf. Notes to VII. 99, 3.—l. 18. (77, 10.) किंचेद्रो ॥ -- गवानपीन्द्रो A. Ca. किंच इन्द्रः B.—l. 32. चरमपादिनोच्यते ॥ चारमपादिनोच्यते Ca. वां A.—P. 525. l. 3. (77, 11.) यास्तेन व्याख्याता तदेव लिख्यते ॥ व्याख्यातत्वात्तदेव लिख्यते । यास्तेः । A. Ca.—l. 4. हिरण्ययः A. Ca and Nir. var. lect. हिरण्ययः Nir.—रथो deest in A. Ca, as in several Nir. MSS.—सांयाम्यौ वर्द्वे Nir. Roth. सांयाम्प्रद्वे A. सांयाष्ट(or वृ, or मृ?)द्वे Ca. See Nir. SS. vol. iii. p. 276.—l. 5. यमनपातिनौ शब्दपातिनौ दूरपातिनौ and afterwards गमनवेदिनौ शब्दवेदिनौ दूरवेदिनौ Nir. Roth. B begins हे इन्द्र ते तव धनुस्त्वयि महाशेषं सुष्ठतं etc. It explains सुसंस्कृता by सुष्ठु अलंकृता.

P. 525. l. 11. (78, 1.) B explains बंधसः by सोमं.—P. 526. l. 6. (78, 6.) यदा तं निंदितुमिच्छति । The MSS. have यदा तं निंदितुमिच्छसि, a construction which, though intelligible, is unusual in Sanskrit, particularly as the next sentence is carried on in the third person.—l. 17. (78, 8.) यदा इन्द्रः सोमं पीत्वा सोम इत्यभिहितः ॥ यदाधेन्द्रः पीतं सोमोभिहितः A. Ca.—l. 21. (78, 9.) आतिच्छं ॥ आतिच्छं A. Ca.—l. 28. (78, 10.) निष्कृतस्व ॥ निष्कृतस्व A. Ca.

P. 527. l. 12. (79, 2.) पंगुरपि from B. A. Ca mark a lacuna after ओणोऽपि.—



l. 17. (79, 3.) कृषिभ्य इत्यर्थः। Kṛitya is here used in the sense of 'traitor, enemy.' See Wilson, s.v., and BR. s.v. 1) b).—P. 528. l. 2. (79, 6.) A. Ca have no commentary to the third pāda. तदा ईं अतीर्थी एनं यच्चारंमिणं आयुः जीवनं प्र तारीत् प्रकर्षेण वर्धयेत् ॥ B.—l. 5. (79, 7.) हे सोम पीतस्त्वं नोऽस्माकं कृतं हृदये पीताय हृदय संभव । अपरो नः पुराणः A. Ca. हे सोम पीतस्त्वं नोऽस्माकं कृतं हृदये वर्तमानः सुशेव अपरो नः पुराणः C 2. हे सोम पीतः त्वं नः अस्माकं हृदे हृदये पीताय शं सुखं भव किंच नः अस्माकं सुशेवः सुसुखः मृळयाकुः सुखकर्ता बहुमक्तुः आसमाप्तकर्मा पुनःपुनः यागप्रवर्तकः अवातः निखलश्च भवेति अन्वयः । B.—l. 14. (79, 9.) त्वं वेचसे ॥ त्वं वा ईचसे C 2. त्वं च ईचसे B. त्वं - ईचसे A. Ca.

P. 528. l. 16. (80.) एकादशं ॥ द्वादशं A. B. Ca.—l. 24. (80, 1.) A. Ca mark a lacuna after बद्. बला बद्धकृत्य B.—l. 28. (80, 2.) The commentary to this verse is given from B. A. Ca mark a lacuna.—P. 529. l. 9. (80, 4.) प्राव B. प्रावः A. Ca. M1.—ll. 11 seqq. (80, 5.) वाजयु S 1. 2. 3. 4. P1. P4. वाजयु P 3 pr. m. वाजयुः P 3 sec. m. P 2. In the commentary B reads वाजयुः and इच्छन् instead of इच्छत्. This seems preferable, as far as the sense is concerned.—l. 23. (80, 7.) पूरयसि A. Ca; deest in B. It may be meant for पूरायसि, as a denominative verb derived from पूरं.—l. 30. (80, 8.) स्थिता A. Ca. स्थितो Nir.—P. 530. l. 5. (80, 9.) सोमनि before सोमनाली A B pr. m. Ca, not C; struck out in B.

P. 530. l. 21. (81, 1.) त्वं तु from B.—अस्मभ्यं ॥ नोऽस्माभ्यं A. B. Ca. But नोऽस्माभ्यं is only in A. Ca.—l. 30. (81, 3.) वृष्णुं A. Ca before वृषमं.—P. 531. l. 5. (81, 4.) स्वर्गे राजमानं from C.—l. 9. (81, 5.) उपगानं ॥ उपमानं A. Ca. B.—l. 10. स्वीकुर्विति A. Ca after अभिगृणातु.—P. 532. l. 1. (81, 9.) तव वाजा ॥ तव वाजाः अस्याः B. तव आ A. Ca.

P. 532. l. 24. (82, 2.) ऊचिषे A. Ca. औचिषे B and Pada text.—P. 533. l. 14. (82, 5.) सोऽस्माभिः ॥ सह अस्माभिः A. B. Ca.—परावत एव deest in B.—P. 534. l. 8. (82, 9.) त्वं पिब ॥ ता पिब A. Ca.

P. 534. l. 23. (83, 2.) अहःसु after सर्वेषु by conjecture.—l. 28. (83, 3.) A lacuna marked after संबंधि in A. C. Ca.—त्वा कर्ताचक्षते C. त्वा कर्ताचक्षते A. त्वा कर्ताचक्षते Ca.—l. 29. A. C. Ca mark a lacuna after विप्यिता, which has been supplied. विप्यितानि. Nothing else seems omitted. Cf. Nir. VI. 20, and Rv. Bh. VII. 60, 7.—l. 30. नोऽस्मानति पर्येष from B.—P. 535. l. 31. (83, 9.) ब्रुवे by conjecture. B puts it behind अपि च.

P. 536. l. 7. (84, 1.) रथी रथेन B. रथेधक A. Ca.—l. 8. काव्य ॥ क A. Ca. कः B.—l. 17. (84, 3.) अतमाधे ॥ अतमेन्द्र A. B. Ca; also the commentary to Sv. II. 5, 1, 18, 3.—l. 18. नृण्य इति ॥ तत्प्रति A. Ca; deest in B. Cf. Rv. Bh. I. 121, 1.—l. 21. रच त्वद्व्यं ॥ रजतद्व्यं A. C. Ca. रच त्वद्व्यं comm. to Sv. II. 5, 1, 18, 3.—P. 537. l. 3. (84, 5.) तुभ्यं B. वस्तुभ्यं A. Ca.—l. 4. Instead of वच्चादेशस्त्र, the comm. to Sv. II. 7, 2, 7, 2, reads ब्रूयादेशस्त्र.—l. 9. (84, 6.) सुतीः to वच्चाण from Ca. सुतिरे पुत्रपौ etc. A. सुतीः एवं कुत्र या सु सुचितोः पुत्रपौ etc. B.—l. 28. (84, 9.) साधयज्ञिः ॥ साधायोमिः A. Ca.

P. 539. l. 4. (85, 7.) दृढांगोपेति B. दृढभावांगोपेति A. Ca.—l. 14. (85, 9.) सोमस्य by conjecture.

P. 539. l. 24. (86, 1.) भीतिमपनयतः ॥ भीतिं समनयतः A. Ca.—l. 26. अस्माविषायां ॥



अस्ताविद्या A. Ca. अस्ताविद्या C 2. अस्ताविद्या: B.—l. 28. निमित्तं ॥ सनिमित्तं A. Ca; lacuna in B.—l. 29. मा to स्मिता from Ca.—P. 540. l. 6. (86, 2.) धनं । तस्यामि ॥ धन-  
वतममि A. Ca. धनममि B.—l. 14. (86, 3.) वृहोश्च A. Ca. वृहोश्च Un. Cf. Rv. Bh.  
X. 17, 1.

P. 541. l. 9. (87.) यत्स्थ इति Åsv. यत्स्थो A. Ca. M 1. See Rv. Bh. VIII. 10.—  
l. 14. (87, 1.) ऋनी अयमनुषीणसोचो etc. ॥ ऋनी अयमनुषीणसोचो बुन्नीक एतन्नामकं ऋषिः । वां  
युवयोः सोमसा नवसि युष्मत्सुतो A. C. Ca. ऋनी वां युवयोः सोमः बुन्नी अन्नवान् युष्मत्सुतो B.—  
l. 18. देवते before ऽस्मिन् A. Ca.—l. 20. From तच्च to ग्रीष्मं left out in A. Ca.—l. 26.  
(87, 2.) A. Ca omit the commentary of verses 2, 3, and 4. This omission has  
been supplied from C.

P. 543. l. 17. (88, 1.) वसोः पात्रे निवसतः ॥ वसे प्राचः प्रतिनिवसतः A. Ca.—l. 33. (88, 2.)  
वाचामह इति ॥ यचोनवति A. Ca.

P. 545. l. 18. (89, 1.) A. C. Ca mark a lacuna after देवग्रीष्मं.—P. 546. l. 14.  
(89, 4.) गच्छंतु ॥ गच्छति B. गच्छति A. Ca.—P. 547. l. 7. (89, 7.) सुत्वा etc. A. Ca. The  
construction is faulty. सुत्वा might be changed into सुतवतः, but the mistake was  
evidently committed by the author himself, and not by the copyists.

P. 547. l. 13. (90.) समसंख्याकाः सतोबृहत्तः from C.—l. 22. (90, 1.) वा before अजं-  
क्षताणि by conjecture.—l. 33. (90, 2.) तत्पुच्छ ॥ न पुच्छ A. Ca.—P. 548. l. 7. (90, 3.)  
सन्ध्ययोः Ca. सन्ध्य चो A. सप्तरथ चो B.—l. 14. (90, 4.) तानि प्रह्नीभावयसि ॥ तानि प्रह्नी-  
मवसि A. Ca.—l. 23. (90, 5.) अजीवी । अजीव etc. ॥ अजीवोपार्जितोभिषुतसोमः तद्वान् A. Ca.  
अजीवी उपार्जितः अभिषुतः सोमः तद्वान् B.

P. 549. l. 8. (91.) As the text and commentary of this hymn have been pub-  
lished by Professor Aufrecht in the Indische Studien, vol. iv. p. 1 seqq., I find  
it necessary to justify the readings adopted in my edition, and to state more  
fully the reasons for which I either agree with or differ from him.—l. 14. दंतर्षणं  
C 2. C 4. दंतर्षणं A. Ca, and Prof. Aufrecht.—l. 15. अच कन्या. This is the reading  
of all the MSS., and I see no necessity for adopting the conjecture of Prof.  
Aufrecht, अचिकन्या, in the sense of अचिसुता.—l. 19. After करिष्यामि it is absolutely  
necessary to insert इति, though A and Ca omit it. In C 2 the whole passage is  
omitted.—l. 23. The singular व्युक्तं after the plural एतानि is certainly wrong. A. Ca.  
C 2, and C 4, however, agree in व्युक्तं, and as the mistake may be an error of  
Sāyana's, I abstained from changing it into व्युक्तानि.—l. 24. खलति. Though खलति  
is given in the Dictionaries as an adjective only, there is very little, if any, doubt  
that Sāyana used it here as a substantive. It would be easy to change खलति  
into खलतिव, a reading adopted by Prof. Aufrecht. But the MSS. are against  
this alteration, not only here, but again p. 551, l. 7. In our passage Ca. C 2, and  
C 4 have खलति; A has a lacuna. In the commentary to verse 5, however, A. Ca.  
C 2, and the B MSS. also, all agree in the reading खलति; तद्यापगमय, which follows,  
must be referred to शिरः. That खलति should be used by Sāyana as an adjective  
also, is no valid objection, particularly as the passage where it is so used, is not



his own composition, but an extract from a Brāhmaṇa.—l. 25. तस्याः पूर्वापहता या त्वक् । तस्याः पूर्वामिहतायाः त्वक् A. Ca. C 2. The reading of the MSS. might be explained in the sense of 'the former skin of her who was thus being struck,' but the construction would not be in harmony with the general style of Sāyana. Prof. Aufrecht proposed तस्याः पूर्वामिहता या त्वक्, but the right reading is supplied by the Brihaddevatā (VI. 914) from which this passage is borrowed, and not unfrequently *totidem verbis*. Brih. MS. B has,

तस्यास्त्वगपहता या पूर्वा या शङ्खकोऽभवत् । उत्तरा त्वमवज्ञोया ह्यक्वास्त्वगुत्तमा ॥

MS. H has,

तस्यां त्वचि व्येताया सर्वस्यां शङ्खकोऽभवत् । उत्तरा त्वमवज्ञोया ह्यक्वास्त्वगुत्तमा ॥

The readings thus supplied by the Brihaddevatā are of interest, because they show that according to the legend the cure of Apālā was effected by three skins being torn off her body. This is a new feature which to a certain extent weakens the similarity between this legend and some others of German origin, pointed out by Prof. Kuhn (Indische Studien, vol. i. p. 118).—The MSS. (A. Ca. C 2) have ह्यक्वास्त्वो instead of ह्यक्वास्त्वो, which is supported by the Brihaddevatā.—l. 32. (91, 1.) सुता सुतो Prof. Aufrecht. सुता सुतो A. सुता सुतो Ca. सुता सुतो C 2. C 4. सुतो B 1. B 4.—l. 33. After विद्वं कामे A. Ca. have अविद्वं, C 2 अविद्वं, without a line at the end. Prof. Aufrecht has printed अटि द्वं, which would be appropriate if Sāyana, during the whole of his commentary, ever used this expression, 'this is the form after the augment.' I have printed अटि द्वं, according to Sāyana's usual style of interpretation, but I am by no means certain that this is the right reading. It may not be at all intended as a grammatical explanation, but as an adjective to सोमं. अविद्वं तं सोमं might be intended for Soma that has not been prepared for sacrifice, Soma in its original form, such as Apālā found on the road and took home with her. Or there may be some other technical term hidden in अविद्वं, such as अविद्वं, 'strained in sieves made of sheep-wool.' Cf. Rv. IX. 107, 2. नूनं पुषाणः अविद्वंभिः परि स्रव. Rv. IX. 91, 2. मूर्ध्वानः अविद्वंभिः गोभिः अविद्वंभिः, etc. The reading remains doubtful.—l. 35. दंतध्वनिं B. दंते वाच A. दंते वाचं ध्वं Ca. C 2. Prof. Aufrecht has conjectured दंतराजिध्वनिं as the original reading which led to the corruptions in A. Ca. and C 2. This conjecture is extremely plausible, and I should prefer it, unless the simpler reading which I adopted were supported by the B MSS.—l. 36. The quotations from the Sātyāyani-Brāhmaṇa can hardly ever be completely restored from the MSS. of Sāyana. There is no MS. of this Brāhmaṇa in any of the libraries of Europe, and though it is a Brāhmaṇa belonging to the Sāma-veda, it differs so considerably from the text of those of the Sāma-veda Brāhmaṇas which are known to us from MSS., that nothing can be gained by their collation. The story of Apālā is not to be found in any of the Sāma-veda Brāhmaṇas, though I examined them all most carefully. Now the language of the Brāhmaṇas is so peculiar and so



different from the common style of Sāyana, that wherever we find an opportunity of comparing the original texts with the extracts given by him, we discover a more than usual number of blunders and omissions in all our MSS., and we see that, without the help of the originals, it would have been impossible to set them right. With regard to all such extracts from Brāhmanas in my edition of Sāyana, I must crave considerable indulgence. They are given as well as they could be given with the means at my disposal; but they cannot be completely restored to correctness until we are able to procure the exact sākḥās of each Brāhmaṇa from which they were copied or quoted by Sāyana.—सोमं शुभं विदत् Prof. Aufrecht. सोमं शुभं विदत् A. Ca. C 2. The B MSS. never give these Brāhmaṇa passages.—l. 37. सा तममिवाजहार ॥ A. Ca have सामिवाजहार, as printed by Prof. Aufrecht. An accusative is wanted with समिवाजहार, and its former presence is indicated by the readings of C 2. C 4, सा ममिवाजहार.—अस्यै त इदं Prof. Aufrecht. अस्यै ता इदं A. Ca. अस्यै ता इदं C 2. C 4. The emendation is by no means certain, इदं might be intended for इह.—P. 550. l. 15. (91, 3.) इच्छाम एव ।. All the MSS., A. Ca. C 2, and the two B's, have एव after इच्छाम, and at the end of the sentence, nor does there seem to be any necessity for changing, as Prof. Aufrecht does, एव into एवं, and making it the first word of a new sentence. एव answers to चन, which is here used in a restrictive or determinative sense. In the next sentence a conjectural emendation seemed necessary, A. B. Ca exhibiting a lacuna, and C being corrupt: इच्छाम एव मम गृहमागच्छतं त्वामिन्द्र इति जानीम एव इह मार्ग एवागतं त्व त्वां नाधीमसि नाधिगम अवापि चानत्यवधारणे इह त्वामिन्द्र इति न जानीम इत्यपालतमिन्द्रमुक्त्वा C 2. C 4. इच्छाम एव मम गृहमागच्छतं त्वामिन्द्र इति जानीम एव इत्यपालतमिन्द्रमुक्त्वा A. Ca. इच्छाम एव अपि चन त्वनिमसि मम गृहमागतं त्वां इन्द्र इति जानीम एव इति अपाला तमिन्द्रमुक्त्वा B 1. The omission in A. B. Ca had probably been supplied in the margin of the original of the C MSS., and was afterwards inserted in the wrong place in the C MSS. In any case, it seems necessary, though without the sanction of any of the MSS., to insert the negative particle न before जानीम एव.—l. 18. कुत्सितं ॥ कुत्सितः A. Ca. C 2, and Aufrecht. It is intended, however, as an adverb qualifying एतैः, and ought to be in the neuter.—l. 20. मुखादेवौवधसीत् ॥ A. Ca have मुखादेवौवधसीत् 1, C 2 and C 4 मुखादेवौवधसीत्. Prof. Aufrecht has अवासीत्, which most likely is a misprint, considering the rule of Pāṇ. II. 4, 37.—l. 29. (91, 4.) The commentary to कुविन्नो वक्ष्यस्वरत् is preserved in C 2 and C 4. The omission in A and Ca arose from the scribe mistaking the two करोतु at the end of each sentence. B has किंच वक्ष्यः प्रशसाः करत् करोतु.—l. 30. It would be better to leave out वङ्ग after कुवित्, because वङ्गवारं follows; but A. Ca. C 2, and B have it.—l. 31. अत एव यतीः ॥ अत यतीः A. Ca. C 2. अत यतीः B. Prof. Aufrecht conjectures, in the spirit of Sāyana, अत एव यतीः, which I have adopted, although it is difficult to understand how the mistake arose in A and in B. With reference to the first verse one might conjecture अवयतीः, but this would not be in the usual style of Sāyana.—P. 551.



l. 11. (91, 5.) नासुखान्य ह ॥ वसुखान्य ह A. Ca. C 2. The emendation here proposed by Prof. Aufrecht seems to me to admit of no doubt.—l. 16. (91, 6.) There was no necessity for changing, as Prof. Aufrecht does, the reading of the MSS. चासा उर्वरा into या सोर्वरा, चासा reproducing the words of the text, namely, या and असौ B has असौ च या. In line 17 too the reading of the MSS. अथो अथापि च is unobjectionable, and ought not to have been changed. B has अथो अपि च.—l. 25. (91, 7.) निष्कर्षणेन पूत्वा Prof. Aufrecht. निष्कर्षणे वा A. Ca. C 2. B leaves out निष्कर्षणेन, and reads पूत्वा शोधयित्वा etc.—l. 27. The last extract from the *Sātyāyanaka* is very corrupt, and the text as printed by me differs materially from that of Prof. Aufrecht. I shall first give the readings of the MSS.:

तां खे रथस्त्राद्यवृहत्ता मोर्ध्नामवत्तां खे नसेनसो त्ववृहत्ता संक्षिप्तकामवत् A.

तां खे रथस्त्रा व्यवृहत्ता मोर्ध्नामवत्तां खे नसेनसो त्ववृहत्ता संक्षिप्तकामवत् Ca.

तां खे रथस्त्राव्यवृहत्ता मोर्ध्नामवत्तां खे नसो त्ववृहत्ता संक्षिप्तकामवत् C 2.

Prof. Aufrecht has introduced the following conjectures:

तां खे रथस्त्रासाद्य वृहत्तामोर्ध्नामवत्तां खेऽनस आसाद्य वृहत्ताम संक्षिप्तकामवत्<sup>1</sup>.

I do not think that I understand the meaning of the passage as here given by Prof. Aufrecht, nor do I see how the *Bṛihatsāma* comes suddenly in, though nothing is said of it in *Sāyana's* comment. I believe that in 'वृहत्' we must recognise the verb *br̥h*, 'to drag,' 'to pull,' and with अति this would be synonymous with अतिष्ठत्, as used immediately afterwards. Thus the construction would be, 'he dragged her through the hole of the chariot, she became this; he dragged her through the hole of the cart, she became that.' But what did she become? What is मोर्ध्ना, and what संक्षिप्तका? As the first skin that came off was शङ्खकः, i. e. a hedgehog, and the second a गोधा, i. e. an iguana, it might be said that when she had been dragged through the first hole, she, having thrown off the hedgehog skin, had become a गोधा, an iguana, and this गोधा might stand for मोर्ध्ना. But if this be so, then it would follow that after the second pulling through, she, having lost the iguana skin, became a छक्कास, i. e. a chameleon, and of this no trace is to be discovered in संक्षिप्तका. Here then we must wait till new MSS. of *Sāyana* can be procured, or till the original of the *Sātyāyanaka* can be discovered.—l. 30. सूक्तं ॥ युक्तं A. युक्तं Ca. सूक्तं C 2. The sense requires सूक्तं, and युक्तं in Prof. Aufrecht's text is probably a misprint.

These few notes on one short hymn may serve as a specimen of the difficulties, some of them insurmountable, with which an editor of *Sāyana* has to grapple. Before I could make up my mind to give up the extracts from the *Brāhmanas* as hopeless, I looked not only through the whole of the *Tāndya-Brāhmaṇa*, but I searched wherever there was a chance of finding the story of *Apālā*. Unfortunately the MS. of the *Nitimañigari*, which is very useful for

<sup>1</sup> Prof. Aufrecht informed me that सामसंक्षिप्तका in one word was a misprint.



verifying legends mentioned by Sāyana, is very deficient in the sixth Ashṭaka and does not contain the story of Apālā. The Rvdh. II. 34 gives one verse, of no interest whatever, viz. कन्या वारिति सूक्तं तु सततं नियतो जयेत् । त्वग्दोषिणीं तद्वाजोर्जीं चिप्रं तस्मात्प्रमोचयेत् ॥ Again, the Bṛihaddevatā VI. 907 seqq. offers but little help. I copy the text from two MSS. in my possession :

अपालाचिसुता त्वासीत्कन्या त्वग्दोषिणी पुरा<sup>1</sup> । तमिन्द्रश्चकमे दृष्ट्वा विजने<sup>2</sup> पितुराश्रमे ॥  
तपसा ब्रुवधे सा तु सर्वमिन्द्रचिकीर्षितम् । कन्या वारिति चैतस्यामेषोऽर्थः कथितस्ततः ॥  
सा सुषाव मुखे<sup>3</sup> सोमं सुखेन्द्रमाब्रुवाव तं । असी य एषीत्यनया पपाविन्द्रश्च तन्मुखात् ॥<sup>4</sup>  
अपूपांश्चैव सत्तूश्च भचयित्वा स तद्वहात्<sup>5</sup> । उदकुंभं समादाय अपामर्थे जगाम सा ॥<sup>6</sup>  
अग्निमुष्टाव सा चैनं जगादेनं तुवेन तु ।<sup>7</sup> सुलोमामनववांगीं कुर्व मां शक्र<sup>8</sup> सुत्वचं ॥  
तस्यासद्वचनं श्रुत्वा प्रीतस्तेन पुरंदरः । रथच्छिद्रेण तामिन्द्रः शकटस्य युगस्य च ॥  
प्रविष्य निश्चकर्ष विः सुत्वक् सा तु ततोऽभवत् ।<sup>9</sup> तस्यास्त्वगपहता या पूर्वा सा शश्वकोऽभवत् ॥<sup>10</sup>  
उत्तरा त्वभवन्नोधा कृकलासस्त्वगुत्तमा । इतिहासमिदं<sup>11</sup> सूक्तं त्वाहृतुर्यास्तमागुरी ॥<sup>12</sup>  
कन्येति शौनकस्त्वेन्द्रं पातमित्युत्तरे च ये ।<sup>13</sup>

The last work to be consulted was Shadgurusishya's commentary on the Sarvānukramanī, but here too we find but little that is really valuable. (See also Anukr. M. p. 142 seq.)

कन्या वाः सप्तावेत्यपालेतिहास ऐन्द्र आनुष्टुभं द्विपंक्त्यादि । अवायती<sup>14</sup> । अपाला नाम अषिकाचिपु-  
षिका । इन्द्रमधिकृत्यापाला नाम<sup>15</sup> तपश्चचार सोमा नाम समामनन्ति<sup>16</sup> । ऐन्द्र इतिहासः । अवोच्यत इति  
शेषः । इतिहासस्त्वयं ।<sup>17</sup>

अपालाचिसुता त्वासीत्कन्या त्वग्दोषिणी पुरा । अत एव दुर्मनेति भर्वा त्यक्ता सती पथि ॥ १ ॥  
सौम्याद्रसादिन्द्रतृप्तिरिति यज्ञस्य वाक् श्रुतेः ।<sup>18</sup> अन्विच्छंती सोमसतां जलायावत्तरत्तदा ॥ २ ॥<sup>19</sup>  
सोममप्यविद्वत्कन्या अथागात्पितुराश्रमं ।<sup>20</sup> तामिन्द्रश्चकमे दृष्ट्वा<sup>21</sup> विजने पितुराश्रमे ॥ ३ ॥  
तपसा ब्रुवधे सा तु सर्वमिन्द्रचिकीर्षितं । सुषाव स्वमुखे सोमं खेदंतीर्थावभिस्त्विति ॥ ४ ॥<sup>22</sup>  
तस्या भक्त्यतिरेकेण पपाविन्द्रश्च तन्मुखात् ।<sup>23</sup> निरगात्स क्वचित्पूर्वं भचयित्वा गृहात्पुनः ॥ ५ ॥<sup>24</sup>

<sup>1</sup> पुरा B. <sup>2</sup> वो० H. <sup>3</sup> मुखात् H.

<sup>4</sup> सा सुषाव मुखे सोमं पपाविन्द्रश्च तन्मुखात् ॥ B.

<sup>5</sup> शतक्रतुः H. <sup>6</sup> Deest in H.

<sup>7</sup> अग्निमुष्टाव चैवेनं सोममिन्द्रं तुवेन सा । H.

<sup>8</sup> शक्र B. <sup>9</sup> ततः सा सुत्वचाभवत् । H. K.

<sup>10</sup> तस्यां त्वचि व्यपितायां सर्वस्यां शश्वकोऽभवत् H

<sup>11</sup> भिमं H. <sup>12</sup> ०रिः B. यास्तुमातरौ H.

<sup>13</sup> शौनकः सूक्ते पातमेन्द्रे ततः परे । H.

<sup>14</sup> The commentator always gives the word immediately following the pratika.

<sup>15</sup> This passage is very corrupt. The MS. of the E. I. H. (A) reads अपाला नाम अषिका अपुषिका यां मधिकृत्य अपाला नाम, (B) अपाला नाम अषिका कन्या अचिपुषिका । यामधिकृत्यापाला नाम. One might conjecture कायमधिकृत्य, 'for the sake of her body;' but, with reference to p. 549. l. 12, I prefer इन्द्रमधिकृत्य.

<sup>16</sup> This is equally corrupt. I have given the text of A; B has मना समामनन्ति । It may be the beginning of the story in the Sātyāyana-Brāhmaṇa. followed by इत्यामनन्ति ।

<sup>17</sup> B has ऐन्द्र इतिहासः । इन्द्रसंबन्धीतिहासः । अत्रा वगंतव्य इति शेषः । इतिहासश्चायं । A has अवोच्यत and इतिहासत्वाय ।

<sup>18</sup> This is printed after B; A differs considerably. without being more intelligible. तृप्तिरिन्द्र इति यज्ञस्तु-  
त्युपायो भूत् ।

<sup>19</sup> This is again printed from B; A has अन्विच्छंती सोमयाज्ञं कृतांजलायावत्तरत्तदा ।

<sup>20</sup> A has कन्यायोगावत्पितुराश्रमं ।

<sup>21</sup> दृष्ट्वा A, and B sec. man., instead of दृष्ट्वा ?

<sup>22</sup> A has साश्रुपात मुखे सोमं खेदंती etc.

<sup>23</sup> ययामिन्द्रश्चतुर्मुखात् A.

<sup>24</sup> निरगात्क्वचित्पूर्वं तु भचयित्वा ग्रहान्पुनः । A.



उदकुंभं समादाय तेन सार्धं तु साध्यगात् ।<sup>1</sup> ऋग्भिः सुत्वा जगदिंद्रं कुरु मां सुत्वचं त्विति ॥ ६ ॥

रथच्छिद्रे गतामिंद्रः शकटस्य युगस्य च । प्रक्षिप्य निश्चकर्ष चिः सुत्वक् सा तु ततोऽभवत्<sup>2</sup> ॥ ७ ॥

तस्याः पूर्वहता या त्वग्वातिः<sup>3</sup> सा शस्त्रकोऽभवत्<sup>4</sup> । उत्तरा खभवन्नोधा ककशासस्तथोत्तमेति<sup>5</sup> ॥ ८ ॥

P. 552. l. 14. (92, 2.) गाथायोग्यं ॥ गाथायोग्यं A. Ca.—l. 15. खोटि ॥ खिटि A. Ca. C 2. It might be खिटि; see, however, Rv. Bh. I. 84, 5. Instead of धमस्त° the MSS. have धवस्त°.—l. 22. (92, 3.) यत्वा ॥ दत्वा MSS.—l. 28. (92, 4.) Instead of इंदोः and चरत् A. Ca. C 2 have इंद्रः and चरंतं.—P. 553. l. 20. (92, 7.) सुह ॥ सुह A. Ca. Cf. Rv. Bh. I. 34, 8. Dhp. 22, 59-61.—P. 554. l. 10. (92, 11.) तवादातृन् ॥ तव दातृन् A. Ca. तव शत्रून् B.—l. 17. (92, 12.) औत्वा° ॥ The MSS. have औत्वा°. This term can only refer to Pān. VI. 1, 93. One should expect आत्वा°, but औत्वा° may be intended for आ + औत्वा°.—l. 23. (92, 13.) छष्टके after वक्षवन्निद्र in A. Ca., छष्टके in C 2.—P. 555. l. 9. (92, 16.) प्रदीयमानेन सोमेन ॥ प्रदीयमानसोमेन A. Ca. M 1. प्रदीयमानः सोमः B 1. See next verse.—P. 556. l. 5. (92, 21.) Cf. Rv. VIII. 13, 18.—l. 23. (92, 24.) कुषये ॥ तुनङ्ग A. Ca. C 2.—l. 32. (92, 25.) खीति ॥ खीत A. Ca.—P. 557. l. 9. (92, 27.) समीपात्वां ॥ मृगपात्वां A. Ca. C 2.—l. 29. (92, 30.) तंद्रयुक्त इत्युक्तं ॥ तंद्रयुक्तमित्युक्तं A. Ca. C 2.—l. 30. कर्मवितो ॥ कर्मवतो A. B. Ca.

P. 558. l. 30. (93, 1.) एतादृशानुभावं ॥ एतादृशं अनुभवि A. Ca.—P. 559. l. 17. (93, 4.) तदा A. Ca. C 2; there is no चदा to which this तदा answers.—l. 30. (93, 6.) ये सोमा ऋत्विग्भिः ॥ ते सोमाः सुनोतिः कर्मणि खिटि व्यत्ययेन श्रुः । इहः -- ऋत्विग्भिः A. Ca. This grammatical explanation which was intended to account for the absence of reduplication in सुविरे was probably a marginal note and afterwards inserted in the text.—P. 560. l. 4. (93, 7.) After सुतः सन् A. Ca. C 2 insert वृचं हेतवे वाजयामसि वाजवंतं करोतीत्यर्थे तत्करोतीत्यर्थे तत्करोतीति शिच् । याविष्टवदिति शेरिष्टवज्ञावान् टिरिति टिषोपः विव्यतोर्लुक् । विक् (वि omitted in Ca. C 2) --- र्वमिति वचनात्तुपो लुक्. This is evidently a marginal note which was inserted in the text. Cf. Rv. Bh. I. 4, 9.—l. 14. (93, 9.) वक्ष आयुधं ॥ वक्षायुधं A. Ca.—l. 26. (93, 11.) सर्वत्राजयतीति ॥ सर्वत्र मनयंति A. Ca. सर्वत्राजयेति M 1.—P. 561. l. 4. (93, 12.) शिरस्त्राणेन्द्र A. Ca. It ought to be शिरस्त्राण वेन्द्रः.—l. 10. (93, 13.) A. Ca. omit पक्ष्णीषु altogether, B 1 inserts it after रौहितवर्णासु, but without explanation.—l. 15. (93, 14.) परिगमिता ॥ वनिगमिता A. Ca. C 2.—l. 31. (93, 16.) Sāyana read आशुवे (or आशुवे?) instead of आ । शुवे.—P. 562. l. 30. (93, 20.) गच्छतु ॥ गच्छति A. Ca.—P. 563. l. 3. (93, 21.) भवामीति ॥ भवामीति A. Ca. भवामिति C 2. ददामि इति B.—l. 17. (93, 23.) उक्तं ॥ उक्त A. Ca. The lacuna is the same in A. Ca.; in C 2 the letters र-वि have disappeared.—l. 19. विव्यवंति ॥ विव्यवन् A. Ca. विव्यवन् B. C 2.—l. 22. (93, 24.) हविर्भिः ॥ हविः A. Ca. C 2.—l. 24. -- वादिषु Ca. C 2. वादिषु A. B has only the second explanation: हितकरं.—P. 564. l. 9. (93, 27.) The commentary to verse 27 is left out in A. Ca. C 2; it is supplied from B.—P. 565. l. 2. (93, 31.) श्रुतेऽचापि ॥ श्रुते तचापि A. Ca. श्रुतेन तचापि C 2.—l. 14. (93, 34.) From धत्तन to धत्तन supplied by conjecture, in accordance with Rv. Bh. I. 20, 7.

<sup>1</sup> पागार्थे व्ययमध्यगात् । A.

<sup>4</sup> शस्त्रको B. शस्त्रका A.

<sup>2</sup> सुत्वक् सन्नः स चे भवत् A.

<sup>5</sup> तथो वमे A.

<sup>3</sup> तायास्त्व° A.



P. 565. l. 22. (94.) बिंदु° ॥ बिंदु° A. Ca. B has बिंदुः पूतदधो वा चविः. In the Anukr. quotation A. Ca read बिंदुः.—P. 566. l. 20. (94, 5.) तना । ततमूर्णासुकेनेति ॥ तना तत मूर्णासुको गति A. Ca. सनातन मूर्णा सुकेनेति C 2. The reading which I have adopted is conjectural and very doubtful. ऊर्णासुका and सुका are always used as feminines in the sense of 'a braid of hair.' Cf. BR. s.v., and Dr. Haas, Indische Studien, vol. v. p. 237; Sat. Br. III. 2, 1, 13; III. 5, 2, 18, etc. In the Ait. Br. I. 28, Sāyana explains ऊर्णासुकाः by अविस्वंधिरोमविशेषाः १. सुपः, however, which is likewise used in the sense of 'a braid' (Dr. Haas, l. c.), is certainly a masculine, and it is possible therefore that सुका was likewise used in that gender. It hardly admits of a doubt that Sāyana wrote सुकेनेति, for the reading of A. Ca was likewise intended for सुकेनेति. The copyists were evidently ignorant of the word ऊर्णासुका, and changed it into मूर्णासुकेनेति. Sāyana does not give the same or a similar explanation of तन् in other passages where तना पूत occurs, but see Rv. Bh. IX. 66, 28.—l. 28. (94, 6.) सेवां ॥ सेवां A. Ca. C 2.

P. 568. l. 14. (95, 2.) After पिब C 2 adds यद्वा क्रियायहयमपि कर्मव्यमिति संप्रदानं चतुर्थेयं वज्रं घी तदिदं सोमरूपमन्नं शीघ्रं पिब ।—l. 22. (95, 3.) मरुत्तमानां ॥ मरुत्तोमानां A. Ca. मरुत्समानां B. मरुत्सवानां?—P. 569. l. 8. (95, 5.) प्रत्नां पुरातनं etc. The variation in the gender is kept up throughout, though the carelessness of the copyists sometimes disturbs the accurate construction of the commentator. B has प्रत्नां पुरातनं अतस्त्र सत्वस्त्र संबन्धि पिप्पुषीं प्रवृष्टं चिकित्स्वियनसं ज्ञानिनं अतीन्द्रियार्थदर्शनेन ज्ञातानि सर्वेषां एदयानि यया तां तादृशं धियं तदीयं रचयिष्यं तस्मै कुर्व ॥—P. 570. l. 14. (95, 9.) धनादीनि B. धनकवधनादीनि A. Ca. कनकवधनादीनि C 2.

P. 570. l. 20. (96.) इष्यामि वो etc. ॥ इष्यामि वो मरुदेवतः अथ द्रप्स A. इष्यामि वो मरुत इति पादो मरुदेवतः । अथ द्रप्स Ca. पिष्यामि वो मरुतामिति पादो मरुदेवतः ॥ B. See commentary on verse 14.—l. 30. (96, 1.) वेदाध्ययनादीनि B. वेदाध्ययनानि शास्त्रग्रन्थः चिंतयादीनि Ca. A.—P. 571. l. 8. (96, 2.) दर्मपिबुलमुबुल Ca. दर्मकृतमुबुल A. दर्मपुंजीलमुबुल TS.—l. 32. (96, 4.) After सत्तनां A. Ca add सत्तानां. The derivation varies; it is either from सण or सद्.—P. 573. l. 4. (96, 8.) नवसु ॥ नवसु A. यसु Ca. सुर C 2.—सप्त सप्त निपादिताः ॥ सप्त सप्तनिपादिताः A. Ca. सप्त तिपादिताः C 2.—l. 5. तचादितः ॥ तच अहितेः A. Ca. तचादि M 1.—l. 6. षष्ठो गर्माः ॥ षष्ठे गर्माः A. षष्ठो गर्माः Ca. C 2. See VS. XVII. 86; XXXIX. 7; and Weber, Vāgasaneyi-Samhitā, p. xxxiii.—l. 19. (96, 9.) अजीषं ॥ अजीषी A. M 1. ञ्वा or ञ्वी Ca. ञ्वि B.—ll. 25 to 27: (96, 10.) C 2 reads कल्याणतमेन्द्राय सुवृत्तिं शोभनां सुतिं प्रेरय वोदय कुर्व किमर्थं पशुः पशोः विपाचतुप्पास पशोर्मम अन्नदीयाय गवे वा यद्वा पशोरतीन्द्रियार्थं द्रष्टुर्मम धनादिकं दातुं गवे सुखादिकं प्रदातुमिन्द्राय सुतिं प्रेरया एतदेवाह etc. A. Ca read कल्याणतमार्थेन्द्राय गवे वा यद्वा पशोरतीन्द्रियार्थं द्रष्टुर्मम धनादिकं दातुं गवे सुखादिकं प्रदातुमिन्द्राय पूर्वाः etc. B reads कल्याणतमार्थेन्द्राय सुवृत्तिं प्रेरय किंच य अन्नः अतीन्द्रियार्थद्रष्टुर्मम धनादिकं दातुं पूर्वाः etc. All the other MSS. being incomplete, the passage has been supplied from C 2, though it is very doubtful whether Sāyana wrote it.—P. 574. l. 30. (96, 13.) कुरुन्नति A. Ca. कुरुन्नति Br̥h. MSS. (B and A).—l. 31. योत्समानं सुसंहृष्टैः Br̥h. MSS. (A. B. H). योत्समानं सु सं A. Ca. योत्समानसु सं C 2.—



तानायतः Br̥h. MSS. (A. H. B). तानायुतान् A. Ca. C 2.—l. 32. After देवान्पुनर्विमो the MSS. of the Br̥h. add युत्वा देवगुरोर्वीक्ष्यमनर्थं वृचशंकया ।—l. 33. शक्र औजसेव बलाद्वली Br̥h. MSS. (A and B). शक्र खड्ग एव लोः C 2. शक्रः खड्ग एव बलान्वलैः A. Ca. शक्र नै र्ज खैव बलाद्वली Br̥h. MS. (H).—देवानादाय तं पयुर्विधिवत्सुराः Br̥h. MSS. (A. B). देवाय-नायाय तं पुनर्विधिवत्सुरा । A. देवानायाय तं पुनर्विधिवत्सुरा । Ca. C 2. देवानातं पयुर्विधिवत्सुराः । Br̥h. MS. (H).—जघ्नुः पोत्वा C 2. Br̥h. MSS. (H. A. B). जघ्नुः पत्वा A. Ca.—l. 34. एतद्वर्णने नादरणीयं A. Ca. C 2. The whole passage from the Brihaddevatā seems to have been here inserted by a later hand. It is not given in B, but it could hardly be called anārsha, being taken from the Brihaddevatā.—P. 575. l. 2. उदस्य A. Ca. C 2. B.—P. 576. l. 1. (96, 16.) ॐवाशत्रुभ्यः ॥ ॐव शत्रुभ्यः A. Ca. C 2.—l. 4. ते प्रकाशान् ॥ ते प्रकाशः । अनु° A. Ca. प्रकाशः अनु° B.—l. 23. (96, 18.) कंदोविषयत्वा-न्निपातनं ॥ कंदोविषयत्वान्निपातन A. Ca. C 2. See Amara-kosha III. 4, 18, 113.

P. 581. l. 20. (97, 13.) सर्वदिक्खं ॥ सर्वदिक्खं A. Ca. C 2.

P. 582. l. 16. (98.) नृमेधस्य A sec. m. नृमेधाक्षस्य A pr. m. Ca. नृमेधाक्षस्य C 2.—l. 18. आबधेतुरचणिक ॥ ॐत्ककुप A. Ca. M 1.—P. 583. l. 8. (98, 3.) प्राप्नोः ॥ अप्राप्नोः A. B. Ca. M 1.—l. 23. (98, 6.) After दस्योः A. Ca. C 2 insert वृथाकालस्य.—l. 30. (98, 7.) सख्यमहे ॥ सख्यमहे A. B. Ca. M 1.—P. 584. l. 10. (98, 9.) उर्युगे A. B. Ca. All the Samhitā MSS. (S 1. 2. 3. 4) read उर्युगे.

P. 585. l. 25. (99, 3.) करोति भागं ॥ A. B. Ca insert अतो before भागं.—l. 26. रश्मयः ॥ श्रयः A. Ca. C 2.—P. 586. ll. 15, 17, and 20. (99, 6.) अथयंत ॥ The Samhitā and Paṭa MSS. have distinctly अ; S 3 had अ, which was corrected in red ink. The commentary, however, has अ; A. B. C 2 distinctly; Ca less distinctly.—l. 26. (99, 7.) जेतारं etc. ॥ A leaves out all between जे- and वर्धयितारं । The lacuna is supplied from Ca and C 2, which agree with each other except that Ca has गंगारं for गंतारं. B has an independent interpretation, as often, आशुं शीघ्रमार्गंतारं शत्रूणां जेतारं जेतारं देवानामाहृतारं रथीतमं रथिनां मध्ये श्रेष्ठमतूर्तं स्वाश्रितानामहिंसकं etc.

P. 587. l. 9. (100.) In A and Ca all between अनुष्टुभः, in the quotation from the Anukr., and त्वे पशौ यद्वाग्वदंतीति, in the first Viniyoga, is left out. In C 2 the lacuna extends from आत्मानमस्तीदिति to वाग्देवत्वे । As these introductory passages are always wanting in B, the passage had to be supplied by conjecture.—l. 12. इति । प्रयाणसमये वयसाममनोज्ञा वाचः ॥ प्रणवो याज्या । सनये वयं साम ये वयं सामनोज्ञा वचः A. Ca. याणसमये वयसाममनोज्ञा वचः C 2.—P. 588. l. 29. (100, 6.) भवति C 2. वेति A. Ca. B.—P. 590. l. 14. (100, 12.) अभिवृत्त्य A. Ca. अभितप्य Br̥h. MSS.—l. 15. उद्यतस्य तु A. Ca. ॐव Br̥h. MSS.—l. 16. तदेतदखिलं etc. तदेतदखिलं प्रो सखे विष्णो इति वृत्ति A. Ca. तदेतदखिलं सर्वमृषिणोक्तं सखेत्युचि Br̥h. MSS. (A and B). तदेतदखिलं प्रोक्तं सखे विष्णुविति त्युचि Br̥h. MS. (H)

P. 590. l. 21. (101.) तृतीया गायत्री ॥ तृतीया हि गायत्री A. Ca. B. तृतीयाची C 2. In the quotation from the Anukr. all the MSS. have तृतीयादि.—P. 591. l. 9. (101, 2.) वर्षिष्ठश्चा A. Ca. ॐचौ B.—l. 21. (101, 4.) पुनःपुनर्हं ॥ पुनर्पुनर्हं A. पुनपुनर्हं Ca. पुनः हं B.—P. 594. l. 5. (101, 14.) तथा चैतरेयब्राह्मणं ॥ तथा चैतस्ते ब्राह्मणं A. Ca. A. Ca leave



out all from इमाः प्रजाः to इमाः प्रजाः. It has been supplied from C 2. C 4.—l. 9. स तपोऽतप्यत स प्रजा अत्यत ता ॥ स तपोतप्यत स सजे ता A. Ca.—l. 11. From अमितो to अमितो left out in A.—इमाः पराभूताः ॥ इमाः मपाराभूताः A. Ca. The whole passage is very different from Sat. Br., but it would not have been safe to correct it either after the text of the Mādhyandina or after that of the Kānvasākhā.

P. 594. l. 32. (102.) अविष्टयोर्वा Anukr. अविष्टयोर्वा A. Ca. Cf. Anukr. M. p. 33.—l. 33. बृहद्वय इत्थं Āsv. बृहद्वय च A. Ca. M 1.—P. 596. l. 20. (102, 11.) वाग्निमिति Nir. ञामिति A. Ca. M 1.—l. 25. (102, 12.) हतशत्रुजनं C 2. ह शत्रुजनं A. Ca. शत्रुहनं B.—P. 597. l. 14. (102, 16.) धीतिमिनिधानैः C 2. दीधितिमि निधानः । A. Ca. धीतिमिः दीप्तिमिः निधानः B. धीतिमिरिधानः ?—l. 28. (102, 19.) वगन्वति काष्ठानि इति ॥ वगन्वती काष्ठानि इति A. Ca. वगन्वति काष्ठानि संति C 2.—P. 598. l. 6. (102, 20.) यानि कानि चेति TS. यानि चेचि A. Ca.—l. 7. सर्वमक्षी खदते TS. सर्वक्षीखदते A. Ca.—l. 10. (102, 21.) A. Ca. B leave out all from काष्ठादिकं to काष्ठादिकं.

P. 598. l. 19. (103.) पंचम्याद्ययुजः A. Ca. पंचमी विराड्रूपा सप्तम्याद्ययुजः M 1.—ककुब्जायची C 2. ककुब्जयेची A. Ca. ककुब्जसीयसी M 1. See Anukr. M. p. 33; Prāt. 1000.—l. 23. There is an evident omission in the second Viniyoga. The Trika which is optional for the Maitrāvaruṇa priest at the Ābhiplavika Ukthya, if it is taken from our hymn, can only have consisted of verses 8, 9, 10; no other verses, as far as I am aware, being enjoined by Āsv. for such a purpose. We ought therefore to insert प्र मंहिषायेति after मेवावरुणस्य, and अग्निं प्रयांसि वाहसा प्र मंहिषाय गायत । आ० ७. ८. इति । after सूचितं च. From the Sūtra quoted by Sāyana it is clear that he referred likewise to a third Viniyoga, namely, the Adhyāyopākaraṇa, in which the first and last verses of each Mandala are enjoined. The text might be restored as follows : उपारुणोत्सर्जनयोर्मंडलाद्यंतर्होम आये याहीत्येषा । सूचितं च । आये याहि मरुत्सखा यत्ते रावञ्छूतं हविः । आ० गृ० ३. ५. ७. इति ॥ It is impossible, of course, to restore by conjecture the very words which Sāyana used, and I have therefore not inserted them in the text. The MSS. give no help. A. Ca read मा तिदाये, C 2 मा चिदाये; अपे इति at the end is found in all, instead of अप इति.—P. 599. l. 12. (103, 3.) B adds इव पूरयः at the end of the verse.—l. 25. (103, 5.) यथा स B. यथा A. Ca.—P. 600. l. 21. (103, 9.) From यशो to यशो left out in A. Ca.—l. 22. अस्त्रायेः ॥ तस्त्रासायेः A. Ca. अस्त्रायेः B.—l. 23. बज्रवारं B. बज्र A. Ca. C 2.—P. 601. l. 16. (103, 13.) One expects a verb, like क्षुवंति, after अग्निमनैरपि.

### MANDALA IX.

P. 602. l. 6. (1.) यथार्थमा वा यद्वयहृणात् Āsv. MS. E. I. H. 2075 and commentary. यथार्थमावापयहृणात् A. Ca. Cf. Windisch, Zwölf Hymnen, p. 71.—l. 24. (1, 4.) सा धातायज्ञेन ॥ सातलकेनाज्ञेन A. Ca; both in marg. धाताया. सां रसातलकेनाज्ञेन C 2. सातलकेनाज्ञेन B 4. सा धातलकेनाज्ञेन B 1.—P. 603. l. 6. (1, 6.) अत्रा वै etc. Cf. Sat. Br. XII. 7, 3, 11.—l. 13. (1, 8.) प्रेरयित्वा A. B. Ca.—l. 14. सद्गुणानुमेनं सोमं A. Ca. सद्गुणानुमेनं सोमं C 2. सद्गुणमनुं सोमं B 4. सद्गुणं मधु सोमं B 1.



P. 604. l. 4. (2, 2.) पुरः पानीयमंध ॥ पुरः पानीयमंध अत्र B1. पारः पानीयमंध A. Ca. B4. पुरः पानीयमंध C2.—l. 17. (2, 5.) ममृजे । मृज्यते ॥ ममृजे ममृज्यते A. Ca. B1. 4. ममृज्यते C2. ममृज्यते (Pān. VII. 4, 91, vārt.) would hardly suit Sāyana's style, unless verse 7 was in his mind while he was writing.—P. 605. l. 3. (2, 9.) \*स्वामृतस्य C2. \*स्वामृतस्य A. Ca. \*स्व सोमस्य B1. 4.

P. 605. l. 18. (3, 2.) अथर्यो विप ॥ अध्वर्यव A. Ca.

P. 606. l. 24. (4.) सन Ca. Anukr. सना A. M1.

P. 608. l. 8. (5.) काष्णपस्य पा° C2. शीनकस्य पा° A. शीनकस्य पा° Ca. शीनकस्याप्राप्तं in B1 after the words पंचमं सूक्तं; the same in B4, but altered into शीन-स्याप्रीसूक्तं.—l. 16. (5, 2.) अज्ञोऽंशवो जा° ॥ अभ्यः संवो जा° A. अभ्यः संवो जा° Ca. अभ्यः संवो जा° C2. B omits the quotation.—P. 609. ll. 25, 27, and 30. (5, 10.) अङ्गि S3. S4. P3. A. B. Ca. अङ्गि S1. P4. M1, and Aufrecht. अङ्गि P1. अङ्गि S2. See Rv. X. 156, 3.

P. 610. l. 7. (6.) The quotation from the Anukramanikā left out in all the MSS.

P. 611. l. 21. (7, 1.) अदयं । दज्यते ॥ A has between these words हविर्धानौ, and in marg. युजो युक्तान्; Ca हविर्धानौ, and in marg. युजो युक्ता वाच; C2 हविर्धाना, and nothing in marg.; B1 अदयं युक्तान् ज्यते; B4 अदयं -- दज्यते, in marg. हविर्धानं. As A. Ca. C2 in verse 3 leave out the words युजो युक्ता वाच; there can be no doubt that these words, written on the margin, were transferred by mistake from the third to the first verse. The two little strokes placed over the word हविर्धाना, in order to show that this word should be left out altogether, induced the copyist to insert युजो युक्ता after अदयं.—l. 23. (7, 2.) धारा Pada MSS. धाराः Sāyana.—P. 612. l. 25. (7, 9.) संजयतं ॥ संजयितं MSS.

P. 613. l. 9. (8, 3.) अभिलषितः ॥ अभिषितः A. Ca. अभिलषितः C2. अभिषुतः B4; left out in B1, which has अभिषूयस्वमिन्द्रस्य etc.—l. 18. (8, 5.) लोमानि कमुदकं चात्यमि खजानं ॥ लोमानि ---- दत्यमिमृजानं Ca. लोमानि --- द अभिमृजानं A. लोमानि --- द अति-खजानं C2. लोमानि कं सदकं चाति अभि खजानं B1. 4.

P. 616. l. 13. (10, 6.) हरस आहरस आहर्तारस ॥ हरसः हा आहर्तारस आहर्तारस A. Ca. हरस आहर्तारस C2. हरसे हरसः आहरसः आहर्तारस B1. हरसः आहर्तारस B4, the preceding words being struck out.—l. 25. (10, 9.) दीप्तस्यात्मनः C2. दीप्तस्यामुनः A. Ca. दीप्तस्य स्वर्गस्य B1. 4.

P. 618. l. 10. (12, 1.) गृहे only in B1. 4.

P. 619. l. 21. (13.) सुमतिना संगमेन । Ca. C2. समतीना संगमेन A; deest in B. At first sight the reading of A सुमतीना संगमेन would suggest the very simple correction सुमतीनां संगमेन, by the assembly of the friends, or of the right-minded Pandits. Such an expression, however, was never used before by Sāyana when speaking of the authorship of his commentary, nor is it clear why so simple a phrase should have been misunderstood and changed into सुमतिना संगमेन. I have left the reading as we find it in the MSS., but I am by no means certain that it is correct. If it is, we must suppose that the passage was taken over from the



original commentary of Mādhava, who was the prime minister of Sangama, the predecessor of Bukka; and that Mādhava ascribed to him the merit of having preserved and shown to his people the right meaning of the Veda by means of the patronage which he bestowed on Mādhava and his literary school. See Lassen, Indische Alterthumskunde, IV. 161; Weber, Katalog der Berl. Handschriften, p. 222.—l. 23. अनुक्तेऽपि लाघवाया वृद्धच्युतात् ॥ अनुक्तेपि लाघवाया दृष्टच्युतात् C 2. अनुलोकेषवाया वृद्धच्युतात्। A. Ca. See Anukr. Rv. IX. 25.—P. 620. l. 21. (13, 5.) शीतनादिगुणयुक्ताः B 1. 4. गुणकाराः C 2. शीतनादिगुणकाः Ca. शीतमानादिगुणकाः A.—l. 26. (13, 6.) A and Ca mark a lacuna after व्यतिरुज्यन्ते; C 2 goes on from ण्ते to अच सप्तमी; B 1. 4 have अन्नलामाय व्यस्यं व्यतिरुज्यन्ते किं प्रति अयं अविमवं चारं वाचं दशापविचं प्रतीत्यर्थः.

P. 621. l. 12. (14, 1.) सोमः and तरंगे to ऋसे only in B. B 1 has तरंगे वसतीवर्युद्धकरं, B 4 तरंगं वसतीवर्युद्धकरसे.—l. 16. (14, 2.) मनुष्या यजमानाः and गिरा सुत्या only in B 1. 4.—यद्यदा ईमेन A. Ca. यदि यदा ई एनं B 1. Sāyana evidently took यदी in the Samhitā text for यदी.—l. 24. (14, 4.) A. Ca. C 2 mark a lacuna before यदा.—P. 622. l. 7. (14, 6.) B 1. 4 add विदे जानते यजमानाय after प्रेरयति, and insert च before वपुं.

P. 622. l. 25. (15, 2.) धीशब्दावकारो etc. See Rv. Bh. I. 8, 6.—P. 623. l. 10. (15, 5.) अध्वर्यादिभिः MSS. for अध्वर्या.—वेज्जवान् Ca. विज्ज A. वज्ज C 2. वेज्जवान् B 1. 4.—l. 11. य ईयत इति A. Ca. C 2. यं ईयत इति B 1. 4. स ईयत इति M 1.—l. 20. (15, 8.) सोमे after मृज्यमाने from C 2.

P. 624. l. 6. (16, 2.) गोषां गवां सोतारं A. Ca. C 2. गोषां गवां चीरादिना इत्यर्थः B 4. गोषां गवा चारादिना इत्यर्थः B 1.—l. 10. (16, 3.) तवोच्यते C 2. तवोच्यते A. Ca. B 1. 4. Probably किमर्थं was left out.—l. 14. (16, 4.) अर्षति। गच्छति। Ca. A. अर्षति प्रगच्छति C 2. प्र अर्षति। गच्छति B 1. 4.—l. 27. (16, 7.) पिप्पुषी अप्यायती ॥ पिप्पुषी अप्यायती B 4. पिप्पुषी अथापती B 1; deest in A. Ca. C 2.—P. 625. l. 1. (16, 8.) After विपश्चितं, श्रोतुनामैतत्, and after आयुषु, इतरेषु C 2.—अथवा तृतीयार्थे ॥ अथा तु A. Ca. अथ तु C 2; deest in B.—l. 2. प्रीणयितुं C 2. प्राणयितुं A. Ca; deest in B.

P. 626. l. 15. (18, 1.) सर्वधा असि। सर्वस्य धाता etc. C 2. सर्वधाता दाता वा भवति A. Ca. सर्वधाः (सर्वधाता B 4 marg.) सर्वदाता वासि भवसि B 1. 4.—l. 25. (18, 4.) धनानि from B 1. 4.—l. 26. अथवा only C 2.—P. 627. l. 10. (18, 7.) आ before अचिक्रदत् B only.—l. 11. उत्तरपादो नेयः C 2. उत्तरपादोनेयः Ca. A. उत्तरपाद उनेयः would have been the more usual form. Left out in B 1. 4, where कलशेषु is added.

P. 627. l. 25. (19, 3.) वृषा कामानां वर्षकः सोमः from B 1. 4.—P. 628. l. 2. (19, 4.) प्रवृद्धिकामा A. Ca. प्रवृद्धिका C 2. B 1. 4 vary considerably: धीतयः (धीसयः B 4 pr. m. B 1) धीयमानाः सोमास्तेन वत्सेन पीयमानाः मातरः निर्मात्र्यः वसतीवर्यः अधि रेतसि स्वकीये सारे वृषभस्य वर्षकस्य सूनोः अभिषूयमाणस्य (अमीषू B 1. अमीषू B 4) वत्सस्य सोमस्य सोमं अवावशंत मीलितवतः।—l. 12. (19, 6.) शत्रूणां रथिं B 1. 4. शत्रुणां रथिं C 2. शत्रुरथिं A. Ca.

P. 628. l. 26. (20, 2.) वाजमहं आ B. वाजमहं वा आ A. Ca. M 1. Perhaps वाजं वजमहं वा आ.—P. 629. l. 3. (20, 4.) हविष्मन्तो only C 2.



P. 630. l. 4. (21, 4.) रचमनिमतं देशं प्राप्तुवन्ति । A. Ca. C 2. B 4. \*मतदेशं प्रा\* B 1. One expects प्राप्तुवन्ति; as it is, Sâyana must have taken रचं in the sense of अर्थ, and then explained it by अनिमित्तं देशं.—l. 8. (21, 5.) A. Ca. C 2 have a lacuna after अरावा; B 1. 4 अरावा अदातु(आदातु B 4)शब्दरहितः संपन्नः सन् प्रयच्छति तथा अयच्छत ॥ Sâyana probably explained अरावा by अदाता न किंचित्प्रयच्छति प्राप्तकामः स एव etc.—l. 13. (21, 6.) आदिशे स्वामिनि B 4. आदिशे स्वामिनि B 1. आदिशे सं स्वामिनि A. Ca. C 2.—l. 20. (21, 7.) प्रेरयन् ॥ प्रेरयन् MSS.

P. 630. l. 25. (22, 1.) दृष्टान्तद्वयं । आजी दृष्टाः शीघ्राः रथा इव तथा उक्तलक्षणसर्गाः वाजिन इव दृष्टाः अथा इव B 1. 4.—l. 28. (22, 2.) वाता इव वायव इव B 1. 4. वाता वायव A. Ca. वा इव वायव C 2.—P. 631. l. 8. (22, 4.) शान्तिं A. Ca. C 2. B 1. 4.

P. 632. l. 1. (23, 2.) आयवः B 1. 4. आश्वः A. Ca. C 2.—रूपकव्याहारेण ॥ रूपकव्याहारेण A. Ca. रूपकव्याहारेण C 2. Rûpakavyâhâra means a metaphor or a play on words, Soma being both the juice and the moon. B 1. 4 read अनुक्रमते । एतैः सोमैः एवे दीप्ता सूर्यं जनुतं कुर्वन्तोत्यर्थः ॥—l. 2. कुर्वन्ति । दीप्तं only C 2.—l. 5. (23, 3.) अदाशुषो ऽप्रयच्छतो B 1. 4. अदाशुषः प्रयच्छतः A. Ca. C 2.—l. 6. इषश्च A. Ca. इषः अन्नानि B 1. 4.—l. 10. (23, 4.) तन्नामिश्रितो ॥ तथा मिश्रितो A. Ca. तथा-श्रितो C 2. मिश्रितो B 1. 4.—तममि पवंत इति शेषः ॥ तं अमिपवंत इति शेषः A. Ca. तं अमिपवंत इति शेषः C 2. त अमिपवंत इति शेषः किमर्थं मदे मद मदाय हर्षाय B 1. 4.—l. 22. (23, 7.) अस्त्र B 1. 4. अपि C 2; deest in A. Ca.

P. 633. l. 2. (24, 2.) आहुतिप्र\* to आशुवन only in A. Ca.—l. 7. (24, 3.) The MSS. have विनीतो वि नीयसे, we should expect वि नीयसे विनीतो.—l. 16. (24, 5.) उदाराय ॥ उदाराय Ca. A. C 2; deest in B 1. 4.—l. 19. (24, 6.) हुंतरिद्र A. Ca. C 2. B 1. 4. It should be इंदो, but the mistake is so constant that it would not be safe to correct it against the authority of all the MSS. In Sâyana's commentary on Sv. II. 3, 2, 3, 6 we find हे सोम.—l. 23. (24, 7.) वक्ष्यात्मकः सोमो ॥ वक्ष्यात्मक सोमो A. C 2. Ca. वक्ष्यात्मकः सोमो B 1. 4.

P. 634. l. 3. (25, 2.) जंगुल्या only C 2.—l. 7. (25, 3.) वृषा कामानां वर्षकः कविः क्रांतप्रज्ञः only B 1. 4.—l. 16. (25, 5.) आयुषक् B 4. आयुषक् B 1. आयुषक् A. Ca. C 2.

P. 635. l. 13. (26, 5.) जामयोऽंगुलयः only B 1. 4.—l. 18. (26, 6.) इंदुं दीप्तं सख्यं वा A. Ca. C 2; probably दीप्तसख्यं, some other explanation being dropt. B 1. 4 read इंदो, and explain it at the beginning of the verse, हे पवमान पूयमान इंदो दीप्त सोम.

P. 636. l. 12. (27, 5.) सोमस्त्रावणे सूर्यस्य कः प्रसंग इति न वाच्यं सूर्यरश्मिभिरेव सोमस्त्राव्यायनात् ॥ समस्त्रावणे सूर्यस्य कः प्रसंग इति न वाच्यं सूर्यरश्मिभिरेव सोमस्त्राव्यायनात् A. Ca. समस्त्रावणे सूर्यस्य कः प्रसंग इति न वाच्यं तं etc. C 2. B 1. 4 have the simpler explanation, मदः सोमः । अध्वर्युणा पाचे परित्वज्यते । सूर्येण कथमिति चेत् सूर्यरश्मिभिः एव सोमस्त्राव्यायनात्सूर्येणेति उक्तं ॥ Instead of सोमस्त्रावणे one might conjecture रसोत्त्रावणे, as coming nearer to the letters of the MSS.—l. 17. (27, 6.) इंदुर्दीप्तश्चैवेन्द्रमा ॥ इंदुर्दीप्तश्च इवेन्द्रमे -- A. Ca. दीप्तश्चैवेन्द्रमा C 2. इंदुः दीप्तश्च इंद्रे आ B 1. 4.

P. 637. l. 22. (29, 2.) जज्ञानं वायमानं C 2. जज्ञानं जातं यमानं A. Ca. जज्ञानं जातं B 1. 4.—l. 27. (29, 3.) शोमनाभिभावुकानि from Sâyana's commentary on Sv. II. 9, 1,



1, 3; our MSS. have शोमनानि भावुकानि; B 1. 4 शोमनानि only.—P. 638. l. 6. (29, 5.) कंचनामुचन्तित्यर्थः ॥ कंचन अमुचन्तित्यर्थः A. कंचन अमुचन्तित्यर्थः Ca. कंचन अमुचन्तित्यर्थः C 2. B 1. 4 have कस्य धित कस्यापि यच्च मुमुक्षुहे etc.; they insert निदः before निदाकृपात्.

P. 638. l. 22. (30, 2.) इन्द्रियमपि - करे A. Ca. इन्द्रियमपि करे C 2; deest in B 1. 4. It may have been इन्द्रियमपि वा वक्तुकरं. Cf. Rv. Bh. I. 103, 1; II. 16, 3; IV. 24, 5.—P. 639. l. 8. (30, 6.) ब्रूते यजमानः स्वीयान् ॥ ब्रूयते जमास्वीयान् A. ब्रूयते जमास्वीयान् Ca. ब्रूते य - मानस्वीयान् C 2; deest in B 1. 4.

P. 639. l. 19. (31, 2.) मवाक्षमभिः ॥ मवाक्षदिभिः C 2. मवाक्षदिभिः A. Ca. B 1. 4 read the last part यद्युक्षमस्ति तस्य अधि मव वर्धयिता मव ॥

P. 641. l. 6. (32, 6.) अक्षे from B 1. 4.—l. 7. मह्यमक्षमित्यर्थः ॥ मह्यमक्षमि Ca. A. मक्षमि C 2; deest in B.—l. 8. From किंच सनि to the end of the verse from C 2; left out in A. Ca. B has a different commentary: सुमत् दीप्तिमत् यज्ञः कीर्त्तिं सनि संभजनं मेधा ज्ञानं च उत अपि च अयः अन्नं धेहि देहि कीदृशेभ्यः etc. to मह्यं सुतिकर्षे च ॥

P. 641. l. 13. (33, 1.) प्र चन्ति C 2. प्रणयति A. B 1. 4. Ca.—किमिव ॥ किं A. Ca. किंच C 2. B 1. 4.—अपामूर्मयो न C 2. अपामूर्मयः तं A. Ca. अपामूर्मयः B 1. 4.—l. 14. दृष्टांतो दर्शितो ॥ दृष्टांतदर्पितो A. Ca. दृष्टांतःदर्शितो C 2; deest in B 1. 4.—l. 19. (33, 2.) इदितरे ऽपि पाचा द्रोणा इ° ॥ इदितारीति पाचा द्रोण इ° A. इदितारीति पाचा द्रोणा इ° Ca. The passage is corrupt.—l. 20. अतस्त्वामृतस्य from B 1. 4.—l. 21. अथैवं ॥ अथैवं A. Ca. C 2, deest in B 1. 4. The same MSS. insert before अथ, अस्माकं, a marginal gloss, originally intended as explanatory of वाजं.—P. 642. l. 8. (33, 6.) सुद्रितम् ॥ भूतभूद्रितम् A. Ca.—सुतद्रितम् C 2; deest in B 1. 4. सुद्रसहितम् comm. on Sv. II. 2, 2, 14, 3. समुद्रः is derived by some native authorities from मुद्रा in the sense of limit, so as to signify 'bounded by continents.' See Wilson, s. v.

P. 642. l. 19. (34, 3.) सुन्ति from B 1. 4.—l. 23. (34, 4.) इन्द्रुर्ध्वेः सोऽयं म° ॥ इन्द्रुर्ध्वे म° A. इन्द्रुर्ध्वे यं म° Ca. इन्द्रुर्ध्वयं म° C 2. अथैः यो यं म° B 1. 4.—मुद्रो from B 1. 4.—l. 29. (34, 5.) सोमं A. Ca. C 2 after साधनं.—चाव मनोहरं from B 1. 4.

P. 643. l. 21. (35, 4.) यजमानेभ्यः B 1. 4. अजमानेभ्यः A. Ca. C 2 leaves out the first part of the verse.

P. 644. l. 7. (36, 1.) कार्ष्णं युधमिरेतरकर्षणात् ॥ कार्ष्णं यध्वं इतरेतरध्वणात् A. Ca. कार्ष्णं यध्वं इतारतरध्वणात् C 2. In B 1. 4 this passage is left out.—l. 16. (36, 3.) वसप्रदाय यावाय A. Ca. वसप्रदानाय C 2; left out in B 1. 4.

P. 645. l. 4. (37, 1.) विघ्नं B 1. तिघ्नं A. Ca. निघ्नं M 1.—l. 11. (37, 3.) स्वर्गस्य from B 1. 4.—l. 15. (37, 4.) महर्षेरधि ॥ महर्षयवधि A. Ca. C 2. महर्षेः यत् अधि B 1. 4.

P. 645. ll. 28 and 30. (38, 1.) सः and उ पूरणः from B 1. 4.—P. 646. l. 12. (38, 4.) पुनः क इव only C 2.

P. 647. l. 1. (39, 2.) अनिष्कृतमसंस्कृतं comm. on Sv. II. 3, 1, 4, 2. अनिष्कृतं संस्कृतं A. Ca. B 1. 4. अनिष्कृतः संस्कृतः C 2.

P. 648. l. 22. (41, 1.) एवं वोपमीयते ॥ एव वो° A. Ca. एवं वो° C 2.—गावः in यथा गावः स्वोष्ठं only C 2.—l. 24. चिप्राः C 2. मरुगशीलाः B 1. 4. A and Ca do not explain the word मूर्खयः.—अथ इतः only B 1. 4.—l. 25. सुतेति शेषः C 2. सुतेति शेषः A. Ca.



B1. 4.—l. 27. (41, 2.) दुःस्राव्यं P1. P3. P4. दुःस्राव्यं P2, and perhaps Sāyana. दुराव्यं S1. 2. 3. 4.—l. 28. बंधनं दुराव्यं दुष्टमतिं च ॥ A and Ca leave out the words बंधनं दुराव्यं. B1. 4 read सेतुं राक्षसबंधनं (राक्षसबंधं B1) दुराव्यं रक्षसां हननबुद्धिं. C2 बंधनं दुराव्यतद्वयंष्टमतिं च.—l. 29. अत्रतमकर्माणां ॥ अत्रतमकर्माणां A. Ca. अत्रतं कर्माणां B1. 4. अत्रत-कर्माणां C2.—P. 649. l. 15. (41, 5.) तदुपलक्षितमहद्व्यते ॥ तदुपल -- तमव्यते A. Ca. तदुप-लक्ष -- तमव्यते C2; deest in B1. 4.

P. 650. l. 7. (42, 4.) दुहानो दधानः ॥ A. Ca. C2 दधानः only. B1. 4 दुहानः only.

P. 651. l. 9. (43, 5.) अयमिदुर्वा ॥ अयमिदवा° A. अयमिदवा° Ca. C2. यः इदुः वा° B1. 4.—l. 10. इदमावे च ॥ इदमावच A. Ca. C2; deest in B1. 4.

ASHTAKA VII.—From the beginning of the seventh Ashtaka B4, as a rule, agrees with A.

P. 653. l. 17. (44, 3.) सुतोऽमिषुतः B1. सुतेमिषुत A. Ca. C2. B4. सुतेमिषुते Bf. The Pada MSS. read सुतः.—P. 654. l. 5. (44, 6.) गातुवित्तमः पु° ॥ गातुवित्पु° A. Ca. B1. Bf. M1.

P. 654. l. 14. (45, 2.) अमिगच्छ ॥ गच्छति A. Ca. C2. B4. Bf. गच्छतु B1.—पीयसे A. Ca. B1. 4. Bf. पीयसे? cf. Rv. Bh. IX. 27, 1.—l. 19. (45, 3.) वासयामः संक्षुर्मः A. Ca. C2. B4. Bf. अंजयामः B1.—l. 29. (45, 5.) अतिक्रांतं दद्या° A. Ca. C2. अतिक्रांत-दद्या° B1. अतिक्रांतदद्या° B4. Bf.—l. 30. षत । असुवन् ॥ षतसुवन् A. Ca. C2. षतास्वावन् B1. षतासुवन् B4. Bf.

P. 655. ll. 5 to 9. (46 and 46, 1.) अक्षयन् only in B1 and in marg. of Ca. The other MSS. read अक्षयं, both at the beginning and in the Anukr. quotation, and in the Pratīka, and again in verse 1.—ll. 6 and 7. अक्षयंदेव° S1. 2. 3. 4. अक्षयन् P1. P3. In P4 अक्षयन् was first corrected to अक्षयं, and this again (in marg.) to अक्षयन्. Cf. Rv. IX. 87, 5.—l. 29. (46, 6.) त्रिशः ॥ The MSS. विशः with exception of B1, which has अश्विनयः क्षिप इति. Cf. Ngh. II. 5; Rv. Bh. IX. 8, 4.

P. 656. ll. 10 seq. (47, 2.) The commentary is defective in all MSS. कृतानि, in the beginning, is only in the marg. of CB. There are no various readings to help in restoring the first half except conjecturally. Instead of अक्षामिरेव A. Ca. Af. Bf have अक्षामिरेव. In the second part of the commentary चयते is explained by वातयति in A. Ca. C2. Af. Bf, चापयति in B1. (CB has the marginal correction चापयति.) See Rv. Bh. I. 167, 8; IX. 47, 2; Nir. IV. 25. All the Samhitā MSS. read चयते with short ā, a fact which it is necessary to state as the authors of the Petersburg lexicon state the contrary, and found some conclusions on the supposed length of the vowel.—l. 19. (47, 4.) सोमो only B1; the other MSS. सो. In Bf a space is left blank after सो.

P. 657. l. 9. (48, 3.) हे पवमान सोम ॥ हे सोम B1. हे सुक्रतो शोमनकर्मन्पवमान सोम A. Ca. Af. Bf. M1. Since all the MSS. read सुक्रतुः सुप्रज्ञः, this seems to have been Sāyana's reading, while सुक्रतो शोमनकर्मन् probably was inserted by a copyist.—लामतो दिवो B1. Ca sec. m. Af. Bf. ओतोपि दिवो Ca pr. m. Bf sec. m. A. लामहतो दिवो



C 2.—C 2 has a lacuna from सुक्रतुः to the beginning of hymn 50, उक्तो विनियोगः.—  
l. 14. (48, 4.) सर्वदृशे सर्वदृशे ॥ सर्वदृशे A. Ca. सर्वदृशे Ca sec. m. Af. सर्वदृशे B 1. सर्वदृशे  
Bf. Sāyana seems to have read स्वःदृशे in the Pada text.—साधारणमित्समानमेव ॥  
This is the reading of the comm. on Sv. II. 2, 2, 3, 5. All our MSS. have साधारण-  
मित्समान°, except B 1, which reads साधारणमित्समान°.—l. 18. (48, 5.) अथाथ B 1. अथात  
A. Ca. Af. अथातः Bf.

P. 658. l. 22. (50, 2.) गच्छसि B 1. Bf. गच्छति A. Ca. C 2. Af.—l. 25. (50, 3.) B 1  
has a lacuna from हरित° to हिन्वन्ति.—l. 30. (50, 4.) See Rv. IX. 25, 6.

P. 659. l. 20. (51, 3.) व्यज्जते ॥ व्यज्जते all MSS.—व्याप्नुवते deest in C 2 and B 1.—  
l. 23. (51, 4.) देवान् B 1. Bf. देवानम् A. Ca. C 2.—l. 27. (51, 5.) गच्छ ॥ All MSS.  
have गच्छसि.

P. 659. l. 29. (52.) युध इत्यनु° ॥ युधेत्यनु° A. B 1. Ca. M 1; deest in Bf.—P. 660.  
l. 9. (52, 2.) अवेः only C 2.—l. 13. (52, 3.) पूर्णोद्दिनो Bf. पूर्णोद्दिने। B 1. पूर्णोद्दिनो A.  
Ca. M 1.

P. 660. l. 28. (53, 1.) याः सृष्टः etc. MSS.—P. 661. l. 1. (53, 2.) प्रकृतेन B 1 for  
कृतेन.—l. 2. निमित्ते ॥ निमित्त A. Ca. C 2. निमित्त B 1. निमित्त B 4. Bf.—l. 6. (53, 3.)  
त्वां यो दुर्बुद्धिः ॥ त्वां धु यो दु° A. Ca. C 2. त्वां धुयो दु° Bf. त्वां यो दुर्बुद्धि B 1.

P. 661. l. 14. (54, 1.) उपरिमितस्य दातारं अक्षीमतीन्द्रियस्य कर्मफलस्य द्रष्टारं पथः etc. B 1.

P. 664. l. 10. (58, 3.) उत्तममस्त्विति A. B 4. Ca. Af. Bf. उत्तमस्त्विति B 1. It ought  
to be अनन्तमस्त्विति, but the MSS. clearly point to उत्तममस्त्विति.—ll. 12 seqq. The  
extract added at the end of Sāyana's commentary is taken from the Sātyāyana-  
Brāhmaṇa. The only passage I can find where the story of Taranta and  
Purumīlha is given, is in the Tāndya-Brāhmaṇa, XIII. 7, 12 seq. Here we read  
ध्वस्ते वै पुरुषंती तरंतपुरुमीडाभ्यां वेददक्षिभ्यां सहस्राण्यदित्सतां (this in MS. Wils. 373 corrected  
in the margin into अदित्सतां) तावैचेतां कथं नाविदमात्तमप्रतिगृहीतं स्यादिति तौ प्रथितां ध्वस्योः  
पुरुषंतीरा सहस्राणि दसहे तरंतस मंदी धावतीति ततो वैतत्तथोरात्तमप्रतिगृहीतमभवदात्तमस्याप्र-  
तिगृहीतं भवति च एवं वेद ॥ This Sāyana explains: ध्वस्ते शत्रूणां सार्धचित्र्यौ (sic) पुरुषंती  
एतत्संज्ञे । खिग्व्यत्यथः । एतत्संज्ञौ राजानौ वेददक्षिभ्यां विददक्षगोत्राभ्यां तरंतपुरुमीडाभ्यामृषिभ्यां  
सहस्राणि सहस्रसंख्याकानि अदित्सतः (for अदित्सतां) दातुमैच्छतां । ततस्त्रावुषी ऐचेतां च ईक्षणं पर्यालो-  
चनमकुर्वतां । नावाधयोरिदं धनमात्तं स्वीकृतं कथं केन प्रकारेणाप्रतिगृहीतं स्यात् । प्रतिग्रहदोषवियुक्तं  
भवेदिति । ततस्तौ प्रथितां । अजानीतां । ध्वस्योः पुरुषंतीरेति मंचमपश्यतामित्यर्थः । ततोऽनंतरं मंचप्रमा-  
वात्तस्वीकृतं तयोस्तज्जनमप्रतिगृहीतं प्रतिग्रहदोषविमुक्तमभवत् । अथैतद्वेदनं प्रशंसति । आचमस्याप्रतिगृहीतं  
भवति च एवं वेदेति ॥ This throws sufficient light on the passage from the Sātyā-  
yanaka, as quoted by Sāyana. The passage is, as usual, very incorrectly copied  
by the writers of the different MSS; especially B 1 is full of blunders. The  
A MSS. and Ca share in a common lacuna, leaving out all between तरंतपु-  
मीडौ and तरंतपुरुमीडौ. This omission must therefore have taken place before  
the A class branched off from the Ca MS., while the B class, which stands by  
itself, unaffected by this early blunder, must have branched off before this  
accident happened.—l. 13. सातं Ca. Af. Bf. सुतं A. सतं B 1.—प्रतिममृशते ॥ प्रतिमृशते



A. B 1. Ca. Af. Bf.—l. 14. तावेतच्च° Prof. Aufrecht. तावेतच्च° B 1. मावे तच्च° A. Ca. Af. Bf.—l. 18. (58, 4.) चिंशतं चीणि शतानि ॥ चिंशतं शतानि A. B 4. C 2. Ca. चिंशतं चिंश-  
तानि B 1. Sāyana mistook चिंशतं, thirty, for चिंशतं, three hundred; the various readings clearly point to चीणि शतानि.

P. 664. l. 25. (59, 1.) रमणीयं धनं B 4. रमणी धनं A. Ca. मणीयं धनं B 1. रमणी-  
यधनं Bf.—l. 28. (59, 2.) चदाभ्यो. This was probably inserted from the margin,  
but in a wrong place. In Af चदाभ्यो is left out, and the commentary reads  
वसतीवरीभ्योऽंशुभ्यश्च.—P. 665. l. 7. (59, 4.) Before विद्यानेव the words of the text,  
विद्यानित्, are omitted.

P. 665. l. 8. (60.) पुरउष्णिगावद्वादशका द्वाष्टका ॥ णावो द्वादशको द्वाष्टको (द्वाष्टका: B 1.  
द्वाष्टको Af) A. Ca. B 1. B 4. Af. Cf. Rv. Bh. VIII. 70.—l. 13. (60, 1.) णामधेयेन A.  
Ca. Bf. णामधेयेन B 4. णामकेन B 1. णामेयेन Af.

P. 667. l. 9. (61, 10.) On the loss of the Visarga in मूय्वा द्दे see Prāt. 259, 4.—  
l. 16. (61, 11.) विद्या विद्यानि MSS.—आर्यो B 1. अर्यो A. Ca. Af. Bf.—l. 29. (61, 14.)  
Sāyana separated सं from शिखरीःइव. I preferred बद्धपयस्काः to अबद्धपयस्काः, taking  
it in the sense of 'full of milk, wishing to be relieved of their milk.' अबद्धपयस्काः,  
however, might be interpreted as 'with unrestrained milk.'—P. 668. l. 29.  
(61, 21.) The following extract may serve as a fair specimen of the state of the  
B MSS.: हे सोम त्वं सूमस्यमिः शोमनोपस्थामिः धेनुभिर्गोविकारैः पयोभिरित्यर्थः । संमिश्रिताः शोमन  
यथा श्वेनः शीघ्रमागो स्थानमासीदति तवद्योनि स्वकीयं स्थानं ॥ आसीदन् ॥ न इदानीमव्ययः आग्ने चमानो  
भव ॥ B 1. One can hardly believe that this was written *bona fide*, and it is easy  
to imagine what would become of a second or third copy carelessly taken from  
such an original.—P. 669. l. 5. (61, 22.) निदधानं B 4. Bf. निधानं A. Ca. निदधं B 1.  
निदधान Af.—l. 10. (61, 23.) The words from हे मीढः to पूयमानस्त्वं are in all the MSS.  
placed before सुवीरासः.—l. 15. (61, 24.) प्रवृद्धो ॥ प्रवृद्धो A. Ca. B 4. प्रवृद्धो B 1.—  
P. 670. l. 10. (61, 30.) धूर्वणे B 1. 4. Bf. तूर्वणे A. Ca. Af.

P. 672. l. 21. (62, 17.) All between यातवे and the beginning of the next verse  
is omitted in A.—P. 673. l. 9. (62, 21.) मधुमंतं B 1. मधुमूतं A. B 4. Bf. Ca.—B 1 has  
देवार्धं instead of इंद्रार्धं, and प्रक्षिपति (sic) instead of साधयत.—l. 11. (62, 22.) It is  
curious that the A MSS. (A. C 2. B 4. Bf) and Ca have the common mistake  
अथ द्वादशी for अथ द्वाविंशी at the beginning of the verse. In Ca the passage was  
omitted, but added on the margin.—l. 17. (62, 23.) वृग्णा from B 1.—l. 22. (62, 24.)  
द्योतव्यानि A. Ca. B 4. Bf. स्रोतव्यानि B 1. The reading of B 1 seems preferable, but  
that of the other MSS. is admissible.—P. 674. l. 3. (62, 27.) तुभ्यं MSS.

P. 675. l. 3. (63, 4.) Sāyana seems to have read अमि instead of अति.—l. 15.  
(63, 7.) प्राकाशयः Bf. प्रकाशयः A. Ca. अप्रकाशयः B 1.—l. 20. (63, 8.) एतन्वा एतश्च A. Ca.  
B 4. Bf. एतन्व एतश्च B 1. See Ngh. I. 14.—P. 676. l. 23. (63, 16.) ते before तव  
MSS.—l. 26. (63, 17.) The Pada writes ईमिति, and does so always where the  
final Anusvāra is to be dropt. Otherwise it is ई. The cases in which Anusvāra  
is dropt, are enumerated in Prāt. 302.—P. 677. l. 26. (63, 24.) षरसि B 1. नितरां



पीडयसि रक्षसि A. Ca. B4. नितरां रक्षसि Bf. Cf. Rv. Bh. IX. 66, 19.—राक्षसवर्गं B1. 4. राक्षसवर्गं र्गं A. Ca. Bf had the same, but the र्गं is cancelled.—l. 30. (63, 25.) अस्मिन्निमिः B4. अस्मिन्निमिः । त्विन्निमिः A. Ca. Bf again has the same, but निमिः is cancelled; deest in B1.

P. 679. l. 1. (64, 2.) तव भजनमपि Bf marg. तव भजनमपि B1. तव जनमपि A. B4. Bf pr. m. तव भं भं जनमपि Ca.—P. 680. l. 10. (64, 11.) देवावीर्देव A. Ca. B1. 4. Bf. One expects देवकाम.—P. 682. l. 16. (64, 26.) आ भर । आहर ॥ आहरामर MSS.—l. 19. (64, 27.) आहृत A. B1. आहृत Ca.—l. 28. (64, 29.) बलवान् A. Ca. B4. Bf. वेवनवान् B1.—P. 683. l. 3. (64, 30.) अनुप्रवचनं MSS. प्रवचनं Nir.

P. 684. l. 3. (65, 4.) The commentary is given according to A. B4. Bf, with which Ca agrees, though in it the whole commentary was left out and was supplied in the margin. The B MSS. have supplied a fuller commentary. They begin with हे सोम त्वं वृषामिमतफलानां वर्धितासि हि । भवसि खलु । तस्मात् हे पवमान पुयमान पुनान वा etc. After सुकर्मणः they add सुष्ठु ध्यानवतो वा. Instead of रश्मिना they have तेजसा, which is the more usual explanation. They then continue दीप्तिमंतं । अतिशयेन तेजस्विनमित्यर्थः । सुतिमंतं वा त्वा त्वां हवामहे । यज्ञेषु आह्वामहे ॥—l. 8. (65, 5.) धनुरा B1. B4 sec. m. दनुरा A. Ca. B4 pr. m. Bf.—l. 14. (65, 6.) वमसति ॥ All the MSS. read गमसति. Cf. Devarâga on Ngh. I. 5, 7 in Nir. SS. vol. i. p. 35.—l. 16. पारिलवेन Ca sec. m. Bf. pr. m. पारिलवेन Bf sec. m. पारिलवेन A. पारिलवेन B4. मा Ca pr. m. Af; deest in B1.—P. 686. l. 19. (65, 18.) अभिषुतो भव त्वं । B1. अभिषुतो वाचं Ca. A. B4. Bf.—P. 687. l. 8. (65, 21.) दिक्कमस्य ॥ दिक्कमस्य A. Ca. दिक्कमस्य B4 sec. m. दिक्कमस्य Bf. दिक्कमस्य B1. दिशः अस्य C2.—वा B1. वा A. Ca. Bf. M1.—l. 17. (65, 23.) अजीकानामदूरमवाः आर्जीका देशाः A. Ca. Bf. अजीकाना दूरभावाः आर्जीका देशः B1. अजीका नाम दूरमवा आर्जीका देशः M1. See Rv. Bh. IX. 113, 2; VIII. 7, 29.—P. 688. l. 16. (65, 28.) बलमवा B1. This is an important passage as it might be used to show the dependence of A. B4 on Ca. Ca has a blot which has destroyed the lower part of बल so as to make it look like तव, and this तव occurs in A and B4 (but not in C2). Bf has बलमवा. The same blot has nearly obliterated घन in the next line, and there is a lacuna in A and B4 (not in C2). Bf has वह्निमनादीनां. The B MSS. are not affected by this, but stand, as usual, independent of A and Ca. But although in the ninth Mandala the MSS. Ca. A. B4 and C2 form one family, it would be difficult to admit in other passages that A. B4 are dependent on Ca.—संमजामहे from B1.—l. 28. (65, 30.) जनम B1. Ca sec. m. जनम Ca pr. m. Bf. जनम Af. जनम A. M1. The ज in Ca pr. m. is not quite clear in consequence of a blot.

P. 689. l. 17. (66, 3.) After त्वदीयानि धामानि B1 reads त्वदीयानि अहोरात्रक्याः कालविशेषाः परि भवन्ति सर्वत्र व्याप्तास्तिष्ठन्ति । यद्वा त्वदीयधामानि त्वन्दीयानि अहो तेजसां परि वर्तन्ते ॥ अत एव etc.—P. 691. l. 14. (66, 13.) तदार्थेति प्रगच्छन्ति यद्यदा ॥ तदार्थेति (०र्थेति Bf) प्रगच्छन्ति तद्यदा A. Ca. Bf. ति प्रगच्छन्ति तद्यदा Af. तदार्थेति प्रगच्छन्ति B1, leaving out the end of the verse.—l. 19. (66, 14.) लोतयः B1. The other MSS. Ca. A. B4. C2. Af. Bf.



have स्तेतयः, evidently originally a wrong reading for त्वातयः, the old spelling of त्वोतयः, but liable to be read स्तेतयः.—P. 692. l. 14. (66, 18.) \*साहाय्याय ॥ \*सहाय्याय B 1. \*साहाय्याय Ca. \*सहोय्याय A. Af. \*महोय्याय Bf. \*मज्जोय्योय(?) Bf sec. m.—l. 24. (66, 19.) रचसि deest in B 1.—l. 25. दुकुना B 1. दुकुना A. दुत्सुना Ca. Af. Bf.—l. 29. (66, 20.) देवमनुष्या गंधर्वाप्सरसः सर्पाः पितर इति Ca. A. B 4 (sec. man. देवाः). देवमनुष्यगंधर्वाप्सरसः पितरो इति B 1. See Ait. Br. III. 31.—l. 32. अपि गीर्गो B 4 sec. m. अपि निर्गो Ca. A. B 4 pr. m. Bf. अपि दैवामिर्गो B 1. अपि निर्गो Af.—P. 693. l. 9. (66, 22.) हिंसकान् B 1. C 2. पिदिसकान् Ca. Af. पिदिसकात् A. Bf. पिदिसतान् B 4.—l. 27. (66, 25.) पवित्रानिर्गच्छंतीत्यर्थः ॥ पवित्रा निर्गच्छंतीत्यर्थः A. Ca. B 4. C 2. Af. Bf. पवित्र ता गार्गच्छंतीत्यर्थः B 1.—l. 30. (66, 26.) ईद्रधिन C 2. ईद्रधित A. Ca. Af. ईद्रधिन B 1. ईद्रधित Bf. ईद्रधेतर B 4 sec. m. Differently explained by Sāyana, Rv. Bh. I. 22, 2; 11, 1: cf. Prāt. 544, 3; Rv. Bh. I. 84, 6.—P. 694. l. 10. (66, 28.) कलशं प्रतिकर्षेण चरति B 1. कलशे प्रतिकर्षेण रचति A. Ca. कलशेण रचति C 2. In B 4 प्राचाः is changed into प्रोचन; then follows कलशे प्रतिकर्षेण रचति. If pratikarsha is the right reading, it would here mean 'attraction, a meaning not mentioned by BR.—l. 13. After हल्ध्यादिना तिलोपः all the MSS. add another explanation, which is meant to explain the omission of the Āgama it. This, however, was already explained as *khândasa*, and from the unfinished state of the sentence, the explanation seems to be a later addition that came into the text from the margin. Thus A. Ca. B 4. Af. Bf read अनित्यमागमशासनमिति सिच इ आ 1. B 1 has the same, but ends with सिच इ. C 2 has सिच ३ आ न सिच ३ आ 1.

P. 694. l. 27. (67.) All the MSS. except B 1 omit the statement that the thirtieth verse is a Pura-ushnih, and the twenty-seventh, thirty-first and thirty-second Anushtubh. B 1 adds after गायत्र्यः, अलायस्तेषां चिंशी पुरउष्णिक् आवा द्वादशका य षकवती (आवद्वादशकद्व्यष्टकवती?) सप्तविंशकचिंशीद्वाचिंस्त्रिंशोऽनुष्टुभः शिष्टा गायत्र्यः। अविता नो etc.—P. 695. l. 21. (67, 4.) प्रभूतं, all MSS. except C 2, which leaves out something, and reads अवीनां स्वभूतानि गच्छंतीत्यर्थः 1.—l. 22. त्वया सहाहमिन्द्रमाह्वयामीत्यर्थः B 4 sec. m.; A. Af. Ca have त्वया सहेंद्रमहमाह्वयामीति वाजयाह्वयामीत्यर्थः ॥ C 2 has ०ह्वयामीति वाजं मह्वयामीत्यर्थः ॥ Bf has त्वया सहेंद्रमहमाह्वयामीति वाजायामाह्वयामीत्यर्थः ॥ In B 1 all from सोऽयं हरि to the end of the verse is left out.—P. 696. l. 24. (67, 10.) मजः ॥ पञ्च A. Ca. Bf. In B 1 the first explanation, together with the commentary of verses 7 to 9, is lost. After तद्वत् गोमंतं प्रशस्तगोमिद्वपेतं ॥ (verse 6), it begins at once ॥ अजायः अजवाहनः etc.—P. 697. l. 13. (67, 14.) गाहत इति दे इति ॥ गाहत इति A. Ca. Bf. B 1.—l. 25. (67, 15.) सिपि वा ॥ सिपिना A. Ca. Af. Bf. सिपि कचा B 1.—P. 698. l. 19. (67, 21.) पूयमान B 1. पूज्यमान A. Ca. C 2. B 4. Af. Bf.—l. 24. (67, 22.) यः पोता is omitted in all the MSS.—P. 699. l. 25. (67, 28.) अस्मान् प्रकर्षेण वर्धय यद्वा A. Ca. C 2. B 4. आत्मानं प्रकर्षेण वद्वा B 1.—P. 700. l. 25. (67, 32.) यागादिपरं वेदशास्त्रविदं ॥ यागादिपरवेदशास्त्रविदं A. Ca. B 4. Af. Bf. यागादिपरं वेदशास्त्रविदं C 2. योगादिपरं वेदशास्त्रं B 1. Different emendations might be proposed; the one I have adopted is in accordance with Sāyana's style. वेदशास्त्रविदं is unusual with Sāyana, and in this place without



a definite object. The MSS. represent here, as usual, two families only, A. Ca. B4. C2 on one side, and B1 on the other.

P. 700. ll. 28 seq. (68.) वत्समिः is the reading of all the MSS. See note to X. 45.—P. 701. l. 17. (68, 2.) श्रेण A. Ca. C2. B4. शस्त्रेण B1.—P. 702. l. 17. (68, 5.) उदकस्त्रैव A. स्त्रैव A. B1. Ca. M1.—l. 18. सः । सूर्याणि ॥ स सूर्यादि A. B1. Ca. Af.—P. 703. ll. 15 to 21. (68, 8.) All MSS. except B1 have a lacuna at the end of the commentary from इयति to इयति in verse 9. A has वाचमियति अभिप्राययति । किंच पुनाचः etc. Ca. C2. Bf and B4 have the same, only that in B4 the omission was observed, and नवमी written on the margin. If it had not been for B it would have been impossible to restore the omission. B1 reads वाचमियति प्रेरयति तदा हि स्त्रोतारः सुवति । उच्यते । अथ नवमी ॥

P. 704. l. 2. (69.) स्तूपोऽंखे Anukr. स्तूपोते A. Ca. Af. M1. स्तूपोखे B1.—l. 12. (69, 1.) After व्रतेष्वपि A. Ca. C2. Af have यदोप च, B4 यदोप वा, B1 द्रोपव.—l. 14. (69, 2.) मधुमां द्रप्सः, i. e. मधुमान्द्रप्सः S1. S3. मधुमा द्र° S2. मधुमाँ द्र° S4.—l. 30. (69, 3.) औषधीनामये Ca. औषधीनामये B1. औषधीनामौ A. B4, म in marg. औषधीनायो C2.—l. 34. अक्रान् B1. अक्रान् A. Ca.—P. 705. l. 2. नखे B1. मखे A. Ca. M1.—l. 14. (69, 4.) अयणद्रव्यं C2. अयणद्रव्यं A. Ca. आपणद्रव्यं B4. अयणयद्रव्यं B1. अयणद्रव्यं M1.—l. 19. (69, 5.) मृजी शौचा° ॥ मृजी शौचा° Ca. मृजी शौचा° A. मृजी शौचा° B1. मृजी शौचा° M1. मृजु शौचा° Dhp. 34, 41.—l. 22. निर्जेजनाय ॥ निर्जेज° A. Ca. निर्जेज° B1. M1.—P. 706. l. 19. (69, 8.) चंगिरसामपि पितासि B1. चंगिरसामधिपतिरसि A. Ca. B4. C2.—P. 707. l. 6. (69, 10.) बाधकानामसिता ॥ Cf. Rv. Bh. I. 64, 5.—l. 8. पवमाने ॥ पवमाने न परि ते A. Ca. चमाने परि ते B1. Cf. Rv. I. 31, 8.

P. 707. l. 30. (70, 2.) वरणार्थं ॥ वर्षार्थं A. B1. Ca.—l. 31. समन्ति B1. समन्ति A. Ca. M1.—P. 709. l. 26. (70, 8.) रिपि B1. रिपि A. Ca. रेपु Dhp. 10, 10.

P. 710. l. 33. (71, 1.) किंचायं सोमः ॥ किंच । यं सोमं A. B1. Ca.—P. 712. l. 17. (71, 6.) आ रिणन्ति ॥ आ इ रिणन्ति A. Ca. B1. M1.—P. 713. l. 3. (71, 8.) सोमस्य स्वमृतो वर्षः ॥ सोमस्य स्वमृतो वर्षः B1. सोमस्य सु---तो वर्षः B4. सोम स्व सु---तो वर्षः A. Ca. सोम स्वसु---तो वर्षः C2.

P. 713. l. 22. (72.) मृजन्ति A. B1. Ca; deest in Anukr.—P. 715. l. 9. (72, 5.) दृशन्त ॥ दृशन्त A. B1. Ca. M1.—l. 18. (72, 6.) सं यन्ति गच्छन्ति A. Ca. यन्ति सं गच्छन्ति B1.—P. 716. l. 2. (72, 8.) अहो विमि ॥ अहो विमि° A. Ca. B1. 4. C2. अहोत् वि° M1. Cf. VS. VIII. 47 and 48; Rv. Bh. VIII. 1, 17. 2, 2; IX. 107, 5.—l. 4. After मा निमीचीः B1 adds स्ता निमीचीः, i. e. मा विमीचीः.—कीदृशात् । सदनसृशः । येन भूतेन वसुना सदनानि गृहान् पुत्रादीन् सृशन्ति तादृशात् गृहादिकस्य प्रदातुर्यन्ताम्ना वियुजः । भाक् ॥ कीदृशान् सदनसृशः (ग्रान् A pr. m.) । ये भूतेन वसुना सदनानि गृहान् पुत्रादीन् सृशन्तादृशात् गृहादिकस्य प्रदातुर्यन्ताम्ना वियुजः प(पं Ca) भाक् A. Ca. कीदृशान् सदनसृशः ॥ यत् येन वसुना सदनानि गृहान् पुत्रादीन् सृशन्ति तादृशाद्गृहादिकस्य प्रदातुर्यन्ता विजयः भाक् B1. कीदृशान् सदनसृशः ये भूतेन वसुना सदनानि गृहान् पुत्रादीन् सृशन्ति तादृशाद्गृहादिकस्य प्रदातुर्यन्ताम्ना वियुजः प भाक् B4. कीदृशान् । सादनसृशः येन भूतेन वसुना सदनानि गृहान् पुत्रादीन् सृशन्तादृशात् गृहादिकस्य प्रदातुर्यन्ताम्ना वियुजः पं भाक् C2.

P. 716. l. 24. (73, 1.) After हनुरच्यते B1 has a quotation which is wanting in



all the other MSS.: हनु अधिवण इत्याद्यानास्त्वगुह्यानेधिवणकसके etc.—l. 25. After समस्वरन् संगच्छन्ते all the MSS., except B<sub>1</sub>, which has a lacuna, read तदस्य शब्दयन्वा, which I have altered by conjecture into तदास्यशब्दयन्वा.—l. 27. प्रीणनात् A. Ca. B<sub>1</sub>. 4.—P. 717. l. 5. (73, 2.) धाम च B<sub>4</sub> sec. m. धामनिव A. Ca. B<sub>1</sub>. C 2.—P. 718. l. 11. (73, 6.) अमिमन्मनाः B<sub>1</sub>. Ca. अतिम° A. M<sub>1</sub>. In Ca अमि° is so written that it could easily be misread for अति°.—l. 13. नरस्यपाहासत ॥ नरस्य लमहासत A. Ca. नरस्य अपहास B<sub>1</sub>.—l. 22. (73, 7.) गोपया A. B<sub>4</sub>. Ca. C 2. गोपाया B<sub>1</sub>. See Ait. Br. I. 27.—l. 24. मध्यमवाचः पुत्रा मरुतः स्यशो वाचा वशिजो भवन्ति ॥ This is merely a conjectural reading. The MSS. give the following readings: मध्यमवाचा प्र प्र मरुते शसः वाचा वशिजो भवन्ति A. Ca. C 2; मध्यमवाचा प्र प्र सह ते शसः वाचा वशिजो भवन्ति B<sub>4</sub>; मध्यमवाचा प्र प्र मरुतो शः वाचा वशिजो भवन्ति B<sub>1</sub>.—P. 719. l. 15. (73, 9.) लेव्या° ॥ लेव्या° MSS.

P. 719. l. 27. (74, 1.) पृथुतरं A. Ca. C 2. B<sub>4</sub>. पृथुतमं B<sub>1</sub>.—P. 720. l. 4. (74, 2.) गतेर्निघातः ॥ गच्छते निघातः A. गच्छते निघातः Ca. C 2. Af. गच्छतेर्निघातः B<sub>4</sub>. गते विघातः B<sub>1</sub>.—l. 13. (74, 3.) इंद्रः शतसहस्रसंख्याकहरिभिः सह गंतुं मार्गो विस्तीर्णो भवेदित्यर्थः B<sub>1</sub>. इंद्रः शतसहस्रसंख्याके हरिभिः सह गंतुं मार्गो विस्तीर्णो भवेदित्यर्थः A. Ca. C 2. Af; also B<sub>4</sub>, except मार्गे.—l. 27. (74, 4.) मायोरित्वे दन्ति ॥ मायोरित्वे दन्ति A. Ca. C 2. B<sub>4</sub>. Af. मायोरित्वे दन्ति B<sub>1</sub>. This is evidently a quotation of an Unâdi-sûtra, which, however, does not occur in our editions. In Un. IV. 101, peru is derived by लिपीत्वां दः. In I. 38, Ugvaladatta quotes an âkṛitigana in which peru occurs. But in our passage peru and meru are evidently derived from the roots mât and pât, and the vowel is changed to i before run. I can find no trace of this Sûtra, and I therefore can give the reading इत्वे only as conjectural.—P. 721. l. 12. (74, 6.) नामस्तसो वाधिकाः ॥ नामा तपसो वाधिकाः A. Ca. Af. नामः तपसो वाधिकाः C 2. नामो तपसो वा° B<sub>4</sub>. नामः तपसो वाधिकाः B<sub>1</sub>. नामो तपसो वा M<sub>1</sub>. See Ngh. II. 19.—ll. 17, 19, and 25. (74, 7.) कबंधं S<sub>1</sub>. S<sub>2</sub>. S<sub>3</sub>. S<sub>4</sub>. P<sub>1</sub>. P<sub>4</sub>. कबंधं S<sub>3</sub> sec. m. (?) P<sub>3</sub>. A. Ca. B<sub>1</sub>. Af (twice). See Rv. V. 54, 8. 85, 3; VIII. 7, 10.

P. 722. l. 20. (75, 1.) चायतेरसुनि चन इति A. B<sub>4</sub>. Ca. C 2. Af. चायतेरसुनि च इति B<sub>1</sub>.—P. 723. l. 1. (75, 2.) नचच° A. Ca. Af. नाचच° B<sub>1</sub>.—l. 31. (75, 5.) वचनवन्तः. This is the reading of all the MSS. of Sâyana, also of the Nirukta MSS. which I could consult. Nir. Roth and SS. read वचनवन्तः. See Nir. SS. vol. ii. p. 418. The commentary has वचनवन्तः संमोहयितारः, ibidem p. 423.

P. 726. l. 1. (77, 1.) सोमः यज्ञे इंद्रस्य साधने A. Ca. Af. सोमे यज्ञे इंद्रस्य साधने B<sub>1</sub>.—l. 11. (77, 2.) किं रजः ॥ किंच रजः A. Ca. C 2. B<sub>1</sub>. 4. Af.—l. 19. (77, 3.) उपरता चनेलुपराः ॥ उपरता च चनेलुपरा A. Ca. Af. उपरता च चनेलुपचारः B<sub>1</sub>.—P. 727. l. 5. (77, 5.) वृजिनेष्वरिष्टेषु ॥ All the MSS. (A. Ca. C 2. Af. B<sub>1</sub>. 4) have वृजिनेषु instead of वृजिनेषु, which is the reading of the MSS. of the texts, with the accent on the second syllable. As Sâyana seems to have read वृजिनेषु I have left this reading, though it is clearly wrong.

P. 728. l. 1. (78, 3.) सेचनशीलं A. Ca. C 2. B<sub>1</sub>. सेचनं शीलं B<sub>4</sub>. सेचनशीलं Af.

P. 729. l. 13. (79, 3.) समरीत ॥ As all MSS. except B<sub>1</sub>, where the word is left



out, read समरीत्, Sâyana may, by mistake, have read समरीत् instead of समरीत्. In B I we have सा यथा न प्राप्नोति etc.

P. 730. l. 13. (80, 1.) वि दिवुते B I. दिवि युखोके A. Ca. C 2. B 4.

P. 732. l. 1. (81, 2.) सोमसज्जुषां ॥ सोमसज्जोषां A. Ca. C 2. B I. 4.

P. 735. l. 13. (83, 4.) पयुसमूहस्वामी A. B I. Ca. पाश? See Nir. IV. 2.—l. 22. (83, 5.) निवीडुं B I. निवीडुं A. Ca. M I.

P. 736. l. 28. (84, 4.) वायुमिरेव ॥ वायुरेव A. Ca. C 2. B I. 4.

P. 737. l. 24. (85, 2.) संयामात् A. Ca. B I. 4; deest in C 2. संयामात्?—P. 739. l. 27. (85, 11.) उपाह्वयंत ॥ Sâyana seems to have read उप । पृष्टिः चांसं ।

P. 740. l. 10. (86.) आहृष्टा इति A. Ca. B I. 4. आहृष्टा C 2.—l. 11. नीवावरी इति A. Ca. B I. 4. C 2.—l. 12. पृथय इति A. Ca. B I. 4. C 2.—l. 13. आहृष्टा माया A. Ca. B 4. आहृष्टा माया B I. आहृष्टा माया C 2.—l. 15. आहृष्टा A. Ca. B I. 4. आहृष्टा C 2. आहृष्टा Anukr.—l. 16. पृथयो ॥ प्रथयो A. Ca. B 4. C 2. पृथये B I.—It is clear that Sâyana took तृतीये चयः for चयः, the three companies of Rishis mentioned before. Shadgurushya takes it for चयः. He writes चतुर्थे दशर्चे चय इति नामानः. See Aufrecht, Rig-veda, vol. ii. p. 495, note; Anukr. M. pp. 34 and 146.—l. 21. (86, 1.) From मदा to वसुधा left out in A. Ca.—P. 743. l. 8. (86, 11.) अभिर्क्रंदन् and अभ्यर्षति MSS.—P. 744. l. 29. (86, 17.) अभ्यर्षिभ्यः B I. अभिर्षिभ्यः A. Ca. M I.—P. 745. l. 23. (86, 20.) After इन्द्रस्य A. Ca. C 2 and B 4 add यजमानस्य.—l. 32. (86, 21.) एकविंशतिं गा अस्त्रिंशुखेन B I. एकविंशतिं चारान् त्रिंशुखेन A. Ca. एकविंशतिं चारान् त्रिंशुखेन B 4. एकविंशतिं चारात् त्रिंशुखेन C 2. The readings in all the MSS. except B I are intended for एकविंशतिवारं.—P. 747. l. 12. (86, 26.) सुवर्त्तानि MSS.—l. 14. After जुर्वीण इत्यर्थः B I adds यद्वा गासद्विकारीणि चीराणि जुर्वीण इत्यर्थः ।—l. 23. (86, 27.) After गोभिः we expect पयोभिः or क्षीरेण ; पुष्टे, too, is left unexplained by Sâyana.—P. 748. l. 5. (86, 29.) समुद्रो वर्षसाधनोऽपां B 4 sec. m. °द्रो वर्षसाधनां पां A. Ca. °द्रो वर्षसाधनो पां C 2. समुद्रवर्षसाधनो नि B I.—l. 20. (86, 31.) अव चक्रददचक्रदन् ॥ अवचक्रदत् अवक्रदत् B I. अवचक्रदन् अवचक्रदत् A. अवचक्रदन् अवक्रदत् Ca. अवचक्रदन् अवदं क्रदत् C 2. अवचक्रदत् अवक्रदन् (°क्रदन् sec. m.) B 4. Sâyana takes अवचक्रदत् as a participle, in spite of the accent.—P. 749. l. 6. (86, 33.) Sâyana leaves out पवते, and seems to have read नृभिः instead of हरिः.—P. 750. l. 5. (86, 37.) वीयसे गच्छसि वी गत्यादिषु A. Ca. वियसे गच्छसि वी गत्यादिषु B I.—P. 753. l. 3. (86, 48.) One expects यतः क्रतुवित् यतः कुल्य इत्यभिप्रायः ।

P. 753. l. 15. (87, 1.) After पूयमानो B I reads ऽभ्यर्ष वाचं संयामं वाजिनं वसवतं etc.—

P. 754. ll. 9 and 11. (87, 5.) अस्यंष्ट्रं S 3. अस्यंष्ट्रं S 1. अस्यंष्ट्रं S 2. S 4. A text. अस्यंष्ट्रं Pada MSS. Cf. Rv. IX. 46, 1.—P. 755. l. 5. (87, 8.) पाचं स्वयंप्राप्तं ॥ प्राप्तं स्वयंप्राप्तं C 2. पाचं स्वया प्राप्तं । B I. प्राप्तं स्वया प्राप्तं A. Ca. B 4. पाचं तया प्राप्ता M I.

P. 756. l. 4. (88, 2.) °द्विरोधात् ॥ °द्विरोधाधीनि A. Ca. C 2. °द्विरोधारत् B I. °द्विरोधादीनि B 4 sec. m.—l. 11. (88, 3.) हवमाह्वानमाकर्ष्य A. Ca. C 2. B I. 4. हव आह्वानमाकर्ष्य?

P. 757. l. 28. (89, 1.) अथाः । आप्नोति । A. Ca. C 2. B I. 4.—l. 29. न्यसदत् । निवीदति ॥ A great deal of the commentary is lost in all the MSS., there being no explanation of the last pāda. This has produced a confusion in the remaining commentary. A. Ca.



C 2. B 4 have न्यसदत् । निषीद् निषीदति निषीदति वा ॥ B 1 has न्यासदत् निषीदति वा ॥—P. 758. l. 21. (89, 4.) न्यसदत् न्यसदत्तानीयं व्याप्तं A. Ca. न्यसदत्तानीयं व्याप्तं B 1. न्यसदत्तानीयं व्याप्तं वा ?—P. 759. l. 12. (89, 7.) This verse is left unexplained in all the MSS.; the commentary of verse 6, too, is in an imperfect state. The explanation beginning with कर्मणि षष्ठी can hardly be written by Sāyana; it was probably supplied by a later copyist. In C 2 the lacuna begins in verse 4, and is carried on to nearly the end of 90, 1.

P. 760. l. 28. (90, 6.) विमृष्य ॥ निष्पद्य A. Ca. B 1. निष्पद्य B 4; deest in C 2. I have written विमृष्य instead of विमृष्य, because विमृष्य explains the mistakes of the copyists better than विमृष्य.—l. 31. All the MSS. read सायणार्येण except B 1, which has सायणाचार्यः; C 2 has धुरंधरेणार्यविरचिते. Sāyana is called Sāyanārya, for instance, at the beginning of the fourth Adhyāya of Ashtaka VI.

P. 761. l. 3. (91, 1.) षष्ठं ॥ षष्ठमं A. B. Ca.—l. 10. (91, 1.) रथे यथा B 1. रथे रथापथे A. Ca.—l. 24. (91, 2.) प्रति A. B 1. Ca.—l. 30. (91, 3.) रोचतेरिदं रूपं 1. See Rv. Bh. I. 113, 2; Nir. II. 20.—P. 762. l. 8. (91, 4.) तेषां ॥ तेषां A. B 1. Ca.—l. 26. (91, 6.) तोका पुत्रान् ॥ तोकान् A. Ca. M 1. लोकां B 1. Cf. Rv. Bh. IX. 74, 5; X. 4, 7.

P. 763. l. 14. (92, 2.) चमन्ति चम्बो यहादयः 1. All the MSS. give this reading, but Sāyana probably wrote चमन्त्यचेति चम्बो यहादयः; cf. Rv. Bh. IX. 93, 3. 96, 19, etc.—l. 31. (92, 4.) स्मृताः ॥ प्रभूताः A. Ca. C 2. B 4. स्मृताः B 1.—P. 764. l. 1. उदकेर्मृ ॥ उदके मृ B 1. उदके वा खं A. Ca.

P. 765. l. 7. (93, 2.) मातृभूताभिः A. Ca. B 4. सातृभूताभिः C 2. सेतृभिः B 1.—l. 29. (93, 4.) टेरग्रंतावप्रत्यये A. Ca. तावप्रं B 1. See Rv. Bh. I. 93, 8.

P. 766. l. 28. (94, 2.) चच्छामि A. B 1. Ca.—P. 767. l. 5. (94, 3.) चचो यत् । A. Ca. C 2. चचोदयत् B 1. 4.

P. 768. l. 17. (95, 3.) चवर्णश्च रेफादेशश्छांदसः ॥ चवर्णश्च रेफादेशश्छांदसः । A. Ca. B 4. नुवर्णं C 2. चवर्णश्चरेफादेशश्छांदसः B 1. रेफादेशश्च would be better.—l. 20. आ विशन्ति च प्र प्रविशन्ति च B 1.—P. 769. l. 4. (95, 5.) दानामिमुखीं कुष ॥ दानामिमुखीकुष B 1. दानामिमुखीं A. Ca.

P. 769. l. 15. (96, 1.) छतानींद्रस्व ॥ छतान् इंद्रस्व A. B 1. Ca.—l. 25. (96, 2.) एनेतिन ॥ एना एनेन A. Ca. B 1.—P. 771. l. 5. (96, 7.) मनस ईशिताः A. Ca. C 2. B 1. 4.—P. 772. l. 1. (96, 10.) परिचकः B 1. परिचकः A. Ca. परीचकः B 4. परिकरचकः C 2.—l. 12. (96, 11.) B 1 reads एतादृशस्त्वं नोऽस्माकं वरितिर्धरैः कर्मप्राज्ञैः पुत्रैः अश्वैश्च सह मघवा धनावान् भव यस्मात् मम पितरः स्वया सह कर्म कार्षुः नोऽस्माकं पुत्रादियुक्तं धनं प्रयच्छेत्त्वर्थः ॥—l. 28. (96, 13.) उदकवतो ॥ उदकवतो B 1. M 1. उदकवन्ति A. Ca.—P. 773. l. 3. (96, 14.) बह्वधारी B 1. बह्वधोदकधारी A. Ca.—l. 16. (96, 15.) नियंतव्यो A. Ca. C 2. B 4. नियतु शक्यो B 1.—P. 774. l. 1. (96, 17.) शब्दोपेतः B 1. शब्दयितव्यः । A. Ca. C 2. B 4.

P. 777. l. 6. (97, 4.) प्रभूतं धं ॥ प्रभूतधनाय A. B 1. Ca.—l. 14. (97, 5.) बह्विधधारी A. Ca. C 2. B 4. बह्वधारेपेतः B 1.—l. 24. (97, 6.) मृ Dhp. 31, 21. मृ A. B 1. Ca. M 1.—l. 31. (97, 7.) उच्चारयन् ॥ उच्चरयन् A. Ca. B 4. उच्चरयन् C 2; deest in B 1.—P. 778. ll. 14 seq. (97, 8.) घोशब्दस्व—०द्गू ॥ घोषशब्दस्व—०दांगू A. Ca. C 2. B 4. गोपशब्दस्व—०दांगू



B1. See Rv. Bh. I. 61, 2. 62, 1. 105, 19; III. 58, 5.—l. 31. (97, 10.) गमनशीलनीचीनायर-  
मसंघातः A. Ca. C2. B4. गमनशीलनीचीनो यो रससंघातः B1.—P. 779. l. 13. (97, 12.)  
प्रियाणि etc. ॥ प्रियाणि प्रीतिधारकाणि तेजांसि ऋतुथा काले B1. From पवते at the end of  
verse 11 to पवतं कलशान् in verse 12, left out in A. Ca. C2. C4 read: पवते । कल-  
शानमिलवाचरा अथ द्वादशी । अमि प्रियाणीति । प्रियाणि प्राणचित्तुणि धर्माणि धारकाणि तेजांसि  
ऋतुथा काले.—l. 22. (97, 13.) एवं A. Ca; deest in B1. One should expect यथा गाः  
पशून्मिलच्छ शब्दं करोति एवं गाः etc. Cf. Rv. Bh. IX. 99, 6.—l. 24. तस्य वाक् शब्दः ॥ तस्य वाक्  
शुशब्दः A. Ca. वग्मुः शब्दः B1.—l. 25. इवा ॥ इव A. B1. Ca. M1.—P. 780. ll. 16 seq.  
(97, 16.) सुपथानि and सुगा A. B1. Ca.—l. 26. (97, 17.) इळावती ॥ इरा B1. ईरा A.  
Ca.—P. 781. l. 12. (97, 19.) जवणशीलेन B1. अयण A. Ca. M1. See above, verse  
16 and Dhp. 24, 29.—l. 14. अन्नलामनिमित्ते B1. अन्नलामाय नि A. Ca. M1.—l. 20.  
(97, 20.) अवधा इत्यर्थः ॥ अवधीत्यर्थः A. Ca. B4. अवधायत्यर्थः C2. अवधा इत्यर्थः B1.—  
P. 782. l. 16. (97, 23.) चारयिता ॥ रचयिता A. Ca; lacuna in B1.—P. 783. l. 11.  
(97, 26.) कीदृशा होतारो etc. MSS. (A. B1. Ca. C2. C4), the third pāda being  
omitted.—P. 784. l. 5. (97, 29.) मज्जनसाधनं धनं ॥ धनं deest in MSS.—l. 27. (97, 32.)  
Sāyana seems to have read अमि पंथां.—P. 785. l. 29. (97, 36.) बज्जधि ॥ बज्जधियं MSS  
The mistake of putting बज्जधियं as an acc. neut. instead of बज्जधि seems to be due  
to the copyists rather than to the author of the commentary (see my Sanskrit  
Grammar, § 226).—P. 786. l. 15. (97, 38.) संवत्सरो वै धाता B1. TBr. संवत्सरो वै  
धातारं A. Ca.—l. 20. मृतकाय मृतिं यथा प्रयच्छति तद्वत् ॥ यथा मृतकाय मृतिं यथा प्रयच्छति तद्वत्  
B1. यथा कारिणे च छतकाय मृतिं तथा प्रयच्छति तद्वत् A. Ca.—l. 26. (97, 39.) नोऽस्मान् B1.  
नोऽस्माकं A. Ca.—P. 787. l. 3. (97, 40.) संद्रवंति MSS. for the usual समुद्रवति.—P. 788.  
l. 3. (97, 44.) वा वस्त्रो वसुनो ॥ वा पवस्त्र । स्त्रो वसुनो A. Ca. वा पवस्त्र वस्त्रो वसुनो B1.—  
l. 31. (97, 47.) वंत्थचेति समना यज्ञाः B1. वंत्थचेति सम यज्ञाः A. Ca. sec. m. B4. वंत्थत्थ-  
चेति सम यज्ञाः Ca. pr. m. वंत्थचेति समनाः C2.—P. 789. l. 7. (97, 48.) ऋतावा B1.  
ऋतवान् A. Ca. M1.—l. 25. (97, 50.) अस्माकममि A. Ca. अस्मानामि B1. Immediately  
before, B1 has नोऽस्माकमभिगमय, like A. Ca. See the next verse and IX. 98, 1.  
107, 21.—P. 790. l. 1. (97, 51.) From आर्षाणां to आर्षाणां left out in B1.—ll. 4, 6,  
24, and 26 (97, 52 and 54.) मँसले P4 by corrections. The other Samh. and  
Pāda MSS. have मां, but see Prāt. 301.—l. 10. (97, 52.) चातके A. Ca. C2. चले त्वं  
B1. चोतके B4. It might be चेतके from चतयति, or चातके from चातयति. See Rv.  
Bh. VII. 44, 3.—l. 30. (97, 54.) पृश्ने B1. सुपृश्ने A. Ca. M1.—P. 791. l. 14. (97, 56.)  
समंतं इति ॥ समन्ते A. B1. Ca.—l. 22. (97, 57.) सोममु B1. सोममु A. Ca.—l. 25. रूपं  
सोमस्य deest in A. Ca.—P. 792. l. 1. (97, 58.) एतन्नामकाः ॥ एतन्नामका A. Ca. एतन्नामि  
B1. If it referred to अदिति only, we should have to read एतन्नामिका.

P. 793. l. 1. (98, 4.) There is no doubt a lacuna in this verse. But the MSS.  
offer no various readings.—l. 2. द्वियोगाद्विघातः B1. ंगादिनि A. Ca. M1.—l. 13.  
(98, 6.) स्वयश्च स्वभूतं ॥ स्वयश्चसंभूतं A. B1. Ca. ंस संभूतं M1.—P. 794. l. 21. (98, 12.)  
येतं सोममश्नाम । अग्नीयाम । पिबेम ॥ येतं तव मवा मं (सोमं Ca) अश्नाम अग्नीम पिबेम A. Ca.  
येतं सोमं अश्नाम अग्नीयाम B1. येतं सोमं अश्नाम अग्नीयाम पिबेम M1.



- P. 796. l. 4. (99, 6.) आदधत् before प्रादधाति B1. M1.  
P. 798. l. 5. (100, 8.) परि यावि परिगच्छसि A. B1. Ca.—l. 12. (100, 9.) अति B1.  
अभि A. Ca. M1.  
P. 799. l. 1. (101, 1.) पुरःस्थितवयस् ॥ पुरःस्थितस् वयस् A. Ca. B1. 4. पुरस्थितस्  
C2.—P. 801. l. 23. (101, 13.) मारकः कर्मविघ्नकारी वा A. Ca. C2. B4. मारककारी विघ्न-  
कारी B1.—l. 24. संसाधक A. Ca. B4. साधक B1; deest in C2. राधक M1. Cf.  
Dhp. 27, 16: राध संविद्धौ.—l. 25. अपराधं मखं ॥ अयगजमखं A. अयराजमखं Ca. अपराध-  
मखं C2. अयरोजमख B4. अपराधं मखं CB. Lacuna in B1.  
P. 803. l. 6. (102, 3.) धारया आलीयया विधारय । किंच A. Ca. C2. B4. B1. I have  
left the reading of the MSS., though I believe that the original reading was  
धारयालीयया धारया पृष्ठे. The insertion of विधारय, without any excuse for it, is  
not in Sāyana's style. In the commentary to Sv. II. 3, 2, 18, 3, Sāyana, as far  
as my MS. allows me to see, has no such insertion. The edition, however, has  
धारया आलीयया वि धारया किंच (Bibl. Ind. vol. iii. p. 651). The Sāma-veda has  
ऐरयत्, and the commentator says ऐरयदेरयेति पाठौ.  
P. 804. l. 14. (103, 1.) जुजोवते ग्रीयमाणाय यद्वा नतिभिः from B1.—l. 25. (103, 3.)  
आवयितारं A. Ca. चारयितारं B1.  
P. 805. l. 19. (104, 1.) काश्यपौ ॥ काश्यपौ A. B1. Ca. M1.—P. 806. l. 20. (104, 5.)  
असदादीनां B4 sec. m. असदीनां A. Ca. C2. B4. असदीयानां B1.  
P. 808. l. 23. (106, 2.) लोकेर्ज्ञा° B1. लोकेर्ज्ञा° A. Ca. लोके ज्ञा° M1.—l. 27. (106, 3.)  
धनुः गृ° B1. धनुगृ° A. Ca. धनं गृ° M1.—P. 809. l. 29. (106, 9.) वृष्टिमणि दौर्धैः B1  
वृष्टिमिद्वीः वैः A. Ca.  
P. 812. l. 8. (107, 5.) सह तिष्ठत्येति सधस्त्रं B1. मह तिष्ठतं A. Ca.—l. 23. (107, 7.)  
सोमः ॥ सोमो भवन् A. Ca. सोमो भवान् B1.—l. 24. अत्यंतं देवकामो ॥ अत्यंतकामो A. Ca. M1.  
B1 has गानुवित्तमः अत्यंतं ॥ कामोभवः etc., the words between being lost. See Rv. Bh.  
IX. 49. 3.—P. 813. l. 24. (107, 11.) A. Ca. M1, but not B1, insert व्यवधायकानि  
कुर्वन्तः सन् आ पवस इति शेषः । हरिर्हरितवर्णः after तिरस्कुर्वन्, a repetition from the pre-  
ceding verse —P. 814. l. 16. (107, 14.) रसमभि पवते B1. रसं ग्रामेषु प्रेरयन्ति अति पवते  
A. Ca.—l. 24. (107, 15.) The first बृहदृतं is explained in A. Ca. C2 as सत्यभूतः; in B1  
as सत्यभूतं; B4 has न्तं, and changed it to न्तः.—P. 815. l. 20. (107, 19.) रारण रणेर्लिटि उ°  
B1. रारण रमे रणेर्लिटि उ° A. Ca.—P. 817. l. 13. (107, 26.) आत्मजो B1. आत्मानं A. Ca.  
P. 818. l. 1. (108, 2.) स्वर्दृशः सर्वस्व दर्शकस् ॥ ईदृशः सर्वस्व दर्शकस् A. Ca. C2. स्वर्विदः  
स्वर्मसंमकस् B1.—l. 7. (108, 3.) धुविर् विशब्दे ॥ धुविर् विशब्दे B1. धुविरविशति A. Ca.  
Cf. Rv. Bh. III. 31, 10. 33, 8; Dhp. 17, 1. 33, 53.—l. 13. (108, 4.) एतन्नामकोऽगिरा ॥  
त एतन्नामको गि द्वा ॥ A. एतन्नामकोऽगि द्वा Ca. एतन्नामकोऽगि C2. एतन्नामकाऽद्वा B4.  
एतन्नामको गिरा B1.—l. 16. आमुवन् ॥ आनखोमुवन् A. Ca. अनाशिरे आमुवन् B1.—P. 819.  
l. 6. (108, 7.) स्रोतव्यं ॥ तव्यं A. Ca. स्रोतं B1.—वनक्रचं उदकानां चर्वकं A. Ca. वनचचं  
उदकानां चर्वकं C2. वनक्रचं उदकानां चर्वकं B1. The MSS. of the text read वनक्रचं.  
Sāyana derives चच from चवी गतौ, cf. Rv. Bh. I. 22, 15. 41, 4; but क्रच from कृष  
विश्वेदे, cf. Rv. Bh. VIII. 1, 2. 76, 11.



P. 821. l. 11. (109.) ऐश्वराः A. B. Ca, and Anukr. MS. E. l. II. 132: ऐश्वरयो Anukr. M.—P. 824. l. 10. (109, 22.) श्रीणन् प्रेरयन् सोमोऽभिषूयते A. Ca. B1. 4. श्रीणन् प्रेरयन् सोमो भिषू पञ्चमानास C 2.

P. 824. l. 13. (110.) राजानी Anukr. before तिष्ठो; deest in A. B. Ca.—l. 27. (110, 2.) महि महति समर्थराज्ये A. Ca. B4; deest in C 2. महि महती समर्थे राज्ये B1.—P. 826. l. 10. (110, 8.) निर्वुहंति B1. हविर्वुहंति A. Ca. C 2. B4.—l. 30. (110, 11.) यज्ञवान् ॥ यजमानः A. Ca. B1. 4. यजमानः C 2.—P. 827. l. 1. रसधारासंघ A. Ca. धारासंघ B1. M1.

P. 828. ll. 6, 15, and 18. (111, 2 and 3.) इत्यादराथे (thrice) ॥ B1 has ०थी (twice) and ०थ at the end of verse 3. A. Ca have ०थे at the end of verse 2 and ०थी in verse 3.—l. 18. (111, 3.) सोम त्वं च B1. सोमश्च च A. Ca.

P. 828. l. 25. (112, 1.) सोमस्त्राजामित्वाय B4 sec. m. B1. C 2. ०मिन्वाय A. Ca. B4. Cf. TS. II. 6, 10, 5; Gaim. II. 2, 4.—विनोदं A. Ca. C 2. B4. विनोदं B1.—P. 829. ll. 4 seq. (112, 2.) A. Ca add यामिः after जीर्णामिः, and have ते एतैः instead of एतैः. In B1 एतैः is omitted.—l. 14. (112, 3.) प्रचिणोति ॥ प्रचिणोति A. Ca. प्रचिणोति B1. प्रचिणोति M1. See BR. s.v. 2. चि.—l. 18. जसः शसादेशः ॥ जसो कारादेशः A. Ca. जसाका-शादेशः C 2. कारादेशः B4 (marg. ज स श्री); lacuna in B1.—l. 20. पूर्विका व्यापारणा Ca. C 2. B4. पूर्विका व्यापारण A. पूर्विका M1. B1 has a lacuna.—०प्रचिणोत्यु० A. Ca. B1. ०प्रचिणु० Nir.—प्रचिणोत्युपलप्रचिणोति Nir. प्रचिणोत्युपलेषु प्रचिपणा A. Ca. प्रचिणा ॥ त्वापलेषु प्रचिपणा B1.—l. 28. (112, 4.) नर्मसचिवा ॥ नर्मशचिवा A. Ca. B4. नर्मसचिवाः C 2. नम-शाचिव B1.

P. 830. l. 13. (113, 2.) सत्यतयोरन्यो भेदो ॥ सत्यतयोरन्यो भेदो A. Ca. B4. सत्यतयोरन्य भेदो C 2. सत्यतयोरन्यो भेदो B1.—l. 28. (113, 4.) यथार्थकर्मन् deest in A. Ca.—l. 29. आत्मनोपेक्षितां A. Ca. C 2. B4; deest in B1. CB.—P. 831. l. 16. (113, 7.) S1. S3. S4 write यक्षिन्लोके; S2 has यक्षिं लोके, both meant for nasalised l, as required by Prāt. 227.—l. 22. निधेहि deest in B1 pr. m. A. Ca.—P. 832. ll. 5 seqq. (113, 9.) B1 has a lacuna, extending from IX. 113, 9 to the beginning of IX. 114, 4.—l. 13. (113, 10.) Before यद्वा an explanation of ब्रध्नस्व seems to be lost. The MSS. (A. Ca. C 2), however, mark no lacuna.—l. 14. विष्टपं सहस्रानं यच विं ॥ विष्टपमहास्रानं विं A. Ca; lacuna in B1.

P. 833. l. 2. (114, 1.) तं जनं ॥ तमनुजनं A. Ca.—l. 11. (114, 2.) वर्धयन् ॥ वर्धन् A. Ca.—नमस् पूजय Ca sec. m. नमसा पूजय Ca pr. m. नमस् नमसा पूजय A.—नमसः A. Ca. नमस M1. Cf. Rv. Bh. I. 33, 2.—l. 12. पाख्यो ॥ पाख्यः स A. Ca.—l. 31. (114, 4.) यद्विरसि ॥ हविरसि A. B1. Ca.—P. 834. l. 2. अरातिवान् B1. अरातित्वान् A. Ca.







# ऋग्वेदसंहिता

सायणाचार्यविरचितमाधवीयवेदार्थप्रकाशसंहिता

शार्मण्यदेशोत्पन्नेनंगलखडदेशनिवासिना मोक्षमूलरभट्टेन संशोधिता

गोतीर्याभिधाननगरे

विद्यामंदिरसंस्थानमुद्रायंचालये मुद्रिता

---

संवत् १९४९ वर्षे

---

॥ सप्तममंडलादिनवममंडलपर्यंतं ॥







## ॥ अथ सप्तमं मंडलं ॥

अथ सप्तमं मंडलमारभ्यते । तस्मिन्मंडले षडनुवाकाः । प्रथमेऽनुवाके सप्तदश सूक्तानि । तत्रापि नर इति पंचविंशत्युचं प्रथमं सूक्तं । अथेयमनुक्रमशिका । अपि पंचाधिका विराजोऽष्टादशाद्या इति । सप्तमं मंडलं वसिष्ठोऽपश्यदित्युक्तत्वात्तद्वद्रष्टा वसिष्ठ ऋषिः । आदितोऽष्टादश विराजस्त्येकादशकाः शिष्टा अनादेशपरिमापया चिष्टुमः । मंडलादिपरिमापयाभिर्देवता ॥ विश्वजितीदं सूक्तमाज्यशस्त्रं । सूचितं च । विश्वजितोऽपि नर इत्याख्यं । आ० ८. ७. इति ॥ अथेयनुवीराख्ये चतुराचे चतुर्थेऽहनीदमेव सूक्तमाज्यशस्त्रं । सूच्यते हि । अपि नर इति चतुर्थे । आ० १०. २. इति ॥ व्यूह्ये दशराचे चतुर्थेऽहनीदं सूक्तं जातवेदस्यनिवि-  
जानं । सूचितं च । अपि नर इत्याभिमारुतं । आ० ८. ८. इति ॥ महाव्रतेऽपीदमाज्यशस्त्रं । तथैव पंचमारख्यके सूच्यते । आज्यप्रउने विश्वजितः । ऐ० आ० ५. ९. ९. इति ॥ अविवाक्येऽहनि प्रातरनुवाके त्वमपे वसूनित्यादी-  
नामनुष्टुभां स्थान आबलुचः प्रवेपणीयः । सूच्यते हि । दशमेऽहन्यनुष्टुभां स्थानेऽपि नरो दीधितिभिरर-  
ण्योरिति तुचमापेये ऋतौ । आ० ८. १२. इति ॥ आद्याः षडुचस्तस्मिन्नेवाहन्याभिमारुते शस्त्रे सोविद्यानुरूप-  
पार्थाः । सूचितं च । अपि नरो दीधितिभिररण्योरिति सोविद्यानुरूपी । आ० ८. १२. इति ॥ मंडलादिहोमे  
ऽध्वेषा ॥ आधाने तृतीयायामिष्टी प्रेक्ष इति स्विष्टकृतोऽनुवाक्या । सूचितं च । प्रेक्षो अप इमो अप इति  
संयोज्ये । आ० २. १. इति ॥ एवमन्यथापि दीक्षणीयादिषु स्विष्टकृतोऽनुवाक्या ॥ प्रायणीयेष्टी सेदभिरपी-  
नित्यादिके द्वे स्विष्टकृतौ याज्यानुवाक्ये । सूचितं च । सेदभिरपीरत्यस्त्वन्यानि निति द्वे संयोज्ये । आ० ४. ३. इति ॥ आधाने तृतीयायामिष्टाविमो अप इति स्विष्टकृतो याज्या । सूचितं च । इमो अप इति संयोज्ये  
। आ० २. १. इति ॥ एवमन्यथापि दीक्षणीयादिध्वेषा सोविष्टकृतौ याज्या ॥ प्रातरनुवाक्ये आपेये ऋतौ चिष्टुमे  
हं दस्वाध्विगशस्त्रे च त्वमपे सुहव इत्याद्याः पंचर्चः । सूचितं च । त्वमपे सुहवो रण्वसंदृक् । आ० ४. १३. इति ॥

अपि नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयंत प्रशस्तं । दूरेदृशं गृहपतिमथयुं ॥ १ ॥  
अपि । नरः । दीधितिऽभिः । अरण्योः । हस्तऽच्युती । जनयंत । प्रशस्तं । दूरेऽदृशं ।  
गृहऽपतिं । अथयुं ॥ १ ॥

नरो नेतार ऋत्विजः प्रशस्तं प्रकर्षेण सुतं दूरेदृशं दूरे दृष्टमानं दूरे पशंतं वा गृहपतिं गृहाणां पाल-  
कमथयुमागम्यमतनवंतं वाभिमरण्योर्विद्यमानं हस्तच्युती हस्तप्रच्युत्या हस्तगत्या दीधितिभिरंगुलिभिर्जनयंत ।  
दीधितयोऽंगुलयो भवन्ति धीयन्ते कर्मसु । अरण्यी प्रच्युत एने अपिः समरणाज्जायत इति वा । हस्तच्युती  
हस्तप्रच्युत्याजनयंत प्रशस्तं दूरेदर्शनं गृहपतिमतनवंतं । नि० ५. १०. इति ॥

तमग्निमस्ते वसवो नृण्वन्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।

दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥ २ ॥

तं । अपि । अस्ते । वसवः । नि । नृण्वन् । सुऽप्रतिचक्षं । अवसे । कुतः । चित् ।

दक्षाय्यः । यः । दमे । आस । नित्यः ॥ २ ॥

योऽधिदेनि गृहे दद्यात्तः पूजनीयो हविर्भिः समर्धनीयो वा नित्योऽजस्र आस बभूव तं सुप्रतिचक्षे  
सुप्रतिदर्शनमपि कृतचित् सर्वस्वादपि मग्नितोरवसे रक्षणाय नसवी वःसका ये वसिष्ठा अस्ते गृहे न्युण्वन् ।  
न्यदधुः ॥

प्रेक्षो अमे दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्या यविष्ठ ।

त्वां शश्वंत उप यंति वाजाः ॥ ३ ॥

प्रऽइक्षः । अमे । दीदिहि । पुरः । नः । अजस्रया । सूर्या । यविष्ठ ।

त्वां । शश्वंतः । उप । यंति । वाजाः ॥ ३ ॥

यविष्ठ युवतम हे अमे प्रेक्षः प्रकर्षेण समिधस्त्वमजस्रयाशरणशीलया सूर्या ज्वालाया नोऽसदर्थं पुरः  
पुरस्तादाहवनीयायतने दीदिहि । दीप्यस्व । त्वां शश्वंतो बहवो वाजा अन्नानि हवींश्चुप यंति । उपगच्छंति ॥

प्र ते अमयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचंत द्युमंतः ।

यवा नरः समासंते सुजाताः ॥ ४ ॥

प्र । ते । अमयः । अग्निभ्यः । वरं । निः । सुवीरासः । शोशुचंत । द्युमंतः ।

यवा । नरः । संऽआसंते । सुजाताः ॥ ४ ॥

अग्निभ्यो लौकिकेभ्योऽग्निभ्यो वरमत्यंतं द्युमंतो दीप्तिमंतः सुवीरासः कल्याणपुत्रपौत्रप्रदास्तेऽमयो प्र  
निः शोशुचंत । प्रकर्षेण नितरां दीप्यते । यवा येष्मपि सुजाताः सुजन्मानो नरः कर्मणां नेतारो यजमाना  
अस्तिवो वा समासंते सहासते ॥

दा नो अमे धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तं ।

न यं यावा तरंति यातुमावान् ॥ ५ ॥

दाः । नः । अमे । धिया । रयिं । सुवीरं । सुऽअपत्यं । सहस्य । प्रऽशस्तं ।

न । यं । यावा । तरंति । यातुमावान् ॥ ५ ॥

सहस्राभिभवकुशल हे अमे सुवीरं शोभनपुत्रपौत्रोपेतं स्वपत्यं शोभनपौत्रोपेतं प्रशस्तं श्रेष्ठं रयिं धनं धिया  
लोचने नोऽस्माभ्यं दाः । देहि । यं रयिं यावाभिगता शत्रुर्यातुमावान् हिंसाया निर्गतः ॥ नलोपाभावच्छां-  
दसः ॥ यद्वा । हिंसायुक्तः ॥ परो घतिर्मलर्थीयः पूरकः ॥ न तरति न बाधते ॥ ॥ २३ ॥

उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची ।

उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥ ६ ॥

उप । यं । एति । युवतिः । सुदक्षं । दोषा । वस्तोः । हविष्मती । घृताची ।

उप । स्वा । एनं । अरमतिः । वसूयुः ॥ ६ ॥

सुदक्षं सुवर्णं यमपि हविष्मती हविषा युक्ता घृताची । घृतमंचतीति घृताची जुहः । युवतिरग्निना  
नित्ययुक्ता दोषा वस्तो रात्रावहनि चोपैति उपगच्छति तमेनं स्वा स्वकीयारमतिर्दोषिर्वसूयुः सोतृणां  
धनमिच्छत्युपैति ॥



विश्वा अग्नेऽपं दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथं । प्र निस्वरं चातयस्वामीवां ॥ ७ ॥  
 विश्वाः । अग्ने । अप । दह । अरातीः । येभिः । तपःऽभिः । अदहः । जरूथं । प्र ।  
 निऽस्वरं । चातयस्व । अमीवां ॥ ७ ॥

हे अग्ने विश्वा विश्वानरातीः शत्रून् तपोभिस्तेजोभिरप दह । येभिर्येस्तपोभिर्जरूथं परुषशब्दकारिणं राक्षसं ॥ गृणातिरूथन्त्यये सति जरूथशब्दनिष्पत्तिः ॥ अदहः दहसि । किंचामीवां रोगं निस्वरं न्यक्नुतोऽपतापं धत्वा भवति तथा ॥ स्तु शब्दोपतापयोरिति धातुः ॥ प्र चातयस्व । प्रकीर्णं नाशय ॥ चततिर्गत्यर्थो वेति मनुमास्करमित्रः ॥

आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक ।  
 उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ॥ ८ ॥  
 आ । यः । ते । अग्ने । इधते । अनीकं । वसिष्ठ । शुक्र । दीदिऽवः । पावक ।  
 उतो इति । नः । एभिः । स्तवथैः । इह । स्याः ॥ ८ ॥

वसिष्ठ श्रेष्ठ शुक्र शुभ्र दीदिवो दीप्त पावक शोधक हे अग्ने ते तवानीकं तेजो य एधते समेधयति तस्यैव नोऽस्माकमुतो अग्नि वैभिः स्तवथैः स्तोत्रैरिहास्मिन्यस्ते स्याः । भव ॥

वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुचा ।  
 उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥ ९ ॥  
 वि । ये । ते । अग्ने । भेजिरे । अनीकं । मर्ताः । नरः । पित्र्यासः । पुरुऽचा ।  
 उतो इति । नः । एभिः । सुऽमनाः । इह । स्याः ॥ ९ ॥

हे अग्ने ते तवानीकं तेजः पित्र्यासः पितृहिता आर्येया वा मर्ता मनुष्या नरः कर्मणां नेतारो ये यजमानाः पुरुचा बज्रपु देशेषु वि भेजिरे विभजते । आदधुरिति यावत् । तेषामिव नोऽस्माकमुतो अग्निभिः स्तुतैः सह स्तोत्रैर्वा सुमना अनुग्राहकमनाः सन् इह यज्ञे स्याः । भव ॥

इमे नरो वृचहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि संतु मायाः ।  
 ये मे धियं पनयंत प्रशस्तां ॥ १० ॥  
 इमे । नरः । वृचऽहत्येषु । शूराः । विश्वाः । अदेवीः । अभि । संतु । मायाः ।  
 ये । मे । धियं । पनयंत । प्रऽशस्तां ॥ १० ॥

ये मनुष्या मे मदीयां प्रशस्तां प्रकृष्टां धियं कर्म स्तुतिं वा पनयंत कुर्वन्ति कुर्वन्ति वा त इमं मयि खिग्धा नरो मनुष्या वृचहत्येषु संगमेषु शूरा अदेवीरासुरीर्विश्वाः सर्वा माया अभि संतु । अभिभवन्तु ॥ ॥ २४ ॥

मा शूनै अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा ।  
 प्रजावतीषु दुर्यसु दुर्य ॥ ११ ॥  
 मा । शूनै । अग्ने । नि । षदाम । नृणां । मा । अशेषसः । अवीरता । परि । त्वा ।  
 प्रजाऽवतीषु । दुर्यसु । दुर्य ॥ ११ ॥

हे अग्ने भूने भूये पुत्रादिरहिते गृहे सा नि षदाम । न निवसाम । गुणामन्वेषां च गृहे मा नि षदाम ।  
दुर्य गृहेभ्यो हित हे अग्ने अशेषसोऽपुत्राः । तोकम शेष इति पुत्रनामसु पाठात् । अवोरतावीरतया युक्ताश्च  
संतस्त्वा तां परि चरंतः प्रजावतीष्विव दुर्यासु गृहेषु निवसाम ॥

यम॒श्वी नित्यमुप॒याति य॒ज्ञं प्र॒जाव॑तं स्वप॒त्यं क्षय॑ नः ।

स्वर्ज॑न्मना शेष॒सा वावृ॑धानं ॥ १२ ॥

यं । अ॒श्वी । नित्यं । उप॒याति । य॒ज्ञं । प्र॒जाऽव॑तं । सु॒ऽअप॒त्यं । क्षय॑ । नः ।

स्वऽर्ज॑न्मना । शेष॒सा । वावृ॑धानं ॥ १२ ॥

यं चक्षं यज्ञाग्रयमन्त्यश्चवानभिर्नित्यमुपयाति तं प्रजावतं मृत्वादिसहितं स्वपत्यं शोभनसंतानोपेतं स्वज-  
ननोरसेन शेषसा पुत्रेषु वावृधानं वर्धमानं चयं गृहं नोऽस्यं हे अग्ने देहीति शेषः ॥

पा॒हि नो॑ अग्ने र॒क्षसो॑ अ॒जुष्टा॑त्पा॒हि धूर्ते॑रर॒रुषो॑ अ॒घा॒योः ।

त्वा यु॒जा पृ॑तना॒यूर॑भि ष्यां ॥ १३ ॥

पा॒हि । नः । अग्ने । र॒क्षसः । अ॒जुष्टा॑त् । पा॒हि । धूर्तेः । अ॒ररु॑षः । अ॒घऽयोः ।

त्वा । यु॒जा । पृ॑तना॒ऽयून् । अ॒भि । स्यां ॥ १३ ॥

हे अग्ने नोऽस्मानजुष्टादप्रीतिविषयाद्रक्षसो राक्षसात्पाहि । रक्ष । किंचारण्योऽदातुरघायोः पापमिच्छतो  
धूर्तेर्हिंसकात्पाहि । अपि च त्वा त्वया युजा सहायभूतेन पृतनायून् पृतनाकामानभि ष्यां । अहमभिमवेयं ॥

से॒द्भिर्मी॑रत्य॒स्वन्या॑न्यच॒ वाजी॑ तन॒यो वी॒कुपा॑णिः ।

स॒हस्र॑पा॒था अ॒क्षरा॑ स॒मेति॑ ॥ १४ ॥

सः । इत् । अ॒ग्निः । अ॒ग्नीन॑ । अ॒ति । अ॒स्तु । अ॒न्यान् । यच॑ । वा॒जी । तन॒यः । वी॒कुऽपा॑णिः ।

स॒हस्र॑ऽपा॒थाः । अ॒क्षरा॑ । सं॒ऽएति॑ ॥ १४ ॥

स इत् स एवापिराहवनीयादिरक्षदीयोऽन्यानितरानन्यदीयानग्नीनत्वंसु । अतिमवतु । यच यस्मिन्नपौ  
वाग्नाग्निवान् बलवान्वा वीकुपाणिर्दृढहस्तः । वीकु च्यौत्नमिति बलनामसु पाठात् । सहस्रपाथा बहुज्ञो  
बहुस्थानो वा बहुदको वा तनयोऽस्यत्पुत्रोऽचराचरेण चयरहितेन स्तोत्रेण समेति सम्यक् परिवरतेति ।  
समर्थपुत्रवत् एवाभिरन्यदीयानग्नीनमिमवतीति भावः ॥

से॒द्भि॒र्यो व॑नुष्य॒तो नि॒पाति॑ स॒मे॒द्धार॑म॒हंस॑ उरु॒थात् ।

सु॒जा॒तासः॑ परि॒ चर॑न्ति वी॒राः ॥ १५ ॥

सः । इत् । अ॒ग्निः । यः । व॑नुष्य॒तः । नि॒ऽपाति॑ । सं॒ऽए॒द्धारं॑ । अ॒हंसः॑ । उ॒रु॒थात् ।

सु॒ऽजा॒तासः॑ । परि॒ । च॒रन्ति॑ । वी॒राः ॥ १५ ॥

यः समेद्धारं प्रबोधकं वनुष्यतो हिंसकात् । वनुष्यतिर्हेतिकमेति यास्तुः । उरुथात् अधिकादहंसः पापाश्च  
निपाति अत्यंतं वर्जति । यं च सुजातासः सुजन्मान एव वीराः स्रोतारः सुता वा परि चरन्ति स इत्  
स एवाग्निः ॥ ॥ १५ ॥



अयं सो अमिराहुतः पुरुचा यमीशानः समिद्धिं हविष्मान् ।

परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥ १६ ॥

अयं । सः । अग्निः । आहुतः । पुरुचा । यं । ईशानः । सं । इत् । इधे । हविष्मान् ।

परि । यं । एति । अध्वरेषु । होता ॥ १६ ॥

यममिमीशानः समृद्ध ऐश्वर्यमिच्छन् वा हविष्मान् यजमानः समिद्धिं सम्यक् दीपयति । य चाध्वरेषु हिंसारहितेषु यज्ञेषु होता देवानामाह्वाता पर्येति परिगच्छति सोऽयमग्निः पुरुचा वज्रपु देशेषु वज्रपु यज्ञेषु वाङ्मत आङ्गतिमिरमिङ्गतः ॥

त्वे अग्न आहवन्नानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या ।

उभा कृण्वंतो वहतू मियेधे ॥ १७ ॥

त्वे इति । अग्ने । आहवन्नानि । भूरि । ईशानासः । आ । जुहुयाम । नित्या ।

उभा । कृण्वंतः । वहतू इति । मियेधे ॥ १७ ॥

हे अग्ने त्वे त्वयीशानासो धनानामीश्वराः संतो नित्या नित्यान्यधिहोत्रादीन्नुभोभां वहतू वहनहेतू सौत्रं शस्त्रं च कृण्वंतः कुर्वंतो मियेधे यज्ञे भूरि वहन्त्याहवन्नानि हवीषा जुहुयामः आ जुहुयाम ॥

इमो अग्ने वीततमानि हव्याजसो वक्षि देवतातिमच्छ ।

प्रति न ई सुरभीणि व्यंतु ॥ १८ ॥

इमो इति । अग्ने । वीततमानि । हव्या । अजसः । वक्षि । देवताति । अच्छ ।

प्रति । नः । ई । सुरभीणि । व्यंतु ॥ १८ ॥

हे अग्ने त्वमजसोऽनवरतः सन् इमो इमानि वीततमान्यतिशयेन कांतानि हव्या हव्यानि देवताति देवानां समूहमभि वक्षि । वह । अच्छ गच्छ च । नोऽसदीयानि सुरभीणि शोभनानीमेतानि हव्यानि देवाः प्रति व्यंतु । प्रत्येकं कामयतां ॥

मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमंतये मा नो अस्यै ।

मा नः क्षुधे मा रक्षसे चृतावो मा नो दमे मा वने आ जुहूर्याः ॥ १९ ॥

मा । नः । अग्ने । अवीरते । परा । दा । दुःवाससे । अमंतये । मा । नः । अस्यै ।

मा । नः । क्षुधे । मा । रक्षसे । चृतवः । मा । नः । दमे । मा । वने । आ । जुहूर्याः ॥ १९ ॥

हे अग्ने नोऽस्मानवीरतेऽपुत्रतायै मा परा दाः । मा देहि । दुर्वाससे दुष्टवस्त्राय च नो मा परा दाः । प्रत्या अमंतयेऽभिहान्यै नोऽस्माका परा दाः । क्षुधेऽश्नायार्थं नोऽस्माका च परा दाः । रक्षसे बलिने ऽस्माका परा दाः । हे चृतावः सत्यवस्त्रये नोऽस्मान् दमे गृहे मा जुहूर्याः । मा हिंसीः ॥ ऊर्का काटिन्य इति धातुः ॥ वने चास्माका जुहूर्याः ॥

नू मे ब्रह्माण्यम् उच्छंशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।

रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २० ॥

नु । मे । ब्रह्माणि । अग्ने । उत् । शशाधि । त्वं । देव । मघवत्सभ्यः । सुसूदः ।  
रातौ । स्याम । उभयांसः । आ । ते । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ २० ॥

हे अग्ने मे मम मदर्थं ब्रह्माण्डानि नु विप्रमुच्छशाधि । उत्कर्षेण शोधितानि कुरु । किंच हे देव बीत-  
मानाये मघवद्भ्यो हविष्मद्भ्योऽस्माभ्यं सुसूदः । अन्तानि प्रेरय । ते त्वदीयाः यां रातौ दान उभयांसः स्तोत्रिणः  
शस्त्रिणश्च अथवा सुवन्तो यजमानाश्च वयमा स्ताम । अत्यर्थं भवेम । नोऽस्मान्यूनं त्वत्परिवाराश्च सर्वे  
स्वस्तिभिरविनाशिमिर्मग्लिः । तथा च यास्कः । स्वस्तीत्यविनाशनामास्तिरभिपूजितः स्वस्तीति । नि० ३. २१ ।  
सदा पात । रक्षत ॥ ॥ २६ ॥

त्वमग्ने सुहवो रणसंदृक् सुदीती सूनो सहसो दिदीहि ।  
मा ते सचा तनये नित्य आ धक्का वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् ॥ २१ ॥  
त्वं । अग्ने । सुऽहवः । रणऽसंदृक् । सुऽदीती । सूनो इति । सहसः । दिदीहि ।  
मा । ते इति । सचा । तनये । नित्ये । आ । धक् । मा । वीरः । अस्मत् । नर्यः । वि ।  
दासीत् ॥ २१ ॥

सहसः सूनो सहसः सुत हे अग्ने सुहवः स्वाङ्गानो रणसंदृक् रमणीयसंदर्शनस्त्वं सुदीती शोभनया दीप्या  
दिदीहि । दीप्यस्व । किंच तनये नित्य औरसे पुत्रे त्वे त्वं सचा सहायभूतो मा आ धक् । भामिधात्रीः ।  
अपि चास्मत् पृथग्भूतोऽस्माकं वा ॥ पञ्चर्थे पंचमी ॥ वीरः पुत्रो नर्यो नरहितो मा वि दासीत् । नोपजीयेत ॥

मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु देवेऽेष्वग्निषु प्र वोचः ।  
मा ते अस्मान्दुर्मतयो भूमाक्षिदेवस्य सूनो सहसो नशंत ॥ २२ ॥  
मा । नः । अग्ने । दुऽभृतये । सचा । एषु । देवऽइंऽेषु । अग्निषु । प्र । वोचः ।  
मा । ते । अस्मान् । दुऽमतयः । भूमात् । चित् । देवस्य । सूनो इति । सहसः । नशंत ॥ २२ ॥

हे अग्ने सचा सहायभूतस्त्वं देवेऽेष्वग्निभिः समिन्नेष्वेवग्निषु दुर्भृतये कृच्छ्रभरणाय नोऽस्मात्मा प्र  
वोचः । न ब्रूहि । त्वत्सहायभूता अपयो यथा मामकृच्छ्रेण विभृयुस्तथा ब्रूहीत्यर्थः । किंच सहसः सूनो हे  
वनस्य पुत्राये देवस्य बीतमानस्य ते तव दुर्मतयो निग्रहबुद्धयो भूमाक्षित् भूमादपि ॥ अत्र संप्रसारणं क्वादसं ॥  
प्रमादादपोत्यर्थः । अस्मात्मा नशंत । मा व्याभुवंतु । नशदिति व्याप्तिकर्मसु पाठात् ॥

स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यं ।  
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति ॥ २३ ॥  
सः । मर्तः । अग्ने । सुऽअनीक । रेवान् । अमर्त्ये । यः । आऽजुहोति । हव्यं ।  
सः । देवता । वसुऽवनिं । दधाति । यं । सूरिः । अर्थी । पृच्छमानः । एति ॥ २३ ॥

स्वनीक मुतेजस्क हे अग्ने अमर्त्येऽमनुष्ये देवतात्मनि त्वयि हव्यं हविर्यं आजुहोति स मर्तो मनुष्यो रेवान्  
भनवानवति । यं मर्त्यं सूरिः प्राज्ञोऽर्थी धनादिकामः पृच्छमानोऽसावुदारः क्वाक् इति पृच्छन्नेति अभिग-  
च्छति स एव मनुष्यो देवता देवताभ्यो वसुवनिं धनपोषं ददाति । यद्वा । स देवताभिर्वसुवनिं यजमानं  
दधाति धारयति यमपि सूरिः स्तोतार्यो प्रयोजनवान् पृच्छमानः कोऽसावपिरिति पृच्छमान एति ॥



महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वानयिं सूरिभ्य आ वह्ना बृहंतं  
येन वयं सहसावन्मदेमाविक्षितासु आयुषा सुवीराः ॥ २४ ॥

महः । नः । अग्ने । सुवितस्य । विद्वान् । रयिं । सूरिभ्यः । आ । वह् । बृहंतं ।  
येन । वयं । सहसावन् । मदेम । अविक्षितासः । आयुषा । सुवीराः ॥ २४ ॥

हे अग्ने नोऽस्यदीयस्व महो महतः सुवितस्य कल्याणस्य कर्मणो विद्वान् । अस्यदीयं कल्याणं कर्म जान-  
न्नित्यर्थः । त्वं सूरिभ्यः स्रोतुभ्योऽस्यभ्यं बृहंतं महान्तं रयिं धनमा वह । रयिमेव विशिनष्टि । हे सहसावन्  
बलवन्मदे येन धनेन वयं स्रोतारोऽविक्षितासोऽविक्षिता आयुषा पूर्णायुषः सुवीराः कल्याणपुत्रपौत्राश्च  
सन्तो मदेम हव्येम ॥

नू मे ब्रह्माण्यम् उच्छशाधि त्वं देव मघवन्नाः सुषूदः ।  
रातौ स्यामोभयांस आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५ ॥  
नु । मे । ब्रह्माणि । अग्ने । उत् । शशाधि । त्वं । देव । मघवन् । सुषूदः ।  
रातौ । स्याम । उभयांसः । आ । ते । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ २५ ॥

इयमुक् प्रागेव व्याख्याता ॥ ॥ २७ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थान्तरु देयाद्विवातीर्थमहेद्यरः ॥

इति श्रीमद्वाजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरवुक्कभूपाजसास्त्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण  
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये पंचमाष्टके पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥

यस्य निःशसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।  
निर्ममे तमहं वंदे विवातीर्थमहेद्यरः ॥

जुषस्व न इत्येकादशर्चं द्वितीयं मूक्तं वसिष्ठस्यार्थं त्रैपुमं । आप्रशब्दोक्तत्वादिदं तनूनपाद्रुहितं । समिद्धाद्या  
अपि विशेषा प्रत्युचं देवता उक्ताः । तथा चानुक्रम्यते । जुषस्वैकादशाप्रमिति ॥ पशाविष्टाविदमाप्रीमुक्त ।  
मूचितं च । जुषस्व नः समिधमिति वसिष्ठानां । आ० ३. २. इति ॥ पत्नीसंयाजे त्वाप्रयागस्य याज्या त्वाष्ट्रे  
पशावपि पुरोडाशस्थानुवाक्यमिति पूर्वमुक्तं ॥

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृण्वन् ।  
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥ १ ॥  
जुषस्व । नः । सं । इधं । अग्ने । अद्य । शोचं । बृहत् । यजतं । धूमं । मृण्वन् ।  
उप । स्पृश । दिव्यं । सानु । स्तूपैः । सं । रश्मिभिः । ततनः । सूर्यस्य ॥ १ ॥

हे अग्ने नोऽस्माकं समिधमद्य जुषस्व । सवस्व । यजतं यजनीयं प्रशस्तं धूममृण्वन् प्रेरयन् बृहदत्यंतं शोच ।  
दीप्यस्व च । किंच दिव्यमंतरिक्षमव सानु समुच्छितं स्तूपसंग्रहं रश्मिभिरुप स्पृश । अपि च सूर्यस्य रश्मिभिरु  
जोभिः सं ततनः । संगच्छस्व ॥

नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।

ये सुकृतवः शुचयो धियंघाः स्वदेति देवा उभयानि हव्या ॥ २ ॥

नराशंसस्य । महिमानं । एषां । उप । स्तोषाम् । यजतस्य । यज्ञैः ।

ये । सुऽकृतवः । शुचयः । धियंघाः । स्वदेति । देवाः । उभयानि । हव्या ॥ २ ॥

ये देवाः सुकृतवः सुप्रज्ञाः सुकर्माणो वा शुचयो दीप्तिमन्तो धियंघाः कर्मणां धारयितार उभयानि सौमिकानि च हविःसंस्थादीनि च हव्या हव्यानि स्वदेति स्वदयंति मधयंति तेषामेषां मध्ये यज्ञैर्हविर्भिः स्तोत्रैर्वा यजतस्व यजनीयस्व नराशंसस्व नरैः प्रशंसनीयस्यापि विशेषस्व महिमानं महत्त्वमुप स्तोषाम । वय-  
मुपसुमः । तथा च यास्तः । नरा अस्मिन्नासीनाः शंसन्ति । अपिरिति शाकपूषिर्नरैः प्रशस्यो भवति । तस्मैषा  
भवति । नराशंसस्व महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्व यज्ञैर्धियं सुकर्माणः शुचयो धियं धारयितारः स्वदयंतु  
देवा उभयानि हवींषि सौमं चेतरेण च । नि० ८. ६. इति ॥

ईकेन्यं वो असुरं सुदक्षमंतदूतं रोदसी सत्यवाचं ।

मनुष्वदमिं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥ ३ ॥

ईकेन्यं । वः । असुरं । सुऽदक्षं । अंतः । दूतं । रोदसी इति । सत्यऽवाचं ।

मनुष्वत् । अमिं । मनुना । संऽइद्धं । सं । अध्वराय । सदं । इत् । महेम ॥ ३ ॥

हे अध्वर्यवो यो यूयमीकेन्यं सुत्वमसुरं बलवंतं सुदवं सुप्रध्वं रोदसी रोदस्वोरंतर्मध्ये दूतं देवानां हवि-  
र्वहनार्थं चरंतं सत्यवाचं मनुष्वन्मनुष्यवन्मनुना समिद्धं यथेदानीं मनुष्याः समिद्धन्ते तथा पूर्वं मनुना प्रजाप-  
तिना समिद्धमपिमध्वराय यज्ञाय सदमित्सदैव सं महेम । संपूजयत ॥ मध्यमपुरुषस्व व्यत्ययेनोत्तमपुरुषत्वं ॥

सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृजते नमसा बर्हिर्मौ ।

आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वं ॥ ४ ॥

सपर्यवः । भरमाणाः । अभिऽज्ञु । प्र । वृजते । नमसा । बर्हिः । अमौ ।

आऽजुह्वानाः । घृतऽपृष्ठं । पृषत्ऽवत् । अध्वर्यवः । हविषा । मर्जयध्वं ॥ ४ ॥

सपर्यवः परिचरणमिच्छन्तोऽभिज्ञु अभिगतजानुकं भरमाणाः पादैर्भरन्तो बर्हिर्नमसा हविषा सहापौ प्र  
वृजते । प्रभरन्ति । तदेव विशदयति । हे अध्वर्यवो घृतपृष्ठं घृतसंस्मिक्तपृष्ठं पृषदत् स्खलविंदुभिर्युक्तं बर्हिर्हविषा  
सहाजुह्वाना मर्जयध्वं । अमिं परिचरत ॥

स्वाध्वोऽ वि दुरो देवयंतोऽशिश्नयू रथयुर्देवताता ।

पूर्वीं शिशुं न मातरां रिहाणे समयुवो न समनेष्वंजन् ॥ ५ ॥

सुऽआध्वः । वि । दुरः । देवऽयंतः । अशिश्नयुः । रथऽयुः । देवऽताता ।

पूर्वी इति । शिशुं । न । मातरां । रिहाणे इति । सं । अयुवः । न । समनेषु । अंजन् ॥ ५ ॥

स्वाध्वः सुकर्माणो देवयंतो देवकामा यजमाना रथयू रथकामाश्च ॥ असि पूर्वसवर्णो ब्रह्मस्व ॥ देवताता  
देवतातो यज्ञे दुरो यज्ञगृहद्वाराणि व्यशिश्नयुः । आश्रितवंतः । किंच समनेषु यज्ञेषु पूर्वीं प्राचीनि प्राग्ये  
बुद्धपभृतां शिशुं न वत्समिव मातरौ गवौ रिहाणे अमिं लिहानि अयुवो न यथा नद्यः चेचाण्डुदकेन तद्वत्स-  
मंजन् । अध्वर्यव आध्वेन समंजन्ति ॥ ५ ॥



उ॒त योष॑णे दि॒व्ये म॒ही न॑ उ॒षासा॑न॒क्ता सु॒दुधे॑व धे॒नुः ।

ब॒र्हिष॑दा पु॒रुहू॑ते म॒घोनी॑ आ य॒ज्ञिये॑ सुवि॒ताय॑ अयेतां ॥ ६ ॥

उ॒त । योष॑णे इति । दि॒व्ये इति । म॒ही इति । नः । उ॒षसा॑न॒क्ता । सु॒दुधा॑ऽइव । धे॒नुः ।

ब॒र्हिऽस॑दा । पु॒रुहू॑ते इति पु॒रुऽहू॑ते । म॒घोनी॑ इति । आ । य॒ज्ञिये॑ इति । सुवि॒ताय॑ ।

अये॒तां ॥ ६ ॥

उतापि च योषणे युवती स्त्रीरूपे वा दिव्ये दिवि मये मही महती बर्हिषदा बर्हिषि सीदती पुब्रह्मते यज्जमिः स्तुते मघोनी धनवती यज्ञिये यज्ञाहं उषासानक्ताहोरात्रे सुदुधेव धेनुः कामधुधेनुरिव नोऽस्यान सविताय कक्षाणाया अयेतां ॥

वि॒प्रा य॒ज्ञेषु॑ मा॒नुषे॑षु का॒रु म॒न्ये वां जा॒तवे॑दसा॒ यज॑ध्ये ।

ऊ॒र्ध्वे नो॑ अ॒ध्वरं॑ कृ॒तं ह॒वेषु॑ ता दे॒वेषु॑ व॒नथो॑ वा॒र्याणि॑ ॥ ७ ॥

वि॒प्रा । य॒ज्ञेषु॑ । मा॒नुषे॑षु । का॒रु इति । म॒न्ये । वां । जा॒तऽवे॑दसा । यज॑ध्ये ।

ऊ॒र्ध्वे । नः । अ॒ध्वरं॑ । कृ॒तं । ह॒वेषु॑ । ता । दे॒वेषु॑ । व॒न॒थः । वा॒र्याणि॑ ॥ ७ ॥

हे देव्या होतारी विप्रा मेधाविनी जातवेदसा जातधनी मानुषेषु मनुष्यैः क्रियमाणेषु यज्ञेषु कारु कर्मणां कर्तारी वां युवां यजध्ये यष्टुं मन्ये । स्त्रीमि । किंच हवेषु हवनेषु स्त्रीषु सत्सु नोऽस्याकमध्वरमकुटिलं यज्ञमूर्धं देवामिमुखं दत्तं । ज्ञातं च । अपि च ता ती युवां देवेषु विद्यमानानि वार्याणि धनानि वनथः । संभवथः । तान्वत्सर्थं संप्रयच्छथ इत्यर्थः ॥

आ भार॑ती भार॒तीभिः॑ स॒जोषा॑ इ॒ळा दे॒वैर्म॑नु॒षेभि॑र॒ग्निः ।

सर॑स्वती सार॒स्वतेभि॑र्वाक् ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरे॑दं स॒दंतु॑ ॥ ८ ॥

आ । भार॑ती । भार॒तीभिः॑ । स॒ऽजोषा॑ । इ॒ळा । दे॒वैः । म॒नु॒षेभिः॑ । अ॒ग्निः ।

सर॑स्वती । सार॒स्वतेभिः॑ । अ॒र्वाक् । ति॒स्रः । दे॒वीः । ब॒र्हिः । आ । इ॒दं । स॒दंतु॑ ॥ ८ ॥

एतदायुक्त्वत्तुष्टयं द्वितीयाष्टकस्याष्टमाध्याये । अखे० ३. ४. ८-११. । यद्यपि व्याख्यातं तथापि अवधानात्संबेपतोऽद्यापि व्याख्यायते । भारती भरतस्त्रादित्यस्य पत्नी भारतीभिः सजोषाः सहितेळा मनुष्येभिर्मनुष्य-लोकाभवेदैवैः सार्धमपिरागच्छतु । सरस्वती सारस्वतेभिः सारस्वतिर्मध्यमस्थानेदैवैः सार्धमर्वागस्तदभिमुख-मागच्छतु । आगत्य तिस्रो देवीर्देव्यः ॥ प्रथमार्थे द्वितीया ॥ बर्हिरिदमा सदंतु ॥

तन्न॑स्तुरी॒पम॑धं पोष॒यित्नु॑ दे॒वं त्वष्ट॑र्वि ररा॒णः स्य॑स्व ।

यतो॑ वी॒रः क॑र्म॒ण्यः सु॒दक्षो॑ यु॒क्तया॑वा जा॒यते॑ दे॒वका॑मः ॥ ९ ॥

तत् । नः । तुरी॒पं । अ॒धं । पोष॒यित्नु॑ । दे॒वं । त्वष्ट॑ । वि । ररा॒णः । स्य॑स्वेति॑ स्यस्व ।

यतः॑ । वी॒रः । क॑र्म॒ण्यः । सु॒दक्षः॑ । यु॒क्तऽया॑वा । जा॒यते॑ । दे॒वऽका॑मः ॥ ९ ॥

देव द्योतमान हे त्वष्टा रराणी रममाणस्त्वं नोऽस्याकं तुरीपं स्वरितमाप्नुवत् पोषयितु पोषकरं तद्वेतो वि स्तस्व । विश्लेषणावसानं प्रापय । विमोचयेत्यर्थः । यतो रेतसः कर्मण्यः कर्मसु साधुः सुदक्षः सुवज्रो युक्तयावा सोमसुत देवकामो वीरः पुत्रो जायते ॥

वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निहविः शमिता सृदयाति ।  
 सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०॥  
 वनस्पते । अव । सृज । उप । देवान । अग्निः । हविः । शमिता । सृदयाति ।  
 सः । इत् । ऊं इति । होता । सत्यतरः । यजाति । यथा । देवानां । जनिमानि । वेद ॥१०॥

हे वनस्पते देवानुपाव सृज । अथ परोक्षस्मृतिः । अग्निर्वनस्पतिः शमिता शमिचरूपः सन् हविः सृद-  
 याति । प्रेरयतु ॥ संत एव वनस्पतिहोता देवानामाह्वाता सत्यतरोऽपि सन् यजाति । यजतु । देवानां  
 जनिमानि जननानि यथा स्वयं वेद तथा ॥

आ याह्ये समिधानो अर्वाङ्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।  
 बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्तां ॥११॥  
 आ । याहि । अग्ने । संऽऽधानः । अर्वाङ् । द्रेण । देवैः । सऽसरथं । तुरेभिः ।  
 बर्हिः । नः । आस्तां । अदितिः । सुऽपुत्रा । स्वाहा । देवाः । अमृताः । मादयन्तां ॥११॥

हे अग्ने समिधान अर्वागस्त्यदभिमुखस्त्वामिद्रेण तुरेभिस्त्वरितदेवैश्च सरथं समानरथ यथा भवति तथा  
 आ याहि । आगच्छ । नोऽस्माक बर्हिरध्यास्तामदितश्च सुपुत्रा कन्याणपुत्रा । स्वाहा देवाश्च सर्वेऽमृताः संतो  
 मादयन्तामिति ॥ ॥०॥

अग्निं वो देवमिति दशर्चं तृतीयं मृक्तं वसिष्ठस्यार्थं वैष्टुभमासेयं । अत्रेयमनुक्रमणिका । अग्निं वो दशेति ॥  
 अग्निं वो देवमित्येतदादीनि दश मृक्तानि तृतीयचतुर्थवर्जितानि प्रातरनुवाक आग्नेये क्रतौ वैष्टुभे छंदसा-  
 श्विनशस्त्रे च विनियुक्तानि । मृचितं च । अग्निं वो देवमिति दशानां तृतीयचतुर्थे उच्यते । आ० ४. १३. इति ॥  
 ब्यूहं दशरात्रेऽष्टमेऽह्नोदं मृक्तमाज्यशस्त्रं । मूच्यते हि । द्वितीयस्याग्निं वो देवमित्याज्यं । आ० ८. १०. इति ॥

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वं ।  
 यो मर्त्येषु निध्रुविर्जृतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥१॥  
 अग्निं । वः । देवं । अग्निऽभिः । सऽजोषाः । यजिष्ठं । दूतं । अध्वरे । कृणुध्वं ।  
 यः । मर्त्येषु । निऽध्रुविः । जृतऽवा । तपुःऽमूर्धा । घृतऽअन्नः । पावकः ॥१॥

हे देवा वो ययं देवं श्रोतमानमग्निभिरन्यैरग्निभिः सजोषाः सजोषसं सहितं ॥ द्वितीयार्थे प्रथमा ॥ यजिष्ठं  
 यष्टुतममग्निमध्वरं कौटिल्यरहितं यज्ञं दूतं कृणुध्वं । कुरुत । योऽपिदेवोऽपि सन् मर्त्येषु निध्रुविर्जितर  
 ध्रुवलिप्राति जृतावा यज्ञवान सत्यवान्वा तपुर्मूर्धा तापकतेजा घृतान्नः पावकः शोधकश्च भवति ॥

प्रोथदशो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद्वस्थात् ।  
 आदस्य वातो अन्नु वाति गोचिरधं स्म ते व्रजनं कृणमस्ति ॥२॥  
 प्रोथत । अश्वः । न । यवसे । अविष्यन् । यदा । महः । संऽवरणात् । वि । अस्थात् ।  
 आत । अस्य । वातः । अन्नु । वाति । गोचिः । अधः । स्म । ते । व्रजनं । कृणं । अस्ति ॥२॥

यवमे घामेऽविष्यन् भक्षयन् प्रोथत् शब्दं कुर्वन् संवरणाद्वो न अश्व इव महो महतः संवरणाग्निरोधात्



दावरूपोऽपिर्यदा व्यस्रात् सततेषु वृक्षेषु वितिष्ठते आत्तदास्यामेः शोचिरर्चिरनु वातो वाति । अथ प्रत्यक्ष-  
स्रुतिः । अधानंतरं हे अग्ने ते तव व्रजं वर्त्म छण्यमसि । भवति । स्रुति पूरणः ॥

उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरंत्यजरा इधानाः ।

अच्छा द्यामरूषो धूम एति सं दूतो अग्ने ईयसे हि देवान् ॥३॥

उत् । यस्य । ते । नवऽजातस्य । वृष्णः । अग्ने । चरंति । अजराः । इधानाः ।

अच्छ । द्यां । अरूषः । धूमः । एति । सं । दूतः । अग्ने । ईयसे । हि । देवान् ॥३॥

हे अग्ने नवजातस्य नवप्रादुर्भावस्य वृष्णो वर्षितुर्यस्य ते तवाजरा जरारहिता ज्वाला इधाना उच्चरंति  
उन्नच्छंति अस्यास्य आरोचमानो धूमो व्यामच्छ दिवमभ्येति । गच्छति । हे अग्ने त्वं दूतः सन् देवान्  
समीयसे हि । संप्राप्नोषि च ॥

वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेतृषु यदन्ना समवृक्त जंभैः ।

सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि ॥४॥

वि । यस्य । ते । पृथिव्यां । पाजः । अश्रेत् । तृषु । यत् । अन्ना । सऽअवृक्त । जंभैः ।

सेनाऽइव । सृष्टा । प्रऽसितिः । ते । एति । यवं । न । दस्म । जुह्वा । विवेक्षि ॥४॥

हे अग्ने यस्य दावरूपस्य ते तव पाजस्तेजः पृथिव्यां भूम्यां तृषु क्षिप्रं अश्रेत् विश्रयति यद्यदात्तानि काष्ठा-  
दीनि जंभैर्दत्तैः । ज्वालाभिरित्यर्थः । समवृक्त वृक्तं खादति । तथा सेनेव दृष्टोद्युक्ता ते तव प्रसितिर्जास्रैति ।  
गच्छति । दस्म हे दर्शनीयामे त्वं यवं न यवमिव जुह्वा ज्वालया विवेक्षि । काष्ठादीनि भक्षयसि व्याप्नोषि वा ॥

तमिहोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयंत नरः ।

निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ॥५॥

तं । इत् । दोषा । तं । उषसि । यविष्ठं । अग्निं । अत्यं । न । मर्जयंत । नरः ।

निऽशिशानाः । अतिथिः । अस्य । योनौ । दीदाय । शोचिः । आऽहुतस्य । वृष्णः ॥५॥

यविष्ठं युवतममतिथिमतिथिवत्पूज्यं तमिहोषा दीपा दीपायां रात्रावुषसि वासरेऽपि तमेवास्यामे-  
योनौ स्थान आहवनीयायतने धिष्ये वा निशिशाना दीपयंतो नरो मनुष्या अत्यं न सततगमनयुक्तं  
बोढारमश्चमिव मर्जयंत । परिचरंति । आहुतस्य च वृष्णः कामानां वर्षितुरमेतस्य शोचिर्ज्वाला दीदाय ।  
दीप्यते ॥ ॥३॥

सुसंदृक् स्वनीक प्रतीकं वि यदुक्मो न रोचंस उपाके ।

दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चिचो न सूरः प्रति चक्षि भानुं ॥६॥

सुऽसंदृक् । ते । सुऽअनीक । प्रतीकं । वि । यत् । रुक्मः । न । रोचंसे । उपाके ।

दिवः । न । ते । तन्यतुः । एति । शुष्मः । चिचः । न । सूरः । प्रति । चक्षि । भानुं ॥६॥

स्वनोक हे सुतेजस्कापि त्वं यद्यदा रुक्मो न सूर्य इव । सुवर्णमिव वा । उपाकेऽंतिके वि रोचंसे विशेषेण  
दीप्यसे तदा ते तव प्रतीकं रूपमंगं वा सुसंदृक् सुसंदर्शनं भवति । किंच ते तव शुष्मो दिवोऽंतरिक्षात्तन्य  
तुर्नाशनिरिवैति । निर्गच्छति । चिचो दर्शनीयः सूर्यो न सूर्य इव भानुं स्वां दीप्तिं प्रति चक्षि । प्रदर्शयसि ।

यथा वः स्वाहामये दाशेम परीळाभिर्धृतवद्भिश्च हव्यैः ।

तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूभिरायसीभिर्नि पाहि ॥ ७ ॥

यथा । वः । स्वाहा । अमये । दाशेम । परि । इळाभिः । धृतवत् ऽभिः । च । हव्यैः ।

तेभिः । नः । अग्ने । अमितैः । महः ऽभिः । शतं । पूः ऽभिः । आयसीभिः । नि । पाहि ॥ ७ ॥

हे अग्ने अमये ऽग्रस्य ते च वस्तुभ्यं स्वाहा स्वाङ्गतं हविः । किंच यथा वयमिळाभिर्गोभिर्गोविकारैः बीरादिभिर्धृतवद्भिर्धृतसहितैर्हव्यैः पुरोडाशादिभिश्च दाशेम परिचरेम तथा त्वमपि तेभिः प्रसिद्धैरमितैरपरिभिर्तेर्महोभिस्तेजोभिः शतमपरिमिताभिरायसीभिर्हिरण्यमीभिः । इवमय इति हिरण्यनामसु पाठान् । पूभिर्नगरीभिरेव नोऽस्मान् नि पाहि । नितरां रच ॥

या वा ते संति दाशुषे अर्धृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुष्याः ।

ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत्सूरीञ्जरितृजातवेदः ॥ ८ ॥

याः । वा । ते । संति । दाशुषे । अर्धृष्टाः । गिरः । वा । याभिः । नृऽवतीः । उरुष्याः ।

ताभिः । नः । सूनो इति । सहसः । नि । पाहि । स्मत् । सूरीन् । जरितृन् । जात ऽवेदः ॥ ८ ॥

सहसः सूनो हे वल्लभ पुत्र जातवेदोऽग्ने दाशुषे दाशुषस्ते तव या वा याश्च ज्वालाः संति । अर्धृष्टा रक्षोभिरप्रधृषिता गिरो वा गिरश्च संति । याभिर्गोभिर्नृवतीः पुत्रवतीः प्रजा उरुष्या रक्षेः ताभिर्दमयीभिर्नोऽस्मान् । स्यादिति प्रशस्तवचनः । प्रशस्तान् सूरीन् हविषां प्रेरकान् जरितृन् स्तोतृन् नि पाहि । नितरां रच ॥

निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात्स्वया कृपा तन्वा रोचमानः ।

आ यो माचोऽशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय मुक्रतुः पावकः ॥ ९ ॥

निः । यत् । पूता ऽइव । स्वऽधितिः । शुचिः । गात् । स्वया । कृपा । तन्वा । रोचमानः ।

आ । यः । माचोः । अशेन्यः । जनिष्ट । देवऽयज्याय । सुऽक्रतुः । पावकः ॥ ९ ॥

यद्यदा शुचिरग्निः स्वया स्वकीयया तन्वा ततया ह्यपा ह्यपया दीप्या रोचमानः पूतेव स्वधितिक्रीणीकृता स्वधितिरिव निर्गात् काष्ठाग्निर्गच्छति तदानीं देवयज्याय भवति । तदेव विशदयति । योऽग्निः अशेन्यः कामनीयः मुक्रतुः मुकर्मा पावकः शोधकश्च माचोररक्षोरा जनिष्ट आज्ञायत स देवयज्याय भवतीति ॥

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।

विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च संतु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

एता । नः । अग्ने । सौभगा । दिदीहि । अपि । क्रतुं । सुऽचेतसं । वतेम ।

विश्वा । स्तोतृभ्यः । गृणते । च । संतु । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ १० ॥

हे अग्ने एतैतानि परिदृष्टमानानि सौभगा सौभगानि शोभनानि धनानि नोऽस्माभ्यं दिदीहि । दीपय देहि वा । अप्यापि च क्रतुं कर्म यज्ञानां कर्तारं वा सुचेतसं शोभनप्रज्ञानयुक्तं सुप्रज्ञानं पुत्रं वा वतेम । संभजेमहि ॥ वनतेः संभजनार्थस्य वर्णांतरागमे सति रूपं ॥ विश्वा विश्वानि धनानि स्तोतृभ्य उन्नातृभ्यो गृणते शंसते च संतु । यूयं त्वत्परिवाराय सर्वे यूयं नोऽस्मान् स्वस्तिभिः जैः सदा सर्वदा पात । रचत ॥ ४ ॥

प्र वः शुकार्येति दशचं चतुर्थं मृतं वसिष्ठस्यार्थं वैदुभमायेयं । प्र व इत्यनुक्रांतं ॥ प्रातरनुवाकाच्चिनशस्त्र-



योर्देशसूक्तमध्ये द्वितीयत्वेनोक्तः सूक्तविनियोगः ॥ एकादशिन आयेये पशी प्र वः शुक्रायेत्येया वपाया याज्या । सूचितं च । प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिः । आ० ३. ७. इति ॥

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चामये सुपूतं ।

यो दैव्यानि मानुषा जनुंषंतर्विश्वा नि विद्वना जिगाति ॥ १ ॥

प्र । वः । शुक्राय । भानवे । भरध्वं । हव्यं । मतिं । च । अमये । सुपूतं ।

यः । दैव्यानि । मानुषा । जनुंषि । अंतः । विश्वानि । विद्वना । जिगाति ॥ १ ॥

हे हविषां वोढारो यो ध्रुवं शुक्राय शुक्राय भानवे दीप्तायापये सुपूतं सुमुञ्जं हव्यं मतिं सुतिं च प्र भरध्वं । योऽभिर्दैव्यानि मानुषा मानुषाणि च विश्वानि जनुंषि आतान्यंतरंतरा विद्वना प्रज्ञानेन मार्गेण वा जिगाति गच्छति । दैवान्यनुषांश्चांतरा हवींषि नेतुं वर्तत इत्यर्थः ॥

स गृत्सो अमिस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।

सं यो वना युवते शुचिदभूरि चिदन्ना समिदन्ति सद्यः ॥ २ ॥

सः । गृत्सः । अमिः । तरुणः । चित् । अस्तु । यतः । यविष्ठः । अजनिष्ट । मातुः ।

सं । यः । वना । युवते । शुचिदन् । भूरि । चित् । अन्ना । सं । इत् । अन्ति । सद्यः ॥ २ ॥

स चित्स एव गृत्सो मेधावी । तथा च यास्कः । गृत्स इति मेधाविनाम । नि० ९. ५. । अमिस्तरुणस्तारको भवति । तदा यतो यदा मातुररण्या यविष्ठो युवतमः सन् अजनिष्ट । योऽमिः शुचिदन् दीप्तदंतो वना वनानि सं युवते आत्मना संयोजयति । किंच भूरि चित् भूरीष्यन्ना स्त्रीयान्यन्नानि सद्य इत्सद्य एव समन्ति सम्यग्भवयति ॥

अस्य देवस्य संसदनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभे ।

नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोचं दुरोकममिरायवे शुशोच ॥ ३ ॥

अस्य । देवस्य । संऽसदि । अनीके । यं । मर्तासः । श्येतं । जगृभे ।

नि । यः । गृभं । पौरुषेयीं । उवोचं । दुःऽओकं । अमिः । आयवे । शुशोच ॥ ३ ॥

अस्य देवस्यापेरनीके मुखे संसदि स्थाने श्येतं श्येतं शुभं यमसिं मर्तासो मनुष्या जगृभे परिगृह्णन्ति । यस्यामिः पौरुषेयीं पुद्गलैः क्रियमाणां गृभं गृभीतं न्युवोच ॥ अच वचिः सेवार्थं वर्तते । मिषेवत इत्यर्थः । सोऽमिरायवे मनुष्यार्थं । द्रुह्यव आयव इति मनुष्यनामसु पाठात् । दुरोकं सपत्नीर्दुःखं यथा भवति तथा शुशोच । दीप्यते ॥

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वमिरमृतो नि धायि ।

स मा नो अच जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥ ४ ॥

अयं । कविः । अकविषु । प्रऽचेताः । मर्तेषु । अमिः । अमृतः । नि । धायि ।

सः । मा । नः । अच । जुहुरः । सहस्वः । सदा । त्वे इति । सुऽमनसः । स्याम ॥ ४ ॥

कविः क्रांतदृक् प्रचेताः प्रकाशकोऽमृतो मरणधर्मरहितोऽयममिरकविष्वक्रांतदृक् मर्तेषु मरणधर्मकेषु

नि धायि । निहितः । अथ प्रत्यक्षसुतिः । सहस्रो बलवन्नमे त्वे यस्मिन् त्वयि सदा वयं सुमनसः सुमतयः  
स्वाम स त्वमवास्मिहोके नोऽस्मान्मा जुजरः । मा हिंसीः ॥

आ यो योनिं देवकृतं ससाद् क्रत्वा ह्य॑मिर्मृताँ अतारीत् ।

तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं विभर्ति ॥ ५ ॥

आ । यः । योनिं । देवऽकृतं । ससाद् । क्रत्वा । हि । अग्निः । अमृतान् । अतारीत् ।

तं । ओषधीः । च । वनिनः । च । गर्भं । भूमिः । च । विश्वऽधायसं । विभर्ति ॥ ५ ॥

योऽपिर्देवकृतं देवैः कल्पितं योनिं स्थानमा ससाद् अध्यास्ते । किमर्थं देवाः स्थानं कल्पयन्त्यपेरित्वत  
आह । हि यस्मात्कारणादग्निः क्रत्वा प्रज्ञयाऽमृतान्देवानतारीत् । विश्वधायसं विश्वस्य धारकमोषधीरो-  
षधयो वनिनश्च वृक्षाश्च गर्भं गर्भं संतं तं विभर्ति । भूमिश्च विभर्ति ॥ श्रुतमेव विभर्तीति पदं वज्रवचनांततया  
विपरिणतं सदोषधीभिर्वनिमिश्च संवध्यते ॥ ५ ॥

ईशे ह्य॑मिर्मृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।

मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥ ६ ॥

ईशे । हि । अग्निः । अमृतस्य । भूरैः । ईशे । रायः । सुऽवीर्यस्य । दातोः ।

मा । त्वा । वयं । सहसाऽवन् । अवीराः । मा । अप्सवः । परि । षदाम । मा । अदुवः ॥ ६ ॥

अमृतस्यान्नमुदकं वा ॥ द्वितीयार्थे षष्ठी ॥ भूरैरधिकं दातोर्दातुमग्निरीशे । ईशे हि । सुवीर्यस्य शोभनवी-  
र्ययुक्तं रायो धनं दातुमीशे । ईशे । अथ प्रत्यक्षसुतिः । सहसावन् हे बलवन्नमे वयं वसिष्ठा अवीराः पुत्रादि-  
रहिताः संतो मा परि षदाम । मा पर्युपविशाम । अप्सवो रूपरहिताश्च संतो मा परि षदाम । तथा च  
यास्कः । अप्स इति रूपनाम । नि० ५. १३. इति । अदुवः परिचरणहीनाश्च मा परि षदाम ॥

परिषद्यं हरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।

न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचैतानस्य मा पथो वि दुष्मः ॥ ७ ॥

परिऽसद्यं । हि । हरणस्य । रेक्णः । नित्यस्य । रायः । पतयः । स्याम ।

न । शेषः । अग्ने । अन्यऽजातं । अस्ति । अचैतानस्य । मा । पथः । वि । दुष्मः ॥ ७ ॥

हरणस्यानुणस्य रेक्णो धनं परिषद्यं पर्याप्तं भवति हि । अतो नित्यस्यापुनर्देयस्य रायो धनस्य पतयः  
स्याम । यद्वा । हरणस्य रेक्णो धनं परिषद्यं परिहर्तव्यं भवति । अतो नित्यस्यैरस्य रायः पुत्राख्यस्य  
धनस्य पतयः स्याम । हे अग्ने अन्यजातमनौरसं शेषोऽपत्यं नास्ति । न भवति । अचेतानस्याविदुषः पथो  
मार्गान् पुत्रोत्पादनप्रमुखान्मार्गान् मा वि दुष्मः । मा विदुदुषः ॥ दुष वैकृत्य इति धातुः ॥ तथा च यास्कः ।  
परिहर्तव्यं हि नोपमर्त्यमरणस्य रेक्णोऽरणोऽपाणो भवति रेक्ण इति धननाम रिच्यते प्रयतः । नित्यस्य  
रायः पतयः स्याम । न शेषो अग्ने अन्यजातमस्ति । शेष इत्यपत्यनाम शिष्यते प्रयतोऽचेतयमानस्य तत्प्रमत्तस्य  
भवति मा नः पथो विदुदुषः । नि० ३. २. इति ॥

नहि यभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मंतवा उ ।

अथा चिदोक्तः पुनरित्स एत्या नो याज्यभीषाळेतृ नव्यः ॥ ८ ॥



न॒हि । य॒भाय॑ । अ॒र॒णः । सु॒ऽशे॒वः । अ॒न्य॒ऽउ॒दर्यः॑ । म॒न॒सा । म॒त॒वै । ऊं॒ इति॑ ।  
अ॒ध॒ । चि॒त् । ओ॒कः । पु॒नः । इ॒त् । स॒ । ए॒ति॒ । आ॒ । नः॒ । वा॒जी । अ॒भी॒षा॒ट् । ए॒तु॒ । न॒व्यः ॥ ८ ॥

पूर्वस्यामृच्युक्त एवार्थोऽत्र प्रपंच्यते । अरणीऽरममाणोऽन्योदर्यः सुशेवः सुखतमः सन् यभाय पुत्रत्वेन ग्रहणाय मनसा मंतवा उ मनसापि मंतव्यो न भवति हि । अध चिदपि च सोऽन्योदर्य ओक इत संस्थान-  
मेव पुनरेति । प्राप्नोति । अतो वाज्यन्नवानभीषाट् शत्रूणामभिभविता नव्यो नवजातः पत्रो नोऽस्मान्तु ।  
आगच्छतु ॥

त्व॒मग्ने॑ व॒नुष्य॒तो नि॑ पा॒हि त्व॒मु॒ नः॒ सह॒सा॒व॒न्न॒व॒द्यात् ।  
सं॒ त्वा॒ ध्व॒स्म॒न्व॒द्भ्येतु॑ पा॒थः सं॒ र॒यिः॒ स्पृ॒ह॒याय्यः॑ स॒ह॒स्री ॥ ९ ॥  
त्वं । अ॒ग्ने॒ । व॒नुष्य॒तः । नि॒ । पा॒हि॒ । त्वं । ऊं॒ इति॑ । नः॒ । स॒ह॒सा॒ऽव॒न् । अ॒व॒द्यात् ।  
सं॒ । त्वा॒ । ध्व॒स्म॒न्ऽव॒त् । अ॒भि॒ । ए॒तु॒ । पा॒थः । सं॒ । र॒यिः । स्पृ॒ह॒याय्यः॑ । स॒ह॒स्री ॥ ९ ॥

हे अग्ने त्वं वनुष्यतो हिंसकात्तोऽस्मान्नि पाहि । त्वमु त्वमेवावद्यात्पापात् नोऽस्मान्नि पाहि । त्वा त्वां  
ध्वस्मन्वत् ध्वस्तदोषं पाथोऽन्नं हविः समभ्येतु । सम्यक् प्राप्नोतु । अपि चास्मान् स्पृहयाय्यः स्पृहणीयः सहस्री  
सहस्रसंख्याको रयिरभ्येतु ॥

ए॒ता नो॑ अ॒ग्ने सौ॒भगा॑ दि॒दी॒द्यपि॑ क॒र्तुं सु॒चेत॑सं व॒तेम॑ ।  
वि॒श्वा स्तो॒तृभ्यो॑ गृ॒णते॑ च॒ संतु॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॑ स॒दा नः॑ ॥ १० ॥  
ए॒ता । नः॒ । अ॒ग्ने॒ । सौ॒भगा॑ । दि॒दी॒हि॒ । अ॒पि॑ । क॒र्तुं । सु॒ऽचेत॑सं । व॒तेम॑ ।  
वि॒श्वा । स्तो॒तृ॒भ्यः॑ । गृ॒णते॑ । च॒ । संतु॑ । यू॒यं । पा॑त । स्व॒स्ति॒ऽभिः॑ । स॒दा । नः॑ ॥ १० ॥

एषा अग्न्याख्याता ॥ ६ ॥

प्रापये तवस इति नवर्चं पंचमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं वैदुभं वैश्वानराग्निदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । प्रापये  
नव वैश्वानरीयं त्विति ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

प्रा॒पये॑ त॒वसे॑ भ॒र॒ध्वं गि॒रं दि॒वो अ॒र॒तये॑ पृ॒थि॒व्याः ।  
यो वि॒श्वेषा॑म॒मृता॑नामु॒पस्थे॑ वै॒श्वान॒रो वा॒वृ॒धे जा॑गृ॒वद्भिः॑ ॥ १ ॥  
प्र॒ । अ॒पये॑ । त॒वसे॑ । भ॒र॒ध्वं । गि॒रं । दि॒वः । अ॒र॒तये॑ । पृ॒थि॒व्याः ।  
यः । वि॒श्वेषां॑ । अ॒मृता॑नां । उ॒प॒ऽस्थे॑ । वै॒श्वान॒रः । वा॒वृ॒धे । जा॑गृ॒वत्॒ऽभिः॑ ॥ १ ॥

हे स्तोतारस्तवसे प्रवृद्धाय दिवोऽंतरिक्षस्य पृथिव्याश्चरतये यन्नेऽपये वैश्वानरसंज्ञकायापये गिरं स्मृतिं  
प्र भरध्वं । यो वैश्वानरो विश्वनरहितोऽभिर्विश्वेषां सर्वेषाममृतानां देवानामुपस्थ उपस्थाने यज्ञे जागृवद्भिः  
प्रवृजैर्देवैः सहितः सन् ववृधे स्मृतिमिहंविर्मिथ्य वर्धते ॥

पृ॒ष्टो दि॒वि धा॒य्य॒ग्निः॑ पृ॒थि॒व्यां ने॒ता सि॑धू॒नां वृ॒ष॒भः॑ स्ति॒या॒नां ।  
स मा॒नु॒षी॒र॒भि॒ विशो॑ वि॒ भा॒ति वै॒श्वान॒रो वा॒वृ॒धानो॑ व॒रेण॑ ॥ २ ॥  
पृ॒ष्टः । दि॒वि॒ । धा॒यि॑ । अ॒ग्निः॑ । पृ॒थि॒व्यां । ने॒ता । सि॑धू॒नां । वृ॒ष॒भः॑ । स्ति॒या॒नां ।  
सः । मा॒नु॒षीः॑ । अ॒भि॒ । वि॒शः॑ । वि॒ । भा॒ति॒ । वै॒श्वान॒रः॑ । वा॒वृ॒धा॒नः॑ । व॒रेण॑ ॥ २ ॥

सिंधूनां नदीनां नेता स्त्रियानामपां । स्त्रिया आपो भवन्ति स्थायमादिति यास्कवचनात् । नि० ६. १७. ।  
वृषभो वर्धिता पृष्टोऽर्चितक्षेत्रसा संपृक्तो वा योऽभिर्दिवंतरिषे पृथिव्यां च धाधि न्यधाधि स वैश्वानरो  
विश्वनरहितोऽभिर्वरेण अष्टेन हविषा तेजसा वा वाग्रधानो वर्धमानः सन् मातृवीर्विशोऽभि मातृवीः प्रजाः  
प्रति वि भाति ॥

त्वङ्मिया विशं आयन्नसिंक्लीरसमना जहतीर्भोजनानि ।

वैश्वानर पूरवे शोष्चानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः ॥ ३ ॥

त्वत् । भिया । विशः । आयन् । असिंक्लीः । असमनाः । जहतीः । भोजनानि ।

वैश्वानर । पूरवे । शोष्चानः । पुरः । यत् । अग्ने । दरयन् । अदीदेः ॥ ३ ॥

हे वैश्वानर विश्वनरहिताग्ने त्वत्त्वत्तो भिया भीत्यासिंक्लीरसितवर्णा राजस्यः ॥ प्रथमार्थे द्वितीया ॥ विशः  
प्रजा असमनाः परस्परमसमेता भोजनानि धनानि जहतीत्यजं त्व आयन् । आगच्छन् । कदेत्यत आह ।  
यद्यदा पूरवे राक्षे शोष्चानो दीप्यमानः पुरस्तस्य शत्रूणां पुरो दरयन् दारयन्दीदेः अज्वलः । तथा च  
निगमः । अंहो राजन्वरिवः पूरवे कः । ऋग्वे० १. ६३. ७. । इति ॥

तव त्रिधातुं पृथिवी उत द्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचंत ।

त्वं भासा रोदसी आ तंतं यजसेण शोचिषा शोष्चानः ॥ ४ ॥

तव । त्रिऽधातुं । पृथिवी । उत । द्यौः । वैश्वानर । व्रतं । अग्ने । सचंत ।

त्वं । भासा । रोदसी इति । आ । तंतं यज । अजसेण । शोचिषा । शोष्चानः ॥ ४ ॥

हे वैश्वानर विश्वेषां नराणां नेतरग्ने । तथा च यास्कः । वैश्वानरः कस्माद्विश्वान्नरात्रयति विश्व एनं नरा  
नयतीति वा । नि० ७. २१. । इति । तव व्रतं स्वामीतिकरं कर्म त्रिधा त्वन्तरिचं पृथिवी च उतापि च द्यौरिति  
त्रयो लोकाः सचंत । सेवते । त्रिलोकवर्तिन्यः प्रजास्त्वदर्थं कर्म कुर्वतीत्यर्थः । अपि च त्वमजसेण शोचिषा  
प्रकाशेन शोष्चानो दीप्यमानो भासा दीप्त्या रोदसी यावापृथिव्यौ वा तंतं । विस्तारयसि ॥

त्वामग्ने हरितो वावशाना गिरः सचन्ते धुनयो घृताचीः ।

पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्नां ॥ ५ ॥

त्वां । अग्ने । हरितः । वावशानाः । गिरः । सचन्ते । धुनयः । घृताचीः ।

पतिं । कृष्टीनां । रथ्यं । रयीणां । वैश्वानरं । उषसां । केतुं । अह्नां ॥ ५ ॥

हे अग्ने कृष्टीनां प्रजानां । चितयः कृष्टय इति मनुष्यनामसु पाठात् । पतिं स्वामिनं रयीणां धनानां रथ्यं  
नेतारमुषसामह्नां केतुं प्रज्ञापकं वैश्वानरं विश्वनरहितं त्वां हरितोऽश्वा वावशानाः कामयमानाः सचन्ते ।  
सेवते । तथा गिरो गृणां क्षुतिरूपा वाचो धुनयः पापं धुन्वाणा घृताचीर्धृतमचंत्यः । हविषा सहिता इत्यर्थः ।  
सचन्ते ॥ ॥ ७ ॥

त्वे असुर्ये वसवो नृण्वन्क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषंत ।

त्वं दस्यूरोकसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय ॥ ६ ॥

त्वे इति । असुर्ये । वसवः । नि । नृण्वन् । क्रतुं । हि । ते । मित्रऽमहः । जुषंत ।

त्वं । दस्यून् । ओकसः । अग्ने । आजः । उरु । ज्योतिः । जनयन् । आर्याय ॥ ६ ॥



हे मित्रमहो मित्राणां पूजयितरमे ते त्वयि वसवो वासका देवा असुर्यं बलं न्युत्सवन् । न्यगमयन् । ते क्रतुं स्वप्नीतिकरं कर्म जुषंत । असेवंत हि । किंच स्वमार्थाय कर्मवते जनायोऽप्योतिरधिकं तेजो जनयन् दस्वून् कर्महीनानोक्तसः स्त्रानादाजः । निरगमयः ॥

स जायमानः परमे व्योमन्वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः ।

त्वं भुवना जनयन्त्रभि क्रन्तपन्थाय जातवेदो दशस्यन् ॥ ७ ॥

सः । जायमानः । परमे । विऽओमन् । वायुः । न । पाथः । परि । पासि । सद्यः ।

त्वं । भुवना । जनयन् । अत्रि । क्रन् । अपन्थाय । जातऽवेदः । दशस्यन् ॥ ७ ॥

हे वैश्वानर स प्रसिद्धस्त्वं परमे दूरस्थे व्योमन्तरिषि जायमानः सूर्यरूपेण प्रादुर्भवन् वायुर्न यथा वायुर्द्विदेवत्वग्रहेषु प्रथमं सोमं पिबति तथा पाथः सोमं सद्यः परि पासि । परिपिबसि । यद्वा । वायुरिव पाथो जलं परि पासि । परिपिबसि । शोषयसीत्यर्थः । किंच हे जातवेदो जातधनामे त्वं भुवना भुवनान्युदकानि । भूतं भुवनमित्युदकानामसु पाठात् । जनयन्नपन्थायापत्यवत्पाषाणीयाय यजमानाय दशस्यन् कामान्प्रयच्छन् अत्रि क्रन् । वैद्युतात्मनामिन्द्रसि अभिगर्जसि वा ॥

तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।

यया राधः पिब्वसि विश्ववार पृथु अरवो दाशुषे मर्त्याय ॥ ८ ॥

तां । अग्ने । अस्मे इति । इषं । आ । इरयस्व । वैश्वानर । द्युऽमतीं । जातऽवेदः ।

यया । राधः । पिब्वसि । विश्वऽवार । पृथु । अरवः । दाशुषे । मर्त्याय ॥ ८ ॥

हे जातवेदो जातप्रज्ञ वैश्वानर विश्वनरहितामे तामिषमेरणीयां वृष्टिं द्युमतीं दीप्तिमतीमस्ते अश्वमेरयस्व । प्रेरयस्व । वृष्ट्या वैलोकां योतते हि । यद्वा । द्युमतीं तामिषमन्नमेरयस्व । तथा च श्रूयते । तस्माद्यस्मैवेह भूयिष्ठमन्नं भवति स एव भूयिष्ठं लोके विराजति । ऐ० ब्रा० १. ५. । इति । अथवेषमेरणीयां तां द्युमतीं भास्वतीं दीप्तिमेरयस्व । यथेषा राधो धनं पिब्वसि पालयसि । अपि च हे विश्ववार विश्वैर्वरणीयामे पृथु विस्तीर्णं अरवो यशो दाशुषे मर्त्याय यजमानाय पिब्वसि ॥

तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।

वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः ॥ ९ ॥

तं । नः । अग्ने । मघवत्ऽभ्यः । पुरुऽक्षुं । रयिं । नि । वाजं । श्रुत्यं । युवस्व ।

वैश्वानर । महि । नः । शर्म । यच्छ । रुद्रेभिः । अग्ने । वसुऽभिः । सऽजोषाः ॥ ९ ॥

हे अग्ने मघवद्भ्यो धनवद्भ्यः । हविष्मद्भ्य इत्यर्थः । नोऽस्मभ्यं पुरुक्षुं बह्वन्नं बहुयशस्कं वा तं प्रसिद्धं रयिं श्रुत्यं अरणीयं वाजं बलं च नि युवस्व । गितरां मिश्रयस्व । किंच हे वैश्वानर विश्वनरहितामे त्वं रुद्रेभ्यो रुद्रेर्वसुभिश्च देवैः सजोषाः सहितश्च सन् नोऽस्मभ्यं महि महत् शर्म सुखं यच्छ । प्रयच्छ ॥ ८ ॥

प्र सप्ताज इति सप्तर्षे षष्ठं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थे । अनुक्रम्यते च । प्र सप्ताजः सप्त । वैश्वानरीयं त्वित्युक्तत्वाद्वापि वैश्वानरोऽग्निर्देवता ॥ विनियोगो लिंगिकः ॥

प्र सप्ताजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।

इंद्रस्येव प्र तवसंस्कृतानि वंदे दारुं वंदमानो विवस्त्रि ॥ १ ॥

प्र । संऽराजः । असुरस्य । प्रऽशस्तिं । पुंसः । कुष्टीनां । अनुऽमाद्यस्य ।  
इंद्रस्यऽइव । प्र । तवसः । कृतानि । वंदे । दाहं । वंदमानः । विवक्त्रि ॥ १ ॥

दाहं पुरां भेत्तारं वंदे । वंदमानः सन् सम्राजः सर्वस्य सुवनस्त्वैश्वरस्यासुरस्य बलवतः पुंसो वीरस्य ।  
पौंसमिति वीर्यमुच्यते । तथा च आहः । पुमान् पुंसमना भवति पुंसतेर्वा । नि० ९. १५. इति । कुष्टीनां  
जनानामनुमाद्यस्य सुत्यस्य तवसो बलवत इंद्रस्यैव तस्य वैश्वानरस्य प्रशस्तिं क्षुतिं कृतानि कर्माणि च  
प्र विवक्त्रि । प्रववीमि ॥

कविं केतुं धासिं भानुमद्रेहिंन्वति शं राज्यं रोदस्योः ।  
पुरंदरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्या महानि ॥ २ ॥  
कविं । केतुं । धासिं । भानुं । अद्रेः । हिंन्वति । शं । राज्यं । रोदस्योः ।  
पुरंऽदरस्य । गीऽभिः । आ । विवासे । अग्नेः । व्रतानि । पूर्या । महानि ॥ २ ॥

कविं प्राञ्चं केतुं विश्वस्य प्रज्ञापकं धासिमद्रेर्धर्तारमादतुः क्षोतुर्वा भानुं भासकं शं सुखकरं रोदस्योर्वा-  
वापुषिव्यो राज्यं राजानं वैश्वानरमग्निं हिंन्वति । मदीयाः प्रीणयन्ति प्रेरयन्ति वा देवाः । अहं च पुरंदरस्य  
पुरां दारयितुरग्नेः पूर्या पूर्याणि पुरातनानि महानि महानि व्रतानि कर्माणि गीर्भिरा विवासे ।  
परिचरामि ॥

न्यक्रतून्यधिना मृध्रवाचः पणीरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान् ।  
प्रप्र तान्दस्यूरमिर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून ॥ ३ ॥  
नि । अक्रतून् । यधिनाः । मृध्रऽवाचः । पणीन् । अश्रद्धान् । अवृधान् । अयज्ञान् ।  
प्रऽप्र । तान् । दस्यून । अग्निः । विवाय । पूर्वः । चकार । अपरान् । अयज्यून ॥ ३ ॥

अक्रतून्यज्ञान् यधिना जल्पकान्मृध्रवाचो हिंसितवचस्कान् पणीन् पणिनामकान्वार्धुधिकानश्चान्यज्ञादिषु  
असारहितानवृधान् क्षुतिभिरभिमवर्धयतोऽयज्ञान्यज्ञहीनान् तान्दस्यून वृथा कालस्य नेतृन्धिः प्रप्र अत्यंतं  
नि विवाय । नितरां गमयेत् । तदेवाह । अग्निः पूर्वो मुखः सन् अयज्यूनयजमानानपरान् अध्वान् चकार ॥

यो अपाचीने तमसि मदंतीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः ।  
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयंतं पृतन्यून ॥ ४ ॥  
यः । अपाचीने । तमसि । मदंतीः । प्राचीः । चकार । नृतमः । शचीभिः ।  
तं । ईशानं । वस्वः । अग्निं । गृणीषे । अनानतं । दमयंतं । पृतन्यून ॥ ४ ॥

नृतमो नेतृतमो योऽपिरपाचीनेऽप्रकाशमाने तमसि निमग्नाः प्रजा मदंतीः क्षुवंतीः शचीभिस्ताभ्यो  
दत्ताभिः प्रज्ञाभिः प्राचीर्चतुर्गामिनीश्चकार । यद्वा । नेतृतमो योऽपिरपाचीने तमसि निग्नायां मदंतीर्मा-  
दंतीरुपसः शचीभिः प्रज्ञाभिः प्राचीश्चकारत्यर्थः । तं वस्वो धनस्त्वैश्वानमनानतमग्रहं पृतन्यून युद्धकामांश्च  
दमयंतमग्निं गृणीषे । लामि ॥

यो देव्योऽं अनमयद्वधस्त्रयो अर्यपत्नीरुषसंश्चकार ।  
म निरुध्या नहुपो यद्गो अग्निर्विणश्चक्रे बलिहतः सहोभिः ॥ ५ ॥



यः । देहाः । अनमयत् । वधऽस्रैः । यः । अर्यऽपत्नीः । उषसः । चकार ।  
सः । निऽरुध्य । नहुषः । यहुः । अग्निः । विशः । चक्रे । बलिऽहृतः । सहऽभिः ॥ ५ ॥

योऽपिर्देहो देहीरुपचिता आसुरीर्विद्या वधस्त्रैर्वधैरायुधैर्वानमयत् हीना अकरोत् । अस्त्रार्थपत्नीः ।  
अर्यः सूर्यः पतिर्यासां ता अर्यपत्न्यः । ता उषसश्चकार अकरोत् स यद्गो महानपिर्विशः प्रजाः सहोमिर्वलि-  
निरुध्य नहुषो राज्ञो बलिहृतः करप्रदाचक्रे ॥

यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्युः सुमतिं भिक्षमाणाः ।  
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः संसाद पित्रोरुपस्थं ॥ ६ ॥  
यस्य । शर्मेन् । उप । विश्वे । जनासः । एवैः । तस्युः । सुऽमतिं । भिक्षमाणाः ।  
वैश्वानरः । वरं । आ । रोदस्योः । आ । अग्निः । संसाद । पित्रोः । उपऽस्थं ॥ ६ ॥

विश्वे सर्वे जनासो जनाः शर्मन् शर्मणि सुखनिमित्तं यस्य वैश्वानरस्य सुमतिं भिक्षमाणाः प्रार्थमाना  
एवैः कर्मभिर्हविर्भवीप तस्युः यमेवोपतिष्ठते स वैश्वानरो विश्वनरहितोऽग्निः सूर्यः सन् पित्रोर्मातापित्रो  
रोदस्योर्बावापृथिव्योर्वरसुत्कृष्टमुपस्थं मध्यमंतरिक्षमा संसाद । आगच्छत ॥

आ देवो ददे बुध्या वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।  
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्देदे दिव आ पृथिव्याः ॥ ७ ॥  
आ । देवः । ददे । बुध्या । वसूनि । वैश्वानरः । उत्ऽदिता । सूर्यस्य ।  
आ । समुद्रात् । अवरात् । आ । परस्मात् । आ । अग्निः । ददे । दिवः । आ । पृथिव्याः ॥ ७ ॥

वैश्वानरो विश्वनरहितोऽपिर्देवो द्योतमानो बुध्या बुध्यान्यांतरिक्षाणि । बुध्नमंतरिक्षं । तथा च यास्कः ।  
बुध्नमंतरिक्षं ब्रह्मा अस्मिन्धृता आप इति वा । मि० १०. ४४. । इति । वसून्वाक्षादकानि तमांसि ॥ वस  
आक्षादन इति धातुः ॥ सूर्यस्योदितोदितावुदये सत्या ददे । समुद्रादंतरिक्षात् । सगरं समुद्र इत्यंतरिक्ष-  
नामसु पाठात् । अवरात्पृथिव्यास्तमांसा ददे । समुद्रात्परस्माद्विवोऽपि तमांसा ददे । तदेव दर्शयति ।  
अपिर्दिवस्तमांसा ददे पृथिव्याश्च तमांसा ददे ॥ ९ ॥

प्र वो देवमिति सप्तर्चं सप्तमं सूक्तं वसिष्ठस्त्रार्चं वैष्णवमापेयं । प्र वो देवमित्यनुक्रांतं ॥ प्रातरनुवाकाश्चिन-  
शस्त्रयोर्दशसूक्तं उक्तो विनियोगः ॥

प्र वो देवं चित्सहसानमग्निमश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।  
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान्त्मना देवेषु विविदे मितदुः ॥ १ ॥  
प्र । वः । देवं । चित् । सहसानं । अग्निं । अश्वं । न । वाजिनं । हिषे । नमऽभिः ।  
भव । नः । दूतः । अध्वरस्य । विद्वान् । त्मना । देवेषु । विविदे । मितऽदुः ॥ १ ॥

हे अग्ने वत्सां देवं द्योतमानादिगुणयुक्तं सहसानं राक्षसानभिभवंतं बलमाचरंतं वापिमयस्य नेतारमश्वं  
न अश्वमिव वाजिनं वेगवंतं बलवंतं वा नमोभिः स्तुतिभिर्हविर्भिर्वा प्र हिषे । हे अग्ने त्वां चित्प्राणिश्रेष्ठ ।  
किंच हे अग्ने त्वं विद्वान् वागन् नोऽस्माकमध्वरस्य यज्ञस्य दूतो भव । अथ परोक्षस्तुतिः । त्मनात्मना स्वयमेव  
देवेषु मितद्रुर्दग्धद्रुमोऽपिरिव विविदे । प्रश्रयते ॥

आ याहमे पथ्याऽ अनु स्वा मंद्रो देवानां सख्यं जुषाणः ।

आ सानु शुष्मैर्नदयन्पृथिव्या जंभेभिर्विश्वमुशध्वनानि ॥२॥

आ । याहि । अमे । पथ्याः । अनु । स्वाः । मद्रः । देवानां । सख्यं । जुषाणः ।

आ । सानु । शुष्मैः । नदयन् । पृथिव्याः । जंभेभिः । विश्वं । उशधक् । वनानि ॥२॥

हे अमे त्वं मंद्रो मदयिता सुखो वा देवानां सख्यं । देवैः सह सख्यमित्यर्थः । जुषाणः सेवमानः पृथिव्याः सानु समुच्छितं तृणगुल्मादिकं शुष्मैः शोषकेर्दाहकैस्तेजोभिर्नदयन् शब्दायमानः । दह्यमानं हि शब्दायति । जंभेभिर्दंष्ट्राभिः । ज्वालाभिरित्यर्थः । विश्वं विश्वानि वनान्युशधक् कामयमानो दहन स्वाः पथ्या अनु । स्वेर्मानैरित्यर्थः । आ आ याहि । आकारस्य पुनर्वचनमादरार्थं ॥

प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीकितो न होता ।

आ मातरा विश्ववारि हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ॥३॥

प्राचीनः । यज्ञः । सुधितं । हि । बर्हिः । प्रीणीते । अग्निः । ईकितः । न । होता ।

आ । मातरा । विश्ववारि इति विश्वऽवारि । हुवानः । यतः । यविष्ठ । जज्ञिषे ।

सुऽशेवः ॥३॥

अयं यज्ञः प्राचीनः । सम्यगनुष्ठेय इत्यर्थः । यद्वा । यज्ञो यथा होता प्राचीनः । यद्वा । यज्ञो हविः प्राचीनः प्राचीनं प्राक्पुत्रमासन्नं । बर्हिर्हि बर्हिष्य सुधितं सुनिहितं । ईकितः स्तुतोऽग्निः प्रीणीते । नृपस्य भवति । होता न होता च । नेति चार्थः । विश्ववारि विश्वैर्वरणीये मातरा वावापृथिव्याविद्यायामा ऊवांगो भवति । कदेत्यत आह । यतो यदा यविष्ठ हे युवतमाये त्वं सुशेवः सुसुखो जज्ञिषे जायसे ॥

सद्यो अध्वरे रथिरं जनंत मानुषासो विचेतसो य एषां ।

विशामधायि विशपतिर्दुरोणेऽग्निर्मंद्रो मधुवचा ऋतावा ॥४॥

सद्यः । अध्वरे । रथिरं । जनंत । मानुषासः । विऽचेतसः । यः । एषां ।

विशां । अधायि । विशपतिः । दुरोणे । अग्निः । मद्रः । मधुऽवचाः । ऋतऽवा ॥४॥

विचेतसो विविक्तप्रज्ञा मानुषासो मनुष्या अध्वरे यज्ञे रथिरं रथिनं नेतारमग्निं सद्यो जनंत । जनयन्ति । य एषां हविर्वहति सोऽयमग्निर्विशपतिर्विशां पतिर्विश्वस्य पतिर्वा मंद्रो मदयिता मधुवचा मादयितृवचस्त ऋतावा यज्ञवान् विशां मनुष्याणां दुरोणे गृहेऽधायि । आहितः ॥

असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता ।

द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारं ॥५॥

असादि । वृतः । वह्निः । आऽजगन्वान् । अग्निः । ब्रह्मा । नृऽसदने । विऽधर्ता ।

द्यौः । च । यं । पृथिवी । वावृधाते इति । आ । यं । होता । यजति । विश्वऽवारं ॥५॥

वृतो होतृत्वेन वह्निर्हविषां वोढा ब्रह्मा परिवृढो विधर्ता त्रिष्वस्य धारकोऽग्निराजगन्वान् बुल्लोकादागत आगमनशीलो वा नृषदने होतुः स्तानेऽसादि । उपविष्टः । यमग्निं ब्रह्म पृथिवी चोभे वावृधाते वर्धयतः । यं च विश्ववारं विश्वैर्वरणीयं होता मानुष आ यजति ॥



ए॒ते द्यु॒न्नेभिर्वि॒श्व॒माति॑रंत॒ म॒ंचं॒ ये वा॒रं न॒र्या अ॒त॒क्षन् ।

प्र॒ ये वि॒श॒स्ति॑रंत॒ श्रो॒ष॒माणा॒ आ॒ ये मे॒ अ॒स्य॒ दी॒ध॒यन्त॑स्य ॥ ६ ॥

ए॒ते । द्यु॒न्नेभिः॑ । वि॒श्वं॑ । आ॒ । अ॒ति॑रंत॒ । म॒ंचं॑ । ये । वा॒ । अ॒रं॑ । न॒र्याः॑ । अ॒त॒क्षन् ।

प्र॒ । ये । वि॒शः॑ । ति॑रंत॒ । श्रो॒ष॒माणाः॑ । आ॒ । ये । मे॒ । अ॒स्य॒ । दी॒ध॒यन् । अ॒त॒क्षन् ॥ ६ ॥

एते मदीयाः पुरुषा द्युन्नेभिरनैर्विश्वं पोष्यवर्गमातिरंत । वर्धयन्ति । अथवा द्युन्नेभिर्यशोभिर्विश्वं जगदातिरंत । अभ्यगच्छन्तित्यर्थः । क इत्यत आह । ये नर्या मनुष्या मंचं स्तोत्रं सुखं वारं पर्याप्तमतएव समस्तुर्यन् । वेति रामुच्ये । ये च विशो जनाः श्रोषमाणाः ॥ शृणोतेः सन्त्यङोरिति द्वित्वं इको झलिति सनः कित्त्वं च सर्वे विधयस्कंदसि विकल्प्यंत इति न भवतः । आशुसुदृशां सन इत्यात्मनेपदं ॥ प्र ति॑रंत वर्धयन्ति । मे मदीया ये वा चतस्रास्त्य सत्यमिममपि ॥ कर्मणि षष्ठी । मानुषाणामप्रीयादितिवत् ॥ आ दीधयन् आदीपयन् ॥

नू॒ त्वाम॑ग्र ई॒महे॒ वसि॑ष्ठा ई॒शानं॑ सू॒नो॒ सह॑सो॒ वसू॑नां ।

इ॒षं स्तो॒तृभ्यो॑ म॒घव॑द्भ्य॒ आ॒न॒द्भूयं॑ पा॒त स्व॒स्तिभिः॑ सदा॒ नः ॥ ७ ॥

नु॒ । त्वां॑ । अ॒ग्रे॒ । ई॒महे॒ । वसि॑ष्ठाः । ई॒शानं॑ । सू॒नो॒ इति॑ । स॒ह॒सः॑ । वसू॑नां ।

इ॒षं । स्तो॒तृभ्यः॑ । म॒घव॑न्त॒भ्यः॑ । आ॒न॒द् । यू॒यं । पा॒त । स्व॒स्तिभ्यः॑ । सदा॒ । नः॑ ॥ ७ ॥

सहसः सूनो बलस्य पुत्रापे वसिष्ठा वयं वसूनामीशानं त्वामग्रदीयेभ्यः स्तोतृभ्यो मघवद्भ्यो हविष्मद्भ्यो वसूनां नु चिप्रमव वानद् । प्रापयेः ॥ नशेर्वाप्तिकर्मणोऽंतर्णीतिस्पर्थाकुडि च्छंदस्यपि दृश्यत इत्याडागमः ॥ यूयं स्वत्परिवारास्त्य सर्वे यूयं नोऽस्मान् सदा स्वस्तिभिः पातयेवमीमहे । याचामहे ॥ ॥ १० ॥

इंधे राजेति सप्तर्चमष्टमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्धं वैदुभमापेयं । इंधे राजेत्यनुक्रांतं ॥ प्रातरनुवाकाच्चिन्नशस्त्रयोर्विन्धयोगः ॥ आतिष्ठायां प्रप्रायमपिरिति स्विष्टकृतो याच्या । सूचितं च । प्रप्रायमपिर्भरतस्त्य नृएव इति संयाज्ये । आ० ४. ५. इति ॥

इ॒ंधे राजा॑ स॒म॒र्यो॒ नमो॑भि॒र्यस्य॑ प्र॒तीक॑माहु॒तं घृ॑तेन ।

न॒रो ह॒व्येभि॑री॒कृते॑ स॒बाध॑ आ॒मिर॑यं उ॒षसा॑म॒शोचि॑ ॥ १ ॥

इ॒ंधे । राजा॑ । सं । अ॒र्यः॑ । न॒मः॑भ्यः । य॒स्य॑ । प्र॒तीकं॑ । आ॒हु॒तं । घृ॑तेन ।

न॒रः । ह॒व्येभिः॑ । ई॒कृते॑ । स॒बाधः॑ । आ॒ । अ॒मिः॑ । अ॒र्ये॑ । उ॒षसा॑ । अ॒शोचि॑ ॥ १ ॥

राजा दीप्तोऽर्यः स्वामी हविषां प्रेरको वापिर्वमोभिः सुतिभिः सह समिधे । समिधते । यस्यापेः प्रतीकं रूपं घृतेनाहुतं भवति । यं च नरोऽस्यदीयाः सबाधः संक्षिप्ताः संजातबाधा वा हव्येभिर्हव्यैः सार्धमीकृते कुवंति सोऽपिष्वसामय आशोचि । आदीष्यते ॥

अ॒यमु॒ य सु॑म॒हौ अ॒वेदि॑ होता॒ म॒द्रो म॒नुषो॑ य॒हो अ॒मिः॑ ।

वि॒ भा अ॒कः स॒सृजा॑नः पृ॒थि॒व्यां कृ॒ष्णप॑वि॒रोष॑धीभिर्व॒वक्षे॑ ॥ २ ॥

अ॒यं । जुं॑ इति॑ । स्यः । सु॒म॒हान् । अ॒वेदि॑ । होता॑ । म॒द्रः । म॒नुषः॑ । य॒हः । अ॒मिः॑ ।

वि॒ । भाः॑ । अ॒करि॑त्य॒कः । स॒सृजा॑नः । पृ॒थि॒व्यां । कृ॒ष्णप॑विः । अ॒रोष॑धीभिः । व॒वक्षे॑ ॥ २ ॥

स्य सोऽयं होता देवानामाह्वाता मद्रो मदयिता यहो महानपिर्मनुषो मनुष्यस्य सुमहानवेदि । सुम-

हृत्वेन प्रज्ञायति । अपि च सोऽयं भा दीप्तीर्ष्यकः । विकरोत्यंतरिचि । किंच सोऽयं छण्डपविः छण्डमार्गोऽपिः  
पृथिव्यां सख्यानः खज्यमानः सन्नोपधीभिर्वचचि । वर्धते ॥

क्या नो अग्ने वि वसः सुवृत्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।

कदा भवेम पतयः सुदच रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥३॥

क्या । नः । अग्ने । वि । वसः । सुऽवृत्तिं । कां । जं इति । स्वधां । ऋणवः । शस्यमानः ।

कदा । भवेम । पतयः । सुऽदच । रायः । वन्तारः । दुष्टरस्य । साधोः ॥३॥

हे अग्ने त्वं क्या स्वधया हविषा नोऽस्माकं सुवृत्तिं क्षुतिं वि वसः । व्याप्नुवे आच्छादयसि वा । कामु कां  
च स्वधां शस्यमानः स्तूयमानस्त्वमृणवः । प्राप्नुयाः । हे सुदच शोभनदानाणि । तथा च यास्तः । सुदचः कक्षा-  
णदानः । नि० ६. १४. इति । वयं कदा दुष्टरस्य शत्रुभिर्दुर्हिंसकस्य साधोः समीचीनस्य रायो धनस्य पतयः  
स्वामिनो भवेम । वन्तारः संभक्तारश्च कदा भवेम ॥

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहन्नाः ।

अभि यः पूरं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥४॥

प्रऽप्र । अयं । अग्निः । भरतस्य । शृण्वे । वि । यत् । सूर्यः । न । रोचते । बृहत् । भाः ।

अभि । यः । पूरं । पृतनासु । तस्थौ । द्युतानः । दैव्यः । अतिथिः । शुशोच ॥४॥

अयं प्रसिद्धोऽग्निर्भरतस्य यजमानस्य मम प्रप्रायंतं शृण्वे । प्रथितो भवति । कदेत्यचाह । यद्यदा सूर्यो  
न सूर्य इव बृहन्ना बृहन्नासमानो वि रोचते प्रकाशते । किंच योऽपिः पृतनासु संग्रामेषु पूरं पूरनामकमसुर-  
मभि तस्थौ अभिवभूव सोऽयं द्युतानो दीप्यमानो दैव्योऽतिथिर्देवानामतिथिवत्पूज्यः सन् शुशोच । जज्वाल ॥

असन्नित्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।

स्तुतश्चिदमे शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥५॥

असन् । इत् । ते इति । आऽहवनानि । भूरि । भुवः । विश्वेभिः । सुऽमनाः । अनीकैः ।

स्तुतः । चित् । अग्ने । शृण्विषे । गृणानः । स्वयं । वर्धस्व । तन्वं । सुऽजात ॥५॥

हे अग्ने ते लब्धाहवनानि हवींश्चाहुतयो वा भूरि बह्वन्वसन्नि । मन्त्रेण । त्वं च विश्वेभिर्विश्वे रनीकै-  
स्तेजोभिस्त्वद्विमूतिभिरपिभिर्वा सह सुमना भुवः । भव । हे अग्ने स्तुतः स्तोतुः । स्तौतीति स्तुत । स्तोचं शृण्विषे ।  
शृणु । हे सुजात कक्षाणप्रादुर्भावाणि गृणानः स्तूयमानस्त्वं स्वयं स्वयमेव तन्वं स्वां तनुं मम तनुं वा वर्धस्व ।  
वर्धयस्व ॥

इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्रये जनिषीष्ट द्विबर्हाः ।

शं यन्स्तोतृभ्य आपये भवन्ति द्युमदमीव चातनं रक्षोहा ॥६॥

इदं । वचः । शतऽसाः । संऽसहस्रं । उत् । अग्रये । जनिषीष्ट । द्विऽबर्हाः ।

शं । यत् । स्तोतृऽभ्यः । आपये । भवन्ति । द्युऽमत् । अमीवऽचातनं । रक्षऽहा ॥६॥

शतसा गवां शतस्य संभक्ता संसहस्रं गवां सहस्रेण च संयुतो द्विबर्हा द्वाभ्यां विद्याकर्मभ्यां बृहन् वसिष्ठो



द्वयोः स्थानयोर्बुधोक्तयोर्महान्वा । तथा च यास्तः । द्विवर्षा द्वयोः स्थानयोः परिवृढः । नि० ६. १७. । इति ।  
इदं वच इदं लोचमपय उज्जनिषीष्ट । उदधीजनत् । किं तदित्यत आह । यद्वचो युमत दीप्तिमत । यशस्त-  
रमित्यर्थः । अमीवचातनं रोगाणां निवारकं रणोहा रचसां हंतु च लोतुभ्य आपये तद्वंधवे पुत्रादिकायापि  
शं सुखदं भवति भवेत् ॥

नू त्वामम ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनां ।

इषं स्तोतृभ्यो मधवन्त आनद्धूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

नु । त्वां । अग्ने । ईमहे । वसिष्ठाः । ईशानं । सूनो इति । सहसः । वसूनां ।

इषं । स्तोतृभ्यः । मधवन्तः । आनद्धूय । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

इयमृक प्रागेव व्याख्याता ॥ १११ ॥

अबोधि जार इति षड्वचं नवमं सूक्तं वसिष्ठस्यैव वैष्णवमापेयं । अबोधि षडित्यनुकांतं ॥ प्रातरनुवाका-  
श्चिन्मशस्त्रयोर्दशसूक्तमध्य उत्तो विमिचोमः ॥

अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता मंद्रः कवितमः पावकः ।

दधाति केतुमुभयस्य जंतोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ॥ १ ॥

अबोधि । जारः । उषसां । उपऽस्थात् । होता । मंद्रः । कविऽतमः । पावकः ।

दधाति । केतुं । उभयस्य । जंतोः । हव्या । देवेषु । द्रविणं । सुकृत्सु ॥ १ ॥

जारः सर्वेषां प्राणिनां जरयिता होता देवानामाह्वाता च मंद्रो मदयिता कुलो वा कवितमः प्राज्ञतमः  
पावकः शोधकोऽपि वपसासुपस्थात् मध्येऽबोधि । अबुध्यत । किंचोभयस्य द्विपदस्य चतुष्पदस्य दैवस्य मानुषस्य  
वा जंतोः प्राणिनः केतुं प्रज्ञानं दधाति । विदधाति । देवेषु च हव्या हव्यानि दधाति । सुकृत्सु यवमानेषु च  
द्रविणं धनं दधाति ॥

स सुकृतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्के पुरुभोजसं नः ।

होता मंद्रो विशां दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणां ॥ २ ॥

सः । सुऽकृतुः । यः । वि । दुरः । पणीनां । पुनानः । अर्के । पुरुऽभोजसं । नः ।

होता । मंद्रः । विशां । दमूनाः । तिरः । तमः । ददृशे । राम्याणां ॥ २ ॥

सोऽपिः सुकृतुः सुकर्मा सुप्रज्ञो वा भवति । योऽपिः पणीनामसुराणां कुरो द्वारादि गवां पिधानानि  
विवृतवान् । पुरुभोजसं बज्रशीरमर्कमर्चनीयं गवां संघं भोऽस्यदर्थं पुनानः शोधयन् । हरन्नित्यर्थः । होता  
देवानामाह्वाता मंद्रो मदयिता कुलो वा दमूना दांतमना दममना दाणमना वा राम्याणां रात्रीणां  
रमयित्रीणां वा विशां जनाणां यवमानानां वा तमोऽंधकारं तिरस्कुर्वन् ददृशे दृश्यते च । यद्वा । तमस्तिरो  
ददृशे । नाशयनीत्यर्थः ॥

अमूरः कविरदितिर्विवस्वान्सुसंसन्मिचो अतिथिः शिवो नः ।

चित्रभानुरुषसां भात्येऽपां गर्भैः प्रस्वप् आ विवेश ॥ ३ ॥

अमूरः । कविः । अदितिः । विवस्वान् । सुऽसंसत् । मिचः । अतिथिः । शिवः । नः ।

चित्रऽभानुः । उषसां । भाति । अये । अपां । गर्भैः । प्रऽस्वप् । आ । विवेश ॥ ३ ॥

योऽभिरमूरोऽमूढः कविः प्राज्ञोऽदितिरदीनो विवस्वान्दीप्तिमान् सुसंसत् शोभनसदनः शोभनसंवेदनो  
वा मित्रः प्रमोतेस्त्राता सर्वेषामतिथिरतिथिवत्पूज्यः शिवः शिवकरो जगतश्चित्रमाशुचिपदीप्तिवसामने सुखे  
भाति सोऽयमपां वर्मः सन् प्रसो वाचमाणा औषधीरा विवेश ॥

ईकेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज्जातवेदाः ।

सुसंदृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधंत ॥४॥

ईकेन्यः । वः । मनुषः । युगेषु । समनगाः । अशुचत् । जातवेदाः ।

सुसंदृशा । भानुना । यः । विभाति । प्रति । गावः । संइधानं । बुधंत ॥४॥

हे अये वस्व ॥ अत्र विभक्तिवचनव्यत्ययः ॥ मनुषो मनुषस्य युगेषु यागवाखिषु सर्वेष्वपि दिवसेषु वेकेन्यः  
सुखः । अतः परं परोक्षसुतिः । योऽभिर्वातवेदा वातधनः समनगा युगेषु संगता सन् अशुचत् दीयते ।  
सुसंदृशा सुसंदर्शनेन भानुना तेजसा विभाति च । तमपि समिधानं समिध्यमानं गावः सुतयः प्रति बुधंत ।  
प्रतिबोधयंति ॥

वैश्वदेवे पश्यामि याहीति हविषो याच्या । सूचितं च । अये चाहि दूत्यं मा रिषस्य इंद्रं नरो जेमधिता  
हवंत इति तिस्रः । आ० ३. ७. । इति ॥

अग्ने याहि दूत्यं मा रिषस्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गृणेन ।

सरस्वतीं मरुतो अश्विनापो यक्षि देवान्नधेयाय विश्वान् ॥५॥

अग्ने । याहि । दूत्यं । मा । रिषस्यः । देवान् । अच्छ । ब्रह्मऽकृता । गृणेन ।

सरस्वतीं । मरुतः । अश्विना । अपः । यक्षि । देवान् । रत्नधेयाय । विश्वान् ॥५॥

हे अये दूत्यं दूतस्य कर्म हविर्वहणादि याहि देवानच्छामिगच्छ । गृणेन संधेय सह ब्रह्मकृता ब्रह्मकृतो  
ऽस्मानसदीयांस तव सोतृन्मा रिषस्यः । मा हिंसीः । सरस्वतीं मरुतोऽश्विनाश्विनापस एतान् देवान्  
रत्नधेयायासम्भं रत्नदाणाय यक्षि च ॥

त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि राये पुरंधिं ।

पुरुषीया जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

त्वाँ । अग्ने । संइधानः । वसिष्ठः । जरूथं । हन् । यक्षि । राये । पुरंधिं ।

पुरुऽनीया । जातवेदः । जरस्व । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥६॥

हे अये त्वाँ वसिष्ठ ऋषिः समिधानो भवति । त्वं च जरूथं प्रदपमाषिणं अरणीयं वा रषोगयं हन् ।  
अहि । राये धनवते यजमानाय पुरंधिं बज्रधियं देवनशं । तथा च यास्यः । पुरंधिर्वज्रधीरिति । यक्षि ।  
यक्ष । किंच हे जातवेदोऽपि पुरुषीया पुरुषीयेन बज्रना सोषेय जरस्व । देवान् सुहि । यद्वा । पुरुषीयानेक-  
मार्गाणि रक्षांसि जरयेत्यर्थः ॥ ॥१२॥

उपो न जार इति पंचमं दशमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं त्रैपुरमापेयं । तथा चानुजातं । उपो न पंचेति ॥ प्रात-  
रनुवाकाश्विनशस्त्रयोक्तो विनियोगः ॥

उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेहविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः ।

वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उंशतीरजीगः ॥१॥



उषः । न । जारः । पृथु । पाजः । अश्रेत् । दविद्युतत् । दीद्यत् । शोशुचानः ।  
वृषा । हरिः । शुचिः । आ । भाति । भासा । धियः । हिन्वानः । उशतीः । अजीगरिति ॥ १ ॥

अपिषो न जार उषसो जारः सूर्यसद्वत् पृथु विसीर्य पाजस्तेजोऽश्रेत् । अयति । किंच दविद्युतत् दीद्यत् शोशुचान इति चयोऽपि शब्दा यद्यपि दीप्तिकर्माणां तथापि दीप्तिर्भूयस्त्वज्ञापनाय प्रयुक्ता इति न पुनरुक्तिः । अत्यंतं दीप्यमान इत्यर्थः । वृषा कामानां वर्धिता हरिर्हविषां प्रेरकः शुचिः शुविन्नदपिर्धियः कर्माणि हिन्वानः प्रेरयन् भासा दीप्या आ भाति । प्रकाशते । अपि चोशतीः कामयमाना अजीगः । जागरयति । तमसा तिरोहिताः प्रजा उन्निरति वा ॥

स्वर्णं वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म ।  
अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान्द्रवतु देवयावा वनिष्ठः ॥ २ ॥  
स्वः । न । वस्तोः । उषसां । अरोचि । यज्ञं । तन्वानाः । उशिजः । न । मन्म ।  
अग्निः । जन्मानि । देवः । आ । वि । विद्वान् । द्रवत् । दूतः । देवयावा । वनिष्ठः ॥ २ ॥

अपिर्वस्तोरहनि । वस्तोर्बुधिरहर्नामसु पाठात् । उषसामये स्वर्णं आदित्य इव । तथा च यास्तः । स्वरादित्यो भवति सुचरणः सुदरणः । नि० २. १४. । इति । अरोचि । दीप्यते । उशिजो न अस्विजश्च यज्ञं तन्वाना विसारयन्तो मन्म मन्मानि मन्नीयानि सोचाणि पठन्तीति शेषः । नेति संप्रत्यये । अपि च विद्वान् जानन् दूतो देवानां देवयावा देवान् प्रति गच्छन् वनिष्ठो दातृतमोऽपिर्था द्रवत् । विविधमाद्रवति ॥

अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरमिं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।  
सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वचं हव्यवाहमरतिं मानुषाणां ॥ ३ ॥  
अच्छ । गिरः । मतयः । देवयन्तीः । अमिं । यन्ति । द्रविणं । भिक्षमाणाः ।  
सुसंदृशं । सुप्रतीकं । सुअचं । हव्यवाहं । अरतिं । मानुषाणां ॥ ३ ॥

मतयः क्षुतिरूपा देवयन्तीर्देवानिच्छन्त्यो द्रविणं धनं भिक्षमाणा याचमाना गिरो वाचः सुसंदृशं कक्षायांसंदर्शनं सुप्रतीकं सुख्यं शोभनागं वा स्वचं सुष्ठु गच्छन्तं हव्यवाहं हव्यानां वोढारं मानुषाणामरतिं स्वामिनमपिमच्छामि यन्ति । अभिगच्छन्ति ॥

इंद्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वह्ना बृहन्तं ।  
आदित्येभिरदितिं विश्वजन्यां बृहस्पतिमृक्कभिर्विश्ववारं ॥ ४ ॥  
इंद्रं । नः । अग्ने । वसुभिः । सजोषाः । रुद्रं । रुद्रेभिः । आ । वह्ना । बृहन्तं ।  
आदित्येभिः । अदितिं । विश्वजन्यां । बृहस्पतिं । ऋक्कभिः । विश्ववारं ॥ ४ ॥

हे अग्ने वसुभिर्देवैः सजोषाः संगतस्त्वं नोऽस्मदर्थमिन्द्रमा वह । रुद्रेभ्यो रुद्रेर्देवैः संगतो बृहन्तं महांतं रुद्रं वा वह । आदित्येभिरादित्यैर्देवैः संगतो विश्वजन्यां विश्वजनहितामदितिं वा वह । ऋक्कभिः क्षुधिरंगिरोभिर्देवैः संगतो विश्ववारं विश्वैः संभजनीयं बृहस्पतिं वा वह ॥

मंद्रं होतारमुशिजो यविष्ठममिं विश ईळते अध्वरेषु ।  
स हि क्षपावाँ अभवद्रयीणामतंद्रो दूतो यजथाय देवान् ॥ ५ ॥

मंद्रं । होतारं । उशिजः । यविष्ठं । अग्निं । विशः । ईकृते । अध्वरेषु ।

सः । हि । क्षपांऽवान् । अर्भवत् । रयीणां । अतंद्रः । दूतः । यजथाय । देवान् ॥ ५ ॥

उशिजः कामयमाना विशो मनुष्या मंद्रं सुखं होतारमाह्वितारं यविष्ठं युवतममग्निमध्वरेषु यागिष्वीकृते । सुवति । हि यक्षात्कारणात्सोऽग्निः क्षपावान् रात्रिमान् । रात्री खल्वपयेऽग्निहोत्रं ह्वयते । रयीणां सूर्यस्य रयिमतां हविष्मतां यजमानानां देवान्यजथाय यदुमतंद्रसंद्रारहितोऽभवत् । तथा च श्रूयते । यक्षादूतोऽभवत्तस्यादिशस्तमध्वर ईकृत इति ॥ ॥ १३ ॥

महाँ असीति पंचर्चमेकादशं सूक्तं वसिष्ठस्यायं वैद्युभमायेयं । महानित्यनुक्रांतं ॥ प्रातरनुषाकाश्चिमशस्त्रयोक्तो विनियोगः ॥

महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते ।

आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्यग्ने होता प्रथमः सदेह ॥ १ ॥

महान् । असि । अध्वरस्य । प्रऽकेतः । न । ऋते । त्वत् । अमृताः । मादयन्ते ।

आ । विश्वेभिः । सऽरथं । याहि । देवैः । नि । अग्ने । होता । प्रथमः । सद् । इह ॥ १ ॥

हे अग्ने त्वमध्वरस्य प्रकेतः प्रज्ञापनः सन् महानसि । त्वदृते त्वया विनामृता देवा न मादयन्ते । न मायन्ति । विश्वेभिर्विष्टेदेवैः सरथं यथा भवत्या याहि च । इहासीत्येव विष्टेभिः प्रथमो मुखो होताह्विता सन् नि षद् । निषोद् च ॥

वाजपेथे बार्हस्पत्यचरोः स्विष्टकृतोऽनुवाक्या । सूचितं च । त्वामीकृते अजिरं दूत्यायापि सुदीतिं सुष्ठु वृणंतः । आ० ९. ९. इति ॥

त्वामीकृते अजिरं दूत्याय हविष्मंतः सद्मिन्मानुषासः ।

यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति ॥ २ ॥

त्वां । ईकृते । अजिरं । दूत्याय । हविष्मंतः । सद् । इत् । मानुषासः ।

यस्य । देवैः । आ । असदः । बर्हिः । अग्ने । अहानि । अस्मै । सुऽदिना । भवन्ति ॥ २ ॥

हे अग्ने अजिरं प्रगामिनं त्वां मानुषासो मानुषा हविष्मन्तो यजमानाः सद्मित्सदेव दूत्याय दूतकर्मणे हविर्वहनायेकृते । याचन्ते । किमर्थमित्यत आह । यस्य हविष्मन्तो बर्हिर्देवैः सार्धमासदः त्वमधितिष्ठसि अस्मै हविष्मतेऽहानि सुदिना सुदिनानि शोभनदिनानि भवन्ति ॥

चिक्षिदुक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अंतर्दामुषे मर्त्याय ।

मनुष्वदम् इह यक्षि देवान्भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा ॥ ३ ॥

चिः । चित् । अक्तोः । प्र । चिकितुः । वसूनि । त्वे इति । अंतः । दामुषे । मर्त्याय ।

मनुष्वत् । अग्ने । इह । यक्षि । देवान् । भव । नः । दूतः । अभिशस्तिऽपावा ॥ ३ ॥

हे अग्ने त्वे त्वयंतर्मध्येऽक्तोरहः । यक्षप्रकृतिरिति रात्रेर्नाम तथाप्यवायन्ति व्यज्यन्ते रूपादीन्वसिमित्रहो नाम । त्रिमित्रवारं त्रिषु सवनेषु वसूनि हवींषि दामुषे हविषां प्रदात्रे मर्त्याय मनुष्याय । तदर्थमित्यर्थः । प्र चिकितुः । प्रवेदयंतृत्विजः । यद्वा । अक्तोरह्नि चिस्त्रीणमिमममत्रं च त्वयंतर्निहितानि प्र चिकितुः । अवि-



दत्तित्यर्थः । अपि च मनुष्यत् मनीरिवेह ममास्मिन्ने दूतत्वं देवान्यपि । यत् । नोऽस्माकमभिग्रहिपावा-  
भिग्रहेरभिग्रहं सकात् श्राववात्पावा रक्षिता भव ॥

अग्निरींशे बृहतो अध्वरस्याग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य ।

क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्तायां देवा दधिरे हव्यवाहं ॥ ४ ॥

अग्निः । ईंशे । बृहतः । अध्वरस्य । अग्निः । विश्वस्य । हविषः । कृतस्य ।

क्रतुं । हि । अस्य । वसवः । जुषन्त । अथ । देवाः । दधिरे । हव्यवाहं ॥ ४ ॥

बृहतो महतोऽध्वरस्य कौटिल्यरहितस्य यज्ञस्याग्निरींशे । ईंशे । विश्वस्य सर्वस्य कृतस्य संस्कृतस्य हवि-  
षस्याग्निरेवेष्टे । हि यस्यादस्यामेः क्रतुं कर्म वसवो देवा जुषन्त सेवन्ते । अथापि च देवा अग्निं हव्यवाहं हव्यानां  
कोटारं दधिरे । चक्रिर इत्यर्थः ॥

आग्ने वह हविरद्याय देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्तां ।

इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

आ । अग्ने । वह । हविः । अद्याय । देवान् । इन्द्रज्येष्ठासः । इह । मादयन्तां ।

इमं । यज्ञं । दिवि । देवेषु । धेहि । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ ५ ॥

हे अग्ने हविरद्याय हविषां मधुणाय देवाणा वह । किमर्थमित्यत आह । इहास्मिन्यज्ञ इन्द्रज्येष्ठास इन्द्र-  
मुखा देवा मादयन्तां । इमं यज्ञमिदं यष्टयं हविर्दिवि स्थितेषु देवेषु धेहि । निधेहि । देवान्नेह नयेदं हविर्ष-  
देवेषु नयेति भावः । अन्तिमः पादो व्याख्यातचरः ॥ १४ ॥

अग्न्य महेति तृचात्कं द्वादशं सूक्तं वसिष्ठस्वार्थं चैष्टुममायेयं । तथा चाशुक्रांतं । अग्न्य तुचमिति ॥ प्रात-  
रगुवाकाश्विनशस्त्रयोक्तो विनिधोगः ॥ ब्रूहे दशरात्रे नवमेऽहनीदं सूक्तमाज्यशस्त्रं । सूचितं च । तृतीय-  
स्याग्न्य महेत्याज्यं । आ० ८. ११. इति ॥

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।

चिचभानुं रोदसी अंतर्वीं स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यंचं ॥ १ ॥

अगन्म । महा । नमसा । यविष्ठं । यः । दीदाय । संऽइद्धः । स्वे । दुरोणे ।

चिचभानुं । रोदसी इति । अंतः । उर्वी इति । सुऽआहुतं । विश्वतः । प्रत्यंचं ॥ १ ॥

योऽग्निः स्वे दुरोणे स्वे स्थात्र आहवनीये समिद्धः काष्ठैः समिद्धः सन् दीदाय दीप्यते तमिमं यविष्ठं  
युषतमसुर्वीं विस्तीर्ण्यो रोदसी रोदस्योर्बावापृथिव्योरंतर्मध्येऽंतरिक्षे चिचभानुं चिचज्वालं स्वाहुतं सुष्टाज-  
तिभिर्जतं संतं विश्वतः सर्वतः प्रत्यंचं प्रतिगच्छंतमग्निं मह्यं महता नमसा नमस्कारिणाग्न्य । ययमुपगच्छाम ॥

स मूहा विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्वे दम आ जातवेदाः ।

स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥ २ ॥

सः । मूहा । विश्वा । दुऽइतानि । साह्वान् । अग्निः । स्त्ववे । दमे । आ । जातऽवेदाः ।

सः । नः । रक्षिषत् । दुऽइतात् । अवद्यात् । अस्मान् । गृणतः । उत । नः । मघोनः ॥ २ ॥

योऽपिर्महा महत्त्वेन विश्वा विश्वानि दुरितानि सङ्गानभिभवन् जातवेदा जातधनो जातप्रज्ञो वा दमे यज्ञगृहे सवे अस्माभिः स्तूयते सोऽपिरस्मान्दुरितात्पापादवस्थात् निर्दिताश्च कर्मणो रक्षिषत् । रक्षतु । अस्मान् गृणतः सुवतोऽपि रक्षिषत् । उतापि च सोऽभिर्नो मघोनो हविष्मतो रक्षिषत् ॥

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धेति मतिभिर्वसिष्ठाः ।

त्वे वसुं सुषणनानि संतु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

त्वं । वरुणः । उत । मित्रः । अग्ने । त्वां । वर्धेति । मतिभिः । वसिष्ठाः ।

त्वे इति । वसुं । सुऽस॒न॒नानि । संतु । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥३॥

हे अग्ने त्वं वरुणोऽसि । उतापि च त्वं मित्रोऽसि जगतः प्रमीतेस्त्रातासि । त्वां वसिष्ठा मतिभिः स्तुतिभिर्वर्धन्ति । वर्धयन्ति । त्वे त्वयि विद्यमानानि वसु वसूनि सुसननानि सुसंभजनानि संत्विति । स्पष्टमन्यत् ॥ १५॥

प्रापय इति तृचं त्रयोदशं सूक्तं वसिष्ठस्वार्थं वैष्टुमं वैश्वानराभिदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । प्रापये वैश्वानरीयमिति ॥ त्रिणियोगो लेखिकः ॥

प्रापये विश्वश्रुचै धियंधेऽसुरग्ने मन्म धीतिं भरध्वं ।

भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनां ॥१॥

प्र । अ॒ग्नये॑ । वि॒श्वऽश्रु॒चै । धि॒यंधे॑ । अ॒सुर॑ऽग्ने । मन्म॑ । धी॒तिं । भ॒रध्वं॑ ।

भरे॑ । ह॒विः । न । ब॒र्हिषि॑ । प्री॒णानः॑ । वै॒श्वान॒राय॑ । य॒तये॑ । म॒तीनां॑ ॥१॥

हे सखायो विश्वश्रुचै विश्वं यो दीपयति तस्मै धियंधे धियां कर्मणां यो धाता तस्मा असुरग्नेऽसुराणां यो हंता तस्मा अग्नये मन्म मननीयं स्तोत्रं धीतिं कर्म च प्र भरध्वं । मतीनामभिमतानां कामानां यतये दाचे वैश्वानराय विश्वनरहितायाधिविशेषाय बर्हिषि यज्ञे हविर्न हविरिव स्तुतिं प्रीणानः प्रीयमाणोऽहं भरे । भरामि । यदा । हविः प्रीणानः प्रीणयन्नहं बर्हिषि हविर्भरे । संभरामि । नेति संग्रत्यर्थे ॥

त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान् आ रोदसी अपृणा जायमानः ।

त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुंचो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥२॥

त्वं । अ॒ग्ने । शो॒चिषा॑ । शो॒शुचानः॑ । आ । रो॒दसी॑ इति । अ॒पृणाः॑ । जा॒यमानः॑ ।

त्वं । दे॒वान् । अ॒भिऽश॑स्तेः । अ॒मुंचः॑ । वै॒श्वान॒र । जा॒तऽवे॒दः । म॒हि॒त्वा ॥२॥

हे अग्ने त्वं शोचिषा दीप्या शोशुचानो दीप्यमानो जायमानो जायमान एव रोदसी यावापृथिव्यावापृणाः । आपूरयः । अपि च जातवेदो जातप्रज्ञ जातधन वा वैश्वानर विश्वनरहित हे अग्ने त्वं देवान्महित्वा महत्त्वेनाभिश्स्तेरभिश्सकाच्छोरमुंचः । अमोचयः ॥

जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून् गोपा इर्यः परिज्मा ।

वैश्वानर ब्रह्मणे विंद गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

जा॒तः । यत् । अ॒ग्ने । भु॒वना॑ । वि॒ । व्य॒ख्यः॑ । प॒शून् । न । गो॒पाः । इ॒र्यः॑ । परि॑ज्मा ।

वै॒श्वान॒र । ब्र॒ह्मणे॑ । वि॒न्द । गा॒तुं । यू॒यं । पा॒त । स्व॒स्तिभिः॑ । सदा॑ । नः ॥३॥



हे अग्ने जातः सूर्यात्मना जातस्त्वमिदं स्वामी प्रेरयन्वा परित्ना परितो गन्ता सन् पशून् गोपाः । यथा गवां पालकः पशून्पश्यति तद्वत् । यद्यदा भुवना भूतानि व्यस्यः रक्षार्थं पश्यसि तदा ब्रह्मणे । ब्रह्मा स्तोत्रं । तदर्थं गातुं गतिं फलप्राप्तिं विद् । यद्वा । ब्रह्मणे ब्राह्मणार्थं गातुं विद् । येन ब्रह्मणोपद्रवाभिर्गच्छन्ति तं गातुं विदित्वर्थः । स्रष्टमन्यत् ॥ १६ ॥

समिधा जातवेदस इति तुषं चतुर्दशं सूक्तं वसिष्ठस्वार्चमापेयं । आद्या बृहती द्वितीयानुतीये त्रिष्टुभी । तथा चानुक्राम्यते । समिधा बृहत्यादीति ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

समिधा जातवेदसे देवाय देवहूतिभिः ।

हविभिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाम्रये ॥ १ ॥

संऽइधा । जातऽवेदसे । देवाय । देवहूतिऽभिः ।

हविऽभिः । शुक्रऽशोचिषे । नमस्विनः । वयं । दाशेम । अम्रये ॥ १ ॥

जातवेदसे जातवेदसं जातप्रज्ञमम्रयेऽपि समिधा वयं वसिष्ठा दाशेम । परिचरेम । देवाय देवं सुत्वमपि देवहूतिभिर्देवस्तुतिभिर्दाशेम । शुक्रशोचिषे शुक्रशोचिषं शुभदीप्तिं नमस्विनो हविष्मन्तो वयं हविर्भिर्दाशेम ॥ अत्र दाशतियोगात्कर्मणि चतुर्थी । प्रायेण सर्वत्र दाशतियोगे कर्मणि चतुर्थी दृश्यते ॥

वयं ते अग्ने समिधा विधेम वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र ।

वयं घृतेनाध्वरस्य होतव्यं देव हविषा भद्रशोचे ॥ २ ॥

वयं । ते । अग्ने । संऽइधा । विधेम । वयं । दाशेम । सुऽस्तुती । यजत्र ।

वयं । घृतेन । अध्वरस्य । होतः । वयं । देव । हविषा । भद्रऽशोचे ॥ २ ॥

हे अग्ने ते त्वां वयं वसिष्ठाः समिधा विधेम । परिचरेम । हे यजत्र यद्यध्वये वयं सुष्टुती शोभनया सुत्वा दाशेम । त्वां परिचरेम । अध्वरस्य यज्ञस्य होतरमे वयं घृतेनाज्येन त्वां दाशेम । हे भद्रशोचे कल्याणज्वाल देव द्योतमानामे त्वां वयं हविषा दाशेम ॥

आ नो देवेभिरुप देवहूतिमग्ने याहि वर्षदृतिं जुषाणः ।

तुभ्यं देवाय दाशतः स्याम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

आ । नः । देवेभिः । उप । देवऽहूतिं । अग्ने । याहि । वर्षदऽकृतिं । जुषाणः ।

तुभ्यं । देवाय । दाशतः । स्याम । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ३ ॥

हे अग्ने नोऽस्माकं देवहूति स्तोत्रं यज्ञं वा देवेभिर्देवैः सार्धं वर्षदृतिं हविर्जुषाणः सेवमानस्त्वमुपा याहि । देवाय द्योतमानाय तुभ्यं वयं दाशतः परिचरन्तः स्याम । भवेम । सिद्धमन्यत् ॥ १७ ॥

उपसद्यायेति पंचदशर्चं पंचदशं सूक्तं वसिष्ठस्वार्चं गायत्रमापेयं । तथा चानुक्रांतं । उपसद्याय पंचोना गायत्रमिति ॥ प्रातरनुवाक आपेये क्रतो गायत्रे छंदस्याश्विनशस्त्रे चेदं सूक्तं । सूचितं च । उपसद्याय त्वमपि यज्ञानामिति तिस्र उक्तमा उद्धरेत् । आ० ४. १३. इति ॥ उपसदि पार्वहिकामुपसद्यायेत्यावाप्तिस्र ऋचः सामिधेयः । सूच्यते च । उपसद्याय मीळुष इति तिस्र एकैकां त्रिरनवानं । आ० ४. ८. इति ॥ पवित्रेया मपी रक्षासीत्येषा प्रथमाज्यभागानुवाक्या । सूचितं च । पावकवंतावाज्यभागवती रक्षांसि सेधति । आ० २. १२. इति ॥ अन्वारंभणीयायामपेर्मणिनी याज्या । सूचितं च । आ सवं सवितुर्यथा स नो राधांस्ता भर

। आ० २. ८. । इति । स्वस्त्ययन्नामिष्टावपि रचा य इति प्रथमाज्यमाग्राहुवाक्या । सूचितं च । स्वस्त्ययन्ना रक्षितवन्तावपि रचा यो अंहसः । आ० २. १०. । इति ॥

उपसद्याय मी॒ऌहुष॑ आ॒स्ये जुहु॑ता ह॒विः । यो नो॒ नेदि॑ष्ट॒मार्थं ॥ १ ॥

उप॒ऽसद्या॑य । मी॒ऌहुषे॑ । आ॒स्ये । जुहु॑त । ह॒विः । यः । नः । नेदि॑ष्टं । आ॒र्थं ॥ १ ॥

हे अध्वर्यव उपसद्यायोपसदनीयाय मी॒ऌहुषे कामानां वर्षिचेऽप्ये तत्प्रीत्यर्थमाख्ये तस्मैव मुखे हविर्बुद्धत । योऽभिर्नेदिष्टमासन्नतममार्थं भवति । आसन्नतमो बंधुर्भवतीत्यर्थः ॥ आप्यमिति स्वार्थिकसहितः ॥

यः पंच॑ चर्षणी॒रभि॑ निष॒साद् दमे॑दमे । क॒विर्गृ॑हप॒तिर्यु॑वा ॥ २ ॥

यः । पंच॑ । चर्ष॒णीः । अ॒भि । नि॒ऽससा॑द् । दमे॑ऽदमे । क॒विः । गृ॒हऽप॑तिः । यु॒वा ॥ २ ॥

योऽपिः कविः प्राञ्चो गृहपतिर्गृहाणां पालयिता युवा नित्यतदणः सन् प्रंच चर्षणीः पंच जनान् मनुष्याः नमि अभिमुखं दमे दमे गृहे गृहे निषसाद् निषीदति । उत्तरया वाक्यपरिसमाप्तिः ॥

स नो॒ वेदो॑ अ॒मात्य॑म॒ग्नी र॑क्षतु वि॒श्वतः॑ । उ॒तास्मान्पा॒त्वंह॑सः ॥ ३ ॥

सः । नः । वेदः । अ॒मात्यं । अ॒ग्निः । र॒क्षतु॑ । वि॒श्वतः॑ । उ॒त । अ॒स्मान् । पा॒तु । अंह॑सः ॥ ३ ॥

सोऽभिर्नोऽस्माकं वेदो धनममात्यमंतिके भवं सहभूतं वा विश्वतः सर्वतो बाधकाद्भक्षतु । उतापि चास्मा-  
न्वसिष्ठानंहसः पापात्पातु । रक्षतु ॥

नवं॑ नु स्तोम॑म॒ग्नये॑ दि॒वः श्ये॒नाय॑ जी॒जनं॑ । वस्वः॑ कु॒विद्व॑नाति॒ नः ॥ ४ ॥

नवं॑ । नु । स्तोमं॑ । अ॒ग्नये॑ । दि॒वः । श्ये॒नाय॑ । जी॒जनं॑ । वस्वः॑ । कु॒विद्व॑त् । व॒नाति॑ । नः ॥ ४ ॥

दिवो सुतोक्त्व स्नेनाय स्नेनसदृशाय नु चिप्रं गंचेऽप्ये यस्मै नवं नूतनं स्तोमं जीवनं जगयामि सो  
ऽभिर्नोऽस्माभं कुविद्वज् वस्वो वसु धनं ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ वनाति । ददात्वित्यर्थः ॥

स्या॒हो यस्य॑ अ॒ग्र्यो दृ॒शे र॒यिर्वी॑र॒वन्तो॑ यथा । अ॒ग्रे य॒ज्ञस्य॑ शोच॑तः ॥ ५ ॥

स्या॒होः । यस्य॑ । अ॒ग्र्यः । दृ॒शे । र॒यिः । वी॒रऽव॑न्तः । यथा॑ । अ॒ग्रे । य॒ज्ञस्य॑ । शोच॑तः ॥ ५ ॥

यज्ञस्याग्रे पुरस्ताज्जाग्रे शोचतो दीप्यमानस्त यस्याग्रेः अग्र्यो दीप्यतो वीरवन्तो रयिर्धनं यथा  
तद्वत् दृशे द्रष्टुं चक्षुषे वा स्यार्हाः स्पृहणीया भवंति तस्मै नवं स्तोमं जीवनमित्यनुषंगः । उत्तरच संबंधो  
वा ॥ ॥ १८ ॥

सेमां॑ वे॒तु वर्ष॑दू॒तिम॒ग्निर्जु॑षत नो॒ गिरः॑ । यजि॑ष्ठो ह॒व्यवा॑हनः ॥ ६ ॥

सः । इ॒मां । वे॒तु । वर्ष॑दू॒तिः । अ॒ग्निः । जु॑षत । नः । गिरः॑ । यजि॑ष्ठः । ह॒व्यऽवा॑हनः ॥ ६ ॥

यजिष्ठो यजनीयतमो यष्टतमो वा हव्यवाहनो हव्यानां हविषां ऋद्धा सोऽभिरिमां वर्षदूतिमस्माभिर्दी-  
यमानामाहुतिं वेतु । कामयतां । भक्षयतु वा । नोऽस्माकं गिरः सुतीक्ष्ण जुषत । सेवतां ॥

नि॒ त्वा न॒क्ष्य वि॒श्वते॑ ह्यु॒मन्तं॑ दे॒व धी॑महि । सु॒वीर॑म॒म आ॑हुत ॥ ७ ॥

नि॒ । त्वा । न॒क्ष्य । वि॒श्वते॑ । ह्यु॒मन्तं॑ । दे॒व । धी॑महि । सु॒ऽवी॑रं । अ॒ग्ने । आ॒ऽहु॑त ॥ ७ ॥



नक्षोपगतव्य । नक्षतिर्वाप्तिकर्मा । विरपते विशां पते देव द्योतमानाहुत सर्वैर्यजमानैरभिहुत हे अग्ने  
सुमंतं दीप्तिमंतं सुवीरं कव्याणसोतुकं त्वा त्वां वयं नि धीमहि । निहितवंतः ॥

क्षपं उ॒स्रश्च दी॒दिहि स्व॒प्रय॒स्त्वया व॒यं । सु॒वीर॒स्त्वम॒स्मयुः ॥ ८ ॥

क्षपः । उ॒स्रः । च॒ । दी॒दिहि । सु॒ऽअ॒प्रयः । त्वया । व॒यं । सु॒ऽवीरः । त्वं । अ॒स्म॒ऽयुः ॥ ८ ॥

हे अग्ने त्वं षणो राचीरसोऽहानि च । सर्वदेति यावत् । दीदिहि । दीप्यस्व । दीप्यमानेन त्वया वयं  
वसिष्ठाः स्वप्रयः शोभमानापयो भवाम । अक्षयुरक्षान् कामयमानः सुप आत्मानः क्वचित् क्वचि कृते  
क्वाच्छंदसीत्युग्रत्वयः । दकारलोपश्छांदसः ॥ तथा च यास्कः । अक्षयुरक्षान् कामयमानः । नि० ६. २१. इति ॥  
त्वं सुवीरः सुसोतुको भव ॥

उप॑ त्वा सा॒तये॒ नरो॒ विप्रा॑सो यंति धी॒तिभिः॑ । उपा॒क्षरा॑ सह॒स्रिणी॑ ॥ ९ ॥

उप॑ । त्वा॒ । सा॒तये॑ । नरः । विप्रा॑सः । यंति॒ । धी॒ति॒ऽभिः॑ । उप॑ । अ॒क्षरा॑ । स॒ह॒स्रिणी॑ ॥ ९ ॥

हे अग्ने त्वा त्वां नरो नेतारो यजमाना विप्रासो विप्रा मेधाविनो धीतिभिः कर्मभिः सातये धनाय  
कामानां कामाय वोप यंति । उपगच्छति । सहस्रिणी सहस्रसंख्याकाक्षरा चरहिता सुतिरूपाक्षदीया  
वाक् त्वायुप याति च ॥

अ॒ग्नी रक्षाँ॑सि से॒धति॒ शुक्र॑शोचि॒रम॑र्त्यः । शुचिः॑ पाव॒क ई॒डाः ॥ १० ॥

अ॒ग्निः । रक्षाँ॑सि । से॒धति॒ । शुक्र॑ऽशोचिः । अ॒मर्त्यः । शुचिः॑ । पा॒व॒कः । ई॒डाः ॥ १० ॥

शुक्रशोचिः शुभज्वालोऽमर्त्यो मरणरहितो देवतात्मा शुचिः स्वयं शुद्धः पावकोऽन्येषामपि शोधक  
ईडाः क्षुत्तोऽग्नी रक्षांसि राक्षसान् सेधति । बाधतां ॥ ॥ १० ॥

स नो॑ राधां॒स्या भ॒रेशा॑नः सहसो॒ यहो॑ । भर्गश्च॒ दातु॑ वार्यै ॥ ११ ॥

सः । नः॑ । राधाँ॑सि । आ॒ । भ॒र॒ । ई॒शा॒नः । स॒ह॒सः । य॒हो॒ इति॑ । भर्गः । च॒ । दा॒तु॒ । वार्यै॑ ॥ ११ ॥

हे सहसो यहो वसस्व पुषाये स प्रसिद्धस्त्वमीशानः सर्वस्व जगत ईश्वरः स नोऽसम्भं राधांसि धनाणि ।  
रायो राध इति धननामसु पाठात् । आ भर । आहर । भगश्च भगो देवोऽपि वार्यं धनं दातु । असम्भं  
ददातु ॥ अभ्यासलोपश्छांदसः ॥ भगोऽच सूक्ते निपातमाग्निनी देवता ॥

त्वम॑ग्ने वी॒रव॒द्यशो॑ दे॒वश्च॒ सवि॒ता भर्गः॑ । दि॒तिश्च॒ दाति॒ वार्यै॑ ॥ १२ ॥

त्वं । अ॒ग्ने॒ । वी॒र॒ऽव॒न्त॒ । य॒शः॑ । दे॒वः । च॒ । स॒वि॒ता॒ । भर्गः॑ । दि॒तिः॑ । च॒ । दा॒ति॒ । वार्यै॑ ॥ १२ ॥

हे अग्ने त्वं वीरवत्पुत्रपौत्रोपेतं यशोऽन्नं देहीति शेषः । देवश्च सविता सविता देवोऽपि वार्यं वरणीयं  
धनं दाति । ददातु । भगश्च देवोऽपि ददातु । दितिश्च दितिरपि देवी ददातु । सवितादिः सूक्ते निपातमा-  
ग्निनी देवता ॥

अ॒ग्ने रक्षाँ॑ णो॒ अंह॑सः प्र॒ति ष्म॒ देव॒ री॒षतः॑ । तपि॑ष्ठैर॒जरो॑ द॒ह ॥ १३ ॥

अ॒ग्ने॒ । रक्षाँ॑ । नः॑ । अंह॑सः । प्र॒ति॒ । स्म॒ । दे॒व॒ । रि॒षतः॑ । तपि॑ष्ठैः । अ॒ज॒रः॑ । द॒ह ॥ १३ ॥

हे अग्ने त्वं नाऽक्षान्हसः पापाद्रूष । पाहि ॥ संहितायां दीर्घश्छांदसः ॥ अग्नि च हे देव द्योतमानाये  
अवरौ जरारहितस्त्वं रिषतो हिंसतः शत्रून् तपिष्ठैरतिशयेन तापकैस्तेजोभिर्दह । भस्मीकुरु ॥

अथा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये । पूर्भवा शतभुजिः ॥ १४ ॥

अथ । मही । नः । आयसी । अनाधृष्टः । नृऽपीतये । पूः । भव । शतऽभुजिः ॥ १४ ॥

अधाधुना हे अये अनाधृष्टोऽप्रतिधर्षणीयस्त्वं नोऽस्माकं नृपीतये नृणां रक्षार्थं मही महत्यायस्त्वयसा निर्मिता शतभुजिरत्यंतं विस्तृता शतगुणा पूः पुरी । तद्रक्षासाधनभूतप्राकारादिर्वा पूर्यते । भव । यथायसा निर्मिता पुरी तद्रक्षासाधनभूतप्राकारादिर्वा शत्रुभ्यो भीतान्नचति तद्वद्राक्षेभ्यो भीतानस्मान् पाहीत्यर्थः ॥

त्वं नः पासंहसो दोषावस्तरघायतः । दिवा नक्तमदाभ्य ॥ १५ ॥

त्वं । नः । पाहि । अंहसः । दोषाऽवस्तः । अघऽयतः । दिवा । नक्तं । अदाभ्य ॥ १५ ॥

हे अदाभ्याहिंस्व दोषावस्ता रात्रेराक्षादयतः । तमसो वारयितरित्यर्थः । अये त्वं नोऽस्मानंहसः पापादघायतः पापमिच्छतः शत्रोश्च दिवा नक्तमहनि रात्रौ च सर्वदा पाहि । रक्ष ॥ ॥ २० ॥

एना व इति द्वादशर्चं षोडशं सूक्तं वसिष्ठस्वार्धमभिदेवताकं । अयुवो बृहत्यो जुजः सतोबृहत्यः । तथा चानुक्रांतं । एना वो द्वादश प्रगाथमिति ॥ प्रातरनुवाक आपेये ऋतौ बाह्वेते छंदस्याधिनशस्त्रे चेदं सूक्तं । सूचितं च । एना वो अग्निं प्र वो यज्ञं । आ० ४. १३. इति ॥ आपिमास्तशस्त्रे देवो वो द्रविणोदा इति प्रगाथोऽनुरूपः । सूचितं च । देवो वो द्रविणोदा इति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ । आ० ५. २०. इति ॥

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।

प्रियं चेत्तिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतं ॥ १ ॥

एना । वः । अग्निं । नमसा । ऊर्जः । नपातं । आ । हुवे ।

प्रियं । चेत्तिष्ठं । अरतिं । सुऽअध्वरं । विश्वस्य । दूतं । अमृतं ॥ १ ॥

ऊर्जो बलस्य नपातं पुत्रं । सृनुर्नपादित्यपत्यनामसु पाठात् । प्रियं प्रियमस्माकं चेत्तिष्ठमतिशयेन ज्ञातारं प्रज्ञापकं वारतिं गंतारं स्वामिनं वा स्वध्वरं मुयज्ञं विश्वस्य सर्वस्य यजमानस्य दूतममृतं नित्यमग्निमेनेन नमसा स्तोत्रेण ॥ यद्यप्यचान्वादेशो नास्ति तथापि च्छांदसत्वादिदंशब्दस्त्वेनादेशः । यद्वा । एनेनमित्यपेर्विशेषणं । समानार्पत्वात्पूर्वेषु सूक्तेष्वदिष्टत्वाद्वसिष्ठान्वादिश्यते ॥ वो युष्मदर्धमा ऊवे । आहूयामि ॥

स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।

सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानां ॥ २ ॥

सः । योजते । अरुषा । विश्वऽभोजसा । सः । दुद्रवत् । सुऽआहुतः ।

सुऽब्रह्मा । यज्ञः । सुऽशमी । वसूनां । देवं । राधः । जनानां ॥ २ ॥

सोऽपिररुषारोचमानां विश्वभोजसा विश्वस्य पालयितारावश्यं योजते । रथे युनक्तु । यद्वा । सोऽरुषा-रोचमानेन तेजसा विश्वभोजसा विश्वस्य रक्षकेण योजते । अयुज्यत । किंच सोऽपिर्दुद्रवत् । आनेतुं देवान् प्रति भृशं द्रवन्तु द्रवति वा । स्वाङ्गतः सुष्टाङ्गतः सुब्रह्मा सुसृतिः शोभनात्त्रो वा यज्ञो यष्टव्यः सुशमी सुकर्मा च भवति । तमिमं देवं द्योतमानं वसूनां वासकानां जनानां वसिष्ठानां राधो हविरभिगच्छत्विति शेषः । यद्वा । एवंगुणविशिष्टोऽपिर्वसूनां धनानां मध्ये देवमत्यंतप्रकाशमानं राधो धनं जनानां यजमानानां धनवत् प्रियतम इत्यर्थः ॥

उदस्य गोचिरस्थादनुह्वानस्य मीळुषः ।

उडूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिधते नरः ॥ ३ ॥



उत् । अस्य । शोचिः । अस्थात् । आऽजुहानस्य । मीऽद्भुषः ।

उत् । धूमासः । अरुषासः । दिविऽस्पृशः । सं । अग्निं । इंधते । नरः ॥३॥

मीऽद्भुषः कामानां वर्षितुराजुहानस्याभिह्रयमानस्यापिः शोचिस्तेज उदस्थात् । उत्तिष्ठति । अरुषास आरोचमाना दिविस्पृशोऽंतरिक्षस्पृशो धूमासो धूमासोदस्युः । अस्थादित्येकवचनांतं च ऊवचनांततया विपरिणतं सदचान्वेति । तमिममग्निं नरः कर्मणां नेतार ऋत्विजः समिधते । सम्यक् दीपयति ॥

तं त्वा दूतं कृणमहे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह ।

विश्वं सूनो सहसो मर्तभोजना रास्व तद्यत्वेमहे ॥४॥

तं । त्वा । दूतं । कृणमहे । यशऽतमं । देवान् । आ । वीतये । वह ।

विश्वं । सूनो इति । सहसः । मर्तऽभोजना । रास्व । तत् । यत् । त्वा । ईमहे ॥४॥

हे सहसः सूनो वत्सस्य पुत्रापि यशस्तममतिशयेन यशस्विनं तं प्रसिद्धं यं त्वा त्वा दूतं कृणमहे कुर्मः स त्वं देवान्वीतये हविषां भक्षणाया वह । किंच यद्यदा त्वा त्वामीमहे याचामहे तदैव विश्वा विश्वानि मर्तभोजनानि मनुष्याणां भोग्यानि कक्षाणानि श्वनानि रास्व । अस्मभ्यं देहि ॥

त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होतां नो अध्वरे ।

त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यस्मि वेषि च वार्ये ॥५॥

त्वं । अग्ने । गृहऽपतिः । त्वं । होता । नः । अध्वरे ।

त्वं । पोता । विश्वऽवार । प्रऽचेताः । यस्मि । वेषि । च । वार्ये ॥५॥

हे विश्ववार विश्वैर्वरणीयापि त्वं नोऽस्माकमध्वरे यागे गृहपतिरसि । यजमानोऽसि । त्वं होता देवानामाह्वाता । त्वं त्वमेव पोतासि । अतः प्रचेताः प्रकृष्टमतिस्त्वं वार्यं वरणीयं हविर्यच्चि । यज । वेषि च । कामयस्व । भक्षय वा ॥

कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।

आ न चृते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते ॥६॥

कृधि । रत्नं । यजमानाय । सुक्रतो इति सुऽक्रतो । त्वं । हि । रत्नऽधाः । असि ।

आ । नः । चृते । शिशीहि । विश्वं । मृत्विजं । सुऽशंसः । यः । च । दक्षते ॥६॥

हे सुक्रतो शोभनकर्मज्ञपि यजमानाय मय्यं रत्नं धनं । अचं रत्नमिति धननामसु पाठात् । कृधि । कृध । देहीत्यर्थः । हि यस्मात्त्वं रत्नधा रत्नस्य दातासि । नोऽस्माकमृते यज्ञे विश्वं सर्वमृत्विजसा शिशीहि । तीक्ष्णीकृध । किंच यः सुशंसः सुसुतिरस्यत्युचो दक्षते वर्धते तं वर्धय । यद्वा । यः सुशंसो होता वर्धते तं वर्धयेत्यर्थः । होतुः पृथगुपादानमादरार्थं ॥ ॥२१॥

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः संतु सूरयः ।

यंतारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयंत गोनी ॥७॥

त्वे इति । अग्ने । सुऽआहुत । प्रियासः । संतु । सूरयः ।

यंतारः । ये । मघऽवानः । जनानां । ऊर्वान् । दयंत । गोनी ॥७॥

हे अग्ने स्वाङ्गत यजमानिः सुष्टाङ्गत त्वे तव सूरयः प्रेरकाः क्षीतारो वा प्रियासः प्रियाः सतु । भवन्तु । किञ्च ये मघवानो धनवन्तो यन्तारः प्रदातारो जनानामस्रदीयानामूर्वान् समूहान् गोनां गवां चोर्वान्दयन्त प्रयच्छन्ति ते च तव प्रियासः संत्विति पूर्वेष्वान्वयः ॥

येषामिळा घृतहस्ता दुरोणे आँ अपि प्राता निषीदति ।  
तांस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् ॥ ८ ॥  
येषां । इळा । घृतहस्ता । दुरोणे । आ । अपि । प्राता । निऽसीदति ।  
तान् । त्रायस्व । सहस्य । द्रुहः । निदः । यच्छ । नः । शर्म । दीर्घश्रुत् ॥ ८ ॥

येषां दुरोणे गृहे घृतहस्ता । घृतयुक्ता हस्तो यस्या असी घृतहस्ता । घृतेनाभिघारितेत्यर्थः । इळान्नरूपा हविर्लक्षणा देवी । इरेळ्यन्ननामसु पाठात् । प्राता पूर्णा आ निषीदति आसीदति । अपीति पूरणः । तान्हविष्मतो यजमानान् हे सहस्य सहसे वलाय हिताये द्रुहो द्रोघुर्निदो निदकाश्च शचोस्त्रायस्व । नोऽस्रभ्यं दीर्घश्रुत् दीर्घकालं श्रोतव्यं शर्म सुखं गृहं वा यच्छ च । देहि ॥

स मद्रया च जिह्या वहिरासा विदुष्टरः ।  
अग्ने रयिं मघवन्नो न आ वह हव्यदातिं च सूदय ॥ ९ ॥  
सः । मद्रया । च । जिह्या । वहिः । आसा । विदुऽतरः ।  
अग्ने । रयिं । मघवन्तऽभ्यः । नः । आ । वह । हव्यऽदातिं । च । सूदय ॥ ९ ॥

हे अग्ने मद्रया च मोदयिष्या देवानामासांस्त्रस्थानीयया जिह्या जालया वहिर्हविषां योढा विदुष्टरो विदुष्टरः स प्रसिद्धस्त्वं मघवन्नो हविष्मन्नो नोऽस्रभ्यं रयिं धनमा वह च । हव्यदातिं । हव्यानि ददातीति हव्यदातिर्यजमानः । तं । तथा च वाजसनेयिन आमनन्ति । यजमानो वै हव्यदातिः । शत० ब्रा० १. ४. १. २४. । इति । सूदय च । कर्मसु प्रेरय च ॥

ये राधांसि ददत्यध्या मघां कामेन श्रवसो महः ।  
ताँ अंहसः पिपृहि पतृभिष्टुं शतं पूर्भिर्यविष्ठय ॥ १० ॥  
ये । राधांसि । ददति । अध्या । मघा । कामेन । श्रवसः । महः ।  
तान् । अंहसः । पिपृहि । पतृभिः । त्वं । शतं । पूऽभिः । यविष्ठय ॥ १० ॥

हे यविष्ठय युवतमापे त्वं ये यजमाना महो महतः श्रवसो यशसः कामेनेच्छया । यशस्कामाः संत इत्यर्थः । राधांसि साधकान्यभ्याश्चात्मकानि मघा मघानि ददति तान्द्रातृनंहसः पापात् शचोर्वा पतृभो रचासाधनभूतैः शतमपरिमिताभिः पूर्भिर्नगरीभिश्च पिपृहि । पालय ॥

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णा विवष्ट्यासिचै ।  
उद्धा सिचध्वमुप वा पूणध्वमादिहो देव ओहते ॥ ११ ॥  
देवः । वः । द्रविणऽदाः । पूर्णा । विवष्टि । आऽसिचै ।  
उत्त । वा । सिचध्वं । उप । वा । पूणध्वं । आत् । इत्त । वः । देवः । ओहते ॥ ११ ॥



द्रविणोदा धनानां दाता देवोऽपिर्वो युष्मदीयां पूर्णां हविषासिचमामिक्तां सुचं विवष्टि । कामयते ।  
अत उत्तिचध्वं वा सोमेन पाचं । सप पुणध्वं वा सोमं ॥ वांश्चन्दौ समुच्चयार्थं ॥ ध्रुवग्रहेण होतृचमसं पूरयत  
वापथे सोमं यच्छत जेत्यर्थः । आदिदन्तरमेव देवोऽपिर्वो युष्मानोहते । वहति ॥

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।

दधाति रत्नं विधत्ते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥ १२ ॥

तं । होतारं । अध्वरस्य । प्रऽचेतसं । वह्निं । देवाः । अकृण्वत ।

दधाति । रत्नं । विधत्ते । सुऽवीर्यं । अग्निः । जनाय । दाशुषे ॥ १२ ॥

देवाः प्रचेतसं प्रकृष्टमतिममिमध्वरस्य यज्ञस्य वह्निं वोढारं होतारं चाकृण्वत । अकुर्वन् । किमर्थमित्यत  
आह । स चापिर्विधत्ते परिचरते दाशुषे हविषां प्रदाचि जनाय सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं रत्नं रमणीयं धनं  
दधाति । ददात्वित्यर्थः ॥ ॥ १२ ॥

अग्ने भव सुषमिधेति सप्तचै सप्तदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्पमपिदेवताकं । सप्तापि द्विपदास्त्रिष्टुभः । तथैवानु  
कथ्यते । अग्ने भव सप्त द्वैपदं चैष्टुममिति ॥ अतिरात्रि षष्ठेऽहनि तृतीयसवने मैत्रावरुणशस्त्रेऽग्ने भवेति तृचो  
ऽनुष्टुपः । सूच्यते हि । अग्ने त्वं नोऽतमोऽग्ने भव सुषमिधा समिद्ध इति, सोविद्यानुरूपं । आ० ८. २. इति ॥

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिर्हविष्या वि स्तृणीतां ॥ १ ॥

अग्ने । भव । सुऽसमिधा । संऽइद्धः । उत । बर्हिः । उर्विष्या । वि । स्तृणीतां ॥ १ ॥

हे अग्ने सुषमिधा शोभनया समिधा समिद्धो भव । सम्यक् दीप्तो भव । उतापि च बर्हिर्हविष्या विस्तीर्ण-  
मुपस्तृणीतामध्वर्युः ॥

उत द्वारं उशतीर्वि अयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥ २ ॥

उत । द्वारः । उशतीः । वि । अयन्तां । उत । देवान् । उशतः । आ । वह । इह ॥ २ ॥

उतापि चोशतीर्देवान् कामयमाना द्वारो यज्ञगृहस्य देव्यो वा । तथा च यास्कः । द्वारो जवतेर्वा  
द्रवतेर्वा वारयतेर्वा । नि० ८. ९. इति । वि अयन्तां । उतापि चोशतो यज्ञं कामयमानान्देवानिह यज्ञ  
आ वह ॥

अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ३ ॥

अग्ने । वीहि । हविषा । यक्षि । देवान् । सुऽअध्वरा । कृणुहि । जातऽवेदः ॥ ३ ॥

हे जातवेदो जातधनाग्ने वीहि । देवानभिगच्छ । हविषा देवान्यचि । यज च । स्वध्वरा स्वध्वरान् शोभ-  
नयज्ञांश्च कृणुहि । कुरु ॥

स्वध्वरा करति जातवेदा यज्ञहेवाँ अमृतांन्पिप्रयच्च ॥ ४ ॥

सुऽअध्वरा । करति । जातऽवेदाः । यज्ञात् । देवान् । अमृतांन् । पिप्रयत् । च ॥ ४ ॥

जातवेदा जातधनोऽग्निरमृतान्मरणरहितान्देवान् स्वध्वरा स्वध्वरान् शोभनयज्ञान् करति । करोतु ।  
यचत् । हविषा यजतु च । पिप्रयत् । सोमः प्रीणयतु च ॥

वंस्व॒ विश्वा॒ वार्या॑णि प्रचेतः स॒त्या भव॑न्वा॒शिषो॑ नो अ॒द्य ॥ ५ ॥

वंस्व॑ । विश्वा॑ । वार्या॑णि । प्र॒चेत॒ इति॑ प्र॒चेतः॑ । स॒त्याः । भव॑न्तु । आ॒ऽशिषः॑ । नः ।  
अ॒द्य ॥ ५ ॥

हे प्रचेतः प्रकृष्टमतिमत्तमे विश्वा विश्वानि वार्याणि वरणीयानि धनानि वंस्व । असम्भं देहि । नोऽस्माकमाशिषोऽथ सत्या यथार्था भवन्तु ॥

त्वामु॒ ते द॑धिरे ह॒व्य॒वाहं॑ दे॒वासो॑ अ॒ग्रे ऊ॒र्जे आ॒ नपा॑तं ॥ ६ ॥

त्वां । ऊं॒ इति॑ । ते । द॒धिरे॒ । ह॒व्य॒ऽवाहं॑ । दे॒वासः॑ । अ॒ग्रे । ऊ॒र्जे । आ॒ । नपा॑तं ॥ ६ ॥

हे अग्रे ऊर्जो बलस्य नपातं पुचं । सृगुर्नपादित्यपत्यनामसु पाठात् । त्वामु त्वामिव ते प्रसिद्धा देवासो देवा हव्यवाहं हविषो वोढारमा दधिरे । अकुर्वन्तित्यर्थः ॥

ते ते॒ दे॒वाय॒ दाश॑तः स्याम॒ महो॒ नो॒ रत्ना॒ वि द॑ध॒ इया॒नः ॥ ७ ॥

ते । ते । दे॒वाय॒ । दाश॑तः । स्या॒म॒ । म॒हः । नः॒ । रत्ना॑ । वि । द॒धः । इ॒या॒नः ॥ ७ ॥

हे अग्रे देवाय द्योतमानाय ते तुभ्यं ते प्रसिद्धा वसिष्ठा वयं दाशतो हवींषि ददतः स्याम । मवेम । अतो महो महांस्त्वमियान उपगम्यमानो याच्यमानो वा नोऽस्माभं रत्ना रत्नानि रमणीयानि धनानि वि दधः । विधत्स्व ॥ ॥ २३ ॥ ॥ १ ॥

द्वितीयेऽनुवाके षोडश सूक्तानि । तत्र त्वे ह यत्पितर इति पंचविंशत्युचं प्रथमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं वैष्णवमिन्द्रदेवताकं । द्वाविंशादिभिस्तत्त्वभिः सुदासनाम्नो राज्ञो दानं स्तूयते । अतस्मात्तद्देवताकाः । अनुक्रम्यते हि । त्वे ह यत्पंचार्थिकिन्द्रं सुदासः पैजवनस्य चतस्रोऽत्या दानस्तुतिरिति ॥ महाव्रत आदितः पंचदशर्चः शंसनीयाः । तथैव पंचमारण्यके सूचितं । त्वे ह यत्पितरश्चित्र इन्द्रेति पंचदश । ऐ० आ० ५. २. २. इति ॥

त्वे ह॒ यत्पि॒तर॑श्चि॒न्न इ॒न्द्र॒ विश्वा॑ वा॒मा ज॑रि॒तारो॒ अस॑न्वन् ।

त्वे गा॒वः सु॒दुघा॑स्त्वे ह्य॒श्वा॒स्त्वं वसु॑ दे॒वय॑ते वनि॒ष्ठः ॥ १ ॥

त्वे इति॑ । ह॒ । यत् । पि॒तरः॑ । चि॒त् । नः॒ । इ॒न्द्र॒ । विश्वा॑ । वा॒मा । ज॒रि॒तारः॑ । अस॑न्वन् ।

त्वे इति॑ । गा॒वः । सु॒ऽदुघाः॑ । त्वे इति॑ । हि । अ॒श्वाः॑ । त्वं । वसु॑ । दे॒व॒ऽय॑ते । वनि॒ष्ठः ॥ १ ॥

हे इन्द्र त्वे ह त्वय्येव नोऽस्माकं पितरश्चित् पितरोऽपि जरितारः स्तोतारः संतो यद्यस्मात्कारणाद्विश्वा विश्वानि वामा वामानि वननीयानि धनानि । तथा च यास्तः । वामं वननीयं भवति । नि० ६. ३१. १ इति । असन्वन् अलभन्त तस्माद्वयमपि धनकामास्तां लुभः । तद्युक्तं । हि यस्मात्कारणान्त्वे त्वयि गावः सुदुघा दोग्धुं मुशकाः संति त्वय्यश्वः संति त्वं वसु धनं देवयते देवं त्वामिच्छते यजमानाय वनिष्ठो दातृतमो भवसि ॥

राजै॒व हि॒ जनि॑भिः॒ क्षेपे॑वाव॒ द्युभि॑र॒भि वि॒दुष्क॑विः सन् ।

पि॒शा गि॑रो म॒घव॑न्गोभि॒रश्वै॑स्त्वा॒यतः॑ शि॒शीहि॑ रा॒ये अ॒स्मान् ॥ २ ॥

राजा॑ऽइव । हि । जनि॑ऽभिः । क्षे॒पि । ए॒व । अ॒व । द्यु॑ऽभिः । अ॒भि । वि॒दुः । क॒विः । सन् ।

पि॒शा । गि॑रः । म॒घ॒ऽवन् । गो॑भिः । अ॒श्वैः । त्वा॑ऽय॒तः । शि॒शीहि॑ । रा॒ये । अ॒स्मान् ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वं जनिभिर्जायामी राजैव द्युभिर्दोभिः सह क्षेपेव । निवसस्वैव । हीति पूरणः । किंच हे



मघवन् धनवसिन्द्रं विदुर्विद्वान् कविः क्रांतकर्मा क्रांतप्रज्ञो वा सन् गिरः क्षोतृनक्षान् पिशा रूपेण हिर  
णादिना वा गोमिश्राश्चैवामि अभितो रच । त्वाद्यतस्त्वत्कामानक्षान् राये शिश्रीहि । धनार्थं च संस्तुह ॥

इमा उ त्वा पस्पृधानासो अच मद्रा गिरौ देवयंतीरूपं स्युः ।

अर्वाचीं ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविंदु शर्मन् ॥ ३ ॥

इमाः । उं इति । त्वा । पस्पृधानासः । अच । मद्राः । गिरः । देवऽयंतीः । उप । स्युः ।

अर्वाचीं । ते । पथ्या । रायः । एतु । स्याम । ते । सुऽमतौ । इंदु । शर्मन् ॥ ३ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वामच यज्ञे क्षोतरि वा प्रवर्तमानाः पस्पृधानासः स्पर्धमाना मद्रा मोदमाना इमा गिरः  
क्षुतय उप स्युः । उपतिष्ठन्ति । अतस्ते तव रायो धनस्य पथ्या ह्यतिरर्वाच्यस्य दमिमुख्येन । गच्छतु । हे इन्द्र वयं  
च ते सुमतौ सुष्टौ वर्तमानाः शर्मन् शर्मणि सुखे स्नाम । भूयास ॥

धेनुं न त्वा सूर्यवसे दुधुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।

त्वामिन्मे गोपतिं विश्वं आहा न इन्द्रः सुमतिं गंतव्यं ॥ ४ ॥

धेनुं । न । त्वा । सुऽयवसे । दुधुक्षन् । उप । ब्रह्माणि । ससृजे । वसिष्ठः ।

त्वां । इत् । मे । गोऽपतिं । विश्वः । आह । आ । नः । इन्द्रः । सुऽमतिं । गंतु । अव्यं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र सूर्यवसे सुतुणे गोष्ठे वर्तमानां धेनुं न धेनुमिव सुहृद्विक्के यज्ञगृहे । दृष्टान्तसामर्थ्याद्वाष्टीतिकलाभः ।  
वर्तमानं त्वां दुधुक्षन् ॥ संहितायां व्यत्ययेन दकारः ॥ कामान् दोग्धुमिच्छन्वसिष्ठो ब्रह्माणि वत्सस्थानीयानि  
क्षोचाण्युप ससृजे । उपसृजते । मे मम विश्वः सर्वो जनस्त्वामित्त्वामिव गोपतिं गवां स्वामिनमाह । ब्रवीति ।  
अथ परोचक्षुतिः । नोऽस्माकं सुमतिं सुष्टुतिमच्छामि इन्द्र आ गंतु । आगच्छतु ॥

अर्णीसि चित्प्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा ।

शर्धंतं शिम्यमुचयस्य नव्यः शापं सिंधूनामकृणोदशस्तीः ॥ ५ ॥

अर्णीसि । चित् । प्रथाना । सुदासे । इन्द्रः । गाधानि । अकृणोत् । सुऽपारा ।

शर्धंतं । शिम्युं । उचयस्य । नव्यः । शापं । सिंधूनां । अकृणोत् । अशस्तीः ॥ ५ ॥

नव्यः सुत्य इन्द्रोऽर्णीसि शत्रुभिर्विदारितायाः पक्ष्ण्या उदकानि प्रथाना चित् प्रथमानान्यपि सुदासे  
राज्ञे गाधानि सुपारा सुपाराणि पारयितुं तर्तुं योग्यानि चाकृणोत् । अकरोत् । अपि च शर्धंतमुत्साहमानं  
शिम्युं बोधमानं शापं विश्वरूपोद्भवमात्मनोऽभिशापमशस्तीरभिशस्तीश्चोचयस्य क्षोतुः सिंधूनां नदीनाम  
कृणोत् । अकरोत् ॥ ॥ ५ ॥

पुरोक्ता इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।

श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो दुह्यवश्च सखा सखायमतर्द्विषूचोः ॥ ६ ॥

पुरोक्ताः । इत् । तुर्वशः । यक्षुः । आसीत् । राये । मत्स्यासः । निऽशिताः । अपिऽइव ।

श्रुष्टिं । चक्रुः । भृगवः । दुह्यवः । च । सखा । सखायं । अतरत् । विषूचोः ॥ ६ ॥

यद्युर्वज्रकुशलः ॥ यज्ञे सन्नत्ययो न तु सन्तः । अतो न द्विर्भावः ॥ पुरोक्ताः पुरोगामी पुरोदाता वा ।  
इदिति पूरणः । तुर्वशो नाम राजासीत् । स तुर्वशो राये धनप्राप्तय इन्द्रस्य सखायं सुदासं जगाम । मत्स्यास

इव जले निहिता मत्स्या इव निशिता नियंत्रिता अपि मृगवो द्रुह्यवश्च योधाश्च सुदाससुर्वशस्व च शुष्टिमा-  
शुभ्राग्निं चक्रुः । विषूचोर्विष्वगंचतोऽभयोर्मध्ये सखा सुदासश्चंद्रः सखायं सुदासमतरत् । अतारयत् । तुर्वशं  
चावधीदित्यर्थः । यद्वा । यजुर्यज्ञशीलः पुरोक्ताः पुरोदाता तुर्वशो नाम राजासीत् । तेन मत्स्यासो मत्स्यज-  
नपदा निशिता बाधिता आसन् । अपि च मृगवो द्रुह्यवश्च शुष्टिं सुखं तुर्वशस्व चक्रुः । विषूचोर्विष्वगंचतोऽ-  
भयोर्मध्ये सखा तुर्वशस्व सखिंद्रः सखायं राजानमतरत् । अतारयत् ॥

आ पक्थासो भलानसो भनन्ताल्लिनासो विषाणिनः शिवासः ।

आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगत्युधा नृन् ॥ ७ ॥

आ । पक्थासः । भलानसः । भनन्त । आ । अल्लिनासः । विषाणिनः । शिवासः ।

आ । यः । अनयत् । सधमाः । आर्यस्य । गव्या । तृत्सुभ्यः । अजगन् । युधा । नृन् ॥ ७ ॥

पक्थासः पक्था हविषा पाचका भलानसो भद्रमुखाः । भलेति भद्रवाचा । अल्लिनासोऽल्लिनाः । तपोमि-  
रप्रवृद्धा इत्यर्थः । विषाणिनः कंडूयनार्थं छण्णविषाणहस्ताः । दीक्षिता इत्यर्थः । शिवासः शिवा यागादिना  
सर्वस्व लोकस्व शिवकराः । यागेन हि शिवं भवति लोकस्व । आ भनन्त । अभिष्टुवंति तमिंद्र । भनतिः शब्द-  
कर्मा नीति भनतीति शब्दकर्मसु पाठात् । य इंद्रः सधमाः । सोमपात्रेण सह मावतीति सधमादः । सधमाद  
एव सधमाः । आर्यस्य कर्मशीलस्य गव्या गोसंघान् तृत्सुभ्यो हिंसकेभ्य आनयत् । अजगन् अजगत् स्वयं च  
गोसंघान् लेभे । युधा युद्धेन ताम्रं शत्रून् अघान चेति शेषः ॥

दुराध्योऽं अदितिं सेवयंतोऽचेतसो वि जगृभे परुष्णीं ।

महाविष्यक्पृथिवीं पत्यमानः पशुष्कविरंशयन्नायमानः ॥ ८ ॥

दुःऽआध्यः । अदितिं । सेवयंतः । अचेतसः । वि । जगृभे । परुष्णीं ।

महा । अविष्यक् । पृथिवीं । पत्यमानः । पशुः । कविः । अशयत् । चायमानः ॥ ८ ॥

दुराध्यो दुष्टाभिसंधयोऽचेतसो मंदमतयः सुदासः शत्रवोऽदितिमदीनां परुष्णीं नदीं सेवयंतो वि  
जगृभे । विग्रहः कूलभेदः । तमकुर्वन् । परुष्णाः कूलं विभिदुरित्यर्थः । स सुदासो महेन्द्रप्रसादसत्त्वेन र हिंसा  
पृथिवीमविष्यक् । तदैव व्याप्नोत् । न पुनरुदकेनावध्यत । ततः सुदासः शत्रुनाशयमानश्चयमानस्य पुत्रः अग्नि-  
कविनामा पत्यमानः पत्नयमानः पशुर्यागे संचक्रः पशुरिवाशयत् । अशेत । सुदासा निहत इत्यर्थः ॥

इयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाप्नुश्चनेदभिपित्वं जगाम ।

सुदास इंद्रः सुतुकां अमित्रानरंधयन्मानुषे वघ्निवाचः ॥ ९ ॥

इयुः । अर्थं । न । निऽअर्थं । परुष्णीं । आप्नुः । चन । इत् । अभिऽपित्वं । जगाम ।

सुदासे । इंद्रः । सुतुकान् । अमित्रान् । अरंधयत् । मानुषे । वघ्निऽवाचः ॥ ९ ॥

अर्थेन्द्रः परुष्णा विच्छिन्नानि पर्वणि संदधे । ततः परुष्णा आपो यथापूर्वमर्थं गंतव्यमेव प्रवणदेशं  
प्रति परुष्णीमीयुः । आयथां चक्रुः ॥ इण् गताविति धातोरंतर्भावित्यर्थात् सिटीयुरिति । अतो द्विकर्मकमा-  
ख्यातं ॥ न्यर्थमगंतव्यं परुष्णाः पार्श्वयोः स्थितं निम्नं देशं प्रति परुष्णीं नेयुः । आप्नुश्चन राज्ञः सुदासोऽद्योऽप्य-  
भिपित्वमभिप्राप्तव्यमेव जगाम । इंद्रश्च सुदासे राज्ञे मानुषे लोके वघ्निवाचो जल्पकानमित्रान् शत्रून् सुतुकान्  
सुतुकान् । तुक् लोकमित्यपत्यनामसु पाठात् । अरंधयत् । वशमानयत् ॥



इयुर्गावो न यवसादगौपा यथाकृतमभि मित्रं चितासः ।

पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः शुष्टिं चक्रुर्नियुतो रंतयश्च ॥ १० ॥

इयुः । गावः । न । यवसात् । अगौपाः । यथाऽकृतं । अभि । मित्रं । चितासः ।

पृश्निऽगावः । पृश्निऽनिप्रेषितासः । शुष्टिं । चक्रुः । निऽयुतः । रंतयः । च ॥ १० ॥

यदेन्द्रः सुदासो रक्षणार्थमागच्छति तदा पृश्निनिप्रेषितासः पृश्निनिप्रेषिताः पुन्या मावा नितरां प्रहि-  
ताश्चितासः संहता जानतो वा पृश्निगावः । पृश्निवर्णा गावोऽश्वा येषां ते पृश्निगावो मरुतो यथाकृतमिन्द्रस्य  
साहाय्यं करवामेति यथा पूर्वं समयः कृतसं समयमनतिक्रम्य मित्रमिन्द्रं यवसात् ॥ निमित्तार्थं पंचमी ॥  
यवसं निमित्तीकृत्यागोपा गोपालेनारचिता गावो न गाव इवाभीयुः । अभिजग्मुः । रंतयो रममाणा  
नियुतो मरुतामश्वाश्च शुष्टिं शीघ्रप्राप्तिं चक्रुः । तस्मिन्नुडे मरुत इन्द्रं साहाय्यार्थमभ्यगच्छन्नित्यर्थः ॥ ॥ २५ ॥

एकं च यो विंशतिं च अवस्या वैकर्ण्योर्जनाब्जा न्यस्तः ।

दस्मो न सद्यन्नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषां ॥ ११ ॥

एकं । च । यः । विंशतिं । च । अवस्या । वैकर्ण्योः । जनान् । राजा । नि । अस्तरित्यस्तः ।

दस्मः । न । सद्यन् । नि । शिशाति । बर्हिः । शूरः । सर्गं । अकृणोत् । इन्द्रः । एषां ॥ ११ ॥

यो सुदासो राजा अवस्या यशस इच्छन्निच्छया वा परुष्याः पार्श्वस्थयोर्वैकर्ण्योर्जनपदयोर्विद्यमाना-  
नेकं च विंशतिं च जनान् न्यस्तः आत्मनाहन् स राजा दस्मो न दर्शनीयो युवाध्वर्युरिव सद्यन्वसगृहे बर्हिर्य-  
स्मिन्नुडे सपत्नान्नि शिशाति नितरां जुनाति तस्मिन्नुडे शूर इन्द्र एषां मरुतां सर्गं प्रसवमकृणोत् सुदासः  
साहाय्यार्थमकरोत् ॥

अथ श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु दुह्यं नि वृण्वज्रबाहुः ।

वृणाना अत्र सख्याय सख्यं त्वायंतो ये अमदन्नु त्वा ॥ १२ ॥

अथ । श्रुतं । कवषं । वृद्धं । अप्सु । अनु । दुह्यं । नि । वृणक् । वज्रऽबाहुः ।

वृणानाः । अत्र । सख्याय । सख्यं । त्वाऽयंतः । ये । अमदन् । अनु । त्वा ॥ १२ ॥

अथापि च वज्रबाहुरिन्द्रः श्रुतं कवषं च वृद्धं च चीन तथा दुह्यमनु आनुपूर्वेणाप्सुदक्षे नि वृणक् ।  
न्यमज्जयदित्यर्थः । अत्रास्मिन्नवसरे ये त्वायंतस्त्वत्कामास्त्वा त्वामन्वमदन अमुवन् ते सखायः सख्याय  
सख्यार्थं त्वां वृणानाः सख्यं लेभिर इति शेषः ॥

वि सद्यो विश्वा दृहितान्येषामिन्द्रः पुरः सहसा सप्र दर्दः ।

आनवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेषं पूरं विदथे मृधवाचं ॥ १३ ॥

वि । सद्यः । विश्वा । दृहितानि । एषां । इन्द्रः । पुरः । सहसा । सप्र । दर्दरिति दर्दः ।

वि । आनवस्य । तृत्सवे । गयं । भाक् । जेषं । पूरं । विदथे । मृधऽवाचं ॥ १३ ॥

एषां कवषादीनां विश्वा विश्वानि दृहितानि वृढानि दुर्गाणि पुरो नगरीश्च तद्रक्षासाधनभूतान् सप्र  
प्राकाराश्चिद्रः सहसा बलेन सब एव वि दर्दः । विदारयामास । अपि चानवस्त्राजोः संबंधिनो वसस्त्राजोः

पुत्रस्य वा गयं गृह धनं वा तृत्सवे तृत्सुनामकाय राज्ञे तृत्सुनां गणाय वा वि भाक् । व्यभजत् । अदादित्यधः । इत्यग्निर्द्रं जुषंतो वयं विदधे जुडे मृधवाचं वाधवाचं पूरं मनुष्यं जेष्य । जयेम ॥

नि गव्यवोऽनवो दुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।

षष्टिर्वीरासो अधि षड्वोयु विश्वेदिंद्रस्य वीर्या कृतानि ॥ १४ ॥

नि । गव्यवः । अनवः । दुह्यवः । च । षष्टिः । शता । सुषुपुः । षट् । सहस्रा ।

षष्टिः । वीरासः । अधि । षट् । दुवः । यु । विश्वा । इत् । इंद्रस्य । वीर्या । कृतानि ॥ १४ ॥

गव्यवो गोकामा अनवोऽनोः संबन्धिनो दुह्यवो दुह्योः संबन्धिनश्च वीरासो वीराः षष्टिः शता शतानि । सहस्राणीत्यर्थः । षट् सहस्रा सहस्राणि च षष्टिश्चाधि षडधिकाः षड् दुवोयु दुवोयुवे ॥ चतुर्थी लुक् ॥ परिचरणकामाय सुदासे । नमस्यति दुवस्यतीति परिचरणकर्मसु पाठात् । नि सुषुपुः । नितरां शरते । निहता इत्यर्थः । तान्येतानि विश्वा विश्वानि कृतानि कार्याणींद्रस्ते इंद्रस्तेव वीर्या वीर्याणीति ॥

इंद्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवंत नीचीः ।

दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे ॥ १५ ॥

इंद्रेण । एते । तृत्सवः । वेविषाणाः । आपः । न । सृष्टाः । अधवंत । नीचीः ।

दुःमित्रासः । प्रकलः । ऽवित् । मिमानाः । जहुः । विश्वानि । भोजना । सुऽदासे ॥ १५ ॥

कदाचिदिंद्रेण रक्षिता अथन्यदा तेनैव बाध्यन्ते । एते तृत्सवो दुर्मित्रासो दुष्टमित्राः प्रकलविद्वानंत इंद्रेण वेविषाणा युद्धार्थं संगताः सृष्टाः पलायनार्थमुद्युक्ता नीचीः नीचीना आपो न आप इवाधवंत । अधावंत । ततो मिमानाः सुदासा बाध्यमाना विश्वानि भोजना भोग्यानि धनानि सुदासे राज्ञे जहुः ॥ ॥ २६ ॥

अर्धं वीरस्य शृतपामनिंद्रं परा शर्धंत नुनुदे अभि छां ।

इंद्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः ॥ १६ ॥

अर्धं । वीरस्य । शृतऽपां । अनिंद्रं । परा । शर्धंत । नुनुदे । अभि । छां ।

इंद्रः । मन्युं । मन्युऽम्यः । मिमाय । भेजे । पथः । वर्तनिं । पत्यमानः ॥ १६ ॥

इंद्रोऽभि छां भूमिमभि । भूम्यामित्यर्थः । वीरस्य वीर्ययुक्तस्य सुदासोऽर्धं हिंसकं ॥ अर्धेर्हिंसाकर्मणो ऽर्धशब्दस्य निष्पत्तिः ॥ अनिंद्रं । यस्य बुद्धाविंद्रो नास्त्यसावनिंद्रः । तं । इंद्रमगणयंतमित्यर्थः । शृतपां शृतस्य वीरादेर्हविषः पातारं शर्धंतमुत्सहमानं परा नुनुदे । किंच मन्युम्यो मन्युकर्तुर्मन्युना मिनतो हिंसतो वा शचोर्मन्युं क्रोधं मिमाय । बवाधे । अथ सुदासः शत्रुः पथो मार्गान् पत्यमानो गच्छन् वर्तनिं पलायनमार्गं भेजे । प्राप ॥

आध्रेण चित्तवेकं चकार सिंहं चित्पेत्वेना जघान ।

अव सक्तीर्वेश्यावृश्चदिंद्रः प्रायच्छद्विश्वा भोजना सुदासे ॥ १७ ॥

आध्रेण । चित् । तत् । ऊं इति । एकं । चकार । सिंहं । चित् । पेत्वेन । जघान ।

अव । सक्तीः । वेश्या । अवृश्चत् । इंद्रः । प्र । अयच्छत् । विश्वा । भोजना । सुऽदासे ॥ १७ ॥

इंद्रसक्तदाध्रेण चित् दरिद्रेणापि सुदासेकं मुखं दानकर्म चकार । कारयामास । सिंहं चित् । प्रवधाः



सिंहः सिंहः । तमपि पेल्लेन च्छायेन जघान । घातयामास । वेष्टा । वेष्टी सूची । तथा सक्तीर्युपादेरश्वीनवा-  
वृक्षत् । अवपुक्तवान् । वेष्टादेः क्त्वात् सूच्यवाकरोदित्यर्थः । तान्येतानि चीणि कर्माख्यसंभावितानीति नाशक-  
नीयानीद्रक्ष महिषोऽधिकत्वात् । विश्वा विश्वानि भोजना भोजनानि भोग्यानि धनानि सुदासे राक्षे  
प्रायच्छत् । अदास ॥

शश्चंतो हि शचवो ररधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धंतो विंदु रंधि ।

मर्तो एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जहि वज्रमिद्र ॥ १८ ॥

शश्चंतः । हि । शचवः । ररधुः । ते । भेदस्य । चित् । शर्धंतः । विंदु । रंधि ।

मर्तान् । एनः । स्तुवतः । यः । कृणोति । तिग्मं । तस्मिन् । नि । जहि । वज्रं । इद्र ॥ १८ ॥

हे इद्र ते तव शचवोऽरयः शश्चंतो बहवो ररधुः । वज्रमीयुः । चिदपि च शर्धंत उत्सहमानस्य भेदस्य ।  
मिनन्ति मर्यादा इति भेदो नास्तिकः । तस्य । यद्वा । भेदो नाम सुदासः शत्रुः कश्चित् । तस्येत्यर्थः । रंधिं  
वशीकरं विंद । लभस्व । यो भेदः क्षुपतस्त्वां क्षुवतो मर्ताकर्त्यान् प्रत्येकः पापं कृणोति करोति तस्मिन् भेदे  
तिग्मं निशितं योद्धारमुत्साहयंतं । तथा च यास्कः । तिग्मं तेजतेष्टसाहकर्मणः । नि० १०. ६. । इति । वज्रं ।  
वज्रति गच्छत्येव शत्रुं न प्रतिहन्यत इति वज्रः । तं ॥ वज्रशब्दो वज्रेच्छेन्द्रायवज्रविप्रेत्यादिना रन्मत्ययांतो  
निपातितः ॥ तं अहि । वज्रेण भेदं प्रहरेत्यर्थः ॥

आवदिंद्रं यमुना नृत्सवश्च प्राच भेदं सर्वताता मुषायत् ।

अजासश्च शिर्यवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभुरध्वानि ॥ १९ ॥

आवत् । इंद्रं । यमुना । नृत्सवः । च । प्र । अच । भेदं । सर्वऽताता । मुषायत् ।

अजासः । च । शिर्यवः । यक्षवः । च । बलिं । शीर्षाणि । जभुः । अध्वानि ॥ १९ ॥

अजासिन् सर्वताता सर्वतातो युजे य इन्द्रो भेदं नास्तिकं भेदनामकं वा सुदासः शत्रुं प्र मुषायत् प्रासु-  
ष्णात् । अवधीदित्यर्थः । तमिंद्रं यमुनावत् । अतोषयत् । तप्तीरवासी जनः सर्वोऽप्यतोषयदित्यर्थः । नृत्सव-  
क्षुतोः पुत्रपाशावन् । आवदित्येकवचनं वज्रवचनांततया विपरिणतं सदैव संबध्यते । किंचाजासोऽजा  
जनपदाः शिर्यवो जनपदा यक्षवश्च जनपदा अध्वान्यश्वसंबंधीनि शीर्षाणि शिरांसि । युजे हतानामश्वानां  
शिरांसीत्यर्थः । बलिमुपहारं तस्मा इन्द्रायोप जभुः । उपजभुः । यद्वा । अध्वानि शीर्षाणि युजे गृहीतामुखा-  
नश्वानिन्द्रायोपहारं जभुरित्यर्थः ॥

न त इद्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वी उषसो न नूत्नाः ।

देवकं चिन्मान्यमानं जघंथाव त्मना बृहत्तः शंबरं भेत् ॥ २० ॥

न । ते । इद्र । सुऽमतयः । न । रायः । संचक्षे । पूर्वीः । उषसः । न । नूत्नाः ।

देवकं । चित् । मान्यमानं । जघंथ । अच । त्मना । बृहत्तः । शंबरं । भेत् ॥ २० ॥

हे इद्र ते तव पूर्वाः पुरातनाः सुमतयः शोभनमतयो रायो धनानि चोषसो न उषस इव न संचक्षे  
संख्यातुं न शक्वाः । न नूत्ना नूतनाश्च सुमतयो रायश्च न संचक्षे । किंच त्वं मान्यमानं मन्त्रमानस्य पुत्रं देवकं  
देवकनामानं शत्रुं जघंथ । अवधीः । अजा स्वयमेव बृहतो महतः शिवात् शंबरं चाव भेत् । अजाभिस्ती-  
रिति ॥ ॥ २० ॥

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।

न ते भोजस्य सख्यं मृषंताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥ २१ ॥

प्र । ये । गृहात् । अममदुः । त्वाऽया । पराऽशरः । शतऽयातुः । वसिष्ठः ।

न । ते । भोजस्य । सख्यं । मृषंत । अध । सूरिऽभ्यः । सुऽदिना । वि । उच्छान् ॥ २१ ॥

हे इन्द्र पराशरः शतयातुर्वज्ररचाः । वह्नि रचांसि बाधितुं यं कामयन्ते स शतयातुर्वज्रनां रचसां शतयिता वा । शक्तिर्वसिष्ठश्चैवमादयो ये ऋषयस्त्वाया त्वदिच्छया गृहान्नृहं प्राप्य ॥ अश्वलोपे द्वितीयार्थे पंचमी । पा० २. ३. २८. १. ॥ यद्वा । गृहात् गृहे ॥ सप्तम्यर्थे पंचमी ॥ ग्राममदुः त्वां प्रतुष्टुवुः प्रकर्षेण तर्पितवन्तो वा ते पराशरप्रभृतयो भोजस्य भोजकस्य पात्रस्य ते तव सख्यं सख्युः कर्म स्तोत्रं यजनं वा न मृषन्ति । न विस्मरन्ति । मृष मर्षे । मर्षो मर्षणं । तन्न कुर्वन्तीत्यर्थः । यतो न विस्मरन्त्यधातो हेतोः सूरिभ्यः सूरिणां स्तोतृ-  
णामेषां ॥ अथ विभक्तिव्यत्ययः ॥ सुदिना सुदिनानि व्युच्छान् । व्युच्छन्ति । निवसन्ति । उपगच्छन्तीत्यर्थः ॥

वे नभुर्देववतः शते गोर्वा रथा वधूमता सुदासः ।

अर्हन्मे पैजवनस्य दानं होतैव सन्न पर्येमि रेभन् ॥ २२ ॥

वे इति । नभुः । देवऽवतः । शते इति । गोः । द्वा । रथा । वधूऽमता । सुऽदासः ।

अर्हन् । अमे । पैजऽवनस्य । दानं । होताऽइव । सन्न । परि । एमि । रेभन् ॥ २२ ॥

देववतो राज्ञो नभुः पौत्रस्य पैजवनस्य पित्रवनपुत्रस्य सुदासो राज्ञो गोर्गवां द्वे शते वधूमता वधूष-  
युक्ती वा द्वौ रथा रथौ च देयं दानं दानभूतान् रेभन् इन्द्रं सुवन् अत एवार्हन्त्योग्योऽहं वसिष्ठो हे अमे सन्न  
यन्नगृहं होतैव वषट्कैव पर्येमि । अवापेः संबोधनं सर्वदेवमुख्यत्वप्रतिपादनार्थं न तु देवतात्वज्ञापनार्थमत-  
द्वेषताकत्वादस्य सूक्तस्य ॥

चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मर्हिष्टयः कृशनिनो निरेके ।

ऋजासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥ २३ ॥

चत्वारः । मा । पैजऽवनस्य । दानाः । स्मर्तुऽदिष्टयः । कृशनिनः । निऽरेके ।

ऋजासः । मा । पृथिविऽस्थाः । सुऽदासः । तोकं । तोकाय । श्रवसे । वहन्ति ॥ २३ ॥

पैजवनस्य पित्रवनपुत्रस्य सुदासो राज्ञः स्मर्हिष्टयः प्रशस्तातिसर्वनाः ऋजादिदानांगयुक्ताः कृशनिनो  
हिरण्यालंकारवन्तो निरेके दुर्गती सत्त्वामृजास ऋजुगामिनः पृथिविष्ठाः पृथिव्यां सुप्रतिष्ठिता दाना देयभूता-  
श्चत्वारोऽश्वास्तोकं पुत्रवत्पालनीयं मां वसिष्ठं रथे स्थितं तोकाय तोकस्य पुत्रस्य ॥ षष्ठ्यर्थे चतुर्थो ॥ श्रवसे  
ऽन्नाय यशसे वा वहन्ति । पुनर्मेति पूरणः ॥

यस्य श्रवो रोदसी अंतरूवी शीर्णोशीर्णे विबभाजा विभक्ता ।

समेदिंद्रं न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिर्मशिशाद्भीके ॥ २४ ॥

यस्य । श्रवः । रोदसी इति । अंतः । उर्वी इति । शीर्णोऽशीर्णे । विऽबभाज । विऽभक्ता ।

सम । इत् । इंद्रं । न । स्रवत । गृणन्ति । नि । युध्यामधि । शिशत् । अभीके ॥ २४ ॥

यस्य सुदासः श्रवो यश उर्वी विस्रोणे रोदसी द्वावापृथिव्यावतः । विस्रोण्यथोर्वावापृथिव्योर्मध्ये वर्तत



इत्यर्थः । यस्य सुदा विभक्ता धनस्य प्रदाता श्रीर्णेश्रीर्णेश्रीं श्रेष्ठाय श्रेष्ठाय विवभाव धनं प्रददौ तं सुदासं सप्रेत सप्रेत लोका इन्द्रं न इन्द्रमिव गृणाति । स्तुवंति । किंच स्रवतो नवोऽभीके युद्धे युष्मामधिं युष्मामधि-  
नामकं सपत्नं न्यशिशात् । न्यहन् ॥

इमं नरो मरुतः सश्रुतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः ।

अविष्टना पैजवनस्य केतं दूराणं स्रवमजरं दुर्वोयु ॥ २५ ॥

इमं । नरः । मरुतः । सञ्चतः । अनु । दिवः ऽदासं । न । पितरं । सु ऽदासः ।

अविष्टन । पैजऽवनस्य । केत । दुऽनशं । स्रचं । अजरं । दुवऽयु ॥२५॥

हे नरो नेतारो महत इमं मुदासं राजानं सुदासो राज्ञः पितरं दिवोदासं न दिवोदासमिव । दिवो-  
दास इति पित्रवन्मुख्ये नामान्तरं । अग्नौ सञ्चत । अग्नौसेवध्वं । किञ्च कुवोयु परिचरणकामस्य ॥ यथा मुक् ॥  
पैत्रवन्मुख्ये पित्रवन्मुख्ये सुदासः केतं मन्वं गृहं वाविष्टन । रक्षत । अपि चास्य सुदासः यत् यत् दूषाशं  
कुर्जशमविनाशजरमग्निधिलं चासु ॥ ॥ २८ ॥

यस्मिन्मशृंग इत्येकादशर्चं द्वितीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्घं वैदुभमेन्द्र । तथा चानुक्रांतं । यस्मिन्मशृंग एकाद-  
शेति ॥ आभिन्नविके पंचमेऽह्येतन्निविज्ञानं । सूचितं च । कथा शुभा यस्मिन्मशृंग इति मध्यंदिनः । आ° ७. ७. ।  
इति ॥ विषुवति निष्केवल्यग्रस्तेऽयेतत्सूक्तं । सूचितं च । यस्मिन्मशृंगोऽमि त्वं मेघं । आ° ८. ६. । इति ॥  
महाव्रते निष्केवल्येऽयेतत्सूक्तं । सूचितं च । यस्मिन्मशृंगो वृषभो न भीम उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावान् । ऐ°  
आ° ५. २. २. । इति ॥ आयुष्कामेभ्यां मा ते अस्यामितीन्द्रस्य चानुर्याज्या । सूचितं च । मा ते अस्यां सहसाव-  
न्यरिष्टो पाहि नो अये पायुभिः । आ° २. १०. । इति ॥

यस्तिग्मशृंगो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्चावयति प्र विष्ठाः ।

यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥१॥

यः । तिग्मऽश्रुगः । वृषभः । न । भीमः । एकः । कृष्टीः । च्यवयन्ति । प्र । विष्ठाः ।

यः । शश्वतः । अदाप्नुषः । गयस्य । प्रऽयन्ता । असि । सुस्विऽतराय । वेदः ॥ १ ॥

य इन्द्रस्त्रिमशृङ्गकीर्णशृङ्गो वृषभो न वृषभ इव भीमो मयंकरः सन् एकोऽसहाय एव विद्याः सर्वान  
हृष्टीः शुक्रजनान् स्थानात् प्र च्चावयति । यद्येन्द्रोऽदानुयोऽयजमानस्तु शशतो बहोर्गयस्तु गृहस्तु धनस्तु  
वापहर्ता भवतीति श्रेयः । हे इन्द्र स त्वं सुखितरायातिशयेन सोमाभिषयं कुर्वते जनाय वेदो धनं प्रयंता  
प्रदातासि ॥ नूनंतत्वाद्वा पथ्या अभवः । असौत्वस्याख्यातस्यानुदात्तत्वात्पुनस्तयोनाद्यानुदात्तत्वासंभवात्  
यद्युत्तयुक्तमाख्यातांतरमथ्याहृत्य योजना कृता ॥

त्वं ह त्यदिद्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्थे ।

दासं यच्छुणं कुर्यवं न्यस्मा अरंधय आर्जुनेयाय शिष्यन् ॥२॥

त्व । ह । त्यत् । इंद्र । कुर्त्त । आवः । शुश्रूषमाणः । तन्वा । सऽमर्ये ।

दासैः । यत् । शृणु । कुर्यात् । नि । अस्मै । अरिधयः । आर्जुनेयाय । शिक्षन् ॥ २ ॥

हे इंद्र त्वं ह त्वं खलु त्वत्तदा तत्त्वा शरीरेण सुश्रूषमाण उपचरण समर्थं मयेर्मर्त्यैर्योगिभिः सहिते पुनः  
कुत्समायः । अरणः । कदेत्यत्राह । यवदार्जुनेयायार्जुन्याः पुत्रायासौ कुत्साय शिष्यः धर्मं प्रयच्छन् दासं  
दासनामकमसुरं गृह्णं च कथयं च न्यरंधयः नितरां वशमानयः ॥

त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासैः ।

प्र पौरुकुत्सिं चसदस्युमावः श्वेचसाता वृचहव्येषु पूरुं ॥३॥

त्वं । धृष्णो इति । धृषता । वीतऽहव्यं । प्र । आवः । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः । सुऽदासैः ।

प्र । पौरुऽकुत्सिं । चसदस्युं । आवः । श्वेचऽसाता । वृचऽहव्येषु । पूरुं ॥३॥

हे धृष्णो शत्रूणां धर्मकेन्द्रं धृषता धर्मकेण वज्रेण वलेन वा वीतहव्यं दत्तहविष्कं प्रजनितहविष्कं वा सुदासं राजानं विश्वाभिः सर्वाभिरूतिभि रचाभिः प्रावः । प्रकर्षेणारचः । किंच वृचहव्येषु युद्धेषु चेषसाता चेषसातो चेषस्य भूमेर्मजने निमित्ते पौरुकुत्सिं पुरुकुत्सस्यापत्यं चसदस्युं पूरुं च प्रावः ॥

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृचा हर्यश्च हंसि ।

त्वं नि दस्युं चुमुरि धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहंतु ॥४॥

त्वं । नृऽभिः । नृऽमनः । देवऽवीतौ । भूरीणि । वृचा । हरिऽअश्च । हंसि ।

त्वं । नि । दस्युं । चुमुरि । धुनिं । च । अस्वापयः । दभीतये । सुऽहंतु ॥४॥

हे नृमणो नृभिर्यज्ञानां नेतृभिः स्रोतुभिर्मननीय स्रोतवेन्द्र । नृषु मनो यस्मेति बज्रग्रीहिर्वा । देववीतौ यज्ञे क्रियमाणे सति संग्रामे वा । देवा विजिगीषवो यस्मिन् विर्यंति गच्छंतीति संग्रामो देववीतिः । नृभिर्मन्त्रिः सह भूरीणि बहूनि वृचा वृचाणि शत्रून् हंसि । मारितवानसि । किंच हे हर्यश्चेन्द्र त्वं दभीतये दभीतिनामकाय राजर्षये । तदर्थमित्यर्थः । दस्युं चुमुरि च धुनिं च सुहंतु सुहंतुना वज्रेण नि नितराम-स्वापयः । मारितवानसीत्यर्थः ॥

तव व्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः ।

निवेशने शततमाविवेधीरहंश्च वृचं नमुचिमुताहन् ॥५॥

तव । व्यौत्नानि । वज्रऽहस्त । तानि । नव । यत् । पुरः । नवतिं । च । सद्यः ।

निऽवेशने । शतऽतमा । अविवेधीः । अहंश्च । च । वृचं । नमुचिं । उत । अहन् ॥५॥

हे वज्रहस्त तव व्यौत्नानि बलानि तानि तादृशानि । यद्यदा त्वं शंबरस्य नव नवतिं च पुरः सद्यो युगपदेव विदारितवानसीति शेषः । तदा निवेशने निवेशनार्थं शततमा शततमीं पुरमविवेधीः । व्याघ्रोः । वृचं चाहन् । उतापि च नमुचिमहन् ॥ ॥२९॥

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।

वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्म व्यंतु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजं ॥६॥

सना । ता । ते । इन्द्र । भोजनानि । रातऽहव्याय । दाशुषे । सुऽदासे ।

वृष्णे । ते । हरी इति । वृषणा । युनज्म । व्यंतु । ब्रह्माणि । पुरुऽशाक । वाजं ॥६॥

हे इन्द्र ते तव रातहव्याय दत्तहव्याय दाशुषे यजमानाय सुदासे ता तानि त्वया दत्तानि भोजनानि भोग्यानि धनानि सना सनानि सनातनानि नभुवुरिति शेषः । हे पुरुशाक बज्रकर्मन्निद्रं वृष्णे कामानां वर्धित्वे ते तुभ्यं । त्वामानेतुमित्यर्थः । वृषणा वृषणौ हरी अश्वौ युनज्म । रथे योजयामि । ब्रह्माण्यस्य दीयानि स्तोत्राणि वाजं बलिनं त्वां व्यंतु । गच्छंतु ॥



मा ते अस्यां सहसावन्परिष्ठावधाय भूम हरिवः परादै ।

चार्यस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥

मा । ते । अस्यां । सहसाऽवन् । परिष्टौ । अघायं । भूम । हरिऽवः । पराऽदै ।

चार्यस्व । नः । अवृकेभिः । वरूथैः । तव । प्रियासः । सूरिषु । स्याम ॥ ७ ॥

हे सहसावन् वलवन् हरिवो हरिवन्निद्र ते तवास्यां स्तोत्रेणास्माभिः क्रियमाणायां परिष्ठावन्नेपणायां परादै परादानायाघायाहंवे वयं मा भूम । किंच नोऽस्मानवृकेभिरवाधैर्वरूथैः । वारयंत्युपद्रवेभ्य इति वरूथानि रक्षणानि । तैस्त्रायस्व । पाहि । तव सूरिषु स्तोत्रेषु मध्ये वयं प्रियासः प्रियाः स्याम । भूयास्व ॥

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।

नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥

प्रियासः । इत् । ते । मघऽवन् । अभिष्टौ । नरः । मदेम । शरणे । सखायः ।

नि । तुर्वशं । नि । याद्वं । शिशीहि । अतिथिऽग्वायं । शंस्यं । करिष्यन् ॥ ८ ॥

हे मघवन् धनवन्निद्र ते तवामिष्टावन्नेपणे नरः स्तोत्राणां नेतारो वयं सखायः समानख्यातयः प्रियासः प्रियास संतः शरण इत् गृह एव मदेम । मोदेम । किंचातिथिग्वाय । पूजयातिथीन् गच्छतीत्यतिथिग्वः । तस्मै सुदासे दिवोदासाय वासुदीयाय राज्ञे शंस्यं शंसनीयं सुखं करिष्यन् कुर्वन् तुर्वशं राजानं नि शिशीहि । वशं कुरु । याद्वं च राजानं नि शिशीहीत्यर्थः ॥

सद्यश्चिन्तु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसंत्युक्थशासं उक्था ।

ये ते हवेभिर्वि पणीरदाशन्नस्मान्वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥

सद्यः । चित् । नु । ते । मघऽवन् । अभिष्टौ । नरः । शंसन्ति । उक्थऽशासः । उक्था ।

ये । ते । हवेभिः । वि । पणीन् । अदाशन् । अस्मान् । वृणीष्व । युज्याय । तस्मै ॥ ९ ॥

हे मघवन् धनवन्निद्र ते तव नु अस्माभिष्टावन्नेपणे ये नर उक्थशास उक्थानां शंसितार उक्थोक्थानि शस्त्राणि सद्यश्चित् सद्य एव शंसन्ति । किंच ते तव हवेभिः स्तोत्रैः पणीनप्रदानशीलान वलिजोऽपि व्यदाशन् । धनानि विशेषेणादापयन्नित्यर्थः । तानस्मान् तस्मै युज्याय सख्याय तत्सख्यमनुवर्तयितुं वृणीष्व । परिगृहाण ॥

एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्यंचो ददतो मघानि ।

तेषामिन्द्र वृचहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणां ॥ १० ॥

एते । स्तोमाः । नरां । नृतम । तुभ्यं । अस्मद्यंचः । ददतः । मघानि ।

तेषां । इन्द्र । वृचऽहत्ये । शिवः । भूः । सखा । च । शूरः । अविता । च । नृणां ॥ १० ॥

हे नृतम नेतृमन्द्र तुभ्यं नरां नेतृणां य एते स्तोमाः संधा मघानि मंहनीयानि हवीषि ददतो ददतो ऽस्मद्यंचोऽस्मदभिमुखा अभूवन्निति शेषः । तेषां नृणां वृचहत्ये संयामे शिवः कल्याणकृत् भूः । मव । सखा च भूः । अविता रचिता च भूः ॥

नू इंद्र शूर स्तवमान जती ब्रह्मजुतस्तन्वा वावृधस्व ।

उप नो वाजान्मिमीह्युप स्तीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ११ ॥

नु । इंद्र । शूर । स्तवमानः । जती । ब्रह्मजुतः । तन्वा । वावृधस्व ।

उप । नः । वाजान् । मिमीहि । उप । स्तीन् । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ ११ ॥

हे शूरेंद्र नु अथ स्तवमानोऽस्माभिः स्तूयमानो ब्रह्मजुतो ब्रह्मणा सोमेण प्रेरितस्तन्वा शरीरेण जत्या रचणेन वावृधस्व । अपि च नोऽस्माभ्यं वाजान्नान्युप मिमीहि । प्रयच्छेत्यर्थः । स्तीन् गृहांश्चोप मिमीहि । स्पष्टमन्यत् ॥ ३० ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थीश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरवुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण  
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये पंचमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

## ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

वागीशाखाः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे । यं नत्वा छतछत्याः स्तुतं नमामि गजाननं ॥

यस्य निःस्पृहितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् । निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

अथ तृतीयोऽध्याय आरभ्यते ॥ उग्रो जज्ञ इति दशर्चं तृतीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं चैष्टुभमिंद्रं । तथा चानु-  
क्रम्यते । उग्रो दशेति ॥ आभिप्लविके चतुर्थेऽहनि निष्केवस्य एतत्सूक्तं निविज्ञानं । सूचितं च । चतुर्थस्योग्रो  
जज्ञ इति निष्केवस्य । आ० ७. ७. इति ॥ महाव्रतेऽपि निष्केवस्य एतत्सूक्तं । तथैव पंचमारण्यके सूचितं । उग्रो  
जज्ञे वीर्याय स्वधावानुदु ब्रह्माखीरत थवस्या । ऐ० आ० ५. २. २. इति ॥ सौमिकचातुर्मास्येषु वैश्वदेवस्य स्थाने  
प्रथमं पृथ्यमहः । तत्रापि निष्केवस्य एतत्सूक्तं निविज्ञानं । सूचितं च । जनिष्ठा उग्र उग्रो जज्ञ इति मध्यंदिनः  
। आ० ९. २. इति ॥

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत्करिष्यन् ।

जग्मिर्युवा नृषदन्मवोभिस्त्राता न इंद्र एनंसो महश्चित् ॥ १ ॥

उग्रः । जज्ञे । वीर्याय । स्वधाऽवान् । चक्रिः । अपः । नर्यः । यत् । करिष्यन् ।

जग्मिः । युवा । नृऽसदनं । अवंऽभिः । चाता । नः । इंद्रः । एनंसः । महः । चित् ॥ १ ॥

स्वधावान् बलवानुग्र ओजस्युद्गूणो वेद्रो वीर्याय वीर्यं कर्तुं जज्ञे । बभूव । नर्यो नरहितः सन् यत्कर्म  
करिष्यन् भवति तदपः कर्म चक्रिः कर्तव्यं ॥ चक्रिरिति किन्प्रत्ययस्य लिङ्गज्ञावान्न लोकाव्ययनिष्ठास्त्वर्थतुना-  
मिति षष्ठीप्रतिषेधः ॥ अपि च नृषदन् यज्ञगृहं युवा नित्यतक्षणः सन् अवोभी रचणेः सार्धं जग्मिर्गता  
महश्चिन्महतोऽयेनसः पापान्नोऽस्माकं चाता रचिता च भवति ॥

हंता वृचमिंद्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती ।

कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥ २ ॥



हंता । वृचं । इंद्रः । शूशुवानः । प्र । आवीत् । नु । वीरः । जरितारं । जती ।  
कर्ता । सुऽदासे । अहं । वै । ऊं इति । लोकं । दाता । वसु । मुहुः । आ । दाशुषे । भूत् ॥ २ ॥

इंद्रः शूशुवानो वर्धमानः सन् वृचमसुरं हंता भवति ॥ तृणतत्वादत्र षष्ठ्यभावः ॥ वीरो वीरः सन्  
जरितारं स्रोतारं नु चिप्रमृती कृत्वा रचया प्रावीत् । प्रारब्ध । सुदासे राज्ञे लोकं जनपदं कर्ता च । यद्वा ।  
सुदासे कव्याण्डानाय यजमानाय लोकं कर्ता च भवति ॥ इहाप्युत्तरचापि तृणतत्वात्षष्ठ्यभावः । अहं वा अ  
इति चयः पूरणाः ॥ दाशुषे यजमानाय वसु धनं मुहुर्भूयो भूयो दाता च भूत् । अभूत् । आ इति चार्थे ॥

युध्मो अन्नर्वा खजकृत्समद्वा शूरः सचाषाड्जनुषेमषाळः ।

व्यास इंद्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयंतं जघान ॥ ३ ॥

युध्मः । अन्नर्वा । खजऽकृत् । समत्ऽवा । शूरः । सचाषाट् । जनुषा । ईं । अषाळः ।

वि । आसे । इंद्रः । पृतनाः । सुऽओजाः । अधं । विश्वं । शत्रुऽयंतं । जघान् ॥ ३ ॥

युध्मो योद्धानर्वाभिगतुरहितो युद्धेष्वपराधुखो वा खजकृद्युद्धात् । खले खज इति युद्धनामसु पाठात् ।  
समद्वा । समत् कलहः । तद्वा शूरः शौर्योपेतो जनुषा जन्नना स्वभावत एव सचाषाट् बह्वनामभिभविता-  
षाळः स्वयं च केनाप्यनभिभूतः स्वोजाः सुवल ईमयमिंद्रः पृतनाः शत्रूणां सेना व्यासे । विक्षिपति । अधापि  
च शत्रूयंतं शात्रवमाचरंतं विश्वं सर्वं जघान । हंति ॥

उभे चिदिंद्रो रोदसी महित्वा पंप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः ।

नि वज्रमिंद्रो हरिवाग्निमिच्छन्तसमंधसा मर्देषु वा उवोच ॥ ४ ॥

उभे इति । चित् । इंद्र । रोदसी इति । महिऽत्वा । आ । पंप्राथ । तविषीभिः । तुविष्मः ।

नि । वज्रं । इंद्रः । हरिऽवान् । मिमिक्षन् । सं । अंधसा । मर्देषु । वै । उवोच ॥ ४ ॥

हे तुविष्मो वज्रधर्मेन्द्र महित्वा महत्त्वेन तविषीभिर्बलैश्चोभे चिदुभे अपि रोदसी बावापृथिव्यावा  
पंप्राथ । आपूरितवानसि । अथ परोक्षश्रुतिः । हरिवानश्चवानिंद्रो वज्रं नि मिमिक्षन् शत्रुषु प्रापयन् मर्देषु  
यज्ञेषु निवित्सु बांधसा सोमेन समुवोच । संसेव्यते संगच्छते वा ॥ उच समवाय इति धातुः । वा इति पूरणः ॥

वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नयं ससूव ।

प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥ ५ ॥

वृषा । जजान् । वृषणं । रणाय । तं । ऊं इति । चित् । नारी । नयं । ससूव ।

प्र । यः । सेनाऽनीः । अधं । नृऽभ्यः । अस्ति । इनः । सत्वा । गोऽएषणः । सः । धृष्णुः ॥ ५ ॥

वृषा सेक्ता पिता कश्यपो वृषणं कामानां वर्षितारमिंद्रं रणाय युद्धार्थं जजान ॥ जन जनन इति धातुः ॥  
नयं नरहितं तसु तमेवेन्द्रं नारी चिददितिरपि ससूव । सुपुत्रे । अधापि च य इंद्रो नृभ्यो नृणां सेनानीः  
सेनानां नेता सन् प्राप्तिं प्रभवति स इंद्र इवः सर्वस्य जगत ईश्वरो भवति । नियुत्वानि इतीश्वरनामसु  
पाठात् । सत्वा शत्रूणां सादकश्च गवेषणो गवामन्वेष्टा च धृष्णुः शत्रूणां धर्षकश्च भवतीति शेषः ॥ ॥ ५ ॥

नू चित्स भेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात् ।

यज्ञैर्य इंद्रे दधते दुर्वासि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥ ६ ॥





सः । नः । इन्द्र । त्वऽयंतायै । इषे । धाः । त्मना । च । ये । मघऽवानः । जुनंति ।  
वस्वी । सु । ते । जरिचे । अस्तु । शक्तिः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ १० ॥

हे इन्द्र स त्वं त्वयताया इषे त्वया दत्तमन्नं भोक्तुं नोऽस्मान् धाः । धारय । ये च मघवानो हविष्यन्त-  
स्मन्ना स्वयमेव जुनंति हवींषि त्वां प्रति प्रेरयन्ति तानपि त्वयताया इषे धाः । अपि च वस्तीव्यत्वं प्रशस्त्यसु  
सुतिषु ते तव जरिचे सोमे मघं शक्तिः सामर्थ्यमस्तु । यद्वा । जरिचे मघं ते तव वस्ती यु प्रशस्त्य शक्तिर्दा-  
नमस्तु । स्पष्टमन्यत ॥ २ ॥

असावि देवमिति दशर्वं चतुर्थं सूक्तं वसिष्ठस्यार्धं वैष्णवेन्द्रं । तथा चागुक्तांतं । असावीति ॥ माध्यन्दिन-  
सवने भिक्षावक्षणसोमनीयमानमिदं सूक्तं । असावि देवमिदोप यातेत्यनुसवणं । आ० ५. ५. । इति ॥ इन्द्रस्य वृषभः  
पशवमि क्रत्वेति वपाया अगुवाक्सा । सूचितं च । अभि क्रत्वेन्द्र मूरध ज्ञान त्वं महौ इन्द्र तुभं ह चाः  
। आ० ३. ८. । इति ॥

असावि देवं गोचर्जीकमंधो न्यस्मिन्निद्रो जनुषेमुवोच ।  
बोधामसि त्वा हर्यश्च यज्ञैर्बोधा नः स्तोममंधसो मदेषु ॥ १ ॥  
असावि । देवं । गोऽचर्जीकं । अंधः । नि । अस्मिन् । इन्द्रः । जनुषा । ई । उवोच ।  
बोधामसि । त्वा । हरिऽअश्च । यज्ञैः । बोधः । नः । स्तोमं । अंधसः । मदेषु ॥ १ ॥

देवं दीप्तं गोचर्जीकं गोभिः संस्कृतं । गव्येन मिश्रितमित्यर्थः । अंधः सोमरूपमन्नमसावि । अभिपुतं ।  
रमयमिन्द्रोऽस्मिन्नभिपुते सोमरूपेऽंधसि वनुषा स्वभावत एव न्यवोच । गितरां संगतो भवति । अथ प्रत्यक्ष-  
सुतिः । हे हर्यश्च त्वा त्वां यज्ञैः सोर्वैर्हविर्निर्वा बोधामसि । बोधयामः । अंधसः सोमस्य मदेषु नोऽस्माकं  
सोमं सोचं बोध । बुध्यस्व च ॥

प्र यंति यज्ञं विपयंति बर्हिः सोममादो विदधे दुध्रवाचः ।  
न्यु भ्रियंते यशसो गृभादा दूरउपच्छो वृषणो नृषाचः ॥ २ ॥  
प्र । यंति । यज्ञं । विपयंति । बर्हिः । सोमऽमादः । विदधे । दुध्रऽवाचः ।  
नि । ऊं इति । भ्रियंते । यशसः । गृभात् । आ । दूरेऽउपच्छः । वृषणः । नृऽसाचः ॥ २ ॥

यद्यं प्र यंति यष्टारो बर्हिश्च विपयंति । कृत्यंति । विपिः स्तरणकर्मा । विदधे यज्ञे सोममादो यावाणश्च  
दुध्रवाचो दुध्रवाचो भवन्ति । अपि च यशसो यशस्विनो दूरउपच्छः । दूर उपच्छिः शब्दो येषां ते दूरउ-  
पच्छः । नृषाचः । नृक्षितुगुल्लिखः सवन्त इति नृषाचः । वृषणो यावाणो गृभाद्गृहात् । गृहमध्यमयावा । तस्मात् ।  
आ इति चार्थः । नि भ्रियंते । अभिषववेजायां निगृह्यते । उ इति पूरणः ॥

त्वमिन्द्र सवित्वा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।  
त्वद्वावके रथ्योऽ न धेना रेजंते विष्वा कृचिमाणि भीषा ॥ ३ ॥  
त्वं । इन्द्र । सवित्वा । अपः । करिति कः । परिऽस्थिताः । अहिना । शूर । पूर्वीः ।  
त्वत् । वावके । रथ्यः । न । धेनाः । रेजंते । विष्वा । कृचिमाणि । भीषा ॥ ३ ॥

हे मुरेन्द्र त्वमहिना वृक्षेण परिष्ठिता आक्रांताः पूर्वीर्बद्धीरप उदकानि सवितवे सवितुं कः । अकार्षीः ।

धेना नयस्य स्वत्पत्तो हेतो रथो न रथिन इव वाक्त्रे । निर्गच्छति ॥ वकि कौटिष्य इति धातुः ॥ विश्वा  
विश्वानि ऋषिमाणि सुवनानि च भीषा स्वत्तो भीषा रेजते । कंपते ॥

भीमो विवेषायुधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान् ।

इंद्रः पुरो जह्वेषाणो वि दूधोद्वि वज्रहस्तो महिना जघान ॥ ४ ॥

भीमः । विवेष । आयुधेभिः । एषां । अपांसि । विश्वा । नर्याणि । विद्वान् ।

इंद्रः । पुरः । जह्वेषाणः । वि । दूधोत् । वि । वज्रहस्तः । महिना । जघान् ॥ ४ ॥

इंद्रो नर्याणि नरहितानि विश्वा विश्वान्यपांसि कर्माणि विदाज्ञानन् आयुधेभिरायुधेर्भीमो मयंकरः  
सन् एषां ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ एतान्सुरान् विवेष । आप्तवान् । पुरस्य तेषां वि दूधोत् । अकंपयत् । अपि च  
जह्वेषाणो ह्ययन् महिना महिष्या युक्तो वज्रहस्तः सन् तान् वि जघान ॥

न यातव इंद्र जूजुवुर्नो न वंदना शविष्ठ वेद्याभिः ।

स शर्धदर्यो विषुणस्य जंतोर्मा शिञ्जदेवा अपि गुर्चतं नः ॥ ५ ॥

न । यातवः । इंद्र । जूजुवुः । नः । न । वंदना । शविष्ठ । वेद्याभिः ।

सः । शर्धत् । अर्यः । विषुणस्य । जंतोः । मा । शिञ्जदेवाः । अपि । गुः । चृतं । नः ॥ ५ ॥

हे इंद्र यातवो राक्षसा नोऽस्मान् जूजुवुः । न हिंस्थुः । जूजुवुरिति हिंसाक्रियः पृथक्करणक्रियो वा ।  
अपि च हे शविष्ठ वलवत्तमेन्द्र वंदना वंदनानि रक्षांसि वेद्याभिर्येद्याभ्यः प्रजाभ्यो नोऽस्मान् जूजुवुः । न  
पृथक्कुर्वंतु । किंचार्यः स्वामी स इंद्रो विषुणस्य विषमस्य जंतोः प्राणिनः शासने शर्धत् । उत्सहेत् । अथ च  
शिञ्जदेवाः । शिञ्जेन दीव्यंति क्रीडंत इति शिञ्जदेवाः । अन्नह्यचर्या इत्यर्थः । नोऽस्माकमुतं यच्चं सत्यं वा मापि  
गुः । मापिगमन् । तथा च यास्तः । स उत्सहेतां यो विषुणस्य जंतोर्विषमस्य मा शिञ्जदेवा अन्नह्यचर्याः ।  
शिञ्जं अयतेः । अपि गुर्चतं नः सत्यं वा यच्चं वा । नि० ४. १९. इति ॥ ३ ॥

अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ्गहिमानं रजांसि ।

स्वेना हि वृचं शर्वसा जघंथ न शत्रुंते विविदद्युधा ते ॥ ६ ॥

अभि । क्रत्वा । इंद्र । भूः । अध । ज्मन् । न । ते । विव्यक् । महिमानं । रजांसि ।

स्वेन । हि । वृचं । शर्वसा । जघंथ । न । शत्रुः । अंतं । विविदत् । युधा । ते ॥ ६ ॥

हे इंद्र त्वं क्रत्वा कर्मणा ज्मन् पृथिव्यां वर्तमानान् जंतून्वाभि भूः । अभ्यभूः । अधापि च ते तव महिमानं  
रजांसि सर्वे लोका न विव्यक् । व्यचिर्व्याप्तिकर्मा । न व्याप्नुवन्नित्यर्थः । स्वेन ह्यात्मीयेन च शर्वसा बलेन वृचं  
जघंथ । त्वमवधीः । शत्रुश्च युधा युजेन ते तवांतं हिंसां न विविदत् । न लब्धवान् ॥

देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनु स्र्चाय ममिरे सहांसि ।

इंद्रो मघानि दयते विषह्येन्द्र वाजस्य जोहुवंत सातौ ॥ ७ ॥

देवाः । चित् । ते । असुर्याय । पूर्वे । अनु । स्र्चाय । ममिरे । सहांसि ।

इंद्रः । मघानि । दयते । विऽसह्य । इंद्र । वाजस्य । जोहुवंत । सातौ ॥ ७ ॥

पूर्वे देवाश्चिदसुरा अप्सुर्याय वल्गाय चचाय । चदिर्हिंसाकर्मा । नत्वं हिंसां चोभे कर्तुमित्यर्थः । हे इंद्र



ते तव सहांसि बलान्यसु ममिरे ॥ हीनि । पा० १. ४. ८६. । इत्यनुः कर्मप्रवचनीयः ॥ तव प्रलेभ्यो ह्येना ममिर  
इत्यर्थः । तथा च निगमांतरं । अनु ते यौर्वृहती वीर्यं ममे । अ० १. ५७. ५. । इति । अथ परोषसुतिः । इंद्रः  
शत्रून्विषह्य मघानि मंहनीयानि धनानि दधते । मन्तेभ्यः प्रयच्छति । अपि चेंद्रं वाजस्यान्नस्य सातौ सामार्थं  
जीज्वंत । सुवंति सोतार आह्वयंति वा ॥

की॒रिश्चि॒द्धि त्वाम॑वसे जुहावेशानमिंद्र॒ सौभ॑गस्य भूरेः ।

अ॒वो ब॒भूष॑ शतमूते अ॒स्मे अ॒भि॒क्ष॒तु॒स्त्वाव॑तो व॒रू॒ता ॥ ८ ॥

की॒रिः । चि॒त् । हि । त्वां । अ॒व॒से । जुहा॑व । ई॒शानं॑ । इं॒द्र । सौभ॑गस्य । भूरेः ।

अ॒वः । ब॒भूष॑ । श॒तं॒ऽऊ॒ते । अ॒स्मे इति॑ । अ॒भि॒ऽक्ष॒तुः । त्वा॒ऽव॑तः । व॒रू॒ता ॥ ८ ॥

हे इंद्र ईशानं त्वां कीरिः सोता । कारः कीरिरिति सोतुणामसु पाठात् । वसिष्ठोऽवसे रचयाम्य  
जुहाव हि । सोति हि ह्वयति वा । चिदिति पूरणः । अपि च हे शतमूते वरूरचेंद्र अस्मे अस्माकं भूरेः  
प्रभूतस्य सौभगस्य धनस्यावो रचा बभूष । बभूविथ । अभिषतुरभिहिंसकास्य त्वावतस्त्वत्सदृशस्य वरूता  
वारयिता च भव ॥

सखा॑यस्त इं॒द्र वि॒श्वह॑ स्याम नमो॒वृ॒धासो॑ महि॒ना त॑रुच ।

व॒न्व॒तं॒ स्म॒ ते॒ऽव॑सा समी॒के॒ऽभी॒तिम॑र्यो व॒नुषां॑ श॒वांसि॑ ॥ ९ ॥

सखा॑य॒ । ते । इं॒द्र । वि॒श्वह॑ । स्या॒म । न॒मः॒ऽवृ॒धासः॑ । म॒हि॒ना । त॑रुच ।

व॒न्व॒तुं । स्म॒ । ते । अ॒व॒सा । सं॒ऽई॒के । अ॒भि॒ऽइति॑ । अ॒र्येः । व॒नुषां॑ । श॒वांसि॑ ॥ ९ ॥

हे इंद्र ते तव नमोवृधासो नमसा सुत्या हविषा वा वर्धयितारो वयं विश्वह सर्वदा सखायः स्याम ।  
भवेम । महिना महिम्ना तवचात्वंतं तारकेंद्र ते तवावसा रचयेन समीके संयामिऽर्योऽभीतिमभिगमनं वनुषां  
हिंसकाणां शवांसि बलानि च वन्वतु । सोतारो हिंसतु ॥

स न॑ इं॒द्र त्वय॑ताया इ॒षे धा॑स्मना च॒ ये म॒घवा॑नो जु॒नन्ति॑ ।

व॒स्वी॒ षु ते॑ ज॒रि॒चे अ॒स्तु श॒क्तिर्यू॑यं पा॒त स्व॒स्तिभिः॑ सदा॒ नः ॥ १० ॥

सः । नः । इं॒द्र । त्व॒ऽय॒तायै॑ । इ॒षे । धाः । त्मना॑ । च॒ । ये । म॒घ॒ऽवा॑नः । जु॒नन्ति॑ ।

व॒स्वी । सु॒ । ते॒ । ज॒रि॒चे । अ॒स्तु । श॒क्तिः । यू॒यं । पा॒त । स्व॒स्ति॒ऽभिः॑ । सदा॒ । नः ॥ १० ॥

इषमृग्यास्मात्तपरा ॥ ४४ ॥

पिबा सोममिंद्र मंदतु लेति नवर्चं पंचमं सूक्तं । अनुक्रम्यते च । पिब नव वैराजमुतेऽत्यामिति । वसिष्ठ  
अभिः । आदितोऽष्टौ विराजो नवमी त्रिष्टुप । इंद्रो देवता ॥ दशरात्रे चतुर्थेऽहनि निष्केवत्यशस्त्रे पिबा  
सोममिंद्रिति षट् सोचिष्यानुकूपी । सूचितं च । वैराजं चेत्यष्टं पिबा सोममिंद्र मंदतु लेति षट् सोचिष्यानु-  
कूपी । आ० ७. ११. । इति ॥ महाव्रतेऽपि निष्केवत्य आवाः षड्वचः । सूचितं च । पिबा सोममिंद्र मंदतु लेति  
षट् । ऐ० आ० ५. ३. १. । इति ॥ आवा निष्केवत्यशस्त्रयाज्या । सूचितं च । पिबा सोममिंद्र मंदतु लेति  
याज्या । आ० ५. १५. । इति ॥ चतुर्थेऽहनि माध्यादिनसवने होचकशस्त्रेषु सप्त विराजस्त्रीसृचान् हस्तिक्कशुषः  
शंसनीयः । तव न ते गिर इत्याद्यद्यतस अघः । सूचितं च । न ते गिरो अपि मृषे तुरस्य प्र वो महि  
महिषुधे मरध्वं । आ० ७. ११. । इति ॥

पिवा सोममिन्द्रं मंदतु त्वा यं ते सुषाव हर्षश्चाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्यां सुयंतो नार्वी ॥ १ ॥  
 पिब । सोम । इन्द्र । मंदतु । त्वा । यं । ते । सुषाव । हरिऽअश्व । अद्रिः । सोतुः ।  
 बाहुऽभ्यां । सुऽयंतः । न । नार्वी ॥ १ ॥

हे इन्द्र सोमं पिब । स सोमस्त्वा त्वां मंदतु । मादयतु । हे हर्षश्च ते स्वदर्थं सोतुरभिषवकर्तुर्बाहुभ्यामर्वा  
 न रश्मिभ्यामश्व इव सुयतः सुष्ठु परिगृहीतोऽद्रिर्वावा यं सोमं सुषाव ॥

यस्ते मदो युज्यश्चारुस्ति येन वृचाणि हर्षश्च हंसि । स त्वामिन्द्रं प्रभूवसो ममन्तु ॥ २ ॥  
 यः । ते । मदः । युज्यः । चारुः । अस्ति । येन । वृचाणि । हरिऽअश्व । हंसि । सः ।  
 त्वां । इन्द्र । प्रभूवसो इति प्रभुऽवसो । ममन्तु ॥ २ ॥

हे हर्षश्च ते तव यो युज्योऽनुगुणश्चारुः समीचीनो मदो मदकरः सोमोऽस्ति विद्यते येन च पीतिन  
 सोमेन वृचाणि हंसि हे प्रभूवसो प्रभूतधनेन्द्र त्वां स सोमो ममन्तु । मादयतु ॥

बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिं ।  
 इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥  
 बोध । सु । मे । मघऽवन् । वाचं । आ । इमां । यां । ते । वसिष्ठः । अर्चति । प्रऽशस्तिं ।  
 इमा । ब्रह्म । सधऽमादे । जुषस्व ॥ ३ ॥

हे मघवन् धनवन्निन्द्र ते तव प्रशस्तिं क्षुतिरूपां यां वाचं वसिष्ठोऽर्चति षदति तामिमां मे वसिष्ठस्य  
 संबंधिनीं वाचं स्वा बोध । सुष्ठुभिबुध्यस्व । किंचिमेमानि ब्रह्म ब्रह्माणि सधमादे यज्ञे जुषस्व । सेवस्व ॥

श्रुधी हवँ विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषां ।  
 कृष्वा दुवांस्यंतमा सचेमा ॥ ४ ॥  
 श्रुधि । हवँ । विऽपिपानस्य । अद्रेः । बोध । विप्रस्य । अर्चतः । मनीषां ।  
 कृष्व । दुवांसि । अंतमा । सचा । इमा ॥ ४ ॥

हे इन्द्र विपिपानस्य विपीतवतो विपिवतो वा ममाद्रेर्वाव्यो हवमाज्ञानं श्रुधि । शृणु । तथा च  
 निगमांतरं । आवभ्यो वाचं वदता वदशः । अ० १०. ९४. १. इति । विप्रस्य प्राज्ञस्य वसिष्ठस्यार्चतः सुवतो  
 मनीषां क्षुतिं बोध । बुध्यस्व च । इमेमानि क्रियमाणानि दुवांसि परिचरणान्यंतमांतिक्तमानि बुद्धिस्थानि  
 सचा सह सहायभूतः सन्वा कृष्व । कुरु च ॥

न ते गिरो अपि मृषे तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।  
 सदा ते नाम स्वयशो विवक्ति ॥ ५ ॥  
 न । ते । गिरः । अपि । मृषे । तुरस्य । न । सुऽस्तुतिं । असुर्यस्य । विद्वान् ।  
 सदा । ते । नाम । स्वऽयशः । विवक्ति ॥ ५ ॥

हे इन्द्र तुरस्य शत्रूणां हिंसकस्य ते तव गिरः क्षुतीरसुर्यस्य । द्वितीयार्थे षष्ठी । स्वदीयमसुर्यं बलं  
 विदाज्ञानत्रहं नापि मृषे । मृषिर्मार्जनकर्मा । न मार्जयामि । न परित्यजामीत्यर्थः । सुष्टुतिं शोभनां क्षुतिं च



नापि मृधे । मृधेर्मात्रेण कर्मत्वमन्यथापि वृद्धते । तद्यथा । मा नो अग्निं सखा पित्र्याणि प्र मर्विषाः । ऋ० १. ७१. १०. इति । किंतु स्वयंशोऽसाधारण्यशक्ते तव नाम शोचं सदैव विवक्षि । ब्रवीमि ॥ ५५ ॥

भूरि हि ते सर्वना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।

मारे अस्मन्मघवज्योक्तः ॥ ६ ॥

भूरि । हि । ते । सर्वना । मानुषेषु । भूरि । मनीषी । हवते । त्वां । इत् ।

मा । आरे । अस्मत् । मघवन् । ज्योक् । करिति कः ॥ ६ ॥

हे मघवन् ते तव सर्वना सर्वानि सोमामिषवणानि भूरि भूरीणि मानुषेष्वस्मासु वर्तत इति शेषः । मनीषी क्षोता त्वामित्त्वामेव भूरि हवते । नितरां ह्वयति । क्षीति । अतोऽस्य दसन्त आरे दूरे ज्योक् चिरवाचं मा कः । आत्मानं मा कार्षीः । चिप्रमात्मानमस्य दसन्तं कुर्यात्त्वर्थः ॥

तुभ्येदिमा सर्वना भूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।

त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ ७ ॥

तुभ्यं । इत् । इमा । सर्वना । भूर । विश्वा । तुभ्यं । ब्रह्माणि । वर्धना । कृणोमि ।

त्वं । नृभिः । हव्यः । विश्वधा । असि ॥ ७ ॥

हे भूर तुभ्येतुभ्यमेवेमेमानि विश्वा विश्वानि सर्वना सोमामिषवणानि मया कियंत इति शेषः । तुभ्यं स्वर्धमेव वर्धना वर्धनानि ब्रह्माणि क्षोचाणि कृणोमि । कसेमि । त्वमेव नृभिर्यजानां नेतुमिर्विश्वधा सर्वप्रकारैर्हव्यो ज्ञातव्यः सुख्यो वासि ॥

नू चिद्बु ते मन्यमानस्य दस्मोदंश्नुवन्ति महिमानमुय । न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ ८ ॥

नू । चित् । नु । ते । मन्यमानस्य । दस्म । उत । अश्नुवन्ति । महिमानं । उय । न ।

वीर्यं । इन्द्र । ते । न । राधः ॥ ८ ॥

हे दस्य दर्शनीय मन्यमानस्य खूयमानस्य ते तव महिमानं । नू चिदिति प्रतिषेधार्थः । नु चिप्रं नू चिदुदंश्नुवन्ति । केचन न प्राप्नुवन्ति । हे उयोन्नूर्यं ते तव राधो धनं नोदंश्नुवन्ति ॥

ये च पूर्वं ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयंत विप्राः ।

अस्मे ते संतु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

ये । च । पूर्वं । ऋषयः । ये । च । नूत्नाः । इन्द्र । ब्रह्माणि । जनयंत । विप्राः ।

अस्मे इति । ते । संतु । सख्या । शिवानि । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ ९ ॥

ये च पूर्वं प्राक्तना ऋषयो ये च नूत्ना नूतना विप्रा मेधाविन ऋषयो ब्रह्माणि क्षोचाणि जनयंत अजनयंत तेष्विवाक्ते अस्मास्वपि हे इन्द्र ते तव सख्या सख्यानि शिवानि मद्राणि संतु । स्पष्टमन्यत ॥ ६ ॥

उदु ब्रह्माणीति षडुचं षष्ठं सूक्तं वसिष्ठस्यायं वैद्यमिन्द्र । अनुक्रम्यते च । उदु पठिति ॥ अभिष्टोमे माध्यन्दिने सवने ब्राह्मणाच्छंसिग्रस्य एतत्सूक्तं । सूचितं च । उदु ब्रह्माण्युजीवी वशी वृषभक्षुरावाकिति याज्या । आ० ५. १६. इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यन्दिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिग्रस्य एतद्दहरहः शस्त्रसंश्लेषं सूक्तं । सूचितं च । उदु ब्रह्माण्यमि तष्टेवेतीतरावहरहः शस्त्रे । आ० ७. ४. इति ॥ अहर्गणेषु द्वितीयादिष्वहः सैतदेव

सूक्तं ॥ महाव्रतेऽपि निष्केवका एतत्सूक्तं । सूचितं च । उदु ब्रह्माख्यैरत अवस्था ते मह इन्द्रोत्तुयेति पंच सूक्तानि । ऐ० आ० ५. २. २. इति ॥

उदु ब्रह्माख्यैरत अवस्थेन्द्रं समर्थे महया वसिष्ठ ।

आ यो विश्वानि शर्वसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥

उत् । ऊं इति । ब्रह्माणि । ऐरत । अवस्था । इन्द्रं । सऽमर्थे । महय । वसिष्ठ ।

आ । यः । विश्वानि । शर्वसा । ततान । उपऽश्रोता । मे । ईवतः । वचांसि ॥ १ ॥

अवस्थान्निष्कया ब्रह्माणि स्तोत्राणि हवींषि चेंद्रार्थमुदैरत सर्व ऋषय इति शेषः । उ इति पुराणः । हे वसिष्ठ त्वमपि समर्थे यज्ञ इन्द्रं महय । स्तोत्रेण हविषा च पूजय । अपि च य इन्द्रो विश्वानि भुवनानि शर्वसा वक्षेना ततान स ईवत उपगमनवतो मे मम वचांसि स्तुतिरूपाणि वाक्यान्मुपश्रोता भवतु ॥

अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिज्यंत यक्षुरुधो विवाचि ।

नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्षस्मान् ॥ २ ॥

अयामि । घोषः । इन्द्र । देवऽजामिः । इरज्यंत । यत् । अरुधः । विऽवाचि ।

नहि । स्वं । आयुः । चिकिते । जनेषु । तानि । इत् । अंहांसि । अति । पर्षि । अस्मान् ॥ २ ॥

यद्यदा मुग्धः । मुग्धं संबधंतीति मुग्ध ऋषयः । इरज्यंत वर्धते तदा हे इन्द्र त्वदर्थं विवाचि स्तोत्रि देवजामिदैवानां बंधुर्घोषः । स्तुतिरूपः शब्दो घोषः । अयामि । अकारि । अपि च जनेषु मध्ये केनापि स्वमायुः स्वजीवितं नहि चिकिते । न ज्ञायते । धैरायुः जीयते तानीत्तानि सर्वाण्येवांहांसि पापान्यस्मानति पर्षि । अतिपारय ॥

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।

वि बाधिष्टस्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृचाण्यप्रती जघन्वान् ॥ ३ ॥

युजे । रथं । गोऽएषणं । हरिऽभ्यां । उप । ब्रह्माणि । जुजुषाणं । अस्थुः ।

वि । बाधिष्टस्यः । रोदसी इति । महिऽत्वा । इन्द्रः । वृचाणि । अप्रति । जघन्वान् ॥ ३ ॥

गवेषणं अवां प्रापकमिन्द्रस्य रथं हरिभ्यामिन्द्रवाहाभ्यां युजे । स्तोत्रैरहं युजन्मि । ब्रह्माणि स्तोत्राणि जुजुषाणं परिवारैः सेव्यमानमिन्द्रमुपास्युः । उपातिष्ठत । स सोऽयमिन्द्रो महित्वा महत्त्वेन रोदसी बाधापृथिवी वि बाधिष्ट । अबाधिष्ट च । अपि चेंद्रो वृचाणि शत्रून्प्रति वृद्धानि जघन्वान् हतवान् ॥

आपश्चिप्पिषुः स्तर्यो न गावो नक्षत्रं जरितारस्त इन्द्र ।

याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥

आपः । चित् । पिप्पुः । स्तर्यः । न । गावः । नक्षत्रं । अत्रुतं । जरितारः । ते । इन्द्र ।

याहि । वायुः । न । निऽयुतः । नः । अच्छ । त्वं । हि । धीभिः । दयसे । वि । वाजान् ॥ ४ ॥

हे इन्द्र त्वत्प्रसादादापश्चिदापः स्तर्यो न गावः स्तर्यो वशा गाव इव पिप्पुः । वर्धतां । अप्रसूता गावो मांसला भवंति हि । ते तव जरितारः स्तोतारवर्तमुदकं नचन् । व्याप्नुवन् । अपि च त्वं नोऽस्मान्नियुतो



वायुर्न वायुरिवाच्छ याहि । अमियाहि । त्वं हि धीमिः प्रज्ञामिः कर्ममिवा वाजानमनानि वि दयसे ।  
सोतुभ्यः प्रयच्छसि ॥

ते त्वा मदा इन्द्र मादयंतु शुष्मिणं तुविराधसं जरिचे ।

एको देवचा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सर्वने मादयस्व ॥५॥

ते । त्वा । मदाः । इन्द्र । मादयंतु । शुष्मिणं । तुविऽराधसं । जरिचे ।

एकः । देवऽचा । दयसे । हि । मर्तान् । अस्मिन् । शूर । सर्वने । मादयस्व ॥५॥

हे इन्द्र त्वा त्वां त एते मदा मदकराः सोमा मादयंतु । अपि च जरिचे सोचे शुष्मिणं वलवतं तुवि-  
राधसं वज्रधनं पुत्रं प्रयच्छतीति शेषः । हे शूर त्वं देवचा देवत्वेन एव मर्तावनुष्ठानं दयसे हि । दयतिर-  
नुकंपार्थः । अस्मिन्सर्वने यज्ञे मादयस्व ॥

एवेदिंद्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्केः ।

स नः स्तुतो वीरवज्रातु गोमधूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

एव । इत् । इन्द्रं । वृषणं । वज्रऽबाहुं । वसिष्ठासः । अभि । अर्चन्ति । अर्केः ।

सः । नः । स्तुतः । वीरऽवत् । धातु । गोऽमत् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥६॥

वसिष्ठासो वसिष्ठा वज्रबाहुं वज्रकल्पबाहुं वृषणं कामानां वर्षितारमिंद्रमेवेदुक्तेन प्रकारेणैवार्चनीयेः  
सोचिरभ्यर्चन्ति । अभिपूजयन्ति । स्तुतः स इन्द्रो नोऽस्माकं वीरवत्पुत्रादियुक्तं गोमन्त्रोद्युक्तं च धनं धातु । ददातु ।  
स्वस्तिमन्यत् ॥ ७॥

योनिष्ट इन्द्र सद्ने अकारिती षड्रुचं सप्तमं सुतं वसिष्ठस्यार्थं वैष्टममिंद्रं । अनुक्रम्यते च । योनिरिति ॥  
महाव्रते निष्किलिप्त एतत्सूक्तं । सूचितं च । योनिष्ट इन्द्र सद्ने अकारितीत्यस्य चतस्रः श्रस्वोत्तमासुपसंततो-  
पोत्तमया परिदधाति । ऐ० आ० ५. ३. १. इति ॥

योनिष्ट इन्द्र सद्ने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।

असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥१॥

योनिः । ते । इन्द्र । सद्ने । अकारि । तं । आ । नृऽभिः । पुरुऽहूत । प्र । याहि ।

असः । यथा । नः । अविता । वृधे । च । ददः । वसूनि । ममदः । च । सोमैः ॥१॥

हे इन्द्र ते तव सद्ने सदनार्थं योनिः स्थानमकारि । हे पुरुहूत नृभिर्मन्त्रिः सार्धं तं योनिमा प्र याहि ।  
नोऽस्माकं यथाविता रचितासः भवसि नोऽस्माकं वृधे वर्धनाय चासः । तथा च वसूनि ददः । अस्माकं देहि ।  
सोमेरसदीयेर्ममदः । मादयस्व च ॥

गृभीतं ते मन इन्द्र द्विर्बर्हीः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।

विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिंद्रं जोहुवती मनीषा ॥२॥

गृभीतं । ते । मनः । इन्द्र । द्विऽबर्हीः । सुतः । सोमः । परिऽसिक्ता । मधूनि ।

विसृष्टऽधेना । भरते । सुऽवृक्तिः । इयं । इन्द्रं । जोहुवती । मनीषा ॥२॥

हे इंद्र दिवर्हाः । पञ्चर्थे प्रथमा । दिवर्हसो द्वयोः स्थानयोः परिवृढस्य ते तव मनो गृभीतमस्मानिः परि-  
गृहीतं । सोमस्य सुतोऽभिपुतः । मधूनि च परिविक्ता पात्रेषु परिविक्ताणि । विस्मृष्टेना विस्मृष्टविद्धा मध्यम-  
स्त्रियोच्चार्यमाणा सुवृत्तिः सुसमाप्तिरियं मनीषा सुतिरिद्रं वोऽजवती मृशमाद्भ्यन्ती भरते । संक्षिपते च ॥

आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्द्रं बर्हिः सोमपेयाय याहि ।

वहेतु त्वा हरयो मर्द्ध्यचमांगूषमच्छा तवसं मदाय ॥३॥

आ । नः । दिवः । आ । पृथिव्याः । ऋजीषिन् । इद्रं । बर्हिः । सोमऽपेयाय । याहि ।

वहेतु । त्वा । हरयः । मर्द्ध्यचं । आंगूषं । अच्छ । तवसं । मदाय ॥३॥

हे ऋजीषिन्द्र जोऽस्माकमिद्रं बर्हिरिमं यत्तं सोमपेयाय दिवः स्वर्गादा याहि । आगच्छ । पृथिव्या  
चंतरिचास्य । आपः पृथिवीत्यंतरिचनामसु पाठात् । आ याहि । अपि च तवसं प्रवृद्धं बलवन्तं वा मर्द्ध्यचं  
मदमिसुखं त्वा त्वामांगूषं स्तोत्रमच्छामि मदाय मदार्थं हरयोऽस्या वहेतु ॥

आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्च याहि ।

वरीवृजत्स्यविरेभिः सुशिप्रास्मे दधवृषणं शुष्ममिद्र ॥४॥

आ । नः । विश्वाभिः । ऊतिभिः । सऽजोषाः । ब्रह्म । जुषाणः । हरिऽअश्च । याहि ।

वरीवृजत् । स्यविरेभिः । सुऽशिप्र । अस्मे इति । दधत् । वृषणं । शुष्मं । इद्र ॥४॥

हे हर्यश्च हरिनामकाश्च सुशिप्र शोभनहनविद्र विश्वाभिः सर्वाभिरूतिभी रक्षामिः सजोषाः संगतः  
स्वविरेभिर्वृक्षैर्मदभिः सह वरीवृजत्क्षुभृशं हिंसन् अस्ते अस्मभ्यं वृषणं कामानां वर्धितारं शुष्मं बलवन्तं पुत्रं  
दधत् प्रयच्छन् ब्रह्म स्तोत्रं जुषाणः सेवमानो जोऽस्माना याहि ॥

एष स्तोमो मह उयाय वाहे धुरीऽवात्यो न वाजयन्नाधायि ।

इद्र त्वायमर्क इद्रे वसूनां दिवीव द्यामधि नः ओमतं धाः ॥५॥

एषः । स्तोमः । महे । उयाय । वाहे । धुरिऽइव । अत्यः । न । वाजयन् । अधायि ।

इद्र । त्वा । अयं । अर्कः । इद्रे । वसूनां । दिविऽइव । द्यां । अधि । नः । ओमतं । धाः ॥५॥

महे महत् उयायोदूर्णाद्यौजस्विने वा वाहे विश्वस्य वोद्र इंद्राय धुरीव रथस्वात्यो नाश्च इव वाजयन्  
बलं कुर्वन्नेष स्तोमोऽधायि । अधायि । अथ प्रत्यक्षपुतिः । हे इंद्र यं त्वामयमर्कः स्तोता वसूनां वसूनि  
धनामीद्रे याचते स त्वं जोऽस्मासु द्यां दिवीव ओमतं अवणीयमन्नं पुत्रं वाधि धाः । अधिधेहि ॥

एवा न इंद्र वार्यस्य पूर्यं प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।

इवं पिन्व मघवन्नाः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

एव । नः । इंद्र । वार्यस्य । पूर्यं । प्र । ते । महीं । सुऽमतिं । वेविदाम् ।

इवं । पिन्व । मघवन्तऽभ्यः । सुऽवीरां । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥६॥

हे इंद्र जोऽस्मानेवैवं वार्यस्य । तृतीयार्थे षष्ठी । वरणीयेन धनेन पूर्यं । पूरय । ते तव महीं महतीं  
सुमतिमनुग्रहपुष्टिं वेविदाम् । शृशं लभेमहि । मघवन्तो हविष्मन्तोऽस्माभ्यं सुवीरां शोभनपुत्रादियुतामिषमन्नं  
पिन्व । प्रयच्छेत्पर्यः । सष्टमन्यत् ॥ ८ ॥



आ ते मह इंद्रेति वयुचमष्टमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं वैकुण्ठमिंद्रं । आ त इत्यनुज्ञांतं ॥ महाप्रति निष्कियन्  
रदमादीनि पंच सूक्तानि । सूचितं च । आ ते मह इंद्रोत्युयेति पंच सूक्तानि । ऐ० आ० ५. २. २. इति ॥

आ ते मह इंद्रोत्युय समन्यवो यत्समरंत सेनाः ।

पताति दिद्युन्नयस्य बाहोर्मा ते मनो विष्वश्च ग्वि चारीत् ॥ १ ॥

आ ते महः । इंद्र । ऊती । उय । सऽमन्यवः । यत् । संऽअरंत । सेनाः ।

पताति । दिद्युत् । नयस्य । बाहोः । मा । ते । मनः । विष्वश्च । वि । चारीत् ॥ १ ॥

हे उयोमूणौ वसिष्ठमिंद्रं यदा समन्यवः । समो मन्युरभिमानो यासां ताः समन्यवः । सेनाः समरंत  
युध्यन्ते संगच्छन्ते वा तदा नयस्य नरहितस्य महो महतसो तव बाहोः क्षिता दिद्युदायुधं । दिद्युवेतिरिति  
वज्रनामसु पाठात् । अत्युत्थाकद्रवाया आ पताति । आपततु । तव विष्वश्च विष्वग्गंतु मनस्य मा वि चारीत् ।  
अस्माक्ष्वेव क्षिरं भवतु ॥

नि दुर्गे इंद्र अषिहमिचानभि ये नो मर्तासो अमंति ।

आरे त शंसं कृणुहि निनिस्तोरा नो भर संभरणं वसूनां ॥ २ ॥

नि । दुऽगे । इंद्र । अषिहि । अमिचान् । अभि । ये । नः । मर्तासः । अमंति ।

आरे । तं । शंसं । कृणुहि । निनिस्तोः । आ । नः । भर । संऽभरणं । वसूनां ॥ २ ॥

हे इंद्र दुर्गे युधे ये मर्तासो मर्ता अभ्यमिमुखाः संतो नोऽस्मानमंति अभिमवंति तावमिचाञ्छन्ति  
अषिहि । निषिहि । अपि च निनिस्तोरस्मान्निदिदुमिच्छतो नरस्य तं शंसमाशंसनमारे दूरे कृणुहि । कृणु ।  
अपि च नोऽस्माभं वसूनां धनानां संभरणं समूहमा भर । आहर ॥

शतं ते शिमिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।

जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे युधमधि रत्नं च धेहि ॥ ३ ॥

शतं । ते । शिमिन् । ऊतयः । सुऽदासे । सहस्रं । शंसाः । उत । रातिः । अस्तु ।

जहि । वधः । वनुषः । मर्त्यस्य । अस्मे इति । युधं । अधि । रत्नं । च । धेहि ॥ ३ ॥

हे शिमिन्नुष्णीविमिंद्रं ते लदीयाः शतं यज्ञ ऊतयो रचाः सुदासे शोभनदानाय मह्यं संतु । सहस्रं  
शंसाः शंसनीयाः कामाश्च संतु । उतापि च रातिर्धनमस्तु । वनुषो हिंसकस्य मर्त्यस्य वधो हिंसासाधनमायुधं  
च धेहि । अपि चास्ते अथस्मासु युधं दीप्तिमदन्नं यशो वा रत्नं च धेहि । तथा च यास्तः । युधं द्योततेयशो  
वात्तं वा । अस्ते युधमधि रत्नं च धेहि । अस्मासु युधं च रत्नं च धेहि । नि० ५. ५. इति ॥

त्वावतो हींद्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर राती ।

विश्वेदहानि तविषीव उयं ओकः कृणुष्व हरिवो न मधीः ॥ ४ ॥

त्वाऽवतः । हि । इंद्र । क्रत्वे । अस्मि । त्वाऽवतः । अविः । शूर । राती ।

विश्वः । इत् । अहानि । तविषीऽवः । उय । ओकः । कृणुष्व । हरिऽवः । न । मधीः ॥ ४ ॥

हे इंद्र त्वावतस्त्वत्सदृशस्य क्रत्वे कर्मणेऽस्मि । भवामि हि । हे शूर अविर्विश्वस्य रक्षितुस्त्वावतस्त्वत्स-

दृशस्व रासी दाने चासीति शेषः । हे तविधीयो वसवसुधीअस्त्रिंन्द्र विश्वेद्विषाव्येवाहाव्योक्षोऽस्माकं स्थानं  
अगुष्व । जुष । हे हरियो हरिवन् न मर्षोः । अस्मान् हिंसाः ॥

कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः ।

सचा कृधि सुहना शूर वृषा वयं तरुचाः सनुयाम वाजं ॥ ५ ॥

कुत्साः । एते । हरिऽश्वाय । शूषं । इन्द्रे । सहः । देवऽजूतं । इयानाः ।

सचा । कृधि । सुऽहना । शूर । वृषा । वयं । तरुचाः । सनुयाम । वाजं ॥ ५ ॥

एते वयं वसिष्ठा हर्यश्वाय हरिनामकाश्चर्यिद्राय शूषं सुखकरं स्तोत्रं कुत्साः कुर्वाणाः ॥ धरोतिः  
कुत्सशब्दनिष्पत्तिः ॥ इन्द्र देवजुतं देवैः प्रेरितं सहो वसमियाणा याचमानास्तदचा दुर्गाणि तीर्णाः संतो  
वार्यं वसं सनुयाम । समेमहि । अपि च हे शूर वृषा वृषाणि शत्रून् सुहना इतुं सुशक्ताणि सचा सर्वदा  
कृधि । जुष ॥

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूरि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।

इधं पिन्व मघवन्मः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

एव । नः । इन्द्र । वार्यस्य । पूरि । प्र । ते । महीं । सुऽमतिं । वेविदाम् ।

इधं । पिन्व । मघवन्ऽभ्यः । सुऽवीरां । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ६ ॥

इधं व्याख्यातचरा ॥ ६ ॥

न सोम इन्द्रमिति पंचमं भवमं सूक्तं वसिष्ठस्त्वार्यं पितृमैन्द्रं । तथा चानुगन्व्यति । न सोमः पंचेति ॥  
महाव्रत उक्तो विनिधोः ॥

न सोम इन्द्रमसुतो ममाद् नाब्रह्माणी मघवानं सुतासः ।

तस्मा उक्थं जनये यजुजोषन्ववन्वीयः शूणवन्मया नः ॥ ७ ॥

न । सोमः । इन्द्रं । असुतः । ममाद् । न । अब्रह्माणः । मघऽवानं । सुतासः ।

तस्मै । उक्थं । जनये । यत् । जुजोषत् । नृऽवत् । नवीयः । शूणवत् । यथा । नः ॥ ७ ॥

मघवानं धनवंतमिन्द्रमसुतो नाभिषुतः सोमो न ममाद् । न तर्पयति । सुतासोऽभिषुता अपि सोमा  
अब्रह्माणः स्तोत्रहीना न ममदुः । ममादेत्येतदाख्यातं यजुवचनांततया विपरिणतं सदा संवध्यते । यत एव  
विष्वपि सवनेषु पावमानैः स्तोत्रैः सुता एव सोमा ह्वयते । अपि च नोऽसदीयं यदुक्थमिन्द्रो जुजोषत् सेवेत  
यथा च नृवद्राजेवादरेण शूणवत् शूणयात् तथा नवीयो नवतरमुक्थं शस्त्रं तस्मा इन्द्राय जनये ।  
पठामीत्यर्थः ॥

उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद् नीयेनीये मघवानं सुतासः ।

यदीं सबाधः पितरं न पुचाः समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥ ८ ॥

उक्थेऽउक्थे । सोमः । इन्द्रं । ममाद् । नीयेऽनीये । मघऽवानं । सुतासः ।

यत् । ई । सुऽबाधः । पितरं । न । पुचाः । समानऽदक्षाः । अवसे । हवन्ते ॥ ८ ॥



अथवाऽप्युक्तं उक्तं शस्त्रे शस्त्रे क्रियमाणे सोमो मघवानमिंद्रं ममाद् मादयति नीचे नीचे सोमे  
सोमे क्रियमाणे सुतासोऽभिषुताः सोमा मादयंति तस्यादीमेनमिंद्रं सबाधः परस्परं मिश्रिताः समानदद्याः  
पमानोत्साहा अस्त्रिजः पुषाः पितरं न पितरमिवावसे तर्पणाय स्वरक्षणाय वा हवते । शस्त्रेः सोमेच  
जुवति ॥

चकार ता कृण्वन् नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु ।

जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इंद्रः सु सर्वाः ॥३॥

चकार । ता । कृण्वन् । नूनं । अन्या । यानि । ब्रुवन्ति । वेधसः । सुतेषु ।

जनीःऽइव । पतिः । एकः । समानः । नि । मामृजे । पुरः । इंद्रः । सु । सर्वाः ॥३॥

वेधसः सोचाणां विधातारः सुतेषु सोमेष्वाभिषुतेषु यानि कर्माणि ब्रुवन्ति तानि वृषवधादीनि कर्मा-  
णींद्रः पूर्वस्मिन्काले चकार । नूनं संप्रत्यन्यान्यानि कर्माणि कृण्वन् । कुर्यात् । अपि च स इंद्रः सर्वाः पुरः  
शत्रुभगरीः समानः समवृत्तिरेकोऽसहायः पतिर्जनीरिव जाया एव सु नि मामृजे । सम्यक् शोधयेत् ॥

एवा तमाहुरुत शृण्व इंद्र एको विभक्ता तरणिर्मघानां ।

मिथस्तुरं जतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सञ्चत प्रियाणि ॥४॥

एव । तं । आहुः । उत । शृण्वे । इंद्रः । एकः । विभक्ता । तरणिः । मघानां ।

मिथःऽतुरः । जतयः । यस्य । पूर्वीः । अस्मे इति । भद्राणि । सञ्चत । प्रियाणि ॥४॥

यथेन्द्रस्य मिथः परस्परं तुरो बाधमाणाः संक्षिप्ता वा पूर्वीं पूर्वो बह्व जतयो रथाः संति तमेवैवमु-  
क्तगुणमाजः पूर्वं चक्षयः । उतापि चाद्यापि स इंद्रो मघानां मंहुनीयानां धनानां विभक्ता दातेति तरणि-  
रापदस्मारयितेति शृण्वे । श्रूयते । तस्य च प्रसादादस्मे चक्षान् प्रियाणि भद्राणि कक्षाणामि सञ्चत । सेवतां ॥

एवा वसिष्ठ इंद्रमूतये नृकृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति ।

सहस्रिण उप नो माहि वाजान्यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

एव । वसिष्ठः । इंद्रं । जतये । नृन् । कृष्टीनां । वृषभं । सुते । गृणाति ।

सहस्रिणः । उप । नः । माहि । वाजान् । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥५॥

वसिष्ठो नृन् गृणां । षष्ठ्यर्थे द्वितीया । जतये रथायै कृष्टीनां प्रजानां वृषभं कामानां वर्धितारमिंद्रमेवैवं  
पूर्वोक्तप्रकारेण गृणाति । स्तौति । अथ प्रत्यक्षसुतिः । हे इंद्र नोऽस्मभ्यं सहस्रिणः सहस्रसंख्याकान्वाजान्वा-  
न्युप माहि । प्रयच्छेत्त्वर्थः । स्पष्टमन्यत् ॥ १०॥

इंद्रं नर इति पंचमं दशमं सूक्तं वसिष्ठस्वार्थं वैश्वमेन्द्रं । इंद्रं नर इत्यनुकांतं ॥ महाव्रते निष्केवस्य  
एतत्सूक्तमुक्तं तृतीयस्तेन ॥ ऐंद्रे पशौ वपापुरोडाशहविषामायासिषः क्रमेणानुवाक्याः । सूचितं च । इंद्रं नरो  
नेमधिता हवन्त इत्युक्तं नो लोकमनु नेमि विद्वान् । आ० ३. ७. इति ॥

इंद्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजन्ते धियस्ताः ।

शूरो नृषाता शर्वसश्चकान आ गोमति व्रजे भज त्वं नः ॥९॥

इंद्रं । नरः । नेमधिता । हवन्ते । यत् । पार्याः । युनजन्ते । धियः । ताः ।

शूरः । नृऽसाता । शर्वसः । चकानः । आ । गोऽमति । व्रजे । भज । त्वं । नः ॥९॥

यद्यदा पार्था युद्धमरणनिमित्ताखाः प्रसिद्धा धियः कर्माणि युज्यन्ते प्रयुज्यन्ते तदा नरो जेतारो यमिन्द्रं  
जेमधिता जेमधितौ संयामि हवन्ते ह्वयन्ति स त्वं शूरो वृषाता वृषां संभक्ता च श्वसौ बलस्य बलं चकानः  
कामयमानस्य सन् गोमति वजे गोष्ठे गोसमूहे गोऽस्याना मज्ज । प्रापय ॥

य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।

त्वं हि दृष्ट्वा मघवन्विचेता अपां वृद्धिं परिवृतं न राधः ॥२॥

यः । इन्द्र । शुष्मः । मघऽवन् । ते । अस्ति । शिक्षा । सखिऽभ्यः । पुरुऽहूत । नृऽभ्यः ।

त्वं । हि । दृष्ट्वा । मघऽवन् । विऽचेताः । अपां । वृद्धिं । परिऽवृतं । न । राधः ॥२॥

हे पुरुहूत वज्रमिराहतेन्द्र ते तव यः शुष्मो बलमस्ति तं शुष्मं सखिभ्यः स्तोतृभ्यो नृभ्यः शिष्य । देहि ।  
अपि च हे मघवन् हि यस्याहुष्ट्वा इदानीं । पुरां द्वाराणि विभेदयेति शेषः । तस्मात्स त्वं विचेता विविक्त-  
प्रज्ञः सन् परिवृतं तिरोहितं राधो धनमपि वृद्धि । असम्भ्रमपवृणु । नेति संप्रत्यर्थे ॥

इन्द्रो राजा जगन्तश्चर्षणीनामधि क्षमि विष्णुरूपं यदस्ति ।

ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदूर्वाक् ॥३॥

इन्द्रः । राजा । जगन्तः । चर्षणीनां । अधि । क्षमि । विष्णुरूपं । यत् । अस्ति ।

ततः । ददाति । दाशुषे । वसूनि । चोदत् । राधः । उपऽस्तुतः । चित् । अर्वाक् ॥३॥

स इन्द्रो जगतो जगमस्य पञ्चादेर्यतो राजेश्वरो भवति चर्षणीनां मनुष्याणां च राजा भवति अधि क्षमि  
यमायां विष्णुरूपं नानारूपं यज्जनमस्ति नस्यापि राजा भवति ततो दाशुषे यजमानाय वसूनि धनानि  
ददाति । स इन्द्रोऽस्माभिस्तपस्त एव सन्नाधो धनमर्वागसादभिसुखं चोदत् । प्रेरयतु ॥

नू चित्र इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।

अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिबीता सखिभ्यः ॥४॥

नू । चित्र । नः । इन्द्रः । मघऽवा । सऽहूती । दानः । वाजं । नि । यमते । नः । ऊती ।

अनूना । यस्य । दक्षिणा । पीपाय । वामं । नृऽभ्यः । अभिऽबीता । सखिऽभ्यः ॥४॥

मघवा धनवान् दानो ददानः स इन्द्रो गोऽस्माकं सहूती सहृत्वा मरुद्भिः सहाङ्गानि वाजमज्ञं गो  
ऽसम्भ्रमूयै रचाये नू चित्र चित्रमेव नि यमते । प्रयच्छतु । यस्मिन्द्रस्यानूना संपूर्णाभिबीताभिप्राप्ता दक्षिणा  
दानं सखिभ्यः स्तोतृभ्यो नृभ्यो वामं वननीयं धनं पीपाय दोग्धि ॥

नू इन्द्र राये वरिवस्कुधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय ।

गोमदश्चावद्वर्यवृद्धांतो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

नू । इन्द्र । राये । वरिवः । कुधी । नः । आ । ते । मनः । ववृत्याम । मघाय ।

गोऽमत् । अश्वऽवत् । रथऽवत् । व्यंतः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥५॥

हे इन्द्र गोऽस्माभ्यं राये धनप्राप्तये नू क्षिप्रं वरिवो धनं । वेदो वरिव इति धननामसु पाठात् । त्वं  
हृदि । देहि । वयं ते तव मनो मघाय मंहनीयायै मुखा आ ववृत्याम । आवर्तयाम । स्पष्टमन्यत् ॥ ११ ॥



ब्रह्मा य इन्द्रोऽसि पंचर्चमेकादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं वैश्वमेन्द्रं । ब्रह्मा य इत्यनुकांतं ॥ महाव्रते निष्कैवल्ये  
पंचमखेनास्त्रं सूक्तस्य विनियोग उक्तः ॥ अष्टमेऽहनि प्रउग्नश्च आबन्धुच ऐन्द्रः । आ० ८. १०. ॥

ब्रह्मा य इन्द्रोऽसि याहि विद्वान्वाचस्ते हरयः संतु युक्ताः ।

विश्वे चिच्छि त्वा विहवन्त मर्ता अस्माकमिच्छुर्गुहि विश्वमिन्व ॥१॥

ब्रह्म । नः । इन्द्र । उप । याहि । विद्वान् । अर्वाचः । ते । हरयः । संतु । युक्ताः ।

विश्वे । चित् । हि । त्वा । विहवन्त । मर्ताः । अस्माकं । इत् । गृणुहि । विश्वं । इन्व ॥१॥

हे इन्द्र त्वं विद्वान्नामोऽस्माकं ब्रह्म सोचमुप याहि । ते तव हरयोऽन्वावाचोऽस्मादभिमुखा युक्ताः  
संतु । हे विश्वमिन्व विश्वप्रीणयितरिन्द्र त्वा त्वां विश्वे सर्वे मर्ता मनुष्याश्चिच्छि यद्यपि विहवन्त पृथग्भवन्ते  
तथाप्यस्माकमिदस्माकमेव हवं गृणुहि । गृणु ॥

हवं त इन्द्र महिमा व्यानद्ब्रह्म यत्पासि श्वसिन्वृषीणां ।

आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उय घोरः सन्क्रत्वा जनिष्ठा अषाढः ॥२॥

हवं । ते । इन्द्र । महिमा । वि । आनद् । ब्रह्म । यत् । पासि । श्वसिन् । वृषीणां ।

आ । यत् । वज्रं । दधिषे । हस्ते । उय । घोरः । सन् । क्रत्वा । जनिष्ठाः । अषाढः ॥२॥

हे श्वसिन्वृषीणां यद्यदा अषीणां ब्रह्म सोचं पासि रचसि । सोचस्य रक्षणं नाम फलप्रदानं ।  
तदा ते तव महिमा हवं । हवः सोता । तं व्यानद् । व्याप्नोतु । हे उषीजस्त्रिंश्र यद्यदा हस्ते पाणी वज्रमा  
दधिषे धारयसि तदा क्रत्वा शत्रुवधादिना कर्मणा घोरः सन्नषाढः शत्रुभिरनभिभूतो जनिष्ठाः ।  
जनिष्ठाः । जमवः ॥

तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान्सं यन्वृक्ष रोदसी निनेथ ।

महे क्षत्राय श्वसे हि जज्ञेऽतूतुजिं चित्तूतुजिरशिश्रत् ॥३॥

तव । प्रणीती । इन्द्र । जोहुवानान् । सं । यत् । नृन् । न । रोदसी इति । निनेथ ।

महे । क्षत्राय । श्वसे । हि । जज्ञे । अतूतुजिं । चित् । तूतुजिः । अशिश्रत् ॥३॥

हे इन्द्र यद्यस्त्वं तव प्रणीती प्रणीत्या प्रणयनेन जोहुवानान् मृगं क्षुवतो नृजोदसी यावापृथिवी सं  
जिनेय संगमयसि । दिवि पृथिव्यां च सोतृन् प्रतिष्ठापयसीत्यर्थः । स त्वं महे महते क्षत्राय धनाय । रयिः  
चक्षमिति धननामसु पाठात् । श्वसे वज्राय च । यजमानेभ्यो महज्जनं वसं च दातुमित्यर्थः । जज्ञे । जज्ञिषे ।  
हीति हेत्वर्थः । यत एवमतः कारणादतुतुजिमदातारमयजमानं तूतुजिर्दाता यजमानोऽशिश्रत् । अथर्तिर्हि-  
साकर्मा । तस्मात्तदर्थं ब्रुह् ॥ हिनसि । चिदित्येवकारार्थः ॥

एभिर्न इन्द्राहभिर्देशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।

प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अवं द्विता वरुणो मायी नः सात् ॥४॥

एभिः । नः । इन्द्र । अहं । अभिः । दशस्य । दुः । मित्रासः । हि । क्षितयः । पवन्ते ।

प्रति । यत् । चष्टे । अनृतं । अनेनाः । अवं । द्विता । वरुणः । मायी । नः । सात् ॥४॥

हे इन्द्र दुर्मित्रासो दुष्टमित्रभूता नाधक्काः क्षितयो जनाः पवन्ते । अभिगच्छन्ति । पवतिर्गतिकर्मा । तेभ्यो

धनमाच्छिन्न नोऽस्यभ्यमेभिः सान्त्विकेरहभिरहोभिर्दंशस्य । देहि । किंचानेना एनसां निहंता मायी प्रज्ञा-  
वान् वरुणो यदनुतं नोऽस्मासु प्रति चष्टे अभिपश्यति तदनुतं हे इंद्र स्वल्पसादाद्धिता द्विधाव सात् ।  
अवस्यतु । विमोचयतु । तथा च यास्कः । सतिरपच्छष्टो विमोचने । नि० १. १७. । इति ॥

वोचेमेदिंद्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्दत्तः ।

यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्टो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

वोचेम । इत् । इंद्रं । मघऽवानं । एनं । महः । रायः । राधसः । यत् । दत्तः । नः ।

यः । अर्चतः । ब्रह्मऽकृतिं । अविष्टः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ५ ॥

यद्य इंद्रो महो महतो राधसः संराधकस्य रायो धनस्य । द्वितीयार्थे षष्ठी । संराधकं महत्वनं नोऽस्यभ्यं  
दत्तं प्रायच्छत् यस्मै इंद्रोऽर्चतः सुवतो ब्रह्मकृतिं क्रियमाणं ब्रह्म सोचमविष्टोऽतिशयेन रक्षिता गता भवति  
तमेनं मघवानं धनवंतमिंद्रं वोचेमेत् । कुवेमैव । स्पष्टमन्यत् ॥ ॥ १२ ॥

अयं सोम इंद्रेति पंचर्चं द्वादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं वैष्टुभमैंद्रं । अयं सोम इत्यनुक्रांतं ॥ व्यूह्ये दशराधि  
नवमेऽहन्ययं सोम इंद्रेति प्रचगशस्य ऐंद्रकुचः । सूचितं च । अयं सोम इंद्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र ब्रह्माणः  
। आ० ८. ११. । इति ॥ षोडशिशस्त्रे ब्रह्मन्वीरेत्येषा चिष्टुप । सूचितं च । ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाण इति चिष्टुप  
। आ० ६. २. । इति ॥

अयं सोम इंद्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।

पिब त्वस्य सुषुतस्य चारोर्ददौ मघानि मघवन्नियानः ॥ १ ॥

अयं । सोमः । इंद्र । तुभ्यं । सुन्वे । आ । तु । प्र । याहि । हरिऽवः । तत्ऽओकाः ।

पिब । तु । अस्य । सुऽसुतस्य । चारोः । ददः । मघानि । मघऽवन् । इयानः ॥ १ ॥

हे इंद्र तुभ्यं त्वदर्थमयमेव सोमः सुन्वे । अभिषुतोऽभवत् । हे हरिवो हरिवस्मिंद्र तदोकाः । सवनीयो  
यस्मासी तदोकाः । तु चिप्रमा प्र याहि । सुषुतस्य सम्यगभिषुतस्य चारोः शोभनस्यास्य सोमस्य । द्वितीयार्थे  
षष्ठी । सम्यगभिषुतं शोभनमित्यर्थः । तु चिप्रं पिब च । अपि च हे मघवन् इयान उपगम्यमानो याच्यमानो  
वा त्वं मघानि धनानि ददः । अस्यभ्यं देहि ॥

ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयं ।

अस्मिन्नु षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणुव इमा नः ॥ २ ॥

ब्रह्मन् । वीर । ब्रह्मऽकृतिं । जुषाणः । अर्वाचीनः । हरिऽभिः । याहि । तूयं ।

अस्मिन् । ऊं इति । सु । सवने । मादयस्व । उप । ब्रह्माणि । शृणुवः । इमा । नः ॥ २ ॥

हे ब्रह्मन् परिवृढ वीरेंद्र ब्रह्मकृतिं क्रियमाणं सोचं जुषाणः सेवमानोऽर्वाचीनोऽस्यदभिमुखः सन्  
हरिभिर्यैस्तूयं चिप्रं याहि । अस्मिन् अस्मिन्नेव सवने यज्ञे सु सुष्ठु मादयस्व च । नोऽस्यदीयानीमेमानि  
ब्रह्माणि सोचाणि चोप शृणुवः । उपशृणु ॥

का ते अस्त्यरकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन्दाशेम ।

विश्वं मतीरा तंतने त्वायाधा म इंद्र शृणुवो हवेमा ॥ ३ ॥



का । ते । अस्ति । अरंऽकृतिः । सुऽउक्तैः । कदा । नूनं । ते । मघऽवन् । दाशेम ।  
विश्वाः । मतीः । आ । ततने । त्वाऽया । अध । मे । इंद्र । शृणुवः । हवा । इमा ॥ ३ ॥

हे इंद्र ते तव सूक्तेरस्माभिः क्रियमाणाः सोचिररंछतिरखंछतिः कासि । कीदृशी भवति । हे मघवन् ते तव कदा भूतं कदा खलु दाशेम । प्रीतिसुत्पादधेम । त्वाया स्वत्कामनयैव विश्वा मतीः सर्वाः कुतीरा ततने । करोमि । अधातः कारणात् हे इंद्र मे मदोयागीमेमानि हवा हवानि सोचाणि शृणुवः । शृणु ॥

उतो घा ते पुरुष्याऽ इदासन्येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणां ।  
अधाहं त्वा मघवज्जोहवीमि त्वं न इंद्रासि प्रमतिः पितेव ॥ ४ ॥  
उतो इति । घ । ते । पुरुष्याः । इत् । आसन् । येषां । पूर्वेषां । अशृणोः । ऋषीणां ।  
अध । अहं । त्वा । मघऽवन् । जोहवीमि । त्वं । नः । इंद्र । असि । प्रमतिः । पिताऽइव ॥ ४ ॥

उतापि च । घेति पूरणः । हे मघवन् येषां पूर्वेषामशृणीणां कुतीरशृणोः ते पूर्व ऋषयः पुरुष्या इत् पुण्येषो हिता एवासन् । अधातोऽहं त्वा त्वां जोहवीमि । मृगं खीमि । अपि च हे इंद्र त्वं नाऽस्माकं पितेव जनक इव प्रमतिर्वंधुरसि ॥

वोचेमेदिंद्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यददन्तः ।  
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्टो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥  
वोचेम । इत् । इंद्र । मघऽवानं । एनं । महः । रायः । राधसः । यत् । ददत् । नः ।  
यः । अर्चतः । ब्रह्मऽकृतिं । अविष्टः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ५ ॥

एवं व्याख्यातचरा ॥ १३ ॥

आ नो देवेति पंचर्षं चयोदशं सूक्तं वसिष्ठस्यायं वैपुभेन्द्र । आ नो देवेत्यनुक्रांतं ॥ प्रथमे छंदोमे प्रउगशस्त्र आ न इत्ययमेन्द्रलृचः । मूच्यते हि । आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन् प्र वो यज्ञेष देवयंतो अर्चन् । आ० ८. ९. इति ॥

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्भवा वृध इंद्र रायो अस्य ।  
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥ १ ॥  
आ । नः । देव । शवसा । याहि । शुष्मिन् । भव । वृधः । इंद्र । रायः । अस्य ।  
महे । नृम्णाय । नृऽपते । सुऽवज्र । महि । क्षत्राय । पौंस्याय । शूर ॥ १ ॥

हे देव शीतमान शुष्मिन्भवमिंद्र जोऽस्माञ्शवसा बलेन सार्धमा याहि । अस्माकभ्यं देयस्व रायो धनस्व वृधो वर्धयिता च भव । हे नृपते सुवज्र महे महते नृम्णाय बलाय च भव । बाधो नृम्णमिति बलनामसु पाठात् । हे शूर महि महते क्षत्राय शत्रूणां हिंसकाय । चदिर्हिंसाकर्मा । पौंस्याय वीर्याय च भव ॥

हवंत उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ ।  
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रंधया सुहंतु ॥ २ ॥

हवँते । ऊं इति । त्वा । हव्यं । विऽवाचि । तनूषु । शूराः । सूर्यस्य । सातौ ।  
त्वं । विश्वेषु । सेन्यः । जनेषु । त्वं । वृत्राणि । रंधय । सुऽहंतु ॥ २ ॥

हे इंद्र हव्यं ज्ञातव्यं त्वा त्वां विवाचि विविधा वाचो यस्मिन्नादुर्मवंति तस्मिन्नुडे शूराः पुष्यास्तनूष्वंगेषु  
रक्षणीयासु सूर्यस्य सातौ संभजने । सरति गच्छतीत्याधुरच सूर्यो विवचितः । तस्य चिरकावं प्राप्स्यर्थं  
हवँते । ऊयंति । विश्वेषु सर्वेषु जनेषु त्वमेव सेन्यः सेनाहोऽसि । अपि च त्वं वृत्राणि शत्रून् सुहंतु सुहंतुनाम्ना  
वज्रेण रंधय । अस्मभ्यं वशीकुरु ॥

अहा यदिंद्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुमुपमं समत्सु ।  
न्यग्मिः सीदसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥ ३ ॥  
अहा । यत् । इंद्र । सुऽदिना । विऽउच्छान् । दधः । यत् । केतुं । उपऽमं । समत्सु ।  
नि । अग्निः । सीदत् । असुरः । न । होता । हुवानः । अत्र । सुऽभगाय । देवान् ॥ ३ ॥

हे इंद्र यद्यदाहाहाणि सुदिना सुदिनानि व्युच्छान् व्युच्छेद्युः यद्यदा च समत्सु संयामेषु केतुं ज्ञानमुपम-  
मंतिकं दधः धारयेः तदासुरो बलवान् होता देवानामाह्वाताभिः सुभगायास्त्राकं शोभनधनप्राप्तये देवास्त-  
वानो ऊयन्तवास्मिन्ने नि षीदत् । न्यसीदत् ॥

वयं ते त इंद्र ये च देव स्तवँत शूर ददतो मघानि ।  
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्रवंत ॥ ४ ॥  
वयं । ते । ते । इंद्र । ये । च । देव । स्तवँत । शूर । ददतः । मघानि ।  
यच्छ । सूरिऽभ्यः । उपऽमं । वरूथं । सुऽआभुवः । जरणां । अश्रवंत ॥ ४ ॥

हे देव शूरेंद्र ते तव वयं वसिष्ठाः स्वभूताः । ये जना मदीयपुत्रपौत्रादयो मघानि मंहनीयानि हवींषि  
ददतः प्रयच्छंतः क्षवंत क्षुवंत तेऽपि तव स्वभूताः । तेभ्य उभयेभ्यः सूरिभ्यः क्षीतुभ्य उपमं येषु वरूथं गृहं  
यच्छ । प्रयच्छ । अपि च त उभे स्वाभुवः सुसमृद्धाः संतो जरणां जरामश्रवंत । प्राप्तुवंतु ॥

वोचेमेदिंद्र मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्दत्तः ।  
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्टो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥  
वोचेम । इत् । इंद्र । मघऽवानं । एनं । महः । रायः । राधसः । यत् । ददत् । नः ।  
यः । अर्चंतः । ब्रह्मऽकृतिं । अविष्टः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ५ ॥

एषा सिद्धा ॥ ॥ १४ ॥

प्र व इंद्रायेति द्वादशर्चं चतुर्दशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं गायत्रिमंद्रं । दशम्याद्यास्तिस्रो विराजः शिष्टा  
गायत्र्यः । तथा चानुक्रांतं । प्र वो द्वादश गायत्रं चिविराळंतमिति ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥ प्रथमे  
रात्रिपर्याये मैत्रावरुणशस्त्रे प्र व इंद्रायेत्यावसृचः स्तोत्रियः । सूचितं च । प्र व इंद्राय मादनं प्र कृतान्यु-  
वीषिणः । आ० ६. ४. इति ॥ अतिरात्रे प्रथमे पर्याये ब्राह्मणाच्छंसि शस्त्रे वयमिंद्र त्वायवोऽभीत्यनुरूपसृचः ।  
तथा च सूचितं । वयमिंद्र त्वायवोऽभि वार्चहत्यायेत्युत्तमामुद्धरेत् । आ० ६. ४. इति ॥ चतुर्थेऽहनि माध्यदि-  
नसर्वेन होत्रकशस्त्र आरंभणीयाभ्य ऊर्ध्वं वैराज एकसृच आहवनीयः । तदर्थः प्र वो महे महिवृधे भरध्व-  
मित्याद्यास्तिस्रः । सूचितं च । प्र वो महे महिवृधे भरध्वमिति चतस्रस्तिस्रश्च विराजः । आ० ७. ११. इति ॥



प्र व इंद्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपात्रे ॥ १ ॥

प्र । वः । इंद्राय । मादनं । हरिऽश्वाय । गायत । सखायः । सोमऽपात्रे ॥ १ ॥

हे सखायः वो यूयं हर्यश्वाय सोमपात्रे सोमानां पात्रं इंद्राय मादनं मदकरं सोमं प्र गायत ॥

शंसेदुक्थं सुदानं व उत युक्षं यथा नरः । चकुमा सत्यराधसे ॥ २ ॥

शंस । इत् । उक्थं । सुऽदानं वे । उत । युक्षं । यथा । नरः । चकुम । सत्यऽराधसे ॥ २ ॥

उतापि च हे सोमः सुदानं शोभनदानाय सत्यराधसे सत्यधनार्थेन्द्रायोक्थं सोमं यथा नरोऽप्ये सोतारो युचं दीप्तिः साधनभूतं सोमं शंसति तद्वत्त्वमपि शंस । उच्चारय । इदिति पूरणः । वयं च चक्रम । सोमं करवाम ॥

त्वं न इंद्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥

त्वं । नः । इंद्र । वाजऽयुः । त्वं । गव्युः । शतऽक्रतो इति शतऽक्रतो । त्वं । हिरण्यऽयुः ।

वसो इति ॥ ३ ॥

हे इंद्र त्वं नोऽस्माकं वाजयुरत्तकामो भव । हे शतक्रतो त्वं नोऽस्माकं गव्युर्गोकामो भव । हे वसो वासयितरिंद्र त्वं हिरण्ययुर्हिरण्यकामोऽपि भव ॥ कंदसि परेच्छायामपि दृश्यते क्वचित् क्वच ॥

वयमिंद्र त्वायवोऽभि प्र शोनुमो वृषन् । विद्धी त्वयस्य नो वसो ॥ ४ ॥

वयं । इंद्र । त्वाऽयवः । अभि । प्र । शोनुमः । वृषन् । विद्धि । तु । अस्य । नः । वसो इति ॥ ४ ॥

हे वृषन् कामानां वर्धितरिंद्र त्वायवस्त्वत्कामा वयं वसिष्ठास्त्वामभि प्र शोनुमः । प्रकर्षेण शुभः । हे वसो वासयितरिंद्र अस्तेदमस्मादीयं सोमं तु क्षिप्रं विद्धि । अवधारय ॥

मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रंधीररावणे । त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥

मा । नः । निदे । च । वक्तवे । अर्यः । रंधीः । अरावणे । त्वे इति । अपि । क्रतुः । मम ॥ ५ ॥

हे इंद्र अर्यः स्वामी त्वं वक्तवे पश्यवाक्त्वानां वक्त्रे निदे मिदिचेऽरावणेऽदाचे नोऽस्मान् मा रंधीः । वयं मा कार्षीः । अप्यपि च त्वे त्वयि मम क्रतुर्मदीयं सोमलक्षणं कर्म गच्छत्विति शेषः । अस्मादीयं सोमं भवक्षिते प्रविशत्वित्यर्थः ॥

त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृचहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥

त्वं । वर्म । असि । सऽप्रथः । पुरऽयोधः । च । वृचऽहन् । त्वया । प्रति । ब्रुवे । युजा ॥ ६ ॥

हे वृचहञ्छूणां हिंसकेंद्र त्वं वर्मास्माकं कवचमसि । कवचवद्द्रवकोऽसीत्यर्थः । सप्रथः सर्वतः पृथुश्चासि । पुरोयोधश्च पुरो योद्धा चासि । त्वया युजा त्वया सहायेन प्रति ब्रुवे । शत्रून् प्रतिब्रवीमि । प्रतिहन्सीत्यर्थः ॥ ॥ १५ ॥

महौ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः । मस्माते इंद्र रोदसी ॥ ७ ॥

महान् । उत । असि । यस्य । ते । अनु । स्वधावरी इति स्वधाऽवरी । सहः ।

मस्माते इति । इंद्र । रोदसी इति ॥ ७ ॥

उतापि च हे इंद्र त्वं महानसि । सर्वाधिकोऽसि । हे इंद्र यस्य ते तव सहो बलं स्वधावरी अन्नवली  
रोदसी आवापृथिव्यावनु मन्त्राते अनुमन्येते । त्वदीयं सहः सर्वाधिकमित्यचोमावपि लोकी विसंवादं न  
कुर्वत इत्यर्थः ॥

तं त्वा मरुत्वन्ती परि भुवद्वाणी सयावरी । नक्षमाणा सह द्युभिः ॥ ८ ॥

तं त्वा । मरुत्वन्ती । परि । भुवत् । वाणी । सयावरी । नक्षमाणा । सह । द्युभिः ॥ ८ ॥

हे इंद्र तमुक्तगुणविशिष्टं त्वा त्वां सयावरी त्वया सह गन्वी । यच्च यच्च त्वं यासि तच्च तच्च यांतीत्यर्थः ।  
द्युमिक्षीवोभिर्नक्षमाणा आमुवंती मरुत्वन्ती । मरुतः खोतारः । तद्वती वाणी क्षुतिः परि भुवत् । परिभवतु ।  
परिभवतिरच परिग्रहार्थीयः । परिगृह्णात्वित्यर्थः ॥

ऊर्ध्वासस्त्वान्विंदवो भुवन्दस्समुप द्यवि । सं ते नमंत कृष्टयः ॥ ९ ॥

ऊर्ध्वासः । त्वा । अनु । इंदवः । भुवन् । दस्मं । उप । द्यवि । सं । ते । नमन्त । कृष्टयः ॥ ९ ॥

हे इंद्र उप द्यवि सुलोकसमीपे स्थितं द्वां दर्शनीयं त्वा त्वामगृह्णीष्वूर्ध्वास ऊर्ध्वा इंदवोऽसदीयाः  
सोमा भुवन् । भवंति । कृष्टयः प्रजाश्च ते तुभ्यं सं नमंत । सुवि सोमास्त्वदर्थमेव जायते प्रजाश्च त्वामेव  
प्रणमन्तीतीन्द्रक्षुतिः ॥

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमन्ति कृणुध्वं ।

विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ १० ॥

प्र । वः । महे । महिऽवृधे । भरध्वं । प्रऽचेतसे । प्र । सुऽमन्ति । कृणुध्वं ।

विशः । पूर्वीः । प्र । चर । चर्षणिऽप्राः ॥ १० ॥

हे मदीयाः पुरुषाः वो यूयं महिवृधे महतां धनानां वर्धयिष्वे महे महत इंद्र । प्र प्र भरध्वं । सोमान्य-  
ययत । प्रचेतसे प्रकष्टमतय इंद्राय सुमन्ति सुष्टुतिं च प्र कृणुध्वं । प्रकुर्वत । अथ प्रत्यक्षक्षुतिः । हे इंद्र  
चर्षणिप्राः क्षामिः प्रजानां पूरयिता त्वं पूर्वीर्हविषां पूरयिष्वीविशः प्रजाः प्र चर । अभिगच्छ ॥

उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिंद्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।

तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ ११ ॥

उरुऽव्यचसे । महिने । सुऽवृक्ति । इंद्राय । ब्रह्म । जनयन्त । विप्राः ।

तस्य । व्रतानि । न । मिनन्ति । धीराः ॥ ११ ॥

उरुव्यचसे पृथुव्याप्तये महिने महते यस्मा इंद्राय सुवृक्तिं क्षुतिं ब्रह्मात्रं हविश्च विप्राः प्राज्ञा जनयन्त  
जनयन्ति तस्मैंद्रस्य व्रतानि रक्षणादीनि कर्माणि धीराः प्राज्ञा देवा अपि न मिनन्ति । न हिंसन्ति ॥

इंद्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सचा राजानं दधिरे सहध्वे ।

हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥ १२ ॥

इंद्रं । वाणीः । अनुत्तऽमन्युं । एव । सचा । राजानं । दधिरे । सहध्वे ।

हरिऽअश्वाय । बर्हय । सं । आपीन् ॥ १२ ॥



सचा रावानं सर्वजगत ईश्वरमनुत्तमनुं । केनाप्यनुत्तोऽबाधितो मन्युः क्रोधो यस्य सः । तमेवेन्द्रं  
वाणीः सुतथः सहधौ सोचाणि शत्रूणामभिभवितुं दधिरे । अतो हेतोर्हं स्तोतः त्वमपि हर्यश्वायेन्द्राय ।  
हर्यश्मिन्द्रं स्तोतुमित्यर्थः । आपीनं बंधून् सं नर्हय । उत्साहय ॥ ॥ १६ ॥

मो घु त्वेति सप्तविंशत्युचं पंचदशं सूक्तं । अवेयमनुक्रमणिका । मो घु सप्ताधिका प्रागाथं तृतीया  
द्विपदा सौदासेरपी प्रचिप्यमाणः शक्तिरत्वं प्रगाथमालेभे सोऽर्धर्च उक्तेऽदह्यत । तं पुचोक्तं वसिष्ठः समाप-  
यतेति शाव्यायनकं वसिष्ठस्यैव हतपुत्रस्वार्थमिति तांडकमिति । मंडलद्रष्टा वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रं कर्तुं न इति  
प्रगाथस्वार्धर्चस्य च वसिष्ठपुत्रः शक्तिर्वसिष्ठो वा । इन्द्रो देवता । अयुजो बृहत्सो युजः सतोबृहत्सः । तृतीया  
तु द्विपदा विराट् ॥ महाव्रते निष्कैवले बार्हततुचाशीतावेतत्सूक्तं । तच्च द्विपदामभि त्वा शुरेत्वेतं राथंतरं  
प्रगाथं नकिः सुदास इति प्रगाथं च वर्जयेत् । तथैव पंचमारण्यके सूचितं । मो घु त्वा वाघतश्चनेत्वेतस्य  
द्विपदां चोद्धरति राथंतरं च प्रगाथमथ हास्य नकिः सुदासो रथमित्वेतं प्रगाथमुद्धृत्य त्वामिदा ह्यो नर  
इत्वेतं प्रगाथं प्रत्यवदधाति । ऐ० आ० ५. २. ४. इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि पंचमेऽहनि च निष्कैवले मो घु त्वा  
वाघत इति प्रगाथः सद्द्विपदः । सूचितं च । मो घु त्वा वाघतश्चनेति सद्द्विपद उपसमस्तेद्विपदां । आ० ७. ३. ।  
इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि मरुत्वतीये प्राकृतामरुत्वतीयात्मगाथादनंतरं नकिः सुदास इति प्रगाथं शंसते ।  
पुष्याभिप्लवण्डहयोसृतीये षष्ठेऽहनि चायं प्रगाथः । तथैव सूचितं । नकिः सुदासो रथमिति मरुत्वतीया  
ऊर्ध्वं नित्यादिति । एवं स्थितान् प्रगाथान्पुष्याभिप्लवण्योरन्वहं पुनःपुनरावर्तयेयुः । आ० ७. ३. । इति ॥  
अभिष्टोमे माध्यंदिनसवनेऽच्छावाकशस्त्र उदित्वस्य रिच्यत इति प्रगाथः । तथा च सूचितं । उदित्वस्य  
रिच्यते भूय इत । आ० ५. १६. । इति ॥ अभिष्टोमे माध्यंदिनसवने मैत्रावरुणशस्त्रे कस्तमिन्द्रेति प्रगाथः ।  
सूचितं च । कस्तमिन्द्रं त्वावसुं सयो ह जातः । आ० ५. १६. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने  
मैत्रावरुणशस्त्रस्यायं प्रगाथः । अहर्गणेष्वपि द्वितीयादिष्वहःसु । सूचितं च । कस्तमिन्द्रं त्वावसुं कस्तम्यो  
अतसीनां । आ० ७. ४. । इति । आरंभणीयाः पर्यासान् कवतोऽहरहःशस्यानीति होचकाः । आ० ७. १. । इति ॥  
पुष्यषडहस्य तृतीयेऽहनि निष्कैवले वैष्णवसामपणे यदिन्द्रं यावत इत्यनुरूपसृचः । सूचितं च । यदिन्द्रं  
यावतस्त्वमिति प्रगाथो स्तोत्रियानुरूपौ । आ० ७. १०. । इति ॥ अभिष्टोमे चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने  
ऽच्छावाकशस्त्रे तरणिरित्तिषासतीति वैकल्पिकसृचः । सूचितं च । तरोमिवो विदधसुं तरणिरित्तिषासति  
। आ० ७. ४. । इति ॥ अभिष्टोमे निष्कैवलशस्त्रे रथंतरसामपणेऽभि त्वा शुरेति प्रगाथः स्तोत्रियः । सूचितं च ।  
अभि त्वा शुर नोनुमोऽभि त्वा पूर्वपीतय इति प्रगाथो स्तोत्रियानुरूपौ । आ० ५. १५. । इति ॥ आश्विनशस्त्रे  
ऽप्ययं प्रगाथः । तथैव सूचितं च । अभि त्वा शुर नोनुमो नहवः सूरचषस इति प्रगाथाः । आ० ६. ५. । इति ॥  
महाव्रते निष्कैवले दक्षिणपक्षेऽयं प्रगाथः । तथैव पंचमारण्यके सूचितं । अभि त्वा शुर नोनुमोऽभि त्वा  
पूर्वपीतय इति रथंतरस्य स्तोत्रियानुरूपौ प्रगाथौ । ऐ० आ० ५. ८. । इति ॥ आश्विनशस्त्रे इन्द्रं कर्तुं न इति  
प्रगाथः । सूचितं च । इन्द्रं कर्तुं न आ भराभि त्वा शुर नोनुमः । आ० ६. ५. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि  
माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रेऽयं वैकल्पिकः स्तोत्रियः प्रगाथः । सूचितं च । इन्द्रं कर्तुं न आ भरेन्द्र  
क्षेष्ठं न आ भर । आ० ७. ४. । इति ॥

मो घु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन् ।

आरात्ताच्चित्सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥

मो इति । सु । त्वा । वाघतः । चन । आरे । अस्मत् । नि । रीरमन् ।

आरात्तात् । चित् । सधऽमादं । नः । आ । गहि । इह । वा । सन् । उप । श्रुधि ॥ १ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वया वाघतश्चन यजमाना अथस्मदस्मत्त आरे दूरे मो नि रीरमन् । न जितरां रमयन्तु ।  
अतस्त्वमारात्ताच्चिद्वरेऽपि वर्तमानोऽस्मदीयं सधमादं यज्ञमा गहि । आगच्छ । इह वाचापि वा सन्  
विद्यमान उप श्रुधि । अस्मदीयं स्तोत्रमुपशृणु ॥

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।

इंद्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥

इमे । हि । ते । ब्रह्मऽकृतः । सुते । सचा । मधौ । न । मक्षः । आसते ।

इंद्रे । कामं । जरितारः । वसुऽयवः । रथे । न । पादं । आ । दधुः ॥ २ ॥

हे इंद्र ते त्वदर्थं सुतेऽभिषुते सोमे ब्रह्मकृतो मधौ न मधुनीव मधो मधिकाः सचा सहासते । उपविशंति । अथ परोचक्षुतिः । वसूयवो धनकामा जरितारः सोतारः काममिष्टमिंद्रे रथे न पादं रथे पादमिवा दधुः । समर्पयंति ॥

रायस्त्वामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥ ३ ॥

रायऽकामः । वज्रऽहस्तं । सुऽदक्षिणं । पुत्रः । न । पितरं । हुवे ॥ ३ ॥

रायस्त्वामो धनकामोऽहं सुदक्षिणं शोभनदानं वज्रहस्तामिंद्रं पुत्रो न पुत्र इव पितरं हुवे । ब्रूयामि ॥

इम इंद्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।

तां आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां यात्योक आ ॥ ४ ॥

इमे । इंद्राय । सुन्विरे । सोमासः । दधिऽआशिरः ।

तान् । आ । मदाय । वज्रऽहस्त । पीतये । हरिऽभ्यां । याहि । ओकः । आ ॥ ४ ॥

हे वज्रहस्त दध्याशिरो दधिमिश्रणा इमे सोमासः सोमा इंद्राय तुभ्यं सुन्विरे । सुता वभूवुः । ताण सोमाभ्यदाय मदार्थं पीतये पानायौको यज्ञसदनमामि हरिभ्यामश्वाभ्यामा याहि । आगच्छ ॥

अवच्छुत्कर्णं ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिष्वगिरः ।

सद्यश्चिद्यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्संतमा मिनत ॥ ५ ॥

अवत् । अतुऽकर्णः । ईयते । वसूनां । नु । चित् । नः । मर्धिष्वत् । गिरः ।

सद्यः । चित् । यः । सहस्राणि । शता । ददत् । नकिः । दित्संतं । आ । मिनत् ॥ ५ ॥

श्रुत्कर्णो याज्ञाश्रवणरूपकर्ण इंद्रो वसूनां वसूनीयते । याच्यते । नोऽस्मादीया गिरो याज्ञावाक्वाणि अवत् । गृणोतु । नू चिन्नैव मर्धिष्वत् । हिनस्तु । अश्रवणेन याज्ञावाक्वाणि निष्फलाणि न करोस्वित्यर्थः । अपि चंद्रः सबक्षित सद्य एव याज्ञानंतरमेव सहस्राणि शतानि च ददत् । प्रयच्छेत् । दित्संतं दातुमिच्छंतं तमिंद्रं नकिरा मिनत् । न हिंस्यात् । कश्चिदपि न वारयेदित्यर्थः ॥ ॥ १७ ॥

स वीरो अप्रतिष्कृत इंद्रेण शूश्रुवे नृभिः ।

यस्ते गभीरा सर्वनानि वृचहन्सुनोत्या च धावति ॥ ६ ॥

सः । वीरः । अप्रतिऽस्कृतः । इंद्रेण । शूश्रुवे । नृऽभिः ।

यः । ते । गभीरा । सर्वनानि । वृचऽहन् । सुनोति । आ । च । धावति ॥ ६ ॥

हे वृचहन् ते त्वदर्थं यः पुमान् गभीरा गभीराणि सर्वनानि सोमान् सुनोति आ धावति च तां



श्रुतिमिदमप्यावति च स वीर इंद्रेण हेतुनाप्रतिष्कृतः केनाप्यप्रतिगतोऽप्रतिशब्दितो वा भवेत् । नृभिः  
परिचारकैः श्रुयुवे । उपगम्यति च । श्रयतिर्गतिकर्मा ॥

भवा वरूथं मघवन्मघोनां यत्समजासि शर्धतः ।

वि त्वाहंतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयं ॥ ७ ॥

भव । वरूथं । मघऽवन् । मघोनां । यत् । संऽअजासि । शर्धतः ।

वि । त्वाऽहंतस्य । वेदनं । भजेमहि । आ । दुऽनशः । भर । गयं ॥ ७ ॥

हे मघवन् धनवन्निद्र मघोनां हविष्मतां वरूथमुपद्रवाणां चारकं वर्म भव । यद्यस्त्वं शर्धत उत्सहमा-  
नाञ्छून् समजासि संप्रेरयेः । अपि च त्वाहतस्य त्वया हतस्य श्रवोर्वेदनं धनं वि भजेमहि । विश्लेषण  
लभेमहि । किंच दुर्नशो नाशयितुमशक्यस्त्वं गयं गृहं धनं वा भर । अस्मभ्यमाहर ॥

सुनोतां सोमपात्रे सोममिद्राय वज्रिणे ।

पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्तिपृणते मयः ॥ ८ ॥

सुनोत । सोमऽपात्रे । सोमं । इद्राय । वज्रिणे ।

पचत । पक्तीः । अवसे । कृणुध्वं । इत् । पृणन् । इत् । पृणते । मयः ॥ ८ ॥

हे मदीयाः पुषाः वज्रिणे सोमपात्रे सोमस्य पाच इद्राय सोमं सुनोत । अभिपुणत । अवस इद्रं  
तर्पयितुं पक्तीः पक्त्वान् पुरोडाशादीन् पचत च । कृणुध्वमित् । इद्रप्रियकराणि कर्माणि च कुरुतैव । इद्रो  
हि मयः सुखं पृणन्निबजमानाय प्रयच्छेव पृणते हवींषीति शेषः ॥

मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे ।

तरणिरिज्जयति क्षेति पुथति न देवासः कवत्नवे ॥ ९ ॥

मा । स्रेधत । सोमिनः । दक्षत । महे । कृणुध्वं । राये । आऽतुजे ।

तरणिः । इत् । जयति । क्षेति । पुथति । न । देवासः । कवत्नवे ॥ ९ ॥

हे मदीया जनाः सोमिनः सोमवतो यागात्मा स्रेधत । मा हिंसिष्ट । दक्षत । यागादिकं कर्तुमुत्सहध्वं  
च । महे महत आतुजे । तुर्जिर्हिंसाकर्मा दानकर्मा वा । शत्रूणामभिहिंसकाय धनानां प्रदात्रे वेंद्राय राये  
धनलाभार्थं कृणुध्वं । कर्माणि कुरुत च । तरणिरित् कर्मसु त्वरित एव जयति शत्रून् । क्षेति । गृहे निवसति  
च । पुथति । प्रजया पशुभिश्च पुष्टो भवति । कवत्नवे कुत्सितक्रियायै ॥ कवोपखृष्टस्यातिः सातत्यगमनकर्मणो  
रूपं कवत्नुरिति ॥ देवासो देवा न भवंतीति शेषः । सुखप्राप्तये भवंतीत्यर्थः ॥

नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् ।

इंद्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे ॥ १० ॥

नकिः । सुऽदासः । रथं । परि । आस । न । रीरमत् ।

इंद्रः । यस्य । अविता । यस्य । मरुतः । गमत् । सः । गोऽमति । व्रजे ॥ १० ॥

सुदासः शोभनदानस्य यजमानस्य रथं नकिः पर्यास । कश्चित् पर्यसति । न रीरमत् । न रमयति च ।  
आत्मायै न कश्चिदेनं गृह्णातीत्यर्थः । अपि च यस्मिंद्रोऽविता रचिता यस्य च मरुतोऽवितारः स गोमति  
गोयुक्ते व्रजे गोष्ठे गमत् । गच्छेत् ॥ १० ॥

गमद्वाजं वाजयन्निद्रं मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः ।

अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणां ॥ ११ ॥

गमत् । वाजं । वाजयन् । इन्द्र । मर्त्यैः । यस्य । त्वं । अविता । भुवः ।

अस्माकं । बोधि । अविता । रथानां । अस्माकं । शूर । नृणां ॥ ११ ॥

हे इन्द्र त्वं यस्य मर्त्यस्याविता रचिता भुवः भवेः स मर्त्यो वाजयन् स्तोत्रेण त्वां बलिनं कुर्वन् वाजमन्नं गमत् । गच्छेत् । अपि च हे शूर अस्माकं वासिष्ठानां रथानामविता रचिता बोधि । भव ॥ भवतेऽर्होऽति ह्यं । मकारस्य नकारश्चादसः ॥ अस्माकं नृणां पुत्रादीनां चाविता भव ॥

उदिन्वस्य रिच्यतेऽंशो धनं न जिग्युषः ।

य इन्द्रो हरिवाच दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ १२ ॥

उत् । इत् । नु । अस्य । रिच्यते । अंशः । धनं । न । जिग्युषः ।

यः । इन्द्रः । हरिऽवान् । न । दभन्ति । तं । रिपः । दक्षं । दधाति । सोमिनि ॥ १२ ॥

यस्येन्द्रस्यांशो यज्ञे सोमस्य भागोऽतिरिच्यतेऽन्येभ्योऽपि देवेभ्यः । इन्द्रस्य चिष्वपि सवनेषु सोमपात्रमस्ति माथ्यंदिनं हि सर्वमिन्द्रमिति । जिग्युषो जितवतो धनं न धनमिव । उदिष्विति चयः पूरणाः । अपि च यो हरिवाचिन्द्रः सोमिनि यजमाने दत्तं बलं दधाति संदधाति तं रिपो रिपवो न दभन्ति । न हिंसन्ति ॥

मंचमखर्वं सुधितं सुपेशंसं दधात यज्ञियेष्व ।

पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवन् ॥ १३ ॥

मंचं । अखर्वं । सुऽधितं । सुऽपेशंसं । दधात । यज्ञियेषु । आ ।

पूर्वीः । चन । प्रऽसितयः । तरन्ति । तं । यः । इन्द्रे । कर्मणा । भुवन् ॥ १३ ॥

हे जनाः अखर्वमनखं सुधितं सुविहितं सुपेशंसं शोभनरूपं मंचं स्तोत्रं यज्ञियेषु यजनीयेषु देवेषु मध्य इन्द्राय दधात । विधत्त । यो जनः कर्मणा सुखादिरूपेणैन्द्र इन्द्रस्य चित्ते भुवत् भवेत् तं जनं पूर्वीर्ब्रह्मः प्रसितयः पाशादीनि बंधनानि । चनेति समुदायो नेत्यर्थे वर्तते । न तरन्ति । न व्याप्तवन्तीत्यर्थः ॥

कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति ।

अज्ञा इत्तं मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥ १४ ॥

कः । तं । इन्द्र । त्वाऽवसुं । आ । मर्त्यैः । दधर्षति ।

अज्ञा । इत् । ते । मघऽवन् । पार्ये । दिवि । वाजी । वाजं । सिषासति ॥ १४ ॥

हे इन्द्र तव चित्ते यो भवेत् त्वावसुं । त्वं वसुधापको यस्येति वज्रज्रीहिः । तं जनं को मर्त्यं आ दधर्षति । आधर्षेत् । हे मघवन् ते त्वदर्थं यः अज्ञा अज्ञया युक्तः सन् वाजी हविष्मान् भवेत् पार्ये दिवि सौख्येऽहनि स वाजमन्नं बलं वा सिषासति । सेवते ॥

मघोनः स्म वृत्रहृत्येषु चोदय ये ददन्ति प्रिया वसुं ।

तव प्रणीती हर्यश्च सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥ १५ ॥



म॒घो॒नः । स्म॒ । वृ॒चऽह॒त्येषु॑ । चो॒दय॒ । ये । द॒दति॑ । प्रि॒या । वसु॑ ।

तव॑ । प्र॒ऽनी॒ती । हरि॑ऽअ॒श्व । सूरि॑ऽभिः । वि॒श्वा । तरे॒म॒ । दुः॒ऽइ॒ता ॥ १५ ॥

हे इंद्र मघो नो धनवतस्ते । त्वदर्थमित्यर्थः । प्रिया प्रियाणि वसु वसूनि धनानि ये जना ददति प्रयच्छन्ति ताज्जनान्वृचहृत्तेषु संग्रामेषु चोदय । प्रेरय । हे हर्यश्च तव प्रणीती प्रणीत्वा प्रययनेन सूरिभिः क्षोत्रभिः पुत्रादिभिः सार्धं विश्वा विश्वानि दुरिता दुरितानि तरेम ॥ १५ ॥

तवेदि॑द्राव॒मं वसु॑ त्वं पु॒ष्यसि॑ म॒ध्य॒मं ।

स॒चा वि॒श्वस्य॑ प॒र॒मस्य॑ रा॒जसि॑ न॒कि॒ष्ट्वा गो॒षु वृ॒ण्वते ॥ १६ ॥

तव॑ । इत् । इं॒द्र । अ॒व॒मं । वसु॑ । त्वं । पु॒ष्य॒सि॒ । म॒ध्य॒मं ।

स॒चा । वि॒श्वस्य॑ । प॒र॒मस्य॑ । रा॒ज॒सि॒ । न॒किः । त्वा॒ । गो॒षु । वृ॒ण्व॒ते ॥ १६ ॥

हे इंद्र अवममधमं वसुसीसादिकं वसु धनं । यद्वा । भौमं वस्त्वमं । तवस्तवैव । त्वं त्वमेव मध्यमं वसु रजतहिरण्यादिकमोतेरिचं वा पुष्यसि । विश्वस्य सर्वस्य परमस्त्रोत्तमस्यापि रत्नादेर्दिव्यस्य वा वसुनो राजसि । ईशिवे । सचा सत्यमेव । अपि च त्वा त्वां गोषु निमित्तेषु नकिर्गृण्वते । केऽपि न चारयन्ति ।

त्वं वि॒श्वस्य॑ ध॒न॒दा अ॒सि॒ श्रु॒तो य ई॒ भवे॑त्या॒जयः॑ ।

तवा॒यं वि॒श्वः पु॒रू॒हूत॑ पा॒र्थिवो॑ऽव॒स्युर्नाम॑ भि॒क्षते ॥ १७ ॥

त्वं । वि॒श्वस्य॑ । ध॒न॒ऽदाः । अ॒सि॒ । श्रु॒तः । ये । ई॒ । भवे॑ति । आ॒जयः॑ ।

तव॑ । अ॒यं । वि॒श्वः । पु॒रू॒ऽहू॒त॒ । पा॒र्थि॒वः । अ॒व॒स्युः । ना॒म॒ । भि॒क्ष॒ते ॥ १७ ॥

हे इंद्र त्वं विश्वस्य सर्वस्य क्षोत्रयजमानस्य वा धनदा धनस्य दाता सञ्जुतः प्रसिद्धोऽसि । य ईं य एत आजयो युक्तानि भवन्ति तेऽपि धनदाः श्रुतोऽसि । हे पुरूहूत विश्वः सर्वोऽप्ययं पार्थिवो जनस्यव । स्वप्न इत्यर्थः । अवस्यु रचामिच्छन्नामाप्तमुदकं वा । बर्हिर्नामेत्युदकनामसु पाठात् । भिक्षते । याचते । स्वामेवेति शेषः ॥

यदि॑द्र याव॑तस्त्वमे॒ताव॑द॒हमी॒शीय॑ ।

स्तो॒ता॒रमि॒द्दि॒धिवे॑य र॒दाव॑सो न पा॒प॒त्वाय॑ रा॒सीय॑ ॥ १८ ॥

यत् । इं॒द्र । याव॑तः । त्वं । ए॒ताव॑त् । अ॒हं । ई॒शी॒य॒ ।

स्तो॒ता॒रं । इत् । दि॒धि॒वे॒य॒ । र॒द॒व॒सो॒ इति॑ र॒द॒ऽव॒सो॒ । न । पा॒प॒ऽत्वा॒य॒ । रा॒सी॒य॒ ॥ १८ ॥

हे इंद्र यद्यतो यावतो धनस्य स्वमीशिवे एतावत् ॥ यद्वा युक् ॥ एतावतो धनसाहमीशीय ईश्वरो भवेयं हे रदवसो । रदति ददाति वसूनीति रदवसुः । ततोऽहमसादीयं स्तोतारमिद्दिधिवेय । धनप्रदानेन धारयेयमेव । पापत्वाय न रासीय । न दद्यां ॥

शि॒क्षे॒य॒मि॒न्म॒हय॑ते दि॒वेदि॑वे रा॒य आ॒ कु॒हचि॑र्विदे॑ ।

न॒हि त्व॑द॒न्यन्म॑घव॒न्न आ॒र्यं॑ व॒स्यो अ॒स्ति पि॒ता च॑न ॥ १९ ॥

शि॒क्षे॒यं॒ । इत् । म॒ह॒ऽय॑ते । दि॒वे॒ऽदि॒वे॒ । रा॒यः । आ॒ । कु॒ह॒चि॒त्त॒ऽवि॒दे॒ ।

न॒हि । त्वत् । अ॒न्यत् । म॒घ॒ऽव॒न् । नः॒ । आ॒र्यं॑ । व॒स्यः॑ । अ॒स्ति॑ । पि॒ता । च॑न ॥ १९ ॥

कुहचिदिदे । कुहचिद्विमानः कुहचिद्वित् । तस्यै । यच्च क्वापि विद्यमानायेत्यर्थः । महयते पूजयते  
जगाथ दिवे दिवे प्रतिदिनं रायो धनाणि शिषेयमित् । दद्यामेव । आकारः पूरणः । एवमिन्द्रस्य वाक्यं  
श्रुत्वा संतुष्ट ऋषिर्वदति । हे मघवन् त्वत्पत्नीऽन्वदस्याकमायं ज्ञातेयं न ह्यस्ति । वस्यः प्रशस्यः पिता च न  
पातयिता च त्वदन्यो नास्तीत्यर्थः ॥

तरणिरित्सिंषासति वाजं पुरंध्या युजा ।

आ व इंद्रं पुरूहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्वं ॥ २० ॥

तरणिः । इत् । सिसासति । वाजं । पुरंध्या । युजा ।

आ । वः । इंद्रं । पुरूहूतं । नमे । गिरा । नेमिं । तष्टाऽइव । सुद्वं ॥ २० ॥

तरणिरित् सुत्यादौ कर्मणि स्वरित एव पुमान् पुरंध्या महत्या धिया युजा सहायभूतया वाज-  
मघ्नं सिंषासति । संमजते । पुरूहूतं वज्रभिराहतमिंद्रं वस्त्रां गिरा सुत्याहमा नमे नेमिं चक्रस्य वलयं सुद्वं  
श्रीमगदासं तष्टेव । यथा वर्धकिर्दीक्षनेमिमानमयते तद्वदित्यर्थः ॥ ॥ २० ॥

न दुष्टुती मर्यो विंदते वसु न स्नेधंत रयिर्नशत् ।

सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥ २१ ॥

न । दुःस्तुती । मर्यैः । विंदते । वसु । न । स्नेधंत । रयिः । नशत् ।

सुऽशक्तिः । इत् । मघऽवन् । तुभ्यं । माऽवते । देष्णं । यत् । पार्ये । दिवि ॥ २१ ॥

मर्यो मनुष्यो दुष्टुती दुष्टुत्या वसु धनं न विंदते । इंद्रं सुवन्नेव वसु लभत इत्यर्थः । स्नेधंत हिंसंत ।  
इंद्रविषयसुत्यादिकर्माण्यकुर्वंतमित्यर्थः । रयिर्धनं न नशत् । न व्याप्नोति । हे मघवन् त्वया पार्ये दिवि  
सीत्वे दिवसे भावते मत्सदृशाय देष्णं दातव्यं यजनमस्ति तत्तुभ्यं त्वत्तः सुशक्तिरित् सुकर्मैव । विंदत इति  
व्यवहितमयनुषज्यतेऽध्याहारस्यांतिकत्वात् ॥

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।

ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिंद्र तस्थुषः ॥ २२ ॥

अभि । त्वा । शूर । नोनुमः । अदुग्धाऽइव । धेनवः ।

ईशानं । अस्य । जगतः । स्वऽदृशं । ईशानं । इंद्र । तस्थुषः ॥ २२ ॥

हे शूरेन्द्र अस्य जगतो जंगमस्थानमीश्वरं तस्थुषः स्थावरस्य चेशानं । ईशानमिति पदस्त्वावृत्तिराद-  
रार्था । स्वर्दृशं सर्वदृशं त्वा त्वामदुग्धा इव धेनवो यथादुग्धा धेनवः क्षीरपूर्णधस्त्वेन वर्तन्ते तद्वत्सोमपूर्ण-  
चमसत्वेन वर्तमाना वयमभि नोनुमः । भृशमभिष्टुमः ॥

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।

अश्वयंतो मघवन्निंद्र वाजिनो गव्यंतस्त्वा हवामहे ॥ २३ ॥

न । त्वाऽवान् । अन्यः । दिव्यः । न । पार्थिवः । न । जातः । न । जनिष्यते ।

अश्वऽयंतः । मघऽवन् । इंद्र । वाजिनः । गव्यंतः । त्वा । हवामहे ॥ २३ ॥

हे मघवन्निंद्र दिव्यो दिवि भवस्त्वावान् त्वत्सदृशोऽन्यो न जायते । पार्थिवः पृथिव्यां भवोऽपि



स्वावागन्धो न जायते । दिव्यः पार्थिवो वा स्वावागन्धो न जातः । न च वनिष्यते । पुषिणां दिवि च  
निष्यपि लोकेषु त्वत्सदृशः कश्चिन्नास्तीत्यर्थः । अस्त्रायतोऽश्वा निष्कृतो वाजिनो वाजनिष्कृतः ॥ इच्छायामि-  
निप्रत्ययः ॥ हविष्मन्तो वा गन्धतो वा इच्छन्तश्च वयं स्वा स्वां हवामहे । इधामः ॥

अभी षतस्तदा भरेद् ज्यायः कनीयसः ।

पुरुवसुर्हि मघवन्सनादसि भरेभरे च हव्यः ॥ २४ ॥

अभि । सतः । तत् । आ । भर । इंद्र । ज्यायः । कनीयसः ।

पुरुऽवसुः । हि । मघऽवन् । सनात् । असि । भरेऽभरे । च । हव्यः ॥ २४ ॥

हे आयो ज्यायसिंद्र ॥ आमंषितं पूर्वमविद्यमानवदितींद्रपदस्याविद्यमानवद्भावात् ज्याय इत्यस्य  
सर्वागुदान्तत्वाभावः । नकारस्य इत्वं व्यत्ययानुमभावो वा ॥ कनीयसः सतो मम तत्प्रसिद्धं धनमभ्या मर ।  
हे मघवन् त्वं सनाच्चिरादेवारभ्य पुरुवसुर्हि वज्रधनो ह्यसि । भरेभरे संयामे यज्ञे वा हव्यो हविष्यस्यासि ॥

परां शुदस्व मघवन्नमिचान्सुवेदा नो वसू कृधि ।

अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनां ॥ २५ ॥

परा । नुदस्व । मघऽवन् । अमिचान् । सुऽवेदा । नः । वसू । कृधि ।

अस्माकं । बोधि । अविता । महाऽधने । भव । वृधः । सखीनां ॥ २५ ॥

हे मघवन् परा पराचीनानमिवाञ्छुस्तुदस्व । प्रेरय । नोऽस्माभ्यं वसू वसूनि सुवेदा सुखमाणि कृधि ।  
कृष । महाधने संयामे । वाजसातो महाधन इति संयामनामसु पाठात् । सखीनां स्त्रीतृणामस्माकं वसिष्ठा-  
नामविता रक्षिता बोधि । भव । वृधो वर्धयिता च भव ॥

इंद्रं क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

शिष्या णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ २६ ॥

इंद्र । क्रतुं । नः । आ । भर । पिता । पुत्रेभ्यः । यथा ।

शिष्य । नः । अस्मिन् । पुरुऽहूत । यामनि । जीवाः । ज्योतिः । अशीमहि ॥ २६ ॥

हे इंद्र नोऽस्माभ्यं क्रतुं कर्म प्रज्ञानं वा मर । आहर । अपि च यथा पिता पुत्रेभ्यो धनं प्रयच्छति तथा  
नोऽस्माभ्यं शिष्य । धनं देहि । हे पुरुहूत वज्रभिराहूत यामनि यज्ञे जीवा वयं ज्योतिः सूर्यमशीमहि ।  
प्रतिदिनं प्राप्नुयाम ॥

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्योऽं माश्विवासो अव क्रमुः ।

त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २७ ॥

मा । नः । अज्ञाताः । वृजनाः । दुऽआध्यः । मा । अश्विवासः । अव । क्रमुः ।

त्वया । वयं । प्रऽवतः । शश्वतीः । अपः । अति । शूर । तरामसि ॥ २७ ॥

हे इंद्र अज्ञाता अज्ञातगमना वृजना हिंसका दुराध्यो नोऽस्मात्पाव क्रमुः । मावचक्रमुः । हे शूर त्वया  
वयं वसिष्ठाः प्रवतः प्रवणकाः संतः शश्वतीर्बह्वीरपोऽति तरामसि । अतितराम ॥ २७ ॥

श्वित्यं च इति चतुर्दशर्थं बोद्धव्यं सूतं । अत्रेयमनुक्रमणिका । श्वित्यं चः वक्रूणा संस्रवो वसिष्ठस्य सपुत्रश्चंद्रिष

वा संवाद इति । आदितो नवानां वसिष्ठ ऋषिः । वसिष्ठपुत्राणां जूयमानत्वात् एव देवता । त्रिषुतो व्योतिरित्यादिभिर्दशम्यादिभिः स्वपुत्रैर्वसिष्ठः जूयते । अतो वसिष्ठो देवता । त एव ऋषयः । या तेनोच्यत इति न्यायात् । अगुक्तत्वाच्चिदृषः ।

श्वित्यंचो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमंदुः ।

उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नृन् मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥ १ ॥

श्वित्यंचः । मा । दक्षिणतः स्कपर्दाः । धियंजिन्वासः । अभि । हि । प्रमंदुः ।

उत्तिष्ठन् । वोचे । परि । बर्हिषः । नृन् । न । मे । दूरात् । अवितवे । वसिष्ठाः ॥ १ ॥

श्वित्यंचः । श्वित्यं श्वेतवर्णमंचंतीति श्वित्यंचः । श्वेतवर्णा इत्यर्थः । धियंजिन्वासः कर्मणां पूरयितारो दक्षिणतस्कपर्दाः । दक्षिणे शिरसो भागे कपर्दाश्चूडा येषां ते दक्षिणतस्कपर्दाः । चूडाकर्मणि दक्षिणतो वसिष्ठानामिति स्मर्यते । मा मामभि प्रमंदुः । विद्याबलेनाभिप्राहृषयन् । यतो मामभि प्रमंदुरतो बर्हिषो यज्ञात् । परीति पंचम्यर्थानुवादः । उत्तिष्ठन्नहं नृन्यज्ञस्य नेतृन्वोचे । ब्रवीमि । मे मत्तो दूराद्वसिष्ठा वसिष्ठस्य मम पुत्रा अवितवे गंतुं नार्हंतीति शेषः ॥

दूरादिद्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशंतमति पातंमुयं ।

पाशंद्युमस्य वायतस्य सोमात्सुतादिद्रोऽवृणीता वसिष्ठान् ॥ २ ॥

दूरात् । इंद्रं । अनयन् । आ । सुतेन । तिरः । वैशंतं । अति । पातं । उयं ।

पाशंद्युमस्य । वायतस्य । सोमात् । सुतात् । इंद्रः । अवृणीत । वसिष्ठान् ॥ २ ॥

यदा वसिष्ठस्य पुत्राः सुदासं राजानमयाजयन् तदैव पाशयुग्माख्योऽपि राजा सोमान्यष्टमुद्यमं चकार । तदा ते वसिष्ठपुत्राः पाशयुग्मं तिरस्कृत्य तदीये यागे सोमं पिबंतमिंद्रं मंचबलेन तस्मादाच्छिप्य सुदासो यज्ञे स्थापयामासुः । तदेतदुक्तांतं कीर्तयन् वसिष्ठः स्वसुताननेन मंचेण स्तौति ॥ वैशंतं । वैशंतः पत्न्यलं । अत्र वैशंत-शब्देन सोमाधारस्यमसो ज्ञेयते । तस्य सोमं पातं पिबंतमुद्यमुद्रुर्णमिंद्रं सुतेन सुदासो यज्ञेऽभिषुतेन सोमेन हेतुना तिरः पाशयुग्मं तिरस्कृत्य दूरादानयन् । वसिष्ठा मंचबलेनानीतवतः । इंद्रोऽपि वायतस्य वयतः पुत्रस्य पाशयुग्मस्य । द्वितीयार्थे षष्ठी । वायतं पाशयुग्ममत्यतिहाय सुदासो यज्ञेऽभिषुतात्सोमाज्ञेतोर्वसिष्ठान्व-सिष्ठस्य पुत्रानवृणीत । पाशयुग्मस्य सोमयागे चमसस्य सोमं पिबन्नपींद्रस्य पाशयुग्मं तिरस्कृत्य मंचसामर्थ्य-बलेन सुदासो यज्ञ आह्वनकाले वसिष्ठानाजगामेत्यर्थः ॥

एवेन्नु कं सिंधुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमैभिर्जघान ।

एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिद्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥ ३ ॥

एव । इत् । नु । कं । सिंधुं । एभिः । ततार । एव । इत् । नु । कं । भेदं । एभिः । जघान ।

एव । इत् । नु । कं । दाशराज्ञे । सुदासं । प्रा । आवत् । इंद्रः । ब्रह्मणा । वः । वसिष्ठाः ॥ ३ ॥

एवेत् यथा पाशयुग्मस्य सवाख्ये सोमयागे चमसस्य सोमं पिबंतमपींद्रं वसिष्ठैः सुदाः प्राप्तवान् एवमेव सिंधुं नदीमेभिर्वसिष्ठैः कं सुखेन ततार । तीर्थं आसीत् । न्विति पूरणः । तथा च निगमांतरं । अर्णीसि चित्यप्रधाना सुदासैः । ऋ० ७. १८. ५. इति । एवेदेवमेव भेदं भेदनामकं अनुमयेभिर्वसिष्ठैरेव जघान । अथ प्रत्यक्षश्रुतिः । एवेदेवमेव हे वसिष्ठाः वो युष्मदीयेन ब्रह्मणा स्तोत्रेण दाशराज्ञे दशमी राजभिः सह युद्धे प्रवृत्ते सति सुदासं राजानमिंद्रः प्रावत् । प्रारचत् । तथा च निगमांतरं । दश राजानः समिता अयज्यवः



मुदासमिन्द्रावक्षणा न युयुधुः । अ० ७. ८३. ७. । इति । दाशराज्ञे परिचत्ताय विद्यतः । अ० ७. ८३. ८. । इति च ॥

जुष्टीं नरो ब्रह्मणा वः पितृणामर्क्षमव्ययं न किला रिषाय ।

यच्छक्ररीषु बृहता रवेणेंद्रे शुष्ममर्द्धाता वसिष्ठाः ॥४॥

जुष्टीं । नरः । ब्रह्मणा । वः । पितृणां । अर्क्षं । अव्ययं । न । किला । रिषाय ।

यत् । शक्ररीषु । बृहता । रवेण । इंद्रे । शुष्मं । अर्द्धात । वसिष्ठाः ॥४॥

हे नरः वो शुष्मदीयेन ब्रह्मणा सोचिण पितृणां जुष्टी प्रीतिर्भवति । पितृणामित्यनेन पारोक्ष्येण वसिष्ठस्यैव कीर्तनं । अहं प्रीतो भवामीत्यर्थः । अथेदानीं स्वमात्रमं गंतुमुद्यतोऽहमर्क्षं रथस्याचमव्ययं । व्ययमि ॥ लब्धे लब्ध ॥ चालयामीत्यर्थः । व्ययं न किल रिषाय न च क्षीणा भवथ हे वसिष्ठाः यद्यस्याच्छक्ररीषु बृहता अथेन रवेण साधेंद्रे शुष्मं बलमर्द्धात आचारयत ॥

उद्ग्रामिवेत्तृणजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।

वसिष्ठस्य स्तुवत इंद्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकं ॥५॥

उत् । द्यांऽइव । इत् । तृष्णऽजः । नाथितासः । अदीधयुः । दाशराज्ञे । वृतासः ।

वसिष्ठस्य । स्तुवतः । इंद्रे । अश्रोत् । उरुं । तृत्सुभ्यः । अकृणोत् । ऊं इति । लोकं ॥५॥

तृष्णजो जाततृष्णा वृतासस्तृत्सुमी राजमिर्वृता नाथितासो वृष्टिं याचमाना वसिष्ठा ग्रामिवादित्यभिर्बिंदुं दाशराज्ञे दशानां राज्ञां संग्राम उददीधयुः । उददीधयन् । स्तुवतो वसिष्ठस्य सोचमिन्द्रोऽश्रोत् । अशृणोच्च । उरुं विस्तीर्णं लोकं तृत्सुभ्यो राजभ्योऽकृणोत् । अकरोच्च । उददाक्षेत्यर्थः ॥ ॥२२॥

दंडा इवेन्नोअजनास आसन्परिच्छिन्ना भरता अभर्कासः ।

अभवच्च पुरेता वसिष्ठ आदितृत्सूनां विशो अप्रथंत ॥६॥

दंडाऽइव । इत् । गोऽअजनासः । आसन् । परिच्छिन्नाः । भरताः । अभर्कासः ।

अभवत् । च । पुरऽएता । वसिष्ठः । आत् । इत् । तृत्सूनां । विशः । अप्रथंत ॥६॥

गोअजनासो यथां प्रेरका दंडा इव यथा दंडाः परिच्छिन्नपक्षोपशाखा भवन्ति तद्वत्तरताः । तृत्सूनामेव राज्ञां भरता इति नामान्तरेणोपादानं । शत्रुभिः परिच्छिन्ना एवासन् । अभर्कासोऽर्भका अस्यासासन् । आदित्परिच्छिन्नत्वादनंतरमेव तेषां तृत्सूनां वसिष्ठः पुरेता पुरोहितोऽभवच्च । तत्पौरोहित्यसामर्थ्यात्तृत्सूनां विशः प्रजा अप्रथंत । अवर्धंत ॥

त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्त्रिः प्रजा आर्या ज्योतिरयाः ।

त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वौ इत्ता अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥७॥

त्रयः । कृण्वन्ति । भुवनेषु । रेतः । त्रिः । प्रजाः । आर्याः । ज्योतिऽअयाः ।

त्रयः । घर्मासः । उषसं । सचन्ते । सर्वौ । इत् । तान् । अनु । विदुः । वसिष्ठाः ॥७॥

भुवनेषु पृथिव्यंतरिक्षेषु त्रयोऽपिवायुसूर्या यथाक्रमेण रेतो विद्यन्ते धारकमुदकं कृण्वन्ति । जुर्वन्ति । तेषां त्रयाणां ज्योतिरया आदित्यप्रमुखा आर्याः अष्टाक्षिप्तः प्रजा भवन्ति । ते च त्रयोऽपिवायुसूर्या घर्मासो

दीप्यमाना उपसं सचन्ति । समवयन्ति । दुर्ज्ञानात्सर्वानित्सर्वानेव तान्वसिष्ठा अनु विदुः । अभिजानन्ति । तेषां रहस्य-  
विज्ञानादियमपि वसिष्ठानामेव स्तुतिः । तथा च शाव्यायनकं । वयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेत इत्यपि । पृथिव्यां रेतः  
कृण्वन्ति वायुरन्तरिक्षं आदित्यो दिवि तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्रा इति वसवो रुद्रा आदित्यास्तासां ज्यो-  
तिर्यदसावादित्यस्त्रयो घर्मास उपसं सचन्त इत्यपि रूपसं सचन्ति वायुरूपसं सचन्त आदित्य उपसं सचन्त इति ॥

सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।

वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्येतवे वः ॥ ८ ॥

सूर्यस्यऽइव । वक्षथः । ज्योतिः । एषां । समुद्रस्यऽइव । महिमा । गभीरः ।

वातस्यऽइव । प्रजवः । न । अन्येन । स्तोमः । वसिष्ठाः । अनुऽएतवे । वः ॥ ८ ॥

हे वसिष्ठाः एषां वो युष्माकं स्तोमो महिमापि वा सूर्यस्य ज्योतिरिव वक्षथः प्रकाशोऽस्ति । हे वसिष्ठाः  
वो युष्माकं महिमा स्तोमोऽपि वा समुद्रस्येव गभीरो गभीरोऽस्ति । तथा हे वसिष्ठाः एषां वो युष्माकं  
स्तोम ऋक्समूहो महिमापि वा वातस्येव प्रजवो यथा वातस्य प्रवेगोऽन्येनान्वेतुं न शक्यस्तद्वद्वान्वेतवे  
ऽन्वेतुं न शक्यः ॥

त इन्द्रिण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्गमभि सं चरन्ति ।

यमेन तत् परिधिं वयंतोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥ ९ ॥

ते । इत् । नि । ण्यं । हृदयस्य । प्रऽकेतैः । सहस्रऽवल्गं । अभि । सं । चरन्ति ।

यमेन । तत् । परिऽधिं । वयंतः । अप्सरसः । उप । सेदुः । वसिष्ठाः ॥ ९ ॥

त इत् एव वसिष्ठा निष्णं तिरोहितं दुर्ज्ञानं । निष्णं सस्वरित्यन्तर्हितनामसु पाठात् । सहस्रवल्गं  
सहस्रशाखं संसारं हृदयस्य प्रकेतैः प्रज्ञानैरभि सं चरन्ति । एवं स्वाच्छब्देनाभिसंचरन्तस्ते वसिष्ठा यमेन कार-  
णात्मना सर्वनिर्धया तत् विस्तृतं परिधिं वल्गं । परिधिरित्यनेन जन्मादिप्रवाहो विवक्षितः । तं वयंतो  
ऽप्सरसो जननीस्त्रिजोप सेदुः । अत्र वसिष्ठा इति बहुवचनं पूजायां । वसिष्ठः पूर्वं प्रजापतेरुत्पन्नं देहमुत्सृज्या-  
प्सरःसु जायेयेति बुद्धिमकरोदिति भावः ॥

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।

तत्ते जन्मोत्तैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभारं ॥ १० ॥

विऽद्युतः । ज्योतिः । परि । संऽजिहानं । मित्रावरुणा । यत् । अपश्यतां । त्वा ।

तत् । ते । जन्म । उत्त । एकं । वसिष्ठ । अगस्त्यः । यत् । त्वा । विशः । आऽजभारं ॥ १० ॥

एतास्त्र्यो वसिष्ठस्यैव देहपरिग्रहः प्रतिपाद्यते । एताश्चंद्रस्य वाक्यमित्येके वर्णयन्त्यपरे वसिष्ठपुत्राणामिति ।  
हे वसिष्ठ यद्यदा विद्युतो विद्युत इव स्वीयं ज्योतिर्देहांतरपरिग्रहार्थं परि संजिहानं परित्यजन्तं त्वा त्वां ॥  
कांदसमात्मनेपदं ॥ यद्वा । जिघृक्षितदेहार्थं स्वीयं ज्योतिः परि संजिहानं । परिजिघृक्षन्तमित्यर्थः ॥ अक्षिण्यचे  
जहातेर्गत्यर्थत्वादात्मनेपदं कांदसं न भवति ॥ मित्रावरुणा मित्रावरुणावपश्यतां । आवाभ्यामयं आयेतेति  
समकल्पतामित्यर्थः । तत्तदा ते तवैकं जन्म । उतापि च यद्यदागस्त्यो विशो निवेशनाभिरावरुणावाजां  
जनयिष्याव इत्येतस्मात्पूर्वावस्थानात्त्वामाजभार आजहार ॥ २३ ॥

उतासि मित्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः ।

दृप्सं स्कन्वं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥ ११ ॥



उ॒त । अ॒सि॒ । मै॒त्रा॒व॒रु॒णः । व॒सि॒ष्ठः । उ॒र्व॒श्याः । ब्र॒ह्म॒न् । म॒न॒सः । अ॒धि॒ । जा॒तः ।  
द्रु॒प्सं । स्त॒क्त्रं । ब्र॒ह्म॒णा । दै॒व्ये॒न । वि॒श्वे॒ । दे॒वाः । पु॒ष्करे॒ । त्वा॒ । अ॒द॒द॒न्त॒ ॥ ११ ॥

उतापि च हे वसिष्ठ मैत्रावरुणो मित्रवरुणयोः पुत्रोऽसि । हे ब्रह्मन् वसिष्ठ उर्वश्या अप्सरसो मनसो ममायं पुत्रः स्वादितीदृशात्संकल्पाद्द्रुप्सं रेतो मित्रावरुणयोर्वर्षशीदर्शनात्स्तुतमासीत् । तस्मादधि जातोऽसि । तथा च वक्ष्यते सन्ने ह जातावित्युचि । एवं जातं त्वा त्वां दैव्येन देवसंबन्धिना ब्रह्मणा वेदराशिनाहं-मुवा युक्तं पुष्करे विश्वे देवा अददन्त । आधारयन्त ॥ तथा चादितेर्मित्रावरुणी जज्ञाते इति प्रकृत्य पठ्यते । तयोरादित्ययोः सन्ने ब्रह्माप्सरसमुर्वशी । रेतश्चस्माद् तत्कुम्भे न्यपतद्वासतीवरे ॥ तेनैव तु मुहूर्तेन वीर्यवन्तौ तपस्विनौ । अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तपवीं संवभूवतुः ॥ ब्रह्मधा पतितं रेतः कलशे च जले स्थले । स्थले वसिष्ठस्तु मुनिः संभूत चक्षिसत्तमः ॥ कुम्भे त्वगस्त्यः संभूतो जले मत्स्यो महाबुतिः । उदियाय ततोऽगस्त्यः शन्यामाचो महातपाः ॥ मानेन संमितो यस्मात्तस्मात्मान्य इहोच्यते । यद्वा कुम्भादुपिर्जातः कुम्भेनापि हि भीयते ॥ कुम्भ इत्यभिधानं च परिमाणस्य लक्ष्यते । ततोऽप्यु गृह्यमाणानु वसिष्ठः पुष्करे स्थितः ॥ सर्वतः पुष्करे तं हि विश्वे देवा आधारयन् । वृ० प. ७८३-७८६ । इति ॥

स प्र॒कृत॒ उ॒भय॑स्य प्रवि॒द्वान्स॒हस्र॑दान उ॒त वा॒ स॒दानः ।

य॒मेन॑ त॒तं प॑रि॒धिं व॑यि॒ष्यन्त्स॒रसः॒ परि॑ ज॒ज्ञे व॒सि॒ष्ठः ॥ १२ ॥

सः । प्र॒ऽके॒तः । उ॒भय॑स्य । प्र॒ऽवि॒द्वान् । स॒हस्र॑ऽदानः । उ॒त । वा॒ । स॒ऽदानः ।

य॒मेन॑ । त॒तं । प॑रि॒ऽधिं । व॑यि॒ष्यन् । अ॒प्सर॑सः । प॑रि॒ । ज॒ज्ञे । व॒सि॒ष्ठः ॥ १२ ॥

स वसिष्ठः प्रकृतः प्रकृष्टज्ञान उभयस्योभयं दिवं च पृथिवीं च प्रविद्वान् प्रकर्षेण जानन् सहस्रदानोऽभवत् । किमनेन सहस्रदान इति विशेषणेन उत वापि वा सदानः सर्वदानसहित एवामवत् । किंच वसिष्ठो यमेन कारणात्मना सर्वनियंता तत् विस्तृतं परिधिं वस्त्रं । परिधिरित्यनेन संसारप्रवाहो विवक्षितः । तं वयिष्यन्त्सरस उर्वश्याः । परीति पंचम्यर्थानुवादः । जज्ञे । जातः ॥

स॒न्ने ह॑ जा॒तावि॑षिता नमो॒भिः कु॑म्भे रे॒तः सि॒षिच॑तुः स॒मानं॑ ।

ततो॑ ह॒ मान॑ उ॒दिया॑य म॒ध्यात्ततो॑ जा॒तमृ॑षिमाहुर्व॒सि॒ष्ठं ॥ १३ ॥

स॒न्ने । ह॒ । जा॒तौ । इ॒षिता॑ । नमः॑ऽभिः । कु॑म्भे । रे॒तः । सि॒सिच॑तुः । स॒मानं॑ ।

त॒तः । ह॒ । मानः॑ । उ॒त् । इ॒या॒य॒ । म॒ध्यात् । त॒तः । जा॒तं । अ॒र्षिं । आ॒हुः । व॒सि॒ष्ठं ॥ १३ ॥

सन्ने ब्रह्मकर्तृके यागे । इति पूरणः । जातौ दीक्षितौ मित्रावरुणाविषिताधिषितौ स्वयमन्यैर्वर्षैर्वर्षमोभिः स्तुतिभिः कुम्भे वासतीवरे कलशे समानमेकदैव रेतः सिषिचतुः । असिंचतां । ततो वासतीवरात्कुम्भादध्याद्-गस्त्यो मानः शमीप्रमाण उदियाय । प्रादुर्बभूव । तत एव कुम्भादसिष्ठमप्युषिं जातमाजः ॥

उ॒क्थ॑भृ॒तं सा॒मभृ॑तं बिभ॒र्ति॒ यावा॑णं बिभ्र॒त्प्र व॑दा॒त्यये॑ ।

उ॒पै॒नमा॑ध्वं सु॒मन॑स्यमा॒ना आ॒ वो ग॑च्छाति प्र॒तृदो॑ व॒सि॒ष्ठः ॥ १४ ॥

उ॒क्थ॑ऽभृ॒तं । सा॒मऽभृ॑तं । बि॒भ॒र्ति॒ । यावा॑णं । बिभ्र॒त् । प्र॒ । व॑दा॒ति॒ । अ॒ये॒ ।

उ॒पं । ए॒नं । आ॒ध्वं । सु॒मन॑स्यमा॒नाः । आ॒ । वः । ग॑च्छा॒ति॒ । प्र॒ऽतृ॒दः । व॒सि॒ष्ठः ॥ १४ ॥

हे प्रतृदः । प्रतृद इति तृत्सव एवामिधीयते नामान्तरेण । नो युष्मान्वदिष्ठ आ गच्छाति । आगच्छति ।

एवं वसिष्ठं सुमनस्यमाणाः सुमनसः संत उपाध्वं । उपतिष्ठत । आगतस्यासी वसिष्ठो यज्ञेऽथे पुरोहितो ब्रह्मा  
समुक्त्वमुतं शस्त्राणां संमत्कारं विमर्ति । साममुतमुक्तातारं विमर्ति । यायाणमभिषवणं विधद्विधतमध्वर्यु  
च विमर्ति । प्र वदाति । यज्ञे यत्प्रवदितत्वं धेवादिनिमित्ते कर्तव्यमस्ति तदपि वदतीति तृत्सु प्रतीद्वो  
ब्रवीति ॥ २४ ॥ ॥ २ ॥

तृतीयेऽनुवाके द्वाविंशति सूक्तानि । तत्र प्र मुक्रेति पंचविंशत्युचं प्रथमं सूक्तं । अचेयमनुक्रमणिका । प्र  
मुक्ता पंचाधिका वैश्वदेवं हावा एकविंशतिर्द्विपदा अज्यामहेरर्धं च उत्तरोऽहिर्बुध्यायेति । वसिष्ठ ऋषिः ।  
आवा एकविंशतिर्द्विपदा विंशत्यचरा विराजो द्वाविंशत्यावाशतसस्त्रिभुमः । विश्वे देवा देवता ॥ ब्यूद्धे दश-  
रात्रे चतुर्थेऽहनि वैश्वदेवशस्त्र इदं सूक्तं वैश्वदेवनिविधानं । सूचितं च । प्र मुक्रेति विश्वदेवं । आ० ८. ८. ।  
इति ॥ षोडशिन्वा धूर्वसा इति द्विपदा । आ० ६. २. इति ॥ महाव्रतेऽपि द्विपदा । तथैव पंचमारण्यके  
सूचितं । आ धूर्वसा इति सूददोहाः । ऐ० आ० ५. ८. इति ॥

प्र मुक्रेतु देवी मनीषा अस्मत्सुतं रथो न वाजी ॥ १ ॥

प्र । मुक्ता । एतु । देवी । मनीषा । अस्मत् । सुतं रथः । रथः । न । वाजी ॥ १ ॥

मुक्ता दीप्ता देवी सर्वेषां कामानां प्रदात्री मनीषा सुतिरसदस्यतोऽस्मिन् सूक्ते स्तोत्रमाणाद्देवान्  
वाजी वेगवान् सुतः सुसंस्कृतो रथो न रथ इव प्रेतु । प्रगच्छतु ॥

विदुः पृथिव्या दिवो जनिचं भूखंत्यापो अध स्वरंतीः ॥ २ ॥

विदुः । पृथिव्याः । दिवः । जनिचं । भूखंति । आपः । अध । स्वरंतीः ॥ २ ॥

अस्वामृत्पापः सूर्यं । स्वरंतीः स्वरं आपो दिवः पृथिव्याश्च । उभयोरपि लोकयोरित्यर्थः । जनिचसु-  
त्पत्तिं विदुः । जानंति । अधापि च भूखंति स्तोत्राणीति शेषः ॥

आपश्चिदस्मै पिबंत पृथीर्वृत्रेषु भूरा मंसंत उयाः ॥ ३ ॥

आपः । चित् । अस्मै । पिबंत । पृथीः । वृत्रेषु । भूराः । मंसंत । उयाः ॥ ३ ॥

इंद्रोऽस्मिन्नुचि सूर्यते । पृथीः पृथ्वीः प्रथमाना आपश्चिदापोऽप्यस्या इंद्राय पिबंत । प्यायंते । वृत्रेषु प-  
द्वेषु सत्सूया उद्वर्णास्त्रिभुवो वा भूरा योद्यारोऽपि मंसंत । इममेवं इंद्रं भुवंति ॥

आ धूर्वस्मै दधाताभ्यानिंद्रो न वजी हिरण्यबाहुः ॥ ४ ॥

आ । धूः सु । अस्मै । दधात । अभ्यान् । इंद्रः । न । वजी । हिरण्यऽबाहुः ॥ ४ ॥

अक्षी । पञ्चार्थे चतुर्थी । अखेन्द्रस्वागमनायाश्चान् धूर्ध्वं रथसा दधात । इंद्रो न । नेति चार्थे । इंद्रो  
वजी वज्रवान् हिरण्यबाहुर्हिरण्यहस्तश्च भवति ॥ षोडशिनि शस्त्रमानत्वादस्या इंद्रत्वं गम्यते । आ धूर्वसा  
इत्यवासा इत्यस्य पदस्यानुदात्तत्वं पूर्वस्यामिन्द्रस्य प्रकृतत्वात् अत एव पूर्वार्थे इंद्रोति विज्ञायते । पूर्वस्यामप्यु-  
च्यसा इत्यवानुदात्तत्वमप्यीयोऽर्थतरमनुदात्तमिति । तथा च यास्कः । अखेति चोदात्तं प्रथमादेशेऽनुदात्त-  
मन्वादेशे तीव्रार्थतरमुदात्तमप्यीयोऽर्थतरमनुदात्तं । नि० ४. २५. इति । अल्पीयस्त्वं चेदंशब्दप्रवृत्तिनिमित्तस्य  
संनिधानस्य दूरस्थत्वेनेत्यवगतत्वं ॥

अभि प्र स्थाताहैव यज्ञं यातेव पत्नन्मनां हिनोत ॥ ५ ॥

अभि । प्र । स्थात । अहं इव । यज्ञं । याता इव । पत्नन् । मनां । हिनोत ॥ ५ ॥

यज्ञसुतिरियं । हे जनाः यज्ञमभि प्र स्थात । अभिक्रमत । अहेवेति पूरणी । अपि च पत्नन् पत्नानि  
यज्ञमार्गे ताना स्वयमेव यातेव गतेव हिनोत । गच्छत ॥ हि गताविति धातुः ॥



त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरं ॥ ६ ॥

त्मना । समत्सु । हिनोत । यज्ञं । दधात । केतुं । जनाय । वीरं ॥ ६ ॥

उत्तमैव विवरणमत्र । हे मदीया जनाः समत्सु संग्रामेषु त्वना स्वयमेव हिनोत । गच्छत । अपि च केतुं प्रज्ञापकं वीरं पापानां वारधितारं । नाशकमित्यर्थः । यज्ञं जनाय लोकाय । तद्रूपमित्यर्थः । दधात । विधत्त ॥

उदस्य शुष्माज्ञानुर्नार्तं विभर्ति भारं पृथिवी न भूम ॥ ७ ॥

उत् । अस्य । शुष्मात् । भानुः । न । आर्तं । विभर्ति । भारं । पृथिवी । न । भूम ॥ ७ ॥

अस्य यक्षस्य शुष्माद्वज्राणां सूर्य उदार्तं । उन्नच्छति । भूम भूतानि पृथिवीव भारं लोकांश्चायं यक्षो विभर्ति च ॥

ह्यामि देवाँ अयातुरमे साधन्तेन धियं दधामि ॥ ८ ॥

ह्यामि । देवान् । अयातुः । अमे । साधन् । चृतेन । धियं । दधामि ॥ ८ ॥

अस्मिन्नुचि देवाः सूर्यति । हे अपि अयातुरहिंसादिनियमयुक्तिवर्तेन यज्ञेन साधकामान्साधयन् देवान् ह्यामि । अपि च धियं देवानां परिचरणात्मकं कर्म दधामि । करोमीत्यर्थः ॥

अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवचा वाचं कृणुध्वं ॥ ९ ॥

अभि । वः । देवीं । धियं । दधिध्वं । प्र । वः । देवचा । वाचं । कृणुध्वं ॥ ९ ॥

हे जनाः वो यूयमभि देवानुद्दिष्ट देवीं दीप्तां धियं कर्म दधिध्वं । विधत्त । अपि च वो यूयं देवचा देवेषु वाचं स्तुतिरूपां प्र कृणुध्वं । प्रकीर्षेण कुरुध्वं ॥

आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उयः सहस्रचक्षाः ॥ १० ॥

आ । चष्टे । आसां । पाथः । नदीनां । वरुणः । उयः । सहस्रचक्षाः ॥ १० ॥

सहस्रचक्षा वरुचतुर्वरण आसां नदीनां पाथो जलमा चष्टे । अभिपश्यति । कीदृशो वरुणः । उय उद्गूर्य जीवस्ती वा ॥ २५ ॥

राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै स्तुचं विश्वायु ॥ ११ ॥

राजा । राष्ट्रानां । पेशः । नदीनां । अनुत्तं । अस्मै । स्तुचं । विश्वायु ॥ ११ ॥

राष्ट्रानां राष्ट्रानां ॥ जलाभावच्छांदसः ॥ ईश्वराणामपि वरुणो राजेश्वरो भवति । नदीनां पेशो रूपं रूपकदपि भवतीत्यर्थः । अस्ती । यथार्थे चतुर्थी । अस्य वरुणस्य स्तुचं जलमनुत्तमन्यैरबाधितं विश्वायु सर्वतो गंतुं भवतीति ॥

अविष्टो अस्मान्विश्वासु विस्वद्युं कृणोत शंसं निनिस्तोः ॥ १२ ॥

अविष्टो इति । अस्मान् । विश्वासु । विस्वु । अद्युं । कृणोत । शंसं । निनिस्तोः ॥ १२ ॥

अयं वृचो देवः । हे देवाः अस्मान् विश्वासु सर्वासु विषु प्रजासु । अविष्ट उ इति समुदितमविष्टो इति । अविष्ट । रक्षत । शंसं निनिस्तोर्विदितुमिच्छतः शरीरपुमदीप्तिं कृणोत । कुरुत च ॥

येतु दिद्युद्दिषामशेवा युयोत विष्वक्पस्तनूनां ॥ १३ ॥

वि । एतु । दिद्युत् । दिषां । अशेवा । युयोत । विष्वक् । रपः । तनूनां ॥ १३ ॥

दिषां शत्रूणां दिद्युदायुधमशेवासुखकरी विष्वक् सर्वतो येतु । अपगच्छतु । तनूनामंगानां रपः पापं देवाः युयोत । असात्तः पृथक्कृत ॥

अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः ॥ १४ ॥

अवीत् । नः । अग्निः । हव्यऽअत् । नमऽभिः । प्रेष्ठः । अस्मै । अधायि । स्तोमः ॥ १४ ॥

हव्यान्नव्यानामन्ताभिर्नमोभिरस्यदीयेर्नमस्कारिः प्रेष्ठः प्रियतमः सन्नोऽस्मानवीत् । रचतु । अस्मा अपये सोषमधाधि । अस्माभिर्वधाधि ॥

सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु ॥ १५ ॥

सऽजूः । देवेभिः । अपां । नपातं । सखायं । कृध्वं । शिवः । नः । अस्तु ॥ १५ ॥

हे सोतः अपामुदकानां नपातं पुषमधि । सूर्गर्पादित्यपत्यनामसु पाठात् । देवेभिर्देवैः सजूरः सह सखायं मित्रं सुतिभिः कृध्वं । कृध्वं । स चापां नपातोऽस्यभ्यं शिवः सुखकरोऽस्तु । भवतु ॥

अजामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु सीदन् ॥ १६ ॥

अप्ऽजां । उक्थैः । अहिं । गृणीषे । बुध्ने । नदीनां । रजःऽसु । सीदन् ॥ १६ ॥

अहिं मेघानामाहतारं नदीनामुदकानां बुध्ने स्थाने । बुध्नमंतरिक्षं वद्धा अस्मिन्धृता आप इति व्युत्पत्तिः । तस्मिन्नजःसूदकेषु सीदन् सीदन्तमज्जामप्सु जातमिममग्निसुक्थैः सोचैर्गृणीषे । बुध्ने नदीनां रजःसूदकेषु सीदन् बुध्नमंतरिक्षं वद्धा अस्मिन्धृता आप इति । नि० १०. ४४. इति ॥

मा नोऽहिर्बुध्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य सिधदृतायोः ॥ १७ ॥

मा । नः । अहिः । बुध्यः । रिषे । धात् । मा । यज्ञः । अस्य । सिधत् । ऋतऽयोः ॥ १७ ॥

अहिर्बुध्यः । बुध्नेऽंतरिक्षे भवो बुध्यः । अहिश्चासौ बुध्यसेत्यहिर्बुध्योऽग्निर्नोऽस्यान्त्रिषे हिंसकाय मा धात् । मा ददातु । अस्तर्तायोर्यज्ञकामस्य यजमानस्य यज्ञो मा च सिधत् । न चीयेत । यद्वा । अस्याहिर्बुध्यसेममहिर्बुध्यमुद्दिश्व अतायोर्यज्ञकामस्य यो यज्ञः स न चीयेतेत्यर्थः ॥

उत न एषु नृषु अरवो धुः प्र राये यंतु शर्धंतो अर्यः ॥ १८ ॥

उत । नः । एषु । नृषु । अरवः । धुः । प्र । राये । यंतु । शर्धंतः । अर्यः ॥ १८ ॥

अयं वृद्धो देवो मरुतो वा । उतापि च नोऽस्यदीयेष्वेषु नृषु पुरुषेषु अरवोऽत्रं धुः । देवा मरुतो वा धारयंतु । राये धनार्थं शर्धंत उत्सहमानाः प्रियमाणा वार्योऽरयः प्र यंतु । प्रगच्छंतु । अर्यतामित्यर्थः ॥

तपन्ति शत्रुं स्वर्णं भूमा महासेनासो अर्मेभिरेषां ॥ १९ ॥

तपन्ति । शत्रुं । स्वः । न । भूमं । महाऽसेनासः । अर्मेभिः । एषां ॥ १९ ॥

महासेनासो महासेना राजान एषां मरुतां देवानां वामेभिर्वैर्भूमा भुवनानि स्वर्णादित्य इव शत्रुं स्वकीयं तपन्ति । बाधन्ति । महांतोऽपि राजानोऽर्मेवैः शत्रून्वाधन्ति । तानि बलानि देवानामेवेत्यर्थः ॥



आ यन्नः पत्नीर्गमंत्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् ॥२०॥

आ । यत् । नः । पत्नीः । गमंति । अच्छ । त्वष्टा । सुपाणिः । दधातु । वीरान् ॥२०॥

अस्मां देवपत्न्यस्त्वष्टा च देवता । यवदा पत्नीर्देवानां पत्न्यो नोऽस्मानच्छाभ्या गमंति आगच्छंति तदा सुपाणिः शोभनहस्तास्त्वष्टा देवो वीरान् पुत्रान् दधातु । अस्माभ्यं ददातु ॥ ॥२६॥

प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत् स्यादस्मे अरमंतिर्वसूयुः ॥२१॥

प्रति । नः । स्तोमं । त्वष्टा । जुषेत् । स्यात् । अस्मे इति । अरमंतिः । वसूयुः ॥२१॥

नोऽस्माकं स्तोमं स्तोचं त्वष्टा प्रति जुषेत् । प्रतिक्षेवेत् । अपि चारमतिः पर्याप्तनुद्धिः सर्वविययव्यापि-  
नुद्धिर्वा त्वष्टास्ते अस्मादर्थं वसुधुर्धनकामः स्यात् । भूयात् ॥

ता नो रासन्नातिषाचो वसून्या रोदसी वरुणानी शृणोतु ।

वरुचीभिः सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदचो वि दधातु रायः ॥२२॥

ता । नः । रासन् । रातिऽसाचः । वसूनि । आ । रोदसी इति । वरुणानी । शृणोतु ।

वरुचीभिः । सुशरणः । नः । अस्तु । त्वष्टा । सुदचः । वि । दधातु । रायः ॥२२॥

ता यान्यस्माकममीष्टानि तानि वसूनि धनानि रातिषाचो दानसमवेता देवपत्न्यो नोऽस्माभ्यं रासन् ।  
प्रयच्छंतु । अपि च वरुणानी वरुणस्य पत्न्या शृणोतु । अस्मादीयं स्तोचमभिशृणोतु । रोदसी व्यावापृथिवी  
चाभिशृणोता । सुदचः कव्याण्दानस्त्वष्टा च वरुचीभिरुपद्रवाणां वारयित्रीभिर्देवपत्नीभिः सह नोऽस्माभ्यं  
सुशरणः सुशरणप्रदोऽस्तु । रायो धनानि च विदधातु ॥

तन्नो रायः पर्वतास्तन्न आपस्तद्रातिषाच ओषधीरुत द्यौः ।

वनस्पतिभिः पृथिवी सजोषा उभे रोदसी परि पासतो नः ॥२३॥

तत् । नः । रायः । पर्वताः । तत् । नः । आपः । तत् । रातिऽसाचः । ओषधीः । उत । द्यौः ।

वनस्पतिभिः । पृथिवी । सजोषाः । उभे इति । रोदसी इति । परि । पासतः । नः ॥२३॥

नोऽस्माकं । तदित्यवयवः । ता रायो धनानि पर्वताः परिपांतु । नोऽस्माकं तत्ता राय आपश्च परिपांतु ।  
तद्रातिषाचो दानसहिता देवपत्न्यश्च परिपांतु । ओषधीरोषधयश्च तत्परिपांतु । उतापि च द्यौस्तत्परिपांतु ।  
वनस्पतिभिः सजोषाः सहिता पृथिव्यंतरिक्षं च तत्परिपांतु । आपः पृथिवीत्यंतरिक्षनामसु पाठात् । नोऽस्माकं  
तदुभे रोदसी व्यावापृथिव्यावपि परि पासतः । परिरक्षतां ॥

अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इंद्रसखा ।

अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियर्ध्वं ॥२४॥

अनु । तत् । उर्वी इति । रोदसी इति । जिहातां । अनु । द्युक्षः । वरुणः । इंद्रऽसखा ।

अनु । विश्वे । मरुतः । ये । सहासः । रायः । स्याम । धरुणं । धियर्ध्वं ॥२४॥

तद्वक्ष्यमाणमुर्वी विसीर्णे रोदसी व्यावापृथिव्यावनु जिहातां । अनुगच्छतां । अनुमन्येतामित्यर्थः । युषो  
दीप्तिर्निवासभूत इंद्रसखिंद्रसखः ॥ इंद्रः सखा यस्येति वङ्गब्रीहिः ॥ वरुणश्च तदनु जिहीतां । दिवचनांतस्तेक-

वचनांततया विपरिणामः । ये सहासः शत्रूणामभिमवितारसो मरुतोऽपि तदनु जिहतां । अत्र वज्रवचनां-  
तंतया विपरिणामः । यदनुमंतव्यं तदाह । धियध्वे भरणीयं धारयितुं रायो धनस्य धरणं धाम स्थानं वयं  
स्वाम । भवेमेति ॥

तन्न इंद्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वृनिनो जुषंत ।

शर्मन्त्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५ ॥

तत् । नः । इंद्रः । वरुणः । मित्रः । अग्निः । आपः । ओषधीः । वृनिनः । जुषंत ।

शर्मन् । स्याम । मरुतां । उपस्थे । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ २५ ॥

नोऽस्माभ्यं तदिदं स्तोत्रमिन्द्रो वरुणश्च मित्रश्चापिश्वापस्त्रीषधीरोषधयश्च वृनिनो वृषाश्च जुषंत । जुषंतां ।  
सेवंतां । वयं च मरुतामुपस्थ उपस्थाने वर्तमानाः शर्मन्ऽशर्मणि सुखे गृहे वा स्वाम । भवेम । सिद्धम-  
न्यत् ॥ ॥ २७ ॥

शं न इंद्राग्नी इति पंचदशर्चं द्वितीयं सूक्तं । अवेधमनुक्रमणिका । शं नः पंचोणा शान्तिरिति । वसिष्ठ  
ऋषिः । त्रिष्टुप् छंदः । वैश्वदेवं हेतुक्तत्वाद्विदमपि वैश्वदेवं । महानास्त्रीव्रत एतत्सूक्तं जयं । तथा च सूचितं ।  
मद्रं कर्णेभिः शृणुयामे देवाः शं न इंद्राग्नी भवतामवोभिः । आ० प. १४. । इति । एव -- सु ॥

शं न इंद्राग्नी भवतामवोभिः शं न इंद्रावरुणा रातहव्या ।

शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इंद्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥

शं । नः । इंद्राग्नी इति । भवतां । अवः । ऽभिः । शं । नः । इंद्रावरुणा । रातऽहव्या ।

शं । इंद्रासोमा । सुविताय । शं । योः । शं । नः । इंद्रापूषणा । वाजऽसातौ ॥ १ ॥

नोऽस्माकमस्माभ्यं इंद्राग्नी अवोभी रचणैः शं शान्तिं भवतां । रातहव्या रातहव्यौ यजमानिर्दत्तहविष्का-  
विन्द्रावरुणेन्द्रावरुणावपि नोऽस्माभ्यं शं शान्तिं भवतां । इंद्रासोमैन्द्रासोमावपि नः शं शान्तिं सुविताय कव्या-  
णाय च भवतां । शं शान्तिं सुखाय च । पुनरुक्तिरादरार्था । अथवा शं शमनहेतुकं सुखं योर्विषययोगनिमित्तं  
सुखमित्यपुनरुक्तिः । इंद्रापूषणेन्द्रापूषणावपि वाजसातौ युद्धेऽन्नलाभे निमित्ते वा नः शं शान्तिं भवतामित्यर्थः ॥

शं नो भगः शमु नः शसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु संतु रायः ।

शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥

शं । नः । भगः । शं । ऊं इति । नः । शंसः । अस्तु । शं । नः । पुरं । ऽधिः । शं । ऊं इति । संतु । रायः ।

शं । नः । सत्यस्य । सु । ऽयमस्य । शंसः । शं । नः । अर्यमा । पुरु । ऽजातः । अस्तु ॥ २ ॥

नोऽस्माकं शं शान्तिं भगो देवोऽस्तु । भवतु । नोऽस्माकं शमु शान्तिं एव शंसो नराशंसोऽस्तु । भवतु ।  
नोऽस्माकं शं शान्तिं पुरंधिर्वज्रधीरप्यस्तु । रायो धनान्यपि शमु शान्तिं एव संतु । नोऽस्माकं सुयमस्य  
शोभनयमयुक्तस्य सत्यस्य शंसो वचनमपि शमस्तु । नोऽस्माकं शं शान्तिं पुरुजातो वज्रापाकुर्भावोऽर्यमा  
देवोऽप्यस्तु ॥

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरुची भवतु स्वधाभिः ।

शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि संतु ॥ ३ ॥



शं । नः । धाता । शं । ऊं इति । धर्ता । नः । अस्तु । शं । नः । उरुची । भवतु । स्वधाभिः ।  
शं । रोदसी इति । बृहती इति । शं । नः । अद्रिः । शं । नः । देवानां । सुहृवानि । संतु ॥ ३ ॥

नोऽस्माकं शं शान्तिं धाता देवोऽस्तु । नोऽस्माकं शसु शान्ता एव धर्ता पुण्यपापानां विधारयिता वसुधो देवोऽप्यस्तु । नोऽस्माकं शं शान्ता उरुची विवर्तनमना पुषिष्वपि स्वधामिरन्त्रैः सहास्तु । बृहती महती रोदसी यावापुषिष्यावपि शं भवतां । अद्रिः पर्वतोऽपि नोऽस्माकं शं शान्तिं भवतु । शं शान्तिं नोऽस्माकं देवानां सुहृवानि सुपुत्रयो संतु । भवन्तु ॥

शं नो अग्निज्योतिरनीको अस्तु शं नो मिचावरुणावश्विना शं ।  
शं नः सुकृतां सुकृतानि संतु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥ ४ ॥  
शं । नः । अग्निः । ज्योतिः । अनीकः । अस्तु । शं । नः । मिचावरुणौ । अश्विना । शं ।  
शं । नः । सुकृतां । सुकृतानि । संतु । शं । नः । इषिरः । अभि । वातु । वातः ॥ ४ ॥

ज्योतिरनीको ज्योतिर्मुखोऽभिर्नोऽस्माकं शं शान्ता अस्तु । भवतु । मिचावरुणा मिचावरुणावपि नोऽस्माकं शं शान्तिं भवतां । अश्विनाश्विनावपि शं भवतां । सुकृतां पुण्यकर्मणां पुण्याणां सुकृतानि पुण्यकर्माणापि नोऽस्माकं शं शान्तिं संतु । भवन्तु । इषिरो गमनशीलोऽपि वातो वायुरपि नोऽस्माकं शं शान्ता अभि वातु ॥

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृश्ये नो अस्तु ।  
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥  
शं । नः । द्यावापृथिवी इति । पूर्वऽहूतौ । शं । अन्तरिक्षं । दृश्ये । नः । अस्तु ।  
शं । नः । ओषधीः । वनिनः । भवन्तु । शं । नः । रजसः । पतिः । अस्तु । जिष्णुः ॥ ५ ॥

नोऽस्माकं शं शान्तिं द्यावापृथिवी यावापृथिव्यौ पूर्वहूतौ प्रथमाहूतौ भवतां । अन्तरिक्षमपि नोऽस्माकं दृश्ये दर्शनाय शमस्तु । नोऽस्माकं शं शान्ता ओषधीरोषधयोऽपि भवन्तु । वनिनो वृक्षाश्च शं भवन्तु । जिष्णुर्व्ययशीलो रजसो लोकस्य पतिरिन्द्रोऽपि नोऽस्माकं शं शान्ता अस्तु ॥ ॥ २८ ॥

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।  
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाश्वः शं न रुवष्टा माभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥  
शं । नः । इन्द्रः । वसुऽभिः । देवः । अस्तु । शं । आदित्येभिः । वरुणः । सुऽशंसः ।  
शं । नः । रुद्रः । रुद्रेभिः । जलाश्वः । शं । नः । रुवष्टा । माभिः । इह । शृणोतु ॥ ६ ॥

देवो द्योतनादिगुणयुक्त इन्द्रो वसुभिर्देवैः सार्धं नोऽस्माकं शं शान्तिं भवतु । सुशंसः शोभनस्तुतिर्वरुणो देव आदित्येभिरादित्यैर्देवैः सार्धं शं शान्ता अस्तु । भवतु । जलाश्वो रुद्रो दुःखद्रावको देवो रुद्रेभ्यो रुद्रेः सार्धं शं शान्तिं नोऽस्माकं भवतु । इह यज्ञे त्वष्टा देवो माभिर्देवपत्नीभिः सार्धं नः शं शान्तिं भवतु । इह यज्ञे नः स्तोत्रं शृणोतु च ॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो यावाणः शसु संतु येज्ञाः ।  
शं नः स्वरुणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वपः शस्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥

शं नः । सोमः । भवतु । ब्रह्म । शं नः । शं नः । यावाणः । शं । ऊं इति । संतु । यज्ञाः ।

शं नः । स्वरूपां । मितयः । भवतु । शं नः । प्रऽस्वः । शं । ऊं इति । अस्तु । वेदिः ॥ ७ ॥

नोऽस्माकं शं शान्तिं सोमो भवतु । ब्रह्म स्तोत्रमपि नोऽस्माकं शं शान्तिं भवतु । यावाणोऽभिव्यसाधन-  
भूताः पाषाणा अपि नोऽस्माकं शं शान्तिं भवतु । यज्ञाश्च नः शसु शान्त्या एव संतु । स्वरूपां यूपानां मितय  
उन्मानान्यपि नोऽस्माकं शं शान्तिं भवतु । प्रत्न औषधयोऽपि नोऽस्माकं शं शान्तिं भवतु । वेदिरपि नः शसु  
शान्त्या एवास्तु ॥

शं नः । सूर्यं उरुचक्षा उदैतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवतु ।

शं नः । पर्वता ध्रुवयो भवतु शं नः । सिंधवः शमु संत्वापः ॥ ८ ॥

शं नः । सूर्यः । उरुऽचक्षाः । उत् । एतु । शं नः । चतस्रः । प्रऽदिशः । भवतु ।

शं नः । पर्वताः । ध्रुवयः । भवतु । शं नः । सिंधवः । शं । ऊं इति । संतु । आपः ॥ ८ ॥

नोऽस्माकं शं शान्तिं सूर्य उरुचक्षा विसीर्णतेजाः सन्नुदैतु । उदयं प्राप्नोतु । चतस्रः प्रदिशो महादिशो  
ऽपि नोऽस्माकं शं शान्तिं भवतु । नोऽस्माकं शं शान्तिं पर्वता ध्रुवयो ध्रुवा भवतु । नोऽस्माकं शं शान्तिं सिंधवो  
नद्योऽपि भवतु । आपश्च नः शसु शान्त्या एव संतु ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवतु मरुतः स्वर्काः ।

शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भुविचं शम्बस्तु वायुः ॥ ९ ॥

शं नः । अदितिः । भवतु । व्रतेभिः । शं नः । भवतु । मरुतः । सुऽअर्काः ।

शं नः । विष्णुः । शं । ऊं इति । पूषा । नः । अस्तु । शं नः । भुविचं । शं । ऊं इति ।

अस्तु । वायुः ॥ ९ ॥

अदितिर्देवी व्रतेभिर्व्रतैः कर्मभिः सार्धं नोऽस्माकं शं शान्तिं भवतु । स्वर्काः शोभनस्तुतयो मरुतोऽपि नो  
ऽस्माकं शं शान्तिं संतु । विष्णुर्व्यापको नोऽस्माकं शं शान्त्या अस्तु । पूषा देवोऽपि नोऽस्माकं शसु शान्त्या  
एवास्तु । भुविचं भुवनमंतरिक्षमुदकं वा नोऽस्माकं शं शान्त्या अस्तु । वायुरपि नः शसु शान्त्या एवास्तु ॥

शं नो देवः सविता चायमाणः शं नो भवतु षसो विभातीः ।

शं नः । पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः । स्त्रेचस्य पतिरस्तु शंभुः ॥ १० ॥

शं नः । देवः । सविता । चायमाणः । शं नः । भवतु । उषसः । विऽभातीः ।

शं नः । पर्जन्यः । भवतु । प्रऽजाभ्यः । शं नः । स्त्रेचस्य । पतिः । अस्तु । शंभुः ॥ १० ॥

देवः क्रीडनादिगुणयुक्तः सविता चायमाणो रत्नोऽस्माकं शं शान्तिं भवतु । विभातीर्बुध्न्य उषसोऽपि  
नोऽस्माकं शं शान्तिं भवतु । नोऽस्माकं प्रजाभ्यः पर्जन्योऽपि शं भवतु । शंभुः सुखस्य भावयिता स्त्रेचस्य पतिर्नो  
ऽस्माकं शं शान्त्या अस्तु ॥ १० ॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवतु शं सरस्वती सह बीभिरस्तु ।

शर्मभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अर्ण्याः ॥ ११ ॥



शं । नः । देवाः । विश्वदेवाः । भवन्तु । शं । सरस्वती । सह । धीभिः । अस्तु ।  
 शं । अभिऽसाचः । शं । ऊं इति । रातिऽसाचः । शं । नः । दिव्याः । पार्थिवाः ।  
 शं । नः । अथाः ॥ ११ ॥

विश्वदेवा ब्रह्मसोचका देवा नोऽस्माकं शं शान्तिं भवन्तु । सरस्वती च धीभिः स्तुतिभिः कर्मभिर्वा सह नोऽस्माकं शं शान्तिं अस्तु । अभिषाचो यज्ञमभितः सेवमानाश्च नः शं शान्तिं भवन्तु । रातिषाचो दान सेवमाना अपि शसु शान्तिं एव भवन्तु । दिव्या दिवि भवाश्च नोऽस्माकं शं शान्तिं भवन्तु । पार्थिवाः पृथिव्यां संभूताश्च नः शं भवन्तु । अथा चण्डालं त्रिच भवाश्च । आकाशमाप इत्यंतरिक्षनामसु पाठात् । नोऽस्माकं शं शान्तिं भवन्तु ॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वेतः शमु संतु गावः ।  
 शं न च्छभवंः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १२ ॥  
 शं । नः । सत्यस्य । पतयः । भवन्तु । शं । नः । अर्वेतः । शं । ऊं इति । संतु । गावः ।  
 शं । नः । च्छभवंः । सुकृतः । सुहस्ताः । शं । नः । भवन्तु । पितरः । हवेषु ॥ १२ ॥

सत्यस्य पतयः पालकाः सत्यशीला देवा नोऽस्माकं शं शान्तिं भवन्तु । अर्वेतोऽश्वाश्च नोऽस्माकं शं शान्तिं भवन्तु । गावोऽपि नः शं शान्तिं भवन्तु । सुकृतः सुकर्माणः सुहस्ताः शोभनहस्ता च्छभवोऽपि नोऽस्माकं शं शान्तिं संतु । हवेषु सोत्रेषु सत्सु पितरोऽपि नोऽस्माकं शं शान्तिं भवन्तु ॥

शं नो अज एकपादेवो अस्तु शं नो अहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।  
 शं नो अपां नपात्पेरुस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ १३ ॥  
 शं । नः । अजः । एकऽपात् । देवः । अस्तु । शं । नः । अहिः । बुध्न्यः । शं । समुद्रः ।  
 शं । नः । अपां । नपात् । पेरुः । अस्तु । शं । नः । पृश्निः । भवतु । देवऽगोपा ॥ १३ ॥

अज एकपादज एकपात्तामधेयो देवो नोऽस्माकं शं शान्तिं अस्तु । अहिर्बुध्न्यश्च नोऽस्माकं शं शान्तिं अस्तु । समुद्रोऽपि नः शं शान्तिं अस्तु । पेरुपद्रवेभ्यः पारथितापां नपादपांनपात्तामधेयोऽपि देवो नोऽस्माकं शं शान्तिं अस्तु । देवगोपा देवा गोपथितारो यस्यां सा पृश्निर्मरुतां माता नोऽस्माकं शं शान्तिं भवतु ॥

आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।  
 मृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥ १४ ॥  
 आदित्याः । रुद्राः । वसवः । जुषन्त । इदं । ब्रह्म । क्रियमाणं । नवीयः ।  
 मृण्वन्तु । नः । दिव्याः । पार्थिवासः । गोऽजाताः । उत । ये । यज्ञियासः ॥ १४ ॥

नवीयो नवतरमस्याभिः क्रियमाणमिदं ब्रह्म सोचमादित्या दिव्याः । अदितिर्द्यौः । अ० १. ८९. १०. । इति श्रुतेः । रुद्रा आंतरिक्षा वसवः पार्थिवाश्च जुषन्त । जुषन्तां । सेवन्तां । अन्ये दिव्या दिवि भन्नाः पार्थिवासः पार्थिवा गोजाता गोः पृश्नेजाताः । नाको गौरिति साधारणनामसु पाठात् । उतापि च ये यज्ञियासो यज्ञार्हाः ते सर्वेऽपि नोऽस्माकं हव मृण्वन्तु ॥

ये देवानां यज्ञियां यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृतां ऋतज्ञाः ।

ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १५ ॥

ये । देवानां । यज्ञियाः । यज्ञियानां । मनोः । यजत्राः । अमृताः । ऋतज्ञाः ।

ते । नः । रासन्तां । उरुगायं । अद्य । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ १५ ॥

यज्ञियानां यजनीयानां देवानामपि यज्ञिया यजनीया मनोः प्रजापतेष्व यजत्रा यजनीया अमृता मरणरहिता ऋतज्ञाः सत्यज्ञा ये देवाः संति ते सर्व उरुगायं वज्रकीर्तिं पुत्रमय नोऽसम्भवं रासन्तां । प्रयच्छन्तु । सिद्ध एवोत्तमः पादः ॥ ३० ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो ह्यदं निवारयन् । पुमर्थोऽथतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेस्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कमूपालसीमाज्यधुरधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये पंचमाष्टके तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

## ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

यस्य निःशसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।

निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेस्वरं ॥

अथ पंचमाष्टके चतुर्थोऽध्याय आरभ्यते । तत्र षडनुवाकात्मकस्य वासिष्ठस्य सप्तमस्य मंडलस्य तृतीयोऽनुवाको द्वाविंशति सूक्तानि । तत्र प्र ब्रह्मेति नवर्चं तृतीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं चैष्टुमं पूर्ववद्वैश्वदेवं । अनुक्रान्तं च । प्र ब्रह्म नवेति ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

प्र ब्रह्मेतु सदर्नादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।

वि सानुना पृथिवी संस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ॥ १ ॥

प्र । ब्रह्म । एतु । सदर्नात् । ऋतस्य । वि । रश्मिभिः । ससृजे । सूर्यः । गाः ।

वि । सानुना । पृथिवी । संस्रे । उर्वी । पृथु । प्रतीकं । अधि । आ । ईधे । अग्निः ॥ १ ॥

अतस्य यज्ञस्य सदर्नात् स्थानाद्देवयजनदेशाद्ब्रह्म स्तोत्रं सुत्यान् सूर्यादीन्मृतु । प्रकर्षेण गच्छतु । किं तद्वह्मेति तदाह । सूर्यः सर्वस्य प्रेरकः शोभनवीर्यो वा देवो रश्मिभिरात्मीयैः किरणैर्णा अपो वृष्ट्युदकानि वि ससृजे । विसृजति । विमुंचति । प्रवर्षति । अयते हि । आभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्त्यामिः पर्वण्यो वर्षतीति । स्मृतिश्च भवति । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा इति । अत ईदृशं माहात्म्यं सूर्यस्त्वैव विद्यते नान्यस्य चिदित्यनेन पादेन सूर्यः स्तूयते । अपि च पृथिवी प्रथिता भूमिः सानुना समुच्छितेन पर्वतादिनोर्वी विसृतीर्णा सती वि संस्रे । विसरति । व्याप्नोति । तथापिः पृथु विसृतीर्णं प्रतीकं पृथिव्या अवयवं देवयजनलक्षणं स्थानमधि ॥ अधिपरी अनर्थकावित्यधेः कर्मप्रवचनीयसंज्ञायां कर्मप्रवचनीययुक्त इति सप्तम्यर्थे द्वितीया ॥ ईदृशे स्थाने षेधे । आदीयते ॥

इमां वां मित्रावरुणा सुवृत्तिमिषं न कृत्वे असुरा नवीयः ।

इनो वामन्यः पद्वीरदंभो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ॥ २ ॥



इमां । वां । मिचावरुणा । सुऽवृत्तिं । इव । न । कृत्वे । असुरा । नवीयः ।  
 इनः । वां । अन्यः । पदऽवीः । अदब्धः । जनैः । च । मिचः । यतति । ब्रुवाणः ॥ २ ॥

हे असुरासुरी वसवन्ती हे मिचावरुणा मिचावरुणी वां युवास्यामिषं न हवीरूपमन्नमिषं नवीयो  
 नवीयसीमिमामन्नादीनां पुरोवर्तिनीं सुवृत्तिं क्षुतिं कृत्वे । अहं स्वीता करोमि । वां युवयोरन्योऽन्यतर एनः  
 प्रसुरदब्धः शत्रुभिरहिंसितो वरुणः पदवीः पदस्य स्थानस्य प्रवणयिता । वरुणो हि धर्माधर्मयोर्धारयतेति  
 पदवीरित्युच्यते । ब्रुवाणोऽस्माभिः स्तूयमानो मिचस्य जनं सर्वं प्राणिनां यतति । यातयति । प्रवर्तयति ।  
 तथा च श्रूयते । मिचो जनाभ्यातयति ब्रुवाणः । अ० ३. ५८. १. इति ॥

आ वातस्य भ्रजतो रंत इत्या अपीपयंत धेनवो न सूदाः ।  
 महो दिवः सद्ने जायमानोऽचिक्रदवृषभः सस्मिन्बुधन् ॥ ३ ॥  
 आ । वातस्य । भ्रजंतः । रंत । इत्याः । अपीपयंत । धेनवः । न । सूदाः ।  
 महः । दिवः । सद्ने । जायमानः । अचिक्रदत् । वृषभः । सस्मिन् । बुधन् ॥ ३ ॥

भ्रजतो गच्छतो वातस्य वायोरित्या गतय आ रंत । अमितो रमति । तथा सूदाः ॥ सूद प्रेरण इति  
 धातुः ॥ वीरस्य प्रेरयित्रो धेनवो न । नेति चार्थः । गावस्यापीपयंत । प्यायंति । एधंति । अपि च महो महतो  
 दिवो द्योतमानस्यादित्यस्य सद्ने स्थानेऽन्तरिक्षे जायमान उत्पद्यमानो पुषभो वर्षणशीलः पर्वन्वः सुस्मिन्बुधन्  
 तस्मिन्तरिक्षेऽचिक्रदत् ॥

गिरा य एता युनजहरी त इंद्र प्रिया सुरथा शूर धायू ।  
 प्र यो मन्थुं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्यां ॥ ४ ॥  
 गिरा । यः । एता । युनजत । हरी इति । ते । इंद्र । प्रिया । सुऽरथा । शूर । धायू इति ।  
 प्र । यः । मन्थुं । रिरिक्षतः । मिनाति । आ । सुऽक्रतुं । अर्यमणं । ववृत्यां ॥ ४ ॥

अस्याः पूर्वोऽर्धर्च इंद्रक्षुतिरपरोऽर्थम्यः क्षुतिः । हे शूर विक्रान्तिद्र ते तव प्रिया प्रियौ सुरथा  
 सुपुरं हणी धायू धारकावेतौ हरी स्वदीयावन्तौ यो जनो गिरा क्षुतिरूपया वाचा युनजत रथे युञ्ज्यात्  
 हे इंद्र त्वमस्य यागमायाहीति शेषः । योऽर्थमा रिरिक्षतो हिसितुमिच्छतः शत्रोः संबंधिनं मन्थुं कोपं प्र  
 मिनाति प्रकर्षेण हिनसि सुक्रतुं शोभनकर्माणमर्यमणमा ववृत्यां । सुत्वावर्तयामि ॥

यजंते अस्य सख्यं वयं नमस्विनः स्व क्षुतस्य धामन् ।  
 वि पृक्षो बाबधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठ ॥ ५ ॥  
 यजंते । अस्य । सख्यं । वयः । च । नमस्विनः । स्वे । क्षुतस्य । धामन् ।  
 वि । पृक्षः । बाबधे । नृभिः । स्तवानः । इदं । नमः । रुद्राय । प्रेष्ठ ॥ ५ ॥

अगत्या रुद्रः स्तूयते । नमस्विनो हविर्ब्रह्मज्ञानवतः स्वे स्वकीय क्षतस्य यज्ञस्य धामन् धामनि स्थाने ।  
 स्वकीये यज्ञगृहे स्थिता इत्यर्थः । वयस्य गंतारः कर्माणि कुर्वाणा यजमाना अस्य रुद्रस्य सख्यं सखित्वमुद्दिश  
 यजते । पूजयंतु । नृभिर्नैतुभिः स्तवानः स्तूयमानो रुद्रः पृष्टोऽन्नं क्षीतुषु वि बाबधे । विबध्नाति । ददाती-  
 त्वर्थः । प्रेष्ठ रुद्रस्य प्रियतममिदं नमस्तस्मै रुद्राय मया क्रियते ॥ ११ ॥

आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिंधुमाता ।

याः सुष्वयंत सुदुधाः सुधारा अभि स्वेन पर्यसा पीयानाः ॥ ६ ॥

आ । यत् । साकं । यशसः । वावशानाः । सरस्वती । सप्तथी । सिंधुमाता ।

याः । सुस्वयंत । सुदुधाः । सुधाराः । अभि । स्वेन । पर्यसा । पीयानाः ॥ ६ ॥

यथासां गंगादीनां नदीनां मध्ये सिंधुमातायां मातृभूता सरस्वत्येतदाख्या नदी सप्तथी सप्तमी भवति सुदुधाः कामान्दोग्धं सुशक्वाः सुधाराः शोभनधारोपेताश्च नद्यः सुष्वयंत सुष्वयंते । गतिकर्मेतत् । प्रवहंति । स्वेन स्वकीयेन पर्यसोदकेनाभि पीयाना यास्याभिवर्धयंत्यो यशसोऽन्नवत्यो वावशानाः कामयमाना नद्यः साकं युगपदेवा गच्छंतु ॥ आ इत्युपसर्गस्य योग्यक्रियाध्याहारः ॥

उत त्वे नो मरुतो मंदसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवंतु ।

मा नः परि ख्यदक्षरा चरंत्यवीवृधन्युज्यं ते रयिं नः ॥ ७ ॥

उत । त्वे । नः । मरुतः । मंदसानाः । धियं । तोकं । च । वाजिनः । अवंतु ।

मा । नः । परि । ख्यत् । अक्षरा । चरंती । अवीवृधन् । युज्यं । ते । रयिं । नः ॥ ७ ॥

उतापि च मंदसाना मोदमाना वाजिनो वेगवन्तस्त्ये ते मरुतो नोऽस्यदीयं धियं यज्ञाख्यं कर्म तोकं चास्यदीयं पुत्रं चावंतु । रयंतु । अक्षरा व्याप्ता चरंती वाग्देवता च नोऽस्यान् परि त्यक्त्वास्त्र्यतिरिक्ता- नन्यान्मा ख्यतं । मा द्राक्षीत् । ते पूर्वोक्ता मरुतो वाक्क युज्यं युक्तमपि नोऽस्यदीयं रयिं धनमवी- वृधन् । वर्धयंतु ॥

प्र वो महीमरमंतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदुष्यं न वीरं ।

भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरंधिं ॥ ८ ॥

प्र । वः । मही । अरमंतिं । कृणुध्वं । प्र । पूषणं । विदुष्यं । न । वीरं ।

भगं । धियः । अवितारं । नः । अस्याः । सातौ । वाजं । रातिऽसाचं । पुरंऽधिं ॥ ८ ॥

हे सातारः वो यूयमरमंतिमुपरतिरहितां महीं महतीं भूमिं प्र कृणुध्वं । आहूयत । तथा विदुष्यं यज्ञार्हं वीरं न सर्वेषां प्रेरकं च पूषणमेतन्नामकं देवं प्र कृणुध्वं । तथास्या धियो नोऽस्यदीयस्यास्य कर्मणो ऽवितारं रचितारं भगं देवं चाहूयत । अपि च सातावस्यदीये यज्ञे युधे वा वाजमृभूणामन्यतमं देवमाहूयत । कीदृशं वाजं । रातिषाचं दानसेवकं पुरंधिं पुराणं धारयितारं ॥

यज्ञपुच्छेऽच्छायं व इति चमसिनः स्वं स्वं चमसमभिमृशेयुः । सूचितं च । अच्छायं वो मरुतः श्लोकं एत्वितेतयाभिमृशंति । आ० ६. १२. इति ॥

अच्छायं वो मरुतः श्लोकं एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः ।

उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

अच्छ । अयं । वः । मरुतः । श्लोकः । एतु । अच्छ । विष्णुं । निषिक्तऽपां । अवऽभिः ।

उत । प्रजायै । गृणते । वयः । धुः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ९ ॥

हे मरुतः वो युष्मानयं श्लोकोऽस्यदीयमिदं सोचमच्छेत् । अभिगच्छतु । निषिक्तपां निषिक्तस्य गर्भस्य



रक्षितारं । यद्वा । चमसे निषिक्तानां सोमानां पातारं । अवोमिरसद्विषयरक्षणीर्युक्ते विष्णुं चाक्षदीयं  
क्षोषमश्नुतु । उतापि च मरतो विष्णुश्च गृणते क्षुवते मह्यं प्रजायै पुत्ररूपां प्रजां वयोऽन्नं च धुः । अधुः ।  
दधतु । हे मरतो हे विष्णो यूयं स्वस्तिमिरविनाशिनोऽस्मान् सदा सर्वदा पात । रक्षत ॥ ॥२॥

आ वो वाहिष्ठ इत्यष्टवै चतुर्थं सूक्तं वसिष्ठस्यै वैश्वं विश्वदेवं । अनुक्रम्यते च । आ वोऽष्टाविति ॥  
विनियोगो लैंगिकः ॥

आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्वे रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः ।

अभि चिपृष्ठैः सर्वनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पूणध्वं ॥ १ ॥

आ । वः । वाहिष्ठः । वहतु । स्तवध्वे । रथः । वाजाः । ऋभुक्षणः । अमृक्तः ।

अभि । चिपृष्ठैः । सर्वनेषु । सोमैः । मदे । सुशिप्राः । महभिः । पूणध्वं ॥ १ ॥

अनेन वृत्तेनभवः क्षुर्यते । ऋभुक्षणो विश्वीर्यस्य तेजसो निवासभूता हे वाजा ऋभवः वाहिष्ठो वोढु-  
तमः स्तवध्वे स्तोतुमर्होऽमृक्तः केनाप्यहिंसितो युष्मदीयो रथो वो युष्माना वहतु । आ समंतादक्षदीयं  
यज्ञं प्रापयतु । हे सुशिप्राः शोभनहनवः यूयं तेन रथेनागत्य सर्वनेष्वक्षदीययज्ञेषु मदे मदनिमित्ते चिपृष्ठैः  
शीरदधिसक्तमिन्ध्रैर्महभिर्महन्निः सोमैरभि पूणध्वं । युष्मदीयं जठरमभिपूरयत । स रथो युष्मानावहस्विति  
पूर्वेणान्वयः ॥

यूयं ह रत्नं मघवन्तु धत्स्व स्वर्दृशं ऋभुक्षणो अमृक्तं ।

सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वं ॥ २ ॥

यूयं । ह । रत्नं । मघवन्तु । धत्स्व । स्वः । स्वर्दृशः । ऋभुक्षणः । अमृक्तं ।

सं । यज्ञेषु । स्वधाऽवन्तः । पिबध्वं । वि । नः । राधांसि । मतिभिः । दयध्वं ॥ २ ॥

हे ऋभुक्षणो हे ऋभवः स्वर्दृशः स्वर्गं पश्यतो यूयं ह यूयमेव मघवन्तु हविर्ब्रह्मणाज्जवत्स्वस्मासु निमि-  
त्तेष्वमृक्तमहिंसितं । चोरादिभिर्नापहतमित्यर्थः । रत्नं रमणीयं धत्स्व । धारयत । तदनन्तरं स्वधावन्तो  
ब्रह्मवन्तस्ते यूयं यज्ञेष्वक्षदीययज्ञेषु सं पिबध्वं । सम्यक् सोमं पिबत । अपि च यूयं मतिभिर्धनहेतुभिर्नोऽस्माभ्यं  
राधांसि धनानि वि दयध्वं । विशेषेण दत्त ॥

उवोचिष्य हि मघवन्देष्टं महो अर्भस्य वसुनो विभागे ।

उभा ते पूर्णा वसुना गर्भस्ती न सूनृता नि यमते वसुभ्या ॥ ३ ॥

उवोचिष्य । हि । मघवन् । देष्टं । महः । अर्भस्य । वसुनः । विभागे ।

उभा । ते । पूर्णा । वसुना । गर्भस्ती इति । न । सूनृता । नि । यमते । वसुभ्या ॥ ३ ॥

उवोचिष्येत्याद्याः पंचर्ष इन्द्रदेवताकाः । हे मघवन् धनवर्जिन्द्र त्वं महो महतोऽर्भस्मास्मा च वसुनो  
धनस्य विभागे परिचरयानुकूले दाननिमित्ते देष्टं धनमुवोचिष्य हि । श्वसे खलु ॥ उचतिः सेवाकर्मा ॥  
तथा ते स्वदीधानुमोमौ गर्भस्ती वाह वसुना धनेन पूर्णा । संपूर्णौ भवतः । ते स्वदीया सूनृता वाग्वसव्या  
वसूनि धनानि न नि यमते । न नियच्छति । यद्वा । वसव्या वसुषु धनेषु साधुः सूनृता वाग्धनेन संपूर्णौ  
स्वदीयो वाह न नियच्छति । नात्वं प्रदापयतीत्यर्थः ॥

त्वमिन्द्र स्वयंशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्टृका ।

वयं नु ते दास्यांसः स्याम ब्रह्म कृण्वंतो हरिवो वसिष्ठाः ॥ ४ ॥

त्वं । इन्द्र । स्वऽयंशाः । ऋभुक्षाः । वाजः । न । साधुः । अस्तं । एषि । ऋक्षा ।

वयं । नु । ते । दास्यांसः । स्याम । ब्रह्म । कृण्वंतः । हरिऽवः । वसिष्ठाः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र स्वयंशा असाधारणकीर्तिर्ऋभुक्षा ऋभुनिवासक ऋभूणामीश्वरो वा त्वं साधुः साधको वाजो नात्रमिव ऋक्षा ऋक्षाणः स्रोतुर्ममास्तं गृहमेभि । प्राप्नुहि । न्वय वसिष्ठा एतत्संज्ञका ऋषयो वयं हे हरिवः स्वकीयाश्चोपेतैर्द्र ते त्वदर्थं दास्यांसो हविर्लक्षणात्तं दत्तवन्तो ब्रह्म स्रोचं कृण्वंतः कुर्वंतः संतः स्याम । भवेम ॥

सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद्वाभिर्विवेषो हर्यश्च धीभिः ।

ववन्मा नु ते युज्याभिरुती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ॥ ५ ॥

सनिता । असि । प्रऽवतः । दाशुषे । चित् । याभिः । विवेषः । हरिऽअश्च । धीभिः ।

ववन्म । नु । ते । युज्याभिः । ऊती । कदा । नः । इन्द्र । रायः । आ । दशस्येः ॥ ५ ॥

हे हर्यश्च हरिनामकाश्चिन्द्र त्वं यामिर्धोभिरसदीयामिः स्तुतिभिर्विवेषः व्याप्नोषि स त्वं दाशुषे चिद्वाभिर्विवर्तवते यत्नमाभायापि प्रवतः प्रवणस्य धनस्य सनितासि । दाता भवसि । अपि च हे इन्द्र त्वं नोऽस्य कदा कस्मिन्काले रायो धनान्या दशस्येः । प्रयच्छेः । न्वय ते तव युज्याभिर्योग्याभिरुत्तिभी रचामिर्ववन्म । त्वां संभजेम ॥ ॥ ३ ॥

वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः ।

अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ॥ ६ ॥

वासयसिऽइव । वेधसः । त्वं । नः । कदा । नः । इन्द्र । वचसः । बुबोधः ।

अस्तं । तात्या । धिया । रयिं । सुऽवीरं । पृक्षः । नः । अर्वा । नि । उहीत । वाजी ॥ ६ ॥

हे इन्द्र त्वं कदा कस्मिन्काले नोऽस्यदीयं वचसो वचोरूपं स्रोचं बुबोधः । अवगच्छेः । तथा स त्वं वेधसः स्रोतुगस्मान्वासयसीव । इवेदानीमर्थं । इदानीं स्वकीये स्थानेऽवस्थापयसि । किंच वाजी वसवानर्वा वेग-वांस्त्वदीयोऽश्वात्वा ॥ तनोतिरिदं रूपं ॥ संततया धियास्मत्पेरितया स्तुत्या हेतुभूतया सुवीरं शोभनपुत्रोपेतं रयिं त्वदीयं धनं पृक्षोऽन्नं च नोऽस्यदीयमस्तं गृहं न्युहीत । निवहेत् ॥

अभि यं देवी निर्वृतिश्चिदीशे नक्षंत इन्द्र शरदः सुपृक्षः ।

उप चिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृण्वंत मर्ताः ॥ ७ ॥

अभि । यं । देवी । निऽवृतिः । चित् । ईशे । नक्षंत । इन्द्र । शरदः । सुऽपृक्षः ।

उप । चिऽबन्धुः । जरत्ऽअष्टिं । एति । अस्वऽवेशं । यं । कृण्वंत । मर्ताः ॥ ७ ॥

देवी द्योतमाना निर्वृतिश्चिद्भूमिरपीशे ॥ कृत्याथे केन्यत्ययः ॥ ईशितव्यास्वभूता सती यमिन्द्रमभि नक्षते व्याप्नोति । सुपृक्षः शोभनार्द्रोपेताः शरदः संवत्सराश्च यमिन्द्रं नक्षते व्याप्नुवन्ति । मर्ता मरणधर्माणः स्रोतारो वयं यमिन्द्रमस्ववेशं स्वकीये स्थानेऽनुपविशंतं कृण्वंत कुर्वन्ति । चिबन्धुस्त्रयाणां लोकानां बन्धको विधारकः स इन्द्रो जरदष्टिं जरज्जीर्णमष्टिरशनं यस्य बलस्य हेतुभूतं तद्वत्समुपैति । उपगच्छति ॥



आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यंतु पर्वतस्य रातौ ।  
 सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥  
 आ । नः । राधांसि । सवितरिति । स्तवध्या । आ । रायः । यंतु । पर्वतस्य । रातौ ।  
 सदा । नः । दिव्यः । पायुः । सिषक्तु । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ ८ ॥

हे सवितः सर्वस्य प्रेरक देव त्वत्सकाशात्स्त्ववधौ स्तोतुं योग्याणि राधांसि धनानि नोऽस्मान्ना यंतु ।  
 प्रागच्छंतु । पर्वतस्य । पर्वत इति कश्चिदिंद्रस्य सखा । एतत्संज्ञकस्य देवस्य रातौ दाने सति रायो धनान्य-  
 स्मान्ना यंतु । पायुः सर्वस्य पालको दिव्यो दिवि भवः स इंद्रः सदा सर्वदा नोऽस्मान् सिषक्तु । रचकत्वेन  
 सेवतां । अस्मिन्सूक्ते ये प्रतिपादिता देवास्तै सर्वे यूयं नोऽस्मान् स्वस्तिभिः कक्षाणैः सदा पात । पालयत ॥ १४ ॥

उदु ष देव इत्यष्टर्चं पंचमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्धं चैतुमं सवितुदेवताकं । सप्तम्यष्टम्यौ वाजिदेवताके । भगमुच्यो  
 ऽवस इत्यर्धर्चौ भगदेवतः सावित्रो वा । तथा चानुकमणिका । उदु ष सावित्रमंथे वावित्र्यौ भगमिति भागो  
 वार्धर्च इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

उदु ष देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामश्निश्चेत् ।  
 नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्नां पुरुवसुर्दधाति ॥ १ ॥  
 उत् । ऊं इति । स्यः । देवः । सविता । ययाम । हिरण्ययी । अमतिं । यां । अश्निश्चेत् ।  
 नूनं । भगः । हव्यः । मानुषेभिः । वि । यः । रत्नां । पुरुवसुः । दधाति ॥ १ ॥

सविता सर्वस्य प्रेरकः स देवो हिरण्ययीं सुवर्णमयीं याममतिं । रूपनामेतत् । रूपं । प्रमामित्यर्थः ।  
 अश्निश्चेत् आश्रयति ताममतिमुबयाम । उबच्छति । उन्नमयति । उ इति पादपूरणः । नूनमव भगो भवनीयो  
 यः सविता मानुषेभिर्मनुषैः स्तोतुमिहव्यो हवनोयः स्तोतव्यो भवति । पुरुवसुर्वज्रधनो यो देवः स्तोतुभ्यो  
 रत्ना रत्नानि रमणीयानि धनानि वि दधाति करोति । स सविता देवस्याममतिमुबयामेति पूर्वेण संबन्धः ॥

उदु तिष्ठ सवितः शुध्वस्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।  
 शुध्वीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः ॥ २ ॥  
 उत् । ऊं इति । तिष्ठ । सवितरिति । शुधि । अस्य । हिरण्यपाणे । प्रभृतावृतस्य ।  
 वि । उर्वी । पृथ्वीं । अमतिं । सृजानः । आ । नृभ्यः । मर्तभोजनं । सुवानः ॥ २ ॥

हे सवितः सर्वस्य प्रेरयितृदेव त्वमुत्तिष्ठ । ऊर्ध्वं गच्छ । ततो हे हिरण्यपाणे हे सुवर्णहस्त त्वममदभीप्सि-  
 तप्रदानार्थतस्तस्य यज्ञस्य प्रभृता प्रणयनेऽस्यास्मादीयमिदं स्तोत्रं शुधि । गृणु । उ इति पूरणः । कीदृशस्त्वं ।  
 उर्वीं विस्तीर्णी पृथ्वीं प्रथिताममतिं रूपं प्रभां वि सृजानो विद्वज्जन्तुभ्यो जेतुभ्यः स्तोतुभ्यो मर्तभोजनं मनु-  
 वाणां भोगयोग्यं धनमा सुवानः प्रेरयन् । एवंभूतस्त्वमिदं स्तोत्रं शृण्वति संबन्धः ॥

अपि घृतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्विश्ने वसवो गृणन्ति ।  
 स नः स्तोमानमस्य पृथ्वीं धाद्विश्नेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ॥ ३ ॥  
 अपि । स्तुतः । सविता । देवः । अस्तु । यं । आ । चित् । विश्वे । वसवः । गृणन्ति ।  
 सः । नः । स्तोमान् । नमस्यः । चनः । धात् । विश्वेभिः । पातु । पायुभिः । नि । सूरीन् ॥ ३ ॥

अपि च सविता देवोऽस्माभिः सुतोऽसु । असादीयाः सुतोः शृणोत्वित्यर्थः । विश्वे वसवश्चित् सर्वे देवा अपि यं सवितारमा गृणन्ति अभिष्टुवंति नमस्यः सर्वैर्नमस्करणीयः स देवः सोमान्नोऽसादीयानि सोषाणि चनोऽन्नं धातु । दधातु । अन्नफलानि करोतु । विश्वेभिर्विश्वैः सर्वैः पायुभिः पालनैः सूरिणः सोतृणस्मान्नि पातु । नितरां पालयतु ॥

अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा ।

अभि सुमाजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः ॥ ४ ॥

अभि । यं । देवी । अदितिः । गृणाति । सवं । देवस्य । सवितुः । जुषाणा ।

अभि । संऽराजः । वरुणः । गृणन्ति । अभि । मित्रासः । अर्यमा । सऽजोषाः ॥ ४ ॥

देवी चांतमानादितिरदोना देवमाता यं सवितारमभि गृणाति अभिष्टीति । कीदृशी । सवितुर्देवस्त्वैव सवं प्रसवमनुज्ञां जुषाणा सेवमाना । सम्राजः सम्ययाजमाना वरुणः । उपलक्षणमेतत् । वरुणादयो देवा यं सवितारमभि गृणन्ति अभिष्टुवंति । मित्रासो मित्रादयश्च सजोषाः समानप्रीतिर्यमेतत्संज्ञको देवश्च यमभि-गृणन्ति । स नः सोमांश्चनो धादिति पूर्ववर्चा संबंधः ॥

अभि ये मिथो वनुषः सपते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः ।

अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरुच्येकधेनुभिर्नि पातु ॥ ५ ॥

अभि । ये । मिथः । वनुषः । सपते । रातिं । दिवः । रातिऽसाचः । पृथिव्याः ।

अहिः । बुध्न्यः । उत । नः । शृणोतु । वरुची । एकधेनुऽभिः । नि । पातु ॥ ५ ॥

रातिषाचो दानसेविनो वनुषः संभक्तारो ये यजमाना मिथः परस्परं संहता भूत्वा सवितारमभिषिञ्च्य सपते परिचरन्ति । कीदृशं । दिवो बुलोकस्य पृथिव्या भूमेश्च रातिं मित्रभूतं । उतापि चाहिर्बुध्न्यः । बुध्न्येऽन्तरिक्षे भवो बुध्न्यः । एतीत्यहिः । एतत्पदद्वयाभिधो मध्यमस्थानोऽग्निरहिर्बुध्न्य इत्युच्यते । सवितुर्मित्रभूतः सोऽपि तेषां नोऽस्माकं सवितुर्विषयं स्तोत्रं शृणोतु । तथा वरुची वाग्देवी च सवितुसहिता सत्येकधेनुभिर्मुखाभिर्गो-भिर्नि पातु । नितरामस्थान्यालयतु ॥

अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।

भगमुयोऽवसे जोहवीति भगमनुयो अध याति रत्नं ॥ ६ ॥

अनु । तत् । नः । जाःपतिः । मंसीष्ट । रत्नं । देवस्य । सवितुः । इयानः ।

भगं । उयः । अवसे । जोहवीति । भगं । अनुयः । अध । याति । रत्नं ॥ ६ ॥

इयानोऽस्माभिर्याच्यमानो जास्पतिः प्रजानां पालकः सविता देवः सवितुर्देवस्य स्वस्य संबंधि रत्नं रमणीयं तत्प्रसिद्धं धनं नोऽस्माकमनु मंसीष्ट । अनुमन्वतां । उय आजस्वी स्तोता भगं भजनीयं सवितारं भगसंज्ञकं देवं वावसे नोऽस्माकं रक्षणाय जोहवीति । भृशं इत्यति । अद्यापि चानुयोऽसमर्थः स्तोता भगमे-तत्संज्ञकं सवितारं वा रत्नं रमणीयं तत्प्रसिद्धं धनं याति । याचते ॥

वैश्वदेवे पर्वणि वाजिनस्य हविषः शं नो भवंलित्यादिके द्वे याज्यानुवाक्ये । सूचितं च । शं नो भवंतु वाजिनो हवेषु वाजिवाजिऽवत वाजिनो न इत्यूर्ध्वश्रुतगवानं याज्यां । आ० २. १६. । इति ॥

शं नो भवंतु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।

जंभयंतोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ ७ ॥



शं । नः । भवन्तु । वाजिनः । हवेषु । देवताता । मितद्रवः । सुऽअर्काः ।  
जंभयंतः । अहिं । वृकं । रक्षांसि । सनेमि । अस्मत् । युयवन् । अमीवाः ॥ ७ ॥

देवताता देवतातौ यज्ञे हवेष्वसदीयेषु सोचेषु मितद्रवो मितद्रवणा मितमार्गाः स्वर्काः शोभनाम्ना  
वाजिन एतदभिधायका देवा नोऽस्माकं शं सुखाय भवन्तु । अपि चाहिमागत्य इतारं वृकं वसूनामादातारं ।  
चोरमिति शेषः । रक्षांसि च जंभयंतो ह्रिसंतो वाजिनो देवाः सनेमि । पुराणनामितत् । पुरातना अमीवा  
रोगानसदस्यतो युयवन् । पृथक्कुर्वन्तु ॥

वाजैवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता चतुश्चाः ।  
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पृथिभिर्देवयानैः ॥ ८ ॥  
वाजैऽवाजे । अवत । वाजिनः । नः । धनेषु । विप्राः । अमृताः । चतुऽश्चाः ।  
अस्य । मध्वः । पिबत । मादयध्वं । तृप्ताः । यात । पृथिऽभिः । देवऽयानैः ॥ ८ ॥

हे वाजिन एतन्नामका देवा विप्रा मेधाविनोऽमृता अमरणधर्माण चतुश्चाः सत्त्वं जानंतः एवमृताः संतो  
यूयं वाजे वाजे सर्वेषु युद्धेषु नोऽस्मान्वनेषु धननिमित्तेष्ववत । पालयत । ततो यूयमस्य मध्वो मधुरोपेतमिमं  
सोमं पिबत । सोमपानानंतरं मादयध्वं । यूयं तृप्ता भवत । ततस्तृप्ता यूयं देवयानिर्देवगमनसाधनैः पृथि-  
भिर्मार्गैर्यात । गच्छत ॥ ॥ ५ ॥

ऊर्ध्वो अपिरिति सप्तर्चं षष्ठं सूक्तं वसिष्ठस्यार्चं चैष्टुभं वैश्वदेवं । ऊर्ध्वः सप्त वैश्वदेवं त्वित्यनुक्रमणिका ॥  
सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥ द्वितीये कंदोमे प्रचगशस्त्र ऊर्ध्वो अपिरिति वैश्वदेवस्तुचः । सूचितं च । ऊर्ध्वो  
अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेदुत स्था नः सरस्वती जृषाणेति प्रचगं । आ० ८. १०. । इति ॥

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति ।  
भेजाते अद्री रथ्येव पंथामृतं होता न इषितो यजाति ॥ ९ ॥  
ऊर्ध्वः । अग्निः । सुऽमतिं । वस्वः । अश्रेत् । प्रतीची । जूर्णिः । देवऽतातिं । एति ।  
भेजाते इति । अद्री इति । रथ्याऽइव । पंथां । चतुतं । होता । नः । इषितः । यजाति ॥ ९ ॥

अपिरंगनादिगुणविशिष्ट ऊर्ध्व उन्नमनः सन् वस्वो वासकस्य सोतुः सुमतिमसदीयां शोभनां कुतिमश्रेत् ।  
अथतु । सेवतां । प्रतीच्यभिमुखी जूर्णिः सर्वासां प्रजानां जरयिष्युषोदेवता देवतातिं यज्ञमेति । गच्छति ।  
अद्री आद्रियंतौ अज्ञावंतौ पत्नीयजमानौ पंथां पंथानं यज्ञमार्गं रथ्येव रथिनाविव भेजाते । सेवेते । तथे-  
षितः संप्रेषितो नोऽसदीयो होता अतं यज्ञं यजाति । यजतु । करोत्वित्यर्थः ॥

प्र वावृजे सुप्रया बहिरैषामा विश्पतीव बीरिटे इयाते ।  
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्त्ये नियुत्वान् ॥ १० ॥  
प्र । ववृजे । सुऽप्रयाः । बहिः । एषां । आ । विश्पती इवेति विश्पती इव । बीरिटे ।  
इयाते इति ।

विशां । अक्तोः । उषसः । पूर्वऽहूतौ । वायुः । पूषा । स्वस्त्ये । नियुत्वान् ॥ १० ॥

एषां यजमानानां संवधि सुप्रयाः शोभनान्नेन युक्तं बहिः कुशमयं प्र ववृजे । प्रवृज्यते । आसायत इत्यर्थः ।  
विश्वपतीव । इवेतीदानीमर्थः । इदानीमसदीयानां प्रजानां पालकी नियुत्वान् । नियुच्छेदेन वज्रवा स' इति ।

तद्वान्वायुः पुषा च विशां प्रजानां स्वस्तये विमायाक्तो राविः संबन्धिन्या उषसः सकाशात्पूर्वहती पूर्वसिन्नाङ्गानि  
सति बीरिटेऽन्तरिक्ष एषाति । आगच्छतां । यद्वा । विरपतीवैत्युपमा । विशां मनुष्याणां बीरिटे गणे विरपतीव  
राजानो यदागच्छतां तद्वत् । अस्मिन्पक्षे विशामित्युपमयच संबध्यते ॥

जम्भया अच वसवो रंत देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयंत शुभाः ।

अर्वाक्पथ उरुजयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ॥ ३ ॥

जम्भयाः । अच । वसवः । रंत । देवाः । उरौ । अन्तरिक्षे । मर्जयंत । शुभाः ।

अर्वाक् । पथः । उरुऽजयः । कृणुध्वं । श्रोत । दूतस्य । जग्मुषः । नः । अस्य ॥ ३ ॥

वसवो वसुसंज्ञका देवा अचास्मिन्पक्षे जम्भयाः पृथिव्यां भवा रंत । रमयतां । उरौ विस्तीर्णोऽन्तरिक्षे  
क्षिताः शुभा दीप्यमाना मरुतश्च मर्जयंत । परिचर्यन्ते । हे उरुजयः प्रभूतगमना वसवो मरुतश्च यूयं पथो  
युष्मदीयान्मार्गान्वागसदमिसुखं यथा भवति तथा कृणुध्वं । कुरुत । अपि च यूयं जग्मुषो युष्मान्प्रति गत-  
वतो नोऽस्यदीयस्वास्व दूतस्त्वामिराङ्गानं श्रोत । शृणुत । अग्निर्हि यजमानानां दूतः सन्दिवागाहयतीत्यर्थः ॥

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्यं विश्वे अभि संति देवाः ।

ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यमे शुष्टी भगं नासत्या पुरंधिं ॥ ४ ॥

ते । हि । यज्ञेषु । यज्ञियासः । ऊमाः । सधऽस्यं । विश्वे । अभि । संति । देवाः ।

तान् । अध्वरे । उशतः । यक्षि । अग्ने । शुष्टी । भगं । नासत्या । पुरंऽधिं ॥ ४ ॥

यज्ञेषु यागेषु ते हि ते खलु प्रसिद्धा यज्ञियासो यज्ञार्हा ऊमा रथका विश्वे सर्वे देवाः सधस्यं सहस्रा-  
गमनि संति । अभिमवन्ति । आक्रामन्ति । हे अपि अध्वरेऽस्यदीये यज्ञ उशतः कामयमानांस्तान्देवान्यधि ।  
यज । तथा शुष्टी । क्षिप्रगमितत् । क्षिप्रं भगमेतत्संज्ञकं देवं नासत्या नासत्यावश्विनी च पुरंधिं पुरुषां ध्या-  
तारमिंद्रं च यज ॥

आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिंद्रमग्निं ।

आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्तां ॥ ५ ॥

आ । अग्ने । गिरः । दिवः । आ । पृथिव्याः । मित्रं । वह । वरुणं । इंद्रं । अग्निं ।

आ । आर्यमणं । अदितिं । विष्णुं । एषां । सरस्वती । मरुतः । मादयन्तां ॥ ५ ॥

हे अग्ने त्वं दिवो बुल्लोकात्सकाशाग्निरो गरणीयान् सुत्यान्देवानस्यदीयं यज्ञं प्रत्या वह । आङ्गान् कुरु ।  
पृथिव्या अन्तरिक्षाश्चा वह । कान्देवानिति तदुच्यते । मित्रमेतत्संज्ञकं वरुणं चेंद्रं च देवेषु देवतास्वरूपेणाव-  
स्थितं चाभिमर्त्यमणमेतत्संज्ञकमदितिमदीनां पृथिवीं च विष्णुं च । एवंभूतान्देवानेषामस्माकं यजमानानाम-  
र्थाया वह । सरस्वती वाग्देवता च मरुतश्च मादयन्तां । अस्यदीयैः सोषैर्हविर्भिश्च मायांतु ॥

रुरे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत्कामं मर्त्यानामसिन्वन् ।

धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ॥ ६ ॥

रुरे । हव्यं । मतिऽभिः । यज्ञियानां । नक्षत् । कामं । मर्त्यानां । असिन्वन् ।

धात । रयिं । अविऽदस्यं । सदाऽसां । सक्षीमहि । युज्येभिः । नु । देवैः ॥ ६ ॥



यज्ञियाणां । चतुर्थ्यै षष्ठी । यज्ञार्थेभ्यो देवेभ्यो मतिमिरसादीयानिः क्षुतिभिः सह हव्यं हवी ररे । अस्मानिर्दीयते । मर्त्याणां मनुष्याणामस्माकं काममभिसाधमस्त्विन्नप्रतिबन्धप्रतिषेधत् । असादीयं यज्ञं व्याप्नोतु । हे देवाः धूमविदस्यमनुष्यपणीयं सदासां सर्वदा संमजनीयं रयिं धनं धात । अस्मभ्यं दत्त । न्वय वयं युष्मभिः सहायभूतेरिह यज्ञे समागतैर्देवैः सधीमहि । यद्वा । न्विह्युपमार्थे । युष्मेभिर्गुं नंधुमिरिव देवैः सधीमहि ॥

नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्वातावानो वरुणो मिचो अग्निः ।

यच्छंतु चंद्रा उपमं नो अर्के यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

नू रोदसी इति । अभिस्तुते इत्यभिःस्तुते । वसिष्ठैः । चतुः । वातः । वरुणः । मिचः । अग्निः ।

यच्छंतु । चंद्राः । उपऽमं । नः । अर्के । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

न्वय रोदसी आवापुषिभ्यो वसिष्ठैरस्माभिः । पूजार्थं यज्ञवचनं । अभिष्टुते अभितः सर्वतः क्षुते अभ्युतां । तथा चतुर्वातोऽस्माभिः क्रियमाणैर्यज्ञैरपिता वरुणो मिचोऽपिष्टिवंभूता देवा अस्मानिरभिष्टुता आसन् । चंद्रा आह्लादका देवा नोऽस्मभ्यमर्कमर्चनीयमन्नमुपमं सर्वोत्कृष्टं यच्छंतु । ददतु । सूक्ते प्रतिपादिता ये देवास्तै सर्वे यूयं नोऽस्मान् स्वस्तिमिरविनाशिः सदा सर्वदा पात । पातयत ॥ ॥ ६ ॥

ओ शुष्टिरिति सप्तमं यज्ञमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं वैष्टुमं वैश्वदेवं । ओ शुष्टिरित्यनुक्रांतं ॥ विनियोगो सैगिकः ॥

ओ शुष्टिर्विद्व्या ३ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणां ।

यद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे ॥ १ ॥

ओ इति । शुष्टिः । विद्व्या । सं । एतु । प्रति । स्तोमं । दधीमहि । तुराणां ।

यत् । अद्य । देवः । सविता । सुवाति । स्याम । अस्य । रत्निनः । विभागे ॥ १ ॥

हे देवाः विद्व्या विद्वेन त्वदीयेन चित्तेन संपाया शुष्टिः सुखमस्मानो आ समेतु । आगच्छतु । अथवा शुष्टिर्वेगवती विद्व्या विद्वे यज्ञे क्रियमाणास्मादीया क्षुतिर्युष्मानागच्छतु । वयं तुराणां वेगवतां देवानां स्तोमं स्तोचं प्रति दधीमहि । कुर्वीमहि । अथेदानीं सविता देवो यज्ञं सुवाति अस्मभ्यं प्रेरयेत् रत्निनो रमणीयधनवतोऽस्य सवितुस्तस्य धनस्य विभागे दाने स्नाम । वयं भवेम ॥

मिचस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु ।

दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भर्गश्च ॥ २ ॥

मिचः । तत् । नः । वरुणः । रोदसी इति । च । द्युऽभक्तं । इंद्रः । अर्यमा । ददातु ।

दिदेष्टु । देवी । अदितिः । रेक्णः । वायुः । च । यत् । नियुवैते इति निऽयुवैते । भर्गः । च ॥ २ ॥

मिचो देवो नोऽस्मभ्य तत्प्रसिद्धं धनं ददातु । प्रयच्छतु । तथा वरुणो ददातु । रोदसी च आवापुषिभ्यो च दत्तां । तथेन्द्रो युभक्तं युमिर्बोतमानैः क्षीतुभिः सेवितं तज्जनं ददातु । अर्यमा च ददातु । तथादितिर्देवी रेक्णो धनं दिदेष्टु । तज्जनमस्मभ्यं दिशतु । वायुश्च भगवतो देवी यज्ञं नियुवैते अस्मान्नितरां योजयेता तज्जनमिति पूर्वेण संबंधः ॥

सेदुयो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्व आवाय ।

उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति ॥ ३ ॥

सः । इत् । उयः । अस्तु । मरुतः । सः । शुष्मी । यं । मर्त्यं । पृषत् ऽ अश्वः । अवाथ ।  
उत । ई । अग्निः । सरस्वती । जुनन्ति । न । तस्य । रायः । परि ऽ एता । अस्ति ॥ ३ ॥

हे पृषदश्वः । पृषच्छब्देन केचिन्मृगविशेषा उच्यन्ते । त एवाश्व वाहा येषां ते । एवंभूता हे मरुतो  
रुद्रपुत्रा देवाः यूयं मर्त्यं मरणधर्माणं यं यजमानमवाथ पालयत सेतु एवं यजमान उग्रोऽस्तु । औजस्वी  
भवतु । तथा स शुष्मी वज्रवान् भवतु । तथोतापि चाभिरंगनादिगुणयुक्तो देवः सरस्वती वाग्देवता  
चेत्याद्याः सर्वे देवा ईमेनं यजमानं जुनन्ति । प्रवर्तयन्ति । तस्य यजमानस्य संबन्धिनी रायो धनस्य कश्चिदपि  
यथेता परिगता नास्ति । नाशको न भवतीत्यर्थः ॥

अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः ।  
सुहवा देवदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ॥ ४ ॥  
अयं । हि । नेता । वरुणः । ऋतस्य । मित्रः । राजानः । अर्यमा । अपः । धुरिति धुः ।  
सुहवा । देवी । अदितिः । अनर्वा । ते । नः । अंहः । अति । पर्षन् । अरिष्टान् ॥ ४ ॥

ऋतस्य यज्ञस्य सत्यस्य वा नेता प्रापयितायं ह्ययं खलु वरुणस्य मित्रश्चार्यमा चैति राजानः समर्था  
देवा अपोऽस्यदीयं यज्ञादिलक्षणं कर्म धुः । अधुः । दधति । अनर्वा केनाप्यप्रतिगता देवी द्योतमानादिति-  
रदीना देवमाता सुहवा शोभनाङ्गाना भवति । ते वरुणादयो देवा अरिष्टानवाधितान् सतो नोऽस्मान्ही  
दुरितमति पर्षन् । अतिपारयन्तु ॥

अस्य देवस्य मीळुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः ।  
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ॥ ५ ॥  
अस्य । देवस्य । मीळुषः । वयाः । विष्णोः । एषस्य । प्रऽभृथे । हविःऽभि ।  
विदे । हि । रुद्रः । रुद्रियं । महिऽत्वं । यासिष्टं । वर्तिः । अश्विनौ । इराऽवत् ॥ ५ ॥

प्रभृथे हविर्भिर्हवीरूपैरग्निरेषस्य प्रापणीयस्य मीळुषः कामानां सेतुर्विष्णोः सर्वदेवात्मकस्यास्य देवस्य ।  
विष्णुः सर्वा देवताः । ऐ० ब्रा० १. १. इति श्रुतेः । अग्रे देवा वयाः शाखा इव भवन्ति । रुद्रो देवो रुद्रियं  
रुद्रसंबन्धि सुखं महित्वं महत्त्वं च विदे हि । अस्मान्प्रापयति खलु । अपि च हे अश्विनौ देवौ युवामिरावत्-  
विलेखणान्नयुक्तं वर्तिरस्यदीयं गृहं यासिष्टं । अयासिष्टं । आगच्छतं ॥

माचं पूषन्नाघृण इरस्यो वरुची यद्रातिषाचश्च रासन ।  
मयोभुवो नो अर्वतो नि पांतु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ॥ ६ ॥  
मा । अचं । पूषन् । आघृणे । इरस्यः । वरुची । यत् । रातिऽसाचः । च । रासन ।  
मयःऽभुवः । नः । अर्वतः । नि । पांतु । वृष्टिं । परिऽज्मा । वातः । ददातु ॥ ६ ॥

हे आघृणे प्राप्तदीप्ति एवभूत हे पूषन् देव अचास्मिन्दाने मेरस्यः । विघातं मा कृथाः । वरुची सर्वैर्वर-  
णांथा सरस्वती रातिषाचश्च । रातिर्दानं । तस्य संभृत्यो देवपत्न्यस्य यजनं रासन अस्मभ्यं प्रयच्छेयुः । अच  
मा कृथा इति पूर्वेषा संबन्धः । किंच मयोभुवः सुखस्य भावका अर्वतो गच्छन्तो देवा नोऽस्मान्नि पांतु । नितरां  
पालयतु । परिज्मा परितो गन्ता वातो वायुर्वृष्टिं वृष्टिलक्षणमुदकं ददातु । प्रयच्छत्वस्मभ्यं ॥



नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्चुतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।

यच्छंतु चंद्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

नू। रोदसी इति। अभिष्टुते इत्यभिऽस्तुते। वसिष्ठैः। चतुऽवानः। वरुणः। मित्रः। अग्निः।

यच्छंतु। चंद्राः। उपऽमं। नः। अर्कं। यूयं। पात। स्वस्तिभिः। सदा। नः ॥ ७ ॥

पूर्वं व्याख्यातयं । अचरार्थस्तु । आवापृथिव्यौ वरुणादयो देवाश्च वसिष्ठैरक्षाभिरभिष्टुता भवन्ति । एवंभूता आह्लादका देवाः सर्वोत्कृष्टमत्तमसम्भं ददतु । अस्मिन्सूक्ते प्रतिपादिताः सर्वे देवा यूयं कक्ष्याणैरक्षा न्वर्षदा पालयत ॥ ७ ॥

प्रातरभिमिति सप्तर्चमष्टमं सूक्तं । अचानुक्रमणिका । प्रातर्भागं जगत्वाद्या जिंगोक्तदेवतांत्योपस्येति । वसिष्ठ ऋषिः । आद्या जगती शिष्टास्त्रिष्टुभः । आवापीन्द्रादिदेवत्या द्वितीयाद्याः पंच भगदेवत्याः सप्तम्युचो-  
देवत्या । अच केचिदाहुः । निवेष्टुकामो रोगार्तो भगसूक्तं जपेत्सदा । निवेशं विशति क्षिप्रं रोगैश्च परिमुच्यते । ऋषि० २. २५. इति ॥

प्रातरमिं प्रातरिंद्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।

प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ १ ॥

प्रातः। अमिं। प्रातः। इंद्रं। हवामहे। प्रातः। मित्रावरुणा। प्रातः। अश्विना।

प्रातः। भगं। पूषणं। ब्रह्मणः। पतिं। प्रातरिति। सोमं। उत। रुद्रं। हुवेम ॥ १ ॥

प्रातरुषःकाक्षऽमिं देवं हवामहे । ययं क्षीतार आहुयानः । तथा प्रातःकाल इंद्रं हवामहे । तथा मित्रावरुणा मित्रावरुणावहोरात्राभिमानिनी देवी प्रातर्वयं हवामहे । तथा अश्विनी देवानां भियर्जा प्रातर्वयं हवामहे । तथा प्रातर्भगं देवं पूषणं देवं ब्रह्मणस्पतिं मंचाभिमानिनमेतत्संज्ञकं आहुयामः । तथा प्रातः सोम-  
मेतत्संज्ञकं देवमुतापि च रुद्रं देवं च ऊवेम । आहुयामः ॥

प्रातर्जितं भगमुयं हुवेम वयं पुचमदितेयो विधर्ता ।

आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥

प्रातःऽजितं। भगं। उयं। हुवेम। वयं। पुचं। अदितेः। यः। विऽधर्ता।

आध्रः। चित्। यं। मन्यमानः। तुरः। चित्। राजा। चित्। यं। भगं। भक्षि। इति। आह ॥ २ ॥

यो भगो देवो विधर्ता विश्वस्य जगतो धारको जितं जयशीलमुयमुग्र्यमदितेः पुचं भगं देवं प्रातःकाल एव वयं ऊवेम । आहुयामः । आध्रश्चिद्रिद्रोऽपि क्षीता यं भगं देवं मन्यमानः सुवन् भगं भजनीयं धनं भवि भज विभज मद्भ्यं देहीत्याह ब्रवीति । तुरश्चित् । तुरतिर्गतिकर्मा । प्राप्नोऽपि राजा चित् समर्थोऽपि जनो यं भगं देवं भजनीयं धनं मद्भ्यं देहीत्याह । तं भगं प्रातरेव वयं ऊवेमेति संबंधः ॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।

भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवंतः स्याम ॥ ३ ॥

भगं। प्रणेतर्भगं। सत्यऽराधः। भगं। इमां। धियं। उत। अवा। ददत्। नः।

भगं। प्र। नः। जनय। गोभिः। अश्वैः। भगं। प्र। नृभिः। नृवंतः। स्याम ॥ ३ ॥

हे भग देव त्वं प्रथिता प्रकीर्ण्य नेतासि । तादृशं प्रथितं भग त्वं सत्वरारधः सत्यधनोऽसि । तादृशं सत्वरारधो हे भग त्वं नोऽस्मान् ददत कामान्नयच्छन्निमामसादीयां धियं सुतिमुदव । उद्रच । सफलयुक्तां कुब । हे भग त्वं गोमिरक्षेन्न नोऽस्मान् प्र जनय । प्रोद्धूतान् कुब । हे भग त्वत्प्रसादाद्वयं त्रिभिर्नैतुभिः पुत्रादिभिर्भुवन्तो मनुष्यवन्तः प्र स्याम । प्रमवेम ॥

उ॒ते॒दा॒नीं॒ भ॒ग॒वंतः॒ स्या॒मो॒त॒ प्र॒पि॒त्व॒ उ॒त॒ म॒ध्ये॒ अ॒ह्ना॑ ।

उ॒तो॒दि॒ता॒ म॒घ॒व॒न्सूर्य॑स्य व॒यं॒ दे॒वा॒नां॑ सु॒म॒त्रौ॑ स्या॒म ॥ ४ ॥

उ॒त॒ । इ॒दा॒नीं॑ । भ॒ग॒ऽवंतः॑ । स्या॒म॒ । उ॒त॒ । प्र॒ऽपि॒त्व॑ । उ॒त॒ । म॒ध्ये॑ । अ॒ह्ना॑ ।

उ॒त॒ । उ॒त्ऽइ॒ता॒ । म॒घ॒ऽव॒न् । सूर्य॑स्य । व॒यं॒ । दे॒वा॒नां॑ । सु॒ऽम॒त्रौ॑ । स्या॒म ॥ ४ ॥

उतापि चेदानीं वयं भगवंतः स्याम । हे भग भगेन त्वया स्वामिना युक्ता भवेम । यद्वा । भगवंतो धनवंतः स्याम । उतापि च प्रपित्वेऽह्नां प्राप्ते पूर्वाह्ने भगवंतः स्याम । उतापि चाह्नां दिवसानां मध्ये मध्याह्ने भगवंतः स्याम । उतापि च हे मघवन्धनवन्भग देव सूर्यस्य सर्वस्य प्रेरकस्य देवस्योदितोदितानुदये सति वयं त्वदनुग्रहाद्देवानामिन्द्रादीनां सुमतावनुग्रहयुक्ता स्याम । भवेम ॥

भ॒ग॒ ए॒व॒ भ॒ग॒वाँ॑ अ॒स्तु॒ दे॒वा॒स्तेन॑ व॒यं॒ भ॒ग॒वंतः॒ स्या॒म ।

तं॒ त्वा॑ भ॒ग॒ सर्व॑ इ॒ज्जो॑हवीति॒ स॒ नो॑ भ॒ग॒ पुर॑ए॒ता भ॑वे॒ह ॥ ५ ॥

भ॒गः॑ । ए॒व॒ । भ॒ग॒ऽवा॒न् । अ॒स्तु॒ । दे॒वाः॒ । तेन॑ । व॒यं॒ । भ॒ग॒ऽवंतः॑ । स्या॒म॒ ।

तं॒ । त्वा॑ । भ॒ग॒ । सर्वः॑ । इ॒त् । जो॑ह॒वीति॑ । सः॒ । नः॑ । भ॒ग॒ । पुरः॑ऽए॒ता । भ॒व॒ । इ॒ह ॥ ५ ॥

हे देवाः भगो देव एव भगवान् धनवानस्तु । तेन भगेन देवेन धनेन वा वयं भगवंतः स्याम । धनवंतो भवेम । हे भग तं प्रसिद्धं त्वा त्वां सर्वं इत्सर्व एव जनो जोहवीति । भृशं पुनःपुनर्वाङ्मयति । हे भग देव स त्वमिहास्मिन्ने नोऽस्माकं पुरएता पुरोगता भव ॥

स॒म॒ध्व॒रा॒योष॑सो॒ नम॑न्त॒ दधि॑क्रा॒र्वेव॒ शुच॑ये प॒दाय॑ ।

अ॒र्वा॒ची॒नं॒ वसु॑विदं॒ भ॒गं॒ नो॒ रथ॑मि॒वाश्वा॑ वा॒जिन॒ आ॒ वह॑न्तु ॥ ६ ॥

सं॒ । अ॒ध्व॒रा॒य॑ । उ॒षसः॑ । न॒म॒न्त॒ । द॒धि॒क्रा॒वा॒ऽइ॒व॒ । शुच॑ये । प॒दाय॑ ।

अ॒र्वा॒ची॒नं॒ । वसु॑ऽवि॒दं॒ । भ॒गं॒ । नः॑ । रथं॑ऽइ॒व॒ । अ॒श्वाः॑ । वा॒जिनः॑ । आ॒ । वह॑न्तु ॥ ६ ॥

शुचये जुडाथ गमनयोग्याथ पदाय स्नानाय दधिक्राविवाशो यथा तथोपस उषोदेवता अध्वरायास्सदीयाथ यागाय सं नमन्त । संगच्छन्तु । वाजिनो वेगवंतोऽश्वा रथमिव रथं यथा तथोषसोऽर्वाचीनमसदभिसुखं वसुविदं धनस्य प्रापकं भगं देवं नोऽस्मान्मत्वा वहन्तु । आनयन्तु ॥

अ॒श्वा॒व॒ती॒गो॒म॒तीर्न॑ उ॒षा॑सो॒ वी॒र॒व॒तीः॒ स॒द॒मु॒च्छ॑न्तु भ॒द्राः॑ ।

घृ॒तं॒ दु॒हा॒ना॒ वि॒श्व॒तः॒ प्र॒पी॒ता॒ यू॒यं॒ पा॒त॒ स्व॒स्ति॒भिः॒ स॒दा॒ नः॑ ॥ ७ ॥

अ॒श्व॑ऽव॒तीः॑ । गो॑ऽम॒तीः॑ । नः॑ । उ॒पसः॑ । वी॒र॑ऽव॒तीः॑ । स॒द॒ । उ॒च्छ॑न्तु । भ॒द्राः॑ ।

घृ॒तं॒ । दु॒हा॒नाः॑ । वि॒श्व॒तः॑ । प्र॒ऽपी॒ताः॑ । यू॒यं॒ । पा॒त॒ । स्व॒स्ति॑ऽभिः॒ । स॒दा॒ । नः॑ ॥ ७ ॥

भद्रा भद्रनीया उपस उपोदेवता अश्ववतीरथवत्योऽश्वसहिताः सत्यो गोमतीर्गोमत्यश्च वीरवतीर्वी-



रवत्यः पुत्रादिजनोपेताश्च भवन्त्यो नोऽस्मभ्यं सदा सर्वदोच्छंतु । व्युच्छंतु । निशं तमो विवासयंतु । कीदृशः । घृतमुदकं दुहाणाः सिंचन्त्यो विश्वतः सर्वैर्गुणैः प्रपीताः प्रवृष्टाः । एवंभूता उपसस्त्रम उच्छंतु । अस्मिन् सुक्ते प्रतिपादिता हे सर्वे देवाः धूयं नोऽस्मान् सदा सर्वदा स्वस्तिभिः कृच्छाणिः पात । पाकयत ॥ ८॥

प्र ब्रह्माण इति षट्च नवमं सूक्तं वसिष्ठस्त्वार्यं चैष्टुमं विश्वदेवं । अचानुकांतं । प्र ब्रह्माणः वद्विष्टदेवं त्वात् । सूक्तविनियोगो क्षैणिकः ॥ तृतीये ऋद्धोमे प्रचमशस्त्रे प्र ब्रह्माण इति विश्वदेवश्रुचः । सूचितं च । प्र ब्रह्माणो अंगिरसो नचंत सरस्वतीं देवयंतो हवति । आ० ८. ११. इति ॥

प्र ब्रह्माणो अंगिरसो नक्षंत प्र क्रंदनुर्नभन्यस्य वेतु ।

प्र धेनवं उदप्रुतो नवंत युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ॥ १॥

प्र । ब्रह्माणः । अंगिरसः । नक्षंत । प्र । क्रंदनुः । नभन्यस्य । वेतु ।

प्र । धेनवः । उदऽप्रुतः । नवंत । युज्याता । अद्री इति । अध्वरस्य । पेशः ॥ १॥

ब्रह्माणोऽंगिरस एतन्नामका ऋषयः प्र नचंत । सर्वत्र व्याभ्रवंतु । क्रंदनुः पर्जन्यो नभन्यस्य क्षौचस्यास्मदीयं क्षौचं प्र वेतु । प्रकर्षणेच्छतु । धेनवः प्रोषयिष्यो नय उदप्रुत उदकानि सिंचन्त्यः प्र नवंत । सर्पंतु । अद्री आद्रियंती पत्नीयजमानावध्वरस्य यज्ञस्य पेशो रूपं युज्यातां । योजयेतां ॥

सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्त्वा सुते हरितो रोहितश्च ।

ये वा सद्यन्नरूपा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ॥ २॥

सुऽगः । ते । अग्ने । सनऽवित्तः । अध्वा । युक्त्वा । सुते । हरितः । रोहितः । च ।

ये । वा । सद्यन् । अरूपाः । वीरऽवाहः । हुवे । देवानां । जनिमानि । सत्तः ॥ २॥

हे अग्ने सनवित्तः सनाधिरकालादारभ्य लब्धस्ते त्वदीयोऽध्वा मार्गः सुगः सुष्ठु गंतव्यो भवतु । किंच हरितः श्यामवर्णा रोहितश्च लोहितवर्णाश्चैतुभयविधा ये वा ये च ते त्वदीया अन्वाः सद्यन्न मद्यन्नि सद्यन्नगृहे वीरवाहो वीरं शूरं त्वां वहंतोऽरूपा आरोचमाना भवन्ति तांश्च त्वं सु युत्स । त्वदीये रथं मुदु सद्योजय । निसत्तो यज्ञगृहे निषण्णोऽहं होता सन् देवानामिन्द्रादीनां जनिमा जनान् संधाम्जवे । आह्वयामि ॥

समु वो यज्ञं महयन्नमोभिः प्र होता मंद्रो रिरिच उपाके ।

यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियांमरमतिं ववृत्याः ॥ ३॥

सं । ऊं इति । वः । यज्ञं । महयन् । नमऽभिः । प्र । होता । मंद्रः । रिरिचे । उपाके ।

यजस्व । सु । पुरुऽअनीक । देवान् । आ । यज्ञियां । अरमतिं । ववृत्याः ॥ ३॥

हे देवाः वो युष्माकं यज्ञं नमोभिर्नमस्कारैर्युक्ता इमे क्षीतारो वा यजमाना वा सं महयन् । सम्यक् पूजयन्ति । उ इति पुरकः । मंद्रः क्षुतिशील उपाकेऽस्माकं समीपे स्थितोऽस्मदीयो होता प्र रिरिचे । अग्नेभ्यो होतृभ्योऽतिरिच्यते । हे यजमान त्वं देवान् सु सुष्ठु यजस्व । हे पुर्वणीक वज्रतेजस्विन्नपे त्वं यज्ञियां यज्ञार्हा-मरमतिं भूमिमा ववृत्याः । आनर्तय । तथा च निगमांतरे । आ नो महीमरमतिं सजोपाः । अ० ५. ४३. ६. इति ॥

यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।

सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमिर्यत्यै ॥ ४॥

यदा । वीरस्य । रेवतः । दुरोणे । स्योनऽशीः । अतिथिः । आऽचिकेतत् ।  
सुऽग्रीतः । अग्निः । सुऽधितः । दमे । आ । सः । विशे । दाति । वार्यं । इयत्यै ॥ ४ ॥

अतिथिः सर्वेषामतिथिभूतोऽभिर्यदा वीरस्य वीरकस्य सोचाणां प्रेरयितु रेवतो हविष्मतो यजमानस्य  
दुरोणे गृहे स्योनशीः सुखेन शयनीय आचिकेतत् प्रज्ञायते अग्निर्दमे यज्ञगृहे सुधितः । आकारधार्यं । सुनि-  
हितश्च सुष्ठु निहितः सन् यदा सुग्रीतो भवति तदा सोऽभिरियत्वा उपगच्छत्यै विशे प्रजायै वार्यं वरणीयं  
धनं दाति । ददाति । प्रयच्छति ॥

इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।  
आ नक्ता वह्निः सदतामुषासोऽशन्ता मित्रावरुणा यजेह ॥ ५ ॥  
इमं । नः । अग्ने । अध्वरं । जुषस्व । मरुत्ऽसु । इन्द्रे । यशसं । कृधि । नः ।  
आ । नक्ता । वह्निः । सदतां । उषसां । उशन्तां । मित्रावरुणा । यज । इह ॥ ५ ॥

हे अग्ने त्वं नोऽस्मादीयमिममध्वर यज्ञं जुषस्व । सेवस्व । किंच मरुत्स्विन्द्रस्य सखिभूतेषु देवेष्विन्द्रे च  
यशसं यशोयुक्तं हविर्लक्षणात्प्रवतं नोऽस्मादीयं यज्ञं हे अग्ने त्वं कृधि । कुरु । स्थापयेत्यर्थः । तथा नक्ता रात्रि-  
योषसा दिवसश्च । अहर्निश इत्यर्थः । वह्निर्वह्निषि कुशमय आ सदतां । उपविशतां । अपि च हे अग्ने उशन्तो-  
शन्तौ यज्ञमिच्छन्तौ मित्रावरुणा मित्रावरुणां देवाविहासिन्यज्ञे यज । पूजय ॥

एवामिं सहस्यं वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्यस्य स्तौत् ।  
इषं रयिं पप्रथद्वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥  
एव । अग्निं । सहस्यं । वसिष्ठः । रायऽकामः । विश्वऽप्स्यस्य । स्तौत् ।  
इषं । रयिं । पप्रथत् । वाजं । अस्मे इति । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ६ ॥

वसिष्ठ एतदाख्य ऋषी रायस्कामः पश्चादिधनानीच्छन्नेवैवमुक्तप्रकारेण सहस्यं । सहो वलं । तस्य पुत्रं ।  
तद्वतमिति वा । अपिं देवं विश्वप्स्यस्य पुरुषस्य धनस्य लाभाय स्तौत् । एवंभूतोऽग्निरस्मै अस्मभ्यमिषमन्नं  
रयिं धनं वाजं वलं च पप्रथत् । प्रथयतु । विस्तारयतु । ददात्वित्यर्थः । अस्मिन्सूक्ते प्रतिपादिताः सर्वे देवाः  
यूयमस्मान्कन्यार्णः सर्वदा पालयत ॥ ॥ ६ ॥

प्र वो यज्ञेष्विति पचर्चं दशम सूक्तं वसिष्ठस्यापि त्रैष्टुभं वैश्वदेवं । प्र वः पंचेत्यनुक्रांतं ॥ सूक्तविनियोगो  
लौकिकः ॥ प्रथमे कंदोमं प्रउगशस्ते प्र वो यज्ञेष्विति वैश्वदेवसूचः । सूचितं च । प्र वो यज्ञेषु देवयंतो अर्चन्  
प्र जोदसा धायसा सस्र एपेति प्रउगं । आ० ८. ९. इति ॥

प्र वो यज्ञेषु देवयंतो अर्चन्द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै ।  
येषां ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्वग्वियंति वनिनो न शाखाः ॥ ७ ॥  
प्र । वः । यज्ञेषु । देवऽयंतः । अर्चन् । द्यावा । नमऽभिः । पृथिवी इति । इषध्यै ।  
येषां । ब्रह्माणि । असमानि । विप्राः । विष्वक् । विऽयंति । वनिनः । न । शाखाः ॥ ७ ॥

देवयंतो देवान्कामयमाना विप्रा यज्ञेषु नमोभिः स्तुतिभिर्हविर्भवा वो युष्मानिषध्या अभिप्राप्तुं प्रार्चन् ।  
प्रार्थयति । प्रकर्षेण लुपन्ति । द्यावा दिवं च पृथिवी भूमिं च प्रस्तुवन्ति । येषां विप्राणां मेधाविनां ब्रह्माणि



सोचाणि वनिनो न शाखा वृक्षश्च शाखा इव विष्वन्विश्वतो विर्यन्ति विशेषेण गच्छन्ति । ते विप्राः प्रार्थयन्ति  
पूर्वेण संबन्धः ॥

प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिरुद्यच्छ्वं समनसो घृताचीः ।

स्तृणीत बर्हिर्धराय साधूर्धा शोचीषि देवयून्स्थुः ॥ २ ॥

प्र । यज्ञः । एतु । हेत्वः । न । सप्तिः । उत् । यच्छ्वं । सऽमनसः । घृताचीः ।

स्तृणीत । बर्हिः । अधराय । साधु । ऊर्धा । शोचीषि । देवऽयूनि । अस्थुः ॥ २ ॥

अयमस्मदीयो यज्ञः प्रेतु । देवान्प्रति गच्छतु । तच्च वृष्टांतः । हेत्वो न सप्तिः शीघ्रगाम्यश्चो यथा तद्वत् ।  
हे अत्विजः सर्वे यूयं समनसः संहृशमनस्काः संतो घृताचीः सुच उद्यच्छ्वं । हस्त उद्यस्य धारयत । तथाध-  
राय यागं कर्तुं साधु साधकं बर्हिः कुशमयं स्तृणीत । वेदां कादयत । हे अग्ने देवयूनि देवान्कामयमानानि  
त्वदीयानि शोचीष्यचीष्यूर्ध्वोर्ध्वमुत्तान्यस्थुः । तिष्ठंतु ॥

आ पुत्रासो न मातरं विभृचाः सानौ देवासो बर्हिषः सदंतु ।

आ विश्वाचीं विदुथ्यामनक्तमे मा नो देवताता मृधस्कः ॥ ३ ॥

आ । पुत्रासः । न । मातरं । विऽभृचाः । सानौ । देवासः । बर्हिषः । सदंतु ।

आ । विश्वाचीं । विदुथ्यां । अनक्तु । अग्ने । मा । नः । देवऽताता । मृधः । करिति कः ॥ ३ ॥

मातरं जननीं विभृचा विशेषेण भर्तव्याः पुत्रासो न पुत्रा इव तद्वदस्माकं भरणोया देवासो देवा बर्हिषः  
कुशमयस्य वेद्यामास्तीर्णस्य सानावुव्रते देश आ सदंतु । उपविशंतु । हे अग्ने विदुथ्यां यज्ञयोग्यां त्वदीयां  
ज्वालां विश्वाची । विश्वं सर्वं हविरंचति गच्छतीति विश्वाची जुहुः । आनक्तु । आ समंतात्संचतु । देवताता  
देवतातां युष्टे नोऽस्माकं मृधो हिंसकान् हे अग्ने त्वं मा कः । मा कार्षीः । यज्ञवाचको देवतातिशब्दोऽत्र  
संयामे वर्तते ॥

ते सीषपंत जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः ।

ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गंतन समनसो यतिष्ठ ॥ ४ ॥

ते । सीषपंत । जोषं । आ । यजत्राः । ऋतस्य । धाराः । सुऽदुघाः । दुहानाः ।

ज्येष्ठं । वः । अद्य । महः । आ । वसूनां । आ । गंतन । सऽमनसः । यति । स्थ ॥ ४ ॥

यजत्रा यजनीयास्त इन्द्रादयो देवा अतस्त्र्योदकस्य सुदुघाः सुखेन दोग्धुं शक्या धारा दुहाना वर्षतो  
जोषं पर्याप्तं यथा भवति तथा आ सीषपंत । सपतिः परिचरणार्थः । कुतिभिरा समंतात्पर्यचीचरन् । अस्मा-  
न्परिचरणं कुर्वंतु । स्त्रीकुर्वन्त्विति यावत् । अवास्मिन्दिने हे देवाः वसूनां धनानां मध्ये ज्येष्ठं अद्य वो युष्मदीयं  
महो महनीयं धनमा गच्छतु । यूयमपि समनसकुल्यमतयः संत आ गंतन । आगच्छत । हे देवाः यूयं ---  
आगंतनेति संबन्धः ॥

एवा नो अग्ने विष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्काः ।

राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

एव । नः । अग्ने । विष्वा । दशस्य । त्वया । वयं । सहसाऽवन । आस्काः ।

राया । युजा । सधऽमादः । अरिष्टाः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ५ ॥

हे अपि एवेवं सुतस्त्वं विभु प्रजासु मध्ये नोऽस्मान्ममा दशस्य । धनमभिप्रयच्छ । हे सहस्रावन्ममवस्य  
स्वयास्का अस्मन्मा वयं युवा नित्ययुक्ता राया धनेन सधमादः सह मायंतोऽरिष्टा अहिंसिता भवेम ।  
अस्मिन्सूक्ते प्रतिपादिताः सर्वे देवाः यूयं नोऽस्मान्ममसाणीः सर्वदा पालयत ॥ १० ॥

दधिकां च इति पंचचमेकादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं दधिकाख्यदेवताकं । आया जगती सा तु दधिजादि-  
विंगोक्तदेवताका शिष्टाक्षतसस्त्रिष्टुभः । अनुकम्यते हि । दधिकां दधिक् जगत्याया विंगोक्तदेवतीति ॥ यतो  
विनियोगः ॥

दधिकां वः प्रथममश्विनोषसममिं समिद्धं भगमूतये हुवे ।

इंद्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान्धावापृथिवी अपः स्वः ॥ १ ॥

दधिऽक्रां । वः । प्रथमं । अश्विना । उषसं । अमिं । संऽइद्धं । भगं । ऊतये । हुवे ।

इंद्रं । विष्णुं । पूषणं । ब्रह्मणः । पतिं । आदित्यान् । धावापृथिवी इति । अपः ।

स्वऽरिति स्वः ॥ १ ॥

हे सोतारः वो युष्माकमूतये रचणाय प्रथमं दधिकामश्वामिमानिनीं देवतां ऊवे । आह्वयामि । ततो  
ऽश्विनाश्विदेवापुषसमुषोदेवतां च समिद्धं सम्यग्दीप्तममिं च भगमेतदाख्यं देवं चाह्वयामि । इंद्रं विष्णुं पूषणं  
च ब्रह्मणस्पतिमादित्यान् धावापृथिवी अप उद-देवताः स्वः सूर्यमित्येतादिवानाह्वयामि ॥

दधिकामु नमसा बोधयंत उदीराणा यज्ञमुपप्रयंतः ।

इळां देवीं बर्हिषि सादयंतोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ॥ २ ॥

दधिऽक्रां । ऊं इति । नमसा । बोधयंतः । उत्ऽईराणाः । यज्ञं । उपऽप्रयंतः ।

इळां । देवीं । बर्हिषि । सादयंतः । अश्विना । विप्रा । सुऽहवा । हुवेम ॥ २ ॥

दधिकामेतन्नामकमश्वविशेषं देवं नमसा सोत्रेण बोधयंतः प्रज्ञापयंत उदीराणाः प्रेरयंतो यज्ञं यागसु-  
पप्रयंत उपक्रममाणा वयं बर्हिषीळां हवोरूपां देवीं सादयंत आस्थापयंतः सुहवा शोभनाङ्गानौ विप्रा विप्रौ  
मेधाविनाश्विनाश्विनौ देवौ ऊवेम । आह्वयाम । उ इति पुरणः ॥

दधिकावाणं बुबुधानो अमिसुपं ब्रुव उषसं सूर्यं गां ।

ब्रधं मैश्वतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद्वुरिता यावयंतु ॥ ३ ॥

दधिऽक्रावाणं । बुबुधानः । अमिं । उप । ब्रुवे । उषसं । सूर्यं । गां ।

ब्रधं । मैश्वतोः । वरुणस्य । बभ्रुं । ते । विश्वा । अस्मत् । दुऽइता । यवयंतु ॥ ३ ॥

दधिकावाणमश्वविशेषं बुबुधानः सोत्रेण बोधयन्मममिं देवमुप ब्रुवे । उपसूमी । तथा चोषसमुषोदे-  
वता सूर्यं सर्वस्य प्रेरकं देवं गां भूमिं । वाग्देवतां वा । एवंभूतादिवानहमुपसूमी । मैश्वतोः । मन्यमानान्  
सुवतो जनांश्चितयते जानातीति यदाभिमन्यमानांश्चातयते नाशयतीति मंशतुः । तस्य वरुणस्य ब्रधं महारं  
बभ्रुं पिंगलवर्णमश्वं तस्यानयनार्थमहमुप ब्रुवे । ते देवा अस्मदस्मत्तो विश्वा विश्वानि सर्वाणि दुरिता दुरि-  
तानि पापानि यवयंतु । पृथक्कुर्वंतु ॥

दधिकावां प्रथमो वाज्यर्वाये रथानां भवन्ति प्रजानन् ।

संविदान उषसा सूर्येणादित्येभिर्वसुभिर्गिरोभिः ॥ ४ ॥



दुधिऽकावा । प्रथमः । वाजी । अर्वा । अये । रथानां । भवति । प्रऽजानन् ।  
संऽविदानः । उपसा । सूर्येण । आदित्येभिः । यसुऽभिः । अंगिरऽभिः ॥ ४ ॥

प्रथमः सर्वेषामस्यानां मुखो वाजी शीघ्रगाम्यर्वा यमनशीलो दधिक्रावाश्वरूपो देवः प्रजानन् रथसंघो-  
जनीयांसांसागमनधिशाय ज्ञातवानि सम्यग्जानन् रथानामपि प्रमुखो भवति । कीदृशोऽयः । उपसोषोदे-  
वतया सूर्येण सर्वस्य प्रेरणेन देवैर्नादित्येभिरादित्यैश्च यमुनिनां गिरीभिर्देवैः सह कोतकेर्षविभिश्च संविदानः  
सम्यग्जानन् । ऐकमत्वं प्राप्त इत्यर्थः ॥

आ नो दाधक्राः पथ्यामनकृतस्य पंचाभन्वेतवा उ ।  
प्रुणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः प्रुखंतु विधे महिषा अमूराः ॥ ५ ॥  
आ । नः । दुधिऽकाः । पथ्या । अनक्तु । कृतस्य । पंचा । अनुऽएतवै । ऊं इति ।  
प्रुणोतु । नः । दैव्यं । शर्धः । अग्निः । प्रुखंतु । विधे । महिषाः । अमूराः ॥ ५ ॥

दधिका चश्वरूपो देव अतस्त पथस्य पंचा पंचानं मार्गमन्यतवा अनुगतं प्रवृत्ताणां नोऽस्यात्वं यथा  
पदयोभापक्तु । उदकेनासिंचतु । उ इति पुरः । दैव्यं शर्धो देवसंबन्धि यत्तमोदुगुपोऽपिनोऽसदीयं हवं  
प्रुणोतु । अमूरा अमूढा महिषा महान्तो विधे सर्वे देवा चश्वदीयं हवं प्रुखंतु ॥ ॥ ५१ ॥

आ देवो यात्विति चतुर्थं द्वादशं सूक्तं वसिष्ठस्य सवितुदेवतात्वं चिह्नम् । आ देवचतुष्कं सावित्रमि-  
त्यनुष्ठातं ॥ अन्ते दशरात्रे चतुर्थेऽहनि वैश्वदेवस्य इदं सावित्रमिविधानं । सूच्यति हि । चतुर्थेऽह्न्या देवो  
यातु --- । आ० ८. ८. ॥ --- इतिषा वपानुवाक्या । सूचितं च । आ देवो यातु सविता सुरतः स चा नो देवः  
सविता सहावा । आ० ३. ७. इति ॥ अश्वमेधेऽनुसवनं तिस्रः सावित्र्य इष्टयः । तत्र द्वितीयस्याभिष्टौ याज्येयं ।  
सूचितं च । य इमा विद्या वातान्या देवो यातु । आ० १०. ६. इति ॥

आ देवो यातु सविता सुरतोऽंतरिक्षप्रा वहमानो अग्नेः ।  
हस्ते दधानो नर्या पुरुषि निवेश्यञ्च प्रसुवञ्च भूम ॥ १ ॥  
आ । देवः । यातु । सविता । सुऽरतः । अंतरिक्षऽप्राः । वहमानः । अग्नेः ।  
हस्ते । दधानः । नर्या । पुरुषि । निऽवेश्यन् । च । प्रऽसुवन् । च । भूम ॥ १ ॥

सुरतः शोभनरत्नोपेतोऽंतरिक्षप्राः स्वकीयैर्न तेषांतरिक्षस्य पुरयिताभिः स्वकीयैर्वह्निर्वहमान उद्यमानः  
सविता सर्वस्य प्रेरको देव आ यातु । आगच्छतु । कीदृशः । नर्या नर्याणि मनुष्यहितानि पुरुषि यज्ञनि  
धनानि हस्ते पाणी दधानो दातुं धारयन् भूम भूतानि निवेश्यञ्च रात्रिषु से ज्ञानि आपयञ्च प्रसुवञ्चाहःसु  
प्रेरयञ्च । एवंभूतः सविता देव आ यातु ॥

उदस्य बाहू शिथिरा बृहता हिरण्यया दिवो अतां अनदां ।  
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्यां ॥ २ ॥  
उत् । अस्य । बाहू इति । शिथिरा । बृहता । हिरण्यया । दिवः । अतान् । अनदां ।  
नूनं । सः । अस्य । महिमा । पनिष्ट । सूरः । चित् । अस्मै । अनु । दात् । अपस्यां ॥ २ ॥

शिथिरा शिथिली दानार्थं प्रसारिती बृहता बृहती महान्ती हिरण्यया हिरण्ययो सुवर्गमयावका

सवितुः संबन्धिनौ बाहू हस्तौ दिवोऽन्तरिक्षांतात् पर्यन्तानुदनष्टां । ऊर्ध्वौ संतौ व्याभुवतां । नूनमवास्तेह-  
भूतस्य सवितुः स तादृशो महिमा महत्त्वं पणिष्ट । अस्माभिः स्तूयते । सूरचित्सूर्योऽप्यसौ सविचेऽपस्त्रां  
कर्मेच्छामनु दात् । अनुददातु ॥

साविचे पशौ पुरोडाशस्य हविषोः स घा न इति द्वे अनुवाक्ये । सूत्रं पूर्वमुदाहृतं ॥ आश्वमेधिकीषु  
साविचेष्टिषु तृतीयस्यामिष्टाविमे एव याज्यानुवाक्ये । सूचितं च । स घा नो देवः सविता सहावेति द्वे  
। आ० १०. ६. इति ॥

स घा नो देवः सविता सहावा साविष्वसुपतिर्वसूनि ।

विश्रयमाणो अमर्तिमुरुचीं मर्तभोजनमध रासते नः ॥ ३ ॥

सः । घ । नः । देवः । सविता । सहऽवा । आ । साविषत् । वसुऽपतिः । वसूनि ।

विऽश्रयमाणः । अमर्ति । उरुचीं । मर्तऽभोजनं । अध । रासते । नः ॥ ३ ॥

सहावा । तेजोऽन्तराष्ट्रमिमापुक् तेषो यस्य सः । वसुपतिर्धनानां पालकः स सविता देवो नोऽस्मभ्यं  
वसूनि धनान्या साविषत् । आ समन्तात्प्रेरयति । धेति पूरणः । स सविता देव उरुचीं विश्वीर्षेणमनाममर्तिं  
रूपं । दीप्तिमित्यर्थः । विश्रयमाणो निषेवमाणः सन्नधाधुना नोऽस्मभ्यं मर्तभोजनं मनुष्याणां भोगयोग्यं धनं  
रासते ददातु ॥

इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीकते सुपाणिं ।

चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

इमाः । गिरः । सवितारं । सुऽजिह्वं । पूर्णऽगभस्तिं । ईकते । सुऽपाणिं ।

चित्रं । वयः । बृहत् । अस्मे इति । दधातु । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ४ ॥

इमा ईदृग्भूता गिरः । गृणन्ति कुर्वन्तीति गिरः स्तोत्र्यः प्रजाः । यद्वा । इमाः कुतिरूपा वाचः । सुजिह्वं  
शोभनजिह्वं । शोभनवाचमित्यर्थः । पूर्णगभस्तिं संपूर्णधनहस्तं सवितारं देवमीकते । कुर्वन्ति । स च सविता  
चित्रं चायनीयं बृहन्नहदयोऽन्नमस्ये अस्मासु दधातु । यद्वा । अस्मे अस्मभ्यं प्रयच्छतु । हे सवितुप्रमुखा  
देवाः यूयं नोऽस्यान् स्वस्तिभिः कल्याणैः सदा सर्वदा पात । पालयत ॥ ॥ १२ ॥

इमा रुद्रायेति चतुर्ध्वं चयोदशं मूर्तं वसिष्ठस्यार्थं रुद्रदेवताकं । अन्त्या चिष्टपु शिष्टा जगत्स्यः । तथा  
चानुक्रमणिका । इमा रौद्रं चिष्टवंतमिति ॥ शूलगवादिषु रौद्रयज्ञेष्वनेन मूर्तिनोदीची दिगुपस्थेया । सूच्यते  
हि । इमा रुद्राय स्थिरधन्वने इति सर्वरुद्रयज्ञेषु दिशामुपस्थानं । आ० मृ० ४. ९. २१. इति ॥

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रैषवे देवाय स्वधावे ।

अषाढ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ॥ १ ॥

इमाः । रुद्राय । स्थिरऽधन्वने । गिरः । क्षिप्रऽईषवे । देवाय । स्वधाऽवे ।

अषाढ्हाय । सहमानाय । वेधसे । तिग्मऽआयुधाय । भरत । शृणोतु । नः ॥ १ ॥

हे अश्वदीयाः स्तोतारः यूयमिमा गिरः कुती रुद्रायितन्नामकाय देवाय भरत । धारयत । कीदृशाय ।  
स्थिरधन्वने दृढधनुक्ताय क्षिप्रैषवे श्रीघ्नगामिवाणाय स्वधावेऽन्नवतेऽषाढ्हाय केनाप्यनभिभूताय सहमानाय  
शृणुणामभिभवित्वे वेधसे विधाचे तिग्मायुधाय तीक्ष्णास्त्राय । एवंभूताय रुद्राय कुतीर्भरत । स च रुद्रो  
नोऽश्वदीयाः कुतीः शृणोतु ॥



स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।

अवन्वतीरुप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव ॥२॥

सः । हि । क्षयेण । क्षम्यस्य । जन्मनः । सांऽराज्येन । दिव्यस्य । चेतति ।

अवन् । अन्वतीः । उप । नः । दुरः । चर । अनमीवः । रुद्र । जासु । नः । भव ॥२॥

स हि स खलु रुद्रो देवः क्षम्यस्य । साम्राज्यां पृथिव्यां भवः । तस्य जन्मनो जनस्य क्षयेक्षयेण चेतति । प्रज्ञायते । दिव्यस्य जनस्य च साम्राज्येनैश्वर्येण प्रज्ञायते । शेषः प्रत्यक्षतः । हे रुद्र देव त्वं चावन्तोस्त्वां सोऽक्षर्ययन्तीनोऽक्षदीयाः प्रजा अवन पातयन् दुरो दुर्याण्यक्षदीयानि गृहाण्युप चर । उपगच्छ । किंच त्वं नोऽक्षदीयासु प्रजास्वनमीवः । अमीवा रोगः । तामनुर्वन् भव ॥

या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्पतिरि क्षमया चरति परि सा वृणक्तु नः ।

सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ॥३॥

या । ते । दिद्युत । अवऽसृष्टा । दिवः । परि । क्षमया । चरति । परि । सा । वृणक्तु । नः ।

सहस्रं । ते । मुऽअपिवात । भेषजा । मा । नः । तोकेषु । तनयेषु । रिरिषः ॥३॥

हे रुद्र ते वैशुतात्मनस्य संबंधिनी दिवस्पतिरिचसकाशादवच्छेष्टा विमुक्ता या दिद्युदशनिरूपा हेतिः क्षया चित्वा चितौ वा चरति वर्तते सा दिद्युतोऽस्यान्परि वृणक्तु । परित्यजतु । अपि च हे स्वपिवात ते तव सहस्रं बह्वनि भेषजा भेषवानि यान्यौषधानि संति तान्यसम्भं प्रयच्छेति शेषः । नोऽस्यां तोकेषु पुत्रेषु तनयेषु च मा रिरिषः । हिंसां मा कृथाः ॥

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीकृतस्य ।

आ नो भज बर्हिषि जीवशसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४॥

मा । नः । वधीः । रुद्र । मा । परा । दाः । मा । ते । भूम । प्रऽसितौ । हीकृतस्य ।

आ । नः । भज । बर्हिषि । जीवऽशसे । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥४॥

हे रुद्र त्वं नोऽस्यान्मा वधीः । मा हिंसीः । तथा मा परा दाः । मा च त्याजीः । अपि च हीकृतस्य कुक्षस्य ते तव प्रसितौ प्रकर्षेण बंधने वधं च मा भूम । किंच जीवशसे जीवैराशंसनीये बर्हिषि यज्ञे नोऽस्यान्मा भव । भागिनः कुक्ष । हे रुद्रप्रमुखा देवाः यूयं नोऽस्यान्कक्षाणैः सर्वदा पातयत ॥ १३॥

आपो यं व इति चतुर्ध्वं चतुर्दशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं वैष्टभमन्वेवताकं । आपो यमापमित्यनुक्रांतं च ॥ गतो विनियोगः ॥

आपो यं वः प्रथमं देवयंतं इंद्रपानं मूर्मिमकृण्वतेऽः ।

तं वो वयं अर्चिमरिप्रमद्य घृतमुषं मधुमंतं वनेम ॥१॥

आपः । यं । वः । प्रथमं । देवऽयंतः । इंद्रऽपानं । जूर्मि । अकृण्वत । इः ।

तं । वः । वयं । अर्चि । अरिप्र । अद्य । घृतऽमुषं । मधुऽमंतं । वनेम ॥१॥

देवयंतो देवानिच्छंतोऽध्वर्यवो हे आपो हे अन्वेवताः वो युष्माकं कार्यभूतमिन्द्रपानामद्रण पातयामिष्ठ इच्छाया भूम्याः संभूतं यमूर्मिं सोमाख्यं यं रसं प्रथमं पुराकृण्वत अभिषवणवचनादिभिः समस्तुर्वत अथेदानीं

वयमपि वो युष्मदीयं तमूर्मिं वनेम । संभजेमहि । कीदृशं । शुचिं शुद्धमरिप्रं पापरहितं घृतप्रुषं वृष्टिलक्षण-  
मुदकं सिंचतं मधुमत्तं मधुररसोपेतं । एवंभूतं तं वनेमिति संबंधः ॥

तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।

यस्मिन्बिंद्रो वसुभिर्मादयाति तमश्याम देवयंतो वो अद्य ॥ २ ॥

तं । ज॒र्मि । आपः । मधुमत्त॑तमं । वः । अपां । नपात् । अव॒तु । आ॒शु॒हेमा ।

यस्मिन् । इंद्रः । वसु॑ऽभिः । मा॒दया॑ति । तं । अ॒श्या॒म । दे॒व॒ऽयंतः । वः । अ॒द्य ॥ २ ॥

हे आप एतत्संज्ञका देवाः वो युष्मदीयं मधुमत्तमं रसवत्तमं तमूर्मिं प्रसिद्धं सोमाख्यं रसमाशुहेमा  
प्रीतिगतिरपां नपादेतदाख्यो देवोऽवतु । पालयतु । इंद्रो यस्मिन्मूर्मी वसुभिर्वासकैर्देवैः सह मादयाति मावेत  
अथास्मिन्दिने देवयंतो देवकामा वयं वो युष्मदीयं तमूर्मिमश्याम । प्राप्नुयाम ॥

शतपवित्राः स्वधया मदंतीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पार्थः ।

ता इंद्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिंधुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ ३ ॥

शत॑ऽपवित्राः । स्व॒धया । मदं॑तीः । दे॒वीः । दे॒वानां । अपि॑ । यन्ति॑ । पार्थः ।

ताः । इंद्र॑स्य । न । मि॒नन्ति॑ । व्र॒तानि॑ । सिंधु॑ऽभ्यः । ह॒व्यं । घृ॒त॒ऽवत् । जु॒होत॑ ॥ ३ ॥

शतपवित्राः शतं बह्वनि पवित्राणि पावनानि रूपाणि यासां ताः स्वधया स्वकार्यभूतेनान्नैव मदं-  
तीर्जनाद्यादयं देवीर्देव्यो द्योतमाना आपो देवानामिन्द्रादीनां पार्थः स्थानमपि यन्ति । प्रविशन्ति ।  
तासादृश आप इंद्रस्य प्रीणनानि व्रतानि यज्ञादीनि कर्माणि न मिनन्ति । न हिंसन्ति । उत्पादयन्तीत्यर्थः ।  
हे अर्धयवः यूयं सिंधुभ्यस्ताभ्योऽज्यो घृतवदुपस्तरणामिघारणलवणाज्ययुक्तं हव्यं पुरोडाशादिकं हविर्जु-  
होत । जुहोत ॥

याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इंद्रो अरदत्तातुमूर्मि ।

ते सिंधवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

याः । सूर्यः । र॒श्मि॑ऽभिः । आ॒ऽत॒तान॑ । या॒भ्यः । इंद्रः । अ॒रदत् । गा॒तुं । ज॒र्मि ।

ते । सिंध॑वः । वरि॑वः । धा॒तन॑ । नः । यू॒यं । पा॒त । स्व॒स्ति॑ऽभिः । सदा॑ । नः ॥ ४ ॥

सूर्यो देवो या आपो रश्मिभिः स्वकीयैः किरणैराततान विस्तारयति । सूर्यो हि रश्मिभिर्बृहदसारमा-  
दाय वर्षतीत्यर्थः । याभ्योऽज्ययोर्मि ॥ अर्तेरिदं रूपं ॥ गमनयोग्यं गातुं मेघेभ्यो निर्गमनसाधनं मार्गमिन्द्रो  
ऽपरदत् वज्रेण मेघांस्ताडयन्प्रयच्छति हे सिंधव आपः ते यूयं नोऽस्माभ्यं वरिवो धनं धातन । धत्त । प्रय-  
च्छत ॥ त इति सिंधुशब्देन समानाधिकरणत्वात्पुंल्लिङ्गत्वं ॥ हे अदेवताः यूयं सर्वदा नोऽस्माभ्योऽपि  
पालयत ॥ ॥ १४ ॥

अमुचल इति चतुर्ध्वं पंचदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं विष्णुमृगदेवतार्क । अंत्याया विकल्पेन विश्वे देवा  
देवता । तथा चानुक्रांतं । अमुचल आर्भवंतया वैश्वदेवी वेति ॥ दशमेऽहनि वैश्वदेवशस्त्र आर्भवंतिविज्ञानं ।  
सूच्यते हि । अमुचल इत्यार्भवं । आ० अ. १२. । इति ॥

ऋमुष्टाणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।

आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नयं वर्तयंतु ॥ १ ॥



ऋभुक्ष्णः । वाजाः । मादयध्वं । अस्मे इति । नरः । मघऽवानः । सुतस्य ।

आ । वः । अर्वाचः । क्रतवः । न । यातां । विऽभ्वः । रथं । नर्यं । वर्तयंतु ॥ १ ॥

ऋभुक्ष्णभूषां ज्येष्ठस्याख्या वाज इति तु कनिष्ठस्य । अर्चभुक्ष्णो वाजा इति वज्रवचनेन भवस्त्रयो गृह्यंते । हे ऋभुक्ष्णो वाजा नरो नेतारो मघवानो धनवंत एवभूता हे ऋभवः यूयमस्मै अस्मासु स्थितेन सुतस्याभि-  
पुतेन सोमेन मादयध्वं । तुता भवत । नेति संप्रत्यर्थे । रदानीं यातां गच्छतां वो युष्मदीयाः क्रतवः कर्मणां  
कर्तारो विभ्वो विभवः समर्था अथा अर्वाचोऽर्वाचोऽसादभिमुखा नर्यं मनुष्यहितं रथं युष्मदीयमा वर्तयंतु ।  
आगमयंतु ॥

ऋभुर्ऋभुभिर्ऋभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शर्वसा शर्वासि ।

वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविंद्रेण युजा तरुषेम वृचं ॥ २ ॥

ऋभुः । ऋभुऽभिः । अभि । वः । स्याम । विऽभ्वः । विभुऽभिः । शर्वसा । शर्वासि ।

वाजः । अस्मान् । अवतु । वाजऽसातौ । इंद्रेण । युजा । तरुषेम । वृचं ॥ २ ॥

हे ऋभवः ऋभुभिर्युष्माभिर्वयमृभुः । उह भवन्तीत्यृभवः । संतो विभुभिर्युष्माभिर्विभ्वो विभवश्च संतः  
शर्वासि शर्चूणां बलानि शर्वसा युष्मदीयेन बलेनाभि स्याम । अभिभवेम । तथा वाजसातौ संयामे वाज  
एतत्संज्ञक ऋभुरस्याभवतु । पालयतु । अपि च युजा सहायभूतिर्नंद्रेण वृचं शर्चुं वयं तरुषेम । हनाम । प्रायेण-  
भंवोऽपीद्रेण सह कुर्यात् । इति ॥

ते चिद्धि पूवीरिभि संति शासा विश्वाँ अर्यं उपरताति वन्वन् ।

इंद्रो विश्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शर्चोर्मिथत्या कृणवन्वि नृम्यं ॥ ३ ॥

ते । चित् । हि । पूवीः । अभि । संति । शासा । विश्वान् । अर्यः । उपरऽताति । वन्वन् ।

इंद्रः । विऽभ्वाँ । ऋभुक्षाः । वाजः । अर्यः । शर्चोः । मिथत्या । कृणवन् । वि । नृम्यं ॥ ३ ॥

ते तादृशा इंद्र ऋभवश्च पूर्वोर्वङ्गीरसाच्छत्रसेनाः शासा शासनेन स्वकीययाज्ञया । यद्वा । विशश्यते  
हिंश्यतेऽनेनेति शासशब्द आयुधवाची । तेन । अभि संति । अभिभवन्ति । चिद्गीतीर्मा पुरणौ । किंचोपरताति ॥  
सप्तम्या लुक् ॥ उपरिष्पलैः पाषाणसदृशैरायुधैस्तथते विश्वार्थत इत्युपरताति युञ्जं । तस्मिन्विश्वान् समस्ता-  
भयोऽरीष्कचून्वन् । हिंसन्ति । विभ्वा ऋभुक्षा वाज एतत्संज्ञका ऋभवश्च इंद्राचार्यः शर्चूणामभिगन्तारः संतः  
शर्चोः संबंधि नृम्यं बलं मिथत्या ॥ मेथतेरिदं रूपं ॥ मिथतिर्हिंसा । तथा वि कृणवन् । विक्रुर्वंतु । विनाश-  
यंतित्यर्थः ॥

नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः ।

समस्मे इषं वसवो ददीरन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

नू । देवाः । सः । वरिवः । कर्तन् । नः । भूत । नः । विश्वे । अवसे । सऽजोषाः ।

स । अस्मे इति । इषं । वसवः । ददीरन् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ४ ॥

हे देवासो देवा द्योतमाना ऋभवः यूयं न्वय नोऽस्मभ्यं वरिवो धनं कर्तन । कुरुत । प्रयच्छत । तथा  
विश्वे सर्वे ऋभवो यूयं सजोषाः सह प्रीयमाणाः संतो नोऽस्माकमवसे रक्षणाय भूत । भवत । अपि च वसवः

प्रशस्ता ऋगव इषमन्नमस्ये अक्षयं सं ददीरन् । संप्रयच्छेयुः । हे ऋगवः यूयमस्मान् सर्वदा कक्षायी रक्षत ॥ १५ ॥

समुद्रज्येष्ठा इति चतुर्ध्वं षोडशं युक्तं वसिष्ठस्त्वार्थं वैश्वमन्वेद्यताकं । तथा चाशुक्रांतं । समुद्रज्येष्ठा आपमिति ॥ गतो विनियोगः ॥

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।

इंद्रो या वज्री वृषभो रराद् ता आपो देवीरिह मामवंतु ॥ १ ॥

समुद्रज्येष्ठाः । सलिलस्य । मध्यात् । पुनानाः । यन्ति । अग्निविशमानाः ।

इंद्रः । याः । वज्री । वृषभः । रराद् । ताः । आपः । देवीः । इह । मां । अवंतु ॥ १ ॥

समुद्रज्येष्ठाः । समुद्रोऽर्णवो ज्येष्ठः प्रशस्ततमो यासामपां ताः । सलिलस्य । अंतरिक्षनामैतत् । अंतरिक्षस्य मध्यात्माध्यमिकात्स्थानावन्ति । गच्छन्ति । कीदृशः । पुनाना विश्वं शोधयंत्योऽग्निविशमानाः सर्वदा गच्छन्त्यः । वज्री वज्रमुवृषभः कामानां वर्धितेन्द्रो या निष्ठा अपो रराद् लिखति देवीर्देव्यस्ता आप एहास्मिन्देशे स्थितं मामवंतु । रक्षतु । अभिगच्छंतु वा ॥

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनिचिमा उत वा याः स्वयंजाः ।

समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवंतु ॥ २ ॥

याः । आपः । दिव्याः । उत । वा । स्रवन्ति । खनिचिमाः । उत । वा । याः । स्वयंजाः ।

समुद्रार्थाः । याः । शुचयः । पावकाः । ताः । आपः । देवीः । इह । मां । अवंतु ॥ २ ॥

या आपो दिव्या अंतरिक्षमवाः संति । उत वापि च या आपो नद्यादिगताः सत्यः स्रवन्ति गच्छन्ति । याश्च खनिचिमाः खननेन निवृत्ताः । उत वापि च याः स्वयंजाः स्वयमेव प्रादुर्भवन्त्यः समुद्रार्थाः । समुद्र एवार्थो गंतव्यो यासां ताः समुद्रार्थाः । शुचयो दीप्तियुक्ताः पावकाः शोधयिष्यन् भवन्ति । ता आपो मामवन्त्विति ॥

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन्नानां ।

मधुश्रुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवंतु ॥ ३ ॥

यासां । राजा । वरुणः । याति । मध्ये । सत्यानृते इति । अवपश्यन् । जनानां ।

मधुश्रुतः । शुचयः । याः । पावकाः । ताः । आपः । देवीः । इह । मां । अवंतु ॥ ३ ॥

वरुणो यासामपां राजा स्वामी मध्ये मध्यमलोके याति गच्छति । किं कुर्वन् । जनानां प्रजानां सत्यानृते सत्यं चानृतं चावपश्यन् । जायन्तित्यर्थः । या आपो मधुश्रुतो रसं चरन्त्यः शुचयो दीप्तियुक्ताः पावकाः शोधयिष्यन् । ता आपो देव्यो मां रक्षन्त्विति ॥

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जे मदन्ति ।

वैश्वानरो यास्वमिः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवंतु ॥ ४ ॥

यासु । राजा । वरुणः । यासु । सोमः । विश्वे । देवाः । यासु । ऊर्जे । मदन्ति ।

वैश्वानरः । यासु । अग्निः । प्रविष्टः । ताः । आपः । देवीः । इह । मां । अवंतु ॥ ४ ॥



अपां रावा वरुणो यास्वप्नु वर्तते । सोमो यास्वप्नु वर्तते । आस्वप्नु खिता विधे सर्वे देवा ऊर्जममं  
मदंति । वैश्वानरोऽपिर्यासु प्रविष्टः । ता आपो देव्य इह स्थितं मामधंतु ॥ १६ ॥

आ मां मिचावरुणेति चतुर्थं सप्तदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं । चतुर्थतिजगती ब्रूहेन शक्ररी वादितसिद्धो  
जगत्त्वः । प्रथमा मिचावरुणी द्वितीयापेयी तृतीया वैश्वदेवी चतुर्थी गंगादिनदीदेवताका । तथा चानुक्रम-  
णिका । आ मां मिचावरुणापेयी वैश्वदेवी नदीस्तुतिर्जागतमंत्वातिजगती शक्ररी वेति ॥ अस्य सूक्तस्य प्रत्युचं  
विधादिहरणे विनियोगो विंगादवगंतव्यः ॥

आ मां मिचावरुणेह रक्षतं कुलाययद्विश्वयन्मा न आ गन् ।

अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदुत्सरुः ॥ १ ॥

आ । मां । मिचावरुणा । इह । रक्षतं । कुलाययत् । विदुत्सरुः । मा । नः । आ । गन् ।

अजकाऽवं । दुःदृशीकं । तिरोः । दधे । मा । मां । पद्येन । रपसा । विदुत् । त्सरुः ॥ १ ॥

हे मिचावरुणा हे मिचावरुणी युवामिहास्मिन्लोके मामा रक्षतं । आभिमुख्येन पालयतं । कुलाययत् ।  
कुलायं स्थानं । तत्कुर्वद्विषयविशेषेण वर्धमानं विषं त्रोऽस्माना आभिमुख्येन मा गन् । मा गमत् । मा गच्छतु ।  
तथाजकावं । अजका नाम रोगविशेषः । तद्वद्वृक्षीकं दुर्दर्शनं विषं तिरो दधे । तिरो धत्तां । नञ्जलित्वर्थः ।  
तथा स्रक्च्छसगामी । विद्वान्गः सर्प इत्यर्थः । मां पद्येन पादभवेन रपसा । रपिः शब्दकर्मा । शब्देन मा  
विदत् । न जानातु ॥

यद्विजामन्परुषि वंदनं भुवदष्टीवंतौ परि कुल्फौ च देहन् ।

अग्निष्टच्छोचन्नपं बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदुत्सरुः ॥ २ ॥

यत् । विदुत्सरुः । पारुषि । वंदनं । भुवन्तु । अष्टीवंतौ । परि । कुल्फौ । च । देहन् ।

अग्निः । तत् । शोचन् । अपं । बाधतां । इतः । मा । मां । पद्येन । रपसा । विदुत् । त्सरुः ॥ २ ॥

वंदनमेतत्संज्ञकं यद्विषं विजामन् विविधजनानि परुषि वृषादीनां पर्यणि भुवन्तु चक्षते । यच्च विषमष्टी-  
वंतौ जानुनी कुल्फौ गुल्फौ च परि देहन् ॥ दिह उपचये ॥ उपचितं कुर्यात् । अग्निर्देवः शोचन् दीप्यमानः  
सन्नितोऽस्माज्जनात्तद्विषमप बाधतां । अपधंतु । शिष्टं व्याख्यातं ॥

यच्छल्मलौ भवन्ति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायन्ते विषं ।

विश्वे देवा निरितस्तत्सुवंतु मा मां पद्येन रपसा विदुत्सरुः ॥ ३ ॥

यत् । शल्मलौ । भवन्ति । यत् । नदीषु । यत् । ओषधीभ्यः । परि । जायन्ते । विषं ।

विश्वे । देवाः । निः । इतः । तत् । सुवंतु । मा । मां । पद्येन । रपसा । विदुत् । त्सरुः ॥ ३ ॥

यद्विषं शक्नोतेतत्संज्ञके वृक्षे भवति । यद्विषं नदीषु तत्रस्थास्वप्नु प्रादुर्भवति । परीति पंचम्यर्थानुवादी ।  
ओषधीभ्यः सकाशाद्यद्विषं जायते उत्पद्यते । विश्वे सर्वे देवास्तद्विषमितोऽस्माज्जनाद्देशाद्वा निः सुवंतु । निः-  
शेषेण प्रेरयंतु । मा मामिति शिष्टं व्याख्यातं ॥

याः प्रवतो निवन्त उद्वन्त उद्वन्तीरनुदकाश्च याः ।

ता अस्मभ्यं पर्यसा पिबमानाः शिवा देवीरशिप्रदा भवंतु सर्वा नद्यो अशिमिदा

भवन्तु ॥ ४ ॥

याः । प्रऽवतः । निऽवतः । उत्ऽवतः । उदन्ऽवतीः । अनुऽकाः । च । याः ।  
 ताः । अस्मभ्यै । पर्यसा । पिन्वमानाः । शिवाः । देवीः । अशिपदाः । भवन्तु ।  
 सर्वाः । नद्यः । अशिमिदाः । भवन्तु ॥ ४ ॥

या नद्यः प्रवतः प्रवणदेशे गच्छन्त्यः । या निवतो निचदेशे गच्छन्त्यः । या उदत उन्नतदेशे गच्छन्त्यः । या उदन्वतीरुदन्वत्य उदकयुक्ताः । अनुदकाश्चोदकरहिताश्च या नद्यो यांति । पर्यसोदकेन पिन्वमाना विश्वमा-  
 याययन्त्यो देवोर्देव्यो योतमानास्तास्तादृशो नद्योऽस्मभ्यमाशिपदाः । शिपदं नाम रोगविशेषः । तदकुर्वन्त्यः  
 सत्वः शिवाः कल्याणो भवन्तु । अपि च सर्वास्ता नद्योऽशिमिदाः । शिमिर्वधकर्मा । अहिंसाप्रदा भवन्तु ॥ १७ ॥

आदित्यानामिति तृचमष्टादशं सूक्तं त्रसिष्ठस्थायं त्रैष्टुभमादित्यदेवताकं । अनुक्रम्यते च । आदित्यानां  
 तृचमादित्यं त्विति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥ आदित्यदेवताके पञ्चावादित्यानामवसेति वपाया अनुवाक्या ।  
 सूचितं च । आदित्यानामवसा नूतनेनेमा गिर आदित्येभ्यः । आ० ३. ८. इति ॥ आदित्यग्रहस्त्वैवानुवाक्या ।  
 सूचितं च । आदित्यानामवसा नूतनेन होता यचदादित्यान् । आ० ५. १७. इति ॥

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।  
 अनागास्त्वे अदितिस्त्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रीषमाणाः ॥ १ ॥  
 आदित्यानां । अवसा । नूतनेन । सक्षीमहि । शर्मणा । शंतमेन ।  
 अनागाऽस्त्वे । अदितिस्त्वे । तुरासः । इमं । यज्ञं । दधतु । श्रीषमाणाः ॥ १ ॥

आदित्यानामदितिः पुत्राणामेतत्संज्ञकाणां देवानामवसा रचणेन । तद्धेतुभूतेनेत्यर्थः । नूतनेनाद्यतनेन  
 शंतमेन । शं सुखं । अतिशयेन तत्करणेन शर्मणा । शर्मैति गृह्यमात्मत् । गृहेण सक्षीमहि । वयं संगच्छेमहि ।  
 तुराससुरास्त्वरिता आदित्याः श्रीषमाणा अस्मादीयानि सोवाणि शृण्वन्तो यज्ञं यष्टारमिमं जनमनागास्थि  
 ऽनपराधत्वे चादितिस्त्वेऽदीनत्वे च दधतु । स्थापयन्तु ॥

आदित्यासो अदितिरित्यादित्यग्रहस्य याव्या । सूचितं च । आदित्यासो अदितिर्मादयन्तामिति जेतं  
 ग्रहमीचेत ह्यमानं । आ० ५. १७. इति ॥

आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।  
 अस्माकं संतु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ॥ २ ॥  
 आदित्यासः । अदितिः । मादयन्तां । मित्रः । अर्यमा । वरुणः । रजिष्ठाः ।  
 अस्माकं । संतु । भुवनस्य । गोपाः । पिबन्तु । सोमं । अवसे । नः । अद्य ॥ २ ॥

आदित्यास आदित्या देवा अदितिस्तेषां माता च । यद्वा । अदितिरिति देवविशेषणं । अदितिरदितयो  
 ऽदीनाः । रजिष्ठा अतिशयेनर्च्यो मित्रोऽर्यमा वरुणश्चैतत्संज्ञका मादयन्तां । तुष्टाः संतु । भुवनस्य सर्वस्य  
 जगतो गोपा रक्षका एवमूता देवा अस्माकं संतु । अस्माकमेव रक्षका भवन्त्वित्यर्थः । अथास्मिन्दिने नोऽस्मा-  
 कमवसे रक्षणाय सोममस्माभिरभिषत्तं पिबन्तु ॥

आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्वं ऋभवंश्च विश्वे ।  
 इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥



आदित्याः । विश्वे । मरुतः । च । विश्वे । देवाः । च । विश्वे । ऋभवः । च । विश्वे ।  
इंद्रः । अग्निः । अश्विना । तुस्तुवानाः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ३ ॥

आदित्या अदितेः पुत्रा विश्वे सर्वे द्वादशसंख्याका अर्का विश्वे मरुतश्च सर्वे एकोनपंचाशत्संख्योपेताश्च  
विश्वे देवाश्च विश्वे ऋभवर्षेन्द्रोऽपिरश्विनाश्विनावेतत्संज्ञका एवमुक्ता ये देवास्तुष्टुवाना अश्वभिः कुता बभूवुः  
सर्वे ते देवा यूयं सदा सर्वदा नोऽस्मान् स्वस्तिभिः कल्याणीः पात । रक्षत ॥ ॥ १८ ॥

आदित्यासो अदितय इति पुत्रात्मकमेकोनविंशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं वैष्णवमादित्यदेवताकं । आदित्यास  
इत्यनुक्रमणिका ॥ गतो विनियोगः ॥

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्येव चा वसवो मर्त्ये चा ।  
सनेम मित्रावरुणा सनेतो भवेम द्यावापृथिवी भवेतः ॥ १ ॥  
आदित्यासः । अदितयः । स्याम । पूः । देवऽचा । वसवः । मर्त्येऽचा ।  
सनेम । मित्रावरुणा । सनेतः । भवेम । द्यावापृथिवी इति । भवेतः ॥ १ ॥

हे आदित्यास आदित्या देवाः ॥ व्यत्ययेनायुदात्तत्वाभावः ॥ यद्वा । आदित्यानामिम आदित्याः ॥ तस्ये-  
दमित्यर्थे प्राग्दीप्यतीयो आप्रत्ययः ॥ आदित्यानां शेषभूता वयमदितयोऽखंडनीयाः स्याम । भवेम । देवचा  
देवेषु वसवो वासका देवाः युष्मदीयं पूः पावनं मर्त्ये चा मनुष्येष्वस्मासु भवतु । हे मित्रावरुणा मित्रावरुणी  
सनेतो युवां संभजंतो वयं सनेम । युवाभ्यां दत्तं धनं संभवेमहि । हे द्यावापृथिवी द्यावापृथिवी युवयोः  
प्रसादादयं भवंतो भवेम । भूतिमंतः स्याम ॥

मित्रस्तन्नो वरुणो मामहंत शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।  
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ॥ २ ॥  
मित्रः । तत् । नः । वरुणः । ममहंत । शर्म । तोकाय । तनयाय । गोपाः ।  
मा । वः । भुजेम । अन्यऽजातं । एनः । मा । तत् । कर्म । वसवः । यत् । चयध्वे ॥ २ ॥

मित्रो वरुणोऽहर्निशाभिमानिनी देवावेतदाद्याः सर्व आदित्या नोऽस्माभ्यं तत्प्रसिद्धं शर्म सुखं ममहंत ।  
मंहतिर्दानकर्मा । ददतु । गोपा विश्वस्य रक्षकास्ते देवास्तोकायास्तदीयाय पुत्राय तनयाय तत्पुत्राय च शर्म  
प्रयच्छंतु । अथ प्रत्यक्षसुतिः । हे देवाः वो युष्मदीया वयमन्यजातमन्येनोत्पादितमेनः पापं मा भुजेम । मा  
भुक्तवंतः स्याम । हे वसवो वासका देवाः यत्नेन युष्मदप्रियेण कर्मणा चयध्वे यूयमस्मान्नाशयत तत्तादृशं कर्म  
वयं मा कर्म । मा कार्म ॥ शुद्धिं करोतेदत्तमस्य ब्रह्मवचनं । मंत्रे घसहरेत्यादिना जुर्ज्ञोपः ॥

तुरण्यवोऽंगिरसो नक्षंत रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।  
पिता च तन्नो महान्यजन्नो विश्वे देवाः समनसो जुषंत ॥ ३ ॥  
तुरण्यवः । अंगिरसः । नक्षंत । रत्नं । देवस्य । सवितुः । इयानाः ।  
पिता । च । तत् । नः । महान् । यजन्नः । विश्वे । देवाः । सऽमनसः । जुषंत ॥ ३ ॥

तुरण्यवो यज्ञादिकर्मसु स्वरिता अंगिरस एतन्नामका ऋषय इत्यानाः सवितारं याचमानाः संतः सवितुः  
प्रेरकस्य देवस्य संबंधि रत्नं रमणीयं यज्ञनं यजंत आनुवंत । उत्तरार्धगततच्छब्दपिषया यच्छब्दोऽवाध्या-  
द्वियते । यजन्नो यजनशीलो महान् प्रभूतः पिता च वसिष्ठस्य पितृभूतो वरुणश्च । यद्वा । सर्वेषां पिता प्रजा-

पतिः । विश्वे सर्वे देवाः समनसः समानमनस्तास्तादृशं रत्नं नोऽस्माज्जुषंत । सेवयंतु । यद्वा । नोऽस्मभ्यं ददतु ॥ १९ ॥

प्र द्यावा यज्ञैरिति तुचात्मकं विंशं सूक्तं वसिष्ठस्त्वार्यं वैष्टुमं द्यावापृथिव्यं । अनुक्रम्यते च । प्र द्यावा द्यावापृथिव्यमिति ॥ चतुर्थेऽहनि वैद्यदेवशस्त्र इदं द्यावापृथिव्यनिविज्ञानं । सूचितं च । आ देवो यातु प्र द्यावेति वासिष्ठं । आ० ८. ८. । इति ॥ द्यावापृथिव्ये पशौ वपापुरोडाशयोः प्र द्यावेति द्वे ऋचौ याज्ये । सूचितं च । प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिरिति द्वे । आ० ३. ८. । इति ॥

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजचे ।

ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणंतः पुरो मही दधिरे देवपुचे ॥ १ ॥

प्र । द्यावा । यज्ञैः । पृथिवी इति । नमः । ऽभिः । सबाधः । ईळे । बृहती इति । यजचे इति ।

ते इति । चित् । हि । पूर्वे । कवयः । गृणंतः । पुरः । मही इति । दधिरे । देवपुचे इति

देवऽपुचे ॥ १ ॥

यजचे यजनीये बृहती बृहती महती द्यावा पृथिवी द्यावापृथिव्यौ यज्ञैर्यगैर्नमोभिः स्तोत्रेणाहं स्तोता सबाधो बाधासहितः । ऋत्विजां संबाधयुक्त इत्यर्थः । ईळे । प्रकर्षेण स्तौमि । मही महती देवपुचे । देवाः पुत्रा यथोक्ते । ते चिद्धि तादृशौ खलपि द्यावापृथिव्यौ पूर्वं पुरातनाः कवयो गृणंतः सुवतः पुरो दधिरे । पुरस्तात्स्थापयामासुः ॥

आययणे द्यावापृथिव्यैककपालस्य प्र पूर्वजे इति याज्या । सूचितं च । मही बौः पृथिवी च नः प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिः । आ० २. ९. । इति ॥

प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सद्ने ऋतस्य ।

आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरुणं ॥ २ ॥

प्र । पूर्वजे इति पूर्वऽजे । पितरा । नव्यसीभिः । गीः । ऽभिः । कृणुध्वं । सद्ने इति । ऋतस्य ।

आ । नः । द्यावापृथिवी इति । दैव्येन । जनेन । यातं । महि । वां । वरुणं ॥ २ ॥

हे असदीयाः स्तोतारः यूयं नव्यसीभिर्नवतराभिर्गीर्भिः स्तुतिरूपाभिर्वाग्भिर्मर्च्यतस्य यज्ञस्य सद्ने स्नानभूते पूर्वजे पूर्वं प्रजाति पितरा पितरौ विश्वस्य मातापितृभूते द्यावापृथिव्यौ प्र कृणुध्वं । तुरस्कुवत । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः । हे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ युवां दैव्येन देवसंबन्धिना जनेन सह नोऽस्नानभ्या यातं । आगच्छतं । किमर्थमा यातमिति उच्यते । वां युवयोर्वरुणमस्माभिर्वरणीयं महि महत् । यज्ञमस्तीति शेषः । तत्तन्मस्माभ्यं दीयतामित्यर्थः ॥

उतो हि वां रत्नधेयानि संति पुरुणि द्यावापृथिवी मुदासे ।

अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

उतो इति । हि । वां । रत्नऽधेयानि । संति । पुरुणि । द्यावापृथिवी इति । मुदासे ।

अस्मे इति । धत्तं । यत् । असत् । अस्कृधोयु । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ३ ॥

उतो ह्यपि च खलु हे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ वां युवयोः मुदासे शोभनहविर्दानाय यजमानाय देवानि पुरुणि बह्वनि रत्नधेयानि रमणीयानि धनानि संति । भवन्ति । तेषां मध्ये यज्ञमस्कृधोयु । कृधुको





ह्यसुपुपत् । एवं प्रस्थापयामास धनमन्यं च वाहयं । नृ० ६. ८१९-८२१ । इति ॥ अथ केचित्पुनरेवमाहुः । आसां प्रस्थापिनित्वं तु जघासु परिकल्प्यते । वसिष्ठकृषितोऽन्तर्धी चिरात्कालव्यमोजनः । चतुर्थराशौ चौर्यार्थं वाहयं गृहमेत्यनु ॥ कौष्ठागारे प्रवेशाय पाशकक्षादिसुप्तये । यदजुनेति सप्तर्षे ददर्श च जघाप चेति ॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः ॥ १ ॥  
अमीवऽहा । वास्तोः । पते । विश्वा । रूपाणि । आऽविशन् । सखा । सुऽशेवः ।  
एधि । नः ॥ १ ॥

हे वास्तोष्पते गृहस्य पालकैतत्संज्ञक देव अमीवहामीवानां रोगाणां नाशकत्वं विश्वा विश्वानि यज्ञानि रूपाण्याविशन् प्रविशन् । यद्यद्रूपं कामयते तत्तद्देवा विशन्ति । नि० १०. १७. । इति याज्ञः । जोऽस्माकं सखा मित्रभूतः सुशेवः सुष्ठु सुखकर एधि । भव ॥

यदर्जुन सारमेय दतः पिशंग् यच्छसे ।  
वीव भ्राजंत ऋष्टय उप स्रक्केषु बप्सतो नि षु स्वप ॥ २ ॥  
यत् । अर्जुन । सारमेय । दतः । पिशंग् । यच्छसे ।  
विऽईव । भ्राजन्ते । ऋष्टयः । उप । स्रक्केषु । बप्सतः । नि । सु । स्वप ॥ २ ॥

हे अर्जुन येत हे सारमेय । सरमा नाम देवमुनी । तस्याः कुलोद्भव हे पिशंग् केषुचिदंगेषु पिशंगवर्णैर्धूमूत हे गुणक त्वं दतो दंतान्यथदा यच्छसे विवृणोषि । अस्मान्दष्टमित्यर्थः । तदानो यीव भ्राजंत ऋष्टयो यथा-युधानि विश्लेषेण भासन्ते तथोपास्यत्समीपे बप्सतो मलयतस्तव दंताः स्रक्केषु स्रक्कासु भासन्ते । स्रक्काशब्द औष्ठप्रदेशविशेषवाचीत्यर्थः । तथाभूतस्त्वमिदानीं सु सुष्ठु नि स्वप । नितरां निद्रां कुरु ॥

स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर ।  
स्तोतृनिद्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ३ ॥  
स्तेनं । राय । सारमेय । तस्करं । वा । पुनःऽसर ।  
स्तोतृन् । इंद्रस्य । रायसि । किं । अस्मान् । दुच्छुनऽयसे । नि । सु । स्वप ॥ ३ ॥

हे पुनःसर । गतमेव देशं पुनः सरतीति पुनःसरः । तावद्गमूत हे सारमेय त्वं स्तेनं । प्रच्छन्नधनापहारी स्तेनः । तं तस्करं । प्रत्यक्षधनापहारी तस्करः । तं वा राय । गच्छ । इंद्रस्य स्तोतृनस्मान् किं रायसि । गच्छसि । अस्मान्दुच्छुनायसे । किं बाधसे । नि षु स्वप । अत्यंतं निद्रां कुरु ॥

त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दृत्तु सूकरः ।  
स्तोतृनिद्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ४ ॥  
त्वं । सूकरस्य । दर्दृहि । तव । दर्दृत्तु । सूकरः ।  
स्तोतृन् । इंद्रस्य । रायसि । किं । अस्मान् । दुच्छुनऽयसे । नि । सु । स्वप ॥ ४ ॥

हे सारमेय त्वं सूकरस्य वराहस्य ॥ द्वितीयार्थे यही ॥ दर्दृहि । विदारय । सूकरोऽपि तव दर्दृत्तु । विदारय । युवयोर्नित्यविरिक्तात् । अस्माकां दशेत्यर्थः ॥ स्तोतृनित्यर्थः पूर्वस्वामुचि व्याख्यातः ॥



सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु आ सस्तु विश्वपतिः ।

ससंतु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥ ५ ॥

सस्तु । माता । सस्तु । पिता । सस्तु । आ । सस्तु । विश्वपतिः ।

ससंतु । सर्वे । ज्ञातयः । सस्तु । अयं । अभितः । जनः ॥ ५ ॥

हे सारमेय माता तदीया जगती सस्तु । स्वपतु । पिता च सस्तु । आ सारमेयो भवान् सस्तु । विश्वपति-  
र्जीमाता यद्वा विश्वां जगानां पालको गृही सस्तु । सर्वे ज्ञातयो बंधवोऽपि ससंतु । स्वपंतु । अभितः परितः  
स्थितोऽयमपि सर्वो जगः सस्तु । स्वपतु ॥

य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।

तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ६ ॥

यः । आस्ते । यः । च । चरति । यः । च । पश्यति । नः । जनः ।

तेषां । सं । हन्मः । अक्षाणि । यथा । इदं । हर्म्यं । तथा ॥ ६ ॥

यो जग आसी अस्मिन्देशे तिष्ठति यश्च चरति गच्छति यश्च जनो नोऽस्मान्पश्यति एवंभूतानां तेषां  
जगानामपायीन्द्रियाणि सं हन्मः । संहनाम । संहतिर्निमीलनं । निमीलयामेत्यर्थः । इदं प्रत्यक्षेणोपलभ्यमानं  
हर्म्यं प्रासादादिस्थावरात्मकं वस्तुजातं यथा निश्चलं भवति तथेने सर्वे जना निश्चला भवंस्त्वित्यर्थः ॥

सहस्रशृंगो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।

तेना सहस्येना वयं नि जनान्स्वापयामसि ॥ ७ ॥

सहस्रऽशृंगः । वृषभः । यः । समुद्रात् । उतऽआचरत् ।

तेन । सहस्येन । वयं । नि । जनान् । स्वापयामसि ॥ ७ ॥

सहस्रशृंगः सहस्रकिरणो वृषभो कामानां वर्धिता यः सूर्यः समुद्रादंबुधेः सकाशादुदाचरत् उदागच्छति  
सहस्रेणानिमविचा तेन सूर्येण वयं क्षीतारो जगान् सर्वाणि स्वापयामसि । नितरां स्वापयामः ॥

प्रोष्ठेशया वक्षेशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।

स्त्रियो याः पुण्यगंधास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ८ ॥

प्रोष्ठेऽशयाः । वक्षेऽशयाः । नारीः । याः । तल्पऽशीवरीः ।

स्त्रियः । याः । पुण्यऽगंधाः । ताः । सर्वाः । स्वापयामसि ॥ ८ ॥

या यादृशी नारीर्याः स्त्रियः प्रोष्ठेशयाः प्रांक्षे शयानाः । या वक्षेशयाः । वक्ष्णां वाहनं । तस्मिञ्छ-  
यानाः । यास्तल्पशीवरीस्तल्पशयाः । याः स्त्रियः पुण्यगंधा मंगल्यगंधाः । तास्तादृशीः सर्वाः स्त्रीः स्वापया-  
मसि । वयं निद्रां कारयामः ॥ २२ ॥ ३॥

अथ चतुर्थेऽनुवाके पंचदश सूक्तानि । तत्र क ई व्यक्ता इति पंचविंशत्युचं प्रथमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं महदेव-  
ताकं । आद्या एकादश द्विपदा विंशत्यक्षरा विराजः शिष्टाश्चतुर्दश त्रिष्टुभः । तथा चानुक्रांतं । क ई पंचाधिका  
मासतं हाया एकादश द्विपदा इति ॥ दशरात्रे चतुर्थेऽह्न्याभिमासते शस्त्र इदं भावतनिविधानं । सूत्र्यते  
हि । वैश्वानरस्य सुमती क ई व्यक्ता गरः । आ० ८. ८. इति ॥

क ई व्यक्ता नरः सनीका रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥ १ ॥

के । ई । विऽअक्ताः । नरः । सऽनीकाः । रुद्रस्य । मर्याः । अध । सुऽअश्वाः ॥ १ ॥

व्यक्ताः कांतियुक्ता नरो नेतारः सनीकाः समानीकसो रुद्रस्य महादेवस्य पुत्रा मर्या मर्याभ्यो युग्मो हिता अधापि च स्वश्वाः शोभनवाहा ईमिम एवंभूताः के भवन्तीति रूपातिशयादुपरिवाचयेणाह ॥

नकिर्लेशां जनूंषि वेद ते अंग विद्रे मिथो जनिचं ॥ २ ॥

नकिः । हि । एषां । जनूंषि । वेद । ते । अंग । विद्रे । मिथः । जनिचं ॥ २ ॥

एषां मरुतां जनूंषि जन्मानि नकिर्हि वेद । कश्चिदपि न खलु जानाति । ते तादृशा मरुतो मिथः परस्परं जनिचं रुद्रपुत्रिभ्यां सकाशात्मादुर्भूतं स्वकीयं जन्मांगं विद्रे । स्वयमेव विदंति ॥

अभि स्वपूभिर्मिथो वपंत वातस्वनसः श्येना अस्पृधन् ॥ ३ ॥

अभि । स्वऽपूभिः । मिथः । वपंत । वातऽस्वनसः । श्येनाः । अस्पृधन् ॥ ३ ॥

मरुतः स्वपूभिः स्वकीयैः पवनैः संचरणीः स्वयमेव संचरन्तो मिथः परस्परमभि वपंत । संगच्छन्ते । अपि च वातस्वनसो वायुवत्स्वनतः शब्दायमानाः श्येनाः ॥ श्लेष् गताविति धातो रूपं ॥ गमनशीलाः । यद्वा । श्येना इति कुप्तोपममेतत् । श्येनाः पक्षिणः । तद्वत्संचरन्तः । अस्पृधन् । परस्परं रूपसीदर्यादिभिः स्पर्धन्ते ॥

एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभारं ॥ ४ ॥

एतानि । धीरः । निण्या । चिकेत । पृश्निः । यत् । ऊधः । मही । जभारं ॥ ४ ॥

धीरो धीमाञ्छास्त्रघो जनो निष्ठा निष्ठाणि श्वेतवर्णान्येतानि मरुदात्मकानि भूतानि चिकेत । जानीयात् । किंतु न सर्वे जना जानन्तीत्यर्थः । मही मरुतो पृश्निर्मरुतां जननी यद्यानि मरुदात्मकानि भूतान्यूध ऊधन्त्यन्तरिक्षे स्वकीये जठरे वा जभारं जभार । एतानि चिकेतिति पूर्वेषां संबंधः ॥

सा विद् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहंती पुष्यंती नृम्यं ॥ ५ ॥

सा । विद् । सुऽवीरा । मरुत्ऽभिः । अस्तु । सनात् । सहंती । पुष्यंती । नृम्यं ॥ ५ ॥

सा विद् सा प्रजा मरुतः परिचरति । सा प्रजा मरुद्भिर्हेतुभिः सनाच्चिरात्सहंती शत्रून् जनिमवती नृम्यं धनं वनं वा पुष्यंती जभंती सुवीरा शोभनपुत्रयुक्तास्तु । भवतु ॥

यामं येष्टाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिष्टा ओजोभिरुयाः ॥ ६ ॥

यामं । येष्टाः । शुभा । शोभिष्ठाः । श्रिया । संऽमिष्टाः । ओजःऽभिः । उयाः ॥ ६ ॥

मरुतो यामं यातव्यं गंतव्यं प्रदेशं येष्टा यातुतमा अतिशयेन गंतारः शुभाखंकारेण शोभिष्ठा अतिशयेन शोभायुक्ताः श्रिया कांक्षा संमिष्टाः संगच्छमाना ओजोभिर्वैश्वदेया उन्नूयाः । एवंभूता भवन्तीति शेषः ॥

उयं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ॥ ७ ॥

उयं । वः । ओजः । स्थिरा । शवांसि । अध । मरुत्ऽभिः । गणः । तुविष्मान् ॥ ७ ॥

हे मरुतः वो युष्माकमोजसोऽज उयमुन्नूयं भवतु । शवांसि युष्मदीयानि वज्राणि स्थिरा स्थिराणि कश्चिदनपहतव्यानि भवन्तु । अधापि च मरुद्भिर्गणो मरुतां संघस्तुविष्मान् वृद्धिमाभभवतु ॥



शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ॥ ८ ॥

शुभ्रः । वः । शुष्मः । क्रुध्मी । मनांसि । धुनिः । मुनिःऽइव । शर्धस्य । धृष्णोः ॥ ८ ॥

हे मरुतः वो शुष्माकं शुष्मो बलं शुधः सर्वतः शोभमाणं । किंच वो मनांसि क्रुध्मी संयामेषु शत्रुहर्तृणामर्थं क्रोधनशीलानि । धृष्णोर्धर्वणशीलस्य शर्धस्य बलवतो शुष्मदीयस्य गणस्य धुनिर्वृषादीनां कंपयितुमेवो मुनिरिव । मननाम्बुनिः सोता । स यथा बज्रविधं शब्दमुत्पादयति एवं बज्रविधशब्दस्योत्पादक इत्यर्थः ॥

सनेम्यस्मद्युयोतं दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ्गः ॥ ९ ॥

सनेमि । अस्मत् । युयोतं । दिद्युं । मा । वः । दुःऽमतिः । इह । प्रणङ्क् । नः ॥ ९ ॥

[हे मरुतः सनेमि पुराणं दिद्युमायुधमसदस्यतो युयोत । पृथक्कृत । वो शुष्मदीया दुर्मतिः क्रूरमति-  
रिहास्मिन्कर्मणि नोऽस्मात्मा प्रणङ्क् । मा व्याप्नोतु ॥]

प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥ १० ॥

प्रिया । वः । नाम । हुवे । तुराणां । आ । यत् । तृपत् । मरुतः । वावशानाः ॥ १० ॥

[हे मरुतः तुराणां शत्रूणां हिंसकानां त्वरावतां वा वो शुष्माकं प्रिया प्रियेण नाम नाम्ना ऊचे ।  
आह्वयामि । यद्येनानेन वावशानाः कामयमानाः संतुष्टुपत् तृप्तिं गच्छन्ति ॥] ॥ २३ ॥

स्वायुधासं इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुभमानाः ॥ ११ ॥

सुऽआयुधासः । इष्मिणः । सुऽनिष्काः । उत । स्वयं । तन्वः । शुभमानाः ॥ ११ ॥

स्वायुधासः स्वायुधाः शोभनास्त्रा इष्मिणो गंतारः सुनिष्काः शोभनालंकारा उतापि च तन्वः स्वकी-  
यानि शरीराणि शुभमानाः स्वयमेव शोभयंतो मरुत एवंभूता भवन्तीत्यर्थः ॥

मावते पशौ मुची वो हव्येति वपाया अनुवाक्या । सूचितं च । मुची वो हव्या मरुतः मुचीनां नू ङिरं  
मरुतः । आ० ३. ७. इति ॥

मुची वो हव्या मरुतः मुचीनां मुचिं हिनोम्यध्वरं मुचिभ्यः ।

चृतेन सत्यमृतसापं आयञ्छुचिजन्मानः मुचयः पावकाः ॥ १२ ॥

मुची । वः । हव्या । मरुतः । मुचीनां । मुचिं । हिनोमि । अध्वरं । मुचिभ्यः ।

चृतेन । सत्यं । चृतऽसापः । आयन् । मुचिभ्यऽजन्मानः । मुचयः । पावकाः ॥ १२ ॥

हे मरुतः मुचीनां मुचानां वो शुष्माकं मुची मुचीनि हव्या हव्यानि हवीषि भवन्तु । मुचिभ्यः प्रकाशमा-  
नेभ्यो शुष्मभ्यं मुचिं मुचमध्वरं यागे हिनोमि । अहं प्रेरयामि । चृतसापं चृतमुदकं सुशंतो मरुत चृतेन  
सत्येनैव सत्यमायन् । गच्छन्ति । कीदृशाः । मुचिजन्मानः शोभनजननाः मुचयो दीप्यमानाः पावकाः शोधकाः ।  
एवंभूता गच्छन्तीत्यर्थः ॥

अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिञ्चियाणाः ।

वि विद्युतो न वृष्टिर्भी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥ १३ ॥

अंसेषु । आ । मरुतः । खादयः । वः । वक्षःऽसु । रुक्माः । उपऽशिञ्चियाणाः ।

वि । विऽद्युतः । न । वृष्टिभ्यः । रुचानाः । अनु । स्वधां । आयुधैः । यच्छमानाः ॥ १३ ॥

हे मरुतः ऋषेभ्यो युष्मदीयेषु खंघ्रप्रदेशेषु खादयोऽलंकारविशेषा आ मुक्ता भवन्तीति शेषः । सुदक्षताः सुष्ठु रोचमाना हारा वो युष्मदीयं वष उरःप्रदेशमुपशिथियाणा आश्रिता भवन्ति । किंच हे मरुतः वृष्टिभिर्वर्षैः सार्धं विद्युतो न तडितो यथा वृचाना रोचमानास्वादुग्भूता यूयमायुधैर्मेघताडनैः स्वधामुदकमनु यच्छमानाः प्रयच्छन्तो वि चरषेति शेषः ॥

गृहमेधीये प्र बुध्या व इति प्रधानस्य याज्या । सूचितं च । प्र बुध्या व ईरते महासीति पुष्टिमन्ती विराजो संयाज्ये । आ० २. १८. । इति ॥

प्र बुध्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वं ।

सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वं ॥ १४ ॥

प्र । बुध्या । वः । ईरते । महांसि । प्र । नामानि । प्रयज्यवः । तिरध्वं ।

सहस्रियं । दम्यं । भागं । एतं । गृहमेधीयं । मरुतः । जुषध्वं ॥ १४ ॥

हे मरुतः वो युष्मदीयानि बुध्या बुध्यान्यन्तरिचे भवानि महांसि तेजांसि प्रेरते । प्रकर्षेण गच्छन्ति । किंच हे प्रयज्यवः प्रकर्षेण यष्टव्या मरुतः यूयं नामानि । पांसून्नमयन्तीति नामान्युदकानि । प्र तिरध्वं । वर्धयत । हे मरुतः यूयं सहस्रियं सहस्रसंख्याकं दम्यं दमे गृहे मवं गृहमेधीयं गृहमेधिगुणैर्भ्यो युष्मभ्यं देयमेतमेतादृशं भागं जुषध्वं । सेवध्वं । एकं भागं सहस्रियमिति कथमाह । तथा च श्रूयते । यावदेका देवता कामयते यावदेका तावदाहुतिः प्रथते न हि तदस्ति यत्तावदेव स्थायावज्जुहोतीति ॥

यदि स्तुतस्य मरुतो अधीयेत्या विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।

मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिदमन्य आदभद्रावा ॥ १५ ॥

यदि । स्तुतस्य । मरुतः । अधिऽइथ । इत्या । विप्रस्य । वाजिनः । हवीमन् ।

मक्षू । रायः । सुवीर्यस्य । दात । नू । चित् । यं । अन्यः । आऽदभत् । अरावा ॥ १५ ॥

वाजिनो हविर्लक्षणावतो विप्रस्य मेधाविनो मम सवंधिनि हवीमन् हविष्मति हविषा युक्ते स्तोत्रे क्रियमाणे सति हे मरुतः यूयं यदि यस्मात्कारणात् स्तुतस्य स्तुतं मदीयं स्तोत्रमित्येत्यमनेन प्रकरिणाधीय अवगच्छथ तस्मात्कारणात् हे मरुतः यूयं सुवीर्यस्य शोभनपुत्रोपेतस्य रायो रायं धनं । द्वितीयार्थे षष्ठी । मनु शीघ्रं दात । दत्त । अरावारातिः शत्रुभूतोऽन्यो जनो यं रायं नू चिदादभत् त्रैवाभिह्न्यात् । तद्वनम-  
क्षभं दत्तेति संबन्धः ॥ ॥ २४ ॥

मरुतः श्रीकिंभः सप्तकपालमित्यस्यात्वास इति याज्या । सूचितं च । अत्यासो न ये मरुतः स्वंचो जुष्टो दमूनाः । आ० २. १८. । इति ॥

अत्यासो न ये मरुतः स्वंचो यक्षदृशो न शुभयंत मर्याः ।

ते हर्म्येष्टाः शिशवो न शुभा वत्सासो न प्रक्रीठिनः पयोधाः ॥ १६ ॥

अत्यासः । न । ये । मरुतः । सुऽअंचः । यक्षऽदृशः । न । शुभयंत । मर्याः ।

ते । हर्म्येऽस्थाः । शिशवः । न । शुभाः । वत्सासः । न । प्रऽक्रीठिनः । पयऽधाः ॥ १६ ॥

अत्यासो नात्वाः सततगामिनोऽश्वा इव स्वंचः सुष्ठु गच्छन्तो ये मरुतो यक्षदृशो न मर्या यक्षस्तोत्रवस्य द्रष्टारो मनुष्या इव शुभयंत शोभन्ते हर्म्येष्टा हर्म्ये स्थिताः शिशवो न कुमार इव शुभाः शोभमाना वत्सासो



न वत्सा इव प्रकीर्तितः प्रकीर्तयन् श्रीवृत्तानां मरुतः पयोधाः पयस्य उदकस्य धारयितारो दातारो वा भवन्ति ॥

दृश्यन्तो नो मरुतो मृक्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।

आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुखेभिरस्मे वसवो नमध्वं ॥ १७ ॥

दृश्यन्तः । नः । मरुतः । मृक्तु । वरिवस्यन्तः । रोदसी इति । सुमेके इति सुडमेके ।

आरे । गोहा । नृहा । वधः । वः । अस्तु । सुखेभिः । अस्मे इति । वसवः । नमध्वं ॥ १७ ॥

मरुतो जोऽस्य दृश्यन्तो धनानि प्रयच्छन्तः सुमेके मुख्ये रोदसी बावापुषिव्यौ वरिवस्यन्तः स्वमहिम्ना पूरयन्तो मृक्तु । मृक्तयन्तु । अस्मान्मुखयुक्तान् कुर्वन्तु । अपि च हे वसवो वासका मरुतः गोहा गवां मेघस्यानामुदकानां भेदको नृहा नृणां शत्रूणां हन्ता वो युष्मदीयं वध आयुधमरेऽस्तु । अस्मत्तो दूरे भवतु । यूयमपि सुखेभिः सुखैः सहास्ये अस्मासु नमध्वं । स्वयमेवामिमुखा भवत ॥

मारुते पशवा वो होतृष्वेवानुवाक्या । सूचितं च । आ वो होता जोहवीति सप्तः प्र चिपमर्कं गृणते तुराय । आ० ३. ७. इति ॥

आ वो होता जोहवीति सप्तः सूचाचीं रातिं मरुतो गृणानः ।

य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अर्धयावी हवते व उक्थैः ॥ १८ ॥

आ । वः । होता । जोहवीति । सप्तः । सूचाचीं । रातिं । मरुतः । गृणानः ।

यः । ईवतः । वृषणः । अस्ति । गोपाः । सः । अर्धयावी । हवते । वः । उक्थैः ॥ १८ ॥

हे मरुतः सप्तो होतृषदने निषणोऽस्यदीयो होता सचाचीं सर्वतो गमनशीलं रातिं स्वदीयं दातुं गृणानः सुवर्ग वो युष्माणा जोहवीति । गृणमाह्वयति । हे वृषणः कामानां वर्धितारो मरुतः यो होतिषतो गच्छतो व्यापारवतो यजमानस्य गोपा अस्ति युष्मदाङ्गाननिमित्तेन रचको भवति स होतादयावी मायारहितः सन्वो युष्मानुक्थैः स्तोषैर्हवते । स्तौति ॥

इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस्र आ नमन्ति ।

इमे शंसं वनुष्यतो नि पाति गुरु जेषो अररुषे दधन्ति ॥ १९ ॥

इमे । तुरं । मरुतः । रामयन्ति । इमे । सहः । सहस्रः । आ । नमन्ति ।

इमे । शंसं । वनुष्यतः । नि । पाति । गुरु । जेषः । अररुषे । दधन्ति ॥ १९ ॥

इम रैदृशो मरुतसुरं कर्मसु विप्रवन्तं यजमानं रामयन्ति । स्तौयन्ति । इमे मरुतः सहः सहस्रा वनेषु सहस्रो बलवतो जनानां नमन्ति । इमे मरुतो वनुष्यतो हिंसकात्पुषपाच्छंसं शंसकं स्तोतारं नि पाति । नितरां पालयन्ति । अररुषे हविरप्रयच्छते जनाय गुरु महद्द्वेषोऽप्रियं दधन्ति । कुर्वन्ति ॥

इमे रधं चिन्मरुतो जुनन्ति भूमिं चिद्यथा वसवो जुषन्तं ।

अपं बाधध्वं वृषणस्तर्मांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ॥ २० ॥

इमे । रधं । चित् । मरुतः । जुनन्ति । भूमिं । चित् । यथा । वसवः । जुषन्तं ।

अपं । बाधध्वं । वृषणः । तर्मांसि । धत्त । विश्वं । तनयं । तोकं । अस्मे इति ॥ २० ॥

इमे मरुतो रभ्रं चित् समुद्रमपि वनं वुनन्ति । प्रेरयन्ति । भूमिं चिन्मणशीलमपि दरिद्रं वुनन्ति । प्रेरयन्ति । वसवो वासका देवा युष्मान्यथा वुनन्त कामधेरेण हे वृषणः कामानां वर्षितारः ते यूयं तमांस्तप बाधध्वं । नाशयत । अपि चाक्षो अस्मभ्यं विश्वं वज्रत्वं तोकं पुत्रं तनयं पौत्रं च धत्त । प्रयच्छत ॥ २५ ॥

मा वो दाचान्मरुतो निरराम मा पश्चाद्दध्म रथ्यो विभागे ।

आ नः स्याहे भजतना वसव्येऽ यदी सुजातं वृषणो वो अस्ति ॥ २९ ॥

मा । वः । दाचात् । मरुतः । निः । अराम । मा । पश्चात् । दध्म । रथ्यः । वि० भागे ।

आ । नः । स्याहे । भजतन । वसव्ये । यत् । ई । सु० जातं । वृषणः । वः । अस्ति ॥ २९ ॥

हे मरुतः वो युष्माकं दाचादानाना निरराम । वयं मा निर्गमाम । यूयमस्मान्परित्यक्त्वान्येभ्यो धनं मा दत्तेत्यर्थः । हे रथ्यो रथवन्तो मरुतः विभागे युष्मदीयस्य धनस्य दाने पश्चात्ता दध्म । दध्यतिर्गतिकर्मा । वयं पश्चाद्भागिनो मा भूम । यूयं प्रथममस्मभ्यमेव दत्तेति यावत् । स्याहे सुहृदीये वसव्ये धनसमूहे यूयं नोऽस्माना मजतन । मागिनः कुरुत । हे वृषणो वर्षितारो मरुतः वो युष्माकं सुजातं शोभनवर्णं यद्वसव्यमस्ति तस्मिन्भागिनः कुरुतेति संबंधः । ईमिति पूरणः ॥

सं यद्वनंत मन्युभिर्जनासः शूरा यद्भीष्वोषधीषु विष्णु ।

अथ स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥ २२ ॥

सं । यत् । हनंत । मन्यु०भिः । जनासः । शूराः । यद्भीषु । ओषधीषु । विष्णु ।

अथ । स्म । नः । मरुतः । रुद्रियासः । चातारः । भूत । पृतनासु । अर्यः ॥ २२ ॥

यद्यदा शूरा विक्रांता जनासो जना यद्भीषु महतीष्वोषधीषु विष्णु प्रजासु च जेतव्यासु मन्युभिः कोपिरभिमानैर्वा सं हनंत संगच्छन्ते अथ तदानीं हे रुद्रियासो रुद्रपुत्रा हे मरुतः यूयं पृतनासु युद्धेष्वर्थोऽरेः शत्रोः सकाशातोऽस्माकं चातारो भूत । रचका भवत ॥

भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।

मरुद्भिरुयः पृतनासु साळा मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा ॥ २३ ॥

भूरि । चक्र । मरुतः । पित्र्याणि । उक्थानि । या । वः । शस्यन्ते । पुरा । चित् ।

मरुत०भिः । उयः । पृतनासु । साळा । मरुत०भिः । इत् । सनिता । वाज । अर्वा ॥ २३ ॥

हे मरुतः यूयं भूरि भूरीणि बह्वनि पित्र्याण्युक्थानिसंबन्धीनि धनदानादीनि कर्माणि चक्र । कृतवन्तो भवत । पुरा चित् पूर्वकालेऽपि वो युष्माकमुक्थानि प्रशस्त्रानि यानि कर्माणि प्रशस्यते प्रशस्यते तानि चक्रेति संबंधः । उय ओजस्वी पृतनासु युद्धेषु मरुद्भिर्युष्माभिर्हेतुभिः साळा शत्रूणामभिभविता भवति । मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा सौचैरभिगता वाजमर्वा सनिता संभक्ता भवति । यद्वा । अर्वाश्चो वाजं युद्धं सनिता भवति ॥

अस्मे वीरो मरुतः शुष्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता ।

अपो येन सुक्षितये तरेमाध स्वमोको अभि वः स्याम ॥ २४ ॥

अस्मे इति । वीरः । मरुतः । शुष्मी । अस्तु । जनानां । यः । असुरः । वि० धर्ता ।

अपः । येन । सु० क्षितये । तरेम । अध । स्वं । ओकः । अभि । वः । स्याम ॥ २४ ॥



हे मरुतः अक्षो अस्माकं वीरः पुत्रः सुष्म्यसु । बलवान्भवतु । असुरः प्रज्ञावान्यो जनानां शत्रूणां विधर्ता विधारकः । येन पुत्रेण वयं सुषितये सुष्ठु निवासायाप आमुषतः शत्रूंस्तरिम हिंसेम । स पुत्रो बलवानस्त्विति पूर्वेष्वान्वयः । अथापि च वो युष्मदीया वयं स्वमोक्ता आत्मीयं स्थानमभि स्याम । आतिष्ठेम ॥

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अमिराप ओषधीर्वनिनो जुषंत ।

शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५ ॥

तत् । नः । इन्द्रः । वरुणः । मित्रः । अमिः । आपः । ओषधीः । वनिनः । जुषंत ।

शर्मन् । स्याम । मरुतां । उपऽस्थे । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ २५ ॥

पूर्वं व्याख्यातयं । अचरार्थसु । इन्द्रादयो देवा अस्मादीयं स्तोत्रं श्रुतां । मरुतामुपस्थानि वतमाना वयं सुखे स्याम । हे मरुतः यूयं सर्वदास्थानविनाशैः पालयत ॥ ॥ २६ ॥

मध्वो व इति सप्तमं द्वितीयं सूक्तं वसिष्ठस्त्रार्यं वैष्णवं मरुदेवताकं । मध्वः सप्तित्यनुकांतं ॥ दशरात्रे षष्ठे ऽध्वनापिमादत इदं मादतनिविष्टायां सूचितं च । मध्वो वो नाम स प्रत्येत्यापिमादतं । आ० ८. ८. इति ॥

मध्वो वो नाम मारुतं यजचाः प्र यज्ञेषु शर्वसा मदन्ति ।

ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वंत्युत्सं यदयासुरुयाः ॥ १ ॥

मध्वः । वः । नाम । मारुतं । यजचाः । प्र । यज्ञेषु । शर्वसा । मदन्ति ।

ये । रेजयन्ति । रोदसी इति । चित् । उर्वी इति । पिन्वंति । उत्सं । यत् । अयासुः । उयाः ॥ १ ॥

हे यजचा यजनीया मरुतः वो युष्मदीयं मादतं मरुत्संबन्धि नाम नामधेयं मध्वो मध्वो मादयितारः स्तोतारो यज्ञेषु यगिषु शर्वसा बलेन प्र मदन्ति । प्रकर्षेण क्षुवंति । उष्टैः क्षुवंतोत्यर्थः । ये मरुत उर्वो विसीर्यो रोदसी चिद्धावापृथिव्यावपि रेजयन्ति कंपयन्ति किंचित्सं मेघं पिन्वंति वर्षयन्ति उया उग्रूया यथे मरुतो ऽयासुः याति सर्वत्र गच्छति । तेषां मरुतां युष्माकं नाम प्र मदन्तीति पूर्वेष्वान्वयः ॥

निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।

अस्माकमद्य विदथेषु बहिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः ॥ २ ॥

निऽचेतारः । हि । मरुतः । गृणन्तं । प्रऽनेतारः । यजमानस्य । मन्म ।

अस्माकं । अद्य । विदथेषु । बहिः । आ । वीतये । सदत । पिप्रियाणाः ॥ २ ॥

ये मरुतो गृणन्तं क्षुवंतं जनं निचेतारो हि मृगयमाणा भवन्ति खलु अपि च यजमानस्य मन्माभिमतं कामं प्रणेतारस्य भवन्ति । अपरोऽर्धर्चः प्रत्यक्षतः । हे मरुतः यूयं पिप्रियाणाः प्रीयमाणाः संतोऽथास्मिन्दि-  
वसेऽस्माकं विदथेषु यज्ञेषु वीतये सोमस्य भवणाय बहिर्वर्हिषि कुशमय आ सदत । आसीदत । उपविशत ॥

नैतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।

आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमंज्यजते शुभे कं ॥ ३ ॥

न । एतावन्त । अन्ये । मरुतः । यथा । इमे । भ्राजन्ते । रुक्मैः । आयुधैः । तनूभिः ।

आ । रोदसी इति । विश्वऽपिशः । पिशानाः । समानं । अंजि । अंजते । शुभे । कं ॥ ३ ॥

इम इदृशा मरुतो यथा यत्परिमाणं धनादिकं ददति अन्ये मरुद्भ्यतिरिक्ता देवा एतावद्वनादिकं न

दधुरित्वर्थः । ते च इकी रोचमाने रामरणीरायुधैः स्वकीयास्त्रैस्तनुभिरात्मीयैः केवलीरंगैश्च धावन्ति । सर्वदा भावन्ति । कश्चिदेकवाक्यतामाह । यद्येमे मरुतो इत्थमादिमिर्धावन्ति नेतावदेतद्व्यतिरिक्ता धावन्त इति । अपि च रोदसी बावापृषिष्वौ पिशानाः प्रकाशयन्तो विषपिशो व्याप्तदीप्तय एवंभूता मरुतः नुमे शोमाधि समानं सवृक्षरूपमंज्याभरणमावन्ति । स्वकीयावयवेष्वभिव्यक्तोक्तुर्वेति । कमिति पूरणाः ॥

ऋधक्सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यच्च आगः पुरुषता कराम ।

मा वस्तस्यामपि भूमा यजचा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्च निष्ठा ॥ ४ ॥

ऋधक् । सा । वः । मरुतः । दिद्युत् । अस्तु । यत् । वः । आगः । पुरुषता । कराम ।

मा । वः । तस्यां । अपि । भूम । यजचाः । अस्मे इति । वः । अस्तु । सुमतिः । च निष्ठा ॥ ४ ॥

हे मरुतः वो युष्मदीया सा प्रसिद्धा दिद्युदेतिर्ध्वगस्तु । यस्मात्तः पृथग्भवतु । यद्यपि वयं वो युष्मा-  
कमागोऽपराधं पुरुषता पुरुषतया मनुष्यत्वेन कराम करवाम । मनुष्याणां हि प्रमादः सुखम इत्यर्थः । हे  
यजचा यजनीया मरुतः वो युष्मदीयायां तस्यां दिद्युत्पपीषदपि मा भूम । च निष्ठा न्नवत्तमा । चतिशयेनाज्ञ-  
प्रदेत्यर्थः । वो युष्मदीया सुमतिरनुग्रहबुद्धिरस्त्री अस्मास्त्वस्तु ॥

कृते चिदच मरुतो रणतानवद्यासः शुचयः पावकाः ।

प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजचाः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ॥ ५ ॥

कृते । चित् । अच । मरुतः । रणत । अनवद्यासः । शुचयः । पावकाः ।

प्र । नः । अवत । सुमतिभिः । यजचाः । प्र । वाजेभिः । तिरत । पुष्यसे । नः ॥ ५ ॥

अवास्मिन्कृते चिदक्षदीये यज्ञकर्मण्येव मरुतो रणत । रमन्तां । कीदृशा मरुतः । अनवद्यासोऽनिदिताः  
मुचयो दीप्तियुक्ताः पावकाः शोधका एवंभूता इति । किंच हे मरुतो यजचा यजनीयाः यूयं नोऽस्यान्  
सुमतिभिरनुग्रहबुद्धिभिः सुष्ठुतिभिर्हेतुभिर्वा प्रावत । प्रकर्षेण पावयत । तथा नोऽस्यान्वायेभिर्वाधैरज्ञैः पुष्यसे  
पोषार्थं प्र तिरत । प्रवर्धयत ॥

उत स्नुतासो मरुतो व्यंतु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।

ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि ॥ ६ ॥

उत । स्नुतासः । मरुतः । व्यंतु । विश्वेभिः । नामभिः । नरः । हवींषि ।

ददात । नः । अमृतस्य । प्रजायै । जिगृत । रायः । सूनृता । मघानि ॥ ६ ॥

उतापि च स्नुतास एवमस्याभिः स्नुता मरुतो हवींषि व्यंतु । मरुयंतु । कीदृशाः । विश्वेभिर्विश्वेर्नामभि-  
षद्वैः सहिता नरो नेतारः । शेषः प्रत्यक्षस्तुतः । हे मरुतः नोऽस्यादीयाधि प्रजाधि संततयेऽमृतस्नामृतमुदकं  
ददात । दत्त । तथा हविषो दातुर्यजमानस्य सूनृता सूनृतानि सुष्ठु शृण्वन्ति शोभनयोग्यानि मघानि धनानि  
जिगृत । उन्निरत । प्रवर्धयतेत्यर्थः ॥

आ स्नुतासो मरुतो विश्वं ऊती अच्छा सूरिन्सर्वताता जिगात ।

ये नस्मना श्रितिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥



आ । स्तुतासः । मरुतः । विश्वे । ऊती । अर्च्य । सूरिन् । सर्वऽताता । जिगात ।  
ये । नः । तमना । श्रुतिनः । वर्धयन्ति । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

हे मरुतः स्तुतास एवमस्माभिः स्तुता विश्वे सर्वे यूयमूतूत्वा रक्षया सहिताः सूरिन् क्षीतुनक्षत्राभिरक्ष्य सर्वताता सर्वतातौ यज्ञ आ जिगात । आगच्छत । ये मरुतस्त्वनात्मनैव नोऽस्माच्छ्रुतिनः श्रुतसंख्याकान्वर्धयन्ति । यथा वर्धं पुत्रपीडादिभिः श्रुतिनो भवेम तथा वर्धयन्तीत्यर्थः । ते यूयमा जिगातेति पूर्वेषु संबंधः । एवमूता मरुतः यूयं सर्वदास्मान्प्रापयत ॥ २७ ॥

प्र साकमुष इति षड्वचं तृतीयं सूक्तं वसिष्ठस्यैव वैदुषं मरुदेवताकं । अनुक्तांतं च । प्र साकमुषे षडिति । गतो विनियोगः ॥

प्र साकमुषे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।  
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निःक्षतेरवन्शात् ॥ १ ॥  
प्र । साकंऽउषे । अर्चत । गणाय । यः । दैव्यस्य । धाम्नः । तुविष्मान् ।  
उत । क्षोदन्ति । रोदसी इति । महिऽत्वा । नक्षन्ते । नाकं । निःऽक्षतेः । अवन्शात् ॥ १ ॥

हे क्षीतारः यूयं साकमुषे संततं वर्षिषे गणाय मरुत्समूहाय प्रार्चत । क्षोचं प्रोक्षारयत । यो मरुत्तयो दैव्यस्य देवसंबन्धिनी धाम्नः स्वर्गाख्यस्य स्थानस्य तुविष्मान् वृद्धिमाप्नुवन्ति । सर्वेभ्यो देवेभ्यः प्रवृथ इत्यर्थः । तस्यै गणायेति पूर्वेषु संबंधः । उतापि च मरुतो महित्वा स्वकीयेन महत्त्वेन सहिता रोदसी यावापुषिर्वा क्षोदन्ति । मज्जन्ति । तथा निक्षतिर्भूमेरवन्शादंतरिक्षाच्च नाकं स्वर्गं नक्षन्ति । व्याप्नुवन्ति ॥

जनूश्चिद्वो मरुतस्त्वेषेण भीमास्तुविमन्यवोऽयासः ।  
प्र ये महोभिरोजसोऽसन्ति संति विश्वो वो यामन्भयते स्वर्दृक् ॥ २ ॥  
जनूः । चित् । वः । मरुतः । त्वेषेण । भीमासः । तुविऽमन्यवः । अयासः ।  
प्र । ये । महःऽभिः । ओजसा । उत । संति । विश्वः । वः । यामन् । भयते । स्वःऽदृक् ॥ २ ॥

हे भीमासो भीमास्तुविमन्यवः प्रवृत्तमतयोऽयासो गंतार इति त्रीणि संबोधनाणि । एवमूता हे मरुतः वो युष्माकं जनूर्जस्य त्वेषेण दीप्तिन रद्रेण बभूवेति शेषः । उतापि च ये मरुतो महोभिस्त्वोभिरोजसा बलेन च प्र संति प्रभवन्ति तेषां वो युष्माकं यामन् यामनि गमने विश्वः स्वर्दृक् सूर्यस्य द्रष्टा सर्वो जीवसबूहः । यद्वा । स्वरंतरिक्षं । तत्प्राप्नोतीति वृषः स्वर्दृक् । सर्वदोषनिष्ठमित्यर्थः । मयते । विभेति ॥

बृहद्वयो मघवद्वो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।  
गतो नाध्वा वि तिराति जंतुं प्र णः स्यार्हाभिरूतिभिस्तिरेत् ॥ ३ ॥  
बृहत् । वयः । मघवन्तऽभ्यः । दुधात । जुजोषन् । इत् । मरुतः । सुऽस्तुतिं । नः ।  
गतः । न । अध्वा । वि । तिराति । जंतुं । प्र । नः । स्यार्हाभिः । ऊतिऽभिः । तिरेत ॥ ३ ॥

हे मरुतः यूयं मघवद्वो हविर्जघानाज्ञवद्वोऽस्यं बृहद्वयद्वयोऽन्नं दधात । प्रयच्छत । नोऽस्मादीयां सुष्टुतिं शोभनं क्षोचं जुजोषन्ति । सेवन्तामेव । गतो मरुद्भिः प्राप्तोऽध्वा मार्गो जंतुं प्राणिवं न वि तिराति । नाहन्ति । उदकेनाप्याययत्येव । यद्वा । वितिरतिर्वर्धनार्थः । नेति चार्थः । मरुद्भिर्गतो मार्गस्य जंतुं वर्धयति । तथा नोऽस्मान् स्यार्हाभिः सृष्टणीयाभिरूतिभिराभिः प्र तिरेत । प्रवर्धयति ॥

युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।

युष्मोतः सप्ताकुत हन्ति वृचं प्र तन्नो अस्तु धूतयो देष्णं ॥ ४ ॥

युष्माऽऊतः । विप्रः । मरुतः । शतस्वी । युष्माऽऊतः । अर्वा । सहुरिः । सहस्री ।

युष्माऽऊतः । संऽराट् । उत । हन्ति । वृचं । प्र । तत् । वः । अस्तु । धूतयः । देष्णं ॥ ४ ॥

हे मरुतः युष्मोतो युष्मामी रचितो विप्रः स्तोता शतस्वी शतसंख्योपेतधनवान्भवति । युष्मोतो युष्मामी रचितोऽर्वाभिगता सङ्गरिः शत्रूणामभिभविता स्तोता सहस्री सहस्रधनवान्भवति । युष्मोतो युष्मामी रचितः सप्ताद् साप्ताज्ययुक्तो भवति । उतापि च वृचं शत्रुं हन्ति । युष्मद्रचको हिनस्ति । हे धूतयः कंपयितारो मरुतः वो युष्मामिदं तत्प्रसिद्धं देष्णं धनं प्राप्नु । प्रसूतं भवतु ॥

ताँ आ रुद्रस्य मीळुषो विवासे कुविचंसंते मरुतः पुनर्नः ।

यत्सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाँ ॥ ५ ॥

तान् । आ । रुद्रस्य । मीळुषः । विवासे । कुवित् । नंसंते । मरुतः । पुनः । नः ।

यत् । सस्वर्ता । जिहीळिरे । यत् । आविः । अव । तत् । एनः । ईमहे । तुराणाँ ॥ ५ ॥

मीळुषः कामानां वर्धितु रुद्रस्त्रैश्वरस्य पुत्रांस्तान्मरुत आ विवासे । अहं होता परिचरामि । ते मरुतो नोऽस्माभ्यं कुविचङ्गलः पुनर्भूयो नंसंते । नमंतां । अभिमुखीभवन्तु । कुविच्छब्देनैव पुनःशब्दार्थस्य लब्धत्वा-  
त्युनःशब्दग्रहणं किमर्थं । आदराय । सस्वर्तातर्हितेनाप्रकाशेन यद्येनैसा जिहीळिरे मरुतः क्रुध्येयुः आविः  
प्रकाशेन यद्येनैसा च जिहीळिरे तुराणां चिप्राणां मरुतां संबंधि तदुभयमेनोऽपराधमवेमहे । स्तोत्रेण  
वचनपनयामः ॥

प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषंत ।

आराचिद्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

प्र । सा । वाचि । सुऽस्तुतिः । मघोनां । इदं । सुऽउक्तं । मरुतः । जुषंत ।

आरात् । चित् । द्वेषः । वृषणः । युयोत । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ६ ॥

मघोनां धनवतां मरुतां संबंधिनी सुष्टुतिर्या शोभना स्तुतिरस्मिन्सूक्ते कृता सा स्तुतिरस्माभिः प्र वाचि ।  
प्रोक्तासीत् । मरुत रुदमीदृग्भूतं सूक्तं जुषंत । सेवतां । हे वृषणः कामानां वर्धितारः यूयं द्वेषो द्वेषांसि  
शत्रूणाराक्षिहूरादेव युयोत । अस्मात्तः पृथक्कृत । यूयं नोऽस्मान् स्वस्तिभिः सर्वदा रक्षत ॥ ॥ २८ ॥

यं चायध्व इति द्वादशर्चं चतुर्थं सूक्तं । अचेयमनुक्रमणिका । यं चायध्वे द्वादश चिप्रागाथादि नवम्या-  
वाक्षिस्तो गायत्र्योऽत्यानुष्टुप्त्रौद्री मृत्युविमोचनीति । आवातुतीयापंचम्यो बृहत्यो द्वितीयाचतुर्थीषध्वः सतो-  
बृहत्यः सप्तम्यष्टम्यावनुक्तत्वात्त्रिष्टुभौ नवमीदशम्येकादश्यो गायत्र्यः । द्वादशानुष्टुप् सा च रुद्रदेवताका ।  
शिष्टा मावत्यः ॥ सूक्तविनियोगो शैंगिकः ॥

यं चायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।

तस्मा अये वरुण मिचार्यमन्मरुतः शर्म यच्छत ॥ १ ॥

यं । चायध्वे । इदंऽइदं । देवासः । यं । च । नयथ ।

तस्मै । अये । वरुण । मिच । अर्यमन् । मरुतः । शर्म । यच्छत ॥ १ ॥



हे देवासो देवाः इदमिदमितां मयहेतोर्व्यं स्तोतारं चायध्वे पालयध्वे । यं च स्तोतारं नयथ सन्ध्यां  
प्रापयथ । हे अपे वरुण मिचार्यमन् हे मरुत एवंभूता हे देवाः तस्मै स्तोत्रे शर्म सुखं यच्छत । दत्त ॥

युष्माकं देवा अवंसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः ।

प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥२॥

युष्माकं । देवाः । अवंसा । अहनि । प्रिये । ईजानः । तरति । द्विषः ।

प्र । सः । क्षयं । तिरते । वि । महीः । इषः । यः । वः । वराय । दाशति ॥२॥

हे देवाः युष्माकं युष्मदीयनावसा रचयेन प्रियेऽहनि सर्वेषां देवानां प्रियभूति सुखानिधाने दिवस  
ईजान इष्टवाज्जनो द्विषः शत्रुंस्तरति । आक्रामति । स यजमानः ययं स्वकीयं निवासं प्र तिरते । प्रवर्धयति ।  
यो यजमानो वो युष्मभ्यं महीर्महांतीयो हविल्लक्षणाव्यज्ञानि वराय निवारणाय यूयं नान्यथ गच्छता-  
स्मदीयान्येव हवींषि स्वीकृतेति निरोधनं कर्तुं वि दाशति विशेषेण ददाति । अत एव स स्वकीयं निवासं  
वर्धयतीत्यर्थः ॥

नहि वंश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।

अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ॥३॥

नहि । वः । चरमं । चन । वसिष्ठः । परिमंसते ।

अस्माकं । अद्य । मरुतः । सुते । सचा । विश्वे । पिबत । कामिनः ॥३॥

वसिष्ठ ऋषिर्वो युष्माकं मध्ये चरमं चनावरमपि नहि परिमंसते । वर्जयित्वा न स्तौति । किंतु सर्वानेव  
युष्मान् स्तौतीत्यर्थः । अद्यासिन्दिनेऽस्माकमस्मदीये सुते सोमेऽभिषुते सति हे मरुतः कामिनः सोमं कामय-  
माना विश्वे यूयं सचा संगत्य पिबत । पानं कुरुत ॥

नहि वं ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः ।

अभि व आवर्त्सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ॥४॥

नहि । वः । ऊतिः । पृतनासु । मर्धति । यस्मै । अराध्वं । नरः ।

अभि । वः । आ । अवर्त् । सुमतिः । नवीयसी । तूयं । यात । पिपीषवः ॥४॥

हे मरुतः वो युष्मदीयोती रथा पृतनासु युद्धेषु नहि मर्धति । न खलु हिनस्ति । शत्रुभिः कृतां हिंसां न  
सहत इत्यर्थः । हे नरो नेतारः यूयं यस्मै जनाधाराध्वं कामानदध्वं तं जनं न हिनस्तीति संबंधः । नवीयसी  
नवतरा वो युष्मदीया सुमतिरगुणहयुद्धिरव्यवर्त् । अस्मानव्यवर्त्तनं । तथा हे पिपीषवः सोमपानकामाः  
यूयमपि तूयं चित्रं यात । आगच्छत ॥

ओ धु घृध्विराधसो यातनांधांसि पीतये ।

इमा वो हव्या मरुतो रे हि कं मो ध्वन्यच गंतन ॥५॥

ओ इति । सु । घृध्विऽराधसः । यातनं । अंधांसि । पीतये ।

इमा । वः । हव्या । मरुतः । रे । हि । कं । मो इति । सु । अन्यच । गंतन ॥५॥

हे घृध्विराधसः परस्परघृष्टानि सुसंहतानि राधांसि तेषां ते हे मरुतः यूयमंधांसि सोमलक्षणाणि

हवींषि पीतये मध्याह्ने सु सुहो यातन । आयात । हि यस्मात्कारणात् हे मरुतः यो युष्मभ्यभिमेमानि हव्या हव्यानि हवींषि ररे अहं ददामि अतः कारणाबूधमन्यच नो सु गंतन । मा गच्छत ॥

आ च नो ब॒र्हिः स॒द॒तावि॒ता च॑ नः स्या॒र्हाणि॑ दा॒त॒वे वसु॑ ।

अ॒स्रे॒ध॒न्तो म॒रुतः॑ सो॒म्ये म॒धौ स्वा॒हेह मा॑द॒याध्वै ॥ ६ ॥

आ । च । नः । ब॒र्हिः । स॒द॒त । अ॒वि॒त । च । नः । स्या॒र्हाणि॑ । दा॒त॒वे । वसु॑ ।

अ॒स्रे॒ध॒न्तः । म॒रु॒तः । सो॒म्ये । म॒धौ । स्वा॒हा । इ॒ह । मा॒द॒या॒ध्वै ॥ ६ ॥

हे मरुतः यूयं नोऽसदीये बर्हिः कुशमे बर्हिषा सदत च । उपविशत । स्पर्हाणि सुहृषीषाणि वसु वसूनि धनानि दातवेऽस्मभ्यं दातुं नोऽस्मान्वित च । आगच्छत च । हे मरुतः अस्त्रेधन्तोऽहिंसन्तो यूयमिहास्मिन्मधौ मधुकरे सोम्य सोमात्मके हविषि स्वाहा स्वाहाकारेण मादयाध्वै । मादयध्वं । मायत ॥ ॥२९॥

स॒स्वश्चि॒द्धि त॒न्व॒ः शु॒भ॒मा॒ना आ॑ हं॒सासो॑ नी॒ल॒पृ॒ष्ठा अ॒प॒म॒न् ।

वि॒श्वं श॒र्धो अ॒भि॒तो मा॒ नि वे॒द् नरो॑ न र॒खाः स॒र्व॒ने म॒द॒न्तः ॥ ७ ॥

स॒स्व॒रि॒ति । चि॒त् । हि । त॒न्वः । शु॒भ॒मा॒नाः । आ । हं॒सा॒सः । नी॒ल॒ऽपृ॒ष्ठाः । अ॒प॒म॒न् ।

वि॒श्वं । श॒र्धः । अ॒भि॒तः । मा॒ नि । से॒द् । नरः॑ । न । र॒खाः । स॒र्व॒ने । म॒द॒न्तः ॥ ७ ॥

सस्वरंतर्हिता मरुतस्त्वः स्वकीयान्वंगानि शुभमाना अलंकरणैः शोभयन्तो मरुतो नीलपृष्ठा असितवर्णा हंसासो हंसा इवापमन् । आपयन्तु । आगच्छन्तु । विश्वं शर्धो व्याप्तो मरुद्गणो मा मामभितः समन्तानि वेद् । विधीदतु । तच्च दृष्टान्तः । सवनेऽसदीये यज्ञे मरुतो हव्यन्तो रखा रमणीया नरो न मनुष्या इव तद्वत् ॥

साकमेधेषु मरुतः सांतपनेभ्य इत्यस्य यो नो मरुत इति पूर्वाशुवाक्सा सांतपना इदमिति याज्या । तथा च सूचितं । सांतपना इदं हविर्यो नो मरुतो अग्नि दुर्हणायुः । आ० २. १८. । इति ॥

यो नो॑ म॒रुतो॑ अ॒भि दु॒र्ह॒णा॒यु॒स्तिर॒श्चि॒त्तानि॑ व॒सवो॑ जि॒घांस॑ति ।

दु॒हः पा॒शा॒न्प्र॒ति स॒ मु॒ची॒ष्ट त॒पि॒ष्ठेन॑ ह॒न्म॒ना ह॑न्त॒न् तं ॥ ८ ॥

यः । नः । म॒रु॒तः । अ॒भि । दुः॒ऽह॒णा॒युः । ति॒रः । चि॒त्तानि॑ । व॒स॒वः । जि॒घांस॑ति ।

दु॒हः । पा॒शा॒न । प्र॒ति । सः । मु॒ची॒ष्ट । त॒पि॒ष्ठेन॑ । ह॒न्म॒ना । ह॑न्त॒न् । तं ॥ ८ ॥

हे वसवः प्रशसा हे मरुतः नोऽसदीयानि चित्तानि दुर्हणायुरशोभनं कुथंस्तिरः सर्वैस्तिरस्कृतो यो अग्नोऽग्नि जिघांसति आग्निमुखेन हंतुमिच्छति स अग्नो दुहः पापानां द्रोणधुर्वदणस्य पाशानस्मासु प्रति स मुचीष्ट । बधीयात् । यूयं तं अग्नं तपिष्ठेन तप्तुतमेन हव्यना हननसाधनेनायुधेन हंतन । इत । हिंस ॥

सा॒न्त॒प॒ना इ॒दं ह॒वि॒र्म॒रु॒त॒स्तज्जु॑ष्ट॒न । यु॒ष्मा॒को॒ती रि॒शा॒द॒सः ॥ ९ ॥

सां॒ऽत॒प॒नाः । इ॒दं । ह॒विः । म॒रु॒तः । त॒त् । जु॒ष्ट॒न । यु॒ष्मा॒क । ऊ॒ती । रि॒शा॒द॒सः ॥ ९ ॥

सांतपनाः शत्रूणां संतापका हे मरुतः इदं प्रत्यक्षेणोपलभ्यमानं हविर्युष्मभ्यं कल्पितमिति शेषः । हे रिशादसो रिशतां हिंसतामसितारो रिशानामत्तारो वा यूयं युष्माकं युष्माकमूलूत्वा रथया तत्तादृशं हविर्युष्टन । शिवध्वं ॥



गृहमेधास इति गृहमेधीयस्य इविषोऽनुवाक्या । सूचितं च । गृहमेधास आ गत प्र बुध्या च ईरते  
महांसि । आ० २. १८. इति ॥

गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः ॥१०॥

गृहमेधासः । आ । गत । मरुतः । मा । अप । भूतन । युष्माक । ऊती । सुदानवः ॥१०॥

गृहमेधासो गृहे क्रियमाणो यज्ञो येषां ते सुदानवः शोभनदाना हे मरुतः यूयं युष्माक युष्माकमूत्यूता  
रचया युक्ता आ गत । यज्ञदीयं यज्ञं प्रत्यागच्छत । हे मरुतः माप भूतन । अपगता मा भवत ॥ भू प्राप्ता-  
विति धातुः ॥

वैश्वदेवे पर्यणि मासतस्मानुवाकोहेह व इतिषा । सूचितं च । इहेह वः स्वतवसः प्र चिचमर्कं गृणते  
तुराय । आ० २. १६. इति ॥

इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे ॥११॥

इहेह । वः । स्वतवसः । कवयः । सूर्यत्वचः । यज्ञं । मरुतः । आ । वृणे ॥११॥

हे स्वतवसः स्वायत्तवसाः स्वयं प्रवृक्षा वा हे कवयः ज्ञातदर्शिनः सूर्यत्वचः सूर्यवर्णा एवमूता हे मरुतः  
यूयमिहेहेवासादीयं यज्ञमा वृणे । आभवामि । कल्पयामि ॥

अंबकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनं ।

उर्वारुकमिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥१२॥

अंबकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनं ।

उर्वारुकमिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥१२॥

अत्र शौनकः । चिराचं नियतोऽपोष्य अयत्नेत्यायसं चक्रं । तेनाजतिशतं पूर्णं कुज्याच्छितव्रतः ॥  
समुद्दिश्य महादेवं अंबकं अंबकेत्युक्त्वा । एतत्पर्यवशतं कृत्वा जीवेद्वर्षशतं सुखी । अन्वि० २. २७. । [यथाणां  
ब्रह्मविष्णुबुद्ध्याणामंबकं पितरं यजामहे इति श्रित्यसमाहितो वसिष्ठो ब्रवीति । किंविशिष्टमित्यत आह ।  
सुगंधिं प्रसारितपुष्पकोर्ति । पुनः किंविशिष्टं । पुष्टिवर्धनं जगद्बीजं । उद्गतिमित्यर्थः । उपासकस्य वर्धनं ।  
अणिमादिशक्तिवर्धनं । अतस्त्वत्प्रसादादेव मृत्योर्मरणात्संसारोद्वा मुचीय । मोचय । यथा बंधनादुर्वारकं  
कर्कटीफलं मुच्यते तद्वत्प्रसादात्संसारोद्वा मोचय । किं मर्यादीकृत्य । आमृतात् । सायुज्यतामोचपर्यंतमित्यर्थः ।  
अथ तैत्तिरीयभाष्ये । ति० सं० १. ८. ६. २. । शोभनः शरीरगंधः पुष्पगंधो वा यस्यासी सुगंधः । यथा वृक्षस्य  
संपुष्पितस्य दूरान्नंधो वात्सवं पुष्पस्य कर्मणो दूरान्नंधो वातीति श्रुतेः । पुष्टिं शरीरधनादिविषयां वर्धयतीति  
पुष्टिवर्धनः । तावृक्षं अंबकं यजामहे । पूजयामः । लोके यथोर्वारकफलानि बंधनान्मुक्तास्त्वयमेव मुच्यते तद्वदहं  
अंबकप्रसादेन मृत्योर्मुचीय । मोचययुक्तो मूयासं । अमृताश्चिरजीवितास्त्वर्गादेर्वा मा मुचीय । चतुर्षपादार्थ-  
मंबकस्य तात्पर्यातिशयं दर्शयति । अंबकं यजामहे इत्याह मृत्योर्मुचीय मामृतादिति वावेतदाहेति ॥ ३० ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थोऽस्तुरो देयाद्विनातीर्षमहेभरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरभुक्कभूपाससाक्षात्पुण्डरीक सायणाचार्येण  
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे अथसंहिताभाष्ये पंचमाष्टके चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

## ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

यस्य निःश्रुतं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् । निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥  
व्याख्याय निगमामिहः पंचमस्य चतुर्थकं । अध्यायं सायणाचार्यः पंचमं व्याकरोत्यथ ॥

तत्र यदव सूर्येति द्वादशर्चं पंचमं सूक्तं । अचानुक्रमणिका । यदव मिचावरुणं तु वै सौर्यादेति ।  
मंडलद्रष्टा वसिष्ठ ऋषिः । अनुक्तत्वाच्चिदुप कंदः । तु वा इत्युक्तात्तादेतदादीनि सप्त सूक्तानि मिचावरुणदेव-  
त्वानि । आवा सूर्यदेवत्वा ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

यदव सूर्यं ब्रवीऽनागा उद्यन्मिचाय वरुणाय सत्यं ।

वयं देवचादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन्गुणतः ॥ १ ॥

यत् । अद्य । सूर्य । ब्रवः । अनागाः । उत्ऽयन् । मिचाय । वरुणाय । सत्यं ।

वयं । देवऽचा । अदिते । स्याम । तव । प्रियासः । अर्यमन् । गुणतः ॥ १ ॥

हे सूर्य सर्वस्य प्रेरकैतन्नामक देव उद्यन्नुदयस्त्वं यद्यव्यासितगुणकालेऽस्मान्नवः ब्रूयाः । किमिति ।  
अनागा अनागस इति । एतेऽपापा इति यदि देवेषु मध्ये ब्रूयाः तर्हि वयं हे अदिते अदीनदेव देवचा  
देवेषु देवानां मध्ये मिचाय वरुणाय च सत्यमवितथं स्याम । अनागसो भवेम । किंच हे अर्यमन् दातः त्वां  
गुणतः सुवन्तस्त्वव प्रियासः प्रियाः स्याम । स्वमिमविषया भवेम । यद्वा । उत्तरार्ध एकं वाक्यं । हे अदिते हे  
अर्यमन्नुक्तलक्षण देव वयं देवेषु मध्ये त्वां गुणतस्त्वव प्रियाः स्याम । यदि मां देवेष्वपापं ब्रूयास्तर्हि तैरयम-  
नपराधीत्यनुगृहीतस्त्वां सुत्वा तव प्रियो भवेयमित्यर्थः ॥

एष स्य मिचावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन् ।

विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥ २ ॥

एषः । स्यः । मिचावरुणा । नृचक्षाः । उभे इति । उत् । एति । सूर्यः । अभि । ज्मन् ।

विश्वस्य । स्थातुः । जगतः । च । गोपाः । ऋजु । मर्तेषु । वृजिना । च । पश्यन् ॥ २ ॥

हे मिचावरुणा एष पुरतो दृश्यमानः स्य स सर्वैः सुखलेन प्रसिद्धो नृचक्षा नृपां मनुष्याणां द्रष्टा सूर्य  
उभे व्यावापृथिव्यावभ्यमिलक्ष्योदेति ज्मन्तन्तरिचे गच्छन् । स विशेष्यते । विश्वस्य सर्वस्य स्थातुः स्थावरस्य  
जगतो जंगमस्य च गोपा गोपायिता । किं कुर्वन् । मर्तेषु मनुष्येषु स्थितान्मृज्वृजुनि सुकृतानि वृजिनानि  
पापानि च पश्यन् ॥

अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद्या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।

धामानि मिचावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ॥ ३ ॥

अयुक्त । सप्त । हरितः । सधऽस्थात् । याः । ईं । वहन्ति । सूर्यं । घृताचीः ।

धामानि । मिचावरुणा । युवाकुः । सं । यः । यूथाऽईव । जनिमानि । चष्टे ॥ ३ ॥

हे मिचावरुणा मिचावरुणो युवयोरागमनाय सधस्थात्सहस्रानादन्तरिचादन्तरिचे सप्त सर्पणस्वभावान्  
तत्संख्याकान्वा हरितो हरिद्वर्णानश्चानयुक्त । युक्तवाच्ये । हरित आदित्यस्येति हि निरुक्तं । या हरित  
ईमेन सूर्यं देवं घृताचीर्घृतांचना उदकवत्यः । उदकप्रदा इत्यर्थः । तादृशः सत्यो वहन्ति ता अयुक्त । अयोदितः



सन्ध्यामानि स्थानानि लोकाञ्जनिमानि जन्मानि । जन्मभावः प्राणिन इत्यर्थः । ताश्च युवाकुर्युवां कामयमानो यो देवः संपद्ये सम्यक् पश्यति ध्रुवेव गोयूषानीव धूपपाः । स यथा सर्वयूथं तदवांतरगोव्यतिं च सम्यक् पश्यति तद्वह्नौकान्प्राणिनश्च पश्यति ॥

उवां पृक्षासो मधुमंतो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमणैः ।

यस्मा आदित्या अध्वनो रदंति मिचो अर्यमा वरुणः सजोषाः ॥ ४ ॥

उत् । वां । पृक्षासः । मधुमंतः । अस्थुः । आ । सूर्यः । अरुहत् । शुक्रं । अणैः ।

यस्मै । आदित्याः । अध्वनः । रदंति । मिचः । अर्यमा । वरुणः । सजोषाः ॥ ४ ॥

हे मिचावरुणौ वां युवयोरर्थाय पृक्षासोऽन्नानि चरुपुरोडाशादीनि मधुमंतो माधुर्योपेतानि तत्साधनान्योषध्यादीनि योदधुः । संपादितान्यासन् । सूर्यश्च शुक्रं दीप्तमण्योऽर्णवमंतरिचमावहन् । आरोहति । यस्मै सूर्याय तद्गमनार्थमादित्या अदितिः पुत्रा देवा अध्वनो मार्गाजदंति विविधंति साधयंति । के ते । मिचोऽर्यमा वरुणश्चेति ययोऽपि देवाः सजोषसः समानप्रीतयः संतः । स देव आरुहदिति ॥

इमे चेतारो अनृतस्य भूरैर्मिचो अर्यमा वरुणो हि संति ।

इम ऋतस्य वावृधुदुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥ ५ ॥

इमे । चेतारः । अनृतस्य । भूरैः । मिचः । अर्यमा । वरुणः । हि । संति ।

इमे । ऋतस्य । ववृधुः । दुरोणे । शग्मासः । पुत्राः । अदितेः । अदब्धाः ॥ ५ ॥

इमे मिचोऽर्यमा वरुणश्च ययोऽप्यष्टस्य पापस्य भूरैः प्रभूतस्य चेतारो हंतारः संति । भवंति हि । इमे मिचादय ऋतस्य यज्ञस्य दुरोणे गृहे ववृधुः । वर्धते हविषा क्षुत्वा च । कीदृशास्ते । शग्मासः मुखकरा अदितिः पुत्रा अदब्धा अहिंसिताः ॥

इमे मिचो वरुणो दूळभासोऽचेतसं चिच्चितयंति दक्षैः ।

अपि क्रतुं सुचेतसं वतंतस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयंति ॥ ६ ॥

इमे । मिचः । वरुणः । दुःऽदभासः । अचेतसं । चित् । चितयंति । दक्षैः ।

अपि । क्रतुं । सुऽचेतसं । वतंतः । तिरः । चित् । अंहः । सुऽपथा । नयंति ॥ ६ ॥

इम आदित्या मिचो वरुणश्च । एतद्व्ययमर्यम्योऽप्युपलक्षणं । एते दूळभासो दुर्दभा अनभिभाव्या अचेतसं चिदप्रज्ञानमनुष्ठानविषयज्ञानरहितमपि दक्षैः सामर्थ्येयितयंति । अपि सुचेतसं प्रकृष्टज्ञानवंतं पुरुषं क्रतुं कर्तारं कर्मानुष्ठानवंतं वतंतो गच्छंतोऽहो दुष्कृतं तिरश्चित्तिरो नयंतोऽस्मात्सुपथा शोभनेन मार्गेण नयंति । प्रापयंत्यभिमतं यज्ञं स्वर्गादिकं वा ॥ ११ ॥

इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयंति ।

प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ॥ ७ ॥

इमे । दिवः । अनिऽमिषा । पृथिव्याः । चिकित्वांसः । अचेतसं । नयंति ।

प्रऽव्राजे । चित् । नद्यः । गाधं । अस्ति । पारं । नः । अस्य । विष्पितस्य । पर्षन् ॥ ७ ॥

इमे मिचादयो दिवो बुल्लोकस्य पृथिव्याश्च संबन्धिनोऽनिमिषानिमेपेण सर्वदा चिकित्वांसो जानंतः ।

कं । अचेतसमञ्जानं । नयंति । प्रापयंति कर्माणि । प्रवाजे चित् प्रवणेऽप्यत्यंतनिष्ठेऽपि देशे मधी मया  
नाधमस्ति । भवति युष्मत्सामर्थ्यात् । ते महान्तो नोऽस्माकमस्य विष्पितस्य व्याप्तिस्तस्य कर्मणः पारं पर्यन् ।  
पारयन्तु । नयन्तु ॥

यज्ञोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छंति वरुणः सुदासे ।

तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ॥ ८ ॥

यत् । गोपावत् । अदितिः । शर्म । भद्रं । मित्रः । यच्छंति । वरुणः । सुऽदासे ।

तस्मिन् । आ । तोकं । तनयं । दधानाः । मा । कर्म । देवऽहेळनं । तुरासः ॥ ८ ॥

यच्छर्म सुखं गृहं वा गोपावद्रक्षणोपेतं भद्रं सुखमदितिरदीनोऽर्थमादितिर्वा मित्रो वरुणश्चेति ययो  
देवाः सुदासे सुदानाय मद्यं यच्छंति प्रयच्छंति तस्मिच्छर्मणि तोकं पुत्रं तनयं तत्पुत्रादिकं । अथवा तनय-  
शब्दोऽपत्यसामान्यवचनः । तोकं बलवतं पुत्रमा सर्वतो दधाना धारयन्तो ययं हे तुरासो गमनाय त्वरमाणाः  
देवहेळनं देवानां मित्रादीनां कोपनं मा कर्म । मा कार्प्यं ॥

अव वेदिं होचाभिर्यजेत् रिपः काश्चिद्वरुणधुतः सः ।

परि द्वेषोभिर्यमा वृणक्तुं सुदासे वृषणा उ लोकं ॥ ९ ॥

अव । वेदिं । होचाभिः । यजेत् । रिपः । काः । चित् । वरुणऽधुतः । सः ।

परि । द्वेषऽभिः । अर्यमा । वृणक्तु । उरं । सुऽदासे । वृषणौ । ऊं इति । लोकं ॥ ९ ॥

हे मित्रादयः सोऽस्माद्वेषी वेदिं यागसाधनं होचाभिः । वाङ्मात्रैतत् । वायूपाभिः स्तुतिभिः सार्धमव  
यजेत । वेदां कर्माणि कुर्वन्देवान् जुयादित्यर्थः । अवपूर्वो यजतिस्थानार्थः । स किं प्राप्नुयादिति तच्चाह ।  
वरुणधुतो वरुणेन त्वया हिंसितः स काश्चिद्रिपो हिंसाः प्राप्नुयादिति शेषः । अस्मांस्त्वर्यमा देवो द्वेषोभि-  
र्द्वेषुमी रचःप्रभृतिभिः परि वृणक्तु । वर्जयतु । उरं विसीर्य लोकं स्थानं सुदासे शोभनदानाय मद्यं प्रयच्छन्तं  
हे वृषणा वर्यका कामानां मित्रावरुणा ॥

सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेषामपीच्येन सहसा सहते ।

युष्मद्भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ॥ १० ॥

सस्वरिति । चित् । हि । संऽच्यतिः । त्वेषी । एषां । अपीच्येन । सहसा । सहते ।

युष्मत् । भिया । वृषणः । रेजमानाः । दक्षस्य । चित् । महिना । मृळत । नः ॥ १० ॥

एषां मित्रादीनां समृतिः संगतिः संहतिर्वा सस्वरंतर्हिता निगूढा त्वेषी दीप्ता च भवति । तादृशा एते  
ऽपीच्येन । एतदप्यंतर्हितनाम । निगूढेन सहसा बलेन सहते । अभिभवत्यस्माद्वेषुण् । किंच हे वृषणोऽभिमतय-  
पका मित्रादयः युष्मद्युष्मत्तो भिया भीत्या रेजमानाः कंपमाना भवंति विरोधिनः । यस्मादेवं तस्माद्वेषस्य  
युष्माकं बलस्य महिना महिम्ना महत्त्वेन नोऽस्माभ्यं मृळत । उपदयां कुरुत ॥

यो ब्रह्मणे सुमतिमायजति वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।

सीदन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ॥ ११ ॥

यः । ब्रह्मणे । सुऽमतिं । आऽयजति । वाजस्य । सातौ । परमस्य । रायः ।

सीदन्त । मन्युं । मघऽवानः । अर्यः । उरु । क्षयाय । चक्रिरे । सुऽधातु ॥ ११ ॥



यो यजमानो ब्रह्मणं परिवृद्धस्वर्कर्मणे युष्मत्सोवरूपाय सुमतिं शोभनां बुद्धिमायजाति आयजते ।  
यजतिरच दाने । ददाति करोति । किमर्थं । वाजस्यान्नस्य साती दाने निमित्ते परमसोत्कृष्टस्य राय्यो  
धनस्य च साती । तस्यार्थः । ईरयति क्षुतीः प्रेरयतीत्यरिः क्षोता । मन्यं क्षोचं मघवानो दानवन्तोऽर्थमादयः  
क्षोचन्त । सचन्ते । सेवित्वा च तस्योद्वेषयाय विस्तीर्णनिवासाय सुधातु सुधाम शोभनस्थानं चक्रिरे । कुर्वन्ते ॥

इयं देव पुरोहितियुवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।

विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरौ नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १२ ॥

इयं देवा । पुरःऽहितिः । युवऽभ्यां । यज्ञेषु । मित्रावरुणौ । अकारि ।

विश्वानि । दुःऽगा । पिपृतं । तिरः । नः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ १२ ॥

अनया क्षुतिमुपसंहरति । हे देवा देवी मित्रावरुणौ युवभ्यां युवाभ्यां यज्ञेष्वियं पुरोहितः पुरस्त्रिया  
पूजा क्षुतिक्षणकारि । कृताभूत् । तां सेवित्वा विश्वानि सर्वाणि दुर्गा दुःखेन गंतव्यान्वापदस्त्रिः । तिर-  
स्क्रुतं । तथा कृत्वा नोऽस्मान्पिपृतं । पारयतं । शिष्टो गतः ॥ १२ ॥

उद्वां चक्षुरिति सप्तर्चं यष्टं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं वैश्वं मित्रावरुणं । उद्वां सप्तैत्यशुक्रमणिका ॥ विनियोगो  
लैंगिकः ॥

उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्तत्त्वान् ।

अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वेवा चिकेत ॥ १ ॥

उत् । वां । चक्षुः । वरुणा । सुऽप्रतीकं । देवयोः । एति । सूर्यः । तत्त्वान् ।

अभि । यः । विश्वा । भुवनानि । चष्टे । सः । मन्युं । मर्त्येषु । आ । चिकेत ॥ १ ॥

हे वरुणा मित्रावरुणौ देवयोर्जीतमानयोर्वी युवयोश्चक्षुः प्रकाशकं तेजः सुप्रतीकं शोभनरूपमेवंक्ष्यः  
सूर्यस्तत्त्वान्क्षेत्रो विस्तारयन्नुदेति । उक्तच्छति । अथोदितो यो देवो विश्वा सर्वाणि भुवनानि भूतजातान्यभि  
चष्टे अभिपश्यति स देवो मर्त्येषु प्रवृत्तं मन्युं क्षोचं कर्म वा चिकेत । आजानाति ॥

प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।

यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत्क्रत्वा न शरदः पृथैथे ॥ २ ॥

प्र । वां । सः । मित्रावरुणौ । ऋतऽवां । विप्रः । मन्मानि । दीर्घऽश्रुत् । इयर्ति ।

यस्य । ब्रह्माणि । सुक्रतू इति सुऽक्रतू । अवाथः । आ । यत् । क्रत्वा । न । शरदः ।

पृथैथे इति ॥ २ ॥

हे मित्रावरुणौ वां युवयोर्मन्मानि मननीयानि क्षोत्राणि स प्रसिद्धो विप्रो मेधावृतावा यज्ञवान्  
दीर्घश्रुदिरकालं श्रोता एवमुक्तलक्षणो वसिष्ठ इयर्ति । प्रेरयति । यत्कर्षेर्ब्रह्माणि परिवृद्धानि क्षोत्राणि हे  
सुक्रतू शोभनकर्माणी अवाथः रचयः । यत्कर्म शरदो बहन् संवत्सराना पृथैथे आपूरयेथे स उदियर्ति ॥

प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्याद्भृतः सुदानू ।

स्पशौ दधाथे ओषधीषु विस्त्वृध्ग्यतो अर्निमिषं रक्षमाणा ॥ ३ ॥

प्र। उ॒रोः। मि॒त्राव॒रुणा॑। पृथि॒व्याः। प्र। दि॒वः। ऋ॒ध्वात्। बृ॒ह॒तः। सु॒दानू॑ इति सु॒दानू॑।  
स्पर्शः। द॒धा॒थे इति॑। ओष॑धीषु। वि॒क्षु। ऋ॒धक्। य॒तः। अ॒नि॒ऽमिषं॑। रक्ष॑माणा ॥ ३ ॥

हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ युवामुरोर्विस्तीर्णायाः पृथिव्या अपि प्र। प्ररिरिचाथे। अस्त्रेदेव प्र रिरिचे। ऋ० १. ६१. ९। इत्यादिषु प्रशब्दस्य रिरिच इत्यनेन सह संबंधदर्शनादत्राप्युचितक्रियाध्याहारेण रिरिच इति योज्यं। तथर्षान्मूर्धमहतो बृहतः स्वरूपतोऽतिमहतो दिवो ब्रुलोकादपि प्र रिरिचाथे हे सुदानू शोभनदानौ। किंर्षधीषु विक्षु प्रजासु निमित्तभूतासु प्रजासु चेति वा स्पर्शो रूपं दधाथे। धारयेथे। किं कुर्वती। ऋधग्यत ऋधक्सत्येन यतो विवेकात् सत्येन गच्छतो जनाननिमिषमव्यवधानेन सर्वदा रक्षमाणा पालयन्ती ॥

शंसा॑ मि॒त्रस्य॑ वरु॒णस्य॑ धाम॒ शुष्मो॑ रोद॒सी ब॒द्धधे॑ महि॒त्वा।  
अ॒यन्मा॑सा अ॒यज्व॑नाम॒वीराः॑ प्र य॒ज्ञम॑न्मा वृ॒जनं॑ ति॒राते॑ ॥ ४ ॥  
शं॑स। मि॒त्रस्य॑। वरु॒णस्य॑। धाम॑। शुष्मः॑। रोद॒सी इति॑। ब॒द्धधे॑। महि॒ऽत्वा।  
अ॒यन्। मा॑साः। अ॒यज्व॑नां। अ॒वीराः॑। प्र। य॒ज्ञऽम॑न्मा। वृ॒जनं॑। ति॒राते॑ ॥ ४ ॥

हे ऋषे मित्रस्य वरुणस्य च धाम तेजःस्थानं शंस। क्षुहि। ययोर्देवयोः शुष्मो बलं रोदसी बावापृथिव्या सह वर्तमाने महित्वा स्वमहत्त्वेन बद्धधे बध्नाति पृथक्स्थापयति इयं पृथिवीयं वारिति पृथक्करोति। बावा-पृथिवी सहासामिति श्रुतेः। अयज्वनामननुष्ठानां मासाः कालावयवा अवीरा अपुत्रा एवायन्। यन्तु। गच्छन्तु। तद्विपरीतो यज्ञमन्मा यज्ञार्थं मतिमान्यज्ञा वृजनं बलं प्र तिराते। प्रवर्धयन्तु। प्रपूर्वस्तिर-तिवर्धनार्थः ॥

अ॒मूरा॑ वि॒श्वा वृष॑णावि॒मा वा॑ न यासु॑ चि॒त्रं द॒दृ॒शे न॑ य॒क्षं।  
दु॒हः स॒च॒न्ते अ॒नृ॒ता ज॒नानां॑ न वा॑ नि॒णयान्य॑चिते॒ अभू॑वन् ॥ ५ ॥  
अ॒मूरा॑। वि॒श्वा। वृष॑णौ। इ॒माः। वा॑। न। यासु॑। चि॒त्रं। द॒दृ॒शे। न। य॒क्षं।  
दु॒हः। स॒च॒न्ते। अ॒नृ॒ता। ज॒नानां॑। न। वा॑। नि॒णयानि॑। अ॒चिते॑। अभू॑वन् ॥ ५ ॥

हे अमूरामूढौ हे विश्वा व्याप्तौ हे वृषणौ वर्षितारौ वा युवाभ्यामिमा इमानि क्षुतिवचांसि क्रियन्ते। यासु क्षुतिषु चित्रमाश्रयं न ददृशे न दृश्यते न यत्नं न पूजा दृश्यते। युवाभ्यां महिम्नोऽपि महत्त्वात् प्रयत्नेन क्रियमाणमपि लोचं न चमत्करोतीत्यर्थः। जनानामनृतास्तुत्यविषयाणि लोचाणि द्रुहो द्रोग्धारः सचन्ते। भवन्ति। न महान्तः। वा युवाभ्यां क्रियमाणानि निष्णान्यन्तर्हितानि रहस्यान्यपि लोचाण्यचितेऽज्ञानाय नाभूवन्। न भवन्ति ॥

ससु॑ वा॑ य॒ज्ञं म॒हयं॑ नमो॒भिर्हु॑वे वा॑ मि॒त्राव॒रुणा॑ स॒बाधः॑।  
प्र वा॑ म॒न्मान्य॑च॒से न॒वानि॑ कृ॒तानि॑ ब्र॒ह्म जु॒षन्नि॒मानि॑ ॥ ६ ॥  
सं। ऊ॒ इति॑। वा॑। य॒ज्ञं। म॒हयं॑। नमः॑ऽभिः। हु॒वे। वा॑। मि॒त्राव॒रुणा॑। स॒ऽबाधः॑।  
प्र। वा॑। म॒न्मानि॑। ऋ॒चमे॑। न॒वानि॑। कृ॒तानि॑। ब्र॒ह्म। जु॒षन्। इ॒मानि॑ ॥ ६ ॥

हे मित्रावरुणौ वा युवयोर्यज्ञं नमोभिर्नमस्कारः क्षुतिभिः समु महयं। संपूजयाम्यहं। तदर्थं हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ वा सबाधो बाधायुक्तोऽहं ब्रह्म। आहुयामि बाधापरिहाराय। वा युवामृचसे सवितुं



नवाणि नूतनानि सुत्नानि वा मन्त्राणि स्तोत्राणि प्र भवंत्वित्यधाहारः । छतानि मया समूहीकृतानीमानी-  
दानीं क्रियमाणानि ब्रह्म परिवृढानि स्तोत्राणि युवां जुजुषन् । प्रीणयंतु ॥

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।

विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

इयं । देवा । पुरःऽहितिः । युवऽभ्यां । यज्ञेषु । मित्रावरुणौ । अकारि ।

विश्वानि । दुःऽगा । पिपृत । तिरः । नः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

इयं देवेति सप्तमी गता ॥ ३ ॥

उत्सूर्य इति षड्वचं सप्तमं सूक्तं । अचानुक्रमणिका । उत्सूर्यः पठाद्यास्तिस्रः सौर्य इति । वसिष्ठ ऋषिः ।  
त्रिष्टुप् छंदः । आद्यास्तिस्रः सूर्यदेवताः शिष्टा मित्रावरुणदेवताः ॥ सूक्तविनियोगो लिंगिकः ॥

उत्सूर्यो बृहदर्चींश्चेत्पुरु विश्वा जनिम मानुषाणां ।

समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १ ॥

उत् । सूर्यः । बृहत् । अर्चींषि । अश्नेत् । पुरु । विश्वा । जनिम । मानुषाणां ।

समः । दिवा । ददृशे । रोचमानः । क्रत्वा । कृतः । सुऽकृतः । कर्तृऽभिः । भूत् ॥ १ ॥

सूर्यः सर्वस्य प्रेरको देवो बृहदाद्यधिकं पुर पुरुणि ब्रह्मन्यर्चींषि तेषां सुदथेत् । ऊर्ध्वं अयति । किं प्रति ।  
मानुषाणां मनुष्याणां विश्वा सर्वाणि जनिम जनिमानि जनान् । अनशब्दः संघवचनः । तान् आत्युदथेत् । स  
देवो दिवाहनि रोचमानः सन् समो ददृशे । एकरूपः प्रतिनियतः सन्दृश्यते । तस्मात्पुरुषं पुरुषं प्रत्यादित्यो  
भवतीति हि श्रुतिः । स देवः क्रत्वा सर्वस्य कर्ता छतः संपादितः प्रजापतिना कर्तृभिः स्तुतिकर्तृभिः सुकृतः  
सुत्वा तीक्ष्णीकृतो भूत् । भवति ॥

स सूर्य प्रति पुरो न उक्ता एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।

प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अमर्ये च ॥ २ ॥

सः । सूर्य । प्रति । पुरः । नः । उत् । गाः । एभिः । स्तोमेभिः । एतशेभिः । एवैः ।

प्र । नः । मित्राय । वरुणाय । वोचः । अनागसः । अर्यम्णे । अमर्ये । च ॥ २ ॥

हे सूर्य स प्रसिद्धस्त्वं नोऽस्मान्प्रति पुरः पुरस्तादुक्ताः । उक्ताच्छ । कैः साधयिः । एभिः स्तोमेभिः स्तोमे-  
स्तुतिरेतशेभिरेतवर्णैः ॥ स्वार्थिकः शंकारः या जरता युवशा ता । ऋ० १. १६१. ७. । पुरुषः कृष्णशवास्तुत्तरतः  
। ऐ० ब्रा० ५. १४. । इत्यादिवत् ॥ तादृशैरेवैर्गमनशीलैरश्वैरुक्ताः । अथ तथा कृत्वास्माभिः स्तुतः सन्नोऽस्मानना-  
गसोऽपापान्त्र वोचः । केभ्यः । मित्राय वरुणाय अर्यम्णेऽमर्ये च । अत्र सौर्य इतरेषां मित्रादीनां संकीर्तनं  
तेषामपि निपातभाक्तादविहङ्गं । एवं पूर्ववोत्तरच च मित्रावरुणेऽर्यमादीनां संकीर्तनमपि न विहृष्यते ॥

वि नः सहस्रं शुरुधो रदंतुतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।

यच्छंतु चंद्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरंतु स्तवानाः ॥ ३ ॥

वि । नः । सहस्रं । शुरुधः । रदंतु । ऋतुऽवानः । वरुणः । मित्रः । अग्निः ।

यच्छंतु । चंद्राः । उपऽमं । नः । अर्कः । आ । नः । कामं । पूपुरंतु । स्तवानाः ॥ ३ ॥

नोऽस्माभ्यं शुद्धः शुचिर्दुःखस्य प्रतिरोद्धार अतावानः सत्यवन्तो वरुणादयः सहस्रं सहस्रसंख्याकं धनं वि रदंतु । वितरंतु । अथवा शुद्ध उक्तलक्षणाः सहस्रसंख्याका औषधी रदंतु । किंच ते चंद्रा आह्लादकारिणो ऽस्माभ्यमुपमं सुत्यमर्कमर्चनीयं यच्छंतु । किंच सवाना अस्माभिः स्तूयमाना नोऽस्माकं काममपेक्षितं पूरयंतु । हे सूर्य त्वयानुज्ञाता इति सूर्यस्य स्तुतिः ॥

द्यावाभूमी अदिते चासीथां नो ये वां जङ्घुः सुजनिमान ऋष्वे ।

मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणां ॥४॥

द्यावाभूमी इति । अदिते । चासीथां । नः । ये । वां । जङ्घुः । सुऽजनिमानः । ऋष्वे इति ।

मा । हेळे । भूम । वरुणस्य । वायोः । मा । मित्रस्य । प्रियऽतमस्य । नृणां ॥४॥

हे द्यावाभूमी द्यावापृथिवी हे अदितेऽखंडनीये । एतद्द्यावाभूम्योरेवैकवचनेन संबोधनं । हे ऋष्वे । महत्तामैतत् । हे महती नोऽस्मांस्त्रासीथां । रचतं । ये वयं सुजनिमानः शोभनजन्मानो वां युवां जङ्घुः ज्ञातवन्तः स्म । किंच वयं वरुणस्य हेळे क्रोधे मा भूम । तथा वायोर्मा भूम । तथा नृणां स्तुतिनेतृणां मनुष्याणां प्रियतमस्य मित्रस्य हेळे मा भूम ॥

प्र बाह्वेभि पंचमी मित्रावरुणे पशौ पशुपुरोडाशस्य याज्या । स्तुतितं च । प्र बाह्वा सिद्धतं जीवसे नो यद्वहिष्ठं नातिविधे मुदानू । आ० ३. ८. इति ॥

प्र बाह्वा सिद्धतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।

आ नो जने अवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥५॥

प्र । बाह्वा । सिद्धतं । जीवसे । नः । आ । नः । गव्यूतिं । उक्षतं । घृतेन ।

आ । नः । जने । अवयतं । युवाना । श्रुतं । मे । मित्रावरुणा । हवा । इमा ॥५॥

हे मित्रावरुणा मित्रावरुणी देवी बाह्वा युवाभ्यां बाह्व प्र सिद्धतं । प्रसारयतं हविःस्वीकाराय धनप्र-दानाय वा । किमर्थमिति । नो जीवसेऽस्माकं जीवनाय । किंच नोऽस्माकं गव्यूतिं । गावो यंति गच्छन्त्येति गव्यूतिर्गोमार्गभूमिः । तां तृणादिप्ररोहाय घृतेनोदकेना समंतादुच्यतं । सिंचतं । किंच नोऽस्माज्जनेऽस्मात्समाने मनुष्यसमूहे वा नोऽस्माञ्ज्वयतं । विश्रुतं कुरुतं । हे युवाना नित्ययौवनौ सर्वत्र व्याप्तौ वा युवां मे ममेमे-मानि हवाह्वानानि श्रुतं । शृणुतं ॥

नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्तमने तोकाय वरिवो दधंतु ।

सुगा नो विश्वा सुपथानि संतु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

नू । मित्रः । वरुणः । अर्यमा । नः । तमने । तोकाय । वरिवः । दधंतु ।

सुऽगा । नः । विश्वा । सुऽपथानि । संतु । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥६॥

मित्रो वरुणोऽर्यमा चैते चयो देवा न्वय नोऽस्माकं त्वन आत्मन आत्महिताय तोकाय पुत्राय च वरिवो धनं दधंतु । प्रयच्छंतु । नोऽस्माकं विश्वा सर्वाणि गंतव्यानि सुगा सुगमनानि सुपथानि च संतु । भवंतु । शिष्टं गतं ॥ ॥४॥

उद्वेतीति पट्टचमष्टमं मूर्त्तं वसिष्ठस्यार्थं वैष्टमं । आवायतसः पंचम्याः पूर्वार्धस्य सूर्यदेवत्वा अवशिष्टास्त्रयो ऽर्धचा मित्रावरुणदेवत्वाः । तथा चानुक्रांतं । उद्वेतीति चार्धपंचमा इति ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥



उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणां ।

चक्षुर्मिचस्य वरुणस्य देवश्चर्मैव यः समविष्यक्तमांसि ॥ १ ॥

उत् । ऊं इति । एति । सुऽभगः । विश्वऽचक्षाः । साधारणः । सूर्यः । मानुषाणां ।

चक्षुः । मिचस्य । वरुणस्य । देवः । चर्मैऽइव । यः । संऽअविष्यक् । तमांसि ॥ १ ॥

उद्वेति उद्वच्छत्यर्थं सूर्यः सुभगः शोभनभाग्यः सुष्ठु भजनीयो वा विश्वचक्षाः सर्वस्य द्रष्टा मानुषाणां सर्वेषां मनुष्याणां साधारणः । साधारणत्वप्रतिपादकश्रुतिः पूर्वमुदाहृता । मिचस्य वरुणस्य च चक्षुः प्रकाशको देवो योतमानः । यो देवश्चर्मैव चर्माणीव तमांसि समविष्यक् सह विचसति संवेष्टयति स महानुभावो देव उद्वेति ॥

उद्वेति प्रसवीता जनानां महान्केतुरर्णवः सूर्यस्य ।

समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्त्यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥ २ ॥

उत् । ऊं इति । एति । प्रऽसविता । जनानां । महान् । केतुः । अर्णवः । सूर्यस्य ।

समानं । चक्रं । परिऽआविवृत्सन् । यत् । एतशः । वहति । धूऽसु । युक्तः ॥ २ ॥

अयं सूर्यस्य सूर्यः ॥ विभक्तित्वव्यत्ययः ॥ उद्वेति । उद्वच्छति । कीदृशोऽयं । जनानां सर्वेषां प्रसविता सर्वेषु कर्मस्वनुज्ञाता महान् पूज्यः केतुः सर्वस्य प्रज्ञापकोऽर्णव उदकप्रदः । किं कुर्वन्नुदेतीति उच्यते । समानं सर्वेषां मेकस्वरूपमेकमेव चक्रं रथांगं चरणशीलं रथं वा पर्याविवृत्सन् पर्यावर्तयितुमिच्छन् । यद्वा यचक्रं धूर्षु रथस्य युक्त एतश्च एतश्चवर्णो हरितवर्णोऽथो वहति । एको अथो वहति सप्तनामा । अ० १. १६४. २. । इत्युक्तं ॥

विभ्राजमान उषसामुपस्थादिभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।

एष मे देवः सविता चच्छंद यः समानं न प्रमिनाति धाम ॥ ३ ॥

विऽभ्राजमानः । उषसा । उपऽस्थात् । रेभैः । उत् । एति । अनुऽमद्यमानः ।

एषः । मे । देवः । सविता । चच्छंद । यः । समानं । न । प्रऽमिनाति । धाम ॥ ३ ॥

अयं सूर्यो विभ्राजमानो विशेषेण दीप्यमान उषसामुपस्थादुपस्थे मध्ये रेभिः सौगुमिरनुमद्यमानः सन्नुदेति । किंचिद् देवो योतमानः सविता मे मह्यं चच्छंद । उपच्छंदयति कामान् । एष इत्युक्तं क इति । यो देवः समानं सर्वेषां प्राणिनामेकस्वरूपं धाम स्वीयं तेजःस्थानं न प्रमिनाति न हिनसि न संकोचयति स देव उदेतीति ॥

दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेऽर्थस्तारणिर्भ्राजमानः ।

नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृण्वन् अपांसि ॥ ४ ॥

दिवः । रुक्मः । उरुऽचक्षाः । उत् । एति । दूरेऽर्थः । तारणिः । भ्राजमानः ।

नूनं । जनाः । सूर्येण । प्रऽसूताः । अयन् । अर्थानि । कृण्वन् । अपांसि ॥ ४ ॥

अयं सूर्यो रुक्मो रोचमान उरुचक्षाः प्रभूततेजाश्च सन्निवोऽंतरिक्षादुदेति । यदा । दिवोऽंतरिक्षा रुक्म आभरणस्थानीयः । कीदृशोऽयं । दूरेऽर्थो दूरेगता ॥ अर्थोऽर्तिः ॥ दूरे प्रार्थमानो वा । तारणिसारको आब्रजमानो दीप्यमानः सन्नुदेति । नूनं निश्चयं जनाः सर्वे प्राणिनः सूर्येण प्रेरकेण देवेन प्रसूता अनुज्ञाताः प्रेरिताः संतोऽर्थानि गंतव्यान्नुष्ठेयान्यपांसि कर्माणि कृण्वन् । कुर्वन्ति ॥

यज्ञां चक्रुर्मृतां गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नवेति पार्थः ।

प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ॥ ५ ॥

यज्ञं चक्रुः । अमृताः । गातुं । अस्मै । श्येनः । न । दीयन् । अनु । एति । पार्थः ।

प्रति । वां । सूरै । उत् । उदिते । विधेम । नमः । ऽभिः । मित्रावरुणा । उत । हव्यैः ॥ ५ ॥

यत्र यस्मिन्नंतरिक्षेऽमृता अमरणधर्माः पूर्वं देवा अस्मै सूर्याय गातुं मार्गं चक्रुः अकुर्वन् तत्प्राथो  
ऽंतरिक्षमन्वेति । अनुगच्छति । क इव । दीयन् गच्छत्येनो न शंसनीयगमनो गृध्र इव । अयमर्धर्चः शौर्यं  
इत्युक्तं । हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ वां युवां सूरै सूर्य उदिते सति प्रातःसवने नमोभिर्मित्रावरुणैः स्तुतिभिः  
तापि च हव्यैर्हविर्मित्रं प्रति विधेम । परिचरेम ॥

नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्मने तोकाय वरिवो दधंतु ।

सुगा नो विश्वा सुपथानि संतु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

नू । मित्रः । वरुणः । अर्यमा । नः । स्मने । तोकाय । वरिवः । दधंतु ।

सुऽगा । नः । विश्वा । सुऽपथानि । संतु । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ६ ॥

नू मित्र इति षष्ठी गता ॥ ५ ॥

दिवि जयतेति पंचर्चं नवमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्धं मित्रावरुणं । दिवि पंचेत्यनुक्रमणिका ॥ तृतीये छंदोमे  
प्रउगशस्त्र आबसृचो मित्रावरुणस्य । सूचितं च । दिवि जयंता रजसः पृथिव्यामा विश्ववाराधित्वा गतं नः  
। आ० ८. ११. । इति ॥

दिवि क्षयंता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।

हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषंत ॥ १ ॥

दिवि । क्षयंता । रजसः । पृथिव्यां । प्र । वां । घृतस्य । निः । ऽनिजः । ददीरन् ।

हव्यं । नः । मित्रः । अर्यमा । सुऽजातः । राजा । सुऽक्षत्रः । वरुणः । जुषंत ॥ १ ॥

दिवि बुल्लोकेऽंतरिक्षे पृथिव्यां च वर्तमानस्य रजस उदकस्य जयंता । जयतिरैश्वर्यकर्मा । स्वामिनी  
भवथः । हे मित्रावरुणौ वां युवाभ्यां प्रेरिता मेघा घृतस्य निर्णिज उदकस्य रूपाणि ददीरन् । ददते ।  
प्रयच्छंति । अथवा वां युवाभ्यां घृतस्य निर्णिजो रूपाणि । घृतानीत्यर्थः । तानि ददीरन् । दीयंते । नो  
ऽस्माकं संबंधि हव्यं मित्रः सुजातः सुष्ठु प्रादुर्भूतोऽर्यमा राजा सर्वस्य स्वामी सुक्षत्रः शोभनवज्रो वरुणश्चेति  
जुषंत । सेवतां ॥

आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिंधुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।

इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥ २ ॥

आ । राजाना । महः । ऋतस्य । गोपा । सिंधुपती इति सिंधुऽपती । क्षत्रिया ।  
यातं । अर्वाक् ।

इळां । नः । मित्रावरुणा । उत । वृष्टिं । अव । दिवः । इन्वतं । जीरदानू इति  
जीरऽदानू ॥ २ ॥



हे राजाना सर्वस्य स्वामिनी हे महो महत ऋतस्योदकस्य यज्ञस्य गोपा गोपाधितारो ॥ सुवामंषिनि परांगवत्स्वर इति परांगवत्स्वावात् षष्मामंषितसमुदायस्य निघातत्वं ॥ हे धिंधुपती नद्याः पालयितारो हे चविद्या बलवंतौ युवामर्वागक्षदमिमुखमा यातं । आगच्छतं । किंच हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ हे जोरदानु चिप्रदानौ युवां नोऽस्मभ्यमिच्छामंसमुतापि च पुष्टिं तत्साधिकां वृष्टिं च दिवोऽंतरिक्षाद्वावस्तादिन्नतं । शिरयतं ॥

मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयंतु ।

ब्रवद्दथा न आदुरिः सुदासं इषा मदेम सह देवगोपाः ॥ ३ ॥

मित्रः । तत् । नः । वरुणः । देवः । अर्यः । प्र । साधिष्ठेभिः । पथिभिः । नयंतु ।

ब्रवत् । यथा । नः । आदुरिः । सुदासं । इषा । मदेम । सह । देवगोपाः ॥ ३ ॥

मित्रो वरुणो देवोऽर्योऽर्यमा चैते त्रयोऽपि नोऽस्मांस्तदा यदास्माकमपेक्षितं तदा साधिष्ठेभिः साधकतमैः पथिभिर्मार्गैर्नयंतु । प्रापयंतु । किंच नोऽस्मान् सुदासे शोभनदानाय जनाधारिरर्यमा यथा ब्रवत् असावनुकुंय इति ब्रूयात् तथा कुर्वंतु । अर्यम्यः पुनरभिधानमादरार्थं । देवगोपा देवा यूयं गोपाधितारो येषामस्माकं ते वयमिषा युष्मभिर्दातव्येनात्रेन सह पुत्रादिसहिता मदेम । हृथेम ॥

यो वां गतं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वा धीतिं कृण्वद्धारयच्च ।

उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुस्त्रितीस्तर्पयेथां ॥ ४ ॥

यः । वां । गतं । मनसा । तक्षत् । एतं । ऊर्ध्वा । धीतिं । कृण्वत् । धारयत् । च ।

उक्षेथां । मित्रावरुणा । घृतेन । ता । राजाना । सुस्त्रितीः । तर्पयेथां ॥ ४ ॥

हे मित्रावरुणौ यो वां युवयोरेतं गतं रथं मनसा तक्षत् सोमेन संकल्पयेत् तथा ह्रस्वोर्ध्वामुन्नतां धीतिं कर्म स्तुतिरूपं कृण्वत् कुर्यात् उक्षेः कुर्यात् एवं कृत्वा धारयच्च यागे धारयेत् हे राजाना स्वामिनी मित्रावरुणा मित्रावरुणौ ता तौ युवां जनं घृतेनोदकेनोक्षेथां । सिंचतं । तक्षे सुस्त्रितीः शोभननिवासाः प्रजाः तर्पयेथां । यथा सुचितयो भवन्ति तथा तर्पयेथामिति ॥

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

एषः । स्तोमः । वरुण । मित्र । तुभ्यं । सोमः । शुक्रः । न । वायवे । अयामि ।

अविष्टं । धियः । जिगृतं । पुरंधीः । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ ५ ॥

अनया स्तुतिमुपसंहरति । हे वरुण हे मित्र तुभ्यं युवयोर्वायवे । वायुर्गतादित्यः । स एवार्थमा । तक्षे चैष स्तोमः स्तवोऽयामि । अकारि । किमिव । शुक्रो दीप्तः सोमो न युष्मभ्यं प्रीतिकरः सोमो यथा दीयते तद्वत् । धियः कर्माणांस्मदीयान्यविष्टं । रक्षतं । पुरंधीः कुतोर्जिगृतं । प्रनुध्यतं । अन्यन्नतं ॥ ६ ॥

प्रति वां सूर इति पंचमं दशमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं मित्रावरुणं । प्रति वामित्यनुक्रांतं ॥ द्वितीये छंदोमे प्रउगशस्त्रेऽप्येष तृचः । सूचितं च । प्रति वां सूर उदिते सूक्तिर्धेनुः प्रत्नस्य । आ० प. १०. इति ॥

प्रति वां सूर उदिते सूक्तमिच्छं हुवे वरुणं पूतदक्षं ।

ययोरसुर्यं मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्वाचिता जिगृन्तु ॥ १ ॥

प्रति । वां । सूरैः । उत्त॑ऽङ्ते । सु॑ऽउ॒क्तैः । मि॒त्रं । हु॒वे । वरु॑णं । पू॒तऽद॑क्षं ।  
ययोः । अ॒सुर्यै । अ॒क्षि॑तं । ज्येष्ठं । वि॒श्वस्य॑ । याम॑न् । आ॒ऽचि॑ता । जि॒गत्सु ॥ १ ॥

सूरे सूर्य उदिते प्रातःसवने मित्रं पूतदक्षं शुक्लबलं वरुणं वां सूक्तेर्जवे । आहुवे । ययोर्मित्रावरुणयोर-  
क्षितमधीणमत एव ज्येष्ठमसुर्यं वलमाचिताचित उपचिते मूरसंधेदपेते यामन् यामनि संगामे विश्वस्य  
शत्रुसंधस्य जिगत्सु वेतु भवति ॥

ता हि दे॒वाना॑म॒सुरा॑ ताव॒र्या ता नः॑ स्त्रि॒तीः क॑रत॒मूर्ज॑य॒तीः ।  
अ॒श्याम॑ मि॒त्राव॑रुणा व॒यं वां द्या॒वा च॒ यत्र॑ पी॒पय॑न्नाहा च ॥ २ ॥  
ता । हि । दे॒वानां॑ । अ॒सुरा॑ । ता । नः॑ । स्त्रि॒तीः । क॑र॒तं । ऊ॒र्जय॑तीः ।  
अ॒श्याम॑ । मि॒त्राव॑रुणा । व॒यं । वां । द्या॒वा । च॒ । यत्र॑ । पी॒पय॑न् । अ॒हा । च ॥ २ ॥

ता हि तौ खलु देवी देवानां मध्येऽसुरा वलवन्तौ । अर्यायीं तौ सर्वस्त्रेश्वरौ । ता तौ नोऽस्माकं  
चितीः पुत्रादिरूपाः प्रजा ऊर्जयन्तीः प्रवृद्धाः करतं । ऊर्जयन्तीः । हे मित्रावरुणा मित्रावरुणी वयं वां युवाम-  
श्याम । व्यामुश्याम । यत्र यस्यां युवयोर्व्याप्नोति यावा यावापृथिवी । सर्वदा तयोः सहभावादयमर्थो लभ्यते ।  
अहा च । एतद्वाचिदपलक्षणं । अहोरात्राणि च पीपयन् अस्मान् व्याययेयुः ॥

ता भूरि॑पाशा॒वनृ॑तस्य॒ सेतू॑ दुर॒त्येतू॑ रि॒पवे॑ म॒र्त्याय॑ ।  
ऋ॒तस्य॑ मि॒त्राव॑रुणा प॒था वा॑म॒पो न ना॒वा दु॑रि॒ता त॑रेम ॥ ३ ॥  
ता । भूरि॑ऽपाशौ । अ॒नृ॒तस्य॑ । सेतू॑ इति । दुर॒त्येतू॑ इति दुः॑ऽअ॒त्येतू॑ । रि॒पवे॑ । म॒र्त्याय॑ ।  
ऋ॒तस्य॑ । मि॒त्राव॑रुणा । प॒था । वां । अ॒पः । न । ना॒वा । दुः॑ऽइ॒ता । त॑रेम ॥ ३ ॥

ता तौ मित्रावरुणौ भूरिपाशौ प्रभूतबन्धनसाधनपाशोपेतावगुतस्य यागरहितस्य सेतू सेतुवन्धनौ  
रिपवे मर्त्याय वैरिजनाय दुरत्येतू दुरतिक्रमौ भवतः । हे मित्रावरुणा तावृशौ मित्रावरुणौ वां युवयो-  
र्धृतस्य यज्ञस्य युवयोरर्थायानुष्ठीयमानस्य यागस्य पथा मार्गेण दुरिता दुःखाणि तरेम नावापो न प्रभू-  
तान्युदकानीव ॥

मित्रावरुणे पशावा नो मित्रावरुणेत्येषा चतुर्थशुवाक्या । सूचितं च । आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं युवं  
वस्त्राणि पीवसा वसाधे । आ० ३. ८. इति ॥

आ नो॑ मि॒त्राव॑रुणा ह॒व्यजु॑ष्टिं घृ॒तैर्गव्यू॑तिमु॒क्षत॑मि॒ळाभिः॑ ।  
प्र॒ति वा॑म॒त्र व॒रमा॑ जना॒य पृ॒णीत॑मु॒ज्ञो दि॒व्यस्य॑ चारोः ॥ ४ ॥  
आ । नः॑ । मि॒त्राव॑रुणा । ह॒व्यऽजु॑ष्टिं । घृ॒तैः । ग॒व्यूति॑ । उ॒क्षतं॑ । इ॒ळाभिः॑ ।  
प्र॒ति । वां । अ॒त्र । व॒रं । आ । जना॒य । पृ॒णीतं॑ । उ॒ज्ञः । दि॒व्यस्य॑ । चारोः॑ ॥ ४ ॥

हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ नोऽस्माकं हव्यजुष्टिं हविःसेवनवन्तं यज्ञमा गच्छतमिति शेषः । आगत्य  
षेळाभिरन्नैः सह घृतैरुदकैर्गव्यूतिमखादीयां भूमिमुक्षतं । सिंचतं । वां युवां प्रत्यक्षास्त्रिंशोके वरमुत्कृष्टं हविः  
सोचं वा क आ यच्छेदिति शेषः । अतः केवलं कृपयैव दिव्यस्य दिवि भवस्य चारोश्चरणीयस्योत्र उदकस्य ॥  
कर्मणि पठौ ॥ उक्तलक्षणमुदकं पृणीतं । प्रयच्छतं ॥



एष स्तोमो वरुण मिच तुभ्यं सोमः श्रुको न वायवेऽयामि ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

एषः । स्तोमः । वरुण । मिच । तुभ्यं । सोमः । श्रुको । न । वायवे । अयामि ।

अविष्टं । धियः । जिगृतं । पुरंधीः । युयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ ५ ॥

एष स्तोम इति पंचमी गता ॥ ॥ ७ ॥

प्र मिचयोरित्येकोनविंशत्युचमेकादशं सूक्तं वसिष्ठस्त्वार्यं । अच्यमनुक्रमणिका । प्र मिचयोरिकोना गायत्रं दशम्यावास्त्रयः प्रगाथाः पुरउष्णिक् चतुर्थ्यावा दशदित्यास्त्रिः सौर्य इति । दशमी बृहत्याकादशी सतो-बृहती द्वादशी बृहती चयोदशी सतोबृहती चतुर्दशी बृहती पंचदशी सतोबृहती षोडशी पुरउष्णिक् शिष्टा गायत्र्यः । चतुर्थ्यावास्त्रयोदशंता आदित्यदेवताअनुदंष्ट्रावास्त्रिः सूर्यदेवताः । आवांत्यौ तृची पूर्ववन्मैत्राव-दशी ॥ अपिष्टोमे माध्दिनसवने मैत्रावरुणशस्त्र आदितो नवर्चः शस्त्राः । प्र मिचयोर्वरुणयोरिति नव । आ० ५. १०. इति सूचितत्वात् । पुष्पाभिप्लवण्डहयोः स्तोमवृद्धिनिमित्तमावापार्था आवाः पडूचः । सूचितं च । प्र मिचयोर्वरुणयोरिति षट् । आ० ७. ५. इति ॥

प्र मिचयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु श्रूयः । नमस्वान्तुविजातयोः ॥ १ ॥

प्र। मिचयोः । वरुणयोः । स्तोमः । नः । एतु । श्रूयः । नमस्वान् । तुविऽजातयोः ॥ १ ॥

मिचयोर्वरुणयोः । मित्रावरुणयोरित्यर्थः । उभयच प्रतियोगापेक्षया द्विवचनत्वं । तुविजातयोर्वज्रप्रादु-र्भावयोर्द्वयोर्नोऽस्मदीयः श्रूयः सुखकरो भमस्वान्तुवाण हविर्निर्युक्तः स्तोमः स्तोचं प्रेतु । गच्छतु । अहोरात्रं ये मित्रावरुणाविति श्रुतिः । अनयोरहोरात्रापेक्षत्वात्तयोः पुनःपुनरागमनादनयोस्तुविजातत्वं । अथवा बह्वनामुपकारायानयोः प्रादुर्भावात्तुविजातत्वं ॥

या धारयंत देवाः सुदक्षा दक्षपितरा । असुर्योय प्रमहसा ॥ २ ॥

या । धारयंत । देवाः । सुदक्षा । दक्षऽपितरा । असुर्योय । प्रमहसा ॥ २ ॥

या यी युवां धारयंत । के । देवा आदिकर्तारोऽसुर्योय बलकरणाय । कीदृशी युवां । सुदक्षा शोभन-बली दक्षपितरा बलस्य पाक्षकौ स्वामिनी वा । बलप्रदावित्यर्थः । प्रमहसा प्रकृष्टतेजस्वी । तौ साधयतमित्युत्तरचान्वयः ॥

ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितृणां । मिच साधयंत धियः ॥ ३ ॥

ता । नः । स्तिपा । तनूपा । वरुण । जरितृणां । मिच । साधयंत । धियः ॥ ३ ॥

ता तौ स्तिपा । स्थायंत इति कयो गृहाः । तान्पात इति स्तिपी । तनूपा तन्वः पातारौ हि वरुण हे मिच उत्तलक्षणी युवां जरितृणां नोऽस्माकं धियः कर्माणि क्षुतिरूपाणि साधयंत । सफलवन्ति कुर्वत ॥

यदुद्य सूर उदितेऽनागा मिचो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥ ४ ॥

यत् । अद्य । सूर । उदिते । अनागाः । मिचः । अर्यमा । सुवाति । सविता । भगः ॥ ४ ॥

यज्जनमस्माकमपेक्षितं तदद्यास्मिन्कावे सूर उदिते सति प्रातःसवनेऽनागाः पापहृता मिचोऽर्यमा सविता भगवन्ति प्रत्येकं सुवाति । प्रेरयेत् । अथवा । अनागा मिचोऽर्यमा दातार भवतु । तदीप्सितं धनं भगो भवनीयः सविता सुवाति । प्रेरयतु ॥

सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ ५ ॥

सुप्रऽअवीः । अस्तु । सः । क्षयः । प्र । नु । यामन् । सुऽदानवः । ये । नः । अंहः ।  
अतिऽपिप्रति ॥ ५ ॥

स अयः स निवासः सुप्रावीरस्तु । सुप्र प्रकर्षेण रचितास्तु । प्रशब्द आदरार्थः । प्रकर्षेण नु चिप्रं भवत्विति शेषः । कदेति उच्यते । हे सुदानवः सुदानाः युष्माकं यामन् यामनि गमने सति । कीदृशानां गमने । ये यूयमागत्य नोऽस्माकमंहः पापमतिपिप्रति अतिपारयथ तेषां गमन इति ॥ ॥ ८ ॥

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥ ६ ॥

उत । स्वऽराजः । अदितिः । अदब्धस्य । व्रतस्य । ये । महः । राजानः । ईशते ॥ ६ ॥

उतापि च ये मिचादयस्त्रयः स्वराजः सर्वस्व स्वामिनोऽदितिक्षेपां माता च संति अदब्धस्त्राहिंसितस्त्र महो महतो व्रतस्त्रास्त्र कर्मणो राजानः स्वामिनः त ईशते । समर्था भवन्ति । अभिमतं दातुमिति शेषः । अथैवं योज्यं । ये मिचादयोऽदितिस्त्रादब्धस्त्र व्रतस्त्र स्वराज ईश्वराः ते महो महतोऽस्त्रादभिमतधनस्त्र राजानः स्वामिनः संत ईशतेऽस्त्राभ्यं तद्दातुं ॥

प्रति वामित्वेण तुचस्त्रातुर्विशिक्तेऽहनि प्रातःसवने मिचावदणस्त्र पर्यासार्थः । सूचितं च । प्रति वां सूर उदिते व्यतिरिचमतिरत् । आ० ७. २. इति ॥

प्रति वां सूर उदिते मिचं गृणीषे वरुणं । अर्यमणं रिशादसं ॥ ७ ॥

प्रति । वां । सूरैः । उतऽईते । मिचं । गृणीषे । वरुणं । अर्यमणं । रिशादसं ॥ ७ ॥

हे मिचावदणौ मिचं त्वां वरुणं च युवां रिशादसं शत्रूणामन्तारमर्थमणं च प्रति प्रत्येकं गृणीषे । सुवे । कदेति उच्यते । सूरैः सूर्यैः देव उदिते सति । प्रातरित्वर्थः ॥

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ॥ ८ ॥

राया । हिरण्यऽया । मतिः । इयं । अवृकाय । शवसे । इयं । विप्रा । मेधऽसातये ॥ ८ ॥

हिरण्यया हितरमणीयेन राया धनेन सहितायावृकायाहिंस्याय शवसेऽस्माकं वलायेयमिदानीं क्रियमाणा मतिः स्तुतिर्भवत्विति शेषः ॥ हिरण्येत्यत्र सुपां सुसुगिति तृतीयैकवचनस्त्र याजादेशः ॥ किंच हे विप्राः प्राज्ञाः इयं मे च स्तुतिर्मेधसातये यज्ञलाभाय च भवतु ॥

ते स्याम देव वरुण ते मिच सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ॥ ९ ॥

ते । स्याम । देव । वरुण । ते । मिच । सूरिभिः । सह । इषं । स्वश्च । धीमहि ॥ ९ ॥

हे देव वरुण ते वयं तव स्तोतारः स्याम । समृद्धा भवेम । न केवलं वयमेव यजमानाः किंतु सूरिभिः स्तोतुमिच्छन्तिगमः सह । तथा हे मिच देव ते वयं सूरिभिः सह स्याम । भवेम । किंचेष्टमन्नं स्वपदकं च धीमहि । धारयामहे ॥

आश्विनशस्त्रे बहवः सूरचक्षस इति प्रगाथः । सूचितं च । बहवः सूरचक्षस इति प्रगाथाः । आ० ६. ५. इति ॥ दशरात्रे पंचमेऽहनि प्रउगशस्त्रेऽप्ययं प्रगाथः । सूचितं च । बहवः सूरचक्षस इमा उ वां दिविष्ठयः । आ० ७. १२. इति ॥



ब॒हवः॑ सू॒रचक्ष॑सोऽग्निजि॒ह्वा ऋ॒तावृ॑धः ।

ची॒णि॒ ये ये॒मुर्वि॑द॒द्यानि॒ धी॒तिभि॑र्वि॒श्वानि॒ परि॑भूतिभिः ॥ १० ॥

ब॒हवः॑ । सू॒रऽचक्ष॑सः । अ॒ग्निऽजि॒ह्वाः । ऋ॒तऽवृ॑धः ।

ची॒णि॒ । ये । ये॒मुः । वि॒द॒द्यानि॒ । धी॒तिऽभिः॑ । वि॒श्वानि॒ । परि॑भूतिभिः ॥ १० ॥

बहवो महान्तः सूरचक्षसः सूर्यसदृशप्रकाशाः । सूरः प्रकाशको येषामिति वा । अपिजिह्वाः । अपिरेव विह्वलनसाधनो येषां तादृशाः । ऋतावृधो यज्ञस्य वर्धयितारो मित्रादयः । किंच ये चीणि विश्वानि व्याप्ताः । विदद्यानि चित्वादिस्थानानि चित्वादीनि परिभूतिभिः परिभाषकैर्धीतिभिः कर्मभिर्येषुः प्रयच्छन्ति ते अत्रमाश्रित्युत्तरव संबंधनीयं । अथवापि ये चीणि स्थानानि प्रयच्छन्ति ते ब्रह्मादिगुणोपेता आगच्छन्ति त्वध्याहार्यं ॥ १९ ॥

वि॒ ये द॒धुः श॒रदं॑ मा॒समा॑द॒ह्यं॒ ज॒म॒क्तुं॑ चादृ॒चं॑ ।

अ॒ना॒प्यं वरु॑णो मि॒त्रो अ॒र्य॒मा छ॒चं॑ रा॒जा॒न आ॑शत ॥ ११ ॥

वि॒ । ये । द॒धुः । श॒रदं॑ । मा॒सं । आ॒त् । अ॒हः । य॒ज्ञं । अ॒क्तुं॑ । च॒ । आ॒त् । अ॒चं॑ ।

अ॒ना॒प्यं । वरु॑णः । मि॒त्रः । अ॒र्य॒मा । छ॒चं॑ । रा॒जा॒नः । आ॑शत ॥ ११ ॥

ये मित्रादयः शरदं संवत्सरं वि दधुः अकुर्वन् आदन्तरमेव मासमन्तरमहरन्तरमहःसाध्यं यज्ञं आदन्तरमक्तुं रात्रिं च अचं मंत्रांश्च । यद्वा । सर्वचादित्ययमपीत्यर्थे वर्तते । तथा सति क्रमोऽविवक्षितः । ते वरुणो मित्रोऽर्यमा च त्रयोऽनाप्यमन्यैरप्राप्तं चचं वचं राजानो राजमाना आशत । व्याप्तवन्तः ॥

त॒द्यो अ॒द्य म॑नामहे सू॒क्तैः सू॒र उ॑दि॒ते ।

यदो॒हते॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒र्य॒मा यू॒यमृ॑तस्य रथ्यः ॥ १२ ॥

तत् । वः । अ॒द्य । म॒ना॒महे॑ । सु॒ऽउ॒क्तैः॑ । सू॒रैः । उ॒त्॒ऽइ॒ते ।

यत् । ओ॒हते॑ । वरु॑णः । मि॒त्रः । अ॒र्य॒मा । यू॒यं । अ॒त॒स्य॑ । र॒थ्यः॑ ॥ १२ ॥

तत्प्रसिद्धमवाप्तिन्यागकाले वो युष्माक्यनामहे । याचामहे । केः साधनेः । सूक्तैः । अक्षिष्काले । सूर उदिते । प्रातःकाल इत्यर्थः । यद्यनं हे ऋतस्त्रोदवस्य रथ्यो नेतारः यूयं वरुणादय ओहते । यूयमित्यनेन सामानाधिकरण्यादोहत इत्यत्र पुरुषव्यत्ययः । ओहध्व इत्यर्थः । तद्यनं मनामह इति ॥

ऋ॒तावा॑न ऋ॒तजा॑ता ऋ॒तावृ॑धो घो॒रासो॑ अ॒नृत॒द्विषः॑ ।

तेषां॑ वः सु॒क्ते सु॒च्छ॒र्दिष्ट॑मे न॒रः स्या॑म॒ ये च॑ सू॒रयः॑ ॥ १३ ॥

ऋ॒तऽवा॑नः । ऋ॒तऽजा॑ताः । ऋ॒तऽवृ॑धः । घो॒रासः॑ । अ॒नृत॒ऽद्विषः॑ ।

तेषां॑ । वः । सु॒क्ते । सु॒च्छ॒र्दिऽत॑मे । न॒रः । स्या॑म॒ । ये । च॑ । सू॒रयः॑ ॥ १३ ॥

ये यूयमृतावान ऋतवन्तो यज्ञवन्त उदकवन्तो वा ऋतजाताः । उक्त ऋतशब्दार्थः । तदर्थमुत्पन्नाः । अथवा । ऋतात्प्रजापतेः सकाशादुत्पन्नाः । ऋतावृध उक्तार्थस्यार्तस्य वर्धयितारो घोरासो घोरा अनृतद्विषो ऽयदृष्टेष्टारः तेषां वो युष्माकं सुच्छर्दिष्टमे सुखतप्ते सुक्ते धनेऽत्यन्तरमणीयगृहयुक्ते सुखे वा ये वयं ये नान्ये सूरयः स्रोतारः ते सर्वे स्नाम । भवेम ॥

सोमातिरिक्ते माध्यंदिनसवने निमित्तिके शस्त्र उदु त्वदित्ययं प्रगाथोऽनुबुधः । सूचितं च । वयमहौं असि  
सूर्योदु त्वद्दर्शतं वपुरिति प्रगाथी सोचियानुबुधौ । आ० ६. ७. इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने  
ऽयमेव वैकल्पिकः सोचियजुचः । सूचितं च । उदु त्वद्दर्शतं वपुरदु त्वे मधुमत्तमाः । आ० ७. ४. इति ॥

उदु त्वद्दर्शतं वपुरदिव एति प्रतिहरे ।

यदीमाश्रुर्वहति देव एतंशो विश्वस्मै चक्षसे अरं ॥ १४ ॥

उत् । ऊं इति । त्वत् । दर्शतं । वपुः । दिवः । एति । प्रतिहरे ।

यत् । इ । आश्रुः । वहति । देवः । एतंशः । विश्वस्मै । चक्षसे । अरं ॥ १४ ॥

त्वद्दर्शतं दर्शनोयं वपुर्मंडलं दिवोऽंतरिक्षस्य प्रतिहरे समीप उद्वेति । उदेति । उ इति पूरणः । यदी  
यदेतन्मंडलमायुः शीघ्रगाम्येतश्च एतवणोऽश्वो वहति धारयति । किमर्थं । विश्वस्यै सर्वस्या अरं चक्षसे  
तस्यैकसर्वलोकदर्शनाय ॥

शीर्ष्णः शीर्ष्णो जगंतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः ।

सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहति हरितो रथे ॥ १५ ॥

शीर्ष्णः शीर्ष्णः । जगंतः । तस्थुषः । पतिं । समया । विश्वं । आ । रजः ।

सप्त । स्वसारः । सुविताय । सूर्यं । वहति । हरितः । रथे ॥ १५ ॥

शीर्ष्णः शीर्ष्णः सर्वस्यापि शिरसः । तृतीयार्थे पंचमी । स्वस्वशिरसेत्यर्थः । सूर्यं वहंतीत्यनेन संबध्यते ।  
अथवा शिरःशब्देन तद्वान्यदार्थो लक्ष्यते । वीप्सया तस्य कार्त्तव्यमुच्यते । सर्वस्य श्रेष्ठमित्यर्थः । अगतो जंगमस्य  
तस्थुषः स्थावरस्य पतिं स्वामिनं रथे वर्तमानं सूर्यं सुविताय कन्यायाय विश्वं रजः समया सर्वलोकस्य समीपे ॥  
अमितः परितः समयेत्यादिना । म० २. २. २. १. । समयाशब्दयोगात् द्वितीया ॥ सप्त सप्तसंख्याकाः स्वसारो  
ऽन्यनिरपेक्षेण स्वयमेव सरंत्यो हरितो हरितवर्णा अश्वा वहति ॥ १० ॥

तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं ॥ १६ ॥

तत् । चक्षुः । देवऽहितं । शुक्रं । उत्तरं चरत् । पश्येम । शरदः । शतं । जीवेम ।

शरदः । शतं ॥ १६ ॥

तत्प्रसिद्धं चक्षुः सर्वस्य प्रकाशकं देवहितं देवानां हितं । तेषां हविःस्वीकारस्वीतदधीनत्वात् । अथवा  
देवेन हितं । शुक्रं निर्मलं सूर्यमंडलमुच्चरत् । उन्नच्छति । तच्छरदः शतं शतसंवत्सरं पश्येम । जीवेम शरदः  
शतं । पुनःश्रुतिरादरार्था ॥

पृथ्वाभिन्नवपडहयोः सोमनिमित्त आवापे काव्येमिरदाभ्येति तुचः । काव्येमिरदाभ्येति तिस्रः । आ० ७. ५. ।  
इति हि सूचितं ॥

काव्येमिरदाभ्या यातं वरुण द्युमत । मिच सोमपीतये ॥ १७ ॥

काव्येभिः । अदाभ्या । आ । यातं । वरुण । द्युऽमत । मिचः । च । सोमऽपीतये ॥ १७ ॥

हे अदाभ्यादंभनीयी हे वरुण त्वं मिचश्च द्युमद्युतिमंती युवां काव्येमिरदाभ्याः सोमप्रायातं ।  
किमर्थं । सोमपीतये सोमपानाय ॥



दिवो धामभिर्वरुण मिचक्षा यातमदुहा । पिबतं सोममातुजी ॥ १८ ॥

दिवः । धामऽभिः । वरुण । मिचः । च । आ । यातं । अदुहा । पिबतं । सोमं ।  
आतुजी इत्याऽतुजी ॥ १८ ॥

हे वरुण त्वं मिचक्षाद्गुहाद्रोग्धारी युवां दिवो दुलोकसर्वाधियो धामभिर्धामभ्यः स्त्रानिभ्यः । पंचम्यर्थे तुतीया । अथवा धामभिस्तौजीभिर्विभूतिभिः सार्धमा यातं । अस्त्रावक्षमागच्छतं । आगत्य चातुजी शत्रूणां सर्वतो हिंसावादातारी वा धनानां एवंप्रसी संती सोमं पिबतं ॥ तुजि पिजि हिंसावत्तादाननिकेतनेषु । अत्र हिंसायामादाने वा वर्तते ॥

आ यातं मिचावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा । पातं सोममृतावृधा ॥ १९ ॥

आ । यातं । मिचावरुणा । जुषाणी । आऽहुतिं । नरा । पातं । सोमं । ऋताऽवृधा ॥ १९ ॥

हे मिचावरुणा मिचावरुणी हे नरा यागनेतारी आहुतिं सोमलक्षणां जुषाणी प्रियमाणौ सतावा यातं । आगच्छतं यज्ञं । आगत्य च हे ऋतावृधा यज्ञस्य वर्धकां युवां सोमं पातं । पिबतं ॥ १९ ॥

प्रति वां रथमिति दशर्चं द्वादशं सूक्तं । प्रति वां दशाश्विनं तु तदित्यनुक्रमणिका । अष्विर्वसिष्ठः । कंदस्त्रिष्टुपः । तुह्यादिपरिभाषयैतदादीन्यष्ट सूक्तान्यश्विदेवत्वानि ॥ प्रातरनुवाक आश्विने कर्ता त्रैष्टुभे कंदस्त्रे तदादिसूक्तसप्तकं द्वितीयवर्जं शंसं । तथा च सूचं । प्रति वां रथमिति सप्तानां द्वितीयमुद्धरेत् । आ० ४. १५. इति ॥

प्रति वां रथं नृपती जरथ्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।

यो वां दूतो न धिषण्यावजीगरच्छा सूनूर्न पितरा विवक्त्रि ॥ १ ॥

प्रति । वां । रथं । नृपती इति नृऽपती । जरथ्यै । हविष्मता । मनसा । यज्ञियेन ।

यः । वां । दूतः । न । धिषण्यौ । अजीगः । अच्छ । सूनूः । न । पितरा । विवक्त्रि ॥ १ ॥

हे नृपती नृणामुल्लिख्यमानानां स्वामिनावश्विनी वां युवयो रथं जरथ्यै । जरा क्षुतिः । क्षीतुं प्रति गच्छामीति श्रेयः । केन साधनेनेति तदुच्यते । हविष्मता हविर्युक्तेन यज्ञियेन यज्ञार्हेण मनसा सोच्येन । यो रथो वां हे धिषण्यौ धिषणाहौ । धिषणा क्षुतिः । वां युवां दूतो न दूत इवाजीगः जागरयति प्रबोधयति अस्मान्प्रति गंतुं तं रथमच्छा विवक्त्रि । आवच्छि । प्रबोधने दृष्टान्तः । सूनूर्न पितरा पुत्रो मातापितराविव । अथवाच यो रथो युवामजीगः तेन रथेन गंतुं बुध्यमानां युवामच्छा विवक्त्रोति वा योज्यं ॥

अशौच्यमिः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन्तमसश्चिदंताः ।

अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥ २ ॥

अशौचि । अमिः । संऽद्धानः । अस्मे इति । उपो इति । अदृश्रन् । तमसः । चित् । अंताः ।

अचेति । केतुः । उषसः । पुरस्तात् । श्रिये । दिवः । दुहितुः । जायमानः ॥ २ ॥

अस्मै अस्माभिः समिधानः समिध्यमानः सन्नपिरशौचि । दीप्यते । तमसश्चित्तमसोऽर्थताः पर्यताः प्रदेशा उपो अदृश्रन् । उपदृश्यते सर्वः । केतुः सर्वस्य प्रज्ञापकः सूर्यो दिवो दुहितुरुषसः पुरस्तात्पूर्वस्थां दिशि श्रिये शोभायै आद्यमानः सन्नचेति । ज्ञायते । यस्मादेवं तस्मादुवयोरागमनसमयः । अत आगच्छतमिति श्रेयः ॥

अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्त्रान् ।

पूर्वाभिर्यातं पथ्याभिरर्वाकस्वर्विदा वसुमता रथेन ॥ ३ ॥

अभि । वां । नूनं । अश्विना । सुहोता । स्तोमैः । सिसृक्ति । नासत्या । विवक्षान् ।  
पूर्वीभिः । यातं । पथ्याभिः । अर्वाक् । स्वऽविदा । वसुऽमता । रथेन ॥ ३ ॥

हे अश्विना वां युवां सुहोता सुष्ठु देवानां सोता विवक्षान् सुतीनां वक्ताहं हे नासत्या सत्यभूतौ । इदम-  
श्विनावित्वच योष्यं । स्तोमैः सिषक्ति । सेवते । अतोऽर्वागस्यदमिमुखं पूर्वीभिः पथ्याभिः पूर्वसुक्षैर्मार्गैः स्वर्विदा  
स्वर्गमुदकं वा जागता खरणवता वा वसुमता धनवता वा रथेन यातं । गच्छतं ॥

अवोर्वा नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः ।

आ वां वहंतु स्थविरासो अश्व्याः पिवाथो अस्मे सुपुता मधूनि ॥ ४ ॥

अवोः । वां । नूनं । अश्विना । युवाकुः । हुवे । यत् । वां । सुते । माध्वी इति । वसुऽयुः ।

आ । वां । वहंतु । स्थविरासः । अश्व्याः । पिवाथः । अस्मे इति । सुऽपुता । मधूनि ॥ ४ ॥

हे अश्विनाश्विनौ अवो रविचोर्युवाभ्यां युवाकुर्युवां कामयमानोऽहं नूनमव स्वभूतो भवामीति शेषः ।  
यवसात् हे माध्वी मधुरस्य सोमस्वाही मधुविद्यासंबन्धिनौ वा वां युवां सुतेऽभिपुते सोमे वसूयुर्वसुक्कामो  
ऊवे सौमि अतो वां स्वभूतः । वां युवामा वहंतु । के । स्थविरासः स्खूलाः प्रवृद्धा अश्व्याः । एतयोरतिप्रवृद्ध-  
त्वाच्छीघ्रगतिरपेक्षितत्वाच्च स्वविरेरेव भावं । आगमनानंतरमस्ये अस्माभिः सुपुता सुष्ठुभिपुतानि मधूनि मधु-  
ररसान् पिवाथः । पितृत्वं ॥

प्राचींमु देवाश्विना धियं मेऽमृधां सातये कृतं वसूयुं ।

विश्वं अविष्टं वाज आ पुरंधीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः ॥ ५ ॥

प्राचीं । ऊं इति । देवा । अश्विना । धियं । मे । अमृधां । सातये । कृतं । वसुऽयुं ।

विश्वः । अविष्टं । वाजे । आ । पुरंऽधीः । ता । नः । शक्तं । शचीपती इति

शचीऽपती । शचीभिः ॥ ५ ॥

हे अश्विनाश्विनौ देवा देवी युवा प्राचीमृज्वीममृधामहिंसितां वसूयुं धनमिच्छंतीं मे मम धियं बुद्धिं  
श्रुतिं कर्म वा सातये लाभायोचितां हतं । कृतं । किंच वाज आ संयामेऽपि विश्वः पुरंधीरस्यदीया बुद्धी-  
रविष्टं । रचतं । हे शचीपती । शचीति कर्मनाम । कर्मणां पालकौ ता तौ युवां शचीभिरस्यदीथिः सुत्यादिरूपैः  
कर्मभिर्नोऽस्माच्छक्तं । प्रयच्छतं धनमिति शेषः ॥ ॥ १२ ॥

अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद्रेतो अह्यं नो अस्तु ।

आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ॥ ६ ॥

अविष्टं । धीषु । अश्विना । नः । आसु । प्रजाऽवत् । रेतः । अह्यं । नः । अस्तु ।

आ । वां । तोके । तनये । तूतुजानाः । सुऽरत्नासः । देवऽवीतिं । गमेम ॥ ६ ॥

हे अश्विनाश्विनौ नोऽस्मानासु धीष्वेषु कर्मस्वविष्टं । रचतं । नोऽस्मभ्यमह्यमचीणं प्रजावत्पुत्राबुपेतं  
पुत्रोत्पादनसमर्थं रेतोऽसु । वां युवयोरनुग्रहाद्व्ये तोके पुत्रे तनये तत्पुत्रादौ च तूतुजाना अभिमतं धनं  
प्रयच्छतः सुरत्नासः शोभनधनाश्च संतो देववीतिं देवानां वीतिः प्राप्तियंस्त्रिंस्तादृशं यज्ञमा गमेम । आगच्छेम ॥



एष स्य वां पूर्वगतैव सख्ये निधिर्हितो माधी रातो अस्मे ।

अहेळता मनसा यातमर्वागुक्षता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥

एषः। स्यः। वां। पूर्वगताऽइव। सख्ये। निऽधिः। हितः। माधी इति। रातः। अस्मे इति।

अहेळता। मनसा। आ। यातं। अर्वाक्। अग्रंता। हव्यं। मानुषीषु। विक्षु ॥ ७ ॥

एष पुरतो दीयमानः ख स युवयोः प्रियत्वेन प्रसिद्धः सोमो हे माधी मधुप्रियावन्धिनी वां युवयोः पुरतो निधिर्निधिस्थानीयो हितः स्थापितोऽस्ते अस्मी रातो दत्तः संकल्पितः संनिहितः । किमिव । सख्ये सख्यार्थं पूर्वगतैव पुरतो गता इव । स यथा प्रियं जनयन् स्वामिनः पुरतो वर्तत तद्वदित्यर्थः । यस्मादेवं तस्मादहेळतानुध्यता मनसानुग्रहयुक्तेन चेतसार्वागक्षदमिमुखमा यातं । आगच्छतं । अग्रंता हव्यं हविः सोमादिकमग्रंतावभ्यवहरंती । कुष । मानुषीषु विक्षु मनुष्यरूपासु प्रजासु वर्तमानं ॥

एकस्मिन्योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।

न वायंति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहति ॥ ८ ॥

एकस्मिन् । योगे । भुरणा । समाने । परि । वां । सप्त । स्रवतः । रथः । गात् ।

न । वायंति । सुऽभ्वः । देवऽयुक्ताः । ये । वां । धूऽसु । तरणयः । वहति ॥ ८ ॥

हे भुरणा सर्वस्य मर्तारो युवचोरैकस्मिन् समान सम्यसाधारणे योगेऽस्मद्विषये सति वां युवयो रथः सप्त स्रवतः सर्पणस्वभावाः सप्तसंख्याका वा गंगायाः परि गात् । परिगच्छति । शीघ्रमागच्छतीत्यर्थः । तद्धानुक्ताः सुभ्वः सुभवना देवयुक्ता देवाभ्यां युवाभ्यां युक्ता अथाः शीघ्रगमने न वायंति । न मुञ्चंति । न आन्यंति । येऽन्वा वां धूर्षु रथस्य तरणयसारकाः शीघ्रगंतारो वहति युवां ते न वायंतीति ॥

असृष्टता मघवन्नो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति ।

प्र ये बंधुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्यां पृचन्तो अश्व्यां मघानि ॥ ९ ॥

असृष्टता । मघवत्ऽभ्यः । हि । भूतं । ये । राया । मघऽदेयं । जुनन्ति ।

प्र । ये । बंधुं । सूनृताभिः । तिरन्ते । गव्यां । पृचन्तः । अश्व्यां । मघानि ॥ ९ ॥

असृष्टता कुषाण्यसंयमानो युवां मघवन्नो धनवन्नो हविष्मन्नो यजमानेभ्यस्तेषामर्थाय भूतं हि । भवतं । तेभ्य एवानुरक्ता भवतं । अनुयाह्या एव विशेष्यंते । ये राया धनेन निमित्तेन राया युक्ता वा मघदेयं दातव्यं मघं धनं हविरक्षयं वा जुनन्ति प्रेरयन्ति यच्छंति । ये च बंधुं । स्नेहेन वध्नातीति बंधुः । तं स्वसंबन्धिनं । अथवा फलेन वध्नातीति बंधुरध्वर्यादिः । तं सूनृताभिः प्रियसत्त्वात्मिकामिर्वाग्भिः प्र तिरन्ते प्रवर्धयन्ति । प्रपूर्वस्तिरतिवर्धनार्थः । किं कुर्वतः । गव्या गोरूपाण्यश्वरूपाणि च मघानि धनानि पृचन्तोऽर्थिभ्यः प्रयच्छन्तः । तेभ्यो मघवन्नो भूतमिति ॥

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।

धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्ययं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

नू । मे । हव । आ । शृणुतं । युवाना । यासिष्टं । वर्तिः । अश्विनौ । इराऽवत् ।

धत्तं । रत्नानि । जरतं । च । सूरीन् । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ १० ॥

हे युवाना नित्ययौवनौ न्वय युवां मे हवमसदीयां क्षुतिमा शृणुतं । श्रुत्वा च हे अश्विनौ हरावस-  
विर्युक्तं वर्तिगृहं यासिष्टं । आगच्छतं । आगत्य च रत्नानि रमणीयानि धनानि धत्तं । दत्तं । सूरौ न क्षीतुञ्जरतं ।  
वर्धयतं ॥ धातूनामनेकार्थत्वात् ॥ शिष्टं स्यष्टं ॥ ॥ १३ ॥

आ शुभा यातमिति नवर्चं चयोदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थमाश्विनं । आदितः सप्त विराजोऽष्टमीनवम्यौ  
त्रिष्टुमी । अनुक्रम्यते च । आ शुभा नव सप्ताद्या विराज इति ॥ सूक्तविनियोगो लेखिकः ॥

आ शुभा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दत्ता जुजुषाणा युवाकोः ।

हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥ १ ॥

आ । शुभा । यातं । अश्विना । सुऽअश्व । गिरः । दत्ता । जुजुषाणा । युवाकोः ।

हव्यानि । च । प्रतिऽभृता । वीतं । नः ॥ १ ॥

हे शुभा दीप्ता स्वश्वा शोभनाद्यौ हे अश्विनाश्विनौ आ यातं । अस्वयज्ञमागच्छतं । दत्ता शत्रूणामुपप-  
चिहारौ युवां युवाकोर्युवां कामयमानस्व मम गिरः क्षुतीजुजुषाणा सेवमानौ भवतमिति शेषः । न केवलं  
क्षुतिं किंतु नोऽसदीयानि प्रतिभृता संभृतानि हव्यानि हवींषि च वीतं । भक्षयतं ॥

प्र वामंधांसीत्येषाश्विनशस्त्रयाग्या । सूचितं च । प्र वामंधांसि मयान्वक्षुषमा पिवतमश्विना । आ०  
६. ५. इति ।

प्र वामंधांसि मद्यान्यस्युररं गंतं हविषो वीतये मे ।

तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥ २ ॥

प्र । वां । अंधांसि । मद्यानि । अस्युः । अरं । गंतं । हविषः । वीतये । मे ।

तिरः । अर्यः । हवनानि । श्रुतं । नः ॥ २ ॥

हे अश्विनौ वां युवाभ्यां मद्यानि मदजनकान्वंधांसि सोमलक्षणाजनानि प्राप्नुयुः । प्राप्स्यथ । गृहीता-  
न्यासन्नित्यर्थः । अतो युवां मे मम हविषो वीतये पाणायारमत्यर्थं शीघ्रं गंतं । आगच्छतं । अर्योऽतिरसाद्विरो-  
धिना हवनानि तिरस्तिरस्कृत्य नः । अस्मदाह्वानमित्यर्थः । तच्छ्रुतं । श्रुतमित्यस्य वाक्वादित्वादिनिघातः ॥

प्र वां रथो मनोजवा इयति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।

अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥ ३ ॥

प्र । वां । रथः । मनःऽजवाः । इयति । तिरः । रजांसि । अश्विना । शतऽऊतिः ।

अस्मभ्यं । सूर्यावसू इति । इयानः ॥ ३ ॥

हे सूर्यावसू सूर्यायाः सह रथे वसंतौ वां युवयो रथोऽस्मभ्यमसदर्थमियानो याच्यमानः सन्नियति ।  
आगच्छत्यस्यज्ञं । अथवा वां प्रेरयति यमनाय । कीदृशो रथः । मनोजवा मनोवेगः शतोतिरपरिमितास-  
दिपयरक्षणः । किं कुर्वन् । रजांसि लोकांस्तिरस्तिरस्कृत्यातिक्रम्येयतीति ॥

अयं ह यज्ञो देव्या उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद्युवभ्यां ।

आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥ ४ ॥

अयं ह । यत् । वां । देवऽयाः । ऊं इति । अद्रिः । ऊर्ध्वः । विवक्ति । सोमऽसुत । युवऽभ्यां ।

आ । वल्गू इति । विप्रः । ववृतीत । हव्यैः ॥ ४ ॥



यद्यदा वां युवां प्रति देवषा देवी युवां कामयमानः । उ इति पूरणः । अयमद्विरभिवययावा सोमसुत  
सोममभिपुण्वन् युवभ्यां । युवाभ्यामर्थायामिपुण्वन्निति संबंधः । एवं कुर्वन्मूर्धं उन्नतः सन् विवक्ति उच्चैः शब्द-  
यति तदानीं बल्लु सुंदरी युवां विप्रो मेधावी ययमानो हविर्हविर्मिरा वपुतीत । आवर्तयति ॥

चिचं ह॒ यद्वां भोर्जनं न्वस्ति न्वचये महिष्वंतं युयोतं ।

यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥ ५ ॥

चिचं । ह॒ । यत् । वां । भोर्जनं । नु । अस्ति । नि । अचये । महिष्वंतं । युयोतं ।

यः । वां । ओमानं । दधते । प्रियः । सन् ॥ ५ ॥

हे अश्विनी वां युवयोश्चिचं चायनीयं यज्ञोन्नं धनमस्ति ह अस्ति खलु । त्विति पूरणः । तदस्यं दत्त-  
मित्यर्थः । अथ तयोः स्तुतिः । अथ एतन्नामकादृषेः । पंचम्यर्थे चतुर्थी । तस्मात्तद्विष्वंतमृजीसं नि युयोतं ।  
पृथक्पृथक् । योऽचिः प्रियः सन् सोतुलायुवाभ्यां प्रियभूतः सन् युवाभ्यामेव छतमोमानं रक्षणं मुखं दधते  
धारयति ॥ ॥ १४ ॥

उत त्यद्वां जुरते अश्विना भूद्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।

अधि यद्वर्षं इतर्जति धृत्यः ॥ ६ ॥

उत । त्यत् । वां । जुरते । अश्विना । भूत् । अवानाय । प्रतीत्यं । हविः । दे ।

अधि । यत् । वर्षः । इतः । र्जति । धृत्यः ॥ ६ ॥

उतापि च हे अश्विनाश्विनी वां युवयोः कर्म कुर्वते जुरते पूर्णाय हविर्दे हविर्दात्रे अवानायेतन्नामकाय  
महर्षये त्यत्प्रतीत्यं प्रतिगमनं तस्य रूपस्य प्रत्याप्त्यै भूत् । अभूत् । किं तदिति । यद्वर्षं रूपमितर्जतीत्यम-  
नाख्यं मृत्वोः सकाशादितः प्राप्तिरूपमधि धृत्यः अधधत्तं । युवं अवानगश्विना वरतं पुनर्युवानं चक्रथुः  
शचीभिः । अ० १. ११७. १३. । इत्यादिषु अवानस्य युवयोर्नवीकरणं प्रसिद्धं ॥

उत त्वं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।

निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ॥ ७ ॥

उत । त्वं । भुज्युं । अश्विना । सखायः । मध्ये । जहः । दुः । एवासः । समुद्रे ।

निः । ई । पर्षत् । अरावा । यः । युवाकुः ॥ ७ ॥

उतापि च त्वं तं भुज्युमेतन्नामानं समुद्रे मध्ये समुद्रोदकस्य मध्ये सखायो भुज्युसखिभूता दुरेवासो दुष्ट-  
गमना जहः । त्यक्तवतः । ईमेनं समुद्रमध्ये चिप्रे निः पर्षत् । निरपारयतं । यो भुज्युर्युवाक्युवां कामयिता-  
रावारणवानभिगता च तमेनं निरपारयतं । अत्राश्विनेषु सूक्तेषु कथाः सूच्यन्ते । अत्रिभुज्यादीनामपि जना-  
दिभ्यो रक्षणरूपास्ताः सर्वा महता प्रपंचेनास्माभिर्नासत्वाभ्यां बर्हिर्निव । अ० १. ११६. १. । इत्यत्र प्रपंचिताः ।  
तास्तत्र द्रष्टव्याः ॥

वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।

यावद्ग्रामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छत्यश्विना शचीभिः ॥ ८ ॥

वृकाय । चित् । जसमानाय । शक्तं । उत । श्रुतं । शयवे । हूयमाना ।

यौ । अग्र्यां । अपिन्वतं । अपः । न । स्तर्यं । चित् । शक्ती । अश्विना । शचीभिः ॥ ८ ॥

वृकाय धनादावे । अभिलषत इत्यर्थः । चिदिति पूरणः । अथवा परेभ्यो धनानि प्रयच्छते । यद्वा । वृकाय वृकवृक्षसकाय । एतन्नामकाय असमानाय कर्मभिरुपचीयमाणाचर्यथे शक्तं । अभिमतं धनमदत्तं ॥ शक्रेर्दानार्थस्य जुष्टतद्रूपं । अडभावश्चादसः ॥ उतापि च शयव एतन्नामकायर्थे ह्ययमानाह्वयमानौ युवां श्रुतं । अश्रुश्रुतं । यौ युवामध्यां गामपिन्वतं अपूरयतं शीरेण अपो नास्त्रिरिव नदी । तां यथोदकेन पूरय-  
तस्तद्वत् । कीदृशीमध्यां । स्तयं चित् स्तरीमपि निवृत्तप्रसवां वृक्षामपि शक्ती शक्त्या सामर्थ्येन दोहनलक्षणेन युक्तां कृत्वा शचीभिर्युष्मदीथैः कर्मभिर्हे अश्विनाविति । शयवे चित्तासत्या शचीभिर्जसुरथे स्तयं पिष्यथुर्गौ । अ० १. ११६. २२. । इत्यादि ह्युक्तं ॥

एष स्य कारुर्जरते सूक्तैर्ये बुधान उषसां सुमन्मा ।

इषा तं वर्धदध्या पयोभिर्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

एषः । स्यः । कारुः । जरते । सुऽउक्तैः । अये । बुधानः । उषसां । सुऽमन्मा ।

इषा । तं । वर्धत् । अध्या । पयःऽभिः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ९ ॥

एष सोता स्य स प्रसिद्धो वसिष्ठः कारुः सोतोषसामये प्रातःसवने बुधानो बुध्यमानः सुमन्मा शोम-  
नमतिः सुष्टुतिर्वा सूक्तैर्जरते । सूति । तमिषास्तेन वर्धत् । वर्धयतं ॥ वचनव्यत्ययः ॥ अध्याहृतव्या गौस्य वर्धत् ।  
वर्धयतु । अथवैकमेव वाक्यं । अध्या गौर्वसिष्ठस्य प्रतिनियताभिहोचार्था गौरिषास्तेन । घृतादिनेत्यर्थः । पयो-  
मिश्र तं वसिष्ठं वर्धत् । वर्धयतु । एवमात्मानं परोक्षेण निर्दिदेश । शिष्टं स्पष्टं ॥ ॥ १५ ॥

आ वां रथ इत्यष्ट्वं चतुर्दशं सूक्तं वसिष्ठस्त्वार्यं चैषुममाश्विनं । अनुक्रम्यते च । आ वां रथोऽष्टाविति ॥  
प्रातरगुवाकाश्विनशस्त्रयोर्विनियोग उक्तः ॥

आ वां रथो रोदसी बद्धधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।

घृतवर्तनिः पविभीं रुचान इषां वोऽह्ना नृपतिर्वाजिनीवान् ॥ १ ॥

आ । वां । रथः । रोदसी इति । बद्धधानः । हिरण्ययः । वृषऽभिः । यातु । अश्वैः ।

घृतऽवर्तनिः । पविऽभिः । रुचानः । इषां । वोऽह्ना । नृऽपतिः । वाजिनीऽवान् ॥ १ ॥

हे अश्विनी वां रथो वृषभिर्युवभिरश्वैर्युक्तः सन्ना यातु यज्ञमस्मदीयं । कीदृशो रथः । रथो विशेष्यते ।  
रोदसी आवापृथिव्यौ बद्धधानो बाधमानो हिरण्ययो हिरण्यमयो घृतवर्तनिर्घृतसुदकं वर्तन्यां यस्य तादृशः  
पविभी रथनेमिभिर्मधुपाचैर्वा रुचानो दीप्यमान इषां वोऽह्ना यजमानैर्दत्तानां हविषां वाहको दातव्यानां  
वात्सानां वोऽह्ना नृपतिर्गुणां यजमानानां स्वामी वाजिनीवान्नवान् ॥

स पप्रथानो अभि पंच भूमा चिवंधुरो मनसा यातु युक्तः ।

विशो येन गच्छथो देवयंतीः कुचा चिद्याममश्विना दधाना ॥ २ ॥

सः । पप्रथानः । अभि । पंच । भूम । चिऽवंधुरः । मनसा । आ । यातु । युक्तः ।

विशः । येन । गच्छथः । देवऽयंतीः । कुचं । चित् । यामं । अश्विना । दधाना ॥ २ ॥

स रथः पंच भूम भूतानि सर्वप्राणिनः पप्रथानः प्रथमानस्त्रिवंधुरः । वंधुरमुच्चावचं सारथ्यवस्थानं  
काष्ठमयं । तादृशैस्त्रिभिर्युक्तो मनसाशत्सुत्या युक्तोऽभ्या यातु । येन रथेन देवयंतीर्विशो यजमानान्प्रति  
गच्छथः । हे अश्विनाश्विनी कुच चिद्य च क्वापि यामं गमनं दधाना धारयंती येन विशो गच्छथः स यात्विति ॥



स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दसा निधिं मधुमंतं पिबाथः ।

वि वां रथो वध्वाऽ यादमानोऽन्तान्दिवो बाधते वर्तनिभ्यां ॥३॥

सुऽश्वा । यशसा । आ । यातं । अर्वाक् । दसा । निऽधिं । मधुऽमंतं । पिबाथः ।

वि । वां । रथः । वध्वा । यादमानः । अंतान् । दिवः । बाधते । वर्तनिऽभ्यां ॥३॥

हे देवौ स्वश्वा शोभनाश्चैन यशसा चार्वान्गदमिमुखं यातं । आगच्छतं । हे दसा शत्रूणामुपचयितारौ मधुमंतं मधुररसोपेतं निधिं निधिवन्निहितं सोमं पिबाथः । पिवतं । वां युवयो रथो वध्वा सूर्यया सह यादमानो गंतव्यान्प्रति गच्छन् । गमयन्नित्यर्थः । एवं कुर्वन् वर्तनिभ्यां स्वचक्राभ्यां दिवोऽन्तान् पर्यंतप्रदेशान् बाधते । शीघ्रगमनेन पीडयति ।

युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरौ दुहिता परितक्म्यायां ।

यद्देवयंतमवथः शचीभिः परि ग्रंसमोमना वां वयो गात् ॥४॥

युवोः । श्रियं । परि । योषा । अवृणीत । सूरः । दुहिता । परिऽतक्म्यायां ।

यात् । देवऽयंतं । अवथः । शचीभिः । परि । ग्रंसं । ओमना । वां । वयः । गात् ॥४॥

युवोर्युवयोः श्रियं । अथत इति श्री रथः । तं सेवामेव वा योषा सर्वदा मिश्रयंती योषित सूरः सूर्यस्य दुहिता पर्यवृणीत । कदा । परितक्म्यायां रात्रौ परितस्तकनवति संग्रामे यज्ञे वा गंतव्ये । किंच यद्यदा देवयंतं देवकामं यजमानं यज्ञं वा शचीभिर्युवयोर्ममनादिष्वचक्षेः कर्मभिरवथः रक्षथः तद्दानीं ग्रंसं दीप्तं वयोऽन्नं सोमादिष्वृणोमोमनावनेन रक्षणेन निमित्तेन वां परि गात् । पर्यगात् ॥

यो ह स्य वां रथिरा वस्ते उस्त्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।

तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥५॥

यः । ह । स्यः । वां । रथिरा । वस्ते । उस्त्राः । रथः । युजानः । परिऽयाति । वर्तिः ।

तेन । नः । शं । योः । उषसः । विऽउष्टौ । नि । अश्विना । वहतं । यज्ञे । अस्मिन् ॥५॥

यो रथः । हेति पूरणः । स्य स प्रसिद्धो रथो हे रथिरा रथिनी ॥ मत्वर्थो यो रः ॥ उस्त्रास्त्रेजांसि वस्त्रे आच्छादयति । यश्च रथो युजानोऽश्चर्युक्तः सन्वर्तिर्मागं यजमानगृहं वा परियाति परिगच्छति । तेन रथेन हे अश्विनाश्चिनी नोऽस्माकमस्मिन् यज्ञ उषसो व्युष्टौ प्रातःकाले शं यजनाय पापानां योर्मिश्रणाय च सुखानां नि वहतं । नितरां प्राप्तं ॥

नरा गौरेव विद्युतं नृषाणास्माकमद्य सवनीप यातं ।

पुरुचा हि वां मतिभिर्हवते मा वामन्ये नि यमन्देवयंतः ॥६॥

नरा । गौराऽइव । विऽद्युतं । नृषाणा । अस्माकं । अद्य । सवना । उप । यातं ।

पुरुऽचा । हि । वां । मतिभिः । हवते । मा । वां । अन्ये । नि । यमन् । देवऽयंतः ॥६॥

हे नरा नेतारावश्चिनी गौरेव गौरा मृगीव विद्युतं विशेषेण दीप्यमानं सोमं प्रति नृषाणां नृष्यायुक्ता-वशास्माकं सवना सवनान्युप यातं । उपागच्छतं । पुरुचा बज्रं यज्ञेषु वां युवां यजमाना मतिभिः क्षुतिभिर्हवते हि । क्षुवंति । अतो वां युवामन्ये यष्टारो देवयंतो देवौ कामयमाना वां युवां मा नि यमन् । मा नियच्छन्तु ॥

युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहयुरर्णसो अस्मिधानैः ।

पतचिभिरश्मैरव्यधिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥ ७ ॥

युवं । भुज्युं । अवंऽविद्धं । समुद्रे । उत् । ऊहयुः । अर्णसः । अस्मिधानैः ।

पतचिऽभिः । अश्मैः । अव्यधिऽभिः । दंसनाभिः । अश्विना । पारयन्ता ॥ ७ ॥

हे अश्विनाश्विनी युवं भुज्युमेतन्नामकमवविद्धं विधितं सखिभिः समुद्रे तव्यधे निमग्नमर्णस उदकादु-  
दूहयुः । किं कुर्वताविति तदुच्यते । अस्मिधानैरपीयमायैरश्मैरव्यधिमिव पतचिभिः पतनवज्जिर्गमनवज्जी  
रये नियुक्तेरव्यधेदंसनाभिः शारीरैः कर्मभिश्च पारयन्ता पारयन्ती समुद्रमर्णस उदूहयुरिति । नासत्या भुज्यु-  
मूहयुः पतनैः । अ० १. ११६. ४. इति श्रुतं ॥

नू मे हवमा ऋणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।

धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

नू । मे । हव । आ । ऋणुतं । युवाना । यासिष्टं । वर्तिः । अश्विनौ । इराऽवत् ।

धत्तं । रत्नानि । जरतं । च । सूरीन् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ८ ॥

नू मे हवमित्यहमी सिद्धा ॥ १६ ॥

आ विश्ववारिति सप्तर्षे पंचदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षे वैष्णवमाश्विनं । अनुक्रम्यते च । आ विश्ववारा सप्तेति ॥  
प्रातरनुवाक आश्विनशस्त्रे च विनियोग उक्तः ॥ आद्यसृचसृतीये छंदोमे प्रउगशस्त्रे विनियुक्तः । आ विश्व-  
वाराश्विना गतं नोऽयं सोम इन्द्र । आ० ८. ११. इति सूचितत्वात् ॥

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्यां ।

अश्वो न वाजी ऋणुपृष्ठो अस्थादा यत्सेदयुर्ध्रुवसे न योनिं ॥ १ ॥

आ । विश्वऽवारा । अश्विना । गतं । नः । प्र । तत् । स्थानं । अवाचि । वां । पृथिव्यां ।

अश्वः । न । वाजी । ऋणुऽपृष्ठः । अस्थात् । आ । यत् । सेदयुः । ध्रुवसे । न । योनिं ॥ १ ॥

हे विश्ववारा सर्वैर्वरणीयावश्विनाश्विनी नोऽस्याकं यत्तं यागमा गतं आगच्छतं वां युवयोस्तत्स्थानं पृथिव्यां  
वेद्यां प्रावाचि । प्रोच्यते । तदर्थं ऋणुपृष्ठः सुखकरपृष्ठभागः । अत्यंतविपुलत्वादाच्छब्दानां सुखकरपृष्ठभाग इत्यर्थः ।  
वाजी वेगवानयोऽस्यात् । तिष्ठतु युवयोः समीपे । यत् । यमित्यर्थः । यमश्चमा सेदयुः आसीदयः सोऽश्वः ।  
यदा । यत्स्थानमासीदयः तत्स्थानमथ आश्रयत्वितो गमनाय । स्थितौ दृष्टान्तः । ध्रुवसे ध्रुवाय निवासाय-  
योनिं न योनिं स्थानमिव ॥

सिषक्ति सा वां सुमतिश्च निष्ठातापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।

यो वां समुद्रान्सरितः पिपत्येतग्वा चित्तं सुयुजा युजानः ॥ २ ॥

सिषक्ति । सा । वां । सुऽमतिः । चनिष्ठा । अतापि । घर्मः । मनुषः । दुरोणे ।

यः । वां । समुद्रान् । सरितः । पिपति । एतऽग्वा । चित् । न । सुऽयुजा । युजानः ॥ २ ॥

सा सुमतिरस्याभिः क्रियमाणा शोभना सुतिश्च निष्ठा कमनीयतमातिशयेनाज्ञवती वा वां युवां सिषक्ति ।  
वेदते । किंच घर्मः प्रवर्गश्च मनुषो मनुष्यस्य यजमानस्य दुरोणे यागगृहेऽतापि । तप्तोऽभूत् । यद्वौ इत्यप-



तत्तद्वर्त्मसं घर्मत्वं । तै० आ० ५. १. ५. । इति श्रुतिः । यद्यस्य शिरःस्नानीयत्वादस्य । यो घर्मो वां युवां । प्राप्तु-  
वन्निति शेषः । समुद्रात् सरितश्च पिपतिं पुरयति वृष्टिद्वारा । एतन्मा चित्त । विदिति पुरयः । असाविष यथा  
मुमुक्षा मुमु युक्ता रथे भवतस्तथेत्यर्थः । तेषुपमार्थे । तद्वयुवां यज्ञे युवानो योजयन्त्यः । स एवं करोत ॥

यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यद्भीष्मोषधीषु विष्णु ।

नि पर्वतस्य मूर्धनि सदैतव जनाय दानुषे वहता ॥३॥

यानि । स्थानानि । अश्विना । दधाथे इति । दिवः । यद्भीषु । ओषधीषु । विष्णु ।

नि । पर्वतस्य । मूर्धनि । सदैता । इषं । जनाय । दानुषे । वहता ॥३॥

हे अश्विना युवां दिवो युलोकादागत्य यानि स्थानानि दधाथे कुबजः । कुवेति उच्यते । यद्भीषु महती-  
ओषधीषु विष्णु यवमानेषु च । तौ युवां पर्वतस्य मेघस्थांतरिपत्स्य वा मूर्धनि स्थाने सदैता निषीदंताविषमत्तं  
दानुषे हविर्दत्तं जनाय यवमानाय वहता प्रापयंतौ भवतमिति शेषः ॥

चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्ववैथे ऋषीणां ।

पुरुणि रत्ना दधतौ न्यस्मे अनु पूर्वाणि चख्ययुगानि ॥४॥

चनिष्टं । देवौ । ओषधीषु । अप्सु । यत् । योग्याः । अश्ववैथे इति । ऋषीणां ।

पुरुणि । रत्ना । दधतौ । नि । अस्मे इति । अनु । पूर्वाणि । चख्ययुः । युगानि ॥४॥

हे देवा देवी युवामोषधीष्वोषधिविकारांश्चपुरोडाशादिकानप्सु सोमरसांश्चनिष्टं । अत्यंतकमनी-  
यतमं कामयेयामित्यर्थः । यद्यस्यायोग्या युवयोश्चिता ओषधीरपश्चरीणां संबंधिनीरश्ववैथे वाप्सुः तस्या-  
दसादीया अपि कामयेयामित्यर्थः । यद्वा । अश्वीणामस्याकमिति पूर्वार्थे ब्रह्मवचनं । यद्यस्यादोषधीष्वप्सु  
च चनिष्टं योग्याः सुतीक्ष्णाश्ववैथे तस्यादसौ अस्यासु पुरुणि ब्रह्मणि रत्ना रमणीयानि धनानि नि दधतौ  
पूर्वाणि युगानि मिथुनानि जायापतिरूपाश्चानु चख्ययुः । स्थातवन्तौ । अनुष्ठप्यन्तावनुग्रहार्थं ॥

शुश्रुवांसां चिदश्विना पुरुण्यभि ब्रह्माणि चक्ष्वाथे ऋषीणां ।

प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्टा ॥५॥

शुश्रुऽवांसां । चित् । अश्विना । पुरुणि । अभि । ब्रह्माणि । चक्ष्वाथे इति । ऋषीणां ।

प्रति । प्र । यातं । वरं । आ । जनाय । अस्मे इति । वां । अस्तु । सुमतिः । चनिष्टा ॥५॥

हे अश्विनाश्विनी । विदिति पुरयः । युवां मुमुक्षांसा मुतवन्तौ संतौ पुरुणि ब्रह्मणि ब्रह्माणि परिवृढानि  
कर्माणि श्रुतिश्रवणान्युषीणामस्याकं संबंधीन्वभि चक्ष्वाथे । अमिपश्चो युवां । अतो जनाय जनस्य यवमानस्य  
मम वरं यच्च प्रति प्र यातं । वां युवयोश्चनिष्टोक्तस्यैवा सुमतिरनुग्रहमतिरसौ अस्यास्तु । भवतु ॥

यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान्कृतब्रह्मा समयोऽभवाति ।

उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्युच्यंते युवभ्यां ॥६॥

यः । वां । यज्ञः । नासत्या । हविष्मान् । कृतऽब्रह्मा । सऽमयः । भवाति ।

उप । प्र । यातं । वरं । आ । वसिष्ठं । इमा । ब्रह्माणि । उच्यंते । युवऽभ्यां ॥६॥

हे नासत्याश्विनी वां युवयोर्धौ यज्ञो यवमानः समर्थः अतिपूर्वमर्त्यैः सहितः सन् हविष्मा हवि-

युक्तः कृतब्रह्मा कृतलोचरूपकर्मा भवति भवति तं वरं वरणीयं वसिष्ठमोष प्र यातं । प्रकर्षेणोपागच्छतं ।  
इमेमानि ब्रह्माणि मंचजातानि युवभ्यां युवाभ्यामर्थायागमनायर्थ्येति । सूच्यते । क्रियंत इत्यर्थः ॥

इयं मनीषा इयसंश्चिना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथां ।

इमा ब्रह्माणि युवयूयंगमन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

इयं । मनीषा । इयं । अश्चिना । गीः । इमां । सुवृक्तिं । वृषणा । जुषेथां ।

इमा । ब्रह्माणि । युवयूनि । अगमन् । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥७॥

हे अश्चिनाश्चिनी इयं मनीषा क्षुतिर्युवयोः कृतेति शेषः । तदेवादरार्थं पुनश्च्यति । इयं गीः क्षुतिः कृता ।  
हे वृषणा कामानां वर्षकी इमामस्तृतां सुवृक्तिं शोभनां क्षुतिं जुषेथां । सेवेथां । इमेमानि ब्रह्माणि कर्माणि  
क्षुतिरूपाणि युवयूनि युवां कामयमानानि संत्यगमन् । गच्छंतु युवां । यूयं पातेति सिद्धं ॥ १७॥ ॥४॥

पंचमेऽनुवाक एकोनविंशति सूक्तानि । तत्राप स्वसुरिति षड्वचं प्रथमं सूक्तं चिदुभयान्वितं । अनुक्तव्यते च ।  
अप स्वसुः षडिति ॥ गतो विनियोगः ॥

अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पंथां ।

अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरमस्मद्युयोतं ॥१॥

अप । स्वसुः । उषसः । नक् । जिहीते । रिणक्ति । कृष्णीः । अरुषाय । पंथां ।

अश्वऽमघा । गोऽमघा । वां । हुवेम । दिवा । नक्तं । शरं । अस्मत् । युयोतं ॥१॥

स्वसुः स्वस्वस्थानीयाया उषसः सकाशात्प्रपन्नं राचिरप जिहीते । अपगच्छति । तस्या अपकाशं इत्था  
स्वयमपगतेत्यर्थः । स्वसा स्वस्ते ज्यायस्ते योनिमारेक् । अ० १. १२४. ८. । इत्युक्तं । कृष्णीः कृष्णवर्णा राचिरुष-  
षायारोचमानायाहे सूर्याय वा पंथां पंथानं मार्गं रिणक्ति । रेचयति । यस्मादेवं तस्माद्युवयोरागमनसमय-  
त्वात् हे अश्वामघाश्वधनी हे गोमघा गोधनी । उभयोः प्रदाताराचित्वर्थः । ईदृशी वां युवां हुवेम । कुमः ।  
आहुयामः । दिवा नक्तं सर्वदा शरं हिंसकमस्मदस्मत्तो युयोतं । पृथक्कृतं ॥

उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्चिना वहता ।

युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माधी चासीथां नः ॥२॥

उपऽआयातं । दाशुषे । मर्त्याय । रथेन । वामं । अश्चिना । वहता ।

युयुतं । अस्मत् । अनिरां । अमीवां । दिवा । नक्तं । माधी इति । चासीथां । नः ॥२॥

हे अश्चिनी युवामुपायातं । उपागच्छतमस्मदाह्वानं प्रति । किमर्थं । दाशुषे हविषां दाचे यजमानाय  
तदर्थं रथेन वामं वरणीयं धनं वहता वहन्ती । अस्मदस्मत्तो युयुतं । पृथक्कृतं । किं । अनिरां । इरात्रं ।  
तदन्नदारित्रमित्यर्थः । अमीवां रोगं च । हे माधी मधुमंती युवां नोऽस्मान् दिवा नक्तं सर्वदा चा-  
सीथां । रक्षतं ॥

आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयंतु ।

स्यूमंगभस्तिमृत्युग्भिरश्वैराश्चिना वसुमंतं वहेथां ॥३॥

आ । वां । रथं । अवमस्यां । व्युष्टौ । सुम्नायवः । वृषणः । वर्तयंतु ।

स्यूमंगभस्तिं । अतृयुक्भिः । अश्वैः । आ । अश्चिना । वसुमंतं । वहेथां ॥३॥



अवमत्स्यामासन्नायां बुद्धौ नुक्कन उवसि वां युवयो रथं सुम्नायवः सुत्वेन योजयंतोऽश्वा वृषणो वर्षका युवामा वर्तयंतु । सूमगमसिं सुखररिमं सूतररिमं वसुमतं प्रदेयधनयुक्तं रथं हे अश्विनाश्विनापुतयुग्मिषद-  
कयुक्तेरश्विषदकप्रदेरश्वेरा वहेषां ॥

यो वां रथो नृपती अस्ति वोऽह्मा चिंवधुरो वसुमाँ उस्त्रयामा ।

आ न एना नासत्याप यातमभि यश्वाँ विश्वप्स्यो जिगाति ॥४॥

यः । वां । रथः । नृपती इति नृऽपती । अस्ति । वोऽह्मा । चिऽवधुरः । वसुऽमान् ।  
उस्त्रऽयामा ।

आ । नः । एना । नासत्या । उप । यातं । अभि । यत् । वां । विश्वऽप्स्यः । जिगाति ॥४॥

हे नृपती नृणां यजमानानां यासकावश्विनी वां युवयो रथो वोऽह्मा युवयो र्वाहकोऽस्ति सर्वदा संनि-  
हितो वर्तते । कीदृशोऽसौ । चिंवधुरः सारथ्यधिष्ठानस्थानचक्षोपेतो वसुमान्धनवानुस्रयामोसं दिवसं प्रति  
गता । एतेन रथेन हे नासत्याश्विनी नोऽस्मानुपा यातं । यद्रथो यश्च रथो वां विश्वप्स्यो आप्नोऽभि  
जिगाति अभिगच्छति । अथवाह । यजसाविश्वप्स्यो वसिष्ठो वां जिगाति सीति अत उपा यातं ॥

युवं चवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव जह्युराशुमश्वं ।

निरंहसस्तमसः स्पर्तमचिं नि जाहुषं शिथिरे धातमंतः ॥५॥

युवं । चवानं । जरसः । अमुमुक्तं । नि । पेदवै । जह्युः । आशुं । अश्वं ।

निः । अंहसः । तमसः । स्पर्तं । अचिं । नि । जाहुषं । शिथिरे । धातं । अंतरिति ॥५॥

हे अश्विना युवं युवां चवानं जरसो वीर्याद्रूपादमुमुक्तं । अमुंचतं । युवं चवानमश्विना अरंतं पुनर्युवानं  
। अ० १. ११७. १३. । इति ह्यन्वयः । तथा पेदव एतन्नामकाय राक्ष आशुं शीघ्रगामिनमश्वं निरुहयुः । न्यवहतं  
युद्धे । युवं श्वेतं पेदवे । अ० १. ११८. ९. । इति निगमः । तथाचिं महर्षिमंहस चवीसादपिः सक्ताशात्तमसश्च  
गुहांतःस्विताश्च सक्ताशान्निष्यतं । न्यपारयतं । युवमृवीसमुत तप्तमचय ओमन्वतं चक्रवुः । अ० १०. ३९. ९. ।  
इति निगमः । तथा आहुषं शिथिरे शिथिले अष्टे खराद्वेऽतमश्चे पुनर्नि धातं । न्यधातं । परिविष्टं आहुषं  
विश्वतः सीं । अ० १. ११६. २०. । इति ह्युक्तं ॥

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेयां ।

इमा ब्रह्माणि युवयून्यगमन्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

इयं । मनीषा । इयं । अश्विना । गीः । इमां । सुऽवृक्तिं । वृषणा । जुषेयां ।

इमा । ब्रह्माणि । युवऽयूनि । अगमन् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥६॥

इयं मनीषेति षष्ठी गता ॥ ॥१८॥

आ गोमतेति पंचवै द्वितीयं सूक्तं वसिष्ठस्यै वैश्वदेवमाश्विनं । अनुक्रम्यते च । आ गोमता पंचेति ॥ वि-  
नियोगः प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोक्तः ॥ आश्विने पशावावायतसो याज्यानुवाकाः । सूचितं च । आ  
गोमता प्रासत्या रथेनेति चतस्रः । आ० ३. ८. । इति ॥

आ गोमता नासत्या रथेनाश्वीवता पुरुश्वद्रेण यातं ।

अभि वां विश्वा नियुतः सचंते स्पर्हेया श्रिया तन्वा शुभाना ॥१॥

आ । गोऽमता । नासत्या । रथेन । अश्वऽवता । पुरुऽचंद्रेण । यातं ।

अभि । वां । विश्वाः । निऽयुतः । सचंते । स्पार्हया । श्रिया । तन्वा । शुभाना ॥ १ ॥

हे नासत्याश्विनी गोमता गोर्युक्तेनाश्ववताश्वयुक्तेन । अश्वैर्वृषमैश्चोडेनेत्यर्थः । यदा । गोमता गोरप्रदेव । पुरुचंद्रेण बभ्रधनेन । धनप्रदेनेत्यर्थः । तादृशेन रथेना यातं । आगच्छतं । वां विश्वा बभ्रो नियुतः सुतयः सचंते सेवन्तेऽस्मत्प्रेरिताः । हे स्पार्हया सुहृणीयथा श्रिया गोमया तन्वा शरीरेण च शुभाना दीप्यमाना युवां ॥

आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक्सजोषसा नासत्या रथेन ।

युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बंधुरुत तस्य वित्तं ॥ २ ॥

आ । नः । देवेभिः । उप । यातं । अर्वाक् । सऽजोषसा । नासत्या । रथेन ।

युवोः । हि । नः । सख्या । पित्र्याणि । समानः । बंधुः । उत । तस्य । वित्तं ॥ २ ॥

हे नासत्याश्विनी युवां देवेभिरितरैर्देवैः सह सजोषसा समानप्रीतौ परस्परं संतौ नोऽस्माकमर्वागभिमुखं रथेना यातं । आगच्छतं । आगमने बंधुत्वातिशयमाह । युवोर्युवयोर्नोऽस्माकं च सख्या सख्यानि पित्र्याणि पितृतः प्राप्तानि । भेदानां सुत्याद्युपाधिना प्राप्तानि भवन्तीत्यर्थः । तदेवाह । उतापि च युवयोर्मम च बंधुबंधकः पितामहः समान एक एव । तस्य वित्तं ॥ तस्येति कर्मणि षष्ठी ॥ तं बंधुं तद्वंधुत्वं वा वित्तं । जानीतं ॥ विव-  
स्त्वान्वरणशोभावपि कक्षपाददितेर्जाता विवस्त्वानश्विनोर्जनको वण्णो वसिष्ठस्येतीत्येवं समानबंधुत्वं । तथा च नृहदेवतायामुक्तं । अभवन्मिथुनं त्वष्टुः सरणूस्त्रिशिराः सह । स वै सरणू प्रायच्छत्स्वयमेव विवस्वते ॥ ततः सरणू जाते ते यमयस्यौ विवस्वतः । तावद्युभौ यमावेव ह्यास्ता यस्या च वै यमः ॥ उद्धा भर्तुः परोक्षं तु सरणूः सदृशीं स्त्रियं । निचिष्य मिथुनं तस्यामश्वा भूत्वा प्रचक्रमे ॥ अविज्ञानाद्विवस्वांस्तु तस्यामजनयन्मनुं । राजर्षिरासीत्स मनुर्विवस्वानिव तेजसा ॥ स विज्ञाय अपक्रांतां सरणूमात्राक्षपिणीं । त्वाप्नोति प्रतिजगामाशु बाजी भूत्वा सलक्षणः ॥ सरणूस्तु विवस्वतं विज्ञाय हयक्षपिणं । मैथुनायोपचक्राम तां च तवाश्वरोह सः ॥ ततस्तयोस्तु वेनेन युक्तं तदपतस्तुवि । उपाजिघ्रस सा त्वश्वा तच्छुक्तं गर्भकाम्यया ॥ आघ्राणमाचाच्छुक्तं तत्कु-  
मारो संवभूवतुः । नासत्यश्चैव दक्षश्च यौ सुतावश्विनावपीति ॥

उदु स्तोमासो अश्विनोरबुधञ्जामि ब्रह्माण्युषसंश्च देवीः ।

आविवासरोदसी धिष्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ॥ ३ ॥

उत । उं इति । स्तोमासः । अश्विनोः । अबुधन् । जामि । ब्रह्माणि । उषसः । च । देवीः ।

आऽविवासन् । रोदसी इति । धिष्ये इति । इमे इति । अच्छ । विप्रः । नासत्या ।

विवक्ति ॥ ३ ॥

स्तोमासः स्तोमाः क्त्वा अश्विनाश्विनावुदबुधन् । उत्कृष्टं बोधयति । उ इति पूरणः । जामि । बंधुनामैतत् । बंधुस्त्वानीयानि ब्रह्माणि परिवृढानि कर्माणि देवीर्योतमाना उषसः । चकारादश्विनी च । अबुधन् । विप्रो मधावी वसिष्ठ इमे रोदसी बावापृथिव्यां धिष्ये धिष्येति सुखे आविवासन् परिवहरन् नासत्याश्विनावच्छा-  
भिमुत्वं विवक्ति । संति ॥

वि चेदुच्छंत्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरंते ।

ऊर्ध्वं भानुं संविता देवो अश्वे बृहद्गयः समिधा जरंते ॥ ४ ॥



वि। च। इत्। उच्छंति। अश्विनौ। उषसः। प्र। वां। ब्रह्माणि। कारवः। भरंते।  
ऊर्ध्वं। भानुं। सविता। देवः। अश्वेत। बृहत्। अमर्यः। संऽइधा। जरंते ॥४॥

हे अश्विनौ उषस उषसो जुच्छंति चेत्। तमांसि विवासयंति। चेदिति पूरयन्त्यर्थे वा। स च वक्ष्यमा-  
यसूर्यावपेक्षकः ॥ चैषोपादनिधातः ॥ अतो युवयोः क्षुतिसमयत्वाद्ब्रह्माणि सोपाणि कारवः सोतारः प्र  
भरंते। प्रकर्षेण संपादयंति। ऊर्ध्वमश्वेत आश्रयति भानुं तेजः सविता देवः। अमर्योऽपि समिधा समिधेन  
बृहदतिमहत्त्वरंते। क्षुयते ॥

आ पश्चातादिति पंचम्याश्विने पञ्चो वपाया अनुवाक्या। सूचितं च। आ पश्चातान्नासत्वा पुरस्तादा  
गोमता नासत्वा रणेन। आ० ३. ८. इति ॥

आ पश्चाताच्चासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात्।

आ विश्वतः पांचजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

आ। पश्चातात्। नासत्या। आ। पुरस्तात्। आ। अश्विना। यातं। अधरात्। उदक्तात्।

आ। विश्वतः। पांचजन्येन। राया। यूयं। पात। स्वस्तिभिः। सदा। नः ॥५॥

हे नासत्याश्विनौ पश्चातात्पश्चाद्देशात् यातं। तथा पुरस्तात्पूर्वसाद्देशात् तथा अधरादधस्तनाद्देशाद्दक्षिणत  
उदक्ताद्दुर्देशात्। सर्वत्र यातमिति संबंधः। किं ब्रह्मणा विश्वतः सर्वसाद्देशात्पांचजन्येन पंचजनहितेन  
राया धनेन सदा यातं। निषादपंचमाश्वत्वारो वर्णाः पंचजनाः ॥ ॥१९॥

अतारिष्येति पंचर्वं तृतीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं वैद्वमशाश्विनं। अतारिष्येत्यनुक्रमणिका ॥ आतरनुवाक्याश्वि-  
नश्चतयोक्तो विनियोगः ॥

अतारिष्य तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयंतो दधानाः।

पुरुदंसा पुरुतमा पुराजामर्त्या हवते अश्विना गीः ॥१॥

अतारिष्य। तमसः। पारं। अस्य। प्रति। स्तोमं। देवयंतः। दधानाः।

पुरुदंसा। पुरुदतमा। पुराज। अमर्त्या। हवते। अश्विना। गीः ॥१॥

अस्य तमसोऽज्ञानस्य तत्कार्यस्य जननमरणवतः संसारदुःखस्य अथवा प्रकृतत्वात् प्रयोगविवयोज्ञानस्य  
पारमतारिष्य। तीर्थाः अ। किं कुर्वंतः। देवयंतो देवकामाः स्तोमं क्षुतिं प्रति दधाना देवेषु कुर्वाणाः।  
पुरुदंसा ब्रह्मकर्माणौ पुरुतमा प्रभूततमौ पुराजा पूर्वजातावत एवामर्त्यामरणधर्माणावश्विनाश्विनौ गीर्गेरिता  
सोता वसिष्ठो हवते। क्षीति। आह्वयति वा ॥

न्यु प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजंते वंदंते च।

अश्वीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदधेषु प्रयस्वान् ॥२॥

नि। कुं इति। प्रियः। मनुषः। सादि। होता। नासत्या। यः। यजंते। वंदंते। च।

अश्वीतं। मध्वः। अश्विनौ। उपाके। आ। वां। वोचे। विदधेषु। प्रयस्वान् ॥२॥

प्रियो युवयोः प्रियभूतो मनुषो मानुषो मनुषः सकाशात्प्रातो वा होता देवानामाह्वाता क्षोतायं नि  
वादि। असादि। निषण्णो भवति। युवयोः कर्मणि वर्तत इत्यर्थः। हे नासत्याश्विनी यो यजते यागं करोति

वन्दते स्त्रीति च तस्य संबन्धिनं मध्वो मधुरं सोमरसं हे अश्विनाश्विनी उपकेऽतिक एव समीपे स्थितेवासीत ।  
पिबतमित्यर्थः । विदधेऽपु यज्ञेषु वां युवां प्रथस्तान्नवाप्तमा वाचे । आहुये ॥

अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथां ।

श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥ ३ ॥

अहेम । यज्ञं । पथां । उराणाः । इमां । सुवृक्तिं । वृषणा । जुषेथां ।

श्रुष्टीवाऽइव । प्रऽइषितः । वां । अबोधि । प्रति । स्तोमैः । जरमाणः । वसिष्ठः ॥ ३ ॥

उराणा उव स्तोत्रं कुर्वणाः स्तोतारो वयं पथां पततामागच्छतां देवानामर्थाय यज्ञं यागं तत्साधनं  
हविर्वाहेम । वर्धयेम । हे वृषणा वर्षवौ कामानां इमां सुवृक्तिं शोभनसुतिं जुषेथां । सेवेथां । वां युवां  
श्रुष्टीवेव । श्रुष्टीति चिप्रनाम । चिप्रगता दूत इव प्रेषितोऽहमबोधि । बोधयति शीघ्रं गंतव्यमिति । किं  
कुर्वन् । स्तोमैः स्तोत्रैः प्रति जरमाणः प्रतिशुषन् । वाः । वसिष्ठोऽहमबोधोति ॥

उप त्या वही गमतो विशं नो रक्षोहणा संभृता वीकुपाणी ।

समंधास्यगमत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ॥ ४ ॥

उप । त्या । वही इति । गमतः । विशं । नः । रक्षःऽहना । संऽभृता । वीकुपाणी  
इति वीकुऽपाणी ।

सं । अंधांसि । अगमत । मत्सराणि । मा । नः । मर्धिष्टं । आ । गतं । शिवेन ॥ ४ ॥

त्या त्वी तौ वही हविषां वोढारौ नोऽस्माकं विशं प्रजामृत्विक्सुप गमतः । उपगच्छतां । कीदृशी तौ ।  
रक्षोहणा रक्षसां हंतारौ संभृता सम्यग्भृता पुष्टांगौ वीकुपाणी दृढपाणी । यद्वा । अयमर्धर्चोऽश्वपरतया  
आख्येयः । तथा सति तौ रथस्य वोढारौ दृढपादावश्विनोरश्वानुपगच्छतामिति तत्सार्थः । अंधांस्यन्नानि  
मत्सराणि मदकराणि सोमाः समगमत । समगच्छन्त युवां । नोऽस्मान् मा मर्धिष्टं । मा हिंसं । किंतु शिवेन  
मंगलेन धनेन सार्धमा गतं । आगच्छतं ॥

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।

आ विश्वतः पांचजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

आ । पश्चातात् । नासत्या । आ । पुरस्तात् । आ । अश्विना । यातं । अधरात् । उदक्तात् ।

आ । विश्वतः । पांचऽजन्येन । राया । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ ५ ॥

आ पश्चातादिति पंचम्या विनियोगो व्याख्या च गता ॥ २० ॥

इमा उ वामिति षड्रुचं चतुर्थं सूरमाश्विनं वसिष्ठस्यार्धं । आद्यातृतीयापंचम्यो बृहत्यः शिष्टाः सतोबृहत्यः ।  
तथा चानुक्रांतं । इमा उ वां षट् प्रगाथमिति ॥ प्रातरनुवाक आश्विने क्रतौ बार्हते वंदस्वाश्विनशस्त्रे च सूक्तं ।  
सूचितं च । इमा उ वामयं वां । आ० ४. १५ । इति ॥ दशरात्रे पंचमेऽहनि प्रउगशस्त्र इमा उ वामित्ययमा-  
श्विनशृचः । सूचितं च । इमा उ वां दिविष्टयः पिबा सुतस्य रसिनः । आ० ७. १२ । इति ॥

इमा उ वां दिविष्टय उसा हवन्ते अश्विना ।

अयं वामहेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ १ ॥



इ॒माः । ऊँ इति । वां । दि॒वि॒ष्टयः । उ॒सा । ह॒व॒न्ते । अ॒श्वि॒ना ।

अ॒यं । वां । अ॒ह्ने । अ॒व॒से । श॒ची॒व॒सू इति शची॑ऽवसू । वि॒शं॑ऽवि॒शं । हि । गच्छ॑थः ॥ १ ॥

इमा दिविष्टयो दिवमिच्छन्तः प्रजा ऋत्विजोऽपि । उ इति चार्थे । हे अश्विना उसा वासकी वां हवते । आह्वयन्ति । अयं वशिष्ठोऽपि हे शचीवसू कर्मधनी वां युवामवसेऽसद्वृषणाय युवयोक्तृण्याय वाहे । आह्वयामि । किमर्थमेवं प्रजा अयमपीत्यादरोक्तिरिति तत्राह । हि यस्मात्कारणायुवां विशं विशं प्रजां प्रजां प्रति गच्छथः ॥

यु॒वं चि॒चं द॒द॒शु॒र्भोज॑नं न॒रा चो॒र्दे॒षां सू॒नृता॑वते ।

अ॒र्वा॒य॒यं स॒म॒न॒सा नि य॑च्छ॒तं पि॒ब॒तं सो॒म्यं म॒धु ॥ २ ॥

यु॒वं । चि॒चं । द॒द॒शुः । भो॒ज॒नं । न॒रा । चो॒र्दे॒षां । सू॒नृता॑ऽवते ।

अ॒र्वा॒क् । र॒थं । स॒ऽम॒न॒सा । नि । य॑च्छ॒तं । पि॒ब॒तं । सो॒म्यं । म॒धु ॥ २ ॥

हे अश्विनी युवं युवां चिचं चायनीयं भोजनं धनं ददशुः । धारयेथि । तन्नं सुनृतावते क्षुतिवते सोमे चोर्देषां । प्रेरयतं । तदर्थं समनसा समानमनस्कौ संतौ रथं युवयोः संबन्धिनमर्वागस्तदभिमुखं नि यच्छतं । नियमतं । तथा ह्यस्मा सोम्यं सोमसंबन्धिनं मधु मधुररसं पिबतं ॥

आ या॒त॒मु॒प॒ भूष॑तं म॒ध्वः पि॒ब॒त॒म॒श्वि॒ना ।

दु॒ग्धं प॒यो वृष॑णा जे॒न्या॒व॒सू मा नो॑ म॒र्धि॒ष्ट॒मा ग॑तं ॥ ३ ॥

आ । या॒त॒ं । उ॒प॒ । भूष॑तं । म॒ध्वः । पि॒ब॒तं । अ॒श्वि॒ना ।

दु॒ग्धं । प॒यः । वृष॑णा । जे॒न्या॒व॒सू इति । मा । नः । म॒र्धि॒ष्टं । आ । ग॑तं ॥ ३ ॥

हे अश्विना युवामा यातं । आगच्छतं । आगत्य चोप समीपे भूषतं । भवतं । मध्वो मधुरं सोमरसं पिबतं । पीत्वा च हे वृषणा वर्षकौ हे जेन्यावसू जितव्यधनी । जितधनावित्यर्थः । युवां पयो वृष्यदकमंतरिषादुग्धं । नोऽस्मान् मा मर्धिष्टं । मा हिंस । ईदृशप्रार्थनाकरणमेव हिंसा । आ गतं । आगच्छतं शीघ्रं ॥

अ॒श्वा॒सो॒ ये वा॒मु॒प॒ दा॒शु॒षो गृ॒हं यु॒वां दी॒र्य॑न्ति बि॒भ्र॑तः ।

म॒क्षू॒यु॒भिर्न॑रा ह॒र्ये॑भिर॒श्वि॒ना दे॒वा या॑त॒म॒स्म॒यू ॥ ४ ॥

अ॒श्वा॒सः । ये । वां । उ॒प॒ । दा॒शु॒षः । गृ॒हं । यु॒वां । दी॒र्य॑न्ति । बि॒भ्र॑तः ।

म॒क्षू॒यु॒ऽभिः । न॒रा । ह॒र्ये॑भिः । अ॒श्वि॒ना । आ । दे॒वा । या॑तं । अ॒स्म॒यू इत्य॑स्म॒ऽयू ॥ ४ ॥

येऽश्वासोऽश्वा वां युवयोः स्मृता दाशुषो हविर्दातुर्गृहं युवां बिभ्रतो धारयन्तो दीर्यन्ति । नमयन्तीत्यर्थः । मक्षूयुभिः शीघ्रगंतुमिहैथिमिहैथिरश्मिर्हे नरा जेतारावश्विनाश्विनी देवा देवी अस्मयू अस्माकमयमाणावा यातं । अस्माकमागच्छतं ॥

अ॒धा ह॒ य॑न्तो अ॒श्वि॒ना पृ॒क्षः स॑च॒न्त॒ सूर॑यः ।

ता यँ॑सतो म॒घ॒र्व॒ज्ञो ध्रु॒वं य॑श॒च्छ॒दि॒र॒स्म॒भ्यं ना॑स॒त्या ॥ ५ ॥

अधः । ह । यंतः । अश्विना । पृक्षः । सचंत । सूरयः ।

ता । यंसतः । मधवन्तोऽभ्यः । ध्रुवं । यशः । छर्दिः । अस्मभ्यं । नासत्या ॥ ५ ॥

अथा हापि पाश्चिनाश्विनी यंतः सुतिभिर्गच्छन्तो यजमानाः सूरयो मेधाविनः स्रोतारः पृथोऽन्नं प्रभूतं सचंत । सेवते । संयंति वा । ता तौ युवां मधवन्तोऽन्नवन्तोऽस्मभ्यं ध्रुवमविचक्षितं यशोऽन्नं यश एव वा छर्दिर्गृहं यंसतः । प्रयच्छंत । हे नासत्याश्विनी ॥

प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानां ।

उत स्वेन शर्वसा शूशुवुर्नर उत क्षियंति सुक्षितिं ॥ ६ ॥

प्र । ये । ययुः । अवृकासः । रथाःऽइव । नृपातारः । जनानां ।

उत । स्वेन । शर्वसा । शूशुवुः । नरः । उत । क्षियंति । सुक्षितिं ॥ ६ ॥

ये यजमाना अवृकासः परकीयधनस्नानादातारो जनानां मनुष्याणां मध्ये नृपातारः अस्त्रियूपायां युवां रथितारः संतो ययुः युवां प्राप्नुवंति हविर्भिः । प्राप्नो इष्टांतः । रथा एव ग्रीष्मादिपूर्णा रथा यथा प्राप्नुवंति स्वाभिर्गृहं । उतैत्ययमुत्तरवाक्यापेक्षः । अपि च ते नरो यजमानाः स्वेन शर्वसा स्त्रीयेन बलेन शूशुवुः । वर्धन्ते । उतापि च सुक्षितिं सुनिवासं क्षियंति । गच्छन्ति । प्राप्नुवंति ॥ ॥ २१ ॥

युषा आव इत्यष्टमं पंचमं सूक्तं वसिष्ठस्त्वर्थं । अत्रानुक्रमणिका । युषा अष्टावुषस्त्वं तु वा इति । तु वा इत्युक्तत्वात्तुष्टादिपरिभाषयेदमादीनि सप्त सूक्तान्युषोदेवत्यानि ॥ प्रातरनुवाक उपस्ते क्रतौ वैष्णवे कंदस्वाश्विनशस्त्रे चेदमादीनि षट् सूक्तानि । तथा च सूच्यते । युषा आवो दिविजा इति षडिति वैष्णवं । आ० ४. १४. । इति ॥ अश्विधान आख्यातो विनिधोगोऽत्र लिख्यते । रात्र्या अपरकाले य उत्याय प्रयतः मुचिः । युषा इत्युपतिष्ठेत् वज्रिः सुतिः कृतांजलिः ॥ प्राप्नुयात्स हिरण्यानि नानारूपं धनं वज्र । गा अश्वान्पुंसान्धान्यं स्त्रियो वासांस्त्रिजाविकं । अश्वि० २. २८. । इति ॥

युषा आवो दिविजा चृतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।

अप दुहस्तम आवरजुष्टमंगिरस्तमा पथ्या अजीगः ॥ १ ॥

वि । उषाः । आवः । दिविजाः । चृतेन । आविःऽकृण्वाना । महिमानं । आ । अगात् ।

अप । दुहः । तमः । आवः । अजुष्टं । अंगिरःऽतमा । पथ्याः । अजीगरिति ॥ १ ॥

इयमुषा दिविजा दिव्यंतरिक्षे प्रादुर्भूता सती आवः । व्योच्छत् । विमानं कृतवतीत्यर्थः ॥ वसिर्निवासवाच्यं विपूर्वो व्युच्छने भवेत् । कंदस्वपि दृश्यत इत्याद । दृश्यहणस्य विध्यंतरोपसंयहणार्थत्वादनवादेरप्याडागमः । हृष्ट्याब्ज इति श्लोपः ॥ सेवोषा चृतेन तेजसा महिमानं स्वमहत्त्वमाविष्कृण्वानागात् आगतवती । आगत्य च दुहोऽसद्भोगधृजुष्टं सर्वेषामप्रियं तमश्वापावः । अपवृणोति । किंचांगिरस्तमा अंगैर्गत्वर्थादंगिराः । गंतुतमा पथ्याः पदवीरजीगः । उन्निरति । प्राणिनां व्यवहाराय प्रकाशयतीत्यर्थः ॥

महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यंधि ।

चिचं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि अवस्युं ॥ २ ॥

महे । नः । अद्य । सुविताय । बोधि । उषः । महे । सौभगाय । प्र । यंधि ।

चिचं । रयिं । यशसं । धेहि । अस्मे इति । देवि । मर्तेषु । मानुषि । अवस्युं ॥ २ ॥



अथ नोऽस्माकं महे महते सुविताय सुखप्राप्तये सुखममाय वा बोधि । भव । किंच हे उपः महे महते सीमनाय सीमायाय प्र यंधि । प्रयच्छासात् । किंच चिचं चायनीयं यशसं यशोयुक्तं रयिं धनं धेहि धारयास्ते असासु । हे मातुषि मनुष्यहिते देवि मर्तेष्वस्मासु अवस्थुमन्नवंतं पुत्रं धेहीत्यनुवचः ॥

एते ते भानवो दर्शतायाश्चिचा उषसो अमृतास आगुः ।

जनयंतो दैव्यानि व्रतान्यापुणंतो अंतरिक्षा व्यस्युः ॥ ३ ॥

एते । ते । भानवः । दर्शतायाः । चिचाः । उषसः । अमृतासः । आ । अगुः ।

जनयंतः । दैव्यानि । व्रतानि । आऽपुणंतः । अंतरिक्षा । वि । व्यस्युः ॥ ३ ॥

दर्शताया दर्शनीयायाः प्रकाशयुक्ताया उषस एते पुरो वृक्षमानास्त्ये ते प्रविद्धास्त्रिषाः पूज्या आश्चर्यमृता वा अमृतासोऽमरणा अनमरा भानवो रश्मय आगुः । आगच्छन्ति । किं कुर्वंतः । दैव्यानि देवानां संबन्धीनि व्रतानि वर्माणि जनयंत उत्पादयंतः । तदनुकूलप्रकाशप्रदानात्तदुत्पादकत्वमेवा । अंतरिक्षांतरिक्षास्त्रिषापुणंत आपूरयंतः । एकक्षीवांतरिक्षं वायुमेघपक्षिणामालंबनोपाधिना विविधत्वं । अतो बह्वचनमुपपन्नं । एवं कुर्वंतो भानवो व्यस्युः । विविधं तिष्ठति । सरति ॥

एषा स्या युजाना पराकात्पंच क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।

अभिपश्यंती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥ ४ ॥

एषा । स्या । युजाना । पराकात् । पंच । क्षितीः । परि । सद्यः । जिगाति ।

अभिऽपश्यंती । वयुना । जनानां । दिवः । दुहिता । भुवनस्य । पत्नी ॥ ४ ॥

एषा स्या सोषाः पराकाहूरदेशाहरे क्षितापि युजानोद्योगं कुर्वाणा प्रकाशाय पंच क्षितीर्निषादपंचमांस्तुरो वर्णां सबः परि जिगाति । किं कुर्वती । जनानां प्राणिनां वयुना प्रज्ञानान्वभिपश्यंती साक्षिणावलोचयंती । कीदृशी सा । दिवो दुहिता दुहितृस्त्राणीया भवनस्य भूतजातस्य पत्नी पालयिनी । परि जिगातीत्यन्वयः ।

वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चिचामघा राय ईशे वसूनां ।

अधिष्ठिता जरयंती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥ ५ ॥

वाजिनीऽवती । सूर्यस्य । योषा । चिचऽमघा । रायः । ईशे । वसूनां ।

अधिऽस्तुता । जरयंती । मघोनी । उषाः । उच्छति । वह्निऽभिः । गृणाना ॥ ५ ॥

वाजिनीवती बह्वृता । यद्यप्युद्योगमितत् तथापि चिचामघेयस्याप्युद्योगमकस्य पृथग्विद्यमानत्वादर्चको योगहृदोऽवगंतव्यः । सूर्यस्य योषा योषिश्चिचामघा विचित्रधना विचित्ररस्याख्यधना वा रायो धनस्याविशिष्टस्य तस्य वसूनां देवमनुष्यादिसर्वाश्रयाणां धनानां चेत्रे । ईशे । अथवा वसवो वासका रश्मयः । तेषामपीष्टे । अधिष्ठिता अधिभिः स्तुता जरयंती प्राणिजातानि । उषाः खलु पुनः पुनरावर्तमाना प्राणिनामायुः शपयति । मघोनी धनवत्युषा वह्निभिः कर्मबोद्धमिर्यजमानिर्गृणाना खूयमानोच्छति । विमाणं करोति ॥

प्रति द्युतानामरूपासो अश्वाश्चिचा अंदृश्रनुषसं वहंतः ।

याति शुभा विंशपिशा रथेन दधाति रत्नं विधत्ते जनानाय ॥ ६ ॥

प्रति । द्युता॒नां । अ॒रु॒षासः । अ॒श्वः । चि॒वाः । अ॒दृ॒श्रन् । उ॒षसं । वह॑तः ।  
याति॑ । शु॒भा । वि॒श्वऽपि॒शा । रथे॑न । दधा॑ति । रत्नं॑ । वि॒ध॒ते । जना॑य ॥ ६ ॥

द्युतानां द्योतमानामुषसं वहंतो धारयंतोऽरुषास आरोचमानाश्चिवाश्चायनीया अश्वः प्रत्यदृशन् । प्रतिदृश्यते । सा चोषाः शुभा दीप्यमाना विश्वपिशा बद्धरूपेण रथेन याति । सर्वत्र गच्छति । विधते परिचरते जनाय रत्नं रमणीयं धनं दधाति । ददाति च ॥

स॒त्या स॒त्येभि॑र्म॒हती॑ म॒हद्भि॑र्दे॒वी दे॒वेभि॑र्यज॒ता यज॑चैः ।  
रु॒ज॒द्दृ॒हानि॑ द॒ददु॑स्त्रियाणां॒ प्रति॑ गा॒वं उ॒षसं॑ वा॒वश॑न्त ॥ ७ ॥  
स॒त्या । स॒त्येभिः॑ । म॒हती॑ । म॒हत्ऽभिः॑ । दे॒वी । दे॒वेभिः॑ । य॒ज॒ता । यज॑चैः ।  
रु॒ज॒त् । दृ॒हानि॑ । द॒दत् । उ॒स्त्रियाणां॑ । प्र॒ति । गा॒वं । उ॒षसं॑ । वा॒व॒श॒न्त ॥ ७ ॥

सत्यान्विरवाध्या महती पूजनीया प्रवृद्धा वा गुणैर्देवी द्योतमाना यजता यजनीयोषाः सत्येभिः सत्यैर्महद्भिर्देवैर्यजचैरुत्तमचणैः किरणैर्निपातभागिभिरन्यैर्देवी सहिता सती दृहान्यत्यंतं स्थिराणि तमांसि दजत् । भिनत्ति । उस्त्रियाणां । गोनामैतत् । उत्स्राविण आसां भोगा इति तद्भ्रुत्पत्तिः । तासां संचाराय ददत् । ददाति । सामर्थ्यात्प्रकाशमित्यर्थः । अथवोस्त्रिया गा ददत् । ददाति क्षोतुभ्यः । किंच गावः । उपलक्षणमेतत् । सर्वेऽपि तमोऽवस्थाः प्राणिन उषसं वावशन्त । उशन्ति । कामयन्ति । विशेषेण गवां प्रभाते संचारार्थमुषसोऽपेक्षितत्वात्तासां प्राधान्ये गीतिः ॥

नू॒ नो गोम॑द्वीर॒व॒देहि॑ रत्न॒मुषो॑ अ॒श्व॒वात्पुरु॑भोजो अ॒स्मे ।  
मा नो॑ ब॒र्हिः पुरु॑षता॒ नि॒दे क॑र्यु॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॑ सदा॑ नः ॥ ८ ॥  
नु॒ नः । गोऽम॑त् । वी॒रऽव॑त् । धे॒हि । रत्नं॑ । उ॒षः । अ॒श्वऽव॑त् । पुरु॑ऽभोजः । अ॒स्मे इति॑ ।  
मा । नः । ब॒र्हिः । पुरु॑षता॒ नि॒दे । कः । यू॒यं । पा॑त । स्व॒स्तिभिः॑ । सदा॑ । नः ॥ ८ ॥

हे उषः नु नोऽस्माभ्यं गोमद्वीरवदेहि रत्नमुषो अश्ववात्पुरुभोजो बद्धं चास्मे अस्मासु धेहि । देहि । पादभेदादस्मे इति पुनरभिधानं । नोऽस्माकं बर्हिर्यज्ञं पुरुषता पुरुषतायां पुरुषसमूहेषु । अस्मात्सदृशेष्वित्यर्थः । निदे निदायै मा कः । मा कार्षीः । यथा ते निंदन्ति तथा मा कुर्वित्यर्थः ॥ २२ ॥

उदु ज्योतिरिति सप्तर्चं षष्ठं सूक्तं चैष्टममुषस्यं । तथा चानुक्रांतं । उदु सप्तेति ॥ प्रातरनुवाकाश्चिन्तयन्त्यो-  
क्तो विनियोगः ॥

उदु॑ ज्योति॒र॒मृते॑ वि॒श्वज॑न्यं वि॒श्वान॑रः स॒वि॒ता दे॒वो अ॒श्वेत् ।  
क्र॒त्वा दे॒वाना॑म॒जनि॑ष्ट चक्षु॒रा॒वि॒र॒क॒र्भुव॑न् वि॒श्वमु॑षाः ॥ ९ ॥  
उत् । ऊं इति॑ । ज्योतिः॑ । अ॒मृते॑ । वि॒श्वऽज॑न्यं । वि॒श्वान॑रः । स॒वि॒ता । दे॒वः । अ॒श्वेत् ।  
क्र॒त्वा । दे॒वानां॑ । अ॒ज॒नि॒ष्ट । चक्षुः॑ । आ॒विः । अ॒कः । भुव॑न् । वि॒श्वं । उ॒षाः ॥ ९ ॥

अमृतममृतत्वसाधकमविनाशि वा विश्वजन्यं विश्वेषां जनानां हितकरं ज्योतिर्विश्वानरः सर्वेषां नेता सविता देव उदश्वेत् । ऊर्ध्वं श्रयति । देवानां व्यवहर्तृणां क्षोतृणां वा यजमानानां क्रत्वा कर्मणा निमित्तेन । यागानुष्ठानार्थमित्यर्थः । तदर्थं यद्वा देवानां चक्षुश्चक्षुःस्थानीयमौषसं तेजः क्रत्वा कर्मणा निमित्तेनाजनिष्ट ।



प्रादुरभूत् । उत्पन्ना चोषा विश्वं सर्वं भुवनं भूतजातमाविरक्तः । प्रादुरक्तः । अकरोत् । समस्तं अगदाविष्कृतवती ॥

प्र मे पंथा देव्यानां अदृश्नमर्धतो वसुभिरिष्कृतासः ।

अभूद् केतुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥ २ ॥

प्र । मे । पंथाः । देवऽयानाः । अदृश्न् । अमर्धतः । वसुऽभिः । इष्कृतासः ।

अभूत् । ऊं इति । केतुः । उषसः । पुरस्तात् । प्रतीची । आ । अगात् । अधि । हर्म्येभ्यः ॥ २ ॥

मे मया देवयाना देवप्रापकाः पंथाः पंथानः प्रादृश्न । प्रदृश्नति । कीदृशाः पंथानः । अमर्धतोऽर्धसतो वसुभिर्देवोभिरिष्कृतासः संस्कृताः । पुरस्तात् पूर्वस्थां दिशोऽपसः केतुः प्रज्ञापकं तेजोऽभूत् । अचेति । ज्ञायते । सोषाश्च प्रतीची प्रत्यगंचनासदमिमुखी हर्म्येभ्योऽध्युच्छितेभ्यः प्रदेशेभ्यः । हर्म्यशब्द उन्नतप्रदेशोपलक्षकः । आगात् । आगच्छति ॥

तानीदहानि बहुलान्यासत्या प्राचीनमुदिता सूर्येय ।

यतः परि जार ईवाचरंत्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ॥ ३ ॥

तानि । इत् । अहानि । बहुलानि । आसन् । या । प्राचीन । उत्ऽइता । सूर्येस्य ।

यतः । परि । जारऽइव । आऽचरंती । उषः । ददृक्षे । न । पुनः । यतीऽइव ॥ ३ ॥

हे उषः तानीन्तान्येव तव तेजांसि बहुलान्यासन् । उषः प्रकाशयुक्तस्यैव कालस्याहःशब्दव्यवहारात् । तानीत्युक्तं कानीत्याह । या यानि सूर्यस्योदितोदितावुदये सति प्राचीनं तस्य प्राग्देशं प्रत्युदयंति । यद्वा । सूर्यस्य प्राचीने देशे या यान्युदितोदितानि तानीत्यर्थः । हे उषः यतो यैश्च तेजोभिः परि ददृक्षे दृश्यसे त्वं । जार इव पत्न्याविवाचरंती समीपे संचरंती साध्वी नारीव जारे रात्रिर्जरयितरि सूर्ये संचरंती त्वं दृश्यसे । यथा लोके कुष्ठं भ्रमणशीलमपि पतिमत्यज्यैव साध्वी संचरति तद्वत् तमविमुंचती त्वमित्यर्थः । न पुनर्यतीव यतो पतिं परित्यज्येतस्ततः संचरंती व्यभिचारिणीव सूर्यमपरित्यजंती त्वं । पुनरित्ययं वैलक्षण्यव्योतनार्थः । एवं दैक्षेजोभिर्युक्ता परिदृश्यसे तान्येवाहान्यासन्निति संबंधः ॥

त इहेवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्यासः ।

गूळं ज्योतिः पितरो अन्विदन्सत्यमैत्रा अजनयन्नुषासं ॥ ४ ॥

ते । इत् । देवानां । सधऽमादः । आसन् । अतऽवानः । कवयः । पूर्यासः ।

गूळं । ज्योतिः । पितरः । अन्तु । अन्विदन् । सत्यऽमैत्राः । अजनयन् । उषसं ॥ ४ ॥

त इत्तेऽगिरस एवर्षाणां मध्ये देवानां सधमादः सह मायंत आसन् । अमवन् । त इत्युक्तं क इत्याह । य अतावानः सत्यवंतः कवयोऽनुचानाः । ये वा अनुचानास्ते कवयः । ऐ० ब्रा० २. ३८. इति श्रुतेः । पूर्यासः पूर्वकालोनाः पितरः पालयितारः सर्वस्यागिरसो गूळं तमसावृतं ज्योतिः सौर्यं तेजोऽन्विदन् सत्यवंतो मंचसामर्थात् ते सत्यमंत्राः सत्यसुतयः संत उषासमुषसमजनयन् । प्रादुरकुर्वन् । तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददधिः । अ० ५. ४०. ६. । अचयस्तमन्विदन् । अ० ५. ४०. ९. । इति निगमौ । अत्रागिरसां सुत्योषस एव श्रुतिर्ज्ञातव्या ॥

समान ऊर्वे अधि संगतासः सं जानते न यतंते मिथस्ते ।

ते देवानां न मिनंति व्रतान्यमर्धतो वसुभिर्योदमानाः ॥ ५ ॥

सुमाने । ऊर्वे । अधि । संऽगतासः । सं । जानते । न । यतते । मिथः । ते ।  
ते । देवानां । न । मिनन्ति । व्रतानि । अमर्धतः । वसुऽभिः । यादमानाः ॥ ५ ॥

समाने सर्वेषां साधारण ऊर्वे गोसमूहे पणिभिरपहृते पुनर्लब्धये सति । अधोत्थनर्थकः । संगतासो  
मिलिताः संतस्ते सं जानते । एकबुद्धयो भवन्ति । न मिथः परस्परं यतते । सहैव साधनमनुतिष्ठन्तीत्यर्थः ।  
तेऽगिरसो देवानां व्रतानि कर्माणि यागस्त्रयणानि न मिनन्ति । न हिंसन्ति । किंतु परिपालयन्तीत्यर्थः । किं  
कुर्वन्तः । अमर्धतोऽहिंसन्तो वसुभिर्वासकैरुपसां तेषां भिर्यादमाना गच्छन्तः ॥

प्रति त्वा स्तोमैरीकृते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।  
गवां नेची वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥ ६ ॥  
प्रति । त्वा । स्तोमैः । ईकृते । वसिष्ठाः । उषःऽबुधः । सुऽभग । तुष्टुऽवांसः ।  
गवां । नेची । वाजऽपत्नी । नः । उच्छ । उषः । सुऽजाते । प्रथमा । जरस्व ॥ ६ ॥

हे सुभगे देव्युषः त्वा त्वामुषर्बुध उषसि बुधन्तस्तुष्टुवांसः सुयन्तो वसिष्ठाः स्तोमैः स्तोमैरीकृते । सुयन्ति ।  
गवां नेची प्रापयित्री वाजपत्यज्ञस्य पालयित्री । अमर्दाचीत्यर्थः । ईदृशी त्वं गोऽधर्दयमुच्छ । विमाहि । हे  
उषः सुजाते सुप्रादुर्गमे प्रथमेतरदेवेभ्यो मुख्यभूता जरस्व ॥

एषा नेची राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।  
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥  
एषा । नेची । राधसः । सूनृतानां । उषाः । उच्छन्ती । रिभ्यते । वसिष्ठैः ।  
दीर्घऽश्रुतं । रयिं । अस्मे इति । दधाना । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

एषोषा राधसः स्त्रीतुः सूनृताणां स्त्रीतानां नेची सत्युच्छन्ती तमो विवासयन्ती वसिष्ठैर्वसिष्ठगोचोत्पन्ने  
रिभ्यते । सूर्यते । दीर्घश्रुतं दीर्घं श्रूयमाणं सर्वत्र प्रसिद्धं रयिं धनमस्मी अस्मासु दधाना धारयन्ती ॥ २३ ॥

उपो वरुच इति षडृचं सप्तमं सूक्तं वसिष्ठस्वार्थमुपस्यं । तथा चामुक्रांतं । उपो वरुचे षडिति ॥ प्रातरनु-  
वाकाश्चिन्नशस्त्रयोद्धातो विनियोगः ॥

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।  
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥ १ ॥  
उपो इति । रुरुचे । युवतिः । न । योषा । विश्वं । जीवं । प्रऽसुवन्ती । चरायै ।  
अभूत् । अग्निः । संऽइधे । मानुषाणां । अकः । ज्योतिः । बाधमाना । तमांसि ॥ १ ॥

इयमुषा उपो समीप एव सूर्यस्य वरुचे । दीप्यते । युवतिर्यौवनोपेता योषा न योषिदिव । सा यथा  
वस्त्राभरणादिना प्रत्युः समीपे प्रदीप्यते तद्वत् । किं कुर्वती । विश्वं सर्वं जीवं जीवसंघं चरायै संचाराय  
प्रसुवन्ती प्रेरयन्ती । किंचाभिर्मानुषाणां मनुष्याणामर्थाय समिधेऽभूत् । समिधनीयोऽभवत् ॥ कृतार्थं केन ॥  
समिधः संस्तमांसंधकारान्बाधमाना बाधमानं बाधकं ज्योतिस्तैजःसंघमकः । अकार्योत् । अथवा । जीवसं-  
ज्योतिस्तमांसि बाधमाना बाधमानान्यकः । अकरोत् ॥



विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थादुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।

हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग्गवां माता नेत्रहामरोचि ॥ २ ॥

विश्वं । प्रतीची । सऽप्रथाः । उत् । अस्यात् । रुशत् । वासः । बिभ्रती । शुक्रं । अश्वैत् ।

हिरण्यऽवर्णा । सुदृशीकऽसंदृक् । गवां । माता । नेत्री । अह्नां । अरोचि ॥ २ ॥

विश्वं कालं जगत्प्रति प्रतीच्यभिमुखी सप्रथाः सर्वतः पृथुतरोदस्थात् । उदगच्छत् । उदिता ऋक्षहीनं शुक्रं तेजोमयं वासो वसनीयं तेजःसमूहं बिभ्रती धारयत्यश्वैत् । वर्धते । हिरण्यवर्णा हितरमणीयवर्णोपिता सुदृशीकसंदृक् । संदर्शयतीति संदृक् तेजः । सुष्ठु दर्शनीयं संदृक् तेजो यस्याः सा तादृशी । गवां वाचां गवामेव वा माता निर्मात्री । उषःकाले हि पश्चिमनूप्यादीनां वाचो निर्गच्छन्ति । गवामपि तस्मिन्काले संचारात्तन्निर्मातृत्वं । अथवा ररमीणां निर्मात्री । अरोचि रोचतेऽह्नां नेत्री दिवसानां प्रापयित्री ॥

देवानां चक्षुः सुभगा वहती श्वेतं नयती सुदृशीकमश्वं ।

उषा अदृशि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ॥ ३ ॥

देवानां । चक्षुः । सुऽभगा । वहती । श्वेतं । नयती । सुऽदृशीकं । अश्वं ।

उषाः । अदृशि । रश्मिऽभिः । विऽअक्ता । चित्रऽमघा । विश्वं । अनु । प्रऽभूता ॥ ३ ॥

देवानां चक्षुश्चक्षुःस्थानीयं तेजो वहती धारयती सुभगा शोभनधना सुदृशीकं सुदर्शनमश्वं सर्वदा गन्ता-रमादित्यं नयती प्रापयती । किं । श्वेतं श्वेतवर्णोपेतं सूर्यं । प्रकाशयुक्तं कुर्वतीत्यर्थः । कीदृशुषाः । रश्मिभिः स्वकीयैर्व्यक्तादृशि । दृश्यते च । चित्रामघा विचित्रधना विश्वमनु सर्वं जगदनुलक्ष्य प्रभूता प्रवृद्धा । सर्वजगद्व्यवहारायैत्यर्थः ॥

अंतिवामा दूरे अमिचमुच्छोर्वी गव्यूतिमभयं कृधी नः ।

यावय जेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥ ४ ॥

अंतिऽवामा । दूरे । अमिचं । उच्छ् । उर्वी । गव्यूतिं । अभयं । कृधी । नः ।

यवय । जेषः । आ । भर । वसूनि । चोदय । राधः । गृणते । मघोनि ॥ ४ ॥

हे उषः अंतिवामा । अंत्यसदंतिके वामं वननीयं धनं यस्याः सांतिवामा । स्वममिचमसच्छुं दूरेऽस्मत्तो विप्रकष्टदेशे वर्तमानं कृत्वा व्युच्छ । विमाहि । यथामित्रो दूरे भवति तथा व्युच्छेत्यर्थः । तथोर्वी गव्यूतिं भूमिमभयं नोऽस्माकं कृधि । कुरु । किंच द्वेषोऽसद्विद्वन्वावय । असन्तः पृथक्कुरु । वसूनि शत्रूणां धनान्या भर । आहर । राधो धनं चोदय प्रेरय गृणते क्षुवते मह्यं हे मघोनि धनवति ॥

अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरंती न आयुः ।

इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावदर्थवच्च राधः ॥ ५ ॥

अस्मे इति । श्रेष्ठेभिः । भानुऽभिः । वि । भाहि । उषः । देवि । प्रऽतिरंती । नः । आयुः ।

इषं । च । नः । दधती । विश्वऽवारे । गोऽमत् । अश्वऽवत् । रथऽवत् । च । राधः ॥ ५ ॥

हे उषो देवि अस्मै अस्मभ्यं श्रेष्ठेभिः प्रशस्तेर्भानुमी रश्मिभिः प्रकाशैर्वि माहि । प्रकाशय । किं कुर्वती ।

नोऽस्माकमायुरायुषं प्रतिरंती वर्धयंती । हे विश्ववारे विश्वैः संमजनीये देवि नोऽस्मभ्यमिवं च गोमन्त्रोमि-  
र्वज्रमिदमेतमश्वावदश्वेयोपेतं रथवद्रथैरुपेतं राधो धनं च दधती वि भाहीति ॥

यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयंत्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।

सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहंतं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

यां । त्वा । दिवः । दुहितः । वर्धयंति । उषः । सुऽजाते । मतिऽभिः । वसिष्ठाः ।

सा । अस्मासु । धाः । रयिं । ऋष्वं । बृहंतं । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ६ ॥

हे दिवो दुहितरुपः सुजाते शोभनजनने यां त्वा त्वां मतिभिः स्त्रोत्रैर्वसिष्ठा वर्धयंति सा त्वमस्मासु वसि-  
ष्ठेष्वृष्वं प्रदोतं बृहंतं महंतं रयिं धनं धाः । धेहि ॥ ॥ २४ ॥

प्रति केतव इति पंचर्चमष्टमं सूक्तं वसिष्ठस्वार्थं वैदुमनुषस्यं । प्रति पंचेत्यनुक्रमणिका ॥ उक्तो विविधोऽयः ॥

प्रति केतवः प्रथमा अदृशन्नूर्ध्वा अस्या अंजयो वि अयंते ।

उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ॥ १ ॥

प्रति । केतवः । प्रथमाः । अदृशन् । ऊर्ध्वाः । अस्याः । अंजयः । वि । अयंते ।

उषः । अर्वाचा । बृहता । रथेन । ज्योतिष्मता । वामं । अस्मभ्यं । वक्षि ॥ १ ॥

अस्याः प्रथमाः प्रथमोत्पन्नाः केतवः प्रज्ञापका ररमयः प्रत्यदृशन् । प्रतिदृश्यंते । अस्या अंजयो अंजका  
ररमय ऊर्ध्वा ऊर्ध्वमुखा वि अयंते । विविधं सर्वत्र अयंति । हे उषो देवि अर्वाचास्वदमिमुखेनागच्छता  
बृहता महता ज्योतिष्मता तेजोवता रथेनास्मभ्यं वामं वननीयं धनं वक्षि । ब्रह्मसि ॥

प्रति धीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणंतः ।

उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी ॥ २ ॥

प्रति । सीं । अग्निः । जरते । संऽइद्धः । प्रति । विप्रासः । मतिऽभिः । गृणंतः ।

उषाः । याति । ज्योतिषा । बाधमाना । विश्वा । तमांसि । दुऽइता । अप । देवी ॥ २ ॥

अग्निः समिद्धः सन् सीं सर्वतः प्रति जरति । अग्निवर्धते । विप्रासो विप्रा मेधाविनश्चत्विजश्च मतिभिः  
क्षुतिभिरुषसं गृणंतः क्षुवंतो जरते । उषाश्च देवी ज्योतिषा विश्वा सर्वाणि तमांसि दुरिताश्चादुरितान्यप  
बाधमाना याति । ऊर्ध्वं गच्छति ॥

एता उ त्याः प्रत्यदृशन्पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छंतीरुषसो विभातीः ।

अजीजनन्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टं ॥ ३ ॥

एताः । ऊं इति । त्याः । प्रति । अदृशन् । पुरस्तात् । ज्योतिः । यच्छंतीः । उषसः । विऽभातीः ।

अजीजनन् । सूर्यं । यज्ञं । अग्निं । अपाचीनं । तमः । अगात् । अजुष्टं ॥ ३ ॥

एता उ । उ इति पुरणः । त्यास्ताः प्रसिद्धा एता विभातीर्विभात्यो विभानं कुर्वन्त्यो ज्योतिस्तेजा यच्छंतोः  
प्रयच्छत्य उपसः पुरस्तात्पूर्वस्यां दिशि प्रत्यदृशन् । प्रतिदृश्यंते । ता उपसः सूर्यं यज्ञमग्निं वाजीवनन् । प्रादुर-  
कुर्वन् । उपस उदयानंतर तेषां संभवान्तज्जनकत्वमुपचर्यंते । किंचापाचीनं जीचीनमजुष्टमग्रियं । सर्वेषां  
दृष्टिनिरोधकत्वादग्रियत्वं । तादृशं तमोऽगात् । अपगतममृत ॥



अर्चेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यंत्युषसं विभाती ।

आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहति ॥४॥

अर्चेति । दिवः । दुहिता । मघोनी । विश्वे । पश्यन्ति । उषसं । विऽभाती ।

आ । अस्थात् । रथं । स्वधया । युज्यमानं । आ । यं । अश्वासः । सुऽयुजः । वहति ॥४॥

दिवो दुहिता मघोनी धनवत्युषा अर्चेति । सर्वैर्ज्ञायते । विश्वे सर्वेऽपि प्राणिनो विभातीमुच्छंतीमुषसं पश्यन्ति । तादृशी देवी स्वधयान्नैव युज्यमानं रथमास्तात् । आतिष्ठत् । आरोहति । यं रथं सुयुजः शोभन-  
योजना अश्वासोऽश्वा आ वहति अभिमतदेशं प्रापयन्ति तं रथमास्तादिति ॥

प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्तास्माकांसो मघवानो वयं च ।

तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

प्रति । त्वा । अद्य । सुऽमनसः । बुधन्त । अस्माकांसः । मघऽवानः । वयं । च ।

तिल्विलायध्वं । उषसः । विऽभातीः । युयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥५॥

हे उषः त्वा त्वामद्यास्त्रिंशत् सुमनसः शोभनस्तुतिका मघवानो हविर्लक्षणास्तन्वतोऽस्माकांसोऽस्माका-  
न्त्यदोयाः पुरुषा अत्विजः । यद्वा । मघवान इत्येतद्वयमित्येतस्य विशेषणं । हविष्मन्तो वयं । प्रति बुधन्त ।  
प्रत्यवोधयन् स्तुतिभिः । हे उषसः युयं च विभातीर्युच्छंत्यः सत्यस्त्रिल्लिलायध्वं । जगत् क्षिग्धभूमिकं कुरुत ॥  
तिल क्षेहन् इत्यस्त्रान्तिलुः ॥ तिलुरिला भूमिर्यस्य तत्तिल्विलं । तत्कुरुत । शिष्टं स्पष्टं ॥ २५ ॥

व्युषा आय इति पंचर्चं नवमं सूक्तं वसिष्ठस्वार्धमुषसं चैष्टुभं । व्युषा इत्यनुक्रमणिका ॥ प्रातरनुषाकाश्चिन  
शस्त्रयोक्तो विनियोगः ॥

व्युषा आवः पथ्याऽ जनानां पंच क्षितीर्मानुषीर्बोधयती ।

सुसंदृग्भिर्दृग्भिर्भानुमश्रेद्भि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ॥१॥

वि । उषाः । आवः । पथ्या । जनानां । पंच । क्षितीः । मानुषीः । बोधयती ।

सुसंदृक्ऽभिः । उद्भिऽभिः । भानुं । अश्रेत् । वि । सूर्यः । रोदसी इति । चक्षसा

आवरित्यावः ॥१॥

जनानां सर्वप्राणिनां पथ्या पथि हितोषा व्यावः । बौद्धत् । यद्वा । जनानां हिताय बौद्धदिति योन्व ।  
किं कुर्वती । मानुषीर्मनुष्यरूपाः पंच क्षितीर्निषादपंचमांश्चतुरो वर्णान्बोधयती । ईदृश्वुषाः सुसंदृग्भिः ।  
संदृश्यते संदर्शयतीति वा संदृक् तेजः । सुतेजोभिर्दृग्भिर्भानुमश्रेत् । अश्रेद्भिषा आजिमधावत् । ऐ० प्रा०  
४. ९. इति हि श्रुतिः । अरुणो गाव उषसामिति निरुक्तं । सूर्यश्च रोदसी व्यावापुषिर्वा तमोयुक्ते चक्षसा  
प्रकाशकेन तेजसा व्यावः । विवृणोति ॥

व्यंजते दिवो अंतेष्वक्तून्विशो न युक्ता उषसो यतंते ।

सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ॥२॥

वि । अंजते । दिवः । अंतेषु । अक्तून् । विशः । न । युक्ताः । उषसः । यतंते ।

सं । ते । गावः । तमः । आ । वर्तयन्ति । ज्योतिः । यच्छन्ति । सविताऽइवा बाहू इति ॥२॥

उषसोऽतूस्तेषांसि दिवोऽंतरिक्षस्थितिषु पर्यंतप्रदेशेषु ब्रंजते । व्यक्तीकुर्वन्तीत्यर्थः । युक्ताः परस्परं संयुक्ता विशो न प्रजा इव सेना इव यतन्ति । प्रयतन्ति तमोनाशनायाच गमनाय वा । अथ प्रत्यक्षवादः । हे उषः ते तव गावो ररमयस्त्वमोऽधकारं समा वर्तयन्ति । नाशयन्ति । ज्योतिस्तेजो यच्छन्ति । प्रयच्छन्ति । सविता सूर्यो बाह्व इव ॥

अभूदुषा इंद्रतमा मघोन्यजीजनत्सुविताय अवांसि ।

वि दिवो देवी दुहिता दधात्यंगिरस्तमा सुकृते वसूनि ॥ ३ ॥

अभूत् । उषाः । इंद्रऽतमा । मघोनी । अजीजनत् । सुविताय । अवांसि ।

वि । दिवः । देवी । दुहिता । दधाति । अंगिरऽतमा । सुऽकृते । वसूनि ॥ ३ ॥

इंद्रतमा सर्वस्त्ररतमा मघोनी धनवत्युषा अभूत् । प्रादुरभूत् । सुविताय कक्षाणाय अवांस्रत्नान्यजीजनत् । उदपादयत् । प्रकाशितवतीत्यर्थः । दिवो दुहितांगिरस्तमा गंतुतमा । यद्वा । अंगिरो गोचैर्भारद्वाजैः सह रात्रेरश्वत्यत्ते राज्यवसानस्त्रोषारूपत्वादंगिरस्तमेत्युच्यते । भारद्वाजै रात्रेः सहोत्पत्तिरनुक्रमणामुक्ता । रात्री कुशिकः सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाजी । अनु० च० १०. १२७. इति । तादृश्रुषाः स्रज्जते यजमानाय वसूनि धनानि वि दधाति । करोति ॥

तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्रोतुभ्यो अरदो गृणाना ।

यां त्वा जजुर्वृषभस्या रवेण वि दृहस्य दुरो अद्रैरौर्णोः ॥ ४ ॥

तावत् । उषः । राधः । अस्मभ्यं । रास्व । यावत् । स्रोतुऽभ्यः । अरदः । गृणाना ।

यां । त्वा । जजुः । वृषभस्य । रवेण । वि । दृहस्य । दुरः । अद्रैः । और्णोः ॥ ४ ॥

हे उषः यावद्वाधो धनं स्रोतुभ्यः पूर्वमरदः दत्तवत्यसि तावद्वाधो धनं गृणाना सूयमानास्त्वमपि रास्व । देहि । यां त्वा त्वां वृषभस्य रवेण । जुप्तोपमेषा ॥ वृषभस्त्रेति कर्मणि षष्ठी ॥ वृषभं रवेणैव त्वां प्रकाशेन जजुः जानन्ति प्राणिनः । अथवा वृषभस्य प्रवृद्धस्य स्रोत्रस्य रवेण शब्देन जजुः ज्ञापयन्ति । दृहस्य दृढस्याद्रैर्दुरो दाराणि पणिभिर्गाः प्रवेश्य पिहितानि और्णोः । विवृतान्यकरोः ॥

देवं देवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्यक्सूनृता ईरयन्ती ।

व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

देवं देवं । राधसे । चोदयन्ती । अस्मद्यक् । सूनृताः । ईरयन्ती ।

विऽउच्छन्ती । नः । सनये । धियः । धाः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ५ ॥

देवं देवं सर्वमपि स्रोतारं राधसे धनाय चोदयन्ती प्रेरयन्त्यसन्नगस्यदभिमुखं सूनृता वचांसीरयन्ती प्रेरयन्ती व्युच्छन्ती व्युच्छन् कुर्वन्ती नोऽस्माकं सनये दानाय धनलाभाय धियो वृद्धीर्धाः । धेहि । शिष्टं सष्टं ॥ २६ ॥

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुधन् ।

निवर्तयन्ती रजसी समंते आविष्कृण्वती भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥



प्रति । स्तोमेभिः । उषसं । वसिष्ठाः । गीःऽभिः । विप्रासः । प्रथमाः । अंबुध्नः ।  
विऽवर्तयंती । रजसी इति । समंते इति संऽअंते । आविऽकृष्वती । भुवनानि ।  
विश्वा ॥ १ ॥

विप्रासो मेधाविनो वसिष्ठा वसिष्ठगोत्राः स्तोमेभिः स्तोतुभिः प्रयुज्यमाना गीर्भिः स्तुतिभिः प्रथमा  
इतरयजमानेभ्यः पूर्वभूताः संत उषसं प्रत्यबुध्नन् । प्रतिबोधयंति । कीदृशीमुषसं च । रजसी यावापृथिवी  
समंते समानपर्यंते एकीभूतप्राप्ते विवर्तयंती आवर्तयंती विश्वा सर्वाणि भुवनानि भूतजातान्याविकृष्वतो  
प्रकटीकृष्वती स्वभासा ॥

एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढी तमो ज्योतिषोषा अंबोधि ।  
अयं एति युवतिरहंयाणा प्राचिकित्सूर्यं यज्ञमग्निं ॥ २ ॥  
एषा । स्या । नव्यं । आयुः । दधाना । गूढी । तमः । ज्योतिषा । उषाः । अंबोधि ।  
अयं । एति । युवतिः । अहंयाणा । प्र । अचिकित्सु । सूर्यं । यज्ञं । अग्निं ॥ २ ॥

एषोषाः स्था सा गतदिवसेषु वसिष्ठा वृश्चमानेवा जयं नवतरमायुरायुषं । यौवनमित्यर्थः । तादृशं  
दधाना धारयंती गूढी गूढं तमोऽंधकारं ज्योतिषा स्वतेजसा निवारयत्यंबोधि । नुध्यते । अये पुरोदेशे  
सूर्यस्य पुरस्तात् देवानामग्रे वा । इतरदेवेभ्यः पूर्वमित्यर्थः । युवतिर्नित्यतपणी सर्वत्र भिक्षयंती वाह्याणां ।  
पुत्रोपमैषा । अक्षज्जा युवतिरिव । सा यथा पत्न्युरग्रे संवरति तद्वत् सूर्यस्य पुरस्तादेति । एवंभूता सती सूर्यं  
अक्षमग्निं च प्राचिकित्सु । प्रज्ञापयति ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छंतु भद्राः ।  
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥  
अश्वऽवतीः । गोऽमतीः । नः । उषसः । वीरऽवतीः । सदा । उच्छंतु । भद्राः ।  
घृतं । दुहानाः । विश्वतः । प्रऽपीताः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ३ ॥

अश्वावतीर्बभ्रभिरक्षभं प्रदेशैरक्षैस्तद्वत्तथा गोमतीर्गोमत्यो गोप्रदा वीरवतीर्वीरवत्तः पुषदा अत  
एष भद्राः स्तुत्या उषास उपसः सदा सर्वदोच्छंतु । पुनः कीदृशः । घृतमुदकं दुहाना दोग्ध्यो विश्वतः प्रपीताः  
सर्वतः प्रवृद्धाः । यूयं पातेति गतं ॥ ॥ २७ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थीत्यतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुद्धभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण  
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे अक्षसंहिताभाष्ये पंचमाष्टके पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥

यस्य निःशसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।

निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

अथ षष्ठी व्याख्यायते । सप्तमे मंडले पंचमोऽनुवाके दश सूक्तानि व्याकृतानि । प्रत्यु अदर्शोति बह्वचमे-  
कादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थमुषसं । प्रथमाया अयुनो बृहत्तो द्वितीयाया पुनः सतोबृहत्तः । तथा चानुक्तं ।

प्रत्यु षट् प्रागाथमिति ॥ प्रातरनुवाक उरस्ते ऋतौ बार्हते छंदसाविनशस्त्रे चेदं सुक्तं । सूचितं च । प्रत्यु  
अदर्शिं सह वामेनेति बार्हतं । आ० ४. १४. । इति ॥

प्रत्यु अदर्श्यायत्यु० उच्छंतीं दुहिता दिवः ।

अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥

प्रति । जुं इति । अदर्शि । आऽयती । उच्छंती । दुहिता । दिवः ।

अपो इति । महि । व्ययति । चक्षसे । तमः । ज्योतिः । कृणोति । सूनरी ॥ १ ॥

आयत्यागच्छंती व्यच्छंती तमांसि विवासयंती वर्जयंती दिवो कुलोकस्य सूर्यस्य चः दुहिता पुत्री एवंभू-  
तोषाः प्रत्यदर्शि । सवैः प्रतिदृश्यते । उ इति पूरकः । सैषा महि महत्तमो नैशमंधकारं । अप उ इति निपात-  
द्वयसमुदायोऽपेत्यस्यार्थे । अपो व्ययति । अपवृणोति । किमर्थं । चक्षसे दर्शनार्थं । एवं छत्वा सूनरी जनानां  
सुष्ठु नेत्र्युषा ज्योतिः प्रकाशं कृणोति । करोति ॥

उदुस्त्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमाचैवत् ।

तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥

उत् । उस्त्रियाः । सृजते । सूर्यः । सचाँ । उत्ऽयत् । नक्षत्रं । अर्चिऽवत् ।

तव । इत् । उषः । विऽउषि । सूर्यस्य । च । सं । भक्तेन । गमेमहि ॥ २ ॥

सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्य उस्त्रिया ररमीन् सचा सह युगपदेवोत्सृजते । उन्नमयति । तथोदुद्यच्छत्  
प्रादुर्भवन्नक्षत्रं नभसि दृश्यमानं ग्रहनक्षत्रादिकमर्चिवद्भौमिभक्तकरोति । सौरेण तेजसा हि नक्तं चंद्रप्रभृतीनि  
नक्षत्राणि भासंते । सुपुष्णः सूर्यरश्मिसंद्रमा गंधर्वः । वा० सं० १८. ४०. । इति हि निगमः । एवं च सति हे  
उष उषोदेवते तव सूर्यस्य च व्युषि धिवासने प्रकाशने सति भक्तेनास्त्रेण सं गमेमहि । धर्य संगच्छेमहि ।  
रच्छन्दः पूरकः ॥

प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।

या वहसि पुरु स्याहँ वनन्वति रत्नं न दाप्नुषे मयः ॥ ३ ॥

प्रति । त्वा । दुहितः । दिवः । उषः । जीराः । अभुत्स्महि ।

या । वहसि । पुरु । स्याहँ । वनन्ऽवति । रत्नं । न । दाप्नुषे । मयः ॥ ३ ॥

दिवो दुहितर्दिवोऽंतरिक्षाव्वाधमाने हे उष उषोदेवते त्वा त्वां जीराः विप्रकारिणी वयं प्रत्यमुः  
त्समहि । प्रतिवोहारो भवेम । हे वनन्वति । वननं संभोजनं संभक्तव्यं धनं वा । तद्वति या त्वं पुरु वज्र स्याहँ  
सुहृणीयं धनं वहसि प्रापयसि दाप्नुषे हवींषि दत्तवते यजमानाय रत्नं रमणीयं धनमिव मयः सुखं च या  
त्वं वहसि तां त्वां प्रत्यमुत्समहीत्यन्वयः ॥

उच्छंती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।

तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥ ४ ॥

उच्छंती । या । कृणोषि । मंहना । महि । प्रऽख्यै । देवि । स्वः । दृशे ।

तस्याः । ते । रत्नऽभाजः । ईमहे । वयं । स्याम । मातुः । न । सूनवः ॥ ४ ॥



हे महि महति देवि दानादिगुणयुक्त उषोदेवते युच्छंती तमांश्चि वर्जयंतो मंहना महिन्ना युक्ता । यद्वा । मंहतिर्दानकर्मा । दानयुक्ता । या त्वं स्वः सर्वं जगत् प्रखी प्रबोधनार्थं दृष्टे दर्शनार्थं च क्षणोपि करोषि तस्यास्तादृक्षा रत्नभाजो रत्नानां रमणीयानां धनानां भाजयित्र्याः सेवयित्र्या ईमहे । याचामहे । किं । रत्नभाज इति सममिच्छाहाराद्रत्नाणीति गम्यते । अपि च वयं तव प्रियतमाः स्नाम । भवेम । मातुर्न सूनवः । यथा मातुर्जन्याः सूनवः पुत्राः प्रियतमा भवंति तद्वत् ॥

तच्चिचं राध आ भरोषो यद्दीर्घश्रुतं ।

यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहे ॥ ५ ॥

तत् । चिचं । राधः । आ । भ॒र । उषः । यत् । दीर्घश्रुतं ।

यत् । ते । दिवः । दुहितः । मर्तभोजनं । तत् । रास्व । भुनजामहे ॥ ५ ॥

हे उषः तच्चिचं चायनीयं राधो धनमा मर । आहर । अस्मभ्यं प्रयच्छ । यत्तुर्न दीर्घश्रुतं देशकालयोर्विप्रकर्षेऽप्यतिशयेन श्रोतव्यं । अपि च हे दिवो दुहितः ते तव त्वया देयं मर्तभोजनं मर्तानां मनुष्याणां भोगयोग्यं यदन्नमस्ति तद्रास्व । देशकालभ्यं । वयं च त्वहर्तं धनमन्नं च भुनजामहे । अभ्यवहरेम ॥

अवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमंतः ।

चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप सिधः ॥ ६ ॥

अवः । सूरिभ्यः । अमृतं । वसुत्वनं । वाजान् । अस्मभ्यं । गोमंतः ।

चोदयित्री । मघोनः । सूनृतावती । उषाः । उच्छत् । अप । सिधः ॥ ६ ॥

हे उषः सूरिभ्यः क्षौद्रभ्योऽस्मभ्यममृतं मरणरहितं नित्यं वसुत्वनं वासकं वसुत्वयुक्तं वा अवः अवणीयं यशो राखित्यनुगः । तथा गोमतो बज्रभिर्गोभिर्गुह्यान्वाजानन्नाणि चास्मभ्यं राख । शिष्टः परोक्षतः । मघोनो हविष्मतो यवमानस्य चोदयित्री प्रेरयित्री सूनृतावती । प्रियसत्वात्मिका वाक्सुगता । तद्वत्युषाः सिधः शोषकाञ्छन्नुपयोच्छत् । अपगमयत् ॥ ११ ॥

इंद्रावरुणेति दशर्चं द्वादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं जागतं । इदमादीनि चत्वारि सूक्तानींद्रावरुणदेवतानि । तथा चानुक्रांतं । इंद्रावरुणा दशैंद्रावरुणं ह जागतं त्विति ॥ तृतीये सवन उक्थ्ये प्रशाशुः शस्त्र एतत्सूक्तं । सूचितं च । इंद्रावरुणा युवमा वां राजानौ । आ० ६. १. इति ॥

इंद्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्मं यच्छतं ।

दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पतनासु दूढ्यः ॥ १ ॥

इंद्रावरुणा । युव । अध्वराय । नः । विशे । जनाय । महि । शर्मं । यच्छतं ।

दीर्घऽप्रयज्युं । अति । यः । वनुष्यति । वयं । जयेम । पतनासु । दुःऽध्यः ॥ १ ॥

हे इंद्रावरुणैंद्रावरुणौ युवं युवां नोऽस्माकं विशे निवेशयिषे परिचारकाय अनाय पुत्रपौत्रादिपुत्राणां याध्वराय यज्ञानुष्ठानार्थं महि महिर्हर्मं गृहं सुखं वा यच्छतं । प्रयच्छतं । अपि च दीर्घप्रयज्युं दीर्घप्रततयज्ञ मन्त्रदीयं जगं यः शत्रुरति वनुष्यति अतिजिघांसति पतनासु संग्रामेषु दूढो दुर्धियो दुष्टाभिसंधीसाञ्छन्नुवयं अथेम । अभिमवेम ॥

सस्राळन्यः स्वराळन्य उच्यते वां महांताविंद्रावरुणा महावसू ।

विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं वलं दधुः ॥ २ ॥

संऽराट् । अन्यः । स्वऽराट् । अन्यः । उच्यते । वां । महांतौ । इंद्रावरुणा । महावसू  
इति महाऽवसू ।

विश्वे । देवासः । परमे । विऽओमनि । सं । वां । ओजः । वृषणा । सं । बलं । दधुः ॥ २ ॥

द्वितीयः पादः परोक्षकृतः श्रिष्टाः प्रत्यक्षकृताः । हे इंद्रावरुणौ वां युवयोर्मध्येऽन्य एको वरुणः सम्राट्  
सम्ययाजमान इत्युच्यते । ता सम्राजा धृतासुती । ऋ० २. ४१. ६. । इत्यादिषु कीर्त्यते । अन्य इंद्रः स्वराट्  
स्वयमेवाव्यनिरपेक्षयैव राजमान इत्युच्यते । स्वराकिंद्रो दमे । ऋ० १. ६१. ९. । इत्यादिषु कीर्त्यते । तथा-  
विधाविंद्रावरुणेंद्रावरुणौ महांतौ गुणैरधिकौ महावसू महाधनौ च भवतः । हे वृषणा कामानां वर्विता-  
राविंद्रावरुणौ वां युवां परमे व्योमन्युत्कृष्ट आकाशे विश्वे देवासः सर्वे देवा ओजः सं दधुः । समयोजयन्  
शरीरदाढ्याय । तद्धेतुभूतं तदोज इत्युच्यते । स्मर्यते च । ओजः साष्टमी दशेति । तथा बलं वृचवधादेः कार्यस्य  
हेतुभूतं सामर्थ्यं च युवाभ्यां सं दधुः । समयोजयन् ॥

अन्वपां खान्यंतुं तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुं ।

इंद्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥ ३ ॥

अनुं । अपां । खानिं । अतुंतं । ओजसा । आ । सूर्यं । ऐरयतं । दिवि । प्रऽभुं ।

इंद्रावरुणा । मदे । अस्य । मायिनः । अपिन्वतं । अपितः । पिन्वतं । धियः ॥ ३ ॥

हे इंद्रावरुणौ अपासुदकाणां खानि द्वाराणि वृषेण पिहितान्योजसा बलेनान्वतुंतं । अन्वविध्यतं । आवर-  
कस्य वृचस्य वधेन वृष्टिप्रतिबंधं निराकृतवन्तावित्यर्थः । तथा सूर्यं सर्वस्य प्रेरकमादित्यं दिव्यंतरिक्षे प्रभुं प्रभूतं  
संतमैरयतं । अभ्यगमयतं । स्वर्मागुनावृतं सूर्यं तद्वधेन प्रकाशितवन्तावित्यर्थः । हे इंद्रावरुणेंद्रावरुणौ मायिनः  
प्रज्ञाकरस्यास्य सोमस्य पाविन मदे हर्षे सत्यपितो जलरहिता नदीरपिन्वतं । जलेनापूरयतं । तथा च निवि-  
त्पदमास्त्रायते । अस्य मदे वरितरिंद्रोऽपिन्वदनुवोऽपिन्वदपित इति । अपि च धियः कर्माणां साभिरनुष्ठि-  
तानि कर्माणि पिन्वतं । सिंचतं । फलेन पूरयतं ॥

युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।

ईशाना वस्व उभयस्य कारव इंद्रावरुणा सुहवा हवामहे ॥ ४ ॥

युवां । इत् । युत्ऽसु । पृतनासु । वह्नयः । युवां । क्षेमस्य । प्रऽसवे । मितऽज्ञवः ।

ईशाना । वस्वः । उभयस्य । कारवः । इंद्रावरुणा । सुऽहवा । हवामहे ॥ ४ ॥

हे इंद्रावरुणौ वह्नयो हविषां सोचाणां वा वोढार ऋत्विजो युत्सु युजेषु पृतनासु शत्रुसेनासु रक्षणार्थं  
युवामिद्युत्सुमेव हवन्ते । आह्वयन्ति । मितज्ञवः संकुचितजालुका अंगिरसोऽपि क्षेमस्य रक्षणस्य प्रसव उत्पादने  
निमित्तभूते सति युवामेव हवन्ते । अतः कारणात् हे इंद्रावरुणौ कारवः सोतारो वयमप्युभयस्य दिव्यस्य  
पार्थिवस्य च वस्वो वसुनो धनस्त्रेणान्यथारो सुहवा सुखेन ज्ञातव्यौ युवामेव हवामहे । आह्वयामहे ॥

इंद्रावरुणा यदिमानि चक्रयुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।

क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिर्हयः शुभमन्य ईयते ॥ ५ ॥

इंद्रावरुणा । यत् । इमानि । चक्रयुः । विश्वा । जातानि । भुवनस्य । मज्मना ।

क्षेमेण । मित्रः । वरुणं । दुवस्यति । मरुत्ऽभिः । उयः । शुभं । अन्यः । ईयते ॥ ५ ॥



हे इंद्रावरुणी यवी युवां भुवनस्य लोकस्य संबंधीणीमानि परिवृक्षमानानि विश्वा सर्वाणि जातानि  
जातिमंति भूतजातानि मन्मनास्तीयेन बलेन चक्रयुः कृतवन्तौ तयोर्युवयोर्मध्य एकं वरुणं चेमेव रचयहेतुना  
मिचो देवो कुवस्यति । परिचरति । मिचावरुणी हि परस्परं प्राप्तसख्यौ । अत एव सहचरौ वृक्षेते । अन्य  
एव इंद्रो मरुत्त्रिर्मरुतयेव चतुर्व्यवक्तः सञ्कुमं शोभनमसंकारमीयते । प्राप्नोति । यद्वा । मरुत्त्रिर्मध्यस्था-  
भेर्देवगणैः सार्धमुय जीवस्तींद्रः मुममुदकमीयते । प्रेरयति ॥ ॥२॥

म॒हे शु॒ल्काय॒ वरु॑णस्य॒ नु त्वि॒ष ओजो॑ मिमाते॒ ध्रुव॑र्मस्य॒ यत्स्वं ।

अ॒जामि॑म॒न्यः अ॒थय॑त॒माति॑र॒द्वेभि॑र॒न्यः प्र॒ वृ॒णोति॑ भूय॑सः ॥ ६ ॥

म॒हे । शु॒ल्काय॑ । वरु॑णस्य । नु । त्वि॒षे । ओजः॑ । मि॒मा॒ते॒ इति॑ । ध्रु॒वं । अ॒स्य॒ । यत् । स्वं ।

अ॒जामि॑ । अ॒न्यः । अ॒थय॑तं । अ॒ । अ॒ति॒रत् । द॒वेभिः॑ । अ॒न्यः । प्र॒ । वृ॒णोति॑ । भूय॑सः ॥ ६ ॥

वरुणस्य । उपलक्षणमेतत् । इंद्रस्य वरुणस्य च त्विषे दीप्तर्यमोजो बलं नु पिप्रं मिमाते । लोचिष  
निर्मिमाते यक्षमानपतयी । लोचिष हि बलं जायते । किमर्थं । महे महते शुल्काय धनाय । इंद्रस्य धनस्य  
धामार्थं । अखेन्द्रस्य वरुणस्य च ध्रुवं नित्यं स्वं स्वकीयमसाधारणं यदोवो विद्यते तदोवो मिमाते इत्यन्वयः ।  
तयोरिंद्रावरुणयोरन्य एको वरुणोऽजामिमबंधुमसुवतं अथयतं हिंसतं कर्माणाकुर्येतमसोतारमथवमानं  
चातिरत् । अमिहंति । अन्य एक इंद्रो द्वेभिरस्त्रीरेवोपायैर्भूयसो वरुतराञ्छुण्य वृणोति । प्रकर्षेणावृताय  
वाधिताय करोति । यद्वा । भूयसो यवमानान् वृणोति । प्रवरानुत्पृष्टाङ्करोति ॥

न तम॑हो न दुरि॑तानि॒ मर्त्य॑मिंद्रावरु॑णा न तपः॒ कुतश्च॑न ।

यस्य॑ देवा॒ गच्छ॑थो वी॒थो अ॒ध्वरं॑ न तं मर्त॑स्य न॒शते॑ परि॒हृतिः॑ ॥ ७ ॥

न । तं । अ॒हं । न । दुः॑इ॒तानि॑ । मर्त्यै॑ । इंद्रा॑वरुणा । न । तपः॑ । कुतः॑ । च॒न ।

यस्य॑ । दे॒वा । गच्छ॑थः । वी॒थः । अ॒ध्वरं॑ । न । तं । मर्त॑स्य । न॒शते॑ । परि॒हृतिः॑ ॥ ७ ॥

हे इंद्रावरुणे इंद्रावरुणी तं मर्त्यं मनुष्यमहः पापं न नश्यते । न व्याप्नोति । न च दुरितानि दुर्बलानि  
पापफलानि च प्राप्नुवन्ति । कुतश्चन कक्षादपि निमित्तात्तपः संतापस्य तं न प्राप्नोति । हे देवा देवी दानादि-  
गुणयुक्ताविंद्रावरुणी यस्य मर्त्यस्य मनुष्यस्याध्वरं यत्नं गच्छथः प्राप्नुथो युवां वीथः कामयेधे च चक्ष  
हवीषि तं मनुष्यं परिहृतिः परिबाधा न नश्यते । उक्तप्रकारेण न प्राप्नोति ॥

अ॒र्वाङ्ग॑रा दै॒व्ये॒नाव॑सा ग॒तं मृ॑णुतं ह॒वं यदि॑ मे॒ जुजो॑षथः ।

यु॒वोर्हि स॒ख्यमु॑त वा॒ यदा॒प्य॑ मा॒डीक॑मिंद्रावरु॑णा नि य॒च्छतं॑ ॥ ८ ॥

अ॒र्वाक् । न॒रा । दै॒व्ये॒न । अ॒व॒सा । आ । ग॒तं । मृ॑णुतं । ह॒वं । यदि॑ । मे॒ । जुजो॑षथः ।

यु॒वोः । हि । स॒ख्यं । उ॒त । वा॒ । यत् । आ॒प्य॑ । मा॒डीकं॑ । इंद्रा॑वरुणा । नि । य॒च्छतं॑ ॥ ८ ॥

हे नरा नेताराविंद्रावरुणी दैव्येन देवसंबंधिनावसा रचणेन सहार्वागसादमिमुखमा गतं । आगच्छतं ।  
आगत्य च मदीयं हवं स्तोत्रं मृणुतं । यदि मे मम जुजोषथः प्रीयेथे । मयि प्रीतिरस्ति चेत् युवाभ्यामागतं हवं  
मदीयं स्तोत्रं श्रोतव्यं च भवतीत्यर्थः । युवोर्हि युवयोः खलु यत्सख्यं सखित्वमुत वापि च यदाप्यभापितं  
बाधवं माडीकं मृडीकस्य मुखस्य साधनं तदुभयं हे इंद्रावरुणी नि यच्छतं । अस्वभ्यं प्रयच्छतं ॥

अ॒स्माक॑मिंद्रावरु॑णा भ॒रैभ॑रे पु॒रोयो॑धा भ॒वतं॑ कृ॒ष्ट्योज॑सा ।

यद्वा॑ ह॒वंत॑ उ॒भये॑ अ॒ध॒ स्पृ॒धि न॑र॒स्तो॒कस्य॑ त॒नय॑स्य सा॒त्तिषु॑ ॥ ९ ॥

अस्माकं । इंद्रावरुणा । भरेऽभरे । पुरःऽयोधा । भवतं । कृष्टिऽओजसा ।

यत् । वां । हवन्ते । उभये । अध । स्पृधि । नरः । तोकस्य । तनयस्य । सातिषु ॥ ९ ॥

हे ऋष्योजसा शत्रूणां कर्षकमोजो बलं ययोस्तादृशा हे इंद्रावरुणा भरे भरे संग्रामे संग्रामेऽस्माकं पुरोयोधा पुरस्ताद्योद्धारो भवतं । यवां वामुभय उभयविधाः पूर्वकालीना इदानींतनाश्च नरो नेतारः स्तोतारः स्पृधि युद्धे यी युवां हवन्ते । अधापि च तोकस्य पुत्रस्य तनयस्य पांचस्य सातिषु संभजनीयेषु निमित्तभूतेषु च यी युवां हवन्ते । तावस्माकं पुरोयोधा भवतमित्यन्वयः ॥

अस्मे इंद्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छंतु महि शर्म सप्रथः ।

अवध्रं ज्योतिरदितेऽर्चतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥ १० ॥

अस्मे इति । इंद्रः । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । द्युम्नं । यच्छंतु । महि । शर्म । सऽप्रथः ।

अवध्रं । ज्योतिः । अदितेः । अर्चतावृधः । देवस्य । श्लोकं । सवितुः । मनामहे ॥ १० ॥

अस्मे अस्मभ्यमिन्द्रादयो द्युम्नं द्योतमानं धनं यच्छंतु । प्रयच्छंतु । तथा महि महत्सप्रथः सर्वतः पृथु विस्तीर्णं शर्म गृहं च प्रयच्छंतु । अपि चर्तावृध ऋतस्य यज्ञस्य वर्धयित्र्या अदितेरदीनाया देवमातुर्ज्योति-  
स्तेजश्च नोऽस्माकमवध्रमहिंसकमस्तु । वयं च देवस्य दानादिगुणयुक्तस्य सवितुः सर्वस्य प्रेरकस्य श्लोकं स्तोत्रं मनामहे । जानीमः । कुर्म इत्यर्थः । यद्वा । देवेन सवित्रास्मभ्यं देयं श्लोकं यशो मनामहे । याचामहे ॥ ३ ॥

युवां नरेति दशर्वं त्रयोदशं सूक्तं वसिष्ठस्वार्पणं जागतमैन्द्रावरुणं । युवां नरेत्यनुक्रांतं । आभिज्ञधिकेषूक्त्येषु स्तोमवृद्धौ प्रशालुरिदं सूक्तमावापार्थं । सूचितं च । युवां नरा पुनीषे वां । आ० ७. ९. । इति ॥

युवां नरा पश्यमानासु आर्यं प्राचा गव्यंतः पृथुपर्शवो ययुः ।

दासा च वृचा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतं ॥ १ ॥

युवां । नरा । पश्यमानासः । आर्यं । प्राचा । गव्यंतः । पृथुऽपर्शवः । ययुः ।

दासा । च । वृचा । हतं । मार्याणि । च । सुऽदासं । इंद्रावरुणा । अवसा । अवतं ॥ १ ॥

हे नरा नेतारविन्द्रावरुणा युवां । पश्यन्ते द्वितीया । युवयोरायं बंधुभावं पश्यमानासः पश्यन्तो युष्मद्वा-  
धवनाभार्थिनो गव्यन्तो गा आत्मन इच्छन्तो यजमानाः पृथुपर्शवः । पृथुर्विस्तीर्णः पर्शुः पार्श्वस्थि तेषां ते  
तथोक्ताः । विस्तीर्णाश्चपर्शुहस्ताः संतः प्राचा प्राचीनं ययुः । बर्हिराहरणार्थं गच्छन्ति । पर्श्या हि बर्हिराच्छि-  
यते । तथा च तन्निरीयकं । अथपर्श्या बर्हिराच्छयतीति । हे इंद्रावरुणा युवां दासा दासानुपचपचिनीणि  
च वृचाणावरकाणि शत्रुजातान्यार्याणि च कर्मानुष्ठानपराणि च शत्रुजातानि हतं । हिंसं । अपि च सुदास-  
मस्मद्व्याज्यमेतत्संज्ञं राजानमवसा रजणेन सार्धमवतं । आगच्छतं ॥

यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं च न प्रियं ।

यत्रा भयन्ते भुवना स्वदृशस्तत्रा न इंद्रावरुणाधि वोचतं ॥ २ ॥

यत्र । नरः । संऽअयन्ते । कृतऽध्वजः । यस्मिन् । आज्ञा । भवति । किं । च न । प्रियं ।

यत्र । भयन्ते । भुवेना । स्वऽदृशः । तत्र । नः । इंद्रावरुणा । अधि । वोचतं ॥ २ ॥

यत्र यस्मिन्मंग्रामं नरो मनुष्याः कृतध्वज उक्कृतध्वजाः समयन्ते युद्धार्यं संगच्छन्ते । यस्मिन्नाजानो युद्धे ।  
चर्चन्ति निपातद्वयसमुदायो विभज्य योजनीयः । किंच किमपि प्रियमनुकूलं न भवति अपि तु सर्वं दुष्करं



भवति । यच्च च युधि सुवना सुवनानि भूतजातानि स्वर्दृशः शरीरपातादूर्ध्वं स्वर्गस्य द्रष्टारो वीराश्च भयते बिभ्रति । तच्च तादृशे संग्रामे हे इंद्रावरुणौ नोऽस्मानधि वोचतं । अस्मत्पक्षपातवचनी भवतं ॥

सं भूम्या अंतां ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।

अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गतं ॥३॥

सं । भूम्याः । अंताः । ध्वसिराः । अदृक्षत् । इंद्रावरुणा । दिवि । घोषः । आ । अरुहत् ।

अस्थुः । जनानां । उप । मां । अरातयः । अर्वाक् । अवसा । हवन्ऽश्रुता । आ । गतं ॥३॥

हे इंद्रावरुणौ भूम्या अंताः पर्यंता ध्वसिराः सैनिकैर्ध्वस्ताः समदृक्षत । संदृश्यंते । तथा दिवि युजोक्ते घोषः सैनिकानां शब्दश्चारुहत् । आरुढोऽभूत् । जनानामस्यदीयानां भटानामरातयः शशपो मामुपास्थुः । उपस्थिताः । एवं प्रवर्तमानेऽस्मिन् युधि हे हवनश्रुताह्वानशीलाविन्द्रावरुणौ अर्वागस्यदभिमुखमवसा रचणेन सहा गतं । आगच्छतं ॥

इंद्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वतां प्र सुदासमावतं ।

ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत्पुरोहितः ॥४॥

इंद्रावरुणा । वधनाभिः । अप्रति । भेदं । वन्वतां । प्र । सुऽदासं । आवतं ।

ब्रह्माणि । एषां । शृणुतं । हवीमनि । सत्या । तृत्सूनां । अभवत् । पुरऽहितः ॥४॥

हे इंद्रावरुणेंद्रावरुणौ वधनाभिर्वधकरीरायुधैरप्रतिगतमप्राप्तं भेदमेतत्संज्ञं सुदासः शत्रुं वन्वता हिंसन्तौ युवां सुदासं । शोभनं ददातीति सुदाः । एतत्संज्ञं मम याज्यं राजानं प्रावतं । प्रकर्षेणारचतं । एषां तृत्सूनां मम याज्यानां ब्रह्माणि स्तोत्राणि शृणुतं । अशृणुतं । कदा । हवीमनि । आह्वयंतेऽस्मिन् युद्धार्थं परस्परमिति हवीमा संग्रामः । तस्मिन् । यस्मादेवं तस्मान्तृत्सूनामेतत्संज्ञानां मम याज्यानां पुरोहितमम पुराधान सत्या सत्यफलमभवत् । तेषु यन्मम पुरोहित्यं तत्सफलं जातमित्यर्थः ॥

इंद्रावरुणावभ्या तपन्ति माघान्ययौ वनुषामरातयः

युवं हि वस्वं उभयस्य राजथोऽध स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ॥५॥

इंद्रावरुणौ । अभि । आ । तपन्ति । मा । अघानि । अर्यः । वनुषां । अरातयः ।

युवं । हि । वस्वं । उभयस्य । राजथः । अध । स्म । नः । अवतं । पार्ये । दिवि ॥५॥

हे इंद्रावरुणौ अर्योऽरेः शत्रोः संबन्धोन्यघान्याहंतृष्णायुधानि मा मामभ्या तपन्ति । अभितो बाधते । अपि च वनुषां हिंसकानां मध्येऽरातयोऽभिगमनशीलाः शत्रवश्च मामभितपन्ति । युवं हि युवां खलूमयस्य पार्थिवस्य दिवस्य वसो वसुनो धनस्य राजथः । ईशाथे । राजतिरेश्वर्यकर्मा । अध स्मातः कारणात् पार्ये तरणीये दिवि दिवसे युद्धदिने नोऽस्मानवतं । रचतं ॥ ॥४॥

युवां हवंत उभयांस आजिष्विंदं च वस्वो वरुणं च सातये ।

यच्च राजभिर्दशभिर्निर्बाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ॥६॥

युवां । हवंते । उभयांसः । आजिषु । इंद्रं । च । वस्वं । वरुणं । च । सातये ।

यच्च । राजऽभिः । दशऽभिः । निऽर्वाधितं । प्र । सुऽदासं । आवतं । तृत्सुऽभिः । सह ॥६॥

उमयास उमयविधाः सुदाःसंज्ञो राजा तत्सहायभूतास्तृत्सवच्चैवं द्विप्रकारा जना आजिषु संग्रामिष्विंद्रं च वक्ष्यं च युवां हवते । आहूयते । किमर्थं । वक्षो धनस्य सातये संमखनार्थं । यत्र येष्वाजिषु दशमिर्दशसं-  
ख्याकि राजभिः शत्रुभूतेर्नुपेर्निवाधितं नितरां हिंसितं सुदासं तृत्सुभिः सह वर्तमानं प्राक्तं युवां प्रकर्षेष्टारक्षतं ।  
तेष्वाजिष्वित्यन्वयः ॥

दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिंद्रावरुणा न युयुधुः ।

सत्या नृणामसदा मुपस्तुतिर्देवा एषामभवन् देवहूतिषु ॥ ७ ॥

दश । राजानः । संऽइताः । अयज्यवः । सुऽदासं । इंद्रावरुणा । न । युयुधुः ।

सत्या । नृणां । अऽसदां । उपऽस्तुतिः । देवाः । एषां । अभवन् । देवहूतिषु ॥ ७ ॥

हे इंद्रावरुणौ दशसंख्याका राजानः सुदासः शत्रवः समिताः संगताः परस्परं समवेता अयज्यवोऽयज-  
मानाः एवंभूतासौ सुदासमेतत्संज्ञमेकमपि राजानं न युयुधुः । न संप्रजहुः । युवाभ्यामनुगृहीतं तं प्रहर्तुं न शक्नुः ।  
तदानीमसदां । अयज्यवो हविषि सीदन्तीत्यसदं अस्तिजः । हविर्मिर्युक्तानां नृणां यज्ञस्य नेतृणामृत्विजा-  
मुपस्तुतिः स्तोत्रं सत्त्वा सफलामृतं । अपि येषां देवहूतिषु । देवा इत्यंत एष्विति देवहूतयो यज्ञाः । तेषु सर्वे च  
देवा अभवन् । युष्मदनुग्रहात्प्राकुर्वन्ति ॥

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदासं इंद्रावरुणावशिस्तं ।

श्वित्यंचो यच्च नमसा कपर्दिनो धिया धीवंतो असंपतं नृत्सवः ॥ ८ ॥

दाशराज्ञे । परिऽयत्ताय । विश्वतः । सुऽदासं । इंद्रावरुणौ । अशिस्तं ।

श्वित्यंचः । यच्च । नमसा । कपर्दिनः । धिया । धीऽवंतः । असंपतं । नृत्सवः ॥ ८ ॥

हे इंद्रावरुणौ दाशराज्ञे ॥ दशशब्दस्य च्छांदसो दीर्घः । विभक्तिव्यत्ययः ॥ दशमी राजभिः शत्रुभूतेर्विश्वतः  
सर्वतः परियत्ताय परिवेष्टिताय सुदासे राज्ञेऽशिस्तं । वक्षं प्रायच्छतं । यच्च यस्मिन्देशे श्वित्यंचः स्थितं श्वित्यं  
नेत्रं चामंचतो गच्छतः कपर्दिनो वटिला धीवंतः कर्ममिर्युक्तास्तृत्सवो वसिष्ठशिष्या एतत्संज्ञा अस्तिजो नमसा  
हविर्नचणेनास्तेन धिया सुत्वासपंतं पर्यचरन् । तस्मिन्देशे युवां तस्यै राज्ञे वक्षं प्रायच्छतमित्यर्थः ॥

वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्रते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।

हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इंद्रावरुणा शर्म यच्छतं ॥ ९ ॥

वृत्राणि । अन्यः । संऽइथेषु । जिघ्रते । व्रतानि । अन्यः । अभि । रक्षते । सदा ।

हवामहे । वां । वृषणा । सुवृक्तिभिः । अस्मे इति । इंद्रावरुणा । शर्म । यच्छतं ॥ ९ ॥

हे इंद्रावरुणौ युवयोरन्य एक इंद्रो वृत्राणि शत्रून् समिथेषु संग्रामेषु जिघ्रते । हंति । अन्य एको वृषणः  
मदा सर्वदा व्रतानि कर्माणि रक्षते । अभितः सर्वतो रक्षति । हे वृषणा कामानां वर्धितारो इंद्रावरुणौ  
तथाविधौ वां युवां सुवृक्तिभिः सुप्रवृत्ताभिः क्षुतिभिर्हवामहे । आहूयामहे । आहूतो च युवामसौ अस्मभं  
शर्म सुखं यच्छतं । दत्तं ॥

अस्मे इंद्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छंतु महि शर्म सप्रथः ।

अवधं ज्योतिरदिनेर्जतावृधौ देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥ १० ॥



अस्मे इति । इंद्रः । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । द्युम्नः । यक्ष्णुः । महिः । शर्मः । सऽप्रथः ।  
अवध्रं । ज्योतिः । अदितेः । अतुऽवृधः । देवस्य । श्लोकैः । सवितुः । मनामहे ॥ १० ॥

व्याख्यातयं । अचरार्थं । इंद्रादयोऽस्मभ्यं द्योतमानं धनं प्रयच्छंतु सर्वतो विसीर्यं महद्गुहं च । यक्षस्य  
वर्धयिष्या अदीनाया देवमातुसेजसास्माकमवाधकं भवतु । वयं च प्रेरकस्य देवस्य श्लोकं मनामहे ।  
कुर्महे ॥ ५५ ॥

आ वामिति पंचर्वं चतुर्दशं सूक्तं वासिष्ठं वैष्णमिंद्रावरुणं । अनुक्रांतं च । आ वां पंचेति ॥ उक्थ्य  
तृतीयसवने मेवावदयशस्य इदं सूक्तं । सूचितं च । आ वां राजानाविंद्रावरुणा मधुमत्तमंस्वेति याज्या  
। आ० ६. १. इति ॥

आ वां राजानावधरे ववृत्यां हव्येभिरिंद्रावरुणा नमोभिः ।  
प्र वां घृताचीं बाहोर्दधाना परि त्मना विषुरुपा जिगाति ॥ १ ॥  
आ । वां । राजानौ । अधरे । ववृत्यां । हव्येभिः । इंद्रावरुणा । नमःऽभिः ।  
प्र । वां । घृताचीं । बाहोः । दधाना । परि । त्मना । विषुऽरूपा । जिगाति ॥ १ ॥

हे राजानी राजमानावोद्यौ इंद्रावरुणौ अधरे हिसारहितेऽस्मिन्याग्निं वां युवां हव्येभिर्हविर्मिर्ममोभिः  
कोवेष्टा ववृत्यां । आवर्तयामि । अपि च बाहोर्हस्तयोर्दधाना धार्यमाणा विषुरुपा । रूप्यत इति रूपं हविः ।  
विविधहविर्युक्ता घृताची घृतमंचंती शुद्धस्मनात्मना स्वयमेव वां युवां परि प्र जिगाति । अभिप्रगच्छति ।  
यज्ञा । विषुरुपा नानाविधरूपौ वामिति योज्यं ॥

युवो राष्ट्रं बृहद्विन्वति द्यौर्यौ सेतुभिररज्जुभिः सिनीथः ।  
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरं न इंद्रः कृणवदु लोकं ॥ २ ॥  
युवोः । राष्ट्रं । बृहत् । इन्वति । द्यौः । यौ । सेतुऽभिः । अरज्जुऽभिः । सिनीथः ।  
परि । नः । हेळः । वरुणस्य । वृज्याः । उरं । नः । इंद्रः । कृणवत् । ऊं इति । लोकं ॥ २ ॥

हे इंद्रावरुणौ युवोयुवयोर्वृहन्नहद्राष्ट्रं राज्यं द्यौर्बुल्लोकरूपमिन्वति । वृज्या सर्वान्ग्रीणयति । यौ युवां  
सेतुमिवधर्कररज्जुभौ रज्जुरहितं रोगादिभिः सिनीथः पापकृतो बन्धीयः ॥ पित्र् वंधन इति धातुः ॥ तयोर्मध्यं  
वरुणस्य वारयितुर्देवस्य हेळः क्रोधो नोऽस्मान्परि वृज्याः । परिवृणक्तु । परित्यज्यान्वच गच्छतु । इंद्र उ  
इंद्रोऽहं विसीर्यं लोकं स्थानं कृणवत् । करोतु ॥

कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।  
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र रां स्यार्हाभिरुतिभिस्तिरेतं ॥ ३ ॥  
कृतं । नः । यज्ञं । विदथेषु । चारुं । कृतं । ब्रह्माणि । सूरिषु । प्रऽशस्ता ।  
उपो इति । रयिः । देवऽजूतः । नः । एतु । प्र । नः । स्यार्हाभिः । उतिऽभिः । तिरेतं ॥ ३ ॥

हे इंद्रावरुणौ नोऽस्माकं विदथेषु गृहेषु क्रियमाणं यज्ञं चारुं शोभनं फलसहितं कृतं । कृतं । तथा  
सूरिषु स्तोतृष्वस्मासु विद्यमानानि ब्रह्माणि परिवृढानि स्तोत्राणि प्रशस्ता प्रशस्तान्युत्कृष्टानि फलभाजि कृतं ।  
कृतं । अपि च देवजूतो देवाभ्यां युवाभ्यां प्रेरितो रयिर्धनं नोऽस्मानुपेतु । प्राप्नोतु । तथा स्यार्हाभिः स्पर्शना-  
यामिर्हतिभौ रवाभिर्नोऽस्मान् तिरेतं । युवां वर्धयेथां । प्रपूर्वास्तरतिवर्धनायः ॥

अस्मे इंद्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमंतं पुरुक्षुं ।

प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि ॥४॥

अस्मे इति । इंद्रावरुणा । विश्वऽवारं । रयिं । धत्तं । वसुऽमंतं । पुरुऽक्षुं ।

प्र । यः । आदित्यः । अनृता । मिनाति । अमिता । शूरः । दयते । वसूनि ॥४॥

हे इंद्रावरुणौ अस्मै अस्माभ्यं रयिं धनं धत्तं । प्रयच्छतं । कीदृशं । विश्ववारं विश्वैः सर्वैर्वरणीयं संभजनीयं वसुमंतं निवासयुक्तं पुरुषं बह्व्रतं पुरुमिर्बहुभिः प्रशस्तं वा । आदित्योऽदितेः पुत्रो यो वरुणोऽनुतानुतानि सत्वरहितानि भूतानि प्र मिनाति ग्रह्णिनस्त्रि ॥ मीढं हिंसायामिति धातुः ॥ शूरः शौर्यवान् स वरुणोऽमि ताभितान्यपरिमितानि वसूनि धनानि दयते । स्त्रोतृभ्यो ददाति ॥

इयमिंद्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।

सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

इयं । इंद्रं । वरुणं । अष्ट । मे । गीः । प्र । आवत् । तोके । तनये । तूतुजाना ।

सुऽरत्नासः । देवऽवीतिं । गमेम । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥५॥

मे मदीयं गीः क्षुतिरिंद्रं वरुणं चाष्ट । अश्रुतां । व्याप्नोतु । तथा तूतुजाना मया प्रियमाणा सा तोके पुत्रे तनये पीत्रे च विषये प्रावत् । प्ररचत्वङ्गान् । वयं च सुरत्नासः शोभनधनाः संतो देववीतिं देवैः कामयितव्यं यत्नं गमेम । प्राप्नुयाम । हे इंद्रावरुणादयः सर्वे देवाः यूयं स्वस्तिभिः कल्याणैर्नोऽस्मान् सदा सर्वदा पात । रचत ॥ ॥६॥

पुनीषे वामिति पंचर्चं पंचदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं वैद्यमिंद्रावरुणं । पुनीष इत्यनुक्रांतं ॥ अभिज्ञविकिषूक्थ्येषु तृतीयसवने सोमवृषी प्रज्ञाक्षुरिदमावापार्थं । सूचितं च । युवां नरा पुनीषे वां । आ० ७. ९. इति ॥

पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिंद्राय वरुणाय जुह्वत ।

घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुथतामभीके ॥१॥

पुनीषे । वां । अरक्षसं । मनीषां । सोमं । इंद्राय । वरुणाय । जुह्वत ।

घृतऽप्रतीकां । उषसं । न । देवीं । ता । नः । यामन् । उरुथतां । अभीके ॥१॥

इंद्रावरुणौ वां युवाभ्यां युवयोरर्थमरचसं रचोरहितं राचसेरसं सृष्टं मनीषां क्षुतिं पुनीषे । शोधयामि । किं कुर्वन् । इंद्राय वरुणाय च सोमं जुह्वदिंद्रं वरुणं चोद्दिष्टं सोममपी प्रक्षिपन् । कीदृशीं मनीषां । देवीं द्योतमानामुषसं नोषसमिव घृतप्रतीकां दीप्तावयवां । शिष्टः परोक्षतः । ता ताविंद्रावरुणावभीके ऽभिगते युजे यामन्यामनि युक्तार्थं गमने सति नोऽस्मानुरुथतां । रचतः ॥

स्पर्धते वा उ देवहूये अच येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतति ।

युवं तां इंद्रावरुणावमित्रान्हतं पराचः शर्वा विषूचः ॥२॥

स्पर्धते । वै । ऊं इति । देवऽहूये । अच । येषु । ध्वजेषु । दिद्यवः । पतति ।

युवं । तान् । इंद्रावरुणौ । अमित्रान् । हतं । पराचः । शर्वा । विषूचः ॥२॥

देवहूये । देवा विजिगीषवो योद्धारो ह्वयते युक्तार्थं परस्परमाह्वयंत इति देवहूयः संयामः । अवा-



स्निग्धेवहये संयामे स्पर्धति वै श्रवणोऽस्माभिः स्पर्धति खलु । उ इति पूरकः । येषु संयामेषु ध्वजेषु पताकासु दिव्यवः शत्रुक्षिप्तान्वायुधानि पतन्ति तांस्तेषु संयामेषु विद्यमानानभिचाञ्छन् हे इंद्रावरुणौ युवं युवां शर्वा शरणा हिंसकेनायुधेन पराचः पराङ्मुखान् विपूचो विविधगतींश्च हतं । हिंसां । यथा ते शत्रवः पराङ्मुखा हतस्ततः पलायमानाश्च भवन्ति तथा तान्वाधियामित्यर्थः ॥

आपश्चिद्विद्धि स्वयंशसः सदःसु देवीरिंद्रं वरुणं देवता धुः ।

कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृचाण्यन्यो अप्रतीनिं हन्ति ॥ ३ ॥

आपः । चित् । हि । स्वऽयंशसः । सदःऽसु । देवीः । इंद्रं । वरुणं । देवता । धुरिति धुः ।

कृष्टीः । अन्यः । धारयति । प्रऽविक्ताः । वृचाणि । अन्यः । अप्रतीनिं । हन्ति ॥ ३ ॥

आपश्चिद्विकाराः सोमाश्च स्वयंशसः स्वायत्तयशस्ता देवीर्द्यौतमानाः संतः सदःसु सदन्येषु स्थानेष्विंद्रं वरुणं च देयतेति हे देवते धुः । धारयति । अवस्थापयति । सोमेनाप्यायिता हि देवताः स्ते स्ते स्थानेष्विति । यद्वा । यस्ततोर्व्याख्या आप एव सोमाभिव्यहारा सदन्येष्विंद्रं वरुणं च धारयति । तयोरिंद्रावरुणयोरन्य एकः प्रविक्ताः पृथक्कृताः पुण्यापुण्यविवेकेन विचित्रफलभोक्त्रोः कृष्टीः प्रजा असांकर्येण धारयति । अन्य इंद्रो वृचाणि शत्रुजातान्यप्रतीन्यैरप्रतिगतानि हन्ति । हिंसां ॥

स सुक्रतुर्चतुर्चिदस्तु होता य आदित्य शर्वसा वां नमस्वान् ।

आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित्सु सुविताय प्रयस्वान् ॥ ४ ॥

सः । सुऽक्रतुः । चतुर्ऽचित् । अस्तु । होता । यः । आदित्या । शर्वसा । वां । नमस्वान् ।

आऽववर्तत् । अवसे । वां । हविष्मान् । असत् । इत् । सः । सुविताय । प्रयस्वान् ॥ ४ ॥

सुक्रतुः शोभनकर्मा शोभनप्रज्ञो वा स होता सोता अतचिदुतस्रोदकस्य यज्ञस्य वा चेता निचेतासु । भवतु । हे आदित्यादितेः पुत्राविंद्रावरुणौ ॥ छांदसः सांहितिको ब्रह्मः ॥ यो नमस्तान्नमसा नमस्कारेण सोचेष वा युक्तः सञ्जवसा बलेन युक्तौ वां युवां परिचरतीति शेषः । स सुक्रतुरित्यन्वयः । अपि च यो हविष्मान् हविर्भिर्युक्तः सन्नवसे तर्पणार्थं वां युवामाववर्तत आवर्तयेत् स यजमानः प्रयस्वानन्नवान् भूत्वा सुविताय सुष्ठु प्राप्तव्याय फलायासदित् । भवेदेव ॥

इयमिंद्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।

सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

इयं । इंद्रं । वरुणं । अष्ट । मे । गीः । प्र । आवत् । तोके । तनये । तूतुजाना ।

सुऽरत्नासः । देवऽवीतिं । गमेम । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ५ ॥

आख्यातियं । मदीया स्मृतिरिंद्रं वरुणं चास्मृतां । मया प्रेर्यमाणा सा पुत्रे पौत्रे च विषयेऽस्मान्प्ररचतु । वयं शोभनधनाः संत उत्तरोत्तरं यागं प्रामुथाम । हे इंद्रावरुणादयो देवाः अस्मान्सर्वदा कल्याणी रचत ॥ ॥ ७ ॥

धीरा त्वस्तेत्यष्टर्चं वोढ्यं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं चैष्टुमं वरुणदेवार्थं । तथा चानुक्रांतं । धीराष्टौ वाच्यं हेति ॥ गतो विनियोगः ॥

धीरा त्वस्य महिना जनुंषि वि यस्तस्तंभ रोदसी चिदुर्वी ।

प्र नाकमृष्यं नुनुदे बृहंतं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूमं ॥ १ ॥

धीरा॑ । तु॒ । अ॒स्य॒ । म॒हि॒ना॒ । ज॒नूं॑षि॒ । वि॒ । यः॒ । त॒स्तं॑भ॒ । रो॒द॒सी॒ इति॑ । चि॒त् । उ॒र्वी॑ इति॒ ।  
प्र॒ । ना॒कं॑ । ऋ॒ष्वं॑ । नु॒नु॒दे॒ । बृ॒ह॒तं॑ । द्वा॒ता॒ । न॒क्ष॒त्रं॑ । प॒प्रथ॑त् । च॒ । भूम॑ ॥ १ ॥

यस्य वरुणस्य जनूंषि जन्मानि महिना महिना तु चिम्रं धीरा धीराणि धैर्यवन्ति भवन्ति । यो वरुण उर्वीं विसीर्य रोदसी चिह्नावापृषिष्यावपि वि तस्तंभं विविधं सत्त्वं स्वकीये स्थाने स्थितिं प्रकरोत् । यस्य बृहंतं महान्तं नाकमादित्यं नक्षत्रं चर्ष्य दर्शनीयं द्वाता द्वेधं प्र नुनुदे प्रेरयति स । अहनि सूर्यं दर्शनीयं प्रेरयति राशी नक्षत्रं तथेति द्विप्रकारः । भूम भूमिं च यः पप्रथत् अप्रथयत् विस्तारितवान् । तन्मास्य वरुणोत्पन्नयः ॥

उ॒त स्व॒या त॒न्वा॒ऽ सं॒ वदे॒ तत्क॒दा न्व॑त॒र्वरु॑णे भु॒वानि॑ ।

किं॑ मे॒ ह॒व्यम॑ह॒णानो॑ जु॒षेत॒ कदा॑ मृ॒ळी॒कं सु॒मना॑ अभि॒ ख्यं ॥ २ ॥

उ॒त । स्व॒या । त॒न्वा । सं । वदे॒ । तत् । कदा॑ । नु । अ॒न्तः । वरु॑णे । भु॒वानि॑ ।

किं॑ । मे॒ । ह॒व्यं । अ॒ह॒णानः॑ । जु॒षेत॒ । कदा॑ । मृ॒ळी॒कं । सु॒ऽमनाः॑ । अभि॒ । ख्यं ॥ २ ॥

वरुणं शीघ्रं दिदृक्षमाण अधिरनया वितर्कयति । उतेति विचिकित्सायां । उत किं स्वया तन्वा स्त्रीये-  
नास्त्रीयेन शरीरेण सं वदे । सहवदनं करोमि । आहो स्त्रित तत्तेन वरुणेन सह सं वदे ! कदा नु कदा खलु  
वरुणे देवेऽन्तर्भवानि । अन्तर्भूतो भवानि । वरुणस्य चित्ते संलभ्यो भवानीत्यर्थः । अपि च मे मदीयं हव्यं सोऽत्रं  
हविर्वाहणानोऽक्रुध्यन् वरुणः किं केन हेतुना जुषेत । सेवेत । सुमनाः शोभनमनस्कः सन्नहं कदा कश्चिन्कासे  
मृळीकं मुखयितारं वरुणमभि ख्यं । अभिपश्यं ॥

पृ॒च्छे तदे॒नो वरु॑ण दि॒दृक्षू॑पो ए॒मि चि॒कितु॑षो वि॒पृच्छं॑ ।

स॒मा॒नमि॒न्मे क॒वय॑श्चि॒दाहुर॑यं ह॒ तुभ्यं॑ वरु॒णो ह॒णी॑ते ॥ ३ ॥

पृ॒च्छे । तत् । ए॒नः । वरु॑ण । दि॒दृक्षु॑ । उ॒पो इति॑ । ए॒मि । चि॒कितु॑षः । वि॒ऽपृच्छं॑ ।

स॒मा॒नं । इत् । मे॒ । क॒वयः॑ । चि॒त् । आ॒हुः । अ॒यं । ह॒ । तुभ्यं॑ । वरु॑णः । ह॒णी॑ते ॥ ३ ॥

हे वरुण तदेनः पापं पृच्छे । त्वां पृच्छामि । दिदृक्षु ॥ छांदसः गुणोपः ॥ द्रुमिच्छन्नहं । येन पापेन  
हेतुना तदीयैः पापैर्वशोऽस्मि पुष्टः संस्तुत्यापं कथय । अहं विपृच्छं विविधं प्रष्टुं चिकितुषो विदुषो जनानुपो  
एमि । उपागां । ते कवयश्चित् कान्तदर्शिनोऽजनाश्च मे मह्यं समानमित् समानमेवैकरूपमेवाजः । अकथयन् ।  
यदाऽसदाह । हे सोतः तुभ्यमयं हायमेव वरुणो हणीते । क्रुध्यतीति । अतः क्रोधं परित्यज्यासान्पाशेभ्यो  
मोचय ॥

कि॒मागं॑ आ॒स वरु॑ण ज्येष्ठं यत्स्तो॒तारं॒ जिघाँ॑ससि॒ सखा॑यं ।

प्र॒ तन्मे॑ वो॒चो दृ॒ळभ॑ स्व॒धावो॑ऽव॒ त्वाने॑ना नम॒सा तुर॑ इ॒यां ॥ ४ ॥

किं॑ । आ॒गः । आ॒स । वरु॑ण । ज्ये॒ष्ठं । यत् । स्तो॒तारं॒ । जिघाँ॑ससि । सखा॑यं ।

प्र॒ । तत् । मे॒ । वो॒चः । दुः॑ऽद॒भ । स्व॒धाऽवः॑ । अ॒व । त्वा॒ । अ॒ने॒नाः । नम॒सा । तुरः॑ । इ॒यां ॥ ४ ॥

हे वरुण ज्येष्ठमधिकं किमाग आस । कोऽपराधा मया कृतो नभुव । यद्येनागसा संखायं मित्रभूतं संतं  
स्तोतारं जिघांससि हंतुमिच्छसि । हे दृळभ दुर्दभान्वेवाधितुमशक्य स्वधावसोऽवस्विन् हे वरुण तदागो मे



महां प्र वोचः । प्रब्रूहि । एवं सति तस्य प्रायश्चित्तं कृत्वाग्निना अपापः सन्नहं तुरस्त्वरमाणः शीघ्रो नमसा  
नमस्कारेण इविषा वा स्वामवेयां । उपगच्छेयं ॥

अव दुग्धानि पित्र्या सृजा नोऽव या वयं चक्रुमा तनूभिः ।

अव राजन्पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दासो वसिष्ठं ॥ ५ ॥

अव । दुग्धानि । पित्र्या । सृज । नः । अव । या । वयं । चक्रुम । तनूभिः ।

अव । राजन् । पशुऽतृपं । न । तायुं । सृज । वत्सं । न । दासः । वसिष्ठं ॥ ५ ॥

हे वरुण पित्र्या पितृतः प्राप्तानि गोऽस्यदीधानि दुग्धानि द्रोहान्बंधनहेतुमूतानव ख्य । विमुच ।  
अस्यतो विक्षेपय । वयं च या यानि द्रोहवातानि तनूभिः शरीरेष्वक्षम कृतवन्तः स्य ताभि चाव ख्य । हे  
राजन्नायमान वरुण पशुतृपं न तायुं सैन्यप्रायश्चित्तं कृत्वावसाने चासादिभिः पशूनां तर्पयितारं सैन्यमिव  
दासो रक्षोर्वत्सं न वत्समिव च वसिष्ठं मां बंधकात्पापादव ख्य । विमुच ॥

न स स्वो दक्षो वरुण धृतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचिन्तिः ।

अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥ ६ ॥

न । सः । स्वः । दक्षः । वरुण । धृतिः । सा । सुरा । मन्युः । विऽभीदकः । अचिन्तिः ।

अस्ति । ज्यायान् । कनीयसः । उपऽअरे । स्वप्नः । चन । इत् । अनृतस्य । प्रऽयोता ॥ ६ ॥

हे वरुण स स्वो दक्षः पुष्यस्य स्वमूतं तद्वत् पापप्रवृत्तौ कारणं न भवति । किंतर्हि धृतिः क्षिरोत्पत्ति-  
समय एव निर्मिता दैवगतिः कारणं ॥ ध्रु गतिस्त्रैर्यथोरिति धातुः ॥ सा च धृतिर्वक्ष्यमाणरूपा । सुरा प्रमा-  
दकारिणी भन्तुः क्रोधश्च गुर्वदिविषयः सन्नगर्थहेतुः । विभीदको व्यूतसाधनोऽयः । स च यूतेषु पुष्यं प्रेरय-  
न्नगर्थहेतुर्भवति । अचिन्तिरज्ञानमविवेककारणं । अत ईदृशी दैवकृप्तिरेव पुष्यस्य पापप्रवृत्तौ कारणं ।  
अपि च कनीयसोऽप्यस्य हीनस्य पुष्यस्य पापप्रवृत्तावुपर उपागते समीपे नियंतृत्वेन स्थितो व्यायानधिक  
ईश्वरोऽस्ति । स एव तं पापे प्रवर्तयति । तथा चान्नातं । एष हीवासाधु कर्म कारयति तं यमधो मिणीवते  
। कौ० उ० ३. ८. । इति । एवं च सति स्वप्नश्चन स्वप्नोऽप्यनृतस्य पापस्य प्रयोता प्रकर्षेण मिश्रयिता भवति ।  
इदिति पुरकः । स्वप्ने कृतैरपि कर्मनिर्बह्नि पापानि जायन्ते किमु वक्तव्यं जायति कृतैः कर्मभिः पापान्बुत्पद्यंत  
इति । अतो ममापराधो दैवागत इति हे वरुण स्वया चक्ष्य इति भावः ॥

अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।

अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये क्वितरो जुनाति ॥ ७ ॥

अरं । दासः । न । मीळ्हुषे । कराणि । अहं । देवाय । भूर्णये । अनागाः ।

अचेतयत् । अचितः । देवः । अर्यः । गृत्सं । राये । क्विऽतरः । जुनाति ॥ ७ ॥

मीळ्हुषे क्षेत्रे कामानां वर्धिते भूर्णये जगतो मर्चे देवाय दानादिगुणयुक्ताय वरुणायाणां नाकात्प्रसादाद्-  
पापः सन्नहमरमलं पर्याप्तं कराणि । परिचरणां करवाणि । दासो न यथा मृत्यः स्वामिने सम्यक् परिचरति  
तद्वत् । अर्यः स्वामी स च देवोऽचितोऽजानतोऽज्ञानचेतयत् । चेतयत् । प्रज्ञापयत् । गृत्सं खितारं च  
क्वितरः प्राज्ञतरो देवो राये धनाय धनप्राप्त्यर्थं जुनति । जुनातु । प्रेरयत् ॥

एकादशेने वरुणे पशवयमिति ऽरोडाशस्त्वानुवाक्याः । सूचितं च । अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधाव एषा  
वदस्व वरुण नृहंतं । आ० ३. ७. । इति ॥

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।  
 शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥  
 अयं । सु । तुभ्यं । वरुण । स्वधाऽवुः । हृदि । स्तोमः । उपऽश्रितः । चित् । अस्तु ।  
 शं । नः । क्षेमे । शं । ऊं इति । योगे । नः । अस्तु । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥८॥

हे स्वधावोऽन्नवन्वरुण तुभ्यं त्वदर्थं क्रियमाणोऽयनेतत्सूक्तात्मकं स्तोमः स्तोचं हृदि त्वदीये हृदये सु  
 सुहृपथित उपगतः समवेतोऽस्तु । चिदिति पुरतः । अप्राप्तस्य प्रापणं योगः प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमः । नोऽस्मादीये  
 क्षेमे रक्षणे शमुपद्रवाणां शमनमस्तु । योगे च नोऽस्मादीये प्रापणे शमु शमनमेवास्तूपद्रवाणां । हे वरुणादयो  
 देवाः नोऽस्मान्सर्वदा स्वस्तिभिरविनाशैः पात । रक्षत ॥ ८ ॥

रदत्पथ एति सप्तर्चं सप्तदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं वैश्वं वारुणं । अनुक्रांतं च । रदत्समेति ॥ गतो  
 विनियोगः ॥

रदत्पथो वरुणः सूर्याय प्राणींसि समुद्रिया नदीनां ।  
 सर्गो न सृष्टो अर्वेतीर्चतायश्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥९॥  
 रदत् । पथः । वरुणः । सूर्याय । प्र । अणींसि । समुद्रिया । नदीनां ।  
 सर्गः । न । सृष्टः । अर्वेतीः । ऋतुऽयन् । चकार । महीः । अर्वनीः । अहऽभ्यः ॥९॥

अयं वरुणो देवः सूर्याय सर्वस्य प्रेरकायादित्याय पथो मार्गानंतरिषप्रदेशान् रदत् । प्रायच्छत् ।  
 समुद्रिया समुद्र उदधौ भवानि । यद्वा । समुद्रवंत्वस्मादाय इति समुद्रमंतरिचं । तच्च भवानि । अणींस्युद-  
 कानि नदीनां प्रायच्छत् । सर्गो न । सृज्यते युजभूमौ सादिना प्रेर्यत इति सर्गोऽश्वः । स यथार्वेतीर्वडवाः प्रति  
 शीघ्रं गच्छति तद्वदतायन्नतं शीघ्रं गमनमात्मन इच्छन्महीर्महतीरवनी रावीरहभ्योऽहोभ्यः सकाशाश्चकार ।  
 मेदेन कृतवान् । अस्मिं गच्छन्सूर्य एव वरुण इत्युच्यते । स हि स्वगमनेन रावीर्जनयति ॥

आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान् ।  
 अंतर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥१०॥  
 आत्मा । ते । वातः । रजः । आ । नवीनोत् । पशुः । न । भूर्णिः । यवसे । ससऽवान् ।  
 अंतः । मही इति । बृहती इति । रोदसी इति । इमे इति । विश्वा । ते । धाम ।  
 वरुण । प्रियाणि ॥१०॥

हे वरुण ते त्वदीयस्त्वयांतरिचे प्रेर्यमाणो वातो वायुरात्मा सर्वस्य प्राणिजातस्य प्राणरूपेण धारयिता ।  
 स च रज उदक्मा नवीनोत् । समंतात्पेरयति । वातेन हि वृष्टिर्जायते । भूर्णिर्जगतो भर्ता स वायुर्यवसे घासे  
 प्रणिप्ते सति यथा पशुरन्नवान्भवति तद्वत्सवान् । ससमित्यन्ननाम । तद्वान्भवति । हविर्लक्षणमन्नमपि तस्मै  
 प्रयच्छन्तीत्यर्थः । यद्वा ॥ सनोतेः कृषी रूपं ॥ ततः ससवान् संभक्तवान्वातो घासे सति पशुर्यथा भारवाही  
 भवति तद्वज्जगतो भर्ता । हे वरुण मही महती बृहती परिवृढे इमे रोदसी बावापृथिव्यावंतर्मध्ये । बावापृ-  
 थिवीर्मध्य इत्यर्थः । ते तव विश्वा सर्वाणि धाम धामानि स्थानानि तेजांसि वा प्रियाणि सर्वेषां प्रीतिक-  
 राणि भवन्ति ॥



परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके ।

चृतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयंत मन्म ॥३॥

परि । स्पशः । वरुणस्य । स्मत् ५ इष्टाः । उभे इति । पश्यन्ति । रोदसी इति । सुमेके  
इति सुऽमेके ।

चृत् ५ वानः । कवयः । यज्ञऽधीराः । प्रऽचेतसः । ये । इषयंत । मन्म ॥३॥

स्मश्रन्ति स्मश्रन्तीति स्मश्रराः । वरुणस्य देवस्य स्मश्रराः स्मदिष्टाः । स्मदिष्टेतत् प्रशस्तार्थे सहाचं च  
वर्तते । प्रशस्तगतयः । यद्वा । सह प्रेषिताः संतः । सुमेके शोभनमेहने सुरूपे वोभे रोदसी वावापुथिवी परि  
पश्यन्ति । परित ईषन्ति । उभयोर्बोक्चोर्वर्तमानान्युष्मापुष्पकारिणो जनान्यश्रन्तीत्यर्थः । यस्मादेवं तस्मात्तद्गीत्या  
चृतावानः कर्मवन्तो यज्ञधीरा यज्ञेषु कृतमुद्ययः प्रचेतसः प्राज्ञाः कवयः क्रांतदर्शिनो ये जना मन्म मन्मानि  
लोचाणीषयंत गमयन्ति वरुणं प्रापयन्ति । तानपि परि पश्यन्तीत्यर्थः । अतोऽस्मानपि लोतृच्छात्वा पापाङ्गुलं-  
खिल्यधिराशासि ॥

उवाच मे वरुणो मेधिराय चिः सप्त नामाग्रा बिभर्ति ।

विद्वान्पदस्य गुह्या न वोचद्युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥४॥

उवाच । मे । वरुणः । मेधिराय । चिः । सप्त । नाम । अग्रा । बिभर्ति ।

विद्वान् । पदस्य । गुह्या । न । वोचत् । युगाय । विप्रः । उपराय । शिक्षन् ॥४॥

मेधिराय मेधाविने मे मद्यं वरुण उवाच । उक्तवान् । किमुक्तवान् तदाह । चिः सप्तैकविंशतिसंख्याकानि  
नामान्यग्रा गीर्विभर्ति । धारयतीति । वागच गीरुच्यते । सा चौरसि कंठे शिरसि च बह्वानि गायत्र्यादीनि  
सप्त च्छंदासां नामानि बिभर्ति । यद्वा । वेदात्मिका वागैकविंशतिसंख्यानां यज्ञानां नामानि बिभर्ति । धार-  
यति । अपर आह । गीः पृथिवी । तस्यास्य गीरर्मा ज्ञेति पठितान्येकविंशति नामानीति । अपि च विद्वाज्जा-  
नन्विप्रो मेधावी स वरुणो युगाय युक्तायोपरायोप समीपे रममाणायतिवासिने मद्यं शिक्षन्पदिशन्पदस्यो-  
त्कृष्टस्य ज्ञानस्य ब्रह्मलोकलक्षणस्य संबंधीनि गुह्या गुह्यानि रहस्यान्यपदेशे गम्यानि । गम्यन्त्यर्थे । इमानि  
च वोचत् । उक्तवान् । अतोऽहं वरुणस्य शिष्योऽस्मि । तस्मात्स वरुणोऽस्मान्पापान्मोचयस्वित्यर्थः ॥

तिस्रो द्यावो निहिता अंतरस्मिन्तिस्रो भूमिरुपराः षड्विधानाः ।

गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेखं हिरण्ययं शुभे कं ॥५॥

तिस्रः । द्यावः । निऽहिताः । अंतः । अस्मिन् । तिस्रः । भूमीः । उपराः । षट्ऽविधानाः ।

गृत्सः । राजा । वरुणः । चक्रे । एतं । दिवि । प्रऽईखं । हिरण्ययं । शुभे । कं ॥५॥

तिस्रस्त्रिप्रकारा उत्तममध्यमाधमभावेन विविधा द्यावो सुलोका अस्मिन्वरुणऽतर्मध्ये निहिताः । तिस्रः  
पूर्ववत्त्रिविधा भूमिर्मुख्यस्य षड्विधानाः । विधानं विधा । वसंताद्युत्तुमेदेन षड्विधाः प्रकारा यासु तादृशः ।  
उपरा अस्मिन्नेव वरुण उग्रा अंतर्भूताः । लोकानां त्रित्वं च त्रयो वा इमे विवृतो लोका इत्यादिना ब्राह्मणे-  
नावगम्यते । तिस्रो भूमीर्धारयन् । अ० २. २७. ८. । इति निगमस्य भवति । इमी लोकावावृत्य वरुणस्त्रि-  
तीत्यर्थः । अपि च गृत्सः सुतो राजेश्वरः स वरुणो दिव्यंतरिक्षे हिरण्ययं हिरण्यमयं सुवर्णमयं हितरमणीयं  
वा प्रेखं दोषावहिरण्यसंस्पर्शनिमित्तं सूर्यं शुभे कं दीप्यर्थं चक्रे । कृतवान् । दिवि सूर्यमदधात्सोममद्री । अ०  
५. ८५. २. । इति हि श्रूयते ॥

वाक्को पशवव सिंधुमिति वपाया अनुवाक्या । सूचितं च । अथ सिंधुं वरुणो द्यौरिव खादयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावः । आ० ३. ७. इति ॥

अथ सिंधुं वरुणो द्यौरिव स्थादृप्सो न श्वेतो मृगस्तुर्विष्मान् ।

गंभीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षचः सतो अस्य राजा ॥ ६ ॥

अथ । सिंधुं । वरुणः । द्यौः ऽइव । स्थात् । दृप्सः । न । श्वेतः । मृगः । तुर्विष्मान् ।

गंभीरऽशंसः । रजसः । विऽमानः । सुपारऽक्षचः । सतः । अस्य । राजा ॥ ६ ॥

द्यौरिव सूर्य इव दीप्तो वरुणः सिंधुं समुद्रमव खात् । वेलायामवस्थापयति । यथा वेलां नातिक्रामति तथा करोतीत्यर्थः । कीदृशो वरुणः । दृप्सो न द्रवणशील उद्विंदुरिव श्वेतः शुभवर्णो मृगः । सुप्तोपममेतत् । गौरमृग इव तुर्विष्मान् बलवान् प्रवृद्धो वा गंभीरशंसः । गंभीरो महाच्छंसः श्रोत्रं यस्य स तथोक्तः । रजस उदकस्य विमानो निर्माता सुपारषचः सुष्ठु दुःखात्पारकं च चं बलं धनं वा यस्य तादृशो वरुणः सतो विदमानस्तस्मात् जगतो राजेश्वरो भवति ॥

यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः ।

अनुं व्रतान्यदितेऽर्धन्तौ यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

यः । मृळयाति । चक्रुषे । चित् । आगः । वयं । स्याम । वरुणे । अनागाः ।

अनुं । व्रतानि । अदितेः । ऋधन्तः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

आगोऽपराधं चक्रुषे चित्कृतवतऽपि श्रोत्रं यो वरुणो मृळयाति उपद्रवां करोति तस्मिन्वरुणेऽनागा अनागसोऽनपराधाः संतो वयं स्याम । वर्तमाना भवेम । किं कुर्वतः । अदितेरदीनस्य वरुणस्य संबंधीनि व्रतानि कर्माण्यन्वानुपुष्येणधन्तः समर्धयन्तः । हे वरुणादयो देवाः यूयमस्मान्सर्वदा कल्याणीः पालयत ॥ ७ ॥

प्र शुंध्युवमिति सप्तर्चमष्टादशं मुक्तं वसिष्ठस्यै वैष्टुभं वाक्सां । प्र शुंध्युवमित्यनुकान्तं ॥ गतो विजियोगः ॥

प्र शुंध्युवं वरुणाय प्रेष्टां मतिं वसिष्ठ मीळुषे भरस्व ।

य ईमर्वाचं करते यजचं सहस्रामघं वर्षणं बृहन्तं ॥ १ ॥

प्र । शुंध्युवं । वरुणाय । प्रेष्टां । मतिं । वसिष्ठ । मीळुषे । भरस्व ।

यः । ई । अर्वाचं । करते । यजचं । सहस्रऽमघं । वर्षणं । बृहन्तं ॥ १ ॥

अपिरात्मानमेव प्रत्यचीकृत्य मुक्तां नियुक्ते । हे वसिष्ठ त्वं मीळुषे मेने वरुणाय शुंध्युवं शोधयित्रीं यद्वा स्वत एव मुदां प्रेष्टां प्रियतमां मतिं मननीयामीदृशां मुक्तिं प्र भरस्व । प्रहर । प्रापय । यो वरुण ईमेन सूर्यमर्वाचमस्यदभिमुखं करत अंतरिक्षे करोति तस्मै वरुणाधित्यन्वयः । कीदृशं सूर्यं । यजचं यष्टव्यं सहस्रामघं बृहधनं वृषणं कामानां वर्षकं बृहन्तं महान्तं ॥

अथा न्वस्य संदृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।

स्वर्पर्यदशमं अधिपा उ अंधोऽभि मा वपुर्दृश्ये निनीयात् ॥ २ ॥

अधं । नु । अस्य । संऽदृशं । जगन्वान् । अग्नेः । अनीकं । वरुणस्य । मंसि ।

स्वः । यत् । अशमन् । अधिऽपाः । ऊं इति । अंधः । अभि । मा । वपुः । दृश्ये ।

निनीयात् ॥ २ ॥



अधाधुनास्य वरुणस्य संदृशं संदर्शनं नु विप्रं जगन्वान् गतवान्द्रुममेरणीकं ज्वालासंधं संसि । सवाणि । तं वरुणं यष्टुमिति शेषः । यद्यदा वरुणः स्वः सुखकरमरमन्नमन्यभिवर्धार्थं पावाद्येऽवस्थितं । अभिपुतमित्यर्थः । ईदृशमंधः सोमलक्षणमन्नमधिपा अधिकं पाता भवेत् ॥ छांदसः वज्रभावः ॥ ८ इति पुरकः । तदानीं मा मां वपुः शरीरं स्वकीयं । वपुरिति रूपनाम । प्रशस्तं रूपं वा दृश्ये दर्शनार्थमभि निनीयात् । अभिप्रापयेत् ॥

आ यदुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यं ।

अधि यदपां स्तुभिश्चराव प्र प्रेख ईखयावहै शुभे कं ॥ ३ ॥

आ । यत् । रुहाव । वरुणः । च । नावं । प्र । यत् । समुद्रं । ईरयाव । मध्यं ।

अधि । यत् । अपां । स्तुऽभिः । चराव । प्र । प्रऽईखे । ईखयावहै । शुभे । कं ॥ ३ ॥

यद्यदा वरुणे प्रसन्ने सत्यहं वरुणस्योमी नावं द्रुममयीं तरणसाधनभूतामा ब्रह्माव उभावाह्वावभूव । तां च नावं यद्यदा समुद्रं मध्यं समुद्रस्य मध्यं प्रति प्रेरयाव प्रकर्षेण गमयाव । यद्यदा चापामुदकानामधुपरि स्तुभिर्गोभीरन्यभिरपि गोभिश्चराव वर्तावहै । तदानीं शुभे शोभार्थं प्रेखे नौरूपायां दोलायामेव प्रेखयावहै । निम्नोन्नतैस्तारैरितथेतत् प्रविचलन्ती संकीडावहै । कमिति पुरकः । यद्वा । क्रियाभिप्रेषणं । कं सुखं यथा भवति तथेत्यर्थः ॥

वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महीभिः ।

स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यानु द्यावस्ततनन्यादुषासः ॥ ४ ॥

वसिष्ठं । ह । वरुणः । नावि । आ । अधात् । ऋषिं । चकार । सुऽअपाः । महऽभिः ।

स्तोतारं । विप्रः । सुदिनत्वे । अह्नां । यात् । नु । द्यावः । ततनन । यात् । उषसः ॥ ४ ॥

एवं वसिष्ठेनात्मनोक्ते यद्वरुणेन कृतं तद्दर्शयति । वसिष्ठं ह वसिष्ठं खलु वरुणो नावि स्वकीयायामाधात् । आरोहयत् । तथा तमृषिमयोमी रचणैः स्वपां स्वपमं शोभनकर्माणां चकार । वरुणः कृतवान् । अपि च विप्रो मेधावी वरुणोऽह्नां दिवसानां मध्ये सुदिनत्वे यत्फलत्वेन शोभनदिनत्वं तच्च स्तोतारमस्यापयति शेषः । किं कर्त्तव्यं । याद्यातो गच्छतो द्यावी दिवसान् याद्यातोऽवसा उषसोपलब्धिता रात्रीश्च नु विप्रं ततनन सूर्यात्मना विस्तारयन् ॥

कृ१ त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुरा चित् ।

बृहंतं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ॥ ५ ॥

कृ१ । त्यानि । नौ । सख्या । बभूवुः । सचावहे इति । यत् । अवृकं । पुरा । चित् ।

बृहंतं । मानं । वरुण । स्वधाऽवः । सहस्रऽद्वारं । जगम । गृहं । ते ॥ ५ ॥

हे वरुण त्यानि तानि पुरातनानि नावावयोः सख्या सख्यानि सखित्वानि कृ कृञ् बभूवुः । पुरा पूर्वस्मिन्कालेऽवृकमहिंस्यमात्यंतिकं यत्सख्यमस्ति तत्सचावहे । आवां सेवावहे । चिदिति पुरकः । अपि च हे स्वधावोऽन्नवन्वरुण ते स्वदीयं गृहं जगम । गच्छानि । नोऽर्थे लिट् ॥ कीदृशं गृहं । बृहंतं महान्तं मानं । मात्यस्मिन्सर्वाणि भूतानीति मानं । सर्वस्य भूतजातस्य परिच्छेदकामत्यर्थः । सहस्रद्वारं बह्वद्वारं ॥

य आपिर्निन्यो वरुण प्रियः सन्त्वामार्गांसि कृणवत्सखां ते ।

मा त एनस्वंतो यक्षिन्भुजेम यंधि प्मा विप्रः स्तुवते वरुणं ॥ ६ ॥

यः । आपिः । नित्यः । वरुणः । प्रियः । सन् । त्वां । आर्गांसि । कृण्वन् । सखा । ते ।  
मा । ते । एनस्वन्तः । यक्षिन् । भुजेम । यन्धि । स्म । विप्रः । स्तुवते । वरुण्यं ॥ ६ ॥

हे वरुण यो वसिष्ठो नित्यो ध्रुव आपिर्विधुः । औरसः पुत्र इत्यर्थः । यः पूर्वं प्रियः संस्त्वां प्रत्यागांस्वप-  
राधानं कृण्वन् अकरोत् स इदानीं ते तव सखा समानख्यातः प्रियोऽस्यु । हे यक्षिन्वजनीय वरुण ते तव  
स्वभूता वयमेनस्वन्त एनसा पापेन युक्ताः संतो मा भुवेम । मा मुञ्चहि । त्वत्प्रसादात्पापरहिता एव संतो  
भोगान् भुनक्तामहे । विप्रो मेधावी त्वं च स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते वसिष्ठाय वरुण्यमनिष्टनिवारकं वरणीयं वा  
गृहं यन्धि । प्रयच्छ । सेति पूरकः ॥

अथ ऋग्विधानं । ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु अपन बन्धात्ममुच्यते । तिष्ठन्नाथो जपेदेतां पिशाचस्तं न बध्यति  
। ऋग्वि० २. २८. इति ॥

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्यस्मत्पाशं वरुणो मुमोचत् ।  
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥  
ध्रुवासु । त्वा । आसु । क्षितिषु । क्षियन्तः । वि । अस्मत् । पाशं । वरुणः । मुमोचत् ।  
अवः । वन्वानाः । अदितेः । उपस्थात् । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

ध्रुवासु नित्यास्वासु दृक्प्रमानासु क्षितिषु भूमिषु क्षियन्तो निवसन्तो वयं हे वरुण त्वा त्वां सुम इति शेषः ।  
स च वरुणोऽस्मादस्मत्तः पाशं बन्धकं पापं वि मुमोचत् । मोचयेत् । तथादितेरुपस्थाद्यूयः पृथिव्या उपस्था-  
दुपस्थानादवो रक्षणं वरुणेन दत्तं वन्वानाः संमज्जमाना वयं स्याम । अन्यद्गतं ॥ १० ॥

मो षु वरुणेति पञ्चर्चमेकोनविंशं सूक्तं वारुणं । अन्त्या जगती शिष्टाश्चतस्रो गायत्र्यः । तथा चागुक्तांतं ।  
मो षु पंच गायत्रं जगत्यंतमिति ॥ गतो विनियोगः ॥

मो षु वरुण मुन्मयं गृहं राजन् हं गमं । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ १ ॥  
मो इति । सु । वरुण । मृतमयं । गृहं । राजन् । अहं । गमं । मृळ । सुक्षत्र । मृळय ॥ १ ॥

हे राजन्नीश्वर वरुण त्वदीयं मृन्मयं मृदादिभिर्निर्मितं गृहं मो मा च मैवाहं गमं । गतोऽस्मि । अपि तु  
मुशोभनं सुवर्णमयमेव त्वदीयं गृहं प्राप्तवानि । स त्वं मां मृळ । सुखय । हे सुक्षत्र शोभनधन वरुण मृळय ।  
उपदयां च कुरु ॥

यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ २ ॥  
यत् । एमि । प्रस्फुरन् । इव । दृतिः । न । ध्मातः । अद्रिः । मृळ । सुक्षत्र । मृळय ॥ २ ॥

हे अद्रिव आयुधवन्वरुण यवदा प्रस्फुरन्निव शैलेन प्रविचलन्निव त्वज्जयाद्विपमानो दृतिर्न दृतिरिव  
ध्मातो वायुना पूर्णः सन् त्वया बद्धोऽहमेमि गच्छामि तदानीं मृळ । सुखय । हे सुक्षत्र सुधन मृळय ।  
उपदयां कुरु ॥

क्रत्वः समह दीनतां प्रतीपं जगमा शुचे । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ३ ॥  
क्रत्वः । समह । दीनता । प्रतिः । जगम । शुचे । मृळ । सुक्षत्र । मृळय ॥ ३ ॥

हे समह सधन शुचे स्वभावतो निर्मल वरुण दीनता दीनतयाशक्ततया क्रत्वः कर्मणः कर्तव्यत्वेन विहि-  
तस्य श्रौतस्मार्तादिलक्षणस्य प्रतीपं प्रतिकूलमननुष्ठानं जगम । प्राप्तवानस्मि । अत एव त्वया बद्धः । तादृशं  
मां मृळ । सुखय । अन्यद्गतं ॥



अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारं । मृळा सुक्ष्व मृळय ॥४॥

अपां । मध्ये । तस्थिऽवांसं । तृष्णा । अविदत् । जरितारं । मृळ । सुऽक्ष्व । मृळय ॥४॥

अपां समुद्राणामुदकानां मध्ये तस्थिवांसं स्थितवन्तमपि जरितारं तव स्त्रोतारं मां तृष्णा पिपासा-  
विदत् । आप्नयती । लवणोत्कटस्य सामुद्रजलस्य पानानर्हत्वात् । अतस्मादृशं मां मृळ । सुख्य । अन्यन्नतं ॥

देवसुवां हविःषु वारुणस्य हवियो यत्किं चेदमिति याज्या । सूचितं च । यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जन उप  
ते स्त्रोमान्यशुपा इवाकरमिति हे । आ० ४. ११. । इति ॥

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याऽश्चरामसि ।

अचिन्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥५॥

यत् । किं । च । इदं । वरुण । दैव्ये । जने । अभिऽद्रोहं । मनुष्याः । चरामसि ।

अचिन्ती । यत् । तव । धर्म । युयोपिम । मा । नः । तस्मात् । एनसः । देव । रीरिषः ॥५॥

हे वरुण दैव्ये देवसमूहस्ये जने यदिदं किंचनाभिद्रोहमपकारजातं मनुष्या वयं चरामसि चरामः  
निर्वर्तयामः । तथाचित्त्वचित्वाज्ञानेन तव स्वदीयं यज्ञं धारकं कर्म युयोपिम वयं विमोहितवन्तः । हे देव  
तस्मादेनसः पापान्नोऽस्मात्वा रीरिषः । मा हिंसीः ॥ ११ ॥ ॥५॥

षष्ठेऽनुवाके पंचदश सूक्ताणि । तत्र प्र वीरयेति सप्तमं प्रथमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं चैष्टुमं वायव्यं । यासु  
पंचम्याद्यासु द्विवचनमस्ति ता ऐंद्रवायव्यः । तथा चानुक्रांतं । प्र वीरया सप्त वायव्यं द्वैत्रय या द्विवदुक्ता  
इति ॥ तृतीये कंदोमे प्रउगशस्त्रे प्र वीरयेति वायव्यसूचः । सूचितं च । प्र वीरया शुचयो दद्विरे वां ते  
सत्येन मनसा दीध्यानाः । आ० ८. ११. । इति ॥

प्र वीरया शुचयो दद्विरे वामध्वर्युभिर्मधुमंतः सुतासः ।

वह वायो नियुतो याहाच्छा पिवा सुतस्यांधसो मदाय ॥१॥

प्र । वीरऽया । शुचयः । दद्विरे । वां । अध्वर्युऽभिः । मधुऽमंतः । सुतासः ।

वह । वायो इति । निऽयुतः । याहि । अच्छ । पिब । सुतस्यं । अंधसः । मदाय ॥१॥

हे वायो वीरया वीराय विविधमीरयिने ॥ सुपां मुमुगिति चतुर्थी याजादेशः ॥ वां ते ॥ अत्ययेन  
द्विवचनं ॥ तुभ्यं शुचयः शुद्धा मधुमंतो माधुर्योपेताः सुतासोऽभिपुताः सोमा एतरेचिभिर्नवमेऽहनि प्रउगे  
ऽध्वर्युभिरध्वरस्य नेतुभिर्हस्तिभिः प्र दद्विरे । प्रदीयते ॥ इदं दान इत्यस्तीतद्रूपं ॥ यत एवमतः कारणात् हे  
वायो नियुतो वडवा वह । रथं प्रापय । तेन च रथेनाच्छ याहि । अस्त्रवज्रमभिगच्छ । अभिगत्य च सुतस्या-  
भिपुतस्यांधसोऽन्नस्य सोमलक्षणस्य स्वकीयं भागं पिब । किमर्थं । मदाय मदीत्यन्वर्थं ॥

शुनासीरीये पर्वणि वायव्यस्य हविष ईशानायेति याज्या । सूचितं च । स त्वं नो देव मनसेशानाय  
प्रजतिं यस्त आनट् । आ० २. २०. । इति ॥ वायव्ये पशवेष्वेव पशुपुरोडाशस्य याज्या । सूचितं च । ईशानाय  
प्रजतिं यस्त आनट् प्र वो वायुं रथयुजं ऋगुध्मं । आ० ३. ८. । इति ॥

ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट्छुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।

कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य ॥२॥

ईशानाय । प्रऽहुतिं । यः । ते । आनट् । शुचिं । सोमं । शुचिऽपाः । तुभ्यं । वायो इति ।

कृणोषि । तं । मर्त्येषु । प्रऽशस्तं । जातःऽजातः । जायते । वाजी । अस्य ॥२॥

हे वायो ईशानाधिपराय ते तुभ्यं त्वर्धं प्रजतिं प्रकृष्टामाकृतिं चक्षुपुरोडाशादिबाध्यां यो यजमान आनट् प्राप्नोत् । दद्यादित्यर्थः । तथा हे शुचिपाः शुक्लस्य सोमस्य पातवीर्यो तुभ्यं शुचिं शुक्लं सोमं च यः प्रयच्छति मर्षेषु मनुष्येषु मध्ये तं यजमानं प्रशस्त्वं सुखं कृणोषि । करोषि । स च जातो जातः सर्वत्र प्रादुर्भूतः प्रख्यातः सन् वाज्यस्य प्राप्त्यस्य धनस्य प्राप्तये जायते । अवकल्यते । सर्वं धनं समत इत्यर्थः ॥

नियुत्वद्भुगविषिष्टवायुदेवताके पशौ राये नु यमिति पुरोडाशस्य बाध्या । सूचितं च । राये नु यं जज्ञतु रोदसीमे प्र वायुमच्छा वृहती मनीषा । आ० ३. ८. इति ॥

राये नु यं जज्ञतु रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवं ।

अथ वायुं नियुतः सञ्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥ ३ ॥

राये । नु । यं । जज्ञतुः । रोदसी इति । इमे इति । राये । देवी । धिषणा । धाति । देवं ।

अथ । वायुं । निऽयुतः । सञ्चत । स्वाः । उत । श्वेतं । वसुऽधितिं । निरेके ॥ ३ ॥

इमे रोदसी बावापृथिवी यं वायुं राये धनार्थं नु क्षिप्रं जज्ञतुः यजमानासतुः तं देवं दानादिगुणयुतं वायुं देवी द्योतमाना धिषणा क्षुती राये धनार्थं धाति । धारयति । धनं यथा लभ्यते तथा प्रेरयतीत्यर्थः । अधाधुनेवं क्षुती प्रवृत्तायां स्वाः स्वकीया नियुतो वडवा रथवाहा वायुं सञ्चत । सचते । श्वेतं । उतापि च श्वेतं शुभवर्णं निरेके । नितरां रेको रित्कता निरेकः । दारिद्र्यमित्यर्थः । तस्मिन्सति वसुधितिं वसूनां धातारं प्रदातारं तं वायुं नियुतोऽस्त्वयं प्रापयंतीति शेषः ॥

द्वितीये कंदोमे प्रउगशस्त्रे वायव्यतृचस्योच्छ्रुषस इति तृतीया । सूचितं च । उच्छ्रुषसः सुदिना अरिप्रा इत्येकपातिव्यः । आ० ८. १०. इति ॥

उच्छ्रुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः ।

गथ्य चिदूर्वमुशिजो वि वसुस्तेषामनु प्रदिवः समुरापः ॥ ४ ॥

उच्छन् । उषसः । सुऽदिनाः । अरिप्राः । उरु । ज्योतिः । विविदुः । दीध्यानाः ।

गथ्यं । चित् । ऊर्वं । उशिजः । वि । वसुः । तेषां । अनु । प्रऽदिवः । समुः । आपः ॥ ४ ॥

येऽंगिरसो वायुमस्त्रोषत तेषामरिप्राः पापरहिता उषसः सुदिनाः शोभनदिनस्य हेतुभूताः सत्य उच्छ्रन् । श्रीच्छन् । अवासयन् । ते च दीध्याना दीपमानाः संत उरु विस्तीर्णं ज्योतिः सूर्याख्यं विविदुः । वायोः प्रसादादलभंत । अपि चोशिजः कामयमानास्तेऽंगिरसो गन्धं चिद्रोसंघर्षमयूर्ध्वं धनं पणिभिरपहतं वि वसुः । अवृण्वन् । अलभंत । तथा तेषामंगिरसामर्थाय प्रदिवः पुराण्य आपोऽनु ससुः । अन्वसरन् । अन्व-गच्छन् । हिताहिताचरणपरा आसन्नित्यर्थः । आवरकस्त्रासुरस्य वायुना हननादसुरेणाहतानुषः प्रभृतीन् पुनर्हन्त्यवत इत्यर्थः ॥

तृतीये कंदोमे प्रउगशस्त्रे ते सत्येनेत्विद्रवायवधृचः । सूचितं च । ते सत्येन मनसा दीध्याना दिवि चयंता रवसः पुषिन्वा । आ० ८. ११. इति ॥

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति ।

इंद्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ॥ ५ ॥

ते । सत्येन । मनसा । दीध्यानाः । स्वेन । युक्तासः । क्रतुना । वहन्ति ।

इंद्रवायू इति । वीरऽवाहं । रथं । वां । ईशानयोः । अभि । पृक्षः । सचन्ते ॥ ५ ॥



ते प्रविष्टाः सखिण्यधार्थेन मनसा मननीयेन सोमेण युक्ता दीध्याना दीध्यानाः स्नेह स्वकीयत्वे विहितेन क्रतुणा कर्मणा नित्यनैमित्तिकात्मना युक्तासो युक्ता एवंभूता यजमाना हे इंद्रवायू वीरवाहं वीरेर्विश्वेदेवरथिनुमिः सोनुमिर्वहनीयं प्रापणीयं । यद्वा । वीरेरश्वैर्वहनीयं । तमीशानघोरीश्वरयोर्वी पुत्रयोः स्वभूतं रथं यदति । स्वं स्वं यज्ञं प्रापयन्ति । तत्र च पृथोऽन्नाणि हविर्ब्रह्मण्यन्वि सचते । युवामभिसेवते ॥

ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः ।

इंद्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वीरवीरैः पृतनसु सद्युः ॥६॥

ईशानासः । ये । दधते । स्वः । नः । गोभिः । अश्वेभिः । वसुऽभिः । हिरण्यैः ।

इंद्रवायू इति । सूरयः । विश्वं । आयुः । अर्वेत्ऽभिः । वीरैः । पृतनासु । सद्युः ॥६॥

हे इंद्रवायू ईशानास ईश्वराः प्रभवो ये जना नोऽस्मभ्यं गोभिरश्वेभिरवसुभिर्निवासकैर्हिरण्यैश्च सहितं स्वः सुहरणीयं सुखं दधते ददति प्रयच्छन्ति । यद्वा । हिरण्यव्यतिरिक्तानि धनानि वसुनि । तैर्हिरण्यैश्च सहितैर्यः । ते सूरयो दातारो विश्वं व्याप्तमायुरन्नं जीवनं वा शत्रूणां स्वभूतं पृतनासु संयामेध्वर्वन्निरश्वैर्वीरैः सूरभटैश्च साधनभूतैः सद्युः । अभिमवेयुः । यद्वा । सहायैः तृतीया । अर्वेन्निराः पुत्रैश्च सहितं शत्रूणामायुरभिमवेयुरित्यर्थः ॥

अर्वेत्तो न अर्वसो भिक्षमाणा इंद्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।

वाजयंतः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

अर्वेत्तः । न । अर्वसः । भिक्षमाणाः । इंद्रवायू इति । सुष्टुतिऽभिः । वसिष्ठाः ।

वाजऽयंतः । सु । अर्वसे । हुवेम । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥७॥

अर्वेत्तो नाश्वा इव हविषां वोढारः अर्वसोऽन्नस्य । द्वितीयार्थे पशो । अन्नं भिक्षमाणा याचमाना वाजयंतो वाजं बलमात्मन इच्छन्तो वसिष्ठा ययं स्ववसे शोभनरक्षणाय सुष्टुतर्पणाय वा सुष्टुतिभिः शोभनाभिः सुतिभिर्इंद्रवायू इंद्रं वायुं च हुवेम । आहुयेमहि । अन्यन्नतः ॥ १२ ॥

कुविदंगेति सप्तर्षे द्वितीयं सूक्तं वसिष्ठस्वार्थे वैष्टुभं वायव्यं । कुविदंगेत्यनुक्रांतं । गतः सूक्तविनियोगः । वायवे पशौ कुविदंगेति वपाया याग्या । सूचितं च । कुविदंग नमसा ये वृधास ईशानाय प्रकृतिं यसा आनट् । आ० ३. ८. इति ॥

कुविदंग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अन्नवद्यास आसन् ।

ते वायवे मनवे बाधितायावासयन्नुषसं सूर्येण ॥१॥

कुवित् । अंग । नमसा । ये । वृधासः । पुरा । देवाः । अन्नवद्यासः । आसन् ।

ते । वायवे । मनवे । बाधिताय । अवासयन् । उषसं । सूर्येण ॥१॥

दीव्यन्ति कुवन्तीति देवाः सोतारः । पुरा पूर्वस्मिन्काले ये वृधासो वृधा देवाः सोतारः । कुविदिति वज्रनाम । अंगेति चिप्रनाम । कुविदङ्गशोऽंग चिप्रं कृतेन नमसा वायुविषयेण सोमेण नमस्तारेण वानवदासोऽव्यरहिता आसन् तेऽद्यापि वायवे हवींषि दातुं सूर्येण सहायसमवासयन् । उषसो व्याष्टं सूर्योदयं च वायुयागार्थं कुर्वन्तीत्यर्थः । किमर्थं । मनवे मनुष्याणां बाधिताय बाधितानां पुत्रादीनां रक्षणा-र्थमित्यर्थः । यद्वा । मनवे बाधितायेति पश्येयं चतुर्थी । बाधिनस्य मनोः प्रजापतेर्यागे वायवे हवींषि दातुमित्यन्वयः ॥

द्वितीये कंदोमे प्रउगशस्त्र ऐंद्रवायवतुचस्त्रोशतेतिषा प्रथमा । सूचितं च । उशंता दूता न दभाय गोपा यावत्तरस्तन्वो यावदोज इत्यादि द्वे च । आ० ८. १०. । इति ॥

उशंता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः ।

इंद्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना माडीकिमीट्टे सुवितं च नय्य ॥ २ ॥

उशंता । दूता । न । दभाय । गोपा । मासः । च । पाथः । शरदः । च । पूर्वीः ।

इंद्रवायू इति । सुऽस्तुतिः । वा । इया । ना । माडीकिं । ईट्टे । सुवितं । च । नय्य ॥ २ ॥

हे इंद्रवायू उशंतोशंतौ कामयमानी दूतौ ॥ देवतेर्गतिकर्मणो दूतशब्दः ॥ गंतारौ गोपा गोपायिता-  
रावीदृशौ युवां दभाय हिंसायै न भवतं । अपि तु मासो मासांश्च पूर्वोर्वह्नीः शरदः संवत्सरांश्च चिरका-  
लमस्मान् पाथः । रचतं । अपि च हे इंद्रवायू सुष्टुतिरस्रदीया शोभना सुतिर्वा युवामियाना गच्छंती  
प्राप्नुवन्ती माडीकिं सुखमीट्टे । याचते । यद्वा । सुखं यथा भवति तथा युवामीट्टे । स्तौति । तथा नय्यं प्रशस्त्रं  
सुवितं सुष्ठु प्रायं धनं चेष्टे ॥

नियुतद्वायुदेवताके पशौ पीवोअन्नानिति वपाया याज्या । सूचितं च । पीवोअन्नौ रयिवृधः सुमेधा  
राये तु यं अन्नतु रोदसीमे । आ० ३. ८. । इति ॥ तथा द्वितीये कंदोमे प्रउगशस्त्रे वायव्यतुचस्त्रेव द्वितीया ।  
सूचितं च । पीवोअन्नौ रयिवृधः सुमेधा उच्छत्तुषसः सुदिना अरिप्राः । आ० ८. १०. । इति ॥

पीवोअन्नौ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्च्रीः ।

ते वायवे समनसो वि तस्युर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ३ ॥

पीवःऽअन्नान् । रयिऽवृधः । सुऽमेधाः । श्वेतः । सिऽसक्ति । निऽयुतां । अभिऽश्च्रीः ।

ते । वायवे । सऽमनसः । वि । तस्युः । विश्वा । इत् । नरः । सुऽअपत्यानि । चक्रुः ॥ ३ ॥

पीवोअन्नान् पीवांसि स्त्रूलानि प्रभूतान्यन्नानि येषां तान् रयिवृधो रय्या धनेन वृद्धानिवभूतानाढ्यजनान्  
सुमेधाः शोभनप्रज्ञो नियुतां वडवानां स्ववाहानामभिश्च्रीरभिययणीयः श्वेतः श्वेतवर्णो वायुः सिषक्ति । सेवते ।  
ते च जनाः समनसः समानमनस्काः संतो वायवे वायुमुद्दिश्य यष्टुं वि तस्युः । विविधमवतिष्ठते । स्थित्वा च  
ते नरः कर्मणां नेतारो जना विश्वेद्विद्यानि सर्वाण्येव स्वपत्यानि शोभनापत्यहेतूनि यद्वा सुष्ठुपतनकारणानि  
वायुदेवत्वानि कर्माणि चक्रुः । कुर्वन्ति ॥

द्वितीये कंदोमे प्रउगशस्त्र ऐंद्रवायवतुचस्त्र यावत्तर इत्यादिके द्वे अचौ । सूचं तु पूर्वमेवोदाहृतं ॥

यावत्तरस्तन्वोऽ यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः ।

शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इंद्रवायू सदतं बर्हिरेदं ॥ ४ ॥

यावत् । तरः । तन्वः । यावत् । ओजः । यावत् । नरः । चक्षसा । दीध्यानाः ।

शुचिं । सोमं । शुचिऽपा । पातं । अस्मे इति । इंद्रवायू इति । सदतं । बर्हिः । आ । इदं ॥ ४ ॥

हे इंद्रवायू युवयोस्तन्वः शरीरस्य तरो वेगो यावदस्ति यावच्छीजो नक्षं यावच्च नरः कर्मणां नेतार  
अलिजयचसा ज्ञानेन दीध्याना दीप्यमाना भवन्ति तस्य सर्वस्यानुरूपं शुचिपा शुचिः सोमस्य पाताराविंद्र-  
वायू शुचिं शुद्धं सोममस्मे अस्मदीयं पातं । पिबतं । इदं वेद्यां स्तौयं बर्हिषा सदतं । पानार्थमासीदतं ।  
बर्हिषुपविशतमित्यर्थः ॥



नियुवाना नियुतः स्याहवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक् ।

इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अयमधं प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥ ५ ॥

निऽयुवाना । निऽयुतः । स्याहऽवीराः । इन्द्रवायू इति । सऽरथं । यातं । अर्वाक् ।

इदं । हि । वां । प्रऽभृतं । मध्वः । अयं । अधं । प्रीणाना । वि । मुमुक्तं । अस्मे इति ॥ ५ ॥

हे इन्द्रवायू स्याहवीराः सुहृण्यस्रोतुकानियुत आत्मोयानश्चान् सरथमुभयोः समानमेकं रथं नियुवाना निमिअयंतौ युवामर्वागस्रदमिमुखं यातं । गच्छतं । इदं हीदं खलु मध्वो मधुरस्य सोमस्यायं यदेष्वायमिन्द्रवायवाख्यं अहं वां युवयोरथं प्रभृतं प्रकर्षेण हतं होमार्थमुत्तरवेदिं प्रति नीतं । अधाय तादृशस्य सोमस्य पानानंतरं प्रीणाना प्रीयमानौ युवामसौ चक्षान् वि मुमुक्तं । पापादिमोचयतं ॥

प्रथमे छंदोमे प्रउगशस्त्र ऐन्द्रवायवतृचस्य या वां शतमिति तृतीया । सूचितं च । या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचंते ।

या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचंते ।

आभिर्यातं सुविद्वाभिर्वाक्पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥ ६ ॥

याः । वां । शतं । निऽयुतः । याः । सहस्रं । इन्द्रवायू इति । विश्वऽवाराः । सचंते ।

आ । आभिः । यातं । सुऽविद्वाभिः । अर्वाक् । पातं । नरा । प्रतिऽभृतस्य । मध्वः ॥ ६ ॥

हे इन्द्रवायू या नियुतः शतं शतसंख्याकाः सत्यो वां युवां सचंते सेवते । याश्च विश्ववारा विश्वैर्वरणीया नियुतः सहस्रं सहस्रसंख्याकाः सत्यो युवां सचंते । सुविद्वाभिः शोभनधनप्रदाभिराभिर्निशुन्निरर्वागस्रदमिमुखमा यातं । आगच्छतं । हे नरा नेतारो प्रतिभृतस्रोत्तरवेदिं प्रति नीतस्य मध्वो मधुरस्य सोमस्य । द्वितीयार्थे षष्ठी । इन्द्रं सोमं पातं । पिबतं ॥

अर्वतो न अर्वसो भिस्समाणा इन्द्रवायू सुस्तुतिभिर्वसिष्ठाः ।

वाजयंतः स्वर्वसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

अर्वतः । न । अर्वसः । भिस्समाणाः । इन्द्रवायू इति । सुस्तुतिऽभिः । वसिष्ठाः ।

वाजऽयंतः । सु । अर्वसे । हुवेम । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

व्याख्यातयं । अक्षरार्थं तु । अथा इव हविषां वोढारोऽन्नं याचमाना वसं कामयमाना वसिष्ठा वयं शोभनरक्षणाय शोभनैः स्तोत्रैरिन्द्रवायू आद्रयेमहीति ॥ १३ ॥

आ वायो इति पंचर्वं तृतीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं वैश्वं वायव्यं । अनुक्रांतं च । आ वायो पंचेति । गुणासीरीये पर्वणि वायोर्नियुत्वतो यागस्या वायो इत्यनुवाक्या । सूचितं च । आ वायो भूष शुचिपा उप नः प्र आभिर्यासि दास्यांसमच्छ । आ० २. २०. इति ॥ नियुत्वदायुदेवताके पशवेवैव वपाया अनुवाक्या । आ० ३. ८. ॥ प्रथमे छंदोमे प्रउगशस्त्रे वायव्यतृचस्यैवाद्या । सूचितं च । समुद्रादूर्मिरित्याज्यमा वायो भूष शुचिपाः । आ० ८. ९. इति ॥

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।

उपो ते अंधो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं ॥ १ ॥

आ । वा॒यो इति॑ । भूष॑ । शुचि॑ऽपाः । उप॑ । नः । सहस्रं॑ । ते । निऽयुतः॑ । वि॒श्वऽवा॒र ।  
उपो॑ इति॑ । ते । अ॒धः । म॒ध्वं । अ॒यामि॑ । य॒स्य । दे॒व । द॒धिषे॑ । पूर्॒वऽपे॒यं ॥ १ ॥

हे शुचिपाः शुचिः शुचस्व सोमस्व पातर्वापो जोऽस्माकमुप समीप आ भूष । आगच्छ ॥ भू प्राप्तावित्य-  
क्षेत्तद्रूपं ॥ हे विश्ववार विश्वैर्वरणीय ते तव वाहनभूता नियुतो वडवाः सहस्रं सहस्रसंख्याका विवर्ति । यत  
एवमतः शीघ्रमागच्छ । ते तव मध्वं मदकरं सोमलक्षणमंधोऽन्नमुपो उप उ उपायामि । उपयतं पावे गृहीत-  
मासीत् । हे देव वायो यस्य सोमस्व पूर्वपेयं प्रथमपानं दधिषे दधासि धारयसि । ऐंद्रवायवयहे प्रथमे  
वयद्गारे केवलाय वायवे ह्वयते द्वितीये त्विंद्रवायुभ्यामिति वायोः प्रथमपानं । तादृशमंध उपायामीत्यन्वयः ॥

प्रथमे कंदोमे प्रउगशस्त्र ऐंद्रवायवतुचस्व प्र सोतेत्याद्या । सूचितं च । प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्यावे  
वायव इंद्रमादनासः । आ० ८. ९. इति ॥

प्र सोता॑ जीरो॑ अध्वरेष्व॒स्यात्सोम॑मि॒न्द्राय॑ वा॒यवे॑ पिब॒ध्वै ।

प्र य॒ज्ञां म॒ध्वो अ॒यियं॑ भ॒रंत्य॑ध्व॒र्यवो॑ दे॒व॒यंतः॑ श॒चीभिः॑ ॥ २ ॥

प्र । सोता॑ । जी॒रः । अध्व॑रेषु । अ॒स्थात् । सोमं॑ । इं॒द्राय॑ । वा॒यवे॑ । पिब॒ध्वै ।

प्र । यत् । वां । म॒ध्वः । अ॒यियं॑ । भ॒रंति॑ । अध्व॒र्यवः॑ । दे॒व॒यंतः॑ । श॒चीभिः॑ ॥ २ ॥

जीरः शिप्रकारी सोताभिषोताध्वर्युरिन्द्राय वायवे च पिबध्वै पानार्थमध्वरेषु चाग्नेषु सोमं प्रास्थात् ।  
प्रातिष्ठिपत् । पुरस्तादुत्तरवेदिं प्रापितवान् । हे इंद्रवायू यज्ञेषु यज्ञेषु मध्वः सोमस्वायिधमयमवं प्रथमभावं  
देवयंतो देवकामा अध्वर्यवः शचीभिः कर्मभिरभिषवादिजघनैर्वी युवयोरर्थं प्र भरंति प्रकर्षेण भरंति संपा-  
दयंति । तेष्वध्वरेष्वित्यन्वयः ॥

मुनासीरीये पर्वणि नियुत्वद्वायोर्वागस्व प्र याभिरिति याज्या । सूचितं च । प्र याभिर्यासि दास्यांसमच्छ स  
त्वं गो देव मनसा । आ० २. २०. इति ॥ तद्वेत्ति पशवेवैव पुरोडाशस्त्रानुवाक्या । सूचितं च । प्र याभिर्यासि  
दास्यांसमच्छा गो नियुज्जिः शतिनीभिः । आ० ३. ८. इति ॥ प्रथमे कंदोमे प्रउगशस्त्र एवैव वायवतुचस्व  
द्वितीया । सूचितं च । आ वायो भूष शुचिपा उप नः प्र याभिर्यासि दास्यांसमच्छा । आ० ८. ९. इति ॥

प्र याभिर्यासि॑ दा॒स्यांस॒मच्छा॑ नि॒युज्जि॑र्वा॒यवि॒ष्टये॑ दुरो॒णे ।

नि नो॑ र॒यिं सु॒भोज॑सं यु॒वस्व॒ नि वी॒रं ग॒व्यम॒ध्वं च॒ राधः॑ ॥ ३ ॥

प्र । याभिः॑ । यासि॑ । दा॒स्यांसं॑ । अ॒च्छ । नि॒युत्ऽभिः॑ । वा॒यो इति॑ । इ॒ष्टये॑ । दुरो॒णे ।

नि । नः॑ । र॒यिं । सु॒भोज॑सं । यु॒वस्व॒ । नि । वी॒रं । ग॒व्यं । अ॒ध्वं । च॒ । राधः॑ ॥ ३ ॥

हे वायो दुरोणे यज्ञगृहे स्थितं दास्यांसं हविषां दातारं यज्ञमानमिष्टये यागाय याभिर्नियुज्जिर्वज्रवा-  
भिरच्छ यासि अभिगच्छसि ताभिरस्मान्प्रत्यागच्छति शेषः । आगत्य च जोऽस्मभ्यं सुभोजसं शोभनान्नयुक्तं  
रयिं धनं नि युवस्व । नितरां मिश्रय । प्रयच्छ । तथा वीरं पुत्रं गव्यं गोसंघमध्वमश्वसंघमेतदुभयात्मकं राधो  
धनं च नि युवस्व । प्रयच्छ ॥

प्रथमे कंदोमे प्रउगशस्त्र ऐंद्रवायवतुचस्व ये वायव इंद्रेति द्वितीया । सूचितं च । ये वायव इंद्रमाद-  
नासो या वां शतं नियुतो याः सहस्रं । आ० ८. ९. इति ॥

ये वा॒यव॑ इं॒द्रमा॑द॒नास॒ आदे॑वा॒सो नि॒तो॒शना॑सो अ॒र्यः ।

म॒न्तो वृ॒चाणि॑ सू॒रिभिः॑ याम॑ सा॒स॒ह्रांसो॑ यु॒धा नृ॒भिर्मि॒त्रान् ॥ ४ ॥



ये । वा॒यवे । इ॒न्द्र॒माद॑नासः । आ॒दे॒वासः । नि॒ऽतो॑श॒नासः । अ॒र्यः ।

म॑तः । वृ॒चाणि॑ । सूरि॒ऽभिः । स्या॒म । स॒स॒ह्रांसः॑ । यु॒धा । नृ॒ऽभिः । अ॒मि॒त्रा॒न् ॥ ४ ॥

ये सूरयः सोतार इन्द्रमादनासः सोचैरिन्द्रस्य तर्पयितारस्य वायवे वायोश्च मादनासर्पका भवन्ति । ये चादेवासो जागतैरपेता अत एवायोंऽरेः शचोर्गितोशनासो निहंतारः । तैरसादीधिः सूरिभिः सोतुमिर्वृचाणि शत्रून् म॑तो हिंसतः स्याम । भवेम । किं कुर्वतः । अमित्राञ्च नुमटान्भिरसादीधिः पुरैर्युधा यु॒धैभिः स॒स॒ह्रांसो॑ऽभिमवतः ॥

नियुत्तद्वायुदेवताके पशवा नो नियुन्निरिति हविषोऽनुवाक्या । सूचितं च । आ नो नियुन्निः श्रुतिनीभिरध्वरं पौनोचन्नो रयिवुधः सुमेधाः । आ० ३. ८. । इति ॥ प्रथमे छंदोमे प्रउगशस्त्रे वायव्यनृचस्त्रैष्वनुतोया । सूचितं च । आ नो नियुन्निः श्रुतिनीभिरध्वरं प्र सोता कीरो अध्वरेष्वस्मात् । आ० ८. ९. । इति ॥

आ नो॑ नि॒यु॒न्निः श्रु॒तिनी॑भिरध्वरं स॒ह॒स्रिणी॑भिरु॒प॒ याहि॑ य॒ज्ञं ।

वा॒यो अ॒स्मिन्स॑र्वने मा॒द्यस्व॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॑ सदा॒ नः ॥ ५ ॥

आ । नः॑ । नि॒यु॒त्ऽभिः॑ । श्रु॒तिनी॑भिः । अ॒ध्वरं॑ । स॒ह॒स्रिणी॑भिः । उ॒प॒ । या॒हि॒ । य॒ज्ञं ।

वा॒यो इति॑ । अ॒स्मिन् । स॑र्वने । मा॒द्यस्व॑ । यू॒यं । पा॑त । स्व॒स्ति॒ऽभिः॑ । सदा॒ । नः॑ ॥ ५ ॥

हे वायो नोऽस्माकमध्वरं हिंसारहितं यच्च श्रुतिनीभिः श्रुतसंख्यावतीभिः सहस्रिणीभिः सहस्रसंख्यावतीभिश्च नियुन्निर्यदवाभिरुपा याहि । उपागच्छ । तदगंतरमस्मिन् सवने प्रातःसवने माद्यस्व । सोमेन तुष्यस्व । अन्यत्रतं ॥ १४ ॥

शुचिं नित्यष्टर्चं चतुर्थं सूक्तं वसिष्ठस्यैष वैश्वमेन्द्राय । अनुकम्यते हि । शुचिं न्यष्टविंश्रायं त्विति ॥ नतः सूक्तविनियोगः ॥ एन्द्रायस्य पशोर्वपायाः शुचिमित्थेषा याव्या । सूचितं च । शुचिं नु सोमं नवजातमथ नीर्मिर्विः प्रमतिमिच्छमानः । आ० ३. ७. । इति ॥

शुचिं॑ नु॒ स्तोमं॑ न॒वजा॑तम॒द्येन्द्रा॑ग्नी वृ॒च॒ह॒णा जु॒षेथा॑ ।

उ॒भा हि॑ वां सु॒ह॒वा जो॒ह॒वीमि॑ ता वाजं स॒द्य उ॑श्नते धे॒ष्टा ॥ १ ॥

शुचिं॑ । नु॒ । स्तो॒मं । न॒व॒ऽजा॑तं । अ॒द्य । इ॒न्द्रा॒ग्नी इति॑ । वृ॒च॒ऽह॒ना । जु॒षेथा॑ ।

उ॒भा । हि॒ । वां । सु॒ह॒वा । जो॒ह॒वीमि॑ । ता । वाजं॑ । स॒द्यः । उ॑श्नते । धे॒ष्टा ॥ १ ॥

हे वृचहणा वृचाणां शत्रूणः इताराविन्द्राग्नी शुचिं शुचं निरवयं नवजातमिदानीमुत्पन्नं सोममसादीधं सोममयास्मिन्नास्ते नु चिप्रं जुषेथां । सेवेथां । हि यस्मात्सुहवा सुखमाह्वातुं शक्वावुभोर्मां वा युवां जोहवीमि पुनःपुनराह्वयामि । अत आगत्य सेवेथामित्यर्थः । किंच ता तौ तथाविधी युवामश्नते कामयमानाय यवमागच्छ वावमन्नं वचं वा सवसादानीमेव शीघ्रं धेष्टा धातुतमी भवतं ॥

ता सा॒न॒सी श॑वसाना॒ हि भू॑तं सा॒कं॒वृ॒धा श॑वसा शू॒श्रु॒वांसा॑ ।

क्ष॒यंतौ॑ रा॒यो य॑वसस्य॒ भूरैः॑ पृ॒क्तं॑ वाज॑स्य॒ स्थ॒र्विर॑स्य॒ घृ॒ष्वैः ॥ २ ॥

ता । सा॒न॒सी इति॑ । श॒व॒सा॒ना । हि॒ । भू॒तं । सा॒कं॒ऽवृ॒धा । श॑वसा । शू॒श्रु॒ऽवांसा॑ ।

क्ष॒यंतौ॑ । रा॒यः । य॑वसस्य॒ । भूरैः॑ । पृ॒क्तं॑ । वाज॑स्य॒ । स्थ॒र्विर॑स्य॒ । घृ॒ष्वैः ॥ २ ॥

हे इन्द्राग्नी ता तौ तादृशी वागसौ सर्वैः संभजनीयौ युवां शवसाना । शवो वचं । तद्वदाचरंती हि अमु

मृतं । बलमिव शत्रूणां भञ्जकावासामित्यर्थः । कीदृशी संती । साकंवृधा सह प्रवृद्धौ श्रवसा बलेन शूश्रुवांसा वर्धमानौ तथा रायो धनस्य भूरेर्वज्रस्य यवसस्यान्नस्य अयंतावीश्वरी । एवंविधौ युवं युवां स्वविरस्य खूलस्य पुत्रेः शत्रूणां अर्धकस्य वाजस्यान्नस्य ॥ क्रियायहणमपि कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ॥ ईदृशमन्नं पुंस्त्वं । संयोजयतं । अस्मभ्यं प्रयच्छतमित्यर्थः ॥

उपो ह यद्विदथं वाजिनो गुधीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।

अर्वतो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥ ३ ॥

उपो इति । ह । यत् । विदथं । वाजिनः । गुः । धीभिः । विप्राः । प्रमतिं । इच्छमानाः ।

अर्वतः । न । काष्ठां । नक्षमाणाः । इन्द्राग्नी इति । जोहुवतः । नरः । ते ॥ ३ ॥

वाजिनो हविर्भतो विप्रा मेधाविनः प्रमतिं प्रकृष्टां मतिमिन्द्राग्न्योरनुग्रहबुद्धिमिच्छमाना आत्मन रच्छन्तो यथे यजमाना विदथं । विदन्ति जानन्ति देवांस्तत्र यष्टव्यत्वेनेति विदथो यज्ञः । तं धीभिः कर्मभिर्बुद्धिभिर्विपो गुः उपगच्छन्ति । उ इति पूरकः । ते नरः कर्मणां नेतारो जना अर्वतो न काष्ठां यथाश्वाः शीघ्रं युवभूमिं व्याप्नुवन्ति तथा यजमाना इन्द्राग्नि कर्माणि व्याप्नुवन्त इन्द्राग्नी इन्द्रमग्निं च जोहुवतः पुनःपुनराह्वयन्तो भवन्ति ॥

अमावास्यायमिन्द्राग्नस्य हविषो गीर्भिरिष्या याज्या । सूचितं च । इन्द्राग्नी अथवा गतं गीर्भिविप्रः प्रमतिमिच्छमानः । आ० १. ६. इति ॥ इन्द्राग्ने पशौ पुरोडाशस्यैव याज्या । सूचं तूदाहृतं ॥

गीर्भिविप्रः प्रमतिमिच्छमान ईदृ रयिं यशसं पूर्वभाजं ।

इन्द्राग्नी वृचहणा सुवजा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥ ४ ॥

गीऽभिः । विप्रः । प्रमतिं । इच्छमानः । ईदृ । रयिं । यशसं । पूर्वमभाजं ।

इन्द्राग्नी इति । वृचऽहना । सुऽवजा । प्र । नः । नव्येभिः । तिरतं । देष्णैः ॥ ४ ॥

हे इन्द्राग्नो प्रमतिं युवयोरनुग्रहबुद्धिमिच्छमान रच्छन् विप्रो मेधावी वसिष्ठो यशसं यशसा युक्तं पूर्वभाजं पूर्वमेव संभजनीयं रयिं धनमुद्दिश्या गीर्भिः स्तुतिभिरीदृ । युवां स्तौति । हे वृचहणा वृचस्य हंतारी सुवजा शोभनायुधाविन्द्राग्नी नव्येभिर्नवतरेः प्रशस्तेर्देष्णैर्दातव्यैर्धनेनोऽस्मान् प्र तिरतं । प्रवर्धयतं ॥

सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।

अदेवयुं विदथे देवयुभिः सचा हतं सोमसुता जनेन ॥ ५ ॥

सं । यत् । मही इति । मिथती इति । स्पर्धमाने इति । तनूरुचा । शूरऽसाता । यतैते इति ।

अदेवऽयुं । विदथे । देवयुऽभिः । सचा । हतं । सोमऽसुता । जनेन ॥ ५ ॥

मही महती मिथती परस्परं हिंसन्ती । यद्वा । मेघतिराक्रोशकर्म । परस्परमाक्रोशन्ती । स्पर्धमाने संधी कुर्वन्ती तनूरुचा - - - हतं । हिंसं । तथा सोमसुता सोममभिषुण्वतः जनेन यजमानसंधेनासोमसुतं अचं हिंसं ॥ १५ ॥

इमामु षु सोमसुतिमुप न इन्द्राग्नी सौमनसाय यातं ।

नू चिद्धि परिमन्त्रार्थे अस्माना वां शश्वज्जिर्ववृतीय वाजैः ॥ ६ ॥



इमां । ऊं इति । सु । सोमं सुति । उप । नः । आ । इंद्राग्नी इति । सौमनसाय । यातं ।  
नु । चित् । हि । परिमन्त्राणे इति परिमन्त्राणे । अस्मान् । आ । वां । शश्वत् अभिः ।  
ववृतीय । वाजैः ॥ ६ ॥

हे इंद्राग्नी इमां इमामेव नोऽस्मादीयां सोमसुति सोमाभिषवक्रियां सौमनसाय सुमनसो भावाय सु  
सुष्ठूपा यातं । उपागच्छतं । अपि च युवामस्मान् परित्यज्य नू चित्रैव मन्त्राणे । अन्यान् मन्येथे । अस्मानेव  
सर्वदा बुध्येथे । हि यस्मादेवं तस्मादां युवां शश्वत्त्रिर्वज्रमिवाग्नेरग्नेर्हविर्लक्षणेरा ववृतीय । आवर्तयामि ॥

सो अग्र एना नमसा समिद्धोऽच्छा मिचं वरुणमिंद्रं वोचेः ।

यत्सीमार्गश्चकुमा तत्सु मृळ तदर्यमादितिः शिश्रयंतु ॥ ७ ॥

सः । अग्ने । एना । नमसा । संऽइद्धः । अच्छ । मिचं । वरुणं । इंद्रं । वोचेः ।

यत् । सीं । आर्गः । चकुम । तत् । सु । मृळ । तत् । अर्यमा । अदितिः । शिश्रयंतु ॥ ७ ॥

हे अग्ने स त्वमेवैनं नमसाग्निनास्मादीयेन हविषा समिद्धः संदीप्तः समिचं वरुणमिंद्रं वाच्छ वोचेः ।  
अग्निभूयाः । अयंमस्मादीयो रक्षणीय इति कथय । वयं यदागोऽपराधं । सीमिति परित्यहार्योऽयः । सीं  
सर्वतो वाङ्मनःकायेच्छक्रम कृतवन्तो वयं तत्तस्मादागसः सु मृळ । अस्मान् सुष्ठु रच । तस्मागोऽर्यमादितिर्मि-  
चादयश्च शिश्रयंतु । अस्मात्तो वियोजयंतु ॥

एता अग्र आप्नुषाणास इष्टीर्युवोः सचाभ्यश्याम वाजान् ।

मैद्रो नो विष्णुर्मरुतः परि ख्यन्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

एताः । अग्ने । आप्नुषाणासः । इष्टीः । युवोः । सचा । अभि । अश्याम । वाजान् ।

मा । इंद्रः । नः । विष्णुः । मरुतः । परि । ख्यन् । युयं । पात । स्वस्ति अभिः । सदा । नः ॥ ८ ॥

हे अग्ने । उपलक्षयमेतत् । हे इंद्राग्नी एता इष्टीरिमान्यज्ञानाप्नुषाणास आमु ग्रीष्मं संभजमाना वयं  
युवोर्युवयोः स्वभूतान्वाजान्नानि सचा सह युगपदेवाभ्यश्याम । अभिप्राप्तुयाम । अपि मैद्रो विष्णुर्मरुतश्च  
नोऽस्मान् मा परि ख्यन् । अस्मान्परित्यज्यान्वाग्ना मा द्राशुः । सर्वदास्मानेव पश्यंतु । अन्यन्नतं ॥ १६ ॥

इयं वामिति द्वादशर्चं पंचमं मूक्तं वसिष्ठस्यार्चमैन्द्राणं । द्वादशगुष्टं शिष्टा गायत्र्यः । तथा चानुक्रांतं । इयं  
वां द्वादश गायत्र्यमंत्यानुष्टुबिति ॥ ज्योतिष्टोमे प्रातःसवनेऽच्छावाकशस्त्र आदितो नवर्चः शस्यते । सूच्यते हि । इयं  
वामस्य मन्यन इति नव । आ० ५. १०. इति ॥ आभिज्ञविकेषूक्थ्येयु स्तोमेषु वृषावच्छावाकस्य प्रातःसवने इदं  
सूक्तमावापार्यमुत्तमावर्जं । सूचितं च । इयं वामस्य मन्यन इत्येकादश । आ० ७. ५. इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि  
प्रातःसवने तस्मैवावकृचः । सूचितं च । इयं वामस्य मन्यन इंद्राग्नी युवामिमे । आ० ७. २. इति ॥

इयं वामस्य मन्यन इंद्राग्नी पूर्यस्तुतिः । अभ्रावृष्टिरिवाजनि ॥ १ ॥

इयं वां अस्य मन्यनः । इंद्राग्नी इति । पूर्यऽस्तुतिः । अभ्रात् । वृष्टिः । इव । अजनि ॥ १ ॥

हे इंद्राग्नी इयं पूर्यस्तुतिः पूर्वा मुख्या स्तुतिरस्य मन्यनः स्तोत्रस्मादसिष्ठादां युवाभ्यां युवयोरर्चमभा-  
क्षेष्ठावृष्टिरिव वज्जी सत्यजनि । प्रादुर्भूता । तां शृणुतमित्युत्तरच संबंधः ॥

शृणुतं जरितुर्हवमिंद्राग्नी वनंतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

शृणुतं । जरितुः । हव । इंद्राग्नी इति । वनंतं । गिरः । ईशाना । पिप्यतं । धियः ॥ २ ॥

हे इंद्रापी वरितुः क्षीतुर्हवमाद्भानं युवां शृणुतं । अस्वा च गिरसदीयाः क्षुतीर्वनतं । संमजतं । तथेशा-  
नेश्वरी युवां धियोऽनुष्ठितानि कर्माणि पिप्यतं । तत्स्त्रीः फलैः पूरयतं ॥

मा पापत्वाय नो नरेन्द्रापी माभिःशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥

मा । पापऽत्वाय । नः । नरा । इंद्रापी इति । मा । अभिऽशस्तये । मा । नः ।  
रीरधतं । निदे ॥ ३ ॥

हे नरा नेताराविंद्रापी नोऽस्मान् पापत्वाय हीनमावाय मा रीरधतं । तथाभिःशस्तये शत्रुभिः कृताया-  
भिःशसनाय मा रीरधतं । तथा निदे निंदकाय जनाय नोऽस्मान् मा रीरधतं । मा वशीकृतं ॥

चातुर्विंशेऽहनि प्रातःसवनेऽच्छावाकस्त्रे अनेत्यय षडहस्तोत्रियसंज्ञकलृचः । सूचितं च । इंद्रे अमा  
नमो बृहता ऊचे ययोरिदं । आ० ७. २. इति ॥

इंद्रे अमा नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ॥ ४ ॥

इंद्रे । अमा । नमः । बृहत् । सुऽवृक्तिः । आ । ईरयामहे । धिया । धेनाः । अवस्यवः ॥ ४ ॥

अवस्यवो रक्षणकामा वयमिंद्रे देवेऽभापी च बृहद्वृहणं वर्धकं नमो हविर्लक्षणमन्नं सुवृक्तिं सुप्रवृत्तां  
क्षुतिं चिरयामहे । अभिमेरयामः । तथा धिया कर्मणा युक्ता धेनाः । वाङ्मामैतत् । अग्रगीताः क्षुतिवाचसा-  
भिमेरयामः ॥

ता हि शश्वंत ईळंत इत्या विप्रांस ऊतये । सबाधो वाजसातये ॥ ५ ॥

ता । हि । शश्वंतः । ईळंतः । इत्या । विप्रांसः । ऊतये । सऽबाधः । वाजऽसातये ॥ ५ ॥

ता हि तौ खल्विंद्रापी शश्वंतो बहवो विप्रासो मेधाविनो जना ऊतये रक्षणायेत्येत्यमनेन प्रकारेणेळते ।  
क्षुवंति । तथा सबाधः समानं बाधमानाः परस्परं बाध्यमाना जना वाजसातयेऽन्नलाभाय तावेवेन्द्रापी  
ईळते । क्षुवंति । यद्वा । वाजसातिरिति संग्रामनाम । संग्रामार्थं ॥

ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वंतो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः ॥ ६ ॥

ता । वां । गीऽभिः । विपन्यवः । प्रयस्वंतः । हवामहे । मेधऽसाता । सनिष्यवः ॥ ६ ॥

विपन्यवः क्षीत्रमिच्छंतः प्रयस्वंतो हविर्लक्षणेनान्नेनोपेताः सनिष्यवः सनि धनमात्मन इच्छंतो यथं  
मेधसाता मेधानां यागानां सातौ संभजने निमित्तभूते सति हे इंद्रापी ता तौ वां युवां गीर्भिः क्षुतिभिर्ह-  
वामहे । आह्वयामहे ॥ ॥ १७ ॥

अमावास्यामिंद्रापस्य हविष इंद्रापी अवसेत्वनुवाक्या । सूचितं च । इंद्रापी अवसा गतं गीर्भिर्विप्रः  
प्रमतिमिच्छमानः । आ० १. ६. इति ॥

इंद्रापी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा । मा नो दुःशंस ईशत ॥ ७ ॥

इंद्रापी इति । अवसा । आ । गतं । अस्मभ्यं । चर्षणिऽसहा । मा । नः । दुःशंसः । ईशत ॥ ७ ॥

हे चर्षणीसहा चर्षणीनां मनुष्याणां शत्रुभूतानामभिभवितारी हे इंद्रापी अस्माभ्यं क्षीतुभ्यो देयेनाव-  
सान्नं सहा गतं । आगच्छतं । दुःशंसो दुष्टाभिःशंसनः पारुष्यवादी शत्रुश्च नोऽस्मान् ईशत । ईशिष्ट । अस्मा-  
न्वाधितुं मा शक्नोतु ॥



मा कस्य नो अरूषो धूर्तिः प्रणङ्गुत्यस्य । इंद्राग्नी शर्मं यच्छतं ॥ ८ ॥

मा । कस्य । नः । अरूषः । धूर्तिः । प्रणङ् । मर्त्यस्य । इंद्राग्नी । शर्मं । यच्छतं ॥ ८ ॥

हे इंद्राग्नी कस्य कस्यचिदपररूपोऽरेर्मर्त्यस्य मनुष्यस्य संबंधिनी धूर्तिर्हिंसा नोऽस्याप्या प्रणङ् । मा प्राप्नोतु । शर्मं सुखं चास्याभ्यं यच्छतं । दत्तं ॥

गोमद्धिरण्यवत्सु यज्ञमश्वावदीमहे । इंद्राग्नी तवनेमहि ॥ ९ ॥

गोऽमत् । हिरण्यऽवत् । वसु । यत् । वां । अश्वऽवत् । ईमहे । इंद्राग्नी इति । तत् । वनेमहि ॥ ९ ॥

हे इंद्राग्नी गोमत्रोभिर्वृत्तं हिरण्यवद्धिरण्यैः सुवर्णैर्युक्तमश्वावदश्वैर्योपेतं यदसु वां युवामीमहे याचामहे तदसु युवयोः प्रसादाद्ययं वनेमहि । संमवेमहि ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि प्रातःसवनेऽच्छावाकशस्त्रे यत्सोम आ सुते इत्यारंभणीयाहर्गणेषु च द्वितीयादिष्वहः-  
स्त्रेषा प्रातःसवने तेनैव शंसनीया । सूचितं च । यत्सोम आ सुते नर इत्यारंभणीयाः शस्त्रा । आ० ७. २. ।  
इति ॥

यत्सोम आ सुते नर इंद्राग्नी अजोहवुः । सप्तीवंता सपर्यवः ॥ १० ॥

यत् । सोमे । आ । सुते । नरः । इंद्राग्नी इति । अजोहवुः । सप्तिऽवंता । सपर्यवः ॥ १० ॥

सोमे सुतेऽभिपुते सति नरः कर्मणां नेतार ऋत्विजः सपर्यवः परिचरणकामाः संतः सप्तीवंता प्रशस्ता-  
श्चाविंद्राग्नी इंद्रमपि च यद्यदाजोहवुः अभिदूयते तदा युवामागच्छतमिति शेषः ॥

उक्थेभिर्वृचहंतमा या मंदाना चिदा गिरा । आंगूषैराविवासतः ॥ ११ ॥

उक्थेभिः । वृचहन्ऽतमा । या । मंदाना । चित् । आ । गिरा । आंगूषैः ।  
आऽविवासतः ॥ ११ ॥

वृचहंतमा वृत्राणामावरकाणां हंतुतमौ मंदाना मोदमानौ या याविंद्राग्नी उक्थेभिः शस्त्रैर्गिरा च  
सुत्वा चाविवासतः परिचर्यते ॥ अथ्येन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ॥ आंगूषैराघोषैरन्यैश्च सोचिर्यावाविवासतः  
परिचर्यते ती युवामागच्छतमिति शेषः ॥

ताविहुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनं । आभोगं हन्मना हतमुद्धिं हन्मना हतं ॥ १२ ॥

तौ । इत् । दुःशंसं । मर्त्यं । दुःविद्वांसं । रक्षस्विनं । आभोगं । हन्मना । हतं ।  
उद्धिं । हन्मना । हतं ॥ १२ ॥

हे इंद्राग्नी तौ युवां दुःशंसं दुष्टाभिःशंसनं दुर्विद्वांसं दुर्विज्ञानं रक्षस्विनं बलवंतमाभोगमाहत्यास्वतो  
ऽपहृत्य मोक्षारं मर्त्यं मनुष्यं शत्रुं हन्मना हननसाधनेनायुधेन हतं । हिंसं । उक्तमेवार्थं वृष्टातेन वृढयति ।  
उद्धिं । जुष्टोपममेतत् । उद्धानं कुंभमिव । यथा कुंभोऽनायासेन भिद्यत एवमनायासेनैव शत्रुमायुधेन  
युवां हिंसं ॥ १२ ॥

प्र चोदसेति षड्वचं षष्ठं सूक्तं वसिष्ठस्यै वैष्टुभं सरस्वतीदेवताकं । तृतीया तु सरस्वदेवताका । अनुक्रम्यते  
च । प्र चोदसा षट् सारस्वतं तु तृतीया सरस्वत इति ॥ गतः सूक्ताविनियोगः ॥ प्रथमे छंदोमे प्रउगशस्त्रे प्र

चोदसा धायसा सस्र एवेति प्रचनं । आ० ८. ९. इति ॥ सारस्वते पशौ प्र चोदसेति वपाया याज्या । सूचितं च । प्र चोदसा धायसा सस्र एषा पावीरवी कन्या विचायुः । आ० ३. ७. इति ॥

प्र चोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।

प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिंधुरन्याः ॥ १ ॥

प्र । चोदसा । धायसा । सस्रे । एषा । सरस्वती । धरुणं । आयसी । पूः ।

प्रऽबाबधाना । रथ्याऽइव । याति । विश्वाः । अपः । महिना । सिंधुः । अन्याः ॥ १ ॥

सरस्वत्या एषा नदीवन्निगमा । एषः दृश्यमाना नदीरूपा सरस्वत्यायस्यसा निर्मिता पूः पुरीव धरुणं ॥ लिङ्गव्याख्यः ॥ धरुणा धारयित्री धायसा धारकेण चोदसोदकेन प्र सस्रे । प्रधावति । शीघ्रं गच्छति । सिंधुः खंदनशीला नदीरूपा सान्या विश्वाः सर्वा अप आपगा महिना महिन्ना प्रबाबधाना भृशं बाधमाना रथ्येव प्रतोलोव विस्तीर्णा सती याति । गच्छति । यद्वा । रथ्येव रथिनेव यथा रथी रथेन मार्गस्थं तद्गुल्मादिकं चूर्णीकृत्य गच्छति तद्वत् स्वकीयेन वेगेन सर्वं संपिपती गच्छतीत्यर्थः ॥

सारस्वत एव पशौ वपाया एकाचेतदित्यनुवाक्या । सूचितं च । एकाचेतत्सरस्वती नदीनामुत स्या नः सरस्वती जुषाणा । आ० ३. ७. इति ॥

एकाचेतत्सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।

रायश्चेतंती भुवनस्य भूरैर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥ २ ॥

एका । अचेतत् । सरस्वती । नदीनां । शुचिः । यती । गिरिऽभ्यः । आ । समुद्रात् ।

रायः । चेतंती । भुवनस्य । भूरैः । घृतं । पयः । दुदुहे । नाहुषाय ॥ २ ॥

सहस्रवत्सरेण ऋतुना यक्ष्यमाणो नाङ्गयो नाम राजा सरस्वतीं नदीं प्रार्थयामास सा च तस्मै सहस्रसंवत्सरपर्याप्तं पयो घृतं च प्रददा । अयमर्थोऽत्र प्रतिपाद्यते । नदीनामन्यासां मध्ये शुचिः शुद्धा गिरिभ्यः सकाशादा समुद्रात्समुद्रपर्यंतं यती गच्छत्येका सरस्वती नद्यचेतत् । नाङ्गयस्य प्रार्थनामज्ञासीत् । तथा भुवनस्य भूतजातस्य भूरैर्बलस्य रायो धनानि चेतंती प्रज्ञापयंती प्रयच्छंती नाङ्गवाय राज्ञे घृतं पयश्च सहस्रसंवत्सरकृतोः पर्याप्तं दुदुहे । दुग्धवती । दत्तवती ॥

सरस्वदेवताके पशौ स वावुध इति पुरोडाशस्थं याज्या । सूचितं च । स वावुधे नर्यो योषणासु यस्य व्रतं पशवो यंति सर्वे । आ० ३. ८. इति ॥

स वावुधे नर्यो योषणासु वृषा शिर्षुर्वृषभो यज्ञियासु ।

स वाजिनं मघवञ्जो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ॥ ३ ॥

सः । ववुधे । नर्यः । योषणासु । वृषा । शिर्षुः । वृषभः । यज्ञियासु ।

सः । वाजिनं । मघवन्ऽभ्यः । दधाति । वि । सातये । तन्वं । मामृजीत ॥ ३ ॥

मध्यस्थानो वायुः सरस्वान् । नर्यो नृभ्यो हितो वृषा सेचनसमर्थः शिशुरस्यः प्रादुर्भावसमयेऽल्पतया दृश्यमानो वृषभो वर्षिता एवंभूतः स सरस्वान् यज्ञियासु यज्ञार्हासु योषणासु योषितस्वात्मनः कलत्रभूतासु मध्यमस्थानास्वप्सु मध्ये ववुधे । वर्धते । स सप्तवृशः सरस्वान् मघवञ्जो हविष्मञ्जो यजमानेभ्यो वाजिनं वस्त्रिनं पत्रं दधाति । ददाति । तथा सातये लाभार्थं तन्वं तेषां शरीरं वि मामृजीत । विमार्ष्टि । लाभार्थं संस्करोती-



त्यर्थः । यद्यपि सारस्वतः स्मृतिः तथापि सरस्वत्याः प्रीयमाणं तत्सम्पन्नमिति आदोमिने सारस्वते वृचिऽस्मा  
उक्तो विनियोगो न विवर्धते ॥

दशरात्रेऽष्टमेऽहनि प्रचय उत स्या न इति सारस्वतः सप्तमस्तुभः । सूचितं च । उत स्या नः सरस्वती  
जुषाणेति प्रचयं । आ० ८. १०. इति ॥ सारस्वते पशौ पुरोडाशस्तोत्रं स्या न इत्यनुवाक्या । सूचितं च । उत  
स्या नः सरस्वती जुषाणा सरस्वत्यभि नो नेधि वस्यः । आ० ३. ७. इति ॥

उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप अवत्सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।

मित्तुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥४॥

उत । स्या । नः । सरस्वती । जुषाणा । उप । अवत् । सुऽभगा । यज्ञे । अस्मिन् ।

मित्तुभिः । नमस्यैः । इयाना । राया । युजा । चित् । उत्तरा । सखिभ्यः ॥४॥

उतापि च जुषाणा प्रीयमाणा सुभगा प्रीयमाना स्या सा सरस्वती नोऽस्माकमस्मिन् च उप अवत् ।  
अस्मादीयाः स्मृतीरपमृषोतु । कीदृशी सा । मित्तुभिः प्रद्विर्जानुभिर्नमस्यैर्मस्तारैर्देवैरियानीपगम्यमाना ।  
विच्छन्दस्यार्थे । युजा नित्ययुक्तेन राया धनेन च संगता सखिभ्य उत्तरोत्कृष्टतरा । ईदृशस्मादीयाः स्मृतीरप-  
मृषोत्वित्यन्वयः ॥

पवित्रेभ्यो सारस्वतस्य हविष इमा जुहाना इति याव्या । सूचितं च । इमा जुहाना युष्मदा नमोमिदं-  
धिक्राण्यो अकारिवं । आ० २. १२. इति ॥

इमा जुहाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।

तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षं ॥५॥

इमा । जुहानाः । युष्मत् । आ । नमःऽभिः । प्रति । स्तोमं । सरस्वति । जुषस्व ।

तव । शर्मन् । प्रियतमे । दधानाः । उप । स्थेयाम् । शरणं । न । वृक्षं ॥५॥

हे सरस्वति इमेमान्यस्मादीयानि हवींषि जुहानास्तुभं जुह्वतो वयं नमोमिस्त्वद्विषयेर्मस्तारैर्युष्मत्स-  
काशादा ॥ उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाधाहारः ॥ आदोमहि धनानीति श्रेयः । स्तोमं चास्मादीयं स्तोत्रं प्रति-  
जुषस्व । प्रतिसेवस्व । वयं च प्रियतमेऽतिशयेन प्रिये तव त्वदीये शर्मच्छर्मणि सुखे दधाना निधीयमानाः  
संतः शरणं न वृक्षमाश्रयभूतं वृक्षमिवोप स्थेयाम । त्वामुपतिष्ठेम । संगच्छेमहि ॥

अयमुं ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।

वर्धं शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

अयं । ऊं इति । ते । सरस्वति । वसिष्ठः । द्वारौ । ऋतस्य । सुऽभगे । वि । आवरित्यावः ।

वर्धं । शुभ्रे । स्तुवते । रासि । वाजान् । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥६॥

हे सुभगे प्रीयमाने सरस्वति अयं वसिष्ठस्ते त्वां यंतुर्ऋतस्य यज्ञस्य संबंधिन्यो द्वारौ पूर्वापरे व्यावः ।  
विवृणोति । उ इति पूरकः । हे शुभ्रे शुभवर्णे देवि वर्ध । वर्धस्व । तथा स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते वसिष्ठाय  
वाजान्नानि रासि । प्रदेहि । अन्यद्गतं ॥ १९८ ॥

बृहदु गायिष इति षड्वचं सप्तमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं । आद्या बृहती द्वितीया सतोबृहती तृतीया प्रकार-  
पंक्तः श्रिष्टास्तिस्रो गायत्र्यः । आद्यस्तुभः सरस्वतीदेवताकोऽत्यस्य सरस्वदेवताकः । तथा चानुक्रांतं । बृहदु

प्रगाथः प्रसारपंक्तिः परास्तिस्रो गायत्र्यः सरस्वत इति ॥ पंचमेऽहनि प्रथमशस्त्र आद्यः प्रगाथः सरस्वतस्तुचः । सूचितं च । बृहदु गायिष इति बार्हतं प्रथमं प्रगाथानेके । आ० ७. १२. । इति ॥

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्यो नदीनां ।

सरस्वतीमिन्महया सुवृत्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥ १ ॥

बृहत् । ऊं इति । गायिषे । वचः । असुर्यो । नदीनां ।

सरस्वतीं । इत् । मह्य । सुवृत्तिभिः । स्तोमैः । वसिष्ठ । रोदसी इति ॥ १ ॥

अनयर्विराट्त्वां संबोध्य सरस्वत्याः सुतो प्रेरयति । हे वसिष्ठ त्वं बृहदु बृहदेव महदेव वचः स्तोत्रं गायिषे । गायसि । किमर्थं । नदीनां मध्येऽसुर्यो ॥ असुराशब्दास्तुर्ध्वैकवचनस्य उदादेशः ॥ असुरायै बलवत्यै नदीरूपायै सरस्वत्यै । अस्याः प्रीत्यनार्थमित्यर्थः । तथा रोदसी यावापृथिव्योः स्थितां दिवि देवतारूपेण भूम्यां वायूपेण निवसन्तीं सरस्वतीमित् सरस्वतीमेव सुवृत्तिभिः सुष्ठु दोषवर्जितैः स्तोमैः स्तोत्रैर्मह्य । पूजय । सर्वदा सरस्वतीमेव सुहि नान्यां देवतामिति भावः ॥

उभे यत्ने महिना शुभे अंधसी अधिष्ठियंति पूरवः ।

सा नो बोध्यविची मरुत्सखा चोद राधो मघोनां ॥ २ ॥

उभे इति । यत् । ते । महिना । शुभे । अंधसी इति । अधिऽस्थियंति । पूरवः ।

सा । नः । बोधि । अविची । मरुत्सखा । चोद । राधः । मघोनां ॥ २ ॥

हे शुभे शुभवर्णे सरस्वति यवस्यास्ते तव महिना महिचोमे अंधसी उभयविधं दिव्यं पार्थिवं चाग्निं ग्राम्यमारुखं वा पूरवः पूरयित्वा मनुष्या अधिष्ठियंति अधिभच्छंति सा त्वमविची रविची सती नो ऽस्मान्बोधि । बुध्यस्व । अपि च मरुत्सखा । मरुतो माध्यमिका देवगणाः । ते सखायो यस्या माध्यमिकाया वाचसादृशी त्वं मघोनां इविर्लक्षणधनोपेतानामस्माकं राधो धनं चोद । प्रेरय ॥

भद्रमिन्द्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती ।

गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥ ३ ॥

भद्रं । इत् । भद्रा । कृणवत् । सरस्वती । अकवऽअरी । चेतति । वाजिनीऽवती ।

गृणाना । जमदग्निऽवत् । स्तुवाना । च । वसिष्ठऽवत् ॥ ३ ॥

भद्रा कल्याणी भवनीया वा सरस्वती भद्रमिन्द्रमेव कल्याणमेव कृणवत् । अस्माकं करोतु । तथाक्-  
वार्थकुत्सितगमना वाजिनीवत्यवती चेतति । चेतयतु । अस्मान् प्रज्ञापयतु । यद्वा । मदीयं स्तोत्रं चेतति ।  
जानातु । तथा जमदग्निवज्जमदग्निर्षणैव मया गृणाना खूयमाना वसिष्ठवत् ॥ अर्हार्थे चतिप्रत्ययः ॥  
वसिष्ठाहं वसिष्ठस्त्वानुरूपं स्तुवाना खूयमाना च भव ॥

सरस्वदेवताके पशौ जनीयंत इति तिस्रः पुरोडाशहविषां क्रमेणानुवाक्याः । सूचितं च । जनीयंतो न्ययव इति तिस्रो दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहंतं । आ० ३. ८. । इति ॥

जनीयंतो न्ययवः पुत्रीयंतः सुदानवः । सरस्वतं हवामहे ॥ ४ ॥

जनिऽयंतः । नु । अयवः । पुत्रिऽयंतः । सुऽदानवः । सरस्वतं । हवामहे ॥ ४ ॥



अनीयंतः । आयंत आसपत्यानीति अययो जायाः । ता इच्छंतः पुनीयंतः पुनाम्कामयमाणाः सुदानवः शोभनदाणा अयय उपगंतारो वयं न्वय सरस्वतं देवं इवामहे । सुमहे । आद्रयामहे वा ॥

ये ते सरस्व ऊर्मया मधुमंतो घृतक्षुतः । तेभिर्नोऽविता भव ॥ ५ ॥

ये । ते । सरस्वः । ऊर्मयः । मधुमंतः । घृतक्षुतः । तेभिः । नः । अविता । भव ॥ ५ ॥

हे सरस्वः सरस्व देव ते स्वदीया य ऊर्मयो वससंधा मधुमंतो रसवंतो घृतक्षुतो घृतक्षु वृक्षुदकस्य चारिणो भवन्ति तेभिस्तेर्मभिर्नोऽसाकमविता रचिता भव ॥

अन्वारंमणीयायां सरस्वतो यागस्य पीपिवांसमित्यनुवाक्या । सूचितं च । पीपिवांसं सरस्वतो दिव्यं सुपर्णं वायसं वृहंतं । आ० २. ८. । एति ॥

पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः । भक्षीमहि प्रजामिषं ॥ ६ ॥

पीपिवांसं । सरस्वतः । स्तनं । यः । विश्वदर्शतः । भक्षीमहि । प्रजां । इषं ॥ ६ ॥

पीपिवांसं प्रवृषं सरस्वतो देवस्य स्नानं शब्दायमानं स्नानवद्रसाधारं वा मेघं भक्षीमहि । भजेमहि । प्राप्नुयाम । यो विश्वदर्शतो विश्वैः सर्वदर्शतो भवति वृक्षमानो भवति । तं स्नानं मेघमित्यर्थः । तथा प्रजां पुषादिष्णामिषमज्ञं च सरस्वतः प्रसादाद्भक्षीमहि ॥ २० ॥

यज्ञे दिव एति दशर्चमष्टमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं चैष्टुमं । प्रथमैन्द्री तृतीयाजवन्त्योरिन्द्राब्रह्मणस्यतो देवता दशम्या इन्द्रावृष्टस्यतो शिष्टाणां तु वृष्टस्यतिः । तथा चानुक्रांतं । यज्ञे दशैश्चादि बाईसत्यमंतिंद्री च तृतीयाजवन्त्यधिन्द्राब्रह्मणस्यति इति ॥ आभिन्नविकेष्टुक्थेषु तृतीयसवने सोमपुत्री ब्राह्मणाच्छंसिण इदमुत्तरं च सूक्तमावापार्थं । सूचितं च । यज्ञे दिवः । आ० ७. ९. । इति ॥

यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यच देवयवो मदंति ।

इंद्राय यच सर्वनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च ॥ १ ॥

यज्ञे । दिवः । नृषदने । पृथिव्याः । नरः । यच । देवयवः । मदंति ।

इंद्राय । यच । सर्वनानि । सुन्वे । गमन् । मदाय । प्रथमं । वयः । च ॥ १ ॥

यच यस्मिन् यज्ञे देवयवो देवान्कामयमाना नरो नेतार अस्मिन् मदंति इच्छन्ति यच यस्मिन् सवनाव्यमिषोतवाः सोमा इन्द्राधिन्द्राय सुन्वे अभिपूयते पृथिव्याः संबन्धिनि नृषदने नृणां नेतृणां सदनमूते तस्मिन् यज्ञे प्रथमं सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वं दिवो सुलोकात्तमत । आगच्छतु । किमर्थं । मदाय मदार्थं । सोमं पातुमित्यर्थः । तथा वयश्च गंतारसदीया अस्माच्च गमत । आगच्छतु ॥

आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः ।

यथा भवेम मीळुषे अनागा यो नो दाता परावतः पितेव ॥ २ ॥

आ । दैव्या । वृणीमहे । अवांसि । बृहस्पतिः । नः । महे । आ । सखायः ।

यथा । भवेम । मीळुषे । अनागाः । यः । नः । दाता । परावतः । पिता इव ॥ २ ॥

हे सखायः समानख्यानाः सोतारः वयं दैव्या दैव्यानि देवसंबन्धीन्वांसि रचयामा वृणीमहे । अभिन्नयामहे । प्रार्थयामहे । नोऽस्माकं हविर्बृहस्पतिर्वृहतां पातयिता देव आ महे । महतिर्दानार्थः । आगच्छतु । आदत्ते ॥ सोपस्य आत्मनेपदेष्विति ततोपः ॥ यो बृहस्पतिः परावतो दूरदेशासनाद्वा दत्त पुत्रेभ्यः पितेव

नोऽस्माभ्यं दाता भवति तस्मै मीळुये सेक्ते बृहस्पतयेऽनागा अनागस अनपराधा यथा वयं भवेम हे सखायः  
तथा यूयं परिचरतेति शेषः ॥

तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।

इंद्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥ ३ ॥

तं । ऊं इति । ज्येष्ठं । नमसा । हविःऽभिः । सुऽशेवं । ब्रह्मणः । पतिं । गृणीषे ।

इंद्रं । श्लोकः । महि । दैव्यः । सिषक्तु । यः । ब्रह्मणः । देवऽकृतस्य । राजा ॥ ३ ॥

ज्येष्ठं प्रशस्ततमं सुशेवं सुसुखं ब्रह्मणो मंत्रस्य पतिं पालयितारमेतत्संज्ञं तमु तमेव देवं नमसा नमस्कारेण  
हविर्भिषक्परोडाशादिभिश्च सार्धं गृणीषे । गृणे । जुवे । अपि च महि महांतमिंद्रं दैव्यो देवार्हः श्लोको  
ऽसदीयः सखाको मंत्रः सिषक्तु । सेवतां । ब्रह्मणोऽन्नस्य मंत्रस्य वा देवकृतस्य देवैः स्तोतृभिः कृतस्य च इंद्रो  
ब्रह्मणस्पतिर्वा राजेश्वरो भवति । तमिंद्रं तं ब्रह्मणस्पतिमिति संबंधः ॥

स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।

कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात्पर्षन्तो अति सश्वतो अरिष्टान् ॥ ४ ॥

सः । आ । नः । योनिं । सदतु । प्रेष्ठः । बृहस्पतिः । विश्वऽवारः । यः । अस्ति ।

कामः । रायः । सुऽवीर्यस्य । तं । दात् । पर्षत् । नः । अति । सश्वतः । अरिष्टान् ॥ ४ ॥

प्रेष्ठः प्रियतमः स बृहस्पतिर्नोऽस्माकं योनिं स्थानं वेदिलक्षणमा सदतु । आसीदतु । आगत्योपविशतु ।  
यो बृहस्पतिर्विश्ववारो विश्वैर्वरणीयोऽस्ति भवति । अपि च रायो धनस्य सुवीर्यस्य शोभनवीर्यस्य च यः  
कामोऽस्माकमभिलाषोऽस्ति तं काममस्माभ्यं दात् । ददातु । काम्यमानं प्रयच्छत्वित्यर्थः । तथा सश्वत उपद्रवैः  
संसक्तान्नोऽस्मान्परिष्टानर्हसितान् कृत्वाति पर्षत् । अतिपारयति शत्रून् ॥

तमा नो अकर्ममृताय जुष्टमिमे धासुरमृतासः पुराजाः ।

शुचिक्रंदं यजतं पस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम ॥ ५ ॥

तं । आ । नः । अर्कं । अमृताय । जुष्टं । इमे । धासुः । अमृतासः । पुराऽजाः ।

शुचिऽक्रंदं । यजतं । पस्त्यानां । बृहस्पतिं । अनर्वाणं । हुवेम ॥ ५ ॥

तं सर्वत्र भोक्तव्यतया प्रसिद्धममृतायामरणत्वाय जीवनाय जुष्टं पर्याप्तमर्कमर्चनसाधनमन्नं पुराजाः पुरा  
जाता इमेऽमृतासोऽमरणा देवा बृहस्पतेराज्ञया नोऽस्मभ्यमा धासुः । प्रदबुः । वयं च शुचिक्रंदं शुद्धस्तोत्रं  
पस्त्यानां । पस्त्यामिति गृहनाम । तेन तदंतो लब्धंते । गृहिणां यजतं यष्टव्यमनर्वाणमप्रत्यूतं केनाप्यप्रतिगतं  
बृहस्पतिं बृहतां पालकं देवं हुवेम । आहुयाम । न्युयम वा ॥ ॥ २१ ॥

तं शग्मामो अरुषामो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।

सहश्चिद्यस्य नीलवत्सधस्यं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥ ६ ॥

तं । शग्मामः । अरुषासः । अश्वाः । बृहस्पतिं । सहऽवाहः । वहन्ति ।

सहः । चित् । यस्य । नीलऽवत् । सधऽस्यं । नभः । न । रूपं । अरुषं । वसानाः ॥ ६ ॥



श्रग्मासः श्रग्माः सुखकराः शक्ता वाह्यास आरोचमानाः सहवाहः संहत्य वाहका अन्त्यां बृहस्पतिं वहन्ति । वहंतु । यस्य बृहस्पतिः सहस्रिद्वत्त्वं च भवति । नीलवत् । नीलं निखयो निवासः । तद्युक्तं सधस्यं सहस्रान्नं च यस्य । तं बृहस्पतिमित्यन्वयः । कीदृशा अन्ताः । जम्भो नादित्यमिवाहमारोचमानं रूपं वसाना धारयन्तः ॥

स हि शुचिः शतपञ्चः स भुङ्क्षुर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।

बृहस्पतिः स स्वावेशः क्षुष्वः पुरु सखिभ्य आसुतिं करिष्यः ॥ ७ ॥

सः । हि । शुचिः । शतऽपञ्चः । सः । भुङ्क्षुः । हिरण्यऽवाशीः । इषिरः । स्वऽसाः ।

बृहस्पतिः । सः । सुऽआवेशः । क्षुष्वः । पुरु । सखिभ्यः । आऽसुतिं । करिष्यः ॥ ७ ॥

स हि स खलु बृहस्पतिः शुचिः शुद्धः शतपञ्चो ब्रह्मविधवाहनः । स एव भुङ्क्षुः सर्वेषां शोधयिता हिरण्यवाशीः । वाशीति वाङ्माम । हितरमणीयवाक् । यद्वा । वाशीभिस्तत्तारमन्त्रयोभिः । आ० १०. १०१. १०. इति निगमाद्वाङ्मायुधं । स्वर्णमयायुधः । इषिरो गन्ताभ्येषणीयो वा स्वर्षाः स्वर्णस्य संगता । यद्वा । सरणशीलस्रोदकस्य सजिता दाता । स एव बृहस्पतिः स्वावेशः सुनिवासः क्षुष्वो दर्शनीयः । ईदृशी देवः सखिभ्यः क्षौत्रुभ्यः पुरु ब्रह्ममासुतिमन्नं करिष्यः कर्तुतमो दातुतमो भवति ॥

देवी देवस्य रोदसी जनिची बृहस्पतिं वावृधतुर्महत्वा ।

दक्षाय्याय दक्षता सखायः करब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥ ८ ॥

देवी इति । देवस्य । रोदसी इति । जनिची इति । बृहस्पतिं । ववृधतुः । महिऽत्वा ।

दक्षाय्याय । दक्षत । सखायः । करत् । ब्रह्मणे । सुऽतरा । सुऽगाधा ॥ ८ ॥

देवी देवी दानादिगुणयुक्ते देवस्य बृहस्पतिर्जनिची जनयित्री रोदसी द्यावापृथिवी महत्वा महत्त्वेन युक्तं बृहस्पतिं ववृधतुः । वर्धयामासतुः । हे सखायः यूयमपि दक्षाय्याय वर्धनीयाय । द्वितीयार्थे चतुर्थी । वर्धनीयं तं बृहस्पतिं दक्षत । वर्धयत । स च बृहस्पतिर्ब्रह्मणे वृंहिताय प्रभृतायाम्नाय तदर्थं सुतरा सुतराणि सुखेन तरणीयानि सुगाधा सुखेनावगाहनीयान्युदकानि करत् । करोतु ॥

इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमयो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥

इयं । वां । ब्रह्मणः । पते । सुऽवृक्तिः । ब्रह्म । इन्द्राय । वज्रिणे । अकारि ।

अविष्टं । धियः । जिगृतं । पुरंऽधीः । जजस्तं । अर्यः । वनुषां । अरातीः ॥ ९ ॥

हे ब्रह्मणस्पते तुभ्यं वज्रिणे वज्रवत् इन्द्राय च वां युवाभ्यां ॥ तादर्थ्ये चतुर्थी ॥ ब्रह्म मंचरूपेयं सुवृक्तिः सुप्रवृत्ता क्षुतिरकारि । मया कृताभूत् । तौ युवां धियोऽस्यदीयानि कर्माण्यविष्टं । रचतं । तथा पुरंधीः पुरंधीर्ब्रह्मीः क्षुतीर्जिगृतं । निगिरतं । शृणुतमिति यावत् । अर्योऽरीरभिर्गर्भोर्वनुषां संभक्तानामस्माकमरातीः शत्रुसेना अजस्तं । उपलपयतं ॥

तृतीयसवन उक्थे ब्राह्मणाच्छंसिनो बृहस्पते युवमिति शस्त्रयाग्या । सूचितं च । बृहस्पते युवमिन्द्रस्य वस्व इति याज्या । आ० ६. १. इति ॥ वाजपेयैऽतिरिक्तोक्त्यस्यैव परिधानीया । सूचितं च । बृहस्पते युवमिन्द्रस्य वस्व इति परिधानीया । आ० ९. ९. इति ॥

बृहस्पते युवमिंद्रश्च वस्त्वो दिव्यस्त्वेशाथे उत पार्थिवस्य ।

धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

बृहस्पते । युवं । इंद्रः । च । वस्त्वः । दिव्यस्य । ईशाथे इति । उत । पार्थिवस्य ।

धत्तं । रयिं । स्तुवते । कीरये । चित् । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ १० ॥

हे बृहस्पते त्वं चंद्रश्च युवां दिव्यस्य दिवि भवस्य वस्त्वो वसुनो धनस्त्वेशाथे । अतः कारणात् स्तुवते स्तोत्रं क्रीरये । स्तोत्रनामैतत् । स्तोत्रे रयिं धनं धत्तं । दत्तं । चिदिति पूरणः । अन्यत्रतं ॥ २२ ॥

अध्वर्यव इति सप्तर्चं नवमं सूक्तं वसिष्ठस्त्वार्यं वैष्णवेन्द्रं सप्तर्चिंद्राबाह्वस्यत्वा । तथा चानुक्रांतं । अध्वर्यवः सप्तोक्तदेवतांथिति ॥ पूर्वसूक्तेन सहोक्तो विनियोगः ॥

अध्वर्यवोऽरूणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनां ।

गौरावेदीयाँ अवपानमिंद्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥

अध्वर्यवः । अरूणं । दुग्धं । अंशुं । जुहोतन । वृषभाय । क्षितीनां ।

गौरात् । वेदीयान् । अवऽपानं । इंद्रः । विश्वाहा । इत् । याति । सुतऽसोमं । इच्छन् ॥ १ ॥

हे अध्वर्यवोऽध्वरस्य नेतार ऋत्विजः क्षितीनां वनाणां मध्ये वृषभाय अष्टर्चिंद्राबाह्वस्यमारोचमानं दुग्धमभिषुतमंशुं सोमं जुहोतन । कुञ्जत । अवपानमवकम्प्य क्षितं दूरस्थं पातयं सोमं गौरात्नीरमृगादपि वेदीयानतिशयेन विद्वानिंद्रः सुतसोममभिषुतसोमं यजमानमिच्छन्नन्विच्छन् विश्वाहा विश्वान्यहानीदेव सर्वदेव याति । गच्छति । अतस्तस्मा इंद्राय सोमं कुञ्जतेत्यन्वयः ॥

यद्दधिषे प्रदिवि चार्वेचं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।

उत हृदोत मनसा जुषाण उशनिंद्र प्रस्थितान्पाहि सोमान् ॥ २ ॥

यत् । दधिषे । प्रऽदिवि । चारुं । अर्चं । दिवेऽदिवे । पीतिं । इत् । अस्य । वक्षि ।

उत । हृदा । उत । मनसा । जुषाणः । उशन् । इंद्र । प्रऽस्थितान् । पाहि । सोमान् ॥ २ ॥

हे इंद्र प्रदिवि प्रगतेषु दिवसेषु पूर्वक्षिप्त्वासे चारु शोमनं यत्सोमसचणमन्नं दधिषे पाणिनोदरे धारयसि अस्व सोमस्य पीतिमित् पाणमेव दिवे दिवे प्रतिदिवसमिदानीमपि वधि । कामयसे ॥ वध कांतावित्यस्य सिपि शपो कुकि षत्वकत्वषत्वेत्तद्रूपं ॥ उतापि च हे इंद्र हृदा हृदयेन । उतशब्दार्थः । मनसा च जुषाणः सेवमान उशन्नश्चाङ्गामयमानस्त्वं प्रस्थितान् पुरस्तात्नीतानुत्तरवेदिस्थान् सोमान्पाहि । पिय ॥

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।

इंद्रं पप्राथोर्वैतरिखं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥

जज्ञानः । सोमं । सहसे । पपाथ । प्र । ते । माता । महिमानं । उवाच ।

आ । इंद्र । पप्राथ । उरु । अंतरिखं । युधा । देवेभ्यः । वरिवः । चकर्थ ॥ ३ ॥

हे इंद्र त्वं जज्ञानो आयमान एव सहसे वजाय सोमं पपाथ । पीतवानसि । ते तव महिमानं महत्त्वं माता त्वदीया जनन्यदितिः प्रोवाच । प्रोक्तवती । संवादसूक्तेऽयं पंथा इत्यादिके नही न्यस्य । अ० ४. १८. ४. ।



इत्यर्धर्षादारम्भादिर्निद्रमहत्त्वस्रोतत्वात् । अतः कारणात् हे इंद्र त्वमुक् विस्तीर्यमंतरिक्षमा प्रप्राप । स्वतेज-  
सापूरितवानसि । अपि च युधा युधेन देवेभ्यः स्रोतुम्भो देवेभ्य एव वा वरिवो धनं चकार । कृतवानसि ॥

यद्यो॒धया॑ मह॒तो म॒न्य॒माना॒न्साक्षा॑म॒ तान्बा॒हुभिः॑ शाश॑दानान् ।

यच्चा॒ नृभिर्वृ॑तं इं॒द्राभियु॑ध्या॒स्तं त्वया॑जिं सौ॒श्रव॑सं जयेम ॥४॥

यत् । यो॒धयाः । म॒ह॒तः । म॒न्य॒मानान् । साक्षा॑म । तान् । बा॒हुऽभिः । शाश॑दानान् ।

यत् । वा । नृ॒ऽभिः । वृ॒तः । इं॒द्र । अ॒भिऽयु॑ध्याः । तं । त्वया॑ । आ॒जिं । सौ॒श्रव॑सं । ज॒येम ॥४॥

हे इंद्र महतः प्रभूतान् मन्यमानाञ्छूय्ययदा यो धाः अस्मानिर्घोषधेः । तेः सह योषुं वचं प्रयच्छे-  
रित्यर्थः । तदाणीं शाशदानान् हिंसितस्त्राञ्छूय्यबाहुभिरा युधनिरपेक्षैर्हस्तीरेव स्वप्नसादात्साधाम । सहैम ।  
अभिभवैम । यद्वा यदि वा हे इंद्र नृभिर्नैतृभिर्मरुद्विवृतः परियुतस्त्वमेवामियुध्याः अस्मादीयाञ्छूय्यनियुधेय  
सौश्रवसं । अबोऽन्नं यथो वा । शोभनस्य असो हेतुं तमाजिं संयामं त्वया सहायेन वचं जयेम ॥

प्रे॒द्रस्य॑ वोचं प्रथ॒मा कृ॒तानि॒ प्र नू॒तना॑ म॒घवा॒ या च॒कार ।

यदे॒दे॒वीर॑संहि॒ष्ट मा॒या अथा॑भव॒त्केव॑लः सोमो॑ अस्य ॥५॥

प्र । इं॒द्रस्य॑ । वो॒चं । प्रथ॒मा । कृ॒तानि॑ । प्र । नू॒तना॑ । म॒घऽवा॑ । या । च॒कार ।

य॒दा । इत् । अ॒दे॒वीः । अ॒संहि॑ष्ट । मा॒याः । अथा॑ । अ॒भव॑त् । के॒वलः । सोमः॑ । अ॒स्य ॥५॥

इंद्रस्य कृतानि वीर्यकर्माणि प्रथमा प्रथमानि पुरातनानि प्र वोचं । प्रव्रवीमि । मघवा मघवानिंद्रो या  
यानि चकार कृतवान् नूतना नूतनान्यभिगवानि च तानि प्र वोचं । यदेवदेवादेवीराधुरीर्मायाक्षीः कृतान्य-  
सहिष्ट अभ्यभूत् अथानंतरमेवाक्षेन्द्रस्य सोमः केवलोऽसाधारणोऽभवत् । तदाप्रभुत्वेव सोमक्षेन्द्रस्य आसा-  
धारणः संबंधो जात इत्यर्थः ॥

तवे॒दं वि॒श्वम॒भितः॑ प॒श॒व्यं॑ यत्प॒श्यसि॑ च॒क्षसा॒ सूर्य॑स्य ।

गवा॑मसि गोप॒तिरे॒कं इं॒द्र भ॒क्षी॒महि॑ ते प्र॒यंत॑स्य व॒स्वः ॥६॥

तव॑ । इं॒द्रं । वि॒श्वं । अ॒भितः॑ । प॒श॒व्यं॑ । यत् । प॒श्यसि॑ । च॒क्षसा॑ । सूर्य॑स्य ।

गवा॑ । अ॒सि । गो॒ऽप॒तिः । ए॒कः । इं॒द्र । भ॒क्षी॒महि॑ । ते । प्र॒यंत॑स्य । व॒स्वः ॥६॥

हे इंद्र पशव्यं । पशवो द्विविधा क्षिपादश्चतुष्पादश्च । तेभ्यो हितमभितः सर्वतो विद्यमानमिदं विश्वं सर्वं  
जगत्तत्त्वैवैव स्वभूतं । सूर्यस्य प्रेरकस्यादित्यस्य चक्षसा तेजसा यद्विश्वं पश्यसि त्वं प्रकाशयसि । अपि च हे इंद्र  
एक एव त्वं गोपतिरसि । न केवलमेकस्या एव गोपतिरपि तु सर्वासामित्याह गवामिति । अतः कारणात्  
त्वया प्रयतस्य प्रक्षस्य । द्वितीयार्थे षष्ठी । प्रतं वस्वो धनं मघोमहि । मघेमहि ॥

बृ॒हस्प॑ते यु॒वमि॑न्द्रश्च व॒स्वो दि॒व्यस्ये॑शा॒थे उ॒त पा॒र्थिव॑स्य ।

ध॒त्तं र॒यिं स्तु॒वते॑ की॒रये॑ चि॒द्यूयं॑ पा॒त स्व॒स्तिभिः॑ सदा॑ नः ॥७॥

बृ॒हस्प॑ते । यु॒वं । इं॒द्रः । च॒ । व॒स्वः । दि॒व्यस्य॑ । ई॒शा॒थे इति॑ । उ॒त । पा॒र्थिव॑स्य ।

ध॒त्तं । र॒यिं । स्तु॒वते॑ । की॒रये॑ । चि॒त् । यू॒यं । पा॒त । स्व॒स्तिऽभिः॑ । सदा॑ । नः ॥७॥

व्याख्यातव्यं । अश्वरार्यसु । हे बृहस्पते त्वं चंद्रश्च युवां दिव्यस्य पार्थिवस्य चोभयविधस्य धनस्येश्वरी भवथः । तौ युवां सुवते लोके धनं दत्तमिति ॥ २३ ॥

परो माचयेति सप्तर्चं दशमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं चैष्टमं । उरं यज्ञायेत्याद्यास्तिस्र एंद्रावैष्णव्यः शिष्टाः केवलविष्णुदेवताकाः । तथा चानुक्रांतं । परो वैष्णवं तूष्मिर्निग्र्यश्च तिस्र इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥ विष्णुदेवताके पशौ परो माचयेति पुरोडाशस्य याज्या । सूचितं च । परो माचया तन्वा वृधानेरावती धेनुमती हि भूतं । आ० ३. ८. इति ॥

परो माचया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वस्रुवन्ति ।

उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥ १ ॥

परः । माचया । तन्वा । वृधान । न । ते । महिऽत्वं । अन्तु । अश्रुवन्ति ।

उभे इति । ते । विद्म । रजसी इति । पृथिव्याः । विष्णो इति । देव । त्वं । परमस्य । वित्से ॥ १ ॥

पर इति सकारांतं परस्मादित्यस्यार्थे ॥ परशब्दाच्छांदसोऽसिप्रत्ययः परो दिवा पर एना पृथिव्या । ऋ० १०. ८२. ५. इति यथा । माचयेति व्यत्ययेन तृतीया ॥ माचया परः परस्माद्वर्तमानयापरिमितया तन्वा शरीरेण वृधान वर्धमान हे विष्णो ते तव महित्वं महत्त्वं नान्वस्रुवन्ति । नानुव्याप्नुवन्ति । वैविक्रमसमये यत्तव माहात्म्यं तत्सर्वैरपि जनेर्ज्ञातुं न शक्यत इत्यर्थः । ते तवोभे रजसी उभौ लोका पृथिव्या आरभ्य पृथिवीमंतरिक्षं च विद्म । जानीमः । वयं चक्षुषोपलभामहे नान्यत् । हे देव द्योतमान विष्णो त्वमेव परमस्य स्वर्गादेरुत्कृष्टलोकस्य । द्वितीयाथे षष्ठी । परमं लोको वित्से । जानासि । अतस्तव महत्त्वं न केनापि व्याप्तुं शक्यमिति भावः ॥

पूर्वोक्त एव पशौ न ते विष्णो इति वपाया अनुवाक्या । सूचितं च । न ते विष्णो जायमानो न जातस्त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्मां । आ० ३. ८. इति ॥

न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमंतमाय ।

उदस्तभा नाकमृष्वं बृहंतं दाधर्थं प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥ २ ॥

न । ते । विष्णो इति । जायमानः । न । जातः । देव । महिम्नः । परं । अंतं । आप ।

उत् । अस्तभाः । नाकं । मृष्वं । बृहंतं । दाधर्थं । प्राचीं । ककुभं । पृथिव्याः ॥ २ ॥

हे देव दानादिगुणयुक्त विष्णो ते तव महिम्नो महत्त्वस्य परं विप्रकृष्टमंतमवसानं जायमानः प्रादुर्भव-  
ज्जगो नाय । न प्राप्नोति । तथा जातः प्रादुर्भूतोऽपि जनो नैव प्राप्नोति । तव महत्त्वस्यावसानं नास्ति । अत एव सर्वेन जायत इति भावः । कोऽसौ महिमा तमाह । अष्वं दर्शनीयं बृहंतं महांतं नाकं सुलोकमुदस्तभाः । त्वमूर्ध्वमधारयः । यथाधो न पतति तथा । पृथिव्या भूमेः संबन्धिनीं प्राचीं ककुभं च दाधर्थं । धारितवानसि । उपलक्षणमेतत् सर्वस्य भूतजातस्य । तथा च मंचांतरं । य उ त्रिधातु पृथिवीमुत यामेको दाधार भुवनानि विश्वा । ऋ० १. १५४. ४. इति ॥

पूर्वोक्त एव यज्ञाविरावती इति हविषो याज्या । सूचितं च । इरावती धेनुमती हि भूतं विश्वकर्मन्हविषा वावृधान इति द्वे । आ० ३. ८. इति ॥

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।

यस्तभा रोदसी विष्णवेते दाधर्थं पृथिवीमभितो मयूखैः ॥ ३ ॥



इरावती इतीरावती । धेनुमती इति धेनुमती । हि । भूतं । सुयवसिनी इति  
सुयवसिनी । मनुषे । दशस्या ।

वि । अस्तभाः । रोदसी इति । विष्णो इति । एते इति । दाधर्षे । पृथिवी । अभितः ।  
मयूखैः ॥ ३ ॥

हे यावापृथिवी मनुषे सुवते मनुष्याय दशस्या दित्तया युक्ते युवाभिरावती अन्नवत्यौ धेनुमती गोमत्यौ  
सुयवसिनी शोभनयवसे च भूतं । अभूतं । द्विशब्दः प्रसिद्धौ । विष्णुना विष्णांतत्वाद्युवाभेवमेव खलु पूर्वमभूत-  
मित्यर्थः । हे विष्णो एते एते रोदसी यावापृथिवी अस्तभाः । विविधमधारयः । पृथिवीमूर्ध्वमुखत्वेन या-  
मधोमुखत्वेनेति विविधत्वं । अपि च पृथिवीं प्रथिताभिमां भूमिमभितः सर्वत्र स्थितिर्मयूखैः पर्वतेर्दाधर्ष ।  
धारितवानसि । यथा न चक्षति तथा दृढीकृतवानित्यर्थः । पर्वता हि विष्णोः स्तभूताः । विष्णुः पर्वतानाम-  
धिपतिरिति श्रुतेः । ते सं० ३. ४. ५. १. ॥

उरुं यज्ञाय चक्रयुः लोकं जनयता सूर्यमुषासमग्निं ।

दासस्य चिद्वृषशिप्रस्य माया जम्भयुर्नरा पृतनाज्येषु ॥ ४ ॥

उरुं । यज्ञाय । चक्रयुः । उं इति । लोकं । जनयता । सूर्यं । उषसं । अग्निं ।

दासस्य । चित् । वृषऽशिप्रस्य । मायाः । जम्भयुः । नरा । पृतनाज्येषु ॥ ४ ॥

हे इंद्राविष्णू यज्ञाय यजमानाद्योर्दं विस्तीर्णं लोकं स्वर्गाख्यं चक्रयुः । कृतवन्तौ खलु युवा । किं कुर्वन्तौ ।  
सूर्यं सर्वस्य प्रेरकमादित्यमुषसं तमोनिवारकमुषःकालमग्निं चासुरैरापृतं जनयन्तौ पुनः प्रादुर्भावयन्तौ । हे  
नरा नेतारविंद्वाविष्णू वृषशिप्रक्षीतत्संज्ञस्य दासस्य चिद्वृषपचयितुरसुरस्य मायाः पृतनाज्येषु संयामेषु  
जम्भयुः । विहंसयुः । युवां सूर्यादिकं जनयन्तावित्युच्यते ॥

इंद्राविष्णू दृंहिताः शंबरस्य नव पुरो नवतिं च अथिष्टं ।

शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं ह्यथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥ ५ ॥

इंद्राविष्णू इति । दृंहिताः । शंबरस्य । नव । पुरः । नवतिं । च । अथिष्टं ।

शतं । वर्चिनः । सहस्रं । च । साकं । ह्यथः । अप्रति । असुरस्य । वीरान् ॥ ५ ॥

हे इंद्राविष्णू दृंहिता दृढीकृता नव नवतिं च नवोत्तरनवतिसंख्याकाः पुरः पुराणि शंबरस्य स्तभूताभि  
अथिष्टं । अहिंसिष्टं ॥ अथ हिंसायां ॥ अपि च शतं सहस्रं च वर्चिनोऽसुरस्य वीरानप्रति प्रतिद्विन्द्वी यथा न  
भवन्ति तथा साकं सह सस्य एव ह्यथः । अहिंसिष्टं । यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रं । अ० २. १४. ६. इति हि  
नियमांतरं ॥

इयं मनीषा बृहती बृहंतोरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती ।

रेरे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पितृवत्तमिषो वृजनेष्विन्द्र ॥ ६ ॥

इयं । मनीषा । बृहती । बृहन्ता । उरुऽक्रमा । तवसा । वर्धयन्ती ।

रेरे । वां । स्तोमं । विदथेषु । विष्णो इति । पितृवत्तं । इषः । वृजनेषु । इन्द्र ॥ ६ ॥

बृहती महतीयं मनीषा मनीषा श्रुतिर्बृहन्ता बृहन्ती महन्तायुःक्रमा विस्तीर्णविक्रमौ । विष्णुना सहिष्णा-

धीमावादिन्द्रस्यायुषक्रमत्वं । तवसा । तव इति वक्षस्व वृद्धेर्वा नामधेयं । तद्वती एवंमूती युवां वर्धयन्ती प्रवृद्धी कुर्वन्त्वस्माभिः कृता । हे विष्णो हे इन्द्र विदधेयु यज्ञेषु वां युवाभ्यां स्तोममुक्तञ्चक्षणं स्तोत्रं ररे । ददे ॥ रा दान इति धातुः ॥ तौ युवां वृजनेष्विषोऽज्ञानि पितृवतं । अस्मभ्यं वर्धयतं ॥

अभुदयेष्टौ विष्णोः शिपिविष्टस्य वषट् इतिषानुवाक्या । सूचितं च । भद्रा ते हस्ता मुकृतोत पाणी वषट् विष्णवांस आ कृणोमि । आ० ३. १३. इति ॥

वषट् विष्णवांस आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यं ।

वर्धंतु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

वषट् । ते । विष्णो इति । आसः । आ । कृणोमि । तत् । मे । जुषस्व । शिपिऽविष्ट । हव्यं ।

वर्धंतु । त्वा । सुऽस्तुतयः । गिरः । मे । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

हे विष्णो ते तुभ्यमास आस्तादामिसुखं वषट् कृणोमि । करोमि । वषट्कारेण हविर्होवयामि । हे शिपि-  
विष्ट । शिप्यो ररमयः । तैराविष्ट विष्णो तद्वषट्कृतं मे मदीयं हव्यं हविर्जुषस्व । सेवस्व । सुष्टुतयः शोभनस्तु-  
त्यात्मिका गिरो वाचस्व त्वां वर्धंतु । वर्धयंतु । अन्यत्रतं ॥ ॥ २४ ॥

नू मर्ते इति सप्तचमेकादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थे त्रैष्टुभं विष्णवं । नू मर्ते इत्यनुक्रांतं ॥ उक्थ्येऽच्छावाकशस्त्र  
इदं शंसनीयं । सूचितं च । ऋतुर्जनिची नू मर्तो भवा मिचः । आ० ६. १. इति ॥

नू मर्तो दयते सनिष्यन्वो विष्णवे उरुगायाय दाशत् ।

प्र यः सचाचा मनसा यजात एतावतं नर्यमाविवासात् ॥ १ ॥

नु । मर्तः । दयते । सनिष्यन् । यः । विष्णवे । उरुऽगायाय । दाशत् ।

प्र । यः । सचाचा । मनसा । यजाते । एतावतं । नर्यं । आऽविवासात् ॥ १ ॥

स मर्तो मनुष्यः सनिष्यन्धनमिच्छन् चिप्रं दयते । धनमादत्ते ॥ दयतिरारूपपूर्वार्थे द्रष्टव्यः ॥ यो मनुष्य  
उरुगायाय वज्रभिः कीर्तनीयाय विष्णवे दाशत् हवींषि दद्यात् । यश्च सचाचा सहाचता मनसा मननेन  
स्तोत्रेण प्र यजाते प्रकर्षेण पूजयेत् एतावन्मेतावत्परिमाणं महान्तं नर्यं नरेभ्यो हितं विष्णुमाविवासात्  
गमस्कारादिभिः परिचरेत् । स मर्तो दयत इत्यन्वयः । यद्वा ॥ सनिष्यन्निति सन्तेर्लामार्थस्य छटि रूपं ॥ स  
मर्तः सनिष्यन् धनादीनि लप्स्यमानो भवन्नेव हविरादिकं नु चिप्रं दयते विष्णवे ददातीति योज्यं ॥

विष्णुदेवत्ये पशौ पुरोडाशस्य त्वं विष्णो इत्यनुवाक्या । सूचितं च । त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्वां वि-  
चक्रमे पृथिवीमेव एतां । आ० ३. ८. इति ॥

त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्वामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।

पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चंद्रस्य रायः ॥ २ ॥

त्वं । विष्णो इति । सुऽमतिं । विश्वऽजन्वां । अप्रऽयुतां । एवऽयावः । मतिं । दाः ।

पर्चः । यथा । नः । सुवितस्य । भूरेः । अश्वऽवतः । पुरुऽचंद्रस्य । रायः ॥ २ ॥

हे एवयावः । एवा प्राप्तव्याः कामाः । तान् चापयति प्रापयति स्तोतृनिष्येवयावः । हे एवयावन । विष्णो  
त्वं विश्वजन्वां सर्वजनहितां दोषैर्वियुक्तां सुमतिमनुग्रहवृद्धिं दाः । अस्मभ्यं देहि । सुदितस्य सुष्ठु प्राप्तव्यस्य  
भूरेरश्वस्यश्वावतोऽश्वयुक्तस्य पुरुचंद्रस्य पुरुषां बह्वनामाह्लादकस्य रायो धनस्य पर्चः संपर्को नोऽस्माकं  
यथा भवति तथा देहीत्यन्वयः ॥



विष्णव्यसोपांगुयावस्य चिदेव इति याज्या । सूचितं च । इदं विष्णुर्वि चक्रमे चिदेवः पृथिवीमेष एतां । आ० १. ६. । इति ॥ विष्णवे पञ्चावयेव वपाया याज्या । सूचितं च । चिदेवः पृथिवीमेष एतां परो मानया तन्वा वृधान । आ० ३. ८. । इति ॥

चिदेवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।

प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥३॥

त्रिः । देवः । पृथिवीं । एषः । एतां । वि । चक्रमे । शतऽर्चसं । महिऽत्वा ।

प्र । विष्णुः । अस्तु । तवसः । तवीयान् । त्वेषं । हि । अस्य । स्थविरस्य । नाम ॥३॥

एष देवो दानादिगुणयुक्तो विष्णुः शतर्चसं शतसंख्यान्यर्चोषि यस्यास्तादृशीमेतां पृथिवीं । उपलक्षण-  
मेतत् । पृथिव्यादींस्त्रीङोकावहित्वा महत्त्वेन चिर्वि चक्रमे । त्रिभिः पदैर्विक्रांतवान् । तवसस्तवस्विनो  
वृद्धादपि तवीयान् तवस्वितरो विष्णुः प्राप्नु । अस्माकं प्रभवतु । स्वामी भवतु । अस्य स्वविरस्य वृद्धस्य  
विष्णोर्नाम नामकं रूपं विष्णुरित्येतन्नामैव वा त्वेषं हि यस्याद्दोषं तस्मात्कारणात्स विष्णुः प्रभवत्वित्यर्थः ॥

पूर्वोक्त एव पशौ वि चक्रम इति वपाया अनुवाक्या । सूचितं च । वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां चिदेवः  
पृथिवीमेष एतां । आ० ३. ८. । इति ॥

वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां स्वेचाय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।

ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥४॥

वि । चक्रमे । पृथिवीं । एषः । एतां । स्वेचाय । विष्णुः । मनुषे । दशस्यन् ।

ध्रुवासः । अस्य । कीरयः । जनासः । उरुऽक्षितिं । सुऽजनिमा । चकार ॥४॥

एष देवो विष्णुरेतां पृथिवीं पृथिव्यादीनिमांस्त्रीङोकां स्वेचाय निवासार्थं मनुषे जुवते देवगणाय  
दशसन्नसुरेभ्योऽपहृत्य प्रदास्यन् वि चक्रमे । विक्रांतवान् । अस्य च विष्णोः कीरयः स्रोतारो जनासो जना  
ध्रुवासो निबला भवन्ति । ऐहिकामुष्मिकयोर्लामेन स्थिरा भवन्तीत्यर्थः । सुजनिमा शोभनानि अजनिमानि  
कीर्तनस्मरणदिना सुखहेतुभूतानि यस्य तादृशो विष्णुश्चरति विस्तीर्णनिवासं चकार । स्रोतुभ्यः करोति ॥

तृतीयसवनेऽतिरात्रादूर्ध्वं सोमातिरेके सति जेमिक्तिके होतुः शस्त्रे प्र तप्ते अवेति सोमियलृचः । आ०  
६. ७. ॥ अस्यद्वेष्टौ विष्णोः शिपिविष्टस्य प्र तप्ते अवेति याज्या । सूचितं च । वषट्ते विष्णुवास आ छणोमि  
प्र तप्ते अवे शिपिविष्ट नाम । आ० ३. १३. । इति ॥

प्र तप्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्थः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।

तं त्वा गुणामि तवसमर्तव्यान्क्षयंतमस्य रजसः पराके ॥५॥

प्र । तत् । ते । अद्य । शिपिऽविष्ट । नाम । अर्थः । शंसामि । वयुनानि । विद्वान् ।

तं । त्वा । गुणामि । तवसं । अर्तव्यान् । क्षयंतं । अस्य । रजसः । पराके ॥५॥

हे शिपिविष्ट रश्मिभिराविष्ट विष्णो ते तव तत्प्रसिद्धं विष्णुरिति प्रख्यातं नामार्थः स्वामी क्षुतोनां  
हविषां वा तथा वयुनानि ज्ञातव्यान्क्षयंतानि विद्वाज्जगन्नहमवेदानीं प्र शंसामि । प्रकर्षेण स्तौमि । तवसं  
प्रवृद्धं तं त्वा त्वां विष्णुमतव्यागतवीयानवृद्धतरोऽहं गुणामि । स्तौमि । कीदृशं । अस्य रजसो जोषस्य  
पराके दूरदेशे क्षयंतं निवसंतं ॥

किमिदं विष्णो परिचक्ष्यं भूत्प्र यद्वक्ष्ये शिपिविष्टो अस्मि ।

मा वर्षो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिधे बभूथ ॥ ६ ॥

किं। इत। ते। विष्णो इति। परिऽचक्ष्यं। भूत्। प्र। यत्। वक्ष्ये। शिपिऽविष्टः। अस्मि।

मा। वर्षः। अस्मत्। अप। गूहः। एतत्। यत्। अन्यऽरूपः। संऽइधे। बभूथ ॥ ६ ॥

पुरा खलु विष्णुः स्वं रूपं परित्यज्य कृचिमं कृपांतरं धारयन् संयामे वसिष्ठस्य साहाय्यं चकार । तं जानन्नृषिरनया प्रत्याचष्टे ॥ अथ निरुक्तं । शिपिविष्टो विष्णुरिति विष्णोर्द्वे नामनी भवतः । कृत्स्नितार्थीयं पूर्वं भवतीत्यपीमन्यवः । किं ते विष्णो प्रख्यातमेतद्वत्प्रख्यापनीयं यन्नः प्रब्रूये शेष इव निर्वेष्टितोऽस्तीत्यप्रतिपन्नरश्मिः । अपि वा प्रशंसानामैवाभिप्रेतं स्यात् । किं ते विष्णो प्रख्यातमेतद्वदति प्रख्यापनीयं यदुत प्रब्रूये शिपिविष्टोऽस्तीति प्रतिपन्नरश्मिः । शिपयोऽथ रश्मय उच्यते तैराविष्टो भवति । मा वर्षो अस्मदप गूह एतत् । वर्ष इति रूपनाम वृणोतीति सतः । यदन्यरूपः समिधे संयामे भवसि संयतरश्मिः । नि० ५. ८. इति ॥ तच्च कृत्स्नितार्थपत्तिं योजना । हे विष्णो ते तव तन्नाम किं परिचक्ष्यं प्रख्यापनीयं भूत् । भवति । किंशब्दः शेषे । अप्रख्यापनीयमेव तद्वदति । यन्नामास्माभ्यं प्र वच्ये प्रब्रूये शिपिविष्टोऽस्तीति । अंतर्णीतोपमानमेतत् । शिप इव निर्वेष्टितस्तेजसाणाच्छादितो भवामीति । तदस्तीत्यर्थत्वादिदं नाम न प्रशंसमित्यर्थः । तन्नाम किं परिचक्ष्यं वर्जनीयं परित्याज्यं । निरुक्तार्थप्रतिपादकत्वात्स्वत एव परित्यक्तं हि तत् । शिष्टं समानं पूर्वेण । अत उक्तरूपविलक्षणं यद्विष्णवरूपमस्त्येतद्वर्षो रूपमस्मादस्माकं माप गूहः । अपगूहं संवृतं मा कुरु ॥ गूह संवरणे ॥ अपि तु तदेव रूपं प्रकटय । विष्णवस्य रूपस्य गूहने का प्रसक्तिरिति चेत् । यद्यस्मादन्यरूपो कृपांतरमेव धारयन् समिधे संयामे बभूथ अस्माकं सहायो भवसि तस्मादिदं गूहनं न कार्यमिति ॥ प्रशंसापत्ते तु । हे विष्णो ते तव तन्नाम किं परिचक्ष्यं भूत् । किं प्रख्यापनीयं भवति । न प्रख्यापनीयं । किं तन्नाम । शिपिविष्टो रश्मिभिराविष्टोऽस्तीति यन्नाम प्रब्रूये । यत एवं प्रख्यातरूपस्त्वमतोऽस्माकमेतद्विष्णवं रूपं संवृतं मा कार्षीः । इदानीं गूढरूपोऽपि यद्यस्मात्त्वं समिधे संयामेऽन्यरूपः कृचिमरूपं यदन्यद्विष्णवं रूपं शौर्यादिलक्षणं तादृशं एव बभूथ भवसि तस्मात्त्वं गूढोऽपि ज्ञायस एवेति व्यर्थमेव तस्य रूपस्य गूहनं । अतो वज्रतेजस्कं यद्विष्णवं रूपं तदस्माकं प्रदर्शयेति तात्पर्यार्थः ॥

वर्षद्वे विष्णवांस आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यं ।

वर्धेतु त्वा सुष्टुतयं गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

वर्षद। ते। विष्णो इति। आसः। आ। कृणोमि। तत्। मे। जुषस्व। शिपिऽविष्टः। हव्यं।

वर्धेतु। त्वा। सुऽस्तुतयः। गिरः। मे। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः॥ ७ ॥

व्याख्यातेयं । अचरार्थसु । हे विष्णो तुभ्यमास्मादास्तेन वर्षद्वेतं तव्यदीयं हविर्हे शिपिविष्ट तेवस्व । शोभनश्रुतिरूपा मदीया वाचस्य त्वां वर्धयंतिति । शिष्टः पादः सिद्धः ॥ २५ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थीसत्तुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्वाजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुद्धभूपाससाक्षाज्यधुरंधरेण सायकाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहितामाध्वे पंचमाष्टके अत्रोऽध्यायः समाप्तः ॥



यस्य निःशसितं वेदा यो वेदेभ्योऽस्त्रिंशं जगत् ।

निर्ममे तमहं वदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

अथ सप्तमो व्याख्यास्यते । सप्तममंडलस्य षष्ठेऽनुपाक एकादश सूक्तानि व्याख्यातानि । तिस्रो वाच इति षट्चं द्वादशं सूक्तं । अथानुक्रम्यते । तिस्रः षट् पार्वन्वं त्विति । एते कुमार आपयोऽपस्त्रद्विष्ट एव वेति षष्ठ्यमाख्यत्वादपिपुचः कुमार अर्धर्वसिष्ठो वा । अनुक्तत्वान्निष्ठुप । इदमुचरं च पर्वन्वंदेवत्वं ॥ अथ श्रीनवः । आख्यदशं विगाह्यापः प्राबुधः प्रयतः मुचिः । सूक्ताभ्यां तिस्र आदिभ्यामुपतिष्ठेत् भास्करं । अनयतेतज्जगत्तं वृष्टिकामेन यत्नतः । पंचरात्रेऽप्यतिक्रान्तिं महतीं वृष्टिमाप्नुयात् । अग्नि० २. ३०. । इति ॥

ति॒स्रो वाचः॒ प्र वद॑ ज्योतिरया॒ या एतद्दु॑हे मधुदो॒घमू॑धः ।

स वत्सं॑ कृ॒खन्गर्भ॑भोषधीनां स॒द्यो जा॒तो वृष॑भो रोर॒वीति॑ ॥ १ ॥

ति॒स्रः । वाचः॑ । प्र । वद॑ । ज्योतिः॑ऽअयाः । याः । एतत् । दु॒हे । म॒धुऽदो॒घं । ऊ॒धः ।

सः । वत्सं॑ । कृ॒खन् । गर्भं॑ । ओषधीनां । स॒द्यः । जा॒तः । वृष॑भः । रोर॒वीति॑ ॥ १ ॥

अधिरात्मानं कुतो प्रेरयति । हे अग्ने तिस्रस्त्रिविधा अग्न्यवुःसामात्मिकाः कुतिरूपा वाचः प्र वद । प्रब्रूहि । कीदृशो वाचः । ज्योतिरयाः । ज्योतिर्योतमानः प्रणवोऽग्रे प्रमुखो यासां तादृशीः । या वाचो मधुदोघं मधुन उदकस्य दोहकं धृष्यदकस्य कर्तारमेतन्नमसि वृक्षमानमूध उन्नतं मेघं । यदा । कुतोपममेतत् । ऊध एव पयस आश्रयभूतं मेघं कुहे कुहते ॥ कुहेर्नटि लोपस्य आत्मनेपदेष्विति तल्लोपः । बाङ्लको षट् ॥ लोचैः प्रीतो हि पर्वन्वो मेघैर्वर्धयति । अतो वाच एव कुहंतीत्युपचर्यते । यदा ॥ वदेति व्यत्ययेन मध्यमः ॥ तिस्र इति द्रुतविशंबधितमध्यमभेदेन त्रिविधा ज्योतिरया विद्युत्प्रमुखा वाचः प्रवदेतेति । या गर्जितलक्षणा वाचो वृष्टिप्रदमेतं मेघं कुहे उदकानि कुहंति । एवंभूतः स च पर्वन्वो वत्सं सह निवसंतं वैद्युताग्निं ह्यखन् प्राबुध्नुर्वन् तमेवौषधीनां प्रीह्यादीनां च गर्भं कुर्वन् सद्यः श्रीघ्नं जातः प्राबुध्नुतो वृषभो वर्धिता सज्जोरवीति । भृशं शब्दायते ।

यो वर्ध॑न् ओषधीनां॒ यो अ॒पां यो विश्व॑स्य॒ जग॑तो दे॒व ई॒शे ।

स चि॒धातुं॑ श॒र॒णं श॒र्म यंस॑च्चि॒वर्तुं॑ ज्योतिः॑ स्वभि॒ष्ट्य॒स्मे ॥ २ ॥

यः । वर्ध॑नः । ओषधीनां । यः । अ॒पां । यः । विश्व॑स्य । जग॑तः । दे॒वः । ई॒शे ।

सः । चि॒ऽधातुं॑ । श॒र॒णं । श॒र्म । यंस॑त् । चि॒ऽवर्तुं॑ । ज्योतिः॑ । सु॒ऽअभि॒ष्टि । अ॒स्मे इति॑ ॥ २ ॥

यः पर्वन्व ओषधीनां वर्धनो वर्धयिता । यच्चापामुदकानां वर्धकः । यस्य देवो योतमानः पर्वन्वो विश्वस्य सर्वस्य जगत् ईशे ईष्टे ॥ लोपस्य आत्मनेपदेष्विति तल्लोपः । अधीगर्धेति । पा० २. ३. ५२. । कर्मणि शिवत्वेन विवर्धते षष्ठी । अनुदात्तेत्वाद्धसार्वधातुकानुदात्तत्वे धातुस्वरः । यदुक्तान्निष्ठमिति निघातप्रतिषेधः ॥ स पर्वन्वस्त्रिधातु चिभूमिकं शरणं गृहं शर्म सुखं च यंसत् । यच्छन् । अस्मभ्यं ददास्त्वित्यर्थः ॥ यमंलैवजागमः । सिद्धञ्जलमिति सिप् । इतस्य लोप इतीकारलोपः ॥ तथा चिवर्तुं चिद्युतुष्वतिशयेन वर्तमानं । अयति हि । चीषि वा आदित्यस्य तेजांसि वसंता प्रातर्योम्ने मध्यंदिने शरदपरार्द्धे । ति० सं० २. १. २. ५. । इति । एवंविधं स्वमिष्टि स्ववेषणं ज्योतिस्त्वेषणासौ अस्मभ्यं प्रयच्छतु ॥

स्त्रीरु॑ त्व॒ज्जव॑न्ति॒ सूत॑ उ त्वद्यथाव॒शं त॒व्यं च॑क्र ए॒षः ।

पितुः॑ पयः॒ प्रति॑ गृ॒ह्णाति॑ मा॒ता तेन॑ पि॒ता वर्ध॑ते॒ तेन॑ पु॒त्रः ॥ ३ ॥

स्त्रीः । ऊं इति । त्वत् । भवन्ति । सूते । ऊं इति । त्वत् । यथा ऽवशं । त्वं । चक्रे । एषः ।  
पितुः । पर्यः । प्रति । गृह्णाति । माता । तेन । पिता । वर्धते । तेन । पुत्रः ॥ ३ ॥

त्वदिति तकारान्तोऽन्यशब्दपर्यायोऽनुदात्तः सर्वनामसु पठितः ॥ अस्य पर्जन्यस्य त्वदन्यद्रूपं स्त्रीनिवृत्त-  
प्रसवा गौः सा यथा न दोग्ध्री तद्वत्पुंस्कं न भवति । उ इति पूरकः । द्वितीय उशब्दश्चार्थः । त्वदन्यस्य रूपं  
सूते । धेनुवत्प्रसूते । उदकानि प्रवर्षति । एष पर्जन्यस्य स्वकीयं शरीरं यथावशं यथाकामं स्त्रीत्वेन धेनुत्वेन  
च चक्रे । करोति । अपि च पितुर्दिवः सकाशात्पथो वृष्ट्युदकं माता पृथिवी प्रति गृह्णाति । प्रतिगृह्णाति ॥  
हयहोर्म इति भलं ॥ प्रतिगृहीतेन तेन हविरात्मना परिणतेन पिता बुल्लोको वर्धते । तेनैवोदकेन पुत्रः  
पृथिव्यां भवः प्राणिसंघोऽपि वर्धते ॥

यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्युस्तिष्ठो द्यावस्त्रेधा ससुरापः ।

चयः कोशास उपसेचनासो मध्वः श्रोतंत्यभितो विरप्शं ॥ ४ ॥

यस्मिन् । विश्वानि । भुवनानि । तस्युः । तिष्ठः । द्यावः । त्रेधा । ससुः । आपः ।

चयः । कोशासः । उपऽसेचनासः । मध्वः । श्रोतंति । अभितः । विऽरप्शं ॥ ४ ॥

यस्मिन्पर्जन्ये विश्वानि भुवनानि सर्वाणि भूतजातानि तस्युः तिष्ठन्ति । यदधीनवृत्तीनि भवन्तीत्यर्थः ।  
यस्मिंश्च बावो शुप्रभृतयो लोका अवतिष्ठते । यस्माच्चपस्त्रेधा ससुः प्राच्यः प्रतीच्योऽवाच्यश्च सत्यो निर्ग-  
च्छन्ति । उपसेचनास उपसेक्तारस्त्रयः पौरस्थः प्रतीच्य उदीच्यश्चेति त्रिप्रकाराः कोशासो मेघा विरप्शं महांतं  
पर्जन्यमभितः परितो मध्वः ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ मधूदकं श्रोतंति । चारयन्ति । वर्षन्ति ॥

इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्वतंरं तज्जुजोषत् ।

मयोभुवो वृष्टयः संत्वस्मे सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ॥ ५ ॥

इदं । वचः । पर्जन्याय । स्वऽराजे । हृदः । अस्तु । अंतंरं । तत् । जुजोषत् ।

मयः ऽभुवः । वृष्टयः । संतु । अस्मे इति । सुऽपिप्पलाः । ओषधीः । देवऽगोपाः ॥ ५ ॥

इदं वचो वचनं लोचं स्वराजे स्वायत्तदीप्तये पर्जन्याय क्रियते । एतच्च हृदस्तदीयस्य हृदयस्यांतरमंतर्ग-  
तमसु । स च तत्सोचं जुजोषत् । सेवतां ॥ जुवो प्रीतिसेवनयोः । लेख्यडागमच्छांदसः । शपः सुः ॥ मयोभुवः  
मुखस्य भावयिच्यो वृष्टयोऽस्त्री अस्माकं तत्प्रसादासंतु । भवन्तु । तथा देवगोपा देवः पर्जन्यो गोपायिता  
रचिता यासां तथाविधा ओषधीरोषधयश्च सुपिप्पलाः सुफला अस्माकं भवन्तु ॥

स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्युषश्च ।

तन्म ज्ञातं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

सः । रेतऽधाः । वृषभः । शश्वतीनां । तस्मिन् । आत्मा । जगतः । तस्युषः । च ।

तत् । मा । ज्ञातं । पातु । शतऽशारदाय । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ६ ॥

स पर्जन्यः शश्वतीनां बह्वीनामोषधीनां रेतोधा रेतस उदकस्य बीजभूतस्य धाता विनिधाता भवति ।  
वृषभ इत्युपमा । यथा कश्चिवृषभो बह्वीनां गवां गर्भस्थाधाता भवति तद्वत् । अतस्तस्मिन् पर्जन्ये जगतो  
जंगमस्य तस्युषः स्थावरस्य चात्मा देहो वर्तते । तत्पर्जन्येन दत्तमृतमुदकं मा मां शतशारदाय शतसंवत्सरजी-  
वनार्थं पातु । रचतु ॥ माशब्दस्य अत्यन्तं इति प्रकृतिभावो ब्रह्मत्वं च ॥ अन्यत्रतं ॥ १ ॥



पर्जन्यायेति तुचं त्रयोदशं सूक्तं गायत्रं । पूर्ववद्विदेवते । तथा चानुक्रांतं । पर्जन्याय तुचं गायत्रमिति ॥  
वैश्वानरपार्जन्यायामन्वारंमणीयायां पार्जन्यस्य चरोः पर्जन्यायेत्यनुवाक्या । सूच्यते हि । पर्जन्याय प्र गायत  
प्र वाता वांति पतयंति विद्युतः । आ० २. १५. । इति ॥

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळुषे । स नो यवसमिच्छतु ॥१॥

पर्जन्याय । प्र । गायत । दिवः । पुत्राय । मीळुषे । सः । नः । यवसं । इच्छतु ॥१॥

हे क्षीतारः पर्जन्याय देवाय प्र गायत । प्रकर्षेण क्षोचमुच्चारयत । कीदृशाय । दिवोऽंतरिक्षस्य पुत्राय  
तव हि पर्जन्यः प्रादुर्भवति । मीळुषे सेक्ते । स तादृशः पर्जन्यो नोऽस्मभ्यं यवसमोपध्यादिलक्षणमन्नं दातु  
मिच्छतु ॥

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वतां । पर्जन्यः पुरुषीणां ॥२॥

यः । गर्भं । ओषधीनां । गवां । कृणोति । अर्वतां । पर्जन्यः । पुरुषीणां ॥२॥

यः पर्जन्य ओषधीनां व्रीह्यादीनां गवामर्वतामर्वतीनां पुरुषीणां नारीणां च यः पर्जन्यो गर्भं प्रसूतिहेतु  
बीजमुदकरूपं कृणोति करोति तस्मै पर्जन्यायेत्युत्तरच संबंधः ॥

तस्मा इदास्यै हविर्जुहोता मधुमत्तमं । इळां नः संयतं करत् ॥३॥

तस्मै । इत् । आस्यै । हविः । जुहोत । मधुमत्तमं । इळां । नः । संयतं । करत् ॥३॥

तस्मा इत्तस्मा एव पर्जन्यायास्त्ये देवानामास्त्वभूतेऽपौ मधुमत्तमं रसवत्तमं हविर्जुहोत । जुहोत हे  
ऋत्विजः । स च पर्जन्यो नोऽस्मभ्यमिळामन्नं संयतं सम्यपियतं यथा भवति तथा करत् । करोतु । ददात्विति  
यावत् ॥ ॥२॥

संवत्सरमिति दशर्चं चतुर्दशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं वैद्युभं । आद्या त्वनुष्टुप् । मंडूका देवता । तथा चानुक्रांतं ।  
संवत्सरं दश पर्जन्यस्तुतिः संवृष्टान्मंडूकांस्तुष्टावाद्यानुष्टुबिति ॥ वृष्टिकामेनेतत्सूक्तं अर्थं ॥

संवत्सरं शश्याना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।

वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मंडूका अवादिषुः ॥१॥

संवत्सरं । शश्यानाः । ब्राह्मणाः । व्रतऽचारिणः ।

वाचं । पर्जन्यऽजिन्वितां । प्र । मंडूकाः । अवादिषुः ॥१॥

अत्र निश्चिंतं । वसिष्ठो वर्षकामः पर्जन्यं तुष्टाव तं मंडूका अन्वमोदंत स मंडूकाननुमोदमाणा इह्या  
तुष्टाव । नि० ९. ६. । इति । मंडूका मञ्जूका मञ्जनाम्बदेर्वा मोदतिकर्मणो मंदतेर्वा तुष्टिकर्मणो मंडयतेरिति  
वैयाकरणा मंड एषामोक इति वा मंडो मदेर्वा मुदेर्वा तेषामेषा भवति । नि० ९. ५. । इति ॥ व्रतचारिणो  
व्रतं संवत्सरसत्त्वात्माकं कर्माचरंतो ब्राह्मणाः । सुप्तोपममेतत् । एवंभूता ब्राह्मणा इव संवत्सरं शरत्प्रभृत्वा  
वर्षतोरेकं संवत्सरं शश्यानाः शिश्नाणा वर्षणार्थं तपश्चरंत इव बिल एव संत एते मंडूकाः पर्जन्यजिन्वितां  
पर्जन्येन प्रीतां यथा वाचा पर्जन्यः प्रीतो भवति तादृशीं वाचं प्रावादिषुः । प्रवदंति ॥

टिप्प्या आपो अभि यदेनमायन्दृतिं न शुष्कं सरसी शयानं ।

गवामह न मायुर्वंस्तिनीनां मंडूकानां वसुरचा समेति ॥२॥

दिव्याः। आपः। अभि। यत्। एनं। आयन्। दृतिं। न। शुष्कं। सरसी इति। शयानं।  
गवां। अहं। न। मायुः। वत्सिनीनां। मंडूकानां। वमुः। अचं। सं। एति ॥ २ ॥

दिव्या दिवि मत्रा आपो दृतिं न द्वातमिव शुष्कं नीरसं सरसी ॥ महत्सरः सरसी। गौरादिलक्षणो  
जीवः। सरसां। सुपां सुलुगिति सप्तम्या लुक्। ईदृती च सप्तम्यर्थ इति प्रगृह्यसंज्ञा ॥ महति सरसि निर्वले  
घर्मकाक्षे शयानं निवसंतमेनं मंडूकगणं यथादायन् अभिगच्छति तदाचाक्षिन्वर्षणे पर्जन्ये वा सति वत्सिनीनां  
वत्सयुक्तानां गवां न मायुर्गवां शब्द इव मंडूकानां वपुः शब्दः समेति। संगच्छते। यथा वत्सैः संगतासु गोषु  
महान् घोवो जायते तद्वदृष्टे पर्जन्ये महान् कलकलशब्दो जायत इत्यर्थः। अहेति पूरकः ॥

यदीमेनौ उशतो अभ्यवर्षीतृष्यावतः प्रावृष्यागतायां।

अखललीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदंतमेति ॥ ३ ॥

यत्। ईं। एनान्। उशतः। अभि। अवर्षीत्। तृष्याऽवतः। प्रावृषिं। आऽगतायां।

अखललीकृत्य। पितरं। न। पुत्रः। अन्यः। अन्यं। उप। वदंतं। एति ॥ ३ ॥

उशतः कामयमानांस्तृष्यावतस्तृष्यावत एनामंडूकान् प्रावृषि वर्षतोवागतायामागते सति यथादाभ्यवर्षीत्  
पर्जन्यो वत्सैरभिविंचति। ईमिति पूरणः। तदानीमखललीकृत्य। अखलल इति शब्दानुकारणं। अखललशब्दं  
हत्वा पुत्रः पितरं न पितरमिवान्यो मंडूको वदंतं शब्दयंतमन्यं मंडूकमुपैति। प्राप्नोति ॥

अन्यो अन्यमनु गृभ्णान्येनोरपां प्रसर्गे यदमदिषातां।

मंडूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्पृश्निः संपृक्ते हरितेन वाचं ॥ ४ ॥

अन्यः। अन्यं। अनु। गृभ्णाति। एनोः। अपां। प्रऽसर्गे। यत्। अमदिषातां।

मंडूकः। यत्। अभिऽवृष्टः। कनिष्कन्। पृश्निः। संऽपृक्ते। हरितेन। वाचं ॥ ४ ॥

एनोरेणयोर्तयोर्नडूकयोर्न्यो मंडूकोऽन्यं मंडूकमनुगम्य गृभ्णाति। गृह्णाति। अपामुदकानां प्रसर्गे  
प्रसर्गणे वर्षणे सति यथादामदिषातां दृष्टावभूतां। यथादा चाभिवृष्टः पर्जन्येनाभिविक्तः कनिष्कन् ॥ स्कंदते-  
र्यङ्कुशंतस्य रूपं ॥ मृशं स्कंदन्तुत्सवं कुर्वन् पृश्निः पृश्निवर्णो मंडूको हरितेन हरितवर्णेनान्येन मंडूकेन वाचं  
संपृक्ते संयोजयति उभावधिकविधं शब्दं कुर्वति। तदानीमन्योऽन्यमनु गृभ्णातांत्यन्वयः ॥

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शक्तस्यैव वदति शिक्षमाणः।

सर्वं तदेषां समृधेव पर्वं यत्सुवाचो वदयनाध्यप्सु ॥ ५ ॥

यत्। एषां। अन्यः। अन्यस्य। वाचं। शक्तस्यैव। वदति। शिक्षमाणः।

सर्वं। तत्। एषां। समृधाऽइव। पर्वं। यत्। सुऽवाचः। वदयन। अधि। अपऽसु ॥ ५ ॥

हे मंडूकाः यथादेषां शुष्माकं मध्येऽन्यो मंडूकोऽन्यस्य मंडूकस्य वाचं वदति अनुवदति अनुकरोति  
शिक्षमाणः शिक्षमाणः शिष्यः शक्तस्यैव शक्तिमतः शिष्यकस्य वाचं यथानुवदति तद्वत्। यथादा च सुवाचः  
शोभनवाचो द्रुयं सर्वेऽप्सु वृष्टेषूदकेष्वधुपरि अवंतो वदयन वदत शब्दं कुर्वत। तत्तदेषां शुष्माकं सर्वं पर्वं  
पश्यच्छरीरं समृधेव समृधमेवाविकलावथवमेव भवति। इवशब्दोऽवधारणे। घर्मकाक्षे मृन्नावमापन्ना  
मंडूकाः पुनर्वर्षणे सत्वविकलांगाः प्रादुर्भवन्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥



गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित् एक एषां ।

समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुचा वाचं पिपिषुर्वदंतः ॥ ६ ॥

गोऽमायुः । एकः । अजऽमायुः । एकः । पृश्निः । एकः । हरितः । एकः । एषां ।

समानं । नाम । बिभ्रतः । विरूपाः । पुरुऽचा । वाचं । पिपिषुः । वदंतः ॥ ६ ॥

एषां मंडूकानां मध्य एको मंडूको गोमायुरेकोमायुरिव मायुः शब्दो यश्च तावृशो भवति । एकोऽन्यो मंडूकोऽवमायुरवस्य मायुरिव मायुर्यस्य तावृशो भवति । एकः पृश्निः पृश्निवर्णः । एकोऽपरो हरितो हरितवर्णः । एवं विरूपा नागाख्या अपि समानमेकं मंडूका इति नाम बिभ्रतो धारयंतः पुरुचा वज्रपु देशेषु वाचं वदंतः शब्दं कुर्वंतः पिपिषुः । अवयवोभवति । प्राबुर्भवति । पिश्र अवयवे । पुरुशब्दाद्विवमनुष्ये-  
त्यादिना चाप्रत्ययः ॥

ब्राह्मणासो अतिराचे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदंतः ।

संवत्सरस्य तदहः परि ष्ट यन्मंडूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥ ७ ॥

ब्राह्मणासः । अतिराचे । न । सोमे । सरः । न । पूर्णं । अभितः । वदंतः ।

संवत्सरस्य । तत् । अहरिति । परि । स्य । यत् । मंडूकाः । प्रावृषीणं । बभूव ॥ ७ ॥

राचिमतीत्य वर्तत इत्यतिराचः । अतिराचे न सोमे । यथातिराचाख्ये सोमपात्रे ब्राह्मणासं ब्राह्मणा राचौ कुतश्चास्ति पर्यायेण शंसंति हे मंडूकाः । द्वितीयो नशब्दः संप्रत्यये । न संप्रति पूर्णं सरोऽभितः सर्वतो वदंतो राचौ शब्दं कुर्वन्ता यूयं तदहस्तद्विगं परि ष्ट । परितः सर्वतो भवथ । यदहः प्रावृषीणं प्रावृषेणं प्रावृषि भवं बभूव तस्मिन्नहनि सर्वतो वर्तमाना भवथेत्यर्थः ॥

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वंतः परिवत्सरीणं ।

अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न के चित् ॥ ८ ॥

ब्राह्मणासः । सोमिनः । वाचं । अक्रत । ब्रह्म । कृण्वंतः । परिवत्सरीणं ।

अध्वर्यवः । घर्मिणः । सिष्विदानाः । आवः । भवन्ति । गुह्याः । न । के । चित् ॥ ८ ॥

सोमिनः सोमयुक्ताः परिवत्सरीणं सांवत्सरिकं गवामयनिकं ब्रह्म कुतश्चास्ति कृण्वंतः कुर्वन्तो ब्राह्मणासः । सुप्तोपममेतत् । ब्राह्मणा इव वाचं शब्दमक्रत । अक्रतमेव मंडूकाः । अपि च घर्मिणो घर्मण प्रवर्गेण चरन्तोऽध्वर्यवोऽध्वरस्य नेतार अस्विन इव सिष्विदानाः स्विनानां गुह्या घर्मकास्ते बिभेऽभिगूढाः के चित् केचन मंडूका न संप्रति वृष्टौ सत्यामाविर्भवन्ति । आचते ॥

देवहिंति जुगुपुर्द्वादशस्य चतुं नरो न प्र मिनंत्येते ।

संवत्सरे प्रावृषागतायां तप्ता घर्मा अश्रुवते विसर्गे ॥ ९ ॥

देवऽहिंति । जुगुपुः । द्वादशस्य । चतुं । नरः । न । प्र । मिनन्ति । एते ।

संवत्सरे । प्रावृषि । आऽगतायां । तप्ताः । घर्माः । अश्रुवते । विऽसर्गे ॥ ९ ॥

नरो नेतार एते मंडूका देवहिंति देवैः कृतं विधानमस्मत्तोऽयं घर्म इत्येवंकृतं जुगुपुः । नोपायंति । कावे कावे रचंति । अत एव द्वादशस्य द्वादशमासात्मकस्य संवत्सरस्य तं तं वसंतादिकं न प्र मिनन्ति । न

हिंसन्ति । पर्यन्त्यन्तुरनुमोदनेन तत्तत्काले वृद्धिहेतवो भवन्तीत्यर्थः । संवत्सरे संपूर्णे प्रावृषि वर्षेतावागताया-  
मानते सति घर्माः पूर्वं घर्मकाले वर्तमानास्त्रास्त्रापेन पीडिताः संप्रति विसर्गे विसर्जनं विलासोचनमभ्युपगते ।  
प्राप्नुवन्ति ।

गोमायुरदाजमायुरदात्पृश्निरदाहरितो नो वसूनि ।

गवां मंडूका ददंतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरंत आयुः ॥ १० ॥

गोऽमायुः । अदात् । अजऽमायुः । अदात् । पृश्निः । अदात् । हरितः । नः । वसूनि ।

गवां । मंडूकाः । ददंतः । शतानि । सहस्रऽसावे । प्र । तिरन्ते । आयुः ॥ १० ॥

गोमायुर्गौरिव मायुः शब्दो यस्य तादृशो मंडूको वसूनि धनानि नोऽस्माभ्यमदात् । ददातु । अजमा-  
युषादात् । ददातु । हरितो हरितवर्णश्चादात् । ददातु । पृश्निः पृश्निवर्णश्चादात् । ददातु । तथा सहस्रसावे ।  
सहस्रसंख्याका जीवधयः सूर्यत उत्पद्यन्त इति वर्षतुः सहस्रसावः । तस्मिन् सति सर्वे मंडूका गवां शतान्यपरि-  
मिता गा ददन्तोऽस्माभ्यं प्रयच्छन्त आयुर्जीवनं प्र तिरन्ते । प्रवर्धयन्तु ॥ ४४ ॥

इंद्रासोमेति पंचविंशत्युचं पंचदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्थं । आद्याः षड्गण्यः सप्तमी जगती त्रिष्टुप्छाष्टादशैकविं-  
शीचयोर्विंशो जगतीऽत्या प्रति चत्वेत्यनुष्टुप् शिष्टाश्चतुर्दश त्रिष्टुभः । नवमीद्वादशीचयोदशः सोमदेवत्या  
एकादशी देवदेवत्याष्टमीयोक्तस्त्राविंशदेवताके सप्तदशी यावदेवत्याष्टादशी मरुदेवताका दशमीचतुर्दशाव-  
पिदेवताके प्र वर्तयेत्याद्याः पंचर्च इंद्रदेवताकाः । मा नो रच इति चयोर्विंशः पूर्वोऽर्धर्चो वसिष्ठश्च  
प्रार्थनापरः । अतसहदेवताकाः । उत्तरोऽर्धर्चः पृथिव्यंतरिक्षदेवतः । शिष्टानां रचोहृषाविंश्रासोमी देवता ।  
तथा चानुकांतं । इंद्रासोमा पंचार्धकिंद्रासोमं राक्षोघ्नं शापानिशापप्रार्थं षट् सप्त वाद्या जगत्य एकविंशी-  
चयोर्विंशो चाष्टादशी मापती च दशमीचतुर्दशावपिष्यो दैत्येकादश्यानुष्टुप्नवमी द्वादशी चयोदशी सौम्यः  
सप्तदशी यावदष्टमीयोक्तस्त्राविंशो प्र वर्तयेति पंचैश्रो मा नो रच इत्युपेरात्मन् आशीरुत्तरोऽर्धर्चः पृथिव्यं-  
तरिक्षदेवत इति ॥ अथ बृहदेवतायामनुक्रम्यते । संवत्सरं तु मंडूकानिंद्रासोमं परं तु यत् । अषिर्ददशं  
रक्षोघ्नं पुत्रशोकपरिमुक्तः । इति पुत्रशते क्रुद्धः सीदासिर्दुःखितस्तदा । नृ० ६. ८३७. ८४३. इति ॥ अतो रचोनि-  
वर्णार्थमेतत्सूक्तं आद्यं ॥

इंद्रासोमा तपंतं रक्ष उज्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।

परां शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमचिणः ॥ १ ॥

इंद्रासोमा । तपंतं । रक्षः । उज्जतं । नि । अर्पयतं । वृषणा । तमःऽवृधः ।

परां । शृणीतं । अचितः । नि । न्योषतं । हतं । नुदेथां । नि । शिशीतं । अचिणः ॥ १ ॥

हे इंद्रासोमा । इंद्रश्च सोमश्च इंद्रासोमौ ॥ देवताद्वये चेति पूर्वपदस्यानङ् । आमंचितायुदात्तत्वं ॥ रचो  
रचांसि ॥ आतावेकवचनं ॥ युवां तपतं । संतापयतं ॥ आमंचितं पूर्वमविद्यमानवदित्यविद्यमानवत्त्वात्  
तपतमिति तिङन्तस्य निघाताभावः ॥ तथोज्जतं । हिंसं ॥ उज्जतिर्हिंसाकर्मा । तिङ्गः परत्वान्निघाताभावः ॥  
हे वृषणा वृषणौ कामानां वर्धितारी न्यर्पयतं । रचांसि नीचैर्हं प्रापयतं । तमोवृधस्तमसावरकेणांधकारेण  
मायारूपेण वर्धमानान् तमसि राक्षो वर्धमानान्वाचितो ज्ञानरहिताकूटान्नाचसान् परां शृणीतं । परा-  
कुला यथा भवंति तथा हिंसं । तथा न्योषतं । नितरां दहतं ॥ उष दाहि ॥ हतं । ताभ्यारयतं । नुदेथां ।  
असतो हतांसान् प्रेरयेथां । अचिणोऽदनशीलांस्त्राचसान्नि शिशीतं । नितरां तनुकृतं ॥

इंद्रासोमा समघर्षंसमभ्यर्घं तपुर्नयस्तु चरुं मिवा इव ।

ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोर्चक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥ २ ॥



इंद्रासोमा । सं । अघऽशंसं । अभि । अयं । तपुः । ययस्तु । चरुः । अग्निवान्ऽइव ।  
ब्रह्मऽद्विषे । क्रव्यऽअदे । घोरऽचक्षसे । द्वेषः । धत्तं । अनवायं । किमीदिने ॥ २ ॥

हे इंद्रासोमौ अघशंसमघस्नानर्थस्य शंसितारमघमागत्वं इतारं राक्षसं सं सहेव । अमीति श्रुतेर्वीर्यमग्नि-  
याध्याहारः । अभिमवत्तं । स च तपुर्व्ययोक्तेजसा तप्यमानो राक्षसोऽपिवाग्निवाग्नियुक्तोऽपी प्रक्षिप्तश्चरिव  
ययस्तु ॥ ययु प्रयत्ने । केवलोऽप्ययमारूपपूर्वार्थे द्रष्टव्यः ॥ आयस्तु । आयासं प्राप्नोतु । उपवीयतामित्यर्थः ।  
अपि च ब्रह्मद्विषे ब्राह्मणेभ्योऽस्माभ्यं द्वेष्टे क्रव्यादे क्रव्यं मांसं मक्षयिषे घोरचक्षसे घोरदर्शनं य पक्ष्यमापिषे वा  
किमीदिने किमिदानीमिति चरते पिशुनाय द्वेषो द्वेषभावमनवायमव्यवायमनवयवं नैरंतर्येण यथा भवति  
तथा धत्तं । दत्तं ॥

इंद्रासोमा दुष्कृतां वव्रे अंतरनारंभणे तमसि प्र विध्यतं ।  
यथा नातः पुनरेकश्चनोदयत्तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥ ३ ॥  
इंद्रासोमा । दुऽकृतः । वव्रे । अतः । अनारंभणे । तमसि । प्र । विध्यतं ।  
यथा । न । अतः । पुनः । एकः । चन । उत्ऽअयत् । तत् । वां । अस्तु । सहसे ।  
मन्युऽमत् । शवः ॥ ३ ॥

हे इंद्रासोमौ दुष्कृतौ दुष्कर्मकारिणौ राक्षसान् वव्रे वारकेऽतर्मथेऽनारंभण आशंभनरहिते तमसं-  
धकारे प्र विध्यतं । प्रवेक्ष तादयतं । यथा येन प्रकारेणैषां मध्य एकस्यैकोऽपि राक्षसोऽतोऽस्मात्तमसः  
पुनर्नोदयत् चक्रच्छेत् । तथा विध्यतमित्यर्थः ॥ एतेर्लैवडागमः । इतश्च लोप इतीकारलोपः । गुणायादेशौ ॥  
तत्प्रासवं मन्युमत्क्रोधयुक्तं वां युवयोः शवो वक्षं सहसे रक्षसामभिमवनायास्तु । भवतु ॥

इंद्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्ह्येण ।  
उत्क्षतं स्वयै पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वधः ॥ ४ ॥  
इंद्रासोमा । वर्तयतं । दिवः । वधं । सं । पृथिव्याः । अघऽशंसाय । तर्ह्येण ।  
उत् । तक्षतं । स्वयै । पर्वतेभ्यः । येन । रक्षः । ववृधानं । निऽजूर्वधः ॥ ४ ॥

हे इंद्रासोमौ दिवोऽंतरिक्षात् युजोकाद्या वधं इननसाधनमायुधं सं वर्तयतं । उत्पादयतं । पृथिव्या  
अस्मादपि लोकात्तर्ह्येण हिंसकमायुधमघशंसायाचशंसमनर्थस्त्राशंसकं राक्षसं इतुमुत्पादयतं । तथा पर्वतेभ्यः  
पर्ववज्रो मेघेभ्यः सकाशात्स्वयै ॥ स्यु शब्दोपतापयोः ॥ उपतापकमग्निमुत्तपतं । उद्युतं कुपतं । येनाग्निना  
वावृधानं वर्धमानं प्रवृद्धं वा रक्षो राक्षसं निजूर्वधः निहयः ॥ युर्वी हिंसायां । तमग्निमुत्तपतमित्यर्थः ॥

इंद्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यमितप्रेभिर्युवमश्महन्मभिः ।  
तपुर्वधेभिरजरेभिरचिणो नि पर्शने विध्यतं यंतु निस्वरं ॥ ५ ॥  
इंद्रासोमा । वर्तयतं । दिवः । परि । अग्निऽतप्रेभिः । युवं । अश्महन्मऽभिः ।  
तपुऽवधेभिः । अजरेभिः । अचिणः । नि । पर्शने । विध्यतं । यंतु । निऽस्वरं ॥ ५ ॥

हे इंद्रासोमौ दिवोऽंतरिक्षात्परितः सर्वतो वर्तयतं । आयुधानि प्रेरयतं । युवं तौ युवामधितप्रेभिरचिणा  
संतप्रेक्षपुर्वधेभिरापकप्रहरैरजरेभिर्वरारहितैर्दंडैरश्महन्मभिरश्मसारभूतस्त्राघसो विकारैर्इननसाधनैरीरा-

युधिरचिह्नो राक्षसस्य पर्शने पार्श्वस्थानि नि विध्यतं । निहतं । ते च राक्षसा निःस्तरं निशब्दं यंतु । अपयंतु ।  
निर्गच्छंतु ॥ ५॥

इंद्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कस्याश्चैव वाजिना ।

यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीं व जिन्वतं ॥ ६ ॥

इंद्रासोमा । परि । वां । भूतु । विश्वतः । इयं । मतिः । कस्या । अस्याऽइव । वाजिना ।

यां । वां । होत्रां । परिऽहिनोमि । मेधया । इमा । ब्रह्माणि । नृपतीं इवेति नृपतीऽइव ।  
जिन्वतं ॥ ६ ॥

हे इंद्रासोमी इयमस्याभिः क्रियमाणाः अतिर्मन्नीया सुतिर्वाजिना वाजिनौ बलवन्तौ वा युवां विश्वतः  
सर्वतः परि भूतु । परिगृह्णातु । आप्नोतु वा । तच्च दृष्टांतः । कस्या कच्चबंधनी रज्जुरश्चैव यथाश्वं परिगृह्णाति  
तद्वत् । यां होत्रां वाचं वां युवाभ्यां मेधया परिहिनोमि प्रेरयामि । सेयं मतिरिति संबन्धः । अपि त्रैमेमान्य-  
स्याभिः कृतानि ब्रह्माणि सोषाणि --- यथा धनैः पूरयति तथा जिन्वतं । फलैः पूरयतं ॥

प्रति स्मरेथां तुजयन्निरेवैर्हतं दुहो रक्षसो भंगुरावतः ।

इंद्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद्यो नः कदा चिदभिदासति दुहा ॥ ७ ॥

प्रति । स्मरेथां । तुजयन्ऽभिः । एवैः । हतं । दुहः । रक्षसः । भंगुरऽवतः ।

इंद्रासोमा । दुऽकृते । मा । सुऽगं । भूत् । यः । नः । कदा । चित् । अभिऽदासति । दुहा ॥ ७ ॥

हे इंद्रासोमी तुजयन्निस्त्वरमाणैरेवैर्गतुभिरसैः प्रति स्मरेथां । अभिगच्छतं ॥ उपसर्गवशेन स्मरतिरचा-  
धीतरे वर्तते । यथा प्रसरणं प्रस्थानमिति ॥ अभिगत्य च द्रुहो द्रोघधून् भंगुरावतो भंजनकर्मवतो रक्षसो  
राक्षसान् हतं । हिंस्रं । हे इंद्रासोमी दुष्कृते पापकारिणे राक्षसाय सुगं सुखं मा भूत् । मा भवतु । द्रुहा  
द्रोहेण युक्तो यो नोऽस्मान् कदा चिदप्यभिदासति अभिहतिं तस्मै दुष्कृत इत्यन्वयः ॥

यो मा पाकेन मनसा चरंतमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।

आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इंद्र वक्ता ॥ ८ ॥

यः । मा । पाकेन । मनसा । चरंतं । अभिऽचष्टे । अनृतेभिः । वचःऽभिः ।

आपःऽइव । काशिना । संऽगृभीताः । असन् । अस्तु । असतः । इंद्र । वक्ता ॥ ८ ॥

पाकेन पक्वेन शुभेन मनसा चरंतं वर्तमानं सत्यवादिनं यो मां राक्षसोऽनृतेभिरनृतेरसत्त्वैर्वचोभिर्वचनैर  
भिचष्टे अभिशंसति मध्यसत्यवचनमारोपयति हे इंद्र काशिना मुष्टिना संगृभीताः सम्यग्गृहीता आप इव  
यथापो विशीर्णा भवन्ति तथासतोऽसत्यस्य वक्ता स राक्षसोऽसन्नस्तु । अविद्यमानो भवतु । नञ्श्रुत्वित्यर्थः ॥

ये पाकशंसं विहरंत एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधामिः ।

अहंये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निऽर्चतेरुपस्थे ॥ ९ ॥

ये । पाकऽशंसं । विऽहरंत । एवैः । ये । वा । भद्रं । दूषयन्ति । स्वधामिः ।

अहंये । वा । तान् । प्रऽददातु । सोमः । आ । वा । दधातु । निऽर्चतेः । उपऽस्थे ॥ ९ ॥



ये राक्षसाः पाकशंसं परिपक्ववचनं सत्यभाषिणं मामेवैरतथैः प्राप्तविराजोयैः कामैर्हेतुभूतेर्विहरन्ते विशेषेण हरन्ति उपपद्यन्ति । यथाकामं परिवदन्तीत्यर्थः । ये वा स्वधाभिर्वैर्युक्ता मद्रं अन्त्याणवर्तनं मां दूषयन्ति दुष्टं कुर्वन्ति तां सर्वाण सोमोऽह्ये वा सर्पाय वा प्रददातु । निर्वर्ततेः पापदेवताया उपपद्य चत्समे वा आ दधातु । प्रक्षिपतु ॥

यो नो रसं दिप्सन्ति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनां ।

रिपुः स्तेनः स्तेयकृद्भमेतु नि ष हीयतां तन्वां तनां च ॥ १० ॥

यः । नः । रसं । दिप्सन्ति । पित्वः । अग्ने । यः । अश्वानां । यः । गवां । यः । तनूनां ।

रिपुः । स्तेनः । स्तेयऽकृत् । द्भं । एतु । नि । सः । हीयतां । तन्वां । तनां । च ॥ १० ॥

हे अग्ने यो राक्षसो नोऽस्माकं पित्वोऽन्नस्य रसं सारं दिप्सति जिघांसति । यस्याश्वानामसदीयानां रसं दिप्सति । यश्च गवा रसं दिप्सति । यश्च तनूनामसदीयानां शरीराणां रसं दिप्सति । रिपुर्बाधकः स्तेनश्चौरः स्तेयकृन्नस्त्रापहतां स सर्वो जनो दधं हिंसामेतु । प्राप्नोतु । अपि च स बाधकस्तन्वा स्वकीयेन शरीरेण तना च तनयेन च नि हीयतां । निहीनो भवतु ॥ ६ ॥

परः सो अस्तु तन्वां तनां च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।

प्रति श्रुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सन्ति यश्च नक्तं ॥ ११ ॥

परः । सः । अस्तु । तन्वां । तनां । च । तिस्रः । पृथिवीः । अधः । अस्तु । विश्वाः ।

प्रति । श्रुष्यतु । यशः । अस्य । देवाः । यः । नः । दिवा । दिप्सन्ति । यः । च । नक्तं ॥ ११ ॥

स राक्षसस्तन्वा तना च ॥ अत्ययेन तृतीया ॥ तन्वाः शरीरस्य तनयस्य च परः परस्तादसु । वर्तमानो भवतु । उमाभ्यां विद्युक्तो भवत्वित्यर्थः । विश्वा व्याप्तास्तिस्रः पृथिवीस्त्रीक्षोक्तागधोऽसु । अधस्तात्भवतु । शोक-चयादपि प्रच्युतो भवत्वित्यर्थः । ये देवाः अस्य शचोर्यशोऽन्नं कीर्तिर्वा प्रति श्रुष्यतु । यो राक्षसो नोऽस्मान्दि-वाहनि दिप्सति जिघांसति यश्च नक्तं राक्षो जिघांसति अस्त्रोभयविधस्य यशः प्रति श्रुष्यत्विति संबंधः ॥

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।

तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥ १२ ॥

सुऽविज्ञानं । चिकितुषे । जनाय । सत् । च । असत् । च । वचसी इति । पस्पृधाते इति ।

तयोः । यत् । सत्यं । यतरत् । ऋजीयः । तत् । इत् । सोमः । अवति । हन्ति । असत् ॥ १२ ॥

प्रायेणेदमादिभिर्चर्मभी राक्षसेन सहर्षिणा शपथः क्रियते । अत्र केचिदाहुः । इत्वा पुत्रशतं पूर्वं वसिष्ठस्य महात्मनः । वसिष्ठं राक्षसोऽसि त्वं वासिष्ठं रूपमास्थितः ॥ अहं वसिष्ठ इत्येवं जिघांसू राक्षसोऽब्रवीत् । अब्रवीत्तरा अचो दृष्टा वसिष्ठेनेति नः श्रुतमिति ॥ चिकितुषे विदुषे जनायेदं सुविज्ञानं विज्ञातुं मुशकं भवति । किं तत् । सच्चासच्च सत्य चासत्यं च । वचसी सत्यासत्यरूपे वचने पस्पृधाते । मिथः स्पर्धन्ते । तयोः सदस-तोर्मध्ये यत्सत्यं यथार्थं वचनं यतरदृजीय ऋजुतममकुटिलं तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् । असदुक्तविषयमसत्यं इति । हिनस्ति । एवं सत्यावयोर्मध्ये कतरोऽनुतभापीति विद्वद्भिः सुवि-ज्ञानमित्यर्थः ॥

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न स्रुचियं मिथुया धारयन्तं ।

हन्ति रक्षो हन्त्यासच्चदंतमुभाविंदस्य प्रसितौ शयाते ॥ १३ ॥

न । वै । ऊं इति । सोमः । वृजिनं । हिनोति । न । अचियं । मिथुया । धारयंतं ।  
हन्ति । रक्षः । हन्ति । असंतं । वदंतं । उभौ । इंद्रस्य । प्रसंसितौ । श्याते इति ॥ १३ ॥

वृजिनं पापकारिणं राक्षसं सोमो देवो न वा उ न खलु हिनोति । प्रेरयति । गच्छ त्वमिति न मुंचति ।  
तथा अचियं । अचं वचं । तद्धतं मिथुया मिथ्याभूतं वचनं धारयंतं विधत्तमसत्यवादिनं पुण्यं न च हिनोति ।  
न विदधति । अपि तु रक्षो राक्षसं हन्ति । असदसत्यं वदंतं च हन्ति । हिनसि । उभौ राक्षसानुतवादिनौ तौ  
सोमेन हताविंद्रस्य संबन्धिनि प्रसितौ बंधने श्याते । निवसतः । यद्वा । इंद्रस्येति मृतीपार्थे यद्वा । इंद्रस्येति  
सोमेन प्रसितौ यद्वा ॥ पित्र बंधने । अस्मात्कर्मणि निष्ठा । गतिरनंतर इति गतिः प्रकृतिसरत्वं ॥

यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवां अप्यूहे अमे ।  
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्वृथं संचतां ॥ १४ ॥  
यदि । वा । अहं । अनृतदेवः । आसं । मोघं । वा । देवान् । अपिऽऊहे । अमे ।  
किं । अस्मभ्यं । जातवेदः । हृणीषे । द्रोघवाचः । ते । निऽऽवृथं । संचतां ॥ १४ ॥

यदि वाहमनृतदेवोऽनृता असत्यभूता देवा यस्य तादृशो यद्यहमास अस्मि । अपयं मोघं वा निष्कृतं  
वा देवानप्यूहे उपगच्छामि । अहं यद्युक्तूपोऽस्मि हे अमे तर्हि मां बाधस्व । न ह्यहं तथाविधोऽस्मि । एवं  
सति हे जातवेदो जातानां वेदितरमे अस्मभ्यं किंकारणं हृणीषे । कुप्यसि । तव क्रोधोऽस्मासु न बाधतामि-  
त्यर्थः । द्रोघवाचोऽनृतवाचो राक्षसास्ते तव निर्वृथं ॥ निष्पूर्वोऽर्तिर्हिंसायां वर्तते ॥ निर्वृथं निःशेषणार्तिं  
हिंसां संचतां । संचतां ॥

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्तप पूरुषस्य ।  
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥ १५ ॥  
अद्य । मुरीय । यदि । यातुधानः । अस्मि । यदि । वा । आयुः । तप । पूरुषस्य ।  
अधः । सः । वीरैः । दशभिः । वि । यूयाः । यः । मा । मोघं । यातुधानः । इति । आह ॥ १५ ॥

इयमपि प्रपञ्चक्येव । यद्यहं वसिष्ठो यातुधानो राक्षसोऽस्मि अद्यास्मिन्नैव दिने मुरीय । शिषेय । अपि  
वा पूरुषस्य मनुष्यायुर्वीवितं यद्यहं राक्षसो भूत्वा तप हिंसितवानस्मि तर्ह्यप्यहमस्य शिषेयित्वमवयः ।  
अधाधिवं स्थात् अहं वसिष्ठस्त्वं राक्षस इति तर्हि स त्वं दशभिर्वीरैः पुषेः । उपसन्नमेतत् । सर्वैर्वपुष्वैर्वि  
यूयाः । वियुक्तो भवेः । यो राक्षसो मा मां मोघं मृषेव हे यातुधान हे राक्षसेति संबोधाह ॥ १५ ॥

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।  
इंद्रस्तं हंतु महता वधेन विश्वस्य जंतोरधमस्पदीष्ट ॥ १६ ॥  
यः । मा । अयातुं । यातुधानः । इति । आह । यः । वा । रक्षाः । शुचिः । अस्मि । इति । आह ।  
इंद्रः । तं । हंतु । महता । वधेन । विश्वस्य । जंतोः । अधमः । पदीष्ट ॥ १६ ॥

यो राक्षसो मामयातुमराक्षसं संतं हे यातुधान हे राक्षसेति संबोधाह ब्रूते यो वा यस्य रक्षा राक्षसः  
शुचिरस्मि शुद्धो भवामि न राक्षसोऽस्मीत्याह ब्रूते तमुभयविधं राक्षसमिंद्रो महता प्रीडेन वधेनापुधेन  
वधेन हंतु । हिनलु । स च विश्वस्य सर्वस्य जंतोर्वनसाधनो निरुद्धः सन् पदीष्ट । पततु ॥



प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप दुहा तन्वं गूहमाना ।

वव्रौ अनंतौ अव सा पदीष्ट यावाणो भंतु रक्षस उपव्यैः ॥१७॥

प्र । या । जिगाति । खर्गलाऽइव । नक्तं । अप । दुहा । तन्वं । गूहमाना ।

ववान् । अनंतान् । अव । सा । पदीष्ट । यावाणः । भंतु । रक्षसः । उपव्यैः ॥१७॥

या राक्षसी गतं रात्रौ दुहा द्रोहिण युक्ता खर्गलेवोल्बुकीव प्र जिगाति प्रगच्छति । किं कुर्वती । तन्वं स्वकीयं शरीरमप गूहमानापवृष्यती प्रकाशयती । सा राक्षसगतानपर्यंतान्वत्राण् गर्तानव पदीष्ट । अवा-  
चुषी पततु । यावाणः सोमामिषवार्थाः पावाणासोपव्यैरमिषवशब्दे रक्षसो राक्षसान् भंतु । हिंसंतु ॥

वि तिष्ठध्वं मरुतो विस्त्रिध्वं गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।

वयो ये भूत्वी पतयंति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥१८॥

वि । तिष्ठध्वं । मरुतः । विस्त्रिध्वं । गृभायत । रक्षसः । सं । पिनष्टन ।

वयः । ये । भूत्वी । पतयंति । नक्तऽभिः । ये । वा । रिपः । दधिरे । देवे । अध्वरे ॥१८॥

हे मरुतः ध्रुवं विषु प्रजासु वि तिष्ठध्वं । विविधं तिष्ठत । तच्च गूढाज्ञाचसान् हंतुमिच्छत । अन्विच्छत । तदनंतरं रक्षसान्नाचसान् गृभायत । गृभ्णीत । गृह्णीत । गृहीत्वा च सं पिनष्टन । घूर्णयत । ये राक्षसा वयः पक्षिणो भूत्वी भूत्वा नक्तमी रात्रिमी रात्रिषु पतयंति आगच्छंति । ये वा ये च देवे दीप्तिऽध्वरे यावे रिपो हिंसा दधिरे विदधिरे । ताज्ञाचसान् सं पिनष्टनेत्यन्वयः ॥

प्र वर्तय दिवो अश्मानमिंद्र सोमशितं मघवन्तं शिशधि ।

प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तादभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१९॥

प्र । वर्तय । दिवः । अश्मानं । इंद्र । सोमऽशितं । मघऽवन् । सं । शिशधि ।

प्राक्तात् । अपाक्तात् । अधरात् । उदक्तात् । अभि । जहि । रक्षसः । पर्वतेन ॥१९॥

हे इंद्र दिवोऽंतरिक्षादश्मानमग्निं प्र वर्तय । प्रेरय राक्षसान् हंतुं । तथा सोमशितं सोमेन तीक्ष्णीभूतं यवमानं हे मघवन् धनवमिंद्र सं शिशधि । संक्षुब्ध । अपि च प्राक्तात् प्राच्या अपाक्तात् प्रतीच्या अधरा-  
दवाच्या उदक्तादुत्तरतः सर्वथादपि दिग्भागाद् राक्षसो राक्षसान् पर्वतेन पर्ववता वक्षेयामि जहि । मारय ॥

एत उ न्ये पतयंति श्रयातव इंद्रं दिप्संति दिप्सवोऽदाभ्यं ।

शिशिति शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥२०॥

एते । ऊं इति । न्ये । पतयंति । श्रयातवः । इंद्रं । दिप्संति । दिप्सवः । अदाभ्यं ।

शिशिति । शक्रः । पिशुनेभ्यः । वधं । नूनं । सृजत् । अशनिं । यातुमत्ऽभ्यः ॥२०॥

ते त एते राक्षसाः श्रयातवः अभिः परिकरभूतेर्हिंसतः अभिः सह यांतो वा पतयंति । पतंति । ये दिप्सवो विघांसवः संतोऽदाभ्यमहिंसमिंद्रं दिप्संति विघांसंति तेभ्यः पिशुनेभ्यः पिशुनान् कपटान् हंतुं शक्रः  
शक्त इंद्रो वधमायुधमग्निश्च शिशिति । तीक्ष्णीकरोति । यातुमद्भ्यो राक्षसेभ्यो नूनं क्षिप्रमग्निं सजत् ।  
विक्रजतु हननार्थं ॥ ८॥

इंद्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याऽविवासतां ।

अभीदुं शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्सत एति रक्षसः ॥ २१ ॥

इंद्रः । यातूनां । अभवत् । पराऽशरः । हविःऽमथीनां । अभि । आऽविवासतां ।

अभि । इत् । ऊं इति । शक्रः । परशुः । यथा । वनं । पात्राऽइव । भिन्दन् । सतः ।  
एति । रक्षसः ॥ २१ ॥

यातूनां हिंसकानां रक्षसामयमिंद्रः पराशरः पराशातयिता हिंसिताभवत् । कीदृशानां । हविर्मथीनां  
हवींषि मथ्यतामभिसुखमाविवासतामागच्छतां । अपि चायं शक्र इंद्रो वनं वृषजातं परशुर्यथा हिंदन्कुठार  
इव पात्रेव मृचयानि पात्राणि भिन्दन् मुन्नर इव च सतः । प्राप्तनामैतत् । यदाह यास्कः । तिरः सत इति  
प्राप्तस्य । नि० ३. २०. । इति । प्राप्तान्नक्षसो राक्षसान् भिन्दन् हिंसन्नभ्येति । अभिगच्छति । इदु पूरणे ॥

उलूकयातुं शुश्रूळूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुं ।

सुपर्ण्यायातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इंद्र ॥ २२ ॥

उलूकऽयातुं । शुश्रूळूकऽयातुं । जहि । श्वऽयातुं । उत । कोकऽयातुं ।

सुपर्णऽयातुं । उत । गृध्रऽयातुं । दृषदाऽइव । प्र । मृण । रक्षः । इंद्र ॥ २२ ॥

उलूकयातुं । उलूकः परिकरभूतः सह यातयति हिनस्तीति याति गच्छतीति उलूकयातुः । यद्वा । उलू-  
कस्यो यातीत्युलूकयातुः । हे इंद्र तादृशं राक्षसं जहि । विनाशय ॥ तथा च बृहदेवतायामुक्तं । उलूकयातुं  
जहीतान्नानारूपान्निशाचरान् । स्त्रीपुरुषांश्च तिर्यंचो जिघांसुनिंद्र मे जहीति । वृ० ६. ८४१. ॥ एवमुत्तरचापि  
योज्यं । शुश्रूळूकयातुं । उलूका द्विविधाः बृहदुलूका अल्पोलूकाश्चेति । तत्रोलूकयातुमिति बृहदुलूकामिप्रा-  
येणोक्तं । शुश्रूळूकः उलूकः शुश्रूळूकः । तद्रूपेण वर्तमानं राक्षसं श्वयातुं श्वरूपेण वर्तमानं राक्षसमुतापि च  
कोकयातुं । कोकश्चक्रवाकः । तद्रूपेण वर्तमानं राक्षसं सुपर्ण्यायातुं । सुपर्णः श्वेनः । तदाकारं यातुधानमुतापि  
च गृध्रयातुं गृध्ररूपं च यातुधानं । एतान् सर्वांज्ञानाकारान् हे इंद्र जहि । किं ब्रह्मना दृषदेव पाषाणेनेव  
वक्ष्येण रक्षो राक्षसमानं प्र मृण । मारय ॥

मा नो रक्षो अभि नङ्मातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना ।

पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽंतरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥ २३ ॥

मा । नः । रक्षः । अभि । नट् । यातुऽमावतां । अप । उच्छतु । मिथुना । या । किमीदिना ।

पृथिवी । नः । पार्थिवात् । पातु । अंहसः । अंतरिक्षं । दिव्यात् । पातु । अस्मान् ॥ २३ ॥

रक्षो राक्षसजातिनोऽस्मान् मामि नट् । मामिव्याप्नोतु ॥ नशतेर्वाप्नोत्कर्मणो मुक्तिं मंचे घसेति त्रैलोक्यं ।  
न माङ्गो ग इत्यङ्भावः ॥ तथा यातुमावतां यातनावतां राक्षसानां मिथुना मिथुनानि स्त्रीपुरुषाणि  
युगलान्यपोच्छतु । उपा अपि विनाशयतु । अपवर्जयतु । या यानि मिथुनानि किमीदिना किमीदि-  
नानि किमिदं किमिदमिति जिघांसया वर्तमानानि भवन्ति । अपि च पृथिवी प्रथितेयं भूमिश्च नोऽस्मान्  
पार्थिवात्पृथिव्या अंतरिक्षस्य संबंधिनोऽहसः पापात्पातु । रक्षतु । अंतरिक्षं च दिव्यादिवि भवात्पापाद-  
स्यान् पातु । रक्षतु ॥

इंद्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शशदानां ।

विषीवासो मूरदेवा च्छदंतु मा ते दृशन्सूर्यमुच्चरंतं ॥ २४ ॥



इंद्रं । जहि । पुमांसं । यातुऽधानं । उत । स्त्रियं । मायया । शाशदानां ।  
विऽर्यावासः । मूरऽदेवाः । अदंतु । मा । ते । दृशन् । सूर्यं । उतऽचरंतं ॥ २४ ॥

हे इंद्र पुमांसं पुंरूपधारिणं यातुधानं राक्षसं अहि । मारय । उतापि च मायया बंधनया शाशदानां  
हिंसंतीं स्त्रियं राक्षसीं च अहि । अपि च मूरदेवा मारणक्रीडा राक्षसा विर्यावासो विच्छिन्नरीवाः संत  
अदंतु । नशंतु । ते तथाविधा राक्षसा उच्चरंतमुद्यंतं सूर्यमादित्यं मा दृशन् । मा द्राशुः ॥

उपाकरणोत्सर्जनयोर्मंडलावंतहोमे प्रति चक्षेतेषा । सूषितं च । यो नः स्तो चरणः प्रति चक्ष  
। आ० गृ० ३. ५. ७. । इति ॥

प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेद्रश्च सोम जागृतं । रक्षोभ्यो वधमस्यतमश्निं यातुमज्ञः ॥ २५ ॥  
प्रति । चक्ष्व । वि । चक्ष्व । इंद्रः । च । सोम । जागृतं । रक्षःऽभ्यः । वधं । अस्यतं ।  
अश्निं । यातुमत्ऽभ्यः ॥ २५ ॥

हे सोम त्वमिंद्रश्च प्रति चक्ष्व । प्रत्येकं पञ्च राक्षसान् । तथा वि चक्ष्व । विविधं पञ्च । यथास्मान्न  
नाधिरन् तथा पश्येत्पर्यः । युवां च संगृह्यतौ जागृतं । जागरूकौ रक्षोवधोयुक्तौ भवतं । यातुमज्ञो हिंसावज्ञो  
रक्षोभ्यो राक्षसेभ्योऽश्निमश्निरूपं वधमायुधमस्सतं । क्षिपतं ॥ २५ ॥

॥ इति सप्तमे मंडले षष्ठोऽनुवाकः । सप्तमं मंडलं समाप्तं ॥

## ॥ ऋग्वेदः ॥

### ॥ अथाष्टम मंडल ॥

अष्टमे मंडले दशानुवाकाः । तत्र प्रथमेऽनुवाके पंच सूक्तानि । तेषु मा चिदन्यदिति चतुस्त्रिंशद्वचं प्रथमं सूक्तं । अचानुक्रम्यते । मा चिदनुस्त्रिंशत्मेधातिथिमेधातिथी ऐंद्रं बार्हतं द्विप्रगाथादि द्विचिपुवंतमात्रं वृचं प्रगाथोऽपस्तस्य घोरः सन्धातुः कण्वस्य पुचतामगात् प्रायोगिश्चासंगो यः स्त्रीभूत्वा पुमानभूत्स मेधातिथये दानं दत्त्वा जुहि जुहीति चतस्रभिरात्मानं तुष्टाव पत्नी चास्यांगिरसी शश्वती पुंस्त्वमुपलभ्येनं प्रीतांतया तुष्टावेति । अस्यायमर्थः । अस्य सूक्तस्य मेधातिथिमेधातिथिनामांसी द्वावृषी तौ च कण्वगोचौ । अषिश्चानु-  
क्तगोचः प्राश्रुत्सात्काण्व इति परिभाषितत्वात् । आबस्य वृचस्य तु घोरस्य पुचः स्वकीयधातुः कण्वस्य पुचतां प्राप्तत्वात्काण्वः प्रगाथास्य अषिः । अयोगनाच्चो राज्ञः पुच आसंगाभिधानो राजा देवशापात् स्त्रीत्वमनुभूय पश्चात्तपोबलेन मेधातिथेः प्रसादात्पुमान् भूत्वा तस्यै वज्रं धनं दत्त्वा स्वकीयमंतरात्मानं दत्तदानं जुहि जुहीत्यादिभिश्चतस्रभिर्हविर्भरसौत् । अतस्सासामासंगाख्यो राजा अषिः । अस्यासंगस्य भार्यांगिरसः सुता शश्वत्याख्या मर्तुः पुंस्त्वमुपलभ्य प्रीता सती स्वमतीरमन्वस्य खूरमित्यनया सुतयती । अतस्तस्या अचः शश्वत्युपिका । अंलि द्वे त्रिष्टुमी द्वितीयाचतुर्थी सतीवृहत्यौ शिष्टा वृहत्यः । छत्सस्य सूक्तस्यैंद्रो देवता । जुहि जुहीत्याद्याश्चतस्र आत्मकृतस्य दानस्य सूयमानत्वान्तद्देवताकाः । अन्वसेत्यस्या आसंगाख्यो राजा देवता । या तेनोच्यते सा देवतेति न्यायात् ॥ महाव्रते निकेवत्ये बार्हततुचाश्रीतावादित एकोनचिंशद्विनिष्कृताः । तथैव पंचमारण्यके सूचितं । मा चिदन्यदि शंसतेत्येकया च चिंशत् । ऐ० आ० ५. २. ४. इति ॥ चानुर्विशिकेऽहनि माध्यादिनसवने मेधावर्णस्य मा चिदन्यदिति वैकल्पिकः स्तोत्रियः प्रगाथः । सूचितं च । मा चिदन्यदि शंसत यस्मिन्नि त्वा जना इम इति स्तोत्रियानुरूपौ । आ० ७. ४. इति ॥ यावत्तोत्रेऽप्याद्या विनियुक्ता । सूचितं च । आ तू न इंद्रं जुमतं मा चिदन्यदि शंसत । आ० ५. १२. इति ॥ उपाकरणोत्सर्जनयोर्मंडलादिहोमेऽप्येषा । सूत्र्यते हि । मा चिदन्यदापि याहि स्वादिष्टयेति ॥

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

इंद्रमिस्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥

मा । चित् । अन्यत् । वि । शंसत् । सखायः । मा । रिषण्यत् ।

इंद्रं । इत् । स्तोत् । वृषणं । सचा । सुते । मुहुः । उक्था । च । शंसत् ॥ १ ॥

हे सखायः समानख्यानाः स्तोतारः इंद्रस्तोत्रादन्यत्स्तोत्रं मा चिद्वि शंसत । मेधोच्चारयत । मा रिषण्यत । मा हिंसितारो भवत । अन्यदीयस्तोत्रोच्चारणेन वृथोपचीणा मा भवत । सुतेऽभिषुते सोमे वृषणं कामानां वर्षितारमिंद्रमिंद्रमेव हे प्रस्तोत्रादयः सचा सह संघीभूय स्तोत । स्तत । हे प्रशस्त्रादयः उक्था चोक्त्यानि शस्त्राणि चंद्रविषयाणि यूयं मुजः पुनःपुनः शंसत ॥

अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसह ।

विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनं ॥ २ ॥

अवऽक्रक्षिणं । वृषभं । यथा । अजुरं । गां । न । चर्षणिऽसहं ।

विऽद्वेषणं । संऽवननत्वा । उभयंऽकरं । मंहिष्ठं । उभयाविनं ॥ २ ॥

वृषभं यथा वृषभमिवावक्रक्षिणमवकर्षणशीलं शत्रूणां हिंसितारमजुरं अरारहितमहिंसितं वा गां न गाभ्य वृषभिव चर्षणीसहं चर्षणीनां मनुष्याणां शत्रुभूतानामभिभवितारं विद्वेषणं विद्वेषारं शत्रूणां संवनना



संवन्नं सम्यक्संभजनीयं स्तोतुमिहमयंकरं विग्रहानुग्रहयोश्चमयोः कर्तारं महिष्ठं दानुतममुमयाविनं दिव्यपा-  
थिवल्लक्षणेनोभयविधधनेनोपेतं । यद्वा । स्थावरजंगमरूपेण द्विप्रकारेण रक्षितधेनोपेतं । अथनोभयविधिः  
स्तोतुमिर्घट्टुमिष्टोपेतं । एवंविधमिन्द्रमित् स्तोतेत्यन्वयः ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने यच्चिद्धि त्वेति प्रशास्तुर्वैकल्पिकोऽनुरूपः प्रगाथः । सूचं तुदाहृतं ॥

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवँत ऊतये ।

अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धन ॥३॥

यत् । चित् । हि । त्वा । जनाः । इमे । नाना । हवँते । ऊतये ।

अस्माकं । ब्रह्म । इदं । इन्द्र । भूतु । ते । अहा । विश्वा । च । वर्धनं ॥३॥

इमे वृक्षमानाः सर्वे जना हे इन्द्र त्वामूतये रचणाय तर्पणाय वा जाना पृथक्पृथक् यच्चिद्वयपि हवते  
सुवन्ति । ह्रीति पूरणः । तषाण्यस्माकमिदं ब्रह्म स्तोत्रमेव हे इन्द्र ते तव वर्धनं वर्धकं भूतु । भवतु । न केवलमि-  
दानीमेव अपि तु विश्वाहा सर्वाण्यहानि सर्वेष्वहःसु चेदमेव स्तोत्रं त्वां वर्धयत्यित्यर्थः ॥

वि तर्तूर्येते मघवन्विपश्चितोऽर्यो विपो जनानां ।

उप क्रमस्व पुरुषमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥४॥

वि । तर्तूर्येते । मघऽवन् । विपऽचितः । अर्यः । विपः । जनानां ।

उप । क्रमस्व । पुरुऽरुप । आ । भर । वाजं । नेदिष्ठं । ऊतये ॥४॥

हे मघवन् धनवन्निन्द्र विपश्चितो विद्वांसस्त्वदीयाः स्तोतारोऽर्योऽभिगतारो जनानां शत्रूणां विपो  
वेपथितारः संतो वि तर्तूर्येते । मृशमापदो वितरन्ति । अतिक्रामन्ति । तादृशस्त्वमुप क्रमस्व । उपगच्छास्मान् ।  
पुरुषं बद्धरूपं नेदिष्ठमन्तिकृतं वाजमन्नमूतये तर्पणाय मराक्षभं ॥

महे च न त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयां ।

न सहस्राय नायुताय वाज्वो न शताय शतामघ ॥५॥

महे । च । न । त्वां । अद्रिऽवः । परा । शुल्काय । देयां ।

न । सहस्राय । न । अयुताय । वाज्वऽवः । न । शताय । शतऽमघ ॥५॥

हे अद्रिवो वज्रवन्निन्द्र त्वां । जनेति निपातद्वयसमुदायो विभज्य योजनीयः । महे च महतेऽपि शुल्काय  
मूल्याय न परा देयां । न विक्रीणानि । हे वज्रिवो वज्रहस्तेन्द्र सहस्राय सहस्रसंख्याय च धनाय न परा  
देयां । अयुताय दशसहस्राय च शुल्काय न परा देयां । हे शतामघ वज्रधनेन्द्र शताय । वज्रना-  
भितत् । अपरिमिताय च धनाय न परा देयां । न विक्रीणानि । उक्तसंख्यावनादपि त्वं मम प्रियत-  
मोऽसीत्यर्थः । ॥ १० ॥

वस्यौ इद्रासि मे पितुस्त भ्रातुरभुजतः ।

माता च मे हृदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥६॥

वस्यान् । इन्द्र । असि । मे । पितुः । उत । भ्रातुः । अभुजतः ।

माता । च । मे । हृदयथः । समा । वसो इति । वसुऽत्वनाय । राधसे ॥६॥

हे इंद्र त्वं मे मदीयात्पितृवर्जनकादपि वस्त्रान् वसीयान् वसुमत्तरोऽसि । उतापि चासुंजतोऽपासयतो मम धातुरपि वसीयांस्त्वमधिकोऽसि । हे वसो वासकेंद्र मे मदीया माता च त्वं च समा समौ समानी संतो ॥ पुमान् स्त्रिया । पा० १. २. ६७. । इति पुंसः शेषः ॥ क्दयथः । अर्चतिकर्मायं । मां पूजितं कुवथः । किमर्थं । वसुलनाय व्यापनाय राधसे धनाय च । उभयोर्लोभाधित्वर्थः ॥

कैयथ॒ क्तेदसि॒ पुरु॒चा चि॒द्धि ते॒ मनः॑ ।

अ॒ल॒र्षि॒ यु॒ध्म ख॒ज॒कृ॒त्पु॒रं॒द्र॒ प्र॒ गा॒य॒चा अ॒गा॒सि॒षुः ॥ ७ ॥

क॒ । इ॒य॒थ॒ । क॒ । इ॒त् । अ॒सि॒ । पु॒रु॒ऽचा॒ । चि॒त् । हि॒ । ते॒ । मनः॑ ।

अ॒ल॒र्षि॒ । यु॒ध्म॒ । ख॒ज॒ऽकृ॒त् । पु॒रं॒ऽद्र॒ । प्र॒ । गा॒य॒चाः॒ । अ॒गा॒सि॒षुः ॥ ७ ॥

हे इंद्र क्व कुच देश इयथ । गतवानसि पुरा । क्तेत् कुच चासि । भवसि । इदानीं वर्तसि । पुरुचा चिद्धि नञ्बु हि यजमानेषु ते त्वदीयं मनः संचरति । हे युध्म युजकुशख खजक्युधख कर्तेहं पुरंदरासुरीणां पुरां दारयितेहं इंद्र अलर्षि । आगच्छ । गायचा गानकुशला अक्षदीयाः स्त्रीतारः प्रागासिषुः । प्रगायन्ति । सुवन्ति । अलर्षीयितत् दाधर्षादौ । पा० ७. ४. ६५. । इत्येतेर्निपात्यते ॥

प्रा॒स्मै गा॒य॒चम॑र्च॒त वा॒वा॒तु॒र्यः पु॒रं॒द्रः॑ ।

याभिः॑ का॒ख॒स्यो॒प ब॒र्हि॒रा॒सदं॑ यासं॒ज्जी भि॒नत्पु॒रं॑ ॥ ८ ॥

प्र॒ । अ॒स्मै॒ । गा॒य॒चं॑ । अ॒र्च॒त् । वा॒वा॒तुः॑ । यः॒ । पु॒रं॒ऽद्रः॑ ।

याभिः॑ । का॒ख॒स्य॑ । उ॒प॒ । ब॒र्हिः॑ । आ॒ऽसदं॑ । यासं॑त् । व॒ज्जी॒ । भि॒नत् । पु॒रः॑ ॥ ८ ॥

अस्मा इंद्राय गायचं गातव्यं साम गायचसंज्ञं वा प्रार्चत । प्रगायत । पुरंदरः पुरां दारयिता य इंद्रो वावातुर्वर्जनीयः संमजनीयः । यद्वा । वावातुः संमज्जुः स्त्रीतुर्य इंद्रः पुरंदरः शत्रुपुराणां दारयिता । यामिर्द्धग्भिः काणखस्य कण्वपुञ्जस्य मेधातिथेर्मेधातिथेस्य बर्हिर्यज्ञमुपासदमुपासत्तुमुपगतं यासत् गच्छेत् वजी वज्रयुक्तः सन् । यामिर्द्धग्भिः सूयमानः सन् पुरः शाचवीर्मिनत् मित्रात् । तासुषु गायचं साम गायतेत्यर्थः ॥

ये ते॒ संति॑ द॒श॒ग्वि॒नः॑ श॒ति॒नो॒ ये स॒ह॒स्रि॒णः॑ ।

अ॒श्वा॒सो॒ ये ते॒ वृ॒ष॒णो र॒घु॒दु॒व॒स्तेभि॑र्न॒स्तू॒य॒मा ग॒हि ॥ ९ ॥

ये । ते॒ । संति॑ । द॒श॒ऽग्वि॒नः॑ । श॒ति॒नः॑ । ये । स॒ह॒स्रि॒णः॑ ।

अ॒श्वा॒सः॒ । ये । ते॒ । वृ॒ष॒णः॑ । र॒घु॒ऽदु॒वः॑ । तेभिः॑ । नः॒ । तू॒यं॑ । आ । ग॒हि ॥ ९ ॥

हे इंद्र दशग्विनो दशयोजनगामिनो येऽश्वास्ते तव संति विवन्ति । ये चान्ये शतिनः शतसंख्याकाः सहस्रिणः सहस्रसंख्याकाः संति । ये ते त्वदीया अश्वासोऽश्वा वृषणः सेचनसमर्था युवानो रघुद्रुवः शीघ्रगामिनश्च । तेभिस्तेः सर्वैरश्वेनोऽश्वास्तूयं चिप्रमा गहि । आगच्छ ॥

आ त्व॑द्य॒ स॒व॒र्दु॒षां हु॒वे गा॒य॒च॒वे॒पसं॑ ।

इ॒दं धे॒नुं सृ॒दु॒घा॒म॒न्या॒मि॒ष॒मु॒रु॒धा॒रा॒म॒रं॒कृ॒तं ॥ १० ॥





अमन्महीदनाश्वोऽनुयासश्च वृत्रहन् ।

सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ १४ ॥

अमन्महि । इत् । अनाश्वः । अनुयासः । च । वृत्रहन् ।

सकृत् । सु । ते । महता । शूर । राधसा । अनु । स्तोमं । मुदीमहि ॥ १४ ॥

हे वृत्रहन् वृत्रह्यासुरस्य हन्तरिन्द्र अनाश्वोऽशीघ्रा अत्वरमाणा अनुयासोऽनुया अनुवूर्णाश्च संतो यय भक्तिश्रद्धापुरःसरं शनैस्त्वामममहीत । सुम एव । हे शूर वीर्यवन्निद्र ते त्वर्थं सद्यदेकवारमपि महता प्रभूतेन राधसा धनेन हविर्लब्धेन सह सु शोभनं स्तोमं स्तोत्रमनु मुदीमहि । अनुमोदेमाहे । अनुप्रवा-  
मेत्यर्थः ॥

यदि स्तोमं मम अवंदस्माकमिन्द्रमिन्दवः ।

तिरः पवित्रं ससृवांसं आश्वो मंदंतु तुग्यावृधः ॥ १५ ॥

यदि । स्तोमं । मम । अवंत् । अस्माकं । इन्द्रं । इन्दवः ।

तिरः । पवित्रं । ससृवांसः । आश्वः । मंदंतु । तुग्यऽवृधः ॥ १५ ॥

अयमिन्द्रो मम मदीयं स्तोत्रं यदि अवंत् शृणुयात् तदानीं तमिन्द्रमस्माकमसदीया इन्दवः सोमा मंदंतु । मादयंतु । हर्षयंतु । कीदृशाः सोमाः । तिरस्तिर्यगवस्थितं पवित्रं पवनसाधनं दशापवित्रं ससृवांसः प्राप्तवन्तः । दशापवित्रेण पूता इत्यर्थः । आश्वः शीघ्रं मदनकाकुग्यावृधसुग्याभिर्वसतीवर्यैकधनाख्याभि-  
रस्त्रिर्वर्धमानाः ॥ १२ ॥

आ त्वद्य सधस्तुतिं वावातुः सख्युरा गहि ।

उपस्तुतिर्मघोनां प्र त्वावत्वधा ते वरिम सुद्युतिं ॥ १६ ॥

आ । तु । अद्य । सधऽस्तुतिं । वावातुः । सख्युः । आ । गहि ।

उपऽस्तुतिः । मघोनां । प्र । त्वा । अवतु । अध । ते । वरिम । सुऽस्तुतिं ॥ १६ ॥

हे इन्द्र वावातुः संभक्तृस्त्वां सेवमानस्य सख्युः स्तोतुः सधस्तुतिमन्यैर्हविर्भिः सह क्रियमाणां स्तुतिमन्ये-  
दानीं तु विप्रमा गहि । आगच्छ । मघोनां हविष्मतामन्येषामपि यत्रमानानामुपस्तुतिः स्तोत्रं त्वा त्वां प्रावतु । प्रगच्छतु । प्रतर्पयतु वा । अधाधुना सुद्युतिं त्वद्विषयां शोभनां स्तुतिमहमपि वरिम । कामये ॥

सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत ।

गव्या वस्त्रेव वासयंत इन्नरो निर्धुक्षन्वक्षणाभ्यः ॥ १७ ॥

सोत । हि । सोमं । अद्रिऽभिः । आ । ई । एनं । अप्सु । धावत ।

गव्या । वस्त्राऽइव । वासयंतः । इत् । नरः । निः । धुक्षन् । वक्षणाभ्यः ॥ १७ ॥

हे अध्वर्यवः अद्रिभिर्द्यावभिः सोमं सोत । हिरवधारणे । अभिषुणुतैव । एनमिममप्सु वसतीवरीष्वा धावत । अस्य सोमस्य धवनं कुरुत । अदाभ्यगहे हिमादामुत इत्यादिभिर्मन्त्रैर्वसतीवरीष्वाधवनं सोमस्य क्रियते । तत्कुर्वन्त्यर्थः । गव्या गवि भवानि वस्त्रेव वस्त्राणाच्छादकानि चर्मोणीव मेघान् वासयन्त इदाच्छा-



दयंत एव नरो नेतार इन्द्रस्यानुचरा मरुतो वषण्याभ्यो नदीभ्यो नदीभामर्थाय निर्धुषण । उद्धृष्टानि निर्दुहंति । चारयन्ति । यत एवमतः कारणादिन्द्रयागाय सोममद्रिभिरभिपुणुतेव । सोदासिषतेत्यर्थः ॥

अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।

अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥ १८ ॥

अध । ज्मः । अध । वा । दिवः । बृहतः । रोचनात् । अधि ।

अया । वर्धस्व । तन्वा । गिरा । ममः । आ । जाता । सुक्रतो इति सुऽक्रतो । पृण ॥ १८ ॥

हे इन्द्र अधाधुना ज्मः । जमन्ति गच्छन्त्यस्माभिते ज्मा पृथिवी । तस्याः सकाशादध वापि वा दिवोऽन्तरिक्षाद्बृहतो महतो रोचनान्नचैर्दीप्यमानात्सर्गाद्वागत्य । अधिः पंचम्यर्थानुवादी । अधानया तन्वा ततया विकृतया मम मदीयया गिरा सुत्या वर्धस्व । वृद्धो भव । हे सुक्रतो शोभनकर्मवन्निद्र जाता आतामसादी-याजनाना पृण । अभिलषितैः फलैरापूरय ॥

इद्राय सु मर्दितमं सोमं सोता वरेण्यं ।

शक्र एणं पीपयद्विश्वया धिया हिन्वानं न वाजयुं ॥ १९ ॥

इद्राय । सु । मर्दिन्ऽतमं । सोमं । सोत् । वरेण्यं ।

शक्रः । एनं । पीपयत् । विश्वया । धिया । हिन्वानं । न । वाजऽयुं ॥ १९ ॥

हे अध्वर्यवः इन्द्रयेंद्रार्थं मर्दितमं मादधितुतमं वरेण्यं वरणीयं संभजनीयं सोमं सु सोत । अभिपुणुत । कुत इत्यत आह । शक्र इन्द्रो विश्वया धिया सर्वया क्रिययापिष्टोमादिलक्षणया हिन्वानं प्रीणयंतं वाजयुमन्मत्मान इच्छतमेनं यजमानं । नेति संप्रत्यर्गीयः । संप्रति पीपयत् । वर्धयति । अतः कारणात्तस्मा इद्राय सोमं सुनुतेत्यर्थः ॥

मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा ।

भूर्णि मृगं न सर्वनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥ २० ॥

मा । त्वा । सोमस्य । गल्दया । सदा । याचन् । अहं । गिरा ।

भूर्णि । मृगं । न । सर्वनेषु । चुक्रुधं । कः । ईशानं । न । याचिषत् ॥ २० ॥

हे इन्द्र त्वां मवनेषु यज्ञेषु सोमस्य गल्दया गालनेनास्त्रावणेन गिरा सुत्या च युक्तोऽहं सदा सर्वदा याचन् याचमानः सन् मा चुक्रुधं । मा क्रोधयानि । बह्वशो याच्यमाने त्वयि क्रोधो जायते तं सोमस्य गालनेन सुत्या चापनयामीत्यर्थः । कीदृशं त्वां । भूर्णि भर्तारं मृगं न सिंहमिव भीमं । स्वामिन इन्द्रस्य याचने लौकिकन्यायं दर्शयति । लोके को वा पुरुष ईशानमीश्वरं स्वामिनं न याचिषत् । न याचेत् । सर्व एव हि याचेत् । अतोऽहःपि त्वां स्वामिनं याच इति भावः ॥ ॥ १३ ॥

मर्देनेषितं मदमुग्रमुयेण शर्वसा ।

विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं मदे हि प्मा ददाति नः ॥ २१ ॥

मर्देन । इषितं । मदं । उग्रं । उयेणं । शर्वसा ।

विश्वेषां । तरुतारं । मदऽच्युतं । मदे । हि । स्म । ददाति । नः ॥ २१ ॥

मदेन मादधिया सोचेषितं प्रेषितं मदं मदकरं सोममुयमुन्नयं रसमुयेयोन्नयेनाधिकेन शवसा बलेन युक्त इन्द्रः पिबत्विति शेषः । पीत्वा च विश्वेषां सर्वेषां शत्रूणां तस्तारं तरीतारं जेतारं मदच्युतं मदस्य शत्रूणां गर्वस्य आवधितारं पुत्रं मदे सोमपानेन जनिते हव्ये सति नोऽसम्भं ददाति हि अ । ददाति खलु । अतः सोमं पिबत्वित्यर्थः ॥

शेवारि वार्यां पुरु देवो मर्ताय दाम्नुषे ।

स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूर्तो अरिष्टुतः ॥ २२ ॥

शेवारि । वार्यां । पुरु । देवः । मर्ताय । दाम्नुषे ।

सः । सुन्वते । च । स्तुवते । च । रासते । विश्वऽगूर्तः । अरिऽस्तुतः ॥ २२ ॥

शेवारि । शेषं सुखं । तस्य गमके यज्ञे दाम्नुषे चरुपुरोडाशादीनि दत्तवते यजमानाय पुरु पुरुषि बह्वणि वार्याणि वरणीयानि धनानि देवो दानादिगुणयुक्त इन्द्रो रासते । ददाति । स एव सुन्वते च सोमाभिव्यं कुर्वते च स्तुवते च सोमं कुर्वते च धनानि रासते । कीदृशः सः । विश्वगूर्तो विश्वेषु सर्वेषु कार्येषु यतः स्वतः प्रवृत्तोऽरिष्टुतोऽरिभिः प्रेरयितुमिः प्रशस्तः ॥

एन्द्र याहि मत्स्वं चित्रेण देव राधसा ।

सरो न प्रास्युदरं सपीतिभिरा सोमेभिरु स्फिरं ॥ २३ ॥

आ । इन्द्र । याहि । मत्स्वं । चित्रेण । देव । राधसा ।

सरः । न । प्राप्ति । उदरं । सपीतिऽभिः । आ । सोमेभिः । उरु । स्फिरं ॥ २३ ॥

हे इन्द्र आ याहि । आगच्छ । हे देव द्योतमान चित्रेण दर्शनीयेन राधसा धनेन सोमलक्षणेन मत्स्वं । माय । सपीतिभिर्मरुद्भिः सह पीयमानः सोमेभिः सोमैरु विश्वीर्णं स्फिरं वृद्धमुदरमात्तीयं जठरं सरो न सर इवा प्राप्ति । आपूरय ॥ प्रा पूरण आदादिकः ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्दन्दिने ब्रह्मशस्त्र आ त्वेति वैकल्पिकः सोचित्रसृचः । सूच्यते हि । आ त्वा सहस्रमा शतं मम त्वा सूर उदित इति ब्राह्मणाच्छंसिनः । आ० ७. ४. इति ॥

आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।

ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहंतु सोमपीतये ॥ २४ ॥

आ । त्वा । सहस्रं । आ । शतं । युक्ताः । रथे । हिरण्यये ।

ब्रह्मऽयुजः । हरयः । इन्द्र । केशिनः । वहंतु । सोमऽपीतये ॥ २४ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वां सहस्रं सहस्रसंख्याका हरयस्त्वदीया अथा आ वहंतु । आनयंत्वस्ययज्ञं । तथा शतं शतसंख्याकाय भवदीया अथास्त्वामा वहंतु । यद्यपि द्वावेवास्व हरी तथापि तद्विभूतयोऽन्वेऽपि बहवोऽश्वाः सन्ति । ननु युगपदनेकरथैः कथं यातुं शक्यत इति अत आह युक्ता इति । हिरण्यये हिरण्यये स्वर्णविकारे ॥ हिरण्यशब्दादिकारार्थे विहितस्य मयट् च्छत्व्यास्त्वित्यादौ मलोपो निपात्यते ॥ तादृशे रथे युक्ताः संबद्धाः । बहूनामयानां शीघ्रगमनाय रथे नियुक्तत्वाद्युगपदेव सर्वैरथैर्गंतुं शक्यत इति भावः । कीदृशा हरयः । ब्रह्मयुजो ब्रह्मणा परिवृद्धेन्द्रेण युक्ताः । यद्वा । ब्रह्मणास्त्वदीयेन सोचेणास्माभिर्दत्तेन हविषा वा युक्ताः । केशिनः । केशाः केशराः । तैर्युक्ताः । किमर्थमिन्द्रस्य वहनं तच्चाह । सोमपीतये सोमस्य पानाय । यथा-  
स्यदीयं सोमं पिबेत् अत आवहंत्वित्यर्थः ॥



आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेषा ।

श्रित्तिपृष्ठा वहतां मध्वो अंधसो विवक्ष्णस्य पीतये ॥ २५ ॥

आ । त्वा । रथे । हिरण्यये । हरी इति । मयूरऽशेषा ।

श्रित्तिऽपृष्ठा । वहतां । मध्वः । अंधसः । विवक्ष्णस्य । पीतये ॥ २५ ॥

पूर्वं ह्योर्विभूतिरूपा यथा इंद्रमावहंतिति प्रार्थितं । अधुना तावेवेन्द्रमावहतामिति प्रार्थते । हिरण्यये हिरण्यमये रथे युक्ता मयूरशेषा मयूरशेषी मयूरवर्णशेषो ययोस्त्री ॥ सुपां सुलुगिति विभक्त्याऽप्येव ॥ श्रित्तिपृष्ठा श्रित्तिपृष्ठी एवंभूतावधौ हे इंद्र त्वामा वहतां । किमर्थं । मध्वो मधुररसस्य विवक्ष्णस्य वक्तुर्मष्टस्य सुत्वस्य यदा वोढव्यस्य प्राप्तव्यसांधसोऽन्नस्य सोमरूपस्य पीतये पानार्थं ॥ ॥ १४ ॥

पिब त्वस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।

परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुमदाय पत्यते ॥ २६ ॥

पिब । तु । अस्य । गिर्वणः । सुतस्य । पूर्वपाऽइव ।

परिऽकृतस्य । रसिनः । इयं । आऽसुतिः । चारुः । मदाय । पत्यते ॥ २६ ॥

हे गिर्वणो गीर्मेवगनीय सुतिभिः संभवनीयेन्द्र सुतस्याभिषुतस्यास्य सोमस्य ॥ क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ॥ इममभिषुतं सोमं तु क्षिप्रं पिब । तत्र वृष्टांतः । पूर्वपा इव । पूर्वः सर्वेभ्यो देवेभ्यः प्रथमभावी सन् पिबतीति पूर्वपा वायुः । स इवेन्द्रवायवे मुख्ये ग्रहे सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वं पिबेत्त्वर्थः । कीदृशस्य सोमस्य । परिष्कृतस्याभिषवादिभिः संस्तुतस्य ॥ संपर्युपेभ्यः । पा० ६. १. १३७. । इति करोतिर्मुख्ये सुट् । परिनिविभ्यः । पा० ८. ३. ७०. । इति सुट्ः षत्वं ॥ रसिनो रसवतः । अपि चयमासुतिरयमासवो मदकरचापः शोभनः सोमरसो मदाय हर्षाय हर्षजननाय पत्यते । संपत्यते ॥ पतू गती ॥ यद्वा । पत्यतिरित्यर्थकर्मा । मदाय मदस्य पत्यते । ईष्टे । मदीत्यादने शक्त इत्यर्थः ॥

य एको अस्ति दंसना महां उयो अभि व्रतैः ।

गमत्सं शिप्री न स योषदा गमच्चवं न परि वर्जति ॥ २७ ॥

यः । एकः । अस्ति । दंसना । महान् । उयः । अभि । व्रतैः ।

गमत् । सः । शिप्री । न । सः । योषत् । आ । गमत् । हवं । न । परि । वर्जति ॥ २७ ॥

य इंद्र एकः केवलोऽसहाय एव व्रतेरात्मीयः कर्मभिरभस्ति शत्रून्निभवति । यस्य दंसना कर्मणा महानधिकः अत एवोय उन्नूर्णवसः शिप्री । क्षिप्रं शिरस्त्राणं ॥ प्रशंसायामिति ॥ शोभनशिरस्त्राणः । यदा । क्षिप्री हनू नासिके वा । तद्वान् । स इंद्रो गमत् । गच्छतु । प्राप्नोतु सर्वदा । स तावद्विशो न योषत् । न पृथग्भवतु । न विद्युक्तो भवतु ॥ गमेयौतेत्य सेव्यज्ञानमः । इत्यस्य कोप इतीकारकोपः । गमेर्वज्रं वृद्धसीति शपो युक् । यौतेः सिद्धञ्जलमिति सिप् ॥ हवमकादीयं कोषं वा गमत् । अभिगच्छतु । प्राप्नोतु । न परि वर्जति । न परिवर्जयतु । न परित्यजतु । सर्वदाज्ञानकादीयं कोषं चंद्रः प्राप्नोत्विति यावत् ॥

त्वं पुरं चरिष्यस्व वधैः शुष्णस्य सं पिणक् ।

त्वं भा अन्नु चरो अथ द्विता यदिंद्र हव्यो भुवं ॥ २८ ॥

त्वं । पुरं । चरिष्ये । वधेः । शुष्णस्य । सं । पिणक् ।

त्वं । भाः । अनु । चरः । अधः । द्विता । यत् । इन्द्र । हव्यः । भुवः ॥ २८ ॥

हे इन्द्र त्वं शुष्णस्य शोषकस्यासुरस्य चरिष्ये चरणशीलं ॥ वा छंदसीत्यभि, पूर्वत्वस्य विकल्पितत्वात्-  
णादेशः ॥ पुरं निवासस्थानं वधेर्वकादिभिरायुधैः सं पिणक् । समचूर्णयः । अमांषीरित्यर्थः ॥ पिनष्टेर्बहि  
मध्यमेकवचने रूपमेतत् ॥ अधापि च भा मासमानस्त्वमनु चरः । तं शुष्णं हंतुमन्वगच्छः । यदा । अध शुष्णस्य  
पुरमेदनांतरं भा दीप्तीस्त्वमनु चरः । अन्वगच्छः । प्राप्तवानित्यर्थः । हे इन्द्र त्वं यद्यदा द्विता द्विधा द्विविधिः  
स्रोतृभिर्यष्टभिश्च हव्यो ज्ञातव्यो भुवः भवेः । तदानीं त्वं शुष्णस्य पुरं सं पिणनित्यन्वयः ॥ भवतेर्लोटि सिष्यडा-  
गमः । कांसिः शपो लुक् । भूसुवोसिङ्गीति गुणप्रतिषेधादुपहृ ॥

चातुर्विंशकऽहनि माध्यंदिनखवने ब्रह्मशस्त्रे मम त्वेति वैकल्पिकोऽनुरूपलुचः । सूचं तु पूर्वमुदाहृतं ॥

मम त्वा सूर उदिते मम मध्यंदिने दिवः ।

मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसवा स्तोमांसो अवृत्सत ॥ २९ ॥

मम । त्वा । सूर । उतऽइते । मम । मध्यंदिने । दिवः ।

मम । प्रऽपित्वे । अपिऽशर्वरे । वसो इति । आ । स्तोमांसः । अवृत्सत ॥ २९ ॥

सूर सूर्य उदित उदयं प्राप्ति पूर्वाह्नसमये मम स्तोमांसः स्तोत्राणि हे वसो वासवोऽहं स्वामावृत्सत ।  
आवर्तयंतु । अस्मादभिमुखं गगयंतु । तथा दिवो दिवसस्य मध्यंदिने मध्याह्नेऽपि मदीयाः स्तोमास्त्वामाव-  
र्तयंतु । तथा प्रपित्वे प्राप्ति दिवसस्याहसाने सायाह्नेऽपि मदीयाः स्तोमास्त्वामावर्तयंतु । अपिशर्वरे । शर्वरीं  
रात्रिमपिगतः कालोऽपिशर्वरः । शर्वरे कालेऽपि मदीयाः स्तोमास्त्वामावर्तयंतु ॥

स्तुहि स्तुहीदिते घा ते मंहिष्ठासो मघोनां ।

निदिताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे ॥ ३० ॥

स्तुहि । स्तुहि । इत् । एते । घ । ते । मंहिष्ठासः । मघोनां ।

निदितऽअश्वः । प्रऽपथी । परमऽज्याः । मघस्य । मेधऽअतिथे ॥ ३० ॥

आसंगो राजर्विमेध्यातिथये वज्र धनं हत्वा तमृषिं दत्तदानस्य स्वस्य कुतो प्रेरयति । हे मेध्यातिथे  
यज्ञार्हातिथ एतत्संज्ञं स्तुहि स्तुहीत् । पुनःपुनरस्मान् प्रशंसिष्व । मोदास्व । श्रीदासीन्यं मा कार्षीः । एते धेते  
अनु वयं मघोनां धनवतां मध्ये ते तुभ्यं मघस्य धनस्य मंहिष्ठासो दातुतमाः । अतोऽस्मान् स्तुहीत्यर्थः । कार्षी  
कुतिः तामाह । निदिताश्वः । यस्य वीर्येण परेषामश्वा निदिताः कुत्सिता भवंति तादृशः । प्रपथी । प्रकृष्ट  
पंथाः प्रपथः । तद्वाण । सन्मार्गवतीत्यर्थः । परमज्या उत्कृष्टज्यः । अनेन धनुरादिकं सज्यते । उत्कृष्टायुध  
इत्यर्थः । यदा । परमानुत्कृष्टाञ्च ब्रूहिनाति हिनस्तीति परमज्याः ॥ ज्या वयोहानी । अस्मादातो मनित्रिति  
विच् ॥ एवंभूतोऽहमासंग इति स्तुहीत्यर्थः ॥ ॥ १५ ॥

आ यदश्वान्वनन्वतः अज्याहं रथे रूहं ।

उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्वः पशुः ॥ ३१ ॥

आ । यत । अश्वान् । वनन्ऽवतः । अज्या । अहं । रथे । रूहं ।

उत । वामस्य । वसुनः । चिकेतति । यः । अस्ति । याद्वः । पशुः ॥ ३१ ॥



वगन्वतो वगनवतः संमत्तवतोऽन्ध्रांशुरगानहं प्राथोगिः अद्ययादरातिशयेन युक्तः सन् यद्यदा हे मेधातिथे त्वदीये रथ आ बहं आरोहयं ॥ सहैरंतर्भावितस्यार्थालुङ्गिं क्रमदृष्टिभ्य इति श्रुतकदेशः ॥ तदानीं मामेवं क्षुहि । उतापि च । प्रकृतकुल्यपेच एष समुच्चयः । वामस्य तन्नायस्य वसुनी धनस्य ॥ पूर्ववत्कर्मणि षष्ठी ॥ ईदृशं धनं चिकेतति । एष आसंगो दातुं जानाति । यादो यदुवशोऽज्ञवः । यदा । यद्वो मनुष्याः । तेषु प्रसिद्धः । पशुः ॥ क्षुप्तमलार्थमेतत् ॥ पशुमान् । यदा । पशुः पश्यतिः । सूक्ष्मस्य द्रष्टा । य आसंगोऽस्ति विद्यते एष चिकेततीत्यन्वयः ॥

य क्षुजा मय्यं मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।

एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगासंगस्य स्वनद्रथः ॥ ३२ ॥

यः । क्षुजा । मय्यं । मामहे । सह । त्वचा । हिरण्यया ।

एषः । विश्वानि । अभि । अस्तु । सौभगा । आऽसंगस्य । स्वनत्ऽरथः ॥ ३२ ॥

एवमेवं मां क्षुहीत्यासंगो मेधातिथिं ब्रूति । य आसंगस्यात्मा चक्ष्वा गमनशीलानि धनानि हिरण्यया हिरण्यमया त्वचा चर्मणास्तरणेन सह सहितानि मय्यं मेधातिथये ममहे ददौ । महतिर्दानकर्मा । एष आसंगस्यात्मा स्वनद्रथः श्रद्धाद्यमानरथः सन् विश्वानि व्याप्तानि सौभगानि धनानि शत्रूणां स्मृतान्यभ्यस्तु । अभिमयतु ॥

अथ प्रायोगिरति दासदन्यानासंगो अमे दशभिः सहस्रैः ।

अधोक्ष्णो दश मय्यं रुशंतो नृका इव सरसो निरतिष्ठन् ॥ ३३ ॥

अथ । प्रायोगिः । अति । दासत् । अन्यान् । आऽसंगः । अमे । दशऽभिः । सहस्रैः ।

अथ । उक्ष्णः । दश । मय्यं । रुशंतः । नृकाऽइव । सरसः । निः । अतिष्ठन् ॥ ३३ ॥

अथापि च प्राथोगिः प्रयोगनाम्नः पुत्र आसंगो नाम राजा दशभिर्दशगुणितैः सहस्रैः सहस्रसंख्याकिर्गवादिभिरन्यान्दातुनति दासत् । अतिक्रम्य ददाति । अधानंतरमुच्यतेः सेचनसमर्था मध्मासंगेन दत्ता वशतो दीप्यमाना दश दशगुणितसहस्रसंख्याकास्ते गवाद्यो नृका इव । नृकास्तटाकोन्मवाक्षुण्विशिष्टाः । ते यथा सरसस्तटाकात्संघशो निर्गच्छन्ति तथैव मय्यं दत्ता गवाद्योऽस्मादासंगाहिरतिष्ठन् । निर्गत्यावाक्षिपत । एवमेवंप्रकरणे मां क्षुहीति मेधातिथिं प्रत्युक्तत्वादेतासां चतकस्याभुचां प्राथोगिरासंगं ऋषिः स एव देवतेत्येतदुपपन्नं भवति ॥

अन्वस्य स्यूरं ददृशे पुरस्तादनस्य ऊरुवरंबमाणः ।

शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमयं भोजनं बिभर्षि ॥ ३४ ॥

अनु । अस्य । स्यूरं । ददृशे । पुरस्तात् । अनस्यः । ऊरुः । अवऽरंबमाणः ।

शश्वती । नारी । अभिऽचक्ष्य । आह । सुभद्रं । अर्यं । भोजनं । बिभर्षि ॥ ३४ ॥

अयमासंगो राजा कदाचिद्वेशपेन नपुंसको बभूव । तस्य पत्नी शश्वती भर्तुर्नपुंसकत्वेन विज्ञा सती महत्तपस्तेषु । तेन च तपसा स च पुंस्त्वं प्राप । प्राप्तपुंस्वजनं तं रात्रानुपलभ्य प्रीता शश्वत्यनया तमर्त्तात् ॥ अस्यासंगस्य पुरस्तात्पुरोभगि गुह्यदेशे स्यूरं स्यूरं वृद्धं सत्पुंस्वजनमनु ददृशे । अनुदृश्यते । अनस्योऽस्थिरहितः स चावयव ऊरुदक्षर्विस्तीर्णोऽवरंबमाणोऽतिदीर्घलेनावाक्षुखं भवमानः । यदा । ऊरुः ॥ मुपां मुनुर्गति द्विवचनस्य सुः ॥ ऊरु प्रत्यवसंबमानो भवति । शश्वती नामागिरसः सुता नारी तस्यासंगस्य भार्याभिचक्षीव

भूतमवयवं निशि वृद्धा हे अर्यं स्वामिन् मरतः सुमद्रमतिशयेन कव्याणं भोजनं भोगसाधनं विमर्षं धारय-  
सीत्याह । वृते ॥ १६ ।

इदं वसो इति द्विचत्वारिंशवृचं द्वितीयं सूक्तं काण्वस्य मेधातिथिरांगिरसस्य च प्रियमेधस्त्वार्यं । शिषा  
विमिंदो इत्यादिके हे मेधातिथेरिव । स्वादवः सोमा इत्येष्टानुष्टुप् शिष्टा गायत्र्यः । इंद्रो देवता । अथि हे  
असौ विमिंदोर्दानस्तुतिस्वात्तद्देवताके । तथा चानुक्रांतं । इदं वसो द्विचत्वारिंशमेधातिथिरांगिरसस्य  
प्रियमेधः स्वादवोऽनुष्टुबन्धाभ्यां मेधातिथिर्विमिंदोर्दानं तुष्टावेति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥ ज्योतिष्टोमे  
मरुत्वतीय आद्यकुचोऽनुचरः । सूच्यते हि । इदं वसो सुतमंध इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ । आ० ५. १४. ।  
इति ॥ द्वितीये रात्रिपर्याये ब्रह्मशस्त्रेऽयमेव सोषियकृच । सूचितं च । इदं वसो सुतमंध इद्विहि मत्संधसः  
। आ० ६. ४. । इति ॥ अयमेव चतुर्थेऽह्न्यपि मरुत्वतीयस्यानुचरकृचः । सूचितं च । तं त्वा अग्नेभिरीमह इदं  
वसो सुतमंध इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ । आ० ७. ११. । इति ॥

इदं वसो सुतमंधः पिब सुपूर्णमुदरं । अनाभयिनरिमा ते ॥ १ ॥

इदं वसो इति । सुतं । अंधः । पिब । सुऽपूर्णं । उदरं । अनाभयिन् । ररिमा । ते ॥ १ ॥

हे वसो वासयितरिद्र इदं पुरोवर्तमानं सुतमभिषुतमंधोऽन्नं सोमलक्षणं पिब । यथोदरं त्वदीयं अठरं  
सुपूर्णमतिशयेन संपूर्णं भवति तथेत्यर्थः । हे अनाभयिन् । आ समंताद्विभेतीत्याभयी ॥ विभेतिरीणादिक  
इनिः ॥ नाभयनाभयी । तादृश हे इंद्र ते तुभ्यं त्वदर्थं ररिमा । उक्तलक्षणं सोमं दसः ॥ रा दानि । झांदसो  
लिट् ॥

नृभिर्धूतः सुतो अश्वैरव्यो वारैः परिपूतः । अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥

नृऽभिः । धूतः । सुतः । अश्वैः । अव्यः । वारैः । परिऽपूतः । अश्वः । न । निक्तः । नदीषु ॥ २ ॥

नृभिरध्वरस्य नेतुमिर्ध्वलिगिर्धूत आधूतोऽदाभ्ययह आधवनंन संस्कृतोऽश्वैररमभिर्यावभिः करणभूतेः  
सुतोऽध्वर्युभिरभिषुतोऽव्योऽवेमेयस्य वारैर्वाक्षैः परिपूतः । दशापविचस्य नाभिं कुरुते शुक्लं वलक्ष्याः पविच-  
ममोतं भवतीति । नदीषु नदनास्त्वप्सश्चो नाश्च इव निक्तो निरिक्तः शोधितः । यथाप्सु ज्ञातोऽव्योऽपग-  
तमजः सन् दीप्तो भवति एवं वसतीत्यर्थाख्याभिरश्वैरभिषुतः सोमो दीप्तो भवतीत्यर्थः । ईदृशो यः सोमः तं  
ते यवमित्युत्तरया संबन्धः ॥

तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुर्मकर्म श्रीणंतः । इंद्र त्वास्मिन्सधमादे ॥ ३ ॥

तं ते । यवं । यथा । गोभिः । स्वादुं । अकर्म । श्रीणंतः । इंद्र । त्वा । अस्मिन् । सधमादे ॥ ३ ॥

तं पूर्वोक्तगुणं सोमं हे इंद्र ते त्वदर्थं यवं यथा यवमयं सवनीयपुरोडाशमिव गोभिर्गेवि भवैः चोरां-  
दिभिः अयणद्रव्यैः श्रीणंतो मिश्रोर्ज्वतः स्वादुं रसत्वेन स्वादनीयमकर्म । अकार्षं ॥ करोतिर्लुङि मन्वे  
घसेति ल्लेप्त्वं ॥ यस्मादेवं तस्मात् हे इंद्र त्वा त्वां तादृशं सोमं पातुमस्मिन्वर्तमाने सधमादे सहमदने यज्ञ  
आह्वयामीति शेषः ॥

महाव्रते निक्षेप्यो गायत्र्युवाचीताविंश इत्सोमपा इत्येतदादिसूक्तशेषः शंसनीयः । अंत्यास्तिस्रो  
वर्जयित्वा तत्रापि स्वादव इत्येतां परित्यज्य तत्र स्थाने न ह्यन्यं बक्ताकरमित्येतामावपेत् । तथैव पंचमा-  
रण्यके संचितं । इंद्र इत्सोमपा एक इत्येतत्प्रभृतीनां तिस्र उक्तमा उद्धरति । तासां स्वादवः सोमा आ याही-  
त्येतामुच्यन्ते न ह्यन्यं बक्ताकरमित्येतां प्रत्यवदधाति ; ऐ० आ० ५. २. ३. । इति ॥ पंचमेऽह्नि मरुत्वतीय इंद्र  
इदित्यनुचरकृचः । सूच्यते हि । इंद्र इत्सोमपा एक इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ । आ० ७. १२. । इति ॥



इंद्र इत्सोमपा एक इंद्रः सुतपा विश्वायुः । अंतर्देवान्मर्त्यैश्च ॥४॥

इंद्रः । इत् । सोमपाः । एकः । इंद्रः । सुतपाः । विश्वऽआयुः । अंतः । देवान् ।  
मर्त्यान् । च ॥४॥

इंद्र इति एक एव देवान् मर्त्यान् मनुष्यांश्चांतर्मध्ये देवेषु च मध्ये सोमपाः कृत्स्नस्य सोमस्य पाता ।  
नान्ये । ते ह्येकदेशमात्रः । अत एव सुतपाः सुतस्याभिपुतस्यास्यदीयस्य सोमस्य कात्स्न्येन पाता । इंद्र एक एव  
विश्वायुः । स चंद्रः सर्वाज्ञो भवति । धामाकरंमादिहवींषि सवनेष्विंद्रायैव ऋयते तदभिप्रायेणेदमुच्यते । अत  
एदंविध इंद्रोऽस्यदीयं हविः स्वीकरोत्वित्यर्थः ॥

न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्ता उरुव्यचसं । अपस्पृखते सुहार्दं ॥५॥

न । यं । शुक्रः । न । दुःऽआशीः । न । तृप्ताः । उरुव्यचसं । अपऽस्पृखते । सुहार्दं ॥५॥

उरुव्यचसं विश्वीर्यव्यापनं सुहार्दं सुहृदयं यमिंद्रं शुक्रो रसाधिक्येन दीप्तः सोमो नापसृगुते ॥ सु  
प्रीतिवलयोरचोपसर्गवशात् प्रीत्यभावे वर्तते ॥ नञा च प्रीत्यभावो निवार्यते । न प्रीणयतीति न अपि तु  
प्रीणयत्येव । तथा दुराशीर्दुःखेन निप्यासाशीराश्रयणद्रव्यं यस्य तार्तीयसवणिकस्य सोमस्य सोऽपि यमिंद्रं  
नापसृगुते प्रीणयत्येव । तृप्ताक्षर्यका अन्ये चरुपुरोडाशादयस्य यमिंद्रं नापसृगुते न न प्रीणयति अपि तु  
प्रीणयत्येव तमिंद्रं सुम इति शेषः । यद्वा । अपेत्युपसर्गो धात्वर्थानुवादकः । यमिंद्रं शुक्रादयो नापसृगुते न  
प्रीणयति । उरुव्यचसमिति हेतुगर्भविशेषणं । यतोऽधमिंद्र उरुव्यचा विश्वीर्यव्यापकः अतः कारणादपर्याप्ताः  
संतः शुक्रादयः प्रीणयितुं न शक्नुवन्तीति भावः ॥ ॥५॥

गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न वा मृगयन्ते । अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥६॥

गोभिः । यत् । ई । अन्ये । अस्मत् । मृगं । न । वा । मृगयन्ते । अभिऽत्सरन्ति । धेनुभिः ॥६॥

यद्येऽस्मदस्मत्तोऽन्य अस्मिन्मृगं गोभिर्यदीमन्ये भवेः चीरादिभिः संस्कृतेः सोमैः सहिताः  
संतो मृगयन्ते अन्विष्यन्ति । तत्र वृष्टांतः । वा वरीतारो जालादिभिर्हपायेर्निबंधाना व्याधा मृगं न । यथा  
मृगमन्विष्यन्ति तद्वद्वधिकारिण एव जालादिद्रव्यान्निषण्णे वर्तन्त इत्यर्थः ॥ मृग अन्विषण इति धातुः ॥ धे न  
जना धेनुभिः । धेनुरिति वाङ्माम । वाग्भिः सुतिमिन्नाभित्सरन्ति अभिमुखं कुत्सितं गच्छन्ति । सम्यक्क्षोतुं न  
शक्नुवन्तीत्यर्थः ॥ त्सर च्छगती ॥ तथाविधा जना इंद्रं गोपसमंत इत्यर्थः ॥

दशरात्रे तृतीयेऽहनि मरुत्वतीयस्य चय इंद्रस्तेति तृचोऽनुचरः । सूच्यते हि । तं तमिन्द्राधसे महे चय  
इंद्रस्य सोमा इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ । आ० ७. १०. इति ॥

चय इंद्रस्य सोमाः सुतासः संतु देवस्य । स्वे क्षये सुतपाव्रः ॥७॥

चयः । इंद्रस्य । सोमाः । सुतासः । संतु । देवस्य । स्वे । क्षये । सुतपाव्रः ॥७॥

देवस्य दानादिगुणयुक्तस्येन्द्रस्य पानार्थं चयः सवनचयरूपेण विधा वर्तमानाः स्वे चये स्वकीये यज्ञगृहे  
सुतासोऽभिपुताः संतु । भवंतु । सुतपाव्रः । हेतुगर्भविशेषणमेतत् । यस्मादयमिंद्रोऽभिपुतस्त्वैव सोमस्य पाता  
तस्मादभिपुताः संत्वित्यर्थः ॥

चयः कोशासः श्योतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः । समाने अधि भार्मेन् ॥८॥

चयः । कोशासः । श्योतन्ति । तिस्रः । चम्वः । सुऽपूर्णाः । समाने । अधि । भार्मेन् ॥८॥

चयस्त्रिसंख्याकाः कोशासः कोशाः सोमस्याश्रयभूता द्रोणकलशपूतमृदाधवनीयाख्याः श्योतन्ति । चरन्ति ।

इंद्रार्थं सोमं चावयन्ति । तिस्रस्त्रिविधाः सवनवधे वर्तमानाश्चमससाश्च सुपूर्णा इन्द्रयागाय सोमैः सुपूरिता आसन् । एतत्सर्वं कुचेति चेत् उच्यते । समान एकस्मिन्नेव भार्मन् भर्मणि भेर चत्विग्भिर्धियमाणे यज्ञे । अधि सप्तग्यर्थाशुवादी ॥

शुचिरसि पुरुनिष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः । दुध्ना मंदिष्ठः शूरस्य ॥९॥

शुचिः । असि । पुरुनिःस्थाः । क्षीरैः । मध्यतः । आशीर्तः । दुध्ना । मंदिष्ठः । शूरस्य ॥९॥

हे सोम त्वं शुचिरसि । दशापविषेण शोधितो भवसि । स त्वं पुरुनिष्ठाः पुरुषु वज्रसु पात्रेषु ग्रहचमसादिषु निःशेषेण स्नाता मध्यतो मध्ये मेचावक्ष्ययहादी क्षीरैः पयःप्रभृतिभिः अयणद्रव्यैराशीर्तो मिश्रयेन संस्कृतः । तृतीये सवने दुध्ना चाशीर्तः । एवंभूतस्त्वं शूरस्य विक्रांतस्त्रिंश्रस्य मंदिष्ठो मादयितृतमो भव ॥

इमे तं इंद्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतासः । शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥१०॥

इमे । ते । इंद्र । सोमाः । तीव्राः । अस्मे इति । सुतासः । शुक्राः । आशीरं । याचन्ते ॥१०॥

हे इंद्र ते त्वदीया इमे सोमास्तीव्रास्तीव्रमदा अस्मे अस्माभिरध्वर्युभिः सुतासोऽभिषुताः शुक्राः शुधाः संत आशिरं क्षीरादिकं अयणद्रव्यं त्वां याचन्ते । ताञ्ज्जीवीहीत्युत्तरचान्वयः ॥ ॥१०॥

तां आशिरं पुरोक्ताशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि । रेवंतं हि त्वां शृणोमि ॥११॥

तान् । आशीरं । पुरोक्ताशं । इंद्र । इमं । सोमं । श्रीणीहि । रेवंतं । हि । त्वां । शृणोमि ॥११॥

हे इंद्र तान् पूर्वोक्तान् सोमानाशिरं अयणद्रव्यं च क्षीरादिकं श्रीणीहि । मिश्रय यागार्थं । तदगन्तरं पुरोक्ताशं धानाकरंमादिलक्षणं सवनीयपुरोक्ताशमिममसादीयं सोमं च श्रीणीहि । मिश्रय । प्रथमं मषितं पुरोक्ताशं पश्चात्पीतेन सोमेन संयोजयेत्यर्थः । तव प्रार्थने को हेतुरिति चेत् । हि यस्माद्रेवंतं रयिमन्तं । रयिमन्तो वज्रलमिति संप्रसारणं । वज्रलधनं त्वां शृणोमि त्वं वज्रधन इति सर्वत्र श्रूयते अतः कारणात् स्वामेव प्रार्थयामहे ॥

हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायां । ऊधर्नं नृमा जरन्ते ॥१२॥

हृत्सु । पीतासः । युध्यन्ते । दुःसमदासः । न । सुरायां । ऊधः । न । नृमाः । जरन्ते ॥१२॥

हे इंद्र पीतासस्त्वया पीताः सोमा हृत्सु हृदयेषु त्वदीयेषु युध्यन्ते । परस्परं संप्रहारं कुर्वन्ते । तत्र वृष्टांतः । सुरायां पीतायां जायमाना दुर्मदासो न । दुष्टमदा यथा पातारं मादयन्ति तद्वत्त्वां मादयितुं परस्परं युध्यन्त इत्यर्थः । अपि च । पाण्डुदांसि । तानि न जहतीति नृमाः क्षीतारः । ते चोद्धर्नं पयसा पूर्णं गवादेरूध्र एव सोमपूर्णं त्वां जरन्ते । कुर्वन्ति । जरतिः क्षुतिकर्मा ॥

पष्ठेऽहनि यदि रेवतसामसाध्यं पृष्ठक्षीचं तदा निष्केवल्ये रेवो इदित्यनुरूपसृचः । सूच्यते हि । रेवतीर्नः सधमादे रेवो इद्रेवतः क्षीतेति क्षीचयानुरूप्य । आ० ८. १. इति ॥

रेवो इद्रेवतः स्तोता स्याच्चावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥१३॥

रेवान । इत् । रेवतः । स्तोता । स्यात् । त्वाऽवतः । मघोनः । प्र । इत् । ऊं इति ।

हरिऽवः । श्रुतस्य ॥१३॥

हे हरिवो हरिवन् ॥ मनुवसो हरिति नकारस्य बलं ॥ हरी अर्था । तद्वज्रिन्द्र रेवतो रयिमन्तो वज्रधनोपेतस्य तव स्तोता रेवान् स्नात् । रयिमान् भवेत् । इच्छन्तोऽवधारणे । धनवान् भवेदेव न तु दारिद्र्यं



प्राप्नोति । उत्तमेवार्थे वैसुतिव्यायेन वृद्धयति । त्वावतस्त्वत्सदृशस्य ॥ युष्मदस्मां कंदसि सावृक्ष उपसं-  
ख्यामिति वतुप ॥ मघोनो मघवतो धनाढ्यस्य श्रुतस्य विश्रुतस्य सर्वत्र प्रख्यातस्यान्यस्यापि स्तोता प्रेक्षु ।  
स्वादित्यनुषज्यते । प्रख्यात् । प्रमवेदेव न तु निहीयते । किमु वक्तव्यं तव स्तोता धनवान् मवेदेवेति ॥

उक्थं च न शस्यमानमगोरुरिरा चिकेत । न गायचं गीयमानं ॥१४॥

उक्थं च न शस्यमानं । अगोः । अरिः । आ । चिकेत । न । गायचं । गीयमानं ॥१४॥

गायतेर्गोः । अगोरस्तोरुरिः शत्रुरिद्रः शस्यमानं होवा पठ्यमानमुक्थं च न शस्त्रमप्या चिकेत । अभिजा-  
नाति ॥ कित ज्ञाने । क्वांदसो लिट् ॥ नेति संप्रत्यर्थे । न संप्रति प्रस्तोत्रादिभिर्गीयमानं गायन् गतव्यं साम  
यदा गायचाख्यमपि चिकेतैव । अतः कारणादयमपि तामेद्रं शुभ इत्यर्थः ॥

मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धन्ते परा दाः । शिष्वा शचीवः शचीभिः ॥१५॥

मा । नः । इन्द्र । पीयत्नवे । मा । शर्धन्ते । परा । दाः । शिष्वा । शचीवः । शचीभिः ॥१५॥

हे इन्द्र त्वं पीयत्नवे । पीयतिर्वधकर्मा । वधशीलाय हिंसाकारिणे शत्रवे नोऽस्मात्मा परा दाः । मा  
परित्याचीः । मा च शर्धन्तेऽभिभविवेऽस्मात्मा परा दाः ॥ शृधु प्रसहन् इति धातुः ॥ अपि तु हे शचीवः  
शक्तिमन्निन्द्र शचीभिरात्मीयैः कर्मभिः शिष । अस्माननुशाधि । यदा । शिषतिर्दानकर्मा । अभीष्टं धनमस्माभ्यं  
देहि । यदा । शत्रुजेतुं शिष । शक्तान् कर्तुमिच्छ ॥ श्वेः सनंतस्य सनि भीमेतीसादेशेऽभ्यासलोपे च छते स्तोत्रि  
रूपमेतत् ॥ ॥१६॥

प्रथमे रात्रिपर्याये ब्रह्मशस्त्रे वयसु खेति स्तोत्रियस्तुचः । सूचितं च । वयसु त्वा तदिदं वयमिन्द्र  
स्वायसोऽभि । आ० ६. ४. इति ॥

वयसु त्वा तदिदं इन्द्र त्वायंतः सखायः । कखा उक्थेभिर्जरेते ॥१६॥

वयं । ऊं इति । त्वा । तदित्ऽअर्थाः । इन्द्र । त्वाऽयंतः । सखायः । कखाः । उक्थेभिः ।  
जरेते ॥१६॥

हे इन्द्र त्वायंतस्त्वामात्मन इच्छंतः सखायः समानख्याना वयं तदिदं यत्त्वद्विषयं स्तोत्रं तदिदं देवार्थः  
प्रयोजनं येषां तादृशाः संतस्त्वा त्वां जरामहे । कुमहे । उ इति पूरणः । कखाः कखगोपोत्पन्ना अखदीयाः  
पुत्रादयश्चोक्थेभिश्चकथैः शस्त्रैर्जरेते । त्वां कुवंति ॥

न धेमन्यदा पपन् वज्रिचपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ॥१७॥

न । घ । ई । अन्यत् । आ । पपन् । वज्रिन् । अपसः । नविष्टौ । तव । इत् । ऊं इति ।  
स्तोमं । चिकेत ॥१७॥

हे वज्रिन् वज्रवन्निद्र अपसोऽपस्त्रिणः कर्मवतस्तव संबंधिनि नविष्टावभिगवे यजि वर्तमानोऽहमन्यत्व-  
द्विषयादन्यत्स्तोत्रं न धे भेवा पपन् । अभिष्टौमि ॥ पपतेः स्तुतिकर्मण उत्तमे यजि लिटि रूपं ॥ अपि तु तवेदु  
तवैव स्तोमं स्तोत्रं चिकेत । अभिजानामि । त्वामेव सर्वदा स्तोमीत्यर्थः ॥

इच्छन्ति देवाः सुन्वंतं न स्वप्राय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमर्तद्राः ॥१८॥

इच्छन्ति । देवाः । सुन्वंतं । न । स्वप्राय । स्पृहयन्ति । यन्ति । प्रमादं । अर्तद्राः ॥१८॥

सुन्वंतं सोमामिषं जुर्वंतं यजमानं देवा इन्द्रादयः सर्व इच्छन्ति रक्षितुं । स्वप्राय न स्पृहयन्ति । स्वप्रायस्त्वां

तस्य सुवतो नैष्यंति । सर्वदा प्रबुधमेव कुर्वतीत्यर्थः ॥ सुहृदीष्यतः । पा० १. ४. ३६. इति कर्मणि चतुर्थी ।  
सुहृ ईप्सायां पुरादिर्दन्तः ॥ यत् एवमतः कारणादतद्वा अनाससा देवाः प्रमादं प्रकर्षेण मदकरं तदीयं  
सोमं यंति । प्राप्नुवन्ति ॥

ओ षु प्र याहि वाजेभिर्मा हृणीथा अभ्य॑स्मान् । महौ॑ इव युव॑जानिः ॥ १९ ॥

ओ इति । सु । प्र । याहि । वाजेभिः । मा । हृणीथाः । अभि । अस्मान् । महान्ऽइव ।  
युव॑जानिः ॥ १९ ॥

हे इन्द्र वाजेभिर्वाजैरसभ्यं दातव्यैरग्निः सार्धमस्मानभ्यामिमुख्येन सु षु प्र प्रकर्षेण ओ आ उ याहि ।  
शीघ्रमायाह्येव । आगच्छेव । मा, हृणीथाः । मा कुध्यस्व । हृणीयतिः कुध्यतिकर्मा । यद्वा । मा सज्जां  
प्राप्नुहि ॥ हृणीत् सज्जायामिति कण्ठादौ पठ्यते ॥ तत्र दृष्टान्तः । महानिव युवजानिः । युवतिर्वाया यस्य स  
तथोक्तः ॥ आयाया निङ्गिति समासांतो निङादेशः ॥ ईदृशो महान् गुणैरधिकोऽपि यथा स्वभावां प्रति  
निर्लज्जः सज्जीघ्रं गच्छति तद्वत् ॥

मो ध्व॑द्य दुर्हणा॑वान्सा॒यं कर॑दारे अ॒स्मत् । अ॒श्वीर॑ इव॒ जामा॑ता ॥ २० ॥

मो इति । सु । अद्य । दुःऽहना॑वान् । सा॒यं । कर॑त् । अ॒रे । अ॒स्मत् । अ॒श्वीर॑ऽइव ।  
जामा॑ता ॥ २० ॥

दुर्हणावान् । परेर्दुःसहहननं दुर्हणं । तद्वानिन्द्रोऽबेदानीमस्यदारेऽस्माकं समीप आगच्छतु । सु सुप्रतिश-  
येन सायं दिवसस्यावसानं सायंकालं मो करत् । मा कार्षीत् ॥ करोतेर्माङि लुङि कृमृदृबृहिभ्य इति  
ल्लोरङादेशः ॥ जामाता । आयत इति आ अपत्यं । तस्य निर्माता दुहितुःपतिः । अश्वीर इव । न श्वीरश्वीः ।  
तदस्यास्तीत्यश्वीरः ॥ मत्वर्थीयो रः ॥ गुणैर्विहीनः कुत्सितो जामातासह्यमानोऽप्यासायंकालं विजंयते ।  
तद्वत्त्वं कालमिलनं मा कृषा इत्यर्थः ॥ २० ॥

वि॒द्या स॑स्य वी॒रस्य॑ भूरि॒दावरीं॑ सुम॒तिं । चि॒षु जा॑तस्य॒ मना॑सि ॥ २१ ॥

वि॒द्य । हि । अस्य॑ । वी॒रस्य॑ । भूरि॒ऽदावरीं॑ । सु॒ऽमतिं॑ । चि॒षु । जा॑तस्य॒ । मना॑सि ॥ २१ ॥

अक्षेन्द्रस्य वीरस्य विक्रान्तस्य भूरिदावरीं वज्रधनस्य दावीं सुमतिं कक्ष्याणीं मतिमनुग्रहबुद्धिं विद्या  
हि । जानीमः खलु । तथा चिषु भूम्यादिषु चिषु लोकेषु जातस्य तत्कार्यार्थं प्रादुर्भूतस्य मनांसि हृदयानि  
च जानीमः । अतस्तक्षेन्द्रस्य यथा प्रीतिर्जनियते तथा लोचं कुर्म इत्यर्थः ॥

आ तू पि॑च॒ कण्व॑मंतं॒ न घा॑ वि॒द्य श॒वसा॑नात् । य॒शस्तरं॑ श॒तमू॑तेः ॥ २२ ॥

आ । तू । सि॑च॒ । कण्व॑ऽमंतं॒ । न । घा॑ । वि॒द्य । श॒वसा॑नात् । य॒शऽस्तरं॑ । श॒तंऽकू॑तेः ॥ २२ ॥

हे अध्वर्यो कण्वमंतं । कणतिः शब्दकर्मा । कण्वाः सोतारः । यद्वा । कण्वगोत्रा अध्वयः । तैर्युक्तमिन्द्रसु-  
हिभ्य तु विप्रमा सिंच । सोमं जुहुधि । शवसानात् । श्वो बलं । तदिवाचरतोऽतिबलाच्छतमूतेः । शतं  
वज्रमन्तत् । वज्रं जतयो रक्षा यस्मिन् स शतमूतिः । तादृशादस्मादिन्द्रायशस्तरं यशस्वितरं पुरुषं न घ  
नैव विद्य । जानीमः । अतस्तमेवोहिभ्य सोमं जुहुधीत्यर्थः ॥

ज्येष्ठे॑न सो॒तरि॑द्राय॒ सोमं॑ वी॒राय॑ श॒क्राय॑ । भ॒रा पि॑ब॒न्नर्या॑य ॥ २३ ॥

ज्येष्ठे॑न । सो॒तः । इ॒न्द्राय॑ । सोमं॑ । वी॒राय॑ । श॒क्राय॑ । भ॒र । पि॑ब॒न् । न॒र्याय॑ ॥ २३ ॥



हे सोतरमियोतरध्वयौ वीराय विक्रांताय शक्राय शक्तियुक्ताय नर्याय नृभ्यो हितार्थेन्द्राय ज्येष्ठेन मुखेनेन्द्रवायवपदेण । स हि धारायहायां मध्ये ज्येष्ठः । तेन सोमं मर । हर । आहर । वीर्यं प्रापय । स चेन्द्रः पिबत् । तं सोमं पिबतु ॥

यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावंतं जरितुभ्यः । वाजं स्तोतृभ्यो गोमैतं ॥ २४ ॥

यः । वेदिष्ठः । अव्यथिषु । अव्यऽवंतं । जरितुभ्यः । वाजं । स्तोतृभ्यः । गोऽमैतं ॥ २४ ॥

य इन्द्रोऽव्यथिष्वयथिषु सुखकरेषु स्तोतृषु वेदिष्ठोऽतिशयेन वेदिता कृतस्य सोमस्य ज्ञाता स इन्द्रो जरितुभ्यः शंसितुभ्यो होचादिभ्यः स्तोतृभ्यः प्रस्तोचादिभ्यश्चाश्वावंतं वज्रभिरक्षिपेत गोमैतं वज्रभिर्गोभिश्चपेत संतं वाजमम्रं बलं वा ददातीति शेषः ॥

अहीनांतर्गतेऽतिरात्रे प्रथमे पर्याये होतुः शस्त्रे पन्थपन्थमिति स्तोत्रियकृषः कंदोगैरस्य तुषस्य सूयमानत्वात् । कंदोगप्रत्ययं सोमः स्तोत्रियः । आ० प. १३. इति हि स्मर्यते ॥

पन्थपन्थमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय भूराय ॥ २५ ॥

पन्थऽपन्थं । इत् । सोतारः । आ । धावत । मद्याय । सोमं । वीराय । भूराय ॥ २५ ॥

हे सोतारोऽभिषातारोऽध्वर्यवः मद्याय मादयितव्याय वीराय विक्रांताय भूराय शौर्यवत् इन्द्राय पन्थं पन्थमित् सर्वत्र सुखमेव सोममा धावत । अभिगमयत । प्रयच्छतेत्यर्थः ॥ ॥ २५ ॥

पाता वृचहा सुतमा घा गमन्तारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः ॥ २६ ॥

पाता । वृचऽहा । सुतं । आ । घा । गमत् । न । आरे । अस्मत् । नि । यमते । शतंऽऊतिः ॥ २६ ॥

सुतमभिषुतं सोमं पाता पानशीलः ॥ ताच्छीलिकलृन् । न लोकाव्ययेति कर्मणि षष्ठाः प्रतिषेधः ॥ वृचहा वृचस्वाशुरस्य हंतेंद्र आ गमत् । घेत्यवधारणे । आगच्छेत् । असदसन्त आरे दूरदेशे मा भवतु । आगत्य च शतमूतिर्वज्रविधरचण इन्द्रो नि यमते । असदीयाञ्छून्नियच्छतु । तिरस्कारोतु । यदा । धनान्यसम्भं नियच्छतु । ददातु ॥

एह हरीं ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायं । गीर्भिः श्रुतं गिर्वेणसं ॥ २७ ॥

आ । इह । हरी इति । ब्रह्मऽयुजा । शग्मा । वक्षतः । सखायं । गीऽभिः । श्रुतं । गिर्वेणसं ॥ २७ ॥

(ब्रह्मयुजा ब्रह्मणा मंत्रेण स्तोत्रेण हविषा वा युज्यमानौ शग्मा शग्मी सुखकरौ शक्तौ वा इन्द्रो हरी अश्वाविहास्त्रिन्यक्षे सखायं समानस्थानं मित्रभूतमिन्द्रमा वक्षतः । आवहतां । कीदृशमिन्द्रं । गीर्भिः श्रुतिभिः श्रुतं प्रख्यापितमाहातयं गिर्वेणसं गिरां संभक्तारं श्रुतिभिः संभजनीयं वा ॥)

स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।

शिप्रिन् नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादं ॥ २८ ॥

स्वादवः । सोमाः । आ । याहि । श्रीताः । सोमाः । आ । याहि ।

शिप्रिन् । नृषिऽवः । शचीऽवः । न । अयं । अच्छ । सधऽमादं ॥ २८ ॥

हे शिप्रिन् । शिप्रं शिरस्त्राणं । यदा । शिप्रे ह्यु नासिके वा । तदन् हे अघीव अघिभिः स्तोतृभिर्युक्त

शचीवः शक्तिमन् एवभूत हे इंद्र अक्षदीया इमे सोमाः स्वादवः । अमिषवादिभिः संस्कृतत्वेनास्वादनाहं  
जाताः । अतस्त्वमा याहि । आगच्छ । तथा ते सोमाः श्रीताः । पयश्चादिभिः अथणद्रवैर्मिश्रिताः संस्कृताः ।  
अतोऽप्या याहि । आगच्छ । इति संप्रत्यर्थे । न संप्रत्ययं सोता सधमादं सह मादयितव्यं त्वामच्छामिमुखं  
स्वीतीति शेषः । अतोऽप्यायाहीत्यर्थः ॥

स्तुतश्च यास्वा वर्धति महे राधसे नृम्णाय । इंद्र कारिणं वृधंतः ॥ २९ ॥

स्तुतः । च । याः । त्वा । वर्धति । महे । राधसे । नृम्णाय । इंद्र । कारिणं । वृधंतः ॥ २९ ॥

हे इंद्र कारिणं कर्मणां कर्तारं वृधंतो वर्धयंतो ये स्तुतः स्तोतारः याश्च तदीयाः स्तुतयस्त्वा त्वां वर्धति  
वर्धयंति । किमर्थं । महे महते राधसे धनाय गुण्याय बलाय च । उभयोर्लोभार्थं । ते तदुभयं जमंत इत्य-  
ध्याहारः । यद्वा । उत्तराय ते सचा दधिरे शवांसितीति संबंधः ॥

गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि । सचा दधिरे शवांसि ॥ ३० ॥

गिरः । च । याः । ते । गिर्वाहः । उक्था । च । तुभ्यं । तानि । सचा । दधिरे । शवांसि ॥ ३० ॥

हे गिर्वाहो गीर्भिः स्तुतिर्निर्वहणीयेंद्र ते तुभ्यं क्रियमाणा गिरश्च स्तुतिरूपाश्च वाचो याः संति । उक्था  
चोक्त्यानि च शस्त्ररूपाणि च चचांसि तुभ्यं त्वदर्थं क्रियमाणानि यानि संति । तानि सर्वाणि सचा सहैव  
शवांसि बलानि दधिरे । तथ विदधिरे ॥ ॥ २२ ॥

एवेदेष तुविकूर्मिर्वाजा एको वज्रहस्तः । सनादमृक्तो दयते ॥ ३१ ॥

एव । इत् । एषः । तुविऽकूर्मिः । वाजान् । एकः । वज्रऽहस्तः । सनात् । अमृक्तः । दयते ॥ ३१ ॥

एष एवेंद्रतुविकूर्मिर्बज्रकर्मा । इदिति पूरकः । एकः सर्वेषु देवेषु मुख्यो वज्रहस्तो वज्रवाजः सनाच्चिरका-  
लादारभ्यामृक्तः शत्रुभिरवाधितः एवभूतः स इंद्रो वाजान्नानि बलानि वा दयते । स्तोतुभ्यो ददाति ॥

हंता वृचं दक्षिणेनेंद्रः पुरु पुरुहूतः । महान्महीभिः शचीभिः ॥ ३२ ॥

हंता । वृचं । दक्षिणेन । इंद्रः । पुरु । पुरुहूतः । महान् । महीभिः । शचीभिः ॥ ३२ ॥

अयमिंद्रो दक्षिणेन हस्तेनैकेनैव वृचमावरकमसुरं हंता साधु हतवान् ॥ हंतेः साधुकारिणि तुन् । न  
लोकाव्ययेति यदप्रतिषेधः ॥ पुरु पुरुष ॥ सुपां मुमुगिति विभक्तैर्लुक् ॥ वज्रेषु देशेषु पुरुहूतो महीभिर्महतीभिः  
शचीभिः क्रियाभिः शक्तिभिर्वा महान् सर्वेभ्य उत्कृष्टः । एवभूत इंद्रोऽस्माज्जयतित्यर्थः ॥

यस्मिन्विश्वश्चर्षणय उत्त च्यौत्ना जयांसि च । अन्नु घेन्मंदी मघोनः ॥ ३३ ॥

यस्मिन् । विश्वाः । चर्षणयः । उत्त । च्यौत्ना । जयांसि । च । अन्नु । घ । इत् । मंदी ।

मघोनः ॥ ३३ ॥

विश्वः सर्वाचर्षणयः प्रजा यस्मिन्निंद्रे वर्तन्ते यदधीना भवन्ति । उतापि च च्यौत्ना च्यौत्नानि । बलना-  
मैतत् । प्रच्युतिसाधनानि बलानि च जयांसि शत्रुविषयाश्च अभिमवनानि यस्मिन्निंद्रे वर्तन्ते ॥ जि जि अभिमवन  
इति धातुः ॥ स इंद्रो मघोनः । मघं हविर्लक्षणं धनं । तद्वतो यजमानाननु मंथनुमोदको भवति । चेदिति  
पूरको । यद्वा । मंदी स्तुत्यः स इंद्रस्ताननु गृह्णातीति शेषः । अथवा । यस्य मघोनो धनदत्त इंद्रस्य मंदी  
स्तोताशुक्लो भवति एष एतानीत्युत्तरवैकवाक्यता ॥



एष एतानि चकारेद्रो विश्वा योऽति श्रुत्वे । वाजदावा मघोर्ना ॥३४॥

एषः । एतानि । चकार । इंद्रः । विश्वा । यः । अति । श्रुत्वे । वाजऽदावा । मघोर्ना ॥३४॥

एष इंद्रो विश्वा विश्वानि व्याप्नोतेति वृषवधादीनि वीर्याणि । यद्वा । पृषिवादीनि मृतजातानि । तानि चकार । कृतवान् । य इंद्रो बलैरतिशयितः श्रुत्वे श्रूयते सर्वत्र श्रूयते । अपि च स इंद्रो मघोर्ना हविष्मतां यजमानानां वाजदावा वाजस्त्राजस्य दाता भवति ॥

प्रभर्ता रथं गव्यंतमपाकाच्चिद्यमवन्ति । इनो वसु स हि वोळ्हा ॥३५॥

प्रभर्ता । रथं । गव्यंतं । अपाकात् । चित् । य । अवन्ति । इनः । वसु । सः । हि । वोळ्हा ॥३५॥

प्रभर्ता प्रहर्ता प्रहरणशील इंद्रो रथं रह्यं गव्यंतं गा इच्छंतं यं सोतारमपाकाद्विपक्षप्रज्ञाच्छ्रुतः । चिच्छब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । विपक्षप्रज्ञादप्यवन्ति रथति स हि स खलु सोतेन ईश्वरः सन् वसु धनं वोळ्हा साधुवाही भवति ॥ यद्वाः साधुकारिणि नृन् । अतो न लोकाव्ययेति कर्मणि षष्ठाः प्रतिषेधः ॥ ॥२३॥

सनिता विप्रो अर्वैर्जिह्वेता वृचं नृभिः शूरः । सत्योऽविता विधंतं ॥३६॥

सनिता । विप्रः । अर्वैर्जिह्वेता । वृचं । नृभिः । शूरः । सत्यः । अविता । विधंतं ॥३६॥

विप्रो मेधावी स इंद्रोऽर्वैर्जिह्वैर्वाहनभूतैः सनिता गंतव्यं संभक्ता । तथा शूरः शीरोपेतः सप्तभिर्नृभिर्मंडभिः सार्धं वृचमावरकमसुरं हंता साधुघाती । अपि च विधंतं परिवर्ततं यजमानं सत्यः साधुरवितथस्वभावो वा स इंद्रोऽविता परिवर्ततो यजमानस्य रक्षिता भवति ॥ सर्वविधीनां ह्येदं विवक्षितत्वात् च कर्मणि षष्ठी न प्रवर्तते ॥

यजध्वेनं प्रियमेधा इंद्रं सचाचा मनसा । यो भूत्सोमैः सत्यमन्वा ॥३७॥

यजध्व । एनं । प्रियऽमेधाः । इंद्रं । सचाचा । मनसा । यः । भूत् । सोमैः । सत्यऽमन्वा ॥३७॥

हे प्रियमेधाः । प्रियोऽनुकूलो मेधो यज्ञो येषां ते तथोक्ताः । आत्मानि पूजार्थं ब्रह्मवचनं । प्रियमेधा अस्य । अष्टपिरात्मानं संबोधयति । हे प्रियमेधाः सचाचा सहाचता सोतवेनेद्रेण सह वर्तमानेन मनसा चित्तेनैवमिंद्रं यजध्वं । यजध्वं । बुद्धिपूर्वकं यजेत्यर्थः ॥ यजध्वेनं । पा० ७. १. ४३. इति निपातनाद्वर्णलोपः ॥ य इंद्रः सोमैः करणभूतैः सत्यमन्वा भूत् सत्यमदोऽवितथमदो भवति ॥

गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानं । कखासो गात वाजिनं ॥३८॥

गाथऽश्रवसं । सत्पतिं । श्रवःऽकामं । पुरुत्मानं । कखासः । गात । वाजिनं ॥३८॥

हे कखासः कखपुत्रा मेधातिथयः । पूर्ववद्ब्रह्मवचनमात्मनः संबोधनं च । हे कखस्य पुत्रा मेधातिथयः यूयं गाथश्रवसं गातव्यश्रवसं सत्पतिं सतां पालयितारं श्रवस्कामं । श्रवःस्वप्नेषु हविःषु कामोऽभिवापो यस्य तादृशं । पुरुत्मानं ब्रह्मात्मानं यद्वा पुरुष ब्रह्म प्रदेशेष्वतंतं सततं गच्छंतं वाजिनं वेगवंतं एवंगुणकमिंद्रं गात । गायत । क्षुध्वं ॥

य च्युते चिद्गास्पदेभ्यो दात्सखा नृभ्यः शचीवान् । ये अस्मिन्काममश्रियन् ॥३९॥

यः । च्युते । चित् । गाः । पदेभ्यः । दात् । सखा । नृभ्यः । शचीवान् । ये । अस्मिन् । कामं । अश्रियन् ॥३९॥

कामं । अश्रियन् ॥३९॥

पणिभिर्देवगवीष्वपहृतासु पदेभ्यो गतानां गवां मार्गे संलभेभ्योऽन्वेषणसाधनभूतेभ्य ऋते चिद्वृतेऽपि विनापि सखा भिचभूतः शचीवान् कर्मवान् प्रशस्तकर्मा य इन्द्रो नृभ्यो नेतृभ्यो देवेभ्यो गाः पणिभिरपहृता दातुं पुनर्दत्तवान् । ये देवा अस्मिन्निद्रे काममभिलाषमश्रियन् असेवंत प्राप्तुवन् । तेभ्यो नृभ्य इत्यन्वयः । तमिन्द्र गातेति पूर्वेण सहैकवाक्यता ॥

इत्था धीर्वतमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिं । मेधो भूतोऽभि यन्नयः ॥४०॥

इत्था । धीऽर्वतं । अद्रिऽवः । काण्वं । मेध्यऽअतिथिं । मेधः । भूतः । अभि । यन् । अयः ॥४०॥

इत्येत्यमनेनोक्तेन प्रकारेण धीर्वतं सुतिमंतं काण्वं कण्वपुत्रं मेध्यातिथिं यज्ञार्हातिथिमेतत्संज्ञमुषि हे अद्रिवो वज्रिचिद्र मेधो भूतो मेधरूपतां प्राप्तोऽभि यन्नभिगच्छन् ॥ य इत्यनुवर्तते । तद्योगाच्च तिङो निघाताभावः ॥ यस्त्वमयः अगमयः तं त्वां सुम इत्यर्थः । मेधातिथिर्मेधेति सुब्रह्मस्थानं त्रैकदेशस्य व्याख्यानरूपं ब्राह्मणं छंदोगैरिवमास्त्रायते । मेधातिथिं हि काण्वायनिं मेधो मूत्वावहार । षड्विंशं ब्रा० १. १. इति । तदभिप्रायेणैवं सुतिः कृता ॥

शिक्षा विभिंदो अस्मै चत्वार्ययुता ददत् । अष्टा परः सहस्रा ॥४१॥

शिक्षा । विभिंदो इति विऽभिंदो । अस्मै । चत्वारि । अयुता । ददत् । अष्ट । परः । सहस्रा ॥४१॥

विभिंदुनाम्नो राज्ञः सकाशाद्ब्रह्म धनं लब्ध्वा तदीयं दानमिदमादिकेन वृत्तेन प्रशंसति । हे विभिंदो राजन् ददहाता त्वमस्मै मह्यमुषये चत्वार्ययुतायुतानि दशसहस्राणि चत्वारिंशत्सहस्राणि शिब । अग्निचः । दत्तवानसि । परः परस्तादूर्ध्वमप्यष्टसंख्याकानि सहस्रा सहस्राणि च दत्तवानसि ॥

उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नृणां । जनिऽत्वनाय मामहे ॥४२॥

उत । सु । त्ये इति । पयः । वृधा । माकी इति । रणस्य । नृणां । जनिऽत्वनाय । मामहे ॥४२॥

उतापि च सु सुष्ठु त्वे ते सर्वत्र प्रसिद्धे पयोवृधा पयस उदकस्य वर्धयित्री माकी निर्मात्री भूतजातस्य रणस्य । क्षीतृणामेतत् । क्षीतुर्नृणां नृण्यौ न पातयित्री सर्वदानुग्रहशीले बावापृथिव्यौ जमित्रनाथ पूर्वोक्त-धनस्य जननाय प्रादुर्भावाय लाभाय ममहे । सुतवानसि । बावापृथिव्योः प्रसन्नचोरेवेदं दानं लभ्यते नान्यदेति दानमाहात्म्यप्रशंसाधिगंतव्या ॥ ॥४२॥

पिवा सुतस्तेति चतुर्विंशत्यृचं तृतीयं सूक्तं काण्वस्य मेध्यातिथेरार्षं । अयुजो बृहत्यो युजः सतोबृहत्य एकाविंशनुष्टुप्चाविंशोचयोविंशौ गायत्री चतुर्विंशो बृहती । एताश्चतस्रः कुर्याणस्य पुत्रस्य पाकस्थामनाम्नो राज्ञो दानसुतिप्रतिपादिकाः । अतस्तद्देवताकाः । शिष्टा ऐंशः । तथा चानुक्रांतं । पिब चतुर्विंशतिर्मेधा-तिथिः प्रागाथं त्वनुष्टुप्गायत्री बृहता चांत्याः कौर्याणस्य पाकस्थाम्नो दानसुतिरिति ॥ महाव्रते निष्केवली वार्हतनुचाशीर्ता दानसुतीर्विनेदं सूक्तं सप्तम्यष्टम्योश्चोदरः । तथैव पंचमारण्यके सूचितं । पिवा सुतस्य रसिन इति विंशतेः सप्तमीं चाष्टमीं चोदरति । ऐ० आ० ५. २. ४. इति ॥ व्योतिष्टोमे निष्केवली आयो रथंतरसा-मप्रगाथः शंसनीयः । सूच्यते हि । पिवा सुतस्य रसिन इति सामप्रगाथः । आ० ५. १५. इति । चातुर्विंशिके ऽहनि निष्केवलीऽप्ययं प्रगाथः । सूच्यते हि । उक्तो रथंतरस्योमयं शृण्वच्च न इति बृहतः । आ० ७. ३. इति ॥ एवमन्यत्रापि यदि रथंतरं पृष्ठं भवति तत्र सर्वत्रायं प्रगाथो ब्रूयः ॥ पंचमेऽहनि प्रउगशस्त्रे पिवा सुतस्तेत्य-यमिन्द्रः प्रगाथः । सूचितं च । पिवा सुतस्य रसिनो देवं देवं वोऽवसे । आ० ७. १२. इति ॥

पिवा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमंतः ।

आपिनो वोधि सधमाद्यो वृधेऽस्माँ अवंतु ते धियः ॥१॥



पिब । सुतस्य । रसिनः । मत्स्व । नः । इंद्र । गोऽमृतः ।

आपिः । नः । बोधि । सधऽमाद्यः । वृधे । अस्मान् । अवतु । ते । धियः ॥ १ ॥

हे इंद्र रसिनो रसवतो गोमतो गोविकारिः पयःप्रभृतिभिः अयणद्रवैर्युक्तस्य गोऽसदीयस्य सुतस्याभि-  
पुगस्य ॥ क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थ्ये षष्ठी ॥ इंद्रं सोमं पिब । पीत्वा च मत्स्व ।  
गुप्तो भव । अपि च सधमायः सह मादयितव्यः संहितैरसामिस्वर्पयितव्यस्त्वमापिरापयिता वंधुः सन्नोऽस्माकं  
वृधे वर्धनाय बोधि । बुध्यस्व । ते त्वदीया धियो वृधयोऽनुग्रहात्मिका अस्मान् स्तोतुनवन्तु । रचन्तु ॥

भूयाम ते सुमती वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये ।

अस्माच्चिवाभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुक्षेपु यामय ॥ २ ॥

भूयाम ते । सुऽमती । वाजिनः । वयं । मा । नः । स्तः । अभिऽमातये ।

अस्मान् । चिवाभिः । अवतात् । अभिष्टिऽभिः । आ । नः । सुक्षेपु । यामय ॥ २ ॥

हे इंद्र ते तव सुमती शोभनायां मतावशुग्रहपुत्री वाजिनो हविष्मन्तो वयं भूयाम । वर्तमाना भवाम ।  
अभिमातये । अभिमन्यत इत्यभिमातिः शत्रुः । तस्मै तदर्थं नोऽस्मात्ता स्तः । मा हिंसीः ॥ शृङ्ग हिंसायां ।  
माडि सुडि च्छांदसश्चैर्लुक् ॥ अपि त्वभिष्टिभिरशेषणीयाभिः प्रार्थनीयामिश्चिचामिश्चायनीयामिर्वैजविधा-  
भिर्वी त्वदीयामिरुतिभिरसानवतात् । अव । रच । तथा नोऽस्मान् सुक्षेपु सुक्षेप्वा यामय । आयतान् कुरु ।  
सर्वदा सुखिन एव कुरु ॥

इमा उं त्वा पुरुवसो गिरौ वर्धंतु या मम ।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ३ ॥

इमाः । उं इति । त्वा । पुरुवसो इति पुरुऽवसो । गिरः । वर्धंतु । याः । मम ।

पावकऽवर्णाः । शुचयः । विपऽचितः । अभि । स्तोमैः । अनूषत ॥ ३ ॥

हे पुरुवसो ब्रह्मर्षेन्द्र मम मदीया इमा गिरः शस्त्ररूपा वाचस्वा त्वां वर्धंतु । वर्धयंतु । तथा  
पावकवर्णा अभिसमानतेजस्काः अत एव शुचयः शुद्धा विपश्चितो विद्वांस उद्गातारश्च स्तोमैः स्तोत्रैर्विहित्य-  
वमानादिभिरनूषत । त्वामभिपुवंति ॥ नू स्तुती कुटादिः ॥

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।

सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ४ ॥

अयं । सहस्रं । ऋषिऽभिः । सहऽकृतः । समुद्रऽइव । पप्रथे ।

सत्यः । सः । अस्य । महिमा । गृणे । शवः । यज्ञेषु । विप्रराज्ये ॥ ४ ॥

अयमिन्द्रः सहस्रं सहस्रसंख्याकैश्चेष्टिभिरतींद्रियार्थदर्शिभिः स्तोतुभिः सहस्कृतः सहसा बलेन युक्तः क्षतः ।  
क्षुत्वा हि देवताया बलं वर्धति । स चैवंभूतः सन् समुद्र इवोदधिरिव पप्रथे । प्रथितो विस्तीर्णो बभूव । अस्त्र  
चेंद्रस्य सत्त्वोऽधितयः स प्रसिद्धो महिमा महत्त्वं शवो बलं च यज्ञेषु यागेषु विप्रराज्ये । राज्ञः कर्म राज्यं ।  
विप्राणां स्तोतृणां राज्ये क्षुतशस्त्रसंघे गृणे । क्षूयते ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि निष्केवज्ज इंद्रमिद्वितातय इति रेवतसामप्रगाथः शंसनीयः पृथ्वीऽहनि निष्केवज्जे  
त्वयं प्रगाथः । सूच्यते हि । इंद्रमिद्वितातय इतीतरेषां पृथक् एवैकैकमन्वहं । आ० ७. ३. इति ॥

इंद्रमिहेवतातय इंद्रं प्रयत्यध्वरे ।

इंद्रं समीके वनिनो हवामह इंद्रं धनस्य सातये ॥ ५ ॥

इंद्रं । इत् । देवऽतातये । इंद्रं । प्रऽयति । अध्वरे ।

इंद्रं । संऽईके । वनिनः । हवामहे । इंद्रं । धनस्य । सातये ॥ ५ ॥

देवतातये । देवः स्तोत्रमिच्छायते विस्तार्यत इति देवतातिर्यञ्चः । तदर्थमिंद्रमिहेवेषु मध्य इंद्रमेवाह्वयामहे । अध्वरे यज्ञे प्रयति प्रयच्छत्युपक्रान्तिं सतींद्रं हवामहे । तथा समीके सम्यग्यति संपूर्णे च यागे वनिनः संमज्जमाना ययमिंद्रमेवाह्वयामहे । यद्वा । समीकमिति संयामनाम । समीके संयाम इंद्रमाह्वयामहे । धनस्य सातये सामर्थ्येन्द्रमेवाह्वयामहे । अतः शीघ्रमिंद्र आगच्छत्वित्यर्थः ॥ २५ ॥

इंद्रो महा रोदसी पप्रथच्छव इंद्रः सूर्यमरोचयत् ।

इंद्रं ह विश्वा भुवनानि येमिर इंद्रं सुवानास इंद्रवः ॥ ६ ॥

इंद्रः । महा । रोदसी इति । पप्रथत् । शवः । इंद्रः । सूर्यं । अरोचयत् ।

इंद्रं । ह । विश्वा । भुवनानि । येमिरे । इंद्रं । सुवानासः । इंद्रवः ॥ ६ ॥

अयमिंद्रः शवः शवस आत्मीयस्य बलस्य महा महिम्ना महत्त्वेन रोदसी आवापृथिव्यौ पप्रथत् । अप्रथयत् । विस्तारितवान् । तथा स्वर्मानुनावृतं सूर्यमयमेवेंद्रोऽरोचयत् । अदीपयत् । तस्मात्सुरस्य वधेन प्रकाशितवान् । अपि चेद्रे हासिन्नेवेद्रे विश्वा विश्वानि व्याप्तानि भुवनानि भूतजातानि येमिरे । उपरमंति । इंद्रेण नियम्यंत इत्यर्थः । तथा सुवानासः सूयमाना अभिषूयमाणा इंद्रवः सोमाश्चासिन्नेवेद्रे नियम्यन्ति । अंतर्मवन्तीत्यर्थः ॥

ज्योतिष्टोमो यदि रथंतरपृष्ठस्तदा निष्केवलेऽभि त्वा पूर्वपीतय इति प्रगाथोऽनु रूपः । सूच्यते हि । अभि त्वा पूर्वपीतय इति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ । आ० ५. १५. इति ॥ महाव्रतेऽपि निष्केवले दक्षिणपथेऽप्ययं प्रगाथः । सूचितं च । अभि त्वा पूर्वपीतय इति रथंतरस्य स्तोत्रियानुरूपौ प्रगाथौ । ऐ० आ० ५. २. २. इति ॥

अभि त्वा पूर्वपीतय इंद्र स्तोमेभिरायवः ।

समीचीनासं ऋभवः समस्वरनुद्रा गृणंत पूर्वं ॥ ७ ॥

अभि । त्वा । पूर्वऽपीतये । इंद्रं । स्तोमेभिः । आयवः ।

संऽईचीनासः । ऋभवः । सं । अस्वरन् । रुद्राः । गृणंत । पूर्वं ॥ ७ ॥

हे इंद्र आयवो मनुष्याः स्तोतारः स्तोमेभिः स्तोत्रैस्त्वामभिष्टुवन्ति । किमर्थं । पूर्वपीतये सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वं प्रथमत एव सोमस्य पानाय । सवनमुखे हि चमसगणैरिंद्रस्त्वैव सोमो ह्रयते । तथा समीचीनासः संगता ऋभवः । प्रथमवाचकेन शब्देन चयोऽप्युपलक्ष्यन्ति । ऋभुर्विभ्वा वाज इत्येते च समस्वरन् । त्वामेव सम्यगस्तुवन् ॥ स्तु शब्दोपतापयोः ॥ रुद्रा रुद्रपुत्रा मरुतश्च पूर्वं पुरातनं वृद्धं त्वामेव गृणंत । अभ्यस्तुवन् । वृचवध-संमये प्रहर भगवो जहि वीरयस्त्वैवेत्येवंप्रयत्ना वाचा त्वां स्तुतवन्त इत्यर्थः ॥

अस्येदिंद्रो वावृधे वृषण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।

अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुं ध्रुवंति पूर्वथा ॥ ८ ॥



अस्य । इत् । इन्द्रः । वृष्ये । वृष्यै । शर्वः । मदे । सुतस्य । विष्णवि ।

अद्य । तं । अस्य । महिमानं । आयवः । अनु । सुवन्ति । पूर्वऽथा ॥ ८ ॥

अस्येदस्यैव यजमानस्य वृष्यं वृष्यं वीर्यं शर्वो बलं चन्द्रो वावृधे । वर्धयति । सुतस्यामिषुतस्य सोमस्य पात्रेण विष्णवि कृत्स्नदेहस्य आपके मदे हव्ये सति तस्यैव यजमानस्य बलं वर्धयतीत्यर्थः । अथास्मिन् काले ऽस्मिन्द्रस्य तमुक्तगुणं महिमानं महत्त्वमायवो मनुष्या अनु वृवंति । आनुपूर्व्येण सुवन्ति । पूर्वथा ॥ पूर्वशब्दादिवार्थं प्रत्यपूर्वत्वादिना यावत्प्रत्ययः ॥ यथा पूर्वस्मिन् कालेऽनुवन् एवमिदानीमपि तेनैव क्रमेण सुवन्तीत्यर्थः ॥

ज्योतिष्टोमे माध्वादिनसवने ब्रह्मशस्त्रे तत्त्वा यामीति प्रगाथोऽनुकूपः । सूचितं च । तत्त्वा यामि सुवीर्यमिति प्रगाथो लोचियानुकूपी । आ० ५. १६. इति ॥ चातुर्विधिकेऽहनि माध्वादिनसवनेऽप्ययं प्रगाथसस्त्रीवा-  
नुकूपः । सूचितं च । तत्त्वा यामि सुवीर्यममि प्र वः सुराधसं । आ० ७. ४. इति ॥

तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्वत्स पूर्वचिन्तये ।

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिने येन प्रस्कृत्यमाविष्य ॥ ९ ॥

तत् । त्वा । यामि । सुऽवीर्यं । तत् । ब्रह्म । पूर्वऽचिन्तये ।

येन । यतिभ्यः । भृगवे । धने । हिने । येन । प्रस्कृत्यं । आविष्य ॥ ९ ॥

हे इन्द्र तत्सुवीर्यं शोभनवीर्यं त्वा त्वां यामि । याचामि ॥ इन्द्रो वर्यलोपः ॥ तथा तद्वत्स परिवृढमसं पूर्वचिन्तये पूर्वप्रदानायान्वेभ्यः पूर्वमेव लाभाय त्वां याचामि । धने हिनेऽभीष्टे सति येन सुवीर्येण यतिभ्यः कर्मसुपरतेभ्योऽयदृभ्यो जनेभ्यः सकाशात्प्रमाहृत्य भृगवे महर्षये प्रयच्छसि । यद्वा । कर्मसु नियता चंगिरसो यतयः । तेषामर्थं धनं प्रयच्छसि ॥ तादर्थ्यं चतुर्थी ॥ येन च ब्रह्मणा प्रस्कृत्यं कल्पप्रभवं कल्पस्य पुत्रमृषिमाविष्य ररविष्य । तदुभयं याचामीत्यन्वयः ॥

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र दृष्टिं ते शर्वः ।

सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ १० ॥

येन । समुद्रं । असृजः । महीः । अपः । तत् । इन्द्र । दृष्टिं । ते । शर्वः ।

सद्यः । सः । अस्य । महिमा । न । संऽनशे । यं । क्षोणीः । अनुऽचक्रदे ॥ १० ॥

हे इन्द्र येनास्मीयेन बलेन समुद्रमस्मिं प्रति महीर्महीरप उदकान्यस्रजः व्यस्रजः । महान् समुद्रो यावन्निर्यस्रः पूर्यते तावन्ति वलानि परा त्वं दृष्टवानित्यर्थः । ते त्वदीयं तच्छर्वो बलं वृष्णि वर्धकं । अभीष्टक-  
लदमित्यर्थः । अस्मिन्द्रस्य स महिमा न संनशे । न सम्यगापनीयः । परैरप्रभृष्य इत्यर्थः ॥ अनेः कृत्याये  
केन्द्रप्रत्ययः ॥ यं महिमानं क्षोणीः क्षोणी पृथिव्यनुचक्रदे अनुगच्छति । क्रदिरच गत्यर्थः । यदधीना वर्तते  
इत्यर्थः ॥ ॥ २६ ॥

शग्धि न इन्द्र यत्त्वा रयिं यामि सुवीर्यं :

शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते शग्धि स्तोमाय पूर्य ॥ ११ ॥

शग्धि । नः । इन्द्र । यत् । त्वा । रयिं । यामि । सुऽवीर्यं ।

शग्धि । वाजाय । प्रथमं । सिषासते । शग्धि । स्तोमाय । पूर्य ॥ ११ ॥

हे इन्द्र सुवीर्यं शोभनवीर्यं यत् । बज्रग्रीही वीरवीर्यं चेत्युत्तरपदाबुदात्तत्वं ॥ यद्रयिं धनं त्वां यामि

याचामि ॥ छांदसो वर्णोद्योपः ॥ नोऽस्माभ्यं तद्धनं शग्धि । देहि ॥ शकिरच दानार्थः । तस्माद्योति ह्रीं छांदसो विकरणस्य जुक् । ऊग्रलब्ध इति हेर्धिलं ॥ तथा सिषासते संभक्तुमिच्छते ॥ सभतेः सनि सनीवंतर्धेति विकल्प-  
नादिडभावे जगसनखनामित्यात्वं ॥ वाजाय । वाज इत्यन्ननाम । तेन च तद्वाञ्छयते । हविष्यते यजमानाय  
प्रथमं सर्वेभ्यः पूर्वमेव शग्धि । धनं प्रयच्छ । यद्वा । वाजायेति द्वितीयाथे चतुर्थी । कर्मभिस्त्वां संभक्तुमिच्छते  
जनाय प्रथमं वाजाय वाजमन्नं शग्धि । देहि । पश्चात्स्तोमाय स्तोत्रे हे पूर्वं पूर्वस्मिन् काले भव चिरंतनेंद्र  
शग्धि । देहि ॥ सौतेः कर्तर्यतिजुस्वितादिना मन्त्रत्वयः ॥

शग्धी नो अस्य यद् पौरमाविष्य धियं इंद्र सिषासतः ।

शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपमिंद्र प्रावः स्वर्णरं ॥१२॥

शग्धि । नः । अस्य । यत् । ह । पौरं । आविष्य । धियः । इंद्र । सिषासतः ।

शग्धि । यथा । रुशमं । श्यावकं । कृपं । इंद्र । प्र । आवः । स्वः । नरं ॥१२॥

हे इंद्र धियः कर्माणि स्तोत्राणि वा सिषासतः संभक्तवतो नोऽस्माकं संबन्धिनोऽस्य यजमानस्य तद्धनं  
शग्धि प्रदेहि यज्-येन खलु धनेन पौरं । पुर्ननाम राजा । तस्य पुत्रमाविष्य ररषिष्य । अपि च हे इंद्र यशमं  
श्यावकं छापं चैतन्नाभकांस्त्रीजाजर्षीन् यथा येन प्रकारेण प्रावः प्रारचः तथा स्वर्णरं सर्वस्य हविषो नेतारं  
प्रापयितारं । यद्वा । स्वः स्वर्गे प्रति नेतव्यमिमं यजमानं शग्धि । शक्तं कुरु । धनादिसंपत्त्या यागानुष्ठानाय  
यथा शक्नो भवन्ति तथा कुर्वित्वर्थः । इंद्रेत्यामंचितस्य पादादित्वेनाष्टमिकनिघाताभावे षाष्ठिकमामंचिता-  
युदात्तत्वं ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने ब्रह्मशस्त्रे कन्नव्य इति कक्षान्मन्त्राद्यः । सूचितं च । कन्नव्यो अतसीनां  
कद्रू न्वस्याकृतमिति कवतः प्रगाथाः । आ० ७. ४. । इति ॥ अहर्गणेषु द्वितीयादिष्वहःसु तस्मिञ्छस्त्रे तस्मैवायं  
प्रगाथः । सूच्यते हि । आरंभणीयाः पर्यासान् कवतोऽहरहःशस्त्रानीति होचका द्वितीयादिष्वेव । आ०  
२. १. । इति ॥

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।

नही न्वस्य महिमानमिंद्रियं स्वर्गुणं आनयुः ॥१३॥

कत् । नर्थः । अतसीनां । तुरः । गृणीत । मर्त्यः ।

नहि । नु । अस्य । महिमानं । इंद्रियं । स्वः । गृणतः । आनयुः ॥१३॥

अतसीनामतसीनां सततगामिनीनां सुतीनां तुरः प्रेरयिता मर्त्यो मरणधर्मा नव्योऽभिनव इदानींतनः  
कत् को नाम स्तोता गृणीत । इंद्रं सुयात् । अल्यप्रक्षैरिदानींतनैरिंद्रः स्तोतुं न शक्यत इत्यर्थः ॥ गृ शब्दे ।  
क्रियादिकः । त्वादीनां ब्रह्म इति ब्रह्मत्वं ॥ नु पुरा पूर्वस्मिन्नपि काले विद्यमानाः स्वः सर्वे गृणतः स्तोतारः ।  
यद्वा । स्वः मुहुरणीयं प्राप्तव्यमिंद्रं गृणतः सुवतो जनाः । इंद्रियं । इंद्रियमिंद्रस्य लिंगमिंद्रस्यैवासाधारणं ।  
अस्मिंद्रस्य महिमानं महत्त्वं न ह्यानयुः । न खलु प्राप्तवन् ॥ अस्मोतेर्लिटि व्यत्ययेन परस्मैपदं । अत आदेरि-  
त्यभ्यासस्यात्वं । अस्मोतेत्येति नृद् । हि चेति निघातप्रतिषेधः ॥

कद्रु सुवतं ऋतयंत देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।

कदा हवं मघवन्निंद्र सुवतः कद्रु सुवत आ गमः ॥१४॥

कत् । ऊं इति । सुवतः । ऋतयंत । देवता । ऋषिः । कः । विप्रः । ओहते ।

कदा । हवं । मघवन् । इंद्र । सुवतः । कत् । ऊं इति । सुवतः । आ । गमः ॥१४॥



हे इंद्र सुवतः स्तोत्रं कुर्वतः कदु के खलु जना देवता ॥ देवान्नजिति स्वार्थिकस्तत्प्रत्ययः । व्यत्ययेन प्रथमा ॥ देवं त्वामुद्दिश्य अतयंत । अतं यज्ञमैच्छन् । त्वदीययागिच्छापि दुर्लभा दूरे त्वयागकथा । अविर्द्रष्टा विप्रो मेधावी कः स्तोताहते । वहति । त्वां स्तुतोः प्रापयति । न कश्चिदपि त्वां स्तोतुं शक्नोतीत्यर्थः । यत एवमतः कारणात् हे मघवन् धनवर्तिन्द्र अनुग्रहीषा त्वयैवागंतव्यं । स त्वं कदा कस्मिन्काले सुन्वतः सोमाभियवं कुर्वतो यवमानस्य हवमाद्भानं प्रत्या गमः । आगच्छः । कदु कदा च कश्चिंश्च काले सुवतः केवलं स्तोत्रं कुर्वतो यवमानस्य हवमाद्भानमा गमः । अभ्यगच्छः ॥ सुन्वतः सुवत इत्युभयश्च शत्रुरनुम इति विभक्तेरुदात्तत्वं । गमेर्बुद्धिश्चुदिच्छात् चिरञ्छादेशः ॥

ज्योतिष्ठोमे माध्यंदिनसवने ब्रह्मशस्त्र उदु त्व इति प्रगाथोऽनुकूपानंतरं शंसनीयः । सूचितं च । उदु ते मधुमत्तमा इंद्रः पूर्मित् । आ० ५. १६. इति ॥ चातुर्विंशिके माध्यंदिनसवने तस्मिन्नेव शस्त्रेऽयं प्रगाथो वैकल्पिकोऽनुकूपः । सूचितं च । उदु ते मधुमत्तमास्त्वमिन्द्र प्रतूर्तिषु । आ० ७. ४. इति ॥

उदु ते मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।

सचाजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयंतो रथा इव ॥ १५ ॥

उत् । ऊं इति । ते । मधुमत्तमाः । गिरः । स्तोमासः । ईरते ।

सचाजितः । धनसाः । अक्षितऽऊतयः । वाजयंतः । रथाऽइव ॥ १५ ॥

त्वे ते प्रसिद्धा मधुमत्तमा अतिशयेन मधुरा गिरोऽप्रगीताः शस्त्ररूपा वाचः स्तोमासः प्रगीताणि बहिष्पवमानादीनि स्तोत्राणि चोदीरते । हे इंद्र त्वामुद्दिश्योन्नच्छंति । ऊर्ध्वं प्रसरंति ॥ ईर गतौ । आदादिकः ॥ तच्च दृष्टान्तः । सचाजितः सहैव शुभ्रजयंतः अत एव धनसा धनानि संभवंतः ॥ वन वण संभक्तौ । जनसमखनक्रमगमो विद् । विद्वानोरनुनासिकस्यादित्यात्वं ॥ अक्षितोतयः । अक्षिताः चयरहिता ऊतयो रचा येषां ते तथोक्ताः ॥ विद्यो भावे निष्ठा । निष्ठायामण्यदर्थ इति पर्युदासादीर्घाभावः । अत एव विद्यो दीर्घादिति निष्ठानत्वाभावाच्च ॥ वाजयंतो वाजमन्नमिच्छंतः ॥ कश्चि न च्छंदसापुचस्तेतीत्वदीर्घयोः प्रतिषेधः ॥ एवंगुणविशिष्टा रथा इव । ते यथा विविधमितस्तत उत्तिष्ठंति तद्वदुदीरत इत्यर्थः ॥ ॥ २७ ॥

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।

इंद्रं स्तोमेभिर्महयंत आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ १६ ॥

कण्वाऽइव । भृगवः । सूर्याऽइव । विश्वं । इत् । धीतं । आनशुः ।

इंद्रं । स्तोमेभिः । महयंतः । आयवः । प्रियमेधासः । अस्वरन् ॥ १६ ॥

कण्वा इव कण्वगोचोत्पन्ना ऋषय इव सुवतो भृगवो भृगुगोचोत्पन्ना ऋषयो धीतमाध्यातं विश्वमिद्धाप्तं तमेवेन्द्रमानशुः । व्यापुः । सूर्या इव । यथा सूर्यरश्मयः सर्वे जगद्भ्राभ्रवंति तद्वत् । अपि च प्रियमेधासः प्रियप्रज्ञा एतत्संज्ञा वाचवो मनुष्यास्तमेवेन्द्रं महयंतः पूजयंतः स्तोमेभिः स्तोत्रैरस्वरन् । असुवन् । सृ शब्दोपतापयोः । भौवादिकः ॥

युष्ट्वा हि वृत्रहंतम् हरीं इंद्र परावतः ।

अर्वाचीनो मघवन्तोर्मपातय उय ऋष्वेभिरा गहि ॥ १७ ॥

युष्ट्वा । हि । वृत्रहन्तम् । हरी इति । इंद्र । परावतः ।

अर्वाचीनः । मघवन् । सोमऽपीतये । उयः । ऋष्वेभिः । आ । गहि ॥ १७ ॥

हे वृचहंतम । वृचं हतवान् वृचहा । अतिशयेन हतवान् वृचहंतमः । यथा पुनर्नोत्तिष्ठति तथा हतवानि-  
त्यर्थः ॥ अग्नौ नुडिति तमपो नुद् ॥ हे तादृशेन्द्र हरी त्वदीयावधौ युक्त । हिरवधारणे । आत्मीये रथे योज-  
येव । हे मघवन् धनवन् उग्र उग्र्यस्त्वं सोमपीतये सोमपानार्थं ॥ दासीभारादित्वात्पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं ॥  
अर्वाचीनोऽस्यदमिमुख अग्नेमिच्छंस्वीर्दग्नीचैर्मन्त्रिः सार्धं परावतः । दूरनामैतत् । दूरे वर्तमानाद्युक्तोकादा  
गहि । आगच्छ ॥ गमेर्लोठः सेहिः । छांदसः शपो जुव । अगुदात्तोपदेशेत्वनुनासिकलोपः । तस्याधिलवदचा  
भादित्यसिद्धत्वाच्चिर्गभावः ॥

इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसांतये ।

स त्वं नो मघवन्निद्रं गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवँ ॥ १८ ॥

इमे । हि । ते । कारवः । वावशुः । धिया । विप्रासः । मेधऽसांतये ।

सः । त्वं । नः । मघऽवन् । इन्द्र । गिर्वणः । वेनः । न । शृणुधि । हवँ ॥ १८ ॥

कारवः कर्मणां कर्तारो विप्रासो मेधाविन इमे हीमे खलु यजमाना धिया सुत्वा हे इन्द्र ते त्वां वावशुः ।  
पुनरनुवन् । वाशु शब्द इत्यस्यावङ्मुगताद्रूपमेतत् ॥ यद्वा । वावशुः पुनःपुनरकामयंत ॥ यश्चांती । अस्या-  
वङ्मुगताद्वाङ्गि सिञ्जन्त्येति श्वेर्नुत् । वाङ्मूलकोऽडभायः । सिटि वा गुजादित्वादभ्यासदीर्घत्वं । हि चेति  
निघातप्रतिषेधः ॥ किमर्थं । मेधसांतये मेधस्य यागस्य संमज्जनार्थं ॥ सनतेः क्तिनि जनसनखनामित्यात्वं ।  
दासीभारादित्वात्पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं ॥ हे मघवन् धनवन् गिर्वणो गीर्मिर्वननीय नोऽस्याकं हवँ स्तोत्रं सर्वपू-  
र्वोक्तगुणस्त्वं शृणुधि । शृणु । बुध्यस्व । वेनो न । वेनतिः कांतिकर्मा । यथा कांतो जातामिलायः पुरुषः काम-  
यितव्यमेकाग्र्येण शृणोति तद्वत् ॥ अशृणुपृष्टवृश्च इति हेर्धित्वं । अन्येषामपीति साहितिको दीर्घः ॥

निरिन्द्रं बृहतीभ्यो वृचं धनुभ्यो अस्फुरः ।

निरबुँदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः ॥ १९ ॥

निः । इन्द्र । बृहतीभ्यः । वृचं । धनुऽभ्यः । अस्फुरः ।

निः । अबुँदस्य । मृगयस्य । मायिनः । निः । पर्वतस्य । गाः । आजः ॥ १९ ॥

हे इन्द्र वृचमावरकमसुरं बृहतीभ्यो महद्वाः ॥ सिंगव्यत्ययः ॥ धनुभ्यो धनुर्भ्यः कौदुंभ्यः ॥ छांदसो  
रेफलोपः । हेतौ पंचमी ॥ महन्निर्धनुर्मिहेतुभिर्निरस्फुरः । स्फुरतिर्वधकर्मा । निरवधीः । निःशेषेण हतवानसि ।  
यद्वा । वृचमावरकं मेघं धनुर्भ्यः । धन्वंति गच्छंतीति धनव आपः । महतीभ्योऽङ्वाः ॥ तादर्थ्यं चतुर्थी ॥ ईदृशी-  
नामपां लामार्थं निरवधीः । अपि च मायिनो मायाविनोऽर्बुदस्येतत्संज्ञकस्यासुरस्य मृगयस्येतत्संज्ञकस्य च ॥  
उभयत्र कर्मणि षष्ठी ॥ इमावप्यसुरी निरस्फुरः । निःशेषेणावधीः ॥ मायाशब्दस्य ग्रीह्यादिषु पाठात् ग्रीह्या-  
दिभ्यश्चेति मत्वर्थीयो विनिः ॥ तथा पर्वतस्य चलनाच्चासुरेण गवामदर्शनाय निहितस्य गिरेः संबंधिनीर्मा  
बलेनापहृता निराजः । निरगमयः ॥ अत्र गतिरूपणयोः ॥

निरमयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः ।

निरंतरिक्षादधमो महामहिं कृपे तदिन्द्र पौंस्यं ॥ २० ॥

निः । अमयः । रुरुचुः । निः । ऊं इति । सूर्यः । निः । सोमः । इन्द्रियः । रसः ।

निः । अंतरिक्षात् । अधमः । महान् । अहिं । कृपे । तत् । इन्द्र । पौंस्यं ॥ २० ॥

हे इन्द्र महान् महान्तं कृत्स्नस्य जगतो व्यापकमहिमाह्वनशीलं वृचं यदा स्वमंतरिक्षादाकाशान्निरधमः



निरगमयः । धमतिर्यतिकर्मा । तत्तदानीं पीत्यं वृषहमनहेतुभूतं बलं ह्येष । कुबये । पुरस्कृष्ये ॥ करोतिष्कां-  
दसो विकरणस्य जुक् ॥ अपयस्य चिखानगता नी ररुचुः । निःशेषिण दिदीपिरे । सूर्यः प्रेरक आदित्योऽपि  
निःशेषेण दिदीपे । इन्द्रिय इंद्रेण सेव्यो रसो रसात्मकोऽमृतमयः सोमस्य निःशेषेण दिदीपे । अग्न्यादयः  
सर्वे पूर्वं वृषेणावृतत्वान्निष्प्रभाः संत इदानीं तस्मिन्नावरके हृते सम्यक् प्राकाशितेत्यर्थः ॥ २८ ॥

यं मे दुरिंद्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः ।

विश्वेषां त्वना शोभिष्टमुपैव दिवि धावमानं ॥ २९ ॥

यं । मे । दुः । इंद्रः । मरुतः । पाकऽस्थामा । कौरयाणः ।

विश्वेषां । त्वना । शोभिष्टं । उपऽइव । दिवि । धावमानं ॥ २९ ॥

इदमादिकेन चतुर्थेन कुरयाणपुचात्पाकस्थामनाञ्चो राज्ञो दानं लब्ध्वा मेघातिथिसदोयं दानं कौति ।  
यं यादृशं धनसंघं मह्यमिंद्रो मरुतस्य दुः दत्तवतः तादृशमेव धनसमूहं कौरयाणः । शत्रून् प्रति युवाभिमु-  
ख्येन हतं यानं हस्त्यश्वादिकं येनासौ कुरयाणः । तस्य पुत्रः कौरयाणः । पाकस्थामा । तिष्ठत्यनेनेति स्थाम  
बलं । परिपक्वबलः । एतत्संज्ञो राजा मह्यं प्रादात् ॥ ददन्तिर्जुङ्गि गातिस्तेति शिचो जुक् । अदमावच्छादसः ॥  
कीदृशं धनसंघं । विश्वेषां सर्वेषां धनानां मध्ये ज्ञातात्मना स्वत एव शोभिष्ठमतिशयेन शोभावतं ॥ मंवेष्वा-  
ज्यादेरित्यात्मन आकारलोपः । शोभावच्छब्दादातिशायनिक इष्टम् । विव्यतोर्जुक् । यस्मिन् लोपः ॥ अति-  
शयेन शोभावत्वे दृष्टान्तः । दिव्याकाश उपेव धावमानं प्रभाभिरुपेतं श्रीघ्नगामिनं सूर्यमिव । शोभावत्तम-  
मित्यर्थः ॥

रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्रां । अदाद्वायो विबोधनं ॥ २२ ॥

रोहितं । मे । पाकऽस्थामा । सुधुरं । कक्ष्यऽप्रां । अदात् । वायः । विऽबोधनं ॥ २२ ॥

पाकस्थामा राजा रोहितं लोहितवर्णं वृषभमश्वं वा मे मह्यमदात् । दत्तवान् । कीदृशं । सुधुरं शोभ-  
नधुरं शोभनवहनप्रदेशं ॥ अक्षपूरब्धुः । पा० ५. ४. ७४. । इत्यकारः समासांतः । कलादयस्तेति वज्रप्रीहावुत्तर-  
पदाद्युदात्तत्वं ॥ कक्ष्यप्रां । कक्षा कचयोर्बाहुमूलयोर्बद्धमाना रज्जुः । तस्याः प्रातारं पूरयितारं । पीव-  
रमित्यर्थः ॥ प्रा पूरणे ॥ रायो धनस्य विबोधनं विश्लेषेण बोधनं । वज्रधनप्राप्तिहेतुमित्यर्थः ॥ ऊडिदमित्या-  
दिना रायो विभक्तिरुदात्ता ॥

यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहति वह्यः । अस्तं वयो न तुग्यं ॥ २३ ॥

यस्मै । अन्ये । दश । प्रति । धुरं । वहति । वह्यः । अस्तं । वयः । न । तुग्यं ॥ २३ ॥

पूर्वोक्त एवाश्वो विश्लेष्यते । यस्मै । षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । यस्याश्चस्य वृषभस्य वा धुरं बोधयं युगधुरमन्ये  
प्रकृतादस्माद्विलक्षणा दशसंख्याका वज्रयो वोढारोऽश्वा बलीवर्दा वा प्रतिनिधयः संतो मां वोढुं वहति  
विधति । वह्ननामेकत्र वहने दृष्टान्तः । अस्तं । अस्त्येति चिथ्यते तस्मिन्पदार्थजातमित्यसं गृहं । प्रति वयो न  
गंतारोऽश्वा यथा तुग्यं तुयपुत्रं मुज्यं समुद्रतीरादवहनं तद्वत् । तादृशमश्वं मह्यं प्रादादिति पूर्वस्यामृच्चन्वयः ॥  
मुज्योर्वहनं च नासत्या मुज्युमूहयुः । अ० १. ११६. ४. । इत्यादाववगंतव्यं । यद्वा । यस्या इति कर्मणि चतुर्थी ।  
यं रथमन्ये दशसंख्याका वज्रयो वोढारोऽश्वा धुरं वहनप्रदेशं प्रति गताः संतो वहति तादृशं रथमपि मह्यं  
दत्तवानित्यर्थः ॥

आत्मा पितुस्तनूवासं ओजोदा अभ्यंजनं ।

तुरीयमिंद्रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं दातारमब्रवं ॥ २४ ॥

आत्मा । पितुः । तनूः । वासः । ओजः । दाः । अभिः । अञ्जनं ।

तुरीयं । इत् । रोहितस्य । पाकः । स्थामानं । भोजं । दातारं । अब्रुवन् ॥ २४ ॥

अथं पाकस्थामात्मा स्वयं पितुर्जनकस्य तनूस्त्वयः । पिता यथा सन्मार्गवर्तितया प्रशस्त एवमयमपी-  
त्यर्थः । तथा वासो वासयिता निवासयिता ॥ वासयतेरौणादिकोऽयुन् ॥ अयंजनमभिव्यक्तं यथा भवति  
तथौजोदा औजसो वलस्य दाता धारयिता वा । यद्वा । आत्मा सततगामी । पितुरित्यन्नाम । व्याप्तमन्नं  
येन दत्तं । तनूर्विकृतं वासो वस्त्रमयंजनमयंजनसाधनं घृततैलादिकं च येन दत्तं । यथौजोदा वलस्य  
दातारं पाकस्थामानं तुरीयं स्वकीयप्रपितामहपितृया चतुर्थं यद्वा तुरीयं शत्रूणां तूर्वकं हिंसितारं भोजं  
शत्रूणां भोजयितारं रोहितस्य रोहितवर्णस्य पूर्वोक्तस्याश्वस्य दातारं एवंगुणकं पाकस्थामानमन्नं । उक्तेन  
प्रकारेणास्तीति । इदिति पूरकः ॥ २९ ॥

यदिद्रेत्येकविंशत्यर्थं चतुर्थं सूक्तं काण्वगोचस्य देवातिथेराथं । वृषाश्चिष्य इत्येषा पुरउष्णिक् शिष्टास्व-  
युजो वृहत्यो युजः सतोवृहत्यः । सूरं राध इत्यादिभिस्त्रिभिः कुण्डदानस्य स्तुयमानत्वान्तास्तदेवताकाः ।  
तत्पूर्वाः पंचदश्यावायतसः पूषदेवताका इन्द्रदेवताका वा शिष्टा ऐशः । तथा चानुक्रांतं । यदिद्र सैका देवा-  
तिथिस्तुचोऽत्यः पुरउष्णिगंतः कुण्डस्य दानस्तुतिस्तत्पूर्वायतसः पौष्णो वेति ॥ महाव्रते निष्केवत्ये वार्हतनु-  
चाशीतावायास्तुर्दश्वः शंसनीयाः । तथैव पंचमारण्यके । यदिद्र प्रागपागुदगिति चतुर्दश । ऐ० आ० ५.  
२. ४. इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिने सवनेऽच्छावाकशस्त्र आद्यः प्रगाथो वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूच्यते  
हि । यदिद्र प्रागपागुदयथा गौरो अपा क्तं । आ० ७. ४. इति ॥

यदिद्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।

सिमां पुरु नृषूतो अस्यानवेऽसिं प्रशर्धं तुर्वशे ॥ १ ॥

यत् । इन्द्र । प्राक् । अपाक् । उदक् । न्यक् । वा । हूयसे । नृऽभिः ।

सिमं । पुरु । नृऽसूतः । असिं । आनवे । असिं । प्रऽशर्धं । तुर्वशे ॥ १ ॥

हे इन्द्र यद्यदि प्राक्प्राच्यां दिशि वर्तमानः ॥ सप्तम्यंतादिकच्छब्दादिहितस्यास्मातेरन्वेर्जुक् । पा० ५. ३. ३०. ।  
इति जुक् ॥ अपाक्प्रतीच्यां दिशि वर्तमानः । यदि वोदगुदीच्यां दिशि वर्तमानः । यद्वा न्यङ्गीच्यां निश्चयस्ता-  
द्वर्तमानः ॥ न्यधी इति नेः प्रकृतिस्वरत्वं । उदात्तस्वरितयोर्यण इति परस्वानुदात्तस्य स्वरितत्वं ॥ एवंभूतैर्नृभिः  
स्तोतुमिस्त्वं ह्ययसे स्वस्वकार्यायाह्यसे हे सिमं अष्टेन्द्र । सिम इति वै अष्टमाचक्षत इति वाजसनेयकं । यद्यप्येवं  
वज्रभिराह्यसे तथाप्यानवे । आनुर्नाम राजा । तस्य पुत्रे राजर्षीं पुरु वज्रं नृषूतो नृभिरादीयैः स्तोतुभिः  
प्रेरितोऽसि । भवसि । राज्ञो हितकरणे त्वां स्तोतारः प्रेरयतीत्यर्थः ॥ १ प्रेरणे । अस्मात्कर्मणि निष्ठा ।  
तृतीया कर्मणीति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं ॥ अपि च हे प्रशर्धं प्रकर्षेण शर्धयितरभिभवितरिन्द्र तुर्वश एतत्संज्ञे च  
राजनि नृषूतोऽसि । नृभिः प्रेरितो भवसि ॥

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।

कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छंत्या गहि ॥ २ ॥

यत् । वा । रुमे । रुशमे । श्यावके । कृपे । इन्द्र । मादयसे । सचा ।

कण्वासः । त्वा । ब्रह्मऽभिः । स्तोमऽवाहसः । इन्द्र । आ । यच्छन्ति । आ । गहि ॥ २ ॥

यद्वा यद्यपि रुमादिषु चतुर्षु राजसु हे इन्द्र त्वं सचा सह मादयसे मायसि तथापि स्तोमवाहसः  
स्तोमानां स्तोत्राणां वोढारः कण्वासः कण्वयोवा ऋषयो ब्रह्मभिः परिवृढैर्मन्त्रैर्विभिर्वा हे इन्द्र त्वामा



यच्छन्ति । आगमयन्ति । यद्वा । द्वितीयाथे तृतीया । प्रक्षमिर्गन्ताणि हवींष्यामिमुख्येन प्रयच्छन्ति । ददति ॥ दाण दाणे । पात्रेत्यादिना यच्छादेशः ॥ अतस्त्वमा गहि । शीघ्रमागच्छ ॥ गमेर्लोटि च्छांदसः शपो सुक् ॥

पातुर्विश्वेऽहनि माध्यंदिनसवनेऽच्छावाकशस्त्रे यथेति प्रगाथोऽनु रूपः । सूत्रितं च । यथा गौरो अपा कृतमित्यच्छावाकस्य । आ० ७. ४. । इति ॥

यथा गौरो अपा कृतं तृण्येन्यवेरिण ।

आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कर्णेषु सु सचा पिब ॥३॥

यथा । गौरः । अपा । कृतं । तृण्यन् । एति । अवं । इरिणं ।

आऽपित्वे । नः । प्रऽपित्वे । तूयं । आ । गहि । कर्णेषु । सु । सचा । पिब ॥३॥

गौरो गौरसृगसृग्ण पिपासन्नपास्त्रिण्यदेकैः ॥ व्यात्येनैकवचनं । ऊडिदमित्यादिना विभक्तिषदात्तत्वं ॥ कृतं संपूर्णं कृतमिरिणं गिबृणं तटाकदेशं यथा येन प्रकारेणावेति अवगच्छति । अवशब्दोऽभिप्रेत्यर्थः । अभिसुखः सञ्छीघ्रं गच्छति तथापित्वे बंधुत्वे प्रपित्वे प्राप्ते सति हे इन्द्र त्वं नोऽस्मांसूयं । क्षिप्रमागच्छ । आगच्छ । आगत्य च कर्णेषु कण्ठपुच्छेष्वासु सचा सहैकयत्नेनैव विद्यमानं सर्वं सोमं सु सुषु पिब ॥

मंदंतु त्वा मघवन्निद्रंद्वो राधोदेयाय सुन्वते ।

आमुष्या सोममपिबन्मू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥४॥

मंदंतु । त्वा । मघऽवन् । इन्द्र । इंदवः । राधऽदेयाय । सुन्वते ।

आऽमुष्यं । सोमं । अपिबः । चमू इति । सुतं । ज्येष्ठं । तत् । दधिषे । सहः ॥४॥

हे मघवन् मघवन्निद्र इंदवः क्लेशाः सोमास्त्वां मंदंतु । मादयंतु । हर्षयंतु ॥ पदेर्व्यत्येन परस्पीपद् ॥ किमर्थं । सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते यजमानाय राधोदेयाय राधसो धनस्य दानार्थं ॥ ददातेरचो यदिति भावे यत् । ईष्यतीतीकारः । यतोऽनाव इत्याद्युदात्तत्वे ऋकुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वं । शतुरनुम इति सुन्वच्छब्दात्परा विभक्तिषदात्ता ॥ अपि च त्वं सोममामुष्यामोषणं कृत्वा दत्तमपि बलादपहत्यापिबः । पीतवानसि । स यज्ञवेत्तं कृत्वा प्रासहा सोममपिबत् । तै० सं० २. ४. १२. १. । इति श्रुतेः । कीदृशं सोमं । चमू चम्बोरधिषवण-फलकयोः सुतमभिषुतं । यद्वा । चमूभ्यां चमसाभ्यां होतुर्मैवावबणस्य च संबन्धिभ्यां संस्तुताभिर्वसतीवरीभिः सुतमभिषुतं । यस्मादेवं तत्तस्मात्कारणाज्ज्येष्ठं प्रशस्ततमं पुञ्जतमं वा सहो बलं दधिषे । हे इन्द्र त्वं धारयसि । अतो मदीया अपि सोमास्त्वां मादयन्त्विति प्रार्थते ॥

प्र चक्रे सहसा सहो बभञ्ज मन्युमोजसा ।

विश्वे त इन्द्र पृतनायवो यहो नि वृक्षा इव येमिरे ॥५॥

प्र । चक्रे । सहसा । सहः । बभञ्ज । मन्युं । ओजसा ।

विश्वे । ते । इन्द्र । पृतनाऽयवः । यहो इति । नि । वृक्षाऽइव । येमिरे ॥५॥

स इन्द्रः सहसास्त्रीयेनाभिभवेन वीर्यकर्मणा सहः शत्रूणामभिभवन् प्र चक्रे । प्रकर्षेण हतवान् । तथीवसा बलवन् मन्युं परकीयं क्रोधं बभञ्ज । भगवान् । उत्तरोऽर्धर्चः प्रत्यक्षतः । हे यहो । महत्तामेतत् । हे महन्निद्र विश्वे सर्वे पृतनायवो युद्धकामाः शत्रवस्ते त्वया वृक्षा इव महीरहा इव नि येमिरे । नियता आसन् । यथा वृक्षा निश्चलास्तिष्ठन्ति तद्वन्निर्वापारा अभूवन्निर्त्यर्थः ॥ ३०॥

सहस्रेणैव सचते यवीयुधा यस्त आनकुपस्तुतिं ।

पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्यं दाप्नोति नमउक्तिभिः ॥ ६ ॥

सहस्रेणऽइव । सचते । यविऽयुधा । यः । ते । आनन्द । उपऽस्तुतिं ।

पुत्रं । प्रावर्गं । कृणुते । सुऽवीर्यं । दाप्नोति । नमउक्तिभिः ॥ ६ ॥

हे इंद्र ते तवोपस्तुतिं स्तोत्रं यः पुरुष आनन्दं प्राप्नोति त्वं प्रापयति ॥ अन्नोतिर्बळि बाल्येन परकीपदं ॥  
--- सचते । समवेति ॥ षच समवाये ॥ सहस्रेणैव यथा सहस्रसंख्येन बलेन तथेत्यर्थः । यस्य यजमानो नमउ-  
क्तिभिर्नमस्कारवचनैः स्तोत्रैः सार्धं दाप्नोति हवींषि तुभ्यं ददाति ॥ दाम् दाने ॥ स यजमानः सुवीर्यं शोभ-  
नवीर्ययुक्ते संयामे प्रावर्गं प्रकर्षेण शत्रूणां वर्जयितारं पुत्रं कृणुते । करोति । उत्पादयति । स्वप्नसादात्मन  
इत्यर्थः ॥ प्रपूर्वावृत्तेः कृत्यलुटो वज्रलमिति कर्तरि घञ् । उपसर्गस्य घञ्चयमनुजे । पा० ६. ३. १२२. । इति  
दीर्घः । आथादिनोत्तरपदांतोदात्तत्वं ॥ यद्वा । सुवीर्यं इत्येतत्पुत्रस्य विशेषणं । द्वितीयार्थे सप्तमी । शोभन-  
वीर्यं पुत्रं ॥ वज्रग्रीही वीरवीर्यो चेत्युत्तरपदावुदात्तत्वं ॥

मा भेम मा अमिष्योयस्य सख्ये तव ।

महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुं ॥ ७ ॥

मा । भेम । मा । अमिष्य । उयस्य । सख्ये । तव ।

महत् । ते । वृष्णः । अभिऽचक्ष्यं । कृतं । पश्येम । तुर्वशं । यदुं ॥ ७ ॥

हे इंद्र उयस्योन्नर्णवलस्य तव सख्ये सखित्वे सति वयं मा भेम । मा भेष्य । कृतस्त्रिदपि शचीर्भीता मा  
भूम । मा अमिष्य । आंताः पीडिताश्च मा भूम । वृष्णः कामानां वर्षितुस्ते तव संबंधि महत्प्रभूतं कृतं वृषवधा-  
दिलक्षणं कमोभिचक्ष्यं । अभितः ख्यापनीयं स्तोत्रं । अतो महानुभावस्य तव सख्यं प्राप्तानां भीतिशमो न  
जायते इत्यर्थः । तत्कथमवगम्यत इति चेत् उच्यते । तुर्वशमेतत्संज्ञं राजर्षिं यदुमेतत्संज्ञं च स्वप्नसादात्मुखिन  
जीवन्ती पश्येम । दृष्टवन्तः खलु वयं । अतः कारणात्त्वत्सख्यं प्राप्तस्य भयादिकं न जायत एत्येतदुपपन्न-  
मित्यर्थः ॥

सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।

मध्वा संपृक्ताः सारधेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिबं ॥ ८ ॥

सव्यां । अनु । स्फिग्यं । वावसे । वृषा । न । दानः । अस्य । रोषति ।

मध्वा । संऽपृक्ताः । सारधेण । धेनवः । तूयं । आ । इहि । द्रव । पिबं ॥ ८ ॥

वृषा कामानां वर्षितेन्द्रः सव्यां दक्षिणतरां स्फिग्यं कटिप्रदेशमनु ॥ तृतीयार्थेऽनोः कर्मप्रवचनीयत्वं ॥  
सव्याया स्फिग्या शरीरेकदेशेनैव वावसे । वसी । सर्वभूतजातमाच्छादयति । स्वयं कृत्स्नं जगदतीत्य चर्तत  
इत्यर्थः । निगमांतरं च भवति । यदन्वया स्फिग्या चामवस्थाः । ऋ० ३. ३२. ११. । इति । अपि च दानोऽवसं-  
डयिता ॥ दान अवसंडने । पचायच् ॥ स चास्तेमनिंद्रं न रोषति । न हिनस्ति ॥ रिष दप हिंसायां । इंद्रं  
द्रिंसितुं शक्तः कस्यदपि नास्तीत्यर्थः । यद्वा । दानो हविषां दाता यजमानश्चास्मिंद्रस्य न रोषति । रोषं न  
जनयति । सर्वदा हविर्भिः परिचरतीत्यर्थः । उत्तरोऽर्धर्चः प्रत्यक्षकृतः । सारधेण । सरधा मधुमक्षिका ।  
तत्संबंधिना मध्वा मधुना । नृपोपममेतत् । मधुनेव रसवता क्षीरादिना ग्रथणद्रव्येण संपृक्ताः संकृष्टाः  
संस्कृता धेनवो धेनुवन् प्रीतिजनका अस्मदीयाः सोमाः । यद्वा । धिवेः प्रीणनार्थाद्धेनवः । प्रीणयितार  
इत्यर्थः । यत एवमतः कारणात् हे इंद्र तूयं चिप्रमेहि । अस्मेत्समीपमागच्छ । आगत्य च द्रव । सोमा यस्मि-



मुत्तरवेदिलक्षणं स्नानं ज्ञयते तं देशं शीघ्रं गच्छ ॥ द्रु गताविति धातुः । द्यौःस्तस्मिन् इति साहित्यिको  
दीर्घः ॥ तदनंतरमध्वर्युणा दत्तं सोमं पिब । तेन सोमेन सम्यक् स्वीदरं पूरयेत्यर्थः ॥

अ॒श्वी र॒थी सु॒रूप इ॒ज्ञोमाँ इ॒दि॒द्र ते सखा ।

अ॒च॒भाजा व॒र्यसा स॒चते सदा च॒न्द्रो या॒ति स॒भामुप ॥९॥

अ॒श्वी । र॒थी । सु॒रूपः । इ॒त् । गो॒ऽमान् । इ॒त् । इ॒द्र । ते । सखा ।

अ॒च॒ऽभाजा । व॒र्यसा । स॒चते । सदा । च॒न्द्रः । या॒ति । स॒भा । उप ॥९॥

हे इंद्र ते तव सखा मिश्रभूतः पुरुषोऽश्यादिगुणविशिष्ट एव भवति । इच्छद्ः प्रत्येकमभिसंबध्यते ।  
अश्वीद्विभिरश्वैरुपेत एव भवति । न कदाचिदश्वैर्वियुज्यते । रथी रथवानेव स भवति । सुरूप इच्छोम-  
गरूपः शोभनावयव एव स भवति । सोमाँ इद्विज्ञीमिर्गोभिर्युक्त एव स भवति । न कदाचिदेतैर्वियुज्यत इत्यर्थः ।  
अपि च आचभाजा । आचमिति धननाम । आश्वतनीयं शीघ्रं प्राप्तव्यं शोभनं धनं संभजतेदृग्धनसंयुक्तेन  
वयसा । अन्ननामैतत् । अन्नेन स सर्वदा सचते । समवेति । संगच्छते ॥ यद्य समवाचे ॥ अत एव चंद्रः सर्वेषा-  
माह्लादकः सन् सभां जनसंसदमुप याति । उपगच्छति ॥

अ॒श्वो न तृ॒थन्व॒पान॒मा ग॒हि पि॒बा सोमं व॒शाँ अ॒नु ।

नि॒मेघ॒मानो म॒घव॒न्दि॒वेदि॒व ओ॒जि॒ष्ठं द॒धिषे स॒हः ॥१०॥

अ॒श्वः । न । तृ॒थन् । अ॒व॒ऽपानं । आ । ग॒हि । पि॒ब । सोमं । व॒शान् । अ॒नु ।

नि॒ऽमेघ॒मानः । म॒घ॒ऽवन् । दि॒वे॒ऽदिवे । ओ॒जि॒ष्ठं । द॒धिषे । स॒हः ॥१०॥

हे इंद्र अश्वो गश्मीख्यो मृग इव तृथन् पिपासंस्त्वमवपानमवनीतं ग्रहचमसादिषु पात्रेष्वानीतं पातव्यं  
सोममा गहि । अभिगच्छ । गत्वा च तमस्यदीप्यं सोमं वशाँ अन्वगुह्यामं यथाकामं पिब । यावता पीतेन  
पर्याप्तिर्वायते तावता सोमेन स्वीदरं पूरयेत्यर्थः । अत एव सोमपागात् प्राप्तवत्स्वं दिवे दिवे प्रतिदिवसं  
निमेघमानो न्यन्धवाकुक्षानि वृष्यदकानि सिञ्चन् हे मघवन्निद्र ओजिष्ठमोजस्वितममुद्गूर्यतमं सहो बलं  
दधिषे । धारयसि ॥ ओजस्विशब्दादिभ्यो विभ्यतोर्भूमिति विभो जुक् । टेरिति टिप्पणः ॥ ॥३१॥

अ॒ध्वर्यो द्रा॒वया त्वं सोम॒मि॒द्रः पि॒पास॒ति ।

उप॑ नूनं यु॒युजे वृष॑णा ह॒री आ च॑ ज॒गाम वृ॒च॒हा ॥११॥

अ॒ध्वर्यो इति॑ । द्रा॒वय । त्वं । सोमं । इ॒द्रः । पि॒पास॒ति ।

उप॑ । नूनं । यु॒युजे । वृष॑णा । ह॒री इति॑ । आ । च॑ । ज॒गाम॒ । वृ॒च॒ऽहा ॥११॥

हे अध्वर्यो अध्वरस्य नेतः त्वं सोमं द्रावय । उत्तरवेदिलक्षणं स्नानं प्रापय । यद्वा । रसात्मना द्रवण-  
शीलं कुरु । अभिपुष्टित्वर्थः । किं कारणमिति चेत् । इंद्रः पिपासति । इमं सोमं पातुमिच्छति । स्वयंतत्कथ-  
मवगतमिति चेत् तच्चाह । वृषणा वर्षितारौ युवानी वा हरी अश्वौ नूनमय युयुजे । उपगम्य सारथियोवि-  
तवान्नये । वृचहा वृचस्य हंतेंद्रया जगाम । आगतवान् ॥

स्व॒यं चि॒त्स म॒न्यते दार्भु॑रि॒र्जनो य॒चा सोम॑स्य तृ॒पसि॑ ।

इ॒दं ते अ॒न्नं यु॒ज्यं स॒मु॒क्षितं तस्ये॒हि प्र॑ द्र॒वा पि॒ब ॥१२॥

स्वयं । चित् । सः । मन्यते । दाशुरिः । जनः । यच । सोमस्य । तृपसि ।  
इंद्रं । ते । अन्नं । युज्यं । संऽउक्षितं । तस्य । आ । इहि । प्र । द्रव । पिब ॥ १२ ॥

दाशुरिर्दाश्वान् ॥ दाशतेरौणादिकं चरिन् ॥ हविषां दाता स यजमानलक्षणो जनः स्वयं चित् स्वयमे-  
वात्मनैव मन्यते । सर्वं जानाति । परायत्तप्रज्ञो न भवतीत्यर्थः । यच यस्मिञ्जने सोमस्य पानेन हे इंद्र त्वं  
तृपसि तृप्यसि ॥ तृप तृप्य तृप्तौ । तौदादिकः । शे तुन्यादीनां । पा० ७. १. ५९. १. इति जुम् । ते त्वदीयं युज्यं  
योग्यमिदमसादीयं सोमलक्षणमन्नं समुचितं सम्यक् पाचिष्यासिक्तं ॥ उच्य सेचने । कर्मणि निष्ठा । गतिरनंतर  
इति गतिः प्रकृतिस्वरत्नं ॥ अतस्तं तादृशं सोममेहि । अभिगच्छ । प्र द्रव । शीघ्रं प्राप्नुहि । तदनंतरं पिब ।  
पानं कुरु ॥

रथेष्टायाध्वर्यवः सोममिंद्राय सोतन ।

अधि ब्रध्नस्याद्रयो वि चक्षते सुन्वतो दाश्वध्वरं ॥ १३ ॥

रथेऽस्थाय । अध्वर्यवः । सोमं । इंद्राय । सोतन ।

अधि । ब्रध्नस्य । अद्रयः । वि । चक्षते । सुन्वतः । दाश्वध्वरं ॥ १३ ॥

रथेष्टाय । रथे तिष्ठतीति रथेष्ठः ॥ सुपि स्थ इति कप्रत्ययः । तत्पुरुषे कृति वज्रलमिति सप्तम्या अनुक् ॥  
एवंलक्षणाधिंद्राय हे अध्वर्यवः सोमं सोतन । अभिषुषुत ॥ पुच् अभिषवे । तप्तनप्तनयनाञ्चेति तनवादेशः ॥  
ब्रध्नस्य ब्रध्नस्य मूलस्याभिषवार्थं कर्मणि स्थापितस्त्रोपराख्यस्य विस्मृतस्त्रासमनोऽध्युपर्यद्रयोऽन्वे यावाणस्त्र-  
तक्षु दिक्षु वर्तमाना दाश्वध्वरं दाशोर्दातुर्यजमानस्याध्वरो यागो येन निष्पद्यते तादृशं सोमं सुन्वत  
अतिक्लिरपेचं स्वयमेवाभिषुष्वतो वि चक्षते । विशेषेण प्रकाशते । सोमाभिषवेऽतिशयेनानुकूला वर्तते  
इत्यर्थः । अथवाद्रयक्षैरद्रिमिहे अध्वर्यवः सोममभिषुषुतेति योज्यं ।

उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इंद्रमपसु वक्षतः ।

अर्वाचं त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो वहंतु सवनेदुप ॥ १४ ॥

उप । ब्रध्नं । वावाता । वृषणा । हरी इति । इंद्रं । अपऽसु । वक्षतः ।

अर्वाचं । त्वा । सप्तयः । अध्वरऽश्रियः । वहंतु । सवना । इत् । उप ॥ १४ ॥

ब्रध्नमंतरिक्षं वावाता संभक्तवन्तौ ॥ वनतेर्निष्ठायां क्वांसं द्विर्वचनमिडभाव आत्वं धातुस्वरश्च । अन्येषा  
मपि दृशत इति साहितिकोऽभ्यासदीर्घः ॥ यद्वा । वावाता पुनःपुनर्गती ॥ वा गतिगंधनयोः । अस्यावङ्मुगंता-  
त्कर्तरि निष्ठा ॥ वृषणा वृषणौ सेक्तारौ हरी हरणशीलावद्यावुक्तगुणौ संतावपस्त्रसदीयेषु कर्मसु ॥ अपस्त्रब्दः  
सकारांतः कर्मवचनः । पीवोपवसनानां क्वांसि लोपो वक्तव्यः । म० ६. ३. १०९. ६. इतीह सकारो लुप्यते ॥ तत्रे-  
ममिंद्रमुप वक्षतः । उपवहतां । उपानयतां ॥ वहतेर्लेख्यडागमः । सिद्धलमिति सिप् ॥ अपि चाध्वरश्रियोऽध्वरं  
सेवमानाः सप्तयः सर्पणशीला अन्येऽपि त्वदीया अश्वाः सवना सवनानि प्रातःसवनादीन्यस्यागसंबंधीनि  
प्रति हे इंद्र त्वामर्वाचमभिमुखमुप वहंतु । उपगमयंतु । इदिति पूरकः ॥

प्र पूषणं वृणीमहे युज्याय पुरुवसुं ।

स शक्र शिख पुरुहूत नो धिया तुजै राये विमोचन ॥ १५ ॥

प्र । पूषणं । वृणीमहे । युज्याय । पुरुऽवसुं ।

सः । शक्र । शिख । पुरुऽहूत । नः । धिया । तुजै । राये । विऽमोचन ॥ १५ ॥



इदमावाप्तु चतसृषु पूषण इन्द्रस्य च लिंगसङ्गावादेता उभयथा व्याख्यायते । पुरुषसुं वज्रधनं पूषणं पोषकमिन्द्रं यदेतत्संज्ञं देवं प्र पुणीमहे । प्रकर्षेण संभजामहे । किमर्थं । युज्याथ । युंक्त इति युज् सखा । तस्य भावाय । सखित्वावेत्यर्थः । हे शक्र शक्त पुरुषस्त वज्रमिराहृत हे विमोचन पापाद्विमोचयितरिद्र पूषन्वा स त्वं नोऽस्मान् धियात्मीयया बुद्ध्या शिच । शक्तान् कर्तुमिच्छ । किमर्थं । राये धनाय धनप्राप्त्यर्थं तुवे श्रुंस्तोत्रयितुं हिसितुं ॥ तुज हिसायां । अस्मात्कृत्यार्थं केन्रत्यथः ॥ यदा । राय इति क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी । जातयेकवचनं ॥ रायो धनानि धिया जुत्वा प्रीतः सन्नोऽस्मभ्यं शिच । देहि ॥ शिचितिर्दानकर्मा । अजिदमिति रायो विभक्तिरदानात् ॥ ३२ ॥

सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्वं रायो विमोचन ।

त्वे तन्नः सुवेदमुस्मियं वसु यं त्वं हिनोषि मर्त्यं ॥ १६ ॥

सं । नः । शिशीहि । भुरिजोऽइव । क्षुरं । रास्वं । रायः । विमोचन ।

त्वे इति । तत् । नः । सुवेदं । उस्मियं । वसु । यं । त्वं । हिनोषि । मर्त्यं ॥ १६ ॥

हे इन्द्र पूषन्वा नोऽस्मान् सं शिशीहि । सम्यङ्निश्च । तीक्ष्णबुद्धीन् क्रुह । भुरिजोरिव । बाहुनामैतत् । नापितस्य बाहोरिव स्थितं भुरमिव । अपि च हे विमोचन पापाद्विमोचन पापाद्विमोचयितः रायो धनानि रास्व । अस्मभ्यं देहि ॥ रा दाने ॥ तत्कस्य हेतोः । त्वे त्वयि खलुस्मियं । उसा यावः । तत्संवचं तदसु निवासकं धनं नोऽस्माकं सुवेदं मुक्तमं नान्येषु देवेषु । यं धनसमूहं मर्त्यं मनुष्यं स्तोतारं प्रति त्वं हिनोषि प्रेरयसि तदसु लयीत्यन्वयः । यत एवं तस्माद्रास्वेति योज्यं ॥

वेमि त्वा पूषन्नुजसे वेमि स्तोतव आधृणे ।

न तस्य वेम्यरणं हि तद्वसो स्तुषे पञ्चाय साखे ॥ १७ ॥

वेमि । त्वा । पूषन् । उजसे । वेमि । स्तोतवे । आधृणे ।

न । तस्य । वेमि । अरणं । हि । तत् । वसो इति । स्तुषे । पञ्चाय । साखे ॥ १७ ॥

हे पूषन् पोषकं इन्द्र एतत्संज्ञं वा देव त्वा त्वामुजसे प्रसाधयितुं वेमि । कामये । आधृणे आगतदीप्ते स्तोतवे त्वां स्तोतुं वेमि । कामये । यत्तद्व्यतिरिक्तं देवतांतरं तस्य स्तोत्रं न वेमि । न कामये । तत्कृत इति चेत् । हि यस्मादरणमरणममुखकरं । अतस्त्वामेव स्तोतुं कामय इत्यर्थः । हे वसो वासकं स्तुषे स्तुवति पञ्चाय प्रार्थकाय स्तोत्राणां साखे । साम स्तोत्रं । सामर्थ्यादच तदाहं च्यते । तद्वते । यदा । पञ्च इति कधीवत आख्या । आस्तातं हि । यदां पञ्चासो अग्निना हवते । अ० १. ११७. १०. इति । तस्मै कधीवत इव मद्यां । सामर्थ्यादुपमासो जग्मते । अपेक्षितं धनं देहीति शेषः ॥

परा गावो यवसं कश्चिदाधृणे नित्यं रेक्णो अमर्त्य ।

अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव मंहिष्ठो वाजसातये ॥ १८ ॥

परा । गावः । यवसं । कत् । चित् । आधृणे । नित्यं । रेक्णः । अमर्त्य ।

अस्माकं । पूषन् । अविता । शिवः । भव । मंहिष्ठः । वाजसातये ॥ १८ ॥

हे आधृण आगतदीप्ते पूषमिन्द्र वा कश्चित् कश्चिद्वित्कालेऽस्मादीया गावो यवसं नृणं भक्षितुं परा गच्छन्ति । हे अमर्त्यामरण देव तदानीं रेक्णस्तन्नोक्तं धनं नित्यमस्माकं ध्रुवमसु । चोरव्याघ्रादिभिर्हिंसितं मा भूत् । अपि च हे पूषन् पोषयितः अस्माकमविता रक्षिता भूत्वा शिवः सुखकरो भव । तथा वाजसातये वाजस्यान्नस्य वजस्य वा संभजनार्थं मंहिष्ठो दातुतमो भव ॥

स्थूरं राधः शताश्वं कुङ्गस्य दिविष्टिषु ।

राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥ १९ ॥

स्थूरं । राधः । शतऽश्वं । कुङ्गस्य । दिविष्टिषु ।

राज्ञः । त्वेषस्य । सुभगस्य । रातिषु । तुर्वशेषु । अमन्महि ॥ १९ ॥

इदमादिक्तेन तुवेन देवातिथिः कुङ्गनाम्नो राधो दागं कौति । कुङ्गस्य । कुङ्गेतुं गच्छति कुलं गच्छतीति वा कुङ्गः ॥ सोऽन्यथापि दृश्यत इति गमेर्हः । पृषोदरादिः ॥ एतत्संज्ञस्य त्वेषस्य दीप्तस्य सुभगस्य शोभनधनस्य एवंभूतस्य राज्ञः संबन्धिनीषु दिविष्टिषु दिवः स्वर्गस्त्वेषणेषु प्राप्तिहेतुभूतासु यागक्रियासु रातिषु दानेषु दक्षिणावेषेषु सत्सु तुर्वशेषु । मनुष्यनामेतत् ॥ निर्धारणे सप्तमी ॥ मनुष्येषु मध्ये वयं स्थूरं स्थूलं प्रभूतं शतान्नमन्वानां शतेन युक्तं राधो धनममन्महि । अन्नादिभिः । अन्नमामहीत्यर्थः ॥

धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिष्टुभिः ।

षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः ॥ २० ॥

धीभिः । सातानि । काण्वस्य । वाजिनः । प्रियऽमेधैः । अभिष्टुभिः ।

षष्टिं । सहस्रां । अन्नुं । निऽमजां । अजे । निः । यूथानि । गवां । ऋषिः ॥ २० ॥

काण्वस्य कण्वपुत्रस्य वाजिनो हविष्मतो मेधातिथेः संबन्धिभिर्धीभिर्ध्यातृभिः स्तोतृभिः सातानि संमक्ता-  
म्यमिष्टुमिरभिगतदीप्तिभिः प्रियमेधैरितत्संज्ञैश्चर्षिभिः सेवितानि निर्मजां निःशेषेण शुद्धानां गवां षष्टिं सहस्रा  
षष्टिसंख्याकानि सहस्राणि यूथान्युषिर्देवातिथिरहमनु पश्चात् निरजे । निःशेषेणागच्छं । साकल्येन प्राप्तवानसि ॥  
अथ गतिविषययोः ॥ यथा प्रियमेधानां काण्वानां च गवां यूथानि राज्ञा दत्तानि तत्प्रतिगृहीतं एवं तेन  
दत्तानि मया प्रतिगृह्यंत इत्यर्थः ॥

वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः । गां भजंत मेहनाश्वं भजंत मेहना ॥ २१ ॥

वृक्षाः । चित् । मे । अभिऽपित्वे । अरारणुः । गां । भजंत । मेहना । अश्वं । भजंत ।

मेहना ॥ २१ ॥

मे मयामिपित्वे पूर्वोक्ते धनेऽभिप्राप्ति सति वृक्षाश्चिद्वृक्षा अप्यरारणुः । अश्वन्दयन् । कथमिति तदाह ।  
इमं अश्वयो मेहना मंहनीयां प्रशस्तां गां भजंत । असेवंत । असमंत । मेहना मंहनीयमश्वं च भजंत ।  
असमंतेति ॥ गामश्चमिति जालमिप्रायमेकवचनं ॥ यद्वा । मेहनेति म इह मेति पदत्रयात्मकमेकं पदं । यदाह  
वाक्यः । यदिद्र चित्रं चायनीयं मंहनीयं धनमस्ति । यत्न इह नास्तीति वा वीथि मध्यमानि पदानि  
। नि० ४. ४. । तदेवं व्याख्येयं । इमं अश्वयो गामश्चं चासमंत । इहास्मिन्नावनि प्रशस्तस्य धनस्य तद्दानं मम  
नासीत्यम नासीदिति वृक्षप्रमुखा सर्वेऽपि जनाः प्रोचुरित्यर्थः ॥ ३३ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थोऽस्तुरो देवादिवातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवेदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरनुक्रमूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण  
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये पंचमाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥



यस्य निःशसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत ।

निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

अथाष्टमो व्याख्यातुमारभ्यते । अष्टमे मंडले प्रथमेऽनुवाके चत्वारि सूक्तानि व्याख्यातानि । दूरादित्येको-  
नचत्वारिंशद्वचं पंचमं सूक्तं कल्पगोचस्य ब्रह्मातिथिरार्षे । आदितः षट्तिंशन्नायत्र्यः । ततो द्वे नृहत्यो । अतिमा-  
नुष्य । अंत्येषु पंचस्वर्धर्षेषु चेदिषुचस्य कशुभाब्जो राशो दानं स्तूयते । अतस्तद्देवताकाः । श्रिष्टा आश्विन्यः ।  
तथा चानुक्रांतं । दूरादेकान्नचत्वारिंशद्ब्रह्मातिथिराश्विनं द्विनृहत्वनुष्यवंतमंत्याः पंचार्धर्चादीयस्य कशोर्दानकु-  
तिरिति ॥ प्रातरनुवाक आश्विनशस्त्रयोराश्विने क्रतौ गायत्रे छंदस्त्वनुचवर्जमिदं सूक्तं । सूच्यते हि ।  
दूरादिहेवेति तिस्र उक्तमा उचरेत् । आ० ४. १५. इति ॥

दूरादिहेव यत्सत्यंरूपसुरशिश्वितत् । वि भानुं विश्वधातनत् ॥ १ ॥

दूरात् । इहऽईवायत् । सती । अरुणऽप्सुः । अशिश्वितत् । वि । भानुं । विश्वधा । अतनत् ॥ १ ॥

दूराद्दूरत एव विप्रलक्ष्य एव नभसः प्राक्प्रदेशे वर्तमानेहेव सतीह समीपे विद्यमानेव ॥ अक्षेः शतरि  
अक्षोरक्षोप उगितश्चेति ङीप् । शतुरशुम इति नया उदात्तत्वं ॥ अरुणप्सुरारोचमानरूपा ईदृश्या यथादा-  
शिश्वितत् अश्चेतयत् ॥ श्विता वर्णे । अस्माद्यंताङ्गुलि चङ्गि रूपं । यदुत्तान्नित्यमिति निघातप्रतिषेधः ॥ तदा  
भानुं दीप्तिं विश्वधा बहुविधं व्यतनत् । विस्तारितवती । तनोतिर्त्यत्येन शप् ॥ ईदृशीमुषसं हे अश्विनी सचेथे  
इत्युत्तरार्धैकवाक्यता । यद्वा । प्रातरनुवाक्य उपस्येन कांडिनोवाः कुता सती प्रादुर्बभूव । हे अश्विनी शंसित्य-  
माणमाश्विनं क्रतुं श्रोतुं युवामपि प्रादुर्भवतमित्यध्याहारेण वाक्यं पूरणीयं ॥

नृवहंसा मनोयुजा रथेन पृथुपाजंसा । सचेथे अश्विनोषसं ॥ २ ॥

नृऽवत् । दसा । मनःऽयुजा । रथेन । पृथुऽपाजंसा । सचेथे इति । अश्विना । उषसं ॥ २ ॥

हे दसा दसां दर्शनीयौ शत्रूणामुपपथितारौ वा ॥ सुपां सुलुगित्याकारः ॥ ईदृशी हे अश्विनाश्विनी  
नृवज्रमिनेतुमिक्षुत्वं वर्तमानो युवां ॥ तेन तुल्यमिति प्रथमार्थे वतिः ॥ यद्वा । नृवतीं ॥ नृशब्दात्तुपम्कांदसत्वं ।  
रश्रुतिसामान्याद्वा छंदसीर इति वत्त्वं । ङीपम्कांदसो लुक् । इत्यनुद्भ्यां मतुविति मतुप उदात्तत्वं ॥  
ईदृशीमुषसं रथेनात्मीयेन वाहनेन सचेथे । सम्यगागच्छथः ॥ षच संमवाये ॥ यद्वा । सचतिः सेवभार्यः ।  
सचेथे । सेवेथे । तदाह यास्तः । सचस्वा नः स्वस्तये सेवस्व नः स्वस्तये । मि० ३. २१. इति । कीदृशेन रथेन ।  
मनोयुजा मनसैव व्यापारांतरनिरपेक्षेण स्वरणमाधेयाक्षिर्युज्यमानेन पृथुपाजसा विस्तीर्णननेन बहुनेन वा ।  
उपसोऽनंतरमश्विनोः स्तूयमानत्वान्तामश्विनी गच्छत इत्युच्यते ॥

युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमां अदृक्षत । वाचं दूतो यथोहिषे ॥ ३ ॥

युवाभ्यां । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू । प्रति । स्तोमाः । अदृक्षत । वाचं ।

दूतः । यथा । ओहिषे ॥ ३ ॥

हे वाजिनीवसू । वाजो हविलंबणमन्नं । तदुक्ता यागक्रिया वाजिनी । तस्यां वसु धनं ययोरस्ति ती  
तथोक्ती । यद्वा । अन्नयुक्तं स्तोतृभ्यो देयं वसु धनं ययोरस्ति तादृशी । हे अश्विनी युवाभ्यां स्तोमा अस्माभिः  
कृतानि स्तोत्राणि प्रत्यदृक्षत । प्रतिदृक्षतां ॥ दृशेम्कांदसः कर्मणि लुक् । लिङ्सिधावात्तनेपदेऽपि कित्वा-  
त्सृजिदृशोरित्यमभावः । षत्वकल्पत्वानि ॥ अहं च यथा येन प्रकारेण दूतः प्रेष्यो वाचं स्वामिनो वाक्यं  
याचते तथा युवयोः प्रीतिपूर्विकां वाचमोहिषे । पुरुषव्यत्ययः । याचे ॥ उहिरर्दने । याचन इत्यर्थः । व्यत्यये-  
नात्तनेपदं ॥ यद्वा । दूतो यथा स्वामिनोक्तां वाचं विदेशस्त्वमन्नं प्रापयति एवमहमपि कुतिरूपां वाचमोहिषे ।

वहे । युवां प्रापयामि ॥ वहेर्बल्येन मध्यमः । क्वांसं संप्रसारणं । क्वांसुभयथेत्यार्धधातुकत्वादिडागमः ।  
श्वभावो लघूपधगुणश्च । एङि पररूपमिति पररूपत्वं ॥

पुरुमिया ए जतये पुरुमद्रा पुरुवसू । सुषे कणासो अश्विना ॥ ४ ॥

पुरुमिया । नः । जतये । पुरुमद्रा । पुरुवसू इति पुरुवसू । सुषे । कणासः ।  
अश्विना ॥ ४ ॥

पुरुमिया वज्रनां प्रियौ पुरुमद्रा वज्रमदौ वज्रनां मादयितारौ वा । यद्वा । पुरु वज्रत्वं मायंतौ ।  
पुरुवसू वज्रधनौ ईदृशावश्विनाश्विनी नोऽस्माकमूतये रचयाम्य कणासः कण्वगोवा ययं सुषे । सुमहे ॥  
पुरुववचनयोर्व्यत्ययः ॥ यद्वा । कणास इति पूजार्थं वज्रवचनं । अश्विरात्मानं संवोध्य ब्रूते । हे अंतरात्मान  
कणासः कण्वगोवस्त्वं सुषे । अश्विनी सुहि ॥

मंहिष्ठा वाजसातमेषयंता शुभस्पती । गंतारा दाशुषो गृहं ॥ ५ ॥

मंहिष्ठा । वाजसातमा । इषयंता । शुभः । पती इति । गंतारा । दाशुषः । गृहं ॥ ५ ॥

मंहिष्ठा मंहिष्ठी मंहनीयौ पूजनीयौ यद्वा दातृतमौ वाजसातमा । वाजोऽन्नं वत्सं वा । तस्यातिशयेन  
दातारौ । यद्वा । वाजो हविर्बल्यमन्नं । तस्य संमकृतमौ । सनेतिः सनेतिर्वा जनसनेति विद् । विद्वनोरनुना-  
सिकस्यात्वं ॥ इषयंता स्तोत्र्य इषमन्नं कुर्वतौ ॥ ईदृशब्दात्तत्करोतीति णिच् । ऐरिष्ठवज्रावेन टिलोपे प्राप्ते  
प्रकृत्यैकाजिति प्रकृतिभावः ॥ यद्वा । इषयंतेषयंतौ श्रेयांसि प्रापयंतौ ॥ इष गती । अस्माद्धेतुमणिच् । संज्ञापूर्-  
वकस्य विधेरनित्यत्वानुणाभावः ॥ शुभः शोभनस्य धनस्त्रोदकस्य वा पती स्वामिनी ॥ यद्वाः पतिपुत्रेति  
विसर्जनीयस्य सत्वं ॥ दाशुषश्च पुरोडाशादीनि दत्तवतो यजमानस्य गृहं गंतारा गमनशीलौ ॥ गमेस्माच्छी-  
लिकलुर्न । अतो न लोकाव्ययेति कर्मणि षष्ठाः प्रतिषेधः ॥ ईदृशावश्विनी सुम इति शेषः ॥ ॥ ५ ॥

ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणी । घृतैर्गव्यूतिमुक्षतं ॥ ६ ॥

ता । सुदेवाय । दाशुषे । सुमेधां । अवितारिणी । घृतैः । गव्यूतिं । उक्षतं ॥ ६ ॥

हे अश्विनी ता तौ तादृशी युवां सुदेवाय । शोभना देवा येन यष्टव्याः स तथोक्तः ॥ वज्रनीहौ  
नञ्मुभ्यामित्युत्तरपदांतोदात्तत्वं ॥ तस्यै दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय ॥ तादर्थ्यं चतुर्थी ॥ ईदृग्यजमा-  
नार्थं सुमेधां शोभनयज्ञामवितारिणी । वितरतां विगमनमपायः । अनपायिनीं ॥ नञ्समासेऽव्ययपूर्वपदप्र-  
कृतिस्वरत्वं ॥ ईदृशीं गव्यूतिं । गावो यूयंते संयुज्यंतेऽवेति गव्यूतिर्गोसंचारभूमिः ॥ गोयूतौ क्वांसि । पा० ६. १.  
७९. २. इत्यवादेशः ॥ तां घृतैः चरणशीलैरदकैश्चतं । सिंचतं ॥ उच सेचने ॥

आ नः स्तोममुप द्रवतूयं श्येनेभिराशुभिः । यातमश्वेभिरश्विना ॥ ७ ॥

आ । नः । स्तोमं । उप । द्रवत् । तूयं । श्येनेभिः । आशुभिः । यातं । अश्वेभिः । अश्विना ॥ ७ ॥

हे अश्विनाश्विनी नोऽस्माकं स्तोमं स्तोममश्वेभिरश्वैः । द्रवत् तूयमित्युभे चिप्रनामनी । एवः पूरकः । तूयं  
चिप्रमुपा यातं । उपगच्छतं । यद्वा । द्रवदिति स्तोमविशेषणं । द्रवच्छीघ्रं प्रवर्तमानं स्तोममित्यर्थः । कीदृशै-  
रश्वैः । श्वेभिः शंसनीयगामिभिः प्रशस्त्रगमनैराशुभिः शीघ्रैः ॥

येभिस्त्रिषः परावतो दिवो विश्वानि रोचना । चीरकून्परिदीयथः ॥ ८ ॥

येभिः । त्रिषः । परावतः । दिवः । विश्वानि । रोचना । चीन् । अकून् । परिदीयथः ॥ ८ ॥

हे अश्विनी तिस्रो दिवस्त्रीन्द्रिवसांस्त्रीनकून्सिन्धो राचीश्च ॥ अत्यंतसंयोगे द्वितीया ॥ एतावंतं कालं



विज्ञानि सर्वाणि ज्ञातानि वा रोचना रोचमानानि नञ्चक्षुष्याणि देवगृहाणि परावतो दूरदेशादिभिर्धैरैः  
परिदीयथः परिगच्छथः । दीयतिर्गतिकर्मा । तैरक्षाकं क्षोचमुपयातमिति पूर्वज्ञानवयः ॥

उत नो गोमंतीरिष उत सातीरहर्विदा । वि पथः सातये सितं ॥९॥

उत नः । गोऽमंतीः । इषः । उत । सातीः । अहः । ऽविदा । वि । पथः । सातये । सितं ॥९॥

उतापि च हे अहर्विदाहो संभयितारी । यद्वा । अहि प्रभातसमये वेदितव्यी क्षोतव्यी । गोऽम्भं गो-  
मतीर्वज्रभिर्गोभिर्गुक्ता रवोऽज्ञानि दत्तमिति शेषः । उतापि च सातीः संभवनीया दातव्या वा रायसाक्षम्  
दत्तं ॥ सनतेः सनोतेर्वा कर्मणि क्तिन् । जनसमखगामित्वात् । अतिपूतीत्यादिना क्तिन् उदात्तत्वं निपातते ॥  
अपि चाक्षाकं सातथ उक्तानां गवादोषां क्षामाय संभवनाय वा पथसदुपायकृपाकार्गान् वि सितं । विशिष्य  
नग्रीतं । यथाव्ये न प्रविशति तथा कुवतमित्यर्थः ॥ विञ् बंधने । छांदसो विकरणस्य मुक् ॥ यद्वा । उपसर्गवशाद्द्वयं  
धातुः स्वार्थविपरीते बंधनाभावे वर्तते । प्रस्तरणं प्रक्षानमिति यद्वा । पथो मार्गान् वि सितं । विमुचतं ।  
प्रदर्शयतमित्यर्थः ॥ पथिच्छब्दोऽतोदात्तः । तस्य शसि टिलोप उदात्तनिवृत्तिस्वरेश शस उदात्तत्वं ॥

आ नो गोमंतमश्विना सुवीरं सुरथं रयिं । वोऽहमश्ववतीरिषः ॥१०॥

आ । नः । गोऽमंतं । अश्विना । सुऽवीरं । सुऽरथं । रयिं । वोऽहं । अश्वऽवतीः । इषः ॥१०॥

हे अश्विनाश्विनी गोऽम्भं रयिं धनमा वोऽहं । आवहतं । आहरतं ॥ वहेर्लोडि छांदसः शपो मुक् ।  
उत्पलपुल्लवडोपेपु क्तोपु सहिवहोरोदवर्णस्थितोत्वं ॥ कीदृशं रयिं । गोमंतं वज्रभिर्गोभिर्गुक्तां सुवीरं ।  
नीर्वाज्यायंत इति वीराः पुषाः । गोमंतीरिषपेतं । विविधमीरयति शत्रूनि वा वीराः मूराः । तैरपितं ।  
सुरथं गोमनरथेन युक्तं । अपि चाश्ववतीरश्वयुक्ताः ॥ मंचे सोमाश्चेति मतो दीर्घः ॥ इष इयमायाव्यज्ञानि  
चाक्षभ्यमावहतं ॥ ॥२॥

विदेवत्यस्याश्विनयहस्य वावुधानेत्येवा याज्या । सूच्यते हि । होता यषदश्विना नासावा वावुधाना  
मुभस्यती । आ० ५. ५. इति ॥

वावृधाना शुभस्पती दसा हिरण्यवर्तनी । पिबंतं सोम्यं मधु ॥११॥

ववृधाना । शुभः । पती इति । दसा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी । पिबंतं ।  
सोम्यं । मधु ॥११॥

हे शुभस्पती शुभः गोमनस्यालंकारसोदकस्य वा पती स्वामिनी हे अश्विनी ॥ सुबामंचित इति यज्वंतस्य  
परांगवज्ञावात् यज्वामंचितसमुदायस्याष्टमिकं सर्वानुदात्तत्वं ॥ दसा दर्शनीयौ शत्रूणामुपपथितारी वा  
हिरण्यवर्तनी हिरण्यमयमार्गौ । यद्वा । वर्ततेऽस्मिन्निति वर्तनी रथः । हिरण्ययो रवो ययोस्वो । यद्वा ।  
वर्तनि वर्तनमाचरणं । हिरण्ययोचाचरणौ । ववृधाना प्रवृद्धी ॥ वृधेर्लिटः कानच् ॥ ईदृशी पुषां सोम्यं  
सोममयं मधु माधुर्योपेतं मदकरं वा रसं पिबंतं ॥

अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवन्नस्य सप्रथः । छुर्दियेतमदाभ्यं ॥१२॥

अस्मभ्यं । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू । मघवत्ऽभ्यः । च । सऽप्रथः । छुर्दिः ।  
यंतं । अदाभ्यं ॥१२॥

हे वाजिनीवसू । वाजिनी हविर्युक्ता आगक्रियः । तस्यां वसु धनं हविर्माणजपथं यथोक्तवानिधौ हे  
अश्विनी अस्मभ्यं क्षोत्रभ्यो मघवन्नः । मघं धनं हविर्नचयं । तद्वज्रो यजमानिभ्यस्य सप्रथः सर्वतः पुषु विस्ती-

ब्रह्मदाभ्यं वेनाभ्यर्हिसं हृदिः । गृह्णामि तत् । गृहं यतं । नियच्छतं । दत्तमिति यावत् ॥ यमेष्वांसः शपो  
बुध् । इदं सुमययेत्तार्धधातुकेन कृत्वाभावादनुनासिकसोपाभावः ॥

नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतं । मो ध्व॑न्यो॑ उपारतं ॥ १३ ॥

नि । सु । ब्रह्म । जनानां । या । अविष्टं । तूयं । आ । गतं । मो इति । सु । अन्यान् ।  
उप । अरतं ॥ १३ ॥

हे अश्विनी या यी युवां जनानां प्राणिनां मध्ये ब्रह्म ब्राह्मणजातिं सु सुष्ठु नि नितरामविष्टं अरविष्टं ।  
यदा । जनानां यजमानानीं ब्रह्म परिवृढं स्तोत्रं हविर्लक्षणमन्नं वा यी युवां न्यविष्टं न्यगच्छतं । अवतिर्गत्यर्थः ।  
तौ युवां तूयं चिममा गतं । अस्मान्प्रागच्छतं । अन्यानसद्व्यतिरिक्तान्यजमानान् मो मेव सूपारतं । उपगमतं ।  
कदाचिदपि मेव प्राप्तुमितिर्थः ॥ अर्तेर्माङ्गि कुङ्कि सतिंशास्त्यतिभ्यश्चेति चुरडादेशः ॥

आपराङ्गिणे प्रवर्गे धर्मस्य हविषोऽस्य पिबतमिति द्वितीया याव्या । सूचितं च । अस्य पिबतमश्विनेति  
वा प्रेषितो होता । आ० ४. ७. इति ॥

अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः । मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥ १४ ॥

अस्य । पिबतं । अश्विना । युवं । मदस्य । चारुणः । मध्वः । रातस्य । धिष्ण्या ॥ १४ ॥

हे अश्विनाश्विनी हे धिष्ण्या । धिषणा स्मृतिः । तद्वर्गो युवं युवां मदस्य मदकरस्य चारुणः शोभनस्य  
रातस्यास्मादिदं तस्मात्स्य मध्वो मधुरस्य सोमस्य स्वांशकचयं मागं पिबतं । यदा । द्वितीयायै षष्ठी । इमं  
सोमं पिबतं ॥

अस्मे आ वहतं रयिं शतवतं सहस्रिणं । पुरुक्षुं विश्वधायसं ॥ १५ ॥

अस्मे इति । आ । वहतं । रयिं । शतवतं । सहस्रिणं । पुरुक्षुं । विश्वधायसं ॥ १५ ॥

हे अश्विनी अस्मे अन्नमर्थं रयिं धनमा वहतं । आनयतं । कथं नूतं । शतवतं शतसंख्योपेतं सहस्रिणं  
सहस्रसंख्योपेतं च पुरुषं बह्वर्णवासं यदा पुरुर्भिर्वज्रभिः सुखं विश्वधायसं विश्वेषां सर्वेषामसदीयानां  
धारकं ॥ बहिर्वाधाभ्यर्हदसीति दधातिरमुन् । णिदित्यनुवृत्तेर्णिङ्वाचिन युगागमः ॥ ३ ॥

पुरुचा चिद्धि वां नरा विह्वयंते मनीषिणः । वाघज्जिराश्वना गतं ॥ १६ ॥

पुरुचा । चित् । हि । वां । नरा । विह्वयंते । मनीषिणः । वाघत् । अश्विना ।

आ । गतं ॥ १६ ॥

हे नरा नरी स्तोत्राणां धनस्य नेताराश्विनी मनीषिणो मनस ईशितारः स्तोतारो वां युवां पुरुचा  
चिद्धि बह्वु हि देशेषु विह्वयते । विविधमाह्वयति । तथा सति हे अश्विनी वाघज्जिर्वाहकेरश्विरा गतं ।  
अस्मान्प्रागच्छतं ॥

जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मतो अरंकृतः । युवां हवन्ते अश्विना ॥ १७ ॥

जनासः । वृक्तवर्हिषः । हविष्मतः । अरंकृतः । युवां । हवन्ते । अश्विना ॥ १७ ॥

वृक्तबर्हिषः । वृक्तं किन्नं बर्हिर्गन्धे तथोक्ताः । हविष्मतो हविर्भिर्गुक्ता अरंकृतः पर्याप्तकारिणः यदा  
हविरादीनाममंकर्तारो जनास अस्मिन्नाश्विना युवां हवन्ते । आह्वयन्ति । अत आगच्छ-  
तमिति शेषः ॥



अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अंतमः । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१८॥

अस्माकं । अद्य । वां । अयं । स्तोमः । वाहिष्ठः । अंतमः । युवाभ्यां । भूतु । अश्विना ॥१८॥

अवेदानीमस्माकमयं स्तोमोऽसदीयं स्तोत्रं हे अश्विनी वां युवयोर्वाहिष्ठो वाहयितुतमः प्रापयितुतमः सन् युवाभ्यामंतमोऽतिकतमोऽतिशयेन समीपवर्ती भूतु । भवतु ॥ तमे तादेय । पा० ६. ४. १४९. ९. । इत्यंति-  
कशब्दस्य तादिर्बुध्यते । भवतेऽकांदसः शपो सुवृ ॥

यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्वणे । ततः पिबतमश्विना ॥१९॥

यः । ह । वां । मधुनः । दृतिः । आऽहितः । रथऽचर्वणे । ततः । पिबतं । अश्विना ॥१९॥

हे अश्विनाश्विनी रथचर्वणे रथस्य चर्वणे द्रष्टव्ये मध्ये देशे यो दृतिर्मधुनो मधुरस्यास्माभिर्दत्तस्य स्तोमस्य संबंधी तेन मधुना पूर्णं आहितः स्थापितो वर्तते ततो दृतेः सकाशात्स्तोमं पिबतं ॥

तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे । वहतं पीवरीरिषः ॥२०॥

तेन । नः । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू । पश्वे । तोकाय । शं । गवे । वहतं ।  
पीवरीः । इषः ॥२०॥

हे वाजिनीवसू । वाजोऽन्नं वलं वा । तद्युक्तधनी नोऽस्माकं पश्वे पश्वेऽस्मादित्यवसाय ॥ जसादिषु  
च्छंदसि वावचनमिति चेर्छितीति गुणस्य विकल्पितत्वात् ॥ तोकाय पुत्राय गवे च ॥ आत्मभिप्रायं सर्ववै-  
कवचनं ॥ पशुप्रभृतिभ्यः शं सुखं यथा भवति तथा पीवरीः प्रवृत्तानीषोऽन्नानि तेन भवदीयेन रथेन वहतं ।  
आवहतं । प्रापयतं । दत्तमित्यर्थः ॥ ॥४॥

उत नो दिव्या इष उत सिंधूरहर्विदा । अप जारैव वर्षथः ॥२१॥

उत । नः । दिव्याः । इषः । उत । सिंधून् । अहःऽविदा । अप । जारैऽइव । वर्षथः ॥२१॥

उतापि च हे अहर्विदाहो जंमयितारी । यद्वा । अग्नि प्रभातसमये वेदितव्यौ स्तोतव्यावश्विनी । दिव्या  
दिवि भवा इष इषमाणा अपो नोऽसदर्थं द्वारैव द्वारेणैव च्छिद्रेणैवाप वर्षथः । मेघादपकृष्य युवां सिंचथः ।  
उतापि च सिंधून् खंदनशीला नदीर्षुष्टेक्षेदकैरस्माकं स्नानयानादिकार्याय कृतवन्तावित्यर्थः ॥

कदा वां तौग्यो विधत्समुद्रे जहितो नरा । यद्वां रथो विभिष्यतात् ॥२२॥

कदा । वां । तौग्यः । विधत् । समुद्रे । जहितः । नरा । यत् । वां । रथः । विऽभिः ।  
पतात् ॥२२॥

हे नरा नरो नेतारावश्विनी तौग्यस्तुयपुत्रो भुव्युः समुद्रे जलधी जहितोऽसुरैः प्रविप्तः सन् कदा  
कस्मिन्काले वां युवां विधत् । अविधत् । क्षुतिभिः पर्यचरत् । यद्वा वां युवयोर्विभिर्नैतुभिरक्षिपेती रथः  
पतात् तं भुव्युमानेतुं पतितं गच्छेत् तदानीं भुव्युरक्षीदिति पूर्वैकार्थेन पृष्टस्य प्रतिवचनं ॥

युवं कर्वाय नासत्यापिरिप्ताय हर्म्ये । शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥२३॥

युवं । कर्वाय । नासत्या । अपिऽरिप्ताय । हर्म्ये । शश्वत् । ऊतीः । दशस्यथः ॥२३॥

हे नासत्या । सत्सु साधू सत्यौ । न सत्यावसत्यौ । न असत्यौ नासत्यौ ॥ नभ्राएनपादिति नचः प्रकृति-  
भावः ॥ यद्वा । सत्यस्य नेतारी नासिकाग्रमवौ वा । उक्तं च भगवता याज्ञेन । सत्यविव नासत्यावित्वौ-

र्षवामः । सत्त्वस्य प्रणेतारावित्यायायणः । नासिताप्रभवौ वभूवतुरिति वा । नि० ६. १३. । इति । तौ युवां  
कण्वायेतत्संज्ञायर्थे इह्यं इह्यंतलेऽपिरिज्ञायासुरैर्वाधिताय शशच्छसतीर्वह्नीकृती रषा दशस्यथः । दत्त-  
वन्तौ । युवं कण्वायापिरिज्ञाय चतुः प्रत्यघत्तं । अ० १. ११८. ७. । इत्येतिहास उक्तः । सोऽव द्रष्टव्यः ॥

ताभिरा यातमूतिभिर्नव्यसीभिः सुशस्तिभिः । यद्वा वृषण्वसू हुवे ॥ २४ ॥

ताभिः । आ । यातं । ऊतिऽभिः । नव्यसीभिः । सुशस्तिऽभिः । यत् । वां । वृषण्वसू  
इति वृषण्वसू । हुवे ॥ २४ ॥

हे वृषण्वसू वर्षणधनौ ॥ वृषण्वसूस्वयोरुपसंख्यानं । पा० १. ४. १८. ४. । इति वृषण्वसू निपात्यते ॥  
तदानीं ताभिः पूर्वोक्ताभिर्नव्यसीभिर्नवतराभिः सुशस्तिभिः सुप्रशस्याभिस्तृतीया रषाभिः सार्धमा यातं ।  
आगच्छतं । यद्यदा वां ऊवे क्षुतिमिराद्भयामि ॥

यथा चित्कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतं । अचिं शिंजारमश्विना ॥ २५ ॥

यथा । चित् । कण्वं । आवतं । प्रियऽमेधं । उपऽस्तुतं । अचिं । शिंजारं । अश्विना ॥ २५ ॥

हे अश्विनाश्विनौ यथा चित्केन खलु प्रकारेण कण्वमेतत्संज्ञमुपिमावतं अरचतं प्रियमेधं प्रिययज्ञमेतत्संज्ञं  
चोपस्तुतमेतदाख्यं च शिंजारं शब्दयंतं क्षुवंतमचित्केनापुषींश्च येन प्रकारेणारचतं तथास्नानपि रचतमिति  
शेषः । यद्वा । एतावद्वां वृषण्वसू इत्यनर्थकवाक्यता ॥ ५ ॥

यथोत कृत्ये धनेऽंशुं गोष्वगस्त्यं । यथा वाजेषु सोभरिं ॥ २६ ॥

यथा । उत । कृत्ये । धने । अंशुं । गोषु । अगस्त्यं । यथा । वाजेषु । सोभरिं ॥ २६ ॥

उतापि च यथा येन प्रकारेण धने कृत्ये कर्तव्ये प्राप्तव्ये सत्त्वमुमेतत्संज्ञं क्षीतारमावतं अरचतं । गोषु च  
सन्ध्यासु यथागस्त्यमुपिमारचतं । वाजेष्वनेषु सन्ध्यासु यथा येन प्रकारेण सोभरिमेतत्संज्ञमुपि चारचतं ।  
अत्रापि पूर्ववदाख्यशेष उचरयेकवाक्यता वा ॥

एतावद्वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना । गृणंतः सुसमीमहे ॥ २७ ॥

एतावत् । वां । वृषण्वसू इति वृषण्वसू । अतः । वा । भूयः । अश्विना । गृणंतः ।  
सुसं । ईमहे ॥ २७ ॥

हे वृषण्वसू वर्षणधनावश्विनाश्विनौ गृणंतः क्षुवंतो वयमेतावत् यथा चित् कण्वमित्यादिना यावदनुक्तां-  
तमेतत्परिमाणं सुसं सुखमतो वासाद्वा भूयो बह्वतरमधिकं सुसं वां युवामीमहे । याचामहे ॥

रथं हिरण्यबंधुरं हिरण्याभीश्रुमश्विना । आ हि स्थाथो दिविस्पृशं ॥ २८ ॥

रथं । हिरण्यऽबंधुरं । हिरण्यऽअभीश्रुं । अश्विना । आ । हि । स्थाथः । दिविऽस्पृशं ॥ २८ ॥

हे अश्विनाश्विनौ हिरण्यबंधुरं । सारांथस्थानं बंधुरं । हिरण्यसारांथस्थानं हिरण्याभीश्रुं हिरण्यमयग्रहं  
दिविसृशमनुव्रतत्वादिषु सृशंतं ॥ सृशेः क्तिन् । दिव्यब्दाद्वितीयार्थं सप्तमी । हृद्युभ्यां ऊ० पसंख्यानमित्यनुक्तं ॥  
ईदृशं रथमा हि स्थाथः । युवामातिष्ठथ एव । हिरवधारणे । अस्मदीयां क्षुतिं श्रोतुं शीघ्रं रथमास्त्रायागत-  
मिति भावः ॥ ४१ गतिनिवृत्तौ । लटि च्छांदसः श्रपो लुक् ॥

हिरण्ययीं वां रभिरीषा अक्षौ हिरण्ययः । उभा चक्रा हिरण्यया ॥ २९ ॥

हिरण्ययीं । वां । रभिः । ईषा । अक्षः । हिरण्ययः । उभा । चक्रा । हिरण्यया ॥ २९ ॥



हे अश्विनौ वां युवयो रभिरारंभणीयालंभनभूता रथस्त्रेया हिरण्ययी हिरण्ययी हिरण्यधिकारा ।  
अथ हिरण्ययो हिरण्ययो हिरण्यनिर्मितः ॥ इषा अषादिषु च्छंदसि । पा० ६. १. १२७. २. । इति प्रकृति-  
भावः ॥ अपि घोमेने हे अपि चक्रा चक्रे रथचरणे हिरण्यया हिरण्यये सुवर्णनिर्मिते ॥ सुपां सुसुविति  
द्विवचनस्याकारः । अत्यवास्तव्यास्तेत्यादिना हिरण्यशब्दात्प्रयटो मन्त्रोपो निपात्यते ॥

तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतं । उपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ३० ॥

तेन । नः । वाजिनीवसू इति वाजिनीवसू । पराऽवतः । चित् । आ । गतं । उपे ।

इमां । सुऽस्तुतिं । मम ॥ ३० ॥

हे वाजिनीवसू अन्नवक्षणावश्विनौ य उक्तो हिरण्यस्य सर्वावयवो रथः तेन रथेन नोऽस्यान्यरावतश्चिद-  
रदेशादप्या गतं । आगच्छतं ॥ गमेष्कांदसः श्रयो सुक् । असुदात्तोपदेशेन गुणाधिकलोपः ॥ इदानीमुपरिकव-  
दाह । मम मदीयामिमामिदानीं क्रियमाणां सुष्टुतिं शोभनां सुतिं चोपयच्छतं ॥ ॥ ६ ॥

आ वहेथे पराकात्पूर्वीरक्षन्तावश्विना । इषो दासीरमर्त्या ॥ ३१ ॥

आ । वहेथे इति । पराकात् । पूर्वीः । अक्षन्ता । अश्विना । इषः । दासीः । अमर्त्या ॥ ३१ ॥

हे अमर्त्यामरणावश्विनाश्विनौ दासीः । दासां उपपद्यितारोऽसुराः । तत्संबन्धिनीः पूर्वीः पुरीरक्षन्ती  
मक्षयन्ती भक्षन्ती युवामिषोऽन्नानि पराकात्परागताहरदेशादा वहेथे । अक्षान्नापयथः । यद्वा । अक्षन्ती  
व्यामुवंती ॥ अमू व्याप्ती । अक्षान्नापयथेन आ परस्त्रीपदं च ॥ पूर्वीर्वह्नीर्दासीर्दासश्चोपपद्यितुः श्रयोः संबन्धि-  
नीरिषोऽन्नानि शत्रुभ्योऽपहृत्याक्षान्नापयथः ॥

आ नो ह्युच्चैरा अवोभिरा राया यातमश्विना । पुरुषंद्रा नासंत्या ॥ ३२ ॥

आ । नः । ह्युच्चैः । आ । अवः । अभिः । आ । राया । यातं । अश्विना । पुरुऽचंद्रा । नासंत्या ॥ ३२ ॥

हे पुरुषंद्रा बह्वहिरासी यद्वा पुरुषां बह्वनामाह्लादकी ॥ इत्याचंद्रोत्तरपदे मंत्र इति सुह । पादादि-  
स्वात्पादिकमामं चित्तानुदात्तत्वं ॥ हे नासंत्या सत्यस्वभावी सत्यस्य नेतारी नाशिकाग्रमवी वा ॥ आमंभितं  
पूर्वमविद्यमानवदिति पूर्वस्वामंभितस्याविद्यमानवद्वावादिदमयामंभितमायुदात्तं । न च नामंभिते समाया-  
धिकरण इत्यविद्यमानवत्त्वनिषेधः पुरुषंद्रैत्यस्य विशेषवचनत्वात् ॥ ईदृशी हे अश्विनाश्विनौ युक्तीर्द्यौतमाविर-  
द्भिर्दातव्यैः स्वार्थं नोऽक्षाना यातं । आगच्छतं । तथा अवोभिः अषणीथिर्यशोमिक्षाक्षानावच्छतं । तथा राया  
धनेन चाक्षानागच्छतं ॥

एह वां मुषितस्सवो वयो वहंतु पर्णिनः । अच्छा स्वध्वरं जनं ॥ ३३ ॥

आ । इह । वां । मुषितऽस्सवः । वयः । वहंतु । पर्णिनः । अच्छ । सुऽअध्वरं । जनं ॥ ३३ ॥

हे अश्विनौ इहाश्विन्याने वां युवां मुषितस्सवः । मुषिः स्नेहजननी । स्निग्धरूपाः पर्णिनः पचोपिताः ।  
यद्वा । मुषोपममेतत् । पचिष्य रथ शोघनामिनः । वयो गंतारोऽश्वाः स्वध्वरं शोभनयज्ञं यजमानक्षरणं  
यजमच्छामिमुखमा वहंतु । आनयंतु ॥

रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह । न चक्रमभि बाधते ॥ ३४ ॥

रथं । वां । अनुऽगायसं । यः । इषा । वर्तते । सह । न । चक्रं । अभि । बाधते ॥ ३४ ॥

हे अश्विनौ यो रथोऽस्माभ्यं देवेनाग्निं सह वर्तते वां युवयोः स्वभूतमनुगायसं सौतुभिरनुगातव्यं तं रथं

यत्तं परस्मैभ्यं नामि बाधते । नामिहंति । यद्वा । चक्रं वीर्यकर्मसाधनं ॥ ध्वजं कविधानमिति कः । छजादीनां के । का० ६. १. १२. १. इति द्विवचनं । अस्मिन्पद्येऽन्यः शत्रुरिति कर्तृपदमध्याहृत्यं ॥

हिरण्ययेन रथेन द्रुवत्पाणिभिरश्वैः । धीर्जवना नासंत्या ॥ ३५ ॥

हिरण्ययेन । रथेन । द्रुवत्पाणिभिः । अश्वैः । धीर्जवना । नासंत्या ॥ ३५ ॥

हे धीजवना मनोवहेगवन्तौ ॥ नामंचितासुदात्तत्वं ॥ हे नासत्या सत्यस्वभावौ सत्यस्य नेतारौ वा ॥ नामंचितं पूर्वमविद्यमानवदिति पूर्वस्याविद्यमानत्वेन पदादपरत्वादाष्टमिकनिघाताभावः । न च नामंचित-  
विद्यमानवत्त्वनिषेधो धीजवनेत्यस्य विशेषणत्वेन सामान्यवचनत्वाभावात् । व्यावर्तकं हि विशेषणं ॥ ईदृशी  
युवां द्रुवत्पाणिभिः शीघ्रगमनपदैरश्वैर्युक्तेन हिरण्ययेन हिरण्यमयेन स्वर्णमयेन रथेनागतमिति शेषः । यद्वा ॥  
धीजवना नासत्येत्येतद्व्ययमपि प्रथमांतमेव नामंचितं । धियो जव इव जवो ययोस्ती । वज्रवीही पूर्वपदप्र-  
तिस्वरत्वं ॥ ईदृशेन रथेन शीघ्रगमनौ नासत्यावश्विनावागच्छतमिति शेषः ॥ ७ ॥

युवं मृगं जागृवांसं स्वदंथो वा वृषण्वसू । ता नः पृक्तमिषा रयिं ॥ ३६ ॥

युवं । मृगं । जागृवांसं । स्वदंथः । वा । वृषण्वसू इति वृषण्वसू । ता । नः ।

पृक्तं । इषा । रयिं ॥ ३६ ॥

वाग्दंथः समुदथे । अपि च हे वृषण्वसू वर्षणधनावश्विनौ युवं युवां जागृवांसं जागरणशीलं स्वकार्ये  
मद्वयनेऽन्त्यं मृगं मृग्यमन्वेषणीयं सोमं स्वदथः । आस्तादयथः । यद्वा । जागृवांसं जायतं मृगं मृगनामान-  
मसुरं स्वदथः । स्वादयथः । हिंस्य इत्यर्थः । ता तौ युवां नोऽस्मदर्थमिषान्नेन रयिं धनं पृक्तं । संपृक्तं । कुपतं ।  
ईदृशं धनमस्माभ्यं प्रयच्छतमित्यर्थः ॥

ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानां ।

यथा चिच्चैद्यः कप्पुः शतमुष्ट्रानां ददत्सहस्रा दश गोनां ॥ ३७ ॥

ता । मे । अश्विना । सनीनां । विद्यातं । नवानां ।

यथा । चित् । चैद्यः । कप्पुः । शतं । उष्ट्रानां । ददत् । सहस्रा । दश । गोनां ॥ ३७ ॥

हे अश्विनाश्विनौ ता तादृशी युवां गवानामभिगवानां श्रेष्ठानां सनीनां संमजवीयानां धनानां ॥  
कर्मणि षष्ठी ॥ ईदृशानि धनानि मे मह्यं दापयितुं विद्यातं । जानीतं । यथा चिच्चैद्यः कप्पुः प्रकारेण चै-  
द्येदिषुषः कशुरेतत्संशो राजोष्ट्रानां शतं तथा गोनां गवां दश सहस्रा दशसंख्यानि सहस्राणि ददत् दद्यात्  
तथा विद्यातमिति पूर्वशान्वयः ॥

यो मे हिरण्यसंदृशो दश राज्ञो अमंहत ।

अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मन्ना अभितो जनाः ॥ ३८ ॥

यः । मे । हिरण्यसंदृशः । दश । राज्ञः । अमंहत ।

अधःस्पदाः । इत् । चैद्यस्य । कृष्टयः । चर्मन्नाः । अभितः । जनाः ॥ ३८ ॥

यः कशुसंशो राजा मे मह्यं हिरण्यसंदृशो हिरण्यसंदर्शमानं हिरण्यसमानतेजस्कान् दश राज्ञोऽमंहत  
परिचरणार्थं दत्तवान् । दशसंख्याकानांशो युद्धे पराजितान् गृहीत्वा दासत्वेनास्मै दत्तवानित्यर्थः । नन्वीदृ-  
शानां वज्रविधानां राज्ञां दातृ एकः कथं शक्नुयादिति तत्राह । छटयः सर्वाः प्रजास्यस्य चैवस्य चेर्दिपुत्रस्य



कशोरधसदा इत् पादयोरधस्तादेव वर्तते । न कश्चिदपि तत्समानस्तदधिको वा विद्यते । अमितः सर्वतो  
वर्तमाना अनासर्गश्चासर्गमयस्य कवचादेर्धारणे कृताभ्यासाः । यद्वा । चर्माणि चरणसाधनान्यस्यादीनि  
वाहनानि । तेषु मंगलव्यस्तंतीति चर्मन्वाः ॥ आ अभ्यासे । आतो मन्त्रित्विति विच् ॥ सर्वे मनुष्यास्तस्य  
भटा इत्यर्थः ॥

माकिरेना पथा गाद्येनेमे यन्ति चेदयः ।

अन्यो नेत्सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जनः ॥ ३९ ॥

माकिः । एना । पथा । गात् । येन । इमे । यन्ति । चेदयः ।

अन्यः । न । इत् । सूरिः । ओहते । भूरिदावत्तरः । जनः ॥ ३९ ॥

येन मार्गेणेमे चेदयोऽस्य राक्षः पितृपितामहादयो यन्ति गच्छन्ति एनानेन पथा मार्गेण माकिर्गात् ।  
अन्यो न गंतुं शक्नोति । अपि चास्माद्राक्षोऽन्यो भूरिदावत्तरो ब्रह्मदातुतमः सूरिर्विद्वान् सज्जनो जेद्विवाहते ।  
वहति । स्तोतृभ्यो धनं प्रापयति । यद्वा । ब्रह्मदातुत्वमो यो जनः कर्गुर्नाम अस्मादन्यः ॥ अत्ययेन प्रथमा ॥  
अन्यं सूरिः स्तोता नेदोहते । नैव याचते । ओहिर्याज्ञाकर्मा । यथान्यं न याचते तथा ब्रह्म धनं पयच्छ-  
तीत्यर्थः ॥ ॥ ८ ॥ ॥ १ ॥

द्वितीयेऽनुवाके सप्त सूक्तानि । तत्र महौ इंद्र इत्यष्टाचत्वारिंशद्वचं प्रथमं सूक्तं कायस्व वत्सस्यायं  
गायचं । अत्यतुचवर्जमिंद्रं । तस्मिन्परमुनास्त्रो राक्षः पुचस्य तिरिदिरस्य दानं सूयते । अतः स तुचवर्ज-  
वताकः । तथा चानुकांतं । महौ इंद्रोऽष्टाचत्वारिंशद्वत्सकुचोऽत्यस्तिरिदिरस्य पारश्वस्य दानकुतिरिति ॥  
महाव्रते गायत्रतुचाशीतावत्यतुचवर्जमिंद्रं सूक्तं । तथैव पंचमारण्यके सूच्यते । महौ इंद्रो य ओजसेति तिस्र  
उत्तमा उद्धरति । ऐ० आ० ५. २. २. इति ॥ प्रातःसवने सोमातिरेके महानित्यादिकाः सोमातिशंसनार्थाः ।  
सूचितं च । महौ इंद्रो य ओजसातो देवा अवंतु न इत्थिंद्रोभिर्वण्यवीमिंश्च स्तोममतिशस्य । आ० ६. ७. इति ॥  
तृतीये पर्याये होतुः शस्त्रे महौ इंद्र इति तुचोऽनुरूपः । सूचितं च । महौ इंद्रो य ओजसा समस्य मन्त्रे  
विश इति । आ० ६. ४. इति ॥ अतोर्थमे ब्रह्मणोऽतिरिक्तोक्थ्य अथमेव तुचोऽनुरूपः । सूच्यते हि । महौ  
इंद्रो य ओजसा नूनमश्निना । आ० ९. ११. इति ॥ दर्शयामे महेंद्रयाजिनः सांभाव्यस्य महानित्येपानुवाक्या ।  
सूच्यते हि । महौ इंद्रो य ओजसा भुवस्त्वमिंद्र ब्रह्मणा महान् । आ० १. ६. इति ॥

महौ इंद्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावुधे ॥ १ ॥

महान् । इंद्रः । यः । ओजसा । पर्जन्यः । वृष्टिमान् इव । स्तोमैः । वत्सस्य । वावुधे ॥ १ ॥

य इंद्र ओजसा बलेन महान् सर्वेभ्योऽधिकः । क इव । वृष्टिमानिव । यथा वृष्ट्या युक्तः पर्जन्यो रसानां पार्श्व-  
थिता देवो महान् स इवेत्यर्थः । स इंद्रो वत्सस्य पुचस्थानीयस्य स्तोतुर्वत्सनाय एष्येः स्तोत्रैर्ववुधे । प्रवर्धते ॥

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यज्ञरंत वह्नयः । विप्रां चतस्य वाहसा ॥ २ ॥

प्रऽजां । चतस्य । पिप्रतः । प्र । यत् । भरंत । वह्नयः । विप्राः । चतस्य । वाहसा ॥ २ ॥

अतस्य यज्ञस्य सत्त्वस्य वां प्रजां प्रकर्षेण जातमिंद्रं पिप्रतो नमसः प्रदेशान् पूरयंतो बह्व्यो वाहसा  
अथा यद्यदा प्र भरंत प्रकर्षेण भरंति वहंति तदा विप्रा मेधाविन अतस्य यज्ञस्य वाहसा प्रापकेण स्तोत्रेण  
तमिंद्रं क्षुवंतीति शेषः ॥

कणा इंद्रं यदक्रंत स्तोमैर्यज्ञस्य सार्धनं । जामि व्रुवत आयुधं ॥ ३ ॥

कणाः । इंद्रं । यत् । अक्रंत । स्तोमैः । यज्ञस्य । सार्धनं । जामि । व्रुवते । आयुधं ॥ ३ ॥

कण्ठाः । सोमनामितत् । सोतारः कण्ठगोपा वेद्रं सोमेः सोविर्यञ्चस्य यागस्य साधनं साधयितारं  
विष्वादेकं यथादाकृतं अकृतम् ॥ करोतिर्बुद्धिं मंचे चसेति बुद्धिं ॥ तदानीमायुधं शूणां हिंसकं बाणादिकं  
जामि । अतिरिक्तमहितं प्रयोजनरहितं ब्रुवते । कथयन्ति । आयुधसाध्यस्य सर्वकार्यस्येद्रेण  
कृतत्वादायुधं निष्प्रयोजनमित्यर्थः । यद्वा । आयुधमायोधनशीलमिद्रं जामि जामिं भ्रातरं ब्रुवते । वदन्ति ।  
सर्वकार्येषु भ्रातृवदन्त इत्यर्थः ॥

तृतीये पर्याये होतुः शस्त्रे समस्य मन्यव इत्याद्यः द्वित्रित्वारिंशद्वचः । सूच्यते हि । समस्य मन्यवे विश इति  
द्वित्रित्वारिंशद्विचित्रिते । आ० ६. ४. इति ॥

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमंत कृष्टयः । समुद्रायैव सिंधवः ॥ ४ ॥

सं । अस्य । मन्यवे । विशः । विश्वाः । नमंत । कृष्टयः । समुद्रायऽइव । सिंधवः ॥ ४ ॥

विशो विशंत्यो विश्वाः सर्वाः कृष्टयः प्रजा अखेन्द्रस्य मन्यवे क्रोधाय । यद्वा । मन्युर्मननसाधनं सोमं ।  
तदर्थं । सं नमंत । सम्यक् स्वत एव नमन्ति ॥ नमतेः कर्मकारि च्छांदसो जड् । न दुहन्तुनमामिति यज्ञिणोः  
प्रतिषेधः ॥ प्रह्नीभवन्ति । तत्र दृष्टान्तः । समुद्रायैव यथा समुद्रमब्धिं प्रति सिंधवः स्रंदनशीला नद्यः स्वयमेव  
नमन्ति तद्वत् ॥

ओजस्तदस्य तिल्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मैव रोदसी ॥ ५ ॥

ओजः । तत् । अस्य । तिल्विषे । उभे इति । यत् । संऽअवर्तयत् । इन्द्रः । चर्मैऽइव ।

रोदसी इति ॥ ५ ॥

अखेन्द्रस्य तदोजो वनं तिल्विषे । दिदीपे ॥ त्विष दीप्ती ॥ यद्येनीजसायमिन्द्र उभे रोदसी बायापुथिव्यौ  
चर्मैव समवर्तयत् सम्यग्वर्तयति । यथा कश्चित्किंचिच्चर्म कदाचिद्विस्तारयति कदाचित्संकोचयति एवं तदधीने  
अभूतामित्यर्थः ॥ ॥ ५ ॥

वि चिबृचस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो विभेद वृष्णिना ॥ ६ ॥

वि । चित् । वृचस्य । दोधतः । वज्रेण । शतऽपर्वणा । शिरः । विभेद् । वृष्णिना ॥ ६ ॥

विच्छेदोऽप्यर्थः । स च भिन्नक्रमः । वृचस्य चिदावरकस्यापि दोधतोऽत्यर्थं जगत्कंपयतोऽसुरस्य शिरो  
मूर्धानं शतपर्वणा शतसंख्यापर्वणि धारा यस्य तादृशेन वृष्णिना वीर्यवता वज्रेणैन्द्रो वि विभेद । विविच्छेद ॥

आभिन्नचिकेष्टुकण्डेषु तृतीयसवने प्रशासुः शस्त्र इमा अमीति तृचो वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूचितं च । इमा  
अभि प्र णोनुम इत्यथ ब्राह्मणाच्छंसिनः । आ० ७. ८. इति ॥

इमा अभि प्र णोनुमो विपामयेषु धीतयः । अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ॥ ७ ॥

इमाः । अभि । प्र । नोनुमः । विपां । अयेषु । धीतयः । अग्नेः । शोचिः । न । दिद्युतः ॥ ७ ॥

विपां सोतृणामयेषु पुरस्तादिमा अस्मदीयः धीतयो धियः सोचाश्वमि प्र णोनुमः । आभिमुख्येन  
पुनःपुनः प्रवदामः ॥ गु शब्दे । कीदृशीः सुतीः । अग्नेः शोचिर्न दीप्तिरिव दिद्युतो दीप्यमाना वेदरूपाः ॥

गुहा सतीरुप त्मना प्र यच्छीचैत धीतयः । कणां ऋतस्य धारया ॥ ८ ॥

गुहा । सतीः । उप । त्मना । प्र । यत् । शोचैत । धीतयः । कणाः । ऋतस्य । धारया ॥ ८ ॥

गुहा गुहायां सतीः सत्यो भवत्यो यथा धीतयः सुतयः कर्माणि वा त्मनात्मना खेनेद्रेणोपगम्यमानाः प्र



शोचंत प्रादीयंत । यदा । आत्मना स्वत एवेन्द्रमुपगच्छन्त्यः प्रदीयन्ति । ताः कुतीः कखाः कखगोवा अवय  
अतस्त्रोदकस्य सोमात्मकस्य धारया सहिताः कुर्वन्तीति शेषः ॥

प्र तमिंद्र नशीमहि रयिं गोमंतमश्विनं । प्र ब्रह्म पूर्वचिन्तये ॥ ९॥

प्र । तं । इंद्र । नशीमहि । रयिं । गोमंतं । अश्विनं । प्र । ब्रह्म । पूर्वऽचिन्तये ॥ ९॥

हे इंद्र गोमंतं गोमिथुक्तमश्विनमश्विपेतं तं प्रसिद्धं रयिं स्वदीयं धनं प्र नशीमहि । प्राप्तुवाम । तथा ब्रह्म  
परिवृढमन्नं च पूर्वचिन्तयेऽन्वेष्टः पूर्वमेव ज्ञानाय प्राप्तवाम ॥

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जयम् । अहं सूर्यं इवाजनि ॥ १० ॥

अहं । इत् । हि । पितुः । परि । मेधां । ज्युतस्यं । जयम् । अहं । सूर्यः । इव । अजनि ॥ १० ॥

पितुः पालकस्वर्तस्य सत्यस्वावितषर्षेन्द्रस्य मेधामनुपहात्मिकां बुद्धिमहमिद्धमेव परि जयम् । परिवृद्धी-  
तवानसि नान्ये । हि यस्मादेवं तस्मादहं सूर्यं इवाजनि सूर्यो यथा प्रकाशमानः सन् प्रादुर्भवति तथाजनिषं ।  
प्रादुरभूवं ॥ ॥ १० ॥

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः जुभामि कखवत् । येनेंद्रः शुष्ममिद्धे ॥ ११ ॥

अहं । प्रत्नेन । मन्मना । गिरः । जुभा । मि । कखऽवत् । येन । इंद्रः । शुष्मं । इत् । दधे ॥ ११ ॥

कखवत्प्रत्यम जनकः कख इवाहं प्रत्नेन नित्वेन वेदरूपेण मन्मना मननसाधनेनेन्द्रविषयेण स्त्रीषेण विरो  
वाचः जुभामि । खलं करोमि । यदा । हींद्रविषये प्रयुज्यते तदानीं यथार्थत्वाद्वाचोऽचंचता भवन्ति । येन  
खलु स्त्रीषेणेन्द्रः शुष्मं शत्रुणां शोषकं बलं दध इत् धत्त एव धारयत्विव । यत्स्त्रीषमिंद्र ईदृशं बलमवशं  
जनयति तेन मन्मनेत्यर्थः ॥

ये त्वामिंद्र न तुष्टुवुर्चर्षयो ये च तुष्टुवुः । ममेवर्धस्व सुष्टुतः ॥ १२ ॥

ये । त्वां । इंद्र । न । तुष्टुवुः । चर्षयः । ये । च । तुष्टुवुः । मम । इत् । वर्धस्व । सुऽस्तुतः ॥ १२ ॥

हे इंद्र ये जनास्त्वां न तुष्टुवुः न कुर्वन्ति ये चर्षयो मंचाणां द्रष्टारो जनास्तुष्टुवुः त्वां कुर्वन्ति उभयिषां  
मध्ये ममेकमेव स्त्रीषेण सुष्टुतः शोभनं कुतः सन् वर्धस्व । वृद्धो भव ॥

यदस्य मन्युरध्वनीञ्चि वृचं पर्वशो रुजन् । अपः समुद्रमैरयत् ॥ १३ ॥

यत् । अस्य । मन्युः । अध्वनीत् । वि । वृचं । पर्वऽशः । रुजन् । अपः । समुद्रं । ऐरयत् ॥ १३ ॥

अस्त्रेन्द्रस्य मन्युः क्रोधो वृचमावृत्त्य तिष्ठतमसुरं मेघं वा पर्वशः पर्वशि पर्वशि पदधि पदधि वि एजन्  
विमंजन् यद्यदाध्वनीत् खनयितुमेषां शब्दमकरोत् तदानीं समुद्रं समुदनीयमुदधिं प्रत्यपो वृषुदकाभे-  
रयत् । स इंद्रः प्रेरितवान् ॥

नि शुष्णं इंद्र धर्णसिं वज्रं जघंथ दस्यवि । वृषा सुयं श्रुत्विषे ॥ १४ ॥

नि । शुष्णं । इंद्र । धर्णसिं । वज्रं । जघंथ । दस्यवि । वृषा । हि । सुयं । श्रुत्विषे ॥ १४ ॥

हे इंद्र शुष्णो शोषक एतत्तं हि दस्यबुपपयितर्यसुरे धर्णसिं धारयितव्यं वज्रं कुक्षिं तं नि जघंथ । वि-  
हृतवानसि । वज्रेण तमसुरं न्यवधीरित्यर्थः । हे उग्रोऽग्र्यवर्षेन्द्र वृषा कामानां बर्षितेति हि श्रुत्विषे । श्रुयसे ।  
अतोऽस्मदपेक्षितं धनं देहीति शेषः ॥

न द्याव॒ इन्द्र॑मोर्जसा॒ नांतरि॑क्षाणि व॒ज्रिणं॑ । न वि॒व्यच॑न्त॒ भूम॑यः ॥ १५ ॥

न । द्यावः । इन्द्रं । ओर्जसा । न । अंतरि॑क्षाणि । व॒ज्रिणं॑ । न । वि॒व्यच॑न्त॒ । भूम॑यः ॥ १५ ॥

द्यावो ब्रुलोका इममिन्द्रमोर्जसा वलेन न विव्यचन्त । न व्याप्नुवन्ति । ब्रुल्लोकेभ्योऽप्यस्य बलमधिकमित्यर्थः । तथांतरिक्षाख्यंतरा चांतानि द्यावापृथिव्योर्मध्ये वर्तमाना लोका वज्रिणं वज्रवन्तमिन्द्रं न व्याप्नुवन्ति । तथा भूमयो भूलोकाश्च तमिन्द्रं न व्याप्नुवन्ति । चयो वा इमे चिब्रुतो लोकाः । ऐ० आ० १. १. २. । इति ब्राह्मणादेकैकस्य लोकस्य चित्तं । तिस्रो भूमीः । ऋ० २. २७. ८. । इत्यादिनिगमाच्च ॥ ॥ १५ ॥

यस्त॑ इन्द्र॒ म॒हीर॑पः स्त॒भूय॑मान॒ आश॑यत् । नि तं पद्या॑सु शि॒श्रथः॑ ॥ १६ ॥

यः । ते । इन्द्र । म॒हीः । अपः । स्त॒भूऽय॑मानः । आ । अश॑यत् । नि । तं । पद्या॑सु । शि॒श्रथः॑ ॥ १६ ॥

हे इन्द्र ते तव संबन्धिनीर्महीर्महीरप आंतरिक्षाण्युदकानि यो वृचः स्तभूयमानः संभयन् यथाधो न पतन्ति तथा कुर्वन्नाशयत् आवृत्याशेत तमसुरं पद्यासु गमनशीलास्तप्सु मध्ये नि शिश्रथः । न्यहिंसोः । अचिहिंसार्थः । वज्रेण तमसुरं हत्वा नदीषु पातितवानित्यर्थः ॥

य इमे॑ रोद॒सी म॒ही स॒मीची॑ स॒मज॑यभीत् । तमो॑भिरिन्द्र॒ तं गु॑हः ॥ १७ ॥

यः । इमे इति । रोद॒सी इति । म॒ही इति । स॒मीची॑ इति सं॒ऽईची॑ । सं॒ऽअज॑यभीत् ।

तमः॑ऽभिः । इन्द्र । तं । गुहः ॥ १७ ॥

यो वृचो मही महत्वी विस्तीर्णो समीची संगते इमे प्रत्यक्षत उपलभ्यमाने रोदसी द्यावापृथिव्यौ समजयभीत् सम्यगयहीत् । आवृणोदित्यर्थः । तमसुरं हे इन्द्र त्वं तमोभिरंधकारैर्गुहः । संवृतमकरोः । अनावृतं मरणलक्षणं तमः प्राविश्य इत्यर्थः ॥

य इन्द्र॑ यत॑यस्त्वा॒ भृग॑वो॒ ये च॑ तुष्टुवुः । ममेदु॑य श्रु॒धी ह॑वँ ॥ १८ ॥

ये । इन्द्र । यत॑यः । त्वा । भृग॑वः । ये । च । तुष्टुवुः । मम । इत् । उ॒य । श्रु॒धि । ह॑वँ ॥ १८ ॥

हे इन्द्र ये यतयो नियता अंगिरसस्त्वां तुष्टुवुः ये च भृगवो भृगुगोत्रास्त्वां तुष्टुवुः क्षुवन्ति तेषु मध्ये ममेकमेव हवं शोचं हे उयौवस्तिन्द्र श्रुधि । श्रुषु ॥

इमास्त॑ इन्द्र॒ पृश्न॑यो घृतं दु॒हत आ॒शिरं॑ । ए॒नामृ॑तस्य पि॒प्युषीः॑ ॥ १९ ॥

इमाः । ते । इन्द्र । पृश्न॑यः । घृतं । दु॒हते॑ । आ॒ऽशिरं॑ । ए॒नां । अ॒मृ॒तस्य॑ । पि॒प्युषीः॑ ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ते त्वदीया इमाः पृश्नयः प्राष्टवर्णा गावो घृतं चरणशीलमेनामाशिरमाश्रयणद्रव्यं पयो दुहते । दुहन्ति । चारयन्ति । कीदृशः पृश्नयः । अतस्त सत्यस्यावितथस्तिन्द्रस्य यज्ञस्य वा पिप्युषीर्वर्धयिष्यः ॥

या इन्द्र॑ प्र॒स्वस्वा॒सा गर्भ॑मचक्रि॒रन् । परि॑ ध॒र्मेव॑ सू॒र्यं ॥ २० ॥

याः । इन्द्र । प्र॒ऽस्वः । त्वा । आ॒सा । गर्भं॑ । अचक्रि॒रन् । परि॑ । ध॒र्मे॒ऽइव॑ । सू॒र्यं ॥ २० ॥

हे इन्द्र प्रसः । प्रसुवते गर्भं विमुच्यन्तीति प्रसः ॥ सूतेः सत्सूक्ष्मेति क्तिप् ॥ इन्द्रस्य या गाव आसास्तेन त्वा त्वदीयं वीर्यं वृत्रवधानंतरमोषधादिरूपेण परिणतं मघयित्वा गर्भमचक्रि रन् अकुर्वन् त्वदीयं वीर्यमंतरधा रयन् । तत्र दृष्टांतः । सूर्यं परितः सूर्यमंडलस्योपरि धर्मेव धारकं पोषकमुदकं यथा रश्मयो गर्भरूपेण विधत्ति तद्वत् । यद्वा । परि धर्मेव परितो धारयितारं सूर्यमिव । यथा सूर्यः परितः सर्वे जनयन्ति तद्वत् ।



कृत्स्नस्य जगतो धारकमिन्द्रस्य वीर्यमित्यर्थः । औषध्यादिकृपेण परिणतस्यैन्द्रवीर्यस्य गोमिरात्मनि धारकमिन्द्रस्य वृषं जघ्नुष इत्यारभ्य तैत्तिरीयके विख्यष्टमाद्यातं । तत्पशव औषधीभ्योऽध्यात्मन्तमनयन् तत्पशवदुहन् । ते० सं० २. ५. ३. ३. इति । पयोऋपेण परिणतं तद्वीर्यमिमा गाव आशिरार्यं दुहत इति पूर्वस्वामुच्यन्वयः ॥ ॥ १२ ॥

नामपेयेऽतिरिक्तोक्ते स्वामिच्छवसस्यत इत्येषा । सूचितं च । स्वामिच्छवसस्यते तं प्रत्यया । आ० ९. ९. इति ॥

त्वामिच्छवसस्यते कक्षा उक्थेन वावृधुः । त्वां सुतास इंदवः ॥ २१ ॥

त्वां । इत् । श्वसः । पते । कक्षाः । उक्थेन । ववृधुः । त्वां । सुतासः । इंदवः ॥ २१ ॥

हे श्वसस्यते वसस्य स्वामिच्छिन्द्र स्वामेव कक्षाः क्षीतारः कष्वगोवा वर्षय उक्थेन शस्त्रेण ववृधुः । वर्धयन्ति । सुतासोऽध्वर्युमिरमिषुता इंदवः सोमास्य स्वामेव वर्धयन्ति ॥

तवेदिन्द्र प्रणीतिषूत प्रशस्तिरद्विवः । यज्ञो वितंतसाय्यः ॥ २२ ॥

तव । इत् । इन्द्र । प्रऽनीतिषु । उत्त । प्रऽशस्तिः । अद्विऽवः । यज्ञः । वितंतसाय्यः ॥ २२ ॥

उतापि च हे अद्विवः । आदृणात्वनेनेत्यद्विवः । तद्विन्द्र तवेत्तवैव प्रणीतिषु प्रकृष्टेषु जघनेषु धनप्रदानेषु सत्सु प्रशस्तिः प्रकृष्टा क्षुतिः क्रियते । तथा वितंतसाय्यो विसृततमः ॥ तनोतिऽच्छांदसेतद्रूपं । यद्वा । तंतसिः कंडादिवृद्धयर्थः । तस्मादौणादिक आत्यप्रत्ययः ॥ प्रवृद्धो यज्ञश्च तवैव क्रियते ॥

आ न इंद्र महीमिषं पुरं न दर्वि गोमतीं । उत्त प्रजां सुवीर्यं ॥ २३ ॥

आ । नः । इन्द्र । महीं । इषं । पुरं । न । दर्वि । गोऽमतीं । उत्त । प्रऽजां । सुऽवीर्यं ॥ २३ ॥

हे इंद्र नोऽस्यभ्यमस्यदर्थं महीं महतीं गोमतीं गोमिषुंक्तामिषमत्तमा दर्वि । आद्रियस्व । दातुं कामयस्व । नशब्दार्थः । पुरं न । पावनं पुरः । पावनं रक्षणं चास्य कर्तुमाद्रियस्व ॥

उत्त त्यदाश्च्यं यदिन्द्र नाहुषीष्वा । अये विष्णु प्रदीदयत् ॥ २४ ॥

उत्त । त्यत् । आ० शुऽश्च्यं । यत् । इन्द्र । नाहुषीषु । आ । अये । विष्णु । प्रऽदीदयत् ॥ २४ ॥

हे इंद्र नाहुषीषु । गङ्गा इति मनुष्यनाम । तत्संबन्धिनीषु । यद्वा । नाहुषी नाम कश्चिद्वाया । तदीयासु । विष्णु प्रजास्ये पुरसायदाश्च्यं शीघ्रगाम्यश्चसंघातकं वनं प्रदीदयत् प्रादीपयत् उतापि च तत्सद्व्यसम्भं देहीति शेषः । आकारः पूरकः ॥

अभि व्रजं न तन्निषे सूर उपाकचक्षसं । यदिन्द्र मृकयासि नः ॥ २५ ॥

अभि । व्रजं । न । तन्निषे । सूरः । उपाकऽचक्षसं । यत् । इन्द्र । मृकयासि । नः ॥ २५ ॥

न संप्रत्यर्थः । न संप्रतीदानीं हे इंद्र सूरः प्राज्ञस्त्वं व्रजं गोष्ठमुपाकचक्षसं । उपाक इत्यंतिकनाम । अंतिके द्रष्टव्यमभि तन्निषे । अभितनोषि । अभिविस्तारयसि । गोभिः पूर्णं करोषीत्यर्थः ॥ तनोतिऽच्छांदसेति लिटि तनिपत्योऽच्छांदसीत्युपधात्तोपः । यद्यदा हे इंद्र त्वं नोऽस्मान् मृकयासि मृकयसि सुखयसि ॥ ॥ १३ ॥

यदंग तविषीयस इंद्र प्रराजसि क्षितीः । महौ अपार ओजसा ॥ २६ ॥

यत् । अंग । तविषीऽयसे । इंद्र । प्रऽराजसि । क्षितीः । महान् । अपारः । ओजसः ॥ २६ ॥

अथैतन्मिमुक्षीवरणे । हे इंद्र यद्यस्त्वं तविषीयसे । तविषीति वलनाम । वलमिवाचरसि । हस्त्यश्वर-  
घादिकं वलं यथा सर्वं शत्रुघातं मनस्वि तद्वत्त्वमसहाय एव सन् सर्वमेव शत्रुघातं मारयसीत्यर्थः । यच्च त्वं  
चितीः । मनुष्यनामैतत् । मनुष्यान् प्रराजसि प्रकर्षणेऽपि । राजतिरैश्वर्यकर्मा ॥ अस्यापि यदुत्तयोगात्त  
विघातः ॥ स इंद्र योजसा बलेन महान् सर्वेभ्योऽधिकः अत एवापारः पाररहितः । केनाप्यवसानं प्रापयि-  
तुमशक्य इत्यर्थः ॥

तं त्वा हविष्मतीर्विश उषं ब्रुवत ऊतये । उरुजयसमिन्दुभिः ॥२७॥

तं । त्वा । हविष्मतीः । विशः । उषं । ब्रुवते । ऊतये । उरुऽजयसं । इन्दुऽभिः ॥२७॥

हे इंद्र तं पूर्वोक्तगुणसुखसयसं विस्तीर्णव्यापिनं त्वां हविष्मतीर्हविर्मिषरूपरोडाशादिमिर्युक्ता विशः प्रजा  
उषं ब्रुवते । उषस्य सुवन्ति । किमर्थं । इन्दुभिः सोमेभ्यश्च तर्पणाय । यद्वा । इन्दुभिः सोमेभ्यश्चयसं विस्तीर्णजव-  
मृतये रचणाय सुवन्ति ॥

उपहूरे गिरीणां संगथे च नदीनां । धिया विप्रो अजायत ॥२८॥

उपऽहूरे । गिरीणां । संऽगथे । च । नदीनां । धिया । विप्रः । अजायत ॥२८॥

गिरीणां पर्वतानामुपहूरे उपहृत्ये प्राति नदीनां सरितां संगथे संगमने च इंद्रविधे देशे क्रियमाणया  
धिया यागक्रियया सुत्या वा विप्रो मेधावीन्द्रोऽजायत । प्रादुर्भवति । अतो वयमपि तादृशे देशे यजामः  
सुतो वेति भाषः ॥ गिरीणामित्यत्र नामन्यतरस्यामिति नाम उदात्तत्वं ॥

अतः समुद्रमुद्भतश्चिकित्वाँ अव पश्यति । यतो विपान एजन्ति ॥२९॥

अतः । समुद्रं । उत्ऽवतः । चिकित्वाँ । अव । पश्यति । यतः । विपानः । एजन्ति ॥२९॥

यतो यस्मिन्बुक्तौ विपानो व्याप्नुवन् विशिष्टपाणयुक्तौ वेद्र एवति चेष्टते उद्भत उद्भतात् ॥ उपसर्गा-  
च्छंदसि धात्वर्थ इति वतिः ॥ अतोऽस्माद्युक्तौकाच्चिकित्वाज्ञानं स इंद्रः समुद्रं समुदगशीलं यजमानेर्दी-  
यमानं सोममव पश्यति । अवाशुषः सन्नीषते । यद्वा । सूर्यात्मनेन्द्रः सूयते । यस्मिन्नभसि विपानो व्याप्नुवन्  
सूर्यात्मिन्द्र एवति वर्तते चिकित्वाज्ञानं विद्वान्वा स इंद्र उद्भत उद्भतादतोऽस्मादंतरिषात्समुद्रं । उपसर्गण-  
मेतत् । समुद्रोपसर्गितं सर्वं जगदव पश्यति । अवाशुषं प्रवृत्तेः किरणैः प्रकाशयति ॥

आदिप्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरं । परो यदिध्यते दिवा ॥३०॥

आत् । इत् । प्रत्नस्य । रेतसः । ज्योतिः । पश्यन्ति । वासरं । परः । यत् । इध्यते । दिवा ॥३०॥

परो दिवा दिवः परस्माद्युक्तौकस्योपरि यद्यदायमिन्द्रः सूर्यात्मनेध्यते दीप्यते आदिदनंतरमेव प्रत्नस्य  
चिरंतनस्य रेतसो गंतुः ॥ री गतिरेषणयोः । अस्मात् सूर्योभ्यां तुङ् । उ० ४. २०१. । इत्यमुं तुङागमस्य ॥ यद्वा ।  
रेत इत्युदकनाम । रेतस्विन उदकवतः । सामर्थ्यात्मत्वर्थो लक्ष्यते । इंद्रश्चिन्द्रस्य सूर्यात्मनो वासरं निवासकं  
वासरस्य निवासस्य हेतुभूतं वा ज्योतिर्द्योतमानं तेजः पश्यन्ति सर्वे जनाः । यद्वा । वासरमित्यन्तसंयोगे  
द्वितीया । कृत्स्नमहर्दद्यप्रभृत्वासासनं यावज्ज्योतिष्पश्यन्तीत्यर्थः ॥ इत्युसोः सामर्थ्य इति विसर्जनीयस्य  
वत् ॥ ॥१४॥

कणास इंद्र ते मतिं विश्वे वर्धति पौंस्यं । उतो श्विष्ट वृष्यं ॥३१॥

कणासः । इंद्र । ते । मतिं । विश्वे । वर्धति । पौंस्यं । उतो इति । श्विष्ट । वृष्यं ॥३१॥

हे इंद्र ते त्वदीयां मतिं बुद्धिं पौंस्यं । वलनामैतत् । वसुं च विश्वे सर्वे कणासः कणाः स्तोतारः



कल्लगोषा वर्धयो वर्धति । वर्धयंति ॥ इन्द्रमुमययेति श्रप आर्धधातुकात्वात्तेरनिटोति तिलोपः ॥ उतो अपि च हे शविष्ठ शवस्वित्तम वल्लपत्तम ॥ विव्यतोर्नुक् । टेरिति टिलोपः ॥ ईदृशेन्द्र वृष्णं त्वदीयं वीर्यं वल्लकर्म च कल्लासो वर्धयंतिव ॥

इमां मे इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव । उत प्र वर्धया मतिं ॥ ३२ ॥

इमां । मे । इन्द्र । सुऽस्तुतिं । जुषस्व । प्र । सु । मां । अ॒व । उ॒त । प्र । वर्ध॒य । म॒तिं ॥ ३२ ॥

हे इन्द्र इमां पुरोवर्तिनीं मे मदीयां सुष्टुतिं शोभनां सुतिं जुषस्व । सेवस्व । सेवित्वा च सोमं मां सु शोभनं प्राव । प्रकर्षेण रव । उतापि च मतिमसादीयां बुद्धिं प्र वर्धय । प्रवृद्धां कुरु । यथा बहुवर्धद्भिनी भवति तथा कुर्वित्वर्थः ॥

उत ब्रह्मण्या वयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः । विप्रा अतस्म जीवसे ॥ ३३ ॥

उ॒त । ब्र॒ह्म॒ण्या । व॒यं । तु॒भ्यं । प्र॒वृ॒द्ध । व॒ज्रि॒वः । वि॒प्राः । अ॒त॒स्म । जी॒व॒से ॥ ३३ ॥

उतापि च हे प्रवृद्ध सुतिभिः प्रकृष्टां बुद्धिं प्राप्त हे वज्रिवो वल्लवसिन्द्र ॥ एको मत्वर्षीयोऽनुवादः । यदा । यकोऽस्माकीति वज्रो हस्तः । तद्वा । इन्द्रसीर इति मतुपो वल्लं । मतुवसो हरिति मकारश्च वल्लं ॥ ईदृशेन्द्र तुभ्यं त्वदर्थं विप्रा मेधाविनो ब्रह्मणा ब्रह्मणि सोमाणि हविर्ब्रह्मण्यन्ताणि वा ॥ सुपां सुसुतिं सुपो यावादेशः ॥ जीवसे जीवगार्थमतस्तस्म । अकार्ष्यं ॥ तच्च स्वचू तनूकरणे । कश्चिच्छादसः शपो नृक् ॥

अभि कल्वा अनूषतापो न प्रवता यतीः । इन्द्रं वनन्वती मतिः ॥ ३४ ॥

अ॒भि । क॒ल्वाः । अ॒नू॒ष॒ता॒पो । न । प्र॒व॒ता । य॒तीः । इ॒न्द्रं । व॒न॒न्व॒ती । म॒तिः ॥ ३४ ॥

कल्वाः कल्लगोषा अषयोऽभ्यनुषत । इन्द्रमभिपुवंति ॥ यू सुती । कुटमदिः ॥ प्रवता प्रवशीन मावैष्य यतीर्गच्छन् आपो नाप इव मतिर्मननीया कल्वाः क्रियमाणा सुतिः सुत्वमिन्द्र वनन्वती स्वयमेव संमज्जन्वती भवति ॥

इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिंधवः । अनुत्तमन्युमजरं ॥ ३५ ॥

इ॒न्द्रं । उ॒क्थ॒ानि । व॒वृ॒धुः । स॒मु॒द्रं । इ॒व । सि॒न्ध॒वः । अ॒नु॒त्त॒म॒न्यु॒म॒ज॒रं ॥ ३५ ॥

उक्थानि शस्त्राण्यस्त्राणिः शस्त्रमाणागीन्द्रं ववृधुः । वर्धयंति । सिंधवः खंदनशीला नवः समुद्रमिव समुद्रं जलधिं यथा वर्धयंति तद्वत् । वीवृशमिन्द्रं । अनुत्तमन्युं । अनुत्तोऽप्रेरितः परिरनभिभूतो मन्युः औधो यस्य तावृशं ॥ नुदविदोदधेत्वादिना । पा० ८. २. ५६. । विवक्षितस्त्राणिष्ठानत्वाभावः ॥ अजरं जरारहितं ॥ वज्रवीही मजो जरमरमिचमृता इत्युत्तरपदाशुदात्तत्वं ॥ ॥ १५ ॥

आ नो याहि परावतो हरिभ्यां हर्यताभ्यां । इममिन्द्र सुतं पिब ॥ ३६ ॥

आ । नः । या॒हि । प॒रा॒व॒तः । ह॒रि॒भ्यां । ह॒र्य॒ता॒भ्यां । इ॒मं । इ॒न्द्र । सु॒तं । पि॒ब ॥ ३६ ॥

हे इन्द्र परावतः परागतादूरे वर्तमानाद्युलोकाद्यर्थताभ्यां पांताभ्यां हरिभ्यामस्त्राभ्यां नोऽस्माना याहि । आगच्छ । आगत्य वेममसादीयं सुतमभिपुतं सोमं पिब ॥

त्वामिदृचहंतम जनासो वृक्तवर्हिषः । हवन्ते वाजसातये ॥ ३७ ॥

त्वां । इ॒त् । वृ॒क्त॒व॒ह॒न्त॒म॒ । ज॒ना॒सः । वृ॒क्त॒व॒र्हि॒षः । ह॒व॒न्ते । वा॒ज॒सा॒त॒ये ॥ ३७ ॥

हे वृचहंतमातिशयेन वृषाणामावृण्वतां शूरां हंतः त्वामित्वामिव वृक्तवर्हिषो वृक्तं यागार्थं क्षिप्तं  
वर्हिषेयां तथाविधोक्ताः प्रवृत्तयज्ञा जनासो जना अस्त्रिग्विभवा ह्वयते । आह्वयन्ति ॥ द्वेजः अपि वज्रं  
ह्वेदसीति संसारणं ॥ किमर्थं । वाजसातये वाजसान्नस्य वज्रस्य वा सातये नामाय । यद्वा । संयामना-  
मितत् । वाजस्य सातिर्यस्मिन् संयामे तच्च साहाय्याय त्वामाह्वयन्तीत्यर्थः ॥

अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं न वर्त्येतंशं । अनु सुवानास इंदवः ॥ ३८ ॥

अनु। त्वा। रोदसी इति। उभे इति। चक्रं। न। वर्ति। एतंशं। अनु। सुवानासः। इंदवः॥ ३८॥

हे इंद्र त्वा त्वाभ्युमे रोदसी यावापुथिव्यावनुवर्तेति । त्वदधीनि मयत् इत्यर्थः । तच्च वृष्टांतः । चक्रं य यथा  
रथचक्रमेतत् । अश्ननामितत् । पुरो गच्छन्तमश्नन्नु वर्ति अनुवर्तेति तद्वत् । अपि च सुवानास अस्त्रिग्विभरमिषू-  
यमाणा इंदवः सोमाश्च त्वामनुवर्तेति ॥

मंदस्वा सु स्वर्णर उतेद्र शर्यणावति । मत्स्वा विवस्वतो मती ॥ ३९ ॥

मंदस्व । सु । स्वःऽनरे । उत । इंद्र । शर्यणाऽवति । मत्स्व । विवस्वतः । मती ॥ ३९ ॥

उतापि च हे इंद्र शर्यणावति । शर्यणा नाम कुशचेववर्तिनो देशाः । तेषामदूरमयं सरः शर्यणावत् ॥  
मधादिभ्यश्चेति स्वार्थिको मतुप । मती वज्रच इति दीर्घः । संज्ञायामिति वत्सं ॥ तस्मिन् सरसि विद्यमाने  
स्वर्णरे सर्वैर्ऋत्विग्भिर्नैतव्ये यज्ञे सु सुष्ठु मंदस्व । माय । नृप्तो भव । अपि च विवस्वतः परित्तरणवतो  
यजमानस्य मती मत्वा च मत्स्व । मदं प्राप्नुहि ॥ मतिशब्दात्तृतीयायाः सुपां सुगुणिति पूर्वसवर्गोदीर्घः ॥

वावृधान उप ह्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत् । वृचहा सोमपातमः ॥ ४० ॥

ववृधानः । उप । ह्यवि । वृषा । वज्री । अरोरवीत् । वृचऽहा । सोमऽपातमः ॥ ४० ॥

वावृधानो वृद्धो वज्री वज्रवान् अत एव वृचहा वृचस्य मेघस्वामुरस्य वा हंता सोमपातमोऽतिशयेन  
सोमस्य पातेन्द्रो वृषोदकानां वर्धिता ह्यवि बुलोकैऽन्तरिक्ष उप समीपे यथास्त्राभिः श्रूयते तथारोरवीत् । मृशं  
क्षणयितुलचरणं शब्दमकरोत् । मेघेन वज्रहस्तेनेदृशं शब्दमचीकरदित्यर्थः ॥ ॥ १६ ॥

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा । इंद्र चोष्कूयसे वसु ॥ ४१ ॥

ऋषिः । हि । पूर्वऽजाः । असि । एकः । ईशानः । ओजसा । इंद्र । चोष्कूयसे । वसु ॥ ४१ ॥

हे इंद्र पूर्वजाः सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वं ज्ञात उत्पन्नः । यद्वा । यज्ञेषु प्रथममेव प्राकुरुतः । त्वमृषिर्हि द्रष्टा  
सर्वज्ञः खल्वसि । भवसि । अपि च सर्वेषु देवेषु मध्य एको मुख्य ओजसा बलेनेशान ईशरो भवसि । यद्वा ।  
एकोऽसहाय एव सन्नो जसात्कीयेनैव बलेनेशानः सर्वस्य जगत ईशरो भवसि । स त्वं वसु धनं चोष्कूयसे ।  
पुनःपुनः सोतृभ्यो ददासि ॥ स्तुत्वा आप्रवण इह दानार्थः । तथा चोक्तं । चोष्कूयमाय इंद्र सूरि वामं  
दददिंद्र वज्र वननीयं । नि० ६. २२. इति ॥

अस्माकं त्वा सुता उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः । शतं वहंतु हरयः ॥ ४२ ॥

अस्माकं । त्वा । सुतान् । उप । वीतऽपृष्ठाः । अभि । प्रयः । शतं । वहंतु । हरयः ॥ ४२ ॥

हे इंद्र अस्माकमसादीयान् सोमानुपलक्ष्य प्रयः । अन्ननदित् । धानाकरंमादिहविर्बलमन्नं चामिषस्य  
वीतपृष्ठाः प्रशस्तोपरिमाणाः शतं शतसंख्याका हरयोऽश्वास्त्वां वहंतु । प्रापयंतु ॥

इमां सु पूर्या धियं मधोर्धृतस्य पिप्युषीं । कृता उक्थेन वावृधुः ॥ ४३ ॥

इमां । सु । पूर्या । धियं । मधोः । धृतस्य । पिप्युषीं । कृताः । उक्थेन । ववृधुः ॥ ४३ ॥



इमामिदानीं क्रियमाणां सु सुष्ठु पूर्वा पूर्वेः पिबादिभिः कृतां मधोर्मधुरस्य घृतस्य चरणशीलस्योदकस्य  
पिप्पुषीं वर्धयिषीं । यद्वा । मधुरेण घृतेनाज्येन प्रवृद्धां धियं चागक्रियां कयलाः कयलगोत्रा ऋषय उक्थेन  
शस्त्रेण वावृधुः । इंद्रार्थं वर्धयंति । उक्थैर्हि धानो वर्धते । अत्यपिष्टोमादिषुत्तरासु संस्नासु शस्त्रवृत्तेर्दृष्टत्वात् ।  
यद्वा । पूर्वा चिरंतनीमिमामिंद्रस्य धियमनुग्रहवृत्तिं चरणशीलेन मधुरेण सोमेन पिप्पुषीं वर्धनीयासुक्थेन  
सोत्रेण वावृधुः । वर्धयंति ॥

इंद्रमिद्विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यैः । इंद्रं सन्निष्कृतये ॥ ४४ ॥

इंद्रं । इत् । विऽमहीनां । मेधे । वृणीत । मर्त्यैः । इंद्रं । सन्निष्कृतये । कृतये ॥ ४४ ॥

विमहीनां विशेषेण महतां देवानां मध्य इंद्रमिद्विमेव मेधे यज्ञे मर्त्यो मनुष्यो होता वृणीत । सुतिभिः  
संमजते । तथा सन्निष्कर्षणकामस्य सोतोत्थे रथयार्थेद्रमेव वृणीते । सुत्या संमजते ।

अर्वोचं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥ ४५ ॥

अर्वोचं । त्वा । पुरुऽस्तुत । प्रियमेधऽस्तुता । हरी इति । सोमऽपेयाय । वक्षतः ॥ ४५ ॥

हे पुरुष्टुत वज्रभिः सुतेन्द्र प्रियमेधस्तुता प्रियमेधेः प्रिययज्ञैर्ष्वधिभिः सुतो ॥ तृतीया कर्मणीति पूर्वपद-  
प्रकृतिस्वरत्वं । सुपां सुसुगित्याकारः ॥ ईदृशी हरी अक्षी सोमपेयाय सोमपानार्थं स्वामयीषमसदमिसुखं  
वक्षतः । वहतां ॥

शतमहं तिरिदिरे सहस्रं पर्शोवा ददे । राधांसि याज्ञानां ॥ ४६ ॥

शतं । अहं । तिरिदिरे । सहस्रं । पर्शो । आ । ददे । राधांसि । याज्ञानां ॥ ४६ ॥

इदमादिकेन तुचेन तिरिदिरस्य राधो दानं क्षूयते । पर्शो परमुनासः पुत्रे ॥ उपचारात्स्वमेव जनकशब्दः ॥  
तिरिदिर एतत्संज्ञे राजनि याज्ञानां । यदुरिति मनुष्यनाम । यद्व एव याज्ञाः ॥ स्वार्थिकशब्दितः ॥ तेषां  
मध्येऽहं शतं शतसंख्याकानि सहस्रं सहस्रसंख्याकानि च राधांसि भगान्वा ददे । स्वीकरोमि । यद्वा ।  
याज्ञानां यदुक्त्वानामन्येषां राधां स्वभूतानि राधांसि वषादपहृतानि तिरिदिरे वर्तमानान्वहं प्राप्नोमि ॥

चीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनां । ददुष्पजाय साधे ॥ ४७ ॥

चीणि । शतानि । अर्वतां । सहस्रा । दश । गोनां । ददुः । पजाय । साधे ॥ ४७ ॥

पूर्वस्वामृचि स्वसंप्रदानकं दानमुक्तं । अधुनान्येभ्योऽप्युभयस्तिरिदिरो वज्र दानं दत्तवानित्याह । अर्वतां  
गंतृणामश्वाणां चीणि शतानि गोनां गवां दश दशगुणितानि सहस्रा सहस्राणि च पञ्चाय सुतोनां प्रार्थनाय  
साध एतत्संप्रायर्षये । यद्वा । साधेः "म सोचं । तद्वते । पञ्चाय पञ्चकुलजाताय कवीवते ददुः । तिरिदिराख्या  
राजानो दत्तवन्तः ॥

उदानदकुहो दिवमुष्ट्राञ्चतुर्युजो ददत् । अर्वसा याज्ञं जनं ॥ ४८ ॥

उत् । आनद । कुहः । दिवं । उष्ट्रान् । चतुऽयुजः । ददत् । अर्वसा । याज्ञं । जनं ॥ ४८ ॥

अयं राजा कुह उच्छ्रितः सञ्जवसा कीर्त्या दिवं स्वर्गमुदानद । उत्कृष्टतरं व्याप्नोत् । किं जुर्वन् ।  
चतुर्युजश्चतुर्भिः स्वर्गभरिषुक्तानुष्ठानं ददत् प्रयच्छन् । तथा याज्ञं जनं च दासत्वेन प्रयच्छन् ॥ १७ ॥

प्र यद्व इति षट्त्रिंशद्वच द्वितीयं सूक्तं कयलगोत्रस्य पुनर्वत्सस्वार्थं मादत्तं गायत्रं । तथा चानुक्रांतं । प्र यद्वः  
षट्त्रिंशत्पुनर्वत्सो मादत्तमिति ॥ ब्रूहे दशरात्रे प्रथमे कंदोम आपिमादत्तशस्त्र इदं सूक्तं मादत्तनिविहानं  
सूचितं च । प्र यद्वस्त्रिंशुं दूतं च इत्यापिमादत्तं । आ० ८. ९. इति ॥

प्र यज्ञस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत् । वि पर्वतेषु राजथ ॥ १ ॥

प्र । यत् । वः । चिऽस्तुभं । इषं । मरुतः । विप्रः । अक्षरत् । वि । पर्वतेषु । राजथ ॥ १ ॥

हे मरुतो मितराविप्रो मितरोचिनो वा एतत्संज्ञा माध्यमका देवगणाः ॥ पादादित्वाद्पादादाविति पयुर्दासादाष्टमिकनिघाताभावे षाष्ठिकमामं चिताबुदात्तत्वं ॥ वो युष्मभं विप्रो मेधावी सोता चिष्टुभं चिष्टु सवनेषु प्रशक्षां चिभिर्देवैः सुतां वा यद्वा चिष्टुष्वंदसा संवज्ञां माध्यंदिनसवनिकीमिषं सोमलक्षणमन्नं यद्वा प्राचरत् प्रासिंचत् अमी प्राचिपत् । यद्वा । चिष्टुभं चिष्टुष्वंदस्त्वं सोचमिषं सोमं चेति योज्यं । तदानीं यूयं पर्वतेषु पर्ववत्सु शिलोच्चयेषु वि राजथ । तेन सोमेन लब्धवलाः संतो विशेषेण दीप्ता मवथ ॥

यदंग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वं । नि पर्वता अहासत ॥ २ ॥

यत् । अंग । तविषीऽयवः । यामं । शुभ्राः । अचिध्वं । नि । पर्वताः । अहासत ॥ २ ॥

हे तविषीयवः । तविषीति बलनाम । तां कामयमानाः । यद्वा । बलयुक्ताः । हे शुभ्राः शोममाणा अंग हे मरुतः यामं । याति गच्छतीति यामो रथः । तं यद्वाचिध्वं समचिनुध्वं अश्वादिभिः साधनैः संचितं संक्षिप्तं कुश्च गमनार्थं तदानीं पर्वता गिरयोऽपि अहासत । नितरां गच्छति । युष्मद्रथवेगाग्नीता संतः स्वस्नानात्मचरंति ॥ ओहाह गतो । छांदसो जुह ॥

उदीरयंत वायुभिर्वाश्वासः पृश्निमातरः । धुक्षंत पिपुषीमिषं ॥ ३ ॥

उत् । ईरयंत । वायुऽभिः । वाश्वासः । पृश्निऽमातरः । धुक्षंत । पिपुषीं । इषं ॥ ३ ॥

वाश्वासो वाशनशीलाः शब्दकारिणः पृश्निमातरः । पृश्निर्माध्यमिका वाक् । सा माता जननी येषां ते तथोक्ताः ॥ अतस्त्वंदसीति कपः प्रतिषेधः ॥ ईदृशा मरुतो वायुभिः । वांति गच्छंतीति वायवः पृथ्व्यः । पृथ्वीमिर्वाहनभूताभिः स्वाययवभूतैर्वायुभिरेव उदीरयंत । उन्नमयंति मेघादिकं । तथा पिपुषीं वर्धयिषी-  
मिषमन्नं च सोतृभ्यो धुक्षंत । कुक्षंति ॥

वर्पेति मरुतो मिहं प्र वेपयंति पर्वतान् । यद्यामं यांति वायुभिः ॥ ४ ॥

वर्पेति । मरुतः । मिहं । प्र । वेपयंति । पर्वतान् । यत् । यामं । यांति । वायुऽभिः ॥ ४ ॥

मरुत एतत्संज्ञा देवा मिहं वृष्टिं वर्पति । विकिरंति । विक्षिपंति । तथा पर्वतान् गिरीन् प्र वेपयंति । प्रकंपयंति । अथमर्थः कदेति चेत् । यद्वा वायुभिः सार्धं यामं रथं गमनं वा यांति प्राप्नुवन्ति तदानीमित्यर्थः ॥

नि यद्यामाय वो गिरिर्नि सिंधवो विधर्मणे । महे शुष्माय येमिरे ॥ ५ ॥

नि । यत् । यामाय । वः । गिरिः । नि । सिंधवः । विऽधर्मणे । महे । शुष्माय । येमिरे ॥ ५ ॥

हे मरुतः वो युष्माकं यामाय रथाय गमनाय वा गिरिः ॥ सुपां सुलुगिति जसः सुः ॥ गिरयः पर्वता यद्वा नि येमिरे स्वयमेव नियम्यते तथा सिंधवः स्तंदनशीलाः समुद्रा नद्यो वा विधर्मणे विधरणाय महे मरुते शुष्माय शोषकाय शुष्मदीयाय बलाय नि येमिरे स्वयमेव नियम्यते । गिरयो नद्यश्च युष्मद्यामाह-  
लाश्च भौल्लिकवैकल्यानि नियता वर्तन्त इत्यर्थः । तदानीं वर्पति मरुतो मिहमिति शेषः ॥ यमेः कर्मकर्तारि-  
लिट् । यद्वृत्तान्नित्यमिति निघातप्रतिषेधः ॥ ॥ १८ ॥

युष्माँ उ नक्तमूतये युष्मान्दिवा हवामहे । युष्मान्प्रयत्यध्वरे ॥ ६ ॥

युष्मान् । उं इति । नक्तं । ऊतये । युष्मान् । दिवा । हवामहे । युष्मान् । प्रऽयति । अध्वरे ॥ ६ ॥



हे मरुतः पुष्पां च युष्मानेव नक्तं रात्रावृतये रचयार्थं हवामहे । दिवाहि च युष्मानेवाह्वयामहे ।  
अधरे । धरो रात्रयस्मिन्नित्यधरो यागः ॥ वधुभ्यामित्युत्तरपदांतोदात्तत्वं ॥ यागे प्रयति प्रवच्छति  
प्रवर्तमाने सति रचयार्थं युष्मानेवाह्वयामहे ॥

उदु ते अरुणस्संवश्चिचा यामेभिरीरते । वाश्रा अधि णुना दिवः ॥७॥

उत् । ऊं इति । ते । अरुणऽस्संवः । चिचाः । यामेभिः । ईरते । वाश्रा । अधि ।  
णुना । दिवः ॥७॥

ते ते पूर्वोक्तगुणा अरुणस्सवोऽरुणवर्णरूपाश्चिचायायनीया आचर्यभूता वा वाश्राः शब्दकारिणः  
एवंभूता मरुतो यामेभिर्यामैर्यामैर्दिवोऽधि बुलोकस्योपरि ऋणा सानुणा समुच्छितप्रदेशेनोदीरते । उन्नच्छति ।  
च इति पूरणः ॥ पदादिषु मांस्युत्तूनामुपसंख्यानमिति सानुशब्दस्य ऋभावः ॥

कारोर्ध्वं संयत्स हविषः खजति रश्मिमित्तेषानुवाक्या । सूज्यते हि । खजति रश्मिमोजसा वहिष्ठेभि-  
र्विहरन्यासि तंतुं । आ० २. १३. १ इति ॥

सूजंति रश्मिमोजसा पंथां सूर्याय यातवे । ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥८॥

सूजंति । रश्मिं । ओजसा । पंथां । सूर्याय । यातवे । ते । भानुऽभिः । वि । तस्थिरे ॥८॥

तच्छब्दश्रुतिर्यच्छब्दाध्याहारः । ये मरुतः सूर्याय सूर्यरा ॥ यज्यर्थे चतुर्थी यज्येति चतुर्थी ॥ यातवे गंतुं  
रश्मिं व्याप्तं ॥ अग्ने रश् चेत्यग्नेतिरौणादिको मिश्रत्ययो रश्दिशश्च ॥ यदा । रश्मिमित्तेषोभिर्युक्तं । पंथां  
पंथानमोजसा बलेन खजति उत्पादयति । वृत्तादिमिरावृतं सूर्यपथमावरकस्य वृत्तादेरपनयनेन जनय-  
तीत्यर्थः । ते मरुतो भानुमित्तेषोभिर्वि तस्थिरे । कृत्स्नं जगद्वाप्यावतिष्ठति ॥

इमां मे मरुतो गिरमिमं स्तोमंभुक्षणः । इमं मे वनता हव ॥९॥

इमां । मे । मरुतः । गिरं । इमं । स्तोमं । भुक्षणः । इमं । मे । वनत । हव ॥९॥

हे मरुतः इमां पुरोवर्तिनीं मे मम गिरं शस्त्ररूपां वाचं वनत । संभवत । हे भुक्षणः । महन्नामेतत् ।  
महांतः ॥ जसीतोऽत्सर्वनामस्थान इत्यकारः । वा यपूर्वस्य निगम इति दीर्घाभावः ॥ ते यूयमिमं स्तोमं स्तोचं  
प्रगीतमंचसाध्यं मे ममेमं पुरोवर्तिनं हवमाह्वानरूपं च याजुषं मंचं वनत । संभवत । सेवध्वं ॥

चीणि सरांसि पृथ्व्यो दुदुहे वज्रिणे मधु । उत्सं कवंधमुद्रिणं ॥१०॥

चीणि । सरांसि । पृथ्व्यः । दुदुहे । वज्रिणे । मधु । उत्सं । कवंधं । उद्रिणं ॥१०॥

पृथ्व्यो मरुत्तानुभूता गावो वज्रिणे वज्रपत इंद्राय ॥ तादर्थ्ये चतुर्थी ॥ इन्द्रार्थं मधु मधुरं चीरादिक-  
माश्रयणद्रव्यं चीणि सरांसि सर इव सोमैः पूरितानि चीणि सवभानि निष्वपि सवनेषु अयणार्थं दुदुहे ।  
दुदुहरे । यदा । मधु मधुरं सोमं वज्रिणे वज्रयुक्ताय मरुत्तनाय चीणि सरांसि द्रोणकलशाधवणीयपूतमृक्ष-  
णानि प्रति पृथ्व्यो माधमिका वाचो दुदुहे । वृद्धिद्वारा दुहति । यदा । पृथ्व्य इति मातृवाचिना शब्देन  
पुत्रा उच्यते । पृथ्विमातरो मरुत इन्द्रार्थं चीणि सरांसि द्रोणकलशादीनि मधु मधुना सोमेन पूरयितुमुत्स-  
मुत्सवणशीलं कवंधमुद्रकमुद्रिणमुद्रकवंतं मेधं दुदुहे । दुहति ॥ दुहेऽन्धांसो सिद्धे । इरयो र इति रेभावः ।  
पादादिलादनिघातः ॥ ॥१०॥

मरुतो यज्ञं वो दिवः सुस्त्रायंतो हवामहे । आ तू न उप गंतन ॥११॥

मरुतः । यत् । हु । वः । दिवः । सुस्त्रऽयंतः । हवामहे । आ । तू । नः । उप । गंतन ॥११॥

हे मरुतः यद्य यदा खलु वो शुष्मान् सुस्नायंतः सुम्नं सुखमात्मन इच्छंतो ययं दिवो बुद्धीकाश्वामहे  
कुतिमिराह्वयामहे आ स्वन्तरेमेव शीघ्रं नोऽस्मानुप गंतन । उपगच्छत ॥ गमेर्लोडि तप्तप्रपन्नयनास्येति  
तनवादेशः ॥

यूयं हि हा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्ष्णो दमे । उत प्रचेतसो मदे ॥ १२ ॥

यूयं । हि । स्थ । सुदानयः । रुद्राः । ऋभुक्ष्णः । दमे । उत । प्रचेतसः । मदे ॥ १२ ॥

उतापि च हे सुदानवः शोभनदाना हे रुद्रा रुद्रपुत्राः ॥ पादादिस्वादानमंचितनिष्ठातामावः ॥ हे  
ऋभुक्ष्णो महान्त उदितेवस्का वा ईदृशा हे मरुतः यूयं हि खलु दमे यज्ञगृहे मदे मदकरे सोमे पीति सति  
प्रचेतसः स्ख । प्रछष्टज्ञाना भवद्य ॥

आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसं । इयर्ता मरुतो दिवः ॥ १३ ॥

आ । नः । रयिं । मदच्युतं । पुरुक्षुं । विश्वधायसं । इयर्ता । मरुतः । दिवः ॥ १३ ॥

हे मरुतः नोऽस्माकं रयिं धनं दिवो बुद्धीकादेयर्ता । आगमयत ॥ ऋ गतावित्स्वादान्तर्मावितस्पर्धाक्नु-  
होत्वादिकाहोडि तस्य तप्तप्रपन्नेति तवादेशः । अनुदाने चेत्यभ्यस्त्राबुदान्तत्वं ॥ कीदृशं रयिं । मदच्युतं मदं  
अवन्तं यद्वा शात्रवस्य मदस्य आवयितारं पुरुक्षुं वज्रनिवासं वज्रभिः स्तूयमानं वा विश्वधायसं विश्वेषां  
सर्वेषामस्त्रदीयानां धारणाय पोषणाय पद्याप्तं ॥

अधीव यन्निरीणां यामं शुभा अचिध्वं । सुवानैर्मदध्व इंदुभिः ॥ १४ ॥

अधिऽइव । यत् । गिरीणां । यामं । शुभाः । अचिध्वं । सुवानैः । मदध्वे । इंदुभिः ॥ १४ ॥

हे शुभाः शोभमाना मरुतः गिरीणां पर्वतानामधीवोपरीव यद्यदा यामं युष्मदीयं रथमचिध्वं गमन-  
साधनैरश्वादिभिर्हविर्चितं कुरुष्व तदानीं सुवानैरभिपूयमाणैरिंदुभिः सोमैर्मदध्वे । मादयध्वे ॥

एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । अदाभ्यस्य मन्मभिः ॥ १५ ॥

एतावतः । चित् । एषां । सुम्नं । भिक्षेत । मर्त्यः । अदाभ्यस्य । मन्मभिः ॥ १५ ॥

मर्त्यो मनुष्यः स्त्रोता मन्त्रभिः स्त्रोचैः सुम्नं सुम्नं धनं तेषां मरुतां स्वभूतं भिक्षेत । याचेत । इदानीं  
गणामिप्रायेणैकवदाह । एतावतश्चिद्वत्परिमाणस्य चादाभ्यस्य केनापि हिंसितुमशक्यस्य मरुतण्यस्य सुम्नं  
भिक्षेत ॥ एतच्छब्दात् यत्तदेतेभ्य इति परिमाणेऽर्थे वनुप् । आ सर्वनाम्न इत्यात्वं ॥ ॥ २० ॥

ये द्रप्सा इव रोदसी धमंत्यनु वृष्टिभिः । उत्सं दुहंतो अक्षितं ॥ १६ ॥

ये । द्रप्साः । इव । रोदसी इति । धमन्ति । अनु । वृष्टिभिः । उत्सं । दुहंतः । अक्षितं ॥ १६ ॥

ये मरुतो द्रप्सा इवोदाविंदव इव रोदसी आवापृष्टिर्वा वृष्टिभिर्वर्षणैरनु धमन्ति अनुगच्छन्ति साकल्येण  
आप्रवन्ति । यद्वा । अनुध्माते उच्छ्रमितावयवे कुर्वन्ति । किं कुर्वन्तः । अक्षितमचीणमुदकमुत्सं मेघं दुहन्तः पूरयन्तं  
मेघादवाङ्मुखं पातयन्तः ॥ दुहेर्लक्षणद्वेत्योः । पा० ३. २. १०६ । इति हेतोः शत्रुप्रत्ययः ॥ यत एवं दुहन्ति ततो  
रोदसी अनुधमन्तीत्यर्थः ॥

उदु स्वानेभिरीरत् उद्रथैरुदु वायुभिः । उत्स्तोमैः पृश्निमातरः ॥ १७ ॥

उत् । ऊं इति । स्वानेभिः । ईरते । उत् । रथैः । उत् । ऊं इति । वायुभिः । उत् ।

स्तोमैः । पृश्निमातरः ॥ १७ ॥



स्वानेभिः स्वानिः शब्देर्महत उदीरते । उन्नच्छति ॥ स्वान् शब्दे । स्वान् हसोर्वा । पा० ३. ३. ६२. । रत्नयो  
विकल्पितत्वात्पक्षे घञ् । कर्षात्स्वत इत्वंतोदात्तत्वं । वज्रत्वं छन्दसीति भिन्न ऐसमावः ॥ उ इति पुराणः । तथा  
रथे रथप्रमुखिर्वाहनेऽदीरते । पुत्रिमातरः --- ॥

येना॒व तुर्व॑शं॒ यदुं॑ येन॒ कर्ण॑ धन॒स्पृते॑ । रा॒ये सु तस्य॑ धीमहि ॥ १८ ॥

येन॑ । आ॒व । तुर्व॑शं । यदुं॑ । येन॑ । कर्ण॑ । धन॒स्पृते॑ । रा॒ये । सु । तस्य॑ । धीम॒हि ॥ १८ ॥

येनात्मीयेन रथसेन तुर्वशमेतत्संघं यदुमेतत्संघं च राजर्षिमाव यूयं रक्षितवन्तः स्त ॥ अवतेर्षिटि  
मध्यमवज्रवचने रूपमेतत् ॥ येन च धनस्पृतं धनकामं कण्ठमुधिं रक्षितवन्तः स्त तस्य युष्मदीयं रक्षणं राये  
अन्मर्थं सु धीमहि । शोभनं ध्यायाम ॥

इ॒मा उ॑ वः सु॒दानवो॑ घृ॒तं न पि॒षुषी॑रिषः । वर्ध॑न्का॒खस्य॑ मन्म॒भिः ॥ १९ ॥

इ॒माः । उं॑ इति॑ । वः । सु॒दान॒वः । घृ॒तं । न । पि॒षुषीः । इषः । वर्ध॑न् । का॒खस्य॑ ।  
मन्म॒भिः ॥ १९ ॥

हे सुदानवः शोभनदाना महतः घृतं न घृतमिव पिषुषीर्वर्धयिष्यः शरीरपाण्डित्यमूता इमा इदानीं  
प्रदीयमाना इमोऽन्नानि सोमलवणानि काण्डस्य कण्ठगोचस्य मम संबंधिमिमंस्मिन्निः क्षोचैः सार्धं वो  
युष्मान् वर्धन् वर्धयंतु ॥ वृधेर्धेताक्षेडि रूपमेतत् । उ इति पुराणः ॥

कं नूनं॑ सु॒दानवो॑ मद॒था वृ॒क्तव॑र्हिषः । ब्र॒ह्मा को वः॑ सप॒र्यति॑ ॥ २० ॥

कं । नूनं॑ । सु॒दान॒वः । मद॒थ । वृ॒क्त॒व॒र्हिषः । ब्र॒ह्मा । को । वः । स॒प॒र्यति॑ ॥ २० ॥

महदागमनस्य विलंबमसहमान आपरमया वितर्कयति । सुदानवः शोभनदाना हे वृक्तवर्हिषः । वृक्तं  
वृद्धं क्लिप्तं वर्हिषेणां यागाद । यद्वा । वर्हिरिति यज्ञनाम । वृक्तः प्रवृक्तो यज्ञो धेयां ते तथोक्ताः । हे ईदृशा  
महतः क्व कुच देशे नूनमिदानीं मदथ । माद्यथ ॥ मदी ह्ये । काण्डेन शप ॥ कथं ब्रह्मा ब्राह्मणः क्षोता वो  
युष्मान् सपर्यति । परिचरति । क्लिकारत्वं वज्रशः क्षुत्तरपि भवन्निरिदानीं नागम्यत इति न जानीमः ॥ ॥ २१ ॥

न॒हि ष॒ यद्वं॑ वः पु॒रा स्तोमे॑भिर्वृ॒क्तव॑र्हिषः । श॒र्धो॑ जृ॒तर॑य॒ जिन्व॑थ ॥ २१ ॥

न॒हि । स्म॒ यत् । ह॒ वः । पु॒रा । स्तोमे॑भिः । वृ॒क्त॒व॒र्हिषः । श॒र्धो॑ । जृ॒तर॑य॒ जिन्व॑थ ॥ २१ ॥

पूर्वथा वितर्क्येदानीं निश्चिनोति । हे वृक्तवर्हिषः प्रवृक्तयज्ञका महतः नहि ष । तन्न खलु संभवति । वो  
यूयं पुराक्षतः पूर्वमेव कृतैः स्तोमैरन्यदीर्यैः स्तोचैर्हृतस्त्रोदकस्य रत्नस्य यज्ञस्य वा संबंधिनः शर्धानात्मीयानि  
बलानि जिन्वथ प्रीणयथेति यद्व यन्खलु तन्न संभवत्येव । अतः प्रीणमागच्छतेत्यर्थः । यद्वा । वृक्तवर्हिष  
इत्युल्लिङ्गाम । हे ऋत्विजः वो युष्माकं संबंधिभिः स्तोमेभिः स्तोचैर्हृतस्य यज्ञस्य संबंधिनो यागाहोऽर्धोऽर्धो  
महत्तानि बलानि पुरान्येभ्यः स्तोतृभ्यः पूर्वं यद्यस्मात्कारणाज्जिन्वथ यूयं प्रीणयथ । निविः प्रीणनार्थः ॥  
तस्मादन्यदीर्यैः स्तोचैर्नहि ष न खलु ते महतो वशीभवन्तीत्यर्थः ॥

प्रवर्ग्ये महावीरे पयसोरासिक्तयोः सतोः ममु त्वे महतीरप इत्येवानुवक्तव्या । सूच्यते हि । आसिक्तयोः  
ममु त्वे महतीरप इति महावीरमादायोः षत्सु । आ० ५. ७. । इति ॥

समु॒ त्य म॑ह॒तीर॒पः सं॑ क्षो॒णी समु॑ सूर्य॑ । सं॒ वज्रं॑ पर्व॒शो द॑धुः ॥ २२ ॥

सं । उं॑ इति॑ । त्ये । म॒ह॒तीः । अपः । सं । क्षो॒णी इति॑ । सं । उं॑ इति॑ । सूर्य॑ । सं । वज्रं॑ ।

प॒र्व॒शः । द॑धुः ॥ २२ ॥

स्ते ते पूर्वोक्तगुणा मरुतो महतीर्बह्वीरपो वृष्ट्युदकानि समु दधुः । संदधति । औषध्यादिभिः संयोजयन्ति । यदा । घर्मकाले सूर्यरश्मिमिराहता उपरि सम्यग्धारयन्ति ॥ बृहन्महतीरूपसंख्यानमिति महतः परस्व डीप उदात्तत्वं । ऊर्ध्वदिमित्यादिनाऽऽत्परः शस् उदात्तः ॥ तथा चोष्णी चोष्णी बावापृथिव्यौ च ते मरुतः सं दधुः । यथा स्ते स्ते स्थानेऽवतिष्ठेति तथा धारयन्ति । सूचात्मना वायुना सर्वे अगज्ञार्थेति । तथा च श्रूयते । वायुर्वे गोतम तत्सूचं वायुना वै गोतम सूचेणायं च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृश्यानि भवन्ति । वृ० उ० ३. ७. २. इति । तथा सूर्यं सर्वस्व प्रेरकमादित्यं चांतरिक्षे सं दधुः । सम्यग्धारयन्ति । उग्रशब्दः समुच्चये । ईदृशास्ते मरुतो वज्रमात्मीयमायुधं पर्वशः पर्वणि पर्वणि वृचस्व सर्वेष्ववयवसंबन्धिषु वृणनार्थं सं दधुः । समयूयुवन् ॥

वि वृचं पर्वशो ययुर्वि पर्वतां अराजिनः । चक्राणा वृष्णि पौंस्यं ॥ २३ ॥

वि । वृचं । पर्वऽशः । ययुः । वि । पर्वतान् । अराजिनः । चक्राणाः । वृष्णि । पौंस्यं ॥ २३ ॥

अराजिनो राज्ञा केनचित्स्वामिगानधिष्ठिताः । यदा । राज्ञा स्वाम्यस्व न विद्यत इत्यराजिन्द्रः । तबुक्ताः । वृष्णि वीर्यवतींस्त्र्यं बलं चक्राणाः कुर्वाणा मरुतो वृचमावरकमसुरं मेघं वा पर्वशः पर्वणि पर्वणि भेदेन वि ययुः । विशिष्टं वधमगमयन् । तथा पर्वतान् गिरींश्च विशिष्टं वधं प्रापयन् ॥

अनु चितस्य युध्यतः शुष्ममावचुत क्रतुं । अन्विद्रं वृचतूर्ये ॥ २४ ॥

अनु । चितस्य । युध्यतः । शुष्मं । आवन् । उत । क्रतुं । अनु । इन्द्रं । वृचऽतूर्ये ॥ २४ ॥

चितस्त्राप्त्यस्तीतत्संज्ञस्य युध्यतः शत्रून् संप्रहरतो राजर्षेः शुष्मं परेषां शीषकं बलं मरुतोऽन्वावन् । साहाय्यार्थमन्वगच्छन् । यदा । अनुगुणमरचन् । उतापि च क्रतुं तदीयं कर्म चारचन् । अपि च वृचतूर्यं वृचवधार्थं संयाम इन्द्रं चान्वावन् । अरचन् ॥

विद्युदस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षेन्हिरण्ययाः । शुभ्रा व्यंजत श्रिये ॥ २५ ॥

विद्युतऽहस्ताः । अभिऽद्यवः । शिप्राः । शीर्षेन् । हिरण्ययीः । शुभ्राः । वि ।

अंजत । श्रिये ॥ २५ ॥

विद्युदस्ता विद्योतमानायुधनाहवीऽभिव्यवीऽभिनतदीप्तयः शुभ्राः शोभमाना मरुतः शीर्षेऽङ्गीर्णि शिरस्त्रात्मीयेषु शिरःसु हिरण्यवीर्हिरण्ययीः स्वर्गमयानि शिप्राः शिरस्त्राणानि श्रिये शोभार्थं व्यंजत । व्यंजयन्ति । ज्ञातीकुर्वन्ति । धारयन्तीत्यर्थः ॥ २२ ॥

उशना यत्परावत उह्णो रंघ्रमयातन । द्यौर्न चक्रदन्निया ॥ २६ ॥

उशना । यत् । पराऽवतः । उह्णः । रंघ्रं । अयातन । द्यौः । न । चक्रदत् । भिया ॥ २६ ॥

हे मरुतः उशनाः ॥ व्यत्ययेन प्रथमा ॥ उशनसा काव्येनर्षिणा सूयमाना यूयं । यदा ॥ उशनःशब्दात्सुपां सुलुगिति असः सुः ॥ उशनमः क्षीतुन् कामयमाना यूयं । उह्णः सेक्तुः कामाणां वर्धितुरात्मीयस्य रथस्य पृष्ठेतिरंतरिक्षस्य वा रंघ्रं मध्यं परावतो दूरदेशाययदायातन अगच्छत ॥ यातिर्लङ्ङि मध्यमवज्रवचनस्य तप्तनप्तनक्षत्रादिति तनादेशः ॥ तदानीं द्यौर्न । अथ शुशब्देन तत्रत्यो जनसंघो लक्ष्यते । सुलोके वर्तमानो जनसंघ इव पार्थिवमपि सर्वे भूतजातं मिया युष्मद्देवजनितया भीत्या चक्रदत् । अशब्दयत् अकंपत वा ॥

आ नो मुखस्य दावनेऽश्चैर्हिरण्यपाणिभिः । देवांस उप गंतन ॥ २७ ॥

आ । नः । मुखस्य । दावने । अश्चैः । हिरण्यपाणिभिः । देवांसः । उप । गंतन ॥ २७ ॥



हे देवासो दानादिगुणयुक्ता मरुतः नोऽस्माकं मखस्य यज्ञस्य दावने दानाय ॥ ददाति रीणादिवो भावे  
वनिः ॥ हिरण्यपाणिभिः स्वर्णमयपादैः स्वर्णाखण्डैर्हितरमणीयपादैर्वाश्विरोप गंतन । उपागच्छत । प्राप्तुत ॥  
गमेर्लोडि च्छांदसः शपो जुक् । तप्तमप्तनयनाश्चेति तनवादेशः । अत एव छित्त्वाभावाद्गुणाधिक्योपी  
न क्रियते ॥

यदैषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः । यांति शुभा रिणचपः ॥ २८ ॥

यत् । एषां । पृषतीः । रथे । प्रष्टिः । वहति । रोहितः । यांति । शुभाः । रिणन् । अपः ॥ २८ ॥

एषां मरुतां रथे पृषतीः पृषन्निः श्वेतविंदुमिर्युक्ता मृगो यद्यदा वहति यदा च प्रष्टिः प्रागुः शीघ्रगामी ।  
यदा । प्रसुखे युष्मन्मानः सन् । रोहितः पृषतः पृषन्निर्युक्तो मृगो वहति तदानीं शुभाः शोभमाना मरुतो  
यांति । गच्छंति । तेषां गमने च सत्यप उदकानि वृष्टिलक्षणाणि रिणन् । अरिणन् । अगच्छन् । सर्वत्र  
प्रवहंति ॥ री गतिरिषणयोः क्रियादिकः । प्वादीनां ह्रस्वः । छांदसोऽनुभावः । समानवाक्ये निघातयुष्मद्-  
कदादेशा वक्तव्याः । पा० ८. १. १८. ५ । इति वचनादत्र पूर्वपदस्य वाक्यांतरगतत्वात्तत्पुक्तिश्च इति  
निघाताभावः ॥

सुषोमे शर्यणावन्त्यार्जीके पस्त्यावति । ययुर्निचक्रया नरः ॥ २९ ॥

सुऽसोमे । शर्यणाऽवति । आर्जीके । पस्त्यऽवति । ययुः । निऽचक्रया । नरः ॥ २९ ॥

सुषोमे शोमनसोमयुक्त आर्जीके । अजीका नाम देशाः । तत्संबन्धिनि शर्यणावति कुक्षेयस्य जघनार्धे  
शर्यणावत्संज्ञे सरसि पस्त्यावति । पस्त्यमिति गृह्यनाम । यद्यगृहोपेति सोमपानाय नरो नेतारो मरुतो  
निचक्रया नीचीनचक्रयावाक्पुखं प्रवर्तमानया रथकव्यया ययुः । यांति । गच्छंति ॥ यातेऽच्छांदसो छिट् ॥  
यदा । नरो नेतार अस्त्विव उक्तगुणविशिष्टे शर्यणावति मरुतागाय सोममाहर्तुं निचक्रया नीचीनचक्रया  
प्रकव्या ययुः । गच्छंति ॥

कदा गच्छाय मरुत इत्या विप्रं हवमानं । माडीकिभिर्नाधमानं ॥ ३० ॥

कदा । गच्छाय । मरुतः । इत्या । विप्रं । हवमानं । माडीकिभिः । नाधमानं ॥ ३० ॥

हे मरुतः इत्येत्वमनेन प्रकारेण हवमानमाह्वयंतं कुर्वंतं नाधमानं याचमानं विप्रं मेधाविनं सोतारं मां  
कदा कश्चिन्नाले माडीकिभिः सुखहेतुमिर्धनेः सार्धं गच्छाय । गच्छ । विसंबं मा हवत शीघ्रमागच्छेति  
भावः ॥ २३ ॥

कच्च नूनं कधप्रियो यदिद्रुमजहातन । को वः सखित्व ओहते ॥ ३१ ॥

कत् । ह । नूनं । कधऽप्रियः । यत् । इद्रं । अजहातन । कः । वः । सखिऽत्वे । ओहते ॥ ३१ ॥

हे कधप्रियः कथया कुत्वा प्रीयमाणाः ॥ कच वाक्यप्रबंधने । अस्मान्नावे चिंतिपूजीत्यादिनाम् ।  
ततष्टाप् । उत्तरपदे व्यापोः संज्ञाच्छंदसोरिति ह्रस्वलं । धत्वं छांदसं ॥ ईदृशा हे मरुतः वृत्तेण सह युष्मन्मा-  
नमिन्द्रं नूनं सत्यमजहातन पर्यव्रजतेति यदेतत् तत्कच्च कदा खलु कश्चिन्नाले ज्ञाते ज्ञातं । न कदाचिदपीत्यर्थः ।  
तथा च ब्राह्मणं । मरुतो हेनं नाजङ्गः प्रहर भगवो जहि वीरयस्व । ऐ० ब्रा० ३. २०. । इति । वृत्रस्य त्वा  
असथादीयमाणाः । अ० ८. ९६. ७. । इत्यादि च निगमांतरं । यत एवमतः कारणादो युष्माकं सखित्वे ॥  
कत्वयेन सप्तमी ॥ सखिमावं कः सोतौहते । याचते । यदा । वहते । प्राप्नोति । ईदृशमनपायं युष्मत्सखित्वं  
दुर्लभमित्यर्थः ॥

सहो षु णो वज्रहस्तैः कणासो अग्निं मरुद्भिः । स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥ ३२ ॥

सहो इति । सु । नः । वज्रहस्तैः । कणासः । अग्निं । मरुद्भिः । स्तुषे ।  
हिरण्यवाशीभिः ॥ ३२ ॥

वज्रहस्तैर्नकाऋषिर्हिरण्यवाशीभिः । हिरण्यवाशी तपसासाधनमायुधं धेयामसि तादृशीः । मरुद्भिः सहो सहैव वर्तमानमग्निं नोऽस्मदीया हे कणासः कणाः कोतारः कण्वगोचा वर्ययः द्युयं स्तुषे । सुध्वं । यद्वा । न इति प्रथमार्थे द्वितीया । नो वर्यं कण्वगोचाः । अस्मदी द्योश्च । पा० १. २. ५९. इत्येकस्मिन् षड्वचनं । सविशेषणस्य प्रतिषेधः । का० १. २. ५९. १. इति तु व्यत्ययेन प्रवर्तते ॥ स्तुषे । स्तुषे ॥ सौतेत्यन्तमि-  
कवचने सिद्धञ्जलमिति सिद् ॥

ओ षु वृष्णः प्रयज्यूना नव्यसे सुविताय । ववृत्यां चिचवाजान् ॥ ३३ ॥

ओ इति । सु । वृष्णः । प्रयज्यून । आ । नव्यसे । सुविताय । ववृत्यां । चिचवाजान् ॥ ३३ ॥

वृष्णो वर्धतृणभीष्टफलदान् प्रयज्यून प्रकर्षेण यष्ट्यान् चिचवाजान् विचिचवजान् विचिचवजान् एवभृताम्बहतः सु सुहो आ उ ववृत्यां । आवर्तयामि । अस्मदभिमुखं यथा गच्छन्ति तथा करोमि । अपि च नव्यसे नवीयसे नवतरायात्यंतं प्रशस्ताय सुविताय सुधु प्राप्तव्याय धनाय च तागा ववृत्यां । आवर्तयामि ॥

गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः । पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥ ३४ ॥

गिरयः । चित् । नि । जिहते । पर्शानासः । मन्यमानाः । पर्वताः । चित् । नि । येमिरे ॥ ३४ ॥

महत्स्नागच्छत्सु गिरयश्चिहिरयोऽपि शिखोच्चया अपि पर्शानासः पीड्यमानाः । यद्वा । मरुद्भिः सृष्टमानाः । अत एव न्यमाना अभिमन्यमाना बाध्यमानाः संतो नि जिहते । नितरां गच्छन्ति । मरुद्भिरेण खानात् प्रचयन्ते । तथा पर्वताश्चित् पर्ववन्तो मेघा अपि तदीयेन गमनेन नि येमिरे । नियम्यते । यद्वा । गिरयः सुद्धाः शिखोच्चया महान्तः पर्वताः ॥

आक्षण्यावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः । धातारः स्तुवते वयः ॥ ३५ ॥

आ । आक्षण्यावानः । वहन्ति । अन्तरिक्षेण । पततः । धातारः । स्तुवते । वयः ॥ ३५ ॥

आक्षण्यावानोऽक्ष्णं व्याप्तं गच्छन्तः । यद्वा । आक्षण्यावुषोऽपि शीघ्रं थांतीत्यक्षण्यावानः ॥ यातेरातो मग्निरिति वनिष् ॥ ईदृशा अथा अन्तरिक्षेणाकाशमार्गेण पततो गच्छतो मरुत आ वहन्ति । आनयन्ति । यद्वा । पतत इत्यन्धानां विशेषणं । अन्तरिक्षे नभसि पततो गच्छन्तः ॥ छांदसो गुमभावः ॥ किं कुर्वतः । स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते अनाय वयोऽन्नं धातारो विधातारः कुर्वाणाः ॥

अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छंदो न सूरौ अर्चिषा । ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ ३६ ॥

अग्निः । हि । जानि । पूर्व्यः । छंदः । न । सूरः । अर्चिषा । ते । भानुऽभिः । वि । तस्थिरे ॥ ३६ ॥

अपिर्ह्यग्निः खल्वर्चिषा तेजसा पूर्व्यः सर्वेषु देवेषु सुखो जानि । अजायत ॥ दीपवनेत्यादिना । पा० ३. १. ६१. कर्तारि सुकिं सुखिणदेशः ॥ तप दृष्टान्तः । छंद उपच्छंदनीयः सूरौ न सूर्य इव । तदन्तरं ते पूर्वोक्तगुणा मरुतो भानुभिर्दोषिभिर्वि तस्थिरे । विविधमवतिष्ठते । आपिमावते ह्यग्निः पूर्वं सूयते पश्चा-  
मरुतः । तदपेक्षया च पूर्वोत्तरयोरर्धवयोः क्रमेणाभिर्भवतश्च सूयते ॥ २४ ॥

आ नो विश्वाभिरिति त्रयोविंशत्युचं तृतीयं मूलं सध्वंसाख्यं काण्वस्त्वार्यमानुष्टुभं । एतदादीनि चोचि



सूक्तान्यधिदेवत्यानि । तथा चाशुक्रांतं । आ नख्यधिका सध्वंस आश्विनं द्याःनुष्टुभं त्विति ॥ प्रातरनुवाक  
आश्विने कृतावानुष्टुभे कंदसाश्विनशस्त्रे चैतत्सूक्तं । सूच्यते हि । आ नो विश्वामिस्त्वं चिद्विभित्वाऽनुष्टुभं  
। आ० ४. १५. । इति ॥ अतोऽर्थानि प्रशानुरतिरिक्तोक्थेऽप्येतत् । सूचितं च । आ नो विश्वामिः प्रातर्यावाणा  
। आ० ९. ११. । इति ॥ चतुर्थेऽहनि प्रचगशस्त्र आ नो विश्वामिरित्याश्विनशृचः । सूचितं च । आ नो विश्वामि-  
रुतिभिस्त्वसु वो अग्रहणं । आ० ७. ११. । इति ॥

आ नो विश्वामिरुतिभिरश्विना गच्छतं युवं

दक्षा हिरण्यवर्तनी पिबतं सोम्यं मधु ॥१॥

आ । नः । विश्वामिः । ऊतिऽभिः । अश्विना । गच्छतं । युवं ।

दक्षा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी । पिबतं । सोम्यं । मधु ॥१॥

हे अश्विनाश्विनावशुवानो सर्वं जगद्वाप्तुवन्ती यद्वाश्चैर्युक्ती युवं युवां विश्वामिः सर्वाभिर्वाप्ताभिर्वीतिभो  
रवाभिर्दातव्याभिः सार्धं नोऽस्माना गच्छतं । आगत्य च हे दक्षा दक्षी दर्शनीयौ शत्रूणामुपचपयितारौ वा  
हे हिरण्यवर्तनी हिरण्यवरणौ हितरमणीयाचरणौ वा ईदृशौ हे अश्विनी सोम्यं सोममयं मधु पिबतं ॥

आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा । भुजी हिरण्यपेशसा कवी गंभीरचेतसा ॥२॥

आ । नूनं । यातं । अश्विना । रथेन । सूर्यऽत्वचा । भुजी इति । हिरण्यऽपेशसा ।

कवी इति । गंभीरऽचेतसा ॥२॥

हे भुजी इविषां भोक्तारौ यद्वा क्षोतुभिरत्नानां भोजयितारौ सर्वस्य जगतः पात्रकौ वा हे हिरण्यपेशसा  
हिरण्यपात्रकारौ हिरण्यपात्रवयवी वा हे कवी ज्ञातदर्शिनौ क्षोतव्यौ वा हे गंभीरचेतसा प्रशस्तज्ञानी  
ईदृशौ हे अश्विनाश्विनी सूर्यत्वचा सूर्यवज्रासमानेन रथेन नूनमवज्रमस्माना यातं । आगच्छतं ॥

आ यातं नहुषस्पर्यातरिक्षात्सुवृक्तिभिः ।

पिवाथो अश्विना मधु कर्णानां सवने सुतं ॥३॥

आ । यातं । नहुषः । परि । आ । अंतरिक्षात् । सुवृक्तिऽभिः ।

पिवाथः । अश्विना । मधु । कर्णानां । सवने । सुतं ॥३॥

हे अश्विनी नहुषस्परि । नहुष इति मनुष्यनाम । सामर्थ्याच्चा तत्संबन्धो लोको कथ्यते । मानुषान्तरिक्षा-  
लोकात् ॥ परि पंचम्यर्थानुवादी ॥ सुवृक्तिभिः सुष्ठु दोषवर्जिताभिः सुप्रवृत्ताभिर्वा क्षुतिभिर्हेतुभूताभिरा यातं ।  
आगच्छतं । तथांतरिक्षादंतरा चांतात्तद्व्यमालोकादप्यागच्छतं । आगत्य च कर्णानां कर्णगोचारात्मकात्वं  
सवने यज्ञे प्रातःसवनादौ सुतमभिषुतं मधु मरुतं सोमं हे अश्विनी पिवाथः । पिबतं ॥

आ नो यातं दिवस्पर्यातरिक्षादधमिया । पुचः कर्णस्य वामिह सुषावं सोम्यं मधु ॥४॥

आ । नः । यातं । दिवः । परि । आ । अंतरिक्षात् । अधऽधमिया । पुचः । कर्णस्य । वां ।

इह । सुषावं । सोम्यं । मधु ॥४॥

हे अश्विनी दिवस्परि दिवोऽधि सुलोकात्त्रोऽस्माना यातं । आगच्छतं ॥ पंचम्याः परावध्यर्थ इति  
विगर्जनीयस्य सत्त्वं ॥ हे अधमियाधोऽधलादक्षिणैवे विद्यमानेन सोमेन प्रीयमाणी । यद्वा । अधमिया ॥

छांदसो वर्णलोपः ॥ कथया जुत्वा प्रीयमानौ । हे ईदृशावश्विनौ अंतरिक्षादप्यागच्छतं । इहास्मिन्वक्षे  
कण्वस्यैः पुत्रः सोम्यं सोममयं मधु वां युवाभ्यां युवयोरर्थं सुषाव । अभिषुषोति । अत आ यातमित्यन्वयः ॥

आ नो यातमुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये ।

स्वाहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिभिर्नरा ॥ ५ ॥

आ । नः । यातं । उपश्रुति । अश्विना । सोमऽपीतये ।

स्वाहा । स्तोमस्य । वर्धना । प्र । कवी इति । धीतिऽभिः । नरा ॥ ५ ॥

हे अश्विनाश्विनौ नोऽस्माकमुपश्रुति । श्रुयत इति श्रुत् कृतिः । उपगता श्रुवस्मिन् तस्मिन्वक्षे सोमपीतये  
सोमपानाया यातं । आगच्छतं । हे वर्धना वर्धनौ कवी क्रांतदर्शिनावश्विनौ स्वाहा स्वाहाकृतौ स्वाहाकारेण  
सभ्यागृष्टौ संतौ । यद्वा । स्वाहेति वाङ्माम । कृतिरूपया वाचा कुतौ वाचा सोमस्य स्तोतुः प्रवर्धकौ भवतं ।  
तथा हे नरा नेतारावश्विनौ धीतिभिः कर्मभिर्यष्टुष्व प्रवर्धकौ भवतं । यद्वा । स्वाहेत्यादीन्वामंचितानि । हे  
स्वाहा स्वाहाकृतौ सोमस्य स्तोत्रस्य स्तोतुर्वा हे प्रवर्धना प्रवर्धयितारौ हे कवी क्रांतदर्शिनी धीतिभिर्बुद्धि-  
भिरात्मीयैः कर्मभिर्वा हे नरा सर्वेषां नेतारावश्विनौ सोमपानाया यातमित्येकमेध वाक्यं ॥ अस्मिन्पक्षे  
धीतिभिरित्यपरांगवत्त्वाभावच्छांदसः ॥ यद्वा । धीतिभिर्ध्यातव्याभिर्युष्मदीयामिहृतिभिः सार्धमा यातमिति  
क्रियया संबन्धः ॥ ॥ २५ ॥

यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा ।

आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ६ ॥

यात् । चित् । हि । वां । पुरा । ऋषयः । जुहूरे । अवसे । नरा ।

आ । यातं । अश्विना । आ । गतं । उपे । इमां । सुऽस्तुतिं । मम ॥ ६ ॥

हे नरा नेतारावश्विनौ यच्चिद्धि यदा खलु वां युवां पुरा पूर्वस्मिन्काल ऋषयोऽतीन्द्रियार्थदर्शिनः  
स्तोतारोऽवसे रक्षणाय जुहूरे जुहूविरे कृतिभिराहुयन् ॥ इयतेर्लित्यभ्यस्तस्य चेति संप्रसारणं । हल इति  
दीर्घः । इरथो र इति रेभावः ॥ तदानीं हे अश्विनौ आ यातं । आगच्छतं । आगतवन्तौ स्तः । अतो मम  
मदीयामिमां सुष्टुतिं शोभनां कृतिमप्युपा गतं । उपागच्छतं ॥

दिवश्चिदोचनादध्या नो गतं स्वर्विदा । धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥ ७ ॥

दिवः । चित् । रोचनात् । अधि । आ । नः । गतं । स्वःऽविदा । धीभिः । वत्स

ऽप्रचेतसा । स्तोमेभिः । हवनऽश्रुता ॥ ७ ॥

हे स्वर्विदा स्तः सूर्यस्य शुलोकस्य वा लंघयितारावश्विनौ दिवश्चिदुलोकाश्च रोचनादधि रोचमाना-  
दतरिक्षाच्च नोऽस्माना गतं । आगच्छतं ॥ पूर्ववदधिः पंचमर्थानुवादकः ॥ हे वत्सप्रचेतसा वत्से स्तोतरि  
प्रकृष्टज्ञानौ । यद्वा । वत्सं निवासकं वेदितव्यं वा प्रकृष्टं चेतो ज्ञानं ययोस्तौ तथोक्तौ । तौ युवां धीभिरा-  
त्मीयामिर्बुद्धिभिः सहगच्छतं । हे हवनश्रुता हवनस्यासदीयस्याह्वानस्य स्तोत्रस्य श्रोतारौ स्तोमेभिः स्तोत्रैर  
अत्कृतैर्युज्यमानौ संतावागच्छतं ॥

किमन्ये पर्यासतेऽस्मत्स्तोमेभिरश्विना ।

पुत्रः कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥ ८ ॥



किं । अन्ये । परि । आसते । अस्मत् । स्तोमेभिः । अश्विना ।

पुत्रः । कर्षस्य । वा । अर्षिः । गीऽभिः । वत्सः । अवीवृधत् ॥ ८ ॥

असदसतोऽन्ये व्यतिरिक्ताः स्तोतारः स्तोमेभिः स्तोषिरश्विनाश्विनौ देवौ किं पर्यासते । अश्वद्व्यतिरिक्ताः केऽप्यश्विनौ स्तोतुं न शक्नुवन्तीत्यर्थः । कर्षवर्षेः पुत्र अर्षिर्मेघद्रष्टा वत्सो गीभिः क्षुतिभिर्है अश्विनौ वां युवामवीवृधत् । अवर्धयत् ॥

आ वां विप्र इहावसेऽह्नुस्तोमेभिरश्विना ।

अरिप्रा वृचंहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा ॥ ९ ॥

आ । वां । विप्रः । इह । अवसे । अह्नुत् । स्तोमेभिः । अश्विना ।

अरिप्रा । वृचंहन्तमा । ता । नः । भूतं । मयऽभुवा ॥ ९ ॥

हे अश्विनाश्विनौ विप्रो मेधावी स्तोत्रहासिन्यानिऽवसे रक्षणार्थं स्तोमेभिः स्तोषिर्वा युवामाह्वत् । आह्वतवान् ॥ अह्वतेर्बुद्धिं क्षिपिषिचिह्नयेति चैरुकादेशः ॥ हे अरिप्रा । रिप्रमिति पापनाम । अपापी हे वृचंहन्तमा वृचाणां शत्रूणां हन्तुतमी ता तौ तादृशौ युवां नोऽस्माकं मयोभुवा सुखस्य भावयितारी भूतं । भवतं ॥

आ यद्वां योषणा रथमतिष्ठद्वाजिनीवसू ।

विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतं ॥ १० ॥

आ । यत् । वां । योषणा । रथं । अतिष्ठत् । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।

विश्वानि । अश्विना । युवं । प्र । धीतानि । अगच्छतं ॥ १० ॥

हे वाजिनीवसू । वाजिनी हविष्मती यागक्रिया । तस्यां विद्यमानस्यांशस्य यथाश्विना योषणा योषित्पूर्याजिधावनेन त्रियमाणा सती वां युवयो रथं यद्यदातिष्ठत् आश्रितवती आरुडवती तदा हे अश्विनाश्विनौ युवं युवां धीतानि ध्यातान्यभिलषितानि विश्वानि सर्वाणि प्रकर्षेयागच्छतं । प्रापतं ॥ २६ ॥

अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।

वत्सो वां मधुमच्चोऽशंसीत्काव्यः कविः ॥ ११ ॥

अतः । सहस्रऽनिर्णिजा । रथेन । आ । यातं । अश्विना ।

वत्सः । वां । मधुऽमत् । वचः । अशंसीत् । काव्यः । कविः ॥ ११ ॥

हे अश्विनाश्विनौ येषु लोकेषु यत्र वर्तन्ते अतोऽस्मात्स्थानात्सहस्रनिर्णिजा । निर्णिगिति रूपनाम । स्वर्णमयतया वज्रविधिरूपयुक्तेन रथेना यातं । आगच्छतं । काव्यः कविः पुत्रः कविर्मेधावी वत्स अश्विर्वा युवाभ्यां युवयोरर्थं मधुमन्माधुर्योपेतं वचो वचनमुक्तमशंसीत् । शंसितवान् । यत एवमत आगच्छतमित्यर्थः ॥

पुरुमंद्रा पुरुवसू मनोतरा रयीणां ।

स्तोमं मे अश्विनाविममभि वही अनूषातां ॥ १२ ॥

पुरुऽमंद्रा । पुरुवसू इति पुरुऽवसू । मनोतरा । रयीणां ।

स्तोमं । मे । अश्विनौ । इमं । अभि । वही इति । अनूषातां ॥ १२ ॥

पुषमं द्रा वज्रमदौ वज्रभिः सोमैर्मादयितव्यौ वा पुष्वसू वज्रधनौ वज्रनां निवासकौ वा रथीणां धनानां मनोतरा मंतारौ दातारौ ॥ मन्यतेऽकुचि पुषोदरादित्वाद्दुपसिद्धिः । नामन्यतरस्यामिति रेशब्दात्ताम उदात्तत्वं । वज्री कृत्स्नस्य जगतो वोढारौ ईदृशार्वाधनौ मे ममेमं सोमं सोपमभ्यनुवातां । सम्यक्सुतमिति प्राशंसिषातां ॥ गु सुतो ॥ यद्वा । सुवतिरच अवयार्थे वर्तते । अभिप्राप्तावश्रौष्टां ॥

आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्या ।

कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे ॥ १३ ॥

आ । नः । विश्वानि । अश्विना । धत्तं । राधांसि । अह्या ।

कृतं । नः । ऋत्वियऽवतः । मा । नः । रीरधतं । निदे ॥ १३ ॥

हे अश्विनाश्विनौ अह्याह्याख्यहीतिकरणान्यलज्जाहेतूनि प्रशस्तानि विश्वानि सर्वाणि राधांसि धनानि नोऽस्माभ्यां धत्तं । प्रयच्छतं । अपि च नोऽस्मानृत्वियावतः । ऋतो कासि भवं प्रशोत्पादनकर्म कर्म ऋत्वियं । तद्वतः कुर्वतं । तथा निदे निंदायै निंदकाय वा नोऽस्माभ्यां रीरधतं । आ वशं जेष्टं ॥

यन्नासत्या परावति यद्वा स्यो अंभरे ।

अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥ १४ ॥

यत् । नासत्या । पराऽवति । यत् । वा । स्यः । अधि । अंभरे ।

अतः । सहस्रऽनिर्निजा । रथेन । आ । यातं । अश्विना ॥ १४ ॥

हे नासत्या सत्यसमावौ सत्यस्य नेतारौ नासिकाग्रमवौ वाश्विनौ यद्यदि परावति दूरदेशे स्यः । यद्वा यदि चांभरे । अंतिकनामैतत् । समीपे स्यः भवथः ॥ अधिः सप्तस्यर्थांनुवादी ॥ अतोऽस्मात्सर्वस्यान्त्यानात्स-  
हस्रनिर्णिजा वज्रविधिरूपेण रथेन हे अश्विनौ आगच्छतं ॥

यो वां नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।

तस्मै सहस्रनिर्णिजमिषं धत्तं घृतश्रुतं ॥ १५ ॥

यः । वां । नासत्या । वृषिः । गीऽभिः । वत्सः । अवीवृधत् ।

तस्मै । सहस्रऽनिर्निजं । इषं । धत्तं । घृतऽश्रुतं ॥ १५ ॥

हे नासत्यौ यो वत्साख्य ऋषिर्वा युवां गीर्भिः सुतिभिरवीवृधत् अवर्धयत् तस्मा ऋषये सहस्रनिर्णिजं वज्रविधिरूपं घृतश्रुतं घृतं चरंतीभिषमन्नं धत्तं । प्रयच्छतं ॥ ॥ २७ ॥

प्रास्मा ऊर्जे घृतश्रुतमश्विना यच्छतं युवं ।

यो वां सुन्नायं तुष्टवद्वसूयाहानुनस्पती ॥ १६ ॥

प्र । अस्मै । ऊर्जे । घृतऽश्रुतं । अश्विना । यच्छतं । युवं ।

यः । वां । सुन्नायं । तुष्टवत् । वसुऽयात् । दानुनः । पती इति ॥ १६ ॥

हे अश्विनाश्विनौ अस्मै सोमे घृतश्रुतं घृतधारया युक्तामूर्ध्वं वत्सकरमन्नरस युवं गवां प्र यच्छतं । इत्तं । हे दानुनस्पती दानस्याधिपती वां युवां सुन्नायं सुन्नार्थं यस्तुष्टवत् सुधात् । यस्य वसूयात् वसु धनमात्मन रच्छेत् । अस्मा इत्यन्वयः ॥



आ नो गंतं रिशादसेमं स्तोमं पुरुभुजा । कृतं नः सुश्रियो नरेमा दातमभिष्टये ॥१७॥

आ । नः । गंतं । रिशादसा । इमं । स्तोमं । पुरुभुजा । कृतं । नः । सुश्रियः । नरा ।

इमा । दातं । अभिष्टये ॥१७॥

हे रिशादसा रिशतां हिंसतां निरशितारी यदा रिशानां हिंसकानामत्तारी मशितारी हे पुरुभुजा बलस्र हविषो भोक्तारी बलनां पात्रवी वा हे अश्विनी गोऽस्मान् स्तोमं स्तोपमा गंतं । अभिगच्छतं । आगत्य च हे नरा नेतारी गोऽस्मान् सुश्रियः सुश्रीकाञ्छोमनया संपदा युक्तान् कृतं । कृतं । तदर्थमिमे-  
मानि पुरो वर्तमानानि पार्थिवान्यभिष्टयेऽभिप्राप्तये दातं । दातं ॥ ददातिर्लोटि च्छांदसः शपो लुक् ॥

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।

राजंतावध्वराणामश्विना यामहूतिषु ॥१८॥

आ । वां । विश्वाभिः । ऊतिभिः । प्रियमेधाः । अहूषत ।

राजंतौ । अध्वराणां । अश्विना । यामहूतिषु ॥१८॥

हे अश्विनाश्विनी यामहूतिषु यामाणां यातुणां देवानां हूतिराह्वानं येषु यज्ञेषु तेषु प्रियमेधा प्रिययज्ञां एतत्संज्ञा अध्वयोऽध्वराणां यज्ञानां राजंतावध्वरौ । राजतिरेत्यर्थकर्मा । अश्विनी हि देवानामध्वर्यु आस्तामिति हि ब्राह्मणं । ईदृशौ विश्वाभिः सर्वाभिरूतिमी रचामिः सहितौ वां युवामाहूषत । आहूषणं । अनुवन्नित्यर्थः ॥

आ नो गंतं मयोभुवाश्विना शंभुवा युवं ।

यो वां विपन्यू धीतिभिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥१९॥

आ । नः । गंतं । मयःभुवा । अश्विना । शंभुवा । युवं ।

यः । वां । विपन्यू इति । धीतिभिः । गीःभिः । वत्सः । अवीवृधत् ॥१९॥

हे अश्विनाश्विनी मयोभुवा मयसः सुखस्य भावधितारी शंभुवा रोगाणां शमस्य भावधितारी युवं युवां गोऽस्मान् गंतं । आगच्छतं । हे विपन्यू सुखावश्विनी यं । वत्सः सोता वां युवां धीतिभिः कर्मभिः पारस्पर-  
क्षीर्गीर्भिः स्तुतिभिश्चावीवृधत् अवर्धयत् तानस्मानिति पूर्वचान्वयः ॥

याभिः कखं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजं ।

याभिर्गोशयमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥२०॥

याभिः । कखं । मेधऽअतिथिं । याभिः । वशं । दशव्रजं ।

याभिः । गोऽशयं । आवतं । ताभिः । नः । अवतं । नरा ॥२०॥

हे अश्विनी याभिरूतिभिः कखमृषिं मेधातिथिं चावतं अरचतं । याभिश्च वशमेतत्संज्ञं चावतं । याभिश्च गोशयं । शीर्षा गौर्यस्य स गोशयः शयुः । तथा चाव्रजतं । शयवे चित्रासत्या शचीभिर्वसुरथे सयं पिब्युर्गौ । च० १. ११६. २२. इति । ईदृशं गोशयं शयुमावतं अरचतं । हे नरा नेतारी ताभिरूतिभिर्नोऽस्मानवतं । रचतं ॥ ॥२०॥

याभिर्नरा चसदस्युमावतं कृत्ये धने ।

ताभिः प्व॒साँ अ॒श्विना॒ प्राव॑तं वाज॑सातये ॥ २१ ॥

याभिः । न॒रा । च॒सद॑स्युं । आ॒वतं । कृत्ये । धने ।

ताभिः । सु । अ॒स्मान् । अ॒श्विना॒ । प्र । अ॒व॒तं । वाज॑ऽसातये ॥ २१ ॥

हे नरा नेतारावश्विनौ धने कृत्ये कर्तव्ये प्राप्तये सति चसदस्युमेतत्संज्ञं पुरकुत्सपुचमृषिं याभिः कृतिभिः प्रावतं प्ररचतं हे अश्विनौ ताभिः कृतिभिः सु सुहृन्मा प्रावतं । प्ररचतं । किमर्थं । वाजसातये वाजसान्नस्य प्रसन्न वा सातये संमननार्थं ॥

प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरौ वर्धत्वश्विना ।

पुरु॑चा वृ॒वह॑न्तमा॒ ता नो॑ भूतं पुरु॑स्पृहा ॥ २२ ॥

प्र । वां । स्तोमाः । सु॒वृक्त॑यः । गिरः । वर्ध॑तु । अ॒श्विना॒ ।

पुरु॑ऽचा । वृ॒वह॑न्ऽतमा । ता । नः । भू॒तं । पुरु॑ऽस्पृहा ॥ २२ ॥

हे अश्विनौ स्तोमाः प्रगीतमन्त्ररूपाः सुतयः सुवृक्तयः सुप्रवृत्ताः सुष्ठु दोषवर्जिता वा गिरः शस्त्ररूपा वाचस्य वां युवां प्र वर्धतु । प्रवर्धयंतु । अपि च हे पुरुचा बहूनां चातारी हे वृवहन्तमा वृचाणां शत्रूणां हंतुतमो रक्षी हे अश्विनौ ता नो युवां नोऽस्माकं पुरुस्पृहा पुर ब्रह्मं सुहृन्नीयावीप्सितव्यी भूतं । भवतं ॥

जी॒णि॒ प॒दान्य॒श्विनो॒रा॒विः सा॑न्ति॒ गुहा॑ परः

क॒वी ऋ॒तस्य॒ प॒त्मभि॒र्वाग्जी॒वेभ्य॒स्परि॑ ॥ २३ ॥

जी॒णि॒ । प॒दानि॑ । अ॒श्विनोः॑ । आ॒विः । सं॑ति । गु॒हा । परः ।

क॒वी इति॑ । ऋ॒तस्य॑ । प॒त्मऽभिः॑ । अ॒र्वाक् । जी॒वेभ्यः॑ । परि॑ ॥ २३ ॥

जीणि विसंख्याकान्यनयोरश्विनोर्देवयो रथस्य संबन्धीनि पदानि चक्राणि गुहा गुहायां वर्तमानान्येतावन्तं काशमदृशमानानि परो गुहायाः परस्तादृष्टिगोचरे देश आविः संति । आधिर्भवन्ति ॥ सांहितिकच्छांदसो दीर्घः । अत्ययेन निघाताभावः । यद्वा । संतीत्येतदस्तेः शतरि असि रूपं ॥ आधिर्भूतानि दृश्यन्ते । अश्विनस्य रथस्य चक्रचयोपेतत्वं च रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते । अ० ४. ३६. १. इत्यादिनिगमांतरे प्रसिद्धं । कवी क्रांतदर्शनावशिनावृतस्य सत्यस्योदकस्य यज्ञस्य वा हेतुभूतैः पत्मभिर्देवैर्वीवेभ्यस्परि । परिपर्यर्थः ॥ पंचम्याः परावध्यर्थ इति सत्यं ॥ जीवानामुपरि जीवेष्वस्मात्स्वर्गमिमुखं । आगच्छतमिति शेषः । तानि पदानीदानीमुपसभ्यन्त इत्यन्वयः ॥ ॥ २९ ॥

आ नूनमित्येकविंशत्युचं चतुर्थं सूक्तं शशकर्णस्वार्पमश्विदेवत्यं । विंशेकविंशौ द्वितीयातृतीये चेति चतस्रो नायज्यः प्रथमा चतुर्थी षष्ठी चतुर्दशी पंचदशी चेति पंच बृहत्पः पंचमी ककुप मध्यमथेत्ककुप । अनु० ५. ३. । इत्युक्तस्य चणसज्ञावात् । दशमी चिद्वेकादशी विराद्धादशी जगती शिष्टा अनुष्टुभः । तथा चानुक्रांतं । आ नूनं सेवा शशकर्णोऽंति नायज्यानुपाये चाया चतुर्थी षष्ठी चतुर्दशाये च बृहत्पः पंचमी ककुपश्चण्ड्यायास्त्रिष्टुप्त्रिराङ्गत्वं इति ॥ अग्नोर्यामे ब्राह्मणाच्छ्विनोऽतिरिक्तोक्त इदं सूक्तं । सूच्यते हि । आ नूनमश्विना तं वां रथं । आ० ९. ११. । इति ॥

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गंतमवसे ।

प्रास्मै यच्छतमवृकं पृषु च्छर्दियुगुतं या अरातयः ॥ १ ॥



आ । नूनं । अश्विना । युवं । वत्सस्य । गंतं । अवसे ।

प्र । अस्मै । यच्छतं । अवृकं । पृषु । छदिः । युयुतं । याः । अरातयः ॥१॥

हे अश्विनाश्विनौ युवं युवां वत्सस्य सोतुर्ममावसे रचयार्थं नूनमवशमा गंतं । आगच्छतं । आगत्य चास्मा अवसेऽवृकं बाधकरहितं पृषु विसीर्यैर्दृग्निहं प्र यच्छतं । प्रदत्तं । तथा या अरातयोऽदानशीलाः शत्रुभूताः प्रवासा युयुतं । सोतुभ्यः पृषक्कृतं ॥

यदंतरिक्षे यद्विवि यत्पंच मानुषाँ अनु । नृम्यं तद्वत्तमश्विना ॥२॥

यत् । अंतरिक्षे । यत् । दिवि । यत् । पंच । मानुषान् । अनु । नृम्यं । तत् । धत्तं । अश्विना ॥२॥

अंतरिक्षे गंधर्वादिभिः सेविते मध्यमे लोके यद्वृम्यं धनमस्ति । दिवि युलोके च यदस्ति । पंच पंचसंख्या-  
कान्मानुषान्पशुधानान् ॥ अथोऽनोः कर्मप्रवचनीयत्वं । कर्मप्रवचनीययुक्त इति द्वितीया ॥ पंचविधा मनुष्या  
निवादपंचमाद्यत्वारो वर्णा यत्र वर्तते तत्र चेह लोके यद्वृम्यं धनमस्ति । हे अश्विनी तत्त्रिविधं नृम्यं धनं  
धत्तं । अस्माभ्यं प्रयच्छतं ॥

ये वां दंसाँस्यश्विना विप्रासः परिमामृषुः । एवेत्काखस्य बोधतं ॥३॥

ये । वां । दंसाँसि । अश्विना । विप्रासः । परिऽममृषुः । एव । इत् । काखस्य । बोधतं ॥३॥

हे अश्विनी वां युवयोः संबन्धीनि दंसाँसि कर्मणि परिचरणात्मकानि ये विप्रासो विप्रा मेधाविनो  
यजमानाः परिमामृषुः परिमृशंति पुनःपुनः स्मृशंति । अनुतिष्ठंतीत्यर्थः । यथा तदीयानि परिचरणानि युवां  
जानीथः एवेदेवमेव काखस्य कखपुचस्य मम परिचरणं बोधतं । अवगच्छतं ॥

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि विच्यते ।

अयं सोमो मधुमान्वाजिनीवसू येन वृचं चिकेतथः ॥४॥

अयं । वां । घर्मः । अश्विना । स्तोमेन । परि । सिच्यते ।

अयं । सोमः । मधुऽमान् । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू । येन । वृचं । चिकेतथः ॥४॥

हे अश्विनी वां युवयोः संबन्धयं घर्मः प्रवर्ग्यं स्तोमेन स्तोत्रेण अक्सामकृतेन परि विच्यते । आर्द्रो-  
क्रियते । यथा युवयोस्तृप्तिकरो भवति तथा क्रियत इत्यर्थः । यद्वा । घर्मस्य इविष आधारभूतो महावीरो  
घर्मः । स स्तोमेन स्तोत्रेण पयसा परि विच्यते । आसिच्यते वां युवयोरर्थः । अपि च हे वाविनीवसू  
अन्नवचनी अयं सोमस्वार्तीयसवनिजो मधुमाकाधुर्यवान् युवाभ्यां दीयते । येन युवां वृचमावरणं शत्रु  
चिकेतथः हंतव्यतया जानीथः । अयं घर्मः सोमश्चेत्युभयपान्वयः ॥

यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतं । तेन माविष्टमश्विना ॥५॥

यत् । अप्सु । यत् । वनस्पतौ । यत् । ओषधीषु । पुरुऽदंससा । कृतं । तेन । भा ।

अविष्टं । अश्विना ॥५॥

हे पुरुदंससा यज्जर्मोपावश्विनी अप्सुदक्षेय यज्ञेयजं कृतं युवामकाष्टं । करोतेर्लुकि मंषे घसेत्वादिना  
क्षुर्लुक् ॥ तथा वनस्पतौ । वनानां पतिर्वनस्पतिः ॥ पारस्करादित्यात्सुद । उमे वनस्पतादिस्थिति पूर्वोत्तरप-  
दयोर्धुनपत्रकृतिस्वरत्वं । जातौ वेदमेकवचनं । वनस्पतिषु वृक्षेषु यज्ञ भेषजं युवामकृतं । ओषधीषु । औषः  
पाक आसु धीयत इत्यौषधयो ग्रीष्मादयः । कर्मकाधिकरणे चेति दधातिरधिकरणे निप्रत्ययः । दासीभारा-

दिषु पठितत्वात्पूर्वपदप्रकृतित्वरत्नं । ओषधेः विभक्तावप्रथमायामिति दीर्घः ॥ त्रीन्नादिव्योषधीषु च यज्ञेयं कृतं युवामकाष्टं । हे अश्विनाश्विनी तेन सर्वेण भेषजेन मा मामविष्टं । रक्षतं ॥ अयतैर्लोडि सिद्धञ्जमिति वज्रलयहृणात्सि । तत् इदं ॥ ३० ॥

यन्नासत्या भुरण्यथो यद्वा देव भिषज्यथः ।

अयं वां वत्सो मतिभिर्न विंधते हविर्षमंतं हि गच्छथः ॥ ६ ॥

यत् । नासत्या । भुरण्यथः । यत् । वा । देवा । भिषज्यथः ।

अयं । वां । वत्सः । मतिभिः । न । विंधते । हविर्षमंतं । हि । गच्छथः ॥ ६ ॥

हे नासत्या सत्वसभावावश्विनी यदी युवां भुरण्यथः सर्वे जगत्पोषयथः ॥ भुरण्य धारणपोषणयोः । कंङ्गादिः ॥ हे देवा दानादिगुणयुक्तावश्विनी ॥ क्वांसः साहितिको ब्रह्मः ॥ यद्वा । यौ च युवां भिषज्यथः सर्वस्य प्राणिजातस्य भेषजं रोगोपशमनं कुरुथः ॥ भिषज् चिकित्सायां । अथमपि कंङ्गादिः ॥ तौ वां युवामयं वत्सः सोता मतिभिर्मननीयैः केवलैः सोचैर्न विंधते । न विंदते । न लभते ॥ वर्षाविकारः क्वांसः ॥ जूत इति चेत् उच्यते । हविर्षमंतं हविर्भिर्युक्तं सोतारं हि युवां गच्छथः । तस्माद्युवां हविर्भिर्युक्ताः सोचैः प्रसीदथ इति भावः ॥

प्रवर्ये महावीरे गोपयस्यासिध्यमान आ नूनमित्येषानुवक्तव्या । सूच्यते हि । आ नूनमश्विनोर्ध्वपिरिति गव्य आ मुते सिचत श्रियमित्याजे । आ० ४. ७. इति ॥

आ नूनमश्विनोर्ध्वपिः स्तोमं चिकेत वामया ।

आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिंचादथर्वणि ॥ ७ ॥

आ । नूनं । अश्विनोः । ध्वपिः । स्तोमं । चिकेत । वामया ।

आ । सोमं । मधुमत्तमं । घर्मं । सिंचात् । अथर्वणि ॥ ७ ॥

हे अश्विनी यदा युवामागच्छेथाथां तदानीं युवयोरश्विनोः स्तोमं सोचमृषिर्मेचद्रष्टा वामया वननीय-योत्पुष्टया बुद्ध्या नूनमवज्ञमा चिकेत । अभिजानीयात् ॥ कित ज्ञाने । क्वांसो जिह् । तथा मधुमत्तममति-शयेन मधुरं सोमं घर्मं प्रवर्यसंबन्धि घर्माख्यं हविष्यार्थव्याहंसकेऽप्यौ । यद्वा । अथर्वा ध्वपिः । तेन निर्मेधितो ऽपिरुपचारादथर्वेत्युच्यते । अथर्वणा निर्मेधनं च त्वामपे पुष्करादधि । अ० ६. १६. १३. । इत्यादिनिगमांतरे ऽवगम्यते । तस्मिन्नभावा सिंचात् । आसिंचेत् । प्रचिपेत् । अतः श्रुतिप्रमाणवत्तमित्यर्थः ॥

आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठायो अश्विना ।

आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ८ ॥

आ । नूनं । रघुवर्तनिं । रथं । तिष्ठायः । अश्विना ।

आ । वां । स्तोमाः । इमे । मम । नभः । न । चुच्यवीरत ॥ ८ ॥

हे अश्विनी रघुवर्तनिं ननुवर्तनं शीघ्रगमनं रथं नूनमवज्ञमिदानीमेवा तिष्ठायः । आतिष्ठतं । अधिरोहतं ॥ वानमृगजलमिति नद्योर्लकारस्य रेफः ॥ मम मदीया इमे स्तोमाः सोचाणि नभो न सूर्यमिव तेजस्विनी वां युवामा चुच्यवीरत । आच्यवते । अभिगच्छति । यद्वा । अयतिरचांतर्भावितत्वर्यः । आच्यवयंति । युवा-मभिप्रायंति ॥



यद्वा वाँ नासत्योक्थैराचुचुवीमहि । यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत्काखस्य बोधतं ॥९॥  
 यत् । अद्य । वाँ । नासत्या । उक्थैः । आऽचुचुवीमहि । यत् । वा । वाणीभिः ।  
 अश्विना । एव । इत् । काखस्य । बोधतं ॥९॥

हे नासत्यो अथेदानीमुक्थैः शस्त्रैर्यथा येन प्रकारेण वां युवामाचुचुवीमहि आगमयेम हे अश्विनी  
 यद्वा यथा वाणीभिरुक्थयतिरिक्ताभिरपि वाग्भिः सुतिमिर्गुणमागमयेम एवेदेवमेव तथैव काखस्य मम  
 तदुक्थादिकं बोधतं । अवगच्छतं ॥

यद्वा कक्षीवाँ उत यद्वा चृषिर्यद्वा दीर्घतमा जुहाव ।  
 पृथी यद्वा वैन्यः सार्दनेष्वेदेतो अश्विना चेतयेथां ॥१०॥  
 यत् । वाँ । कक्षीवान् । उत । यत् । विऽअश्वः । चृषिः । यत् । वाँ । दीर्घतमाः । जुहाव ।  
 पृथी । यत् । वाँ । वैन्यः । सार्दनेषु । एव । इत् । अतः । अश्विना । चेतयेथां ॥१०॥

हे अश्विनी वां युवां कक्षीवानुषिर्यथा जुहाव तुष्टाव । उतापि च अथ एतत्संज्ञ अश्विष यथा जुहाव ।  
 यथा च वां युवां दीर्घतमा चृषिर्जुहाव । सार्दनेषु यज्ञगृहे वैन्यो घेनस्य पुत्रः पृथेतत्संज्ञो राजर्षिर्वा युवां  
 यथा जुहाव तुष्टाव । एवेदेवमेव सुवतो ममात् रदं खोत्रं ॥ इदंशब्दाद्वितीयार्थे तसिः ॥ हे अश्विनी  
 चेतयेथां । जानात ॥ ॥३१॥

यातं छर्दिष्या उत नः परस्या भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।  
 वर्तिस्तीकाय तनयाय यातं ॥११॥  
 यातं । छर्दिऽपौ । उत । नः । परऽपा । भूतं । जगत्पौ । उत । नः । तनूपा ।  
 वर्तिः । तोकाय । तनयाय । यातं ॥११॥

हे अश्विनी छर्दिष्यौ । छर्दिरिति गृहनाम । तस्यासदीयस्य पालकौ संतौ युवां यातं । आगच्छतं ।  
 उतापि च जोऽस्माकं परस्या परमतिशयेन पालकौ भूतं । भवतं ॥ पारस्करादित्वात्सुट् । तथा जगत्पौ  
 सर्वज्ञ जगतो जगमस्य प्राणिजातस्यासदीयस्य पालकौ भवतं । उतापि च जोऽस्माकं तनूपा तनूनां शरी-  
 राणां तनयानां वा पालकौ भवतं । एतत्सर्वार्थं तोकाय तोकस्य पुत्रस्य तनयाय तनयस्य पौत्रस्य चासदीयस्य  
 वर्तिर्गृहं यातं । गच्छतं ॥

यदिद्रेण सरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समौकसा ।  
 यदादित्येभिर्जृभुभिः सजोषसा यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥१२॥  
 यत् । इद्रेण । सऽसरथं । याथः । अश्विना । यत् । वा । वायुना । भवथः । संऽओकसा ।  
 यत् । आदित्येभिः । जृभुभिः । सऽजोषसा । यत् । वा । विष्णोः । विऽक्रमणेषु ।  
 तिष्ठथः ॥१२॥

हे अश्विनी इद्रेण सह सरथं समानमेकं रथमास्थाय यथादि याथः गच्छथः । यद्वा यदि वा वायुना सह  
 समौकसा समाननवासौ भवथः । यथादि वादित्येभिरदितिपुत्रैर्मित्रादिभिर्जृभुभिश्च सजोषसा सह प्रीयमाणौ  
 वर्तन्ते । यद्वा यदि वा विष्णोर्विक्रमणेषु विष्णुना देवेन विक्रांतेषु चिषु लोकेषु तिष्ठथः । अतः सर्वसादपि  
 स्थानादागच्छतमिति शेषः ॥

यद्वाश्विनावहं हुवेय वाजसातये । यत्पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छेष्टमश्विनोरवः ॥ १३ ॥  
 यत् । अश्व । अश्विनौ । अहं । हुवेय । वाजसातये । यत् । पृत्सु । तुर्वणे । सहः ।  
 तत् । अश्विनौ । अश्विनोः । अरवः ॥ १३ ॥

यद्यदाहमश्विनी वाजसातये संयामार्थं ऊवेय आह्वयेय अवेदानीं तावागच्छतमिति शेषः । पृत्सु पृत्तासु संयामेषु तुर्वणे शत्रूणां हिंसने यत्सहः शत्रूणामभिमवितु रक्षणमश्विनोः तदवी रक्षणं अश्वं प्रशस्तमं । अतस्त्वावाहयामीति भावः ॥

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।  
 इमे सोमासो अधि तुर्वणे यदाविमे कर्णेषु वामथं ॥ १४ ॥  
 आ । नूनं । यातं । अश्विना । इमा । हव्यानि । वां । हिता ।  
 इमे । सोमासः । अधि । तुर्वणे । यदौ । इमे । कर्णेषु । वां । अथ ॥ १४ ॥

हे अश्विनी युगमवशमा यातं । आगच्छतं । इमेमानि पुरोवर्तीनि हव्यानि हवींषि वां युवाभ्यां हिता हिताणि । यद्वा । युवयोरर्थं विहितानि कृतानि । इमे च सोमासः सोमासुर्वणे यदौ च वर्तमानाः । वां युवाभ्यां युवयोरर्थं संस्कृता वा ॥ अधिः सप्तम्यर्थानुवादकः ॥ अथापि च कर्णेषु कर्णपुष्पेष्वस्मासु चेने सोमा वां युवाभ्यां दत्ताः । अत आयातमित्यर्थः ॥

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजं ।  
 तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतं ॥ १५ ॥  
 यत् । नासत्या । पराके । अर्वाके । अस्ति । भेषजं ।  
 तेन । नूनं । विमदाय । प्रचेतसा । छर्दिः । वत्साय । यच्छतं ॥ १५ ॥

हे नासत्यावश्विनी पराके दूरदेशेऽर्वाके समीपे च ययुवयोः संबंधि भेषजं रोगोपशमनकारणमस्ति तेन भेषजेन सहितं छर्दिर्गृहं हे प्रचेतसा प्रकृष्टज्ञानावश्विनी विमदाय । क्षुप्तोपममेतत् । एतत्संज्ञाचैवर्षये वत्साय युगमवशं प्रयच्छतं ॥ ३२ ॥

अभुत्सु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः । व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १६ ॥  
 अभुत्सि । ऊं इति । प्र । देव्या । साकं । वाचा । अहं । अश्विनोः । वि । आ । देवि ।  
 आ । मतिं । वि । रातिं । मर्त्येभ्यः ॥ १६ ॥

अश्विनोः संबंधिन्या देव्या द्योतमानया वाचा क्षुतिरूपया साकं सहाहं प्राप्नुत्सि । प्रनुद्योऽक्षि । उ इति पूरणः । हे देवि द्योतमान उषः त्वं च मतिं मया कृतां क्षुतिमभिलक्ष्य व्यावः । तमांसि विवृणु । अपगमय । प्रकाशयेत्यर्थः ॥ वृणोतेऽन्कांसे लुङि मंत्रे घसेत्यादिना च्लुर्भुक् । कंदस्यपि वृक्षत इत्याडागमः ॥ अपि च मर्त्येभ्यो मनुष्येभ्यः क्षीतृभ्योऽसृभ्यं रातिं धनं व्यावः । प्रकाशय ॥

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।  
 प्र यज्ञहोतरानुषक्प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ १७ ॥



प्र । बो॒ध॒य । उ॒षः । अ॒श्वि॒ना । प्र । दे॒वि । सू॒नु॒ते । म॒हि ।

प्र । य॒ज्ञो॒हो॒तः । आ॒नु॒षक् । प्र । म॒दा॒य । अ॒र्वः । बृ॒हत् ॥ १७ ॥

हे उषः अश्विनौ देवौ प्र बोधयास्तस्योषस्य अवधार्यं । हे देवि दानादिगुणयुक्ते हे सुनुते सुष्ठु नेचि हे महि महति इत्थं महाभागा त्वमश्विनौ प्र बोधय । हे यज्ञहोतार्यज्ञानां यष्टव्यानां देवानामाह्वातहोतरी आनुषगनुषक्तं संततं यथा भवति तथाश्विनौ स्तुतिभिः प्र बोधय । तथा मदायाश्विनोर्मदोत्पादगार्थं बृहत्-हृच्छ्वः श्रवणीयं सोमलक्षणमन्नमन्नाभिः कल्पितं ॥

यदु॒षो॒ या॒सि॒ भा॒नु॒ना॒ सं॒ सूर्ये॒ण॒ रो॒च॒से । आ॒ हा॒य॒म॒श्वि॒नो॒ रथो॒ वर्ति॒र्या॒ति नृ॒पा॒य्य ॥ १८ ॥

यत् । उ॒षः । या॒सि॒ । भा॒नु॒ना॒ । सं॒ । सूर्ये॒ण॒ । रो॒च॒से॒ । आ॒ । ह॒ । अ॒यं । अ॒श्वि॒नोः ।

रथः । वर्तिः । या॒ति॒ । नृ॒पा॒य्य ॥ १८ ॥

हे उषः मानुना दीप्त्या सह यद्यदा यासि गच्छसि तदानीं सूर्येण सं रोचसे । सम्यग्दीप्यसे । अपि च तस्मिन्समयेऽश्विनोरथं रथो नृपाय्य यन्मृनिर्गन्तुमिच्छन्तिभिः पालनीयं वर्तिर्यज्ञगृहमा याति ह । आनच्छति खलु ॥

यदा॒पी॒ता॒सो अ॒श्वो॒ गा॒वो॒ न दु॒ह ऊ॒ध॒भिः ।

यद्वा॒ वा॒णी॒र॒नू॒षत् प्र दे॒व॒य॒न्तो॒ अ॒श्वि॒ना ॥ १९ ॥

यत् । आ॒पी॒ता॒सः । अ॒श्वः । गा॒वः । न । दु॒हे । ऊ॒ध॒भिः ।

यत् । वा॒ । वा॒णीः । अ॒नू॒षत् । प्र । दे॒व॒य॒न्तः । अ॒श्वि॒ना ॥ १९ ॥

यद्यदापीतास आ समंतापीतवर्णा अश्वः सोमलता ऊधभिर्गावो न गाव इव दुहे रसं दुहते ॥ क्षोपस्त आत्मनेपदेष्विति तक्षोपः । वज्रं कंदसीति वडागमः ॥ यद्वा यदा च देवयन्तो देवान्कामयमाना अश्विनौ वाणीर्वाचः क्षुतोरनूषत अक्षुवन् । अनुर्वन्तित्यर्थः । तदाश्विनौ देवौ प्रावतं । प्ररचतं ॥

प्र॒ बु॒ध्ना॒य॒ प्र॒ श॒र्व॒से॒ प्र॒ नृ॒षा॒ह्या॒य॒ श॒र्म॒णे॒ । प्र॒ द॒क्षा॒य॒ प्र॒चे॒त॒सा ॥ २० ॥

प्र । बु॒ध्ना॒य॒ । प्र । श॒र्व॒से॒ । प्र । नृ॒षा॒ह्या॒य॒ । श॒र्म॒णे॒ । प्र । द॒क्षा॒य॒ । प्र॒चे॒त॒सा ॥ २० ॥

प्रचेतसा प्रकृष्टज्ञानावश्विनौ बुध्नाय ब्रीतमानायात्राय यशसे वा ॥ तादर्थ्यं चतुर्थी ॥ बुध्नार्थमश्वान् प्ररचतं । शर्वसे बलाय च प्ररचतं । नृषह्याय नृभिः सोढव्याय शर्मणे सुखाय च प्ररचतं । दक्षाय बुध्नर्थं प्ररचतं । यद्वा ॥ बुध्नायेत्यादौ क्रियायहणमपि कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी ॥ बुध्नादीन्बुध्नर्थं प्रयच्छतमित्यर्थः ॥

य॒न्नूनं॑ धी॒भि॒र॒श्वि॒ना पि॒त॒र्यो॒ना नि॒षी॒द॒यः । यद्वा॑ सु॒क्षे॒भि॒रु॒क्थ्या ॥ २१ ॥

यत् । नूनं॑ । धी॒भिः । अ॒श्वि॒ना॒ । पि॒त॒र्यो॒ना॒ । नि॒षी॒द॒यः । यत् । वा॒ । सु॒क्षे॒भिः ।

उ॒क्थ्या ॥ २१ ॥

हे अश्विनौ पितुः पालयितुर्बुलोकस्य संबंधिनि योना योनी स्नाने यद्यदि धीभिः कर्मभिः सह निषीदयः निवसथः । यद्वा यदि वा हे उक्थ्योक्थ्या प्रशस्यौ सुक्षेभिः सुक्षिः सुक्षिः सह निवसथः । तदास्नाभिः स्तुती संतावागच्छतमिति शेषः । अथवा । पितुः पालयितुर्यत्रमानस्य संबंधिनि योनी यज्ञगृहे धीभिः स्तुतिभिः

साधं यदि निवसथः यदि च सुधैः सुखकीर्हिविर्मिष सह निवसथः तर्ह्यागच्छतं । नूनमिति पदपूरणः । उक्तं च यास्केत । अथापि पदपूरणः । नूनं सा ते प्रति वरं वरिचे । नि० १. ७. । इति ॥ ३३ ॥

यत्स्य इति षड्वचं पंचमं सूक्तं कण्वपुत्रस्य प्रगाथस्वार्थमाश्विनं । आद्या बृहती । द्वितीया मध्येज्योतिस्त्रिष्टुप यतोऽष्टकस्ततो ज्योतिः । अनु० ९. ८. । इत्युक्तचक्षसज्ञावात् । तृतीयानुष्टुप । चतुर्थ्यासारपंक्तिः । अंथी चेदासारपंक्तिः । अनु० ८. ७. । इति हि तल्लक्षणं । पंचमो बृहतो षष्ठी संतोबृहती । तथा चानुक्रांतं । यत्स्यः षट् प्रगाथोऽपञ्चबृहती मध्येज्योतिरनुष्टुपासारपंक्तिः प्रगाथ इति ॥ प्रातरनुवाकाश्विने कर्ता बार्हते कंद-  
साश्विनशस्त्रे धेदं सूक्तं । सूच्यते हि । बुन्नी वां यत्स्य इति बार्हते । आ० ४. १५. । इति ॥

यत्स्थो दीर्घप्रसन्नानि यद्वादो रोचने दिवः ।

यद्वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना ॥ १ ॥

यत् । स्थः । दीर्घप्रसन्नानि । यत् । वा । अदः । रोचने । दिवः ।

यत् । वा । समुद्रे । अधि । आऽकृते । गृहे । अतः । आ । यातं । अश्विना ॥ १ ॥

हे अश्विनौ दीर्घप्रसन्नानि । प्रसीदंस्तेषु देवा इति प्रसन्नानो यच्चगृहाः । दीर्घा आयताः प्रसन्नानो यस्मिन् तस्मिन्लोके यद्यदि स्तः भवथः वर्तंथे । यद्वा यदि वादोऽमुष्मिन्दिवो बुल्लोकस्य संबन्धिनि रोचने रोचमाने स्थाने भवथः । यद्वा यदि वा समुद्रेऽन्तरिचे । समुद्रवर्त्यसादाप इति समुद्रमन्तरिचं । तस्मिन् । आकृते निर्मिते गृहेऽधिवसथः । अतस्त्रितयादपि स्थानात् हे अश्विनौ आ यातं । आगच्छतं ॥

यद्वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवत्कारस्य बोधतं ।

बृहस्पतिं विश्वान्देवाँ अहं हुव इंद्राविष्णू अश्विनावाप्नुहेषसा ॥ २ ॥

यत् । वा । यज्ञं । मनवे । संऽमिमिक्षथुः । एव । इत् । कारस्य । बोधतं ।

बृहस्पतिं । विश्वान् । देवान् । अहं । हुवे । इंद्राविष्णू इति । अश्विनौ । आप्नुऽहेषसा ॥ २ ॥

हे अश्विनौ यद्वा यथा वा येन वा प्रकारेण मनवे प्रजापतये यजमानाय यज्ञं संमिमिक्षथुः संसिक्तवन्तौ युवां कृतवन्तौ एवेदेवमेव कारस्य कण्वगोत्रस्य मम यज्ञं कर्तुं बोधतं । अवगच्छतं । अपि च बृहस्पतिं बृहतां देवानां पतिं देवपुरोहितं विश्वान् सर्वाणिचादीन्देवाँ इंद्राविष्णू चाप्नुहेषसा श्रीघ्राद्यौ । यद्वा ॥ हेवृ शब्दे ॥ श्रीघ्नं सर्वत्र शब्दमानौ स्तूयमानावश्विनौ चाहं ऊवे । आहूये ॥

न्या न्वऽश्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता । ययोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्यायं ॥ ३ ॥

न्या । नु । अश्विना । हुवे । सुऽदंससा । गृभे । कृता । ययोः । अस्ति । प्र । नः । सख्यं ।

देवेषु । अधि । आर्यं ॥ ३ ॥

न्या त्वां पूर्वोक्तगुणावश्विनौ नु चिप्रमहं ऊवे । आहूयामि । कीदृशौ । सुदंससा शोभनकर्माणौ गृभे ग्रहे यद्वायायासाभिर्दत्तानां हविषां स्वीकरणायासम्भं धनदानाय वा कृता कृतौ प्रादुर्भूतौ देवेषु मध्ये ॥ अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ॥ ययोरश्विनोरायमाप्तव्यं नोऽस्माकं सख्यं सखित्वं प्राप्ति प्रभवति उत्कर्षेण वर्तते तौ ऊव इत्यन्वयः ॥

ययोरधि प्र यज्ञा असूरे संति सूरयः ।

ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु ॥ ४ ॥



ययोः । अधि । प्र । यज्ञाः । असूरे । संति । सूरयः ।

ता । यज्ञस्य । अध्वरस्य । प्रचेतसा । स्वधाभिः । या । पिबतः । सोम्यं । मधु ॥ ४ ॥

यद्योरधिगोरधुपरि यज्ञा ज्योतिष्टोमादयः सर्वे यायाः प्र संति प्रभवन्ति । द्विजस्य यज्ञशिरसोऽधियां संधायात् । तथा च यज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यतेऽप्युपक्रम्य तैत्तिरीयकं । तावेतयज्ञशिरः प्रत्यधनां यदाधिगो गृह्यते यज्ञस्य निष्कृते । तै० सं० ६. ४. ९. ५. इति । असूरे खोचरहितेऽपि देशे ययोश्च सूरयः खोतारः संति तावदधिनावध्वरस्य हिंसाप्रत्यवायरहितस्य यज्ञस्य ज्योतिष्टोमादेः प्रचेतसा प्रकष्टं ज्ञातारी स्वधामिर्वहहेतुभिः क्षुतिमिराह्वयामीति शेषः । या यावदधिगो सोम्यं सोममयं मधु मधुरं सोमरसं पिबतः ॥

यद्वाध्विनावपाग्यत्प्राक्स्थो वाजिनीवसू ।

यद्वाध्व्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतं ॥ ५ ॥

यत् । अद्य । अध्विनौ । अपाक् । यत् । प्राक् । स्थः । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।

यत् । दुस्ववि । अनवि । तुर्वशे । यदौ । हुवे । वां । अथ । मा । आ । गतं ॥ ५ ॥

हे अध्विनौ अवेदानीं यद्यवपाक् प्रतीक्षां दिशि स्तः भवथः वर्तेथे । हे वाजिनीवसू अमवसनी यद्यदि प्राक् प्राच्यां दिशि स्तः भवथः । यद्यदि वा द्वाभ्युपगृतिषु चतुर्षु खोतुषु संनिहिती भवथः । एवं सर्वेषु संनिहिती वां युवां ऊवे । अहमाह्वयामि । अथानंतरमेव मा मामा गतं । आगच्छतं ॥

यदंतरिक्षे पतथः पुरुभुजा यत्रेमे रोदसी अनु ।

यद्वा स्वधाभिरधिनिष्ठथो रथमत आ यातमध्विना ॥ ६ ॥

यत् । अंतरिक्षे । पतथः । पुरुऽभुजा । यत् । वा । इमे इति । रोदसी इति । अनु ।

यत् । वा । स्वधाभिः । अधिऽनिष्ठथः । रथं । अतः । आ । यातं । अध्विना ॥ ६ ॥

हे पुरुभुजा बहूनां पालयितारी बह्वक्षहवियो भोक्तारी वा यद्यन्तरिक्षे पतथः भक्ष्यः । यदा यदि वेमे रोदसी आवापृथिव्यावनुलक्ष्य गच्छथः । यद्वा यदि वा स्वधामिरात्रीयैस्त्रिजोभिर्वहैर्वा सार्धं रथमधिनिष्ठथः रथ उपविशथः ॥ अधिशोऽस्त्रासामित्वाधारस्य कर्मसंज्ञा ॥ अतः सर्वस्मात्स्थानात् हे अध्विनौ आ यातं । आगच्छतं ॥ ॥ ३४ ॥

त्वमप इति दशर्चं यष्टं सूक्तं कण्वगोत्रस्य वत्सस्वार्चमापेयं । आद्या प्रतिष्ठागायत्री चष्टकसप्तकवद्धोपेतत्वात् । द्वितीया वर्धमाना यद्भुसप्तकाष्टकोपेतत्वात् । तथा चोक्तं । यद्भुसप्तकाष्टकैव वर्धमाना विपरीता प्रतिष्ठेति । दशमी विष्टुप् शिष्टा गायत्र्यः । तथा चानुकांतं । त्वमपे दश वत्स आपेये नायचेऽंत्वा विष्टुवावा प्रतिष्ठोपाद्या वर्धमानेति ॥ प्रातरनुवाकस्वार्चमापेये कृती गायत्रे छंदस्त्रास्त्रिनश्ले चोक्तमावर्ज्येतसूक्तं । सूच्यते हि । त्वमपे व्रतपा इत्युत्तमामुच्येत । आ० ४. १३. इति ॥ व्रातपत्यामाद्यानुवाक्या । सूचितं च । त्वमपे व्रतपा असि यदो वयं प्रमिनाम व्रतानि । आ० ३. १३. इति ॥

त्वमपे व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वाम् । त्वं यज्ञेष्वीदम् ॥ १ ॥

त्वं । अग्ने । व्रतऽपाः । असि । देवः । आ । मर्त्येषु । आ । त्वं । यज्ञेषु । ईदम् ॥ १ ॥

हे अग्ने देवो द्योतमानस्त्वं मर्त्येष्वाम् मनुष्येषु च दिवेषु च मध्ये व्रतपा असि । व्रतानां कर्मणां रक्षिता भवसि । अतः कारणावज्ञेषु त्वमीदम् । जुत्वोऽसि ॥

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य । अग्ने रथीरध्वराणां ॥२॥

त्वं । असि । प्रशस्यः । विदथेषु । सहन्त्य । अग्ने । रथीः । अध्वराणां ॥२॥

हे सहन्त्य शत्रूणामभिभवितरमे विदथेषु यज्ञेषु त्वं प्रशस्यः सुखोऽसि । अध्वराणां यागानां रथीर्नेता च भवसि ॥

स त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः । अदेवीरग्ने अरातीः ॥३॥

सः । त्वं । अस्मत् । अप । द्विषः । युयोधि । जातवेदः । अदेवीः । अग्ने । अरातीः ॥३॥

हे जातवेदो जातानां वेदितरमे स पूर्वोक्तगुणस्त्वमस्मदस्मत्तो द्विषो द्वेष्टृञ्छत्रूनप युयोधि । पृथक्कुर । अदेवीरासुरीररातीः शत्रुसेनाश्च पृथक्कुर ॥

अंति चित्संतमहं यज्ञं मर्तस्य रिपोः । नोप वेधि जातवेदः ॥४॥

अंति । चित् । संतं । अहं । यज्ञं । मर्तस्य । रिपोः । न । उप । वेधि । जातवेदः ॥४॥

हे जातवेदः अंति चिदंतिकेऽपि संतं भवंतं समीपे विद्यमानमपि रिपोरस्य चोर्मर्तस्य मनुष्यस्य यज्ञं नोप वेधि । अहश्चोऽवधारणे । नैव कामयसे ॥

मर्तो अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे । विप्रासो जातवेदसः ॥५॥

मर्ताः । अमर्त्यस्य । ते । भूरि । नाम । मनामहे । विप्रासः । जातवेदसः ॥५॥

मर्ता मनुष्या विप्रासो मेधाविनो वयं हे अग्ने जातवेदसो जातानां वेदितुरमर्त्यस्य मरणरहितस्य देवस्य भूरि विष्णुतं नाम खोचं मनामहे । धानीमः । कुर्म इति यावत् ॥ ॥३५॥

विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये । अग्निं गीर्भिर्हवामहे ॥६॥

विप्रं । विप्रासः । अवसे । देवं । मर्तासः । ऊतये । अग्निं । गीः । ऽभिः । हवामहे ॥६॥

विप्रासो मेधाविनो मर्तासो मर्ता मनुष्या वयं विप्रं मेधाविनं देवं दानादिगुणयुक्तमग्निमवसे हविर्भिस्त्रि-  
पंचितुमृतयेऽस्माकं रचणार्थं च गीर्भिर्हवामहे । आह्वयामहे ॥

आभिन्नपिकेषुक्येषु तृतीयसवन आ ते वत्स इति वैकल्पिकः खोचियकृचः । सूचितं च । आ ते वत्सो मर्तो यमदापे खूरं रथिं मर । आ० ७. ८. इति ॥

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाश्रितस्थ्यात् । अग्ने त्वांकामया गिरा ॥७॥

आ । ते । वत्सः । मनः । यमत् । परमात् । चित् । सधऽस्थ्यात् । अग्ने । त्वां । कामया । गिरा ॥७॥

हे अग्ने वत्स अपिसे तव मनः परमाश्रित्युत्कृष्टादपि सधस्यात्सहस्रानाद्युलोकादा यमत् । आयमयति । केन साधनेन । त्वांकामया त्वामभिलषन्त्या गिरा सुत्या ॥

पुरुचा हि सदृङ्गसि विशो विश्वा अन्तु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥८॥

पुरुचा । हि । सदृङ् । असि । विशः । विश्वाः । अन्तु । प्रभुः । समत्सु । त्वा । हवामहे ॥८॥

हे अग्ने पुरुचा हि वज्रपु देशेषु त्वं सदृङ्गसि । समानं द्रष्टा भवसि । अत एव विश्वाः सर्वा विशः प्रजा अनुमन्य प्रभुरीश्वरो भवसि । ईदृशं त्वां समत्सु संग्रामेषु रचणार्थं हवामहे । आह्वयामहे ॥



स॒मत्स्व॒मिम॒वसे॒ वाज॒यंतो॑ ह॒वामहे॑ । वा॒जेषु॑ चि॒त्रा॒धसं॑ ॥९॥

स॒मत्स्व॒सु । अ॒ग्निं । अ॒वसे॑ । वा॒ज॒ऽयंतः॑ । ह॒वामहे॑ । वा॒जेषु॑ । चि॒त्रा॒धसं॑ ॥९॥

समत्सु सहमदनेषु संयामेषु वाजयंतो बलमिच्छन्तो वयमवसे रक्षणार्थमग्निं हवामहे । कीदृशं । वाजेषु संयामेषु चित्राधसं चायनीयधनं ।

प्र॒त्नो हि॒ क॒मी॒शो॑ अ॒ध्वरेषु॑ स॒नाश्च॒ होता॒ न॒व्यश्च॒ सत्सि॑ ।

स्वां चा॒ग्ने त॒न्वं पि॒प्रय॑स्वा॒स्मभ्यं॑ च॒ सौ॒भ॒ग॒मा य॑जस्व ॥१०॥

प्र॒त्नः । हि॒ । कं॒ । ई॒शः । अ॒ध्वरेषु॑ । स॒नात् । च॒ । होता॑ । न॒व्यः । च॒ । सत्सि॑ ।

स्वां । च॒ । अ॒ग्ने । त॒न्वं । पि॒प्रय॑स्व । अ॒स्मभ्यं॑ । च॒ । सौ॒भ॒गं । आ॒ । य॑जस्व ॥१०॥

हे अग्ने अध्वरेषु यज्ञेष्वीशः सुख्यत्वं प्रत्नो हि चिरंतनः खलु भवसि । कमिति पूरकः । तथा सनाधिर-  
कालादारभ्य होता देवानामाह्वाता च सन्नव्यः सुख्यश्च सन् सत्सि । यज्ञेषु भिषीदसि । हे अग्ने देवानां  
हविर्वहंस्त्वं स्वां च तन्वमात्मीयं च शरीरं पिप्रयस्व । स्वदीयेन हविर्मन्त्रेण तर्पय । अस्मभ्यं कोतुभ्यश्च सौभगं  
सुभगत्वं चा यजस्व । प्रदेहि ॥ सुभगशब्दाद्भावायै सुभगाभ्यं च इत्युच्चादिषु पाठादङ्गप्रत्ययः ॥ ३६॥

वेदार्थश्च प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थोऽस्तुरो देयाद्विषातीर्षमहेचरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुद्धभूपासनाख्यधुरंधरेण सायणाचार्येण  
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे अक्षंहिताभाष्ये पंचमाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥

॥ श्रीरत्न ॥

॥ कल्याणं भूयान् ॥



ॐ

## ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे । यं बला कृतकृत्याः सुखं गमामि भवाननं ॥  
यस्य निःशसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् । निर्मेमे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

इत्थं पंचमाष्टकं व्याख्यायेदानीमृषिच्छंदोदेवताविनियोगप्रदर्शनपुरःसरं षष्ठस्य प्रथमोऽध्यायो व्याख्या-  
तुमारभ्यते ॥ अष्टममंडलस्य द्वितीयेऽनुवाके षट् सूक्तानि जातानि । य इंद्रेति चयस्त्रिंशद्वचं सप्तमं सूक्तं  
कण्वगोत्रस्य पर्वताख्यस्यार्षमौष्णिह्यमिंद्रं । तथा चानुक्रांतं । य इंद्रं चयस्त्रिंशत्पर्वत औष्णिहं स्मिति ॥ महान्नते  
निकैवस्य औष्णिह्यतृचाशीताविदमादिके द्वे सूक्ते । तथैव पंचमारण्यके सूच्यते । औष्णिही तृचाशीतिर्य इंद्र  
सोमपातम इति सूक्ति । ऐ० आ० ५. २. ५. इति ॥ दशमेऽहनि निकैवस्य आदितः षट्चः शंसनीयाः । सूच्यते  
हि । य इंद्रं सोमपातम इति षकुष्णिहः । आ० ८. १२. इति ॥ आभिप्रविकैवुक्थेषु तृतीयसवने ब्रह्मशस्त्र  
आयस्तृचो वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूचितं च । य इंद्रं सोमपातम इंद्रं नो गधि । आ० ७. ८. इति ॥ तृतीये  
पर्यायेऽच्छावाकशस्त्रेऽप्ययमेव तृचोऽनुरूपः । सूचितं च । इंद्रः सुतेषु सोमेषु य इंद्रं सोमपातमः । आ०  
६. ४. इति ॥

य इंद्रं सोमपातमो मदः शविष्ठं चेतति । येना हंसि न्यचिणं तमीमहे ॥१॥

यः। इंद्रं। सोमपातमः। मदः। शविष्ठं। चेतति। येन। हंसि। नि। अचिणं। तं। इमहे ॥१॥

हे इंद्रं यत्स्वं सोमपातमोऽतिशयेन सोमस्य प्राप्ता । हे शविष्ठं बलवत्तम ॥ श्व इति बलनाम । तस्मा-  
द्विगतादातिशायनिक इष्टम् । विन्मर्तोर्नुक् । टिप्पणः ॥ हे इंद्रं तस्य तव सोमपानजनितो यो मदश्चेतति  
सम्यग्जानाति वृचवधादीनि कार्याणि कर्तुं ॥ य इत्यस्य चेततीत्यनेनापि संबन्धाववृत्तान्नित्यमिति तिङ्  
निहन्त्यते ॥ अथवैतदेवं वाक्यं । हे बलवत्तमिंद्रं सोमपातमः सोमस्य प्रातुतमो यत्स्वं मदः सोमैर्मादयितव्य-  
पर्यायः संक्षेपतः । पुरुषव्यत्ययः । चेतसि सम्यग्जानासि ॥ मदोऽनुपसर्ग इति मदेः कर्मत्वम् । येन सोमपा-  
नजनितेन मदेनाचिणमत्तारं राक्षसादिकं नि हंसि नि हिनस्ति निहृष्टां हिंसं प्रापयसि तं मदं तादृशदोषितं  
त्वं वेमहे । याज्वाकर्मथं । याचामहे । यद्वा । ई गतीं देवादिभ्यः । छांदसो विकरणस्य युक् ॥ ईयामहे ।  
उपगच्छामः । सुतिभिः संमजामहे इत्यर्थः ॥

येना दशग्वमघ्निगुं वेपयंतं स्वर्णरं । येना समुद्रमाविषा तमीमहे ॥२॥

येन। दशग्वं। अघ्निगुं। वेपयंतं। स्वः। अनरं। येन। समुद्रं। आविष। तं। इमहे ॥२॥

हे इंद्रं येन सोमपानजनितेन मदेन दशग्वं । ये दशभिर्मसिः सन्नासनं परिसमाप्य निरगमन् ते दशग्व-  
अंगिरसः । तेषामन्यतममघ्निगुमधृतगमनमनिवारितगतिमेतत्संज्ञं चरिषं वेपयंतं तमांसि चर्ययंतं स्वर्णरं सर्वस्य  
नेतारं सूर्यं चाविष्य वृत्रादेर्दस्त्रोरपनयनेन ररचिष्य । येन च मदेन समुद्रमुदधिमतंरिचं बानिच ररचिष्य ।  
त्वदीयं मदं तद्वतं त्वं वेमहे । याचामहे । मदे हि सति दृष्टः सन्निद्रो बभू धनं प्रयच्छति । अतस्तत्कारणस्य  
मदस्य याज्रोपपत्ता ॥

येन सिंधुं महीरपो रथां इव प्रचोदयः । पंथामृतस्य यातवे तमीमहे ॥३॥

येन। सिंधुं। महीः। अपः। रथान। इव। प्रचोदयः। पंथां। अमृतस्य। यातवे। तं। इमहे ॥३॥

हे इंद्र महीर्महतीरपो बृधुदकानि सिंधुं खंदनशीलां नदीं समुद्रं वा प्रति येन सोमपानजन्येन मदेन प्रबोदयः प्रेरयसि । तच्च वृष्टांतः । रथानिव । यथा रथिभ्यो रथान् स्वाभिलषितदेशगमनाय प्रेरयन्ति तद्वत् । अतस्त्वयश्च पंथां पंथान् मार्गं यातवे यातुं प्राप्तुं तं मदमीमहे । याचामहे ॥

इमं स्तोममभिष्टये घृतं न पूतमद्रिवः । येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ ॥४॥

इमं स्तोमं अभिष्टये घृतं न पूतं अद्रिऽवः । येन नु सद्यः ओजसा ववक्षिथ ॥४॥

हे अद्रिवो वज्रवज्रिन्द्र घृतं न घृतमिव मंचपूतमाव्यमिव पूतं शुक्लमिममसदीयं स्तोमं स्तोत्रं बृधुस्वेति शेषः । किमर्थं । अभिष्टयेऽभिप्रायै । इष्टस्व धनादेरस्माकं लाभार्थेत्यर्थः । येन स्तोत्रेण सुखमानः सन्नोवसा-  
त्कीयेन वलेन सयसदाभीमेव सुतिसमय एव नु धिप्रं ववक्षिथ अस्मान्वहसि अभिलषितं प्रापयसि इमं स्तोममित्यन्वयः ॥

इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्र इव पिन्वते । इंद्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ॥५॥

इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्रऽइव पिन्वते इंद्र विश्वाभिः जूतिऽभिः ववक्षिथ ॥५॥

हे गिर्वणो गिरां सुतीनां संभक्तः यद्वा सुतिभिः संभजनीयेंद्र इमं स्तोमं मया क्रियमाणं जुषस्व । सेवस्व । स च स्तोमः समुद्र इव समुद्रो यथा चंद्रोदयं प्राप्य पिन्वते । वर्धते । अभिधेयस्तेन्द्रगुणगणस्वाधिक्येन तत्प्रतिपादिका सुतिरपि विकृता भवतीत्यर्थः ॥ पूर्वस्यामृचि ववक्षित्वेन युक्तो येनेति शब्दोऽत्रापि सामर्थ्यात्तेन संबध्यते । अत एवास्व तिङ्कृतिक इति निघाताभावः ॥ हे इंद्र येन स्तोमेन हेतुना विश्वाभिर्वि-  
प्ताभिरूतिभी रथाभिर्यवक्षिथ वहसि श्रेयांसस्मान्प्रापयसि ॥ वहेः सगतास्त्रियमंन इति निघेधादामभादे यलि लिटि रूपमेतत् ॥ ॥१॥

यो नो देवः परावतः सखित्वनाय मामहे । दिवो न वृष्टिं प्रथयन्ववक्षिथ ॥६॥

यः नो देवः परावतः सखिऽत्वनाय ममहे दिवः न वृष्टिं प्रथयन् ववक्षिथ ॥६॥

यो नो देवो दानादिगुणयुक्त इंद्रः परावतः परावताहूराद्युलोकादागत्य नोऽस्माकं सखित्वनाय सखि-  
त्वाय मामहे धनानि प्रददौ ॥ मंहतेर्दानकर्मण एतद्रूपं ॥ यद्वा । अस्माभिः पूज्यते ॥ मह पूजायां । अस्माच्छांदसः कर्मणि लिट् ॥ उत्तरार्धर्चः प्रत्यक्षतः । हे इंद्र दिवो न वृष्टिं दिवः सकाशाद्वृष्टिभिव प्रथयन्नसदीयानि धनानि विस्तारयन् यस्त्वं ववक्षिथ अस्मान् वीढुमिच्छसि तादृशं त्वां स्तौमीति शेषः ॥

ववक्षुरस्य कृतव उत वज्रो गभस्त्योः । यत्सूर्यो न रोदसी अवर्धयत् ॥७॥

ववक्षुः । अस्य । केतवः । उत । वज्रः । गभस्त्योः । यत् । सूर्यः । न । रोदसी इति ।

अवर्धयत् ॥७॥

अस्तेन्द्रस्व केतवः प्रज्ञानान्यस्वस्त्युतिविषयाणि । यद्वा । रथ उत्चिन्नाः पताकाः केतवः । ववक्षुः । अवहन् । अस्माच्छ्रेयांसि प्रापयन् । उतापि च गभस्त्योः । बाहुनामेतत् । इंद्रस्व हस्तयोरवस्थितो वज्रश्चावहत् । यद्यदायमिन्द्रः सूर्यो न सर्वस्व प्रेरक आदित्य इव रोदसी बावापृथिव्यौ वृथादिप्रदानेनावर्धयत् तदा-  
नीमित्यर्थः ॥

यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अर्घः । आदित्त इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥८॥

यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषान् अर्घः । आत् । इत् । ते । इन्द्रियं । महि ।

प्र । ववृधे ॥८॥



हे प्रवृद्ध प्रकर्षेण महर्षे हे सत्यते सतामनुष्ठातृणां पालयितरिन्द्र सहस्रं सहस्रसंख्याकाक्यहिषान् । महत्ता-  
मेतत् । महतोऽसुरान् वृचादीन् यदि यदाघः अवधीः ॥ हृतेऽंशं दसमेतद्रूपं । यद्वा । घसु चदने । कुङ्कि-  
सिपि मंचे चसेति त्रिर्गुणः ॥ आदिदन्तरमेव हे इन्द्र ते तवेन्द्रियं धीर्यं महि महद्गुणं सत्यं वावृधे ।  
प्रकर्षेण वर्धते ॥

इन्द्रः सूर्यस्य रश्मिभिर्न्यर्शसानमौषति । अग्निर्वनेव सासहिः प्र वावृधे ॥ ९ ॥

इन्द्रः । सूर्यस्य । रश्मिभिः । नि । अर्शसानं । औषति । अग्निः । वनाऽइव । ससहिः ।

प्र । ववृधे ॥ ९ ॥

अयमिन्द्रः सूर्यस्य सर्वस्य प्रेरकस्यादित्यस्य रश्मिभिः किरणैः करणभूतिरर्शसानं ॥ अतिगुणः शुद्ध । उ०  
२. ८८. । इत्यु गतावित्यस्मादसानचप्रत्ययः शुभागमश्च । अयं केवलोऽप्यतिरारूपपूर्वार्थो द्रष्टव्यः । आरूपपूर्वस्य  
बाधने वर्तते । यथा आर्तिमातोः । शत० १३. १. २. ४. । इति ॥ अर्शसानं बाधमानं मंदेहादिकमसुरं व्योषति ।  
नितरां दहति ॥ उष दाहे ॥ तच्च दृष्टान्तः । अपिर्वनेव । यथा वनारण्यानि दावानलो भस्मसात्करोति तद्वत् ।  
एवं सासहिः शत्रूणामभिभवशोऽहं इन्द्रः प्र वावृधे । प्रकर्षेण वर्धते ॥

इयं तं ऋत्विगावती धीतिरेति नवीयसी । सपर्येतीं पुरुप्रिया मिमीत इत् ॥ १० ॥

इयं । ते । ऋत्विगं वती । धीतिः । एति । नवीयसी । सपर्येतीं । पुरुऽप्रिया ।

मिमीति । इत् ॥ १० ॥

हे इन्द्र ते त्वामियं पुरोवर्तिनी मया क्रियमाणा धीतिः कुतिरेति । गच्छति । कीदृशी । ऋत्विगावती ।  
ऋती वसंतादिकालेऽनुष्ठेयं यज्ञकर्म ऋत्विगं । तद्वती नवीयस्वति शयेनाभिनवा कुतिः । सपर्येती पूजयंती  
पुरुप्रिया पुरु वज्रसं प्रोणयित्री सती मिमीत इत् । इन्द्रगतान् गुणान् परिच्छिन्नत्वेव । माहात्म्यं प्रख्याप-  
यत्येव सेधमित्यन्वयः ॥ अनुमीयमानेन यच्छब्देन च योगात्मिमोत इत्यस्य निघाताभावः । यद्वा । सपर्येती  
पुरुप्रियेतीदमयेतीत्यनेन संबन्धनीयं । अतः पूर्वपदस्य भिन्नवाक्यस्थत्वात् समानवाक्यं युष्मदस्मादादेशा वक्तव्या  
इति वचनात्तदपेक्षया निघाताभावे सत्यभ्यस्तानामादिरित्याबुदात्तत्वं ॥ २ ॥

गर्भो यज्ञस्य देवयुः क्रतुं पुनीत आनुषक् । स्तोमैरिन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत् ॥ ११ ॥

गर्भः । यज्ञस्य । देवऽयुः । क्रतुं । पुनीते । आनुषक् । स्तोमैः । इन्द्रस्य । ववृधे । मिमीति ।

इत् ॥ ११ ॥

यज्ञस्य यष्टव्यस्त्रिंशस्य गर्भो गरिता स्तोता ॥ गृ शब्दे । अतिगुणां भन् ॥ यद्वा ॥ यजेभाव एव नरूप्रत्ययः ॥  
यागस्य गर्भो गृहीतानुष्ठाता । देवयुर्देवं दानादिगुणयुक्तमिन्द्रमात्मन इच्छन्नानुषगनुपक्तमानुपूर्व्येण संततं यथा  
भवति तथा क्रतुं प्रज्ञापकं सोमं पुनीते । दशापवित्रेण शोधयति । इन्द्रपानार्थमिति शेषः । यद्वा । यज्ञस्य  
गर्भो दीक्षितः । पुनर्वा एतमुत्विजो गर्भं कुर्वति । ऐ० ब्रा० १. ३. । इत्यादि ब्राह्मणं । स देवकामः क्रतुं ज्योतिष्टो-  
मादिकमानुषक् । आनुपूर्व्यनामेतत् । यदाह यास्तः । आनुषगिति नामानुपूर्व्यस्य । नि० ६. १४. । इति । स  
स्तोत्रेन्द्रस्य ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ इन्द्रविषयः स्तोमैः स्तोत्रैर्ववृधे । वर्धते । यद्वा । बुधिना प्रयोज्यव्यापारवाचिना  
प्रयोजकव्यापारो ज्ञप्ते । स्तोमैः स्तोत्रैरिन्द्रं वर्धयति । स च स्तोमैर्मिमीत इत् । इन्द्रस्य गुणजातं परिच्छि-  
नत्वेव । अनुगतार्थो गद्यतीत्यर्थः ॥

सुनिर्मिचस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये । प्राची वाशीव सुन्वते मिमीति इत् ॥१२॥  
 सनिः । मिचस्य । पप्रथे । इन्द्रः । सोमस्य । पीतये । प्राची । वाशीव । सुन्वते ।  
 मिमीति । इत् ॥१२॥

मिचस्य मिचभृतस्य स्रोतुः सनिर्धनस्य दतिन्द्रः सोमस्य पीतये पानाय पप्रथे । प्रथितो विसीर्याशरीरो  
 बभूव । यथा पीतो वज्रजः सोम उदरेऽन्तर्भवति तथा प्रवृज्जशरीरो बभूवेत्यर्थः । तत्र प्रथमे दृष्टान्तः । प्राची  
 प्राचन्ती प्रकर्षेण सुतं गुणगणं प्राप्नुवती वाशीव । चाङ्गामेतत् । सुतिरूपा वाक् सुन्वते ॥ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी  
 वक्तव्येति चतुर्थी ॥ सुन्वतः सोमामिषवं कुर्वतो यजमानस्य संबन्धिनी यथा सुत्वगुणवाङ्मयेन विसीर्या  
 भवति तथेन्द्रः पप्रथ इत्यर्थः । प्रथिता च सा मिमीत इत् । इन्द्रमाहात्म्यं यथावत्परिच्छिन्नत्वेव ॥

यं विप्रा उक्थवाहसोऽभिप्रमंदुरायवः । घृतं न पिप्य आसन्नृतस्य यत् ॥१३॥  
 यं । विप्राः । उक्थऽवाहसः । अभिऽप्रमंदुः । आयवः । घृतं । न । पिप्ये । आसनि ।  
 ऋतस्य । यत् ॥१३॥

विप्रा मेधाविन उक्थवाहस उक्थानां शस्त्राणां वोढारः प्रापयितार आयवो मनुष्या यमिन्द्रमभिप्रमंदुः  
 अभि प्रकर्षेण मादयन्ति ॥ सदेव्यत्वेन परस्परं द्विर्वचनपरेण च्छंदसि वेति वचनाद्विर्वचनाभावः ॥ तस्मिन् द्रव्या-  
 मन्वासे ॥ पद्मिन्वादिनास्त्रशब्दस्यासन्नादेशः ॥ घृतं न घृतमिव शुद्धं पिप्ये । सेचनेन वर्धये ॥ प्यायतेऽन्वा-  
 दसो बिट् । बिट्प्रकृत्येति पीमावः ॥ किं तद्विः । ऋतस्य यज्ञस्य संबन्धि यत्सोमलक्षणं हविरस्ति तदित्यर्थः ॥

उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत् । पुरुप्रशस्तमृतयं ऋतस्य यत् ॥१४॥  
 उत । स्वऽराजे । अदितिः । स्तोमं । इन्द्राय । जीजनत् । पुरुऽप्रशस्तं । ऋतये ।  
 ऋतस्य । यत् ॥१४॥

उतापि चादितिरदीना देवमाताखंडनीयस्रोता वा स्वराजे स्वयमेव रावमानयिन्द्राय पुरुप्रशस्तं  
 वज्रममृत्कृष्टं यदा पुरुभिर्वज्रभिः प्रशंसितं स्तोमं स्तोचं जीजनत् । अजीजनत् । अजनयत् । किमर्थं । ऋतये  
 रचयार्थं । यत् स्रोतभृतस्य यज्ञस्य सत्वस्य वा संबन्धि भवति तं स्तोममित्यन्वयः ॥

अभि वह्नयं ऋतयेऽनूषत प्रशस्तये । न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत् ॥१५॥  
 अभि । वह्नयः । ऋतये । अनूषत । प्रऽशस्तये । न । देव । विऽव्रता । हरी इति ।  
 ऋतस्य । यत् ॥१५॥

वह्नयो वोढार ऋत्विज ऋतये रचयार्थं प्रशस्तये प्रशस्त्यर्थं चाभ्यनूषत । इन्द्रमभ्यपुवन् ॥ नु सुतो ।  
 कृटादिः ॥ हे देव दानादिगुणयुक्तेन्द्र । नेति संप्रत्यये । संप्रति विव्रता विविधकर्माणी हरी त्वदीयावन्नापुतस्य  
 यज्ञस्य सत्वस्य वा संबन्धि यत् स्तोचं हविर्वा विद्यते तदभिलक्ष्य त्वां वहत इति शेषः ॥ १३ ॥

यत्सोममिन्द्र विष्णवि यज्ञां घ चित् आशे । यज्ञां मरुत्सु मंदसे समिन्दुभिः ॥१६॥  
 यत् । सोमं । इन्द्र । विष्णवि । यत् । वा । घ । चित्ते । आशे । यत् । वा । मरुत्सु ।  
 मंदसे । सं । इन्दुऽभिः ॥१६॥

हे इन्द्र विष्णवि विष्णां पानार्थमायते सत्वन्वदीये यानि सोमं यद्यदि तेन विष्णुना सार्धं पिबसि । यदा



यदि चाद्येऽयां पुत्रे चित एतत्संज्ञे राजर्षौ यजमाने सोमं पिबसि । चेति पुरयः । यद्वा यदि च मरुतु च सोमपाणाद्यागतेष्वन्वदीये यज्ञे मंदसे मायासि । तथाप्यन्वदीयेरेवेदुभिः सोमैः सं सम्यगमास ॥

यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मंदसे । अस्माकमित्सुते रणा समिंदुभिः ॥१७॥

यत् । वा । शक्र । परावति । समुद्रे । अधि । मंदसे । अस्माकं । इत् । सुते । रण । सं । इंदुभिः ॥१७॥

हे शक्र शक्तेर्द्र परावति परागते दूरदेशे समुद्रे समुद्वनशीले सोमे । अधि सप्तम्यर्धानुवादी । यद्वा यदि वा मंदसे मायासि तथाप्यन्वदीयेरेवेदुभिः सोमैः सतीदुभिः सोमरसैः सं रण । सम्यगमास ॥

यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा यस्य रण्यसि समिंदुभिः ॥१८॥

यत् । वा । असि । सुन्वतः । वृधः । यजमानस्य । सत्पते । उक्थे । वा । यस्य । रण्यसि । सं । इंदुभिः ॥१८॥

हे सत्पते सतां पाद्यायतिरिद्र सुन्वतः सोमामिषं कुर्वतो यजमानस्य यद्वा यदि वा वृधोऽसि वर्धयिता भवसि ॥ वृधेरंतर्णीतस्पर्धादिगुपधक्षणाः कः ॥ यस्य च यजमानस्योक्थे शस्त्रे वा शंसिते सति रण्यसि रमसे । एवमपीदुभिरन्वदीयेरेव सोमैः सम्यगमास ॥

देवंदेवं वोऽवस इंद्रमिंद्रं गृणीषणि । अधा यज्ञाय तुर्वणे आननुः ॥१९॥

देवंदेवं । वः । अवसे । इंद्रंइंद्रं । गृणीषणि । अध । यज्ञाय । तुर्वणे । वि । आननुः ॥१९॥

हे अस्मिन्मयमानाः वो युष्माकमवसे रक्षणाय देवं देवमिंद्रमिंद्रं दानादिगुणयुक्तं । इंद्रो बह्वेषु देशेषु युगपत्प्रवृत्तेषु यागेषु तत्र तत्र हविःसोकरणाद्य बह्वणि शरीराणां दानः स्वयमेकोऽप्यनेकः संज्ञा च तत्र संग्रहश्चेति । तथा च निगमांतरं । इंद्रो मायाभिः पुररूप ईयते । ऋ० ६. ४७. १८. । इति । तदपेक्षयेयं वीप्सा । बह्व विमज्ज वर्तमानं सर्वं तमिंद्रं गृणीषणि । अहं सोमि ॥ गुणातेर्षिर्हि अहं समेतद्रूपं ॥ यद्वा । कारकमेधैतत् । गृणीषणि सवनेच्छायां सतां । अधानंतरं सर्वमिंद्रं मदीयाः सुतयो व्याननुः । व्यानुवति । किमर्थं । तुर्वणे तूर्णं संभजनाय यज्ञाय यागार्थं । यद्वा । क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतूर्णी । यच्च यष्ट्यं तुर्वणे शत्रूणां हिंसितारं तूर्णसंभजनं वा ॥

यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं सोमेभिः सोमपातमं । होचाभिरिंद्रं वावृधुर्नानुः ॥२०॥

यज्ञेभिः । यज्ञवाहसं । सोमेभिः । सोमपातमं । होचाभिः । इंद्रं । ववृधुः । वि ।

आननुः ॥२०॥

यज्ञेभिर्यज्ञेयमानसाधनेर्हविर्मियज्ञवाहसं यज्ञे वोढव्यं प्रापणीयं यज्ञेयमियज्ञानां यजमानानां फलस्य प्रापयितारं वा । यद्यवा यज्ञवाहसं यज्ञेन प्राप्यं । न केवलमेकेन यज्ञेनापि तु सर्वैरित्याह यज्ञेभिरिति । एवं सोमेभिः सोमपातमं सर्वेषां सोमानां पातुतममिंद्रं होचाभिः सुतिभिर्वावृधुः । सोतारो वर्धयति । तास्य क्रियमाणाः सुतयो व्याननुः । तमिंद्रं व्यानुवति च ॥ अत्रोतिर्व्यत्ययेन परकीपदं ॥ ४॥

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । विश्वा वसूनि दाप्नुषे आननुः ॥२१॥

महीः । अस्य । प्रणीतयः । पूर्वीः । उत । प्रशस्तयः । विश्वा । वसूनि । दाप्नुषे ।

वि । आननुः ॥२१॥

अस्येन्द्रस्य प्रणीतयः प्रणयनानि धनानां प्रकृष्टप्रापणानि महीर्महत्तो महाति भवन्ति । उतापि चास्य प्रशस्तयः प्रशंसनीयाः कीर्तयः पूर्वोर्वह्यो विष्कृततमा भवन्ति । ता उभयविधा दाग्वे चरुपुरोडाशादीनि दत्तवन्ते यजमानाय दातुं विद्या विश्वानि सर्वाणि वसूनि धनानि व्यानयुः । व्याप्नुवन्ति ॥

इंद्रं वृचाय हंतवे देवासो दधिरे पुरः । इंद्रं वाणीरनूषता समोजसे ॥ २२ ॥

इंद्रं वृचाय हंतवे देवासः । दधिरे पुरः । इंद्रं वाणीः । अनूषत । सं । ओजसे ॥ २२ ॥

देवासो देवा वृचाय हंतवे वृचमावरकमसुरं हंतुं ॥ हतेऽसुमर्थे तथेन्द्रप्रत्ययः ॥ इममिंद्रं पुरो दधिरे । पुर-  
स्तात्स्वामित्वेनाधारयन् । वाणीर्वीण्यः स्तुतिरूपा वाचश्चेममेवेन्द्रमनूषत । सुवन्ति । किमर्थं । सं समीचीना-  
योजसे बलार्थं । यथा वृचवधानुगुणमुत्कृष्टं बलमस्य जायते तथा सुवन्तीत्यर्थः ॥

महांतं महिना वयं स्तोमेभिर्हवन्श्रुतं । अर्केरभि प्र णोनुमः समोजसे ॥ २३ ॥

महांतं । महिना । वयं । स्तोमेभिः । हवन्ऽश्रुतं । अर्केः । अभि । प्र । नोनुमः । सं ।

ओजसे ॥ २३ ॥

महिना महिना महान्तं सर्वेभ्योऽधिकं हवन्श्रुतं हवन्स्याङ्गानस्य ओतारमिंद्रं वयं स्तोमेभिः स्तोमेस्त्रि-  
वृत्पंचदशादिभिरर्केरर्चनसाधनैः शस्त्रैश्चामि प्र णोनुमः । अभिमुख्येन प्रकर्षेण पुनःपुनः सुमः ॥

न यं विविक्तो रोदसी नांतरिक्षाणि वज्रिणं । अमादिदस्य तित्विषे समोजसे ॥ २४ ॥

न । यं । विविक्तः । रोदसी इति । न । अंतरिक्षाणि । वज्रिणं । अमात् । इत् । अस्य ।

तित्विषे । सं । ओजसे ॥ २४ ॥

यं वज्रिणं वज्रवन्तमिंद्रं रोदसी आवापृथिव्यां न विविक्तः न पृथक्कृतः स्वसमीपात्पृथक्कर्तुं न शक्नुतः ।  
आवापृथिव्यां व्याप्य य इंद्रो वर्तत इत्यर्थः ॥ विचिरं पृथग्भावे ॥ अंतरिक्षाणंतरा चांतानि आवापृथिव्योर्वर्त-  
मानानि गंधर्वादीनां स्थानानि च यं न पृथक्कुर्वन्ति । अस्तेन्द्रस्यामादित् । अमति वज्रति शत्रून्नेनेत्यमो बलं ।  
यत्नादेव तित्विषे । सर्वं जगद्दीप्यते । किमर्थं । ओजसो बलस्य संगमाय ॥ यदा । ओजःशब्दाद्विहितस्य विभो  
वज्रं कंदसीति लुक् ॥ ओजस्विनो बलवतोऽस्तेन्द्रस्तेति योज्यं । समित्युपसर्गः स तित्विष इत्यनेन संबध्यते ॥

षोडशशस्त्रे यदिंद्रं पृतनाज्ये इति वृचः । सूच्यते हि । यदिंद्रं पृतनाज्येऽयं ते असु हर्यत इत्यीष्णिहवार्हतौ  
तुषौ । आ० ६. २. इति ॥

यदिंद्रं पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः । आदित्रे हर्यता हरीं ववक्षतुः ॥ २५ ॥

यत् । इंद्रं । पृतनाज्ये । देवाः । त्वा । दधिरे । पुरः । आत् । इत् । ते । हर्यता । हरी इति ।

ववक्षतुः ॥ २५ ॥

हे इंद्रं पृतनाज्ये । संयामनामेतत् ॥ पृतनाः सेना अजन्ति गच्छन्त्यग्निमिति वा पृतना जीयतेऽचेति वा  
पृतनाज्यं संयामः ॥ तत्र त्वा त्वां यद्यदा देवाः पुरो दधिरे वृचहवनाय पुरतोऽधारयन् आदिदन्तरमेव  
हर्यता हर्यतां कार्ता । हर्य गतिकांत्योः । शृमद्दृशीत्यादीनां आदिकोऽतत्प्रत्ययः ॥ इंद्रशौ हरी यद्यौ ते त्वां  
ववक्षतुः । अवहतां ॥ ५ ॥

यदा वृचं नदीवृत्तं शर्वसा वज्रिन्नवधीः । आदित्रे हर्यता हरीं ववक्षतुः ॥ २६ ॥

यदा । वृचं । नदीऽवृत्तं । शर्वसा । वज्रिन् । अवधीः । आत् । इत् । ते । हर्यता ।

हरी इति । ववक्षतुः ॥ २६ ॥



हे वज्रिन् वज्रवज्रिन्द्र नदीवृत्तं । नदनामस्य आपः । श्रूयते हि । अहावन्दता इति तस्यादा नदी जान  
ख । तौ सं ५. ६. १. २ । इति । ता आवृष्यंतं वृषमवर्षयशीलं मेघमसुरं वा यदा यस्मिन्नास्ति श्रवसा नक्षेना-  
वधीः अहिंसोः । शिष्टं समानं ॥

यदा ते विष्णुरोजसा चीणिं पदा विचक्रमे । आदिक्षे हर्यता हरीं ववक्षतुः ॥ २७ ॥  
यदा । ते । विष्णुः । ओजसा । चीणिं । पदा । विऽचक्रमे । आत् । इत् । ते । हर्यता ।  
हरी इति । ववक्षतुः ॥ २७ ॥

हे इंद्र ते तवानुजो विष्णुर्वापनशीलो देव ओजसा नक्षेन यदा यस्मिन्नास्ति चीणिं पदानि पदचयकृत्येण  
चीर्होक्ताय विचक्रमे विक्रांतवान् परिच्छिन्नवान् । गतमन्यत् ॥

यदा ते हर्यता हरीं वावृधाते दिवेदिवे । आदिक्षे विष्वा भुवन्नानि येमिरे ॥ २८ ॥  
यदा । ते । हर्यता । हरी इति । ववृधाते इति । दिवेऽदिवे । आत् । इत् । ते । विष्वा ।  
भुवन्नानि । येमिरे ॥ २८ ॥

हे इंद्र तदीयो हर्यता हर्यतीं कांती हरी हरणशीलावधौ दिवे दिवे प्रतिदिवसं यदा यस्मिन्नास्ति  
वावृधाते प्रवृद्धौ बभूवतुः आदिद्वन्तरमेव तया विष्वा विस्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि येमिरे ।  
निधम्यन्ति स्म ॥

यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे । आदिक्षे विष्वा भुवन्नानि येमिरे ॥ २९ ॥  
यदा । ते । मारुतीः । विशः । तुभ्यं । इंद्र । निऽयेमिरे । आत् । इत् । ते । विष्वा ।  
भुवन्नानि । येमिरे ॥ २९ ॥

हे इंद्र तुभ्यं तदर्थं मारुतीर्मारुतो मरुद्रूपास्ते तदीया विशः प्रजा यदा यस्मिन्नास्ति नियेमिरे  
निधम्यन्ति भूतजातानि । अन्यन्नतं ॥

यदा सूर्यममुं दिवि शुकं ज्योतिरधारयः । आदिक्षे विष्वा भुवन्नानि येमिरे ॥ ३० ॥  
यदा । सूर्यं । अमुं । दिवि । शुकं । ज्योतिः । अधारयः । आत् । इत् । ते । विष्वा ।  
भुवन्नानि । येमिरे ॥ ३० ॥

हे इंद्र तमुं विप्रकृष्टं शुकं निर्मलं ज्योतिर्द्योतमानं सूर्यं सर्वस्य प्रेरकं शोभनवीर्यं वादिष्यं दिवि बुलोकै  
अकतः प्रकाशनाय यदा यस्मिन्नास्तिऽधारयः धारितवानस्ति । समानमन्यत् ॥

इमां त इंद्र सुदृतिं विप्रं इयति धीतिभिः । जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥ ३१ ॥  
इमां । ते । इंद्र । सुऽदृतिं । विप्रः । इयति । धीतिभिः । जामिं । पदाऽइव ।  
पिप्रतीं । प्र । अध्वरे ॥ ३१ ॥

हे इंद्र विप्रो मेधावी सोताध्वरे यत्र इमां पुरोवर्तिनीं पिप्रतीं पूजयन्तीं प्रीणयन्तीं वा सुदृतिं शोभनां  
सुतिं धीतिभिः कर्मभिः परिचरतिः सार्धं ते तां प्रेरयति । प्रगमयति । जामिं पदेव यथा वंशुभूतं पुण्यमुत्तु-  
ष्टानि पदानि क्षानानि प्रापयति तद्वत् ॥

यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन् । नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ॥३२॥  
यत् । अस्य । धामनि । प्रिये । संऽईचीनासः । अस्वरन् । नाभा । यज्ञस्य । दोहना ।  
प्र । अध्वरे ॥३२॥

अध्वरे यज्ञेऽस्त्रिंश्रस्य धामनि स्थाने तेष्वसि वा प्रिये प्रीणयितव्ये सति समीचीनासः संगताः सोतारो  
यद्यदा प्रास्वरन् प्रकर्षेणानुवन् ॥ स्रु शब्दोपतापयोः ॥ अयाकिंश्रस्य प्रिया धामानीति हि निगमः ।  
कस्मिन्देहे । नामा नामौ पृथिव्या नामिस्त्राणीये मध्ये यज्ञस्य यजनसाधनस्य सोमस्य दोहना दोहने  
दोहनाधिकारणेऽभिषवस्थाने । वेद्यामित्यर्थः । तदानीं धनं प्रदेहीत्युत्तरच संबंधः ॥

सुवीर्यं स्वर्ध्वं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः । होतैव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥३३॥  
सुऽवीर्यं । सुऽअर्ध्वं । सुऽगव्यं । इन्द्र । दद्धि । नः । होताऽइव । पूर्वऽचित्तये । प्र ।  
अध्वरे ॥३३॥

सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं स्वर्ध्वं शोभनेनाश्वसंघेन च युक्तं सुगव्यं शोभनगोसंघयुक्तं च धनं हि इन्द्र  
नोऽस्वार्धं दद्धि । ददस्व ॥ दद दाने । अनुदानेत् । व्यत्ययेन परस्मैपदं । कांसः शपो सुक् ॥ अहं चाध्वरे  
यानि होतैव यथा मानुषो होतर्त्विक् सीति एवमेव पूर्वचित्तये पूर्वप्रदानाधान्येभ्यः सोतुभ्यः पूर्वमेवासात्सो-  
चपरिज्ञानाय प्राशंसिषमिति शेषः ॥ ६॥ ॥२॥

तृतीयेऽनुवाकेऽष्ट सूक्तानि । तर्चेन्द्रः सुतेष्विति चयस्त्रिंशद्वचं प्रथमं सूक्तं काश्यपस्य नारदस्वार्धमौष्णि-  
हमेन्द्रं । तथा चानुक्रांतं । इन्द्रः सुतेषु नारद इति ॥ महाप्रते निष्केवत्य औष्णिहनुचाशीतौ पूर्वसूक्तेन सहोक्तौ  
विनियोगः ॥ तृतीये पर्यायेऽच्छावाकस्य इन्द्रः सुतेष्विति तृचः सोचियः । सूच्यते हि । इन्द्रः सुतेषु सोमेषु च  
इन्द्र सोमपातमः । आ० ६-४-१ इति ॥

इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यं । विदे वृधस्य दक्षसो महान् हि षः ॥१॥  
इन्द्रः । सुतेषु । सोमेषु । क्रतुं । पुनीते । उक्थ्यं । विदे । वृधस्य । दक्षसः । महान् ।  
हि । सः ॥१॥

सोमेषु सुतेष्वभिपुतेषु सत्स्विन्द्रस्त्वानीत्वा क्रतुं कर्मणां कर्तारमुक्थ्यं सोतारं च पुनीते । शोधयति ।  
यद्वा । सोमेष्वभिपुतेषुक्थ्यां क्रतुं यागं तेः सोमैः पुनीते । यजमानैः पूतं कारयति । किमर्थं । वृधस्य  
वर्धकस्य दक्षसो बलस्य विदे सामाय । स तादृश इन्द्रो महान् हि महान् खलु । अत एव क्रतुं शक्नो-  
तीति भावः ॥

स प्रथमे व्योमनि देवानां सदर्ने वृधः । सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥२॥  
सः । प्रथमे । विऽव्योमनि । देवानां । सदर्ने । वृधः । सुऽपारः । सुऽश्रवःऽतमः ।  
सं । अप्सुऽजित् ॥२॥

स इन्द्रः प्रथमे प्रथिते विस्तीर्णे मुखे वा व्योमनि विशिष्टे रचके देवानां सदर्ने । सीदत्यस्मिन्निति सदर्नं  
स्थानं स्वर्गाख्यं । तच्च स्थितः सन् वृधो यजमानानां वर्धयिता च भवति । तथा सुपारः सुष्ठु पारयिता  
प्रारब्धस्य सम्यक्परिसमापयिता सुश्रवस्तमः । अतिशयेन शोभनं श्रवोऽङ्गं यशो वा यस्य स तथोक्तः । सं  
सम्यगप्सुजित्पूदकेषु प्राप्तेषु सत्सु तद्विचातिनो वृषादेर्जेता । यद्वा । आप रत्यंतरिचनाम । अंतरिचे वर्तमा-  
नानाममुराणां जेता । तमइ इत्युत्तरच संबंधः ॥



तमङ्गे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणं । भवा नः सुप्ते अंतमः सखा वृधे ॥३॥  
तं । अङ्गे । वाजसातये । इन्द्रं । भराय । शुष्मिणं । भव । नः । सुप्ते । अंतमः ।  
सखा । वृधे ॥३॥

तं पूर्वोक्तगुणं शुष्मिणं वक्ष्यंतमिन्द्रं वाजसातये वक्षानामन्नानां वा सातिर्ब्रामो यस्मिन् तादृशाय भराय  
संधामाय । यद्वा । धियते तस्मिन् हवींषीति मरो यच्चः । प्रायेण संधामनामानि यक्षनामत्वेन च दृश्यते ।  
भराय यच्चार्यं । अङ्गे । आङ्गे । क्षिपिस्त्रिचिद्वस्त्रात्मनेपदेऽन्वतरस्यामिति द्रव्यतेऽङ्गादसे ऋक् छुरकादेशः ।  
हे इन्द्र त्वं सुप्ते सुखे धने वा क्षिप्सि सति नोऽस्याकर्मन्तमोऽतिक्रमः संनिष्ठतमो भव । तमे तादेत्येवंति-  
यशब्दस्य तादिलोपः ॥ तथा वृधे वर्धनार्थं च सखा समानस्त्वानो मित्रमृतो भव ॥

इयं तं इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः । मंदानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥४॥  
इयं । ते । इन्द्र । गिर्वणः । रातिः । क्षरति । सुन्वतः । मंदानः । अस्य । बर्हिषः ।  
वि । राजसि ॥४॥

हे गिर्वणो गोभिः क्षुतिभिर्वननीय संमजनीयेन्द्रं ते तुभ्यं स्वदर्शमियं पुरोवर्तिनी सुन्वतः सोमामिषं  
कुर्वती यजमानस्य संबंधिनी रातिर्बर्हिषिर्मदीयमाना सोमाङ्गतिः क्षरति । आहवनीयं प्रति गच्छति ।  
त्वं च तथा मंदानो मंदमानो मोदमानस्तृण्यन्नस्य बर्हिषो यज्ञस्य वि राजसि । विशेषेणेशिवे । राज-  
तिरेत्यर्थकर्म ॥

नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत्त्वा सुन्वत ईमहे । रयिं नश्चिचमा भरा स्वर्विदै ॥५॥  
नूनं । तत् । इन्द्र । दद्धि । नः । यत् । त्वा । सुन्वतः । ईमहे । रयिं । नः । चिचं । आ ।  
भर । स्वःऽविदै ॥५॥

हे इन्द्र नूनमवशं तद्यज्ञं नोऽस्मभ्यं दद्धि । ददस्व । दद दाने । अत्ययेन परस्मैपदं । आंदसः प्रपो जुक् ।  
यद्यज्ञं त्वा त्वां सुन्वतः सोममभिपुष्यंतो ययमीमहे । अपि च चिचं चायनीयं स्वर्विदै सर्वस्य संमत्तं यद्वा  
स्वर्गस्य वेदितारमाश्रितं रयिं पुत्रं नोऽस्मभ्यमा भर । आहर ॥ ॥७॥

स्तोता यत्ने विचर्षणिरतिप्रशर्धयन्निरः । वया इवानु रोहते जुषंत यत् ॥६॥  
स्तोता । यत् । ते । विऽचर्षणिः । अतिऽप्रशर्धयत् । गिरः । वयाऽइव । अनु ।  
रोहते । जुषंत । यत् ॥६॥

हे इन्द्र विचर्षणिविशेषेण द्रष्टा स्तोता ते तुभ्यं स्वदर्शं गिरः क्षुतीर्ययदातिप्रशर्धयत् अतिशयेन प्रशर्ध-  
यिनीरकरोत् । शत्रूणां प्रसहनसमर्थाः ॥ शृधु प्रसहणे ॥ यद्यदा च ता विरो जुषंत त्वामसेवंत अप्रीययन्वा  
तदा वया इव शाखा इव यथैकस्मिन्वृषे वयाः शाखा उपरि प्ररोहति तथानु रोहते । क्षुत्वा सर्वे गुणा-  
स्त्वयि प्ररोहति ॥

प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधी जरितुह्वं । मदेमदे ववक्षिषा सुकृत्वने ॥७॥  
प्रत्नऽवत् । जनय । गिरः । शृणुधि । जरितुः । हव । मदेऽमदे । ववक्षिष । सुऽकृत्वने ॥७॥

हे इन्द्र प्रत्नवत् पुरा यथा स्तोतुभ्योऽपेक्षितफलप्रदानेन क्षुतीर्जनयसि एवमिदानीमपि गिरः क्षुतीर्जनय ।

उत्पादय । वरिणुः सोतुर्हवमाद्धानं च शुशुधि । शुशु । जानीहि । तावृशस्त्वं मदे मदे सोमेन तर्पणे तर्पणे  
मति सुकृत्वने शोभनकर्त्तुं यजमानाय ववक्षिष । अपेक्षितं फलं वहसि । ददासीत्वर्थः ॥

क्रीळंत्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः । अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः ॥ ८ ॥  
क्रीळन्ति । अस्य । सूनृताः । आपः । न । प्रवता । यतीः । अया । धिया । यः ।  
उच्यते । पतिः । दिवः ॥ ८ ॥

अखेन्द्रस्य सूनृताः प्रियसत्त्वात्मिका वाचः क्रीळन्ति । विहरन्ति । तत्र दृष्टान्तः । प्रवता प्रवणेन मार्गेण  
यतीर्गच्छन्त्य आपो नाप इव । यथा निम्नोन्नतेन पथा गच्छन्त्य आप उत्पतननिपतनेन विहरन्ति तद्वत् । दिवः  
स्वर्गस्य पतिः पालयिता य इन्द्रोऽयानया धिया सुलोच्यते प्रतिपाद्यते अखेन्द्रस्तेत्यन्वयः ॥

उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इवशी । नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण ॥ ९ ॥  
उतो इति । पतिः । यः । उच्यते । कृष्टीनां । एकः । इत् । वशी । नमः । वृधैः । अवस्युः ।  
सुते । रण ॥ ९ ॥

उतो अपि च वशी वशयितैक इदेक एव कृष्टीनां मनुष्याणां पतिः पालयितेति य इन्द्र उच्यते । किः ।  
नमोवृधैर्नमसा सोमिण इधिवा वा वर्धयितुमिरवस्युमी रचणेच्छुभिः स त्वं पूर्वोक्ते सुतेऽभिपुते सोमे रण ।  
रमस्व । यद्वा । हे सोतः तमिन्द्र सुते सोमे शुहि । रणतिः शब्दार्थः ॥

स्तुहि श्रुतं विपश्चितं हरी यस्य प्रसृक्षिणा । गंतारा दाशुषो गृहं नमस्विनः ॥ १० ॥  
स्तुहि । श्रुतं । विपः । चितं । हरी इति । यस्य । प्रसृक्षिणा । गंतारा । दाशुषः ।  
गृहं । नमस्विनः ॥ १० ॥

हे सोतः विपश्चितं विशिष्टज्ञानं श्रुतं विष्णुतं प्रख्यातं तमिन्द्र शुहि । प्रशंस । अखेन्द्रस्य हरी अश्वी  
प्रसृक्षिणा शत्रूणां प्रसहनशीली नमस्विनो इविष्मतो दाशुषो दत्तयतो यजमानस्य गृहं गंतारा गमनशीली  
च तमिन्द्र शुहीति संबंधः ॥ गमेक्षाच्छीलिकशृणु ॥ ॥ ८ ॥

तूतुजानो महेमतेऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः । आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते ॥ ११ ॥  
तूतुजानः । महेऽमते । अश्वेभिः । प्रुषितप्सुऽभिः । आ । याहि । यज्ञं । आशुऽभिः ।  
शं । इत् । हि । ते ॥ ११ ॥

हे महेमते । महते फलाय मतिर्बुद्धिर्यस्मासौ महेमतिः ॥ अनुक् क्वांदसः ॥ स तावृश हे इन्द्र तूतुजानस्त्व-  
रमासः सन् प्रुषितप्सुभिः स्निग्धरूपैराशुभिः शीघ्रगामिभिरश्वेभिरधैर्यजमसादीयमा याहि । आगच्छ । हि  
यस्मान्ते तव तस्मिन्वज्रे शमित् सुखं विद्यत एव अत आगच्छेत्यर्थः ॥

इंद्रं शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सुं धारय । अवं सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं ॥ १२ ॥  
इंद्रं । शविष्ठ । सत्पते । रयिं । गृणत्सुं । धारय । अवं । सूरिऽभ्यः । अमृतं ।  
वसुऽत्वनं ॥ १२ ॥

हे शविष्ठ बलवत्तम सत्पते सतां पालयितरिन्द्र गृणत्स्वस्मासु रयिं धनं धारय । अवस्थापय । अपि च  
सूरिभ्यः सोतृभ्योऽमृतमनश्चरं वसुत्वनं आप्तिमच्छ्रवोऽन्नं यशो वा देहीति शेषः ॥



हवे त्वा॒ सूर॒ उदिते॒ हवे॒ मध्यंदिने॒ दिवः । जुषा॒ण इन्द्र॒ सन्निभिर्न॒ आ गहि ॥ १३ ॥  
हवे॒ । त्वा॒ । सूरै॒ । उत॒ऽइते॒ । हवे॒ । मध्यंदिने॒ । दिवः । जुषा॒णः । इन्द्र॒ । सन्नि॒ऽभिः ।  
नः । आ । गहि ॥ १३ ॥

हे इन्द्र सूर्य उदित उदयं प्राप्ति सति प्रातःसवने त्वां हवे । आह्वये । तथा दिवो दिवसस्य मध्यंदिने मध्यभागे मध्यंदिनसवने त्वां हवे । आह्वये । हे इन्द्र स त्वं जुषाणः प्रीयमाणः सन् सन्निभिः सर्पणशीलैर-  
चिर्नोऽस्माना गहि । आगच्छ ॥

आ तू गहि॒ प्र तु॒ द्रव॒ मत्स्वा॒ सुतस्य॒ गोम॑तः । तंतुं॑ तनुष्व॒ पूर्ण्य॑ यथा॒ विदे ॥ १४ ॥  
आ । तु । गहि । प्र । तु । द्रव । मत्स्व । सुतस्य । गो॒ऽम॑तः । तंतुं । त॒नुष्व । पूर्ण्य॒ । यथा॒ । विदे ॥ १४ ॥

हे इन्द्र तु चिम्रमा गहि । आगच्छ । आगत्य च तु चिम्रं प्र द्रव । सोमो यत्र भिषसति तं देशं प्रति शीघ्रं गच्छ । गत्वा च गोमतो गोपिकारैः पयःप्रभृतिभिः अयणद्रव्यैर्युक्तस्य सुतस्याभिपुतस्य सोमस्य पानेन मत्स्व । माव । हृष्टो भव । तदन्तरं यथाहं विदे उपलभे तथा पूर्ण्य पूर्णैः कृतं तंतुं विस्तृतं यथा तनुष्व । सम्बन्धिष्यादय । फलोत्पादनसमर्थं कुर्वित्वयः ॥

यच्छ॒क्रासि॑ परा॒वति॒ यद॑र्वा॒वति॑ वृच॒हन् । यद्वा॑ समु॒द्रे अ॒धंसो॑ऽविते॒दसि ॥ १५ ॥  
यत् । श॒क्र । अ॒सि । परा॒ऽव॑ति । यत् । अ॒र्वा॒ऽव॑ति । वृच॒ऽह॑न् । यत् । वा । स॒मु॒द्रे ।  
अ॒धंसः । अ॒वि॒ता । इत् । अ॒सि ॥ १५ ॥

हे शक्र शक्तेन्द्र परावति दूरदेशे यद्यवसि भवसि । हे वृचहन् यद्यदि वावावति समीपे भवसि वर्तसे । यद्वा यदि वा समुद्रे जलधावन्तरिक्षे वा वर्तसे । तस्मात्सर्वस्मात्स्थानादागत्याधंसोऽस्य सोमलक्षणस्य पानेनावितासि । रक्षिता भवसि ॥ १५ ॥

इन्द्रं॑ वर्ध॒तु नो॒ गिर॒ इन्द्रं॑ सु॒तास॒ इन्द्र॑वः । इन्द्रं॑ ह॒विष्म॑ती॒र्विशो॑ अ॒राणि॑षुः ॥ १६ ॥  
इन्द्रं॑ । वर्ध॒तु । नः । गिरः । इन्द्रं॑ । सु॒तासः । इन्द्र॑वः । इन्द्रं॑ । ह॒विष्म॑तीः । विशः ।  
अ॒रा॒णि॑षुः ॥ १६ ॥

नोऽस्माकं गिरः क्षुतिरूपा वाच इन्द्रं वर्धतु । वर्धयंतु । सुतासोऽभिपुता इन्द्रवः सोमाश्चासदीयास्तमिन्द्रं वर्धयंतु । हविष्मतीर्हविष्मत्त्वो हविर्मिषश्च पुरोडाशादिभिर्युक्ता विशः प्रजास्तस्मिन्निन्देऽराणिषुः । अरसिषुः ॥

तमि॒न्द्रि॒मा अव॑स्य॒वः प्र॒वत्त॑तीभि॒रु॒तिभिः॑ । इन्द्रं॑ क्षो॒णीर॑वर्ध॒यन्व॒या इव ॥ १७ ॥  
तं । इत् । वि॒प्राः । अव॑स्य॒वः । प्र॒वत्त॑तीभिः । उ॒ति॒ऽभिः॑ । इन्द्रं॑ । क्षो॒णीः । अव॑र्ध॒यन् ।  
व॒याःऽइ॒व ॥ १७ ॥

विप्रा मेधाविनोऽवस्यवो रक्षणकामाः क्षीतारस्तमिन्मेवेन्द्रं प्रवत्ततीभिः प्रकर्षणाभिगंभीमिरुतिभिरु-  
तिभिरावृतिभिः क्षुतिभिर्वा वर्धयन्ति । तथा क्षोणीः क्षोणः । क्षोणीति पृथिवीनाम । तदुपलक्षिताः सर्वे लोका वया इव वृक्षस्य शाखा इव तदधीनाः संतोऽवर्धयन् । वर्धयन्ति ॥

चिकद्गुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमन्तत । तमिद्धं नो गिरः सदावृधं ॥ १८ ॥

चिऽकद्गुकेषु । चेतनं । देवासः । यज्ञं । अन्तत । तं । इत् । वर्धंतु । नः । गिरः ।  
सदाऽवृधं ॥ १८ ॥

चिकद्गुकेषु । चिकद्गुका नाम ज्योतिर्गौरायुरिति चीष्णामिहविकान्यहानि । तेषु देवासो देवाश्चेतनं  
चेतयितारमिद्धं यज्ञं यष्टव्यमन्तत । अन्तन्वत । अकृषत ॥ तनोतेर्लङि च्छांदसो विकरणस्य लुक् । तनिपत्यो-  
म्छंदसीत्युपधासोपः ॥ तमित्तमेवेद्धं नोऽस्माकं गिरः क्षुतयस्य वर्धयंतु । कीदृशं । सदावृधं सर्वदा क्षीतृणां  
वर्धयितारं ॥

स्तोता यत्ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दधे । शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥ १९ ॥

स्तोता । यत् । ते । अनुऽव्रतः । उक्थानि । ऋतुऽथा । दधे । शुचिः । पावकः । उच्यते ।  
सः । अद्भुतः ॥ १९ ॥

हे इंद्र यद्यस्य ते तव स्तोताशुव्रतोऽनुकूलकर्मा सन्नृतुथा ऋतुषु काले काल उक्थानि शस्त्रादि दधे  
विधत्ते करोति ॥ क्षोपस्य आत्मनेपदेऽपि तलोपः ॥ परोऽर्धर्चः परोचकृतः । स इंद्रोऽद्भुत आश्चर्यभूतः  
शुचिः शुद्धः पावकोऽन्येषामपि शोधक उच्यते । स्तोतुमिः स्तूयते ॥

तदिदुद्रस्य चेतति यद्गं प्रत्नेषु धामसु । मनो यच्चा वि तद्दधुर्विचेतसः ॥ २० ॥

तत् । इत् । रुद्रस्य । चेतति । यद्गं । प्रत्नेषु । धामऽसु । मनः । यच् । वि । तत् । दधुः ।  
विऽचेतसः ॥ २० ॥

तदित्तेदेव रुद्रस्य । रुद्रः खं । तस्य द्रावयितुरीश्वरस्य यद्गमपत्यं मरुत्संघातकं । यद्वा : रुद्रशब्देन  
सचयथा मरुत्रण उच्यते । रुद्रस्य रुद्रपुत्रस्य मरुत्रणस्य यद्गं । महन्नामैतत् । महत्तदेव बलं प्रत्नेषु चिरंतनेषु  
धामसु पृथिव्यादिस्थानेषु चेतति । ज्ञायते । वर्तते । यच् यस्मिन्बलविषये विचेतसो विशिष्टज्ञानाः स्तोता-  
रस्तत्प्रसिद्धं मनो मननसाधनं स्तोत्रं वि दधुः कुर्वन्ति तदित्यन्वयः ॥ ॥ १० ॥

यदि मे सख्यमावर इमस्य पाह्यंधसः । येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥ २१ ॥

यदि । मे । सख्यं । आऽवरः । इमस्य । पाहि । अंधसः । येन । विश्वाः । अति ।  
द्विषः । अतारिम ॥ २१ ॥

हे इंद्र मम सख्यं सखित्वं यथावरः यथाभिमुख्येन वृणुयाः तर्हीमस्यास्य ॥ हलि क्षोपाभावश्छांदसः ॥  
पुरोवर्तिनोऽंधसोऽज्ञस्य सोमलक्षणस्य स्वांशं पाहि । पिव ॥ अंधस इति कर्मणि वा षष्ठी । पिवतेऽच्छांदसः  
शपो लुक् ॥ येन त्वत्पीतिन सोमेन हेतुना यद्यं विश्वाः मर्वा द्विषो द्वेष्टीः शत्रुसेना अत्यतारिम अतितरेम  
अतिक्रामेम ॥

कदा तं इंद्र गिर्वेणः स्तोता भ्वाति शंतमः । कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥ २२ ॥

कदा । ते । इंद्र । गिर्वेणः । स्तोता । भ्वाति । शंतमः । कदा । नः । गव्ये । अश्व्ये ।  
वसौ । दधः ॥ २२ ॥

हे गिर्वेणो गिरां क्षुतीनां संभक्तरींद्र ते तव स्तोता शंतमः सुखतमोऽतिशयेन सुखवान् कदा कस्मिन्काले



भवाति । भवेत् । कदा कश्चिच्च काले जोऽस्मान् गच्छे गोसमूहेऽध्यैऽश्वसंघे वसौ निवासमूर्तेऽन्यस्मिन्नपि धने दधः । धारयेः ॥

उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथं । अजुर्यस्य मदिन्तं यमीमहे ॥ २३ ॥

उत । ते । सुऽस्तुता । हरी इति । वृषणा । वहतः । रथं । अजुर्यस्य । मदिन्ऽतं । यं । ईमहे ॥ २३ ॥

उतापि च हे इंद्र सुष्टुता शोभनं सुतौ वृषणौ कामानां वर्धितारौ हरी अश्वावजुर्यस्य वरारहितस्य ते तव रथमिदानीं वहतः । असन्निकटं प्रापयतः । मदिन्तममतिशयेन मद्वन्तं यं त्वां धनमीमहे याचामहे तस्मै त इत्यन्वयः ॥

तमीमहे पुरुष्टुतं यद्दं प्रत्नाभिरुतिभिः । नि बर्हिषि प्रिये सददधं द्विता ॥ २४ ॥

तं । ईमहे । पुरुऽस्तुतं । यद्दं । प्रत्नाभिः । जतिऽभिः । नि । बर्हिषि । प्रिये । सदत् । अर्धं । द्विता ॥ २४ ॥

यद्दं महांतं पुरुष्टुतं वज्रभिः सुतं तमिंद्रं प्रत्नाभिः पुराणीभिरुतिभिरुत्तिकरीभिः सोमाजतिभिर्हेतुमिरीमहे । याचामहे । स चेंद्रः प्रिये प्रीतिकरे बर्हिषास्त्रीणैर्दमे नि षदत् । निषीदतु । इविः स्त्रीकरणाद्योपविशतु । अधानंतरं दिता द्वेधं वर्तमानानि चरुपरोडाशादीनि सोमलक्षणाणि च हवींषि स्त्रीकरोत्विति शेषः ॥

वर्धस्वा सु पुरुष्टुतं ऋषिष्टुताभिरुतिभिः । धुक्षस्व पिप्पुषीमिषमवा च नः ॥ २५ ॥

वर्धस्व । सु । पुरुऽस्तुतं । ऋषिऽस्तुताभिः । जतिऽभिः । धुक्षस्व । पिप्पुषी । इषं । अर्धं । च । नः ॥ २५ ॥

हे पुरुष्टुत वज्रभिः सुतेंद्रं ऋषिष्टुताभिर्ऋषिभिर्मवर्धयिषिभिः पुरा सुताभिरुतिभि रषाभिः सु सुष्टु वर्धस्व । अस्मान्वर्धय । यद्वा । ऋषिभिरुत्यादिताभिरुतिभिः सुतिभिस्त्वं वर्धस्व । वृद्धिं प्राप्नुहि । गोऽसम्भं च पिप्पुषीं प्रवृद्धामिषमिष्यमाणमन्नमव धुक्षस्व । अवाङ्मुखमसदमिमुखं धुक्षस्व । धारय । देहीत्यर्थः ॥ १११ ॥

इंद्र त्वमवितेदसीत्या स्तुवतो अद्रिवः । ऋतादियमि ते धियं मनोयुजं ॥ २६ ॥

इंद्र । त्वं । अविता । इत् । असि । इत्या । स्तुवतः । अद्रिऽवः । ऋतात् । इयमि । ते । धियं । मनःऽयुजं ॥ २६ ॥

हे अद्रिवो वज्रवज्रिंद्र त्वमित्येत्यमनेन प्रकारेण स्तुवतः स्त्रीषं कुर्वतो यवमागच्छावितेदसि । रक्षितेष भवसि । यत एवमतः कारणाद्दहमप्युतावच्छाद्येतीमंनोयुजं मनसा मननीयेन स्त्रीयेण प्राप्तां ते त्वदीयां धियमनुयहनुजिमियमि । प्राप्नोमि । यद्वा । ऋतात्सत्यमृतात्त्वत्तः स्त्रीयेण युक्तं त्वत्प्रीतिकरं कर्माहं प्राप्नोमि ॥

इह त्या संधमाद्या युजानः सोमपीतये । हरी इंद्र प्रतदसू अभि स्वर ॥ २७ ॥

इह । त्या । संधऽमाद्या । युजानः । सोमऽपीतये । हरी इति । इंद्र । प्रतदसू इति प्रतत्ऽवसू । अभि । स्वर ॥ २७ ॥

हे इंद्र इहास्मिन्यानि सोमपीतये सोमपानायाभि स्वर । अभिगच्छ । किं कुर्वन् । त्या त्वौ तौ प्रसिद्धौ

सधमाया त्वया सह हविर्मिमादधितव्यौ तर्पयितव्यौ प्रतद्वसु प्राप्तवसू विश्वीर्षधनौ ईदृशौ हरी त्वदीयावन्तौ  
युवानो रथेन संयोजयन् ॥

अभि स्वरंतु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियं । उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥ २८ ॥

अभि । स्वरंतु । ये । तव । रुद्रासः । सक्षत । श्रियं । उतो इति । मरुत्वतीः । विशः ।

अभि । प्रयः ॥ २८ ॥

अभि स्वरंतु अभिगच्छंतु ते हे इंद्र तवाशुचरा रुद्रासो रुद्रपुत्रा ये मदतः संति । अपि च ते श्रियं  
अयणीयमिमं यज्ञं सचत । सचंतु । प्राप्तुवंतु । उतो अपि च मदत्वतीर्मरुत्त्रिर्युक्ता विशोऽन्यापि देवी प्रजा  
प्रयः । अन्ननामैतत् । अन्नदीयं हविर्लक्षणमन्नमभिगच्छंतु ॥

इमा अस्य प्रतूर्तयः पदं जुषंत यद्विवि । नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे ॥ २९ ॥

इमाः । अस्य । प्रतूर्तयः । पदं । जुषंत । यत् । दिवि । नाभा । यज्ञस्य । सं । दधुः ।

यथा । विदे ॥ २९ ॥

अस्येन्द्रस्य संबन्धिन्य इमाः पूर्वोक्ता मददादिरूपाः प्रजाः प्रतूर्तयः प्रकर्षेण शत्रूणां हिंसित्र्यः पदं स्थानं  
जुषंत । असेवंत । दिवि युलोवे यत्स्थानमन्यैर्दुष्प्रापमसि तत्पदमित्यर्थः । अपि च ता यज्ञस्य ज्योतिष्टोमादे-  
र्नामा नाभौ नाभिस्थानीये हविर्धान उत्तरवेद्यां वा सं दधुः । संनिदधते । यथा येन प्रकारेण विदे विदे  
अपिचितं धनं लभे तथेत्यर्थः । यद्वा । विदे ज्ञानाय यथास्वाकं दचावरं ज्ञानं भवति तथेत्यर्थः ॥

अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे । मिमीते यज्ञमानुषग्विचक्ष्य ॥ ३० ॥

अयं । दीर्घाय । चक्षसे । प्राचि । प्रयति । अध्वरे । मिमीते । यज्ञं । आनुषक् ।

विचक्ष्य ॥ ३० ॥

प्राचि प्राचीने प्रागायते यज्ञगृहेऽध्वरे हिंसारहिते यज्ञे प्रयति गच्छति प्रवर्तमाने सत्ययमिंद्रः प्रवर्तमानं  
तं यज्ञमाशुषगुषक्तमाशुषूर्वेण विचक्ष्य विशेषेण बृद्धा मिमीते । निष्पादयति । किमर्थं । दीर्घायायताय  
चक्षसे दर्शनाय । यद्वा । ब्रह्मवाय फलाय ॥ ॥ १२ ॥

वृषायमिंद्र ते रथं उतो ते वृषणा हरी । वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः ॥ ३१ ॥

वृषा । अयं । इंद्र । ते । रथः । उतो इति । ते । वृषणा । हरी इति । वृषा । त्वं । शतक्रतो

इति शतऽक्रतो । वृषा । हवः ॥ ३१ ॥

हे इंद्र ते त्वदीयोऽयं रथो वृषा कामानां वर्धिता । उतो अपि च ते तव हरी अश्वौ वृषणा वृषणौ  
वर्धितारौ । हे शतक्रतो वज्रकर्मन् वज्रप्रघ्नेंद्र त्वं च वृषा वर्धिता कामानां । तथा हवस्त्वद्विषयमाह्वानं च  
वृषा वर्धिता । त्वद्विषयमाह्वानमपि कामान्वर्धति । किमु वक्तव्यं त्वदीया रथादयो वर्धेतीति भावः ॥

वृषा यावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः । वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः ॥ ३२ ॥

वृषा । यावा । वृषा । मदः । वृषा । सोमः । अयं । सुतः । वृषा । यज्ञः । यं । इन्वसि ।

वृषा । हवः ॥ ३२ ॥



आवामिषसाधनपाशाणो वृषा वर्धिता कामाणां । हे इंद्र त्वदीयः सोमपात्रज्यो मदस्य वृषा वर्धिता ।  
सुतस्त्वदर्धमभिपुतोऽयं सोमस्य वृषा वर्धिता । यं यजमिन्वसि त्वं प्राप्नोषि स च यज्ञो वृषामीष्टफलस्य  
वर्धिता । त्वदीयो हवस्य वृषा ॥

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चिवाभिरूतिभिः । वावंश्च हि प्रतिष्ठुतिं वृषा हवः ॥३३॥  
वृषा । त्वा । वृषणं । हुवे । वज्रिन् । चिवाभिः । ऊतिऽभिः । ववंश्च । हि । प्रतिऽस्तुतिं ।  
वृषा । हवः ॥३३॥

हे वज्रिन् वज्रवज्रिन्द्र वृषणं वृषाण वर्धितारं त्वां वृषा वर्धिता हविषामासेत्ताहं चिवाभिवायनीयामि-  
नीनाविधामिर्वीतिमिष्टुतिकरीभिः स्तुतिभिर्जवे । आह्वये । हि यस्मान्त्वं प्रतिष्ठुतिं त्वामभिषक्त्य ऊतं सोमं  
ववंश्च वनसि संभवसि अतस्त्वदीयो हव आह्वानं वृषा वर्धिता । यदा । हवो ज्ञातव्यो वृषा वर्धिता त्वं  
यस्मात्स्तुतिं वनसि तस्मान्त्वां ऊव इत्यर्थः ॥ ॥१३॥

यदिन्द्राहमिति पंचदशर्चं द्वितीयं सूक्तं गोपूज्यस्यसूक्तिनोः काव्यगोचयोरायं गायत्र्यमैन्द्रं । तथा चागु-  
क्रांतं । यदिन्द्रं पंचोना गोपूज्यस्यसूक्तिनो काव्यगोचनाविति ॥ महाव्रते निष्केवस्य एतत्सूक्तं । तथैव पंचमारुह्ये  
सूच्यते । यदिन्द्राहं यथा त्वं प्र सदायं चर्पयतीनामिति सूक्तं । ऐ० आ० ५. २. ५. इति ॥ तृतीये पर्याये अन्नग्रस्ते  
ऽपीदं सूक्तं । सूचितं च । यदिन्द्राहं प्र ते महे । आ० ६. ४. इति ॥

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥१॥

यत् । इंद्र । अहं । यथा । त्वं । ईशीय । वस्वः । एकः । इत् । स्तोता । मे । गोऽसखा । स्यात् ॥१॥

हे इंद्र यथा त्वमेक इदेक एव केवलं धनो वसुनो धनक्षेत्रिणे एवमपि यद्यदीशीय ऐश्वर्ययुक्तः स्वां  
तदानीं मे मम स्तोता गोषखा स्यात् । गोभिः सहितो भवेत् । ईश्वरस्य तव स्तोता कुतो हेतोर्नैसहितो न  
भवेत् अपि तु भवेदित्यभिप्रायः ॥

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्यां ॥२॥

शिक्षेयं । अस्मै । दित्सेयं । शचीऽपते । मनीषिणे । यत् । अहं । गोऽपतिः । स्या ॥२॥

हे शचीपते शक्तिमतिन्द्र अक्षी मनीषिणे मनस ईशिषे सोमे दित्सेयं । दातुमिच्छेयं । तद्वर्तनं शिषेयं ।  
प्रार्थितं धनं दद्यां च । यद्यद्यहं गोपतिर्नवामधिपतिः स्वां भवेयं स्वत्प्रसादादिति शेषः ॥

धेनुष्टं इंद्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामर्षं पिपुषीं दुहे ॥३॥

धेनुः । ते । इंद्र । सूनृता । यजमानाय । सुन्वते । गां । अर्षं । पिपुषीं । दुहे ॥३॥

हे इंद्र ते तव सूनृता स्तुतिरूपा वाग्धेगुर्दोग्धी गौर्मुखा सुन्वते सोमामिषं कुर्वते यजमानाय गामर्षं च ।  
उपसृज्यमेतत् । गवाश्चादिकं सर्वमभिषवितं दुहे । दुग्धे । किं कुर्वतो । पिपुषी तमेव प्रवर्धयिषी ॥

न ते वर्तास्ति राधस इंद्र देवो न मर्त्यः । यद्वित्संसि स्तुतो मयं ॥४॥

न । ते । वर्ता । अस्ति । राधसः । इंद्र । देवः । न । मर्त्यः । यत् । दित्संसि । स्तुतः । मयं ॥४॥

हे इंद्र ते तव राधसो धनस्य स्तोतृभ्यो दातव्यस्य वर्ता निवारको देवो नास्ति । न विवर्ते । न मर्त्यो  
मनुष्योऽपि निवारको नास्ति । स्तुतः स्तोतृभिः प्रख्यापितगुणः सन्न यज्यमानं मयं मंहनीयं धनं दित्संसि त्वं  
दातुमिच्छसि ॥

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यज्ञमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥५॥

यज्ञः । इन्द्रं । अवर्धयत् । यत् । भूमिं । वि । अवर्तयत् । चक्राणः । ओपशं । दिवि ॥५॥

यज्ञो यजमानैरनुष्ठीयमानो याग इन्द्रं देवमवर्धयत् । श्रूयते हि । इन्द्र इदं हविरनुष्ठातावीवृधत महो ज्वायोऽहतेति । स इन्द्रो यजमानाभूमिं पृथिवीं अवर्तयत् वृद्धादिप्रदानेन विशेषेण वर्तमानामकरोत् । किं कुर्वन् । दिव्यंतरिक्षे मेघमोपशमुपेत्य शयानं चक्राणः कुर्वन् । यद्वा । आत्मानि समवेतो वीर्यविशेष ओपशः । तमंतरिक्षे कुर्वन् ॥ १४॥

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । जितिमिन्द्रा वृणीमहे ॥६॥

ववृधानस्य । ते । वयं । विश्वा । धनानि । जिग्युषः । जितिं । इन्द्र । आ । वृणीमहे ॥६॥

हे इन्द्र वावृध स्व वर्धमानस्य विश्वा विश्वानि सर्वाणि धनानि शत्रुसंबन्धीनि जिग्युषो जितवत्सले तयातिं रथां वयमा वृणीमहे । आभिमुख्येन संभवांमहे ॥

चातुर्विंशिकेऽनि प्रातःसवने ब्रह्मशस्त्रे व्यंतरिक्षमतिरदित्यथं पर्यासस्तृचः । सूच्यते हि । व्यंतरिक्षमतिर-  
क्ष्वत् । सूच्यते इति वृत्ताः पर्यासाः । आ० ७. २. इति ॥ अहर्गणेषु द्वितीयादिष्वहःसपि तस्यैव तसिन्नेव  
शस्त्रेऽयं पर्यासस्तृचः । सूचितं च । पर्यासात्प्रादतोऽहरहःशस्त्रानीति होचका द्वितीयादिष्वेव । आ०  
७. १. इति ॥

व्यंतरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलं ॥७॥

वि । व्यंतरिक्षं । अतिरत् । मदे । सोमस्य । रोचना । इन्द्रः । यत् । अभिनत् । वलं ॥७॥

सोमस्य पानेन मदे हर्षे सति रोचना रोचमानमंतरिक्षमयमिन्द्रो व्यतिरत् । व्यवर्धयत् । यजमानात्कार-  
णादसमावृत्य स्थितमसुरं मेघं पामिनत् अदारयत् ॥

उक्ता आजदंगिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहां सतीः । अर्वाचं नुनुदे वलं ॥८॥

उत् । गाः । आजत् । अंगिरःऽभ्यः । आविः । कृण्वन् । गुहां । सतीः । अर्वाचं ।

नुनुदे । वलं ॥८॥

अंगिरोभ्य अविष्करो वसानुचरैः पणिभिरपहता गा उदावत् । उदगमयत् । किं कुर्वन् । गुहा गुहायां  
विशि सतीर्विद्यमाना यथा न दृश्यते तथा पणिभिर्गुहास्ता गा आविष्कृण्वन् प्रकाशयन् । अपि च पणीनाम-  
धिपतिं वसन्तसुरमण्यर्वाचमधोमुखं नुनुदे । प्रेरितवान् ॥

इन्द्रेण रोचना दिवो दृहानि दृहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ॥९॥

इन्द्रेण । रोचना । दिवः । दृहानि । दृहितानि । च । स्थिराणि । न । पराऽनुदे ॥९॥

दिवो बुलोकस्य संबन्धीनि रोचना रोचमानानि देवगृहात्मकानि नक्षत्राणीन्द्रिण दृहानि दृढावयवानि  
वसवन्ति कृतानि दृहितानि च दृढीकृतानि । यथैकच नैश्वखेनावतिष्ठति तथा कृतानीत्यर्थः । यद्वा ॥ बृह दृहि  
बृहि बृही ॥ दृहितानि वर्धितानि चेत्यर्थः । अपि च स्थिराणि स्थास्त्राणि दृढाणि तानि न पराणुदे ।  
परानोदनीयानि न भवन्ति । न केनापि स्थाणात्पञ्चावयितुं शक्यानीत्यर्थः ॥ शुद्ध प्रेरणे । अस्मात्कृतार्थ  
इति केन्यत्ययः ॥



अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोमं इंद्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥ १० ॥

अपां । जर्मिः । मदनं इव । स्तोमः । इंद्र । अजिरऽयते । वि । ते । मदाः । अराजिषुः ॥ १० ॥

अपां समुद्राणामूर्मिस्तरंगो मदन्निव यथा माघतृपथुपरि जायते । हे इंद्र स्तोमस्त्वदीयं स्तोत्रं तथाजि-  
रायते । अजिरः क्षिप्रगामी । स एवाचरति । अपि च ते त्वदीया मदाः स्तोत्रजन्माः सोमपानजन्याश्च  
अराजिषुः । विशेषेण राजते । दीयते ॥ १५ ॥

त्वं हि स्तोमवर्धन इंद्रास्तुक्थवर्धनः । स्तोतृणामुत भद्रकृत् ॥ ११ ॥

त्वं । हि । स्तोमऽवर्धनः । इंद्र । अस्ति । उक्थऽवर्धनः । स्तोतृणां । उत । भद्रऽकृत् ॥ ११ ॥

हे इंद्र त्वं हि त्वं खलु सोमवर्धनः स्तोमेन विषुत्पंचदशादिना वर्धनीयोऽसि । तथोक्थवर्धन उक्थैः  
शस्त्रैर्वर्धनीयश्च त्वमेवासि । उतापि च स्तोतृणामस्माकं भद्रकृद्भद्रस्य कल्याणस्य फलस्य कर्तापि त्वमेवासि ॥

इंद्रमिक्षिना हरीं सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुरार्धसं ॥ १२ ॥

इंद्र । इत् । केशिना । हरी इति । सोमऽपेयाय । वक्षतः । उप । यज्ञं । सुरार्धसं ॥ १२ ॥

केशिना केशिनी । मूर्धजानि सोमानि केशाः । तद्वती हरी अस्त्री सुरार्धसं शोभनधनमिंद्रमिक्षिनामेव  
यज्ञमुपास्म्यन्नं प्रति सोमपेयाय सोमपानार्थं वक्षतः । वहतां । यद्वा । यज्ञं यष्टव्यमिंद्रमुपवहतां ॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर इंद्रोदवर्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ १३ ॥

अपां । फेनेन । नमुचेः । शिरः । इंद्र । उत । अवर्तयः । विश्वाः । यत् । अजयः । स्पृधः ॥ १३ ॥

पुनः किक्षिद्रोऽसुराजित्वा नमुचिमसुरं यहीतुं न शक्नात् । स च युध्यमानस्तेनासुरेण वयहे । स च  
गृहीतमिंद्रमेवमवोचत् । त्वां विद्वजामि राचावह्नि च मुक्क्षेणाद्रिंण चायुधेन यदि मां मा हिंसीरिति । स  
इंद्रस्तेन विद्वष्टः सप्तहोराचयोः संधी मुष्कार्द्रविलषणेन फेनेन तस्य शिरश्चिच्छेद । अयमर्थोऽस्मां प्रति-  
पाद्यते ॥ हे इंद्र अपां फेनेन वज्रीभूतेन नमुचेरसुरस्य शिर उदवर्तयः । शरीरादुन्नतमवर्तयः । अक्षितीरि-  
त्यर्थः । कदेति चेत् । यद्यदा विश्वाः सर्वाः क्षुधः स्पर्धमाना आसुरीः सेना अवयः जितवानसि । इंद्रो वृषं  
हत्वासुरान् --- ॥

मायाभिरुत्तिसृप्तत इंद्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूरधूनुथाः ॥ १४ ॥

मायाभिः । उतऽसिसृप्ततः । इंद्र । द्यां । आऽरुरुक्षतः । अव । दस्यून । अधूनुथाः ॥ १४ ॥

--- हे इंद्र त्वमवाधूनुथाः । अवाधुष्वं प्रेरितवानसि ॥

असुन्वामिंद्र संसदं विषूचीं अनाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् ॥ १५ ॥

असुन्वां । इंद्र । संऽसदं । विषूचीं । वि । अनाशयः । सोमऽपाः । उत्तरः । भवन् ॥ १५ ॥

हे इंद्र त्वं सोमपाः सोमस्य पाता भूत्वोत्तर उत्कृष्टतरो भवन्नसुन्वां सोमानिववहीनां संसदं वनसंहतिं  
विषूचीं परस्परविरोधेन विषु नाना गंधीं अनाशयः । विशेषेण नाशयसि ॥ १६ ॥

तत्त्वमीति त्रयोदशर्षं तृतीयं सूक्तमौष्णिहमिंद्र । पूर्वोक्तविषूचीं । तथा चानुक्रम्यते । तत्त्वमि सप्तोनीष्णि-  
हमिति ॥ महाव्रते निष्क्रियस्व औष्णिहनुचाशीतापुत्तमावर्धमेतत्सूक्तं । सूच्यते हि । तत्त्वमि प्र वाचतेत्युत्तमा

हरति । ऐ० आ० ५. २. ५. । इति ॥ आभिन्नविकेषूक्थेषु तृतीयसवने ब्रह्मशस्त्र आद्यसृचो वैकल्पिकोऽनुष्पः ।  
सूचितं च । तन्मभि म गायत पथमु त्वाप्तपूर्व । आ० ७. ८. । इति ॥

तम्बुभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतं । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ १ ॥

तं । ऊं इति । अ॒भि । प्र । गा॒य॒त॒ । पु॒रु॒ऽहू॒तं । पु॒रु॒ऽस्तु॒तं । इ॒न्द्रं । गी॒ऽभिः । त॒वि॒षं ।  
आ । वि॒वा॒स॒त ॥१॥

पुण्ड्रतं बज्रमिराहृतं पुण्ड्रतं बज्रमिः कुतं तमु तमेयेन्द्रं हे सोतारः अमिं प्र गाथत । अमिमुखं प्रकषेय  
कुध्वं । एतदेव स्पष्टयति । तविषं महान्तमिन्द्रं गीर्भिर्वाग्मिरा विवासत । परिचरत ॥

यस्य द्विर्हसो बृहत्सहो दधार रोदसी । गिरिरजौ अपः स्ववृषत्वना ॥२॥

यस्य । द्विऽर्हसः । बृहत् । सहः । दाधार । रोदसी इति । गिरीन् । अजान् । अपः ।  
स्वः । वृषऽत्तना ॥ २ ॥

द्विर्हसो द्वयोः स्नानयोः परिपुष्टस्य यस्मिंश्च नृष्यमृत्सहो वसं रोदसी यावापृथिवी दाधार  
धारयति ॥ क्वांदसो सिट् । तुवादित्वाद्भासदीर्घः ॥ तथाञ्जान् शिप्रगमनान् गिरीन् पर्वतान् मेघान्वा स्वः  
सरणशीला अप उदकानि च वृषत्वेना वृषत्वेन वीर्येण यस्मिंश्च नृष्य वसं धारयति तत्रावस्थापयति । तन्वमीति  
पुर्वया संबंधः स त्वमित्युत्तरया वा ॥

स राजसि पुरुष्टुतं एको वृचाणि जिघ्रसे । इंद्र जैत्रां श्रवस्या च यंतवे ॥३॥

सः । राज॒सि । पुरु॑ऽस्तुत । एकः । वृ॒चाणि । जि॒घ्र॒से । इं॒द्र । जै॒त्रा । अ॒व॒स्या । च ।  
यंत॑वे ॥३॥

हे पुण्ड्र नरुभिः क्षुतेद्र स पूर्वोक्तगुणत्वं राजसि । दीप्यसे । ईशिषे वा । अपि च तमेकः सहायरहितः केवल एव सन् वृक्षाख्यावरकाणि शत्रुजातानि विध्वसे । हतवानसि । किमर्थं । शैचाणि जेतव्यानि धनानि अवस्था अवस्थानि अवस्थीयान्यन्त्राणि यद्वा अवयवार्हःणि यशांसि च यंतवे यंतुं नियंतुं स्थाधीनं कर्तुं ॥

आभिज्ञविशेषकथेषु तृतीयसर्गे ब्रह्मशस्त्रे तं ते मदमिति तृचो त्रैकल्पिकः सोऽपिचः । सूच्यते हि । तं ते  
मदं गृणोमसि तन्ममि प्र गायत ॥ आ० ७. ८ ॥ इति ॥

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिं । उ लोककृत्नुमद्रिबो हरिश्चियं ॥४॥

तं । ते । सदै । गृणीमसि । वर्षणं । पृत्सु । ससहिं । जं इति । लोकऽकृत्तुं । अदिऽवः ।  
हरिऽश्रियं ॥ ४ ॥

हे अद्रिवो वज्रवर्तिन्द्र ते त्वदीयं तं मदं सोमपाज्जनितं हर्षं गृणीमसि । गृणीमः । प्रशंसामः ॥ गृशब्दे  
ज्यादिः । प्वादीनां इत्यः । इदं तो मसीति मस इकारानगमः ॥ कीदृशं । वृषणं वर्षितारं कामानां पुत्सु  
संयामेषु सासहिं शत्रूणामभिभवितारं लोकक्षतुं लोकस्य खानस्य कर्तारं हरिश्चियं हरिभ्यामन्नाम्नां अयणीयं  
सेवं । उशब्दः समुच्चये पदपुरणे वा ॥

येन ज्योतींथायवे मनवे च विवेदिष्य । मृदानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ५ ॥

येन । ज्योतींषि । आयवे । मनवे । च । विवेदिथ । मृदानः । अस्य । बर्हिषः । वि ।

राजसि ॥ ५ ॥



हे इंद्र येनात्मीयेन मदेनायव और्वशेयाय मनवे विवस्वतः पुत्राय च ज्योतींषि सूर्यादीनि वृषादिभि  
रावृतानि तत्परणेन विवेदिष्य अस्वमयः । प्रज्ञापितवान् प्रकाशितवानसीत्यर्थः । तेन मदेन मंदानो मोदमा-  
नस्त्वमस्य वर्हिषो वृषस्य यज्ञस्य वि राजसि । विशेषेणेश्वि । यदा । अस्मेति तुतीयार्थे षष्ठी । अनेन वर्हिषा  
पुत्रेन हव्यन् वि राजसि । विशेषेण दीप्यसे ॥ १७ ॥

तदद्या चित्र उक्थिनोऽनुं द्रुवंति पूर्वेषां । वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ६ ॥

तत् । अद्य । चित्र । ते । उक्थिनः । अनु । द्रुवंति । पूर्वेषां । वृषऽपत्नीः । अपः ।  
जय । दिवेऽदिवे ॥ ६ ॥

हे इंद्र ते त्वदीयं तत्प्रसिद्धं वस्त्रमस्य चिद्व्यापि पूर्वेषां पूर्वस्मिन्काश एवोक्थिनः शस्त्रिणः स्त्रीतारोऽनु  
द्रुवंति । क्रमेण प्रशंसन्ति । स त्वं वृषपत्नीः वृषा वर्हिता पर्यव्यः पतिर्यासां तावृषीरपो दिवे दिवे प्रतिदिवसं  
जय । स्वायत्तं शुभ ॥

तव त्यदिद्रियं बृहत्तव शुष्ममुत क्रतुं । वज्रं शिशान्ते धिषणा वरेण्यं ॥ ७ ॥

तव । त्वत् । इन्द्रियं । बृहत् । तव । शुष्मं । उत । क्रतुं । वज्रं । शिशान्ति । धिषणा ।  
वरेण्यं ॥ ७ ॥

हे इंद्र त्वत्प्रसिद्धमिन्द्रियमिन्द्रस्य सिद्धं बृहत्प्रभूतं वीर्यं धिषणा स्तुतिः शिशान्ति । गिःकृति । तीक्ष्णी-  
करोति । तथा तव त्वदीयं शुष्मं श्लेषकं वस्त्रमुतापि च क्रतुं प्रधानं वस्त्रं कर्म वा वरेण्यं वरणीयं वस्त्रमायुधं  
च स्तुतिस्तीक्ष्णीकरोति ॥

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धेति अरवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ ८ ॥

तव । द्यौः । इन्द्र । पौंस्यं । पृथिवी । वर्धेति । अरवः । त्वां । आपः । पर्वतासः । च ।  
हिन्विरे ॥ ८ ॥

हे इंद्र तव त्वदीयं पौंसं वस्त्रं वीर्वर्धति । वर्धयति । त्वदीयं अरवो यशः पृथिवी वर्धयति ॥ वृद्धेर्-  
तासटि शपि च्छन्दसुभययथाधनुकलाखेरनिटीति शिबोपः ॥ तं त्वामाप उदकाभ्यन्तरिचाणि पर्वतासः  
पर्वताः पर्ववन्तो मेघाश्च गिरयश्च वा हिन्विरे । प्रीणयन्ति । स्वामित्वेन प्राप्तुवन्ति वा ॥

त्वां विष्णुर्वृहन्स्यो मिचो गृणाति वरुणः । त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतं ॥ ९ ॥

त्वां । विष्णुः । बृहन् । स्यः । मिचः । गृणाति । वरुणः । त्वां । शर्धः । मदति ।  
अतु । मारुतं ॥ ९ ॥

हे इंद्र बृहन्महान् ययो निवासहेतुर्विष्णुर्मित्रो वरुणश्च त्वां गृणाति । स्त्रीति । तथा मारुतं मरुतसंबन्धि  
शर्धो वस्त्रं त्वामनु मदति । तव मदमनुवन्त्य पञ्चाम्नायति । त्वामनुमादयति वा ॥

त्वं वृषा जनानां मंहिष्ठ इंद्र जज्ञिषे । सचा विश्वा स्वपत्यानि दधिषे ॥ १० ॥

त्वं । वृषा । जनानां । मंहिष्ठः । इंद्र । जज्ञिषे । सचा । विश्वा । सुऽअपत्यानि । दधिषे ॥ १० ॥

हे इंद्र वृषा वर्हिता त्वं जनानां देवजनानां मध्ये मंहिष्ठो दातुतमो जज्ञिषे । प्रादुर्भवसि । अत एव  
विश्वा सर्वाणि स्वपत्यानि शोमनैः पुत्रादिभिः सङ्घितानि सचा सह दधिषे । दातुं धारयसि । ददासि  
वा ॥ १० ॥

सुचा त्वं पुरुष्टुतं एको वृचाणि तोशसे । नान्य इन्द्रात्करणं भूय इन्वति ॥ ११ ॥

सुचा । त्वं । पुरुऽस्तुत । एकः । वृचाणि । तोशसे । न । अन्यः । इन्द्रात् । करणं । भूयः ।  
इन्वति ॥ ११ ॥

हे पुरुष्टुत वज्रभिः कुतैर्द्र त्वमेकोऽसहाय एव सन् सचा । महन्नामेतत् । महांति वृचाणि शत्रुजातानि । यद्वा । सचेति सहायै । सहैव युगपदेवैकयत्नेनैव । तोशसे । हिनस्ति । तोशतिर्वधकर्म । अकर्तुं शक्नोतीति भावः । अपि चास्मादिन्द्रादन्यः कश्चिन्मूयो वज्रतरं करणं कर्म वृचवधादिकं जेन्वति । न प्राप्नोति । इन्द्र एव कर्तुं शक्नोतीति भावः ॥

यदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवँत ऊतये । अस्माकैभिर्नृभिरचा स्वर्जय ॥ १२ ॥

यत् । इन्द्र । मन्मऽशः । त्वा । नाना । हवँते । ऊतये । अस्माकैभिः । नृऽभिः । अच ।  
स्वः । जय ॥ १२ ॥

हे इन्द्र यद्यस्मिन् संयामे त्वां मन्मशो मन्मना स्तोत्रेण नाना वज्रप्रकारं हवँते आह्वयन्ति । किमर्थं । ऊतये राधये । अचास्मिन् संयामेऽस्माकैभिरस्माकिरस्मादीधरेव नृभिर्नृभिः स्तोत्रभिराहृतः सन् स्वः शत्रुवधं जय । अभिमव ॥

अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाण्याविशन् । इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिं ॥ १३ ॥

अरं । क्षयाय । नः । महे । विश्वा । रूपाणि । आऽविशन् । इन्द्रं । जैत्राय । हर्षय ।  
शचीऽपतिं ॥ १३ ॥

हे स्तोतः महे महते जोऽस्माकं क्षयाय । गृह्णामेतत् । गृहाय ॥ तादर्थ्यं चतुर्थी ॥ गृह्यार्थमरमजं पर्याप्तं विश्वा विश्वाणि व्याप्तानि रूपाणीन्द्रगतानि गुणजातान्याविशन् स्तुत्या व्याप्नुवन् शचीपतिं । शचीति कर्मनाम । कर्मणां पालकं । यद्वा । शच्चा इन्द्रास्मा भर्तारं । तमेवेन्द्रं जैत्राय जेतव्यधनार्थं हर्षय । तोषय स्तुत्या परिचरणेन वेति शेषः ॥ ॥ १९ ॥

प्र सप्ताजमिति द्वादशर्चं चतुर्थं सूक्तमिदं विठिनाम्नः काण्वस्वार्थं गायत्र्येन्द्रं । अनुक्रम्यते हि । प्र सप्ताजं द्वादशैरिदं विठिरिति ॥ अतिरात्रि द्वितीये पर्यायेऽच्छावाकशस्त्र एतत्सूक्तं । सूचितं च । प्र सप्ताजमुप क्रमस्मा मर । आ० ६-४ । इति ॥ महाव्रतेऽपि निष्केवत्य एतदादिके द्वे सूक्ते उपरितनस्त्रांत्वं वृचं वर्षयित्वा । तथैव पंचमारण्यके सूचितं । प्र सप्ताजं चर्षणीनामिति सूक्ते उत्तरस्तोत्रमे उच्यते । ऐ० आ० ५. २. ५ । इति ॥

प्र सप्ताजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नय्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठं ॥ १ ॥

प्र । संऽराजं । चर्षणीनां । इन्द्रं । स्तोत । नय्यं । गीऽभिः । नरं । नृऽसहं । मंहिष्ठं ॥ १ ॥

चर्षणीनां मनुष्याणां मध्ये सप्ताजं सम्यगाजमानं यद्वा मनुष्याणामधीश्वरमिन्द्रं हे स्तोतारः प्र स्तोत । प्रकर्षेण स्तुत । कीदृशं । गीर्भिः स्तुतिभिर्नय्यं स्तुत्यं नरं भर्तारं नृषाहं नृणां शत्रुमनुष्याणामभिभवितारं मंहिष्ठं दानुतमं ॥

यस्मिन्नुक्थानि रण्येति विश्वानि च श्रवस्या । अपामवो न संमुद्रे ॥ २ ॥

यस्मिन् । उक्थानि । रण्येति । विश्वानि । च । श्रवस्या । अपां । अवः । न । संमुद्रे ॥ २ ॥

यस्मिन्नेन्द्र उक्थानि शस्त्राणि रण्यंति रमन्ते विश्वानि सर्वाणि श्रवस्या अवस्थानि श्रवणीयानि हविर्ष-



अथान्यन्नानि च रमन्ते । तत्र दृष्टान्तः । समुद्रं च दधावपामुदकानामवो न । अथति गच्छतीत्यवस्तरंगवासं ।  
तद्यथा समुद्रेऽन्तर्भवति तथा रण्यंतीत्यर्थः ॥

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुं । महो वाजिनं सनिभ्यः ॥३॥

तं । सुऽस्तुत्या । आ । विवासे । ज्येष्ठराजं । भरे । कृत्नुं । महः । वाजिनं । सनिभ्यः ॥३॥

तमिन्द्रं सुष्टुत्या शोभनया सुत्या विवासे । परिचरामि । कीदृशं । ज्येष्ठराजं ज्येष्ठेषु प्रशस्ततमेषु देवेषु मध्ये  
राजमानं ॥ राजतेः सत्सूक्ष्मेति क्लिप् ॥ भरे संग्रामे महो महतो वृचवधादेः कृतुं कर्तारं वाजिनमद्वयं  
वसवंतं वा । किमर्थं । सनिभ्यो धनेभ्यः । धनत्वाभावेत्यर्थः ॥

यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुचाः । हर्षुमंतः शूरसातौ ॥४॥

यस्य । अनूनाः । गभीराः । मदाः । उरवः । तरुचाः । हर्षुऽमंतः । शूरऽसातौ ॥४॥

यस्मिंश्च मदाः सोमपाणवनिता अनूना अनूना गभीरा गांभीर्योपेता उरवो विसीर्यास्तनुवाः शूराणां  
तारकाः शूरसातौ शूरसंभजनीये संग्रामे हर्षुमंतो हर्षयुक्ताः संग्रामोत्सुका भवन्ति । तमिन्द्रमिति पूर्वयोत्तरया  
वा संबंधः ॥

तमिच्छनेषु हितेष्वधिवाकाय हवन्ते । येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ॥५॥

तं । इत् । धनेषु । हितेषु । अधिऽवाकाय । हवन्ते । येषां । इन्द्रः । ते । जयन्ति ॥५॥

धनेषु हितेषु शत्रुषु निहितेषु प्राप्तेषु सत्सु तमिन्द्रं पूर्वोक्तगुणमेवंद्रमधिवाकायाधिवचनाय यद्यपातवचनाय  
हवन्ते । सोतार आह्वयन्ति । तत्र च येषां पक्ष इन्द्रो वर्तते त एव जयन्ति । जयेन तानि धनानि लभन्ति नाथ्ये ॥

तमिच्छ्यौलैरार्येति तं कृतेभिश्चर्षणयः । एष इन्द्रो वरिवस्तुत् ॥६॥

तं । इत् । च्यौलैः । आर्येति । तं । कृतेभिः । चर्षणयः । एषः । इन्द्रः । वरिवऽस्तुत् ॥६॥

तमिच्छमेवंद्रं च्यौलैर्बलकरैः सोधिरार्येति । आर्यमभिजमीश्वरं कुर्वेति । चर्षणयो मनुष्याः कृतेः कर्मनि-  
श्चार्येति । एष एवंगुणक इन्द्रो वरिवस्तुत्तनस्य कर्ता भवति सोतुषां ॥ ॥२०॥

इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरु पुरुहूतः । महान्महीभिः शचीभिः ॥७॥

इन्द्रः । ब्रह्मा । इन्द्रः । ऋषिः । इन्द्रः । पुरु । पुरुऽहूतः । महान् । महीभिः । शचीभिः ॥७॥

अथमिन्द्रो ब्रह्मा परिवृढः सर्वभ्योऽधिकः । स एवेन्द्र ऋषिर्द्रष्टा सर्वसार्थवातस्य । स इन्द्रः पुरु ब्रह्म  
पुरुहूतो ब्रह्मिराहूतश्च महीभिर्महतीभिः शचीभिः क्रियामिर्वृषवधादिभिर्यामिर्महायमूतो भवति ॥

स स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तु विकूर्मिः । एकश्चित्सन्नभिभूतिः ॥८॥

सः । स्तोम्यः । सः । हव्यः । सत्यः । सत्वा । तुविऽकूर्मिः । एकः । चित् । सन् । अभिऽभूतिः ॥८॥

स पूर्वोक्त इन्द्रः स्तोम्यः सोमाईः सुत्वईः । स एव हव्यो ज्ञातव्यश्च सत्यः सत्सु साधुरवित्तवस्तभावः सत्त्वा  
शत्रूणामवसादयिता तु विकूर्मिर्वज्रकर्मा । यत एवातः कारणादेकचित्सन्नसहायोऽपि भवन्नभिभूतिः शत्रूणाम-  
भिभविता तिरस्कृता भवति ॥

तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः । इन्द्रं वर्धति स्तितयः ॥९॥

तं । अर्केभिः । तं । सामऽभिः । तं । गायत्रैः । चर्षणयः । इन्द्रं । वर्धति । स्तितयः ॥९॥

वर्धयथी द्रष्टारो मंत्राणां धितयो मनुष्यास्तमिन्द्रमर्कैभिरर्वनसाधनैर्यजूरूपैर्मैर्विर्वर्धयति । वर्धयति । तथोद्गातारः सामभिर्गानविशिष्टैर्मैर्वैत्वं वर्धयति । तथा गायत्रैर्गायत्र्यादिच्छंदीयुक्तेः शस्त्ररूपैरप्रगीतिर्मैर्वैत्वं मेवैन्द्र होतारो वर्धयति ॥

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु । ससह्रांसं युधामिचान् ॥१०॥

प्रऽनेतारं वस्यः । अच्छ । कर्तारं । ज्योतिः । समत्सु । ससह्रांसं । युधा । अमिचान् ॥१०॥

वस्यो वसीयः प्रशस्तं वसु धनमच्छाभिमुख्येन प्रणेतारं प्रापयितारं समत्सु संपामेषु शत्रुनिरसनेन ज्योतिः प्रकाशं जयसचयं कर्तारं करणशीलं ॥ करोति साच्छीलिकजृन् ॥ कुत इत्यत आह । युधायुधेनामिचाच्छपून् ससह्रांसमभिभूतवतं । एवंगुणकमिन्द्रं वर्धयतीति शेषः ॥

स नः प्रमिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः । इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥११॥

सः । नः । प्रमिः । पारयाति । स्वस्ति । नावा । पुरुऽहूतः । इन्द्रः । विश्वाः । अति । द्विषः ॥११॥

प्रमिः प्राप्ता पूरयिता पुंरहूतो बज्रभिराहूतः स इन्द्रो विश्वाः सर्वा द्विषो द्वेद्रीः प्रजा नोऽस्मात्तावा तरणसाधनेन स्वस्ति चेमेणाति पारयाति । अतिपारयतु ॥

स त्वं न इन्द्र वार्जेभिर्दशस्य च गातुया च । अच्छा च नः सुखं नेषि ॥१२॥

सः । त्वं । नः । इन्द्र । वार्जेभिः । दशस्य । च । गातुऽय । च । अच्छ । च । नः । सुखं । नेषि ॥१२॥

हे इन्द्र स तादृशस्त्वं नोऽस्माभ्यं वार्जेभिर्वर्जितदशस्य च । धनं प्रयच्छ च । दशस्यतिर्दानकर्मा । गातुय च । गातुं मार्गमस्माभ्यमिच्छ च ॥ गातुशब्दाच्छंदसि परेच्छायामिति क्वच । न च्छंदस्यपुचस्येति दीर्घनिषेधः ॥ तथा नोऽस्मान् सुखं सुखं चाच्छ नेषि । अभिप्रापय ॥ ॥२१॥

आ याहीति पंचदशर्चं पंचमं सूक्तमिर्विठेरार्पमेन्द्रं । चतुर्दशी बृहती पंचदशी सतीबृहत्यादितस्त्रयोदश गायत्र्यः । अनुक्रम्यते हि । आ याहि पंचोना प्रगाथांतमिति ॥ अंत्य प्रगाथं वर्जयित्वा शिष्टस्य महाव्रत उक्तो विनियोगः ॥ ज्योतिष्टोमे प्रातःसवने ब्रह्मशस्त्र आवाः यदुचः स्तोत्रियानुरूपार्थाः । तथागतं तराः सप्तर्चस्य शंसनीयाः । सूत्र्यते हि । आ याहि सुषुमा हि त इति षट् स्तोत्रियानुरूपानंतराः सप्त । आ० ५. १०. इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि प्रातःसवन आयत्तृचोऽस्मिन्नेव शस्त्रे षठ्स्तोत्रियसंज्ञक आवापार्थः । सूचितं च । आ याहि सुषुमा हि त इन्द्रमिन्नायिनो बृहत् । आ० ७. २. इति ॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिब इमं । एदं बर्हिः सदो मम ॥१॥

आ । याहि । सुषुम । हि । ते । इन्द्र । सोमं । पिब । इमं । आ । इन्द्र । बर्हिः । सदः । मम ॥१॥

हे इन्द्र त्वमा याहि । आगच्छ । ते त्वदर्थं सुषुम हि । अभिपुतवतः खलु सोमं वयं । तमिममभिपुतं सोमं पिब । तदर्थं मम मदीयमिदं बर्हिर्वैद्यामासीर्षमा सदः । आसीद । अभिनिषीद ॥

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२॥

आ । त्वा । ब्रह्मऽयुजा । हरी इति । वहतां । इन्द्र । केशिना । उप । ब्रह्माणि । नः । शृणु ॥२॥

हे इन्द्र ब्रह्मयुजा ब्रह्मणा मंत्रेण युज्यमाना केशिना केशवतां हरी हरणशीलावर्था त्वा त्वामा वहतां । अभिप्रापयतां । त्वं चास्मद्वशमुपेत्य नोऽस्माकं ब्रह्माणि स्तोत्राणि शृणु । स्तोत्राणि गृहाण । सम्यक् चित्ते धारय ॥



ब्रह्माणस्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावंतो हवामहे ॥३॥

ब्रह्माणः । त्वा । वयं । युजा । सोमऽपां । इन्द्र । सोमिनः । सुतऽवतः । हवामहे ॥३॥

हे इन्द्र ब्रह्माणो ब्रह्मणा वयं त्वा त्वां युजा योगेन सोचिण हवामहे । आहुयामहे । कथंभूतं । सोमपां सोमस्य पातारं । कीदृशा वयं । सोमिनः सोमयुक्ताः सुतावंतोऽभिषुतेषु सोमैरुपेताः ॥

आ नो याहि सुतावंतोऽस्माकं सुष्टुतीरूपं । पिबा सु शिप्रिचंधसः ॥४॥

आ । नः । याहि । सुतऽवतः । अस्माकं । सुऽस्तुतीः । उप । पिब । सु । शिप्रिन् । अंधसः ॥४॥

हे इन्द्र सुतावतोऽभिषुतसोमयुक्तानस्मान्ना याहि । अभिगच्छ । ततोऽस्माकं संबन्धीनि सुष्टुतीः शोभनानि सोचायुपगच्छ । आनीहि । हे सुशिप्रिच्छोभनशिरस्त्राण शोभनहनुक वेन्द्र चंधसोऽन्नस्य सोमलक्षणस्य स्वांश्चक्षुषं भागं पिब । यद्वा ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ चंधोऽस्यदीयं सोमं पिब ॥

आ ते सिंचामि कुक्षोरनु गात्रा वि धावतु । गृभाय जिह्या मधु ॥५॥

आ । ते । सिंचामि । कुक्ष्योः । अन्तु । गात्रा । वि । धावतु । गृभाय । जिह्या । मधु ॥५॥

हे इन्द्र ते तव कुक्ष्योदरयोरा सिंचामि । सोमानवनयामि । कुक्षी सोमिन पूरयामीत्यर्थः । इन्द्रस्य हि द्वे उदरे । तथा च श्रूयते । ओमा कुक्षी पुण्याता वार्षश्चि च माघोनं चेति । यद्वा । एकस्योदरस्य सव्यदक्षिण-भेदेनोर्ध्वाधोभागभेदेन वा द्वित्वं । स चासिक्तः सोमो गात्राणि शरीरावयवानि हस्तपादादीनि सर्वाण्यनु-क्रमेण वि धावतु । व्याप्नोतु । त्वं च मधु मधुरं मया सिञ्चमानं सोमं जिह्या रसनेन्द्रियेण गृभाय । गृहाण ॥ कंदसि शायजपीति यह उत्तरस्य अः शायजादेशः । हयहीर्म इति भस्वं ॥ ॥२२॥

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान्तन्वेऽतव । सोमः शमस्तु ते हृदे ॥६॥

स्वादुः । ते । अस्तु । संऽसुदे । मधुऽमान् । तन्वे । तव । सोमः । शं । अस्तु । ते । हृदे ॥६॥

संसुदे सम्यक् सुष्ठु दावे हे इन्द्र ते तुभ्यं मधुमान्माधुर्यवानयं सोमः स्वादुरस्तु । रुचिकरो भवतु । तव तन्वे शरीराय च स्वादुरस्तु । तव हृदे हृदयाय च स सोमः शमस्तु । सुखजनकं भवतु ॥

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥७॥

अयं । ऊं इति । त्वा । विऽचर्षणे । जनीः । इव । अभि । संऽवृतः । प्र । सोमः । इन्द्र । सर्पतु ॥७॥

हे विचर्षणे विद्रष्टरिन्द्र जनीरिव जनयो जाया इव ता यथा मुक्षिर्वस्त्रैः संवृता भवन्ति एवं संवृतः पयःप्रभृतिभिः अयणद्रविरावृतोऽयं सोमोऽभि प्र सर्पतु । अभिगच्छतु । उ इति पूरकः ॥

तुविपीवो वपोदरः सुबाहुरंधसो मदे । इन्द्रो वृचाणि जिघ्रते ॥८॥

तुविऽपीवः । वपाऽउदरः । सुऽबाहुः । अंधसः । मदे । इन्द्रः । वृचाणि । जिघ्रते ॥८॥

तुविपीवो विस्तीर्णकंधरो वपोदरः पीवरोदरः । यथा बहवः सोमाः पीता अंतर्भवन्ति तथा विस्मृतजठर इत्यर्थः । सुबाहुः शोभनबाहुः एवंगुणक इन्द्रोऽंधसोऽन्नस्य सोमात्मकस्य मदे हर्षे सति वृचाणि शत्रुजातानि जिघ्रते । द्विगन्धि ॥

इन्द्र मेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान् ओजसा । वृचाणि वृचहञ्जहि ॥९॥

इन्द्र । प्र । इहि । पुरः । त्वं । विश्वस्य । ईशानः । ओजसा । वृचाणि । वृचऽहन् । जहि ॥९॥

हे इंद्र जीवसा बलेन विश्वस्य सर्वस्य जगत ईशानः स्वामी भवंस्त्वं पुरोऽस्माकं पुरस्तात्नेहि । प्रगच्छ । प्राप्नुहि । हे वृत्रहन् वृत्राणामावरकाणां शत्रूणां हतः वृत्राण्यसदीयानि शत्रुजातानि जहि । विनाशय ॥

अभ्युदयेष्टाविंशस्य प्रदातुर्दीर्घस्ते अस्त्वंकुश इत्यनुवाक्या । सूत्र्यते हि । दीर्घस्ते अस्त्वंकुशो भद्रा ते हस्ता मुकृतोत पाणी । आ० ३. १३. । इति ॥

दीर्घस्ते अस्त्वंकुशो येना वसुं प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ॥१०॥

दीर्घः । ते । अस्तु । अंकुशः । येन । वसुं । प्रयच्छसि । यजमानाय । सुन्वते ॥१०॥

हे इंद्र ते तवांकुशः क्षिराकर्षणसाधनमायुधं दीर्घोऽस्तु । आयतो भवतु । यथा दूरस्थमपि वसु आप्नोति तथायामवान् भवत्वित्यर्थः । चेनांकुशेन सुन्वते सोमामिषं कुर्वते यजमानाय वसु धनमाहृत्य प्रयच्छसि ददासि ॥ ॥२३॥

द्वितीये पर्याये होतुः शस्त्रेऽयं त इद्रेति स्तोत्रियस्तुतः । सूचितं च । अयं त इंद्र सोमोऽयं ते मानुषे जने । आ० ६. ४. । इति ॥

अयं त इंद्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रव पिब ॥११॥

अयं । ते । इंद्र । सोमः । निऽपूतः । अधि । बर्हिषि । आ । इहि । ई । अस्य । द्रव । पिब ॥११॥

हे इंद्र ते तुभ्यं त्वदर्धमयं सोमो बर्हिष्यधि वेवामास्तीर्णे दमे निपूतो नितरां दशापर्विचेण शोधितः । अभिषवादिसंस्कारैः संस्कृत इत्यर्थः । ईमिदानीमस्त्रेमं सोमं प्रवेहि । आगच्छ । आगत्य यच्च रसात्मकः सोमो ह्रयते तं देशं प्रति द्रव । शीघ्रं गच्छ । तदनंतरं तं सोमं पिब ॥

शाचिगो शाचिपूजनाय रणाय ते सुतः । आखंडलं प्र हूयसे ॥१२॥

शाचिगो इति शाचिऽगो । शाचिऽपूजन । अयं । रणाय । ते । सुतः । आखंडलं ।

प्र । हूयसे ॥१२॥

हे शाचिगो । शाचयः शक्ता गावो यस्यासौ शाचिगुः । यद्वा ॥ शच व्यक्तायां वाचि । अस्मादीयादिक इक्ष्प्रत्ययः ॥ शाचयो व्यक्ता प्रख्याता गावो रश्मयो गाव एव वा यस्य तादृश । हे शाचिपूजन । पूज्यते ऽनेनेति पूजनं स्तोत्रादि । प्रख्यातपूजनं ते तव रणाय रमणाय सुखजननायायं सोमः सुतोऽभिषुतः । यतः कारणात् हे आखंडल शत्रूणामाखंडयितः प्र ह्रयसे प्रकृष्टामिः सुतिभिराह्रयसे । अत आगत्वेमं सोमं पिबेति भावः ॥

यस्ते शृंगवृषो नपात्प्रणपात्कुंडपाय्यः । न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥१३॥

यः । ते । शृंगऽवृषः । नपात् । प्रनपादिति प्रऽनपात् । कुंडऽपाय्यः । नि । अस्मिन् ।

दध्रे । आ । मनः ॥१३॥

हे शृंगवृषो नपात् । शृंगवृषा नाम कश्चिद्वृषिः तस्य चेंद्रः स्वयमेव पुत्रतया जज्ञ इत्याख्यायिका । नपादित्यपत्यनाम । शृंगवृषः पुत्र । यद्वा । शृणांति हिंसंतीति शृंगाः रश्मयः । तैर्वर्धतीति शृंगवृडादित्यः । तस्य न पातयितः स्वकीये स्थानेऽवस्थापयितः ॥ सुनामंचित इति यद्यंतस्य परांगवज्जविनामंचितानुप्रवेशात् समुदाय-स्त्राष्टमिकं सर्वाणुदान्तत्वं ॥ ईदृश हे इंद्र ते तव संबन्धी प्रणपात् प्रकर्षेण न पातयिता रक्षिता कुंडपाय्यः । कुंडः पीयतेऽस्मिन् सोम इति कुंडपाय्यः क्रतुविशेषः ॥ क्रतौ कुंडपाय्यसंचाख्यौ । पा० ३. १. १३०. । इति पिबनेरधिकरणे ऋत्प्रत्ययो युगागमश्च निपात्यते ॥ एतत्संचो यः क्रतुरस्त्यस्मिन् कुंडपाय्ये क्रतौ मनः स्वांतमा



णि दधे । अमितो वर्तमानाः कुण्डपाधिनामान् ऋषयः पुरा निदधिरे । सम्यक् त्वद्देवत्वं क्रतुमनुष्ठितवन्त इत्यर्थः ॥ दधातेर्लिटीरयो र इति रेभावः ॥

वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसचं सोम्यानां ।

द्रुप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥१४॥

वास्तोः । पते । ध्रुवा । स्थूणा । अंसचं । सोम्यानां ।

द्रुप्सः । भेत्ता । पुरां । शश्वतीनां । इन्द्रः । मुनीनां । सखा ॥१४॥

हे वास्तोष्पते गृहपते स्थूणा गृहाधारभूतः संभो ध्रुवा स्थिरा भवतु । सोम्यानां सोमार्हाणां सोमसंपादिनां वास्त्राकमंसचमंसबाणमंसोपलक्षितस्य छत्त्रशरीरस्य चायकं रचकं बलं भवतु । अपि च द्रुप्सो द्रव्यशीलः सोमः तद्वान् ॥ अर्शश्चादित्वादचप्रत्ययः ॥ शश्वतीनां बह्वीनां पुरामसुरपुरीषां भेत्ता विदारयिता एवंभूत इन्द्रो मुनीनामृषीणामस्त्राकं सखा मित्रभूतो भवतु ॥

पृदाकुसानुर्यजतो गवेषण एकः सन्नभि भूर्यसः ।

भूर्णिमश्च नयत्तुजा पुरो गृभेद्रं सोमस्य पीतये ॥१५॥

पृदाकुऽसानुः । यजतः । गोऽएषणः । एकः । सन् । अभि । भूर्यसः ।

भूर्णि । अश्च । नयत् । तुजा । पुरः । गृभा । इन्द्रं । सोमस्य । पीतये ॥१५॥

पृदाकुसानुः । पृदाकुः सर्पः । स इव सातुः समुच्छितः । तद्वदुन्नतशिरस्क इत्यर्थः । यद्वा । पृदाकुवत्सानुः संमज्जनीयः । स यथा वज्रमिर्मणिमन्त्रौषधादिभिः संसेव्यो नालीः एवमिन्द्रोऽपि वज्रमभिः स्तोत्रादिभिर्यज्ञैः सेव्य इत्यर्थः । यजतो यष्टव्यो गवेषणो गवामेषयिता प्रापयिता एवंगुणको य इन्द्र एकः सन्नसहायः केवल एव सन् भूर्यसो वज्रतराज्ज्वलन्मिमवति भूर्णि मरणशीलमश्वं व्यामुवंतं तमिन्द्रं सोमस्य पीतये पाणार्थं पुरोऽस्त्राकं पुरस्तान्नयत् । नयति । प्रापयति । सामर्थ्यात् स्तोतेति लभ्यते । केन साधनेन । तुजा चिप्रनामिना गृभा ग्रहणसाधनेन स्तोत्रेण । यद्वा । अश्चमिति क्षुप्तोपममेतत् । यथा वीडारमश्वं दुर्यहं पाशेनानयति एवमुक्तेन प्रकारेण महानुभावमिन्द्रं क्षुत्वा स्तोतानयतीत्यर्थः ॥ ॥ २४ ॥

इदं हेति द्वाविंशत्युचं षष्ठं सूक्तमिदं विठेरार्यमुष्णिकवन्दस्कं । उत त्वेति षाश्विदेवताका । शमपिरित्थिपापिभूर्यवागुदेवताका । शिष्टा आदित्यदेवताकाः । तथा चानुक्रम्यते । इदं ह ब्रधिकादित्यमौष्णिहमष्टम्यश्चिभ्यां परापिसूर्यानिजानामिति ॥ गतो विनियोगः ॥

इदं ह नूनमेषां सुखं भिक्षेत मर्त्यैः । आदित्यानामपूर्य्यं सवीमनि ॥१॥

इदं । ह । नूनं । एषां । सुखं । भिक्षेत । मर्त्यैः । आदित्यानां । अपूर्य्यं । सवीमनि ॥१॥

इदं हेदानीं खलु नूनमवश्ममादित्यानामदितेः पुत्राणामेषां देवानां मित्रादीनां सवीमनि प्रसवे प्रेरणे सति मर्त्यो मनुष्यः स्तोतापूर्वमभिनवं सुखं सुखकरं धनं भिक्षेत । याचेत । न कालांतरे ॥

अनर्वाणो ह्येषां पंथा आदित्यानां । अर्द्व्याः संति पायवः सुगेवृधः ॥२॥

अनर्वाणः । हि । एषां । पंथाः । आदित्यानां । अर्द्व्याः । संति । पायवः । सुगेवृधः ॥२॥

एषामादित्यानां पंथाः पंथानो मार्गाः ॥ सुपां सुजुगिति जसः सुः । अनर्वाणोऽप्रत्युताः परैरप्रतिगताः अत एवाद्व्या अहिंसिताश्च संति । भवंति । हि यस्मादेवं तस्मात्पायवः पाक्षयितारक्षो मार्गाः सुगेवृधः सुगमे मुखे विषये वर्धका भवंत ॥

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा । शर्म यच्छंतु सप्रथो यदीमहे ॥३॥  
तत् । सु । नः । सविता । भगः । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । शर्म । यच्छंतु । सप्रथः ।  
यत् । ईमहे ॥३॥

सवितादयश्चत्वारो देवाः सप्रथः सर्वतः पृथु विसीर्यं तच्छर्मं सुखं गृहं वा नोऽस्त्रायं सु सुष्ठु यच्छंतु ।  
ददतु । यच्छर्मेमहे वयं याचामहे ॥

देवेभिर्देव्यदितेऽरिष्टभर्मन्ना गहि । स्मत्सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ॥४॥  
देवेभिः । देवि । अदिते । अरिष्टभर्मन् । आ । गहि । स्मत् । सूरिभिः । पुरुप्रिये ।  
सुशर्मभिः ॥४॥

हे देवि दानादिगुणयुक्ते हे अरिष्टभर्मन्नाहंसितभरणे हे पुरुप्रिये वज्रभिः प्राच्यमाणे हे एवंगुणविशिष्टे  
ऽदिते सूरिभिः प्राप्तेः सुशर्मभिः सुसुखैर्देवेभिर्देवैरात्मीयैः पुत्रैः सार्धं । अदिति निपातः शोमनार्थः । अच्छो-  
भनं यथा भवति तथा गहि । आगच्छ ॥

ते हि पुचासो अदितेर्विदुर्द्वेषांसि योतवे । अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ॥५॥  
ते । हि । पुचासः । अदितेः । विदुः । द्वेषांसि । योतवे । अंहोः । चित् । उरुचक्रयः ।  
अनेहसः ॥५॥

अदितेः पुचासः पुचासो हि ते खलु मित्रादयो देवा द्वेषांसि द्वेषुणि राक्षसादीनि योतवे पृथक्कर्तुं विदुः ।  
जानन्ति ॥ विदो लटो वेति विद् उत्तरस्य द्वेषसादेशः ॥ तथोरुचक्रयो विसीर्यस्य कर्मणः कर्तारोऽनेहसो  
ऽनाहंतारो रचकासोऽहोश्चिदाहननशीलात्पापादपि योतवे पृथक्कर्तुमस्माज्जानन्ति ॥ ॥२५॥

अदितिर्नो दिवा पशुमदितिर्नक्तमञ्चयाः । अदितिः पात्वंहसः सदावृधा ॥६॥  
अदितिः । नः । दिवा । पशुं । अदितिः । नक्तं । अञ्चयाः । अदितिः । पातु । अंहसः ।  
सदावृधा ॥६॥

नोऽस्माकं पशुमदितिरदीनाखंडनीया वा देवमाता दिवाहनि पातु । रक्षतु । तथाप्यथा वाह्याभ्यंत-  
रमेदेन प्रकारद्वयरहिता सर्वदैकप्रकारा कपटरहिता सादितिर्नक्तं रात्री चास्मदीयं गवादिपशुजातं रक्षतु ।  
तथास्मान्प्रहसः पापात् पातु । रक्षतु । केन साधनेन । सदावृधा सर्वदा वृद्धिमतात्मीयेन रक्षणेन ॥

उत स्या नो दिवा मतिरदितिरुत्या गमत् । सा शंताति मयस्करदप सिधः ॥७॥  
उत । स्या । नः । दिवा । मतिः । अदितिः । उत्या । आ । गमत् । सा । शंताति ।  
मयः । करत् । अप । सिधः ॥७॥

उतापि च सा पुर्वोक्ता मतिर्मची मंतव्या सोतव्या वादितिरुत्या रक्षया सार्धं दिवाहनि नो  
ऽस्माना गमत् । आगच्छतु । आगत्य च शंताति शान्तिकरं मयः सुखं सादितिः करत् । करोतु । सिधो  
बाधकाच्छत्रूंश्चापगमयतु ॥ सिधिर्बाधनार्थः । शिवश्मरिष्टस्य करे । पा० ४. ४. १४३. इति शंशब्दात्करणाच्चै  
तातिरुप्रत्ययः ॥



उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना । युयुयातामि तो रपो अप सिधः ॥८॥

उत । त्या । दैव्या । भिषजा । शं । नः । करतः । अश्विना । युयुयातां । इतः । रपः ।

अप । सिधः ॥८॥

उतापि च त्या तो प्रसिद्धी दैव्या देवेषु मवी भिषजा चिकित्सको दैव्यावधिनाश्विना नोऽस्माकं शं  
मुखं रोगाणां शमनं वा करतः । कृततां । इतोऽस्मत्तो रपः पापं युयुयातां । पृथक्कुर्यातां । सिधः शत्रूणा-  
पगमयतां ॥

शममिरमिभिः करच्छं नस्तपतु सूर्यः । शं वातो वात्वरपा अप सिधः ॥९॥

शं । अमिः । अमिऽभिः । करतु । शं । नः । तपतु । सूर्यः । शं । वातः । वातु । अरपाः ।

अप । सिधः ॥९॥

अमिभिः खनिभूया विभिन्नैर्गर्हपत्यादिभिरपिर्देवः शं करत । अस्माकं रोगशान्तिं मुखं वा करोतु ।  
सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्यश्च नोऽस्माकं शं मुखं यथा भवति तथा तपतु । प्रदीप्यतां । वातो वायुसारपा  
अपायः सन् शं यथा भवति तथा च वातु । अनुवर्ततां । सिधः शत्रून्धितेऽग्न्यादयोऽपगमयंतु ॥

अपामीवामप सिधमप सेधत दुर्मतिं । आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥१०॥

अप । अमीवां । अप । सिधं । अप । सेधत । दुऽमतिं । आदित्यासः । युयोतन ।

नः । अंहसः ॥१०॥

हे आदित्याः अमीवां रोगमप सेधत । अस्मत्तोऽपगमयत । सिधं चापसेधकं शत्रुं चाप सेधत । दुर्मति-  
मस्माकं दुःखस्य मंतारं चाप सेधत । अपि च हे आदित्यास आदित्याः नोऽस्मानंहसः पापायुयोतन ।  
पृथक्कुरत ॥ यीतेर्लोठि च्छांदसः शपः सुः । तप्तनप्तनघनाश्चेति तस्य तननादेशः । पित्वाद्गुदात्तले धातुस्वरः  
श्लिष्यते । आमचितं पूर्वमविद्यमानवदिति पूर्वस्त्वाविद्यमानत्वेन पदादपरस्वान्निघातो न भवति ॥ ॥२६॥

युयोता शस्मस्मदाँ आदित्यास उतामतिं । ऋधग्धेषः कृणुत विश्ववेदसः ॥११॥

युयोत । शस् । अस्मत् । आ । आदित्यासः । उत । अमतिं । ऋधक् । धेषः । कृणुत ।

विश्ववेदसः ॥११॥

हे आदित्याः शस् हिंसकमकादाकत्तश्च युयोत । पृथक्कुरत । उतापि चामतिं दुर्बुद्धिं च पृथक्कुरत । हे  
विश्ववेदसः सर्वधनाः सर्वज्ञा वा देवो वेदृश्चपुत्रधक् पृथक् कृणुत । कृणुत । अस्मत्तो वियोजयत ॥

तत्सु नः शर्म यच्छतादित्या यन्मुमोचति । एनस्वंतं चिदेनसः सुदानवः ॥१२॥

तत् । सु । नः । शर्म । यच्छत । आदित्याः । यत् । मुमोचति । एनस्वंतं । चित् ।

एनसः । सुदानवः ॥१२॥

हे आदित्याः तच्छर्म मुखं नोऽस्माभ्यं सु मुमु यच्छत । दत्त । हे सुदानवः शोभनदानाः युष्मदीयं यच्छर्म-  
नस्वंतं चित् पापिनमपि क्षोतारमेनसः पापायुमोचति मोचयति तयच्छतेत्यन्वयः ॥

यो नः कश्चिद्विरिष्यति रक्षस्त्वेन मर्त्यैः । स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः ॥ १३ ॥

यः । नः । कः । चित् । रिरिष्यति । रक्षः । स्त्वेन । मर्त्यैः । स्वैः । सः । एवैः । रिरिषीष्ट ।  
युः । जनः ॥ १३ ॥

यः कश्चिन्मर्त्यो मनुष्यो नोऽस्मान् रक्षस्त्वेन रक्षोभावेन पिशाचायात्मना रिरिष्यति विहिंसिष्यति ॥ रिय हिंसायामिति धातुः ॥ स मनुष्यः स्वैरेवैरात्मीयैरेव वेष्टिते रिरिषीष्ट । हिंसितो भूयात् । स जनो युर्धातापग-  
मनशीलश्च भवतु । यद्वा । स जनः स्वैरेव गमनैर्युर्धुःखं गच्छन् हिंसितो भवतु ॥

समित्तमघमस्रवहुःशंसं मर्त्यं रिपुं । यो अस्मच्चा दुर्हणावाँ उप द्युः ॥ १४ ॥

सं । इत् । तं । अघं । अस्मवत् । दुःशंसं । मर्त्यं । रिपुं । यः । अस्मच्चा । दुःहणावान् ।  
उप । द्युः ॥ १४ ॥

दुःशंसं दुष्कीर्तिं रिपुं शत्रुं तं मर्त्यमिन्नमनुष्यमेवाघं पापं समस्रवत् । सम्यगव्याप्नोतु । यो मर्त्योऽस्माकमा-  
स्वस्मद्विषये दुर्हणावान्दुष्टहृन्मनवानुपवायते द्युर्हणाभ्यां प्रकाराभ्यां युक्तश्च भवति । अघमघः । प्रत्यक्षकृतो  
हितं वदति परोक्षकृतस्त्वहितं । तादृशः कपटो द्युरित्युच्यते । यद्वास्मद्विषये कपटो भवति तमपि पापं  
व्याप्नोत्विति ॥

पाकचा स्थन देवा हत्सु जानीथ मर्त्यं । उप द्युं चाद्वयुं च वसवः ॥ १५ ॥

पाकऽचा । स्थन । देवाः । हत्सु । जानीथ । मर्त्यं । उप । द्युं । च । अद्वयुं । च ।  
वसवः ॥ १५ ॥

हे देवा दानादिगुणयुक्ता आदित्याः धूयं पाकचा पाकेषु विपक्वप्रक्षेपे खोतुषु स्थन । भवथ । यद्वा ॥  
प्रथमार्थे चाग्रत्ययः ॥ पाकचा पाकाः परिपक्वज्ञाना भवथ । यत एवमतः कारणाद्वृत्तातीयेषु हृदयेषु द्युं  
द्विप्रकारयुक्तं कपटिनं चाद्वयुं च तद्विलक्षणं कापट्यरहितं च मर्त्यं मनुष्यमुपेत्य हे वसवो वासवाः जापीच ।  
भवगच्छथ ॥ २७ ॥

आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे । द्यावाक्षामारे अस्मद्रपस्कृतं ॥ १६ ॥

आ । शर्म । पर्वतानां । आ । उत । अपां । वृणीमहे । द्यावाक्षामा । आरे । अस्मत् ।  
रपः । कृतं ॥ १६ ॥

पर्वतानां मेघानां गिरीणां वा संबंधि शर्म मुखं वधमा वृणीमहे । आभिमुख्येन संभवामहे । उतापि  
चापामुदकानां च । हे द्यावाक्षामा द्यावापृथिव्यौ अस्मदारेऽस्मत्तो विप्रकृष्टे देशे रपः पापं कृतं । कृतं ।  
अस्मत्तो विधोव्यतमित्यर्थः ॥

ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः । अति विश्वानि दुरिता पिपर्तेन ॥ १७ ॥

ते । नः । भद्रेण । शर्मणा । युष्माकं । नावा । वसवः । अति । विश्वानि । दुःइता ।  
पिपर्तेन ॥ १७ ॥

हे वसवो वासवितार आदित्याः ते पूर्वोक्तगुणा धूयं भद्रेण शोभनेन शर्मणा मुखेन युष्माकं नावा नो  
ऽस्मान् विश्वानि सर्वाणि दुरिता दुर्गमनाव्यति पिपर्तेन । पिपृत । अतिपारयत ॥



तुचे तनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे । आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ १८ ॥  
 तुचे । तनाय । तत् । सु । नः । द्राघीयः । आयुः । जीवसे । आदित्यासः । सुमहसः ।  
 कृणोतन ॥ १८ ॥

हे आदित्यासोऽदितेः पुत्राः सुमहसः शोभनतेजस्वाः नोऽस्माकं तुचे पुत्राय तनाय तत्तनयाय पीत्राय च जीवसे जीवनाय द्राघीयो दीर्घतमं तत्प्रसिद्धमायुर्जीवितं सु सुष्ठु कृणोतन ॥

यज्ञो हीको वो अंतर आदित्या अस्ति मृळत । युष्मे इदो अपि अस्ति सजान्ये ॥ १९ ॥  
 यज्ञः । हीकः । वः । अंतरः । आदित्याः । अस्ति । मृळत । युष्मे इति । इत् । वः । अपि ।  
 स्मसि । सऽजान्ये ॥ १९ ॥

हे आदित्याः हीकः ॥ हीङिर्गन्तव्यः ॥ गंतव्यः प्राप्तव्योऽस्माभिरनुष्ठितो यज्ञो वो युष्माकमंतरोऽस्ति । अंतिके वर्तमानो भवति । अतोऽस्मात्पृच्छत । सुखयत । वो युष्माकं अजात्ये सजातये आतित्ये वांधवे वर्तमाना वयं युष्मे इदुष्मास्तेवापि अस्ति । सर्वदा भवामोऽपि ॥ इदंतो मसिः ॥

बृहद्वरुणं मरुतां देवं चातारमश्विना । मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये ॥ २० ॥  
 बृहत् । वरुणं । मरुतां । देवं । चातारं । अश्विना । मित्रं । ईमहे । वरुणं । स्वस्तये ॥ २० ॥

मरुतां देवानां स्वामिनां चातारं पालयितारं देवमिन्द्रमश्विनाश्विनी च मित्रं वरुणं च बृहत्प्रीढं वरुणं श्रीतातपादिनिवारकं गृहं स्वस्तयेऽविनाशयेमहे । याचामहे ॥

अनेहो मित्रार्यमनृवद्वरुणं शंस्यं । त्रिवरुणं मरुतो यंत नष्टुर्दिः ॥ २१ ॥  
 अनेहः । मित्र । अर्यमन् । नृवत् । वरुण । शंस्यं । त्रिऽवरुणं । मरुतः । यंत ।  
 नः । छर्दिः ॥ २१ ॥

हे मित्र हे अर्यमन् हे वरुण हे मरुतः ते सर्वे यूयमनेहोऽहिंसितं नृनमृभिः पुत्रादिभिरुपेतं शंस्यं शुभं त्रिवरुणं चयाणां श्रीतातपवर्षाणां निवारकं धत्ता त्रिभूमिकं छर्दिर्गृहं यंत । यच्छत । दत्तैत्यर्थः ॥

ये चिद्धि मृत्युबंधव आदित्या मनवः स्मसि । प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन ॥ २२ ॥  
 ये । चित् । हि । मृत्युऽबंधवः । आदित्याः । मनवः । स्मसि । प्र । सु । नः । आयुः ।  
 जीवसे । तिरेतन ॥ २२ ॥

हे आदित्याः ये चिद्धे च वयं मनवो मनुष्या हि यस्मात्प्राप्तुं धवः स्वसि मृत्योर्यमस्य बंधुभूताः प्रत्यासन्न-  
 मरणा भवामः अतो हेतोस्तेषां नोऽस्माकं जीवसे जीवनाय चिरकासावस्थानायायुर्जीवितं सु प्र तिरेतन ।  
 शोभनं प्रवर्धयत ॥ ॥ २२ ॥

तं गूर्धयेति सप्तचिंशद्वचं सप्तमं सूक्तं काण्वस्य सोमरेरायं प्रथमानुतीयावयुजः ककुभो द्वितीयाचतुर्थ्या-  
 दियुजः सतोबृहत् । पितुर्न पुत्र एषा सप्तविंशी द्विपदा विंशत्यक्षरा विराट् । यमादित्यास इत्येषा चतुस्त्रिं-  
 श्शुण्णिक । यूयं राजान एषा पंचचिंशी सतोबृहती । अंदाज इत्येषा ककुप । उत न इत्येषा सप्तचिंशी पंक्तिः ।  
 षट्चिंशी सप्तचिंशी च चसदक्षुनाको राज्ञो दानक्षुतिरूपत्वान्तदेवताके । चतुस्त्रिंशीपंचचिंश्चावादिष्वदेवताके ।

शिष्टा आपेभ्यः । तथा चानुक्रांतं । तं गूर्धय सप्तविंशत् सोमरिरापेयं कानुमं प्रागाद्यं ह पितुर्न द्विपदांति  
ककुप्यंती चसदस्योर्दानक्षुतिस्तपूर्वे उष्णिकस्तोवृहत्यावादित्येभ्य इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवचा हव्यमोहिरे ॥ १ ॥

तं । गूर्धय । स्वःऽनरं । देवासः । देवं । अरतिं । दधन्विरे । देवऽचा । हव्यं । आ ।  
ऊहिरे ॥ १ ॥

हे सोतः तं प्रसिद्धमपि गूर्धय । कुहि । गूर्धयतिः क्षुतिकर्मा । कीदृशं । स्वर्णरं सर्वस्य नेतारं सर्वेयज-  
मानैः कर्मादौ नीतं वा । अथवा स्वर्गं प्रति हविषां नेतारं । देवासः दीव्यंति कुर्वन्तीति देवा अस्त्विजो देवं  
दानादिगुणयुक्तमरतिमर्थं स्वामिनं यद्वामिप्राप्तद्वयं दधन्विरे । धन्वन्ति । गच्छन्ति । सुत्यादिभिः प्राप्तुवन्ति ।  
धविर्गत्यर्थः । प्राप्य च तेनाभिना देवचा देवान् । देवमनुष्येत्यादिना द्वितीयार्थे चाप्रत्ययः ॥ हव्यं चरुपुरोडा-  
शादिस्रचणं हविरोहिरे । अभिप्रापयन्ति ॥ वहेर्यजादित्वात्संप्रसारणं ॥

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीळिष्व यंतुरं ।

अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्य ॥ २ ॥

विभूतऽरातिं । विप्र । चित्रऽशोचिषं । अग्निं । ईळिष्व । यंतुरं ।

अस्य । मेधस्य । सोम्यस्य । सोभरे । प्र । ई । अध्वराय । पूर्य ॥ २ ॥

अधिरात्मानं संबोध्य कुतौ प्रेरयति । हे विप्र मेधाविन् सोमर एतत्संज्ञैर्वे अध्वराय यागाद्येभिर्ममपि  
प्रेळिष्व । प्रकुहि । कीदृशं । विभूतरातिं विभूतदानं चित्रशोचिषं चायनीयतेजस्कं विचित्रदीप्तिकं वा सोम्यस्य  
सोमसाध्यस्यास्य मेधस्य यज्ञस्य यंतुरं नियंतारं पूर्य चिरंतनं ॥

आभिज्ञविकेषूक्येषु तृतीयसवने प्रशासुः शस्ते यजिष्ठं त्वेत्यादिकौ प्रगाथौ वैकल्पिकौ सोचियाणुषौ ।  
सूचितं च । यजिष्ठं त्वा ववृमहे यः समिधा य आऊती । आ० ७. ८. इति ॥

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवचा होतारममर्त्यं । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं ॥ ३ ॥

यजिष्ठं । त्वा । ववृमहे । देवं । देवऽचा । होतारं । अमर्त्यं । अस्य । यज्ञस्य । सुऽक्रतुं ॥ ३ ॥

हे अपि यजिष्ठमिष्टतमं त्वा ववृमहे । वृणीमहे । संभजामहे । कीदृशं त्वां । देवचा देवेषु मध्ये देवमतिशयेन  
दानादिगुणयुक्तं होतारं देवानामाह्वतारममर्त्यमविनाशमस्य यज्ञस्य यागस्य सुक्रतुं सुष्ठु कर्तारं ॥

ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निं श्रेष्ठशोचिषं ।

स नो मिचस्य वरुणस्य सो अपामा सुखं यक्षते दिवि ॥ ४ ॥

ऊर्जः । नपातं । सुऽभगं । सुऽदीदितिं । अग्निं । श्रेष्ठऽशोचिषं ।

सः । नः । मिचस्य । वरुणस्य । सः । अपां । आ । सुखं । यक्षते । दिवि ॥ ४ ॥

ऊर्जोऽज्ञस्य नपातं न पातयितारं । यद्वा । नपारं चतुर्थं । हविर्लक्षणेनाग्नेनापो जायतेऽग्निश्चौषधिवन-  
स्ततयस्तेभ्य एव जात इति चतुर्थत्वं ॥ नधाएनपादिति नयः प्रकृतिता च ॥ सुभगं शोभनधनं सुदीदिति सुष्ठु  
दोषयितारं श्रेष्ठशोचिषं प्रशस्ततमतेजस्कमपि कौमीति शेषः । स तादृशोऽग्निर्नोऽसदर्थं दिवि सोतमाने  
देवयजने युक्तोक्ते वा मिचस्य देवस्य वरुणस्य च सुखं सुखमामिलस्य यचते । यजतु । तथा सोऽपिरपामन्दि-  
वतानां सुखमभियजतु ॥



यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्रये । यो नमसा स्वध्वरः ॥ ५ ॥

यः । सुंऽइधा । यः । आऽहुती । यः । वेदेन । ददाश । मर्तः । अग्रये । यः । नमसा ।  
सुंऽअध्वरः ॥ ५ ॥

इयं पाकयज्ञप्रशंसापरेति भगवताश्वलायनेन व्याख्याता । आ० गृ० १. १. ४. । यो मर्तो मनुष्यः समिधा  
पाश्चात्यादिनेधेनापयेऽग्न्यर्थं ददाश परिचरति । यद्याहुती आहुत्याद्यादिसाध्या परिचरति । यच्च  
वेदेन वेदाध्ययनेन परिचरति । यच्च स्वध्वरः शोभनेनाध्वरेण ज्योतिष्टोमादिना युक्तः सन्नमसानेन चत्वरु-  
डाद्यादिनापये ददाश अग्न्यर्थं परिचरति । तस्मिन्वेत इत्युत्तरस्य संबंधः ॥ ॥ २९ ॥

तस्येदर्वेतो रंहयंत आश्वस्तस्य द्युस्मितं यशः ।

न तमंहो देवकृतं कृतश्च न मर्त्यकृतं नशत् ॥ ६ ॥

तस्य । इत् । अर्वेतः । रंहयन्ते । आश्वः । तस्य । द्युस्मितं । यशः ।

न । तं । अंहः । देवऽकृतं । कृतः । च । न । मर्त्यऽकृतं । नशत् ॥ ६ ॥

यः पूर्वोक्तस्त्वस्मिन्स्वैवाश्वो व्यापनशीला अर्वेतोऽश्वा रंहयन्ते । वेगं कुर्वन्ति । शत्रून् प्रसहन्त इत्यर्थः ।  
द्युस्मितं दीप्तिमत्तमं यशः कीर्तिश्च तस्मैव भवति । यद्वा । द्युस्मिति धननाम । धनवत्तमं यशोऽन्नं च  
तस्य भवति । अपि च देवकृतमंहः पापं कृतश्चन कस्यापि हेतोस्तं न नशत् । न प्राप्नोति । न मर्त्यकृतं  
मनुष्यैः कृतं ॥

स्वमयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जो पते । सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥ ७ ॥

सुंऽअग्रयः । वः । अग्निभिः । स्याम । सूनो इति । सहसः । ऊर्जो । पते । सुंऽवीरः ।  
त्वं । अस्मऽयुः ॥ ७ ॥

हे सहसः सूनो वलस्य पुत्र । अपिर्हि वलेन मथ्यमानो जायते । हे ऊर्जो पतेऽन्नानां हविर्ब्रह्मणानां स्वा-  
मिन्ने वः ॥ वचनव्यत्ययः ॥ तवावयवभूतैरग्निभिर्गार्हपत्यादिभिर्वचं स्वययः शोभनापिकाः स्नाम । भवेम ।  
सुवीरः शोभनेर्वीरैरुपेतस्त्वं चास्त्रयुरस्त्रान्कामयमानो भव ॥

प्रशंसमानो अतिथिर्न मिचियोऽमी रथो न वेद्यः ।

त्वे क्षेमासो अपि संति साधवस्त्वं राजा रथीणां ॥ ८ ॥

प्रऽशंसमानः । अतिथिः । न । मिचियः । अग्निः । रथः । न । वेद्यः ।

त्वे इति । क्षेमासः । अपि । संति । साधवः । त्वं । राजा । रथीणां ॥ ८ ॥

प्रशंसमानः सुव्रततिथिरिव । यद्वा ॥ अत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ॥ प्रशंसमानः । सोऽपिर्मिचियो  
मिचियाणां स्त्रोतृणां हितो भवति । तथा रथो न रथ इव वेद्यो जंमनीयोऽभियवफलसाधनत्वेन ज्ञातव्यो वा ।  
उत्तरोऽर्ध्वः प्रत्ययत्वकर्ता । हे अपि त्वे त्वयि साधवः साधकाः समीचीनाः क्षेमासो धारणान्यपि संति ।  
भवन्ति । तथा रथीणां धनानामेव राजेश्वरो भवति ॥

सो अज्ञा दाश्वध्वरोऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः । स धीभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥

सः । अज्ञा । दाश्वऽअध्वरः । अग्ने । मर्तः । सुंऽभग । सः । प्रऽशंस्यः । सः । धीभिः ।  
अस्तु । सनिता ॥ ९ ॥

हे अग्नि यो मर्तो मनुष्यो दासध्वरश्च दत्तयज्ञो भवति सो अथा । सत्यनामैतत् । सत्यफलो भवतु । हे सुभग शोभनधनाये स एव प्रशंस्य प्रशंसनीयः स्थापनीयश्च भवतु । तथा स धीभिः कर्मभिः सोधैर्वा सनिता संभजनशीलो भवतु ॥

यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते ।

सो अर्वैः सनिता स विपन्युभिः स श्रूरेः सनिता कृतं ॥१०॥

यस्य । त्वं । ऊर्ध्वः । अध्वराय । तिष्ठसि । क्षयत् ऽवीरः । सः । साधते ।

सः । अर्वैत् ऽभिः । सनिता । सः । विपन्युऽभिः । सः । श्रूरैः । सनिता । कृतं ॥१०॥

हे अग्ने यस्य यजमानस्याध्वराय यागनिष्पादनाय त्वमूर्ध्व उद्युक्तः संस्तिष्ठसि अवतिष्ठसे स यजमानः यद्यहीरो निवसन्निरित्वैर्वा वीरेः पुत्रादिभिरुपेतः सन् साधते । सर्वकर्तव्यं साधयति । तदेव विवृणोति । स तादृशो जनोऽर्वैस्त्रिरथैः कृतं निष्पादितं जयादिकं सनिता संभजनशीलो भवति । स तादृशो जनो विपन्यु-भिर्मेधाविभिः स श्रूरैश्च सनिता भवति ॥ ॥३०॥

यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः । हव्या वा वेविषद्विषः ॥११॥

यस्य । अग्निः । वपुः । गृहे । स्तोमं । चनः । दधीत । विश्वऽवार्यः । हव्या । वा ।

वेविषत् । विषः ॥११॥

यस्य यजमानस्य गृहे विश्ववार्यो विश्वैर्वरणीयो वपुः । रूपनामैतत् । रूपवान् दीप्तिमानग्निः स्तोमं स्तोत्रं चनोऽन्नं च हविर्लक्ष्यं दधीत धारयेत् । यस्य च हव्या । वाशब्दः समुच्चये । हव्यानि हवीषि च विषो व्याप्तान् देवान् वेविषत् प्रापयेत् ॥ विष्णु व्याप्नो । अस्माक्येति रूपमेतत् ॥ स यजमान इति पूर्वच संबंधः ॥

विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षुत्तमस्य रातिषु ।

अवोदेवमुपरिमर्त्य कृधि वसो विविदुषो वचः ॥१२॥

विप्रस्य । वा । स्तुवतः । सहसः । यहो इति । मक्षुऽत्तमस्य । रातिषु ।

अवऽदेवं । उपरिऽमर्त्यं । कृधि । वसो इति । विविदुषः । वचः ॥१२॥

हे सहसो यहो वक्षस्व पुत्राये विप्रस्य मेधाविनः स्तुवतः स्तोत्रं रातिषु हविर्दानेषु मष्टुतमस्य शीघ्र-तमस्य यदुर्वा विविदुषो ज्ञातव्यस्याभिज्ञस्य वचो वचनं हे वसो वासकाये अवोदेवं देवानामवस्तादुपरिमर्त्य मर्त्यानामुपरिष्ठाच्च कृधि । कृष । सर्वं नमःप्रदेशं आपयेति यावत् ॥

यो अग्निं हव्यदातिभिर्नमोभिर्वा सुदक्षमाविवासति । गिरा वाजिरशोचिषं ॥१३॥

यः । अग्निं । हव्यदातिऽभिः । नमःऽभिः । वा । सुऽदक्षं । आऽविवासति । गिरा ।

वा । अजिरऽशोचिषं ॥१३॥

यो यजमानो हव्यदातिभिर्हविषां दग्निर्नमोभिर्नमस्तारिर्वा सुदक्षं शोभनवल्गममिमाविवासति परिचरति गिरा वा जुह्या वाजिरशोचिषं क्षिप्रगामितेजस्कं तमग्निं परिचरति स समृद्धो भवतीति शेषः ॥

समिधा यो निशिंती दाशुददिति धामभिरस्य मर्त्यः ।

विश्वेत्स धीभिः सुभगो जनाँ अति युष्मैरुद्भ इव तारिषत् ॥१४॥



सु० इधा । यः । नि० शिती । दाशत् । अदितिं । धाम० भिः । अस्य । मयैः ।

विश्या । इत् । सः । धीभिः । सु० भगः । जनान् । अति । द्युमैः । उ० वः । इव । तारिषत् ॥ १४ ॥

यो मर्त्यो मनुष्योऽस्मपेधामभिः शरीरैर्गार्हपत्यादिरूपेण विभज्य वर्तमानैः सार्धमदितिमखण्डीयं तमेवापि निशितो निशित्वा निशानसाधनया प्रज्यजनहेतुभूतया समिधा दाशत् परिचरेत् धीभिः कर्मभिर्बुद्धिविशेषैर्वा सुभगः सन् विद्वेत् सर्वानेव जनान्मुक्षीयौतमानिरर्त्तयशोभिर्वाग् एवोदकानीवाति तारिषत् । अतितरेत् । अतिक्रामेत् ॥

तदग्रे द्युममा भर यत्सासहत्सदने कं चिदचिर्यं । मन्युं जनस्य दूढ्यः ॥ १५ ॥

तत् । अग्रे । द्युमं । आ । भर । यत् । ससहत् । सदने । कं । चित् । अचिर्यं । मन्युं । जनस्य । दुः० द्यः ॥ १५ ॥

हे अग्रे तद्युममा भर । अस्मभ्यमाहर । यत्सदने शुद्धे वर्तमानं कं चित्कमप्यचिरमन्तारं राक्षसादिकं सासहत् अत्यर्थमभिभवेत् । तथा दूढ्यो युधिष्ठिरः पापबुद्धेः शत्रुजनस्य मन्युं क्रोधं यस्य युज्यमभिभवेत् तदाहरेत्यन्वयः ॥ धी चेति प्रपौदरादिपाठादहरो रेफस्योत्वं उत्तरपदादेष्टुत्वं च ॥ ३१ ॥

येन चष्टे वरुणो मिचो अर्यमा येन नासत्या भगः ।

वर्यं तत्ते शर्वसा गातुवित्तमा इन्द्रतोता विधेमहि ॥ १६ ॥

येन । चष्टे । वरुणः । मिचः । अर्यमा । येन । नासत्या । भगः ।

वर्यं । तत् । ते । शर्वसा । गातुवित्० तमाः । इन्द्रत्वा० ऊताः । विधेमहि ॥ १६ ॥

येनापेयेन तेजसा वरुणो देवचष्टे प्रकाशयति । येन च मिचोऽर्यमा च चष्टे । येन च नासत्याक्षिणी च चषति । भगो भवनीय एतत्संज्ञो देवस्य चष्टे । शर्वसा वसिष्ठ गातुवित्तमा गातोर्वातव्यस्य खीषस्य आतुतमाः । यद्वा । गंतव्यस्य प्राप्तव्यस्य लब्धुतमाः । इन्द्रतोता इन्द्रेणैवरेण लघोता रक्षिताः संतो वयं हे अग्नि ते त्वदीयं तत्तेषां विधेमहि । परिचरेमहि ॥

ते घेदग्ने स्वा० ध्यो० ३ ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसं । विप्रासो देव सुक्रतुं ॥ १७ ॥

ते । घ । इत् । अग्ने । सु० आ० ध्यः । ये । त्वा । विप्र । नि० दधिरे । नृ० चक्षसं । विप्रासः । देव । सु० क्रतुं ॥ १७ ॥

हे अग्नि ते चेत् एष खलु स्वाध्यः शोभनाधाना भवन्ति । हे विप्र मेधाविन् देव सोतमानाग्ने धे विप्रासो विप्रा मेधाविन् अस्त्रिजो वृषचसं वृणां चष्टारं सुक्रतुं सुकर्माणं शोभनप्रज्ञं वा त्वा त्वां निदधिरे निदधति यागार्थं गार्हपत्यादिस्थानेष्वधानसंस्कारेण स्थापयन्ति ते चेदित्यन्वयः ॥

त इवेदिं सुभग त आहृतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि ।

त इवाजैभिर्जिग्युर्महद्भनं ये ते कामं न्येरिरे ॥ १८ ॥

ते । इत् । वेदिं । सु० भग । ते । आ० हृतिं । ते । सोतुं । चक्रिरे । दिवि ।

ते । इत् । वाजैभिः । जिग्युः । महत् । धनं । ये । ते इति । कामं । नि० ऽहृतिरे ॥ १८ ॥

हे सुभग शोभनधनामे त इत्त एव यजमानास्त्वन्नामाथ वेदिं चक्रिरे । कुर्वन्ति । तदन्तरं ते यजमाना  
आहुतिं चक्षुरोडाशादिस्थां दीवशीयादिषु कुर्वन्ति । ततो हिवि स्योतमाने स्तोत्रेऽहनि स्योतुं सोममभि-  
स्योतुं चक्रिरे । उद्योगं कुर्वन्ति । अनुष्ठितयज्ञास्त इत्त एव वाजेभिर्वाजैर्वैर्मेहत्प्रभूतं धनं जिग्मुः । जयन्ति ।  
शत्रुभ्यो सन्ते । कुत इत्यत आह । ये यजमाना हे अग्ने त्वे त्वयि काममभिलाषं ज्यैरिरे नितरां गच्छन्ति ।  
त्वामादरातिशयेन कुर्वन्तीत्यर्थः ॥

आभिन्नविकेषकष्येषु तृतीयसवने प्रशास्तुः शस्त्रे भद्रो न इति प्रगाथो वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूच्यते हि ।  
भद्रो नो अपिराहुतो यदी घृतेभिराहुतः । आ० ७. ८. इति ॥

भद्रो नो अपिराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १९ ॥

भद्रः । नः । अग्निः । आहुतः । भद्रा । रातिः । सुभग । भद्रः । अध्वरः । भद्राः । उत ।

प्रशस्तयः ॥ १९ ॥

आहुतो हविर्मक्षर्यितोऽभिर्नोऽस्माकं भद्रः कल्याणो भवतु । हे सुभग शोभनधनामे भद्रा कल्याणी  
रातिर्दानं चास्माकं भवतु । भद्रः कल्याणोऽध्वरो यागश्च भवतु । उतापि च भद्राः कल्याणः प्रशस्तयः  
प्रशंसाः स्तुतयश्च भवन्तु ॥

भद्रं मनः कृणुष्व वृचतूर्ये येना समत्सु सासहः ।

अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥ २० ॥

भद्रं । मनः । कृणुष्व । वृचतूर्ये । येन । समत्सु । सासहः ।

अव । स्थिरा । तनुहि । भूरि । शर्धतां । वनेम । ते । अभिष्टिभिः ॥ २० ॥

हे अग्ने वृचतूर्ये संयामि भद्रं शोभनं मनः कृणुष्व । अस्माकं कुरु । येन मनसा त्वं समत्सु संयामेषु सासहः  
पृथं शत्रून्निमग्वसि । अपि च शर्धतामभिभवतां शत्रूणां भूरि भूरीणि वह्नि स्थिराणि दृढान्यथव तनुहि ।  
अवाचि कुरु । पराजितानि कुर्वित्यर्थः । वयं चाभिष्टिभिरग्येषणसाधनेर्हविर्भिः स्तोत्रैश्च ते त्वां वनेम । संभजे-  
महि । यद्वा । ते तव प्रसादादभिष्टिभिरभीष्टैः फलैर्वनेम । संगच्छेमहि ॥ ॥ ३२ ॥

ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्यैरिरे । यजिष्ठं हव्यवाहनं ॥ २१ ॥

ईळे । गिरा । मनुःहितं । यं । देवाः । दूतं । अरतिं । निऽएरिरे । यजिष्ठं । हव्य  
ऽवाहनं ॥ २१ ॥

गिरा वाचा स्तुतिरूपया मनुर्हितं मनुना प्रजापतिना यजमानेनाहितं तमपिमीळे । स्त्रीभिः । कीदृशं ।  
यजिष्ठं यष्टृतमं हव्यवाहनं हविषां वोढारमरतिमर्यमीश्वरं वा दूतं देवानां दूत्ये वर्तमानं । यमपिं देवा  
ज्यैरिरे नितरां प्रेरयन्ति ॥

तिग्मजभाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यम्ये ।

यः पिंशते सूनृताभिः सुवीर्यमग्निघृतेभिराहुतः ॥ २२ ॥

तिग्मऽजभाय । तरुणाय । राजते । प्रयः । गायसि । अम्ये ।

यः । पिंशते । सूनृताभिः । सुवीर्ये । अग्निः । घृतेभिः । आहुतः ॥ २२ ॥



तिग्मजंभाय तीक्ष्णज्वालाय तद्वर्णाय नित्ययूने वरामरणरहिताय राजते राजमानायापये प्रयो  
हविर्धनममं गायसि हे सोतः । प्रवृत्तिं प्रयच्छिष्यः । योऽपिः सुगुताभिः प्रियसत्त्वात्मिकाभिर्वाग्भिः सुतो  
धृतेभिर्धृतेराज्योराज्यतोऽभिजतय सन् सुवीर्यं शोभनवीर्यं पिंशते आक्षेपयति कोतृभिः संयोजयति ॥ पिश  
अवयवे ॥ तस्मा अपय इत्यन्वयः ॥

आभिन्नविकेषकृष्णेषु प्रशासुः शस्त्रे यदा मद्रो नः । अ० ८. १९. १९. । इति प्रगाथः सोत्रियः तदानीं यदी  
धृतेभिरिति प्रगाथोऽनुष्टुपः । सूत्रं तु पूर्वमेवोदाहृतं ॥

यदी धृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चावं च । असुर इव निर्णिजं ॥ २३ ॥

यदि । धृतेभिः । आऽहुतः । वाशी । अग्निः । भरते । उत् । च । अवं । च । असुरः । इव ।

निःऽनिजं ॥ २३ ॥

धृतेभिर्धृतेराज्यतोऽभिजतोऽयमपिर्यदि यदा यस्मिन्काले वाशी । वाक्कामेतत् । वाचं शब्दसुसोर्ध्वं  
चाव चावाक्क भरते संपादयति । यद्वा । वाशी वाशनशीलां शब्दकारिणीं ज्वालांमुत्तरति उत्तरति उत्तम-  
यत्सुर्ध्वमुखमव च भरते अवाक्पुच्छं च हरति उपसंहरति । असुर इव ररमीनां चेन्ना सूर्यो यथा निर्णिजमा-  
त्मीयं रूपमुपरितनेषु लोकेषु प्रकाशतयोन्नमयति अधस्तनेषु चावाक्पुच्छं गमयति तद्वदुच्चनीचभावनयापिस्त्रेव  
उन्नमयति । तं सुम इति शेषः ॥

यो हृष्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगंधिना ।

विवासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः ॥ २४ ॥

यः । हृष्यानि । ऐरयत । मनुःऽहितः । देवः । आसा । सुऽगंधिना ।

विवासते । वार्याणि । सुऽअध्वरः । होता । देवः । अमर्त्यः ॥ २४ ॥

यो मनुर्हितो मनुना प्रजापतिनाहितो देवो वीतमानोऽपिः सुगंधिना शोभनगंधयुक्तेनासास्त्रेण  
हृष्यान्यदीयाणि हवींश्चिरयत देवान्प्रति प्रेरयति स्वध्वरः शोभनयज्ञो होता देवानामाज्ञाता देवो दीय-  
मानोऽमर्त्यो मरणरहितः सोऽपिर्वार्याणि वरणीयाणि धनानि विवासते । परिचरते । यजमानाय प्रयच्छ-  
तीति शेषः ॥

यद्मे मर्त्यस्त्वं स्यामहं मिचमहो अमर्त्यः । सहसः सूनवाहुत ॥ २५ ॥

यत् । अमे । मर्त्यः । त्वं । स्यां । अहं । मिचऽमहः । अमर्त्यः । सहसः । सूनो इति ।

आऽहुत ॥ २५ ॥

हे सहसः सूनो वल्लस पुत्राज्जत धृतेरभिजत हे मिचमहोऽनुकूलदीप्तिमन्ममे मर्त्यो मरणधर्मोहं यवदि  
त्वं स्नां त्वदुपासनाया त्वद्रूपमापन्नो भवेयं । ये यथायथोपासते ते तदेव भवन्तीति युतिः । तर्ह्यहममर्त्यो  
मरणरहितो देव एव भवेयमिति ॥ ३३ ॥

न त्वा रासीयाभिश्स्तये वसो न पापत्वाय संत्य ।

न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादमे न पापया ॥ २६ ॥

न । त्वा । रासीय । अभिऽशस्तये । वसो इति । न । पापऽत्वाय । संत्य ।

न । मे । स्तोता । अमतिऽवा । न । दुऽहितः । स्यात् । अमे । न । पापया ॥ २६ ॥

हे वसो वासकापे त्वा त्वामभिश्नस्येऽभिश्नसनाय मिथ्यापवादाय हिंसायै च न रासीय । नाक्रोशयेयं ॥ राक्ष शब्दे ॥ हे संत्य संभवनीयापे पापत्वाय त्वां न रासीय । मे मदीयः स्तोता चागमिमतवचनेन त्वां नाक्रोशयतु । अत एवामतीवा । अमतिरशोभनां बुद्धिः । तद्वान् अपि च दुर्हितः शत्रुर्हे अपि अस्माकं न स्यात् । न भवतु । अत एव पापयाशोभनया बुद्ध्या स न बाधतां ॥

पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोणे आ देवाँ एतु प्र णो हविः ॥ २७ ॥

पितुः । न । पुत्रः । सुऽभृतः । दुरोणे । आ । देवान् । एतु । प्र । नः । हविः ॥ २७ ॥

पितुर्न पुत्रः पितुः पुत्र इवास्माकं सुभृतः सुष्ठु मर्ता । यद्वा । पित्रा पुत्र इवास्माभिः सम्यग्भृतो हविर्भिः पोषितः । अथमपिः पुत्र इवास्माकं सुभृतो दुरोणे यज्ञगृहे देवानामिषस्य नोऽस्माकं हविः प्रेतु । प्रगमयतु । यद्वा । अपिरेतु । आगच्छतु । अस्मादीयं हविष्य देवान् प्राप्नोतु ॥

तवाहममं ऊतिभिर्नेदिष्ठाभिः सचेय जोषमा वसो । सदा देवस्य मर्त्यैः ॥ २८ ॥

तव । अहं । अग्ने । ऊतिऽभिः । नेदिष्ठाभिः । सचेय । जोषं । आ । वसो इति । सदा । देवस्य । मर्त्यैः ॥ २८ ॥

हे वसो वासकापे नेदिष्ठाभिरंतिक्ततमाभिर्चञ्जुगामिनीभिर्वा देवस्य तवोतिभी रषाभिर्मर्त्यो मनुष्योऽहं स्तोता सदा सर्वदा जोषमा सचेय । प्रीतिमभिसेवेय ॥

तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्ने तव प्रशस्तिभिः ।

त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो ममाग्ने हर्षस्व दातवे ॥ २९ ॥

तव । क्रत्वा । सनेयं । तव । रातिऽभिः । अग्ने । तव । प्रशस्तिऽभिः ।

त्वां । इत् । आहुः । प्रऽमतिं । वसो इति । मम । अग्ने । हर्षस्व । दातवे ॥ २९ ॥

हे अग्ने तव क्रत्वा त्वदीयेन परिचरणरूपेण कर्मणा सनेयं । त्वां संभजेयं । एतदेव विशदयति । तव रातिभिस्त्वदीयेर्हविर्दानेन सनेयं । तथा तव प्रशस्तिभिः प्रशंसनेः स्तोत्रेण त्वां संभजेयं । अस्मिन् संभजने किं कारणं तदाह । हे वसो वासकापे मम स्तोतुः प्रमतिं प्रकृष्टबुद्धिं रचयं त्वामित्त्वामेवाहुः । ब्रह्मवादिभ्यः कथयति । अतो हे अग्ने दातवे दातुं हर्षस्व । इष्टो भव । हर्षयुक्तः सन् वज्र धनं प्रयच्छेत्पर्यः ॥

पूर्वोक्तं एव प्रशस्तुः शस्त्रे प्र स इति प्रगाथो वैकल्पिकोऽशुक्लः । सुच्यते हि । प्र सो अग्ने तवोतिभि-  
रपि नो वृधंतं । आ० ७. ८. । इति ॥

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः । यस्य त्वं सुख्यमावरः ॥ ३० ॥

प्र । सः । अग्ने । तव । ऊतिऽभिः । सुऽवीराभिः । तिरते । वाजभर्मऽभिः । यस्य ।

त्वं । सुख्यं । आऽवरः ॥ ३० ॥

हे अग्ने तवोतिभी रषाभिः स यजमानः प्र तिरते । प्रवर्धते । ऊतयो विशेयते । सुवीराभिः । शोभना वीराः पुत्रादयो यासु तास्योक्ताः । वाजभर्मभिः । वाजानामन्नाणां वसानां वा मर्म भरणं यासु तासुशीभिः । हे अग्ने त्वं यस्य यजमानस्य सुख्यं सखित्वं मिषत्वमावरः अभिवृणोषि स तिरत इत्यन्वयः ॥ ३४ ॥

तव द्रुप्तो नीलवान्वाश ऋत्विय इंधानः सिष्णवा ददे ।

त्वं महीनामुषसांसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥ ३१ ॥



तव । द्रुप्तः । नीलऽवान् । वाशः । क्षुत्त्रियः । इंधानः । सिष्णो इति । आ । ददे ।  
त्वं । महीनां । उपसां । अस्ति । प्रियः । क्षपः । वस्तुषु । राजसि ॥ ३१ ॥

हे सिष्णो ॥ क्षिप्रः सेवनार्थः ॥ सोमेनासिध्यमानाणि द्रुप्तो द्रवणशीलो नीलवान् शकटनीडोऽवस्थानात्  
तद्वान् वाशः क्रांतः शब्दायमानो वा क्षुत्त्रिय इत्यौ वसंतादिकालविशेषे भव इंधानः संदीपयन् एवंभूतस्तव  
शोभ आ ददे । तुभ्यं होमायाध्वर्युणादीयते । अपि च त्वं महीनां महतीनामुपसां प्रियो मित्रभूतोऽसि ।  
उपसि ह्यपयो होमाय प्रज्वालति । तथा क्षपः क्षपाया रात्रेः संबंधिषु वस्तुषु राजसि । प्रकाशसे । यद्वा ।  
रात्रिसंबंधीनि वस्तूनि पदार्थजातानि त्वं प्रकाशयसि ॥

तमागन्म सोमरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे । सम्राजं चासदस्यवं ॥ ३२ ॥

तं । आ । अगन्म । सोमरयः । सहस्रमुष्कं । सुऽअभिष्टिं । अवसे । संऽराजं ।  
चासदस्यवं ॥ ३२ ॥

सोमरय क्षपयो वयमवसे रक्षणाय तमपिमागन्म । हविर्भिः क्षुतिभिश्च प्राप्ता अभूम् । कीदृशं ।  
सहस्रमुष्कं । मुष्णन्ति तमांस्त्रयपहरंतीति मुष्काणि तेषां । वज्रतेजस्कं स्वभिष्टिं शोभनाभ्येषणं सम्राजं सम्यगा-  
यमानं चासदस्यवं । असदस्युर्नाम राजर्षिः । तस्य स्रोतव्यत्वेन संबंधिनं ॥

यस्य ते अग्ने अन्ये अग्नय उपक्षितो वया इव ।

विपो न द्युम्ना नि युवे जनानां तव क्षत्राणि वर्धयन् ॥ ३३ ॥

यस्य । ते । अग्ने । अन्ये । अग्नयः । उपऽक्षितः । वयाऽइव ।

विपः । न । द्युम्ना । नि । युवे । जनानां । तव । क्षत्राणि । वर्धयन् ॥ ३३ ॥

हे अग्ने यस्य ते तवान्येऽग्नयो वया इव पुत्रस्य शाखा इवोपक्षितः समीपे निवसंतो भवंति जनानां  
जनिमतां मनुष्याणां मध्येऽहं तस्य तव क्षत्राणि वस्तानि क्षुत्वा वर्धयन् विपो न । स्रोतुगमितत् । अन्ये  
स्रोतार इव द्युम्ना स्रोतमानान्वहानि यथांसि वा नि युवे । नितरां प्राप्नोमि । त्वत्प्रसादाकमेत्यर्थः ॥

यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यं । मघोनां विश्वेषां सुदानवः ॥ ३४ ॥

यं । आदित्यासः । अद्रुहः । पारं । नयथ । मर्त्यं । मघोनां । विश्वेषां । सुऽदानवः ॥ ३४ ॥

हे अद्रुहोऽद्रोघधरो हे सुदानवो हे आदित्यासोऽदितेः पुत्रा मित्रादयः मघोनां हविष्मतां विश्वेषां  
सर्वेषां मध्ये यं मर्त्यं मनुष्यं यजमानं पारं नयथ आरब्धस्य कर्मणः समाप्तिं प्रापयथ । स तत्फलं जमत इत्यर्थः ॥

यूयं राजानः कं चिच्चर्षणीसहः क्षयंतं मानुषाँ अनु ।

वयं ते वो वरुण मिचार्यमन्स्यामेदृतस्य रथ्यः ॥ ३५ ॥

यूयं । राजानः । कं । चित् । चर्षणिऽसहः । क्षयंतं । मानुषान् । अनु ।

वयं । ते । वः । वरुण । मिच । अर्यमन् । स्याम । इत् । चृतस्य । रथ्यः ॥ ३५ ॥

हे राजानो राजमाना हे चर्षणीसहः शत्रुभूतानामभिभवितार आदित्याः यूयं मानुषान् मनुष्यान्वजमा-  
नान्मनुष्यस्य क्षयंतं क्षपयंतं कं चित् कमपि शत्रुवर्गमभिमवथेति शेषः । यद्वा । मनुष्येषु यजमानेषु क्षयंतं क्षुती-  
जामीत्यरं कं चित् कमपि स्रोतारं मा यूयं गच्छत । हे वरुण हे मिच हे अर्यमन् ते तादृशा वयं वो युष्माकं  
संबंधिन इत्यस्य यज्ञस्य रथ्यः स्याम । नेतारो भवेम ॥

अदान्मे पौरुक्त्स्यः पंचाशतं चसदस्युर्वधूनां । मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः ॥ ३६ ॥

अदान् । मे । पौरुऽकुत्स्यः । पंचाशतं । चसदस्युः । वधूनां । मंहिष्ठः । अर्यः ।  
सत्पतिः ॥ ३६ ॥

इदमादिकेन प्रगाथेन चसदस्योर्दानमृषिः प्रशंसति । पौरुक्त्स्यः पुरुक्त्सपुत्रसदस्युर्मे मह्यं वधूनां  
पंचाशतमदात् । दत्तवान् । कीदृशः । मंहिष्ठो दातुतमोऽर्च्योऽभिगतव्यः स्वामी वा सत्पतिः सतां श्रेष्ठानां  
कीतृणां पालयिता ॥

उत मे प्रिययोर्वयियोः सुवास्वा अधि तुर्वनि ।

तिसृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेता भुवञ्चसुर्दियानां पतिः ॥ ३७ ॥

उत । मे । प्रिययोः । वयियोः । सुऽवास्वाः । अधि । तुर्वनि ।

तिसृणां । सप्ततीनां । श्यावः । प्रऽनेता । भुवत् । वसुः । दियानां । पतिः ॥ ३७ ॥

॥ ३५ ॥

आ गतेति षड्विंशत्युचमष्टमं सूक्तं काण्वस्य सोमरेरार्षे मारुतं प्रथमाव्ययुजः ऋतुमो द्वितीयाद्वियुजः  
सतोवृहत्तयः । अनुक्रम्यते हि । आ गंत षड्विंशतिर्मारुतमिति ॥ गतो विनियोगः ॥

आ गता मा रिषय्यत प्रस्थावानो मापं स्याता समन्यवः । स्थिरा चिन्नमयिष्णवः ॥ १ ॥

आ । गंत । मा । रिषय्यत । प्रऽस्थावानः । मा । अपं । स्यात । सऽमन्यवः । स्थिरा ।  
चित् । नमयिष्णवः ॥ १ ॥

हे प्रस्थावानो गमनशीला मरुतः दूयमा गंत । आगच्छत । मा रिषय्यत । अनागमनेनास्मान्वा हिंस्र । हे  
समन्यवः समानतेजस्ताः समानक्रोधा वा स्थिरा चित् स्थिराणि दृढान्यपि पर्वतादीनि हे नमयिष्णवो  
गमनशीलाः कंपयितारः मापं स्यात । अस्मात्तोऽपेक्षान्यत्र मा तिष्ठत । अस्मास्तेव तिष्ठतेत्यर्थः ॥

वीकुपविभिर्मरुत ऋभुक्ष्ण आ रुद्रासः सुदीतिभिः ।

इषा नो अद्या गता पुरुस्पृहो यज्ञमा सोभरीयवः ॥ २ ॥

वीकुपविऽभिः । मरुतः । ऋभुक्ष्णः । आ । रुद्रासः । सुदीतिऽभिः ।

इषा । नः । अद्य । आ । गत । पुरुऽस्पृहः । यज्ञं । आ । सोभरीऽयवः ॥ २ ॥

हे ऋभुक्ष्णो महान्तं उरुमासमाननिवासा वा हे रुद्रासो रुद्रा रुद्रपुत्राः ईदृशा हे मरुतः सुदीतिभिः  
शोभनीयैर्वीकुपविभिः । रथनेमयः पवयः । वीकु दृढाः पवयो येषु तादृशे रथेरा गत । आगच्छत ।  
एतदेव विवृणोति । हे पुरुस्पृहो वज्रभिः स्पृहणीया ईप्सितव्याः सोभरीयवः सोमरिमृषिं मां कामयमाना  
नोऽस्माकं यज्ञं प्रत्यवेदानीमिषान्नेन सहागच्छत । आ पूरणः ॥

विद्वा हि रुद्रियाणां शुष्ममुयं मरुतां शिमीवतां । विष्णोरिषस्य मीळुषां ॥ ३ ॥

विद्वा । हि । रुद्रियाणां । शुष्मं । उयं । मरुतां । शिमीऽवतां । विष्णोः । इषस्य ।

मीळुषां ॥ ३ ॥



रुद्रियाणां रुद्रपुत्राणां शिमीवतां कर्मवतां विष्णोर्ब्राह्मणस्त्रीषणीयस्य वृष्यदकस्य मीनृषां सेतूषां  
मरुतामुग्रमुखीं शुष्मं वलं विस्र हि । आनीमः खलु ॥

वि ङी॒पानि॒ पाप॑त॒न्निष्ठ॑हु॒च्छुनो॒भे यु॑ज॒न्त॒ रोद॑सी ।

प्र धन्वा॑न्यैरत शु॒भ्रखा॑दयो॒ यदे॑ज॒थ स्व॑भानवः ॥ ४ ॥

वि । ङी॒पानि॒ । पाप॑त॒न् । तिष्ठ॑त् । दु॒च्छुना॑ । उ॒भे इति॑ । यु॑ज॒न्त॒ । रोद॑सी इति॑ ।

प्र । धन्वा॑नि । ऐ॒रत॒ । शु॒भ्रऽखा॑दयः । यत् । ए॒ज॒थ । स्व॑ऽभान॒वः ॥ ४ ॥

ङीपानि द्वयोः पार्श्वयोरापो येषु तान्युदमध्यस्थानि ॥ द्वांतरूपसर्गेष्वोऽप ईत् । पा० ६. ३. ९७. । इतीत् ।  
अव्युत्थितादिनाकारः समासांतः ॥ तानि च वि पापतन् । अत्यर्थं मरुदेवेन विपतन्ति । तिष्ठत् स्थावरं चाव्य-  
वृत्तजातं दुच्छुना दुःखेन युज्यते । उभे रोदसी बाधापृथिव्यावपि युजन्त । ते मरुतः स्वायमनजनितेन कंपेन  
योजयन्ति । परोऽर्ध्वः परोचक्रतः । धन्वानि गमनशीलान्युदकानि च प्रेरत । प्रगच्छन्ति । हे शुभ्रखादयः  
शोभनायुधाः शोभनहविष्वा वा हे स्वभानवः स्वायसदीप्तयः धूयं यवदेवय कंपयथ । तदेतत्पूर्वोक्तं सर्वं  
निष्पाद्यत इत्यर्थः ॥

अच्यु॑ता चि॒ञ्चो अ॒ज्म॒न्ना नान॑दति॒ पर्व॑तासो॒ वन॒स्पतिः॑ । भूमि॒र्यामे॑षु रेजते ॥ ५ ॥

अच्यु॑ता । चि॒त् । वः । अ॒ज्म॒न् । आ । नान॑दति । पर्व॑तासः । वन॒स्पतिः॑ । भूमिः ।

यामे॑षु । रे॒जते॑ ॥ ५ ॥

हे मरुतः वो युष्माकमज्मन्नाणि गमने सत्यच्युता विष्टावयितुमशक्त्वा अपि पर्वतासः पर्वता मेघा  
गिरयो वा वनस्पतिः ॥ आतावेकवचनं ॥ वनस्पतयो वृक्षाद्या नागदति । अभितो भृशं शब्दायते । अपि च  
यामेषु युष्मदीयेषु गमनेषु निमित्तेषु भूमिः पृथिवी च रेजते । कंपते ॥ ३६ ॥

अमा॑य वो मरुतो॒ यात॑वे॒ द्यौर्जिही॑त॒ उत्तरा॑ बृहत् ।

यत्रा॒ नरो॒ देदि॑शते॒ तनू॑ष्व॒ त्वक्षा॑सि बा॒ह्वो॒जसः॑ ॥ ६ ॥

अमा॑य । वः । मरु॑तः । यात॑वे । द्यौः । जिही॑ते । उत्॑तरा । बृहत् ।

यत्र॑ । नरः । देदि॑शते । तनू॑षु । आ । त्वक्षा॑सि । बा॒हुऽओ॒जसः॑ ॥ ६ ॥

हे मरुतः वो युष्माकममाय बलाय यातवे यातुं द्यौर्बुल्लोको बृहदंतरिक्षं विष्टव्योत्तरोत्तरततरा जिहीते ।  
गच्छति । युष्मदागमनाङ्गीता सती युष्मदीयमांतरिक्षं स्थानं परित्यज्योर्ध्वं पालयत इत्यर्थः । यत्र यस्मिन्नं-  
तरिक्षे बाह्वोजसः बाह्वोरोजो वलं येषां तादृशा नरो नेतारो मरुतस्त्वक्षांसि दीप्तान्यामरणाणि तनूष्वा-  
क्षीयेषु शरीरेष्वा देदिशते आदिष्टानि धृतानि कुर्वन्ति । यदा । तनूषु विद्युतासु मेघस्यास्त्रेषु त्वक्षांसि तनू-  
कृतानि तीक्ष्णीकृतान्यायुधानि मेघोन्नेदनाया देदिशते पुनःपुनरादिशन्ति । तबृहदंतरिक्षं जिहीत इत्यन्वयः ॥

स्व॒धा॒भनु॑ श्रियं नरो॒ महि॑ त्वेषा अम॑वंतो॒ वृष॑प्सवः । वह॑न्ते अ॒हुत॑प्सवः ॥ ७ ॥

स्व॒धां । अनु॑ । श्रियं॑ । नरः । महि॑ । त्वेषाः । अम॑ऽवंतः । वृष॑ऽप्सवः । वह॑न्ते ।

अ॒हुत॑ऽप्सवः ॥ ७ ॥

नरो नेतारो मरुतः स्वधामनु । स्वधेत्यत्र नाम । हविर्लक्षणात्मननुलक्ष्य श्रियं शोभां महि महिम्नीढं वहते ।  
धारयन्ति । कीदृशः । त्वेषा दीप्ता अमवंतो वलवंतो वृषप्सवो वर्षणरूपा अहुतप्सवोऽकुटिलरूपाश्च ॥

गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये ।

गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महांतो नः स्पर्से नु ॥ ८ ॥

गोभिः । वाणः । अज्यते । सोभरीणां । रथे । कोशे । हिरण्यये ।

गोऽबन्धवः । सुऽजातासः । इषे । भुजे । महांतः । नः । स्पर्से । नु ॥ ८ ॥

सोभरीणामृवीणां गोभिः शब्दैः स्तुतिस्त्रयैर्वाणो मरुद्दीणाज्यते । व्यज्यते । प्रकटीक्रियते । कुच । हिरण्यये रथे कोशे कोशश्चेष्टिते मध्यदेशे । यद्वा । गोभिर्गन्तुभिर्गोमातृकैर्वा मरुद्भिर्वाणोऽज्यते । व्यज्यते । सोभरीणां ज्ञानायेकृते रथे वायत इत्यर्थः । अपि च गोबन्धवो गोमातृकाः सुजातासः शोभनजन्मानो महांतो महाबु-  
भावास्तै मरुतो नोऽस्माकमिवेऽज्ञाय भुजे भोगाय स्पर्से प्रीतिं च बलनाथ वा नु चित्रं भवंत्विति शेषः ॥

प्रति वो वृषदंजयो वृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वं । हव्या वृषप्रयाव्ये ॥ ९ ॥

प्रति । वः । वृषत्ऽअज्यः । वृष्णे । शर्धाय । मारुताय । भरध्वं । हव्या । वृषऽप्रयाव्ये ॥ ९ ॥

हे वृषदंजयो वृषता वर्षकेण सोमेनाजंतः सिंचंतोऽध्वर्यवः वो यूयं वृष्णे वर्षिषे मारुताय मरुत्संघरूपाय शर्धाय बलाय हव्यानि हवींषि प्रति मरध्वं । आहवनीयं प्रति हरत । शर्धं विशेयते । वृषप्रयाव्ये । वृषाणः  
वेत्तारः प्रयावानः प्रलष्टं गंतारो मरुतो यस्मिन् तत्तथोक्तं । तस्यै ॥

वृषणश्चेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना ।

आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो हव्या नो वीतये गत ॥ १० ॥

वृषणश्चेन । मरुतः । वृषऽप्सुना । रथेन । वृषऽनाभिना ।

आ । श्येनासः । न । पक्षिणः । वृथा । नरः । हव्या । नः । वीतये । गत ॥ १० ॥

हे नरो नेतारो मरुतः वृषणश्चेन वृषभिः सेचनसमर्थैरथैरपेतेन वृषप्सुना वर्षकरूपयुक्तेन वृषनाभिना ।  
नाभिस्तक्रच्छिद्रं । वर्षकनाभियुक्तेन रथेन नोऽस्माकं हव्यानि हवींष्या गत । आगच्छत । वृथानायासेनैव वीतये  
मरणार्थं । तच्च दृष्टान्तः । श्येनासो न पक्षिणः श्येनाः शंसनीयगतयः पक्षिणो यथा शीघ्रमागच्छन्ति । तद्वदना-  
यासेन शीघ्रमागच्छतेत्यर्थः ॥ ३७ ॥

समानमंज्येषां वि भाजंते रुक्मासो अधि बाहुषु । दविद्युततृष्टयः ॥ ११ ॥

समानं । अंजि । एषां । वि । भाजंते । रुक्मासः । अधि । बाहुषु । दविद्युतति । तृष्टयः ॥ ११ ॥

एषां मरुतामंजि रूपाभिर्व्यंजकमामरणं समानमेकविधमेव । एतदेवाह । रुक्मासो रुक्मा दीप्यमानाः  
सुवर्णमया हारा वि भाजंते । वयःस्थलेषु विशेषेण दीप्यंते । तथा बाहुष्वध्वंसेष्वृष्टयः शक्त्यादीन्यायुधानि  
दविद्युतति । अत्यर्थं चोक्तं ॥

त उयासो वृषण उयबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे ।

स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि श्रियः ॥ १२ ॥

ते । उयासः । वृषणः । उयऽबाहवः । नकिः । तनूषु । येतिरे ।

स्थिरा । धन्वानि । आयुधा । रथेषु । वः । अनीकेषु । अधि । श्रियः ॥ १२ ॥



उयास उग्रयोः सर्वकार्येष्वृणता वृषयो वर्धितार उग्रबाहव उग्रूर्ध्वाङ्गकास्ते मरुतसन्नुष्वात्मीयेषु शरीरेषु नक्षिर्येतिरे । रचणाय न प्रयतते । न हि कश्चित्तेषां शरीराणि बाधितुं शक्नोति येन यत्नः क्रियेत । परोऽर्धर्चः प्रत्यक्षतः । हे मरुतः वो युष्माकं रथेषु धन्वानि भ्रून्वायुधान्यायोधनानि बाणादीनि च खिरा खिराणि वृद्धतराणि सन्ति । अत एव कारणादनीकेष्वधि सेनामुखेषु त्रियो जयसंपदो युष्माकं भवन्ति ॥

येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिह्रुजे । वयो न पित्र्यं सहः ॥ १३ ॥  
येषां । अर्णैः । न । सऽप्रथः । नाम । त्वेषं । शश्वतां । एकं । इत् । भुजे । वयः । न ।  
पित्र्यं । सहः ॥ १३ ॥

अर्णो षोडशमिव सप्रथः सर्वतः पृथु विस्तीर्णं त्वेषं दीप्तं शश्वतां बह्वर्षा येषां मरुतानीदृशं नाम मरुत इति नामधेयमेकमिदमेवासाहायमेव समुखे स्रोतूणां भोगाय भवति । तत्र वृष्टांतः । सहः प्रसह्यग्रीकं पित्र्यं पितुरागतं वयो जातमिव । यथा तद्विस्मयेण भोगाय भवति तथेत्यर्थः । तानित्युत्तरवैक्याक्यता ॥

तान्वंदस्व मरुतस्त्वाँ उप स्तुहि तेषां हि धुनीनां ।  
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मद्वा तदेषां ॥ १४ ॥  
तान् । वंदस्व । मरुतः । तान् । उप । स्तुहि । तेषां । हि । धुनीनां ।  
अराणां । न । चरमः । तत् । एषां । दाना । मद्वा । तत् । एषां ॥ १४ ॥

हे चंतरात्मन् तान्पूर्वोक्तगुणान्वहतो वंदस्व । प्रणम । तानिवोपेत्य स्तुहि । हि यस्माद्धुनीनां कंपयितृणां तेषां मरुतां वयं श्रेष्ठभूताः स्म । अराणामर्याणां स्वामिनां यथा चरमो हीनः सेवकः श्रेष्ठभूतस्तद्वत् । तत्तस्मादेषां मरुतां दाना दानानि मद्वा महत्त्वेन युक्तान्वस्माकं भवन्ति । तदेषामिति द्विरक्तिरादरार्था यदपुरकारार्था वा ॥

सुभगः स व ऊतिष्वास पूर्वीसु मरुतो व्युष्टिषु । यो वा नूनमुतासति ॥ १५ ॥  
सुऽभगः । सः । वः । ऊतिषु । आस । पूर्वीसु । मरुतः । विऽउष्टिषु । यः । वा । नूनं ।  
उत । असति ॥ १५ ॥

हे मरुतः वो युष्माकमुक्तिषु रचासु सतीषु स क्षोता सुभय आस । शोभनधनो भवति ॥ अस्तेऽहं दसो भूमावाभावः ॥ यद्वा । सुभग आस । दीप्यते ॥ अस गतिदीप्त्यादनिषु ॥ कदेति चेत् उच्यते । पूर्वीसु व्युष्टिषु पूर्वेषुऽतीतेषु विवाहितेषु दिवसेषु । यद्वा । पूर्वास्त्रागामिनीषु व्युष्टिषूषुः । उषःकालोपलक्षितेषु दिवसेषु । उतापि च यो मनुष्यः क्षोता यद्वा वा नूनमवज्ञमसति युष्माकं भवति ॥ अस्तेऽहं दसः श्रपो सुगमावः ॥ स सुभग इत्यन्वयः ॥ ॥ ३८ ॥

यस्य वा यूयं प्रति वाजिनो नर आ हव्या वीतये गृथ ।  
अभि ष द्युक्षैरुत वाजसातिभिः सुस्त्रा वो धूतयो नशत् ॥ १६ ॥  
यस्य । वा । यूयं । प्रति । वाजिनः । नरः । आ । हव्या । वीतये । गृथ ।  
अभि । सः । द्युक्षैः । उत । वाजसातिभिः । सुस्त्रा । वः । धूतयः । नशत् ॥ १६ ॥

हे नरो नेतारो मरुतः यूयं यस्य वा यस्य च वाजिनो हविष्मतो यजमानस्त हव्या हव्यानि हवींषि प्रति

वीतये भवणाया गय आगच्छ स यजमानो हे धृतयः कंपयितारो मरुतः युधैर्वीतमानिरत्नैर्यशोभिर्वा  
उतापि च वाजसातिभिर्वाजानां संभवन्नेव वो युष्माकं संबन्धीनि सुखान्यभि गयत् । अभितो व्याप्नोति ॥

यथा रुद्रस्य सूनवो दिवो वशन्त्यसुरस्य वेधसः । युवानस्तथेदसत् ॥ १७ ॥

यथा । रुद्रस्य । सूनवः । दिवः । वशन्ति । असुरस्य । वेधसः । युवानः । तथा । इत् ।  
असत् ॥ १७ ॥

रुद्रस्य दुःखद्रावयितुरीश्वरस्य सूनवः पुत्रा असुरस्योदकानां चेतुर्मेषस्य वेधसो विधातारः । यद्वा ।  
असवः प्राणाः । ताज्जाति ददातीत्यसुरं वृष्टिजनं । तस्य कर्तारः । युवानो नित्यतद्व्याः ईदृशा मरुतो  
दिवोऽन्तरिक्षादागत्य यथा येन प्रकारेण वशन्ति अस्मान् कामयन्ते तथेतेनैव प्रकारेणासत् । इदं शीघ्रं  
भवतु ॥ वष्टेऽन्तरिक्षादसः शपो लुगभावः ॥

ये चाहँति मरुतः सुदानवः स्मन्मीळुषश्चरन्ति ये ।

अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा युवान् आ ववृध्वं ॥ १८ ॥

ये । च । अहँति । मरुतः । सुदानवः । स्मत् । मीळुषः । चरन्ति । ये ।

अतः । चित् । आ । नः । उप । वस्यसा । हृदा । युवानः । आ । ववृध्वं ॥ १८ ॥

सुदानवः शोभनदाना ये च यजमाना मरुतो देवानहँति पूजयन्ति । ये च मीळुषः क्षेप्तृमरुतः क्षत्  
प्रशस्त्रं चरन्ति हविर्भिः प्रचरन्ति यजन्ति । यत एवमतोऽपि कारणात्तानुभयविधातोऽस्मानामिषस्य वस्यसा  
वसीयसा वसुमत्तमेन हृदा हृदयेन हे युवानो मरुतः उपा ववृध्वं । उपेत्यामिसंभवत ॥

यूनं ऊं षु नविष्ठया वृष्णाः पावकाँ अभि सोभरे गिरा । गाय गा इव चकृषत् ॥ १९ ॥

यूनः । ऊं इति । सु । नविष्ठया । वृष्णाः । पावकान् । अभि । सोभरे । गिरा । गाय ।

गाःऽइव । चकृषत् ॥ १९ ॥

हे सोभरे यूनो नित्यतद्व्यान् वृष्णो वर्षिष्ठान् पावकांस्तान्मरुतो नविष्ठयातिशयेनाभिनवया-गिरा वाचा  
क्षुतिरूपया सु शोभनमभि गाय । अभिष्टुहि । चकृषत् पुनःपुनः कृषन् कृषीयसो गा इव । स यथा यूनः  
शक्ताननकुहः क्षीति तद्वत् ॥

साहा ये संति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृतसु होतृषु ।

वृष्णाश्चंद्रान् सुश्रवस्तमान् गिरा वंदस्व मरुतो अहं ॥ २० ॥

साहाः । ये । संति । मुष्टिहाऽइव । हव्यः । विश्वासु । पृतसु । होतृषु ।

वृष्णाः । चंद्रान् । न । सुश्रवःऽतमान् । गिरा । वंदस्व । मरुतः । अहं ॥ २० ॥

विश्वासु सर्वासु पृतसु पृतनासु युजेषु होतृष्वाङ्गानशीलेषु योजेषु च ये मरुतः सहाः संति अभिमवितारो  
भवन्ति हव्यो ज्ञातव्यो मुष्टिहेव । मुष्टिभिरेव हन्तीति मुष्टिहा मरुः । स इव । नेति संग्रह्यर्थे । न संग्रति वृष्णो  
वर्षितृचंद्रानाह्लादकान् सुश्रवस्तमानतिशयेन शोभनयशस्कांस्तान्मरुतोऽहं मरुत एव गिरा वाचा वंदस्व ।  
मुष्टिः ॥ ३९ ॥



गावश्चिद्वा समन्यवः सजात्येन मरुतः सर्वंधवः । रिहते ककुभो मिथः ॥२१॥  
 गावः । चित् । घ । सऽमन्यवः । सऽजात्येन । मरुतः । सऽसर्वंधवः । रिहते । ककुभः ।  
 मिथः ॥२१॥

हे समन्यवः समानतेजस्काः समानक्रोधा वा हे मरुतः गावश्चिद्वावश्च युष्मन्मातृभृताः सजात्येन समान-  
 जातित्वेन सर्वंधवः समानबंधुकाः सत्यः ककुभो दिशः प्राच्यादिदिग्भागान् प्राप्य मिथः परस्परं रिहते ।  
 लिहन्ति । चेति पूरकः ॥

मर्तेश्चिद्वो नृतवो रुक्मवक्षस उष भ्रातृत्वमार्यति ।  
 अधि नो गात मरुतः सदा हि व आपित्वमस्ति निधुवि ॥२२॥  
 मर्तः । चित् । वः । नृतवः । रुक्मऽवक्षसः । उष । भ्रातृत्वं । आ । अयति ।  
 अधि । नः । गात । मरुतः । सदा । हि । वः । आपिऽत्वं । अस्ति । निऽधुवि ॥२२॥

हे नृतवो नृत्यन्तो हे रुक्मवक्षसः । रोचमानमामरणं रुक्मं वक्षसि धेपां ते तथोक्ताः । ईदृशा हे मरुतः  
 मर्तश्चिद्वोऽपि स्तोता वो युष्माकं भ्रातृत्वं सत्त्वित्वा आभिमुख्येनोपायति । उपगच्छति । अतो नो  
 ऽस्मान्गुण्यास्तोतृनां हि गात । अधिभूत । अस्मात्पक्षपातवचना भवत । हि यस्माद्वो युष्माकमापित्वं वंधुत्वं  
 निधुवि नितरां धारयितव्ये स्तोत्रे यज्ञे वा सदा सर्पदर्शने विद्यते तस्मादित्यर्थः ॥

मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता मुदानवः । यूयं सखायः सप्रयः ॥२३॥  
 मरुतः । मारुतस्य । नः । आ । भेषजस्य । वहत । मुऽदानवः । यूयं । सखायः । सप्रयः ॥२३॥

हे मुदानवः शोभनदाना हे सखायः समानख्याना हे सप्रयः सर्पणशीला मरुतः नोऽस्माकं मारुतस्य  
 भेषजस्य मरुतसंबन्धि भेषजमायधं यूयमा वहत । आनयत ॥

याभिः सिंधुमवण याभिस्तूर्वण याभिर्दृगस्यथा क्रिवि ।  
 मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिरसचद्विषः ॥२४॥  
 याभिः । सिंधुं । अवण । याभिः । तूर्वण । याभिः । दृगस्यथ । क्रिवि ।  
 मयः । नः । भूत । उतिऽभिः । मयः । भुवः । शिवाभिः । असचऽद्विषः ॥२४॥

हे मरुतः याभिर्कृतिभिः सिंधुं समुद्रमवण रक्षथ । याभिश्च तूर्वण स्तोतृणां शत्रुण हिंस्य ॥ तूर्वी हिंसार्थः ॥  
 याभिश्च क्रिविं कृपं तृष्णजे गीतमाय दृगस्यथ प्रयच्छथ । हे मयोभुवो मयसः सुखस्य भार्यायितारो हे  
 असचद्विषोऽमक्तशत्रवः शत्रुरहिताः शिवाभिः कन्याणोभिः सर्वाभिर्कृतिभ्यो रक्षाभिर्नोऽस्माकं मयः सुखं भूत ।  
 भावयत । उत्पादयत । यद्वा ॥ भू प्राप्नो ॥ प्रापयत ॥

यत्सिंधौ यदसिंक्र्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुवर्हिषः । यत्पर्वतेषु भेषजं ॥२५॥  
 यत् । सिंधौ । यत् । असिंक्र्यां । यत् । समुद्रेषु । मरुतः । सुऽवर्हिषः । यत् । पर्वतेषु ।  
 भेषजं ॥२५॥

हे सुवर्हिषः शोभनयज्ञा मरुतः सिंधावितत्संज्ञे म्यंदनशीले नदं यज्ञपत्रमस्ति यस्मात्सिन्धो यच्च समुद्रेषु  
 जन्नाधिपु यच्च पर्वतेषु भेषजं विद्यते तत्सर्वं भेषजं पश्यत इत्युत्तरार्थकवाक्यता ॥

विश्वं पश्यंतो विभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।

क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विहुतं पुनः ॥ २६ ॥

विश्वं । पश्यंतः । विभृथ । तनूषु । आ । तेन । नः । अधि । वोचत ।

क्षमा । रपः । मरुतः । आतुरस्य । नः । इष्कर्ता । विहुतं । पुनरिति ॥ २६ ॥

विश्वं सर्वं पूर्वोक्तं भेषजं पश्यंतो जानंतो यूयं तनूष्वस्मदीयेषु विषयेष्वा विभृथ । आहरथ । आहृतेन च तेन नोऽस्मानधि वोचत । अधिब्रूत । चिकित्सतेत्यर्थः । अपि च हे मरुतः नोऽस्माकं मध्य आतुरस्य रोगिणी रपः । पापनामेतत् । रपसः पापफलस्य रोगस्य क्षमा क्षातिर्यथा भवति तथा विहुतं विवाधितमंगं पुनरिष्कर्ता । निःशेषेण संपूर्णं कुरुत ॥ निसो नलोपश्छांदसः । करोतेर्लोऽटि च्छांदसो विकरणस्य लुक् । तप्तनप्तनयनास्येति तशब्दस्य तवादेशः । अत एवोपसर्गसमुदायो नावगृह्यते ॥ ४० ॥ ३ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थीत्यतुरो देयाद्विवातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरनुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टके प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत ।

निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

चतुर्थेऽनुवाके दश सूक्तानि । तत्र वयमु त्वामित्यष्टादशर्चं प्रथमं सूक्तं । अचानुक्रमणिका । वयमु ब्रूनांति वृचे चिचस्व दानक्षुतिरिति । ऋषिस्त्वान्यस्मादिति परिभाषया काण्वः सोमरिर्ऋषिः । काकुमं प्रागाथं हेत्युक्तत्वादस्यापि सूक्तस्यायुजः ककुमो युजः सतोबुहवः । अंति वृचे चिचस्व दानं देवता । शिष्टा ऐंद्रः ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥ उक्थे ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे वयमु त्वामिति प्रगाथः स्तोत्रियः । सूचितं च । वयमु त्वामपूर्व्यं यो न इदमिदं पुरेति प्रगार्थी । आ० ६. १. इति ॥ आभिज्ञविकेपुक्थ्येष्वपि तृतीयसवने ब्राह्मणाच्छंसिनो वैकल्पिकोऽयं स्तोत्रियः प्रगाथः । सूत्रसूक्तं ॥ अस्मिन्नेव शस्त्रे त्वं न इंद्रा भरेति प्रगाथो यदा स्तोत्रियः तदा वयमु त्वेत्वनुरूपतुचस्यावा । सूचितं च । वयमु त्वामपूर्व्यं यो न इदमिदं पुरा याहीम इंद्रव इति समाहार्योऽनुरूपः । आ० ७. ८. इति ॥

वयमु त्वामपूर्व्यं स्थूरं न कश्चिद्भरंतोऽवस्यवः । वाजे चिचं हवामहे ॥ १ ॥

वयं । ऊं इति । त्वां । अपूर्व्यं । स्थूरं । न । कत् । चित् । भरंतः । अवस्यवः । वाजे ।

चिचं । हवामहे ॥ १ ॥

हे अपूर्व्यं त्रिषु सवनेषु प्रादुर्भूतत्वादभिनवेन्द्र भरंतः सोमलक्षणीरन्नेस्त्वां पोषयंतो वयं वाजे । वाजंति गच्छंति योद्यारोऽनेति वाजयंतायुधान्यनेति वा वाजः संघामः । तस्मिंश्चिचं चायनीयं विविधरूपं त्वासु त्वामेवावस्थवो रक्षणमात्मन इच्छंतः संतो हवामहे । त्वामाह्वयामः । तत्र दृष्टांतः । स्थूरं न यथा भरंतो ग्रीह्यादिभिर्गृहं पूरयंतो जना वाजेऽन्नविषये स्थूरं स्थूलं गुणाधिकं कश्चित् कंचिन्मानवं यथाह्वयंत तद्वत् ॥

उप त्वा कर्मचूतये स नो युवोयश्चक्राम यो धृषत् ।

त्वामिह्यवितारं ववृमहे सखाय इंद्र सान्निधिं ॥ २ ॥



उप॑ । त्वा॒ । कर्म॑न् । ज॒तये॑ । सः । नः॑ । युवा॑ । उ॒यः । च॒क्राम॑ । यः । धृ॒षत॑ ।  
त्वां । इत् । हि । अ॒वि॒तारं॑ । व॒वृ॒महे॑ । म॒खायः॑ । इं॒द्र । सा॒न॒सिं ॥ २ ॥

प्रथमपादः प्रत्यचकृतः । हे इंद्र कर्मन्त्रपिष्टांसादिकर्मस्थूतये रक्षणाय त्वा त्वामुपगच्छामः । द्वितीयः  
पादः परोचकृतः । य इंद्रो धृपत् धृष्णोति शत्रून् अभिवति ॥ निधृषा प्रागक्ष्ये । बह्वन् कंदसीति शप्रत्ययः ॥  
युवा तव्ये उप उद्गर्णः स इंद्रो नोऽश्नान् प्रति चक्राम । आगच्छतु । यदा । चक्राम । अश्नानुत्साहयुक्तान्  
करोतु ॥ क्रमतेः सर्गायै व्यत्ययेन परस्मैपदं । पा० १. ३. ३८. ॥ परोऽर्थः प्रत्यचकृतः । सखायः समानख्याना  
बंधुभूता वा वयं सानसिं ॥ वन षण् संभक्ती ॥ संभवनीयमवितारं सर्वस्य रचितारं त्वामित्त्वामिव ववृमहे ।  
वृणीमहे । संभवामहे । हिः प्रसिद्धी ॥ द्वियोगादनिघातः ॥

आ या॒ही॒म इं॒द्रोऽश्व॑पते॒ गो॒प॒त॒ उर्व॑रापते । सो॒मं सो॒म॒प॒ते पि॒ब ॥ ३ ॥

आ । या॒हि । इ॒मे । इं॒द्रवः॑ । अ॒श्व॑ऽपते । गो॒ऽप॒ते । उर्व॑राऽपते । सो॒मं । सो॒म॒ऽप॒ते ।  
पि॒ब ॥ ३ ॥

अश्वपतेऽश्नानां स्वामिन् गोपते गवां पालयितुर्वरापते । सर्वसखाद्या भूमिर्वरा । तस्याः पते हे इंद्र  
इंद्रवः सोमा इमे भवदीयाः । त्वदर्शमभिपुता इत्यर्थः । तस्मादा याहि । आगच्छ । आगत्य सोमपते हे इंद्र  
सोमं पिब ॥

व॒यं हि॒ त्वा बंधु॑मंतमबंध॒वो वि॒प्रः । इं॒द्र ये॒मि॒म ।

या ते॒ धामा॑नि वृष॒भ तेभि॑रा ग॒हि वि॒श्वेभिः॑ सोम॑पीतये ॥ ४ ॥

व॒यं । हि॒ । त्वा । बंधु॑ऽमंतं । अ॒बंध॒वः । वि॒प्रा॑सः । इं॒द्र । ये॒मि॒म ।

या । ते॒ । धामा॑नि । वृष॒भ । तेभिः॑ । आ । ग॒हि । वि॒श्वेभिः॑ । सोम॑ऽपीतये ॥ ४ ॥

हे इंद्र अबंधवो बंधुरहिता विप्रासो मेधाविनो वयं बंधुमंतं बंधुभिर्देवैरंगिरोमिवा तद्वतं त्वा त्वां ।  
हिरवधारणे । त्वामिव येमिम । बंधुत्वेन नियच्छाम ॥ यच्छतेर्लिटि रूपं ॥ तथा सति हे वृषभ कामानां  
वर्धितरिद्र ते तव या यानि धामानि शरीराणि तेषांसि वा विद्यते तेभिर्देवैर्विश्वेभिः सर्वेधामभिः सह सोम-  
पीतये सोमपानार्थमा गहि । आगच्छ ॥

सी॒द॒तस्ते॒ वयो॑ यथा॒ गो॒श्री॒ति म॒धौ म॒दिरे॑ वि॒वक्ष॑णे । अ॒भि त्वा॒मि॒न्द्र नो॒नुमः॑ ॥ ५ ॥

सी॒द॒तः । ते॒ । व॒यः । यथा॒ । गो॒ऽश्री॒ति । म॒धौ । म॒दिरे॑ । वि॒वक्ष॑णे । अ॒भि । त्वां । इं॒द्र ।

नो॒नुमः॑ ॥ ५ ॥

हे इंद्र गोश्रीति ॥ श्रीद् पाकि ॥ गोविकारे दधिपयसी गोशब्देनोच्यते । दध्ना पयसा च श्रीतेन  
अथगद्ग्वेण मिश्रिते मदिरे मदकरे विवक्षणे स्वर्गप्रापणशीले त्वदीये मर्धा सोमे सीदतो निवसंतः । सद्ने  
दृष्टांतः । वयो यथा पक्षिणो यथैकत्र संघीभूय तिष्ठति तद्वत् सीदतो वयं त्वामभ्याभिमुख्येन नोनुमः । पुनः-  
पुनर्भुजं वा लुमः ॥ ॥ १ ॥

अ॒च्छा च॒ त्वि॒ना न॒मसा॑ व॒दाम॑सि॒ किं मुहु॑श्चि॒द्वि दी॑धयः ।

संति॒ कामा॑सो हरि॒वो द॒दिष्टुं॑ स्मो व॒यं संति॑ नो॒ धियः॑ ॥ ६ ॥

अच्छ । च । त्वा । एना । नमसा । वदामसि । किं । मुहुः । चित् । वि । दीधयः ।  
संति । कामासः । हरिऽवः । दृदिः । त्वं । स्मः । वयं । संति । नः । धियः ॥ ६ ॥

हे इंद्र अच्छ चापि चाभिमुख्येन वैजनेन नमसा सोचिण हविर्लक्षणेनानेन वा सह त्वा त्वां वदामसि । अभिवदामः ॥ चवायोगे प्रथमेति न निघातः ॥ त्वं तु मुहुश्चिन्मुहुः किं कक्षाद्येतोर्वि दीधयः । विपूर्वो दीधितिश्चित्ते । विचितयसि ॥ दीधीरु दीप्तिदेवनयोः । व्यत्येन परस्मैपदं लुगभावश्च ॥ किमर्थं यूयं वदथेति चेत् हरिवो हरिताम्रवन् हे इंद्र अस्माकं कामासः पुत्रपत्यादिविषयाः कामाः संति । कामाः संतु । अहं न प्रयच्छामीति चेत् । त्वं तु ददिर्धनादिदाता खलु । तस्माद्वयं त्वत्सन्निधौ स्मः । भवामः । किंच नो ऽस्माकं धियः कर्माणि च तव समीपे संति । तिष्ठति । ततो धनादिजामार्थं चां वदाम इत्यर्थः ॥

नूत्ना इदिंद्र ते वयमूती अभूम नहि नू ते अद्रिवः । विद्वा पुरा परीणसः ॥ ७ ॥

नूत्नाः । इत् । इंद्र । ते । वयं । ऊती । अभूम । नहि । नु । ते । अद्रिऽवः । विद्वा । पुरा ।  
परीणसः ॥ ७ ॥

हे इंद्र ते तयोत्पूत्यै रक्षणे वयं नूत्ना इमूतना एव भवामः । अद्रिवो वज्रिन् हे इंद्र पुरा पूर्वं त्वां परीणसः ॥ सुव्यत्ययः ॥ परीणसं परितो व्याप्तं महांतं वेति नहि विद्वा । न जानीमः । नु संप्रति तु ते त्वां महांतमिति जानंतो वयं भवता रक्ष्या इति ॥

विद्वा सखित्वमुत् शूर भोज्यमा ते ता वज्रिन्नीमहे ।

उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ॥ ८ ॥

विद्वा । सखिऽत्वं । उत । शूर । भोज्यं । आ । ते । ता । वज्रिन् । ईमहे ।

उतो इति । समस्मिन् । आ । शिशीहि । नः । वसो इति । वाजे । सुऽशिप्र । गोऽमति ॥ ८ ॥

शूर शत्रूणां शातयितव्यत्ववन् हे इंद्र सखित्वं तव सखिभावं वयं विद्वा । जानीमः । उतापि च भोज्यम-  
भवहारार्थं धनं च विद्वा । वज्रिन् हे इंद्र ते त्वदीये ता ते सख्यर्थः । आ चाभिमुख्येनेमहे । वयं याचामहे ।  
उतो अपि च वसो सर्वस्य वासयितः सुशिप्र शोभनहनो यद्वा शोभनशिरस्त्राण हे इंद्र गोमति गवादिभ्युक्ते  
समस्मिन् सर्वस्मिन् वाजेऽग्ने नोऽस्माना शिशीहि । तीक्ष्णोक्तुः । उपलक्ष्यं । प्रदानेनास्मान् प्रसिद्धान् कुर्वि-  
त्यर्थः ॥ शिन् निशान इत्यस्य च्छांदसः सुः ॥

उक्थे ब्राह्मणाच्छंसिश्त्रे यो न इदमिदमित्यं प्रगाथोऽनुरूपः । यो न इदमिदं पुरेति प्रगार्था  
सर्वाः ककुभः । आ० ६. १. इति सूचितं ॥ आभिमुख्येनेमहेष्वपि ब्राह्मणाच्छंसिश्त्रेऽयं वैकल्पिकोऽनुरूपः  
। आ० ७. ८. ॥ आभिमुख्येनेमहेषु तृतीयसवने ब्राह्मणाच्छंसिश्त्रे त्वं न इंद्रा भरेति प्रगाथे सोचिचे सत्व-  
नुरूपतृचः समाहार्यः । तत्रेयं यो न इदमिदमिति द्वितीया । सूचितं च । यो न इदमिदं पुरा याहीम इदं व  
इति समाहार्योऽनुरूपः । आ० ७. ८. इति ॥

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे । सखाय इद्रमूतये ॥ ९ ॥

यः । नः । इदंऽइदं । पुरा । प्र । वस्यः । आऽनिनाय । तं । ऊं इति । वः । स्तुषे । सखायः ।

इद्रं । ऊतये ॥ ९ ॥

सखायः समानख्याना हे ऋत्विग्यजमानाः य इंद्रः पुरा पूर्वमिदं दर्शनीयतया विद्यमानं वस्यो वसीयः ॥  
वसोरीयमुनीकारलोपच्छांदसः ॥ प्रशस्तं वसु नोऽस्मान् प्राणिनाय प्रकर्षणानीतवान् तमु तमेव धनानामा-  
न्तारमिद्रं वो युष्माकं धनलामार्थमूतये रक्षणाय च स्तुषे । सोमरिरहं स्तौमि ॥



आ । तु । नः । सः । वयति । गव्यं । अश्वं । स्तोतृभ्यः । मघवा । शतं ॥१०॥

हे इंद्र त्वं अनुषा जगन्निवाधातृष्वः ॥ च्यन् सपत्ने । पा० ४. १. १४५ । इति जगन्नाथः ॥ अनागितुकः ॥ अतस्त्वंदसीति कपः प्रतिषेधः ॥ अनियंतुक इत्यर्थः । अनापिर्बन्धुपर्वितस्य जगादसि । चिरादेव धातुव्यादि-

अच्छ । च । त्वा । एना । नमसा । वदामसि । किं । मुहुः । चित् । वि । दीधयः ।  
संति । कामासः । हरिऽवः । दुदिः । त्वं । स्मः । वयं । संति । नः । धियः ॥ ६ ॥

हे इंद्र अच्छ चापि चाभिमुख्येन वैननेन नमसा स्तोत्रेण हविर्लक्षणेनाग्नेन वा सह त्वा त्वां वदामसि । अभिवदामः ॥ चवायगे प्रथमेति न निघातः ॥ त्वं तु मुहुश्चिमुहुर्मुहुः किं कक्षादितोर्वि दीधयः । विपूर्वो दीधितिचिंतने । विचिंतयसि ॥ दीधीद् दीग्निदेवनयोः । व्यत्ययेन परस्मैपदं जुगभावाच्च ॥ किमर्थं यूयं वदथेति चेत् हरिवो हरिताम्यवन् हे इंद्र अस्माकं कामासः पुत्रपश्चादिविषयाः कामाः संति । कामाः संतु । अहं न प्रयच्छामीति चेत् । त्वं तु ददिर्धनादिदाता खलु । तस्माद्वयं त्वत्सन्निधौ स्मः । भवामः । किंच नो ऽस्माकं धियः कर्माणि च तव समीपे संति । तिष्ठन्ति । ततो धनादित्वाभ्यर्थं चां वदाम इत्यर्थः ॥

नूत्ना इदिंद्र ते वयमूती अभूम नहि नू ते अद्रिवः । विद्वा पुरा परीणसः ॥ ७ ॥  
नूत्नाः । इत् । इद्र । ते । वयं । ऊती । अभूम । नहि । नु । ते । अद्रिऽवः । विद्वा । पुरा ।  
परीणसः ॥ ७ ॥

हे इंद्र ते तवोत्पत्त्यै रचये वयं नूत्ना इदूतना एव भवामः । अद्रिवो वज्रिन् हे इंद्र पुरा पूर्वं त्वां परीणसः ॥ मुञ्चत्ययः ॥ परीणसं परितो व्याप्तं महान्तं वेति नहि विद्वा । न जानीमः । नु संप्रति तु ते त्वां महान्तमिति जानन्तो वयं भवता रच्या इति ॥

विद्वा सखित्वमुत् शूर भोज्यमा ते ता वज्रिन्नीमहे ।  
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ॥ ८ ॥  
विद्वा । सखिऽत्वं । उत । शूर । भोज्यं । आ । ते । ता । वज्रिन् । ईमहे ।  
उतो इति । समस्मिन् । आ । शिशीहि । नः । वसो इति । वाजे । सुऽशिप्र । गोऽमति ॥ ८ ॥

शूर शूराणां शातयितव्यत्वं हे इंद्र सखित्वं तव सखिभावं वयं विद्वा । जानीमः । उतापि च भोज्यमभ्यवहारार्थं धनं च विद्वा । वज्रिन् हे इंद्र ते त्वदीये ता ते सख्यर्थः आ आभिमुख्येनेमहे । वयं याचामहे । उतो अपि च वसो सर्वस्य वासयितः सुशिप्र शोभनहनो यद्वा शोभनशिरस्त्राण हे इंद्र गोमति गवादिभ्युक्ते समस्मिन् सर्वस्मिन् वाजेऽन्ने नोऽस्माना शिशीहि । तीक्ष्णोक्तुः । उपलक्षणं । प्रदानेनास्मान् प्रसिद्धान् कुर्वित्यर्थः ॥ शिञ् निशान इत्यस्य च्छांदसः सुः ॥

उक्थे ब्राह्मणाच्छिशस्त्रे यो न इदमिदमित्यर्थं प्रगाथोऽनुरूपः । यो न इदमिदं पुरेति प्रगार्था सर्वाः ककुभः । आ० ६. १. इति सूचितं ॥ आभिप्रविकेषूक्थेऽपि ब्राह्मणाच्छिशस्त्रेऽयं वैकल्पिकोऽनुरूपः । आ० ७. ८. ॥ आभिप्रविकेषूक्थेषु तृतीयसवने ब्राह्मणाच्छिशस्त्रे त्वं न इंद्रा भरेति प्रगाथे स्तोत्रे सत्यनुरूपतृचः समाहार्यः । तत्रेयं यो न इदमिदमिति द्वितीया । सूचितं च । यो न इदमिदं पुरा याहीम इदं व इति समाहार्योऽनुरूपः । आ० ७. ८. इति ॥

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे । सखाय इद्रमूतये ॥ ९ ॥  
यः । नः । इदंऽइदं । पुरा । प्र । वस्यः । आऽनिनाय । तं । ऊं इति । वः । स्तुषे । सखायः ।  
इद्रं । ऊतये ॥ ९ ॥

सखायः समानख्याना हे ऋत्विग्यजमानाः य इंद्रः पुरा पूर्वमिदं दर्शनीयतया विद्यमानं वस्त्रो वसीयः ॥ वसोरीयमुनीकारलोपच्छांदसः ॥ प्रशस्तं वसु नोऽस्मान् प्राणिनाय प्रकर्षणानीतवान् तमु तमेव धनानामा-  
नंतरमिद्रं वो युष्माकं धनलाभार्थमूतये रचणाय च स्तुषे । सोभरिरहं स्तोमि ॥



हर्षेण सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमंदत ।

आ तु नः स वयति गव्यमश्वं स्तोतृभ्यो मघवा शतं ॥१०॥

हरिऽअश्वं । सत्ऽपतिं । चर्षणिऽसहं । सः । हि । स्म । यः । अमंदत ।

आ । तु । नः । सः । वयति । गव्यं । अश्वं । स्तोतृभ्यः । मघवा । शतं ॥१०॥

हर्षेण हरितवर्णाद्योपेतं सत्पतिं स्वप्रकाशाधिक्येन सतां नक्षत्राणां पतिं सतां श्रेष्ठानां पतिं वा चर्षणीसहं चर्षणीनां शत्रुभूतानां मनुष्याणामभिभवितारं स हि ष्मा स खलु जनः स्मृतिः । यो जनो अमंदत ततो लब्धधनः संकृप्नो भवति स एषं तुष्टयति । एवं सति मघवा धनवान् स इंद्रः शतं गव्यमश्वमनेकं गवाश्चसंघं स्तोतृभ्यो नोऽश्वं तु चिप्रमा वयति आप्रापयतु ॥ वी गत्यादिषु । अस्मात्तेज्यडागमः ॥ ततो लब्धगवादिका वयं चैनं क्षुम इति ॥ ॥२॥

त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति अंसंतं वृषभ ब्रुवीमहि । संस्ये जनस्य गोमंतः ॥११॥

त्वया । ह । स्वि । युजा । वयं । प्रति । अंसंतं । वृषभ । ब्रुवीमहि । सं । संस्ये । जनस्य ।

गोऽमंतः ॥११॥

वृषभ वर्धितेह इंद्र गोमतो गवाद्युक्तस्य जनस्य संस्ये स्थाने युद्धे असंतमक्षान्प्रति क्रोधातिशयेन आसकारिणं शत्रुं युवा सहायेन त्वया ह स्वि त्वयैव खलु वयं प्रति ब्रुवीमहि । प्रतिवचनं कुर्मः । निराकारिणाम् इत्यर्थः ॥

जयेम कारे पुरुहूत कारिणोऽभि तिष्ठेम दूढ्यः ।

नृभिर्वृचं हन्यामं शूश्रूयाम चार्वेरिद्र प्र णो धियः ॥१२॥

जयेम । कारे । पुरुहूत । कारिणः । अभि । तिष्ठेम । दूऽध्यः ।

नृऽभिः । वृचं । हन्यामं । शूश्रूयाम । च । अर्वेः । इंद्र । प्र । नः । धियः ॥१२॥

पुरुहूत वज्रभिराहूतव्य हे इंद्र अस्माकं विविधाः शत्रव उपद्रवकारिणो बाधां मनसा अरंत्येति । तव कारिणो हिंसां कुर्वतः शत्रून् कारे । कीर्यत आशुभान्येति कारो युद्धं । तस्मिंस्तान्वयं जयेम । दूढ्यो दुर्धियः पापकुलीनयमि तिष्ठेम । अभितः स्थास्यामः । किंच वृचं गवामावरकं शत्रुं नृभिराशुधनेतुभिर्महसिः सह हन्याम । हिंस्याम । हत्वा शूश्रूयाम च । शत्रुराहित्येन पुत्रपौत्रैरपिष्टोमादिकर्मभिश्च वर्धयेमहि । यद्वा । अयतिरचांतर्णीतव्यर्थः । शत्रुभ्यो बाधाभावात्सोमलक्षणेनैस्त्वां वर्धयेम । ततस्त्वं नोऽस्माकं धियः कर्माणि प्राप्तेः । प्रकर्षेण रच ॥

आभिन्नविकेषकथ्येषु तृतीयसवने ब्राह्मणाच्छंसि शस्त्रेऽधातृव्य इत्यादिकौ द्वौ प्रगाथौ वैकल्पिकौ स्तोत्रियानुरूपौ । सूचितं च । अधातृव्यो अना त्वं मा ते अमावुरो यथा । आ० ७. ८. । इति ॥

अभातृव्यो अना त्वमनापिरिद्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥१३॥

अभातृव्यः । अना । त्वं । अनापिः । इंद्र । जनुषा । सनात् । असि । युधा । इत् ।

आपित्वं । इच्छसे ॥१३॥

हे इंद्र त्वं जनुषा जन्निवाधातृव्यः ॥ अन् सपत्ने । पा० ४. १. १४५. । इति अन्नात्ययः ॥ अनापितृकः ॥ अतस्त्वं दसीति कपः प्रतिषेधः ॥ अनियंतृक इत्यर्थः । अनापिर्बभूवर्जितश्च सनादसि । चिरादेव धातृव्यादि-

वर्जितोऽसि । यच्च त्वयापित्वं बांधवमिच्छसे इच्छसि तच्च युधेयुर्नैव । युधं कुर्वन्नेव स्रोतॄणां सखा भवसीति ॥

नकी रेवंतं सख्याय विंदसे पीयंति ते सुराश्चः ।

यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादिप्तितेव हूयसे ॥ १४ ॥

नकिः । रेवंतं । सख्याय । विंदसे । पीयंति । ते । सुराश्चः ।

यदा । कृणोषि । नदनुं । सं । ऊहसि । आत् । इत् । पिताऽइव । हूयसे ॥ १४ ॥

हे इंद्र रेवंतं धनवंतं केवलधनवंतं दानादिरहितमयष्टारमाढ्यं मानवं सख्याय सखिभावाय नकिर्विंदसे । न भक्तये । नाश्रयमीत्यर्थः । अयष्टारो जनाः किं संतोष्यत आह । सुराश्चः ॥ दुःश्रीश्च गतिपुद्गोः ॥ सुरया वृजाम्बहत प्रमत्ता नाम्निकान् त्वां पीयंति ॥ पीयति हिंसाकर्मा । हिंसंति । तान्नाश्रयमीत्यर्थः ॥

मा ते अमाजुरो यथा मूरासं इंद्र सख्ये त्वावंतः । नि पदाम सचा सुते ॥ १५ ॥

मा । ते । अमाऽजुरः । यथा । मूरासः । इंद्र । सख्ये । त्वाऽवंतः । नि । सदां ।

सचा । सुते ॥ १५ ॥

हे इंद्र ते तव स्वभुता वयं तथा मा भुम मा भवाम यथा त्वावतम्त्वाद्गाम्त्वत्तद्गृहस्य देवस्य सख्ये मूरासो मुराः । सोमप्रदानादिद्वेष्टा सह सख्यं कर्म इत्येतद्जागंतो मृदा जनाः । अमाजुरः सोमाभिपवमकुर्वन्तं गृहः पुत्रः पौत्रधनादिभिश्च सह जीर्णा भवंति । तथा वयममाजुरो न भवाम । कथं । सचा चत्विभिः सह मुतऽभिषुते सोम वयं तु नि पदाम । निधसाम । तस्मात्सोमदानेन त्वया सह सखिभावं कर्म इत्यर्थः ॥ ॥ ३ ॥

मा ते गोदत्तं निरराम राधं इंद्र मा ते गृहामहि ।

दृष्ट्वा चिदयः प्र मृगाभ्या भर न ते दामानं आदभे ॥ १६ ॥

मा । ते । गोऽदत्तं । निः । अराम । राधंमः । इंद्र । मा । ते । गृहामहि ।

दृष्ट्वा । चित् । अयः । प्र । मृग । अभि । आ । भर । न । ते । दामानः । आऽदभे ॥ १६ ॥

हे गोदत्त स्रोतॄणां गवादिदानशील हे इंद्र ते तव स्वभुता वयं राधसो धनान्मा निरराम । मा निगंजाम ॥ अनेर्गुडि मतिर्गोस्त्यतिभ्यश्चत्वादेगः । अदृशोऽङीति गृणः ॥ सर्वदा त्वत्तो धनाढ्या भवाम । किंच ते तव स्वभुता वयं धनं प्रयच्छाम । कस्याच्चिन्मा गृहामहि । तस्मादन्यत्र गृह्णीमः । अपि तु त्वत्त एव धनं गृह्णीम इत्यर्थः ॥ गृहर्गुडि चक्रलं कंदमीति गः । इच्छित्वात्मप्रसारणं ॥ अयः प्यामी त्वं दृष्ट्वा चिदृष्ट्वा न्यापि विनयराणि धनानि प्र मृग । प्रकीर्णगाम्नामु स्वरपथ । किंचाभ्याभिमुख्यना भर । धनादिभिः समंतादस्मान्प्रोपय । ते तव दामानलानि दानानि नादभं न कैश्चिदप्यादंभितुं शक्वन्ते । तस्माद्दानादियुक्तानस्मान् कृषित्वयः ॥

इंद्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा दृदिर्वसु । त्वं वा चित्र दाश्रुषे ॥ १७ ॥

इंद्रः । वा । घ । इत् । इयंत । मघं । सरस्वती । वा । सुऽभगा । दृदिः । वसु । त्वं ।

वा । चित्र । दाश्रुषे ॥ १७ ॥

अत्र चित्रस्य दानं स्त्रीति । चित्रो नाम राजा सरस्वतीतीर इंद्रार्थं यागमकृत । तत्र मंचद्रष्टृर्धिवर्जध-



नलामात्रममेतावद्धनं को वा प्रायच्छदिति विकल्पयति । दाशुप इन्द्राय हवींषि दत्तवते मह्यमिन्द्रो वा घेदिन्द्र एव किं खल्वेतावच्छयं मंहनीयं धनं ददिः प्रायच्छत् । यदा मुभगा शोभनधना सरस्वती नदी वसु धनं ददिः किं प्रायच्छत् । अथवा चित्र एतन्नामकं हे राजन् त्वं वेतावद्धनं मह्यं प्रादा इति ॥

चित्र इन्द्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।

पर्जन्य इव ततनन्दि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥ १८ ॥

चित्रः । इत् । राजा । राजकाः । इत् । अन्यके । यके । सरस्वती । अनु ।

पर्जन्यः । इव । ततनन्त । हि । वृष्ट्या । सहस्रं । अयुता । ददत् ॥ १८ ॥

अनया चित्र एव प्रादादिति निश्चयमकार्षीत् । सहस्रं सहस्रसंख्याकं धनमयुतायुतानि च धनानि च ददत् प्रयच्छति च इच्चित्रनामैव राजा । अन्यके यके ॥ अल्प इत्यर्थे कः ॥ अल्पा येऽन्ये राजका इन्द्राजान एव सरस्वतीमनु सरस्वत्याक्षीरे वर्तते । तान् सर्वान्याचमानायमेव चित्रो राजा ततनन्त धनं लभते ॥ तनो-तेर्लुङि चङि रूपं । चङ्यन्तरस्यामिति स्वरः ॥ तच्च दृष्टान्तः । पर्जन्य इव यथा पर्जन्यः पृथिवीं वृष्ट्या तनोति प्रीणयति तथायं चित्रः सर्वान् धनैः प्रीणयतीत्यर्थः ॥ ४ ॥

ओ त्यमङ्ग इत्यष्टादशं द्वितीयं मृतं काण्वस्य सोमरेरार्यं । आदानुतीयापंचम्यो वृहत्यो द्वितीयाचनु-थीषव्यः सतोवृहत्यः सप्तमी वृहत्यष्टम्यनुष्टुप । काकुभं प्रागायं हेत्युक्तस्यानुवृत्तेः शिष्टाश्चत्वारः काकुभाः प्रगाथाः । अश्विनी देवता । तथा चानुक्रांतं । ओ त्यमाश्विनं चिप्रमाथादि वृहत्यनुष्टुपेकादश्याये ककुम्मध्य-ज्योतिषी इति ॥ प्रातरनुवाक आश्विने कृतां वार्हते छंदस्याश्विनश्चे चाद्याः सप्तर्चः । मूर्चितं च । ओ त्यमङ्ग आ रथमिति सप्त । आ० ४. १५. इति ॥

ओ त्यमङ्ग आ रथमद्या दंसिष्ठमृतये ।

यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थुः ॥ १ ॥

ओ इति । त्यं । अङ्गे । आ । रथं । अद्य । दंसिष्ठं । ऊतये ।

यं । अश्विना । सुहवा । रुद्रवर्तनी इति रुद्रवर्तनी । आ । सूर्यायै । तस्थुः ॥ १ ॥

हे अश्विनी दंसिष्ठमत्यंतदर्शनीयं यद्वातिशयेन शत्रूणामुपचपयितारं त्वं तं युवयो रथमूतये रचनाया-वाश्विन्यागदिनेऽङ्गे । सोमरिरहमाङ्गयामि । सुहवा सोमशस्त्रादिभिः शोभनाङ्गानां रुद्रवर्तनी संग्रामे रोदनशीलमार्गो यद्वा स्तयमानमार्गो हे अश्विनी सूर्यायै सूर्यास्त्रयंवरे वरयितुं यं रथं युवामा तस्थुः आश्रयथः तं रथमाङ्गयामीति ॥

पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यं ।

सचनावंतं सुमतिभिः सोमरे विद्वेषसमनेहसं ॥ २ ॥

पूर्वऽआपुषं । सुहवं । पुरुऽस्पृहं । भुज्युं । वाजेषु । पूर्व्यं ।

सचनाऽवंतं । सुमतिऽभिः । सोमरे । विऽद्वेषसं । अनेहसं ॥ २ ॥

हे सोमरे सुमतिभिः कल्याणीभिः क्षतिभिरश्विनो रथं क्षुहि । किंविशिष्टं । पूर्वापुषं पूर्वेषां सोमृणां धनादिदानेन पोषकं सुहवं युष्टेपु शोभनाङ्गानं पुरुस्पृहं वज्रभिः स्पृहणीयं भुज्युं । भुज पालने ॥ सर्वस्य रचकं वाजेषु पूर्व्यं संग्रामेष्वयतो गंतारं सचनावंतं सर्वभोजनवंतं विद्वेषसं शत्रूणां विशेषण द्वेष्टारमनेहसं कैश्यदप्यनु-पद्रवं पापरहितं वा रथं क्षुहीत्यन्वयः ॥

इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।

अर्वाचीना स्ववसे करामहे गंतारा दाशुषो गृहं ॥३॥

इह । त्या । पुरुऽभूतमा । देवा । नमःऽभिः । अश्विना ।

अर्वाचीना । सु । अवसे । करामहे । गंतारा । दाशुषः । गृहं ॥३॥

पुरुभूतनातिशयेन बहूनां शत्रूणां भावयितारौ देवा देवी द्योतनशीली स्रोतव्यी वा दाशुषो हविर्दत्त-  
वतो यजमानस्य गृहं प्रति गंतारी गमनशीली त्या तावश्विनाश्विना युवामिहाश्विन्वर्मस्त्ववसे रचणाय  
नमोभिर्हविर्भिः स्रोत्रैर्वाचीनार्वाचीनावमिमुखमागच्छन्ती सु करामहे । वयं सुष्ठु कुर्मः ॥

युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मन्यद्वामिषण्यति ।

अस्माँ अच्छा सुमतिर्वा शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ॥४॥

युवोः । रथस्य । परि । चक्रं । ईयते । ईर्मा । अन्यत् । वां । इषण्यति ।

अस्मान् । अच्छ । सुऽमतिः । वां । शुभः । पती इति । आ । धेनुऽईव । धावतु ॥४॥

हे अश्विना युवोर्युवयो रथस्यैकं चक्रं परितो वां गच्छति । अन्यदवस्थितं रथस्य चक्रमीमेकौ सर्वस्वांत-  
र्यामितया प्रेरकौ यद्वोदकस्य प्रेरयितारौ वां युवामिषण्यति । गच्छति । उक्तार्थे मंचांतरं । न्यग्रस्य मूर्धनि  
। अ० १. ३०. १९. । इति । हे शुभस्पती उदकस्य पालयितारौ हे अश्विना वां युवयोः सुमतिः कक्षाणी मतिर-  
च्छामिमुख्येनास्माना धावतु । आगच्छतु । तच्च दृष्टांतः । धेनुरिव यथा नवप्रसूता गार्वत्सं प्रति पयोदानार्थ-  
मागच्छति तद्वयुवयोः सुमतिरस्मान्प्रति धनादिप्रदानार्थमागच्छतु ॥

रथो यो वां चिवंधुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।

परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतस्तेन नासत्या गतं ॥५॥

रथः । यः । वां । चिऽवंधुरः । हिरण्यऽअभीशुः । अश्विना ।

परि । द्यावापृथिवी इति । भूषति । श्रुतः । तेन । नासत्या । आ । गतं ॥५॥

हे अश्विनाश्विना चिवंधुरः । वंधुरं सारथिस्थानं । चिप्रकारवंधुरोपेतः । यदा । हे इये त्वय्ये रज्जुसज्ज-  
नार्थको दंडः । एते वयो वंधुरशब्देनोच्यंते । चिवंधुरयुक्तो हिरण्याभीगुर्हिरण्यमयाद्यादिरज्जुर्वा युवयोयो  
रथः श्रुतः सर्वत्र प्रसिद्धः सन् द्यावापृथिव्यां परि भूषति स्ववलेन परिभवति ॥ भवतेर्लेटि सिष्यहागमः ॥  
यदा । परितः स्वप्रकाशेनालंकरोति । हे नासत्या नामर्त्यं तेन पूर्वोक्तं रथेना गतं । आगच्छतं ॥ ५॥

दशस्यंता मनवे पूर्य दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।

ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि ॥६॥

दशस्यंता । मनवे । पूर्य । दिवि । यवं । वृकेण । कर्षथः ।

ता । वां । अद्य । सुमतिऽभिः । शुभः । पती इति । अश्विना । प्र । स्तुवीमहि ॥६॥

हे अश्विना पूर्यं पुरातनं दिवि बुल्लोके स्थितमुदकं मनव एतन्नामकाय राज्ञे दशस्यंता दशस्यंतौ प्रयच्छंतौ  
युवां वृकेण । वृको जंगलं भवति विकर्तनात् । नि० ६. २६. । इति यास्कः । तेन जंगलेन यवं यवनामकं धान्यं



कर्षयः । पुनश्च तस्मै । वल्लेखन कुक्षयः । सुमस्यती उदकस्य पालयितारो हे अश्विनाश्विनी ता तौ पूर्वोक्तवप-  
णयुक्ता वां युवामथास्मिन्मन्त्रदिने सुमतिभिः शोभनाभिः स्तुतिभिः प्रकर्षेण सुवीमहि । वयं सुमः ॥

उपं नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः ।

येभिस्तृक्षिं वृषणा चासदस्यवं महे क्षत्राय जिवन्थः ॥ ७ ॥

उपं । नः । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू । यातं । ऋतस्य । पथिऽभिः ।

येभिः । तृक्षिं । वृषणा । चासदस्यवं । महे । क्षत्राय । जिवन्थः ॥ ७ ॥

हे वाजिनीवसू अन्नधनवन्ती । अन्नमेव धनं ययोस्त्री । अश्विनी ऋतस्य सत्यमृतस्य यज्ञस्य पथिभिर्मार्गिणो  
ऽस्मानुप यातं । आगच्छतं । वृषणा वृषणी धनानां क्षेत्रारो हे अश्विनी चासदस्यवं चासदस्त्रीः पुत्रं तृचिमेत-  
न्नामकं येभिर्यैर्यज्ञमार्गैर्महे महते चत्राय धनाय जिवन्थः प्रीणयथ एव । तैर्मार्गैरस्मान् धनादिभिः प्रीण-  
यितुमागतमित्यर्थः ॥

अयं वामद्विभिः सुतः सोमो नरा वृषणवसू ।

आ यातं सोमपीतये पिबतं दाम्नुषो गृहे ॥ ८ ॥

अयं । वां । अद्विऽभिः । सुतः । सोमः । नरा । वृषणवसू इति वृषणऽवसू ।

आ । यातं । सोमऽपीतये । पिबतं । दाम्नुषः । गृहे ॥ ८ ॥

नरा सर्वस्य नेतारो यद्वा स्रोतृणां धनस्य नेतारो वृषणवसू वर्षणशीलधनवन्ती हे अश्विनी वां युष्मदर्थ-  
मद्विभिर्धावभिरयं सोमः सुतोऽभिषुतः । तस्मात्सोमपीतये सोमपानार्थं युवामा यातं । आगत्य च दाम्नुषो  
हविर्दत्तवतो यजमानस्य गृहे यज्ञस्थाने सोमं युवां पिबतं ॥

आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषणवसू । युंजाथां पीवरीरिषः ॥ ९ ॥

आ । हि । रुहतं । अश्विना । रथे । कोशे । हिरण्यये । वृषणवसू इति वृषणऽवसू ।

युंजाथां । पीवरीः । इषः ॥ ९ ॥

वृषणवसू वर्षणशीलधनी हे अश्विनाश्विनी हिरण्यये हिरण्यमयरक्त्वादियुक्ते कोशे आयुधादीनां कोशस्थाने  
रमणशीले रथे । हिरण्यधारणे । युवामेवा रुहतं । आरोहणं कुर्वतं । ततः पीवरीः पावयितृणि स्थूलानि  
वेवोऽन्नानि युंजाथां । अस्मासु योजयतं ॥

याभिः पक्थमवणो याभिरग्निं याभिर्बभुं विजोषसं ।

ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरं ॥ १० ॥

याभिः । पक्थं । अवणः । याभिः । अग्निंऽमुं । याभिः । बभुं । विऽजोषसं ।

ताभिः । नः । मक्षू । तूयं । अश्विना । आ । गतं । भिषज्यतं । यत् । आतुरं ॥ १० ॥

हे अश्विनी याभिस्तुतिभिः पक्थमेतन्नामकं राजानमवणः रक्षयः । याभिस्तुतिभिश्चाग्निं गुप्तगमनं  
राजानमवणः । याभिस्तुतिभिश्च बभुं राजानं च विजोषसं विशेषेण सोमैः प्रीणयतं । एतान् सर्वान् यैः  
पालनैरवणः ताभिस्तै रक्षणेभ्यो चिप्रं तूयं तूयं नोऽस्माना गतं । रक्षणार्थमागच्छतं । किंच यद्यदातुरं रोगा-  
दिसहितमस्माकं पुत्रादिकं प्रति भियज्यतं । भियज्यं कुर्वतं ॥ भियज्जंङ्गादिः ॥ ६ ॥

यदग्निगावो अग्निगू इदा चिदहो अश्विना हवामहे । वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥११॥  
 यत् । अग्निऽगावः । अग्निगू इत्यग्निऽगू । इदा । चित् । अहः । अश्विना । हवामहे ।  
 वयं । गीऽभिः । विपन्यवः ॥११॥

अग्निगावोऽधृतगमनाः कर्मसु लरमाणा विपन्यवो मेधाविनो वयमग्निगू अधृतगमनौ संग्रामे शत्रुवधार्थं  
 लरया गच्छतावश्विनाश्विनौ युवामहो दिवसस्तेदा चिदिदानीमेव प्रातःकाले गीर्भिः क्षुत्तिलक्षणाभिर्विपि-  
 र्यवदा हवामहे युवामाह्वयामः तदा तामिहृतिभिरक्षानागच्छन्मित्युत्तरच संबंधः ॥

ताभिरा यातं वृषणोप मे हवै विश्वप्सु विश्ववार्ये ।

इषा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा याभिः क्रिविं वावृधुस्ताभिरा गतं ॥१२॥

ताभिः । आ । यातं । वृषणा । उप । मे । हवै । विश्वऽप्सु । विश्वऽवार्ये ।

इषा । मंहिष्ठा । पुरुऽभूतमा । नरा । याभिः । क्रिविं । ववृधुः । ताभिः । आ । गतं ॥१२॥

वृषणा वृषणौ वर्षणशीलौ हे अश्विनौ विश्वप्सु । पुरिति रूपनाम । सोचशस्त्रात्मकत्वेन नानारूपं  
 विश्ववार्यं सर्वदेवैर्वरणीयं मे मदीयं हवं युष्मद्विषयमाह्वानमामिमुखीकृत्य तामिहृतिभिरेव यातं । युवामा-  
 गच्छतं । याभिर्नरा नरौ सर्वस्य नेतारावश्विनाविषा ॥ इष इच्छायां ॥ हवीषीच्छंतौ मंहिष्ठा मंहिष्ठावतिशयेन  
 धनानां दातारी पुरुभूतमा पुरुभूतमौ युद्धेष्वत्यंतं पुरुधा भवंतौ यद्वातिशयेन बहूनां शत्रूणामभिभवितारौ  
 भवंतौ क्रिविं कूपं प्रति यामिहृतिभिर्दकानि वावृधुः अवर्धयतः ॥ द्वयोर्वज्रवचनं पूजार्थं ॥ कूपधतितो वंदनो  
 मायाभिः कूपं पूरयित्वा युवाभ्यामुत्थापितः खलु । तथा मंचः । उद्वंदनमैरयतं स्वर्द्धुः ॥ अ० १. ११२. ५. इति ।  
 ताभिसैः पालनेरा गतं । असद्रूपार्थमागच्छतं ॥

ताविदा चिदहानां तावश्विना वंदमान उप ब्रुवे । ता ऊ नमोभिरीमहे ॥१३॥

तौ । इदा । चित् । अहानां । तौ । अश्विना । वंदमानः । उप । ब्रुवे । तौ । ऊं इति ।

नमःऽभिः । ईमहे ॥१३॥

तौ संग्राम आयुधानि क्षौत्रभ्यो धनानि वा विस्तारयंतौ पूर्वोक्तावश्विनाश्विनावहानामह्वामिदा चिदि-  
 दानीमेव प्रातःकाले वंदमानोऽभिवादनं कुर्वन् सन्नप ब्रुवे । तयोः समीपे स्तौमि । ततस्मा उ ताविव नमोभि-  
 र्विभिः स्तोत्रैर्वेमहे । वयं धनादिकं याचामहे ॥

ताविहोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामनुद्वर्तनी ।

मा नो मर्ताय रिपवै वाजिनीवसू परो रुद्रवति ख्यतं ॥१४॥

तौ । इत । दोषा । तौ । उषसि । शुभः । पती इति । ता । यामन् । रुद्रवर्तनी इति रुद्रऽवर्तनी ।

मा । नः । मर्ताय । रिपवै । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू । परः । रुद्रौ । अति ।

ख्यतं ॥१४॥

शुभस्पती उदकस्य पालयितारी रुद्रवर्तनी युद्धे रोदनशीलमार्गौ सूयमानमार्गौ वा तावित्तविवाश्विनौ  
 दोषा दोषायां रात्रौ तविवोपस्युपःकाले तावश्विनौ यामन्यामन्यहनि च सर्वेषु कालेषु वयमश्विनावाह्वयामः ।  
 एव सति वाजिनीवसू अन्नधर्मा रुद्रौ हे अश्विनौ मर्ताय मनुष्याय रिपवै शत्रवे नोऽक्षत्यरः परस्मान्माति-  
 ख्यतं । मा व्रतं । शत्रवेऽस्मान्मा कुरुतमित्यर्थः ॥



आ सुगम्याय सुगम्यं प्रा॒ता रथे॑ना॒श्विना॑ वा स॒क्षणी॑ । हु॒वे पि॒तेव॑ सो॒भरी॑ ॥ १५ ॥  
 आ । सु॒गम्या॑य । सु॒गम्यं॑ । प्रा॒तरि॑ति । रथे॑न । अ॒श्विना॑ । वा । स॒क्षणी॑ इति । हु॒वे ।  
 पि॒ताऽइ॑व । सो॒भरी॑ ॥ १५ ॥

वापि च सषणी सेवनीयशीलावश्विनाश्विनी युवां सुगम्याय सुखार्हाय मह्यं सुगम्यं सुखं प्रातःकाले रथेना-  
 वहतं । ततः सोभरी सोभरिरहं ऊवे । युवामाह्वयामि । तच्च दृष्टांतः । पितेव यथा मम पिताजुहाव तद्वदह-  
 माह्वयामि ॥ ॥ ७ ॥

मनो॑जवसा वृषणा म॒दच्यु॑ता म॒क्षुंग॒माभि॑रू॒तिभिः॑ ।  
 आ॒रा॒त्ताच्चि॑द्रू॒तम॒स्मे अ॒वसे॑ पूर्वी॒भिः पु॒रुभो॑जसा ॥ १६ ॥  
 मनः॑ऽजवसा । वृष॒णा । म॒दऽच्यु॑ता । म॒क्षुऽग॒माभिः॑ । ऊ॒तिऽभिः॑ ।  
 आ॒रा॒त्तात् । चि॒त् । भू॒तं । अ॒स्मे इति॑ । अ॒वसे॑ । पूर्वी॒भिः । पु॒रुभो॑जसा ॥ १६ ॥

हे मनोजवसा मनोवच्छीघ्रं गच्छन्ती वृषणा वृषणी धनानां वर्धितारी मदच्युता । मावन्तीति मदाः  
 श्रवः । तेषां आवयितारी पुरुभोजसा बहनां मोक्षारी रक्षकौ यद्वा बहन् स्त्रोतृन् धनादिभिर्मोचयन्ती हे  
 अश्विनी मक्षुंगमाभिः शीघ्रं गच्छन्निरूतिमी रचामिः पूर्वीभिर्वज्रमिरक्षे अस्माकमवसे रषणापारात्तादंतिक  
 एव भूतं । भवतं ॥

आ नो॑ अ॒श्वाव॑द॒श्विना॑ व॒र्तिर्या॑सिष्टं मधुपा॒तमा॑ नरा । गोम॑ह॒सा हि॒रण्य॑वत् ॥ १७ ॥  
 आ । नः॑ । अ॒श्वऽव॑त् । अ॒श्विना॑ । व॒र्तिः । या॒सिष्टं॑ । म॒धुऽपा॒तमा॑ । न॒रा । गो॑ऽम॒त् ।  
 द॒सा । हि॒रण्य॑वत् ॥ १७ ॥

मधुपातमातिशयेन मधोः सोमस्य पातारी नरा नितारी दसा सर्वैर्दंशनीयौ हे अश्विनी नोऽस्माकं  
 वर्तिः । वर्ततेऽचेति वर्तिर्गृहं । तदश्वावदश्चयुक्तं गोमन्त्रवाद्युक्तं हिरण्यवत्सुवर्णकनकादियुक्तं कृत्वा आ  
 यासिष्टं । आगच्छतं । यद्वा । अस्मान्प्रति वर्तिर्यज्ञमार्गमश्वादियुक्तं कृत्वागच्छतं ॥ यातेर्गुडि रूपं ॥

सु॒प्राव॑र्गे सु॒वीर्यं॑ सु॒ष्टु वा॒र्यम॑ना॒धृष्टं॑ र॒क्षस्वि॑ना ।  
 अ॒स्मिन्ना॑ वा॒मा॒याने॑ वा॒जिनी॑वसू वि॒श्वा वा॒मानि॑ धीम॒हि ॥ १८ ॥  
 सु॒ऽप्राव॑र्गे । सु॒ऽवीर्यं॑ । सु॒ष्टु । वा॒र्यं । अ॒ना॒धृष्टं॑ । र॒क्षस्वि॑ना ।  
 अ॒स्मिन् । आ । वा॑ । आ॒ऽयाने॑ । वा॒जिनी॑वसू इति॑ वा॒जिनी॑ऽवसू । वि॒श्वा ।  
 वा॒मानि॑ । धी॒म॒हि ॥ १८ ॥

सुप्रावर्गे शोभनं प्रवर्जनं यस्य तत् । स्त्रोतृभ्यः स्वयमेव प्रयच्छतीत्यर्थः । तथाविधं सुवीर्यं शोभनवीर्यं सुष्टु  
 शोभनं यथा भवति तथा वार्यं सर्वैर्वरणीयं रक्षस्विना बलवताप्यनाधृष्टमनमिभवनीयं धनमा धीमहि ।  
 त्वत्तो वयं धारयामः । तदेवाह । वाजिनीवसू बलयुक्तधनावन्नधर्मा वाश्विनी वा युवयोरस्मिन्नायानेऽस्मन्नृहं  
 प्रत्यागमने विद्या विद्यानि दिव्यर्भामादीनि वामानि धनान्या धीमहि । वयं जभामहे ॥ धीम् आधार इत्यस्य  
 लिङि च्छांदसो विकरस्य लृक् ॥ ॥ ८ ॥

ईकिञ्चेति त्रिशद्वचं तृतीयं सूक्तं । व्यथपुत्रो विद्यमना ऋषिः । उष्णिक् छंदः । अपिदेवता । तथा चापु-

क्रांतं । ईळिष्व चिंशद्विषमना वियथ आमियमौष्णिहं हेति ॥ प्रातरनुवाक आमिये क्रतावौष्णिहे छंदस्याश्वि-  
नशस्त्रे चेदं सूक्तं । सूचितं च । ईळिष्व हीत्यौष्णिहं । आ० ४. १३. । इति ॥

ईळिष्व हि प्रतीव्यं यजस्व जातवेदसं । चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषं ॥ १ ॥

ईळिष्व हि । प्रतीव्यं । यजस्व । जातवेदसं । चरिष्णुधूमं । अगृभीतशोचिषं ॥ १ ॥

प्रतीव्यं शत्रुषु प्रतिगमनशीलमपि । हिरवधारणे । अग्निमेवेळिष्व । कुतिभिः सोचं कुरु । किंच चरिष्णुधूमं  
सर्वतश्चरणशीलधूमजालमगृभीतशोचिषं रचोभिरगृह्यमाणदीप्तिं जातवेदसं जातप्रक्षं । यद्वा । आतानि  
भूतानि वेत्तीति जातवेदाः । तमपि यजस्व । हविर्भिः पूजय ॥

दामानं विश्वचर्षणेऽग्निं विश्वमनो गिरा । उत स्तुषे विस्पर्धसो रथानां ॥ २ ॥

दामानं । विश्वऽचर्षणे । अग्निं । विश्वऽमनः । गिरा । उत । स्तुषे । विऽस्पर्धसः ।  
रथानां ॥ २ ॥

उतापि च हे विश्वचर्षणे विश्वस्य सर्वस्वार्थस्य ज्ञानेन द्रष्टृविश्वमनः । सर्वेषु स्थावरजंगमात्मकेष्वेकं मनो  
यस्य सः । एतन्नामकं हे ऋषे विश्वर्धसो विगतमात्सर्यस्य यजमानस्य रथानां रथादीनां दामानं दातारमे-  
वंविधमपि गिरा कुतिलक्षण्या वाचा क्षुपे । सोचं कुरु ॥

येषामाबाध ऋग्मियं इषः पृक्षश्च नियमे । उपविदा वह्निर्विदते वसु ॥ ३ ॥

येषां । आऽबाधः । ऋग्मियः । इषः । पृक्षः । च । निऽयमे । उपऽविदा । वह्निः ।

विदते । वसु ॥ ३ ॥

आबाधः शत्रूणामभिमुखेन बाधक ऋग्मियं ऋग्मिरर्चनीयोऽपिर्येषामयजमानानामिषोऽन्नानि पृषो  
ऽन्नादिरसांच नियमे निगृह्णीते ॥ ग्रहेर्लटि च्छांदसो विकरणस्य लुक् । लोपस्त आत्मानेपदेऽपिति तलोपः ।  
हयहोर्मच्छंदसीति भकारः ॥ निगृह्य च वह्निर्हविषां वोढा स एवाग्निरुपविदोपवेदनेन एते हवींषि देवार्थं  
न प्रयच्छन्तीत्येतज्ज्ञानेन तेषामेव वसु धनं विदते । लभते ॥

उदस्य शोचिरस्थाहीदियुषो व्यजरे । पुर्जंभस्य सुद्युतो गणश्चियः ॥ ४ ॥

उत् । अस्य । शोचिः । अस्थात् । दीदियुषः । वि । अजरे । तपुःऽजंभस्य । सुऽद्युतः ।

गणऽश्चियः ॥ ४ ॥

दीदियुषः । दीदिति दीप्तिर्कर्म । संदीप्यमानस्य तपुर्जंभस्य तापयितृदंष्ट्रस्य सुद्युतः शोभनदीप्तिर्गणश्चियः ।  
हविरादानार्थं यजमानगणं अयति तस्य । अस्तेतादृशोऽमेरजरं जरारहितं पुनः पुनर्मथ्यमानत्वान्नूतनं हवि-  
र्निर्वर्धमानत्वादभिनवं वा शोचिस्तेज उदस्थात् । उन्नतमभूत् ॥

उदु तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा । अभिख्या भासा बृहता शुशुक्निः ॥ ५ ॥

उत् । उं इति । तिष्ठ । सुऽअध्वर । स्तवानः । देव्या । कृपा । अभिऽख्या । भासा ।

बृहता । शुशुक्निः ॥ ५ ॥

स्वध्वर शोभनयज्ञ हे ऋषे अभिख्याभिमुखं गच्छत्याभितः प्रसिद्धया वा बृहता बृहत्या भासा दीप्या  
शुशुक्निः ॥ शुच दीप्ता ॥ दीपनशीलस्त्वं स्तवानः सोतृभिः ज्ञूयमानः सन् देव्या द्योतमानया कृपा ज्वाल-  
योत्तिष्ठ । तमःपरिहारार्थमुन्नच्छ । उ प्रसिद्धा ॥ ॥ ९ ॥



अमे याहि सुशस्तिभिर्हव्या जुहान आनुषक् । यथा दूतो बभूय हव्यवाहनः ॥ ६ ॥  
अमे । याहि । सुशस्तिभिः । हव्या । जुहानः । आनुषक् । यथा । दूतः । बभूय ।  
हव्यवाहनः ॥ ६ ॥

हे अमे आनुषगानुषक्तं यथा भवति तथा हव्या हव्यानि हवनयोग्यान्वयानि जुहानो जुहन् देवेभ्यः  
प्रयच्छंस्त्वं सुशस्तिभिः शोमभिः स्तोत्रैः सह याहि । देवानां हविष्प्रदानार्थं गच्छ । अस्य हविष्प्रदातुत्वं कथमि-  
त्याशङ्काह । यथा त्वं हव्यवाहनो हविषां बोढा देवानां दूतो बभूय भवसि तथा जुहान इत्यन्वयः ॥

अमिं वः पूर्वे हुवे होतारं चर्षणीनां । तमया वाचा गृणे तमु वः स्तुषे ॥ ७ ॥  
अमिं । वः । पूर्वे । हुवे । होतारं । चर्षणीनां । तं । अया । वाचा । गृणे । तं । उं इति ।  
वः । स्तुषे ॥ ७ ॥

चर्षणीनां मनुष्याणां होतारं होमनिष्पादकं पूर्वं पुरातनं वो यष्टुस्त्रिण युष्मत्संबन्धिनममिं ऊवे । आह-  
यामि । आहय च तमपिमयागया सूक्तरूपया वाचा गिरा गृणे । शंसामि । किंच वो युष्मदर्थं तमु  
तमेवापिं क्षुये । स्तौमि ॥

यज्ञेभिरहुतक्रतुं यं कृपा सूदर्यत इत् । मिचं न जने सुधितमृतावनि ॥ ८ ॥  
यज्ञेभिः । अहुतऽक्रतुं । यं । कृपा । सूदर्यते । इत् । मिचं । न । जने । सुधितं । मृतावनि ॥ ८ ॥

अहुतक्रतुं यज्ञविधिमग्नं यद्वा विचकर्माणं मिचं न यजमानानां मिचमिव स्थितं सुधितं हविर्भिः संतर्पितं  
यमपिमृतावनि यज्ञवति जने यजमाने कृपा स्वसामर्थ्येन यज्ञेभिर्यज्ञैः सूदर्यते । सूदिः चरणकर्मा । अध्वर्या-  
दयः कामान् चारयन्ति च । यजमानस्य कामान् प्रापयन्तीत्यर्थः । तमपिमृतावनिमित्युत्तरच संबन्धः ॥

मृतावानमृतायवो यज्ञस्य साधनं गिरा । उपो एनं जुजुषुर्नमसस्पदे ॥ ९ ॥  
मृतावानं । मृतावः । यज्ञस्य । साधनं । गिरा । उपो । एनं । जुजुषुः । नमसः । स्पदे ॥ ९ ॥

मृतायवो यज्ञकामा हे यजमानाः मृतावानं यज्ञवतं यज्ञस्य साधनं साधनमृतमेनमपिं नमसो हविषः  
स्पदे स्तौमि यज्ञाग्ने वा गिरा सुतिलक्षणाया वाचोपो जुजुषुः । उपासेवध्वं ॥ तिरुं तिरुं भवन्तीति मध्यमपु-  
षस्य प्रथमपुषादेशः ॥

अच्छा नो अंगिरस्तमं यज्ञासो यंतु संयतः । होता यो अस्ति विष्ट्वा यशस्तमः ॥ १० ॥  
अच्छ । नः । अंगिरः । तमं । यज्ञासः । यंतु । संयतः । होता । यः । अस्ति । विष्ट्वा । आ ।  
यशः । तमः ॥ १० ॥

संयतः सुगादिभिर्नियमिता जोऽस्माकं यज्ञासो यज्ञा अंगिरस्तमंगिरसां विशिष्टमपिमच्छामिमुख्येन च  
यंतु । गच्छंतु । योऽपिर्विषु मनुष्येषु होता होमनिष्पादकः सत्रा सर्वतो यशस्तमः । जुष्टमत्वर्थीयः ॥ यशस्ति-  
तमोऽस्ति भवति तमपिं यंतित्वन्वयः ॥ १० ॥

अमे तव ते अंजरेधानासो बृहन्नाः । अश्वा इव वृषणस्तविषीयवः ॥ ११ ॥  
अमे । तव । ते । अंजरे । धानासः । बृहन्नाः । अश्वाः । इव । वृषणः । तविषीऽयवः ॥ ११ ॥

अजर जरारहित हे अग्नि इंधानास इंधाना दीप्यमाना बृहद्बृहंतो महांतस्ये ते सर्वगतास्तथ त्वदीया मा मासो रश्मयो वृषणः कामानां वर्धितारः संतस्तविषीयवो बलमाचरंतो भवन्ति । तच्च बृष्टांतः । अथा इष यथा वृषणो रेतसः सेतारोऽश्वा बलमाचरंतो भवन्ति तद्वत् ॥

स त्वं न ऊर्जो पते रयिं रास्व सुवीर्यं । प्रावं नस्तोके तनये समत्स्वा ॥ १२ ॥  
स । त्वं । नः । ऊर्जो । पते । रयिं । रास्व । सुवीर्यं । प्र । अ॒व । नः । तो॒के । तन॑ये ।  
स॒मत्सु॑ । आ ॥ १२ ॥

ऊर्जामन्त्राणां पते स्वामिन् हे अग्नि स तथाविधस्त्वं नोऽश्वाभ्यं सुवीर्यं श्रोमनवीर्योपेतं रयिं धनं रास्व । देहि । नोऽश्वाकं तोके पुत्रे तनये । तनोति विस्कारयति पुत्रमिति तनयः पौत्रः । तस्मिन्वर्तमानं धनं समत्सु संयामेव च यद्भूषितत्वं धनं तच्च प्राव । प्रार्थयेत् रथ । अनेन पुत्रपौत्रप्रार्थनं करोति ॥

यथा उं विशपतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि । विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ १३ ॥  
यत् । वै । ऊं इति । विश॒पतिः । शितः । सु॒प्रीतः । मनु॑षः । विशि । विश्वा । इत् । अ॒ग्निः ।  
प्रति । रक्षा॑ंसि । से॒धति ॥ १३ ॥

विशपतिर्विशं पाक्षयिता शितो हविर्निस्तीक्ष्णीकृतः सोऽग्निः सुप्रीतः सुष्ठु प्रीतः सन् मनुषो मनुष्यस्त विशि निवेशने गृहे यदि यदा खलु वर्तते तदागीमभिर्विश्वेदिश्वान्येव तस्य बाधकानि रक्षांसि प्रति वेधति । हिनस्ति ॥ विधु गत्या । मौवादिक् । उ प्रसिद्धौ ॥

श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विशपते । नि मायिनस्तपुषा रक्षसो दह ॥ १४ ॥  
श्रु॒ष्टी । अ॒ग्ने । नव॑स्य । मे । स्तोम॑स्य । वी॒र । विश॑पते । नि । मा॒यिनः । तपु॑षा ।  
र॒क्षसः । द॒ह ॥ १४ ॥

वीर शत्रूणां विनाशयितव्यवन्विशपते विशं पाक्षयितव्यं अग्नि जवक्षेदानीं क्रियमाणत्वाद्भूतनं मे मदीयं स्तोमस्त स्तोत्रशस्त्रादिकं श्रुष्टी श्रुत्वा मायिनो मायाविनो रक्षसो कर्मविघ्नकारिणो राक्षसांस्तपुषा तापयेन् तेषां नि दह । नितरां मसीकुष ॥ श्रुष्टी । स्नात्वा दयश्चेति निपातितः । वक्षारजोपम्हांदसः ॥

न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यैः । यो अमये ददाश हव्यदातिभिः ॥ १५ ॥  
न । तस्य॑ । मा॒यया॑ । च॒न । रि॒पुः । ई॒शीत॑ । म॒र्त्यैः । यः । अ॒मये॑ । द॒दाश॑ । ह॒व्यदा॑तिभिः ॥ १५ ॥

मर्त्यो मनुष्यो रिपुः शत्रुः । अनेति निपातसमुदायोऽप्यर्थः । मायया चन माययापि तस्य जनस्त नेशीत । ईश्वरो न भवति । यो जनो हव्यदातिभिर्हविषां दातुमिच्छति त्वग्निरपये ददाश हवींषि प्रयच्छति । तस्य रिपुर्नास्तीत्यर्थः ॥ १५ ॥

अश्वत्त्वा वसुविदमुक्षुण्युरप्रीणादृषिः । महो राये तमु त्वा समिधीमहि ॥ १६ ॥  
वि॒ऽअ॒श्वः । त्वा । व॒सु॒ऽवि॒द । उ॒क्षु॒ण्युः । अ॒प्री॒णात् । अ॒रि॒षिः । म॒हः । रा॒ये । तं ।  
ऊं इति । त्वा । सं । इ॒धी॒म॒हि ॥ १६ ॥

उषश्चुर्धनानां सेतारमात्रेण इच्छन् यदा वृष्टिसेतारमिच्छन् अथ अघिरेतन्नामको मम पिता वसुविदं वसूनां धनानां संमकं त्वामप्रीणात् । धनादिप्राप्त्यर्थं हविर्भिरतोषयत् । तथा वयमपि महो महते राये धनाय तमु तथाविधमेव त्वा त्वां समिधीमहि । सम्यगाज्यादिहविर्भिर्दीपयेम ॥



उ॒श॒ना॒ का॒व्य॒स्त्वा॒ नि॒ हो॒ता॒र॒म॒सा॒द॒य॒त् । आ॒य॒जिं॒ त्वा॒ म॒न॒वे॒ जा॒त॒वै॒द॒सं ॥१७॥

उ॒श॒ना॒ । का॒व्यः । त्वा॒ । नि॒ । हो॒ता॒रं॒ । अ॒सा॒द॒य॒त् । आ॒ऽय॒जिं॒ । त्वा॒ । म॒न॒वे॒ ।  
जा॒त॒ऽवै॒द॒सं ॥१७॥

हे अग्ने काव्यः कविपुत्र उशनेतन्नामक ऋषिर्मनवे राशिः । तस्मै गृह इत्यर्थः । आयजिमाभिमुख्येन यष्टारं जातवेदसं वातप्रघ्नं त्वा त्वां । पुनस्तत्प्राशब्द आदरार्थः । त्वामेव होतारं होमनिष्पादकं न्यसादयत् । नितरामुपावेशयत् ॥

वि॒श्वे॒ हि॒ त्वा॒ स॒जोष॑सो॒ दे॒वासो॑ दू॒त॒म॒क्र॒त॒ । अ॒शु॒ष्टी॑ दे॒व प्र॒थ॒मो॒ य॒ज्ञि॒यो॒ भुवः॑ ॥१८॥

वि॒श्वे॒ । हि॒ । त्वा॒ । स॒ऽजोष॑सः । दे॒वासः॑ । दू॒तं॒ । अ॒क्र॒त॒ । अ॒शु॒ष्टी॒ । दे॒व॒ । प्र॒थ॒मः॒ ।  
य॒ज्ञि॒यः॑ । भुवः॑ ॥१८॥

हे अग्ने विश्वे सर्वे देवासो देवाः सजोषसः संगताः संतोऽस्माकं हवींश्चानयतीति विचार्य । हिरण्यधारणे । त्वामेव दूतं हविषां वोढारं दूतमक्रत । अकार्षुः । ततो देव योतमान हे अग्ने प्रथमो देवानां मुख्यभूतस्त्वं शुष्टी । शुष्टीति चिप्रनाम । चिप्रं यज्ञियो देवानां हविर्दानुत्वेन यज्ञाहो भुवः । भूयाः ॥

इ॒मं॒ घा॒ वी॒रो॒ अ॒मृतं॑ दू॒तं॒ कृ॒खी॒त॒ म॒र्यैः॑ । पा॒व॒कं॒ कृ॒ष्ण॑व॒र्त॒निं॒ वि॒हा॒य॒सं ॥१९॥

इ॒मं॒ । घ॒ । वी॒रः॒ । अ॒मृतं॑ । दू॒तं॒ । कृ॒खी॒त॒ । म॒र्यैः॑ । पा॒व॒कं॒ । कृ॒ष्ण॑ऽव॒र्त॒निं॒ । वि॒हा॒य॒सं ॥१९॥

अग्नया यजमानश्चाग्निं देवानां दूतमकार्षीदित्याह । वीरः कर्मणि समर्थो मर्यां मनुष्यो यजमानोऽमृतं मरणधर्मरहितं पावकं पापानां शोधकं कृष्णवर्तनिं । वर्तनिर्माणः । कृष्णमार्गं विहायसं । विहाया इति महत्ताम । गुणैस्तेजोऽधिकत्वेन वा महान्तमिमं धेमेमेवाग्निं दूतं देवानां वोढुत्वेन दूतं कृखीत । अकार्षीत् ॥

तं॒ हु॒वे॒म॒ य॒त॒सु॒चः॑ सु॒भा॒सं॑ अ॒क्र॒शो॒चिषं॑ । वि॒शा॒म॒ग्नि॒म॒ज॒रं॑ प्र॒त्न॒मी॒ड्यं॑ ॥२०॥

तं॒ । हु॒वे॒म॒ । य॒त॒ऽसु॒चः॑ । सु॒ऽभा॒सं॑ । अ॒क्र॒ऽशो॒चिषं॑ । वि॒शां॑ । अ॒ग्निं॑ । अ॒ज॒रं॑ । प्र॒त्नं॑ ।  
ई॒ड्यं॑ ॥२०॥

यतसुचो गृहीतसुचो यद्वा तत्तत्स्थानेषु नियमितसुचो यथं सुभासं शोभनदीप्तिं अक्रशोचिषं दीपनशीलतेजस्कं विशां स्वामिन् । यद्वा । विशामीड्यमित्यन्वयः । मनुष्याणां स्तोतव्यमजरं जरारहितं प्रत्नं पुरातनं तं तथाविधमग्निं ऊवेम । स्तोत्रशस्त्रादिभिराहुयामः ॥ ॥१२॥

यो॒ अ॒स्मै॒ ह॒व्य॒दा॒ति॒भि॒रा॒हु॒तिं॒ म॒तो॒ऽवि॒ध॒त् । भू॒रि॒ पोषं॑ स॒ ध॒त्ते॒ वी॒र॒व॒द्य॒शः॑ ॥२१॥

यः॒ । अ॒स्मै॒ । ह॒व्य॒दा॒ति॒ऽभिः॑ । आ॒ऽहु॒तिं॑ । म॒तैः॑ । अ॒वि॒ध॒त् । भू॒रि॒ । पोषं॑ । सः॒ ।  
ध॒त्ते॒ । वी॒र॑ऽव॒त् । य॒शः॑ ॥२१॥

यो मतो मनुष्यो हव्यदातिभिर्हविर्दानुभिर्हविर्गिरसा अपय आहुतिमविधत् विदधाति स मनुष्यो भूरि वज्र पोषं धनादिभिः पोषणं वीरवत् पुत्रपौत्रादियुक्तं यशः कीर्तिं च धत्ते । धारयति । तस्मै धनादीनि प्रयच्छतीत्यर्थः ॥

प्रथमं जातवेदसमग्निं यज्ञेषु पूर्णं । प्रति सुगेति नमसा हविष्मती ॥ २२ ॥

प्रथमं । जातवेदसं । अग्निं । यज्ञेषु । पूर्णं । प्रति । सुक् । एति । नमसा ।  
हविष्मती ॥ २२ ॥

प्रथमं देवानां प्रधानमुतं जातवेदसं जातप्रज्ञं पूर्णं पुरातनं एतादृशमग्निं यज्ञेष्वपिष्टोमादियज्ञेषु  
हविष्मती सोमादिहविर्युक्ता सुपमसा सोचिण नमस्कारेण वा सह प्रत्येति । अग्निं प्रति गच्छति ॥

आभिर्विधेमामये ज्येष्ठाभिर्व्यश्वत् । मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे ॥ २३ ॥

आभिः । विधेम । अमये । ज्येष्ठाभिः । व्यश्वत् । मंहिष्ठाभिः । मतिभिः ।  
शुक्रशोचिषे ॥ २३ ॥

वसन्मनोनामका वयं ज्येष्ठाभिः प्रशस्तमानमंहिष्ठाभिः पुण्यतमानिरामिः भूतस्त्वामिः सुतिभिः  
शुक्रशोचिषे ज्वालातेजसेऽपये विधेम । परिचरेम वयमिह व्यश्वत् । यथा व्यश्वोऽस्माकं पितामिं सुतिभिः  
पर्यचरत् तद्वद्यमपि परिचरेम ॥

नूनमर्चं विहायसे स्तोमैभिः स्थूरयूपवत् । ऋषे वैयश्च दम्यायामये ॥ २४ ॥

नूनं । अर्चं । विहायसे । स्तोमैभिः । स्थूरयूपवत् । ऋषे । वैयश्च । दम्याय ।  
अमये ॥ २४ ॥

वैयश्च व्यश्वस्व पुत्र हे विश्वमनोनामकैर्च विहायसे महते दम्याय दमे गृहेऽरणीभिर्मथ्यमानत्वेन भवाय ।  
यदा । यजमानगृहाणां बाधपरिहारेण हिताय । अमये नूनं संप्रति स्तोमैभिस्त्रिवृत्पंचदशादिजपशैः  
स्तोमैर्चं । जुहि । तत्र दृष्टान्तः । स्थूरयूपवत् । यथा स्थूरयूपो नामधेरेनमभिमानर्चं तद्वदर्थः ॥

अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनां । विप्रां अग्निमवसे प्रत्नमीकृते ॥ २५ ॥

अतिथिं । मानुषाणां । सूनुं । वनस्पतीनां । विप्राः । अग्निं । अवसे । प्रत्नं ।  
ईकृते ॥ २५ ॥

विप्रा मेधाविनो यजमाना मानुषाणां मनुष्याणामतिथिमतिथिवत्पूज्यं वनस्पतीनां सूनुं वनस्प-  
तिरूपाभिररणीभिर्वायमानत्वेन तेषां सूनुं प्रत्नं पुरातनं एवंविधमपिमवसे कर्मरचणायैकते । सुतिभिः  
सुवन्ति ॥ १३ ॥

महो विश्वाँ अभि षतोऽभि हव्यानि मानुषा । अग्ने नि षत्सि नमसाधि बर्हिषि ॥ २६ ॥

महः । विश्वान् । अभि । सतः । अभि । हव्यानि । मानुषा । अग्ने । नि । सत्सि । नमसा ।  
अधि । बर्हिषि ॥ २६ ॥

हे अग्ने महः कर्मकर्तृत्वेन महतो विश्वान् सर्वान् सतः सोचकरणार्थं वर्तमानान् सोतृन्भ्यमितस्त्वं नमसा  
शुक्लतया बर्हिष्यधि नि षत्सि । निषीद । तथा मानुषा मनुष्यसंबन्धीनि हव्यानि हवींश्चभ्यमितस्त्वानि स्वीकर्तुं  
निषीद ॥



वंस्वा नो वार्यो पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः । सुवीर्यस्य प्रजावन्तो यशस्वतः ॥२७॥  
 वंस्व । नः । वार्यो । पुरु । वंस्व । रायः । पुरुस्पृहः । सुवीर्यस्य । प्रजावन्तः ।  
 यशस्वतः ॥२७॥

हे अपि वार्यो वार्याणि वरणीयानि पुरु पुरुणि बह्वनि गवादीनि नोऽस्माभ्यं वंस्व । प्रयच्छ । तथा पुरुस्पृहः पुरुनिर्वह्मिः सुहृदीयं रायो धनं । किंविशिष्टं । सुवीर्यस्य शोभनवीर्योपेतं प्रजावन्तः पुत्रपीत्रादि-  
 सहितं सशस्वतः कीर्तिमच्च धनं नोऽस्माभ्यं वंस्व । प्रयच्छ ॥

त्वं वरो सुषाम्णेऽग्ने जनाय चोदय । सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते ॥२८॥  
 त्वं । वरो इति । सुऽसाम्ने । अग्ने । जनाय । चोदय । सदा । वसो इति । रातिं ।  
 यविष्ठ । शश्वते ॥२८॥

वरो सर्वैर्वरणीय वसो शत्रूणां वासयितर्यविष्ठ पुनःपुनर्जायमानस्त्रेण युवतम हे अपि त्वं सुषाम्णे  
 सुसाम्ने ॥ शुषामादित्वात् षत्वं ॥ त्वत्प्रसादाच्छोभनसामवते शश्वते बह्वे जनाय प्रादुर्भूताय क्षीतृणां सदा  
 सर्वदा रातिं धनादिकं चोदय । प्रेरय ॥

त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गीमतीरिषः । महो रायः सातिमग्ने अपां वृधि ॥२९॥  
 त्वं । हि । सुऽप्रतूरः । असि । त्वं । नः । गोऽमतीः । इषः । महः । रायः । सातिं ।  
 अग्ने । अपां । वृधि ॥२९॥

हे अपि त्वं । हिरवधारणे । तमेव सुप्रतूरः क्षीतृणां धनादिकं सुष्ठु प्रदातासि । प्रयच्छसीत्यर्थः । अत एव  
 गीमतीः पश्वादिशुक्लानीषोऽन्त्राणि महो महतो रायो धनस्य मध्ये सातिं देयं धनं च नः क्षीतृणामस्माक-  
 मपा वृधि । अपावृणु । प्रयच्छेत्यर्थः ॥

अग्ने त्वं यशा अस्या मित्रावरुणा वह । ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा ॥३०॥  
 अग्ने । त्वं । यशाः । असि । आ । मित्रावरुणा । वह । ऋतऽवाना । संऽराजा ।  
 पूतऽदक्षसा ॥३०॥

हे अपि त्वं यशाः ॥ जुष्टमत्वर्थीयः ॥ देवानां मध्ये यशस्तासि । भवसि । अत एव त्वमृतावाना ऋतावाना  
 सत्यवन्तौ यशवन्तौ वा सम्राजा सम्राजौ सम्यगावमानौ पूतदक्षसा पूतदक्षसौ । दक्ष इति बलशाम । शुश्र्वर्जा  
 मित्रावरुणावस्त्रिन्मर्मस्था वह । आह्वय । प्रायेण कर्मण्यपेर्मित्रावरुणसहितत्वमस्तीति सूचयति ॥ १४॥

सखाय आ शिवामहीति त्रिंशद्वचं चतुर्थं सूक्तं । अवेयमनुक्रमणिका । सखायसुचोऽन्त्यः सौषाम्यस्य  
 वरोदीनक्षुतिरन्त्यानुष्ठुबिति । व्यष्टपुचो विद्यमना ऋषिः । औष्णिहं हेत्युक्तत्वादेतदादीनि जीणि सूक्तान्युष्णि-  
 क्कंदस्तानि । अनुक्तत्वादिन्द्रो देवता । अन्त्यासु तिरुपु सुषामाख्यस्य राज्ञः पुत्रस्य वरुणाक्षो राज्ञो दानं  
 क्षूयते । अतस्त्रासदेवताकाः ॥ महाव्रते निष्केवल्य औष्णिहनुचाशीतावेतत्सूक्तं । तथैव पंचमारण्यके शौनकेन  
 सूच्यते । सखाय आ शिवामहि य एक इद्विदयते । ऐ० आ० ५. २. ५. इति ॥ दशमेऽहनि मरुत्वतीयशस्त्रे  
 सखाय इति तिष्ठ ऋचः । सूच्यते च । सखाय आ शिवामहीति तिस्र उष्णिहः । आ० ८. १२. इति ॥

सखाय आ शिषामहि ब्रह्मैन्द्राय वज्रिणे । स्तुष ऊ पु वो नृतमाय धृष्णवे ॥१॥  
 सखायः । आ । शिषामहि । ब्रह्म । इन्द्राय । वज्रिणे । स्तुषे । ऊं इति । सु । वः ।  
 नृतमाय । धृष्णवे ॥१॥

सखायो मित्रभूता हे ऋत्विजः वज्रिणे वज्रहस्तायेंद्राय ब्रह्म कर्तव्यमेतत्सूक्तं स्तोत्रमा शिषामहि ।  
 वयमाशासः ॥ शासु अनुशिष्टौ । सुक्ति त्रैरङ्गादेशः । इत्यपत्ते । व्यत्ययेनात्मनेपदं ॥ तच्च वः सर्वेषामेव युष्मा-  
 कर्मणाय नृतमाय सर्वेषां नेतृतमाय यद्वा संयामेष्वायुधादीनां नेतृतमाय धृष्णवे शत्रूणां धर्षणशीलाय तस्मा  
 इन्द्रायाहमेव सु सुष्ठु सुवे । स्तौमि ॥

शर्वसा ह्यसि श्रुतो वृचहत्येन वृचहा । मधैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥२॥  
 शर्वसा । हि । असि । श्रुतः । वृचऽहत्येन । वृचऽहा । मधैः । मघोनः । अति ।  
 शूर । दाशसि ॥२॥

हे इन्द्र त्वं शर्वसा बलेन श्रुतः प्रसिद्धोऽसि । भवसि । हि प्रसिद्धौ । तदेवाह । वृचहत्येन वृचासुरहनमेन  
 वृचहा वृचहेति प्रसिद्धो भवसि । शूर शौर्यवान् हे इन्द्र मघोनो मघवतो धनवतः पुत्रान्मघैस्त्वदीयेर्धनेरत्य-  
 तिक्रम्य दाशसि । श्रोतृभ्योऽस्माभ्यं प्रयच्छसि ॥

स नः स्तवान आ भर रयिं चिचश्रवस्तमं । निरेके चिद्यो हरिवो वसुर्देदिः ॥३॥  
 सः । नः । स्तवानः । आ । भर । रयिं । चिचश्रवःऽतमं । निरेके । चित् । यः ।  
 हरिऽवः । वसुः । ददिः ॥३॥

हे इन्द्र स तथाविधस्त्वं स्तवानोऽस्माभिः स्तूयमानः संचिचश्रवस्तममतिशयेन नानाविधान्नोपितं रयिं  
 पुत्रं धनं वा नोऽस्माभ्यमा भर । संपादय । देहीत्यर्थः । हरिवः । हरी अश्वौ । तद्वन् हे इन्द्र यस्त्वं निरेके चिन्नि-  
 र्गमन एव वसुः शत्रूणां वासयिता भवसि । तवायुधनिर्गमनादेव शत्रवः पलायन्ति खलु । किंच त्वं ददिर्ध-  
 नानां दाता भवसि ॥

आ निरेकमुत्त प्रियमिन्द्र दधि जनानां । धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर ॥४॥  
 आ । निरेकं । उत्त । प्रियं । इन्द्र । दधि । जनानां । धृषता । धृष्णो इति । स्तवमानः ।  
 आ । भर ॥४॥

हे इन्द्र उत्तापि च प्रियं प्रीणनात् प्रियतमं निरेकं । निरेकं धनं भवति निरेकनान्निर्गमनादिति । तज्जनं  
 जनानां श्रोतृणामस्माकमा दधि । आविदारय । विवृतं कुक्षं ॥ दू विदारणे । कांदसो विकरणस्तु कुक्षं ॥  
 विवृतं च धृष्णो धर्षणशील हे इन्द्र स्तवमानः श्रोतृभिरस्माभिः स्तूयमानः सन् धृषता धृष्टेन मनसा सहा  
 भर । तज्जनमस्माभ्यं देहि ॥

न ते सृथं न दक्षिणं हस्तं वरंत आमुरः । न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु ॥५॥  
 न । ते । सृथं । न । दक्षिणं । हस्तं । वरन्ते । आऽमुरः । न । परिऽबाधः । हरिऽवः ।  
 गोऽईष्टिषु ॥५॥

हे हरिवोऽश्वचित्रं आमुरः संयाम आभिमुख्येन कर्तारः प्रतियोजारो गविष्टिषु पश्विभिरपहतानामं-



निरसां गवामन्वेषणेषु ते तव सव्यं हस्तं न वरंते । न निवारयंति । तेषामायुधादिभिर्न निवारयत इत्यर्थः । तथा दक्षिणं हस्तं च न निवारयंति । किंच परिबाधः परितो बाधमाना वृचादयोऽमुराश्च तव सव्यदक्षिणहस्तौ न निवारयंति । संग्रामेषु त्वया सर्वे शत्रवश्छिन्नहस्ताः सर्वतो गच्छंतु । त्वं तु तैरबाधितो वर्तस्य इत्यर्थः ॥ ॥ १५ ॥

आ त्वा गोभिर्विव ब्रजं गोभिर्ऋणोऽस्यद्विवः । आ स्मा कामं जरितुरा मनः पूण ॥ ६ ॥

आ । त्वा । गोभिःऽइव । ब्रजं । गोभिःऽभिः । ऋणोमि । अद्विऽवः । आ । स्म । कामं । जरितुः । आ । मनः । पूण ॥ ६ ॥

हे ऋद्विवो वज्रवर्तिद्र गोभिः सुतिलवज्जामिर्वाग्भिस्त्वा त्वामा ऋणोमि । प्राप्नोमि ॥ ऋणु गती । तणादिः ॥ तव दृष्टांतः । गोभिर्विव । यथा गोपाक्षो गोभिर्ब्रजं गोष्ठं गच्छति तद्वत्त्वां सुतिभिः प्राप्नोमीत्यर्थः । ततस्त्वं जरितुः क्षोतुर्मम कामं धनादिविषयमा पूण । आपूरय । तथा मनो मदीयं मानसं धनादिप्रदानेनापूरय ॥

विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृचहंतम । उयं प्रणेतरधि घू वसो गहि ॥ ७ ॥

विश्वानि । विश्वऽमनसः । धिया । नः । वृचहन्ऽतम । उयं । प्रनेतरिति प्रऽनेतः । अधि । सु । वसो इति । गहि ॥ ७ ॥

हे वृचहंतमातिशयेन वृचासुरखोपद्रवाणां वा हंतः ॥ नाहस्येति तमपो गुडागमः ॥ कीदृश । उयोद्गूर्णवत् प्रणेतः क्षोतृणां प्रक्षेपेण धनादेर्नेतः ॥ आमंचित इत्युत्पत्त्यस्याविद्यमानवज्ञावप्रतिषेधः ॥ तथाविध वसो शत्रूणां वासयितरिद्र नः । पूषायां वज्रवचनं । विश्वमनस एतन्नाहो मम विश्वानि सर्वाणि क्षोत्राणि कर्माणि वा धिया मगसा सु सुष्ठधि गहि । अधिगच्छ । सुत्यतया यष्टव्यतया वा मनोवेगेन गच्छेत्यर्थः ॥ गमेर्लोपि च्छांदसः शपो लुक् । ऐर्लिङ्गावाद्गुदान्तोपदेशेत्वनुनासिकलोपः ॥

वयं ते अस्य वृचहन्विद्यामं शूर नव्यसः । वसोः स्पर्हस्य पुरुहूत राधसः ॥ ८ ॥

वयं । ते । अस्य । वृचऽहन् । विद्यामं । शूर । नव्यसः । वसोः । स्पर्हस्य । पुरुऽहूत । राधसः ॥ ८ ॥

हे वृचहन् वृचस्य हंतः शूर वज्रवन् पुरुहूत पुरुभिर्वज्रभिराहूतव्येन्द्र नव्यसो नवीयसः ॥ ईयसुन ईकारलोपश्छांदसः ॥ नवतरं स्पर्हस्य सुष्ठुणीयं राधसः ॥ राध साध संसिद्धौ ॥ शर्मादेः संसाधकं ते त्वदीयमस्य वसोः ॥ क्षियायष्टुणं कर्तव्यमिति वसोः संप्रदानसंज्ञा । चतुर्थ्यर्थे वज्रसं कंदसोति वसोः षष्ठी ॥ त्वदीयमिदं परिरुद्धमानं धनं वयं विद्याम । क्षेममहि ॥ विदू क्षामे । आदादिकः । छांदसो विकरणस्य लुक् ॥

इंद्र यथा अस्ति तेऽपरीतं नृतो शवः । अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाम्बुधे ॥ ९ ॥

इंद्र । यथा । हि । अस्ति । ते । अपरिऽइतं । नृतो इति । शवः । अमृक्ता । रातिः । पुरुऽहूत । दाम्बुधे ॥ ९ ॥

हे नृतो सर्वस्यांतर्धामितया गर्तयितरिद्र ते त्वदीयं शवो बलं यथापरीतमस्ति शत्रुभिरपरिगतमव्याप्तं भवति । हि प्रसिद्धौ । तथा हे पुरुहूत पुरुभिर्वज्रभिराहूतेंद्र दाम्बुधे हविर्दत्तवती यजमानाय रातिर्धनादिदानममृक्ता शत्रुभिरहिंसितं भवति । त्वन्तो सव्यं यजमानस्य धनं शत्रवो न हिंसंति । यथा त्वदीयवज्रस्य रश्मि एव तस्य धनस्यापि रश्मि इत्यर्थः ॥

आ वृषस्व महामह महे नृतम राधसे । दृष्ट्विष्टिदृष्ट मघवन्मघत्तये ॥१०॥

आ । वृषस्व । महाऽमह । महे । नृतम । राधसे । दृष्ट्विष्टि । दृष्ट । मघऽवन् । मघत्तये ॥१०॥

हे महामहातिशयेन सर्वैः पूजनीयं शुभं नैतुतमिन्द्रं महे महते राधसे शत्रुधनानां संसाधकाय बलाय बलार्थमा वृषस्व । स्त्रोदरमासिंच । सोमं पिबेत्त्वर्थः । हे मघवन् धनवन्निन्द्रं सोमपानेन मत्तः सन् दृष्ट्विष्टिदृष्टानि परैरबाधितान्यपि शत्रुपुराणि मघत्तये मघानां धनानां सामाय दृष्ट्वा । जिघांस । विदारयेत्त्वर्थः ॥ ॥१६॥

नू अन्यचा चिदद्रिवस्वन्ना जग्मुराशंसः । मघवञ्छुग्धि तव तन्न ऊतिभिः ॥११॥

नू । अन्यच । चित् । अद्रिऽवः । तव । नः । जग्मुः । आऽशंसः । मघऽवन् । शुग्धि । तव । तत् । नः । ऊतिऽभिः ॥११॥

हे अद्रिवो वज्रवन्निन्द्रं त्वं धनवान् दाता चेत्यपरिधाय नोऽसदीयान्याशंस आशंसनान्यभिजाषास्त्वन्तोऽन्यत्र देवादी नू चित् पुरा जग्मुः । अगच्छन् । तव फलं नालभंत । इदानीं त्वं धनवान् दानशील इत्यस्माभिर्ज्ञातं । अत एव हे मघवन् धनवन्निन्द्रं तव त्वदीयं तच्छत्रुपुरविदारणत्वं धनमूतिभिस्त्वद्रथैर्नोऽसम्भ्यं शुग्धि । देहि । शुग्धीति दानकर्मा । शक्नोति लोटि च्छांदसो विकरणस्य लुक् ॥

नह्यंग नृतो त्वदन्यं विंदामि राधसे । राये द्युम्नाय शर्वसे च गिर्वणः ॥१२॥

नहि । अंग । नृतो इति । तत् । अन्यं । विंदामि । राधसे । राये । द्युम्नाय । शर्वसे । च । गिर्वणः ॥१२॥

हे नृतो नर्तयितुमिर्षयो गीर्भिः सुतिभिर्वज्रवीर्यं संभजनीयेन्द्रं राधसे वज्रसंसाधकायान्नाय राये धनाय द्युम्नाय शीतमानाय यशसे शर्वसे वर्धकाय बलाय च त्वत्त्वन्तोऽन्यं नहि विंदामि । न लभे । अंग प्रसिद्धौ ॥

एदुमिन्द्राय सिंचत पिबानि सोम्यं मधु । प्र राधसा चोदयाते महित्वना ॥१३॥

आ । इदुं । इन्द्राय । सिंचत । पिबानि । सोम्यं । मधु । प्र । राधसा । चोदयाते । महित्वना ॥१३॥

हे ऋत्विजः इदुं स्तंदनशीलं सोममिन्द्रार्थमा सिंचत । आश्रयणद्रव्येण सेचनं कुरुत । अभिपुतेत्यर्थः । ततः सोम्यं सोममयं मधु मधुकरं सोमरसं पिबानि । पिबतु । पीत्वा च स इन्द्रो महित्वना स्वमहत्त्वेनैव राधसान्नेन सह धनादिकं श्रोतुभ्यः प्र चोदयाते । प्रकर्षेण चोदयति । यद्वा । यजमानो महित्वना । इन्द्राय प्रदीयमानत्वादस्य महत्त्वं । महत्त्वयुक्तेन राधसान्नेन सह श्रोतुं प्रचोदयति । इन्द्राय हविर्दत्तेति श्रोतुन्नेरयतीत्यर्थः ॥

उपो हरीणां पतिं दक्षं पृंचंतमब्रवं । नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्वस्य ॥१४॥

उपो इति । हरीणां । पतिं । दक्षं । पृंचंतं । अब्रवं । नूनं । श्रुधि । स्तुवतः । अश्वस्य ॥१४॥

हरीणां हरितवर्णानामश्वानां पतिं पालयितारं दक्षं वर्धकं स्वबलं पृंचंतं ॥ पृची संपर्के ॥ मरुतु योऽप्रयंतं । यद्वा । शत्रुषु स्वबलमायुधादिभिः संपर्चयंतं । एतादृशमिन्द्रं त्वामुपो अब्रवं । विश्वमना अहं श्रोचं



करवाणि । अश्वस्य । अश्वो नामधिरश्वशब्देनोच्यते । तस्य पुत्रस्य सुवतः स्तोत्रं कुर्वतो मम संबन्धिनीं तद्वि-  
षयां कुतिं नूनं संप्रति शुधि । शृणु ॥

नृह्यं॑ग॒ पुरा॒ च॒न॒ ज॒ज्ञे॒ वी॒र॒त॒र॒स्त्व॒त् । न॒की॑ रा॒या॒ नै॒व॒था॒ न भ॒न्द॒ना ॥ १५ ॥

न॒हि । अ॒ंग॒ । पुरा॒ । च॒न॒ । ज॒ज्ञे॒ । वी॒र॒ऽत॒रः॒ । त्व॒त् । न॒किः॒ । रा॒या॒ । न॒ । ए॒व॒ऽथा॒ ।  
न॒ । भ॒न्द॒ना ॥ १५ ॥

हे इंद्र त्वत्तत्तः पुरा पूर्वं वीरतरः सामर्थ्यवान् कश्चिन्नहि जज्ञे । जातः खलु । अंग प्रसिद्धी । तमेव  
सामर्थ्यवाजात इत्यर्थः । किंच त्वत्तोऽपि राया धनेन समर्थो न किंच कश्चिदस्ति । तथैवथा शत्रुपुराणि  
संग्रामं वा प्रति गमनेन त्वत्तोऽधिको न जातः । यद्वा । एवथा ॥ अत्र रचनादिषु । अकारस्यैकारम्भादसः ।  
औणादिकोऽथप्रत्ययः ॥ शरणागतानां स्तोत्राणां चावनेन त्वत्तोऽधिको नास्ति । किंच भन्दना । भन्दतिः  
कुतिकर्मा । कुत्वा च त्वदधिको न जातः । धनवान्नचकः सुखस्य त्वत्तोऽन्यो न जज्ञे इति ॥ १५ ॥

एदु मध्व इति तुचः पूर्वोक्ते ब्राह्मणाच्छेदसि शस्त्रे वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूचितं च । एदु मध्वो मदितरमेतो  
न्विद्रं सवाम सखायः । आ० ७. ८. इति ॥

एदु॒ मध्वो॑ म॒दि॒तरं॑ सि॒च वा॒ध्व॒र्यो॑ अ॒धंसः॑ । ए॒वा हि॑ वी॒रः॑ स्त॒व॒ते स॒दावृ॑धः ॥ १६ ॥

आ॒ । इत् । ऊं॒ इति॑ । म॒ध्वः । म॒दि॒न्ऽत॒रं॑ । सि॒च । वा॒ । अ॒ध्व॒र्यो॑ इति॑ । अ॒धंसः॑ ।  
ए॒व । हि॒ । वी॒रः॑ । स्त॒व॒ते । स॒दा॒ऽवृ॑धः ॥ १६ ॥

हे अध्वर्यो अध्वरस्य नेतृर्ह्यस्त्वित् सदावृधः सर्वदा युद्धिमतो मध्वो मदकरस्याधंसः सोमसख्यस्त्रात्रस्य  
मदितरमत्यर्थं मादयितुमं सोमरसमेवा सिचेंद्रार्थं । अयमेवेंद्रः सवते हि । स्तोत्रशस्त्रादिभिः सुयते खलु ।  
सुतायेन्द्राय सोमो दातव्यः । तस्मादा सिचैति समन्वयः ॥

इ॒न्द्रं स्था॒तर्ह॑रीणां॒ न॒कि॒ष्टे पु॒र्य॒स्तुतिं॑ । उ॒दानं॑श् श॒र्वसा॒ न भ॒न्द॒ना ॥ १७ ॥

इ॒न्द्रं । स्था॒तः । ह॑रीणां॒ । न॒किः॒ । ते॒ । पु॒र्य॒ऽस्तुतिं॑ । उ॒त् । आ॒नं॑श् । श॒र्वसा॒ । न॒ ।  
भ॒न्द॒ना ॥ १७ ॥

हे हरीणां स्थातरश्चानामभिष्ठातरिन्द्र ते त्वदीयां पुर्यस्तुतिं पूर्वैर्ह्यग्निभिः कृतां कुति । उपसख्यं ।  
इदानींतनैः क्रियमाणामपि कुतिं न किंच त्रस्त्रिच्छ्वसा बलेनोदानंश्च । व्याप्नोति ॥ अग्नौ व्याप्नोति । शिव्यन्नो-  
त्तेति नृद् । कांसो मुम ॥ कश्चिन्नातिक्रामतीत्यर्थः । किंच भन्दना सर्वैः प्रार्थनीयत्वात् पूजनीयेन धनेन  
कुत्वा वा त्वदीयां कुतिं न कश्चिदतिक्रामति । त्वत्तो वसवान् धनी कुत्वा बान्यो नास्तीत्यर्थः ॥

तं वो॒ वाजा॑नां॒ प॒ति॒म॒हू॒महि॑ अ॒व॒स्य॒वः॑ । अ॒प्रा॒यु॒भि॒र्य॒ज्ञेभि॑र्वावृ॒धेन्य॑ ॥ १८ ॥

तं॒ । वः॒ । वाजा॑नां॒ । प॒ति॒ । अ॒हू॒महि॑ । अ॒व॒स्य॒वः॑ । अ॒प्रा॒यु॒ऽभिः॑ । य॒ज्ञेभिः॑ । व॒वृ॒धेन्य॑ ॥ १८ ॥

अप्रायुभिः कर्मस्वप्रमाद्यन्नयुक्तैः । अथवा । अप्रमत्ता एकत्र स्थित्वैव कर्म कुर्वन्ति । कर्म प्रारम्भं नात्र  
देशं गच्छतीत्यर्थः । एवंविधमनुष्ययुक्तैर्यज्ञेभिर्यज्ञैः । एतादृशमनुष्यैर्यज्ञैर्वा वावृधेन्यं वर्धनीयं वाजानामन्नाणां  
पतिं स्वामिनं वो यष्टयष्टव्यसंबन्धेन युष्मदीयं तं तादृशमिन्द्रं अवस्यवो वयमन्नकामाः संतोऽहमहि । आह-  
यामः ॥ इत्येतेर्लुङि चङ्लं कंदसीति संप्रसारणं ॥

पूर्वोक्त एव शस्त्र एतो न्विद्रमिष्येती तुचो वैकल्पिको स्तोत्रियानुरूपो । सूचितं च । एतो न्विद्रं सवाम  
सखायः सुहीन्द्रं वसवत् । आ० ७. ८. इति ॥

एतो॒ न्विदं॑ स्त॒वाम॑ सखा॒यः स्तोम्यं॑ नरं । कृ॒ष्टीर्यो॑ विश्वा॒ अभ्य॑स्येक॒ इत् ॥१९॥  
 एतो॒ इति॑ । नु । इदं॑ । स्त॒वाम॑ । सखा॒यः । स्तोम्यं॑ । नरं॑ । कृ॒ष्टीः । यः । विश्वाः ।  
 अभि॑ । अस्ति॑ । एकः॑ । इत् ॥१९॥

हे सखायः समानख्याना मित्रभूता वा हे ऋत्विजः नु विप्रमेतो । आगच्छतेव । किमर्थं तदाह । स्तोम्यं स्तोमाहं नरं सर्वस्य नेतारं तमिदं ज्ञवाम । सोचं करवाम । य इदं एक इदेकोऽसहाय एव सन् विश्वाः सर्वाः कृष्टीः शत्रुसेना अभ्यस्ति अभिमवति । तं स्त्वामेति शेषः ॥

अगो॑रुधाय ग॒विषे॑ द्यु॒क्षाय॑ दस्यं॒ वचः॑ । घृ॒तात्स्वादी॑यो मधु॒नश्च॑ वोचत ॥२०॥  
 अगो॑रुधाय । गो॒रुधे॑ । द्यु॒क्षाय॑ । दस्यं॒ । वचः॑ । घृ॒तात् । स्वादी॑यः । मधु॒नः । च॒ ।  
 वोच॑त् ॥२०॥

हे ऋत्विजः अगोरुधाय । गाः सुतो दणधीति गोरुधः । न गोरुधोऽगोरुधः । ता न विनाशयत्यादरेण मृणोतीत्यर्थः । तादृशाय अत एव गविषे सोचाणोच्छते दुक्षाय दीप्यमानार्चिंद्राय दस्यं दर्शनीयं घृतात्स्वा दुतरादाज्यान्मधुनश्च स्वादीयोऽतिशयेन स्वादुभूतं वचः सोचरूपं वाक्यं वोचत । ब्रूत ॥ ऋत्विग्भिः कृतं कर्म यजमानोऽपि कृतवान्भवतीति यदिदमिंद्रविषयं वचो घृतान्मधुनश्च स्वादुतरं भवत्वित्याशङ्के । तदाह भगवानाश्रयायनः । वच एव न इदं घृतान्मधुनश्च स्वादीयोऽस्ति प्रीतिः स्वादीयोऽस्त्वित्येव तदाह । आ० गृ० १. १. ५. इति ॥ ॥१८॥

यस्या॑र्मितानि वी॒र्या॑ न राधः॒ पर्येत॑वे । ज्योति॑र्न विश्व॒मभ्य॑स्ति दक्षि॑णा ॥२१॥  
 यस्य॑ । अर्मितानि । वी॒र्या॑ । न । राधः॒ । परि॑रुतवे । ज्योतिः॑ । न । विश्वं॑ । अभि॑ ।  
 अस्ति॑ । दक्षि॑णा ॥२१॥

यस्येन्द्रस्य वीर्या वीर्याणि वृषहजनादिस्रवणानि सामर्थ्यान्वमितानि अस्तेयंति सामार्थ्यानि जान्यानीति परिमितानि न भवन्ति । यद्वा ॥ मीरु हिंसायां । क्रांदसो ब्रह्मः ॥ शत्रुभिरहिंसितानि भवन्ति । तथा यस्येन्द्रस्य राधो धनं पर्येतवे शत्रुभिः परिगंतुं प्राप्तुं शक्यं न भवति । अत एव यस्य दक्षिणा धनं दानं विश्वमभ्यस्ति सर्वं सोतुज्जन्मभिमवति । तच्च दृष्टान्तः । ज्योतिर्न । ज्योतिषामयनत्वाज्ज्योतिरंतरिचं । यथांतरिचं सर्वलोकं पिधाय तिष्ठति तद्वत्सोतुज्जनं धनदानेन पिधत्त इत्यर्थः ॥

स्तु॒हीद्रं॑ व्य॒श्वव॑द॒नूर्मि॑ वा॒जिनं॑ यमं॒ । अ॒र्यो ग॒यं म॑ह॒मानं॑ वि दा॒श्रुषे॑ ॥२२॥  
 स्तु॒हि । इदं॑ । व्य॒श्वव॑त् । अ॒नूर्मि॑ । वा॒जिनं॑ । यमं॒ । अ॒र्यः । ग॒यं । म॑ह॒मानं॑ । वि ।  
 दा॒श्रुषे॑ ॥२२॥

हे विश्वमयः अनूर्मि । ऊर्मिर्हिंसाकर्मा । कैथिदस्यहिंसं । अथवा शत्रुभिरगंतव्यं । अत एव वाजिनं बलवतं यमं सोतुभिः सुनियतमेतादृशमिंद्रं स्तुहि । सोषे दृष्टान्तः । व्यश्ववत् । यथा व्यश्वो विश्वमजसः पितेन्द्रमस्तीक्ष्णस्तुहीत्यर्थः । स्तुतयेत् अर्यः स्वामीन्द्रो दाश्रुषे हविर्दत्तवते यजमानाय मंहमानं पूज्यमानं गयं धनं । यद्वा । देवानां पूजायै गयं गृहं । गृहमस्ति चेत देवा हविर्भिः पूज्यन्ते । तादृशं गृहं वितरति । तस्मात्त्वं धनगृहस्वामाय स्तुहीत्यर्थः ॥

ए॒वा नून॑मुप॒ स्तुहि॑ वै॒र्यश्च॑ द॒श॒मं न॑वं । सु॒र्वि॒द्वांसं॑ च॒र्कृत्यं॑ च॒रणी॑नां ॥२३॥  
 ए॒व । नूनं॑ । उप॒ । स्तुहि॑ । वै॒र्यश्च॑ । द॒श॒मं । न॑वं । सु॒र्वि॒द्वांसं॑ । च॒र्कृत्यं॑ । च॒रणी॑नां ॥२३॥



हे वैयस्य अथस्व पुत्र विद्यमानः चरणीनां मनुष्याणां देहे स्थितानां नवानां प्राणानां दशमं दशसंख्या-  
पूरकं । तत्र मंत्रः । नव वै पुत्रे प्राणा मनुष्येषु वर्तमाना इन्द्रक्षेपां दशधा भवतीन्द्रस्वात्मानं दशधा चरंत-  
मिति । एतादृशं अत एव नवं सुखं सुविदांसमंतर्यामित्वात् सुपु सर्वे जानंतं चर्कत्वं भूयो भूयः कार्येषु  
सर्वेभ्यस्तर्कत्वं एवंविधमिन्द्रमेव नूनमिदानीमुप सुहि । समीपे सुहि ॥

वेत्था हि निर्जृंतीनां वज्रहस्त परिवृजं । अहरहः श्रुंध्युः परिपदामिव ॥२४॥

वेत्थ । हि । निःऽजृंतीनां । वज्रऽहस्त । परिऽवृजं । अहःऽअहः । श्रुंध्युः ।  
परिपदांऽइव ॥२४॥

इदानीमुपरिर्द्रं संबोधाह । हे वज्रहस्त वज्रयुक्तहस्तोऽत्र निर्जृंतीनामुपद्रवकारिणां रक्षसां परिवृजं  
परिवर्जनं । हिरवधारणे । त्वमेव वेत्थ । जानीषे । तत्र वृष्टांतः । अहरहः श्रुंध्युः । अस्मिन्नुदिते सति ब्राह्मणा  
आत्मीयं कर्म कृत्वा शुद्धा भवतीति शोभाहेतुत्वात् श्रुंध्युरादित्यः । परिपदामिव परितो यजमानानामिव ।  
यद्वा । परिपदां समाग्राधिकरणः । परितः पततां पक्षिणां वर्जनं स्वस्वान्त्यागमहरहः प्रतिदिवसं यथा  
वेत्ति । उदिते सूर्ये पक्षिणः स्वस्वानं परित्यज्य सर्वतो गच्छन्ति खनु । एवं त्वयीद्रे स्वस्वेन प्रकाशमाने सति  
अचयः स्वपुरादि त्वत्का पलायंत इत्यर्थः ॥

तदिन्द्राव आ भर येना दंसिष्ट कृत्वंने । द्विता कुत्साय शिष्यो नि चोदय ॥२५॥

तत् । इन्द्र । अवं । आ । भर । येन । दंसिष्ट । कृत्वंने । द्विता । कुत्साय । शिष्यः ।  
नि । चोदय ॥२५॥

हे इन्द्र तदवस्तद्रक्षणमकम्भमा भर । हे दंसिष्टात्वंतं दर्शनीय यद्वा शत्रूणामुपपत्तिरिन्द्र कृत्वैव कर्म  
कुर्वते यजमानाय तदर्थं येन पावनमकम्भाः तद्रक्षणमा भरति समन्वयः । किंच कुत्साय कुत्सनामकाय  
राजर्षये द्विता द्विधा द्विप्रकारेण शिष्यः त्वं शत्रुनवधीः । तस्मै द्वेधं पावनमकार्षीरित्यर्थः । तद्रक्षणमकम्भं  
वि चोदय । नितरामत्यर्थं प्रेरय । यद्वा । कृत्वन इति सामान्येनोक्त्वा निःशेषेण तदेवाह कुत्सायेत्यादि । शेषं  
पूर्ववत् ॥ १९॥

तमु त्वा नूनमीमहे नथ्यं दंसिष्ट सन्यसे । स त्वं नो विष्वा अभिमांतीः सृक्षणिः ॥२६॥

तं । ऊं इति । त्वा । नूनं । ईमहे । नथ्यं । दंसिष्ट । सन्यसे । सः । त्वं । नः । विष्वाः ।  
अभिऽमांतीः । सृक्षणिः ॥२६॥

हे दंसिष्टातिशयेन दर्शनीयेन्द्र नथ्यं स्तोतुमिः स्तोतव्यं तमु तावृशमेव त्वा त्वां नूनमिदानीमीमहे । वयं  
याचामहे । किमर्थं । सन्यसे ॥ असु शेषे । भावे क्तिप् । संन्यासार्थं याचामहे इति शेषः । स तावृशस्त्वं  
नोऽस्माकं विष्वाः सर्वा अभिमांतीः शत्रुसेनाः सृक्षणिः ॥ सहेः सनिप्रत्ययः ॥ सहजशीलोऽभिभवशीलो  
भवसि ॥

य ऋक्षादंहसो मुचदो वार्यात्सप्त सिंधुषु । वधदासस्य तुविनृम्ण नीनमः ॥२७॥

यः । ऋक्षात् । अंहसः । मुचत् । यः । वा । आर्यात् । सप्त । सिंधुषु । वधः । दासस्य ।  
तुविऽनृम्ण । नीनमः ॥२७॥

पूर्वोऽर्धर्चः परोचक्रतः । य इन्द्र ऋक्षात् ॥ ऋक् मनुष्यान् चणोति । चणोतिरीयादिको उग्रप्रत्ययः ॥  
तस्माद्रचसो जातादंहसः पापकृपादुपद्रवाकुचत् मुंचति । राचस एनं न नाधते किं पुनश्च इतीत्यर्थः । अपि

य य इन्द्रः सप्त सिंधुषु गंगायासु नदीषु । यद्वा । सप्त सर्पयशीलासु सिंधुषु । तत्कूलैध्वित्यर्थः । गंगायां घोष इतिवत् । पा० १. ४. ४२\* । तेषु वर्तमानानां स्रोतुषामार्यात् घनादिकं प्रेरयेत् ॥ अ गतिप्रापणयोः । आशी-  
र्लिङि गुणोऽतिसंयोगात् । पा० ७. ४. २९ । इति गुणः । वज्रत्वं कंदसीति लिङ्यप्याडागमः ॥ अथ प्रत्ययः ।  
हे तुविगृण्य वज्रधनेन्द्र दासस्त्रोपपथितुरसुरस्य वधईनसोधकमायुधं नीनमः । तमय ॥

यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिं । अश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति ॥ २६ ॥

यथा । वरो इति । सुऽसाम्ने । सनिऽभ्यः । आ । आवहः । रयिं । विऽअश्वेभ्यः ।

सुऽभगे । वाजिनीऽवति ॥ २६ ॥

अनेन तुचेन वरोदानं कुर्यते । हे वरो वरनामक राजन् सुषाम्णे सुसाम्ने सुषामाख्यं राजानं स्वपितरं मुद्दिश्य तस्योत्तमलोकप्राप्त्यर्थं सनिभ्यो मिश्रमाणेभ्य आ कोशादाहृत्य रयिं धनं यथा पुरावहः प्रापितवानसि अत एवमिदानीं अश्वेभ्यो अश्वपुत्रेभ्योऽस्रभ्यं धनमावह । वाजिनीवतीति पदलिङ्गादियमुपस्था । अयं तुचोऽप्युपस्थ इति शौनकेनोक्तं । यथा वरो सुषाम्णा इत्युत्तमस्त्वोपसक्तुच इति । हे सुभगे शोभनधनयुक्ते वाजिनी-  
वत्यन्नवति ॥ मतुवतुवादार्थः ॥ यद्वा । वाजो वालनं गमनमस्त्रासीति वाजिन्यन्नं । तद्वति हे उषः त्वं चास्रभ्यं धनं प्रयच्छ । वरोर्वज्रधनदानान्तस्य दानश्रुतिः । यद्वा । विश्वमना अघिर्वचं संबोधाह । हे सुभगे शोभनधने वाजिनीवत्यन्नवति हे उषः यथा त्वं सुषाम्णे सुषामनास्त्रे मम पित्रे धनं दत्त्वा तेनैव सुषाम्णा सनिभ्यो याचमानेभ्यो धनं यथा प्रापितवत्यसि तेन यथा दानमकारयः एवं मय्यपि धनं दत्त्वा अश्वेभ्यः ॥ पूजायां वज्रवचनं ॥ अश्वपुत्राय विश्वमनसे धनं प्रापयेति मयापि दानं करोषि । हे वरो उषसमेवं वदेत्युचिराह ॥

आ नार्यस्य दक्षिणा अश्वौ एतु सोमिनः । स्थूरं च राधः शतवत्सहस्रवत् ॥ २७ ॥

आ । नार्यस्य । दक्षिणा । विऽअश्वान् । एतु । सोमिनः । स्थूरं । च । राधः ।  
शतऽवत् । सहस्रऽवत् ॥ २७ ॥

अनया धनमृषिरादत्तवानित्याह । नार्यस्य । नुरहितो नर्यः । तस्मात्पत्यं नार्यः ॥ तस्मात्संबन्धमात्रे तस्यैद-  
मित्यर्थः ॥ तस्य सोमिनः सोमवतो यजमानस्य । यद्वा । अश्वानां विशेषणं । तादृशस्य वरोर्दक्षिणा दानं सोमवतो अश्वान् अश्वपुत्रानस्मानेतु । आगच्छतु । किंच स्थूरं स्थूलं शतवत्सहस्रवच्चतसहस्रधनयुक्तं राधोऽन्नं याक्षानागच्छतु ॥

यत्त्वा पृच्छादीजानः कुह्या कुह्याकृते ।

एषो अपश्चितो वलो गोमतीमव तिष्ठति ॥ ३० ॥

यत् । त्वा । पृच्छात् । ईजानः । कुह्या । कुह्याऽकृते ।

एषः । अपऽश्चितः । वलः । गोऽमती । अव । तिष्ठति ॥ ३० ॥

इदानीमुपसं संबोधाभिधीयते । हे कुह्याकृते स वरः कुह कुच तिष्ठतीत्येतदिच्छयामिन्नवणप्रवृत्तिर्जि-  
ज्ञासुभिः पुरस्कृते ॥ कुहश्चन्दात्कच ॥ एतादृशे हे उषः त्वा त्वां यद्यदा कश्चित्पृच्छात् पृच्छति ईजान इष्टवान् वरः कुह्या कृ तिष्ठतीति यदा पृच्छति तदानीमपश्चितः सर्वैराश्चितः । यद्वा । विवृतद्वारः । यदा याचमाना आगच्छन्ति तदा दौवारिका न प्रतिबध्नन्तीत्यर्थः । तादृशो वलो वरः स्ववलेनावारकः शत्रूणां । यद्वा । मिश्रणां धनादिप्रदानेनावरिता । एषो एष वरगोमतीमेतन्नामिकां नदीं । कालाध्वनोरिति द्वितीया ॥ तस्मा-  
त्तीरेऽव तिष्ठतीति तदानीं त्वं कथयसि ॥ २० ॥

ता वामिति चतुर्विंशत्युचं पंचमं सूक्तं । अथेयमशुक्रमणिका । ता वां चतुर्विंशतिर्मेवावरुणं दशम्याया-  
सिन्नो वैद्यदेव्य उपांत्योऽप्यगर्गमेति । अश्वपुत्रो विश्वमना अघिः । उष्णिक् कंदः । उपांत्योऽप्यगर्गमा वदसन्ने-



कादशा उष्णिग्गर्भा । अनु० ४. ३. इति तल्लक्षणोपेतत्वात् । दशम्येकादशीद्वादशी वैश्वदेव्योऽवशिष्टानां मित्रावरुणी देवता ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया । ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा ॥ १ ॥

ता । वां । विश्वस्य । गोपा । देवा । देवेषु । यज्ञिया । ऋतऽवाना । यजसे । पूतऽदक्षसा ॥ १ ॥

हे मित्रावरुणी विश्वस्य सर्वस्य लोकस्य गोपा गोपायितारी देवा देवी ब्रौतनशीलौ देवेषु मध्ये यज्ञिया यज्ञार्हौ ता तौ तादृशी वां युवां हविष्प्रदानार्थं यजमानं भजयः । अत एव हे विश्वमनः ऋतावानर्तावानौ सत्यवन्तौ यज्ञवन्तौ वा पूतदक्षसौ शुद्धबली । आवां बलवन्ताविति वचनमात्रेण बलवन्तौ न भवतः किंतु यथार्थत्वेन सामर्थ्यवन्तौ । मित्रावरुणी यजसे । हविर्भिः पूजयसि ॥

मित्रा तना न रथ्याऽवरुणो यश्च सुक्रतुः । सनात्सुजाता तनया धृतव्रता ॥ २ ॥

मित्रा । तना । न । रथ्या । वरुणः । यः । च । सुऽक्रतुः । सनात् । सुऽजाता । तनया । धृतऽव्रता ॥ २ ॥

सुक्रतुः शोभनकर्मा यो वरुणः सुकर्मा मित्रा च मित्रावरुणी । कीदृशी । तना । तन्वन्ति सुक्रतकटकादिनेति तनानि धनानि । नक्षत्रैः । धनानि च रथ्या रथ्यौ नेतारौ । यद्वा । धनानि कर्मणः कर्तृपक्षत्वात् प्रयच्छन्ताविति संबध्यते । तादृशी रथ्यौ रथवन्तौ सनाधिरादेव सुजाता सुजाता शोभनत्वानौ । तदेवाह । तनया तनयावदितेः पुत्री धृतव्रता धृतव्रता धृतकर्माणी ता यजसे इति पूर्वेण समन्वयः ॥

ता माता विश्ववेदसासुर्याय प्रमहसा । मही जजानादिति ऋतावरी ॥ ३ ॥

ता । माता । विश्वऽवेदसा । असुर्याय । प्रऽमहसा । मही । जजान् । अदितिः । ऋतऽवरी ॥ ३ ॥

अदितेस्तनयत्वमेव स्फुटयति । विश्ववेदसा विश्ववेदसौ सर्वधनी । यद्वा । विश्वानि स्थावरजंगमात्मत्त्वानि सर्वाणि विदतुर्जानीत इति विश्ववेदसौ । प्रमहसा प्रमहसौ प्रकृष्टतेजस्वी ता तौ तादृशी मित्रावरुणी मही महत्पृतावरी सत्यवती माता देवमातादितिर्जजान् । जनयासास । किमर्थं । असुर्यायासुराणां हन्त्रे बलाय । असुरान् हंतुमुत्पादितवतीत्यर्थः ॥

महांता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा । ऋतावानावृतमा घोषतो बृहत् ॥ ४ ॥

महांता । मित्रावरुणा । संऽराजा । देवौ । असुरा । ऋतऽवानौ । ऋतं । आ । घोषतः । बृहत् ॥ ४ ॥

महाता गुणाधिक्येन महांता सम्राजा सम्राजौ सम्यग्दीप्यमानावसुरासुरौ बलवन्तौ । यद्वा । सर्वोत्तर्यामितया प्रेरका । ऋतावाना सत्यवन्तौ मित्रावरुणी देवौ बृहत् क्षीरशस्त्रादिना महांतमृतं यज्ञमा घोषतः । खदीप्या प्रकाशयतः ॥ घुपेलंठि रूपं ॥

नपाता श्वंसो महः सूनू दक्षस्य सुक्रतू । सृप्रदानू इषो वास्वधि क्षितः ॥ ५ ॥

नपाता । श्वंसः । महः । सूनू इति । दक्षस्य । सुक्रतू इति सुऽक्रतू । सृप्रदानू इति सृप्रऽदानू । इषः । वास्तु । अधि । क्षितः ॥ ५ ॥

महो महतः श्वसो बलस्य नपाता नपातो पौचो । बलत उत्पादिताविति बलस्य पौचो । तादृशी दक्षस्य । दक्ष पुचो शीघ्राथे चेति दक्षो वेगः । तस्य सूनू पुचो । बलादेव इति तयोः पुचत्वं । तौ सुक्रतू शोम-  
नकर्माणी चप्रदानू प्रकृतधनादिदानौ मिचावरुणाविधोऽन्नस्य वासु निवासस्थानेऽधि बितः । अधिवसतः ॥  
अधिशीकृति वासुनः कर्मसंज्ञा । अयतेर्लटि च्छांदसो विकरणस्य जुक् ॥ २१ ॥

सं या दानूनि येमथुर्दिव्याः पार्थिवीरिषः । नभस्वतीरा वां चरंतु वृष्टयः ॥ ६ ॥  
सं । या । दानूनि । येमथुः । दिव्याः । पार्थिवीः । इषः । नभस्वतीः । आ । वां ।  
चरंतु । वृष्टयः ॥ ६ ॥

हे मिचावरुणी यौ युवां दानूनि देयानि धनानि सं येमथुः अस्मासु संयच्छतं तथा दिव्या दिव्यानि दिवि भवानि पार्थिवीः पृथिव्यामुत्पन्नानीषोऽन्नानि संयच्छतं । वृध्यभावे कथमन्नं लभ्यत इति चेत् तदुच्यते । नभस्वतीरुदकवत्यो वृष्टयस्तादृशी वां युवामा चरंतु । उपतिष्ठंतु । यदा वृध्यवेला तदा वर्षतमित्यर्थः ॥

अधि या बृहतो दिवोऽभि यूथेव पश्यंतः । ऋतावाना सस्राजा नमसे हिता ॥ ७ ॥  
अधि । या । बृहतः । दिवः । अभि । यूथाऽइव । पश्यंतः । ऋतऽवाना । संऽराजा ।  
नमसे । हिता ॥ ७ ॥

या यौ मिचावरुणी बृहतो दिवो द्योतमानान्देवानधि पश्यतः । तच्च दृष्टान्तः । यूथेव यथा वृषभो गोयूथानि रंतुमभ्यभिमुखं पश्यति तद्वदेतौ स्ववीर्येणामुराग्रहत्वा देवान्मोदयितुं पश्यत इत्यर्थः । कीदृशी । ऋतावाना सत्यवन्तौ सस्राजा सस्राजौ सम्यग्दीप्यमानौ नमसे हविषे हिता हितौ प्रियौ पश्यत इति ॥

ऋतावाना नि वेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू । धृतव्रता छत्रियां छत्रमाशतुः ॥ ८ ॥  
ऋतऽवाना । नि । सेदतुः । सांऽराज्याय । सुक्रतू इति सुऽक्रतू । धृतऽव्रता ।  
छत्रियां । छत्रं । आशतुः ॥ ८ ॥

ऋतावानर्तावानौ सत्यवन्तौ सुक्रतू शोमनकर्माणी सुप्रज्ञौ वा मिचावरुणी साम्राज्याय साम्राज्यार्थं नि वेदतुः । न्यसीदतां । तथा मंचः । नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्वास्वा साम्राज्याय सुक्रतुः । अ० १. २५. १० । इति । धृतव्रता धृतव्रतौ धृतकर्माणी चत्रिया चत्रियौ बलवन्तौ चत्रं बलमाशतुः । आनशति । व्यामुत इत्यर्थः ॥

अक्ष्णश्चिन्नातुवित्तरानुल्बणेन चक्षसा । नि चिन्मिषंतां निचिरा नि चिक्वतुः ॥ ९ ॥  
अक्ष्णः । चित् । गातुवित्तरा । अनुल्बणेन । चक्षसा । नि । चित् । मिषंतां ।  
निऽचिरा । नि । चिक्वतुः ॥ ९ ॥

अक्ष्णश्चिन्नातुवित्तराऽपि पूर्वं गातुवित्तरा गातुवित्तरावतिशयेन मार्गवेत्तारौ । यद्वा । गातुवित्तरौ गातु गमनशीलं प्राणिजातं चक्षुषोऽपि पूर्वं वेत्तारौ मिचावरुणी । कीदृशी । नि मिषंता निमिषंतां सर्वमुख्येष्वन्तौ स्वस्वकर्मणि निचिरा नितरां चिरंतनौ तावनुल्बणेन । उल्बणमिति दुःसहमपेक्षेजः । तद्वददुःसहेन चक्षसा-  
होराचयोर्व्याघ्रेण तेजसेव नि चिक्वतुः । पूजितौ बभूवतुः । चिद्वधारणे ॥

उत नो देव्यदितिरुथतां नासत्या । उरुथंतु मरुतो वृद्धश्वसः ॥ १० ॥  
उत । नः । देवी । अदितिः । उरुथतां । नासत्या । उरुथंतु । मरुतः । वृद्धऽश्वसः ॥ १० ॥



उतापि च देवी शीतलशीलादितिर्निवावदण्योर्माता नोऽस्मान्नयतु । नासत्या नासत्यी । असत्यमनयो-  
र्मास्तीति नासत्यी । अश्विनौ चोरुष्यतां । रचतां ॥ उरुष्यतिः कण्डादिः ॥ वृद्धश्रवसो वृद्धवेगाः । अतिशयेन  
वेगवन्त इत्यर्थः । यदा वर्धनशीलहविर्लक्षणास्त्रोपिता मरुत उरुष्यन्तु । अस्मान्पालयन्तु ॥ १२ ॥

ते नो नावमुंरुष्यत दिवा नक्तं सुदानवः । अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि ॥ ११ ॥  
ते । नः । नावम् । उरुष्यत । दिवा । नक्तम् । सुदानवः । अरिष्यन्तः । नि । पायुभिः ।  
सचेमहि ॥ ११ ॥

हे सुदानवः शोभनदाना मरुतोऽरिष्यन्तः केनाप्यहिंसिताः ते तादृशा श्रूयं नोऽस्मादीयां नावं यज्ञियां  
नावं दिवा नक्तं चोरुष्यत । पालयत । ततो वयं पायुभिर्गुप्सदीयैः पालनेर्नि सचेमहि । नितरां  
समवेता भवेम ॥

अग्नते विष्णवे वयमरिष्यन्तः सुदानवे । शुधि स्वयावन्तिसंधो पूर्वचित्तये ॥ १२ ॥  
अग्नते । विष्णवे । वयम् । अरिष्यन्तः । सुदानवे । शुधि । स्वयावन् । सिंधो इति ।  
पूर्वचित्तये ॥ १२ ॥

पूर्वोऽर्धर्चः परोचक्रतः । अरिष्यन्तः पालनवत्त्वात् केनाप्यबाधिता वयमग्नते स्तोत्राणां यष्टूणां चाहिंसकाय  
सुदानवे शोभनदानाय विष्णवे स्वमहत्त्वेन सर्वव्यापकायैतन्नामकाय देवाय कुति कुर्मः । अथ प्रत्यक्षः । हे  
स्वयावन् । स्वयमेवासहायः सन् दिवि संग्रामे वा यातीति स्वयावान् । सिंधो स्तोत्राणां प्रति धनानां स्यंदन-  
शील विष्णो पूर्वचित्तये । चित्तिः कर्म । मंत्रांतरेऽपि तथा श्रवणात् । सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं  
। अ० १. १६४. २९. इति । पूर्वं प्रारब्धकर्मणे यजमानाय तदर्थं शुधि । अस्माभिः क्रियमाणां कुति त्वं शृणु ॥

तद्वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् । मिचो यत्पांति वरुणो यदर्यमा ॥ १३ ॥  
तत् । वार्यम् । वृणीमहे । वरिष्ठम् । गोपयत्यम् । मिचः । यत् । पांतिम् । वरुणः । यत् ।  
अर्यमा ॥ १३ ॥

वरिष्ठमुत्तरं गोपयत्यं सर्वेषां रचकं यतेः पालनीयं वा वार्यं सर्वेष्वेवजीयं तद्वनं वृणीमहे । वयं  
संभजामहे । यद्वनं मिचः सर्वेषां मिचभूतो वरुणः शत्रूणां वारधितार्यमा सर्वदा गच्छन् एतन्नामकास्त्रयो  
देवाः पांति पालयन्ति । तद्वनं वृणीमहे । अस्मादीयस्य धनस्य रचका भवन्तीत्यर्थः ॥

उत नः सिंधुरपां तन्मरुतस्तदश्विना । इंद्रो विष्णुमीदृांसः सजोषसः ॥ १४ ॥  
उत । नः । सिंधुः । अपां । तत् । मरुतः । तत् । अश्विना । इंद्रः । विष्णुः । मीदृांसः ।  
सजोषसः ॥ १४ ॥

पुनरपि धनरक्षणमेवाशक्ते । उतापि चापामुदकानां सिंधुः स्यंदनशीलः पर्यन्तो नोऽस्मादीयं तद्वनं  
रचतु । तदेव मरुतस्य पालयन्तु । अश्विनाश्विनौ देवी तद्वनं पालयतां । तथेन्द्रो विष्णुश्च मीदृांसः कामाणां  
संस्कार एते सर्वे देवाः सजोषसः संगताः संतोऽस्मादीयं धनं रचन्तु । एते देवा अस्माभ्यं धनं दत्त्वा पालयन्तित्यर्थः ॥

ते हि ष्मा वृनुषो नरोऽभिमांति कयस्य चित् ।  
तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः ॥ १५ ॥

ते । हि । स्म । वनुषः । नरः । अभिऽमतिं । कयस्य । चित् ।  
तिग्मं । न । क्षोदः । प्रतिऽमतिं । भूर्णयः ॥ १५ ॥

वनुषो वननीयाः संभजनीया नरो नेतारस्तै हि ष्मा ते खलु देवा भूर्णयः क्षिप्रगमनाः संतः कयस्य चित्कस्यचिच्छोरभिमातिमभिमानं प्रतिघ्नति । प्रतिकूलं यथा भवति तथा हिंसति । तच्च दृष्टान्तः । तिग्मं न यथा तिग्मं तीक्ष्णं जवेन गच्छत्क्षोद उदक्कमयतः स्थितं वृचमुच्यूलयति तद्वन्तस्याभिमानं घ्नन्तीत्यर्थः ॥ ॥ २३ ॥

अयमेक इत्या पुरुष चष्टे वि विशपतिः । तस्य व्रतान्यनु वक्षरामसि ॥ १६ ॥  
अयं । एकः । इत्या । पुरु । उरु । चष्टे । वि । विशपतिः । तस्य । व्रतानि । अनु । वः ।  
चरामसि ॥ १६ ॥

मित्रस्य कर्माण्याह । विशपतिर्विशं पालयितानयोर्मित्रावरुणयोरिकोऽयं मित्रः पुरु पुरुणि बह्वनि चोरुण्य च द्रव्याणीत्येत्यं वि चष्टे । स्वतेजसा पश्यति । तस्य मित्रस्य व्रतानि कर्माणि वो युष्मदर्थमनु चरामसि । अनुचरामः । कुर्म इत्यर्थः ॥

अनु पूर्वाण्योक्ता साम्राज्यस्य सश्चिम । मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् ॥ १७ ॥  
अनु । पूर्वाणि । ओक्ता । सांऽराज्यस्य । सश्चिम । मित्रस्य । व्रता । वरुणस्य ।  
दीर्घऽश्रुत् ॥ १७ ॥

साम्राज्यस्य । साम्राजो भावः साम्राज्यं । साम्राज्यमस्यास्तीति साम्राज्यः ॥ अर्शआदिभ्य इत्यच्प्रत्ययः ॥ साम्राज्यवतो वरुणस्य पूर्वाणि पुरातनान्योक्ता । ओको गुहं । तस्मै हितानि कर्माणि वयं सश्चिम ॥ सस्यतिर्ग-  
तिकर्मा । छिटि रूपं । द्विर्वचनस्य च्छंदसि विकल्पितत्वाच्च द्विर्वचनाभावः ॥ तदेवाह । मित्रस्य व्रता व्रतानि कर्माणि च दीर्घश्रुत् ॥ सुपां मुनुगिति षष्ठा लुक् ॥ दीर्घश्रुतोऽतिशयेन प्रसिद्धस्य वरुणस्य व्रतानि च सश्चिमेति ॥

परि यो रश्मिना दिवोऽतान्ममे पृथिव्याः । उभे आ पम्रौ रोदसी महित्वा ॥ १८ ॥  
परि । यः । रश्मिना । दिवः । अंतान् । ममे । पृथिव्याः । उभे इति । आ । पम्रौ ।  
रोदसी इति । महिऽत्वा ॥ १८ ॥

यो मित्रो दिवः पृथिव्या बावापृथिव्योरंतान्नरश्मिना स्वतेजसा परि ममे परिमिनोति । तयोः पर्यंतान् स्वरश्मिना भासयतीत्यर्थः । स एवोभे रोदसी बावापृथिव्यां महित्वा स्वमहिम्ना पम्री । आ समंतात्पूरयति ॥

उदु थ शरणे दिवो ज्योतिरयस्त सूर्यः । अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः ॥ १९ ॥  
उत् । ऊं इति । स्यः । शरणे । दिवः । ज्योतिः । अयस्त । सूर्यः । अग्निः । न । शुक्रः ।  
संऽइधानः । आऽहुतः ॥ १९ ॥

सूर्यः सुवीर्यः मुपु सर्वस्य प्रेरकः स्य स मित्रो वरुणस्य दिवो द्योतमानस्यादित्यस्य शरणे स्थाने जमसि ज्योतिरात्मीयं तत्र उदयस्त । उदच्छति । ऊर्ध्वं गमयति । सर्वत्र विस्तारयतीत्यर्थः ॥ यमेर्लुङि रूपं ॥ ततः सोऽपिर्न शुक्रोऽपिरिव दीप्यमानः समिधानो हविर्भिः समिध्यमान आहुतः सर्वैराहृतसिष्ठति ॥



वचो दीर्घप्रसन्ननीशे वाजस्य गोमतः । ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने ॥ २० ॥  
वचः । दीर्घेऽप्रसन्ननि । ईशे । वाजस्य । गोऽमतः । ईशे । हि । पित्वः । अविषस्य ।  
दावने ॥ २० ॥

हे स्तोतः दीर्घप्रसन्ननि दीर्घं प्रततं विभृतं सद्यः सदनं यस्मिन्त्येव वचः । मितं वरुणं च क्षुहि ॥ वक्तृत्वे-  
थाङ्गागमः ॥ स वरुणो गोमतः पशुमतो वाजस्त्राज्ञस्थे । ईष्टे । स्वामी भवति । केवलं स्वामी न भवति  
किंत्वविषस्य महतः प्रीतिकारिणः पित्वोऽन्नस्य दावने दानाय चेशे । समर्थो भवति । ये स्तोत्रं कुर्वन्ति  
तेभ्योऽन्नं ददातीत्यर्थः ॥ २४ ॥

तत्सूर्यं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे । भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा ॥ २१ ॥  
तत् । सूर्यं । रोदसी इति । उभे इति । दोषा । वस्तोः । उप । ब्रुवे । भोजेषु । अस्मान् ।  
अभि । उत् । चर । सदा ॥ २१ ॥

सूर्यं सुवीर्यं तद्वारुणं मैत्रं च तेभ्य उभे रोदसी उभे व्यापृषिष्वी च दोषा ॥ सुपां सुनुगिति द्वितीयाया  
लुक् । कालाध्वनोरिति द्वितीया ॥ रात्रौ वस्तोरहनि चाहमुप ब्रुवे । उपस्तौमि । त्वं सूर्यमाणो वरुणो  
भोजेषु दातृष्वस्मान् सदाभुञ्जर । सर्वदामिसुखं प्रेरय । दातृष्वितेषां दानेष्वस्मान् पुरोभाविनः कुर्वित्वर्थः ॥

चृजमुक्षययाने रजतं हरयाणे । रथं युक्तमसनाम सुषामणि ॥ २२ ॥  
चृजं । उक्षययाने । रजतं । हरयाणे । रथं । युक्तं । असनाम । सुऽसामनि ॥ २२ ॥

सुषाम्णः पुत्रो वरुणो नाम राजा । स यद्दानं प्रादाद्विद्यमनसि तदसी विश्वमना अधिरनयाचष्टे । उच-  
क्षायने । उचक्षामा कश्चिद्वरोः पूर्वजः ॥ तस्य गोचापत्य उचक्षशब्दादयः । तदंतात्कप्रत्ययः । एतौ वृद्धौ ।  
वृद्धिभावोऽपि संज्ञापूर्वको विधिरनित्य इति न भवति ॥ तस्य गोचापत्ये हरयाणे शत्रुजीवितैश्चर्यादिहरण-  
शीलयान् एतादृशे सुषामणि । वज्रवत्पितृशब्देन पुत्रोऽभिधीयते । सुषाम्णः पुत्रे वरौ राजानि ददति सति  
किमभूत् । अन्नमृजुगामिनं रजतं रजतमयं रजतसदृशं वा युक्तमश्वाभ्यां युक्तं रथमसनाम । एतेषां मित्रादीनां  
प्रसादादयं संभक्तवन्तो लब्धवन्तोऽभूम् ॥

ता मे अश्वानां हरीणां नितोशना । उतो नु कृत्यानां नृवाहसा ॥ २३ ॥  
ता । मे । अश्वानां । हरीणां । निऽतोशना । उतो इति । नु । कृत्यानां ।  
नृऽवाहसा ॥ २३ ॥

अधिः प्रतिगृहीतावश्वावाह । हरीणां हरितवर्णानामश्वानामश्वसंघानां मध्ये नितोशना नितोशनौ ।  
तोशतिर्हिसाकर्मा । शत्रूणामत्यंतं बाधकतावुतो अपि च कृत्यानां युद्धकर्मणि कुशलानां च नु कुशलमिति  
बाधको नृवाहसा नृवाहसावायुधनेतृणां मनुष्याणां बोधारी ता तावन्मै मे मह्यं नु विप्रं सौषाम्णेन वरुणा  
दप्तौ भवेतां ॥

स्मदभीष् कशावंता विप्रा नविष्ठया मती । महो वाजिनावन्ता सचासनं ॥ २४ ॥  
स्मदभीष् इति स्मत्ऽअभीष् । कशाऽवंता । विप्रा । नविष्ठया । मती । महः ।  
वाजिनौ । अर्वन्ता । सचा । असनं ॥ २४ ॥

अधिरिदानीं तावन्वावग्रहीषमित्याह । सद्भीषू । सत्सुमत् ॥ उकारलोपश्चादसः ॥ शोभनरज्जुयुक्तौ यद्वा शोभनशरीरकांती कशावन्ता कशावन्ती कशायुक्तौ विप्रा विप्री मेधाविनामुचिता । मेधावी स्तोता यथा स्तुत्यं देवं कृतिभिः शोणयति तद्वत् संतोषका । महो महतः सौपान्णस्य वरोः संबन्धिनां वाजिनां शीघ्रगमनवंतावर्षतार्वन्ती द्वावन्ती सचा सह युगपदेव नविष्ठया नवतरया मती मत्वा स्तुत्या मिवादीन् सुवन्नसनं । विश्वमना अहं सममजं । प्रत्यग्रहीषमित्यर्थः ॥ ॥ २५ ॥

युवोर ध्विति पंचविंशत्युचं षष्ठं सूक्तं । अचानुकमणिका । युवोः पंचाधिका व्यथो वांगिरस आश्विनं विंशत्या वायव्यास्तपूर्वास्ततो गायत्र्योऽल्लैकविंश्यां च विंशनुष्टुति । आंगिरसो व्यथो वैयथ्यो विश्वमना वा अश्विः । षोडशाव्यास्ततो गायत्र्यो विंशनुष्टुतिकविंशी पंचविंशी च गायत्र्यो शिष्टाः पूर्ववदुष्टिहः । अश्विनौ देवता । विंशत्याः पंचर्चो वायुदेवताकाः ॥ प्रातरनुवाक आश्विने क्रतावौष्णिहे छंदसाश्विनशस्त्रे चादितः पंचर्चः । सूचितं च । युवोर षू रथं ऊव इति पंचदशैर्वाष्णिहं । आ० ४. १५. इति ॥

युवोरू षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु । अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू ॥ १ ॥

युवोः । ऊं इति । सु । रथं । हुवे । सधऽस्तुत्याय । सूरिषु । अतूर्तदक्षा । वृषणा । वृषण्वसू इति वृषण्वसू ॥ १ ॥

हे अतूर्तदक्षा ॥ तू अवनतरणयोरित्यस्य निष्ठायां नसन्नेति सूत्रेण निपातितः ॥ परैरहिंसितवली वृषणा वृषणी कामानां सक्ता री अत एव वृषण्वसू वर्षणशीलधनवंतावश्विनी युवोर्युवयोरर्थं सु ऊवे । सुष्ठु स्तोत्रादिभिराहुयामि । किमर्थं । सूरिषु प्राप्तेषु स्तोत्रेषु मध्ये सधस्तुत्याय ॥ स्तौतिभवे क्वप ॥ सह भवन्ती स्तोतुं । तस्माद्युवयोः शीघ्रगत्वि युष्मज्जमनसाधनरथमेवाहुयामि ॥

युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या । अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू ॥ २ ॥

युवं । वरो इति । सुऽसाम्ने । महे । तने । नासत्या । अवऽभिः । याथः । वृषणा । वृषण्वसू इति वृषण्वसू ॥ २ ॥

अपिर्वह राजानं संबोधाह । हे नासत्या नासत्या । न विद्यतेऽसत्यमनयोरिति नासत्या । वृषणा कामानां वर्षितारौ वृषण्वसू वर्षणशीलवसुमंतावश्विनी युवं युवां सुषाम्णे सुषामाखराज्ञे मम पित्रेऽस्मै महे महते तने । तनोतीति तनं धनं । धनाय ॥ क्रियार्थोपपदस्येति चतुर्थी ॥ तस्मै धनं दातुं पुरा यथागच्छतं तद्वत्त्वह्यमपि धनं दातुमवोभिः पालनैः सह याथः युवामायातमिति हे वरो वरनामक राज्ञेवं ब्रूही तृषिर्वदति ॥

ता वामद्य हवामहे हव्येभिर्वजिनीवसू । पूर्वीरिष इषयंतावति स्तुपः ॥ ३ ॥

ता । वां । अद्य । हवामहे । हव्येभिः । वाजिनीवसू इति वाजिनीवसू । पूर्वीः । इषः । इषयंतौ । अति । स्तुपः ॥ ३ ॥

हे वाजिनीवसू अन्नयुक्तधनवंतावश्विनी पूर्वोर्वहनीयोऽज्ञानीपयन्ती ॥ इषु इच्छायां ॥ इच्छन्ती ता तौ प्रसिद्धौ वां युवामन्यास्मिन्याग्दनेऽति जपः जपाया अतिक्रमे । उपःकाल इत्यर्थः । तस्मिन्नुपःकाले हव्येभिर्वहनीवजिनीवसूः सह वयं हवामहे । आहुयामः । आश्विनशस्त्रस्य तत्र शस्त्रमानत्वादुपःकाल एवाह । याग इत्यर्थः ॥

आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा । उप स्तोमान्तुरस्य दर्शयः श्रिये ॥ ४ ॥

आ । वां । वाहिष्ठः । अश्विना । रथः । यातु । श्रुतः । नरा । उप । स्तोमान् । तुरस्य । दर्शयः । श्रिये ॥ ४ ॥



हे नरा सर्वस्य जेतारावश्विनाश्विनी वां युवयोर्वाहिष्ठो वोढुतमः श्रुतो विश्रुतः सर्वस्य प्रसिद्धो रथ आयातु । अस्मदीयं यज्ञं प्रत्यागच्छतु । तेन रथेन युवामागत्य तुरस्य चिम्रं सोचं कुर्वतस्तस्य सोमांस्त्रिवृत्यंचद-  
शादिसोमाञ्छिये तस्मैचर्यप्रदानाद्योप दर्शयः । पञ्चतिर्ज्ञानकर्मा । जानीत ॥ दृशेत्संदिग्धं त्वयिनाकादेशः ॥

जुहुराणां चिदश्विना मन्येषां वृषण्वसू । युवं हि रुद्रा पर्वथो अति द्विषः ॥५॥  
जुहुराणां चित् । अश्विना । आ । मन्येषां । वृषण्वसू इति वृषण्वसू । युवं । हि ।  
रुद्रा । पर्वथः । अति । द्विषः ॥५॥

हे वृषण्वसू वर्षणशीलधनवंतावश्विनाश्विनी जुहुराणां चित् ॥ ऊर्क्षा कौटिल्ये । ऊर्क्षेः सनो नृक् क्लोपञ्च । उ० २. ९२. । इत्यानचप्रत्ययः ॥ कृटिलान्कर्मविघ्नकारिणो मायाविनोऽपि शत्रूनां अभिमुख्येन मन्येषां । जानीत । ततो हे रुद्रा संयामे रोदनशीली स्वन्ती वाश्विनी युवं । हिरवधारणे । युवामेव द्वयो द्वेषकारिण-  
स्ताञ्छ्वनति पर्वथः । अतीत्य संक्षेपयतं । इतमित्यर्थः ॥ पृषु हिंसासंक्षेपशयोरिति भीवादिकः ॥ २६॥

दस्मा हि विश्वमानुषङ्गुक्षूभिः परिदीयथः । धियंजिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ॥६॥  
दस्मा । हि । विश्वं । आनुषक् । मस्युऽभिः । परिऽदीयथः । धियंऽजिन्वा । मधुऽवर्णा ।  
शुभः । पती इति ॥६॥

दस्मा दस्मी सर्वैर्दर्शनीयी । यद्वा ॥ दसु उपचय ॥ शत्रूणामुपचयितारावश्विनी । कीदृशी । धियंजिन्वा  
धियंजिन्वौ । जिविः प्रीणनार्थः । कर्माणि प्रीणयन्ती मधुवर्णा मधुवर्णी सर्वेषां मादनशीलशरीरकांती । ये  
युवयो रूपं पश्यन्ति ते तत्रैव हृष्टा भवन्तीत्यर्थः । तादृशी शुभस्पती उदकस्य पालयितारी तादृशी युवां  
मधुभिः शीघ्रगमनैरश्वैरानुपगनुपगतं यथा भवति तथा विश्वमृत्विग्भिर्हविर्भिस्त्र व्याप्तं । हिरवधारणे । अस्मदीयं  
यज्ञमेव प्रति परिदीयथः । दीयतिर्गतिकर्मा । परित आगच्छतं ॥

उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह । मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥७॥  
उप । नः । यातं । अश्विना । राया । विश्वऽपुषा । सह । मघऽवाना । सुऽवीरौ ।  
अनपऽच्युता ॥७॥

हे अश्विनाश्विनी विश्वपुषा विश्वस्य सर्वस्य पोषकेण राया धनेन सह नोऽस्मदीयं यज्ञमुप यातं । उपा-  
गच्छतं । यज्ञमागत्य धनमस्मभ्यं प्रयच्छतमिति भावः । किमनयोर्धनमस्तीत्यत आह । मघवाना मघवानौ  
मंहनीयधनवंतौ सुवीरौ शोभनसामर्थ्योपेतौ । यद्वा । वीराः समर्थाः शत्रवः । तद्वन्ती । तथाप्यनपच्युता  
तेरपचावनीयी न भवतः । ती यज्ञं प्रत्यागच्छतं ॥

आ मे अस्य प्रतीव्यं मिदं नासत्या गतं । देवा देवेभिरुद्य सचनस्तमा ॥८॥  
आ । मे । अस्य । प्रतीव्यं । इदं नासत्या । गतं । देवा । देवेभिः । उद्य । सचनःऽतमा ॥८॥

हे इदं नासत्यिदं नाश्विनी सचनस्तमा ॥ यच्च समवाये । कृत्यव्युट इति कर्मणि व्युट् ॥ अतिशयेन सर्वैः  
समवेतव्यां सेव्यमानां युवां प्रतीव्यं ॥ वी गत्यादिषु । अधिकरण औणादिकः कृष्णः ॥ प्रतिशब्दस्य वीप्साद्यो  
ऽस्ति । पुनःपुनर्विधयति मच्चयति हवींषि देवा अर्चेति प्रतीवीर्यज्ञः । तमस्य पुरोवर्तिनो मे मम संबन्धनं  
यज्ञमवाप्सिन्दिने देवेभिर्देवैः सार्धमा गतं । आगच्छतं । यद्वा । मे ममास्य क्रियमाणस्य सोचस्य प्रतीव्यं  
प्रतिगतं यथा भवति तथाभिमुख्येनायातं ॥

वयं हि वां हवामहे उक्षयंतो व्यश्वत् । सुमतिभिरुप विप्राविहा गतं ॥९॥

वयं । हि । वां । हवामहे । उक्षयंतः । व्यश्वऽवत् । सुमतिऽभिः । उप । विप्रौ । इह ।

आ । गतं ॥९॥

उक्षयंतो धनादिसेक्तारावात्मन इच्छंतो वयं वां हि धनादीनां प्रत्तारौ युवामेव हवामहे । तन्नामार्थ-  
माहुयामः । तच्च दृष्टान्तः । व्यश्वत् । यथास्माकं पिता युवामेव सुखा धनमलभत तद्वत् । हे विप्रौ मेधावि-  
नावधिनी सुमतिभिरस्माभिः क्रियमाणैः कर्त्तव्यैः स्तौत्रैः सह । यद्वा । सुमतिभिः शोभनाभिरनुग्रहबुद्धिभिः  
सह । इहास्मिन्यागदिन उपा गतं । उपागच्छतं ॥

अश्विना स्तृषे स्तुहि कुवित्ते श्रवतो हव । नेदीयसः कूळयातः पृणीरुत ॥१०॥

अश्विना । सु । स्तृषे । स्तुहि । कुवित् । ते । श्रवतः । हव । नेदीयसः । कूळयातः ।

पृणीन् । उत ॥१०॥

हे ऋषे विश्वमनः अश्विनाश्विनी देवौ सु इहि । शोभनं स्तुहि । ततस्त्वावधिनी ते स्तोतृस्तव हवमाह्वानं  
कुवित् । कुविदिति वज्रनाम । वज्रवारं श्रवतः । शृणुतां ॥ अश्रु अवणे । स्तेव्यडागमः ॥ एवं त्वया स्तुतवशिनी  
नेदीयसोऽतिक्रममाच्छ्रूय कूळयातः । हिंसां । उतापि च पृणीनेतन्नामकानंगिरीगवामपनेतुनसुरानपि  
हिंसां ॥ कुडि दाहि । स्तौतस्व स्तेव्यडागमः ॥ ॥२७॥

वैयश्वस्य श्रुतं नरोतो मे अस्य वेदथः । सजोषसा वरुणो मिचो अर्यमा ॥११॥

वैयश्वस्य । श्रुतं । नरा । उतो इति । मे । अस्य । वेदथः । सऽजोषसा । वरुणः । मिचः ।

अर्यमा ॥११॥

हे नरा नेतारावधिनी वैयश्वस्य अश्वपुत्रस्य विश्वमनसो ममाह्वानं श्रुतं । शृणुतं । उतापि च मे मदीयमस्य  
तदाह्वानं वेदथः । आत्मायत्ततया जानीथः । अथ वरुणो मिचो मिचावरुणौ च सजोषसा संगतावर्चमेत-  
न्नामको देवस्य मदीयमाह्वानं श्रुत्वा मह्यं धनादिकं प्रयच्छंतु ॥

युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः । अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतं ॥१२॥

युवाऽदत्तस्य । धिष्ण्या । युवाऽनीतस्य । सूरिऽभिः । अहःऽअहः । वृषणा । मह्यं ।

शिक्षतं ॥१२॥

हे धिष्ण्या धिष्ण्यौ धिष्ण्याहौ स्तुतौ वृषणौ कामानां सेक्तारावधिनी सूरिभिः ॥ सुपां सुपो भवन्तीति  
चतुर्थीस्तुतीया ॥ सूरिभ्यः स्तोतृभ्यो युवादत्तस्य युवाभ्यां यत्स्तोतृभ्यो दीयते तत् तथा युवानीतस्य युवाभ्यां  
यत्स्तोतृभ्यो दीयते तच्च धनादिकमहरहरहन्वहनि मह्यं विश्वमनसे स्तोत्रं कुर्वाणाय युवां शिक्षतं । प्रयच्छतं ॥

यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव । सपर्येता शुभे चक्राते अश्विना ॥१३॥

यः । वां । यज्ञेभिः । आऽवृतः । अधिऽवस्त्रा । वधूऽइव । सपर्येता । शुभे । चक्राते

इति । अश्विना ॥१३॥

अथ पूर्वोऽर्धर्चः परोक्षततः । यो मनुष्यो वां युवयोर्यज्ञेभिर्ध्वजैः पूजनैः यद्वा युष्मद्विषयेर्यागैरावृतः  
परिवृतो भवति । तच्च दृष्टान्तः । अधिवस्त्रोपरिनिहितवस्त्रा वधूरन्येन वस्त्रेण यथाच्छादिता भवति तथावृतो



यदा भवति तदा सपर्यतामीष्टप्रदानेन तं परिवरंतावश्विनाश्विनी भवन्ती तं मनुष्यं शुभे चक्राति । मंगले धने हतवन्ती । तं धनादियुक्तमकार्षामित्यर्थः । यो युवाभ्यां हवींषि प्रयच्छति तं धनादियुक्तं कुरुतमित्यर्थः ॥

यो वा॒मु॒ख्यच॑स्तमं॒ चिके॑तति नृ॒पाय्यं॑ । व॒र्तिर॑श्विना॒ परि॒ यात॑मस्म॒यू ॥१४॥

यः । वा॒ । उ॒ख्यचः॑ऽतमं । चिके॑तति । नृ॒ऽपाय्यं॑ । व॒र्तिः । अ॒श्विना॒ । परि॒ । या॒तं ।

अ॒स्मयू॒ इत्य॑स्म॒ऽयू ॥१४॥

हे अश्विनी उख्यचस्तममतिशयेन यदेषु भूतं व्याप्तं नृपाय्यं नेतृभ्यां युवाभ्यां पातव्यं सोमं यो मनुष्यो वां युवाभ्यां तं सोमं दातुं चिकेतति भृशं जानाति तस्य वर्तिः । वर्ततेऽचेति वर्तिर्गृहं । अस्मयू अस्मान् । पुत्रार्थं वज्रवचनं । विश्वमनसं मां कामयमानो युवां परि यातं । सोमपानार्थं तस्य गृहं प्रत्यायातं ॥ चिकेतति । कितं ज्ञान इत्यस्य यदुक्तं तस्य ज्ञेयडागमः ॥

अ॒स्मभ्यं॑ सु॒ वृष॑ण्वसू॒ या॒तं व॒र्तिर्नृ॑पाय्यं । वि॒षुदु॑हेव॒ यज्ञ॑मू॒हयु॑र्गिरा ॥१५॥

अ॒स्मभ्यं॑ । सु॒ । वृष॑ण्वसू॒ इति॑ वृषण्व॒ऽवसू॒ । या॒तं । व॒र्तिः । नृ॒ऽपाय्यं॑ । वि॒षुदु॑हा॒ऽइव॒ ।

य॒ज्ञं । ऊ॒हयुः॑ । गिरा ॥१५॥

हे वृषण्वसू वर्षणशीलधनवंतावश्विनी अस्मभ्यमसदर्थं नृपाय्यं नेतृभ्यां पातव्यं सोमं प्रति वर्तिरस्यदीयं गृहं प्रति सु यातं । युवां सुहायातं । गिरा क्षुतिलक्षणा वाचा युवां यज्ञमूहयुः । मनुष्येषु यज्ञसमाप्तिं प्रापयथः । तव दृष्टांतः । विषुदुहेव ॥ द्रुह जिघांसायां ॥ विश्वान्द्रुहति शत्रुमिति विषुद्रुहः शरः । तेन यथा व्याधो मृगमभिलषितं देशं प्रापयति तद्वत् क्षुत्या यज्ञमवैकक्ष्येन समाप्तिं प्रापयथ इत्यर्थः ॥ ॥२८॥

प्रातरनुवाक आश्विने क्रतौ गायत्रे छंदसि वाहिष्ठो वां हवानामिति चतस्रः । सूचितं च । वाहिष्ठो वां हवानामिति चतस्र उदीरायामा मे हवमिति गायत्रं । आ० ४. १५. इति ॥

वा॒हिष्ठो॑ वां॒ हवा॑नां॒ स्तोमो॑ दू॒तो हु॑वन्नरा । यु॒वाभ्यां॑ भू॒त्वश्वि॑ना ॥१६॥

वा॒हिष्ठः॑ । वां॒ । हवा॑नां॒ । स्तोमः॑ । दू॒तः । हु॒वत् । न॒रा । यु॒वाभ्यां॑ । भू॒तुः । अ॒श्विना॒ ॥१६॥

हे नरा नरी सर्वस्य नेतारावश्विनी हवानां स्तोत्राणां स्तोत्राणां मध्ये स्तोमो वाहिष्ठो युवामतिशयेन व्याप्नुवन् मदीयः स्तोमो दूतो दूतभूतः सन् ऊवत् । आऊयतु । सोऽयं मदीयः स्तोमो युवाभ्यां प्रियकरो भूतु । भवतु ॥

यदु॒दो दि॒वो अ॒र्णव॑ इ॒षो वा॒ मर्द॑षो गृ॒हे । श्रु॒तमि॒न्मे अ॒मर्त्या॑ ॥१७॥

यत् । अ॒दः । दि॒वः । अ॒र्णवे॑ । इ॒षः । वा॒ । मर्द॑षः । गृ॒हे । श्रु॒तं । इत् । मे । अ॒मर्त्या॑ ॥१७॥

हे अश्विनी दिवो बल्लोकखादः ॥ सुपां सुलुगिति सप्तम्याः सः ॥ अनुष्मिन्नर्णवेऽपां स्थाने यद्यदि मर्दयः मावयः । वापि चेषो युवामिच्छतो यजमानस्य गृहे यदि मावयः । एवं चेत् हे अमर्त्या मरणधर्मरहितावमनुष्यौ वाश्विनी मे मदीयं स्तोत्रं श्रुतमित् । युवां शृणुतमेव । ममेव स्तोत्रं श्रुत्वा युवां मावयतमित्यर्थः । यदा । अदः स्तोत्रमिति संबध्यते ॥

उ॒त स्या॑ श्वे॒तया॑वरी॒ वाहि॑ष्ठा वां न॒दीनां॑ । सि॒न्धुर्हि॑रण्यव॒र्तनिः॑ ॥१८॥

उ॒त । स्या॑ । श्वे॒तऽया॑वरी॒ । वाहि॑ष्ठा । वां । न॒दीनां॑ । सि॒न्धुः । हि॒रण्य॑ऽव॒र्तनिः॑ ॥१८॥

विश्वमना ऋषिः श्वेतयावरीनामन्यो नद्यासीरेऽश्विनावसीत् । अनया नद्यपि क्षुतवतीत्याह । उतापि

च श्वेतयावरी । श्वेतजला यातीति श्वेतयावरी । कीदृशी । मिधुः खंदमाना हिरण्यवर्तनिर्हिरण्यमयीय-  
मार्गा हिरण्यमयीमयकुला । खीपा श्वेतयावरीनामिका नदीनामन्यासां नदीनां मध्ये वां युवां वाहिष्ठा  
कुत्वातिशयेनागंचो भवति । एषापि युवां स्नातीत्यर्थः । यद्वा । एषा नदी युवयो रथस्य वाहिष्ठा वोढृतमा  
सती प्रियकरी भवति । यस्मादहमस्मात्कीरे युवामनुवमिति ॥

स्मदेतया सुकीर्त्याश्चिना श्वेतया धिया । वहैथे शुभयावाना ॥१९॥

स्मत् । एतया । सुऽकीर्त्या । अश्चिना । श्वेतया । धिया । वहैथे इति । शुभऽयावाना ॥१९॥

हे शुभयावाना शोभनशीलगमनवंता हे अश्चिनाश्चिना सुकीर्त्या शोभनकुत्वा श्वेतया श्वेतजलया धिया  
धारयित्वा हिरण्यमयकूलवत्योभयकूलस्थितानां प्राणिनां धनदानेन पोषयिष्येतथा नया स्मत्सुमच्छोभनं  
वहैथे । युवां स्तुतिं प्राप्नुयः । एषा युवामर्त्तादित्यर्थः ॥

युक्त्वा हि त्वं रथासहा युवस्व पोषा वसो ।

आन्नो वायो मधुं पिवास्माकं सवना गहि ॥२०॥

युक्त्वा । हि । त्वं । रथऽसहा । युवस्व । पोषा । वसो इति ।

आत् । नः । वायो इति । मधुं । पिब । अस्माकं । सवना । आ । गहि ॥२०॥

एतदावा वायव्यः । हे वायो रथसहा रथसहा रथवहनसमर्थावर्था । हिरवधारणे । त्वमेव युक्त्वा ।  
संयोजय । हे वसो वासयितः शत्रूणां पोषा पोषा कंठेषु करलतास्फालनराश्यास्य पोषणीयां तावर्था  
युवस्व । संयामेषु शत्रुवधार्थं मिश्रय । यद्वा । अस्मद्यज्ञेषु संमिश्रय । ताभ्यां युक्तः सन यज्ञं प्रत्यागच्छत्यर्थः ।  
हे वायो आदनंतरं नोऽस्मदीयं मधु मदकरं सोमं त्वं पिब । अत एवास्माकं यज्ञेषु सवना चिपु सवनेष्व  
गहि । सोमपानार्थमागच्छ ॥ ॥२०॥

वायव्ये पर्शा वषाथान्नव वायव्येषा वानुवाक्वा । सूचितं च । प्र वायुमच्छा वृहती मनीषा तव  
वायवृतस्पते । आ० ३. ८. इति ॥

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवांस्या वृणीमहे ॥२१॥

तव । वायो इति । ऋतः पते । त्वष्टुः । जामातः । अद्भुत । अवांसि । आ । वृणीमहे ॥२१॥

हे ऋतस्पत ऋतपते यजानां पते ॥ सर्वप्रातिपदिकेभ्यो जालसायां मुक् । का० ७. १. ५१. ४. इति  
मुगागमः ॥ त्वष्टुर्जामातर्ब्रह्मणो जामातः । एषा कथंतिहासार्थादभिरवगंतव्या । तादृशाद्भुत महत् विचित्रकर्मन्  
हे वायो तव त्वदीयान्यवांसि पालनान्या वृणीमहे । वयमस्मिन्पुण्याग्ने संभजामहे ॥

त्वष्टुर्जामातरं वयमीशानं राय ईमहे । सुतावतो वायुं द्युम्ना जनांसः ॥२२॥

त्वष्टुः । जामातरं । वयं । ईशानं । रायः । ईमहे । सुतऽवतः । वायुं । द्युम्ना । जनांसः ॥२२॥

इमं जनामो जना वयं त्वष्टुर्ब्रह्मणो जामातरमीशानं सर्वस्वैश्वरं एतादृशं वायुं सुतवंतोऽभिषुतसोमा  
रायो धनमोमहे । याचामहे । तेन दत्तेन वयं द्युम्ना धनवंतः स्यामिति शेषः ॥

वायव्यतुचे वायो याहि शिवा दिव इत्यादिके द्वे ऋचा द्वितीयातृतीये । सूचितं च । वायो याहि शिवा  
दिव इति हे । आ० ३. १०. इति ॥



वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वम् ॥ वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे ॥ २३ ॥

वायो इति । याहि । शिव । आ । दिवः । वहस्व । सु । सुऽस्वम् ॥ वहस्व । महः ।  
पृथुऽपक्षसा । रथे ॥ २३ ॥

हे वायो दिवो ब्रह्मलोकस्य शिव ॥ सुपां मुनिरिति द्वितीयायां सुक् ॥ शिवं कक्षाणमा याहि । आप्रापय । सर्वज्योतिषां तदाधारत्वान्नेषामाधारो भूत्वा ब्रह्मलोकं तानि स्थापयेति प्रार्थयते । ततस्त्वं स्वम् ॥ अन्धानां संघोऽन्धः । शोभनाश्वसंघं रथं सु सुष्ठु वहस्व । सर्वतो दिशु प्रापय । इदानीं तेभ्योऽपि समर्थावद्यावावह । मही महोऽस्त्वं पृथुपक्षसा पृथुपार्थद्वययुक्तावधौ रथे स्वकीये वहस्व । शत्रुहननार्थं संयोजय ॥

वायवे पशौ पुरोडाशहविषोऽस्त्वां हि सुप्सरसममिति द्वे अनुवाक्ये । सूचितं च । त्वां हि सुप्सरसममिति द्वे कृदिदंग नमसा ये वृधासः । आ० ३. ८. इति ॥

त्वां हि सुप्सरसमं नृषदनेषु हूमहे । यावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥ २४ ॥

त्वां हि । सुप्सरःऽतमं । नृऽसदनेषु । हूमहे । यावाणं । न । अश्वऽपृष्ठं । मंहना ॥ २४ ॥

हे वायो सुप्सरसमं । सुप्स इति रूपनाम ॥ रो मत्वर्थीयः ॥ अतिशयेन शोभनरूपवंतं मंहना स्वकीयेन महत्त्वेनाश्वपृष्ठं सर्वतो व्याप्तपृष्ठं । पृष्ठशब्दः सर्वांगं लक्षयति । व्याप्तस्तत्त्वांगमित्यर्थः । त्वां । हिरवधारणे । त्वामेव नृषदनेषु नृसदनेषु । वरोऽध्वरस्य नेतारं अश्विजोऽव सीदंतीति नृषदना यज्ञाः । तेषु हूमहे । वयमाहुयामः । कथमिव । यावाणं न । यथा सोमाभिषवार्थं यावाणं क्षुतिभिराहुयन्ति तद्वत्त्वां क्षुतिभि-  
राहुयामः ॥

मुनाखीरीये स त्वं नो देवत्वेषा वायोरनुवाक्या । सूचितं च । स त्वं नो देव मनसेशानाय प्रज्जतिं यस्त आनट् । आ० २. २०. इति ॥

स त्वं नो देव मनसा वायो मंदानो अयियः । कृधि वाजाँ अपो धियः ॥ २५ ॥

सः । त्वं । नः । देव । मनसा । वायो इति । मंदानः । अयियः । कृधि । वाजान् ।

अपः । धियः ॥ २५ ॥

हे देव बोतमान यद्वा सोतव्य वायो अयियो देवानां मध्ये मुख्योऽग्रतो गन्तासि । तादृशस्त्वं मनसा मंदानो मंदमानः स्वयमेव मोदमानः सन्नोऽस्माकं वाजानन्नान्यपो मेघभेदनेनोदकानि च उभयस्त्रिंस्त्वया प्रदत्ते सति धियोऽपि होचादिकर्माणि च कृधि । कृत् । कारयेत्यर्थः ॥ ॥ ३० ॥

अपिरुक्थे इति द्वाविंशत्युच्चं सप्तमं सूक्तं । अचानुक्रमणिका । अपिरुक्थे द्वाधिका मनुर्वैवस्वतो वैश्वदेवं ह प्रागाथमिति । विवस्वतः पुत्रो मनुर्धृषिः । प्रथमातृतोयावयुवो बृहत्यो द्वितीयाचतुर्थ्यादियुवः सतोबृहत्यः । इदमादीनां चतुर्णां सूक्तानां विश्वे देवा देवता ॥ सूक्तविनियोगो लेखिकः ॥

अपिरुक्थे पुरोहितो यावाणो बर्हिर्ध्वरे ।

अचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवाँ अवो वरेण्यं ॥ १ ॥

अग्निः । उक्थे । पुरऽहितः । यावाणः । बर्हिः । अध्वरे ।

अचा । यामि । मरुतः । ब्रह्मणः । पतिं । देवान् । अवः । वरेण्यं ॥ १ ॥

मनुः प्रार्थयते । उक्थे सोत्रशस्त्रात्मकेऽध्वरे हिंसा रहितोऽस्मिन्न्यज्ञेऽपि पुरोहितो यज्ञार्थं पुरत उत्तर-

वेद्यामृत्विग्भिर्निहितोऽभूत् । तथा यावाणश्च सोमामिषवार्थं पुरतो निहिताः । बर्हिश्च पुरतो निहितमासादितं । एवं सामग्यां सत्वां मरुत एकोनपंचाशन्मरुद्गणान् ब्रह्मण्यति स्तोत्रस्य पालयितारमेतन्नामकं देवं देवानिन्द्रादींश्च एतान् सर्वान्देवान्वरेण्यं वरणीयं मजनीयमवो रचयामृचा सूक्तरूपया जुत्वा यामि । मनुरहं याचामि ॥ याचतेर्लटि रूपं । वर्णलोपश्छांदसः ॥

आ प॒शुं गा॒सि पृथि॒वीं वन॒स्पती॑नु॒षासा॒ नक्त॑मोष॒धीः ।

विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धी॒नां भू॒त प्रावि॑तारः ॥ २ ॥

आ । प॒शुं । गा॒सि । पृथि॒वीं । वन॒स्पती॑न् । उ॒षसा॑ । नक्तं । ओष॒धीः ।

विश्वे । च । नः । व॒सवः । वि॒श्वऽवे॒दसः । धी॒नां । भू॒त । प्र॒ऽअवि॑तारः ॥ २ ॥

पूर्वार्धेऽपिः संबोधते पश्चादिशब्दसङ्गावात् । हे अग्ने नोऽस्मदीये यज्ञे पशुमग्नीषोमीयं पशुं प्रत्या गासि । आगच्छसि ॥ गाह् गती । व्यत्ययेन परस्मैपदं ॥ तथा पृथिवीमिदं देवसदनं प्रति किंच वनस्पतीन् मथनसाधनानरणि रूपान्वनस्पतीन्प्रति तथोपासा ह्येतव्यत्वेनोषःकालं तथा नक्तं यष्टव्यतया रात्रिं च प्रति किंचाषधीः ॥ उष दाहेऽत्र मादनकर्मा ॥ ओषंति मायंत्वनेत्योषः सोमः । स धीयते निधीयते येष्वित्योषधयो यावाणः । तान्प्रत्यागच्छसि । यद्वा । ओषधयः फलपाकांतां क्षताः । ताः प्रत्यायाहि । अथवा हे स्तोतः पश्चादोना गासि । समंतात्पुहि ॥ कै गे शब्द इति धातुः ॥ ततो हे वसवो वासयितारो विश्ववेदसः सर्वधनाः सर्वज्ञाना वा हे विश्वे सर्वेऽपि देवाः नोऽस्मदीयानां कर्मणां प्रावितारो भूत । अग्नेनापिना सह यूयं प्रकर्षेण रचका भवत ॥

प्र सू नं ए॒त॒ध्वरो॑ऽग्ना दे॒वेषु॑ पू॒र्यः ।

आ॒दित्ये॑षु प्र वरुणे धृतव्र॑ते म॒रुत्सु॑ वि॒श्वभा॑नुषु ॥ ३ ॥

प्र । सु । नः । ए॒तु । अ॒ध्वरः । अ॒ग्ना । दे॒वेषु॑ । पू॒र्यः ।

आ॒दित्ये॑षु । प्र । वरु॑णे । धृत॑ऽव्रते । म॒रुत्सु॑ । वि॒श्वऽभा॑नुषु ॥ ३ ॥

पूर्यः पुरातनः । पूर्यान् पुरातनानिन्द्रादीन् देवान्प्रति क्रियमाणत्वाच्चोऽपि पूर्य इत्युच्यते । तादृशो मुख्यो नोऽस्मदीयोऽध्वरो यज्ञोऽप्य । सुपां सुगुणिति सप्तम्या डादेशः ॥ अग्नी । अपिर्देवानां मुख्यत्वात्प्रथममभिहितः । तस्मिन्नग्नी सन्नेष्वन्त्येषु देवेषु च सु सुष्ठु प्रेतु । प्रकर्षेण गच्छतु । देवान् विशिनष्टि । आदित्येष्वदितेः पुत्रेष्विन्द्रादिषु धृतव्रते धृतकर्मणि वरुणे च विश्वभानुषु सर्वतो व्याप्ततेजस्केषु मरुत्सु च प्रेतु ॥

विश्वे हि ष्मा मन॑वे वि॒श्ववे॑दसो भुव॑न्वृ॒धे रि॒शाद॑सः ।

अ॒रि॒ष्टेभिः पा॒युभिर्वि॒श्ववे॑दसो य॑तां नोऽवृ॒कं छ॒र्दिः ॥ ४ ॥

विश्वे । हि । स्म । मन॑वे । वि॒श्वऽवे॑दसः । भुव॑न् । वृ॒धे । रि॒शाद॑सः ।

अ॒रि॒ष्टेभिः । पा॒युऽभिः । वि॒श्वऽवे॑दसः । य॑तं । नः । अ॒वृ॒कं । छ॒र्दिः ॥ ४ ॥

विश्ववेदसः सर्वतो व्याप्तधनाः । वज्रधना इत्यर्थः । तादृशा रिशादसो रिशतां हिंसतां शत्रूणामसितार उपलपयितारो वा विश्वे हि यस्मै सर्वे खलु देवा मनवे । पृथ्ये चतुर्थी । मनोवृद्धे वर्धनाय भुवन् । भवन्तु । स्तोत्रे मनुष्याय धनं दत्त्वा तं वर्धयित्वाशास्ते । ततो हे विश्ववेदसः सर्वधनाः सर्वज्ञा वा देवाः अरिष्टेभिः पररहिंसितः पायुभिः पालनैः सद्भावृकं । वृकः स्तेनः । तद्रहितं । बाधारहितमित्यर्थः । तादृशं छर्दिर्गृहं नोऽस्मभ्यं यंत । प्रयच्छत । शत्रुन्हत्वा गृह्णन्स्वामिः कर्माणि कारयतेत्यर्थः ॥ यतेति यमेर्लोपि च्छांदसो विकरणस्य लुक् । तस्य तवादेशः । तेनानुनासिकलोपाभावः ॥



आ नो अद्य समनसो गन्ता विश्वे सजोषसः ।

अचा गिरा मरुतो देव्यदिते सदने पस्थ्ये महि ॥ ५ ॥

आ । नः । अद्य । सऽमनसः । गन्तं । विश्वे । सऽजोषसः ।

अचा । गिरा । मरुतः । देवि । अदिते । सदने । पस्थ्ये । महि ॥ ५ ॥

समनसः सर्वेषु लोकेषु समानमनस्का विश्वे सर्वे देवा यूयं सजोषसः परस्परं संगताः संतो गिरा । मुश्रूयुतया प्राप्तव्येत्यर्थः । तयर्चा सहावास्निव्यागदिने नो यष्टुनस्माना गन्तं । आगच्छत । अनन्तरं हे मरुतो देवि द्योतमाने महि महति देवानां मातृत्वान्महत्त्वयुक्ते हे अदितेऽदीन एतन्नामिके देवि सदने स्थाने पस्थ्ये ऽस्मदीये गृहे स्तोतव्यतयोपविशत ॥ मरुत इत्यादिर्वाक्यभेदादनिघातः । उत्तरत्र पूर्वस्यामंचितस्याविद्यमानवत्त्वेन वाक्यादित्वादनिघातः ॥ ३९ ॥

अभि प्रिया मरुतो या वो अश्या हव्या मित्र प्रयाथनं ।

आ बर्हिर्दिदो वरुणस्तुरा नर आदित्यासः सदंतु नः ॥ ६ ॥

अभि । प्रिया । मरुतः । या । वः । अश्या । हव्या । मित्र । प्रऽयाथनं ।

आ । बर्हिः । इंद्रः । वरुणः । तुराः । नरः । आदित्यासः । सदंतु । नः ॥ ६ ॥

हे मरुतः प्रिया प्रियाणि या यानि वो युष्माकमश्याश्यानि प्रियानश्वसंघानभि प्रयाथनं । अश्वयज्ञं प्रति प्रापयत । यूयमश्वयुक्ताः संत आगच्छेत्यर्थः । अथ हे मित्र । मित्रशब्देनान्ये वरुणादयोऽप्युच्यन्ते । हे मित्रादयो देवाः हव्या हव्यानि हवनयोग्यानि हवीषि स्वीकर्तुमागच्छेत्यर्थः । यूयमाना आगच्छत ॥ प्रपूर्वा-  
द्यातिर्लोपि तत्तन्मन्त्रनथनायेति यनादेशः ॥ आगत्य चंद्रो वरुण इंद्रावरुणौ तुराः संयामे शत्रुवधार्थं त्वरमाणा नरो नेतार आदित्यासोऽदितेः पुत्रा मरुदादयो देवाश्च जोऽस्मदीये यज्ञे बर्हिर्वर्हिष्यासादित आ सदंतु । आसीदंतु । प्रविशंतु ॥ सदेः सोदादेशाभावश्छांदसः ॥

वयं वो वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आनुषक् ।

सुतसोमासो वरुण हवामहे मनुष्वदिद्धामयः ॥ ७ ॥

वयं । वः । वृक्तऽबर्हिषः । हितऽप्रयसः । आनुषक् ।

सुतऽसोमासः । वरुण । हवामहे । मनुष्वत् । इद्धऽअमयः ॥ ७ ॥

हे वरुण वरुणादयो हे देवाः वृक्तबर्हिष ऋत्विजो वयमानुषक् सुगादिष्वनुषक्तं यथा भवति तथा हितप्रयसः । प्रीणातीति प्रयोऽज्ञं । तेषु निहितहविष्काः संतो वो युष्माक् हवामहे । एतानि हवीष्यादानुमा-  
ह्वयामः । कीदृशाः । सुतसोमासोऽभिषुतसोमा इक्ष्वापय आऊतिभिः समिक्षापयो वयमाह्वयामः । तत्र दृष्टान्तः । मनुष्वत् । मनुष्यथा यज्ञे युष्मानाजुहाव तद्वत् ॥

आ प्र यात मरुतो विष्णो अश्विना पूषन्माकीनया धिया ।

इंद्र आ यातु प्रथमः सनिषुभिर्वृषा यो वृचहा गृणे ॥ ८ ॥

आ । प्र । यात । मरुतः । विष्णो इति । अश्विना । पूषन् । माकीनया । धिया ।

इंद्रः । आ । यातु । प्रथमः । सनिषुऽभिः । वृषा । यः । वृचऽहा । गृणे ॥ ८ ॥

हे विश्वे देवाः प्र यात । प्रकर्षेणास्त्रदीयकर्माण्यागच्छत । हे मरुतो हे विष्णो स्ववलेन सर्वतो व्याघ्रैत-  
न्नामक देव हे अश्विनाश्विनी पूषन् । स्तोतृन्धनादिना पोषयतीति पूषा । एतन्नामक देव मरुदादयो हे देवाः  
माकीनया ॥ अस्मच्छब्दाद्युष्मदस्यदोः । पा० ४. ३. १. इति खञ् शैषिकः । एकवचने तवकममकाविति मम-  
कादेशः । वर्णलोपश्छांदसः ॥ मया क्रियमाणया धिया जुत्वा सहास्यञ्च प्रत्यागच्छत ॥ मरुदादेरामंचितस्य  
वाक्यमिदादनिघातः ॥ किंच प्रथमो देवानां मुख्यः स इंद्रया यातु । वृषा कामानां सेक्ता य इंद्रः सनिष्पुमिः ।  
सनिः संभजनं । तदात्मन इच्छन्निः स्तोतृभिर्वृचहापाभावकस्य वृचासुरस्य हतेति गृणे सूयते ॥ वृ शब्द इत्यस्य  
कर्मणि लिटि छांदसो विकरणः ॥

वि नो देवासो अद्रुहोऽच्छिद्रं शर्म यच्छत ।

न यदूराड्सवो नू चिदंतितो वरूथमादुधर्षति ॥ ९ ॥

वि । नः । देवासः । अद्रुहः । अच्छिद्रं । शर्म । यच्छत ।

न । यत् । दूरात् । वसवः । नु । चित् । अंतितः । वरूथं । आऽदुधर्षति ॥ ९ ॥

हे अद्रुहः स्तोतृणामद्रोऽगारः । यद्वा ॥ द्रुहेरीणादिकः कर्मणि क्तिप् ॥ शत्रुभिरहिंसाः । हे देवासो  
मरुदादयो देवाः अच्छिद्रं बाधकरहितं साधीयो वा शर्म । गृणाति दुःखादिकमिति शर्म गृहं । तन्नोऽस्मभ्यं  
वि यच्छत । हे वसवः शत्रूणां वासयितारो मरुदादयः दूरादूरदेशादंतितोऽतिकदेशाद्वा कस्यदागत्य नू  
चित्कदाचिदपि वरूथं वरणीयं संभजनीयं यद्वृहं नादुधर्षति आधर्षणं हिंसनं न करोति तद्वृहं प्रत्यच्छतेति  
समन्वयः ॥ धृप प्रसहन इत्यस्य विभाषितणिच्त्वात् यदा णिच् नास्ति तदा रूपं ॥

अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्यायं ।

प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षु सुज्ञाय नव्यसे ॥ १० ॥

अस्ति । हि । वः । सऽजात्यं । रिशादसः । देवासः । अस्ति । अयं ।

प्र । नः । पूर्वस्मै । सुविताय । वोचत । मक्षु । सुज्ञाय । नव्यसे ॥ १० ॥

हे रिशादसो रिशतां हिंसतामसितारो देवासो देवा ब्योतमाना मरुदादयः वो युष्माकं सजात्यमस्ति ।  
परस्परं समानजातिभावोऽस्ति खलु । किंचायं । आपिर्वंधुः । तस्य भाव आयं । स्तोतृषु सुत्यलक्षणेन संबन्धा-  
द्वैवस्वतेन मनुना मया स्तोत्रा सह युष्माकं बंधुभावोऽस्ति खलु । ततः पूर्वस्मै प्रथमभाषिने सुविताय । सुधीयते  
सर्वरागम्यत इति सुवितोऽभ्युदयः । तस्मै नव्यसे नवीयसे नवतराय सुज्ञाय च उभयं मनु शीघ्रं नोऽस्माकं प्र  
वोचत । प्रकर्षेण ब्रूत । अभ्युदयधनानि प्रयच्छतेत्यर्थः ॥ ॥ ३२ ॥

इदा हि व उपस्तुतिमिदा वामस्य भक्तये ।

उप वो विश्ववेदसो नमस्युराँ असृक्ष्यन्तामिव ॥ ११ ॥

इदा । हि । वः । उपऽस्तुतिं । इदा । वामस्य । भक्तये ।

उप । वः । विश्वऽवेदसः । नमस्युः । आ । असृक्षि । अन्याँऽइव ॥ ११ ॥

हे विश्ववेदसः सर्वधना हे देवाः नमस्युरन्नमिच्छन् मनुगृहं वो युष्मद्विषयामुपस्तुतिमन्यामिवाद्दृष्टपूर्वामिव  
स्थितां । किंचिदप्युक्ततामित्यर्थः । तादृशीमुपस्तुतिमिदा हि । हिरवधारणे । इदानीमेवोपास्त्विति । उपास्त्विति ।  
करोमीत्यर्थः । किमर्थं । वो युष्मत्संबन्धिनो वामस्य वननीयस्त्रेदेदानीमेव भक्तये संभजनाय । जामायेत्यर्थः ॥  
अदचीति सजेर्नुङि रूपं । पादादित्वादिनिघातः ॥



उदु ष वः सविता सुप्रणीतयोऽस्यादूर्ध्वो वरेण्यः ।

नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनोऽविश्रन्पतयिष्णवः ॥ १२ ॥

उत् । ऊं इति । स्यः । वः । सविता । सुऽप्रनीतयः । अस्यात् । ऊर्ध्वः । वरेण्यः ।

नि । द्विऽपादः । चतुऽपादः । अर्थिनः । अविश्रन् । पतयिष्णवः ॥ १२ ॥

हे सुप्रणीतयः । शोभनप्रणीतिः क्षुतिः । शोभनप्रणयनाः शोभनक्षुतयो मरुतः वो युष्माकं मध्ये ऊर्ध्वं गता वरेण्यः सर्वैर्वरणीयः संभजनीयः स सविता सर्वस्य स्वकर्मणि प्रेरक एतन्नामकः स देवो यदोदस्यात् स्वतेजसोन्नतोऽभूत् तदार्थिनो द्विपादो पादद्वययुक्ताः पुरुषाश्चतुष्पादः पादचतुष्टययुक्ता अथादयः पतयिष्णवः पतनशीलाः पथिणश्च न्यविश्रन् । स्वस्वकार्येषु निविशन्ति । सूर्यं उदिते केचन पुरुषा अपिहोषादिकं कुर्वन्ति केचन देवताविषयं सोचं कुर्वन्ति । पश्चादयश्चतुष्पादिमन्त्रणार्थं सर्वत्र संचरन्ति ॥ न्यविशन् । निपूर्वादिशतेर्लङि व्यत्ययेन परस्मैपदं । बज्रं लं छंदसीति रुडागमः ॥

पंचमेऽहनि प्रउगशस्त्रे देवदेवमिति वैश्वदेवस्तुतः । सूचितं च । देवदेवं बृहदु गाथिपे वचः । आ० ७. १२. इति ॥

देवदेवं वोऽवसे देवदेवमभिष्टये ।

देवदेवं हुवेम वाजसातये गृणंतो देव्या धिया ॥ १३ ॥

देवंऽदेवं । वः । अवसे । देवंऽदेवं । अभिष्टये ।

देवंऽदेवं । हुवेम । वाजऽसातये । गृणंतः । देव्या । धिया ॥ १३ ॥

वयं देव्या बोतमानया धिया क्षुत्या गृणंतः क्षुवंतः संतो वो युष्माकं मध्ये देवं देवं दीप्यमानं देवमवसे कर्मरक्षणया ह्वयाम । अनुक्रमेणाह । अभिष्टयेऽभिलषितप्राप्त्यर्थं च देवं देवं वयमाह्वयाम । ततो वाजसातये ऽन्नलाभाय ऊवेम । ह्वयाम ॥

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः ।

ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवंतु वरिवोविदः ॥ १४ ॥

देवासः । हि । स्म । मनवे । सऽमन्यवः । विश्वे । साकं । सऽरातयः ।

ते । नः । अद्य । ते । अपरं । तुचे । तु । नः । भवंतु । वरिवऽविदः ॥ १४ ॥

समन्यवः समानमनसः यद्वा संग्रामेषु शत्रुहननार्थं समानक्रोधयुक्ता विश्वे सर्व एव देवासो हि ष्म मरुदादयो देवाः खलु मनव एतन्नामकार्थये मह्यं साकं सह युगपदेव सरातयो धनादिदानेन सहिता भवन्तु । पुनरपि प्रार्थयते । ते देवा नोऽस्माकमव्याप्तिन्दिनेऽपरं च किं बज्रना संवेषु दिवसेषु धनदातारो भवन्तु । न केवलमस्माकमेव किंतु तुचे । तुगित्यपत्यनाम ॥ तुजि पिजि हिंसादाननिकेतनेषु ॥ तोजयति हिनस्ति पितुर्दुःखादिकमिति तुक् पुचः । तस्मै नोऽस्माकं पुत्राय वरिवोविदो वरणीयस्य धनस्य संभयितारो भवन्तु ॥

प्र वः शंसाम्यदुहः संस्थ उपस्तुतीनां ।

न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यो यो वो धामभ्योऽविधत् ॥ १५ ॥

प्र । वः । शंसामि । अदुहः । संऽस्थे । उपऽस्तुतीनां ।

न । तं । धूर्तिः । वरुण । मित्र । मर्त्यः । यः । वः । धामऽभ्यः । अविधत् ॥ १५ ॥

हे अद्भुतोऽद्भोग्धारोऽहिंसा वा मरुदादयः उपसुतीनामुपसुतीचाणां संख्ये तासां यज्ञे क्रियमाणत्वाद्-  
स्वात्संख्यानभूतेऽस्मिन् यज्ञे वो युष्मान् प्र शंसामि । प्रकर्षेण स्तौमि । हे वरुण मित्र मित्रावरुणौ तं मत्वं मनुष्यं  
धूर्तिः ॥ धूर्तो हिंसार्थः ॥ शत्रुभ्यो हिंसा तं च बाधते यो मनुष्यो वो युष्माकं धामभ्यस्तेजोभ्यः । धीयते  
ऽस्मिन्निति धाम शरीरं वा । तेभ्योऽविधत् ॥ विध विधाने ॥ हवींषि विदधाति प्रयच्छति । एतेन तेजसासांप  
हविर्भक्षयमस्तीति ज्ञायते ॥

प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ।

प्र प्रजाभिर्जायते धर्मेणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते ॥ १६ ॥

प्र । सः । क्षयं । तिरते । वि । महीः । इषः । यः । वः । वराय । दाशति ।

प्र । प्रऽजामिः । जायते । धर्मेणः । परि । अरिष्टः । सर्वः । एधते ॥ १६ ॥

हे मरुदादयः स मनुष्यः चयं । चिर्यति निवसत्येति चयो गृहं । तत्स मनुष्यः प्र तिरते । प्रकर्षेण  
वर्धयति । तिरतिर्बुद्धिकर्मा । स एव महीर्महांतीषोऽन्नानि च वि वर्धयति यो मनुष्यो वराय वरणीयाय  
धनाय तदर्थं वो युष्मभ्यं दाशति हवींषि प्रयच्छति । धनादिभिर्वर्धयतीत्यन्वयः । किंच धर्मेणः । ध्रियत  
श्चत्विभिरिति धर्मं कर्म । युष्मद्विषयात्कर्मणः सकाशात्स मनुष्यः प्रजामिः पुत्रपौत्रादिभिः परि परितः  
सर्वतः प्र जायते । प्रकर्षेणाविर्भवति । आत्मा वै पुत्रनामासि । शत० १४. ९. ४. २६. इति श्रुतेः । ततोऽरिष्टो  
ऽन्यैरहिंसितः सर्वो युष्माकं हविष्प्रदानात्सकलो जन एधते । धनादिभिर्वर्धते ॥ ॥ ३३ ॥

ऋते स विंदते युधः सुगेभिर्यत्नध्वनः ।

अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं चार्यते सजोषसः ॥ १७ ॥

ऋते । सः । विंदते । युधः । सुऽगेभिः । याति । अध्वनः ।

अर्यमा । मित्रः । वरुणः । सऽरातयः । यं । चार्यते । सऽजोषसः ॥ १७ ॥

सोऽर्यमादीनां हविर्दाता मनुष्यो युधः ॥ युध संप्रहरि । मवे क्रिप ॥ युद्धादृते विनापि विंदते । धनानं  
लभते । किंच सुगेभिः शोभनगमनैः सुष्ठु गंतुभिर्वाद्यैः सहाध्वनो मार्गान् । गंतव्यान्देष्टानित्यर्थः । तान् याति ।  
गच्छति । यं जनमर्यमा सततं गच्छन् मित्रः स्तोत्राणां यष्टूणां च धनप्रदानेन मित्रभूतो वरुणो निवारयिता  
शत्रूणां यद्वा वरणीयः संभजनीय एतन्नामकाः सरातयः समानदानास्त्रयो देवाः सजोषसः परस्परं संगताः  
संतो यं हव्यप्रदातारं चार्यते स्वरुणैः पालयन्ति स धनादीनि विंदतीत्यन्वयः ॥

अज्ञे चिदस्मै कृणुथा न्यंचनं दुर्गे चिदा सुसरणं ।

एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्त्रेधंती वि नश्यतु ॥ १८ ॥

अज्ञे । चित् । अस्मै । कृणुथ । निऽअंचनं । दुऽगे । चित् । आ । सुऽसरणं ।

एषा । चित् । अस्मात् । अशनिः । परः । नु । सा । अस्त्रेधंती । वि । नश्यतु ॥ १८ ॥

हे देवाः अज्ञे चित् ॥ जि अभिमवे ॥ परैरनभिभवनीयेऽपि परपुत्रे न्यंचनं नितरां गमनमस्मी मनवे  
कृणुथ । यूयं कुरुत । यद्वा । अज्ञ अज्ञगमने प्रस्ये गमनं कुरुत । तथा दुर्गे चिदगंतव्येऽपि स्थले सुसरणं ॥ स  
गती ॥ शोभनगमनमा समंतात्कुरुत । एवं सति सैषाशनिः शत्रूणां तदेतदायुधमस्मात्सर्वतो गंतुर्मनोर्नु चिप्रं  
परः परस्ताद्भवत् । पश्चात्साशनिरस्त्रेधंती कांश्चिदप्यहिंसती वि नश्यतु । विनष्टा भवत् ॥



यद्य सूर्य उद्यति प्रियंश्च चतुतं दध ।

यन्निमुचिं प्रबुधि विश्ववेदसो यज्ञा मध्यंदिने दिवः ॥१९॥

यत् । अद्य । सूर्ये । उत्तयति । प्रियंश्चचाः । चतुतं । दध ।

यत् । निऽमुचिं । प्रऽबुधि । विश्वऽवेदसः । यत् । वा । मध्यंदिने । दिवः ॥१९॥

हे प्रियञ्चचाः प्रीणयितुञ्चला देवाः सूर्ये सर्वस्य स्वस्वकर्मणि प्रेरके सवितर्युबल्युन्नच्छति सत्यवाशिन्दिने यद्यदा चतुतं कक्षाणभूतं गुहं दध धारयत ॥ दधातेर्लिटि मध्यमबहुवचने रूपं ॥ यद्यदा हे विश्ववेदसः सर्वधना देवाः निमुचि । मुचिर्गत्यर्थः । सूर्यस्य निमोचने नितरां गमने । सायमित्यर्थः । तस्मिन् धारयत । यद्यदा प्रबुधि तस्य प्रबोधने प्रातःकाले । यद्यदा दिवः सूर्यतेजसा दीप्यमानस्त्राहो मध्यंदिने मध्ये धनं गमने धत्तेत्युत्तरत्र संबंधः ॥

यज्ञाभिपित्वे असुरा चतुतं यते छर्दिर्येम वि दाप्नुवे ।

वयं तन्नो वसवो विश्ववेदस उप स्थेयाम मध्य आ ॥२०॥

यत् । वा । अभिऽपित्वे । असुराः । चतुतं । यते । छर्दिः । येम । वि । दाप्नुवे ।

वयं । तत् । वः । वसवः । विश्वऽवेदसः । उप । स्थेयाम । मध्ये । आ ॥२०॥

हे असुराः प्राज्ञाः संयाम आप्ताणां चेतारो वा देवाः यद्वाभिपित्वेऽस्वयञ्च प्रति युष्माकमभिप्राप्तवृत्तं सत्यभूतं यज्ञं यते ॥ इणः शतरि रूपं ॥ गच्छते दाप्नुवे हवींषि दत्तवते यद्यमानाय छर्दिः ॥ छर्दिर्दोषिदेव-  
नयोः ॥ दीप्यतेऽनेनेति छर्दिस्तेजः । यद्यदा । छर्दिति दीप्यतेऽनेनेति छर्दिर्गुहं । तन्नृहं तेजो वा वि येम प्रयच्छत । यद्येवं यूयं कुर्वथ तर्हि वयं हे वसवः सोतृणां धनादिभिराच्छादयितारः यद्यदा शत्रूणां विवासयितारो विश्ववेदसः सर्वधनाः सर्वज्ञाना वा हे देवाः वो युष्मात्संबंधि तत्कक्षाणं गुहं । षष्ठ्यर्थे द्वितीया । मवन्निः प्रत्तस्य गुहस्य मध्य उप स्थेयाम । उपतिष्ठेम । युष्मान्हविर्भिः पूजयेम ॥ तिष्ठतेराशीर्लिङि लिङ्या-  
शिथ्यङित्यङ्प्रत्ययः ॥

यद्य सूर उदिते यन्मध्यंदिन आतुचि ।

वामं धत्थ मनवे विश्ववेदसो जुहानाय प्रचेतसे ॥२१॥

यत् । अद्य । सूरै । उत्तयति । यत् । मध्यंदिने । आऽतुचि ।

वामं । धत्थ । मनवे । विश्वऽवेदसः । जुहानाय । प्रऽचेतसे ॥२१॥

हे विश्ववेदसः सर्वतो व्याप्तधना हे देवाः यद्यदाद्येदानीं । यद्यदा सूर्य उदिते सति । यद्यदा मध्यंदिने दिवसस्य मध्ये । यद्यदातुचि । आतुचिर्गमनार्थः । सूर्यस्य निमोचने । सायमित्यर्थः । जुहानायापीं हवींषि जुहुते अत एव प्रचेतसे प्रकृष्टज्ञानाय मनव एतन्नामकार्यर्थे मह्यं वामं वचनीयं धनं धत्थ दत्थ तद्वृणीमहे इत्युत्तरत्र संबंधः ॥

वयं तन्नः सम्राज आ वृणीमहे पुत्रो न बहुपाय्यं ।

अश्याम तदादित्या जुहंतो हविर्येन वस्योऽनशमहे ॥२२॥

वयं । तत् । वः । संऽराजः । आ । वृणीमहे । पुत्रः । न । बहुऽपाय्यं ।

अश्यामं । तत् । आदित्याः । जुहंतः । हविः । येन । वस्यः । अनशमहे ॥२२॥

हे सखाजः सम्यग्दीप्यमाना देवाः पुत्रो न ॥ एकवचनं छांदसं ॥ शुष्माकं पुत्रा इव खिताः पुत्रा यथा पितुभिः पोष्याः तद्वशुष्माभिः पोष्या वयं । वज्रपात्यं वज्रभिर्मोक्षं वो शुष्मत्संबन्धि तद्धनमश्नाम । प्राप्नुयाम । येन धनेन वस्यो वस्योयोऽतिशयेन वसुमत्त्वमनश्नामहे अन्नवामहे प्राप्नुमः ॥ अन्नोतेर्लोडि अत्ययेन अन्नात्ययः ॥ ॥ ३४ ॥

ये चिंशतीति पंचर्चमष्टमं सूक्तं । अचाशुकांतं । ये चिंशति पंचोपांत्या पुरउष्णिगिति । मनुर्हृषिः । प्रान्वत्सप्रोचपरिभाषया गायत्री छंदः । उपांत्या पुरउष्णिक् । पूर्ववद्विधे देवे देवता ॥ तृतीये छंदोमे वैश्वदेवशस्त्रे ये चिंशतीत्यितसूक्तं वैश्वदेवनिविष्टानं । सूचितं च । ये चिंशतीति वैश्वदेवं । आ० ८. ११. इति ॥

ये चिंशति चयस्परो देवासो बहिरासदन् । विदन्नहं द्वितासन्नन् ॥ १ ॥

ये।चिंशति।चयः।परः।देवासः।बर्हिः।आ।असदन्।विदन्।अहं।द्विता।असन्नन्॥१॥

मनुराह । चिंशति चिंशत्संख्यायाः परः परस्तात्तयः । चयस्त्रिंशद्देवता इत्यर्थः । ये देवासो देवा बर्हिरासदीययज्ञसंबन्धिनि बर्हिषि हविःस्वीकारणार्थमासदन् आसीदंतु अथानंतरं विदन् ते देवा अस्मान्-विषां प्रदातृनिति आनंतु । ततो द्विता द्विधा द्विप्रकारमसन्न । अन्नार्थं धनं पश्चादिकं च प्रयच्छंतु । यद्वा । द्विता द्विधं । अनेन पीनः पुन्यं लक्ष्यते । पुनः पुनरन्नार्थं धनादिकं ददत्तित्यर्थः ॥

वरुणो मिचो अर्यमा स्मद्रातिषाचो अमयः । पत्नीवंतो वषट्कृताः ॥ २ ॥

वरुणः।मिचः।अर्यमा।स्मद्रातिऽसाचः।अमयः।पत्नीऽवंतः।वषट्कृताः॥२॥

वरुणो वरुणीयः संभजनीयो मिचः स्तोतृणां यष्टृणां च धनादिदानेन मिचभृतोऽर्यमा स्तोत्रकारिणे धनं प्रापयन् यद्वा सततं गच्छन् एतन्नामकास्त्रयो देवाः स्मद्रातिषाचः । स्मत् सुमच्छोभना रातिर्हविष्प्रदानं येषामस्तीति स्मद्रातयो यजमानाः तान् सचन्ते धनादिप्रदानेन सेवंत इति तथोक्ताः । यद्वा । कल्याणं यथा भवति तथा हविषां दातुन् सचन्त इति । ते तादृशाः पत्नीवंतो देवपत्नीसहिता अपयोऽग्नशीला गानाविधा अपयो वषट्कृताः । मया सोमस्यापि वीहि वीषडित्यादिना स्वाहाकृताः । सुकृता इत्यर्थः ॥

ते नो गोपा अपाच्यास्त उदक्त इत्या न्यक् । पुरस्तात्सर्वेया विशा ॥ ३ ॥

ते।नः।गोपाः।अपाच्याः।ते।उदक्।ते।इत्या।न्यक्।पुरस्तात्।सर्वेया।विशा॥३॥

ते वरुणादयो देवाः सर्वेया सर्वेण विशानुचरवर्गेण सहापाच्याः । अपाची प्रतीची । ततो नोऽस्माकं गोपा गोपाधितारो भवंतु । त एव उदगुदीच्याः ॥ अंचेर्लुगिति पंचम्यर्थे विहितस्यास्मातेर्लुक् ॥ ततोऽप्यस्माकं रक्षका भवंतु । इत्येति शब्देनोर्ध्वा दिशं दक्षिणां च निदिशति । इत्यमनेन पूर्वोक्तेन प्रकारेणोर्ध्वाया दक्षिणस्याश्च दिशस्ते देवा अस्माकं पालयितारो भवंतु । तथा न्यपीच्या दिशः ॥ अत्रापि पूर्ववदस्मातेर्लुक् ॥ अधक्षादेवाप्यस्माकं चातारो भवंतु । किंच पुरस्तात्पाच्या दिशश्च ते देवा अस्माकं गोपाधितारो भवंतु ॥

यथा वशंति देवास्तथेदं सत्तदेषां नकिरा मिनत् । अरावा च न मर्त्यः ॥ ४ ॥

यथा।वशंति।देवाः।तथा।इत्।असत्।तत्।एषां।नकिः।आ।मिनत्।अरावा।

चन।मर्त्यः॥४॥

देवा द्योतमानाः सर्वे देवा यथा वशन्ति यथा कामयन्ते ॥ वशं कांतौ । संसारणाच्चेति पूर्ववत्पक्षं छंदसि विकल्पितत्वाद्यणादेशः ॥ तथेयथोशन्ति तथैवासत् । तद्वयविव । तदेवाह । एषां देवानां तत्कामनं नकिर्न काचिदपि मिनत् । हिनस्ति ॥ मीड् हिंसायां । लेटि रूपं । मीनातेर्निगम इति ब्रह्मत्वं ॥ कथं देवाना-मभिर्ज्ञापितं तथा भवतीति चेत् तदाह । अरावा । यदि देवाः कस्यचिदप्यदातारं मनुष्यं कामयेरन् तदारा-



वादाता । चनेत्यर्थः । अदातापि मर्त्यो मनुष्य उग्रश्चो देवेभ्यो हवींषि प्रयच्छति । तस्मान्नेषां यत्कामं तत्तथा भवत्येवेत्यर्थः ॥

सप्ता॒नां स॒प्त ऋ॒ष्टयः॑ स॒प्त द्यु॒द्धान्ये॑षां । स॒प्तो अ॒धि श्रि॒यो धिरे॑ ॥ ५ ॥

सप्ता॒नां । स॒प्त । ऋ॒ष्टयः । स॒प्त । द्यु॒द्धानि॑ । ए॒षां । स॒प्तो इति॑ । अ॒धि । श्रि॒यः । धिरे॑ ॥ ५ ॥

अथ पुरातनी कथा । इन्द्रसमानं पुत्रमिच्छन्त्या अदिर्तेर्गर्भस्य केनचित्कारणेनेद्रेण सप्तधा भिन्नत्वात् गर्भः सप्तगणात्मकोऽभवत् । ततो मरुतः संपन्नाः । सप्तगणा वै मरुतः । तै० सं० २. २. ११. १. इति श्रुतेः । एषा कथेदं पितृ मरुतामुच्यते वचः । ऋ० १. ११४. ६. इत्यस्मिन्वेगे सप्तपंचेनाभ्यधाधि । तथा चास्या ऋचोऽयमर्थः । सप्ता॒नां मरु॒तां गणा॑नां स॒प्त सप्तसंख्या॑का ऋष्टय आयुधविशेषा विभिन्नाः संति । तथा सप्त सप्तसंख्या॑कानि द्युद्धानि द्योतमानानि कुंडलादीन्याभरणानि । द्युद्धान्यन्नाणि वा । एषां गणानां विभिन्नानि संति । ततः सप्त मरुतां गणाः सप्तो सप्तिव सप्तविधाः श्रियः सकला दीप्तोरधि धिरे । परस्परमधिकं दधिरे ॥ ३५ ॥

बभुरेक इति दशर्वं नवमं सूक्तं । मरीचिपुत्रः कश्यपो वैवस्वतो मनुर्वा ऋषिः । तथा चानुकम्यते । बभुर्दश कश्यपो वा मारीचो द्वैपदमिति । दशापि द्विपदा विश्वत्पचरा विराजः । पूर्ववद्विष्टे देवा देवता ॥ तुतीये छंदोमे वैश्वदेवसूक्तात्पूर्वमेव द्वैपदं सूक्तं शंसनीयं । सूच्यते हि । बभुरेक इति द्विपदासूक्तानि पुरस्ताद्वैश्वदेवसूक्तानां । आ० ८. ७. इति ॥

ब॒भुरे॒को वि॒षुणः॑ सू॒नरो॑ युवां॒ज्यं॒क्ते हि॒र॒ण्य॒यं ॥ १ ॥

ब॒भुः । ए॒कः । वि॒षुणः । सू॒नरः । युवां॑ । अं॒जि । अं॒क्ते । हि॒र॒ण्य॒यं ॥ १ ॥

अथ दशानामृचां किंचित्पदं किंवात्पृथग्देवतं । अथ प्रथमायां बभुरित्यनेन सोमोऽभिधीयते । सौम्यं बभुमा लभेत । तै० सं० २. १. ३. ३. इत्यादिषु दृष्टत्वात् । बभुर्वंधुवर्णः श्वलतादिषु परिपक्वः । यद्वा ॥ तुभृञ् धारणपोषणयोः । कुर्वन् । उ० १. २३. इति कुप्रत्ययः ॥ सर्वस्य सुधामयैः किरणैस्तावदुन्नते चंद्रमसि दुःखोपशमनानि पुष्टानि खलु । तादृशो विपुणो विष्वगंशनः सूनरः सुष्ठु राक्षीणां नेता । राक्षयचंद्रनेतृकाः खलु । एतादृशो युवा प्रतिदिचसमाविर्भूतत्वान्नरुण एको देवः सोमो हिरण्ययं हिरण्यमयमंवि । अभिव्यज्यते प्रकाशतेऽनेनेत्यंश्याभरणं । अभिव्यक्तिसाधनं कुंडलमुकुटादिकं स्वशरीरमंते । अभिव्यंजयति ॥

योनि॒मे॒क आ॑ संसाद् द्योत॒नोऽत॑र्दे॒वेषु॑ मे॒धिरः॑ ॥ २ ॥

योनिं॑ । ए॒कः । आ॑ । संसाद् । द्योत॒नः । अंतः॑ । दे॒वेषु॑ । मे॒धिरः॑ ॥ २ ॥

अथ योनिमिति लिंगादभिष्टयते । अथ गृहपतय इत्यादिषु दृष्टत्वात् । देवेषु देवानामंतर्मध्ये द्योतनः स्वतेजसा दीप्यमानो मेधिरः मेधावी । अथवा मेधाकांचिणां स्तोत्राणां मेधादातुल्येन मेधायुक्तः । एवंविध एकोऽपिर्योनिं स्थानभूतमाहवनीयादिकमा संसाद् । हविःस्वीकरणार्थमासीदति ॥

वा॒शी॒मे॒को बि॒भर्ति॑ ह॒स्त आय॑सीमंतर्दे॒वेषु॑ नि॒धुविः॑ ॥ ३ ॥

वा॒शी । ए॒कः । बि॒भर्ति॑ । ह॒स्ते । आय॑सी । अंतः॑ । दे॒वेषु॑ । नि॒धुविः॑ ॥ ३ ॥

देवेष्वंतर्देवानां मध्ये द्योतमानो निधुविर्निश्चले स्थाने वर्तमानः । यद्वा । नितरां गमनमस्मासीति निधुविः सर्वदा गच्छन् । अथवा संयामेषु शत्रूणां पुरतोऽतिशयेन स्वीरवान् । एतादृश एकस्त्वष्ट्रनामको देव आयसीमयोमयधारां वाशीं ॥ वाशु शब्दे ॥ शब्दयत्वाकंदयति शत्रून्जयेति वाशी तपसाधनं कुठारः । तं स्वीये हस्ते बिभर्ति । धारयति ॥

वज्र॒मे॒को बि॒भर्ति॑ ह॒स्त आ॑हि॒तं तेन॑ वृ॒चाणि॑ जि॒घ्रते॑ ॥ ४ ॥

वज्रं॑ । ए॒कः । बि॒भर्ति॑ । ह॒स्ते । आ॑हि॒तं । तेन॑ । वृ॒चाणि॑ । जि॒घ्रते॑ ॥ ४ ॥

अथ वज्रलिङ्गादिन्द्रो देवता । एक इन्द्र आहितं स्वकीयहस्ते निहितं वज्रमेतन्नामकमायुधं विभर्ति । धत्ते । स एवेन्द्रस्तेन निहितेन वज्रेण वृचाख्यावरकाणि रक्षांसि पापानि वा जिघ्रते । शृणुं हन्ति ॥

तिग्ममेको विभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुयो जलाषभेषजः ॥ ५ ॥

तिग्मं । एकः । विभर्ति । हस्ते । आयुधं । शुचिः । उयः । जलाषभेषजः ॥ ५ ॥

अथ जलाषभेषज इत्यनेन इन्द्रोऽभिधीयते । शुचिः ॥ शुच दोष्ता ॥ सर्वतः स्वतेजसा दीप्यमानः । यद्वा ॥ शुच शोके ॥ शत्रूणां शोचयिता दुःखयिता । अत एवोय उन्नूर्णवत्तो जलाषभेषजो रोगापनयनेन सुखकरभेषज्यवान् । यद्वा । सोतृणां दुःखरूपसंसारोच्छेदेन सुखकारिभेषयूपः । प्रथमो देवो मिषगित्यादियुतिभिरस्त्र मिषत्वं श्रूयते । तादृश एको इन्द्रस्तिग्मं तीक्ष्णधारमायुधं । आयुध्यति संप्रहरति शत्रून्नेनेत्यायुधं पिनाकः । तं स्वकीये हस्ते विभर्ति ॥

पथ एकः पीपाय तस्करो यथा एष वेद निधीनां ॥ ६ ॥

पथः । एकः । पीपाय । तस्करः । यथा । एषः । वेद । निऽधीनां ॥ ६ ॥

पथ इति लिंगेन पूषा निगद्यते । सं पूषन्नध्वनस्तिर । ऋ० १. ४२. १. इत्यादिषु दृष्टत्वात् । एकः पूषनामको देवः पथो मार्गान् पीपाय । प्यायतिर्वधनकर्माप्यत्र रचणार्थः । येऽपिहोवादि कर्म कुर्वन्ति तेषां स्वर्गमार्गं ये दुष्कृतं कर्म कुर्वन्ति तेषां यातनामार्गं च रचन्ति । उभयेषां मार्गविपर्ययो यथा न भवति तथा पालयतीत्यर्थः । एष सोऽयं पूषा निधीनां पुथिव्यां निहितानि धनानि वेद । वेत्ति । ज्ञात्वा सोतृणां तानि ददातीत्यर्थः । तत्र दृष्टातः । तस्करो यथा । यथा चोरः पथि गच्छतां पुरुषाणां धनहरणार्थं मार्गं रचन्ति तथा च स चोरो गृहे निहितानि ज्ञात्वा तदाहृत्य स्वसहायेभ्यो यथा तानि ददाति तद्वत् ॥

चीरयेक उरुगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति ॥ ७ ॥

चीरिणं । एकः । उरुऽगायः । वि । चक्रमे । यत्र । देवासः । मदन्ति ॥ ७ ॥

उरुगायो वि चक्रम इति पदलिङ्गाद्विष्णुरुच्यते । उरुगाय उरुभिर्वज्रभिर्गातव्यः । यद्वा । वज्रेषु देशेषु गता वज्रकोर्तिर्वा । सर्वाञ्छत्रुन् स्वसामर्थ्येन शब्दयत्वाक्रन्दयतीति उरुगायः । एतादृश एकोऽसहायो विष्णुस्त्रोणि पदानि भुवनानि वि चक्रमे । साधु पादेन विक्रांतवान् ॥ वेः पादविहरणे । पा० १. ३. ४१. इति क्रमतेरात्मनेपदं ॥ यत्र येषु लोकेषु देवास इन्द्रादयो देवा मदन्ति यजमानदत्तैर्हविर्भिर्मावन्ति तानि वि चक्रम इत्यन्वयः ॥

विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः ॥ ८ ॥

विऽभिः । द्वा । चरतः । एकया । सह । प्र । प्रवासाऽइव । वसतः ॥ ८ ॥

एकया सहति लिंगादध्वनावभिधीयते । द्वा द्वौ द्वित्वसंख्योपेतावस्थिनी विभिः ॥ वी गत्यादिषु । क्षिप्र । कांदसो ह्रस्वः ॥ गमनसाधनैरश्चरतः । संचरेते । किंचिमावस्थिनाविकया सूर्याख्यया ताभ्यां स्वयंवृतया स्त्रिया सह प्र वसतः । प्रवासं सर्वत्र गमनं कुरुतः । प्रवासे दृष्टांतः । प्रवासेव । यथा प्रवासिनौ द्वौ पुरुषाविकया स्त्रिया सह प्रवसतस्तद्वत् ॥

सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती ॥ ९ ॥

सदः । द्वा । चक्राते इति । उपऽमा । दिवि । संऽराजा । सर्पिरासुती इति सर्पिःऽआसुती ॥ ९ ॥



सम्राजाविति लिङ्गेन मित्रावरुणावभिधीयते । उपमोपमौ परस्परं स्वकांत्वोपमानभूतौ । यद्वा । उपमीयत आभ्यां सर्वमित्युपमी सर्वस्य । एतावैव सम्राजा सम्राजौ सम्यग्दीप्यमानौ सर्पिरासुतौ । सर्पिर्धृतमाभ्यामासूयत इति सर्पिरासुतौ । धृतहविष्कौ द्वा द्वौ मित्रावरुणौ दिवि बुल्लोके सद्ः । सीदंत्यचेति सद्ः स्थानं । तच्च-  
क्राते । अकाष्टौ ॥

अर्चन्त एके महि सामं मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥१०॥

अर्चन्तः । एकैः । महि । सामं । मन्वत । तेन । सूर्यं । अरोचयन् ॥१०॥

एकेऽत्रयो महि महत्साम चतुर्थचदशादि मन्वत । अमन्वत । तदेवार्चन्तः पूजयन्त एतादृशा अचयस्ते-  
नोक्तेन साम्ना सूर्यमरोचयन् । अदीपयन् । त एवात्र देवता ॥ ३६॥

नहि व इति चतुर्थचं दशमं मूक्तं । आद्या गायत्री द्वितीया पुरचण्णिक तृतीया बृहती चतुर्थनुष्टुप् । मनुर्वैवस्वत ऋषिः । पूर्ववद्विष्टे देवा देवता । तथा चानुक्रांतं । नहि वस्तुत्वं पुरचण्णिवृहत्यनुष्टुवंतमिति ॥  
विनियोगस्तु लिङ्गाद्वगन्तव्यः ॥

नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः । विश्वे सतोमहांत इत् ॥१॥

नहि । वः । अस्ति । अर्भकः । देवासः । न । कुमारकः । विश्वे । सतः । महांतः । इत् ॥१॥

हे देवासो देवाः वो युष्माकं मध्येऽर्भको नह्यस्ति । शिशुर्नास्ति खलु । तथा न कुमारको युष्माकं मध्ये  
कुमारोऽपि नास्ति । किंतु सर्वे यूयं सवयसो नित्यतरुणा भवथ । एतदेव प्रतिपादयति । विश्वे सर्वे देवा  
यूयं सतोमहांत इत् । सर्वस्माद्विद्यमानात्पृथिव्यामपि ये महांतस्ते सतोमहांत इत्युच्यन्ते । तस्माद्युष्माकमर्भ-  
कोऽपि कुमारोऽपि नास्त्युच्यते ॥

इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ चयश्च चिंशच्च । मनोर्देवा यज्ञियासः ॥२॥

इति । स्तुतासः । असथ । रिशादसः । ये । स्थ । चयः । च । चिंशत् । च । मनोः । देवाः ।  
यज्ञियासः ॥२॥

हे रिशादसो रिशतां हिंसतामसितारो हे मनोर्यज्ञियासो मनुनामकस्य मम यज्ञार्हा हे देवाः ये यूयं  
चयश्च चिसंख्याकास्त्रिंशच्च त्रिंशत्संख्याकास्त्रयस्त्रिंशद्देवताः स्था भवथ अभूत ते यूयमित्यमनेन प्रकारेण  
स्तुतासोऽसथ । मया मनुना स्तुता भवथ ॥ अस्तेलेटि च्छांदसो लुगभावः ॥ यद्वा । असथेति कांत्यर्थः । इत्थं  
स्तुता यूयं हवींषि कामयध्वं ॥

ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उं नो अधि वोचत ।

मा नः पथः पित्र्यान्मान्वादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥३॥

ते । नः । चाध्वं । ते । अवत । ते । उं इति । नः । अधि । वोचत ।

मा । नः । पथः । पित्र्यात् । मान्वात् । अधि । दूरं । नैष्ट । पराऽवतः ॥३॥

हे देवाः ते यूयं नोऽस्मांस्त्राध्वं । वाधकेभ्यो रचोभ्यस्त्रायध्वं । ते यूयमवत । धनादिप्रदानरस्मान्नवत । त  
एव देवा नोऽस्मानधि वोचत । अधिकं भवन्तः कर्मकारिणो धनादिभन्तश्च भवन्त्विति यूयं वृत्त । किंच हे देवाः  
मान्वात् । मनुः सर्वेषां पिता । तत आगतात्पित्र्यात् पिता मनुयं मार्गं चक्रे तस्मात्पथो मार्गास्तोऽस्मात्मा  
नैष्ट । मा नयत । अपनयन् मा कुरुतेत्यर्थः । सर्वदा प्रत्यचर्यापिहोवादिर्कर्मणि येन मार्गेण भवन्ति तमेवा-  
स्मान्नयत । किंतु दूरं य एतद्यतिरिक्तो विप्रः सार्गाऽस्ति तस्मादधि । अधिकमित्यर्थः । अस्मान्नयत ॥

ये देवास इह स्थन् विश्वे वैश्वानरा उत ।

अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥४॥

ये । देवासः । इह । स्थन् । विश्वे । वैश्वानराः । उत ।

अस्मभ्यं । शर्म । सप्रथः । गवे । अश्वाय । यच्छत ॥४॥

हे देवासो देवाः उतापि च वैश्वानराः । विश्वे सर्वे नरः कर्मनेतारोऽध्वर्यादयो यस्य स विश्वानरो यज्ञः । तस्मिन् सोमादिहवीषि स्वीकर्तुं भवाः प्रादुर्भूताः ॥ भवार्थेऽयप्रत्ययः ॥ यद्वा । विश्वानरोऽग्निः । देवानां तन्मुखत्वात्तस्य संबन्धिनः । विश्वे सर्वे ये देवा यूयमिहास्मिन्नकादीये यज्ञे स्थन् हवीष्यादातुं भवथ ततः सप्रथः ॥ प्रथ प्रस्थानि ॥ सर्वतः प्रसिद्धं सर्वत्र पृथुतमं वा शर्म । सर्वे श्रूयान्ति हिनस्ति दुःखमिति शर्म सुखं । तदस्मभ्यं प्रयच्छत । तथा गवेऽकादीयेभ्यो यज्ञसाधनभूतेभ्यो गोभ्योऽश्वाय शर्म सुखं प्रदत्त ॥ ३७ ॥ ॥४॥

पंचमेऽनुवाके द्वादश सूक्तानि । तत्र यो यजातोत्यष्टादशर्चं प्रथमं सूक्तं । वैवस्वतो मनुर्ध्वयिः । नवमीच-  
तुर्दशानुष्टुभी शिष्टाः पंचदशावास्तस्रः पंक्तयः । दशमी पादनिचृत् । चयः सप्तकाः पादनिचृत् । अनु० ४. ४. ।  
इति तल्लक्षणात् । शिष्टा एकादश प्राक्सप्तपरिभाषया गायत्र्यः । आवासु चतस्रपु यज्ञस्ततो यजमानप्रशंसा  
च श्रूयते । अतस्तद्देवताकाः । या दंपती इत्यावासु पंचम्यादिषु दंपती प्रशस्येते । अतस्तद्देवताकाः । अवशि-  
ष्टासु नवसु दंपत्योराशिवः प्रतिपाद्यते । अतस्मा एव देवताः । तथा चानुक्रम्यते । यो यजाति द्यूनावेज्यासवो  
यजमानप्रशंसा च इत्यादिपंच दंपत्योः शिष्टास्तदाशिवोऽनुष्टुप् चतुर्प्यंत्यंतं नवम्यनुष्टुब्दशमी पादनिचृदिति ॥

यो यजाति यजात इत्सुनवच्च पचाति च । ब्रह्मेदिंद्रस्य चाकनत् ॥१॥

यः । यजाति । यजति । इत् । सुनवत् । च । पचाति । च । ब्रह्मा । इत् । इंद्रस्य । चाकनत् ॥१॥

यो यजमानः स्रक्चजाति यागं करोति हविर्मिर्देवान्पूजयति स देवेभ्यो लब्धधनादिकः सन् यजात इत् ।  
पुनरमीष्टप्राप्तये देवेभ्यो हवीषि प्रयच्छत्येव । तथा स एव यजमानः सुनवच्च । सोमाभिषवं करोति च । स  
एव पचाति च । पशुपुरोडाशादिकं पचति च ॥ सर्वत्र यजादिषु लेख्यडागमाः ॥ स यजमान इंद्रस्य ब्रह्म  
ब्रह्माणि । इदवधारणे । इंद्रसंबन्धीनि सोचाख्येव चाकनत् । पुनःपुनः कामयते ॥ कनतेः कान्तर्याय्यङ्लुक्-  
भ्यासलं छांदसं । ततो लेख्यडागमः ॥ अत्र यागे यजमानो धनादि लभत इति यज्ञप्रशंसा । स एव दृष्टफल-  
सन् सोमाभिषवादीन्करोतीति यजमानप्रशंसा ॥

पुरोक्ताशं यो अस्मै सोमं ररत आशिरं । पादितं शक्रो अंहसः ॥२॥

पुरोक्ताशं । यः । अस्मै । सोमं । ररते । आऽशिरं । पात् । इत् । तं । शक्रः । अंहसः ॥२॥

यो यजमानोऽस्मा इंद्राय पशुपुरोक्ताशं तथाशिरं तृतीयसवने गोचीरेणामिश्रितं सोमं ररते प्रयच्छति ॥  
रतिर्लटि श्रपः सुः । अडागमः ॥ शक्रः समर्थः स इंद्रस्य यष्टारमंहसः पापात्तद्रूपद्रवसो वा पात् । इदव-  
धारणे । अपादेव । रचत्येव ॥ पातेर्लुङि रूपं ॥

तस्य द्युमौ असुद्रथो देवजूतः स शूश्रुवत् । विश्वा वन्वन्नमिचिया ॥३॥

तस्य । द्युऽमान् । असुत् । रथः । देवऽजूतः । सः । शूश्रुवत् । विश्वा । वन्वन् । अमिचिया ॥३॥

तस्य देवान्पूजयतो यजमानस्य देवजूतो देवैरिंद्रादिभिः प्रेरितो द्युमान् दीप्तिमान् रथो रंहणशीलः  
स्यंदनो देवानां हविष्प्रदानरूपेण यज्ञेनासत् । भवति । आगच्छति । ततस्तेन रथेनामिचियामिचियाञ्छुभिः  
छतान् विश्वा सर्वान् बाधान् वन्वन् । वनोतिर्हिंसाकमेति यास्कः । हिंसन् स एव शूश्रुवत् । पुत्रादिभिर्धनेन



वर्धते । अथ येन मे रथो बाधाभावश्चाभूदिति यागप्रशंसा येन सम्यगिष्टदेवा रथं दत्तवन्त इति यजमानप्रशंसा ॥

अस्य प्रजावती गृहेऽसंश्रंती दिवेदिवे । इळा धेनुमती दुहे ॥४॥

अस्य । प्रजावती । गृहे । असंश्रंती । दिवेऽदिवे । इळा । धेनुऽमती । दुहे ॥४॥

प्रजावती पुत्रादियुक्तमसंश्रंती । सत्यतिर्गतिकर्मा । अगमनशीलं तादृशं धेनुमती । पयसा सर्वाण धिनोति प्रीणयतीति धेनुर्गाः । तत्सहितमिळान्नमस्य यदुर्गृहे दिवेदिवे दुहे । दुह्यते । यद्वा । इळिति गवां देवता । सा स्थिरा धेनुमती । गवां पतित्वात्तेनुभिर्धेनुमती । इळा गोदेवता देवैः प्रेरिता सत्यं यजमानस्य गृहे दोग्धा । पुत्रादिकमस्य ददातीत्यर्थः ॥ दुहेर्लटि लोपस आत्मनेपदेष्विति तलोपः ॥ अचेज्यास्तवः ॥

या दंपती समनसा सुनुत आ च धावतः । देवासो नित्ययाशिरा ॥५॥

या । दंपती इति दंसंपती । सऽमनसा । सुनुतः । आ । च । धावतः । देवासः । नित्यया । आऽशिरा ॥५॥

अथ यजने दंपत्योः स्तुतिः । हे देवासो देवाः समनसा समनसौ कर्मणि समानमनस्की या यौ दंपती यज्ञकारिणी आयापती सुनुतः सोमामिषं कुरुतः । यौ दंपती ततस्सममिषुतं सोममा धावतश्च दशापवित्रेण शोधयतः ॥ धावु गतिशुद्धौः ॥ तथा नित्यया । यच तृतीयसवने सोमोऽस्ति तत्राश्रयणद्रव्यं गोचीरमस्त्येव । तस्मान्नित्यसंबंधेनाशिराश्रयणेन गोचीरेण संयुतं सोमं यौ प्रयच्छतः तावन्नादीन् प्राप्तुं इत्युत्तरच संबंधः ॥ ॥३८॥

प्रति प्राश्व्यां इतः सम्यंचा बर्हिःशान्ते । न ता वाजेषु वायतः ॥६॥

प्रति । प्राश्व्यान् । इतः । सम्यंचा । बर्हिः । आशान्ते इति । न । ता । वाजेषु । वायतः ॥६॥

तौ देवेभ्यो हविषां दातारी दंपती प्राश्व्यान् ॥ अश्र मोचने । प्रपूर्वस्वास्त्रीणादिको भाव उरप्रत्ययः ॥ प्राशुर्मचयं । तस्य साधून् हितान्वात्नादीन् प्रतीतः । प्रतिगच्छतः । यद्वा । प्राशितव्यान् ॥ अथ वर्षालोपः ॥ तावैव सम्यंचा सम्यंचौ समीचीनी संगती बर्हिर्यज्ञमाश्रते । आनशति । तत्र द्रव्यैर्व्याप्तुतः । तस्मात्तौ यष्टारी भार्यापती वाजेषु देवैर्दत्तैश्चक्ष्रेषु न वायतः । वयतिर्गत्यर्थः । न गच्छतः । सर्वदानसहिती तिष्ठातामित्यर्थः ॥

न देवानामपि हुतः सुमतिं न जुगुक्षतः । श्रवो बृहद्विवासतः ॥७॥

न । देवानां । अपि । हुतः । सुऽमतिं । न । जुगुक्षतः । श्रवः । बृहत् । विवासतः ॥७॥

एतौ दंपती देवानामिन्द्रादीनां नापि हुतः । अपलापं न कुरुतः । अपिह्रवोऽपलापः । देवेभ्यो हविः प्रदास्याम इति प्रतिज्ञाय पुनरदानमपलापः ॥ हुह् अपनये ॥ कथं नापलापंतीत्यवसीयते । तदाह । सुमतिं युष्मदीयां शोभनां मतिं न जुगुक्षतः । जुगुक्षतः । न संवरीतुमिच्छतः । संवारणमाच्छादनं । न च्छादयत इत्यर्थः । किंतु स्तुतिं कुरुतः ॥ गुह्र संवरणे । सनि यहगुहोश्च । पा० ७. २. १२. इतीदृशप्रतिषेधः । इत्यपत्यभावी । संहिताकाले मग्भावो नास्ति च्छांदसत्वात् ॥ किंच बृहदेवेभ्यो दीयमानत्वान्ब्रह्मवः । अथ इत्यन्ननाम । महद्दत्तं विवासतः । युष्मभ्यं प्रयच्छतः । विवासतिः परिचरणकर्मा । दानमपि च परिचरणमेव । देवैर्दत्तमन्नं घृतादिभिर्मिश्रीकृत्य पुनःपुनर्यजत इत्यर्थः ॥

पुचिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यंश्रुतः । उभा हिरण्यपेशसा ॥८॥

पुचिणा । ता । कुमारिणा । विश्वं । आयुः । वि । अश्रुतः । उभा । हिरण्यऽपेशसा ॥८॥

पुत्रिणा पुत्रवती तत्रापि कुमारिणा षोडशवर्षदेशीयपुत्रवती हिरण्यपिशसा हिरण्यैरामरणीरलंकृतः  
पावुभोमी ता ती दंपती विश्वं सर्वमायुरायुषं व्यभुतः । व्याभुतः । यज्ञेन तयोः पुत्रादिकं धनमायुश्च  
संभवतीत्यर्थः ॥

वीतिहोत्रा कृतवसू दशस्यन्तामृताय कं । समूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः ॥ ९॥  
वीतिऽहोत्रा । कृतवसू इति कृतत्वंसू । दशस्यन्ता । अमृताय । कं । सं । ऊधः ।  
रोमशं । हतः । देवेषु । कृणुतः । दुवः ॥ ९॥

वीतिहोत्रा वीतिहोत्री । वीतिः प्रियकरो होत्रा यज्ञो ययौसौ । अनेन यज्ञेन तयोः सुखादिकं  
संभवति । तादृशी । यद्वा । वीतिः कात्यर्थः । होत्रेति वाङ्माम । अस्माद्विषयां स्तुतिं कुरुतमिति पृथक्पृथग्देवैः  
काम्यमानस्तुती । अत एव कं सुखप्रदं हवीरूपमन्नं दशस्यन्ता देवेभ्यः प्रयच्छन्ती छतवसू ॥ तकारोपजन-  
स्त्वांसः ॥ याचमानस्ततधनी । पात्रेषूपयुक्तधनावित्यर्थः । एवंविधौ दंपती अमृतायामरसाय संतानाभिवृद्धये  
रोमशं रोमवन्तं वृषणमूधो योनिं च सं हतः । संयोजयत इति । मैथुनमनूयते । ततः सपुत्रादिकौ ती देवेषु  
दुवः सुखद्वन्द्वरूपां परिचर्यां कृणुतः । कुरुतः ॥ पंचभिर्दंपती असूदेतां ॥

आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनां । आ विष्णोः सचाभुवः ॥ १०॥

आ । शर्म । पर्वतानां । वृणीमहे । नदीनां । आ । विष्णोः । सचाभुवः ॥ १०॥

एतदादिषु दंपत्योराशिषः । यष्टारो वयं पर्वतानां फलपुष्पसहितलताभिर्मुक्तानां यच्छर्म सुखं तत्तेषां  
स्त्रीत्यलक्षणं सुखं वा नदीनां चोभयकूलवासिभिर्मुनिभिर्मनुष्यैर्वा जपाद्यनुष्ठाने कृते यत्सुखं तासां भवति तत्सुखं  
एकत्र स्थित्वा सकलपदार्थभोक्तृत्वलक्षणमनुष्ठानलक्षणं सुखमा वृणीमहे । संभजामहे । सचाभुवो देवैः सह  
भवतो देवसहितस्य विष्णोरपि शत्रुहन्तलक्षणं यत्सुखं तदपि वयमा वृणीमहे । बाधाभावाच्चविप्रदानेन  
देवैः सह वर्तामहे इत्यर्थः ॥ ॥ ३९॥

एतु पूषा रयिर्भगः स्वस्ति सर्वधातमः । उरुध्वा स्वस्तये ॥ ११॥

आ । एतु । पूषा । रयिः । भगः । स्वस्ति । सर्वऽधातमः । उरुः । अध्वा । स्वस्तये ॥ ११॥

रयिर्धनानां दाता भगो भजनीयः सर्वैः सर्वधातमः सर्वेषां धारयितुतमः सर्वेषां धनादिभिः पोषयितुतमः  
पूषितन्नामको देवः स्वस्ति चेमेकैतु । अस्मान्प्रति गच्छतु । ततो मार्गरक्षके पूषण्यागते सत्युर्विस्तीर्णोऽध्वा  
मार्गः स्वस्तयेऽस्माकमविनाशाय भवतु ॥

अरमतिरनर्वणो विश्वो देवस्य मनसा । आदित्यानामनेह इत् ॥ १२॥

अरमतिः । अनर्वणः । विश्वः । देवस्य । मनसा । आदित्यानां । अनेहः । इत् ॥ १२॥

देवानां मध्ये पूषणमाह । अनर्वणः । अर्वा गंतव्यः । शत्रुभिरगंतव्यस्याप्रत्युत्तस्य देवस्य बीतमानस्य पूषणो  
विश्वः सर्वः स्त्रीतृजनो मनसा यद्वया भक्त्यैवारमतिरलंमतिः पर्याप्तस्तुतिर्भवति । तथा आदित्यानामदितेः  
पुत्राणां देवानां दानमनेह इदपापमेव खलु । तस्मादन्नादिप्राप्तये स्त्रीतृजनः पूषणं स्तीतीत्यर्थः ॥

यथा नो मित्रो अर्यमा वरुणः संति गोपाः । सुगा ऋतस्य पंथाः ॥ १३॥

यथा । नः । मित्रः । अर्यमा । वरुणः । संति । गोपाः । सुऽगाः । ऋतस्य । पंथाः ॥ १३॥

मित्रोऽर्यमा वरुणः एते त्रयो देवा नोऽस्माकं गोपा गोपयितारो यथा संति भवन्ति तैर्मात्रैर्वैद्यमैतैः  
पालयितव्या भवाम त ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य पंथाः पंथानः सुगा एषां सुगमना भवन्तु । तैरागत्यास्मान्-  
जामां स्थापयन्त्वित्यर्थः ॥



अग्निं वः पूर्ये गिरा देवमीळे वसूनां । सपर्येतः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेचसाधसं ॥ १४ ॥  
 अग्निं । वः । पूर्ये । गिरा । देवं । ईळे । वसूनां । सपर्येतः । पुरुऽप्रियं । मित्रं । न ।  
 क्षेचऽसाधसं ॥ १४ ॥

हे देवाः वो युष्माकं पूर्ये मुख्यं पुरतो गतारं वा देवं स्वभासा दीप्यमानमग्निं वसूनां प्राप्तये गिरा  
 क्षुतिलक्षणाया वाचेळे । अहं स्तौमि । किंच सपर्येतो युष्मान्परिचरंतो मनुष्याः पुरुप्रियं बहुविधप्रियं  
 बहुनामभिमतदानेन प्रीणयितारं वा क्षेचसाधसं । चिर्यंति निवसंति कर्मकरणार्थमचेति क्षेचो यज्ञः । तस्य  
 साधकं । साधने दृष्टांतः । मित्रं न । यथा मित्रं मुहदन्वस्य क्षेचं केदारादिकं साधयति तद्वत्क्षेचसाधकमग्निं  
 वसुप्राप्तये क्षुवंति ॥

मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासु चित् ।  
 देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १५ ॥  
 मक्षू । देवऽवतः । रथः । शूरः । वा । पृत्सु । कासु । चित् ।  
 देवानां । यः । इत् । मनः । यजमानः । इयक्षति । अभि । इत् । अयज्वनः । भुवत् ॥ १५ ॥

देववतः । देवा यद्यव्यतया यस्य संति स देववान् । तस्य रथो देवैर्दत्तो मनु शीघ्रं दुर्गमं मार्गमपि  
 प्रविशति । सर्वत्राप्रतिहतगतिरित्यर्थः । तच्च दृष्टांतः । वेतिशब्दोऽचोपमानवाची । यथा शूरो योद्धा कासु  
 चित्पृत्सु पृतनानु तद्वत् । यो देवानां । इदवधारणे । मन एवेत्यवति क्षुतिभिः पूजयितुमिच्छति । यथा ।  
 देवानां मन इत्यवति हविर्भिर्यष्टुमिच्छति । स यजमानोऽयज्वनो यागमकुर्वतो जनानभि भुवत् । स्वसाम-  
 ख्येनाभिभवत्येव ॥ इत्यवति । यच्च पूजायां । यज देवपूजादिषु । उभयोरभ्यासस्य संप्रसारणं क्वादसं । पूर्वस्य  
 स्तोः संयोगाद्योरिति ककारलोपः ॥

न यजमान रिषसि न सुन्वान् न देवयो ।  
 देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १६ ॥  
 न । यजमान् । रिषसि । न । सुन्वान् । न । देवयो इति देवऽयो ।  
 देवानां । यः । इत् । मनः । यजमानः । इयक्षति । अभि । इत् । अयज्वनः । भुवत् ॥ १६ ॥

हे यजमान यो भवान् देवानां मन इत्यवति स त्वं न रिषसि । विनष्टो न भवसि । किंतु पुत्रपौत्रादि-  
 भिर्वर्धसे । हे सुन्वान सोमाभिषवं कुर्वन् यः सुन्वस्तेषां मन इत्यवति स त्वमपि न रिषसि । हे देवयो देवान  
 कामयमान यो देवानित्यवति तादृशस्त्वमपि न रिषसि । किंतु धनादिभिर्वर्धसे । देवानां मनो यो यजमानो  
 यष्टुमिच्छति स यागमकुर्वतो जनानभिभवति ॥

नकिष्ट कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति ।  
 देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १७ ॥  
 नकिः । तं । कर्मणा । नशत् । न । प्र । योषत् । न । योषति ।  
 देवानां । यः । इत् । मनः । यजमानः । इयक्षति । अभि । इत् । अयज्वनः । भुवत् ॥ १७ ॥

यो यजमानो देवानां मनो यष्टुमिच्छति तं नकिं कायिद्वापि नशत् । मन्कीयन् कर्मणा न व्याप्नोति ।  
 नशतिर्वाप्तिकर्मा । किंच स यष्टा न प्र योषत् । स्वस्मात्प्रयत्नात् विभक्त्यं पथः प्रो न भवति । किंच न  
 57 VOL. III.

बोयति । पुत्रादिभिर्धनादिभिश्च न विमत्तो भवति ॥ यु मिश्रणांमिश्रणचोरित्वसोमधच सेव्यसागमः ॥ शिष्टं  
वाप्यातं ॥

असद्वं सुवीर्यं मुत त्यदाश्वय्यं ।

देवानां य इन्मनो यजमान इयंस्त्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १८ ॥

असत् । अवं । सु०वीर्यं । उत । त्यत् । आ०शु०अश्वय्यं ।

देवानां । यः । इत् । मनः । यजमानः । इयंस्ति । अ०भि । इत् । अयज्वनः । भुवत् ॥ १८ ॥

यो यजमानो देवानां मनो यष्टुमिच्छति अचाक्षिन्यजमाने सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं पुत्रादिकमसत् ।  
भवत्येव । उतापि चाश्वय्यमागमनाश्वसंघयुक्तं त्यदाश्वनादिकं तस्मिन्त्यजमाने भवति । देवानां मनो यो जगो  
हविर्मिथंष्टुमिच्छति यद्वा पूजयितुमिच्छति स जगोऽयज्वनः सर्वानभिभवत्येव ॥ ॥ ४० ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थोऽस्तुरो देवादिष्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरसुक्लभूपाजसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण  
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टके द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

यस्य निःश्रुतं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।

निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

अथ षष्ठस्य तृतीयोऽध्याय आरभ्यते ॥ प्र कृतानीति चिंशदृचं द्वितीयं सूक्तं । तत्रैवमनुक्रमणिका । प्र  
कृतानि चिंशकेधातिथिरिति । काण्वो मेधातिथिर्चक्षुषिः । परं गायत्रं प्राग्वत्सप्रेरिति परिभाषया गायत्री  
वृद्धः । अनादेशपरिभाषयेंद्रो देवता ॥ महाव्रते निष्किले गायत्रतृचाशीतावेतसूक्तं । तथैव पंचमारण्यके  
शीनकेन सूचितं । प्र कृतान्युजीषिण आ घा ये अपिमिंधति । ऐ० आ० ५. २. ३. इति ॥ अतिरात्रे प्रथमे पर्याये  
भैराववर्णशस्त्रे प्र कृतानीति तुचोऽनुरूपः । सूचितं च । प्र व इंद्राय मादनं प्र कृतान्युजीषिणः । आ० ६. ४. ।  
इति ॥ तस्मिन्नेव शस्त्रे प्रति श्रुतायेत्याद्याः पंचदशर्चः । सूच्यते हि । प्रति श्रुताय वो धृषदिति पंचदश । आ०  
६. ४. इति ॥ दशमेऽहनि प्रातःसवनेऽक्षावाकवादे पत्नीयजमानस्थाने प्रति श्रुतायेति तुचः । सूचितं च ।  
प्रति श्रुताय वो धृषदिति तुचौ । आ० ८. १२. इति ॥ अहीनांतर्गतस्थातिराचस्य प्रथमे पर्याये होतुः पन्थ  
इदुप गायतेत्यनुरूपः ॥

प्र कृतान्युजीषिणः कण्वा इंद्रस्य गार्थया । मदे सोमस्य वोचत ॥ १ ॥

प्र । कृतानि । अ०जीषिणः । कण्वाः । इंद्रस्य । गार्थया । मदे । सोमस्य । वोचत ॥ १ ॥

हे कण्वाः अजीषिण अजीषवतः सोमस्य कृतानि कर्माणींद्रस्य गार्थयेंद्रस्य वाचा मदेऽस्य मदे संजाति  
सति प्र वोचत । प्रब्रूत ॥

यः सुर्विंदमनर्शनिं पिमुं दासमहीशुर्वं । वधीदुयो रिणन्नपः ॥ २ ॥

यः । सुर्विंदं । अनर्शनिं । पिमुं । दासं । अहीशुर्वं । वधीत् । उयः । रिणन् । अपः ॥ २ ॥

य इंद्र उय उग्रुर्लक्ष्मिणी वा सोऽप उदकानि रिणन् प्रेरयन् सुर्विंदनामकं शत्रुमनर्शनिमनर्शनिनामकं  
पिमुं पिग्रुनामकं च दासं चाहीशुर्वं च शत्रुं वधीत् । अवधीत् । अघान ॥



न्यबुँदस्य विष्टपं वर्षाणं बृहत्तिर । कृषे तदिद्र पौंस्यं ॥३॥

नि । अर्बुदस्य । विष्टपं । वर्षाणं । बृहत्तः । तिर । कृषे । तत् । इद्र । पौंस्यं ॥३॥

हे इन्द्र बृहतो महतोऽर्बुदस्य मेघस्य वर्षाणामुदकस्य वारकं विष्टपं स्नानं च तिर । विध्य । तत्प्रसिद्धं पौंस्यं व्रतं च कृषे । जुष ॥

प्रति श्रुताय वो धृषत्तूर्णांशं न गिरिरधि । हुवे सुशिप्रमूतये ॥४॥

प्रति । श्रुताय । वः । धृषत् । तूर्णांशं । न । गिरेः । अधि । हुवे । सुऽशिप्रं । ऊतये ॥४॥

हे सोतारः वो युष्माकं श्रुताय श्रुतीनां अवगाय रचणाय च धृषच्छत्रुं धृतं सुशिप्रं सुहृन्मिद्रं प्रति ऊवे । इयामि । तूर्णांशं न यथा चर्मेऽमिततः पुमांसूर्णांशमुदकं । तथा च यास्कः । तूर्णांशमुदकं भवति तूर्णमसृते । नि० ५. १६ । इति । गिरिरधि मेघं प्रति इयति । पर्वतो गिरिरिति मेघनामसु पाठात् । तद्वदित्यर्थः ॥

स गोरश्वस्य वि व्रजं मंदानः सोम्येभ्यः । पुरं न शूर दर्शसि ॥५॥

सः । गोः । अश्वस्य । वि । व्रजं । मंदानः । सोम्येभ्यः । पुरं । न । शूर । दर्शसि ॥५॥

हे शूरेंद्र स प्रसिद्धस्त्वं मंदानो मोदमानो गोरश्वस्य च व्रजं निवासस्थानं सोम्येभ्यः सोमाहेभ्यः पुरं न शत्रूणां नगरमिव वि दर्शसि । विवृतद्वारं करोषि ॥ ॥१॥

यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः । आरादुपं स्वधा गहि ॥६॥

यदि । मे । रारणः । सुते । उक्थे । वा । दधसे । चनः । आरात् । उपं । स्वधा । आ । गहि ॥६॥

हे इन्द्र मे मम सुतेऽभिपुते सोम उक्थे सोमे वा यदि रारणः रभसे वनोऽन्नं यदि च दधसे मद्यं प्रयच्छसि तर्ह्यारादूरात् स्वधात्तेनोपा गहि । उपागच्छ ॥

वयं घा ते अपि षसि स्तोतारं इद्र गिर्वणः । त्वं नो जित्व सोमपाः ॥७॥

वयं । घा । ते । अपि । स्मसि । स्तोतारः । इद्र । गिर्वणः । त्वं । नः । जित्व । सोमऽपाः ॥७॥

हे गिर्वणो गोर्मिर्वणनीचेंद्र ते तवापि वयं च वयं खलु स्तोतारः स्मसि । भवामः । हे सोमपाः सोमस्य पातरिद्र त्वं नोऽस्माज्जित्व । प्रीणयसि ॥

उत नः पितुमा भर संरराणो अविक्षितं । मघवन्भूरि ते वसु ॥८॥

उत । नः । पितुं । आ । भर । संऽरराणः । अविऽक्षितं । मघऽवन् । भूरि । ते । वसु ॥८॥

उतापि च हे मघवन् संरराणः संरममाणस्त्वमविक्षितमविचोणं पितुमन्नं । पृषः पितुरित्यन्ननामसु पाठात् । नोऽस्मभ्यमा भर । आहर । ते तव वसु धनं भूर्यधिकं हि ॥

उत नो गोमंतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विनः । इळाभिः सं रभेमहि ॥९॥

उत । नः । गोऽमंतः । कृधि । हिरण्यऽवतः । अश्विनः । इळाभिः । सं । रभेमहि ॥९॥

उतापि च हे इन्द्र नोऽस्मान् गोमतो गोमिनः कृधि । जुष । अश्विनोऽश्वयुक्तान् कृधि । हिरण्यवतो धनवतश्च कृधि । इळाभिरद्वैत्य सं रभेमहि । वयं संरब्धा भवम ॥

वृवदुकथं हवामहे सृप्रकरत्नमृतये । साधु कृण्वंतमवसे ॥ १० ॥

वृवतऽउकथं । हवामहे । सृप्रऽकरत्नं । जृतये । साधु । कृण्वंतं । अवसे ॥ १० ॥

ऊतथे लोकस्य रक्षणाय सृप्रकरत्नं प्रकृतवाजं । करत्नी बाह्व कर्मणां प्रज्ञातारौ । नि० ६. १७. इति यास्कवचनात् । अवसे लोकस्य पालनाय साधु कृण्वंतं साधु कुर्वंतं वृवदुकथं महदुकथमिंद्रं हवामहे । इयामः । तथा च यास्कः । वृवदुकथो महदुकथो वक्तव्यमस्मा उकथं । नि० ६. ४. इति ॥ २ ॥

यः संस्थे चिच्छतक्रतुरादीं कृणोति वृचहा । जरितृभ्यः पुरुवसुः ॥ ११ ॥

यः । संऽस्थे । चित् । शतऽक्रतुः । आत् । ई । कृणोति । वृचऽहा । जरितृऽभ्यः ।

पुरुऽवसुः ॥ ११ ॥

यः प्रसिद्ध इंद्रः संस्थे संग्रामे शतक्रतुर्वज्रकर्मा भवति अपि चादनंतरमीमिदं शत्रुवधादिकं कृणोति करोति चिदेव अयमिंद्रो वृचहा शत्रूणां हंता भवति । किंच जरितृभ्यः स्तोतृणामर्थे पुरुवसुर्वज्रधनो भवति । न स्वार्थमित्यर्थः ॥

स नः शक्रश्चिदा शक्रहानवाँ अंतराभरः । इंद्रो विश्वाभिरूतिभिः ॥ १२ ॥

सः । नः । शक्रः । चित् । आ । शक्रत् । दानऽवान् । अंतरऽआभरः । इंद्रः । विश्वाभिः ।

ऊतिऽभिः ॥ १२ ॥

शक्रः शक्तः स इंद्रो नक्षिदस्मान्वा शक्रत् । शक्तान् करोतु । अपि चंद्रो दानवान् विश्वाभिः सर्वैरूतिभिः पालनैरंतराभरोऽंतराहरश्चिद्राणामापूरकः । चिद्रापिधायीत्यर्थः ॥

यो रायोऽवनिर्महान्सुपारः सुन्वतः सखा । तमिंद्रमभि गायत ॥ १३ ॥

यः । रायः । अवनिः । महान् । सुऽपारः । सुन्वतः । सखा । तं । इंद्रं । अभि । गायत ॥ १३ ॥

य इंद्रो रायो धनस्त्रावणिः पालको महान् सर्वोत्तमः सुपारः शोभनपारण्य भवति । यश्च सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतो यजमानस्य सखा प्रियो भवति । तमिंद्रमभि गायत । अभिपुत ॥

आयंतारं महि स्थिरं पृतनासु अवोजितं । भूरेरीशानमोजसा ॥ १४ ॥

आऽयंतारं । महि । स्थिरं । पृतनासु । अवऽजितं । भूरैः । ईशानं । ओजसा ॥ १४ ॥

आयंतारमागतारं महि महान्तं पृतनासु संग्रामेषु स्थिरमचलं अवोजितं अवसो जेतारमोजसा बलेन भूरेर्वहोर्धनस्त्रेशानमोश्चरमभिगायत ॥

नकिरस्य शचीनां नियंता सूनृतानां । नकिर्वक्ता न दादिति ॥ १५ ॥

नकिः । अस्य । शचीनां । निऽयंता । सूनृतानां । नकिः । वक्ता । न । दात् । इति ॥ १५ ॥

अस्यैंद्रस्य सूनृतानां शोभनानां शचीनां कर्मणां । धीः शचीति कर्मणामसु पाठात् । नकिर्न कश्चिन्नियंता नियामकः । अयमिंद्रो न दादिति न प्रयच्छतीति नाकर्वक्ता न कश्चिद्वदति । किंतु सर्वोऽपि जनोऽयं प्रदातीत्येव व्रवीतीत्यर्थः ॥ ३ ॥



न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राप्नुनामस्ति सुन्वतां । न सोमो अप्रता पपे ॥ १६ ॥

न । नूनं । ब्रह्मणं । अृणं । प्राप्नुनां । अस्ति । सुन्वतां । न । सोमः । अप्रता । पपे ॥ १६ ॥

प्राप्नुनां । ये सोमं प्रायुर्वन्ति ते प्राशवः । तेषां सोमं सुन्वतां ब्रह्मणां ब्राह्मणानामृणं देवर्णं न नूनमस्ति । न खलु विद्यते । तथा च श्रूयते । एष वा अनुषो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारिवासी । तै० सं० ६. ३. १०. ५. । इति । किंचाप्रताविस्तीर्णधनेन सोमो न पपे । न पीयते । प्रभूतधनेनैव सोमः पीयत इत्यर्थः ॥

पन्य इदुपं गायत पन्य उक्थानि शंसत । ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् ॥ १७ ॥

पन्ये । इत् । उपं । गा॒य॒त । प॒न्ये । उ॒क्थानि । श॒ंस॒त । ब्र॒ह्म । कृ॒णो॒त । प॒न्ये । इत् ॥ १७ ॥

हे उपगतारः पन्य इत् कुल एवेन्द्र उप गायत । उपगानं कुरुत । किंच पन्य एवेन्द्र उक्थानि सोचाणि शंसत । हे सोतार इति शेषः । पन्य इत् कुल एवेन्द्रे ब्रह्माण्यन्यानि सोचाणि कृणोत । कुरुत ॥

पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः । इन्द्रो यो यज्वनो वृधः ॥ १८ ॥

प॒न्यः । आ । द॒र्दि॒र॒च्छ॒ता । स॒ह॒स्रा । वा॒ज्य॒वृ॒तः । इ॒न्द्रो॒ यो॒ य॒ज्व॒नो॒ वृ॒धः ॥ १८ ॥

यो वाजी वलवाञ्छता बीराणां शतानि सहस्रा सहस्राणि च दर्दिरत् आभिमुख्येन दारयति सोऽयमिन्द्रः शत्रुभिरवृतः पन्यः कुलो भवति । यज्वनो विधिनेष्टवतो यजमानस्य वृधो वर्धयिता च भवति ॥

वि षू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः । इन्द्र पिब सुतानां ॥ १९ ॥

वि । सु । च॒र । स्व॒धाः । अ॒नु । कृ॒ष्टी॒नां । अ॒म॒न्वा॒हु॒वः । इ॒न्द्र । पि॒ब । सु॒ता॒नां ॥ १९ ॥

हे इन्द्र आज्ञव आह्वातव्यस्त्वं कृष्टीनां मनुष्याणां स्वधा हवीष्यन् सु सुष्ठु वि चर । द्वितीयोऽनु पूरणः । सुतानामभिषुतान सोमांश्च पिब ॥

पिब स्वधैनवानामुत यस्तुग्ये सचा । उतायमिन्द्र यस्तव ॥ २० ॥

पि॒ब । स्व॒धे॒न॒वा॒ना॒मु॒त । य॒स्तु॒ग्ये॒ स॒चा । उ॒ता॒य॒मि॒न्द्र॒ य॒स्त॒व ॥ २० ॥

हे इन्द्र स्वधैनवानां स्वधैनवान् स्वभूतपयसो धेनोः संबन्धिनः सोमान् । धेन्वा क्रीतानित्यर्थः । तथा च श्रूयते । धेन्वा क्रीणातीति । उतापि च यः सोमस्तुग्य उदके । नुसं तुग्यमित्युदकनामसु पाठात् । सचा संकष्टः तमपि सोमं पिब । उतापि च यः सोमस्तव त्वदीयत्त्वामुद्दिश्व गृहीतः सोऽयं स्वया पातव्य इति शेषः ॥ ४॥

अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपारणे । इमं रातं सुतं पिब ॥ २१ ॥

अ॒ती॒हि । म॒न्यु॒षा॒वि॒णं । सु॒षु॒वा॒ंस॒मु॒पा॒र॒णे । इ॒मं । रा॒तं । सु॒तं । पि॒ब ॥ २१ ॥

हे इन्द्र मन्युषाविणं क्रोधेन सोमं सुन्वतमतीहि । अतिगच्छ । तथोपारणे । ब्राह्मणा उपेत्य यस्मिन्देशे न रमते स उपारणः । तस्मिन्देशे सुषुवांसं सुन्वतमतीहि । इमं रातं ब्राह्मणोपद्रवरहिते देशेऽस्माभिर्दत्तमिमं सुतं सोमं पिब ॥

इहि तिस्रः परावतं इहि पंच जनां अति । धेना इन्द्रावचाकशत् ॥ २२ ॥

इ॒हि । ति॒स्रः । प॒रा॒व॒तं । इ॒हि । प॒ंच । ज॒नां । अ॒ति । धे॒ना । इ॒न्द्रा॒व॒चा॒क॒श॒त् ॥ २२ ॥

हे इंद्र धेना अक्षदीयाः कुतीरवचाकशयोऽपञ्चत् स त्वं परावतो दूरात् । अरि परावत इति दूरनामसु पाठात् । तिस्रोऽयपृष्ठपार्श्वदिश इहि । गच्छ । अनेनायतः पृष्ठतः पार्श्वतश्चेंद्रस्यागमनमाशासी । अपि च पंच जनाः मनुष्यान्तीहि । अतिगच्छ । यद्वा । गंधर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसि च पंच जनाः । तानतीहीत्यर्थः । तथा च यास्कः । गंधर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसि चत्वारो वर्णा निषादः पंचम इत्थीपमन्यवः । नि० ३. ८. इति ॥

सूर्यो रश्मिं यथा सृजा त्वा यच्छंतु मे गिरः । निस्समापो न सध्वक् ॥ २३ ॥

सूर्यः । रश्मिं । यथा । सृज । आ । त्वा । यच्छंतु । मे । गिरः । निस्सं । आपः । न । सध्वक् ॥ २३ ॥

हे इंद्र सूर्यो यथा रश्मिं रश्मीन्किरणानश्चप्रयहान्वा विच्छजति तथा मह्यं धनं विच्छज । अपि च मे मदीया गिरः कुतयः सध्वक् सह त्वामा यच्छंतु । निस्समापो न । यथा निस्सदेशमापः सह परिगृह्णति तद्वदित्यर्थः ॥

अध्वर्यवा तु हि सिंच सोमं वीराय शिप्रिणे । भरा सुतस्य पीतये ॥ २४ ॥

अध्वर्यो इति । आ । तु । हि । सिंच । सोमं । वीराय । शिप्रिणे । भर । सुतस्य । पीतये ॥ २४ ॥

हे अध्वर्यवः शिप्रिणे हनुमते वीराय शूरार्थेन्द्राय सोमं तु हि शिप्रमेवा- सिंच । सुतस्य सुतं सोमं पीतये पानाय च भर । आहर च ॥

य उद्गः फल्लिगं भिनक्ष्यक्सिंधूँरवासृजत् । यो गोषु पक्कं धारयत् ॥ २५ ॥

यः । उद्गः । फल्लिऽगं । भिनत् । न्यक् । सिंधून् । अवऽअसृजत् । यः । गोषु । पक्कं । धारयत् ॥ २५ ॥

य उद्ग उदकार्थं फल्लिगं मेघं । रैवतः फल्लिग इति मेघनामसु पाठात् । भिनत् अभिनत् । सिंधून्पश्चात्-रिषात्पुनर्वागवाञ्जत् । यश्च गोषु पक्कं पयो धारयत् अधारयत् । स इंद्र इत्यर्थः ॥ ॥ ५ ॥

अहन्वृचमृचीषम और्णवाभमहीषुवं । हिमेनाविध्यदबुदं ॥ २६ ॥

अहन् । वृचं । ऋचीषमः । और्णऽवाभं । अहीषुवं । हिमेन । अविध्यत् । अबुदं ॥ २६ ॥

ऋचीषम ऋचा दीप्त्या सम इंद्रो वृचं वृचनामकं शत्रुमहत् । अघान । तथौर्णवाममौर्णवामनामकमही-मुवमहीमुवनामकं च शत्रुमहत् । तथा हिमेन तुषारिणीदकेन वारुदं मेघमविध्यत् ॥

प्र व उयाय निष्टुरेऽषाढ्हाय प्रसक्षिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ २७ ॥

प्र । वः । उयाय । निऽतुरे । अषाढ्हाय । प्रऽसक्षिणे । देवत्तं । ब्रह्म । गायत् ॥ २७ ॥

हे उजातारः वो यूयमुयायोन्नूनाय निष्टुरे शत्रून्निक्षरतेऽषाढ्हाय शत्रूणामभिभविते प्रसक्षिते प्रसहन्-शीलाथेन्द्राय देवत्तं देवप्रसादसम्ब्रं ब्रह्म सोचं प्र गायत ॥

यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अंधसः । इंद्रो देवेषु चेतति ॥ २८ ॥

यः । विश्वानि । अभि । व्रता । सोमस्य । मदे । अंधसः । इंद्रः । देवेषु । चेतति ॥ २८ ॥

अंधसोऽयमानस्य सोमस्य मदे संजाते विश्वानि सर्वाणि व्रता व्रतानि कर्माणि य इंद्रो देवेष्वभि चेतति आपर्याति तस्मा इंद्राय देवत्तं ब्रह्म गायतेत्यर्थः ॥



इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोऽहामभि प्रयो हितं ॥२९॥

इह । त्या । सधमाद्या । हरी इति । हिरण्यकेश्या । वोऽहं । अभि । प्रयः । हितं ॥२९॥

इह यद्ये त्या ती प्रसिद्धौ सधमाद्या सह मावन्ती हिरण्यकेश्या हिरण्यकेश्यौ हरी चयौ हितं हितकरं प्रयः सोमरूपमन्नमभिमिलितञ्च वोऽहं । इन्द्रं वहतां । प्रापयतामिति ॥

अर्वाचं त्वा पुरुषुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥३०॥

अर्वाचं । त्वा । पुरुऽस्तुत । प्रियमेधस्तुता । हरी इति । सोमपेयाय । वक्षतः ॥३०॥

हे पुरुषुतेन्द्र त्वा त्वां प्रियमेधस्तुता हरी अथौ सोमपेयाय सोमपानायार्वाचमन्नदमिमुखं वक्षतः । वहतः ॥ ॥६॥

यथं च स्तेथिकीनविंशत्युचं तृतीयं सूक्तं काण्वस्य मेधातिथिरार्षं बृहतीच्छंदस्कं । षोडशायास्त्रिंशो वायव्य एकीनविंशत्युष्टुप । इन्द्रो देवता । तथा चानुक्रांतं । यथं यिकोना मेधातिथिर्बार्हतं चिगायत्र्यनुष्टुवंतमिति ॥ महाव्रते निष्कवल्के बार्हततृचाशीतावादितः पंचदशर्चः । तथैव पंचमारण्यके श्रीमकेन सूच्यते । यथं च त्वा सुतावंत इति पंचदश मी पु त्वा वाघतयनेलितस्य द्विपदां चोद्धरति । ऐ० आ० ५. २. ४. इति ॥ चानुर्विंशिकेऽहनि मार्थ्यदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिग्रस्त्रे यथं च स्तेति तृचो वैकल्पिकः स्तोत्रियः । तथा च सूचं । यथं च त्वा सुतावंतः क ईं वेद सुते सचा । आ० ७. ४. इति ॥ स्वरसाम्बन्धमेव तृचोऽनुरूपः । सूचितं च । यथं च त्वा सुतावंत इति तिस्रो बृहत्यः । आ० ८. ५. इति ॥ तस्मिन्नेव ग्रन्थे क ईं वेदिति वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूचस्तुतमेव ॥

वयं यं त्वा सुतावंत आपो न वृक्तवर्हिषः ।

पविचस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतारं आसते ॥१॥

वयं । यं । त्वा । सुतऽवंतः । आपः । न । वृक्तऽवर्हिषः ।

पविचस्य । प्रऽस्रवणेषु । वृत्रऽहन् । परि । स्तोतारः । आसते ॥१॥

हे वृत्रहन्निन्द्र त्वा त्वां यथं च यथं खलु सुतवंतः सोममभिपुतवंत आपो नाप इव प्रवसामभिगच्छामः । पविचस्य सोमानां प्रस्रवणेषु वृक्तवर्हिषः स्तोत्रियवर्हिषः स्तोतारश्च त्वां पर्युपासति ॥

स्वरंति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।

कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वष्टीव वंसंगः ॥२॥

स्वरंति । त्वा । सुते । नरः । वसो इति । निरेके । उक्थिनः ।

कदा । सुतं । तृषाणः । ओकः । आ । गमः । इन्द्र । स्वष्टीऽइव । वंसंगः ॥२॥

हे वसो वासधितरिन्द्र त्वा त्वां सुतेऽभिपुते सोमे निरेके निर्गमन उक्थिनो नरो जेतारः स्वरंति । शब्दायते । अपि चन्द्रः सुतं सोमं प्रति तृषाणञ्चूयन् स्वष्टीव स्वभूतशब्द इव वंसो वननीयगमनो वृषभः शब्दं पुर्वन् कदीकः स्नानमागमत् ॥

कर्णेभिर्धृण्वा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणं ।

पिशंगरूपं मधवन्विचर्षणे मक्षू गोमैतमीमहे ॥३॥

कलेभिः । धृष्णो इति । आ । धृषत् । वाजं । दर्षि । सहस्रिणं ।  
पिशंगं रूपं । मघऽवन् । विऽचर्षणे । मधु । गोऽमंतं । इमहे ॥ ३ ॥

हे धृष्णो धर्षकेन्द्र कलेभिः कषाणुद्दिश्य ॥ विभक्तियुक्तयः ॥ सहस्रिणं सहस्रसंख्याकं वाजमा दर्षि ।  
देहि । हे मघवन्धनवन् विचर्षणे विद्रष्टरिद्र धृषद्वृष्टं पिशंगरूपं गोमंतं च वाजं मधु शीघ्रमीमहे । याचामहे ।  
त्वामिति शेषः ॥

पाहि गायांधसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।  
यः संमिथ्यो हयोऽर्यः सुते सचा वजी रथो हिरण्ययः ॥ ४ ॥  
पाहि । गायं । अंधसः । मदे । इन्द्राय । मेध्यऽअतिथे ।  
यः । संऽमिथ्यः । हयोऽः । यः । सुते । सचा । वजी । रथः । हिरण्ययः ॥ ४ ॥

हे मेध्यातिथे पाहि । सोमं पिब । अंधसः पीतस्व सोमस्व मदे तस्मा इन्द्राय गाय । सोमं पठ च । य  
इन्द्रो हयोऽर्ययोः संमिथ्यः स्वरथे संमिथ्ययिता । यस्य सुते सोमे सचा सहायः । य इन्द्रो वजी । यस्य रथो  
हिरण्ययो हिरण्ययः ॥

यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गुणे ।  
य आकरः सहस्रा यः शतामघ इन्द्रो यः पूभिर्दारितः ॥ ५ ॥  
यः । सुऽसव्यः । सुऽदक्षिणः । इनः । यः । सुऽक्रतुः । गुणे ।  
यः । आऽकरः । सहस्रा । यः । शतऽमघः । इन्द्रः । यः । पूऽभित् । आरितः ॥ ५ ॥

यः सुषव्यः शोभनसव्यवृक्षः । यस्य सुदक्षिणः । यस्मिन् ईश्वरः । नियुत्वा निन इतीश्वरनामसु पाठात् ।  
यद्यापि सुक्रतुः सुप्रज्ञः । सहस्रा सहस्राणां वज्रनां यथाकरः कर्ता । यद्यापि शतमघो वज्रधनः । यस्य  
पूभिर् पुरां भेत्ता । यच्चारितः प्रत्युतः सोमान् । तथा च यास्तः । य आरितः कर्मणि कर्मणि स्थिरः प्रत्युतः  
सोमान् । नि० ५. १५. इति । स इन्द्रो गुणे । अस्माभिः स्तूयते च ॥ ७ ॥

यो धृषितो योऽवृतो यो अस्ति शमश्रुषु श्रितः ।  
विभूतद्युम्नश्चावनः पुरुष्टुतः क्रत्वा गौरिव शाकिनः ॥ ६ ॥  
यः । धृषितः । यः । अवृतः । यः । अस्ति । शमश्रुषु । श्रितः ।  
विभूतऽद्युम्नः । चवनः । पुरुऽस्तुतः । क्रत्वा । गौऽइव । शाकिनः ॥ ६ ॥

यो धृषितः शत्रूणां धर्षयिता । यद्यावृतः शत्रुभिरपरिवृतः । यद्यापि शमश्रुषु युक्तेषु । श्रवः श्रयंत्यस्मिन्निति  
व्युत्पत्तेः शमश्रु युष्ममिति वृद्धा वदन्ति । श्रितोऽस्ति भवति । यद्यापि विभूतद्युम्नः प्रभूतधनः । यस्य चवनः  
सोमानां च्यावयिता । यद्यापि पुरुष्टुतो वज्रकुतः । स इन्द्रः क्रत्वा कर्मणा शाकिनः शक्तस्व यजमानस्व  
गौरिव यथा गौः पयसो दोग्ध्री तथा कामानां दोग्धा भवति ॥

क ई वेद सुते सचा पिबेत् कव्यो दधे ।  
अयं यः पुरो विभिनच्योर्जसा मंदानः शिष्यंधसः ॥ ७ ॥



कः । ई । वेद । सुते । सचा । पिबंतं । कत् । वयः । दधे ।

अयं । यः । पुरः । विऽभिन्नति । ओजसा । मंदानः । शिप्री । अंधसः ॥ ७ ॥

सुतेऽभिपुते सोमे सचर्त्विवा सह सोमं पिबंतमीमेनमिंद्रं को वेद । वेत्ति । न कोऽपि वेत्तीत्यर्थः । कत् किं वा वयोऽन्नं दधे । धारयति । योऽयमिंद्रः शिप्री हनुमान्धसः सोमेन मंदानी मंदमान ओजसा बलेन पुरो विभिन्नति ॥

दाना मृगो न वारणः पुरुचा चरथं दधे ।

नकिंष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महान् चरस्यो जसा ॥ ८ ॥

दाना । मृगः । न । वारणः । पुरुऽचा । चरथं । दधे ।

नकिंः । त्वा । नि । यमत् । आ । सुते । गमः । महान् । चरसि । ओजसा ॥ ८ ॥

मृगः शत्रुणामन्वेषको वारणो गजो दाना मदकलानीव पुरुचा वज्रसु यज्ञेषु चरथं चरणशीलं मदं दधे । इंद्रो धारयति । अथ प्रत्यक्षश्रुतिः । हे इंद्र त्वा त्वां नकिंश्चि यमन । न कश्चिन्नियच्छति । सुते सोम आ गमः । आगच्छ । महान् हि त्वमोजसा बलेन सर्वतश्चरसि ॥

य उयः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।

यदि स्तोतुर्मघवा मृणवद्भवं नेंद्रो योषत्या गमत् ॥ ९ ॥

यः । उयः । सन् । अनिऽस्तृतः । स्थिरः । रणाय । संस्कृतः ।

यदि । स्तोतुः । मघऽवा । मृणवत् । हवं । न । इंद्रः । योषति । आ । गमत् ॥ ९ ॥

य उय उन्नूर्णं ओजस्वी वा सन् भवन्ननिष्टृतः शत्रुभिरनिस्तीर्णः स्थिरोऽचक्षो रणाय युवाय संस्कृतः शस्त्रैरलंघितः सोमैर्वा संस्कृतः स इंद्रो मघवा धनवान् यदि स्तोतुर्हवमाद्भवं मृणवत् मृणोति तर्ह्यन्यत्र न योयति । न गच्छति । किंत्वा यमत् । तच्चैवागच्छति ॥

सत्यमित्या वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः ।

वृषा ह्युय मृणिवे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥ १० ॥

सत्यं । इत्या । वृषा । इत् । असि । वृषऽजूतिः । नः । अवृतः ।

वृषा । हि । उय । मृणिवे । पराऽवति । वृषो इति । अर्वाऽवति । श्रुतः ॥ १० ॥

हे उयोन्नूर्णं त्वं सत्यमित्येत्यं वृषेत्कामानां वर्षक एवासि । वृषजूतिर्वृषमिच्छाकृष्टो नोऽस्माकमवृतः शत्रुभिरपरिवृतश्चासि । वृषा हि सेचक एव मृणिवे । यूयसे । परावति दूरेऽपि वृषैर्वार्यावति समीपेऽपि वृषा सेचक एव युतः । वृषैवाश्रयथाः ॥ ८ ॥

वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी ।

वृषा रथो मघवन्वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो ॥ ११ ॥

वृषणः । ते । अभीशवः । वृषा । कशा । हिरण्ययी ।

वृषा । रथः । मघऽवन् । वृषणा । हरी इति । वृषा । त्वं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ॥ ११ ॥

हे मघवन् ते तवामीश्वरो ररमयोऽश्वरश्ना वृषणो वर्धितारः । हिरण्ययी हिरण्ययी कशापि वृषा । रबोऽपि वृषा वर्धिता । हरो अद्यावपि वृषणा वृषणौ वर्धितारौ । हे शतक्रतो वज्रप्रक्षिद्र त्वं च वृषा वर्धिता ॥

वृषा सोतां सुनोतु ते वृषं वृजीपिन्ना भर ।

वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्व तृभ्यं स्थातर्हरीणां ॥ १२ ॥

वृषा । सोतां । सुनोतु । ते । वृषन् । वृजीपिन् । आ । भर ।

वृषा । दधन्वे । वृषणं । नदीषु । आ । तृभ्यं । स्थातः । हरीणां ॥ १२ ॥

हे वृषन् वर्धितरिद्र ते तव सोतामिषवकर्ता वृषा वर्धिता सन् सुनोतु । सोममभिषुणोतु । हे वृजीपिन्नु-  
वमिन्द्र आ भर । धनमस्यमाहर । हरीणामन्धानामभिसुंख्येन हे स्थातरिद्र तृभ्यं नदीपूदकेषु वृषणं  
वर्धितारं सोमं वृषा वर्धिता दधन्वे । धारितवानमिषवार्थं ॥

एन्द्र याहि पीतये मधुं शविष्ठ सोम्यं ।

नायमच्छा मघवां शृणवद्गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः ॥ १३ ॥

आ । इन्द्र । याहि । पीतये । मधुं । शविष्ठ । सोम्यं ।

न । अयं । अच्छ । मघवां । शृणवत् । गिरः । ब्रह्म । उक्था । च । सुऽक्रतुः ॥ १३ ॥

हे शविष्ठ बलवत्तमिन्द्र सोम्यं सोमात्मकं मध्वनृतं पीतये पानाया याहि । आगच्छ । किमर्थमागमन-  
मित्यत आह । यत आगमनमन्तरेण मघवा धनवान् सुक्रतुः सुकर्मा शोभनप्रज्ञो वायमिन्द्रो गिरः क्षुतीर्ब्रह्म  
सोवाण्युक्थानि च नाच्छ शृणवत् नामिषुणोति । अत आगमनमित्यर्थः ॥

वहंतु त्वा रथेष्ठांमा हरयो रथयुजः ।

तिरश्चिदर्यं सर्वनानि वृचहन्त्येषां या शतक्रतो ॥ १४ ॥

वहंतु । त्वा । रथेऽस्थां । आ । हरयः । रथेऽयुजः ।

तिरः । चित् । अर्यं । सर्वनानि । वृचऽहन् । अन्येषां । या । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ॥ १४ ॥

हे वृचहन्तक्रतो वज्रप्रक्ष रथेष्ठां रथस्यामर्यमीश्वरं त्वा त्वां रथयुजो रथे युक्ता हरयोऽद्या अन्येषां  
या यानि सवगानि सन्ति तानि तिरस्किरस्कुर्वन्तः सवगान्यस्मादीयानि सवगान्या वहंतु ॥

अस्माकमद्यांतमं स्तोमं धिष्व महामह ।

अस्माकं ते सर्वना संतु शंतमा मदाय द्युक्ष सोमपाः ॥ १५ ॥

अस्माकं । अद्य । अंतमं । स्तोमं । धिष्व । महाऽमह ।

अस्माकं । ते । सर्वना । संतु । शंतमा । मदाय । द्युक्ष । सोमऽपाः ॥ १५ ॥

हे महामह महतामपि महान् मंहापुत्र वाद्यांतममंतिकतममस्माकं मेधातिथीनां स्तोमं धिष्व । धारय ।  
हे वृष दोष सोमपाः सोमस्य पातरिद्र ते तव मदाय मदार्थं सवना सवगान्यस्माकं शंतमा शंतमानि  
संतु । भवंतु ॥ १५ ॥



नहि वस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति । यो अस्मान्वीर आनयत् ॥ १६ ॥  
 नहि । सः । तव । नो इति । मम । शास्त्रे । अन्यस्य । रण्यति । यः । अस्मान् । वीरः ।  
 आ । अनयत् ॥ १६ ॥

यो वीरः शूरोऽस्माननयत् स इन्द्रस्तव शास्त्रे शासने नहि रण्यति । न रमते । ममापि शास्त्रे शासने नो रण्यति । अन्यस्यापि शासने न रण्यति । किंतु रक्षण एव रमत इत्यर्थः ॥

इंद्रश्चिह्ना तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः । उतो अहं क्रतुं रघुं ॥ १७ ॥  
 इंद्रः । चित् । घ । तत् । अब्रवीत् । स्त्रियाः । अशास्यं । मनः । उतो इति । अहं ।  
 क्रतुं । रघुं ॥ १७ ॥

यो मेधातिथिर्धनप्रदाता ज्ञायोगिरासंगः स पुमान् भूत्वा स्थयभवत् । तदा यदिन्द्र उवाच तदिदमाह । तथा चाहुः । ज्ञायोगिश्चासंगो यः स्त्री भूत्वा पुमानभूत् स मेधातिथये दानं दत्तेति । इंद्रश्चिह्नः खलु तदब्रवीत् । स्त्रिया मन्वन्तिमशास्यं पुरुषेणाशित्यं शासितुमशक्यं प्रवक्षत्वादिति । उतो अपि च स्त्रियाः क्रतुं प्रज्ञां रघुं जघुमाह ॥

सप्त्रीं चिह्ना मदच्युता मिथुना वहतो रथं । एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा ॥ १८ ॥  
 सप्त्री इति । चित् । घ । मदच्युता । मिथुना । वहतः । रथं । एव । इत् । धूः । वृष्णः ।  
 उत्तरा ॥ १८ ॥

सप्त्रीं चिह्नं द्रव्याद्यावपि खलु मदच्युता सोमं प्रति गंताराविद्धस्त्वेव रथं मिथुनी वहतः । एवेदेवमेव वृष्ण इंद्रस्य रथो धूर्वत्तराश्चयोत्तरा भवति ॥

अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर ।  
 मा ते कशञ्जकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविष्य ॥ १९ ॥  
 अधः । पश्यस्व । मा । उपरि । संतरां । पादकौ । हर ।  
 मा । ते । कशञ्जकौ । दृशन् । स्त्री । हि । ब्रह्मा । बभूविष्य ॥ १९ ॥

एवमंतरिक्षादागच्छन्नथस्व इंद्रः स्त्रियं संतं स्वस्मात्पुण्यमिच्छंतं ज्ञायोगिं यदुवाच तदाह । हे ज्ञायोगे त्वं स्त्री सत्यधः पश्यस्व । एव स्त्रीणां धर्मः । उपरि मा पश्यस्व । उपरिदर्शनं स्त्रीणां धर्मो न भवति हि । पादकौ पादावपि संतरां संविष्टौ यथा भवतस्तथा हर । यथा पुरुषो विविष्टपादनिधानो भवति तथा त्वया स्त्रिया न कर्तव्यमित्यर्थः । अपि च ते कशञ्जकौ । कशञ्ज इत्यस्य कशञ्जकौ । कशतिराहननकर्मा । कशञ्जकावुभे चंगे मा दृशन् । पुरुषा न पश्यंतु । तयोर्दर्शनं वाससः सुष्ठु परिधानेन भवति । अतः सुष्ठु वाससा परिधानं कुरु । स्त्रियो ह्यगुल्फादभिसंवीता भवन्तीत्यर्थः । हि यस्मात्कारणाद्ब्रह्मा सन् स्त्री बभूविष्य ॥ ॥ १९ ॥

एंद्र याहीत्यष्टादशचं त्रुर्थं मुक्तं काण्वस्व नोपातिथिरार्यमानुष्टुभं । योऽहं ब्राह्मणस्त्री गायत्र्यः । वसुरोचिषोऽंगिरोगोचाः सहस्रसख्याका आ यदिन्द्रश्चत्वादीनां तासां तिष्ठशामृषयः । इंद्रो देवता । तथा चानुक्रमणं । इंद्र याहि ब्रूना नोपातिथिरानुष्टुभं तुचोऽत्यो गायत्र्यस्तं सहस्रं वसुरोचिषोऽंगिरसोऽपञ्जति ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

ए॒न्द्र या॒हि॒ हरि॒भिरु॒प॒ क॒ण्व॑स्य सु॒ष्टुतिं॑ ।

दि॒वो अ॒मुष्य॑ शा॒स॒तो दि॒वँ य॒य दि॒वाव॑सो ॥ १ ॥

आ । इ॒न्द्र । या॒हि॒ । हरि॑ऽभिः । उ॒प॒ । क॒ण्व॑स्य । सु॒ऽस्तुतिं॑ ।

दि॒वः । अ॒मुष्य॑ । शा॒स॒तः । दि॒वँ । य॒य । दि॒वाव॑सो इति॑ दि॒वाऽव॑सो ॥ १ ॥

हे इन्द्र कण्वस्य सुष्टुतिं शोभनां क्षुतिं हरिभिरुपैरुपा याहि । दिवो बुलोकं । द्वितीयार्थे षष्ठी । अमुष्या-  
मुष्मिन्निद्रे शासतः शासति ॥ विभक्तिव्यत्ययः ॥ तच्च वयं मुखमासहे । हे दिवावसो दीप्तहविकेंद्र दिवं  
स्वर्गं यय । ययं गच्छत । वज्रवचनं पूजार्थं । यद्वा । हे दिवावसो दिवो बुनामकममुष्यासुं लोकं शासनं  
कुर्वतो ययं दिवं स्वर्गं यय । गच्छत । अथ वज्रवचनं पूजार्थमित्यर्थः ॥

आ त्वा॒ यावा॑ व॒दन्नि॒ह सो॒मी घोषे॑ण यच्छ॒तु ।

दि॒वो अ॒मुष्य॑ शा॒स॒तो दि॒वँ य॒य दि॒वाव॑सो ॥ २ ॥

आ । त्वा॒ । यावा॑ । व॒दन् । इ॒ह । सो॒मी । घोषे॑ण । यच्छ॒तु ।

दि॒वः । अ॒मुष्य॑ । शा॒स॒तः । दि॒वँ । य॒य । दि॒वाव॑सो इति॑ दि॒वाऽव॑सो ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वामिह यज्ञे यावा सोमाभिषवपापाणः सोमी सोमवान् वदच्छब्दं कुर्वन् घोषेण ध्वनिना  
सहा यच्छतु । सिद्धमन्यत् ॥

अ॒चा वि॒ नेमि॑रे॒षामु॒रां न धू॒नुते॒ वृकः॑ ।

दि॒वो अ॒मुष्य॑ शा॒स॒तो दि॒वँ य॒य दि॒वाव॑सो ॥ ३ ॥

अ॒च॒ । वि॒ । ने॒मिः । ए॒षां । उ॒रां । न । धू॒नुते॒ । वृकः॑ ।

दि॒वः । अ॒मुष्य॑ । शा॒स॒तः । दि॒वँ । य॒य । दि॒वाव॑सो इति॑ दि॒वाऽव॑सो ॥ ३ ॥

अथाश्विन्यत्र एषामभिषवपापाणां नेमिः सोमलता वि धूनुते । विशेषेण कंपयति । उरां मेघी वृको न  
वृक इव । सिद्धमन्यत् ॥

आ त्वा॒ क॒णा इ॒हाव॑से ह॒वँते॒ वाज॑सातये ।

दि॒वो अ॒मुष्य॑ शा॒स॒तो दि॒वँ य॒य दि॒वाव॑सो ॥ ४ ॥

आ । त्वा॒ । क॒णाः । इ॒ह । अ॒व॑से । ह॒वँते॒ । वाज॑ऽसातये ।

दि॒वः । अ॒मुष्य॑ । शा॒स॒तः । दि॒वँ । य॒य । दि॒वाव॑सो इति॑ दि॒वाऽव॑सो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वामिह यज्ञे कणा अवसे रचणाय वाजसातयेऽन्नस्य प्राप्त्यर्थं वा हवन्ते । आनिमुख्येन  
ह्वयन्ति । सिद्धमन्यत् ॥

द॒धामि॑ ते सु॒तानां॑ वृ॒ष्णे न पू॒र्वपा॒य्यं ।

दि॒वो अ॒मुष्य॑ शा॒स॒तो दि॒वँ य॒य दि॒वाव॑सो ॥ ५ ॥

द॒धा॒मि॒ । ते॒ । सु॒ता॒नां॑ । वृ॒ष्णे । न । पू॒र्व॑ऽपा॒य्यं ।

दि॒वः । अ॒मुष्य॑ । शा॒स॒तः । दि॒वँ । य॒य । दि॒वाव॑सो इति॑ दि॒वाऽव॑सो ॥ ५ ॥



हे इंद्र ते तुभ्यं सुतानां । द्वितीयाद्यै षष्ठी । सुतान् सोमान् दधामि । प्रयच्छामि । वृष्णे न यथा वायवे  
पूर्वपाथं यज्ञमुखे पेयं प्रयच्छन्ति तद्वदहं प्रयच्छामीत्यर्थः । सिद्धमन्यत् ॥ ११ ॥

सप्तपुरंधिर्न आ गहि विश्वतोधीर्न ऊतये ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ६ ॥

सप्तऽपुरंधिः । नः । आ । गहि । विश्वतःऽधीः । नः । ऊतये ।

दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥ ६ ॥

हे इंद्र सप्तपुरंधिः स्वर्गकुटुंबी नोऽस्माना गहि । तथा विश्वतोधीः सर्वजगतो धारकत्वं नोऽस्माकमूतये  
रक्षणाया गहि । आगच्छ ॥

आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥

आ । नः । याहि । महेऽमते । सहस्रऽऊते । शतऽमघ ।

दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥ ७ ॥

हे महेमते महाबुधे सहस्रोते सहस्ररक्षण शतामघ वज्रधनेंद्र त्वं नोऽस्माना याहि । आगच्छ ।  
सिद्धमन्यत् ॥

आ त्वा होता मनुर्हितो देवचा वक्षदीङ्गः ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ८ ॥

आ । त्वा । होता । मनुःऽहितः । देवऽचा । वक्षत् । ईङ्गः ।

दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥ ८ ॥

हे इंद्र त्वा त्वां देवचा देवानां मध्य ईङ्गः जुहो होता देवानामाह्वाताभिर्मनुर्हितो मनुष्यैर्गृहेषु निहित  
आ वसत । वहतु । सिद्धमन्यत् ॥

आ त्वा मदच्युता हरीं श्येनं पक्षेव वक्षतः ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ९ ॥

आ । त्वा । मदऽच्युता । हरी इति । श्येनं । पक्षाऽईव । वक्षतः ।

दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥ ९ ॥

हे इंद्र त्वा त्वां मदच्युता मदच्युतां शत्रूणां मदस्य आवयितारी हरी अर्ध्यां श्येनं श्येनाख्यं पक्षिणं  
पक्षेवास्त्रीयपक्षाधिवो वक्षतः । आवहतां । सिद्धमन्यत् ॥

आ यादुर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतर्ये ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १० ॥

आ । याहि । अर्यः । आ । परि । स्वाहा । सोमस्य । पीतये ।

दिवः । अमुष्य । शासंतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥१०॥

हे अर्येश्वर त्वमा परि सर्वत आ याहि । आगच्छ । पीतये तव पानार्थं सोमस्य सोमं स्वाहा करोमि । सिद्धमन्यत् ॥ ॥१०॥

आ नो यादुपश्रुत्युक्थेषु रणया इह ।

दिवो अमुष्य शासंतो दिवं यय दिवावसो ॥११॥

आ । नः । याहि । उपऽश्रुति । उक्थेषु । रणय । इह ।

दिवः । अमुष्य । शासंतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥११॥

हे इंद्र त्वं नोऽस्माकमिह यज्ञ उक्थेषु शस्त्रेषु पदमानेषूपश्रुत्युपश्रुती समीपमा याहि । आगच्छ । अस्मान्नय च । सिद्धमन्यत् ॥

सरूपैरा सु नो गहि संभृतिः संभृताश्वः ।

दिवो अमुष्य शासंतो दिवं यय दिवावसो ॥१२॥

सऽरूपैः । आ । सु । नः । गहि । संभृतिः । संभृतऽश्वः ।

दिवः । अमुष्य । शासंतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥१२॥

हे इंद्र त्वं पर्वतेभ्यः पुष्टाश्वस्वं सु संभृतिः सरूपैः समानरूपैरश्वैर्नोऽस्माना गहि । आगच्छ । सिद्धमन्यत् ॥

आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः ।

दिवो अमुष्य शासंतो दिवं यय दिवावसो ॥१३॥

आ । याहि । पर्वतेभ्यः । समुद्रस्य । अधि । विष्टपः ।

दिवः । अमुष्य । शासंतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥१३॥

हे इंद्र त्वं पर्वतेभ्य आ याहि । आगच्छ । समुद्रस्मांतरिक्षस्य विष्टपो विष्टपाच्चाध्यायाहीत्यर्थः । सिद्धमन्यत् ॥

आ नो गव्यान्पश्या सहस्रां शूर ददृहि ।

दिवो अमुष्य शासंतो दिवं यय दिवावसो ॥१४॥

आ । नः । गव्यानि । पश्या । सहस्रा । शूर । ददृहि ।

दिवः । अमुष्य । शासंतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥१४॥

हे शूरेंद्र त्वं नोऽश्वं सहस्रा सहस्राणि सहस्रसंख्यानि गव्यानि गोहितानि गोरूपाणि वाश्वान्यश्वाहि तान्वशात्सकानि वा ददृहि । आचिष्युः । सिद्धमन्यत् ॥

आ नः सहस्रशो भिरायुतानि शतानि च ।

दिवो अमुष्य शासंतो दिवं यय दिवावसो ॥१५॥



आ । नः । सहस्रऽशः । भर । अयुतानि । शतानि । च ।

दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥१५॥

हे इंद्र नोऽस्माकं सहस्रशः सहस्रधायुतानि शतानि चामीष्टानि वस्तूना भर । आहर । सिद्धमन्यत ॥

आ यदिद्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः । ओजिष्ठमर्घ्यं पुष्पं ॥१६॥

आ । यत् । इंद्रः । च । दद्वहे इति । सहस्रं । वसुरोचिषः । ओजिष्ठं । अर्घ्यं । पुष्पं ॥१६॥

वसुरोचिषो वसुदीप्तयो वयं सहस्रमस्माकं जेतेंद्रर्षीजिष्ठं बलवत्तरमर्घ्यमद्यात्मकं पुष्पं च यद्यदा दद्वहे पारावतादादसहे । उत्तरश्च संबंधः ॥

य ऋजा वातरंहसोऽरुषासो रघुष्यदः । भाजंते सूर्या इव ॥१७॥

ये । ऋजाः । वातऽरंहसः । अरुषासः । रघुऽस्यदः । भाजंते । सूर्याऽऽइव ॥१७॥

तदा य ऋजा ऋजुगामिनो वातरंहसो वायुसदृशविगा अरुषास आरोपमाना रघुष्यदो लघु स्वंदमाना अश्वाः सूर्या इव यथा सूर्यलक्षणा भाजंते ॥

पारावतस्य रातिषु द्रवचक्रेष्वामुषु । तिष्ठ वनस्य मध्य आ ॥१८॥

पारावतस्य । रातिषु । द्रवत् चक्रेषु । आमुषु । तिष्ठ । वनस्य । मध्ये । आ ॥१८॥

तेषु पारावतस्य रातिषु दैत्येषु द्रवचक्रेषु द्रवद्रवचक्रेष्वामुष्वक्षेषु । तार्क्ष्य आगुरित्यश्वनामसु पाठात् । प्रतिगृहीतेषु सत्सु वनस्य मध्य आ तिष्ठमिति वसुरोचिषां सहस्रं वदति ॥ ॥१३॥

अग्निनेद्रेणेति चतुर्विंशत्युचं पंचमं सूक्तं आवाश्रयाचैयस्त्वार्षं । अश्वानुक्रमणिका । अग्निना चतुर्विंशतिः आवाश्र आश्विनमीपरिष्टाज्योतिषं पंक्तिमहावृहतीपंक्त्यंतमिति । उपरिष्टाज्योतिःकंदः चतुर्थपादस्याष्टा चरत्वात् । यतोऽष्टकस्ततो ज्योतिः । अगु० ९. ८. इति तत्प्रचणं । द्वाविंशी पंक्तिः । त्रयोविंशी महानुहती चत्वारोऽष्टका आगतस्य महानुहती । अगु० ९. ९. इत्युक्तस्य चोपेतत्वात् । चतुर्विंशी पंक्तिः । अश्विनी देवता ॥ अश्विनोर्धामे हीनुरतिरिक्तोक्तेऽग्निनेद्रेणेत्यतः सूक्तं । सुचितं च । अग्निनेद्रेणा भावभिः । आ० ९. ११. इति ॥

अग्निनेद्रेण वरुणेन विष्णुनादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥१॥

अग्निना । इंद्रेण । वरुणेन । विष्णुना । आदित्यैः । रुद्रैः । वसुऽभिः । सचाऽभुवा ।

सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । सोमं । पिबतं । अश्विना ॥१॥

हे अश्विनाश्विनी अग्निनेद्रेण वरुणेन विष्णुनादित्यै रुद्रैर्वसुभिश्च सचाभुवा सहभूताउषसा सूर्येण च सजोषसा संगतौ शुवां सोमं पिबतं ॥

विश्वामिधीभिर्भुवनेन वाजिना दिवा पृथिव्यादिभिः सचाभुवा ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥२॥

विश्वामिः । धीभिः । भुवनेन । वाजिना । दिवा । पृथिव्या । अद्रिऽभिः । सचाऽभुवा ।

सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । सोमं । पिबतं । अश्विना ॥२॥

हे वाजिना बलिनावन्विनी विद्याभिः सर्वाभिर्धोभिः प्रज्ञाभिर्मुचनेमाखिलेन भूतजातेन च दिवा  
बुल्लोकेन च पृथिव्या चाद्रिभिश्च सचाभुवा सहभूताउषसा सूर्येण च संगती युवां सोमं पिबतं ॥

विश्वेदेवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाग्निर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥३॥

विश्वैः । देवैः । त्रिभिः । एकादशैः । इह । अत्भिः । मरुद्भिः । भृगुभिः । सचाभुवा ।

सजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । सोमं । पिबतं । अश्विना ॥३॥

हे अश्विनी विश्वेदेवैस्त्रिभिरेकादशैस्त्रयस्त्रिंशैरिह यज्ञेऽग्निर्मरुद्भिर्भृगुभिश्च सचाभुवा सहभूताउषसा  
सूर्येण च संगती युवां सोमं पिबतं ॥

जुषेयां यज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनावं गच्छतं ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥४॥

जुषेयां । यज्ञं । बोधतं । हवस्य । मे । विश्वा । इह । देवौ । सवना । अवं । गच्छतं ।

सजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । आ । इषं । नः । वोळ्हं । अश्विना ॥४॥

हे अश्विनी यज्ञं जुषेयां । सेवेयां । मे मम हवस्य हवं बोधतं । जानीतं । इह यज्ञे विद्या सर्वाणि  
सवनान्यव गच्छतं । प्राप्तुं । इषमज्ञं न आ वोळ्हं । प्रापयतं ॥

स्तोमं जुषेयां युवशेवं कन्यतां विश्वेह देवौ सवनावं गच्छतं ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥५॥

स्तोमं । जुषेयां । युवशाऽइव । कन्यतां । विश्वा । इह । देवौ । सवना । अवं । गच्छतं ।

सजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । आ । इषं । नः । वोळ्हं । अश्विना ॥५॥

हे अश्विनी देवौ युवामिहास्मिन्यज्ञे स्तोमं जुषेयां । सेवेयां । युवशेव यथा युवानौ कन्यतां कन्यानामा-  
ज्ञानं सेवेते । तददित्यर्थः । इह यज्ञे विद्या विद्यानि सवनान्यव गच्छतं । प्राप्तुं । सिद्धमन्यत ॥

गिरो जुषेयामध्वरं जुषेयां विश्वेह देवौ सवनावं गच्छतं ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥६॥

गिरः । जुषेयां । अध्वरं । जुषेयां । विश्वा । इह । देवौ । सवना । अवं । गच्छतं ।

सजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । आ । इषं । नः । वोळ्हं । अश्विना ॥६॥

हे देवावश्विनी नोऽस्माकं गिरः कुतीर्जुषेयां । सेवेयां । तथाध्वरं यज्ञं च जुषेयां । इह यज्ञे विद्यानि  
सवनान्यव गच्छतं । प्राप्तुं ॥ ॥१४॥

हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवावं गच्छथः ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च चिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥७॥



हारिद्रवाऽइव । पतथः । वना । इत् । उप । सोमं । सुतं । महिषाऽइव । अवं । गच्छथः ।  
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । चिः । वर्तिः । यातं । अश्विना ॥ ७ ॥

हे अश्विनी युवां सुतमभिषुतं सोममुप पतथो हारिद्रवाविव यथा हारिद्रवी पचिणी वना वनान्युद-  
कानि वा । वनमित्युदकानामसु पाठात् । उपपततः । तद्वदित्यर्थः । महिषाविव यथा पिपासिती महिषाव-  
दकान्युपगच्छतः तथा सुतं सोममव गच्छथः । उषसा सूर्येण च संगती चिर्वर्तिस्त्रिमार्गे यातं च ॥

हंसाविव पतथो अधगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च चिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ८ ॥

हंसौऽइव । पतथः । अधगौऽइव । सोमं । सुतं । महिषाऽइव । अवं । गच्छथः ।

सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । चिः । वर्तिः । यातं । अश्विना ॥ ८ ॥

हे अश्विनी युवां हंसाविव यथा हंसावधगाविव यथा च पक्षिकावुदकं गच्छतः तथा वेगेन सुतं सोमं  
पतथः । सिद्धमन्यत् ॥

श्वेनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च चिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ९ ॥

श्वेनौऽइव । पतथः । हव्यऽदातये । सोमं । सुतं । महिषाऽइव । अवं । गच्छथः ।

सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । चिः । वर्तिः । यातं । अश्विना ॥ ९ ॥

हे अश्विनी युवां श्वेनाविव यथा श्वेनौ गगणं गच्छतः तथा वेगेन सुतं सोमं हव्यदातये यजमानार्थं  
पतथः । गच्छथः । सिद्धमन्यत् ॥

पिबतं च तृप्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तं ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जे नो धत्तमश्विना ॥ १० ॥

पिबतं । च । तृप्णुतं । च । आ । च । गच्छतं । प्रऽजां । च । धत्तं । द्रविणं । च । धत्तं ।

सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । ऊर्जे । नः । धत्तं । अश्विना ॥ १० ॥

हे अश्विनी युवां सोमं पिबतं च । तृप्णुतं च । तृप्यतं च । पानार्थं तृप्यर्थं चा गच्छतं । सोमं पीत्वा तृप्ती  
संती युवामन्त्रार्थं प्रजां च धत्तं । धारयतं । द्रविणं धनं च धत्तं । उषसा सूर्येण च संगती नोऽन्त्रमूर्ध्वं  
वलं च धत्तं ॥

जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तं ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जे नो धत्तमश्विना ॥ ११ ॥

जयतं । च । प्र । स्तुतं । च । प्र । च । अवतं । प्रऽजां । च । धत्तं । द्रविणं । च । धत्तं ।

सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । ऊर्जे । नः । धत्तं । अश्विना ॥ ११ ॥

हे अश्विनी युवां जयतं । श्रूयं जयतं । प्र स्तुतं स्तोतृभ्यः प्र चावतमन्त्रांश्च प्ररुतं । अन्यत्सिद्धं ॥

ह॒तं च॒ श॒चू॒न्य॒त॒तं च॒ मि॒चि॒णः॒ प्र॒जां च॒ ध॒त्तं द्र॒वि॒णं च॒ ध॒त्तं ।

स॒जोष॑सा॒ उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण॒ चो॒जं नो॒ ध॒त्तम॑श्विना ॥ १२ ॥

ह॒तं । च॒ । श॒चू॒न॒ । य॒त॒तं । च॒ । मि॒चि॒णः॒ । प्र॒॒जां । च॒ । ध॒त्तं । द्र॒वि॒णं । च॒ । ध॒त्तं ।

स॒॒जोष॑सौ । उ॒षसा॒ । सूर्ये॑ण॒ । च॒ । ऊ॒जं । नः॒ । ध॒त्तं । अ॒श्वि॒ना ॥ १२ ॥

हे अश्विनी युवां शचून् हतं । उतापि च यततं मिचिणः । मैचीयुक्तांश्च गच्छतं । सिद्धमन्यत् ॥ ११५ ॥

मि॒चाव॑रुण॒वंता॒ उ॒त ध॑र्म॒वंता॒ म॒रु॒त्वंता॒ ज॒रि॒तुर्ग॑च्छ॒थो ह॑वं ।

स॒जोष॑सा॒ उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण॒ चादि॒त्यैर्या॑तमश्विना ॥ १३ ॥

मि॒चाव॑रुण॒ऽवंता॑ । उ॒त । ध॑र्म॒ऽवंता॑ । म॒रु॒त्वंता॑ । ज॒रि॒तुः । ग॒च्छ॒थः । ह॑वं ।

स॒॒जोष॑सौ । उ॒षसा॒ । सूर्ये॑ण॒ । च॒ । आ॒दि॒त्यैः । या॒तं । अ॒श्वि॒ना ॥ १३ ॥

उतापि च हे अश्विनी युवां मिचावरुणवंता मिचावरुणयुक्ता धर्मवंता धर्मयुक्ता च मरुत्वंता मरुद्भिर्-  
युक्ता च जरितुः क्षातुर्हवमाह्वानं गच्छथः । आगच्छतं । उषसा सूर्येण चादित्यैश्च यातं । गच्छतं ॥

अ॒ंगिर॑स्व॒न्ता॒ उ॒त वि॒ष्णु॑वंता॒ म॒रु॒त्वंता॒ ज॒रि॒तुर्ग॑च्छ॒थो ह॑वं ।

स॒जोष॑सा॒ उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण॒ चादि॒त्यैर्या॑तमश्विना ॥ १४ ॥

अ॒ंगिर॑स्व॒न्ता॑ । उ॒त । वि॒ष्णु॑ऽवंता॑ । म॒रु॒त्वंता॑ । ज॒रि॒तुः । ग॒च्छ॒थः । ह॑वं ।

स॒॒जोष॑सौ । उ॒षसा॒ । सूर्ये॑ण॒ । च॒ । आ॒दि॒त्यैः । या॒तं । अ॒श्वि॒ना ॥ १४ ॥

उतापि च हे अश्विनी युवामंगिरस्वन्तावंगिरोभिर्युक्ता विष्णुवंता विष्णुना च सहितौ मरुद्भिश्च सहितौ  
क्षीतुराह्वानं गच्छतं । सिद्धमन्यत् ॥

अ॒भु॒म॒न्ता॒ वृ॒षणा॒ वा॒ज॒वंता॒ म॒रु॒त्वंता॒ ज॒रि॒तुर्ग॑च्छ॒थो ह॑वं ।

स॒जोष॑सा॒ उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण॒ चादि॒त्यैर्या॑तमश्विना ॥ १५ ॥

अ॒भु॒ऽम॒न्ता॑ । वृ॒षणा॒ । वा॒ज॒ऽवंता॑ । म॒रु॒त्वंता॑ । ज॒रि॒तुः । ग॒च्छ॒थः । ह॑वं ।

स॒॒जोष॑सौ । उ॒षसा॒ । सूर्ये॑ण॒ । च॒ । आ॒दि॒त्यैः । या॒तं । अ॒श्वि॒ना ॥ १५ ॥

हे अश्विनावुभुमन्ता अमुसहितौ वृषणा कामानां वर्षितारी वाजवंतौ वाजयुक्ता मरुत्वंतौ च क्षीतुराह्वानं  
गच्छतं । अमुमन्ता वाजवतेति ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां व्यपदेशः । सिद्धमन्यत् ॥

ब॒ह्व॑ जि॒न्वत॑सु॒त जि॒न्वत॑ धि॒यो ह॒तं र॒क्षांसि॑ से॒ध॒त॒ममी॑वाः ।

स॒जोष॑सा॒ उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण॒ च॒ सोमं॑ सु॒न्वतो॑ अ॒श्वि॒ना ॥ १६ ॥

ब॒ह्व॑ । जि॒न्व॒तं । उ॒त । जि॒न्व॒तं । धि॒यः । ह॒तं । र॒क्षांसि॑ । से॒ध॒तं । अ॒मी॑वाः ।

स॒॒जोष॑सौ । उ॒षसा॒ । सूर्ये॑ण॒ । च॒ । सोमं॑ । सु॒न्व॒तः । अ॒श्वि॒ना ॥ १६ ॥

हे अश्विनी युवां ब्रह्म ब्राह्मणं जिन्वतं । प्रीणयतं । उतापि च धियः कर्माणि जिन्वतं । हतं च रक्षांसि ।  
अमीवा राक्षसांश्च सेधतं । उषसा सूर्येण च संगती सुन्वतो यवमानश्च सोमं पिबतमित्यर्थः ॥



क्षुचं जिन्वतमुत जिन्वतं नृन्हृतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१७॥

क्षुचं । जिन्वतं । उत । जिन्वतं । नृन् । हृतं । रक्षांसि । सेधतं । अमीवाः ।

सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । सोमं । सुन्वतः । अश्विना ॥१७॥

हे अश्विनी युवां षचं षचिद्यं जिन्वतं । उतापि च नृन्योऽनुजिन्वतं । सिद्धमन्यत् ॥

धेनुर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हृतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१८॥

धेनुः । जिन्वतं । उत । जिन्वतं । विशः । हृतं । रक्षांसि । सेधतं । अमीवाः ।

सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । सोमं । सुन्वतः । अश्विना ॥१८॥

हे अश्विनी धेनुर्जिन्वतं । उतापि च विशो वैष्णाञ्च जिन्वतं । सिद्धमन्यत् ॥ ॥१८॥

अचेरिव ऋणुतं पूर्व्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मंदच्युता ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोऽञ्जं ॥१९॥

अचैऽइव । ऋणुतं । पूर्व्यऽस्तुतिं । श्यावऽअश्वस्य । सुन्वतः । मंदऽच्युता ।

सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । अश्विना । तिरऽऽञ्जं ॥१९॥

हे अश्विनी मंदच्युता ऋणुतां मदस्य आवायितारौ युवां सुन्वतोऽभिषवं कुर्वतः आवायस्य मम पिताम-  
हस्याचेरिव पूर्व्यस्तुतिं सुखां स्तुतिं ऋणुतं । उषसा सूर्येण च संगती तिरोऽञ्जं सोमं पिबतं । तिरोहिते  
पूर्व्यस्तिन्नहन्त्यपरेषुः प्रातरश्विनोर्याग इति ॥

सर्गा इव सृजतं सुहृतीरुप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मंदच्युता ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोऽञ्जं ॥२०॥

सर्गान्ऽइव । सृजतं । सुहृतीः । उप । श्यावऽअश्वस्य । सुन्वतः । मंदऽच्युता ।

सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । अश्विना । तिरऽऽञ्जं ॥२०॥

हे अश्विनी आवायस्य मम सुहृतीः शोभनाः स्तुतीः सर्गानिव । आभरणानि वा हवींषि वा सर्गाः ।  
ताम्यथा तथात्मन्यप सृजतं । सिद्धमन्यत् ॥

रश्मीरिव यच्छतमध्वरौ उप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मंदच्युता ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोऽञ्जं ॥२१॥

रश्मीन्ऽइव । यच्छतं । अध्वरान् । उप । श्यावऽअश्वस्य । सुन्वतः । मंदऽच्युता ।

सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । अश्विना । तिरऽऽञ्जं ॥२१॥

हे अश्विनी आवायस्य ममाध्वराश्च रश्मीनिव यथाश्रम्यहांसदुप यच्छतं । उपयच्छतं । सिद्धमन्यत् ॥

अ॒र्वा॒य॒थं॒ नि॒ य॒च्छ॒तं॒ पि॒ब॒तं॒ सो॒म्यं॒ म॒धु ।

आ॒ या॒त॒म॒श्वि॒ना॒ ग॒त॒म॒व॒स्यु॒र्वी॒म॒हं॒ हु॒वे॒ ध॒त्तं॒ र॒त्नानि॑ दा॒शु॒षे ॥२२॥

अ॒र्वा॒क् । रथं॑ । नि॒ । य॒च्छ॒तं॒ । पि॒ब॒तं॒ । सो॒म्यं॒ । म॒धु ।

आ॒ । या॒तं॒ । अ॒श्वि॒ना॒ । आ॒ । ग॒तं॒ । अ॒व॒स्युः॒ । वां॒ । अ॒हं॒ । हु॒वे॒ । ध॒त्तं॒ । र॒त्नानि॑ । दा॒शु॒षे ॥२२॥

हे अश्विनी वां स्वीयं रथमर्वागच्छदभिमुखं नि यच्छतं । सोम्यं सोममयं मध्वमृतं च पिबतं । यद्यमा यातं च । सोमं प्रत्या गतं । आगच्छतं च । अवस्यु रक्षणकामोऽहं आवासी वा ऊवे । इयामि । दाशुषे हवीषि प्रयच्छते मह्यं रत्नानि धत्तं । धारयतं ॥

न॒मो॒वा॒के॒ प्र॒स्थि॒ते॒ अ॒ध्व॒रे॒ न॒रा॒ वि॒व॒क्ष॒ण॒स्य॒ पी॒तये॑ ।

आ॒ या॒त॒म॒श्वि॒ना॒ ग॒त॒म॒व॒स्यु॒र्वी॒म॒हं॒ हु॒वे॒ ध॒त्तं॒ र॒त्नानि॑ दा॒शु॒षे ॥२३॥

न॒मः॒ऽवा॒के॒ । प्र॒ऽस्थि॒ते॒ । अ॒ध्व॒रे॒ । न॒रा॒ । वि॒व॒क्ष॒ण॒स्य॒ । पी॒तये॑ ।

आ॒ । या॒तं॒ । अ॒श्वि॒ना॒ । आ॒ । ग॒तं॒ । अ॒व॒स्युः॒ । वां॒ । अ॒हं॒ । हु॒वे॒ । ध॒त्तं॒ । र॒त्नानि॑ । दा॒शु॒षे ॥२३॥

हे अश्विनी नरा नेतारौ युवां विवक्षणस्य हवनशीलस्य मम प्रस्थिते नमोवाके । नमस्काराय प्रोच्यते स नमोवाकः । तस्मिन्नध्वरे यज्ञे । तथा च ब्राह्मणं । उभयं सह वा एतयज्ञ एव यत्सूक्तवाकस्य नमोवाकस्य । शत० १. ९. १. ४. । इति । पीतये सोमपाप्नाया यातं । सिद्धमन्यत् ॥

स्वा॒हा॒कृत॑स्य॒ तृ॒प॒तं॒ सु॒तस्य॑ दे॒वा॒व॒धंसः॑ ।

आ॒ या॒त॒म॒श्वि॒ना॒ ग॒त॒म॒व॒स्यु॒र्वी॒म॒हं॒ हु॒वे॒ ध॒त्तं॒ र॒त्नानि॑ दा॒शु॒षे ॥२४॥

स्वा॒हा॒ऽकृत॑स्य । तृ॒प॒तं॒ । सु॒तस्य॑ । दे॒वौ॒ । अ॒धंसः॑ ।

आ॒ । या॒तं॒ । अ॒श्वि॒ना॒ । आ॒ । ग॒तं॒ । अ॒व॒स्युः॒ । वां॒ । अ॒हं॒ । हु॒वे॒ । ध॒त्तं॒ । र॒त्नानि॑ । दा॒शु॒षे ॥२४॥

हे अश्विनी देवी युवां सुतस्याभिषुतस्य स्वाहाकृतस्य ऊतस्त्रांधसः सोमस्य तृपतं । सिद्धमन्यत् ॥ १७ ॥

अवितासीति सप्तर्वं षष्ठं सूक्तमात्रेयस्य आवाशस्थार्धं । अत्रेयमनुक्रमणिका । अविता सप्त शास्त्ररं महापंथं तमिति । षट्पंचाशदक्षरा शस्त्ररी कंदः । आवाशस्थेति सप्तमी महापंक्तिः षठ्छट्का वा महापंक्तिः । अनु० १०. ३. । इति लक्षणसंज्ञावात् ॥ दशरात्रे पंचमेऽहनि मरुत्वतीय इदं सूक्तं । सूचितं च । अवितासीत्या हि । आ० ७. १२. । इति ॥

अ॒वि॒ता॒सि॑ सु॒न्व॒तो॒ वृ॒क्त॒र्ब॒र्हिषः॑ पि॒बा॒ सो॒मं॒ म॒दा॒य॒ कं॒ श॒त॒क्र॒तो॒ ।

यं॒ ते॒ भा॒ग॒म॒धा॒रय॑न्वि॒श्व॒ाः॒ से॒हा॒नः॒ पृ॒त॒ना॒ उ॒रु॒ ज॒यः॒ स॒म॒प्सु॒जि॒न्म॒रु॒वाँ॑ इं॒द्र॒ स॒त्प॒ते ॥१॥

अ॒वि॒ता॒ । अ॒सि॒ । सु॒न्व॒तः॒ । वृ॒क्त॒ऽर्ब॒र्हिषः॑ । पि॒ब॒ । सो॒मं॒ । म॒दा॒य॒ । कं॒ । श॒त॒क्र॒तो॒ इति॑

श॒त॒ऽक्र॒तो॒ ।

यं॒ । ते॒ । भा॒गं॒ । अ॒धा॒रय॑न् । वि॒श्व॒ाः॒ । से॒हा॒नः॒ । पृ॒त॒नाः॒ । उ॒रु॒ । ज॒यः॒ । सं॒ । अ॒प्सु॒ऽजि॒त् ।

म॒रु॒वाँ॑ । इं॒द्र॒ । स॒त्प॒ते ॥१॥

हे शतक्रतो बह्वर्कमिन्द्र सुन्वतः सोमाभिषयं कुर्वतो वृक्तर्बर्हिषः स्वीर्यर्बर्हिषो यवमानस्याविता रवि-



तासि । भवसि । मदाय मदार्यं सोमं पिब । हे सत्पते सतां पत इन्द्र ते तुभ्यं यं सोमस्य भागमधारयन् सर्वे देवा अकल्पयन् । तथा च यजुर्ग्राह्या । स एतं महिन्द्रमुधारमुदहरत वृचं हत्वान्यासु देवतास्तथि । ति० सं० ६-५-५-३ । इति । तं भागं विश्वाः पृतनाः शत्रूणां सर्वाः सेना उरु वज्र त्रयो वेगं च सं सेहानः सम्यगभि-  
भवन्मृजिदप्सु विता च सन् पिब ॥

प्राव स्तोतारं मघवन्नव त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।

यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु जयः समंप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥२॥

प्र । अ० । स्तोतारं । म० । ऽवन् । अ० । त्वां । पिब । सोमं । मदाय । कं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।

यं । ते । भा० । अ० । धारयन् । विश्वाः । से० । हानः । पृ० । तनाः । उ० । रु । जयः । सं । अ० । प्सुऽजित् । म० । रुत्वाँ । इन्द्र । सत् । ऽपते ॥२॥

हे मघवन् स्तोतारं प्राव । प्ररच । त्वां चाव । सोमपाणिन रच । सिद्धमन्यत् ॥

ऊर्जा देवाँ अवस्योर्जसा त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।

यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु जयः समंप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥३॥

ऊर्जा । देवान् । अव० । सि । ओ० । र्जसा । त्वां । पिब । सोमं । मदाय । कं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।

यं । ते । भा० । अ० । धारयन् । विश्वाः । से० । हानः । पृ० । तनाः । उ० । रु । जयः । सं । अ० । प्सुऽजित् । म० । रुत्वाँ । इन्द्र । सत् । ऽपते ॥३॥

हे इन्द्र त्वं देवानूर्जास्त्रेण हविषावसि । रचसि । त्वामप्योर्जसा वलेनावसि । सिद्धमन्यत् ॥

जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।

यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु जयः समंप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥४॥

जनिता । दिवः । जनिता । पृ० । थिव्याः । पिब । सोमं । मदाय । कं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।

यं । ते । भा० । अ० । धारयन् । विश्वाः । से० । हानः । पृ० । तनाः । उ० । रु । जयः । सं । अ० । प्सुऽजित् । म० । रुत्वाँ । इन्द्र । सत् । ऽपते ॥४॥

हे इन्द्र त्वं दिवो बुध्नोक्तस्य जनिता जनकोऽसि । पृथिव्याश्च जनितासि । सिद्धमन्यत् ॥

जनिताश्चानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।

यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु जयः समंप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥५॥

जनिता । अ० । श्चानां । जनिता । गवाँ । अ० । सि । पिब । सोमं । मदाय । कं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।

यं । ते । भा० । अ० । धारयन् । विश्वाः । से० । हानः । पृ० । तनाः । उ० । रु । जयः । सं । अ० । प्सुऽजित् । म० । रुत्वाँ । इन्द्र । सत् । ऽपते ॥५॥

हे इन्द्र त्वमद्यानां जनिता जनकोऽसि । गवां च जनितासि । सिद्धमन्यत् ॥

अचीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।  
यं ते भागमधारयन्विश्वः सेहानः पृतना उरु जयः समस्फुजिन्मरुवाँ इन्द्र सत्पते ॥ ६ ॥  
अचीणां स्तोमं अद्रिऽवः ॥ महः ॥ कृधि ॥ पिबा ॥ सोमं ॥ मदाय ॥ कं ॥ शतक्रतो ॥ इति शतऽक्रतो ।  
यं ते ॥ भागं ॥ अधारयन् ॥ विश्वः ॥ सेहानः ॥ पृतनाः ॥ उरु ॥ जयः ॥ सं ॥ अस्फुजित ॥  
मरुवान् ॥ इन्द्र ॥ सत्पते ॥ ६ ॥

हे अद्रिवोऽद्रिमन् अचीणां स्तोमं महस्कृधि । पूजितं कुरु । सिद्धमन्यत् ॥

श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा मृणु यथामृणोरचेः कर्माणि कृण्वतः ।  
प्र चसदस्युमाविष त्वमेक इन्नुषाह्य इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन् ॥ ७ ॥  
श्यावऽश्वस्य । सुन्वतः । तथा । मृणु । यथा । अमृणोः । अचेः । कर्माणि । कृण्वतः ।  
प्र । चसदस्युं । आविष । त्वं । एकः । इत् । नृऽसह्ये । इन्द्र । ब्रह्माणि । वर्धयन् ॥ ७ ॥

हे इन्द्र त्वं सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतः श्यावाश्वस्य मम स्तुतिं कर्माणि कृण्वतः कुर्वतोऽचेर्यथामृणोः  
अर्वायोः तथा मृणु । अपि च त्वमेक इदेक एव नृषाह्ये युधि ब्रह्माणि स्तोत्राणि कामिर्वर्धयन्स्रसदस्युं  
प्राविष ॥ ॥ १८ ॥

प्रेदं ब्रह्मेति सप्तर्षे सप्तमं सूक्तमाचैयस्य श्यावाश्वस्यार्थं । आद्या द्वापंचाशदचरातिजगती । शिष्टाः षडष्टका  
महापंक्तयः । इन्द्रो देवता । तथा चानुक्रांतं । प्रेदं महापांक्तमाद्यातिजगतीति ॥ महाव्रते निष्कवेषा  
एतत्सूक्तं । तथा च सूचं । प्रेदं ब्रह्मिन्द्रो मदाय । आ० ७. १२. इति ॥

प्रेदं ब्रह्म वृचतूयेष्वविष्य प्र सुन्वतः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।  
माध्यंदिनस्य सर्वनस्य वृचहन्नेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ १ ॥  
प्र । इदं । ब्रह्म । वृचऽतूयेषु । आविष्य । प्र । सुन्वतः । शचीऽपते । इन्द्र । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः ।  
माध्यंदिनस्य । सर्वनस्य । वृचऽहन् । अनेद्य । पिब । सोमस्य । वज्रिऽवः ॥ १ ॥

हे शचीपत इन्द्र त्वं वृचतूयेषु संयामेष्विदं ब्रह्मेमाण् ब्राह्मणान्विश्वामिः सर्वाभिरूतिमी रषामिः प्राविष्य ।  
प्ररष । सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतो यजमानांश्च प्राविष्य । अपि च हे अनेद्यानिंय वज्रिवो वज्रिन् वृचहन्निन्द्र  
माध्यंदिनस्य सर्वनस्य संबंधिनं सोमस्य सोमं पिब ॥

सेहान उय पृतना अभि दुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।  
माध्यंदिनस्य सर्वनस्य वृचहन्नेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ २ ॥  
सेहानः । उय । पृतनाः । अभि । दुहः । शचीऽपते । इन्द्र । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः ।  
माध्यंदिनस्य । सर्वनस्य । वृचऽहन् । अनेद्य । पिब । सोमस्य । वज्रिऽवः ॥ २ ॥

हे शचीपते कर्मपत उयोदूणीन्द्र अभि दुहो द्रोग्धीः पृतनाः सेनाः सेहानोऽभिभवन् सर्वैः पालनैर्ब्रा-  
ह्मणान् प्राविष्यत्यर्थः । सिद्धमन्यत् ॥



ए॒क॒रा॒त्र॒स्य॒ भु॒व॒न॒स्य॒ रा॒ज॒सि॒ श॒ची॒प॒त॒ इ॒न्द्र॒ वि॒श्व॒भि॒रू॒ति॒भिः ।  
 मा॒र्ध्वा॒दि॒न॒स्य॒ स॒र्व॒न॒स्य॒ वृ॒त्र॒ह॒न्ने॒द्य॒ पि॒बा॒ सो॒म॒स्य॒ व॒ज्रि॒वः ॥३॥  
 ए॒क॒ऽरा॒ट् । अ॒स्य॒ । भु॒व॒न॒स्य॒ । रा॒ज॒सि॒ । श॒ची॒ऽप॒ते॒ । इ॒न्द्र॒ । वि॒श्व॒भिः॒ । ऊ॒ति॒ऽभिः॒ ।  
 मा॒र्ध्वा॒दि॒न॒स्य॒ । स॒र्व॒न॒स्य॒ । वृ॒त्र॒ऽह॒न् । अ॒ने॒द्य॒ । पि॒ब॒ । सो॒म॒स्य॒ । व॒ज्रि॒ऽवः ॥३॥

हे शचीपत इन्द्र भुवनस्त्रीकरादेक एव राजा सन् राजसि । आजसे । सिद्धमन्यत् ॥

स॒स्था॒वा॒ना॒ य॒व॒य॒सि॒ त्व॒मे॒क॒ इ॒च्छ॒ची॒प॒त॒ इ॒न्द्र॒ वि॒श्व॒भि॒रू॒ति॒भिः ।  
 मा॒र्ध्वा॒दि॒न॒स्य॒ स॒र्व॒न॒स्य॒ वृ॒त्र॒ह॒न्ने॒द्य॒ पि॒बा॒ सो॒म॒स्य॒ व॒ज्रि॒वः ॥४॥  
 स॒ऽस्था॒वा॒ना॒ । य॒व॒य॒सि॒ । त्वं॒ । ए॒कः॒ । इ॒त् । श॒ची॒ऽप॒ते॒ । इ॒न्द्र॒ । वि॒श्व॒भिः॒ । ऊ॒ति॒ऽभिः॒ ।  
 मा॒र्ध्वा॒दि॒न॒स्य॒ । स॒र्व॒न॒स्य॒ । वृ॒त्र॒ऽह॒न् । अ॒ने॒द्य॒ । पि॒ब॒ । सो॒म॒स्य॒ । व॒ज्रि॒ऽवः ॥४॥

हे शचीपत इन्द्र त्वमेक एव सस्थावाना समानं तिष्ठताविमी लोकी यवयसि । पृथक्करोषि । सिद्धमन्यत् ॥

क्षे॒म॒स्य॒ च॒ प्र॒यु॒ज॒श्च॒ त्व॒मी॒शि॒षे॒ श॒ची॒प॒त॒ इ॒न्द्र॒ वि॒श्व॒भि॒रू॒ति॒भिः ।  
 मा॒र्ध्वा॒दि॒न॒स्य॒ स॒र्व॒न॒स्य॒ वृ॒त्र॒ह॒न्ने॒द्य॒ पि॒बा॒ सो॒म॒स्य॒ व॒ज्रि॒वः ॥५॥  
 क्षे॒म॒स्य॒ । च॒ । प्र॒ऽयु॒जः॒ । च॒ । त्वं॒ । ई॒शि॒षे॒ । श॒ची॒ऽप॒ते॒ । इ॒न्द्र॒ । वि॒श्व॒भिः॒ । ऊ॒ति॒ऽभिः॒ ।  
 मा॒र्ध्वा॒दि॒न॒स्य॒ । स॒र्व॒न॒स्य॒ । वृ॒त्र॒ऽह॒न् । अ॒ने॒द्य॒ । पि॒ब॒ । सो॒म॒स्य॒ । व॒ज्रि॒ऽवः ॥५॥

अपि च हे शचीपत इन्द्र सर्वस्य जगतः क्षेमस्य प्रयुजश्च प्रयोगस्य च । योगक्षेमयोरित्यर्थः । ईशिषि । ईश्वरो भवसि । सिद्धमन्यत् ॥

क्ष॒त्रा॒य॒ त्व॒म॒व॒सि॒ न॒ त्व॒मा॒वि॒थ॒ श॒ची॒प॒त॒ इ॒न्द्र॒ वि॒श्व॒भि॒रू॒ति॒भिः ।  
 मा॒र्ध्वा॒दि॒न॒स्य॒ स॒र्व॒न॒स्य॒ वृ॒त्र॒ह॒न्ने॒द्य॒ पि॒बा॒ सो॒म॒स्य॒ व॒ज्रि॒वः ॥६॥  
 क्ष॒त्रा॒य॒ । त्वं॒ । अ॒व॒सि॒ । न॒ । त्वं॒ । आ॒वि॒थ॒ । श॒ची॒ऽप॒ते॒ । इ॒न्द्र॒ । वि॒श्व॒भिः॒ । ऊ॒ति॒ऽभिः॒ ।  
 मा॒र्ध्वा॒दि॒न॒स्य॒ । स॒र्व॒न॒स्य॒ । वृ॒त्र॒ऽह॒न् । अ॒ने॒द्य॒ । पि॒ब॒ । सो॒म॒स्य॒ । व॒ज्रि॒ऽवः ॥६॥

हे शचीपत इन्द्र त्वं क्षत्राय जगतो बलाय भवसि । अवसि । आश्रिताजवसि । त्वं आविथ । केनापि न रक्षसे । सिद्धमन्यत् ॥

श्या॒वा॒श्व॒स्य॒ रे॒भ॒त॒स्त॒था॒ ऋ॒णु॒ यथा॒ऋ॒णो॒र॒चेः॒ क॒र्मा॒णि॒ कृ॒ण्व॒तः ।  
 प्र॒ च॒स॒द॒स्यु॒मा॒वि॒थ॒ त्व॒मे॒क॒ इ॒च्छ॒षा॒त्य॒ इ॒न्द्र॒ क्ष॒त्रा॒णि॒ वर्ध॑र्यन् ॥७॥  
 श्या॒व॒ऽअ॒श्व॒स्य॒ । रे॒भ॒तः॒ । त॒था॒ । ऋ॒णु॒ । य॒था॒ । अ॒ऋ॒णोः॒ । अ॒र्चेः॒ । क॒र्मा॒णि॒ । कृ॒ण्व॒तः॒ ।  
 प्र॒ । च॒स॒द॒स्युं॒ । आ॒वि॒थ॒ । त्वं॒ । ए॒कः॒ । इ॒त् । नृ॒ऽस॒खे॒ । इ॒न्द्र॒ । क्ष॒त्रा॒णि॒ । वर्ध॑र्यन् ॥७॥

हे इन्द्र रेभतः सुवतः श्यावाश्वस्य मम सुति कर्माणि कृण्वतोऽर्चयन् ऋणोस्तथा ऋणु । अपि च क्षत्राणि बलानि कर्मवर्धयन् युद्धे त्वमेक एव चसदस्युं प्राविथ ॥ ॥७॥

यज्ञस्य हीति दशर्चमष्टमं सूक्तं आवाच्यस्वार्धं प्राप्तस्तप्रपरिभाषया गायत्रिभिर्द्राविदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । यज्ञस्य दशैन्द्रायमिति ॥ पृष्ठाभिज्ञवषट्पद्योः प्रातःसवनेऽच्छावाकशस्त्र आवापार्थमेतत्सूक्तं । सूचितं च । यज्ञस्य हि स्थ इत्यच्छावाकस्य । आ० ७. ५. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि प्रातःसवने यज्ञस्य हि स्थ इति षष्ठहस्तोत्रियसंज्ञकसृचः । सूचितं च । इन्द्राग्नी युवामिमे यज्ञस्य हि स्थ ऋज्विजेत्यच्छावाकस्य । आ० ७. २. । इति ॥ अपिष्टोमे प्रातःसवनेऽच्छावाकस्य प्रातर्यावभिरिति प्रातःसवनीयस्य प्रस्थितयाज्या । सूचितं च । प्रातर्यावभिरिति यजति । आ० ५. ७. । इति ॥ चातुर्विंशिके प्रातःसवनेऽच्छावाकशस्त्रे आवाच्यस्त्रेत्वयं पर्यायसृचः । अन्यत्राप्यहर्गणेषु द्वितीयादिष्वहःसु । सूच्यते हि । आवाच्यस्य सुन्वत इति तुचाः पर्यायाः । आ० ७. २. । इति ॥

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्त्री वाजेषु कर्मसु । इन्द्राग्नी तस्य बोधतं ॥ १ ॥

यज्ञस्य । हि । स्थः । ऋत्विजा । सस्त्री इति । वाजेषु । कर्मसु । इन्द्राग्नी इति । तस्य । बोधतं ॥ १ ॥

हे इन्द्राग्नी सस्त्री शुवी युवां यज्ञस्यर्त्विजा ऋत्विजौ स्थः । मवयः । वाजेषु कर्मसु युजेषु गोपतिष्ठताविन्द्राग्नी तस्य तं मां तस्य मम कुतिं वा बोधतं । जानीतं ॥

तोशासा रथयावाना वृचहृणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधतं ॥ २ ॥

तोशासा । रथऽयावाना । वृचऽहना । अपराऽजिता । इन्द्राग्नी इति । तस्य । बोधतं ॥ २ ॥

हे इन्द्राग्नी तोशासा शत्रून् हिंसन्ती रथयावाना रथेन गच्छन्ती वृचहृणा वृचस्य इतारावपराजिता केनाप्यपराजिता तस्य तं मां बोधतं ॥

इदं वां मदिंरं मधुधुक्षन्त्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतं ॥ ३ ॥

इदं । वां । मदिंरं । मधु । अधुक्षन् । अद्रिऽभिः । नरः । इन्द्राग्नी इति । तस्य । बोधतं ॥ ३ ॥

हे इन्द्राग्नी वां युवामुद्दिश नरो यज्ञस्य नेतारोऽद्रिभिर्र्यावभिर्मदिंरं मदकरं मधु सोमात्प्रकमयुतमधुचन । अपूरयन् । सिद्धमन्यत् ॥

जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ४ ॥

जुषेथां । यज्ञं । इष्टये । सुतं । सोमं । सधस्तुती इति सधऽस्तुती । इन्द्राग्नी इति । आ । गतं । नरा ॥ ४ ॥

हे सधस्तुती सहभूतस्तुती नरा नेताराविन्द्राग्नी यज्ञं जुषेथां । सेवेथां । इष्टये यागाय सुतमभियुतं सोमं चागतं । आगच्छतं ॥

इमा जुषेथां सर्वना येभिर्हव्यान्यूहयुः । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ५ ॥

इमा । जुषेथां । सर्वना । येभिः । हव्यानि । ऊहयुः । इन्द्राग्नी इति । आ । गतं । नरा ॥ ५ ॥

हे इन्द्राग्नी नरा नेतारा युवां येभिर्हव्यैः सवनेर्हव्यान्यूहयुः बहयः तानीमेमानि सवना सवनानि जुषेथां । सेवेथां । आ गतं च ॥

इमां गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ६ ॥

इमां । गायत्रऽवर्तनिं । जुषेथां । सुऽस्तुतिं । मम । इन्द्राग्नी इति । आ । गतं । नरा ॥ ६ ॥



हे इंद्रापी नरो युवां मम गायचवर्तनिं गायचमार्गाभिमां सुष्टुतिं शोभनां कुतिं वृषेयां । सेवेयां । आ गत च ॥ ॥ २० ॥

प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू । इंद्रापी सोमपीतये ॥ ७ ॥

प्रातर्यावऽभिः । आ । गतं । देवेभिः । जेन्यावसू इति । इंद्रापी इति । सोमऽपीतये ॥ ७ ॥

हे जेन्यावसू जेतव्यशुभनाविंद्रापी प्रातर्यावभिर्देवैः सह सोमपीतये सोमस्य पानाया गतं । आगच्छतं ॥

श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽचीणां ऋणुतं हवै । इंद्रापी सोमपीतये ॥ ८ ॥

श्यावऽश्वस्य । सुन्वतः । अचीणां । ऋणुतं । हवै । इंद्रापी इति । सोमऽपीतये ॥ ८ ॥

हे इंद्रापी युवां सुन्वतः सोमामिषवं कुर्वतो यजमानस्य श्यावाश्वस्य ममाचीणामृत्विजां हवं ज्ञानं सोमस्य पानाय ऋणुतं ॥

एवा वामह ऊतये यथाहुवंत मेधिराः । इंद्रापी सोमपीतये ॥ ९ ॥

एव । वां । अह्ने । ऊतये । यथा । अहुवंत । मेधिराः । इंद्रापी इति । सोमऽपीतये ॥ ९ ॥

हे इंद्रापी वां युवां यथा मेधिराः प्राज्ञा अज्वंत आहृतवंतः एवमहमूतये रक्षणाय सोमस्य पीतये चाह्ने । इयामि ॥

आहं सरस्वतीवतोरिंद्राग्न्योरवो वृणे । याभ्यां गायचमृच्यते ॥ १० ॥

आ । अहं । सरस्वतीऽवतोः । इंद्राग्न्योः । अवः । वृणे । याभ्यां । गायचं । मृच्यते ॥ १० ॥

याभ्यां ययोरिंद्राग्न्योरर्थं गायचं सामर्च्यते मृच्यते तयोः सरस्वतीवतोः सुतिमतोरिंद्राग्न्योः संबंधवो रक्षणमहमा वृणे ॥ ॥ २१ ॥

अग्निमस्तोषीति दशर्चं नवमं सूक्तं काण्वस्य नामाकस्यार्थं । षष्ठ्यष्टका महापंक्तिच्छंदः । अपिर्देवता । अनुक्रांतं च । अग्निमस्तोषि नामाक आदेयं महापांक्तं हीति ॥ विनियोगो वैंगिकः ॥

अग्निमस्तोषृग्मियमग्निमीळा यजथै ।

अग्निर्देवाँ अनक्तु न उभे हि विदथे कविरंतश्चरति दूत्यं नभंतामन्यके संमे ॥ १ ॥

अग्निं । अस्तोषि । अग्मियं । अग्निं । ईळा । यजथै ।

अग्निः । देवान् । अनक्तु । नः । उभे इति । हि । विदथे इति । कविः । अंतरिति । चरति ।

दूत्यं । नभंतां । अन्यके । संमे ॥ १ ॥

अग्निमयमृगहमग्निमस्तोषि । सौमि । अपि चाग्निं यजथै यष्टुमीळा कृत्वा सौमीत्यर्थः । अपि चापिर्देवोऽस्माकं विदथे यज्ञे देवान् हविर्भिरनक्तु । कविः क्रांतदर्शमिदमे यावापृथिव्यावंतर्दूत्यं हविर्वहनादिप्रत्यक्षं दूतकर्म चरति । अन्यके श्रवणोऽपि संमे सर्वे नभंतां । नभतिर्हिसाकर्मा । अपि-ना हिंसांतां ॥

न्यग्ने नव्यसा वचस्तनूषु शंसंसेषां ।

न्यराती रराव्णां विश्वा अर्यो अरातीरितो युच्छंतामुरो नभंतामन्यके संमे ॥ २ ॥

१॥ अ॒ग्ने । न॒व्य॒सा । व॒चः । त॒नू॒षु । शंसं । ए॒षां ।

नि । अ॒रा॒तीः । ररा॒व्यां । वि॒श्वः । अ॒र्यः । अ॒रा॒तीः । इ॒तः । यु॒च्छ॒न्तु । आ॒ऽमु॒रः ।

नभ॑तां । अ॒न्य॒के । स॒मे ॥२॥

हे अग्ने तनूष्वस्माकमग्नेषु नव्यसा नवतरेण वचो वचसा स्तोत्रेणैषां शत्रूणां शंसं शंसनं नि दहेत्यर्थः । रराव्यां हविः प्रयच्छतामरातीः शत्रून् निदह । अपि च विश्वः सर्वेऽर्थोऽभिगच्छन्त आसुर आसूढा अरातीः शत्रव इतो युच्छन्तु । गच्छन्तु । सिद्धमन्यत् ॥

अग्ने॒ मन्मा॑नि॒ तुभ्यं॑ कं घृतं न जुह्म आ॒सन्ति॑ ।

स दे॒वेषु॑ प्र चि॒कि॒द्धि॒ त्वं ह्य॑सि॒ पू॒र्यः॑ शि॒वो दू॒तो वि॒वस्व॑तो नभ॑ताम॒न्य॒के स॒मे ॥३॥

अग्ने॒ । मन्मा॑नि । तुभ्यं॑ । कं । घृतं । न । जुह्मे । आ॒सन्ति॑ ।

सः । दे॒वेषु॑ । प्र । चि॒कि॒द्धि॒ । त्वं । हि । अ॒सि॒ । पू॒र्यः॑ । शि॒वः । दू॒तः । वि॒वस्व॑तः ।

नभ॑तां । अ॒न्य॒के । स॒मे ॥३॥

हे अग्ने तुभ्यं त्वदर्धमासन्त्यास्ते कं घृतं न यथा सुखकरं घृतं जुह्वत्यस्य तददृष्टमपि तवास्ते मन्मानि ममनीयानि स्तोत्राणि जुह्वे । जुहोमि । स त्वं देवेषु देवानां मध्ये प्र चिकिद्धि । अन्नदीयाः क्षुतीर्जानीहि । अपि च त्वं पूर्यः प्रत्नोऽसि । शिवः सुखकरश्चासि । विवस्वतो दूतश्चासि । सिद्धमन्यत् ॥

तत्तद॒ग्निर्वयो॑ दधे॒ यथा॑यथा कृ॒प॒ण्यति॑ ।

ऊ॒र्जाहु॑ति॒र्वसू॑नां शं च॒ योश्च॑ म॒यो दधे॑ विश्व॒स्यै दे॒वहू॑त्यै नभ॑ताम॒न्य॒के स॒मे ॥४॥

तत्त॑ऽत॒त् । अ॒ग्निः । व॒यः । दधे॑ । यथा॑ऽयथा । कृ॒प॒ण्यति॑ ।

ऊ॒र्जाऽआ॑हुतिः । वसू॑नां । शं । च॒ । योः । च॒ । म॒यः । दधे॑ । विश्व॒स्यै । दे॒वऽहू॑त्यै ।

नभ॑तां । अ॒न्य॒के । स॒मे ॥४॥

यथा यथा यद्यदन्नं क्षपयति स्तोत्रमिच्छति तत्तद्वयोऽभिर्दधे । स्तोत्रभ्यः प्रयच्छति । अपि चोर्जाहुतिरन्नेनाह्वयमानोऽभिर्वसूनां हविषां वासकानां यजमानानां शं शान्तिनिमित्तं योर्विषययोगजनितं च मयः सुखं दधे । करोति । विश्वस्यै देवस्यै सर्वस्यै देवानां ज्ञानाय च भवति । यः कस्यनापि देवो यदि ज्ञयति अपिरेव सर्वं करोतीत्यर्थः । सिद्धमन्यत् ॥

स चि॒केत॒ सही॑यसा॒ग्निश्चि॒त्रेण॑ कर्म॒णा ।

स हो॒ता शश्व॑तीनां दक्षि॒णाभि॑र॒भीवृ॑त इ॒नोति॑ च प्र॒ती॒व्यं॑ नभ॑ताम॒न्य॒के स॒मे ॥५॥

सः । चि॒केत॒ । सही॑यसा । अ॒ग्निः । चि॒त्रेण॑ । कर्म॒णा ।

सः । हो॒ता । शश्व॑तीनां । दक्षि॒णाभिः॑ । अ॒भिऽवृ॑तः । इ॒नोति॑ । च॒ । प्र॒ती॒व्यं॑ । नभ॑तां ।

अ॒न्य॒के । स॒मे ॥५॥

सोऽग्निः सहीयसाभिभावुकेन चित्रेण ज्ञानाविधेन कर्मणा व्यापारेण चिकेत । ज्ञायति । सोऽग्निः शश्वतीनां बड्डीनां देवतानां होता ज्ञाता दक्षिणाभिः पशुभिश्चाभीवृतः प्रतीव्यं प्रत्येतव्यं शत्रुमिनोति च । गच्छति च । सिद्धमन्यत् ॥ २२ ॥



अ॒ग्निर्जा॒ता दे॒वाना॑म॒ग्निर्वे॒द् म॒र्ता॑नामपी॒र्च्यं ।

अ॒ग्निः स द्र॑वि॒णो॒दा अ॒ग्निर्द्वारा॑ व्यू॒र्णुते॑ स्वा॒हुतो॑ नवी॒यसा॑ नभ॑तामन्य॒के संमे ॥६॥

अ॒ग्निः । जा॒ता । दे॒वानां॑ । अ॒ग्निः । वे॒द् । म॒र्ता॑नां । अ॒पी॒र्च्यं ।

अ॒ग्निः । सः । द्र॒वि॒णः । ऽदाः । अ॒ग्निः । द्वा॒रा । वि । ऊ॒र्णुते॑ । सु॒ऽआ॒हुतः॑ । नवी॒यसा॑ ।  
नभ॑तां । अ॒न्य॒के । स॒मे ॥६॥

देवानां जाता जाताणि ज्ञान्यभिर्वेत्ति । मर्तानां मनुष्याणां चापीर्च्यं गुह्यमभिर्वेद् । वेत्ति । सोऽपिर्द्र-  
विणोदा धनस्य दाता । नवीयसा नवतरेण हविषा स्वाहुतः सम्यग्भुतोऽपिर्द्वारा धनस्य द्वाराणि व्यूर्णुते  
च । सिद्धमन्यत् ॥

अ॒ग्निर्दे॒वेषु॑ संव॒सुः स वि॒क्षु य॒ज्ञिया॒स्वा ।

स मु॒दा का॒व्या पुरु॑ विश्वं भूमे॒व पु॒ष्यति॑ दे॒वो दे॒वेषु॑ य॒ज्ञियो॑ नभ॑तामन्य॒के संमे ॥७॥

अ॒ग्निः । दे॒वेषु॑ । सं॒ऽव॒सुः । सः । वि॒क्षु । य॒ज्ञिया॒सु । आ ।

सः । मु॒दा । का॒व्या । पुरु॑ । विश्वं । भूमे॒ऽइव॑ । पु॒ष्यति॑ । दे॒वः । दे॒वेषु॑ । य॒ज्ञियः॑ ।  
नभ॑तां । अ॒न्य॒के । स॒मे ॥७॥

देवेषु मध्येऽग्निः संवसुः । संवसति । सोऽपिर्यज्ञियासु यज्ञार्हासु विक्षु प्रजास्तपि संवसुः । किं च सोऽग्निः  
पुं यज्ञि काव्या कर्मणि भूमेव यथा भूमिर्विश्वं तथा मुदा मोदेन पुष्यति । देवेषु मध्ये देवोऽपिर्यज्ञियो  
यज्ञार्हश्च भवति । सिद्धमन्यत् ॥

यो अ॒ग्निः स॒प्तमा॑नुषः श्रि॒तो वि॒श्वेषु॑ सि॒न्धुषु॑ ।

त॒माग॑न्म चि॒प॒स्त्यं म॑धा॒तुर्दे॒स्युह॑न्तमम॒ग्निं य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्ण्यं नभ॑तामन्य॒के संमे ॥८॥

यः । अ॒ग्निः । स॒प्त॒ऽमा॑नुषः । श्रि॒तः । वि॒श्वेषु॑ । सि॒न्धुषु॑ ।

तं । आ । अ॒ग॒न्म । चि॒ऽप॒स्त्यं । म॑धा॒तुः । दे॒स्युह॑न्त॒मं । अ॒ग्निं । य॒ज्ञेषु॑ । पू॒र्ण्यं ।  
नभ॑तां । अ॒न्य॒के । स॒मे ॥८॥

योऽग्निः सप्तमानुषो विश्वेषु सर्वेषु सिन्धुषु नदीषु अतस्त्रिपत्यं चिच्छानं मंधातुर्योवनाश्च मांधातुर्देस्यु-  
हन्तं दक्षूनां हन्तारं यज्ञेषु पूर्ण्यं मुखं तमपि वयमागम । सिद्धमन्यत् ॥

अ॒ग्निस्त्री॑णि चि॒धातू॑न्या क्षे॒ति वि॒द्या क॒विः ।

स ची॒रेका॑द॒शा इ॒ह य॒क्षश्च॑ पि॒प्रय॑च्च नो वि॒प्रो दू॒तः परि॑ष्कृतो नभ॑तामन्य॒के संमे ॥९॥

अ॒ग्निः । ची॒णि । चि॒ऽधातू॑नि । आ । क्षे॒ति । वि॒द्या । क॒विः ।

सः । ची॒न् । ए॒का॒द॒शान् । इ॒ह । य॒क्षत् । च । पि॒प्रय॑त् । च । नः । वि॒प्रः । दू॒तः ।  
प॒रि॒ऽकृतः॑ । नभ॑तां । अ॒न्य॒के । स॒मे ॥९॥

कविः ज्ञातदर्शपिस्त्रीणि चिधातूनि चिबन्धनादीनि पुथिव्यादीनि विद्या वेदमीयानि ज्ञानान्या चेति ।

आवसति । अपि च सोऽभिर्दूतो देवानां विप्रः प्राज्ञः परिष्कृतोऽलंकृतश्च सन्निह यज्ञे जीनिकादशांस्तथस्त्रि-  
शद्विधान्यवत् । यजतु । नोऽस्मान् पिप्रयश्च । कामैः पूरयतु च । सिद्धमन्यत् ॥

त्वं नो अम आयुषु त्वं देवेषु पूर्य वस्व एकं इरज्यसि ।

त्वामाप्रः परिस्रुतः परिं यन्ति स्वसेतवो नभंतामन्यके समे ॥१०॥

त्वं । नः । अमे । आयुषु । त्वं । देवेषु । पूर्ण्य । वस्वः । एकः । इरज्यसि ।

त्वां । आपः । परिऽसृतः । परि । यन्ति । स्वऽसैतवः । नभंतां । अन्यके । समे ॥१०॥

हे पूर्व्यामे त्वमेक एवायुषु मनुष्येषु । द्रुह्याव आयव इति मनुष्यनामसु पाठात् । नोऽस्माकं वस्त्रो धनस्ते-  
रज्यसि । ईश्विषे । देवेष्वपि त्वमेक एव वस्त्र इरज्यसि । अपि च त्वां स्वसेतवः स्वभूतसेतवः परिस्नुतः परि-  
स्नवंत्व आपः परि यंति । परिगच्छंति । सिद्धमन्यत् ॥ २३ ॥

इंद्रापी युवमिति द्वादशैवं दशमं सूक्तं नामाकस्यार्थः । द्वितीया षट्पंचाशदचरा शक्ररी द्वादशी चिष्टुप  
शिष्टा महापंतयः । इंद्रापी देवता । तथा चातुक्रांतं । इंद्रापी द्वादशैंद्राप्तं चिष्टुतं द्वितीया शक्ररीति ॥  
महाव्रते निक्खिवत्तं ऊहभाग एव सूक्तं । तथा च पंचमारण्यके सूचितं । ऊह इंद्रापी युवं सु १० ॥ १० ॥ आ०  
५. ३. १. इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि तृतीयसवने मेघावरणो यदि महावालभिदं श्वेत्तदानीं माभ्यंदिनसवने  
होचकाः स्वशस्त्र आरंभणीयान् कर्ध्वं नामाकतृचावावपेरन् । तत्र ता हि मध्यमित्यच्छावाकस्य नामाभ्यतृचः ।  
सूचितं च । ता हि मध्यं भराणामित्यच्छावाकः । आ० ७. २. इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने  
ब्राह्मणाच्छंसिनः पूर्वीष्ट इद्रेति नामाकतृचः । सूचितं च । पूर्वीष्ट इद्रोपमातय इति ब्राह्मणाच्छंसि । आ०  
७. २. इति ॥

इंद्राग्नी युवं सु नः सहैता दासंथो रयिं ।

येन दृष्ट्वा समत्त्वा वीकृ चित्साहिषीमस्यमिर्वनैव वात् इन्नभतामन्यके समे ॥१॥

इंद्राग्रौ इति । युवं । सु । नः । सहंता । दासथः । रयिं ।

येनं । दृ॒ष्ट्वा । स॒मत् ऽसु॑ । आ । वी॒कु॒ । चि॒त् । स॒हिषी॑महि॒ । अ॒ग्निः । व॒ना ऽइ॒व ।

वाते । इत् । नभंतां । अन्यके । समे ॥ १ ॥

हे इंद्रापी संहता शत्रुनभिभवन्तौ युवं युवां नोऽस्मभ्यं रयिं धनं सुष्ठु दासथः । दत्तं । तं रयिं विशिनष्टि ।  
येन रयिणा समस्तु चित् संग्रामे दृढा चिदृढानि स्त्रिराण्यपि वीरुः शत्रुबलान्यपिर्वनेव यथापिर्वनानि वात  
इहान्तेनैवामिभवति तथा सहोषिमहि अभिभवाम । सिद्धमन्यत् ॥

न॒हि वाँ व॒व्रया॑म॒हेऽथेन्द्र॑मिच्छा॒जाम॑हे शवि॑ष्ठं नृ॒णां नरं॑ ।

स नः कदा चिद्वेता गमदा वाजसातये गमदा मेधसातये नभतामन्यके समे ॥२॥

न॒हि । वां । व॒व्रया॑महे । अथ । इंद्रं । इत् । य॒ज्ञा॑महे । शर्वि॒ष्ठं । न॒णां । न॒रं ।

सः । नः । कदा । चित् । अर्वता । गमन्त् । आ । वाजऽसातये । गमन्त् । आ ।

मेधऽसातये । नभंतां । अन्यके । समे ॥ २ ॥

हे इंद्राप्ते वां युवां न वज्रयामहे । वयं धनं न याचामहे । अथ ह्यपि तर्हि शविष्ठमतिशयेन बलवतं



शृणां नरं नेतृणामपि नेतारमिन्द्रमिन्द्रमेव यजामहे । स इन्द्रो नोऽस्मानर्वताश्चैन कदा चिदाजसातये  
ऽन्ननामाया यमत् । आगच्छति । कदाचिन्नेधसातये यन्नमजनाया यमत् । सिद्धमन्यत् ॥

ता हि मध्यं भराणामिन्द्राग्नी अधिष्ठितः ।

ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते सं धीतमंश्रुतं नरा नभंतामन्यके संमे ॥३॥

ता । हि । मध्यं । भराणां । इन्द्राग्नी इति । अधिऽस्थितः ।

तौ । ऊं इति । कविऽत्वना । कवी इति । पृच्छ्यमाना । सखिऽयते । सं । धीतं ।

अंश्रुतं । नरा । नभंतां । अन्यके । संमे ॥३॥

ता तौ प्रसिद्धाविन्द्राग्नी भराणां संयामाणां मध्यमधिष्ठितः । अधिनिवसतो हि । अथ प्रत्यक्षसृतिः । हे  
नरा नेतारौ कवित्वना कवित्वेन कवी क्रांतकर्माणां पृच्छ्यमाना कविजनैः पृच्छ्यमाना ता उ ताविव युवां  
सखीयते सखित्वमिच्छते यजमानाय धीतं तत्कृतं कर्म समंश्रुतं । सिद्धमन्यत् ॥

अभ्यर्चं नभाकवदिन्द्राग्नी यजसा गिरा ।

ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवी मस्युपस्थे बिभृतो वसु नभंतामन्यके संमे ॥४॥

अभि । अर्चं । नभाकऽवत् । इन्द्राग्नी इति । यजसा । गिरा ।

ययोः । विश्वं । इदं । जगत् । इयं । द्यौः । पृथिवी । मही । उपऽस्थ । बिभृतः । वसुं ।

नभंतां । अन्यके । संमे ॥४॥

हे नामाक नभाकवदिन्द्राग्नी यजसा यागेन गिरा जुत्वा चाभ्यर्चं । अभिपूजय । ययारिन्द्राग्न्योर्विश्वं  
सर्वमिदं जगत्तिष्ठति । ययोश्चोपस्थ इयं बार्मही महती पृथिवी च द्यावापृथिव्यावुभे वसु धनं बिभृतः  
धारयतः । सिद्धमन्यत् ॥

प्र ब्रह्माणि नभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत ।

या सप्रबुधमर्णवं जिह्मवारमपोर्णुत इन्द्र ईशान ओजंसा नभंतामन्यके संमे ॥५॥

प्र । ब्रह्माणि । नभाकऽवत् । इन्द्राग्निऽभ्यां । इरज्यत ।

या । सप्रऽबुधं । अर्णवं । जिह्मऽवारं । अपऽऊर्णुतः । इन्द्रः । ईशानः । ओजंसा ।

नभंतां । अन्यके । संमे ॥५॥

ब्रह्माणि स्तोत्राणोद्गाभिर्भां नभाकवतिरज्यत । नामाकः प्रेरयते । या याविन्द्राग्नी सप्रबुधं सप्रमूलं  
जिह्मवारं पिहितद्वारमर्णवमपोर्णुतः तेजोभिराच्छादयतः तयोर्मध्य ओजसा बलेनेन्द्र ईशान ईशरो भवति ।  
सिद्धमन्यत् ॥

अपि वृश्च पुराणववृत्ततेरिव गुष्पितमोजो दासस्य दंभय ।

वयं तदस्य संभृतं वस्विद्रेण वि भजेमहि नभंतामन्यके संमे ॥६॥

अपि । वृश्च । पुराणऽवत् । वृत्ततेऽइव । गुष्पितं । ओजः । दासस्य । दंभय ।

वयं । तत् । अस्य । संऽभृतं । वसुं । इन्द्रेण । वि । भजेमहि । नभंतां । अन्यके । संमे ॥६॥

अपि च हे इंद्र पुराणवत्प्रलो यथा व्रततिरिव यथा वड्या गुप्यितं निर्गतां शाखां वृक्षति तथा शूच्यां वृक्ष । हृदय । तदेवाह । दासस्य दासनामकस्य शचीरोजो बलं दंभय । नाशय । अथ परोक्षश्रुतिः । वयं नामाका अस्य दासस्य संभृतं वसिष्ठेण हेतुना वि भजेमहि । सिद्धमन्यत् ॥ २४ ॥

यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा ।

अस्माकैभिर्नृभिर्वयं ससह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतो नभंतामन्यके समे ॥ ७ ॥

यत् । इंद्राग्नी इति । जनाः । इमे । विह्वयन्ते । तना । गिरा ।

अस्माकैभिः । नृभिः । वयं । ससह्याम । पृतन्यतः । वनुयाम । वनुष्यतः । नभंतां ।

अन्यके । समे ॥ ७ ॥

यथा इमे जनास्तना धनेन गिरा कृत्वा इंद्राग्नी विह्वयन्ते विशेषेण ऊयन्ति तेषु मध्ये वयं नामाकाः पृतन्यतः पृतनामिच्छन्तोऽस्माकैभिरस्माकीर्णैर्नृभिर्मनुष्यैः ससह्याम । शूचनभिभवेन । वनुष्यतः श्रुतिमिच्छन्तः शूचनश्रुयाम च । सिद्धमन्यत् ॥

या नु श्वेताववो दिव उच्चरात उप द्युभिः ।

इंद्राग्न्योरनु व्रतमुहाना यन्ति सिंधवो यान्सीं बंधादमुंचतां नभंतामन्यके समे ॥ ८ ॥

या । नु । श्वेतौ । अश्वः । दिवः । उत्तऽचरातः । उप । द्युभिः ।

इंद्राग्न्योः । अनु । व्रतं । उहानाः । यन्ति । सिंधवः । यान् । सीं । बंधात् । अमुंचतां ।

नभंतां । अन्यके । समे ॥ ८ ॥

या नु यावैवेन्द्राग्नी श्वेता श्वेतवर्णा । सत्त्वगुणोपेतावित्तर्यः । अश्वोऽधस्ताद्युभिर्दीप्तिभिर्दिव उपोच्चरातः उच्चरातः तथोरेवेन्द्राग्न्योरुहाना हविर्वहन्तो यजमाना व्रतं कर्मानु यन्ति । अपि सीमिमाविन्द्राग्नी यान्प्रसिद्धान् सिंधवः सिंधून् बंधाद्वंधनादमुंचतां । सिद्धमन्यत् ॥

पूर्वीष्ट इंद्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्यस्य हरिवः ।

वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधंत नो धियो नभंतामन्यके समे ॥ ९ ॥

पूर्वीः । ते । इंद्र । उपऽमातयः । पूर्वीः । उत । प्रशस्तयः । सूनो इति । हिन्यस्य । हरिऽवः ।

वस्वः । वीरस्य । आऽपृचः । याः । नु । साधंत । नः । धियः । नभंतां । अन्यके । समे ॥ ९ ॥

हे हरिवो वज्रिन सूनो प्रेरयितरिंद्र हिन्यस्य प्रीणयितुर्वन्वो दीपकस्य वीरस्यापृचो धनान्पुपयच्छतस्ते तव ता उपमातय उपमानानि पूर्वीर्वहन्ति । उतापि च प्रशस्तयः पूर्वीः । या नो धियः प्रज्ञां साधंत असाधयन् । सिद्धमन्यत् ॥

तं शिंशीता सुवृक्तिभिस्त्वेषं सत्वानमृगिमयं ।

उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णास्यांडानि भेदति जेष्वर्वतीरपो नभंतामन्यके समे ॥ १० ॥

तं । शिंशीत । सुवृक्तिभिः । त्वेषं । सत्वानं । अमृगिमयं ।

उतो इति । नु । चित् । यः । ओजसा । शुष्णास्य । आंडानि । भेदति । जेषत् । स्वऽवतीः ।

अपः । नभंतां । अन्यके । समे ॥ १० ॥



हे स्रोतारः त्वयं दीप्तं सत्त्वं संभक्तारं धनानामृग्मियमृगहृद्मृग्मिः स्रोतव्यं तमिन्द्रं सुवृत्तिभिः क्षुत्तिभिः शिश्रीत । संक्षुषत । उतो नु चिदपि च य इन्द्र ओजसा वलेन शुष्णस्य शुष्णनामकस्यासुरस्यांङान्यङजातान्यपत्नानि भेदति अभिनत् स सर्वतीर्द्भ्यान्वपः सलिलानि जेषत् । अथतु । सिद्धमन्यत् ॥

तं शिश्रीता स्वध्वरं सत्यं सत्त्वं नमृत्विष्यं ।

उतो नु चिद्य ओहत आंडा शुष्णस्य भेदत्यजैः स्वर्वतीरपो नभतामन्यके संमे ॥११॥

तं । शिश्रीत । सुऽध्वरं । सत्यं । सत्त्वं । नमृत्विष्यं ।

उतो इति । नु । चित् । यः । ओहते । आंडा । शुष्णस्य । भेदति । अजैः । स्वःऽवतीः ।

अपः । नभतां । अन्यके । संमे ॥११॥

हे स्रोतारः स्वध्वरं सुयज्ञं सत्यमविनाशं सत्त्वं संभक्तारमृत्विष्यमृतां यष्टव्यं तमिन्द्रं शिश्रीत । क्षुत्तिभिः संक्षुषत । अथ प्रत्यक्षक्षुत्तिः । उतो नु चिदपि च य इन्द्र ओहते यज्ञं प्रति गच्छति शुष्णस्यांङान्यङजातानि च भेदति भिनत्ति स त्वं सर्वतीर्द्भ्यान्वपः सलिलान्यजैः । अजिषीः । सिद्धमन्यत् ॥

एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मंधातृवदंगिरस्वदवाचि ।

चिधातृना शर्मणा पातमस्मान्वयं स्याम पतयो रयीणां ॥१२॥

एव । इंद्राग्निऽभ्यां । पितृऽवत् । नवीयः । मंधातृऽवत् । अंगिरस्वत् । अवाचि ।

चिऽधातृना । शर्मणा । पातं । अस्मान् । वयं । स्याम । पतयः । रयीणां ॥१२॥

एवेवं चाभ्यामिन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नमाकवमंधातृवर्थावनाश्चमंधातृवद्वांगिरस्वदंगिरोवन्न नवीयो नवतरमवाचि नामाकेन मया पाठिताविन्द्रापी चिधातृना त्रिपर्वणा शर्मणा गृहेण नोऽस्मात्तामाकान्पातं । रषतं । वयं रयीणां धनानां पतयः स्वामिनः स्वाम । भवेम ॥ ॥२५॥

अस्या ऊ ष्विति दशर्चमेकादशं सूक्तं । अचेयमनुक्रमणिका । अस्या ऊ पु दश वाक्यां त्विति । नामाकश्चधिरनुवृत्तत्वात् । महापातं हीत्युक्तत्वाद्विदमपि महापातं । इदमादिके हे सूक्ते वक्ष्यदेवत्ये ॥ विनियोगो धैंगिकः ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने भिवावरणशस्त्र आरंभणीयाया ऊर्ध्वं स षप इत्ययं नामाकतुषः । सूचितं च । स षपः परि वल्लव इति भिवावरणः । आ० ७. २. इति ॥ यः ककुभ इत्येतत्प्रभृतिको वा नामाकतुषः । सूचितं च । यः ककुभो निधारय इति वा । आ० ७. २. इति ॥

अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्योऽर्चो विदुष्टरेभ्यः ।

यो धीता मानुषाणां पृश्नो गा इव रक्षति नभतामन्यके संमे ॥१॥

अस्मै । ऊं इति । सु । प्रऽभूतये । वरुणाय । मरुत्ऽभ्यः । अर्चं । विदुऽष्टरेभ्यः ।

यः । धीता । मानुषाणां । पृश्नः । गाऽइव । रक्षति । नभतां । अन्यके । संमे ॥१॥

हे स्रोतः सु प्रभूतये प्रकृष्टधनायासी वरुणाय विदुष्टरेभ्यो विदुष्टरेभ्यो मरुद्भ्योऽर्चं । सुहि । यो वरुणो धीता कर्मणा मानुषाणां अनुषाणां पृश्नः पशून् गा इव रक्षति । सिद्धमन्यत् ॥

तमू षु संमना गिरा पितृणां च मन्मभिः ।

नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिंधूनामुपोदये सप्रस्वसा स मध्यमो नभतामन्यके संमे ॥२॥

तं । ऊं इति । सु । समना । गिरा । पितॄणां । च । मन्मऽभिः ।

नाभाकस्य । प्रशस्तिऽभिः । यः । सिंधूनां । उप । उत्ऽअये । सप्तऽस्वसा । सः ।

मध्यमः । नभंतां । अन्यके । समे ॥ २ ॥

तमु तमेव वरुणं समना समानया गिरा जुत्वा स्वभिष्टीमि । पितॄणां मन्मभिः सोमैश्चाभिष्टीमि । नाभाकस्यैः प्रशस्तिभिः सोमैश्चाभिष्टीमि । सिंधूनां खंदमानानां नदीनामुप समीपं य उदये उन्नच्छति यश्च सप्तस्वसा स मध्यम इति वाग्भिर्निरुच्यते । अन्यके दुर्धियः शत्रवः समे सर्वे नभंतां । मा भूवन् ॥ तथा च यास्तुः । तं स्वभिष्टीमि समानया गिरा गीत्वा जुत्वा पितॄणां च मननीयैः सोमैर्नाभाकस्य प्रशस्तिभिः । अग्निर्नाभाको बभूव । यः खंदमानानामासामपामुपोदये सप्तस्वसारमेवमाह वाग्भिः स मध्यम इति निरुच्यतेऽथैव एव भवति । नभतामन्यके समे मा भूवन्नन्यके सर्वे ये नो द्विषन्ति दुर्धियः पापधियः पापसं-  
कल्पाः । नि० १०. ५. इति ॥

स क्षपः परि षस्वजे न्युपस्रो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः ।

तस्य वेनीरनु व्रतमुषस्तिस्त्रो अवर्धयन्नभंतामन्यके समे ॥ ३ ॥

सः । क्षपः । परि । सस्वजे । नि । उप्तः । मायया । दधे । सः । विश्वं । परि । दर्शतः ।

तस्य । वेनीः । अनु । व्रतं । उषः । तिस्रः । अवर्धयन् । नभंतां । अन्यके । समे ॥ ३ ॥

स वरुणः क्षपो रात्रीः परि षस्वजे । परिष्वजते । अपि च दर्शतो दर्शनीयः स वरुण उन्न उत्तरणशीलः सन् विश्वं मायया कर्मणा परि परितो नि दधे । निदधाति । किंच तस्य वरुणस्य व्रतं कर्म वेनीः कामय-  
मानाः प्रजास्तिस्र उपस्तिषु प्रातर्मोध्यंदिनं सायं चान्ववर्धयन् । अनुवर्धयन्ति । सिद्धमन्यत् ॥

यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः ।

स माता पूर्वं पदं तद्वरुणस्य सस्यं स हि गोपा इवेर्यो नभंतामन्यके समे ॥ ४ ॥

यः । ककुभः । निऽधारयः । पृथिव्यां । अधि । दर्शतः ।

सः । माता । पूर्वं । पदं । तत् । वरुणस्य । सस्यं । सः । हि । गोपाऽइव । इर्यः ।

नभंतां । अन्यके । समे ॥ ४ ॥

यो वरुणः पृथिव्यामधि पृथिव्या उपरि दर्शतो दर्शनीयः सन् ककुभो दिशो निधारयः निधारयति स वरुणो माता निर्माता । पूर्वं प्रतनं पदं स्वर्गाख्यं स्थानं मध्यमस्मान्निश्च सर्वणीयं तद्वरुणस्य स्वगतं । अपि च स हि स एवेर्य ईश्वरः सन् गोपा इव गोपाल इव पशूनामस्वाकं रक्षिता । सिद्धमन्यत् ॥

यो धर्ता भुवनानां य उस्त्राणामपीच्या वेदं नामानि गुह्या ।

स कविः काव्या पुरु रूपं द्यौरिव पुष्यति नभंतामन्यके समे ॥ ५ ॥

यः । धर्ता । भुवनानां । यः । उस्त्राणां । अपीच्या । वेदं । नामानि । गुह्या ।

सः । कविः । काव्या । पुरु । रूपं । द्यौऽइव । पुष्यति । नभंतां । अन्यके । समे ॥ ५ ॥

यो वरुणो भुवनानां धर्ता धारयिता यद्वोस्त्राणां देवाधिष्ठानभूतानां रश्मीनामपीच्यापीच्यान्वन्त-



हिं॒तानि॑ गु॒ह्या गु॒ह्यानि॑ गु॒हायां॑ नि॒हितानि॑ नामा॒नि वेद॑ आनाति स वरुणः कविः प्राज्ञः सन् काव्या  
काव्यानि कविकर्माणि पुर वरुणि रूपं बौरिव पुष्यति । सिद्धमन्यत् ॥ २६ ॥

यस्मि॒न्विश्वानि॑ काव्या च॒क्रे नाभि॑रिव श्रिता ।

चित्तं॑ जूती संपर्यत व्रजे गावो न संयुजे युजे अश्वान् अयुक्षत नभतामन्यके संमे ॥ ६ ॥

यस्मिन् । विश्वानि । काव्या । चक्रे । नाभिः । इव । श्रिता ।

चित्तं । जूती । संपर्यत । व्रजे । गावः । न । संयुजे । युजे । अश्वान् । अयुक्षत । नभतां ।

अन्यके । संमे ॥ ६ ॥

यस्मिन्विश्वानि सर्वाणि काव्या काव्यानि कविकर्माणि चक्रे नाभिरिव यथा रथस्य चक्रे नाभि-  
स्तथा श्रिता श्रितानि तं चित्तं विश्वानं वरुणं जूती जूत्या धिप्रं संपर्यत । हे मदीया जनाः परिचरत ।  
किमर्थमित्यत आह । व्रजे गोष्ठे गावो न यथा गाः संयुजे संयोगार्थं सह स्थापयितुं युजे युञ्जति तथास्वात्म-  
भियोगायाश्चानयुञ्जत । सपत्ना युञ्जति । अतस्तदुपद्रवपरिहाराय वरुणं परिचरतेत्यर्थः ॥

य आ॒स्वत्क आ॒शये॑ विश्वा जा॒तान्येषां॑ ।

परि॒ धामा॑नि मर्मैश्चरुणस्य पुरो गये विश्वे देवा अनु व्रतं नभतामन्यके संमे ॥ ७ ॥

यः । आसु । अत्कः । आशये । विश्वा । जातानि । एषां ।

परि । धामानि । मर्मैश्च । वरुणस्य । पुरः । गये । विश्वे । देवाः । अनु । व्रतं । नभतां ।

अन्यके । संमे ॥ ७ ॥

---त्यरिमुशतो वरुणस्य पुरो गये रथस्य पुरस्तान्नवति तस्य वरुणस्य पुरस्ताद्विश्वे सर्वे देवा व्रतं  
कर्मानुगच्छंतीत्यर्थः । सिद्धमन्यत् ॥

स समुद्रो अपीच्यस्तुरो द्यामिव रोहति नि यदासु यजुर्दधे ।

स माया अर्चिना पदास्तृणात्नाकमारुहन्नभतामन्यके संमे ॥ ८ ॥

सः । समुद्रः । अपीच्यः । तुरः । द्यां । इव । रोहति । नि । यत् । आसु । यजुः । दधे ।

सः । मायाः । अर्चिना । पदा । अस्तृणात् । नाकं । आ । अरुहत् । नभतां ।

अन्यके । संमे ॥ ८ ॥

यथादायः समुद्रवति स वरुणः समुद्रोऽपीच्योऽन्तर्हितस्तुरः क्षिप्रो द्यामिव यथादित्यो द्यां रोहति  
तथा नाकं रोहति । अपि च यद्यो वरुण आसु दिशु यजुः प्रजाभ्यो दानं नि दधे निदधाति स वरुणो  
माया अमुराणां माया अर्चिनार्चिष्मता पदा स्थापेन । तेजसेत्यर्थः । आस्तृणात् । समंताद्विश्वे । नाकं  
स्वर्गमारुहत् । आरोहति । सिद्धमन्यत् ॥

यस्य श्वेता विचक्षणा तिस्रो भूमीरधिक्षितः ।

चिरुत्तराणि पप्रतुर्वरुणस्य ध्रुवं सदः स सप्तानामिरज्यति नभतामन्यके संमे ॥ ९ ॥

यस्य । श्वेता । विऽचक्षणा । तिस्रः । भूमीः । अधिऽस्थितः ।  
 दिः । उत्त॑रानि । प॒प्रतुः । वरुणस्य । ध्रुवं । सदः । सः । स॒प्ता॒नां । इ॒र॒ज्य॒ति ।  
 नभ॑तां । अ॒न्य॒के । स॒मे ॥ ९ ॥

यस्य वरुणस्याधितोऽतरिचिऽधि वसतः श्वेता श्वेतानि विचक्षणा तेजांसि तिस्रो भूमीस्त्रिरुत्तराणि  
 तिस्रणामधिस्थितानि भुवनानि पप्रतुः प्रथयन्ति । तथा च मन्त्रवर्णः । तिस्रो भूमीधारयन् वीर्यत द्युन्  
 । अ० २. २७. ८. इति । तस्य वरुणस्य सदः स्थानं ध्रुवमचलमिति । किंच स वरुणः सप्तानां सिंधूनामि-  
 रज्यति । ईश्वरो भवति । सिद्धमन्यत् ॥

यः श्वेताँ अधिनिर्णिजश्चक्रे कृष्णाँ अनु व्रता ।  
 स धामं पूर्वं ममे यः स्कंभेन वि रोदसी अजो न द्यामधारयन्नभंतामन्यके समे ॥ १० ॥  
 यः । श्वेतान् । अधिऽनिर्निजः । चक्रे । कृष्णान् । अनु । व्रता ।  
 सः । धाम । पूर्वं । ममे । यः । स्कंभेन । वि । रोदसी इति । अजः । न । द्यां । अधारयत् ।  
 नभंतां । अ॒न्य॒के । स॒मे ॥ १० ॥

यो वरुणो निर्णिज आत्मीयान्नभमीन्दिवा श्वेतानधि चक्रे अधिकरोति तथा राक्षी कृष्णांश्चक्रे स  
 वरुणोऽनु व्रता कर्माणि लक्ष्मीकृत्योभयविधकर्मानुगुणं पूर्वं धामांतरिचं दिवं वा ममे । निर्ममे । अपि च यः  
 स्कंभेनांतरिचेणाजो न यथादित्यो बां धारयति तथा रोदसी बावापृथिव्यावधारयत् विधारयति स वरुण  
 इत्यर्थः । सिद्धमन्यत् ॥ २७ ॥

अस्तभादिति षड्वचं द्वादशं सूक्तं । अर्चनाना ऋषिः काण्वो नामाको वा ऋषिः । उत्तरे त्वर्चनानाः ।  
 आयसृचस्त्रिष्टुभो वरुणदेवत्वो द्वितीयसृच आनुष्टुभोऽश्विदेवताकः । तथा चानुक्रांतं । अस्तभात् षड्वचनाना  
 वा त्रिष्टुभमंत्यं वा तृचमाश्विनमानुष्टुभमपञ्चदिति ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥ वारुणे पशौ हविषो याज्यास्त-  
 भादिति । सूचितं च । अस्तभाद्यामसुरो विश्ववेदा इत्येकादशित्वाः । आ० ३. ७. इति ॥ अपीषोमप्रणयने  
 ऽथेपोत्तरा परिधानीया । तथा सूचितं । अस्तभाद्यामसुरो विश्ववेदा इति परिदध्यादुत्तरया वा । आ०  
 ४. १०. इति ॥ एवा वंदस्त्रेतिषा वारुणे पशौ हविषोऽनुवाक्या । सूचितं च । एवा वंदस्त्र वरुणं बृहंतं  
 तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वंदमान इति द्वे । आ० ३. ७. ॥ सोमप्रवहण इमां धियमित्तिषा परिधानीया । सूचितं च ।  
 इमां धियं शिचमाणस्य देवेति निहिते परिदध्यात् । आ० ४. ४. इति ॥

अस्त॑भा॒द्याम॑सुरो वि॒श्ववे॑दा अ॒मिमी॑त वरि॒माणं॑ पृथि॒व्याः ।  
 आसी॑द्विश्वा॒ भुव॑नानि स॒म्राड्वि॑श्वे॒तानि॒ वरु॑णस्य व्रतानि ॥ १ ॥  
 अस्त॑भात् । द्यां । असुरः । विश्वऽवेदाः । अमिमीत । वरि॒माणं॑ । पृथि॒व्याः ।  
 आ । आसी॑दत् । विश्वा । भुव॑नानि । सं॒ऽरा॒ट् । विश्वा । इत् । तानि॑ । वरु॑णस्य ।  
 व्रतानि॑ ॥ १ ॥

विश्ववेदा विश्वधनोऽसुरो बलवान्वरुणो व्यामस्तभात् । तथा पृथिव्याश्च वरिमाणं परिमाणममिमीत ।  
 चक्रे । एवं निर्मितानि विश्वा सर्वाणि भुवनानि सम्राड्भूत्वासीदच्च । अर्ध्यतिष्ठच्च । वरुणस्य तान्येतानि व्रतानि  
 कर्माणि विश्वद्विजान्येव । अतो वर्णयितुमशक्नोतीत्यर्थः ॥



ए॒वा वंदस्व॒ वरुणं॑ बृ॒हन्तं॑ नम॒स्या धीर॑म॒मृत॑स्य गो॒पां ।  
 स नः॑ श॒र्मं चि॒व॒रू॒पं वि॒ यंस॑त्पा॒तं नो॑ द्या॒वापृ॑थि॒वी उ॒प॒स्थे ॥२॥  
 ए॒व । वंदस्व॒ । वरुणं॑ । बृ॒हन्तं॑ । नम॒स्य । धीरं॑ । अ॒मृत॑स्य । गो॒पां ।  
 सः । नः॑ । श॒र्मं । चि॒व॒रू॒पं । वि॒ यंस॑त् । पा॒तं । नः॑ । द्या॒वापृ॑थि॒वी इति॑ । उ॒प॒स्थे ॥२॥

हे सोतः बृहन्तं महातं वरुणमेवैवं वंदस्व । सुहि । अमृतस्य गोपां गोपयितारं धीरं प्राज्ञं वरुणं नमस्य । नमस्कुरु च । स वरुणो नोऽस्मभ्यं चिवरूपं चिह्नानं शर्मं गृहं वि यंसत् । प्रयच्छतु । उपस्थ उपस्थानि वर्तमानान्नोऽस्मान्द्यावापृथिवी द्यावापृथिवी पातं । रथतं ॥

इ॒मां धियं॑ शि॒क्ष॒मा॒णस्य॑ दे॒व क्रतुं॑ द॒क्षं वरुण॑ सं शि॒शाधि॑ ।  
 यया॑ति॒ विश्वा॑ दु॒रिता॑ तरे॒म सु॒त॒र्मा॒णमधि॑ ना॒वं रुहे॑म ॥३॥  
 इ॒मां । धियं॑ । शि॒क्ष॒मा॒णस्य॑ । दे॒व । क्रतुं॑ । द॒क्षं । वरुण॑ । सं । शि॒शाधि॑ ।  
 यया॑ । अति॑ । विश्वा॑ । दुः॒ऽइ॒ता । तरे॑म । सु॒त॒र्मा॒णं । अधि॑ । ना॒वं । रुहे॑म ॥३॥

हे देव योतमान वरुण इमां धियमिदं कर्म शिक्षमाणस्मानुतिष्ठतो मम क्रतुं प्रज्ञानं दक्षं च सं शिश्राधि । तीक्ष्णीकुरु । यया नावा यज्ञरूपया विश्वा सर्वाणि दुरिता दुरितान्यति तरेम तां सुतर्माणं सुष्ठु तारयित्रीं यज्ञरूपां नावमधि रुहेम । वयमारुहेम । दुःखसागरतरणे हेतुत्वाच्चो नीरित्यत्र अपदिशते ॥

आ वां या॒वा॒णो अ॒श्विना॑ धी॒भिर्वि॒प्रा अ॒चु॒च्युः ।  
 नास॑त्या सोम॒पीत॑ये नभ॒ताम॒न्यके॑ संमे ॥४॥  
 आ । वां । या॒वा॒णः । अ॒श्विना॑ । धी॒भिः । वि॒प्राः । अ॒चु॒च्युः ।  
 नास॑त्या । सोम॒ऽपीत॑ये । नभ॒तां । अ॒न्यके॑ । संमे ॥४॥

हे नासत्या सती सत्यप्रणेतारी वा । तथा च यास्तुः । सत्यविव नासत्यावित्तीर्णवामः सत्यस्य प्रणेतारी । नि० ६. १३. इति । अश्विनाश्विनौ वां युवां सोमपीतये सोमस्य पानाय विप्राः प्राज्ञा अश्विनो यावाणः सोमाभिषवपाषाणाय धीभिः कर्मभिः स्वस्वपापैरचुच्युः । अभिगच्छन्ति । सिद्धमन्यत् ॥

यथा॑ वा॒मचि॑र॒श्विना॑ गी॒र्भिर्वि॒प्रो अजो॑हवीत् ।  
 नास॑त्या सोम॒पीत॑ये नभ॒ताम॒न्यके॑ संमे ॥५॥  
 यथा॑ । वां । अचि॑रः । अ॒श्विना॑ । गी॒ऽभिः । वि॒प्रः । अजो॑हवीत् ।  
 नास॑त्या । सोम॒ऽपीत॑ये । नभ॒तां । अ॒न्यके॑ । संमे ॥५॥

हे नासत्यावश्विनी वां युवां विप्रः प्राज्ञोऽचिर्यथा गीर्भिः क्षुतिभिः सोमपीतयेऽजोहवीत् तथाहमपि जोहवीमि ॥

ए॒वा वा॒म॒ह ऊ॒तये॑ यथाहु॒वंत॑ मे॒धि॒राः ।  
 नास॑त्या सोम॒पीत॑ये नभ॒ताम॒न्यके॑ संमे ॥६॥

ए॒व । वां । अ॒हे । ऊ॒तये॑ । यथा॑ । अ॒हु॒वंत॑ । मे॒धि॒राः ।  
ना॒स॒न्त्या । सो॒मऽपी॒तये॑ । न॒भ॒तां । अ॒न्य॒के । स॒मे ॥ ६ ॥

इयं व्याख्यातचरा ॥ २८ ॥ ५॥

यष्टेऽनुवाके षट् सूक्तानि । तत्रेमे विप्रस्तेति चयस्त्रिंशद्वचं प्रथमं सूक्तमांगिरसस्य विरूपस्यार्थं गायत्रम-  
धिदेवताकं । तथा चागुक्तांतं । इमे चयस्त्रिंशद्विरूप आंगिरस आमेयं त्विति ॥ प्रातरनुवाक आमेये कर्तौ  
गायत्रे छंदसाश्चिन्नशस्त्रे चैतदादिके द्वे सूक्ते । सूचितं च । इमे विप्रस्तेति सूक्ते । आ० ४. १३. इति ॥ कारीर्य-  
वभृथेयोः प्रथमाज्यभागस्याप्स्वम इत्यनुवाक्या । तथा सूचितं । अप्सुमंतावाज्यभागावप्स्वमे सधिष्ठव । आ०  
२. १३. इति ॥ आप्रीध्रस्य प्रातःसवने प्रस्थितयाज्या । श्रूयते च । उषान्नाय वशान्नायेत्याप्रीध्रो यजति  
। ऐ० ब्रा० ६. १०. इति ॥ अपिबतीष्टी त्वं ह्यम इत्येवा याज्या । सूचितं च । त्वं ह्यमे अपिनामे त्वमस्यबुयो-  
ध्यमीवाः । आ० ३. १३. इति ॥ अपिमंथनेऽपिषा । सूचितं च । त्वं ह्यमे अपिना तं मर्जयंत सुक्रतुं । आ० २. १६. इति ॥  
अपये कामायाष्टाकपालेष्टी तुभ्यं ता अंगिरसमेत्वेषानुवाक्या । सूचितं च । तुभ्यं ता अंगिरसमाश्नाम  
तं कामममे तवोतीति कामाय । आ० २. १०. इति ॥ अन्वाहितामेः प्रयागे समारोपणपक्षेऽनयेकाहुतिः  
कर्तव्या । तथा सूचितं । तुभ्यं ता अंगिरसमेति चाज्याहुतिं हुत्वा समारोपयेत् । आ० ३. १०. इति ॥ वैद्युता-  
पिनाप्रीनां संसर्गेऽपयेऽप्सुमतीष्टिः । तत्र यदमे दिविजा इति याज्या । यदमे दिविजा अस्यमिहोता  
न्यसीद्व्यजीयान् । आ० ३. १३. इति ॥

इ॒मे वि॒प्रस्य॑ वे॒धसो॒ऽमेर॑स्तृ॒तय॑ज्वनः । गि॒रः स्तो॒मांस॑ ई॒रते ॥ १ ॥

इ॒मे । वि॒प्रस्य॑ । वे॒धसः॑ । अ॒मेः । अस्तृ॒तऽय॑ज्वनः । गि॒रः । स्तो॒मांसः॑ । ई॒रते ॥ १ ॥

इमेऽसदीयाः स्तोमासः स्तोतारो विप्रस्य मेधाविनो वेधसो विधातुरस्तृतयज्वनोऽहिंसितयजमानस्या-  
मेर्गिरः क्षुतीरीरते । प्रेरयंति ॥

अ॒स्मै ते॒ प्र॒ति॒ह॒र्य॑ते जा॒तवे॒दो वि॒च॒र्षणे॑ । अ॒मे ज॒नामि॑ सु॒ष्टुतिं ॥ २ ॥

अ॒स्मै । ते॒ । प्र॒ति॒ऽह॒र्य॑ते । जा॒तऽवे॒दः । वि॒ऽच॒र्षणे॑ । अ॒मे । ज॒नामि॑ । सु॒ऽस्तु॒तिं ॥ २ ॥

हे जातवेदो जातधन विचर्षणे विद्रष्टरमे अस्य प्रतिहर्षते प्रयच्छते ते तुभ्यं सुष्टुतिं शोमनां क्षुतिं  
जनामि । आंगिरसोऽहं जनयामि ॥

आ॒रो॒का इ॒व घे॒दहं॑ ति॒ग्मा अ॒मे तव॑ त्विषः । द॒न्नि॒र्वे॒नानि॑ ब॒प्सति ॥ ३ ॥

आ॒रो॒काऽइ॒व । घ॒ । इ॒त् । अ॒हं । ति॒ग्माः । अ॒मे । तव॑ । त्विषः । द॒त्ऽभिः॑ । व॒नानि॑ ।

ब॒प्स॒ति ॥ ३ ॥

हे अमे तव तिग्मास्तीक्ष्णास्त्वियो दीपय आरोका इवारोचमानाः पशव इव दन्निर्देतैर्वनान्वरण्यानि  
बप्सति । भक्षयंति । घेदहेति चयं पूरकं ॥

ह॒रयो॑ धू॒मके॑तवो॒ वात॑जूता॒ उप॒ ह्यवि॑ । य॒त॑ते॒ वृथ॑ग॒मयः॑ ॥ ४ ॥

ह॒रयः॑ । धू॒मऽके॑तवः । वा॒तऽजू॒ताः । उ॒प॒ । ह्यवि॑ । य॒त॑ते । वृथ॑क् । अ॒मयः॑ ॥ ४ ॥

हरयो हरणशीला वातजूता वातप्रेरिता धूमकेतवो धूमध्रुवा अपय उप बभ्यंतरिच वृथक् पृथग्यतते ।  
गच्छंति । पृथगित्यनेन सभसव्ययं वृथगिति । पृथगित्येव वाक्सनेयिनः पठंति । वा० सं० ३३. २. ॥



एते त्वे वृधगम्यं इडासः समदृक्षत । उषसामिव केतवः ॥ ५ ॥

एते । त्वे । वृधेक । अम्ययः । इडासः । सं । अदृक्षत । उषसां इव । केतवः ॥ ५ ॥

एते त्व एतेऽपयो वृधक् पृथग्विदासोऽपि होतुमिः समिद्धाः संत उषसामिव केतव उषसां प्रज्ञापका इव समदृक्षत । सम्यग्दृक्षन्ति ॥ २९ ॥

कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः । अग्निर्यदो धत्ति क्षमि ॥ ६ ॥

कृष्णा । रजांसि । पत्सुतः । प्रऽयाने । जातवेदसः । अग्निः । यत् । रोधति । क्षमि ॥ ६ ॥

जातवेदसोऽग्नेः प्रयाणे पत्सुतः पत्तो रजांसि पांसवः कृष्णानि भवन्ति । कदेत्यत आह । क्षमि क्षमायां यद्यदापी रोधति शुक्लान्वनस्यतीन्द्रियस्य ॥

धासिं कृष्वान ओषधीर्बप्सदग्निर्न वायति । पुनर्यन्तरुणीरपि ॥ ७ ॥

धासिं । कृष्वानः । ओषधीः । बप्सत् । अग्निः । न । वायति । पुनः । यन् । तरुणीः । अपि ॥ ७ ॥

अग्निर्योषधीर्धासिमत्तं । जुडासीत्यत्र नामसु पाठात् । कृष्वानः । कुर्वन् बप्सन्नचयन्न वायति । न शायति । पुनश्च तरुणीरोषधीरपि यन् गच्छन् भवति । भवत्यितुमिति शेषः ॥

जिह्वाभिरह ननमदर्चिषां जंजणाभवन् । अग्निर्वनेषु रोचते ॥ ८ ॥

जिह्वाभिः । अहं । ननमत् । अर्चिषां । जंजणाऽभवन् । अग्निः । वनेषु । रोचते ॥ ८ ॥

अग्निर्जिह्वाभिरह ज्वालाभिरेव ननमद्वनस्यतीगत्यंतं नमयन्नर्चिषा तेजसा जंजणाभवञ्ज्वलन् । जंजणाभवन् मज्जलाभवन्निति ज्वलतिकर्मसु पाठात् । वनेष्वरक्षेषु रोचते । प्रकाशते ॥

अप्स्वमे सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥ ९ ॥

अप्ऽसु । अग्ने । सधिः । तव । सः । ओषधीः । अनु । रुध्यसे । गर्भे । सन् । जायसे ।

पुनरिति ॥ ९ ॥

हे अग्ने यस्य तवाप्सु सधिः प्रवेशस्थानं स त्वमोषधीरसु रुध्यसे । अनुवृणत्सि । पुनश्च तासां भूमिष्ठानां गर्भे सन् भवज्ञायसे । प्रादुर्भवसि ॥

उदग्मे तव तद्गुतादूर्ची रोचत आहुतं । निंसानं जुहोऽं मुखे ॥ १० ॥

उत् । अग्ने । तव । तत् । घृतात् । अर्चिः । रोचते । आऽहुतं । निंसानं । जुहोः । मुखे ॥ १० ॥

हे अग्ने तव घृतादाहुतं जुहो होमसाधनभूतायाः सुवो मुखे निंसानं जिह्वानं तदर्चिषद्भोचते । प्रकाशते ॥ ३० ॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्रये ॥ ११ ॥

उक्षऽअन्नाय । वशाऽअन्नाय । सोमऽपृष्ठाय । वेधसे । स्तोमैः । विधेम । अग्रये ॥ ११ ॥

उक्षान्नाय । उक्षान्नमदनीयं हविर्यक्षासावुक्षान्नः । तक्षी वशान्नाय । वशान्नं यक्षासी वशान्नः । तक्षी सोमपृष्ठाय सोमघृतपृष्ठाय वेधसे विधात्रे कामानामग्रये स्तोमैर्विधेम । परिचरेम ॥

उत त्वा नमसा वयं होतर्वरेण्यक्रतो । अग्ने समिञ्जिरीमहे ॥ १२ ॥

उत । त्वा । नमसा । वयं । होतः । वरेण्यक्रतो इति वरेण्यऽक्रतो । अग्ने । समितऽभिः ।  
ईमहे ॥ १२ ॥

उतापि च हे होतर्देवानां ज्ञातर्वरेण्यक्रतो वरणीयप्रज्ञापि त्वा त्वां वयमांगिरसा नमसाज्ञेन हविषा समिञ्जियेमहे । याचामहे ॥

उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदम् आहुत । अंगिरस्वद्धवामहे ॥ १३ ॥

उत । त्वा । भृगुऽवत् । शुचे । मनुष्वत् । अग्ने । आऽहुत । अंगिरस्वत् । हवामहे ॥ १३ ॥

हे शुचे स्वभावतः भुजाङ्गतापि त्वा त्वां भृगुवद्यथा भृगुलया मनुष्वद्यथा च मनुष्ययांगिरोवच्च हवामहे ॥

त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्तसता । सखा सख्या समिध्यसे ॥ १४ ॥

त्वं । हि । अग्ने । अग्निना । विप्रः । विप्रेण । सन् । सता । सखा । सख्या । संऽद्विध्यसे ॥ १४ ॥

हे अग्ने विप्रो मेधावी सन् विद्यमानः सखा च त्वं विप्रेण सता सख्याग्निना समिध्यसे । तथा च ब्राह्मणं । त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्तसतेति विप्र इतरो विप्र इतरः सन्नितरः सन्नितरः सखा सख्या समिध्यस इत्येष ह वा अस्य स्वः सखा । ऐ० ब्रा० १. १६. इति ॥

स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणं । अग्ने वीरवन्तीमिषं ॥ १५ ॥

सः । त्वं । विप्राय । दाशुषे । रयिं । देहि । सहस्रिणं । अग्ने । वीरऽवन्ती । इषं ॥ १५ ॥

हे अग्ने स प्रसिद्धस्त्वं विप्राय मेधाविने दाशुषे हविषां प्रदाये यजमानाय सहस्रिणं सहस्रसंख्याकमपरिमितं रयिं धनं वीरवन्तीं पुत्रपौत्रादिसहितमियमन्नं च देहि ॥ ३१ ॥

अग्ने भ्रातः सहस्रकृत रोहिदश्च शुचिर्व्रत । इमं स्तोमं जुषस्व मे ॥ १६ ॥

अग्ने । भ्रातरिति । सहऽकृत । रोहितऽश्च । शुचिऽव्रत । इमं । स्तोमं ।  
जुषस्व । मे ॥ १६ ॥

हे अग्ने भ्रातर्धातुवद्यजमानानां मित्रभूत सहस्रकृत सहसा बलेन कृत रोहिदश्च क्षोहितवर्णश्च शुचिर्व्रत शुश्रूकर्मज्ञपि स आंगिरसस्य ममेवं स्तोमं जुषस्व । सेवस्व ॥

उत त्वग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते । गोष्ठं गाव इवाशत ॥ १७ ॥

उत । त्वा । अग्ने । मम । स्तुतः । वाश्राय । प्रतिऽहर्यते । गोऽस्थं । गावऽइव ।

आशत ॥ १७ ॥

उतापि च हे अग्ने त्वा त्वां ममांगिरसस्य स्तुतः स्तुतयो वाश्राय वाशनशीलाय वत्साय प्रतिहर्यते पयः कामयमानाय दोग्धं गोष्ठं गाव इव यथा गावः प्रविशन्ति तथाशत । प्राप्नुवन्ति ॥

तुभ्यं ता अंगिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ॥ १८ ॥

तुभ्यं । ताः । अंगिरऽस्तम । विश्वाः । सुऽक्षितयः । पृथक् । अग्ने । कामाय ।

येमिरे ॥ १८ ॥



हे अंगिरसमांगिरसां त्रैधापि तुभ्यं विद्याः सर्वास्ताः प्रसिद्धाः सुखितयः प्रजाः कामायात्मनः कामसिद्धये  
पृथग्येमिरे । नियच्छन्ति ॥

अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः । अन्नसद्याय हिन्विरे ॥ १९ ॥

अग्निं । धीभिः । मनीषिणः । मेधिरासः । विपः ऽचितः । अन्नऽसद्याय । हिन्विरे ॥ १९ ॥

मनीषिणो मनस ईश्वरा मेधिरासो मेधाविनो विपश्चितः प्राज्ञा यजमाना धीभिः कर्मभिरन्नसद्या-  
यान्नस्य भजनायापि हिन्विरे । प्रीणयन्ति ॥

तं त्वामज्मेषु वाजिनं तन्वाना अग्ने अध्वरं । वह्निं होतारमीकते ॥ २० ॥

तं । त्वां । अज्मेषु । वाजिनं । तन्वानाः । अग्ने । अध्वरं । वह्निं । होतारं । ईकते ॥ २० ॥

हे अग्ने वाजिनं वसिनं वह्निं हविषां वोढारं होतारं देवानामाहूतारं तं प्रसिद्धं त्वामज्मेषु गृहेष्वध्वरं  
यज्ञं तन्वाना विस्तारयन्तो यजमाना ईकते । कुर्वन्ति ॥ ३२ ॥

पुरुचा हि सदृङ्गसि विशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥ २१ ॥

पुरुऽचा । हि । सऽदृङ् । असि । विशः । विश्वाः । अनु । प्रऽभुः । समत्ऽसु । त्वा । हवामहे ॥ २१ ॥

हे अग्ने त्वं हि यतः प्रभु प्रभुः ॥ सुनोपस्कृष्टसः ॥ पुरुचा वज्रेषु प्रदेशेषु विश्वाः सर्वा विशः प्रजा अनु  
सदृङ् समानदर्शसि अतस्त्वा त्वां समत्सु संग्रामेषु हवामहे । ऊयामः ॥

तमीळिष्व य आहुतोऽग्निर्विभ्राजते घृतैः । इमं नः शृण्वद्भव ॥ २२ ॥

तं । ईळिष्व । यः । आऽहुतः । अग्निः । विऽभ्राजते । घृतैः । इमं । नः । शृण्वत् । हव ॥ २२ ॥

योऽग्निर्घृतैः सहाहुतो विभ्राजते यश्च नोऽस्माकमिमं हवमाह्वानं शृण्वत् शृणोति तमपिनीळिष्व ।  
सुहि ॥

तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसं । अग्ने घन्तमप द्विषः ॥ २३ ॥

तं । त्वा । वयं । हवामहे । शृण्वन्तं । जातऽवेदसं । अग्ने । घन्तं । अप । द्विषः ॥ २३ ॥

हे अग्ने जातवेदसं जातधनं जातप्रज्ञं वा द्विषः शत्रून्प घन्तं हिंसन्तं शृण्वन्तमस्मादीयमाह्वानं शृण्वन्तं च  
त्वां वयमांगिरसा हवामहे ॥

विशां राजानमद्भुतमर्थ्यश्च धर्मेणामिमं । अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥ २४ ॥

विशां । राजानं । अद्भुतं । अधिऽअर्थं । धर्मेणां । इमं । अग्निं । ईळे । सः । उं इति ।

श्रवत् ॥ २४ ॥

विशां प्रजानां राजानमीश्वरमद्भुतं महान्तं धर्मेणां कर्मणामथश्मनुसंधातारमिममपिमीळे । सौमि ।  
स उ स एवापिः श्रवत् । अस्मादीयां सुति शृणोतु ॥

अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितं । सग्निं न वाजयामसि ॥ २५ ॥

अग्निं । विश्वायुऽवेपसं । मर्यं । न । वाजिनं । हितं । सग्निं । न । वाजयामसि ॥ २५ ॥

विद्यायुवेपसं सर्वगतवत्समिं वाजिनं वलिनं मयं न मनुष्यमिव हितं सन्ति नाशमिव वाजयामसि ।  
श्रुतिमिहविभिश्च वलिनं कुर्मः ॥ ३३ ॥

मन्मृध्राण्यप द्विषो दहन्वक्षांसि विश्वहा । अग्ने तिग्मेन दीदिहि ॥ २६ ॥

मन् । मृध्राणि । अप । द्विषः । दहन् । रक्षांसि । विश्वहा । अग्ने । तिग्मेन । दीदिहि ॥ २६ ॥

हे अग्ने त्वं मृध्राणि हिंसकान् द्विषो द्वेष्टृण्य घ्नन् हिंसन् विश्वहा सर्वदा रक्षांसि च दहन्स्तिग्मेन तीक्ष्णेन तेजसा दीदिहि । दीप्यस्व ॥

यं त्वा जनास इधते मनुष्वदंगिरस्तम । अग्ने स बोधि मे वचः ॥ २७ ॥

यं । त्वा । जनासः । इधते । मनुष्वत् । अंगिरः । ऽतम । अग्ने । सः । बोधि । मे । वचः ॥ २७ ॥

हे अंगिरसमापि यं त्वा त्वां जनासो जना मनुष्वदयथा मनुस्त्वधेधते दीपयन्ति स त्वं मे मदीयं वचः श्रुतिं बोधि । बुध्यस्व ॥

यदग्ने दिविजा अस्यप्सुजा वा सहस्रकृत । तं त्वा गीर्भिर्हवामहे ॥ २८ ॥

यत् । अग्ने । दिविऽजाः । असि । अप्सुऽजाः । वा । सहऽकृत । तं । त्वा । गीऽभिः ।

हवामहे ॥ २८ ॥

हे अग्ने यद्यस्त्वं दिविजा दिविभवोऽसि भवसि अप्सुजा वातरिचजातश्च भवसि सहस्रकृतः सहसा वलेन कृतश्चासि तं त्वा त्वामग्निं गीर्भिः श्रुतिमिहवामहे । ऊयामः ॥

तुभ्यं घेत्ते जना इमे विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । धासिं हिन्वन्त्यत्तवे ॥ २९ ॥

तुभ्यं । घ । इत् । ते । जनाः । इमे । विश्वाः । सुऽक्षितयः । पृथक् । धासिं । हिन्वन्ति ।

अत्तवे ॥ २९ ॥

हे अग्ने तुभ्यं घ त्वदर्थमेव त इमे मया दृश्यमाना जना विश्वाः सर्वाः सुक्षितयः प्रजाश्च धासिमहं हविरत्तवेऽदनाय पृथग्हिन्वन्ति । प्रेरयन्ति ॥

ते घेदग्ने स्वाध्योऽहा विश्वा नृचक्षसः । तरंतः स्याम दुर्गहा ॥ ३० ॥

ते । घ । इत् । अग्ने । सुऽआध्यः । अहा । विश्वा । नृऽचक्षसः । तरंतः । स्याम ।

दुऽगहा ॥ ३० ॥

हे अग्ने ते घेत्त्वदर्थमेव खलु वयं स्वाध्यः सुकर्माणः संतो विश्वा विश्वान्यहाहानि नृचक्षसो द्रष्टारश्च दुर्गहा दुःखेन गाहयितव्यानि तरंतः स्याम । भवेम ॥ ३४ ॥

अग्निं मंद्रं पुरुप्रियं शीरं पावकशोचिषं । हृद्धिर्मंद्रेभिरीमहे ॥ ३१ ॥

अग्निं । मंद्रं । पुरुऽप्रियं । शीरं । पावकऽशोचिषं । हृत् । ऽभिः । मंद्रेभिः । ईमहे ॥ ३१ ॥

मंद्रं मादनं पुरुप्रियं वहुप्रियं शीरं यज्ञेषु शयनशीलं पावकशोचिषं पावकदीप्तिमग्निं हृद्धिर्मनोहरिर्मंद्रेमादनेः शोचिरीमहे । याचामहे ॥



स त्वमग्ने विभावसुः सृजन्सूर्यो न रश्मिभिः । शर्धन्तमसि जिघ्रसे ॥ ३२ ॥  
 सः । त्वं । अग्ने । विभाऽवसुः । सृजन् । सूर्यः । न । रश्मिऽभिः । शर्धन् । तमसि ।  
 जिघ्रसे ॥ ३२ ॥

हे अग्ने विभावसुर्दोषिरोचनः स प्रसिद्धस्त्वं सृजन्सूर्यो न यथा सूर्यस्तथा रश्मिभिः शर्धन् वनं  
 जुर्वन्तमसि जिघ्रसे । जाग्रयसि ॥

तत्ते सहस्व ईमहे दाचं यन्नोपदस्यति । त्वदग्ने वार्यं वसु ॥ ३३ ॥  
 तत् । ते । सहस्वः । ईमहे । दाचं । यत् । न । उपऽदस्यति । त्वत् । अग्ने । वार्यं । वसु ॥ ३३ ॥

हे सहस्रो बलवत्तमे ते तव यद्वसु नोपदस्यति नोपचोयते तद्दाचं दातव्यं वार्यं वरणीयं च वसु धनं  
 त्वत्त्वत्त ईमहे । याचामहे ॥ ३३ ॥

समिधाभिमिति चिंशदृचं द्वितीयं सूक्तमांगिरसस्य विष्णुस्त्वार्यं प्राप्तत्सप्रपरिभाषया गायत्रमापेयं ।  
 तथा चानुक्रम्यते । समिधाभिं चिंशदिति ॥ प्रातरनुवाके गायत्रे छंदस्ताद्विनशस्त्रे चेदं विनियुक्तं ॥ महाव्रते  
 समिधाभिमित्याद्यास्ततः सामिधेयः । तथा च पंचमारण्यके सूचितं । समिधाभिमिति चतस्रो वैश्वकर्मण  
 ऋषयः । ऐ० आ० ५. १. १. इति ॥ आतिथ्यायां समिधाभिमित्येषा प्रथमाज्यभागस्यानुवाक्या । सूचितं च ।  
 समिधाभिं दुवस्यता प्यायस्व समेतु ते । आ० ४. ५. इति ॥ अमावास्यायां प्रथमाज्यभागस्यानुवाक्या । सूचितं  
 च । वृधन्वंतावमावास्यायामभिः प्रत्नेन मन्थना । आ० १. ५. इति ॥ दर्शपूर्णमासयोरापेयस्यानुवाक्याभि-  
 र्मूर्धेत्येषा । सूचितं च । अभिर्मूर्धा मुचो यज्ञस्व । आ० १. ६. इति ॥ मूर्धन्वद्गुणस्यापेरपेयैवानुवाक्या । सूचितं  
 च । नित्ये मूर्धन्व इति ॥ पचमानेष्टिषु द्वितीयस्यामिष्टावपेः शुचेरनुवाक्याभिः शुचिप्रततम इत्येषा । सूचितं च ।  
 अभिः शुचिप्रततम उदमे शुचयस्तव । आ० २. १. इति ॥

समिधाभिं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिं । आस्मिन्हव्या जुहोतन ॥ १ ॥  
 संऽइधा । अभिं । दुवस्यत । घृतैः । बोधयत । अतिथिं । आ । अस्मिन् । हव्या ।  
 जुहोतन ॥ १ ॥

हे ऋत्विजः अतिथिमतिथिवत्प्रियमभिं समिधा दुवस्यत । परिसरत । घृतैर्दोषिषाधनेराज्यैर्बोधयत च ।  
 अस्मिन्समिधेऽपौ हव्या हवींष्या जुहोतन । आनुजत च ॥

अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मन्मना । प्रति सूक्तानि हर्य नः ॥ २ ॥  
 अग्ने । स्तोमं । जुषस्व । मे । वर्धस्व । अनेन । मन्मना । प्रति । सुऽउक्तानि । हर्य । नः ॥ २ ॥

हे अग्ने म आंगिरसस्य मम स्तोमं स्तोचं जुषस्व । सेवस्व । अनेन मन्थना मगनीयेन स्तोत्रेण वर्धस्व च ।  
 नोऽस्माकं सूक्तानि प्रति हर्य । कामय च ॥

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवाँ आ सादयादिह ॥ ३ ॥  
 अग्निं । दूतं । पुरः । दधे । हव्यऽवाहं । उप । ब्रुवे । देवान् । आ । सादयात् । इह ॥ ३ ॥

दूतं देवानां हव्यवाहं हविषां वोढारं चाग्निं पुरो दधे । पुरस्करोमि । उप ब्रुवे । उपसौमि च । सो  
 ऽग्निरिह यज्ञे देवानां सादयत् । आसादयतु ॥

उत्ते बृहंतो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥४॥

उत् । ते । बृहंतः । अर्चयः । संऽइधानस्य । दीदिऽवः । अग्ने । शुक्रासः । ईरते ॥४॥

हे दीदिवो दीप्तये समिधानस्य समिध्यमानस्य ते तव बृहंतो महान्तः शुक्रासो ज्वलंतोऽर्चयो दीप्तय चदीरते ॥

उप त्वा जुहोः मम घृताचीर्येतु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥५॥

उप । त्वा । जुहः । मम । घृताचीः । यंतु । हर्यत । अग्ने । हव्या । जुषस्व । नः ॥५॥

हे हर्यत कामयमानाग्ने मम मदीया घृताचीर्घृतमंचत्यो जुहः जुचत्वा त्वामुप यंतु । नोऽस्माकं हव्या हव्यानि जुषस्व । सेवस्व च ॥ ॥३६॥

मंद्रं होतारमृत्विजं चिचभानुं विभावसुं । अग्निमीळे स उ अरवत् ॥६॥

मंद्रं । होतारं । ऋत्विजं । चिचऽभानुं । विभाऽवसुं । अग्निं । ईळे । सः । उं इति ।

अरवत् ॥६॥

मंद्रं मादनं होतारं देवानामाह्वतारमृत्विजमृतौ यष्टव्यं चिचभानुं चिचदीप्तिं विभावसुं दीप्तिधनमग्निमीळे । सौमि । सोऽग्निः अरवत् । अस्मादीयां क्षुतिं शृणोलेव ॥

प्रत्नं होतारमीड्यं जुष्टमग्निं कविक्रतुं । अध्वराणामभिश्चियं ॥७॥

प्रत्नं । होतारं । ईड्यं । जुष्टं । अग्निं । कविऽक्रतुं । अध्वराणां । अभिऽश्चियं ॥७॥

प्रत्नं पुराणं होतारं देवानामाह्वतारमीड्यं जुष्टं प्रीतं सेवितं वा कविक्रतुं ज्ञातव्यमध्वराणां यज्ञानामभिश्चियमभिश्चियतारमीड्यमग्निमीळे । सौमि ॥

जुषाणो अंगिरस्तमेमा हव्यान्यानुषक् । अग्ने यज्ञं नय ऋतुथा ॥८॥

जुषाणः । अंगिरःऽतमः । इमा । हव्यानि । आनुषक् । अग्ने । यज्ञं । नय । ऋतुऽथा ॥८॥

हे अंगिरसमांगिरसां श्रेष्ठये इमेमान्यस्यदीप्यानि हव्यानि हवींष्यानुषगनुषक्तं यथा भवति तथा जुषाणः सेवमानो भव । ऋतुथा काले काले यज्ञं च नय ॥

समिधान उ संत्य शुक्रशोच इहा वह । चिकित्वादैव्यं जनं ॥९॥

संऽइधानः । उं इति । संत्य । शुक्रऽशोचे । इहा । आ । वह । चिकित्वा । दैव्यं । जनं ॥९॥

हे संत्य भजनशील शुक्रशोचे ज्वलदीप्ते त्वं समिधान उ समिध्यमान एव दैव्यं देवसंबन्धिनं जनं चिकित्वाज्ञाननिह यज्ञ आ वह ॥

विप्रं होतारमदुहं धूमकेतुं विभावसुं । यज्ञानां केतुमीमहे ॥१०॥

विप्रं । होतारं । अदुहं । धूमऽकेतुं । विभाऽवसुं । यज्ञानां । केतुं । ईमहे ॥१०॥

विप्रं मधाविनं होतारं देवानामाह्वतारमदुहमद्रोग्धारं धूमकेतुं धूमध्वजं विभावसुं दीप्तिधनं यज्ञानां केतुं पताकस्थानीयमग्निमीमहे । अमीष्टं याचामहे ॥ ॥३७॥



अग्ने नि पाहि नस्त्वं प्रति ष देव रीषतः । भिंधि द्वेषः सहस्कृत ॥११॥

अग्ने । नि । पाहि । नः । त्वं । प्रति । स्म । देव । रीषतः । भिंधि । द्वेषः । सहः । स्कृत ॥११॥

हे सहस्कृत बलेन कृत देव दीप्ताग्ने रीषतो हिंसकाग्नौऽस्मान् प्रति नि पाहि । प्रतिरक्ष । क्षेति पूरणः । द्वेषो द्वेषः शत्रुंश्च भिंधि । विदारय ।

अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुभानस्तन्वं स्वां । कविर्विप्रेण वावृधे ॥१२॥

अग्निः । प्रत्नेन । मन्मना । शुभानः । तन्वं । स्वां । कविः । विप्रेण । ववृधे ॥१२॥

कविः क्रांतकर्माग्निः प्रत्नेन पुराणेन मन्त्रेण मननीयेन स्तोत्रेण स्वां स्वकीयां तन्वं तनुमंगं शुभानः शोभयन् विप्रेण मेधाविना स्तोत्रा वावृधे । प्रवृद्धो भवति ॥

ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषं । अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥१३॥

ऊर्जः । नपातं । आ । हुवे । अग्निं । पावकऽशोचिषं । अस्मिन् । यज्ञे । सुऽअध्वरे ॥१३॥

ऊर्जोऽस्य नपातं पुत्रं पावकशोचिषं शोधकदीप्तिमग्निं स्वध्वरेऽग्नौ रत्नं तमहिंस्तेऽस्मिन्यज्ञ आ ऊवे । आह्वयामि ॥

स नो मिचमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥१४॥

सः । नः । मिचऽमहः । त्वं । अग्ने । शुक्रेण । शोचिषा । देवैः । आ । सत्सि । बर्हिषि ॥१४॥

हे मिचमहो मिचारां पूजनीयाग्ने स त्वं शुक्रेण ज्वलता शोचिषा तेजसा देवैः सह बर्हिषि यज्ञ आ सत्सि । आसीद ॥

यो अग्निं तन्वोऽग्ने दमे देवं मर्तः सपर्यति । तस्मा इहीदयद्वसु ॥१५॥

यः । अग्निं । तन्वं । दमे । देवं । मर्तः । सपर्यति । तस्मै । इत् । दीदयत् । वसु ॥१५॥

यो मर्तो मनुष्यो दमे गृहेऽग्निं देवं तन्वो धनस्य प्राप्तर्यमिति ज्ञेयः । मोक्षयं तमेति धननामसु पाठात् । सपर्यति परिचरति तस्मा इत्तस्मा एव वसु धनं दीदयत् । सोऽग्निः प्रयच्छति ॥ ३८ ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयं । अपां रेतांसि जिन्वति ॥१६॥

अग्निः । मूर्धा । दिवः । ककुत् । पतिः । पृथिव्याः । अयं । अपां । रेतांसि । जिन्वति ॥१६॥

मूर्धा देवानां श्रेष्ठो दिवो बुधोक्तस्य ककुदुच्छितः पृथिव्याश्च पतिरयमपिरपां रेतांसि ज्वावरत्नं वमात्मनानि भूतानि जिन्वति । प्रीणयति ॥

उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भाजंत ईरते । तव ज्योतींश्चर्चयः ॥१७॥

उत् । अग्ने । शुचयः । तव । शुक्राः । भाजंतः । ईरते । तव । ज्योतींषि । अर्चयः ॥१७॥

हे अग्ने ते तव शुचयो विर्मणाः शुक्राः शुक्रवर्णा भाजंतो दीप्यमाना चर्चयः प्रमादय ज्योतींषि तेजसां दीरते । प्रेरयंति ॥

ईशिषे वार्यस्य हि दाचस्याग्ने स्वर्पतिः । स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥१८॥

ईशिषे । वार्यस्य । हि । दाचस्य । अग्ने । स्वः । ऽपतिः । स्तोता । स्यां । तव । शर्मणि ॥१८॥

हे अग्ने स्वर्पतिः स्वर्गस्य स्वामी त्वं वार्यस्य वरणीयस्य दावस्य दातव्यस्य धनस्येशिषि । ईश्वरोऽसि । शर्मणि सुखे निमित्ते तव स्तोता स्यां । भवेयं ॥

त्वामग्ने मनीषिणस्त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः । त्वां वर्धेतु नो गिरः ॥ १९ ॥

त्वां । अग्ने । मनीषिणः । त्वां । हिन्वन्ति । चित्तिभिः । त्वां । वर्धेतु । नः । गिरः ॥ १९ ॥

हे अग्ने त्वां मनीषिणो मनस ईश्वराः स्तोतारः स्तुतिभिः कुर्वन्तीति शेषः । किंच त्वामेव चित्तिभिः कर्मभिर्हिन्वन्ति । प्रीक्षयन्ति । नोऽस्माकं गिरः स्तुतयस्त्वामेव वर्धेतु । वर्धयंतु ॥

अदव्यस्य स्वधावतो दूतस्य रेभतः सदा । अग्नेः सख्यं वृणीमहे ॥ २० ॥

अदव्यस्य । स्वधाऽवतः । दूतस्य । रेभतः । सदा । अग्नेः । सख्यं । वृणीमहे ॥ २० ॥

हे अग्ने अदव्यस्य केनाप्यहिंसितस्य स्वधावतो वसवतो दूतस्य देवानां रेभतो देवान् कुर्वतस्तव सख्यं सदा वयं वृणीमहे ॥ ३९ ॥

अग्निः शुचिर्व्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः । शुचीं रोचत आहुतः ॥ २१ ॥

अग्निः । शुचिर्व्रतऽतमः । शुचिः । विप्रः । शुचिः । कविः । शुचिः । रोचते । आहुतः ॥ २१ ॥

शुचिर्व्रततमोऽतिशयेन शुद्धकर्मा शुचिः शुद्ध एव विप्रो मेधावी शुचिः शुद्धः सन्नेव कविः क्रांतकर्मा शुचिरेवाहुतोऽभी रोचते । प्रकाशते ॥

उत त्वां धीतयो मम गिरो वर्धेतु विश्वहा । अग्ने सख्यस्य बोधि नः ॥ २२ ॥

उत । त्वां । धीतयः । मम । गिरः । वर्धेतु । विश्वहा । अग्ने । सख्यस्य । बोधि । नः ॥ २२ ॥

उतापि च हे अग्ने त्वा त्वां मम धीतयः कर्माणि गिरः स्तुतयश्च विश्वहा सर्वदा वर्धेतु । वर्धयंतु । नोऽस्माकं सख्यस्य सख्यं सखिकर्म सुखादिकं बोधि । बुध्यस्व ॥

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहं । स्युर्हे सत्या इहाशिषः ॥ २३ ॥

यत् । अग्ने । स्यां । अहं । त्वं । त्वं । वा । घा । स्याः । अहं । स्युः । ते । सत्याः । इहा । आशिषः ॥ २३ ॥

हे अग्ने यद्ययहं त्वं वज्रधनः स्यां भवेयं त्वं वा घ त्वं वा खल्वहं दरिद्रः स्तोता स्याः भवेः ततस्तवाशिष आशासनाग्नीहाकद्विषये सत्याः सत्यानि स्युः । भवेयुः ॥

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि ॥ २४ ॥

वसुः । वसुऽपतिः । हि । कं । असि । अग्ने । विभाऽवसुः । स्याम । ते । सुऽमता । अपि ॥ २४ ॥

हे अग्ने त्वं विभावसुर्दोषिधनो वसुपतिर्धनपतिर्वसुर्वासयिता चासि भवसि हि यस्मात् अतो वयमपि ते तत्र सुमतावनुग्रहबुद्धौ स्याम । भवेम ॥

अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायैव सिंधवः । गिरो वाश्वास ईरते ॥ २५ ॥

अग्ने । धृतऽव्रताय । ते । समुद्रायऽइव । सिंधवः । गिरः । वाश्वासः । ईरते ॥ २५ ॥

हे अग्ने धृतव्रताय धृतकर्मणे ते तुभ्यं वाश्वासो वाशनशीला गिरो मम स्तुतयः सिंधवो नद्यः समुद्रायैव यथा समुद्राय तथैरते । प्रवर्तन्ते ॥ ४० ॥



युवानं वि॒श॒पतिं॑ क॒विं वि॒श्व॒दं पु॒रु॒वेप॑सं । अ॒ग्निं श्रु॑भामि॒ मन्म॑भिः ॥२६॥

युवानं॑ वि॒श॒पतिं॑ क॒विं वि॒श्व॒दं पु॒रु॒वेप॑सं । अ॒ग्निं श्रु॑भामि॒ मन्म॑भिः ॥२६॥

युवानं नित्यतरुणं विशपतिं विश्वां पतिं कविं ज्ञातकर्माणं विश्वदं सर्वस्य हविषोऽन्तारं पुरुवेपसं ब्रह्मकर्माणं । विशो वेप इति कर्मणामसु पाठात् । अग्निं मन्मभिर्मननीयैः स्तोत्रैः श्रुभामि । श्रोभयामि ॥

य॒ज्ञानां॑ र॒थ्ये व॒यं ति॒ग्मज॑भाय वी॒ळ॒वे । स्तो॒मैरि॒षेमा॒यये ॥२७॥

य॒ज्ञानां॑ र॒थ्ये व॒यं ति॒ग्मज॑भाय । वी॒ळ॒वे । स्तो॒मैः । इ॒षेम॒ । अ॒ग्रये ॥२७॥

यज्ञानां रथ्ये वेवे तिग्मजंभाय तीक्ष्णज्वालाय वीळवे बलवतेऽग्रये स्तोमैः स्तोत्रैर्वयमागिरसा इषेम । श्रुतिं कर्तमिच्छेम ॥

अ॒यम॑ग्रे॒ ते अ॒पि ज॒रि॒ता भू॒तु सं॒त्य । तस्मै॑ पा॒वक॑ मृ॒ळय ॥२८॥

अ॒यं । अ॒ग्रे । ते इति॑ । अ॒पि । ज॒रि॒ता । भू॒तु । सं॒त्य । तस्मै॑ । पा॒व॒क॒ । मृ॒ळ॒य ॥२८॥

हे पावक शोधक संत्य मंजरीयाये ते अपि त्वय्ययमस्यदीयो जनो जरिता स्तोता भूत । भवतु । तस्मै जरिषे मृळय । सुखमुत्पादय । तं सुखय वा ॥

धी॒रो ह्य॒स्य॒स्र॒स्रवि॒प्रो न जा॒गृ॒विः सदा॑ । अ॒ग्रे दी॒दय॑सि॒ ह्यवि॑ ॥२९॥

धी॒रः । हि । अ॒सि । अ॒स्र॒स्र॒स्र॒वि॒प्रः । न । जा॒गृ॒विः । सदा॑ । अ॒ग्रे । दी॒दय॑सि॒ ह्यवि॑ ॥२९॥

हे अग्रे त्वं धीरोऽसि हि । भवसि खलु । अस्रस्रविषि सीदन्विप्रो न मेधावीव जागृविः प्रवृत्तः हितकारणे जागरणशीलोऽसि । सदा अव्यंतरिषे दीदयसि । दीव्यसि च ॥

पु॒रा॒मे दु॒रि॒तेभ्यः॑ पु॒रा मृ॒ध्रेभ्यः॑ क॒वे । प्र ए॒ आयु॑र्व॒सो ति॒र ॥३०॥

पु॒रा । अ॒ग्रे । दुः॒इ॒तेभ्यः॑ । पु॒रा । मृ॒ध्रेभ्यः॑ । क॒वे । प्र । नः । आ॒युः । व॒सो इति॑ । ति॒र ॥३०॥

हे वसो वासक कवे ज्ञातकर्मन्त्रये दुरितेभ्यः पपेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यो हिंसकेभ्यश्च पुरा । यदा दुरितानि शचवशास्मान् हिंसितुमुद्युजते ततः प्रागेवेत्यर्थः । नोऽस्माकमायुः प्र तिर । वर्धय ॥ ॥३१॥

आ घा य इति द्विचत्वारिंशद्वचं तृतीयं सूक्तं । अवेयमनुक्रमणिका । आ घ द्विचत्वारिंशच्चिन्मिशोक आवापिंद्रो । अनुक्तगोत्रत्वात्काण्वस्त्रिशोक अविः । परं गायत्रं प्राग्वत्समेरिति परिभाषया गायत्री छंदः । अनुक्तत्वादिंद्रो देवता । आवायास्त्वपिष्टंद्रश्च ॥ महाव्रते पिष्टेवल्के गायत्रतुचाग्नीतावेतत्सूक्तं । तथैव पंचमारण्यके सूचितं । आ घा ये अपिमिंधत आ नू न इंद्र शुभंतमिति सूक्ते । ऐ० आ० ५. २. ३. इति ॥ तृतीये पर्यायेऽच्छावाकश्च आदितः सप्तदशर्चः । तथैवातिरात्र इति खंडे सूच्यते । आ घा ये अपिमिंधत इति सप्तदश । आ० ६. ४. इति ॥ आययण आपेन्द्रस्य हविष आ घा य इषिषानुवाक्या । सूचितं च । आ घा ये अपिमिंधते सुकर्माणः सुवचो देवयंत इति स्तोत्रं । आ० २. ९. इति ॥ मेधावश्यातिरिक्तोक्थे स्तोत्रमिंद्रा-थेत्याद्याः षड्वचो विकल्पेन स्तोत्रियानुक्ताः । सूचितं च । तद्वो गाय सुते सचा स्तोत्रमिंद्राय गायत । आ० ९. ११. इति ॥ द्वितीये पर्याये ब्राह्मणाच्छंसिनोऽग्निं त्वा वृषभेति स्तोत्रियलृचः । सूचितं च । अभि त्वा वृषभा सुतेऽभि प्र गोपतिं गिरा । आ० ६. ४. इति ॥ चानुर्विशिकेऽहनि प्रातःसवने मिंधि विद्या इति ब्राह्मणाच्छंसिनः षड्वचस्तोत्रियः । तथा च सूचितं । मिंधि विद्या अप द्विष इति ब्राह्मणाच्छंसिनः । आ० ७. २. इति ॥

आ घा ये अग्निमिधते स्तृणन्ति बर्हिः। अनुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥

आ। घ। ये। अग्निं। इधते। स्तृणन्ति। बर्हिः। अनुषक्। येषां। इन्द्रः। युवा। सखा ॥ १ ॥

य ऋषय आ घामिमुखेन खल्वग्निमिधते दीपयन्ति येषां च युवा नित्यतरुण इन्द्रः सखा भवति त आनुषगानुपूर्व्येण बर्हिः स्तृणन्ति ॥

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥

बृहन्। इत्। इध्मः। एषां। भूरि। शस्तं। पृथुः। स्वरुः। येषां। इन्द्रः। युवा। सखा ॥ २ ॥

एषामृषीणामिधो बृहन्निदिध्म खलु भूरि वज्र च शस्तं स्तोत्रं स्वरुश्च पृथुर्महान् । सिद्धमन्यत् ॥

अयुञ्ज इद्युधा वृतं भूर आर्जति सत्वंभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥

अयुञ्जः। इत्। युधा। वृतं। भूरः। आ। अर्जति। सत्वंभिः। येषां। इन्द्रः। युवा। सखा ॥ ३ ॥

तेष्वन्तर्मृतः कश्चिदयुञ्ज इत्यागयोर्विव सन् युधा वृतं योद्धमिन्दैरावृतं शत्रुं सत्त्वमिरात्मीयेर्वैलैः भूरः सन्नावति । नमयति ॥

आ बुन्दं वृचहा ददे जातः पृच्छन्ति मातरं । क उयाः के ह शृण्विरे ॥ ४ ॥

आ। बुन्दं। वृचऽहा। ददे। जातः। पृच्छन्ति। वि। मातरं। के। उयाः। के। ह। शृण्विरे ॥ ४ ॥

जात उत्पन्नो वृचहेन्द्रो बुन्दमिषुं । तथा च यास्तः । बुन्द शृण्वेवति । नि० ६. ३२. इति । आ ददे । आदाय चिषुमुया उन्नूर्यवसाः के के च शृण्विरे वीर्येण विभ्रुता इति स्वमातरं वि पृच्छत् । अप्राचीत् ॥

प्रति त्वा शवसी वदन्निरावप्सो न योधिषत् । यस्ते शत्रुत्वमाचके ॥ ५ ॥

प्रति। त्वा। शवसी। वदत्। गिरौ। अप्सः। न। योधिषत्। यः। ते। शत्रुऽत्वं।

आऽचके ॥ ५ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वां शवसी बलवती माता प्रति वदत् । प्रत्यवोचत् । यस्ते शत्रुत्वमाचके कामयते स गिरौ पर्वतेऽप्सो न दर्शनीयो गज इव योधिषत् । योधयति ॥ ४२ ॥

उत त्वं मघवञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत् । यद्बीक्यासि वीकृ तत् ॥ ६ ॥

उत। त्वं। मघऽवन्। शृणु। यः। ते। वष्टि। ववक्षि। तत्। यत्। बीक्यासि। वीकृ। तत् ॥ ६ ॥

उतापि च हे मघवन् त्वं शृण्वस्त्रादीयां क्षुतिं । ते त्वन्तो यद्वष्टि कामयते स्तोता तद्ववक्षि । तस्मै तद्वहसि । किञ्च त्वं यद्बीक्यासि दृढीकरोपि तद्बीकृ तद्दृढमेव सर्वत्र भवति ॥

यदाजिं यात्याजिकृदिन्द्रः स्वश्वयुरूप । रथीतमो रथीनां ॥ ७ ॥

यत्। आजिं। याति। आजिऽकृत्। इन्द्रः। स्वश्वऽयुः। उप। रथिऽतमः। रथिनां ॥ ७ ॥

यद्यदाजिह्वयुङ्क्तदिन्द्रः स्वश्वयुः कल्याणमश्वमिच्छन्नाजिं युद्धमुप याति तदा रथीतमोऽतिशयेन रथी भवति । रथीनां सर्वान्नाशिनश्च जयतीति शेषः ॥



वि षु विष्वा अभियुजो वज्रिन्विष्वग्यथा वृह । भवा नः सुश्रवस्तमः ॥८॥  
 वि । सु । विष्वाः । अभिऽयुजः । वज्रिन् । विष्वक् । यथा । वृह । भव । नः ।  
 सुश्रवःऽतमः ॥८॥

हे वज्रिन् त्वं विष्वाः सर्वा अभियुजोऽभियोक्ताः प्रजा यथा विष्वग्भवन्ति तथा सु सुष्ठु वि वृह । नो  
 ऽस्माकं सुश्रवस्तमः शोभनात्प्रवत्तमस्य भव ॥

अस्माकं सु रथं पुर इद्रं कृणोतु सातये । न यं धूर्वेति धूर्तयः ॥९॥  
 अस्माकं । सु । रथं । पुरः । इद्रं । कृणोतु । सातये । न । यं । धूर्वेति । धूर्तयः ॥९॥

यमिद्रं धूर्तयो हिंसका न धूर्वेति न हिंसन्ति स इन्द्रोऽस्माकं सातयेऽभीष्टतामाय सु रथं कच्छाणं रथं  
 पुरः कृणोतु । पुरस्करोतु ॥

वृज्याम ते परि द्विषोऽरं ते शक्र दावने । गमेमेदिद्र गोमतः ॥१०॥  
 वृज्याम । ते । परि । द्विषः । अरं । ते । शक्र । दावने । गमेम । इत् । इद्र । गोऽमतः ॥१०॥

हे शक्रेन्द्र याचमाना वयं ते तव द्वियो द्वेष्टुन् परि वृज्याम । नोपगच्छेम । किंतु ते तव गोमतः यशुमतो  
 दावनेऽभीष्टदानादारं पर्याप्तं गमेमेत् । गच्छेमैव ॥ ॥४३॥

शनैश्चिद्यंतो अद्रिवोऽश्वावतः शतग्विनः । विवक्षणा अनेहसः ॥११॥  
 शनैः । चित् । यंतः । अद्रिऽवः । अश्वऽवतः । शतऽग्विनः । विवक्षणाः । अनेहसः ॥११॥

हे अद्रिवो वज्रिन् वयं शनैर्मंदं मंदं यंतो गच्छंतोऽश्वावतोऽश्ववतः शतग्विनो वज्रधना विवक्षणा चोढव्यं  
 वहंतोऽनेहस उपद्रवरहिताश्च संतो गमेमेदिति संबंधः ॥

ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता । जरितृभ्यो विमंहते ॥१२॥  
 ऊर्ध्वा । हि । ते । दिवेऽदिवे । सहस्रा । सूनृता । शता । जरितृऽभ्यः । विऽमंहते ॥१२॥

हे इन्द्र ते तव जरितृभ्यः स्रोतुभ्यः सहस्रा सहस्राणि शता शतानि चोर्ध्वोर्ध्वानि सुखानि सूनृता सूनृतानि  
 साधनानि दिवे दिवेऽन्वहं विमंहते । यजमानः प्रयच्छति । मंहतिर्दानकर्मा ॥

विद्वा हि त्वा धनं जयमिद्रं दृष्ट्वा चिदारुजं । आदारिणं यथा गयं ॥१३॥  
 विद्वा । हि । त्वा । धनंऽजयं । इद्रं । दृष्ट्वा । चित् । आऽरुजं । आऽदारिणं ।  
 यथा । गयं ॥१३॥

हे इन्द्र त्वा त्वां धनंजयं धनानां जितारं दृष्ट्वा चिद्दृष्टानामपि शत्रूणामाश्चमामिमुखेन मंहारमादा-  
 रिणमादितारं च यथा गयं गृहमिवोपद्रवेभ्यो रक्षकं च विद्वा । जानीम ॥

ककुहं चित्त्वा कवे मंदंतु धृष्णो विंदवः । आ त्वा पृणिं यदीमहे ॥१४॥  
 ककुहं । चित् । त्वा । कवे । मंदंतु । धृष्णो । इति । इंदवः । आ । त्वा । पृणिं । यत् । ईमहे ॥१४॥

हे कवे क्रांतकर्मन् धृष्णो धर्षकेन्द्र यद्यदा पृणिं पणमानं त्वा त्वामा अभिमुख्येनेमहे अभीष्टं याचामहे  
 तदा ककुहमुच्छ्रितं त्वा त्वामिंदवचित् सोमा अपि मंदंतु । मादयंतु ॥

यस्ते रेवाँ अदाशुरिः प्रममर्षं मघत्तये । तस्य नो वेद आ भर ॥१५॥

यः । ते । रेवान् । अदाशुरिः । प्रऽममर्षं । मघत्तये । तस्य । नः । वेदः । आ । भर ॥१५॥

हे इंद्र मघत्तये धनदानाय ते तुभ्यं यः पुमानेवान् धनवान् सप्तदाशुरिरदानशीलः प्रममर्षं अभ्यसूयति तस्मात्पुंसो वेदो धनं नोऽस्माभ्यमा भर । आहर ॥ ४४ ॥

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इंद्र सोमिनः । पुष्टावन्तो यथा पशुं ॥१६॥

इमे । ऊं इति । त्वा । वि । चक्षते । सखायः । इंद्र । सोमिनः । पुष्टावन्तः । यथा । पशुं ॥१६॥

हे इंद्र त्वा त्वां सोमिनोऽभिषुतसोमाः सखाय इम उ इम एव खल्वस्मादीया जनाः पुष्टावन्तः संभृतघासा यथा पशुं पशुमिव वि चक्षते । विपश्चन्ति ॥

उत त्वावधिरं वयं श्रुत्कर्णे संतमूतये । दूरादिह हवामहे ॥१७॥

उत । त्वा । अवधिरं । वयं । श्रुत्कर्णे । संतं । ऊतये । दूरात् । इह । हवामहे ॥१७॥

उतापि च हे इंद्र अवधिरमनुपहतश्रोत्रेन्द्रियं अत एव श्रुत्कर्णे अवरणपरकर्णे संतं त्वा त्वां वयं विशोका इह यत्र ऊतये रचणाय दूरात्त्वामहे । ऊयामः ॥

यच्छुश्रूया इमं हवै दुर्मर्षं चक्रिया उत । भवेरापिनो अंतमः ॥१८॥

यत् । शुश्रूयाः । इमं । हवै । दुःमर्षं । चक्रियाः । उत । भवेः । आपिः । नः । अंतमः ॥१८॥

हे इंद्र यद्यदीमस्मादीयं हवमाह्वानं शुश्रूयाः शृणुयाः तर्हि दुर्मर्षं शत्रूणां दुःसहं बलं चक्रियाः । कुर्याः । उतापि च नोऽस्माकमंतमोऽतिक्रम आपिर्वैधुर्मवेः ॥

यच्चिद्धि ते अपि व्यथिर्जगन्वांसो अमन्महि । गोदा इदिंद्र बोधि नः ॥१९॥

यत् । चित् । हि । ते । अपि । व्यथिः । जगन्वांसः । अमन्महि । गोऽदाः । इत् । इंद्र ।

बोधि । नः ॥१९॥

अपि चिदपि च हे इंद्र ते तुभ्यं यद्यदा हि व्यथिर्दारिद्रेण व्यथिता जगन्वांसो गंतारो वयममन्महि बिभुमः तदा नोऽस्माकं गोदा इज्जवां दातव्यं भवामीति बोधि । बुध्यस्व ॥

आ त्वा रंभं न जिघ्रयो ररभ्मा शवसस्पते । उश्मसिं त्वा सधस्थ आ ॥२०॥

आ । त्वा । रंभं । न । जिघ्रयः । ररभ्म । शवसः । पते । उश्मसिं । त्वा । सधस्थे । आ ॥२०॥

हे शवसस्पते बलस्व पते त्वा त्वां वयं जिघ्रयो वीणा वृद्धा रंभं न दंडमिव ररभ्म । रभामहे । तथा च यास्नाः । आरभामहे त्वा वीणा इव दंडं । नि० ३. २९. इति । अपि च त्वा त्वां सधस्थे यज्ञ उश्मसि । कामयामहे ॥ ४५ ॥

स्तोत्रमिंद्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्त्वे । नक्रियं वृण्वते युधि ॥२१॥

स्तोत्रं । इंद्राय । गायत । पुरुऽनृम्णाय । सत्त्वे । नक्रिः । यं । वृण्वते । युधि ॥२१॥

यमिंद्रं युधि युद्धे नक्रिवृण्वते केऽपि न वारयति तस्मै सत्त्वे दानशीलाय पुरुनृम्णाय वरुधनायिंद्राय स्तोत्रं गायत । पठत ॥



अमि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृपा व्यश्नुही मदं ॥२२॥

आभ । त्वा । वृषभ । सुते । सुतं । सृजामि । पीतये । तृप । वि । व्यश्नुहि । मदं ॥२२॥

हे वृषभेन्द्र त्वा त्वां सुते सोमेऽभिपुते सति सुतमभिपुतं सोमं पीतये पानायामि हवामि । तृप । वृष । मदकरं व्यश्नुहि च ॥

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान् आ दभन् । मार्कीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥२३॥

मा । त्वा । मूराः । अविष्यवः । मा । उपहस्वानः । आ । दभन् । मार्कीं । ब्रह्मद्विषः । वनः ॥२३॥

हे इंद्र त्वा त्वां मूरा मूरका मूढा मनुष्या अविष्यवः परानकामा मा दभन् । मा हिंसन्तु । उपहस्वान् उपहसनपराश्च मा भवन्तु । ब्रह्मद्विषो ब्राह्मणानां द्वेष्टन् मार्कीं वनः । मा मयेथाः ॥

इह त्वा गोपरीणसा महे मंदंतु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥२४॥

इह । त्वा । गोऽपरीणसा । महे । मंदंतु । राधसे । सरः । गौरः । यथा । पिब ॥२४॥

हे इंद्र त्वा त्वामिह यज्ञे गोपरीणसा गव्येन पयसा संमिश्रितेन सोमेन महे महते राधसे धनाय मंदंतु । मनुष्या मादयन्तु । त्वं च तं सोमं यथा गौरो मृगः सरः पिबति तथा पिब ॥

या वृचहा परावति सना नवा च चुच्युवे । ता संसत्सु प्र वोचत ॥२५॥

या । वृचऽहा । पराऽवति । सना । नवा । च । चुच्युवे । ता । संसत्सु । प्र । वोचत ॥२५॥

वृचहेन्द्रः परावति दूरे या यानि सना सनातनानि नवा नवानि नूतनानि च धनानि चुच्युवे प्रेरितवान् तानि धनानि संसत्सु यज्ञेषु समासु वा प्र वोचत । प्रव्रूते विद्वज्जनः ॥ ४६॥

अपिबत्कदुवः सुतमिंद्रः सहस्रबाह्वे । अचदिदिष्ट पौंस्यं ॥२६॥

अपिबत् । कदुवः । सुतं । इंद्रः । सहस्रऽबाह्वे । अच । अदेदिष्ट । पौंस्यं ॥२६॥

इंद्रः कदुवः कदुवनामकस्त्वयः संबंधिनं सुतमभिपुतं सोममपिबत् । पीतवान् । सहस्रबाह्वे सहस्रबाहोः शत्रून्बाह्विति शेषः । अचास्मिन्नवसरे पौंसमिंद्रस्य वीर्यमदेदिष्ट । अदीप्यत ॥

सत्यं तत्तुर्वशे यदौ विदानो अहवाय्यं । आनद् तुर्वणे शमि ॥२७॥

सत्यं । तत् । तुर्वशे । यदौ । विदानः । अहवाय्यं । वि । आनद् । तुर्वणे । शमि ॥२७॥

तुर्वशे रात्रि यदौ च यदुनामके च रात्रि तत्प्रसिद्धं यागादिकक्षणं शमि कर्म । शची शमीति कर्मनामसु पाठात् । सत्यं परमार्थं विदानो ज्ञानंस्तयोः प्रीत्यर्थमहवाय्यमहवाय्यनामकं तयोः शत्रुं तुर्वणे संग्रामे आनद् । आप्नवान् ॥

तरणिं वो जनानां चदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषं ॥२८॥

तरणिं । वः । जनानां । चदं । वाजस्य । गोऽमतः । समानं । ऊं इति । प्र । शंसिषं ॥२८॥

हे अस्मादीयाः पुत्र्याः यो युष्माकं जनानां पुत्रपौत्रादीनां तरुणिं तारुजं चंद्रं शत्रूणां तर्दयितारं गोमतः  
पशुमतोऽन्नस्य दातारं चंद्रं समानमु साधारणमेव प्र शंसिषं । स्तौमि ॥

ऋभुक्ष्णं न वर्तव उक्थेषु तुग्यावृधं । इंद्रं सोमे सचा सुते ॥२९॥

ऋभुक्ष्णं । न । वर्तवे । उक्थेषु । तुग्यावृधं । इंद्रं । सोमे । सचा । सुते ॥२९॥

ऋभुक्ष्णं महांतं तुग्यावृधमुदकस्य वर्धयितारं । तुग्या वुर्वरमित्युदकनामसु पाठात् । इंद्रं सोमे सचा  
स्तौच्य सह सुतेऽभिषुते सत्युक्थेषु शस्त्रेषु वर्तवे धनं वरितुं प्रशंसामीति शेषः । नेति संप्रत्यर्थे ॥

यः कुंतदिद्वि योन्यं चिशोकाय गिरिं पृथुं । गोभ्यो गातु निरेतवे ॥३०॥

यः । कुंतत् । इत् । वि । योन्यं । चिऽशोकाय । गिरिं । पृथुं । गोभ्यः । गातुं । निऽएतवे ॥३०॥

य इत्य एवेन्द्रो योन्यमुदकनिर्गमनद्वारं पृथुं विस्तीर्णं गिरि मेघं । गिरिर्त्रज इति मेघनामसु पाठात् ।  
चिशोकाय चिशोकनामर्थर्थं वि कुंतत् व्यच्छिनत् स गोभ्यो गमनवज्रा उदकेभ्यो निरेतवे निर्गमनाय गातुं  
भूमिं । भूमिर्गोतुरिति तन्नामसु पाठात् । मार्गमित्यर्थः । करोतीति शेषः ॥ ॥४७॥

यहधिषे मनस्यसि मंदानः प्रेदियक्षसि । मा तत्करिद्र मृळय ॥३१॥

यत् । दधिषे । मनस्यसि । मंदानः । प्र । इत् । इयक्षसि । मा । तत् । कः । इद्र । मृळय ॥३१॥

हे इंद्र मंदानो मोदमानस्त्वं यच्छुभं वस्तु दधिषे धारयसि यच्च मनस्यसि पूजयसि यदपि च प्रेदियक्षसि  
प्रयच्छस्व तत्सर्वं मा कः । किं नाकार्षीः । अस्माकं कृतवन्नेव । किंचास्माकृळय । सुखय ॥

दधं चिद्धि त्वावतः कृतं शृण्वे अधि क्षमि । जिगात्विद्र ते मनः ॥३२॥

दधं । चित् । हि । त्वाऽवतः । कृतं । शृण्वे । अधि । क्षमि । जिगात् । इद्र । ते । मनः ॥३२॥

हे इंद्र त्वावतस्त्वत्सदृशस्य दधं चिदल्पमपि कृतं कर्माधि क्षमि चमायां ॥ अधीति सप्तम्यर्थानुवादः ॥  
शृण्वे । विश्रुतं भवति हि । तथा सति ते तव मनो जिगातु । मयि गच्छतु ॥

तवेदु ताः सुकीर्तयोऽसन्नुत प्रशस्तयः । यदिंद्र मृळयांसि नः ॥३३॥

तव । इत् । ऊं इति । ताः । सुऽकीर्तयः । असन् । उत । प्रऽशस्तयः । यत् । इद्र ।

मृळयांसि । नः ॥३३॥

हे इंद्र त्वं नोऽस्मान्यथाभिर्मुळयांसि सुखयसि ताः सुकीर्तयः शोभनाख्यातयस्त्वैतवैवासन् । भवेयुः ।  
उतापि च ताः प्रशस्तयः स्तुतयश्च तवैव भवेयुः ॥

मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु । वधीर्मा शूर भूरिषु ॥३४॥

मा । नः । एकस्मिन् । आगंसि । मा । द्वयोः । उत । त्रिषु । वधीः । मा । शूर । भूरिषु ॥३४॥

हे शूरेंद्र नोऽस्मानेकस्मिन्नागस्वपराधि मा वधीः । मा द्वितीयः । द्वयोरगसोरपि मा वधीः । उतापि च  
त्रिष्वगः स्वपि मा द्वितीयः । भूरिष्वप्यसंख्यातेष्वगः सु मा च वधीः ॥

विभया हि त्वावत उयादभिप्रभंगिणः । दस्मादहमृतीषहः ॥३५॥

विभयं । हि । त्वाऽवतः । उयात् । अभिऽप्रभंगिनः । दस्मात् । अहं । ऋतिऽसहः ॥३५॥



हे इंद्र त्वावतस्त्वसदृशादुषादुशूर्वादिमिप्रमंगिणः शत्रून्नामभिग्रहर्तुर्दक्षात्पापाणामुपचपचितुर्कृतीषहः  
शत्रुघ्नां हिंसां सहतोऽहं विमय हि ॥ ४८ ॥

मा सख्युः शूनमा विदे मा पुचस्य प्रभूवसो । आवृत्वद्वतु ते मनः ॥ ३६ ॥

मा । सख्युः । शूनं । आ । विदे । मा । पुचस्य । प्रभूवसो इति प्रभुऽवसो । आऽवृत्त ।  
भूतु । ते । मनः ॥ ३६ ॥

हे प्रभूवसो प्रभूतधर्मेन्द्र ते तव सख्युः शूनं वृत्तं मा विदे । मावेदयामि । पुचस्यापि शूनं मा विदे । तव  
मनोऽस्मात्पापवृत्तदावर्तनवद्भूतु । भवतु । पुनःपुनः सुखं करोत्वित्यर्थः ॥

को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत् । जहा को अस्मदीषते ॥ ३७ ॥

कः । नु । मर्याः । अमिथितः । सखा । सखायं । अब्रवीत् । जहा । कः । अस्मत् ।  
ईषते ॥ ३७ ॥

को नु कः खलु हे मर्या मनुष्याः अमिथितः । मेथतिराक्रोशकर्म । अनाक्रुष्ट इंद्रादन्यः सखा सखायं  
प्रति जहा अहं कं जघान कः को वासदस्यतो भीत ईषते पलायत इत्यब्रवीत् । वदति । इंद्र एवेतादृशस्य  
वचनस्य वक्तव्यमिप्रायः । तथा च यास्कः । मेथतिराक्रोशकर्म । अपापकं जघान कमहं आतु कोऽस्मदीतः  
पलायते । नि० ४. २. इति । मा न एकस्मिन्नागसीत्यादिकया श्रुत्या नूनमृषिमिन्द्र आजहरित्यवधिर्वि-  
स्रयत इति ॥

एवारो वृषभा सुतेऽसिन्वभूर्योवयः । श्वघ्नीव निवता चरन् ॥ ३८ ॥

एवारो वृषभ । सुते । असिन्वन् । भूरि । आवयः । श्वघ्नीऽइव । निऽवता । चरन् ॥ ३८ ॥

हे वृषभ कामार्गा वर्षकेन्द्र एवारो । एवारो नाम कथित । तस्मिन् सुतेऽभिषुते सोमे सति भूरि चरन्नि  
धनान्यसिन्वन्न वध्नन्कृष्णी । श्वघ्नी कितवः । तथा च यास्कः । श्वघ्नी कितवो भवति स्यं प्रति --- । नि-  
५. २२. --- ॥

आ त एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा । यदीं ब्रह्मभ्य इहदः ॥ ३९ ॥

आ । ते । एता । वचः । युजा । हरी इति । गृभ्णे । सुमत् । रथा । यत् । ई । ब्रह्मभ्यः ।  
इत् । ददः ॥ ३९ ॥

ते तव सुमद्रथा कक्षाणरथो वचोयुजा मन्त्रेण युज्यमानावेतिता हरी अथावा गृभ्णे । अस्मदभिमुखं  
यातुं हस्ताभ्यामाकर्षामीत्यर्थः । यवसात्त्वं ब्रह्मभ्य इन्द्राहाणेभ्य ण्वेमिदं धनं ददः ददासि ॥

भिंधि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्याहं तदा भर ॥ ४० ॥

भिंधि । विश्वाः । अप । द्विषः । परि । बाधः । जहि । मृधः । वसु । स्याहं । तत् । आ । भर ॥ ४० ॥

हे इंद्र त्वं विश्वाः सर्वा द्विषो द्वेष्टीः शत्रुसेना अप भिंधि । विदारय । बाधो हिंसित्रीमृधः संग्रामः न ।  
सृधो मृध इति संग्रामनामसु पाठात् । परि जहि । हिंधि । अतस्मासां स्याहं सृहणीयं तत्प्रसिद्धं वस्त्रा भर ।  
अस्मभ्यमाहर ॥

यद्बीळाविंदु यत्स्थिरे यत्पर्शने पराभृतं । वसुं स्याहं तदा भर ॥४१॥

यत्। बीळौ । इंदु । यत् । स्थिरे । यत् । पर्शने । पराऽभृतं । वसुं । स्याहं । तत् । आ । भर ॥४१॥

हे इंदु त्वया च बीळौ दृढे परैः कंपयितुमशक्ते यत्तनं पराभृतं विन्यस्तं यस्य स्थिर स्वयमचले पराभृतं यच्चापि पर्शने विमर्शनचमे पराभृतं तत्स्याहं वत्सा भर ॥

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेदं तस्य वेदति । वसुं स्याहं तदा भर ॥४२॥

यस्य । ते । विश्वऽमानुषः । भूरेः । दत्तस्य । वेदति । वसुं । स्याहं । तत् । आ । भर ॥४२॥

हे इंदु ते त्वया ॥ विभक्तित्वत्थः ॥ दत्तस्य दत्तं भूरेर्वज्र यस्य यत्तनं ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ विश्वमानुषः सर्वो मनुष्यो वेदति जानाति तत्स्याहं सृहणीयं वत्सा भर ॥ ४९ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थोऽस्तुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येणा  
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् । निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

षष्ठे तृतीयमध्यायं व्याख्याय श्रीमतीसुतः । श्रीसायणार्थः संगृह्य चतुर्थं व्याकरोत्वथ ॥

तच्च त्वावत इति चयस्त्रिंशद्वचं चतुर्थं सूक्तमथपुत्रस्य वशाख्यस्यार्थं । प्राक्त्वत्प्रपरिभाषयाद्यास्तस्रो गायत्र्यः । तच्चाद्या पादनिचृतं चयः सप्तकाः पादनिचृतं । अनु० ४. ४. । इत्युक्तञ्चणोपेतत्वात् । दधानो गोम-  
दश्चवदित्येषा पंचमी ककुब्धकद्वादशाष्टकेः पादैरुपेतत्वात् । मध्यमस्यैत्ककुप । अनु० ५. ३. । इति हि तल्लक्षणं ।  
तमिंद्रमिति षष्ठी गायत्री । तस्मिन् हि संतीति सप्तमी वृहती । यत्ते मद इत्यष्टम्यनुष्टुप । यो दुष्टर इति  
नवमी सतोवृहती । अयुर्जी जागती सतोवृहती । अनु० ८. ४. । इति ह्युक्तं । गव्यो षु ण इति दशमी गायत्री ।  
नहि ते भूरेत्येकादशी वृहती । य ऋष्व इति द्वादशी विपरीता सतोवृहती प्रथमतृतीययोरष्टाचरा द्वितीय-  
चतुर्थयोर्द्वादशाचरा च । युर्जी चेद्विपरीता । अनु० ८. ५. । इत्युक्तत्वात् । स नो वावेध्विति त्रयोदशी चतुर्विं-  
शत्यचरा द्विपदा । अमि वो वीरमिति चतुर्दशी पिपीलिकमध्या वृहती । त्रयोदशिनोर्मध्येऽष्टकः पिपीलिक-  
मध्या । अनु० ७. ७. । इत्युक्तत्वात् । ददी रेक्ण इति पंचदशी ककुब्धं कुशिरा चैष्टुभजागतचतुष्काः ककुब्धं कु-  
शिरा । अनु० ५. ४. । इत्युक्तत्वात् । विश्वेषामिति षोडशी विराट् । महः सु व इति सप्तदशी जगती । ये  
पातयंत इत्यष्टादश्यापरिष्टाद्बृहती चतुर्थपादस्य द्वादशाचरत्वात् । प्रमंगमित्येकोनविंशी वृहती । सनितः  
सुसनितरिति विंशी विषमपदा वृहती नवकाथेकादश्याष्टिनो विषमपदा । अनु० ७. ८. । इत्युक्तत्वात् । आ स  
एतु षष्टिं सहस्रेत्येकविंशीद्वाविंशी पंक्ती । दश आवा इति त्रयोविंशी गायत्री । दानास इति चतुर्विंशी  
पंक्तिः । पंचविंशीसप्तविंशी वृहत्या । षड्विंश्याविंशी सतोवृहत्या । एकोनविंशी गायत्री । गावो न यूथमिति  
त्रिंशी विंशत्यचरा द्विपदा विराट् । एकविंशुष्णिक । द्वाविंशी पंक्तिः । चयस्त्रिंशी गायत्री । आ स एत्वित्या-  
दिभिर्यतस्तमिः कनीतपुत्रस्य पृथुश्रवसो दानं सूयते । अतस्तद्वेयताकाः । आ नो वायवित्यादीनां चतसृणां  
द्वाविंश्याश्च वायुदेवता । शिष्टा अनादेशपरिभाषयेंद्रदेवताकाः ॥ एतत्सर्वमनुक्रमण्यमुक्तं । त्वावतस्त्रयस्त्रिं-  
शद्वर्गोऽस्य आ स आदि कानीतस्य पृथुश्रवसो दानस्मृतिराद्या पादनिचृतं पंचम्यादि ककुब्धगायत्री वृहत्य-  
नुष्टुप सतोवृहती गायत्री विपरीतोत्तरः प्रगाथो द्विपदा चतुर्विंशिका वृहती पिपीलिकमध्या ककुब्धं कुशिरा  
विराड्गव्युपरिष्टाद्बृहतीवृहत्या विषमपदोत्तरे पंक्ती गायत्री पंक्तिः प्रगाथौ च वायव्यौ गायत्री द्विपदोष्णिक  
पंक्तिर्वायव्या गायत्रीति ॥ महाव्रते निष्केवल्ये सनितः सुसनितरित्यंतमेव सूक्तं । तथा च पंचमाग्न्यके शौनकेन  
सूचितं । त्वावतः पुरुवसविति वशः सनितः सुसनितरित्यंतदंतः । ऐ० आ० ५. २. ५. । इति ॥



त्वावतः पुरुवसो व्यभिद्र प्रणेतः । स्मसिं स्थातर्हरीणां ॥१॥

त्वाऽवतः । पुरुवसो इति पुरुऽवसो । व्यं । इन्द्र । प्रनेतरिति प्रऽनेतः । स्मसिं  
स्थातः । हरीणां ॥१॥

हे पुरुवसो ब्रह्मर्षेन्द्र प्रणेतः कर्मणां पारं प्रकर्षेण प्रापयितरिन्द्र त्वावतस्त्वत्सदृशस्य । इन्द्रसमानस्याम्-  
स्याभावात्तवेत्यर्थः । तव समूता वयं स्मसि । स्मः । हे हरीणामेतत्संज्ञकानामन्धानां स्थातरधिष्ठितः ॥

त्वां हि सत्यमद्रिवो विद्म दातारमिषां । विद्म दातारं रयीणां ॥२॥

त्वां । हि । सत्यं । अद्रिऽवः । विद्म । दातारं । इषां । विद्म । दातारं । रयीणां ॥२॥

हे अद्रिवः । अस्ति शुभित्वद्विर्वज्रः । तद्वज्रिन्द्र त्वां सत्यं निश्चयमिषामन्नां दातारं विद्म । जानीमः ।  
तथा रयीणां धनानां दातारं विद्म ॥

आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो । गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ॥३॥

आ । यस्य । ते । महिमानं । शतं ऽऊते । शतक्रतो इति शतक्रतो । गीऽभिः ।  
गृणन्ति । कारवः ॥३॥

हे शतमूतेऽपरिमितरक्षण हे शतक्रतो ब्रह्मकर्मशुक्तेन्द्र यस्य ते महिमानं माहात्म्यं कारवः क्षीतारो  
गीर्भिः स्तुतिभिर्गृणन्ति स्तुवन्ति स्वामीष्टाय ॥

सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मिचः पांत्यदुहः ॥४॥

सुऽनीथः । घा । सः । मर्त्यः । यं । मरुतः । यं । अर्यमा । मिचः । पांति । अदुहः ॥४॥

स मर्त्यो मनुष्यो यजमानः सुनीथः सुयज्ञः सुनयनो वा भवति । चेति प्रसिद्धौ । स इत्युक्तं कमित्याह । यं  
यजमानं मरुतो देवाः पांति रक्षन्त्यदुहोऽद्रोहकर्तारः । तथा यमर्यमा याति । यं च मिचः याति । स एवं  
भवतीति ॥

दधानो गोमदश्ववत्सुवीर्यमादित्यजूत एधते । सदा राया पुरुस्पृहा ॥५॥

दधानः । गोऽमात् । अश्वऽवत् । सुऽवीर्यं । आदित्यऽजूतः । एधते । सदा । राया ।  
पुरुऽस्पृहा ॥५॥

आदित्यव्रत आदित्यप्रेरित आदित्यानुगृहीतो यजमानो गोमत्तोमिषपेतमश्ववदश्वरपेतं सुवीर्यं शोभन-  
वीर्योपेतं पुत्रं दधानो धारयन्नेधते वर्धते सदा सर्वदा । किंच पुरुस्पृहा ब्रह्मभिः सृष्टृणीयेन राया धनेन  
सदेधते ॥ ॥१॥

तमिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वे । ईशानं राय ईमहे ॥६॥

तं । इन्द्रं । दानं । ईमहे । शवसानं । अभीर्वे । ईशानं । रायः । ईमहे ॥६॥

तं प्रसिद्धमिन्द्रं दानं देयं रायो धनमीमहे । याचामहे । कीदृशमिन्द्रं । शवसानं ब्रह्मचारं तमभीर्वमभीरु-  
मीशानं सर्वस्य स्वामिनं ॥

तस्मिन्नि संत्युतयो विश्वा अभीरवः सचा ।

तमा वहंतु सप्तयः पुरुवसुं मदाय हरयः सुतं ॥७॥

तस्मिन् । हि । संति । ऊतयः । विश्वाः । अभीरवः । सचा ।

तं । आ । वहंतु । सप्तयः । पुरुवसुं । मदाय । हरयः । सुतं ॥७॥

तस्मिन्नि ऊतयो गन्धो विश्वाः सर्वा अभीरवोऽकातराः सचा सहायभूता मरुद्रूपाः सेनाः संति । भवन्ति । अथवा तस्मिन् सर्वा रक्षणाः सह संभवन्ति । तस्मिन् सप्तयः सर्पणशीला हरयोऽश्वाः पुरुवसुं वज्रधनं । वज्रधनप्रदमित्यर्थः । तं मदाय सुतमभिसुतमभिषुतं सोमं प्रत्या वहंतु । आगमयंतु ॥

यस्ते मदो वरेण्यो य इन्द्र वृचहंतमः । य आददिः स्वर्नृभिर्यः पृतनासु दुष्टरः ॥८॥

यः । ते । मदः । वरेण्यः । यः । इन्द्र । वृचहन्ऽतमः । यः । आददिः । स्वः । नृभिर्यः ।

यः । पृतनासु । दुष्टरः ॥८॥

पूर्वमेव मदाय हरय इत्युक्तं स मदः कूयते । हे इन्द्र त तव यो मदो वरेण्यो वरणीयः । यस्य मदः संग्रामे वृचहंतमः शत्रूणामतिशयेन हंता । यसाददिरादाता स्वः स्वरणं धनं नृभिर्गुह्यः शत्रुभ्यः । यस्य पृतनासु संग्रामेषु दुष्टरोऽनभिभाव्यः । तस्मै मदाय हरयो वहन्त्विति ॥

यो दुष्टरो विश्ववार अवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता ।

स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे ॥९॥

यः । दुष्टरः । विश्ववार । अवाय्यः । वाजेषु । अस्ति । तरुता ।

सः । नः । शविष्ठ । सवना । आ । वसो इति । गहि । गमेम । गोमति । व्रजे ॥९॥

हे विश्ववार विश्वैर्वरेण्येन्द्र वाजेषु युजेषु यस्मिन् दुष्टरो दुःखेन तरीतुं शक्यस्तदा शत्रूणां तारकोऽस्ति भवति हे वसो वासक हे शविष्ठातिशयेन वलवन्निद्र स त्वं नः सवनास्माकं सवनान्या गहि । आगच्छ । वयं च गोमति व्रजे गोमतं व्रजं गमेम । गच्छेम ॥

गन्धो पुणो यथा पुराश्वयोत रथया । वरिवस्य महामह ॥१०॥

गन्धो इति । सु । नः । यथा । पुरा । अश्वया । उत । रथया । वरिवस्य । महाऽमह ॥१०॥

हे महामह महाधनेन्द्र गन्धा ॥ गन्धा उ इति निपातानिपातद्वयसमुदायस्यादिवज्रावेन निपातवज्रावा-  
त्प्रकृतिभावः ॥ अस्माकं गवामिच्छ्यास्माकं गा दातुं यथा पुरा पूर्वं यथास्माकं गवादिदानाय वरिवस्यसि  
तद्दद्यापि सु सुष्ठु वरिवस्य । परिशर । आगच्छेत्यर्थः । न केवलं गवेच्छ्या किंत्वश्वयानप्रदानेच्छ्या । उतापि  
च रथया रथेच्छ्या च वरिवस्येति ॥ २॥

नहि ते शूर राधसोऽतं विंदामि सचा ।

दशस्या नो मघवन्नू चिदद्विवो धियो वाजैभिराविष ॥११॥

नहि । ते । शूर । राधसः । अतं । विंदामि । सचा ।

दशस्य । नः । मघवन् । नु । चित् । अद्विवः । धियः । वाजैभिः । आविष ॥११॥



हे गुर विक्रान्तिं त्वं ते तव राधसो धनसांतमियतां सचा सत्यं नहि विंदामि । न जने । यस्मादेवं तस्मात्  
हे मघवन धनवन हे अद्रिवो वज्रवमिंद्र नोऽस्माकं नू चित् चिप्रमेव दशस्य । देहि तद्वनं । किंच वाजेभिर्वा-  
धैरन्नेर्धिषोऽसदीयानि कर्मोष्णाविष । रघ ॥

य ऋष्वः आवयत्सखा विश्वेत्स वेद् जनिमा पुरुष्टुतः ।

तं विश्वे मानुषा युगेन्द्रं हवन्ते तविषं यत्सुचः ॥ १२ ॥

यः । ऋष्वः । आवयत्सखा । विश्वा । इत् । सः । वेद् । जनिम । पुरुऽस्तुतः ।

तं । विश्वे । मानुषा । युगा । इन्द्रं । हवन्ते । तविषं । यत्सुचः ॥ १२ ॥

य इन्द्र ऋषो दर्शनीयः आवयत्सखा । आवयन्तः सखाय अस्त्रिषो यस्य स तादृशः आवयत्सखा ।  
पुरुष्टुतो वज्रभिर्यजमानैः क्षुतो य इन्द्रः स विश्वेत् सर्वास्तपि जनिमा जन्मानि प्राणिनां वेद् । जानाति । तं  
तविषं वसवन्तमिन्द्रं विश्वे सर्वेऽप्यध्वर्यादयो यतधुषः स्वीकृतवृषिष्ठाः संतो मानुषा मनुष्यसंबन्धिनो युगा  
युगानि कालान् सर्वेषु कालेषु हवन्ते । आद्रयन्ति । क्षुयन्ति ॥

स नो वाजेष्वविता पुरुवसुः पुरःस्थाता । मघवा वृचहा भुवत् ॥ १३ ॥

सः । नः । वाजेषु । अविता । पुरुऽवसुः । पुरःस्थाता । मघऽवा । वृचऽहा । भुवत् ॥ १३ ॥

एषा विपदा जगती ॥ स पुरुवसुर्वज्रधनो मघवा धनवान् वृचहा शत्रूणां हन्तिन्द्रो नोऽस्माकं वाजेषु  
संयामेष्वविता रचिता पुरःस्थाता तदर्थं पुरतो वर्तमानो भुवत् । भवतु ॥

अभि वो वीरमंधसो मर्देषु गाय गिरा महा विचेतसं ।

इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥ १४ ॥

अभि । वः । वीरं । अंधसः । मर्देषु । गाय । गिरा । महा । विचेतसं ।

इन्द्रं । नाम । श्रुत्यं । शाकिनं । वचः । यथा ॥ १४ ॥

हे उन्नाचादयः वः । श्रुत्यमित्यर्थः । अथवा हे यजमानाः वो शुष्माकं हितार्थाधसः सोमस्य मर्देषुत्पाय-  
मानेषु सत्सु वीरं शत्रूणामीरयितारं नाम शत्रूणां नामकं विचेतसं विशिष्टप्रज्ञं श्रुत्यं सर्वत्र श्रोतव्यं शाकिनं  
शक्तं इन्द्रमिन्द्रं महा महत्या गिरा क्षुत्या वचो वाम्युष्मदीया यथा येन प्रकारेण प्रवर्तते गायत्र्या चिपुभा  
वा तथा गाय । गायत । क्षुतिं कुर्वत ॥

दृदी रेक्णस्तन्वे दृदिर्वसुं दृदिर्वाजेषु पुरुहूत वाजिनं । नूनमथ ॥ १५ ॥

दृदिः । रेक्णः । तन्वे । दृदिः । वसुं । दृदिः । वाजेषु । पुरुऽहूत । वाजिनं । नूनं ।

अथ ॥ १५ ॥

हे पुरुहूत वज्रभिराहतं त्वं त्वं तन्वे मह्यं शरीराय रेक्णो धनं दृदिर्दाता भव । कदेति उच्यते । नूनं  
चिप्रमयोदानीमेव । एवं प्रतिवाक्यं योज्यं । तथा वसु धनं पुत्रादिभ्यो दृदिर्दाता भव । तथा वाजेषु संयामेषु  
वाजिनमन्नवंतं रथिं दृदिर्दाता भवेति ॥ अथ सर्वेष्वपि वाक्त्रेषु दृदिरित्यस्य लिङ्गावात्त नोकाव्यर्थेति  
षष्ठीप्रतिषेधः ॥ ॥ ३ ॥

विश्वेषामिरज्यंतं वसूनां सासद्भांसं चिदस्य वर्षसः । कृपयतो नूनमत्यथ ॥ १६ ॥  
विश्वेषां । इरज्यंतं । वसूनां । ससद्भांसं । चित् । अस्य । वर्षसः । कृपयतः । नूनं ।  
अति । अथ ॥ १६ ॥

हे इंद्र त्वां विश्वेषां सर्वेषां वसूनां धनानामिरज्यंतमीशानमस्य वर्षसो वारकस्य कृपयतो युजं कल्पयतः  
शचोः सासद्भांसमभिमवितारं सुवंत इति शेषः । स त्वं नूनं विप्रमथापीदानीमपि धनं प्रयच्छेत्यर्थः ॥

महः सु वो अरमिषे स्तवामहे मीळुषे अरंगमाय जग्मये ।  
यज्ञेभिर्गीर्भिर्विश्वमनुषां मरुतामियक्षसि गाये त्वा नमसा गिरा ॥ १७ ॥  
महः । सु । वः । अरं । इषे । स्तवामहे । मीळुषे । अरंगमाय । जग्मये ।  
यज्ञेभिः । गीः ऽभिः । विश्वमनुषां । मरुतां । इयक्षसि । गाये । त्वा । नमसा । गिरा ॥ १७ ॥

हे इंद्र महो महतो वः । तवेत्यर्थः ॥ अत्ययेन बहुवचनं ॥ अरं गमनमस्यद्विषयमिच्छामि ॥ अतैररमिति  
रूपं ॥ तदर्थं मीळुषे सक्तेऽरंगमाय संपूर्णगमनाय जग्मये गमनशीलाय यज्ञं प्रति एवंभूताय देवाय  
स्तवामहे । त्वां सुम इत्यर्थः । केन साधनेनेति तदुच्यते । यज्ञेभिर्यजनसाधनैर्हविर्भिर्यज्ञैरेव वा गीर्भिः  
स्तुतिभिः । हे देव विश्वमनुषां विश्वेषां मनुष्याणां यष्टूणामियक्षसि । एतैरिज्यसे । मरुतां संबन्धी त्वं । किंच  
त्वा त्वां नमसा नमस्कारेण गिरा स्तुत्या च गाये । सुवे ॥

ये पातयन्ते अज्मभिर्गिरीणां सुभिरेषां ।  
यज्ञं महिष्वणीनां सुसं तुविष्वणीनां प्राध्वरे ॥ १८ ॥  
ये । पातयन्ते । अज्मभिः । गिरीणां । सुभिः । एषां ।  
यज्ञं । महिः स्वनीनां । सुसं । तुविः स्वनीनां । प्र । अध्वरे ॥ १८ ॥

ये मरुतो गिरीणां मेघानां सुभिः प्रक्षवद्भिरज्मभिर्वलैर्वलकरैरुदकैः सह पातयन्ते पतन्ति गच्छन्ति एषां  
मरुतां महिष्वणीनां प्रभूतध्वनीनां यज्ञं जुर्म इति शेषः । कृत्वा च तुविष्वणीनां बहुध्वनीनां सुसं सुखं तैः  
कृतमध्वरे यज्ञे प्र प्राप्नुयाम । अथवा । चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । प्रभूतस्वनेभ्यः सुसंसुक्तलक्षणं हविः प्र प्राप्नुया-  
माध्वरे यज्ञे ॥

प्रभंगं दुर्मतीनामिंद्रं शविष्ठा भर ।  
रयिमस्मभ्यं युज्यं चोदयन्मते ज्येष्ठं चोदयन्मते ॥ १९ ॥  
प्रभंगं । दुःमतीनां । इंद्रं । शविष्ठ । आ । भर ।  
रयिं । अस्मभ्यं । युज्यं । चोदयत् ऽमते । ज्येष्ठं । चोदयत् ऽमते ॥ १९ ॥

दुर्मतीनां दुष्टमनस्कानां दुष्टादीनां प्रभंगं प्रकीर्षेण भञ्जकं त्वां याचामह इति शेषः । हे इंद्र शविष्ठाति-  
शयेन बलवन् क्षुतस्त्वमस्मभ्यं रयिं धनं युज्यं योग्यमस्माकमुचितं धनमा भर । आहर । हे चोदयन्मते ।  
चोदयन्ती धनं प्रेरयन्ती मतिर्यस्य स तथोक्तः । हे तादृश देव । किंच हे चोदयन्मते उक्तार्थं ज्येष्ठं धनमा भर ॥

सनितः सुसनितरुय चित्र चेतिष्ठ सूनृत ।  
प्रासहां सम्राट् सहुरिं सहंतं भुज्यं वाजेषु पूर्व्यं ॥ २० ॥



सन्तिरिति । सुऽसन्तितः । उयं । चित्रं । चेतिष्ठ । सूनृत ।

प्रऽसहा । संऽराट् । सहुरिं । सहंतं । भुज्युं । वाजेषु । पूर्व्यं ॥ २० ॥

हे सन्तितः संभक्तर्दातवो योर्गुणवत् चित्रं चायनीय चेतिष्ठात्वं चेतयितः सूनृत सुसत्य प्राप्तहा प्रसह्य हे सहाद् सर्वस्य स्वामिन् सम्यगाजमान वा त्वं सहुरिं सहनशीलं भुज्युं भोजयितारं पूर्व्यं प्रवृत्तं । मुख्यमित्यर्थः । ईदृशं धनं वाजेषु संयामेष्वाभरेति शेषः ॥ ४४ ॥

आ स एतु य ईवदाँ अदेवः पूर्तमाददे ।

यथा चिद्वशो अश्वः पृथुश्रवसि कानीतेऽस्या व्युषाददे ॥ २१ ॥

आ । सः । एतु । यः । ईवत् । आ । अदेवः । पूर्तं । आऽददे ।

यथा । चित् । वशः । अश्वः । पृथुऽश्रवसि । कानीते । अस्याः । विऽउषिं । आऽददे ॥ २१ ॥

अत्र शीनकः । वशायाश्चायं यत्प्रादात्कानीतस्तु पृथुश्रवाः । तदत्र सूयते दागमा स एलेवमादिभिः । वृ० ६. ८-९ ॥ एतु आगच्छतु स योऽदेवो देवादभ्यो मनुष्यो वश ईवन्नमनवन्नवादिक्षणं पूर्तं पूर्णमाददे आदत्ते । स्वीकृतवानित्यर्थः । देवदेव्याययाप्यागंतुमर्हति । अतः प्रकाशेनैवागच्छत्वित्यर्थः । कथमस्य धना-  
वाप्तिप्रसंग आगमनप्रसंगश्चेति तदुच्यते । यथा चित् । चिदिति पूरणः । येष कारणेन यस्माद्वा वश एतत्सं-  
ज्ञकोऽश्वोऽद्यपुनः पृथुश्रवस्येतन्नामके राज्ञि कानीते कनीतपुत्रे कन्यायाः पुत्रेऽस्या उपसो व्युषि व्युष्टावाददे  
आदत्ते तेन कारणेन तस्माद्वा कारणादायात्विति । एवमश्वो बंधुवर्गो वा ब्रूते ॥

षष्टिं सहस्राश्वस्यायुतासनमुष्टानां विंशतिं शता ।

दश श्यावीनां शता दश अरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥ २२ ॥

षष्टिं । सहस्रा । अश्वस्य । अयुता । असनं । उष्टानां । विंशतिं । शता ।

दश । श्यावीनां । शता । दश । चिऽअरुषीणां । दश । गवां । सहस्रा ॥ २२ ॥

स वश आगत्य ब्रूते । अश्वस्याश्वसंबन्धिनः षष्टिं सहस्रा सहस्राश्वयुतायुतानि चासनं । अमवं । उष्टानां  
विंशतिं शता शतानि चासनं । श्यावीनां आववर्णानां वज्रवानां दश शता शतानि चासनं । अरुषीणां  
चीळारोचमानानि शुभाणि ककुप्पृष्ठपार्श्वदिक्षानानि चासां तादृशीनां गवां दश सहस्रा सहस्राश्वमवं ॥

दश श्यावा अधद्रयो वीतवारास आश्वः । मथ्रा नेमिं नि वावृतुः ॥ २३ ॥

दश । श्यावाः । अधद्रयः । वीतऽवारासः । आश्वः । मथ्राः । नेमिं । नि । वावृतुः ॥ २३ ॥

दश दशसंख्याकाः श्यावाः आववर्णा आश्वोऽश्वा नेमिं रथनेमिं नि वावृतुः । निवर्तयंति । रथं वहं-  
तीत्यर्थः । ईदृशास्त अधद्रयः प्रवृद्धवेगा वीतवारासः क्रांतवन्ताः प्राप्तवन्ता वाश्वो मथ्रा मधनशीलाः ॥

दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुरार्धसः ।

रथं हिरण्ययं ददन्मंहिष्ठः सूरिरभूद्वर्षिष्ठमकृत श्रवः ॥ २४ ॥

दानासः । पृथुऽश्रवसः । कानीतस्य । सुऽरार्धसः ।

रथं । हिरण्ययं । ददत् । मंहिष्ठः । सूरिः । अभूत् । वर्षिष्ठं । अकृत । श्रवः ॥ २४ ॥

पूर्वमर्थैः प्रतिपादितानि धनानि बंधूनां पितृर्वा पुरस्ताद्विदिशन्नाशास्ते । पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः शोभनधनस्य । यतस्तस्य धनं दानाय कल्पितं अतः स सुराधाः । तस्य दानासौ दाना दत्तानि धनानी-  
मानि । स च पृथुश्रवाः पूर्वमुक्तानि हिरण्यं हिरण्यमयं रथं च दत्तं प्रयच्छन् मंहिष्ठोऽतिशयेन दाता सूरिः  
सर्वस्य प्रेरकः प्राज्ञो बामूत् । भवति । भवतु वा । वर्षिष्ठमतिशयेन प्रवृत्तां श्रवः कीर्तिमकृत । करोति ।  
करोतु वा ॥

आ नो वायविल्लिया पंचनेऽहनि प्रउगशस्त्रे वायव्यतुचे तृतीया । आ नो वायो महे तन इत्येका रथेन  
पृथुपावसा । आ० ७. १२. इति हि सूत्रितं ॥

आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे ।

वयं हि ते चक्रमा भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥ २५ ॥

आ । नः । वायो इति । महे । तने । याहि । मखाय । पाजसे ।

वयं । हि । ते । चक्रम । भूरि । दावने । सद्यः । चित् । महि । दावने ॥ २५ ॥

हे वायो त्वं नोऽस्मान् प्रत्या याहि । आगच्छ । किमर्थं । महे महते तने धनाय मखाय महनीयाय  
पाजसे बलाय च । उभयं प्रदातुमित्यर्थः । किमवाप्नोति चेत् उच्यते । वयं हि वयं खलु ते भूरि दावने  
प्रभूतधनदात्रे चक्षम क्षुतिं हविर्वा । सद्यश्चित्तदानीमेव तवागमनानंतरमेव चक्षम महि महतो धनस्य  
दावने दात्रे ॥ ॥ ५ ॥

यो अश्वेभिर्वहते वस्तं उस्त्रास्त्रिः सप्त सप्ततीनां ।

एभिः सोमेभिः सोमसुद्धिः सोमपा दानाय शुक्रपूतपाः ॥ २६ ॥

यः । अश्वेभिः । वहते । वस्ते । उस्त्राः । चिः । सप्त । सप्ततीनां ।

एभिः । सोमेभिः । सोमसुत्ऽभिः । सोमऽपाः । दानाय । शुक्रपूतऽपाः ॥ २६ ॥

यः पृथुश्रवा अश्वेभिरश्वैर्वहते गृहं वस्ते चोस्त्रा गाः । तामिदं गच्छतीत्यर्थः । चिः सप्तेति तासां गवां  
संख्योक्ता । सा संख्या विशेष्यते । सप्ततीनां चिः सप्त । उक्तसंख्याकामिर्गोभिरश्वैश्च यो गच्छति स पृथुश्रवा  
एभिः सोमेभिः सोमैः सोमसुद्धिः सोममभिषुण्वद्भिश्च हे सोमपाः । सोमस्य पातरिति वायोः संबोधनं । हे  
शुक्रपूतपा दीप्तपूतस्य च सोमस्य पातर्वायो दानाय तुभ्यं सोमं दातुं सोमैर्युक्तो भवतीति शेषः ॥

यो मं इमं चिदु त्मनामंदच्चिचं दावने ।

अरदे अक्षे नहुषे सुकृत्त्वनि सुकृत्तराय सुक्रतुः ॥ २७ ॥

यः । मे । इमं । चित् । ऊं इति । त्मना । अमंदत् । चिचं । दावने ।

अरदे । अक्षे । नहुषे । सुऽकृत्त्वनि । सुकृत्ऽतराय । सुऽक्रतुः ॥ २७ ॥

यः पृथुश्रवा मे मह्यमिमं पुरतोवर्तमानं चिचं चायनीयं गवाश्चादिकं दावने दानाय त्मनात्मना खलुष्टी-  
वामंदत् अमंदत् अमाद्यत । स च सुक्रतुः शोभनकर्मा राजा सुकृत्तराय सुकृतकर्तृत्वाधारदेऽचे नहुषे  
मुक्रत्वनि च । एते तस्य राज्ञोऽध्यक्षाः । तेष्वन्वशात् अक्षे गवादिकान् संयोजयतेति । यद्वा । अरद्वाद्योऽने  
राजावः । तेषु मध्ये सुकृत्तरायामंददिति ॥



उच्ये॒ते॒ वपु॑षि॒ यः स्व॒राकृ॑त वा॒यो घृ॑त॒ज्ञाः ।

अश्वे॑षितं॒ रजे॑षितं॒ मुने॑षितं॒ प्राज्म॒ तदि॑दं नु तत् ॥२८॥

उच्ये॒ते॒ । वपु॑षि॒ । यः । स्व॒रा॒त् । उ॒त । वा॒यो॒ इति॑ । घृ॑त॒ज्ञाः ।

अश्वे॑ऽइषितं॒ । रजे॑ऽइषितं॒ । मुने॑ऽइषितं॒ । प्र । अज्म॑ । तत् । इ॒दं । नु । तत् ॥२८॥

उच्ये वक्तव्ये श्रुत्ये वपुषि शरीरे यः स्वराद् स्वयं रावते । यद्वा । उच्यो वपुषोमी राजानी । तयो-  
रपि यः स्वराद् स्वराज्यं करोति अतिशयेन वर्तते । हे वायो यच्च घृतज्ञा घृतवक्त्रुः स राजाशेषितमश्विः  
प्रापितं रजेषितं । रजःशब्देनोद्गो गर्दभो बोध्यते । तेनाप्यानीतं मुनेषितं चात्मासं प्रादात् । तदन्नमन्नाद्या-  
नीतमिदं पुरतो दृश्यते । तत्तवैवानुग्रहादित्यर्थः । अथवेकस्यच्छब्दः पूरणः । अद्याद्यानीतं यदस्ति तदिदं  
खल्विति ॥

अथ॑ प्रि॒यमि॑षिराय॒ षष्टिं॑ स॒हस्रा॑सनं । अश्व॑ना॒मि॒त्र वृ॑ष्णां ॥२९॥

अथ॑ । प्रि॒यं । इ॒षि॒राय॑ । ष॒ष्टिं॑ । स॒हस्रा॑ । अ॒स॒नं । अश्व॑नां । इ॒त् । न । वृ॑ष्णां ॥२९॥

अधाधुनेषिराय धनादिप्रेरयित्वे राज्ञे प्रियं अत्रेयमश्वानामिव वृष्णां सेतुणां नवां सहस्रा सहस्राणां  
षष्टिं षष्टिसहस्रसंख्याकं प्रियमतमसनं । अमत्रं ॥

गावो॑ न यू॒थमु॑प॒ यंति॑ व॒ध्रय॑ उप॒ मा यंति॑ व॒ध्रयः॑ ॥३०॥

गावः॑ । न । यू॒थं । उप॑ । यं॒ति॒ । व॒ध्रयः॑ । उप॑ । मा॒ । आ॒ । यं॒ति॒ । व॒ध्रयः॑ ॥३०॥

गावो न गाव इव ता यथा संगे यूथमुप यंति उपगच्छन्ति तद्वध्रयस्त्रिंशत्समुष्का वृषभाः पुषुश्ववसा  
दत्ता मा मामुप यंति । समीपं प्राप्नुवन्ति । मा मां वध्रय उपा यंतीति पुनरुक्तिरादरार्था ॥

अथ॑ यच्चार॑णे ग॒णे श॒तमु॑ष्ट्रं॒ अचि॑क्रदत् । अथ॑ श्वि॒त्नेषु॑ विंश॒तिं श॒ता ॥३१॥

अथ॑ । यत् । चार॑णे । ग॒णे । श॒तं । उ॒ष्ट्रा॒न् । अचि॑क्रदत् । अथ॑ । श्वि॒त्नेषु॑ । विं॒श॒तिं ।

श॒ता ॥३१॥

अथाथ यथदा चारये । चरथं चरथं गमनं । तत्संवन्धिनि चार्यमाणे । वनाय प्रेर्यमाय इत्यर्थः । तावृशे  
गण उष्ट्रसंघ उष्ट्राञ्जतमुष्ट्राणां शतमचिक्रदत् अस्त्राभ्यं प्रदानायानुहाव । अथापि चासदर्थमेव श्वित्नेषु  
शतवर्णेषु गोयूथेषु विंशतिं च शता शतानि च अथवा शतानां विंशतिमचिक्रदत् ॥

श॒तं दा॑से ब॒ल्बू॒थे वि॒प्रस्त्र॑रु॒क्ष आ॒ ददे॑ ।

ते ते॑ वा॒यवि॒मे ज॒ना॒ म॒दंती॑र्द्र॒गोपा॒ म॒दंति॑ दे॒वगो॑पाः ॥३२॥

श॒तं । दा॑से । ब॒ल्बू॒थे । वि॒प्रः । त॒रु॒क्षे । आ॒ । द॒दे॑ ।

ते॒ । ते॒ । वा॒यो॒ इति॑ । इ॒मे । ज॒नाः । म॒दंति॑ । इ॒न्द्रो॑ऽगोपाः । म॒दंति॑ । दे॒वो॑ऽगोपाः ॥३२॥

अयं विप्रो मेधावी यशो जनोऽहं बल्बूथ एतन्नामके दासे तस्यै नवाद्यादीनां तारके नवाद्यधिकृते  
राज्ञास्माकं प्रदिष्टधनदातयौ ददे । किं दानं । नवाद्यादीनां शतं । शतशब्दोऽपरिमितवचनः । हे वायो ते  
तव स्वभूतास्ते स्तोतार इमे जनाः । वयमित्यर्थः । आत्मन एव परोक्षत्वेन वादः । स्वयानुगृहीतत्वादिन्द्रगोपाः ।

इंद्रो गोपायिता येषां ते तयोक्ताः । इंद्रेण रचिता मदंति । तथा देवगोपा मदंति । इंद्रं देवांश्च राक्षो  
सन्धेन धनेन यजंतो मदंतीत्यर्थः ॥

अध॒ स्या॒ योष॑णा॒ म॒ही॒ प्र॒ती॒ची॒ व॒शं॒म॒श्वं॑ । अधि॑रुक्ता॒ वि॒ नी॒य॒ते ॥३३॥

अध॑ । स्या॒ । योष॑णा । म॒ही । प्र॒ती॒ची । व॒शं । अ॒श्वं । अधि॑रुक्ता । वि॒ । नी॒य॒ते ॥३३॥

अधाधुना स्या सा योषणा योषा राक्षसा प्रदत्ता मही महती पूज्या प्रतीच्यस्यदमिमुख्यश्वं मश्वपुत्रं दशं  
मां प्रति साधिरुक्ताभरणा सती वि नीयते । तां कन्यां मां प्रत्यानयंतीत्यर्थः । अत्र वायव्यास्तृणु यत्र वायुर्न  
सूयते परं दानप्रशयैव तासु सर्वासु हे वायो त्वदगुग्रहादेवमिति योज्यं वायुपरत्वमवगतं च ॥ ६ ॥

महि व इत्यष्टादशर्चं पंचमं सूक्तमाप्त्यस्य चितस्वार्थं । षडष्टका महापंक्तिश्चंद्रः । आवास्त्रयोदशर्च  
आदित्यदेवताकाः । अष्ट गोष्वित्याद्याः पंचर्चं उषोदेवताका आदित्यदेवताकाश्च । तथा चानुकमणिका ।  
महि वो द्यूना चित आप्त्य आदित्योऽत्याः पंचोषसेऽपि महापांक्तमिति ॥ सूक्तविनियोगो लेखिकः ॥

महि॑ वो॒ मह॒ताम॒वो॒ वरु॑ण॒ मि॒त्रं॒ दा॒श्रु॒षे॑ ।

य॒मा॒दि॒त्या॒ अ॒भि॒ दु॒हो॒ रक्ष॑था॒ ने॒म॒घं॒ न॒श॒द॒ने॒ह॒सो॑ व॒ ऊ॒त॒यः॒ सु॒ऊ॒त॒यो॑ व॒ ऊ॒त॒यः॒ ॥१॥

महि॑ । वः । मह॒तां । अ॒वः । वरु॑ण । मि॒त्रं । दा॒श्रु॒षे॑ ।

यं । आ॒दि॒त्याः । अ॒भि॒ । दु॒हः । रक्ष॑थ । न । ई॒ । अ॒घं । न॒श॒त् । अ॒ने॒ह॒सः॑ । वः । ऊ॒त॒यः॑ ।

सु॒ऊ॒त॒यः॑ । वः । ऊ॒त॒यः॑ ॥१॥

हे वरुण हे मित्र । एतद्वयमर्थग्न्योऽयुपलक्षणं । हे वरुणादयः महतां वो युष्माकमवो रक्षणं महि  
महत् । कषी । दाश्रुषे हविर्दाचे यजमानाय क्रियमाणं । किंच हे आदित्याः यं यजमानं दुहो द्रोग्धुः  
सकाशादभि रक्षथ ईमेनं यजमानमघं पापं न नशत् । न प्राप्नोति । कुत एवमिति तत्रोच्यते । वो युष्माक-  
मूतयो रक्षणाव्यनेहसोऽपापान्यनुपद्रवाणि च । ऊतयो युष्माकं रक्षणानि सुऊतयः शोभनरक्षणाभि । पुनर-  
क्तिरादरार्था ॥

वि॒दा दे॒वा अ॒घा॒ना॒मा॒दि॒त्या॒सो॒ अ॒पा॒कृ॒तिं॑ ।

प॒क्षा व॒यो य॒थो॒परि॒ व्य॑स्मे॒ श॒र्मं॒ य॒च्छ॒ता॒ने॒ह॒सो॑ व॒ ऊ॒त॒यः॒ सु॒ऊ॒त॒यो॑ व॒ ऊ॒त॒यः॒ ॥२॥

वि॒द । दे॒वाः । अ॒घा॒ना॑ । आ॒दि॒त्या॒सः । अ॒पा॒ऽअ॒कृ॒तिं॑ ।

प॒क्षा । व॒यः । य॒था॑ । उ॒परि॑ । वि॒ । अ॒स्मे॒ इति॑ । श॒र्मं॑ । य॒च्छ॒त॒ । अ॒ने॒ह॒सः॑ । वः । ऊ॒त॒यः॑ ।

सु॒ऊ॒त॒यः॑ । वः । ऊ॒त॒यः॑ ॥२॥

हे देवा आदित्यास आदित्याः यूयमघानां दुःखानामपाकृतिमपाकरणं परिहारप्रकारं विद । जानीथ ।  
यस्यादेवं तस्माद्वयः पक्षिणो यथा पक्षा पक्षावुपरि स्वशिशुकानामुपरि कुर्वन्ति सुखाय तद्वदसौ अध्वस्यासु  
शर्म सुखं यच्छत । कुरुत ॥ अधीति सप्तम्यर्थानुवादी ॥ अस्ते अस्माकमुपरीति वा ॥

व्य॑स्मे॒ अधि॒ श॒र्मं॒ तत्प॒क्षा व॒यो न॒ यँत॑न ।

वि॒श्वानि॑ वि॒श्व॒वे॒द॒सो वरु॑ण्या॒ म॒ना॒स॒हे॒ऽने॒ह॒सो॑ व॒ ऊ॒त॒यः॒ सु॒ऊ॒त॒यो॑ व॒ ऊ॒त॒यः॒ ॥३॥



वि । अस्मे इति । अधि । शर्म । तत् । प॒क्षा । वयः । न । य॒न्त॒न् ।

वि॒श्वानि । वि॒श्वऽवे॒दसः । व॒रू॒थ्या । म॒ना॒म॒हे । अ॒ने॒हसः । वः । उ॒तयः । सु॒ऽउ॒तयः ।  
वः । उ॒तयः ॥३॥

हे आदित्याः यूयमस्मे अश्वत्थामासु तत् । युष्मास्तेवासाधारणं चच्छर्मास्ति तदित्यर्थः । तदि यन्तन् । विशेष प्रापयत । हे विश्ववेदसः सर्वधनाः युष्मान् विश्वानि सर्वाणि वरूथ्या । वरूथं गृहं । तदुचितानि धनानि मनामहे । याचामहे ।

यस्मा॒ अ॒रा॒सत॒ क्षयं जी॒वातुं च॒ प्रचे॑तसः ।

मनो॑र्विश्वस्य॒ घेदि॑म आ॒दित्या रा॒य ई॒शते॒ऽने॒हसो॑ व उ॒तयः॑ सु॒ज॒तयो॑ व उ॒तयः॑ ॥४॥

यस्मै । अ॒रा॒सत । क्षयं । जी॒वातुं । च॒ । प्रऽचे॑तसः ।

मनोः । विश्वस्य । घ॒ । इत् । इ॒मे । आ॒दित्याः । रा॒यः । ई॒शते॒ । अ॒ने॒हसः । वः । उ॒तयः ।

सु॒ऽउ॒तयः । वः । उ॒तयः ॥४॥

यस्मै मनुष्याय चयं निवासं जीवातुं जीवनसाधनमत्रं च प्रचेतसः प्रकृष्टमतयोऽरासत प्रयच्छन्ति तस्मै यजमानाय तदर्थमिमं आदित्या विश्वस्य घेत सर्वस्वाप्ययदुर्मनोर्मनुष्यस्य धनिकस्य रायो धनस्तेषते । स्वामिनो भवंत्यपहृत्य यजमानाय प्रदातुं ।

परि॑ णो वृ॒णज॒न्घा दु॒र्गोणिं॑ र॒थ्यो यथा॑ ।

स्यामेदि॑न्द्रस्य॒ शर्मै॒रया॒दित्याना॑मु॒ताव॑स्यने॒हसो॑ व उ॒तयः॑ सु॒ज॒तयो॑ व उ॒तयः॑ ॥५॥

परि॑ । नः । वृ॒णज॒न् । अ॒घा । दुः॒ऽगानि॑ । र॒थ्यः । य॒था ।

स्याम॑ । इत् । इ॒न्द्रस्य॑ । शर्मै॒णि । आ॒दित्याना॑ । उ॒त । अ॒व॒सि । अ॒ने॒हसः । वः । उ॒तयः ।

सु॒ऽउ॒तयः । वः । उ॒तयः ॥५॥

परि वृणजन् परिवर्जयंतु नोऽस्माकमघानि पापानि । तच्च दृष्टान्तः । दुर्गोणि दुर्गमगान् प्रदेशानवदधिष्ठादिकान् यथा परिवर्जयन्ति तद्वत् । इन्द्रस्य शर्मैणि स्वाम । मवेम वयं । उतापि चादित्यानामवसि रचये च स्वाम ॥ ७॥

परि॑ऽहृते॒दना॑ ज॒नो यु॒ष्माद॑त्तस्य वा॒यति॑ ।

देवा॑ अ॒द॒भ्रमा॑श् वो य॒मादित्या॑ अ॒हे॒तना॑ने॒हसो॑ व उ॒तयः॑ सु॒ज॒तयो॑ व उ॒तयः॑ ॥६॥

परि॑ऽहृ॒ता । इत् । अ॒ना । ज॒नः । यु॒ष्माऽद॑त्तस्य । वा॒यति॑ ।

देवाः । अ॒द॒भ्रं । आ॒श । वः । यं । आ॒दित्याः । अ॒हे॒तन॑ । अ॒ने॒हसः । वः । उ॒तयः ।

सु॒ऽउ॒तयः । वः । उ॒तयः ॥६॥

परिऽहृतेत् परिपोषितेनैव तपोनियमादिना प्राणयुक्तो जनो युष्मादत्तस्य युष्माभिर्दत्तं धनं । कर्मणि षष्ठी ॥ वायति । गच्छति । हे देवा हे आश्वः शीघ्रगमनाः यूयं यं यजमानमहेतनं प्राप्नुयः स जनोऽद॒भ्र-मनस्यं धनं वायति प्राप्नोतीति संबंधः ॥

न तं तिग्मं च न त्यजो न द्रासद्भि तं गुरु ।

यस्मा उ शर्मै सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥७॥

न । तं । तिग्मं । च न । त्यजः । न । द्रासत् । अभि । तं । गुरु ।

यस्मै । ऊं इति । शर्मै । सऽप्रथः । आदित्यासः । अराध्वं । अनेहसः । वः । ऊतयः ।

सुऽऊतयः । वः । ऊतयः ॥७॥

तं मनुष्यं तिग्मं च न तीक्ष्णमेव संतं त्यजः । क्रोधनामैतत् । अथ क्रोधात्प्रयुज्यमानमायुधमुच्यते । न द्रासत् ॥ द्रा कृत्सायां गती ॥ कृत्सितं नागच्छति । न हिनस्तीत्यर्थः । तथा तं जनं गुरु प्रवृद्धमपरिहारार्हं दुःखं न द्रासत् । न गच्छति । हे आदित्यास आदित्याः सप्रथः समानप्रथनाः सर्वतः पृथुभूता वा यूयं यस्मा उ यस्मै यजमानाय । उशब्दः पूरणः । शर्मै सुखमराध्वं अदत्त तं न द्रासदिति ॥

युष्मे देवा अपि षसि युध्यंत इव वर्मसु ।

यूयं महो न एनसो यूयमर्भोदुरुष्यतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥८॥

युष्मे इति । देवाः । अपि । स्मसि । युध्यंतऽइव । वर्मसु ।

यूयं । महः । नः । एनसः । यूयं । अर्भोत् । उरुष्यत । अनेहसः । वः । ऊतयः । सुऽऊतयः ।

वः । ऊतयः ॥८॥

हे देवा आदित्याः युष्मे युष्मासु वयमपि षसि । अपि मवेम । युष्माभिरपिहिताः स्त्रीत्यर्थः । तव दृष्टांतः । युध्यंतः शूरा वर्मसु कवचेषु यथा भवन्ति तद्वत् । यूयं नोऽस्मान् महो मदत एनसः पापादुरुष्यत । रजत । तथा यूयमस्मानर्भोदल्पादधिगम उरुष्यत ॥

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु ।

माता मिचस्य रेवतोऽर्यम्णो वरुणस्य चानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥९॥

अदितिः । नः । उरुष्यतु । अदितिः । शर्म । यच्छतु ।

माता । मिचस्य । रेवतः । अर्यम्णः । वरुणस्य । च । अनेहसः । वः । ऊतयः । सुऽऊतयः ।

वः । ऊतयः ॥९॥

नोऽस्मानदितिरखंडनीया देवमातोष्यतु । रचतु । तथादितिः शर्म सुखं यच्छतु । अदितिर्विशेष्यते । या माता निर्मात्री । कस्य । मिचस्य रेवतो धनवतोऽर्यम्णो वरुणस्य च । सा न उरुष्यत्विति ॥

यहेवाः शर्मै शरणं यद्भद्रं यदनातुरं ।

चिधातु यद्वरुथ्यं तदस्मासु वि यंतनानेहस्ते व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१०॥

यत् । देवाः । शर्मै । शरणं । यत् । भद्रं । यत् । अनातुरं ।

चिऽधातु । यत् । वरुथ्यं । तत् । अस्मासु । वि । यंतन । अनेहसः । वः । ऊतयः ।

सुऽऊतयः । वः । ऊतयः ॥१०॥



हे देवा आदित्याः यच्छर्मं सुखं शरणं शरणीयं । यन्नद्रं सर्वैर्मजनीयं । यदनातुरं रोगरहितं । यत्त्रिधातु-  
विगुणं । यद्वरुण्यं । यद्वरुणं गृहं । तदहं । तदुक्तगुणकं शर्मासादु वि यंतन । विचच्छत ॥ ८८ ॥

आदित्या अव हि ख्यताधि कूलादिव स्पशः ।

सुतीर्थमर्वतो यथानु नो नेषथा सुगमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ११ ॥

आदित्याः । अव । हि । ख्यत । अधि । कूलात् इव । स्पशः ।

सुऽतीर्थे । अर्वतः । यथा । अनु । नः । नेषथ । सुऽगं । अनेहसः । वः । ऊतयः ।

सुऽऊतयः । वः । ऊतयः ॥ ११ ॥

हे आदित्याः यूयमव हि ख्यत । अव हि पञ्चताधस्तात्स्थितावसान् । तच्च दृष्टान्तः । कूलादधि कूले स्पशः  
स्पष्टाः । स्थिता इत्यर्थः । यथा कूचस्यः पुत्रयोऽधोगतमुदकं जिह्वासुलपस्यं मनुष्यं वा विलोकायितुमवाक्यश्नति  
तद्वत् । तथा छत्वा सुतीर्थं शीमनावतारप्रदेशमर्वतोऽन्यान्यथा प्रापयन्त्यस्वरचकाः तद्वतोऽस्मान् सुगं सुपंथा-  
नमनु नेषथ । अनुनयथ ॥

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।

गर्वे च भद्रं धेनवे वीराय च अवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १२ ॥

न । इह । भद्रं । रक्षस्विने । न । अवऽयै । न । उपऽयै । उत ।

गर्वे । च । भद्रं । धेनवे । वीराय । च । अवस्यते । अनेहसः । वः । ऊतयः । सुऽऊतयः ।

वः । ऊतयः ॥ १२ ॥

हे आदित्याः इह भूमी भद्रं कच्छायं सुखं रक्षस्विने । रघो वसं । बलवतेऽस्मद्वेप्रे न भवत्विति शेषः ।  
अथवा अस्मान् हिंसितुमवगच्छते न भवतु भद्रं । तद्योपया उपगच्छते न भवतु । तर्हि कस्य भवत्विति उच्यते ।  
यदि च भद्रं पुष्पदीपं भवतु । चशब्दो वक्ष्यमाणधेन्वावपेचः । किंच धेनवे नवप्रसूतिकायै भद्रं भवतु । वीरा-  
यास्त्युवादिक्वाय भद्रं भवतु । कीदृशाय वीराय । अवस्यतेऽन्नमिच्छते । अथवोत्तरार्धेऽपि नैत्यनुवर्तते ।  
असद्विरोधिषो गवादिक्वाय भद्रं न भवत्विति तस्यार्थः ॥

यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतं ।

चित्ते तद्विश्रमाप्य आरे अस्मदधातनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १३ ॥

यत् । आविः । यत् । अपीच्यं । देवासः । अस्ति । दुऽकृतं ।

चित्ते । तत् । विश्रं । आप्ये । आरे । अस्मत् । दधातन । अनेहसः । वः । ऊतयः ।

सुऽऊतयः । वः । ऊतयः ॥ १३ ॥

हे देवासो देवा आदित्याः यदाविर्यत्पापमाविर्भूतमस्ति । दुष्कृतं यच्चापीच्यमंतर्हितमस्ति । अपीच्यमित्यं-  
र्हितनाम । तद्विश्रं तदुभयमाप्ये चित्ते मयि मा भूत् । किंत्वस्मादरे दूरे दधातन । स्थापयत ॥

यच्च गोष्वित्यादिमुक्तशेषेण दुःस्वप्नं दृष्टादित्यमुपतिष्ठेत् । तथा च स्वप्नममनोचं दृष्टेत्युपक्रम्य यच्च गोषु  
दुष्प्राप्त्यमिति पंचमिरादित्यमुपतिष्ठेत् । आ० गृ० ३. ६. ६. इति सूचितं ॥

यच्च गोषु दुष्प्राप्तं यच्चास्मे दुहितर्दिवः ।

चिताय तद्विभावय्याप्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १४ ॥

यत् । च । गोषु । दुःस्वप्नं । यत् । च । अस्मे इति । दुहितः । दिवः ।  
 चिताय । तत् । बिभाऽवरि । आशाय । परा । वह । अनेहसः । वः । ऊतयः ।  
 सुऽऊतयः । वः । ऊतयः ॥ १४ ॥

हे दिवो दुहितरूप उषोदेवते यच्च गोष्वसदीयासु दुष्पश्यमनर्थसूचकं दृष्टं ॥ स्वार्थिको यत् ॥ किंच  
 यच्च दुष्पश्यमस्ते अस्मासु दृष्टं । गोपीडानिमित्तकमस्माकं पीडानिमित्तकं च यहुःस्वप्नं पञ्चाम इत्यर्थः ।  
 तत्सर्वं हे विभावरि । उषोनामितत् । हे बुच्छनवति देवि आप्याय चिताय परा वह । दूरे परिहर ॥

निष्कं वा घा कृणवन्ते स्रजं वा दुहितर्दिवः ।  
 चित्ते दुष्पश्यं सर्वमाश्ले परि दत्तस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १५ ॥  
 निष्कं । वा । घ । कृणवन्ते । स्रजं । वा । दुहितः । दिवः ।  
 चित्ते । दुःस्वप्नं । सर्वं । आश्ले । परि । दत्तसि । अनेहसः । वः । ऊतयः । सुऽऊतयः ।  
 वः । ऊतयः ॥ १५ ॥

हे दिवो दुहितरूपः निष्कं वा घामरणविशेषं वा कृणवन्ति कुर्वन्ति स्वर्णकाराय बहुष्पश्यं दृष्टं । स्वर्ण-  
 करिण निर्माणसमये दृष्टमित्यर्थः । घेति पूरणः । वाशब्दश्चार्थः । वायवा स्रजं मात्तं कृणवन्ते । कुर्वन् इत्यर्थः ।  
 तस्मिन्नपि मालाकारे मालानिर्माणसमये बहुष्पश्यं दृष्टं तदुभयविषयं दुःस्वप्नमाश्लेऽपां पुत्रे चित्ते वर्तमानं  
 परि दत्तसि । उपरि दत्तः । वयं चिताः परित्यजामित्यर्थः । अथवा । चित्ते मयि बहुष्पश्यं दृष्टं तत्स्वर्णकाराय  
 मालाकाराय वा परि दत्तसि । अस्मत्तोऽपि निष्कृष्य तथोरपरि स्थापयामः ॥ ॥ १५ ॥

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे ।  
 चिताय च द्विताय चोषो दुष्पश्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १६ ॥  
 तत्ऽअन्नाय । तत्ऽअपसे । तं । भागं । उपऽसेदुषे ।  
 चिताय । च । द्विताय । च । उषः । दुःस्वप्नं । वह । अनेहसः । वः । ऊतयः ।  
 सुऽऊतयः । वः । ऊतयः ॥ १६ ॥

तदन्नाय । यदेव जागरावस्थायां मौन्यत्वेन प्रसिद्धं मधुपायसादि स्वप्नेऽपि तदेवान्नं यस्य सः ।  
 तादृशाय । प्रत्यक्षभोजनवत् स्वप्नेऽपि भोक्तृ इत्यर्थः । तथा तदपसे । यदेवापः कर्म निन्दितं जाग्रदवस्थायां  
 क्रियते तदेव कर्म स्वप्ने यस्य स तत्कर्मा । तादृशाय देवाय तं भागं दुःस्वप्नस्थांशमुपसेदुषे प्राप्नुवन्ति चिताय  
 द्विताय च हे उषो देवि दुष्पश्यमन्नकर्मविषयं वह । अन्यत्र प्रापय । स्वप्ने दृष्टं मधुभोजनादिकं जाग्रदवस्था-  
 नुरूपयत्सुखकरं भवत्वित्यर्थः ॥

यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं संनयामसि ।  
 एवा दुष्पश्यं सर्वमाश्ले सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १७ ॥  
 यथा । कलां । यथा । शफं । यथा । ऋणं । संऽनयामसि ।  
 एव । दुःस्वप्नं । सर्वं । आश्ले । सं । नयामसि । अनेहसः । वः । ऊतयः । सुऽऊतयः ।  
 वः । ऊतयः ॥ १७ ॥



संघापितं पशुं दानार्थं संकुर्वन्तो यथा येन प्रकारेण कलां श्रफमिति संदायान्वयं संनयन्ति । अथापरो यथाशब्दः पूरणः । अथवा । यथा कलां हृदयावयववमवदानार्हं संनयन्ति यथा च श्रफं शफीपलक्षितमनव-  
दानार्हं शफास्थादिकं संनयन्ति । यथा वा अद्यं शनैः संनयन्ति एवम् दुष्प्रप्यं सर्वमाप्तिं वर्तमानं सं नया-  
मसि । संनयामः । अपसारयामः ॥

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयं ।

उषो यस्माद्दुष्प्रप्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १८ ॥

अजैष्म । अद्य । असनाम । च । अभूम । अनागसः । वयं ।

उषः । यस्मात् । दुः । स्वप्नात् । अभैष्म । अप । तत् । उच्छत्तु । अनेहसः । वः । ऊतयः ।

सुऊतयः । वः । ऊतयः ॥ १८ ॥

वयं चिता अजाजैष्म । जयेम । असनाम च । संनयेम च सुखं सुखं वा । अनागसोऽपापा अभूम ।  
भवेम । हे उषः यस्माद्दुष्प्रप्यादभैष्म मीताः स्य तत्पापमपोच्छत्तु । अपगच्छतु ॥ ॥ १० ॥

खादोरमशीति पंचदशर्षं षष्ठं सूक्तं स्वात्स्व प्रगाथस्वार्थं सोमदेवताकं चैष्टुभं । पंचमी जगती । सोमो  
देवता । तथा चाशुक्रांतं । खादोः पंचोना प्रगाथः सौम्यं चैष्टुभं पंचमी जगतीति ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधाः स्वाध्वो वरिवोवित्तरस्य ।

विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभि संचरन्ति ॥ १ ॥

स्वादोः । अभक्षि । वयसः । सुऽमेधाः । सुऽआध्यः । वरिवोवित्ऽतरस्य ।

विश्वे । यं । देवाः । उत । मर्त्यासः । मधु । ब्रुवन्तः । अभि । संऽचरन्ति ॥ १ ॥

अहं प्रगाथः सुमेधाः शोभनप्रश्नः स्वाध्यः स्वाध्ययनः सुकर्मा वरिवोवित्तरस्यातिशयेन पूजां लभमानस्य  
खादोः सुहृदनीयस्य स्वादुभूतस्य वयसोऽन्नस्य ॥ एताः कर्मणि षष्ठ्यः ॥ उक्तलक्षणं वयोऽन्नं सोमाख्यमभक्षि ।  
मक्षयेय । यं यदन्नं विश्वे देवाः सर्वेऽपीन्द्रादय उतापि च मर्त्यासो मर्त्या मनुष्या मधु ब्रुवन्तो मनोहरमेतदिति  
शब्दायतोऽभि संचरन्ति अभिसंगच्छन्ति प्राप्नुवन्ति तदन्नमभक्षीति ॥

अग्नीषोमप्रणयनेऽतश्चेत्विधा । तथा च सूचितं । अंतश्च प्रागा अदितिर्भवासि औनो न योजिं सदं धिया  
उतं । आ० ४. १०. । इति ॥

अंतश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य ।

इंद्रविंद्रस्य सख्यं जुषाणः श्रीष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥ २ ॥

अंतरिति । च । प्र । अगाः । अदितिः । भवासि । अवऽयाता । हरसः । दैव्यस्य ।

इंदो इति । इंद्रस्य । सख्यं । जुषाणः । श्रीष्टीऽइव । धुरं । अनु । राये । ऋध्याः ॥ २ ॥

हे सोम त्वमंतश्च प्रागाः । हृदयस्य यागागारस्य अंतर्गच्छसि । गत्वा चादितिरदीनस्त्वं दैव्यस्य हरसः  
क्रोधस्यावयाता पृथक्कर्ता भवासि । भवासि । हर इति क्रोधनाम । हे इंदो सोम त्वमिंद्रस्य सख्यं जुषाणः  
सेवमानः श्रीष्टी । श्रुष्टीति चिप्रनाम । तत्संबन्धी श्रीष्टी । चिप्रनाम्यश्चो धुरमिव रायेऽस्माकं धनलामाया-  
नृध्याः । अनुगच्छसि । अथवाश्चो यथा धुरं वृत्त्वाभिमतदेशं प्रापयति तद्वदस्मान्प्रापय । अनुपूर्वं अधिर्गत्यर्थः ॥

अपाम सोममित्यादिके द्वे सोमपानोत्तरकाशीनास्त्रामिभर्शने हृदयाभिभर्शने च क्रमेण विनियुक्ते ।  
तथा च सूचितं । अपाम सोमममृता अभूम शं नो भव हृद आ पीत इंदविति मुखहृदये अभिमृशेरन्निति ॥

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।

किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥३॥

अपाम । सोमं । अभृताः । अभूम । अगन्म । ज्योतिः । अविदाम । देवान् ।

किं । नूनं । अस्मान् । कृणवन् । अरातिः । किं । ऊं इति । धूर्तिः । अभृत । मर्त्यस्य ॥३॥

हे अमृतामरण सोम त्वामपाम । न करवाम । कुर्मः । ततोऽमृता अभूम । भवेम । यस्मात्त्वममृतः  
अतस्त्व पात्राद्वयमयमृताः स्नाम । यथाञ्ज्योतिर्द्यौतमानं स्वर्गमगन्म । अविदाम ज्ञातवन्तो देवान् । तथाभू-  
तानस्मान्नुनमिदानीमरातिः शत्रुः किं कृणवत् । कुर्दात् । किमु किं वा मर्त्यस्त्रिदानीं मनुष्यभूतस्य मम धूर्ति-  
र्हिंसकः किं कृणवत् । कुर्यात् ॥

शं नो भव हृद आ पीत इंदो पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।

सखेव सख्यं उरुशंस धीरः प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥४॥

शं । नः । भव । हृदे । आ । पीतः । इंदो इति । पिताऽइव । सोम । सूनवे । सुऽशेवः ।

सखाऽइव । सख्ये । उरुऽशंस । धीरः । प्र । नः । आयुः । जीवसे । सोम । तारीः ॥४॥

हे इंदो सोम अस्माभिः पीतस्त्वं नोऽस्माकं हृदे हृदयाय शं सुखमा भव । सुखमवने दृष्टांतवयं । पिता  
सूनवे स्वात्मवाय यथा सुखाय भवति यथा वा सखाहितान्निवर्त्य हिते स्थापयिता सखायं स्वसख्ये यथा  
सुशेवः सुमुखो भवति । शेषमिति सुखनाम । तद्वत्त्वमपि भव । किंच हे उरुशंस वज्रभिर्वज्रधा वा शंसगीय  
वज्रकीर्ते सोम धीरो धीमास्त्वं नोऽस्माकं जीवसे जीवनायायुरायुषं प्र तारीः । प्रवर्धय ॥

इमे मां पीता यशसं उरुथवो रथं न गावः समनाह पर्वसु ।

ते मां रक्षंतु विस्रसंश्चरिचादुत मां सामाद्यवयं त्विदं वः ॥५॥

इमे । मां । पीताः । यशसः । उरुथवः । रथं । न । गावः । सं । अनाह । पर्वेऽसु ।

ते । मां । रक्षंतु । विऽस्रसः । चरिचात् । उत । मां । सामात् । यवयंतु । इंदं वः ॥५॥

इमे पीता यशसो यशस्करा उरुथवोऽस्माकं रक्षाकामाः सोमा गावो गोविकारभूता वध्यो रथं न  
रथमिव ता यथा रथं विस्रसं पर्वसु समनाह संदधति तद्वत्त्वां पीताः सोमाः पर्वसु संनह्यंतु । किंच ते सोमा  
मां विस्रसो विस्रसाच्चरिचाच्चरणादनुष्ठानाद्रक्षंतु । सोमः पीतयेत्कर्म ह्यविस्रसं भवति । उतापि च मा  
मां सामाद्याधिः सकाशादिदं वः पीता यवयंतु । पृथक्कुर्वंतु ॥ ११ ॥

अग्निं न मां मथितं सं दिदीपः प्र चक्षय कृणुहि वस्यसो नः ।

अथा हि ते मद आ सोम मन्ये रेवाँ इव प्र चरा पुष्टिमच्छ ॥६॥

अग्निं । न । मां । मथितं । सं । दिदीपः । प्र । चक्षय । कृणुहि । वस्यसः । नः ।

अथं । हि । ते । मदे । आ । सोम । मन्ये । रेवान्ऽइव । प्र । चर । पुष्टिं । अच्छ ॥६॥



हे सोम पीतस्त्वं मा मां मथितमसिं नापिमिव सं दिदीपः । संदीपय । प्र चक्षय च चक्षुषः संधुषणेन ।  
नोऽस्मान् वस्त्रसोऽतिशयेन वसुमतः कृणुहि । कृणु । अथाधुना हि खलु ते त्वां हे सोम मदे मदाय मन्ये ।  
सोमि । तथा सति रेवानिव धनवानिह । इवेति संप्रत्यर्थे । पुष्टिमस्तपोधमच्छ प्र चर । अभिगच्छ ॥

इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः ।

सोमं राजन् प्र ण आयूषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि ॥ ७ ॥

इषिरेण । ते । मनसा । सुतस्य । भक्षीमहि । पित्र्यस्येव । रायः ।

सोमं । राजन् । प्र । नः । आयूषि । तारीः । अहानिऽइय । सूर्यः । वासराणि ॥ ७ ॥

इषिरेणैकावता मनसा सुतस्य ते सुतमभिषुतं त्वां भक्षीमहि । पित्र्यस्य पितृसंबन्धिनो धनस्येव धनमिव ।  
पित्र्यं धनं यथिषणेन मनसोपभुञ्जते तद्वत् । भक्षितं हे सोम राजन् स्वामिन् नोऽस्माकमायूषि प्र तारीः ।  
प्रवर्धय । वासराणि जगद्वासकान्यहानि सूर्य इव । अथेषणेन वैषणेन वार्षणेन वा । नि० ४-७ । इत्यादि-  
निरुक्तं ज्ञातव्यं ॥

सोमं राजन्मृक्या नः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्याऽस्तस्य विद्धि ।

अलर्तिं दक्ष उत मन्युरिदो मा नो अर्यो अनुकामं परा दाः ॥ ८ ॥

सोमं । राजन् । मृक्यं । नः । स्वस्ति । तव । स्मसि । व्रत्याः । तस्य । विद्धि ।

अलर्तिं । दक्षः । उत । मन्युः । इदो इति । मा । नः । अर्यः । अनुऽकामं । परा । दाः ॥ ८ ॥

हे सोम राजन् नोऽस्मान् स्वस्त्वविनाशाय मृक्यं । मुखय च । व्रत्या व्रतिनो वयं तव स्मसि । स्वभूताः  
स्म । तस्य तं स्वकीयं तव विद्धि । जानीहि । अथवा तव स्वमित्यर्थः । त्वं जानीहि । किंच हे इदो दक्षः प्रवृद्धो  
ऽस्माच्चनुरलर्तिं गच्छति । उतापि च मन्युः क्रोधः क्रुद्धो बालर्तिं । तादृशस्त्रोभयविधस्त्रार्योऽरेरनुकामं यथा-  
कामं नोऽस्माका परा दाः । परादेहि ॥

त्वं हि नस्तन्वं सोम गोपा गात्रेगात्रे निषसत्था नृचक्षाः ।

यत्रै वयं प्रमिनाम व्रतानि स नो मृक सुषखा देव वस्यः ॥ ९ ॥

त्वं । हि । नः । तन्वं । सोम । गोपाः । गात्रेऽगात्रे । निऽससत्थं । नृऽचक्षाः ।

यत् । ते । वयं । प्रऽमिनाम । व्रतानि । सः । नः । मृक । सुऽसखा । देव । वस्यः ॥ ९ ॥

हे सोम देव त्वं नोऽस्माकं तन्वस्त्रनोरंगस्त्र गोपा हि रक्षिता खलु । अतो गात्रे गात्रे सर्वेष्वेतेषु नृचक्षा  
गुणां कर्मणेतृणां द्रष्टा त्वं निषसत्य । निषीदसि । यद्यद्यपि ते तव व्रतानि कर्माणि वयं प्रमिनाम द्विंसः  
तथापि हे देव स त्वं वस्यः श्रेष्ठान्नोऽस्मान् सुषखा शोभचसखा सन् मृक । मुखय ॥

चूदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येदर्यश्च पीतः ।

अयं यः सोमो न्यधायस्मे तस्मा इदं प्रतिरमेम्यायुः ॥ १० ॥

चूदूदरेण । सख्या । सचेय । यः । मा । न । रिष्येत् । हरिऽअश्च । पीतः ।

अयं । यः । सोमः । नि । अधायि । अस्मे इति । तस्मै । इदं । प्रऽतिरं । एमि । आयुः ॥ १० ॥

अहं प्रगाथ ऋदूदरेणोदराबाधकेन सोमेन सखा सचेय । संगच्छेय । संगतो भवामि । ऋदूदरः सोमो मृदूदरः । नि० ६. ४. । इति यास्कः । यः सोमः पीतः सन् मा मां न रिषेत् न हिंसेत् हे हव्यं चंद्र । सोम्ये मृत इंद्रस्य कीर्तनं सोमस्येन्द्रस्यामिकत्वान्न विरुद्धं । योऽयं सोमोऽसौ अस्मासु व्यधाति निहितोऽभूत् तस्यै सोमाय प्रतिरमायुर्जठरे चिरकालावस्थानमिंद्रमेभि । याचे ॥ ॥ १२ ॥

अप॒ त्या अ॒स्थुर॒निरा॒ अमी॑वा॒ निर॑च॒सन्त॒मिषी॑चीर॒भैषुः ।

आ सोमो॑ अ॒स्माँ अ॒रुह॑द्भिर्हाया॒ अग॑न्म॒ यच॑ प्रति॒रन्त॒ आयुः॑ ॥ ११ ॥

अप॑ । त्याः । अ॒स्थुः । अनिराः । अमी॑वाः । निः । अ॒च॒सन् । तमिषी॑चीः । अभैषुः ।

आ । सोमः । अ॒स्मान् । अ॒रुह॑त् । वि॒हायाः । अग॑न्म॒ यच॑ । प्र॒ऽति॒रन्ते॑ । आयुः॑ ॥ ११ ॥

त्यास्ता अनिराः प्रेरयितुमशक्त्वा अमीवा बलवत्सः पीडा अपास्तुः । अपगच्छन्तु । यास्तमिषीचीर्बलवत्यो ऽस्मान्निर्जितरामचसन् प्राप्तुवन् कंपयन्ति तथामैषुः । अपगमे कारणमाह । यस्मात्सोमो विहाया महान् सन्नखानारुहत् आगमत् प्राप्तवान् अतोऽपास्तुरिति भावः । यच यस्मिन् सोमे पीत आयुरायुष्यं प्रतिरन्ति वर्धयन्ति मनुष्यास्तं सोममगन्तेति ॥

यो न॒ इंदुः॑ पि॒तरो॑ ह॒त्सु पी॒तोऽम॑र्त्यो॒ मर्त्यो॑ आ॒वि॒वेश॑ ।

तस्मै॑ सोमा॒य ह॒विषा॑ वि॒धेम॑ मृ॒ळी॒के अस्य॑ सु॒म॒तौ स्या॑म ॥ १२ ॥

यः । नः । इंदुः । पि॒तरः । ह॒त्सु । पी॒तः । अ॒म॒र्त्यः । म॒र्त्यो॒न् । आ॒ऽवि॒वेश॑ ।

तस्मै॑ । सोमा॒य । ह॒विषा॑ । वि॒धेम॑ । मृ॒ळी॒के । अस्य॑ । सु॒ऽम॒तौ । स्या॑म ॥ १२ ॥

हे पितरः य इंदुर्हत्सु पीतः सन्नमर्त्यो मृतिरहितः सन्नाविवेश मर्त्यान्तोऽस्मान् तस्यै सोमाय हविषा विधेम । परिचरेम । अस्मै सोमस्य मृळीके सुखे सुमतौ चानुग्रहनुद्धौ च स्याम । भवेम ॥

महापितृयज्ञे सोमाय पितृमते पुरोडाशमित्यत्र त्वं सोमेति याज्या । सूचितं च । त्वं सोम पितृभिः संविदानो बर्हिषद्ः पितर जत्वर्वाक् । आ० २. १९. । इति ॥ तृतीयसवने सोमस्य चरोरपीयं याज्या । त्वं सोम पितृभिः संविदान इति सौम्यस्य । आ० ५. १९. । इति हि सूचितं ॥

त्वं सोम॑ पि॒तृभिः॑ संवि॒दानोऽनु॑ द्यावा॒पृथि॒वी आ त॑त॒न्थ ।

तस्मै॑ त इ॒ंदो ह॒विषा॑ वि॒धेम॑ व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो र॒यी॒णां ॥ १३ ॥

त्वं । सोम॑ । पि॒तृभिः॑ । सं॒वि॒दानः॑ । अनु॑ । द्यावा॒पृथि॒वी इति॑ । आ । त॑त॒न्थ ।

तस्मै॑ । ते । इ॒ंदो इति॑ । ह॒विषा॑ । वि॒धेम॑ । व॒यं । स्या॑म॒ पत॑यः । र॒यी॒णां ॥ १३ ॥

हे सोम त्वं पितृभिः सह संविदानः संगच्छमानो द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यावन्ता ततन्थ । क्रमेण विस्कारयसि । तस्यै सोमाय हविषा विधेम । परिचरेम । वयं रयीणां धनानां पतयः स्याम । भवेम ॥

चा॒तारो॑ दे॒वा अ॒धि वो॑च॒ता नो॒ मा नो॑ नि॒द्रा ई॒शत॑ मोत॒ जल्पि॑ः ।

व॒यं सोम॑स्य वि॒श्वहं॑ प्रि॒यासः॑ सु॒वीरा॑सो वि॒दथ॑मा व॒देम॑ ॥ १४ ॥

चा॒तारः॑ । दे॒वाः । अ॒धि । वो॒च॒त॒नः॑ । मा । नः॑ । नि॒ऽद्रा । ई॒शत॑ । मा । उ॒त॒ । जल्पि॑ः ।

व॒यं । सोम॑स्य । वि॒श्वहं॑ । प्रि॒यासः॑ । सु॒ऽवीरा॑सः । वि॒दथ॑ । आ । व॒देम॑ ॥ १४ ॥



हे चातारो रचितारो हे देवाः नोऽस्मानधि वोचत । अधिवचनं कुरुत । किं नोऽस्मान्निद्राः स्वप्ना  
मेव । ईश्वरा मा भूवन् वाधितुं । उतापि च कल्पिर्निद्रकोऽस्माका निद्रतु । वयं सोमस्य प्रियासः प्रियाः  
स्वाम विश्वह सर्वेष्वप्यहःसु । सर्वदेवार्थः । सुवीरासः शोभनपुत्राः संतो विदधं स्तोत्रमा वदेम । आभिमुख्येन  
वदेम । अथवा । सुपुत्रा पिदधं गृहमा वदेम । आवदनं पुत्रपौत्राणां धनेनोपखंडनं ॥

त्वं नः सोम विश्वत इति सीम्ये पशौ हविषोऽनुवाक्या । सूचितं च । त्वं नः सोम विश्वतो वयोधा या ते  
धामानि दिवि या पृथिव्यां । आ० ३. ७. इति ॥

त्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वर्विदा विंश नृचक्षाः ।

त्वं न इन्द्र ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात् ॥ १५ ॥

त्वं । नः । सोम । विश्वतः । वयः । धाः । त्वं । स्वः । वित् । आ । विंश । नृचक्षाः ।

त्वं । नः । इन्द्रो इति । ऊतिभिः । सजोषाः । पाहि । पश्चातात् । उत । वा । पुरस्तात् ॥ १५ ॥

हे सोम त्वं नोऽस्माकं विश्वतः सर्वाभ्यो दिग्भ्यो वयोधा भद्रदाता । तथा त्वं स्वर्वित् स्वर्गलम्बको नृचक्षाः  
सर्वमनुष्यद्रष्टा त्वमा विश्व । हे इन्द्रो त्वं सजोषाः सह प्रीयमाणः सनूतिभिः सह । अथवोतयो गंतारो मरुतः ।  
तेः सहितः सन् पश्चातात् पश्चादुत वा पुरस्ताच्च पाहि ॥ १३ ॥ ॥ ६ ॥

॥ अथ वालखिल्यं ॥

॥ प्रथमं सूक्तं ॥

अभि प्र वः सुरार्धसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

यो जरितृभ्यो मघवा पुरुवसुः सहस्रेणैव शिक्षति ॥ १ ॥

अभि । प्र । वः । सुरार्धसं । इन्द्रं । अर्च । यथा । विदे ।

यः । जरितृभ्यः । मघवा । पुरुवसुः । सहस्रेणैव । शिक्षति ॥ १ ॥

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दानुषे ।

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥

शतानीकाऽइव । प्र । जिगाति । धृष्णुया । हन्ति । वृत्राणि । दानुषे ।

गिरेःऽइव । प्र । रसाः । अस्य । पिन्विरे । दत्राणि । पुरुभोजसः ॥ २ ॥

आ त्वा सुतास इन्द्रो मदा ये इन्द्र गिर्वणः ।

आपो न वज्रिन्नन्वोक्तं सरः पूरन्ति शूर राधसे ॥ ३ ॥

आ । त्वा । सुतासः । इंदवः । मदाः । ये । इंद्र । गिर्वणः ।  
आपः । न । वज्रिन् । अनु । ओक्थं । सरः । पृणति । शूर । राधसे ॥३॥

अनेहसं प्रतरणं विवक्ष्णं मध्वः स्वादिष्टमीं पिब ।  
आ यथा मंदसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ॥४॥  
अनेहसं । प्रऽतरणं । विवक्ष्णं । मध्वः । स्वादिष्टं । इं । पिब ।  
आ । यथा । मंदसानः । किरासि । नः । प्र । क्षुद्राऽइव । त्मना । धृषत् ॥४॥

आ नः स्तोममुप द्रवच्चियानो अश्वो न सोतृभिः ।  
यं ते स्वधावन्स्वदयति धेनव इंद्र कर्षेषु रातयः ॥५॥  
आ । नः । स्तोमं । उप । द्रवत् । हियानः । अश्वः । न । सोतृऽभिः ।  
यं । ते । स्वधाऽवन् । स्वदयति । धेनवः । इंद्र । कर्षेषु । रातयः ॥५॥ ॥१४॥

उयं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुं ।  
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिंचते क्षरंतींद्र धीतयः ॥६॥  
उयं । न । वीरं । नमसा । उप । सेदिम । विऽभूतिं । अक्षितऽवसुं ।  
उद्रीऽइव । वज्रिन् । अवतः । न । सिंचते । क्षरंति । इंद्र । धीतयः ॥६॥

यज्ञं नूनं यज्ञा यज्ञे यज्ञा पृथिव्यामधि ।  
अतो नो यज्ञमाणुभिर्महेमत उय उयेभिरा गंहि ॥७॥  
यत् । हु । नूनं । यत् । वा । यज्ञे । यत् । वा । पृथिव्यां । अधि ।  
अतः । नः । यज्ञं । आणुऽभिः । महेऽमते । उयः । उयेभिः । आ । गंहि ॥७॥

अजिरासो हरयो ये त आशवो वाता इव प्रसक्षिणः ।  
येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥८॥  
अजिरासः । हरयः । ये । ते । आशवः । वाताऽइव । प्रऽसक्षिणः ।  
येभिः । अपत्यं । मनुषः । परिऽईयसे । येभिः । विश्वं । स्वः । दृशे ॥८॥

एतावतस्त ईमह इंद्र सुस्य गोमंतः ।  
यथा प्रावो मघवन्मेधातिथिं यथा नीपातिथिं धने ॥९॥  
एतावतः । ते । ईमहे । इंद्र । सुस्य । गोऽमंतः ।  
यथा । प्र । आवः । मघऽवन् । मेधऽअतिथिं । यथा । नीपऽअतिथिं । धने ॥९॥



यथा॒ कर्णे॑ म॒घव॑न्त॒सद॑स्यवि॒ यथा॑ प॒क्वथे॑ द॒शव्र॑जे ।  
 यथा॒ गोश॑र्ये॒ अस॑नो॒र्जुजि॑श्व॒नीन्द्र॑ गोम॒क्षिर॑ण्यवत् ॥ १० ॥  
 यथा॑ । कर्णे॑ । म॒घऽव॑न् । व॒सद॑स्यवि । यथा॑ । प॒क्वथे॑ । द॒शऽव्र॑जे ।  
 यथा॑ । गोऽश॑र्ये । अस॑नो । ज॒जि॑श्व॒नि । इन्द्र॑ । गोऽम॑त् । हिर॑ण्यऽवत् ॥ १० ॥ ॥ १५ ॥

## ॥ अथ द्वितीयं सूक्तं ॥

प्र सु॒ श्रुतं॑ सु॒रार्ध॑स॒मर्चो॑ श॒क्रम॑भिष्टये ।  
 यः सु॒न्वते॑ सु॒वते॑ का॒म्यं वसु॑ सह॒स्रेण॑व॒ मंह॑ते ॥ १ ॥  
 प्र । सु । श्रुतं । सु॒रार्ध॑सं । अ॒र्चो । श॒क्रं । अ॒भिष्टये॑ ।  
 यः । सु॒न्वते॑ । सु॒वते॑ । का॒म्यं । वसु॑ । सह॒स्रेण॑ऽइव । मंह॑ते ॥ १ ॥  
 श॒तानी॑का हे॒तयो॑ अस्य दुष्ट॒रा इन्द्र॑स्य स॒मिषो॑ म॒हीः ।  
 गिरि॑र्न भुज्मा म॒घव॑त्सु पि॒न्वते॒ यदो॑ सु॒ता अ॒म॑दिषुः ॥ २ ॥  
 श॒तऽअ॒नीकाः । हे॒तयः॑ । अ॒स्य । दु॒स्तराः॑ । इन्द्र॑स्य । संऽइ॒षः । म॒हीः ।  
 गिरिः॑ । न । भुज्मा । म॒घव॑त्सु । पि॒न्वते॑ । यत् । ई॒ । सु॒ताः । अ॒म॑दिषुः ॥ २ ॥  
 यदो॑ सु॒तास॒ इन्द्र॑वोऽभि प्रि॒यम॑म॒दिषुः॑ ।  
 आपो॑ न धा॒यि स॑र्व॒नं म॒ आ व॑सो दु॒घा इ॒वोप॑ दा॒णुषे॑ ॥ ३ ॥  
 यत् । ई॒ । सु॒तासः॑ । इन्द्र॑वः । अ॒भि । प्रि॒यं । अ॒म॑दिषुः ।  
 आपः॑ । न । धा॒यि । स॑र्व॒नं मे॒ आ व॑सो इति॑ । दु॒घाऽइ॒व । उप॑ । दा॒णुषे॑ ॥ ३ ॥  
 अ॒ने॒हसँ वो॒ हव॑मानमू॒तये॑ म॒ध्वः क्ष॑रंति धी॒तयः॑ ।  
 आ त्वा॑ व॒सो ह॑व॒माना॑स॒ इन्द्र॑व॒ उप॑ स्तो॒त्रेषु॑ दधिरे ॥ ४ ॥  
 अ॒ने॒हसँ । वः॑ । ह॒व॒मानं॑ । ऊ॒तये॑ । म॒ध्वः । क्ष॑रंति॒ धी॒तयः॑ ।  
 आ । त्वा॑ । व॒सो इति॑ । ह॒व॒माना॑सः । इन्द्र॑वः । उप॑ । स्तो॒त्रेषु॑ । दधिरे॑ ॥ ४ ॥  
 आ नः॑ सोमे॒ स्वध्व॑र इ॒यानो॑ अ॒त्यो न॑ तो॒शते॑ ।  
 यं ते॑ स्व॒दाव॑न्स्व॒द॑न्ति गू॒र्तयः॑ पौ॒रे छँ॑द॒यसे॑ हवँ ॥ ५ ॥  
 आ । नः॑ । सोमे॒ । सु॒ध्व॑र । इ॒यानः॑ । अ॒त्यः । न । तो॒शते॑ ।  
 यं । ते॑ । स्व॒दाऽव॑न् । स्व॒द॑न्ति । गू॒र्तयः॑ । पौ॒रे । छँ॑द॒यसे॑ । हवँ ॥ ५ ॥ ॥ १६ ॥

प्र वीरमुयं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः ।  
 उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाश्रुषे ॥६॥  
 प्र । वीरं । उयं । विविचिं । धनस्पृतं । विभूतिं । राधसः । महः ।  
 उद्रीऽइव । वज्रिन् । अवतः । वसुऽत्वना । सदा । पीपेथ । दाश्रुषे ॥६॥

यच्च नूनं परावति यज्ञा पृथिव्यां दिवि ।  
 युजान इद्रु हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ॥७॥ ।  
 यत् । ह । नूनं । पराऽवति । यत् । वा । पृथिव्यां । दिवि ।  
 युजानः । इद्रु । हरिऽभिः । महेऽमते । ऋष्वः । ऋष्वेभिः । आ । गहि ॥७॥

रथिरासो हरयो ये ते अस्त्रिध ओजो वातस्य पिप्रति ।  
 येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे ॥८॥  
 रथिरासः । हरयः । ये । ते । अस्त्रिधः । ओजः । वातस्य । पिप्रति ।  
 येभिः । नि । दस्युं । मनुषः । निऽघोषयः । येभिः । स्वऽरिति स्वः । परिऽईयसे ॥८॥

एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः ।  
 यथा प्राव एतशं कृत्ये धने यथा वशं दशव्रजे ॥९॥  
 एतावतः । ते । वसो इति । विद्याम । शूर । नव्यसः ।  
 यथा । प्र । आवः । एतशं । कृत्ये । धने । यथा । वशं । दशऽव्रजे ॥९॥

यथा कर्षे मघवन्मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि ।  
 यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोचं हरिश्चिर्यै ॥१०॥  
 यथा । कर्षे । मघऽवन् । मेधे । अध्वरे । दीर्घऽनीथे । दमूनसि ।  
 यथा । गोऽशर्ये । असिषासः । अद्रिऽवः । मयि । गोचं । हरिऽश्चिर्यै ॥१०॥ ॥११॥

॥ अथ तृतीयं सूक्तं ॥

यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतं ।  
 नीपातिथौ मघवन्मेधातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा ॥१॥  
 यथा । मनौ । सांऽवरणौ । सोमं । इद्रु । अपिबः । सुतं ।  
 नीपऽअतिथौ । मघऽवन् । मेध्यऽअतिथौ । पुष्टिऽगौ । श्रुष्टिऽगौ । सचा ॥१॥



पार्षद्वाणः प्रस्कृण्वं समसादयच्छयानं जिविमुद्धितं ।

सहस्राण्यसिषासन्नवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥२॥

पार्षद्वाणः । प्रस्कृण्वं । सं । असादयत् । शयानं । जिविं । उद्धितं ।

सहस्राणि । असिसासत् । गवां । ऋषिः । त्वाऽक्तः । दस्यवे । वृकः ॥२॥

य उक्थेभिर्न विंधते चिकित्वा ऋषिचोदनः ।

इंद्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्परिणतं न भोजसे ॥३॥

यः । उक्थेभिः । न । विंधते । चिकित् । यः । ऋषिऽचोदनः ।

इंद्रं । तं । अच्छ । वद । नव्यस्या । मती । अरिणतं । न । भोजसे ॥३॥

यस्मा अर्के सप्रशीर्षाणमानृचुस्त्रिधातुमुत्तमे पदे ।

स त्विमा विश्वा भुवनानि चिक्रदादिज्जनिष्ट पौंस्यं ॥४॥

यस्मै । अर्के । सप्रऽशीर्षाणं । आनृचुः । चिऽधातुं । उत्तमे । पदे ।

सः । तु । इमा । विश्वा । भुवनानि । चिक्रदत् । आत् । इत् । जनिष्ट । पौंस्यं ॥४॥

यो नो दाता वसूनामिंद्रं तं हूमहे वयं ।

विद्वा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम गोमति व्रजे ॥५॥

यः । नः । दाता । वसूनां । इंद्रं । तं । हूमहे । वयं ।

विद्वा । हि । अस्य । सुऽमतिं । नवीयसीं । गमेम । गोऽमति । व्रजे ॥५॥ ॥१८॥

यस्मै त्वं वसो दानाय शिष्यसि स रायस्योर्ध्वमश्नुते ।

तं त्वा वयं मघवन्निद्र गिर्वणः सुतावतो हवामहे ॥६॥

यस्मै । त्वं । वसो इति । दानाय । शिष्यसि । सः । रायः । पोर्ध्वं । अश्नुते ।

तं । त्वा । वयं । मघऽवन् । इंद्र । गिर्वणः । सुतऽवतः । हवामहे ॥६॥

कदा च न स्तरीरसि नेंद्रं सश्वसि दाश्रुषे ।

उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥७॥

कदा । च न । स्तरीः । असि । न । इंद्र । सश्वसि । दाश्रुषे ।

उपऽउप । इत् । नु । मघऽवन् । भूयः । इत् । नु । ते । दानं । देवस्य । पृच्यते ॥७॥

प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिवि वधैः शुष्णं निघोषयन् ।  
 यदेदस्तंभीत्प्रथयन्मूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥८॥  
 प्र । यः । ननक्षे । अभि । ओजसा । क्रिवि । वधैः । शुष्णं । निघोषयन् ।  
 यदा । इत् । अस्तंभीत् । प्रथयन् । अमूं । दिव । आत् । इत् । जनिष्ट । पार्थिवः ॥८॥

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।  
 तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥९॥  
 यस्य । अयं । विश्वः । आर्यैः । दासः । शेवधिपाः । अरिः ।  
 तिरः । चित् । अर्ये । रुशमे । पवीरवि । तुभ्य । इत् । सः । अज्यते । रयिः ॥९॥

तुरण्यवो मधुमंतं घृतश्चुतं विप्रासो अर्केमानुचुः ।  
 अस्मे रयिः पप्रथे वृष्यं शवोऽस्मे सुवानास इंदवः ॥१०॥  
 तुरण्यवः । मधुमंतं । घृतश्चुतं । विप्रासः । अर्के । आनुचुः ।  
 अस्मे इति । रयिः । पप्रथे । वृष्यं । शवः । अस्मे इति । सुवानासः । इंदवः ॥१०॥ ॥११॥

॥ अथ चतुर्थे सूक्तं ॥

यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतं ।  
 यथा चित्ते छंद इंद्र जुजोषस्यायौ मादयसे सचा ॥१॥  
 यथा । मनौ । विवस्वति । सोमं । शक्र । अपिबः । सुतं ।  
 यथा । चित्ते । छंदः । इंद्र । जुजोषसि । आयौ । मादयसे । सचा ॥१॥

पृषध्रे मेध्ये मातरिश्चनींद्रं सुवाने अमंदथाः ।  
 यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि ॥२॥  
 पृषध्रे । मेध्ये । मातरिश्चनि । इंद्रं । सुवाने । अमंदथाः ।  
 यथा । सोमं । दशऽशिप्रे । दशऽओण्ये । स्यूमऽरश्मौ । अवृजूनसि ॥२॥

य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत् ।  
 यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मिचस्य धर्मेभिः ॥३॥  
 यः । उक्था । केवला । दधे । यः । सोमं । धृषिता । अपिबत् ।  
 यस्मै । विष्णुः । स्त्रीणि । पदा । विचक्रमे । उप । मिचस्य । धर्मेभिः ॥३॥



यस्य त्वमिदं स्तोमेषु चाकनो वाजं वाजिञ्छतक्रतो ।  
 तं त्वा वयं सुदुर्घामिव गोदुहो जुहुमसि अवस्यवः ॥४॥  
 यस्य । त्वं । इन्द्र । स्तोमेषु । चाकनः । वाजं । वाजिन् । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।  
 तं । त्वा । वयं । सुदुर्घाऽइव । गोऽदुहः । जुहुमसि । अवस्यवः ॥४॥

यो नो दाता स नः पिता महौ उय ईशानकृत् ।  
 अयामनुयो मघवा पुरुवसुर्गोर्ऋषस्य प्र दातु नः ॥५॥  
 यः । नः । दाता । सः । नः । पिता । महान् । उयः । ईशानऽकृत् ।  
 अयामन् । उयः । मघऽवा । पुरुऽवसुः । गोः । ऋषस्य । प्र । दातु । नः ॥५॥ ॥२०॥

यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे स रायस्योर्धमिन्वति ।  
 वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिदं हवामहे ॥६॥  
 यस्मै । त्वं । वसो इति । दानाय । मंहसे । सः । रायः । पोर्धं । इन्वति ।  
 वसुऽयवः । वसुऽपतिं । शतऽक्रतुं । स्तोमैः । इदं । हवामहे ॥६॥

कदा चन प्र युच्छस्युभे नि पासि जन्मनी ।  
 तुरीयादित्य हवनं त इन्द्रियमा तस्यावमृतं दिवि ॥७॥  
 कदा । चन । प्र । युच्छसि । उभे इति । नि । पासि । जन्मनी इति ।  
 तुरीय । आदित्य । हवनं । ते । इन्द्रियं । आ । तस्थौ । अमृतं । दिवि ॥७॥

यस्मै त्वं मघवचिन्द्र गिर्वणः शिष्यो शिक्षसि दाप्नुषे ।  
 अस्माकं गिरं उत सुष्टुतिं वसो कण्वच्छृणुधी हव ॥८॥  
 यस्मै । त्वं । मघऽवन् । इन्द्र । गिर्वणः । शिष्यो इति । शिक्षसि । दाप्नुषे ।  
 अस्माकं । गिरः । उत । सुऽष्टुतिं । वसो इति । कण्वऽवत् । शृणुधि । हव ॥८॥

अस्तावि मन्म पूर्णं ब्रह्मद्राय वोचत ।  
 पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥९॥  
 अस्तावि । मन्म । पूर्णं । ब्रह्म । इन्द्राय । वोचत ।  
 पूर्वीः । ऋतस्य । बृहतीः । अनूषत । स्तोतुः । मेधाः । असृक्षत ॥९॥

समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्ये ।  
 सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममदिषुः ॥१०॥  
 सं । इन्द्रः । रायः । बृहतीः । अधूनुत । सं । क्षोणी इति । सं । जं इति । सूर्ये ।  
 सं । शुक्रासः । शुचयः । सं । गोऽआशिरः । सोमाः । इन्द्र । अमदिषुः ॥१०॥ ॥२१॥

॥ अथ पंचमं सूक्तं ॥

उपमं त्वा मघोनां ज्येष्ठं च वृषभाणां ।  
 पूभिर्त्तमं मघवच्चिद्र गोविदमीशानं राय ईमहे ॥१॥  
 उपऽमं । त्वा । मघोनां । ज्येष्ठं । च । वृषभाणां ।  
 पूभिर्त्तमं । मघऽवन् । इन्द्र । गोऽविदं । ईशानं । रायः । ईमहे ॥१॥

य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे ।  
 तं त्वा वयं हर्यश्च शतक्रतुं वाजयंतो हवामहे ॥२॥  
 यः । आयुं । कुत्सं । अतिथिऽग्वं । अर्दयः । ववृधानः । दिवेऽदिवे ।  
 तं । त्वा । वयं । हरिऽअश्च । शतऽक्रतुं । वाजऽयंतः । हवामहे ॥२॥

आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिंचन्तद्रयः ।  
 ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतींदवः ॥३॥  
 आ । नः । विश्वेषां । रसं । मध्वः । सिंचन्तु । अद्रयः ।  
 ये । पराऽवति । सुन्विरे । जनेषु । आ । ये । अर्वाऽवति । इंदवः ॥३॥

विष्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्ता वसु ।  
 शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवो यचा सोमस्य तृपसि ॥४॥  
 विष्वा । द्वेषांसि । जहि । च । अव । च । आ । कृधि । विश्वे । सन्वन्तु । आ । वसु ।  
 शीष्टेषु । चित् । ते । मदिरासः । अंशवः । यच । सोमस्य । तृपसि ॥४॥ ॥२२॥

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।  
 आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥५॥  
 इन्द्र । नेदीयः । आ । इत् । इहि । मितऽमेधाभिः । ऊतिऽभिः ।  
 आ । शन्तम । शन्तमाभिः । अभिष्टिऽभिः । आ । सुऽआपे । स्वापिऽभिः ॥५॥



आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगं ।  
 प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥६॥  
 आजिऽतुरं । सत्पतिं । विश्वऽचर्षणिं । कृधि । प्रऽजासु । आऽभगं ।  
 प्र । सु । तिर । शचीभिः । ये । ते । उक्थिनः । क्रतुं । पुनते । आनुषक् ॥६॥

यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते ।  
 वयं होचाभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे ॥७॥  
 यः । ते । साधिष्ठः । अवसे । ते । स्याम । भरेषु । ते ।  
 वयं । होचाभिः । उत । देवहूतिऽभिः । ससऽवांसः । मनामहे ॥७॥

अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयुराजिं यामि सदोतिभिः ।  
 त्वामिदेव तममे समश्चयुर्गव्युरये मयीनां ॥८॥  
 अहं । हि । ते । हरिऽवः । ब्रह्म । वाजऽयुः । आजिं । यामि । सदा । उतिऽभिः ।  
 त्वां । इत् । एव । तं । अमे । सं । अश्चऽयुः । गव्युः । अये । मयीनां ॥८॥ ॥२३॥

॥ अथ षष्ठं सूक्तं ॥

एतत्त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गुणंति कारवः ।  
 ते स्तोभंत ऊर्जमावन्धृतश्चुतं पौरासो नक्षन्धीतिभिः ॥१॥  
 एतत् । ते । इन्द्र । वीर्यं । गीऽभिः । गुणंति । कारवः ।  
 ते । स्तोभंतः । ऊर्जं । आवन् । धृतऽश्चुतं । पौरासः । नक्षन् । धीतिऽभिः ॥१॥

नक्षंत इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मंदसे ।  
 यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व ॥२॥  
 नक्षंते । इन्द्रं । अवसे । सुऽकृत्यया । येषां । सुतेषु । मंदसे ।  
 यथा । संऽवर्ते । अमदः । यथा । कृशे । एव । अस्मे इति । इन्द्र । मत्स्व ॥२॥

आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गंतनोप नः ।  
 वसवो रुद्रा अवसे न आ गमञ्छुखंतु मरुतो हव ॥३॥  
 आ । नः । विश्वे । सऽजोषसः । देवासः । गंतन । उप । नः ।  
 वसवः । रुद्राः । अवसे । नः । आ । गमन् । श्छुखंतु । मरुतः । हव ॥३॥

पूषा विष्णुर्हवन् मे सरस्वत्यवतु सप्त सिंधवः ।  
 आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हव ॥४॥  
 पूषा । विष्णुः । हवन् । मे । सरस्वती । अवतु । सप्त । सिंधवः ।  
 आपः । वातः । पर्वतासः । वनस्पतिः । शृणोतु । पृथिवी । हव ॥४॥ ॥२४॥

यदिद्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम ।  
 तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृचहन् ॥५॥  
 यत् । इन्द्र । राधः । अस्ति । ते । माघोनं । मघवत्तमम् ।  
 तेन । नः । बोधि । सधमाद्यः । वृधे । भगः । दानाय । वृचहन् ॥५॥

आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो ।  
 वीती होचाभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृखिरे ॥६॥  
 आजिपते । नृपते । त्वम् । इत् । हि । नः । वाज । आ । वक्षि । सुक्रतो इति सुक्रतो ।  
 वीती । होचाभिः । उत । देववीतिभिः । ससवांसः । वि । शृखिरे ॥६॥

सन्ति ह्ययं आशिष इन्द्र आयुर्जनानां ।  
 अस्मानक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्पुषीमिषं ॥७॥  
 सन्ति । हि । अयं । आशिषः । इन्द्र । आयुः । जनानां ।  
 अस्मान् । नक्षस्व । मघवन् । उप । अवसे । धुक्षस्व । पिप्पुषी । इषं ॥७॥

वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।  
 महि स्थूरं शशयं राधो अहयं प्रस्कृणाय नि तोशय ॥८॥  
 वयं । ते । इन्द्र । स्तोमेभिः । विधेम । त्वम् । अस्माकं । शतक्रतो इति शतक्रतो ।  
 महि । स्थूरं । शशयं । राधः । अहयं । प्रस्कृणाय । नि । तोशय ॥८॥ ॥२५॥

॥ अथ सप्तमं सूक्तं ॥

भूरीदिद्रस्य वीर्यं अख्यमभ्यायति । राधस्ते दस्यवे वृक ॥९॥  
 भूरि । इत् । इन्द्रस्य । वीर्यं । वि । अख्यं । अभि । आ । अयति । राधः । ते । दस्यवे । वृक ॥९॥  
 शतं श्वेतासं उक्षणी दिवि तारो न रोचन्ते । महा दिवं न तस्तभुः ॥१०॥  
 शतं । श्वेतासः । उक्षणीः । दिवि । तारः । न । रोचन्ते । महा । दिवं । न । तस्तभुः ॥१०॥



शतं वेणुञ्छतं शुनः शतं चर्मीणि मृत्तानि ।  
 शतं मे बल्वजस्तुका अरुषीणां चतुःशतं ॥३॥  
 शतं । वेणून् । शतं । शुनः । शतं । चर्मीणि । मृत्तानि ।  
 शतं । मे । बल्वजस्तुकाः । अरुषीणां । चतुःशतं ॥३॥

सुदेवाः स्थं कात्यायना वयोवयो विचरंतः । अश्वांसो न चक्रमत ॥४॥  
 सुदेवाः । स्थ । कात्यायनाः । वयःऽवयः । विचरंतः । अश्वासः । न । चक्रमत ॥४॥

आदित्साप्रस्यं चर्किरानूनस्य महि श्वः ।  
 श्यावीरतिध्वसन्पयश्लुषा चन संनशे ॥५॥  
 आत् । इत् । साप्रस्यं । चर्किरन् । आ । अनूनस्य । महि । श्वः ।  
 श्यावीः । अतिध्वसन् । पयः । चश्लुषा । चन । संनशे ॥५॥ ॥२६॥

### ॥ अथाष्टमं सूक्त ॥

प्रति ते दस्यवे वृक राधो अदृश्येह्यं । द्यौर्न प्रथिना श्वः ॥१॥  
 प्रति । ते । दस्यवे । वृक । राधः । अदृशि । अह्यं । द्यौः । न । प्रथिना । श्वः ॥१॥

दश मर्खं पौतक्रतः सहस्रा दस्यवे वृकः । नित्याद्रायो अमंहत ॥२॥  
 दश । मर्खं । पौतक्रतः । सहस्रा । दस्यवे । वृकः । नित्यात् । रायः । अमंहत ॥२॥

शतं मे गर्दभानां शतमूर्णीवतीनां । शतं दासाँ अति स्रजः ॥३॥  
 शतं । मे । गर्दभानां । शतं । ऊर्णीवतीनां । शतं । दासान् । अति । स्रजः ॥३॥

तचो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता । अश्वानामिच्च यूष्यां ॥४॥  
 तचो इति । अपि । प्राणीयत । पूतक्रतायै । व्यक्ता । अश्वानां । इत् । न । यूष्यां ॥४॥

अचेत्यमिश्चिक्तुर्हव्यवाद सुमद्रथः ।  
 अमिः शुकेण शोचिषा बृहत्सूरो अरोचत दिवि सूर्यो अरोचत ॥५॥  
 अचेति । अमिः । चिक्तुः । हव्यवाद । सः । सुमद्रथः ।  
 अमिः । शुकेण । शोचिषा । बृहत् । सूरः । अरोचत । दिवि । सूर्यः । अरोचत ॥५॥ ॥२७॥

## ॥ अथ नवमं सूक्तं ॥

युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण युक्ता रथेन तविषं यजत्रा ।  
 अगच्छतं नासत्या शचीभिरिदं तृतीयं सर्वनं पिबाथः ॥१॥  
 युवं । देवा । क्रतुना । पूर्व्येण । युक्ता । रथेन । तविषं । यजत्रा ।  
 आ । अगच्छतं । नासत्या । शचीभिः । इदं । तृतीयं । सर्वनं । पिबाथः ॥१॥

युवां देवास्त्रय एकादशासः सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात् ।  
 अस्माकं यज्ञं सर्वनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीद्यमी ॥२॥  
 युवां । देवाः । त्रयः । एकादशासः । सत्याः । सत्यस्य । ददृशे । पुरस्तात् ।  
 अस्माकं । यज्ञं । सर्वनं । जुषाणा । पातं । सोमं । अश्विना । दीद्यमी इति दीदिऽअमी ॥२॥

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।  
 सहस्रं शंसा उत ये गर्विष्टौ सर्वौ इत्तौ उप याता पिबध्वे ॥३॥  
 पनाय्यं । तत् । अश्विना । कृतं । वां । वृषभः । दिवः । रजसः । पृथिव्याः ।  
 सहस्रं । शंसाः । उत । ये । गोऽइष्टौ । सर्वान् । इत् । तान् । उप । यात । पिबध्वे ॥३॥

अयं वां भागो निहितो यजत्रेमा गिरो नासत्योप यातं ।  
 पिबतं सोमं मधुमंतमस्मे प्र दाश्वांसमव्रतं शचीभिः ॥४॥  
 अयं । वां । भागः । निऽहितः । यजत्रा । इमाः । गिरः । नासत्या । उप । यातं ।  
 पिबतं । सोमं । मधुऽमंतं । अस्मे इति । प्र । दाश्वांसं । अव्रतं । शचीभिः ॥४॥ ॥२६॥

## ॥ अथ दशमं सूक्तं ॥

यमृत्विजो बहुधा कल्पयंतः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति ।  
 यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत्का स्विहत्र यजमानस्य संवित् ॥१॥  
 यं । ऋत्विजः । बहुधा । कल्पयंतः । सऽचेतसः । यज्ञं । इमं । वहन्ति ।  
 यः । अनूचानः । ब्राह्मणः । युक्तः । आसीत् । का । स्विहत्र । यजमानस्य । संऽवित् ॥१॥

एक एवाग्निर्वहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ।  
 एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वं ॥२॥



एकः । ए॒व । अ॒ग्निः । ब॒हुधा । सं॒ऽइ॒दः । एकः । सूर्यः । वि॒श्वं । अ॒नु । प्र॒ऽभू॒तः ।  
 ए॒का । ए॒व । उ॒षाः । स॒र्वे । इ॒दं । वि । भा॒ति । ए॒कं । वै । इ॒दं । वि । ब॒भू॒व । स॒र्वे ॥२॥  
 ज्योति॑ष्मन्तं के॒तुम॑न्तं चि॒च॒क्रं सु॒खं रथं॑ सु॒षट् भूरि॑वारं ।  
 चि॒चाम॑न्घा यस्य॒ योगे॑ऽधिज॒ज्ञे तं वा॑ हु॒वे अ॒ति रि॒क्तं पि॒ब॒ध्वै ॥३॥  
 ज्योति॑ष्मन्तं । के॒तुऽम॑न्तं । चि॒ऽच॒क्रं । सु॒ऽखं । रथं॑ । सु॒ऽस॒दं । भूरि॑ऽवारं ।  
 चि॒चऽम॑न्घा । यस्य॒ । योगे॑ । अ॒धिऽज॒ज्ञे । तं वा॑ । हु॒वे । अ॒ति । रि॒क्तं । पि॒ब॒ध्वै ॥३॥ ॥२९॥

॥ अथैकादशं सूक्तं ॥

इ॒मानि॑ वां भा॒ग॒धेया॑नि सि॒स्रत॒ इ॒न्द्रा॒वरु॑णा प्र॒ म॒हे सु॒तेषु॑ वां ।  
 य॒ज्ञेय॑ज्ञे ह॒ सर्व॑ना भुर॒ण्यथो॒ यत्सु॑न्व॒ते य॒ज॒मा॒नाय॒ शि॒क्ष॒यः ॥१॥  
 इ॒मानि॑ । वां । भा॒गऽधे॑या॒नि । सि॒स्र॒ते । इ॒न्द्रा॒वरु॑णा । प्र । म॒हे । सु॒तेषु॑ । वां ।  
 य॒ज्ञेऽय॑ज्ञे । ह॒ । सर्व॑ना । भुर॒ण्यथः॑ । यत् । सु॒न्व॒ते । य॒ज॒मा॒नाय॒ शि॒क्ष॒यः ॥१॥  
 नि॒ष्वि॒ध्व॒री॒रोष॑धी॒राप॑ आ॒स्तामि॑न्द्रा॒वरु॑णा म॒हि॒मा॒न॑माशत ।  
 या सि॒स्र॒तू र॒ज॑सः प॒रे अ॒ध्व॒नो य॒योः श॒चु॒र्नकि॑रादे॒व ओ॒ह॒ते ॥२॥  
 निः॒ऽसि॒ध्व॒रीः । ओ॒ष॒धीः । आ॒पः । आ॒स्तां । इ॒न्द्रा॒वरु॑णा । म॒हि॒मा॒नं । आ॒श॒त ।  
 या । सि॒स्र॒तुः । र॒ज॑सः । प॒रे । अ॒ध्व॒नः । य॒योः । श॒चुः । न॒किः । अ॒दे॒वः । ओ॒ह॒ते ॥२॥  
 स॒त्यं तदि॑न्द्रा॒वरु॑णा कृ॒शस्य॑ वां म॒ध्वं ऊ॒र्मिं दु॒ह॒ते स॒प्र वा॒णीः ।  
 ताभि॑र्दा॒श्वांस॑मव॒तं शु॒भ॒स्प॒ती यो वा॒म॒द॒न्धो अ॒भि पा॒ति चि॒त्ति॑भिः ॥३॥  
 स॒त्यं । तत् । इ॒न्द्रा॒वरु॑णा । कृ॒शस्य॑ । वां । म॒ध्वः । ऊ॒र्मिं । दु॒ह॒ते । स॒प्र । वा॒णीः ।  
 ताभिः॑ । दा॒श्वांसं॑ । अ॒व॒तं । शु॒भः । प॒ती इति॑ । यः । वां । अ॒द॒न्धः । अ॒भि॒पा॒ति । चि॒त्ति॑ऽभिः ॥३॥  
 घृ॒त॒पु॒षः सौ॒म्या जी॒र॒दा॒न॒वः स॒प्र स्व॒सा॒रः स॒दन॑ च॒त॒स्य॑ ।  
 या ह॑ वा॒मि॑न्द्रा॒वरु॑णा घृ॒त॒श्रु॒त॒स्ताभि॑र्ध॒त्तं य॒ज॒मा॒नाय॒ शि॒क्ष॒तं ॥४॥  
 घृ॒तऽपु॒षः । सौ॒म्याः । जी॒र॒दा॒न॒वः । स॒प्र । स्व॒सा॒रः । स॒दन॑ । च॒त॒स्य॑ ।  
 याः । ह॒ । वां । इ॒न्द्रा॒वरु॑णा । घृ॒तऽश्रु॒तः । ताभिः॑ । ध॒त्तं । य॒ज॒मा॒नाय॒ शि॒क्ष॒तं ॥४॥ ॥३०॥  
 अवो॑चाम॒ मह॒ते सौ॒भ॒गाय॑ स॒त्यं त्वे॒षाभ्यां॑ म॒हि॒मा॒न॑मिन्द्रि॒यं ।  
 अ॒स्मानि॑स्वैन्द्रा॒वरु॑णा घृ॒त॒श्रु॒त॒स्त्रि॑भिः सा॒प्तेभि॑रव॒तं शु॒भ॒स्प॒ती ॥५॥

अवोचाम । महते । सौमगाय । सत्यं । त्वेषाभ्यां । महिमानं । इन्द्रियं ।  
 अस्मान् । सु । इंद्रावरुणा । घृतं श्रुतः । चिभिः । साप्तेभिः । अवतं । शुभः । पती इति ॥५॥  
 इंद्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुतमदत्तमये ।  
 यानि स्थानान्यसृजंत धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यं ॥६॥  
 इंद्रावरुणा । यत् । ऋषिभ्यः । मनीषां । वाचः । मतिं । श्रुतं । अदत्तं । अये ।  
 यानि । स्थानानि । असृजंत । धीराः । यज्ञं । तन्वानाः । तपसा । अभि । अपश्यं ॥६॥  
 इंद्रावरुणा सौमनसमदृप्तं रायस्पोषं यजमानेषु धत्तं ।  
 प्रजां पुष्टिं भूतिमस्मासु धत्तं दीर्घायुत्वाय प्रतिरतं न आयुः ॥७॥  
 इंद्रावरुणा । सौमनसं । अदृप्तं । रायः । पोषं । यजमानेषु । धत्तं ।  
 प्रजां । पुष्टिं । भूतिं । अस्मासु । धत्तं । दीर्घायुत्वाय । प्र । प्रतिरतं । नः । आयुः ॥७॥ ॥३१॥  
 ॥ इति वालखिल्यं समाप्तं ॥

रूपमेऽनुवाके दश सूक्तानि । तत्रापि आ याहीति विंशत्युचं प्रथमं सूक्तं प्रागाथपुचस्य मर्गस्वार्थमापेयं ।  
 प्रथमातृतोयाद्ययुजो बृहत्यो द्वितीयाचतुर्थ्यादियुजः सतोबृहत्यः । तथा चानुक्रांतं । अथ आ विंशतिर्मेगः  
 प्रागाथ आपेयं प्रागाथं त्विति ॥ प्रातरनुवाक आपेये कर्ता वार्हते छंदस्याधिनश्ये चेदं मुक्तं । तथा च  
 सूचितं । अथमधिरप आ याहि । आ० ४. १३. इति ॥

अथ आ याह्यमिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।  
 आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥१॥  
 अये । आ । याहि । अमिभिः । होतारं । त्वा । वृणीमहे ।  
 आ । त्वां । अनक्तु । प्रयता । हविष्मती । यजिष्ठं । बर्हिः । आऽसदे ॥१॥

हे अये अधिभिर्यष्टैः सहा याहि । आगच्छ । तदर्थं होतारं देवानामाहुतातारं त्वा त्वां वृणीमहे । त्वा  
 त्वामागतं प्रयताध्वर्युहन्ताभ्यां नियता हविष्मती घृतवती यजिष्ठं त्वां बर्हिर्वर्हिष्यासद आसाया सर्वतोऽनक्तु ॥

अच्छा हि त्वा महसः सूनो अंगिरः सुचश्चरंत्यध्वरे ।  
 ऊर्जो नपातं घृतकेगमीमहेऽयं यज्ञेषु पूर्य ॥२॥  
 अच्छ । हि । त्वा । महसः । सूनो । इति । अंगिरः । सुचः । चरंति । अध्वरे ।  
 ऊर्जः । नपातं । घृतकेगं । ईमहे । अयं । यज्ञेषु । पूर्य ॥२॥



हे सहस्रः सृणो बलस्य पुत्र । वलिन मध्यमानत्वात् । हे अंगिरोऽंगेरसां मध्य एक । अथवागतिर्गतिकर्मा । सर्वत्र संगत । त्वा त्वामध्वरे यागेऽच्छामिप्राप्तुं सुचरन्ति । गच्छन्ति । अत ऊर्ध्वोऽन्नस्य नपातं न पातयितारं रक्षकं बलस्य नप्तारं वा घृतकेशं प्रदीप्तकलशस्थानीयज्वालं पूर्वं पुरातनं पूरकं वापि यज्ञेष्वस्यदीप्योमहे । सोमि ॥

अग्ने कविर्वेधा असि होता पावक यस्यः ।

मन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेष्वीन्द्रो विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ॥३॥

अग्ने । कविः । वेधाः । असि । होता । पावक । यस्यः ।

मन्द्रः । यजिष्ठः । अध्वरेषु । ईन्द्रः । विप्रेभिः । शुक्र । मन्मभिः ॥३॥

हे अपि कविर्मेधावी त्वं वेधा विधातासि फलानां । हे पावक होता देवानामाह्वाता होमनिष्पादको वा यस्यो यष्टव्योऽसि । हे शुक्र दीप्त मन्द्रो मोदनीयो यजिष्ठो यष्टुतमस्त्वमध्वरेषु यज्ञेषु विप्रेभिर्मेधाविभि-  
र्हस्तिभिर्मन्मभिर्मननीयैः स्तोत्रैरीद्यः शुत्वोऽसि ॥

अद्रोघमा वहोऽशतो यविष्य देवाँ अजस्र वीतये ।

अभि प्रयाँसि सुधिता वसो गहि मंदस्व धीतिभिर्हितः ॥४॥

अद्रोघं । आ । वह । उशतः । यविष्य । देवान् । अजस्र । वीतये ।

अभि । प्रयाँसि । सुधिता । आ । वसो इति । गहि । मंदस्व । धीतिभिः । हितः ॥४॥

अद्रोघमद्रोघारं मां प्रति हे यविष्य युवतमाजस्र नित्य आ वह । आनय । कान् । उशतोऽशदर्थं कामयमानान्देवान् । किमर्थं । वीतये हविर्मन्त्राय । हे वसो वासकापि सुधिता मुनिहितानि प्रयांस्यन्ना-  
यमि गहि । अभिगच्छ । आगत्य च धीतिभिः स्तुतिभिर्द्रितो निहितः सन्मंदस्व । यदा । धीतिभिर्मंदस्विति संबंधः ॥

त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने चातर्जुतस्कविः ।

त्वां विप्रांसः समिधान दीदिव आ विवासंति वेधसः ॥५॥

त्वं । इत् । सुऽप्रथाः । असि । अग्ने । चातः । तर्जुतः । कविः ।

त्वां । विप्रांसः । सुऽइधान् । दीदिऽवः । आ । विवासंति । वेधसः ॥५॥

हे अपि चाता रक्षक ऋतः सत्यभुतः कविः क्रांतप्रज्ञस्त्वमित्यमेव सप्रथाः सर्वतः पृथुरसि । मवसि । हे समिधान समिध्यमान हे दीदिवो दीप्त त्वां विप्रासो विप्रा मेधाविनो वेधसो विधातारः स्तोतारो विवा-  
संति । परिचरन्ति ॥ ॥३२॥

शोचां शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे मह्यं असि ।

देवानां शर्मन्मम संतु सूरयः शत्रूषाहः स्वग्रयः ॥६॥

शोचं । शोचिष्ठ । दीदिहि । विशे । मयः । रास्व । स्तोत्रे । महान् । असि ।

देवानां । शर्मन् । मम । संतु । सूरयः । शत्रुऽसहः । सुऽअग्रयः ॥६॥

हे शोचिष्ठातिशयेन शोचयितरमे शोच । दीप्यस्व । दीदिहि । दीपयास्मान् । विशे प्रजाये सौचि मयः सुखं रास्व । देहि । त्वं महानसि । देवानां संबन्धिनि शर्मञ्जर्मणि सुखे मम सूरयः सौतारो मेधाविनो ऽस्माकं पुत्रादयो वा संतु । भवंतु । शत्रूषाहः शत्रूणामभिभवितारः स्वमयः शोभनापयस्य संतु ॥

यथा चिद्वृद्धमतसममे संजूर्वसि क्षमि ।

एवा दह मिचमहो यो अस्मधुग्दुर्मन्मा कश्च वेनन्ति ॥ ७ ॥

यथा । चित् । वृद्धं । अतसं । अमे । संजूर्वसि । क्षमि ।

एव । दह । मिच ऽमहः । यः । अस्म ऽधुक् । दुः ऽमन्मा । कः । च । वेनन्ति ॥ ७ ॥

हे अमे क्षमि क्षमायां वर्तमानं वृद्धमतसं शुक्लं काष्ठं यथा येन प्रकारेण संजूर्वसि । जूर्वतिर्हिंसाकर्मा । सम्यग्दहसीत्यर्थः । एवैवं दह हे मिचमहो मिचाणामस्माकं पूजक तेजो वा । कं । यो ऽस्मधुगस्माकं द्रोणं कश्च काचिदुर्मन्मा दुर्मतिर्वेनन्ति कामयति ऽस्मान्द्रोगधुं तं दहेति ॥

मा नो मर्तीय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः ।

अस्नेधञ्जिस्तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः ॥ ८ ॥

मा । नः । मर्तीय । रिपवे । रक्षस्विने । मा । अघ ऽशंसाय । रीरधः ।

अस्नेधत् ऽभिः । तरणि ऽभिः । यविष्ठ्य । शिवेभिः । पाहि । पायु ऽभिः ॥ ८ ॥

नो ऽस्माकर्ताय मरणधर्माय रिपवे शत्रवे हिंसित्वे रक्षस्विने बलपते मा रीरधः । वशमानय । तथाघ-  
शंसाय पापशंसाय मा रीरधः । हे यविष्ठ्य युवतम अस्नेधञ्जिरहिंसकैस्तरणिभिरक्षारकैः शिवेभिः सुखकरैः  
पायुभिः पालनेनो ऽस्मान्पाहि । रच ॥

पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।

पाहि गीर्भिस्तिस्मिर्भिरुजै पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ९ ॥

पाहि । नः । अग्ने । एकया । पाहि । उत । द्वितीयया ।

पाहि । गीः ऽभिः । तिसृ ऽभिः । ऊर्जै । पते । पाहि । चतसृ ऽभिः । वसो इति ॥ ९ ॥

हे अग्ने नो ऽस्मानेकयर्चा गिरा पाहि । रच । उतापि च द्वितीययर्चा पाहि । पालय । पाहि तिसृभिर्गी-  
र्भिर्ऊर्जामन्नानां बलानां वा पते स्वामिन् । तथा पाहि चतसृभिर्गीर्भिर्है वसो वासकायि ॥

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्याः प्र स्म वाजेषु नो ऽव ।

त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपि नक्षामहे वृधे ॥ १० ॥

पाहि । विश्वस्मात् । रक्षसः । अराव्याः । प्र । स्म । वाजेषु । नः । अव ।

त्वां । इत् । हि । नेदिष्ठं । देव ऽतातये । आपि । नक्षामहे । वृधे ॥ १० ॥

हे अग्ने विश्वस्मात्सर्वस्माद्रक्षसो ऽराव्यो ऽदातुः सकाशात्पाहि । रक्षास्मान् । वाजेषु संयामेषु नो ऽस्मान्  
प्राव । प्रकर्षेण रच । स्मेति पूरणः । हि यस्मान्नेदिष्ठमासन्नमापि बंधुभूतं त्वामित्त्वामेव देवतातये यज्ञाय  
यज्ञसिद्धयर्थं वृधे वर्धनाय नक्षामहे व्याप्तुमः । नक्षतिर्व्याप्तिकर्मा ॥ ३३ ॥



आ नो अमे वयोवृधं रयिं पावकं शंस्यं ।

रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती स्वयंशस्तर ॥११॥

आ । नः । अमे । वयः५वृधं । रयिं । पावक । शंस्यं ।

रास्व । च । नः । उप५माते । पुरु५स्पृहं । सु५नीती । स्वयंशः५तरं ॥११॥

हे अमे पावक शोधक वयोवृधमत्तस्य वर्धकं शंसं शंसनीयं रयिं धनं नोऽस्माभ्यमा हरेति शेषः । आहत्य च हे उपमाते । उपाश्रयस्मीपि माति नो धनमित्युपमातिः । हे तादृशमे नोऽस्माभ्यं सुनीती सुनीत्या शोभन-  
नयनेन पुरुस्पृहं वज्रमिः स्पृहणीयं स्वयंशस्तरमत्यंतं स्तभूतकीर्तिं धनं रास्व च । देहि ॥

येन वंसाम् पृतनासु शर्धतस्तरंतो अर्य आदिशः ।

स त्वं नो वर्ध प्रयसा शचीवसो जिन्वा धियो वसुविदः ॥१२॥

येन । वंसाम् । पृतनासु । शर्धतः । तरंतः । अर्यः । आ५दिशः ।

सः । त्वं । नः । वर्ध । प्रयसा । श५चीवसो इति शची५वसो । जिन्व । धियः । वसु५विदः ॥१२॥

येन धनेन पृतनासु संग्रामेषु शर्धतो वेगं कुर्वतोऽर्योऽरीञ्छूनादिश आदेष्टुञ्छस्त्रप्रवेष्टुंकारंतो वंसाम् हिंसाम तत्त्वं देहि । हे शचीवसो प्रज्ञया वासधितः कर्म धनं वा स प्रसिद्धस्त्वं नोऽस्मान्वर्ध । वर्धय । प्रीणय । प्रयसानेन त्वं वा वर्ध । अस्मदीयेन प्रयसा हविषा वसुविदो वसूनां जमकानि धियः कर्माणास्मदी-  
यानि जिन्व । प्रीणय ॥

शिशानो वृषभो यथामिः शृंगे दविध्वत् ।

तिग्मा अस्य हनवो न प्रतिधृषे सुजंभः सहसो यहुः ॥१३॥

शिशानः । वृषभः । यथा । मिः । शृंगे इति । दविध्वत् ।

तिग्माः । अस्य । हनवः । न । प्रति५धृषे । सु५जंभः । सहसः । यहुः ॥१३॥

अथममिः शृंगे शिशानस्त्रीकृष्णकुर्वन् वृषभो यथा दविध्वत् कंपयति शिरः एवं शृंगस्थानीया ज्वालाः शिशानस्त्रीकृष्णकुर्वन् दविध्वत् । कंपयति शिरः । अस्मापिर्हनवो न हनव इव हनुस्थानीया ज्वालास्तिग्मा न प्रतिधृषे । प्रतिधर्षितुमशक्ताः । योऽपिः सुजंभः सुदंष्ट्रः सहसो यजः सहसः पुत्रोऽस्य हनव इत्यर्थः ॥

नहि ते अमे वृषभ प्रतिधृषे जंभासो यच्चितिष्ठसे ।

स त्वं नो होतः सुहुतं हविष्कृधि वंस्वा नो वार्या पुरु ॥१४॥

नहि । ते । अमे । वृषभ । प्रति५धृषे । जंभासः । यत् । वि५तिष्ठसे ।

सः । त्वं । नः । होत५रिति । सु५हुतं । हविः । कृधि । वंस्व । नः । वार्या । पुरु ॥१४॥

हे वृषभ वर्धक ते तव जंभासो जंभा दंतस्थानीया ज्वाला नहि प्रतिधृषे प्रतिधर्षितुं न शक्ताः । यवस्था-  
द्वितिष्ठसे विविधं गच्छसि । प्रवर्धस इत्यर्थः । हे होतर्होमनिष्पादक स त्वं हविरसादत्तं सुहुतं कृधि । कुर्व ।  
नोऽस्माभ्यं वार्या वरणीयानि पुत्र बह्वनि वंस्व । देहि ॥

शेषे वनेषु माचोः सं त्वा मर्तोस इंधते ।

अतंद्रो हव्या वहसि हविष्कृत आदिहेवेषु राजसि ॥ १५ ॥

शेषे । वनेषु । माचोः । सं । त्वा । मर्तोसः । इंधते ।

अतंद्रः । हव्या । वहसि । हविःऽकृतः । आत् । इत् । देवेषु । राजसि ॥ १५ ॥

हे अग्ने वनेषु वर्तमानयोर्माचोररण्योः शेषे । स्वपिषि । वर्तसे । त्वा त्वां तथाभूतं मर्तोसो मनुष्या अश्वर्क्षादयो मथनेनोत्पाद्य समिधते । पश्चात्पुनस्तस्वमतंद्रोऽनलसः सन् हविष्कृतो यजमानस्य हव्या हवीषि वहसि देवान्प्रति । आदिदन्तरमेव देवेषु मध्ये राजसि । दीप्यसे ॥ ॥ ३४ ॥

सप्त होतारस्त्वमिदीकृते त्वामे सुत्यजमह्यं ।

भिनत्सदिं तपसा वि शोचिषा प्रामे तिष्ठ जनां अति ॥ १६ ॥

सप्त । होतारः । तं । इत् । ईकृते । त्वा । अमे । सुऽत्यजं । अह्यं ।

भिनत्सि । अदिं । तपसा । वि । शोचिषा । प्र । अमे । तिष्ठ । जनान् । अति ॥ १६ ॥

हे अग्ने तमित्तमेव त्वा त्वां सप्त होतारो होचका ईकृते । कुर्वन्ति । कीदृशं त्वां । सुत्यजं सुत्याजं । अभिमतप्रदमित्यर्थः । अह्यमचीणं प्रवृजं । किंचादि मेघं तपसा तापकेन शोचिषा तेजसा । तपसा शोचिषा चेति वा योज्यं । वि भिनत्सि । हे अग्ने जनान्स्नानत्यतीत्य प्र तिष्ठ प्रगच्छ हिरादाय देवान्प्रति । अथवा अहिरोधिजनानतिक्रम्य प्र तिष्ठ ॥

अग्निमग्निं वो अग्निगुं हुवेम वृक्तबर्हिषः ।

अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा होतारं चर्षणीनां ॥ १७ ॥

अग्निंऽअग्निं । वः । अग्निऽगुं । हुवेम । वृक्तऽबर्हिषः ।

अग्निं । हितऽप्रयसः । शश्वतीषु । आ । होतारं । चर्षणीनां ॥ १७ ॥

अग्निमग्निं । वीष्पादरार्था । अग्निमेव हे यजमानाः वो युष्मदर्थं ऊवेम । आहूयाम । अथवा । हे देवाः वो युष्मदर्थमिति वा व्याख्येयं । कीदृशां वयं । वृक्तबर्हिषस्त्रिदशदर्भाः । कीदृशमग्निं । अग्निगुमधृतगमनं सर्वदा गृहे वर्तमानमग्निं । हितप्रयसो निहितहविष्का यजमा ऊवेमिति शेषः । कीदृशमग्निं । शश्वतीषु बद्धीषु भूमिषु वर्तमानं होतारं होमनिष्पादकं । किमर्थं । चर्षणीनां मनुष्याणामर्थाय । अग्नौ तुप्ते सति वृष्टिज्ञानात्प्राण्युपकारसिद्धं प्राप्स्यर्थत्वं । अथवा मनुष्याणां यजमानानां होतारं होमसाधकं ॥

केतेन शर्मन्सचते सुषामण्यमे तुभ्यं चिकित्वना ।

इषण्यया नः पुरुषमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ १८ ॥

केतेन । शर्मन् । सचते । सुऽसामनि । अमे । तुभ्यं । चिकित्वना ।

इषण्यया । नः । पुरुऽरूपं । आ । भर । वाजं । नेदिष्ठं । मूतये ॥ १८ ॥

हे अग्ने तुभ्यं चिकित्वना चिकितुषा अनेन होवादिना सह यजमानः केतेन प्रज्ञापकेन स्तोत्रेण यजत इति शेषः । कुचेति तदुच्यते । सुषामणि शोभनरथंतरादिसामोपेतं शर्मच्छर्मणि सुखसाधने यज्ञे । अतो हे अग्ने इषण्येच्छया स्तोत्रया जोऽस्मभ्यं पुरुषं नानारूपं नेदिष्ठमंतिके सर्वदा वर्तमानं वाजमन्नमूतये रचयामास । भर । आहर ॥



अग्ने जरितर्विशपतिस्तेपानो देव रक्षसः ।

अप्रोषिवान्गृहपतिर्महो असि दिवस्पारुहोरोण्युः ॥ १९ ॥

अग्ने । जरितः । विशपतिः । तेपानः । देव । रक्षसः ।

अप्रोषिऽवान् । गृहऽपतिः । महान् । असि । दिवः । पार्थुः । दुरोणऽयुः ॥ १९ ॥

हे अग्ने देव जरितः क्षीतः । सुखित्वर्थः । विशपतिः प्रजानां पात्रको रक्षसो राक्षसानां तेषाम् संतापको ऽसि । अप्रोषिवान्यजमानगृहमत्यजन् । तदेवाह । गृहपतिर्यजमानगृहस्य पात्रकश्च त्वं महान्मतिशयेन पूज्यो ऽसि । दिवो बुलोकस्य पार्थुः पाता दुरोणयुर्यजमानगृहस्य मिश्रयिता । सर्वदा वर्तमान इत्यर्थः । तादृशस्त्वं महानसीत्यन्वयः ॥

मा नो रक्ष आ वैशीदाघृणीवसो मा यातुयातुमावतां ।

परोगव्यूतिर्निरामप क्षुधमग्ने सेध रक्षस्विनः ॥ २० ॥

मा । नः । रक्षः । आ । वैशीत् । आघृणीवसो इत्याघृणिऽवसो । मा । यातुः । यातुऽमावतां ।

परः ऽगव्यूति । अनिरां । अप । क्षुधं । अग्ने । सेध । रक्षस्विनः ॥ २० ॥

हे आघृणीवसो दीप्तधनाये नोऽस्मान्नचो राक्षसादिः । रक्षो रक्षितव्यमस्मात् । नि० ४. १८. । इति याज्ञः । मा वैशीत् । सर्वतो न प्रविशतु । तथा यातुमावतां । यातुर्यातना पीडा । तद्वतां यातुधानानां यातुः पीडा मा वैशीत् । हे अग्ने अनिरां । इरात्रं । अन्नाभावं दारिद्र्यं क्षुधं चपयितारं रक्षस्विनो बलवन्ति रक्षांसि च परोगव्यूति क्रोशद्वयाद्दिशात्परस्मात् । एतदुपलक्षणं । अत्यंतं दूरदेशेऽपि सेध । परिहर । अनिरा बुद्ध्याह्वानि रक्षांसि च न पीडयन्ति ॥ ३५ ॥

उभयं शृणवदित्वाद्दशर्चं द्वितीयं सूक्तं प्रागाथस्य भर्गस्यार्थं । अवातुकमशिका । उभयं ब्रूनेति । पूर्वसूक्ते प्रागाथं त्वित्युक्तादिदमपि प्रागाथं । अवायुजो बृहत्यो युवः सतोबृहत्यः । अनुक्तत्वादिन्द्रो देवता ॥ महाव्रते निष्कैवल्ये बार्हतनुवाशीतवितसूक्तं सप्तम्यष्टमीवर्जं । तथैव पंचमारण्यके सूचितं शीतकेन । उभयं शृणवच्च न इति सप्तमीं चाष्टमीं चोद्धरति । ऐ० आ० ५. २. ४. । इति ॥ वातुर्विशिष्टेऽहनि निष्कैवल्य उभयमिति बृहत्साम प्रागाथः । तथा च सूचितं । उभयं शृणवच्च न आ वृषस्य पुष्कवसो । आ० ७. ४. । इति ॥ एवमन्यथापि यस्मिन्नहनि पुष्कलोचि बृहत्साम क्रियते तस्मिन्नहनि निष्कैवल्येऽयं प्रागाथः ॥

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।

सचाच्या मघवा सोमपीतये धिया शर्विष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥

उभयं । शृणवत् । च । नः । इन्द्रः । अर्वाक् । इदं । वचः ।

सचाच्या । मघऽवा । सोमऽपीतये । धिया । शर्विष्ठः । आ । गमत् ॥ १ ॥

उभयं सोवात्मकं शस्त्रात्मकं सोमयविधमिदं वचोऽर्वागस्यदमिमुखमिन्द्रः शृणवत् । शृणोतु । श्रुत्वा च - सचाच्यास्याकं सहांचत्वा धिया युक्तः सन् मघवा शर्विष्ठोऽतिशयेन बलवाना गमत् आगच्छतु सोमपीतये सोमपानाय ॥

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजंसं धिषणं निरुतस्तुतुः ।

उतोपमानां प्रथमो नि वीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥

तं । हि । स्वऽराजं । वृषभं । तं । ओजसे । धिषणे इति । निऽततस्तुः ।

उत । उपऽमानां । प्रथमः । नि । सीदसि । सोमऽकामं । हि । ते । मनः ॥२॥

तं हि तं खल्विन्द्रं स्वराजं स्वयमेव राजमानं धिषणे द्यावापृथिवी वृषभं जगदुपकारकाया वृष्टेर्वर्षकं निष्टतस्तुः । संचस्कारतुः । तं तमेवेन्द्रमोजसे बलाय निष्टतस्तुः । उत यस्मादेवं तस्मात् हे इन्द्र उपमानासुपमानभूतानामन्येषां देवानां मध्ये प्रथमो मुख्यः सन्नि वीदसि वेदां । सोमकामं हि खलु ते मनः ॥

पूर्वोक्तेऽच्छावाकशस्त्र आ वृषस्तेति प्रगाथो वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूचमुक्तं ॥

आ वृषस्व पुरुवसो सुतस्येन्द्रांधसः ।

विद्या हि त्वा हरिवः पृतु सासहिमधृष्टं चिहधृष्वणिं ॥३॥

आ । वृषस्व । पुरुवसो इति पुरुऽवसो । सुतस्य । इन्द्र । अंधसः ।

विद्या । हि । त्वा । हरिऽवः । पृतुऽसु । ससहिं । अधृष्टं । चित् । दधृष्वणिं ॥३॥

हे पुरुवसो वज्रधनेन्द्र त्वमा वृषस्व । आसिंचस्व । किं । सुतस्यांधसः सुतमंधः सोमं जठरे । हे हरिवो हरिभ्यां तद्वन्निन्द्र त्वा त्वां विद्या हि । जानीमः खलु । कीदृशं । पृतु संयामेपु सासहिमभिभवितारं शत्रूणा-मधृष्टं चिह्नैरप्यधर्पणोद्यं दधृष्वणिमन्येषां धर्षकं ॥

अप्रामिसत्य मधवन्तयेदसदिन्द्र क्रत्वा यथा वशः ।

सनेम वाजं तव शिप्रिन्वसा मक्षु चिद्यंतो अद्रिवः ॥४॥

अप्रामिऽसत्य । मधऽवन् । तथा । इत् । असत् । इन्द्र । क्रत्वा । यथा । वशः ।

सनेम । वाजं । तव । शिप्रिन् । अवंसा । मक्षु । चित् । यंतः । अद्रिऽवः ॥४॥

हे अप्रामिसत्याहिंसितसत्य हे मधवन्निन्द्र तथेदसत् । तथैव भवति । हे इन्द्र क्रत्वा कर्मणा प्रधानेन यथा येन प्रकारेण वशः कामयेः । हे शिप्रिन् अवसा रक्षणेन निमित्तेन वाजमज्ञं सनेम संभजेम वयं तव त्वदनु-यहात् । कीदृशा वयं । मनु चिच्छीघ्रमेव यंतः शत्रूणाच्छंतोऽभिभवंतः । हे अद्रिवः । अद्रिर्वज्रः । तद्वन्निद्रेति ॥

शग्ध्युऽषु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।

भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥५॥

शग्धि । ऊं इति । सु । शचीऽपते । इन्द्र । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः ।

भगं । न । हि । त्वा । यशसं । वसुऽविदं । अनु । शूर । चरामसि ॥५॥

हे शचीपत इन्द्र शग्धि । देह्यभिमतं । विश्वाभिः सर्वाभिरूतिभिर्मन्त्रिः सह । हे शूर भगं न भाग्यमिव यशसं यशस्विनं वसुविदं धनस्य लभकं त्वा त्वामनु चरामसि । अनुचरामः । परिचरामित्यर्थः ॥ ॥३६॥

पौरो अश्वस्य पुरुकृत्त्वामस्युत्तो देव हिरण्ययः ।

नकिर्हि दानं परिमधिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥६॥

पौरः । अश्वस्य । पुरुऽकृत् । गवां । असि । उत्तः । देव । हिरण्ययः ।

नकिः । हि । दानं । परिऽमधिषत् । ते इति । यत्ऽयत् । यामि । तत् । आ । भर ॥६॥



हे इंद्र त्वमस्य पौरः पूरयितासि । भवसि । तथा गवां पुष्टकृज्जर्कतासि । हे देव हिरण्ययो हिरण्यमय-  
शरीरस्त्वमुत्स उत्सवद्गोऽसि । हे इंद्र त्वे त्वयि वर्तमानं दानमस्यद्विवयं देयं धनं वा नक्तिः परिमर्धियत् ।  
न कश्चिद्विगच्छति । अतो यद्ययामि याचे तदा मर । आहर मह्यं ॥

यद्यपिष्टोमे बृहत्साम तदानीं निष्कैवली प्रगाथोऽगुरुषः । सूचितं च । त्वं ह्येहि चेरव इति प्रगाथा एते  
मवंति । आ० ५. १५. । इति ॥ महाप्रते निष्कैवली उत्तरपथेऽयं प्रगाथः । तथैव पंचमारण्यके सूचितं । स्वामिदि  
हवामहे त्वं ह्येहि चेरव इति बृहतः स्तोत्रियागुरुपी प्रगाथी । ऐ० आ० ५. २. २. । इति ॥

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।

उद्धावृषस्व मघवन्गविष्टय उद्दिंष्टान्मिष्टये ॥ ७ ॥

त्वं । हि । आ । इहि । चेरवे । विदाः । भगं । वसुत्तये ।

उत् । वृषस्व । मघऽवन् । गोऽइष्टये । उत् । इंद्र । अर्धेऽइष्टये ॥ ७ ॥

हे इंद्र त्वं हि त्वं खलु । सामर्थाहतेति गम्यते । अत एहि । आगच्छ । आगत्य चासाम्भं भगं भवनीयं  
धनं विदाः । समस्व । दस्व । किमर्थं । वसुत्तयेऽस्माकं वसुदानाय । हे मघवन् गविष्टये वा इच्छते मह्यमुद-  
वृषस्व । उत्तिंचस्व गामिति शेषः । तथा हे इंद्र अश्वमिष्टयेऽश्विणवते मह्यमश्वानुदवृषस्व । उत्तिंचस्व । देहि ॥

त्वं पुरु सहस्राणि शतानि च यूषा दानाय मंहसे ।

आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस इंद्रं गायंतोऽवसे ॥ ८ ॥

त्वं । पुरु । सहस्राणि । शतानि । च । यूषा । दानाय । मंहसे ।

आ । पुरंऽदरं । चकृम । विप्रंऽवचसः । इंद्रं । गायंतः । अवसे ॥ ८ ॥

हे इंद्र त्वं पुरु पुरुषि बह्वणि सहस्राणि शतानि च यूषा गवादि यूषानि दानाय यवमानविषयाय  
मंहसे । अनुमन्यसे । यद्वा । दानाय दाचे यवमानाय मंहसे । प्रयच्छसि । मंहतिदानकर्मा । अथ परोक्षेण  
ब्रवीति । पुरंदरं शत्रुपुराणां दारयितारमिंद्रमवसे रक्षणाय प्रीतये वा गायंतः खवंतो विप्रवचसो विविध-  
प्रकृष्टवचना वयमा आगंतारमभिमुखं वा चकम । कुर्मः ॥

अविप्रो वा यदविध्विप्रो वेद्र ते वचः ।

स प्र ममंदस्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥ ९ ॥

अविप्रः । वा । यत् । अविधत् । विप्रः । वा । इंद्र । ते । वचः ।

सः । प्र । ममंदत् । त्वाऽया । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । प्राचामन्यो इति प्राचाऽमन्यो ।

अहंसन ॥ ९ ॥

हे इंद्र ते तव वचः स्तोत्रं यद्योऽविप्रो वामेधाव्यसुतिकुशलो वा विप्रो मेधावी सुतिकुशलो वाविधत्  
कुर्यात् । त्वां स्तौतीत्यर्थः । स स्तोता त्वाया त्वयोक्त्या साधनेन प्र ममंदत् । प्रकर्षेण मोदते । हे शतक्रतो  
बृज्जर्मन् हे प्राचामन्यो प्राचीनक्रोध । अप्रतिहतक्रोधित्वर्थः । न हींद्रक्रोधं प्रतिहंति कश्चित् । हे अहंसन ।  
संयमेऽहमित्यात्मनो महत्त्वं प्रकाशयन्वः शत्रुं संभवति स तथोक्तः । तावृशेद्र ॥

उ॒यबाहु॑र्ष॒क्षकृ॒त्वा पु॒रंद॒रो यदि॑ मे ऋ॒णव॒द्धव॑ ।  
 व॒सूय॒वो वसु॑पतिं श॒तक्र॑तुं स्तोमै॑रि॒द्रं ह॒वाम॑हे ॥ १० ॥  
 उ॒यऽबाहुः । अ॒क्षऽकृ॒त्वा । पु॒रंऽद॒रः । यदि॑ । मे । ऋ॒णव॑त् । ह॒व ।  
 व॒सुऽय॒वः । वसु॑पतिं । श॒तऽक्र॑तुं । स्तोमैः । इ॒द्रं । ह॒वाम॑हे ॥ १० ॥

उयबाहुर्षक्षकृत्वा अचक्षत्वा वधकर्ता शत्रूणां पुरंदरः पुराणां दारयित्वा यदि मे हवं मृषयत् तर्हि वसूयवो वसुकामा वयं वसुपतिं बहुधनस्त्वामिदं शतक्रतुमपरिमितप्रभमिद्रं स्तोमैः स्तोषेह्वामहे । आह्वयामः ॥ ३७ ॥

न पा॒पासो॑ मनामहे नारा॑यासो न ज॒ह्वः ।  
 यदि॑न्वि॒द्रं वृष॑णं स॒चा सु॒ते सखा॑यं कृ॒णवाम॑हे ॥ ११ ॥  
 न । पा॒पासः । म॒नाम॑हे । न । अ॒राया॑सः । न । ज॒ह्वः ।  
 यत् । इत् । नु । इ॒द्रं । वृष॑णं । स॒चा । सु॒ते । सखा॑यं । कृ॒णवाम॑हे ॥ ११ ॥

वयमिद्रं पापासः पापा अकृतपुण्या ब्रह्मचर्यव्रतादिरहिता न मन्यामहे । न मन्यामहे । तथारायासो अराया अधना वाहविका वा न मन्यामहे । न जह्वोऽज्वलना अनपयो न मन्यामहे । कृतव्रतनियमादिपुण्या दानवन्तोऽभिसहितास्तं शुभ इत्युपिरात्मानमाह । यद्विषादेव कारणात्विदानीं वृषणं वर्षकमिद्रं सुते स्तोमैऽभिपुते सचा सहिताः सखायं कृणवामहे कुर्मः तस्मात्पापादिरहिता मन्यामहे । पापादिविशिष्टानामिद्रसाहाय्यकरणासंभवात् । अच न पापा मन्यामहे । णि० ६. २५ । इत्यादिषिषत्तं द्रष्टव्यं ॥

उ॒यं यु॒युज्म॒ पृत॑नासु सास॒हिमृ॑ण॒काति॑मदा॒भ्यं ।  
 वेदा॑ भूमं चि॒त्सनि॑ता र॒थीत॑मो वा॒जिनं॑ यमि॒द्रं न॑शत् ॥ १२ ॥  
 उ॒यं । यु॒युज्म॒ । पृत॑नासु । स॒सहि॑ । ऋ॒णऽका॑तिं । अ॒दाभ्यं॑ ।  
 वेद॑ । भूमं । चि॒त् । स॒निता॑ । र॒थिऽत॑मः । वा॒जिनं॑ । यं । इत् । ऊं इति॑ । न॑शत् ॥ १२ ॥

उयमुग्रूर्ध्ववक्षमिद्रं युयुज्म । योजयामः । कीदृशमिद्रं । पृतनासु संग्रामेषु सासहिं शत्रूणामभिभविताः मृणकातिमृणभूतक्षुतिं । यक्षी क्षुतिर्ह्यणवदवक्षं क्रियते तं तादृशं । अथवा अणवदवक्षस्त्वपदक्षुतिकं । अदाभ्यं केनाप्यहिंस्रं । य इन्द्रो भूमं चिद्रज्ज्वलेषु धमयशीलमेव वाजिनं वक्षवन्तमद्यं रथीतमो रथस्वामी वेद वेत्ति गृह्णाति तद्वत् सवित्तेन्द्रो वाजिनं हविष्यन्तं यमिष्यमेव जनं बहूनां यजमानानां मध्ये नश्यत् आप्नोति तमिद्रमिति । ते वयमिति वा योज्यं । वयं युयुज्मेति पक्षे व्यत्ययेन वक्षवचनं ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवनेऽच्छावाकस्त यत इन्द्रेति वैकल्पिकः स्तोत्रियश्रुचः । सूचितं च । यत इन्द्र मयामहे यथा गीरो अपा कृतं । आ० ७. ४. इति ॥ दुःस्वप्नदर्शनेऽप्येतदादिसूक्तशेषो जप्यः । आ० गु० ३. ११. २. ॥

यत॑ इ॒द्र भ॒याम॑हे ततो॑ नो॒ अभ॑यं कृ॒धि ।  
 म॒घव॑ज्ज॒ग्धि॒ तव॑ तन्न॒ ऊ॒तिभि॑र्वि॒ द्विषो॑ वि॒ मृधो॑ ज॒हि ॥ १३ ॥  
 यतः॑ । इ॒द्र । भ॒याम॑हे । ततः॑ । नः॑ । अ॒भयं॑ । कृ॒धि ।  
 म॒घऽव॑न । ज॒ग्धि॒ । तव॑ । तत् । नः॑ । ऊ॒तिऽभिः॑ । वि॒ । द्विषः॑ । वि॒ । मृ॒धः । ज॒हि ॥ १३ ॥



हे इंद्र यतो हिंसकान्नयामहे वयं ततो नोऽस्माभ्यममयं कृधि । कुब । हे मधवन् शग्धि शक्नो भवसि नोऽस्माभ्यममयं कर्तुं तव तत्तत्कृतिमी रचयै रचयिः पुरयिः । किंच वि जहि दिवोऽस्मद्देष्टुन् । वि जहि मृधोऽस्माभिसक्वाण् ॥

त्वं हि राधस्यते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः ।

तं त्वा वयं मधवन्निद्रं गिर्वेणः सुतावन्तो हवामहे ॥१४॥

त्वं । हि । राधःपते । राधसः । महः । क्षयस्य । असि । विधतः ।

तं । त्वा । वयं । मधऽवन् । इंद्र । गिर्वेणः । सुतऽवन्तः । हवामहे ॥१४॥

हे राधस्यते धनस्वामिन् त्वं हि त्वं खलु महो महतो राधसो धनस्य धनस्य च गृहस्य च वर्धयितासि हि खलु । सामर्थ्यादेवं सज्यते । कस्य राधसो गृहस्य च वर्धय इति उच्यते । विधतः परिचरतो यजमानस्य । तं तावत्तुं त्वा त्वां वयं हे मधवन्निद्रं गिर्वेणो गीर्भिर्वननीय सुतावन्तोऽभिपुतसोमा हवामहे । आद्रयाम ॥

इंद्रः स्पृकृत वृचहा परस्या नो वरेण्यः ।

स नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं स पश्चात्पातु नः पुरः ॥१५॥

इंद्रः । स्पृद । उत । वृचऽहा । परऽपाः । नः । वरेण्यः ।

सः । नः । रक्षिषत् । चरमं । सः । मध्यमं । सः । पश्चात् । पातु । नः । पुरः ॥१५॥

अचमिद्रः स्पृद सर्वस्य ज्ञाता । सप्रतिष्ठागकर्मा । उतायं वृचहा वृचहता परस्याः परपासयिता नोऽस्माकं वरेण्यो वरणीयः । स इंद्रो नोऽस्माकं । पुत्रमिति शेषः । रक्षिषत् । रक्षतु । चरमं पुत्रं तथा स रक्षिषत् । स मध्यमं पुत्रं रक्षिषत् । स नोऽस्मान् पश्चाद्रक्षिषत् । नः पुरः पुरस्ताद्रक्षिषत् ॥ ३८ ॥

त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इंद्र नि पाहि विश्वतः ।

आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ॥१६॥

त्वं । नः । पश्चात् । अधरात् । उत्तरात् । पुरः । इंद्र । नि । पाहि । विश्वतः ।

आरे । अस्मत् । कृणुहि । दैव्यं । भयं । आरे । हेतीः । अदेवीः ॥१६॥

हे इंद्र त्वं नोऽस्मान्पश्चात्पश्चात्पश्चात्पुरः पूर्वमागादधरादधीमागात् । एतदुपरिमाणस्योपलक्षणं । उत्तरादुत्तरमागात् । एतद्विषयस्याप्युपलक्षणं । किं वज्रना विश्वतः सर्वस्वात्मदेशान्नि पाहि । हे इंद्र दैवं मयमसदस्यत्त आरे दूरे कृणुहि । कुब । तथादेवीरासुराणि हेतीरायुधान्यारे कृणुहि ॥

अद्याद्या श्वःश्व इंद्र चास्व परे च नः ।

विश्वो च नो जरितृन्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥१७॥

अद्यऽअद्य । श्वऽश्वः । इंद्र । चास्व । परे । च । नः ।

विश्वो । च । नः । जरितृन् । सत्पते । अहा । दिवा । नक्तं । च । रक्षिषः ॥१७॥

अद्याद्य यद्यद्यद्वाच्यमहरसि तत्र सर्वत्र एवं श्वःश्वस्त्रास । रक्ष । तथा परे च परस्मिन्सृतीयेऽहनि च चास । हे सत्पते सतां पातक विना सर्वाण्यप्यहाहानि सर्वेष्वप्यहःसु नोऽस्माज्जरितृन्रक्षिषः । रक्षसि । तथा दिवा नक्तं च रक्षिषः । रक्षसि रक्ष वा ॥

प्रभंगी शूरो मघवा तुवीमघः संमिच्छो वीर्याय कं ।

उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥१८॥

प्रऽभंगी । शूरः । मघऽवा । तुविऽमघः । संऽमिच्छः । वीर्याय । कं ।

उभा । ते । बाहू इति । वृषणा । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । नि । या । वज्रं ।

मिमिक्षतुः ॥१८॥

अयं मघवेन्द्रः प्रभंगी प्रभवन्गशीलः शूरस्तुवीमघः प्रभूतधनः संमिच्छः सम्यङ्मिच्छयिता । मिमर्षं । वीर्याय शूराणां वीर्यकरणाय । कमिति पादपूरणः । एवंमहानुभावो भवति । अथ प्रत्यक्षवादः । हे इंद्र त उभोभावपि बाहू वृषणा वर्षको कामाणां हे शतक्रतो वज्रप्रद्य या यौ वज्रमायुधं नि मिमिक्षतुः परिगृहीतः ॥ ॥३९॥

प्रो अस्मा इति दादशर्चं तृतीयं सूक्तं काण्वस्य प्रगाथस्त्वर्थं । पंचपदा पंक्तिः । सप्तम्यायासिक्तो बृहत्त्वः । इंद्रो देवता । अचानुकमणिका । प्रो अस्मै दादश प्रगाथः पांक्तं सप्तम्यायास तिस्रो बृहत्त्व इति ॥ विविचयोगो वैगिकः

प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति ।

उक्थैरिंद्रस्य माहिनं वयो वर्धेति सोमिनो भद्रा इंद्रस्य रातयः ॥१॥

प्रो इति । अस्मै । उपऽस्तुतिं । भरत । यत् । जुजोषति ।

उक्थैः । इंद्रस्य । माहिनं । वयः । वर्धेति । सोमिनः । भद्राः । इंद्रस्य । रातयः ॥१॥

अस्मा इंद्रायोपस्तुतिमुपेत्य क्रियमाणां स्तुतिं प्रो भरत । प्रकर्षेण संपादयत हे अस्त्रिजः । यथययमिंद्रो जुजोषति सेवते तर्हि भरतेति । सोमिनः सोमप्रियस्तेंद्रस्य स्वभूतं माहिनं महद्वयोऽन्नं सोमस्यचणमुक्थैः शस्त्रैर्वर्धेति । वर्धयति । भद्राः सुत्वाणि खल्विंद्रस्य रातयो दागानि ॥

अयुजो असमो नृभिरेकः कृष्टीरयास्यः ।

पूर्वीरिति प्र वावृधे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इंद्रस्य रातयः ॥२॥

अयुजः । असमः । नृऽभिः । एकः । कृष्टीः । अयास्यः ।

पूर्वीः । अति । प्र । वावृधे । विश्वा । जातानि । ओजसा । भद्राः । इंद्रस्य । रातयः ॥२॥

अयुजोऽसहायोऽसमोऽसदृशोऽन्यैर्गुभिर्देवैरेको मुख्योऽयास्य उपवपयितुमशक्यः पूर्वीः कृष्टीः पूर्वतन्यः प्रजा अति प्र वावृधे । अतिप्रवर्धते । किंच विश्वा सर्वाणि जातानीदानीमुत्पन्नान्योजसा बलेनाति प्र वावृधे । भद्रा इंद्रस्य रातयः । अथवा । अयमुपिरयुजोऽसहायोऽन्यैरसदृश एक एव सन् पूर्वीः प्रजा जातानि सर्वाण्यप्यतिक्रम्य वर्धते । शिष्टं समानं ॥

अहितेन चिद्वेता जीरदानुः सिषासति ।

प्रवाच्यमिंद्र तत्तव वीर्याणि करिष्यतो भद्रा इंद्रस्य रातयः ॥३॥

अहितेन । चित् । अवेता । जीरऽदानुः । सिषासति ।

प्रऽवाच्यं । इंद्र । तत् । तव । वीर्याणि । करिष्यतः । भद्राः । इंद्रस्य । रातयः ॥३॥



अयं वीरदातुः धिप्रदान इन्द्रोऽहितेनायोचितेनाप्रितेन विद्वत्तारणवतायेन विधासति । संमत्तुमिच्छति । तस्मात्ते इन्द्र वीर्याणि सामर्थ्यानि करिष्यतस्वयं महत्त्वं प्रयाच्यं । सुखमित्यर्थः ॥

आ याहि कृण्वाम ते इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना ।

येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥४॥

आ । याहि । कृण्वाम । ते । इन्द्र । ब्रह्माणि । वर्धना ।

येभिः । शविष्ठ । चाकनः । भद्रं । इह । श्रवस्यते । भद्राः । इन्द्रस्य । रातयः ॥४॥

हे इन्द्र आ याहि । आगच्छ । ते कृण्वाम । किं । ब्रह्माणि परिवृढानि सुतिलक्षणाणि कर्माणि । कीदृशानि । वर्धनोत्साहवर्धकाणि । येभिः कर्मभिर्हे शविष्ठातिशयेन बलवस्तिन्द्र चाकनः कामयसे । किं । भद्रं कर्तुं । कस्य । श्रवस्यतेऽस्मिच्छते सोचे ॥

धृषतश्चिद्वृषन्मनः कृणोर्षीन्द्र यत्नं ।

तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥५॥

धृषतः । चित् । धृषत् । मनः । कृणोर्षि । इन्द्र । यत् । त्वं ।

तीव्रैः । सोमैः । सपर्यतः । नमःऽभिः । प्रतिऽभूषतः । भद्राः । इन्द्रस्य । रातयः ॥५॥

हे इन्द्र धृषतश्चिद्वृष्टादपि धृषवृष्टं मनः कृणोषि । अत्यंतं धृष्टं करोषि । यद्यस्मात्त्वं तीव्रिर्मद्वज्रैः सोमैः सपर्यतो पूजयतो नमोभिर्नमस्कारेण प्रतिभूषतोऽसंशुर्वतो यजमानस्याभिमतं दित्सतीति शेषः ॥

अव चष्ट ऋचीषमोऽवताँ इव मानुषः ।

जुष्टी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥६॥

अव । चष्टे । ऋचीषमः । अवतान्ऽइव । मानुषः ।

जुष्टी । दक्षस्य । सोमिनः । सखायं । कृणुते । युजं । भद्राः । इन्द्रस्य । रातयः ॥६॥

अयमिन्द्र ऋचीषम ऋचा सुखा समसाधा परिच्छिन्नः सन्नव चष्टे । पञ्चात्यनुयहेणास्मान् । तत्र दृष्टांतः । मानुषो मनुष्योऽवतानवटान् कूपादिप्रदेशानिव । वृद्धा च जुष्टी प्रीतोऽयं दक्षस्य प्रवृद्धस्य सोमिनो यजमानस्य युजं युज्यमात्मानं सखायं कृणुते । करोति । तस्याभिमतं साधयतीत्यर्थः । अथवा । तृपितो मनुष्यो बलपूर्णानवटानिव सुतः सन् पश्यति सोमं पातुं । पश्चादपेक्षितं तं युज्यमानं सोमं जुष्टी शैवित्वा दक्षस्य सोमिनः सखायं कुरुते ॥ ४० ॥

विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः ।

भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥७॥

विश्वे । ते । इन्द्र । वीर्यं । देवाः । अनु । क्रतुं । ददुः ।

भुवः । विश्वस्य । गोऽपतिः । पुरुऽस्तुत । भद्राः । इन्द्रस्य । रातयः ॥७॥

हे इन्द्र ते तव वीर्यं सामर्थ्यं क्रतुं प्रज्ञां चान्वनुकृत्य विश्वे सर्वे देवा ददुः । दधुः । धारयन्ति वीर्यं प्रज्ञां च । तव बलेन प्रज्ञया च तेऽपि बलिनः प्रज्ञावंतश्च भवंतीत्यर्थः । तादृशस्त्वं गोपतिः प्रसिद्धानां गवासुद-

कानां क्षुतिवचसो वा पतिसुवः । भवसि । विश्वस्येतत्पदांतर्गतस्यापि गोशब्दस्य विशेषः । हे पुष्टत ब्रह्मिः  
क्षुतेद्र भवसीति समन्वयः ॥

गृणे तदिद्र ते शर्व उपमं देवतातये ।

यक्षंसि वृचमोजसा शचीपते भद्रा इंद्रस्य रातयः ॥ ८ ॥

गृणे । तत् । इंद्र । ते । शर्वः । उपमं । देवतातये ।

यत् । हंसि । वृचं । ओजसा । शचीपते । भद्राः । इंद्रस्य । रातयः ॥ ८ ॥

हे इंद्र ते तव तच्छ्रवो वक्षमुपममंतिकं देवतातये यजमानाय यज्ञार्थं वा गृणे । क्षुवे । यक्षसांश्च शचीपते  
वृचमोजसा वक्षेन हंसि तस्यान्ते श्रवो गृणे ॥

समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा ।

विदे तदिद्रुषेतनमधं श्रुतो भद्रा इंद्रस्य रातयः ॥ ९ ॥

समनाऽइव । वपुष्यतः । कृणवन् । मानुषा । युगा ।

विदे । तत् । इंद्रः । चेतनं । अधं । श्रुतः । भद्राः । इंद्रस्य । रातयः ॥ ९ ॥

समनेव समानमनस्ता योषिदिव सा यथा वपुष्यतो वपुरिक्ततः पुष्पाण् छणवत् करोति स्ववशान् एवम-  
यमिन्द्रो माणुषा मनुष्यान् युगा युगानि कालान् संवत्सरायनर्तुमासादीन्विदे । लभयति । तद्युगनिर्माणात्मकं  
कर्मैद्रुषेतनं सर्वस्य प्रज्ञापकं छतवानिति शेषः । अधार्थिवं छात्वा श्रुतः सर्वत्र ख्यातोऽभूत् ॥

उज्जातमिद्र ते शर्व उत्वामुत्तव क्रतुं ।

भूरिगो भूरि वावृधुर्मघवन्तव शर्मणि भद्रा इंद्रस्य रातयः ॥ १० ॥

उत् । जातं । इंद्र । ते । शर्वः । उत् । कां । उत् । तव । क्रतुं ।

भूरिगो इति भूरिऽगो । भूरि । ववृधुः । मघऽवन् । तव । शर्मणि । भद्राः । इंद्रस्य ।

रातयः ॥ १० ॥

हे इंद्र उत् । अयं व्यवहितेनापि वावृधुरित्यनेन संबध्यते । उद्वर्धयति सोमेन । किं । ते श्रवो वक्षं । न  
केवलं वक्षं किंतु त्वामुद्वर्धयति सुत्यादिना । यज्ञात्तव क्रतुं प्रज्ञां स्वानुकूलामुद्वर्धयति । भूरीत्येतत्प्रत्याख्यातं  
संबध्यते । अतिप्रभूतमुद्वर्धयतीत्यर्थः । क एवं कुर्वतीति उच्यते । हे भूरिगो वज्रपशो हे मघवन्धनवज्रिन्द्र तव  
शर्मणि लदीये मुखे ये वर्तन्ते ते च कुर्वतीति ॥

अहं च त्व च वृचहन्त्सं युज्याव सनिभ्य आ ।

अरातीवा चिद्विबोऽनु नौ शूर मंसते भद्रा इंद्रस्य रातयः ॥ ११ ॥

अहं । च । त्वं । च । वृचऽहन् । सं । युज्याव । सनिऽभ्यः । आ ।

अरातिऽवा । चित् । अद्रिऽवः । अनु । नौ । शूर । मंसते । भद्राः । इंद्रस्य । रातयः ॥ ११ ॥

हे वृचहन्निन्द्र त्वं चाहं च सं युज्याव । संगती भवाव । कियदवधीति उच्यते । सनिभ्य आ यावता कालेन  
धनानि लभ्यते तावत्कालं । नौ संगतयोश्चावयोर्हं अद्रिबो वज्रवज्रिन्द्र अरातीवादानोऽपि जनस्त्वहत्तधन-  
स्वान् मंसते । अनुमतिं करोति ॥



सत्यमिद्धा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतं ।

महौ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १२ ॥

सत्यं । इत् । वै । जुं इति । तं । वयं । इन्द्रं । स्तवाम् । न । अनृतं ।

महान् । असुन्वतः । वधः । भूरि । ज्योतींषि । सुन्वतः । भद्राः । इन्द्रस्य । रातयः ॥ १२ ॥

यद्यं प्रगाथास्तमिन्द्रं सत्यमितस्तमेव स्तवाम । वानुतमसत्वं न स्तवाम । अस्माभिस्तु गुणाः सत्या एव संतु वानुता इत्यर्थः । सुखसिद्धस्य संबन्धसुन्वतोऽयदुर्वधो महान्मृतो भवति । भूरि ज्योतींषि बह्वन्तो-  
मान्सुन्वतोऽभिषवं कुर्वतो यजमानसिद्धस्तोऽनुयहो महान्भवतीत्यर्थः ॥ ४१ ॥

स पूर्वो इति शदशर्थं चतुर्थं सूक्तं । अथानुक्रमयिका । स पूर्वो गायत्रमाया चतुर्थ्यादिदे सप्तमी वानुभो गायत्रेऽत्या देवी विदुषिति । प्रथमाचतुर्थीपंचमीसप्तम्यद्यतस्रोऽनुभोऽस्ते बद्रा इत्यत्या विदुषवशिष्टा गायत्र्यः । अंत्याया देवा देवता शिष्टा ऐन्द्रः ॥ षष्ठेऽहनि मरुत्वतीयस्याथशुचः प्रतिपत् । सूचितं च । स पूर्वो महानां चय इन्द्रस्य सोमा इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरी । आ० ८. १. इति ॥

स पूर्वो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे ।

यस्य द्वारा मनुष्यिता देवेषु धियं आनजे ॥ १ ॥

सः । पूर्वः । महानां । वेनः । क्रतुभिः । आनजे ।

यस्य । द्वारा । मनुः । पिता । देवेषु । धियः । आनजे ॥ १ ॥

स पूर्वो मुख्यो महानां पूज्यानां यजमानानां क्रतुभिः कर्मभिर्निमित्तभूतिर्वेनः कांतस्तेषां हविः कामयमान आनजे । आगच्छति । यत्सिद्धस्य द्वारा द्वाराणि प्राप्त्युपायानि धियः कर्माणि देवेभ्येति मध्ये पिता सर्वेषां पालको मनुरानजे प्राप । आनजिः प्राप्तिकर्मो ॥

दिवो मानं नोत्सदन्तोमपृष्ठासो अद्रयः । उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥ २ ॥

दिवः । मानं । न । उत् । सदन् । सोमऽपृष्ठासः । अद्रयः । उक्था । ब्रह्म । च । शंस्या ॥ २ ॥

दिवो बुलोकस्य मानं निर्मातारमिन्द्रं नोत्सदन् । नोत्सृजंतु । के । सोमपृष्ठासः सोमप्रष्टारः सोमानिष-  
वकर्तारोऽद्रयो यावाणः । किंचोक्तयोक्त्यानि शस्त्राणि ब्रह्म च ब्रह्माणि सोचाणि शंस्या शंसनीयानि भवन्तीति शेषः । यद्वा । यानि सोचाणि शस्त्राणि च संति तानीन्द्रं नोत्सृजत्विति समन्वयः ॥

स विद्वाँ अंगिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप । स्तुषे तदस्य पौंस्यं ॥ ३ ॥

सः । विद्वान् । अंगिरः । भ्यः । इन्द्रः । गाः । अवृणोत् । अप । स्तुषे । तत् । अस्य । पौंस्यं ॥ ३ ॥

स विद्वानुपायञ्च इन्द्रोऽंगिरोभ्यस्तेषामर्थाय गाः पणिभिरपहृताः पिहिता अपावृणोत् । अपवारितवान् । तत्तादृशमस्य पौंसं पुंसत्वं सामर्थ्यं क्षुषे । क्षीमि ॥

स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाक्स्य वक्षणिः ।

शिवो अर्कस्य होमन्यस्मचा गन्वसे ॥ ४ ॥

सः । प्रत्नऽथा । कविऽवृधः । इन्द्रः । वाक्स्य । वक्षणिः ।

शिवः । अर्कस्य । होमनि । अस्मऽचा । गन्तु । अवसे ॥ ४ ॥

स इन्द्रः प्रत्नया प्रत्नवत्पूर्वस्मिन्काशि यथा तद्वदिदानीमपि कविवृधो मेधाविनां सोतृणां वर्धयिता वाकस्य सोतुर्वर्धयिर्वोढा शिवः सुखकरोऽर्कस्य । अर्कमन्नमर्चनीयत्वादर्वणसाभनत्वाद्वा । तादृशस्य सोमस्य होमनि होमे सोऽस्यचास्यासु निमित्तभूतेष्ववसे रचयाम गच्छतु ॥

आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः ।

श्वाचमर्का अनूषतेन्द्र गोचस्य दावने ॥ ५ ॥

आत् । ऊं इति । नु । ते । अनु । क्रतुं । स्वाहा । वरस्य । यज्यवः ।

श्वाचं । अर्काः । अनूषत । इन्द्र । गोचस्य । दावने ॥ ५ ॥

आद्वनंतरमेव न्वय हे इन्द्र ते तव क्रतुं कर्मानु क्रमेण । अनुषतेति संबंधः । अनुक्रमेण सुवर्तति । के । स्वाहा वरस्य स्वाहादेव्याः पतिरभिर्यज्यवो यष्टारः । त्वदर्धमपौ यागं कुर्वत इत्यर्थः । तादृशा अर्का अर्चयितारः सोतारः । स्वाचमिति चिप्रनाम । अन्यदेवतासुतिरूपविष्ववमकृत्वातिशीघ्रमतिदीर्घं सुवर्ततीत्यभिप्रायः । किमर्थं सुवर्ततीति उच्यते । गोचस्य दावने धनस्य दानाय ॥

इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्तानि च । यमर्का अध्वरं विदुः ॥ ६ ॥

इन्द्र । विश्वानि । वीर्या । कृतानि । कर्त्तानि । च । यं । अर्काः । अध्वरं । विदुः ॥ ६ ॥

अस्मिन्निन्द्रे विश्वानि सर्वाणि वीर्या वीर्याणि सामर्थ्यानि कृतानि कर्त्तानि च कर्तव्यानि च वर्तत इति शेषः । यमिन्द्रमर्काः सोतारोऽध्वरमहिंसकं विदुः जानन्ति तस्मिन्निन्द्र इति ॥ ४२ ॥

पंचमेऽहनि मरुत्वतीये यत्पांचजन्येति वृचः प्रतिपत् । सूचितं च । यत्पांचजन्यया विशेन्द्र इत्सोमपा एक इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरी । आ० ७. १२. इति ॥

यत्पांचजन्यया विशेन्द्रे घोषा अमृक्षत ।

अस्तृणावर्हणा विपोऽर्यो मानस्य स क्षयः ॥ ७ ॥

यत् । पांचऽजन्यया । विशा । इन्द्र । घोषाः । अमृक्षत ।

अस्तृणात् । वर्हणा । विपः । अर्यः । मानस्य । सः । क्षयः ॥ ७ ॥

यथादा पांचजन्यया । निषादपंचमासत्वारो वर्षाः पंच जनाः । तचभवया विशा प्रजयेन्द्रे घोषाः सुतयो ऽक्षत सज्यते तदानीमयमिन्द्रोऽस्तृणात् हिनस्ति शत्रून् वर्हणा स्वमहत्त्वेन । अनन्यसहायेनेत्यर्थः । तादृशः सोऽर्थ इन्द्रो विपो मेधाविनः सोतुर्मम मानस्य पूजायाः सत्कारस्य चयो निवासो भवति ॥

इयमु ते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या । प्रार्वश्चक्रस्य वर्तनिं ॥ ८ ॥

इयं । ऊं इति । ते । अनुऽस्तुतिः । चकृषे । तानि । पौंस्या । प्र । आ० वः । चक्रस्य । वर्तनिं ॥ ८ ॥

इयमिदानीं क्रियमाणानुष्टुतिरनुकूला सुतिसौ तव स्वभूता । कृतस्त इति उच्यते । तानि प्रसिद्धानि वृचवधादीनि पौंस्या पुंस्त्वानि यतश्चकृषे । अतस्त इत्यर्थः । हे इन्द्र चक्रस्य रथाधारस्य वर्तनिं मार्गं प्रावः । प्रारवः । अथाक्षयज्ञगमनाय रचःकृता चक्रमार्गवाधा यथा न भवति तथा रचसोत्यर्थः ॥

अस्य वृणो व्योर्दन उरु क्रमिष्ट जीवसे । यवं न पृश्न आ ददे ॥ ९ ॥

अस्य । वृणः । विऽओर्दने । उरु । क्रमिष्ट । जीवसे । यवं । न । पृश्नः । आ । ददे ॥ ९ ॥



अस्य वृष्णो वर्षितुरिन्द्रस्य व्योदने विविधेऽग्ने जम्बे सति जीवसे जीवनायोश्च विस्तीर्णं क्रमिष्ट पदनिधानं करोति सर्वो लोकः । अथर्वेन्द्रस्य स्वभूतेऽग्ने जम्बे जम्ब्ये वा सति पदन्वासं करोति । तथा कृत्वा यवं न पश्यो यवं पश्य इव सर्वो जन आ ददे आदत्ते सुतादक्षात् ॥

तद्धाना अवस्यवो गुष्माभिर्दक्षपितरः । स्याम मरुत्वतो वृधे ॥१०॥

तत् । दधानाः । अवस्यवः । गुष्माभिः । दक्षऽपितरः । स्याम । मरुत्वतः । वृधे ॥१०॥

तत्सोचं दधाना धारयंतोऽवस्यवो रसाकामा वयं हे अश्विनः गुष्माभिः । सहिता इति वा योज्यं । तादृशा दक्षपितरः । दक्षोऽन्नं । तस्य पितरः यत्नकाः स्वामिनः स्वाम । किमर्थं । मरुत्वतो मरुत्सिद्धत इन्द्रस्य वृधे वर्धनाय यागाय ॥

बह्वृत्त्रियाय धाक् ऋक्भिः शूर नोनुमः । जेषामिंद्र त्वया युजा ॥११॥

बंद । बह्वृत्त्रियाय । धाक् । ऋक्भिः । शूर । नोनुमः । जेषाम । इंद्र । त्वया । युजा ॥११॥

बंद सत्यमृत्त्रियायतौ भवाय । अतुशब्दो यागकालोपलक्षकः । यागकाले प्रादुर्भूताय धाक् कक्षायतेवसे तुभ्यं हे शूरिंद्र ऋक्भिर्मैत्रेनोनुमः । अतिशयेन शुभः । हे इंद्र सततं त्वया युजा सहायभूतेन जेषाम जयेम शत्रून् ॥

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृचहत्ये भरहूतो सजोषाः ।

यः शंसते स्तुवते धारिं पृज इंद्रज्येष्ठा अस्मौ अवंतु देवाः ॥१२॥

अस्मे इति । रुद्राः । मेहना । पर्वतासः । वृचऽहत्ये । भरहूतो । सऽजोषाः ।

यः । शंसते । स्तुवते । धारिं । पृजः । इंद्रऽज्येष्ठाः । अस्मान् । अवंतु । देवाः ॥१२॥

अस्मे अस्मान् रुद्रा मेहनीदकसेचनयुक्ताः पर्वतासो मेघाश्च वृचहत्ये वृचहननसाधने भरहूतो संयामाङ्गानि सजोषा अस्मात्समानप्रीतिश्च य इंद्रः शंसते शस्त्रं पठते स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते च यजमानाय पश्यो बलवान् वेगवान्वा धारिं गच्छति स इंद्रश्चैव इंद्रज्येष्ठा देवा अस्मानवंतु । रचंतु । अस्मानिति पूरणः । अथवैवं योज्यं । रुद्रा रुद्रपुत्रा मेहना सेचनेन युक्ताः पर्वताः पर्वतसदृशाः पूरणवंतः प्रीणनवंतो वा । पर्व पुनः पुण्यतिः प्रीणतिर्वैति निरुक्तं । १. २०. । वृचहत्ये भरहूतो सजोषाः सजोषसः सहायभूता मरुतो देवा इंद्रज्येष्ठा उत्कलचण इंद्रास्मानवत्विति ॥ ४३ ॥

उत्वा मंदत्विति द्वादशर्चं पंचमं सूक्तं प्रगाथस्वार्थं । प्राग्वत्सप्रपरिभाषया गायत्रिर्मेद्रं । उत्वेत्यनुक्रमणिका ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

उत्वा मंदंतु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अवं ब्रह्मद्विषो जहि ॥१॥

उत् । त्वा । मंदंतु । स्तोमाः । कृणुष्व । राधः । अद्रिऽवः । अवं । ब्रह्मऽद्विषः । जहि ॥१॥

हे इंद्र त्वा त्वां स्तोमाः स्तुतय उदुत्कृष्टं मंदंतु । मादयंतु । कृणुष्व कुरु राधोऽन्नं हे अद्रिवो ब्रह्मविद्रं ब्रह्मभ्यं । किंच ब्रह्मद्विषो ब्राह्मणद्विष्टुनव जहि ॥

पदा पृणीरराधसो नि बाधस्व महौ असि । नहि त्वा कश्चन प्रति ॥२॥

पदा । पृणीन् । अराधसः । नि । बाधस्व । महान् । असि । नहि । त्वा । कः । चन । प्रति ॥२॥

पयोर्ध्वानराधसो यष्टव्यधनरहितान् केवलधनान् पदा पादेनातिक्रम्य वि नितरां बाधत् । त्वा त्वां तव कचन कचिदपि देवोऽसुरो मनुष्यो वा प्रति प्रतिनिधिः सद्यो न ह्यसि खलु ॥

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानां । त्वं राजा जनानां ॥३॥

त्वं । ईशिषे । सुतानां । इन्द्र । त्वं । असुतानां । त्वं । राजा । जनानां ॥३॥

हे इन्द्र त्वं सुतानामभिपुतानां सोमानामीशिषि । ईश्वरो भवसि । तथा त्वमसुतानां वध्याकारि वर्तमानां चेशिषि । त्वं जनानां सर्वेषां राजा भवसि ॥

एहि मेहि क्षयो दिव्याऽघोषञ्चर्षणीनां । ओभे पृणासि रोदसी ॥४॥

आ । इहि । प्र । इहि । क्षयः । दिवि । आऽघोषन् । चर्षणीनां । आ । उभे इति । पृणासि । रोदसी इति ॥४॥

हे इन्द्र एहि । आगच्छ । तथा मेहि । प्रगच्छ । दिवि सुखोक्तात् । किं । यथो निवासं । किं कुर्वन् । आघोषञ्चर्षणं कुर्वन् । किमर्थं । चर्षणीनां मनुष्याणामर्थाय । अथवा । इविः स्त्रीकृत्य मेहि । सुखेन गच्छ । दिवमाघोषन् यजमानं सुवन् । उभे रोदसी आवापुथिवावा पृणासि । आपूरयसि तेजसा वृथा वा ।

त्यं चित्पर्वतं गिरिं शतवतं सहस्रिणं । वि स्तोतृभ्यो हरोजिथ ॥५॥

त्यं । चित् । पर्वतं । गिरिं । शतऽवतं । सहस्रिणं । वि । स्तोतृऽभ्यः । हरोजिथ ॥५॥

हे इन्द्र त्वं त्वं चित्तं । चिदिति पूरणः । पर्वतं पर्वतं गिरि मेघं । उभयोर्मैघनामत्वादेको योगकृदो द्रष्टव्यः । शतवं शतोदकवंतं तथा सहस्रियमपरिमितवृष्टिं मेघं स्तोतृभ्योऽर्थाय वि हरोजिथ । विषय वक्ष्ये ॥

वयमु त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे । अस्माकं काममा पृण ॥६॥

वयं । ऊं इति । त्वा । दिवा । सुते । वयं । नक्तं । हवामहे । अस्माकं । कामं । आ । पृण ॥६॥

हे इन्द्र वयं त्वा त्वां दिवाहवि सुते सोमेऽभिपुते हवामहे । आह्वयामः । तथा वयं नक्तं हवामहे । आहृत आगत्यास्माकं काममा पृण । आपूरय ॥ ॥४४॥

क्र० स्य वृषभो युवा तुविषीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्तं संपर्यति ॥७॥

क्र० । स्यः । वृषभः । युवा । तुविऽयीवः । अनानतः । ब्रह्मा । कः । तं । संपर्यति ॥७॥

स्य स वृषभो वर्षिता युवा नित्यतरुणसुविषीवो विसीर्यकंधरोऽनानतः कदाचिदप्यगवन्त इन्द्रः क्र कृच वर्तत इति को जानातीत्यर्थः । को ब्रह्मा सोऽऽ त्वा त्वां संपर्यति । पूजयति ॥

कस्य स्वित्सवनं वृषा जुजुष्वो अव गच्छति । इन्द्रं क उ स्विदा चके ॥८॥

कस्य । स्वित् । सवनं । वृषा । जुजुष्वान् । अव । गच्छति । इन्द्रं । कः । ऊं इति । स्वित् ।

आ । चके ॥८॥

कस्य स्वित्सवनं । स्विदिति विचिकित्सायां । वृषा वर्षितेन्द्रो जुजुष्वान् प्रीयमाणोऽव गच्छति । क उ को वा यजमान इन्द्रमा चके । जानाति सोऽनु । स्विदिति पूरणः ॥



कं ते दाना असक्षत वृचहन्कं सुवीर्यं । उक्थे क उं स्विदंतमः ॥९॥

कं । ते । दानाः । असक्षत । वृचऽहन् । कं । सुऽवीर्यं । उक्थे । कः । ऊं इति ।  
स्वित् । अंतमः ॥९॥

ते त्वां दाना यजमानैर्दत्ता असक्षत । सेवति । हे वृचहन् वृचस्य हतरिद्रं कं कीदृशं त्वामुक्थे शस्ते  
सुवीर्यं शोभनवीर्यं यि स्तोत्राण्यसक्षत । क उं स्विदंतमो चांतिकतमो भवति युधि ॥

द्वितीये पर्याये होतुः शस्तेऽयं ते मानुष इति तुष्टोऽनुष्टुप् । सुषितं च । अयं ते मानुषे जन उहेदमि  
आ० ६-४. इति ॥

अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु सूयते । तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥१०॥

अयं । ते । मानुषे । जने । सोमः । पूरुषु । सूयते । तस्य । आ । इहि । प्र । द्रव । पिब ॥१०॥

अयं सोमस्ते त्वदर्थं तव स्वभूतो वा पूरुषु मनुष्येषु मध्ये मानुषे जने मयि सूयते । अथवा पूरुषानामसु  
राजसु सूयते । तस्य । तमित्यर्थः । तस्येहि । आगच्छ । आगत्य च प्र द्रव यहसमीपं । तथा कृत्वा पिब तं सोमं ॥

अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः । आजीकीये मदितमः ॥११॥

अयं । ते । शर्यणाऽवति । सुऽसोमायां । अधि । प्रियः । आजीकीये । मदिन्ऽतमः ॥११॥

अयमस्माभिरमियुतः सोमस्ते त्वां मदितमो मादयितुमः । अयमधिभ्यत आश्रितः । कुचेति तदुच्यते ।  
शर्यणावति कुचेष्वस्य जघनार्धमवे शरतुण्योपेति सरसि । तत्सरः कुचं वर्तत इति उच्यते । सुषोमायामेतन्ना-  
मिकायां गवां । सा च कुचं वर्तत इति तदुच्यते । आजीकीय एतन्नामके देशे । एवमुक्तप्रकरेणात्यंतदूरदेशे  
वर्तते यः सोमः स एवायं । अभियुतं पिबेत्सुत्तरवान्वयः ॥

तमद्य राधसे महे चारुं मदाय घृष्वये । एहीमिद्र द्रवा पिब ॥१२॥

तं । अद्य । राधसे । महे । चारुं । मदाय । घृष्वये । आ । इहि । ई । इद्र । द्रव । पिब ॥१२॥

तं पूर्वमंच उपवर्णितं चारुं चरणशीलं सोमं महे महते राधसेऽस्माकं धनाय तव घृष्वये शत्रूणां  
घर्षणशीलाय मदाय पिब । हे इन्द्र तदर्थं द्रव । गच्छ शीघ्रं सोमपात्रं प्रति । तदर्थमोमिदानीमेहि ।  
आगच्छ ॥ ॥४५॥

यदिद्र प्रागिति द्वादशर्चं यष्टं सूक्तं प्रगाथस्यार्धं गायत्रमिन्द्र । यदिद्वित्यनुक्तांतं ॥ विनियोगे वैयिकः ॥

यदिद्र प्रागपागुदङ्गवा हूयसे नृभिः । आ याहि तूयमाप्नुभिः ॥१॥

यत् । इद्र । प्राक् । अपाक् । उदक् । न्यक् । वा । हूयसे । नृऽभिः । आ । याहि । तूयं । आप्नुऽभिः ॥१॥

हे इन्द्र त्वं नृभिः कर्त्तुमिरसदीधिरध्वर्थादिभिः प्राग्वापागुदङ्गा न्यम्वा यतः कृतस्त्रिहूयसेऽतस्त्रयं  
तूयमाप्नुभिरानुगामिभिरश्वैरा याहि । आगच्छ ॥

यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे । यद्वा समुद्रे अंधसः ॥२॥

यत् । वा । प्रऽस्रवणे । दिवः । मादयासे । स्वःऽनरे । यत् । वा । समुद्रे । अंधसः ॥२॥

यद्वाथवा दिवो नुलोकस्य प्रस्रवणेऽमृतनिष्यंदनस्थाने मादयासे भावयिषि । यद्वा स्वर्णरे स्वर्गनयने वा

भूषोनेऽन्यस्य यागदेशे मायसि । यदाधसः । अंधोऽज्ञं । तेन तत्कारणमुदकं जप्यते । तस्य समुद्रे समुद्रनाया-  
दानभूतेऽतरिचे मायसि । तत्र तत्र वर्तमानमपि ऊव इत्युत्तरच संबंधः ॥

आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे । इंद्र सोमस्य पीतये ॥३॥

आ । त्वा । गीःऽभिः । महं । उरुं । हुवे । गांऽइव । भोजसे । इंद्र । सोमस्य । पीतये ॥३॥

हे इंद्र त्वा त्वां गीर्भिः क्षुतिभिर्जवे । आह्वयामि । कीदृशं त्वां । महं महान्तमुदं प्रभूतं । किमर्थं । सोमस्य  
पीतये पालाय । इति दृष्टान्तः । भोजसे भोगाय गामिव ॥

आ तं इंद्र महिमानं हरयो देव ते महः । रथे वहंतु विभ्रतः ॥४॥

आ । ते । इंद्र । महिमानं । हरयः । देव । ते । महः । रथे । वहंतु । विभ्रतः ॥४॥

हे इंद्र ते तव महिमानं माहात्म्यं रथे विभ्रतो धारयंतो हरयोऽद्या आ वहंतु । तथा हे देव ते महस्तेजो  
रथे विभ्रतोऽद्या आ वहंतु । अत्र महिम्नो महसश्च पृथगावहनासंभवात्ताभ्यां विशिष्टं वहंत्वित्यर्थः । अथवा  
हिमानं विभ्रतस्ते त्वां रथे वहंतु महो विभ्रतश्च त्वां वहंत्विति योज्यं ॥

इंद्र गृणीष उं स्तुषे महौ उय ईशानकृत् । एहि नः सुतं पिब ॥५॥

इंद्र । गृणीषे । उं इति । स्तुषे । महान् । उयः । ईशानऽकृत् । आ । इहि । नः । सुतं । पिब ॥५॥

हे इंद्र त्वं गृणीषि । उच्यसे । इदं देहीदं कुर्वति । तथा सुय उ । स्तुयसे च । उ इति चार्थे । कीदृशस्त्वं ।  
महान् गृणीः प्रबुध उय उद्गूर्णवत् ईशानस्तद्देश्यकर्ता । तादृशस्त्वमेहि । आगच्छ । आगत्य च नः सुतं  
सोमं पिब ॥

सुतावंतस्त्वा वयं प्रयस्वंतो हवामहे । इदं नो बहिरासदे ॥६॥

सुतऽवंतः । त्वा । वयं । प्रयस्वंतः । हवामहे । इदं । नः । बहिः । आऽसदे ॥६॥

सुतावंतोऽभिषुतसोमवंतः प्रयस्वंतश्चरपुरोडाशाद्यन्नवंतश्च वयं त्वा त्वां हवामहे । आह्वयामः । किमर्थं ।  
इदं नोऽसदीयं बहिर्वर्हिषि यज्ञे बहिषि वासद आसादनाय ॥ ॥४६॥

यच्चिद्धि शश्वतामसींद्र साधारणस्त्वं । तं त्वा वयं हवामहे ॥७॥

यत् । चित् । हि । शश्वतां । असिं । इंद्र । साधारणः । त्वं । तं । त्वा । वयं । हवामहे ॥७॥

हे इंद्र त्वं यच्चिद्धि यस्मात्त्वत्तु शश्वतां बहूनां यजमानानां साधारणोऽसि । चिदिति पूरणः । हीति  
प्रसिद्धा । तं तादृशं साधारणं त्वा त्वां वयं हवामहे । आह्वयामः । इतरेभ्यः पूर्वमिति भावः ॥

प्रातःसवन इदं ते सोम्यमिति होतुः प्रस्थितयाज्या । सूचितं च । इदं ते सोम्यं मधु मिचं वयं हवामहे  
। आ० ५. ५. । इति ॥

इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । जुषाण इंद्र तत्पिब ॥८॥

इदं । ते । सोम्यं । मधु । अधुक्षन् । अद्रिऽभिः । नरः । जुषाणः । इंद्र । तत् । पिब ॥८॥

हे इंद्र ते त्वदर्धमिदं सोम्यं सोमसंबन्धि मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्यावभिरभिवषसाधनैर्नरोऽसदीया अश्वध्या-  
दयः । हे इंद्र तच्चाधु जुषाणः प्रीयमाणः पिब ॥



विश्वीं अर्यो विपश्चितोऽति ख्यस्तूयमा गहि । अस्मे धेहि अवो बृहत् ॥९॥

विश्वान् । अर्यः । विपःऽचितः । अति । ख्यः । तूयं । आ । गहि । अस्मे इति । धेहि ।  
अवः । बृहत् ॥९॥

हे इंद्र अर्यः स्वामी त्वं विश्वान्विपश्चितः क्षीतृगति ख्यः । अतिक्रम्य पश्य । तदर्थं तूयं विप्रमा गहि ।  
आगत्य चास्मै अस्मासु बृहच्छ्रवोऽन्नं यशो वा धेहि ॥

दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनां । मा देवा मघवां रिषत् ॥१०॥

दाता । मे । पृषतीनां । राजा । हिरण्यऽवीनां । मा । देवाः । मघऽवा । रिषत् ॥१०॥

हिरण्यवीनां हिरण्यवीतानां पृषतीनां रावेन्द्रो मे दाता भवतु । हे देवाः मघवेन्द्रो मा रिषत् । रिष्टो  
मा भवतु ॥

सहस्रे पृषतीनामधि चंद्रं बृहत्पृथु । शुक्रं हिरण्यमा ददे ॥११॥

सहस्रे । पृषतीनां । अधि । चंद्रं । बृहत् । पृथु । शुक्रं । हिरण्यं । आ । ददे ॥११॥

अहं पृषतीनां गवां सहस्रेऽध्वपरि धारितं बृहन्नहत्पृथु विष्णुतं चंद्रमाऽह्लादकं शुक्रं निर्मलं हिरण्यमा  
ददे । स्त्रीकरोमींद्रिणाभीतं ॥

नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुरार्धसः । अवो देवेष्वक्रत ॥१२॥

नपातः । दुःऽगहस्य । मे । सहस्रेण । सुऽरार्धसः । अवः । देवेषु । अक्रत ॥१२॥

नपातोऽरचितस्स दुर्गहस्य दुःखं ग्राहमाणस्स मे संबंधिगो जनाः सहस्रेणापरिमितेर्गंद्रक्षेत्रेण गवादि-  
धनेन सुरार्धसः सुधनाः संतो देवेषु प्रीतिषु । इंद्रे प्रीत इत्यर्थः । अवोऽन्नं यशो वाकृत । अन्नमतित्यर्थः ॥ ॥४७॥

तरोभिर्व इति पंचदशर्चं सप्तमं सूक्तं प्रगाथपुत्रस्य कलिरार्धं । प्रथमातृतीयाद्यनुजो बृहत्तो द्वितीया-  
चतुर्थीदियुजः सतोबृहत्तः पंचदशी लघुष्टुप् । तथा चानुक्तमणिका । तरोभिः पंचोणा कलिः प्रागाथः प्रागा-  
थमंत्यानुष्टुप्ति ॥ महाव्रते निष्केवक्ष्ये बार्हतनुवाशीतावेतत्सूक्तं । तथा च पंचमारण्यके सूचितं । तरोभिर्वो  
विददसुमित्तमासुहरति । ऐ० आ० ५. २. ४. इति ॥ अभिष्टोमेऽच्छावाकशस्त्रेऽयं प्रगाथः स्तोत्रियः । तथा च  
सूचितं । तरोभिर्वो विददसुं तरणिरित्तिषासतीति प्रगाथी स्तोत्रियानुष्टुपी । आ० ५. १६. इति ॥ चातुर्विं-  
शिकेऽहन्वयमेव प्रगाथः स्तोत्रियः । सूचितं च । तरोभिर्वो विददसुं तरणिरित्तिषासति । आ० ७. ४. इति ॥

तरोभिर्वो विददसुमिंद्रं सबाध ऊतये ।

बृहन्नायंतः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणं ॥१॥

तरःऽभि० । वः । विदत्ऽवसुं । इंद्रं । सऽबाधः । ऊतये ।

बृहत् । गायंतः । सुतऽसोमे । अध्वरे । हुवे । भरं । न । कारिणं ॥१॥

हे अल्लिखः वो यूयं तरोभिर्वेनेरक्षेपेत् वेनेरिव वा विददसुं वेदयदसुं धनविदकमिंद्रं सबाधो बाधा-  
सहिता ऊतये रचणाद्य बृहत्सामितत्संघं गायंतः संतः परिचरतेति शेषः । ऊचेति तदुच्यते । सुतसोमे सुतसो-  
मेऽध्वरे यज्ञे सोमयामि । अहं च तमिंद्रं ऊवे । आह्वयामि । कमिव । भरं मर्तारं कुटुंबपोषकं कारिणं  
हितकरणाशीलं यथा स्वहितकरणायाह्वयंति पुत्रादयस्तथाभूतमिंद्रं ऊव इति ॥

न यं दुधा वरंते न स्थिरा सुरो मदे सुशिप्रमंधसः ।

य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरिच उक्थ्यं ॥२॥

न । यं । दुधाः । वरंते । न । स्थिराः । सुरः । मदे । सुऽशिप्रं । अंधसः ।

यः । आऽदृत्यं । शशमानाय । सुन्वते । दाता । जरिचे । उक्थ्यं ॥२॥

यं सुशिप्रमिदं दुधा दुधरा असुरादयो न वरंते न वारयंति संयामे । तथा स्थिरा देवा न वरंते । किंच सुरो मरणस्वभावा मरुषा न वरंते । अंधसोऽन्नस्य सोमस्य मदे मदाय सोमपानवनितायादृत्य यः शशमानाय शंसमानाय सुन्वतेऽभिवषं कुर्वते जरिचे स्तोत्रे च दाता भवति । किं । उक्थ्यं सुत्वं धनं । स रेजयतीत्युत्तरच संबन्धः ॥

यः शक्रो मृक्षो अश्वो यो वा कीजो हिरण्ययः ।

स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृत्तिमिदो गव्यस्य वृचहा ॥३॥

यः । शक्रः । मृक्षः । अश्वः । यः । वा । कीजः । हिरण्ययः ।

सः । ऊर्वस्य । रेजयति । अपऽवृत्तिं । इंद्रः । गव्यस्य । वृचऽहा ॥३॥

यः शक्र इन्द्रः स्तोत्राणां मुषः शोधकः परिचरणीयो वा । यश्चाश्वः । अश्वकुशलोऽश्वः । यथवाश्व एति स्वार्थिको यत् । मृषोऽश्वः प्रशालितोऽश्व एव वर्तते । यो वा कीजः । कीज एत्यमुतमाह । किमन्य कथं ज्ञात इति च --- । यश्च हिरण्ययो हिरण्यमयशरीरः स एवमाश्चर्यभूत इन्द्रो वृचहा गव्यस्य गोसमूहस्य । कीदृशस्य । ऊर्वस्य वज्रस्यस्त्रापावृत्तिमपवरणीयं रेजयति । कंपयतीत्यर्थः ॥

निखातं चिद्यः पुरुसंभृतं वसूदिद्वर्षति दाप्नुवे ।

वजी सुशिप्रो हयैश्च इत्करदिद्रः क्रत्वा यथा वशत् ॥४॥

निऽखातं । चित् । यः । पुरुऽसंभृतं । वसु । उत् । इत् । वर्षति । दाप्नुवे ।

वजी । सुऽशिप्रः । हरिऽअश्वः । इत् । कर्त् । इंद्रः । क्रत्वा । यथा । वशत् ॥४॥

निखातं चिद्वर्मा खात्वा स्थापितमपि संभृतं संगृहीतं यागदानादिकं कृत्स्नदृशं पुन वज्र वसु धनमुद्वर्षति उद्वर्षत्येव दागुवे यजमानाय । एवं यो देवः करोति स वजी सुशिप्रः सुहनुर्हयैश्च एवरीतवर्णाश्चयुत इन्द्र एव करोति । केनोपाधिना । क्रत्वा कर्मणा यागेनोपाधिना । यथा वशत् येन प्रकारेण कामयते तथा न एव करोति ॥

यद्वावंधं पुरुषुत पुरा चिच्छूर नृणां ।

वयं तत् इंद्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः ॥५॥

यत् । ववंधं । पुरुऽस्तुत् । पुरा । चित् । शूर । नृणां ।

वयं । तत् । ते । इंद्र । सं । भरामसि । यज्ञं । उक्थं । तुरं । वचः ॥५॥

हे पुरुषुत वज्रभिः कुतेंद्र शूर विक्रांत नृणां जेतृणां स्तोत्राणां सकाशात् पुरा । चिदित्युपमार्थे । तथिदा-  
नीमपि यद्वंधं अचीकमथाः तदेव वयं तुरं तूर्णं ते तुभ्यमिन्द्र सं भरामसि । संभरामः । किं तादिति उच्यते ।  
यद्वा यागयोग्यं हविषकथं शस्त्रं वचो वाच्यं । तव प्रियतमं हविः स्तोत्रं च संभराम इत्यर्थः ॥ ४८८ ॥



सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो मदाय द्युस्य सोमपाः ।

त्वमिद्धि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्टः सुन्वते भुवः ॥६॥

सचा । सोमेषु । पुरुहूत । वज्रिवः । मदाय । द्युस्य । सोमपाः ।

त्वं । इत् । हि । ब्रह्मकृते । काम्यं । वसु । देष्टः । सुन्वते । भुवः ॥६॥

हे पुरुहूत वज्रिविराहत हे वज्रिवो वज्रवन् युष युमन् सोमपाः सोमस्य पातः त्वं सोमेष्वभिगतेषु मदाय सचा सह भवेति श्रेयः । त्वमित्वमेव ब्रह्मकृते सोमकर्षं सुन्वते च काम्यं कमनीयं वसु धनं देष्टो दातुतमो भुवः । भवसि ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि मार्यादिनसवनेऽच्छावाकशस्त्रे वयमेनमिति वैकल्पिकोऽनुकूलः । तथा च सूचितं । वयमेनमिदा ह्यो यो रात्रा चर्षणीनां । आ० ७. ४. । इति ॥

वयमेनमिदा ह्योऽपीपिमेह वज्रिणं ।

तस्मा उ अद्य समना सुतं भ्रा नूनं भूषत श्रुते ॥७॥

वयं । एनं । इदा । ह्यः । अपीपिम । इह । वज्रिणं ।

तस्मै । ऊं इति । अद्य । समना । सुतं । भ्रा । आ । नूनं । भूषत । श्रुते ॥७॥

वयं यद्यमाना एनमिदं वज्रिणमिदेदानीं ह्यसेहापापीपेम आप्याययाम सोमिन । तस्मा उ तस्यः एवाद्याच समना संयामार्थं सुतमभिपुतं सोमं भ्रा हरत हे अध्वर्यादयः । वृणमिदानीं श्रुते सोमे श्रुते सत्या भूषत । आभवतु । आगच्छतु ॥

वृकश्चिदस्य वारुण उरामणिरा वयुनेषु भूषात ।

सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चिचया धिया ॥८॥

वृकः । चित् । अस्य । वारुणः । उराऽमणिः । आ । वयुनेषु । भूषति ।

सः । इमं । नः । स्तोमं । जुजुषाणः । आ । गहि । इन्द्र । प्र । चिचया । धिया ॥८॥

वृकश्चित्सेनोऽपि वारुणो वारयिता सर्वस्य सप्तपुरामणिः शत्रूणां मार्गे गच्छतां मथिता सप्तपथैर्द्रव्य वयुनेषु मार्गेषु प्रज्ञानेषु वा भूषति । आनुकूलमेव भजते । अतीवहिंस्रोऽपीन्द्रस्यानुकूलो भवतीत्यर्थः । यदा ॥ क्षेति कर्मणि षष्ठी ॥ असुमिन्द्रसुतरूपो वृकोऽपि वयुनेषु सोमेष्वा भूषति । स त्वमिमं नः कामं जुजुषाणः प्रीयमाण आ गहि । आगच्छ । हे इन्द्र विचया धिया कर्मणा कुतिलचक्षेण निमित्तेन प्र प्रकर्षेणा गहि । प्रीयमाणश्च ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि मार्यादिनसवनेऽच्छावाकशस्त्र एव कद्रु न्विति कद्रुप्रगाथः । कद्रु न्वस्त्रास्तमिति कद्रुतः प्रगाथाः । आ० ७. ४. । इति हि सूचितं ॥

कद्रु न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यैः ।

केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृषहा ॥९॥

कद्रु । ऊं इति । नु । अस्य । अकृतं । इन्द्रस्य । अस्ति । पौंस्यैः ।

केनो इति । नु । कं । श्रोमतेन । न । शुश्रुवे । जनुषः । परि । वृषहा ॥९॥

अस्येन्द्रस्य कद्रु नु किं नु खलु यींस्व यींस्वमकृतमनाचारितमसि । सर्वमपि वृचवधादिकमनेन कृतमेव  
इतः परं न किंच यींस्व कृतमस्तीत्यर्थः । लोके खल्वपि यः पुंस्त्वं कुर्यात्स तेन स्तूयतेऽयं नु न कुत एतदुच्यते ।  
केनो नु कं केन खलु ओमतेन अघणीयेन पुंस्त्वेन न शुश्रूषे । न श्रूयते । किं कतिपर्यैरेवाहोमिः कृतेन नेत्याह ।  
अयं वृचहा वृचस्थातिप्रबलस्य हंतायं अगुवः परि ज्वामप्रभृति क्रियमायीः सामर्थ्यैः श्रूयते । वृचहत्वं तत्पुंस्तप्र-  
दर्शनाद्योतनाय । यथा वृचहननं सर्वैः श्रूयते तद्वदन्यान्वपीति भावः ॥

कद्रु महीरधृष्टा अस्य तविषीः कद्रु वृचघ्नो अस्तृतं ।

इन्द्रो विश्वान्वेकनाटो अहर्दृश उत क्रत्वा पृथीरभि ॥१०॥

कद्रु । ऊं इति । महीः । अधृष्टाः । अस्य । तविषीः । कद्रु । ऊं इति । वृचऽघ्नः । अस्तृतं ।

इन्द्रः । विश्वान् । वेकऽनाटान् । अहऽदृशः । उत । क्रत्वा । पृथीन् । अभि ॥१०॥

कद्रु कदा खल्वस्येन्द्रस्य तविषीर्वलान्यधृष्टा अधृष्टान्यधर्वकायासन् । कद्रु कदा नु खलु वृचघ्नो वृचहन्तु-  
रिन्द्रस्य हंतव्यमकृतमहिंसितमभवत् । न कदाचिदित्यर्थः । अथवास्य महांति  
बलानि सेनालक्षणाणि कदाप्यधृष्टान्यन्यबलैरहिंसितानि तथा वृचघ्नो शारीरं बलमकृतमन्यैरहिंसितं । इन्द्रेण  
द्विविधेन बलेनेन्द्रो विश्वान् सर्वान्वेकनाटान् । जनेन कुसीदिनो वृद्धिजीविनो वार्धुषिका उच्यते । कथं  
तद्भूत्यन्तिः । वे इत्यपभ्रंशो द्विशब्दार्थः । एकं कार्षापणमृणिकाय प्रयच्छन् द्वौ मह्यं दातव्यं --- नयेन  
दर्शयति ततो द्विशब्देनैकशब्देन च जाटयतीति वेकनाटाः । तानहर्दृशः । अहःशब्देन तदुत्पादक आदित्यो  
ऽभिधेयो भवति । तं पश्यतीत्यहर्दृशः । ननु सर्वे सूर्यं पश्यन्ति कोऽचातिशय इति उच्यते । इहैव जन्मनि सूर्यं  
पश्यन्ति न जन्मांतरे । जुब्धका अघटारोऽधे तमसि मज्जन्ति । अथवा लौकिकान्येवाहानि पश्यन्ति न पारलौ-  
किकान्यदृष्टानि । दृष्टप्रधाना हि नास्तिकाः । अतो --- शान् पृथीन् पणिसदृशाञ्छूद्रकल्पात् । उतशब्द  
एवार्थः । क्रत्वा कर्मणैव ताडनादिव्यापारेणैवाभिभवतीति शेषः । यद्वा । पृथीनुत पृथीनेवाभिभवति न  
यष्टारं । पृथीनां मिंदा स्मर्यते । गोरचकानापणिकांस्तथा कारुक्षीलवान् । प्रेथान्वार्धुषिकांश्चैव विप्रांन्  
मुद्रवदाचरेत् । मनु० पृ. १०२. इति ॥ ॥४९॥

वयं या ते अपूर्व्येन्द्र ब्रह्माणि वृचहन् ।

पुरुतमांसः पुरुहूत वज्रिवो भृतिं न प्र भरामसि ॥११॥

वयं । घ । ते । अपूर्व्या । इन्द्र । ब्रह्माणि । वृचऽहन् ।

पुरुऽतमांसः । पुरुऽहूत । वज्रिऽवः । भृतिं । न । प्र । भरामसि ॥११॥

हे इन्द्र वयं घ खलु ते तवापूय्यो भूतनानि ब्रह्माणि परिवृढानि स्तोत्राणि प्र भरामसि संभरामः पुरुत-  
मांसो वज्रतमा वयमृत्विग्यजमानरूपेण वृचहन् वृचस्य हंतः पुरुहूत वज्रभिराकृत हे वज्रिवो वज्रयुक्तेन्द्र ।  
किमिव । भृतिं न भृतिमिव । तं यथा नियमेन प्रयच्छन्ति तद्वत् । नियमेन प्रदानतात्पर्याद्भृतिदृष्टांतस्त्वम-  
विश्वं ॥

पूर्वींश्चिच्छि ते तुविकूर्मिन्नाशसो हवँत इन्द्रोतयः ।

तिरश्चिद्वर्यः सवना वसा गहि शविष्ठ श्रुधि मे हवँ ॥१२॥

पूर्वीः । चित् । हि । ते इति । तुविऽकूर्मिन् । आऽशसः । हवँते । इन्द्र । ऊतयः ।

तिरः । चित् । अर्यः । सवना । आ । वसो इति । गहि । शविष्ठ । श्रुधि । मे । हवँ ॥१२॥

हे तुविकूर्मिन् वज्रकर्मत्रिन्द्र ते त्वयि पूर्वीर्वह्न्याशस आशंसनानि स्थितानि तद्योतयो रक्षास त्वय्यव-



स्त्रिता सन्धुं हवन्त आह्वयन्ति स्रोतारोऽपि । अतोऽर्थोऽरेः सवना सवनाणि तिरश्चित्तिरकृत्यारीन्वा तिर-  
कृत्यास्तवगान्धमिन्ना हे वयो वासकेन्द्र आ गहि । आगच्छ । अतो हे शविष्ठातिशयेन बलवन् मे हवं  
सुधि । मृगु ॥

वयं घा ते ते इद्धिद्र विप्रा अपि षसि ।

नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मर्घवन्स्ति मर्दिता ॥ १३ ॥

वयं । घ । ते । ते इति । इत् । ऊं इति । इन्द्र । विप्राः । अपि । स्मसि ।

नहि । त्वत् । अन्यः । पुरुहूत । कः । चन । मर्घवन् । अस्ति । मर्दिता ॥ १३ ॥

हे इन्द्र वयं च वयं सन्धु ते तव समूताः । अतस्त्वे इत्यथैव विप्रा मेधागिनः स्रोतारोऽपि अस्ति । अपिः  
संभावनायां । त्वदधीनाः स्रोतार्थः । अन्यान्विहार्थेन्द्र एव वर्तते । तस्मिन्कोऽतिशय इति आह । हे पुरुहूत  
त्वदन्यः कश्चन हे मर्घवन् मर्दिता सुखयिता नास्ति ॥

त्वं नो अस्या अमतेरुत सुधोऽभिर्शस्तेरव स्पृधि ।

त्वं न जती तव चिचया धिया शिक्षा शचिह गातुवित् ॥ १४ ॥

त्वं । नः । अस्याः । अमतेः । उत । सुधः । अभिर्शस्तेः । अव । स्पृधि ।

त्वं । नः । जती । तव । चिचया । धिया । शिक्षा । शचिह । गातुवित् ॥ १४ ॥

हे इन्द्र त्वं नोऽस्मान्स्या अमतेर्दार्ष्ट्यात्मिकाया उतापि च सुधोऽभिर्शस्तेर्निदायाच सकाशादव स्पृधि ।  
अवमोचय । किंच त्वं नोऽस्मात् तवोत्पूया चिचया धिया विचित्रेण कर्मणा धिष । देहाभिमतं । हे शविष्ठा  
गातुविचार्यश्च उपायस्त्वत्वं ॥

सोम इवः सुतो अस्तु कलयो मा विभीतन ।

अपेदेष्ट ध्वस्मारयति स्वयं घैषो अपायति ॥ १५ ॥

सोमः । इत् । वः । सुतः । अस्तु । कलयः । मा । विभीतन ।

अप । इत् । एषः । ध्वस्मा । अयति । स्वयं । घ । एषः । अप । अयति ॥ १५ ॥

सोमः सुतोऽभिपुतो वो युष्माकं संबन्धस्त्वित् । भवत्वेन्द्राय । हे कलयः । कश्चिन्महर्षिर्ज्ञातयः पुत्राश्चाप  
संबोधते । यूयं मा विभीतन । मीता मा भवत । मीत्यभावे कारणमाह । एष ध्वस्मा अंसको राक्षसादिर-  
पायति । अपगच्छतेवेन्द्रसामर्थ्यात् । स्वयं च स्वयमेवैषोऽपायति । उ इति पूरणः । पुनरुक्तिर्दार्ढ्यार्था ॥ १५ ॥

त्वाप्त्येकविंशत्युचमष्टमं सूक्तं । अत्रानुक्रमणिका । त्वाप्तुं षेका मत्स्यः सामदो मिषावश्यिर्माव्यो वा  
बहवो वा मत्स्या आसनदा आदित्यानकुवन् । संमदास्त्वस्य महामीनस्य पुत्रो मत्स्यो यदा मिषावश्ययोः  
पुत्रो माव्योऽथवा बहवो वा मत्स्या आसनदाः संतो बंधनमोषायादित्यानकुवन् । अतस्त एवर्षयः । परं  
वायवं प्रान्तस्त्रेति परिमाषया वायवी छंदः । आदित्या देवता ॥ सूक्तविनियोगो वैयकः ॥

त्यान्धु सचियाँ अव आदित्यान्याचिषामहे । सुमृळीकाँ अभिष्टये ॥ १ ॥

त्यान् । नु । सचियान् । अवः । आदित्यान् । याचिषामहे । सुमृळीकान् । अभिष्टये ॥ १ ॥

त्वांस्मानादित्यान् चचियाञ्जात्या चचियानवो रषयं याचिषामहे । याचामहे । कीदृशान् । सुमृळीकान्

सुष्ठु सुखयितृन् । किमर्थं । अभिष्टयेऽभिगमनायामिमताय वा । मत्स्यपक्षे जालनिर्गमनं प्रार्थितमितरपक्षेऽभि-  
मतमिति विवेकः ॥

मिचो नो अत्यंहतिं वरुणः पर्वदर्यमा । आदित्यासो यथा विदुः ॥२॥

मिचः । नः । अति । अंहतिं । वरुणः । पर्वत् । अर्यमा । आदित्यासः । यथा । विदुः ॥२॥

मिचो वरुणोऽर्यमादित्यास आदित्या नोऽस्मानंहतिमति पर्वत् । अतिगयंतु । ते यथा विदुः येन प्रकारेण  
दुःसहं जानंति तयाति पर्वदिति । इतरपक्षेऽंहतिं पापमति पर्वदिति ॥

तेषां हि चित्रमुक्थ्यं वरुणमस्ति दाशुषे । आदित्यानामरंकृते ॥३॥

तेषां । हि । चित्रं । उक्थ्यं । वरुणं । अस्ति । दाशुषे । आदित्यानां । अरंऽकृते ॥३॥

तेषामादित्यानां हि खलु चित्रं चायनीयमुक्थ्यं कुल्यं वरुणं धनमस्ति दाशुषे हविर्दाचेऽरंछतेऽरंकृते  
पर्याप्तकारिणे यजमानाय दातव्यं धनमस्तीति ॥

महि वो महतामवो वरुण मिचार्यमन् । अवांस्या वृणीमहे ॥४॥

महि । वः । महतां । अवः । वरुण । मिचं । अर्यंऽमन् । अवांसि । आ । वृणीमहे ॥४॥

हे वरुणादयः महतां वोऽवो रचणं महि महहाशुषे हविर्दाचे करणीयमस्ति । अतोऽवांसि रचणान्या  
वृणीमहे ॥

जीवानो अभि धेतनादित्यासः पुरा हयात् । कङ्क स्थ हवनश्रुतः ॥५॥

जीवान् । नः । अभि । धेतन् । आदित्यासः । पुरा । हयात् । कत् । ह । स्थ । हवनऽश्रुतः ॥५॥

हे आदित्यास आदित्याः नोऽस्मानिदानीं जीवाजीवतः सतोऽभि धेतन । अभिधावत । अभिधावनं  
कुरुत । पुरा हयाद्यजनाश्रुतेः पूर्वं । कत्किं स्था । भवथ । हे हवनश्रुत आह्वानश्रोतारः । आह्वानं श्रुत्वा शीघ्र-  
मागच्छतेति ॥ ॥५॥

यज्ञः आंताय सुन्वते वरुणमस्ति यच्छुदिः । तेना नो अधि वोचत ॥६॥

यत् । वः । आंताय । सुन्वते । वरुणं । अस्ति । यत् । शुदिः । तेन । नः । अधि । वोचत् ॥६॥

आंताय कर्मणः सुन्वतेऽभिपुण्यते यजमानाय दातव्यं यद्वरुणं वरणीयं धनं वो सुष्मावमस्ति यच्च च्छुदिः  
सुखवासयोर्म्यं गृहमस्ति तेन हवेनास्मान्जीययित्वा नोऽस्मानधि वोचत । अधिवचनं कुरुत ॥

अस्ति देवा अंहोरुर्वस्ति रत्नमनागसः । आदित्या अङ्गुतेनसः ॥७॥

अस्ति । देवाः । अंहोः । उरु । अस्ति । रत्नं । अनागसः । आदित्याः । अङ्गुतऽएनसः ॥७॥

हे देवाः अंहोर्हंतुः पापशीलस्योर्वस्ति । महत्पापमस्ति । अनागसोऽपापस्य रत्नं रमणीयं सुकृतं श्रेयो  
ऽस्ति । ततो हे आदित्या अङ्गुतेनसोऽभूतपापाः । अतोऽस्मादभिमतं कुरुतेति भावः ॥

मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्पति । इंदु इक्षि श्रुतो वशी ॥८॥

मा । नः । सेतुः । सिसेत् । अयं । महे । वृणक्तु । नः । पति । इंदुः । इत् । हि । श्रुतः । वशी ॥८॥



नोऽस्मान् सेतुर्वंधको वाको मा सिषेत् । मा बभ्रातु । नोऽस्माकहे महते कर्मणे परि वृणक्तु । परिवर्जयतु  
आज्ञात् । कः । इंद्र इदिंद्र एव श्रुतो विश्रुतो वशी सर्वस्व वशीकर्ता । स परि वृणक्तु ॥

मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः । देवा अभि प्र मृक्षत ॥ ९॥

मा । नः । मृचा । रिपूणां । वृजिनानां । अविष्यवः । देवाः । अभि । प्र । मृक्षत ॥ ९॥

हे अविष्यवो रक्षितुमिच्छन्तो देवाः नोऽस्मान्वृजिनानां हिंसकानां रिपूणां मृचा । मृचिर्हिंसाकर्मा ।  
यत्पुत्रेण मर्चयता सुपेशसा । आ० गृ० १. १७. १५ । इत्यादिषु तथा दृष्टत्वात् । हिंसकेन आलेन माभि प्र  
मृक्षत । अभिमर्शनमुपरि आलस्य प्रेरणं मा कुर्वत । यद्वा । मृचा आलेन प्राप्तो भाधा नोऽस्माकं मा भवतु ।  
हे देवाः यूयं च परिमार्जयत । परिहरत ॥

आधाने पवमानेष्टिषूत त्वामदित इत्यनुवाक्या । सूचितं च । उत त्वामदिते महि महीमू पु मातरं । आ०  
२. १-१ । इति ॥ आदित्यपत्नी यथाया अनुवाकीयमेव । सूचितं च । उत त्वामदिते मह्यनेहो न उद्वज्रे  
। आ० ३. ८. । इति ॥

उत त्वामदिते मह्यह देव्युपं ब्रुवे । सुमृळीकामभिष्टये ॥ १०॥

उत । त्वां । अदिते । महि । अहं । देवि । उपं । ब्रुवे । सुऽमृळीकां । अभिष्टये ॥ १०॥

हे महि मह्यदिते देवमातर्देवि त्वामहं मत्स्यप्रमुखोऽहमुप ब्रुवे । उपेत्य श्रीमि । कीदृशीं । सुमृळीकां  
सुपु मुखयित्रीं । किमर्थं । अभिष्टयेऽभिमताय ॥ ॥ १२॥

पर्विं दीने गभीर आ उयंपुचे जिघांसतः । मार्किस्तोकस्य नो रिषत् ॥ ११॥

पर्विं । दीने । गभीरे । आ । उयंऽपुचे । जिघांसतः । मार्किः । तोकस्य । नः । रिषत् ॥ ११॥

हे अदिते आ पर्विं । सर्वतः पाष्यसि । दीने शीघ्रे गभीर उदके । उदकनामितत् गभीरं मह्यमिति  
तन्नामसु पाठात् । उयंपुचे । उन्नूयाः पुचा यस्मिन् तत् । तस्मिन्नुदके जिघांसतो हिंसतो जातं तोकस्यास्मान्  
तमयस्व तमयं माकी रिषत् । शैव हिंसां करोतु ॥

आदित्यश्च पश्यानेहो न इति पुरोडाशस्यानुवाक्या । सूचं च । अनेहो न उद्वज्रेऽदितिर्ह्यवनिष्ट  
। आ० ३. ८. । इति ॥

अनेहो न उरुवज उरुचि वि प्रसर्तवे । कृधि तोकाय जीवसे ॥ १२॥

अनेहः । नः । उरुऽवज्जे । उरुचि । वि । प्रऽसर्तवे । कृधि । तोकाय । जीवसे ॥ १२॥

अनेहोऽपापान्नोऽस्मान् हे उद्वज्रे विस्तीर्णमने । दूरमिथमदितिर्भूमिरूपा गता भवत्यतिविश्रुतत्वात् ।  
अथवीर्यमने धीरे हे उरुचि उरुत्वं वि प्रसर्तवेऽभिसरणाय कृधि । कुरु । कसी । तोकाय पुत्राय मत्स्याय  
जीवसे जीवनाय । यथा जीवेनापुत्रान्नपितुं तयोद्वं जुषिति ॥

ये मूर्धानः क्षितीनामदब्धासः स्वयंशसः । व्रता रक्षन्ते अदुहः ॥ १३॥

ये । मूर्धानः । क्षितीनां । अदब्धासः । स्वऽयंशसः । व्रता । रक्षन्ते । अदुहः ॥ १३॥

ये मूर्धानः सर्वेषां मूर्धस्वामीया उच्छ्रयंतः क्षितीनां मनुष्याणामदब्धासोऽहिंसकाः स्वयंशसः स्वायत्तवो  
तयो व्रता व्रतान्यसदीयानि कर्माणि रक्षन्ते पाष्यन्तेऽदुहोऽद्रोघारः संतः ॥

ते न आस्रो वृकाणांमादित्यासो मुमोचत । स्तेनं बद्धमिवादिने ॥१४॥

ते । नः । आस्रः । वृकाणां । आदित्यासः । मुमोचत । स्तेनं । बद्धं ऽइव । अदिने ॥१४॥

हे आदित्यास आदित्याः ते यूयं नोऽस्मान् वृकाणां हिंसकानामदातॄणां वाक् आस्तात्सकाशाबुमोचत । विमोचत । विमोचनं कुर्वत स्तेनं बद्धमिव । हे अदिने त्वं च मोचयास्यानिति ॥

अपो षु यं इयं शरूरादित्या अपं दुर्मतिः । अस्मदेत्वजंमुषी ॥१५॥

अपो इति । सु । नः । इयं । शरूः । आदित्याः । अपं । दुःस्मतिः । अस्मत् । एतु ।

अजंमुषी ॥१५॥

हे आदित्याः इयं शरूर्हिंसिका प्रसितिर्गालिकप्रेरिताजघ्र्यहिंसंती सत्यकदसतः सु मुहपो एतु । अपगच्छेव । तथा दुर्मतिर्दुष्टा मतिरयजघ्र्यसक्तोऽपगच्छतु ॥ ॥१५॥

शश्वद्धि वः सुदानव आदित्या ऊतिभिर्वयं । पुरा नूनं बुभुज्महे ॥१६॥

शश्वत् । हि । वः । सुदानवः । आदित्याः । ऊतिभिः । वयं । पुरा । नूनं । बुभुज्महे ॥१६॥

हे सुदानवः सुदाना हे आदित्याः वो युष्माकमूतिमी रक्षाभिर्वयं पुरा नूनमिदानीमपि शश्वत्सर्वदा बुभुज्महे । यदा । शश्वद्ग्रन्थोगान्भुज्महे ॥

शश्वंतं हि प्रचेतसः प्रतियंतं चिदेनसः । देवाः कृणुथ जीवसे ॥१७॥

शश्वंतं । हि । प्रचेतसः । प्रतियंतं । चित् । एनसः । देवाः । कृणुथ । जीवसे ॥१७॥

हे प्रचेतसः प्रकष्टमाया हे देवाः शश्वंतं बद्धमपि प्रतियंतं चित् प्रतिगच्छंतमपि शत्रुमेनसः पापस्य कर्तारं । अथवेनसः पापकृतः ॥ व्यत्येन बद्धवचनं ॥ पापकर्तारं जीवसे जीवनायासाकं कृणुथ । कुर्वत । अस्मत्तो विमुक्तमिति शेषः ॥

तत्सु नो नयं सन्यस आदित्या यन्मुमोचति । बंधाबद्धमिवादिने ॥१८॥

तत् । सु । नः । नयं । सन्यसे । आदित्याः । यत् । मुमोचति । बंधात् । बद्धं ऽइव ।

अदिने ॥१८॥

तद्वंधकं नोऽस्माकं सु मुहु नयं सुखं सन्यसे संमवनाय भवतु । अस्माकं मोचनेन सुखं भवत्वित्यर्थः । हे आदित्या अदिनेः पुत्रा हे अदिने त्वदगुणहायबुमोचति मुंचत्वस्मान् बंधनसाधनं पूर्वं यत्प्रतिबंधकत्वादासीत् तदेव युष्मदगुणहादस्यामुंचतु । यदा । युष्माकं यद्द्रवणमस्यामुंचति तत्सु सुखं संमवनाय भवत्विति योज्यं ॥

नास्माकमस्ति तत्तर आदित्यासो अतिष्कदे । यूयमस्मभ्यं मृळत ॥१९॥

न । अस्माकं । अस्ति । तत् । तरः । आदित्यासः । अतिऽस्कदे । यूयं । अस्मभ्यं ।

मृळत ॥१९॥

हे आदित्यास आदित्याः युष्मत्कर्तृकस्तत्तरी वेगोऽस्माकं नास्ति यो वेगो बंधकाप्रासादतिष्कदेऽस्माकमतिष्कदनाय प्रभवति । अतो यूयमस्मभ्यं मृळत । तत्तादृशं तरः कुर्वतेत्यर्थः ॥



मा नो हेतिर्विवस्वन्त आदित्याः कृचिमा शरुः । पुरा नु जरसो वधीत् ॥ २० ॥

मा । नः । हेतिः । विवस्वन्तः । आदित्याः । कृचिमा । शरुः । पुरा । नु । जरसः । वधीत् ॥ २० ॥

हे आदित्याः नोऽस्यान्विवस्वतो विवस्वत्युच्यते यमस्य । पुषे पितृशब्दः । तस्य हेतिरायुधभृता ऋचिमा क्रियया निप्यक्ता शरुर्हिंसिका प्रसितिः पुरा पूर्वं निदानो । सर्वदेवार्थः । जरस इदानीं जीर्णोक्ता वधीत् । मा हिंसात् ॥

वि षु द्वेषो व्यंहतिमादित्यासो वि संहितं । विष्वग्वि वृहता रपः ॥ २१ ॥

वि । सु । द्वेषः । वि । व्यंहतिः । आदित्यासः । वि । सं । हितं । विष्वक् । वि । वृहत् । रपः ॥ २१ ॥

हे आदित्यास आदित्याः द्वेषो द्वेषुन् सु सुष्ठु वि वृहत् । उच्यते । नाशयित्वर्थः । तथा हतिं पातकं पापं वि वृहत् ॥ हतिरेह च । उ० ४. ६२. इत्यतिप्रत्ययः ॥ तथा संहितं ज्ञानं वि वृहत् । तथा रपः पापं सर्वं विष्वन्विषूचीनं वि वृहत् । रपो रिप्रमिति पापनामनी भवतः । नि० ४. २१. इति यास्कः ॥ ॥ ५४ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थोऽनुरो देवादिवातीर्थमहेत्यरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुद्धभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥

यस्य निःशसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् । निर्गमे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेत्यरं ॥

षष्ठे चतुर्थमध्यायं श्रीमायणमुतः सुधीः । व्याख्याय सायणाचार्यः पंचमं व्याकरोत्यथ ॥

तत्रा त्वा रथमित्तेकोनविंशत्युचं नवमं सूक्तं । अत्रेयमनुक्रमणिका । आ त्वैकोना प्रियमेध आदावनुष्टुम्-  
खाशुचाश्वत्वारोऽन्वाः षट्पञ्चाश्वमेधयोर्दानश्रुतिरिति । आंगिरसः प्रियमेध ऋषिः । प्रथमाचतुर्थीसप्तमीद-  
शम्योऽनुष्टुभः श्रिष्टाः परं गायत्रमिति परिभाषया गायत्र्यः । अंततः षट्स्वृक्षुचाश्वमेधयोर्दानं सूचते ।  
अतस्त्रासद्विवताकाः । श्रिष्टा अनुक्तपरिभाषयैश्च ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥ आशुचो मरुत्वतीयस्य  
प्रतिपत् । तथा च सूचितं । आ त्वा रथं यद्योतय इदं वसो सुतमंध इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरी  
। आ० ५. १४. इति ॥ महाव्रतादिष्वपि यच्च तृचांतरं न विधीयते तच्च सर्वत्रायमेव प्रतिपन्नवति ॥

आ त्वा रथं यद्योतये सुम्नायं वर्तयामसि । तुविःकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ॥ १ ॥

आ । त्वा । रथं । यद्योतये । सुम्नायं । वर्तयामसि । तुविः । कूर्मि । मृतीषह । मिन्द्र । शविष्ठ । सत्पते ॥ १ ॥

इन्द्र । शविष्ठ । सत्पते ॥ १ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वामा वर्तयामसि । आवर्तयामः । किमर्थं । कृतयेऽस्माकं रक्षणाय सुम्नाय सुखाय च ।  
किमिव । रथं यथा । रथं यद्योतये सुखाय चावर्तयति तद्वत् । कीदृशं त्वां । तुविकूर्मिं वज्रकर्माणामृतीषहं  
हिंसकानामभिवितारं । हे इन्द्र शविष्ठातिशयेन बलवन् हे सत्पते सतां पालक त्वामिति समन्वयः ॥

तुविःशुष्म तुविःक्रतो शचीवो विश्वया मते । आ पंप्राथ महित्वना ॥ २ ॥

तुविः । शुष्म । तुविः । क्रतो । इति । तुविः । क्रतो । शचीः । श्वः । विश्वया । मते । आ । पंप्राथ । महित्वना ।

महिः । त्वना ॥ २ ॥

हे तुविशुष्म प्रभूतवज्र हे तुविक्रतो वज्रकर्मणः । अथवा वज्रप्रज्ञ कर्मणः पृथगभिधानात् । हे शचीवो वज्रकर्तोयेत मते पूजनीयेन्द्र विश्वया विश्वव्याप्तेन महित्वेना महत्त्वेना पत्राय । आपूरितवानसि । अविशेषाद्विश्वमित्यर्थः ॥

यस्य ते महिना महः परि ज्मायंतमीयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्यं ॥ ३ ॥

यस्य । ते । महिना । महः । परि । ज्मायंत । ईयतुः । हस्ता । वज्रं । हिरण्यं ॥ ३ ॥

महो महतो यस्य ते तव । यच्छब्दः प्रकृतपरामर्शकः । प्रकृतं तूक्तमृग्यं । तच्चत्यतुविकूर्मिमृतीषहमित्या-  
द्युक्तलक्षणस्य तत्त्वर्थः । महिना महत्त्वेन हस्ता तव हस्ता हस्ती ज्मायंतं पृथिव्यां सर्वतो व्याप्तुवंतं हिरण्यं  
हिरण्यमयं वस्त्रमीयतुः परिगृह्णीतः । सर्वदास्त्राकं मयनिवारणायैति भावः ॥

पृथ्वाभिप्लवण्डहयोर्वितीयेऽहनि विश्वानरस्येति प्रतिपत्तुचः । सूचितं च । विश्वानरस्य वस्यतिमिन्द्र  
इत्योमपा एक इति महत्त्वतीयस्य प्रतिपदगुचरौ । आ० ७. ६. इति ॥

विश्वानरस्य वस्यतिमनानतस्य शर्वसः । एवैश्च चर्षणीनामृती हुवे रथानां ॥ ४ ॥

विश्वानरस्य । वः । पतिं । अनानतस्य । शर्वसः । एवैः । च । चर्षणीनां । ऊती ।

हुवे । रथानां ॥ ४ ॥

विश्वानरस्य विश्वाऽश्वत्थुत्तस्त्रानानतस्य श्वत्थुत्तमप्रहस्य श्वसो वस्यस्य पतिं स्वामिनमिन्द्रं वा ।  
अथेन्द्रसंबन्धिनो महतोऽपि संकीर्त्येति । हे महतः वः । युष्माकमित्यर्थः । यद्यपि महत्संशब्दं नास्ति तथापि  
च इति सामर्थ्याद्भवति । युष्माकं चर्षणीनामिन्द्रस्य सेनारूपाणां वो युष्माकं गमनैरिति सामानाधिकरण्यं ।  
युष्माकं रथानां चोत्थूतिभिर्गमनैश्च सह ऊवे । आह्वयामि । गंतुमी रथैर्गंतुमिर्भवन्निश्च सहेन्द्रं ऊव इत्यर्थः ।  
यदा । हे यजमानाः युष्मदीयाः सेनिकाः सरथा यदा प्रविशन्ति युज्याय संग्रामं तदानीं तेषां सहाय्यायेन्द्रं  
ऊव इत्यर्थः ॥

अभिष्टये सदावृध स्वमील्लेषु यं नरः । नाना हवंत ऊतये ॥ ५ ॥

अभिष्टये । सदाऽवृधं । स्वःऽमील्लेषु । यं । नरः । नाना । हवन्ते । ऊतये ॥ ५ ॥

हे यजमानाः युष्माकमभिष्टये साहाय्यार्थमभिगमनायामिष्टये वा सदावृधं सर्वदा वर्धयंतं सेवकान्  
स्वयं सर्वदा वर्धमानं वा ऊव इति शेषः । यं स्वमील्लेषु संग्रामेषु नरो नेतारो मनुष्या नादा वज्रप्रकारं  
हवन्ते आह्वयंतूतये रथार्थं तं ऊव इति शेषः ॥ ५ ॥

परोमाचमृचीषममिन्द्रमुयं सुरार्धसं । ईशानं चिद्वसूनां ॥ ६ ॥

परःऽमाचं । ऋचीषमं । इन्द्रं । उयं । सुऽरार्धसं । ईशानं । चित् । वसूनां ॥ ६ ॥

परोमाचं । परा माचा यस्य तादृशं । अथवा मीयत इति माचं दूरदेशः । ततः परस्ताद्वर्तमानमपरि-  
मितस्वरूपं । तथाऽष्टौचीषममृचा सुत्वा समं । यद्यप्यपरिच्छिन्नः तथापि सुतिर्यावन्माचं विषयीकरोति । तत्सम  
इत्यर्थः । तदेवाह । इन्द्रं परमैश्वर्ययोगत्वादिच्छानुकूलस्वरूपमयमुत्तुर्णवत् सुरार्धसं । राध इति धननाम ।  
शोभनधनं शोभनान्नं वेशानं चिदीश्वरं च । केषां । वसूनामस्त्राभ्यं प्रदेयानां गवादिधनानां । एवंमहानुभाव-  
मिन्द्रं ऊव इति शेषः ॥

तृतीयेऽहनि महत्त्वतीये तंतमिदिति प्रतिपत्तुचः । सूचितं च । तंतमिद्रार्धसे महे चय इन्द्रस्य सोमाः  
। आ० ७. १०. इति ॥



तंतमिद्राधसे मह इद्रं चोदामि पीतये । यः पूर्यामनुष्टुतिमीशे कृष्टीनां नृतुः ॥७॥  
तंतं । इत् । राधसे । महे । इद्रं । चोदामि । पीतये । यः । पूर्या । अनुऽस्तुति ।  
ईशे । कृष्टीनां । नृतुः ॥७॥

तं तमिन्मिषेन्द्रं । सर्वेष्वपि यागकालेषु तमेवेन्द्रमित्यर्थः । तं प्रति चोदामि प्रेरयामि क्षुतिं पीतये  
सोमपानाय । ततः को लाभ इति उच्यते । महे महते राधसे धनाय प्रभूतधनलाभार्थं । यो नृतुः फलस्य  
नेता देवः पूर्या पूर्वं भवां यज्ञसुखस्यामनुष्टुतिमनुक्रमेण क्रियमाणां क्षुतिं छटीनां मनुष्याणामुत्तिजां संबन्धि-  
नीमीशे ईष्टे श्रोतुं तं चोदामीति संबन्धः ॥

न यस्य ते शवसान सख्यमानंश्च मर्त्यः । नक्तिः शवांसि ते नशत् ॥८॥  
न । यस्य । ते । शवसान । सख्यं । आनंश्च । मर्त्यः । नक्तिः । शवांसि । ते । नशत् ॥८॥

हे शवसान बलवन्निद्रं यस्य ते तव सख्यं मर्त्यो मरणधर्मा मनुष्यो नानंश्च न व्याप्नोति ते शवांसि  
बलान्यपि नकिर्नैव नशत् । व्याप्नोति ॥

त्वोतासस्त्वा युजाप्सु सूर्ये महद्धनं । जयेम पृतसु वज्रिवः ॥९॥  
त्वाऽर्जतासः । त्वा । युजा । अप्सु । सूर्ये । महत् । धनं । जयेम । पृतसु । वज्रिवः ॥९॥

हे इन्द्र त्वोतासस्त्वया रक्षितास्त्वा त्वया युजा सहायेनाप्सु स्नातुं सूर्यं द्रष्टुं च । स्नानादिव्यवहारं कर्तुं  
सूर्यं उदिति सति गमनादिव्यवहारं कर्तुमित्यर्थः । तदर्थं पृतसु संयामेषु हे वज्रिवो वज्रिविन्द्र महद्धनं जयेम ।  
शत्रून् संयामे जित्वा तेषां धनं लभेमैत्यर्थः ॥

चतुर्थेऽहनि मरुत्वतीये तं त्वा यज्ञेभिरिति तृचः प्रतिपत् । सूचितं च । तं त्वा यज्ञेभिरीमहे इदं वसो  
सुतमंध इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरी । आ० ७. ११. इति ॥

तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम । इद्रं यथा चिदाविष्य वाजेषु पुरुमाय्य ॥१०॥  
तं । त्वा । यज्ञेभिः । ईमहे । तं । गीऽभिः । गिर्वणऽस्तम । इद्रं । यथा । चित् । आविष्य ।  
वाजेषु । पुरुऽमाय्यं ॥१०॥

तं कुलत्वेन प्रसिद्धं त्वा त्वां यज्ञेभिर्यागसाधनैः सोमादिभिरीमहे । याचामहे । तमेवेन्द्रं गीर्भिः क्षुति-  
भिरीमहे । हे गिर्वणस्तम गीर्भिः स्नाताभवेननीयतमेन्द्रं तं त्वामिति समन्वयः । हे इन्द्र त्वं यथा चिदाविष्य  
येन प्रकारेण ररविष्य मां । चिदिति पूरणः । कुचिति उच्यते । वाजेषु संयामेषु । कीदृशं मां । पुरुमाय्यं  
बहुप्रशं । बहुक्षुतिमित्यर्थः ॥ ॥२॥

यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्विवः । यज्ञो वितंतसाय्यः ॥११॥  
यस्य । ते । स्वादु । सख्यं । स्वाद्वी । प्रऽनीतिः । अद्विवः । यज्ञः । वितंतसाय्यः ॥११॥

हे अद्विवो यज्ञवन्निद्रं यस्य कुलत्वेन प्रसिद्धस्य ते तव सख्यं स्वाद्वीवानुभवार्हं । किंच ते प्रणीतिः  
प्रणयनं धनादीनां स्वाद्वी स्वादु सुहृद्वक् । तथोमे त्वद्विषयो यज्ञस्य वितंतसाय्यो विशेषेण तजनीयः ॥

उरु णस्तन्वेऽं तनं उरु क्षयाय नस्तृधि । उरु णो यंधि जीवसे ॥१२॥  
उरु । नः । तन्वे । तने । उरु । क्षयाय । नः । कृधि । उरु । नः । यंधि । जीवसे ॥१२॥

हे इंद्र त्वं नोऽस्माकं तन्व आत्मजायोऽहं प्रभूतं हविः । ऊरु । सामर्थ्याद्धनं सुखं वेति गम्यते । तथा तणे तत्पुत्रायोऽहं हविः । तथा चयाय निवासायोऽहं हविः । नोऽस्माकं जीवसे जीवनाय यंधि । प्रयच्छामिमतं ॥

उरुं नृभ्य उरुं गवे उरुं रथाय पंथा । देववीतिं मनामहे ॥ १३ ॥

उरुं । नृभ्यः । उरुं । गवे । उरुं । रथाय । पंथा । देवऽवीतिं । मनामहे ॥ १३ ॥

हे इंद्र नृभ्योऽस्मादीयेभ्यो मृतेभ्य उरुं हितं मनामहे । तथा गवे । एतदुपलक्षणं । गवाश्चादिकाय तथा रथाय पंथा पंथानं मार्गं । अथवा नृप्रभृतीनां संचाराय शोभनं मार्गं मनामहे । तथा देववीतिं यज्ञं मनामहे ॥

उप मा षड्वाडा नरः सोमस्य हर्षा । तिष्ठति स्वादुरातयः ॥ १४ ॥

उप । मा । षट् । डाऽडा । नरः । सोमस्य । हर्षा । तिष्ठति । स्वादुऽरातयः ॥ १४ ॥

एतदाद्याः षड्वाच ऋचाश्चमेधयोर्दानकुतिरूपाः । यद्यपि बृहदेवतानुक्रमण्यामृचाश्चमेधयोरच पंच दान-प्रशंसका इत्युक्तं तथाप्युप मा षडित्यस्या राजदानकुतिशेषत्वादनिरोधः । अनयैवाश्यानुक्रमण्यामंत्वाः षड्वाच ऋचाश्चमेधयोर्दानकुतिरित्युक्तं ॥ मा मां प्रियमेधं यज्ञे प्रसर्पतः षडेतत्संख्याका नरो जेतारो राजानः सोमस्य पीतस्य हर्षा हर्षेण स्वादुरातयः सुष्ठूपभोगार्हदागाः संतो वा दा दौ दौ पितृपुत्ररूपेण युग्मी भूत्वा मामुप तिष्ठन्ति । तेषां युग्मानां नाम तूत्तरच सष्टीक्रियते ॥

ऋजाविंद्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सूनवि । आश्वमेधस्य रोहिता ॥ १५ ॥

ऋजा । इंद्रोते । आ । ददे । हरी । ऋक्षस्य । सूनवि । आश्वऽमेधस्य । रोहिता ॥ १५ ॥

इंद्रोत एतन्नामकं आतिथिमेऽतिथिगमाख्यो राज्ञः पुत्रे । अतिथिगवाय शंवरं । अ० १. ५१. ६. । इत्यतिथिगवाय शंख । अ० ६. २६. ३. । इत्यादिष्वतिथिगः प्रसिद्धः । तत्पुत्र इंद्रोत ऋजापुत्रगामिनावश्वावा ददे । स्त्रीकृतवानसि । तथर्चस्य सूनवृचनाख्यो पुत्रेऽन्यस्मिन्नाजनि हरी हरितवर्णावश्वावा ददे । तथाश्वमेधस्याश्वमेधपुत्रे राजानि रोहिता रोहितवर्णावश्वावा ददे । नन्वनुक्रमण्यासुभयोरिव दानप्रशंसारूपत्वमुक्तमच कथं चयाणां दानकीर्तनमिति नैष दोषः । ऋचाश्चमेधपुत्रयोरिव यागेऽस्त्वैः प्रवृत्तेस्तयोरिव दानं । प्रसुत्व इंद्रोतसु स्वपिचा सह तयोर्यज्ञदिदृशयागत्य तयोर्दानं दृष्ट्वा स्वपिचा प्रेरितो दत्तवानस्यौ । अतस्तद्वानं प्रासंगिकमिति । एवमृचाश्चमेधयोर्दानकुतित्वं न व्याहृत्यते । पितृपुत्रयोरभेदान्तयोः पषकर्तृत्वाच्चंद्रोतदानस्य प्रासंगिकत्वं षठ्वाचानित्यच विसृष्टयिष्यते ॥ ३ ॥

सुरथौ आतिथिग्वे स्वभीभूराक्षे । आश्वमेधे सुपेशसः ॥ १६ ॥

सुऽरथान् । आतिथिऽग्वे । सुऽअभीभून् । आक्षे । आश्वऽमेधे । सुऽपेशसः ॥ १६ ॥

आतिथिग्व इंद्रोते सुरथाश्चोभनरथोपेतानश्वावा ददे । आर्षं अश्वपुत्रे स्वभीभून्श्वानाददे । आश्वमेधे अश्वमेधपुत्रे सुपेशसः सुरूपानश्वाश्चोभनासंकारानाददे ॥

षठ्वाँ आतिथिग्व इंद्रोते वधूमंतः । सचा पूतक्रतौ सनं ॥ १७ ॥

षट् । अश्वान् । आतिथिऽग्वे । इंद्रोते । वधूऽमंतः । सचा । पूतऽक्रतौ । सनं ॥ १७ ॥

आतिथिग्व इंद्रोते पूतक्रतौ शुश्रूषे शुश्रूकर्मोपेति वा तस्मिन्वधूमन्तो वधूभिर्वज्रवामिस्तद्वतः षड्वाच सचर्चाश्चमेधयोः पुत्राभ्यां दत्तेनाश्वादिधनेन सचा सह सनं । सन्ववानसि । एतत्साहित्यवचनमिंद्रोतदानस्य प्रासंगिकत्वे सिद्धं ॥



ऐषु चेतृवृषखत्यंतर्जुजेष्वरुषी । स्वभीष्नुः कशावती ॥१८॥

आ । एषु । चेतत् । वृषणऽवती । अंतः । जृजेषु । अरुषी । सुऽअभीष्नुः । कशाऽवती ॥१८॥

एष्वृजेष्वृषणामिष्वेध्वंतर्मथ आ चेतत् । आश्नायते । का । वृषणती वर्षकेः पुमश्चैष्वत्वरूपधारोचमाना स्वभीष्नुः शोभनप्रपन्ना कशावती दृप्ता वज्रवा आयते ॥

न युष्मे वाजबंधवो निनित्सुचन मर्त्यैः । अवद्यमधि दीधरत् ॥१९॥

न । युष्मे इति । वाजऽबंधवः । निनित्सुः । चन । मर्त्यैः । अवद्यं । अधि । दीधरत् ॥१९॥

हे वाजबंधवोऽन्नबंधवोऽन्नप्रदाः । एवं पुत्राणां पितृपुत्ररूपाणां वशां वा संबोधनं । हे राजानः युष्मे युष्मासु निनित्सुचन निंदकोऽपि मर्त्यो मनुष्योऽथवा निंदां नाधि दीधरत् । गान्धधारयत् । गारोपयति युष्मासु । अतोऽग्निं वा यूयमिति दातृणां श्रुतिः ॥ ४॥

प्रम व इत्यष्टादशर्चं दशमं सूक्तं प्रथमेधस्तांगिरसस्तार्थं । द्वितीया नदं व इत्येषा चतुःसप्तकोष्यिक् चतुर्थ्यावाक्सिन्तो गायत्र्य एकादशीषोडशी पंक्ती शिष्टा दशानुष्टुभः । अपादिंद्र इत्यर्धर्चो वैश्वदेवो वषण इदिहेत्यावासु येऽर्धर्चा वषणदेवताकाः शिष्टा ऐंद्रः । तथा चानुक्तांतं । प्रमऽङ्गानानुष्टुभं द्विनुह्यंतं द्विती-  
योष्यिक् चतुर्थ्यावाक्सिन्तो गायत्र्यः षोडशैकादशी पंक्ती अपादिश्वदेवोऽर्धर्चस्त्रयो वाचरा इति ॥ आबलुचः षोडशिश्चिस्त्र आनुष्टुभः । सूचितं च । प्रम वस्त्रिष्टुभमपि मर्चत प्रार्थत । आ० ६. २. इति ॥

प्रम वस्त्रिष्टुभमिधं मंदवीरायेदवे । धिया वो मेधसांतये पुरंध्या विवासति ॥१॥

प्रम । वः । चिऽस्तुभं । इधं । मंदत्ऽवीराय । इंदवे । धिया । वः । मेधऽसांतये ।

पुरंऽध्यां । आ । विवाऽसति ॥१॥

हे अध्वर्यादयः वो यूयं । प्रथमार्थे द्वितीया । चिष्टुभं स्तोमचयोपेतमिषमन्नं प्रम । अपरः प्रशब्दः पुरणः । प्रमरतेति शेषः । उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः । कक्षी । मंदवीराय । यो वीराण हर्षयति स मंदवीरः । तस्या इंदव इंद्राय ॥ इंदतेरिचर्यकर्मण इदं रूपं । अथवा फलेर्षुष्टिमिवोन्नतीतींद्रिद्रः ॥ तक्षी । स चंद्रो वो युष्माकेधसांतये यज्ञसंभजनाय पुरंध्या वज्रप्रक्षया धिया कर्मणा विवासति । अभिमताफलयोगेन सत्क-  
रोतीत्यर्थः ॥

महाव्रते निष्केवत्ये नदं व इत्येषा विहरणीया । तथैव पंचमारण्यके सूचितं च । नदं व औदतीनामित्ति-  
तथैतानि व्यतिषद्यति । ऐ० आ० ५. १. ६. इति ॥

नदं व औदतीनां नदं योयुवतीनां । पतिं वो अघ्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥२॥

नदं । वः । औदतीनां । नदं । योयुवतीनां । पतिं । वः । अघ्यानां । धेनूनां । इषुध्यसि ॥२॥

औदतीनां । औदत्य उवसः औदती मास्वतीति तन्नामसु पाठात् । तासां नदं । उत्पादकमित्यर्थः । इंद्रेण ह्युषस उत्पद्यंत इंद्रस्त्वैव सूर्यत्वात् विवस्वदिंद्रं सुगम्येति हि द्वादशादित्यमध्य इंद्रः पठितः । तावृश्मिंद्रं हे यजमानाः वो युष्मदर्थं । आहुयतेत्यर्थः । तथा योयुवतीनां सर्वत्र मिश्रयंतीनां नदीनां नदं शब्दधितारं वो युष्मदर्थमाहुयामि । अघ्यानामहंतव्यानां गवां पतिमाहुये । अथ प्रत्यक्षकृता । हे यजमान त्वं धेनूनां वीरा-  
दिना प्रीणयिषीणां गवानिषुध्यसि । अन्नमिच्छसि ॥

अभिहोत्रे पूर्वाहुतौ ऊतायां ता अस्त्वैनयोत्तरामाहुतिं कांचमायक्षिषेत् । तथा च सूचितं । ता अस्व सूददोहस इति पूर्वामाहुतिमुपोत्वायोत्तरां कांचित । आ० २. ३. इति ॥ महाव्रते निष्केवत्येऽध्वेषा । तथैव पंचमारण्यके सूचितं । ता अस्व सूददोहस इत्येतदादिः सूददोहाः सूददोहाः । ऐ० आ० ५. १. ६. इति ॥

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पुन्नयः ।

जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥३॥

ताः । अस्य । सूदऽदोहसः । सोमं । श्रीणन्ति । पुन्नयः ।

जन्मन् । देवानां । विशः । त्रिषु । आ । रोचने । दिवः ॥३॥

ताः प्रसिद्धाः सूददोहसः । सूद इति कूपणाम् । तत्सदृशदोहनाः पुन्नयः पुन्नियर्णा गावोऽस्त्रिंशस्य सोमं श्रीणन्ति । मिश्रयन्त्याश्विरेण । कदा । त्रिषु त्रिष्वपि सवनेषु । गावो विशिष्यन्ते । देवानां यन्मन्त्रस्त्वानि । दिवी-  
त्वर्यः । दिव आदित्यस्या रोचन आरोचमाने । अनेन कीर्दिशयते । तस्मिन् स्थाने विशो निविशन्तः ।  
यन्मार्थोपयुक्तानां गवां शुभ्राणिः प्रसिद्धाः ॥

द्वितीये पर्याये भेषावचनाशस्त्रेऽभि प्र गोपतिमिति तुचोऽनुष्टुपः । सूचितं च । अभि त्वा वृषभा सुतेऽभि  
प्र गोपतिं निरा । आ० ६. ४. इति ॥

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्चं यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिं ॥४॥

अभि । प्र । गोऽपतिं । गिरा । इन्द्रं । अर्चं । यथा । विदे । सूनुं । सत्यस्य । सत्ऽपतिं ॥४॥

गोपतिं गवां स्वामिनमिन्द्रमभि प्रार्चं । प्रकर्षेण पूजय सुत्वा । यथा विदे स यथा स्वात्मानं सुतप्रकारं  
जानाति यथा वा यागं प्रति संतव्यमिति जानाति तथा वेति । कीदृशमिन्द्रं । सत्यस्य यज्ञस्य सत्यस्य वा सूनुं  
पुत्रं । तचानुरक्तत्वात्सुनुरित्युपचर्यते । सत्पतिं सतां यजमानानां पाषाकं ॥

आ हरयः ससृजिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥५॥

आ । हरयः । ससृजिरे । अरुषीः । अधि । बर्हिषि । यत्र । अभि । संऽनवामहे ॥५॥

हरयो हरितवर्णा अथा अरुषीरारोचमाना अधि बर्हिषि । अधीति सप्तम्यर्थानुवादी । बर्हिष्यासुत  
आ ससृजिरे । आहवन्तु । यत्र यस्मिन्बर्हिषि स्त्रितमिन्द्रमभि संनवामहे अभिसंजुमः ॥ ५॥

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुहे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपहरे विदत् ॥६॥

इन्द्राय । गावः । आऽशिरं । दुदुहे । वज्रिणे । मधु । यत् । सीं । उपऽहरे । विदत् ॥६॥

इन्द्राय गाव आशिरमाश्रयणसाधनं पयआदिकं मधु मदकरं दुदुहे । दुहते । कीदृशाय । वज्रिणे  
वज्रयुक्तायेन्द्राय । यवद्वीपहरे समीपे वर्तमानं मधु सोमरसं सीं सर्वतो विदत् समते तदा ॥

षोडशिशस्त्रस्योद्यद्ब्रह्मस्तेषांत्वा । सूचितं च । उद्यद्ब्रह्मस्य विष्टपमितेषा परिधानीया । आ० ६. २. इति ॥

उद्यद्ब्रह्मस्य विष्टपं गृहमिन्द्रं गन्वहि ।

मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥७॥

उत् । यत् । ब्रह्मस्य । विष्टपं । गृहं । इन्द्रः । च । गन्वहि ।

मध्वः । पीत्वा । सचेवहि । त्रिः । सप्त । सख्युः । पदे ॥७॥

यवदा ब्रह्मस्य विष्टपं सूर्यस्य स्थानं गृहमिन्द्रं चाहं सोमापुन्रन्वहि उद्यद्ब्रह्मः तदानीं मध्वो मधुरं



सोमरसं पीत्वा सचेवहि । संकष्टी मवेव । कुच । सक्नुः सर्वेषां सखिभूतस्यादित्यस्य । विः सन्नेत्यनेन देवसो-  
मानामुत्तमदेकविंशं खानमुच्यते । आदित्यस्यैकविंशत्वात् । तथा च ब्राह्मणं । द्वादश मासाः पंचर्तवस्त्रय  
इमे लोका असावादिष्वेकविंश इति । तादृश एकविंशस्थानि सचेवहीति ॥

पूर्वोक्त एव शस्त्रेऽर्चतेति द्वितीय आशुद्रुमकुचः । वृत्तितं च । प्रप्र वस्त्रिद्रुममिवमर्चत प्रार्चत । आ-  
६. २. इति ॥

अर्चैतु प्रार्चैतु प्रियमेधासो अर्चैत । अर्चैतु पुत्रका उत पुरं न धृष्यत्तर्चत ॥ ८ ॥

अर्चैत । प्र । अर्चैत । प्रियऽमेधासः । अर्चैत । अर्चैतु । पुत्रकाः । उत । पुरं । न ।

धृष्यु । अर्चैत ॥ ८ ॥

हे अश्वत्थीदयः धूयमिन्द्रमर्चत । धूययत सुत्वा । प्रार्चत । प्रकथयैवार्थतैन्द्रमेव । हे प्रियमेधासः प्रियमे-  
धसंबन्धिनसाम्नोषाः धूयमर्चतैन्द्रं । पुत्रकाः पुत्रा अश्वत्थीतैन्द्रं । उतापि च पुरं न धृष्यु यथा पुरं धर्षणशील-  
मर्चति तादृशमिन्द्रमर्चत ॥

अव स्वरान्ति गर्गरो गोधा परि सनिष्कृणत् ।

पिंगा परि चनिष्कृदुदिद्राय ब्रह्मोद्यतं ॥ ९ ॥

अव । स्वरान्ति । गर्गरः । गोधा । परि । सनिस्वनत् ।

पिंगा । परि । चनिस्कृदत् । इन्द्राय । ब्रह्म । उतऽयतं ॥ ९ ॥

गर्गरो गर्गरध्वनियुक्तो वायविशेषो युद्धेऽव स्वरान्ति । मयं शब्दयति । गोधा हस्तघ्नः परि परितः  
सनिष्कृणत् । स्वगवि मृशं । पिंगा पिंगवर्णा व्यापि परि चनिष्कृदत् । परिस्फुदति । यस्मादेवं युद्धः संनद्धोऽत  
इन्द्राय ब्रह्म परिपूढं कर्म क्षुतिस्वयमुच्यतं मवांसति शेषः ॥

आ यत्पतंत्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः । अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ १० ॥

आ । यत् । पतंतति । एन्यः । सुदुघाः । अनपऽस्फुरः । अपऽस्फुरं । गृभायत ।

सोमं । इन्द्राय । पातवे ॥ १० ॥

यद्यदेव एतवर्णाः शुभवर्णा नव आ पतन्ति आगच्छन्ति सर्वतः प्रवहन्ति । कीदृशः । सुदुघाः सुदोहा  
अनपस्फुरः । अपस्फुरोऽपस्फुरा अपवृद्धाः । अतादृशोऽनपस्फुरः । अत्वंतं प्रवृद्धा इत्यर्थः । यद्वा । सुदुघाः  
प्रवृद्धा एतवर्णा नावो यदा पयश्चावर्षाया पतन्ति तदापस्फुरं । अचापशब्दो धालवर्णानुवादी । अत्वंतंप्रवृद्धं  
सोममिन्द्राय पातवे पातुं गृभायत । यद्वर्णं कुर्वत । अयवानपस्फुर इत्यचापशब्दोऽनुवादी धालवर्णः ।  
तथा सत्यमर्थः । यदेन्यो नवोऽनपस्फुरोऽप्रवृद्धोऽव आ पतन्ति वृष्टिरस्या यदा भवति तदा सोममिन्द्राय  
संपादयतेति ॥ ॥ ६ ॥

अपादिद्रो अपादिमिर्विश्वे देवा अमत्सत ।

वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥ ११ ॥

अपात् । इन्द्रः । अपात् । अग्निः । विश्वे । देवाः । अमत्सत ।

वरुणः । इत् । इह । क्षयत् । तं । आपः । अभि । अनुषत् । वत्सं । संशिश्वरीऽइव ॥ ११ ॥

इंद्रोऽपात् । अपिबत्सोमं । अपिरप्यपिबत् । विश्वे देवा अप्यमत्सत । तुष्ठा अमवन् सोमपानिन । वरुण इक्ष्वाणोऽपीहास्त्रिन्यागनुहे चयत् । निवसतु सोमपानार्थं । निवसंतं तमापोऽप्यभनूयत । उदकान्यापनशीलाः सुतयो वाभ्यष्टवन् । किमिव । वत्सं स्वीयं संशिक्षरीः संशिक्षर्यः संगच्छमाना गाव इव । ता यथा धावंत्यो हमारवं कुर्वन्ति तद्वत् ॥

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिंधवः । अनुक्षरंति काकुदं सूर्यं सुषिरामिव ॥१२॥  
सुदेवः । असि । वरुण । यस्य । ते । सप्त । सिंधवः । अनुक्षरंति । काकुदं । सूर्यं ।  
सुषिरांऽइव ॥१२॥

हे वरुण वस्त्राभिमानिन्देव त्वं सुदेवोऽसि यस्य सुदेवस्य ते तव काकुदं तालुं समुद्राख्यं सप्त सिंधवो गंगाद्याः सप्त नद्योऽनुक्षरंति जिह्वायां सर्वदा स्रवंति ॥

याऽऽशस्त्रे यो व्यतीनिति तृतीय आशुष्टमसृचः । सूचितं च । यो व्यतीरफाणयदिति तुचा आशुष्टमाः । अ० ६. २. इति ॥

यो व्यतीरफाणयत्सुयुक्ताँ उप दाशुषे । तक्रो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥१३॥  
यः । व्यतीन् । अफाणयत् । सुयुक्तान् । उप । दाशुषे । तक्रः । नेता । तत् । इत् । वपुः ।  
उपऽमा । यः । अमुच्यत ॥१३॥

य इन्द्रो व्यतीन्विधगमनान् सुयुक्तान् सुष्ठु रथे संबन्धानश्चान्दाशुषे हविर्दात्रे यजमानाय गंतुं प्राप्तुमुपाफाणयत् उपगमयति । फणतिर्गतिकर्मा । यदैवं करोति तद्वत्तदानीमेव तक्रः । तक्रतिर्गतिकर्मा । यश्चगमनशीलो नेतोदकस्य फलस्य वा नायक इन्द्रो वपुषदकमुत्पादयतीति शेषः । य इन्द्र उपमोपमानमूतोऽमुच्यत अन्वैर्बुद्धिवारकेरसुरादिभिर्मुक्तो भवति ॥

अतीदुं शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।  
भिनत्कनीनं ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥१४॥  
अति । इत् । ऊं इति । शक्रः । ओहते । इन्द्रः । विश्वाः । अति । द्विषः ।  
भिनत् । कनीनः । ओदनं । पच्यमानं । परः । गिरा ॥१४॥

अयमिन्द्रः शक्रः शक्तः सप्ततीदोहते । अतिक्रम्य गच्छत्येव संयामे निरोधकाञ्छन् । तदेवाह । अयमिन्द्रो विश्वा द्विषो द्वेष्टुञ्छन्त्यतिक्रम्य गच्छति । कनीनः कमनीयः परो मेघानां परस्माद्वर्तमान इन्द्र ओदनं । मेघनामितत् । मेघं भिनत् । अभिनत् । भिनत्ति वृध्यर्थं । कीदृशं । गिरा माध्यमिकया वाचा स्मृतितत्त्वव्यया पच्यमानं । वक्त्रनिर्घोषेण ताड्यमानमित्यर्थः ॥

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथं ।  
स पक्षन्महिषं मृगं पिचे माचे विभुऽक्रतुं ॥१५॥  
अर्भकः । न । कुमारकः । अधि । तिष्ठत् । नवं । रथं ।  
सः । पक्षत् । महिषं । मृगं । पिचे । माचे । विभुऽक्रतुं ॥१५॥

अयमिन्द्रोऽर्भको नाल्यशरीरः कुमारकः कुमार इव नवं सुखं रथमधि तिष्ठत् । अधितिष्ठति । स इन्द्रो



महिषं महान्तं मृगं मृगवदितस्ततो धावंतं सर्वैर्मृग्यं वा विमुक्तं ब्रजकर्मणं मेघं पचत् । पचति । बुध्यमिसुखं करोतीत्यर्थः ॥

आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययं ।

अर्धं द्युष्टं संचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसं ॥ १६ ॥

आ । तू । सुऽशिप्र । दंऽपते । रथं । तिष्ठ । हिरण्ययं ।

अर्धं । द्युष्टं । संचेवहि । सहस्रं ऽपादं । अरुषं । स्वस्तिऽगां । अनेहसं ॥ १६ ॥

हे सुशिप्र सुहृदो हे दंपते गृहस्वामिन । अथ गृहो रथः । तस्य स्वामिन तु त्वं तावद्ब्रजमां तिष्ठ । हविः-  
स्वीकरणानंतरं पश्चादहं रथमारोहामीति भावः । कीदृशं । हिरण्यं हिरण्यमयं । अथ तवारोहणानंतरम-  
हमप्याब्रह्मोमी संचेवहि । संगच्छेवहि । संगती भवेव । पुनः कीदृशं । द्युष्टं दीप्तं रथं सहस्रपादं ब्रजपादम-  
रुषमारोचमानं स्वस्तिगां जुगुप्सुगमनमनेहसमपापं ॥

पूर्वाह्ने प्रवर्त्येते चेमित्येतिषा । सुधितं च । तं चेमित्या नमस्विन इति प्रागार्थी पूर्वाह्ने । आ० ४. ७  
इति ॥

तं चेमित्या नमस्विन उप स्वराजमासते ।

अर्थे चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयंति दावने ॥ १७ ॥

तं । य । ई । इत्या । नमस्विनः । उप । स्वऽराजं । आसते ।

अर्थे । चित् । अस्य । सुऽधितं । यत् । एतवे । आऽवर्तयंति । दावने ॥ १७ ॥

तं च तं खलीमेनमिंद्रमित्येवमनेन प्रकारेण नमस्विनोऽन्नवतः सुतिवन्तो वाध्वर्यादयः स्वराजं स्वयं  
राजमानं वोपासते । सेवते । तथा ह्यस्वार्थं चिदरणीयं धनं सुधितं सुष्ठु स्थापितमस्त्रैश्च संबंधिणं प्राप्तुं-  
तीति शेषः । कदेति आह । यवदेतवेऽस्त्रैश्च नमनाय स्वयं प्राप्तुं वा दावने हविर्दानावावर्तयंति कुतश्च  
तदेत्यर्थः । अथवाच्चा वावर्तयंति तदेत्यर्थः ॥

अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषां ।

पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥ १८ ॥

अनु । प्रत्नस्य । ओकसः । प्रियऽमेधासः । एषां ।

पूर्वा । अनु । प्रऽयतिं । वृक्तऽबर्हिषः । हितऽप्रयसः । आशत ॥ १८ ॥

अनया सुतिमुपसंहरति । एषां देवानामिंद्रादीनां प्रत्नस्य पुराणस्यौकसः स्नानस्य पुराणं स्नानं  
प्रियमेधासः प्रियमेधा अन्वाशत । अनुप्राप्ताः । कीदृशाः प्रियमेधाः । पूर्वा सुखं प्रयतिं प्रदानमनु लचीकृत्य  
वृक्तबर्हिषः स्वीर्णदमी हितप्रयस आसादितसोमादिहविष्काः ॥ ७ ॥ ७ ॥

अष्टमेऽनुवाक एकादश सूक्तानि । तथ यो राजेति पंचदश्वं प्रथमं सूक्तं । अवापुक्तमयिका । यो राजा  
पंचोना पुषहन्वा बार्हतं चिप्रगाबायुष्णिगनुष्टुपुरउष्णिगंतमिति । पुषहन्वा अविः । स च क्वचित्कर्चविद्वि-  
शेषितं । अनु० २. ३. । इति परिभाषयांगिरसः । आबातृतीयापंचम्यो बृहत् । द्वितीयाचतुर्थीष्व्यः सतोबृहत् ।  
सप्तम्याबाः षड्बृहत् । चयोदशुष्णिक् । चतुर्दशनुष्टुप । पंचदशी पुरउष्णिगाव्यद्वादशका ब्रह्मका । आत्य-  
क्षेपुरउष्णिक् । अनु० ५. २. । इति हि तल्लक्षणं । इंद्रो देवता ॥ महाव्रते निष्केवली बार्हततृषाशीतावादित  
एकादश्वः । तथा च पंचमारुख्यके सूचितं । यो राजा चर्षणीनामित्येकादश । ऐ० आ० ५. २. ४. । इति ॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरग्निगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृचहा गृणे ॥१॥

यः । राजा । चर्षणीनां । याता । रथेभिः । अग्निऽगुः ।

विश्वासां । तरुता । पृतनानां । ज्येष्ठः । यः । वृचहा । गृणे ॥१॥

य इन्द्रचर्षणीनां मनुष्याणां राजा स्वामी रथैर्यता गता चाग्निपुरधृतगमनोऽन्यैर्विश्वासां पृतनानां सेनानां तरता तारकः । यस्य ज्येष्ठो गुणैर्ब्रह्मयान् । यस्य वृचहा वृचं हतवान् । तं महामागमिन्द्रं गृणे । स्तौमि ॥

इंद्रं तं शुभं पुरुहन्मन्त्रवसे यस्य द्विता विधर्तेरि ।

हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥२॥

इंद्रं । तं । शुभं । पुरुहन्मन् । अत्रवसे । यस्य । द्विता । विधर्तेरि ।

हस्ताय । वज्रः । प्रति । धायि । दर्शतः । महः । दिवे । न । सूर्यः ॥२॥

हे पुरुहन्मन् त्वं तमिन्द्रं शुभं । हविष्प्रदानादिगालंक्रुष । किमर्थं । अत्रवसे रचशाथ । एवमात्मा स्वात्मानं संबोध्य प्रवीति । यस्य तव विधर्तेरि विधारक इन्द्रे द्विता द्विस्वमस्त्यौग्यमनौग्यं । तव शत्रुहंतुमुग्रत्वं त्वदनु-  
ग्रहायानौग्यं चेति द्वैतमस्ति । तचौग्यचिह्नं दर्शयति । हस्ताय कराय हननाय शत्रूणां दर्शतो दर्शनीयो  
महो महान्वज्रः प्रति धायि प्रतिनिहितो भवति दिवे प्रकाशाय दिवसाय वा अथवा दिवि दृश्यमानः  
सूर्य इव ॥

तस्मिन्नेव शस्त्रे नकिष्टमिति प्रगाथो वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूचितं च । नकिष्टं कर्मणा नशन्न त्वा वृहंतो  
अद्रयः । आ० ७. ४. इति ॥

नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधं ।

इंद्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णलोजसं ॥३॥

नकिः । तं । कर्मणा । नशत् । यः । चकार । सदाऽवृधं ।

इंद्रं । न । यज्ञैः । विश्वऽगूर्तं । अृभ्वसं । अधृष्टं । धृष्णुऽओजसं ॥३॥

तं जनमन्यो मर्यको जनः कर्मणा हननादिव्यापारेण नकिर्नशत् । नैव व्याप्नोति । य इन्द्रं चकार  
इन्द्रमेवाणुकूलं यज्ञैः साधनैः । कीदृशमिन्द्रं । सदावृधं सदा वर्धकं विश्वगूर्तं सर्वैः क्षुत्यमृभ्वसं महान्तमधृष्टम-  
नैर्धृष्णलोजसं धर्यकबलं ॥

अषाढ्मसुयं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुजयः ।

सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥४॥

अषाढ्मं । उयं । पृतनासु । ससहिं । यस्मिन् । महीः । उरुऽजयः ।

सं । धेनवः । जायमाने । अनोनवुः । द्यावः । क्षामः । अनोनवुः ॥४॥

अषाढ्मसोऽमसुयमुद्रुर्णवत्तं पृतनासु शत्रुमेनासु सासहिमभिभवितारं स्तौमीत्यर्थः । यस्मिन्निन्द्रे जायमाने  
महीर्महत्त्वं उरुजयो वज्रवेगा धेनवो हविरादिना प्रोणयिष्यः प्रजा गाव एव वा समनोनवुः समक्षुवन् । न



केवलं धेनु एव अपि तु बाधो बुधोकाः चामः पृथिव्यस्य समनोऽनुः । तपत्वाः सर्वे प्राणिनो जन्त इत्यर्थः ।  
चिनुतो लोका इति युतेर्बहुवचनं ॥

तुतीयेऽहनि निक्षेपस्ते वैष्णवसामपथे यद्याव इति प्रगाथः लोभियः । सूचितं च । यद्याव इन्द्र ते ज्ञतं  
यदिन्द्र यावतस्त्वमिति प्रगाथी लोभियाबुक्थो । आ० ७. १०. इति ॥

यद्याव इन्द्र ते ज्ञतं ज्ञतं भूर्मीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ ५ ॥

यत् । द्यावः । इन्द्र । ते । ज्ञतं । ज्ञतं । भूर्मीः । उत । स्युरिति स्युः ।

न । त्वा । वज्रिन् । सहस्रं । सूर्याः । अनु । न । जातं । अष्ट । रोदसी इति ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ते तव प्रतिमागार्थं यद्यदि बाधो बुधोकाः स्युः तथापि जायन्वति । उतापि च भूर्मीर्भूम्यस्ते तव  
मूर्तिप्रतिविम्बाय ज्ञतं स्युः तथापि जायन्वति । हे वज्रिन् ते त्वां सहस्रं सूर्या अभ्यगता अपि सूर्या जायन्वति ।  
न प्रगाथयन्तीत्यर्थः । न तव सूर्यो माति । आ० ७. १५. इति युतेः । किं वज्रना । जातं पूर्वसुत्पन्नं किंचन  
जाष्ट । जायते । तथा रोदसी बाधापृथिवी जायन्वति । सर्वेभ्योऽतिरिच्यस इत्यर्थः । व्याघान्पृथिव्या व्याघा-  
नंतरिचाव्याघान्द्विषो व्याघानेभ्यो लोकेभ्यः । आ० ७. १४. ३. इति युतेः ॥ ५ ॥

आ पंप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वं शविष्ठ शर्वसा ।

अस्माँ अत्र मघवन्गोमति व्रजे वज्रिञ्चिचामिहूतिभिः ॥ ६ ॥

आ । पंप्राथ । महिना । वृष्ण्या । वृषन् । विश्वं । शविष्ठ । शर्वसा ।

अस्मान् । अत्र । मघवन् । गोमति । व्रजे । वज्रिन् । चिचामिः । ऊतिभिः ॥ ६ ॥

हे वृषन्नमिमतवर्षेकेन्द्र त्वमा यप्राथ । आपूरयसि । व्याप्नोषि । कानि । विश्वा सर्वाणि वृष्णा वर्षकाणि  
वसानि श्रुसंबंधीनि । केन साधनेन । महिना महता शर्वसा वक्षेन स्त्रीयेन । अत्रवा वृष्णीत्येतच्छ्रुयोविशेषके ।  
तथा सत्यमिमतवर्षेकेण महता वक्षेनासदीयाणि वसानि पूरयसीत्यर्थः । अथ तथा कृत्वाकान् गोमति वज्र-  
मिर्गोमिर्गुक्ते व्रजे श्रुसंबंधिनि निमित्ते सत्यसागव हे वज्रिन्वसयुतेन्द्र । केः साधनेः । चिचामिर्गानाविधिहू-  
तिभि रचयैरिति ॥

न सीमदेव आपदिषं दीर्घायो मर्त्यैः ।

एतग्वा चिद्य एतंशा युयोजते हरी इंद्रो युयोजते ॥ ७ ॥

न । सी । अदेवः । आपत् । इषं । दीर्घायो इति दीर्घऽआयो । मर्त्यैः ।

एतऽग्वा । चित् । यः । एतंशा । युयोजते । हरी इति । इन्द्रः । युयोजते ॥ ७ ॥

हे दीर्घायो नितिन्द्र सोऽदेव इन्द्राव्यदेवरहितो मर्त्यो मरणधर्मा मनुष्यः सीं सर्वमिषमन्नं नापत् । न  
प्राप्नोति । यो मर्त्योऽस्तेन्द्रक्षित्वा चित् । एतवर्षाविषाद्यो भवतोऽमिमतदेशमनाथ । एतंशतशावद्यो युयो-  
जते योजयति रथे यन्नं गंतुं । यद्येन्द्रो हरी युयोजते तन्न यः क्षीति । स न प्राप्नोतीति समन्वयः ॥

तं वो महो महायमिन्द्रं दानाय सक्षणिं ।

यो गाधेषु य आरणेषु हव्यो वाजेष्वस्ति हव्यः ॥ ८ ॥

तं । वः । म॒हः । म॒हाय्यं । इ॒न्द्रं । दा॒नाय । स॒क्षयि॑ ।

यः । गा॒धेषु॑ । यः । आ॒ऽअर॑णेषु । ह॒व्यः । वा॒जेषु॑ । अ॒स्ति । ह॒व्यः ॥ ८ ॥

हे अस्तिवः महो महान्तो वो यूयं तं महाय्यं पूज्यमिन्द्रं दानाय सक्षयिं सचमानं परिचरतेति शेषः । य इन्द्रो गाधेषुदक्षेषु हव्योऽस्ति आह्रातव्यो भवति । यस्वारणेषु गंतव्येषु निक्षेपुदक्षेषु स्त्रलेषु वा हव्योऽस्ति । तथा वाजेषु संगामेषु जघाय हव्यो ह्रातव्योऽस्ति भवति ॥

उ॒द्रु॒षु॒ शो॑ व॒सो म॒हे मृ॒शस्व॑ शू॒र रा॒धसे॑ ।

उ॒द्रु॒षु॒ म॒ह्यै म॒घव॑न्म॒घत्त॑य॒ उ॒दि॒न्द्र॒ श्रव॑से म॒हे ॥ ९ ॥

उ॒त् । ऊं॒ इति॑ । सु॒ । नः॒ । व॒सो॒ इति॑ । म॒हे । मृ॒शस्व॑ । शू॒र । रा॒धसे॑ ।

उ॒त् । ऊं॒ इति॑ । सु॒ । म॒ह्यै । म॒घऽव॑न् । म॒घत्त॑ये । उ॒त् । इ॒न्द्र॒ श्रव॑से । म॒हे ॥ ९ ॥

हे वसो वासयितः शूरिन्द्र त्वं नोऽस्मात् सु सुष्ठु मृशस्व । उच्युशस्व । उत्थापय । किमर्थं । महे महते राधसेऽन्नाय । तथा हे शूर मघवमिन्द्र उच्युशस्व मही महते मघत्तये धनदानाय । तथोच्युशस्विन्द्र महे महत्ये श्रवसे कीर्त्ये ॥

त्वं न॑ इ॒न्द्र॒ अ॒त॒यु॒स्त्वा॒निदो॑ नि॒ तृ॒पसि॑ ।

म॒ध्ये व॒सि॒ष्व तु॒वि॒नृ॒म्यो॒र्वो॒र्नि दा॒सं शि॒क्ष॒णो ह॒व्यैः ॥ १० ॥

त्वं । नः॒ । इ॒न्द्र॒ । अ॒त॒ऽयुः॒ । त्वा॒ऽनि॒दः । नि॒ । तृ॒प॒सि॒ ।

म॒ध्ये । व॒सि॒ष्व । तु॒वि॒ऽनृ॒म्य॒ । ऊ॒र्वोः॒ । नि॒ । दा॒सं । शि॒क्ष॒णः । ह॒व्यैः ॥ १० ॥

हे इन्द्र अतयुश्चकामस्त्वं नोऽस्मांस्तानिदः । त्वां यो निंदति सः । अयजनमेव निंदा तव । तस्मादयद्रुः सकाशात्ति नितरां तृपसि । प्रीणयसि । तस्व धनमपहृतेति मायः । एवं संतर्प्य हे तुविनृम्या प्रभूतधन स त्वं तवोर्वोर्मध्येऽस्मान्वसिष्व । ऊरुभ्यामाच्छादय रचार्थं । दासमुपचपयितारमस्व द्वेषिणं पापं वा हृषीर्हजनेर्नि शिक्षणः । मारयसि । अथवा त्वक्षिरोधिचं दासमसुरं नि शिक्षणो हजनेः ॥ ॥ ९ ॥

अ॒न्य॒व्र॑त॒म॒मा॒नुष॑म॒र्य॒ज्वा॒नम॑दे॒वयु॑ ।

अ॒व॒ स्वः॑ स॒खा दु॒धु॒वी॒त॒ प॒र्वतः॑ सु॒घ्नाय॑ द॒स्युं प॒र्वतः॑ ॥ ११ ॥

अ॒न्य॒ऽव्र॑तं । अ॒मा॒नुष॑ । अ॒र्य॒ज्वा॒नं । अ॒दे॒वऽयु॑ ।

अ॒व॒ । स्वः॑ । स॒खा । दु॒धु॒वी॒त॒ । प॒र्वतः॑ । सु॒ऽघ्नाय॑ । द॒स्युं । प॒र्वतः॑ ॥ ११ ॥

हे इन्द्र अन्यव्रतं व्यतिरिक्तकर्माणं अत एवामानुषं मानुषाणामिन्द्रयाजिनामप्रियमर्यज्वानमयष्टारमदेव-युमदेवकर्मिणं पापिनं स्वः स्वर्गादव दुधुवीत । अववाचयदित्यर्थः । कः । सखा पर्वतस्य सखिमूतः पर्वत-च्छविः । यद्यप्यन्यं देवमिहा स्वर्गं प्राप्नोति सः तथापि पातयत्युषिः । न केवलं धूजगमाचं अपि तु सुघ्नाय सुष्ठु इव मृत्यवे दस्युमुत्तज्जघणं पर्वतः प्रेरयतीति शेषः । अत इन्द्रमेवावज्ञं यजध्वमिति शेषः ॥

त्वं न॑ इ॒न्द्रा॒सां ह॒स्ते श॒वि॒ष्ठ दा॒वने॑ ।

धा॒नानां॑ न॒ सं गृ॒भाया॑स्म॒यु॒र्द्धिः॑ सं गृ॒भाया॑स्म॒युः ॥ १२ ॥





हे अये त्वं नोऽस्मान्होमिः पुत्राभिर्महस्त्रिधनेर्वा पाहि । रघ । विश्वस्या बज्रविधादरातेरदातुः सका-  
शात् अदानाद्वा पाहि । त्वमेव महद्भनं दत्त्वादातुरदानाद्वा सकाशाद्भवेत्यर्थः । यद्वा । महोभिर्युतस्त्वमिति  
योञ्ज । उतापि च द्विषो द्वेष्टर्मर्त्यस्य मर्त्यात्सकाशात्पाहि । अस्मभ्यं वसं दत्त्वेति भावः । अथवा मर्त्यस्य द्विषो  
देवाद्भवेति संबंधः । अरातेरित्यस्यादानादिति पक्षे तथापि मर्त्यस्यादानादिति संबंधणीयं ॥

न॒हि म॒न्युः पौरु॑षेय॒ ई॒शे हि वः प्रिय॑जात । त्वमिदं॑सि॒ क्षपा॑वान् ॥ २ ॥

न॒हि। म॒न्युः । पौरु॑षेयः । ई॒शे । हि । वः । प्रिय॑ऽजात । त्वं । इत् । अ॒सि । क्षपा॑ऽवान् ॥ २ ॥

हे प्रियजाताये वसव पौरुषेयः पुरुषसंबन्धी मन्युः क्रोधो जेशे जेष्टे बाधितुं । अस्मादादिभी रक्षितत्वादिति  
भावः । दिवाचराः खलु पुरुषाः अतो दिवा तव हानिर्नास्तीति भावः । अथ रात्रिचरा रघः प्रभृतयः ।  
तेभ्योऽपि पीडा नास्तीत्युच्यते । त्वमित्वमेव खलु चपावाचाचिमानसि । रात्रौ ह्यपिर्विशेषेण तेजस्वी भवति ॥

स नो॒ विश्वे॑भिर्दे॒वेभिरू॒र्जो न॒पाद्भद्र॑शोचे । र॒यिं दे॑हि वि॒श्ववारं॑ ॥ ३ ॥

सः । नः । विश्वे॑भिः । दे॒वेभिः । ऊ॒र्जः । न॒पात् । भद्र॑ऽशोचे । र॒यिं । दे॑हि । वि॒श्वऽवारं॑ ॥ ३ ॥

हे अये स क्षुत्पूतं नोऽस्मभ्यं वसो वसु धनमुप मासि । प्रयच्छसि । हे ऊर्जो नपाद्वलस्य मत्तर्जं पातयि-  
तर्वा हे भद्रशोचे क्षुत्प्रकाशन । देवादरार्थं पुनराह । रयिं धनं विश्ववारं सर्वैर्वरणीयं धनं देहि । अथवा  
यदसूप मास्वस्मभ्यं दातुं तन्नं गृहादिलक्षणां तन्न रयिं दानार्थं गोधिरस्यादिकं च देहीत्युपनयतिः ॥

न तम॑मे॒ अरा॑तयो॒ मर्त॑ युव॑न्त रा॒यः । यं चा॑र्यसे दा॒श्वान्सं॑ ॥ ४ ॥

न । तं । अ॒मे । अरा॑तयः । मर्त॑ । युव॑न्त । रा॒यः । यं । चा॑र्यसे । दा॒श्वान्सं॑ ॥ ४ ॥

हे अये नं सोतारमरातयोऽदानशीला द्वेषिणो रात्रो रयिमंतो न युवन्त । न पृथक्कुर्वन्ति । रात्रो धनाद्या  
न युवन्त । यं दाश्वान्सं हविर्दानारं चायसे पालयसे ॥

यं त्वं वि॒प्र मे॒धसा॑ता॒वमे॑ हि॒नोषि॑ धना॒य । स तवो॑ती गोषु ग॑न्ता ॥ ५ ॥

यं । त्वं । वि॒प्र । मे॒धऽसा॑तौ । अ॒मे । हि॒नोषि॑ । धना॒य । सः । तव॑ । उ॒ती । गोषु॑ । ग॑न्ता ॥ ५ ॥

हे अये विप्र त्वं यं मर्त्यं मेधसातौ यज्ञस्य संमजने हिनोषि प्रेरयसि धनाय गवादिधनसामाय स चव-  
मानसवोत्पूता रघणेन यागेऽु गन्ता भवति । गोमान् भवतीत्यर्थः ॥ ५१ ॥

त्वं र॒यिं पुरु॑वीर॒ममे॑ दा॒श्वेषे॒ मर्ता॑य । प्र णो॑ नय॒ वस्यो॒ अ॒च्छ ॥ ६ ॥

त्वं । र॒यिं । पुरु॑ऽवीरं । अ॒मे । दा॒श्वेषे॑ । मर्ता॑य । प्र । नः । न॒य । वस्यः । अ॒च्छ ॥ ६ ॥

हे अये त्वं दाश्वेषे हविर्दत्तवते मर्त्याय चवमानाय रयिं धनं पुरुवीरं बज्रमिवीर्युतं प्रयच्छसि । अतो  
नोऽस्मानपि वसो वसीयो धनमच्छाभिप्राप्तुं प्र णय । प्रापय ॥

उ॒रु॒था णो॒ मा परा॑ दा अ॒घाय॑ते जा॒तवे॑दः । दुरा॒ध्येऽ॒ मर्ता॑य ॥ ७ ॥

उ॒रु॒थ । नः । मा । परा॑ । दाः । अ॒घऽय॑ते । जा॒तऽवे॑दः । दुः॒ऽआ॒ध्ये । मर्ता॑य ॥ ७ ॥

हे जातवेदो जातविष जातधन चाये नोऽस्मानुष्य । रघ । उरुथती रघाकमेति यास्तः । मि० ५. २३ ।  
मा परा दाः । मा परादंष्ट्रस्यान् । कस्या इति स उच्यते । अघायतेऽघं पापमिच्छते दुराधे दुराध्यानाथ  
द्विर्वचंतकाय हिंभावुश्च मर्ताय मनुष्याय ॥



अग्ने॒ मा॒किं॒ष्टे दे॒वस्य॑ रा॒तिम॑दे॒वो यु॒योत॑ । त्वमी॑शिषे॒ वसू॑नां ॥ ८ ॥

अग्ने॑ । मा॒किः । ते । दे॒वस्य॑ । रा॒ति । अ॒दे॒वः । यु॒योत॑ । त्वं । ई॒शिषे॑ । वसू॑नां ॥ ८ ॥

हे अग्ने देवस्य द्योतमानस्य ते तव रातिं दातुं दत्तं धनं वा कश्चिद्देवो मर्त्यादिर्माकिर्द्युयोत । भैव पुष्यकरोतु । त्वमेवेशिषे । वसू । वसूनां धनानामीश्वरो भवसि दातुं । अग्नेनामित्रघ्नीयाया रातिः सन्नाय उक्तो भवति ॥

स नो॒ वस्व॑ उप॒ मा॒स्यूजो॑ न॒पा॒न्मा॒हि॒नस्य॑ । सखे॑ वसो ज॒रितृ॒भ्यः ॥ ९ ॥

सः । नः । वस्वः । उप॒ । मा॒सि॒ । ऊ॒र्जः । न॒पात् । मा॒हि॒नस्य॑ । सखे॑ । व॒सो॒ इति॑ ।

ज॒रितृ॒भ्यः ॥ ९ ॥

हे ऊर्जो नपाद्वलसान्नस्य पुष्य । वसेन मध्यमानत्वादाभ्यलक्षणेनाग्नेन प्रवर्धनादूर्जो नपात् । हे सखे सखिपथितकारिन्वसो वासवापि स क्षुत्पलेनैव प्रसिद्धस्त्वं जरितृभ्यो जरितृभ्यः सोतृभ्यो नोऽस्माभ्यं माहि॒नस्य॑ वसः । माहि॒न इति॑ महन्नाम । महन्नमुप मासि । समीपे मासि । निर्मासि । प्रयच्छसीत्यर्थः ॥

प्रातरनुवाके बार्हते कंदस्यच्छा न इत्याद्याः षड्वचः । तथा च सूचितं । अच्छा नः शीरशोचिषमिति वद् । आ० ४. १३. इति ॥ दशमेऽहनि प्रातःसवनेऽच्छा वो अपिमिति तुषस्य स्त्रानेऽच्छा न इति तुषोऽच्छावाक॒वादः । सूचितं च । अच्छा नः शीरशोचिषं प्रति श्रुताय वो ध्रुवदिति तुषो । आ० ८. १२. इति ॥

अच्छा॑ नः शी॒रशो॑चिषं गि॒रो यंतु॑ दर्श॒तं ।

अच्छा॑ य॒ज्ञासो॑ नम॒सा पुरु॑वसुं पुरु॒प्रश॑स्तमू॒तये॑ ॥ १० ॥

अच्छ॑ । नः । शी॒रऽशो॑चिषं । गि॒रः । यंतु॑ । दर्श॒तं ।

अच्छ॑ । य॒ज्ञासः॑ । नम॒सा । पुरु॑वसुं । पुरु॒ऽप्रश॑स्तं । ऊ॒तये॑ ॥ १० ॥

अच्छाभिमुखं यंतु गच्छंतु नोऽस्माकं गिरः क्षुतयः । कं । शीरशोचिषमशनशीलं ज्ञातं दर्शतं सर्वैर्दर्शनी॒यम॑पि । तथा यज्ञासो यज्ञाद्यासदीया नमसा हविषाद्यादिलक्षणेनाच्छाभिमुखं यंतु । गच्छंतु । कीदृशं । पुरुवसुं प्रभूतधनं पुष्यप्रशस्तं वज्रक्षुतं । किमर्थं । ऊतयेऽस्माकं रक्षयाय ॥ १२ ॥

अ॒ग्निं सूनुं॑ सह॒सो जा॒तवे॑दसं दाना॒य वा॒र्याणां॑ ।

द्वि॒ता यो भू॒दमृ॑तो म॒र्त्येष्व॑ा होता॑ म॒द्रत॑मो वि॒शि ॥ ११ ॥

अ॒ग्निं । सूनुं॑ । सह॒सः । जा॒तऽवे॑दसं । दाना॒य । वा॒र्याणां॑ ।

द्वि॒ता । यः । भू॒त् । अ॒मृतः॑ । म॒र्त्येषु॑ । आ । होता॑ । म॒द्रऽत॑मः । वि॒शि ॥ ११ ॥

अग्निं सहसः सूनुं वसुस्य पुष्यं जातवेदसं जातधनं वार्याणां वरणीयानां भवादिधनानां दानाय वि॒रोऽच्छ॑ यंतित्यनुवर्तते । योऽपिरमृतोऽमरणधर्मा देवेषु भवति स मर्त्येष्व॒ा । आकारार्थे । मनुष्येषु चामृतं भवदित्येवं द्विता द्वेधं भवति । देवेष्वमृतत्वमस्य प्रसिद्धं मनुष्येषु कीदृशोऽभूदिति उच्यते । विशिं पिषु यज॒मान॑रूपासु प्रवासु होमनिष्यादको मद्रतमो मादयितृतमस्य भवति । अच्छ॑ यंतिति समन्वयः । अथवा । योऽमृतो द्विता द्वित्वं द्विप्रकारोऽभूत् । कथं । मर्त्येषु सामान्येन दाहपाकादिसाधनोऽभवदित्येतत्प्रसिद्धं विशिं यजमानरूपायां तु होता मद्रतमोऽभवदित्येवं द्वित्वं ॥

अ॒ग्निं वो दे॒वय॒ज्यया॒ग्निं प्र॒यत्य॑ध्वरे ।

अ॒ग्निं धी॒षु प्रथ॑मम॒ग्निमर्व॑त्य॒ग्निं क्षैचा॑य साध॒से ॥१२॥

अ॒ग्निं । वः । दे॒वऽय॒ज्यया॑ । अ॒ग्निं । प्र॒ऽयति॑ । अ॒ध्वरे॑ ।

अ॒ग्निं । धी॒षु । प्रथ॑मं । अ॒ग्निं । अर्व॑ति । अ॒ग्निं । क्षैचा॑य । साध॒से ॥१२॥

हे यजमानाः शुष्माकं देवयज्यया देवयगेन निमित्तेन देवयगार्थमग्निं क्षौमीति शेषः । तथापिमध्वरे यागे प्रयति प्रकर्षेण गच्छति प्रवृत्ते सति क्षौमि प्रथममितरदेवेभ्यः । तथापिमर्षत्यागते धातुव्ये क्षौमि यज्ञ-विघ्नपरिहारार्थं । तथा क्षैचाय क्षैचाय चैवसंबन्धिने साधसे साधनाय चैवलाभाय क्षौमि । यच्चति चैवला-मरूपाय फलाय च क्षौमि । एवमादौ मध्येऽन्ते च सर्वदा क्षौमीत्यर्थः ॥

अ॒ग्निरि॒षां स॒ख्ये द॑दातु न॒ ई॒शे यो वा॒र्याणां॑ ।

अ॒ग्निं तो॒के तन॑ये श॒श्वदी॑महे वसुं॑ संतं॑ तनू॒पां ॥१३॥

अ॒ग्निः । इ॒षां । स॒ख्ये । द॒दातु॑ । नः । ई॒शे । यः । वा॒र्याणां॑ ।

अ॒ग्निं । तो॒के । तन॑ये । श॒श्वत् । ई॒महे॑ । वसुं॑ । संतं॑ । तनू॒ऽपां ॥१३॥

अग्निर्देवः सख्ये समानव्यानाय नो मह्यं । सख्युः कर्म सख्यं । तस्मिन्वा । नोऽसम्यमिषामिषोऽज्ञानि ददातु । योऽग्निर्वार्याणां धनानामीशे ईशे स ददात्विति । तमेवाग्निं तोके पुत्रार्थं तनये तत्पुत्रार्थं च शश्वद्वज्र धनमज्ञं वेमहे । याचामहे । वार्याणामीश इत्युक्तत्वादेवं लभ्यते । कीदृशमग्निं । वसुं वासकं संतं सर्वदा वर्तमानं तनूपाभंगानां पालयितारं ॥

अ॒ग्निमी॑ळि॒ष्वाव॑से गाथा॒भिः शी॒रशो॑चिषं ।

अ॒ग्निं रा॒ये पु॒रुमी॑ळ्ह श्रु॒तं नरो॑ऽग्निं सु॒दीत॑ये छ॒र्दिः ॥१४॥

अ॒ग्निं । ई॒ळि॒ष्वा॒व॒से । गाथा॒भिः । शी॒रऽशो॑चिषं ।

अ॒ग्निं । रा॒ये । पु॒रुऽमी॑ळ्ह । श्रु॒तं । नरः॑ । अ॒ग्निं । सु॒दीत॑ये । छ॒र्दिः ॥१४॥

हे पुरुमीळ्ह त्वमग्निमवस आवयो रक्षणायेळिष्व । कुहि गाथाभिः । गाथेति वाङ्माम । मंचरूपा-भिर्वाग्भिः । कीदृशं । शीरशोचिषं शयनस्वभावरोचिष्कं । तथा राय ईळिष्व । श्रुतमेनं नरोऽग्न्येऽपि यज-मानाः कुर्वन्ति स्वार्थं । तस्मात्सुदीतये मह्यमग्निं छर्दिर्गृहं याचस्तेत्येवं सुदीतिः पुरुमीळ्हं ब्रूते ॥

अ॒ग्निं द्वे॒षो योत॑वै नो गृ॒णीम॑स्य॒ग्निं शं यो॒श्च दा॑त॒वे ।

वि॒श्वा॒सु वि॒क्ष्ववि॑तेव ह॒व्यो भुव॑न्वस्तु॒र्जृषू॑णां ॥१५॥

अ॒ग्निं । द्वे॒षः । योत॑वै । नः । गृ॒णीम॑सि । अ॒ग्निं । शं । योः । च । दा॑त॒वे ।

वि॒श्वा॒सु । वि॒क्षु । अ॒वि॒ताऽई॒व । ह॒व्यः । भुव॑न्त् । वस्तुः । ऋ॒षू॒णां ॥१५॥

अग्निं द्वेषो द्वेष्ट्योतवै पृथक्कर्तुं गृणीमसि । गृणीमः । क्षुमः । तथापि शं सुखं योश्च भयानामभिग्रहं च दातवे दातुं । अथवा शं सुखस्य योर्मिश्रणाय च गृणीमसि । अस्मिन्पक्षे द्वेषो योतवा इत्यनेन सह समुच्च-वार्यशब्दः । सोऽपिर्विश्वासु सर्वासु विश्व प्रजास्त्वितेव रचिता रात्रेर्वर्षाभृषीणामस्माकं वसुर्वासको देवो



हव्यो भवत् । भवतु । अथवा । सर्वासु विद्यु चयमानरूपासु प्रजासु मध्य अयुष्मानुपीणां सूक्तद्रष्टुमामसाकमेव हव्यो भवतु वसुः सर्वस्य वासको देवः ॥ १३ ॥

हविष्कृणुध्वमित्यष्टादशर्चं तृतीयं सूक्तं । अथानुक्रमणिका । हविर्ह्यना हर्यतः प्रागाधो हविषां क्षुतिर्वेति । प्रागाधपुत्रो हर्यत अविः । परं गायत्रं प्राग्वत्सप्रेरिति परिभाषया गायत्री छंदः । आपेयं त्वित्युक्तत्वाद-  
भिर्देवता यदा हविषां सूच्यमानत्वात्तन्निवृत्ताकं वा ॥ सूक्तविनियोगो वैगिरिः ॥

हविष्कृणुध्वमा गमदध्वर्युर्वैनते पुनः । विद्वाँ अस्य प्रशासनं ॥ १ ॥

हविः । कृणुध्वं । आ । गमत् । अध्वर्युः । वनते । पुनरिति । विद्वान् । अस्य ।  
प्रशासनं ॥ १ ॥

हे अध्वर्युसंबन्धिनो हविष्कर्तारः यूयं हविः कृणुध्वं । कृणुध्वं शीघ्रं । यत आ गमत् आजगामाथमपिः  
अतः कृणुध्वं । अध्वर्युः पुनर्वनते । संभवति । किं । सामर्थ्यादध्वरमिति गम्यते । कीदृशोऽध्वर्युः । अस्य हविषः  
प्रशासनं प्रदानं विद्वान् ॥

नि तिग्ममभ्यंशुं सीदद्भोता मनावधि । जुषाणो अस्य सख्यं ॥ २ ॥

नि । तिग्मं । अभि । अंशुं । सीदत् । होता । मनौ । अधि । जुषाणः । अस्य । सख्यं ॥ २ ॥

होतृत्वेति तिग्मं तीक्ष्णमंशुं तमपि नि पीदत् । निपीदति । कीदृशो होता । अस्यापिः सख्यं मनावधि  
यजमाने जुषाणः ॥ अधीति सप्तम्यर्थानुवादी ॥

अंतरिच्छन्ति तं जनै रुद्रं परो मनीषया । गृभ्णन्ति जिह्या ससं ॥ ३ ॥

अंतः । इच्छन्ति । तं । जनै । रुद्रं । परः । मनीषया । गृभ्णन्ति । जिह्या । ससं ॥ ३ ॥

तं रुद्रं । रुद्रः खं । तस्य द्वावप्यतारः । अथवा इत् क्षुतिः । तथा गंतव्यं । सुखमित्यर्थः । तादृशमपि जनै  
यजमानार्थं मनीषया स्वप्रज्ञानेन परः परस्तात्पुरोदेश इच्छन्ति स्थापयितुं । त एव पश्चात्ससं स्वपंतमपि  
जिह्या ॥ जनै जनकशब्दः ॥ जिह्याप्रभवया सुत्या गृभ्णन्ति । गृह्णन्त्यंगुलिभिः । अथ यास्तः । स्वप्रमेतकधर्मं  
ज्योतिरनित्यदर्शनं । नि० ५. ३. इति ॥

जाम्यतीतपे धनुर्वयोधा अरुहन्नं । दृषदं जिह्यावधीत् ॥ ४ ॥

जामि । अतीतपे । धनुः । वयः । ऽधाः । अरुहत् । वनं । दृषदं । जिह्या । आ । अवधीत् ॥ ४ ॥

वयोधा अन्नस्य दाताभिर्मध्यमस्थानी जामि प्रवृद्धं सर्वमतिरिच्य वर्तमानं । जाम्यतिरेकनामेति यास्तः  
। नि० ४. २०. । धनुर्वन्तातरिचमतीतपे । अतितपति । अथवापिर्धामि यमनशीलं धनुरतितपते स्वविरोधिणं ।  
स च वयोधा अन्नस्य दाताभिर्वर्णमुदकमरुहत् । आरोहति विमोकाय । तदर्थं जिह्या ज्ञातया दृषदं मेघ-  
मवधीत् । हंति । दावापिपक्षे वनं तदसमूहं हंति । जिह्या दृषदं कठिनमपि पाषाणं भिज्जतीति ॥

चरन्वत्सो रुशन्निह निदातारं न विंदते । वेति स्तोतव अंब्यं ॥ ५ ॥

चरन् । वत्सः । रुशन् । इह । निऽदातारं । न । विंदते । वेति । स्तोतवे । अंब्यं ॥ ५ ॥

वत्सः । वत्सवस्त्रापलेन धावनाद्वत्स इत्युपचर्यते । अथवा वत्स इव संवरन् । इवशब्दो जुष्यते । रुशन्नेतो  
भवन्निहासिञ्चोके निदातारं निरोधकं न विंदते । न जमते । किंतु स्तोतवे स्तोतुमंब्यं स्तोतारं स्वयं वेति ।  
कामयते । अथवाच वैयुतोऽपि रुशन्ति । वैयुतोऽयं रुशन्वरं वैहातरिचि वत्सः सर्वदा वसन् वत्सस्थानीयो वा  
सन्निदातारं निरोधकं न विंदते । किंतु स्तोतुमंब्यं माध्यमिकां वाचं वेति ॥ १४ ॥

उतो न्वस्य यन्महदम्बावद्योजनं बृहत् । दामा रथस्य ददृशे ॥ ६ ॥

उतो इति । नु । अस्य । यत् । महत् । अम्बावत् । योजनं । बृहत् । दामा । रथस्य । ददृशे ॥ ६ ॥

उतो अपि च नु चिप्रमयास्त्रादित्यस्य यन्महदम्बावत्तमम्बावत्संयुक्ताम्बावद्बृहत्स्त्रादित्यस्य योजनं दृश्यते । तदेवाह । रथस्य दामा ददृशे दृश्यते । अंतरिक्षे रथेऽस्त्राभिद्योजयतीत्यर्थः । तदा दुहंतोत्युत्तरत्र संबंधः ॥

अभिष्टवे धर्मदाहे दुहंति सप्तैषिणा । सूचितं च । दुहंति सप्तैकां समिद्धी अपिरक्षिणा । आ० ४. ७. इति ॥ आवस्योचिऽक्षिणा । सूचितं च । दुहंति सप्तैकामधुचत्पिप्पुषीमिव । आ० ५. १२. इति ॥

दुहंति सप्तैकामुप द्वा पंच सृजतः । तीर्थे सिंधोरधि स्वरे ॥ ७ ॥

दुहंति । सप्त । एका । उप । द्वा । पंच । सृजतः । तीर्थे । सिंधोः । अधि । स्वरे ॥ ७ ॥

सप्तैषिण्य एकां धर्मं दुहंति । तेषां मध्ये द्वा द्वौ प्रतिप्रस्थातारवध्वर्यु पंचान्यामुप सृजतः । प्रयोजयतः । के ते पंच त उच्यते । यजमानं ब्राह्मणं होतारमाधीं प्रस्तोतारमिति । कुर्वति उच्यते । सिंधोः कस्यास्तित्स्त्रादित्यप्रस्थाताया नवासीर्थे । यचायमुपिर्धयति तत्र । स्वरेऽधि ॥ स्वरतिः शब्दकर्मा । अधीति सप्तम्यर्थाशुवादी ॥ स्वरोपेति शब्दवति । यत्तीर्थमूलिकं ओं आयथेत्यादिशब्दैः शब्दवत्प्रवति तस्मिन्नित्यर्थः ॥

प्रवर्ग्येऽभिष्टवे याव्योऽभिष्टवे वा दशभिरित्थिना । सूचितं च । आ दशभिर्विवस्वतो दुहंति सप्तैकां । आ० ४. ७. आ० ५. १२. इति ॥

आ दशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत् । खेदया चिवृता दिवः ॥ ८ ॥

आ । दशभिः । विवस्वतः । इन्द्रः । कोशं । अचुच्यवीत् । खेदया । चिवृता । दिवः ॥ ८ ॥

विवस्वतः परिचरतो यजमानस्य दशभिरंगुलीभिर्यचितः सन्निद्रः कोशं । मेघनामैतत् । उदकसेचकं मेघं दिवोऽंतरिक्षसंबन्धिनं तत्सकाशादाचुच्यवीत् । अदारयदित्यर्थः । केन साधनेनेति तदुच्यते । चिवृता चिप्रकारवर्तनवता खेदया रश्मिना । यद्वा । अवेन्द्रशब्देनापिरादित्यो वा गृह्यते । खेदया चिवृतेति लिंगात् ॥

परि चिधातुर्ध्वरं जूर्णैरेति नवीयसी । मध्वा होतारो अंजते ॥ ९ ॥

परि । चिधातुः । ध्वरं । जूर्णैः । एति । नवीयसी । मध्वा । होतारः । अंजते ॥ ९ ॥

अथमपिस्त्रिधातुर्लोहितमुक्ताक्षमिदेन चिषर्णो जूर्णैर्वधो वेगवान्नवीयसी नवीयस्या ज्वालयध्वरं प्रवर्ग्येनेति । गच्छति । होतारो होमनिष्पादका अध्वर्यादयो मध्वाज्यादिना पर्यंजते । अथवापेस्त्रिस्त्रिप्रकारा चिप्रा अवतरा ज्वाला पर्येति महावीरं । तं मध्वांजत इति ॥

सिंचंति नमसावतमुच्चाचक्रं परिज्मानं । नीचीनवारमक्षितं ॥ १० ॥

सिंचंति । नमसा । अवतं । उच्चाचक्रं । परिज्मानं । नीचीनवारं । अक्षितं ॥ १० ॥

नमसा नमनेनावतं महावीरमुच्चाचक्रमुपरिस्थितचक्रं परिज्मानं परिणत्यामं नीचीनवारं नीचीनवारमक्षितमचीयं ईदृशं हीराववशेषयुक्तमाहवनीयस्योपरि नमनेन सिंचंति । जुहति । महावीरेण ह्याहवनीये हयते ॥ १५ ॥

अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु । अवतस्य विसर्जने ॥ ११ ॥

अभिऽआरं । इत् । अद्रयः । निऽसिक्तं । पुष्करे । मधु । अवतस्य । विऽसर्जने ॥ ११ ॥

अद्रय आद्रियमाणा अध्वर्यादयोऽभ्यारमिदमिगम्यैव निषिक्तमतिरिक्तं मधु पुष्करे वपुष्करे प्रवृद्ध



उपयमनीपात्रे सिंचति । अपिहोचार्धमवतन्व महावीरस्य विसर्जने विसर्जनसमये होमानंतरं खलु महावीरमासंध्यमासादयति ॥

गाव॒ उपा॒वताव॑तं म॒ही य॒ज्ञस्य॑ र॒प्सुदा॑ । उ॒भा क॑र्णी हिर॒ण्यया॑ ॥१२॥

गावः । उप । अवत । अवतं । मही इति । यज्ञस्य । रप्सुदा । उभा । कर्णी । हिरण्यया ॥१२॥

हे गावो धर्मदुषाः धूमवतं महावीरं प्रत्युपावत । उपागच्छत । यस्याव्ययस्य धर्मयागस्य साधनमूते रप्सुदा । रप्सुदारप्सुदे आरिषोः क्लृप्ते । क्षिप्सोरश्विनोर्दातव्ये वा । यदा रपणं शब्दः । रप मंचः । तेन सुष्ठु दातव्ये । अथवा वृद्ध षरणे । रपा मंचेण चारणीये दोहनीये । ईदृशे गवाजयोः पयसी मही महती यज्ञस्य अर्पयिते अत उपावतं । गौरजाया अक्षुपलक्षकः अजापयसोऽपि महावीरि सेचनीयत्वात् । अपि चास्य महावीरस्योभोभौ ऽर्णा कर्णस्थानीयौ द्वौ दक्षौ हिरण्यया हिरण्यमयी सुवर्णरजतमयावित्यर्थः ॥

प्रवर्ग्येऽजापयसि महावीर आनीयमान आ सुत इत्येवा । सूचितं च । आ सुते सिंचत अियमित्वाजे । आ० ४. ७. इति ॥

आ सु॒ते सिंच॑त॒ श्रियं॑ रोद॒स्योरभि॑श्रियं । र॒सा द॑धीत वृष॒भं ॥१३॥

आ । सुते । सिंचत । श्रियं । रोदस्योः । अभिऽश्रियं । रसा । दधीत । वृषभं ॥१३॥

सुते दुग्धे गोपयसि श्रियं अयणमात्रं पय आ सिंचत । सिंचत हे अभ्यर्चयः । कीदृशमात्रं । रोदस्योः । कर्मणि षष्ठीया ॥ आवापुषिन्वावमिश्रियमभिश्चर्यतं । अपिसंयोगात्तावत्पर्यंतं प्रवृद्धमित्यर्थः । अथवा तत्कावन्विनी आवापुषिन्वावित्येके । नि० १२. १. इति निरुक्तत्वाद्द्विनोरमिश्रियमित्यर्थः । सेचनानंतरं रसा रस आये पयसि वृषभं वर्षकमपि दधीत । स्थापयत । अजाया अभियीत्वात् चौरस्यापिसंयोगनमुचितं । आपेयी वा एवा यदयेति ब्राह्मणं ॥

ते जा॒नन्त॒ स्वमो॒क्षं सं॑ व॒त्सासो॒ न मा॒तृभिः॑ । मि॒थो न॑संत जा॒मिभिः॑ ॥१४॥

ते । जानन्त । स्वं । ओक्षं । सं । वत्सासः । न । मातृभिः । मिथः । नसंत । जामिभिः ॥१४॥

ते ता गावो जानन्त । ज्ञातव्यः । अथवा सामान्याकारेण त इति पुंनिर्देशः । किं । स्वं स्वकीयमोक्षं निवासं महावीरं । तच्च दोग्धमगमनित्यर्थः । तदेवाह । वत्सासो वत्सा मातृभिर्न जननीभिः सह यथा संबच्छति तद्वज्रामिभिर्बधुभिः सहिता गावो मिथः प्रत्येकं सं नसंत । संगच्छन्ते महावीरं ॥

उप॒ स्र॒क्षेष्णु॑ व॒प्सतः॑ कृ॒ण्वते॑ ध॒रुणं॑ दि॒वि । इं॒द्रे अ॒ग्रा नमः॑ स्वः ॥१५॥

उप । स्रक्षेष्णु । वप्सतः । कृण्वते । धरुणं । दिवि । इंद्रे । अग्रा । नमः । स्व । रिति स्वः ॥१५॥

महावीरस्य स्रक्षेष्णु वप्सतो जालया मलयतोऽपैरन्नं धरुणमिंद्रे अयेति वक्ष्यमाणत्वादिद्राग्वोर्धारकमात्रं दिव्यतरिच उप कृण्वते । उपकुर्वते । यदापिर्महावीरं दहति तदा तस्योपर्युभयविधं चौरमासेचयतीत्यर्थः । एवं महावीर आसिच्छेद्रेऽप्रापी च स्वः सर्वं गन्धमात्रं च जनोऽन्नं । अथवा स्वरंतरिचे । योजयंतीति शेषः ॥ ॥१६॥

प्रवर्ग्ये धर्मदुहि दुग्धायामधुषदित्येवा । सूचितं च । दुग्धायामधुषत्पिप्लुषी । आ० ४. ७. इति ॥ गावोचेऽयेवा । अधुषत्पिप्लुषीमिषमा क्लृप्तेषु धावति । आ० ५. १२. इति सूचितत्वात् ॥

अधु॑क्षत्पि॒प्लुषी॑मिष॒भूजै॑ स॒प्रप॑दीम॒रिः । सू॒र्यस्य॑ स॒प्र र॒श्मिभिः॑ ॥१६॥

अधुक्षत् । पिप्लुषी । इषं । ऊर्जं । सप्रऽपदी । अरिः । सूर्यस्य । सप्र । रश्मिभिः ॥१६॥

अरिररणशीलो वायुः सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः साधनैः पिप्युषीमाध्याययदियमन्नमूर्ध्वं रसं च सप्तपदीं  
सर्पणस्वभावपादां माध्यमिकां वाचं घर्मधुपूषेणावस्थितामधुषत् । दुग्धवान् । यययध्वर्युः पाचिण गां दुग्धे  
तथाध्वेनं भावयया सायं भवति । माध्यमिकाया वाचो मधुधुक् हिंक्रवती गौरमीमेत् । अ० १. १६४. २७. २८. ।  
इत्यादिषु प्रसिद्धं ॥

सोमस्य मिचावरुणोदिता सूर आ ददे । तदातुरस्य भेषजं ॥१७॥

सोमस्य । मिचावरुणा । उत्त० इता । सूरैः । आ । ददे । तत् । आतुरस्य । भेषजं ॥१७॥

हे मिचावरुणो सूरैः सूर्य उदितोदिति सोमस्य सोममा ददे । स्वीकरोति । तत्र हेतुमाह । तत्स्वीकाररूपं  
कर्मातुरस्यासदादेर्भेषजमौषधं । हितकरमित्यर्थः ॥

उतो न्वस्य यतादं हर्यतस्य निधान्यं । परि द्यां जिह्यातनत् ॥१८॥

उतो इति । नु । अस्य । यत् । पदं । हर्यतस्य । नि० धान्यं । परि । द्यां । जिह्या ।

अतनत् ॥१८॥

यवमाने सोम उतो अपि चास्य सोमदातुर्हर्यतस्य प्रदानं कामयमानस्य मम यत्पदं निधान्यं हविषां  
निधानार्हेमुत्तरवेदिष्यणं तत्र स्थित्वापिबिं परि परितो जिह्या ज्वालयतातनत् । व्याजोत् ॥ ॥१७॥

उदीराथामित्यष्टादशर्चं चतुर्थं सूक्तमाचैयस्य गोपवगस्य सप्तवध्रिर्वार्धं गायचमाश्विनं । तथा चानुक्रम-  
शिका । उदीराथां गोपवग आचैयः सप्तवध्रिर्वाश्विनमिति ॥ प्रातरनुवाक आश्विने क्रतौ गायचि छंदसाश्वि-  
नशस्त्रे चेदं सूक्तं । उदीराथामा मे हवमिति गायचं । आ० ४. १५. । इति सूचितत्वात् ॥

उदीराथामृतायते युंजाथामश्विना रथं । अंति षड्भूतु वामवः ॥१॥

उत् । ईराथां । अत० ऽयते । युंजाथां । अश्विना । रथं । अंति । सत् । भूतु । वां । अवं ॥१॥

हे अश्विनाश्विनौ अृतायते यज्ञमिच्छते मह्यं मंदर्थमुदीराथां । उन्नच्छतं । तदर्थं हयमाज्ञानं यज्ञं वा  
प्राप्तुं युंजाथां । योजयतमश्वे रथं । वां युवयोरवो रक्षणमंत्यसदंतिके सद्वर्तमानं भूतु । भवतु ॥

निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना । अंति षड्भूतु वामवः ॥२॥

नि० मिषः । चित् । जवीयसा । रथेन । आ । यातं । अश्विना । अंति । सत् । भूतु ।

वां । अवं ॥२॥

निमिषश्चिन्निषादपि जवीयसातिशयवेगेन रथेना यातं । आगच्छतमसायज्ञं हे अश्विना । शिष्टमुक्तं ॥

उप स्तृणीतमचये हिमेन घर्ममश्विना । अंति षड्भूतु वामवः ॥३॥

उप । स्तृणीतं । अचये । हिमेन । घर्मं । अश्विना । अंति । सत् । भूतु । वां । अवं ॥३॥

अचये महर्षयेऽसुरैरपी प्रचिन्नाय तस्य हितार्थं घर्ममपिदाहकं हिमेनोदकेनोप स्तृणीतं । उपशीर्षवती ।  
हिमेनापिं प्रंसमवारयेषां । अ० १. ११६. ८. । इति निगमः ॥

कुहं स्यः कुहं जग्मथुः कुहं श्येनेव पेतथुः । अंति षड्भूतु वामवः ॥४॥

कुहं । स्यः । कुहं । जग्मथुः । कुहं । श्येनाऽइव । पेतथुः । अंति । सत् । भूतु । वां । अवं ॥४॥



हे अश्विनी युवां जुह क्वाः । भवथः । इदानीं जुह क्वा जुव जग्मयुः । गच्छथः स्वेच्छया । जुह क्वा वा  
श्वेनेव श्वेनाविव शीघ्रपतनौ संतौ पेतयुः । पतयथः । एवमचिंत्यस्वभावी कृपया संनिहिता भवतमिति शेषः ।  
तादृशयोर्वोऽंतिके भवतु ॥

यद्द्य कर्हि कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवं । अंति षड्भूतु वामवः ॥ ५ ॥

यत् । अद्य । कर्हि । कर्हि । चित् । शुश्रूयात । इमं । हवं । अंति । सत् । भूतु । वां । अवं ॥ ५ ॥

यद्यस्मान् निर्धार्यतेऽतोऽद्यास्मिन्काले कर्हि कस्मिन्नपि देशे कर्हि कस्मिन्नपि काले इमं हवमसदीयमाङ्गान्  
शुश्रूयातं । शुश्रूयातं ॥ ५८ ॥

अश्विनां यामहूतमा नेदिहं याम्यार्थं । अंति षड्भूतु वामवः ॥ ६ ॥

अश्विनां । यामऽहूतमा । नेदिहं । यामि । आर्थं । अंति । सत् । भूतु । वां । अवं ॥ ६ ॥

यामहूतमातिशयेन काले ज्ञातव्यावश्विनाश्विनी यामि । नेदिहमंतिकतममार्थं बांधवं च यामि तयोः ॥

अवतंतमचये गृहं कृणुतं युवमश्विना । अंति षड्भूतु वामवः ॥ ७ ॥

अवतंतं । अचये । गृहं । कृणुतं । युवं । अश्विना । अंति । सत् । भूतु । वां । अवं ॥ ७ ॥

हे अश्विना युवं युवमचयेऽग्न्यागरे दह्यमानायावतंतं रचंतं गृहं कृणुतं । अतवन्तौ । तादृशयोर्वामवो  
भवतु ॥ अवतंतमिति व्यत्ययेन पुंस्त्रिंशता ॥

वरंथे अग्निमातपो वदते वल्गवचये । अंति षड्भूतु वामवः ॥ ८ ॥

वरंथे इति । अग्निं । आऽतपः । वदते । वल्गु । अचये । अंति । सत् । भूतु । वां । अवं ॥ ८ ॥

हे अश्विनी वल्गु मनोहरं वदते क्षयतेऽथ आतप आतपादौष्मादपि वरंथे । आवारयतं ॥

प्र सप्तवधिराशसा धारांमग्नेरशायत । अंति षड्भूतु वामवः ॥ ९ ॥

प्र । सप्तऽवधिः । आऽशसां । धारां । अग्नेः । अशायत । अंति । सत् । भूतु । वां । अवं ॥ ९ ॥

सप्तवधिरमहर्षिर्हे अश्विनी युवयोराशसाशंसयेन सुत्या मंजूषाया निर्गत्यापिधारां तस्यां मंजूषायां प्रा-  
शायत । आशाययत् । स्तनिरोधिकां तां दग्धवानित्यर्थः । सप्तवधिः पेटिकांतःप्रवेशोऽश्विनोरनुग्रहाभिर्गमय  
वि जिहीष्य वनसते । अ० ५. ७८. ५. । इत्यत्र स्पष्टमुक्तं ॥

इहा गतं वृषण्वसू ऋणुतं मे इमं हवं । अंति षड्भूतु वामवः ॥ १० ॥

इह । आ । गतं । वृषण्वसू इति वृषण्वसू । ऋणुतं । मे । इमं । हवं । अंति । सत् ।  
भूतु । वां । अवं ॥ १० ॥

हे वृषण्वसू वर्षणधनावश्विनी इहास्मिन् आ गतं । आगच्छतं । तदर्थं मे ममेमं हवं ऋणुतं ॥ ११ ॥

किमिदं वां पुराणवज्जरंतोरिव शस्यते । अंति षड्भूतु वामवः ॥ ११ ॥

किं । इदं । वां । पुराणऽवत् । जरंतोऽइव । शस्यते । अंति । सत् । भूतु । वां । अवं ॥ ११ ॥

हे अश्विनी वां युवयोर्यमागमनाय पुराणवत् पुराणयोरतिवृद्धयोरिव । तदेवाह । जरतोरिव शस्यते । पुनःपुनरागच्छतमिति शस्यते । किमिदं । यथा लोके वृद्धो जीर्णो बह्वारमाहृतोऽपि नागच्छति तद्वयुवाम-  
पीत्यर्थः । एवमनागमाद्ब्रवीति ॥

समानं वां सजात्यं समानो बंधुरश्विना । अंति षड्भूतु वामवः ॥१२॥

समानं । वां । सऽजात्यं । समानः । बंधुः । अश्विना । अंति । सत् । भूतु । वां । अवं । ॥१२॥

हे अश्विनाश्विनी वां युवयोः परस्परं सजातं समानजातित्वं समानमेकमेव । उभयोरप्यश्वरूपाया सूर्यपत्न्या  
उत्पन्नेः सजातं । तथा युवयोर्वैधुर्वैधक्तः सुवः समान एक एव । अथर्विरेहं समान एक एव बंधुः ॥

यो वां रजांस्यश्विना रथो विद्याति रोदसी । अंति षड्भूतु वामवः ॥१३॥

यः । वां । रजांसि । अश्विना । रथः । विऽयाति । रोदसी इति । अंति । सत् । भूतु ।  
वां । अवं । ॥१३॥

वां युवयोर्यो रथोऽस्ति स रथो रजांसि लोकान्त्रोदसी द्वावापृथिवी च विद्याति । विशेषेण गच्छात ।  
अतस्तेन रथेन शीघ्रमागच्छतमिति शेषः ॥

आ नो गर्भेभिरश्वैः सहसैरुप गच्छतं । अंति षड्भूतु वामवः ॥१४॥

आ । नः । गर्भेभिः । अश्वैः । सहसैः । उप । गच्छतं । अंति । सत् । भूतु । वां । अवं । ॥१४॥

हे अश्विनी नोऽस्मान् सहसैरपरिमितैर्गर्भेभिर्गोसमूहैरश्वसमूहैश्चोप गच्छतं ॥

मा नो गर्भेभिरश्वैः सहसैभिरति ख्यतं । अंति षड्भूतु वामवः ॥१५॥

मा । नः । गर्भेभिः । अश्वैः । सहसैभिः । अति । ख्यतं । अंति । सत् । भूतु । वां । अवं । ॥१५॥

हे अश्विनी गर्भेभिर्गोसमूहैरश्वसमूहैः सहसैभिः सहस्रसंख्याकैर्मास्मानति ख्यतं । अतीति प्रतीत्य-  
स्मिन्नर्थे । मा निवारयतमित्यर्थः ॥

अरुणप्सुरुषा अभूदकज्योतिर्ऋतावरी । अंति षड्भूतु वामवः ॥१६॥

अरुणऽप्सुः । उषाः । अभूत् । अकः । ज्योतिः । ऋतऽवरी । अंति । सत् । भूतु ।  
वां । अवं । ॥१६॥

हे अश्विनी उषा अरुणप्सुः शुभवर्णीभूत । भवति । न केवलं स्वयं । ज्योतिस्तेजोऽकः करोत्यंति सर्वत  
ऋतावर्धृतवत्तुषाः ॥

अश्विना सु विचाकशवृक्षं परश्रुमाँ इव । अंति षड्भूतु वामवः ॥१७॥

अश्विना । सु । विऽचाकशत् । वृक्षं । परश्रुमान्ऽइव । अंति । सत् । भूतु । वां । अवं । ॥१७॥

सु विचाकशदत्तं दीप्यमानः सूर्योऽपि वा वृक्षं परश्रुमानिव स यथा शक्यति तद्वत्तमो निगारय-  
तीति शेषः । दृष्टांतसामर्थ्यादेव लभ्यते । यस्मादेवं तस्मादश्विनाश्विनावाह्य इति शेषः ॥



पुरं न धृष्णवा रुज कृष्ण्या बाधितो विशा । अंति षड्भूतु वामवः ॥१८॥

पुरं । न । धृष्णो इति । आ । रुज । कृष्ण्या । बाधितः । विशा । अंति । सत् । भूतु ।  
वां । अवः ॥१८॥

हे धृष्णो धर्मक सप्तवधे त्वं कृष्णयाकर्मया विशा प्रवेशयत्या पेटिकया बाधितस्त्वं ततो निर्गत्य तामेवा  
रुज । पीडयान्नो रनुग्रहात् । एवं स्वयं स्वात्मानं प्रेथति । अथवा गोपवणः सप्तवधमेवं ब्रवीति । वां युव-  
योरवो रक्षणं गमनं वा समीपे । तच्च त्रिपु वर्गेष्वंति यदित्युत्तरोऽर्धचौऽन्वितपदाध्याहारेण योज्यः ॥ २०॥

विशोविशो व इति पंचदशर्वं पंचमं सूक्तं । अचैयमनुक्रमणिका । विशोविशो वः पंचोनापेयं त्वनुष्टुप्मुखा-  
सृचासलारोऽन्त्यास्त्रिस्तोऽनुष्टुभ आर्चस्य अतर्वयो दानकुतिरिति । अनुपुत्तेर्गोपवण ऋषिः । आदितस्त्रिपु  
वृषेषु सर्वाः प्रथमा अनुष्टुभो द्वितीयातुतीये प्राम्बत्सप्रपरिमायया गायत्री चयोदम्भावास्त्रिस्तोऽनुष्टुभः ।  
अस्योत्तरस्य चाभिर्देवता । अन्त्यास्त्रिस्तः अतर्वनाम्नो राज्ञो दानकुतिः । ब्योमविश्वदेवकुत्पंचशारदीयेष्विदं  
सूक्तमाज्यशस्त्रं । सूचितं च । विशोविशो वो अतिथिमित्याज्यं । आ० ९. ८. इति ॥

विशोविशो वो अतिथिं वाजयंतः पुरुप्रियं ।

अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे भूषस्य मन्मभिः ॥१॥

विशःऽविशः । वः । अतिथिं । वाजऽयंतः । पुरुऽप्रियं ।

अग्निं । वः । दुर्यं । वचः । स्तुषे । भूषस्य । मन्मऽभिः ॥१॥

हे अन्य ऋत्विजो यजमानास्व वो दुर्यं वाजयंतोऽन्नमिच्छंतो विशो विशः सर्वस्याः प्रजाया अतिथिं पूज्यं  
पुरुप्रियं वज्रप्रियमग्निं कृत्वा परिचरतेति शेषः । अहं च वो शुष्मदर्थं दुर्यं गुहा हितं वचो नु कुषे भूषस्य  
मुखस्य लामाय । कैः साधनैः । मन्मभिर्मननीयैः स्तोत्रैः ॥

यं जनांसो हविष्मंतो मिचं न सर्पिरासुतिं । प्रशंसंति प्रशस्तिभिः ॥२॥

यं । जनांसः । हविष्मंतः । मिचं । न । सर्पिःऽआसुतिं । प्रऽशंसंति । प्रशस्तिऽभिः ॥२॥

यमग्निं जनांसो जना यजमाना हविष्मंतः संतो मिचं न मिचमिवादित्यमिव सखायमिव वा सर्पिरासुतिं  
सर्पिरासूयते हयते यस्मिन् तादृशं प्रशंसंति कुर्वन्ति प्रशस्तिभिः कुतिभिः कुव इति शेषः ॥

पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्धैर्यद्विवि ॥३॥

पन्यांसं । जातऽवेदसं । यः । देवऽताति । उत्तऽयता । हव्यानि । ऐरयत् । दिवि ॥३॥

पन्यांसमतिशयेन स्तोतारं साधु कृतमिति यजमानं कुर्वन्तं जातवेदसं जातधनं जातविद्यं वा कुव इति  
शेषः । योऽभिर्देवताति देवतातो यज्ञ उच्यतोयतानि हव्यानि हवींषि दिव्यैरयत् प्रेरयति दिवि देवेभ्यः ॥

आगन्म वृचहंतं ज्येष्ठमग्निमानवं । यस्य श्रुतर्वा बृहन्नाक्षो अनीक एधते ॥४॥

आ । अगन्म । वृचहन्तऽतमं । ज्येष्ठं । अग्निं । आनवं । यस्य । श्रुतर्वा । बृहन् । आर्क्षः ।

अनीके । एधते ॥४॥

वृचहंतं पापानामतिशयेन हंतारं ज्येष्ठं प्रशस्तमानवं मनुष्यसंबन्धिनं तेषां हितकारिणमग्निमानं ।  
आगता वयं ॥ पूजार्थं वज्रवचनं ॥ यस्यापेरनीके ज्वालासंधे बृहन्महानागं अक्षपुत्रः श्रुतर्वा नाम राक्षसो  
वर्धते । कर्म करोतीत्यर्थः । तमग्निमानमेति समन्वयः । एवं श्रुतर्वायं मिचयागतो गोपवणोऽपि स्त्रीति ॥

अमृतं जातवेदसं तिरस्तमांसि दर्शतं । घृताहवनमीड्यं ॥५॥

अमृतं । जातवेदसं । तिरः । तमांसि । दर्शतं । घृतऽआहवनं । ईड्यं ॥५॥

स एवागत्य सौति । अमृतममरणं जातवेदसं जाततेजसाद्युपलक्षणधनं तमांसि तिरो दर्शतं । दर्शयंत-  
मित्यर्थः । घृताहवनं । घृतमाहवते यत्र तं । ईड्यं सुखं । ईदृशमागच्छेति संबन्धः ॥ ॥२१॥

सबाधो यं जना इमेऽग्निं हव्येभिरीकते । जुहानासो यत्सुचः ॥६॥

सऽबाधः । यं । जनाः । इमे । अग्निं । हव्येभिः । ईकते । जुहानासः । यत्सुचः ॥६॥

इमे सबाधो बाधसहिता अध्वर्यादधो यमग्निं हव्येभिर्हविर्भिरीकते सुवन्ति । कीदृशा जनाः । जुहा-  
नासो यागं कुर्वाणा यत्सुचसदर्थं धृतसुगदंडाः । तमागच्छेति समन्वयः ॥

इयं ते नव्यसी मतिरमे अधायिस्मदा ।

मंद्र सुजात सुक्रतोऽमूर दस्मातिथे ॥७॥

इयं । ते । नव्यसी । मतिः । अमे । अधायि । अस्मत् । आ ।

मंद्र । सुऽजात । सुक्रतो इति सुऽक्रतो । अमूर । दस्म । अतिथे ॥७॥

हे अमे इयमिदानीं क्रियमाणा नव्यसी नवतरा सुतिसे तव स्वमृतासदस्मास्वधाधि । धृतामृत । वयं  
तव सुतिं कुर्म इत्यर्थः । हे मंद्र मोदमान सुजात शोभनजनन सुक्रतो शोभनकर्मज्ञमूरामूढ दस्म दर्शनीया-  
तिथेऽतिथिवत्पूज्यत्वपेर्विशेषणानि ॥

सा ते अमे शंतमा चनिष्ठा भवतु प्रिया । तया वर्धस्व सुष्टुतः ॥८॥

सा । ते । अमे । शंतमा । चनिष्ठा । भवतु । प्रिया । तया । वर्धस्व । सुऽस्तुतः ॥८॥

हे अमे साक्षामिः क्रियमाणा सुतिः शंतमाख्यं सुखकरा चनिष्ठातिशयेनाज्ञवती ते तव प्रिया भवतु ।  
तया सुत्या सुष्टुतः सुष्टु सुतः सन् वर्धस्व । प्रवृद्धो भव ॥

सा द्युसैर्द्युस्मिनी बृहदुपोप अवसि अवः । दधीत वृचतूर्ये ॥९॥

सा । द्युसैः । द्युस्मिनी । बृहत् । उपऽउप । अवसि । अवः । दधीत । वृचऽतूर्ये ॥९॥

साक्षामिः क्रियमाणा सुतिर्द्युसैर्द्युतमानैरन्नैरसम्भं प्रदेयैर्द्युस्मिन्यज्ञवती अवसि पूर्वस्मिन्विद्यमानेऽन्ने  
पुनरपि बृहद्वहक्त्रवोऽन्नमुपोप दधीत । पुनरुपरिधारयतु । कुचेति उच्यते । वृचतूर्ये संयामे । श्नोः संबं-  
धीति यावत् ॥

अश्वमिज्ञां रथप्रां त्वेषमिंद्रं न सत्पतिं । यस्य अवांसि तूर्वेथ पन्यं पन्यं च कृष्टयः ॥१०॥

अश्वं । इत् । गां । रथऽप्रां । त्वेषं । इंद्रं । न । सत्पतिं । यस्य । अवांसि । तूर्वेथ । पन्यं ।

पन्यंऽपन्यं । च । कृष्टयः ॥१०॥

गां गंतारमश्वमि । इच्छब्द इवार्थे । अश्वमिव । तं यथा सुवन्ति तथेत्यर्थः । रथप्रां रथानामसदीयानां  
पूरयितारं धनेः तथा त्वेषं दीप्तमग्निं सत्पतिं सतां पालकमिंद्रं नेंद्रमिवेनं कृष्टयो मनुष्याः परिचरतेति शेषः ।  
यस्यापेर्वलेन अवांस्यज्ञानि शत्रुसंबन्धीनि तूर्वेथ तथा पन्यं पन्यं च यद्यत्सुखं धनमस्ति तदपि तूर्वेथ  
हिंस्य ॥ ॥२२॥



यं त्वा गोपर्वनो गिरा चनिष्ठदग्ने अंगिरः । स पावक शुधी हवँ ॥११॥

यं । त्वा । गोपर्वनः । गिरा । चनिष्ठत् । अग्ने । अंगिरः । सः । पावक । शुधि । हवँ ॥११॥

हे अग्ने यं त्वा त्वा गोपवन अग्निर्गिरा सुत्वा चनिष्ठत् अतिशयेनाज्ञप्रदातारमकरोत् स तावृषाधिऽगिरः सर्वं मंतरंगिरसां मध्य एक वा पावक शोधक हवं गोपवनस्य शुधि । मृगु ॥

यं त्वा जनास ईळते सुबाधो वाजसातये । स बोधि वृचतूर्ये ॥१२॥

यं । त्वा । जनासः । ईळते । सुबाधः । वाजसातये । सः । बोधि । वृचऽतूर्ये ॥१२॥

हे अग्ने यं त्वा त्वा जनासो जनाः क्षीतारो वा वाजसातयेऽन्नस्य ज्ञानाय सबाधो विविधरूपबाधोपेताः संत ईळते सुवंति स त्वं वृचतूर्ये वैरिनाशनाय पापपयाय वा बोधि । बुध्यस्व । अथवा वृचस्य तूर्यं संयामे बोधि ॥

अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वेणि मदच्युति ।

शर्धीसीव स्तुकाविना मृक्षा शीर्षा चतुर्णा ॥१३॥

अहं । हुवानः । आर्क्षे । श्रुतर्वेणि । मदऽच्युति ।

शर्धीसिऽइव । स्तुकाऽविना । मृक्षा । शीर्षा । चतुर्णा ॥१३॥

अहमृषिर्जवानो हवमानो यश्चदिदृषार्थं श्रुतर्वेणितन्नास्ति राजनि मदच्युति श्रुतृणां मदस्य आपचितरि सुकाविनां । सुकाविन सर्वायवः । सुकः केशसंघातः । तद्वतां शर्धीसीवोच्छ्रितानि क्षोमाणीव तांनि यथा सुश्रंति तद्वदृषा वृषाणि । वृध्यंत इति वृषाः केशाः । तद्वंति वृषाणि शीर्षा शीर्षाणि शिरांसि । केषां । चतुर्णां श्रुतर्वेणा प्रदत्तानामन्धानां शिरांसुश्रुजामीति शेषः । अथवा वृषा वृषेय । ब्रह्मनसाधनत्वादुचो हसः । तेनोन्मुषामि ॥

मां चत्वार आशवः शर्विष्ठस्य द्रवित्त्वः ।

सुरणासो अभि प्रयो वक्षन्वयो न तुग्यं ॥१४॥

मां । चत्वारः । आशवः । शर्विष्ठस्य । द्रवित्त्वः ।

सुऽरणासः । अभि । प्रयः । वक्षन् । वयः । न । तुग्यं ॥१४॥

मां शर्विष्ठस्यातिशयेनाज्ञवतः श्रुतर्वको राज्ञः संबंधिनश्चत्वार आशवोऽश्वा द्रवित्ववो यमनशीलाः सुरणासः शोभनरथा अश्वाः प्रयोऽन्नं श्रुतृणां प्रत्नमि वचन् । अभिवहंति । वयो न तुग्यं मुजुं यथाचिन्मां प्रेरिताश्चतस्रो नावः स्वगृहं प्रापयन् तद्वदिति ॥

सत्यमित्त्वा महेनदि परुषायव देदिशं ।

नेमापो अश्वदातरः शर्विष्ठादस्ति मर्त्यः ॥१५॥

सत्यं । इत् । त्वा । महेऽनदि । परुषिण । अश्व । देदिशं ।

न । ई । आपः । अश्वऽदातरः । शर्विष्ठात् । अस्ति । मर्त्यः ॥१५॥

हे महेनदि परुषेष्टेतन्नामिके त्वा त्वां सत्यमित् सत्यमेवाव देदिशं । आदिशामि । वदामि । यथाकारेण

संबोधायः संबोधयति । हे आपः ईमसाच्छविष्ठाद्वत्तमाच्छ्रुतर्वणोऽधिकः कश्चिदश्वातरोऽश्वाणां दातु-  
तमो मर्तो नास्ति । परस्मात्कीरि राज्ञोऽश्मिन्प्रतिग्रहात्तां संबोध्य ब्रूते ॥ २३ ॥

युक्त्वा हीति षोडशर्चं षष्ठं सूक्तमांगिरसस्य विरूपस्त्वार्थं गायत्रमाययं । तथा चानुक्रमशिका । युक्त्वा हि  
षोडश विरूप इति ॥ दशरात्रे तृतीयेऽहनीदं सूक्तमाययशस्त्रं । सूचितं च । तृतीये युक्त्वा हीत्याख्यं । आ० ७.  
१०. । इति ॥ प्रातरनुवाकेऽप्यायेये गायत्रे छंदसाश्विनशस्त्रे वेदं सूक्तं । सूचितं च । युक्त्वा हि प्रेष्ठं चः  
। आ० ४. १३. । इति ॥

युक्त्वा हि देवहूतमाँ अश्वीँ अग्ने रथीरिव । नि होतां पूर्यः सदः ॥ १ ॥

युक्त्वा हि देवऽहूतमान् । अश्वान् । अग्ने । रथीःऽइव । नि होतां पूर्यः । सदः ॥ १ ॥

हे अग्ने देवहूतमान् देवानामाहूतमानश्चानुक्ष । योजय रथे । रथीरिव यथा रथी स्वाश्वानिष्टदेश-  
गमनाय योजयति तद्वत् । तथा कृत्वा होता त्वं पूर्यो मुखः सन्नि यदः । उपविश च ॥

उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः । अश्विश्वा वार्या कृधि ॥ २ ॥

उत नः । देव । देवान् । अच्छ । वोचः । विदुःऽतरः । अत् । विश्वा । वार्या । कृधि ॥ २ ॥

हे देवाग्ने उतापि च नोऽस्मान् देवानच्छा वोचः । अग्निब्रूयाः । सम्यगनुष्ठितवन्त इति । तथा विदुष्टरो  
विद्वत्तमानोवोचः । तथा कृत्वा विश्वा सर्वाणि वार्या वरणीयानि धनानि देवसंबंधीनि अत् सत्त्वानि कृधि ।  
कर्षस्वाकं । अथवाश्वदीयानि सर्वाणि वरणीयानि हवींषि अत् सत्त्वानि कृध । देवान् प्रापयेत्यर्थः ॥

त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत । ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥ ३ ॥

त्वं ह । यत् । यविष्ठ्य । सहसः । सूनो इति । आऽहुत । ऋतऽवा । यज्ञियः । भुवः ॥ ३ ॥

हे अग्ने यविष्ठ्य युवतम सहसः सूनो वसस्य पुत्राज्जत सर्वतो ज्जताज्जत वा त्वं यद्यदा ह खलुतावा  
सत्त्वान् यज्ञियो यज्ञार्हस्य भुवः भवसि तदा वार्याणि अत्कुर्विति संबंधः ॥

दर्शपूर्णमासयोरामेयस्यायमभिरिति वैकल्पिकी थाव्या । सूचितं च । अयमग्निः सहस्रिण इति वेदं  
विष्णुर्वि चक्रमे । आ० १. ६. । इति ॥

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणां ॥ ४ ॥

अयं । अग्निः । सहस्रिणः । वाजस्य । शतिनः । पतिः । मूर्धा । कविः । रयीणां ॥ ४ ॥

अयमग्निः शतिनः सहस्रिणस्योक्तसंख्योपेतस्य वाजस्वामस्य पतिः स्वामी मूर्धा शिरोवदुन्नतः श्रेष्ठः कवि-  
र्मेधावी रयीणां धनानामपि पतिरिति शेषः । तदुभयं प्रत्यक्षत्वित्यर्थः ॥

तं नेमिभूवो यथा नमस्व संहूतिभिः । नेदीयो यज्ञमंगिरः ॥ ५ ॥

तं । नेमिं । ऋभुवः । यथा । आ । नमस्व । संहूतिभिः । नेदीयः । यज्ञं । अंगिरः ॥ ५ ॥

हे अंगिरः त्वं संहूतिभिः समानाङ्गानिरन्यैर्देवैः सह नेदीयोऽतिकतमं यज्ञमा नमस्व । आनमय । अमवो  
नेमिं रचमिष ॥ २४ ॥

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिं ॥ ६ ॥

तस्मै । नूनं । अभिऽद्यवे । वाचा । विरूप । नित्यया । वृष्णे । चोदस्व । सुऽस्तुतिं ॥ ६ ॥



हे विष्णु नानाकूपितनामक महर्षे त्वं तस्मै प्रविज्ञायाभिषेवेऽभिगततुष्टये पुण्ये धर्मकायापये नित्ययो-  
त्पत्तिरहितया वाचा मंत्ररूपया सुष्ठुतिं श्रुतमिदानीं प्रोदस्व । सुधीस्त्रिवृषिः स्वात्मानं प्रवीति यजमानो वा  
होतारं विष्णुं

कसुं ध्विदस्य सेनयाप्रेरपाकचक्षसः । पृणिं गोषु स्तरामहे ॥७॥

कं । ऊं इति । स्वित् । अस्य । सेनया । अप्रेः । अपाकऽचक्षसः । पृणिं । गोषु ।  
स्तरामहे ॥७॥

अस्त्राप्रेरपाकचक्षसोऽनस्यचक्षसोऽप्रेः सेनया ज्वालाकूपया गोषु निमित्तिषु कसु ध्वित् कं खसु पृणिं  
स्तरामहे । कारणं हिंसनं । इदानीं बलिनममिमवेत्यर्थः ॥

मा नो देवानां विशः प्रस्त्रातीरिवोस्त्राः । कृशं न हासुरध्याः ॥८॥

मा । नः । देवानां । विशः । प्रस्त्रातीऽइव । उस्त्राः । कृशं । न । हासुः । अध्याः ॥८॥

देवानां सर्वेषां विशः प्रस्त्रातृत्वात्परिचारकास्तोऽस्त्राया हासीत् । अपिर्मा परित्यजतु । प्रस्त्रातीरस्त्रा  
इव पथः चरतीर्याव इव । ता यथा न मुंचति । उभयमपि न परित्यजत्वित्यर्थः । किमिव । कृशमर्थं स्ववत्स-  
नस्या नावो यथा न हासुः न परित्यजन्ति तद्वत् ॥

मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः । ऊर्मिर्न नावमा वंधीत् ॥९॥

मा । नः । समस्य । दुःस्थः । परिद्वेषसः । अंहतिः । ऊर्मिः । न । नावमा । आ । वंधीत् ॥९॥

समस्य सर्वस्य परिद्वेषसः परितो द्विषतो दूढ्यः पापबुद्धिरंहतिर्हिनं मा वंधीत् । मा हिंसात् । नावमूर्मिः  
समुद्रतरंग इव । स यथा तां पीडयति तद्वत्मा वंधीदित्यर्थः । अथ मा नः सर्वस्य दुर्धियः । नि० ५. २३ ।  
रत्नादि निषक्तं द्रष्टव्यं ॥

नमस्ते अम ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमिचमर्दय ॥१०॥

नमः । ते । अमे । ओजसे । गृणन्ति । देव । कृष्टयः । अमैः । अमिचं । अर्दय ॥१०॥

हे अपि देव तुभ्यं नमो गृणन्ति । नमस्कारशब्दमुच्चारयन्ति । किमर्थं । जीवसे वक्षाय । के । कृष्टयो  
मनुष्या यजमानाः । अतोऽहमपि गृणामीत्यर्थः । तथाभिर्बलैरमिचं शत्रुमर्दय । नाशय ॥ ॥२५॥

याम्येणापिना पैतानिकस्य संसर्गेऽपये संवर्गायेष्टिः कार्यी । तत्र कुवित्सु न इत्यनुवाक्या मा नो अस्मि-  
न्निति यावत् । सूचितं च । कुवित्सु नो गविष्टये मा नो अस्मिन्नाहाधने । आ० ३. १३ । इति ॥

कुवित्सु नो गविष्टयेऽमे संवेधिषो रयिं । उरुकृदुरु खास्कृधि ॥११॥

कुवित्सु । नः । गोऽइष्टये । अमे । संवेधिषः । रयिं । उरुऽकृत् । उरु । नः । कृधि ॥११॥

हे अपि त्वं नोऽस्माकं गविष्टये श्रवणेषणाय कुविद्वज्ज रयिं धनं संवेधिषः । संप्रापय । उरुकृत्  
नोऽस्मानुद कृधि । कृत् ॥

मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्भारभृद्यथा । संवर्गे सं रयिं जय ॥१२॥

मा । नः । अस्मिन् । महाऽधने । परा । वर्क् । भारऽभृत् । यथा । संवर्गे । सं । रयिं । जय ॥१२॥

नोऽस्मान्निष्कहाधने संयामे मा परा वर्ध । मा परित्वाचीः । मारमुषया । मारवाही यथा मारमंते परित्यजति तद्वत् । संवर्मे शुभः सहाच्छिद्यमानं रयिं धनं सं यथासदर्थं ॥

अन्यमस्मज्जिया इयमग्ने सिसंक्तु दुच्छुना । वर्धा नो अमवच्छवः ॥ १३ ॥

अन्यं । अस्मत् । भियै । इयं । अग्ने । सिसंक्तु । दुच्छुना । वर्ध । नः । अमऽवत् । शवः ॥ १३ ॥

हे अग्ने त्वदीयेयं दुच्छुना बाधकसंहतिरसदन्वमस्योत्तारं भिये मयाय सिषत् । श्वेतां । त्वं च नोऽस्मा-  
कममवच्छोपेतं श्वो वेगं वर्ध । वर्धय संयामे ॥

यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं घेदमिर्वृधावति ॥ १४ ॥

यस्य । अजुषत् । नमस्विनः । शमी । अदुर्मखस्य । वा । तं । घ । इत् । अमिः ।

वृधा । अवति ॥ १४ ॥

यस्य नमस्विनो नमस्कारवतोऽदुर्मखस्य वादुष्टपागस्य वा शमीं कर्माशुषत् अश्वेवत तं घेत्तमेव यजमानं संयामेऽमिर्वृधावति । विशेषेण गच्छति । अतो नमोयता अदुर्मखास्य मयेमेति ॥

परस्या अधि संवतोऽवराँ अभ्या तर । यचाहमस्मि ताँ अव ॥ १५ ॥

परस्याः । अधि । संऽवतः । अवरान् । अभि । आ । तर । यच । अहं । अस्मि ।

तान् । अव ॥ १५ ॥

हे अपि परस्या अभ्यायाः संवतः सेनाया अवराणन्याजस्यदीयानभमिमुखमा सर्वतदार । तारय । तैरिसेना चक्षत्रैः परमावधेत्वर्यः । यच ऐव्यस्यदीयपरिजनमश्चिऽहमस्मि स्वामी तानय । रय ॥

विष्ठा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः । अधा ते सुखमीमहे ॥ १६ ॥

विष्ठा । हि । ते । पुरा । वयं । अग्ने । पितुः । यथा । अवसः । अध । ते । सुखं । इमहे ॥ १६ ॥

हे अपि पितुः पात्यस्य ते तवावसोऽपो रक्षणं पुरा यथा तथेदानीमपीति विष्ठा । यद्य तत्ते तप युषं सुखमीमहे । याचामहे । यद्यवा पितुर्यथेति वृष्टांतः । पितुः पात्यं पुत्रो यथा वेति तथैतर्थाः ॥ १६ ॥

इमं नु मायिनमिति द्वादशर्षे सप्तमं सूक्तं । जुषसुतिर्नाम काव्यं चविः । गायत्री वंदः । इंद्रो देवता । तथा चानुक्रांतं । इमं नु द्वादश जुषसुतिः काव्य इति ॥ चूडे दशराये चतुर्थेऽहनि मयत्सतीयं गायधृषः । सूचितं च । इमं नु मायिनं ऋवे तसु चः सचासाहं । आ० ८. ८. इति ॥

इमं नु मायिनं हुव इंद्रमीशानमोजसा । मरुत्वंतं न वृजसे ॥ १ ॥

इमं । नु । मायिनं । हुवे । इंद्रं । ईशानं । ओजसा । मरुत्वंतं । न । वृजसे ॥ १ ॥

इमं मायिनं प्रभावंतमोजसा स्ववजेनेशानं सर्वस्य स्वामेनं मयत्सवंतं च । नेति संप्रत्यर्थे । मयत्सिखदंतमि-  
दानीमिंद्रं वृजसे शत्रूणां हेदनाय ऋवे । आह्वयामि ॥

अयमिंद्रो मरुत्संखा वि वृषस्याभिनच्छिरः । वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥

अयं । इंद्रः । मरुत्संखा । वि । वृषस्य । अभिनत् । शिरः । वज्रेण । शतऽपर्वणा ॥ २ ॥

अयमिंद्रो मयत्सखा मयधुतो वृषस्य अभिनत् चच्छिरश्चिरो वज्रेण शतपर्वणा शतसंधिना ।



वावृधानो मरुत्सखेंद्रो वि वृचमैरयत् । सृजन्समुद्रिया अपः ॥३॥

ववृधानः । मरुत्सखा । इन्द्रः । वि । वृचं । ऐरयत् । सृजन् । समुद्रियाः । अपः ॥३॥

अथमिन्द्रो वावृधानो वर्धमानो मरुत्सखा मरुत्सहायो वृचं मेघं चैरयत् । विदारितवान् । किं कुर्वन् । समुद्रियाः । समुद्रमंतरिचं । तत्संबन्धिन्य अप अपसजन् ॥

षष्ठेऽहनि मरुत्वतीयेऽयं ह येनेति मरुत्सन्निविष्टानीयः । सूचितं च । अयं ह येन वा इदमुप नो हरिभिः सुतं । आ० ८. ८. इति ॥

अयं ह येन वा इदं स्वमरुत्वता जितं । इन्द्रेण सोमपीतये ॥४॥

अयं । ह । येन । वै । इदं । स्वः । मरुत्वता । जितं । इन्द्रेण । सोमऽपीतये ॥४॥

अयं ह खल्विन्द्रो येन वै येन खलु मरुत्वता मरुत्सिर्गुत्तेन्द्रियेदं स्वः स्वर्गास्त्रं आगमिदं स्वः सर्वं वर्म वा यदेदं सर्वं जगज्जितं । किमर्थं । सोमपीतये सोमपानाय ॥

मरुत्वतमृजीषिणमोजस्वतं विरप्श्निं । इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ॥५॥

मरुत्वतं । मृजीषिणं । ओजस्वतं । विरप्श्निं । इन्द्रं । गीऽभिः । हवामहे ॥५॥

मरुत्वतं मरुत्सिखदंतमृजीषिणं । अभिपुतशेष मृजीषः । स च तृतीयसवने पुनः सूयते । तदंतमोजस्वतं । जीवो नामाष्टमी दशा । शरीरपुष्ट्युपेतमित्यर्थः । विरप्श्निं । महामैतत् । महान्तं एवंमहानुभावमिन्द्रं गीर्भिः सुतिभिर्हवामहे । आह्वयामः ॥

इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वतं हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥६॥

इन्द्रं । प्रत्नेन । मन्मना । मरुत्वतं । हवामहे । अस्य । सोमस्य । पीतये ॥६॥

मरुत्वतमिन्द्रं प्रत्नेन पुराणेन मन्मना मननीयेन सोमस्य हवामहेऽस्य सोमस्य पीतये पानाय ॥ २७ ॥ पंचमेऽहनि मरुत्वतीये मरुत्वो इन्द्र मीढु इति तुषो निविष्टानीयः । सूचितं च । मरुत्वो इन्द्र मीढुमिन्द्रं वावयामसि । आ० ८. ८. इति ॥

मरुत्वो इन्द्र मीढुः पिबा सोमं शतक्रतो । अस्मिन्यज्ञे पुरुषुत ॥७॥

मरुत्वान् । इन्द्र । मीढुः । पिबं । सोमं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । अस्मिन् । यज्ञे ।

पुरुऽस्तुत ॥७॥

हे मीढुः फलस्य वृष्टेर्वा क्षेत्रः शतक्रतो वज्रकर्मेन्द्र त्वं मरुत्वान् सोमं पिबास्मिन्यज्ञे हे पुरुषुत वज्रमिरादत ॥

तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः । हृदा हूयंत उक्थिनः ॥८॥

तुभ्यं । इत् । इन्द्र । मरुत्वते । सुताः । सोमासः । अद्रिऽवः । हृदा । हूयन्ते । उक्थिनः ॥८॥

हे अद्रिवो वज्रवर्तिन्द्र मरुत्वते तुभ्येतुभ्यमेव सोमासः सुताः । अभिपुताः । ते चोक्थिनः प्रत्यवन्तो हृदा मनसा मत्तया जयन्ते त्वदर्थं ॥

पिबेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु । वज्रं शिशान् ओजसा ॥९॥

पिबं । इत् । इन्द्र । मरुत्सखा । सुतं । सोमं । दिविष्टिषु । वज्रं । शिशानः । ओजसा ॥९॥

हे इंद्र मद्यत्सखा त्वं सुतमभिषुतं सोमं पिब । किमर्थं । दिविष्टिष्वस्यार्कमद्रामाभगमनेषु दिवः स्वर्गस्य  
वेषेषु निमित्तेषु । पीत्वा चीजसा बलेन सोमपानजनितेन बलं शिशानस्तीक्ष्णीकुर्वन् । शत्रून्जहीति भावः ॥

चतुर्विंशेऽहनि प्रातःसवने ब्राह्मणाच्छेदिसिस्त उन्तिष्ठन्निति तुचः षऊहसोचियः । सूचितं च । उन्तिष्ठन्नो-  
जसा सह मिंघि विद्या अप दिवः । आ० ७. २. । इति ॥

उन्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिमे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतं ॥ १० ॥

उत्तिष्ठन् । ओजसा । सह । पीत्वा । शिमे इति । अवेपयः । सोमं । इंद्र । चमू  
इति । सुतं ॥ १० ॥

हे इंद्र त्वं पीत्वा पीत्वाजसा बलेन सहोत्तिष्ठच्छिमे हनू अवेपयः । अकंपयः । मदावेशादिति भावः । किं  
पीत्वा । चमू चम्वोरधिषवणफलकयोः सुतं सोमं ॥

अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेतां । इंद्र यदस्युहाभवः ॥ ११ ॥

अनु । त्वा । रोदसी इति । उभे इति । क्रक्षमाणं । अकृपेतां । इंद्र । यत् । दस्युऽहा ।  
अभवः ॥ ११ ॥

हे इंद्र क्रक्षमाणं शत्रून्विलिखंतं त्वा त्वामुभे रोदसी उभे अपि बावापृथिव्यावन्वृपेतां । अनुकल्पयेतां ।  
यद्यदा दस्युहाभवः भवसि तदा ॥

वाचमष्टापदीमहं नवसक्तिमृतस्पृशं । इंद्रात्परि तन्वं ममे ॥ १२ ॥

वाचं । अष्टाऽपदीं । अहं । नवऽसक्तिं । अमृतऽस्पृशं । इंद्रात् । परि । तन्वं । ममे ॥ १२ ॥

अष्टापदीं । अष्टामिर्दिग्मिर्विदिग्मिः साष्टापदी । नवसक्तिमुपरि स्थितेनादित्येन नवसक्तिं । आसु दिशु  
आप्तमित्यर्थः । अमृतस्पृशं यच्चस्पृशं वाचं क्षुतिमहं परिपूर्णादिद्राक्तत्वं तनू न्यूनां सतीं परि ममे । अन्युनेयतां  
करोमीत्यर्थः । कात्स्न्येन स्वरूपं क्षुत्वा विषयीकर्तुमशक्यत्वादिति भावः ॥ ॥ २८ ॥

अज्ञान इत्येकादशचर्ममष्टमं सूक्तं काण्वस्य कुक्षुतेरार्षं । आवा नव गायत्र्यो दशमी बृहत्येकादशी सतो-  
बृहती । इंद्रो देवता । तथा चानुक्रांतं । अज्ञान एकादश प्रगाथांतमिति ॥ महाव्रते निष्केवन्ते अज्ञानो नु  
शतक्रतुरित्येषा । तथैव पंचमारण्यके सूचितं । अज्ञानो नु शतक्रतुरित्येषा । ऐ० आ० ५. २. ३. । इति ॥

जज्ञानो नु शतक्रतुर्वि पृच्छदिति मातरं । के उयाः के ह ऋषिरे ॥ १ ॥

जज्ञानः । नु । शतऽक्रतुः । वि । पृच्छत् । इति । मातरं । के । उयाः । के । ह । ऋषिरे ॥ १ ॥

अयमिन्द्रो अज्ञानो नु जायमान एव शतक्रतुर्वज्रकर्मैतीत्यं मातरं स्वजननीं विपृच्छति । किमिति । के  
उया उर्गूर्णवला लोके । के ह ऋषिरे । श्रूयते गुणैः । के विष्मता इत्यर्थः ॥

आदौ श्वस्यब्रवीदौर्णवाभमहीशुर्वं । ते पुत्र संतु निष्ठुरः ॥ २ ॥

आत् । ई । श्वसी । अब्रवीत् । और्णऽवाभं । अहीशुर्वं । ते । पुत्र । संतु । निऽष्ठुरः ॥ २ ॥

इंद्रेण पृष्टा श्वसी मातागंतरमेवैतमिन्द्रमब्रवीत् । किमिति उच्यते । और्णवाममहीशुर्वमेतन्नामानावसुरौ  
निष्ठतः । तावुक्तावन्ते च तादृशा हे पुत्र तव निष्ठुरो निस्सारणीयाः संलिति ॥



समिञ्चान्वृषहासिदन्ते अराँ इव खेदया । प्रवृजो दस्युर्हामवत् ॥३॥  
 सं। इत्। तान्। वृषऽहा। अस्विदत्। खे। अरान्ऽइव। खेदया। प्रऽवृजः। दस्युऽहा।  
 अभवत् ॥३॥

ताज्जनन्योक्तान् वृषहेन्द्रः समित्सहेवाखिदत् । खेदनं नामाकर्षणं । खे रषचक्रस्य नामावरांचक्रांगभू-  
 तमज्जंकून खेदया रज्ज्वेव । तथा तान्मथा संखिदति तद्वत् । तथा कृत्वा दस्युहा शत्रुघातीन्द्रः प्रवृजोऽभवत् ॥

एकया प्रतिधापिबत्साकं सराँसि चिंशतं । इन्द्रः सोमस्य काणुका ॥४॥

एकया । प्रतिऽधा। अपिबत्। साकं। सराँसि। चिंशतं। इन्द्रः। सोमस्य। काणुका ॥४॥

अयमिन्द्र एकयैकेन प्रतिधा प्रतिधानेन साकमेकधैव चिंशतमपि । उक्थपाचाणीत्यर्थः । कीदृशानि ।  
 सराँसि सोमस्य पूर्णानि सोमरसेन पूर्णानि काणुका कान्तानि कान्तानि वा सोमेन कृतानि वा सोमपूर्णाव-  
 पिवत् । पीतवान् माध्वंदिनसवने । याज्ञिकप्रसिद्धिं । वैदत्तप्रसिद्ध्या तु काष्ठाभिमाणीन्द्रः । चिंशदपरप-  
 खाहोराचास्त्रिंशत्पूर्वपक्षस्य च संति । तानेकरूपमनुभवतीति । एतत्सर्वमेकेन प्रतिधानेनापिवत् । नि० ५. ११. ।  
 इत्यादि निवृत्ते तद्व्याख्याने च स्पष्टमुक्तं । तद्वच्च द्रष्टव्यं ॥

अभि गंधर्वमंतृणादबुधेषु रजःस्वा । इन्द्रो ब्रह्मभ्य इवृधे ॥५॥

अभि । गंधर्वैः। अतृणात्। अबुधेषु। रजःऽसु। आ। इन्द्रः। ब्रह्मऽभ्यः। इत्। वृधे ॥५॥

अयमिन्द्रो गंधर्वैः । गान्धर्वं धारयतीति गंधर्वो मेघः । तमभ्यातृणात् । सर्वतो हंसितवान् । कुच ।  
 अनुभेषु पदनिधानयोग्यस्थानरहितेषु रजःसु लोकेषु । अंतरिक्षप्रदेशेभ्यस्त्यर्थः । किमर्थं । ब्रह्मभ्य रक्षाण्येभ्य  
 एव वृधे वर्धनाय ॥ ॥२९॥

निराविध्यग्निरिभ्य आ धारयत्पक्वमोदनं । इन्द्रो बुंदं स्वाततं ॥६॥

निः। अविध्यत्। गिरिऽभ्यः। आ। धारयत्। पक्वं। ओदनं। इन्द्रः। बुंदं। सुऽआततं ॥६॥

अयमिन्द्रो गिरिभ्यो मेघेभ्यः सकाशाद्बुदं निर्गमयितुं निराविध्यत् । संप्राहरत्तामेव मेघान् । किं कुर्वन् ।  
 पक्वं परिपक्वमोदनं कुर्वन्मनुष्याणामर्थाय । केन साधनेनेति तदुच्यते । बुंदमिषु स्वाततं सुप्तु सर्वतो विस्तृतमा-  
 दायेति शेषः ॥

शतब्रध्न इषुस्तव सहस्रपर्ण एक इत् । यमिन्द्र चकृषे युजं ॥७॥

शतऽब्रध्नः। इषुः। तव। सहस्रऽपर्णः। एकः। इत्। यं। इन्द्रः। चकृषे। युजं ॥७॥

हे इन्द्र तवेषु शतब्रध्नः शतायः सहस्रपर्णः सहस्रसंख्याकैः पक्षैः संवृतः शीघ्रगमनाय । अपरिमितबलमनो  
 वा । स धैव इदेव एव । यं चेष्टुं युजं सहायं चक्षुषे करोषि युवाय ॥

तेन स्तोतृभ्य आ भर नृभ्यो नारिभ्यो अक्षवे । सद्यो जात चक्षुष्टिर ॥८॥

तेन । स्तोतृऽभ्यः। आ। भर। नृऽभ्यः। नारिऽभ्यः। अक्षवे। सद्यः। जातः।

चक्षुऽस्त्यिर ॥८॥

तेनपुणा स्तोतृभ्योऽस्माभ्य नृभ्यो मनुष्येभ्यः । पुष्येभ्य इत्यर्थः । तथा नारिभ्यः स्त्रीभ्यश्चात्तवेऽदनाय पर्याप्तं

धनमा मर । आहर । सव्यदाणीमेव जातोऽस्मानिर्दत्तेन सोमेन प्रवृद्धः सन् हे ऋषिभिर । उवः प्रभूतः  
स्त्रिरश्च संगमि स तथोक्तः । हे तादृशेन्द्र त्वमा मरेति समन्वयः ॥

एता च्यौत्नानि ते कृता वर्षिष्ठानि परीणसा । हृदा वीडुधारयः ॥ ९ ॥

एता । च्यौत्नानि । ते । कृता । वर्षिष्ठानि । परीणसा । हृदा । वीडु । अधारयः ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ते स्वयंतेतानि पुरतः सर्वैर्दृशमानानि वर्षिष्ठान्यतिशयेन प्रवृद्धानि परीणसा परितो नतानि अत  
एव च्यौत्नानीति भावः । भूमेः कीचवद्धारणाय कृता कृतानि । पर्वतास्त्वया कृता इत्यर्थः । या यानि हृदा  
बुद्ध्या वीडु स्त्रिराण्यधारयः । बुद्ध्या कर्तव्यानीति यान्यधारयः तानीमानीति ॥

विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्वेषितः ।

शतं महिषान्क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषं ॥ १० ॥

विश्वः । इत् । ता । विष्णुः । आ । अभरत् । उरुऽक्रमः । त्वाऽईषितः ।

शतं । महिषान् । क्षीरऽपाकं । ओदनं । वराहं । इन्द्रः । एमुषं ॥ १० ॥

अस्या ऋचो निरुक्तीतिहासिकमतभेदेन द्विधा योजना । नैरुक्तपक्षे तावत् । हे इन्द्र ता तानि यानि  
त्वया स्रष्टव्यामुदकानि संति तानि विष्णुर्वापनशील आदित्य आभरत् । आभरति । लोकाय प्रयच्छतीत्यर्थः ।  
कीदृशो विष्णुः । उरुक्रमो बलगतिः । किं स्वविरोधेनेति आह । स्वेषितस्त्वया प्रेरितः । न केवलमुदकान्येव  
अपि च शतं महिषाऽऽहतसंख्याकान्प्रभून् । महिषशब्दो गवादेरप्युपलक्षकः । अथवा शतशब्दोऽपरिमितवचने  
महिष इति महत्त्वम् । असंख्यातामहतो यज्ञान्यजमानेभ्य आभरत् । ददातीत्यर्थः । किंच क्षीरपाकं क्षीरप-  
कमोदनं पायसं । एतच्चरुपुरोडाशादेरुपलक्षकं । तथ्यजमानेभ्य आभरत् । अथवा सर्वार्थं पुष्टिप्रदानद्वारौदनं  
प्राहरत् । किंचेन्द्रो वराहं जलपूर्णं मेघं हन्तीति शेषः । कीदृशं तं । एमुषं ॥ आ इत्यस्य स्थाने छान्दस एकारः ॥  
आमुषमुदकस्य मोषकमित्यर्थः । निरुक्तपक्ष एवं ॥ ऐतिहासिकपक्षे चरकब्राह्मण ऐतिहास आश्चायते ।  
विष्णुर्यज्ञः । स देवेभ्य आत्मानमंतरधात् । तमन्यदेवता नाविदन्निन्द्रस्त्वित् । स इन्द्रमब्रवीत्को भवानिति ।  
तमिन्द्रः प्रत्यब्रवीदहं दुर्गाणामसुराणां च हन्ता भवांस्तु क इति । सोऽब्रवीदहं दुर्गादाहर्ता त्वं तु यदि  
दुर्गाणामसुराणां हन्ता ततोऽयं वराहो वाममुष एकविंशत्याः पुरां पारेऽरुममयीनां वसति तस्मिन्सुराणां  
वसु वाममक्षि तमिमं जहीति । तस्मिन् इत्याः पुरो भित्वा हृदयमविधत् । अधि तच्च यदासीत्तद्विष्णुराह-  
रदिति सोऽयमितिहासोऽस्तेदु मातुः सवनेषु । ऋ० १. ६१. ७. । विश्वेत्ता विष्णुरित्याभ्यां प्रतिपादितः ।  
तयोर्मध्येऽस्तेदु मातुरित्यत्र विष्णुना हे इन्द्र त्वं दुर्गाणां हन्तेत्यात्मानं कथयसि तर्हि वाममुषं वराहमसुरं  
जहीत्युक्ताद्यौ विध्यवराहमिति पादेन प्रतिपादितः । इद्रेण च विष्णो त्वं दुर्गादाहर्तेति ब्रूये मया पुराणि  
जितान्यसुरस्य घातितस्तस्य वामं वस्त्रानयेत्युक्तो विष्णुमूर्तित्तस्य वराहसुरस्य धनं मुमोष । सोऽर्थो मुपाय-  
द्विष्णुः पचतमिति पादेन सूचितः । स किं पुनर्मुषितवानिति तदचोच्यते विश्वेत्तेति । हे इन्द्र स्वेषितस्त्वया  
प्रेरितो विष्णुर्यज्ञरूपी स्वेषितस्त्वं दुर्गादाहर्ता किञ्च तर्हि त्वं तस्य धनान्याहरेति त्वया प्रेरितः सन्नुब्रूवो  
मूत्वा विश्वेत्ता यानि त्वयाहर्तव्यानीत्युक्तानि यानि च तच्च स्थितानि सर्वाभ्यामभरत् । आभरत् । यानि  
तानीति । शतं महिषानपरिमितान्यश्वान्यदार्धान् तेषां बाहुरूपान् महिषान्वा क्षीरपाकमोदनं च पक्वमा-  
चमेवौदनं चाभरत् । विध्यवराहमित्युक्तोऽर्थश्च चरमपादेनोच्यते । इन्द्रश्च वराहं वराहारं स्वीकृतासुर-  
सर्वस्वं वराहरूपिणं विसृज्यैवमुषणामानमयवैमुषं धनानामामोषकं वराहमसुरं हृदयेऽविध्यदिति शेषः ॥

तुविश्वं ते सुकृतं सूमयं धनुः साधुर्बुदो हिरण्ययः ।

उभा ते बाहू रण्या सुसंस्कृत ऋदूये चिदृदूवृधा ॥ ११ ॥



तुविऽस्य । ते । सुऽकृतं । सुऽमयं । धनुः । साधुः । वुंदः । हिरण्ययः ।

उभा । ते । बाहू इति । रण्या । सुऽसंस्कृता । चतुऽपे । चित् । चतुऽवृथा ॥ ११ ॥

एषा निवृत्त एकमपि पदं विहाय यास्तेन व्याख्याता । तदेव लिखति । तुविषं नञ्विचेषं महाविचेषं वा ते सुकृतं सुमयं सुसुखं धनुः साधयिता ते वुंदो हिरण्ययः । उभौ ते बाहू रण्यौ रमणीयौ सांभ्राव्यौ वदूषे चर्दनपातिनौ गमनपातिनौ मर्मस्पर्दनवेधिनौ गमनवेधिनौ वा । नि० ६. ३३. इति ॥ ३० ॥

पुरोक्ताशं न इति दशर्चं नवमं सूक्तं काण्वस्व ऊरुसुतेरार्षे । आषा नव गायत्र्यो दशमी वृहती । इंद्रो देवता । तथा चागुक्तां । पुरोक्ताशं दश वृहत्तममिति ॥ सूक्तविनियोगो वैगिरिः ॥ महाव्रति निष्कवक्ष्ये गायत्र्युपाशीतावावाक्षिस्तच्छ्रवः । तथा च सूचितं । पुरोक्ताशं नो अंधस इति तिस्रः । ऐ० आ० ५. २. ३. इति ॥

पुरोक्ताशं नो अंधस इंद्रं सहस्रमा भर । शता च शूर गोर्ना ॥ १ ॥

पुरोक्ताशं । नः । अंधसः । इंद्रं । सहस्रं । आ । भर । शता । च । शूर । गोर्ना ॥ १ ॥

हे शूरेंद्र पुरोक्ताशं पुरो दीयमानमेतत्संश्रक्तमंधसोऽहं स्वीकृत्य गोर्नां यवां सहस्रं शता यानि च नोऽस्माभ्यमा भर । आहर । अथवा नोऽस्माभ्यं पुरतो दीयमानमंधसोऽधो व्यजनं सहस्रं सहस्रसंख्याकं गोसहस्रं चाहरेति योष्यं ॥

आ नो भर व्यजनं गामश्वमभ्यजनं । सचा मना हिरण्यया ॥ २ ॥

आ । नः । भर । विऽअजनं । गां । अश्वं । अभिऽअजनं । सचा । मना । हिरण्यया ॥ २ ॥

हे इंद्र त्वं नोऽस्माभ्यं व्यजनं गामश्वमभ्यजनं तैत्वं चा भर । मना मनीषानि हिरण्यया हिरण्ययानुपकरणानि सचा सहाभरेति ॥

उत नः कर्णशोभना पुरुणि धृष्णा वा भर । त्वं हि श्रुत्विषे वसो ॥ ३ ॥

उत । नः । कर्णोऽशोभना । पुरुणि । धृष्णो इति । आ । भर । त्वं । हि । श्रुत्विषे । वसो इति ॥ ३ ॥

उतापि च नोऽस्माभ्यं कर्णशोभना कर्णामरणाणि पुरुणि बह्वन्वा भर । हे धृष्णो धर्मकेंद्र वसो वासयितरिंद्र त्वं हि खलु श्रुत्विषे । श्रूयसे । किमिति । उदारोऽयमिंद्र इति ॥

नकीं वृधीक इंद्र ते न सुषा न सुदा उत । नान्यस्त्वच्छूर वाघतः ॥ ४ ॥

नकीं । वृधीकः । इंद्र । ते । न । सुऽसाः । न । सुऽदाः । उत । न । अन्यः । तत् । शूर । वाघतः ॥ ४ ॥

हे इंद्र ते त्वत्तोऽन्यः कश्चिवृधीको वर्धयिता नकीं शैव । तथा सुषाः सुष्ठु संभ्राता संभ्रामादौ त्वत्तोऽन्यो न । उतापि च सुदाः सुदाता न । तथा हे शूर त्वत्त्वत्तोऽन्यो वाघतः । अस्त्रिभामेतत् । अस्त्रिभो यजमानस्तं जेता नाव्योऽस्ति त्वामृते ॥

नकीमिंद्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे । विश्वं शृणोति पश्यति ॥ ५ ॥

नकीं । इंद्रः । निऽकर्तवे । न । शक्रः । परिऽशक्तवे । विश्वं । शृणोति । पश्यति ॥ ५ ॥

अयमिन्द्रो निकर्तवे निकर्तुं नवीं नैव शक्नः । तथा शक्नः शक्तोऽथं परिशक्तवे परिमावाय न शक्नत  
इति । स तु विश्वं शृणोति पश्यति च ॥ ३१ ॥

स म॒न्युं म॒र्त्याना॒मद॒ब्धो नि चि॒कीष॑ते । पुरा नि॒दश्चि॒कीष॑ते ॥ ६ ॥

सः । म॒न्युं । म॒र्त्यानां । अ॒द॒ब्धः । नि । चि॒की॒ष॒ते । पुरा । नि॒दः । चि॒की॒ष॒ते ॥ ६ ॥

स इन्द्रो मन्युं क्रोधं । केषां । मर्त्यानां । अदब्धः केनाप्यहिंसितः सन्नि चिकीषते । निकरोति । किं मन्युं  
प्राप्तिव नेत्याह । निदो निंदायाः पुरा पूर्वमेव चिकीषते । यदा तं निंदितुमिच्छति कश्चित्ततः पूर्वमेव तं  
निकरोतीत्यर्थः ॥

क्व॒त् इत्पू॒र्णमु॒दरं॑ तु॒रस्या॑स्ति वि॒धतः॑ । वृ॒च॒मः सोम॒पाव॑नः ॥ ७ ॥

क्व॒त् । इत् । पू॒र्णं । उ॒दरं॑ । तु॒रस्य॑ । अ॒स्ति । वि॒ध॒तः । वृ॒च॒ऽमः । सोम॒ऽपा॒व॒नः ॥ ७ ॥

तुरस्य स्वरमाणस्य वृचश्चो वृचं हतवतः सोमपावः सोमपातुषदरं क्व इत कर्मणैव पूर्णमस्ति । मन्ति ।  
क्व कर्मणेति उच्यते । विधतः परिचरतो यजमानस्य । यतः परिचरणाभावे तस्य कुचिपूर्वभावोऽतस्तत्पूर्वमे  
परिचरतेति शेषः ॥

त्वे वसू॑नि॒ संग॑ता॒ विश्वा॑ च सोम॒ सौभ॑गा । सु॒दा॒त्वप॑रि॒कृता॑ ॥ ८ ॥

त्वे इति॑ । वसू॑नि । सं॒ग॒ता । विश्वा॑ । च । सोम॒ । सौभ॑गा । सु॒ऽदा॒तु । अ॒प॒रि॒ऽकृ॒ता ॥ ८ ॥

हे इन्द्र त्वे त्वयि वसूनि धनान्यस्त्रादिष्ठानि संगता संगतानि । तथा हे सोम सोमवन्निद्र त्वयि विश्वा  
सर्वाणि सौमगा सौभाग्यानि संगतानि । तथा सुदातु सुदानान्यपरिकृताकुट्टिष्ठानि । अतस्तानि कुर्वन्ति  
भावः । यदा । इन्द्रः सौमं पीत्वा सोम इत्यभिहितः सोमश्रुतिः ॥

त्वा॒मि॒द्यव॑यु॒र्मम॒ कामो॑ ग॒व्युर्हि॑र॒ण्ययुः॑ । त्वा॒म॒श्व॑यु॒रेष॑ते ॥ ९ ॥

त्वां । इत् । य॒व॒ऽयुः । म॒म । का॒मः । ग॒व्युः । हि॒र॒ण्य॒ऽयुः । त्वां । अ॒श्व॒ऽयुः । आ । ई॒ष॑ते ॥ ९ ॥

त्वामित्त्वामेवेषते । किं । मम कामः । स कीदृशः । यवयुर्यवेच्छुः सन्नेषते । तथा गव्युः सन्नेषते । तथा  
हिरण्ययुश्च सन्नेषते । तथाश्वयुश्च सन्नेषते । तं काममाप्तिच्छं कुर्विति भावः ॥

त॒वेदि॑द्रा॒हमा॒शसा॒ हस्ते॒ दा॒चं च॒ना द॑दे ।

दि॒नस्य॑ वा म॒घव॑न्संभृ॒तस्य॑ वा पू॒र्धि य॑व॒स्य का॒शिना॑ ॥ १० ॥

त॒व । इत् । इ॒न्द्र । अ॒हं । आ॒ऽश॒सा । ह॒स्ते । दा॒चं । च॒न । आ । द॑दे ।

दि॒नस्य॑ । वा । म॒घ॒ऽव॒न् । सं॒ऽभृ॒तस्य॑ । वा । पू॒र्धि । य॑व॒स्य । का॒शि॒ना ॥ १० ॥

हे इन्द्र तवेत्तवैवाशशाशंसनेन त्वमसादीयं चेत्तं यवसमुच्चं करोषीत्याशंसनेन हस्ते दाचं चन सवनसाधनं  
दाचमप्या ददे । स्वीकरोमि । किमनेन प्रयासेन । दिनस्य वा पूर्वमेव च्छिन्नस्य वा यवस्य संभृतस्य वा पूर्वमेव  
च्छित्वा निष्कृतस्य राशीकृतस्य वा यवस्य काशिना मुष्टिना पूर्धि । पूरय । आशंसनं देहि च ॥ ३२ ॥

अयं कर्तुरिति नवचं दशमं सूक्तं । अवेयमनुक्रमणिका । अयं कर्तुर्नव कर्तुर्भार्गवः सौम्यमन्त्रावुक्तविति ।  
भार्गवः कर्तुर्भर्षिः । नवम्यनुष्टुप् । अष्टौ गायत्र्यः । सोमो देवता ॥ विनियोगो वैयिकः ॥



अयं कृत्नुरगृभीतो विश्वजिदुज्जितसोमः । ऋषिर्विप्रः काव्येन ॥१॥

अयं । कृत्नुः । अगृभीतः । विश्वऽजित् । उतऽभित् । इत् । सोमः । ऋषिः । विप्रः ।  
काव्येन ॥१॥

अयं सोमः कृत्नुः कर्ता सर्वस्यागृभीतोऽन्यैरगृहीतो विश्ववित्सर्वस्व धेतोऽस्मिन्स्वस्वोऽस्मिन्नेदकः । अथवा विश्वजिदुज्जितौ सोमयागौ । तयोर्निष्पादकत्वात्तद्वृत्तः । ऋषिर्वाग्वान्विप्रो मेधावी विप्रवत्पूज्यो विश्वेयस्य पूरको वा । एवं महाशुभावः सोमः काव्येन कोत्रेण सुखो भवतीति श्रेयः ॥

अभ्यूषोति यन्नमं भिषक्तिं विश्वं यत्तुरं । प्रेमंधः ख्यन्ति ओणो भूत् ॥२॥

अभि । ऊणोति । यत् । नमं । भिषक्तिं । विश्वं । यत् । तुरं । प्र । ई । अंधः । ख्यत् ।  
निः । ओणः । भूत् ॥२॥

अयं सोमो यन्नपमसि तदभ्यूषोति । आच्छादयति । यन्नपमसि विपन्नं वर्तते तदाच्छादयति प्रलेन । अथवा यन्नं यन्नयन्नाच्छादयति । तथा यत्तुरमातुरं वृत्तं विश्वं तन्निषक्तिं । निषज्यति । यन्नद्वारा स्वर्गसाध-  
नेनीषधक्येण च शरीरसिद्धिसाधनस्य । अंधः संग्रहोऽपि प्र स्थात । पश्यति । ओणोऽपि पंगुरपि निर्भूत ।  
निर्मवति । निर्गच्छति ॥

त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः । उरु यन्तासि वरूथं ॥३॥

त्वं । सोम । तनूकृत्ऽभ्यः । द्वेषऽभ्यः । अन्यऽकृतेभ्यः । उरु । यन्ता । असि । वरूथं ॥३॥

हे सोम त्वं तनूकृद्भ्यः कृतीकृद्भ्यः । अथवागानां विच्छेदकेभ्योऽन्यकृतेभ्यो द्वेषोभ्यः । शत्रुकृतेभ्योऽप्रियेभ्यः ।  
कृतेभ्य इत्यर्थः । वरूथं वरकं रक्षणमुप यन्तासि । भवसि कोतृणां । अन्यकृतानि हि रक्षांसीति ब्राह्मणं ॥

त्वं चित्ती तव दक्षैर्दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन् । यावीरघस्यं चिद्वेषः ॥४॥

त्वं । चित्ती । तव । दक्षैः । दिवः । आ । पृथिव्याः । ऋजीषिन् । यावीः । अघस्यं ।  
चित् । द्वेषः ॥४॥

हे ऋजीषिन् तृतीयसवनगतेनर्जीषेण तद्वत् सोम त्वं तव चित्ती चित्त्वा प्रथया दक्षैर्वैश्व दिव आ ।  
आ इति चार्थः । पृथिव्या आ पृथिव्याश्च सकाशादघस्यं चिदस्माकमाहंतुरपि द्वेषः शत्रोः कृत्वां यावीः ।  
पृथक्पृथक् ॥

अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिहदुषो रातिं । ववृज्युस्तृथ्यतः कामं ॥५॥

अर्थिनः । यन्ति । च । इत् । अर्थः । गच्छान् । इत् । ददुषः । रातिं । ववृज्युः । तृथ्यतः । कामं ॥५॥

अर्थिनो धनानि कामयमाना यन्ति चेत् । यन्ति चार्थं प्रति । गत्वा च ददुषो दातुं रातिं दानं गच्छान्ति ।  
गच्छन्ति च । गतेषु मध्ये यं हे सोम स्वमनुकृतासि तस्य तृथ्यतो भिषमायस्य कामं ववृज्युः । पुनः कामाना-  
वर्धयन्ति । तावत्पर्यन्तं पूरयन्तीत्यर्थः ॥ ३३ ॥

विदद्यत्पूर्यं नष्टमुदीमृतायुमीरयत् । प्रेमायुस्तारीदतीर्यं ॥६॥

विदत् । यत् । पूर्यं । नष्टं । उत । ई । ऋतऽयुः । ईरयत् । प्र । ई । आयुः । तारीत् । अतीर्यं ॥६॥

यद्यदा पूर्वं पुराणं नष्टं स्वकीयं धनं विदत् समति नष्टधन इमेनमृतायुं नष्टधनत्वानामर्थं यन्नकामस-  
दीरयत् । प्रेरयति । धनं साधयतीत्यर्थः ॥

सुशेवो नो मृळयाकुरदृप्तकतुरवातः । भवा नः सोम शं हृदे ॥७॥

सुऽशेवः । नः । मृळयाकुः । अदृप्तऽकतुः । अवातः । भव । नः । सोम । शं । हृदे ॥७॥

हे सोम पीतस्त्वं नोऽस्माकं हृदे हृदये वर्तमानः सुशेवः - - । अपरो नः पूरणः ॥

मा नः सोम सं वीविजो मा वि वीभिषया राजन् । मा नो हार्दिं त्विषा वधीः ॥८॥

मा । नः । सोम । सं । वीविजः । मा । वि । वीभिषयाः । राजन् । मा । नः । हार्दिं ।

त्विषा । वधीः ॥८॥

हे सोम पीतस्त्वं नोऽस्माका सं वीविजः । वीक्षितांयाया कार्षीः । हे राजन् सोम ज्ञायाया वि वीभिष-  
याः । मीताया जुह । नोऽस्माकं हार्दिं हृदयं त्विषा दीप्या मा वधीः ॥

अव यत्स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे । राजन्नप द्विषः सेध मीढो अप सिधः सेध ॥९॥

अव । यत् । स्वे । सधऽस्थे । देवानां । दुऽमतीः । ईक्षे । राजन् । अप । द्विषः । सेध ।

मीढः । अप । सिधः । सेध ॥९॥

स्वे सधस्थे स्वकीये सहस्रानि गृहे देवानां दुर्मतीर्दुर्मतयो न प्रविशंस्त्विति । यद्यद्विषे अहं त्वं वेधसे तदा  
हे राजन् द्विषोऽसद्विष्टनप सेध । हे मीढः सोमरसस्य सेतः सिधो हिंसकानप सेध । मिषीत्यर्थः ॥ ३४ ॥

न ह्यन्वमिति दशर्वमेवादशं सूक्तं । अथेयमनुक्रमणिका । न ह्यन्वं दशैकयुर्नोधसो गायत्रेऽन्वा द्विषी  
विष्टुविति । एकयुर्नामा नोधसः पुत्र ऋषिः । अन्वा विष्टुप सा च देवदेवत्या श्रिष्टा गायत्र्य ऐश्वर्यः ॥ द्वितीये  
पर्याये मिषावपश्यस्व आदितोऽष्टर्वः । सूचितं च । न ह्यन्वं वकाशरमित्यष्टौ । आ० ६. ४. इति ॥ महाव्रति  
निकेवले गायत्रुवाशीतावाया विनियुक्ता । तथा च पंचमारण्यके शीनकः । न ह्यन्वं वकाशरामित्वा  
प्रत्यवदधाति । ऐ० आ० ५. २. ३. इति ॥

न ह्यन्यं वळाकरं मर्डितारं शतक्रतो । त्वं न इन्द्र मृळय ॥१॥

नहि । अन्यं । वळा । अकरं । मर्डितारं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । त्वं । नः । इन्द्र ।

मृळय ॥१॥

हे शतक्रतो त्वत्तोऽन्यं मर्डितारं मुखयितारं वळा वद-तत्ताकरं । न करोमि । तस्माच्च इन्द्र त्वं  
नोऽस्माकृळय ॥

यो नः शश्वत्पुराविषामृधो वाजसातये । स त्वं न इन्द्र मृळय ॥२॥

यः । नः । शश्वत् । पुरा । आविष । अमृधः । वाजऽसातये । सः । त्वं । नः । इन्द्र । मृळय ॥२॥

(योऽमृधोऽहिंसको नोऽस्मान्वावसातये पुरा पूर्वमाविष रचितवान् हे इन्द्र स त्वं नोऽस्माकृळयसदा  
मृळय । मुखय ॥)



किमंग रधचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि । कुविस्त्विन्द्र रणः शकः ॥३॥

किं । अंग । रधऽचोदनः । सुन्वानस्य । अविता । इत् । असि । कुवित् । सु । इन्द्र । नः । शकः ॥३॥

हे इन्द्र त्वं रधचोदनः । रधं राधकं चोदयतीति रधचोदनः । तादृशत्वं सुन्वानस्यावितेदसि । रक्षक एव भवसि । अतो नोऽस्माकं कुविद्वज्ज सु सुष्ठु शकः । अशकः । शक्तो भव । वज्र धनं कुर्वित्यर्थः । अस्मात्वा वज्र कुर्विति ॥

इन्द्र प्र णो रथमव पश्चाच्चित्संतमद्रिवः । पुरस्तादिनं मे कृधि ॥४॥

इन्द्र । प्र । नः । रथं । अव । पश्चात् । चित् । संतं । अद्रिवः । पुरस्तात् । एनं । मे । कृधि ॥४॥

हे इन्द्र नो रथं प्राव । प्ररथ । कीदृशं रथं । पश्चाच्चित्संतं । चिदप्यर्थे । अस्मात्समानरथानां पश्चात्प्राप्तमप्येनं मे रथं हे अद्रिवो वज्रवन्निन्द्र पुरस्ताद्वर्तमानं कृधि । कृष ॥

हंतो नु किमांससे प्रथमं नो रथं कृधि । उपमं वाजयु अवः ॥५॥

हंतो इति । नु । किं । आंससे । प्रथमं । नः । रथं । कृधि । उपऽमं । वाजऽयु । अवः ॥५॥

हृतेत्येतदादि मुख्यकृदामंचितेन समानं । हे हंतेंद्र निदानो किं त्वं दूष्णीमांससे । तव किं करोमीति चेत् उच्यते । नो रथं प्रथमं सर्वेषां मुख्यं कृधि । कृष । वावथ्वस्माकमन्नमिच्छच्छ्वोऽन्नं हविर्ब्रह्मणमुपमं । अंतिकनामेतत् । तवांतिकभूतं वर्तते इति शेषः । यस्मादेवं तस्माद्रथमस्मादथ प्रथमं कृधीति ॥ ३५ ॥

अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित्परि । अस्मान्सु जिग्युषस्कृधि ॥६॥

अव । नः । वाजऽयुं । रथं । सुऽकरं । ते । किं । इत् । परि । अस्मान् । सु । जिग्युषः । कृधि ॥६॥

हे इन्द्र नो वाजयुमन्नेच्छुं रथमव । रथं संयामे । ते तव किमित् किमपि सर्वकर्तव्यजातं परि परितः सुकरं सुखेन कर्तव्यं । तव कर्तुंशक्यं न किंचिदसि । यस्मादेवं तस्मात्सु जिग्युषः सुष्ठु जेतुं कृष संयामे ॥

इन्द्र दृष्टस्व पूरसि भद्रा तं एति निष्कृतं । इयं धीर्ज्ञुत्वियावती ॥७॥

इन्द्र । दृष्टस्व । पूः । असि । भद्रा । ते । एति । निऽकृतं । इयं । धीः । ज्ञुत्वियऽवती ॥७॥

हे इन्द्र त्वं दृष्टस्व । दृष्टो भव संयामे । त्वं पूरसि । पूरयसि । यथा पूरमविचक्षितं तद्वत्त्वमसि । अथवा । अस्मादीये यद्ये दृष्टो भव । त्वं पुनरन्यथज्ञजिगमिषुर्मा भूः । त्वं पूः पूरकः कामानामसि । किमत्र विद्यत इति चेत् उच्यते । निष्कृतं निष्कर्तारं ते त्वां भद्रा कल्याणीयं धीः क्षुतिः क्रिया वर्त्तियावती । अतुशब्दः कालोपलक्षकः । स्वकालोपेता सत्येति । गच्छति । यद्वा । ते निष्कृतं स्नानमेति ॥

मा सीमवद्य आ भागुर्वी काष्ठा हितं धनं । अपावृक्ता अरत्नयः ॥८॥

मा । सीं । अवद्ये । आ । भाक् । उर्वी । काष्ठा । हितं । धनं । अपऽपावृक्ताः । अरत्नयः ॥८॥

मास्मान् सीं सर्वतोऽवद्ये निंदा भाक् । मामजनु । प्राप्नोतु न कुतश्चित् । पापरहितान्कुर्वित्यर्थः । किंचोर्वी काष्ठा वज्रंतराल आज्यंतः । आज्यंतोऽपि काष्ठोच्यते कांत्वा स्थिता भवति । नि० २. १५. इति यास्कः । तव हितं निहितं शत्रुसंबन्धि धनमस्माकं भवत्वित्यर्थः । अरत्नयोऽरममाणाः शत्रवोऽपावृक्ताः संल्लिति शेषः ॥

तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि । आदित्यतिर्न ओहसे ॥ ९ ॥

तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करः । तत् । उश्मसि । आत् । इत् । पतिः । नः । ओहसे ॥ ९ ॥

हे इंद्र त्वं यज्ञियं यज्ञसंबन्धि तुरीयं चतुर्थं नाम यदा करः करोषि तदुश्मसि । कामयामहे : आदिद-  
न्तरमेव नामकामान्तरमेव पतिः पातकस्त्वं नोऽस्मानोहसे । वहसि । प्रापयसि । नक्षत्रनाम गुह्यं नाम  
प्रकाशं नामेति चीणि नामानि सोमयाजीति तुरीयं नाम तच्च यज्ञियं ॥

अवीवृध्वो अमृता अमंदीदेकद्यूर्देवा उत याश्च देवीः ।

तस्मा उ राधः कृणुत प्रशस्तं प्रातर्मसू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १० ॥

अवीवृधत् । वः । अमृताः । अमंदीत् । एकऽद्युः । देवाः । उत । याः । च । देवीः ।

तस्मै । ऊं इति । राधः । कृणुत । प्रशस्तं । प्रातः । मसू । धियावसुः । जगम्यात् ॥ १० ॥

इयं वैश्वदेवी । हे देवा हे अमृता अमरणा वो शुष्मानयमवीवृधत् वर्धयति सुत्वामंदीत् तर्पयति सोमे-  
नैकद्यूर्ध्विरहं । उतापि च हे देवोर्देव्यो देवपत्न्यः याश्च यूयं स्त्र्य शुष्मानयमवीवृधदमदीच्च । तस्मै राधो धनं  
प्रशस्तं प्रवृद्धं कृणुत । कृषत । उ इति पूरण एवकारार्थो वा । प्रातः प्रातरेव मसू चिप्रं धियावसुः कर्मधनं  
इंद्रो जगम्यात् । आगच्छतु । इंद्रस्व देवस्त्वामित्वादाधिक्यद्योतनाय पुनरभिधानं ॥ ३६ ॥ ॥ ८ ॥

नवमेऽनुवाके त्रयोदश सूक्तानि । तत्रा तू न इंद्रेति नवर्चं प्रथमं सूक्तं कण्वपुत्रस्य कुसीदिन आर्षे गाय-  
त्रमिंद्रं । तथा चानुक्रम्यते । आ तू नो नव कुसीदी काण्व इति ॥ महाव्रते निष्केवत्ये गायत्रतुचाशीतावेतदा-  
दिके द्वे सूक्ते । तथैव पंचमारण्यके सूचितं च शौगकेन । आ तू न इंद्रं शुभंतमिति सूक्ते मूददोहाः । ऐ० आ० ५.  
२. ३. इति ॥ द्वितीये पर्याये मैचावरणे शस्त्र आबलुचः । सूचितं च । आ तू न इंद्रं शुभंतमा प्र द्रव  
परावतः । आ० ६. ४. इति ॥

आ तू न इंद्रं सुभंतं चित्रं याभं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥

आ । तु । नः । इंद्र । सुभंतं । चित्रं । याभं । सं । गृभाय । महाहस्ती । दक्षिणेन ॥ १ ॥

हे इंद्र महाहस्ती महाहस्तवांस्त्वं तु तदानीमेवास्मभं दातुं नोऽस्मदर्थं शुभंतं शब्दधंतं । सुत्वमित्यर्थः ।  
चित्रं चायनीयं याभं याहकं ग्रहणार्हं वा धनं दक्षिणेन हस्तेना सं गृभाय । आभिमुख्येन संगृहाण ॥

विद्मः हि त्वां तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघं । तुविमाचमवोभिः ॥ २ ॥

विद्मः हि । त्वा । तुविऽकूर्मिं । तुविऽदेष्णं । तुविऽमघं । तुविऽमाचं । अवोभिः ॥ २ ॥

हे इंद्र त्वा त्वां विद्मः हि । आनीमः खलु । कीदृशमिति । तुविकूर्मिं वज्रकर्माणं तुविदेष्णं वज्रप्रदेयं  
तुविमघं वज्रधनं तुतिमाचं वज्रप्रमाणमवीमिर्भुक्तं ॥

नहि त्वां शूर देवा न मर्तासो दित्संतं । भीमं न गां वारयंते ॥ ३ ॥

नहि । त्वा । शूर । देवाः । न । मर्तासः । दित्संतं । भीमं । न । गां । वारयंते ॥ ३ ॥

हे गुरेन्द्र त्वा त्वां दित्संतं दातुमिच्छंतं देवा नहि वारयंते । न निवारयंति । तथा मर्तासो मर्त्या अपि  
न वारयंत । भीमं न गां भयजनकं वृषभं यवसे प्रवृत्तमिव । तं यथा वारयितुं न शक्नुवन्ति तद्वत् ॥

प्रथमं पर्यायेऽच्छावाकशस्त्र एतो न्विंद्रमिति तुचः । तथा च सूचितं । एतो न्विंद्रं क्षवामेशानं मा नी  
अग्न्यन्मघवन । आ० ६. ४. इति ॥



एतो न्विदं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजं । न राधसा मर्धिषत् ॥४॥

एतो इति । नु । इन्द्रं । स्तवाम । ईशानं । वस्वः । स्वराजं । न । राधसा ।  
मर्धिषत् । नः ॥४॥

हे अस्मादीया जनाः एतो । आगच्छतैव नु चिप्रं । किं कर्तुं । स्वामिन्द्रं । कीदृशं तं । वस्वो वसुनो  
धनक्षेत्रानं स्वामिनं स्वराजं स्वयमेव राजमानं स्वर्गे राजमानं वा । नोऽस्मानिन्द्रेणानुगृहीतान्नाधसा  
धनेनान्यो धनी न मर्धिषत् । न बाधतां । आद्यानामस्तमानानामप्याद्यात्वाय स्वामित्वर्थः ॥

प्र स्तोषदुपं गासिषच्छ्रुत्सामं गीयमानं । अभि राधसा जुगुरत् ॥५॥

प्र । स्तोषत् । उप । गासिषत् । श्रुत् । सामं । गीयमानं । अभि । राधसा । जुगुरत् ॥५॥

पूर्वमंचे स्वामित्युक्तं । तदेव स्तोत्रमिन्द्रः प्र स्तोषत् । प्रस्तुता च गासिषत् । उपगानं च करोतु । तदर्थं  
गीयमानं साम स्तोत्रं श्रुत् । राधसा धनेन च युक्तोऽस्मानभि जुगुरत् । अभिगृणातु ॥ ३७॥

आ नो भर दक्षिणेनाभि सव्येन प्र भृश । इन्द्र मा नो वसोर्निर्भीक् ॥६॥

आ । नः । भर । दक्षिणेन । अभि । सव्येन । प्र । भृश । इन्द्र । मा । नः । वसोः । निः । भाक् ॥६॥

हे इन्द्र नोऽस्मभ्यमा भर । आहत्य दक्षिणेन सव्येन च हस्तेनोभाभ्यां हस्ताभ्यामभि प्र भृश । प्रयच्छेत्त्वर्थः ।  
नोऽस्मान्वसोर्धनात्मा निर्भीक् । मा निर्भीधीः ॥

द्वितीये पर्यायेऽच्चावाकशस्त्र उप क्रमस्वेति तुचः । सूचितं च । उप क्रमस्ता भर, धृषता तदस्त्री नव्यं  
। आ० ६. ४. इति ॥

उपं क्रमस्वा भर धृषता धृष्णो जनानां । अदाभूदरस्य वेदः ॥७॥

उप । क्रमस्व । आ । भर । धृषता । धृष्णो इति । जनानां । अदाभूऽतरस्य । वेदः ॥७॥

हे इन्द्र त्वमुप क्रमस्व । धनं प्रत्युपगच्छ । प्रवृत्तो भव वा दातुं । हे धृष्णो धर्मक शत्रूणां धृषता धृष्टेन  
चेतसा युक्तः सत्ता भर । आहर त्र । कस्य धनमाहरेति उच्यते । जनानां मध्येऽदाभूदरस्यात्यंतमदातृतमस्य  
वेदो धनं ॥

इन्द्र य उ नु ते अस्ति वाजो विप्रेभिः सनित्वः । अस्माभिः सु तं संनुहि ॥८॥

इन्द्र । यः । उं इति । नु । ते । अस्ति । वाजः । विप्रेभिः । सनित्वः । अस्माभिः । सु ।  
तं । संनुहि ॥८॥

हे इन्द्र यो वाजोऽन्नं विप्रेभिर्मैधाविभिः सनित्वः संमजनीयस्ते तवास्ति तं वाजमस्माभिर्याचितः सन्  
यस्यभ्यं वा सु सुष्ठु संनुहि । देहि ॥

सद्योजुर्वस्ते वाजा अस्मभ्यं विश्वश्चंद्राः । वशैश्च मसू जरंते ॥९॥

सद्यऽजुर्वः । ते । वाजाः । अस्मभ्यं । विश्वश्चंद्राः । वशैः । च । मसू । जरंते ॥९॥

हे इन्द्र ते तव वाक्वा अस्मभ्यं सद्योजुवः शीघ्रं गंतारो भवतु । कीदृशास्ते । विश्वचंद्राः सर्वहिरण्योपेता बह्वनामाह्लादका वा । अस्मदीयाश्च जना वशिः कामैरनेकैर्युक्ता मनु शीघ्रं जरंते । सुवन्ति ॥ ३८ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थीत्यतुरो देयाद्विवातीर्थमहेत्यरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुद्धभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टके पंचमोऽध्यायः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।  
निर्ममे तमहं वंदे विवातीर्थमहेत्यरं ॥

आ प्र द्रवेति नवचै द्वितीयं सूक्तं । तथा चानुक्रम्यते । आ प्र द्रवेति । ऋषिश्चान्यस्मादिति परिभाषया काण्वः कुसीबृषिः । प्राग्वत्प्रोयपरिभाषया गायत्री छंदः । अनादेशपरिभाषयेंद्रो देवता ॥ महाव्रते निष्किल्वे सूक्तविनियोग उक्तः ॥ द्वितीये रात्रिपर्याये मैत्रावरुणशस्त्र आ प्र द्रवेति तुचोऽनु रूपः । सूचितं च । आ प्र द्रव परावतो नह्यन् बळाकरमित्यष्टौ । आ० ६. ४. इति ॥

आ प्र द्रव परावतोऽर्वावतश्च वृचहन् । मध्वः प्रति प्रभर्मणि ॥ १ ॥

आ । प्र । द्रव । परावतः । अर्वावतः । च । वृचहन् । मध्वः । प्रति । प्रभर्मणि ॥ १ ॥

हे वृचहन्पामावरकस्य वृचासुरस्य हंतर्हे इन्द्र प्रभर्मणि । प्रकृष्टानि भर्माणि भरणानि पशुग्रहादिसंपादनानि यस्मिन् स प्रभर्मा यज्ञः । यद्वा । प्रकृष्टाः कर्मणि कुशला भर्माणो देवानां हविष्प्रदानेन पोषका ऋत्विजो यस्मिन्निति स तथोक्तः । एतादृशे यज्ञे मध्वो मदकरान्तोमान्प्रति परावतो विप्रकृष्टादूरस्थाद्देशादप्यर्वावतस्य समीपस्थाद्देशादप्याभिमुख्येन प्र द्रव । त्वं त्वरयागच्छ ॥ मध्व इति वा छंदसीति पूर्वसवर्णदीर्घाभावः ॥

तीव्राः सोमांस आ गहि सुतासो मादयिष्णवः । पिवा दधृग्ययौचिषे ॥ २ ॥

तीव्राः । सोमांसः । आ । गहि । सुतासः । मादयिष्णवः । पिब । दधृक् । यथा ।

ओचिषे ॥ २ ॥

हे इन्द्र तीव्रास्तीव्रमदाः । चिप्रं मदकारिण इत्यर्थः । मादयिष्णवो मादनशीला मादनकारिणो वेमे सोमांसः सोमाः सुतासस्त्वदर्थमभिषुताः । तस्मादा गहि । अस्मदीयं यज्ञं प्रत्यागच्छ । आगत्य च तान् पिब । सोमपाने कारणमाह । त्वं यथा दधृग्धृष्टस्तप्रीतां प्रगल्भः संस्तानुचिषे संवैषि सेवसे । ततस्तान्यथाकामं पिबेत्यर्थः ॥ दधृगिति त्रिध्रुपा प्रागल्भ्य इत्यस्मादृत्विग्दधृगित्यादिना क्लिप्तत्ययांतो निपात्यते । ऊचिषे । उच समवाये । छांदसे लेटि रूपं ॥

इषा मंदस्वादु तेऽरं वराय मन्यवै । भुवन्त इन्द्र शं हृदे ॥ ३ ॥

इषा । मंदस्व । आत् । ऊं इति । ते । अरं । वराय । मन्यवै । भुवन्त । ते । इन्द्र । शं । हृदे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र इषा सोमन्वक्षणेनान्नेन मंदस्व । मोदस्व । हृष्टो भव । उ इत्यवधारणे । आदनंतरमेव ते तव वराय शत्रुनिवारकाय मन्यवे क्रोधाय स सोमोऽरमन् पर्याप्तो भवतु । क्रोधशमने समर्थो भवतु । यदा सोमं पिबति तदा मन्युं त्यजतीत्यर्थः । किंच ते तव हृदे हृदये स सोमः शं शंकरः सुखकरो भुवत् । भवतु ॥



तृतीये पर्याय आ त्वशचवित्वगुरुपशुचः । सूचितं च । आ खेता नि पीदता त्वशचवा गहि । आ० ६. ४. इति ॥

आ त्वशचवा गहि न्युक्थानि च हूयसे । उपमे रोचने दिवः ॥४॥

आ । तु । अशचो इति । आ । गहि । नि । उक्थानि । च । हूयसे । उपमे । रोचने । दिवः ॥४॥

हे अशचो सपत्नरहित । अस्व वज्रविध्वजत्वाद्गणामिमुखं गन्तारः शचवो न संतीत्यर्थः । तादृशेन्द्र तु विप्रमा गहि । आयाहि । अस्ववज्रं प्रत्यागच्छ । यतो दिवः स्वतेजसा दीप्यमानाद्युलोकात् । तत्रस्थेदेवै-  
रित्यर्थः । रोचनेऽभिभिदीप्यमाने लोके चोपमे समीपे । स्रोतारः स्रोतश्चात्मकं शब्दं कुर्वन्त्येतेत्युपमो यज्ञः ।  
तस्मिन्नस्रदोये यज्ञे चोक्थानि चिवृत्पंचदशादिलक्षणानि स्रोताणि प्रति नि हूयसे त्वं स्रोतव्यतया नितरा-  
माहूयसे । यस्मादेवं तस्मादागच्छेति समन्वयः ॥

तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कं । प्र सोमं इंद्र हूयते ॥ ५ ॥

तुभ्यं । अयं । अद्रिभिः । सुतः । गोभिः । श्रीतः । मदाय । कं । प्र । सोमः । इंद्र । हूयते ॥ ५ ॥

हे इंद्र अद्रिभिरभिषवसाधनैर्यावभिरयं सोमस्तुभ्यं त्वदर्थं सुतोऽभिषुतः । ततो दशपवित्रेण पूत्वा  
गोभिर्गोविकारैः क्षीरादिभिः श्रीतः सोऽस्माभिः परावत एव संस्तुतः सोमस्तव मदाय मदार्थं कं मुखेन प्र  
हूयते । अग्नौ स्नाहा क्रियते । तस्मादागत्य सोमं पिब ॥ ॥ १ ॥

इंद्रं शुधि सु मे हवमस्मे सुतस्य गोमतः । वि पीतिं तृप्तिमश्नुहि ॥ ६ ॥

इंद्रं । शुधि । सु । मे । हव । अस्मे इति । सुतस्य । गोऽमतः । वि । पीतिं । तृप्तिं । अश्नुहि ॥ ६ ॥

हे इंद्र मे मदीयं हवं त्वद्विषयमाह्वानं सु सुष्ठु शुधि । शृणु । तथास्ते अस्माभिः सुतस्याभिषुतस्य गोमतो  
गव्यक्षीरवतः । क्षीरेण मिश्रितस्थित्यर्थः । तादृशस्य सोमस्य पीतिं पानं अश्नुहि । विविधं प्राप्नुहि । तत्पानेन  
विविधां तृप्तिं च गच्छ ॥ अग्नौ व्याप्तौ । अत्ययेन परस्मैपदं ॥

तृतीये पर्याय एवाच्छावाकशस्त्रे य इंद्रं चमसेष्विति तुचः । सूचितं च । य इंद्रं चमसेष्विति सोमः प्र वः  
सतां । आ० ६. ४. इति ॥

य इंद्रं चमसेष्विति सोमंश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ७ ॥

यः । इंद्र । चमसेषु । आ । सोमः । चमूषु । ते । सुतः । पिब । इत् । अस्य । त्वं । ईशिषे ॥ ७ ॥

हे इंद्र ते त्वदर्थं सुतोऽभिषुतो यः सोमश्चमसेष्वितन्नामकेषु पात्रेषु तथा चमूषु । चमंति यजंत्वचेति चम्बो  
यहाः । तेषु चा सर्वतोऽस्ति अस्व तमेतं सोमं पिबेत् । इदवधारणे । पिबेत् । कथमस्य सोमपानयोग्यता  
तच्चाह । हे इंद्र त्वमीशिषे । तस्य त्वमेवेश्वरो भवसि खलु । यत एवं ततः पिबेति समन्वयः ॥ ईश ऐश्वर्यं ।  
लट्ठीशः से । पा० ७. २. ७७. इतीडागमः ॥

यो अप्सु चंद्रमा इव सोमंश्चमूषु ददृशे । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥

यः । अप्सु । चंद्रमाऽइव । सोमः । चमूषु । ददृशे । पिब । इत् । अस्य । त्वं । ईशिषे ॥ ८ ॥

हे इंद्र यो गृहीतः सोमश्चमूषु ग्रहेषु ददृशे अंतर्दृशतः । तच्च दृष्टांतः । चंद्रमा इव यथा चंद्रमा अप्संत-

रिचि निर्मलतया दृश्यते तद्वत् । यद्वा । अप्सूदकेषु चंद्रमाः प्रतिबिंबतया नानाविधो दृश्यते तथाष्टयहेष्वाजैक-  
रूपः सन् दृश्यते । तमेतं सोमं पिबेव । यतस्त्वमेवेशिषे खलु ॥

यं ते श्येनः पदाभरत्तिरो रजांस्यस्पृतं । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥९॥

यं । ते । श्येनः । पदा । आ । अ०भरत् । तिरः । रजांसि । अस्पृतं । पिबे । इत् । अस्य ।  
त्वं । ईशिषे ॥९॥

हे इंद्र श्येनः शंसनीयः पक्षी । पक्षिरूपधारिणी गायत्रीत्यर्थः । स पक्षी रजांसंतरीचादिलोकस्थितान्  
सोमपालान् गंधर्वाक्षिरक्षिरःकुर्वन्नभृतं शत्रुभिरसृष्टं संतं यं सोमं ते त्वदर्थं पदा पञ्चामाभरत् । पदेति  
सवनद्वयामिप्रायं । सवनद्वय आहृतं सोमं त्वं पिब । गायत्री पक्षिरूपं धारयित्वा पञ्चां सोममाहरदित्यत्रार्थे  
यजुर्ग्राह्यं । पञ्चां हे सवने समगृह्णान्मुखिनिकं तस्माद्दे सवने शृक्वती प्रातःसवनं च माध्यंदिनं च । तौ सं ६-  
१. ६. ४. इति । तं पिबेव । त्वमेव तस्मैश्वरो भवसि ॥ २॥

देवानामिति नवर्चं तृतीयं सूक्तं काण्वस्य जुसीदिन आर्यं गायत्रं वैश्वदेवं । तथा चानुकम्यते । देवानां  
वैश्वदेवमिति ॥ दशराचिऽष्टमेऽहनि वैश्वदेवशस्त्र इदं सूक्तं वैश्वदेवनिविधानं । सूचितं च । देवानामिदं इति  
वैश्वदेवं । आ० ८. १०. इति ॥

देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयं । वृणांमस्मभ्यमूतये ॥१॥

देवानां । इत् । अ०वः । महत् । तत् । आ । वृणीमहे । वयं । वृणां । अस्मभ्यं । ऊतये ॥१॥

हे देवाः देवानां स्ततेजसा सर्वतो दीप्यमानानां । इदेवार्ये । युष्माकमेव महद्भ्रातृ मंहनीयं वावः पालनं  
यद्विद्यते तद्वृणां कामानां वर्पितृणां युष्माकं स्वभूतं तद्रचणं यजमाना वयमा वृणीमहे । समंतात्संभजामहे ।  
किमर्थं । अस्मभ्यमूतये । पूर्वमस्मभ्यमस्मदर्थमिति साधारणेनोक्ता तद्विशिष्टा । ऊतय इति । अस्माकं  
पालनाचेति ॥

ते नः संतु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा । वृधासंश्च प्रचेतसः ॥२॥

ते । नः । संतु । युजः । सदा । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । वृधासः । च । प्रचेतसः ॥२॥

ते देवा वरुणः शत्रूणां निदारको मित्रः सर्वेषां मित्रभूतोऽर्यमा सततं गच्छन् एतन्नामकास्ते चयो देवाः  
सदा सर्वदा सर्वेष्वहःसु नोऽस्माकं युजः सहायाः संतु । भवंतु । अपिहोचादिकर्मणींद्रादिदेवाः सहागमना-  
दियच्चपरिसमापनान्तेषु साहाय्यं कुर्वन्तित्यर्थः । ततः प्रचेतसः प्रकृष्टज्ञानाः । यद्वा । चेतः स्तोत्रं । शोभनस्तु-  
तयः । ते देवा वृधासो वर्धकाश्चास्माकं धनादिदानेन वर्धयितारश्च संतु ॥

अति नो विष्पिता पुरु नौभिरो न पर्वथ । यूयमूतस्य रथ्यः ॥३॥

अति । नः । विष्पिता । पुरु । नौभिः । अपः । न । पर्वथ । यूयं । अतस्य । रथ्यः ॥३॥

अतस्य सत्यस्य यज्ञस्य वा हे रथ्यो नेतारो देवाः । यद्वा । अतस्तेति संबंधि --- स्वात्कर्ताधिप्यते ।  
यज्ञस्य साधका हे रथ्यो रथवंतो देवाः विष्पिता विष्पितानि विप्राप्तानि विततानि पुरु ॥ सुपो लुक् ॥  
पुरुणि बह्वि शत्रुबलानि कर्माणि नोऽस्मानति पर्वथ । पारं समाप्तिं रचणीर्गमयत । तत्र दृष्टान्तः । नौभि-  
रपो न । यथा नाविकोऽप उदकानि नौभिर्वनांस्तोरं प्रति प्रापयति तद्वत् ॥

वामं नो अस्त्वयमन्वामं वरुण शंस्यं । वामं ह्यवृणीमहे ॥४॥

वामं । नः । अस्तु । अर्यमन् । वामं । वरुण । शंस्यं । वामं । हि । आऽवृणीमहे ॥४॥



हे अर्यमण देव वामं वननीयं संमजनीयं धनं नोऽस्माकमस्तु । भवतु । हे वरुण शंस्यं सर्वं शंसनीयं सुखं वामं धनमस्माकमस्तु । कृतः । हिशब्दो हेतौ । यस्मात्कारणादयं वामं धनं युष्मानावुणीमहे । याचामहे इत्यर्थः । तस्मान्नोऽस्त्वित्याशङ्कते ॥

वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः । नेमादित्या अघस्य यत् ॥ ५ ॥

वामस्य हि । प्रऽचेतसः । ईशानासः । रिशादसः । न । ई । आदित्याः । अघस्य । यत् ॥ ५ ॥

हे प्रचेतसः प्रकृष्टज्ञानाः शोभनस्तुतयो वा हे रिशादसो रिशतां द्विसतां शत्रूणामसितारः चेन्नारो देवाः यूयं वामस्य वननीयस्य धनस्तेषां ईशानाः । हिरवधारणे । ईशाना एव स्वामिन एव भवथ । तस्माद्युष्मान्याचाम इत्यर्थः ॥ ईशानाः । ईश ऐश्वर्यं । अनुदात्तत् । तास्वनुदात्तेदिति स्वरैणाबुदात्तता भवति । न संबुद्धिः ॥ ततो हे आदित्या अदितेः पुत्रा देवाः ईमेन याचमानं मां तद्वनं प्राप्नोतु यद्वनमघस्य पापस्य संबन्धि विद्यते ॥ ३ ॥

वयमिद्वः सुदानवः क्षियन्तो यांतो अध्वन्ना । देवा वृधाय हूमहे ॥ ६ ॥

वयं । इत् । वः । सुऽदानवः । क्षियन्तः । यांतः । अध्वन् । आ । देवाः । वृधाय । हूमहे ॥ ६ ॥

हे सुदानवः शोभनदाना हे देवाः क्षियन्तो गृहेष्वग्निहोचार्थं निवसन्तोऽध्वन् ॥ सुपो लुक् ॥ अध्वनि समिदाहरणार्थं यांतो गच्छन्तोऽपि वयमिद्वो युष्मानेव वृधाय हविर्निर्वर्धनाय हूमहे । आहुयामः । यद्वा । वयं गृहेषु गृहान्निर्गमनकाले मार्गेषु च वृधायास्माकं धनादिभिर्वर्धनायाह्वयामः ॥

अधि न इंद्रेषां विष्णो सजात्यानां । इता मरुतो अश्विना ॥ ७ ॥

अधि । नः । इंद्र । एषां । विष्णो इति । सऽजात्यानां । इत । मरुतः । अश्विना ॥ ७ ॥

हे इंद्र विष्णो मरुतो हे अश्विनाश्विनी हे इंद्रादयो देवाः सजात्यानां । समानायां आती भवाः सवात्या भ्रातृमित्रादयः । तेषां मध्ये नोऽस्मानधीत । यूयं सुखतयाधिगच्छत ॥

प्र भ्रातृत्वं सुदानवोऽधं द्विता संमान्या । मातुर्गर्भे भरामहे ॥ ८ ॥

प्र । भ्रातृत्वं । सुऽदानवः । अधं । द्विता । संमान्या । मातुः । गर्भे । भरामहे ॥ ८ ॥

हे सुदानवः शोभनदाना आदित्याः अधाथास्मत्प्रत्यागमनानंतरं वयं संमान्या समान्येन ॥ सुपो ड्यादेशः ॥ पूर्वं सर्वेषां देवानां सांहत्येन ततो द्विता द्विधा द्विप्रकारेण च मातुरदितिर्गर्भे संजातं यद्युष्माकं भ्रातृत्वं विद्यते तदिदानीं वयं प्र भरामहे । प्रभरणमुच्चारणं प्रकाशनं वा । उच्चारयामः प्रकाशयामो वा । सर्वेषां देवानां वृद्धशो जननं तैत्तिरीयके स्पष्टमभिहितं । अदितिः पुत्रकामा साध्विभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मादनमपचदित्युपक्रम्य तस्यै पूषा चार्यमा चाजयेतां । तै० सं० ६. ५. ६. । इत्यादिना ॥

यूयं हि ष्टा सुदानव इंद्रज्येष्ठा अभिद्यवः । अधा चित्र उत ब्रुवे ॥ ९ ॥

यूयं । हि । ष्ट । सुऽदानवः । इंद्रज्येष्ठाः । अभिद्यवः । अधं । चित्र । उत । ब्रुवे ॥ ९ ॥

पूर्वोऽर्धर्चः सिद्धः । हे सुदानवः शोभनदाना देवा इंद्रज्येष्ठाः । इंद्रो ज्येष्ठो मुख्यो येषां ते तथोक्ताः । सर्वदेवा इंद्रनेतृका इत्यर्थः । तादृशा अभिद्यवोऽभिगतदीप्तयो यूयं हि ष्ट । अष्टयज्ञे भवथ खलु । हि प्रसिद्धौ । अध चिद्विधानंतरमेव वो युष्मानहं ब्रुवे । स्तौमि । उतापि च पुनःपुनः स्तौमीत्यर्थः ॥ ४ ॥

प्रेष्ठं व इति नवर्चं चतुर्थं सूक्तं कवेः पुत्रस्योशनस आर्यं गायत्रमाप्तेयं । तथानुक्रम्यते । प्रेष्ठमुशना काव्य आपेयमिति ॥ प्रातरनुवाक आपेये क्रतौ गायत्रे कंदस्याश्विनशस्त्रे चेदं सूक्तं । सूचितं च । युत्वा हि प्रेष्ठं वः

। आ० ४. १३. इति ॥ आभिन्नविकेषक्येषु मैत्रावरुणे प्रेष्ठं व इति तुचो वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूचितं च । प्रेष्ठं वो अतिथिं अष्टं यविष्ठ भारत । आ० ७. ८. इति ॥

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियं । अग्निं रथं न वेद्यं ॥ १ ॥

प्रेष्ठं । वः । अतिथिं । स्तुषे । मित्रं ऽइव । प्रियं । अग्निं । रथं । न । वेद्यं ॥ १ ॥

हे यजमानाः प्रेष्ठं शुष्माकं धनदानेन प्रियतममतिथिं शुष्माभिरतिथिवत्पूज्यं । यद्वा ॥ अतः सातत्यगमने । ऋतव्यं जीत्यादिनातिरिचिन् ॥ सततं देवानां हविः प्रदातुं गच्छतं । मित्रमिव सखायमिव प्रियं स्तोतुः प्रीणनकरं रथं न रथमिव वेद्यं । वेदो धनं । धनहितं लाभहेतुं । यथा रथी रथेन धनं लभते तद्वत् स्तोतारोऽनेन धनं लभते । तादृशं धनलाभकारणमग्निं वो शुष्मत्वमसिद्धयर्थं स्तुषे । काव्य उग्रनाः सौमि ॥

कविमिव प्रचेतसं यं देवासो अर्धं द्विता । नि मर्त्येष्वद्भ्युः ॥ २ ॥

कविं ऽइव । प्रचेतसं । यं । देवासः । अर्धं । द्विता । नि । मर्त्येषु । आऽद्भ्युः ॥ २ ॥

अद्यापि च देवासो देवा इन्द्रादयो यमग्निं मर्त्येषु मनुष्येषु द्विता द्विधा न्याद्भ्युः गार्हपत्याहवनीयात्मकत्वेन द्विधा निहितवन्तः । तच्च दृष्टान्तः । कविमिव प्रचेतसं प्रकृष्टज्ञानं कविं क्रांतकर्माणं पुरुषं यथा द्विधा कार्यद्वयेऽभ्यो नियोजयति तद्वत् । यद्वा । दिवि पृथिव्यां च निहितवन्तः । भूमी तु हविराहरणार्थं दिवि तु हविष्प्रदानार्थमिति द्वेधं विधानं कृतवन्त इत्यर्थः ॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नूः पाहि ऋणुधी गिरः । रक्षां तोकमुत त्मना ॥ ३ ॥

त्वं । यविष्ठ । दाशुषः । नृन् । पाहि । ऋणुधि । गिरः । रक्ष । तोकं । उत । त्मना ॥ ३ ॥

हे यविष्ठ युवतम । यद्वा ॥ यौतेलृजंतस्त्रिष्वनि रूपं ॥ देवानां हविषां मिश्रयितुमामि त्वं दाशुषो हविर्दत्तवतो नृन् कर्मणां नेतृन् यजमानान् पाहि । धनादिदानेन रक्ष ॥ नूः पाहीत्यत्र संहितायां नृत्ये । पा० ८. ३. १०. इति नकारस्य इत्वं । अचानुनासिकः । पा० ८. ३. २. इति पूर्वस्थानुनासिकः ॥ किंच गिरस्त्वद्विषयाः सुतीः ऋणुधि । अवहितः सञ्कृणु ॥ अु अवणे । अु ऋणुषु इत्यादिना हेर्थादेशः ॥ उतापि च त्मनात्मनेव स्वयमेव तोकमस्मदीयं तनयं पुत्रं रक्ष । पालय । आत्मनेति सर्वत्र संबध्यते । आत्मना स्वयमेव रक्ष । त्वदन्यं पालयितारं न विदामः । त्वमेवास्मदीयं स्तोत्रं ऋणु ॥

कया ते अग्ने अंगिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिं । वराय देव मन्यवे ॥ ४ ॥

कया । ते । अग्ने । अंगिरः । ऊर्जः । नपात् । उपऽस्तुतिं । वराय । देव । मन्यवे ॥ ४ ॥

हे अंगिरोऽंगिरसां वरिष्ठ । यद्वा । अंगति सर्वत्र गच्छतीत्यंगिराः । तादृशं हे ऊर्जो नपात् । नपादित्यपत्यनाम । अन्नस्य पुत्र । हविर्भिवर्धमानत्वात् । यद्वा । नपादिति नप्ता । हविर्लक्षणस्यान्नस्य नप्ता । अपौ प्रास्ताऽङ्गतिः सम्यगादित्यनुपतिष्ठते आदित्याज्जायते वृष्टिरिति । वृष्टिरोपधय औपधीभ्योऽपिरित्यन्नस्य नप्ता । हे देव द्योतमानामि वराय सर्वधरणीयाय मन्यवे शत्रून् जतमन्यमानाय ते तुभ्यं कया कीदृशा वाचोपस्तुतिसु-यस्तोत्रमहं भरेयं । त्वं महान् खन्वहमल्पः । तदर्थं स्तुतिं कुर्यामित्युधिरभिं प्रति वदति ॥

दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः ॥ ५ ॥

दाशेम । कस्य । मनसा । यज्ञस्य । सहसः । यहो इति । कत् । ऊं इति । वोचे ।

इदं । नमः ॥ ५ ॥



अधिरपिं प्रति भूते । हे सहसो यदो । यङ्गिरित्यपत्यनाम । वलेन निष्पाद्यमानत्वाद्वलस्य पुन हे अपे  
कस्य कीदृशस्य यज्ञस्य यज्ञवतो यजनीयदेववतो यजमानस्य मनसा युक्ताः संतो हवींषि तुभ्यं वयं दाशेम ।  
प्रयच्छेम ॥ पूजायां वज्रवचनं ॥ किंच तुभ्यमिदं नमो हविर्नमस्कारं वा कत् कदा वोचे । अहं वदामि । उ  
इति प्रश्ने । अधिः कदा यस्यामि कदा स्तोथामीत्यपि पृच्छति ॥ वोचे । वच्यादेशस्य जुष्ट्यात्मनेपद उत्तमैः  
कवचने रूपं ॥ ॥५॥

अधा त्वं हि नृस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः । वाजद्रविणसो गिरः ॥ ६ ॥

अधं । त्वं । हि । नृः । करः । विश्वाः । अस्मभ्यं । सुऽक्षितीः । वाजऽद्रविणसः । गिरः ॥ ६ ॥

हे अपे अधानंतरं त्वं । हिरवधारणे । त्वमेवास्मभ्यं करः । कुरु । देहीत्यर्थः ॥ करोतेत्येवडागमः ॥  
किमित्यपेक्षायामाह । नोऽस्मादीया गिरस्त्वद्विषया विद्याः सर्वाः सुतीरेवं कुरु यथा सुक्षितोः । चिंतयति  
निवसंत्यचेति चित्तयो गृह्याः । शोभननिवासाः । यद्वा । चित्तयो मनुष्याः । कल्याणपुत्रपौत्रादियुक्ताः । तथा  
वाजद्रविणसोऽन्नयुक्तधनवतीः । अथवा वाजो दीप्तिः । सर्वतो दीप्तधनाश्च कुरु । त्वमस्माभिः सुतः सन्  
गृहपुत्रात्तन्धनादीनि देहीत्यर्थः ॥

कस्य नूनं परीणसो धियो जिव्वसि दंपते । गोसाता यस्य ते गिरः ॥ ७ ॥

कस्य । नूनं । परीणसः । धियः । जिव्वसि । दंऽपते । गोऽसाता । यस्य । ते । गिरः ॥ ७ ॥

हे दंपते । यदा गार्हपत्ये वर्तसे तदा जायापतिस्वरूपोऽसि । तस्माद्वपतिशब्देनापिरभिधीयते । तथा-  
विध हे अपे नूनमिदानीं कस्य कीदृशस्य जनस्य परीणसो बह्वनि धियः कर्माणि जिव्वसि । प्रीणयसि ।  
यस्य ते तव संबंधिन्यो गिरः सुतयो गोसाता गोसातौ गवां लामे भवन्ति खलु । तस्मात्त्वं कुरु तिष्ठसि ।  
अस्माकमिदानीं गवेच्छा प्रवर्तते । यद्वा । हे अपे त्वमिदानीं कस्य कर्माणि प्रीणयसि । न कस्मापीत्यर्थः ।  
अस्माकमेव कर्माणि प्रीणयेति भावः ॥

अधिमंथने तं मर्जयंत सुक्रतुमित्येषा । सूचितं च । तं मर्जयंत सुक्रतुं यज्ञेन यज्ञमयजत देवाः । आ०  
२. १६. इति ॥

तं मर्जयंत सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनं ॥ ८ ॥

तं । मर्जयंत । सुऽक्रतुं । पुरःऽयावानं । आजिषु । स्वेषु । क्षयेषु । वाजिनं ॥ ८ ॥

सुक्रतुं शोभनप्रज्ञं सुकर्माणं वाजिषु संयामेषु पुरोयावानं शत्रुहननार्थं पुरत एव गंतारं वाजिनं बलवतं  
तादृशमपि यजमानाः स्वेष्वात्मीयेषु षष्ठेषु गृहेषु मर्जयंत । निर्मेथितमग्निमलंकुर्वन्ति । परिचरन्तीति यावत् ॥

क्षेति क्षेमेभिः साधुभिर्नकिर्यं भ्रंति हन्ति यः । अग्ने सुवीर एधते ॥ ९ ॥

क्षेति । क्षेमेभिः । साधुभिः । नकिः । यं । भ्रंति । हन्ति । यः । अग्ने । सुऽवीरः । एधते ॥ ९ ॥

हे अपे यो मनुष्यः साधुभिः साधयन्निः क्षेमेभिः पालनैः सह चेति स्वगृहे निवसति । तथा यं जगं नकिः  
न केचन भ्रंति न हंसन्ति । य एव हन्ति शत्रून् स्वयमेव हन्ति । स मनुष्यस्तव स्तोता खलु । अन्यथा तस्मैतावन्न  
घटते । ततः स स्तोता सुवीरः शोभनपुत्रादियुक्तः सन्नेधते । आत्मीयगृहेषु धनादिभिर्वर्धते ॥ ॥ ६ ॥

आ मे हवमिति नवर्चं पंचमं सूक्तं । छण्यो नामांगिरस अधिः । गायत्री छंदः । एतदादीनि त्रीणि  
सूक्तान्यग्निदेवत्वानि । तथा चानुक्रांतं । आ मे छण्य आश्विनं हीति ॥ प्रातरनुवाक आश्विने क्रतौ गायत्रे  
छंदस्त्राश्विनशस्त्रे चेदं सूक्तं । सूचितं च । उदीरायामा मे हवं । आ० ४. १५. इति ॥

आ मे हवँ नासत्याश्विना गच्छतं युवं । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ १ ॥

आ । मे । हवँ । नासत्या । अश्विना । गच्छतं । युवं । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥ १ ॥

हे नासत्या । असत्यमनयोर्नास्तीति नासत्यौ । तादृशी हे अश्विनाश्विनी युवं युवां मे मदीयं हवमाह्वानं  
श्रुत्वा । यद्वा । हवँ । इत्येति चेति हवो यज्ञः ॥ केवलस्याधिकरणेऽप्येह दसः ॥ मदीयं यज्ञं प्रति मध्वो  
मदकरस्य सोमस्य पीतये पानाय तदर्थमा गच्छतं ॥

इमं मे स्तोममश्विनेमं मे ऋणुतं हवँ । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

इमं । मे । स्तोमं । अश्विना । इमं । मे । ऋणुतं । हवँ । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥ २ ॥

हे अश्विनाश्विनी मे मदीयमिमं स्तोमं स्तोत्रं किंच मे मदीयमिममिदमागमनविषयं हवमाह्वानं  
च ऋणुतं ॥

अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

अयं । वां । कृष्णः । अश्विना । हवते । वाजिनीवसू इति वाजिनीवसू । मध्वः ।

सोमस्य । पीतये ॥ ३ ॥

हे वाजिनीवसू अन्नयुक्तधनी ॥ अश्विनिरनुवादायः ॥ यद्वा । वाजो वजनं क्रिया । तद्वती वाजिनी ।  
तयुक्तधनवती हे अश्विनाश्विनी अयं कृष्णो नाम मंचद्रष्टव्यो युवां हवते । श्रुतिमिराह्वयति । किमर्थं ।  
मध्वः सोमस्य पीतये इति ॥

ऋणुतं जरितुर्हवँ कृष्णस्य स्तुवतो नरा । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ४ ॥

ऋणुतं । जरितुः । हवँ । कृष्णस्य । स्तुवतः । नरा । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥ ४ ॥

हे नरा मरी सर्वस्य नेतारावश्विनी जरितुः ॥ तच्छीलार्थे तुग । व्यत्ययेनांतोदात्तत्वं ॥ जरितुः स्तवन-  
शीलस्य स्तुवतः स्तोत्रं कुर्वतः कृष्णस्तेतन्नामकक्षयैः संबन्धि हवँ शुष्मद्विषयमाह्वानं ऋणुतं । यद्वा । जरितुरन्व-  
देवानां स्तोतुः स्तुवत इदानीं युवयोः स्तोत्रकारिण्यस्य हवँ ऋणुतं । शिष्टं गतं ॥

हृदि यंतमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥

हृदिः । यंतं । अदाभ्यं । विप्राय । स्तुवते । नरा । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥ ५ ॥

हे नरा नेतारावश्विनी विप्राय मेधाविने अत एव स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते कृष्णायर्षयेऽदाभ्यं ॥ दमेति  
एतत्प्रत्ययः ॥ परिरहिंस् हृदिर्गुहं यंतं । प्रयच्छतं । किमर्थं । सोमपानाय । स्तोत्रे गृहे दीयमाने सति तदा स  
सोमं युवाभ्यां प्रयच्छति ॥ ७ ॥

गच्छतं दाशुषो गृहमित्या स्तुवतो अश्विना । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥

गच्छतं । दाशुषः । गृहं । इत्या । स्तुवतः । अश्विना । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥ ६ ॥

हे अश्विनाश्विनी इत्येतन्मनेन प्रकारेण स्तुवतो युवयोः स्तोत्रं कुर्वतो दाशुषो इवींषि दत्तवतो यजमानस्य  
गृहं प्रति गच्छतं । युवाभ्यामगच्छतं । किमर्थं । मध्वः सोमस्य पीतये इति ॥



युंजाथां रासभं रथे वीङ्गं वृषणसू । मध्वः सोमस्य पीतये ॥७॥  
 युंजाथां । रासभं । रथे । वीङ्कुऽङ्गं । वृषणसू इति वृषणऽवसू । मध्वः । सोमस्य ।  
 पीतये ॥७॥

हे वृषणसू वर्षणशीलधनवंतावधिनौ युवां वीङ्गं । वीङ्कुर्दृढः । दृढांगोपेति स्वरथे रासभं शब्दायमान-  
 मेतन्नामकमश्वं युंजाथां । संयोजयतं । किमर्थं । मध्वः सोमस्य पीतय इति । रासभावधिनोरिति रासभावेवा-  
 धिनो रथस्य वाहनौ ॥

त्रिवंधुरेण चिवृता रथेना यातमश्विना । मध्वः सोमस्य पीतये ॥८॥  
 त्रिऽवंधुरेण । त्रिऽवृता । रथेन । आ । यातं । अश्विना । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥८॥

हे अश्विनाश्विनौ त्रिवंधुरेण त्रिफलकासंघटितेन चिवृता चिकोषेण । यद्वा । चिवृता । चीणि कवचादि-  
 भिरावरणानि यस्य स तथोक्तः । तेन रथेनास्यश्वं प्रत्या यातं । युवामागच्छतं च । शिष्टं गतं ॥

नू मे गिरो नासत्याश्विना प्रावतं युवं । मध्वः सोमस्य पीतये ॥९॥  
 नु । मे । गिरः । नासत्या । अश्विना । प्र । आवतं । युवं । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥९॥

हे नासत्यासत्वरहितौ हे अश्विनाश्विनौ मे मदीया गिरः स्तुतिस्तस्या वाचः प्रति युवं युवां नु चित्रं  
 प्रावतं । प्रक्षेपेणागच्छतं । यद्वा । मे गिरः प्रावतं । आत्मीयतया प्ररचतं । किमर्थं । मध्वो मदकरस्य सोमस्य  
 पीतये पानाथ तदर्थं । सर्वे देवाः स्तुतिभिराहताः संतो यच्च प्रत्यागच्छंतीति गच्छतं रचतं चेति युक्तं  
 भवति ॥ ८८ ॥

उभा हि दक्षेति पंचर्वं षष्ठं सूक्तं । विश्वको नाम छण्डस्य पुत्रः छण्ड एव वरिषः । जगती छंदः । अश्विनौ  
 देवता । तथानुक्रम्यते । उभा हि पंच विश्वको वा कार्ष्णिर्जागतमिति ॥ विनियोगो लिंगादवगतव्यः ॥

उभा हि दक्षा भिषजा मयोभुवोभा दक्षस्य वचसो बभूवधुः ।  
 ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतं ॥१॥  
 उभा । हि । दक्षा । भिषजा । मयःऽभुवा । उभा । दक्षस्य । वचसः । बभूवधुः ।  
 ता । वां । विश्वकः । हवते । तनूऽकृथे । मा । नः । वि । यौष्टं । सख्या । मुमोचतं ॥१॥

हे अश्विनौ दक्षा दर्शनीयौ । यद्वा ॥ दशु उपचये ॥ सर्वेषां शत्रूणामुपचयितारौ । भिषजा देवानां वैद्यौ  
 यद्वा भीतीनां चासयितारौ । यदा नरोऽश्विनौ क्षुवंति तदा तौ तेषां भीतिमपनयत इत्यर्थः ॥ पुषोदरादि-  
 त्वाङ्गुपसिद्धिः ॥ तादृशौ अत एव मयोभुवा मयसः सुखस्य भावयितारानुभा परस्परं द्वित्वसंख्यापूरकानुमोभी  
 द्वौ युवां दक्षैतन्नामकस्य प्रजापतेर्वचसः स्तुतेः संबन्धिनी बभूवधुः । हि प्रसिद्धौ । पुरा युवां दक्षेणास्तावि-  
 थायां खलु । ता तादृशौ प्रशस्तौ वां युवां विश्वक एतन्नामक अश्विनौकृथे । तनोति कुलमिति तनूः पुत्रः ।  
 तस्य विष्णाप्यो निमित्तं हवते । स्तुतिभिराहयति । तस्मान्नोऽक्षाकं सख्या सख्यानि यद्युपलब्धतया जातानि  
 सखित्वानि मा वि यौष्टं । मा पृथक्कृतं ॥ यीतेर्बुद्धिं सिचि रूपं ॥ किंच युवां मुमोचतं । अस्मानागतं रथे  
 स्थित्वाग्रप्रयद्वाभुचतं ॥ मुंचतेर्लोपि बज्जलं छंदसीति शयः झुः । अडागमः ॥ अत्र विष्णापूनामानं पुत्रमुद्दिश्य  
 तस्य पिता विश्वको युवामाह्वयतीत्यात्मानमाह । यद्वा । विश्वकस्य पिता छण्डो नामधर्मम पुत्रो विश्वकः  
 पुत्रार्थं युवामधिह्वयतीति वदति ॥

कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्युवं धियं ददयुर्वस्यं इष्टये ।

ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतं ॥ २ ॥

कथा । नूनं । वां । विऽमनाः । उप । स्तवत् । युवं । धियं । ददयुः । वस्यः । इष्टये ।

ता । वां । विश्वकः । हवते । तनूऽकृथे । मा । नः । वि । यौष्टं । सख्या । मुमोचतं ॥ २ ॥

हे अश्विनौ विमना एतन्नामकं ऋषिर्नूनं पुरा कथा युवासुप स्तवत् । कथमुपासीत् । तेन सुतौ युवं युवां वस्य इष्टये । वस्यो वसीयः प्रशस्तं धनं । तस्मान्मिलपितस्तेष्टयेऽभिगमनाय यद्वा वसिष्ठधनस्तेष्टये प्राप्तये धियं बुद्धिं विमनसे ददयुः । अदधायां खनु ॥ वस्य इति वसुमच्छब्दादीयसुनि विवक्षितोर्बुनिति लुक् । रयसुन ईकारलोपच्छादसः ॥ तादृशी युवां विश्वको हवत इति गतं ॥

युवं हि ष्मां पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्ये ददयुर्वस्यं इष्टये ।

ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतं ॥ ३ ॥

युवं । हि । स्म । पुरुऽभुजा । इमं । एधतुं । विष्णाप्ये । ददयुः । वस्यः । इष्टये ।

ता । वां । विश्वकः । हवते । तनूऽकृथे । मा । नः । वि । यौष्टं । सख्या । मुमोचतं ॥ ३ ॥

हे पुरुभुजा पुरुभुजौ पुरुषां ऋष्यां धनादिदानेन भोजयितारी । यद्वा । बहूनां क्षौत्राणां पालयितारा-  
वशिनौ युवं । हि ष्येत्यवधारणे । युवामेवममेधतुं ॥ एधतेरेधिवहोऽस्तुः । उ० १. ७९. । इति चतुप्रत्ययः ।  
वित्त्वादन्तोदात्तः ॥ इमां धनादिवृद्धिं विष्णाप्ये । विष्णोः सर्वेषां देवानां मुख्यत्वात् तद्ब्रह्मणे सर्वे देवा गृहीता  
मवन्ति । विष्ण्वादीन्कर्मणा आप्नोतीति विष्णापूः ॥ पृषोदरादिः ॥ यद्वा । विष्णुं सर्वग्रहेषु व्याप्तं सोमं दशा-  
पवित्रेण पुनातीति । तस्य चतुर्थी विष्णाप्य इति । एतन्नामके मम पुत्रे पौत्रे वा । पुत्राय पौत्राय वा । इमां  
धनादिवृद्धिं ददयुः । अदत्तं । किमर्थं । वस्य इष्टये वसीयसः प्रशस्तधनस्तेष्टय इच्छां पूरयितुं ॥ क्रियाचोपपदस्य  
। पा० २. ३. १४. । इति चतुर्थी ॥ ता वामिति पूर्ववद्वाख्येयं ॥

उत त्वं वीरं धनसामृजीषिणं दूरे चित्संतमवसे हवामहे ।

यस्य स्वादिष्टा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतं ॥ ४ ॥

उत । त्वं । वीरं । धनऽसां । ऋजीषिणं । दूरे । चित् । संतं । अवसे । हवामहे ।

यस्य । स्वादिष्टा । सुऽमतिः । पितुः । यथा । मा । नः । वि । यौष्टं । सख्या । मुमोचतं ॥ ४ ॥

हे अश्विनौ उतापि च वीरं कर्मणि समर्थं धनसां धनानां संभक्तारमृजीषिणं । ऋजीष उपार्जितोऽभिपुतः  
सोमः । तद्वतं दूरे चिह्न एव संतं भवतं विनष्टमिव त्वं तं विष्णाप्यमवसेऽस्माकं रक्षणाय हवामहे । आह्व-  
यामः । पुत्रो हि पितरं रचते । किंच यस्य पुत्रस्य पौत्रस्य वा सुमतिः शोभना सुतिः स्वादिष्टा स्वादुतमा ।  
अतिशयेन देवानां स्वादुकारिणीत्यर्थः । तच्च दृष्टान्तः । पितुर्यथा पितुर्विश्वकस्य सुतिर्यथा देवानां प्रीतिकरी  
तद्वत् । तस्मात्तमाह्वयाम इति शेषः । मेति गतार्थः ॥

ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य अंगमुर्विया वि पप्रथे ।

ऋतं सासाह महिं चित्पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतं ॥ ५ ॥

ऋतेन । देवः । सविता । शंऽआयते । ऋतस्य । अंगं । उर्विया । वि । पप्रथे ।

ऋतं । सासाह । महिं । चित् । पृतन्यतः । मा । नः । वि । यौष्टं । सख्या । मुमोचतं ॥ ५ ॥



अग्निः सत्यप्रशंसां करोति । हे अग्निनी देवो द्योतमानः सविता सर्वस्य स्वस्वकर्मेणि प्रेरक एतन्नामको देव अस्तेन सत्येन शमायते । सायंकाले स्वकिरणसमूहं शमयति । ततोऽनंतरं स एव सविता अतस्तस्य सत्यस्य शृंगमयमुर्विधोऽव विसीर्यं यथा भवति तथा प्रातःकाले वि पप्रथे । विशेषेण प्रथयति । सर्वतो विसारयति । किंच पृतन्यतः पृतनाभिच्छतः संयुयुत्सोः शचीर्महि चिक्कहृदपि वल्लभृतं सत्यं स्वयमेवामिमवति । इत्यमृतं प्रशस्तममृत । तस्माद्युवामपि तेनतेन नोऽस्माकं सखाणि मा वि र्याष्टं । अचागंतुमश्चरामोचतमिति ॥ ८॥

युक्ती वामिति पट्टचं सप्तमं सूक्तं । तथा चानुक्रम्यते । युक्ती षड्भासिष्ठो वा युक्तीकः प्रियमेधो वा प्रागार्थं हेति । वसिष्ठपुत्रो युक्तीक अपिरांगिरसः प्रियमेधो वा । उभयत्र वाशब्दावदोभावपि न स्यातां तदा प्रकृत आंगिरसः कृष्ण एव अग्निः । अयुजो बृहत्यो युजः सतीबृहत्यः । अग्निनी देवता ॥ प्रातरनुवाक आग्निने क्रतौ बार्हते कंदसाधिनश्चस्ते चेदं सूक्तं । सूचितं च । युक्ती वां यत्स्थ इति बार्हतं । आ० ४. १५. इति ॥

युक्ती वां स्तोमो अग्निना क्रिविर्न सेक आ गंतं ।

मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे ॥ १ ॥

युक्ती । वां । स्तोमः । अग्निना । क्रिविः । न । सेकै । आ । गंतं ।

मध्वः । सुतस्य । सः । दिवि । प्रियः । नरा । पातं । गौरौऽइव । इरिणे ॥ १ ॥

हे अग्निनाग्निनी अयमनुपचीणस्तोत्रो युक्तीक एतन्नामक अग्निर्वा युवयोः स्तोमः स्तोता भवति । युष्मत्सुतो कृतायां स्तोत्राणि नात्पोमवन्ति किंतु पुनर्वर्धत इत्यर्थः । तत्र दृष्टांतः । क्रिविर्न । क्रिविरिति कूपनाम । कूपो यथा सेक उदकसेचने वृष्टी भवत्यां नात्पोदको भवति तद्वत् । यद्वा । वां युवयोः स्तोमो युष्मद्विषया सुतिर्युभयन्नवतो खलु । स्तोत्रे कृते तस्मा अन्नादिकं प्रयच्छेय इत्यर्थः । तस्माद्युवामस्यदीयं यज्ञं प्रत्यागच्छतं । स्तोत्राणि ओतुमागच्छतं । हे नरा नरौ नेतारावग्निनी सोऽयं स्तोता दिवि द्योतमानेऽस्मिन्यज्ञे सुतस्याभिषुतस्य मध्वो मदकरस्य सोमस्य प्रियः स्तोत्रकारित्वेन प्रियतमो भवति । ततस्तेन सुतं सोमं पातं युवां । तत्र दृष्टांतः । गौराविव यथा तृषिती गौरावितन्नामको मृगाविरिण तटाकादिपूदकपानार्थं शीघ्र-  
मागच्छतस्तद्वत् ॥

पिबतं घर्मे मधुमंतमग्निना बर्हिः सीदतं नरा ।

ता मंदसाना मनुषो दुरोणे आ नि पातं वेदसा वयः ॥ २ ॥

पिबतं । घर्मे । मधुऽमंतं । अग्निना । आ । बर्हिः । सीदतं । नरा ।

ता । मंदसाना । मनुषः । दुरोणे । आ । नि । पातं । वेदसा । वयः ॥ २ ॥

हे अग्निनाग्निनी मधुमंतं मदवंतं । मदकारिणमित्यर्थः । तादृशं रत्नवंतं वा घर्मे ॥ घृ चरणदीप्त्योः । पात्रेषु चरंतं सोमं पिबतं । यद्वा । मधुमंतं । मधुमंदकरः सोमः । तद्वतं घर्मे महावीरपात्रगतं चीरं पिबतं सोमं चेति । न तु साहचर्येण तदसंभवात् । हे नरा नरौ नेतारी सर्वस्य हे अग्निनी बर्हिर्वर्हिपि यज्ञ आ सीदतं । उपविशतं । यद्वा । पूर्वं द्वितीयं पादं आख्याय प्रथमपादो आख्येयः । उपसदनानंतरं सोमपानं युक्तमिति । किंच मनुषो मनुष्यस्य दुरोणे गृहभूतेऽग्निदेवयजने मंदसाना सोमपानेन मोदमानो ता तौ पूर्वोक्तलक्षणी युवां वेदसा पुरोडाशादिलक्षणेन हविषा सह वयः सोमरूपमन्नमागत्य नि पातं । निपिबतं । यद्वा । वेदसा धनेन सह वयोऽस्माकमायुर्नि पातं । नितरां रचतं ॥

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।

ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ॥ ३ ॥

आ । वां । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः । प्रियऽमेधाः । अहूषत ।

ता । वर्तिः । यातं । उप । वृक्तऽवर्हिषः । जुष्टं । यज्ञं । दिविष्टिषु ॥ ३ ॥

हे अश्विनी प्रियमेधाः । मेरो यज्ञः । प्रियतमयज्ञा यजमानाः । यज्ञा । प्रियमेधा एतन्नामक अश्विः ॥ पूजायां ब्रह्मवचनं ॥ यष्टार अश्विर्वा विश्वामिहृतिभिः सर्वैः पालनेः सह । अथवावति याज्ञाकर्म । सर्वैरभिलषितयाचनेः सहिता ब्रह्मयत । आह्रासिषुः । आह्रासीत् । आत्मना पालनहेतुकत्वेन । यज्ञाभिलषितदानाय वामाह्वयन्ति । ततो युवां वृक्तवर्हिष आखरणार्थं क्षिप्तवर्हिषो यष्टुः संबन्धि जुष्टं सर्वदेवेषु सेवितं पर्याप्तं वा यज्ञं यजनीयं हविः प्रति दिविष्टिषु दिवसानामह्नामागमनेषु प्रातःकालेषु यज्ञेषु वा वर्तिः । वर्ततेऽचेति वर्तिर्गृहं । तदुपा यातं । हविःस्वीकरणार्थं युवामागच्छतं ॥

पिबतं सोमं मधुमंतमश्विना बर्हिः सीदतं सुमत् ।

ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो गतं गौराविवेरिणं ॥ ४ ॥

पिबतं । सोमं । मधुऽमंतं । अश्विना । आ । बर्हिः । सीदतं । सुऽमत् ।

ता । ववृधानौ । उप । सुऽस्तुतिं । दिवः । गतं । गौरौऽइव । इरिणं ॥ ४ ॥

हे अश्विनाश्विनी मधुमंतं रसवतं मदवतं वा सोमं युवां पिबतं । ततो बर्हिर्वर्हिषि यज्ञे सुमच्छोभगमा सीदतं । यज्ञावःवृधानौ सोमपानेन वृष्टौ ता तौ युवां दिवो बुल्लोकात्सुष्टुतिमस्याभिः क्रियमाणां स्तुतिमुप गतं । उपगच्छतं । तच्च दृष्टान्तः । गौराविव यथा गौरमुगावन्वसादिशदिरिणं तटाकादिकं प्रति अलपा-  
मार्थमागच्छतस्तद्वत् ॥

आ नूनं यातमश्विनाश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।

दस्मा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥

आ । नूनं । यातं । अश्विना । अश्वेभिः । प्रुषितप्सुऽभिः ।

दस्मा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी । शुभः । पती इति । पातं । सोमं ।

चतुऽवृधा ॥ ५ ॥

हे अश्विनाश्विनी युवां प्रुषितप्सुभिः ॥ प्सु इति रूपनाम । मुख खेहनसेचनपूरणेष्ु ॥ स्निग्धरूपैः । दीप्तक-  
पेरित्वर्थः । तादृशैः शीघ्रगामिभिरश्वैः सह नूनमिदानीमा यातं । अस्मादीयं यज्ञं प्रत्यागच्छतं । हे दस्मा दस्मौ दर्शनीयावुपचपयितारी वा हे हिरण्यवर्तनी । वर्ततेऽचेति वर्तनी रथः । हिरण्यमथरथी हे शुभस्पती उदयस्व कक्षाणस्व वा पालयितारी हे अमृतावृधा सत्यस्व यज्ञस्व वा वर्धयितारी हे अश्विनी युवां शीघ्रमानसं सोमं पातं । पिबतं ॥

वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रांसो वाजसातये ।

ता वल्गू दस्मा पुरुदंसंसा धियाश्विना शुश्या गतं ॥ ६ ॥

वयं । हि । वां । हवामहे । विपन्यवः । विप्रांसः । वाजऽसातये ।

तः । वल्गू इति । दस्मा । पुरुऽदंसंसा । धिया । अश्विना । शुश्या । आ । गतं ॥ ६ ॥

हे अश्विनी विपन्यवः स्तोतारः अत एव विप्रांसो विप्रा मेधाविनो वयं वाजसातयेऽसकामाय वां ।



हिरवधारणे । युवामेव हवामहे । क्षुतिमिराद्भयामः । ततो वल्गु । वल्गुनं कुशलगमनं । कुशलगमनशीली  
पुष्टदंससा बज्रकर्माणी तौ युवां धियास्तदीयया क्षुत्याहृतौ संतौ शुष्टौ । शुष्टौति चिप्रनाम । चिप्रमस्तभ्यं  
धनादिदानाया गतं । आगच्छतं ॥ १० ॥

तं वो दस्ममिति षड्वचमष्टमं सूक्तं गीतमस्य बोधस्य आर्थं । तथा चानुकम्यते । तं वो दस्मं नोधा इति ।  
प्रामाथं हेत्युक्तत्वादेतदादिसूक्तचयं प्रामाथं । इन्द्रो देवता ॥ महाव्रते निष्केवल्के बार्हत्तवृचाशीतावेतत्सूक्तं ।  
तथा च पंचमारण्यके सूचितं । तं वो दस्ममृतीषहमा नो विद्यासु हव्यः । ऐ० आ० ५. २. ४. । इति ॥ अग्निष्टोमे  
माध्यंदिनसवनेऽच्छापाकशस्त्रे तं वो दस्ममिति प्रगाथः सोचियः । सूचितं च । तं वो दस्ममृतीषहं तत्त्वा  
यामि सुवीर्यमिति प्रगाथो सोचियानुरूपौ । आ० ५. १६. । इति ॥ चातुर्विधिकेऽहनि माध्यंदिने सवने ब्राह्म-  
णाच्छंसिनो वैकल्पिकः सोचियोऽयमेव प्रगाथः । आ० ७. ४. ॥ विषुवत्पि माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छं-  
सिश्च तं वो दस्ममृतीषहमिति बोधसस्य धोनिः शंसनीया । तं वो दस्ममृतीषहमिति प्र वः सुराधसं  
। आ० ८. ६. । इति ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मंदानमंधसः ।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इद्रं गीर्भिर्नैवामहे ॥ १ ॥

तं । वः । दस्मं । क्षुतिऽसहं । वसोः । मंदानं । अंधसः ।

अभि । वत्सं । न । स्वसरेषु । धेनवः । इद्रं । गीऽभिः । नैवामहे ॥ १ ॥

नोधा इद्रं स्त्रीति । हे अस्त्वित्यवमानाः दस्मं दर्शनीयमृतीषहं । अतयो बाधकाः शत्रवः । तेषामभिम-  
वितारं । पुनः कीदृशं । वसोर्वासयितुर्दुःखस्य निवासयितुः । यद्वा । वसोः पात्रे निवसतः । तादृशस्यांधसः  
सोमलक्षणस्यास्त्रस्य पानेन मंदानं मंदमानं मोदमानं वो यष्टयष्टव्यत्वेन युष्मत्संबन्धिनं तं तादृशमिद्रं गीर्भिः  
क्षुतिलक्षणाभिर्वाग्भिरमि नवामहे ॥ नू सवने नु शब्दे ॥ अभिष्टुमः । कुचेति । स्वसरेषु । अत्र यास्तः । स्वस-  
राणां हानि स्वधंसारीणां वा खरादित्यो भवति स एनानि सारयति । नि० ५. ४. । इति । सूर्यनेतृकेषु दिवसेषु  
वयमभिष्टुमः । तच्च दृष्टान्तः । वत्सं न यथा धेनवो नवप्रसूतिका धेनवः स्वसरेषु । सुहृत्संति प्रेर्यन्ते गावो यचेति  
स्वसराणि गोष्ठानि । तेषु वत्समभिलक्ष्य शब्दयन्ति तद्वत् ॥

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसं ।

क्षुमंतं वाजं शतिर्न सहस्रिणं मक्षू गोमंतमीमहे ॥ २ ॥

द्युक्षं । सुऽदानुं । तविषीभिः । आऽवृतं । गिरिं । न । पुरुऽभोजसं ।

क्षुमंतं । वाजं । शतिर्न । सहस्रिणं । मक्षू । गोऽमंतं । ईमहे ॥ २ ॥

युचं दीप्तीनां निवासस्थानं । अतिशयेन दीप्तमित्यर्थः । यद्वा । युचं दिवि युचोके चियंतं निवसंतं ।  
सुदानुं शोभनदानं तविषीभिर्बलैरावृतमाच्छादितं । आवरणे दृष्टान्तः । गिरिं न तविषीभिर्बलयुक्तैर्मघैरावृतं  
शिलोच्चयमिव स्थितं । पुनः कीदृशं । पुनोऽसं सोमादिहविष्प्रदानेन बज्रभिर्यजमानैर्भोजयितव्यं यद्वा बज्रनां  
पालयितारमिद्रं क्षुमंतं । दुषु शब्दे ॥ शब्दवतं । अनेन पुत्रादिकं लक्ष्यते । सोचादीनि कुर्वाणं शतिर्न सहस्रिणं  
शतसहस्रसंख्याकधनयुक्तं गोमंतं गवादियुक्तं वाजमंत्रं जघु शीघ्रमीमहे । याचामहे । यद्वा । पूर्वार्धो वाजवि-  
शेषणत्वेन वा धोतनीयः । प्रदीप्तं शोभनयोग्यं वखादियुक्तं बज्रभिः युजमिवादिभिर्भोज्यं शब्दादियुक्त-  
मन्नमिद्रं याचामहे इति ॥

चातुर्विधिकेऽहनि माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिनो न त्वा वृहंत इति वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूचितं च ॥  
न त्वा वृहंतो अद्रय समयं गृणवच्च नः । आ० ७. ४. । इति ॥

न त्वा बृहंतो अद्रयो वरंत इद्र वीळवः ।

यद्वित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥३॥

न । त्वा । बृहंतः । अद्रयः । वरंते । इद्र । वीळवः ।

यत् । दित्ससि । स्तुवते । मावते । वसु । नकिः । तत् । आ । मिनाति । ते ॥३॥

हे इद्र बृहंतो बलेन महान्तः अत एव वीळवः सर्वतो दृढा अथद्रयः पर्वतास्त्वा त्वां न वरंते । बलेन निवारयति । अग्निवारणमेवोत्तरार्धेन विवृणोति । स्तुवते त्वद्विषयं स्तोत्रं कुर्वते मावते मत्सदृशाय मादृशाय स्तोत्रे यद्वसु यद्वनं दित्ससि त्वं दातुमिच्छसि तव देयं तद्वनं नकिर्न कश्चिदा मिनाति । आभिमुख्येन हिनस्ति ॥ मीय हिंसायां । मीनतेर्निगम इति वृत्तः । मावते । शुष्मदस्त्राणां सादृश उपसंख्यानमिति वतुप ॥

योडासि क्रत्वा शर्वसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्जना ।

आ त्वायमर्क उतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ॥४॥

योडा । असि । क्रत्वा । शर्वसा । उत । दंसना । विश्वा । जाता । अभि । मज्जना ।

आ । त्वा । अयं । अर्कः । उतये । ववर्तति । यं । गोतमाः । अजीजनन् ॥४॥

हे इद्र क्रत्वा वृत्रहणनादिकर्मणापि वा प्रज्ञानेन शर्वसास्त्रीयेन बलेन योडा शत्रूणां संहारकोऽसि । उतापि च त्वं दंसना स्वकीयेन कर्मणा मज्जना ॥ मज मुञ्जि शब्दार्थाः । मजमुञ्जी चेति मजतिः शब्दार्थः ॥ शत्रूणामाक्रोशनसमर्थेन बलेन विश्वा जाता सर्वाणि भूतजातान्यभिमवसि । उक्तार्थस्य विश्वा जाता न्यभ्यसि मज्जा । ऋ० ८. १००. ४. इत्यादिष्विद्रेणैवोक्तत्वात् । एतादृशं त्वा त्वामर्कः ॥ अर्च पूजायां ॥ अर्चनीयोऽयं मंचः यदाको देवानामर्चकः पूजकोऽयं स्तोत्रोत्तये स्वरचणायाम् ववर्तति । आवर्तयति । आत्माभिमुख्ये करोतीत्यर्थः ॥ वर्ततेर्लेटि, वज्रलं सुरडागमश्च ॥ यं त्वां गोतमा गोतमपुत्रा नोधः प्रभृतयोऽजीजनन् स्वयज्ञे प्रादुरवीभवन् । तं त्वामयं मंचः स्तोत्रा वावर्तयति ॥

प्र हि रिरिश्च ओजसा दिवो अंतेभ्यस्परि ।

न त्वा विव्याच रज इद्र पार्थिवमनु स्वधां ववक्षिथ ॥५॥

प्र । हि । रिरिश्चे । ओजसा । दिवः । अंतेभ्यः । परि ।

न । त्वा । विव्याच । रजः । इद्र । पार्थिवं । अनु । स्वधां । ववक्षिथ ॥५॥

हे इद्र दिवो बुल्लोकस्य पर्यंतेभ्य ओजसा । हिरवधारणे । स्वबलेनैव प्र रिरिश्चे । प्रकर्षेणातिरिक्तो भवसि ॥ रिचेल्लेटी वज्रलं छंदसीति झुः । प्रत्ययस्वरः ॥ किंच हे इद्र पार्थिवं पृथिव्यां भवो रजो लोकस्त्वा त्वां महता स्वशरीरेण न विव्याच । न व्याप्नोति । द्यावापृथिवीभ्यामपि स्वतः स त्वं बलेन समर्थो भवसीत्यर्थः । एवंभूतः सन्नद्याकं स्वधामन्नमुदकं वासु ववक्षिथ । अनुबोद्धुमिच्छ ॥ वहेः सन्नतस्य च्छांदसे लिटि रूपं । मंचत्वादामभावः ॥

नकिः परिष्टिर्मघवन्मघस्य ते यद्वाप्नुषे दशस्यसि ।

अस्माकं बोध्युचयस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये ॥६॥

नकिः । परिष्टिः । मघऽवन् । मघस्य । ते । यत् । दाप्नुषे । दशस्यसि ।

अस्माकं । बोधि । उचयस्य । चोदिता । मंहिष्ठः । वाजऽसातये ॥६॥



हे मघवन्धनवसिष्ठ ते तव मघस्य मंहनीयस्य धनस्य परिष्टिः परिबाधको निरोद्धा नकिर्न कश्चिदस्ति । यद्यदा दातुषे हविर्देवतवते यजमानाय दशस्यसि धनं प्रयच्छसि तदा तस्य निरोधको नास्तीत्यर्थः । तथा सति चोदिता धनानां चोदयिता स्तोत्रभ्यः प्रेरयिता अत एव मंहिष्ठो दातुतमो मंहनीयो वा स त्वमस्माकं संबन्धुचक्षुः स्तोत्रं वाजसातयेऽज्ञलाभाय तदर्थं क्रियमाणमिति बोधि । बुध्यस्व । स्तोत्रेण स्तुतः मन्त्र-सम्भ्रमज्ञादिकं प्रथक्तेति शेषः ॥ बोधि । बुध अवबोधने । भौवादिकः । स्तोत्रि च्छांदसः श्रपो सुक् । ध्यादेशः ॥ ॥ ११ ॥

बृहदिंद्रायैति सप्तमं नवमं सूक्तं । नृमेधपुष्टमेधावुषी । तौ चानुक्तत्वादांगिरसी । आदितो द्वौ प्रगाथौ पंचमीषध्यावनुष्टुभौ सप्तमी बृहती । तथा चानुक्रम्यते । बृहदिंद्राय सप्त नृमेधपुष्टमेधौ ब्रानुष्टुभृत्यंतमिति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि मरुत्वतीये प्राकृताऽमरुत्वतीयात्मगाथादूर्ध्वं द्वौ मरुत्वतीयौ प्रगाथौ शंसनीयौ । बृहदिंद्राय गायतिल्ययमाद्यः प्रगाथः पुष्याभिन्नवषट्पद्योर्द्वितीयेऽह्नयं प्रगाथः । सूचितं च । बृहदिंद्राय गायत नकिः सुदासो रथमिति मरुत्वतीय ऊर्ध्वं निखात् । आ० ७. ३. इति ॥

बृहदिंद्राय गायत मरुतो वृचहंतमं ।

येन ज्योतिरर्जनयन्नुतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ १ ॥

बृहत् । इंद्राय । गायत । मरुतः । वृचहन्ऽतमं ।

येन । ज्योतिः । अर्जनयन् । नृताऽवृधः । देवं । देवाय । जागृवि ॥ १ ॥

हे मरुतः ॥ १ शब्दे ॥ मितं रवंतीति मरुतः । हे मितमायिणः स्तोतारः वृचहंतममतिशयेन पापविनाशनं बृहत्सामिंद्रायेंद्रायें गायत । अस्मदीययज्ञे गात्रं कुरुत । नृतावृधः सत्यस्य यज्ञस्य वा वर्धका विज्ञे देवा देवाय ज्योतमानायेंद्राय देवं देवनशीलं --- जागृवि सर्वेषां जागरणशीलं ज्योतिः सूर्यं येन साक्षाजनयन् इंद्रार्थमुदपादयन् तत्साम गायतेति ॥

अपाधमद्भिश्शस्तीरशस्तिहायेन्द्रो शुभ्याभवत् ।

देवास्त इंद्र सख्याय येमिरे बृहन्नानो मरुन्नय ॥ २ ॥

अप । अधमत् । अभिऽशस्तीः । अशस्तिऽहा । अर्थ । इंद्रः । शुभी । आ । अभवत् ।

देवाः । ते । इंद्र । सख्याय । येमिरे । बृहन्नानो इति बृहत्ऽभानो । मरुत्ऽगण ॥ २ ॥

अशस्तिहा स्तोत्रशंसनरहितानां शत्रूणां हंतेंद्रोऽभिश्शस्तीः ॥ शत्रु हिंसायां ॥ अभितो हिंसा येषां ते । तादृशान् । यद्वा । अभिश्शस्तीः शत्रुकृता हिंसाः । अपाधमत् । अपागमयत् । अथ शत्रुहननानंतरमिंद्रो शुभी सर्वत्र ज्योतमानयशोयुक्तः । यद्वा । तेषां धनापहरणेन धनादिमान् । अभवत् । सर्वतः प्रसिद्धोऽभवत् । अथोत्तरोऽर्थः प्रत्यक्षकृतः । हे बृहन्नानो वृंष्टयशीलतेजस्क महादीप्ते वा मरुन्नय । मरुतां सप्त गणा यस्य संति स तथोक्तः । तादृश हे इंद्र देवा ज्योतमानाः सर्वे देवाः सख्यायात्मनः सखिभावाय ते त्वां येमिरे । नियच्छंति ॥

अपिष्टोमे मरुत्वतीये प्र व इंद्रायैत्ययं मरुत्वतीयः प्रगाथः । सूचितं च । प्र व इंद्राय बृहत् इति मरुत्व-तीयः प्रगाथः । आ० ५. १४. इति ॥

प्र व इंद्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।

वृचं हनति वृचहा शतक्रतुर्वर्जेण शतपर्वणा ॥ ३ ॥

प्र । वः । इंद्राय । बृहते । मरुतः । ब्रह्म । अर्चत ।

वृचं । हुनति । वृचऽहा । शतऽक्रतुः । वज्रेण । शतऽपर्वणा ॥३॥

हे मरुतो मितराविणः स्त्रोतारः बृहते महते वः क्षुत्यस्त्रोतुत्वलक्षणेन संबन्धेन युष्मदीयार्थेन्द्राय ब्रह्म सामलक्षणं स्त्रोचं प्रार्चत । प्रोच्चारयत । ततो वृचहा वृचस्य पापस्य वा हन्ता शतक्रतुः शतविधकर्मा बज्रविधमग्नौ वेद्रो शतपर्वणा शतसंख्याकधारेण वज्रेणैतन्नामकेनायुधेन वृचमपामावरकं वृचाख्यमसुरं हनति । युष्मानिरमिष्टतः सन् हंतु ॥ हंतिलेख्यडागमः ॥

अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद्बृहत् ।

अर्षेत्वापो जवसा वि मातरो हनो वृचं जया स्वः ॥४॥

अभि । प्र । भर । धृषता । धृषत्ऽमनः । श्रवः । चित् । ते । असत् । बृहत् ।

अर्षेतु । आपः । जवसा । वि । मातरः । हनः । वृचं । जय । स्व । रिति स्वः ॥४॥

हे धृषन्मनः शत्रूणां धर्षणशीलमनस्केंद्र ते तवैव बृहन्महदतिप्रभूतं श्रवोऽन्नमसत् । अस्ति । तदन्नं धृषता धृष्टेन मनसा युक्तः सन्नस्त्राभ्यमभि प्र भर । अभिसुख्येन प्रकर्षेण संपादय । देहीत्यर्थः । हे इंद्र मातरोऽस्माकमुत्पादनहेतुत्वात्मातृभूताः । कथमपां मातृत्वं । अन्नः पृथिवी पृथिव्या ओषधय इत्यादिभ्युतेः । तादृश आपो जवसा वेगेन अर्षेतु । विविधं भूमिं प्रति गच्छंतु । कथमापो गच्छंतीति चेत् तदाह । वृचमपामावरितारं शत्रुं मेघं हनः । जहि । ताडय । ततो मेघमेदनेनोदकानि विगच्छंतु । पुनरपि स्वः सर्वं भूतजातं जय ॥

प्रथमे स्वरसान्नि निष्कैवले यज्जायथा अपूर्व्येति स्त्रोत्रियः । तथा सूच्यते । तेषां स्त्रोत्रिया यज्जायथा अपूर्व्य । आ० ८. ५. । इति ॥

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृचहत्याय । तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तन्ना उत द्यां ॥५॥

यत् । जायथाः । अपूर्व्य । मघऽवन् । वृचऽहत्याय । तत् । पृथिवीं । अप्रथयः । तत् ।

अस्तन्नाः । उत । द्यां ॥५॥

हे अपूर्व्य स्वतो व्यतिरिक्तेन पूर्व्येण वर्जित हे मघवन् मंहनीयधनवर्जिंद्र वृचहत्याय वृचासुरहननाय यद्यदा त्वं जायथाः उत्पन्नः प्रादुर्भूतोऽसि तत्तदानीमेव पृथिवीं प्रथमानामप्रथयः । प्रसिद्धां दृढामकरोः । उतापि च तत्तदानीमेव द्यां द्यलोकमंतरिक्षेणास्तन्नाः । निरुद्धामकाशीः । एतादृशं वीर्यं त्वदन्यस्य न संभवतीत्यर्थं व्योतयितुमपूर्व्येति पदं ॥

तत्ते यज्ञो अजायत तदुर्कं उत हस्कृतिः । तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जंतं ॥६॥

तत् । ते । यज्ञः । अजायत । तत् । अर्कः । उत । हस्कृतिः । तत् । विश्वं । अभिऽभूः ।

असि । यत् । जातं । यत् । च । जंतं ॥६॥

हे इंद्र यद्यदा त्वमजायथाः तत्तदानीं ते त्वदर्थे यज्ञोऽपिष्टोमादिरजायत । सोमपानार्थमभूत् । उतापि च तदानीं हस्कृतिः ॥ हसे हसने ॥ हासकारी प्रीत्यर्थं क्रियमाणो हर्षस्य सूचकोऽर्कोऽर्चनीयो मन्वोऽप्यजायत । किंच तदा यज्जातं भूतजातं यच्च जंतं ॥ इत्यर्थे त्वन्प्रत्ययः ॥ जनितव्यं यद्विश्वमस्ति तत्सर्वमभिभूरसि । स्वमहिम्नामिभूतवानसि ॥



आमासु पञ्चमैरय आ सूर्ये रोहयो दिवि ।

घर्मे न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥७॥

आमासु । पञ्क । ऐरयः । आ । सूर्ये । रोहयः । दिवि ।

घर्मे । न । सामन् । तपत । सुवृक्तिभिः । जुष्टं । गिर्वणसे । बृहत् ॥७॥

हे इंद्र आमासपक्षासु गोषु पञ्कं पय ऐरयः । प्रेरयस्व । तथा मंघः । आमासु चिद्भिषे पञ्कमंतः । अ० १. ६२. ९. इति । किंच दिवि बुल्लोके सूर्यमा रोहयस्व । पूर्वे पण्यो नामासुरा अंगिरसां गा अपहृत्वांधकारा-  
वृते कस्मिंश्चित्पर्वते ताः स्थापितवंतः । ततोऽंगिरस इंद्रं स्तुत्वा गाः पुनरसम्भमाहरेति तैरुक्त इंद्रो गवां स्नानं  
तमसावृतं दृष्ट्वा तत्र गोदर्शनाय बुल्लोके सर्वप्रकाशकं सूर्यमारोहितवान् स्थापितवानसि ॥ चादिलोपे विभा-  
षेति पूर्वस्त्रैरय इत्यस्य न निघातः ॥ अथ परोक्षकृतोऽर्धर्वः । हे खोतारः सुवृक्तिभिः श्रोभनाभिः स्तुतिभि-  
स्तपत । इंद्रं तीक्ष्णीकुरुत । इंद्रं स्तुतिभिः प्रवर्धयतेत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः । घर्मे न यथा घर्मे दीपनशीलं प्रवर्ध-  
सामन् ॥ सुपां सुलुगिति तृतीयाया लुक् ॥ सामभिर्यथा तपंति तद्वत् । ततो गिर्वणसे गोभिर्वननीयार्थेन्द्राय  
जुष्टं प्रीतिकरं पर्याप्तं वा बृहत्साम गायत ॥ ॥१२॥

आ नो विश्वास्तिति षड्वचं दशमं सूक्तं । नृमेधपुषमेधावृषी । विषमसंख्याका बृहत्सः समसंख्याकाः सतो-  
बृहत्सः । इंद्रो देवता । तथा चानुक्रांतं । आ नो विश्वासु पडिति ॥ महाव्रते निष्कवस्त्रे बार्हत्तनुचाशीतावे-  
तत्सूक्तं । सूत्र्यते हि पंचमारण्यके । आ नो विश्वासु हव्यो या इंद्र भुज आभरः । ऐ० आ० ५. २. ४. इति ॥

आ नो विश्वासु हव्य इंद्रः समत्सु भूषतु ।

उप ब्रह्माणि सर्वानानि वृचहा परमज्या ऋचीषमः ॥१॥

आ । नः । विश्वासु । हव्यः । इंद्रः । समत्सु । भूषतु ।

उप । ब्रह्माणि । सर्वानानि । वृचहा । परमज्याः । ऋचीषमः ॥१॥

अधिरनयेन्द्र एवं करोत्वित्याशास्ते । विश्वासु सर्वासु समत्सुमुरयुजेषु हव्यः सर्वदेवैरात्मरचणार्थमाह्ला-  
तव्यः एतादृश इंद्रो नोऽस्माकं ब्रह्माणि स्तोत्राणि हवीरूपाण्यन्नानि वोपा भूषतु । उदकमनुभावयतु । सेवता-  
मित्यर्थः । यद्वा । एतान्यलंकरोतु । तदागमनेन स्तोत्राणि हवींषि बालंकृतानि भवंति । तथा सवनानि  
प्रातःसवनादीनि चीणि सवनानि च भूषतु । कीदृश इंद्रः । वृचहा वृचस्यासुरस्य पापस्य वा हंता परमज्याः ।  
युजेषु शत्रुहननार्थं परमाविनश्यतो ज्या मौर्वी यस्य स तथोक्तः । यद्वा । परमावलेन प्रछष्टाञ्जशूङ्गीनाति  
हिनस्तीति परमज्याः । ऋचीषमः स्तुत्या समः स्तुतिभिरभिसुखीकरणीयः । एतादृगिंद्रः स्तोत्राणि भूषत्विति ॥

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।

तुविद्युन्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शर्वसो महः ॥२॥

त्वं । दाता । प्रथमः । राधसां । असि । असि । सत्यः । ईशानकृत् ।

तुविद्युन्नस्य । युज्या । आ । वृणीमहे । पुत्रस्य । शर्वसः । महः ॥२॥

हे इंद्र प्रथमः सर्वेषां मुख्यत्वं राधसां धनानां दातासि । यद्वा । धनदातृणां मध्ये त्वं प्रथम आदिभ्यो  
भवसि । तथेशानकृत्स्व स्तोतृनीशाननित्यर्थयुक्तान् कुर्वस्त्वं सत्यः सत्यकर्मासि । यथार्थकर्मा भवसीत्यर्थः ।  
यस्मादेवं तस्माद्वयं तुविद्युन्नस्य वज्रधनवतो वज्रन्नस्य वा शर्वसो बलस्य पुत्रस्य शत्रुवधार्थं बलकारणत्वेनो-  
त्पन्नत्वान्त्युच्यते अत एव महो महत्सव युज्या योग्यानि धनान्या वृणीमहे । संभजामहे ॥

ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियते अनन्तिज्ञता ।

इमा जुषस्व हर्यश्च योजनेन्द्र या ते अमन्महि ॥३॥

ब्रह्म । ते । इन्द्र । गिर्वणः । क्रियते । अनन्तिज्ञता ।

इमा । जुषस्व । हरिऽश्च । योजना । इन्द्र । या । ते । अमन्महि ॥३॥

हे गिर्वणो गीर्भिर्वननीचेंद्र अनन्तिज्ञता । सर्वागतिकम्य न भवन्ति । इन्द्रगुणव्यापकानि । यथार्थभूता-  
नीत्यर्थः । तादृशानि यानि ब्रह्माणि सोचाणि ते त्वदर्थमस्मानिः क्रियते हे हर्यश्च हरिताम्यवन् हे इन्द्र  
योजनानि तव सम्यग्बोजनशीलानि तानीमेमानि सोचाणि जुषस्व । शेषस्व । किं हे इन्द्र ते त्वदर्थं या  
यानि सोचास्तमन्महि वयमुच्चरामः तानि सर्वाणि शेषस्व ॥

त्वं हि सत्यो मघवन्नानतो वृचा भूरि न्युजसे ।

स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषेऽर्वाचं रयिमा कृधि ॥४॥

त्वं । हि । सत्यः । मघऽवन् । अनानतः । वृचा । भूरि । निऽच्युजसे ।

सः । त्वं । शविष्ठ । वज्रऽहस्त । दाशुषे । अर्वाचं । रयिं । आ । कृधि ॥४॥

हे मघवन् धनवन्निन्द्र सत्यः सत्यकर्मा त्वमेवानगतः केषामप्यप्रदः सन् भूरि भूरीणि वृचाणि रचांसि  
न्युजसे । तानि प्रद्वीभावयसि । न्यक्करोषीत्यर्थः । हिरवधारणे । हे शविष्ठ वसेन वृद्धतम हे वज्रहस्त । वज्रो  
हस्ते यस्य स तथोक्तः । हे इन्द्र स तादृशस्त्वं दाशुषे तुभ्यं हविर्दत्तवती यजमानाय रयिं धनादिकमर्वाच-  
मर्वाचीनमभिमुखं यथा गच्छति तथा तमा कृधि । समंतात्कृध ॥

पातुर्विश्वेऽहनि माध्वंदिनसवने ब्राह्मणाच्छिशस्त्रे त्वमिन्द्र यथा असीति प्रगाथो वैकल्पिकोऽनुष्णः ।  
सूच्यते च । त्वमिन्द्र यथा असीन्द्र क्रतुं न आ मर । आ० ७. ४. इति ॥

त्वमिन्द्र यथा अस्यूजीषी शवसस्पते ।

त्वं वृचाणि हंस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृता ॥५॥

त्वं । इन्द्र । यथाः । असि । अ्यूजीषी । शवसः । पते ।

त्वं । वृचाणि । हंसि । अप्रतीनि । एकः । इत् । अनुत्ता । चर्षणिऽधृता ॥५॥

हे शवसस्पते वलस्व पालयितर्हे इन्द्र अ्यूजीषी । अ्यूजीष उपार्जितोऽभिषुतः सोमः । तदास्त्वं यथा यश-  
स्वसि । कथमस्य यशस्वित्वं तदाह । अप्रतीनि बलिभिरप्यप्रतिगतानि अत एवानुत्तान्बिर्भोऽनुमशक्वानि  
वृचाणि रचांसि त्वमेक इदसहाय एव चर्षणीधृतासुरादिह्यनहारेण मनुष्याणां धारकेण वज्रेण हंसि ।  
संप्रहरसि । अत एवास्य यशस्वित्वं ॥

तमुं त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।

महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्ववन् ॥६॥

तं । ऊं इति । त्वा । नूनं । असुर । प्रऽचेतसं । राधः । भागंऽइव । इमहे ।

महीऽइव । कृत्तिः । शरणा । ते । इन्द्र । प्र । ते । सुम्ना । नः । अश्ववन् ॥६॥

हे असुर वनवन प्राणवन् हे इन्द्र य उक्तगुणोऽस्ति तं प्रचेतसं प्रकृष्टज्ञानं त्वा । उ इत्यवधारणे । पितृव-



त्योषकं त्वामिव राधो धर्मादिस्वाधनं धनं भूतमिदानीमीमहे । वयं याचामहे । तच्च वृष्टांतः । मागमिव । यथा कश्चित्पितृभागभूतं धनं याचते तद्वदिंद्रो यवमानेभ्यः सोतुभ्यश्च धनं प्रयच्छत्वैव । तस्माज्जागभूतं धनं यष्टारो वयं याचामहे । हे इंद्र महीव कृत्तिः । कृत्तिर्यशो वान्नं वा । कृती जेद्वे । करणे कृत्ति । कृतत्व-  
नेति ॥ इंद्रशो कृत्तिरिव ते तव शरणा शरणं गृहमंतरिषे सुखेति महवर्तेति । अथ धारुः । कृत्तिः कृततेर्यशो वान्नं वा महीव कृत्तिः शरणा त इंद्र सुमहत्त इंद्र शरणमंतरिषे कृत्तिरिवेति । नि० ५. २२. किंच ते तव स्वभूतानि सुखा सुखानि पुषादिविषयसुखानि च नोऽस्मान्नाश्रयन् । प्रकवेणाश्रयन्तां । आश्रयन्तु ॥ अश्रो-  
तेर्वैद्यसागमः ॥ ॥ १३ ॥

कन्या वारिरिति सप्तर्षमेकादशं सूक्तं । अथैः पुत्र्यपासाख्या त्वग्दोषपरिहारायानेन सुतेर्मेद्रं सुतवती । अतः सैवर्षिः । प्रथमाद्वितीये पंक्तौ श्रिष्टाः पंचानुष्टुभः । इंद्रो देवता । तथा चागुक्तांतं । कन्या वाः सप्तावैष्य-  
पाखेतिहास ऐंद्र आनुष्टुभं द्विपंक्त्यादीति ॥ विनियोगी वैगिकः ॥ अचेतिहासमाचचते । पुरा किलाचिसुतापासा  
प्रत्यवादिनी केनचित्कारणेन त्वग्दोषबुद्धा सत्यत एव दुर्मनेति भर्षा परित्यक्ता पितुराश्रमे त्वग्दोषपरिहाराय  
चिरकालमिंद्रमधिष्ठत् तपक्षेपे । सा कदाचिदिंद्रस्य सोमः प्रियकरो भवति तमिंद्राय दास्यामीति बुद्ध्या  
नदीतीरं प्रत्यागमत् । सा तच्च स्नात्वा पथि सोममप्यलभत । तमादाय गृहं प्रत्यागच्छंती मार्गं एव तं चखाद ।  
तन्नचणकाक्षे दंतचर्षणजातं शब्दं याव्यां सोमाभिषवध्वनिमिति मत्वा तदागीमेर्मेद्रः समागमत् । आगत्य  
तामुवाच । क्षिमव यावाणोऽभिषुष्वंतीति । सा प्रत्युचे । अत्र कन्या स्नानार्थमागत्य सोमं दृष्ट्वा तं भर्षयति  
तन्नचणकाक्षी ध्वनिरेव च तु याव्यां सोमाभिषवध्वनिरिति । तथा प्रत्युक्त इंद्रः पराकावर्तत । गच्छंतमिंद्रं सा  
पुनरब्रवीत् । किमर्थं निवर्तसे त्वं तु सोमपाणाय गृहं गृहं प्रतिगच्छसि । इदानीमचापि मम दंप्राभ्यामभिषुतं  
सोमं पिव धानादींश्च भर्षयेति । सैवेद्रमनाद्रियमाणा सती पुनरप्याह । अवागतं त्वामिंद्र इति न वानामि  
त्वयि गृहमागते चञ्चमानं करिष्यामीतींद्रमुत्काच समागत इंद्र एव गान्ध इति निश्चित्य स्वास्त्रे निहितं  
सोममाह । हे सोम त्वग्गतयिंद्राय पूर्वं शनैः शनैः चित्रं परित्यजेति । तत इंद्रसां कामयित्वा तस्मा  
आस्य एव दंप्राभिषुतं सोममपात् । तत इंद्रेण सोमे पीते उति त्वग्दोषादहं भर्षा परित्यक्ता सतीदानोमिंद्रेण  
संगतेष्वपासायामुत्तायामिंद्रसां व्यावहार । किं कामयसे तदहं करिष्यामीत्युक्ते सा परमचीकमत । मम पितुः  
शिरो रोमवर्जितं तस्योपरं चैवं फलादिरहितं मम गुह्यस्नानमप्यरोमश्रमेतानि रोमफलादियुक्तं कुर्वित्युक्तायां  
तत्पितृशिरःस्थितं खलतिमपहाय चैवं च फलादियुक्तं क्वचित्स्नात्स्वग्दोषपरिहाराय स्वकीयरषच्छिद्रे शकटस्य  
युगस्य च च्छिद्र एतां पिबारं निश्चर्य । तस्याः पूर्वापहता या त्वब् शक्यको द्वितीया गोधा तृतीया कृकला-  
सोऽभूत् । तत इंद्रस्नामप्यपासां सूर्यसदृशलक्षमकरोदित्वितिहासिकी कथा । एतच्च शाव्यायनब्राह्मणे स्पष्टमुक्तं ।  
तद्वाक्यं तत्तद्व्याख्यानसमये दर्शयिष्यते । एवोऽर्थः कन्या वारित्वादिष्वुषु प्रतिपाद्यते ॥

कन्या३ वारवायती सोममपि सुताविदत् ।

अस्तं भरंत्यब्रवीदिंद्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा ॥ १ ॥

कन्या । वाः । अब्रवीती । सोमं । अपि । सुता । अविदत् ।

अस्तं । भरंती । अब्रवीत् । इंद्राय । सुनवै । त्वा । शक्राय । सुनवै । त्वा ॥ १ ॥

वाचदकं प्रत्यवायती स्नानार्थमभ्यगच्छंती कन्यापासा नाम स्त्री सुता सुती मार्गे सोममप्यविदत् ।  
अलमत ॥ विदुः क्षामे । खडि रूपं ॥ तं सोममस्तं गृहं प्रति भरंत्याहरंती सा सोममब्रवीत् । हे सोम त्वा  
त्वामिंद्राय सुनवै । मम दंतैरेवामिषुष्वे । पुनर्हं सोम त्वा त्वां शक्राय समर्पयेंद्राय सुनवै । इदानीमेषा-  
भिषवं करवे । सोममचणकाक्षे दंतध्वनिं यावध्वनिमिति मत्वेद्रस्नागमत् । एवोऽर्थः शाव्यायनब्राह्मणे  
स्पष्टमभिहितः । सा तीर्थमभ्यवर्तती सोमांशुमविदत्तं समखादत्तस्त्री ह यावाण इव दंता छदुः । स इंद्र  
आद्रवत् यावाणो वै वदंतीति । सा तममिव्यावहार कन्या वारवायती सोममपि सुताविदित्यस्त्री त इदं  
यावाण इव दंता वदंतीति विदित्वेद्रः पराकावर्तत । तमब्रवीदसौ य एषि वीरस इत्यादिनेति ॥

असौ य एषि वीरको गृहंगृहं विचाकशत् ।

इमं जंभसुतं पिब धानावतं करंभिणंमपूपवतमुक्थिनं ॥२॥

असौ । यः । एषि । वीरकः । गृहंगृहं । विचाकशत् ।

इमं । जंभसुतं । पिब । धानावतं । करंभिणं । अपूपवतं । उक्थिनं ॥२॥

सा शकमब्रवीत् । हे इंद्र वीरको वीरः समर्थस्त्वं योऽसौ त्वं विचाकशत् ॥ काशु दीप्तौ । यङ्नुकि शतरि रूपं । धातोर्ह्रस्वस्कांदसः ॥ अत्यर्थं दोष्यमानः सन् गृहं गृहं यजमानगृहं प्रति सोमपानाय त्वमेषि । गच्छसि । अतस्त्वमवापि जंभसुतं मम दंतैरभिषुतमिमं सोमं पिब । कीदृशं । धानावतं । धाना भ्रष्टयवाः । तवतं करंभिणं सक्तमंतमपूपवतं पुरोडाशादिसहितमुक्थिनं सोचादियुक्तमेतादृशं सोममवैव पिवेति । सा सोमेन सह धानादीनावेदयत् सोमं चाकार्षीदित्यर्थः ॥

आ च न त्वा चिकित्सामोऽधि च न त्वा नेमसि ।

शनैरिव शनकैरिवेन्द्रायेंदो परि स्रव ॥३॥

आ । च न । त्वा । चिकित्सामः । अधि । च न । त्वा । न । इमसि ।

शनैःऽइव । शनकैःऽइव । इंद्राय । इंद्रो इति । परि । स्रव ॥३॥

पुनरपि सा तमनादृत्याह । हे इंद्र । चनेति निपातसमुदायोऽवधारणार्थं । त्वा त्वामा चिकित्सामः । ज्ञातुमिच्छाम एव । इह मार्ग एवागतं त्वा त्वां नाधीमसि । नाधिगच्छामः । अवापि चनेत्यवधारणे । मम गृहमागच्छंतं त्वामिंद्र इति न जानीम एवेत्यपाना तमिंद्रमुक्ता स्वास्ते स्थितं सोमं प्रत्याह । हे इंद्रो चरणशील सोम अस्मा आगतार्थेन्द्राय तदर्थं पूर्वं शनैर्मंदं मंदं ततः शनकैरिव ॥ कुत्सितार्थेऽकच् ॥ कुत्सितं शनैः शनकैः । चिप्रमित्यर्थः । चिप्रमेव त्वं परि स्रव । मदीयदंप्राभिरभिषूयमाणः सन् परितः चरेति । तथा यज्ञेष्वपि प्रावभिरभिषूयमाणः सोमः प्रथमं शनैः परिस्रवति ततः शनकैः चिप्रमिति तदभिप्रायेणोक्तं । तत इंद्र एतद्वाक्यं श्रुत्वा तदानीमेवमभिषुतं सोमं यज्ञस्थानीयादपानामुखादेवाधासीत् । उक्तार्थः शाय्यायनकत्राहणे स्पष्टमभ्यधाति । अनाद्रियमाशौव तमब्रवीदा च न त्वा चिकित्सामोऽधि च न त्वा नेमसोति । पुरा मां सर्वयर्चापाना सौतोत्पुपपर्यावर्तत शनैरिव शनकैरिवेन्द्रायेंदो परि स्रवेति ह वा असौ मुखात्सोमं गिरधयत्सोमपीय इह वा अस्र भवति य एवं विद्वान् स्त्रीमुपजिघ्रतीति ॥

कुविच्छककुवित्करत्कुविन्नो वस्यसस्करत् ।

कुवित्पत्तिद्विषो यतीरिंद्रेण संगमामहै ॥४॥

कुवित् । शकत् । कुवित् । करत् । कुवित् । नः । वस्यसः । करत् ।

कुवित् । पत्तिऽद्विषः । यतीः । इंद्रेण । संऽगमामहै ॥४॥

सोमं पीतवानिंद्रोऽस्मानेवं करोत्वित्याह । स इंद्रः कुविद्वज्जवारमस्माञ्शकत् । शक्तान् समर्थान्करोतु । किंच कुविद्वज्ज चास्मभ्यं करत् । करोतु । किंच स एवेन्द्रो नोऽस्मान्कुविद्वज्जल्लो वस्यसो वसीयसोऽतिशयेन वसुमतः करोतु ॥ करोति शक्नोति च लेख्यडागमः ॥ इदानीमावेध्यहमेवं करिष्यामीति वदति । पूर्वं कुविद्वज्ज पतिद्विषस्त्वग्दोषात्पतिभिर्मर्तुर्भिर्वज्जवारं द्विष्टा अत एव यतीः पतिभ्यः सकाशादितो गच्छंत्यो वयं किंचिदप्यनुह्यमानाः सत्यः संप्रतोद्रेण सह संगमामहै । संगच्छामहै । सर्वत्र पुनार्थे वज्जवचनं । संगमशब्देनेन्द्रोऽपानामचकमतेति ॥



इमानि चीणि विष्टपा तानीद्रु वि रोहय ।

शिरस्तस्योर्वरादिदं म उपोदरे ॥५॥

इमानि । चीणि । विष्टपा । तानि । इद्रु । वि । रोहय ।

शिरः । ततस्य । उर्वरा । आत् । इदं । मे । उप । उदरे ॥५॥

इद्रेण किं कामयसे तद्वास्यामीत्युक्ता सा वरमनया प्रार्थयति । हे इद्रु इमानि चीणि विष्टपानि स्थानानि सन्ति । तानि चीणि स्थानानि वि रोहय । उत्पादय । कानि तानि । ततस्तु मम पितु रोमवर्जितं शिरः । खलतिमित्यर्थः । तच्चापगमय । रोमशं कुर्वित्यर्थः । उर्वरां तस्योपरं चैवं सर्वसंख्याढं कुरु । आदनंतरं मे मनोपोदर उपोदरस्य समीपे यदिदं स्थानं । गुह्यमित्यर्थः । तच्च त्वग्दोषे सत्त्वसंजातरोमकं । तदपि त्वग्दोषपरिहारेण रोमयुक्तं कुरु । एतानि चीणि स्थानानि । एषोऽर्थः शाव्यायनके प्रपंचेनोक्तः । ताम्रवीदपानि किं कामयसीति । सातृवीदिमानि चीणि विष्टपेति खलतिर्हास्ये पिता स तं हाखलति चकारोर्वरा हास्य न जज्ञे सो जज्ञ उपखे हास्ये रोमाणि नासुखान्यु ह जश्चिर इत्यस्योत्तरा भूयसे निवर्चनायासी च या न इति ॥

असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं मम ।

अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ॥६॥

असौ । च । या । नः । उर्वरा । आत् । इमां । तन्वं । मम ।

अथो इति । ततस्य । यत् । शिरः । सर्वा । ता । रोमशा । कृधि ॥६॥

उक्तमेवार्थमनया विवृणोति । नोऽस्माकं पितुर्यासा उर्वरा यदिदमूपरं चेषमस्ति । आदनंतरं ममेमां तन्वमिदं त्वग्दोषदुष्टं गुह्यस्थानं । अथो अथापि च ततस्तु तातस्तु यच्छिरो रोमवर्जितमस्ति । एतानि सर्वा सर्वाणि तानीमानि चीणि स्थानानि रोमशा रोमशानि कृधि । कुरु ॥

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।

अपात्तामिद्रु चिष्पूत्यकृणोः सूर्यत्वचं ॥७॥

खे । रथस्य । खे । अनसः । खे । युगस्य । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।

अपात्तां । इद्रु । चिः । पूत्वी । अकृणोः । सूर्यऽत्वचं ॥७॥

अनयापात्तां सूर्यसदृशप्रभामकरोदित्याह । हे शतक्रतो हे शतसंख्याकयज्ञ बहुविधप्रज्ञ वा हे इद्रु रथस्य स्वकीयस्य खे पुथुतरे छिद्रे तथानसः शकटस्य खे तदपेक्षयास्ये छिद्रे युगस्य खे चात्यतरे सूक्ष्मे छिद्रे रथशकटयुगानां छिद्रेषु त्वग्दोषपरिहाराय चिस्त्रिवारं निष्कर्षणेन पूत्वी शोधयित्वा ततोऽपात्तामेतन्नामि-  
कामचिमुतां ब्रह्मवादिनीं सूर्यत्वचं सूर्यसमानत्वचमकृणोः । अकरोः । कल्याणतमरूपभावमकरोरित्यर्थः शाव्यायनकज्राक्षणे स्पष्टमभिहितः । तां खे रथस्यात्यवृहत्ता गोधामवत्तां खेऽनसोऽत्यवृहत्ता संस्पष्टकामव-  
त्तदेवाभ्यनूच्यते खे रथस्य खेऽनस इति । तस्यै ह यत्कल्याणतमं रूपाणां तद्रूपमासेति त्वग्दोषापनयनाया-  
चादिद्वारेष्वतिकर्षणमिति । यस्त्वग्दोषदूषितः सन्नैतत्पूतं पठति तस्य त्वग्दोषमपगम्य सूर्यसदृशकान्तिमिद्रुः  
करोतीति सूक्तं प्रशस्यते ॥ ॥७॥

पातमा व इति चयस्त्रिंशद्वचं द्वादशं सूक्तमांगिरसस्य श्रुतकचस्य सुकचस्य वार्षमिन्द्र । आषानुष्टुप शिष्टा  
गायत्र्यः । तथानुक्रम्यते । पातं चयस्त्रिंशच्छ्रुतकचः सुकचो वाषानुष्टुपिति ॥ महाप्रते गायचतुचाशीती  
प्रथमावर्जमिदं सूक्तमुत्तरं च । पंचमारण्यके सूचितं च । पुरुकृतं पुरुष्टुतमिति शेषः । ऐ० आ० ५. २. ३. इति ॥

प्रचने रात्रिपर्याये होतुः शस्त्र आवी तृची लोचियामुक्षौ । सूचितं च । पातमा वो अंधसोऽपातु शिष्यंधसः । आ० ६. ४. । इति ॥

पातमा वो अंधस इंद्रमभि प्र गायत । विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्वणीनां ॥१॥  
पातं । आ । वः । अंधसः । इंद्रं । अभि । प्र । गायत । विश्वऽसाहं । शतऽक्रतुं ।  
मंहिष्ठं । चर्वणीनां ॥१॥

हे अस्त्रिजः वो युष्मदीयमंधसः सोमस्ययमममा पातमामिमुखेन पिबंतं ॥ पा पानि । छांदसः शपो-  
मुक् । सर्वे विधयस्छांदसि विकल्पंत इति न लोकाव्ययेति षष्ठीप्रतिषेधमात्रः । ततोऽंधस इत्यस्य कर्तृकर्मणो-  
रिति षष्ठी ॥ सोममामिमुखेन पिबंतमेतादृशमिंद्रं प्र गायत । प्रकर्षेणामिद्रुत । कीदृशं । विश्वसाहं सर्वेषां  
शत्रूणामभिभवितारं सर्वेषां भूतजातानां वा अत एव शतक्रतुं बहुविधप्रज्ञानं बहुविधकर्माणां वा चर्वणीनां  
मनुष्याणां मंहिष्ठं धनस्य दातुतमं । यद्वा । यजमानानां यष्टव्यत्वेन पूजनीयमिंद्रं गायतेति समन्वयः ॥

पुरुहूतं पुरुहुतं गाथान्यं सनश्चुतं । इंद्र इति ब्रवीतन ॥२॥  
पुरुऽहूतं । पुरुऽस्तुतं । गाथान्यं । सनऽश्चुतं । इंद्रः । इति । ब्रवीतन ॥२॥

हे अस्त्रिजयमानाः पुरुहूतं यज्ञेषु बहुमिराहूतं पुरुहुतं बहुभिः लोचशस्त्रादिभिः सुतं अत एव गाथान्यं  
गाथायोग्यं गातव्यं सनश्चुतं सनातनतया प्रसिद्धं एवंविधं देवमिंद्र इति यूयं ब्रवीतन । ब्रूयात ॥ ब्रूय व्यक्तायां  
वाचीत्यस्य लोटि व्यत्ययेन धमस्त्वनादेशः । अत एव गुणः ॥

इंद्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः । महौ अभिज्ञा यमत् ॥३॥  
इंद्रः । इत् । नः । महानां । दाता । वाजानां । नृतुः । महान् । अभिऽज्ञु । आ । यमत् ॥३॥

इंद्र इत्युर्वोक्तलक्षण इंद्र एव नोऽस्मभ्यं महानां महतां वाजानामन्नानां । यद्वा । महानां ॥ वर्णव्यत्ययः ॥  
मघानां धनानां वाजानामन्नानां च । दाता भवतु । कीदृशः । नृतुः ॥ नृतिशृङ्गोः कूः । उ० १. ९३. । इति  
कूपप्रत्ययः । इत्यस्मच्छांदसः ॥ सर्वस्य नर्तयिता । यद्वा ॥ नृ नये । औणादिकसुप्रत्ययः । धातोर्इत्यस्मच्छांदसः ॥  
लोतुभ्यो नवादिनेता । अत एव महान् स इंद्रोऽभिज्ञस्वमिगतवानुक्रमस्यभमा यमत् । अयच्छतु । ददातु ।  
यद्वा । स इंद्रोऽभिज्ञस्वमिगतवानुक्रमस्यभमा यमत् । अयच्छतु । ददातु । यद्वा । स इंद्रोऽभिज्ञस्वमिगतवानुक्रमस्यभमा यमत् । अयच्छतु । ददातु ।

अपातुं शिष्यंधसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः । इंदोरिद्रो यवाशिरः ॥४॥  
अपात । ऊं इति । शिप्री । अंधसः । सुऽदक्षस्य । प्रऽहोषिणः । इंदोः । इंद्रः ।  
यवऽआशिरः ॥४॥

शिप्री । शिप्रे हनू नासिके वा । शोभनहनः । यद्वा । शिप्राः शीर्षणाः । सुशिरस्त्राणः । स इंद्र एव प्रहो-  
षिणः प्रकर्षेण देवान्हविर्भिर्जुहुतः सुदक्षस्यैतन्नामकस्यैः संबंधि यवाशिरः ॥ श्रीरू पाप्ति । आरूपपूर्वस्त्रापसृधि-  
यामानुश्रुत्यादिना धातोः शिरादेशः ॥ यवैरामिश्रितं यवैः सह पक्कमिंदोः सर्वतः पापेषु चरदंधसः सोमस्य-  
यमममपात् । अपिबत । यद्वा । अस्य सोमस्य भागमिंद्रार्थं परिकल्पितं सोमांशमपिबत । उ इत्यवधारणे ॥

तम्वभि प्रार्चतेद्रं सोमस्य पीतये । तदिह्यस्य वर्धनं ॥५॥  
तं । ऊं इति । अभि । प्र । अर्चत । इंद्रं । सोमस्य । पीतये । तत् । इत् । हि ।  
अस्य । वर्धनं ॥५॥



इ अस्मिन् तसु तमेवेन्द्रमभ्यामिमुख्येन प्रार्थत । प्रकर्षेण क्षुत । किमर्थं । सोमस्य पीतयेऽपानस्य सोम-  
पानाय । किमर्थं सोमपानयेति विशेष्यते तदाह । तदित्तत्सोमपानमेवास्तेन्द्रस्य वर्धनं वर्धकं भवति खनु ।  
तस्मात्सोमपानवर्धयेत्य प्रार्थत ॥ १५॥

अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा । विश्वाभि भुवना भुवत् ॥६॥

अस्य । पीत्वा । मदानां । देवः । देवस्य । औजसा । विश्वा । अभि । भुवना । भुवत् ॥६॥

देवो योतमान इन्द्रोऽस्मास्माभिर्दीयमानस्य सोमस्य मदानां मदकराजसाम् पीत्वा पानं कृत्वा । यद्वा ।  
अस्मैतं सोमं पीत्वा तथा मदानां मदसाधनादीनि भक्षयित्वा । देवस्य गृहेषु शोभमानस्य यद्वा देवनशीलस्य  
देवैः आत्म्यमानस्य सोमस्य पानजातेनौजसा बलेन विश्वा भुवना सर्वाणि भुवनानि भूतवातान्यभि भुवत् ।  
अभिभवति । सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार । अ० २. १५. २. । इत्यादिषु सोमपानमदे सर्वाणि वृषहजनादि-  
कर्माणि चकारेत्त्विवमचापि सर्वाणि भूतानि भुवनादीनि कर्माण्यकार्षीदिति ॥

प्रथमे पर्याये होतुः शस्त्रे त्वसु वः सचासाहमित्यादिसूक्तशेषः । सूचितं च । त्वसु वः सचासाहमिति  
सूक्तशेषोऽभि त्वं मेघं । आ० ६. ४. । इति ॥ अग्नोर्यामेऽच्छावाकातिरिक्तोक्त्ये त्वसु वः सचासाहमिति तृचो  
वैकल्पिकः सोषियः । सूचितं च । त्वसु वः सचासाहं सचा ते अग्नौ छष्टय इति वा सोषियानुसूयी । आ० ९. ११. ।  
इति ॥ व्यूहस्य दशराजस्य चतुर्थेऽहनि निष्केवस्य एष एष तृचो निविज्ञानीयः । सूचितं च । इमं नु मायिनं  
अये त्वसु वः सचासाहं । आ० ८. ८. । इति ॥

त्वसु वः सचासाहं विश्वासु गीर्ध्वार्यतं । आ च्यावयस्यूतये ॥७॥

त्यं । ऊं इति । वः । सचाऽसहं । विश्वासु । गीर्ध्वु । आऽयतं । आ । च्यावयसि । ऊतये ॥७॥

यजमानः स्तोतारं संबोधाह । हे स्तोतः सचासाहं । सचाशब्दो बज्रवाचो । बह्वनामभिभवितारं । यद्वा ।  
शत्रुण स्वपक्षेन संगत्य जेतारं । वो युष्मदीयेषु विश्वासु गीर्ध्वु सर्वेषु स्तोत्रेष्वार्यतं विष्कृतं । सर्वेन्द्र एव क्षूयते ।  
तस्मात्तेषु विततं त्वं । च इत्यवधारणे । तमेवेन्द्रमूतयेऽस्यद्रवणाया च्यावयसि ॥ चुरं चुरं गती ॥ तदीयैः  
स्तोत्रैर्यज्ञं प्रत्यामिमुख्येनागमय ॥

युध्मं संतमन्वाणं सोमपामनपच्युतं । नरमवार्येकृतं ॥८॥

युध्मं । संतं । अन्वाणं । सोमऽपां । अन्पऽच्युतं । नरं । अवार्येऽकृतं ॥८॥

एवंगुणोपेतमिन्द्रमागमयेत्याह । युध्मं शत्रूणां संग्रहार्थं संतं अत एवानर्वाणमन्यैरप्रत्युतमगमगतं तस्मा-  
दनपच्युतं संयामेषु शत्रुनिरहिंसितं सोमपां सोमस्य पातारमस्य सोमस्य मदे सत्यवार्यकृतं मटिरनिवारणीय-  
कर्माणं नरं सर्वस्य जेतारं । एतादृग्गुणोपेतमिन्द्रमागमयेति पूर्वैण सह संबंधः ॥

शिक्षां न इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ चृचीषम । अवा नः पार्ये धने ॥९॥

शिक्षां । नः । इन्द्र । रायः । आ । पुरु । विद्वान् । चृचीषम । अवा । नः । पार्ये । धने ॥९॥

हे चृचीषम क्षुत्वा सम । यद्वा ॥ रथं गतिर्हिंसादर्शनेषु । अस्मादमप्रत्ययः ॥ सर्वैर्मतस्य दर्शनीय वा ।  
उक्तगुणोपेतं हे इन्द्र विद्वान् सर्वविषयज्ञानवांस्तं शत्रुभ्य आहृत्य रायो धनानि नोऽकम्पं पुत्रं बज्रवारं शिष्यं ।  
प्रयच्छ । यद्वा । पुर्विति रायो विशेषणं । बह्वनि धनानि प्रयच्छ । किंच पार्ये । पाराः शत्रवः । तत्रमेव धनं  
आविहीर्यति शत्रुधने नोऽस्मान्न । रथं । शत्रुण इत्या तस्मिन्नास्मान् पात्रयेत्यर्थः ॥

अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥१०॥

अतः । चित् । इन्द्र । नः । उप । आ । याहि । शतऽवाजया । इषा । सहस्रऽवाजया ॥१०॥

हे इंद्र अतस्त्रिदसाद्युलोकादेव यदास्माच्छत्रुस्थानात् शतवाजया शतसंख्याकबलयुक्तेन तथा सहस्र-  
वाजया । वाजोऽस्रं । सहस्रसंख्यानवता बज्रबलाग्नेनेपात्ररसेन युक्तः सन्नोऽस्मानुपा याहि । अधिकमाभि-  
मुख्येनागच्छ ॥ ॥ १६ ॥

अयाम् धीवतो धियोऽर्वन्निः शक्र गोदरे । जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ११ ॥

अयाम् । धीऽवतः । धियः । अर्वन्तऽभिः । शक्र । गोऽदरे । जयेम । पृत्सु ।  
वज्रिऽवः ॥ ११ ॥

हे शक्र समर्थेन्द्र धीवतः ॥ कंदसौर इति मतुपो वत्सं ॥ कर्मकरणात्कर्मवतो वयं धियो युग्यज्यार्थं कर्मा-  
ख्ययाम् । गच्छाम् । ततो गोदरे ॥ दू विदारणे । अच इरितीप्रत्ययः ॥ गवां पर्वतानां दारयितेहं वज्रिवो  
वज्रवन् । यदा । वजनं गमनं वज्रः । तद्दानं कुनिशः । तद्वन्निद्रं पृत्सु संयामेष्वर्वन्निः सर्वतो गंतुमिच्छया  
दत्तैरथैर्जयेम । वयं तवादातुञ्जियामः ॥

वयमुं त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा । उक्थेषु रणयामसि ॥ १२ ॥

वयं । ऊं इति । त्वा । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । गावः । न । यवसेषु । आ । उक्थेषु ।  
रणयामसि ॥ १२ ॥

हे शतक्रतो बज्रप्रज्ञान बज्रकर्मन्वेन्द्र त्वा सर्वतः । उ इत्यवधारणे । त्वामेवोक्थेषु लोचगस्तादिकेषु वयं  
रणयामसि ॥ इदं तो मसिः ॥ आरणयामः । शब्दयामः । रमयाम इत्यर्थः । तच्च दृष्टांतः । गावो न यथा  
गोपालो यवसेषु तुणविशेषेषु गावो गाः पशुना समंताद्रमयति तद्वत् ॥ गाव इति सर्वाविधीनां कंदमि  
विकल्पितत्वादीत्वाभावः ॥

विश्वा हि मर्त्यत्वानुक्तामा शतक्रतो । अगन्म वज्रिन्नागसः ॥ १३ ॥

विश्वा । हि । मर्त्यऽत्वना । अनुऽकामा । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । अगन्म ।  
वज्रिन् । आऽगसः ॥ १३ ॥

हे शतक्रतो बज्रप्रज्ञेन्द्र मर्त्यत्वना मर्त्यत्वानि ॥ मुपां मुनुगिति विभक्तेराज्ञादेशः । संज्ञापूर्वकस्य विधिरनि-  
त्यत्वाद्दीर्घाभावः ॥ विश्वा हि विश्वान्येव मर्त्यत्वान्यनुक्तामा कामानभिन्नापाननुगतानि । कामोपेतानीत्यर्थः ।  
मनुष्याद्येतानि कामयंत इत्यर्थः । तथा सति हे वज्रिन् वज्रवन्निद्रं वयमप्यागम आगंसनानि धनादिकामा-  
नगम्य । अवगच्छामः ॥ गमेर्लेटि वजनं कंदमीति शपो लुक् । खोद्येति मकारस्य नकारः ॥

ते सु पुत्र श्वसोऽवृचन्कामकातयः । न त्वामिंदाति रिच्यते ॥ १४ ॥

ते इति । सु । पुत्र । श्वसः । अवृचन् । कामऽकातयः । न । त्वां । इन्द्र । अति । रिच्यते ॥ १४ ॥

हे श्वसम्युच वन्निमिन्मृत्युत्पन्नत्वाद्बलस्य पुत्रेन्द्र कामकातयः ॥ कै जै रे शब्दे ॥ कामपराः कातयः शब्दा  
येषां भवन्ति ते तथोक्ताः । तादृशा मनुष्यान्त्य त्वयि स्ववृचन् । स्वस्वकामाभिपूरणार्थं मुष्टु वर्तन्ते । तस्मात्त्वत्-  
त्वानि कामोपेतानीत्युत्पन्नं । वृत्तु वर्तन्ते । लाङ् छांदमो विकरणस्य लुक् । वजनं कंदमीति बडागमः ॥ यत  
एवं ततो हे इंद्र त्वां कथिदपि देवां नाति रिच्यते । बलेन धनेन वातिरिक्तः समर्थो नास्ति ॥

स नो वृषन्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्वा । धियाविद्धि पुरंध्या ॥ १५ ॥

सः । नः । वृषन् । सनिष्ठया । सं । घोरया । द्रवित्वा । धिया । अविद्धि । पुरंऽध्या ॥ १५ ॥



हे वृषन् कामानां वर्धितरिद्रं स पूर्वोक्तलक्षणस्त्वं सनिष्ठया ॥ षण्णु दाने ॥ धनादेर्दानुतमया घोरया  
सपत्न्या मयकारिष्या अत एव द्रवित्वा द्रावयिष्या शृणुणां पलायिष्या ॥ द्रवतेरितुचप्रत्ययः ॥ पुरंध्या  
वज्रनां धारयिष्या धिया तादृशेन कर्मणा नोऽस्मान् समविद्धि । समंतात्पालय ॥ अवतेर्लोडि वज्रं छेद-  
सीति शपो जुक् । वज्रलघदानात्सिप इडागमः ॥ अस्मान्धनदानादिना रचेत्यर्थः ॥ ११७ ॥

यस्ते नूनं शतक्रतुविंदं द्युस्मितमो मदः । तेन नूनं मदे मदेः ॥११६॥

यः । ते । नूनं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । इंदं । द्युस्मितमः । मदः । तेन । नूनं ।  
मदे । मदेरिति मदेः ॥११६॥

अत्र सोमः स्तूयते । हे शतक्रतो शतविधप्रधानं हे इंद्रं द्युस्मितमो यद्यस्मितमो यो मदः । मावांत्वनेनेति  
मदः सोमः । यः सोमो नूनं पुरा ते त्वदर्थमस्माभिरभिषुतोऽस्ति तेनास्माभिः प्रदीयमानेन सोमेन नूनमिदानीं  
मदे तत्पानेन मदे तव संजाति सत्यस्मानपि मदेः । धनादिदानेन त्वं मादय ॥ मदी हर्षे ॥ अचांतर्णीतस्त्वर्थः ।  
वज्रलघमिति शप ॥

यस्ते चित्रश्रवस्तमो य इंद्रं वृचहंतमः । य ओजोदातमो मदः ॥११७॥

यः । ते । चित्रश्रवःऽतमः । यः । इंद्रं । वृचहन्ऽतमः । यः । ओजःऽदातमः । मदः ॥११७॥

हे इंद्रं चित्रश्रवस्तमोऽतिशयेन नानाविधकीर्तियो मदः सोमस्ते त्वदर्थमस्माभिरभिषुतः । यः सोमो  
वृचहंतमोऽतिशयेन पापानां हंता । किंच यः सोम ओजोदातमोऽतिशयेन वज्रस्य दाता । तेनास्माभिर्दीय-  
मानेन सोमेन त्वं माधेरिति पूर्वेण संबंधः ॥

विद्महि हि यस्ते अद्रिवस्त्वादत्तः सत्य सोमपाः । विश्वांसु दस्म कृष्टिषु ॥११८॥

विद्म । हि । यः । ते । अद्रिऽवः । त्वाऽदत्तः । सत्य । सोमऽपाः । विश्वांसु । दस्म ।  
कृष्टिषु ॥११८॥

हे अद्रिवः । अद्रिवज्रः । तद्वन् हे सत्य यथार्थकर्मन् सोमपाः सोमस्य पातर्दस्य दर्शनीय यद्वा शृणुणा-  
मुपचपयितरिद्रं विश्वांसु कृष्टिषु सर्वेषु सोमस्य दातृषु यजमानेषु त्वादत्तस्त्वया दत्तस्ते त्वदीयो यो रथिरस्मि  
तं विद्म हि । यद्यारो वयमपि जानीम एव । यद्वा । हे इंद्रं सर्वेषु यष्टृषु मध्ये वयं ते त्वदीयमेव नान्यदीय-  
मिति तं सोमं जानीम एव यः सोमस्त्वादत्तोऽस्माभिस्त्वदर्थं दीयते ॥ अत्र त्वादेशश्चांदसः ॥

प्रथमे पर्यायेऽच्चावाकस्तेन्द्राय मदने सुतमिति स्तोत्रियः । सूचितं च । इन्द्राय मदने सुतमिंद्रमित्राधिपौ  
बृहत् । आ० ६. ४. इति ॥

इंद्राय मदने सुतं परि षोभंतु नो गिरः । अर्कमर्चंतु कारवः ॥११९॥

इंद्राय । मदने । सुतं । परि । षोभंतु । नः । गिरः । अर्कं । अर्चंतु । कारवः ॥११९॥

मदने ॥ मायतिः कानिप ॥ मदनशीलयेन्द्राय तदर्थं सुतमभिषुतं सोमं नोऽस्मादीया गिरः स्तुतिप्रणया  
वाचः परि षोभंतु । स्तोमतिः स्तुतिकर्मा । परितः सोमं कुर्वंतु । ततः कारवः स्तुतिकारिणः स्तोतारवाकं  
सर्वैरर्चनीयं सोममर्चंतु । पूजयंतु ॥

यस्मिन्विष्या अधि श्रियो रणंति सप्त्र संसदः । इंद्रं सुते हवामहे ॥२०॥

यस्मिन् । विष्याः । अधि । श्रियः । रणंति । सप्त्र । संऽसदः । इंद्रं । सुते । हवामहे ॥२०॥

यस्मिन्निद्रे विद्याः सर्वाः भियः कांतयोऽध्यधिकं भवन्ति । अतिशयेन तेजसीत्यर्थः । किंच सप्त सप्त-  
संख्याकाः संसदः । सम्यग्यज्ञेषु कर्मकरणार्थं सीदन्तीति संसदो होचकाः । यस्मिन्त्यति सोमप्रदानार्थं रजते ।  
यद्वा । यं शब्दयन्ति कुर्वन्ति । तं पूर्वोक्तवचनमिन्द्रं कुते सोमोऽभिपुते सति इवामहे । ययं सोमपापापाह-  
यामः ॥ १८ ॥

चिकटुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमन्तत । तमिद्वर्धेतु नो गिरः ॥ २१ ॥

चिऽकटुकेषु । चेतनं । देवासः । यज्ञं । अन्तत । तं । इत् । वर्धेतु । नः । गिरः ॥ २१ ॥

हे देवासो देवाः चिकटुकेष्वामिन्नविकेष्वहःसु । ज्योतिर्गौराशुरिति चिकटुकाः । तेषु चेतनं । चित्ती  
संज्ञाने ॥ चेतन्ति आनन्दनेन स्वर्गादिकमिति चेतनः । ज्ञानसाधनं यज्ञमन्तत । अतन्वत । स्त्रीः स्त्रीः कर्मणिः  
पाचनेन विचारितवन्तः ॥ तनु विचारि । सकिं यज्ज्वलं हृदसीति पिशरयस्य कुक् । तनिपत्योऽहृदसीत्युपधा-  
कोपः ॥ तमिद्वर्धेतु नोऽस्माकं गिरः कुतिलपया पाचो वर्धेतु । वर्धयंतु ॥

आ त्वा विशन्विद्वः समुद्रमिव सिंधवः । न त्वास्मिन्द्राति रिच्यते ॥ २२ ॥

आ । त्वा । विशन्तु । इद्वः । समुद्रंऽइव । सिंधवः । न । त्वां । इन्द्र । अति । रिच्यते ॥ २२ ॥

हे इन्द्र इद्वः स्वन्तोऽस्माभिर्दीयमानाः सोमास्त्वा त्वामा विशन्तु । सर्वतः प्रविशन्तु । तप इष्टान्तः ।  
समुद्रमिव सिंधवः खंदमाना गयो यथा समुद्रं जलाशयं सर्वतः प्रविशन्ति तद्वत् । यत एवं तस्मात् हे इन्द्र  
त्वां कश्चिदपि देवो बलेन धनेन वा नाति रिच्यते । नातिरिक्तोऽस्ति । सामर्थ्यपांस्त्वत्तोऽधिको नास्तीत्यर्थः ॥

विष्यकथं महिना वृषभभक्षं सोमस्य जागृवे । य इन्द्र जठरेषु ते ॥ २३ ॥

विष्यकथं । महिना । वृषभं । भक्षं । सोमस्य । जागृवे । यः । इन्द्र । जठरेषु । ते ॥ २३ ॥

हे वृषभ कामानां वर्धितर्ह्यं जागृवे जागरणशोकेन्द्र त्वं तस्य सोमस्य मघं पानं प्रति महिना स्वमहिष्या  
विष्यकथं । सर्वतो व्याप्तवानसि ॥ अवेर्बिडि यथाभासस्योमयेषां । पा० ६. १. १७. । एति संस्वारणं ॥ हे इन्द्र  
यः सोमस्य जठरेषु प्रविशति तस्य पानं व्याप्तवानसीति शेषः ॥

अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृचहन् । अरं धामभ्य इद्वः ॥ २४ ॥

अरं । ते । इन्द्र । कुक्षये । सोमः । भवतु । वृचऽहन् । अरं । धामभ्यः । इद्वः ॥ २४ ॥

हे वृचहन् वृचस्त्रापामावरकस्त्रासुरस्य पापस्य वा इतर्ह्यं इन्द्र सोमोऽस्माभिर्दीयमानस्य तव कुक्षयेऽरमणं  
पर्याप्तो भवतु । किंचेद्वः सर्वतः चरणशोकाः सोमास्त्राव धामभ्यो जागाविधेभ्यः शरीरेभ्यस्तव तेजोभ्यो  
वारमणं पर्याप्ता भवन्तु । अनेन तेजसा हविर्मात्मकोति सूचितं । अस्मदीयाः सोमा एव तव कुक्षये देहिभ्यो  
ऽपि पर्याप्ता भवन्तु नान्यदीया इति भावः ॥

अरमश्चाय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ २५ ॥

अरं । अश्चाय । गायति । श्रुतऽकक्षः । अरं । गवे । अरं । इन्द्रस्य । धाम्ने ॥ २५ ॥

श्रुतकक्षो नामविर्गवाश्चादिन्द्रं स्तौति । अयं श्रुतकक्ष एतन्नामकं अचिरवर्धयेद्विण दीयमानायाश्चाथैत-  
दर्धमरमणं गायति । इन्द्रविषयं स्तौत्रं करोति । तस्मा गवेऽरमणं गायति । इन्द्रस्तेन्द्रकर्तृकाय धाम्ने गृहाय  
तदर्थं चारं पर्याप्तं स्तौति । यदश्चादिकमिन्द्रः प्रयच्छति तस्य गायतीति । यद्वा ॥ इन्द्रस्तेति कर्मणि षष्ठी ॥  
गवादिभ्योऽर्थमिन्द्रं स्तौति ॥



अरं हि ष्मा सुतेषु णः सोमेष्विन्द्र भूषसि । अरं ते शक्र दावने ॥२६॥

अरं । हि । स्म । सुतेषु । नः । सोमेषु । इन्द्र । भूषसि । अरं । ते । शक्र । दावने ॥२६॥

हे इन्द्र सुतेष्वभिषुतेषु जोऽस्यदीयेषु सोमेषु । हि ज्येष्ठवधारणे । त्वमेव तेषां पानेऽसं पर्याप्तो भूषसि । भवसि । यद्वा । सोमेष्वाभिषुतेषु सत्सु जोऽस्यासं पर्याप्तं धनं भूषसि ॥ मू प्राप्नो ॥ त्वं प्रापय । तथा भवति हे शक्र समर्थेन्द्र दावने धनादिकस्य दात्रे ते तुभ्यमस्याभिर्दीयमानाः सुोमा अरमन् पर्याप्ता भवन्तु ॥ १९॥

पराकाक्षाच्चिदद्रिवस्त्वां नक्षत नो गिरः । अरं गमाम ते वयं ॥२७॥

पराकाक्षात् । चित् । अद्रिऽवः । त्वां । नक्षत । नः । गिरः । अरं । गमाम । ते । वयं ॥२७॥

हे अद्रिवो वज्रवसिन्द्र जोऽस्यदीया गिर इतो निर्गताः सुतयः पराकाक्षात् । चिद्व्यर्थः । अतिदूरादपि त्वां नक्षत । व्याप्नुवन्तु । किमुत समीपात्त्वामभ्युन्तामिति ॥ नक्षतेर्वाग्निर्कर्मणो नक्षतेर्वा क्षेपि सिपि रूपं ॥ एवं सति क्षोतारो वयं ते त्वदीयं धनमरमन् पर्याप्तं गमाम । त्वत्तो गच्छाम ॥

आभिन्नविकेषूक्येषु तृतीयसवने ब्राह्मणाच्छ्विन एवा ह्यसि वीरयुरिति वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूचितं च । एवा ह्यसि वीरयुरेवा ह्यस्य भूगता । आ० ७. ८. । इति ॥

एवा ह्यसि वीरयुरेवा अरं उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥२८॥

एव । हि । असि । वीरऽयुः । एव । अरं । उत । स्थिरः । एव । ते । राध्यं । मनः ॥२८॥

हे इन्द्र त्वं वीरयुर्वीरान्युद्यकर्मणि समर्थान् इदं कामयमान एवासि । भवसि खलु । हि प्रसिद्धो । अत एव त्वं अरः सामर्थ्यानेव भवसि । उतापि च स्थिरः संयामे धैर्यवान् भवसि । एकच स्थितैव शत्रून् संप्रहर-  
तीत्यर्थः । एवं सति ते तव मनो राध्यं कुतिभिराराधनीयमेव यतोऽनेन मनसा त्वं शत्रुवधं संयामे धैर्यादिकं च करोषीति । तव मन एव सर्वैः सुखमित्यर्थः ॥

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥२९॥

एव । रातिः । तुविऽमघ । विश्वेभिः । धायि । धातृभिः । अध । चित् । इन्द्र ।

मे । सचा ॥२९॥

हे तुविमघ । तुविरिति वज्रनाम । वज्रधनवसिन्द्र विश्वेभिर्विधिधातृभिः कर्माधारकैः । यद्वा । देवानां हविर्दानेन पोषयितृभिः सर्वैर्यजमानैस्तव रातिर्गवाश्चधनादिदानं धायि । तैर्धार्यत एव ॥ दधातुर्भुक्ति कर्मणि रूपं ॥ चिदेवार्थः । अधात एव हे इन्द्रैवंविधं त्वं मे यदुर्ममापि सचा धनादिदानेन कर्मसहायो भव ॥

मो षु ब्रह्मेव तंद्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३०॥

मो इति । सु । ब्रह्माऽइव । तंद्रयुः । भुवः । वाजानां । पते । मत्स्व । सुतस्य ।

गोऽमतः ॥३०॥

हे वाजानां पतेऽज्ञानां पते बलानां वा हे इन्द्र तंद्रयुर्निष्कारणं निवृत्तकर्मवत्त्वादास्ययुक्तो ब्रह्मेव ब्राह्मण इव । अद्यापि तद्वदर्थं भाष्यते । नि० ६. ३९. । इति वास्तोक्तमनुक्त्य तंद्रयुक्त इत्युक्तं । अथवा यागा-  
दिकर्मपरित्यागेनास्यमिच्छन्नासिक्तो ब्राह्मण इव त्वं मो षु भुवः । सुष्ठु मा भवः । सर्वदास्यकर्मन्वितो भवेत्वाशासनं । तदेवाह । सुतस्याभिपुतस्य ततो गोमतो गन्धेन वीरेण दध्ना वा मिश्रणवतः सोमस्य पानेन मत्स्व । भाष्य । इष्टो भव ॥

मा न इन्द्राभ्याऽदिशः सूरौ अकुष्वा यमन् । त्वा युजा वनेम तत् ॥ ३१ ॥  
 मा । नः । इन्द्र । अभि । आऽदिशः । सूरः । अकुषु । आ । यमन् । त्वा । युजा ।  
 वनेम । तत् ॥ ३१ ॥

हे इन्द्र आदिश आदिष्टारः समंतादायुधान्यतिविस्तृतः सूरः ॥ इ गतौ ॥ सर्वत्र सरणशीला राक्षसा  
 अकुषु राक्षस्य दिवापि नोऽस्माकं माभ्या यमन् । अभिसुख्येन मा नियंतारो भवन्तु । यथागतास्येत् तदा  
 तद्रक्षःकुलं त्वा त्वया युजा सहायेन वयं वनेम । हिंसाम ॥ अथ कथं कथं कथं हिंसार्था वनु चेत्यत्र पठि-  
 तत्वाङ्गिभार्यः ॥

त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः । त्वमस्माकं तव स्मसि ॥ ३२ ॥  
 त्वया । इत् । इन्द्र । युजा । वयं । प्रति । ब्रुवीमहि । स्पृधः । त्वं । अस्माकं । तव । स्मसि ॥ ३२ ॥

हे इन्द्र त्वयेत् । इद्वधारणे । त्वयैव युजा सहायेन स्पृधः स्पर्धमानाञ्च चून्वयं प्रति ब्रुवीमहि । निराकु-  
 र्वीमहि । प्रतिवचनं निराकरणं । उत्तरार्धेनेन्द्रसाहाय्यमेव प्रतिपादयति । हे इन्द्र त्वमस्माकं भवसि । सुख-  
 स्तोतृयष्टयष्टयतया त्वमस्माकं भवसि वयं तव स्मसि । भवामः । तथारण्यकं । त्वमिदं सर्वं भवसि तव वयं  
 स्मः । त्वमस्माकमसीति तस्मात्त्वया सहायेन शत्रून् हन्यामेति ॥

त्वामिद्धि त्वायवोऽनुनोनुवतश्चरान् । सखाय इन्द्र कारवः ॥ ३३ ॥  
 त्वां । इत् । हि । त्वाऽयवः । अनुऽनोनुवतः । चरान् । सखायः । इन्द्र । कारवः ॥ ३३ ॥

हे इन्द्र कर्मोपद्रवपरिहारादनंतरं त्वायवस्त्वां धनादिदानार्थं कामयमानाः अत एवानुनोनुवतः ॥ नीते-  
 र्यङ्लुगंतस्य शतरि रूपं ॥ अनुक्रमेण पुनःपुनः स्तुतिं कुर्वतः तस्मात्तव सखायः सखिभूताः कारवः स्तोतार-  
 स्त्वामित् । इद्वधारणे । त्वामेव चरान् । स्तुतिभिः परिचरन्तु खलु ॥ होति प्रसिद्धार्थः । चरतेलैव्यङ्गागमः ।  
 द्विधोगादनिघातः ॥ २० ॥

उद्देति चतुस्त्रिंशद्वचं त्रयोदशं सूक्तं सुकवस्त्वायं गायत्रमैन्द्रं । अंथा त्विन्द्रमुदेवताका । तथा चानुक्रांतं ।  
 उद्दे चतुस्त्रिंशत्सुकवोऽर्थेन्द्रार्भवीति ॥ द्वितीये पर्याये होतुः शस्त्र उत्तमावर्जमेतत्सूक्तं । सूचितं च । उद्देदमी-  
 त्युत्तमामुद्धरेत् । आ० ६. ४. इति ॥ महाव्रतेऽप्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सहोक्तः ॥ ज्योतिष्टोमे ब्राह्मणाच्छं-  
 सिशस्त्र आशस्तुचः । सूचितं च । उद्देदमीति तिस्र इन्द्र क्रतुविदं सुतमिति याज्या । आ० ५. १०. इति ॥  
 तथाप्नोर्धामे मैत्रावरुणातिरिक्तोक्त्वेऽयं तृचोऽनुरूपः । सूचितं च । यदयं कश्च वृचहन्नुद्देमि श्रुतामघमा नो  
 विश्वाभिः । आ० ९. ११. इति ॥

उद्देदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसं । अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥  
 उत् । घ । इत् । अभि । श्रुतऽमघं । वृषभं । नर्यऽअपसं । अस्तारं । एषि । सूर्य ॥ १ ॥

सुकव इन्द्रगुणानाह । हे सूर्य । द्वादशसु मानुष्विन्द्रोऽपि सूर्यात्मना पठितः । तस्मात्सूर्यात्मकं सुवीर्यं हे इन्द्र  
 श्रुतामघं सर्वदा देयत्वेन विख्यातधनं अत एव वृषभं याचमानानां धनस्य वर्षितारं नर्यापसं । नरहितं नर्यं ।  
 नरहितकर्माणमस्तारं दानशीलमार्थवतं एतादृशानुभावमभित उद्देपि । इद्वधारणे । त्वमेव तस्य यज्ञं  
 सूर्यात्मनोन्नतोऽसि । चेति प्रसिद्धा ॥

नव यो नवतिं पुरो विभेदं वाहोऽजसा । अहिं च वृचहावधीत् ॥ २ ॥  
 नवं । यः । नवतिं । पुरः । विभेदं । वाहुऽओजसा । अहिं । च । वृचऽहा । अवधीत् ॥ २ ॥



य इन्द्रो नव नवति नवनवतिसंख्याका एकोनशतसंख्याकाः शंबरस्य पुरः पुरीर्बाह्योऽवसा स्वबाह्यबलेनैव विभेद दिवोदासाय भिनत्ति स्म । तथा च मंचः । दिवोदासाय नवति च नवेन्द्रः पुरो वीरच्छंबरस्य । अ० २. १९. ६. इति । स वृचहा वृचामुरस्य हंता स इन्द्रोऽहिं च केनाप्यहंतव्यं मेघमपामावरकं वृचं वावधीत । स इन्द्रोऽस्माकं धनं ददात्वित्युत्तरेण संबंधः ॥

स न इन्द्रः शिवः सखाश्चावन्तोमद्यवमत् । उरुधारिव दोहते ॥३॥

सः । नः । इन्द्रः । शिवः । सखा । अश्वऽवत् । गोऽमत् । यवऽमत् । उरुधाराऽइव । दोहते ॥३॥

स पूर्वोक्तलक्षणः शिवः कल्याणतमः सखा यष्टयष्टव्यस्रोतुमुत्थलचणेन संबंधेनास्माकं मित्रभूतः एतादृश इन्द्रोऽश्वदद्युक्तं गोमत् पश्चादिसहितं यवमत् ॥ अथवादिभ्यः । पा० ८. २. ९. इति वप्रतिषेधान्नतुपो यत्नाभावः ॥ यव इति धान्यविशेषः । धान्ययुक्तं धनं नोऽस्मभ्यं दोहते । दोग्धु । ददातु । तव दृष्टांतः । उरुधारेव प्रभूतपयोधारा यदा बहूनां पोषयित्री गौर्यथा वत्सस्य पयो दोग्धि तथा प्रभूतं धनमस्माकं दोग्धु । ददातु ॥ दुहेलैवडागमः ॥

अग्नोर्यामे मेवावरुणातिरिक्तोकथ्ये यदवेति नृचः स्तोत्रियः । सूचं तु पूर्वेण नृचिन सहोदाहृतं ॥

यद्य कच्च वृचहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वे तदिन्द्र ते वशे ॥४॥

यत् । अद्य । कत् । च । वृचऽहन् । उत्ऽअगाः । अभि । सूर्य । सर्वे । तत् । इन्द्र । ते । वशे ॥४॥

हे वृचहन् वृचस्यापामावरकस्य मेघस्य हंतर्हे सूर्य सूर्यात्मकेन्द्र अवाप्सिन्दिने यत्कच्च यत्किंचित्यदार्थजा- तमभ्यभिमुखोक्त्योदगाः ॥ इण् गर्ता । उत्पूर्वः । तस्य जुडि गादेशः ॥ स्वतेजसोन्नतः प्रादुर्भूतोऽसि तदा तत्सर्वं स्थावरजंगमात्मकं जगत्ते तव वशे भवति । त्वदधीन भवति । उदिते सूर्ये त्वदर्थं प्राक्कर्म कुर्वति जुडति च ॥

यदा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत्सत्यमित्तव ॥५॥

यत् । वा । प्रऽवृद्ध । सत्ऽपते । न । मर । इति । मन्यसे । उतो इति । तत् । सत्यं । इत् । तव ॥५॥

वाशब्दः समुच्चये । अपि च हे प्रवृद्ध स्ववलेन प्रवर्धमान सत्पते सता पत स्वप्रकाशाधिक्येन सतां नव- चाणां पते हे इन्द्र न मरा इति मनुष्यवद्वार्धकेनाहं न म्रिय इति यद्यदि मन्यसे बुध्यसे ॥ मृद् प्राणत्वान्ते । ज्येष्ठडागमः । वेतोऽन्यत्रेत्येकारः ॥ उतो अपि च तव तन्न श्रिय इति मननं सत्यमित्यथार्थमेव । इन्द्रो न म्रियत इत्यर्थे मंचांतरं । गह्वस्या अपरं च न जरसा मरते पतिः । अ० १०. ८६. ११. इति ॥ ॥२१॥

ये सोमांसः परावति ये अर्वावति मुन्विरे । सर्वोस्तौ इन्द्र गच्छसि ॥६॥

ये । सोमांसः । पराऽवति । ये । अर्वाऽवति । मुन्विरे । सर्वान् । तान् । इन्द्र । गच्छसि ॥६॥

हे इन्द्र ये सोमांसः सोमाः परावति विप्रकृष्टेऽतिदूरदेशे ये सोमा अर्वावत्यंतिकतमे देशे च मुन्विरे ॥ कंदसि द्विर्वचनस्य विकल्पितत्वाद्च द्विर्वचनाभावः ॥ ये भोमा अस्त्रिगभरभिपूयंते सर्वान् दूरे समीपे चामिषूयमाणांस्तान् सोमान् गच्छसि । तत्पानार्थं युगपत्प्राप्नोषि । अनेनेन्द्रस्य सर्वगतत्वं सूचितं च ॥

अग्नोर्यामे ब्राह्मणाच्छंसिनोऽतिरिक्तोकथ्ये तमिन्द्रं वाजयामसीति स्तोत्रियमुचः । सूचितं च । तमिन्द्रं वाजयामसि मह्यं इन्द्रो य औजसा । आ० ९. ११. इति ॥ व्यूहस्य दशरात्रस्य पंचमेऽहनि निक्लेवत्येऽयमेव नृचो निविद्वानीयः । सूचितं च व्यूहस्येदिति खंडे । मरत्वाँ इन्द्र मीढुस्तमिन्द्रं वाजयामसि । आ० ८. ८. इति ॥

तमिंद्रं वाजयामसि महे वृचाय हंतवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥७॥

तं । इंद्रं । वाजयामसि । महे । वृचाय । हंतवे । सः । वृषा । वृषभः । भुवत् ॥७॥

यजमाना आजः । तं पूर्वोक्तलक्षणमिंद्रं वाजयामसि । वाजयामः । सोमेन क्षुतिभिर्वाजयंतं वसवंतं कुर्मः । किमर्थं । महे महते वृचायापामावरकं वृचासुरं हंतवे हंतुं । सोमपात्रेण मत्तः क्षुतिभिर्वा क्षुतः सन् वृषा धनानां सेक्ता दाता स इंद्रो वृषभोऽस्माकं सोतृणां सोमस्य दातृणां धनादिसेचको दाता भुवत् । भवतु ॥

इंद्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्यूक्षी द्योकी स सोम्यः ॥८॥

इंद्रः । सः । दामने । कृतः । ओजिष्ठः । सः । मदे । हितः । द्यूक्षी । द्योकी । सः । सोम्यः ॥८॥

स इंद्रो दामने सोतृभ्यो धनादिदानायैव कृतः । प्रजापतिना कष्टः । किंचिद्विष्ठ ओजस्वितमः स एवेन्द्रः मदे । मायत्यनेनेति मदः सोमः । तस्मिंश्च प्रजापतिना कष्टिकाले हितः । सोमपात्रार्थं च निहित इत्यर्थः । द्यूक्षी । द्यूक्षं योततेत्यर्थो वाक्त्रं वेति । यशस्व्यज्ञवान्वा एव द्योकी । द्योक्ताः क्षुतिः । तद्वान् स इंद्रः सोम्यः सोमाहो भवति ॥

गिरा वज्रो न संभृतः सर्वलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥९॥

गिरा । वज्रः । न । संभृतः । सर्वलः । अनपच्युतः । ववक्षे । ऋष्वः । अस्तृतः ॥९॥

गिरा क्षुतिलक्षणा वाचा सोतृभिः संभृत उत्पादितक्षीरणीकृतः । तप इष्टांतः । वक्षो न । वक्ष आयुधं । तत्कर्तुमिर्निश्चितधारो यथा भवति तीक्ष्णीक्रियते तद्वत् सोतृभिः क्षुत्या संभृतः अत एव सर्वलो वसवहितः तस्मादनपच्युतः परैरप्रच्युतः । अनभिगत इत्यर्थः । तादृश ऋष्वो महान् दीप्यमानो वाक्पुत्रो युधे शत्रुभिर-  
हिंसित इंद्रो ववक्षे । सोतृभ्यां धनादिकं वोढुमिच्छति ॥

दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इंद्र गिर्वणः । त्वं च मघवन्वशः ॥१०॥

दुःस्रो । चित् । नः । सुगं । कृधि । गृणानः । इंद्र । गिर्वणः । त्वं । च । मघवन् । वशः ॥१०॥

हे गिर्वणो गीर्मर्वणनीयेंद्र गृणानः सोतृभिः सुयमानस्त्वं नोऽस्माकं दुर्गे चिह्नगमिऽपि मार्गे सुगं सुवर्गं पंचानं कृधि । तथा कुर्व । हे मघवन्धनवन्निंद्र त्वं । चशब्दचेदर्थे । यदि वशः सोमपात्रार्थं तत्प्रदातृनस्माकामयेथाः तदा पंचानं शोभनगमनं दुःख्य ॥ षष्ठेऽलंकारागमः । चशब्दयोगादनिघातः ॥ ॥२२॥

यस्य ते नू चिदादिशं न मिनन्ति स्वराज्यं । न देवो नाग्निगुर्जनः ॥११॥

यस्य । ते । नू । चित् । आदिशं । न । मिनन्ति । स्वराज्यं । न । देवः । न ।

अग्निऽगुः । जनः ॥११॥

हे इंद्र यस्य ते तवादिशं । आदिशति गच्छति सर्वज्ञानयतीत्यादिग्वक्षं ॥ श्रीणादिक. करणे प्रत्ययः ॥ यद्वा । आदेश एवादिशाच्चा ॥ भावे क्तिप् ॥ चदीयामाशां दू । यदिदानीं पुरा च न मिनन्ति केचिदपि न हिंसन्ति । किंच स्वराज्यं तव स्वभूतं राज्यं च । यद्वा । स्वशब्देन स्वर्गोऽभिधीयते । स्वर्गस्त्वामित्वं च । न हिंसन्ति । हिंसकाणाह । न देवो त्वदन्वो देवोऽपि च तथाप्यग्निगुरधृतगमनः संयामे स्वरमाप्नो वीरोऽपि न च जनः प्रादुर्भूतो मनुष्योऽपि । एते न मिनन्तीत्यर्थः ॥



अथा ते अप्रतिष्कृतं देवी शुष्मं सपर्यतः । उभे सुशिप्र रोदसी ॥ १२ ॥

अथ । ते । अप्रतिऽस्कृतं । देवी इति । शुष्मं । सपर्यतः । उभे इति । सुऽशिप्र ।  
रोदसी इति ॥ १२ ॥

हे सुशिप्र सुहृदो श्रीमन्निरस्त्राण्येन्द्र अथापि च देवी देव्यौ स्वतेजसा दीप्यमाने उभे रोदसी द्वावापृथि-  
व्यावप्रतिष्कृतं ॥ स्कु इति सौचो धातुः स्तम्भे वर्तते ॥ शुशुभिरप्रतिरोधनीयं शुष्मं परवलशोषकं बलं सपर्यतः ।  
पूजयतः । स्वदधीनि एव भवतः ॥

त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुशत्पयः ॥ १३ ॥

त्वं । एतत् । अधारयः । कृष्णासु । रोहिणीषु । च । परुष्णीषु । रुशत् । पयः ॥ १३ ॥

अस्य सामर्थ्यमेवोपपादयति । हे इन्द्र कृष्णासु कृष्णवर्णासु गोषु तथा रोहिणीषु । वर्णादनुदात्तात्तोप-  
धात्तो नः । पा० ४. १. ३९. इति ङीप् ॥ रोहितवर्णासु च गोषु रुशत् ॥ रोचतेर्दोषिकर्मणः ॥ दीप्यमानं  
चेतमेतत्परिदृष्टमानं पयः क्षीरं त्वमधारयः । धारयसि । तस्मात्तद्वत् पूजयत इति समन्वयः ॥

वि यदहेरधं त्विषो विश्वे देवासो अक्रमुः । विदन्मृगस्य तां अमः ॥ १४ ॥

वि । यत् । अहेः । अथ । त्विषः । विश्वे । देवासः । अक्रमुः । विदत् । मृगस्य ।  
तान् । अमः ॥ १४ ॥

अथापि चाहिरहंतव्यस्य वृषासुरस्य त्विषक्षीजोरूपादुच्छ्वासास्त्रीताः यदा तस्य प्रभावेन परिगमिता विश्वे  
सर्वे देवासो देवा यद्यदा अक्रमुः विविधं पादविहरणमकुर्वन् । स्वस्थानं परित्यज्यान् देशमंगच्छन्निवर्त्यः ।  
तदानीं मृगस्य । एवं तान् भीषयितुं वृषो मृगरूपोऽभवत् । तद्रूपस्य संबंधमः सर्वतो गमनशीलं बलं तज्यातं  
मयं वा तान् सर्वान्देवान्विदत् । अविदत् । प्राप्नोदित्वर्थः । तस्मात्सुरस्त्रेन्द्रो निवारको हंतामपदित्यु-  
त्तरेण संबंधः ॥

आदु मे निवरो भुववृचहादिष्ट पौंस्यं । अजातशत्रुरस्तुतः ॥ १५ ॥

आत् । ऊं इति । मे । निऽवरः । भुवत् । वृचऽहा । अदिष्ट । पौंस्यं । अजातऽशत्रुः ।  
अस्तुतः ॥ १५ ॥

आत् । उ इत्यवधारणे । देवानां भीत्या सर्वतो गमनापंतरमेव मे क्षीतुशुत्यलक्षणेन संबंधेन मम संबंध-  
यमिन्द्रो निवरो वृषासुरस्य निवारयिता हंता भुवत् । अभवत् । ततो वृचहा वृचस्य हंतिद्रः पौंस्यं ॥ पुंसः  
कर्म पौंस्यं । यद्वा । स्त्रीपुंसाभ्यां । पा० ४. १. ८७. इति मवार्थे कञ् । नकारस्य यकारो वर्धयत्ययः । पुंसीद्रे  
भव ॥ यद्वा । बलनामितत् । स्वबलं । अदिष्ट । तस्य राज्ये दिशति । निदधाति । तद्राज्यं स्ववशमकरोदित्वर्थः ।  
ततःप्रभृतीन्द्रोऽजातशत्रुरनुत्पन्नशत्रुरस्तुतः संयामे परैरहंसितश्चागवत् ॥ २३ ॥

श्रुतं वो वृचहंतमं प्र शर्थं चर्वणीनां । आ शुवे राधसे महे ॥ १६ ॥

श्रुतं । वः । वृचहन्ऽतमं । प्र । शर्थं । चर्वणीनां । आ । शुवे । राधसे । महे ॥ १६ ॥

हे अस्तिग्यष्टारः श्रुतं बलवत्तया प्रसिद्धं अत एव वृचहंतममतिशयेन वृचहंतारं शर्थं बलश्रुतं वेगवंतं  
वा एतादृशमिन्द्रं चर्वणीनां मनुष्याणां वो युष्माकमाशुवे ॥ अज्ञोतिर्लोक्युत्तम इति सिप् । आत्ययेनोप्राप्तयः ।  
वक्रुषं छंदसीत्यजागमः ॥ तमिन्द्रं क्षुतिभिः प्रीणयित्वा युष्मभ्यं प्रकर्षेणाग्नये । प्रयच्छामीत्यर्थः । क्षिमर्थं । महे  
महते राधसे धनाय धनं युष्मभ्यं दातुं ॥

अया धिया च गव्यया पुरुणाम्पुरुषुत । यत्सोमेसोम आभवः ॥१७॥

अया । धिया । च । गव्यया । पुरुषनामन् । पुरुषस्तुत । यत् । सोमेऽसोमे ।

आ । अभवः ॥१७॥

हे पुरुषनामन् वज्रविधिशक्रवृचहादिनाम्नेपित । यद्वा । वज्रस्तुतिमन् । नामयन्ति सुखं देवं वशं नयन्तीति नाम स्तोत्रं । अत एव पुरुषुत वज्रभिरभिष्टुतेन्द्र सोमे सोमेऽस्यदीधु सोमेषु त्वं यदाभवः तेषां पानार्थं समन्तादभवः तदा वयमयानया । कीदृशा । गव्यया वा आत्मन इच्छन्त्या धियानया वृक्षा युक्ता भवेम । सोमं पीतवति त्वयि वयं गवादिशुक्ता भवेमेत्यर्थः ॥

बोधिन्मना इदस्तु नो वृचहा भूर्यासुतिः । ऋणोतुं शक्र आशिषं ॥१८॥

बोधिन्मनाः । इत् । अस्तु । नः । वृचहा । भूरिऽआसुतिः । ऋणोतुं । शक्रः ।

आऽशिषं ॥१८॥

अयं परोवक्तव्यः । वृचहा वृचहता भूर्यासुतिः । वज्रपु देशेज्विन्द्रार्थं सोम आसूयतेऽभिषूयत इति तादृशः । यद्वा । वज्रमि सोमादिहवीषीन्द्रार्थमासूयते रयन्त इति तादृशः । बोधिन्मनाः ॥ बुध अवगमने । औषादिक इतिप्रत्ययः ॥ यस्य मनः स्तोतृणामभिमतं बुध्यते जानातीति तथोक्तः । इदवधारणे । नोऽस्माकं बोधिन्मना एवास्तु । सर्वदास्यदीधुषितानि जानात्वित्यर्थः । यद्वा । एतादृश इन्द्रो नोऽस्माकं यज्ञे भवत्विति । ततः शक्रः संयामे शत्रुहन्तसमर्थ इन्द्र आशिषमस्यदीयां स्तुतिमाश्रासनं वा ऋणोतु ॥

ज्योतिष्टोमे चातुर्विधिकेऽहनि माध्यन्दिने मैत्रावरुणस्य कया त्वं न कथ्येति तृचोऽनुरूपः । सूचितं च । होचकाणां कया नयिच आ भुवत् कया त्वं न कथा । आ० ७. ४. इति ॥

कया त्वं न जत्याभि प्र मंदसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ॥१९॥

कया । त्वं । नः । जत्या । अभि । प्र । मंदसे । वृषन् । कया । स्तोतृभ्यः । आ । भर ॥१९॥

हे वृषन् कामानां वर्षितरिद्र कया केनोत्था ॥ अत्र रचनादिषु गत्यर्थे । जतियूत्थादिना निपातितः ॥ केनाभिगमनेन नोऽस्मानभ्यमितः प्र मंदसे । प्रकर्षेण मादयसि । अस्यदीयं यज्ञं प्रति सोमपानार्थमागमनेन वा त्वदीयस्तुतिश्रवणार्थमागमनेन वा कदास्मान् प्रमादयसीति । किंच कया केनाभिगमनेन स्तोतृभ्योऽस्यभ्यं धनमा भराविमर्षीतोर्द्र स्तोता पुच्छति ॥

कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वावृषभो रणत् । वृचहा सोमपीतये ॥२०॥

कस्य । वृषा । सुते । सचा । नियुत्वा । वृषभः । रणत् । वृचहा । सोमऽपीतये ॥२०॥

पुषेन्द्रः कस्य यजमानस्य सचा सुत अग्निः सहाभिषुते सोमे । अनेन तद्वान्यज्ञो लक्ष्यते । कस्य यज्ञे सोमपीतये सोमपानाय तदर्थं रणत् । रमते । कीदृशः । नियुत्वा । नितरां पुर्वन्ति मिश्रयन्ति स्वबलेन शत्रूनि नित्युतो मरुतः । तद्वान् । यद्वा । नियुत इति वायोर्षाहनाद्याः । स वायुः कदाचित्संयाम इन्द्राय स्वास्थानदात् । तद्वान् । वृषभो धनानामपां वा वर्षको वृचहा वृचस्य हंतेंद्रः कस्य यज्ञे रमते । इदानीं नोऽस्यदीयं यागं प्रत्यागच्छतु । यद्वा । कस्माधरे रमते । न कुचापि । किंलक्षयज्ञ एव सोमपानार्थं संकीर्तते ॥ ॥२४॥

अभी षु रणत्वं रयिं मंदसानः सहस्रिणं । प्रयन्ता बोधि दाप्नुषे ॥२१॥

अभि । सु । नः । त्वं । रयिं । मंदसानः । सहस्रिणं । प्रयन्ता । बोधि । दाप्नुषे ॥२१॥



हे इंद्र त्वं मंदसानोऽस्मानिर्देतेन सोमेन मोदमानः सन् सहस्रियं सहस्रसंख्याकं धनं नोऽस्माभ्यं सु  
मुह्यभाभर । तदेवाह । त्वं दासुषे हविर्देत्तवते यजमानाय प्रयंता धनादेः प्रदाता कर्मणो नियंता वा  
मवाणीति बोधि । मुह्यस्व ॥ मुध अवयमने । मौवादिकः । लोटि च्छांदसो विकरणस्य जुक् । हेधिः । धिले  
धकारलोपश्छांदसः ॥

पत्नीवंतः सुता इम उशंतो यंति वीतये । अपां जग्मिर्निचुंपुणः ॥ २२ ॥

पत्नीऽवंतः । सुताः । इमे । उशंतः । यंति । वीतये । अपां । जग्मिः । निऽचुंपुणः ॥ २२ ॥

पत्नीवंतः । सोमसेकार्थे पत्न्यः पालयित्री आपो वसतीवर्थ एकधनात् । तदंतः सुता अस्माभिरभिपुता  
इमे गुह्यस्याद्यमसंख्याय सोमा उशंत आत्मनः पानं कामयमानाः संतो यंति । इंद्रं गच्छति । किमर्थं । वीतय  
आत्मनः पानाय । किंच निचुंपुणः । निचांतपुणः । नि० ५. १७. । इति यास्कः ॥ चसु अदने । निचांतो मचितः  
पुणः प्रीणयिता । यद्वा । निचमनेन प्रीणातीति मचणेन तर्पयतीति निचुंपुणः । अभिपुतस्य सोमस्याप्सु  
प्रक्षेपासंभवात्सामर्थ्यादुजीवक्यः सोमो गृह्यते । तादृशः सोमोऽपां जग्मिः ॥ अपामिति न लोकाव्ययेति  
यष्टीप्रतिषेधाभावश्छांदसः ॥ अप इत्यर्थः । यद्वा । अपां मध्यं वायः प्रति वा जग्मिर्ममनशीलः साधुयंता  
वा । सोमश्चेंद्रं गच्छति । स ह्यवमृथकालं ज्वीयमप्सु प्राशंतीति वचनादप्सुजीवक्यः प्रक्षिप्यते । तदाहापां  
जग्मिरिति ॥

इष्टा होचा असृक्षतेर्द्रं वृधासो अश्वरे । अच्छावभृथमोजसा ॥ २३ ॥

इष्टाः । होचाः । असृक्षत । इंद्रं । वृधासः । अश्वरे । अच्छ । अवभृथं । ओजसा ॥ २३ ॥

अपां जग्मिरिति सामर्थ्यादवमृथदिन एव - - - - - र - वि - जः कुर्वतीत्युक्तं । तत्प्रसंगादाह । अश्वरेऽस्मदीये  
यज्ञे वृधासो हविर्मिर्इंद्रं वर्धयंत इष्टा इष्टवंतो यागं कृतपंतः सप्तसंख्याका होचा होचका अवमृथमंत्यदिव-  
समच्छा प्रलीवसा स्वतेजसा सहिता इंद्रमकचत । विक्रवंति । यावदवमृथं सप्तहोत्रका यजंतीति ॥

इह त्या संधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोऽहामभि प्रयो हितं ॥ २४ ॥

इह । त्या । संधमाद्या । हरी इति । हिरण्यकेश्या । वोऽहं । अभि । प्रयः । हितं ॥ २४ ॥

एषा आख्याता । ऋ० ८. ३२. २९. । अत्रापि वाक्यार्थो विधीयते । सधमावेद्रेण सह हविर्मिर्कार्पयितव्यी  
यद्वा संधामे सह मायंती हिरण्यकेश्या हिरण्यसंख्याधगतकेशवंती त्या तौ प्रसिद्धौ हरी हरितवर्णावेतन्ना-  
मकावद्याविहासिन्यज्ञे हितं - - - - - वादिषु निहितं हितकरं वा प्रयो हवीरूपमन्नमिलस्य वोऽहं । इंद्रं  
वहतां । प्रापयतामिति ॥

तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्यं बर्हिर्विभावसो । स्तोतृभ्य इंद्रमा वह ॥ २५ ॥

तुभ्यं । सोमाः । सुताः । इमे । स्तीर्यं । बर्हिः । विभावसो इति विभाऽवसो ।

स्तोतृभ्यः । इंद्रं । आ । वह ॥ २५ ॥

हे विभावसो विशेषेण भासमानवसुमन् । यद्वा । विशिष्टा भा विभाः प्रकृष्टदीप्तयः । निवसत्यथेति विमा-  
वसुरधिः । हे तादृशानि तुभ्यं स्वदर्शमिमे सोमाः सुता अभिपुताः । तथा बर्हिः स्तीर्यं । तस्मात्स्तोतृभ्योऽसभ्य-  
मस्वदर्शमिंद्रं सोमपानार्थमा वह । आह्वय । यज्ञं प्रति प्रापयेत्यर्थः ॥ २५ ॥

आ ते दक्षं वि रोचना दधत्ना वि दासुषे । स्तोतृभ्य इंद्रमर्चत ॥ २६ ॥

आ । ते । दक्षं । वि । रोचना । दधत् । रत्ना । वि । दासुषे । स्तोतृभ्यः । इंद्रं । अर्चत ॥ २६ ॥

अपिर्चास्त्रिग्यजमानान् प्रत्याह । हे यष्टः दास्युष इन्द्राय हविर्दत्तवते ते तुभ्यं रोचना रोचनं दीप्यमानं दत्तं बलमामिमुखेन वि दधत् । इन्द्रो विदधातु । यद्वा । रोचनमिति स्वर्गः । देवतेजसा दीप्तं रोचननामानं लोकं विदधातु । तथा रत्ना रत्नानि च तुभ्यं करोतु ॥ दुधाञ् धारणपोषणयोः । लेटि घोर्लोपो लेटि वा । पा० ७. ३. ७०. । इत्याकारलोपः । अडागमः ॥ हे स्रोतारः स्रोतुभ्य इन्द्रविषयस्रोचकारिभ्यो युष्मभ्यं च बल-  
रत्नादिकमिन्द्रः कृषतां । तस्मात्तमिन्द्रं यूयमर्चत । हविर्मिः क्षुतिभिश्च पूजयत ॥

आ ते दधामीन्द्रियमुक्थ्या विश्वा शतक्रतो । स्तोतुभ्य इन्द्र मृळय ॥ २७ ॥

आ । ते । दधा॒मि । इन्द्रि॒यं । उ॒क्थ्या । विश्वा । श॒त॒क्र॒तो इति शतऽक्रतो । स्तो॒तुऽभ्यः ।  
इन्द्र । मृ॒ळ॒य ॥ २७ ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ते तवेन्द्रियं वीर्यवंतं सोमं विश्वोक्थ्या सर्वाणि स्तोत्राण्या दधामि । संपादयामि । हे इन्द्र त्वं स्तोतुभ्यो मृळय । सुखय ॥

भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २८ ॥

भद्रं॑भद्रं । नः । आ । भ॒र । इषं । ऊ॒र्जं । श॒त॒क्र॒तो इति शतऽक्रतो । यत् । इन्द्र ।  
मृ॒ळ॒या॒सि । नः ॥ २८ ॥

हे शतक्रतो शतविधकर्मन् शतप्रज्ञ चन्द्र भद्रं भद्रं कल्याणतममथ सुखोत्पादकं वा धनं नोऽस्मभ्यमा भर । आसंपादय । देहि । तथेषमन्नमूर्जमन्नरसं यद्वा बलवदन्नं च देहि । नोऽस्मान्यद्यदि मृळयासि सुखयसि तर्हि तद्वनादिकं देहीति ॥ मृड सुखने । श्वेतस्य लेख्यडागमः ॥

स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २९ ॥

सः । नः । विश्वा॒नि । आ । भ॒र । सु॒वि॒तानि । श॒त॒क्र॒तो इति शतऽक्रतो । यत् । इन्द्र ।  
मृ॒ळ॒या॒सि । नः ॥ २९ ॥

हे शतक्रतो इन्द्र स पूर्वोक्तलक्षणस्त्वं विश्वानि सर्वाणि सुवितानि । सुधीयते प्राप्यते ऐश्वर्येति सुवितानि मंगलानि ॥ सुपूर्वादेतेः क्त प्रत्यय उवडादेशः ॥ सर्वानभ्युदयान्नोऽस्मभ्यमाहर । हे इन्द्र यदि नोऽस्मान् सुखयसि तर्हि धनादिसहितानभ्युदयान्देहीति ॥

त्वामिद्वृचहन्तम सुतावन्तो हवामहे । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३० ॥

त्वां । इत् । वृ॒च॒ह॒न्त॒म॒ सु॒ता॒व॒न्तो॒ ह॒वा॒म॒हे । यत् । इन्द्र । मृ॒ळ॒या॒सि । नः ॥ ३० ॥

हे वृचहन्तमातिशयेन वृचस्थापामावरकस्य हन्तरिन्द्र सुतवन्तोऽभिपुतसोमवन्तो वयं । इदवधारणे । त्वा-  
मिच्छामेव हवामहे । अस्मद्यज्ञमागत्य सोमपानायाकृत्यामः । हे इन्द्र नोऽस्मान्यदि सुखयसि तर्ह्याकृत्याम इति ॥ ॥ २६ ॥

वृजस्य दशराचस्य यष्टेऽहनि निष्केवस्य उप नो हरिमिरिति वृचो निविज्ञानीयः । सूत्रितं च । अयं ह यन वा इदमुप नो हरिभिः सुतं । आ० ८. ८. । इति ॥

उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतं ॥ ३१ ॥

उप । नः । हरिऽभिः । सु॒तं । या॒हि । म॒दा॒नां । प॒ते । उप । नः । हरिऽभिः । सु॒तं ॥ ३१ ॥



हे मदानां पते । मद्यतेऽनेनेति मदाः सोमाः ॥ मदीऽनुपसर्ग इति करणेऽप्रत्ययः ॥ सोमानां स्वामिभिर्द्रु-  
हरिभिरा श्रतेन हरिभिः । अ० २. १८. ६. । इत्यादिषु बह्वनामस्त्रानां श्रुतेऽचापि श्रतसहस्रसंख्याकरैः सह  
नोऽस्माकं यथे । सुतमभिषुतं सोममुप याहि । तत्पानार्थं शीघ्रमायाहि । पुनरप न इत्यादरार्थं ॥

श्रिता यो वृचहंतमो विद इंद्रः शतक्रतुः । उप नो हरिभिः सुतं ॥ ३२ ॥

श्रिता । यः । वृचहन्ऽतमः । विदे । इंद्रः । शतऽक्रतुः । उप । नः । हरिऽभिः । सुतं ॥ ३२ ॥

वृचहंतमोऽतिशयेन वृचस्य हंता शतक्रतुर्नानाविधकर्मो य इंद्रो श्रिता द्विधा विदे वृचवधादानुपसर्गो  
जगद्रक्षणकाक्षे शांतकर्मैति द्विप्रकारेण सर्वैर्ज्ञायते ॥ विद ज्ञाने । कर्मणि विहितस्य तत्प्रत्ययस्य लोपस्त आत्म-  
नेपदेश्विति तल्लोपः ॥ स त्वं हरिभिः सह सुतं सोममुपयाहि ॥

त्वं हि वृचहन्नेषां पाता सोमानामसि । उप नो हरिभिः सुतं ॥ ३३ ॥

त्वं । हि । वृचऽहन् । एषां । पाता । सोमानां । असि । उप । नः । हरिऽभिः । सुतं ॥ ३३ ॥

हे वृचहन् वृचस्य पापस्य वा हंतर्इन्द्र । द्विशब्दो हेत्वर्थे । यस्मात्त्वमेवामस्यदीयानां सोमानां पाता  
पानकर्तासि भवसि ॥ एषामितीदमोऽन्वादेशोऽन्वादेशोऽनुदात्तश्च ॥ अतस्त्वमस्यैः सह सोमं पातुमुपयाहि ।  
आगच्छ ॥

यूयस्य दशराषस्य जवमेऽहनि वैश्वदेवेऽभिज्ञवतुचखेन्द्र इवे ददातु नस्ते नो रत्नानि धत्तनेति हे अचा-  
वार्मन्वी । सूचितं च । इंद्र इवे ददातु नस्ते नो रत्नानि धत्तनेत्येका द्वे च । आ० ८. ११. । इति ॥

इंद्र इषे ददातु न ऋभुक्षणां मृभुं रयिं । वाजी ददातु वाजिनं ॥ ३४ ॥

इंद्रः । इषे । ददातु । नः । ऋभुक्षणां । मृभुं । रयिं । वाजी । ददातु । वाजिनं ॥ ३४ ॥

इंद्र एवास्माभिः श्रुत इष्टः सन्नुभुषणं ॥ वा षपूर्वस्तेति दीर्घाभायः ॥ यागादिकर्मकरणेन मह्यंतं सर्वेषां  
धातुषां श्रेष्ठं वा । अथवा तृतीयसवने प्रजापतिसविचोर्मध्ये सोमपातुत्वात् मह्यंतं । रयिं दातारमुभं सोमपा-  
नेनामर्त्यत्वं प्राप्तं तादृशमेतन्नामकं देवं नोऽस्मभ्यमिषेऽन्नाथं ददातु । प्रयच्छतु । तथा वाजी बलवानिंद्रो  
वाजिनं बलवंतमन्नवंतं वा वाजनामानं कनीयांसं धातरं चास्माकमन्ननामाय ददातु ॥ ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥

दशमेऽनुवाके दश सूक्तानि । तच्च गौर्धयतीति द्वादशर्चमात्रं सूक्तमांगिरसस्य बिंदुनाम्नः पूतदधनाम्नो  
वार्षे नायचं मरुदेवताकं । तथा चानुकथ्यते । गौर्धयति द्वादश बिंदुः पूतदधो वा मादतमिति ॥ सूक्तविनि-  
योनो जैमिनिः ॥ प्रातःसवने सोमातिरिक्त एकं शस्त्रमुपवायते । तचायसृचोऽनुरूपः । सूचितं च । अस्ति  
सोमो अयं सुतो गौर्धयति मरुतामिति स्तोत्रियानुरूपी । आ० ६. ७. । इति ॥

गौर्धयति मरुतां अवस्युर्माता मघोनां । युक्ता बह्वी रथानां ॥ १ ॥

गौः । धयति । मरुतां । अवस्युः । माता । मघोनां । युक्ता । बह्विः । रथानां ॥ १ ॥

मघोनां धनवतां मरुतां माता निर्मात्री गौः पुत्रिरूपा । पुत्रिणे वै पयसो मरुतो जाता इति श्रुतेः ।  
यद्वा । नौर्माध्यमिन्नी चाक् । तत्रैव मध्यमस्थाने मरुतामपि वर्तनान्तेषां तत्पुत्रत्वमुपचर्यते । धयति । सोमं  
पिबति पाययति वा स्वपुत्राकृतः । किमिच्छती । अवस्युरन्नं कामयमाना । कीदृशी । रथानां मादतानां  
बह्विः पृथतीभिर्वज्रवाभिर्बोद्धी संयोजयित्री सा युक्ता सर्वत्र समंतात्पूज्या भवति ॥

यस्या देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते । सूर्यामासा दृशे कं ॥ २ ॥

यस्याः । देवाः । उपऽस्थे । व्रता । विश्वे । धारयन्ते । सूर्यामासा । दृशे । कं ॥ २ ॥

गौः सर्वदेवमधीत्याह । यस्या मवतां मानुर्गोषपस्थे वर्तमाना विश्वे सर्वे देवा व्रता व्रताणि स्वस्वकर्मणि धारयन्ति विश्वेति । इयमेवास्याकं स्वपथोमिच्छितस्य सोमस्य दात्रीति सर्वे तत्समीपे तिष्ठन्तीत्यर्थः । किं च सूर्यामासा ॥ माति स्वकलामिच्छित्योमिति माचंद्रमाः । देवताद्वंद्वे चेतुमयपदप्रकृतिसरत्वं ॥ सूर्याचंद्रमसी द्वे द्वे दर्शनाय सर्वलोकप्रकाशनाय च यस्या गौः समीपे कं मुखेन वर्तमानौ भवतः । सेयं गौः सोमं धयतीति पूर्वेषु समन्वयः ॥

तत्सु नो विश्वे अर्ये आ सदा गृणन्ति कारवः । मरुतः सोमपीतये ॥३॥

तत् । सु । नः । विश्वे । अर्ये । आ । सदा । गृणन्ति । कारवः । मरुतः । सोमऽपीतये ॥३॥

अर्यः सोचकरणार्थमित्यतो गंतारो नोऽस्यदीया विश्वे सर्वे कारवः सोतारस्तन्मवतां यत् सदा सर्वदा गृणन्ति । आभिमुख्येन सुतिभिः कुर्वन्ति । विमर्षं । सोमपीतयेऽस्मान्निर्दीयमाणं सोमं पातुं । मरुत एतन्नामका देवा अस्मान्भिराह्वातव्याः खलु । ततः पुरस्तात्तद्वत् कुर्वन्तीत्यर्थः ॥

पूर्वेषामिहित एव अस्मिन्सि सोम इति सोचियकुचः । सूचं तु पूर्वेषु सहोदाहतं ॥

अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥४॥

अस्ति । सोमः । अयं । सुतः । पिबन्ति । अस्य । मरुतः । उत । स्वऽराजः । अश्विना ॥४॥

अयं पुरोवर्ती सोमः सुतो मरुदर्थमस्मान्भिरभियुतोऽस्ति । पिबन्ति । तस्यादस्य । अन्वादेशे । एनं सुतं सोमं स्वराजः स्वयं दीप्यमानाः । स्वतेजसा ज्ञान्यदीयेनेत्यर्थः । तादृशा मरुतः पिबन्ति । उतापि चाश्विनाश्विनौ च सोमं पिबतः ॥

पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । विश्वस्थस्य जावतः ॥५॥

पिबन्ति । मित्रः । अर्यमा । तना । पूतस्य । वरुणः । विश्वस्थस्य । जाऽवतः ॥५॥

न केवलं मरुत एव सोमपातारः किंल्लेऽपीत्याह । मित्रः सर्वेषां स्वस्वकर्मणि प्रवर्तकत्वात्सखिभूतोऽर्यमा च वरुणो दुःखादीनां शत्रूणां वा वरिता निवारकः । एतन्नामकास्त्रयो देवास्तना । तत्तमूर्ध्वासुवेति तनं दशापवित्रं ॥ सुपां सुनुमिति तृतीयाया अन्वादेशः । तनासुदान्तः ॥ तना पूतस्य शोधितं विसधस्वस्य । सह तिष्ठन्त्येति सधस्वं स्नानं । द्रोणकलशाधवनीयपूतभृदात्मनि चीयि स्नानानि यस्य तत्तथोक्तं तादृशं चावतः सुत्वज्जगन्तमिमं सोमं पिबन्ति । द्वितीयार्थे षष्णः ॥

उतो न्वस्य जोषमो इंद्रः सुतस्य गोमंतः । प्रातर्होतैव मत्सति ॥६॥

उतो इति । नु । अस्य । जोषं । आ । इंद्रः । सुतस्य । गोऽमंतः । प्रातः । होताऽइव ।

मत्सति ॥६॥

उतो अपि इंद्रः सुतस्यास्मान्भिरभियुतस्य गोमतो गवैर्मिश्रणवर्ताऽस्य । अन्वादेशः । पूर्ववद्दशापवित्रेण पूतस्य सोमस्य जोषं यानकृपां सेवां प्रातः प्रातःसवने नु चिप्रमा मत्सति ॥ मदि सुत्यादिषु ॥ आभिमुख्येन सौति । यद्वा । सोममेवाकामयते । तच्च दृष्टान्तः । होतेव यथा होता प्रातःसवने देवानभिष्टौति देवान् सोतुं वाभिवाञ्छति ॥ २५ ॥

कदन्विषंत सूरयस्तिर आप इव सिधः । अर्षेति पूतदस्ससः ॥७॥

कत । अन्विषंत । सूरयः । तिरः । आपःऽइव । सिधः । अर्षेति । पूतऽदस्ससः ॥७॥

अभिर्मवतो ब्रह्मवारं सुलेदानीमात्मानं वितर्कयति । सूरयः प्राप्ता आप इवोदकानीव तिरो यचोद-



कानि तिर्यग्गच्छन्ति तदन्तिरक्षीयतयः संतः काकदास्त्रियंत ॥ त्विष दीप्ती ॥ अंतरिषि कदा दीप्यन्ति । किंष  
स्त्रिषः श्रुपुषां श्रोषका हंतारस इमे मरुतः पूतदक्षसः शुचयनाः संतः कदा वार्यन्ति । अक्षदीयं यज्ञं  
प्रत्यागच्छन्ति ॥

कद्यो अद्य महानां देवानामवो वृणे । त्मना च दुस्मवर्चसां ॥ ८ ॥

कत् । वः । अद्य । महानां । देवानां । अवः । वृणे । त्मना । च । दुस्मऽवर्चसां ॥ ८ ॥

हे मरुतः महानां महनीयानां महतां वा त्वना चात्मनिवासंकरक्षीर्विनापि दुस्मवर्चसां दर्शनीयत्वस्मानां  
अत एव देवानां द्योतमानानां वो युष्माकमवः पालनं कत् कदाहं वृणे । संमये ॥ वृष्टुं संमती । क्रियादिवः ॥

आ ये विश्वा पार्थिवानि पृथ्वीनां दिवः । मरुतः सोमपीतये ॥ ९ ॥

आ । ये । विश्वा । पार्थिवानि । पृथ्वीनां । दिवः । मरुतः । सोमऽपीतये ॥ ९ ॥

ये मरुतः विश्वा विश्वानि पार्थिवानि पृथिव्यां भवाभि मृतवातानि दिवो युजोक्क्ष रोचना रोचना-  
वानि ज्योतींषि चा पृथ्वी सर्वच विश्वारितान्यकार्षुः ॥ अथ प्रक्षान्ते । अंतस्व चक्ष्वाक्षदूस्वरप्रयसदक्षुषां  
। पा० ७. ४. ९५. । इत्यभ्यासस्त्रादादेशः । चक्ष्वाक्षतरस्त्रामिति खरेण मध्योदात्तः ॥ तादृशाश्चरतो देवान् सोम-  
पीतये सोमपानायाहमाहुवामि ॥

त्यानु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥

त्यान् । नु । पूतऽदक्षसः । दिवः । वः । मरुतः । हुवे । अस्य । सोमस्य । पीतये ॥ १० ॥

हे मरुतो मितराविष एतन्नामका देवाः पूतदक्षसः परिशुद्धवक्षान् दिवः स्वतज्जसा दीप्यमानान् । यद्वा ।  
दिवो युजोक्क्षितान् । त्वांस्त्राण् प्रसिद्धान् वो युष्मासु चिप्रं ऊवे । आहुयामि । किमर्थं । अक्ष्वाक्षदीयस्य  
सोमस्य पीतये पानाय ॥

त्यानु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ ११ ॥

त्यान् । नु । ये । वि । रोदसी इति । तस्तभुः । मरुतः । हुवे । अस्य । सोमस्य । पीतये ॥ ११ ॥

ये मरुतो रोदसी यावापृथिवी वि तस्मिन् स्वचक्षेनेवात्यर्थं ज्ञेये चक्षुः । ते रोदसी स्नाधीने अकार्षु-  
र्यर्थः । त्वांस्त्राण् सर्वतः प्रतिज्ञासु चिप्रमहं ऊवे । आहुयामि । किमर्थं । अक्षोत्वादि ॥

त्यं नु मारुतं गुणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ १२ ॥

त्यं । नु । मारुतं । गुणं । गिरिऽस्थां । वृषणं । हुवे । अस्य । सोमस्य । पीतये ॥ १२ ॥

त्यं तं सर्वच विवृतं गिरिष्ठां गिरिषु मेघेषु पर्वतेषु वा तिष्ठतं वृषणमुदकानां कामानां वा वर्धितारं  
मारुतं मरुत्संबन्धिं गणं संघं ऊवे । विंदुरहमाहुयामि । किं प्रयोजनं । अक्ष्वाक्षदीयस्य सोमस्य पीतये  
पानाय ॥ १२ ॥

आ सेति नवर्धं द्वितीयं युक्तमाशुभमिन्द्रं । तिरक्षीर्नामांगिरस ऋषिः । तथा वाशुक्रस्यते । आ त्वा नव  
तिरक्षीराशुभमिति ॥ आभिज्ञविषूक्थेषु गुतीयसवनेऽश्वावाकक्षा त्वा निर इति तुषो वैकथिबोऽनुकपः ।  
सूच्यते हि । गायन्ति त्वा गायत्रिष आ त्वा निरो रधीरिव । आ० ७. ८. । इति ॥

आ त्वा गिरो रधीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।

अभि त्वा समनूषतेन्द्र वत्सं न मातरः ॥ १३ ॥

आ । त्वा । गिरः । रथीऽइव । अस्थुः । सुतेषु । गिर्वणः ।

अभि । त्वा । सं । अनुषत । इंद्र । वत्सं । न । मातरः ॥ १ ॥

हे गिर्वणो गीर्भिर्वननीचंद्र सुतेषु सोमेष्वभिषुतेषु सत्सु गिरोऽस्माकं सुतिलक्षणा वाचस्वा त्वामाबुः । अभिमुख्येन शीघ्रं तिष्ठति । तच्च दृष्टान्तः । रथीरिव यथा रथवान्नेधेन गच्छन्वीरः प्राप्यं देशं चिमं गच्छति तद्वदस्माभिरभिर्गतत्वं त्वां सुतयोऽभिगच्छन्ति । किंच हे इंद्र अस्मादीया गिरस्त्वा त्वामभिषस्य समनुषत । सम्यक् शब्दायते । सुवन्तीत्यर्थः ॥ नू सवने । कुटादिः । तस्य बुद्धि रूपं ॥ तच्च दृष्टान्तः । वत्सं न मातरः । यथा मातरो गावो वत्समभिषस्य हमारवादिशब्दं कुर्वन्ति तद्वत् ॥

आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः सुतासं इंद्र गिर्वणः ।

पिब । त्वं स्यांधस इंद्र विश्वासु ते हितं ॥ २ ॥

आ । त्वा । शुक्राः । अचुच्यवुः । सुतासः । इंद्र । गिर्वणः ।

पिब । त्वं । अस्य । अंधसः । इंद्र । विश्वासु । ते । हितं ॥ २ ॥

हे गिर्वणो गीर्भिर्वननीय हे इंद्र शुक्रा ग्रहेषु पात्रेषु च दीप्यमानाः सुतासोऽस्माभिरभिषुताः सोमास्त्वा त्वामाचुच्यवुः । आगच्छन्तु ॥ अचुक् सृष्ट गतौ । लङि वज्रं कंदसीति शपः सुः ॥ ततस्त्वमस्माभिर्दीप्यमान-  
स्यांधसः सोमस्य भवदीयं भागं त्वं चिमं पिब । तदेवोपपादयति । हे इंद्र विश्वासु सर्वासु दिक्षु ते त्वदर्थं सोमपुरोडाशादिहविर्हितं भवति ॥

पिब । सोमं । मदाय । कमिंद्र श्येनाभृतं सुतं ।

त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि ॥ ३ ॥

पिब । सोमं । मदाय । कं । इंद्र । श्येनऽआभृतं । सुतं ।

त्वं । हि । शश्वतीनां । पतिः । राजा । विशां । असि ॥ ३ ॥

हे इंद्र त्वं श्येनाभृतं ॥ हयहोर्म्यकंदसीति हकारस्य भकारः ॥ सुलोकाच्छ्वेनफण्या गायत्र्याहृतं सुतम-  
भिषुतं सोमं मदाय हवींश्च पिब । कमिति पूरणः सुखार्थो वा । सुखेन सोमं पिब । हिशब्दो हेतौ । हि यस्यात्त्वं शश्वतीनां वज्रीनां विशां मरुत्तणानां सर्वेषां देवगणानां च पतिः पातयिता स्वाम्यसि भवसि तथा राजा स्वतेजसा दीप्यमानश्चासि । अतस्त्वं पूर्वं सोमं पिबेति ॥

आभिन्नविकोपकक्षेषु तृतीयसवनेऽच्छावाकस्य शुधी हवं तिरश्चा इति वैकल्पिकः सोत्रियः । सूचितं च ।  
शुधी हवं तिरश्चा आश्रुत्कर्णं शुधी हवं । आ० ७. ८. इति ॥

शुधी हवं तिरश्चा इंद्र यस्त्वा सपर्येति ।

सुवीर्यस्य गोमंतो रायस्पूधिं महौ असि ॥ ४ ॥

शुधि । हवं । तिरश्चाः । इंद्र । यः । त्वा । सपर्येति ।

सुऽवीर्यस्य । गोऽमंतः । रायः । पूधिं । महान् । असि ॥ ४ ॥

हे इंद्र यस्त्वा त्वां सपर्येति ॥ सपरशब्दः कंड्रादिः ॥ हविर्भिः परिचरति तादृशस्य तिरश्चा एतन्नामक-  
स्त्वर्थमेव हवं सुतिभिस्त्वद्विषयमाह्वानं शुधि । शृणु । श्रुत्वा च हे इंद्र त्वं सुवीर्यस्य शोभनवीर्योपेतस्य । यद्वा ।



वीरे पुत्रे भवं वीर्यं । सुपुत्रस्य । गोमतो गवादिपशुमतो राघो घनस्य दानेन पूर्य । अस्मान्पूरय । एतत्सामर्थ्यं  
कृत इत्यत आह । त्वं महान् गुणाधिको देवानां श्रेष्ठश्चासि । भवसि खलु ॥

इंद्रं यस्ते नवीयसीं गिरं मंद्रामर्जीजनत् ।

चिकित्तिन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्पुषीं ॥५॥

इंद्रं । यः । ते । नवीयसीं । गिरं । मंद्रां । अर्जीजनत् ।

चिकित्तिन्मनसं । धियं । प्रत्नां । अमृतस्य । पिप्पुषीं ॥५॥

इंद्रं यो यजमानो नवीयसीं नवतरं पुनःपुनःक्रियमाणतया मंद्रां मदकरीं गिरं सुतिलक्षणां वाचं  
ते त्वदर्धमवीजगत् उदपीपदत् । अकारपीदित्यर्थः । तस्मै स्तोत्रे त्वं प्रत्नां पुरातनमृतस्य सत्वस्य संबंधि । यदा ।  
तृतीयायै षष्ठी । सत्वेन पिप्पुषीं प्रवृत्तं ॥ लिङ्गलोकेति प्यायतेः पीमावः ॥ तादृशं चिकित्सित्वनसं ॥ कित  
ज्ञाने । कृत्वा रूपं । अकारस्तेकारस्त्वांदसः ॥ चिकित्वांसि ज्ञातानि सर्वेषां हृदयानि यथेति । अमायया  
क्रियमाणं यत्नव रचणं सर्वेषां हृदयं प्रज्ञापयतीति तदतीन्द्रियार्थदर्शकं धियं रचयित्वा तस्मै कुरु ॥ ३० ॥

तसु हवाम् यं गिरं इंद्रमुक्थानि वावृधुः ।

पुरूषस्य पौंस्या सिसांसतो वनामहे ॥६॥

तं । जं इति । स्तवाम् । यं । गिरं । इंद्रं । उक्थानि । वावृधुः ।

पुरूषि । अस्य । पौंस्या । सिसांसतः । वनामहे ॥६॥

अवयः परस्परमाहुः । तं पूर्वोक्तलक्षणं । उ इत्यवधारणे । तमेवंद्रं हवाम् । सुतिभिः जुमः । यमिंद्रं  
गिरोऽस्माकं सुतय उक्थानि शस्त्राणि च वावृधुः प्रावर्धयन् तं जुमः । ततो ययमसिंद्रस्य पुरूषि वरुणि  
पौंस्या वीर्याणि सिसांसतः ॥ यय संभक्तौ । सनीडभावपच आत्मे कृते सनीतेरय इति साहित्यिकं बलं ॥ तानि  
वीर्याणि संभक्तुमिच्छंतो वनामहे । तमिंद्रं सुतिभिः संभजामहे ॥

एतो न्विंद्रं स्तवाम् शुद्धं शुद्धेन साक्षा ।

शुद्धैरुक्थैर्वीवृध्वासं शुद्ध आशीर्वान्ममनु ॥७॥

एतो इति । नु । इंद्रं । स्तवाम् । शुद्धं । शुद्धेन । साक्षा ।

शुद्धैः । उक्थैः । ववृध्वासं । शुद्धः । आशीऽवान् । ममनु ॥७॥

अवेतिहासमाचक्षते । पुरा किलेंद्रो वृषादिकानसुराहत्वा ब्रह्महत्यादिदोषेणात्मानमपरिशुद्धमित्यमन्यत ।  
ततसाहोषपरिहारायेंद्रं क्षवीनवोचत् । अपूर्तं मां युष्मदीयेण साक्षा मुद्धं कुरुतेति । ततस्ते च शुद्धुत्पादकेन  
साक्षा शस्त्रैश्च परिशुद्धमकार्षुः । पश्चात्पूतार्थेंद्रयागादिकर्माणि सोमादीनि हवींषि प्रादुरिति । एषोऽर्थः  
शास्त्राद्यनकश्रावणे प्रतिपादितः । इंद्रो वासुराहत्वापूत इवामेध्वीऽमन्यत । सोऽस्माकमयत शुद्धमेव मा संतं  
शुद्धेन साक्षा सुचुरिति । स क्षवीनवोचत् सुत मेति । तत अवयः सामापश्यन् । तेनासुवनेतो न्विंद्रमिति ।  
ततो वा इंद्रः पूतः शुद्धो मेध्वीऽभवदिति ॥ तथा चास्या अक्षोऽयमर्थः । अवयः परस्परं भवति । नु चिप्र-  
मेतो । गच्छतैव । आगत्य च शुद्धेन शुद्धुत्पादकेन साक्षा तथा शुद्धैः शुद्धिहेतुमिरुक्थैः शस्त्रैर्इंद्रं शुद्धमपापिनं  
कृत्वा स्तवाम् । जुयाम् । ततः सामशस्त्रैश्च वावृध्वासं पापराहित्येन वर्धमानं तमिममिंद्रं शुद्धो दशापविचे-  
ष्टाशीर्वानाश्रयणवान् गव्यादिभिः ॥ कंदसीर इति मनुषो बलं ॥ तादृशः सोमो ममनु । इंद्रं मादयतु ॥  
मादयतेऽस्त्वांदसः सुः ॥

इंद्रं शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिः कृतिभिः ।

शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममहि सोम्यः ॥ ८ ॥

इंद्रं । शुद्धः । नः । आ । गहि । शुद्धः । शुद्धाभिः । कृतिभिः ।

शुद्धः । रयिं । नि । धारय । शुद्धः । ममहि । सोम्यः ॥ ८ ॥

हे इंद्र शुद्धोऽसदीधेः सामभिः शस्त्रैश्च परिशुद्धस्त्वं नोऽस्मान्ना गहि । आगच्छ । शुद्धाभिः कृतिभिः । जतयो मरुतः । अवंति सर्वं च गच्छंतीति वा । तेषां सामभिः शस्त्रैः परिपूताः । तैर्मरुद्भिः सह शुद्धः पापरहितस्त्वमा गहि । आगत्य च शुद्धस्त्वं रयिं धनमस्मासु नि धारय । नितरां स्थापय । किंच शुद्धस्त्वं च सोम्यः सोमाहो भूत्वा ममहि । सोमेन माय ॥ मदी हवै । लोटि वज्रं छंदसीति शपः सुः ॥

इंद्रं शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।

शुद्धो वृचाणि जिघ्रसे शुद्धो वाजं सिधाससि ॥ ९ ॥

इंद्रं । शुद्धः । हि । नः । रयिं । शुद्धः । रत्नानि । दाशुषे ।

शुद्धः । वृचाणि । जिघ्रसे । शुद्धः । वाजं । सिधाससि ॥ ९ ॥

हे इंद्र शुद्धः । हिरवधारणे । शुद्ध एव त्वं रयिं धनं नोऽस्माभ्यं प्रयच्छ । तथा शुद्धस्त्वं दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय रत्नानि रमणीयानि धनादीनि च देहि । ततः शुद्धः पापरहितस्त्वं वृचाणां मावरणान् कर्मचिद्भकारिणः शत्रून् पापानि वा जिघ्रसे । इंसि । ततः शुद्धः शत्रुहन्तदोषपरिहारयासदीधेः सामभिः शस्त्रैः परिशुद्धस्त्वं वाजमन्नमस्माभ्यं सिधाससि । प्रदातुमिच्छसि । यदा यदा शत्रून् हन्तां तदा तदा शुद्धोत्पादकैः सामभिः शस्त्रैश्च यूयं मां परिशुद्धं कुरुतेत्यस्माभ्यं दातुमिच्छसीत्यर्थः ॥ ३१ ॥

अस्मा इत्येकविंशत्युचं तृतीयं सूक्तं । अचानुकम्यते । अस्मै सैका युतानो वा जायतस्त्रिषु चतुर्थी विराट्किथामीति भावतः पादः परैर्द्रावाहसत्येति । युतानाख्यो मरुतां पुत्रश्चक्षित्तिरखीर्नामागिरसो वा । चतुर्थी विराट् । शिष्टास्त्रिषु । इंद्रो देवता । इथामि वो मरुत इति पादो मरुदेवतः । अथ द्रष्टव्य एतेषां लिङ्गावृहसतिदेवताका ॥ सूक्तविनियोगो लिङ्गादवगंतव्यः ॥

अस्मा उषासु आतिरंतं याममिन्द्राय नक्तमूर्त्याः सुवाचः ।

अस्मा आपो मातरः सप्त तस्युर्नृभ्यस्तराय सिंधवः सुपाराः ॥ १ ॥

अस्मै । उषसः । आ । अतिरंतं । यासु । इंद्राय । नक्तं । ऊर्त्याः । सुवाचः ।

अस्मै । आपः । मातरः । सप्त । तस्युः । नृभ्यः । तराय । सिंधवः । सुपाराः ॥ १ ॥

इंद्रसामर्थ्याद्गीता उषस उषःकाला अस्मै पूर्वोक्तगुणोपेतायेंद्राय यामं स्वस्वगमनमातिरंतं । तिरतिर्वर्धनकर्मा । समंताद्वर्धयंत । यथा पूर्वमुच्यंति तथेदानीमप्यस्मा उन्नता अभवन् । तद्योर्त्याः ॥ रात्रिनामैतत् । अयतिप्रापणयोः । अंतं च । उ० ४. ४४. इति मिश्रत्ययः । भवे छंदसीति यत् ॥ सर्वैरभिगंतव्याः । रात्रौ हि सर्वे स्वनिवासं गच्छंति । स्वनिवासप्राप्तिहेतुभूता रात्रयः । नक्तमपररात्रिकाले सुवाचः शोभनवाचो भवति । तस्मिन् काले हि सर्वे वेदाध्ययनादीनि कुर्वन्ति । तस्मात्कक्षाणवाचोऽभवन् । इंद्रेऽनुशासति वेदाध्ययनानि निरता अभवन् । तथापः ॥ आप्ता व्याप्तौ ॥ सर्वतो व्याप्ता मातरो जगतां निर्मात्र्यः सप्त सप्तसंख्याकाः सिंधवः छंदमाना गंगाद्या नद्यः । यदा । सर्पणशीलाः सिंधवः सरितः । तासामावरकक्षाहेर्हिनोत्पादित्लादक्षा इंद्राय नृभ्यस्तराय मनुष्याणां सुखेन तरणार्थं सुपाराः शोभनपाराः सुखेन तर्तुं योग्या अभवन्नित्यर्थः ॥



अतिविद्धा विधुरेणा चिदस्त्रा चिः सप्त सानु संहिता गिरीणां ।

न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्याद्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार ॥२॥

अतिऽविद्धा । विधुरेण । चित् । अस्त्रा । चिः । सप्त । सानु । संऽहिता । गिरीणां ।

न । तत् । देवः । न । मर्त्यः । तुतुर्यात् । यानि । प्रऽवृद्धः । वृषभः । चकार ॥२॥

विधुरेण ॥ वर्णव्यत्ययः ॥ चिद्व्यर्थः । विधुरेणासहायेनाप्यस्त्रा ॥ असु चेपणे । ताच्छीलिकसृग् ॥ शत्रुचेपण-  
शीलेन्द्रियेण । यद्वा । अस्त्रास्त्रेण वक्षेण । चिः सप्तैकविंशतिसंख्यानं संहिता संहितान्येकच संधीभूतानि गिरीणां  
सप्तानां पर्वतानां सानु सानून्यतिविद्धानि । अतीत्य ताडितानि । तेन मुक्तो वज्रपातस्त्रानि भित्त्वागमदित्यर्थः ।  
अत्र तैत्तिरीयकं ब्राह्मणं । दर्भपिबूलमुद्युत्य सप्त गिरीन् भित्त्वा तमहमित्यादि । तै० सं० ६. २. ४. ३. । तस्मिंश्च  
तत्तानि सानुभेदनादीनि कर्माणि देव इन्द्राद्व्यतिरिक्तो देवो मर्त्यो मनुष्यो वा न तुतुर्यात् । न तरेत् । तथा  
कर्तुं न शक्नोतीत्यर्थः ॥ तु अवनतरणयोः । लिङि च्छांदसः शपः झुः । वज्रं छंदसीत्युत् । यद्वा । तुर त्वरणे  
जौहोत्यादिकः ॥ प्रवृद्धः सीमपानेन बलेन वा प्रवृद्धो वृषभः कामानामुदकानां वा वर्षक इन्द्रो यानि कर्माणि  
चकार कृतवान् तानि देवो मनुष्यो वा न तथा कर्तुं शक्नोतीत्यर्थः ॥

इंद्रस्य वज्र आयसो निमिष्य इंद्रस्य बाहोर्भूयिष्ठमोजः ।

शीर्षन्निंद्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नेषत् श्रुत्या उपाके ॥३॥

इंद्रस्य । वज्रः । आयसः । निऽमिष्यः । इंद्रस्य । बाहोः । भूयिष्ठः । ओजः ।

शीर्षन् । इंद्रस्य । क्रतवः । निरेके । आसन् । आ । ईषत् । श्रुत्यै । उपाके ॥३॥

उक्तगुणसिद्धस्य वज्र आयसोऽयसा निर्मितः । अयोमय इत्यर्थः । स वज्र इंद्रेण स्वहस्ते निमिष्यः संमियो  
ऽत्यंतं संबद्धः कृतः । अत एवेन्द्रस्य बाहोर्भूयिष्ठमिष्टं वज्रतममोजो वीर्यमस्ति । तथा निरेके ॥ निपूर्वाद्भि-  
च्यतेर्वा निष्पूर्वादेतेर्वेति संदेहादभवग्रहः ॥ निर्गमने यदा युज्यार्थमिंद्रो निर्गच्छति तदानीमिंद्रस्य शीर्ष-  
ञ्छिरसि क्रतवः कर्माणि शिरस्त्राणनिधानादीनि । यद्वा । शिर इति गलप्रभृत्यूर्ध्वमंगमुच्यते । तत्रत्याभ्याम-  
चिभ्यां दर्शनप्रेरणादीनि कर्माणि भवन्ति । तथासन् ॥ आस्यस्यासन्नादेशः ॥ आस्ये च यानि कर्माणि युज्यार्थं  
वाजिनो गजान् संवाहयतेत्यादीनि भवन्ति । किंच श्रुत्यै संयामाय निर्गच्छतोऽनुशासत इंद्रस्य वाक्प्रवचनार्थं  
सर्व उपजीविनो भृत्या उपाकेऽतिक एषत् । अयमिंद्रोऽस्मान् कुच कुच कार्ये नियोज्यतीत्येतेन मनसा तदंतिके  
समंतादागच्छन्ति ॥ ईष गतिहिंसादर्शनेषु भौवादिकः ॥

मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानां मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानां ।

मन्ये त्वा सत्त्वनामिंद्र केतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनां ॥४॥

मन्ये । त्वा । यज्ञियं । यज्ञियानां । मन्ये । त्वा । च्यवनं । अच्युतानां ।

मन्ये । त्वा । सत्त्वनां । इंद्र । केतुं । मन्ये । त्वा । वृषभं । चर्षणीनां ॥४॥

एतदादयः प्रत्यक्षाः । हे इंद्र त्वा त्वां यज्ञियानां यज्ञार्हाणां देवानामपि यज्ञियं पुरस्तादेव यज्ञार्हमिति  
मन्ये । अवबुध्ये । तथा त्वा त्वामच्युतानां अत्युतिरहितानामपि पर्वतानां च्यवनं आच्यवितारं वक्षेण विभेदक-  
मिति मन्ये । जानामि । यद्वा । अच्युतानां बलेन आच्यवितुमशक्यानां बलिनां वीराणामपि स्वबलेन विद्रा-  
वयितारमिति जाने । किंच हे इंद्र सत्त्वनां ॥ षण् संभक्तौ । कृत्रिण ॥ संभजमानानां भटानां केतुमुच्छ्रितमिति  
मन्ये । यद्वा । सत्त्वनां क्षुतिमिहविभिर्वा संभक्तृणां यष्टृणां केतुमात्मनः प्रज्ञापकं तेषां पूजनीयमिति वा मन्ये ।  
तथा त्वा त्वां चर्षणीनां मनुष्याणां वृषभमभिमतफलवर्षकमिति मन्ये । जानामि ॥

आ यवजं बाह्वोरिन्द्र धत्से मदच्युतमहये हंतवा उ ।

प्र पर्वता अनवंत प्र गावः प्र ब्रह्माणो अभिनक्षत इन्द्र ॥५॥

आ । यत् । वज्रं । बाह्वोः । इन्द्र । धत्से । मदऽच्युतं । अहये । हंतवै । ऊं इति ।

प्र । पर्वताः । अनवंत । प्र । गावः । प्र । ब्रह्माणः । अभिनक्षतः । इन्द्र ॥५॥

हे इन्द्र बाह्वोरिन्द्रमायुधं । कीदृशं । मदच्युतं शूराणां मदस्य आवधितारं यवदा धत्से आदधासि । किमर्थं । अहयेऽहिनामानमसुरं मेघं वा हंतवै । उ इत्यवधारणे । हंतुमेव । किंच यदा वेद्रेणाहिनामकेऽसुरे हते सति पर्वता जगदापूरका मेघाः प्राणवंत ॥ नु शब्दे ॥ प्रकर्षेणाशब्दयत् । यदा वा गावस्तस्यानुदकानि च प्रकर्षेण ध्वनिमकुर्वन् । उदकान्यध्वनयन्नित्यत्र यावुषो निगमः । यददः संप्रयतीरहावनदता हते तस्यादा नयो नाम स्य । अथ० ३. १३. १. तै० सं० ५. ६. १. २. इति । तुरीयः पादः परोक्षः । तदानीमभिनक्षतं अभित इन्द्रं क्षुतिभिर्हविर्भिर्गच्छतो ब्रह्माणो ब्राह्मणा इन्द्रं पर्यचरणं । यदा । ब्रह्माणः ॥ पृष्ठ वृक्षौ । प्रवृक्षाः पर्वतादय इन्द्रमक्षुवन्ति ॥ ॥३२॥

तमु एवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात् ।

इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भिरूपो नमोभिर्वृषभं विशेम ॥६॥

तं । ऊं इति । स्तवाम् । यः । इमा । जजान । विश्वा । जातानि । अवराणि । अस्मात् ।

इन्द्रेण । मित्रं । दिधिषेम । गीःऽभिः । उपो इति । नमःऽभिः । वृषभं । विशेम ॥६॥

परस्परं स्तोतार आहुः । तसु तमेवेन्द्रं वयं संहत्य स्तवाम् । स्तोत्रं करवाम । य इन्द्र इमेमानि भूतानि जजान जनयामास । तस्यादक्षादिन्द्रादेव विश्वा विश्वानि सर्वाणि वस्तुजातानि सर्वाणि जगति वावराण्यवराणां पञ्चाङ्गवानि भवंति । तेनावेनेन्द्रेण वयं गीर्भिः क्षुतिभिर्मित्रं । क्षुत्तभावप्रत्ययेन निर्देशः । मैत्रीं दिधिषेम ॥ धिष धारण इति धातुं केचिद्वदन्ति ॥ यदा । मित्रं ॥ कृद्समेकवचनं ॥ वयमिन्द्रेण सह मित्राणि सुहृदो भवेमेति गीर्भिरिन्द्रं शब्दयेम ॥ धिष शब्दे । जीहोत्यादिकः । अत्र व्यत्ययेन द्विविकरणता सूच्य शब्दः ॥ ततो नमोभिः क्रियमाणैर्नमस्कारिर्दीयमानैर्हविर्विवा वृषभं कामानां वर्षकमिन्द्रमुपो विशेम । अस्मादभिमुखमेव कुर्याम ॥

वृचस्य त्वा अस्मादीर्षमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।

मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्वयेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥७॥

वृचस्य । त्वा । अस्मात् । दीर्षमाणाः । विश्वे । देवाः । अजहुर्ये । ये । सखायः ।

मरुद्भिः । इन्द्र । सख्यं । ते । अस्तु । अयं । इमाः । विश्वाः । पृतनाः । जयासि ॥७॥

हे इन्द्र तव ये विश्वे देवाः प्राक् सखायः संयामे सखित्वं कुर्यामेति मित्राण्यभवन् ते सर्वे देवा वृचस्य वृचासुरस्य अस्मात् ॥ असेरीणादिकोऽयमर्थः ॥ सर्वाभागच्छतो इहा तेषां भीत्युत्पादनाय वृचासुरः आसमकापीत । आसाङ्गीताः संतः अत एवेष्टमाणाः सर्वतः पलायमानास्त्वा त्वामवज्रः । संयामे त्यक्तवन्तः । एवं सति हे इन्द्र मरुद्भिः सह सख्यं सखिभावस्ते तवास्तु । ये मरुतस्त्वा न परित्यजन्ति तेः सहेति । अद्यान्तरमिमा विश्वाः पृतनाः शत्रुत्वेना जयासि । स्ववलेनाभिभवसि । अनेन वृचस्रं तमिन्द्रमाह । अचेन्द्रो ये वृचं हनिष्यन्नित्यादि ब्राह्मणमनुसंधेयं । ऐ० ब्रा० ३. २०. ॥

चिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्मा इव राशयो यज्ञियासः ।

उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम ॥८॥



त्रिः । षष्टिः । त्वा । मरुतः । ववृधानाः । उस्त्राःऽइव । राशयः । यज्ञियांसः ।

उप । त्वा । आ । इमः । कृधि । नः । भागधेयै । शुष्मै । ते । एना । हविषा । विधेम ॥ ८ ॥

प्रसंगादेतावन्तो मरुतः सहाया अभवन्निवाह । हे इंद्र विश्वयः ॥ असः सुपां सुलुगिति सुः ॥ षष्टिच्युत्तर-  
संख्याका मरुतः । ते च तैत्तिरीयका ईवृक्षान्वाहृक्तेत्यादिना । तै० सं० ४. ६. ५. ५. । नवसु गणेषु सप्त सप्त निपा-  
दिताः । तत्रादितः पंच गणाः संहितायामास्त्रायते । स्वतवांच प्रघासी च सांतपनश्च गृहमेधी च क्रीडी च  
शाकी चीज्वी । वा० सं० १७. ८५. । इति खेत्तिकः षष्ठो गणः । ततो धुनिश्च ध्वांतयेत्याश्वास्त्रयोऽरस्ते  
ऽनुवाक्साः । तै० आ० ४. २४. । इत्थं चयः षष्टिसंख्याका उस्त्रा इव राशयो गाव इव संघीभूतास्ते त्वां वावृधानाः  
स्ववलेन वर्धितवन्तः । ते मरुतो यज्ञियांसो यज्ञार्हा अभवन् । तं मरुत्सहायमिंद्रं त्वा त्वां वयमेमः । उपग-  
च्छामः । ततस्त्वं गोऽस्त्रभ्यं भागधेयं मजनीयं धनं कृधि । कुब । पश्चाद्वयमयेवेनेन सोमलक्षणेन हविषा ते  
गुभ्यं मुष्मं शत्रूणां श्रोषकं वचं विधेम ॥ विध विधाने ॥ विदध्मः । कुर्म इत्यर्थः ॥

तिग्ममायुधं मरुतामनीकं कस्तं इंद्रं प्रति वर्जं दधर्ष ।

अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण तां अपं वप ऋजीषिन् ॥ ९ ॥

तिग्मं । आयुधं । मरुतां । अनीकं । कः । ते । इंद्र । प्रति । वर्जं । दधर्ष ।

अनायुधासः । असुराः । अदेवाः । चक्रेण । तान् । अपं । वप । ऋजीषिन् ॥ ९ ॥

हे इंद्र ते तव स्वमतं तिग्मं तीक्ष्णमायुधं । आयुधत्तेऽनेनेत्यायुधं धनुः । तव मरुतां चयः षष्टिसंख्यानां  
त्वत्सहायानामनीकं संघं ते त्वदीयं वचं च कः को वा देवो मनुष्यो वा प्रति दधर्ष । प्रतिकूलमभिमवति ।  
अभिभावको नास्तीत्यर्थः ॥ ध्रुष प्रसहने । आ धृषाद्वा । धा० ३४. । इति विभावितणिच् । तदभावे सिटि क्त्यं ॥  
अत एवानायुधासो धनुरायायुधवर्जिता अदेवा देववर्जिता देवद्विषो येऽसुराः संति हे ऋजीषिन् ।  
अपार्थितोऽभिषुलः सोम ऋजीषं । तद्वमिंद्रं तानसुरांचक्रेण चक्रसमानवीर्येण चक्ररूपेण वजेण वाप वप ।  
अपयतान् कुब । अपनुदेत्यर्थः ॥

मह उपायं तवसे सुवृत्तिं प्रेरय शिवतमाय पश्वः ।

गिर्वाहसे गिर इंद्राय पूर्वीर्धेहि तन्वे कुविदंग वेदत् ॥ १० ॥

महे । उपायं । तवसे । सुवृत्तिं । प्र । ईरय । शिवऽतमाय । पश्वः ।

गिर्वाहसे । गिरः । इंद्राय । पूर्वीः । धेहि । तन्वे । कुवित् । अंग । वेदत् ॥ १० ॥

हे सोतः मह महते गुणीयथाय वलेनोन्नूयाय तवसे ॥ तु इति धातुर्वृत्त्यर्थः ॥ प्रवृत्ताय शिवतमाय कक्षा-  
णतमार्थेन्द्राय सुवृत्तिं शोभनां कुतिं प्रेरय । चोदय । कुब । किमर्थं । पश्वः पशोः । हिपास्तुप्याश्च । पशोर्म-  
मास्त्रदीयाय गवे वा । यद्वा पशोरतीन्द्रियार्थं द्रष्टुर्मम धनादिकं दातुं गवे सुखादिकं प्रदातुमिंद्राय कुतिं  
प्रेरय । एतदेवाह । हे सोतः गिर्वाहसे गीर्भिः कुतिमिच्छामानार्थेन्द्राय पूर्वीर्बह्वीर्गिरः कुतीर्धेहि । कुब । ततः  
स इंद्रस्त्वने । तनोति कुलमिति तनूस्त्रनयः । तस्मै पुत्राय स्वशरीरायात्मने वा कुवित् । वज्रनामैतत् । वज्र  
धनमंगं शिप्रं वेदत् । चमयतु । ददातु । विदुं जामे । लेव्यडागमः । कुविच्छब्दयोगादनिघातः ॥ ३३ ॥

उक्थवाहसे विन्वे मनीषां दुणा न पारमीरया नदीनां ।

नि स्मृश धिया तन्वि श्रुतस्य जुष्टतरस्य कुविदंग वेदत् ॥ ११ ॥

उक्थऽवाहसे । विऽभ्वे । मनीषां । दुणां । न । पारं । ईरय । नदीनां ।  
नि । स्पृश । धिया । तन्वि । श्रुतस्य । जुष्टऽतरस्य । कुवित् । अंग । वेदत् ॥ ११ ॥

हे सोतः उक्थवाहस उक्थैः सोचशस्त्रादिभिर्ब्रह्ममानाय अत एव विभ्वे महते यदा शत्रूणामभिभव  
इन्द्रार्थेन्द्रार्थं मनीषां मनस ईशां क्षुतिमीरय । प्रेरय । तव दृष्टांतः । दुणा न यथा नाविको नदीनां नदमा-  
नानां सरितां पारं तीरं प्रति पथिकं दुणा नावा प्रापयति तद्वदिंद्रं प्रति क्षुतिं गमयेति । किंच नि स्पृश  
नितरां धनं स्पर्शय गमय तन्व्यात्मनि पुत्रे वा । कीदृशं । श्रुतस्य सर्वत्र विश्रुतस्य प्रसिद्धस्य जुष्टतरस्यात्यर्थं  
प्रीणयितुरिंद्रस्य स्वभूतं । धनं धिया त्वदीयया क्षुत्या कर्मणा वात्मानं गमय । ततस्त्वयाभिष्टुत इंद्रः कुविद्वज्ज  
धनं चिप्रं वेदत् । संभयतु । ददातु ॥

तद्विविडु यत्त इंद्रो जुजोषत्स्तुहि सुष्टुतिं नमसा विवास ।

उप भूष जरितर्मा रुवण्यः आवया वाचं कुविदंग वेदत् ॥ १२ ॥

तत् । विविडु । यत् । ते । इंद्रः । जुजोषत् । स्तुहि । सुऽस्तुतिं । नमसा । आ । विवास ।

उप । भूष । जरितः । मा । रुवण्यः । आवय । वाचं । कुवित् । अंग । वेदत् ॥ १२ ॥

हे अस्मिन् तत् सोमादिहविः सोचं वा विविडु । व्यापय । तानींद्रार्थं कुर्वित्वर्थः । ते तव स्वभूतं यज्ञविः  
सोचं वेद्रो जुजोषत् स्वीकुर्यात् तत्कार ॥ जुषी प्रीतिसेवनयोः । लोटि शपः सुः । अडागमः । छांदसत्वात्ताभ्य-  
स्त्येति गुणप्रतिषेधाभावः ॥ हे सोतः सुष्टुतिं सुक्षुतिं । शोभमाना क्षुतिर्यस्य स तथोक्तः । तादृशमिंद्रं क्षुहि ।  
तथा नमसा सोचेण हविषा वा आ विवास । इंद्रमभिमुख्येन परिचर ॥ विवासतिः परिचरणकर्मा । लोटि  
रूपं ॥ हे जरितः सोतः उप भूष ॥ भूष अलंकारे ॥ अलंकृतो भव । मा रुवण्यः । धनाभावान्वा ध्वनयः । मा  
रोदीरित्वर्थः । धनागमने कारणमाह । हे सोतः वाचं क्षुतिमिंद्रं आवय । व्यापय । ततस्त्वया क्षुत इंद्रक्षुभ्यं  
कुविद्वज्ज धनं चिप्रं प्रयच्छतु ॥

पृथपद्वहगतेष्वध्वेषु तृतीयसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रेऽव द्रप्स इति तृचः । सूचितं च । अत्र द्रप्सो अंशुम-  
तीमतिष्ठदिति तिस्रोऽच्छा म इंद्रमिति नित्यमैकाहिकं । आ० ८. ३. इति ॥

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।

आवत्तमिंद्रः शच्या धर्मतमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ १३ ॥

अव । द्रप्सः । अंशुऽमतीं । अतिष्ठत् । इयानः । कृष्णः । दशऽभिः । सहस्रैः ।

आवत् । तं । इंद्रः । शच्या । धर्मतं । अप । स्नेहितीः । नृऽमनाः । अधत्त ॥ १३ ॥

अवेतिहासमाचक्षते किल । कृष्णो नामासुरो दशसहस्रसंख्यैरसुरैः परिवृतः सत्रंशुमतीनामधेयाया  
नद्याक्षीरेऽतिष्ठत् । तत्र तं कृष्णमुदकमध्ये स्थितमिंद्रो बृहस्पतिना सहागच्छत् । आगत्य तं कृष्णं तस्मानुच-  
रांश्च बृहस्पतिसहायो जघानेति ॥ केचिदन्यथा वदन्ति । तेषां कथा हेतुः । द्रप्स इत्युदककणोऽभिधीयते स तु  
सोमो द्रप्सश्चक्रांद । अ० १०. १७. ११. इत्यादिषु सोमपरत्वेनोक्तत्वात् । एतत्पदमाश्रित्याहुः ॥ अपत्यस्य तु  
देवैः सोमो वृचमयार्दितः । नदीमंशुमतीं नामाभ्यतिष्ठत्कुरुप्रति ॥ तं बृहस्पतिर्नैकेन सोऽभ्ययादृचहा सह ।  
योत्स्यमानं सुसंहृष्टैर्मरुद्भिर्विधातुधैः ॥ दृष्ट्वा तानायतः ॥ स्वबलेन व्यवस्थितः । मन्वानो वृचमायांतं  
जिघांसुमरिसेनया ॥ व्यवस्थितं धनुष्यंतं तमुवाच बृहस्पतिः । मरुत्पतिरयं सोम ग्रहि देवान्पुनर्विमो ॥ सो  
ऽग्रवीनेति तं शक्र ओजसैव बलाद्वली । इयाय देवानादाय तं पपुर्विधिवत्सुराः ॥ जघ्नुः पीत्वा च देवानां  
समरे नवतीर्नव । तदव द्रप्स इत्यस्मिन् ह्रस्वे सर्वे निगद्यते ॥ वृ० ६. ९१८-९२५. ॥ एतदनार्थत्वे नादरणीयं  
भवति ॥ एषोऽयं क्रमेणर्जु वक्ष्यते । तथा चास्या अचोऽयमर्थः । द्रप्सः । द्रुतं सरति गच्छतीति द्रप्सः ॥



पृषोदरादिः ॥ द्रुतं गच्छन् दशमिः सहस्रैर्दशसहस्रसंख्यैरसुरैरिवानः कृष्ण एतन्नामकोऽसुरोऽंशुमतीं नाम नदीमवातिष्ठत् । अवतिष्ठत् । ततः शच्या कर्मणा प्रज्ञानेन वा धर्मतमुदक्षांतरकृच्छ्रसंतं यद्वा जगन्नीतिकरं शब्दं कुर्वंतं तं कृष्णमसुरमिन्द्रो मरुतिः सहावत् । प्राप्नोत् । पश्चात्तं कृष्णमसुरं तस्यानुचरांश्च हतवानिति वदति । नृमत्ता नृषु मनो यस्य सः । यद्वा । कर्मनेतृष्वृत्त्वैकयिधं मनो यस्य स तथोक्तः । तादृशः सन् स्नेहिताः । स्नेहतिर्वधकर्मसु पठितः । सर्वस्य हिंसिचीकृत्स्न सेना अपाधत् । अपधानं हननं । अवधीदित्यर्थः । अप स्नेहितां नृमत्ता अधद्रा इति च्छंदोगाः पठन्ति । सा सं १. ४. १. ४. १. । तस्यानुचराण हत्वा तं द्रुतं गच्छन् तमसुरमपाधत् । हतवान् ॥

द्रुप्तमपश्यं विषुणे चरंतमुपहूरे नद्यो अंशुमत्याः ।

नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥ १४ ॥

द्रुप्तं । अपश्यं । विषुणे । चरंतं । उपहूरे । नद्यः । अंशुऽमत्याः ।

नभः । न । कृष्णं । अवतस्थिऽवांसं । इष्यामि । वः । वृषणः । युध्यत । आजौ ॥ १४ ॥

तुरीयपादो मारुतः । मरुतः प्रति यद्वाक्यमिन्द्र उवाच तद्वच कीर्त्यते । हे मरुतः द्रुप्तं द्रुतगामिनं कृष्णमहमपश्यं । अदर्शं । कुच वर्तमानं । विषुणे विष्वगंचने सर्वतो विस्तृते देशे । यद्वा । विषुणो विषमः । विषमे परैरदृशे गुहाख्ये देशे । चरंतं परितो गच्छंतं । किंचांशुमत्या एतन्नामिकाया नद्यो नद्या उपहूरेऽत्यंतं गूढस्थाने नभो न नभसि यथादित्यो दीप्यते तद्वत्तच्च दीप्यमानमवतस्थिवांसमुदकक्षांतरवस्थितं कृष्णमेतन्नामकमसुरमपश्यं । तस्मिन्दृष्टे सति हे वृषणः कामानामुदकानां वा सेत्तारो मरुतः वो युष्मान युद्धार्थमिष्यामि । अहमिच्छामि । ततो युयं तमिमं कृष्णमाजौ । अजन्ति गच्छन्त्यत्र योद्धार आयुधानि प्रक्षिपयन्तीति वाजिः संयामः । तस्मिन्बुध्यत । संहरत । वाक्यभेदादनिघातः । केचिदिष्यामि वो मरुत इति पठन्ति । तच्च हे मरुतः वो युष्मानिच्छामीत्यर्थो भवति ॥

अथ द्रुप्तो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तिलिषाणः ।

विशो अर्देवीरभ्यां चरंतीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ १५ ॥

अथ । द्रुप्तः । अंशुऽमत्याः । उपस्थे । आधारयत् । तन्वं । तिलिषाणः ।

विशः । अर्देवीः । अभि । आऽचरंतीः । बृहस्पतिना । युजा । इंद्रः । ससाहे ॥ १५ ॥

अथाथ द्रुप्तो द्रुतगामी कृष्णोऽंशुमत्या नद्या उपस्थे समीपे तिलिषाणो दीप्यमानः संस्तन्वमात्मीयं शरीरमधारयत् । परैरहिंस्त्रैश्च विभर्ति । यद्वा । बलप्राप्त्यर्थं स्वशरीरमाहारादिभिरपोपयत् । तच्चिन्द्रो गत्वा बृहस्पतिनैतन्नामकेन देवेन युजा सहायेनादेवीरद्योतमानाः । कृष्णरूपा इत्यर्थः । यद्वा । पापयुक्तादक्षुत्याः । आचरंतीरागच्छन्तीर्विशोऽसुरसेना अभि ससाहे । जघान । तमवधीदित्यर्थः प्रसंगादवगम्यते ॥ ॥ ३४ ॥

त्वं ह त्वत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।

गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविंदो विभुमज्ञो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ १६ ॥

त्वं । ह । त्वत् । सप्तऽभ्यः । जायमानः । अशत्रुऽभ्यः । अभवः । शत्रुः । इंद्र ।

गूळ्हे इति । द्यावापृथिवी इति । अन्तु । अविन्दुः । विभुसत्ऽभ्यः । भुवनेभ्यः ।

रणं । धाः ॥ १६ ॥

हे इंद्र त्वं खलु त्वत्तत्कर्म कृतवानसि । किं तत् उच्यते । जायमानस्त्वं प्रादुर्भवन्निवाशत्रुभ्यः शत्रुरहितेभ्यः सप्तभ्यः कृष्णवृचनमुचिशंभरादिसप्तभ्यो बलवद्भ्यः शत्रुभ्यः तदर्थं शत्रुरभवः । यद्वा । सप्तभ्यः । सप्तैषांगिरसः । सप्तभ्योऽंगिरोभ्यो गवानयनार्थं प्रादुर्भवन्निवाशत्रुभ्यो बलवद्भ्यः पशुभ्यः शत्रुरभवः । किंच हे इंद्र त्वं गूढं तमसा गूढं संवृते बावापृथिवी बावापृथिवी सूर्यात्मना ते प्रकाशागुक्रमेणाविंदः । अलमथाः । तथा विसृ-  
मन्नो महत्त्वयुक्तिभ्यो सुवनेभ्यो लोकेभ्यो रणं रमणं धाः । धारयसि । विदधासीत्यर्थः ॥

त्वं ह त्वदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन्धृषितो जघंथ ।

त्वं शुष्मास्यावातिरो वधचैस्त्वं गा इंद्र शच्येदविंदः ॥ १७ ॥

त्वं । ह । त्यत् । अप्रतिमानं । ओजः । वज्रेण । वज्रिन् । धृषितः । जघंथ ।

त्वं । शुष्मास्य । अव । अतिरः । वधचैः । त्वं । गाः । इंद्र । शच्या । इत् । अविंदः ॥ १७ ॥

हे इंद्र त्वं ह त्वं खलु त्वदेतत्कर्मकार्योः । किं तत् अभिधीयते । हे वज्रिन् वज्रवज्रिंद्र धृषितो धृष्टः संयामेषु शत्रुहने कृशतः सन् । यद्वा । धृष्टो धीरः सप्तप्रतिमानं । प्रतिमानमुपमा । निरुपमं । अस्य सदृश-  
मन्वदीयं कीदृशं नास्तीत्यर्थः । तादृशं शुष्मस्त्रीवो बलं वज्रेणापुधेन जघंथ । हतवानसि ॥ अभ्यासाच्चैति  
हृतेर्घत्वं ॥ पूर्वं शुष्मस्य बलं विनाशेदानीं शुष्ममपि हतवानित्याह । त्वं वधचैर्हृणनसाधनैरापुधिः शुष्मस्य ॥  
क्रियायद्वा कर्तव्यमिति संप्रदानसंज्ञा । चतुर्थ्यर्थे वज्रलमिति षष्ठी ॥ शुष्ममवातिरः । कुत्साय रावर्षये  
ऽवापुखं कृत्वावधीः । तथा च निगमः । कुत्साय शुष्ममशुषं नि वहीः । ऋ० ४. १६. १२. इति । तथा हे इंद्र  
त्वं शच्या स्वकीयया प्रज्ञया कर्मणा वा गाः शत्रून्हत्वा तेषां गा अविंदः । अलमथाः । यद्वा । अंगिरसां गाः  
पणीन् संप्रहृत्य लब्धवानसि ॥

त्वं ह त्वद्वृषभ चर्षणीनां घनो वृचाणां तविषो बभूथ ।

त्वं सिंधूरसृजस्तस्तभानान् त्वमपो अजयो दासपत्नीः ॥ १८ ॥

त्वं । ह । त्यत् । वृषभ । चर्षणीनां । घनः । वृचाणां । तविषः । बभूथ ।

त्वं । सिंधून् । असृजः । तस्तभानान् । त्वं । अपः । अजयः । दासपत्नीः ॥ १८ ॥

त्वं खलु तत्कर्म कृतवानसि । किं तत् । हे वृषभ कामानां वर्धितरिंद्र चर्षणीनां यष्टृणां मनुष्याणां  
मावितानां वृचाणामुपद्रवाणां घनो हंता ॥ अमूर्त्यर्थेऽपि चंद्रोविषयत्वान्निपातनं ॥ तादृशस्त्वं तविषः  
प्रवृद्धो बलवान्वा बभूथ । बभूविथ ॥ बभूथा ततथेतीहभावो निपात्यते ॥ ततस्त्वं तस्तभानानसुरैर्विदध्यमाणाः  
सिंधून् गंगायाः सप्त नदीः सरयायास्तजः । पश्चात्त्वं दासपत्नीः । दासा उपचपयितारः शचवः । ते पतयः  
स्वामिनो यासां ताः ॥ निव्यं सपत्न्यादिषु । पा० ४. १. ३५. इत्यत्र दासाश्चैत्युपसंख्यानान्दृष्टीम् ॥ असुरस्वामिका  
अपोऽजयः । जितवानसि । तानसुराजितोदकानि च प्रास्तु इत्यर्थः ॥

स सुक्रतू रणिता यः सुतेष्वनुत्तमन्युर्यो अहेव रेवान् ।

य एक इक्षर्यपांसि कर्ता स वृचहा प्रतीदन्यमाहुः ॥ १९ ॥

सः । सुऽक्रतुः । रणिता । यः । सुतेषु । अनुत्तमन्युः । यः । अहाऽइव । रेवान् ।

यः । एकः । इत् । नरि । अपांसि । कर्ता । सः । वृचहा । प्रति । इत् । अन्यं । आहुः ॥ १९ ॥

अथ परोक्षकृताः । स इंद्रः सुक्रतुः शोभनप्रज्ञः शोभनकर्मा भवति यः सुतेष्वभिषुतेषु सोमेषु रणिता  
तत्पानार्थं रमणशौलः किंचानुत्तमन्युः परैरनुत्तमोऽयः शत्रुभिर्नोत्तमशक्तः तादृशो य इंद्रो रेवान्धनवान् ।



तच्च दृष्टान्तः । अहेव यथाहाहानि दिवसा धनवन्तः । दिवसेषु हि धनानि प्रादुर्भवन्ति न रात्रिषु । तद्वत् । तथा य इन्द्र एक इदमहाय एव नरि कर्मनेतरि मनुष्येऽपांसि कर्माणि कर्ता कर्तुंशीलो भवति ॥ ताच्छीक्षि-  
कस्तु । अत एव षष्ठीप्रतिषेधः ॥ स पूर्वोक्तगुणोपेत इन्द्रो वृचहा । अपामावरकस्यासुरस्योपद्रवस्य वा  
हंतुत्वाद्वृचहेति सर्वैः श्रूयते । तमेवेन्द्रमन्यं प्रति । इदमधारणे । अन्यं प्रत्येवाहुः । इन्द्रः सर्वमन्यं शत्रुसंघं प्रति  
भवति । समिभवत्येवेति वदन्ति ॥

स वृचहेन्द्रश्चर्यणीधृतं सुष्टुत्या हव्यं हुवेम ।

स प्राविता मघवा नोऽधिवक्ता स वाजस्य श्रवस्यस्य दाता ॥२०॥

सः । वृचऽहा । इन्द्रः । चर्यणिऽधृत् । तं । सुऽस्तुत्या । हव्यं । हुवेम ।

सः । प्रऽअविता । मघवा । नः । अधिऽवक्ता । सः । वाजस्य । श्रवस्यस्य । दाता ॥२०॥

स वृचहा वृचस्य हंता स इन्द्रश्चर्यणिधृतगुण्याणां धनादिदानेन पोषको भवति । तमिन्द्रं वयं सुष्टुत्या  
शोभनया स्तुत्या ऊवेम । अस्मत्प्रेष्यामः । किमर्थं यूयमाह्वयति चेत् कारणं ब्रूमः । स इन्द्रः प्राविता  
प्रकार्येणास्माकं रक्षिता भवति । किंच मघवा धनवानिन्द्रो नोऽस्माकमधिवक्ताधिकं वक्ता ब्रूमामहेन वक्ता  
भवति ॥ यद्वा । धनदानेनास्मानधिकं वक्तुमर्हति ॥ अहं ह्यवृचसं । पा० ३. ३. १६९. इति वृचः ॥ किंच स  
एवेन्द्रः अवस्यस्य श्रवसः कीर्तिर्निमित्तस्य वागस्यान्नस्य । यद्वा । अवसोऽन्नस्य हिताय वाजस्य बलस्य । दाता  
भवति खलु । तस्मादेवंगुणमिन्द्रं वयमाह्वयामः ॥

स वृचहेन्द्र ऋभुक्षाः सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूव ।

कृण्वन्नपांसि नर्या पुरुणि सोमो न पीतो हव्यः सखिभ्यः ॥२१॥

सः । वृचऽहा । इन्द्रः । ऋभुक्षाः । सद्यः । जज्ञानः । हव्यः । बभूव ।

कृण्वन् । अपांसि । नर्या । पुरुणि । सोमः । न । पीतः । हव्यः । सखिभ्यः ॥२१॥

ऋभुक्षाः स महान् । यद्वा । ऋभुशब्देनर्वाद्यस्त्रयो गृह्यते । ऋभुभिः सह चियति निवसतीति तादृशः ।  
वृचहा स इन्द्रः सद्यस्तदानीमेव जज्ञानः प्रादुर्भवन्त्यः सर्वैः स्तोतुमिच्छन्तिमिराज्ञातव्यो बभूव । किंच नर्या  
नर्याणि । नरा मनुष्याः कर्मनेतारः । तेभ्यो हितानि पुरुणि ब्रह्मन्पांसि कर्माणि कृण्वन् कुर्वन् सखिभ्यो  
हविश्रदानेनोपकारत्वाच्चिभ्यश्चत्विग्भ्यो हव्य आज्ञातव्यो हवनयोग्यो वामूत् । तच्च दृष्टान्तः । सोमो न यथा  
पीतः सोमो यद्युभ्यः स्वर्गादिफलानि कुर्वन्देवैराज्ञातव्यो भवति तद्वत् ॥ ३५ ॥

या इद्रेति पंचदशर्चं चतुर्थं सूक्तं काश्यपस्य रेभस्वर्चमिन्द्रं । दशम्यतिजगती द्वापंचाश्वदचरा । एकादशी-  
द्वादशानुपरिष्टादृहत्वी त्र्यष्टकांतद्वादशकवत्वी । चयोदशतिजगती । चतुर्दशी त्रिष्टुप । पंचदशी जगती ।  
शिष्टा बृहत् । तथा चानुकन्यते । या इन्द्र पंचोना रेभः काश्यपो बार्हतमतिजगत्युपरिष्टादृहत्वावतिजगती  
त्रिष्टुपजगतीत्यंतत इति ॥ सूक्तविनियोगो लेखिकः ॥ महाव्रते निष्केवत्ये बार्हतनुचाशीतौ या इद्रेत्यादि  
नवर्चः । तथैव पंचमारण्यके सूच्यते । या इन्द्र भुज आभर इति नव सूददोहाः । ऐ० आ० ५. २. ४. इति ॥  
चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंविनो वैकल्पिकानुरूपगुणस्य या इद्रेत्यादिके द्वे द्वितीयातुतीये ।  
सूच्यते च । तमिन्द्रं जोहवीमि या इन्द्र भुज आभर इत्येका द्वे वा । आ० ७. ४. इति ॥

या इन्द्र भुज आभरः सर्वो असुरेभ्यः ।

स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥१॥

याः । इन्द्र । भुजः । आ । अमरः । स्वःऽवान् । असुरेभ्यः ।

स्रोतारं । इत् । मघऽवन् । अस्य । वर्धय । ये । च । त्वे इति । वृक्तऽवर्हिषः ॥ १ ॥

अविरिन्द्रं प्रार्थयति । हे इन्द्र स्वर्गान् सुखवान् स्वर्गवान्वा । अथवा स्वःशब्दः सर्वपर्यायः । सर्वं मृतजातं । आत्मन एवोत्पन्नत्वात्तद्वा । एवंगुणस्त्वं या यानि भुजो भोक्तव्यानि धनान्यसुरेभ्यो वक्ष्यन्तो राक्षसेभ्य आमरः आहरः तान् हत्वा हतवानसि ॥ इयहोरिति मकारादेशः ॥ अत एव हे मघवन् धनवसिन्द्र अस्य ॥ अन्वादेशेऽशादेशः ॥ एतस्याहृतस्य धनस्य दानेन स्रोतारमित्तव स्रोतकारिणमेव वर्धय । वृद्धिमन्तं कुर्व । ये चान्ये यष्टारस्त्वदर्थं वृक्तवर्हिषः स्तोत्रवर्हिषो भवन्ति अतस्तान् धनेन वर्धय ॥

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययं ।

यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन्तं धेहि मा पणौ ॥ २ ॥

यं । इन्द्र । दधिषे । त्वं । अश्वं । गां । भागं । अव्ययं ।

यजमाने । सुन्वति । दक्षिणाऽवति । तस्मिन् । तं । धेहि । मा । पणौ ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वं यमश्वं गमनसाधनान् हरीन् गामपिहोचकर्मणि पयःप्रदानेनोपकारिका गा अव्ययं अथरहितमविनश्यत् भागं भवनीयं धनं । सर्ववैकल्यमविवक्षितं । एताञ्चशुभ्य आहृत्य दधिषे विभर्षि तं सर्वं सुन्वति सोमामिषवं कुर्वति दक्षिणावति यज्ञ अस्मिन्भ्यो दक्षिणादेयत्वेन तद्वति यजमाने यागं कुर्वणे तस्मिंस्त्वं धेहि । सर्वत्र धनादिदानं मा कुर्वित्याह । मा पणौ ॥ पणं व्यवहारे ॥ द्रव्यव्यवहारादयष्टा जनः पणिः । तस्मिन्नेतत्सर्वं मा देहि ॥

य इन्द्र सस्यव्रतोऽनुष्वापमदेवयुः ।

स्वैः ष एवैर्मुमुरुत्पोथं रयिं सनुतधेहि तं ततः ॥ ३ ॥

यः । इन्द्र । सस्ति । अमृतः । अनुऽस्वार्षं । अदेवऽयुः ।

स्वैः । सः । एवैः । मुमुरुत् । पोथं । रयिं । सनुतः । धेहि । तं । ततः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र अदेवयुदेवान् शुष्मानकामयमानोऽमृतो व्रतरहितः कर्मरहितो भूत्वानुष्वापममुवृत्तस्त्रप्तं यथा भवति तथा यः सखि स्वपिति ॥ षस स्वापे । आदादिकः ॥ स जनः खैरात्मीयैरेवैर्गमनैरेव पोथं पोषणीयं रयिं स्वीयं धनं मुमुरुत् । मारयतु । विनाशयतु । अमार्गेर्बृतादिभिरास्त्रधनं नश्यतु न तु देवानां हविष्प्रदानेनेति । ततस्त्वं तमयष्टारं जनं । सनुतरित्वं तर्हितनाम । मुमुतरं तर्हिति कर्मरहिते कस्मिंश्चिद्देशे धेहि । स्वापय ॥

यच्छक्रासि परावति यदवावति वृचहन् ।

अतस्त्वा गीर्भिर्द्युर्गदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥ ४ ॥

यत् । शक्र । असि । पराऽवति । यत् । अवाऽवति । वृचऽहन् ।

अतः । त्वा । गीऽभिः । द्युऽगत । इन्द्र । केशिऽभिः । सुतऽवान् । आ । विवाऽसति ॥ ४ ॥

हे शक्र शत्रुहन्तसमर्थेन्द्र यद्यदा परावति विप्रकृष्टेऽतिदूरे सुलोके देशेऽसि विद्यसे हे वृचहन् वृचस्य हन्तरिन्द्र यद्यदावावत्यवावीने तस्मादधस्तात्स्थिते तदपेक्षया समीपे देशेऽन्तरिक्षे भवसि तस्मादपि अतोऽस्माद्वृत्तलोकाद्वा युगत ॥ गम् गता । क्विपि गमः क्वावित्यनुनासिकलोपः । तुक् । सुपां सुसुगिति लुक् ॥ सुलोके प्रति गच्छद्भिः स्वभामा सर्वतो गच्छद्भिः केशिभिः केशवद्भिर्हरिभिरिव स्थिताभिर्गीर्भिः सुतिभिस्तां स्वां सुतवानभिपुतसोमवान्यजमान आ विवासति । आत्मीयं यज्ञं प्रत्यागमयति त्वामेतैः स्तोत्रैः परिचरतीति वा ॥



यद्वासि रोचने दिवः समुद्रस्याधि विष्टपि ।

यत्पार्थिवे सद्ने वृचहंतम् यदंतरिक्षं आ गहि ॥ ५ ॥

यत् । वा । असि । रोचने । दिवः । समुद्रस्य । अधि । विष्टपि ।

यत् । पार्थिवे । सद्ने । वृचहन्तम् । यत् । अंतरिक्षे । आ । गहि ॥ ५ ॥

हे इंद्र यद्वा यदि वा दिवो बुलोकस्य रोचने दीपनशीले स्थाने भवसि । यद्वा समुद्रस्य मध्येऽध्वधिते विष्टपि विष्टपे तत्संवधे कस्मिंश्चित्स्थाने भवसि । हे वृचहंतमातिशयेन वृचस्यासुरस्य पापस्य वा हंतरिद्र यद्यदि वा पार्थिवे पृथिव्यां भवे सद्ने स्थाने विवसि । यदि वांतरिक्षे तस्मिंश्चोक्ते वर्तसे । यत्रकुच भवसि तथाप्यस्यदीयं यज्ञं गत्वा गहि । आगच्छ ॥ ॥ ३६ ॥

स नः सोमेषु सोमपाः सुतेषु श्वसस्पते ।

मादयस्व राधसा सूनृतावतेन्द्र राया परीणसा ॥ ६ ॥

सः । नः । सोमेषु । सोमपाः । सुतेषु । श्वसः । पते ।

मादयस्व । राधसा । सूनृतावता । इंद्र । राया । परीणसा ॥ ६ ॥

हे सोमपाः सोमस्य पातः हे श्वसस्पते वयस्य पातयितरिद्र स पूर्वोक्तवचनस्य सुतेष्वसामिरभिषुतेषु सोमेषु नोऽस्मात्त्राधसा वयसाधनेनाग्नेन सुनुतावतावृतरहितलोपेतेन । यद्वा । सूनुतेति वाङ्मामः । शोभनवा-  
क्ययुक्तेन । अग्नेन पुत्रादिकं लक्ष्यते । पुत्रोपेतेनाग्नेन । परीणसा । वज्रनामितत् । वज्रना राया धनेन च नोऽस्मादादयस्व । मोदय । सोमस्य प्रदातृभ्योऽस्यभ्यमन्नपुत्रधनादिकं देहीत्यर्थः ॥

मा न इंद्र परा वृणुभवा नः सधमाद्यः ।

त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इंद्र परा वृणुक् ॥ ७ ॥

मा । नः । इंद्र । परा । वृणुक् । भव । नः । सधमाद्यः ।

त्वं । नः । ऊती । त्वं । इत् । नः । आप्यं । मा । नः । इंद्र । परा । वृणुक् ॥ ७ ॥

हे इंद्र नो हविषां प्रदातृणस्मात्परा वृणुक् । मा परित्याषीः ॥ वृजी वर्जने । रौधादिकः । लङि रूपं ॥ तदेवाह । त्वं नोऽस्माकं सोमेन सधमाद्यः सधमादनशीलो भव । किंच हे इंद्र नोऽस्मात्स्वमेवोत्प्लूत्वां स्थापय । यद्वा । ऊतो ॥ अत्ययेन कर्तरि क्तिचि वा निपातितः ॥ त्वमेवास्माकं रक्षिता खलु । तथा त्वमित् । इदवधारणे । त्वमेवास्माकमायं ज्ञातेयं । त्वमेव बंधुरित्यर्थः । अत एव मा न इंद्र परा वृणुगित्वेन मतार्थः ॥

अस्मे इंद्र सचा सुते नि षदा पीतये मधु ।

कृधी जरिचे मधवन्त्रवो महदस्मे इंद्र सचा सुते ॥ ८ ॥

अस्मे इति । इंद्र । सचा । सुते । नि । सद् । पीतये । मधु ।

कृधी । जरिचे । मधवन् । अत्रः । महत् । अस्मे इति । इंद्र । सचा । सुते ॥ ८ ॥

हे इंद्र अस्मै अस्माभिः सचा सह सुतेऽभिषुते सोमे नि षद् । अस्मादीये यज्ञे निषीद् । किमर्थं । मधु पीतये मधुनः ॥ सुपां सुलुगिति ऊसो लुक् ॥ मदकरस्य सोमस्य पीतये पानार्थं । किंच हे मधवन् धनवर्तिन्द्र महदवो रक्षणं जरिचे ह्यधि । ऊढ । कस्मिन् सति । अस्मै इंद्र सचा सुत इति व्याख्यातः पादः ॥

न त्वा देवास आशत न मर्त्यासो अद्रिवः ।

विश्वा जातानि श्वसाभिभूरसि न त्वा देवास आशत ॥ ९ ॥

न । त्वा । देवासः । आशत । न । मर्त्यासः । अद्रिवः ।

विश्वा । जातानि । श्वसा । अभिभूः । असि । न । त्वा । देवासः । आशत ॥ ९ ॥

हे अद्रिवो वज्रवर्तिद्र त्वा त्वा देवासस्त्वदन्ये सर्वे देवा नाशत । स्वकर्मणा स्वबलेन वा न व्याप्नुवन्ति । न मर्त्यासो मर्त्या मनुष्याश्च न व्याप्नुवन्ति । कुत एव तदवसीयते । तदाह । विश्वा विश्वानि सर्वाणि जातानि भूतजातानि श्वसा स्वबलेनैवाभिभूरसि । अभिभावकोऽसि भवसि । तस्मान्न त्वा देवास आशतेति गतार्थः ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यन्दिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिणो विश्वाः पृतना इति वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूचितं च । विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं तमिन्द्रं जोह्वीमि । आ० ७. ४. इति ॥

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूसूतक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।

क्रत्वा वरिष्ठं वरं आमुर्मुतोयमोजिष्ठं तवसं तरस्विनं ॥ १० ॥

विश्वाः । पृतनाः । अभिभूतरं । नरं । सजूसूतक्षुः । इन्द्रं । जजनुः । च । राजसे ।

क्रत्वा । वरिष्ठं । वरं । आमुर्मुति । उत । उयं । ओजिष्ठं । तवसं । तरस्विनं ॥ १० ॥

विश्वाः सर्वा व्याप्ता वा पृतनाः ॥ पृष्ट्वा व्यायामे ॥ व्याप्रियन्त इति पृतनाः सेनाः । सजुः परस्परं संगताः सख्योऽभिभूतरं शत्रूणामत्यर्थमभिभविष्यन्तं नरं सर्वस्य नेतारमिन्द्रं ततश्चुः । आयुधादिभिस्तीक्ष्णीकुर्वन्ति । आयुधवन्तमश्ववन्तं च चकुरित्यर्थः । यद्वा । पृतना इति संग्रामाः । व्याप्रियन्तेऽचेति पृतनाः संग्रामाः । सर्वानेव संग्रामानभिभावुकमिन्द्रं क्षीतारोऽन्योन्यं संगताः क्षुतिभिस्तीक्ष्णमकुर्वन् । कुते सति बलवाभवतीति । यद्वा । यष्टारो हविष्प्रदानेन वीर्यवन्तं कुर्वन्तीति । किंच क्षीतारो राजसे ॥ राजतेक्षुमर्च्येऽसिप्रत्ययः ॥ आत्मनो विराजनाथं प्रकाशनार्थं सूर्यात्मानमिन्द्रं जजनुः । जमयामासुः । क्षीचं यज्ञे प्रादुरभावयन्नित्यर्थः । उतापि च क्रत्वा म्योयवृचवधादिकर्मणैव वरिष्ठमुद्यतममासुरिं शत्रूणामभिमुख्येन मारयितारमिन्द्रं वरे वरणीये धने क्षीतारश्चक्रुः । आत्मनां धनलाभार्थं क्षुवंतीत्यर्थः । कीदृशं । उयमुत्पूर्णबलं अत एवीजिष्ठमोजस्वितमं तवसं प्रवृष्टं तरस्विनं संग्रामे शत्रुवधार्थं वेगवन्तमिन्द्रं धनार्थं क्षुवंति ॥ ३७ ॥

समीं रेभासो अस्वरन्निद्रं सोमस्य पीतये ।

स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ ११ ॥

सं । ई । रेभासः । अस्वरन् । इन्द्रं । सोमस्य । पीतये ।

स्वःऽपतिं । यत् । ई । वृधे । धृतव्रतः । हि । ओजसा । सं । ऊतिभिः ॥ ११ ॥

रेभासः ॥ रेमृ शब्दे ॥ शब्दयितारः क्षीतारः । यद्वा । रेभासः कञ्जपपुत्रा रेभास एतन्नामका ऋषयः । ईमेनमिन्द्रं समस्तरन् । सम्यगशब्दयन् । समक्षुबन् । किमर्थं । सोमस्य पीतये सोमपानाय । किंच स्वर्पतिं स्वर्गस्य पानयितारं धनस्य स्वामिनं वेमेनमिन्द्रं यद्यदा वृधे हविर्निर्वर्धनाय संक्षुवंति तदा धृतव्रतो धृतकर्मेन्द्र ओजसा बलेन क्षीतुमिच्छतिमिर्महद्भिः पालनैश्च सह संगच्छते । क्षुतिमिर्बलं महद्भिः पालनं चन्द्रस्य भवतीत्यर्थः ॥

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेघं विप्रा अभिस्वरा ।

मुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्कभिः ॥ १२ ॥



नेमिं । नमंति । चक्षसा । मेघं । विप्राः । अभिऽस्वरा ।

सुऽदीतयः । वः । अद्दुहः । अपि । कर्णे । तरस्विनः । सं । चक्रऽभिः ॥ १२ ॥

नेमिं । अराव्यया नेमिर्वाप्नोति तद्वत्सर्वं व्याप्नुते । तादृशं नमनशीलमिन्द्रं चक्षसा दर्शनमाचरेष्व नमंति । काञ्चपा रेभाः क्षीतारो वा नमस्कुर्यंति । ततो विप्रा मेधाविनो मेघं । इन्द्रो मेघो भूला मेधातिथिं स्वर्गमनयत् । तस्मात्मेधातिथेर्मेघभूतमिन्द्रमभिस्वराभिस्वरणेन क्षीचेण प्रणमंति । इदानीं यजमानः क्षीतुनाह । अपि च सुदीतयः शोभनदीतयोऽद्दुहः कस्याप्यद्गोधारो वो यूयं ॥ छांदसो वसादेशः ॥ तरस्विनः कर्मसु क्षीचेषु वा त्वरायुक्ताः संत इन्द्रस्य कर्णे ओचसमीप ऋक्मिरर्चनायुक्तैर्मेघैः । यदा । ऋचो बह्वो येषु संति तेः शस्त्रादिभिः । संनुत । इन्द्रो यथा युष्मदीयानि क्षीचशस्त्रादीनि शृणोति तथा सम्यगभिपुतेत्यर्थः ॥

पूर्वोक्त एव शस्त्रे वैकल्पिकस्यापुरुषपुत्रस्य तमिन्द्रमित्याद्याः । सूचमुदाहृतं ॥

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुयं सचा दधानमप्रतिष्कृतं शवांसि ।

मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो वर्ततद्राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १३ ॥

तं । इन्द्रं । जोहवीमि । मघऽवानं । उयं । सचा । दधानं । अप्रतिऽस्तुतं । शवांसि ।

मंहिष्ठः । गीऽभिः । आ । च । यज्ञियः । वर्ततत् । राये । नः । विश्वा । सुऽपथा ।

कृणोतु । वज्री ॥ १३ ॥

तं पूर्वोक्तगुणोपेतमिन्द्रं जोहवीमि । यद्वाहं पुनराह्वयामि ॥ ह्यतेरभ्यस्तस्य चेति संप्रसारणं ॥ कौटुशं । मघवानं मंहनीयधनवंतमुयमुन्नूर्ध्वबलं सचा सत्यं यथार्थमेव शवांसि बलानि दधानं अत एवाप्रतिष्कृतं शत्रुभिरप्रतिरोधनीयमाह्वयामि । किंच मंहिष्ठः पूज्यतमो दातृतमो वा यज्ञियो यज्ञार्ह इन्द्रो गीर्भिरसादीयानिः क्षुतिभिरा वर्तत । यज्ञेष्वामिसुखेन वर्ततां च ॥ वर्ततेष्यंतस्य चङ्कि रूपं । चवाद्येति प्रथमेति न निघातः । चञ्चल्यतरस्यामिति स्वरः ॥ ततो वज्री वज्रवानिन्द्रो नोऽस्माकं राये धनाय विश्वा विश्वानि सर्वाण्येव सुपथा सुमार्गाणि कृणोतु च । करोतु । धनं सर्वदिकस्यमस्यान्नाप्नोत्वित्यर्थः ॥

त्वं पुरं इन्द्र चिकिदेना व्योजसा शविष्ठ शक्र नाशयथै ।

त्वद्विश्वानि भुवन्नानि वज्रिन्द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा ॥ १४ ॥

त्वं । पुरः । इन्द्र । चिकित् । एनाः । वि । व्योजसा । शविष्ठ । शक्र । नाशयथै ।

त्वत् । विश्वानि । भुवन्नानि । वज्रिन् । द्यावा । रेजेते इति । पृथिवी इति । च । भीषा ॥ १४ ॥

हे शविष्ठ बलवन्तम अत एव हे शक्र शत्रुहन्तमसमर्थं हे इन्द्र त्वमेनाः ॥ अन्वादेशे ॥ एतानि पुरः शंवरस्य पुराण्योजसा स्त्रीयेनैव तेजसा वि नाशयथै विनाशयितुं चिकिञ्चाता भवसि ॥ नश्येताच्छ्रैप्रत्ययः ॥ पुनरपि सामर्थ्यं प्रशंसति । हे वज्रिन्वज्रमिन्द्र विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि त्वत्पत्तो भीत्या कंपते । तथा द्यावापृथिवी ॥ दिवो आविति द्यावादेशः । आद्युदात्तस्य । पृथिवी ऊर्ध्वतत्वेनांतोदात्तः । देवताद्वे चेतुभयपदप्रकृतिसरत्वं । विप्रकर्षसु छांदसः ॥ द्यावापृथिवी च भीषा त्वत्तो भीत्या रेजेते । कंपते । अरेजेतां रोदसी । अ० १. ३१. ३. इति निगमः । सर्वे त्वदधीना इत्यर्थः ॥

तन्मं चतुर्मिन्द्रं पूर चित्र पात्वपो न वज्रिन्दुरितातिं पर्वि भूरि ।

कदा न इन्द्र राय आ दशस्येर्विश्वस्यस्य स्पृहयाय्यस्य राजन् ॥ १५ ॥

तत् । मा । चतु । इंद्र । भूर । चिच । पातु । अपः । न । वज्रिन् । दुः । इता । आत । पर्वि । भूरि ।  
कदा । नः । इंद्र । रायः । आ । दशस्येः । विश्वऽप्यस्य । स्पृहयाप्यस्य । राजन् ॥ १५ ॥

हे भूर वज्रवर्धन चायनीय विविधरूप वा । इंद्रो मायामिः पुरुरूप ईयते । ऋ० ६. ४७. १८ । इत्यादिषु  
दृष्टत्वात् । वज्रविधरूप हे इंद्र तत् प्रशस्तं त्वदीयभूतं सत्त्वं मा मां पातु । सर्वतो रचतु । किंच हे वज्रिन्  
वज्रवर्धन भूरि ॥ सुपो सुक् ॥ भूरीणि वज्रानि दुरिता दुरितानि पापान्यति पर्वि । अतीत्य पारय । तच्च  
दृष्टांतः । अपो न यथा नाविक उदकाणि मनुष्यान्पारयति तद्वदस्यान्पापानि पारय । हे राजन् दीप्यमान हे  
इंद्र विश्वप्यस्य ॥ प्य इति रूपनाम । रूपे साधु प्यं । नकारोपजनम्कांदसः ॥ वज्ररूपं तत् स्पृहयाप्यस्य  
सर्वैः स्पृहणीयं रायः ॥ क्रियायहणमिति संप्रदानसंज्ञा । चतुर्थ्यर्थे वज्रलमिति षष्ठी ॥ तन्न नोऽसम्भवा  
आमिमुखेन कदा दशस्येः । कस्मिन्कास्मिन् प्रयच्छेः । तदा तव स्वभूतं सत्त्वं मा रचतु । मह्यं धनं दत्त्वा कर्माणि  
च मयानुष्ठाप्य मां पापरहितं कुर्वित्वर्थः ॥ ३८ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थीचतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण  
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥

यस्य निःशसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।  
निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

अथ षष्ठस्य सप्तमोऽध्याय आरभ्यते । तर्पेद्रायेति द्वादशर्चं पंचमं सूक्तमांगिरसस्य नृमेधस्यार्धमैन्द्रं । सप्तमी  
दशस्येकादशौ च तिस्रः ककुभो मध्यमपादस्य द्वादशाक्षरत्वात् । मध्यमस्यैकत्रुप । अनु० ५. ३. । इति हि  
तल्लक्षणं । नवमीद्वादशौ पुरउष्णिही । प्रथमपादस्य द्वादशाक्षरत्वात् । आद्यस्यैत्पुरउष्णिक् । अनु० ५. २. । इति  
हि तल्लक्षणं । शिष्टा उष्णिहः । तथा चानुक्रम्यते । इंद्राय द्वादश नृमेध औष्णिहं सप्तस्युपांशे च ककुभोऽन्ता-  
नवम्यौ पुरउष्णिहाविति ॥ महाव्रते औष्णिहतुचाशीताविदं सूक्तं । तथैव पंचमारण्यके सूचितं । इंद्राय साम  
गायत सखाय आ शिवामहि । ऐ० आ० ५. २. ५. । इति ॥ आभिज्ञविकेषूक्येषु तृतीयसवने ब्राह्मणाच्छंसिन् इंद्राय  
साम गायतेति वैकल्पिकः स्तोत्रियसूचः । सूचितं च । इंद्राय साम गायत सखाय आ शिवामहि । आ० ७. ८. ।  
इति ॥ पूर्वोक्तस्यैव ब्राह्मणाच्छंसिन् आभिज्ञविकेषूक्येष्वेन्द्रं नो गधीति वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूचितं च । इंद्र  
नो गध्येदु मधो मदितरं । आ० ७. ८. । इति ॥ उक्ये तृतीयसवनेऽक्षावाकस्याधा हीद्रेति स्तोत्रियसूचः ।  
सूचितं च । अधा हीद्रं गिर्वण इयं त इंद्रं गिर्वणः । आ० ६. १. । इति ॥ पूर्वोक्त एव शस्त्रे त्वं न इंद्रा  
भरेति तुचो वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूचितं च । त्वं न इंद्रा भर वयसु त्वामपूर्वं यो न इदमिदं पुरा  
। आ० ७. ८. । इति ॥

इंद्राय सामं गायत विप्राय बृहते बृहत् । धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥

इंद्राय । सामं । गायत । विप्राय । बृहते । बृहत् । धर्मऽकृते । विपऽचिते । पनस्यवे ॥ १ ॥

हे उक्तातारः विप्राय मेधाविने बृहते महते धर्मकृते कर्मणः कर्त्तुं विपश्चिते विदुषे पनस्यवे स्तुतिमिच्छत  
इंद्राय बृहद्बृहत्सामकं साम गायत । पठत ॥

त्वमिंद्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महौ असि ॥ २ ॥

त्वं । इंद्र । अभिऽभूः । असि । त्वं । सूर्य । अरोचयः । विश्वऽकर्मा । विश्वऽदेवः ।

महान् । असि ॥ २ ॥



हे इन्द्र स्वमभिभूः शत्रुणामभिभवितासि । भवसि । किंच त्वं सूर्यमादित्यमरोचयः । तेजोभिरदीपयः । किंच विश्वकर्मा विश्वस्य कर्तासि विश्वदेवः सर्वदेवश्चासि । तथा च यजुर्ग्राह्यः । अपिं वा अन्वया देवता इन्द्रमन्वया इति । अतो महान् सर्वाधिकोऽसि ॥

विधाजज्योतिषा स्वर्गच्छो रोचनं दिवः । देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥३॥  
विधाजन् । ज्योतिषा । स्वः । अगच्छः । रोचनं । दिवः । देवाः । ते । इन्द्र । सख्याय ।  
येमिरे ॥३॥

हे इन्द्र त्वं ज्योतिषा तेजसा दिव आदित्यस्य रोचनं प्रकाशकमधिकरणत्वेन स्वः स्वर्गे विधाजन् प्रकाश-  
यन्नगच्छः । प्राप्नोः । किंच देवाः सर्वे ते तव सख्याय मित्रत्वाय येमिरे । त्वं स्वमात्मानं नियमितवन्तः ।  
अस्माकमिन्द्रः सखा यथा स्वादिति सर्वे देवा यत्नमकार्षुरित्यर्थः ॥

इन्द्रं नो गधि प्रियः सचाजिदगोह्यः । गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥४॥  
आ । इन्द्र । नः । गधि । प्रियः । सचाऽजित् । अगोह्यः । गिरिः । न । विश्वतः । पृथुः ।  
पतिः । दिवः ॥४॥

हे इन्द्र प्रियः प्रियतमः सचाजिदगोह्यः केनापि गृहितुमशक्यो गिरिर्न पर्वत इव विश्वतः सर्वतः  
पृथुः पृथुतमो दिवः स्वर्गस्य पतिरीश्वरस्त्वं नोऽस्माना गधि । अगच्छ ॥

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूष रोदसी । इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥५॥  
अभि । हि । सत्य । सोमपाः । उभे इति । बभूष । रोदसी इति । इन्द्र । असि । सुन्वतः ।  
वृधः । पतिः । दिवः ॥५॥

हे सत्य सोमपाः सोमस्य पातरिन्द्र यस्त्वमुभे रोदसी यावापृथिव्यावभि बभूष सामर्थ्येनाभिमवसि स त्वं  
सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतो यजमानस्य वृधो वर्धकोऽसि । दिवः स्वर्गस्यापि पतिरीश्वरोऽसि ॥

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्रं दुर्ता पुरामसि । हुंता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥६॥  
त्वं । हि । शश्वतीनां । इन्द्रं । दुर्ता । पुरां । असि । हुंता । दस्योः । मनोः । वृधः ।  
पतिः । दिवः ॥६॥

हे इन्द्र शश्वतीनां बह्वीनां पुरां शत्रुगरीणां दुर्तासि । दारयिता भवसि । किंच दस्योरप्यपयितुरसुरस्य  
हुंतासि । घातको भवसि । मनोर्मनुष्यस्य यागादिकं कुर्वतो वृधो वर्धकश्चासि । दिवः स्वर्गस्यापि पतिरी-  
श्वरोऽसि ॥ ॥१॥

अथा हीन्द्रं गिर्वेण उप त्वा कामान्महः संसृज्महे । उदेव यन्तं उदभिः ॥७॥  
अथ । हि । इन्द्र । गिर्वेणः । उप । त्वा । कामान् । महः । संसृज्महे । उदाऽदेव । यन्तः ।  
उदभिः ॥७॥

हे गिर्वेणो जीर्निर्वनगीर्थेन्द्र अथा हि संप्रति हि त्वा त्वां महो महतः कामान्कमनीयान् सोमागुप  
संसृज्महे । उपसृज्यामः । प्रापयाम इत्यर्थः । तव वृष्टांतमाह । उदेव यद्योदकेन यन्तो गच्छन्त उदमिरंजनि-  
गोन्धिष्योदकेः समीपस्थान्पुनश्चान् क्रीडार्थं संसृजन्ति तद्वदित्यर्थः ॥

वार्यं त्वा यव्याभिर्वर्धति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वासं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ ८ ॥  
 वाः । न । त्वा । यव्याभिः । वर्धति । शूर । ब्रह्माणि । ववृध्वासं । चित् । अद्रिऽवः ।  
 दिवेऽदिवे ॥ ८ ॥

हे अद्रिवो यज्ञिऽशूरेंद्र वार्यं यथोदकमुदकस्थानं यव्याभिर्नदीभिः । अवनयो यव्या इति नदीनामसु पाठात् । वर्धति वर्धयति तथा ब्रह्माणि सौचैर्ववृध्वासं चित् यथा निषदकं देशं नदीमिक्षया न किंतु प्रवृद्धमेव त्वां दिवेदिवेऽन्वहं वर्धयति । स्रोतारो वर्धयति ॥

युंजति हरीं इषिरस्य गाथयोरौ रथं उरुयुगे । इंद्रवाहा वचोयुजा ॥ ९ ॥  
 युंजति । हरी इति । इषिरस्य । गाथया । उरौ । रथे । उरुऽयुगे । इंद्रऽवाहा ।  
 वचःऽयुजा ॥ ९ ॥

इषिरस्य गमनशीलस्य इंद्रस्योऽरुयुगे महायुग उरौ महति रथ इंद्रवाहिंद्रस्य वाहनभूतौ वचोयुजा वचन-  
 माचैवैव युज्यमानौ हरी अश्वौ गाथया सौत्रेण स्रोतारो युंजति । योजयति ॥

त्वं न इंद्रा भरौ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनासहं ॥ १० ॥  
 त्वं । नः । इंद्र । आ । भर । ओजः । नृम्णं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । विऽचर्षणे । आ ।  
 वीरं । पृतनाऽसहं ॥ १० ॥

हे शतक्रतो ब्रह्मकर्मण विचर्षणे विद्रष्टरिंद्र त्वं नोऽस्मभ्यमोजो वसं नृम्णं धनं । गयो नृम्यामिति  
 धननामसु पाठात् । आ भर । आहर । वीरं वीर्योपेतं पृतनासहं सेनासहं सेनामभिभवितारं त्वामा  
 याचामहे इति शेषः ॥

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविष्य । अधा ते सुखमीमहे ॥ ११ ॥  
 त्वं । हि । नः । पिता । वसो इति । त्वं । माता । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । बभूविष्य ।  
 अध । ते । सुखं । ईमहे ॥ ११ ॥

हे वसो वासयितः शतक्रतो ब्रह्मकर्मभिंद्र त्वं नोऽस्माकं पिता पितृवत्पालको बभूविष्य । भव । त्वं माता  
 मातृवदारकच बभूविष्य । अधाथ च वयं ते तव स्वभूतं सुखं सुखमीमहे । याचामहे ॥

त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयंतमुप ब्रुवे शतक्रतो । स नो रास्व सुवीर्यं ॥ १२ ॥  
 त्वां । शुष्मिन् । पुरुऽहूत । वाजऽयंतं । उप । ब्रुवे । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । सः ।  
 नः । रास्व । सुऽवीर्यं ॥ १२ ॥

हे शुष्मिन्पुरुहूत पुरुहूत ब्रह्मभिर्यजमानैराहूत शतक्रतो ब्रह्मकर्मभिंद्र वाजयंतं वसमिच्छंतं त्वामुप ब्रुवे ।  
 उपसीति । स त्वं नोऽस्मभ्यं सुवीर्यं धनं रास्व । देहि ॥ ॥ २ ॥

त्वामिदा ह्य इत्यष्टवैं षष्ठं सूक्तं शृमेधस्त्रावै । अयुजो बृहत्सो युजः सतोबृहत्सः । तथा चायुजांतं । त्वामि-  
 दाष्टौ प्रागाथमिति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्ददिने सवनेऽष्टावाकस्य त्वामिदा ह्यः । आ० ७. ४. इति ॥  
 महाव्रतेऽपि निष्केवचो बार्हतनुवाशीतावयं प्रगाथः । तथैव पंचमारण्यके सूचितं । त्वामिदा ह्यो नर इक्षितं  
 प्रगाथं प्रत्यवदधाति । ऐ० आ० ५. २. ४. १. इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्ददिने सवने प्राक्प्राणाच्छ्विनः आर्यंत



इवेति वैकल्पिकः स्तोत्रियः प्रगाथः । सूचितं च । आर्यंत इव सूर्यं वरमहौ असि सूर्य । आ० ७. ४. । इति ॥  
चातुर्विंशिकेऽहनि माध्वदिने त्वमिन्द्र प्रतूर्तिषु त्वमिन्द्र यथा असि । आ० ७. ४. । इति ॥ तस्मिन्नेवाहनि  
निष्कवस्त्रे वैराज्योनिभूतोऽयं प्रगाथः शंसनीयः । सूचितं च । तयोरक्रियमाणस्य योनिं शंसद्वैरूपवैराज्यश  
क्करैर्यतानां च । आ० ७. ३. । इति ॥

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्जिभूर्णयः ।

स इन्द्र स्तोमवाहसामिह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१॥

त्वां । इदा । ह्यः । नरः । अपीप्यन् । वज्जिन् । भूर्णयः ।

सः । इन्द्र । स्तोमऽवाहसां । इह । श्रुधि । उप । स्वसरं । आ । गहि ॥१॥

हे वज्जिन् वज्रवज्जिन्द्र यं त्वां भूर्णयो हविर्मिर्मरणशीला नरः कर्मणां नेतारो यजमाना इदाय ह्यया-  
पीप्यन् स्तोममपाययन् स त्वं स्तोमवाहसां स्तोमवाहकानामस्माकं स्तोत्रमिह यज्ञे श्रुधि । शृणु । स्वसरं च गृहं  
च । कुर्याः स्वसराणीति गृहनामसु पाठात् । उपा गहि । उपागच्छ ॥

मत्स्वा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे ते आ भूषन्ति वेधसः ।

तव अवांस्युपमान्युकथ्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥२॥

मत्स्व । सुऽशिप्र । हरिऽवः । तत् । इमहे । ते इति । आ । भूषन्ति । वेधसः ।

तव । अवांसि । उपऽमानि । उकथ्या । सुतेषु । इन्द्र । गिर्वणः ॥२॥

हे सुशिप्र शोभनहृनो शोभनोष्णीषित्वा हरिवोऽश्वान् गिर्वणो गोभिर्वननीचिन्द्र ते त्वयि वेधसः परि-  
चारका आ भूषन्ति । आभवंति । मत्स्व सोमेन मादधात्मानं । किंच तत्त्वां वयमीमहे । याचामहे । किं चाश्व-  
मित्यवाह । सुतेषु सोमेष्वभिपुतेषु सत्सु तव अवांस्युपमान्युपमानभूतान्युकथ्या प्रशंसानि च संत्विति ॥

आर्यंत इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।

वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥३॥

आर्यंतऽइव । सूर्यं । विश्वा । इत् । इन्द्रस्य । भक्षत ।

वसूनि । जाते । जनमाने । ओजसा । प्रति । भागं । न । दीधिम ॥३॥

हे अक्षदीया जनाः आर्यंत इव सूर्यं यथा समाश्रिता रश्मयः सूर्यं भजते तथेन्द्रस्य विश्वेद्विद्यान्येव  
धनानि भक्षत । भक्षत । स च धानि वसूनि धनानि जात उत्पन्ने जनमाने जनिष्यमाणे चीजसा बलेन  
करोति भागं न पित्र्यं भागमिव तानि धनानि प्रति दीधिम । प्रतिधारयामेति । यदा । आर्यंत इव सूर्यं  
यथा समाश्रिता रश्मयः सूर्यमुपतिष्ठते तथेन्द्रस्य विश्वा विद्यानि विभक्तुमिच्छंतः समाश्रिता भक्षत इन्द्रमुपतिष्ठंत  
इति शेषः । उपस्थाय च मरुतो वसूनुदकलक्षणाणि धनानि जाते जाताय जनमाने जनिष्यमाणाय च मनु-  
ष्याय चीजसा बलेन भक्षत । विभजते । तच्च चास्माकं यो भागस्तं भागं । नेति संप्रत्यर्थे । प्रतीक्षिषोऽन्विष्येतस्य  
स्थाने । अमु दीधिम । वयमनुधायाम । तथा च यास्कः । समाश्रिताः सूर्यमुपतिष्ठते । अपि वोपमार्थे स्था-  
त्सूर्यमिवेन्द्रमुपतिष्ठंत इति । सर्वाणीन्द्रस्य धनानि विभक्ष्यमाणाः । स यथा धनानि विभजति जाते च जनि-  
ष्यमाणे च तं वयं भागमनुधायाम । नि० ६. ८. । इति ॥

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।

सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥४॥

अनर्शऽरातिं । वमुऽदां । उप । स्तुहि । भद्राः । इन्द्रस्य । रातयः ।  
सः । अस्य । कामं । विधत् । न । रोषति । मनः । दानाय । चोदयन् ॥ ४ ॥

हे क्षीतारः अनर्शरातिमपापकदानं । अपापिष्ठस्य दातारमित्यर्थः । तथा च यास्तः । अनर्शरातिमन-  
द्योलदानमद्योलं पापकं । नि० ६-२३ । इति । वमुदां धनस्य दातारमिन्द्रमुप स्तुहि । यत इन्द्रस्य रातयो  
दानानि भद्राः कक्षाणानि । महदैश्वर्यकारीणीत्यर्थः । यतश्च स इन्द्रः स्वकीयं मनो दानायामीष्टप्रदानाय  
चोदयन् प्रेरयन् विधत्ः परिचरतोऽस्य क्षीतुः काममिच्छां न रोषति न हिनस्ति ॥

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्यं तरुष्यतः ॥ ५ ॥

त्वं । इन्द्र । प्रऽतूर्तिषु । अभि । विश्वाः । असि । स्पृधः ।

अशस्तिऽहा । जनिता । विश्वऽतूरः । असि । त्वं । तूर्यं । तरुष्यतः ॥ ५ ॥

हे इन्द्र त्वं प्रतूर्तिषु संग्रामेषु विश्वाः सर्वाः सृधो युद्धकारिणीः शत्रुसेना अभ्यसि । अभिमवसि । किञ्च हे  
तूर्यं शत्रूणां बाधकेन्द्र त्वमशस्तिहा दैव्यानामशस्तीनां हन्तासि । जनितासुरेभ्योऽशस्तीनां जनयिता चासि ।  
विश्वतूरः सर्वस्य शत्रुवर्गस्य हिंसाता चासि । तरुष्यतो बाधकांश्च बाधमानोऽसि ॥

अनु ते शुभं तुरयंतमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।

विश्वास्ते स्पृधः अथयंत मन्यवे वृचं यदिद्र तूर्वसि ॥ ६ ॥

अनु । ते । शुभं । तुरयंतं । इयतुः । क्षोणी इति । शिशुं । न । मातरा ।

विश्वाः । ते । स्पृधः । अथयंत । मन्यवे । वृचं । यत् । इन्द्र । तूर्वसि ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ते तव शुभं बलं तुरयंतं हिंसतं शत्रुं क्षोणी बामापृथिवी मातरा मातरौ शिशुं न शिशुमिवा-  
न्वीयतुः । अगच्छतः । गमनमात्रे दृष्टांतः । किञ्च हे इन्द्र त्वं यथेष्टावृचं शत्रुं तूर्वसि हंसि अतस्ते तव मन्यवे  
क्रोधाय विश्वाः सर्वाः सृधः संग्रामकारिणः सेनाः अथयंत । अथिताः खिन्ना भवन्ति ॥

इत जती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितं ।

आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्यावृधं ॥ ७ ॥

इतः । जती । वः । अजरं । प्रऽहेतारं । अप्रऽहितं ।

आशुं । जेतारं । हेतारं । रथिजतमं । अतूर्तं । तुग्यऽवृधं ॥ ७ ॥

हे अस्त्रदीयजनाः वो यूयमजरं जरारहितं प्रहेतारं शत्रूणां प्रेरकमप्रहितं केनाप्यप्रेषितमाशुं वेगवंतं  
जेतारं शत्रूणां हेतारं जेतारं रथीतमं रथिनां अष्टमतूर्तं केनाप्यहिंसितं तुग्यावृधमुदकस्य वर्धयितारमिन्द्रमृत्यूषि  
रक्षणायितः कुर्वत । पुरस्कृत इति यावत् ॥

इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं शतमूर्तिं शतक्रतुं ।

समानमिन्द्रमवसे हवामहे वसवानं वसुजुवं ॥ ८ ॥



इष्कर्तारं । अग्निःऽकृतं । सहःऽकृतं । शतंऽकृतिं । शतऽकृतं ।

समानं । इन्द्रं । अवसे । हवामहे । वसवानं । वसुऽजुवं ॥ ८ ॥

इष्कर्तारं श्रुणां संस्कारमनिष्कृतं स्वयमन्धिरसंस्कृतं सहस्कृतं बलेन छतं शतमूर्तिं बहुरक्षणां शतक्रतुं बह्वप्रज्ञं बह्वकर्माणां वा समानं बह्वनां साधारणं वसवानं धनान्याच्छादयन्तं वसुजुवं यजमानेभ्यो वसूनां प्रेरयितारमिन्द्रमवसे रक्षणाय वयं हवामहे । इत्यामः ॥ ३ ॥

अयं त इति द्वादशर्चं सप्तमं सूक्तं भृगुगोचस्य नेमस्यार्थं । अयमस्मि जरितरिति वृचेनेन्द्रो नेमसनीपमेत्य स्वकीयं माहात्म्यमवोचत् अतस्तस्य वृचस्य स एवार्थः । यस्य वाक् स अग्निः । अनु० २. ४. इति न्यायात् । षष्ठो जगती । सप्तम्यावाक्सिन्धोऽनुष्टुभः । शिष्टास्त्रिष्टुभः । इन्द्रो देवता । यद्वाग्वदन्तो देवीं वाचमित्येते वाग्देवत्ये शिष्टा ऐश्वर्यः । तथा चानुक्रांतं । अयं द्वादश नेमो भार्गवस्त्रिष्टुभं षष्ठो जगती पराक्सिन्धोऽनुष्टुभोऽयमिति वृचेनेन्द्र आत्मानमस्त्रीदुपांशे वाच्याविति ॥ वाग्देवत्ये पश्यी यद्वाग्वदन्तीति वपाया अनुवाक्सा । सूचितं च । यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि पतंगो वाचं मनसा विभर्ति । आ० ३. ८. इति ॥ पूर्वोक्त एव पश्यी देवीं वाचमिति हविषो याच्या । सूचितं च । देवीं वाचमजनयन्त देवा जनीयन्तो न्वयव इति तिस्रः । आ० ३. ८. इति ॥ प्रयाणसमये वयसाममनोश्चा वाचः श्रुतीतां जपेत् । सूचितं च । कनिकदम्बगुवं प्रगुवाण इति सूक्ते जपेद्देवीं वाचमजनयन्त देवा इति च । आ० गृ० ३. १०. ९. इति ॥

अयं त एमि तन्वा पुरस्ताद्विश्वे देवा अभि मा यन्ति पश्चात् ।

यदा मह्यं दीधरो भागमिन्द्रादिन्मया कृण्वो वीर्याणि ॥ १ ॥

अयं । ते । एमि । तन्वा । पुरस्तात् । विश्वे । देवाः । अभि । मा । यन्ति । पश्चात् ।

यदा । मह्यं । दीधरः । भागं । इन्द्र । आत् । इत् । मया । कृण्वः । वीर्याणि ॥ १ ॥

हे इन्द्र ते तव पुरस्तादद्यतस्तन्वा पुत्रेण सहायमहमेमि । शत्रून् अभिमवितुं गच्छामि । तवायतो गच्छन्तं मां विश्वे देवास्त्वया सह पश्चादभि यन्ति । अभिगच्छन्ति । यदा त्वं मह्यं भार्गवाय नेमाय भागं शत्रुषु स्थितं भागं दीधरः धारयसि आदिदगन्तरमेव मया सह मच्छत्रुजितुं वीर्याणि पौरुषाणि क्षणवः । कृण्वः । यदि शत्रुषु स्थितं धनं मह्यं दित्ससि तर्हि शत्रुवयार्थं गच्छतः सपुत्रस्य मम साहाय्यं कुर्वन्ति भावः ॥

दधामि ते मधुनो भक्षमये हितस्ते भागः सुतो अस्तु सोमः ।

असंश्च त्वं दक्षिणतः सखा मेऽधा वृचाणि जघेनाव भूरि ॥ २ ॥

दधामि । ते । मधुनः । भक्षं । अये । हितः । ते । भागः । सुतः । अस्तु । सोमः ।

असंः । च । त्वं । दक्षिणतः । सखा । मे । अधः । वृचाणि । जघेनाव । भूरि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ते तुभ्यं मधुनो मदकरस्य सोमस्य भक्षमये प्रथमं दधामि । धारयामि । सुतोऽभिपुतो भागो भवनीयः सोमस्ते तव हृदये हितो निहितोऽशु । भवतु । अपि च त्वं मे मम दक्षिणतो दक्षिणपार्श्वे सखा सन्नसः । स्थितो भव । अधाय भूरि बह्वनि वृचाण्यसदीयाञ्छत्रुञ्जघनाव । त्वमहं चोभासावां हन्तः ॥

प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति ।

नेन्द्रो अस्तीति नेमं उ त्व आह क ई ददर्श कमभि हवाम ॥ ३ ॥

प्र । सु । स्तोमं । भरत । वाजऽयन्तः । इन्द्राय । सत्यं । यदि । सत्यं । अस्ति ।

न । इन्द्रः । अस्ति । इति । नेमः । ऊं इति । वः । आह । कः । ई । ददर्श । कं । अभि । हवाम ॥ ३ ॥

हे जनाः वाजयंतः संयाममिच्छंतो यूयं । पौंस्त्रे वाज इति संयामनामसु पाठात् । इंद्राय सत्यं सत्यभूतं  
स्त्रोमं सु सुपु प्र भरत । इंद्रोऽस्तीत्येतद्वि सत्यमस्ति भवति । इंद्रास्तित्वे कः संदेहः । तच्चाह । नेम उ भार्गवो  
नेम एवेन्द्रो नाम त्वः कश्चिन्नास्तीत्याह । तच्च कारणं दर्शयति । क ईमेनमिंद्रं ददर्श । अद्राचीत् । न को  
ऽप्यपश्यत् । अतः कं वयमभि व्रवाम । अभिष्टुमः । तस्मादिंद्रो नाम कश्चिद्विद्यत इति वादमात्रं न तु  
तत्सत्यमित्यर्थः ॥

अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि म॒हा ।

ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयंत्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि ॥४॥

अयं । अस्मि । जरितरिति । पश्य । मा । इह । विश्वा । जातानि । अभि । अस्मि । म॒हा ।

ऋतस्य । मा । प्र॒दिशः । वर्धयंति । आ॒ऽदर्दि॒रः । भुवना । दर्दरीमि ॥४॥

एवं नेमस्त्वैर्वर्धनमाकर्ण्येन्द्रस्तस्मै समीपमावगाम । आगत्य चात्मानमनेन वृत्तेन स्तौति । हे जरितः स्तौतः  
अयमहमस्मि । इह तव समीपे स्थितं मा मां पश्य । विश्वा सर्वाणि जातानि भुवनानि म॒हा महत्त्वेनाभ्यस्मि ।  
अहमभिभवामि । किंच मामृतस्य सत्यस्य यज्ञस्य वा प्रदिशः प्रदेष्टारो विद्वांसः स्तोत्रैर्वर्धयंति । अपि चादर्दि॒र  
आदरणशीलोऽहं भुवना भुवनानि शत्रुभूतानि दर्दरीमि । भृशं विदारयामि ॥

आ यन्मा वेना अरुहन्तस्यै एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे ।

मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदञ्छिभुमंतः सखायः ॥५॥

आ । यत् । मा । वेनाः । अरुहन् । ऋतस्य । एकं । आसीनं । हर्यतस्य । पृष्ठे ।

मनः । चित् । मे । हृदे । आ । प्रति । अवोचत् । अचिक्रदन् । शिशुऽमंतः । सखायः ॥५॥

यद्यदा य ऋतस्य यज्ञस्य यज्ञं ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ वेनाः कामयमाना हर्यतस्य कांतस्तांतरिक्षस्य पृष्ठ  
आसीनमुपविष्टमेकं मा मामारुहन् तदानीं तेषां भवतामारोहं मनश्चिन्मन एव मे मम हृदे हृदयाय प्रत्यवो-  
चत् । अवोचत् । अद्यासिधं च तदाह्वानं शिशुमंतः पुत्रयुक्ताः सखायः प्रिया अमी अचिक्रदन् मां क्रंदंतीति ॥

विश्वेक्ता ते सवनेषु प्रवाच्या या चकर्थं मघवन्निद्र सुन्वते ।

पारावतं यत्पुरुसंभृतं वस्वपावृणोः शरभाय ऋषिबंधवे ॥६॥

विश्वा । इत् । ता । ते । सवनेषु । प्र॒वाच्या । या । च॒कर्थं । म॒घऽवन् । इंद्र । सु॒न्वते ।

पारावतं । यत् । पुरु॒ऽसंभृतं । वसु । अप॒ऽअवृ॒णोः । श॒रभाय । ऋ॒षिऽब॒न्धवे ॥६॥

स्वसमीपमागतमिंद्रं दृष्ट्वा संतुष्ट ऋषिरिन्द्रस्त विविधानि कर्माणि दानं च विश्वेक्ता त इत्यनेन वृत्तेन  
स्तौति । हे मघवन्निद्र त्वं सवनेषु यज्ञेषु सुन्वते सोमाभिष्वं कुर्वते यजमानाय या यानि कर्माणि चकर्थ  
अकरोः ते तव ता तानि कर्माणि प्रवाच्या प्रवक्तव्यानि विश्वेदन्तान्येव । किंच त्वं पारावतं परावन्नामकस्य  
कस्यचिच्छत्रोः स्वभूतं यज्ञमस्ति तदृषिबंधवे शरभाय शरभनाम्न ऋषयेऽपावृणोः । अपवृतवानसि । पुरुसंभृतं  
यथा ब्रह्मसंभृतं भवति ॥ ॥४॥

प्र नूनं धावता पृथङ्नेह यो वो अवावरीत् ।

नि धीं वृत्तस्य मर्मणि वज्रमिंद्रो अपीपतत् ॥७॥



प्र । नूनं । धावत् । पृथक् । न । इह । यः । वः । अवावरीत् ।  
नि । सीं । वृचस्य । मर्मणि । वज्रं । इंद्रः । अपीपत् ॥ ७ ॥

यः शत्रुर्नमिदानीं प्र धावत प्रधावति पृथगिह पृथक् तिष्ठति च वो युष्मान्नावावरीत् न विदारयति च तस्य वृचस्य शत्रोर्मणि मर्मस्थान इंद्रो वज्रं कुक्षिशं न्यपीपत् । नितरामयातयत् ॥

मनोजवा अयमान आयसीमतरत्पुरं ।

दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत् ॥ ८ ॥

मनःऽजवाः । अयमानः । आयसीं । अतरत् । पुरं ।

दिवं । सुऽपर्णः । गत्वाय । सोमं । वज्रिणं । आ । अभरत् ॥ ८ ॥

सुपर्णो यक्षत्मान मनोजवा मनोवेगोऽयमानो गच्छन्नायसीं हिरण्यमयीं पुरं नगरीमतरत् । अतारोत् । ततो दिवं स्वर्गं गत्वाय गत्वा वज्रिण इंद्राय सोममाभरत् । आहरत् ॥

समुद्रे अंतः शयत उज्जा वज्रो अभीवृतः । भरंत्यस्मै संयतः पुरःप्रसवणा बलिं ॥ ९ ॥

समुद्रे । अंतरिति । शयते । उज्जा । वज्रः । अभिऽवृतः । भरंति । अस्मै । संऽयतः

पुरःऽप्रसवणाः । बलिं ॥ ९ ॥

यो वज्रः समुद्रेऽंतः समुद्रस्य मध्ये शयते शेते यद्योऽत्रोदकेनाभिवृतोऽस्मै वज्राय संयतः संयामस्य । सगमन संयत इति संयामनामसु पाठात् ॥ पुरःप्रसवणाः पुरस्तात्प्रच्छंतः शत्रवो बलिमुपहारं भरंति । धारयंति । तस्य क्त्वेवा भवन्तीत्यर्थः ॥

यद्वाग्वदंत्यविचेतनानि राष्ट्रीं देवानां निषसाद मंद्रा ।

चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जंगाम ॥ १० ॥

यत् । वाक् । वदंती । अविऽचेतनानि । राष्ट्रीं । देवानां । निऽससाद । मंद्रा ।

चतस्रः । ऊर्जं । दुदुहे । पयांसि । क्व । स्वित् । अस्याः । परमं । जंगाम ॥ १० ॥

राष्ट्री राजनशीला देवानां मंद्रा मादयिषी वा यद्यदा वाग्विचेतनानि विज्ञानरहितानप्रज्ञातानर्थान्वदंती प्रज्ञापयंती निषसाद यक्षे निषीदति तदा चतस्रो दिशः प्रत्यूर्जमन्नं पयांसि तत्कारणभूतान्युदकानि दुदुहे । अस्या माध्यमिकाया वाचः स्वभूतं यत्परमं श्रेष्ठं तत्तज्ज जंगाम । क्व गच्छतीति न दृश्यत इत्यर्थः । तथा च यास्तः । यद्वाग्वदंत्यविचेतनान्यविज्ञातानि राष्ट्री देवानां निषसाद मंद्रा मदना चतस्रोऽनु दिश ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जंगामेति यत्पृथिवीं गच्छतीति वा यदादित्यरश्मयो हरंतीति वा । नि० ११. २८. इति ॥

देवीं वार्चमजनयंत देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।

सा नो मंद्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥ ११ ॥

देवीं । वाचं । अजनयंत । देवाः । तां । विश्वरूपाः । पशवः । वदन्ति ।

सा । नः । मंद्रा । इषं । ऊर्जं । दुहाना । धेनुः । वाक् । अस्मान् । उप । सुऽस्तुता ।

आ । एतु ॥ ११ ॥

एषा माध्यमिका वाक् सर्वप्राख्यंतर्गता धर्माभिवादिनी भवतीति विभूतिमुपदर्शयति । यां देवीं ब्रूत-  
मानां माध्यमिकां वाचं देवा माध्यमिका अजनयंत जनयन्ति तां वाचं विश्वरूपाः सर्वरूपा व्यक्तवाचोऽव्यक्त-  
वाचश्च पशवो वदन्ति । तत्पूर्वकत्वाद्वाक्प्रवृत्तेः । सा वाग्देवी मद्रा मदना सुत्वा हर्वचिची वा वृष्टिप्रदानेना-  
स्मभ्यमिषमन्नमूर्खं पयोधृतादिरूपं रसं च दुहाना चरन्ती धेनुर्धेनुभूता सुष्टतास्त्राभिः सुतास्त्रान्नेमानुपैतु ।  
उपगच्छतु । वर्षणाद्योबुक्तित्वर्थः । तथा च यास्वः । देवीं वाचमजनयंत देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति  
व्यक्तवाचस्याव्यक्तवाचश्च सा नो मदनान्नं च रसं च दुहाना धेनुर्वागसानुपैतु सुष्टता । नि० ११. २९. । इति ॥

सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे ।

हनाव वृचं रिणचाव सिंधूनिद्रस्य यंतु प्रसवे विसृष्टाः ॥ १२ ॥

सखे । विष्णो इति । विऽतरं । वि । क्रमस्व । द्यौः । देहि । लोकं । वज्राय । विऽस्कभे ।

हनाव । वृचं । रिणचाव । सिंधून् । इंद्रस्य । यंतु । प्रऽसवे । विऽसृष्टाः ॥ १२ ॥

हे सखे विष्णो त्वं वितरमत्यंतं वि क्रमस्व । विक्रमं कुरु । हे द्यौः त्वं वज्राय वज्रस्य विष्कभे विष्कभनाय  
लोकमवकाशं देहि । प्रयच्छ । हे विष्णो त्वं चाहं चोमावावां वृचमसुरं हनाव । हन्वः । सिंधून् वृचावष्टब्धा  
नदीश्च रिणचाव । नयावः । तेऽमी विऽसृष्टाः सिंधव इंद्रस्य प्रसवे यंतु । प्रेरणे गच्छंतु । तन्निमग्नं संगृह्य  
द्यौः शीनको दर्शयति । चोक्तोक्तानि वृत्तान्नुचस्तस्त्री स्वया त्विषा । तं नाशकं तं मिद्रो विष्णुमभ्येत्य  
सोऽब्रवीत् ॥ वृचं हनिष्ये तिष्ठस्व विक्रम्याव ममांतिके । उद्यतस्य तु वज्रस्य द्यौर्देहातु ममांतरं ॥ तथेति  
विष्णुस्तत्रैके द्यौश्चास्य विवरं ददौ । तदेतदखिलं प्रोक्तं सखे विष्णो इति त्वृचा । वृ० ६. ९३१-९३३ ।  
इति ॥ ॥ ५ ॥

अधगिति षोडशर्चमष्टमं सूक्तं । अधक् षोडश जमदग्निर्मार्गवो मैचावरुणं प्रागाथं  
त्रिचिष्टुवंतं तुतीयादि गायत्री सतोवृहती स्तोत्रं राजसूक्तपादादित्याश्विनौ वायवे सौर्यौ बृहत्पुषसा सूर्य-  
प्रभासुतिर्वा पावमानी गन्धे इति । भृगुगोचो जमदग्निर्चर्चिः । चतुर्दशाब्दास्तिस्रस्त्रिष्टुभः । चयोदशी वृहती  
शिष्टानामयुजो वृहत्पुषः सतोवृहत्पुषः । तुतीया गायत्री । स्तोत्रं राजसु गायतेति पादेन सहिता ते हिनिर  
इत्यादित्यदेवताका । आ मे वचांसीति द्वे अश्विदेवताके । आ नो यज्ञं दिविस्पृशमिति द्वे वायुदेवत्ये । वरमहौ  
असि सूर्येति द्वे सूर्यदेवत्ये । इयं या नीचीत्येषोबोदेवत्या । यद्वा । सूर्यप्रभानया सूयते । अतः सैव देवता ।  
प्रजा ह तिस्र इत्येषा पवमानदेवताका । माता रुद्राणामिति द्वे गोदेवत्ये । शिष्टाः पंचर्चो मैचावरुणः ॥  
सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥ संग्रामार्थं राज्ञः संगहने प्र यो वां मिचावरुणेति द्वे राजानं वाचयेत् । सूचितं च ।  
अनीवर्तं वाचयति प्र यो वां मिचावरुणेति च द्वे । आ० गृ० ३. १२. १२. । इति ॥ पृथ्वस्य पंचमेऽहनि प्रचमे  
वायव्यवृचसा नो यज्ञमित्यादिके द्वे अज्ञावागे । सूचितं च । आ नो यज्ञं दिविस्पृशमिति द्वे आ नो वायो  
महे तन इत्येका । आ० ७. १२. । इति ॥ आश्विनं शंमिष्यन् होता वरमहौ असि सूर्येति द्वाभ्यामग्निं जुहुयात् ।  
सूचितं च । वरमहौ असि सूर्येति द्वाभ्यामिंद्रं वा विश्वतस्सरोति च । आ० ६. ५. । इति ॥ माध्यंदिनसवने  
सोमातिरेक एकं शस्त्रमुपजायते । तच्च वरमहौ असोति प्रगाथः स्तोत्रियः । सूचितं च । वरमहौ असि सूर्योऽबु  
त्वद्दर्शतं वपुरिति प्रगाथो स्तोत्रियानुरूपौ । आ० ६. ७. । इति ॥ अयमेव प्रगाथश्चातुर्विंशिके माध्यंदिनी  
प्राज्ञायाच्छंसिनो वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूचितं च । आयंत इव सूर्यं वरमहौ असि सूर्यं । आ० ७. ४. । इति ॥  
मधुपर्के गामुत्सृज्य माता रुद्राणामिति वपेत् । सूचितं च । माता रुद्राणां दुहिता वसूनामिति अपित्वो-  
मुत्सृजतेषुस्तस्मै । आ० गृ० १. २४. २५. । इति ॥

अधगित्या स मर्त्यः शशमे देवतांतये ।

यो नूनं मिचावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदांतये ॥ १ ॥



च॒धक् । इ॒त्या । सः । म॒र्त्यैः । श॒श॒मे । दे॒वऽता॒तये ।

यः । न॒नं । मि॒चाव॒रुणौ । अ॒भिष्ट॑ये । आ॒ऽच॒क्रे । ह॒व्यऽदा॒तये ॥ १ ॥

यो मनुष्यो नूनं क्षिप्रं हव्यदातये हविषां प्रदाने यजमानाय मिचावरुणावभिष्टयेऽभिमतसिद्धार्थमाचक्रे  
ऽभिमुखी करोति स मर्त्यो मनुष्य च॒धक् सत्यमित्येत्यं देवतातये यज्ञार्थं शशमे । हविः संस्तरति ॥

वर्षि॑ष्ठ॒क्षत्रा उ॒रु॒क्षसा॒ नरा॒ राजा॑ना दी॒र्घ॒श्रुत्त॑मा ।

ता बा॒हुता॒ न द॑ंसना रथ॒र्यतः॑ सा॒कं सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ ॥ २ ॥

वर्षि॑ष्ठऽक्षचौ । उ॒रु॒क्षसा॒ । नरा॑ । राजा॑ना । दी॒र्घ॒श्रुत्त॑मा ।

ता । बा॒हुता॑ । न । द॑ंसना । रथ॒र्यतः॑ । सा॒कं । सूर्य॑स्य । र॒श्मिभिः॑ ॥ २ ॥

वर्षिष्ठक्षत्रातिशयेन वृद्धवलावुद्धवसा महादर्शनी नरा नेतारी कर्मणां राजाना दीप्यमाना दीर्घश्रुत्तमा  
मातिशयेन विद्वांसौ ता तौ मिचावरुणौ बाहुता न मुवाविव सूर्यस्य रश्मिभिः किरणैः साकं सह दंसना  
दंसनानि कर्माणि । अग्नौ दंस इति कर्मनामसु पाठात् । रथर्यतः । प्राप्तः । यथा बाहू सह कर्म प्राप्तः  
तथा मिचावरुणौ सह यज्ञं प्राप्त इत्यर्थः ॥

प्र यो वा॑ मि॒चाव॒रुणा॒जिरो॒ दूतो॒ अद्र॑वत् । अ॒यः॒शीर्षा॒ मदे॑रघुः ॥ ३ ॥

प्र । यः । वा॑ । मि॒चाव॒रुणा॑ । अ॒जि॒रः । दू॒तः । अ॒द्र॑वत् । अ॒यः॒शीर्षा॑ । मदे॑रघुः ॥ ३ ॥

हे मिचावरुणौ वां युवामजिरो गमनशीलो यो यजमानः प्राद्रवत् अभिगच्छति स देवानां दूतो  
भवति । अयःशीर्षा हिरण्यसंज्ञतशिरस्कश्च भवति । मदेरघुर्मदकरे धने गता च भवति ॥

न यः संपृ॒च्छे न पुन॑र्हवी॒तवे॒ न सं॒वा॒दाय॒ रम॑ते ।

तस्मा॑न्नो अ॒द्य स॒मृते॑रु॒थ्यतं॒ बा॒हुभ्या॑ न उ॒रुथ्य॑तं ॥ ४ ॥

न । यः । सं॒पृ॒च्छे । न । पुनः॑ । हवी॒तवे॒ । न । सं॒वा॒दाय॑ । रम॑त ।

तस्मा॑त् । नः । अ॒द्य । सं॒पृ॒च्छतेः॑ । उ॒रुथ्य॑तं । बा॒हुभ्या॑ । नः । उ॒रुथ्य॑तं ॥ ४ ॥

यः शत्रुः संपृच्छे संप्रप्राय न रमते न क्रीडते न च पुनःपुनर्हवीतवे हवनाय रमते न च संवादाय रमते  
तस्मान्नोः समृतेः संयामाग्नौऽस्थानयोरुथ्यतं हे मिचावरुणौ युवां रचतं । किंच तस्य शत्रोर्बाहुभ्यां नो  
ऽस्थानुदथ्यतं । रचतं ॥

प्र मि॒त्राय॒ प्रा॒र्य॒म्ये स॒च॒र्थ्य॒मृता॑वसो ।

व॒रू॒थ्यं॑ व॒रुणे॑ छं॒द्यं वचः॑ स्तो॒त्रं राज॑सु गायत ॥ ५ ॥

प्र । मि॒त्राय॑ । प्र । अ॒र्य॒म्ये । स॒च॒र्थ्य॑ । ऋ॒त॒व॒सो॒ इत्य॑तऽवसो ।

व॒रू॒थ्यं॑ । व॒रुणे॑ । छं॒द्यं । वचः॑ । स्तो॒त्रं । राज॑सु । गा॒य॒त ॥ ५ ॥

हे ऋतवसो यज्ञधन मित्राय सचर्थं सेवार्हं वरूथ्यं यज्ञगृहे भवं च स्तोत्रं प्र गायत । प्रकर्षेण गायत ।  
अर्यम्ये च प्र गायत । वरुणे छंद्यं प्रीत्यनसाधनं चैतादृशं वचः प्र गायत । प्रगायतेति वज्रवचनं पूजार्थं ।  
एतदेव दर्शयति । राजसु मित्रादिषु राजसु स्तोत्रं गायत । पठत । मित्रादींस्त्रीजास्तः कुतेति समुदा-  
यार्थः ॥ ६ ॥

ते हिन्विरे अरुणं जेन्यं वस्वेकं पुत्रं तिसृणां ।

ते धामान्यमृता मर्त्यानामर्द्धा अभि चक्षते ॥ ६ ॥

ते । हिन्विरे । अरुणं । जेन्यं । वसु । एकं । पुत्रं । तिसृणां ।

ते । धामानि । अमृताः । मर्त्यानां । अर्द्धाः । अभि । चक्षते ॥ ६ ॥

अरण्यमरुणवर्णं जेन्यं जयसाधनं वसु वासकं तिसृणां पृथिव्यादीनामेकं पुत्रं ते देवा हिन्विरे । प्रेरयन्ति वैलोक्यस्व तमोनिवारणाय । किंचाद्भ्याः केनाप्यहिंसिता अमृता मरणरहितास्ते देवा मर्त्यानां मनुष्याणां धामानि स्थानान्यमि चक्षते । अभिपश्यन्ति ॥

आ मे वचांस्युद्यता द्युमत्तमानि कर्त्वा ।

उभा यातं नासत्या सजोषसा प्रति हव्यानि वीतये ॥ ७ ॥

आ । मे । वचांसि । उत्स्यता । द्युमत्सतमानि । कर्त्वा ।

उभा । यातं । नासत्या । सजोषसा । प्रति । हव्यानि । वीतये ॥ ७ ॥

हे नासत्या नासत्यौ सत्यस्य प्रणेतारौ सजोषसा संगताभुवौ युवां मे जमदग्नेर्ममोद्यतोद्यतानि द्युमत्तमानि दीप्ततमानि वचांसि खोचरूपाणि वाक्यानि कर्त्वा कर्माणि च यातं । किंच हव्यानि हवींषि वीतये भक्षयामि प्रति गच्छतं ॥

रातिं यज्ञामरक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू ।

प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तावितं नरा गृणाना जमदग्निना ॥ ८ ॥

रातिं । यत् । वां । अरक्षसं । हवामहे । युवाभ्यां । वाजिनीवसू इति वाजिनीवसू ।

प्राचीं । होत्रां । प्रऽतिरन्तौ । इतं । नरा । गृणाना । जमत्सजग्निना ॥ ८ ॥

हे वाजिनीवसू अन्नधनावस्विनौ वां युवयोः संबन्धि यदरक्षसं रक्षोवर्जितं दागमस्ति तद्यदा हवामहे । एतदेव विशदयति । युवाभ्यां क्रियमाणां रातिं दागं हवामहे इति । तदानीं प्राचीं प्राप्नुयां होत्रां सुतिं प्रतिरन्तौ वर्धयन्तौ नरा नेतारौ जमदग्निर्वाषिष्ठा गृणानौ खूयमानौ च संतावितं । आगच्छतं ॥

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।

अन्तः पवित्रं उपरि श्रीणानोऽयं शुक्रो अयामि ते ॥ ९ ॥

आ । नः । यज्ञं । दिविस्पृशं । वायो इति । याहि । सुमन्मभिः ।

अन्तरिति । पवित्रं । उपरि । श्रीणानः । अयं । शुक्रः । अयामि । ते ॥ ९ ॥

हे वायो त्वं नोऽस्माकं दिविस्पृशं तं यज्ञमा याहि । किमर्थमागमनमित्यत्राह । सुमन्मभिः सुदृढि-  
भिरन्तः पवित्रं पवित्रस्य मध्य उपरि श्रीणानः अयमाणी निविच्यमानोऽयं शुक्रः सोमस्ते तुभ्यमयामि ।  
नियत आसीदिति ॥

वेत्यध्वर्युः पृथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये ।

अधा निशुत्वं उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरं ॥ १० ॥



वेति । अध्वर्युः । पृथिऽभिः । रजिष्ठैः । प्रति । हव्यानि । वीतये ।

अध । नियुत्वः । उभयस्य । नः । पिब । शुचिं । सोमं । गोऽआशिरं ॥ १७ ॥

हे नियुतो नियुत्संज्ञकाद्यवन्वायो अध्वर्युर्हविर्धानाद्रविष्टिर्जुतमैः पथिभिर्मर्गिर्वेति । गच्छति । वीतये भक्षणाय तव भक्षणानि हव्यानि हवीषि च प्रति नयतीति शेषः । अधाय गोऽस्माकं संबंधिनमुभयस्योभयविधं सोमं ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ पिब । उभयविधत्वं दर्शयति । शुचिं शुद्धं सोमं गवाशिरं गव्येन पयसा मिश्रितं वेति ॥ ७ ॥

बहमहाँ असि सूर्य बळादित्य महाँ असि ।

महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्वा देव महाँ असि ॥ ११ ॥

बद् । महान् । असि । सूर्य । बद् । आदित्य । महान् । असि ।

महः । ते । सतः । महिमा । पनस्यते । अद्वा । देव । महान् । असि ॥ ११ ॥

हे सूर्य त्वं महांस्तेजसाधिकोऽसि । बद् सत्त्वं । नैतन्निष्ठेत्यर्थः । हे आदित्यादितेः पुत्र त्वं महान् बलेनाप्यधिकोऽसि । बद् सत्त्वं । महो महतः सतो भवतस्ते महिमा महत्त्वं पनस्यते । सोतुभिः स्तूयते । हे देव योननादिगुणयुक्त सूर्य त्वं महान् वीर्येणाप्यधिकोऽसि । भवसि । अद्वा सत्त्वमेव । अत्र न संशय इत्यर्थः । बट सचाक्षेति सत्यनामयु पाठात् ॥

बद् सूर्य अवंसा महाँ असि सचा देव महाँ असि ।

महा देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यं ॥ १२ ॥

बद् । सूर्य । अवंसा । महान् । असि । सचा । देव । महान् । असि ।

महा । देवानां । असुर्यः । पुरःऽहितः । विऽभु । ज्योतिः । अदाभ्यं ॥ १२ ॥

हे सूर्य त्वं अवंसा अवशेन महान् सर्वाधिकोऽसि बद् सत्त्वं । हे देव योतमान सूर्य त्वं देवानां मध्ये महा महत्त्वेन महानधिकोऽसि सचा सत्त्वमेव । असुर्योऽसुराणां हन्ता चासि । किंच त्वं देवानां पुरोहितो हितोपदेष्टासि । किंच तज्ज्योतिस्तेषां विभु महद्दाभ्यं केनाप्यहिंसं च ॥

इयं या नीच्यर्किणी रूपा रोहिण्या कृता ।

चिचेव प्रत्यदर्श्यायत्यर्तदशसु बाहुषु ॥ १३ ॥

इयं । या । नीची । अर्किणी । रूपा । रोहिण्या । कृता ।

चिचाऽइव । प्रति । अदर्शि । आऽयती । अंतः । दशऽसु । बाहुषु ॥ १३ ॥

अस्मामृचुषः क्षुतिः सूर्यप्रमाया वा । येयं नीचवायुर्अर्किणी क्षुतिमती रूपा रूपवती रोहिण्या प्रकाशयुक्ता छतोषाः सूर्यप्रमा वीत्यादिता सांतर्ग्रहाण्डस्य मध्ये बाहुषु बाहुस्थानीयासु दशसु दशसंख्याकासु दिक्षाद्यत्यागच्छती चिचेव चिचा गौरिव प्रत्यदर्शि । सर्वैरवृक्षत ॥

प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुर्न्यून्या अर्कमभितो विविश्रे ।

बृहच्च तस्थौ भुवनेष्वंतः पर्वमानो हरित आ विवेश ॥ १४ ॥

प्र॒ऽजाः । ह॒ । ति॒सः । अ॒ति॒ऽआ॒यं । ई॒युः । नि । अ॒न्याः । अ॒र्कं । अ॒भितः । वि॒वि॒श्रे ।  
बृ॒हत् । ह॒ । त॒स्थौ । भुव॑नेषु । अ॒न्तरि॑ति । प॒व॒मानः । ह॒रितः । आ । वि॒वेष॑ ॥ १४ ॥

यास्मिन् प्रजा अत्यायमीयुः अत्यायमायन् अन्यास्ता इमाः प्रजा अर्कमर्चनीयमभिमभितो विविश्रे । अभितो निविष्टास्ततो न पराबभूवुः । भुवनेष्वन्तर्मध्ये बृहन्महानसावादित्यः । प्रजापतिरित्येके । तस्थौ । प्रजाशयनतिष्ठत् । हरितो दिशः पवमानो वायुरा विवेश । आविष्टः । तथा चैतरेयब्राह्मणं । प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुरिति या वे ता इमाः प्रजास्मिन्नो अत्यायमायंस्तानीमानि वयांसि वंगावगधाश्चैरपादाः । न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे इति ता इमाः प्रजा अर्कमभितो निविष्टा इममेवापि बृहद्य तस्थौ भुवनेष्वन्तरित्यद् उ एव बृहद्भुवनेष्वन्तरसावादित्यः पवमानो हरित आ विवेशेति वायुरेव पवमानो दिशो हरित आविष्टः । ऐ० आ० २. १. १. इति । वाजसनेयिनोऽप्यामनंति । स तपोऽतप्यत स प्रजा अकृतत ता अस्य प्रजाः सृष्टाः । ऐ० आ० २. १. १. इति । वाजसनेयिनोऽप्यामनंति । स तपोऽतप्यत स प्रजा अकृतत ता अस्य प्रजाः सृष्टाः । पराबभूवुस्तानीमानि वयांसित्युपक्रम्य प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुरिति या अमूः प्रजा अत्यायन् न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे इत्यभिर्वा अर्कसंमिताः प्रजा अभितो निविष्टास्ता इमाः पराभूताः । बृहद्य तस्थौ भुवनेष्वन्तरिति प्रजापतिमेवैतदभ्यनूक्तं पवमानो हरित आ विवेशेति दिशो वे हरितस्ता अयं पवमान आविष्टः । शत० २. ५. १. १-५. इति ॥

मा॒ता रु॒द्राणां॑ दु॒हिता वसू॑नां स्व॒सादि॒त्यानां॑ अ॒मृत॑स्य नाभिः ।

प्र॒ नु वो॑चं चि॒कितु॑षे ज॒नाय॑ मा गा॒मना॑गा॒मदि॑तिं वधिष्ट ॥ १५ ॥

मा॒ता । रु॒द्राणां॑ । दु॒हिता । वसू॑नां । स्व॒सा । आ॒दि॒त्यानां॑ । अ॒मृत॑स्य । नाभिः ।

प्र॒ । नु । वो॑चं । चि॒कितु॑षे । ज॒नाय॑ । मा । गां । अ॒नागां॑ । अ॒दि॑तिं । व॒धिष्ट॑ ॥ १५ ॥

अस्मिन् वृषे गौः स्तूयते । या गौ रुद्राणां मरुतां माता जननी वसूनां दुहिता पुत्रादिद्यानां स्वसा भगिन्यमृतस्य पयसो नाभिरावासस्थानं तामनागामनागसमदितिमदीनां गां गोरूपां देवीं मा वधिष्ट हे जनाः मा हिंसिष्टेति चिकितुषे चेतनावते जनाय त्विदानीं प्र वोचं । अहं प्रावोचमिति सुश्रूषमाणेभ्य उपदेशः ॥

व॒चो॒विदं॑ वाच॑मुदीरय॑तीं विश्वा॑भिधी॒भिर्रु॑पतिष्ठ॑माना ।

दे॒वीं दे॒वेभ्यः॑ पर्य॑युषीं गा॒मा मा॑वृ॒क्त म॒र्यो दु॒भ्रचे॑ताः ॥ १६ ॥

व॒चः॒ऽवि॒दं । वाचं॑ । उ॒त्ऽई॒रय॑तीं । विश्वा॑भिः । धी॒भिः । उ॒प॒ऽति॒ष्ठ॑मानां ।

दे॒वीं । दे॒वेभ्यः॑ । परि॑ । आ॒ऽई॒युषीं॑ । गां । आ । मा । अ॒वृ॒क्त । म॒र्यः । दु॒भ्रऽचे॑ताः ॥ १६ ॥

वचोविदं वचसो जमघिचीं वाचमुदीरयतीं पयः पीत्वा पसाद्वाचमुदीरयतीं । बुधितो हि जनो न वाचमुदीरयति मुक्ता पसादुदीरयति । विश्वाभिः सर्वाभिर्धोभिर्वाग्मिरुपतिष्ठमानां देवीं बोतमानां देवेभ्यो देवार्थं मा मामेयुषीमवगच्छतीं गां दभ्रचेता अल्पबुद्धिर्मलौ मनुष्यः पर्यावृक्त । परिवर्जयति ॥ ८ ॥

त्वमप इति द्वाविंशत्युचं नवमं सूक्तं गायत्र्यमापेयं । भृगुगोचः प्रयोगो नामभिः । बार्हस्पत्यः पावकविशेषेण विशिष्टोऽग्न्याख्यो वा । यद्वा । सहोनाम्नः पुत्री गृहपतियविष्टसंज्ञकौ द्वावपौ । तौ सहैदं सूक्तमपश्यतां । तस्मादस्य तावृषी । अथवा तयोरन्वतरः । तथा चानुक्रांतं । त्वमपे द्वाधिका भार्गवः प्रयोगो बार्हस्पत्यो वापिः पावकः सहस्रः सुतयोर्वाग्न्योर्गृहपतियविष्टयोर्वाग्न्यतर आपेयं त्विति ॥ प्रातरनुवाकस्यापेये क्रतौ गायत्रे छंदस्त्रादितोऽष्टादशर्चः । सूचितं च । त्वमपे बृहदय इत्यष्टादशाचंतस्त्विति सूक्ते । आ० ४. १३. इति ॥ देवसुवां हविःष्वपेर्गृहपतेरनुवाक्या त्वमपे बृहदय इत्येषा । सूचितं च । त्वमपे बृहदयो हव्यवाळपिरजरः पिता नः । आ० ४. ११. इति ॥ अन्वारंभणीयायामपेर्भगिनोऽनुवाक्या आ सवं सवितुरित्येषा । सूचितं च । आ सवं



सवितुर्यथा स नो राधांस्त्रा भर । आ० २. ८. । इति ॥ आभिज्ञयिकेष्वक्षेषु तृतीयसवने श्रेयावर्णस्यापि वो वृधंतमिति वैकल्पिकः स्तोत्रियस्तुतः । सूचितं च । अपि वो वृधंतमपे यं यज्ञमध्वरं । आ० ७. ८. । इति ॥ दशमेऽहनीमं नो यज्ञमिति लोकमूक्तस्य द्वितीयस्य स्त्रानेऽपि घृतस्त्रेतिषा । सूचितं च । लोकमूक्तस्य द्वितीयगु-  
तीययोः स्त्रानेऽपि घृतस्य धीतिमिदमे सुचंद्र सर्पिष इति । आ० ८. १२. । इति ॥

त्वमग्ने बृहद्वयो दधासि देव दाभुषे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥ १ ॥

त्वं । अग्ने । बृहत् । वयः । दधासि । देव । दाभुषे । कविः । गृहऽपतिः । युवा ॥ १ ॥

हे देव शीतमानामे कविः क्रांतकर्मा गृहपतिर्गृहपालको युवा नित्यं तदणस्त्वं दाभुषे हविषां प्रदात्रे यवमानाय बृहद्वयो महदन्नं दधासि । प्रयच्छसीत्यर्थः ॥

स न ईळानया सह देवाँ अग्ने दुवस्युवा । चिकिद्भिभानवा वह ॥ २ ॥

सः । नः । ईळानया । सह । देवान् । अग्ने । दुवस्युवा । चिकित् । विभानो इति  
विऽभानो । आ । वह ॥ २ ॥

हे विभानो विशिष्टदीप्तिऽपि चिकित्वाता सन्नोऽस्माकं दुवस्युवा परिचरणाशीलयेळानया सुवत्सा वाचा सह देवाना वह ॥

त्वया ह स्विद्युजा वयं चोदिष्टेन यविष्य । अभि षो वाजसातये ॥ ३ ॥

त्वया । ह । स्वित् । युजा । वयं । चोदिष्टेन । यविष्य । अभि । स्मः । वाजऽसातये ॥ ३ ॥

हे यविष्य युवतमामे चोदिष्टेनातिशयेन धनानां प्रेरयिष्या त्वया युजा स्विच्च सहायेनैव वयं मार्गवः प्रयोगो बाह्यैस्तथाः पावका अभयो वा वाजसातयेऽन्नसामाथामि ऋः । शत्रून् अभिवेम ॥

और्वभृगुवच्छुचिमप्रवानवदा हुवे । अग्निं समुद्रवाससं ॥ ४ ॥

और्वभृगुऽवत् । शुचिं । अग्रवानवत् । आ । हुवे । अग्निं । समुद्रऽवाससं ॥ ४ ॥

समुद्रवाससं समुद्रमध्यवर्तिनं वाङ्मवं शुचिं शुद्धमग्निमौर्वभृगुवदौर्वभृगुरप्रवानवदथाप्रवानस्तथा ऊवे । आह्वयाम्यहं ॥

हुवे वातस्वनं कविं पर्जन्यक्रंदं सहः । अग्निं समुद्रवाससं ॥ ५ ॥

हुवे । वातऽस्वनं । कविं । पर्जन्यऽक्रंदं । सहः । अग्निं । समुद्रऽवाससं ॥ ५ ॥

वातस्वनं वातसदृशध्वनिं कविं क्रांतकर्माणं पर्जन्यक्रंदं पर्जन्यसदृशक्रंदनं सहः सहस्त्रिनं वाङ्मवमग्निं ऊवे । आह्वयामि । अन्यन्नतं ॥ ॥ ५ ॥

आ सवं सवितुर्यथा भगस्येव भुजिं हुवे । अग्निं समुद्रवाससं ॥ ६ ॥

आ । सवं । सवितुः । यथा । भगस्यऽइव । भुजिं । हुवे । अग्निं । समुद्रऽवाससं ॥ ६ ॥

सवितुः प्रेरकस्य देवस्य सवं यथा प्रसवमिव भगस्येव भुजिं भगास्त्रस्य देवस्य भोगमिव च समुद्रवास-  
समग्निं ऊवे । आह्वयामि ॥

अग्निं वो वृधंतमध्वराणां पुरुतमं । अच्छा नम्रे सहस्वते ॥७॥

अग्निं । वः । वृधंतं । अध्वराणां । पुरुतमं । अच्छ । नम्रे । सहस्वते ॥७॥

अध्वराणामहिंस्त्राणां बलिनां नम्रे वंधुं सहस्वते बलवतं ॥ विमत्तिव्यत्ययः ॥ वृधंतं ज्वालाभिर्वर्धमानं पुरुतममतिप्रथेन बह्वमपिमृत्विवो वो धूममच्छ । अभिगच्छत ॥

अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तस्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥८॥

अयं । यथा । नः । आभुवत् । त्वष्टा । रूपाऽइव । तस्या । अस्य । क्रत्वा । यशस्वतः ॥८॥

अथमपिनोऽस्मास्तच्छा विकर्तव्यानि रूपेय त्वष्टा रूपाणि वर्धकिरिव यथा येन प्रकारेणामुवत् आमवति तथैनमपिमभिगच्छतेत्यर्थः । किंच वयमस्मापिः क्रत्वा प्रज्ञानेन युक्ता यशस्वतो यशस्वतो भवेमेति शेषः ॥

अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते । आ वाजैरुप नो गमत् ॥९॥

अयं । विश्वाः । अभि । श्रियः । अग्निः । देवेषु । पत्यते । आ । वाजैः । उप । नः । गमत् ॥९॥

मनुष्याणां विश्वाः सर्वाः श्रियः संपदो देवेषु देवानां मध्ये योऽयमपिरभि पत्यते अभिगच्छति सोऽपिनोऽस्मानपि वाजैरुत्तेरुपा गमत् । उपागच्छतु ॥

विश्वेषामिह स्तुहि होतृणां यशस्तमं । अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यं ॥१०॥

विश्वेषां । इह । स्तुहि । होतृणां । यशः । तमं । अग्निं । यज्ञेषु । पूर्व्यं ॥१०॥

विश्वेषां सर्वेषां होतृणां मध्ये यशस्तमं यशस्वितमं यज्ञेषु पूर्व्यं मुख्यमपिमिहासादीये यज्ञे हे सोतः स्तुहि ॥ ॥१०॥

शीरं पावकशोचिषं ज्येष्ठो यो दमेष्वा । दीदाय दीर्घश्रुतमः ॥११॥

शीरं । पावकऽशोचिषं । ज्येष्ठः । यः । दमेषु । आ । दीदाय । दीर्घश्रुतऽतमः ॥११॥

ज्येष्ठो देवानां मुख्यो दीर्घश्रुतमोऽतिप्रथेन विद्वानग्निर्दमेषु दम्वनां गृहेष्वा दीदाय । आदीप्यते । शीरमनुशाधिनं । तथा च यास्तः । अनुशाधिनमिति वाशिनमिति वा । नि० ४. १४. । इति । पावकशोचिषं पावकदीप्तिं क्षुहीत्यर्थः ॥

तमर्वेतं न सान्सिं गृणीहि विप्र शुष्मिणं । मिचं न यातयज्जनं ॥१२॥

तं । अर्वेतं । न । सान्सिं । गृणीहि । विप्र । शुष्मिणं । मिचं । न । यातयत् । ज्जनं ॥१२॥

हे विप्र मेधाविन् सोतः अर्वेतं नाश्रमिव सान्सिं संभजनीयं शुष्मिणं बलिनं मिचं न सखायमिव यातयज्जनं हतशत्रुजनं तमपिं गृणीहि । स्तुहि ॥

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥१३॥

उप । त्वा । जामयः । गिरः । देदिशतीः । हविः । ऽकृतः । वायोः । अनीके । अस्थिरन् ॥१३॥

हे अपे हविष्कृतो यजमानार्थं गिरः क्षुतयो जामयः स्वसार एव देदिशतीत्येव गुणान्दिशंस्त्वस्त्वा त्वामुपातिष्ठति । वायोरनीके समीपे त्वां समेधयंत्योऽस्थिरन् । अतिष्ठंश्च ॥



यस्य चि॒धात्वृ॒तं ब॒र्हिस्त॒स्याव॑संदि॒नं । आप॑स्वि॒न्नि द॑धा प॒दं ॥ १४ ॥

यस्य॑ । चि॒ऽधातु॑ । अ॒वृ॒तं । ब॒र्हिः । त॒स्यौ । अ॒सं॑ऽदि॒नं । आप॑ः । चि॒त् । नि । द॒ध । प॒दं ॥ १४ ॥

यस्यापेस्त्रिधातु पिरपुतमनावृतं चासंदिनमवहं च । करणकाले हि बर्हिरवहं भवति । बर्हिस्तस्यौ आसनाथं तिष्ठति तस्मिन्नावपस्त्रिदापोऽपि पदं नि दध । निदधति । आंतरिक्षा माध्यमिके पदं निदधतीत्यर्थः ॥

प॒दं दे॒वस्य॑ मी॒ऽऽहुषो॑ऽनाधृष्टाभि॒रु॒तिभिः॑ । भ॒द्रा सूर्ये॑ इ॒वोप॑दृक् ॥ १५ ॥

प॒दं । दे॒वस्य॑ । मी॒ऽऽहुषः॑ । अ॒नाधृष्टाभिः॑ । उ॒तिऽभिः॑ । भ॒द्रा । सूर्येः॑ । इ॒व । उ॒प॑ऽदृक् ॥ १५ ॥

मीऽऽहुषः कामाणां श्रेष्ठदेवस्य द्योतमानस्यापेः पदं स्थानमनाधृष्टाभिः शत्रुभिरनाधृष्टाभिरुतिभि रक्षाभिर्मजगीयं भवतीत्यर्थः । तथैवास्त्रोपद्रुगुपद्रुष्टिरपि सूर्य इव यथा सूर्यस्तवज्जद्रा मनुष्यैर्मजगीया भवति ॥ ॥ १५ ॥

अ॒ग्ने घृ॒तस्य॑ धी॒तिभि॑स्तेपा॒नो दे॒व शो॒चिषा॑ । आ दे॒वान्व॑क्षि॒ यक्षि॑ च ॥ १६ ॥

अ॒ग्ने । घृ॒तस्य॑ । धी॒तिऽभिः॑ । ते॒पा॒नः । दे॒व । शो॒चिषा॑ । आ । दे॒वान् । व॒क्षि । य॒क्षि । च ॥ १६ ॥

हे देव द्योतमानापे घृतस्य दीप्तिसाधनस्याज्यस्य धीतिभिर्निधानेस्तेपानस्तपञ्जोचिषा ज्वालयता देवान् प्रत्या वधि । आवह । यधि । यज च ॥

तं त्वा॒ज॒न॒न्त॒ मा॒तरः॑ क॒विं दे॒वासो॑ अ॒ंगिरः॑ । ह॒व्य॒वा॒ह॒म॒म॒र्त्यं ॥ १७ ॥

तं । त्वा॒ । अ॒ज॒न॒न्त॒ । मा॒तरः॑ । क॒विं । दे॒वासः॑ । अ॒ंगि॒रः॑ । ह॒व्य॒ऽवा॒हं । अ॒म॒र्त्यं ॥ १७ ॥

हे अंगिरोऽपि कविं क्रांतकर्मणममर्त्यं मरणरहितं हव्यवाहं हविषां बोधारं तं प्रसिद्धं त्वा त्वां देवाः देवा मातर इवाजन्त । जनयन्ति ॥

प्र॒चे॒त॒सं त्वा॒ क॒वेऽग्ने॑ दू॒तं व॑रेण्यं । ह॒व्य॒वा॒हं नि॒ षे॒दिरे॑ ॥ १८ ॥

प्र॒ऽचे॒त॒सं । त्वा॒ । क॒वे॒ । अ॒ग्ने॑ । दू॒तं । व॑रेण्यं । ह॒व्य॒ऽवा॒हं । नि॒ । से॒दिरे॑ ॥ १८ ॥

हे कवे क्रांतकर्मण्यपि प्रचेतसं प्रकृष्टबुद्धिं वरेण्यं वरणीयं दूतं देवानां हव्यवाहं हविषां बोधारं त्वा त्वां नि षेदिरे । देवा निषीदन्ति ॥

न॒हि मे॒ अ॒स्त्य॒ग्न्या न॒ स्व॒धि॒ति॒र्व॑न॒न्वति॑ । अ॒थै॒ता॒दृ॒ग्भ॒रामि॑ ते ॥ १९ ॥

न॒हि । मे॒ । अ॒स्ति॑ । अ॒ग्न्या॑ । न । स्व॒ऽधि॒तिः॑ । व॒न॒न्ऽव॒ति॑ । अ॒थ॑ । ए॒ता॒दृ॒क् ।

भ॒रामि॑ । ते ॥ १९ ॥

हे अग्ने मे मम मार्गवस्तु प्रयोगस्त्वैरग्न्या गीः । अग्न्योस्तेति गीणामसु पाठात् । नह्यस्ति न विद्यते यस्याः पयसाज्येन च त्वां यजेय । किंच स्वधितिर्नहि वनन्वति काष्ठाणि हन्ति शैः काष्ठैस्तां समिधीय । अथैतादृगपि होचार्थं पयसो दोग्ध्रीं गामिधनसाधनानि धैतत्सर्वं ते तुभ्यमहं भरामि ॥

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारुणि दुध्मसि । ता जुषस्व यविष्ठ्य ॥२०॥  
यत् । अग्ने । कानि । कानि । चित् । आ । ते । दारुणि । दुध्मसि । ता । जुषस्व ।  
यविष्ठ्य ॥२०॥

पूर्वस्यामृच्युत्तसीवार्यस्य विवरणमत्र । हे यविष्ठ्य युवतमापे तुभ्यं यद्यदा कानि कानि विद्यानि कान्यपि दारुणि काष्ठान्या दध्मसि आधारयामि तदा ता तान्यपरशुवृक्कणान्यपि जुषस्व । सेवस्व । तथा च यजुर्ग्राह्यं । न ह सा वै पुराभिरपरशुवृक्कणं ददति तदस्मै प्रयोग एवर्धिरस्वदयवदपे यानि कानि चेति समिधमादधात्व-परशुवृक्कणमेवास्मै स्वदयति सर्वमस्मै स्वदते । तै० सं० ५. १. १०. १. इति ॥

यदस्युपजिह्विका यज्ञो अतिसर्पति । सर्वे तदस्तु ते घृतं ॥२१॥  
यत् । अग्निं । उपजिह्विका । यत् । वस्रः । अतिसर्पति । सर्वे । तत् । अस्तु । ते । घृतं ॥२१॥

हे अग्ने यत्काष्ठादिकमुपजिह्विका । उपजिह्वतीत्युपजिह्विका । अग्निं मन्त्रयति । यज्ञ काष्ठादिकं वस्रः । वस्रमुदकमिति वस्रः । उपजिह्विकावस्रशब्दौ यद्यपि पर्यायौ तथापि पृथगुपादानावस्रशब्दस्य द्विशेषे पर्य-वस्यति । सोऽप्यतिसर्पति अतिगच्छति । तत्सर्वं ते तव घृतं घृतसङ्ग्रहमस्तु । यथा घृतं तव प्रियकरं भवति तथा प्रियकरं भवत्वित्यर्थः ॥

अग्निमिंधानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः । अग्निमीधे विवस्वभिः ॥२२॥  
अग्निं । इंधानः । मनसा । धियं । सचेत । मर्त्यः । अग्निं । ईधे । विवस्वभिः ॥२२॥

मर्त्यो मनुष्योऽग्निमिंधानः काष्ठैः प्रज्वलयन् मनसैव अइंधानो धियं कर्म सचेत । काष्ठे मजेत । विवस्व-भिर्चक्ष्विग्निमिंधामिमेधे । प्रज्वलति ॥ ॥१२॥

अदर्शीति चतुर्दशर्चं दशमं सूक्तं काण्वस्य सोमरेरार्थं । अचानुकम्यते । अदर्शिं षट्कूना सोमरिर्वाहंतं पंचम्याययुजः सतोवृहत्तोऽष्टम्यादि युजः ककुब्जायची ककुबनुवृत्त्यापिमादतीति । पंचमीसप्तमीनवम्येकाद-शीचयोदशः पंच सतोवृहत्तः । अष्टमीद्वादशौ ककुभौ दशमी नायची चतुर्दशनुष्टुप् शिष्टा वृहत्तः । आपियं त्वित्युक्तात्वादभिर्देवता । अंत्वायास्त्वभिर्मन्त्रतश्च ॥ प्रातरनुवाकस्यापिधे क्रतौ वार्हते वंदस्वादितः सप्तर्चः । सूचितं च । अदर्शिं गातुवित्तम इति सप्तेति वार्हतं । आ० ४. १३. ॥ आभिर्भविष्वेभूव्येषु नैवाययस्य वैवस्विकः सोविद्यकृचः । सूचितं च । मा चिदापि चाहि मत्सखा यत्ते रावन्नप इति ॥

अदर्शिं गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।

उपो षु जातमार्थस्य वर्धनमग्निं नक्षंत नो गिरः ॥१॥

अदर्शिं । गातुवित्ऽतमः । यस्मिन् । व्रतानि । आऽदधुः ।

उपो इति । सु । जातं । आर्थस्य । वर्धनं । अग्निं । नक्षंत । नः । गिरः ॥१॥

यस्मिन्नपौ व्रतानि कर्माणादधुः यजमाना आदधन् गातुवित्तमोऽतिशयेन मार्गाणां ज्ञाता सोऽभिर-दर्शिं । प्रादुरभूत । किंच सु जातं सम्यक्प्रादुर्भूतमस्यार्थस्रोतमवर्णस्य वर्धनं वर्धयितारमग्निं नोऽस्माकं गिरः सुतिरूपा वाच उपो नक्षंत । उपगच्छत्वैव ॥ नच गताविति धातुः ॥

प्र देवोदासो अग्निर्देवाँ अच्छा न मज्जना ।

अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि ॥२॥



प्र । दैवःऽदासः । अग्निः । देवान् । अन्नं । न । मज्जना ।

अनु । मातरं । पृथिवीं । वि । ववृते । तस्थौ । नाकस्य । सानवि ॥२॥

दैवोदासो दिवोदासेनाह्वयमानोऽपिर्मातरं । सर्वस्य लोकास्य धारणवत्त्वात्पृथिवी माता । तां पृथि-  
वीमच्छ प्रति देवांसस्य दिवोदासस्य यज्ञे देवाननु प्रति हविर्वौहं न प्र वि वावृते । यस्मादेवमग्निं दिवोदासो  
मज्जना वसेनानुहाय तस्माद्वयमपिर्नाकस्य स्वर्गस्य सानवि समुच्छ्रिते देशे स्थायतन एव तस्थौ । अति४त ॥

यस्माद्रेजंत कृष्टयश्चकृत्यानि कृण्वतः ।

सहस्रसां मेधसांताविव त्मनाग्निं धीभिः संपर्यत ॥३॥

यस्मात् । रेजंत । कृष्टयः । चकृत्यानि । कृण्वतः ।

सहस्रऽसां । मेधसांतौऽइव । त्मना । अग्निं । धीभिः । संपर्यत ॥३॥

यस्मात्कारणाच्छकृत्यानि कर्तव्यानि कर्मणि कृण्वतः । कुर्वन्नास्मनुष्यान् कृष्टय इतरे मनुष्या रेवंति कपंति  
तस्मादिदानीं हे जनाः यूयं सहस्रसां गवां धनानां च सहस्रस्य दातारमग्निं मेधसांतौ यज्ञे धीभिः कर्तव्यः  
कर्मभिस्त्वनात्मनैव संपर्यत । परिचरत ॥

प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।

स वीरं धत्ते अय उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणं ॥४॥

प्र । यं । राये । निनीषसि । मर्तः । यः । ते । वसो इति । दाशत् ।

सः । वीरं । धत्ते । अग्ने । उक्थऽशंसिनं । त्मना । सहस्रऽपोषिणं ॥४॥

हे वसो वासकायि त्वं यं तव स्तोतारं राये धनार्थं प्र निनीषसि प्रनेतुमिच्छसि यद्य मर्त्यो मनुष्यस्ते तुभ्यं  
दाशत् हवींषि प्रयच्छति स मनुष्य उक्थशंसिनमुक्थानां शंसितारं त्वनात्मनैव सहस्रपोषिणं वज्रधनं वीरं  
युषं धत्ते । धारयति ॥

स दृष्ट्वे चिदुभि तृणन्ति वाजमर्वता स धत्ते अक्षितिं श्रवः ।

त्वे देवचा सदा पुरुवसो विश्वा वामानि धीमहि ॥५॥

सः । दृष्ट्वे । चित् । अग्नि । तृणन्ति । वाजं । अर्वता । सः । धत्ते । अक्षिति । श्रवः ।

त्वे इति । देवऽचा । सदा । पुरुवसो इति पुरुवसो । विश्वा । वामानि । धीमहि ॥५॥

हे पुरुवसो वज्रधनायि यस्तुभ्यं हवींषि प्रयच्छति स यजमानो दृष्ट्वे चिदुदेऽपि शत्रुपुरे स्थितं वाजमज्ज-  
मर्वतासेनामि तृणन्ति । हिणक्षि । यथा स यजमानोऽचित्पयोणं श्रवोऽन्नं धत्ते धारयति । तथा च सति  
तुभ्यं हविषां प्रदातारो वयमपि देवचा देवे ते त्वयि स्थिता विश्वा सर्वाणि वामानि वनजीयानि धनानि  
सदा सर्वदा धीमहि । धारयामः ॥ १३ ॥

यो विश्वा दयते वसु होता मंद्रो जनानां ।

मधोर्न पाचा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यंत्यग्रये ॥६॥

यदमे कानि कानि चिदा ते दारुणि दुध्मसि । ता जुषस्व यविष्ठ्य ॥२०॥  
यत् । अमे । कानि । कानि । चित् । आ । ते । दारुणि । दुध्मसि । ता । जुषस्व ।  
यविष्ठ्य ॥२०॥

पूर्वस्वामृच्युक्तस्यैवार्थस्य विवरणमत्र । हे यविष्ठ्य युवतमापि तुभ्यं यद्यदा कानि कानि चिदाणि कान्यपि दारुणि काष्ठान्या दुध्मसि आधारयामि तदा ता तान्यपरशुवृक्कणान्यपि जुषस्व । सेवस्व । तथा च यजुर्ग्राह्यं । न ह आ वै पुराधिरपरशुवृक्कणं दहति तदसौ प्रयोग एवधिरस्वदयद्यमे यानि कानि चेति समिधमादधात्व-परशुवृक्कणमेवासौ स्वदयति सर्वमसौ स्वदते । तै० सं० ५. १. १०. १. इति ॥

यदत्युपजिह्विका यवस्यो अतिसर्पति । सर्वे तदस्तु ते घृतं ॥२१॥  
यत् । अत्ति । उपजिह्विका । यत् । वस्यः । अत्तिऽसर्पति । सर्वे । तत् । अस्तु । ते । घृतं ॥२१॥

हे अमे यत्काष्ठादिकमुपजिह्विका । उपजिह्वतीत्युपजिह्विका । अत्ति मचयति । यच्च काष्ठादिकं वस्यः । वमत्युदकमिति वस्यः । उपजिह्विकावस्यशब्दौ यद्यपि पर्यायौ तथापि पृथगुपादानाद्वस्यशब्दस्तद्विशेषे पर्य-वस्यति । सोऽप्यतिसर्पति अतिगच्छति । तत्सर्वं ते तव घृतं घृतसदृशमस्तु । यथा घृतं तव प्रियकरं भवति तथा प्रियकरं भवत्वित्यर्थः ॥

अग्निमिंधानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः । अग्निमीधे विवस्वभिः ॥२२॥  
अग्निं । इंधानः । मनसा । धियं । सचेत । मर्त्यः । अग्निं । ईधे । विवस्वभिः ॥२२॥

मर्त्यो मनुष्योऽग्निमिंधानः काष्ठैः प्रज्वलयन् मनसैव अइधानो धियं कर्म सचेत । काष्ठे मजेत । विवस्व-भिर्हवित्विमन्त्राभिर्मेधे । प्रज्वलयति ॥ १२ ॥

अदर्शिंति चतुर्दशर्षं दशमं सूक्तं काश्यस्व सोमरेराधं । अचानुक्रम्यति । अदर्शिं षट्कूना सोमरिर्वाहंतं पंचम्याययुजः सतोवृहत्तोऽष्टम्यादि युजः ककुब्जाययी ककुबनुषुबंत्वायिमापतीति । पंचमीसप्तमीनवम्येकाद-शीचयोदशः पंच सतोवृहत्तः । अष्टमीद्वादशी ककुमी दशमी गायत्री चतुर्दशनुषुप शिष्टा वृहत्तः । आपियं त्वित्युक्तत्वादपिर्देवता । बंत्वायास्त्वभिर्मन्त्रतश्च ॥ प्रातरनुवाकस्यापेये क्रतौ वाहंते छंदसादितः सप्तर्षयः । सूचितं च । अदर्शिं गातुवित्तम इति सप्तैति वाहंतं । आ० ४. १३. ॥ आग्निप्रविशेषूक्त्येषु त्रैधावपणस्य वैवायिकः कोनियसृचः । सूचितं च । मा चिदापि याहि मरुत्सखा यन्ते राजस्रप इति ॥

अदर्शिं गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।

उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षंत नो गिरः ॥१॥

अदर्शिं । गातुवित्ऽतमः । यस्मिन् । व्रतानि । आऽदधुः ।

उपो इति । सु । जातं । आर्यस्य । वर्धनं । अग्निं । नक्षंत । नः । गिरः ॥१॥

यक्षिप्तयो व्रतानि कर्माणादधुः यजमाना आदधन् गातुवित्तमोऽतिशयेन मार्गाणां ज्ञाता सोऽधिर-दर्शि । प्रादुरमूत । किंच सु जातं सम्यक्प्रादुर्भूतमस्त्वार्यस्रोत्तमवर्णस्य वर्धनं वर्धयितारमग्निं नोऽस्माकं गिरः क्षुतिरूपा वाच उपो नक्षंत । उपमच्छेदिव ॥ नच जताविति धातुः ॥

प्र देवोदासो अग्निर्देवां अच्छा न मज्मना ।

अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्यौ नार्कस्य सानवि ॥२॥



प्र । दैवःऽदासः । अग्निः । देवान् । अन्नं । न । मज्जना ।

अनु । मातरं । पृथिवीं । वि । ववृते । तस्थौ । नाकस्य । सानंवि ॥ २ ॥

दैवोदासो दिवोदासेनाह्वयमानोऽभिर्मातरं । सर्वस्य लोकास्य धारणवत्त्वात्पृथिवी माता । तां पृथि-  
वीमच्छ प्रति देवांस्य दिवोदासस्य यज्ञे देवाननु प्रति हविर्वौदं न प्र वि ववृते । यस्मादेजमग्निं दिवोदासो  
मज्जना वलेनाजुष्टाव तस्मादथमभिर्नाकस्य स्वर्गस्य सागवि समुच्छिते देशे स्थायतन एव तस्थौ । अतिष्ठत ॥

यस्माद्रेजंत कृष्टयश्चकृत्यानि कृण्वतः ।

सहस्रसां मेधसांताविव तमनाग्निं धीभिः संपर्यत ॥ ३ ॥

यस्मात् । रेजंत । कृष्टयः । चकृत्यानि । कृण्वतः ।

सहस्रऽसां । मेधसांतौऽइव । तमना । अग्निं । धीभिः । संपर्यत ॥ ३ ॥

यस्मात्कारणाच्छकृत्यानि कर्तव्यानि कर्मणि कृण्वतः । कृष्टयान्मनुष्यान् कृष्टय इतरे मनुष्या रेजंत कपंत  
तस्मादिदानीं हे जनाः धूयं सहस्रसां गवां धनानां च सहस्रस्य दातारमग्निं मेधसांती यज्ञे धीभिः कर्तव्यः  
कर्मभिस्सनात्तनैव संपर्यत । परिचरत ॥

प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस्ते वसो दाशत ।

स वीरं धत्ते अग्रे उक्थशंसिनं तमना सहस्रपोषिणं ॥ ४ ॥

प्र । यं । राये । निनीषसि । मर्तः । यः । ते । वसो इति । दाशत ।

सः । वीरं । धत्ते । अग्रे । उक्थऽशंसिनं । तमना । सहस्रऽपोषिणं ॥ ४ ॥

हे वसो वासकापि त्वं यं तव स्तोतारं राये धनार्थं प्र निनीषसि प्रनेतुमिच्छसि यस्य मर्त्यो मनुष्यस्य तुभ्यं  
दाशत हवींषि प्रयच्छति स मनुष्य उक्थशंसिनमुक्त्यानां शंसितारं तमनात्मनैव सहस्रपोषिणं वज्रधनं वीरं  
पुत्रं धत्ते । धारयति ॥

स दृष्ट्वे चिदुभि नृणस्ति वाजमर्वता स धत्ते अक्षितिं श्रवः ।

त्वे देवचा सदा पुरुवसो विश्वा वामानि धीमहि ॥ ५ ॥

सः । दृष्ट्वे । चित् । अग्निः । नृणस्ति । वाजं । अर्वता । सः । धत्ते । अक्षिति । श्रवः ।

त्वे इति । देवऽचा । सदा । पुरुवसो इति पुरुवसो । विश्वा । वामानि । धीमहि ॥ ५ ॥

हे पुरुवसो वज्रधनाय यक्षुभ्यं हवींषि प्रयच्छति स यजमानो दृष्ट्वे चिदुदेऽपि शत्रुपुरे स्थितं वाजमन्न-  
मर्वतासेनामि नृणस्ति । हिनस्ति । यथा स यजमानोऽधिवशीषं श्रवोऽन्नं धत्ते धारयति । तथा च सति  
तुभ्यं हविषां प्रदातारो वयमपि देवचा देवे ले स्वयि स्थिता विश्वा सर्वाणि वामानि वज्रनीयानि धनानि  
सदा सर्वदा धीमहि । धारयामः ॥ १३ ॥

यो विश्वा दयते वसु होता मंद्रो जनानां ।

मधोर्न पात्रां प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यंत्यग्रये ॥ ६ ॥

यः । विश्वा । दयते । वसु । होता । मद्रः । जनानां ।  
मघोः । न । पात्रा । प्रथमानि । अस्मै । प्र । स्तोमाः । यन्ति । अग्रये ॥ ६ ॥

होता देवानामाज्ञाता मद्रो मोदमानो योऽपिर्विद्या सर्वाणि वसु वसूनि धनानि जनानां जनेभ्यो दयते प्रयच्छति तस्मा अस्मा अपये मघोर्न मदकरस्व सोमस्त्वैव प्रथमानि सुखानि पात्राणि स्तोमाः प्र यन्ति । प्रयच्छति ॥

अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मज्यन्ते देवयवः ।  
उभे तोके तनये दस्म विशपते पर्वि राधो मघोनां ॥ ७ ॥  
अश्वं । न । गीःऽभिः । रथ्यं । सुऽदानवः । मर्मज्यन्ते । देवऽयवः ।  
उभे इति । तोके इति । तनये । दस्म । विशपते । पर्वि । राधः । मघोनां ॥ ७ ॥

हे दस्य दर्शनीय विशपति विशां पतेऽपि यं त्वां सुदानवः शोभनदाना देवयवो देवानात्मन इच्छन्ती यजमाना रथ्यं रथस्य वोढारमस्य नाशमिव गीर्भिः क्षुतिभिर्मर्मज्यन्ते परिचरन्ति स त्वमस्माकं यजमानानां तोके पुषे तनये पौषे चोमे उभयस्त्रिमघोनां धनवतां राद्यो धनं पर्वि । प्रयच्छ ॥

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्रे बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्रये ॥ ८ ॥  
प्र । मंहिष्ठाय । गायत । ऋतऽव्रे । बृहते । शुक्रऽशोचिषे । उपऽस्तुतासः । अग्रये ॥ ८ ॥

हे यूयमुपस्तुतास उपस्तोतारः मंहिष्ठाय दातुतमायताव्रे यज्ञवते सत्ववते वा बृहते महते शुक्रशोचिषे दीप्तिवसेऽग्रये स्तोत्रं पठत ॥

आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्याहुतः ।  
कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥ ९ ॥  
आ । वंसते । मघऽवा । वीरऽवत् । यशः । संऽइद्धः । द्युन्नी । आऽहुतः ।  
कुवित् । नः । अस्य । सुऽमतिः । नवीयसी । अच्छ । वाजेभिः । आऽगमत् ॥ ९ ॥

मघवा धनवान् द्युम्यव्रवान् यशस्वी वा । तथा च यास्तः । युष्मं योततिर्यशो वात्रं वा । मि० ५. ५. । इति । यशो यशस्करमममा वंसते । यजमानेभ्य आ प्रयच्छति । अस्मादिर्नवीयसी नवतरा सुमतिरनुयह्युक्षि-  
नोऽस्मान्छ प्रति वाजेभिरग्नेः सह कुविद्वज्वारं । सशिवं कुविदिति वज्रनामसु पाठात् । आगमत् । आगच्छतु ॥

प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुत्यासावार्तिथिं । अग्निं रथानां यमं ॥ १० ॥  
प्रेष्ठं । जुं इति । प्रियाणां । स्तुहि । आऽसाव । अर्तिथिं । अग्निं । रथानां । यमं ॥ १० ॥

हे आसाव स्तोतः प्रियाणां प्रेष्ठं प्रियतममतिथिमभागतं रथानां यमं यन्तारमभिमेव क्षुहि ॥ १४ ॥

उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यज्ञियो ववर्तन्ति ।  
दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिर्षासतः ॥ ११ ॥



उत्सृजता । यः । निऽदिता । वेदिता । वसु । आ । यज्ञियः । ववर्तति ।  
दुस्तराः । यस्य । प्रवणे । न । ऊर्मयः । धिया । वाजं । सिसासतः ॥११॥

वेदिता वेत्ता यज्ञियो यज्ञार्हो योऽपि वेदितोदितान्युन्नताभि निदिता निदिताभि युतानि च वसु  
वसुनि धनान्या ववर्तति आवर्तयति । धिया कर्मणा वाजं संयामं सिसासतः संमत्तुमिच्छतो यस्य चापेर्वाणाः  
प्रवणे गोरमयः प्रवणामिमुखाः समुद्रस्य तरंगा इव दुष्टराक्तुर्मशक्याः । तमपि हे सोतः सुहीत्यर्थः ॥

मा नो हृणीतामतिथिर्वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः । यः सुहोता स्वध्वरः ॥१२॥  
मा । नः । हृणीतां । अतिथिः । वसुः । अग्निः । पुरुऽप्रशस्तः । एषः । यः । सुऽहोता ।  
सुऽअध्वरः ॥१२॥

वसुर्वासकोऽतिथिरतिथिवत्प्रियः पुरुप्रशस्तो वज्रभिः कुतः सुहोता सुष्ठु देवानामाह्वाता स्वध्वरः  
सुयज्ञश्च योऽग्निः स एषोऽपि नोऽस्माभ्यं मा हृणीतां । केनापि न बध्यतां । केनाप्यनवबद्धः सन्नपिरस्य-  
भ्रममीष्टं प्रयच्छस्वित्यर्थः ॥

मो ते रिषन्त्ये अच्छोक्तिभिर्वसोऽग्ने केभिश्चिदैवैः ।  
कीरिश्चिद्वि त्वामीदृ दूत्याय रातहव्यः स्वध्वरः ॥१३॥  
मो इति । ते । रिषन् । ये । अच्छोक्तिऽभिः । वसो इति । अग्ने । केभिः । चित् । एवैः ।  
कीरिः । चित् । हि । त्वां । ईदृ । दूत्याय । रातऽहव्यः । सुऽअध्वरः ॥१३॥

हे वसो वासकापे त्वां ये मनुष्या अच्छोक्तिमिरमिष्टुतिभिः केभिः कैः सुखकरैरेवैश्चिदभिगमनैरपि ते  
सोतारो मो रिषन् । मेव हिंसतां । रातहव्यो दत्तहविष्कः कीरिश्चित् सोतापि दूत्याय हविर्वहनादिसन्ध्याय  
दूतकर्मणि त्वामीदृ हि । सौति खलु ॥

आग्ने याहि मरुत्सखा रुद्रेभिः सोमपीतये ।  
सोमर्था उप सुष्टुतिं मादयस्व स्वर्णरे ॥१४॥  
आ । अग्ने । याहि । मरुत्सखा । रुद्रेभिः । सोमऽपीतये ।  
सोमर्थाः । उप । सुऽस्तुतिं । मादयस्व । स्वऽनरे ॥१४॥

हे अग्ने मरुत्सखा मरुतां प्रियस्त्वं स्वर्णरेऽस्माकं यजन्तव्ये कर्मणि सोमपीतये सोमपात्राय रुद्रेभ्यो  
रुद्रेर्मन्त्रिः सहा याहि । आगच्छ । सोमर्थाः सोमरेर्मम सुष्टुतिं शोभनां सुतिं चोपागच्छ । मादयस्व । सुतिं  
श्रुत्वा सोमं पीत्वात्मानं मादय च ॥ १५॥

॥ इत्यष्टमे मंडले दशमोऽनुवाकः समाप्तं चाष्टमं मंडलं ॥

## ॥ ऋग्वेदः ॥

### ॥ अथ नवमं मंडलं ॥

नवमे मंडले सप्तानुवाकाः । तत्र प्रथमेऽनुवाके चतुर्विंशतिसंख्याकानि सूक्तानि । तत्र स्वादिष्ठयेति दशचं प्रथमं सूक्तं । अवागुक्तव्यते । स्वादिष्ठया दश मधुच्छंदा इति । वैश्वामित्रो मधुच्छंदा ऋषिः । प्राक्त्वत्सप्रीत्यपरिभाषया गायत्री छंदः । नवमं मंडलं पावमानं सौम्यमिति वचनात् पवमानगुणविशिष्टः सोमो देवता ॥ यावत्सोमेऽर्चुदसूक्तस्य प्रागुक्तमाया इदमादिकं सर्वं पावमानं विकल्पेनावपनीयं । सूचितं च । प्रैति वदंस्त्वित्यर्चुदं प्रागुक्तमाया आ व ऋचसे प्र वो यावाण इति सूक्तयोरंतरोपरिष्ठात्पुरस्तादा पावमानोरोय यथार्थमा वा ग्रहयद्गृणात् । आ० ५. १२. इति ॥ उपाकर्मणि मंडलादिग्रहण आद्या । सूचं पूर्वमेवोदाहृतं ॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इंद्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥

स्वादिष्ठया । मदिष्ठया । पवस्व । सोम । धारया । इंद्राय । पातवे । सुतः ॥ १ ॥

हे सोम इंद्राय पातवे पातुं सुतोऽभिषुतस्त्वं स्वादिष्ठया स्वादुतमया मदिष्ठयातिशयेन मादयिष्या धारया पवस्व । चर ॥

रक्षोहा विश्वचर्षणिर्भि योनिमयोहतं । दुर्णा सधस्थमासदत् ॥ २ ॥

रक्षःऽहा । विश्वऽचर्षणिः । अभि । योनिं । अयःऽहतं । दुर्णा । सधऽस्थं । आ । असदत् ॥ २ ॥

रक्षोहा रचसां हंता विश्वचर्षणिर्विश्वस्य द्रष्टा सोमोऽयोहतं हिरण्येन हृतं । तथा च ब्राह्मणं । हिरण्यपाणिर्भिषुणोतीति । दुर्णा द्रोणकलशेनाधिषवणफेलकाभ्यां वा सधस्थं सहस्रानं योनिमभिषवस्थानमभ्यासदत् । अभ्यासोदति ॥

वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृचहंतमः । पर्षि राधो मघोनां ॥ ३ ॥

वरिवऽधातमः । भव । मंहिष्ठः । वृचहन्ऽतमः । पर्षि । राधः । मघोनां ॥ ३ ॥

हे सोम त्वं वरिवोधातमोऽतिशयेन धनानां दाता भव । वेदो वरिव इति धननामसु पाठात् । मंहिष्ठो दातुतमश्च भव । सर्वदातुत्वमचोच्यत इत्यपुनरुक्तिः । वृचहंतमोऽतिशयेन शत्रूणां हंता भव । किंच मघोनां धनवतां शत्रूणां राधो धनं च पर्षि । अस्मभ्यं प्रयच्छ ॥

अभ्यर्षे महानां देवानां वीतिमंधसा । अभि वाजमुत श्रवः ॥ ४ ॥

अभि । अर्षे । महानां । देवानां । वीतिं । अंधसा । अभि । वाजं । उत । श्रवः ॥ ४ ॥

हे सोम त्वं महानां महतां देवानां वीतिं यज्ञमंधसा धानाद्यज्ञेन सहाभ्यर्षे । अभिगच्छ । उतापि चाभिगच्छस्त्वं वाजं वसं अयोऽन्नं चाभिगमयास्मानित्यर्थः ॥

त्वामच्छा चरामसि तदिदं दिवेदिवे । इंद्रो त्वे न आशसः ॥ ५ ॥

त्वां । अच्छ । चरामसि । तत् । इत् । अर्थे । दिवेऽदिवे । इंद्रो इति । त्वे इति । नः ।

आऽशसः ॥ ५ ॥

हे इंद्रो यागेषु क्रियमान सोम त्वामच्छ त्वां प्रति चरामसि । वयं चरामः । दिवेदिवे प्रतिदिनमस्माकं



तद्विन्देव तत्परिचरन्मेवार्थं कार्यं नान्यत्कार्यमस्ति । नोऽस्माकमाश्रय आश्रयनान्यपि स्वे स्वस्वमेव नान्यथ ॥ १६ ॥

पुनाति ते परिभुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥ ६ ॥

पुनाति । ते । परिभुतं । सोमं । सूर्यस्य । दुहिता । वारेण । शश्वता । तना ॥ ६ ॥

हे सोम ते तव परिभुतं चरंतं सोमं सोमरसं सूर्यस्य दुहिता अद्या देवी वारेण बालेन शश्वता शश्वतेन तना विभुतेन पुनाति । तथा च वाजसनेयिन आमनंति । अद्या वै सूर्यस्य दुहिता अद्या ह्येनं पुनातीति ॥

तमीमखीः समर्ये आ गृभ्णन्ति योषणो दश । स्वसारः पार्ये दिवि ॥ ७ ॥

तं । ई । अखीः । समर्ये । आ । गृभ्णन्ति । योषणः । दश । स्वसारः । पार्ये । दिवि ॥ ७ ॥

समर्ये समनुषे यज्ञे पार्ये दिवि सौत्वेऽहनि योषणः स्त्रियः स्वसारः स्वयं सरत्वी दशसंख्याका अखी-  
रख्योऽंगुलयः । अयुवोऽण्य इत्थंगुलिनामसु पाठात् । तमीं तमेतं सोममा गृभ्णन्ति । आगृह्णन्ति ॥

तमीं हिन्वत्ययुवो धमन्ति बाकुरं दृतिं । चिधातुं वारुणं मधु ॥ ८ ॥

तं । ई । हिन्वन्ति । अयुवः । धमन्ति । बाकुरं । दृतिं । चिधातुं । वारुणं । मधु ॥ ८ ॥

तमीमेनं सोममयुवोऽंगुलयो हिन्वन्ति । अभिषवदेशं प्रति प्रेरयन्ति । प्रेरयित्वा च बाकुरं मासमानं दृतिं  
इतिसदृशांशुमेनं सोमं धमन्ति । अभिषुजन्ति । यद्यपि धमतिरभिषवकर्म न भवति तथाप्यभिषवत्तदभिष-  
वपरो भविष्यति । तदेतत्सोमात्मकं मधु यक्षु चिधातु चिह्नानं । द्रोणकस्य आधवनीयः पूतमुदिति  
चिधातवः । वारुणं शत्रूणां वारकं च भवति ॥

अभीममघ्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुं । सोममिन्द्राय पातवे ॥ ९ ॥

अभि । इमं । अघ्याः । उत । श्रीणन्ति । धेनवः । शिशुं । सोमं । इन्द्राय । पातवे ॥ ९ ॥

उतापि चेमेमेनं शिशुं बालं सोममघ्या अमृततया धेनवो गाव इन्द्राय पातवे पातुमभि श्रीणन्ति । स्वकीयेन  
ययसा संस्फुर्यतीत्यर्थः ॥

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृचाणि जिघ्रते । शूरो मघा च मंहते ॥ १० ॥

अस्य । इत् । इन्द्रः । मदेषु । आ । विश्वा । वृचाणि । जिघ्रते । शूरः । मघा । च । मंहते ॥ १० ॥

शूरो वीर इन्द्रोऽस्तेदस्य सोमस्यैव मदेषु विश्वा विश्वानि वृचाणि शत्रूणा जिघ्रते । आहन्ति । मघा  
मघानि धनानि च मंहते । यजमानेभ्यः प्रयच्छति ॥ १० ॥

पवस्वेति दशर्चं द्वितीयं सूक्तं काण्वस्य मेधातिथिरार्थं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं ।  
पवस्व मेधातिथिरिति ॥ उक्तो विनियोगः ॥

पवस्व देववीरति पविचं सोम रंहा । इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥ ११ ॥

पवस्व । देव । वीः । अति । पविचं । सोम । रंहा । इन्द्र । इन्दो इति । वृषा । आ । विश ॥ ११ ॥

हे सोम देववीर्देवकामस्त्वं रंहा वेमेन पविचं यथा भवति तथाति पवस्व । अतिचर । किंच हे इन्दो  
वृषा सेवकस्त्वमिन्द्रमा विश । प्रविश ॥

आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेदो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः ॥२॥  
 आ । वच्यस्व । महि । प्सरः । वृषा । इंदो इति । द्युम्नवत्तमः । आ । योनिं ।  
 धर्णसिः । सदः ॥२॥

हे इंदो सोम महि मृगान्मुषा कामानां वर्षको युक्त्वत्तमो यशस्वितमो धर्णसिर्धर्ता त्वं प्सरः पानीयमंध  
 आ वच्यस्व । अस्मान्वात्मागमय । योनिं स्वकीयं स्नानमा सदः । आसोद च ॥

अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ठ सुक्रतुः ॥३॥  
 अधुक्षत । प्रियं । मधु । धारा । सुतस्य । वेधसः । अपः । वसिष्ठ । सुक्रतुः ॥३॥

सुतस्याभिपुतस्य वेधसोऽभिलषितस्य विधातुर्यस्य सोमस्य धारा प्रियं प्रीतिकरं मध्वमुतमधुषत दुग्धि  
 स सुक्रतुः सुकर्मा सोमोऽपो वसतीवरीर्वसिष्ठ । आच्छादयति ॥

महांतं त्वा महीरन्वापो अर्षेति सिंधवः । यज्ञोभिर्वासयिष्यसे ॥४॥  
 महांतं । त्वा । महीः । अनु । आपः । अर्षेति । सिंधवः । यत् । गोभिः । वासयिष्यसे ॥४॥

हे सोम त्वं यद्यदा यज्ञे गोभिर्गोविकारिः पयोभिर्वासयिष्यसे आच्छादयिष्यसे तत्तदा महांतं त्वामनु  
 प्रति सिंधवः स्रंदमाना महीर्महत्वा आपोऽर्षेति । गच्छन्ति ॥

समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टंभो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥५॥  
 समुद्रः । अप्सु । मामृजे । विष्टंभः । धरुणः । दिवः । सोमः । पवित्रे । अस्मयुः ॥५॥

समुद्रः । समुद्रवत्पञ्चाद्रसा इति समुद्रः । विष्टंभो दिवः स्वर्गस्य धरुणो धारकश्चाक्षयुरस्यत्कामः सोमो  
 ऽप्सुदक्षेषु ममृजे । मृज्यते । पवित्रेऽभिषिष्यत इत्यर्थः ॥ ॥१८॥

अचिक्रद्वृषा हरिर्महान्मिचो न दर्शतः । सं सूर्येण रोचते ॥६॥  
 अचिक्रदत् । वृषा । हरिः । महान् । मिचः । न । दर्शतः । सं । सूर्येण । रोचते ॥६॥

वृषा कामानां वर्षको हरिर्हरितवर्णो महान् सर्वोत्तमो मिचो न यथा संखा तद्वद्दर्शतो दर्शनीयो योऽयं  
 सोमोऽचिक्रदत् शब्दं करोति सोऽयं सोमः सूर्येण सह रोचते । दिवि प्रकाशते ॥

गिरस्त इंदु ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय जुभंसे ॥७॥  
 गिरः । ते । इंदो इति । ओजसा । मर्मृज्यन्ते । अपस्युवः । याभिः । मदाय । जुभंसे ॥७॥

हे इंदो ते तवीवसा वसेनापस्युवः कर्मेच्छासंबन्धिव्यस्ता गिरः सुतयो मर्मृज्यन्ते शोध्यन्ते याभिर्गोभिस्त्व  
 मदाय चरन्जुभंसे अक्षयिष्यसे ॥

तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तयो महीः ॥८॥  
 तं । त्वा । मदाय । घृष्वये । उं इति । लोकऽकृत्नुं । ईमहे । तव । प्रशस्तयः । महीः ॥८॥

हे सोम यस्य तव प्रशस्तयः प्रशंसा महीर्महत्यो घृष्वय उ स्वप्नसादाच्छ्रूणां घर्षणशीलाय वनमानायेव  
 लोककृत्नुमुत्तमस्य लोकस्य कर्तारं तं त्वां सोमं मदायेमहे । ययं याचामहे ॥



अ॒स्मभ्य॑मि॒दं वि॒दु॒र्यु॒र्मध्वः॑ प॒वस्व॒ धार॑या । प॒र्जन्यो॑ वृ॒ष्टि॒माँ इ॒व ॥९॥

अ॒स्मभ्य॑ । इ॒दो इति॑ । इ॒दुऽयुः॑ । मध्वः । प॒वस्व॒ । धार॑या । प॒र्जन्यः॑ । वृ॒ष्टि॒मान्ऽइ॒व ॥९॥

हे इ॒दो सोम इ॒दं द्रु॒रि॒द्र॒काम॑स्त्वं म॒ध्वो म॒द॒कर॑स्मामृतस्य धारया पर्जन्यो वृष्टिमानिव यथा वर्षवान्पर्जन्यो मेघक्षणास्त्वं मेधातिथिभ्यः पवस्व । षष्ठः ॥

गो॒षा इ॒दो नृ॒षा अ॒स्यश्च॒सा वा॒ज॒सा उ॒त । आ॒त्मा य॒ज्ञस्य॑ पू॒र्यः ॥१०॥

गो॒ऽसाः । इ॒दो इति॑ । नृ॒ऽसाः । अ॒सि । अ॒श्च॒ऽसाः । वा॒ज॒ऽसाः । उ॒त । आ॒त्मा ।

य॒ज्ञस्य॑ । पू॒र्यः ॥१०॥

हे इ॒दो य॒ज्ञस्य॑ पू॒र्यः प्र॒त्न आ॒त्मात्म॑भूतस्त्वं गोषा अ॒स्यभ्य॑ गवां दातासि । भवसि । नृषाः पुषाणां दाता चासि । अ॒स्यसा॑ अ॒स्यणां॑ दाता चासि । उ॒तापि॑ च वा॒जसा॑ अ॒ज्ञानां॑ दाता चासि ॥ ॥१०॥

एष देव इति दशर्थं तृतीयं सूक्तमावीर्गतेः मुनःशेषस्त्वर्थं नायचं पवमानसोमदेवताकं । अनुज्ञातं च । एष मुनःशेष इति ॥ उत्तो विनियोगः ॥

ए॒ष दे॒वो अ॒मर्त्यः॑ प॒र्य॒वीरि॑व दी॒यति॑ । अ॒भि द्रो॒णा॒न्या॒सद॑ ॥१॥

ए॒षः । दे॒वः । अ॒मर्त्यः॑ । प॒र्य॒वीःऽइ॒व । दी॒य॒ति॒ । अ॒भि । द्रो॒णा॒नि । आ॒ऽस॒द॑ ॥१॥

दे॒वो यो॒त॒मा॒नोऽम॒र्त्यो म॒रण॑रहित एष सोमो द्रोणाणि द्रोणकक्षान्वन्धमिषक्षासदमासदनार्थं प॒र्य॒वीरि॑व यथा प॒वी तथा॑ वेगेन दी॒यति॑ । गच्छति ॥

ए॒ष दे॒वो वि॒पा कृ॒तोऽति॑ ह॒राँसि॑ धा॒वति॑ । प॒र्वमा॒नो अ॒दा॒भ्यः ॥२॥

ए॒षः । दे॒वः । वि॒पा । कृ॒तः । अ॒ति॑ । ह॒राँसि॑ । धा॒व॒ति॒ । प॒र्वमा॒नः । अ॒दा॒भ्यः ॥२॥

विपांगुष्ठा । अ॒द्ययौ॑ वि॒प इ॒त्थं गु॒णिना॑मसु पाठात् । कृतोऽभिषुत एष सोमो देवः पवमानः चरत्तदाभ्यः केनाप्यङ्घ्रिसितस्य सग ह॒राँसि॑ श्र॒भू॒नति॑ धा॒वति॑ । ह॒नुम॑निगच्छति ॥

ए॒ष दे॒वो वि॒प॒न्युभिः॑ प॒र्वमा॒न अ॒त॒ता॒युभिः॑ । ह॒रि॒र्वाजा॑य मृ॒ज्यते॑ ॥३॥

ए॒षः । दे॒वः । वि॒प॒न्युऽभिः॑ । प॒र्वमा॒नः । अ॒त॒ता॒युऽभिः॑ । ह॒रिः । वा॒जा॒य । मृ॒ज्य॒ते॒ ॥३॥

पवमानः चरत्तेष सोमो दे॒वो वि॒प॒न्युभिः॑ सो॒तुमि॒र्च॒तायु॒मि॒र्य॒ज्ञा॒मि॒रि॒रश्च॑ इ॒व वा॒वाय॑ संयामार्थं मृ॒ज्यते॑ । क्षु॒तिमि॒रलं॑क्रियते ॥

ए॒ष वि॒श्वानि॑ वा॒र्यो अ॒रू॒रो यन्नि॒व स॒त्त्वभिः॑ । प॒र्वमा॒नः सि॒षास॑ति ॥४॥

ए॒षः । वि॒श्वानि॑ । वा॒र्यो । अ॒रू॒रः । यन्ऽइ॒व । स॒त्त्वऽभिः॑ । प॒र्वमा॒नः । सि॒षा॒स॒ति॒ ॥४॥

पवमानः चरच्छूरो वीर एष सोमो दे॒वो वि॒श्वानि॑ सर्वाणि वा॒र्यो व॒रणी॑याणि ध॒नाणि॑ स॒त्त्वमि॒र्य॒ज्ञैर्य॒ज्ञि॒व गच्छ॑ति वि॒षास॑ति । अ॒साद॑र्थं सं॒गृह्ण॑मिच्छति ॥

ए॒ष दे॒वो र॒ष॒र्य॒ति॒ प॒र्वमा॒नो द॒शस्य॑ति । आ॒विष्कृ॑णोति व॒ग्व॒नुं ॥५॥

ए॒षः । दे॒वः । र॒ष॒र्य॒ति॒ । प॒र्वमा॒नः । द॒श॒स्य॒ति॒ । आ॒विः । कृ॒णो॒ति॒ । व॒ग्व॒नुं ॥५॥

पवमानः ऋत्नेष सोमो देवो रथयति । अस्मदीयं यागं प्रत्यागमनाय रथं कामयति । दशस्रति । आगत्य वासश्चममिक्षपितं प्रयच्छति । वज्रं शब्दमाविष्करोति । अभिषूयमाणः प्रकटयति ॥ २० ॥

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते । दधत्नानि दाशुषे ॥ ६ ॥

एषः । विप्रैः । अभिऽस्तुतः । अपः । देवः । वि । गाहते । दधत् । रत्नानि । दाशुषे ॥ ६ ॥

विप्रैर्मैधाविभिः क्षौत्रमिरभिष्टुतः परितः क्षुत एष सोमो देवो दाशुषे हविषां प्रदात्रे यजमानाय रत्नानि रमणीयानि धनानि दधन्वारयन्प्रयच्छन्पो वसतोवरीर्वि गाहते । प्रविशति ॥

एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

एषः । दिवं । वि । धावति । तिरः । रजांसि । धारया । पवमानः । कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

धारया पवमानः ऋत्नेष सोमः कनिक्रददभिषूयमाणः शब्दं कुर्वन्नजांसि लोकांस्तिरस्तिरस्तुर्वन्यागाद्विषं स्वर्गं वि धावति । गच्छति ॥

एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः । पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥

एषः । दिवं । वि । व्या । अस्रत् । तिरः । रजांसि । अस्पृतः । पवमानः । सुऽअध्वरः ॥ ८ ॥

पवमानः ऋत्नेष सोमः स्वध्वरः सुयज्ञोऽसृतः केनाप्यहिंसितश्च सन्नजांसि लोकांस्तिरस्तिरस्तुर्वन्यागाद्विषं प्रति व्यासरत् । विसरति । गच्छति ॥

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥

एषः । प्रत्नेन । जन्मना । देवः । देवेभ्यः । सुतः । हरिः । पवित्रे । अर्षति ॥ ९ ॥

हरिर्हरितवर्णो देवो बोतमान एष सोमः प्रत्नेन पुराणेन जन्मना जननेन देवेभ्यो देवार्थं सुतोऽभिषुतः सन् पवित्रे स्थातुमर्षति । गच्छति ॥

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ॥ १० ॥

एषः । उ । इति । स्यः । पुरुऽव्रतः । जज्ञानः । जनयन् । निषः । धारया । पवते । सुतः ॥ १० ॥

स एष उ सोम एव पुरुव्रतो ब्रह्मकर्मा ब्रह्मज्ञानो जायमान एवेषोऽन्नानि जनयन्नुत्पादयन् सुतोऽभिषुतः सन् धारया पवते । ऋति ॥ २१ ॥

सना चेति दशर्चं चतुर्थं सूक्तमांगिरसकुलस्य हिरण्यसूपस्वार्यं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । अनुक्रांतं च । सन् हिरण्यसूप इति ॥ उक्तो विनियोगः ॥

सना च सोम जेषि च पवमान महि अरवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥

सन । च । सोम । जेषि । च । पवमान । महि । अरवः । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥ १ ॥

हे महि त्वो महदन्न पवमान सोम सन् । अस्मभ्यो यजनीयान्देवान्भज । जेषि च । यागविध्वंसकारिणो राक्षसांश्च जय । अथ देवान्नाथ राक्षसांश्च जित्वानन्तरं मोऽस्मान्वस्वसः श्रेयसः कृधि । कुरु । श्रेयोऽस्मभ्यं देहीत्यर्थः ॥

सना ज्योतिः सना स्वर्गविश्वं च सोम सौभगा । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥

सन । ज्योतिः । सन । स्वः । विश्वं । च । सोम । सौभगा । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥ २ ॥



हे सोम त्वं ज्योतिषोऽस्य सन । अस्मभ्यं प्रयच्छ । अपि च स्वः स्वर्गं सन । अस्मभ्यं देहि । विद्या विद्यानि  
सौमगा सौमाभ्यानि च सव । सिद्धमन्यत् ॥

सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥३॥

सनं । दक्षं । उत । क्रतुं । अप । सोम । मृधः । जहि । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥३॥

हे सोम त्वं दक्षं वत्सं सन । अस्मभ्यं देहि । उतापि च क्रतुं प्रदानं सन । मृधो हिंसकाश्चानूद्याप जहि ।  
मारय । सिद्धमन्यत् ॥

पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥४॥

पवीतारः । पुनीतनं । सोमं । इन्द्राय । पातवे । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥४॥

हे पवीतारः सोमाभिषवकर्तारः धूममिन्द्राय पातवे पातुं सोमं पुनीतन । अभिपुशुत । सिद्धमन्यत् ॥

त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥५॥

त्वं । सूर्ये । नः । आ । भज । तव । क्रत्वा । तव । ऊतिभिः । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥५॥

हे सोम त्वं तव क्रत्वा तवोतिभिस्त्वत्कर्तृकेण कर्मणा त्वत्कर्तृकामी रचामिच्च नोऽस्मान् सूर्य आ भज ।  
प्रापय । सिद्धमन्यत् ॥ ॥२२॥

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्ये । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६॥

तव । क्रत्वा । तव । ऊतिभिः । ज्योक् । पश्येम । सूर्ये । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥६॥

हे सोम तव क्रत्वा प्रज्ञानेन तवोतिमी रचामिच्च ज्योक् चिरं पश्येम सूर्ये । पश्याम । द्रक्ष्यामः ।  
सिद्धमन्यत् ॥

अभ्यर्ष स्वायुध सोमं द्विबर्हसं रयिं । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७॥

अभि । अर्ष । सुऽआयुध । सोमं । द्विऽबर्हसं । रयिं । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥७॥

हे स्वायुध शोभनायुध सोम त्वं द्विबर्हसं द्वयोर्बावापृथिव्योः स्नानयोः परिवृढं रयिं धनमभ्यर्ष । अस्मा-  
नभिगमय । सिद्धमन्यत् ॥

अभ्यर्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८॥

अभि । अर्ष । अनपऽच्युतः । रयिं । समत्सु । सासहिः । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥८॥

हे सोम समत्सु संयामेष्वनपच्युतः शत्रुभिरनाहतः सासहिः शत्रूणामभिभविता त्वं रयिं धनमभ्यर्ष ।  
अस्मानभिगमय । सिद्धमन्यत् ॥

त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥९॥

त्वां । यज्ञैः । अवीवृधन् । पवमान । विधर्मणि । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥९॥

हे पवमान सोम यजमानानां विधारणाय प्रवृत्तं त्वां यज्ञैर्विधर्मणात्तविधारणार्थमवीवृधन् । यजमाना  
वर्धयन्ति । सिद्धमन्यत् ॥

रयिं नश्चिचमश्चिन्मिंदो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्तृधि ॥१०॥

रयिं । नः । चिचं । अश्चिन् । इंदो इति । विश्वऽआयुं । आ । भर । अथ । नः ।

वस्यसः । तृधि ॥१०॥

हे इंदो यागेषु स्त्रियमाण सोम त्वं चिचं नामाविधमश्चिन्मन्त्रवतं च विश्वायुं सर्वगामिनं रयिं नोऽस्य-  
भ्यमा भर । आहर । सिद्धमन्यत् ॥ ॥२३॥

समिद्ध इति कादशर्षं पंचमं सूक्तं काश्यपस्यासितस्य देवस्य वार्षं । अष्टम्यावाच्यतसोऽनुष्टुभः शिष्टाः सप्त  
गायत्र्यः । नराशंसवर्जिताः समिद्धादयः क्रमेण प्रत्युचं देवताः । तथा चानुक्रांतं । समिद्ध एकादश काश्यपो  
ऽसितो देवसो वा विंशतिः सूक्तान्याद्यमाप्रियस्तुरनुष्टुभंतमिति ॥ काश्यपस्य पावमानमिदमाप्रीसूक्तं । सूचितं  
च । समिद्धो अवेति सर्वेषां यथर्षि वा । आ० ३. २. इति ॥

समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो वि राजति । प्रीणन्वृषा कनिक्रदत् ॥१॥

संऽइद्धः । विश्वतः । पतिः । पवमानः । वि । राजति । प्रीणन् । वृषा । कनिक्रदत् ॥१॥

आप्रीवत्सोमस्तुरितरच । समिद्धः सत्यदीप्तो विश्वतस्पतिः सर्वतः स्वामी वृषा कामानां वर्धिता पवमानः  
सोमः कनिक्रददभिषूयमाणः शब्दं कुर्वन्प्रीणन्देवान्प्रीणयन्वि राजति । यागेषु प्रकाशते ॥

तनूनपात्पवमानः ऋगे शिशानो अर्षेति । अंतरिक्षेण रारजत् ॥२॥

तनूऽऽनपात् । पवमानः । ऋगे इति । शिशानः । अर्षेति । अंतरिक्षेण । रारजत् ॥२॥

तनूनपात्पवमानः सोमः । तनूनपादच सोमो भवति । तथा च श्रूयते । अज्ञोऽंशो जायते ततः सोमो  
जायत इति । ऋगे दीप्ति उत्तमप्रदेशे । इषिः शृंगाणीति ज्वलन्नामसु पाठात् । शिशानस्तीक्ष्णोऽर्षव्रतंरिचेष  
रारजदर्थति । द्रोणकलशं प्रति गच्छति । तथा चाम्नायते । दाभ्यां धाराभ्यामाश्रयणं गृह्णातीति ॥

इंकेन्यः पवमानो रयिर्वि राजति द्युमान् । मधोर्धाराभिरोजसा ॥३॥

इंकेन्यः । पवमानः । रयिः । वि । राजति । द्युऽमान् । मधोः । धाराभिः । ओजसा ॥३॥

इंकेन्यः सुतः पवमानः सोमो रयिरमोष्ठस्य दाता द्युमान्दीप्तिमांश्च सन्मधोर्धराभ्यं धाराभिः सह  
चरन्मोजसा बलेन वि राजति । प्रकाशते ॥

बर्हिः प्राचीन्मोजसा पवमानः स्तृणन्हरिः । देवेषु देव ईयते ॥४॥

बर्हिः । प्राचीन् । ओजसा । पवमानः । स्तृणन् । हरिः । देवेषु । देवः । ईयते ॥४॥

हरिर्हरितवर्णो देवो योतमानः सोमः पवमानो देवेषु यज्ञेषु बर्हिः प्राचीन् प्राचीनायं स्तृणन्कारय-  
न्मोजसा बलेनयते । गच्छति ॥

उदातैर्जिहते बृहद्धारो देवीर्हिरण्ययीः । पवमानेन सुष्टुताः ॥५॥

उत् । आतैः । जिहते । बृहत् । द्वारः । देवीः । हिरण्ययीः । पवमानेन । सुऽस्तुताः ॥५॥

हिरण्ययोर्हिरण्ययो द्वारो देवीर्द्वारो देवः पवमानेन सोमेन सह सुष्टुताः सोमनिः सम्यक् सुताः  
सत्त्वो बृहद्बृहतीभ्यो महतीभ्य आतीराताभ्यो दिग्भ्यः । आता आशा इति दिक्कामसु पाठात् । उज्जिहते ।  
उज्जिहति ॥ ॥२४॥



सुशिल्पे बृहती मही पर्वमानो वृषण्यति । नक्तोषासा न दर्शते ॥६॥  
 सुशिल्पे इति सुऽशिल्पे । बृहती इति । मही इति । पर्वमानः । वृषण्यति । नक्तोषसा ।  
 न । दर्शते इति ॥६॥

सुशिल्पे मुख्ये बृहती परिवृढे मही महती न संप्रति दर्शते दर्शनीये नक्तोषासा नक्तोषासौ पर्वमानः  
 सोमो वृषण्यति । कामयते ॥

उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे । पर्वमान इन्द्रो वृषा ॥७॥  
 उभा । देवा । नृऽचक्षसा । होतारा । दैव्या । हुवे । पर्वमानः । इन्द्रः । वृषा ॥७॥

नृचक्षसा मनुष्याणां द्रष्टारौ दैव्या दैव्यौ देवसंबन्धिनी होतारा होतारानुमौ देवा देवी ऊवे ।  
 आह्वयामि यज्ञे । पर्वमानः सोम इन्द्रो दीप्तः । तथा च थास्त्रः । इन्द्र इरां वृणातीति वेरां दारयत इति  
 वेरां धारयतीति वेधे भूतानीति वा तथ्यदेवं प्राणिः समैधत तदिन्द्रस्त्रिंश्रस्त्रमिति विज्ञायते । नि० १०. ८. ।  
 इति । वृषा कामानां वर्षिता च भवतीति ॥

भारती पर्वमानस्य सरस्वतीका मही ।  
 इमं नो यज्ञमा गमन्तिसो देवीः सुपेशमः ॥८॥  
 भारती । पर्वमानस्य । सरस्वती । इका । मही ।  
 इमं । नः । यज्ञं । आ । गमन् । तिस्रः । देवीः । सुऽपेशसः ॥८॥

भारती भारत्याख्या सरस्वती सरस्वत्याख्या च मही महतीकाख्या च तिस्रः सुपेशसः मुख्ये देवीर्देवी  
 नोऽस्माकं पर्वमानस्य सोमस्य संबन्धिनमिमं यज्ञं प्रत्या गमन् । आगच्छन्तु ॥

त्वष्टारमयजां गोपां पुरोयावानमा हुवे ।  
 इन्द्रिन्द्रो वृषा हरिः पर्वमानः प्रजापतिः ॥९॥  
 त्वष्टारं । अयऽजां । गोपां । पुरऽयावानं । आ । हुवे ।  
 इन्द्रः । इन्द्रः । वृषा । हरिः । पर्वमानः । प्रजाऽपतिः ॥९॥

अयवामये जातं गोपां प्रजानां पालयितारं पुरोयावानं देवानां पुरस्त्राङ्गतारं त्वष्टारं देवमा ऊवे ।  
 आह्वयामि यज्ञे । हरिर्हरितवर्णः पर्वमान इन्द्रः सोम इन्द्रो देवानामाश्वरो वृषा कामानां वर्षिता च  
 प्रजापतिः प्रजानां पालयिता च भवतीति ॥

वनस्पतिं पर्वमान मध्वा समङ्गि धारया ।  
 सहस्रवल्शं हरितं भाजमानं हिरण्ययं ॥१०॥  
 वनस्पतिं । पर्वमान । मध्वा । सं । अङ्गि । धारया ।  
 सहस्रऽवल्शं । हरितं । भाजमानं । हिरण्ययं ॥१०॥

हे पर्वमान सोम हरितं हरितवर्णं हिरण्ययं कदाचिद्विरण्यमथवर्णं च भाजमानं दीप्यमानं सहस्रवल्शं  
 सहस्रवल्शं वनस्पतिं देवं धारया धारामयेण मध्वा मधुना समङ्गि । त्रंस्त । संस्तुर्वित्यर्थः ॥

विश्वे देवाः स्वाहाकृतिं पवमानस्या गत ।

वायुर्बृहस्पतिः सूर्योऽग्निरिंद्रः सजोषसः ॥११॥

विश्वे । देवाः । स्वाहाऽकृतिं । पवमानस्य । आ । गत ।

वायुः । बृहस्पतिः । सूर्यः । अग्निः । इंद्रः । सऽजोषसः ॥११॥

हे विश्वे देवाः वायुर्बृहस्पतिश्च सूर्यश्चाग्निरिंद्रश्च सर्वे ध्रुवं सजोषसः संगताः संतः पवमानस्य सोमस्य स्वाहाकृतिं स्वाहाकारं प्रत्या गत । प्रत्यागच्छत ॥ ॥२५॥

मंद्रयेति नवर्चं षष्ठं सूक्तं काश्रपस्त्रासितस्य देवस्य वर्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं ॥

मंद्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अय्यो वारिष्वस्मयुः ॥१॥

मंद्रया । सोम । धारया । वृषा । पवस्व । देवऽयुः । अय्यः । वारिषु । अस्मऽयुः ॥१॥

हे सोम वृषा कामानां वर्षिता देवयुर्देवकामोऽस्युरसत्कामश्चाय्योऽवेर्वरिषु बालिषु दशापवित्रे मंद्रया मदकरया धारया पवस्व । चर ॥

अभि त्वं मद्यं मदमिंद्रविंद्र इति क्षर । अभि वाजिनो अर्वतः ॥२॥

अभि । त्वं । मद्यं । मदं । इंदो इति । इंद्रः । इति । क्षर । अभि । वाजिनः । अर्वतः ॥२॥

हे इंदो सोम त्वमिंद्र ईश्वर इति कृत्वा त्वं तं मद्यं मदकरं मदं रसमभि चर । वर्ष । वाजिनो वसवतो ऽर्वतोऽश्वाश्चासदर्थमभि चरेत्तर्षः ॥

अभि त्वं पूर्यं मदं सुवानो अर्व पवित्र आ । अभि वाजमुत अर्वः ॥३॥

अभि । त्वं । पूर्यं । मदं । सुवानः । अर्व । पवित्रे । आ । अभि । वाजं । उत । अर्वः ॥३॥

हे सोम सुवानोऽभिषूयमाणस्त्वं पूर्यं प्रतं त्वं तं प्रसिद्धं मदं मदकरं रसं पवित्र आ समंतादभ्यर्थ । अभिगमय । वाजं वसमश्चानभ्यर्थ । उतापि च अर्वोऽन्नमभ्यर्थ ॥

अनु द्रप्सास इंदव आपो न प्रवतासरन् । पुनाना इंद्रमाशत ॥४॥

अनु । द्रप्सासः । इंदवः । आपः । न । प्रऽवता । असरन् । पुनानाः । इंद्रं । आशत ॥४॥

द्रप्सासो द्रुतगतयः पुनानाः चरंत इंदवः सोमाः प्रवता प्रवणेन मार्गेणापो नाप इवेन्द्रमन्वसरन् । अनुगच्छति । आशत । आमुवंति च ॥

यमत्यमिव वाजिनं मृजंति योषणो दश । वने क्रीकृतमत्यंवि ॥५॥

यं । अत्यंऽइव । वाजिनं । मृजंति । योषणः । दश । वने । क्रीकृतं । अतिऽअविं ॥५॥

अत्यंविं दशापवित्रमतिक्रम्य वनेऽरक्षे क्रीकृतं वर्तमानं च सोमं दश दशसंख्याका योषणः स्त्रियः । अनुगमय हत्यर्थः । तथा च निगमांतरं । तमोमल्लीः समर्थ आ गृभ्णंति योषणो दश । ऋ० ९. १. ७. इति । वाजिनं वस्त्रिमत्यमिवाशमिव मृजंति परिचरंति । उत्तरया सहान्वयः ॥ ॥२६॥

तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये । सुतं भराय सं सृज ॥६॥

तं । गोभिः । वृषणं । रसं । मदाय । देवऽवीतये । सुतं । भराय । सं । सृज ॥६॥



वृषणं कामाणां वर्षितारं देवकीतये देवानां पानाय मदाय सुतमभिषुतं तं रथं मराय संयामाय गोभिः  
पयोभिः सं हज । संयोजय ॥

देवो देवाय धारयेद्राय पवते सुतः । पयो यदस्य पीपयत् ॥७॥

देवः । देवाय । धारया । इंद्राय । पवते । सुतः । पयः । यत् । अस्य । पीपयत् ॥७॥

देवाय षोतमाणयेद्राय सुतोऽभिषुतो देवो षोतमानः सोमो धारया पवते । चरति । यद्यस्मादस्य  
सोमस्य पयः पीपयत् इंद्रमाप्यायितवत् । तस्माद्धारया पवत इत्यर्थः ॥

आत्मा यज्ञस्य रंक्षा सुष्वाणः पवते सुतः । प्रत्नं नि पाति काव्यं ॥८॥

आत्मा । यज्ञस्य । रंक्षा । सुस्वानः । पवते । सुतः । प्रत्नं । नि । पाति । काव्यं ॥८॥

यद्यस्मात्मात्मभूतः सुतोऽभिषुतः सोमः सुष्वाणो यजमानेभ्यः कामान्नेरयन् रंक्षा येन पवते । चरति ।  
प्रत्नं पुरातनं काव्यमात्मनः कवित्वं च नि पाति । अभिरचति ॥

एवा पुनान इंद्रयुर्मदं मदिष्ट वीतये । गुहां चिदधिषे गिरः ॥९॥

एव । पुनानः । इंद्रयुः । मदं । मदिष्ट । वीतये । गुहां । चित् । दधिषे । गिरः ॥९॥

हे मदिष्टातिशयेन मदकर सोम इंद्रयुरिंद्रकामस्त्वं वीतय इंद्रस्य पानार्थैवेवं मदं पुनानः चरन्गुहा  
गुहायां । यज्ञशालायामित्यर्थः । गिरश्चिच्छब्दानपि दधिषे । अभिषवैलायामुपरवेषु धारयसि । करो-  
षीत्यर्थः ॥ ॥२७॥

अष्टयमिति जवर्चं सप्तमं सूक्तं । अष्टयमित्यनुक्रांतं । असितो देवलो वर्षिः । त्री च कल्पपगोचरी । गायत्रं  
छंदः । सोमः पयमाणो देवता ॥ उक्तो विनियोगः ॥

असृयमिंदवः पथा धर्मेनृतस्य सुश्रियः । विद्वाना अस्य योजनं ॥१॥

असृयं । इंदवः । पथा । धर्मेन् । नृतस्य । सुश्रियः । विद्वानाः । अस्य । योजनं ॥१॥

सुश्रियः शोभनश्रयणा अस्मिंद्रस्य योजनं संबंधं विद्वाना जानंत इंद्रयः सोमा धर्मेन् कर्मयुतस्य यज्ञस्य  
पथा मार्गेणाश्रयं । श्रयति ॥

प्र धारा मध्वो अग्नियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविष्णु वंद्यः ॥२॥

प्र । धारा । मध्वः । अग्नियः । महीः । अपः । वि । गाहते । हविः । हविष्णु । वंद्यः ॥२॥

हविष्णु हविषां मध्ये वंद्यः सुखो हविर्हविरात्मको यः सोमो महीर्महीरपो वसतीवरीर्वि गाहते तस्य  
मध्वः सोमस्याग्नियो मुख्या धाराः प्र पतंतीत्यर्थः ॥

प्र युजो वाचो अग्नियो वृषाव चक्रद्वने । सद्भाभि सत्यो अश्वरः ॥३॥

प्र । युजः । वाचः । अग्नियः । वृषा । अश्व । चक्रदत् । वने । सद्भा । अभि । सत्यः । अश्वरः ॥३॥

एतदेव दर्शयति । वृषा कामाणां वर्षकः सत्यः सत्यभूतोऽश्वरो हिंसावर्जितोऽग्नियो मुख्याः सोमः सद्भा  
यज्ञगृहमभि प्रति वन उदके युजो युक्ता वाचः प्राव चक्रदत् । अश्वकंदति । शब्दाग्न्यरोतीत्यर्थः ॥

परि यत्काव्या कविर्नृम्णा वसानो अर्षेति । स्वर्वाजी सिंघासति ॥४॥

परि । यत् । काव्या । कविः । नृम्णा । वसानः । अर्षेति । स्वः । वाजी । सिंघासति ॥४॥

कविः क्रांतकर्मा सोमो जृम्णा जृम्णानि धनानि वसान आच्छादयन्तोतुणां काव्या काव्यानि कविष-  
मोऽपि सोचाणि यद्यदा पर्यर्षति परिगच्छति तदा स्वः स्वर्गे वापी वलवान्नवान्विद्रः सिषासति । घातं  
प्रत्यागतुं स्वकीयं वचं संभक्तुमिच्छति ॥

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजैव सीदति । यदीमृष्वन्ति वेधसः ॥५॥

पवमानः । अभि । स्पृधः । विशः । राजाऽइव । सीदति । यत् । ई । मृष्वन्ति । वेधसः ॥५॥

यद्यदेमेन सोमं वेधसः कर्मणां कर्तार पृथ्वन्ति प्रेरयन्ति तदा पवमानः चरन्नेव सोमः स्पृधः स्पर्धमाना-  
न्यामविघ्नकारिणो राक्षसान्विशः स्पर्धमानाः मुष्णान् राजैव यथा राजा तद्वदभि वीदति । नाशयितुमभि-  
गच्छति ॥ ॥२८॥

अथ्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥६॥

अथ्यः । वारे । परि । प्रियः । हरिः । वनेषु । सीदति । रेभः । वनुष्यते । मती ॥६॥

हरिर्हरितवर्णः प्रियो देवानां प्रियतम एव सोमो वनेषूदकेषु संपृक्तोऽथ्योऽवेर्वरे वाचोपेति परि वीदति ।  
किंच रेभोऽभिववेलायामुपरवेषु शब्दं कुर्वन्ती मत्या सुत्या वनुष्यते । खेचते ॥

स वायुमिंद्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मेभिः ॥७॥

सः । वायुं । इंद्रं । अश्विना । साकं । मदेन । गच्छति । रणा । यः । अस्य । धर्मेऽभिः ॥७॥

यो यजमानोऽस्य सोमस्य धर्मेभिः कर्मभिः क्रयणाभिववादिभ्यो रण रमते स यजमानो वायुमिंद्रं  
वाश्विनाश्विना च मदेन साकं सह गच्छति । प्राप्नोति ॥

आ मिचावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः । विद्वाना अस्य शक्त्रभिः ॥८॥

आ । मिचावरुणा । भगं । मध्वः । पवन्ते । ऊर्मयः । विद्वानाः । अस्य । शक्त्राऽभिः ॥८॥

येषां यजमानानां मध्वः सोमस्योर्मयस्वरुणा मिचावरुणा देवी भगं भगास्त्वं देवं च प्रति  
पवन्ते चरन्ति ते यजमाना अस्य सोमस्येवं सोमं विद्वाना जानन्तः शक्त्रभिः सुखैः संगच्छन्त इति शेषः ॥

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । अवो वसूनि सं जितं ॥९॥

अस्मभ्यं । रोदसी इति । रयिं । मध्वः । वाजस्य । सातये । अवः । वसूनि । सं । जितं ॥९॥

हे रोदसी आवापृथिव्यौ युवां मध्वो देवानां मोदयितुर्वाजस्य सोमात्मकस्यात्रस्य सातये आमायाश्चम्वं  
काक्षपासितेभ्यः काक्षपदेवसेभ्यो वा रयिं धनं अवोऽन्नं च वसूनि वासकान्यन्यान्पि पश्वादीनि धनानि सं  
जितं । संजयतं । प्रयच्छतमित्यर्थः ॥ ॥२९॥

एते सोमा इति नवर्वमष्टमं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । अनुक्रांतं च । एते सोमा इति ॥ उक्तः सूक्तविनि-  
योगः ॥ यावत्सोवे गाणगारिमतेनाभिरूपकरणे सोमे मृष्यमाने मृजन्ति त्वेतिषा । सूचितं च । अथापरमभिरूपं  
कुर्यादिति गाणगारिरा ध्यायस्व समेतु त इति तिथौ मृजन्ति सा दश विधः । आ० ५. १२. इति ॥

एते सोमा अभि प्रियमिंद्रस्य काममक्षरन् । वर्धतो अस्य वीर्यं ॥१॥

एते । सोमाः । अभि । प्रियं । इंद्रस्य । कामं । अक्षरन् । वर्धतः । अस्य । वीर्यं ॥१॥



एतं अभिषुता इमे सोमा अक्षेद्रस्य वीर्यं शक्तिं वर्धन्ते वर्धयन्त इन्द्रस्य कामं काम्यं प्रियं प्रीतिवर्  
रसमभ्यचरन् । अभिषवन्ते । अभ्यवर्धन् ॥

पुना॒नासं॑श्चमूषदो गच्छ॑न्तो वा॒युम॒ग्निना॑ । ते नो॑ धांतु सुवीर्ये ॥२॥

पुना॒नासः॑ । च॒मूऽसदः॑ । गच्छ॑न्तः । वा॒युं । अ॒ग्निना॑ । ते । नः॑ । धांतु । सु॒वीर्ये ॥२॥

ते अस्मिन्नाः सोमाः पुनानासः पुनाना अभिषूयमाणाश्चमूषदश्चमसेषु वीर्यं वायुमग्निनाग्निना च  
गच्छन्तः प्राप्तुवन्तो नोऽस्माभ्यं सुवीर्यं शोभनवीर्यं धांतु । धारयन्तु । प्रयच्छन्तित्यर्थः ॥

इन्द्र॑स्य सोम॒ राध॑से पुना॒नो हा॒दि चो॒दय॑ । ऋ॒तस्य॑ योनि॒मास॑दं ॥३॥

इन्द्र॑स्य । सोम॒ । राध॑से । पुना॒नः । हा॒दि । चो॒दय॑ । ऋ॒तस्य॑ । योनि॑ । आ॒ऽसदं॑ ॥३॥

हे सोम पुनानोऽभिषूयमाणा हार्यमित्तवितस्वमिन्द्रस्य राधसे संराधनायतस्व यज्ञस्य योनिं ज्ञानमासदं  
अथेन्द्र आसीदति तथेन्द्र चोदय । प्रेरय ॥

मृ॒जन्ति॑ त्वा दश॒ क्षिपो॑ हि॒न्वन्ति॑ स॒प्त धी॒तयः॑ । अनु॒ विप्रा॑ अ॒मादि॑षुः ॥४॥

मृ॒जन्ति॑ । त्वा । दश॒ । क्षिपः॑ । हि॒न्वन्ति॑ । स॒प्त । धी॒तयः॑ । अनु॑ । विप्राः । अ॒मादि॑षुः ॥४॥

हे सोम त्वा त्वां दश दशसंख्याकाः क्षिपोऽगुलयः । त्रिशः क्षिप इत्यंगुलिनामसु पाठान् । मृजन्ति ।  
परिचरन्ति । सप्त सप्तसंख्याका धीतयो होचकाश्च त्वा त्वां हिन्वन्ति । स्वसंख्यापरिः प्रीणयन्ति । विप्रा मेधा-  
विनश्च त्वामन्वमादिषुः । अनुमादयन्ति ॥

दे॒वेभ्य॑स्त्वा म॒दाय॑ कं सृ॒जान॑म॒ति मे॒ष्यः॑ । सं गोभि॑र्वासयामसि ॥५॥

दे॒वेभ्यः॑ । त्वा । म॒दाय॑ । कं । सृ॒जानं॑ । अ॒ति । मे॒ष्यः॑ । सं । गोभिः॑ । वा॒सया॑मसि ॥५॥

हे सोम मेष्मोऽधिलोमानि कमुदकं चात्वमि क्वानं त्वा त्वां देवेभ्यो देवाणां ॥ विनक्तिव्यालयः ॥ मदाय  
मदार्थं गोभिर्गोविकारैः पयोभिः सं वासयामसि । संवासयामः ॥ ॥३०॥

पुना॒नः क॒लशे॑ष्वा वस्त्रा॒ण्यरु॑षो ह॒रिः । परि॒ गव्या॑न्यव्यत ॥६॥

पुना॒नः । क॒लशे॑षु । आ । वस्त्रा॒णि । अ॒रुषः॑ । ह॒रिः । परि॑ । गव्या॑नि । अ॒व्यत॑ ॥६॥

पुनानः पूयमानः कलशेषु कुंभेषु निविध्यमानोऽक्ष आरोचमानो हरिर्हरितवर्णः सोमो वस्त्रानि दृष्ट्वा  
दीनि वस्त्राणि वासांसीव पर्यव्यत । पर्याच्छादयति ॥

म॒घोन॑ आ प॒वस्व॑ नो ज॒हि वि॒श्व आ॒प॒ द्विषः॑ । इ॒दो स॒खाय॑मा वि॒श ॥७॥

म॒घोनः॑ । आ । प॒वस्व॑ । नः॑ । ज॒हि । वि॒श्वः । अ॒प॒ । द्विषः॑ । इ॒दो इति॑ । स॒खायं॑ ।

आ । वि॒श ॥७॥

हे इंदो सोम मघोनो धनवतो नोऽस्मात्प्रति पवस्व । अर । विश्व विश्वान्द्विषो द्वेष्टुमप वहि । मारय  
च । सखायं प्रियमिन्द्रमा विश । आमुहि च ॥

वृ॒ष्टिं दि॒वः परि॑ स्र॒व द्यु॒षं पृ॒थि॒व्या अ॒धि । सहो॑ नः सोम पृ॒त्सु धाः॑ ॥८॥

वृ॒ष्टिं । दि॒वः । परि॑ । स्र॒व । द्यु॒षं । पृ॒थि॒व्याः । अ॒धि । सहो॑ । नः॑ । सोम॑ । पृ॒त्सु । धाः॑ ॥८॥

हे सोम त्वं दिवो शुक्लोकावुष्टिं वर्षं परि स्रव । वर्षं । पुंथेया अधि पुथिष्यां । अधिः सप्तन्यर्थानुवादः ।  
शुक्लमन्नं चोत्पादयेति शेषः । नोऽस्माकं सहो बलं च पुत्सु संग्रामेषु धाः । धेहि ॥

नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदं । भक्षीमहि प्रजामिषं ॥९॥

नृऽचक्षसं । त्वा । वयं । इन्द्रऽपीतं । स्वऽविदं । भक्षीमहि । प्रऽजां । इषं ॥९॥

हे सोम नृचक्षसं शुणां द्रष्टारं स्वर्विदं सर्वन्नमिन्द्रपीतमिन्द्रेण पीतं त्वा त्वां पिबंतो वयं काश्चपासिताः  
काश्चपदेवता वा प्रजां पुत्रादिकामिषमन्नं च भक्षीमहि । भजेमहि ॥ ३१ ॥

परि प्रियेति नवर्चं भवमं सूक्तं । अथाद्याः पूर्ववत् । परि प्रियेत्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नृशोर्हितः । सुवानो याति कविक्रतुः ॥१॥

परि । प्रिया । दिवः । कविः । वयांसि । नृशोः । हितः । सुवानः । याति । कविऽक्रतुः ॥१॥

कविर्मेधावी कविक्रतुः क्रांतप्रज्ञः क्रांतकर्मा वा सोमो नृशोरधिषवणफलकयोर्हितो निहितः सुवानो  
ऽभिषूयमाणो दिवो शुक्लोक्स्थ परि प्रियातिप्रियाणि वयांसि आच्यः । तथा च मंचवर्णः । वयांसि श्वेता  
अतिथयः पर्वतानां ककुभ इति । याति । गच्छति ॥

प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अदुहे । वीत्यर्ष चनिष्ठया ॥२॥

प्रऽप्र । क्षयाय । पन्यसे । जनाय । जुष्टः । अदुहे । वीती । अर्ष । चनिष्ठया ॥२॥

हे सोम प्रप्रात्यंतं क्षयाय तव निवासभूतायादुहेऽद्रोमि च पन्यसे स्तोत्रे जनाय मनुष्याय वीती वीक्षी  
मक्षयाय जुष्टः पर्याप्तस्त्वं चनिष्ठयान्नवत्तमया धारयार्ष । वामं प्रति गच्छ ॥

स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान्मही चंतावृधा ॥३॥

सः । सूनुः । मातरा । शुचिः । जातः । जाते इति । अरोचयत् । महान् । मही इति ।

चतुऽवृधा ॥३॥

जात उत्पन्नः शुचिर्विशुद्धो महान्दिविस्तमः स सोमाख्यः सूनुः पुत्रो मही महत्त्वावृतावृधा यज्ञस्य वर्ध-  
यित्री वाति विश्वस्य जनयित्री मातरात्मनो मातरौ बावापुथिष्यावरोचयत् । रोचयति । दीपयति ॥

स सप्त धीतिभिर्हितो नृद्यो अजिन्वदुहः । या एकमक्षि वावृधुः ॥४॥

सः । सप्त । धीतिऽभिः । हितः । नृद्यः । अजिन्वत् । अदुहः । याः । एकं । अक्षि । ववृधुः ॥४॥

या नद्यो यमेकं सुखं सोममक्षधीणं ववृधुः वर्धयति स सोमो धीतिभिरंगुलिभिः । रश्मिना धीतय  
इत्थंगुलिनामसु पाठात् । हितो निहितः सप्तद्रुहो द्रोहवर्जिताः सप्त सप्तसंख्याका नद्यो नदीरजिन्वत् ।  
प्रीणयति ॥

ता अभि संतमस्तृतं महे युवानमा दधुः । इंदुमिन्द्र तव व्रते ॥५॥

ताः । अभि । संतं । अस्तृतं । महे । युवानं । आ । दधुः । इंदु । इन्द्र । तव । व्रते ॥५॥

हे इन्द्र तव तदीये व्रते कर्मणि ता अंगुष्ठाः । पूर्वच धीतिभिरित्थंगुलीनामुपात्तत्वात्तच्छब्देन परामर्शः ।  
संतं विद्यमानमकृतमहिंसितं युवानं नित्यतद्वर्णमिंदुं सोमं महे महतेऽभिषवादिजक्षणाय कर्मणेऽभ्या  
दधुः ॥ ३२ ॥



अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः । क्रिविर्देवीरतर्पयत् ॥ ६ ॥

अभि । वह्निः । अमर्त्यः । सप्त । पश्यति । वावहिः । क्रिविः । देवीः । अतर्पयत् ॥ ६ ॥

यो वह्निर्यज्ञस्य धुरो वोढामर्त्यो मरणरहितो वाजहिर्देवानां तृप्तेरत्यंतं वोढा च सोमः सप्त नदीः पश्यति सोऽयं क्रिविः कूपरूपेण पूषोऽवस्थितः सन् देवीर्नदीरतर्पयत् । तर्पयति ॥

अवा कल्पेषु नः पुमस्तमांसि सोम योध्या । तानि पुनान जघनः ॥ ७ ॥

अव । कल्पेषु । नः । पुमः । तमांसि । सोम । योध्या । तानि । पुनान् । जघनः ॥ ७ ॥

हे पुमः पुमस्तोम कल्पेषु कल्पनीयेष्वहःसु नोऽस्मानव । रच । अपि च पुनान हे पवमान सोम त्वं योध्या योधनीयानि तमांसि रचांसि यानि तानि जघनः । नाशय ॥

नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः । प्रत्नवद्रोचया रुचः ॥ ८ ॥

नू । नव्यसे । नवीयसे । सूक्ताय । साधय । पथः । प्रत्नवद्रोचय । रुचः ॥ ८ ॥

हे सोम नव्यसे नव्याय नूतनाय नवीयसे सुत्यायास्माकं सूक्ताय पथो मार्गास्तु बिभं साधय । अभिगच्छ । अपि च प्रत्नवद्रोचयापूर्वं रुचः स्वदीप्ती रोचय । प्रकाशय ॥

पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् । सना मेधां सना स्वः ॥ ९ ॥

पवमान । महि । श्रवः । गां । अश्वं । रासि । वीरवत् । सन । मेधां । सन ।

स्वपरिति स्वः ॥ ९ ॥

हे पवमान सोम यत्स्वं वीरवत्पुत्रवत्सहि महच्छ्रवोऽसं गां चाश्वं च रासि अश्वश्वं प्रयच्छसि स त्वं मेधां सन । अश्वश्वं प्रयच्छ । अपि च स्वर्गदसदमित्तिषितं तत्सर्वं सन । देहि ॥ ३३ ॥

प्र स्वानास इति ऋचं दशमं सूक्तं । अथावाः पूर्ववत् । प्र स्वानास इत्यनुक्रांतं । चत्तो विनियोगः ॥

प्र स्वानासो रथा इवार्वतो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥ १० ॥

प्र । स्वानासः । रथाः । इव । अर्वतोः । न । श्रवस्यवः । सोमासः । राये । अक्रमुः ॥ १० ॥

प्र स्वानासोऽभिवववेजायामुपरवेषु शब्दं कुर्वतः सोमासः सोमा रथा इव यथा शब्दं कुर्वतो रथा अर्वतो न यथा शब्दं कुर्वतोऽश्वाः तथा श्रवस्यवः शत्रुभ्योऽन्नमिच्छन्तो राये यजमानानां धनायाक्रमुः । आगच्छन् ॥

हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गर्भस्त्योः । भरासः कारिणामिव ॥ ११ ॥

हिन्वानासः । रथाः । इव । दधन्विरे । गर्भस्त्योः । भरासः । कारिणां । इव ॥ ११ ॥

सोमा रथा इव यथा रथास्तथा हिन्वानासो हिन्वाना यागदेशं प्रति गच्छन्तो भरासो भराः कारिणामिव यथा भारवाहिनां बाह्वोर्धीयन्ते तथा गर्भस्त्योर्ध्वलिप्तां बाह्वोः । गर्भस्त्यो बाह्व इति बाह्वनामसु पाठात् । दधन्विरे । धीयन्ते ॥

राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरंजते । यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ १२ ॥

राजानः । न । प्रशस्तिभिः । सोमासः । गोभिः । अंजते । यज्ञः । न । सप्त । धातृभिः ॥ १२ ॥

सोमासः सोमाः प्रशस्तिभिः प्रशस्तानिः स्तुतिरूपमिवाग्नी राजानो न यथा राजानः सप्त धातुभिः सप्त होचामिर्द्यञो न यथा च यज्ञस्तथा गोभिर्गोविकारिः पयोमिरञ्जते । अज्यति । संस्क्रियन्त इत्यर्थः ॥

परि सुवा॒नास॒ इ॒न्द॒वो॒ मदा॑य ब॒र्ह॒णा गि॒रा । सु॒ता अ॒र्वेति॒ धार॑या ॥४॥

परि । सुवा॒नासः । इ॒न्द॒वः । मदा॑य । ब॒र्ह॒णा । गि॒रा । सु॒ताः । अ॒र्वेति॒ । धार॑या ॥४॥

सुवानासः सुवाना अभिषूयमाणा इन्दवः सोमा बर्हणा महत्या गिरा स्तुतिरूपया वाचा सुता अभिषुताः संतो मदाय मदार्थं धारया पर्यवेति । परितो गच्छन्ति ॥

आ॒पा॒नासो॒ वि॒वस्व॑तो॒ ज॒न॒त उ॒षसो॒ भ॒गं । सू॒रा अ॒खं वि॒ तन्व॑ते ॥५॥

आ॒पा॒नासः । वि॒वस्व॑तः । ज॒न॒तः । उ॒षसः । भ॒गं । सू॒राः । अ॒खं । वि॒ । तन्व॑ते ॥५॥

विवस्वत इन्द्रस्यापानास आपानभूता उषसो भगं जनतो जनयन्तः सूराः सरन्तः सोमा अखं वि तन्वते । अभिषववेनायामुपरवेषु शब्दं कुर्वन्ति ॥ ३४ ॥

अ॒प॒ ह॒रा म॒तीनां॒ प्र॒त्ना ऋ॒ख॑न्ति का॒रवः॑ । वृ॒ष्णो ह॒रस॑ आ॒यवः॑ ॥६॥

अ॒प॒ । ह॒रा । म॒तीनां॒ । प्र॒त्नाः । ऋ॒ख॑न्ति । का॒रवः॑ । वृ॒ष्णः । ह॒रसे॑ । आ॒यवः॑ ॥६॥

मतीनां सुतीनां कारवः कर्तार अस्त्रिषः प्रत्नाः पुराणा वृष्णः सेवकस्य सोमस्य हरस आहरस आहती-  
रसायनो मनुष्या द्वारा यज्ञस्य द्वाराख्ययन्ति ॥

स॒मी॒ची॒नास॑ आ॒स॒ते हो॒तारः॑ स॒प्र॒जा॒मयः॑ । प॒दमे॑कस्य पि॒प्रतः॑ ॥७॥

स॒मी॒ची॒नासः॑ । आ॒स॒ते । हो॒तारः॑ । स॒प्र॒जा॒मयः॑ । प॒दं । ए॒कस्य॑ । पि॒प्रतः॑ ॥७॥

समीचीनासः समीचीना नामयो जामिसदृशा एकस्य सोमस्य पदं स्थानं पिप्रतः पूरयन्तः सप्त होतारः सप्त होयका आसते । यज्ञ उपविशन्ति ॥

नाभा॒ नाभिं॑ न॒ आ द॑दे चक्षु॑श्चित्सूर्ये॒ सचा॑ । क॒वेर॑पत्य॒मा दु॑हे ॥८॥

नाभा॑ । नाभिं॑ । नः । आ । द॑दे । चक्षुः॑ । चि॒त् । सू॒र्ये । सचा॑ । क॒वेः । अ॒पत्यं॑ । आ । दु॑हे ॥८॥

नाभिं यज्ञस्य नाभिभूतं सोमं नोऽस्माकं जग्मा नामावहमा ददे । पिबामीत्यर्थः । पीतसोमानामस्माकं चक्षुश्चक्षुरपि सूर्ये सचा संगतं भवति । किं कवेः ज्ञातकर्मणः सोमस्यापत्यमंशुमा दुहे । आपूरयामि ॥

अ॒भि प्रि॒या दि॒वस्प॑दम॒ध्वर्यु॑भिर्गुहा॑ हितं । मूरः॑ पश्यति चक्ष॑सा ॥९॥

अ॒भि । प्रि॒या । दि॒वः । प॒दं । अ॒ध्वर्यु॑भिः । गुहा॑ । हि॒तं । मूरः॑ । प॒श्यति॑ । चक्ष॑सा ॥९॥

सूरः सुवीर्य इन्द्रश्चक्षसा चक्षुषा दिवो दीप्तस्तामनः प्रिया प्रियं पदमध्वर्युभिर्गुहा गुहायां हृदये हितं निहितं पीतं सोममप्यभि पश्यति ॥ ३५ ॥

उपास्मा इति नवर्चमेकादशं सूतं । अथावाः पूर्ववत् । उपास्मा इत्यनुक्रांतं ॥ उक्तः सूतविनिधोयः ॥ अभिष्टवे चर्मदुघावत्सेऽपनीयभागे नमसेदुपेत्येधा । सूचितं च । नमसेदुप सीदत संजानाना उप सीदन्मित्रि । आ० ४. ७. इति ॥



उपास्मै गायता नरः पर्वमानयेंदवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥१॥

उप । अस्मै । गायत । नरः । पर्वमानाय । इंदवे । अभि । देवान् । इयक्षते ॥१॥

हे नरो नेतारः अस्मिन् यज्ञस्य देवाग्निं द्रादीनमीयत आभिमुख्येन यदुमिच्छते पर्वमानाय चरतेऽस्या अभिषूयमाणार्थेदेवे सोमाद्योप गायत । उपगानं कुरुत ॥

अभि ते मधुना पयोऽर्थर्वाणो अशिश्नयुः । देवं देवाय देवयु ॥२॥

अभि । ते । मधुना । पयः । अर्थर्वाणः । अशिश्नयुः । देवं । देवाय । देवऽयु ॥२॥

हे सोम ते तव देवं देवग्रीलं देवयु देवयुं देवकामं रसं देवाय देवग्रीलार्थेन्द्राय मधुना पयो गव्येन पयसाथर्वाणः अश्वयोऽभ्यशिश्नयुः । अभ्यश्रीणन् । समस्तुर्वन्निवर्त्यः ॥

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन् ओषधीभ्यः ॥३॥

सः । नः । पवस्व । शं । गवे । शं । जनाय । शं । अर्वते । शं । राजन् । ओषधीभ्यः ॥३॥

हे राजन्दीप्यमान सोम स प्रसिद्धस्त्वं नोऽस्माकं गवे शं मुखं पवस्व । चर । जनाय पुषादधे च शं पवस्व । अर्वतेऽस्याय च शं पवस्व । ओषधीभ्यश्च शं पवस्व ॥

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥४॥

बभ्रवे । नु । स्वऽतवसे । अरुणाय । दिविऽस्पृशे । सोमाय । गाथं । अर्चत ॥४॥

हे स्रोतारः बभ्रवे बहुवर्णाय स्वतवसे स्ववसायावणाय कदाचिद्वर्णवर्णाय दिविस्पृशे दिवं क्षुप्रते सोमाय नु चित्रं गाथं क्षुतिरूपां पाचमर्चत । उच्चारयतेत्यर्थः ॥

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥५॥

हस्तऽच्युतेभिः । अद्रिऽभिः । सुतं । सोमं । पुनीतन । मधौ । आ । धावत । मधु ॥५॥

हे अस्मिन् यज्ञस्य हस्तच्युतेभिर्हस्तप्रच्युतेभिरद्रिमिरमिषवशावभिः सुतमभिषुतं सोमं पुनीतन । पविषि पावयत । अपि च मधौ मदकरो सोमे मधु गव्यं पय आ धावत । प्रक्षिपत ॥ ३६ ॥

नमसेदुप सीदत दुधेदभि श्रीणीतन । इंदुमिंद्रे दधातन ॥६॥

नमसा । इत् । उप । सीदत । दुधा । इत् । अभि । श्रीणीतन । इंदुं । इंद्रे । दधातन ॥६॥

हे अस्मिन् यज्ञस्य नमसेत्तमस्कारिणीवोप सीदत । सोममुपगच्छत । दुधेदभिवाभि श्रीणीतन । अभि श्रीणीत च । इंदु इंदुं सोमं दधातन । धत्त च ॥

अमित्रहा विचर्वणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥७॥

अमित्रऽहा । विऽचर्वणिः । पवस्व । सोम । शं । गवे । देवेभ्यः । अनुकामऽकृत् ॥७॥

हे सोम अमित्रहामित्राणां हंता विचर्वणिर्विद्रष्टा देवेभ्योऽनुकामकृदमीष्टस्य कर्ता त्वं गवेऽस्माकं गवे शं मुखं पवस्व । चर ॥

इंद्राय सोम पातवे मदाय परि विच्यसे । मनुश्चिन्मनसस्पतिः ॥८॥

इंद्राय । सोम । पातवे । मदाय । परि । सिच्यसे । मनुऽचित् । मनसः । पतिः ॥८॥

हे सोम मनश्चिन्मनसो ज्ञाता मनसस्ततिरीश्वरस्त्वमिन्द्रार्थेन्द्रस्य पातये पानाय मदाय च परि विच्यसे ।  
परितः पात्रेषु सिच्यसे ॥

पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः । इन्द्रविद्रेण नो युजा ॥९॥

पवमान । सु॒वीर्यं । र॒यिं । सो॒म । रि॒रीहि॒ । नः । इन्द्रो॒ इति॑ । इ॒द्रेण॑ । नः । यु॒जा ॥९॥

हे इन्द्रो क्लियमान पवमान सोम त्वं सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं रयिं धनं नोऽस्माकं संबन्धिनैद्रेण युजा  
सहायेन नोऽस्माकं रिरीहि । देहि ॥ ॥३७॥

सोमा अक्षयमिति नवर्चं द्वादशं सूक्तं । अष्टाद्याः पूर्ववत् । सोमा अक्षयमित्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

सोमा असृमिन्दवः सुता चतस्य सादने । इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥१॥

सो॒माः । अ॒सृम्यं॑ । इन्द्र॑वः । सु॒ताः । च॒तस्य॑ । स॒दने॑ । इन्द्रा॑य । म॒धुमत्त॑माः ॥१॥

सुता अभिपुता मधुमत्तमा अतिशयेन मधुमन्त इन्दवः सोमा अतस्य यज्ञस्य सादने गृह इन्द्रार्थेन्द्रा-  
र्थमक्षयं । खज्यते ॥

अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातरः । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥२॥

अ॒भि । वि॒प्राः । अ॒नूष॑त । गा॒वः । व॒त्सं । न । मा॒तरः । इन्द्रं॑ । सोम॑स्य । पी॒तये॑ ॥२॥

विप्रा मेधाविनः सोमस्य पीतये पानार्थेन्द्रं मातरो जनयित्री गावो वत्सं न यथा वत्सं प्रति तद्वद-  
भ्यनूषत । अभिशब्दयन्ति ॥

मदच्युत्क्षेति सादने सिंधोरुर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रितः ॥३॥

म॒द॒ऽच्यु॒त् । क्षे॒ति॒ । स॒दने॑ । सि॒न्धोः॑ । रु॒र्मा । वि॒पः॒ऽचि॒त् । सोमः॑ । गो॒री इति॑ ।

अधि । श्रितः ॥३॥

मदच्युत्सदकरस्य रसस्य च्यावयिता सोमः सादने ॥ संहितायां दीर्घश्छांदसः ॥ खाने चेति । निवसति ।  
एतदेव विधृणोति । सिंधोर्नद्या ऊर्मोर्मौ तरंगे । वसतीवरीष्वित्यर्थः । विपश्चिद्विद्वान्सोमो गौरी अधि  
गौर्यामधि । अधीति सप्तम्यर्थानुवादः । माध्यमिकायां वाचि । गौरी गांधर्वीति चाङ्गामसु पाठात् । श्रितः ।  
मिश्रयति ॥

दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारं महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥४॥

दि॒वः । ना॒भा । वि॒ऽच॒क्ष॒णः । अ॒व्यः । वा॒रं । म॒ही॒य॒ते॒ । सोमः॑ । यः । सु॒ऽक्र॒तुः । क॒विः ॥४॥

यः सुक्रतुः सुप्रज्ञः कविः ज्ञातकर्मा विचक्षणो विद्वष्टा स सोमो दिवोऽन्तरिक्षस्य नामा नामो नाभिभूते  
ऽव्योऽर्चर्वारे वासि महीयते । पूज्यते । पूजमानः स्तूयत इत्यर्थः ॥

यः सोमः कलशेष्वौ अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि पस्वजे ॥५॥

यः । सोमः॑ । क॒लशे॑ष्वौ । अ॒न्तः । प॒वि॒त्र । आ॒हि॒तः । तं । इन्द्रो॑ । परि॑ । स॒स्व॒जे ॥५॥

यः सोमः कलशेषु कुंभेष्वा आसी यद्य पवित्रे पवित्रस्यान्तर्मध्य आहितो निहितः तं स्वांशभूतं सोममिन्दुः  
सोमो देवः परि पस्वजे । प्रविशति ॥ ॥३८॥



प्र वाचमिंदुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन्कोशं मधुश्चुतं ॥ ६ ॥

प्र । वाचं । इंदुः । इष्यति । समुद्रस्य । अधि । विष्टपि । जिन्वन् । कोशं । मधुऽश्चुतं ॥ ६ ॥

इंदुः सोमो मधुश्चुतं मधुनश्चावकं कोशं मेघं । असुरः कोश इति मेघनामसु पाठात् । जिन्वन्नीलयन्त्र-  
सुद्रस्यांतरिक्षाधि विष्टपि विष्टब्धे स्थाने वाचं प्रेष्यति । प्रेरयति । पवित्रे पूज्यमाणः शब्दं करोतीत्यर्थः ॥

नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामंतः संबर्द्धयः । हिन्वानो मानुषा युगा ॥ ७ ॥

नित्यऽस्तोत्रः । वनस्पतिः । धीनां । अंतरिति । सबऽदुधः । हिन्वानः । मानुषा । युगा ॥ ७ ॥

नित्यस्तोत्रः संततस्तोत्रः सबर्द्धोऽमृतस्य दोग्धा वनस्पतिर्वनानां पालयिता सोमो मानुषा मानुषाणि  
युगा युगान्यहीनैकाहात्मकानि हिन्वानः प्रीणयन्धीनां कर्मणामंतर्मध्ये निवसतीत्यर्थः ॥

अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षेति । विप्रस्य धारया कविः ॥ ८ ॥

अभि । प्रिया । दिवः । पदा । सोमः । हिन्वानः । अर्षेति । विप्रस्य । धारया । कविः ॥ ८ ॥

कविः क्रांतकर्मा सोमो दिवोऽंतरिक्षाद्धिन्वानः प्रियमाणो विप्रस्य मेधाविनः स्वस्य धारया प्रिया  
प्रियाणि पदानि स्नानान्यर्षेति । अभिगच्छति ॥

आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसं । अस्मे ईदो स्वाभुवै ॥ ९ ॥

आ । पवमान । धारय । रयिं । सहस्रऽवर्चसं । अस्मे इति । ईदो इति । सुऽआभुवै ॥ ९ ॥

हे पवमानेऽहो सोम त्वं सहस्रवर्चसं वज्रदीप्तिं स्वाभुवं शोभनमवनं रयिं धनमस्य अस्मासु धारय ।  
प्रक्षिपेत्यर्थः ॥ ॥ ३९ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हादं निवारयन् । पुमर्थोऽस्तुरो देयाद्विषातीर्थमहेचरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवेदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपाक्षसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण  
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥

यस्य निःश्रुतं वेदा यो वेदेभ्योऽस्त्रिंशं जगत् । निर्मेमे तमहं वंदे विषातीर्थमहेचरं ॥

षष्ठस्य सप्तमोऽध्यायः संयहात्संप्रदर्शितः । अष्टाष्टमः सुमतिना संगमेन प्रदर्शितः ॥

तत्र सोमः पुनान इति नवर्चं त्रयोदशं सूक्तं । अशितो देवसो वर्षिः । सोमो देवता । पवमानगुणः  
सोमो विज्ञेयः काशपावुषी इति विद्यादगुप्तेऽपि लाघवाया वृद्धश्चुतात् । सोम इत्यनुक्रांतं ॥ गतो  
विभियोगः ॥

सोमः पुनानो अर्षेति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिंद्रस्य निष्कृतं ॥ १ ॥

सोमः । पुनानः । अर्षेति । सहस्रऽधारः । अतिऽअविः । वायोः । इंद्रस्य । निऽकृतं ॥ १ ॥

अयं पुनानः पावकः सोमोऽर्षेति । गच्छति । कौटुशोऽयं पवमानः । सहस्रधारोऽपरिमितधारोऽत्यविः ।  
अत्राविशब्देन तस्मोमानुच्यते । अविस्त्रोमभिर्निष्पादितं दशापवित्रमित्यर्थः । तदतिक्रम्य गच्छतीत्यत्यविः ।

किमर्थं । वायोऽरिद्रक्ष च पानायेति शेषः । किं प्रति । निष्कृतं । निरिलेख समितितस्मिन्नर्थे । संस्कृतं पात्रं प्रति ॥

पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाणं देववीतये ॥२॥

पवमानं । अवस्यवः । विप्रं । अभि । प्र । गायत । सुस्वानं । देवऽवीतये ॥२॥

हे अवस्यवो रक्षणकामा उन्नाचादयः सूर्यं पवमानं शोधकं विप्रं विशेषेण देवानां प्रीणयितारं विप्रवक्त्रं वा । अथवा । विप्र इति मेधाविनाम । मेधाविनं । देववीतये देवपानाय सुष्वाणं सूर्यमाजमभि प्र गायत । अभिसुखेन प्रकर्षेण सुत ॥

पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ॥३॥

पवन्ते । वाजऽसातये । सोमाः । सहस्रऽपाजसः । गृणानाः । देवऽवीतये ॥३॥

पवन्ते चरन्ति सोमाः । किमर्थं । वाजसातयेऽन्नस्य कामाय । कीदृशाः । सहस्रपाजसो चञ्चलाः । पातृणां वसप्रदा इत्यर्थः । गृणानाः ॥ कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ॥ सूयमानाः । पुनः किमर्थं । देववीतये । देवानां वीतिर्यतिः प्राप्तिर्मेषणं वा यस्मिन् देववीतिर्यस्यः । तदर्थं । यस्मिन्निः साक्षात्प्रयोजनं तद्वारा वाजसाम इति ॥

उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमर्दिदो सुवीर्यं ॥४॥

उत । नः । वाजऽसातये । पवस्व । बृहतीः । इषः । द्युऽमत् । इंदो इति । सुऽवीर्यं ॥४॥

उतापि च नोऽस्माकं वाजसातयेऽन्नस्य कामाय हे इंदो सोम बृहतीरिषो बृहती रसधारा द्युमर्दिदोऽन्नम-  
त्सुवीर्यं शोभनसामर्थ्यं च पवस्व । चर । शोभनसामर्थ्योपेता धाराः पवस्वेत्यर्थः । अथवा वाजसातये संयामाय बृहतीरिषो द्युमत्सुवीर्यं संपादयितुं पवस्वेति योज्यं ॥

ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यं । सुवाना देवास इंदवः ॥५॥

ते । नः । सहस्रिणं । रयिं । पवन्तां । आ । सुऽवीर्यं । सुवानाः । देवासः । इंदवः ॥५॥

त इंदवः सोमा नोऽस्माकं सहस्रिणं सहस्रसंस्क्रोषेत् रयिं धनं सुवीर्यं वा पवन्तां । कीदृशास्ते । सुवानाः  
सूयमाना देवासो वीतनादिगुणयुक्ताः ॥ ५॥

अत्या हियाना न हेतुभिरसृयं वाजसातये । वि वारमर्थमाशवः ॥६॥

अत्याः । हियानाः । न । हेतुऽभिः । असृयं । वाजऽसातये । वि । वारं । अर्थं । आशवः ॥६॥

वाजसातये संयामाय हियाणाः प्रेर्यमाणा अत्या नाम्ना इव ते यथा प्रेरकैः प्रेर्यमाणाः संयामाय प्रीतिं  
धावन्ति तद्वहेतुभिः प्रेरकैः प्रेर्यमाणा आशवः प्रीतिनाभिः सोमा वाजसातयेऽन्नस्य कामाय वारं द्वापयितुं  
चक्षुषं । अतिचक्षुषंति ॥

वाग्ना अर्धेतीद्वोऽभि वत्सं न धेनवः । दधन्विरे गर्भस्त्योः ॥७॥

वाग्नाः । अर्धेति । इंदवः । अभि । वत्सं । न । धेनवः । दधन्विरे । गर्भस्त्योः ॥७॥

वाग्नाः शब्दयन्त इंदवः सोमा अर्धेति अभिमच्छन्ति पात्रं प्रति वाग्नाः शब्दकारिणो धेनवो न । ता  
यथा शब्दयन्तो वत्सं प्रत्यामच्छन्ति तद्वत् । त एव गर्भस्त्योर्बाहोर्दधन्विरे । ध्रियन्ते च ॥



जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पर्वमान कनिक्रदत् । विष्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥

जुष्टः । इन्द्राय । मत्सरः । पर्वमान । कनिक्रदत् । विष्वाः । अप । द्विषः । जहि ॥ ८ ॥

इन्द्राय जुष्टः प्रियः पर्याप्तो मत्सरः सोमो भवतीति श्रेयः । मत्सरः सोमो मन्दतेष्टुमिहर्मस इति निरुक्तं । २. ५. । हे पर्वमान त्वं कनिक्रदच्छब्दयन्विष्वा द्विषः सर्वानस्माकं द्वेष्टुमप जहि ॥

अपघ्नन्तो अराव्याः पर्वमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥

अपघ्नन्तः । अराव्याः । पर्वमानाः । स्वः ऽदृशः । योनौ । वृतस्य । सीदत ॥ ९ ॥

हे पर्वमानाः अराव्योऽदानानयजमानानपघ्नन्तो हिंसन्तः स्वर्दृशः सर्वत्र द्रष्टारस्य यूयमुतस्य योनी यज्ञस्य स्थाने सीदत । अथवा सोमपागार्थमुत्तलपय्या देवाः अतस्य योनी सीदतेति योज्यं ॥ २॥

परि प्रेत्यष्टर्षं चतुर्दशं सूक्तं । ऋष्यादि पूर्वपत् । परि प्राष्टावित्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

परि प्रासिष्यदत्कविः सिंधोरुर्मावधिं श्रितः । कारं बिभ्रत्पुरुस्पृहं ॥ १ ॥

परि।प्रा।असिष्यदत्।कविः।सिंधोः।उर्मौ।अधि।श्रितः।कारं।बिभ्रत्।पुरुऽस्पृहं ॥ १ ॥

परि प्रासिष्यदत् परिप्रसूदते कविर्मेधावी सोमः सिंधोरुर्मौ तरंगे वसतीवर्षुदकरसेऽधि श्रित आश्रितः । पुरुस्पृहं यजुभिः सृष्टृणीयं कारं शब्दं विधत्तारयन्परिप्रसूदत इति संबंधः ॥

गिरा यदी सबंधवः पंच व्राता अपस्यवः । परिष्कृण्वन्ति धर्णसिं ॥ २ ॥

गिरा । यदि । सऽबन्धवः । पंच । व्राताः । अपस्यवः । परिऽकृण्वन्ति । धर्णसिं ॥ २ ॥

सबन्धवः समानबन्धनाः पंच व्राताः पंच जना मनुष्या यजमाना अपस्यवः कर्मच्छवी यवदेभेन धर्णसिं धारकं सोमं गिरा जुह्वा परिष्कृण्वन्ति अक्षुण्वन्ति । अस्त्रोत्तरचान्वयः ॥

आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत । यदी गोभिर्वसायते ॥ ३ ॥

आत् । अस्य । शुष्मिणः । रसे । विश्वे । देवाः । अमत्सत । यदि । गोभिः । वसायते ॥ ३ ॥

आत्परिष्करणान्तरमेव शुष्मिणो वसवतोऽस्य सोमस्य रसे विश्वे देवा अमत्सत । अमायन्त । यदि यदा गोभिर्गोविकारैः । विकारि प्रकृतिशब्दः । वीरादिभिर्वसायते आच्छादयते ॥

निरिणानो वि धावति जहृच्छर्याणि तान्वा । अचा सं जिघ्रते युजा ॥ ४ ॥

निऽरिणानः । वि । धावति । जहत् । शर्याणि । तान्वा । अच । सं । जिघ्रते । युजा ॥ ४ ॥

अचं सोमो निरिणानो दशापविषादधो गच्छन्वि धावति । विविधं धावति । - - - - यदा तान्वा । तनु दशापविषवस्त्रं । तत्संधीनि शर्याणि क्षाराणि बहव अचः सरति । अचास्त्रिण्वि युजा सखिभूतिर्नेद्रेण सह सं जिघ्रति । संगतो भवति । वस्त्रनुधिराद्विनिर्गत्य दशापविषादधः सत्पात्रं विविधं गच्छन् होमक्षरिणैर्द्रेण संगतो भवतीत्यर्थः ॥

नप्तीभियो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा । गाः कृण्वानो न निर्णिजं ॥ ५ ॥

नप्तीभिः । यः । विवस्वतः । शुभ्रः । न । ममृजे । युवा । गाः । कृण्वानः । न । निऽनिजं ॥ ५ ॥

यः सोमो विवस्वतः परिवरणवतो यजमानस्य नप्तीभिः पौचस्थानीयाभिः । तस्य हस्तः पुत्रोऽनुजयः





मुधावता शोभावता यथा मागेण यदि यदा तुवंति प्रयच्छन्ति देवेभ्यो भूर्णयो भरणशीला अध्वर्यादयः । तदा वि नीयत इति समन्वयः ॥

एष भृंगाणि दोधुवच्छिशीति यूथ्योऽ वृषा । नृम्णा दधान् ओजसा ॥४॥

एषः । भृंगाणि । दोधुवत् । शिशीति । यूथ्यः । वृषा । नृम्णा । दधानः । ओजसा ॥४॥

एष सोमः भृंगाणि भृगवदुन्नतानंभुजमिषवकास्ते दोधुवत् । धूनीति । यूथ्यो यूथाहो यूथपतिर्वृषा वृषभो यथा शिशीति तीक्ष्णे भृगे धूनीति तद्वत् । कीदृश एषः । ओजसा बलेन नृम्णा नृम्णाणि धनानि दधानो ऽसदर्थं धारयन् ॥

एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभेभिरंशुभिः । पतिः सिंधूनां भवन् ॥५॥

एषः । रुक्मिऽभिः । ईयते । वाजी । शुभेभिः । अंशुऽभिः । पतिः । सिंधूनां । भवन् ॥५॥

एष सोमो रुक्मिभिरध्वर्यादिभिः सहेयते । गच्छति । कीदृश एषः । वाजी वेधनवाञ्शुभेभिः शुभेदीप्तिरंशुभिर्विशिष्टः । अथवा रुक्मिभिरुल्लेखितदण्डंशुविशेषणं । सिंधूनां खंदमानानां रसानां पतिर्मवन् य ईयत इति ॥

एष वसूनि पिबन्ना परुषा ययिवाँ अति । अवं शादेषु गच्छति ॥६॥

एषः । वसूनि । पिबन्ना । परुषा । ययिऽवान् । अति । अवं । शादेषु । गच्छति ॥६॥

एष सोमो वसून्वाच्छादकानि पिबन्ना पिबन्नानि पीडितानि रचांसि परुषा पर्वणात्पतिक्रम्य यथिवा-  
न्वाच्छादेषु श्रातनीयेषु रचःस्वव गच्छति ॥

एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ॥७॥

एतं । मृजन्ति । मर्ज्यं । उप । द्रोणेषु । आयवः । प्रऽचक्राणं । महीः । र्षः ॥७॥

आयवो मनुष्या अल्लिज एतं सोमं मर्ज्यं मार्जनीयमुप मृजन्ति । निष्पीडयन्तीत्यर्थः । कुच । द्रोणेषु द्रोणकणशेषु । कीदृश । महीरियो महात्त्वज्ञानि प्रचक्राणं कुर्वीतां । प्रभूतरसस्त्राविणमित्यर्थः ॥

यावत्सोचे गात्रगादिमतेनाभिरूपकरणे मुख्यमाने सोम एतमु त्वमित्येषा । सूचितं च । एतसु त्वं दश विषो मुख्यमानः मुहस्तथा । आ० ५. १२. इति ॥

एतमु त्वं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः । स्वायुधं मदितंमं ॥८॥

एतं । ऊं इति । त्वं । दश । क्षिपः । मृजन्ति । सप्त । धीतयः । सुऽआयुधं । मदिन्ऽतंमं ॥८॥

त्वं तमेतमेव सोमं दश विषो दशांगुलयो मृजन्ति । परिचरन्ति । सप्त धीतयः सप्तर्षिष्वक्ष । अल्लिजो ऽंगुलिभिर्मृजन्तीत्यर्थः । कीदृशमेतं । स्वायुधं शोमनायुधं मदितंमं मादयितुतमं । रचोहनसामर्थ्यप्रदर्शनाय स्वायुधशब्दश्रवणं ॥ ॥५॥

प्र ते सोतार इत्यष्टर्चं षोडशं सूक्तं । अध्यायाः पूर्ववत् । प्र त इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र ते सोतार ओण्योऽ रसं मदाय घृष्वये । सर्गो न तत्क्येतशः ॥९॥

प्र । ते । सोतारः । ओण्योः । रसं । मदाय । घृष्वये । सर्गः । न । तत्किं । एतशः ॥९॥

हे सोम ते तव रसं सोतारः सोमाभिषवकर्तार ओण्यो रसं । जुप्तोपममेतत् । बावापृथिव्यो रसमुद-  
कमिव । अथवाण्योर्वावापृथिव्योर्मध्ये तयोः संबन्धिनं वा रसं । प्र स्तावयन्तीति शेषः । किमर्थं । घृष्वये

शुभ्रवर्षणशीलाय मदायेंद्रस्य मदाय । अभिषवजगितः सोमः सर्गः खट्ट एतशो नास्य इव तन्ति । गच्छति पार्श्वं प्रति ॥

क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमंधसा । गोषामखेषु सन्धिम ॥२॥

क्रत्वा । दक्षस्य । रथ्यं । अपः । वसानं । अंधसा । गोऽसां । अखेषु । सन्धिम ॥२॥

ययमभिषोतारो दक्षस्य बलस्य रथ्यं नेतारमप उदकाभि रसान्वसानमाच्छादयंतमंधसा अययानेन सहितं गोषां नवां सोतारं एवमत्तलक्षणं सोमं क्रत्वा कर्मणाखेष्वांगुलीषु सन्धिम । संयोजयामः ॥

अनंभ्रमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्रं आ सृज । पुनीहीन्द्राय पातवे ॥३॥

अनंभ्रं । अप्सु । दुष्टरं । सोमं । पवित्रं । आ । सृज । पुनीहि । इन्द्राय । पातवे ॥३॥

अनंभ्रं शुभ्रमिरनाभ्रमप्सांतरिक्षासु । वर्तमानमिति शेषः । दुष्टरमन्यैरभिमाम्यं । न हि सोमं कश्चिदप्यतितरति । ईदृशं सोमं पवित्रे दशापवित्रं आ खज । प्रक्षिप हे अध्वर्यो । तत्रोच्यते । ईन्द्रायेंद्रस्य पातवे पातुं पुनीहि ॥

प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रं अर्षति । क्रत्वा सधस्थमासदत् ॥४॥

प्र । पुनानस्य । चेतसा । सोमः । पवित्रं । अर्षति । क्रत्वा । सधऽस्थं । आ । असदत् ॥४॥

चेतसा सुखा पुनानस्य पूयमानस्यांशीभूतः सोमः पवित्रे दशापवित्रेऽर्षति । गच्छति । अथ पश्चात् क्रत्वा कर्मणा प्रक्षानेन वा सधस्थं सहस्रानं द्रोणकलश आसदत् । आसीदति ॥

प्र त्वा नमोभिरिदं इन्द्र सोमा असृक्षत । महे भराय कारिणः ॥५॥

प्र । त्वा । नमः । ऽभिः । इंदवः । इंद्र । सोमाः । असृक्षत । महे । भराय । कारिणः ॥५॥

हे इंद्र त्वा त्वां नमोभिर्नमस्कारोपलक्षितः सोमैरथवाग्निः सहेंदवः सोमाः प्रासृक्षत । प्राप्नुवन्ति । किमर्थं । महे महते भराय संयामाय । कीदृशाः । कारिणो बलकरणशीलाः ॥

पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन् अभि श्रियः । शूरो न गोषु तिष्ठति ॥६॥

पुनानः । रूपे । अव्यये । विश्वाः । अर्षन् । अभि । श्रियः । शूरः । न । गोषु । तिष्ठति ॥६॥

अव्ययेऽविमये रूपे रूपमाणे वस्त्रे पुनानः पूयमानो विश्वाः सर्वाः श्रियः शोभा अव्यर्षन्तमिगच्छन्गोषु निमित्तासु शूरो न शूर इव स यथा संग्रामे तिष्ठति तद्वदसौ तिष्ठति पात्रे ॥

दिवो न सानुं पिपुषी धारां सुतस्य वेधसः । वृथा पवित्रं अर्षति ॥७॥

दिवः । न । सानुं । पिपुषीं । धारां । सुतस्य । वेधसः । वृथा । पवित्रं । अर्षति ॥७॥

दिवो न बुल्लोकादंतरिक्षादिव सानुं समुच्छ्रितमुदकं तस्याधो निपतति तद्वेधसो विधानुर्बलस्य कर्तुः सुतस्याभिषुतस्य सोमस्य पिपुष्याप्याययन्ती धारा वृथानायासेनैव पवित्रे दशापवित्रेऽर्षति । गच्छति ॥

त्वं सोम विपश्चितं तनां पुनान आयुषु । अव्यो वारं वि धावसि ॥८॥

त्वं । सोम । विपः । ऽचितं । तनां । पुनानः । आयुषु । अव्यः । वारं । वि । धावसि ॥८॥



हे सोम त्वं विपश्चितं सोतारमायुषु मनुष्येषु मध्ये रक्षसि । अथवा । तृतीयार्धे द्वितीया । विपश्चिताध्व-  
र्युणा । तना वस्त्रेण पुनानः पूयमानः । अथवा । विपश्चितमिंद्रं प्रीणयितुं तना पुनानः सन् । अथवा वारमवे-  
र्वात्तं वि धावसि । विविधं गच्छसि ॥ ६॥

प्र निक्षेनेवेत्यष्टर्वं सप्तदशं सूक्तं । अथावाः पूर्ववत् । प्र निक्षेनेवेत्यनुक्रांतं ॥ यतो विनियोगः ॥

प्र निक्षेनेव सिंधवो घ्नंतो वृचाणि भूर्णयः । सोमा असृग्माश्वः ॥ १॥

प्र निक्षेनेऽइव । सिंधवः । घ्नंतः । वृचाणि । भूर्णयः । सोमाः । असृग्माश्वः ॥ १॥

निक्षेन प्रवणेन देशेन सिंधवो नद्य इव तथा वृचाणि शत्रून् घ्नंतो भूर्णयः विप्रगमना आश्वो व्याप्ताः  
सोमाः प्राख्यं । प्रगच्छंति द्रोणकलशं प्रति ॥

अभि सुवानास इंदवो वृष्टयः पृथिवीमिव । इंद्रं सोमासो अक्षरन् ॥ २॥

अभि । सुवानासः । इंदवः । वृष्टयः । पृथिवीऽइव । इंद्रं । सोमासः । अक्षरन् ॥ २॥

सुवानासः सूर्यमाना इंदवो द्रवरूपाः सोमासः सोमा इंद्रं प्रीणयितुमन्वधरन् । किमिव । वृष्टयः  
पृथिवीमिव ॥

अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन्नक्षांसि देवयुः ॥ ३॥

अतिऽऊर्मिः । मत्सरः । मदः । सोमः । पवित्रे । अर्षति । विघ्नन् । रक्षांसि । देवयुः ॥ ३॥

अत्यूर्मिः । अतिक्रांता कर्मयो यस्मात्सोऽत्यूर्मिः । अतिप्रवृत्त इत्यर्थः । मत्सरो मादनशीलो मदो  
मदात्मकः सोमः पवित्रेऽर्षति । गच्छति । किं कुर्वन् । रक्षांसि विघ्नन् घातयन् देवयुर्देवाङ्गामयमानोऽर्षतीति  
संबन्धः ॥

पवित्रेष्वां द्वितीयाव्यभागस्तः कलशेष्विति याव्या । सूचितं च । आ कलशेषु धावति पवित्रे परिषिच्यत  
इत्येका । आ० ५. १२. इति ॥

आ कलशेषु धावति पवित्रे परिषिच्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥ ४॥

आ । कलशेषु । धावति । पवित्रे । परि । सिच्यते । उक्थैः । यज्ञेषु । वर्धते ॥ ४॥

अयं सोमः कलशेषु धावति । तदर्थं पवित्रे परिषिच्यतेऽध्वर्युभिः । उक्थैः सोचैर्यज्ञेषु निमित्तेषु वर्धते ।  
प्रवृद्धो भवति ॥

अति ची सोम रोचना रोहन् भाजसे दिवं । इण्णन्सूर्यं न चोदयः ॥ ५॥

अति । ची । सोम । रोचना । रोहन् । न । भाजसे । दिवं । इण्णन् । सूर्यं । न । चोदयः ॥ ५॥

हे सोम त्वं ची रोचना चीणि रोचनानि चीक्षीकानत्यतिक्रम्य रोहन्परिखं दिवं सुप्तोक्तं भावसे ।  
प्रकाशयसि । तच्छेष्णान्कृत्सूर्यं न सूर्यं च चोदयः । चोदयसि । प्रेरयसि । नशब्दार्थः ॥

अभि विप्रा अनूषत मूर्धन्यज्ञस्य कारवः । दधानाश्चक्षसि प्रियं ॥ ६॥

अभि । विप्राः । अनूषत । मूर्धन्य । यज्ञस्य । कारवः । दधानाः । चक्षसि । प्रियं ॥ ६॥

अनूषत अभिघ्नंति विप्रा मेधाविनः सोतारः । कुप । यज्ञस्य मूर्धन्यमूर्धनि । शिरोवदुत्तमेऽभिघ्नदिवस

रत्नार्थः । कीदृशास्ते । कारवः कर्तारः परिचर्याया यागानुष्ठानतारो वा । चक्षुषि द्रष्टरि सोमे प्रियं दधाना  
अभ्यगृषतेति समन्वयः ॥

तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः । मृजंति देवतातये ॥ ७ ॥

तं । ऊं इति । त्वा । वाजिनं । नरः । धीभिः । विप्राः । अवस्यवः । मृजंति । देवतातये ॥ ७ ॥

हे सोम तमु तमेव त्वा त्वां वाजिनमन्नवंतं गमनवंतं वा नरो नेतारो विप्रा मेधाविनोऽध्वर्ष्यादयो  
धीभिः कर्मभिर्मृजंति । शोधयंति । देवतातये यज्ञार्थं । किमिच्छवः । अवस्यवोऽन्नमिच्छवः ॥

मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्यमासदः । चारुर्जृताय पीतये ॥ ८ ॥

मधोः । धारो । अनु । क्षर । तीव्रः । सधऽस्य । आ । असदः । चारुः । जृताय । पीतये ॥ ८ ॥

हे सोम त्वं मधोर्मधुररसस्य धारामनु चर प्रवहन् । तीव्रस्तीव्ररसः सन्सधस्यं सहस्रानममिषवस्थानं  
पवित्रं वासदः । कीदृ । चारुस्वरणशीलः सन्नुताय यज्ञार्थं पीतये देवानां पानाय ॥ ७ ॥

परि सुवान इति सप्तर्चमष्टादशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । परि सुवानः सन्नेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः । मर्देषु सर्वधा असि ॥ ९ ॥

परि । सुवानः । गिरिऽस्थाः । पवित्रे । सोमः । अक्षारिति । मर्देषु । सर्वऽधाः । असि ॥ ९ ॥

अयं सोमः पवित्रे पर्ययाः । परिचरति । सुवानः सूयमानो गिरिष्ठा गिरिस्थायी । श्रावसु वर्तमान  
रत्नार्थः । स त्वं मर्देषु माद्वेषु सोतृषु सर्वधा असि । सर्वस्य धाता दाता वा भवसि ॥

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमंधसः । मर्देषु सर्वधा असि ॥ १० ॥

त्वं । विप्रः । त्वं । कविः । मधु । प्र । जातं । अंधसः । मर्देषु । सर्वऽधाः । असि ॥ १० ॥

हे सोम त्वं विप्रो विविधं प्रोणयिता विप्रसदृशो वा त्वं च कविर्मधावी । अतस्त्वमंधसोऽन्नाज्यातं मधु  
मधुररसं प्रयच्छसीति शेषः ॥

तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत । मर्देषु सर्वधा असि ॥ ११ ॥

तव । विश्वे । सऽजोषसः । देवासः । पीतिं । आशत । मर्देषु । सर्वऽधाः । असि ॥ ११ ॥

हे सोम तव पीतिं पानं विश्वे देवासो देवाः सजोषसः समानप्रीतयः संत आशत । प्राप्तुवन् ॥

आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्दधे । मर्देषु सर्वधा असि ॥ १२ ॥

आ । यः । विश्वानि । वार्या । वसूनि । हस्तयोः । दधे । मर्देषु । सर्वऽधाः । असि ॥ १२ ॥

यः सोमो विश्वानि वार्या वरणीयानि वसूनि धनानि सोतुर्हस्तयोरा दधे करोति । प्रयच्छतीत्यर्थः ।  
मर्देषु सर्वधा असि । अथवा स मुष्णीत्युत्तरसंबन्धः ॥

य इमे रोदसी मही सं मातरैव दोहते । मर्देषु सर्वधा असि ॥ १३ ॥

यः । इमे इति । रोदसी इति । मही इति । सं । मातराऽइव । दोहते । मर्देषु ।

सर्वऽधाः । असि ॥ १३ ॥



यः सोम इमे मही मह्यौ रोदसी बावापृथिव्यौ सं दोहते । उमयोः सारं परिगुह्णातीत्यर्थः । मातरिव यथा द्वे मातरावेको वत्सो दोहते तद्वत् ॥

परि यो रोदसी उभे सद्यो वाजेभिरर्षेति । मर्देषु सर्वधा असि ॥ ६ ॥

परि । यः । रोदसी इति । उभे इति । सद्यः । वाजेभिः । अर्षेति । मर्देषु । सर्वधाः । असि ॥ ६ ॥

यः सोम उभे रोदसी बावापृथिव्यौ सवस्तदानीमेव वाजेभिरन्नेः पर्यर्षति परिगच्छति । सोमाङ्गत्वा बावापृथिव्यावत्तवत्त्वी करोतीत्यर्थः ॥

स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत् । मर्देषु सर्वधा असि ॥ ७ ॥

सः । शुष्मी । कलशेषु । आ । पुनानः । अचिक्रदत् । मर्देषु । सर्वधाः । असि ॥ ७ ॥

उक्तरोत्वा महात्स सोमः शुष्मी वसवान्पुनानः पूयमानः सत्ताचिक्रदत् । शब्दं करोति । अत्र सर्वत्र यथोचितमुत्तरपादो नेयः ॥ ८ ॥

यत्सोमेति सप्तर्चमेकोनविंशं सूक्तं । अष्टाध्यायाः पूर्ववत् । यत्सोमेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

यत्सोम चिचमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥

यत् । सोम । चिचं । उक्थ्यं । दिव्यं । पार्थिवं । वसु । तत् । नः । पुनानः । आ । भर ॥ १ ॥

हे सोम यच्चिचं चाद्यनीयमुक्थ्यं क्षुत्तं दिव्यं दिवि मवं पार्थिवं पृथिवीसंनयं च वसु धनमसि तन्नोऽसम्भं पुनानः पूयमानः सत्ता भर । आहर ॥

युवं हि स्थः स्वर्पती इंद्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

युवं । हि । स्थः । स्वःपती इति स्वःऽपती । इंद्रः । च । सोम । गोपती इति गोऽपती । ईशाना । पिप्यतं । धियः ॥ २ ॥

हे सोम त्वमिंद्रश्च युवं हि युवां खलु स्वर्पती सर्वस्य स्वात्मिनौ आः । मवयः । तथा गोपती गवां पाशका-  
वीशनेश्वरौ संतौ धियोऽसदीयानि कर्माणि पिप्यतं । प्राययतं ॥

वृषा पुनान आयुषु स्तनयन्नधि बर्हिषि । हरिः सन्योनिमासदत् ॥ ३ ॥

वृषा । पुनानः । आयुषु । स्तनयन् । अधि । बर्हिषि । हरिः । सन् । योनिं । आ । असदत् ॥ ३ ॥

वृषा कामानां वर्षकः सोम आयुषु मनुष्येष्वर्ध्वोदिषु पुनानः सन् स्तनयन्नशब्दं कुर्वन्नधि बर्हिषि ।  
अधीति सप्तम्यर्थानुवादी । आसीत् इमे हरिर्हरितवर्णः सन्योनिं स्वकीयं स्नानमासदत् । आसीदति ॥

अवावशंत धीतयो वृषभस्याधि रेतसि । सूनोर्वत्सस्य मातरः ॥ ४ ॥

अवावशंत । धीतयः । वृषभस्य । अधि । रेतसि । सूनोः । वत्सस्य । मातरः ॥ ४ ॥

धीतयो धीयमानाः सोमाख्येन वत्सेन पीयमाना वसतीवर्यः ॥ क्तिन् व्यत्ययेनातोदात्तः ॥ अधि रेतसि

स्वकीये सारि वृषमस्य वर्षकस्य सोमस्य । सोममित्यर्थः । अवावशंत । पुनः कामयते । सोममाप्याययितुं कामयंत इत्यर्थः । तदेवाह । भूतोः स्वपुत्रस्यानीयस्य वत्सस्य सोमस्य मातरो निर्मात्र्यः प्रवृत्तिकामा मातृस्वा-  
नीया अवावशतेति समन्वयः ॥

कुविद्वृषण्यंतीभ्यः पुनानो गर्भमादधत् । याः शुक्रं दुहते पयः ॥ ५ ॥

कुवित् । वृषण्यंतीभ्यः । पुनानः । गर्भं । आऽदधत् । याः । शुक्रं । दुहते । पयः ॥ ५ ॥

वृषण्यंतीभ्यो वृषणं सोममात्मन इच्छंतीभ्यो वसतीवरीभ्यः पुनानः पूयमानो मिश्रयमाणो गर्भं स्वगर्भ-  
स्वानीयं रसं कुविद्वृष प्रभूतमादधत् । करोति । या आपः शुक्रं दोषं पयो दुहते स्ववत्साय सोमाय ताभ्यो  
गर्भमादधत् ॥

उपं शिक्षापतस्थुषो भियसुमा धेहि शत्रुषु । पवमान विदा रयिं ॥ ६ ॥

उपं । शिक्ष । अपऽतस्थुषः । भियसं । आ । धेहि । शत्रुषु । पवमान । विदाः । रयिं ॥ ६ ॥

हे पवमान सोम उप शिक्ष । त्वं समीपे क्रुद्ध । कान् । अपतस्थुषोऽपक्रम्य स्थितान् । अस्मादभिमतामित्यर्थः ।  
शत्रुष्वस्माद्विरोधिषु भियसं भयमा धेहि । क्रुद्ध । जन्म्य । अस्माकं तेषां शत्रूणां रयिं धनं विदाः । विंदसि ॥

नि शचोः सोम वृषण्यं नि शुष्मं नि वयस्तिर । दूरे वा सतो अंति वा ॥ ७ ॥

नि । शचोः । सोम । वृषण्यं । नि । शुष्मं । नि । वयः । तिर । दूरे । वा । सतः । अंति । वा ॥ ७ ॥

हे अमिषूयमाण सोम त्वं शचोर्वृषण्यं वर्षकं बलं नि तिर । निपूर्वस्तिरतिर्नाशार्थः । नाशय । तथा शचोः  
शुष्मं शोषकं तेषो नि तिर । तस्मैव वयोऽन्नं च नि तिर । कीदृशस्य शचोः । दूरे वा सतोऽस्मत्तो दूरे  
वर्तमानस्यांति वा सतोऽतिके वर्तमानस्य वा ॥ ॥ ७ ॥

प्र कविरिति सप्तर्चं विंशं सूक्तं । अथाद्याः पूर्ववत् । प्र कविरित्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारैभिरर्षति । साह्रान्विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥

प्र । कविः । देवऽवीतये । अव्यः । वारैभिः । अर्षति । साह्रान् । विश्वाः । अभि । स्पृधः ॥ १ ॥

कविर्मेधावी सोमो देववीतये देवानां पानायाव्योऽवेर्वैरिभिर्वैरिर्दशापविचेण प्रार्षति । प्रकर्षेण गच्छति ।  
साह्राञ्शत्रूणां सोढा सोमो विश्वाः स्पृधः सर्वान्संग्रामाग्निंसकान्वाभि भवतीति शेषः ॥

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमंतमिन्वति । पवमानः सहस्रिणं ॥ २ ॥

सः । हि । स्म । जरितृऽभ्यः । आ । वाजं । गोऽमंतं । इन्वति । पवमानः । सहस्रिणं ॥ २ ॥

स हि ष्म स खलु पवमानः सोमो जरितृभ्यः स्तोतृभ्यो गोमंतं बज्रमिगोभिर्गुक्तं सहस्रिणं सहस्रसंख्याकं  
वाजमन्नमाभिमुखमिन्वति । व्याप्नोति । प्रयच्छतीत्यर्थः ॥

परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥

विश्वानि । चेतसा । मृशसे । पवसे । मती । सः । नः । सोम । श्रवः । विदः ॥ ३ ॥

हे सोम त्वं चेतसा स्वीयेनास्मदनुकूलेन चित्तेन विश्वानि सर्वाणि धनानि परि मृशसे । प्रयच्छसीत्यर्थः ।  
मती मत्वास्तुत्या पवसे । चरसि रसं । स त्वं हे सोम नोऽस्माभ्यं श्रवोऽन्नं विदः । देहि ॥



अभ्यर्च्य बृहद्यशो मघवन्नो ध्रुवं रयिं । इधं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

अभि। अभ्यर्च्य। बृहत्। यशः। मघवत्ऽभ्यः। ध्रुवं। रयिं। इधं। स्तोतृऽभ्यः। आ। भर॥४॥

हे सोम बृहद्यशो महती कीर्तिमभ्यर्च्य। अभिगमय। मघवन्नो हविष्यन्नोऽन्नं ध्रुवं रयिं धनं चाभ्यर्च्य। किंचिदमन्नं स्तोतृभ्योऽन्नममा भर। आहर॥

त्वं राजैव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिष्य। पुनानो वहे अद्भुत ॥५॥

त्वं। राजाऽइव। सुऽव्रतः। गिरः। सोम। आ। विवेशिष्य। पुनानः। वहे। अद्भुत॥५॥

हे सोम सुव्रतः सुकर्मा पुनानस्त्वं राजैव गिरोऽसदीयाः क्षुतीरा विवेशिष्य। आविशिष्य। हे वहे घोडरसुत महन्तोम॥

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः। सोमश्चमूषु सीदति ॥६॥

सः। वह्निः। अप्सु। दुस्तरः। मृज्यमानः। गभस्त्योः। सोमः। चमूषु। सीदति॥६॥

स सोमो वह्निर्वोढा यज्ञादेरप्संतरिषि वर्तमानो दुष्टरो दुःखेनान्यैस्तरणीयो मृज्यमानः शोधमानो गभस्त्योर्हस्तयोरेवभूतः सप्त चमूषु पात्रेषु सीदति॥

क्रीकुर्मखो न मंहयुः पविचं सोम गच्छसि। दधत्तोचे सुवीर्यं ॥७॥

क्रीकुः। मखः। न। मंहयुः। पविचं। सोम। गच्छसि। दधत्। स्तोचे। सुऽवीर्यं॥७॥

हे सोम क्रीकुः क्रीडनशीलस्त्वं मंहयुः। मंहतिर्दानकर्मा। दानेच्छुर्मखो न दानमिव पविचं गच्छसि। किं जुर्वन्। स्तोचे क्षुतिकर्चं सुवीर्यं शोभनवीर्यं दधत्प्रयच्छन्॥ १०॥

एते धावंतीति सप्तर्चमेकविंशं सूक्तं। अष्टाद्याः पूर्ववत्। एते धावंतीत्यनुक्रांतं॥ गतो विनियोगः॥

एते धावंतींदवः सोमा इंद्राय घृष्वयः। मत्सरासः स्वर्विदः ॥१॥

एते। धावंति। इंदवः। सोमाः। इंद्राय। घृष्वयः। मत्सरासः। स्वऽविदः॥१॥

एते सोमा इंद्राय धावंति। गच्छन्ति। कीदृशा एते। इंदवः छेदयितारो दीप्ता वा घृष्वयो चर्यन्शीला मत्सरासो मादयितारः स्वर्विदः सर्वोक्त्य संभयितारः॥

प्रवृष्वंतो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः। स्वयं स्तोचे वयस्कृतः ॥२॥

प्रऽवृष्वंतः। अभिऽयुजः। सुष्वये। वरिवऽविदः। स्वयं। स्तोचे। वयऽकृतः॥२॥

प्रवृष्वंतः सुवानं प्रक्षेपणं संभजंतः तथामियुजोऽभियोजयितारः सुष्वये सुहृन्निषवकर्चं वरिवोविदः। वरिव इति धननाम। तस्य संभयितारः स्वयं स्तोचे वयस्कृतोऽन्नस्य कर्तारः। एते धावंतीति संबंधः॥

वृथा क्रीकंत इंदवः सधस्यमभ्येकमिह। सिंधोरूर्मा व्यक्षरन् ॥३॥

वृथा। क्रीकंतः। इंदवः। सधऽस्यं। अभि। एका। इत्। सिंधोः। जूर्मा। वि। अक्षरन्॥३॥

वृथानायासेन क्रीकंत इंदवः सोमा एकनिदेकमेव सधस्यं सहस्रानं द्रोणकवशं वाभ्यक्षरमिति शेषः। सिंधोरूर्मा वसतीवरीषु व्यक्षरन्॥

एते विश्वानि वार्या पर्वमानास आशत । हिता न सप्तयो रथे ॥४॥

एते । विश्वानि । वार्या । पर्वमानासः । आशत । हिताः । न । सप्तयः । रथे ॥४॥

एते सोमाः पर्वमानासः पूयमाना विश्वानि वार्या वार्याणि वरणीयाणि धनान्याशत । आमुवन् । रथे हिताः स्थापिता न सप्तयोऽश्वा इव । ते यथा रथमभिमतं देशं प्राप्नुवन्ति तद्वज्रनखाकं प्रायच्छन्नित्यर्थः ॥

आस्मिन्पिशंगमिन्दवो दधाता वेनमादिशे । यो अस्मभ्यमरावा ॥५॥

आ । अस्मिन् । पिशंगं । इन्दवः । दधात । वेनं । आऽदिशे । यः । अस्मभ्यं । अरावा ॥५॥

हे इन्दवः सोमाः अस्मिन्पिशंगमिन्दवोऽस्मिन्पिशंगं वज्ररूपं मयिमुक्ताहिरण्यादिभेदेन धानारूपं वेनं कामयन्तं वज्रविधं काममादिशेऽस्मभ्यमादिशनाया दधात । प्रायच्छत । यो यजमानोऽस्मभ्यमरावा ----- प्रयच्छति प्राप्तकाम एव खल्वुत्तिग्मः प्रयच्छति ॥

अमुर्न रथ्यं नवं दधाता केतमादिशे । अमुकाः पवध्वमर्णसा ॥६॥

अमुः । न । रथ्यं । नवं । दधात । केतं । आऽदिशे । अमुकाः । पवध्वं । अर्णसा ॥६॥

अमुर्नोऽस्य भासमानो रथस्वामीव स यथा रथ्यं रथस्य नेतारं नवं सुखं कुशलं सारथिगमय आधत्ते तद्वदस्मदीयेऽस्मिन्मादिशे स्वामिनि केतं प्रज्ञानं दधात । स्थापयत । हे सोमाः योऽस्माभ्यं प्रयच्छति तस्मिन्नित्यर्थः । हे सोमाः अर्णसोदकेन मुक्ता दीप्ताः संतः पवध्वं । पवध्वं ॥

एत उ ते अवीवशन्काष्टा वाजिनो अक्रत । सतः प्रासाविषुर्मतिं ॥७॥

एते । उं इति । ते । अवीवशन् । काष्टा । वाजिनः । अक्रत । सतः । प्र । असाविषुः ।

मतिं ॥७॥

त्वे त एत उ एत एव सोमा अवीवशन् । कामयन्ति यज्ञं । काष्टा च वाजिनो वधवंतोऽन्नवंतो वा सोमाः काष्ठामक्रत । निषासस्त्राणमकुर्वन् । द्रोणकलशादुन्नता यष्टानित्यर्थः । सतो यजमानस्य स्त्रीतुर्वा मतिं पुष्टिं सुतिं वा प्रासाविषुः । प्रेरयन् ॥ ॥११॥

एते सोमास इति सप्तर्षे द्वाविंशं सूक्तं । ऋथायाः पूर्ववत् । एते सोमास इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

एते सोमास आशवो रथा इव प्र वाजिनः । सर्गाः सृष्टा अहेषत ॥९॥

एते । सोमासः । आशवः । रथाऽइव । प्र । वाजिनः । सर्गाः । सृष्टाः । अहेषत ॥९॥

एते पूयमानाः सोमासः सोमाः कृष्टा अध्वर्युणाशवो दशापविवादधीगमने शीघ्राः प्रहेषत । प्रहेषते । शीघ्रगमने कृष्टांतद्वयं । आषी कृष्टाः शीघ्रा रथा इव तथोक्तश्रवणा वाजिन इव वेजयन्तोऽश्वा इव ॥

एते वाता इवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः । अग्नेरिव भूमा वृथा ॥२॥

एते । वाताऽइव । उरवः । पर्जन्यस्येव । वृष्टयः । अग्नेऽइव । भूमाः । वृथा ॥२॥

एते सोमा उरवो महान्तो वाता इव वायव इव वृथानायासेन व्यानमुरित्युत्तरव संबंधनीयं । अथवा-  
धाहरेण निःसरंतीति शब्दः । तथा पर्जन्यस्य वृष्टय इव वर्षा यथा तथैव । किंचाग्नेर्भूमा भूमया ज्वाला-  
संपारा इव ॥



एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः । विपा व्यानश्रुधियः ॥३॥

एते । पूताः । विपः ऽचितः । सोमासः । दधिऽआशिरः । विपा । वि । आनश्रुः । धियः ॥३॥

एते सोमासः सोमाः पूताः शुभा विपश्चितः प्राज्ञा दध्याशिरो दध्याश्रयणा विपा प्रज्ञानेन धियो ऽसादीयानि कर्माणि व्यानश्रुः । व्याप्नुवन्ति ॥

एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः । इयक्षंतः पथो रजः ॥४॥

एते । मृष्टाः । अमर्त्याः । ससृऽवांसः । न । शश्रमुः । इयक्षंतः । पथः । रजः ॥४॥

एते सोमा मृष्टा दशापविषेण शोधिता अमर्त्या अमरणधर्मायाः ससृवांसो हविर्धानात्सरंतः पथो मार्गान्नवो लोकांश्चिचंतो गंतुमिच्छंतो न शश्रमुः । न शस्यन्ति ॥

एते पृष्ठानि रोदसोर्विप्रयंतो व्यानश्रुः । उतेदमुत्तमं रजः ॥५॥

एते । पृष्ठानि । रोदसोः । विऽप्रयंतः । वि । आनश्रुः । उत । इदं । उत्तमं । रजः ॥५॥

एते सोमा रोदसोर्बावापुथिव्योः पृष्ठानि विप्रयंतो विविधं गच्छंतो व्यानश्रुः । व्याप्नुवन्ति । उतापि चेदमुत्तमं रजो बुभुक्षे व्यानश्रुः । आरुतिद्वारेणेति भावः । रोदसोरित्यन्तरिक्षोऽभिप्रेतः ॥

तंतुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत । उतेदमुत्तमाय्यं ॥६॥

तंतुं । तन्वानं । उत्तमं । अनु । प्रऽवतः । आशत । उत । इदं । उत्तमाय्यं ॥६॥

तंतुं यज्ञं तन्वानमुत्तममुत्कृष्टं सोममन्वाशत प्रवतो नवः । उतापि चेदं कर्मिणो सोमेनोत्तमाय्यमुत्तमीकृतं । अथवा । तंतुं तन्वानं सोमं प्रवतोऽधःस्थिताः सर्वा अन्वाशत । उतेदमुत्तमाय्यं रजः । बुभुक्षे इत्यर्थः । सोऽध्वन्वसुते पुथिव्यां चांतरिक्षे च । उत्तमीकृतमुत्तमाय्यं ॥

त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः । तत् तंतुमचिक्रदः ॥७॥

त्वं । सोम । पणिभ्यः । आ । वसु । गव्यानि । धारयः । तत् । तंतुं । अचिक्रदः ॥७॥

हे सोम त्वं पणिभ्योऽसुरेभ्यो जुव्येभ्यो वा सकाशाद्गव्यानि गोहितानि वसु वसूनि गोरूपानि वसूनि चेति वाह्य धारयः । धारयसि । तथा तंतुं यज्ञं प्रति तत् विकृतं यथा भवति तथाचिक्रदः । शब्दमकार्षीः ॥ ॥१२॥

सोमा अक्षयमिति सप्तर्चं चयोविंशं सुतं । अद्याद्याः पूर्ववत् । सोमा अक्षयमित्यनुकांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

सोमा असृयमाशवो मधोर्मदस्य धारया । अभि विश्वानि कार्या ॥१॥

सोमाः । असृयं । आशवः । मधोः । मदस्य । धारया । अभि । विश्वानि । कार्या ॥१॥

आशवः शीघ्राः सोमा अक्षयं । अक्षयन् । क्षयन्ति । मधोर्मधुरस्य मदस्य मदकरस्य धारयाक्षयमिति संबंधः । किं प्रति उच्यते । अभि लघीकृत्य विश्वानि सर्वाणि कार्या कार्यानि लोकाणि प्रति । लोचसमय इत्यर्थः ॥

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनंत सूर्ये ॥२॥

अनु । प्रत्नासः । आयवः । पदं । नवीयः । अक्रमुः । रुचे । जनंत । सूर्ये ॥२॥

प्रत्नासः पुराणाः केचिदायवः शीघ्रगमना चक्षुः नवीयो नवतरं पदमन्वक्तुः । अनुक्रमन्ति । रूपकव्या-  
हारेण सोमाः स्तूयन्ते । एवे दीप्यै सूर्यं जगन्त । कुर्वन्ति । दीप्तं कुर्वन्तीत्यर्थः । सोमप्यायनेन हि चन्द्रो रोचते ॥

आ पवमान नो भरायो अदाप्नुषो गयं । कृधि प्रजावतीरिषः ॥३॥

आ । पवमान । नः । भर । अर्यः । अदाप्नुषः । गयं । कृधि । प्रजाऽवतीः । इषः ॥३॥

हे पवमान सोम त्वं नोऽस्मभ्यमर्योऽरेरदाप्नुषोऽप्रयच्छतो गयं गृहं गृहीपलचितं धनमा भर । आहर ।  
तथास्मभ्यं प्रजावतीरिषश्च कृधि । कृष ॥

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदं । अभि कोशं मधुश्चुतं ॥४॥

अभि । सोमासः । आयवः । पवन्ते । मद्यं । मदं । अभि । कोशं । मधुऽश्चुतं ॥४॥

आयवो जन्तारः सोमासः सोमा मद्यं मदकरं रसमभि पवन्ते । चरन्ति । तथा मधुश्चुतं मधुस्त्राविणं कोशं ।  
रसाधारेण कोशशब्देन तचामिश्रितो रसो लक्ष्यते । तमभि पवन्त इति शेषः ॥

सोमो अर्षति धर्णसिर्दधान इन्द्रियं रसं । सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥५॥

सोमः । अर्षति । धर्णसिः । दधानः । इन्द्रियं । रसं । सुऽवीरः । अभिशस्तिऽपाः ॥५॥

सोमोऽर्षति । गच्छति । कीदृशः सः । धर्णसिर्धारको जगतां तथेन्द्रियमिन्द्रियवर्धकं रसं दधानो धार-  
यन्सुवीरः सुवीर्योऽभिशस्तिपा अभिशस्तेः पाता । अभितो हिंसा ततो रक्षक इत्यर्थः । सोमपानं ब्रह्महत्यादि-  
निंदाभयमुमाद्येति प्रसिद्धं ॥

इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः । इन्दो वाजं सिषाससि ॥६॥

इन्द्राय । सोम । पवसे । देवेभ्यः । सधऽमाद्यः । इन्दो इति । वाजं । सिषाससि ॥६॥

हे सोम सधमाद्यः । सधमादो यज्ञः । तदर्हस्त्वमिन्द्राय देवेभ्यश्चान्येभ्यः पवसे । चरसे । हे तादृशेन्दो सोम  
अस्मभ्यं वाजमन्नं सिषाससि । दातुमिच्छसि ॥

अस्य पीत्वा मदानांमिन्द्रो वृचाण्यप्रति । जघान जघनच्च नु ॥७॥

अस्य । पीत्वा । मदानां । इन्द्रः । वृचाणि । अप्रति । जघान । जघनत् । च । नु ॥७॥

मदानां मदकराणां मध्येऽतिशयेन मदकरमस्मान् सोमं पीत्वा वृचाणि शत्रुणप्रतिगतः सन्निद्रो जघान ।  
हतवान् । नु चिमं जघनच्च । हंतु चेदानीमपि ॥ ॥१३॥

प्र सोमास इति सप्तर्षे चतुर्विंशं सूक्तं । असितो देवलो वर्षिर्गायत्री छन्दः सोमो देवता । प्र सोमास  
इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इंदवः । श्रीणाना अप्सु मृजत ॥१॥

प्र । सोमासः । अधन्विषुः । पवमानासः । इंदवः । श्रीणानाः । अप्सु । मृजत ॥१॥

सोमासः सोमाः पवमानासः पूयमाना इंदवो दीप्ताः प्राधन्विषुः । धन्वतिर्गतिवर्मा । प्रगच्छन्ति । किंच  
श्रीणाना गोभिः अयमाणा अप्सु वसतीवरीषु च मृजत । मृज्यन्ते ॥

अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः । पुनाना इंदमाशत ॥२॥

अभि । गावः । अधन्विषुः । आपः । न । प्रऽवता । यतीः । पुनानाः । इन्द्रं । आशत ॥२॥



भावो गमनशीला इंद्वोऽभ्यध्विषुः । अभिनवन्ति दशापविषं । किमिव । प्रवता प्रवणवता देशेन यतीर्गच्छन्त्य आपो नाप इव । पश्चात्पुनाना इंद्रं प्रीणयितुमाशत । व्याप्तुवन् । आऊतिप्रणाड्योऽमेव वा व्याप्तुवन् ॥

प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय पातवे । नृभिर्यतो वि नीयसे ॥३॥

प्र । पवमान । धन्वसि । सोम । इन्द्राय । पातवे । नृऽभिः । यतः । वि । नीयसे ॥३॥

हे पवमान सोम इन्द्रार्थिद्रस्य पातवे पानाय प्र धन्वसि । प्रगच्छत्याहवनीयं प्रति हविर्धानात् । तदेवाह । नृभिर्वेतुभिर्चर्चस्त्रिभिर्यतो विनीतो वि नीयसे हविर्धानात् । अथवा । पवमान प्र धन्वसि पातं प्रतीद्रपानाय तदर्थं हविर्धानादि नीयसे ॥

त्वं सोम नृमादन्ः पवस्व चर्षणीसहे । सस्त्रियो अनुमाद्यः ॥४॥

त्वं । सोम । नृऽमादन्ः । पवस्व । चर्षणिऽसहे । सस्त्रिः । यः । अनुऽमाद्यः ॥४॥

हे सोम त्वं नृमादनो वृणां मादयिता त्वं चर्षणीसहे । चर्षणयो मनुष्या द्वेष्टारः । तेषां समभिमविष इन्द्राय पवस्व । चर । यस्त्वं सस्त्रिः शुचोऽनुमाद्यः सुत्यः स पवसेति समन्वयः ॥

इंदो यदद्रिभिः सुतः पविचं परिधावसि । अरमिंद्रस्य धावे ॥५॥

इंदो इति । यत् । अद्रिऽभिः । सुतः । पविचं । परिऽधावसि । अरं । इंद्रस्य । धावे ॥५॥

हे इंदो त्वं यद्यदद्रिभिर्धावभिः सुतोऽभिषुतः पविचं दशापविषं परिधावसि परिगच्छसि तदेन्द्रस्य धावे स्त्राणायाधारकायोदराय वारं पर्याप्तो भवसि ॥

पवस्व वृचहंतमोक्थेभिरनुमाद्यः । शुचिः पावको अश्रुतः ॥६॥

पवस्व । वृचहन्ऽतम् । उक्थेभिः । अनुऽमाद्यः । शुचिः । पावकः । अश्रुतः ॥६॥

हे वृचहंतम शत्रूणामतिशयेन हंतारिद्र त्वं पवस्व । चर । कीदृशस्त्वं । उक्थेभिः शस्त्रैरनुमाद्यः सुत्यः शुचिः शुद्धः पावकोऽन्यस्य शोधकोऽश्रुतो महान् । एवमहानुभावः पवस्व ॥

शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः । देवावीरघशंसहा ॥७॥

शुचिः । पावकः । उच्यते । सोमः । सुतस्य । मध्वः । देवऽअवीः । अघशंसऽहा ॥७॥

सुतस्त्राभिषुतस्य मध्वो मदकरस्य वक्ष्यात्माकः सोमो रसकूपः शुचिः स्वयं शुद्धः पावकः शोधक-  
उच्यते । तथा देवावीर्देवानामविता तर्पयिताघशंसहा । अघं पापं शंसंगीत्यघशंसा अशुराः । तेषां इति  
उच्यते ॥ ॥१४॥ ॥१॥

द्वितीयेऽनुवाके षड्विंशत्सूक्तानि । तत्र पवसेति षड्वचं प्रथमं सूक्तं वृद्धश्रुतनाकोऽनस्तपुषस्त्वार्यं नायवं पवमानसोमदेवतावं । अनुक्रांतं च । पवस्व षड् वृद्धश्रुत आगस्त्य इति ॥ नतो विनियोगः ॥

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुतो वायवे मदः ॥१॥

पवस्व । दक्षऽसाधनः । देवेभ्यः । पीतये । हरे । मरुत्ऽभ्यः । वायवे । मदः ॥१॥

हे हरे हरितवर्णं पापहर्तृवा सोम दक्षसाधनः । दक्षो बभूव । तस्य साधको मदो मदकरस्य त्वं पवस्व । चर । देवेभ्य इन्द्रादिभ्यः पीतये पानाय । तथा मरुतो वायवे च पीतये पवन् ॥

पवमान धिया हितोऽभि योनिं कनिक्रदत् । धर्मेणा वायुमा विश ॥२॥

पवमान । धिया । हितः । अभि । योनिं । कनिक्रदत् । धर्मेणा । वायुं । आ । विश ॥२॥

हे पवमान सोम धिया कर्मणास्त्रापरिणांगुल्या वा हितो धृतः सन्कनिक्रदच्छब्दं कुर्वन्योनिं स्थानं ग्रहं वाभि विशेति शेषः । तदेवाह । धर्मेणा वायुं । वायुसंबन्धि पाचमित्यर्थः । तदा विश । प्रविश ॥

सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः । वृचहा देववीतमः ॥३॥

सं । देवैः । शोभते । वृषा । कविः । योनौ । अधि । प्रियः । वृचऽहा । देवऽवीतमः ॥३॥

अयं सोमः सं शोभते देवैः सह योनौ स्थाने स्वीयेऽधिष्ठितो वृषा कामानां वर्षकः कविः क्रांतप्रज्ञः प्रियः प्रियभूतः सर्वेषां यद्वा प्रीणयिता वृचहा वृचस्य इता देववीतमोऽतिशयेन देवान्कामयमानः एवंमहा-  
गुभावः सोमः सं शोभते ॥

विश्वा रूपाण्याविशन्पुनानो याति हर्यतः । यचामृतास आसते ॥४॥

विश्वा । रूपाणि । आऽविशन् । पुनानः । याति । हर्यतः । यच । अमृतासः । आसते ॥४॥

विश्वा सर्वाणि रूपाण्याविशन्पुनानः पूयमानो हर्यतः कमनीयः ॥ हर्य गतिकांथोः ॥ इन्द्रो याति । गच्छति । यचामृतासोऽमृता देवा आसते तिष्ठति तं देशं याति ॥

अरूषो जनयगिरः सोमः पवत आयुषक् । इद्रं गच्छन्कविक्रतुः ॥५॥

अरूषः । जनयन् । गिरः । सोमः । पवते । आयुषक् । इद्रं । गच्छन् । कविऽक्रतुः ॥५॥

अथ आरोचमानः सोमो गिरः शब्दाज्जनयन्पवते । चरति । किं कुर्वन् । आयुषगुणशक्तमिद्रं गच्छन्वा-  
मुषन् कविक्रतुः क्रांतप्रज्ञः ॥

आ पवस्व मदिंम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदं ॥६॥

आ । पवस्व । मदिन्ऽतम । पवित्रं । धारया । कवे । अर्कस्य । योनिं । आऽसदं ॥६॥

हे मदिंम मादयितुम कवे क्रांतप्रज्ञ सोम त्वं पवित्रमतिक्रम्य धारया पवस्व । किमर्थं । अर्कस्यार्चनी-  
यक्षेत्रस्य योनिं स्थानमासदं प्राप्तुं ॥ ॥१५॥

तममृच्छतेति षड्वचं द्वितीयं सूक्तं दृष्ट्व्युत्पुचस्त्रिभवाहनाच्च आर्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं ।  
अमुक्रांतं च । तममृच्छतेध्मवाहो दार्ढ्युत इति ॥ गतो विनियोगः ॥

तममृक्षंत वाजिनमुपस्थे अदितेरधि । विप्रासो अण्व्या धिया ॥७॥

तं । अमृक्षंत । वाजिनं । उपऽस्थे । अदितेः । अधि । विप्रासः । अण्व्या । धिया ॥७॥

तं वाजिनमश्वमश्वदायुं । व्याप्तमित्यर्थः । अदितेः पृथिव्या उपस्थ उत्संने । अधीति सप्तम्यर्थानुवादी ।  
अमृक्षंत । शोधितवंतः । के । विप्रासो मेधाविनोऽध्वर्वादयः । केन साधनेन । अण्व्यांगुल्या धिया प्रज्ञया  
शुत्वा वामृक्षंत । अथवाख्या सूक्तया धियांगुल्येति विशेष्यविशेषणभावः ॥

तं गावो अभ्यनूषत सहसंधारमक्षितं । इद्रं धर्तारमा दिवः ॥२॥

तं । गावः । अभि । अनूषत । सहसंधारं । अक्षितं । इद्रं । धर्तारं । आ । दिवः ॥२॥



तं सोमं गावो गन्धः सुतयोऽभ्युवत । अस्तुवन् । कीदृशं तं । सहस्रधारं बज्रधारमभितमचीणमिदं  
दीप्तं दिवो बुभुक्षसा धर्तारं सर्वतो धारकं । सोमाधारत्वाद्युभोक्तासिनां संस्त्राणस्य ॥

तं वेधां मेधयाह्यन्पवमानमधि द्यवि । धर्णसिं भूरिधायसं ॥ ३ ॥

तं । वेधां । मेधया । अह्यन् । पवमानं । अधि । द्यवि । धर्णसिं । भूरिऽधायसं ॥ ३ ॥

वेधां विधातारं पवमानं तं मेधया प्रक्षयाह्यन् । ग्रहियन्ति । किं प्रति । अधि द्यवि बुभुक्षं प्रति । पुनः  
कीदृशं । धर्णसिं सर्वस्य धारकं भूमिधायसं बह्वनां कर्तारं ॥

तमह्यन्भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः । पतिं वाचो अदाभ्यं ॥ ४ ॥

तं । अह्यन् । भुरिजोः । धिया । संऽवसानं । विवस्वतः । पतिं । वाचः । अदाभ्यं ॥ ४ ॥

तं सोमं विवस्वतः परिचरत अस्त्रिजो भूरिजोर्बाह्वोर्धियांगुह्याह्यन् । ग्रहियन् । कीदृशं तं । संवसानं  
वसंतं पाचि वाचः सुतेः पतिं स्वामिगमदाभ्यमदंमनीयं ॥

तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । हर्यंतं भूरिचक्षसं ॥ ५ ॥

तं । सानौ । अधि । जामयः । हरिं । हिन्वंति । अद्रिऽभिः । हर्यंतं । भूरिऽचक्षसं ॥ ५ ॥

तं सोमं हरिं हरितवर्णं सानावधि समुच्छिते देशे । अधीति सप्तम्यर्थानुवादी । जामयोऽंगुलयो  
हिन्वंति । प्रेरयन्ति । अधिषुखंत्यद्रिभिर्वावभिः । कीदृशं । हर्यंतं कमनीयं भूरिचक्षसं बज्रद्रुष्टारं ॥

तं त्वा हिन्वंति वेधसः पवमान गिरावृधं । इंदुविद्राय मत्सरं ॥ ६ ॥

तं । त्वा । हिन्वंति । वेधसः । पवमान । गिराऽवृधं । इंदो इति । इंद्राय । मत्सरं ॥ ६ ॥

हे पवमान सोम उक्तगुणविशिष्टं त्वा त्वां हिन्वंति । प्रेरयन्ति । कक्षी । इंद्राय । के । वेधसो विधातार  
अस्त्रिजः । कीदृशं त्वां । गिरावृधं सुत्वा वर्धमानमिदं दीप्तं सख्यं वा मत्सरं मदकरं ॥ १६ ॥

एष कविरिति षड्वचं तृतीयं सूतं नृमेधनास्य आंगिरसस्यार्थं गाधवं सौम्यं । एष कविर्नृमेध इत्यनुक्रांतं ।  
उक्तो विनियोगः ॥

एष कविरभिष्टुतः पविचे अधि तोशते । पुनानो मन्त्रप सिधः ॥ १ ॥

एषः । कविः । अभिऽस्तुतः । पविचे । अधि । तोशते । पुनानः । मन् । अप । सिधः ॥ १ ॥

एष सोमः कविर्मेधाव्यभिष्टुतोऽमितः सुतः पविचेऽधि दशापविचमतीत्य तोशते । यद्यपि तोशतिर्वधकर्मा  
तथापि हनने गतिसञ्ज्ञावाद्वा गतिमात्रे वर्तते । गच्छतीत्यर्थः । अथवा । पविचेऽधि कृष्णाजिने तोशते ।  
हन्यते । पीड्यत इत्यर्थः । किं कुर्वन् । पुनानः पूयमानः सिधः शत्रून्प मन्त्रपगमयन् ॥

एष इंद्राय वायवे स्वर्जित्परि पिच्यते । पविचे दक्षसार्धनः ॥ २ ॥

एषः । इंद्राय । वायवे । स्वऽजित् । परि । पिच्यते । पविचे । दक्षऽसार्धनः ॥ २ ॥

एष सोमः स्वर्जित्स्वर्गस्य सर्वस्य वा जेतुं इंद्राय वायवे च पविचे परि पिच्यते । कीदृश एषः । दक्षसार्धनो  
वसकारी ॥

एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः । सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥

एषः । नृऽभिः । वि । नीयते । दिवः । मूर्धा । वृषा । सुतः । सोमः । वनेषु । विश्वऽवित् ॥ ३ ॥

एष सोमो नृभिः कर्मनेतृभिर्हस्विभिर्वि जीयते । विविधं जीयते । एष कीदृशः । दिवो युषीकस्य सूर्या  
शिरोऽवतप्रधानभूतो वृषाभिमततचर्चकः सुतोऽभिपुतः । जुष जीयते । जनेषु वननीयेषु पापेषु वनसंभूतद्रुमवि-  
कारेषु वा पापेषु । विश्ववित्सर्वज्ञ एष इति समन्वयः ॥

एष गव्युरचिक्रत्पवंमानो हिरण्ययुः । इदं सचाजिदस्तुतः ॥४॥

एषः । गन्धुः । अचिक्रदत् । पर्वमानः । हिरण्यऽयुः । इन्दुः । सचाऽजित् । अस्तृतः ॥ ४ ॥

एष सोमः पवमानः पूयमानोऽभिक्रदत् । शब्दं करोति । कथंभूतः सण । गम्बुरस्यायं ना इच्छन् हिरण्य-  
पुर्धनमिच्छन्तिदुर्दंतिः सन्सचाजिम्बहतः श्वोरसुरादेजैताभृतः लयमन्यैरहिंसास सण ॥

एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि । पविषे मत्सरो मदः ॥५॥

एषः । सूर्येण । हासते । पवमानः । अधि । द्यवि । पवित्रे । मत्सरः । मदः ॥ ५ ॥

एष पवमानः पूयमानः सोमः सूर्येण देवेनाधि ऋषि सुखोक्तेऽतस्मिन् पविषि हासते । परित्वष्यते । मत्सरो मद्करो मद्ः सोमः । यद्यप्यध्वर्युहसाहृशापविषे परित्वष्यते सोमः तथाप्यतस्मिन् सूर्येण पविषि त्वष्यत इति भावना वीर्यवत्त्वाय । सत्स्वप्यव्यदेवेषु सोमस्त्रावणे सूर्यस्य कः प्रसंग इति न वाच्यं सूर्यरश्मिभिरेव सोमस्त्रा-  
थायनात् ॥

एष शुष्यसिन्धुदन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्दुमा ॥६॥

एषः । शुष्मी । असि॒स्य॒दत् । अ॒न्तरि॒क्षे । वृ॒षा । हरिः । पु॒नानः । इ॒न्दुः । इ॒न्द्र । आ ॥ ६ ॥

एष शुष्को बलवान्सोमोऽन्तरिक्षे दशापविधेऽसिञ्चदत् । खंदते । कीदृश एषः । पृषा वर्षको हरिर्हरि-  
तवर्णः पुमान् । पुयमान इंदुर्दीप्तविवेद्रमा । इंद्रं चाग्निमच्छतीति श्रेयः । आ इति आर्थे ॥ १७ ॥

एष वाजीति षडृचं चतुर्थं सूतं प्रियमेधस्त्रार्थं नाथचं सीम्नं । एष वाजी प्रियमेध इत्यनुप्रातं ॥ गतो विनियोगः ॥

एष वाजी हितो नृभिर्विष्णुविन्मनसस्पतिः । अथ्यो वारं वि धावति ॥१॥

एषः। वाजी। हितः। नृऽभिः। विश्वऽवित्। मनसः। पतिः। अण्यः। वारं। विधावति ॥१॥

एष सोमो वाजी गमनशीलो हितोऽध्वर्युणा पात्रे निहितो विश्वदित्सर्वज्ञो मनसः खोचस्व पतिः  
स्वामी । अथवा सोमस्य मनोभिमानित्वात्तमनसः स्वामित्वं चंद्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशदिति श्रुतिः ।  
तादृशोऽसावथो वारनवेर्वाणं दृशापपिचं वि धायति । विविधं गच्छति ॥

एष पवित्रे अक्षरत्तोमो देवेभ्यः सुतः । विष्णा धामान्याविशन् ॥२॥

एषः । पवित्रे । अक्षरत् । सोमः । देवेभ्यः । सुतः । विश्वा । धामानि । आऽविशन् ॥२॥

एष सोमो देवेभ्यो देवार्थं सुतोऽभिषुतः सन्पविषेऽश्वरत् । ज्ञवति । विश्वा सर्वाणि भ्रातृणि देवशरीरा-  
णाविशन्प्रविशन् । प्रवेष्टुमित्यर्थः ॥

एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः । वृचहा देववीतमः ॥३॥

एषः । देवः । शुभायते । अधि । योनौ । अमर्त्यः । वृचऽहा । देवऽवीतमः ॥ ३ ॥

एष सोमो देवः शुभायते । शोभते । कुश । अधि योजी स्त्रीये स्थाने । कीदृश एवः । चमत्तोऽमरसधर्मा  
पुष्टा ग्रहता देवसोतमो विशेषेण देवानां कामयिता ॥



एष वृषा कनिक्कदह्शभिर्जामिभिर्यतः । अमि द्रोणानि धावति ॥४॥

एषः । वृषा । कनिक्कदत् । दह्शभिः । जामिऽभिः । यतः । अमि । द्रोणानि । धावति ॥४॥

एष वृषा वर्षिता कामानां कनिक्कदच्छब्दं कुर्वन् दह्शभिर्जामिभिरंगुलीभिर्यतो धृतो द्रोणानि द्रुममयाणि पात्राण्यमि धावति । अमिगच्छति ॥

एष सूर्यमरोचयत्पवमानो विचर्षणिः । विश्वा धामानि विश्ववित् ॥५॥

एषः । सूर्यं । अरोचयत् । पवमानः । विऽचर्षणिः । विश्वा । धामानि । विश्वऽवित् ॥५॥

एष सोमः सूर्यमरोचयत् । रोचयति स्वरसेन । पवमानः पूयमानो विचर्षणिः सर्वस्य द्रष्टा विश्ववित्सर्ववित् । न केवलं सूर्यं किंतु विश्वा सर्वाणि धामानि तेषः स्थानानि रोचयति ॥

एष शुष्मदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति । देवावीरंघशंसहा ॥६॥

एषः । शुष्मी । अदाभ्यः । सोमः । पुनानः । अर्षति । देवऽअवीः । अघशंसऽहा ॥६॥

एष सोमः शुष्मी वलवानदाभ्योऽदंमनीयः पुनानः पूयमानोऽर्षति । गच्छति । देवावीर्देवानामविताघशंसहा । अघाञ्शंसतीत्यघशंसाः । तेषां हंता ॥ ॥१८॥

प्राप्तेति षड्वचं पंचमं सूक्तं नृमेधस्थांगिरसस्थार्यं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । अनुक्रम्यते च । प्रास्य नृमेध इति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्रास्य धारां अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसा । देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१॥

प्र । अस्य । धाराः । अक्षरन् । वृष्णः । सुतस्य । ओजसा । देवान् । अनु । प्रऽभूषतः ॥१॥

अस्य सोमस्य वृष्णो वर्षकस्य सुतस्याभिषुतस्य देवाननु प्रभूषतः प्रभवितुमिच्छत ओजसा स्ववीर्येण धाराः प्राचरण । प्रकर्षेण चरति ॥

सप्तिं मृजंति वेधसो गृणंतः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यं ॥२॥

सप्तिं । मृजंति । वेधसः । गृणंतः । कारवः । गिरा । ज्योतिः । जज्ञानं । उक्थ्यं ॥२॥

सप्तिमश्चक्ष्णाणीयं सर्पणस्वभावं वा सोमं मृजंति । शोधयन्ति । के । गृणंतः क्षुवंतो वेधसो विधातारः कारवः कर्मकर्तारोऽध्वर्यादयो गिरा क्षुत्वा साधनेन । कीदृशं सप्तिं । ज्योतिर्दीप्यमानं सोमं जज्ञानं जायमानं । प्रवृद्धमित्यर्थः । अथवा ज्योतिर्वीचमानं अयं वै ज्योतिर्यत्सोम इति श्रुतेः । उक्थ्यं क्षुत्वं ॥

सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धो समुद्रमुक्थ्यं ॥३॥

सुऽसहा । सोम । तानि । ते । पुनानाय । प्रभूवसो इति प्रभुऽवसो । वर्ध । समुद्रं ।

उक्थ्यं ॥३॥

हे सोम प्रभूवसो प्रभूतधन पुनानाय पूयमानस्य ते तव तानि तेषांसि सुषहा शोभनाभिभाषुकानि । यस्मादेवं तस्मात्समुद्रं समुद्रसदृशं द्रोणकलशमुक्थ्यं क्षुत्वं तं वर्ध । वर्धय । पूरय रसेन ॥

विश्वा वसूनि संजयन्पर्वस्त सोम धारया । इनु वेषांसि सध्र्यक् ॥४॥

विश्वा । वसूनि । संऽजयन् । पर्वस्व । सोम । धारया । इनु । वेषांसि । सध्र्यक् ॥४॥

हे सोम विश्वा सर्वाणि यसून्वसदर्थं संजयन्त्यसः । चर धारया । देवांसि देवाणि सर्वाणि सञ्जयन्तेवेन ।  
प्रेरय दूरदेशं प्रति ॥

रक्षा सु नो अररुषः स्वनात्समस्य कस्य चित् । निदो यच्च मुमुच्यहे ॥ ५ ॥

रक्षा । सु । नः । अररुषः । स्वनात् । समस्य । कस्य । चित् । निदः । यच्च । मुमुच्यहे ॥ ५ ॥

हे सोम नोऽस्मान्मु सुष्ठु रच । पालय । कक्षात् । अररुषोऽदातुः स्वनाच्छब्दाग्निदाह्यात् । किमेकस्मा-  
दानशीलस्य । न । समस्य सर्वस्य योऽस्ति तस्य सर्वस्य कस्यचित् । कंचनामुचन्नित्यर्थः । न केवलमदातुः  
स्वनात् । किं तर्हि । कस्य चित्कस्यापि निदो निंदकाद्रच । यच्च मुमुच्यहे यस्मिन्नक्षणे सति यच्च मुक्ता भवेम  
तेन रक्षणेन रक्षयेति ॥

एदो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया । ह्युमतं शुष्ममा भर ॥ ६ ॥

आ । इदो इति । पार्थिवं । रयिं । दिव्यं । पवस्व । धारया । ह्युमतं । शुष्मं । आ । भर ॥ ६ ॥

हे इदो क्लिप्तमान सोम त्वं धारया पवस्व । सर्वतः चर । पार्थिवं दिव्यं च रयिं धनं ह्युमतं दीप्तिमतं  
शुष्मं बलं चा भर । आहरासम्भं ॥ ॥ १९ ॥

प्र धारा इति षट्त्वं षष्ठं सूक्तं विंदुनास आंगिरसस्त्वार्यं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । प्र धारा विंदुरि-  
त्यनुक्रमशिका ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन् । पुनानो वाचमिष्यति ॥ १ ॥

प्र । धाराः । अस्य । शुष्मिणः । वृथा । पवित्रे । अक्षरन् । पुनानः । वाचं । इष्यति ॥ १ ॥

शुष्मिणो बलवतोऽस्य सोमस्य धाराः पवित्रे दशापवित्रे वृथाप्रयत्नेनाक्षरन् । स्रवंति । तदानीं पुनानः  
पूयमानः सोमो वाचं सुतिं स्वीयं धनिं वेधति । प्रेरयति ॥

इदुर्हियानः सोतृभिर्मृज्यमानः कनिक्रदत् । इयर्ति वसुमिन्द्रियं ॥ २ ॥

इदुः । हियानः । सोतृभिः । मृज्यमानः । कनिक्रदत् । इयर्ति । वसुं । इन्द्रियं ॥ २ ॥

अयमिदुर्दीप्तः सोमो हियानः प्रेर्यमाणो व्याप्रियमाणः । केः । सोतृभिर्चत्विग्भिः । पश्चाद्दशापवित्रे  
मृज्यमानः शोधमानः कनिक्रदच्छब्दं कुर्वन्निन्द्रियमिन्द्रस्य संबन्धिनमिन्द्रियमपि - करं वसुं शब्दमियर्ति ।  
प्रेरयति यहणसमये ॥

आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवतं पुरुस्पृहं । पवस्व सोम धारया ॥ ३ ॥

आ । नः । शुष्मं । नृषाह्यं । वीरवतं । पुरुस्पृहं । पवस्व । सोम । धारया ॥ ३ ॥

हे सोम त्वं धारया पवस्व । किं । शुष्मं बलं । कीदृशं । नृषाह्यं नृषामस्त्रविरोधिनामभिभावकं वीरवतं  
पुत्रोपेतं पुरुस्पृहं वज्रभिः सुहृणीयं शुष्ममा पवस्व । एतस्य लाभाय पवस्वेत्यर्थः । रसस्त्रावे सति होमद्वारा  
तत्सिद्धे शुष्मं पवस्वेत्युपचर्यते ॥

प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् । अभि द्रोणान्यासदं ॥ ४ ॥

प्र । सोमः । अति । धारया । पवमानः । असिष्यदत् । अभि । द्रोणानि । आऽसदं ॥ ४ ॥

अयं पवमानः सोमो धारयात्यतिक्रम्य दशापवित्रं प्रासिष्यदत् । प्रस्रदते । किमर्थं । द्रोणानि द्रोणकल-  
शादीन्यासदमासादनाय ॥



अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । इद्विन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥

अप्सु त्वा । मधुमत्तमं । हरिं । हिन्वंति । अद्रिभिः । इदो इति । इन्द्राय । पीतये ॥ ५ ॥

हे इदो सोम अप्सु वसतीवरीषूदकेषु मधुमत्तममतिशयेन मधुमत्तं हरिं हरितवर्णं त्वा त्वामद्रिभिरभि-  
षवयावभिर्हिन्वंति । प्रेरयन्ति । किमर्थं । इन्द्रायिन्द्रस्य पीतये पानाय ॥

मुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । चारुं शर्धाय मत्सरं ॥ ६ ॥

मुनोत । मधुमत्तमं । सोमं । इन्द्राय । वज्रिणे । चारुं । शर्धाय । मत्सरं ॥ ६ ॥

हे अत्रिजः ध्रुवं मधुमत्तमं मधुररसोपेतं सोममिन्द्राय वज्रिणे वज्रयुक्ताय मुनोत । मुनोत । पुनः कीदृशं ।  
चारुं चरणीयं मत्सरं मदकरं शर्धायास्त्राकं बलायेंद्रस्य पानाय च सोमं मुनोति ब्रूते यजमानः स्वो-  
यान् ॥ २० ॥

प्र सोमास इति षड्वचं सप्तमं सूक्तं राह्मणस्य गोतमस्यायं सोम्यं । प्र सोमासो गोतम इत्यनुक्तं ।  
गतो विनियोगः ॥

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः । रयिं कृण्वन्ति चेतनं ॥ १ ॥

प्र । सोमासः । सुऽआध्यः । पवमानासः । अक्रमुः । रयिं । कृण्वन्ति । चेतनं ॥ १ ॥

प्राक्रमुः । प्रगच्छन्ति कलशं प्रति । के । सोमासः सोमाः । कीदृशाः । स्वाध्यः सुध्यानाः सुकर्माणो वा  
पवमानासः पूयमानाः । ते च चेतनं प्रज्ञापनं रयिं धनं कृण्वन्ति । कुर्वन्त्यस्त्राकं ॥

दिवस्पृथिव्या अधि भवेदो युञ्जवर्धनः । भवा वाजानां पतिः ॥ २ ॥

दिवः । पृथिव्याः । अधि । भव । इदो इति । युञ्जऽवर्धनः । भव । वाजानां । पतिः ॥ २ ॥

हे इदो वाजानामन्तानां पतिः स्वामी त्वं दिवो भूलोकस्य पृथिव्या भूलोकस्य युञ्जवर्धनो द्योतमानस्य  
हिरण्यादिलक्षणधनस्य वर्धयिता भव । अस्त्राकं लोकद्वये यद्युञ्जमसि तस्य वर्धयिता भवास्त्राभ्यमित्यर्थः ॥

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षेति सिंधवः । सोम वर्धेति ते महः ॥ ३ ॥

तुभ्यं । वाताः । अभिऽप्रियः । तुभ्यं । अर्षेति । सिंधवः । सोम । वर्धेति । ते । महः ॥ ३ ॥

हे सोम तुभ्यं त्वदर्थं वाता वायवोऽभिप्रियोऽभितर्पयितारो भवन्ति । तथा सिंधवः स्तंदमाना नव्यस्तुभ्य-  
मर्षेति । गच्छन्ति । अभिपूयमाणस्य तवाप्यायनायैवं कुर्वन्तीत्यर्थः । त उभयेऽमी ते तव महो महत्त्वं वर्धेति ।  
वर्धयन्ति ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्यै । भवा वाजस्य संगथे ॥ ४ ॥

आ । प्यायस्व । सं । एतु । ते । विश्वतः । सोम । वृष्यै । भव । वाजस्य । संऽगथे ॥ ४ ॥

हे सोम त्वं वायुभिरग्निश्चा प्यायस्व । प्रवृद्धो भव । ते त्वां विश्वतो वृष्यं वर्धयिष्यं नमं समेतु । संगच्छतां ।  
संगथे संगामे वाजस्त्रास्य प्राप्तको भव ॥

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुहे अक्षितं । वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥ ५ ॥

तुभ्यं । गावः । घृतं । पयः । बभ्रो इति । दुदुहे । अक्षितं । वर्षिष्ठे । अधि । सानवि ॥ ५ ॥

हे वधो वधुवर्ण सोम तुभ्यं त्वदर्थं गावो घृतं पयश्चाचितमचीर्णं दुदुहे । दुहते । वर्षिष्ठे प्रवृद्धेऽधि  
सागवि समुच्छिते प्रदेशे स्थिताय तुभ्यं ॥

स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयं । इंदो सखित्वमुशमसि ॥ ६ ॥

सुऽआयुधस्य ते । सतः । भुवनस्य । पते । वयं । इंदो इति । सखिऽत्वं । उशमसि ॥ ६ ॥

हे भुवनस्य भुतजातस्य पते स्वामिन्यालक सोम । सोमस्य जगदाप्यायिकत्वं तत्त्वामित्वं । हे इंदो सोम  
वयमनुष्ठानारः स्वायुधस्य ते तव सतः सखित्वमुशमसि । कामयामहे ॥ २१ ॥

प्र सोमाम इति पट्टचमष्टमं सूक्तमात्रेयस्य आवायस्वार्थं गायत्रं सौम्यं । अनुक्रम्यते च । प्र सोमासः  
आवाय इति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनः । सुता विदधे अक्रमुः ॥ १ ॥

प । सोमासः । मदऽच्युतः । श्रवसे । नः । मघोनः । सुताः । विदधे । अक्रमुः ॥ १ ॥

सोमामः सोमा मदच्युतो मदस्त्राविणः सुता अभिपुताः संतो विदधे यज्ञे मघोनो हविष्पतो मम श्रवसे  
ऽन्नाय कीर्तये वा प्राक्रमुः । प्रगच्छति ॥

आदीं चितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इंदुमिंद्राय पीतये ॥ २ ॥

आत् । इं । चितस्य । योषणः । हरिं । हिन्वन्ति । अद्रिऽभिः । इंदुं । इंद्राय । पीतये ॥ २ ॥

आदपि चेमेनं हरिं हरितवर्णं सोमं चितस्त्रयोषणोऽंगुलयोऽद्रिभिर्यावभिर्हिन्वन्ति । प्रेरयन्ति । किमर्थं ।  
इंदुं दीप्तं सोममिंद्रार्थिद्रस्य पीतये पानाय ॥

आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिं । अन्यो न गोभिरज्यते ॥ ३ ॥

आत् । इं । हंसः । यथा । गणं । विश्वस्य । अवीवशत् । मतिं । अन्यः । न । गोभिः । अज्यते ॥ ३ ॥

आदपि चेमयं सोमो हंसो यथा गणं जनसंघं स्वर्गातिविशेषिणं स्वनेन वा प्रविशति तद्वद्विश्वस्य सर्वस्य  
लोतृजनस्य मतिं स्तुतिं बुद्धिं वावीवशत् । वशं नयति । स च सोमोऽत्यो नाश्व इव गोभिर्गवैरुदकैर्व्याज्यते ।  
सिच्यते । स्निग्धीक्रियते ॥

उभे सोमावचाकशन्मृगो न तक्तो अर्षसि । सीदन्तस्य योनिमा ॥ ४ ॥

उभे इति । सोम । अवऽचाकशत् । मृगः । न । तक्तः । अर्षसि । सीदन् । अतस्य ।

योनिं । आ ॥ ४ ॥

हे सोम उभे आवापृथिव्यावचाकशत् । पशतिकमेदं । पशन्मृगो न मृग इव तक्तो गव्यैः पयश्चादिभिर्मि-  
थितः सन । दध्ना तनक्ति । ति० सं० ३. ५. ३. ५. । इत्यादीं तथा दृष्टत्वात् । अर्षसि । गच्छसि च । किं कुर्वन् ।  
अतस्य यज्ञस्य योनिं स्थानमा सीदन्नाश्रयन् । यज्ञसाधनाय गच्छसीत्यर्थः ॥

अभि गावो अनूषत योषां जारमिव प्रियं । अगन्नाजिं यथा हितं ॥ ५ ॥

अभि । गावः । अनूषत । योषां । जारऽइव । प्रियं । अगन् । आजिं । यथा । हितं ॥ ५ ॥

हे सोम त्वां गावः शब्दा अभ्यनूषत । अभिपुर्वन्ति । योषा प्रियं जारमिव । सा यथा तं स्तीति तद्वत् । स



सोम आजिं गंतव्यं हितं मित्राभ्य तं यथान्योऽगन् स्वहिताय गच्छति तद्वत् । अथवा हितं धनप्रापकत्वेन हितकरमाजिं गुर इव । अथवा गच्छति पात्रं ॥

अस्मे धेहि द्युमद्यशो मघवद्भ्यश्च मह्यं च । सनिं मेधामुत श्रवः ॥ ६ ॥

अस्मे इति । धेहि । द्युऽमत् । यशः । मघवन्तऽभ्यः । च । मह्यं । च । सनिं । मेधां ।  
उत । श्रवः ॥ ६ ॥

हे सोम अस्मे अस्मभ्यं द्युमद्दीप्तिमद्यशोऽन्नं धेहि । देहि । कीदृशेभ्योऽस्मभ्यं । मघवश्च हविर्नयसात्र-  
वश्च मह्यं च स्तुतिकर्त्रे च । अथवा मह्यमस्मभ्यमित्यर्थः । अस्मे मघवश्च मह्यं चेति तेषामेवाशंसनाभिदाकु-  
भयच चशब्दो युक्तः । किंच सनिं धनं मेधां प्रज्ञामुतापि च श्रवः कीर्तिं च धेहि ॥ २२ ॥

प्र सोमास इति पट्टचं नवमं सूक्तं चित्तस्वार्थं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । प्र सोमासस्त्रित इत्यनुक्रांतं ।  
गतो विनियोगः ॥

प्र सोमासो विपश्चितोऽपां न यँत्यूर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ १ ॥

प्र । सोमासः । विपःऽचितः । अपां । न । यँति । ऊर्मयः । वनानि । महिषाःऽइव ॥ १ ॥

विपश्चितो मेधाविनः सोमासः सोमाः प्र यँति । प्र गच्छति पात्राणि प्रति । किमिव । अपामूर्मयो न  
यथा संततमुज्ज्वलन्ति तद्वत् । बाहुभ्योऽयं दृष्टांतो दर्शितो गमने दृष्टांतांतरमभिधीयते । वनानि महिषाः  
प्रवृद्धा मृगा इव । अथवा स्वाश्रयात्प्रपत्तने प्रथमो दृष्टांतो द्वितीयस्तु दृष्टापविवादधःप्रवेशे ॥

अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमंतमक्षरन् ॥ २ ॥

अभि । द्रोणानि । बभ्रवः । शुक्राः । ऋतस्य । धारया । वाजं । गोऽमंतं । अक्षरन् ॥ २ ॥

अभि चरंतीति शेषः । उपसर्गश्रुतेरुचिः क्रियाधाहारः । प्रति द्रोणानि द्रोणकलशान् । यद्यपि द्रोण-  
कलश एक एव तथापि तत्प्राधान्यादितरेऽपि पात्रा द्रोणा इत्युच्यते । अथवैकास्मिन्नेव पुत्रार्थं बह्वचन । के ।  
बभ्रवो बभ्रुवर्णाः सोमाः शुक्रा दीप्ताः । केन प्रकारेण । ऋतस्यामृतस्य धारया धाराकारेण । किंच वाजमन्नं  
गोमंतं बह्वगोयुक्तमक्षरन् । चरंति । अथवैकमेव वाक्यं । उक्तविधाः सोमा द्रोणान्प्रत्यक्षरन्धारया । किं  
कुर्वन्तः । गोमंतं वाजं प्रयच्छन् इत्यर्थः ॥

सुता इंद्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षेति विष्णावे ॥ ३ ॥

सुताः । इंद्राय । वायवे । वरुणाय । मरुत्ऽभ्यः । सोमाः । अर्षेति । विष्णावे ॥ ३ ॥

सुता अभिपुताः सोमा इंद्रार्थेन्द्रार्थं वायवे च वरुणाय च मरुद्भ्यश्च विष्णवे चैषामर्थमर्षेति । गच्छति ॥

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ४ ॥

तिस्रः । वाचः । उत । ईरते । गावः । मिमन्ति । धेनवः । हरिः । एति । कनिक्रदत् ॥ ४ ॥

तिस्रो वाचः । अगादिभेदेन त्रिविधा स्तुतिः । उदीरते । प्रोन्नमयंत्युत्तिजः । धेनव आश्रितेण प्रोक्षयिष्यो  
गावो मिमन्ति । शब्दयन्ति दोहार्थं । हरिर्हरितवर्णश्च सोमः कनिक्रदच्छब्दं कुर्वन्नेति । गच्छति कलशं ॥

अभि ब्रह्मीरनूषत यद्हीर्जुतस्य मातरः । मर्मृज्यंते दिवः शिशुं ॥ ५ ॥

अभि । ब्रह्मीः । अनूषत । यद्हीः । ऋतस्य । मातरः । मर्मृज्यंते । दिवः । शिशुं ॥ ५ ॥

ब्रह्मीर्नास्त्राण्येतिता यद्भीर्महत्त्वः । यद्भीरिति महत्ताम । अतस्त्र यज्ञस्य मातरो निर्मात्र्यः सुतयोऽभ्य-  
नूयत । सुवन्ति । किं । दिवो बुदेवतायाः शिशुं शिशुस्थानीयं सोमं । तमेव मर्त्ययति । मृजन्ति । तृतीयस्थामितो  
दिवि सोम आसीदित्यादिश्रुतेर्बुशिशुत्वं तस्य ॥

रायः समुद्राश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणः ॥ ६ ॥

रायः । समुद्रान् । चतुरः । अस्मभ्यं । सोम । विश्वतः । आ । पवस्व । सहस्रिणः ॥ ६ ॥

रायो धनस्य संबन्धिनश्चतुरः समुद्रान् । धनपूर्णाणित्वर्थः । तादृशान्समुद्रान्काम्यमर्थाय हे सोम विश्वतः  
सर्वत आ पवस्व । तथा सहस्रिणोऽपरिमितान्कामाना पवस्व । आयच्छ । चतुःसमुद्रस्यधनविशेषप्राप्तिस्तस्य-  
ध्यगतभूमिस्वामित्वमन्तरेणासंभवाच्चतुःसमुद्रमुद्रितभूमंडलस्वामित्वमेवाशास्ते यजमानः ॥ ॥ २३ ॥

प्र सुवान इति षड्वचं दशमं सूक्तं । अथावाः पूर्ववत् । प्र सुवान इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र सुवानो धारया तनेर्दुहिन्वानो अर्षेति । रुजदृह्या व्योजसा ॥ १ ॥

प्र । सुवानः । धारया । तना । इंदुः । हिन्वानः । अर्षेति । रुजत् । दृह्या । वि । व्योजसा ॥ १ ॥

इंदुः सोमः सुवारः सूयमानो हिन्वानोऽध्वर्युणा प्रेषमाणो धारया तना पविचं प्रार्थति । गच्छति ।  
अथ प्रत्येषोच्यते । दृह्या दृढान्यपि शत्रुपुराण्योजसा बलेन वि दजत् । विदजति । विस्त्रयति ॥

सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षेति विष्णवे ॥ २ ॥

सुतः । इन्द्राय । वायवे । वरुणाय । मरुतऽभ्यः । सोमः । अर्षेति । विष्णवे ॥ २ ॥

अयं सुतोऽभिषुतः सोम इन्द्रायर्षमर्षति । गच्छति ॥

वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः । दुहन्ति शक्वना पयः ॥ ३ ॥

वृषाणं । वृषऽभिः । यतं । सुन्वन्ति । सोम । अद्रिऽभिः । दुहन्ति । शक्वना । पयः ॥ ३ ॥

वृषाणं रससेक्तारं यतं नियतं सोमं वृषभो रसस्य वर्षकैरद्रिमिर्यावभिः सुन्वन्ति । शक्वना कर्मणा  
दुहन्त्यध्वर्जादयः पयः सोमरसं । सोमं पयो दुहन्तीति द्विकर्मकोऽयं ॥

भुवन्तितस्य मज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः । सं रूपैरज्यते हरिः ॥ ४ ॥

भुवन्त । वितस्य । मज्यैः । भुवन्त । इन्द्राय । मत्सरः । सं । रूपैः । अज्यते । हरिः ॥ ४ ॥

वितस्यापां पुवस्य सूक्तद्रष्टृर्क्षेः सोऽयं मत्सरो मदकरः सोमो मज्यो भुवन्त । मुञ्चो भवति । तस्य  
यागार्थं शेषपानार्थं च । तथेन्द्रायेंद्रपानाय मज्यो भुवन्त । रूपै रूपकैश्च जीरादिभिर्दिरिर्दिरितवर्षाः सोमः  
समज्यति ॥

अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः । चारु प्रियतमं हविः ॥ ५ ॥

अभि । ई । अतस्य । विष्टपं । दुहते । पृश्निऽमातरः । चारु । प्रियतमं । हविः ॥ ५ ॥

इमेनं सोममृतस्य विष्टपं स्थानं । यज्ञाश्रयमित्यर्थः । तादृशं पृश्निमातरो महतोऽभि दुहते । किं ।  
प्रियतममिन्द्रादोनां हविर्होमसाधनं चारु मनोहरं । महत्प्रेरितवृथा सोमपृष्ठेसहोपृत्यं ॥

समेनमहुता इमा गिरो अर्षेति ससुतः । धेनूर्वाश्वो अवीवशत् ॥ ६ ॥

सं । एनं । अहुताः । इमाः । गिरः । अर्षेति । सऽसुतः । धेनूः । वाश्वः । अवीवशत् ॥ ६ ॥



समर्पेति संगच्छंत एनं सोममद्रुता अकुटिला गिरोऽसादीयाः सुतयः ससुतः सरंखः । ताख धेनुः  
प्रीयथिबीः सुतीर्वाभः शब्दयन्नवीवशत् । कामयते सोमः ॥ २४ ॥

आ न इति षट्पञ्चमेकादशं सूक्तमांगिरसस्य प्रभूषसोरायं नायचं पवमानसोमदेवताकं । अग्न्यान्तं च ।  
आ नः पवस्व प्रभूषसुरिति ॥ गतो विनियोगः ॥

आ नः पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुं । यया ज्योतिर्विदासि नः ॥ १ ॥

आ नः । पवस्व । धारया । पवमान । रयिं । पृथुं । यया । ज्योतिः । विदासि । नः ॥ १ ॥

हे पवमान सोम त्वं धारया नोऽस्माकमा पवस्व । सर्वतः चर । किं । रयिं धनं पृथुं विस्तीर्य । यया  
धारया ज्योतिर्द्योतमानं यज्ञं स्वर्गं वा विदासि संभयसि नोऽस्माकं ॥

इंदो समुद्रमींखय पवस्व विश्वमेजय । रायो धर्ता न ओर्जसा ॥ २ ॥

इंदो इति । समुद्रं ईंखय । पवस्व । विश्वं एजय । रायः । धर्ता । नः । ओर्जसा ॥ २ ॥

हे इंदो सोम हे समुद्रमींखय । समुद्रमिलुदकनाम । ईंखयतिर्गतिकर्मा । उदकप्रेरक तथा हे विश्वमेजय  
विश्वस्य सर्वस्यासाच्छोः कंपयितः सोम त्वमोजसा त्वदीयेन वलेन नोऽस्माकं रायो धनस्य धर्ता धारकः  
पवस्व । भवेत्यर्थः । अथ यद्यप्युदकप्रेरणसर्वशत्रुकंपने संबोधनांतर्गतत्वादुद्देश्यगते तथापि यजमानं स्थापयित्वा  
इति रायो धर्तृत्ववदाशस्य अधिगंतव्ये ॥

त्वया वीरेण वीरवोऽभि ध्याम पृतन्यतः । क्षरां णो अभि वार्ये ॥ ३ ॥

त्वया । वीरेण । वीरवः । अभि । ध्याम । पृतन्यतः । क्षरः । नः । अभि । वार्ये ॥ ३ ॥

हे वीरवो वीरवन्सोम वीरेण त्वया साधनेन पृतन्यतः संयाममिच्छतः शत्रून्भि ध्याम । अभिमवेम ।  
अतो नोऽस्माकं वार्ये वरणीयं धनमभि चर । अभिमयत्यर्थः । अथवा वरणीयं सोमास्त्रं धनं चर । पवस्व ॥

प्र वाजमिंदुरिष्यति सिषासन्वाजसा चृषिः । व्रता विदान आयुधा ॥ ४ ॥

प्र । वाजं । इंदुः । इष्यति । सिषासन् । वाजः । चृषिः । व्रता । विदानः । आयुधा ॥ ४ ॥

सोमो वाजमम्रमिष्यति । प्रेरयति यजमानेभ्यः । किं कुर्वन् । सिषासन् यजमानान् संभ्रामिच्छन् । इंदुश्च  
इंदुर्वाजसा अन्नस्य दातृभिः सर्वस्य द्रष्टा व्रता कर्मास्त्रायुधानि च विदानी जानन् ॥

तं गोभिर्वीचमींखयं पुनानं वासयामसि । सोमं जनस्य गोपतिं ॥ ५ ॥

तं । गोभिः । वीचं ईंखयं । पुनानं । वासयामसि । सोमं । जनस्य । गोपतिं ॥ ५ ॥

तं सोमं गोभिः सुतिवाग्भिः स्तौमीति शेषः । किंच वाचमींखयं वाचः प्रेरयितारं पुनानं पूजमानं तं  
सोमं वासयामसि । वासयामः अयणद्रव्यैः । वीदृशं सोमं । जनस्य गोपतिं गवां पातकं । यदा । एकमेव  
वाक्यं । उक्तविशेषणविशिष्टं सोमं सुतिभिर्वासयाम इति । माधवस्तु वाचमिति पृथक्पदं तिक्तं कृत्वा  
वाक्यद्वयं चकार ॥

विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मेणस्पतेः । पुनानस्य प्रभूवसोः ॥ ६ ॥

विश्वः । यस्य । व्रते । जनः । दाधार । धर्मेणः । पतेः । पुनानस्य । प्रभुवसोः ॥ ६ ॥

विश्वः सर्वो जनो मनुष्यो यजमानो यस्य सोमस्य व्रते कर्मणि दाधार धारयति मन इति शेषः ।  
कीदृशस्य । धर्मणः कर्मणः पतेः पालकस्य पुनानस्य पूयमानस्य प्रभुवसोः प्रभृतधनस्य ॥ २५ ॥

असर्जोति पट्टुचं द्वादशं मूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । असर्जोत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

असर्जिं रथ्यो यथा पवित्रे चम्बोः सुतः । कार्ष्णन्वाजी न्यक्रमीत् ॥ १ ॥

असर्जिं । रथ्यः । यथा । पवित्रे । चम्बोः । सुतः । कार्ष्णन् । वाजी । नि । अक्रमीत् ॥ १ ॥

रथ्यो यथा रथसंबन्धस्य इव स यथा विरुज्यते तद्वच्चम्बोरभिषवणफलकयोः सुतोऽभिपुतः सोमोऽसर्जि ।  
रुष्टोऽभ्युपवित्रे । तथाभूतो वाजी वेजनवान्तोमाख्योऽश्वः कार्ष्णन् । कार्ष्णं युद्धमितरेतरकर्षणात् । अत्र  
देवानामाकर्षणवति यज्ञाख्ये संयामे न्यक्रमीत् । नितरां क्रामयति ॥

स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति । अभि कोशं मधुश्चुतं ॥ २ ॥

सः । वह्निः । सोम । जागृविः । पवस्व । देव । अति । अभि । कोशं । मधु । अश्नुतं ॥ २ ॥

हे सोम स वह्निर्वाहको जागृविर्जागरूको देववीर्देवकामंस्त्वं मधुश्चुतं मधुस्वावि कोशं दशापवित्रमति-  
क्रम्याभि पवस्व । द्रोणकलशं प्रति चर ॥

स नो ज्योतींषि पूर्वं पवमान वि रोचय । क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥ ३ ॥

सः । नः । ज्योतींषि । पूर्वं । पवमान । वि । रोचय । क्रत्वे । दक्षाय । नः । हिनु ॥ ३ ॥

हे पूर्वं पुराण पवमान सोम नोऽस्माकं ज्योतींषि दिव्यानि स्थानानि वि रोचय । प्रकाशय । किंच क्रत्वे  
कर्मणे यागाय दद्याय बलाय च बलप्रदाय यागाय वा नोऽस्मान् हिनु । प्रेरय ॥

शुभमान ऋतायुभिर्मृज्यमानो गभस्त्योः । पवन्ते वारं अव्यये ॥ ४ ॥

शुभमानः । ऋतायुऽभिः । मृज्यमानः । गभस्त्योः । पवन्ते । वारं । अव्यये ॥ ४ ॥

ऋतायुभिर्यज्ञकामैर्हविर्भिः शुभमानोऽसंक्रियमाणस्तेषामेव गभस्त्योर्हस्तयोर्मृज्यमानः सोमोऽव्यये  
ऽविमये वारं वारं दशापवित्रे पवते । पूयते ॥

स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामांतरिक्ष्या ॥ ५ ॥

सः । विश्वा । दाशुषे । वसु । सोमः । दिव्यानि । पार्थिवा । पवन्तां । आ । अंतरिक्ष्या ॥ ५ ॥

सोऽभिपूयमाणः सोमो दाशुषे हविर्दात्रे विश्वा सर्वाणि वसु वसूनि धनानि पवन्तां । प्रयच्छतु । विश्वा-  
नीत्युक्तस्य विवरणं शिष्टं । दिव्यानि दिवि भवानि पार्थिवा पृथिवीसंवज्ञान्तरिक्ष्यान्तरिक्षे भवानि च पवन्तां ॥

आ दिवस्पृष्टमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि । वीरयुः श्वसस्पते ॥ ६ ॥

आ । दिवः । पृष्टं । अश्वऽयुः । गव्यऽयुः । सोम । रोहसि । वीरऽयुः । श्वसः । पते ॥ ६ ॥

हे सोम त्वं सोतृषामश्वयुरश्वमिच्छन्गव्ययुर्गा इच्छन्वीरयुः पुषानिच्छन्दिवः पृष्टं बुजोक्ता रोहस्वाङ्ग-  
तिद्वारा हे श्वसस्पतेऽन्नस्य पालक ॥ २६ ॥

स सुत इति षड्रुचं त्रयोदशं मूक्तं रङ्गणस्यार्थं गायनं सौम्यं । अनुक्रम्यते च । स सुतो रङ्गण इति ॥  
गतो विनियोगः ॥



स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥१॥

सः। सुतः। पीतये। वृषा। सोमः। पवित्रे। अर्षति। विघ्नन्। रक्षांसि। देवयुः॥१॥

स सोमः पीतय दंद्रादिपापाय सुतोऽभिपुतो वृषा वर्षयः सन्पवित्रेऽर्षति । गच्छति । किं कुर्वन् । रक्षांसि विघ्नन् देवयुर्देवकामः स इत्यन्वयः ॥

स पवित्रे विचक्ष्णो हरिरर्षति धर्णसिः । अभि योनिं कर्निकदत् ॥२॥

सः। पवित्रे। विचक्ष्णः। हरिः। अर्षति। धर्णसिः। अभि। योनिं। कर्निकदत्॥२॥

स सोमो विचक्षणः । पश्यातिकर्मतत् । सर्वस्य द्रष्टा हरिर्हरितवर्णः सोमो धर्णसिः सर्वस्य धारकः पवित्रे अर्षति । गच्छति । पश्यात्कनिकदच्छब्दं कुर्वन् योनिं स्नानं द्रोणकस्य मभिगच्छति ॥

स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमभ्यय ॥३॥

सः। वाजी। रोचना। दिवः। पवमानः। वि। धावति। रक्षःऽहा। वारं। अभ्ययं॥३॥

स वाजी वेजवान् यस्यानीयो दिवः स्वर्गस्य रोचना रोचकः पवमानः पूयमानो वि धावति । कीदृशः । रक्षोहा रक्षोहंताभ्यं वारं दशापविजयतोऽस्य च धावति ॥

स चित्तस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभिः सूर्ये सह ॥४॥

सः। चित्तस्य। अधि। सानवि। पवमानः। अरोचयत्। जामिऽभिः। सूर्ये। सह॥४॥

स सोमस्त्रितस्य महर्षेरधि सानवि समुच्छ्रिते यज्ञे । अधीति सप्तम्यर्थागुवादी । पवमानः पूयमानो जामिभिः प्रवृक्षैर्वैधुमृतेषां स्तितोभिः सह सहितः सन्सूर्यमरोचयत् । प्रकाशितवान् ॥

स वृचहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥५॥

सः। वृचऽहा। वृषा। सुतः। वरिवःऽवित्। अदाभ्यः। सोमः। वाजंऽइव। असरत्॥५॥

स वृचहा वृषा वर्षकः सुतोऽभिपुतो वरिवोविष्यदुर्धनस्य खंभकोऽदाभ्योऽन्यैरदंभनीयः सोमो वाजमिव संयाममस्य इवासरत् । गच्छति कलशं ॥

स देवः कविनेषितोऽभि द्रोणानि धावति । इंदुरिद्राय मंहना ॥६॥

सः। देवः। कविना। इषितः। अभि। द्रोणानि। धावति। इंदुः। इद्राय। मंहना॥६॥

स सोमो देव इंदुः क्लिबमानः कविना कान्तप्रज्ञेनाध्वर्युषेणितः प्रेरितः सन्द्रोणानि द्रोणकस्य शानमि धावति । अभिगच्छति । विमर्षं । इंद्रयिंद्रायं । मंहना महान्त इति समन्वयः ॥ ॥२७॥

एष इति षड्वचं षतुर्दशं सूक्तं । अध्यायाः पूर्ववत् । एष उ स इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

एष उ स्य वृषा रथोऽथ्यो वारैभिरर्षति । गच्छन्वाजं सहस्रिणं ॥१॥

एषः। उं इति। स्यः। वृषा। रथः। अथ्यः। वारैभिः। अर्षति। गच्छन्। वाजं। सहस्रिणं॥१॥

स स प्रसिद्ध एषोऽभिपुतः सोमो वृषा वर्षिता रथो रंहणस्य भावोऽथ्यो वरिभिरवेषैर्दशापविधे-  
नार्षति । गच्छति कलशं । वाजमत्रं सहस्रिणं सहस्रसंख्याकं यजमागाय प्रदातुं गच्छद्द्रोणकस्य प्रविशन्नर्ष-  
तीत्यर्थः । उ पुरः ॥

एतं चित्तस्य योषणो हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

एतं । चित्तस्य । योषणः । हरिः । हिन्वंति । अद्रिऽभिः । इन्दुं । इन्द्राय । पीतये ॥ २ ॥

एतमिन्दुं क्षिपमानं हरिं हरितवर्णं सोमं चित्तसर्वयोषणोऽंगलयोऽद्रिभिर्हिन्वंतीन्द्रायेंद्रस्य पीतये पानाय ॥

एतं त्वं हरितो दशं मर्मज्यंते अपस्युवः । याभिर्मदाय जुंभते ॥ ३ ॥

एतं । त्वं । हरितः । दशं । मर्मज्यंते । अपस्युवः । याभिः । मदाय । जुंभते ॥ ३ ॥

एतं त्वं तं सोममध्यर्धोदंशं हरितो हरणस्वभावा अंगुलयोऽपस्युवः कर्मैच्छवः सत्यो मर्मज्यंते । शोधयन्ति । याभिरिन्द्रस्य मदाय जुंभते दीप्यते । शोध्यत इत्यर्थः । तमेतमिति संबंधः ॥

एष स्य मानुषीष्व श्येनो न विक्षु सीदति । गच्छञ्जारो न योषितं ॥ ४ ॥

एषः । स्यः । मानुषीषु । आ । श्येनः । न । विक्षु । सीदति । गच्छन् । जारः । न ।

योषितं ॥ ४ ॥

स्य स एष सोमो मानुषीषु विक्षु प्रजासु यजमानरूपास्त्रनुग्रहेणा सीदति श्येनो न श्येन एव । पुनः क इव । योषितं गच्छन्मिगच्छञ्जारो न जार इव । स यथा संकेतितस्तस्याः कामपूरणाय गूढो गच्छति तद्वदित्यर्थः ॥

एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः । य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ५ ॥

एषः । स्यः । मद्यः । रसः । अव । चष्टे । दिवः । शिशुः । यः । इन्दुः । वारं । आ । अविशत् ॥ ५ ॥

स्य स एष मद्यो मदनिमित्तो रसोऽव चष्टे । सर्वमवपश्यति । दिवः शिशुर्बुपुत्रः । तत्रोत्पत्तेः पुत्रत्वमस्य । य इन्दुर्दक्षिः सोमो वारं दशापवित्रमाविशत् आविशति स एष इति ॥

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः । क्रंदन्योनिमभि प्रियं ॥ ६ ॥

एषः । स्यः । पीतये । सुतः । हरिः । अर्षति । धर्णसिः । क्रंदन् । योनिं । अभि । प्रियं ॥ ६ ॥

एष स्य स सोमः पीतये पानाय सुतोऽभिपुतो हरिर्हरितवर्णो धर्णसिर्धारकः प्रियं स्वप्रियभूतं योनिं स्नानं द्रोणकंसं क्रंदन्शब्दयत्नमवर्षति । गच्छति ॥ ॥ २८ ॥

आशुरर्षेति षड्रुचं पंचदशं सूक्तमांगिरसस्य बृहन्मतेरार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । आशुरर्षं बृहन्मतिरित्यनुक्रांतं ॥ यतो विजियोगः ॥

आशुरर्षं बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना । यत्र देवा इति ब्रवन् ॥ ७ ॥

आशुः । अर्षं । बृहत्तममते । परि । प्रियेण । धाम्ना । यत्र । देवाः । इति । ब्रवन् ॥ ७ ॥

दे बृहन्मते महामते सोम प्रियेण देवानां प्रियतमेन धाम्ना शरीरेण धारयामुः शीघ्रः सन्पश्येत् । परिगच्छ । यत्र देवा इन्द्रादयो वर्तन्ते इति ब्रवन् ब्रुवन्नुच्चारयन् । तां दिशं गच्छामीति ब्रुवन्नित्यर्थः ॥

परिष्कृत्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः । वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ ८ ॥

परिऽकृत्वन् । अग्निऽकृतं । जनाय । यातयन् । इषः । वृष्टिं । दिवः । परि । स्रव ॥ ८ ॥



अग्निभूतमसंस्कृतं यजमानं खाणं वा परिक्रुत्वसंस्कृत्वज्ञनाय यागकर्ष इषोऽन्नाग्निं यातयन्निर्वमयन्दि-  
वोऽन्तरिक्षाद्गुह्यं परि स्रज् ॥

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधानं ओजसा । विचक्षाणो विरोचयन् ॥३॥

सुतः। एति। पवित्रे। आ। त्विषिं। दधानः। ओजसा। विचक्षाणः। विरोचयन् ॥३॥

सुतोऽभिपुतः सोमः सन्पवित्रे दद्यापवित्रे । आ इत्यनर्थकः । ओजसा वसेन शीघ्रमेति । गच्छति । कीदृशः  
सन् । त्विषिं दीप्तिं दधानो धारयन्विचक्षाणः सर्वं पञ्चान्विरोचयन्दीपयन्त्यं । किं । देवानिति शेषः ॥

अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ । सिंधोरूर्मा व्यक्षरत् ॥४॥

अयं। सः। यः। दिवः। परि। रघुऽयामा। पवित्रे। आ। सिंधोः। ऊर्मा। वि। व्यक्षरत् ॥४॥

अयं स सोमः पवित्र आ सिध्यमान इति शेषः । सिंधोर्वज्रसायिणा ऊर्मोर्मौ संचाति व्यक्षरत् । विविधं  
चरति । स इत्युक्तं च इत्याह । यो दिवस्परि शुभोक्कस्योपरि रघुयामा सघुगमनो देवप्राप्ती सोऽयमिति  
संबन्धः ॥

आविर्वासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः । इंद्राय सिच्यते मधु ॥५॥

आऽविर्वासन्। पराऽवतः। अथो इति। अर्वाऽवतः। सुतः। इंद्राय। सिच्यते। मधु ॥५॥

सुतोऽभिपुतः सोमः परावतः । दूरगमितत् । दूरस्थान् अथो अपि आर्वावतोऽतिवृक्षांश्च देवानावि-  
वासात् । रसेन परिचरणायेत्यर्थः । इंद्रायेंद्रार्थं मधु मधुसदृशः सोमः सिच्यते ॥

समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । योनावृतस्य सीदत ॥६॥

संऽईचीनाः। अनूषत। हरिं। हिन्वन्ति। अद्रिऽभिः। योनौ। चतृत्स्य। सीदत ॥६॥

समीचीनाः सम्यग्निधिताः संगताः सोतारोऽनूषत । कुर्वन्ति । किंच सोमं हरिं हरितवर्षं हिन्वन्ति ।  
प्रेरयन्ति । गमयन्त्यद्रिभिर्गोवभिः । यक्षादेवं तस्मादृतस्य यज्ञस्य योनीं खाणि सीदत । नियथा भवत इ  
देवाः ॥ ॥२९॥

पुनान इति यदुचं योदशं सूतं । अष्टाष्टाः पूर्ववत् । पुनान इत्यनुक्रांतं ॥ यतो विनियोगः ॥

पुनानो अक्रमीदभि विष्ठा मृधो विचर्षणिः । शुभन्ति विप्रं धीतिभिः ॥७॥

पुनानः। अक्रमीत्। अभि। विष्ठाः। मृधः। विचर्षणिः। शुभन्ति। विप्रं। धीतिभिः ॥७॥

पुनानः पुनमानो विचर्षणिर्दृष्टा सोमो विष्ठाः सर्वान्मृधो हिंसकाश्चापूनभ्रकमीत् । अतिक्रान्तवान् । तं  
विप्रं मेधाविनं धीतिभिः कर्मभिरभिषादिभिः सुतिभिर्वा शुभन्ति । दीपयन्ति । अलंकुर्वन्ति ॥

आ योनिमरूणो रूहन्मदिदं वृषा सुतः । ध्रुवे सदर्सि सीदति ॥२॥

आ। योनिं। अरूणः। रूहन्। गमन्तु। इंद्रं। वृषा। सुतः। ध्रुवे। सदर्सि। सीदति ॥२॥

अथमरूणोऽरण्यवर्णः सोमो योनिं खानं द्रोणकलशमा सहत् । आरोहति । तत् इंद्रं गमत् । गच्छति ।  
सुतः सन् । अयं वृषा वर्षतः कलानां सुतोऽभिपुतः सन्गत्वा ध्रुवे सदसि स्थिरे खाने शुभोकास्त्रो सीदति ।  
निवसति ॥

नू नो रयिं महामिंदोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणं ॥ ३ ॥

नु।नः।रयिं।महां।इंदो इति।अस्मभ्यं।सोम।विश्वतः।आ।पवस्व।सहस्रिणं ॥ ३ ॥

हे सोम अभिपुतस्त्वं हे इंदो नोऽस्मभ्यं नु चिप्रं महं महान्तं सहस्रिणमसंख्यातं रयिं धनं विश्वत आ पवस्व । सर्वतः परित्यज ॥

विश्वा सोम पवमान द्युम्नानीद्वा भर । विदाः सहस्रिणीरिषः ॥ ४ ॥

विश्वा।सोम।पवमान।द्युम्नानि।इंदो इति।आ।भर।विदाः।सहस्रिणीः।रिषः ॥ ४ ॥

हे सोम पवमान पूयमानिंदो दीप्त त्वं विश्वा सर्वाणि वज्रविधानि द्युम्नानि द्रविणान्या भर । आहर । विदा जंभय च सहस्रिणीः सहस्रसंख्याकानीषोऽन्नाणि ॥

स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यं । जरितुर्वर्धया गिरः ॥ ५ ॥

सः।नः।पुनानः।आ।भर।रयिं।स्तोत्रे।सुवीर्यं।जरितुः।वर्धय।गिरः ॥ ५ ॥

हे सोम स त्वं नोऽस्मभ्यं स्तोत्रे स्तोतुभ्यः पुनानः पूयमानोऽभिपूयमाण आ भर । आहर । किं । रयिं धनं । कीदृशं । सुवीर्यं सुपुत्रं । किंच जरितुः स्तोतुर्गिरः सुतीर्वर्धय ॥

पुनान इद्वा भर सोम द्विर्वहसं रयिं । वृषन्दिनो न उक्थ्यं ॥ ६ ॥

पुनानः।इंदो इति।आ।भर।सोम।द्विर्वहसं।रयिं।वृषन्।इंदो इति।नः।उक्थ्यं ॥ ६ ॥

हे इंदो सोम पुनानः पूयमानस्त्वमा भर । आहर । किं । रयिं धनं । कीदृशं धनं । द्विर्वहसं द्वयोर्वावा-पुष्विवाख्यायोः स्त्रानयोः परिवृजं । तदेवाह । हे इंदो वृषन्वर्धक नोऽस्मभ्यमुक्थ्यं सुत्वं धनमा भर ॥ ३० ॥

प्र ये गाव इति षड्वचं सप्तदशं सूक्तं कायस्व मेधातिथिरार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । तथा चागु-क्रांतं । प्र ये गावो मेधातिथिरिति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र ये गावो न भूर्णैयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नंतः कृष्णामप त्वचं ॥ १ ॥

प्र।ये।गावः।न।भूर्णैयः।त्वेषाः।अयासः।अक्रमुः।घ्नंतः।कृष्णां।अप।त्वचं ॥ १ ॥

येऽभिपुताः सोमा गावो नोदकानीव तानि यथा तूर्णमधः पतन्ति तद्वत् । एवं वोपमीयते । यथा गावः स्वगोष्ठं प्रत्यागु गच्छन्ति तद्वत् । अथवा गावः सुतिवाचः । ता यथा सुत्वं प्रति चिप्रं प्राप्नुवन्ति तद्वत् । भूर्णैयः चिप्रास्त्वेषा दीप्ता अयासोऽया गमनशीलाः कृष्णां त्वचं । कृष्णा त्वयचाः । तमप घ्नन्तो निघ्नन्तः । त्वचिः संवरणकर्मा । ईदृग्मूताः सोमाः प्राक्रमुः । ताम्भुतेति शेषः ॥

सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यं । साह्यांसो दस्युमव्रतं ॥ २ ॥

सुवितस्य।मनामहे।अति।सेतुं।दुराव्यं।साह्यांसः।दस्युः।अव्रतं ॥ २ ॥

सुवितस्त्व । शोभनं प्राप्तः सुवितः । शोभनस्त्व सोमस्त्व सेतुं रजोविषयं बंधनं दुराव्यं दुष्टमतिं च रचसां बंधनं तेषां दहनपुष्टिं च सोमकर्तृका मनामहे । सुमः । कथं सुम इति तदुच्यते । अव्रतमकर्मणं दस्युं यत्तु साह्यांसोऽभिमव्रतः ॥



पृथ्वे वृष्टेरिव स्वः पर्वमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥३॥

पृथ्वे । वृष्टेऽइव । स्वः । पर्वमानस्य । शुष्मिणः । चरन्ति । विद्युतः । दिवि ॥३॥

पृथ्वे । श्रूयते । किं । सोमस्वनः । किमिव । वृष्टेर्वर्षणस्य स्वन इव । तस्य यथा महास्वनः श्रूयते तद्वत्-  
मूतरसापातसमये श्रूयते । कस्य स्वन इति तथाह । पर्वमानस्य पूयमानस्य शुष्मिणो बलवतः । तस्यैव विद्युतो  
दीप्तयो दिव्यंतरिक्षे चरन्ति ॥

आ पवस्व महीमिधं गोमदिदो हिरण्यवत् । अश्ववज्राजवत्सुतः ॥४॥

आ । पवस्व । मही । इधं । गोऽमत् । इदो इति । हिरण्यऽवत् । अश्वऽवत् ।  
वार्जऽवत् । सुतः ॥४॥

हे इदो सोम सुतोऽभिपुतस्त्वं महीमिधं महद्गन्ता पवस्व । कीदृशमत् । गोमज्जगोमिधपेतं एवं हिर-  
ण्यवदिरण्यैरश्वदश्चैवाजवद्वाजैर्वैशिष्टोपेतं ॥

स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण । उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥५॥

सः । पवस्व । विऽचर्षणे । आ । मही इति । रोदसी इति । पृण । उषाः । सूर्यः । न ।  
रश्मिऽभिः ॥५॥

हे विचर्षणे विद्रष्टः सोम स त्वं पवस्व । पर रश्मं । तथा ज्ञत्वा तेन रसेन मही महती रोदसी आवा-  
पुधिब्यावा पृण । आपूरय । उषा उषसः । एकदेशवाचिनोपःशब्देन तदुपलक्षितमहर्षयते तन्नाधान्यात् ।  
अहानि रश्मिभिः सूर्यो न सूर्य इव ॥

परिणः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः । सरा रसेव विष्टपं ॥६॥

परि । नः । शर्मऽयन्त्या । धारया । सोम । विश्वतः । सरा । रसाऽइव । विष्टपं ॥६॥

हे सोम नोऽस्माभ्यं शर्मयन्त्या सुखयन्त्या धारया विश्वतः सर्वतः परि सर । परिचर । रसेव रसेनेव विष्टपं  
भूलोकं । यद्वा । रसा नदी स्थानं सा प्रणयरूपमिव ॥ ३९ ॥

जनयन्निति षड्वचमष्टादशं सूक्तं । अष्टायाः पूर्ववत् । जनयन्नित्यनुक्रांतं ॥ गतो विनिर्वाणः ॥

जनयन्नोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यं । वसानो गा अपो हरिः ॥७॥

जनयन् । रोचना । दिवः । जनयन् । अप्सु । सूर्यं । वसानः । गाः । अपः । हरिः ॥७॥

अयं हरिः सोमो दिवो सुसंबंधीनि रोचना रोचनानि नक्षत्रग्रहमंडलानि जनयन् तथाप्यंतरिक्षे सूर्यं च  
जनयन् तथा गा अधोर्गन्तीरपो वसानो भूमिमात्मानं वाक्छादयन् पवत इत्युत्तरच संबंधः ॥

एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । धारया पवते सुतः ॥८॥

एषः । प्रत्नेन । मन्मना । देवः । देवेभ्यः । परि । धारया । पवते । सुतः ॥८॥

एष सोमः प्रत्नेन पुराणेन मन्मना मननीयेन स्तोत्रेण युक्तः सुतोऽभिपुतश्च सन्देवेभ्यः परि परितो  
धारया स्तोत्रया पवते ॥

वावृधानाय तूर्वेये पर्वते वाजसातये । सोमाः सहस्रपाजसः ॥३॥

ववृधानाय । तूर्वेये । पर्वते । वाजसातये । सोमाः । सहस्रपाजसः ॥३॥

वावृधानाय वर्धमानाय तूर्वेये विप्राय वाजसातये संयामावाप्तत्तामाय वा पर्वते पूयते सोमाः सहस्रपाजसोऽपरिमितवशाः । असंख्यातवेना इत्यर्थः ॥

दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि पिच्यते । क्रंदन्देवाँ अजीजनत् ॥४॥

दुहानः । प्रत्नं । इत् । पयः । पवित्रे । परि । सिच्यते । क्रंदन् । देवान् । अजीजनत् ॥४॥

प्रत्नमित्पुराणमेव पयो रवं दुहानो दधानः सोमः पवित्रे परि पिच्यते । किंच क्रंदन्शब्दं कुर्वन्देवानजीजनत् । जनयति स्वसमीपे । यत्र सोमोऽभिषूयते तत्र देवा नियतं प्रादुर्भवन्ति । अतो जनयतीत्युपपद्यते ॥

अभि विश्वानि वार्याभि देवाँ ऋतावृधः । सोमः पुनानो अर्षति ॥५॥

अभि । विश्वानि । वार्या । अभि । देवान् । ऋतऽवृधः । सोमः । पुनानः । अर्षति ॥५॥

अयं सोमः पुनानः पूयमानो विश्वानि वार्या वरणीयाणि धनान्वभ्यर्षति । तपतीवृधो यज्ञवर्धनाद्देवान्वभ्यर्षति ॥

गोमन्त्रः सोम वीरवदश्वावृडाजवत्सुतः । पर्वस्व बृहतीरिषः ॥६॥

गोऽमन् । नः । सोम । वीरऽवन् । अश्वऽवन् । वाजऽवन् । सुतः । पर्वस्व । बृहतीः । इषः ॥६॥

हे सोम सुतस्त्वं गोऽस्माकं गोमन्त्रोभिर्द्युतं वीरवद्वज्रभिर्वीरैरुपेतमश्वावदक्षैर्द्युतं वाजवद्वानिर्वहैः संयामिर्वीरैः धनं बृहतीरिषः प्रभूतान्वत्तानि पवस्व । प्रयच्छेत्यर्थः ॥ ३२ ॥

यो अत्य इवेति षड्वचमेकोनविंशं सूक्तं । अष्टाधाः पूर्ववत् । यो अत्य इवेत्यनुक्रान्तं ॥ गतो विनियोगः ॥

यो अत्य इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः । तं गीभिर्वासयामसि ॥९॥

यः । अत्यःऽइव । मृज्यते । गोभिः । मदाय । हर्यतः । तं । गीऽभिः । वासयामसि ॥९॥

यः सोमोऽत्य इवातनशीलोऽस्य इव गोभिर्वसतीवरीभिरग्निर्गोविकारिः पयश्चादिभिर्वा मृज्यते मिश्र्यते । किमर्थं । मदाय देवानां । कीदृशः । यो हर्यतः क्रान्तः । तं सोमं गीभिः सुतिभिर्वासयामसि । वासयामः ॥

तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुभन्ति पूर्वथा । इंदुमिद्राय पीतये ॥२॥

तं । नः । विश्वाः । अवस्युवः । गिरः । शुभन्ति । पूर्वऽथा । इंदु । इंद्राय । पीतये ॥२॥

तमिदं सोमं गोऽस्माकं विश्वाः सर्वा अवस्युवः । अवो रक्षणं । तदिच्छन्तो गिरः सुतयः पूर्वथा पूर्वमिव पूर्वं यथा तथैवेदानामपि शुभन्ति । दीपयन्ति । किमर्थं । इंद्राथेन्द्रस्य पीतये पानाय ॥

पुनानो याति हर्यतः सोमो गीभिः परिष्कृतः । विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥३॥

पुनानः । याति । हर्यतः । सोमः । गीऽभिः । परिऽकृतः । विप्रस्य । मेध्यऽअतिथेः ॥३॥



पुनानः पूयमानो हर्षतः कमनीयः सोमो गोर्मिः परिष्कृतः क्षुतिभिरनङ्गतो याति कलशं प्रति । किमर्थं ।  
विप्रस्य मेधाविनो मेधातिथेर्मम चागार्थं । यद्वा । मम गोर्मिरिति संबंधः ॥

पर्वमान वि॒दा र॒यिम॒स्मभ्यं॑ सोम सु॒श्रियं॑ । इ॒दो स॒हस्र॑वर्चसं ॥४॥

पर्वमान । वि॒दाः । र॒यिं । अ॒स्मभ्यं॑ । सोम॒ । सु॒ऽश्रियं॑ । इ॒दो इति॑ । स॒हस्र॑ऽवर्चसं ॥४॥

हे पर्वमर्षेदो सोम अस्मभ्यं सुश्रियं शोभनया श्रिया युक्तं सहस्रवर्चसं वज्रदीप्तिं रयिं धनं विदाः ।  
देहीत्यर्थः ॥

इ॒ंदुर॒त्यो न वाज॑सृ॒त्कनि॑क्रंति प॒वित्र॒ आ । यद॒क्षा र॒तिं दे॒व्युः ॥५॥

इ॒दुः । अ॒त्यः । न । वाज॑ऽसृत् । कनि॑क्रंति । प॒वित्रे॑ । आ । यत् । अ॒क्षाः । अ॒ति । दे॒व्युः ॥५॥

अयमिन्दुर्वाजसृत्संयामसरणोऽत्यो नाश्च इव पवित्र आ पवित्रे कनिंक्रंति । शब्दं करोति । यथादायाः  
धरति ॥ चर संचलन इत्यस्माच्छांदसे लुङि तिपि सिच् । वज्रं वंद्सीतीडभावः । इडभावे च रात्सस्येति  
सलोपः ॥ देवयुदैवकामः सन् तदा शब्दं करोति ॥

पर्वस्व॒ वाज॑सातये विप्रस्य गृण॒तो वृ॒धे । सोम॒ रास्व॑ सुवी॒र्यं॑ ॥६॥

पर्वस्व । वाज॑ऽसातये । विप्रस्य । गृण॒तः । वृ॒धे । सोम॒ । रास्व॑ । सु॒ऽवीर्यं॑ ॥६॥

हे सोम पर्वस्व । चर । किमर्थं । वाजसातयेऽज्ञलाभाय । तथा गृणतः क्षुवतो विप्रस्य मम मेधातिथेर्वृधे  
वर्धनाय च । हे सोम सुवीर्यं शोभनवीर्येपितं पुत्रं च रास्व । देहि ॥ ॥३३॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थीसुतुरो देयाद्विषातीर्थमहेक्षरः ॥

इति श्रीमद्वाजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुद्धभूपाससाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण  
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः ॥

॥ समाप्तं च षष्ठाष्टकं ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

॥ कल्याणं भूयात् ॥



ओं

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

यस्य निःशसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत ।  
निर्ममे तमहं वंदे विद्यातोर्थमहेश्वरं ॥

अथ सप्तमाष्टकस्य प्रथमाध्याय आरभ्यते ॥ प्र ण इति षष्ठ्यं विंशं सूक्तमांगिरसस्त्रयास्त्रयार्थं गायत्रं  
पथमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । प्र योऽयास्त्र इति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र ण इंदो महे तन ऊर्मि न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाँ अयास्यः ॥ १ ॥

प्रानः । इंदो इति । महे । तने । ऊर्मि । न । बिभ्रत् । अर्षसि । अभि । देवान् । अयास्यः ॥ १ ॥

हे इंदो सोम त्वं योऽस्माकं महे महति तने धनाय प्रार्थसि । प्रगच्छसि । न संप्रति । अयास्यथायमुपिक्व-  
चोर्मि तरंगं बिभ्रत्तारयन्देवानमि गच्छति यदुं ॥

मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति । विप्रस्य धारया कविः ॥ २ ॥

मती । जुष्टः । धिया । हितः । सोमः । हिन्वे । पराऽवति । विप्रस्य । धारया । कविः ॥ २ ॥

कविः क्रांतकर्मो सोमो विप्रस्य मेधाविनः सोमोर्मती मत्वा सुत्वा जुष्टः सेवितो धिया कर्मणा हितो यच्च  
निहितः परावति पवित्राद्दरदेशे धारया हिन्वे । प्रेर्यते ॥

अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ । सोमो याति विचर्षणिः ॥ ३ ॥

अयं । देवेषु । जागृविः । सुतः । एति । पवित्रे । आ । सोमः । याति । विऽचर्षणिः ॥ ३ ॥

जागृविर्जाग्रतशीलोऽयं सोमो देवेषु देवार्थं सुतोऽभिषुत एति । समंतात्प्रच्छति । अपि च विचर्षणि-  
र्विद्रष्टा सोमः पवित्रे याति । पावनाय गच्छति ॥

स नः पवस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरं । बर्हिष्माँ आ विवासात ॥ ४ ॥

सः । नः । पवस्व । वाजऽयुः । चक्राणः । चारु । अध्वरं । बर्हिष्मान् । आ ।

विवासति ॥ ४ ॥

हे सोम त्वं त्वां बर्हिष्मानुस्त्रिणा विवासति परिचरति स त्वं योऽस्यदर्थं वाजयुर्नमिच्छन्नध्वरं हिंसारहितं  
पायं पारं कक्षाणं चक्राणः कुर्वन्पवस्व । पर ॥

स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः । सोमो देवेष्वायमत् ॥ ५ ॥

सः । नः । भगाय । वायवे । विप्रऽवीरः । सदाऽवृधः । सोमः । देवेषु । आ । यमत् ॥ ५ ॥

स पवमानः सोमो वायवे वायुदेवार्थं मगाय मगदेवार्थं च विप्रवीरो विप्रिर्मेधाविभिः सुखा प्रेरितः  
सदाबुधो नित्यबुधो भवन्नोऽस्माभ्यं देवेषु स्थितं धनमा यमत । आ प्रयच्छतु ॥

स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविज्ञातुवित्तमः । वाजं जेषि श्रवो बृहत् ॥ ६ ॥

सः । नः । अद्य । वसुत्तये । क्रतुऽवित् । गातुवित्ऽत्तमः । वाजं । जेषि । श्रवः । बृहत् ॥ ६ ॥

हे सोम क्रतुवित् क्रतूनां कर्मणां संमको गातुवित्तमः पुष्कलोकानामतिशयेन मार्गस्य ज्ञाता स्वमवाप्ति-  
महानि नोऽस्माकं वसुत्तये धनसामाय नृहन्महच्छ्रवोऽज्ञं वाजं वलं च जेषि । जय ॥ ॥ १ ॥

स पवसेति षडृचमंकाविंशं सूक्तं । अष्टाद्याः पूर्ववत् । स पवसेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये । इंदुविंद्राय पीतये ॥ १ ॥

सः । पवस्व । मदाय । कं । नृऽचक्षाः । देवऽवीतये । इंदो इति । इंद्राय । पीतये ॥ १ ॥

हे इंदो सोम नृचक्षा नृणां नेतृणां द्रष्टा स त्वं देववीतये यज्ञयिंद्रयिंद्रस्य पीतये पानाय च मदाय  
मदार्थं च कं मुखं यथा भवति तथा पवस्व । चर ॥

स नो अर्षाभि दूत्यं त्वमिंद्राय तोशसे । देवान्सखिभ्य आ वरं ॥ २ ॥

सः । नः । अर्षे । अर्षि । दूत्यं । त्वं । इंद्राय । तोशसे । देवान् । सखिभ्यः । आ । वरं ॥ २ ॥

हे सोम त्वं नोऽस्माकं दूत्यं दूतस्य कर्मार्थं । अभिगच्छ । अपि च यस्त्वमिंद्रयिंद्रार्थं तोशसे पीयसे स त्वं  
सखिभ्यः प्रियेभ्योऽस्माभ्यं वरं श्रेष्ठं धनं देवाना पवसेत्यर्थः ॥

उत त्वामरुणं वयं गोभिर्जम्भो मदाय कं । वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥

उत । त्वां । अरुणं । वयं । गोभिः । अंज्मः । मदाय । कं । वि । नः । राये । दुरः । वृधि ॥ ३ ॥

उतापि च हे सोम यमश्ममश्मवर्षं त्वां मदाय मदार्थं वयमांगिरसायासा गोभिर्गोविकारेः यथो-  
भिर्जम्भः वासयामः संकुर्मः । कमिति पूरणं । स त्वं नोऽस्माकं राये धनाय दुरो ह्यराधि वि वृधि ।  
विपुतामि कुरु ॥

अत्यू पविचमक्रमीद्वाजी धुरं न यामनि । इंदुदेवेषु पत्यते ॥ ४ ॥

अति । ऊं इति । पविचं । अक्रमीत् । वाजी । धुरं । न । यामनि । इंदुः ।

देवेषु । पत्यते ॥ ४ ॥

इंदुः सोमो वायव्यो यामनि गमने धुरं न रथस्य धुरं यथा तथा पविचमत्वक्रीमीत् । अतिगच्छति ।  
देवेषु देवानां मध्ये पत्यते । गच्छति च ॥

समी सखायो अस्वरन्वने क्रीळंतमत्यविं । इंदुं नावा अनूषत ॥ ५ ॥

सं । ईमिति । सखायः । अस्वरन् । वने । क्रीळंतं । अतिऽअविं । इंदुं । नावाः ।

अनूषत ॥ ५ ॥

अत्यविमतिक्रांतं दशापविचं वन उदके क्रीळंतं संक्रीडमानमीमेनमिंदुं सोमं सखायः प्रियस्रोतारः  
समस्वरन् । संकुर्वन्ति । नावा वाचोऽनूषत । अनुवन् । नीरचरमिति वाक्कामसु पाठात् ॥



तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे । इंदो स्तोत्रे सुवीर्ये ॥ ६ ॥

तया । पवस्व । धारया । यया । पीतः । विचक्षसे । इंदो इति । स्तोत्रे । सुवीर्ये ॥ ६ ॥

हे इंदो त्वं यथा धारया पीतः सन्विचक्षसे विचक्षणाय स्तोत्रे स्तोत्राणां कर्त्रे पुनराय सुवीर्यं शोभनवीर्यं प्रयच्छसीति शेषः । तथा धारया पवस्व । चर ॥ २ ॥

अक्षयन्निति षडृचं द्वाविंशं सूक्तं । अष्टाध्यायाः पूर्ववत् । अक्षयन्नित्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

असृग्देववीतयेऽत्यासः कृत्वा इव । क्षरंतः पर्वतावृधः ॥ १ ॥

असृग्मन् । देवऽवीतये । अत्यासः । कृत्वाऽइव । क्षरंतः । पर्वतावृधः ॥ १ ॥

पर्वतावृधः पर्वतैरभिवृद्धावभिर्वृद्धाः पर्वतेषु वा जाताः क्षरंतः सोमा देववीतये यथायात्वासोऽद्याः छत्वा इव यथा कर्मणा अद्याः तद्वदक्षयन् । क्षयंति ॥

परिष्कृतास इंदवो योषेव पित्र्यावती । वायुं सोमा असृक्षत ॥ २ ॥

परिऽकृतासः । इंदवः । योषाऽइव । पित्र्यावती । वायुं । सोमाः । असृक्षत ॥ २ ॥

इंदवो यागेषु स्त्रियमाणाः सोमाः परिष्कृतासः परिष्कृता अचंचताः संतः पित्र्यावती पितृमती योषेवा-  
चंचता अन्वया यथा चरं प्रति गच्छति तद्वदायुं प्रत्यक्षयत । गच्छंति ॥

एते सोमास इंदवः प्रयस्वतश्चमू सुताः । इंद्रं वर्धेति कर्मभिः ॥ ३ ॥

एते । सोमासः । इंदवः । प्रयस्वतः । चमू इति । सुताः । इंद्रं । वर्धेति । कर्मऽभिः ॥ ३ ॥

इंदवो दीप्ताः प्रयस्वतोऽज्ञवन्त एतेऽस्मिन्कर्मणि वर्तमाना अमी सोमासः सोमासू चमोरभिववक्ष-  
सकयोः सुता अमिषुताः संतः कर्ममिर्व्यतिरिद्धं वर्धेति । प्रवर्धयंति । प्रीययंतीत्यर्थः ॥

आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मंधिना । गोभिः श्रीणीत मात्सरं ॥ ४ ॥

आ । धावत । सुहस्त्यः । शुक्रा । गृभ्णीत । मंधिना । गोभिः । श्रीणीत । मात्सरं ॥ ४ ॥

हे सुहस्त्यः शोभनहस्ता अस्त्रिवः आ धावत । मां संप्रत्यागच्छत । मंधिना सह शुक्रा शुक्रं च गृभ्णीत ।  
गृह्णीत सोमं । मात्सरं सोमं गोभिर्गोविकारिः पयोभिः श्रीणीत । संस्क्रुषत च ॥

स पवस्व धनंजय प्रयंता राधसो महः । अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ ५ ॥

सः । पवस्व । धनंजय । प्रयंता । राधसः । महः । अस्मभ्यं । सोम । गातुवित् ॥ ५ ॥

हे धनंजय शत्रुसंबन्धिनां धनानां धेतः सोम गातुविदमीष्टमार्गस्य संमन्त्रोऽस्मभ्यं महो महतो राधसो  
धनस्य प्रयंता प्रदाता च यः स त्वं पवस्व । चर ॥

एतं मृजंति मर्ज्यं पर्वमानं दश क्षिपः । इंद्राय मात्सरं मदं ॥ ६ ॥

एतं । मृजंति । मर्ज्यं । पर्वमानं । दश । क्षिपः । इंद्राय । मात्सरं । मदं ॥ ६ ॥

मर्ज्यं मर्वनीयं शोध्यं पवमानं क्षरंतं मात्सरं मदकरमेतमिमं मदं सोमं दशसंख्यायाः क्षिपोऽनुलयः ।  
त्रिशः क्षिप इत्यनुक्तिनामसु पाठात् । इंद्राय मृजंति । पवित्रे शोधयंति ॥ ३ ॥

अथा सोम इति पंचर्चं चयोविंशं सूक्तं भृगुपुत्रस्य कवेरायं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । तथा चागुक्तांतं ।  
अथा सोमः पंच कविर्भार्गव इति ॥ उक्ती विनियोगः ॥

अथा सोमः सुकृत्यायां महश्चिदभ्यवर्धत । मंदान उवृषायते ॥ १ ॥

अथा । सोमः । सुऽकृत्यायां । महः । चित् । अभि । अवर्धत । मंदानः । उत् । वृषऽयते ॥ १ ॥

सोमोऽयानया सुकृत्याया शोभनयाभिषवादिब्रह्मणया क्रियया महश्चिज्जहती देवान् प्रत्यभ्यवर्धत ।  
प्रवृद्धोऽभूत् । मंदानो मोदमान उवृषायते । वृषवदाचरति । यथा मोदमानो वृषमः शब्दं करोति तथाभि-  
षववेलायामुपरिवेष्टुं शब्दं करोतीत्यर्थः ॥

कृतानीदस्य कर्त्वा चेत्तंते दस्युतर्हणा । ऋणा च धृष्णुश्चयते ॥ २ ॥

कृतानि । इत् । अस्य । कर्त्वा । चेत्तंते । दस्युऽतर्हणा । ऋणा । च । धृष्णुः । चयते ॥ २ ॥

कृतान्यस्य यस्मैतस्य सोमस्य दस्युतर्हणा दस्युनामसुराणां कर्त्वा कर्माणि स इदस्मान्निरेष सोऽयं धृष्णुर्धृष्टः  
सोमो यजमानानामृणा चर्षान्यपि चयते । कामप्रदानेन चातयति ॥

आत्सोमं इंद्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत् । उक्थं यदस्य जायते ॥ ३ ॥

आत् । सोमः । इंद्रियः । रसः । वज्रः । सहस्रऽसाः । भुवत् । उक्थं । यत् । अस्य ।  
जायते ॥ ३ ॥

यद्यदाखेंद्रस्त्र्योक्थं शस्त्रं जायते प्रादुर्भवति तदादनंतरमेवेन्द्रिय इंद्रस्य प्रियकरो रसो बलवान्वज्रो  
वज्रसदृशः केनाप्यहिंस्रः सोमः सहस्रसा अस्त्रभ्रमपरिमितस्य धनस्य दाता भवति ॥

स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति । यदी मर्मृज्यते धियः ॥ ४ ॥

स्वयं । कविः । विऽधर्तरि । विप्राय । रत्नं । इच्छति । यदि । मर्मृज्यते । धियः ॥ ४ ॥

यदि कविः क्रांतकर्मायं सोमो धियो धीमिः ॥ विमक्तिव्यत्ययः ॥ धीतिभिः । अंगुलीभिरित्यर्थः । मर्मृज्यते  
शोध्यते तर्हि स्वयं स्वयमेव विप्राय मेधाविने विधर्तरि कामानां विधातरीन्द्रे रत्नं रमणीयं धनमिच्छति ।  
इन्द्रेण धनं दापयितुमिच्छतीत्यर्थः ॥

सिषासतू रयीणां वाजेष्वर्वतामिव । भरेषु जिग्युषामसि ॥ ५ ॥

सिषासतुः । रयीणां । वाजेषु । अर्वतांऽइव । भरेषु । जिग्युषां । असि ॥ ५ ॥

हे सोम त्वं भरेषु संयामेषु जिग्युषां शत्रुं जयतां रयीणां धनानां सिषासतुः संभक्तुमिच्छुरसि । भवसि ।  
शत्रुञ्जयज्ञो धनानि प्रयच्छसीत्यर्थः । तच्च दृष्टांतः । वाजेषु संयामेष्वर्वतामिवाश्वानामिव । यथा संयामं प्रवि-  
शन्तोऽश्वेभ्यो घासं प्रयच्छति तद्वदित्यर्थः ॥ ४ ॥

तं त्वेति पंचर्चं चतुर्विंशं सूक्तं । चक्ष्याद्याः पूर्ववत् । तं त्वेत्यगुक्तांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

तं त्वा नृम्णानि विभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः । चारुं सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥

तं । त्वा । नृम्णानि । विभ्रतं । सधऽस्थेषु । महः । दिवः । चारुं । सुऽकृत्यायां । ईमहे ॥ १ ॥

महो दिवो महतो बुलोकस्य सधस्थेषु सहस्रानिषु स्थितं नृम्णानि धनानि विभ्रतमसदर्थं धारयंतं चारुं  
चक्ष्यायां तं पवमानं त्वा त्वां सुकृत्याया शोभनया क्रिययेमहे । धनानि याचामहे ॥



संवृक्तधृष्णमुक्थ्यं महामहित्रतं मदं । शतं पुरो रुरुक्ष्यि ॥ २ ॥

संवृक्तधृष्णं । उक्थ्यं । महाऽमहित्रतं । मदं । शतं । पुरः । रुरुक्ष्यि ॥ २ ॥

हे सोम संवृक्तधृष्ण । संवृक्ताः संक्षिप्ता धृष्णवो धर्षणशीलाः श्रवणो येनासी संवृक्तधृष्णः । तमुक्थ्यमुक्थ्याहं प्रशस्यं महामहित्रतं महनीयवज्रकर्माणं मदं मदकरं शतं वह्नि पुरः शत्रूणां पुराणि रुरुक्ष्यि विनाशयंतं त्वां धनानीमह इति संबंधः ॥

अतस्त्वा रयिमभि राजानं सुक्रतो दिवः । सुपर्णो अव्यथिर्भरत् ॥ ३ ॥

अतः । त्वा । रयिं । अभि । राजानं । सुक्रतो इति सुऽक्रतो । दिवः । सुऽपर्णः ।

अव्यथिः । भरत् ॥ ३ ॥

हे पवमान सोम रयिमभि धनं प्रति राजानं त्वा त्वामतो दिवोऽमुष्माद्युलोकात्सुक्रतुः सुपर्णोऽव्यथिर्भरत् पुरहितः सुपर्णः श्रेणो भरत् । आहरत् । तथा च निगमांतरं । आदाय श्रेणो अभरत्सोमं सहस्रं सर्वा । ऋ० ४. २६. ७. इति ॥

विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरं । गोपामृतस्य विर्भरत् ॥ ४ ॥

विश्वस्मै । इत् । स्वः । दृशे । साधारणं । रजःस्तुरं । गोपां । अमृतस्य । विः । भरत् ॥ ४ ॥

रजस्तुरमुदकस्य प्रेरकमृतस्य यज्ञस्य गोपां गोपायितारं विश्वस्मै सर्वस्मै स्वर्दृशे सर्वदृशे देवाय साधारणमित्समानमेव संतं सोमं विः पक्षी श्रेणो भरत् । स्वर्गादाहरत् ॥

अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे । अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ५ ॥

अध । हिन्वानः । इन्द्रियं । ज्यायः । महिऽत्वं । आनशे । अभिष्टिऽकृत् । विऽचर्षणिः ॥ ५ ॥

अथाय विचर्षणिः कर्मणां विद्रष्टाभिष्टिकृत्वजमानानामभीष्टस्य फलस्य कर्ता सोम इन्द्रियं स्वकीयं बलं हिन्वानः प्रेरयज्यायः प्रशस्यतरं महित्वं महत्त्वमानशे । प्राप्नोति ॥ ५ ॥

पवस्विति पंचर्षं पंचविंशं सूक्तं । अष्टाधाः पूर्ववत् । पवस्वित्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि । अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ ६ ॥

पवस्व । वृष्टिं । आ । सु । नः । अपां । ऊर्मिं । दिवः । परि । अयक्ष्माः । बृहतीः । इषः ॥ ६ ॥

हे सोम त्वं दिवो युलोकाद्वृष्टिं नोऽस्माकमा पवस्व । समंतात्पर । एतदेव दर्शयति । अपामुदकानामूर्मिं तरंगं दिवः पर्या पवस्व । अपि चायक्ष्मा यक्षरहितान्यनामयानि बृहतीर्महांतीपोऽन्नान्या पवस्व ॥

तया पवस्व धारया यया गावं इहागमन् । जन्यास उप नो गृहं ॥ ७ ॥

तया । पवस्व । धारया । यया । गावं । इह । आऽगमन् । जन्यासः । उप । नः । गृहं ॥ ७ ॥

हे सोम त्वं तथा तादृक्षा धारया पवस्व । चर । कीदृक्षेत्वचाह । यया यादृक्षा त्वदीयया धारया जन्यासी जन्याः शत्रुजनपदभवा गाव इहास्मिन्नेके नोऽस्माकं संबंधि गृहमुपागमन् उपागच्छति ॥

घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ८ ॥

घृतं । पवस्व । धारया । यज्ञेषु । देवऽवीतमः । अस्मभ्यं । वृष्टिं । आ । पव ॥ ८ ॥

हे सोम यज्ञेषु देववीतमोऽत्यंतं देवकामस्त्वमसमं भार्गवेभ्यः कविभ्यो घृतमुदकं । वनं घृतमित्युदकना-  
मसु पाठात् । धारया संपातेन पवस्व । चर । वृष्टिं वर्षं चा पव । पवस्व ॥

स न ऊर्जे व्यप्ययं पविचं धाव धारया । देवासः शृण्वन्हि कं ॥४॥

सः । नः । ऊर्जे । वि । अप्ययं । पविचं । धाव । धारया । देवासः । शृण्वन् । हि । कं ॥४॥

हे सोम सुतोऽभिषुतस्त्वं जोऽस्माकमूर्जेऽज्ञायाव्ययमविमयं पविचं धारया संपातेन वि धाव । प्राप्नुहि ।  
देवासो देवा अपि हि कं शृण्वन् । गमनवेत्तायामुत्पन्नं तव शब्दं शृण्वन्तु ॥

पवमानो असिष्यदृक्षांस्थपजघनत् । प्रत्नवद्रोचयन्नुचः ॥५॥

पवमानः । असिष्यदृत् । रक्षांसि । अपऽजघनत् । प्रत्नऽवत् । रोचयन् । रुचः ॥५॥

रक्षांसि राक्षसानपजघनदपघ्ननुच आत्मीया दीप्तीः प्रत्नवत्पराश्वद्रोचयन्दीपयन्पवमानः सोमोऽसि-  
ष्यदत् । खंदते ॥ ६॥

उक्त इति पंचवं वृष्टिंशं सूक्तमागिरसस्त्रोचष्यस्त्राघं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । उक्ते  
शुष्मास उचष्य इति ॥ उक्तो विनियोगः ॥

उक्ते शुष्मास ईरते सिंधोरुर्मेरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविं ॥१॥

उत् । ते । शुष्मासः । ईरते । सिंधोः । उर्मेऽइव । स्वनः । वाणस्य । चोदय । पविं ॥१॥

हे सोम ते तव शुष्मासः शुष्मा वेगा उदीरते । उन्नच्छंति । तव दृष्टांतः । सिंधोः समुद्रस्योर्मेरिव यथा  
तरंगात्स्वनो ध्वनिस्तच्छति तद्वदित्यर्थः । स त्वं वाणस्य विष्टष्टस्य वाणस्य नालस्य वा वादिचविशेषस्य पविं  
शब्दं । पविः भारतीति वाङ्मामसु पाठात् । चोदय । प्रेरय । वेगेन खंदमानस्त्वं विष्टष्टवाणशब्दसदृशं शब्दं  
कुर्वित्यर्थः ॥

प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मस्यस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥२॥

प्रऽसवे । ते । उत् । ईरते । तिस्रः । वाचः । मस्यस्युवः । यत् । अव्ये । एषि । सानवि ॥२॥

हे सोम ते तव प्रसवे सति मस्यस्युवो यज्ञमिच्छवो यजमानस्य तिस्रो वाच ऋग्यजुःसामात्मकानि त्रीणि  
वाक्यानुदीरते । उन्नच्छंति । कदेत्यत आह । यद्यदा सानवि व्युच्छ्रितेऽव्येऽविमये पविच एषि त्वं गच्छसि ॥

अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । पवमानं मधुश्चुतं ॥३॥

अव्यः । वारे । परि । प्रियं । हरिं । हिन्वंति । अद्रिऽभिः । पवमानं । मधुऽश्चुतं ॥३॥

प्रियं देवानां प्रीतिकरं हरिं हरितवर्णमद्रिभिर्षावभिरभिषुतं मधुश्चुतं मधुनो रसस्य आवधितारं  
पवमानं सोममव्योऽवेवारे वारि परि हिन्वंति । अत्विजः परिप्रेरयंति ॥

आ पवस्व मदिंतम पविचं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदं ॥४॥

आ । पवस्व । मदिन्ऽतम । पविचं । धारया । कवे । अर्कस्य । योनिं । आऽसदं ॥४॥

हे मदिंतम मादयितृतम कवे क्रांतकर्मन्सोम अर्कस्यार्चनोयस्त्रिंशस्य योनिमुदरं स्नानमासदं प्राप्तुं पवि-  
चमतीत्य धारया संपातेना पवस्व । आभिमुखेन चर । यद्यप्येषा पूर्वस्मिन्नध्याये व्याहृता तथापि मंदमतीनां  
विश्वरणशंकया पुनर्वाख्याता ॥



स पवस्व मदितम् गोभिरंजानो अक्नुभिः । इद्विन्द्राय पीतये ॥५॥

सः । पवस्व । मदिन्ऽतम् । गोभिः । अंजानः । अक्नुऽभिः । इदो इति । इन्द्राय । पीतये ॥५॥

हे मदितम् मादयितुमिदो सोम अक्नुभिरंजमसाधनभूतैर्गोभिर्गोविकारिः पयोभिरंजानोऽज्यमानः संस्क्रियमाणः स त्वमिन्द्रायिन्द्रस्य पीतये पानाय पवस्व । चर ॥ ७॥

अध्वर्यो इति पंचर्वं सप्तविंशं सूक्तमांगिरसस्योच्यस्त्वार्षं गावश्च पवमानसोमदेवताकं । तथा चाशुक्न्यति । अध्वर्यो इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पविच आ सृज । पुनीहीन्द्राय पातवे ॥१॥

अध्वर्यो इति । अद्रिऽभिः । सुतं । सोमं । पविच । आ । सृज । पुनीहि । इन्द्राय । पातवे ॥१॥

हे अध्वर्यो अद्रिभिर्यावभिः सुतमभिपुतं सोमं पविच आ सृज । एतदेव दर्शयति । इन्द्रायिन्द्रस्य पातवे पानाय पुनीहि । पावथ ॥

दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । सुनोता मधुमत्तमं ॥२॥

दिवः । पीयूषं । उत्ऽतमं । सोमं । इन्द्राय । वज्रिणे । सुनोत । मधुमत्ऽतमं ॥२॥

हे अध्वर्यवः यूयं मधुमत्तममतिशयेन मधुमंतं दिवो बुलोकस्य पीयूषममृतमुत्तमं श्रेष्ठं सोमं वज्रिणे वज्रवत इन्द्राय सुनोत । अभिषुणुत ॥

तव त्य इदो अंधसो देवा मधोर्व्यश्नते । पवमानस्य मरुतः ॥३॥

तव । त्येः इदो इति । अंधसः । देवाः । मधोः । वि । अश्नते । पवमानस्य । मरुतः ॥३॥

हे इदो सोम तव संबंधिनं मधोर्भदकरस्य पवमानस्य पूयमानमंधसोऽहं ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ त्ये त इमे देवा इन्द्रादयो मरुतश्च व्यश्नते । व्याप्नुवते । व्याप्नुवन्तीत्यर्थः ॥

त्वं हि सोम वर्धयन्सुतो मदाय भूर्यये । वृषन्स्तोतारमूतये ॥४॥

त्वं । हि । सोम । वर्धयन् । सुतः । मदाय । भूर्यये । वृषन् । स्तोतारं । उतये ॥४॥

हे सोम सुतोऽभिपुतस्त्वं वर्धयन्देवान्प्रवृद्धान्कुर्वन्पुण्यन्कामान्वर्धन् भूर्यये त्रिप्राय मदाद्योतये रक्षणाय च स्तोतारमभिगच्छसीत्यर्थः ॥

अभ्यर्षं विचक्षणं पविचं धारया सुतः । अभि वाजमुत श्रवः ॥५॥

अभि । अर्षं । विऽचक्षणं । पविचं । धारया । सुतः । अभि । वाजं । उत । श्रवः ॥५॥

हे विचक्षणं सोम सुतोऽभिपुतस्त्वं पविचमभि प्रति धारयार्षं । गच्छ । उतापि चास्त्वाकं वाजमन्नं श्रवः कीर्तिं चाभि चरेत्यर्थः ॥ ८॥

परि युच इति पंचर्वमष्टाविंशं सूक्तं । अष्टायाः पूर्ववत् । परि युच इत्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

परि द्युक्षः स॒न॒द्र॒यि॒र्भ॒र॒ञ्चा॒जं नो॒ अ॒ध॒सा । सु॒वा॒नो अ॒र्षे प॒वि॒त्र आ ॥१॥  
 परि । द्युक्षः । स॒न॒त्॒ऽर॒यिः । भ॒र॒त् । वा॒जं । नः । अ॒ध॒सा । सु॒वा॒नः । अ॒र्षे ।  
 प॒वि॒त्रे । आ ॥१॥

शुषो दीप्तः सनद्रयिर्दीयमानधनः सोमो नोऽस्माकं वाजं बलमंधसास्तेन सह परि भरत् । परिभरत् । प्रयच्छत् । अथ प्रत्यक्षश्रुतिः । हे सोम सुवानोऽभिपूयमाणस्त्वं पवित्र आर्षे । चर ॥

तव॑ प्र॒त्नेभि॒रध्व॑भि॒रव्यो॒ वारे॒ परि॒ प्रि॒यः । स॒हस्र॑धा॒रो या॒ज्ञना॑ ॥२॥  
 तव॑ प्र॒त्नेभिः॑ । अध्व॑ऽभिः । अव्यः । वारे॑ । परि॑ । प्रि॒यः । स॒हस्र॑ऽधा॒रः । या॒त् । तना॑ ॥२॥

हे सोम तव संबन्धी प्रियो देवानां प्रीतिकरः सहस्रधारो वज्रधारसना विस्तृतसारो रसः प्रत्नेभिः पुराणैरध्वभिर्मर्गैरव्योऽवेवरे बाले दशापवित्रे परि यात् । परिगच्छति ॥

च॒रु॒र्न य॒स्त॒मी॒ख्ये॒दो न॒ दान॑मी॒खय॑ । व॒धैर्व॑ध॒स्त॒वी॒खय॑ ॥३॥  
 च॒रुः । न । यः । तं । ई॒ख॒य॒ । ई॒दो॒ इति॑ । न । दानं॑ । ई॒ख॒य॒ । व॒धैः । व॒ध॒स्तो॒ इति॑  
 वध॑ऽस्तो । ई॒ख॒य॒ ॥३॥

हे सोम चरुर्न चरुरिव यः पूणीदो भवति तमी॒खय॑ । अस्मान्नापय । अपि च हे ई॒दो नै॒दानो॑ दानं देयमी॒खय॑ । हे वधस्तो प्रहरिण प्रक्षवणशील सोम वधैर्याव्यां प्रहरिरी॒खय॑ ॥

नि शु॒ष्मं॑ मि॒द॒वेषां॑ पु॒रु॒हू॒त ज॒ना॒नां । यो अ॒स्माँ आ॒दि॒देश॑ति ॥४॥  
 नि । शु॒ष्मं॑ । ई॒दो॒ इति॑ । ए॒षां॑ । पु॒रु॒ऽहू॒त । ज॒ना॒नां । यः । अ॒स्मान् । आ॒ऽदि॒देश॑ति ॥४॥

हे पुरुहूत वज्रभिराहूतेदो सोम त्वं यः शुष्मो येषां शत्रुजनानां बलमस्मानादिदेशति बाधार्थमाह्वयति एषां शत्रुजनानां तं शुष्मं बलं नि न्यक् कुर्विति शेषः ॥

श॒तं न॑ ई॒द ज॒तिभिः॑ स॒हस्रं॑ वा॒ शु॒ची॒नां । प॒व॒स्व म॑ह्य॒द्रयिः॑ ॥५॥  
 श॒तं । नः । ई॒दो॒ इति॑ । ज॒तिभिः॑ । स॒हस्रं॑ । वा॒ । शु॒ची॒नां । प॒व॒स्व । म॑ह्य॒त्॒ऽर॒यिः॑ ॥५॥

हे ई॒दो सोम म॑ह्यद्रयिः प्रदीयमानधनस्त्वं नोऽस्माकमूतिमिच्छतिभ्यः ॥ विभक्तिव्यत्ययः ॥ रचार्थं शुचीनां शुद्धानां तवांशभूतानां सोमानां शतं सहस्रं वा पवस्व । चर ॥ ॥५॥

उत्त इति चतुर्ध्वमेकोनविंशं सूक्तं काश्यपस्यावत्सारस्वार्थं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । उत्ते चतुष्कमवत्सार इति ॥ उत्तो विनियोगः ॥

उ॒त्ते शु॒ष्मा॒सो अ॒स्यू॒ रक्षो॑ भि॒द॒न्तो अ॒द्रि॒वः । नु॒द॒स्व॒ याः प॑रि॒स्पृ॒धः ॥१॥  
 उ॒त् । ते॒ । शु॒ष्मा॒सः । अ॒स्यूः । रक्षः॑ । भि॒द॒न्तः । अ॒द्रि॒ऽवः । नु॒द॒स्व॒ । याः । प॑रि॒ऽस्पृ॒धः ॥१॥

हे अ॒द्रि॒वो या॒व॒न्तो॒म ते॒ तव॑ शु॒ष्मा॒सः शु॒ष्मा वे॒गा र॒क्षो रा॒क्ष॒सां भि॒द॒न्तो वि॒दार॑यन्त उ॒द॒स्युः । उ॒त्ति॑ष्ठन्ति । याः स्पृधः स्पर्धमानाः शत्रुसेना अस्मान्नातिबाधन्ते तास्त्वं नुदस्व । प्रेरय । बाधस्त्वर्थः ॥

अ॒या नि॒ज॒ग्नि॒रोज॑सा रथ॒संगे॑ ध॒ने॒ ह॒ते । स्त॒वा अ॒वि॒भ्यु॒षा हृ॒दा ॥२॥  
 अ॒या । नि॒ऽज॒ग्निः । ओ॒ज॑सा । रथ॒ऽसंगे॑ । ध॒ने॒ । ह॒ते । स्त॒वै । अ॒वि॒भ्यु॒षा । हृ॒दा ॥२॥



हे सोम स्वमयानेन कृतेनीजसा वसेन निजग्निः शत्रून् हंतुं ग्रीक्षवान् । तं स्वामविभुषामीति हृदा मनसा युक्तोऽहं रथसंगेऽस्माकं रथानां संगे हिते शत्रुषु निहिते धने च निमित्ते खवे । खीमि ॥

अस्य व्रतानि नाधृषे पर्वमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥३॥

अस्य । व्रतानि । न । आऽधृषे । पर्वमानस्य । दुऽध्या । रुज । यः । त्वा । पृतन्यति ॥३॥

हे सोम पर्वमानस्य चरतो यस्यास्य तव व्रतानि कर्माणि दूढ्या दुर्वृजिना राक्षसेन नाधृष आधर्षयितु-  
मशक्यानि स त्वं त्वां यो दुर्वृजिः शत्रुः पृतन्यति योऽनुमिच्छति तं खव । नाधस्य ॥

तं हिन्वंति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनै । इंदुमिंद्राय मत्सरं ॥४॥

तं । हिन्वंति । मदऽच्युतं । हरिं । नदीषु । वाजिनै । इंदुं । इंद्राय । मत्सरं ॥४॥

मदच्युतं मदस्य चावधितारं हरिं हरितवर्णं वाजिनं वलिनं मत्सरं मदकरं तमिंदुं सोमं नदीषु वसती-  
वरीष्विंद्रार्थेन्द्रार्थं हिन्वंति । अस्त्रिजः प्रेरयंति ॥ ॥१०॥

अस्य प्रत्नामिति चतुर्द्धचं विंशं सूक्तं । अष्टाद्याः पूर्ववत् । अस्य प्रत्नामित्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुहे अह्नयः । पयः सहस्रसामृषिं ॥१॥

अस्य । प्रत्नां । अनु । द्युतं । शुक्रं । दुदुहे । अह्नयः । पयः । सहस्रऽसां । अृषिं ॥१॥

अस्य सोमस्य प्रत्नां पुराणां द्युतं द्योतमानां तनुमशु शुक्रं दीप्तं सहस्रसामभिलषितस्यापरिमितस्य  
कर्मफलस्य दातारं पयः पातयं रसमह्वयः कवयो दुदुहे । कुहंति ॥

अयं सूर्य इवोपदृग्यं सरांसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवं ॥२॥

अयं । सूर्यः । इव । उपऽदृक् । अयं । सरांसि । धावति । सप्त । प्रऽवतः । आ । दिवं ॥२॥

अयं सोमः सूर्य इव यथा सूर्यः सर्वस्य लोकस्योपद्रष्टा तद्वत्कर्मणामुपवृणुपद्रष्टा । अपि चायं सोमः  
सरांसि । चिंशदुक्थपाचासीति केचिद्वर्णयंति । अपरे तु चिंशदहोराचाणि सरांसीति । तानि धावति ।  
गच्छति । तथा च यास्कः । तत्रैतद्याज्ञिका वेदयंते चिंशदुक्थपाचाणि माध्यादिने सवन एकदेवतानि तान्येत-  
स्मिन्काल एकेन प्रतिधानेन पिबंति तान्येव सरांस्युच्यंते । चिंशदपरपक्षस्याहोराचास्त्रिंशत्पूर्वपक्षस्येति  
नैवज्ञाः । नि० ५. ११. इति । अपि चायं सोमो दिवमधिकृत्य सप्त प्रवतः सप्त नदीरा तिष्ठति ॥

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥

अयं । विश्वानि । तिष्ठति । पुनानः । भुवना । उपरि । सोमः । देवः । न । सूर्यः ॥३॥

पुनानः पूयमानोऽयं सोमो विश्वानि सर्वाणि भुवना भुवनानि सर्वेषां भुवनानामुपरि तिष्ठति । तत्र  
दृष्टांतमाह । देवो न सूर्यः । यथा सूर्यो देवः सर्वेषां भुवनानामुपरि तिष्ठति तद्वदयं सोमोऽपीत्यर्थः ॥

परि खो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमंतः । पुनान इंदुविंदुयुः ॥४॥

परि । नः । देवऽवीतये । वाजान् । अर्षसि । गोऽमंतः । पुनानः । इंदोऽइति । इंदुऽयुः ॥४॥

हे इंदो सोम इंद्रयुरिंद्रकामः पुनानः पूयमानस्त्वं नोऽस्माकं देववीतये यज्ञाय गोमतो गोपुत्तानि  
वाजान्नानि पर्यर्षसि । परितः चरित्यर्थः ॥ ॥११॥

यवयवं न इति चतुर्ध्वचमेकविंशं सूक्तं काश्रपस्त्रावत्सारस्त्रार्थं गायत्रं पवमानसोमदेवतात्वं । यवयवमि-  
त्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

यवयवं नो अंधसा पुष्टं पुष्टं परि स्रव । सोम विश्वा च सौभगा ॥ १ ॥

यवंऽयवं । नः । अंधसा । पुष्टंऽपुष्टं । परि । स्रव । सोम । विश्वा । च । सौभगा ॥ १ ॥

हे सोम त्वं गोऽस्त्रात्वं पुष्टं पुष्टं ब्रूचं यवयवं पुनः पुनर्द्युतं रसमंधसान्नात्मना परि स्रव । धारया चर ॥  
अत्र प्रार्थयितुं कृष्णचातृतं पीडितत्वादानाधे च । पा० ८. १. १०. । इति द्विर्भावः । पीडा प्रयोक्तृधर्मो नाभि-  
धेयधर्म इत्युक्तं ॥ अपि च विश्वा विश्वानि सौभगानि धनानि परि स्रव ॥

इंदो यथा तव स्तवो यथा ते जातमंधसः । नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥

इंदो इति । यथा । तव । स्तवः । यथा । ते । जातं । अंधसः । नि । बर्हिषि । प्रिये । सदः ॥ २ ॥

हे इंदो सोम अंधसोऽन्नरूपस्य तव संबन्धी स्तवः स्तवनं स्तोत्रं तथा ते तव जातं जग्य यथा प्रादुर्भूत-  
मस्ति तथा त्वं प्रिये प्रीणयितरि बर्हिष्यस्त्रबाणे नि षदः । निषक्षो भव ॥

उत नो गोविदश्च वित्पवस्व सोमांधसा । मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥

उत । नः । गोऽवित् । अश्चऽवित् । पवस्व । सोम । अंधसा । मक्षुऽतमेभिः । अहऽभिः ॥ ३ ॥

उतापि च हे सोम गोऽस्त्रात्वं गोवित्रोपदोऽश्चविदश्चप्रदश्च त्वं मक्षूतमेभिर्मक्षुतमैरतिशयेन शीघ्रैरहभि-  
रहोमिर्हेतुभिरंधसान्नैव पवस्व । धारया चर ॥

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥

यः । जिनाति । न । जीयते । हन्ति । शत्रुं । अभिऽइत्य । सः । पवस्व । सहस्रऽजित् ॥ ४ ॥

हे सहस्रविदसंख्यानां शत्रूणां जेतः सोम यो भवाजिनाति शत्रुहन्ति न जीयते स्वयं शत्रुभिर्न जीयते ।  
न हन्यत इत्यर्थः । शत्रुमभीत्य शत्रुं स्वयमभ्येत्य हन्ति न च स्वयं शत्रुभिरभिभूयते स त्वं पवस्व । चर ॥ ॥ १२ ॥

परि सोम इति चतुर्ध्वचं द्वाविंशं सूक्तं । अथाथाः पूर्ववत् । परि सोम इत्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

परि सोमं क्षूतं बृहदाशुः पवित्रे अर्षति । विघ्नचक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

परि । सोमः । क्षूतं । बृहत् । आशुः । पवित्रे । अर्षति । विऽघ्नन् । रक्षांसि । देवऽयुः ॥ १ ॥

आशुः क्षिप्रकारी देवयुर्देवकामः सोमः पवित्रे स्त्रिला रक्षांसि राक्षसान्विघ्ननिघ्नबृहत्बृहदुतमत्तं  
पर्यर्षति । परिगमयति । अस्त्रार्थं प्रयच्छतीत्यर्थः ॥

यत्सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः । इंद्रस्य सख्यमाविशन् ॥ २ ॥

यत् । सोमः । वाजं । अर्षति । शतं । धाराः । अपस्युवः । इंद्रस्य । सख्यं । आऽविशन् ॥ २ ॥

यद्यदापस्युवः कर्मकामाः शतं शतसंख्याका धाराः सोमस्य धारा इंद्रस्य सख्यं सखिलमाविशन् प्राप्नुवन्ति  
तदा सोमो वाजमर्षति । गमयति । अस्त्रार्थं प्रयच्छतीत्यर्थः ॥

अभि त्वा योषणो दशं जारं न कन्यानुषत । मृज्यसे सोम सातये ॥ ३ ॥

अभि । त्वा । योषणः । दशं । जारं । न । कन्या । अनुषत । मृज्यसे । सोम । सातये ॥ ३ ॥



हे सोम त्वा त्वां या दशसंख्याका योषणोऽंगुलयः कन्या पितृमती कन्यका चारं न यथा प्रियमभिज्ञ-  
द्वायते तद्वदभ्यनूयत अभिज्ञद्वायते तामिः सातयेऽस्याकं धनस्य सामाद्य मुज्यसे । इन्द्रार्थं शोभ्यसे ॥

त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिंदो परि स्रव । नृन्स्तोतृन्पात्यंहंसः ॥४॥

त्वं। इन्द्राय। विष्णवे। स्वादुः। इंदो इति। परि। स्रव। नृन्। स्तोतृन्। पाहि। अंहंसः ॥४॥

हे इंदो सोम स्वादुः प्रियरसस्त्वमिन्द्रार्थं विष्णवे विष्ण्वर्थं च परि स्रव । परिचर । नृन्कर्माणां जेतुंस्तोतृ-  
स्त्वद्विषयाणां श्रुतीनां कर्तुं गंहसो दुरितात्पाहि । रण च ॥ ॥१३॥

प्र ते धारा इति चतुर्ध्वं चयस्त्रिंशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । प्र ते धारा इत्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

प्र ते धारा असृष्टतो दिवो न यंति वृष्टयः । अच्छा वाजं सहस्रिणं ॥१॥

प्र। ते। धाराः। असृष्टतः। दिवः। न। यंति। वृष्टयः। अच्छ। वाजं। सहस्रिणं ॥१॥

हे सोम ते तवावसृतः संगरहिता धाराः सहस्रिणमपरिमितसंख्याकं वाजमन्नमच्छ जोऽस्यार्थं प्र  
यंति । प्रगच्छंति । तच्च दृष्टांतः । दिवो न वृष्टयः । यथा सुखोकाद्वर्षधारा निःसंगाः प्रजानामपरिमितनष्टं  
प्रयच्छंति तद्वदित्यर्थः ॥

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षेति । हरिस्तुंजान आयुधा ॥२॥

अभि। प्रियाणि। काव्या। विश्वा। चक्षाणः। अर्षेति। हरिः। तुंजानः। आयुधा ॥२॥

हरिर्हरितवर्णः सोमो विश्वा विश्वानि प्रियाणि देवानां प्रीतिकराणि काव्या काव्यानि कर्माणि यथाणः  
पञ्चत्तायुधा स्वकीयान्यायुधानि तुंजानो राक्षसान्प्रति प्रेरयन्त्याम्बर्षेति । यागं प्रति गच्छति ॥

स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु षीदति ॥३॥

सः। मर्मृजानः। आयुऽभिः। इभः। राजाऽइव। सुऽव्रतः। श्येनः। न। वंसु। सीदति ॥३॥

सुव्रतः सुकर्मा स सोम आयुभिर्मनुषीर्धत्स्वमिमर्मृजानः शोध्यमान इमो गतमयो राजेव यथा राजा  
श्येनो न यथा च श्लेगसाया वंसुदकेषु वसतोवरीषु सीदति ॥

स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि । पुनान इंदवा भर ॥४॥

सः। नः। विश्वा। दिवः। वसु। उतो इति। पृथिव्याः। अधि। पुनानः। इंदो इति। आ। भर ॥४॥

हे इंदो सोम पुनानः पवमानस्त्वं दिवोऽधि दिवि स्थिताभ्युतो अपि च पृथिव्या अधि पृथिव्यां स्थितानि ।  
अधीति सप्तम्यर्थानुवादः । विश्वा विश्वानि वसु वसूनि जोऽस्यभमा भर । आहर ॥ ॥१४॥

तरत्स इति चतुर्ध्वं चतुस्त्रिंशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । तरत्स इत्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

तरत्स मंदी धावति धारा सुतस्यांधसः । तरत्स मंदी धावति ॥१॥

तरत्। सः। मंदी। धावति। धारा। सुतस्य। अंधसः। तरत्। सः। मंदी। धावति ॥१॥

मंदी देवानां हर्षकरः स सोमस्तरत्स्तोतृन्पात्यनः सकाशात्तारयन्धावति । पवते । तदेव दर्शयति ।  
सुतस्याभिपुतस्यांधसो देवानामज्ञातकस्य सोमस्य धारा धावतीति । पुनरपि तदेवास्वात्तादरार्थं तरत्स  
मंदी धावतीति । यथा । अस्या ऋषो यास्केनोक्तोऽर्थो द्रष्टव्यः । तद्यथा । तरति स पापं सर्वं मंदी यः

क्षीति धावति गच्छत्यूर्ध्वं गतिं । धारा सुतस्याधसो धारयामिषुतस्य सोमस्य मन्वपूतस्य वाचा सुतस्य । नि० १३. ६. इति ॥

उ॒सा वे॒द वसू॑नां॒ मर्त॑स्य दे॒व्यव॑सः । त॒र॒त्स म॑दी धा॒वति ॥२॥

उ॒सा । वे॒द । वसू॑नां । मर्त॑स्य । दे॒वी । अव॑सः । त॒र॒त् । सः । म॑दी । धा॒वति ॥२॥

वसूनां धनानामुत्तरेणशीला प्रदात्री देवी बीतमाना खूयमाना वा यस्य सोमस्य धारा मर्तस्य मनुष्यं यजमानमवसो रचितुं वेद जानाति । सिद्धमन्यत् ॥

ध्व॒स॒योः पु॒रुष॑न्त्यो॒रा स॒हस्रा॑णि द॒क्षहे । त॒र॒त्स म॑दी धा॒वति ॥३॥

ध्व॒स॒योः । पु॒रु॒ऽस॑न्त्योः । आ । स॒ह॒स्रा॑णि । द॒क्ष॒हे । त॒र॒त् । सः । म॑दी । धा॒वति ॥३॥

ध्वसयोः पुरुषन्त्योः । ध्वसः कश्चिद्राजा पुरुषन्तिः कश्चित् । तयोरुभयोः ॥ अचेतरेतरयोगविवचया विवचनं द्रष्टव्यं ॥ सहस्राणि धनानां सहस्राण्या दक्षहे । वयं प्रतिगृह्णीमः । तदस्माभिः प्रतिगृहीतं धनमुत्तममस्त्वित्युषिः सोमं प्रार्थयत इति सोमस्य क्षुतिः । सिद्धमन्यत् । यथावत्सार एतयोर्धनानि प्रतिजग्राह एवं तरंतपुरुषमीळौ प्रतिवगृह्णतुः । तथा च शाव्याधनकं । अथ ह वै तरंतपुरुषमीळौ वेददधी ध्वसयोः पुरुषन्त्योर्बहु प्रतिगृह्य गरगिराविव मेनाते तौ ह स्नांगुल्या सातं प्रतिममृशति तावकामयेतामसातं नाविवेदं सातं स्वादात्तमिवैव न प्रतिगृहीतमिति तावेतच्चतुर्ध्वचमपश्यतां तेन प्रत्येतां ततो वै तयोरसातं सातममवदात्तमिवैव न प्रतिगृहीतं स यः प्रतिगृह्य कामयेतेत्यादि ॥

आ ययो॑स्त्रिंश॒तं त॒ना स॒हस्रा॑णि च॒ द॒क्षहे । त॒र॒त्स म॑दी धा॒वति ॥४॥

आ । ययो॑ः । त्रिं॒श॒तं । त॒ना । स॒ह॒स्रा॑णि । च॒ । द॒क्ष॒हे । त॒र॒त् । सः । म॑दी । धा॒वति ॥४॥

ययोर्ध्वसपुरुषन्त्योस्त्रिंशतं त्रीणि शतानि सहस्राणि तना वस्त्राण्या दक्षहे वयं प्रतिगृह्णीमः तयोरस्माभिः प्रतिगृहीतं तत्सर्वमप्रतिगृहीतमस्त्विति सोममुषिः प्रार्थयत इति सोमस्यैव क्षुतिः । सिद्धमन्यत् ॥ १५ ॥

पव॒स्व॒ति च॒तु॒र्ध्वं प॑ञ्चविंशं सू॒क्तं । अ॒था॒वाः पु॒र्वव॑त् । प॒व॒स्व॒त्पु॒न॒रा॒न् ॥ ग॒तो वि॒नियो॑गः ॥

प॒व॒स्व॒ गो॒जि॒द॒श्व॒जि॒वि॒श्व॒जि॒त्सो॒म र॒ण्य॒जि॒त् । प्र॒जा॒व॒द्र॒त्न॒मा भ॑र ॥१॥

प॒व॒स्व॒ । गो॒ऽजि॒त् । अ॒श्व॒ऽजि॒त् । वि॒श्व॒ऽजि॒त् । सो॒म॒ । र॒ण्य॒ऽजि॒त् । प्र॒जा॒ऽव॒त् ।

र॒त्नं । आ । भ॒र ॥१॥

हे सोम गोजिच्छूणां गवां जेताश्चजिदश्वानामपि जेता विश्वजिद्विश्वस्य जगतो जेता रण्यजिद्रमणीयस्य धनस्यापि जेता त्वं पवस्व । धारया चर । अपि चास्मभ्यं प्रजावत्पुत्रावुपेतं रत्नं रमणीयं धनमा भर । आहर ॥

प॒व॒स्वा॒ज्ञो अ॒दा॒भ्यः॒ प॒व॒स्वौष॑धी॒भ्यः । प॒व॒स्व॒ धि॒ष॒णा॒भ्यः ॥२॥

प॒व॒स्व॒ । अ॒त्ऽभ्यः॒ । अ॒दा॒भ्यः॒ । प॒व॒स्व॒ । औष॑धी॒भ्यः॒ । प॒व॒स्व॒ । धि॒ष॒णा॒भ्यः॒ ॥२॥

हे सोम त्वमज्ञो वसतीवरीभ्योऽदाभ्योऽनुभ्यश्च पवस्व । चर । अपि चौषधीभ्यः पवस्व । चर । किञ्च धिषणाभ्यो यावभ्यः पवस्व । चर ॥

त्वं सो॒म॒ प॒व॒मानो॒ वि॒श्वानि॑ दुरि॒ता त॑र । क॒विः सी॑द॒ नि ब॒र्हिषि॑ ॥३॥

त्वं । सो॒म॒ । प॒व॒मानः॒ । वि॒श्वानि॑ । दुः॒ऽइ॒ता । त॒र॒ । क॒विः । सी॑द॒ । नि । ब॒र्हिषि॑ ॥३॥



हे सोम पवमानः पूयमानः कविः क्रांतकर्मा त्वं विद्यानि सर्वाणि दुरितानि राक्षसैः कृतान्युपद्रवाणि  
तर । निराकुरु । अस्मिन्वर्हिषि नि षीद च ॥

पवमान स्वर्विदो जायमानोऽभवो महान् । इंदो विश्वाँ अभिर्दसि ॥ ४ ॥

पवमान । स्वः । विदुः । जायमानः । अभवः । महान् । इंदो इति । विश्वान् । अभि ।  
इत् । असि ॥ ४ ॥

हे पवमान सोम त्वं स्वः सर्वं विदः । यजमानाय प्रयच्छ । अपि च जायमानः प्रादुर्भवन्नेव महान्  
पूजनीयोऽभवः । असि । किंच हे इंदो सोम त्वं विद्यानेव सर्वानेव शत्रून्भक्षसि । तेजसामिभवसि ॥ १६ ॥

प्र गायत्रेणेति चतुर्वर्चं षट्त्रिंशं सूक्तं काश्चपस्यावत्सारस्वार्धं । तृतीया पुरउष्णिगाद्यद्वादशका द्वाष्टका ।  
शिष्टा गायत्र्यः । पवमानः सोमो देवता । तथा चानुक्रांतं । प्र गायत्रेणोपांत्वा पुरउष्णिगिति ॥ उक्तो वि-  
नियोगः ॥

प्र गायत्रेण गायत पवमानं विचर्वणिं । इंदुं सहस्रचक्षसं ॥ १ ॥

प्र । गायत्रेण । गायत । पवमानं । विऽचर्वणिं । इंदुं । सहस्रऽचक्षसं ॥ १ ॥

विचर्वणिं विद्वष्टारं सहस्रचक्षसं वज्रदर्शनं पवमानं पूयमानमिंदुं सोमं गायत्रेण गायत्रनामधेयेन साध्या  
प्र गायत । हे सोतारः गानं कुरुत । सुतेत्यर्थः ॥

तं त्वा सहस्रचक्षसमयो सहस्रभर्णसं । अन्ति वारमपाविषुः ॥ २ ॥

तं । त्वा । सहस्रऽचक्षसं । अयो इति । सहस्रऽभर्णसं । अन्ति । वारं । अपाविषुः ॥ २ ॥

हे सोम सहस्रचक्षसं वज्रदर्शनं अयो अपि च सहस्रभर्णसं वज्रमरणं तमभिषुतं त्वा त्वां वारं वारं  
दशापविचमत्यपाविषुः । अस्त्रिजः पावयन्ति ॥

अन्ति वारान्पवमानो असिष्यदत्कलशौ अभि धावति । इंद्रस्य हार्द्यौविशन् ॥ ३ ॥

अन्ति । वारान् । पवमानः । असिष्यदत् । कलशान् । अभि । धावति । इंद्रस्य । हार्दि ।

आऽविशन् ॥ ३ ॥

पवमानः पूयमानः सोमो वारान्वेर्वाज्ञानत्यतिक्रम्यासिष्यदत् । खंदते । अपि चेंद्रस्य हार्दि हृदयमा-  
विशन् कलशान् द्रोणान्मि धावति । अस्मिगच्छति ॥

इंद्रस्य सोम राधसे शं पवस्व विचर्वणे । प्रजावदेत् आ भर ॥ ४ ॥

इंद्रस्य । सोम । राधसे । शं । पवस्व । विऽचर्वणे । प्रजाऽवत् । रेतः । आ । भर ॥ ४ ॥

हे विचर्वणे विद्वष्टः त्वमिंद्रस्य राधसे राधनाय संसिद्धौ शं सुखकरं रसं पवस्व । भर । अपि चास्मभं  
प्रजावत्पुत्राद्युपेतं रेत उदकमन्नं वा भर । आहर । प्रयच्छेत्यर्थः ॥ १७ ॥ ॥ २ ॥

तृतीयेऽनुवाके सप्त सूक्तानि । तत्राद्या वीतीति चिंशद्वचं प्रथमं सूक्तं । अमहोयुर्गामांगिरस अविः ।  
गायत्री छंदः । पवमानः सोमो देवता । तथा चानुक्रांतं । अया वीती चिंशदमहीयुरिति ॥ उक्तो वि-  
नियोगः ॥

अ॒या वी॒ती परि॑ स्र॒व॒ यस्त॑ इ॒दो म॑दे॒ष्वा । अ॒वाह॑न्वती॒र्नव॑ ॥१॥

अ॒या। वी॒ती। परि॑। स्र॒व॒। यः। ते। इ॒दो इति॑। म॑दे॒ष्वा। अ॒। अ॒व॒ऽअ॒ह॑न्। न॒व॒तीः। न॒व॑॥१॥

हे इंदो सोम अयानेन रसेन वीती वीत्या इंद्रस्य मन्त्राय परि स्रव । परिचर । कीदृशेन रसेनेत्यत आह । ते तव यो रसो मद्देषु संयामेषु नवतोर्नवेति नवनवतिसंख्याकाश्च शत्रुपुरीरवाहन् जघान । असुं सोमरसं पीत्वा मत्तः सन्निद्र उक्तलक्षणाः शत्रुपुरीर्जघानेति कृत्वा रसो जघानेत्युपचारः ॥

पुरः स॒द्य इ॒त्याधि॑ये दि॒वो॒दासा॑य॒ शं॒बरं॑ । अ॒ध॒ त्वं तु॒र्वशं॑ यदुं ॥२॥

पुरः । स॒द्यः । इ॒त्या॒ऽधि॑ये । दि॒वः॒ऽदा॑साय । शं॒बरं॑ । अ॒ध॒ । त्वं । तु॒र्वशं॑ । यदुं ॥२॥

सद्य एकस्मिन्नेवाहि पुरः शत्रूणां पुराणि सोमरसोऽवाहन् । इत्याधि ये सत्यकर्मणे दिवोदासाय राज्ञे शंबरं शत्रुपुराणां स्वामिनमधाथ त्वं तं तुर्वशनामकं राजानं दिवोदासशत्रुं यदुं यदुनामकं राजानं च वशमानयस्व । अत्रापि सोमरसं पीत्वा मत्तः सन्निद्रः सर्वमेतदकापीदिति सोमरसे कर्तुंत्वमुपचर्यते ॥

परि॑ णो॒ अ॒श्वम॑श्च॒विजो॑मदि॒दो हि॑र॒ण्यव॑त् । स्र॒रा॑ सह॒स्रिणी॑रिषः ॥३॥

परि॑ । नः । अ॒श्वं । अ॒श्व॒ऽवि॑त् । गो॒ऽम॑त् । इ॒दो इति॑ । हि॒र॒ण्य॒ऽव॑त् । स्र॒रं । स॒ह॒स्रि॒णीः । इ॒षः ॥३॥

हे इंदो सोम अश्वविद्यस्य लभकस्त्वं नोऽस्माकमश्वं गोमज्ञोयुक्तं हिरण्यवक्षिरण्योपेतं धनं च परि चर । अपि च सहस्रिणीर्बह्वनीषोऽस्त्राणि चर ॥

प॒र्वमा॑नस्य ते व॒यं प॒विच॑मभ्यु॒दतः॑ । स॒खित्वा॑मा वृ॒णीम॑हे ॥४॥

प॒र्वमा॑नस्य । ते । व॒यं । प॒विच॑ । अ॒भि॒ऽउ॒द॒तः । स॒खि॒ऽत्वं । आ । वृ॒णीम॑हे ॥४॥

हे सोम पविचमभ्युदतः पविचमभिक्षिद्यतः पवमानस्य चरतश्च ते तव सखित्वं सख्यं पथममहीयव आंगिरसा आ वृणीमहे । प्रार्थयामहे ॥

ये ते॑ प॒विच॑मूर्मयो॑ऽभि॒क्षर॑न्ति॒ धार॑या । तेभि॑र्नः सोम मृ॒ळय॑ ॥५॥

ये । ते । प॒विच॑ । ऊ॒र्मयः॑ । अ॒भि॒ऽक्ष॑र॑न्ति । धार॑या । तेभिः॑ । नः । सो॒म । मृ॒ळय॑ ॥५॥

हे सोम ते तव य ऊर्मयस्तरंगाः पविचं धारया चरन्ति तेभिक्षिर्मूर्मिर्नोऽस्मान् मृळय । सुखय ॥ ॥५८॥

स नः॑ पु॒नान॑ आ भ॒र र॒यिं वी॒रव॑न्तीमिषं । ई॒शानः॑ सोम वि॒श्वतः॑ ॥६॥

सः । नः । पु॒नानः॑ । आ । भ॒र । र॒यिं । वी॒र॒ऽव॑न्तीं । इ॒षं । ई॒शानः॑ । सो॒म । वि॒श्वतः॑ ॥६॥

हे सोम विश्वतः सर्वस्य जगत ईशान ईश्वरः सोऽभिषुतः पुनानः पूयमानस्त्वं नोऽस्मभ्यं रयिं धनं वीरवन्तीं पुत्राबुपेतमिषमन्नं चा भर । आहर ॥

ए॒तमु॒ त्वं द॑श॒ क्षिपो॑ मृ॒जन्ति॑ सि॒न्धुमा॑तरं । स॒मादि॒त्येभि॑रख्यत ॥७॥

ए॒तं । ऊं॑ इति॑ । त्वं । द॑श । क्षि॒पः । मृ॒जन्ति॑ । सि॒न्धु॒ऽमा॑तरं । सं । आ॒दि॒त्येभिः॑ । अ॒ख्य॑त ॥७॥

सिन्धुमातरं यस्य सोमस्य सिंधवो नवो मातरो भवन्ति त्वं तमेतमिमं सोमं दश क्षिपो दशसंख्याका संगुलथो मृजन्ति । शोधयन्ति । अपि च सोऽयं सोम आदित्येभिरादित्यैः समख्यत । संगच्छते ॥



समिद्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ८ ॥

सं । इद्रेण । उत । वायुना । सुतः । एति । पवित्रे । आ । सं । सूर्यस्य । रश्मिभिः ॥ ८ ॥

सुतोऽभिषुतः सोमः पवित्र इद्रेण समेति । संगच्छति । उतापि च वायुना समेति । सूर्यस्य रश्मिभिर्मयू-  
खैरपि समेति ॥

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुमित्रे वरुणे च ॥ ९ ॥

सः । नः । भगाय । वायवे । पूष्णे । पवस्व । मधुमान् । चारुः । मित्रे । वरुणे । च ॥ ९ ॥

हे सोम मधुमान् मधुररसस्वाहः कल्याणस्वरूपश्च सोऽभिषुतस्त्वं नोऽस्माकं यज्ञे भगाय भगाख्याय  
देवाय वायवे च पूष्णे च मित्रे मित्राय देवाय वरुणे वरुणाय च पवस्व । चर ॥

उच्चा ते जातमंधसो दिवि षड्भूम्या ददे । उयं शर्म महि श्रवः ॥ १० ॥

उच्चा । ते । जातं । अंधसः । दिवि । सत् । भूमिः । आ । ददे । उयं । शर्म । महि । श्रवः ॥ १० ॥

हे सोम ते तव संबन्धिनोऽंधसो रमलोच्चोपरि जातं जन्म । अपि च दिवि बुद्धौ सद्यस्मानं स्वतस्तव  
संबन्धुयसुभ्रूयं शर्म सुखं महि महच्छब्दोऽन्नं च भूमिरा ददे ॥ भूम्या दद इति पदचयमामनन्ति । विसर्जनोय-  
लोपः साहितिकः ॥ भूमिर्भौमा जना मादृशाः । भूमिर्धरादीयत इत्यर्थः ॥ ॥ १० ॥

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणां । सिषासंतो वनामहे ॥ ११ ॥

एना । विश्वानि । अर्यः । आ । द्युम्नानि । मानुषाणां । सिषासंतः । वनामहे ॥ ११ ॥

एनैनेनानेन सोमेन मानुषाणां मनुष्याणां विश्वा विश्वानि द्युम्नान्यन्नान्यार्योऽभिगच्छंतः सिषासंतः संमनु-  
मिच्छंतश्च वयं वनामहे । संमजामहे ॥

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥ १२ ॥

सः । नः । इन्द्राय । यज्यवे । वरुणाय । मरुद्भ्यः । वरिवः । वित् । परि । स्रव ॥ १२ ॥

हे सोम वरिवोविदन्नस्य जंभकः पवमानस्त्वं नोऽस्माकं यज्यवे यष्टव्यायेंद्राय वरुणाय च मरुद्भ्यश्च परि  
स्रव । धारया चर ॥

उपो षु जातममृरं गोभिर्भंगं परिष्कृतं । इदं देवा अयासिषुः ॥ १३ ॥

उपो इति । सु । जातं । अप्सु । गोभिः । भंगं । परिष्कृतं । इदं । देवाः । अयासिषुः ॥ १३ ॥

सु जातं सम्यक्प्रादुर्भूतममृरं वसतोवरीभिः प्रेरितं भंगं शत्रूणां भंजनं गोभिर्गोविकारिः पयोभिः परिष्कृ-  
तमलंकृतं संस्कृतमिदं सोमं देवा इन्द्रादय उपायासिषुः । उपागच्छति ॥

तमिद्धंतु नो गिरौ वत्सं संशिश्वरीरिव । य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥ १४ ॥

तं । इत् । वर्धंतु । नः । गिरः । वत्सं । संशिश्वरीः । इव । यः । इन्द्रस्य । हृदंसनिः ॥ १४ ॥

यः सोम इन्द्रस्य हृदंसनिर्हृदयस्य संमक्ता भवति तमित्तमेव सोमं नोऽस्माकं गिरः स्फुटिरूपा वाचः सं  
वर्धंतु । सम्यग्वर्धयंतु । तव दृष्टान्तः । वत्सं बालं शिश्वरीरिव । यथा शिश्वर्यो बद्धपयस्का मातरौ वत्सं  
वर्धयति तद्वदित्यर्थः ॥

अर्धा णः सोमं शं गवे धुक्षस्व पिपुषीमिषं । वर्धा समुद्रमुक्थ्यं ॥ १५ ॥

अर्धं । नः । सोम । शं । गवे । धुक्षस्व । पिपुषी । इषं । वर्ध । समुद्रं । उक्थ्यं ॥ १५ ॥

हे सोम त्वं नोऽस्माकं गवे शं सुखमर्धं । चर । अपि च पिपुषीं प्रवृद्धमिषमन्नं धुक्षस्व । पूरय । किंचोक्थ्यं प्रशस्तं समुद्रमुदकं वर्ध । वर्धय ॥ ॥ २० ॥

पर्वमानो अजीजनद्विचित्रं न तन्यतुं । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १६ ॥

पर्वमानः । अजीजनत् । दिवः । चित्रं । न । तन्यतुं । ज्योतिः । वैश्वानरं । बृहत् ॥ १६ ॥

पर्वमानः सोमो बृहच्चहृद्वैश्वानरं वैश्वानराख्यं ज्योतिस्तेजो दिवो बृलोकस्य चित्रं तन्यतुं नाशनिमिवाजीजनत् । अजीजनत् ॥

पर्वमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ॥ १७ ॥

पर्वमानस्य । ते । रसः । मदः । राजन् । अदुच्छुनः । वि । वारं । अव्यं । अर्षति ॥ १७ ॥

हे राजन्दीप्यमान सोम पर्वमानस्य चरतस्ते तवादुच्छुनो रक्षोवर्जितो मदो मदकरो रसोऽव्यमविमर्षं वारं वारं दशापविचमर्षति । अभिगच्छति ॥

पर्वमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ १८ ॥

पर्वमान । रसः । तव । दक्षः । वि । राजति । द्युमान् । ज्योतिः । विश्वं । स्वः । दृशे ॥ १८ ॥

हे पर्वमान सोम तव त्वदीयो दक्षो वृद्धो द्युमान्दीप्तिमात्रसो वि राजति । प्रकाशते । न केवलं स्वयमेव प्रकाशते किंतु विश्वं व्याप्तं स्वः सर्वं ज्योतिस्तेजश्च दृशे द्रष्टुं करोतीति शेषः ॥

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वांधसा । देवावीरघशंसहा ॥ १९ ॥

यः । ते । मदः । वरेण्यः । तेन । पवस्व । अंधसा । देवऽअवीः । अघशंसहा ॥ १९ ॥

हे सोम ते तव देवावीर्देवकामोऽघशंसहा राक्षसानां हंता वरेण्यः सर्वैर्वरणीयो मदो मदकरो यो रसो विद्यते तेन रसेनांधसादनीयेन पवस्व । चर ॥

जग्निर्वृचममिचियं सस्त्रिर्वाजं दिवेदिवे । गोषा उ अश्वसा असि ॥ २० ॥

जग्निः । वृचं । अमिचियं । सस्त्रिः । वाजं । दिवेऽदिवे । गोऽसाः । ऊं इति ।

अश्वऽसाः । असि ॥ २० ॥

हे सोम त्वममिचियममिचमवं वृचं शत्रुं जग्निर्हंतासि । भवसि । किंच दिवेदिवे प्रतिदिनं वाजं संग्रामं सस्त्रिः संभक्तासि । किंच गोषा गवां दातासि । अश्वसा अश्वानां दाता चासि ॥ ॥ २१ ॥

संमिष्टो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ २१ ॥

संमिष्टः । अरुषः । भव । सुऽउपस्थाभिः । न । धेनुऽभिः । सीदन् । श्येनः । न ।

योनिं । आ ॥ २१ ॥

हे सोम त्वं सूपस्थाभिः शोभनोपस्थानाभिर्धेनुभिर्गोभिः । गोविकारिः पयोभिरित्यर्थः । संमिष्टः संमिश्रितः



ज्ञेनो न यथा ज्ञेनः शीघ्रमागत्य स्नानमासीदति तद्वयोनिं स्वकीयं स्नानमा सीदन् । न संप्रत्यर्थे । इदानी-  
मन्वध आरोचमानो भव ॥

स पवस्व य आविष्येद्रं वृत्राय हन्तवे । वृत्रिवांसं महीरपः ॥२२॥

सः । पवस्व । यः । आविष्य । इंद्रं । वृत्राय । हन्तवे । वृत्रिऽवांसं । महीः । अपः ॥२२॥

हे सोम यत्स्वं महीर्महतीरपो महांत्युदकानि वृत्रिवांसं निरुधानं वृत्राय वृत्रं हन्तवे हंतुमिन्द्रमाविष्य  
अरणः स त्वं पवस्व । धारया चर । सोमं पीत्वा भक्तः सन्निद्रो महांत्युदकानि निरुधानं वृत्रं जघानेत्यर्थः ॥

सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढुः । पुनानो वर्ध नो गिरः ॥२३॥

सुऽवीरासः । वयं । धना । जयेम । सोम । मीढुः । पुनानः । वर्ध । नः । गिरः ॥२३॥

सुवीरासः सुवीराः कल्याणपुत्रा वयममहीयव आंगिरसा धना शत्रूणां धनानि जयेम । शत्रून्नित्रा  
तदीयानि धनानि स्वीकुर्यमित्यर्थः । हे मीढुः श्रेष्ठः सोम पुनानः पूयमानस्त्वं नोऽस्माकं गिरः भुक्तिरूपा  
वाचश्च वर्ध । वर्धय ॥

त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्तं आमुरः । सोम व्रतेषु जागृहि ॥२४॥

त्वाऽऊतासः । तव । अवसा । स्याम । वन्तः । आऽमुरः । सोम । व्रतेषु । जागृहि ॥२४॥

हे सोम तव त्वदीयिनावसा रक्षणेन त्वोतासस्त्वया रक्षिताः संतो वन्तः शत्रून्भवमाना आमुरस्तेषाम-  
भिमारकाः स्याम । भवेम । व्रतेष्वस्माकं कर्मसु जागृहि । प्रबुद्धो भव ॥

अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निद्रस्य निष्कृतं ॥२५॥

अपऽघ्नन् । पवते । मृधः । अप । सोमः । अराव्णः । गच्छन् । इंद्रस्य । निऽकृतं ॥२५॥

सोमो मृधो हिंसकाञ्छत्रुनपघ्नन्कारयन्नराव्णः शत्रौ सत्यां धनानामदातृन्वापघ्नन्निद्रस्य निष्कृतं स्नानं  
गच्छन् प्राप्नुवन् पवते । धारया चरति ॥ ॥२२॥

महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेदो वीरवद्यशः ॥२६॥

महः । नः । रायः । आ । भर । पवमान । जहि । मृधः । रास्व । इंद्रो इति । वीरऽवन्त । यशः ॥२६॥

हे पवमानेदो सोम नोऽस्माकं महो महांति रायो धनान्या भर । आहर । मृधो हिंसकाञ्छत्रून् जहि ।  
मारय । वीरवत्पुत्राबुपेतां यशः कीर्तिं च रास्व । अस्मभ्यं देहि ॥

न त्वा शतं च न ह्रतो राधो दित्संतमा मिनन् । यत्पुनानो मखस्यसे ॥२७॥

न । त्वा । शतं । च । न । ह्रतः । राधः । दित्संतं । आ । मिनन् । यत् । पुनानः । मखस्यसे ॥२७॥

हे सोम राधो धनमा दित्संतमादातुमिच्छन् त्वा त्वां शतं च न बहवोऽपि ह्रतो हिंसकाः शत्रवो न  
मिनन् । न हिंसन्ति । कदेत्यत्राह । यद्यदा पुनानः यमानस्त्वं मखस्यसे अस्मभ्यं धनं दातुमिच्छसि ॥

पवस्वेदो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जनैः । विश्वा अप द्विषौ जहि ॥२८॥

पवस्व । इंद्रो इति । वृषा । सुतः । कृधि । नः । यशसः । जनैः । विश्वाः । अप । द्विषः । जहि ॥२८॥

हे इंदो सोम सुतोऽभिषुतो वृषा सन्ता त्वं पवस्व । धारया चर । जने जनपदेषु नोऽस्मान्यशसो यशस्विनः  
कधि । कुरु । विद्याः सर्वान् द्विषो द्वेष्टुञ्च वूनप जहि । मारय च ।

अस्य ते सख्ये वयं तवेदो द्युम्न उन्नमे । सासह्यामं पृतन्यतः ॥२९॥

अस्य । ते । सख्ये । वयं । तव । इंदो इति । द्युम्ने । उन्ऽतमे । ससह्यामं । पृतन्यतः ॥२९॥

हे इंदो सोम अस्मास्मिन्यागे वर्तमानस्य ते तव सख्ये सखित्वे सति वयममहीयव आंगिरसास्त्व त्वदीय  
उन्नमे श्रेष्ठे बुधेऽन्ने तृप्तिं प्राप्ताः । तथा च यास्कः । द्युम्नं बोततेर्यशो वान्नं वा । नि० ५. ५. । इति । पृतन्यतो  
युद्धमिच्छतः शत्रून् ससह्याम । अभिमवेम ॥

या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि संति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निदः ॥३०॥

या । ते । भीमानि । आयुधा । तिग्मानि । संति । धूर्वणे । रक्षा । समस्य । नः । निदः ॥३०॥

हे सोम ते तव या यानि भीमानि शत्रूणां मथंकराणि तिग्मानि तीक्ष्णान्यायुधायुधानि धूर्वणे शत्रुव-  
धार्थं संति तैरायुधैः समस्य सर्वस्य शत्रोर्निदो निंदाया नोऽस्मान्न च । पालय ॥ ॥३०॥

एते अहग्रमिति चिंशदृचं द्वितीयं मूलं भार्गवस्य जमदग्निरार्थं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । तथा  
वानुक्रांतं । एते अहग्रं जमदग्निरिति ॥ गतो विनियोगः ॥

एते असृयमिंदवस्तिरः पविचमाश्वः । विश्वान्यभि सौभगा ॥१॥

एते । असृयं । इंदवः । तिरः । पविचं । आश्वः । विश्वानि । अभि । सौभगा ॥१॥

आश्वः शीघ्रा एते पवमाना इंदवः सोमा विश्वानि सर्वाणि सौभगा सौभगानि धनान्यभिलक्ष्य पविचं  
तिरोऽहग्रम् । अद्विगमिः सृज्यते ॥

विघ्नतो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः । तना कृण्वंतो अर्वते ॥२॥

विऽघ्नंतः । दुऽइता । पुरु । सुगा । तोकाय । वाजिनः । तना । कृण्वंतः । अर्वते ॥२॥

वाजिनो वल्वंतः सोमाः पुरु बह्वणि दुरिता दुरितानि विघ्नतो विशेषेण नाशयंतस्तोकायास्माकं  
पुत्रायाक्तेऽश्वाय च सुगा सुखानि तना धनानि च कृण्वंतः कुर्वंतः तिरः पविचं सृज्यत इति संबंधः ॥

कृण्वंतो वरिवो गवेऽभ्यर्षेति सुष्टुति । इळामस्मभ्यं संयतं ॥३॥

कृण्वंतः । वरिवः । गवे । अभि । अर्षेति । सुऽस्तुतिं । इळां । अस्मभ्यं । संऽयतं ॥३॥

अस्माकं गवेऽस्मभ्यं च संयतं यदस्मान् संयच्छति तद्वरिवो धनमिळामन्नं च कृण्वंतः कुर्वंतः सोमाः  
सुष्टुतिमस्मादीयं शोमनां सुतिमभ्यर्षेति । अभिसुखेन गच्छति ॥

असाव्यं शुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥४॥

असावि । उषंशुः । मदाय । अप्सु । दक्षः । गिरिऽस्थाः । श्येनः । न । योनिं ।

आ । असदत् ॥४॥

गिरिष्ठाः पपत्ते जातोऽशुः सोमो मदाय मदार्थमसावि । अभिषुतः । अप्सु वसतीवरीषु दक्षः प्रवृज्य  
भवति । किंच श्येनो न यथा श्येनो वेगेनागत्य स्थानमासीदति तद्वदयं सोमो योनिं स्वकीयं स्थानमासदत् ।  
आसीदति ॥



शुभ्रमंधो देववातमप्सु धृतो नृभिः सुतः । स्वदेति गावः पयोभिः ॥ ५ ॥

शुभ्रं । अंधः । देवऽवातं । अप्सु । धृतः । नृभिः । सुतः । स्वदेति । गावः । पयः । ऽभिः ॥ ५ ॥

यदेववातं देवैः प्रार्थितं शुभ्रं शोभनमंधोऽन्नं गावः पशवः पयोभिराशिरैः स्वदेति स्वादयेति सोऽयं सोमो नृभिर्नृभिर्नृभिः सुतोऽभिपुतः सप्तसु वसतोवरीषु धृतः शोधितो भवति ॥ ॥ २४ ॥

आदीमश्वं न हेतारोऽर्णुशुभ्रमृताय । मध्वो रसं सधमादे ॥ ६ ॥

आत् । ई । अश्वं । न । हेतारः । अर्णुशुभ्रन् । अमृताय । मध्वः । रसं । सधमादे ॥ ६ ॥

आदनंतरं हेतारः प्रेरका अश्विनः सधमादे यज्ञ ईमेन मध्वो मदकरस्य सोमस्य रसममृतायामरणायाश्च नाशमिवाशुशुभ्रन् । शोभयति ॥

यास्ते धारा मधुश्रुतोऽसृपमिन्द ऊतये । ताभिः पवित्रमासदः ॥ ७ ॥

याः । ते । धाराः । मधुऽश्रुतः । असृपं । इंदो इति । ऊतये । ताभिः । पवित्रं । आ । असदः ॥ ७ ॥

हे इंदो सोम ते तव मधुश्रुतो मधुररसस्य श्रोतयिष्यो या धारा ऊतये रक्षणायाकथं अश्वज्यंत ताभिर्धाराभिस्त्वं पवित्रमासदः । आसीद ॥

सो अर्षेद्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया । सीदन्योना वनेष्वा ॥ ८ ॥

सः । अर्षं । इंद्राय । पीतये । तिरः । रोमाणि । अव्यया । सीदन् । योना । वनेषु । आ ॥ ८ ॥

हे सोम सोऽभिपुतस्त्वमव्ययाव्ययान्विमयानि रोमाणि वासानि तिरस्तिरस्कुर्वन् वनेषु पात्रेषु योना योनी स्थान आ सीदतिर्द्रायेन्द्रस्य पीतये पानाचार्यं । चर ॥

त्वमिंदो परि सव स्वादिष्ठो अंगिरोभ्यः । वरिवोविहृतं पयः ॥ ९ ॥

त्वं । इंदो इति । परि । सव । स्वादिष्ठः । अंगिरः । भ्यः । वरिवः । वित् । घृतं । पयः ॥ ९ ॥

हे इंदो सोम स्वादिष्ठः स्वादुतमो वरिवोविदसदमिलयितस्य धनस्य संमकस्य त्वमंगिरोभ्योऽंगिरसाभ्यां घृतमाज्यं पयस्य परि सव । परिचर ॥

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान् आप्यं बृहत् ॥ १० ॥

अयं । विऽचर्षणिः । हितः । पवमानः । सः । चेतति । हिन्वान् । आप्यं । बृहत् ॥ १० ॥

विचर्षणिर्विद्रष्टा हितः पात्रेषु निहितः पवमानोऽयं सोम आप्यमप्सु भवं बृहन्नहदन्नं हिन्वानः प्रेरयन् स चेतति । सर्वैः स ज्ञायते ॥ ॥ २५ ॥

एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा । करद्वसूनि दाशुषे ॥ ११ ॥

एषः । वृषा । वृषऽव्रतः । पवमानः । अशस्तिहा । करत् । वसूनि । दाशुषे ॥ ११ ॥

वृषा कामानां सेक्ता वृषव्रतो वृषकर्माशस्तिहा राक्षसानां हंता पवमान एष सोमो दाशुषे हविषां दात्रे यजमानाय वसूनि धनानि करत् । करोति । प्रयच्छतीत्यर्थः ॥

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमंतमश्विनं । पुरुश्चंद्रं पुरुस्पृहं ॥ १२ ॥

आ । पवस्व । सहस्रिणं । रयिं । गोऽमंतं । अश्विनं । पुरुऽचंद्रं । पुरुऽस्पृहं ॥ १२ ॥

हे सोम त्वं सहस्रिणं वज्रसंख्याकं गोमंतं गोमिदपेतमश्विनमश्वपंतं पुरुचंद्रं वज्रनां हर्षकं पुरुसृहं वज्रसु-  
हृणीयं रथिं धनमा पवस्व । परि चर ॥

एष स्य परि विच्यते मर्मज्यमान आयुभिः । उरुगायः कविक्रतुः ॥१३॥

एषः । स्यः । परि । सिच्यते । मर्मज्यमानः । आयुऽभिः । उरुऽगायः । कविऽक्रतुः ॥१३॥

उरुगायो वज्रस्रुतिः कविक्रतुः क्रांतप्रद्यः क्रांतकर्मा वा स्य स एषोऽयं सोम आयुर्मर्मनुषैर्मर्मज्यमानः  
शोध्यमानः परि विच्यते ॥

सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः । इंद्राय पवते मदः ॥१४॥

सहस्रऽऊतिः । शतऽमघः । विऽमानः । रजसः । कविः । इंद्राय । पवते । मदः ॥१४॥

सहस्रोतिरपरिमितरक्षणः शतमघो वज्रधनो रजसो लोकस्व विमानो निर्माता कविः क्रांतकर्मा मदी  
मदकरः सोम इंद्रायेंद्रार्थं पवते । धारया चरति ॥

गिरा जात इह स्तुत इंद्रिंद्राय धीयते । वियोनां वसताविं ॥१५॥

गिरा । जातः । इह । स्तुतः । इंद्रुः । इंद्राय । धीयते । विः । योनां । वसतौ । इव ॥१५॥

जातः प्रादुर्भूतो गिरा स्तुत्या स्तुतश्चंद्रुः सोम इहास्मिन्यज्ञे योना योनी स्वस्थान इंद्रायेंद्रार्थं वसताविष  
विधेया स्ववासे पवी तथा धीयते । निधीयते ॥ ॥२६॥

पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत् । चमूषु शक्ननासदं ॥१६॥

पवमानः । सुतः । नृऽभिः । सोमः । वाजेंऽइव । अस्रत् । चमूषु । शक्नना । आऽसदं ॥१६॥

नृभिर्मेतृभिर्ऋत्विग्भिः सुतोऽभिपुतः सोमश्च चमूषु चमसेषु शक्नना वस्तेनासदमुपेष्टुं वाजमिव युष्मभिव  
स्थानमसरत् । सरति ॥

तं त्रिपृष्ठे त्रिवंधुरे रथे युजंति यातवे । ऋषीणां सप्त धीतिभिः ॥१७॥

तं । त्रिऽपृष्ठे । त्रिऽवंधुरे । रथे । युजंति । यातवे । ऋषीणां । सप्त । धीतिऽभिः ॥१७॥

त्रिपृष्ठं त्रिषवणपृष्ठे त्रिवंधुरे त्रिवेदबंधुर ऋषीणां रथे यच्चरन्ते तं सोमं सप्त सप्तभिर्धीतिभिर्ऋदोभिर्थातवे  
देवान्प्रति गंतुं युजंति । ऋत्विजो योजयंति ॥

तं सोतारो धनस्पृतमाशुं वाजाय यातवे । हरिं हिनोत वाजिनं ॥१८॥

तं । सोतारः । धनऽस्पृतं । आशुं । वाजाय । यातवे । हरिं । हिनोत । वाजिनं ॥१८॥

हे सोतारोऽभिषवकतार ऋत्विजः धनस्पृतं धनानां स्पृष्टारं वाजिनं बलिनमाशुं वेगवंतं तं सोमात्प्रव  
हरिमश्वं वाजाय यज्ञाश्वं संयामं यातवे गंतुं हिनोत । प्रेरयत । यथा योद्धारो युधं गंतुं बलिनं वेगवंतमश्वं  
प्रेरयंति तद्वयश्चमभिर्गंतुं बलवंतं सोमं प्रेरयतेति भावः ॥

आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्धेन्ऋभिश्चियः । शूरो न गोषु तिष्ठति ॥१९॥

आऽविशन् । कलशं । सुतः । विश्वाः । अर्धेन् । ऋभिश्चियः । शूरः । न । गोषु । तिष्ठति ॥१९॥



सुतोऽभिषुतः सोमः कलशं द्रोणमाविशन् विद्याः सर्वाः श्रियः संपदोऽभ्यर्षन्नस्मान्निगमयन् गोषु शशूणां पशुषु शूरो न यथा शूरो निःशंकस्तिष्ठति तद्वयज्ञेषु निःशंकस्तिष्ठति ॥

आ तं इंदो मदाय कं पयो दुहंत्यायवः । देवा देवेभ्यो मधु ॥ २० ॥

आ । ते । इंदो इति । मदाय । कं । पयः । दुहंति । आयवः । देवाः । देवेभ्यः । मधु ॥ २० ॥

हे इंदो सोम ते तव मधु मधुभूतं पयः पेयं रसं देवाः सोतार आयवो मनुष्या मदाय कं मदार्यं देवेभ्य इन्द्रादिभ्य आ दुहंति ॥ ॥ २० ॥

आ नः सोमं पविच आ सृजता मधुमत्तमं । देवेभ्यो देवश्रुतमं ॥ २१ ॥

आ । नः । सोमं । पविच । आ । सृजत । मधुमत्तमं । देवेभ्यः । देवश्रुतमं ॥ २१ ॥

हे अश्विनः नोऽस्माकं देवश्रुतममत्तमं देवैः श्रूयमाणं मधुमत्तममतिशयेन मधुमत्तं सोमं देवेभ्य इन्द्राद्यर्थं पविचे दशापविच आ सृजत । साधयत ॥

एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे । मदिन्तमस्य धारया ॥ २२ ॥

एते । सोमाः । असृक्षत । गृणानाः । श्रवसे । महे । मदिन्तमस्य । धारया ॥ २२ ॥

गृणानाः सूयमाना एत इमे सोमा महे महते श्रवसेऽन्नाय मदिन्तमस्य मादयितुमस्य रसस्य धारया सृजत । अश्विभिः सृजंते ॥

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षेसि । सनद्वाजः परि स्रव ॥ २३ ॥

अभि । गव्यानि । वीतये । नृम्णा । पुनानः । अर्षेसि । सनत् । वाजः । परि । स्रव ॥ २३ ॥

हे सोम पुनानः पूयमानो यस्त्वं वीतये मद्यणाय गव्यानि गोसंबन्धीनि नृम्णा नृम्णानि धनानि क्षीरादीन्यर्षेसि अभिगच्छसि स त्वं सनद्वाजो दीयमानान्नः सन् परि स्रव । परिचर ॥

उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्षे परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ॥ २४ ॥

उत । नः । गोमतीः । इषः । विश्वा । अर्षे । परिष्टुभः । गृणानः । जमत् । अग्निना ॥ २४ ॥

उतापि च हे सोम जमदग्निरर्षिणा मया गृणानः सूयमानस्त्वं नोऽस्माकं गोमतीर्गोमिर्युक्तानि परिष्टुभः परितः श्रोतव्यानि विश्वाः सर्वाक्षीपोऽन्नान्यर्ष । गच्छ । अस्मभ्यमेवंविधान्यन्नानि देहीत्यर्थः ॥

पवस्व वाचो अयियः सोमं चिचाभिरूतिभिः । अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥

पवस्व । वाचः । अयियः । सोमं । चिचाभिः । ऊतिभिः । अभि । विश्वानि । काव्या ॥ २५ ॥

हे सोम अयियो मुख्यस्त्वं चिचाभिः पूजनीयेरूतिमी रचणैः सह वाचोऽस्यदीयाः सुतीरमि पवस्व । एतदेव दर्शयति । विश्वानि सर्वाणि काव्या काव्यानि सुत्यात्मकानि वाक्यान्यभि पवस्वति ॥ ॥ २५ ॥

त्वं समुद्रिया अपोऽयियो वाच ईरयन् । पवस्व विश्वमेजय ॥ २६ ॥

त्वं । समुद्रियाः । अपः । अयियः । वाचः । ईरयन् । पवस्व । विश्वं । एजय ॥ २६ ॥

हे विश्वमेजय विश्वकंपक सोम अयियो मुख्यस्त्वं वाच ईरयन् प्रेरयन् समुद्रिया आंतरिक्षाख्यं उदकानि पवस्व । धारया चर ॥

तुभ्ये॒मा भुव॑ना कवे महि॒स्ने सोम॑ तस्थिरे । तुभ्य॑म॒र्षेति॑ सि॒धवः ॥२७॥

तुभ्य॑ । इ॒मा । भुव॑ना । क॒वे । महि॒स्ने । सोम॑ । त॒स्थिरे । तुभ्य॑ । अ॒र्षेति॑ । सि॒धवः ॥२७॥

हे कवे क्रांतकर्मन् सोम तुभ्यं तव महिस्ने इमेमानि भुवना भुवनानि तस्थिरे । तिष्ठति । त्वामेव पुरस्कृवंतीत्यर्थः । अपि च सिंधवो नवसुभ्यमेवार्षेति । गच्छन्ति । त्वदाज्ञामिवानुपालयन्तीत्यर्थः ॥

प्र ते॑ दि॒वो न वृ॒ष्टयो॑ धारा॑ य॒न्त्यसु॑श्च॒तः । अ॒भि शु॒क्रासु॑प॒स्तिरं ॥२८॥

प्र । ते । दि॒वः । न । वृ॒ष्टयः । धाराः । य॒न्ति । अ॒सुश्च॒तः । अ॒भि । शु॒क्रा । उ॒प॒स्तिरं ॥२८॥

हे सोम ते तवासद्यतोऽसंगा धारा दिवोऽन्तरिक्षावृष्टयो न वर्षाणीव शुक्रां शुक्लवर्णां शुक्लवर्णैरविजोमभिर्निर्मितमुपस्तिरमुपस्तीर्यमाणं पवित्रमभि प्रति प्र यन्ति ॥

इ॒न्द्राये॑दुं पु॒नीत॑नो॒यं दक्षा॑य साध॒नं । ई॒शानं॑ वी॒तिरा॑धसं ॥२९॥

इ॒न्द्राय॑ । इ॒दुं । पु॒नीत॑न॒ । उ॒यं । दक्षा॑य । साध॒नं । ई॒शानं॑ । वी॒तिरा॑धसं ॥२९॥

हे ऋत्विजः उयसुर्गुणं दद्यात् वलस्व साधनं करणमीशानं धनानामीश्वरं वीतिराधसं दत्तधनमिदं सोममिन्द्रायेंद्रार्थं पुनीतन । पुनीत ॥

पव॑मान ऋ॒तः क॒विः सोमः॑ प॒वित्र॑मास॒दत् । दध॑त्स्तो॒त्रे सु॒वीर्यं॑ ॥३०॥

पव॑मानः । ऋ॒तः । क॒विः । सोमः॑ । प॒वित्रं॑ । आ । अ॒स॒दत् । दध॑त् । स्तो॒त्रे । सु॒वीर्यं॑ ॥३०॥

ऋतः सत्यभूतः कविः क्रांतकर्मा पवमानः सोमोऽस्रदीये स्तोत्रे सुवीर्यं शोभनवीर्यं दधत् प्रयच्छन् पवित्रमासदत् । आसीदति ॥ ॥२९॥

आ पवसेति विंशदृचं तृतीयं सूक्तं काश्यपस्य निधुवेरार्यं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । आ पवस्व निधुविः काश्यप इति ॥ गतो विनियोयः ॥

आ प॒वस्व॑ स॒हस्रि॑णं॒ रयि॑ं सोम॑ सु॒वीर्यं॑ । अ॒स्मे अ॒वांसि॑ धार॒य ॥१॥

आ । प॒वस्व॑ । स॒हस्रि॑णं॒ । र॒यिं । सोम॑ । सु॒वीर्यं॑ । अ॒स्मे इति॑ । अ॒वांसि॑ । धार॒य ॥१॥

हे सोम त्वं सहस्रिणं वज्रसंख्याकं सुवीर्यं शोभनवीर्यं रयिं धनमा पवस्व । आभिसुख्येन चर । अपि चास्मे अस्मासु अवांसिनां धारय । स्थापय ॥

इ॒षमू॑र्जे च पि॒न्वसे॑ इ॒न्द्राय॑ मत्स॒रित॑मः । च॒मू॒ष्वा नि॑ षी॒दसि॑ ॥२॥

इ॒षं । उ॒र्जे । च । पि॒न्वसे॑ । इ॒न्द्राय॑ । मत्स॒रिन्ऽत॑मः । च॒मू॒षु । आ । नि॑ । सी॒दसि॑ ॥२॥

हे सोम मत्सरितमोऽतिशयेन मदयितुमस्त्वमिन्द्रायेंद्रार्थमिषमन्नमूर्जं रसं च पिन्वसे । चरसि । अपि च चमूपु चमसेष्वा नि षीदसि । तिष्ठसि ॥

सु॒त इ॒न्द्राय॑ वि॒ष्णवे॑ सोमः॑ क॒लशे॑ अ॒क्षर॑त् । मधु॑माँ अ॒स्तु वा॒यवे॑ ॥३॥

सु॒तः । इ॒न्द्राय॑ । वि॒ष्णवे॑ । सोमः॑ । क॒लशे॑ । अ॒क्षर॑त् । मधु॑ऽमा॒न् । अ॒स्तु । वा॒यवे॑ ॥३॥

इन्द्रायेंद्रार्थं विष्णवे विष्ण्वर्थं च वायवे वाय्वर्थं च सुतोऽभिषुतो यः सोमः कलशे द्रोणकलशेऽक्षरत् चरति सोऽयं सोमो मधुमान् मधुररसवानक्षु । भवतु ॥



एते असृयमाश्वोऽति हरांसि बभ्रवः । सोमा ऋतस्य धारया ॥४॥

एते । असृयं । आश्वः । अति । हरांसि । बभ्रवः । सोमाः । ऋतस्य । धारया ॥४॥

बभ्रवो बभ्रवर्णा आश्वः शीघ्रा एत इमे सोमा ऋतस्योदकस्य धारयाऽयं । खञ्जते । हरांसि रक्षांस-  
मिगच्छति च ॥

इंद्रं वर्धन्तो अप्सुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यं । अप्सुर्धन्तो अरावणः ॥५॥

इंद्रं । वर्धन्तः । अप्सुः । कृण्वन्तः । विश्वं । आर्यं । अप्सुर्धन्तः । अरावणः ॥५॥

इंद्रं वर्धन्तो वर्धन्तोऽपसु रदकस्य प्रेरका विश्वं सोममरुदीयकर्मार्थमार्यं मद्रं कृण्वन्तः कुर्वन्तोऽरावणो  
ऽदातुनपधन्तो विनाशयन्तः । अभर्धन्तीत्युत्तरया संबंधः ॥ ३० ॥

सुता अनु स्वमा रजोऽभ्यर्षेति बभ्रवः । इंद्रं गच्छन्तं इंद्रवः ॥६॥

सुताः । अनु । स्वं । आ । रजः । अभि । अभ्यर्षेति । बभ्रवः । इंद्रं । गच्छन्तः । इंद्रवः ॥६॥

बभ्रवो बभ्रवर्णाः सुता अमिषुता इंद्रवः सोमा इंद्रमा गच्छन्तं गामिसुखेन प्राप्तुवन्तः स्वं स्वकीयं रजः  
स्थानमनु प्रत्यभ्यर्षेति । ५मिगच्छति ॥

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥७॥

अया । पवस्व । धारया । यया । सूर्यं । अरोचयः । हिन्वानः । मानुषीः । अपः ॥७॥

हे सोम गानुषीर्मनुष्याणां हितायप उदकानि हिन्वानः प्रेरयस्त्वं यया धारया सूर्यमरोचयः प्राकाशयः  
तथायानया धारया पवस्व । चर ॥

अयुक्तं सूर एतं पवमानो मनावधि । अंतरिक्षेण यातवे ॥८॥

अयुक्तं । सूरः । एतं । पवमानः । मनौ । अधि । अंतरिक्षेण । यातवे ॥८॥

पवमानः पूयमानः सोमो मनावधि । अनुर्मनुष्यः । तस्मिन्नुष्य इत्यर्थः । अंतरिक्षेण यातवे गंतुं सूरः  
प्रेरकस्य सूर्यस्यैतद्विशेषः । एतन्वा एतन्न इत्यन्वयानामसु पाठात् । अयुक्तं । युक्ते ॥

उत त्या हरितो दश सूरौ अयुक्तं यातवे । इंद्रिद्रं इति ब्रुवन् ॥९॥

उत । त्याः । हरितः । दश । सूरः । अयुक्तं । यातवे । इंद्रः । इंद्रः । इति । ब्रुवन् ॥९॥

उतापि चंद्रः सोम इंद्र इति ब्रुवन्त्यास्ता दश दशसंख्याका हरितो दिशः प्रति यातवे गंतुं सूरः सूर्यस्य-  
तद्विशेषः । युनक्ति ॥

परीतो वायवे सुतं गिर इंद्राय मत्सरं । अब्यो वारेषु सिंचत ॥१०॥

परि । इतः । वायवे । सुतं । गिरः । इंद्राय । मत्सरं । अब्यः । वारेषु । सिंचत ॥१०॥

हे गिरः स्तोतारः यूयं वायवे वाय्वर्धमिंद्रार्थिंद्रार्थं च सुतमभिषुतं मत्सरं मदकरं सोममितोऽभिषय-  
देशादुद्धृत्वाऽवेवरेषु वारेषु परि सिंचत ॥ ३१ ॥

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरं । यो दूणाशो वनुषता ॥ ११ ॥

पवमान । विदाः । रयिं । अस्मभ्यं । सोम । दुष्टरं । यः । दुः५नशः । वनुषता ॥ ११ ॥

हे पवमान सोम यो रयिर्वनुषता हिंसकेन शत्रुणा दूणाशो नाशयितुमशक्यः तं शत्रुभिर्दुष्टरं रयिं धनमस्मभ्यं विदाः । देहि ॥

अभ्यर्ध सहस्रिणं रयिं गोमंतमश्विनं । अभि वाजंमुत अर्वः ॥ १२ ॥

अभि । अर्ध । सहस्रिणं । रयिं । गोऽमंतं । अश्विनं । अभि । वाजं । उत । अर्वः ॥ १२ ॥

हे सोम त्वं सहस्रिणं वज्रसंख्याकं गोमंतं गोमिथुक्तमश्विनमश्ववंतं रयिं धनमभ्यर्ध । अस्त्रानभिगमय । उतापि च वाजं बलं अवीऽन्नं चास्त्रानभि गमय ॥

सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभिः पवते सुतः । दधानः कलशे रसं ॥ १३ ॥

सोमः । देवः । न । सूर्यः । अद्रिऽभिः । पवते । सुतः । दधानः । कलशे । रसं ॥ १३ ॥

देवो न देव इव सूर्यो रोचमानः सोमोऽद्रिभिर्धौवभिः सुतोऽभिषुतः सन् कलशे द्रोणकलशे रसं दधानो धारयन् पवते । धारया चरति ॥

एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमंतमक्षरन् ॥ १४ ॥

एते । धामानि । आर्या । शुक्राः । ऋतस्य । धारया । वाजं । गोऽमंतं । अक्षरन् ॥ १४ ॥

एतेऽभिषुता इमे शुक्रा दीप्ताः सोमा आर्यार्याणां श्रेष्ठानां यजमानानां धामानि गृहान्प्रति गोमंतं गोमिथुक्तं वाजमन्नमृतस्त्रोदकस्य धारयाचरन् । चरन्ति ॥

सुता इंद्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः । पवित्रमत्यक्षरन् ॥ १५ ॥

सुताः । इंद्राय । वज्रिणे । सोमासः । दधिऽआशिरः । पवित्रं । अति । अक्षरन् ॥ १५ ॥

वज्रिणे वज्रवत इंद्रयिंद्रार्थं सुता अभिषुता दध्याशिरो दधिसंस्कृताः सोमासः सोमाः पवित्रमत्यति-  
क्रम्याचरन् । धारया चरन्ति ॥ ३२ ॥

प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ध पवित्र आ । मदो यो देववीतमः ॥ १६ ॥

प्र । सोम । मधुमत्ऽतमः । राये । अर्ध । पवित्रे । आ । मदः । यः । देवऽवीतमः ॥ १६ ॥

हे सोम ते तव यो मदो रसो मधुमत्तमोऽत्यंतं मधुमान् देववीतमोऽतिशयेन देवकामस्य तं रसं राये  
ऽस्त्राकं धनार्थं पवित्रे प्रार्थ । धारया चर ॥

तमी मृजंत्यायवो हरिं नदीषु वाजिनं । इंदुमिंद्राय मत्सरं ॥ १७ ॥

तं । ईमिति । मृजन्ति । आयवः । हरिं । नदीषु । वाजिनं । इंदुं । इंद्राय । मत्सरं ॥ १७ ॥

हरिं हरितवर्णं वाजिनं बलिनं मत्सरं मदकारं तं पवमानमीमेनमिंदुं सोममायवो मनुष्या अत्विजो  
नदीषु वसतीवरीषु मृजन्ति । मार्जयन्ति ॥

आ पवस्व हिरण्यवदश्वावत्सोम वीरवत् । वाजं गोमंतमा भर ॥ १८ ॥

आ । पवस्व । हिरण्यऽवत् । अश्वऽवत् । सोम । वीरऽवत् । वाजं । गोऽमंतं । आ । भर ॥ १८ ॥



हे सोम त्वं हिरण्यवत्सुवर्णोपेतमश्वदशयुक्तं च वीरवत्पुत्रायुपेतं च धनमा पवस्व । अस्मान्प्रति चर ।  
अपि च गोमंतं पशुमिहपेतं वाजमत्तमा भर । अस्मभ्यमाहर ॥

परि वाजे न वाजयुमभ्यो वारेषु सिंचत । इंद्राय मधुमत्तमं ॥ १९ ॥

परि । वाजे । न । वाजऽयुं । अभ्यः । वारेषु । सिंचत । इंद्राय । मधुमत्तमं ॥ १९ ॥

वाजयुं युष्कामं मधुमत्तममतिशयेन मधुमंतं सोममिंद्रायेंद्रार्थमभ्योऽवेवारेषु वास्त्रेषु दशापवित्रे वाजे  
न युष् इव हे अस्त्रिजः परि सिंचत ॥

कविं मृजंति मर्ज्यं धीभिर्विप्रा अवस्यवः । वृषा कनिक्कदर्षति ॥ २० ॥

कविं । मृजंति । मर्ज्यं । धीभिः । विप्राः । अवस्यवः । वृषा । कनिक्कत् । अर्षति ॥ २० ॥

अवस्यवो रक्षणकामा विप्रा मेधाविन अस्त्रिजो धीभिरंगुलीभिर्मर्ज्यं मर्जनीयं कविं क्रांतकर्माणं यं सोमं  
मृजंति मार्जयंति सोऽयं वृषा सेचकः सोमः कनिक्कच्छब्दं कुर्वन्नर्षति । धारया चरति ॥ ३३ ॥

वृषणं धीभिरप्सुरं सोममृतस्य धारया । मती विप्राः समस्वरन् ॥ २१ ॥

वृषणं । धीभिः । अप्सुरं । सोमं । मृतस्य । धारया । मती । विप्राः । सं । अस्वरन् ॥ २१ ॥

विप्रा मेधाविन अस्त्रिजो वृषणं कामानां वर्षकमप्सुरमपां प्रेरकं सोमं धीभिरंगुलीभिर्मती मत्या सुत्या  
चर्तस्योदकस्य धारया समस्वरन् । प्रेरयंति ॥

पवस्व देवायुषगिंद्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मेणा ॥ २२ ॥

पवस्व । देव । आयुषक् । इंद्रं । गच्छतु । ते । मदः । वायुं । आ । रोह । धर्मेणा ॥ २२ ॥

हे देव द्योतमान सोम पवस्व । धारया चर । अपि च ते तव मदो मदकरो रस आयुषगनुषक्तमिंद्रं  
प्रति गच्छतु । अपि च त्वं वायुं धर्मेणा धारकेण रसेना रोह । प्राप्नुहि ॥

पवमान नि तोशसे रयिं सोम अवाय्यं । प्रियः समुद्रमा विश ॥ २३ ॥

पवमान । नि । तोशसे । रयिं । सोम । अवाय्यं । प्रियः । समुद्रं । आ । विश ॥ २३ ॥

हे पवमान सोम यत्स्वं अवाय्यं अवशीयं रयिं शत्रूणां धनं नि तोशसे नितरां पीडयसि स त्वं प्रियः  
सन् समुद्रं द्रोणकलशमा विश । प्रविश ॥

अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनं ॥ २४ ॥

अपघ्नन् । पवसे । मृधः । क्रतुऽवित् । सोम । मत्सरः । नुदस्व । अदेवऽयुं । जनं ॥ २४ ॥

हे सोम मत्सरो मदकरो यत्स्वं मृधो हिंसकाच्छत्रुनपघ्नमारयन् क्रतुविदस्यं प्रज्ञां प्रयच्छन् पवसे  
चरसि स त्वमदेवयुमदेवकामं जनं राक्षसवर्गं नुदस्व । प्रेरय ॥

पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इंद्रवः । अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥

पवमानाः । असृक्षत । सोमाः । शुक्रासः । इंद्रवः । अभि । विश्वानि । काव्या ॥ २५ ॥

शुक्रास उज्ज्वला इंद्रवो दीप्ताः पवमानाः चरंतः सोमा विश्वानि काव्या काव्यानि सोवाश्वभक्षत ।  
अज्यंत अस्त्रिभिः ॥ ३४ ॥

पवमानास आश्वः शुभा असृयमिंदवः । घंतो विश्वा अप द्विषः ॥ २६ ॥

पवमानासः । आश्वः । शुभाः । असृयं । इंदवः । घंतः । विश्वाः । अप । द्विषः ॥ २६ ॥

आश्वः शीघ्राः शुभाः शोभमानाः पवमानासः घरंत इंदवो दीप्ताः सोमा विश्वाः सर्वान्द्विषो द्वेष्टुञ्छ-  
चूनप घंतो मारयंतोऽह्यं । ह्यज्यंते ॥

पवमाना दिवस्पयंतरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सानवि ॥ २७ ॥

पवमानाः । दिवः । परि । अंतरिक्षात् । असृक्षत । पृथिव्याः । अधि । सानवि ॥ २७ ॥

पवमानाः सोमा दिवो बुधोकादंतरिक्षाच्च पृथिव्या भूम्या अधि सानवि समुच्छिते देशे देवयजने  
पर्यह्यत । ह्यज्यंते ॥

पुनानः सोम धारयेदो विश्वा अप सिधः । जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २८ ॥

पुनानः । सोम । धारया । इंदो इति । विश्वाः । अप । सिधः । जहि । रक्षांसि ।

सुक्रतो इति सुऽक्रतो ॥ २८ ॥

हे इंदो दीप्त सुक्रतो सुकर्मन् सोम धारया पुनानः पूयमानस्त्वं विश्वाः सर्वान् सिधो द्वेष्टुञ्छचूनषांसि  
राक्षसांश्चाप जहि । मारय ॥

अपघ्नन्सोम रक्षसोऽभ्यर्ष कनिकदत् । द्युमंतं शुष्ममुत्तमं ॥ २९ ॥

अपऽघ्नन् । सोम । रक्षसः । अभि । अर्ष । कनिकदत् । द्युऽमंतं । शुष्मं । उत्तमं ॥ २९ ॥

हे सोम त्वं रक्षसो रक्षांश्चपघ्नन्विनाशयन् कनिकदच्छब्दं कुर्वन् द्युमंतं दीप्तिमंतमुत्तमं अष्टं शुष्मं वक्ष-  
मभ्यर्ष । अक्षान्प्रति पवस्व ॥

अस्मे वसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा । इंदो विश्वानि वार्या ॥ ३० ॥

अस्मे इति । वसूनि । धारय । सोम । दिव्यानि । पार्थिवा । इंदो इति ।

विश्वानि । वार्या ॥ ३० ॥

हे इंदो दीप्त सोम दिव्यानि दिवि भवानि पार्थिवा पार्थिवानि पृथिव्यां जाताणि च विश्वानि सर्वाणि  
वार्या वार्याणि वरणीयानि वसून्वक्ष्ये अक्षानु धारय । प्रक्षिप ॥ ३५ ॥

वृषा सोमेति चिंशदृचं चतुर्थं मुक्तं मारीचस्य कक्षपस्याघं गायत्रं पवमानसौम्यं । तथा चानुक्रांतं । वृषा  
सोम कक्षप इति ॥ उक्तो विनियोगः ॥

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ॥ १ ॥

वृषा । सोम । द्युऽमान् । असि । वृषा । देव । वृषऽव्रतः । वृषा । धर्माणि । दधिषे ॥ १ ॥

हे सोम वृषा वर्षकस्त्वं द्युमान्दीप्तिमानसि । अपि च हे देव क्षीतमान सोम वृषा त्वं वृषव्रतो वर्षणशील-  
कर्मासि । किंच हे सोम वृषा त्वं धर्माणि देवानां मनुष्याणां च हितानि कर्माणि दधिषे । धारयसि ॥

वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः । सत्यं वृषन्वृषेदसि ॥ २ ॥

वृष्णः । ते । वृष्ण्यं । शवः । वृषा । वनं । वृषा । मदः । सत्यं । वृषन् । वृषा । इत् । असि ॥ २ ॥



हे वृषन् कामानां वर्षक सोम वृष्णो वर्षितुको तव श्रवो बलं वृष्णं वर्षणशीलं भवति । वनं तव भवनमपि वृषा वर्षणशीलं । मदस्व रसोऽपि वृषा वर्षणशीलः । सत्त्वं सत्यमेव त्वं वृषेष्टवर्षणशील एवासि । भवसि ॥

अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इंदो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥

अश्वः । न । चक्रदः । वृषा । सं । गाः । इंदो इति । सं । अर्वतः । वि । नः । राये । दुरः । वृधि ॥३॥

हे इंदो सोम वृषा त्वमश्वो नाश्व इव सं चक्रदः । संक्रंदसे । अपि च गाः पशूनर्वतोऽश्वांश्चास्मभ्यं सं । प्रयच्छसीति श्रेयः । किंच नोऽस्माकं राये धनाय दुरो द्वाराणि वि वृधि । विवृताणि कुप ॥

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाश्वः ॥४॥

असृक्षत । प्र । वाजिनः । गव्या । सोमासः । अश्वया । शुक्रासः । वीरया । आश्वः ॥४॥

वाजिनो बलवन्तः शुक्रासः शुक्रा उज्ज्वला आश्वो वेगवन्तश्च सोमासः सोमा गव्या गवेच्छया अश्वयाश्चेच्छया च वीरया पुत्रेच्छया च प्रास्वन्त । अल्लिग्मिः स्रज्यति ॥

शुभमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गर्भस्थोः । पर्वते वारे अय्यये ॥५॥

शुभमानाः । ऋतायुऽभिः । मृज्यमानाः । गर्भस्थोः । पर्वते । वारे । अय्यये ॥५॥

ऋतायुभिर्मृज्यमानैः शुभमाना अलंक्रियमाणा गर्भस्थोर्गर्भस्थिभ्यां वाङ्मभ्यां । गर्भस्थो बाह्व इति बाङ्गनामसु पाठात् । मृज्यमानाः शोध्यमानाः सोमा अय्ययेऽविमये वारे वालि पवित्रे पर्वते । चरन्ति ॥ ॥३६॥

ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पर्वतामांतरिह्या ॥६॥

ते । विश्वा । दाशुषे । वसु । सोमा । दिव्यानि । पार्थिवा । पर्वतां । आ । अंतरिह्या ॥६॥

ते सोमा दिव्यानि दिवि भवानि पार्थिवा पार्थिवानि पृथिव्यां संभूतानि चांतरिक्षांतरिक्षाभ्यांतरिक्षे जातानि च विश्वा विश्वानि वसु वसूनि धनानि दाशुषे हविषां प्रदात्रे यजमानाय पर्वतां । चरन्तु ॥

पर्वमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ॥७॥

पर्वमानस्य । विश्वऽवित् । प्र । ते । सर्गाः । असृक्षत । सूर्यस्यऽइव । न । रश्मयः ॥७॥

हे विश्वविद्विष्यस्व द्रष्टः सोम पर्वमानस्य चरतस्ते तव सर्गाः प्रसृज्यमाना धाराः सूर्यस्तेन रश्मयः सूर्यस्य किरणा इव प्रकाशमानाः । नेति संप्रत्यये । इदानीं प्रास्वन्त । प्रास्वन्त ॥

केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे ॥८॥

केतुं । कृण्वन् । दिवः । परि । विश्वा । रूपा । अभि । अर्षसि । समुद्रः । सोम । पिन्वसे ॥८॥

हे सोम समुद्रः । समुद्रवन्ति यस्माद्रसाः स समुद्रः । स त्वं केतुं प्रज्ञानं कृण्वन्कुर्वन्नस्माकं विश्वा विश्वानि रूपाणि दिवोऽंतरिक्षादभ्यर्षसि । अभिपवसे । पिन्वसे । नानाविधानि धनानि चास्मभ्यं प्रयच्छसि ॥

हिव्वा नो वाचमिष्यसि पर्वमान विधर्मणि । अक्रान्देवो न सूर्यः ॥९॥

हिव्वा नः । वाचं । इष्यसि । पर्वमान । विधर्मणि । अक्रान् । देवः । न । सूर्यः ॥९॥

हे पवमान सोम हिन्वानः प्रेर्यमाणस्त्वं वाचं शब्दमिष्यसि । प्रेरयसि । कदेत्युवाह । यदा तव रसः सूर्यो देवो न देव इव विधर्मणि विधारके पवित्रेऽक्रान् अक्रमीत् । तदेत्यर्थः ॥

इंदुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती । सृजदश्वं रथीरिव ॥ १० ॥

इंदुः । पविष्ट । चेतनः । प्रियः । कवीनां । मती । सृजत् । अश्वं । रथीःऽइव ॥ १० ॥

चेतनः प्रज्ञापकः प्रियो देवानां प्रीतिकर इंदुः सोमः कवीनां क्रांतकर्मणां स्तोत्राणां मती मत्वा सुखा पविष्ट । पवते । अश्वं इयं रथीरिव रथीवोर्मिं सृजत् । सृजति च ॥ ३७ ॥

ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत् । सीदन्नुतस्य योनिमा ॥ ११ ॥

ऊर्मिः । यः । ते । पवित्रे । आ । देवऽअवीः । परिऽअक्षरत् । सीदन् । उतस्य । योनिं । आ ॥ ११ ॥

हे सोम ते तव यो देवावीर्देव ऊर्मिस्तरंग ऋतस्य यज्ञस्य योनिं स्थानमा सीदन् पवित्रे पर्यक्षरत् परि-  
चरति तमूर्मिं सृजतीति पूर्वच संबंधः ॥

स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः । इंदुविद्राय पीतये ॥ १२ ॥

सः । नः । अर्ष । पवित्रे । आ । मदः । यः । देवऽवीतमः । इंदो इति । इद्राय । पीतये ॥ १२ ॥

हे इंदो यस्त्वं देववीतमोऽतिशयेन देवकामो मदो मदकरश्च भवसि स त्वं नोऽस्माकं पवित्र इंद्रायेंद्रस्य पीतये पाणायार्ष । पवस्व ॥

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इंदो रुचाभि गा इहि ॥ १३ ॥

इषे । पवस्व । धारया । मृज्यमानः । मनीषिऽभिः । इंदो इति । रुचा । अभि ।

गाः । इहि ॥ १३ ॥

हे इंदो सोम मनीषिभिर्हृत्स्विभिर्मृज्यमानः शोधमानस्त्वमिषेऽस्माकमन्नाय धारया पवस्व । चर । रुचा रोचमानेनांधसा गाः पशून्भीहि । अभिगच्छ ॥

पुनानो वरिवस्कृधूर्जे जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरं ॥ १४ ॥

पुनानः । वरिवः । कृधि । ऊर्जे । जनाय । गिर्वणः । हरे । सृजानः । आऽशिरं ॥ १४ ॥

हे गिर्वणो गोभिर्वजनीय हरे हरितवर्णं सोम आशिरं चीरं प्रति सृजानो विद्वज्यमानः पुनानः पूयमानस्त्वं जनाय यजमानार्थं वरिवो धनमूर्जमन्नं च कृधि । कुरु ॥

पुनानो देववीतय इंद्रस्य याहि निष्कृतं । द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥ १५ ॥

पुनानः । देवऽवीतये । इंद्रस्य । याहि । निऽकृतं । द्युतानः । वाजिऽभिः । यतः ॥ १५ ॥

हे सोम द्युतानो दीप्यमानो वाजिभिर्बलिभिर्वजमानैर्यतः संगृहीतो देववीतये यज्ञार्थं पुनानः पूयमान-  
स्त्वमिंद्रस्य निष्कृतं स्थानं याहि । गच्छ ॥ ३८ ॥

प्र हिन्वानास इंदुवोऽच्छा समुद्रमाश्वः । धिया जूता असृक्षत ॥ १६ ॥

प्र । हिन्वानासः । इंदवः । अच्छ । समुद्रं । आश्वः । धिया । जूताः । असृक्षत ॥ १६ ॥



आयवो वेगवंत इंदवः सोमाः समुद्रमंतरिक्षमच्छ प्रति हिन्वाणासो हिन्वाणाः प्रेर्यमाणा धियांगुच्छा  
वृताः छष्टाश्च प्राकृषत । कथ्यन्ते ॥

मर्मृजानासं आयवो वृथा समुद्रमिंदवः । अगमन्वृतस्य योनिमा ॥१७॥

मर्मृजानासः । आयवः । वृथा । समुद्रं । इंदवः । अगमन् । वृतस्य । योनिं । आ ॥१७॥

मर्मृजानासो मर्मृज्यमाना आयवो अंतर इंदवः सोमा वृथायासं विनैव समुद्रमंतरिक्षं गच्छन्ति ।  
एतदेव दर्शयति । अतस्त्रोदकस्य योनिं स्नानमगमन् । गच्छन्तीति ॥

परि णो याह्यस्मयुर्विश्वा वसून्योजसा । पाहि नः शर्म वीरवत् ॥१८॥

परि । नः । याहि । अस्म्युः । विश्वा । वसूनि । ओजसा । पाहि । नः । शर्म । वीरवत् ॥१८॥

हे सोम अस्मयुरस्माकमस्त्वं नोऽस्माकं विश्वा विश्वानि वसूनि धनान्योजसा बलेन सह परि याहि ।  
रक्षार्थं परिगच्छ । अपि च नोऽस्माकं वीरवत्पुत्रवच्छर्म गृहं पाहि । रक्ष ॥

मिमाति वहिरेतशः पदं युजान चृकृभिः । प्र यत्समुद्र आहितः ॥१९॥

मिमाति । वहिः । एतशः । पदं । युजानः । चृकृभिः । प्र । यत् । समुद्रे ।

आहितः ॥१९॥

हे सोम यद्यदा यो वहिर्वहनशील एतशोऽथो मिमाति शब्दं करोति चृकृभिर्हविभिः स्त्रीतृभिः पदं  
यज्ञे युवानो निदधत् स्त्रीचयवणार्थमागच्छति तदा स यज्ञवाहकाश्वात्मा त्वं समुद्र उदके वसतीवरोपु  
प्राहितो भवसि ॥

आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्चतस्य सीदति । जहात्यप्रचेतसः ॥२०॥

आ । यत् । योनिं । हिरण्ययं । आशुः । चतस्य । सीदति । जहाति । अप्रचेतसः ॥२०॥

यद्यदाशुर्वेगवान्सोम अतस्त्र यज्ञस्य हिरण्ययं हिरण्यमयं योनिं स्नानं । हिरण्यपाणिरभिषुषोतीत्युक्तं ।  
आ सीदति तदानीमप्रचेतसो जहाति । विरुजति । अस्त्रीतृणां यज्ञं नाभिगच्छति किंतु स्त्रीतृणामेव यज्ञम-  
भिगच्छतीत्यर्थः ॥ ॥३९॥

अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः । मज्जन्त्यविचेतसः ॥२१॥

अभि । वेनाः । अनूषत । इयक्षन्ति । प्रचेतसः । मज्जन्ति । अविचेतसः ॥२१॥

वेनाः कान्ताः स्त्रीतारोऽभ्यनूषत । सोममभिषुषन्ति । प्रचेतसः सुमतय इयक्षन्ति । यष्टुमिच्छन्ति च । अवि-  
चेतसः । विशिष्टमतयो विचेतसः । अविचेतसो विपरीतमतय इत्यर्थः । मज्जन्ति । निमज्जन्ति । ये सोमं  
नाभिषुषन्ति न यक्षन्ति च ते नरके पतन्तीत्यर्थः ॥

इंद्रयिंदो मरुत्वन्ते पर्वस्व मधुमत्तमः । चृतस्य योनिमासदं ॥२२॥

इंद्राय । इंदो इति । मरुत्वन्ते । पर्वस्व । मधुमत्सुतमः । चृतस्य । योनिं । आसदं ॥२२॥

हे इंदो सोम मधुमत्तमोऽतिशयेन मधुमांस्त्वमृतस्य यज्ञस्य योनिं स्नानमासदमुपवेष्टुं मरुत्वत इंद्रयिं-  
द्रार्थं पवस्व । षर ॥

तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः । सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २३ ॥

तं । त्वा । विप्राः । वचः । विदः । परि । कृण्वन्ति । वेधसः । सं । त्वा । मृजन्ति । आयवः ॥ २३ ॥

हे सोम तं पवमानं त्वा त्वां विप्राः प्राज्ञा वेधसः कर्मणां कर्तारो वचोविदः स्तोताः परिष्कृण्वन्ति । अजंकुर्वन्ति । अपि च त्वा त्वामायवो मनुष्याः सं मृजन्ति । सम्यक् शोधयन्ति ॥

रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥ २४ ॥

रसं । ते । मित्रः । अर्यमा । पिबन्ति । वरुणः । कवे । पवमानस्य । मरुतः ॥ २४ ॥

हे कवे क्रांतकर्मन् सोम पवमानस्य चरतस्ते तव रसं मित्रोऽर्यमा च वरुणस्य मरुतश्चेति सर्वे देवाः पिबन्ति ॥

त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि । इंदो सहस्रभर्णसं ॥ २५ ॥

त्वं । सोम । विपः । चितं । पुनानः । वाचं । इष्यसि । इंदो इति । सहस्रं । भर्णसं ॥ २५ ॥

हे इंदो दीप्त सोम पुनानः पूयमानस्त्वं विपश्चितं प्रज्ञया पवित्रां सहस्रभर्णसं वज्रभरणां वाचमिष्यसि । प्रेरयसि ॥ ४० ॥

उतो सहस्रभर्णसं वाचं सोम मखस्युव । पुनान इंदुवा भर ॥ २६ ॥

उतो इति । सहस्रं । भर्णसं । वाचं । सोम । मखस्युव । पुनानः । इंदो इति । आ । भर ॥ २६ ॥

उतो अपि च हे इंदो दीप्त सोम पुनानः पूयमानस्त्वं सहस्रभर्णसं सहस्रभरणां मखस्युषं धनवानां वाचमस्यभ्यमा भर । आहर ॥

पुनान इंदवेष्वां पुरुहूत जनानां । प्रियः समुद्रमा विंश ॥ २७ ॥

पुनानः । इंदो इति । एष्वां । पुरुहूत । जनानां । प्रियः । समुद्रं । आ । विंश ॥ २७ ॥

हे पुरुहूत वज्रभिराकृतेंदो सोम पुनानः पूयमानस्त्वमेषामस्त्रिन्यागे स्तोत्रं कुर्वतां जनानां प्रियः सन् समुद्रं द्रोणकलशमा विंश । प्रविश ॥

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा । सोमाः श्रुक्ता गवाशिरः ॥ २८ ॥

दविद्युतत्या । रुचा । परि । स्तोभन्त्या । कृपा । सोमाः । श्रुक्ताः । गोऽश्वाशिरः ॥ २८ ॥

श्रुक्ता उज्ज्वला दविद्युतत्या द्योतमानया रुचा दीप्त्या परिष्टोभन्त्या परितः शब्दायमानया कृपा धारया च युक्ताः सोमा गवाशिरो भवन्ति । गव्येन पयसा मिश्रिता भवन्तीत्यर्थः ॥

हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत् । सीदन्तो वनुषो यथा ॥ २९ ॥

हिन्वानः । हेतृभिः । यतः । आ । वाजं । वाजी । अक्रमीत् । सीदन्तः । वनुषः ।

यथा ॥ २९ ॥

वाजी वनवान् सोमो हेतृभिः प्रेरकैः स्तोत्रमिर्हिन्वानः स्तोत्रैः प्रेर्यमाणो यतः संयतः सन् वाजं यागाख्यं युद्धमाक्रमीत् । आक्रामति । तत्र दृष्टान्तः । यथा वनुषो हंतारो भटाः सीदन्तो युद्धं प्रविशन्त आक्रामन्ति तद्वदित्यर्थः ॥



अध्वक् सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः । पवस्व सूर्यो दृशे ॥३०॥

अध्वक् । सोम । स्वस्तये । संजग्मानः । दिवः । कविः । पवस्व । सूर्यः । दृशे ॥३०॥

हे सोम कविः ज्ञातः सूर्यः सुवीर्यस्त्वमध्वगुधुवन् । तथा च यास्तः । अध्वगिति पृथग्भावस्यानुप्रवचनं  
भवत्यथाप्युभोत्वर्थे दृश्यते । नि० ४. २५. इति । संजग्मानः संगच्छमानः स्वस्तये दृशे दर्शनाय च दिवः पवस्व ।  
चर ॥ ॥४९॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो ह्यर्द्धं निवारयन् । पुमर्थोऽस्तुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुद्धभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण  
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये सप्तमाष्टके प्रथमोऽध्यायः ॥

यस्य निःश्रुतं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।

निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

ह्रिन्वतीति विशद्वचं पंचमं सूक्तं । वक्ष्यपुत्रस्य भृगोरायं भार्गवस्य जमदग्नेर्वा गायत्रं पवमानसोमदेव-  
ताकं । तथा चाशुक्रम्यते । ह्रिन्वति भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्विति ॥ गतो विनियोगः ॥

ह्रिन्वति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिं । महामिदं महीयुवः ॥१॥

ह्रिन्वति । सूरं । उस्रयः । स्वसारः । जामयः । पतिं । मां । इदं । महीयुवः ॥१॥

अथ सर्वत्र पवमानः सोमः स्तूयते । तच्चादावृषिः सोमं प्रत्याह । मदीया अंगुलयस्त्वामभिषोतुं प्रेरयं-  
तीति । तदुच्यते । स्वसारः । अंगुलिनामैतत् । सुष्ठु कर्मसु प्रेर्यत अस्तिगिरिति स्वसारः । जामय एकस्मात्पा-  
ण्येत्पत्नत्वात्परस्परं बंधुभूता उस्रयः कर्मार्थं निवसंत्यः । सर्वत्र मंत्र्य इत्यर्थः । तादृशोऽंगुलयो महीयुवस्त्व-  
दभिषवं कामयमानाः सत्यः सूरं सुवीर्यं सोमे पीते वीर्यं भवतीति शोभनवीर्यकारणं वा सर्वेषां कर्मणि  
प्रेरकं वा तादृशं पतिं सर्वस्य स्थावरजंगमजातस्य स्वामिनं यस्माद्देवार्थमिच्छतेऽत एव मां देवेभ्यो  
दीयमानस्तेन महान्तं महनीयं वेदं ग्रहेषु खंदमानं सोमं ह्रिन्वति । प्रेरयति ॥ हि वर्धनगत्योः स्तादिः ॥

पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि । विश्वा वसून्या विश ॥२॥

पवमान । रुचाऽरुचा । देवः । देवेभ्यः । परि । विश्वा । वसूनि । आ । विश्वा ॥२॥

हे पवमान दशापवित्रेण पूषमान यदा पुनान शुद्ध सोम रुचारुचा ॥ रुच दीप्ती ॥ सर्वेण तेजसा देवो  
दीप्यमानस्त्वं देवेभ्यः परि देवेभ्यः सकाशाद्विश्वा व्याप्तानि सर्वाणि बहूनि वसूनि धनान्यस्माकमा विश ।  
प्रापय । यदा । देवेभ्यस्तदर्थं सर्वाणि वसूनि निवासस्थानानि ग्रहादीन्या विश । समंतात्प्रविश ॥

आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतं ॥३॥

आ । पवमान । सुऽस्तुतिं । वृष्टिं । देवेभ्यः । दुवः । इषे । पवस्व । संऽयतं ॥३॥

हे पवमान पूषमान पुनान वा सोम सुष्टुतिं शोभनस्तुतियुक्तां वृष्टिं देवेभ्यो देवानां दुवः ॥ सुपां सुश्रुति  
चतुर्थ्या लुक् ॥ दुवसे परिचरणाया पवस्व । आगमय । त्वं यथा मदीयया सुत्या वृष्टिर्मेविष्यति तथा  
कुर्वित्वर्थः । किंचास्माकमिषेऽज्ञार्थं च संयतं सम्यगस्मान् संगच्छेतीं वृष्टिं कुरु । यदा । दुवः परिचर्यामभिलष्य  
क्रियमाणां सुष्टुतिं शोभनस्तुतिरूपां वृष्टिं । बह्वस्तुतिमित्यर्थः । एतां देवेभ्यः प्रापय ॥

वृषा ह्यसि भानुना द्युमंतं त्वा हवामहे । पवमान स्वाध्यः ॥४॥

वृषा । हि । असि । भानुना । द्युऽमंतं । त्वा । हवामहे । पवमान । सुऽआध्यः ॥४॥

हे पवमान पूयमान सोम स्वाध्यः सुकर्माणां वयं भानुना रश्मिना द्युमंतं द्युतिमंतं त्वा त्वां हवामहे । आह्वयामः । हि यस्मान्त्वं वृषा कामानां वर्षयितासि ॥

आ पवस्व सुवीर्यं मंदमानः स्वायुध । इहो ध्विंदवा गहि ॥५॥

आ । पवस्व । सुऽवीर्यं । मंदमानः । सुऽआयुध । इहो इति । सु । इंदो इति । आ । गहि ॥५॥

हे स्वायुध । यज्ञे स्रक्कपालादीनि दशायुधानीत्यभिधीयते । शोभनानि तानि यस्व स तथोक्तः । यद्वा । धनुरादीन्यायुधानि यस्व सः । तादृश हे सोम त्वं मंदमानो मोदमानः सन् । यद्वा । अंतर्णीतस्वर्थः । देवान् स्वयं मादयन् । सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं पुत्रादिकमस्माकमा पवस्व । पवतिर्गत्यर्थः । आ प्रापय । किंच हे इंदो यद्देषु चमसेषु च चरणशील सोम इहो । इह उ पददयं । उ इत्यवधारणे । इहैवास्मादीये यज्ञ एव मुह्य गहि । आगच्छ ॥ ॥१॥

यदुज्जिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः । दुणां सधस्यमश्रुषे ॥६॥

यत् । अत् । ऽभिः । परिऽसिच्यसे । मृज्यमानः । गभस्त्योः । दुणां । सधऽस्यं । अश्रुषे ॥६॥

हे सोम गभस्त्योः । बाहुनामैतत् । वभसति दीपयंति निर्मथुंत्वाभ्यामधिमिति गभस्ती बाहु । तथोर्मृज्यमानस्ताभ्यां शोधमानः सन्नज्जिः । सोमसेवनार्थं चतुर्विधा आपः । तामिर्वसतीचरीमिरेकधनाभिश्च यद्यदा परिषिच्यसे परितः सिच्यमानो भवसि तदानीं दुणा द्रुममयेन पारिप्लवेन पात्रेण गृह्यमाणः सन् सधस्यं सह तिष्ठत्यचेति सधस्यं स्थानं ग्रहचमसादिकमश्रुषे । आश्रुषि ॥

प्र सोमाय व्यश्ववत्पवमानाय गायत । महे सहस्रचक्षसे ॥७॥

प्र । सोमाय । व्यश्वऽवत् । पवमानाय । गायत । महे । सहस्रऽचक्षसे ॥७॥

हे सोमोत्तरः पवमानाय दशपवित्रेण पूयमानाय पुनानाय वा सोमाय प्र गायत । प्रक्षेपेण सामगानं कुरुत । अभिपुत वा । कथमिव । व्यश्ववत् । यथा पूर्वं व्यश्वो नामर्षिः सोममगासीत् तद्वयूयमपि । कीदृशाय । महे महते देवेभ्यः स्तोकियमाणत्वेन गुणादिभिर्वा महत्त्वयुक्ताय सहस्रचक्षसे । प्रयोगवाङ्मन्यपेक्षमेतद्वचनं । सहस्रसंख्याकस्तोत्रयुक्ताय । यद्वा । नानाविधैर्देवैरेकधा द्रष्टव्याय सोमायेति ॥

यस्य वर्णं मधुश्रुतं हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । इंदुमिद्राय पीतये ॥८॥

यस्य । वर्णं । मधुऽश्रुतं । हरिं । हिन्वंति । अद्रिऽभिः । इंदुं । इन्द्राय । पीतये ॥८॥

हे अध्वर्यादयः वर्णं शत्रूणां वारकं येनासौ पीयति तेन मत्तेन शत्रवः संप्रहार्यन्त इति शत्रुनिवारणसमर्थं मधुश्रुतं मधुररसस्य आवयितारं हरिं हरितवर्णमिंदुं । इंधेरेतद्रूपमचेत्यति । सर्वतो दीप्यमानं । उन्द् क्लेदन इत्यस्माद्वा । अभिषवानंतरं पात्रेषु चरणशीलं । यस्य सोमस्य तव कारणमंशुमद्रिभिर्हिन्वंति प्रेरयंति । अभिपुण्वन्तीत्यर्थः । इन्द्राय पीतय इन्द्रस्य पानाय । तदर्थमित्यर्थः ॥

तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । सखित्वमा वृणीमहे ॥९॥

तस्य । ते । वाजिनः । वयं । विश्वा । धनानि । जिग्युषः । सखिऽत्वं । आ । वृणीमहे ॥९॥

हे सोम वाजिनः संभृतहविष्का वयं विश्वा विश्वानि सर्वाणि व्याप्तानि वा शत्रुधनानि जिग्युषो जितव-



तस्य पूर्वोक्तलक्षणस्य प्रसिद्धस्य वा ते तव सखित्वं क्षुत्प्रीत्युत्पन्नं सख्यमा वृणीमहे । संभजामहे । अस्मभ्यं धनं देहीति संभजनं कुर्म इत्यर्थः ॥ जिग्युषः । जि जये । लिटि क्सौ वस्त्रेकाजादिति नियमादिभावाः । सग्लिटोर्जैरित्यभ्यासादुत्तरस्य कवर्गदेशः । असि परतो वसोः संप्रसारणं । क्सुप्रत्ययस्वरः ॥

वृषा पवस्व धारया मरुत्वन्ते च मत्सरः । विश्वा दधानं ओजसा ॥ १० ॥

वृषा । पवस्व । धारया । मरुत्वन्ते । च । मत्सरः । विश्वा । दधानः । ओजसा ॥ १० ॥

हे सोम त्वं वृषा क्षीतृणामभिमतफलस्य वर्षकः सन् धारया त्वदीयया पवस्व । द्रोणकलशमागच्छ । पवतिर्गतिकर्मा । आगतत्वं यदास्माभिरिन्द्राय दीयसे तदा मरुत्वन्ते सहाया मरुतो यस्य संति तस्या इन्द्राय मत्सरो मदकरस्य भव । कीदृशः । विश्वा विश्वानि सर्वाणि व्याप्तानि वा धनान्योजसास्त्रीयेन बलेन युक्तः सन् क्षीतृभक्षानि दधानः प्रयच्छन् । त्वं मादधिता भवेति समन्वयः ॥ ॥ २ ॥

तं त्वा धर्तारमोऽण्योऽः पवमान स्वर्दृशं । हिन्वे वाजेषु वाजिनं ॥ ११ ॥

तं । त्वा । धर्तारं । ओऽण्योः । पवमान । स्वःऽदृशं । हिन्वे । वाजेषु । वाजिनं ॥ ११ ॥

हे पवमान पूयमान पुमान् वा हे सोम ओऽण्योः । बावापृथिवीनामेतत् । तयोर्धर्तारं धारकं अत एव स्वर्दृशं स्वर्गस्य सूर्यस्य वा द्रष्टारं सर्वैर्देवैर्द्रष्टव्यं वा वाजिनं बलवन्तं पूर्वोक्तगुणप्रसिद्धं त्वा त्वां वाजेषु संयामेषु हिन्वे । प्रेरयामि । यद्वा । वाजेष्वन्नेषु विषयेषु हिनोमि । अन्नादिकं प्रयच्छेत्यर्थः ॥

अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युजं वाजेषु चोदय ॥ १२ ॥

अया । चित्तः । विपा । अनया । हरिः । पवस्व । धारया । युजं । वाजेषु । चोदय ॥ १२ ॥

हे पवमान अया ॥ अय पय गती ॥ कर्मार्थमितस्ततो गच्छन्तीभिरनया विपा ॥ विप प्रेरणे । हवींष्यग्री प्रेरयन्तीति विपोऽंगुल्यः । एकवचनं क्वांसं । प्रत्येकविवक्षया वा ॥ एताभिर्मदीयाभिरंगुलीभिश्चित्तो ज्ञातः । निर्गतोऽभिपुतो हरिर्हरितवर्णस्त्वं धारया संततया पवस्व । द्रोणकलशं यद्वाद्यागच्छ त्वं । किंच युजं सखायमिन्द्रं वाजेषु संयामेषु चोदय । प्रेरय । यदास्माभिरिन्द्राय सोमो दीयते तदा तत्पानेन हृष्टः सञ्ज्वन् हन्तीत्यर्थः ॥

आ न इंदो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः । अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ १३ ॥

आ । नः । इंदो इति । मही । इषं । पवस्व । विश्वऽदर्शतः । अस्मभ्यं । सोम । गातुऽवित् ॥ १३ ॥

हे इंदो चरणशील दीपनशील वा हे सोम विश्वदर्शतो विश्वैः सर्वैर्दर्शनीयः । यद्वा । विश्वं सर्वं वसुजातं दर्शते ज्ञायतेऽनेनेति । स विश्वस्य प्रकाशक इत्यर्थः । तादृशत्वं महीमिषं महत्प्रभूतमन्नं नोऽश्नयमा पवस्व । आगमय । प्रयच्छेत्यर्थः । किंच हे सोमाभिपूयमाण पवमान अस्मभ्यं गातुवित् स्वर्गमार्गस्य संमयिता ज्ञापयितार भव ॥

आ कलशां अनूषतेदो धाराभिरोजसा । इंद्रस्य पीतये विश ॥ १४ ॥

आ । कलशाः । अनूषत । इंदो इति । धाराभिः । ओजसा । आ । इंद्रस्य । पीतये । विश ॥ १४ ॥

हे इंदो चरणशील सोम ओजसा बलेन युक्तस्य तव धाराभिर्निरंतराभिः सहिताः कलशाः ॥ प्रयोगवा-  
ज्ज्वलपिबमेतद्भुजवचनं ॥ द्रोणकलशां अनूषत । क्षीतृभिराभिमुख्येन क्षूयते । सोमाभिपवकास्ते ह्युल्लिख-  
क्षुवंति खलु । ततस्त्वमिन्द्रस्य पीतये पानाया विश । यद्वाऽस्यमसांश्च प्रविश ॥

यस्य ते मद्यं रसं तीव्रं दुहंत्यद्रिभिः । स पवस्वाभिमातिहा ॥ १५ ॥

यस्य ते । मद्यं । रसं । तीव्रं । दुहन्ति । अद्रिभिः । सः । पवस्व । अभिमातिहा ॥ १५ ॥

हे सोम यस्य ते तव मद्यं मदकरं तीव्रं चिप्रं मदकारिणं रसमद्रिमिर्यावभिरध्वर्वादयो दुहन्ति अभिषु-  
ण्वन्ति स तादृशस्त्वमभिमातिहा । अभितो मातिरभिमानं येषां ते श्रवः । पापकृपाणां शत्रूणां हन्ता सग-  
पवस्व । सर्वतो गच्छ । येऽभिषुण्वन्ति ते पापरहिताः सुकृतिनो भवन्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥

राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि । अंतरिक्षेण यातवे ॥ १६ ॥

राजा । मेधाभिः । ईयते । पवमानः । मनौ । अधि । अंतरिक्षेण । यातवे ॥ १६ ॥

मनौ मनुष्ये चायं कुर्वाणे सति । यद्वा । मनावधि । मनुर्मेतव्यो यज्ञः । तस्मिन्पवमानः पूयमानः पुनानो  
वा राजा । राजशब्देन सोमोऽभिधीयते । सोमं राजानमक्रीणत्तित्वादिषु दृष्टत्वात् । स राजा मेधाभिः  
श्रुतिभिः सहैयते । गच्छति । किमर्थं । अंतरिक्षेणाकाशमार्गेण द्रोणकलशं प्रति यातवे यातुं । द्रोणामिगम-  
नकाले हि स्तोतुभिः स्तूयते खलु ॥

आ न इंदो शतग्विनं गवां पोषं स्वध्वं । वह्ना भर्गन्तिमूतये ॥ १७ ॥

आ । नः । इंदो इति । शतऽग्विनं । गवां । पोषं । सुऽध्वं । वह्ना । भर्गन्ति । ऊतये ॥ १७ ॥

हे इंदो पात्रेषु चरणशील दीपनशील वा हे सोम शतग्विनं शतसहस्रसंख्याभिर्गौमिर्युक्तं गवां पोषं  
गवादीनां पुष्टिवर्धनं स्वध्वं शोभनाश्वसंगसहितं भर्गन्तिं भर्गदन्तिं भजनीयधनदानं चीतये रक्षणाय नो  
ऽस्माकमा वह । प्रापय । गवादींश्च तेषां च वृद्धिं प्रयच्छेत्यर्थः ॥

आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर । सुष्वाणो देववीतये ॥ १८ ॥

आ । नः । सोम । सहः । जुवः । रूपं । न । वर्चसे । भर । सुस्वानः । देवऽवीतये ॥ १८ ॥

हे सोम देववीतये देवपानाय देवानां कामाय वा सुष्वाणोऽभिषूयमाणोऽभिषुतो भव त्वं । सहः शत्रु-  
निभवनसमर्थं बलं जुवः । जु इति गत्यर्थः । शत्रून्प्रति शीघ्रगमनं च । यद्वा । सर्वतो गमनशीलं । किंच । नेति  
चाये । वर्चसे ॥ वर्च दीप्तौ ॥ दीप्तौ सर्वत्र प्रकाशनाय रूपं च नोऽसम्भ्रमा भर । आहर । प्रयच्छ ॥

अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ १९ ॥

अर्षे । सोम । द्युमत्तमः । अभि । द्रोणानि । रोरुवत् । सीदन् । श्येनः । न ।

योनिं । आ ॥ १९ ॥

हे सोमाभिपूयमाण पवमान द्युमत्तमोऽतिशयेन दीप्तिमांस्त्वं द्रोणानि ॥ प्रयोगवाङ्मन्यपेक्षितद्वज्वचनं ॥  
द्रोणानि लचीकृत्य रोरुवत्पुनःपुनर्भृशं वा शब्दं कुर्वन्नर्थः । तानागच्छ । दशापविचमध्यान्निर्गतः सोमोऽधि-  
च्छिन्नधारया द्रोणकलशे पतञ्जब्दं करोति खलु । तत्र दृष्टान्तः । श्येनो न यथा सीदन् सर्वतो गच्छञ्छ्येनः  
गमनीयगतिः पक्षी योनिं स्वस्थानं कुलायं प्रति भृशं शब्दायमग्नः सन्नागच्छति तद्वत् ॥

अप्सा इंद्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे ॥ २० ॥

अप्साः । इंद्राय । वायवे । वरुणाय । मरुत्ऽभ्यः । सोमः । अर्षति । विष्णवे ॥ २० ॥

अप्सा वसतीवरीनामधेयानामपां संभक्ता ॥ षण् संभक्तौ । जनसनेति विट् । आत्वं विद्वनोरिति ॥ तादृशः



सोमोऽर्षति । द्रोणकलशमागच्छति । किमर्थं । इंद्राय । सर्वदेवानां प्रथम एवेन्द्रः सोमं पिबति तस्मात्पूर्वमेवामिहितः । तस्मै वायवे तत्सहायाय च । ऐन्द्रवायवे हीन्द्रस्थानंतरं वायुः सोमं पिबति तस्मात्तदनु वायुः शुक्तः । तस्मै च वरुणाय मरुतो मितं शब्दं कुर्वन् एतन्नामकेभ्यो देवेभ्यो विष्णवे सर्वजगद्वापि विष्णवे च । एतेषां पानुं सोमः सवतीत्यर्थः ॥ ४॥

इषं तोकाय नो दधद्स्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणं ॥ २१ ॥

इषं तोकाय नः । दधत् । अस्मभ्यं । सोम । विश्वतः । आ । पवस्व । सहस्रिणं ॥ २१ ॥

हे सोम त्वं नोऽस्माकं तोकाय पुत्रायैवमन्नं दधद्विदधत्प्रयच्छन् सहस्रिणं सहस्रसंख्याकं धनं विश्वतः सर्वतो दिक्ष्वस्मभ्यं वा पवस्व । आ प्रयच्छ । अस्मभ्यं पुत्राय चान्नधनादिकं प्रयच्छेत्यर्थः ॥

ये सोमांसः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वादः शर्यणावति ॥ २२ ॥

ये । सोमांसः । पराऽवति । ये । अर्वाऽवति । सुन्विरे । ये । वा । अदः । शर्यणाऽवति ॥ २२ ॥

एतदादिभ्यामुग्भ्यामिन्द्रार्थं सर्वत्र सोमाभिष्वोऽस्तीत्याह । ये सोमांसः सोमाः परावति विप्रच्छेदतिदूरे देशे ये अर्वावत्यंतिके देशे इंद्रार्थं सुन्विरे अभिषूयते अभ्यषूयंत ये वा शर्यणावति । कुर्वन् च वरुणं वधनाधं शर्यणावत्संज्ञकं मधुररसयुक्तं सोमवत्सरोऽस्ति । अदोऽस्मिन्सरसि सुरसा ये सोमा इंद्रायाभिषूयते तेऽस्माकमभिमतफलं प्रयच्छत्विति वक्ष्यमाणेन संबंधः ॥

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानां । ये वा जनेषु पंचसु ॥ २३ ॥

ये । आर्जीकेषु । कृत्वऽसु । ये । मध्ये । पस्त्यानां । ये । वा । जनेषु । पंचऽसु ॥ २३ ॥

ये वा सोमा आर्जीकेषु । अजीकानामदूरमवा आर्जीका देशाः । तेषु तथा कृत्वसु । कृत्वान इति देशाभिधानं । तेषु कर्मवत्सु देशेषु च किंच पस्त्यानां सरस्वत्यादीनां नदीनां मध्ये समीपे च ये सोमा अभिषूयते । अष्टपयो वै सरस्वत्यां सत्तमासत । ऐ० ब्रा० २. १९. । इत्यादिषु नदीतीरे यज्ञकरणस्य श्रवणात् । किंच जनेषु पंचसु । निषादपंचमाक्षत्वारो वर्णाः पंच जनाः । तेषु च ये वा सोमा अभिपुताः ते सोमा अस्माकमभिमतं प्रयच्छत्वित्युत्तरेण संबंधः ॥

ते नो वृष्टिं दिवस्परि पर्वतामा सुवीर्यं । सुवाना देवास इंदवः ॥ २४ ॥

ते । नः । वृष्टिं । दिवः । परि । पर्वतां । आ । सुऽवीर्यं । सुवानाः । देवासः । इंदवः ॥ २४ ॥

सुवानास्तत्र चात्र अभिषूयमाणा देवा दीपनशीलाः कृत्वा वेदवो ग्रहेषु चमसेषु च चरंतस्मै सोमा नोऽस्माकं दिवस्परि । परिशब्दः पंचमीवोक्तकः । अंतरिक्षादादित्याद्वा वृष्टिं । अपी प्राप्ताकृतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते आदित्याज्जायते वृष्टिरिति वृष्टिकारणत्वात् । किंच सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं पुत्रं च धनादिकं वा वा पर्वतां । प्रापयंतु । यजमानः सोमेनाभिमतफलानि प्राप्नोति खलु ॥

पर्वते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना । हिन्वानो गोरधिं त्वचि ॥ २५ ॥

पर्वते । हर्यतः । हरिः । गृणानः । जमत्ऽअग्निना । हिन्वानः । गोः । अधिं । त्वचि ॥ २५ ॥

हर्यतो देवान् कामयमानो हरिर्हरितवर्णः किंच गोस्त्वच्यध्यानुहुर्धर्मणि हिन्वानः प्रयमाणाः स सोमो जमदग्निना मंत्रद्रष्टृभिर्गृणानः सूयमानः सप्त पवते । दशापवित्रेण पूतो भवति । यद्वा । पात्राण्यभिगच्छति ॥ ५॥

प्र शुक्रासो वयो जुवो हिन्वानासो न सप्रयः । श्रीणाना अप्सु मृजत ॥ २६ ॥

प्र। शुक्रासः। वयःऽजुवः। हिन्वानासः। न। सप्रयः। श्रीणानाः। अप्सु। मृजत ॥ २६ ॥

शुक्रासः शुक्रा दीप्यमाना वयो जुवोऽन्नं प्रेरयन्तः । यद्यदपेक्ष्य देवेभ्यः सोमं प्रयच्छन्ति तत्तदपेक्षितं सोमो ददाति । ते सोमाः श्रीणाना दधिबीरादिभिः श्रोयमाणाः संतोऽप्सु वसतीवराष्वेकधनासु च मृजत । अल्विग्निः प्रमृज्यते । शोध्यते । तत्र दृष्टान्तः । हिन्वानासो न सप्रयः । अश्वनामैतत् । यथाश्वा हिन्वानासो हिन्वानाः सादिभिः प्रेर्यमाणाः संतोऽप्सु तैरेव प्रशोधिता भवन्ति तद्वत् ॥

तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये । स पवस्वानया रुचा ॥ २७ ॥

तं। त्वा। सुतेषु। आऽभुवः। हिन्विरे। देवऽतातये। सः। पवस्व। अनया। रुचा ॥ २७ ॥

अथ प्रत्यक्षकृतः । हे सोम आमुवः । कर्मकरणाथं समन्ताद्भवन्तीत्यामुव अल्विजः । ते सुतेषु । सुतोऽभिषुतः सोमः । तद्वत्सु यज्ञेषु देवतातये ॥ सर्वदेवात्तातिलिति स्वार्थिकक्षातिल् ॥ इंद्रादिदेवेभ्यस्तं तादृशं प्रसिद्धं त्वा त्वां हिन्विरे । यावभिः प्रेरयन्ति । अभिषुष्वन्तीत्यर्थः । ततः सोऽभिषुतः स त्वमनया रुचा दीप्यमानया धारया द्रोणकलशं प्रति पवस्व । आगच्छ । पवतिर्गतिकर्मा । यद्वा । अनया मदीयया रुचा सुत्वा सह कलशमागच्छ । कलशाभिगमनकाले हि सोमं सुर्वन्ति ॥

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पातमा पुरुस्पृहं ॥ २८ ॥

आ। ते। दक्षं। मयःऽभुवं। वह्निं। अद्या। वृणीमहे। पातं। आ। पुरुऽस्पृहं ॥ २८ ॥

हे सोम यष्टारो वयं ते तव स्वभूतं दक्षं वलमद्यास्त्रिन्यागदिन आभिसुख्येना वृणीमहे । संभजामहे । कीदृशं । मयोभुवं सुखस्य भावकं वह्निं धनादीनां प्रापकं पातं शत्रुभ्यो रचकं पुरुस्पृहं बह्निभिः स्पृहणीयं काम्यमानं वलमिति ॥

आ मद्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणं । पातमा पुरुस्पृहं ॥ २९ ॥

आ। मद्रं। आ। वरेण्यं। आ। विप्रं। आ। मनीषिणं। पातं। आ। पुरुऽस्पृहं ॥ २९ ॥

हे सोम मद्रं मदकरं सुखं वा त्वामा वृणीमहे । वरेण्यं सर्वैर्वरणीयं संभजनीयं च । किंच विप्रं मेधाविनं त्वा । तथा मनीषिणं । मनस ईया मनीषा । तद्वन्तं क्षुतिमन्तं वा त्वामा वृणीमहे । प्रत्येकं विशेषणापेक्षया आ इत्युपसर्गः कृतः । किंच पातं सर्वेषां रचकं पुरुस्पृहं बह्निभिः स्पृहणीयं च त्वां संभजामहे ॥

आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा । पातमा पुरुस्पृहं ॥ ३० ॥

आ। रयिं। आ। सुऽचेतुनं। आ। सुक्रतो इति सुऽक्रतो। तनूषु। आ। पातं।

आ। पुरुऽस्पृहं ॥ ३० ॥

हे सुक्रतो शोभनयज्ञ सोम त्वदीयं रयिं धनं वयमा वृणीमहे । किंच सुचेतुनं ॥ चिती संज्ञानि । माव श्रीणादिक उन्नत्ययः ॥ सुज्ञानं च । तनूष्वस्त्युत्रेषु च धनं सुज्ञानं च त्वमा विधेहि । यद्वा । पुत्रार्थं वयमा वृणीमहे । तथा पातं सर्वस्य रचकं पुरुस्पृहं बह्निभिर्यष्टुभिः काम्यमानं त्वां संभजामहे ॥ ६ ॥

पवस्विति त्रिंशद्वचं षष्ठं सूक्तं । अचानुक्रम्यते । पवस्व शतं वैखानसा अष्टादशनुष्टुप्परास्त्रिस्त आप्रेष्य इति । शतसंख्याका वैखानसाख्याः संहता ऋषयः । त्वं सोम सूर इत्येवानुष्टुप् । श्रिष्टा गायत्र्यः । अप आयुषीत्याद्यास्त्रिस्तः पवमानविशिष्टाग्निदेवताकाः । अन्यासां पवमानः सोमो देवता ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥



पर्वस्व विश्वचर्षणेऽभि विश्वानि काव्या । सखा सखिभ्य ईडाः ॥ १ ॥

पर्वस्व । विश्वऽचर्षणे । अभि । विश्वानि । काव्या । सखा । सखिभ्यः । ईडाः ॥ १ ॥

हे विश्वचर्षणे सर्वव्यापित्वेन सर्वस्य ब्रह्मं सोम सखा सुखसौम्यप्रव्ययष्टुलक्षणेन संबन्धेन सखिभूतस्त्वमीडाः सौतव्यः सखिभ्यो हविष्प्रदानेनोपकारकत्वाच्चिभूतेभ्योऽस्मभ्यं विश्वानि सर्वाणि काव्या कवेः कर्माणि काव्यानि ॥ ब्राह्मणादित्यात् व्यञ् ॥ सर्वाणि सौचायामि लक्ष्यकृत्य पवस्व । आगच्छ ॥

ताभ्यां विश्वस्य राजसि ये पवमान धामनी । प्रतीची सोम तस्थतुः ॥ २ ॥

ताभ्यां । विश्वस्य । राजसि । ये इति । पवमान । धामनी इति । प्रतीची इति ।

सोम । तस्थतुः ॥ २ ॥

हे पवमान दशापविणे पूयमान पुनान वा हे सोम चे धामनी पूर्वपचापरपचयोर्लतारूपस्य सोमस्य त्वैकिकपर्णवृद्धिग्रासाभ्यां तव स्वभूतौ पूर्वादिपचौ । यद्वा । ये धामनी नामनी चंसुसोमात्मके । अपि प्रतीची त्वदभिमुखं गच्छन्तौ गच्छन्तौ वा पचौ नामनी तस्थतुः उपजगमतुः ताभ्यां त्वं विश्वस्य सर्वस्य लोकस्य राजसि । स्वामी भवसि । पूर्वादिपचाभ्यां सर्वलोकस्योपनायकत्वात्तस्य स्वामी भवसि । पृथिव्यामंगुनाम्ना मनुष्याणां सर्वेषाममीप्सितदानेन तस्य लोकस्य बुभुक्षे देवेभ्यः स्वमुधामयकलादानेन तेषां प्रीणयिता भवसि । देवाः खलु सोमस्यैकिकवृद्धिग्रासाभ्यां कलाः पिबन्ति ॥

परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः । पवमान ऋतुभिः कवे ॥ ३ ॥

परि । धामानि । यानि । ते । त्वं । सोम । असि । विश्वतः । पवमान । ऋतुभिः । कवे ॥ ३ ॥

हे सोम यस्मात्ते त्वदीयानि धामानि तेषां परितो वर्तते अत एव हे पवमान पूयमान हे कवे क्रांतकर्मन् हे सोम त्वमृतुभिर्वसंतादिकालविशेषैः सह विश्वतः सर्वतोऽसि । भवसि । अहोरात्री यत्र यत्र व्याप्नोति तत्र तत्र वसंतादिकालोपाधिकः सोमस्तिष्ठति । तथोक्तदधीनत्वादित्यर्थः ॥

पर्वस्व जनयन्निषोऽभि विश्वानि वार्यो । सखा सखिभ्य ऊतये ॥ ४ ॥

पर्वस्व । जनयन् । इषः । अभि । विश्वानि । वार्यो । सखा । सखिभ्यः । ऊतये ॥ ४ ॥

हे सोम सखा सखिभूतस्त्वं विश्वानि सर्वाणि वार्यो वरणीयान्यस्मन्नतामि सौचायामि लक्ष्यकृत्य सखिभ्योऽस्मभ्यमृतये रचणाय जीवनायेषोऽन्नामि जनयन् प्रयच्छन् पवस्व । आगच्छ । पवतिर्गतिकर्मा ॥

तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्टे वि तन्वते । पविचं सोम धामभिः ॥ ५ ॥

तव । शुक्रासः । अर्चयः । दिवः । पृष्टे । वि । तन्वते । पविचं । सोम । धामभिः ॥ ५ ॥

हे सोम शुक्रासः सर्वत्र ज्वलनशीला धाममिस्त्रेजोभिः सहितस्य तव स्वभूता अर्चयोऽर्चनीया रश्मयो दिवो द्योतमानस्तादित्यस्य बुभुक्षे वा पृष्टेऽधरमाणि । पृथिव्यामित्यर्थः । पविचं पवमानसाधनमुदकं वि तन्वते । विशेषेण तन्वति । विस्तारयति । सर्वत्र कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ ॥ ७ ॥

तवेमे सप्त सिंधवः प्रशिषं सोम सिस्रते । तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ६ ॥

तव । इमे । सप्त । सिंधवः । प्रशिषं । सोम । सिस्रते । तुभ्यं । धावन्ति । धेनवः ॥ ६ ॥

वृष्टिकर्तृत्वप्रसंगादाह । हे सोम इम इमास्तथा स्रष्टाः सप्त सप्तसंख्याकाः सिंधवः चन्दमाना गंगाया

नवः । यद्वा । सप्त सर्पणशीला नवः । तव प्रशिषं प्रशासनमाज्ञामभि सिञ्चते । अनुसरन्ति । त्वदाज्ञामनुवृत्तं समुद्रं गच्छन्तीत्यर्थः । किञ्च धेनवो नवप्रसूतिका देवानां हविष्प्रदानेन प्रीणयिष्यो गावस्तुभ्यं त्वदर्थमेवाग्निरं चीरं प्रयच्छाम इति धावन्ति । आगच्छन्ति ॥

प्र सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्सरः । दधानो अक्षिति श्रवः ॥ ७ ॥

प्र । सोम । याहि । धारया । सुतः । इन्द्राय । मत्सरः । दधानः । अक्षिति । श्रवः ॥ ७ ॥

हे सोमाभिषूयमाण देव मत्सर इन्द्रस्य मदकारस्त्वं सुतोऽस्माभिरभिषुतः सन्निद्रार्येन्द्रार्थं दशापवित्रान्ति-  
र्यतया संततया त्वदीयया धारया द्रोणकलशं प्र याहि । प्रकर्षेण प्राप्नुहि । यद्वा । हे सोम सुतोऽभिषुतस्त्व-  
मिन्द्राय मत्सरो मादयितुतमः सन् धारयापौ स्वाहाकारेण पाचात्पतंत्वा धारया सह त्वमिन्द्रमुपयाहि ।  
कीदृशः । अक्षित्वचीयं श्रवः । श्रव इत्यन्ननाम । दधानोऽस्माभ्यं प्रयच्छन् प्र याहीति ॥

समु त्वा धीभिर्स्वरह्निन्वतीः सप्त जामयः । विप्रमाजा विवस्वतः ॥ ८ ॥

सं । ऊं इति । त्वा । धीभिः । अस्वरन् । ह्निन्वतीः । सप्त । जामयः । विप्रं । आज्ञा  
विवस्वतः ॥ ८ ॥

हे सोम ह्निन्वतीः ॥ लिंगव्यत्ययः ॥ ह्निन्वतः सुतीः प्रेरयन्तः सप्त सप्तसंख्याका जामय एकस्मिन्वत्ते कर्म-  
रणेन परस्परं बंधुभूता होतृप्रभृतयः सप्त होचका विवस्वतो देवानां हविष्प्रदानेन परिचरणवतो यजमान-  
स्वाजाजौ । अजन्ति गच्छन्त्युत्तिजोऽधेत्वाजिर्यज्ञः । तस्मिन् विप्रं मेधाविनं पवमानं त्वा त्वामेव धीमिधीतिभिः  
सुतिभिः समस्वरन् । अशब्दयन् । असुवन् । यद्वा । ह्निन्वतीर्गच्छन्त्यः सप्त जामयो गंगाद्याः सप्त नवो धीभिः ॥  
वर्णलोपस्कांदसः ॥ धीतिभिरंगुलीभिर्विप्रं त्वां समस्वरन् । प्रेरयन्ति । वसतीवरीभिरेकधनाभिश्च परिशो-  
धनार्थं प्रेरयन्तीति ॥

मृजन्ति त्वा समयुवोऽथ्ये जीरावधि ध्वणि । रेभो यदज्यसे वने ॥ ९ ॥

मृजन्ति । त्वा । सं । अयुवः । अथ्ये । जीरौ । अधि । स्वनि । रेभः । यत् । अज्यसे । वने ॥ ९ ॥

हे सोम अयुवः । अंगुलिनामेतत् । अजन्ति प्रचिपन्ति हवींश्चपाविति । यद्वा । अनेर्गत्यर्थस्य । कर्मकरधार्थ-  
मितस्ततो गच्छन्तीति । अयुवोऽंगुलयोऽस्मदीया जीरौ पापानामभिमावुके चिप्रं कृते वा खन्वध्यधिकं  
शब्दायमानोऽथ्येऽविवालेन कृते पवित्रे त्वा त्वां तदा सं मृजन्ति । सम्यक् शोधयन्ति । यद्वा रेभः ॥ रेभु  
शब्दे ॥ उदकमध्ये प्रक्षेपेण शब्दायमानस्त्वं वने वननीये वसतीवर्याख्य उदकेऽज्यसे अन्नः सिक्तो भवसि ।  
तदा मृजन्तीत्यन्वयः ॥

पवमानस्य ते कवे वाजिन्सर्गा असृक्षत । अर्वतो न श्रवस्यवः ॥ १० ॥

पवमानस्य । ते । कवे । वाजिन् । सर्गाः । असृक्षत । अर्वतः । न । श्रवस्यवः ॥ १० ॥

मार्जनप्रसंगमाह । हे कवे क्रांतप्रज्ञ हे वाजिन्नवन् सोम पवमानस्य दशापवित्रेषां पूयमानस्य ते त्वं  
सर्गाः । सृज्यत इति सर्गा धाराः । कीदृशाः । श्रवस्यवः ॥ कंदसि परेच्छायां कच ॥ यष्टुणामन्नं कामयमाना-  
स्त्वदीया धारा असृक्षत । सृजन्ति । निर्गच्छन्तीत्यर्थः । तच्च दृष्टान्तः । अर्वतो न । यथाया मंदुरातो निर्गच्छन्ति  
तद्वत् पवित्रान्निसरन्तीत्यर्थः । प्रयोगापेक्षं चात्र धाराबाहुल्यं ॥ ॥ ८ ॥

अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृयं वारं अव्यये । अवावशंत धीतयः ॥ ११ ॥

अच्छ । कोशं । मधुऽश्चुतं । असृयं । वारं । अव्यये । अवावशंत । धीतयः ॥ ११ ॥



धारानिर्गमनप्रसंगादभिधीयते । मधुश्रुतं मधुररसस्य चावधितारं चारयितारं कोशं द्रोणकलशमच्छा-  
भिलक्ष्याव्ययेऽविमयेऽविस्मृते वा वरि वाञ्छे दशापवित्रेऽस्यं । सोमा अत्विग्निः सृज्यते ॥ सृजेः कर्मणि  
तिङ्ठां तिङ्ठो भवन्तीति श्रो रमादेशः ॥ किंच धीतयः । अंगुलिनामितत् । धयन्ति पिवन्त्याभिरिति । अश्वदीया  
अंगुलयोऽवावशतं । तान् सोमान् पुनःपुनर्माज्जनार्थं कामयन्ति ॥

अच्छा समुद्रमिन्द्वोऽस्तं गावो न धेनवः । अगमन्तस्य योनिमा ॥१२॥

अच्छा समुद्रं । इन्दवः । अस्तं । गावः । न । धेनवः । अगमन् । अतस्य । योनिं । आ ॥१२॥

इन्दवः चरन्तः सोमाः समुद्रं सोमानामेकैव संगमनस्थानं द्रोणकलशमभिगच्छन्ति । तत्र दृष्टांतः । धेनवः  
पयःप्रदानेन जमानां ग्रीणयिष्यो नवप्रसूतिका गावोऽस्तं गृहं यथाभिगच्छन्ति तद्वत् । किंच ते सोमा अतस्य  
सत्यभूतस्य यज्ञस्य योनिं स्थानमागमन् । आभिमुख्येन गच्छन्ति ॥ गमेर्लुङि सिचो लुक्पुपधात्तोपः ॥

प्र ए इंदो महे रणे आपो अर्षेति सिंधवः । यज्ञोभिर्वासयिष्यसे ॥१३॥

प्रानः । इंदो इति । महे । रणे । आपः । अर्षेति । सिंधवः । यत् । गोभिः । वासयिष्यसे ॥१३॥

हे इंदो चरन् सोम नोऽस्माकं स्वभूताय रणे रणाय । रणन्ति कुर्वन्ति देवानचेति रणो यज्ञः ॥ अधि-  
करणे अप । ऊर्थः । पा० ७. १. १३. इति न भवति सर्वविधीनां छंदसि विकल्पितत्वात् ॥ महे महते रणाय  
यज्ञाय तदर्थं सिंधवः संदमाना आपो वसतीवर्याख्याः सोमसैकार्थं तदार्षेति । प्रगच्छन्ति । यद्यदा त्वं गोभि-  
र्गवैर्दधिचीरादिभिर्वासयिष्यसे आच्छादयेसि मिश्रितो भवसि तदापो गच्छन्तीति ॥

अस्य ते सख्ये वयमियंस्तस्वोतयः । इंदो सखित्वमुश्मसि ॥१४॥

अस्य । ते । सख्ये । वयं । इयंस्तः । चाऽर्जतयः । इंदो इति । सखिऽत्वं । उश्मसि ॥१४॥

हे इंदो पवमान इयंतो यष्टुमिच्छन्तः पूजयितुमिच्छन्तो वास प्रसिद्धस्य ते तव सख्ये सखिकर्मणि स्थिता  
वयं त्वोतयस्त्वदायत्तरचनाः संतः सखित्वं सखिभावमेवोश्मसि । उश्मः । कामयामहे ॥

आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे । इंद्रस्य जठरे विश ॥१५॥

आ । पवस्व । गोऽर्ष्टये । महे । सोम । नृऽचक्षसे । आ । इंद्रस्य । जठरे । विश ॥१५॥

हे सोम पवमान गविष्टयेऽगिरसां गवामन्वेष्ट्रे महे महते नृचक्षसे नृणां मनुष्याणां द्रष्ट्रे कर्मनैतृणां फलं  
पश्यति वा चंद्राया पवस्व । पात्रेषु दशापवित्रेण पूतो भव । इंद्रस्य जठर उदर उदरभूते द्रोणकलशे वा  
विश । प्रविश ॥ ॥१५॥

महाँ अमि सोम ज्येष्ठ उग्राणामिन्द ओजिष्ठः । युध्वा सञ्जुश्चज्जिगेथ ॥१६॥

महान् । असि । सोम । ज्येष्ठः । उग्राणां । इंदो इति । ओजिष्ठः । युध्वा । सन् :  
शश्वत् । जिगेथ ॥१६॥

हे सोम त्वं महानसि । यतस्त्वं देवानां ग्रीणयिता खलु । त्वं ज्येष्ठः प्रशस्ततमो भवसि । किंच हे इंदो  
पवमान त्वमुग्राणामुद्गूर्णनलानामयोविष्ठ ओजस्वितमो भवसि । त्वं युध्वा सञ्जुभिः सह युद्धं कुर्वन्नेव  
शश्वत् सर्वदा जिगेथ । तांस्तेषां धनानि च जितवानसि ॥ अि जये । यस्मि सगृह्णतोर्जेरित्यभासादुत्तरस्य  
तत्तर्गादेशः ॥

य उयेभ्यश्चिदोजीयाञ्छूरेभ्यश्चिच्छूरतरः । भूरिदाभ्यश्चिन्मंहीयान् ॥ १७ ॥

यः । उयेभ्यः । चित् । ओजीयान् । शूरेभ्यः । चित् । शूरऽतरः । भूरिऽदाभ्यः ।  
चित् । मंहीयान् ॥ १७ ॥

यः सोम उयेभ्यश्चिदुन्नीयेभ्यो बलवन्तोऽप्योजीयागोजस्वितमः । किंच यः शूरेभ्यश्चिदीरेभ्योऽपि शूरतरो  
ऽत्यंतसमर्थो भवति । तथा यः सोमो भूरिदाभ्यः ॥ बुदाञ् दाने । आतो मजिन्निति विच् ॥ वज्रधनाणां  
दातृभ्योऽपि मंहीयान् दातृतमो भवति । तं त्वां वृणोमह इत्युत्तरेण संबंधः ॥

त्वं सोम सूर एषस्तोकस्य साता तनूनां । वृणीमहे सख्याय वृणीमहे युज्याय ॥ १८ ॥

त्वं । सोम । सूरः । आ । इषः । तोकस्य । साता । तनूनां । वृणीमहे । सख्याय ।  
वृणीमहे । युज्याय ॥ १८ ॥

हे सोम सूरः सुवीर्यः । यद्वा । सर्वस्य आगादिकर्मणि प्रेरकः । स्वमिषोऽज्ञान्यस्माकमा धेहि । उपसर्गश्रुते-  
र्यौग्यक्रियाध्याहारः । किंच त्वं तोकस्य पुत्रस्य तनूनां । तन्वन्ति विस्तारयन्ति कुलमिति तन्वः पीचाः । तेषां च  
साता दाता भव । वृणु दाने । जनसनेति विद् । जनसनेत्यात्वं ॥ वयं तं त्वां सख्याय सखिभावाय कर्मणे वा  
वृणीमहे । संभवामहे । तथा युज्याय ॥ युज् सहायः । तस्य भावे कर्मणि वा ष्यञ् । संज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्य-  
त्वाद्वृद्धिः ॥ शत्रुवधादिलक्षणसाहाय्याय च वयं वृणीमहे ।

अग्निहोत्रे पूर्वस्मामाहुतौ ऊतायामुपस्थितेन यजमानेन प्रतिदिप्तं प्रतिसंवत्सरं वनेन तुचेनापिरुपस्थेयः ।  
सूचितं च । आप्रेयीमिषाम् आयूंषि पवस इति तिष्ठमिः संवत्सरे संवत्सरे । आ० २. ३. इति ॥ चौलादिकर्मसु  
षतस्र आज्याहुतयो होतव्यास्तत्रैव तिष्ठः । सूचितं च । तेषां पुरस्ताच्चतस्र आज्याहुतौर्जुङ्गयादम् आयूंषि  
पवस इति तिष्ठमिः । आ० गु० १. ४. ३. इति ॥ आधाने पवमानेष्टावमेः पवमानस्याप आयूंषीत्येषानुवाक्या ।  
अग्ने पवस्तेत्येषा याज्या । सूचितं च । प्रथमायामग्निरग्निः पवमानोऽप आयूंषि पवसेऽमे पवस्व स्वपाः  
। आ० २. १. इति ॥ पुनराधये द्वितीयाज्यभागस्याप आयूंषीत्येषा वैकल्पिकानुवाक्या । सूचितं च । नित्यं  
पूर्वमनुब्राह्मणिनोऽप आयूंषि पवस इत्युत्तरं । आ० २. ८. इति ॥

अम् आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनां ॥ १९ ॥

अग्ने । आयूंषि । पवसे । आ । सुव । ऊर्ज । इषं । च । नः । आरे । बाधस्व । दुच्छुनां ॥ १९ ॥

हे अग्ने पवमानरूप त्वमस्माकमायूंषि जीवनानि पवसे । रक्षसि । नोऽस्माकमूर्जमन्नरसमिषमन्नं वा सुव ।  
आमिसुखेन प्रेरय । किंच दुच्छुनां । रक्षोनामैतत् । रक्षांस्तारेऽस्मात्तो दूर एव बाधस्व । संपीडय ॥

अग्निर्ऋषिः पवमानः पांचजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं ॥ २० ॥

अग्निः । ऋषिः । पवमानः । पांचऽजन्यः । पुरऽहितः । तं । ईमहे । महाऽगयं ॥ २० ॥

पांचजन्यः । निषादपंचमाश्वत्वारो वर्णाः पंचजनाः । यद्वा । गंधर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसीत्येति  
पंचजनाः । अश्वं देवमनुष्या गंधर्वाप्सरसः सर्पाः पितर इति ब्राह्मणेऽभिहिताः पंचजनाः ॥ गंभीराश्च  
इत्यत्र बहिर्देवपंचजनेभ्य इति वक्तव्यमिति वचनात् । का० ४. ३. ५८. १. मवार्थे ज्यप्रत्ययः । तेषां तत्तद्भीष्ट-  
प्रदानेन स्वभूत ऋषिः सर्वद्रष्टा पवमानस्तद्रूपोऽपिः पुरोहितः कर्मार्थमुत्तिग्मिः पुरो निहितः । तं पूर्वोक्त-  
नक्षत्रं महागयं महन्निर्देवादिभिरपि गोमिर्गातव्यं । महांति प्रभूताणि यज्ञगृहाणि वा यस्य स तथोक्तः । तं  
पवमानगुणविशिष्टमग्निमीमहे । धनादीनि याचामहे ॥ १० ॥



अग्ने पर्वस्व स्वपा अस्मे वर्चैः सुवीर्यै । दधद्दयिं मयि पोषं ॥ २१ ॥

अग्ने । पर्वस्व । सुऽअपाः । अस्मे इति । वर्चैः । सुऽवीर्यै । दधत् । रयिं । मयि । पोषं ॥ २१ ॥

हे अग्ने स्वपाः ॥ सोमनसी इत्युत्तरपदायुदात्तत्वं ॥ शोभनकर्मा स्वमकी अस्मासु सुवीर्यं शोभनवीर्येयितं  
वर्चः ॥ वर्चं दीप्ती । तेनः पर्वस्व । आगमय । तथा भवान्नयिं धनं पुत्रं वा पोषं ॥ मयि कर्मणि वा घञ् ॥  
मयां पुष्टिं यद्वा गवादिकं मयि भवान्दधत् । दधातु । करोतित्यर्थः ॥ दधातेत्येवञ्जागमः । चोर्लोपो जेटि  
वा । पा० ७. ३. ७०. । इत्याकारलोपः ॥

पर्वमानो अति सिधोऽभ्यर्षति सुष्टुतिं । सूरौ न विश्वदर्शतः ॥ २२ ॥

पर्वमानः । अति । सिधः । अभि । अर्षति । सुऽस्तुतिं । सूरः । न । विश्वऽदर्शतः ॥ २२ ॥

पर्वमानः सोमः सिधो हिंसकाञ्चापूततिष्ठस्य गच्छति । तथा सुष्टुतिं सोम्यां शोभनां स्तुतिमभ्यर्षति ।  
आमिनुस्त्रेण गच्छति ॥ अथी गती तौदादिकः । चञ्चलं हंक्षीति शप् । गुणः ॥ किंच सूरौ न सूर्य इव विश्व-  
दर्शतः सर्वस्य द्रष्टा सर्वेषां दर्शनीयो भवति ॥

स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान्प्रयसे हितः । इंदुरत्यो विचक्ष्णः ॥ २३ ॥

सः । मर्मृजानः । आयुऽभिः । प्रयस्वान् । प्रयसे । हितः । इंदुः । अत्यः । विऽचक्ष्णः ॥ २३ ॥

आयुभिः कर्मवृत्तिभिर्मनुष्यैर्मर्मृजानः पुनः पुनर्मृज्यमानः शीघ्रमानः स इंदुः स सोमोऽत्यो देवान्संततं गन्ता  
भवति । कीदृशः । प्रयस्वान् प्रीयान्प्रीयान्नवान् । यद्वा । सोमभ्यो देयत्वेनान्नयुक्तः । अत एव प्रयसे इवीक-  
पायास्त्राय हितो विचक्षणः सर्वस्य प्रदर्शनकारी सर्वस्य विद्रष्टा वा सोमो देवानभिमन्ता भवति ॥ चक्षि-  
व्यक्तायां वाचि । अनुदात्ततय हलादेरिति युच् ॥

पर्वमान अतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् । कृष्णा तमांसि जंघनत् ॥ २४ ॥

पर्वमानः । अतं । बृहत् । शुक्रं । ज्योतिः । अजीजनत् । कृष्णा । तमांसि । जंघनत् ॥ २४ ॥

पर्वमान अतं सत्त्वं यथार्थभूतं बृहत्प्रभूतं सर्वदेशेषु व्यापकं शुक्रं दीप्यमानं जेतव्यं ज्योतिस्तेजोऽजीजनत् ।  
शुक्लोऽव उदपादयत् । किं कुर्वन् । कृष्णा कृष्णवर्णाणि तमांसि जंघनयुग्मं विनाशयन् ॥ हतिर्वेदशुक्ति शतरि-  
क्ष्णं । अभ्यसानामादिरित्यायुदात्तत्वं ॥

पर्वमानस्य जंघतो हरेश्चंद्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिषः ॥ २५ ॥

पर्वमानस्य । जंघतः । हरैः । चंद्राः । असृक्षत । जीराः । अजिरऽशोचिषः ॥ २५ ॥

जंघतः पुनः पुनस्तमांसि विनाशयतो हरेर्हरितवर्णस्याजिरशोचिषः सर्ववर्णमनशीलतेजसः पर्वमानस्य  
सोमस्य चंद्राः ॥ चदि आह्लादये ॥ देवानामाह्लादयित्र्यो जीराः क्षिप्रं चरणशीला धारा चक्षयत । कञ्ति ।  
पवित्राभिर्गच्छंतीत्यर्थः ॥ १११ ॥

पर्वमानो रथीतमः शुभेभिः शुभशस्तमः । हरिश्चंद्रो मरुत्तगणः ॥ २६ ॥

पर्वमानः । रथिऽतमः । शुभेभिः । शुभशऽतमः । हरिऽचंद्रः । मरुत्तऽगणः ॥ २६ ॥

पर्वमानो देवो रथीतमोऽतिशयेन रथवान् ॥ ईदृशिनः । पा० ८. २. १७. १. । रतीकारः ॥ तथा शुभेभिः  
शोमायुक्तेभ्यस्तेजोभ्योऽपि शुभशस्तमोऽत्यंतदीप्यमानश्च । यद्वा । निर्मलैर्भ्योऽपि निर्मलतमयशोयुक्तः । हरि-

चंद्रः ॥ इत्थाचंद्रोत्तरपद इति साहित्यिकः सुद ॥ हरितवर्णदीप्तिर्हरितधारावान्वा मरुत्तणः । मरुतो यस्व  
गणः सहायभूताः स तथोक्तः । तादृशः सर्वाङ्गोक्तान् स्वरश्मिभिः स्वदीप्तिभिर्व्यञ्जवत् आग्नीषित्युत्तरेणान्वयः ॥

पवमानो व्यञ्जवद्दृश्मिभिर्वाजसातमः । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यं ॥ २७ ॥

पवमानः । वि । अञ्जवत् । रश्मिभिः । वाजसातमः । दधत् । स्तोत्रे । सुवीर्यं ॥ २७ ॥

पवमानः सोमो रश्मिभिः स्वदीप्तिभिर्व्यञ्जवत् । सर्वे जगद्वाग्नीतु । कीदृशः । वाजसातमोऽतिशयेनास्त्र  
दाता बलस्य संभक्ता वा । तथा स्तोत्रे पवमानस्तोत्रं कुर्वते मनवे सुवीर्यं सुवीर्योपेतं पुत्रं धनं वा दधद्विदधत्  
प्रयच्छन् आग्नीतु ॥ अग्नीतेर्लेख्यडागमः ॥

प्र सुवान इंदुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययं । पुनान इंदुरिद्रमा ॥ २८ ॥

प्र । सुवानः । इंदुः । अक्षारिति । पवित्रं । अति । अव्ययं । पुनानः । इंदुः । इंद्र । आ ॥ २८ ॥

सुवानोऽभिपूयमाण इंदुः सोमोऽव्ययमविमयमूर्णास्तुकेन निर्मितं दशापवित्रमतीत्य प्राचाः । कलशं  
प्रतिकर्षेण चरति ॥ चरतेर्लुङि तिपि सिचि च्छांदस इडागमामावः । अतो लीतस्य । पा० ७. २. २. इति  
बुद्धिः । रात्स्येति सिचो लोपः । रेफांतं स्यष्टयितुमितिकारः । बज्रलं छंदसि । पा० ७. ३. ९७. इतीडमावः ।  
हल्ङादिना तिलोपः ॥ ततः पुनानः पवित्रेण शुद्ध इंदुः सोम इंद्रमा विशति । उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रिया-  
ध्याहारः ॥

एष सोमो अपि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः । इंद्रं मदाय जोहुवत् ॥ २९ ॥

एषः । सोमः । अधि । त्वचि । गवां । क्रीळति । अद्रिभिः । इंद्रं । मदाय । जोहुवत् ॥ २९ ॥

एष अंगुरूपः सोमो गवां त्वचानुहचर्मणि । अधिशब्द उपर्यर्थोक्तकः । चर्मण्युपर्यद्रिभिर्भावभिः सह  
क्रीडति । अभिषवाय संकीडते । एतेन तत्काल इंद्रविषयां सुतिं कुर्वतीत्यवगम्यते ॥

यस्य ते युञ्जवत्पयः पवमानाभृतं दिवः । तेन नो मृळ जीवसे ॥ ३० ॥

यस्य । ते । युञ्जवत् । पयः । पवमान । आभृतं । दिवः । तेन । नः । मृळ । जीवसे ॥ ३० ॥

हे पवमान पूयमान हे सोम दिवो सुलोकादाभृतं श्वेनरूपया गायत्र्याहृतं युञ्जवदन्नव्यशोयुक्तं वा पयः  
सोमलक्षणमन्नं यस्य ते तव स्वभूतं विद्यते तस्मात्त्वं तेनाग्नेन नोऽस्माज्जीवसे चिरजीवनाय मृळ । मृळय ।  
मुख्य ॥ ॥ १२ ॥

त्वं सोमासीति द्वाचिंशदृचं सप्तमं सूक्तं । आद्यतुचस्य बार्हस्पत्यो भरद्वाज ऋषिः । द्वितीयस्य मारीचः  
कश्यपः । तृतीयस्य राह्वगणो गोतमः । चतुर्थस्य भौमोऽचिः । पंचमस्य गाथिनो विश्वामित्रः । षष्ठस्य भार्गवो  
जमदग्निः । सप्तमस्य मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सूक्तशेषस्थांगिरसः पवित्रो वसिष्ठो वोमौ वा समुदितावृषी । पवस्व  
सोम मंदयन्नित्यावास्तिस्रो द्विपदा गायत्र्यः । अविता नो अजात्य इत्यावास्तिस्रः पवमानपूषदेवत्याः पव-  
मानसोमदेवताका वा । यत्ते पवित्रमर्चिषीत्याद्याः पंचर्चः पवमानापिदेवत्याः । आसां पंचानां मध्य उभाभ्यां  
देव सवितरिति तृतीया पवमानसवितुदेवताका वा । चतुर्थी चिमिष्टं देव सवितरिथिषा विकल्येन पवमा-  
नापिसवितुदेवताका । पुनंतु मामित्येषा विकल्येन वैश्वदेवी । यः पावमानोरध्येतीत्यादिके द्वे पवमानमंडला-  
ध्येतुस्तुतिप्रतिपादिके । अतः सैव देवता । शिष्टाः सर्वाः पवमानसोमदेवताकाः । तथा चानुक्रम्यते । त्वं  
सोमासि द्वाचिंशद्भरद्वाजः कश्यपो गोतमोऽचिर्विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठ इति ह तृचाः सप्त ऋषयः शेषे  
पवित्रो वसिष्ठो वोमौ वा पवस्व सोम तिस्रो नित्यद्विपदा गायत्र्योऽविता नस्तिस्रः पौष्णो वा यत्ते पावचं  
पंचापेक्ष्यः सावित्र्यपिसावित्री वैश्वदेवी वासामंत्यास्त्रिंशी पुररुष्णिक् सप्तविंशनुशुबंते च ते पावमान्वध्येतु-  
स्तुति इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥



त्वं सोमासि धारयुर्मंद्र ओजिष्ठो अध्वरे । पर्वस्व मंहयद्रयिः ॥१॥

त्वं । सोम । असि । धारयुः । मंद्रः । ओजिष्ठः । अध्वरे । पर्वस्व । मंहयत्सूरयिः ॥१॥

हे सोमाभिषूयमाण पवमान मंद्रो मोदयितुम ओजिष्ठ ओजस्वितमस्त्वमध्वरे हिंसारहितोऽसदीये यज्ञे धारयुरभिषवणधाराकामोऽसि । भवसि । ततस्त्वं मंहयद्रयिः सोतुभ्यः प्रदीयमानधनः सन् पवस्व । द्रोणकलशे यहादिषु दशापविचैण पूतो भव । यद्वा ॥ धारयुस्तदर्थे माष्यत इति मत्वर्थीयो युः ॥ स हे सोम त्वं धारावानिव ततः पवसेति संबंधः ॥

त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान्मत्सरितमः । इंद्राय सूरिरंधसा ॥२॥

त्वं । सुतः । नृऽमादनः । दधन्वान् । मत्सरिन्ऽतमः । इंद्राय । सूरिः । अंधसा ॥२॥

हे सोम नृमादनो नृणां कर्मणो नेतृणामृत्विजां मादयिता अत एव दधन्वांस्तेभ्यो धनानि धारयन् प्रयच्छन् यद्वा यज्ञस्य धारकः सूरिः प्राज्ञः सुतोऽस्मानिरभिषुतस्त्वमंधसा हवीरूपेणाग्निं संहेंद्राय मत्सरि- तमस्तस्मात्तिशयेन मदकारी भव ॥ नास्त्येति नकारः ॥

त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्षे कनिःक्रदत् । द्युमंतं शुष्ममुत्तमं ॥३॥

त्वं । सुस्वानः । अद्रिऽभिः । अभि । अर्षे । कनिःक्रदत् । द्युऽमंतं । शुष्मं । उत्तमं ॥३॥

हे पवमान सोम अद्रिभिर्यावभिः सुष्वाणः सुन्वानोऽभिषूयमाणस्त्वं कनिःक्रदन्नुशं शब्दं कुर्वन्नभ्यर्ष । कलशं पात्राणि वाभिगच्छ । तथा द्युमंतं दीप्तिमुत्तमं शुष्मं शत्रूणां शोषकं वलं च प्राप्नुहि । यद्वा । एकवाक्यतया योजनीयः । सूयमानस्त्वं वलमभिगच्छेति ॥ कदि क्रदि आह्वाने । क्रदेर्यङ्लुकि नलोपोऽभ्यासस्य निगागमस्य दार्धर्तं दर्धर्तीति सूत्रेण सर्वं निपात्यते । तस्माच्छत्रुप्रत्ययः । अभ्यस्तानामादिरिति स्वरः ॥

इंदुर्हिन्वानो अर्षेति तिरो वाराण्यव्यया । हरिर्वाजमचिःक्रदत् ॥४॥

इंदुः । हिन्वानः । अर्षेति । तिरः । वाराणि । अव्यया । हरिः । वाजं । अचिःक्रदत् ॥४॥

हिन्वानो यावभिः प्रेर्यमाणोऽभिषूयमाण इंदुः सोमोऽव्ययाविमयान्यवीनां स्वभूतानि वाराणि वाजानि । पवित्राणीत्यर्थः । तानि तिरस्तिरस्कृत्य व्यवधायार्पति । गच्छति । प्रभूतं निर्गच्छतीत्यर्थः । सोऽयं हरिर्हरितवर्णः सोमो वाजमन्नमचिःक्रदत् । शब्दयति । त्वया संहेंद्रमहमाह्वयामीत्यर्थः ॥

इंदो व्यर्थमर्षेति वि अर्वांसि वि सौभगा । वि वाजान्तोम गोमंतः ॥५॥

इंदो इति । वि । अर्थं । अर्षेति । वि । अर्वांसि । वि । सौभगा । वि । वाजान् ।

सोम । गोऽमंतः ॥५॥

हे इंदो सोम अव्यमविवाले भवं पवित्रं व्यर्षेति । विविधं धाराभिर्गच्छसि । किंच अर्वांसि हवीरूपास्त्र- ज्ञानि च विगच्छसि । तथा सौभगा । सुभगस्य भावः सौभगं ॥ सुभगशब्द उक्तावादिषु पठ्यते । तस्योत्तरप- दवृत्तिर्नैष्यते ॥ सौभगानि धनानि विविधं प्राप्नोषि । तथा हे सोम गोमंतः पशुमंति वाजान् वज्रानि च विविधं प्राप्नुहि । तानि सर्वास्त्रस्त्राकं प्रापयेत्यभिप्रायः ॥ ॥१३॥

आ न इंदो शतग्विनं रयिं गोमंतमश्विनं । भरां सोम सहस्रिणं ॥६॥

आ । नः । इंदो इति । शतऽग्विनं । रयिं । गोऽमंतं । अश्विनं । भरां । सोम । सहस्रिणं ॥६॥

हे इंदो पाचिषु चरन् हे सोम नोऽस्माभ्यमा भर । संपादय । देहि । किमिति उच्यते । शतम्विनं । शतं गावो यस्य स शतगुः । तद्वतं गोमंतं प्रशस्तपशुमंतमश्विनमश्वयुतं सहस्रिणं सहस्रसंख्याकं रथिं धनं पुत्रं वा भर ॥

पवमानासु इंदवस्तिरः पविचमाश्वः । इंदुं यामेभिराशत ॥ ७ ॥

पवमानासः । इंदवः । तिरः । पविचं । आश्वः । इंदुं । यामेभिः । आशत ॥ ७ ॥

पविचमूर्णालुकेन निर्मितं दशापविचं तिरस्तिरस्कृत्य व्यवधायकं कृत्वा पवमानासः कलशं प्रति वज्र-धाराः चरंत आश्वः शिप्रमदकारिणश्चमसादीन् व्यामुवंतो वेदवः सोमा यामेभिः स्त्रीधैर्मनैरिन्द्रमाशत । व्यामुवंति ॥

ककुहः सोम्यो रस इंदुरिंद्राय पूर्यः । आयुः पवत आयवे ॥ ८ ॥

ककुहः । सोम्यः । रसः । इंदुः । इंद्राय । पूर्यः । आयुः । पवते । आयवे ॥ ८ ॥

ककुहः । सोमः सर्वकर्मकारयितृत्वेन सर्वेषां समुच्छितोऽतिशयितो भवति । सोऽयं पूर्यः पूर्वं कृतो ऽभिषुतः पूर्वं प्रातःकाले कृतो वायुरिन्द्रमभिगतेदुः पाचिषु चरन् सोम्यः ॥ मये च । पा० ४. ४. १३८. । एति यप्रत्ययः ॥ सोममयो रस आयवे सर्वत्र गंव इंद्राय पवते । कलशेषु पविचेण पूतो भवति । यद्वा । इंद्रार्थम-भिमुखं गच्छति । पवतिर्गतिकर्मा ॥

ह्रिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्रुतं । अभि गिरा समस्वरन् ॥ ९ ॥

ह्रिन्वन्ति । सूरः । उस्रयः । पवमानं । मधुऽश्रुतं । अभि । गिरा । सं । अस्वरन् ॥ ९ ॥

उस्रयः कर्मकारणार्थमितस्ततः संचरंत्योऽगुलथो मधुश्रुतं मदकरस्य रसस्य व्यावयितारं सूरं सुवीर्यं सर्वस्य यागादिकर्मणि प्रेरकं पवमानं सोमं ह्रिन्वन्ति । अभिषवार्थं संप्रेरयन्ति । ततः स्तोतारो गिरा सुख्या तमेवमभि समस्वरन् । सम्यगभिष्टुवंति ॥

अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि । आ भक्षत्कन्यासु नः ॥ १० ॥

अविता । नः । अजऽअश्वः । पूषा । यामनिऽयामनि । आ । भक्षत् । कन्यासु । नः ॥ १० ॥

अजाश्वः । अजाः पूषण इत्युक्तत्वाद् अजा एवाश्वो वाहनानि यस्य स तथोक्तः । स पूषेतामको देवो यामनि यामनि सर्वस्मिन्नामने मीमंदिष्यलक्षणे नोऽस्माकमविता पालयिता भवतु । किंच कन्यासु कमनीया-स्वमिमतासु स्त्रीषु नोऽस्माना भक्षत् । आ भजतां । अस्माकं कन्याः प्रयच्छत्वित्यर्थः ॥ भजः सेवार्थल्लेखि-सिष्यडागमे रूपं ॥ यद्वा । अजाश्वोऽजवाहनः पूषा सर्वस्य पोषयिता सोमो यामनि यामनि । यायते प्राप्यते देवैरचेति याम यज्ञः । तत्र यज्ञे नोऽस्माकमविता रक्षिता भवतु । तथा कन्यासु स्त्रीष्विष्टास्वस्माना भक्षत् । प्रापयतु ॥ ॥ १४ ॥

अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु । आ भक्षत्कन्यासु नः ॥ ११ ॥

अयं । सोमः । कपर्दिने । घृतं । न । पवते । मधु । आ । भक्षत् । कन्यासु । नः ॥ ११ ॥

कपर्दिने कल्याणमुकुटवते सोमाय पूषो वा तदर्धमयं मादयिताभिषुतोऽस्मादीयः सोमः पवते च । गच्छति । तं प्राप्नोति । तत्र दृष्टांतः । घृतं न मधु मादकं इवीरूपं घृतं यथा सोमं पूषणं वा गच्छति तद्वत् । ततः स कन्यास्वस्मानागमयत् ॥



अयं तं आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचिं । आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१२॥

अयं । ते । आघृणे । सुतः । घृतं । न । पवते । शुचिं । आ । भक्षत् । कन्यासु । नः ॥१२॥

हे आघृणे ॥ घृ षरणदीप्त्योः ॥ सर्वतो दीप्यमान पवमान पूषन् वा ते स्वर्धं सुतोऽभिपुतोऽयं सोमः पवते । त्वदभिमुखमागच्छति । यद्वा । स्वर्धं पात्रेषु पवित्रेण पूतो भवति षरति वा । तच्च वृष्टांतः । घृतं न शुचिं शुचं घृतं यथा त्वां प्राप्नोति तद्वत् । ततस्त्वमभिक्षयितान्यश्नाकं देहीति ॥

वाचो जंतुः कवीनां पर्वस्व सोम धारया । देवेषु रत्नधा असि ॥१३॥

वाचः । जंतुः । कवीनां । पर्वस्व । सोम । धारया । देवेषु । रत्नधा । असि ॥१३॥

हे सोम कवीनां ज्ञातप्रज्ञानां स्तोत्राणां वाचो जंतुः सुतेर्जनयिता । यद्वा । मेधाविनां मध्ये त्वमेव वाचं जनयसि । अत्यंतं वाग्मी । त्वं धारया पवस्व । द्रोणकलशं यद्वाचं प्राप्नुहि । तत इन्द्रादिदेवेषु रत्नधा रमण-शीलस्य सोमस्य निधातासि । भवसि । अथवा देवेषु स्तोत्रकारिषु कर्म कुर्वाणेषु वाक्पातु रत्नस्य जनकादे-र्दाता भवसि ॥

गायत्रीचे गायगारिमतेनाभिष्टुपकारणे कलशेषु सोम आसिष्यमानेऽस्य तुषष्ठा कलशेष्वित्यादिके द्वितीयानुतीथे । सूचितं च । आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते इति हे । आ० ५. १२. इति ॥

आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते । अभि द्रोणा कर्निक्रदत् ॥१४॥

आ । कलशेषु । धावति । श्येनः । वर्म । वि । गाहते । अभि । द्रोणा । कर्निक्रदत् ॥१४॥

अस्तिग्भिरभिषिष्यमानः अस्तिस्तोमः कलशेषु सोमाधारेषु द्रोणकलशेष्व्वा धावति । सर्वतो गच्छति । श्येनः । जुप्तोपमनेतत् । यथा श्येनो वर्म वरणीयं कुचायं वि गाहते प्रविशति तद्वत् । कर्निक्रददत्यंतं शब्दं कुर्वन् द्रोणा द्रोणकलशानभि गच्छति च । यद्वा । द्रोणाधवनीयपूतभृत्संज्ञकाभिप्रायं । एकः सिष्यमानः सोमो द्रोणं प्रति शब्दायमानः पञ्चात्मधमं गच्छति । ततः पापदयमिति ॥

परि प्र सोम ते रसोऽसर्जि कलशे सुतः । श्येनो न तक्तो अर्षति ॥१५॥

परि । प्र । सोम । ते । रसः । असर्जि । कलशे । सुतः । श्येनः । न । तक्तः । अर्षति ॥१५॥

हे सोम कलशेषु द्रोणामिधानेषु सुतोऽभिपुतस्य तव रसः परि प्रासर्जि । परितो यद्वाचं घमसेषु च प्रकटो विभक्तो भवति । कथमिव । श्येनो न तक्तः । तत्किर्गतिर्कर्म । ममनशीलः श्येनः पक्षी यथा सर्वचार्षति गच्छति तद्वत् । यद्वा । यथा श्येनः सर्वतो गता तद्वत्तक्तः पात्रेषु गतः सामोऽर्षति । इन्द्रादिदेवानागच्छत् ॥ अर्तर्षति सिपि वा रूपं । पूर्वमुषी गतावित्यस्माद्वटि श्येन रूपं ॥ १५ ॥

पर्वस्व सोम मंदयच्चिंद्राय मधुमत्तमः ॥१६॥

पर्वस्व । सोम । मंदयन् । चिंद्राय । मधुमत्तमः ॥१६॥

हे सोम मधुमत्तमोऽतिशयेन मधुररसवात्स्वं मंदयन् मादयिता भवन् । यद्वा । चिंद्राय ॥ क्रियापहणं कर्तव्यमिति संप्रदानं । इन्द्र मोदमानः सन् पवस्व । इन्द्रार्चमागच्छ ॥

असृयन्देववीतये वाजयंतो रथा इव ॥१७॥

असृयन् । देवऽवीतये । वाजयंतः । रथाऽइव ॥१७॥

एतेऽभिषुताः सोमा वाजयंतः संतो देववीतये देवयवनायादग्रन् । विद्वज्यंति । अस्त्रिगिभिः प्रदीयंते । तत्र दृष्टान्तः । रथा इव वाजयंतः शत्रुधनानि वस्त्रानि वा स्वामिन् इच्छन्तो रथा देववीतये देवानां गमनाय यथा विद्वज्यंति तद्वत् ॥

ते सुतासो म॒दि॒त॒माः शु॒क्रा वा॒युम॑सृक्षत ॥ १८ ॥

ते । सु॒तासः । म॒दि॒न्ऽत॒माः । शु॒क्राः । वा॒युं । अ॒सृक्ष॑त ॥ १८ ॥

म॒दि॒त॒मा अति॑शयेन मादयितारः शु॒क्रा दी॒प्यमा॑नाः सु॒ता अभिषु॑तास्तौ सोमा वा॒युं शब्द॑मसृक्षत । अ॒सृक्ष॑त् । अकार्षुः । यद्वा । वा॒युमे॒व सोम॑पानार्थमसृक्षन् । सोमेषु सुतेषु सत्सु वा॒युस्त॑पानार्थमागच्छति ॥

या॒व्णां तु॒न्नो अ॒भिष्टु॑तः प॒वित्रं॑ सोम गच्छ॒सि । द॒धत्स्तो॒त्रे सु॒वीर्यं॑ ॥ १९ ॥

या॒व्णां । तु॒न्नः । अ॒भिऽस्तु॑तः । प॒वित्रं॑ । सो॒म । ग॒च्छ॒सि । द॒धत् । स्तो॒त्रे । सु॒ऽवी॒र्यं ॥ १९ ॥

हे सोम त्वं या॒व्णा तु॒न्नोऽभि॑षोद्धितोऽभिषुतस्त्वं सोतुभिरभिषुतः सन् पवित्रं गच्छसि । प्राप्नोषि । किं कुर्वन् । स्तोत्रे स्तोत्रकारणे वनाय सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं धनादिकं दधद्विदधत् प्रयच्छन् ॥

ए॒ष तु॒न्नो अ॒भिष्टु॑तः प॒वित्र॒मति॑ गा॒हते॑ । र॒क्षो॒हा वा॒रम॒व्ययं॑ ॥ २० ॥

ए॒षः । तु॒न्नः । अ॒भिऽस्तु॑तः । प॒वित्रं॑ । अ॒ति॑ । गा॒हते॑ । र॒क्षः॒ऽहा । वा॒रं । अ॒व्ययं॑ ॥ २० ॥

तुन्नः ॥ तुद व्यथने ॥ यावभिरभिव्यथितः सुतः अत एव सर्वैरभिष्टुत एषोऽस्य दीयः सोमो रक्षोहा कर्मविघ्नकरिणां राक्षसाणां पापानां वा हन्ताभवत् । अव्ययमविमयमव्ययवभूतं वारं वासं तेन हतं पवित्रं दृशापवित्रमत्यतिक्रम्य गाहते । द्रोणकलशं प्रविशति ॥ ॥ १६ ॥

यदंति॒ यच्च॑ दूर॒के भ॒यं वि॒दति॒ मामि॒ह । प॒व॒मान॒ वि तज्ज॑हि ॥ २१ ॥

यत् । अंति॑ । यत् । च॒ । दूर॒के । भ॒यं । वि॒दति॑ । मां । इ॒ह । प॒व॒मान॒ । वि । तत् । ज॒हि ॥ २१ ॥

हे पवमान पुयमान पुनान वा सोम यस्त्वयमंत्यंतिके तथा यच्च भयं दूरकेऽतिदूरे देशेऽथवेहास्मिन् प्रदेशेऽपि भयं मां वि॒दति॑ जमते प्राप्नोति तस्त्वयं त्वं वि जहि । विशेषेण नाशय । यद्वा । इहेति यज्ञोऽयं सोको वा । अस्मिन् क्रियमाणे यज्ञेऽस्मिन्नोके वा यस्त्वयं व्याप्नोति तज्जाशयेत्यर्थः ॥

प॒व॒मानः॒ सो अ॒द्य नः॑ प॒वित्रे॑ण वि॒च॒र्ष॒णिः । यः पो॒ता स पु॑नातु नः ॥ २२ ॥

प॒व॒मानः । सः । अ॒द्य । नः । प॒वित्रे॑ण । वि॒च॒र्ष॒णिः । यः । पो॒ता । सः । पु॒ना॒तु । नः ॥ २२ ॥

स तादृशः प्रसिद्धो विचर्षणिः सर्वस्व द्रष्टा पवमानोऽवेदानीमेव पवित्रेण पापशोधकेन तेजसा नोऽस्मान्पुनातु । पापरहितान् करोतु ॥

पवित्रेणां ग्रथमाज्यभागस्य याज्या यन्ते पवित्रमित्येधा । सूचितं च । यन्ते पवित्रमर्चिष्या कलशेषु धावन्तीति पवित्र इत्येते । आ० २. १२. इति ॥

य॒ज्ञे प॒वित्रं॑ म॒र्चिष्य॑मे॒ वित॑तम॒न्तरा॑ । ब्र॒ह्म ते॒न पु॒नीहि॑ नः ॥ २३ ॥

यत् । ते । प॒वित्रं॑ । अ॒र्चिषि॑ । अ॒ग्ने । वि॒ऽत॒तं । अ॒न्तः । आ । ब्र॒ह्म । ते॒न । पु॒नी॒हि॒ । नः ॥ २३ ॥

हे पवमानगुणविशिष्टाये ते त्वदीयं पवित्रं शोधकं यत्स्वतेजोऽर्चिषि सौरवैद्युतादितेजस्तर्मध्य आ विततमाविमृतं विद्यते । यद्वा । हे अग्ने ते तव स्वभूतेऽर्चिषि तेजस्तर्मध्ये यत्पवित्रं शुश्रूत्पादकं सामर्थ्यमस्ति । तेन तादृशेन तेजसा ब्रह्म पुत्रादिवर्धनकारि नः शरीरं पुनीहि । पापरहितं पूतं कुरु ॥



यत्ने पवित्रमर्चिवदग्ने तेन पुनीहि नः । ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ॥२४॥

यत्।ते।पवित्रं।अर्चिऽवत्।अग्ने।तेन।पुनीहि।नः।ब्रह्मसवैः।पुनीहि।नः॥२४॥

हे अग्ने पवित्रं शोधकमर्चिवदर्चिवत् ॥ छंदसीर इति मनुषो वत्सं ॥ सौरादितेजोयुक्तं ते त्वदीयं यत्तेजो विद्यते तेन स्वीयेनैव तेजसा नोऽस्यान् पुनीहि । पूतान् जुह । किंच ब्रह्मसवैर्ब्राह्मणकर्तृकसोमाभिषवैः । यद्वा । ब्रह्म सोमः । तस्याभिषवैः । नोऽस्यान्पुनीहि ॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि विश्वतः ॥२५॥

उभाभ्यां।देव।सवितरिति।पवित्रेण।सवेन।च।मां।पुनीहि।विश्वतः॥२५॥

हे सवितः सर्वस्व प्रेरक हे देव द्योतमान सोम त्वं पवित्रेण पापशोधकेन त्वदीयेन तेजसा सवेन सोमाभिषवेण च एताभ्यामुभाभ्यां विश्वतः सर्वतो मां पुनीहि । पूतं जुह ॥ ॥१७॥

चिभिष्टुं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः । अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥२६॥

चिऽभिः।त्वं।देव।सवितः।वर्षिष्ठैः।सोम।धामऽभिः।अग्ने।दक्षैः।पुनीहि।नः॥२६॥

हे देव क्षुत्वं दीप्यमान वा हे सवितः सर्वस्व स्वस्वकर्मणि चोदयितर्हे सोम पवमानगुणविशिष्ट हे अग्ने त्वं वर्षिष्ठैर्वृद्धतमैः अत एव दक्षैः सामर्थ्यवन्निस्त्रिभिर्धामभिः शरीरैरपि वायुसूर्यात्मकैस्त्रिभिः शरीरैर्नोऽस्यान् पुनीहि । परिशुभान् जुह ॥

पुनंतु मां देवजनाः पुनंतु वसवो धिया ।

विश्वे देवाः पुनीत मां जातवेदः पुनीहि मां ॥२७॥

पुनंतु।मां।देवऽजनाः।पुनंतु।वसवः।धिया।

विश्वे।देवाः।पुनीत।मां।जातऽवेदः।पुनीहि।मां॥२७॥

देवजनाः । देवानां जनो प्रादुर्भावो येषां यज्ञेष्वाति देवजना यजमानाः । यद्वा । इंद्रादिदेवगणाः । मां पुनंतु । परिपूतं कुर्वंतु । तथा वसवो वासका देवा धियात्मीयेन कर्मणा मां पुनंतु । अथवा प्रत्यक्षः । हे विश्वे देवाः सर्वे देवाः मां पुनीत । पूतं जुहत । हे जातवेदः । जातानि भूतजातानि वेत्तीति यद्वा जातप्रज्ञ हे अग्ने मां पुनीहि ॥

प्र प्यायस्व प्र स्यंदस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः । देवेभ्य उन्नमं हविः ॥२८॥

प्र।प्यायस्व।प्र।स्यंदस्व।सोम।विश्वेभिः।अंशुऽभिः।देवेभ्यः।उत्तमं।हविः॥२८॥

हे सोम प्र प्यायस्व । अस्मान्मर्कषेण वर्धय । यद्वा । देवान् सोमेन वर्धय । किंच विश्वेभिरंशुभिः सर्वस्वदीयेरंशुभिर्देवेभ्यो देवार्थमुत्तमं प्रशस्ततमं हविः सोमरूपं प्र स्यंदस्व । कलशादीन्प्रति प्रक्षय । प्रयच्छेति यावत् ॥

अग्नीषोमप्रणयन उप प्रियमित्येषा । सूचितं च । उप प्रियं यनिप्रतमित्यर्थं आरमेत् । आ०४.१०. । इति ॥

उप प्रियं यनिप्रतं युवानमाहुतीवृधं । अगन्म बिभ्रतो नमः ॥२९॥

उप।प्रियं।यनिप्रतं।युवानं।आहुतिऽवृधं।अगन्म।बिभ्रतः।नमः॥२९॥

प्रियं सर्वस्य प्रीणयितारं पणिप्रतमत्वं शब्दायमानं युवानं तरुणमाहुतिवृधमाहुतिभिर्वर्धनीयं पवमानं वयं नमो हविर्नमस्कारं वा विध्वतो धारयंतः संत उपागम्य । उपगच्छेम ॥ गमेर्बुद्धिं मंचे घसेति त्रिर्बुक् सति ऋषेति नकारः । पणिप्रतं । पनेः सुत्यर्थस्य यद्धनुकि रूपं । दाधर्तिं दर्धतीति सच इतिकरणस्य प्रदर्शनार्थ-त्वादभासस्य निगागम उपधासोपस्य निपात्यते ॥

अ॒ला॒य्य॒स्य॒ प॒र॒शु॒र्न॒ना॒श॒ त॒मा॒ प॒व॒स्व॒ दे॒व॒ सो॒म॒ । आ॒खुं॒ चि॒दे॒व॒ दे॒व॒ सो॒म॒ ॥ ३० ॥

अ॒ला॒य्य॒स्य॒ । प॒र॒शुः॒ । न॒ना॒श॒ । तं॒ । आ॒ । प॒व॒स्व॒ । दे॒व॒ । सो॒म॒ । आ॒खुं॒ । चि॒त् । ए॒व॒ ।  
दे॒व॒ । सो॒म॒ ॥ ३० ॥

अलाय्यस्य ॥ अतैरौणादिक आय्यप्रत्ययः । कपिलकादित्याह्वत्वं ॥ अभिगमनशीलस्य शचीः परशुश्चेदकः पवमानसमेव शशुं ननाश । नाशयतु । अस्नानपापांस्ततो हे देव दीप्यमान सोम आ पवस्व । अस्नदाभिमुखीन गच्छ । किंच हे देव द्योतमान सुत्य वा हे सोम आखुं चित् ॥ खनु अवधारणे ॥ सर्वस्वाहंतारमपि तं शशुमेव बाधस्व नास्नानपापानिति ॥

यः पा॒व॒मा॒नी॒र॒ध्ये॒नृ॒षे॒भिः॒ सं॒भृ॒तं॒ र॒सं॒ । स॒र्वं॒ स॒ पू॒त॒म॒श्ना॒ति॒ स्व॒दि॒तं॒ मा॒त॒रि॒श्व॒ना॒ ॥ ३१ ॥

यः॒ । पा॒व॒मा॒नीः॒ । अ॒धि॒ऽए॒ति॒ । ऋ॒षि॒ऽभिः॒ । सं॒ऽभृ॒तं॒ । र॒सं॒ । स॒र्वं॒ । सः॒ । पू॒तं॒ । अ॒श्ना॒ति॒ ।  
स्व॒दि॒तं॒ । मा॒त॒रि॒श्व॒ना॒ ॥ ३१ ॥

यो जनः पावमानीः पवमानदेवताकाः सर्वा ऋचः तद्वपमृषिभिः सूक्तद्रष्टृभिर्मधुच्छंदः प्रभृतिभिः संभृतं सपादितं रसं वेदरसभूतं सारं सूक्तसंघमथेति अधीति स जनः सर्वं भोज्यजातं पूतं परिशुष्यमेवाश्नाति । परिपूतं पापरहितमन्नं मचयति । कथमस्य पूतत्वं तच्चाह- स्वस्याशनात्प्रागेव मातरिश्वना । मातर्यंतरिक्षे अस्मितीति मातरिश्वा वायुः । स च वायुः पवित्रमेव । पवित्रेण वायुना स्वदितं स्वादूकृतं परिपूतमेवाहं पश्चात्स नरोऽश्नाति ॥

पा॒व॒मा॒नी॒र्यो॒ अ॒ध्ये॒नृ॒षि॒भिः॒ सं॒भृ॒तं॒ र॒सं॒ । त॒स्मै॒ सर॒स्व॒ती॒ दु॒हे॒ क्षी॒रं॒ स॒र्पि॒र्मधू॒दकं॒ ॥ ३२ ॥

पा॒व॒मा॒नीः॒ । यः॒ । अ॒धि॒ऽए॒ति॒ । ऋ॒षि॒ऽभिः॒ । सं॒ऽभृ॒तं॒ । र॒सं॒ । त॒स्मै॒ । सर॒स्व॒ती॒ । दु॒हे॒ ।  
क्षी॒रं॒ । स॒र्पिः॒ । मधु॒ । उ॒दकं॒ ॥ ३२ ॥

यो ब्राह्मणः पावमानीः पवमानदेवताका ऋचः तदात्मकमृषिभिर्मधुच्छंदश्चादिभिः संभृतं रसं वेदसारं सूक्तसंघमथेति अधीति तस्मै पवसानाध्ययनं कुर्वति जनाय सरस्वती सर्वत्र सरणवती वाग्देवता क्षीरं यज्ञसाधनभूतं पयः सर्पिस्तादृशं घृतं मधु मदकरमुदकं सोमं दुहे । स्वयमेव दोग्धि । एनं नरं चागादिपरं वेदशास्त्रविदं करोतीत्यर्थः ॥ दुह प्रपूरणे । कर्मकर्तरि न दुहस्युपमां यज्ञिणाविति यकः प्रतिषेधः । सोपस्य आत्मनेपदेत्विति तस्योपः ॥ १९८ ॥ ३२ ॥

चतुर्थेऽनुवाकेऽष्टादश सूक्तानि । तत्र प्र देवमिति दशत्रे प्रथमं सूक्तं । मसंदनपुत्रस्य वत्सप्रेरार्षं पवमान-सोमदेवताकं । दशमी त्रिष्टुप शिष्टा जगत्पः । तथा चानुक्रम्यते । प्र देवं दश वत्सप्रिर्भासंदनस्त्रिष्टुपंतं हेति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र दे॒व॒म॒च्छा॒ मधु॒मंतं॒ इ॒द्वो॒ऽसि॒ध॒दंतं॒ गा॒व॒ आ॒ न॒ धे॒न॒वः॒ ।

व॒र्हि॒ष॒दो॒ व॒च॒नार्वा॒त॒ ऊ॒र्ध॒भिः॒ प॒रि॒सु॒त॒मु॒स्रि॒या॒ नि॒र्णि॒जं॒ धि॒रे ॥ १ ॥



प्र । देवं । अञ्च । मधुऽमंतः । इंदवः । असिंस्यदंत । गावः । आ । न । धेनवः ।  
बर्हिऽसदः । वचनाऽवैतः । ऊधऽभिः । परिऽसुतं । उस्त्रियाः । निऽनिजं । धिरे ॥ १ ॥

मधुमंतो मादकारसंयुक्ता इंदवः सोमा देवं द्योतमानं सोमात्मकमिंद्रमच्छ प्रति प्राप्तिष्यदंत । प्रस्यंदते ।  
यथादिषु प्रचरन्ति ॥ स्यंदतेऽस्यंतस्व जुडि चडि रूपं ॥ तच्च दृष्टांतः । गाव आ न धेनवः । पयस्विन्वः प्रीत्य-  
चिन्वो गावो यथा बत्सं प्रति प्रस्रवंति तद्वत् । किंच बर्हिषदो बर्हिषि सोदंतो वचनावंतो इमारवादिशब्दवन्त  
उस्त्रियाः । गोनामैतत् । तादृजो गाव ऊधभिः पयोधारकैः स्त्रीः स्त्रीरूधभिः परिस्रुतं परितःस्रवणशीलं  
निर्गिञ्चं शुभं पयोभूतं सोमरसं धिरे । दधिरे । इंद्रार्थं धारयन्ति ॥

स रोरुवदुभि पूर्वा अचिक्रददुपारुहः अययन्स्वादते हरिः ।  
तिरः पविचं परियन्तुरु जयो नि शर्याणि दधते देव आ वरं ॥ २ ॥  
सः । रोरुवत् । अभि । पूर्वाः । अचिक्रदत् । उपऽआरुहः । अययन् । स्वादते । हरिः ।  
तिरः । पविचं । परिऽयन् । उरु । जयः । नि । शर्याणि । दधते । देवः । आ । वरं ॥ २ ॥

रोरुवत् कलशदिकं प्रत्यत्यंतं शब्दं कुर्वन् स सोमः पूर्वा मुख्याः सोतृषां सुतीरभ्यधिकदत् । अभिसुक्त-  
मध्यगयत् । सुतयः साधोयस्व इति प्रतिभ्रगिमंगीकारमकार्षीदित्यर्थः । किंच हरिर्हरितवर्णं उपावहः ॥  
रोहतेऽच्छीलिकः क्षिप ॥ उपारोहणशीला ऊर्ध्वं प्रादुर्भवणशीला ओषधीः अययन्ने विक्षेपयन् स्वादते ।  
स्वादु करोति । ताः फलिनीः कुर्वन् स्वादुयुक्ता विदधातीत्यर्थः । तथा पविचमविवालात्मकं दशापविचं  
तिरस्तिरस्त्रात् पाचाणि प्रत्यात्मनः चरणकाले पविचं व्यवधायकं कृत्वा परियन् परितो गच्छन् सोम उरु  
महान्तं अयो वेगं करोति । ततः शर्याणि ॥ श्रु हिंसायां ॥ हिंसितव्यानि यदा शरेण हंतव्यानि रणांसि नि  
दधते । निक्षिपति । व्यस्त्रोति । हिनस्तीति यावत् । पद्यादिवो दीप्यमानः सोमो वरं वरणीयं धनं सोमं  
दातृभ्यो यजमानेभ्य आ दधते । आधारयति । प्रयच्छतीत्यर्थः ॥ दधातेर्लैव्यवागमे षोडशीपो षेडि वेत्ता-  
कारलोपः ॥

वि यो ममे यम्या संयती मदः साकंवृधा पयसा पिन्वदक्षिता ।  
मही अपारे रजसी विवेविददभिः व्रजजक्षितं पाज आ ददे ॥ ३ ॥  
वि । यः । ममे । यम्या । संयती इति संऽयती । मदः । साकंऽवृधा । पयसा ।  
पिन्वत् । अक्षिता ।  
मही इति । अपारे इति । रजसी इति । विऽविवेदत् । अभिऽव्रजन् । अक्षितं ।  
पाजः । आ । ददे ॥ ३ ॥

यो मदः । माबल्यनेनेति मदः सोमरसः । यम्या युगलभूते संयती परस्परं संगच्छमाने बावापृथिवी वि  
मने विशेषेण निर्मितवान् ततः ते साकंवृधा सहेव वर्धनशीले तथाक्षिताषोषे सामर्थ्यवधौ यथा भविष्यतः  
तथा स सोमः पयसा पयोरूपेण स्वीयरसेन पिन्वत् । असिंचत् । अवर्धयदिति यावत् । किंच मही महती  
अत एवापरि पर्यंतरहिते रजसी । बावापृथिवीनामैतत् । ते बावापृथिव्यौ विवेविदत् ॥ विद् ज्ञाने ।  
यङ्नुक्ति शतरि रूपं । अभ्यासस्वरः ॥ इयं पृथिवीयं द्यौरिति सर्वेषां विविध्य तेजसा प्रज्ञापयन्नभिः व्रज-  
मितः सर्वतो गच्छन् सोमोऽक्षितमषोणमविनश्चरं पाजो बलमा ददे । स्वीकृतवान् । अत्यंतं बलवानभ-  
दित्यर्थः ॥

स मातरां विचरन्वाजयन्पः प्र मेधिरः स्वधया पिबते पदं ।

अंशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ॥४॥

सः । मातरां । विऽचरन् । वाजयन् । अंशुः । प्र । मेधिरः । स्वधया । पिबते । पदं ।

अंशुः । यवेन । पिपिशे । यतः । नृभिः । सं । जामिभिः । नसते । रक्षते । शिरः ॥४॥

मेधिरः ॥ मेधारथाभ्यामिरनिरचौ । पा० ५. २. १०९. ३. । इतीरन्त्यथो मत्वर्थीयः ॥ मेधावान् प्राज्ञः सोमो मातरा मातरौ जगतो निर्मात्र्यौ कावापृथिव्यौ विचरन्तरेणात्वं चरन् तथापोऽन्तरिचक्षितान्युद-  
काणि वाजयन् प्रेरयन् ॥ वज्रैर्लतस्य शतरि रूपं ॥ तादृशः स्वधया सक्तुलचणेनास्त्रेन सह पदं स्वस्थानमुत्तर-  
वेदिरूपं प्र पिबते । प्रकर्षेणाप्याययति । ततो नृभिः कर्मनेतृभिर्ऋत्विगिभिर्यतः संयतोऽंशुः सोमो यवेन  
पिपिशे ॥ पिश अवयवे ॥ अवयवत्वेन कृतः । मिश्रित इत्यर्थः । सोमस्तु यवसक्तुभिः श्रीयते खलु । सोऽयं  
जामिभिरैकस्याप्याशेदत्यप्तामिरंगुलीभिः सं नसते । संगच्छते च । शिरः शीर्षं भूतजातं च रचते च । स्त्रीय-  
रसेन रचति । पोषयति ॥ नसतिर्गतिकर्मा । चादिलोपि विभाषेति न निघातः ॥

सं दक्षेण मनसा जायते क्विर्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः ।

यूना ह संतां प्रथमं वि जज्ञतुर्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतं ॥५॥

सं । दक्षेण । मनसा । जायते । क्विः । ऋतस्य । गर्भः । निऽहितः । यमा । परः ।

यूना । ह । संतां । प्रथमं । वि । जज्ञतुः । गुहा । हितं । जनिम । नेम । उत्ऽयतं ॥५॥

प्रसंगात्सोमसूर्ययोराविर्भावमाह । दक्षेण प्रवृत्तेन मनसा सह सं जायते । पृथिव्याः सम्यग्जायते । तथा  
ऋतस्योदकस्यैव गर्भो गर्भस्थानीयः । यद्वा । सत्यस्य यज्ञस्य मध्ये गर्भः शब्दनीयः सुत्यः । स एव सोमः परः  
परस्तादन्तरिक्षे यमा यमेन नियमेन देवैर्निहितः सः । सूर्यादि वृष्टिर्भवति । तस्मात्सोमः सूर्यात्मकतयावस्थित  
इत्यर्थः । एवं यूना । हेत्यवधारणे । युवानावेव संतां तौ प्रथमं जननकाले वि जज्ञतुः । अयं सोमोऽयं सूर्य  
इति विशेषेण ज्ञायते । तयोश्चार्धं जनिम जन्म गुहा गुहायां हितं । निहितं भवति । तयोर्नेममर्थं चोद्यतं  
प्रकाशितं भवति । दिवा सूर्यः प्रादुर्भवति रात्रौ चंद्रमा इति ॥ १९ ॥

मंद्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदंधो अभरत्परावतः ।

तं मर्जयंत सुवृधं नदीष्वौ उशंतं मंशुं परियंतमृगिमयं ॥६॥

मंद्रस्य । रूपं । विविदुः । मनीषिणः । श्येनः । यत् । अंधः । अभरत् । पराऽवतः ।

तं । मर्जयंत । सुऽवृधं । नदीषु । आ । उशंतं । अंशुं । परिऽयंतं । ऋगिमयं ॥६॥

मनीषिणः प्राज्ञा यष्टारो मंद्रस्य मदकारस्य रसस्य सोमस्य रूपं विविदुः । जानन्ति । यदंधो यत्सोमल-  
क्षणमन्नं श्येनो गायत्रीरूपो पक्षी परावतो दूराद्गुलोकादाभरत् आजहार ॥ ह्यग्रहोर्म्य्छंदसीति मकारः ॥ तं  
तादृशं सुवृधं सुष्ठु वर्धमानं सुवर्धयितारं वांशुं सोमं नदीषु नदमानासु वसतीवर्धयिष्यास्वप्सा मर्जयंत ।  
ऋत्विज आशोधयन्ति । अलंकुर्वन्ति वा । कोदृशं । उशंतं देवान् कामयमानं परियंतं परितो गच्छंतमृ-  
गिमयमृगहं सुत्यं सोममामर्जयन्तीति ॥

त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितं ।

अथ्यो वारैभिरुत देवहूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥७॥



त्वां । मृजंति । दशं । योषणः । सुतं । सोमं । ऋषिं ऽभिः । मृतिं ऽभिः । धीतिं ऽभिः । हितं ।  
अव्यः । वारिभिः । उत । देवहूतिं ऽभिः । नृऽभिः । यतः । वाजं । आ । दुर्षि । सातये ॥ ७ ॥

हे सोम योषणो द्वाभ्यां पाणिभ्यां विमज्ज्योत्पन्ना दश दशसंख्याका चंगुलय ऋषिभिर्मधुच्छंदः प्रमृतिभिः  
सुतमभिपुतं हितं पाचेषु निहितं त्वां मृतिभिः मृतिभिर्धीतिभिः कर्मभिर्याव्यो वारिभिरविवाहीः पविषिर्मुवंति ।  
शोधयन्ति । उतापि च देवहूतिभिर्देवाद्भानयुक्तिर्गुभिः कर्मणितुभिर्हस्तिगिर्यतो ग्रहेषु संयमितः संगृहीतस्त्वं  
सातये दानाय वाजमज्जमा दुर्षि । आविदारयसि । विवृतं करोषि । सोतुभ्योऽज्ञादिकं प्रयच्छसीति यावत् ॥

परिप्रयंतं वयं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः ।

यो धारया मधुमां ऊर्मिणा दिव इयति वाचं रयिषाऽऽमर्त्यः ॥ ८ ॥

परिऽप्रयंतं वयं सुऽसंसदं सोमं मनीषाः अभि अभ्यनूषत स्तुभः ।

यः धारया मधुमान् ऊर्मिणा दिवः इयति वाचं रयिषाद् अमर्त्यः ॥ ८ ॥

परिप्रयंतं पाचाणि परितः प्रगच्छंतं वयं देवैः काम्यमानं सुषंसदं शोभनसंसदं सोमं मनीषा मनस  
ईक्षिष्यः स्तुभः सुतयोऽभ्यनूषत । अभिप्रवन्ति ॥ वयं । वी गत्यादिवित्यस्यावति भव्यप्रवये च च्छंदसि  
। पा० ६. १. ८३. इति निपातितः । अचानुपसर्गस्यापि निपातनं भवति ॥ मधुमाऽदकररसवान् यः सोमो  
धारया स्तीययोर्मिणा वसतीवर्याख्येनोदकेन सह दिव आकाशाद्द्रोणकलश आपतति रयिषाद् शत्रुधनाना-  
मभिभवितामत्यौ मनुष्यधर्मरहितः स सोमो वाचमियति । प्रेरयति । तदा हि सोतारः सुवंति ॥

अयं दिव इयति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ।

अङ्गिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः पुनान इंदुर्वरिवो विदत्प्रियं ॥ ९ ॥

अयं दिवः इयति विश्वं आ रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ।

अतऽभिः गोभिः मृज्यते अद्रिऽभिः सुतः पुनानः इंदुः वरिवः ।

विदत् प्रियं ॥ ९ ॥

अयं सोमो दिवो बुल्लोकाद्विश्वं रज उदकमियति । अभिप्रापयति । किंच पुनानो दशापविचिण्ण पूयमानः  
सोमः कलशेषु द्रोणनामसु सीदति । तथाद्रिभिर्यावभिरङ्गिर्वसतीवर्याख्याभिर्गोभिर्गोविकारिः चीरदध्या-  
दिभिश्च मृज्यते । शोध्यते । अलंकियते । ततः पुनानः पूत इंदुः सोमः प्रियं प्रियतरं प्रीणनकारि वा वरिवो  
वरणीयं धनं विदत् । सोतुभ्यो लभयति । प्रयच्छतीति यावत् ॥

एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधत्तचित्तमं पवस्व ।

अद्भेष्टे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरं ॥ १० ॥

एव नः सोम परिऽसिच्यमानः वयः दधत् । चिचऽतमं पवस्व ।

अद्भेष्टे इति । द्यावापृथिवी इति । हुवेम देवाः धत्त रयिम् । अस्मे इति । सुऽवीरं ॥ १० ॥

अयं प्रत्यच्छतः । हे सोम दधत्प्रयच्छस्त्वं परिषिच्यमानः परितोऽङ्गिर्गोभिर्वा सिच्यमान एव चित्तमं  
चित्तं नानाविधं चायनीयतमं वा वयोऽङ्गं गोऽस्त्रभ्यं पवस्व । प्रापय । प्रयच्छति यावत् । किंचाद्भेष्टे द्वेवरहिते  
द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यां हुवेम । हविप्रदानार्थं वयमाहुयेम । हे देवाः यूयं च सुवीरं । वीरः कर्मणि  
समर्थः पुत्रः । तादृशपुत्रोपेतं रयिं धनमस्मै अस्मासु धत्त । निधत्त ॥ २० ॥

इषुर्नैति दशर्षं द्वितीयं सूक्तं । आगिरसस्य हिरण्यसूपस्यार्थं पवमानसोमदेवताकं । नवमीदशम्यौ चिष्टमौ ।  
शिष्टा अगस्त्यः । तथा चानुक्रांतं । इषुर्न हिरण्यसूपोऽस्य चिष्टमाविति ॥ गतो विनियोगः ॥

इषुर्न धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सज्यूर्धनि ।

उरुधारेव दुहे अयं आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥१॥

इषुः । न । धन्वन् । प्रति । धीयते । मतिः । वत्सः । न । मातुः । उप । सजि । ऊर्धनि ।

उरुधाराऽइव । दुहे । अये । आऽयती । अस्य । व्रतेषु । अपि । सोमः । इष्यते ॥१॥

अस्मिन्पवमानरूप इदं मतिर्मननीयास्तदीया क्षुतिः प्रति धीयते । अस्माभिर्निधीयते वा ॥ दधाते रूप ॥  
तत्र दृष्टांतः । इषुर्न येषुः शरो धन्वन् धनुषि प्रति धीयते तद्वत् । किंचो धनि सर्वस्य पोषयितुं त्वेनो धः स्थानीय  
इदं सोमो मदार्थमस्माभिरप सजि । उपसृज्यते । कथमिव । मातुर्गोर्धनि पयोधारके वत्सो न वत्सो यथा  
पयःपानार्थं सृज्यते तद्वत् । उरुधारेव वज्रविधपयोधारा गौरिवाये वत्सस्य पुरत आयतो गच्छंती सती पथो  
दुहे दुग्धे तथा सोऽयमिदं वत्सभूतेभ्यः स्तोतृभ्यः पुरतो गच्छन् वज्रविधान्कामान्दुग्धे । किंचास्मै तादृशस्य  
व्रतेष्वपि सोम इष्यते । यष्टुभिः प्रेर्यते खलु ॥

उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मंद्राजनी चोदते अंतरासनि ।

पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रुप्सः परि वारमर्षति ॥२॥

उपो इति । मतिः । पृच्यते । सिच्यते । मधु । मंद्राजनी । चोदते । अंतः । आसनि ।

पवमानः । संऽतनिः । प्रघ्नतांऽइव । मधुऽमान् । द्रुप्सः । परि । वारं । अर्षति ॥२॥

अस्मिन्पवमानरूप इदं मतिः क्षुतिरूपो पृच्यते । उपपृच्यते । स्तोतृभिः संयोज्यते ॥ पृची संपर्के ॥ तथा  
मधु मदकरः सोम इद्रार्थं सिच्यते । अन्निर्यवसक्तुमिष्य सिक्तो भवति । ततश्च मंद्राजनी ॥ अज गतिचेपणयो-  
रित्यस्य क्षुटि जीपि रूपं ॥ मदकरस्य रसस्य प्रेरयित्री सोमधारा तस्मिंश्च स्वासत्यास्तेऽंतर्मध्ये चोदते । यष्टुभिः  
प्रेर्यते ॥ आस्यशब्दस्य पह्नोमासित्यादिनासन्नित्वादेशः ॥ किंच संतनिर्यहादिषु सम्यग्विज्ञातो मधुमान् मदक-  
ररसवान् पवमानः पूयमानः सोमो द्रुप्सो द्रुतगमनशीलो यद्वा क्षिप्रं हननशीलः सन् वारमविद्यालमयं  
पवित्रं परितोऽर्षति । आगच्छति । तत्र दृष्टांतः । प्रघ्नतामिव प्रकर्षेण हंतृणां थोडूणां संतनिः सम्यग्विदष्टः  
शरो यथा शीघ्रं प्राप्यमभितो गच्छति तद्वत् ॥

अथ्ये वधूयुः पवते परि त्वचि अथीते नप्तीरदितेर्चतं यते ।

हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृग्णा शिशानो महिषो न शोभते ॥३॥

अथ्ये । वधूऽयुः । पवते । परि । त्वचि । अथीते । नप्तीः । अदितेः । चतं । यते ।

हरिः । अक्रान् । यजतः । संऽयतः । मदः । नृग्णा । शिशानः । महिषः । न । शोभते ॥३॥

वधूयुः । वधूभृता वसतीवर्ष एकधनासहिता आपः । तद्वान् सोमोऽन्वेऽवेः स्वभूते त्वचि चर्मणि परि  
पवते । परितो घर्तते । पूतो भवति । किंच नप्तीर्नप्तीः । नृग्न्द्वाचतुर्थपात्यवाची । सोमस्य नप्तीः । सोमो  
ह्योषधीनामग्रे रेतो निषिंचति । प्रजापते रेतो देवा देवानां रेतो वर्षे वर्षस्य रेत औषधय इति श्रुतिः । यद्वा ।  
नृग्न्द्वाऽपत्यवाची । तस्यापत्यानि । सोमः सुधामयैः स्वकिरणैरेवधीर्वर्धयति । तस्मादपत्यभृताः । अदितेः ।  
पृथिवीनामैतत् । अदीनाथाः पृथिव्या उत्पन्ना औषधीर्चतं सत्वरूपं यज्ञं यते गच्छते यजमानाय अथीति ।  
अयमग्रे फल्गिनीः कर्तुं विज्ञेययति । किंच हरिर्हरितवर्णो यजतः सर्वैर्यष्ट्यः अत एव संयतो यहादिषु संगृ-  
हीतो मदः । मावत्यमेति मदः सोमः । तादृशोऽक्रान् । क्रामति । पाचिष्ववतिष्ठते । यद्वा । शचूनतिक्रामति ॥



क्रमेणुकिं तिपि वज्रं वेदसीतीहागमामावावृषी कृतायां सिञ्चोपि सति हृद्ययादिना तिपो लोपि सो नो धातोरिति नल्ले कृते रूपं ॥ अत एव सोम शुष्णा स्ववसानि शिशानसीरणीकुर्वन् अथवा शत्रुवसानि तनुकुर्वन् महिषो न । महिषामैतत् । महानिव सर्वं व्याप्त इव शोभते । स्वतेजसा सर्वं दीयते । यद्वा । नः संप्रतर्धे । इदानीमेवगुणयुक्तो महान् सोमः शोभत इति ॥

उक्षा मिमाति प्रति यंति धेनवो देवस्य देवीरूपं यंति निष्कृतं ।

अत्यक्रमीदजुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥४॥

उक्षा । मिमाति । प्रति । यंति । धेनवः । देवस्य । देवीः । उप । यंति । निःऽकृतं ।

अति । अक्रमीत् । अजुनं । वारं । अव्ययं । अत्कं । न । निक्तं । परि । सोमः । अव्यत ॥४॥

उक्षा रेतसः सेक्ता वृषमः पुरतो मिमाति । शब्दायते ॥ माह् मावे शब्दे च ॥ तं वृषमं धेनवो गावः प्रति यंति । अनुगच्छन्ति । तथा देवस्य द्योतमानस्य निष्कृतं संस्कृतं स्थानं देवीर्देव्य उप यंति । उपगच्छन्ति । अनेनाधेनं सोमस्तुतिस्वामिधीयते । सोमः सन् द्रोणकलशाभिगमनकाले शब्दं करोति । तमनु धेनवः प्रीणयिष्यः स्तुतयः परियंति । देवस्य स्थानं स्तुतयोऽभिगच्छन्ति । तथा सोऽयं सोमोऽर्जुनं श्वेतवर्णमव्ययमविविधमविस्त्रभूतं वारं वालं पवित्रमत्यक्रमीत् । अतिक्रामति । अतिक्रम्य पात्राणि गच्छतीत्यर्थः । किंच सोम अत्कं गात्रोयं कवचमिव निक्तमुज्ज्वलं अथवाद्रव्यं पर्यव्यत । परितः संवृणोति ॥

अमृक्तेन रुशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत ।

दिवस्पृष्टं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्बोर्नभस्मयं ॥५॥

अमृक्तेन । रुशता । वाससा । हरिः । अमर्त्यः । निःऽनिजानः । परि । व्यत ।

दिवः । पृष्टं । बर्हणा । निःऽनिजे । कृत । उपऽस्तरणं । चम्बोः । नभस्मयं ॥५॥

अमर्त्यो मनुष्यधर्मरहितो हरिर्हरितवर्णः सोमो निर्णिजान उदकेन शोध्यमानः सप्तमृक्तेन ॥ मृजी ग्रीवासंकारयोः ॥ अनिर्णिजानापि रुशता स्वतः मुक्तवर्णेन पथोरूपेण वाससा परि व्यत । परित आच्छादयति । सोमे परिपूते गव्येन पयसा मिश्रीकुर्वन्ति खलु । तदुच्यते । ततः सोऽयं सोमो दिवो बुल्लोकस्य पृष्टं पुष्टभागे तिष्ठतमादित्यं बर्हणा बर्हणाय पापानामुद्यमनकारिणि पापनाशिने निर्णिजे निर्णिजनाय परिपवनाय कृत । बुल्लोकेऽकार्षीत् । स हि स्वदीप्त्या सर्वं निर्णोति ॥ हत । छणोतिर्नुडि व्रक्षादिति सिचो लोपः ॥ तदेवाह । चम्बोः । बावापृथिवीनामैतत् । चमन्ति भक्षयन्त्येव देवा मनुष्या इति । तयोरुपस्तरणमाच्छादनं ग्रीवं नभस्यमादित्यमथमादित्यस्य स्वभूतं तेजस्य सर्वेषां निर्णिजनायाकार्षीत् ॥ ॥२९॥

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्वो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।

तंतुं तंतं परि सर्गास आशवो नेंद्रादृते पवते धाम किं च न ॥६॥

सूर्यस्यऽइव । रश्मयः । द्रावयित्वः । मत्सरासः । प्रऽसुपः । साकं । ईरते ।

तंतुं । तंतं । परि । सर्गासः । आशवः । न । इंद्रात् । चृते । पवते । धाम । किं । च न ॥६॥

सूर्यस्य रश्मयः सर्वस्य प्रेरकस्य सुवीर्यस्य वादित्यस्य रश्मयः सर्वतो व्यापकाः किरणा इव द्रावयित्वः सर्वचद्रवणशीला मत्सरासो मदकराः प्रसुपः शत्रूणां प्रक्षापका इतार आशवो यदेषु चमसेषु च व्याप्ताः सर्गासः खण्ड्यमानाः सोमास्ततं विस्तृतं तंतुं तंतुभिः कृतं वस्त्रं साकं सह युगपत् परीरते । परितो गच्छन्ति । ते सोमा इंद्रादृत इंद्रं वर्जयित्वाव्यक्तं च न धाम देवशरीरं लक्ष्मीकृत्य न पवते । न गच्छति ॥ एकवचनं ह्यंद्दसं ॥

न गच्छन्ति । किंलिङ्गस्त्वैव धाम प्रति गच्छन्ति । इन्द्रस्व धाम्नी यष्टव्यत्वं च अयाकिंन्द्रस्व प्रिया धामानि । वा० सं० २१. ४७. इति मंत्रवर्णादवगम्यते ॥

सिंधोरिव प्रवणे निस्त्र आश्वो वृषच्युता मदासो गातुमाशत ।

शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठंतु कृष्टयः ॥ ७ ॥

सिंधोःऽइव । प्रवणे । निस्त्रे । आश्वः । वृषऽच्युताः । मदासः । गातुं । आशत ।

शं नः । निवेशे । द्विऽपदे । चतुऽपदे । अस्मे इति । वाजाः । सोम । तिष्ठंतु । कृष्टयः ॥ ७ ॥

वृषच्युताः ॥ वृष हिंसासंक्लेशनदानेष्वपि ॥ वृषभिः सोमस्य दातुमिच्छन्ति गमिष्युताः परिस्रुता मदासो मदकारिणः सोमाः क्षुतिभिः प्राप्तव्य इद्रे गातुं गमनमाशत । प्राप्नुवन्ति । तच्च दृष्टान्तः । सिंधोरिव प्रवणे । प्रगच्छन्त्यदकानि यचेति तत्प्रवणं । तस्मिन्निस्त्रे स्थले सिंधोर्नवा आश्वो व्याघ्रा आपो यथा गच्छन्ति तद्वत् । अथ प्रत्ययः । हे सोम नोऽस्माकं निवेशे स्वगृहं प्रति प्रवेशने निर्गमने वा द्विपदे पुत्रादिकाय चतुष्पदे गवा-  
दिकाय पशवे शं सुखं कृष । किंच हे सोम अस्मे अस्मासु वाजा अन्तानि कृष्टयः पुत्रादिकाः प्रजाश्च तिष्ठंतु । अन्तादिकं देहीत्यर्थः ॥

आ नः पवस्व वसुमद्विरण्यवदश्वावन्नोमद्यवमत्सुवीर्यं ।

यूयं हि सोम पितरो मम स्थनं दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ॥ ८ ॥

आ नः । पवस्व । वसुऽमत् । हिरण्यऽवत् । अश्वऽवत् । गोऽमत् । यवऽमत् । सुऽवीर्यं ।

यूयं । हि । सोम । पितरः । मम । स्थनं । दिवः । मूर्धानः । प्रऽस्थिताः । वयऽस्कृतः ॥ ८ ॥

हे सोम त्वं वसुमद्वसुयुक्तं हिरण्यवत्कनकादिसहितमश्ववन्नोमद्यवमत्सहितं यवमत् । यवो नाम धान्य-  
विशेषः । धान्यविशिष्टं सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं धनं नोऽस्माभ्यमा पवस्व । आप्रापय । प्रयच्छेति यावत् । किंच  
हे सोम यतस्त्वं मम पितृणामंगिरसामपि पितासि ततो यूयमेव मम पितरः स्थन । मवथ । पितृवज्जत्वमथ  
सोमस्वामिधीयते । कीदृशाः । दिवो बुभुक्षस्व मूर्धानो मूर्ध्वदुच्छिताः । कर्मभिः स्वर्गादिकमलभन्तेत्यर्थः ।  
प्रस्थिताः सर्वदा कर्मकरणार्थं स्थिताः वयस्कृतो हवीरूपस्यान्नस्य कर्तारः । तादृशा मम पितरस्त्वं भवसि ॥

एते सोमाः पवमानास इद्रं रथा इव प्र ययुः सातिमच्छ ।

सुताः पवित्रमति यंत्ययं हित्वी वत्रिं हरितो वृष्टिमच्छ ॥ ९ ॥

एते । सोमाः । पवमानासः । इद्रं । रथाःऽइव । प्र । ययुः । सातिं । अच्छ ।

सुताः । पवित्रं । अति । यन्ति । अयं । हित्वी । वत्रिं । हरितः । वृष्टिं । अच्छ ॥ ९ ॥

पवमानासः पवित्रेण पूजमाना एतेऽस्यदीयाः सोमाः सातिं ॥ वयसं संभक्ती । कर्मणि क्तिच् ॥ सर्वैः  
संभजनीयमिन्द्रमच्छ प्र ययुः । प्रकीर्णेण गच्छन्ति । तच्च दृष्टान्तः । रथा इवेन्द्रस्व रथा यथा सातिं ॥ यो अंतक-  
र्मणि । कतिपयतीत्यादिना निपातितः ॥ सीयते अयतेऽस्मिन्निति सातिः संग्रामः । तमच्छ तं प्रति प्रगच्छन्ति  
तद्वत् । किंच सुता यावभिर्भपुताः सोमा अयमविवालभवं पवित्रमति यन्ति । अतीत्य गच्छन्ति । तेऽमी  
हरितो हरितवर्णा अश्वः । यद्वा । हरितस्य आदित्यवाहनरूपा अश्वः भूत्वा । वत्रिं । वृणोति शरीरमिति  
वत्रिर्जरा ॥ आदृगमहनेति किप्रत्ययः ॥ सर्वैगव्यापिनीं जरां हित्वी हित्वा तरणाः संतो वृष्टिमच्छ वृष्टिं  
गमयितुं गच्छन्ति ॥ हित्वी । जहातिथ क्ति । पा० ७. ४. ४३. इति ह्यादेशः । स्नात्वाद्यचेति च्छंदसि  
निपातितं ॥



इंदुविंदाय बृहते पवस्व सुमृच्छीको अनवद्यो रिशादाः ।

भरा चंद्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१०॥

इंदो इति । इंद्राय । बृहते । पवस्व । सुऽमृच्छीकः । अनवद्यः । रिशादाः ।

भर । चंद्राणि । गृणते । वसूनि । देवैः । द्यावापृथिवी इति । प्र । अवतं । नः ॥१०॥

हे इंदो सोम त्वं बृहते महत इंद्राय तदर्थं पवस्व । पापेषु चर । इंद्रं प्रत्यागच्छ वा । कीदृशः । सुमृच्छीक इंद्रस्य सुष्ठु सुखयिता अत एवानवद्यो गर्हारहितः रिशादा रिशतां बाधकानामसिता । एतादृशस्त्वमिंद्राय पवस्व । किंच गृणते कुर्वते मह्यं चंद्राणां ह्लादकानि वसूनि धनानि भर । प्रयच्छ । किंच हे द्यावापृथिवी युवां च पवमाने सत्यौ देवैः सुमरीर्धनैः सह नोऽस्यान् प्रावतं । प्ररक्षतं ॥ ॥२२॥

चिरसा इति दशमं तृतीयं सूक्तं वैश्वामित्रस्य रेणोरार्षं दशमी विष्णुप शिष्टा जगत्पः । पवमानः सोमो देवता । चिरसौ रेणुरित्यनुक्रांतं ॥ गतो विनिचोगः ॥

चिरस्मै सप्त धेनवो दुदुहे सत्यामाशिरं पूर्वे व्योमनि ।

चत्वार्यन्या भुवन्नानि निरिंजे चारुणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥१॥

चिः । अस्मै । सप्त । धेनवः । दुदुहे । सत्यां । आऽशिरं । पूर्वे । विऽव्योमनि ।

चत्वारि । अन्या । भुवन्नानि । निऽनिंजे । चारुणि । चक्रे । यत् । अृतैः । अवर्धत ॥१॥

असौ पवमानाय पूर्वे पूर्वे ह्यते व्योमनि । विविधमोमावनं गमनं देवानामवेति व्योम यज्ञः । तस्मिन् स्थिताय । यद्वा । प्रते व्योमन्त्यंतरिचे वर्तमानाय । चिः सप्तैकविंशतिसंख्याका धेनवः प्रीणयिष्यो गावः सत्यां यथार्थभृतामाशिरमाश्रयणसाधनं श्रीरादि दुदुहे । दुहति । यद्वा । चिः सप्त द्वादश मासाः पंचवर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकाविंश इत्येतेः सर्वैः सह गोषु पय उत्पायते तन्नावो दुहंत इति । किंचार्थं सोमोऽन्यान्यानि चत्वारि भुवनान्युदकानि वसतीवरीक्षिचक्षीकधना इति तानि चतुःसंख्याकानि चारुणि कल्याणान्युदकानि निरिंजे निरिंजनाय परिशोधनाय परिपोषणाय वा चक्रे । कदा करोति । यद्यदायमृतैर्यज्ञैरवर्धत वर्धितवान् तदा करोति ॥

स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रये ।

तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदी विदुः ॥२॥

सः । भिक्षमाणः । अमृतस्य । चारुणः । उभे इति । द्यावा । काव्येन । वि । शश्रये ।

तेजिष्ठाः । अपः । मंहना । परि । व्यत । यदि । देवस्य । श्रवसा । सदेः । विदुः ॥२॥

स पवमानश्चारुणः कल्याणस्यामृतस्योदकस्य ॥ क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानसंज्ञा । चतुर्थ्यर्थे वज्रत्वं । पा० २. ३. ६२. । इति षष्ठी ॥ चारुदकं भिक्षमाणो यष्टुमिष्याच्चमानः सप्तुभे ॥ द्यावादेशस्य इंद्रे विहितत्वाच्चोत्तरपदामावे इंद्रे प्रतीयते ॥ उभे द्यावापृथिव्यौ काव्येन कविकर्मणा वि शश्रये । विवृते करोति । यज्ञनिमित्तेनोदकेन संपूरयतीत्यर्थः । किंच तेजिष्ठातिशयेन दीप्तान्यप उदकानि मंहना महत्त्वेन परि व्यत । वरणार्थं परित आच्छादयति । यदि यदल्लिङो देवस्य व्योतमानस्य सोमस्य सदेः स्थानं श्रवसा हविषा युक्ताः संतो विदुः यागार्थं जानन्ति जमन्ति तदा परित आवृणोतीति ॥ विद् ज्ञानि । शिश्रभ्योति शैर्जुसादेशः ॥

ते अस्य संतु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।

येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत् आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३॥

ते । अस्य । संतु । केतवः । अमृत्यवः । अदाभ्यासः । जनुषी इति । उभे इति । अनु ।

येभिः । नृम्णा । च । देव्या । च । पुनते । आत् । इत् । राजानं । मननाः । अगृभ्णत ॥३॥

अस्मितादृशस्य सोमस्य केतवः प्रजापकाः सर्वेऽद्यानीया अमृत्यवो मरणधर्मरहिताः अत एवादाभ्यासः ॥  
दमेवेति यत्तच्चमिति ख्यत् । पा० ३. १. १२४. ३. ॥ परैरहिंसासो तादृशां सस्य ररमय उभे जनुषी जन्मनी  
स्वावरजंगमात्मके द्वे अगु लषीकृत्य संतु । रषंतु । औषधीनामयं सोमो रेतो निषिंचति यज्ञे मनुष्याणां च  
धाराः स्रवंति खलु । सोऽयं येभिर्नृम्णा नृम्णानि वसानि देव्या देवाहीणि चान्नानि पुनते प्रेरयति  
आदिदमिषवानंतरमेव राजानं सोमं मनना मननीयाः स्तुतयोऽगृभ्णत । परिगृह्णति । प्राप्तुवंतीत्यर्थः ॥  
हयहोरिति मकारः ॥

स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मैभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा ।

व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ॥४॥

सः । मृज्यमानः । दशभिः । सुकर्मैऽभिः । प्र । मध्यमासु । मातृषु । प्रऽमे । सचा ।

व्रतानि । पानः । अमृतस्य । चारुणः । उभे इति । नृचक्षाः । अनु । पश्यते । विशौ ॥४॥

स पवमानः सुकर्मैभिः शोभनकर्मयुक्ताभिर्दशभिर्दशसंख्याकामिरंगुलीभिर्मृज्यमानः स सचापौ प्रास्ताङ्ग-  
तिरित्वादिक्रमेणापां सहायः प्रमे लोकां प्रमातुं मध्यमासंतरिचस्थितास्त्वतिष्ठते ॥ प्रमे । प्रपूर्वाग्रातेः  
क्रिये ऊयिं आत इति योगविभागादाकारलोपः ॥ किंच नृचक्षा नृणां द्रष्टा पवमानश्चारुणः कक्ष्याणस्त्रासु-  
तस्त्रोदकस्य वृष्यर्थं व्रतानि यागादिकर्माणि पानो रक्षसुभे विशौ मनुष्यान् देवासंतिरिच्य गच्छन्नु पश्यते ।  
अनुपश्यति । मनुष्यान्भिमतदानेन देवान् हविष्यदानेनेति ॥

स मर्मृजान इन्द्रियाय धायसे ओभे अंता रोदसी हर्षते हितः ।

वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव श्रुधः ॥५॥

सः । मर्मृजानः । इन्द्रियाय । धायसे । आ । उभे इति । अंतरिति । रोदसी इति ।

हर्षते । हितः ।

वृषा । शुष्मेण । बाधते । वि । दुःमतीः । आऽदेदिशानः । शर्यहाऽइव । श्रुधः ॥५॥

मर्मृजानः पवित्रेण मृज्यमानः स पवमानो धायसे जगतो धारकायेंद्रियायेंद्रस्य पर्याप्ताय वसानाय  
तदर्धमुभे रोदसी ॥ कासाध्नोरिति द्वितीया ॥ उभयोर्बावापृथिव्योरंतर्हितो मध्ये वर्तमानः सत्ता हर्षते ।  
सर्वतो गच्छति । इन्द्रस्य हि सोमेन बलं भवति । वृषा कामानामुदकानां वा वर्षकः सोऽयं शुष्मेण शोषकेण  
बलेन दुर्मतीर्दुष्टमुखीनसुरान् वि बाधते । विशेषेण पीडयति । किं कुर्वन् । श्रुधः ॥ शुचा बंधति परानिति ।  
पृषोदरादिः ॥ दुःखकारिणोऽसुरानादेदिशानः पुनःपुनराद्भयं हति । तच्च दृष्टांतः । शर्यहेव हननसाधनै-  
रिषुभिर्हता वीरः प्रतिमटान् यथा हिनस्ति तद्वत् ॥ २३ ॥

स मातरा न ददृशान उस्त्रियो नानंदेति मरुतामिव स्वनः ।

जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णं प्रशस्तये कर्मवृणीत सुक्रतुः ॥६॥



सः । मातरा । न । ददृशानः । उस्त्रियः । नानदत् । एति । मरुतांऽइव । स्वनः ।  
जानन् । चतुः । प्रथमं । यत् । स्वंऽनरं । प्रऽशस्तये । कं । अवृणीत् । सुऽकृतुः ॥ ६ ॥

स पवमानो मातरा मातरी आवापुषिषी ददृशानः पुनःपुनः पञ्चन ततो नानदद्मुग्रं शब्दं कुर्वन्ति । सर्वत्र गच्छति । तत्र दृष्टान्तः । उस्त्रियो न । उस्त्रियेति गोनाम् । तस्य स्वरूपतो वत्सो यथा मातरं नां पञ्चञ्चब्दं करोति तद्वत् । किं न भवतामिव यथा मरुतां गणः स्वनः ॥ पचाव्यजंतः ॥ स्वनं कुर्वन् सर्वतो गच्छति तद्वत् । यदुदकं स्पर्शरं । स्परिति सर्वपर्यायः । सर्वमनुष्यहितं भवति । सर्वे हि मनुष्या उदके संगच्छन्ते तत्कार्यत्वात् । तादृशं प्रथमं सुखमुत्तुदकं जानन् विद्वान् मुक्ततुः शोभनकर्मा मुप्रश्नो वा स पवमानः प्रशस्तये प्रशंसनायात्मसौचकरणाथ कं मनुष्यमवृणीत् । समभवत् । नान्यमकाश्यातिरिक्तमित्यर्थः ॥

रुवति भीमो वृषभस्तविष्या ऋगे शिशानो हरिणी विचक्ष्णः ।  
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्विगव्ययी ॥ ७ ॥  
रुवति । भीमः । वृषभः । तविष्या । ऋगे इति । शिशानः । हरिणी इति । विचक्ष्णः ।  
आ । योनिं । सोमः । सुऽकृतं । नि । षीदति । गव्ययी । त्वक् । भवति । निऽनिकं ।  
अव्ययी ॥ ७ ॥

सोमः शत्रूणां मयंकरो वृषभः कामानासुदकानां वा चर्वणो विचक्ष्णः सर्वस्य विदर्शनशीलः स पवमान-  
स्तविष्या ॥ तु इति वृद्धार्थः । असादच इः । उ० ४. १३८. । इतीप्रत्ययः । तसादिच्छायामर्थे कश्च । सर्वप्राति-  
पदिकेभ्यः । का० ७. १. ५१. ३. । इति सुगागमः ॥ आत्मनो वक्षेच्छया हरिणी हरितवर्णे द्वे ऋगे शिशानस्त्री-  
क्षणीकुर्वन् द्रोणक्षक्षं प्रति द्वाभ्यां धाराभ्यां स्नात्वा यद्वर्णं गृह्णाति । तदुच्यते । ते धारारूपं ऋगे तीक्ष्णीकुर्वन्  
रुवति । शब्दायति ॥ इ शब्दे । चक्ष्णं कंदसीति शः ॥ ततः स सोमः सुकृतं सुष्ठु कृतं योनिं स्नात्वा द्रोण-  
क्षक्षमा नि षीदति । समन्तान्तिष्ठति । तस्य सोमस्य निर्विगव्येति परिशोधयिषी गव्ययी गोमयी त्वग्भवति ।  
आगबुद्धे हि चर्मणि सोमामिषवः । एवमव्ययी अविमयी त्वक् निर्नेत्री भवति । तस्य दशापविषापि-  
ष्यमभिहितं ॥

शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि ।  
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे चिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ॥ ८ ॥  
शुचिः । पुनानः । तन्व । अरेपसं । अव्ये । हरिः । नि । अधाविष्ट । सानवि ।  
जुष्टः । मित्राय । वरुणाय । वायवे । चिऽधातु । मधु । क्रियते । सुकर्मभिः ॥ ८ ॥

अरेपसं पापरहितं । यद्वा । रिपि गतो । गतिरहितं । पापे क्षितमित्यर्थः । तादृशं तन्वमात्म्यं शरीरं  
पुनानः शोधयन् अत एव शुचिः पूतो द्रोण्यमानो वा हरिर्हरितवर्णः सोमः सानवि सानुनि वसुक्षितिऽन्वि  
विवाहकृते दशापविचे अधाविष्ट । अस्त्रिभिर्निधीयते ॥ धून् कपणे । अस्त्रिष्वस्योपुदतासिषु । पा० ६. ४. ६२. ।  
इति कर्मणि जुक्ति चित्तदिद् । यित्वाशुचिः ॥ ततो मित्राय वरुणाय वायवे एतेभ्यो जुष्टः पर्याप्तस्त्रिधातु  
विषंधानो वसतोवरीभिर्दधा पयसा संयुष्टः सोमस्त्रिधातु तादृशं मधु मदकरः सोमः सुकर्मभिः शोभन-  
कर्मयुक्तिर्चस्त्रिभिः क्रियते । मित्रादिदेवार्थं प्रदीयते ॥

पवस्व सोम देववीतये वृषेद्रस्य हार्दि सोमधानमा विश ।  
पुरा नो बाधाहुरितार्ति पारय क्षेचविचि दिश आहां विपृच्छते ॥ ९ ॥

पवस्व । सोम । देवऽवीतये । वृषा । इन्द्रस्य । हार्दि । सोमऽधानं । आ । विश ।  
पुरा । नः । बाधात् । दुःऽइता । अति । पारय । स्त्रेचऽवित् । हि । दिशः । आह ।  
विऽपृच्छते ॥ ९ ॥

हे सोम वृषा कामानामुदकानां वा सेचकत्वं देववीतये देवानां पानाय पवस्व । कलशादिषु चर । अथ हे सोम त्वमिन्द्रस्य हार्दि हृदयंगमं प्रियं सोमधानं । सोमो निधीयतेऽस्मिन्निति सोमधानं पाचं । तदा विश । प्रविश । किंच नोऽस्माकं बाधाद्वाधनात्पीडनात्पुरा पूर्वमेव दुरितानि दुर्गमनानि रक्षांस्त्विति पारय । अतीत्य पारं गमय । अपि च सेचविचार्यज्ञः पुषो विपृच्छते विविधं पंथानं पृच्छते जनाय दिशो मार्गानाह हि । ज्ञेयं यत्तु । उक्ता तं यथा रक्षति तथा यच्चमार्गवेत्ता त्वमस्मभ्यं यज्ञपथ उक्तास्मान्पालयेति ॥

हितो न सप्तिरभि वाजर्मर्षेन्द्रस्येदो जठरमा पवस्व ।  
नावा न सिंधुमतिं पर्षि विद्वान्जूरु न युध्यन्व नो निदः स्पः ॥ १० ॥  
हितः । न । सप्तिः । अभि । वाजं । अर्षि । इन्द्रस्य । इंदो इति । जठरं । आ । पवस्व ।  
नावा । न । सिंधुं । अति । पर्षि । विद्वान् । जूरः । न । युध्यन् । अन्व । नः । निदः ।  
स्परिति स्पः ॥ १० ॥

हे सोम ऋत्विग्भिः प्रेर्यमाणः सन् वाजं सोमनिधानं द्रोणकलशमभ्यर्ष । अभिगच्छ । तत्र दृष्टान्तः । हितो न सप्तिः । अन्वो हितः प्रेर्यमाणः सन् वाजं संग्राममभिलक्ष्य यथा याति तद्वत् । ततो हे इंदो इन्द्रस्य जठरं जठरभूतं द्रोणकलशं वा पवस्व । अभिमुख्येन प्रविश । किंच विद्वान् सर्वं ज्ञानंस्त्वमस्मानति पर्षि । दुरिता-  
न्वतीत्य पारय । तत्र दृष्टान्तः । नावा न यथा नाविकाः सिंधुं नदीं नावा मनुष्यान् पारयन्ति तद्वत् । किंच हे सोम त्वं शूरो न शूरो वीर इव युध्यञ्चून् संग्रहरन् निदो निंदकाच्छत्रोर्नोऽस्मानव स्यः । अन्वपारय । बाधान्विनाश पालय । यदा । नोऽस्माकं निदो निंदकाच्छत्रून्व स्यः । अवाङ्मुखं अहि ॥ स्यू हिंसायां । वज्रं कंदसीति आप्रत्ययस्य लुक् । तपि गुणे हृत्ञादिना तपो लोपः ॥ २४ ॥

आ दक्षिणेति नवर्चं चतुर्थं सूक्तं वैश्वामित्रस्वर्षभस्यार्थं पवमानसोमदेवताकं नवमी चिष्टपृश्निष्टा जगत्स्यः । तथा चानुक्रांतं । आ दक्षिणा नव ऋषभस्त्री वैश्वामित्राविति । तावित्यनेन प्रकृतो रेणुर्ऋषभस्त्रीमे परामुञ्छेति । श्रूयते हि । अथ ह विश्वामित्रः पुत्रानामंचयामास मधुच्छंदाः शृणोतन ऋषभो रेणुरष्टकः । ऐ० ब्रा० ७. १७. इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्याऽसदं वेति दुहो रक्षसः पाति जागृविः ।  
हरिरोपशं कृणुते नभस्पय उपस्तिरे चम्बोऽर्ब्रस निर्णिजे ॥ १ ॥  
आ । दक्षिणा । सृज्यते । शुष्मी । आऽसदं । वेति । दुहः । रक्षसः । पाति । जागृविः ।  
हरिः । ओपशं । कृणुते । नभः । पयः । उपऽस्तिरे । चम्बोः । ब्रह्म । निऽनिजे ॥ १ ॥

सोमस्य स्वभूते यज्ञ ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा दज्यते । अस्माभिः प्रदीयते । शुष्मी बलवान् सोम आसदमा-  
ख्यानं द्रोणाख्यं वेति । प्रविशति । किंच जागृविर्जागरणशीलः सोमो दुहो द्रोहकारिणो रक्षसो राक्षसा-  
त्पाति । सोतृचक्षति । अपि च हरिर्हरितवर्णः सोम ओपशं । आ समंतादुपशेत् इत्योपशः । सर्वस्य धारकं  
नमो नभस आदित्यस्य स्वभूतमुदकं कृणुते । सर्वत्र करोति । अग्नौ प्रास्ताज्जतिरित्यादिक्रमेण करोतीत्यर्थः ।  
यदा । नमोऽंतरिक्षं पयः पयसो धारकं करोतीति । किंचायं सोमश्चम्बोः । यावापृथिवीनामेतत् । चमंति  
मचयंति मनुष्यदेवा अवेति । तयोर्ऋषिर् उपस्तरणायाच्छादनाय ब्रह्म बृहदुद्यतं तमांसि विनाशयंतं यदा



परिवृढं सूर्यं शुक्लोके करोति । तथा तमेव सूर्यं निर्निजे पदार्थानां निर्निजनाय परिशोधनाय च करोति ।  
आदित्यो हि बावापृथिवीं स्ततेजसोपसृणाति । स हि स्वभासा सर्वं निर्निक्ति च ॥

प्र कृष्टिहेव शूष एति रोहवदसूर्ये वर्यं नि रिणीते अस्य तं ।

जहाति वत्रिं पितुरेति निष्कृतमुपपुतं कृणुते निरिजं तनां ॥२॥

प्र । कृष्टिहाऽइव । शूषः । एति । रोहवत् । असूर्यं । वर्यं । नि । रिणीते । अस्य । तं ।

जहाति । वत्रिं । पितुः । एति । निःऽकृतं । उपऽपुतं । कृणुते । निःऽनिजं । तनां ॥२॥

शूषः शत्रूणां शोषको बलवान् सोमो रोहवदत्यंतं शब्दं कुर्वन् कृष्टिहेव मनुष्याणां हंता योजेव प्रिति ।  
प्रगच्छति । किंचासूर्यमसुराणां बाधकस्यात्मनो वर्यं हरितमावारकं बलं वा नि रिणीति । निर्गमयति । ततः  
स सोमो वत्रिं । वृणोति शरीरमिति वत्रिर्जरा । जहाति । त्यजति । कथमिति चेत् तदुच्यते । पितुरन्नं सोमो  
निष्कृतं संस्कृतं द्रोणकलशं दिवं वेदानीमेति । गच्छति । किंच सोमस्यनाविवासेन तते विष्कृते दशापविनि  
निर्निजं । निर्निगिति रूपनाम । आत्मीयं रूपमुपपुतमुपगमनशीलं कृणुते । करोति । तस्माज्जरां त्यजतीत्यर्थः ॥

अद्रिभिः सुतः पवते गर्भस्थोर्वृषायते नभसा वेपते मती ।

स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥३॥

अद्रिऽभिः । सुतः । पवते । गर्भस्थोः । वृषऽयते । नभसा । वेपते । मती ।

सः । मोदते । नसते । साधते । गिरा । नेनिक्ते । अप्सु । यजते । परीमणि ॥३॥

अद्रिमियावनिर्गमस्थोर्वाद्भोर्वाङ्मयां च सुतोऽभिपुतः स सोमः पवते । पाचाणि प्रति गच्छति । यः  
सोमो वृषायते वृषवदाचरति किंच यो मती सुत्वाभिपुतः सप्तमसांतरिक्षेण वेपते सर्वत्र गच्छति स सोमो  
मोदते । हृष्टो भवति । तथा नसते । यहादिषु संक्षिप्तो भवति । किंच गिरा सुत्वा सुतः सन् साधते । सोतृणां  
धनान्नादिकं साधयति । अपि चाप्सु वसतीवर्थास्वासु नेनिक्ते । मुञ्चो भवति । तथा परीमणि देवै रक्षमाये  
यज्ञे देवानां हविष्प्रदानेन पोषके वा यज्ञे यजते । पूजितो भवति ॥

परि शुक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिंचन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं ।

आ यस्मिन्गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणं त्ययियं वरीमभिः ॥४॥

परि । शुक्षं । सहसः । पर्वतऽवृधं । मध्वः । सिंचन्ति । हर्म्यस्य । सक्षणिं ।

आ । यस्मिन् । गावः । सुहुतऽअदः । ऊधनि । मूर्धन् । श्रीणंति । अयियं । वरीमऽभिः ॥४॥

सहसः सहस्रिनो मध्वो मदकराः सोमा शुचं दीप्यमाने शुक्लोके क्षियंतं निवसंतं पर्वतावृधं मेघानां  
पर्वतानां वा वर्धयितारं हर्म्यस्य शत्रुपुरस्य सक्षणिमभिमतारमिन्द्रं परि सिंचन्ति । तथा सुहुतादः सुहुताणां  
हविषां भक्षयितारो गावो मूर्धन्मूर्धनि समुच्छ्रित ऊधनि पयोधारके स्थाने स्थितमयियं मुखं पयो वरीम-  
भिषत्त्वैर्महत्त्वैर्यस्यैवमानगुणविशिष्ट इन्द्र आ श्रीणन्ति । आभिग्रहन्ति । दध्ना पयसा च सोमं श्रीणन्ति  
खलु । तदुच्यते ॥

समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ ।

जिगादुप जयति गोरपीथ्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥५॥

सं । ईमिति । रथं । न । भुरिजोः । अहेषत् । दश । स्वसारः । अदितेः । उपऽस्थे । आ ।  
जिगात् । उप । जयति । गोः । अपीच्यं । पदं । यत् । अस्य । मनुष्याः । अजीजनन् ॥ ५ ॥

भुरिजोः । बाहुनामैतत् । विधत्ति पदार्थानाम्भ्यामिति । तयोर्बाहोर्दश दशसंख्याकाः स्वसारः सर्वस्वसार-  
शशीला अंगुलयोऽदितेर्भूमेरपस्ते समीपे देवयजनदेश ईमेन सोममामिमुख्येन समहेषत् । संप्रेरयन्ति ॥ हि  
वर्धनगत्योः । सुष्ठि रूपं ॥ कथमिव । रथं न रथं यथांगुलयः प्रेरयन्ति तद्वत् । स सोमो जिगात् । पाचाणि  
गच्छति । किंच गोर्धेनोरपीच्यमन्तर्हितं पय उप जयति । तदानीमुपगच्छति । यदादा मनुष्या मननीयगा-  
द्यावन्तः सोतारोऽस्य सोमस्य पदं स्नानमजीजनन् जनयन्ति तदानीमित्यर्थः ॥ ॥ २५ ॥

अमिष्टवे श्वेनो न योनिमित्येषा । सूचितं च । संप्रेषितः श्वेनो न योनिं सदनं धिया कृतं । आ० ४. ७. ।  
इति ॥ अपीधोमप्रणयनेऽप्येषा । सूचितं च । अंतश्च प्रागा अदितिर्भवासि श्वेनो न योनिं सदनं धिया कृतं  
। आ० ४. १०. । इति ॥

श्वेनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति ।

ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥ ६ ॥

श्वेनः । न । योनिं । सदनं । धिया । कृतं । हिरण्ययं । आऽसदं । देवः । आ । ईषति ।

आ । ईमिति । रिणन्ति । बर्हिषि । प्रियं । गिरा । अश्वः । न । देवान् । अपि । एति । यज्ञियः ॥ ६ ॥

देवो योतमानः पवमानो धिया स्वकर्मणा कृतं संपादितं हिरण्ययं हिरण्ययमासदमासंबाभिधान-  
मेषति । अमिमुखं गच्छति ॥ ईषतिर्गत्यर्थस्य व्यत्ययेन परस्मैपदं ॥ तच्च दृष्टान्तः । श्वेनो न योनिं कुलायं यथा  
श्वेनः पथी प्रविशति तद्वत् । तत ईमेन प्रियं प्रीणयितारं सोमं गिरा सुत्वा बर्हिषि यज्ञ आ रिणन्ति ।  
सोतारोऽमिमुखं प्रेरयन्ति । सुवन्तीत्यर्थः । अन्तर् यज्ञियो यथाहो यष्टव्योऽयं सोमोऽश्वो नाश्व इव स्वरथा  
देवानयेति । अमिगच्छति ॥

परा व्यक्तो अरूषो दिवः कविर्वृषा चिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि ।

सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरूषसो वि राजति ॥ ७ ॥

परा । विऽअक्तः । अरूषः । दिवः । कविः । वृषा । चिऽपृष्ठः । अनविष्ट । गाः । अभि ।

सहस्रऽनीतिः । यतिः । पराऽयतिः । रेभः । न । पूर्वीः । उषसः । वि । राजति ॥ ७ ॥

अरूष आरौचमानः कविः क्रांतप्रज्ञः सोमो व्यक्तो विसृष्टधारायुक्तः । यदा । वसतीवरीभिर्विशेषेण  
धितः सन् । दिवोऽन्तरिक्षात् परा पराबुखमागच्छति । पवित्राद्गोणकलशं परागच्छतीत्यर्थः । वृषा वृषभ-  
स्त्रिपृष्ठः । चीणि सवनानि पृष्ठान्यश्नेति चिपृष्ठः सोमस्य सर्वेषु विद्यमानत्वात्तस्मात्त्रिपृष्ठः सोमो गाः सोतुभिः  
क्रियमाणाः सुतीरभिलक्ष्यानविष्ट । शब्दायते ॥ नु शब्दे ॥ किंच सहस्रणीतिः सहस्रनयनः । प्रयोगवाङ्-  
मपि च ग्रहेषु चमसेषु च सहस्रविधनयनत्वं । अत एव यतिः पाचादीनि प्रत्यागन्ता परायतिः कलशान्  
प्रति परागन्ता भवति । सोऽयं पूर्वीर्बह्वीरूषसः ॥ कालाध्वनोरिति द्वितीया ॥ बज्रवृषः कालेषु रेभो न ॥ रेभु  
शब्दे ॥ शब्दायमानः सोतेव वि राजति । विशेषेण दीप्यते । तेषु सोमस्याभिषूयमाण्यात् सोता खलु देवानां  
सुतिकरणेन राजति ॥

त्वेषं रूपं कृणुते वर्यो अस्य स यचाशयत्समृता सेधति सिधः ।

अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गोअयया ॥ ८ ॥



त्वेधं । रूपं । कृणुते । वर्णैः । अस्य । सः । यत्र । अशयत् । संऽकृता । सेधति । सिधः ।  
अप्ताः । याति । स्वधया । दैव्यं । जनं । सं । सुऽस्तुती । नसते । सं । गोऽञ्जयया ॥ ८ ॥

अस्य ॥ अन्वादेशेऽत्रादेशः ॥ अस्य सोमस्य स्वमृतो वर्णः शत्रूणां निवारको रश्मिस्त्वेष दीप्यमानं रूपं  
कृणुते । करोति । स रश्मिर्यत्र समृता ॥ अर्तेः क्षिति रूपं ॥ सम्यक् प्राप्यते योजुमिरयेति संयामः । अक्षिन्  
समृता युष्टेऽशयत् श्रेते तिष्ठति ॥ श्रीको सङ्घि वज्रं वंदसीति शपो जुगमावः ॥ तत्र युष्टे स रश्मिः सिधः  
शोषकाञ्छत्रुं सेधति । निषेधति । हिनसीति यावत् ॥ वाक्यभेदादनिघातः ॥ किंचाप्ताः ॥ सन्नेतिर्विव्याले  
कृते रूपं ॥ अपामुदकानां दाता । यदा । वसतीवर्षाख्यानामपां संभक्ता । सोऽयं स्वधया हवीरूपेणाग्निं  
सह दैव्यं देवानां संबंधिनं जनं प्रति याति । गच्छति । अपि च सोऽयं सुष्टुती सुसुखा सं । संगच्छते । उपस-  
र्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः । किंच स सोमो गोञ्जयया गवादिमुख्यया यया वाचा सोतारः पयून् याचते  
तथा वाचा सं नसते । संगतो भवति ॥ नसतिर्गत्यर्थः । मित्रवाक्यत्वादनिघातः ॥

उक्षेवं यूथा परियन्त्रावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।

दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ॥ ९ ॥

उक्षाऽइव । यूथा । परिऽयन् । अरावीत् । अधि । त्विषीः । अधित । सूर्यस्य ।

दिव्यः । सुऽपर्णः । अव । चक्षत । क्षां । सोमः । परि । क्रतुना । पश्यते । जाः ॥ ९ ॥

उक्षेवं वृषम इव यूथा गोयूथानि प्रत्यागच्छञ्छब्दं करोति तद्वदयं सोमः सुतीः परियन्त्रावीदधिरा-  
वीत् । शब्दायते । ततः सूर्यस्य सर्वस्य प्रेरकस्यादित्यस्य त्विषीर्दीप्तीरधधित । अधिदधाति । सूर्यात्मना  
बुल्लोकेऽवतिष्ठत इत्यर्थः ॥ दधातेर्लुङि क्षाञ्चोरिष्टेतीत्यन्ति ॥ किंच दिव्यो दिवि भवः सुपर्णः सुपतनः  
श्लेष्मण्या गायत्र्याहृतस्याच्छोभनगमनः सोमः सां । पृथिवीनामेतत् चिर्यति निवसंत्येति । सां पृथिवीमय  
चक्षत । अवपश्यति ॥ चष्टेर्लुङि वज्रं वंदसीति शपो जुगमावः ॥ ततः सोमो जा जाताः प्रजाः क्रतुना  
प्रज्ञानेन परि पश्यति । परितः पश्यति ॥ व्यत्ययेनात्मनेपदं ॥ २६ ॥

हरिं मृजंतीति नवर्षं पंचमं सूक्तमागिरसस्य हरिमंतस्त्रार्षं पवमानसोमदेवतात्वं । जागतमूर्ध्वं प्रागुग्रनखः  
। अगुं च्छ० ९. ६७. इति परिभाषया जागतं । तथा चागुक्तांतं । हरिं मृजंति हरिमंत इति ॥ गतो विनियोगः ॥

हरिं मृजंत्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।

उद्धाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित्परिप्रियः ॥ १ ॥

हरिं । मृजंति । अरुषः । न । युज्यते । सं । धेनुऽभिः । कलशे । सोमः । अज्यते ।

उत् । वाचं । ईरयति । हिन्वते । मती । पुरुऽस्तुतस्य । कति । चित् । परिऽप्रियः ॥ १ ॥

हरिं हरितवर्णं सोममृत्विजो मृजंति । मार्चयंति ॥ मृशेरजादौ संक्रमे विभाषानुद्धिरयति । म० १. १. ३. १०.  
का० १. १. ५. इति तत्र मृशेरमावः ॥ सोऽयमरुषः ॥ अर्तेऽवपप्रत्ययः ॥ गमनशीलोऽयं इव युज्यते । रंज्रा-  
दिभिः संयुज्यते । किंच कलशे । कलशो द्रोणाभिधानः । क्षितः सोमो धेनुभिर्गोविकारिर्द्धादिभिः समज्यते ।  
समक्तः सितो भवति । अपि च सोमो यदा वाचं शब्दमुदीरयति उद्धमयति । शब्दं करोतीत्यर्थः । तदा  
सोतारस्य मती । सुपां सुगुणिति द्वितीयायाः पूर्वसवर्णदीर्घः । सुतिं हिन्वते । प्रेरयंति ॥ हि गतो वृद्धो चेति  
स्यादिः । आत्मनेपदी ॥ ततः सोचामिष्टुतः स पुरुष्टुतस्य वज्रलोचयुक्तस्य कोतुः परिप्रियः ॥ प्रीष्ट तर्पणे ।  
क्षिप । शरीयकादेशः । क्रतुत्तरपदप्रकृतिसरसं ॥ परितः प्रीणयितुं कति चित् चिर्यति अनाति प्रपच्छति ॥

साकं वदन्ति बृहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः ।  
यदीं मृजन्ति सुगमस्तयो नरः सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥ २ ॥  
साकं । वदन्ति । बृहवः । मनीषिणः । इन्द्रस्य । सोमं । जठरे । यत् । आऽदुहुः ।  
यदि । मृजन्ति । सुऽगमस्तयः । नरः । सऽनीळाभिः । दशऽभिः । काम्यं । मधु ॥ २ ॥

मनीषिणो मनस ईशितारः प्राज्ञा बृहवः स्रोतारः साकं सहैव युगपत्संवाहन्ति । तदा क्षुवंति ।  
यदेन्द्रस्य जठरे द्रोणकलशे सोममादुहः अत्विजो दुदुहः तदाभिषुवंतीति ॥ दुहेर्ल्युप्ति रूपं । द्विर्वचनस्य  
छन्दसि विकल्पितत्वाच्च द्विर्वचनाभावः ॥ किंच यदि यदा सुगमस्तयः शोभनवाक्का नरः कर्मनेतारो  
मनुष्याः काम्यं काम्यमाणं मधु मदकरं सोमं सनीळाभिर्दशसंख्याकाभिर्मृजन्ति सोममभिषुवंति तदा  
वदन्तीत्यन्वयः ॥

अरममाणो अयेति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवं ।  
अन्वस्मै जोषमभरद्विनंगुसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः स्वेति जामिभिः ॥ ३ ॥  
अरममाणः । अति । एति । गाः । अभि । सूर्यस्य । प्रियं । दुहितुः । तिरः । रवं ।  
अनु । अस्मै । जोषं । अभरत् । विनंगुसः । सं । द्वयीभिः । स्वसृभिः । स्वेति । जामिभिः ॥ ३ ॥

स सोमोऽरममाणोऽनुपरतः सन् । पुनः पुनर्देवानां प्रीयमाणाय यहादीनि प्रविशन्नित्यर्थः । गा गोविका-  
रानामयणानभिलक्ष्यत्येति । अतिक्रम्य गच्छति । ततः शब्दाद्यमानः सोमः सूर्यस्तादित्यस्य दुहितुष्यसः  
प्रियं रवं शब्दं तिरः । तिरस्करोति । तस्मिन्काले सोमाभिषवध्वनिर्महाभ्रवतीत्यर्थः । विनंगुसः । विनं  
कमनीयं सोमं गृह्णातीति विनंगुसः स्रोता । जोषं ॥ जुषेर्धनि रूपं ॥ पर्याप्तं सोमं तस्मै सोमायान्वभरत् ।  
अनुभरति । करोतीति यावत् । सोऽयं सोमो द्वयोर्मिद्वीक्षां पाणिभ्यामुत्पन्नाभिर्जामिभिः परस्परं बंधुभिः  
स्वसृभिः कर्मकरणाथमितस्ततो गच्छन्तीभिरंगुलीभिः सं वेति । संगच्छते ॥ षि निवासगत्योः । छांदसो  
विकरणस्य लुक् ॥

नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इंदुर्चतुर्वियः ।  
पुरंधिवान्मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥ ४ ॥  
नृऽधूतः । अद्रिऽसुतः । बर्हिषि । प्रियः । पतिः । गवां । प्रऽदिवः । इंदुः । चतुर्वियः ।  
पुरंधिऽवान् । मनुषः । यज्ञऽसाधनः । शुचिः । धिया । पवते । सोमः । इन्द्र । ते ॥ ४ ॥

हे इन्द्र पवमानगुणविशिष्टेन्द्र ते स्वर्ध्वं बर्हिषि यज्ञेऽयं सोमो धिया स्वेन कर्मणा धारया वा पवते ।  
पात्रेषु खंदते । कीदृशः । नृधूतः कर्मनेतृर्मनुष्यैः शोधितः अद्रिषुतो यावभिरभिषुतः प्रियो देवानां  
प्रीययिता गवां पतिः स्वामी । इंद्रो गा अलभत तस्माद्गवां स्वामी । प्रदिवः । पुराणनामितत् । पुराणः इंदुः  
पात्रेषु चरन् अत्विज्य अती जातः ॥ अतोरस्य छन्दसि चत् । पा० ५. १. १०५-१०६. इति चत् । चित्स्वेन  
पदसंज्ञायां भसंज्ञानिमित्त ओर्गुणो न भवति ॥ पुरंधिवान् । पुरंधिर्बद्धधीरिति चास्काः । नि० ६. १३. ।  
वक्त्रकर्मवान् मनुषो मनुष्यस्य यज्ञसाधनः शुचिर्दीप्यमानः । यदा । दशामविषेण मुहः । एवंगुणः सोम  
इंद्रार्थं पवत इति संबंधः ॥

नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।  
आप्राः क्रतून्समजैरध्वरे मतीर्वेन दुषच्छम्बोऽरासद्वरिः ॥ ५ ॥



नृवाहुऽभ्यां । चोदितः । धारया । सुतः । अनुऽस्वधं । पवते । सोमः । इन्द्र । ते ।  
आ । अप्राः । क्रतून् । सं । अजैः । अध्वरे । मतीः । वे । न । दुऽसत् । चम्बोः । आ ।  
असदत् । हरिः ॥ ५ ॥

हे इन्द्र पवमानगुणविशिष्ट नृवाहुभ्यां कर्मनेतृणामुल्लिखं वाहुभ्यां चोदितः प्रेरितो धारया सुतो  
ऽभिपुतः । यथा धारा भवति तथाभिपुत इत्यर्थः । तादृशः सोमस्य तवानुस्वधं बलमनु बलार्थं । यथा ।  
स्वधेत्यन्ननाम । अन्नार्थं पवते । आगच्छति । ततः स त्वं सोमपानेन क्रतून् कर्माणां प्राः । आपूरयसि । किंवा-  
ध्वरे यज्ञे मतीरमिमानाञ्छत्रून समवेः । सम्यक्वितवानसि ॥ त्वि जये । कुक्षि सिपि सिचो बल्लवं छंदसीती-  
हभावः । सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः ॥ सोऽयं हरिर्हरितवर्यः सोमस्यो रधिषवणफलकयोरासदत् । आसीदति ।  
तच्च दृष्टान्तः । वेर्न ॥ वी गत्यादिषु । अन्येभ्योऽपि दृष्टान्त इति विद् । सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः ॥  
यथा वेः पक्षी द्रुषत् द्रुमे सीदतीति तद्वत् ॥ द्रुषत् । पूर्वपदादिति वत् ॥ ॥ २७ ॥

अंशुं दुहन्ति स्तनयैतमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः ।  
समी गावो मत्तयो यन्ति संयतं चृतस्य योना सदेने पुनर्भुवः ॥ ६ ॥  
अंशुं । दुहन्ति । स्तनयैतं । अक्षितं । कविं । कवयः । अपसः । मनीषिणः ।  
सं । इमिति । गावः । मत्तयः । यन्ति । संऽयतः । चृतस्य । योना । सदेने । पुनःऽभुवः ॥ ६ ॥

कवयः क्रांतप्रज्ञा अपसः कर्मवन्तो मनीषिणः । मनस ईशा मनीषा बुद्धिः । तद्वन्त अस्मिन् स्तनयन्तं  
शब्दायमानमक्षितमधीणं कविं क्रांतदर्शिनमंशुं सोमं दुहन्ति । अभिपुष्वन्ति । ततः पुनर्भुवः पुनर्भवनशीला  
गावः पशवो मत्तयो मगनीयाः सुतयश्च संयतः परस्परं संगताः सत्य चतस्र सत्यभूतस्य यज्ञस्य योना योनी  
योनिस्यानीय उत्पत्तिभूते सदन उत्तरवेद्याख्य ईमेन सोमं सं यन्ति । गच्छन्ति ॥

नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवोऽपामूर्मो सिंधुष्वन्तरिक्षितः ।  
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ७ ॥  
नाभा । पृथिव्याः । धरुणः । महः । दिवः । अपां । ऊर्मो । सिंधुषु । अन्तः । उक्षितः ।  
इन्द्रस्य । वज्रः । वृषभः । विभुऽवसुः । सोमः । हृदे । पवते । चारु । मत्सरः ॥ ७ ॥

महो महतो दिवो बुलोकस्य धरुणो धारकोऽयं सोमः पृथिव्या विस्तीर्णाय भूमेर्नामा नामो नाभि-  
स्थानीय उच्छ्रितप्रदेशे यदुत्तरवेदीनाभिः । ऐ० ब्रा० १. २८. । इत्याद्यानात् उत्तरवेदिस्थान अस्तिविमर्गितः  
सिंधुषु खंदमानासु नदीष्वपामुदकानामूर्मो संघेऽन्तर्मध्य उचितः स्थितः । अन्तरिक्षस्थानमध्ये वर्तमान इत्यर्थः ।  
तादृश इन्द्रस्य वज्रो वक्रस्थानीयो वृषभः कामानां वर्धिता अत एव विभूवसुर्व्याप्तधनः सोमश्चात्र कक्षायां यथा  
भवति तथेन्द्रस्य मत्सरो मादयिता सन् हृदे मगसे सुखाय पवते । आगच्छति ॥

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिष्यन्नाधून्वते च सुक्रतो ।  
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशंगं बहुलं वसीमहि ॥ ८ ॥  
सः । तु । पवस्व । परि । पार्थिवं । रजः । स्तोत्रे । शिष्यन् । आऽधून्वते । च । सुक्रतो  
इति सुऽक्रतो ।  
मा । नः । निः । भाक् । वसुनः । सदनऽस्पृशः । रयिं । पिशंगं । बहुलं । वसीमहि ॥ ८ ॥

हे सुक्रतो शोभनकर्मण सुप्रद्य वा सोम तादृशस्त्वं पार्थिवं रजो लोकं सचीकृत्य तु चिप्रं परि पवस्व ।  
परितः सर्वतः चर । किं कुर्वन् । आधून्वतेऽदाभ्ययहे धिमिरंसुमिराधावनं कुर्वति । तथा भगवतापसवेन  
सूचितं । तैरेनं चतुराधुनोति पंचकलः सप्तकलो वेति । तस्मै धनादिकं शिचनं प्रयच्छन् परि पवसेति  
समन्वयः । ततस्त्वं नोऽस्मान्सुनो धनाका निर्भाक् । मा निर्भाचीः । कीदृशात् । सदनस्युशः । येन भूतेन  
वसुना सदनानि गृहान् पुत्रादीन् सृशति तादृशाद्गृहादिकस्य प्रदातुर्धनाका वियुजः ॥ भाक् । भज सेवायां ।  
मुक्तिं सिपि सिपि वज्रसं कंदसीतीडागमाभावः । एकाच इतीदृशप्रतिषेधः । हलंतलक्षणा वृद्धिः । पा० ७. २. ३. ।  
सिपो लोपः ॥ यस्मादेवं तस्मादयं पिशंगं जगत्कल्पं जनकादिना अत एव वज्रसं प्रभूतं रथिं धनं वसीमहि ।  
आच्छादयेम । वज्रधनवतो भवेमेत्यर्थः ॥ वस आच्छादये । आदादिकः । लिङि रूपं ॥

आ तू न इंदो शतदात्वर्थं सहस्रं दातु पशुमक्षिरंण्यवत् ।

उप मास्व बृहती रेवतीरिषोऽधि स्तोत्रस्य पवमान नो गहि ॥९॥

आ । तु । नः । इंदो इति । शतं ऽ दातु । अर्थं । सहस्रं ऽ दातु । पशुं ऽ मत् । हिरण्यं ऽ वत् ।

उप । मास्व । बृहतीः । रेवतीः । इषः । अधि । स्तोत्रस्य । पवमान । नः । गहि ॥९॥

हे इंदो पवमान नोऽस्मभ्यं तु चिप्रं धनमायच्छ । कीदृशं । शतदातु । दातु दानं । वज्रदानं अश्वमय-  
सहितं सहस्रदातु सहस्रदानोपेतं पशुमत्पश्वादिपुक्तं हिरण्यवज्रिरण्यपुक्तं च धनं देहि । तथा हे सोम बृहतीः  
प्रभूतानि रेवतीर्धनवन्ति । यद्वा । पयसो दातारः पशवः । तद्वंतीषोऽन्नानि चास्यभ्यमुप भास्व । उपनिर्मिमीष्व ।  
कुर्वन्ति यावत् । किंच हे पवमान नोऽस्माकमेवंभूतस्य स्तोत्रस्य अवगाथाधि गहि । आगच्छ । क्रियार्थोप-  
पदस्य । पा० २. ३. १४. । इति चतुर्थी । चतुर्थ्यर्थे वज्रसं कंदसीति षष्ठी ॥ ॥ २८ ॥

सक्त इति नवचं षष्ठं सूक्तमांगिरसस्य पवित्रस्यार्थं जागतं पवमानसोमदेवतायं । तथा चानुक्रम्यति । सक्ते  
पवित्र इति ॥ प्रवर्त्येभिष्टव एतत्सूक्तं । सूचितं च । सक्ते द्रुप्तस्यायं वेनस्योदयत्पुन्यगर्भाः । आ० ४. ६. । इति ॥

सक्ते द्रुप्तस्य धर्मतः समस्वरन्तस्य योनां समरंत नाभयः ।

चीन्स मूर्धो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥१॥

सक्ते । द्रुप्तस्य । धर्मतः । सं । अस्वरन् । चतृतस्य । योनां । सं । अरंत । नाभयः ।

चीन् । सः । मूर्धः । असुरः । चक्रे । आरभे । सत्यस्य । नावः । सुऽकृतं । अपीपरन् ॥१॥

सक्ते यज्ञस्य हनुस्त्वानीये । सक्त ओष्ठप्रांतो हनुवच्छति । अधिपवणफलके धमतोऽभिपूयमाणस्य द्रुप्तस्य  
सोमस्यांशवः समस्वरन् । संगच्छंते । तदास्त्यशब्दयन्वा । अतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य योना योनावुत्पत्तिस्थाने  
नाभयः सोमरसाः समरंत । संगच्छंते ॥ अतः समो गमीत्यादिनात्मनेपदं । सर्तिशास्वर्तिभ्यसेति त्रिरङ् ॥  
अथासुरो यज्ञवान् सर्वेषां प्रीणनात् प्राणदाता वा स सोमो मूर्धः समुच्छितांस्त्रीहोक्ता नारम आरंभणाय  
मनुष्यदेवादीनां संचरणाय करोति । किंच सत्यस्य सत्यभूतस्य सोमस्य नावो नौका इव स्थितास्ततः  
स्यावः । आदितामयलोक्थध्रुवस्याव इति । ताः स्यावः सुकृतं सुष्ठु कर्माणि कुर्वन्त यजमानमपीपरन् ।  
अभिमतदानेन पूजयन्ति वा ॥ पारथिर्बुक्तिं चकि सन्वन्नावाभ्यसेलदीर्घाः ॥

सम्यक् सम्यंचो महिषा अहेषत सिंधोरूर्मावधि वेना अवीविपन् ।

मधोर्धाराभिर्जनयंतो अर्कमिप्रियामिंद्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥२॥

सम्यक् । सम्यंचः । महिषाः । अहेषत । सिंधोः । जर्मौ । अधि । वेनाः । अवीविपन् ।

मधोः । धाराभिः । जनयंतः । अर्कः । इत् । प्रियां । इंद्रस्य । तन्वं । अवीवृधन् ॥२॥



महिषाः पूज्या महातो वल्लिजः सम्यंच परस्परं संगताः संतः सम्यग्वेषत । सोमं सम्यक् प्रेरयन्ति । अभि-  
पुष्पन्तीति यावत् ॥ हि मती वृषी च । कुडि सिचि रूपं ॥ ततो वेनाः । वेनतेः कांतिकर्मण इति यास्कः  
। मि० १०. ३८. । स्वर्गादिफलं कामयमाना ऋत्विजः सिंचोः खंदमानसोदकसोमोवधि संचे वसतीवर्यादिषु  
जलेषु सोममवीविपन् । कंपयन्ति । तच्च प्रेरयन्तीत्यर्थः ॥ वपतेर्ल्यंतस्व कुडि चडि गौ चड्युपधाया व्रस्व इति  
व्रस्वः ॥ किंचार्कमर्चनीयं सोचं अनयंतः कुर्वन्तस्ते त्रिषां प्रियतमामिन्द्रस्व तन्वं धाम च मधोर्मदकरस्व  
सोमस्व धारामिरवीवृधन् । वर्धितवन्तः ॥ वर्धतेर्कुडि चडि रूपं ॥

पविचंवन्तः परि वाचमासते पितृषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतं ।

महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभे ॥३॥

पविचंऽवन्तः । परि । वाचं । आसते । पिता । एषां । प्रत्नः । अभि । रक्षति । व्रतं ।

महः । समुद्रं । वरुणः । तिरः । दधे । धीराः । इत् । शेकुः । धरुणेषु । आरभे ॥३॥

पविचवन्तः पविषेण शोधकेन सामर्थेन युताः सोमस्य रश्मयो वाचं सोमस्त्रितां माध्यमिकां वाचं  
पर्यावृत्ति । पर्युपविशन्ति । सोमोऽन्तरिक्षे तिष्ठति खलु सोमो वै रात्रौ गंधर्वेष्वसीत् । ऐ० ब्रा० १. २७. । इत्या-  
द्यानात् । ततः प्रतः पुराण एषां रश्मीनां पितृव्यं सोमस्य व्रतं प्रकाशनात्मकं कर्माभि रचति । अचितं  
करोति । किंच वरुणः सर्वस्य स्तनेजसाच्छादकः सोऽयं सोमो महो महत् समुद्रं । अन्तरिक्षमस्मिन् । महदं-  
तरिक्षं ते रश्मिभिरुत्तिरो दधे । अन्तर्हितमकरोत् । सर्वं व्याप्नोदिति यावत् । तमिमं सोमं धीराः । इद्व-  
धारणे । कर्मणि कुशलाः प्राज्ञा एवर्ल्लिजो धरुणेषु सर्वस्य धारकेषु वसतीवर्यास्त्रीषूदकेष्वारभन्मरुद्भुं शेकुः ।  
शक्नुवन्ति च ॥ रमेक्षुमर्षे शक्ति यमुत्कमुत्तौ । पा० ३. ४. १२. । इति वसुक् । क्षित्सरेण मध्योदात्तः ॥

सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असृष्टतः ।

अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः संति सेतवः ॥४॥

सहस्रंऽधारे । अव । ते । सं । अस्वरन् । दिवः । नाके । मधुजिह्वाः । असृष्टतः ।

अस्य । स्पशः । न । नि । मिषन्ति । भूर्णयः । पदेऽपदे । पाशिनः । संति । सेतवः ॥४॥

सहस्रधारेऽव । सहस्रधारा यस्याव्रवन्ति तत्तथोक्तमन्तरिक्षं । तस्मिन्वर्तमानासौ सोमरश्मयोऽवावशात्  
क्षितां पृथिवीं वृद्धा संयोजयन्तीत्यर्थः । किंच दिवो युजोक्ता नाके समुच्छिते देशे वर्तमाना मधुजिह्वा  
मध्यम्याः । सोमतेजसाग्निभ्यो हि मधूत्पन्नं भवति । अतो मधुजिह्वाः । असृष्टतः संगतवार्जताः पुष्कपुष्पदिक्-  
वक्षिता अस्य सोमस्य स्तमुताः स्पशः सारभूता रश्मयो भूर्णयः क्षिप्रगामिनः संतो न नि मिषन्ति । निमेषं न  
कुर्वन्ति । किंतु पापिनः सुकृतिनश्च जातुं सर्वदा जायतीत्यर्थः । अथवा राजानो दुष्टान्विवारयितुं सर्वदा  
जागरणं कुर्वन्ति तद्वत् । एवं ते रश्मयः पदे पदे स्थाने स्थाने सेतवः संबन्धाः संतः पाशिनः पापकृतां बाधकाः  
सन्ति । भवन्ति ॥

पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नुवा शोचन्तः सुदहन्तो अव्रतान् ।

इंद्रश्चिष्टामपं धमन्ति मायया त्वचमसिंक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥५॥

पितुः । मातुः । अधि । आ । ये । संऽअस्वरन् । उवा । शोचन्तः । सुदहन्तः । अव्रतान् ।

इंद्रश्चिष्टां । अपं । धमन्ति । मायया । त्वचं । असिंक्नीं । भूमनः । दिवः । परि ॥५॥

पितुर्मातुर्वाचापृथिव्योः । यौर्मै पिता जगिता जगिरच बंधुर्मै माता पृथिवी महीधं । ऋ० १. १६४. ३३. ।

रथादिषु बावापृथिवीर्मातापितृत्वान्मानात् । बावापृथिवीभ्यां ये सोमरश्मयोऽध्या समस्वरन् अधिकं प्रादुर्भूता अभवन् त अचर्त्विग्भिः क्रियमाणया जुत्वा शोचंतो दीप्यमाना अग्रतान् कर्मरहितान्यजमानान् संदहंतः सम्यग्निनाशयंतस्ते रश्मय इन्द्रविष्टामिन्द्राय देवकारिणीं ॥ ते च । पा० ६-२. ४५. इति पूर्वपदप्रकृतित्त्वरः ॥ इद्रेण विष्टां वा । असिक्तीं । राक्षिनामेतत् । राक्षित्वकृष्णरूपां त्वचं । राक्षसमित्यर्थः । मायया कर्मणा प्रज्ञया वा भूमनो विसृतामूलोकादिवस्वरि बुलोकाच्चाप धमन्ति । अपगतं कुर्वन्ति । अपघ्नन्तीत्यर्थः ॥ ॥२९॥

प्रान्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयंचासो रभसस्य मंतवः ।

अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पंथां न तरन्ति दुष्कृतः ॥ ६ ॥

प्रान्नात् । मानात् । अधि । आ । ये । संऽअस्वरन् । श्लोकऽयंचासः । रभसस्य । मंतवः ।

अप । अनक्षासः । बधिराः । अहासत । ऋतस्य । पंथां । न । तरन्ति । दुऽकृतः ॥ ६ ॥

श्लोकयंचासः । श्लोकाः सुतयः । सुतिनियमना रभसस्य मंतवो वेगमभिमन्यमानाः एतादृशा ये सोम-रश्मयः प्रत्नात्पराणां मानादंतरिषादध्या समस्वरन् सह प्रादुर्भूता अभवन् तान्नश्मीननचासश्चुर्वर्जिताः साधु पदार्थानामद्रष्टारो नरा बधिरा देवतासुतिश्रवणवर्जिताः पापकृतो नरश्चापाहासत । तान्परित्यजन्ति । दर्शिनः श्रवणवन्तो मेधाविनस्तु न परिजहति किंतु कुर्वन्ति । तदेवाह । ऋतस्य सत्यस्य पंथां मार्गभूतमेवां यणं दुष्कृतः पापकृतो नरा न तरन्ति । नोत्तारयन्ति । सुकृतस्तु तरन्तीत्यभिप्रायः ॥

सहस्रधारे वितन्ते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।

रुद्रास एषामिषिरासो अदुहः स्पशः स्वंचः सुदृशो नृचक्षसः ॥ ७ ॥

सहस्रऽधारे । विऽतन्ते । पवित्रे । आ । वाचं । पुनन्ति । कवयः । मनीषिणः ।

रुद्रासः । एषां । इषिरासः । अदुहः । स्पशः । सुऽअंचः । सुऽदृशः । नृऽचक्षसः ॥ ७ ॥

कवयः क्रांतकर्माणाः अत एव मनीषिणः प्राज्ञा अस्त्रिजः सहस्रधार अनेकधारोपेते वितन्ते कर्मणि विधुते पवित्रे मुच्युत्पादके सोमे वर्तमानां वाचं माध्यमिकां । सोमः खलु विश्वावसुप्रभृतिगंधर्वाश्चांतरिक्षे ऽतिष्ठन् सोमो वै रावा गंधर्वेष्व्वासीदिति श्रवणात् तच्च वर्तमानं सोमं देवा गोपया वाचा क्रीतवन्तः । तदा सोमे वाक्तिष्ठतीति शक्यते वक्तुं । तस्मात्सोमे स्थितां माध्यमिकां वाचमा पुनन्ति । संस्कुर्वन्ति । कुर्वन्तीति यावत् । य उक्तगुणा मरुतां मातरं माध्यमिकां वाचं कुर्वन्ति तेषां रुद्रासो रुद्रपुत्रा मध्यमवाचः पुत्रा मरुतः स्पर्शो वाचा वशिर्नो भवन्ति । कीदृशाः । इषिरा गमनशीला अदुहः स्तोतृणामद्रोऽधारः । यदा ॥ द्रुष्टेः कर्मणि क्विबौणादिकः ॥ परिरहिंस्ताः । स्वंचः शोभनांचनाः अत एव सुदृशः सुदर्शना नृचक्षसो नृणां कर्म-नेतृणां द्रष्टारः ॥

ऋतस्य गोपा न दभाय सुकतुस्त्री ष पवित्रा हृद्यं पतरा दधे ।

विद्वान्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥ ८ ॥

ऋतस्य । गोपाः । न । दभाय । सुऽकतुः । ची । सः । पवित्रा । हृदि । अंतः । आ । दधे ।

विद्वान् । सः । विश्वा । भुवना । अभि । पश्यति । अवं । अजुष्टान् । विध्यति । कर्ते ।

अव्रतान् ॥ ८ ॥

अतस्त सत्यभूतस्त यज्ञस्त गोपा गोपायिता अत एव सुकतुः शोभनकर्मा सोमो न दभाय दंभाय संभ-



जाय न भवति । परैर्देमयितुं न शक्यत इत्यर्थः । किं स सोमस्त्री ॥ श्रेष्ठं दक्षि चङ्गलमिति जुक् ॥ नीयि पवित्राभिवायुसूर्यात्मकानि नीयि पवित्राणि इत्यंतर्दध्यक्षांतरा दधि । आदधाति । स्वस्ति संमथतीत्यर्थः । अपि च विद्वान् सर्वं जानातः स सोमो विद्या भुवना सर्वाणि भुवनान्यभि पश्यति । ततः कर्ते ॥ करोतिरीया-  
दिवक्षामत्ययः ॥ कर्मस्त्वुष्टानप्रियात् अत एवाप्रतानयजमानानय विध्यति । अवाचुस्त्वान् कृत्वा ताडयति ।  
धिनस्तीति यावत् ॥

चतस्य तंतुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अये वरुणस्य मायया ।

धीराश्चित्तसमिन्क्षंत आशताचा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥ ९ ॥

चतस्य । तंतुः । विततः । पवित्रे । आ । जिह्वायाः । अये । वरुणस्य । मायया ।

धीराः । चित् । तत् । संऽइनक्षंतः । आशत । अच । कर्ते । अव । पदाति । अप्रभुः ॥ ९ ॥

अतस्त्व सत्यभूतस्य यज्ञस्य तंतुसगिता पवित्रेऽविवाक्यमथे दशापवित्रे विततो विद्युतः । यदा । पवित्रे  
ऽंतरिक्षे विद्युतः सोमो वरुणस्य जिह्वाया अये मायया कर्मणा आ । आस्थितः । वरुणजिह्वाय आपस्विष्ठंति ।  
तासु सोमो वसतीति वसतीवर्यायुदकेषु स्थित इत्यर्थः । ततो धीराश्चित् कर्मणि प्राज्ञा एव तद्वरुणजिह्वाय-  
क्षानं समिन्क्षंतः । इण्यतिर्व्यतिकर्मा । संव्याप्तवतः संत आशत । क्षुतिभिर्हविर्मिर्वा प्राप्नुवन् । यः पुनः कर्ते ॥  
आवाधनोरिति द्वितीया ॥ कर्मस्त्वप्रभुः समर्थो न भवति सोऽयमवाक्यमेव लोकेऽव पदाति । अवसात्तरके  
पतति । नोपरि गच्छति ॥ पद गतौ । सेव्याङ्गागमः ॥ तस्मात्सर्वैरपिष्टोमादिकर्म कर्तव्यमित्येवोऽर्थोऽभिहितो  
भवति ॥ ॥ ३० ॥

शिशुर्नैति पवर्चं सप्तमं सूक्तं दीर्घतमसस्य कवीवत आर्थं पवमानसोमदेवताकं । अष्टमी चिष्टुष शिष्टा  
अगल्यः । तथा चाशुक्रम्यते । शिशुर्न कवीवांस्त्रिष्टुबष्टमीति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

शिशुर्न जातोऽव चक्रद्वने स्वर्ग्यैवाज्यरुषः सिषासति ।

दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥ १ ॥

शिशुः । न । जातः । अव । चक्रद्वत् । वने । स्वः । यत् । वाजी । अरुषः । सिषासति ।

दिवः । रेतसा । सचते । पयःऽवृधा । तं । ईमहे । सुमती । शर्म । सऽप्रथः ॥ १ ॥

स पवमानः सोमो वने वननीये वसतीवर्याय उदके जात उत्पन्नः शिशुर्न शिशुरिवाव चक्रद्वत् ।  
अवाचुस्त्वं क्रंदति । तदोदकमध्ये पतञ्जलं करोति खलु । यदा वाजी वसवान्नवान्वाव्य आरोचमानः ।  
यदा । वाज्यस्य इवाव्यः ॥ अर्तेषवच् ॥ गमनशीलः । सोमः स्वः स्वर्गलोकां सिषासति संमत्तुमिच्छति ॥ सनोतिः  
सनीडभाव आत्वं । सनोतिरिति साहितिकं पत्वं ॥ सोऽयं पयोवृधा अवामीषधीनां च पीरस्य वर्धकेन  
रेतसोदकेन सह दिवो शुक्लोकात्सचते । पार्थिवं लोकं समवेति । तं तादृशं प्रविष्टं सोमं सप्रथः सर्वतः पुष्टतरं  
धनादिना युक्तं शर्म गृहं तद्वयं सुमती ॥ सुपां सुशुमिति तृतीयायाः पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ सुमत्या शोमण्या  
सुथिमहे । याचामहे ॥ ईमहे इति याज्ञाकर्म । ईद् गतौ देवादिकः । छांदसः अग्नौ जुक् ॥

दिवो यः स्क्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विन्धतः ।

सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥ २ ॥

दिवः । यः । स्क्भः । धरुणः । सुऽआततः । आऽपूर्णः । अंशुः । परिऽएति । विन्धतः ।

सः । इमे इति । मही इति । रोदसी इति । यक्षत् । आऽवृता । समीचीने इति

संऽईचीने । दाधार । सं । इषः । कविः ॥ २ ॥

दिवो सुखीकस्य स्तंभो विष्कंमयिता संरोजा धरणः सर्वस्य धारकः । यद्वा । पृथिव्या धारकः । विष्टंभो दिवो धरणः पृथिव्याः । अ० ९. ८९. ६. इत्याम्नानात् । तादृशः स्वाततः सुष्ठु सर्वत्र विततो विसृतः अत एवापूर्वः पात्रेषु संपूर्णो योऽंशुः सोमात्मको विद्यतः सर्वतः पर्येति परिगच्छति ॥ तिष्ठि चोदान्तवतीति गतेर्निघातः ॥ स सोम इमे रोदसी यावापृथिव्यावापृतासंभजनीयेन कर्मणा यजत । यजतु । स्ववक्षेन संयो-  
जयत्वित्यर्थः । ततः सोऽयं समीचीने परस्परं संगते यावापृथिव्यौ दाधार । धारयां चकार ॥ तुष्ठादीनामि-  
त्यभ्यासस्य दीर्घः ॥ अनंतरं कविः क्रांतकर्मणोऽस्मानि स्रोतुभ्यः सं प्रयच्छतु । उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ॥

महि॒ ष्सरः॑ सु॒कृतं॑ सो॒म्यं मधू॒र्वी गव्यू॑तिरदि॒तेऽर्जु॑तं॒ य॒ते ।

ई॒शे यो वृ॒ष्टेरि॑त उ॒स्रियो॑ वृ॒षापां॑ ने॒ता य इ॒तऽर्जु॑तिर्गु॒ग्मियः॑ ॥ ३ ॥

महि॑ । ष्सरः । सुऽकृतं । सो॒म्यं । मधु॑ । उ॒र्वी । गव्यू॑तिः । अदि॒तेः । ऋ॒तं । य॒ते ।

ई॒शे । यः । वृ॒ष्टेः । इ॒तः । उ॒स्रियः॑ । वृ॒षा । अ॒पां । ने॒ता । यः । इ॒तःऽर्जु॑तिः । ऋ॒ग्मियः॑ ॥ ३ ॥

अतं सत्यभूतं यच्च यति गच्छति तस्मा इन्द्राय सुकृतं सुष्ठु संस्कृतं सोम्यं सोममयं महि महत् प्रभूतं मधु अधुररसं प्यरो मषणं पानीयं भवति ॥ प्या मषणे ॥ किंच तस्माच्च अं प्रत्यागच्छतामिन्द्रादीनामदितेः पृथिव्या गव्यूतिर्मागं योर्वी विसीर्णो भवति । इन्द्रः शतसहस्रसंख्याकहरिभिः सह गंतुं मार्गं विसीर्णोऽभवदित्यर्थः । य इन्द्र इत इमं लोकं प्रत्यापतन्त्या वृष्टेरीशे ईश्वरो भवति । तथोस्रियः । उस्तेति गोनाम । गोभ्यो ह्रितोऽपा-  
मुदकानां वृषा वर्षको यज्ञस्य नेता नायक इतर्जतिः । इममस्मदीयं यच्च प्रभूतिर्गमनं यस्य स तथोक्तः । एतो गच्छन् य इन्द्र ऋग्मिय ऋगर्हः स्रोतव्यो भवति । तस्मा अयं सोमः पातव्यो भवतीति ॥

प्रवर्गेऽभिष्टव आत्मन्वन्नम इत्येषा । सूचितं च । तदु प्रयत्नतमस्य कर्मात्मन्वन्नमो दुह्यते घृतं पयः । आ० ४. ७. इति ॥

आ॒त्मन्व॒न्नमो॑ दुह्यते॒ घृतं॑ पयं ऋ॒तस्य॑ नाभि॒रमृतं॑ वि जा॒यते॑ ।

स॒मीची॒नाः सु॒दान॑वः प्री॒णन्ति॑ तं नरो॑ हितम॒व मे॒हन्ति॑ पे॒रवः॑ ॥ ४ ॥

आ॒त्मन्ऽवत् । नभः॑ । दुह्य॑ते । घृतं॑ । पयः॑ । ऋ॒तस्य॑ । नाभिः॑ । अ॒मृतं॑ । वि । जा॒यते॑ ।

संऽई॒ची॒नाः । सु॒दान॑वः । प्री॒णन्ति॑ । तं । नरः॑ । हि॒तं । अ॒व । मे॒हन्ति॑ । पे॒रवः॑ ॥ ४ ॥

आत्मन्वत् ॥ अमो लुडिति जुडागमः ॥ आत्मवत्सारवभूतं पयश्च नमो नमस्य आदित्यरूपात्सोमो दुह्यते । किंचर्तस्य यज्ञस्य नाभिः ॥ गृह बंधने । स्वमोर्गपुंसकात् । पा० ७. १. २३. इति सोर्गुप भवति सर्वविधीनां कंदसि विकल्पितत्वात् ॥ नाभि यज्ञस्य बंधकममृतमुदकं च वि जायते । तस्मादेव प्रादुर्भवति । ततः सुदानवः शोभनश्रुतिहविर्दानवतो यजमानाः समीचीनाः परस्परं संगताः संतस्तमिमं सोमं प्रीणयन्ति । श्रुतिभिरप-  
यन्ति । अथ नरो नेतारः पेरवः ॥ पा रचणे । मापोरित्से इन्निति इन्नत्ययः ॥ सर्वस्य रचकाः सोमररमयो हितं निहितमवावसाहर्तमानं पार्थिवमुदकं मेहन्ति । वर्षेति ॥ मिह क्षेत्रेण भौषादिकः ॥ यद्वा । हितमुदकं पृथिवीं प्रति मेहन्ति ॥

अ॒रा॒वीदं॑शुः स॒च॒मान॑ ऊ॒र्मिणा॑ दे॒वाभ्यं॑ म॒नुषे॑ पि॒न्वति॑ त्व॒चं ।

दधा॑ति॒ गर्भ॑मदि॒तेरु॒पस्य॑ आ॒ येन॑ तो॒कं च॒ तन॑यं च॒ धाम॑हे ॥ ५ ॥

अ॒रा॒वीत् । अं॑शुः । स॒च॒मानः॑ । ऊ॒र्मिणा॑ । दे॒वऽअ॒भ्यं॑ । म॒नुषे॑ । पि॒न्वति॑ । त्व॒चं ।

दधा॑ति । गर्भे॑ । अदि॒तेः । उ॒पऽस्ये॑ । आ॒ । येन॑ । तो॒कं । च॒ । तन॑यं । च॒ । धाम॑हे ॥ ५ ॥



कर्मिणा वसतीषयादीनामुदकानां संघेन सचमानोऽयुः सोमोऽरावीत् । शब्दं करोति । किंच स सोमो देवाब्जं ॥ अथ रचणे । अवितुस्तुतंविभ ईरितीप्रत्ययः ॥ देवानां पालयित्रीं त्वचमात्मनः शरीरं मनुष्ये मनुष्याय वचमानाय पित्वति । सिंचति । पात्रेषु चरतीति यावत् । अपि चादितेरदीनायाः पृथिव्या उपस्थे समीप ओषधीषु तं गर्भमा दधाति । सुधामयैः किरणैर्विदधाति । येन गर्भेण वयं लोकं दुःखनाशकं पुत्रं च तनयं । तनोति कुलमिति तनयः पौत्रः । तं च धामहे । दध्महे । धारयामः ॥ दधातिर्लटि वज्रं छंदसीति शपो जुक् ॥ ॥ ३१ ॥

सहस्रधारेऽव ता असृश्वतस्तृतीये संतु रजसि प्रजावतीः ।

चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवो हविर्भरन्त्यमृतं घृतश्रुतः ॥ ६ ॥

सहस्रं धारे । अव । ताः । असृश्वतः । तृतीये । संतु । रजसि । प्रजाऽवतीः ।

चतस्रः । नाभः । निऽहिताः । अवः । दिवः । हविः । भरन्ति । अमृतं । घृतऽश्रुतः ॥ ६ ॥

सहस्रधारे बलदकधारे तृतीये रजसि लोके स्वर्गे वर्तमाना असृश्वतः परस्परमसक्ताः प्रजावतीरुत्पादितप्रजावत्यः सोमस्य स्वभूतास्ता अव संतु । अवस्तात्पृथिव्यां पतंतु । कास्ता इत्याह । चतस्रो नाभस्तपसो बाधिकाः सोमस्य संबन्धिन्यस्तस्रो दीप्तयः कलाः । दिवो शुक्लोकादवोऽवस्तान्निहिताः सोमेन स्थापितास्ता घृतश्रुतो घृतस्रोदकस्य चावयिष्यः सत्यो हविः सोमादिलक्षणं भरन्ति । देवानां प्रयच्छन्ति । तथामृत गोप्योषधीषु च पयोर्ह्यं सुधारूपं च भरन्ति । प्रधिपन्ति ॥

श्वेतं रूपं कृणुते यत्सिषासति सोमो मीढ्वा असुरो वेद भूमनः ।

धिया शमीं सचते सेमभि प्रवद्विवस्त्वधमव दर्षदुद्रिणं ॥ ७ ॥

श्वेतं । रूपं । कृणुते । यत् । सिषासति । सोमः । मीढ्वान् । असुरः । वेद । भूमनः ।

धिया । शमीं । सचते । सः । ई । अभि । प्रऽवत् । दिवः । कर्वधं । अव । दर्षत् । उद्रिणं ॥ ७ ॥

श्वेतं दीप्यमानं शुक्लं रूपं कृणुते तदा करोति यद्यदा सिषासति स्वर्गे संमत्तुमिच्छति । सोमे पाचास्यागं सति तत्तेजसानुरंजितानां तेषां श्वेतं रूपं भवति । ततो मीढ्वान् ॥ मिह सेचने । अस्मात् क्रसी दास्यास्ताह्रा श्रीढ्वांश्चेति निपातनादभिमतरूपसिद्धिः ॥ कामानां सेक्तासुरः प्राज्ञो बलवान् वा सोमो भूमनो बलधनाति वेद । स्त्रोतुभ्यो दातुं जानाति । प्रयच्छतीति यावत् । स ई । सोऽचि लोपे चेदिति सुलोपः ॥ सोऽयं धिय प्रज्ञानेन प्रवत् प्रकृष्टानि शमी ॥ द्वितीयायाः पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ कर्मोप्यभि सचते । अभितः समवेति । किं दिवोऽतारं चादुद्रिणमुदकवतं कर्वधं मेघं । कर्वधशब्देन मेघोऽभिधीयते ॥ तात्स्थान्ताच्छब्दमिति ॥ मेघमा दर्षत् । अवदारयति । विवृतद्वारं करोति । मेघं विदार्थतरिचादुष्टिं करोतीत्यर्थः ॥

अथ श्वेतं कलशं गोभिर्क्तं कार्ष्णं वाज्यक्रमीत्सवान् ।

आ हिन्विरे मनसा देवयंतः कक्षीर्वते शतहिमाय गोनां ॥ ८ ॥

अथ । श्वेतं । कलशं । गोभिः । अक्तं । कार्ष्णं । आ । वाजी । अक्रमीत् । सऽवान्

आ । हिन्विरे । मनसा । देवऽयंतः । कक्षीर्वते । शतऽहिमाय । गोनां ॥ ८ ॥

अधाधानंतरं श्वेतं संप्रति सोमसंस्पर्गाच्छेतवर्णं गोभिर्दक्षैरक्तं संपुक्तं द्रोणकलशं ससवान् संभवन् सोऽक्रमीत् । आक्रमते । कार्ष्णं । कार्ष्णशब्दः काष्ठावचनः । आजिं धावन्तो योद्धारो यां गंतुमिच्छन्ति तस्य ११ VOL. III. 4 Z

काष्ठाया वावी कश्चिदस्य युवं भवमान आक्रमीत् । आक्रमते । सोमः काष्ठायां द्रोणकक्षे पततीत्यर्थः । ततस्तस्यै सोमाय देवयंतो देवानिच्छंत ऋत्विजो मगसा हिविरे । क्षुतीरानिमुख्येन प्रेरयन्ति । तत्र शतहिमाय बह्ममनाय कषीवते स्तोत्रकारिण एतन्नामकाथर्वणे सोमो गोनां वाः पशून् प्रेरयति ॥ गोः पादति । पा० ७. १. ५७. । इति शुडागमः । क्रियायहणं कर्तव्यं । म० १. ४. ३२. । इति संप्रदानसंज्ञा । चतुर्थ्ये वधी ॥

अग्निः सोमं पपृचानस्य ते रसोऽव्यो वारं वि पवमान धावति ।

स मृज्यमानः कविभिर्मदितम् स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये ॥९॥

अत्ऽभिः । सोम । पपृचानस्य । ते । रसः । अव्यः । वारं । वि । पवमान । धावति ।

सः । मृज्यमानः । कविऽभिः । मदिन्ऽतम् । स्वदस्व । इन्द्राय । पवमान । पीतये ॥९॥

हे पवमान पवित्रेण पूयमान हे सोम अन्निर्वसतीवर्यादिभिर्दक्षैः पपृचानस्य संपृच्यमानस्य ते तव रसोऽव्योऽवेर्वारं वारं दशापवित्रं वि धावति । विविधं प्राप्नोति । ततो हे मदितम् मादयितुम हे पवमान सोम त्वं कविभिः क्रांतकर्मभिर्ऋत्विग्भिर्मृज्यमानः पूयमानः सन्निद्राय पीतय इन्द्रस्य पानार्थं स्वदस्व । प्रिय-रसो मव ॥ ३२ ॥

अभि प्रियाणीति पंचर्चमष्टमं सूक्तं । मार्गवस्य कवेरार्यं जागतं पवमानसोमदेवताकं । तथानुक्रम्यते । अभि प्रियाणि पंच कविरिति ॥ गतो विनियोगः ॥

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यज्ञो अधि येषु वर्धते ।

आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वंचमरुहद्विचक्षणः ॥१॥

अभि । प्रियाणि । पवते । चनःऽहितः । नामानि । यज्ञः । अधि । येषु । वर्धते ।

आ । सूर्यस्य । बृहतः । बृहन् । अधि । रथं । विष्वंचं । अरुहत् । विऽचक्षणः ॥१॥

चनोहितः । चन इत्यज्ञनाम ॥ चायतेरसुनि चन इत्यौणादिकसूत्रेण निपातितः । उ० ४. १९९. ॥ चनसेऽज्ञाय हितः यद्वा हितान्नः सोमः प्रियाणि जगतः प्रीणयितृणि नामानि जमनशीलानि तान्मुदकान्यभि पवते । अमितः करोति । चेष्वंतरिचस्थितेषूदकेषु यज्ञो महानयं सोमोऽधि वर्धते अधिकं प्रवृद्धो भवति । अपां मध्ये सोमो वसति । ततो बृहन्महान् सोमो बृहतो महतः परिवृढस्य सूर्यस्य विष्वंचं विष्वग्गमनमधुपरि रथं विचक्षणः सर्वस्य विद्रष्टा सन्नाहृत् । आरोहति । अपौ प्राप्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठत इति ॥

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।

दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं नामं तृतीयमधि रोचने दिवः ॥२॥

ऋतस्य । जिह्वा । पवते । मधु । प्रियं । वक्ता । पतिः । धियः । अस्याः । अदाभ्यः ।

दधाति । पुत्रः । पित्रोः । अपीच्यं । नामं । तृतीयं । अधि । रोचने । दिवः ॥२॥

ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य जिह्वा मुख्यत्वेन जिह्वास्थानीयः सोमः प्रियं प्रियकरं मधु मदकरं रसं पवते । चरति । कीदृशः । वक्ता शब्दकृत् । यद्वा । क्षोतुभिः क्रियमाणाः क्षुतयः साधीयस्य इति प्रतिश्रवणस्य कर्ता । अस्या धिय एतस्य कर्मणः पतिः पासयितादाभ्यो रचोभिर्हिसितुमश्वः । पुत्रो यवमानः पित्रोर्मा-तापित्रोरपीच्यमंतरिहितं यज्ञाम । तौ न जानीतो नामकरणवेत्तायां । तस्मात्तयोरपरिज्ञायमानं तन्तृतीयं



याम दिवो बुधोऽकस्य रोचने दीप्यमाने सोमोऽभिपूयमाणे सत्वधि दधाति । अत्यंतं धारयति । नक्षत्राव-  
हारिकणाक्षी प्रभाष्य सोमयाक्षीति तृतीयमस्य जामेति भगवता बोधायनेनोक्तं ॥

अथ द्युता॒नः क॒लशौ॑ अचि॒क्रद्नु॑र्भिर्येमा॒नः को॒श आ हि॒र॒ण्यये॑ ।

अभी॑सृ॒तस्य॑ दो॒हना॑ अनू॒षता॑धि चिपृ॒ष्ठ उ॒षसो॑ वि रा॒जति ॥३॥

अथ । द्युता॒नः । क॒लशान् । अचि॒क्रद्नु॑ । नृ॒ऽभिः । येमा॒नः । को॒शे । आ । हि॒र॒ण्यये॑ ।

अ॒भि । ई॒ । सृ॒तस्य॑ । दो॒हना॑ । अनू॒षत॑ । अ॒धि । चि॒ऽपृ॒ष्ठः । उ॒षसः॑ । वि । रा॒जति॑ ॥३॥

द्युतायः ॥ द्युत दीप्तौ ॥ दीप्यमानो नृभिः कर्मणेतुभिर्ऋत्विग्भिर्हिरण्यये हिरण्यमथ कोशेऽधिपवणचर्मणि ।  
तस्य हिरण्यमयत्वं हिरण्यपाणिरभिपूयोतीति हिरण्यसंबंधात् । तादृशे कोशे धेमानः ॥ ह्यं दसे कर्मणि छिटि  
कानचि ह्यं ॥ नियम्यमानः सोमः । तत अतस्य सत्वभूतस्य यज्ञस्य दोहना दोग्धार अस्त्विव ईमेन सोम-  
मभ्यनूषत । अभिपूयंति । यावाणो यत्सा अस्त्विवो दुहतीति तैत्तिरीयब्राह्मण एषां दोग्धुत्वमभिहितं । सोमः  
कस्यशास्त्रीणाभिधानान्मन्त्रवाचिक्रद्नु । अवक्रंदति । शब्दायते । ततस्त्रिपृष्ठः । चीणि सवनान्येव पृष्ठानि  
यस्य स तथोक्तः चिपु सवनेषु सोमस्य विद्यमानत्वात् ॥ चिधक्कादिस्वादुत्तरपदांतोदात्तत्वं ॥ तादृशः सोम  
उषसोऽधि यागाहनि वि राजति ॥ अधिशोऽस्त्रासां । पा० १-४-४६ । इति द्वितीया ॥ तेष्वहःसु विशेषेण  
दीप्यते । यद्वा । राजतिरंतर्णीतल्लयः । अहानि प्रकाशयति ॥

अद्रि॑भिः सु॒तो म॒तिभि॑श्चनो॒हितः प्र॒रोच॑येन्नो॒दसी॑ मा॒तरा शुचिः॑ ।

रोमा॑ण्य॒द्यां स॒मया॑ वि धा॒वति॑ मधो॒धारा॑ पि॒न्वमा॑ना दि॒वेदि॑वे ॥४॥

अद्रि॑ऽभिः । सु॒तः । म॒तिऽभिः । चनः॑ऽहितः । प्र॒ऽरोच॑यन् । रो॒दसी॑ इति॑ ।

मा॒तरा । शुचिः॑ ।

रोमा॑णि । अ॒द्यां । स॒मया॑ । वि । धा॒वति॑ । मधो॑ः । धा॒रा । पि॒न्वमा॑ना । दि॒वेऽदि॑वे ॥४॥

मतिभिः ॥ मज ज्ञाने । मंचे वृषेयपचमनेति त्तिमुदात्तः ॥ सुतिभिरद्रिभिर्द्यावभिश्च सुतोऽभिपूतस्यो-  
हितश्चण्डेऽन्नाय हितो हितान्नो वा मातरा मातरौ जगतो निर्मात्रौ रोदसी यावापृथिवी प्ररोचयन्  
स्वतेजसा प्रकाशयन् अत एव शुचिर्दीप्यमानः एवंविधः सोमोऽन्यान्यविभवानि रोमाणि तैः कृतानि  
पवित्राणि समयाभितः समीपे वि धावति । विशेषेण चरति । किंच पिन्वमानाग्निः सिध्यमाना मधोर्मद्वरस्य  
सोनस्य धारा दिवेदिवेऽन्वहं दीर्घसन्नेषु पवित्राण्युभयतः पवते ॥

परि॑ सोम॒ प्र ध॑न्वा स्व॒स्तये॑ नृभिः पुना॒नो अ॒भि वा॑सया॒शिरं॑ ।

ये ते॒ मदा॑ आ॒ह्नसो॑ विहा॒यस॑स्तेभि॒रिंद्रं॑ चोदय॒ दात॑वे म॒घं ॥५॥

परि॑ । सोम॒ । प्र । ध॒न्व । स्व॒स्तये॑ । नृ॒ऽभिः । पुना॒नः । अ॒भि । वा॒सय॑ । आ॒ऽशिरं॑ ।

ये । ते॒ । मदा॑ । आ॒ह्नसः॑ । वि॒ऽहा॒यसः॑ । तेभिः॑ । इंद्रं॑ । चो॒दय॑ । दात॑वे । म॒घं ॥५॥

हे सोम स्वस्तयेऽविनाशाय परि प्र धन्व । पात्राणि परितः प्रगच्छ । धविर्मत्स्यर्थः । किंच नृभिः कर्मणेतु-  
भिर्ऋत्विग्भिः पुनानः पूयमानस्त्वमाशिरमाश्रयणं क्षीरादिकमभि वासय । आच्छादय । संयोजयेति यावत् ।  
आह्नसः । आह्ननवन्तो वचनवन्तः । नि० ४. १५. । इति यास्कः । शत्रूणामाभिमुखेन हंतारोऽभिहन्यमाना

अभिषूयमाणाः स्तुतिमंतः शब्दवंतो वा विहायसः । महत्तामैतत् । महान्तस्ते त्वदीया ये मदा मदहेतवो  
रसाः संति तेभिस्तेः सोमैरस्माभिर्दीयमानैर्मघं मंहनीयं धनमस्रभ्यं दातवे दातुमिंद्रं चोदय । प्रेरय ॥ ३३ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थीत्यतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुद्धभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण  
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये सप्तमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः संपूर्णः ॥

यस्य निःशसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् । निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥  
व्याख्यायाव्याहृतप्रश्नः सप्तमस्य द्वितीयकं । अध्यायं सायणामात्यस्तुतीयं व्याकरोत्वथ ॥

तत्र धर्तेति पंचर्चं नवमं सुक्तं मार्गवस्य कवेरार्षं जागतं पवमानसोमदेवताकं । धर्तेत्यनुक्रांतं ॥ गतो  
विनियोगः ॥

धर्ता दिवः पवते कृष्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।

हरिः सृजानो अत्यो न सत्त्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्व ॥ १ ॥

धर्ता । दिवः । पवते । कृष्यः । रसः । दक्षः । देवानां । अनुऽमाद्यः । नृऽभिः ।

हरिः । सृजानः । अत्यः । न । सत्त्वऽभिः । वृथा । पाजांसि । कृणुते । नदीषु । आ ॥ १ ॥

धर्ता सर्वस्य धारकः सोमो दिवोऽंतरिक्षादंतरिक्षस्थिताद्दृशापविचात्पवते । पूयते । कीदृशः सोमः ।  
कृष्यः कर्तव्यः । शोध्य इत्यर्थः । रसो रसात्मको देवानां दक्षो बलप्रदः । यद्वा । दक्षः प्रवर्धनीयो देवानाम-  
र्थाय । तथा नृभिर्नैतुभिर्हस्तिभिर्गिरनुमाद्योऽनुमदनीयः सुखो वा । हरिर्हरितवर्णः सत्वभिः प्राणिभिः  
सादिभिः सृजानः सृज्यमानोऽत्यो नाश इव स यथा शिथिलो वृथानायासेन गच्छति तद्वृथाप्रयत्नेन  
पाजांसि बलानि स्वीयान्वेगान्कृणुते । कृणुते । नदीषु वसतीवरीषु । तामिरित्यर्थः । आ सित्त इति शेषः ।  
अथमभिषवसमयामिप्रायः ॥

शूरो न धत्ते आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्नधिरो गविष्टिषु ।

इंद्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिदुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ २ ॥

शूरः । न । धत्ते । आयुधा । गभस्त्योः । स्वः । सिषासन् । रधिरो । गोऽइष्टिषु ।

इंद्रस्य । शुष्मः । ईरयन् । अपस्युऽभिः । इंदुः । हिन्वानः । अज्यते । मनीषिऽभिः ॥ २ ॥

अयं सोमो गभस्त्योर्हस्तयोरायुधायुधानि शूरो न शूर इव धत्ते । धारयति । स्वः स्वर्गसुखसाधनं यज्ञं  
वा सिषासन् संभक्तुमिच्छन् रधिरो रथवान् ॥ रथादिरचप्रत्ययः ॥ गविष्टिषु यजमानस्य गवामेषणेषु सत्सु ।  
यजमानार्थं गोसंभजनाय रथवानित्यर्थः । इंद्रस्य शुष्मं बलमीरयन् प्रेरयन्निंदुः सोमो देवोऽपस्युभिः  
कर्मैच्छुभिर्मनीषिभिर्मैधाविभिर्हस्तिभिर्हिन्वानः प्रेर्यमाणोऽज्यते गोभिः ॥

इंद्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्व विंश ।

प्र णः पितृ विद्युदभेव रोदसी धिया न वाजां उप मासि शश्वतः ॥ ३ ॥



इंद्रस्य । सोम । पर्वमानः । ऊर्मिणा । तविष्यमाणः । जठरेषु । आ । विश ।  
प्र । नः । पितृ । विऽद्युत् । अभाऽइव । रोदसी इति । धिया । न । वाजान् । उप ।  
मासि । शश्वतः । ३ ॥

हे सोम पर्वमानः पूयमानस्त्वं तविष्यमाणो वर्धयिष्यमाणः ससिंद्रस्य जठरेषुर्मिका प्रभूतया धारया  
आ विश । जठरप्रदेशस्य वाङ्मोहवचनं । नोऽस्मादर्थं विबुधैवाधाणीव सा यथा दोग्धधासि तद्वत्प्र  
पितृ धुत्स रोदसी यावापुषिवी । किंच धिया कर्मणा वेदानीं । नेति संप्रत्यर्थे । शश्वतः । वज्रनामितत् ।  
वज्रन्वाजान्नान्युप समीपे मासि । निर्मासि ॥

विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृशं क्षुतस्य धीतिर्मृषिषाळवीवशत् ।  
यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः ॥ ४ ॥  
विश्वस्य । राजा । पवते । स्वऽदृशः । क्षुतस्य । धीतिं । मृषिषाद । अवीवशत् ।  
यः । सूर्यस्य । असिरेण । मृज्यते । पिता । मतीनां । असमष्टकाव्यः ॥ ४ ॥

विश्वस्य जगतो राजा स्वामी सोमः स्वर्दृशः स्वर्गद्रष्टुः सर्वद्रष्टुर्वर्तस्व सत्यभूतर्षेन्द्रस्य । मनुष्यवाच्यवृत्तश-  
ब्दप्रतियोगिकस्वर्तशब्दस्य देवार्थः । तत्रापीचिल्लेनेन्द्रः परिगृह्यते । तस्य धीतिं मतिं कर्म वरिषाद्युषीणाम-  
तीन्द्रियद्रष्टृणामभिनिविता । मष्ट्वेन स्वयमप्युषिश्रेष्ठत्वादिति भावः । तथा च मंचांतरं । ब्रह्मा देवानां  
पदवीः कवीनामृषिः । अ० ९. ९६. ६. इति । ईदृशः सोमोऽवीवशत् । अकामयतेन्द्रस्य कर्म । यः सोमः सूर्यस्य  
देवस्यासिरेण विपक्षेण रश्मिना मृज्यते । असमष्टकाव्योऽस्यैः कविमिरव्याप्तकर्मा सोमो मतीनामसदीयानां  
क्षुतीनां पिता पाषणः स्वामी भवतीति शेषः । यद्वा । यो मतीनां पितासमष्टकाव्यश्च सपृज्यते स पवत इति  
संबन्धः ॥

वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे वृषभः कर्निक्रदत् ।  
स इंद्राय पवसे मत्सरित्तमो यथा जेषामसमिधे त्वोत्तयः ॥ ५ ॥  
वृषाऽइव । यूथा । परि । कोशं । अर्षसि । अपां । उपऽस्थे । वृषभः । कर्निक्रदत् ।  
सः । इंद्राय । पवसे । मत्सरिन्ऽतमः । यथा । जेषाम । संऽइधे । त्वाऽऊत्तयः ॥ ५ ॥

हे सोम त्वं वृषेव यूथा यूथानि वृषभ इव स यथा तानि प्रविशति तद्वत् कोशं कोशवद्रसधारकं  
कोशं पर्यर्षसि । परिगच्छसि । कुचस्यः स्रग् । अपामुपस्थेऽंतरिक्षे । कीदृशः स्रग् । वृषभो वर्धिता कर्निक्रदच्छब्दं  
कुर्वन् । स त्वं हे सोम इंद्रायेंद्रार्थं पवसे । पूयसे । मत्सरित्तमो मादयितुमस्त्वं । यथा वयं जेषाम जयेम  
समिधे संयामे स्तोतयस्त्वया रक्षिताः संतः ॥ ११ ॥

एष प्र कोश इति पंचमं दशमं सूक्तं । अथावाः पूर्ववत् । एष इत्यनुक्रांतं ॥ नतो विनियोगः ॥

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिंद्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः ।  
अभीमृतस्य सुदुघा घृतक्षुतो वाश्रा अर्षेति पर्यसेव धेनवः ॥ ११ ॥  
एषः । प्र । कोशे । मधुऽमान् । अचिक्रदत् । इंद्रस्य । वज्रः । वपुषः । वपुऽतरः ।  
अभि । ई । क्षुतस्य । सुऽदुघाः । घृतऽक्षुतः । वाश्राः । अर्षेति । पर्यमाऽइव । धेनवः ॥ ११ ॥  
एषोऽयं सोमो मधुमाजपुररवः कोशे द्रोणकशे प्राचिक्रदत् । प्रकर्षेव ब्रह्मावति । कीदृश एषः ।

इंद्रस्य वक्षो वक्षस्त्राणीयः । वक्षस्त्रेण वक्षस्यहरणसाधनत्वाद्बललोपधारः । एष एव हि सोमो वक्ष  
इंद्रस्य साधने । तथा वपुषो बीजानां वपुर्वन्यसादपुष्टरोऽतिशयेन वप्ता । बीजावापस्य सोमकर्तृकत्वात्  
सोमो वै रेतोधाः । तै० सं० २. १. १. ६. । इति श्रुतेः । ईमस्यर्तस्य सत्यफलस्य सोमस्य धारा इति शेषः । ता  
अभ्यर्षेति । अभिगच्छति । कीदृशसाः । सुदुधाः सुषु दोग्ध्राः फलानां घृतशुत उदकस्य रसस्य वा धारविश्वो  
वाग्वाः शब्दयंत्यः । किमिव । पयसा युक्ता वाग्वा धेनव इवेति ॥

स पूर्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः ।

स मध्व आ युवते वेविजान इकुशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा ॥ २ ॥

सः । पूर्यः । पवते । यं । दिवः । परि । श्येनः । मथायत् । इषितः । तिरः । रजः ।

सः । मध्वः । आ । युवते । वेविजानः । इत् । कुशानोः । अस्तुः । मनसा । अह । बिभ्युषा ॥ २ ॥

स सोमः पूर्यः प्रतः पवते । पूर्यते । अभिपूरयत इत्यर्थः । यं सोमं दिवो बुधोक्ताच्छ्वेन इषितः स्वमाचा  
प्रेषितः सन् परि मथायत् पर्यमथ्यात् तिरस्तीर्णं तिरस्कुर्वन् । किं । रजस्तृतीयं जोषं । स एव सोमो मध्वो  
मधुररसं सोममा युवते । यीति । पृथक्करोति बुधोक्तात् । स्वयं वेविजान इत्यल्लघो गच्छन् छशानोः  
सोमपालस्यास्तुः शरत्पुः सकाशाद्विभ्युषा भीतेन मनसाह । मध्व आ युवत इति संबंधः । छशानोः सोम-  
पालत्वं ब्राह्मणे स्पष्टमुक्तं । छशानुः सोमपालः सत्यस्य पदः । ऐ० ब्रा० ३. २६. ॥

ते नः पूर्वांस उपरास इंदवो महे वाजाय धन्वंतु गोमते ।

ईक्षेण्यासो अह्यो न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥ ३ ॥

ते । नः । पूर्वांसः । उपरासः । इंदवः । महे । वाजाय । धन्वंतु । गोमते ।

ईक्षेण्यासः । अह्यः । न । चारवः । ब्रह्म ब्रह्म । ये । जुजुषुः । हविः हविः ॥ ३ ॥

ते वक्ष्यमाणाः पूर्वांसः पूर्वं उपरासः । उपरता अचेलुपराः । तादृशा इंदवः सोमा महे महति गोमते  
गो महां वाजायान्नाथान्नलामार्थं धन्वंतु । गच्छंतु । प्राप्तुवन्तु । कीदृशा इंदवः । ईक्षेण्यास ईक्षणीयाः संदर्श-  
णीया अह्यो न । अह्यः स्त्रिय आह्वनगात् । ता इव सुवेद्याः स्त्रिय इव चारवो रमणीयाः । त इत्युक्तं क  
इत्याह । य इंदवो ब्रह्म ब्रह्म सर्वमपि स्थावकमंचवातं हविर्हविः सर्वमपि हविर्वातं च जुजुषुः सेवते ॥

अयं नो विद्वान्वनवधनुषत इंदुः सचाचा मनसा पुरुषुतः ।

इनस्य यः सदेने गर्भमादधे गवामुरुजमभ्यर्षेति व्रजं ॥ ४ ॥

अयं । नः । विद्वान् । वनवत् । वधनुषतः । इंदुः । सचाचा । मनसा । पुरुऽस्तुतः ।

इनस्य । यः । सदेने । गर्भे । आऽदधे । गवां । उरुजं । अभि । अर्षेति । व्रजं ॥ ४ ॥

अयमिंदुः सोमो गोऽस्मान्वगुप्यतो हंतुमिच्छतः शशून् विद्वान्ज्ञानहंतुं वनवत् । हंतु तां । केन साधनेन ।  
सचाचा सहांचता मनसा । कीदृशः । पुरुषुतो वज्रमिः क्षुतः । यः सोम इत्येवमरसाभिः सदेने स्थापि भूमौ  
वेद्यां वा वर्तमानो गर्भमादधे धारयतीषधीषु । यस्य गवामसदीयानां शत्रुभिरपहतानामुरुजं प्रभूतानामपां  
पयसां वनकं व्रजमभ्यर्षेति गच्छति । स वनवदिति ॥

चक्राद्वः पवते कृत्थो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते ।

असांवि मिचो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो न यूये वृषयुः कर्निकदत् ॥ ५ ॥



चक्रिः । दिवः । पवते । कृत्यः । रसः । महान् । अदब्धः । वरुणः । हुरुक् । यते ।  
असावि । मिचः । वृजनेषु । यज्ञियः । अत्यः । न । यूथे । वृषऽयुः । कनिक्कदत् ॥ ५ ॥

चक्रिः सर्वस्य कर्ता कृत्यः कर्मणो रसो रसात्मको महान् गुणैरधिकोऽदब्धोऽहिंसो ऊरुक् कुटिलं यते  
गच्छते । इतस्ततः परिचरत इत्यर्थः । तदर्थं दिवः सकाशात्पवते । पूयते । अंतरिक्षस्थाद्दशापवित्रादित्यर्थः ।  
किंचासी सोमोऽसावि । सूयते । कदा । वृजिनेष्वरिष्टेषु सत्सु । तत्परिहारार्थं । कीदृशः सः । मिचः सर्वेषां  
मिचभूतो यज्ञियो यष्ट्योऽत्यो नाश्च इव यूथे वडवायूथे स यथा वृषयुः सञ्जब्दं करोति तद्वदसी वृषभो  
रसस्य वर्धिता कनिक्कदच्छब्दं कुर्वन् असावीति ॥ ॥ २ ॥

प्र राजा वाचमिति पंचर्चमिकादशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । प्र राजेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यदत्पो वसानो अभि गा इयक्षति ।  
गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतं ॥ १ ॥  
प्र । राजा । वाचं । जनयन् । असिष्यदत् । अपः । वसानः । अभि । गाः । इयक्षति ।  
गृभ्णाति । रिप्रं । अविः । अस्य । तान्वा । शुद्धः । देवानां । उप । याति । निःऽकृतं ॥ १ ॥

राजा राखमानोऽयं सोमोऽभिषूयमाणः सन् वाचं शब्दं जनयन्नुत्पादयन्नसिष्यदत् । प्रस्रंदते । तथापो  
वसतीवरीषसान आच्छादयन् गाः क्षुतीरभीययति । अभिगच्छति । इयक्षतिर्गतिकर्मसु पठितः । अस्थ  
सोमस्य रिप्रमनुपादेयत्वेन पापरूपमभिषुतवल्लीशकलादिरूपमविरविरोमनिर्मितं दशापवित्रं तान्वा स्त्रीधेन  
वस्त्रेण गृभ्णाति । गृह्णाति शोधनसमये । पश्चाच्छुद्धो देवानां निष्कृतं संस्कृतं स्थानमुप याति । उपगच्छति ॥

इंद्राय सोम परि पिच्यसे नृभिर्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने ।  
पूर्वीर्हि ते सुतयः संति यातवे सहस्रमश्व हारयश्चमूपदः ॥ २ ॥  
इंद्राय । सोम । परि । पिच्यसे । नृऽभिः । नृऽचक्षाः । ऊर्मिः । कविः । अज्यसे । वने ।  
पूर्वीः । हि । ते । सुतयः । संति । यातवे । सहस्रं । अश्वः । हारयः । चमूऽसदः ॥ २ ॥

हे सोम त्वमिन्द्रायेंद्रार्थं नृभिर्नृभिर्हस्तिभिः परि पिच्यसे । अभिषूयसे । तथा हे सोम नृचक्षा नृणां  
यष्ट्यामनुपहेण द्रष्टोर्मिः प्रेर्यमाणः प्रवृजो वा कविर्मेधावी च त्वं वन उदकेऽज्यसे । प्रेर्यसे । पूर्वोर्वृज्यो हि  
ते सुतयो मार्गाश्चिद्राणि संति यातवे यातुं । अल्पस्य सोमस्यापरिमितक्षुतिगमनासंभवात्तस्य बाहुव्यमाह ।  
चमूपदोऽभिषवणफलकयोः सीदतः सहस्रमपरिमिता अश्व आश्व हारयो हरितवर्णा अंशवः संति । अथवा ।  
इंद्राय परिपिच्यस इत्युक्तत्वादिंद्रप्राप्ती मार्गसाधनयोः सन्नाय उत्तरार्धेन प्रतिपादितः । ते पुरातन्यः सरण्यः  
संतोर्द्रं प्रति यातुं । तथा सहस्रसंख्याका हरितवर्णा अश्वश्च संति चमूपदकवेति ॥

समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणमासीना अंतरभि सोममक्षरन् ।  
ता ईं हित्वंति हर्म्यस्य सक्षणिं याचंते सुखं पर्वमानमक्षितं ॥ ३ ॥  
समुद्रियाः । अप्सरसः । मनीषिणः । आसीनाः । अंतरः । अभि । सोमं । अक्षरन् ।  
ताः । ईं । हित्वंति । हर्म्यस्य । सक्षणिं । याचंते । सुखं । पर्वमानं । अक्षितं ॥ ३ ॥

समुद्रियाः । समुद्रसाधनत्वात्समुद्रमंतरिचं । तत्संबन्धिन्योऽप्सरसः काशनांतर्यक्षमध्य आसीनाः यात्रेषु  
वर्तमाना वसतीवर्थो मनीषिणं मेधाविनं सोममभ्यक्षरन् । अभिषूयमाणं सोममभिचरति । ता ईमेना

एवेमेनं हव्यस्य हव्यवत्सुखकरस्य चागगृहस्य सचयिं सेचनशीलं हित्वन्ति । वर्धयन्ति । पोषयन्ति । त एते  
स्रोतारो वा पवमानं सोममचितमशीणं सुखं सुखं याचन्ति । प्रार्थयन्ति । तचायं भावः । काशनाप्सरसः सोमं  
राजानं मनीषिणं कामयमाना देवानपि परित्वज्य स्वर्गादागत्य राज्ञः समीपे स्थित्वा तस्य रसानाददते ।  
स्वरसेन वर्धयन्ति तं सुखं च याचन्त इति ॥

गो॒जिन्नः सोमो॑ रथ॒जिद्धिरण्य॒जित्स्वर्जि॑दु॒ञ्जित्प॑वते सहस्र॒जित् ।

यं दे॒वासंश्च॑क्रिरे पी॒तये॑ मदं स्वादि॒ष्टं द्र॒प्तम॑रुणं म॒योभु॑व ॥४॥

गोऽजि॒त् । नः । सोमः । रथऽजि॒त् । हि॒रण्यऽजि॒त् । स्वःऽजि॒त् । अपऽजि॒त् ।

प॒वते॑ । स॒हस्रऽजि॒त् ।

यं । दे॒वासः । च॒क्रिरे॑ । पी॒तये॑ । मदं । स्वादि॒ष्टं । द्र॒प्तं । अ॒रुणं । म॒यःऽभु॑व ॥४॥

गोऽस्माकं गोचिन्नवां जेता तथा रथजिद्धयस्य जेता हिरण्यजिद्धिरण्यस्य जेता तथा स्वर्जित्स्वर्गस्य  
सुखस्य जेतान्जिदपां जेता सहस्रजित्सहस्रसंख्याकस्य धनस्य जेता सोमः पवते । पूयते । यं देवासो देवाचक्रिरे  
कृतवन्तः । किमर्थं । पीतये पानाय । कीदृशं सोमं । मदं मदकरं स्वादिष्टं स्वादुतमं द्रप्तं रसात्मकमप्यणमप-  
णवर्णं मयोभुवं सुखस्य भावयितारं ॥

ए॒तानि॑ सोम॒ पर्व॑मानो अ॒स्मयुः॑ स॒त्यानि॑ कृ॒ण्वन्द्र॒विणान्य॑र्वसि ।

ज॒हि श॑चु॒मन्तिके॑ दूर॒के च॒ य उ॒र्वीं ग॒व्यूति॑म॒भयं॑ च नस्कृ॒धि ॥५॥

ए॒तानि॑ । सोम॒ । पर्व॑मानः । अ॒स्मऽयुः । स॒त्यानि॑ । कृ॒ण्वन् । द्र॒विणानि॑ । अ॒र्वसि॑ ।

ज॒हि । श॑चु॒ । अ॒न्तिके॑ । दूर॒के । च॒ । यः । उ॒र्वीं । ग॒व्यूति॑ । अ॒भयं॑ । च॒ । नः । कृ॒धि ॥५॥

हे सोम एतानि पूर्वमञ्चोक्तानि गवादीनि द्रविणानि सत्यानि कृण्वन् कुर्वन् पवमानः पूयमानोऽर्वसि ।  
पवसे । जहि च शचुं योऽस्माच्छचुरन्तिके समीपे दूरकेऽत्यन्तं दूरे देशे च वर्तते तं जहि । तथोर्वीं गव्यूतिं  
विस्तीर्णं मार्गममयं च गोऽस्माकं कृधि । कृष ॥ ३॥

अचोदस इति पञ्चर्वं द्वादशं सूक्तं । अष्टाष्टाः पूर्ववत् । अचोदस इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

अ॒चो॒दसो॑ नो ध॒न्वंत्वि॒दवः॑ प्र सु॒वा॒नासो॑ बृ॒हद्वि॑वेषु ह॒रयः॑ ।

वि च॒ न॒शन् इ॒षो अ॒रा॒तयो॑ऽर्यो न॒शन्त॑ स॒निष॑न्त नो धि॒यः ॥९॥

अ॒चो॒दसः॑ । नः । ध॒न्वं॒तु । इ॒दवः॑ । प्र । सु॒वा॒नासः॑ । बृ॒हत्ऽद्वि॑वेषु ह॒रयः॑ ।

वि । च॒ । न॒शन् । नः । इ॒षः । अ॒रा॒तयः॑ । अ॒र्यः । न॒शन्त॑ । स॒निष॑न्त । नः । धि॒यः ॥९॥

अचोदसोऽचोदना अनन्यप्रेरिता इंदवः सोमा गोऽस्माकं प्र धन्वंतु । प्रगच्छंतु । धन्वतिर्गतिकर्मा ।  
कृष । बृहद्विवेषु प्रभूतदीप्तिषु चागेषु निमित्तेषु । अथवा बृहद्विषकुलजेषु मध्ये । न इति संबन्धः । कीदृशा  
इंदवः । सुवानासः सूयमाना हरयो हरितवर्णाः । किंच गोऽस्माकं ये चेषोऽन्नस्यारातयोऽदातारः संति ते  
च वि नशन् । विनशन्तु । तथार्योऽरयोऽपि नशन्त । विनशन्तु । सनिषन्त संमज्जन्त च गो-धियोऽस्मादीयानि  
कर्माणि देवा अस्माभिरभूता वा ॥

प्र णो॑ ध॒न्वंत्वि॒दवो॑ म॒दच्यु॑तो॒ धना॑ वा॒ येभि॒रर्व॑तो जु॒नीम॑सि ।

ति॒रो म॑तै॒स्य क॑स्य चि॒त्परि॑कृतिं व॒यं ध॑नानि वि॒श्वधा॑ भरेमहि ॥२॥



प्र । नः । धन्वंतु । इन्द्रवः । मदऽच्युतः । धना । वा । येभिः । अर्वतः । जुनीमसि ।  
तिरः । मर्तस्य । कस्य । चित् । परिऽहृतिं । वयं । धनानि । विश्वधा । भरेमहि ॥२॥

प्र यो धन्वंतु प्रधन्वंतु प्रगच्छंतु नोऽस्माकमिन्द्रवः सोमा मदच्युतो मदसाविणः । वायवा । किन्वेत्यर्थः ।  
धना धनान्यपि प्र धन्वंतु । येभिः सोमैरर्वतो बलवतः शचीः समीपं जुनीमसि जुनीमः प्राप्तुमः । कस्य  
चित् कस्यापि मर्तस्य मनुष्यस्य प्रबलस्य परिहृतिं परितो बाधां तिरस्खिरस्कुर्वतो वयं धनानि गवादि-  
पाणि विश्वधा सर्वदा भरेमहि । विभृयाम ॥

उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः ।  
धन्वन्न तृणा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ॥३॥  
उत । स्वस्याः । अरात्याः । अरिः । हि । सः । उत । अन्यस्याः । अरात्याः । वृकः । हि । सः ।  
धन्वन् । न । तृणा । सं । अरीत । तान् । अभि । सोम । जहि । पवमान् । दुः । आध्यः ॥३॥

उतापि च स सोमः स्वस्या अरात्याः स्त्रीयस्य शचोररिरभिगता हननाय । उतापि च स सोमोऽन्यस्या  
अस्यदीयाया अरात्या अस्यच्छोर्वृको हि हिंसकः खलु ॥ अरातिशब्दः स्त्रीलिंगोऽप्यस्ति ॥ अथ प्रत्ययकृतः ।  
धन्वन्न तृणा । धन्व निरुदकां देशः । तस्मिन्निष्ठतस्य तृणैव सा यथा तं समरीत प्राप्नोति तद्वत्तानुभयवि-  
धाञ्चावृज्जहि ॥

दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः ।  
अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्यप्सु त्वा हस्तैर्दुहुर्मनीषिणः ॥४॥  
दिवि । ते । नाभा । परमः । यः । आऽददे । पृथिव्याः । ते । रुरुहुः । सानवि । क्षिपः ।  
अद्रयः । त्वा । बप्सति । गोः । अधि । त्वचि । अप्सु । त्वा । हस्तैः । दुहुः । मनीषिणः ॥४॥

हे सोम ते तव स परम उत्तमोऽंशो दिवि दिवो नामा नामौ बुलोकस्य नामिच्छानीये देशे । अथवा  
नामौ वृद्धादेर्वधके दिवि बुलोके । वर्तते य आददे आदत्ते हविर्देवतारूपः सन् । ते तव बुलोकसांशस्याव-  
यवाः पृथिव्याः सानवि समुच्छ्रिते देशे पर्वतादिप्रदेशे क्षिपः क्षिप्ताः संतो बभूवुः । रोहन्ति । त्वा त्वां सोमा-  
शमृतमद्रयो आवाख्यो बप्सति । मषयन्ति । बप्सतिरन्तिकर्मा । कुष । गोरधि स्तवि । अधीति सप्तम्यर्था-  
वादी । आनदुहेऽधिषवणचर्मणीत्यर्थः । यद्यपीदानींतनाः कृष्णाचिनेऽभिमुखन्ति न गोचर्मणि तथापि  
तस्मिन्सोमो मीयते क्रयार्थं । तथा च सति यस्मिन् मिमीति तस्याधिषवणचर्मैति सूचान्मानसाधनस्त्वैव गोचर्म-  
णोऽधिषवणचर्मत्वाभिधानादविरोधः । त्वा त्वां तथाप्यु वसतीवरीषु दुहुः । दुहन्ति । अग्निराज्ञाय  
दुहन्तीत्यर्थः । यद्वा । अप्सूदकेषु रसेषु निमित्तेषु दुहुः । केः साधनेः । हस्तेः । हस्तो हस्तेरिति निरुक्तं । १. ७. ।  
के । मनीषियो मेधाविनोऽध्वर्वादयः ॥

एवा त इंदो सुभ्वं सुपेशंसं रसं तुजन्ति प्रथमा अभिश्चियः ।  
निर्दनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः ॥५॥  
एव । ते । इंदो इति । सुऽभ्वं । सुऽपेशंसं । रसं । तुजन्ति । प्रथमाः । अभिऽश्चियः ।  
निर्दऽनिदं । पवमान् । नि । तारिषः । आविः । ते । शुष्मः । भवतु । प्रियः । मदः ॥५॥

पूर्वचाद्रयस्त्वां बप्सतीत्युक्तं । तदेवोच्यते । हे इंदो सोम एवैवमिदानीं क्रियमायप्रकारेण ते तव सुभ्वं

शोभनमवचं सुपेशं । पेश इति रूपनाम । मुख्यं रसं प्रथमाः प्रथममेव । यद्वा । प्रथम इति मुख्यनाम । प्रथमा मुख्याः । यावायोऽध्वर्यवो वाभिप्रियोऽभिप्रयंतः संतसुंजंति । प्रेरयंति । हे पवमान निदं निदम-  
अग्निदं सर्वमपि शृणु नि तारिषः । विनाशय । ते तव शुष्मो बलकरः प्रियः प्रियभूतो मदो मदकरो रस  
आविर्भवतु ॥ ४॥

सोमस्य धारेति पंचर्वं चयोदशं सूक्तं भारद्वाजस्य वसुनाम्न आर्धं जागतं पवमानसोमदेवताकं । तथा  
चानुक्रांतं । सोमस्य वसुर्भारद्वाज इति ॥ गतो विनियोगः ॥

सोमस्य धारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान्हवते दिवस्परि ।

बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते समुद्रासो न सर्वनानि विव्यचुः ॥ १॥

सोमस्य । धारा । पवते । नृचक्षसः । ऋतेन । देवान् । हवते । दिवः । परि ।

बृहस्पतेः । रवथेन । वि । दिद्युते । समुद्रासः । न । सर्वनानि । विव्यचुः ॥ १॥

सोमस्यामिष्यमाणस्य धारा पवते । द्योतते । कीदृशस्य सोमस्य । नृचक्षसो नृणां यजमानानां द्रष्टुः । स  
वर्तेन यज्ञेन देवान्सोममाज इन्द्रादीन्हवते । कुच । दिवस्परि बलोकस्योपरि वर्तमानान् । बृहस्पतेर्मैत्रपालकस्य  
सोतू रवथेन शब्देन सोचेण वि दिद्युते । विद्योतते । समुद्रासो न समुद्रा इव पृथिवीं सवनानि यज्ञसंब-  
धीनि विव्यचुः- व्यासृवंति ॥

यं त्वा वाजिन् अघ्न्या अभ्यनूषतायोहतं योनिमा रोहसि द्युमान् ।

मघोनामायुः प्रतिरन्महि अवं इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः ॥ २॥

यं । त्वा । वाजिन् । अघ्न्याः । अभि । अनूषत । अयःऽहतं । योनिं । आ । रोहसि ।  
द्युमान् ।

मघोना । आयुः । प्रऽतिरन् । महि । अवं । इन्द्राय । सोम । पवसे । वृषा । मदः ॥ २॥

हे वाजिन्नवन् सोम यं त्वा त्वामघ्न्या अहननीया गायोऽभ्यनूषत अभिप्रवृति । आशिरार्थं स्थिताः  
शब्दायंत इत्यर्थः । स स्वमयोहतं । अय इति हिरण्यनाम । तेन तद्वान्पाणिर्लक्ष्यते । हिरण्यमथेन पाणिना हतं  
संस्कृतं योनिं स्थानमा रोहसि । बुभान्दीप्तः सन् । अभि योनिमयोहतं । अ० ९. १. २. इति द्युक्तं । किंच हे  
सोम मघोनां हविष्मतां यजमानानामायुरायुषं महि महच्छवोऽन्नं यशो वा प्रतिरन्वर्धयन्निन्द्रार्थेन्द्रार्थं  
पवसे । पूयसे । वृषा वर्षको मदो मदकरश्च त्वं ॥

एंद्रस्य कुक्षा पवते मदिंतम ऊर्जं वसानः अवसे सुमंगलः ।

प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीळन् हरित्यः स्यंदते वृषा ॥ ३॥

आ । इंद्रस्य । कुक्षा । पवते । मदिन्ऽतमः । ऊर्जं । वसानः । अवसे । सुऽमंगलः ।

प्रत्यङ् । सः । विश्वा । भुवना । अभि । पप्रथे । क्रीळन् । हरिः । अत्यः । स्यंदते । वृषा ॥ ३॥

अयं सोम इंद्रस्य कुक्षा कुक्षावा पवते । आसिच्यते । किमर्थं । अवसे तस्मान्नाय यदुर्वान्नसिद्धर्थं । सोमो  
विशेयते । मदिंतमो मादयितुम ऊर्जं वसानो बलकरं रसमाच्छादयन् । अपो वसानः । अ० ९. ७. १. ।  
इति द्युक्तं । सुमंगलः शोभनमंगलप्रदः । स सोमः प्रत्यङ् विश्वा भुवना सर्वाणि भूतजातान्यभि पप्रथे । अभि-  
प्रययति । दिव्यदितः सन् क्रीळन् वेद्यां स क्रीडमानो हरिर्हरितवर्णोऽत्योऽतनकुशलो वृषा वर्षकः स्यंदते  
रसरूपेण ॥



तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः ।  
 नृभिः सोमं प्रच्युतो यावभिः सुतो विश्वान्देवाँ आ पवस्वा सहस्रजित् ॥४॥  
 तं । त्वा । देवेभ्यः । मधुमत्तमं । नरः । सहस्रधारं । दुहते । दश । क्षिपः ।  
 नृभिः । सोमं । प्रच्युतः । यावभिः । सुतः । विश्वान् । देवान् । आ । पवस्व ।  
 सहस्रजित् ॥४॥

हे सोम तं तादृशं त्वा त्वां देवेभ्य इन्द्राद्यर्थं मधुमत्तममतिशयेन मधुमत्तं सहस्रधारं बज्रधारायुक्तं दुहते ।  
 दुहति । के । नरो नेतार ऋत्विजो दश क्षिपक्षिपां दशसंख्याका अंगुलयश्च । हे सोम नृभिर्मेगुथैः प्रच्युतो  
 यावभिः सुतोऽभिपुतस्त्वं सहस्रजित् सहस्रसंख्याकधनस्व जेता सन् विश्वान्देवानां पवस्व ॥

तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमद्रिभिर्दुहन्त्यप्सु वृषभं दश क्षिपः ।  
 इन्द्रं सोम मादयद्दैव्यं जनं सिंधोरिवोर्मिः पवमानो अर्षसि ॥५॥  
 तं । त्वा । हस्तिनः । मधुमन्तं । अद्रिभिः । दुहन्ति । अप्सु । वृषभं । दश । क्षिपः ।  
 इन्द्रं । सोमं । मादयन् । दैव्यं । जनं । सिंधोः । इव । ऊर्मिः । पवमानः । अर्षसि ॥५॥

तं तादृशं मधुमन्तं मधुररसं वृषभं कामानां वर्षकं त्वा त्वां हस्तिनः सुहस्रस्य दश क्षिपोऽंगुलयोऽद्रिभि-  
 र्भावभिरप्सु दुहन्ति । तादृशं हे सोम इन्द्रमन्यं दैव्यं जनं देवसंबन्धिनं संघं मादयन् सिंधोः ऊर्मिरिव पवमानः  
 पूषमानः सन्नर्षसि । गच्छसि ॥ ५॥

प्र सोमस्तेति पंचर्वं चतुर्दशं सूक्तं । ऋषिदेवते पूर्ववत् । अंत्या चिष्टुर्गृष्टा जगत् । प्र सोमस्तेत्यनुकांतं ॥  
 गतो विनियोगः ॥

प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः ।  
 दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवाँ दानाय शूरमुदमंदिषुः सुताः ॥१॥  
 प्र । सोमस्य । पवमानस्य । ऊर्मयः । इन्द्रस्य । यन्ति । जठरं । सुपेशसः ।  
 दध्ना । यत् । ई । उतऽनीताः । यशसा । गवाँ । दानाय । शूरं । उतऽअमंदिषुः । सुताः ॥१॥

पवमानस्य पूषमानस्योर्मयो रसप्रवाहा इन्द्रस्य जठरं प्र यन्ति । प्रगच्छन्ति । सुपेशसः सुकृपा ऊर्मय इति  
 संबन्धः । यद्यदेमेति सुता अभिषुताः सोमा गवाँ यशसा बलभूतेन दध्ना सहोन्नीताः संतो दानाय यजमानवि-  
 षयाभिमतदानाय शूरं विक्रांतमिन्द्रमुदमंदिषुः उच्चादयन्ति तदा जठरं यन्ति ॥

अच्छा हि सोमः कलशाँ असिष्यदत्यो न वोळ्हा रघुवर्तनिर्वृषा ।  
 अथा देवानां मुभयस्य जन्मनो विद्वाँ अश्नोत्यमुत इतश्च यत् ॥२॥  
 अच्छ । हि । सोमः । कलशान् । असिष्यदत् । अत्यः । न । वोळ्हा । रघुवर्तनिः । वृषा ।  
 अथ । देवानां । उभयस्य । जन्मनः । विद्वान् । अश्नोति । अमुतः । इतः । च । यत् ॥२॥

असी सोमः कलशानच्छाभिमुखमसिष्यदत् । खंदते । क इव । अत्यो न वोळ्हा रघस्य वाहकोऽश्च इव  
 यथा स्वगतं वज्रमिगच्छति तद्वत् । यद्वा । अयमुत्तरं दृष्टांतः । वोळ्हाश्च इव रघुवर्तनिर्वृषमनो वृषा

वर्षकश्च । अथापि च देवानां सोमसज्जुषामुभयस्योभयविधं ज्ञानो जातं विद्वाज्ज्ञानज्ञसिष्यदत्कलशान् । किं तदुभयं ज्ञेयं उच्यते । यदेवजातममुतो बुल्लोकादितद्यास्त्राबुल्लोकाद्याभ्योति व्याभ्योति यज्ञं । तस्योभयस्य जातं विद्वाभिति संबंधः ॥

आ नः सोम पर्वमानः किरा वस्विंदो भव मघवा राधसो महः ।

शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना मा नो गयमारे अस्मत्परा सिचः ॥३॥

आ । नः । सोम । पर्वमानः । किर । वसु । इंदो इति । भव । मघवा । राधसः । महः ।

शिक्ष । वयः । धः । वसवे । सु । चेतुना । मा । नः । गय । आरे । अस्मत् । परा । सिचः ॥३॥

आ किर सर्वतो विचिप नोऽस्माभ्यं हे सोम पर्वमानः पूयमानस्त्वं । किं । वसु वासकं धनं गवादिरूपं । किंचिंदो दीप्त हे सोम मघवा धनवांस्त्वं महो महतो राधसो धनस्य भव दातेति शेषः । तथा हे वयोधो ऽस्य धातः सोम वसवे वासकाय परिचरते मह्यं चेतुना प्रकृष्टेन प्रज्ञानेन सु सुखं कक्षायां शिष्य । देहि । नोऽस्माभ्यं प्रदेयं गयं धनमस्मादरेऽस्मात्तो दूरं मा परा सिचः । मा श्रेय ॥

आ नः पूषा पर्वमानः सुरातयो मित्रो गच्छंतु वरुणः सजोषसः ।

बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती ॥४॥

आ । नः । पूषा । पर्वमानः । सुऽरातयः । मित्रः । गच्छंतु । वरुणः । सुऽजोषसः ।

बृहस्पतिः । मरुतः । वायुः । अश्विना । त्वष्टा । सविता । सुऽयमा । सरस्वती ॥४॥

सुरातयः सुदानाः सजोषसः संगताः पूषादयो देवा आ गच्छंतु नोऽस्मान् अस्माकं यज्ञं वा । तथा सुयमा । यम्यते नियम्यत इति यमो विग्रहः । सुविग्रहा सरस्वती चागच्छतु ॥

उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता

भगो नृशंस उर्वरितरिषं विश्वे देवाः पर्वमानं जुषंत ॥५॥

उभे इति । द्यावापृथिवी इति । विश्वमिन्वे इति विश्वं ऽइन्वे । अर्यमा । देवः । अदितिः ।

विऽधाता ।

भगः । नृऽशंसः । उरु । अंतरिषं । विश्वे । देवाः । पर्वमानं । जुषंत ॥५॥

विश्वमिन्वे । इत्यतिर्व्याप्तिकर्मा । सर्वव्यापिन्यामुभे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ अर्यमादयस्त्रयश्च भगश्च नृशंसो नृभिः शंसनीय उर्वरितरिषं च विश्वे देवाश्च पर्वमानं पूयमानं सोमं जुषंत । सेवते ॥ ॥६॥

असावीति पंचर्वं पंचदशं सूक्तं । अथावाः पूर्ववत् । अस्मानुक्रमणिका । असावीति चिष्टुवन्ति इति । अनेन त्वेवचनेन प्रकृतयोः प्र सोमस्येत्यादिकथोर्दयोरपि चिष्टुवन्तता प्रतिपादिता ॥ गतो विनियोगः ॥

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दुस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।

पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवतमासदं ॥९॥

असावि । सोमः । अरुषः । वृषा । हरिः । राजा ऽइव । दुस्मः । अभि । गाः । अचिक्रदत् ।

पुनानः । वारं । परि । एति । अव्ययं । श्येनः । न । योनिं । घृत ऽवतं । आऽसदं ॥९॥



सोमोऽसावि । अभिपुतोऽभूत् । कीदृशः सोमः । अथ आरोचमानो वृषा वर्षको हरिर्हरितवर्णः । स च रात्रिषु दक्षो दर्शनीयः सन् गा उदकान्यभिषन्नाधिकदत् । शब्दं करोति स्वरसन्निर्गमसमये । पश्चात्पु-  
नान्नः पूयमानोऽव्ययमविमयं चारं वाचं दशापविचं पर्येति । ततः स्नेहो न स्नेह इव योनिं स्वकीयं स्थानं  
घृतपतमुदकपतमासदमासदनाय पवत इति शेषः ॥

कविर्वेधस्या पर्येषि माहिन्मत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।

अपसेधन्दुरिता सोम मृळय घृतं वसानः परि यासि निर्णिजं ॥२॥

कविः । वेधस्या । परि । एषि । माहिन् । अत्यः । न । मृष्टः । अभि । वाजं । अर्षसि ।

अपऽसेधन् । दुःऽइता । सोम । मृळय । घृतं । वसानः । परि । यासि । निऽनिजं ॥२॥

हे सोम कविः क्रांतदर्शी सन् वेधस्या यागविधानेच्छया माहिन् मंहनीयं पविचं पर्येषि । परिगच्छसि ।  
पश्चात्पृष्टः प्रकाशितोऽत्यो नाश्च इव वाचं संग्राममभ्यर्षसि । हे सोम दुरितास्त्राकं दुरितान्यपसेधन् परिहरन्  
मृळय । सुखय । घृतमुदकं वसान आच्छादयन् परि यासि । अभिगच्छसि । किं । निर्णिजं निर्णेजकं पविचं ॥

पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।

स्वसार आपो अभि गा उतासरन्त्सं यावभिर्नसते वीते अध्वरे ॥३॥

पर्जन्यः । पिता । महिषस्य । पर्णिनः । नाभा । पृथिव्याः । गिरिषु । क्षयं । दधे ।

स्वसारः । आपः । अभि । गाः । उत । असरन् । सं । यावऽभिः । नसते । वीते । अध्वरे ॥३॥

यस्य महिषस्य महतः पर्णिनः पर्यवतः पतनवतो वा सोमस्य पर्जन्यः पिता जनकः स सोमः पृथिव्या  
नामा नामो नामिस्थानीये हविर्धाने गिरिषु गिरिसंबन्धिषावसु चयं निवासं दधे । धारयत्यभिषवसमये ।  
उतापि च स्वसारोऽगुलय आपो वसतीवर्यो गा आशिरार्याः सुतयो वाभ्यसरन् । अभिसरन्ति । सं गसते  
संगच्छते च यावभिः साकं । कुच । वीते क्रांतेऽध्वरे यज्ञे ॥

जायेव पत्यावधि शेवं मंहसे पञ्जाया गर्भं शृणुहि ब्रवीमि ते ।

अंतर्वाणीषु प्र चरा सु जीवसेऽनिंद्यो वृजने सोम जागृहि ॥४॥

जायाऽइव । पत्यौ । अधि । शेवं । मंहसे । पञ्जायाः । गर्भं । शृणुहि । ब्रवीमि । ते ।

अंतः । वाणीषु । प्र । चर । सु । जीवसे । अनिंद्यः । वृजने । सोम । जागृहि ॥४॥

जायेव पत्यौ जाया यथा स्वमार्या मर्तरि सुखं प्रयच्छति तद्वच्छेव शेवं ॥ द्वितीयाया अथावामाव-  
श्चांदसे ॥ सुखं मंहसे । प्रयच्छसि यजमाने । हे पञ्जाया गर्भं सोम शृणुहि शृणु सुतीर्यास्ते तुभ्यं ब्रवीमि ।  
पविर्गतिर्मा । पञ्जा पृथिवीत्याहुः । अपि वा माध्यमिका वाक् पञ्जा । भूमावोषधिकेण जातस्वाप्तर्मत्वं ।  
माध्यमिकाया वाचोऽपि वृष्टिसाधनत्वात्तत्पुत्रत्वं । स त्वं वाणीषु वासु सुतिष्वंतर्मध्ये सु सुष्ठु प्र चर जीवसे  
ऽस्त्राकं जीवनाय । हे सोम अनिंद्यः सुत्यस्त्वं वृजनेऽस्त्राकं शत्रुवत्से जागृहि । प्रवृजो मव ॥

यथा पूर्वैभ्यः शतसा अमृधः सहस्रसाः पर्यया वाजमिंदो ।

एवा पवस्व सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचंते ॥५॥

यथा । पूर्वैभ्यः । शतऽसाः । अमृधः । सहस्रऽसाः । परिऽअयाः । वाजं । इंदो इति ।

एव । पवस्व । सुविताय । नव्यसे । तव । व्रतं । अनु । आपः । सचंते ॥५॥

हे इंदो सोम यथा पूर्वैर्गो मर्हर्षिभ्यः सोतुभ्यः शतसाः शतसंख्याकस्य धनस्य दाता तथा सहस्रसाश्च सन् पर्ययाः परिगच्छेः एवैवमिदाभीमपि नव्यसे नवतराय सुवितायाभ्युदयाय पवस्व । अर । तव व्रतं कर्मान्वापो वसतीवर्यः सचंते । अतः पवस्व ॥ ७ ॥

पविचं त इति पंचचं षोडशं सूक्तभांगिरसस्य पविचस्त्रार्यं जागतं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । पविचं ते पविच इति ॥ अभिष्टव आये अचौ वक्तव्ये । सूचितं च । पविचं ते विततं ब्रह्मणस्यत इति द्वे वि यत्पविचं धिषणा अतन्वत । आ० ४. ६. इति ॥

पविचं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गाचाणि पर्येषि विश्वतः ।

अतप्रतनूर्न तदामो अश्रुते श्रुतास इहहंतस्तत्समाशत ॥ १ ॥

पविचं ते । विऽतंतं । ब्रह्मणः । पते । प्रऽभुः । गाचाणि । परि । एषि । विश्वतः ।

अतप्रऽतनूः । न । तत् । आमः । अश्रुते । श्रुतासः । इत् । वहंतः । तत् । सं । आशत ॥ १ ॥

हे ब्रह्मणस्पते मंचस्य स्वामिन् सोम ते पविचं शोधकमंगं विततं । सर्वच विस्तृतं । स प्रभुः प्रमविता त्वं गाचाणि पातुरंगानि पर्येषि । परिगच्छसि । विश्वतः सर्वतः । तव तत्पविचमतप्रतनूः पयोव्रतादिनासंतप्रगाच आमोऽपरिपक्वो नाश्रुते । न व्याप्नोति । श्रुतास इच्छृता एव परिपक्वा एव वहंतो यागं निर्वहंतस्तत्पविचं समाशत । व्याप्नुवति ॥

तपोष्पविचं विततं दिवस्पदे शोचंतो अस्य तंतवो व्यस्थिरन् ।

अवैतस्य पवीतारमाश्वो दिवस्पृष्टमधि तिष्ठति चेतसा ॥ २ ॥

तपोः । पविचं । विऽतंतं । दिवः । पदे । शोचंतः । अस्य । तंतवः । वि । व्यस्थिरन् ।

अवैति । अस्य । पवीतारं । आश्वः । दिवः । पृष्ठं । अधि । तिष्ठति । चेतसा ॥ २ ॥

तपोः शत्रूणां तापकस्य सोमस्य पविचं शोधकमंगं तेजो वा दिवस्पदे बुलोकस्योच्छ्रिते स्थाने विततं । विस्तृतं । तृतीयस्थामितो दिवि सोम आसीत् । तै० ब्रा० ३. २. १. १. इति ब्राह्मणं । अस्य तंतवोऽश्वः शोचंतो दीप्यमाना व्यस्थिरन् । विविधं तिष्ठति । पृथिव्यां हविर्धाने वा । अस्य सोमस्त्राश्वः शीघ्रगामिनो रसा अवैति । रचंति । कं । पवीतारं पावधितारं । यजमानमवैति रचंति होमद्वारा पञ्चाश्रुता दिवो बुलोकस्य पृष्ठं पृष्ठभागमुन्नतदेशं चेतसा बुद्ध्या देवगमनेच्छावत्याधि तिष्ठति । आश्रयते ॥

अभिष्टवेऽरुचदित्येषावपनीया । सूचितं च । ईके आवापृथिवी इति प्रागुक्तमाया अरुचचदुषसः पृश्निरयिय इत्यावपेत । आ० ४. ६. इति ॥

अरुचदुषसः पृश्निरयिय उक्षा विभर्ति भुवन्नानि वाजयुः ।

मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥ ३ ॥

अरुचत् । उषसः । पृश्निः । अयियः । उक्षा । विभर्ति । भुवन्नानि । वाजऽयुः ।

मायाऽविनः । ममिरे । अस्य । मायया । नृचक्षसः । पितरः । गर्भे । आ । दधुः ॥ ३ ॥

उषसः संबन्धी पृश्निरादित्यः । पृश्निरादित्यो भवति प्राश्रुत एनं वर्ण इति निरुक्तं । २. १४. । अग्निर्गो मुखः सोऽयं सोमोऽरुचत् । रोचयति । स उवा जलस्य सेक्ता विभर्ति पुष्पात्युदकेन भुवनानि भूतजातानि वाजयुक्षेषामन्नमिच्छन् । मायाविनो । माया प्रज्ञा । प्रज्ञावंतोऽस्य सोमस्य मायया प्रज्ञया ममिरे । निमीति । सोमस्यैकाग्रपानेन जातवला अन्यादयः स्वस्वत्वापारेण जगत्सृजंतीत्यर्थः । तथास्य मायया



नृचक्षो नृणां द्रष्टारः पाशका देवा अंगिरसः पितरो वा गर्भमा दधुः । धारयन्ति । जीवधीषु वाच  
सूर्यात्मा सोमः स्रूयते सूर्यरश्म्यनुगमाधीनवर्धनाच्चंद्रस्य । अयमुषसः पुत्रिः सविता रूचत । रोचयति सर्वं  
रोचते वा । शिष्टं समानं । तत्संबन्धिनो नृचक्षो नृणां द्रष्टारः पितरो अगद्रूचका रश्मयो गर्भमा  
दधुर्वृष्यर्थे ॥

अभिष्टवे खरमवेक्षमाणो गंधर्व इत्येतेषां पठेत् । सूचितं च । गंधर्व इत्या पदमस्य रक्षतीति खरमवेक्ष  
। आ० ४. ७. । इति ॥

गंधर्व इत्या पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः ।

गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥ ४ ॥

गंधर्वः । इत्या । पदं । अस्य । रक्षति । पाति । देवानां । जनिमानि । अद्भुतः ।

गृभ्णाति । रिपुं । निऽधया । निधाऽपतिः । सुकृत्तमाः । मधुनः । भक्षं । आशत ॥ ४ ॥

गंधर्व उदकाणां सुतीनां वा धारक आदित्योऽस्य सोमस्य पदं स्थानं कुसंबन्धीत्या सत्यं रक्षति । सोऽय  
सोमो देवानां जनिमानि जन्तानि । देवानित्यर्थः । पाति । रक्षति । अद्भुतो महान् । किंवायं रिपुमक्षद्विरिण  
निधया । निधा पाश्या । पाशसमूहेन गृभ्णाति । गृह्णाति । निधापतिः पशुसमूहस्वामी । तस्यास्य मधुनो  
मधुररसस्य भक्षं सुकृत्तमा अतिशयेन सुकृतकर्तार एवाशत । प्राप्नुवन्ति ॥

अन्तिमे प्रवर्गे परिधानीयायाः पूर्वं हविर्हविष्म इत्येषावपनीया । सूचितं च । उत्तमे प्रागुत्तमाया  
हविर्हविष्मो महि सप्त दैवमित्यावपेत् । आ० ४. ७. । इति ॥

हविर्हविष्मो महि सप्त दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरं ।

राजा पविचरथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ॥ ५ ॥

हविः । हविष्मः । महि । सप्त । दैव्यं । नभः । वसानः । परि । यासि । अध्वरं ।

राजा । पविचऽरथः । वाजं । आ । अरुहः । सहस्रंऽभृष्टिः । जयसि । श्रवः । बृहत् ॥ ५ ॥

हे हविष्मः । हविरित्युदकनाम । उदकवत् सोम हविर्भूतं जमः । उदकनामैतत् । उदकरसमित्यर्थः ।  
वसान आच्छादयन् महि महदैव्यं सप्त यागगृहं परि यासि । परिगच्छसि । अध्वरं निर्वोढुं । किंच हे सोम  
राजा पविचरथस्य वाजं संग्राममारुहः । आरोहसि । यद्वा । तच्च तच्च संग्रामवाचकेन शब्देन यज्ञव्यवहारदर्श-  
नादत्र वाजो यज्ञाख्यसंग्रामः । तमारुहः । यथा कश्चिद्वाजा रथमारुह्य स्वस्थानं प्रविशति तद्वदिति भावः ।  
किंच सहस्रभृष्टिर्ब्रह्मशः । अपरिमितगमन इत्यर्थः । अथवा भृष्टिरायुधं । असंख्यातायुधः सन् । बृहच्छ्रवो  
महद्दत्तं वयस्सखाकं ॥ ८ ॥

पवस्व देवमादन इति पंचर्वं सप्तदशं सूक्तं वाचः पुत्रस्य प्रजापतेरायं आगतं पवमानसोमदेवताकं । तथा  
चानुक्रांतं । पवस्व वाच्यः प्रजापतिरिति ॥ गतो विनियोगः ॥

पवस्व देवमादनो विचर्षणिरप्सा इंद्राय वरुणाय वायवे ।

कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्तिमदुरुक्षितौ गृणीहि दैव्यं जनं ॥ १ ॥

पवस्व । देवऽमादनः । विऽचर्षणिः । अप्साः । इंद्राय । वरुणाय । वायवे ।

कृधि । नः । अद्य । वरिवः । स्वस्तिऽमत् । उरुऽक्षितौ । गृणीहि । दैव्यं । जनं ॥ १ ॥

हे सोम देवमादनो देवानां मादयिता विचर्षणिविद्रष्टाप्सा अपां दाता त्वं पवस्व । चर । कसी । इंद्राय

वरुणाय वायवे च । नोऽस्माकं वरिवो धनं स्वस्तिमत । स्वस्तीत्यविनाशनाम । तद्वचनं छधि । कुष ।  
उरुचितौ विस्तीर्णायाम् भूमौ यज्ञसंबन्धिनां दैव्यं जनं देवसंबन्धिनं संचं । जनशब्दः संघवाची । तं गृणीहि ।  
गृणातिः शब्दकर्मा । शब्दय । यथा त्वदीयाभिषवशब्दं श्रुत्वा देवा आगच्छन्ति तथा गृणीहीत्यर्थः । अथवा  
दैव्यं जनमित्युचिः स्वात्मानमाह । देवसंबन्धिनं जनं मां गृणीहि । साधु संमतेति शब्दय ॥

आ यस्तस्यौ भुवन्नान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति ।

कृण्वन्त्संचृतं विचृतमभिष्टय इंदुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥२॥

आ । यः । तस्यौ । भुवन्नानि । अमर्त्यः । विश्वानि । सोमः । परि । तानि । अर्षति ।

कृण्वन् । संचृतं । विचृतं । अभिष्टये । इंदुः । सिषक्ति । उषसं । न । सूर्यः ॥२॥

योऽमर्त्यो देवः भोमो भुवनानि लोकाना तस्यौ आस्थितवान् तानि विश्वानि सर्वाणि भुवनानि पर्यर्षति  
परितो गच्छति । परितो रचतोत्यर्थः । सोऽयमिंदुर्यज्ञं यजमानं वा संचृतं देवैः फलेर्वा संवच्चं कृण्वन् कुर्वन्  
विचृतमसुरादिभिर्दुःखैर्वा विमुक्तं कृण्वन्नभितो यागाय सिषक्ति । सेवते यज्ञं । उषसं न सूर्यः सूर्यं उषसमिव  
यथाभिष्टयेऽभितो गमनाय प्राणिनां संचृतं प्रकाशैः संयुक्तं विचृतं तमोभिर्विमुक्तं च लोकं कुर्वन्नुषसं  
सेवते तद्वत् ॥

आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुप्ते इषयन्नुपावसुः ।

आ विद्युता पवते धारया सुत इंदुं सोमो मादयन्दैव्यं जनं ॥३॥

आ । यः । गोभिः । सृज्यते । ओषधीषु । आ । देवानां । सुप्ते । इषयन् । उपऽवसुः ।

आ । विद्युता । पवते । धारया । सुतः । इंदुं । सोमः । मादयन् । दैव्यं । जनं ॥३॥

यः सोमो गोमी रश्मिभिरा कज्यत ओषधीषु । यं सोमं स्थापयन्तीत्यर्थः । किमर्थं । देवानां सुप्ते सुखे  
निमित्ते सति । कीदृशोऽयं । इषयन् देवान्प्राप्तुमिच्छन् ॥ इष गतौ ॥ धनमिच्छन्वा । तथोपावसुः शत्रुभ्यः  
सकाशात्प्राप्तधनः । स सोमो विद्युता विद्योतमानया धारया आ पवते सुतः सन् । किं कुर्वन् । दैव्यं देवस्वा-  
मिनमिंदुं मादयन् ॥

एष स्य सोमः पवते सहस्रजिह्वानो वाचमिषिरामुषबुधं ।

इंदुः समुद्रमुदिर्यति वायुमिरेन्द्रस्य हार्दिं कलशेषु सीदति ॥४॥

एषः । स्यः । सोमः । पवते । सहस्रजित् । हिन्वानः । वाचं । इषिरां । उषः । बुधं ।

इंदुः । समुद्रं । उत् । इर्यति । वायुऽभिः । आ । इन्द्रस्य । हार्दिं । कलशेषु । सीदति ॥४॥

एष स्य स सोमः पवते । पूयते । कीदृश एषः । सहस्रजित् सहस्रस्य जेता । किं कुर्वन् । वाचमृत्विजां  
कुतिरूपां वाचं हिन्वानः प्रेरयन् । कीदृशो वाचं । इषिरां गमनशीलां सुतं प्रति गंचोमुषर्तुधमुषसि प्रनुज्ञां ।  
सोऽयमिंदुः सोमः समुद्रं समुद्रियं रसमुदिर्यति उन्नमयति वायुमिरेतुभिरध्वर्वादिभिः वायुमिरेव वा  
प्रेर्यमाणः सन् । तथेन्द्रस्य हार्दिं । हार्दिं प्रियं । तद्वादौद्रस्य निषवथा भवति तथा कलशेषु द्रोणकलशप्रभृ-  
तिष्वपि सीदति ॥

अभि त्वं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदं ।

धनंजयः पवते कृत्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥५॥



अभि । त्वं । गावः । पयसा । पयः ऽवृधं । सोमं । श्रीणंति । मति ऽभिः । स्वः ऽविदं ।  
धनं ऽजयः । पवते । कृत्यः । रसः । विप्रः । कविः । काव्येन । स्वः ऽचनाः ॥ ५ ॥

त्वं तं पयोवृधं पयसो वर्धकं सोमं गावः पयसा स्वकीयेन शीरेण श्रीणंति । अयणं कुर्वन्ति । यो मतिभिः  
क्षुतिभिः सर्वं प्रयच्छति तं स्वविदं सोमं श्रीणंति । स धनंजयः शत्रुधनानां जेता सोमः काव्येन कर्मणा  
पवति । पूयते । कीदृशः सः । कृत्यः कर्मणो रसो रसरूपो विप्रो मेधावी कविः क्रांतप्रज्ञः स्वर्चनाः सर्वाङ्गः ।  
चम इत्यङ्गनाम ॥ ॥ ५ ॥

इन्द्रायेति द्वादशर्चमष्टादशं सूक्तं मृगयोचस्य वेनस्त्वार्धं पवमानसोमदेवताकं । एकादशीद्वादशी त्रिष्टुभौ  
शिष्टा जगत्वः । तथा चानुक्तांतं । इन्द्राय द्वादश वेनो भार्गवो द्वित्रिष्टुभंतमिति ॥ गतो विनियोगः ॥

इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।  
मा ते रसस्य मत्सत इयाविनो द्रविणस्वंत इह संविदेवः ॥ १ ॥  
इन्द्राय सोम सुऽसुतः । परि । स्रव । अप । अमीवा । भवतु । रक्षसा । सह ।  
मा । ते । रसस्य । मत्सत । इयाविनः । द्रविणस्वंतः । इह । संतु । इंदेवः ॥ १ ॥

हे सोम त्वं सुषुतः सुहृमिषुतः सन्निद्रार्थं परि स्रव । परितः स्रव । गच्छ । रसं मुंच । अमीवा रोगो  
रक्षसा सहाप भवतु । अपगतो वियुक्तो भवतु । ते तव रसस्य स्वांशं रसं पीत्वा मा मत्सत । मा मावन्तु । के ।  
इयाविनः । इयं सत्यावृत्तं । तेन युक्ताः । पापिन इत्यर्थः । किंचिदप्यसौ रसा इहास्मिन्वे द्रविणस्वंतो धनवंतः  
संतु । भवन्तु ॥

अस्मान्समर्थं पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः ।  
जहि शत्रून् रभ्या भंदनायतः पिबेद्र सोममव नो मृधो जहि ॥ २ ॥  
अस्मान् । सऽमर्थं । पवमान् । चोदय । दक्षः । देवानां । असि । हि । प्रियः । मदः ।  
जहि । शत्रून् । अभि । आ । भंदनाऽयतः । पिब । इन्द्र । सोमं । अत्र । नः । मृधः । जहि ॥ २ ॥

हे पवमान सोम अस्मान्समर्थं संयामि चोदय । प्रेरय । दक्षो ह्यसि । समर्थः खलु भवसि देवानां मध्ये ।  
यद्वा । देवानां प्रीयनाय दक्षोऽसि । यद्वा । दक्षस्त्वं देवानां प्रियः प्रियकरो मदो मादयितासि हि । जहि  
च शत्रून्स्वाकं । अभागच्छ चास्मान्प्रति भंदनायतः । भंदनाः क्षुतयः । भंदतेः क्षुतिकर्मणः । ता इच्छतः ।  
पिब चेद्र सोमं अत्र जहि च नोऽस्वाकं मृधः संयामात् ॥

अदब्ध इंदो पवसे मदिंतम आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः ।  
अभि स्वरंति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते ॥ ३ ॥  
अदब्धः । इंदो इति । पवसे । मदिन्ऽतमः । आत्मा । इन्द्रस्य । भवसि । धासिः । उत्तमः ।  
अभि । स्वरंति । बहवः । मनीषिणः । राजानं । अस्य । भुवनस्य । निंसते ॥ ३ ॥

हे इंदो क्लिबमान सोम अदब्धोऽहिंसितो मदिंतमो मादयितुमस्त्वं पवसे । पूयसे । आत्मा स्वयमेवो-  
त्तमस्त्वमिन्द्रस्य धासिरुत्तं भवसि । अस्य भुवनस्य राजानं सोमं बहवो मनीषिणः स्वीतारोऽभि स्वरंति ।  
अभिष्टुवंति । निंसते । गच्छंति च ॥

सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इन्द्रायेंदुः पवते काम्यं मधु ।  
 जयन्क्षेचमभ्यर्षा जयन्क्षप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीदुः ॥४॥  
 सहस्रऽनीथः । शतऽधारः । अद्भुतः । इन्द्राय । इंदुः । पवते । काम्यं । मधु ।  
 जयन् । क्षेचं । अभि । अर्षा । जयन् । अपः । उरुं । नः । गातुं । कृणु । सोम । मीदुः ॥४॥

सहस्रणीथो बहुप्रकारणयः शतधारोऽपरिमितधारोपेतोऽद्भुत आश्चर्यकरो महानिदुरिन्द्राय काम्यं मधु पवते । किंच क्षेचमक्षमपय जयन्क्षेच । अभिगच्छ पविचं । हे सोम मीदुः सेतः गातुं मार्गं नोऽन्त्या-  
 क्मरुषं विलीयं कृणु । जुष ॥

कनिक्रदत्कलशे गोभिरज्यसे व्यय्यं समया वारमर्षसि ।  
 मर्मृज्यमानो अत्यो न सान्सिरिंद्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥५॥  
 कनिक्रदत् । कलशे । गोभिः । अज्यसे । वि । व्यय्यं । समया । वारं । अर्षसि ।  
 मर्मृज्यमानः । अत्यः । न । सान्सिः । इंद्रस्य । सोम । जठरे । सं । अक्षरः ॥५॥

हे सोम कनिक्रदच्छब्दं कुर्वन् कलशे वर्तमानो गोभिः पयोभिरज्यसे । सितो भवसि । अव्ययमविमयं वारं वाचं दशापविचं समया तत्समीपे अर्षसि । विविधं गच्छसि । मर्मृज्यमानः शोध्यमानोऽत्यो नाश्च एव सान्सिः संभजनशोक्तस्त्वं हे सोम इंद्रस्य जठरे समक्षरः । सम्यक् चरसि ॥

स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने ।  
 स्वादुर्मिचाय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ॥६॥  
 स्वादुः । पवस्व । दिव्याय । जन्मने । स्वादुः । इन्द्राय । सुहवीतुऽनाम्ने ।  
 स्वादुः । मिचाय । वरुणाय । वायवे । बृहस्पतये । मधुऽमान् । अदाभ्यः ॥६॥

हे सोम स्वादुस्त्वं दिव्याय जन्मने देवगणाय पवस्व । तथा सुहवीतुनाम्ने शोभनाद्भाननामधेयधि-  
 द्राय स्वादुस्त्वं पवस्व । मिचाय वरुणाय वायवे बृहस्पतये च पवस्व मधुमाक्मधुररसोऽदाभ्योऽन्तिर-  
 हिंसस्त्वं ॥ ॥१०॥

अत्यं मृजंति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाचं ईरते ।  
 पवमाना अभ्यर्षेति सुष्टुतिमेंद्रं विशंति मदिरास इंदवः ॥७॥  
 अत्यं । मृजंति । कलशे । दश । क्षिपः । प्र । विप्राणां । मतयः । वाचं । ईरते ।  
 पवमानाः । अभि । अर्षेति । सुऽस्तुतिं । आ । इंद्रं । विशंति । मदिरासः । इंदवः ॥७॥

अत्यमतनवतमक्षस्त्राणीयं वा सोमं कलशे दशं क्षिपो दशांगुलयोऽध्वर्युसंबन्धिन्यो मृजंति । शोधयंति । तथा विप्राणां मध्ये मतयः क्षीतारो वाचः क्षुतीरीरते । प्रेरयंति । पवमानाः सोमा अभ्यर्षेति अभिगच्छंति सुष्टुतिं शोभनस्तुतिं । इंद्रं मदिरासो मदकरा इंदवः सोमा आ विशंति । प्रविशंति ॥

पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वी गव्यूतिं महि शमं सप्रथः ।  
 मार्किनो अस्य परिषूतिरीशतेंदो जयेम त्वया धनं धनं ॥८॥



पर्वमानः । अ॒भि । अ॒र्षे । सु॒ऽवी॒र्ये । उ॒र्वी । ग॒व्यू॒तिं । म॒हि । श॒र्मे । सु॒ऽप्र॒थः ।  
मा॒किः । नः । अ॒स्य । परि॒ऽसू॒तिः । ई॒श॒त॒ । इ॒न्दो इ॒ति । ज॒र्ये॒म । त्व॒या । ध॒नं॒ऽध॒नं ॥ ८ ॥

हे सोम पवमानः पूषमानस्त्वं सुवीर्यसुर्वी महतीं गव्यूतिं गोमार्गं च महि महत् सप्रथः सर्वतः पृषु शर्मे  
गृहं सुखं वाभ्यर्थ । अभिगमय । नोऽस्माकमस्य कर्मणः परिपूतिर्हिंसायाः परित्ररको द्वेषी माकिरीयत ।  
मेघरो भवतु । हे इन्दो सोम त्वया साधनेन धनं धनं सर्वमपि धनं जयेम ॥

अधि॒ द्या॒र्मस्या॒वृष॒भो वि॒चक्ष॒णोऽरू॒रुच॒ष्टि दि॒वो रो॒च॒ना क॒विः ।  
राजा॑ प॒विच॒मत्ये॒ति रो॒रुव॒हिवः॑ पी॒यूषं॑ दु॒हते॒ नृच॒क्ष॑सः ॥ ९ ॥  
अधि॒ द्यां । अ॒स्यात् । वृष॒भः । वि॒ऽच॒क्ष॒णः । अ॒रू॒रुच॒त् । वि॒ दि॒वः । रो॒च॒ना । क॒विः ।  
राजा॑ । प॒विच॑ । अ॒ति । ए॒ति । रो॒रुव॒त् । दि॒वः । पी॒यूषं॑ । दु॒हते॒ । नृ॒ऽच॒क्ष॑सः ॥ ९ ॥

अथस्याद्यां बुलोकं वृषभो वर्षिता विचक्षणो विद्रष्टाय सोमः । तथा हत्वा दिवो बुलोकसंबन्धीनि  
रोचना रोचमानानि नक्षत्रादीनि अरूरुचत् । विविधं रोचयति । कविः क्रांतप्रज्ञः सनाता सोमः पविच  
दशापविचमत्येति । अतिक्रम्य गच्छति । रोरुवच्छब्दं कुर्वन् । दिवो बुलोकस्य पीयूषं सारं रसं वृषचसो गृणां  
द्रष्टारः सोमा दुहते । स्रवन्ति । स्वकीयं रसमांतरिष्यमुदकं वा दुहन्तीत्यर्थः ॥

दि॒वो ना॒के म॒धुजि॒ह्वा अ॒स॒श्च॒तो वे॒ना दु॒हं॒त्यु॒क्ष॒णं गि॒रि॒ष्ठां ।  
अ॒प्सु द्र॒प्सं वा॒वृधा॒नं स॒मुद्र॒ आ सि॒न्धो॒रूर्मा॑ म॒धुम॑न्तं प॒विच॒ आ ॥ १० ॥  
दि॒वः । ना॒के । म॒धु॒ऽजि॒ह्वाः । अ॒स॒श्च॒तः । वे॒नाः । दु॒हं॒ति । उ॒क्ष॒णं । गि॒रि॒ऽस्थां ।  
अ॒प्सु॒ऽसु । द्र॒प्सं । व॒वृधा॒नं । स॒मु॒द्रे । आ । सि॒न्धोः । ऊ॒र्मा । म॒धु॒ऽम॑न्तं । प॒विच॑ । आ ॥ १० ॥

दिवो द्योतमानस्य यज्ञस्य संबन्धिनि नाके दुःखरहिं हविर्धानाख्ये स्थाने मधुजिह्वा मधुरवाचोऽस्र-  
तोऽसंसृताः । पृथक्पृथगित्यर्थः । यद्वा चिरमहत्वा शीघ्रमभिपुण्वन्तो वेना एतन्नामका महर्षयो दुहन्ति ।  
अभिपुण्वन्ति । यद्वा । बुलोक एव वेनाः क्रांता देवा दुहन्ति । तं सोममुच्यते सेत्तारं गिरिष्ठां गिरावुन्नते देशे  
वर्तमानमप्सूदकेषु वसतीवरीष्वन्तर्वृधानं वर्धमानं द्रप्सं रसरूपं समुद्रे समुद्रवत्प्रवृत्ते द्रोणकलशे सिन्धोषद-  
कस्योर्मोर्मौ पूर आ सिंचन्तीति शेषः । तदर्थं मधुमन्तं माधुर्योपेतं रमं पविचे दशापविच आ सिंचन्तीति शेषः ॥

ना॒के सु॒पर्ण॑मु॒पप॒न्नि॒वांसं॑ गि॒रो वे॒नाना॑म॒कृप॑न्त॒ पूर्वीः॑ ।  
शि॒शुं रि॒हन्ति॑ म॒तयः॑ प॒नि॒प्रतं॑ हि॒र॒ण्य॒यं श॒कुनं॑ स्ना॒र्मणि॒ स्यां ॥ ११ ॥  
ना॒के । सु॒ऽपर्ण॑ । उ॒प॒प॒न्नि॒ऽवांसं॑ । गि॒रः । वे॒नाना॑ । अ॒कृ॒प॒न्त॒ । पूर्वीः॑ ।  
शि॒शुं । रि॒हन्ति॑ । म॒तयः॑ । प॒नि॒प्रतं॑ । हि॒र॒ण्य॒यं । श॒कुनं॑ । स्ना॒र्मणि॒ । स्यां ॥ ११ ॥

नाके बुलोके वर्तमानं पश्चादुत्पतन्तं पतयन्तं सोमं वेनानामस्माकं संबन्धिन्यः पूर्वीर्बह्वो गिरः कुतश्च उपा-  
ह्रपन्त । उपकल्पन्ति । अभिपुवन्तीत्यर्थः । तं शिशुं शिशुवत्संस्कार्यं सोमं मतयः कुतयो रिहन्ति । सिहन्ति । संसृ-  
यन्ति । प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । कीदृशं शिशुं । पनिप्रतं शब्दायन्तं ॥ पनतेर्यङ्गुगन्ताच्छतर्यभ्यासस्य निगागम उपधा-  
लोपश्च ॥ हिरण्ययं हिरण्ययं शकुनं पक्षिणं चामणि चमायां स्यां हविर्धाने स्यां वर्तमानं ॥

ऊर्ध्वो गंधर्वो अधि नाके अस्याद्विष्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य ।  
 भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्पारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः ॥१२॥  
 ऊर्ध्वः । गंधर्वः । अधि । नाके । अस्यात् । विष्वा । रूपा । प्रतिऽचक्षाणः । अस्य ।  
 भानुः । शुक्रेण । शोचिषा । वि । व्यद्यौत् । प्र । अरूरुचत् । रोदसी इति । मातरा ।  
 शुचिः ॥१२॥

ऊर्ध्वं उन्नतो गंधर्वो रश्मिनां धारकः सोमो नाक आदित्येऽध्यक्षात् । अधितिष्ठति । किं कुर्वन् ।  
 अस्यादित्यस्य विष्वा विष्वाणि रूपाणि प्रतिचक्षाणः प्रतिपञ्चन् । भानुरादित्यः सोमाधिष्ठितः सञ्जुक्तेण  
 दीप्तिन शोचिषा तेजसा व्यद्यौत् । विद्योतते । न केवलं स्वयमेव अपि तु मातरा निर्मात्र्यौ रोदसी वाचा-  
 पुथिव्यौ पारूरुचत् । प्ररोचयति । शुचिर्दीप्तः सूर्यः ॥ ॥११॥ ॥४॥

अथ पंचमे चानुवाक एकादश सूक्तानि । तत्र प्र त इत्यष्टाचत्वारिंशद्वचं प्रथमं सूक्तं । प्रथमदशर्चस्त्राकृष्टा  
 इति माषा इति च द्विनामान ऋषिगणा द्रष्टारः । द्वितीयस्य दशर्चस्य सिकता इति निवावरी इति द्विना-  
 मान ऋषिगणाः । तृतीयस्य दशर्चस्य पृथ्व्य इत्यजा इति च नामद्वयोपेता ऋषिगणाः । अदृष्टार्थमेषां  
 द्विनामत्वमवगतं । चतुर्थस्य दशर्चस्त्राकृष्टा माषा इत्यादिविनामानस्त्रयो गणा द्रष्टारः । एवं चत्वारिं-  
 शग्रताः । अथ पंचानां सौमोऽचिर्चक्षिः । ततस्त्रिदशां गृत्समदः । जगती छंदः । पवमानः सोमो देवता ।  
 तथा चानुक्रांतं । प्र तेऽष्टाचत्वारिंशद्वचिगणा दशर्चा आकृष्टा माषाः प्रथमे सिकता निवावरी द्वितीये  
 पृथ्व्योऽजासृतीये चयश्चतुर्थेऽचिः पंचात्यास्त्रिदशो गृत्समद इति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र त आश्वः पवमान धीजवो मदा अर्षेति रघुजा इव त्मना ।  
 दिव्याः सुपर्णा मधुमंत इंदवो मदितामासः परि कोशमासते ॥१॥  
 प्र । ते । आश्वः । पवमान । धीऽजवः । मदाः । अर्षेति । रघुजाऽइव । त्मना ।  
 दिव्याः । सुऽपर्णाः । मधुऽमंतः । इंदवः । मदिन्ऽतमासः । परि । कोशं । आसते ॥१॥

हे पवमान पूयमान सोम ते तकाश्वो व्याप्ता धीजवो मनोविगा मदा मदकरा रसा अर्षेति । गच्छंति ।  
 तनात्मनेव । अनायासेनेत्यर्थः । क इव । रघुजा इव । रघुः शीघ्रगा वज्रवा । तत्र जाता रघुजाः । त इव  
 निर्गतास्ते दिव्या दिवि भवाः । अंतरिक्षे दशापवित्रे धार्यमाणा इत्यर्थः । सुपर्णाः सुपतना मधुमंतो माधुर्यो-  
 पेता मदितामासोऽतिशयेन मादयितुतमा इंदवो दीप्ता रसाः कोश द्रोणकलशं पर्यासते । पर्युपविशंति ॥

प्र ते मदासो मदिरास आश्वोऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक् ।  
 धेनुर्न वत्सं पर्यसाभि वज्रिणमिंद्रमिंदवो मधुमंत ऊर्मयः ॥२॥  
 प्र । ते । मदासः । मदिरासः । आश्वः । असृक्षत । रथ्यासः । यथा । पृथक् ।  
 धेनुः । न । वत्सं । पर्यसा । अभि । वज्रिणं । इंद्रं । इंदवः । मधुऽमतः । ऊर्मयः ॥२॥

पारुषत प्रच्छज्यते ते तव मदिरासो मदकरा आश्वो व्याप्ता मदासो मदा रसाः । क इव । रथ्यासो  
 रथा अश्वाः ते यथा तथा पृथक् प्रच्छज्यते । ते मधुमंतो माधुर्योपेता ऊर्मयः प्रवृद्धरसा इंदवः सोमा धेनुः  
 पर्यसा वत्समिव स्वरसेन वज्रिणमिंद्रमभिगच्छंति ॥

अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष स्वर्विक्तोशं दिवो अद्रिमातरं ।  
 वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये सोमः पुनान इंद्रियाय धार्यसे ॥३॥



अत्यः । न । हिया॒नः । अ॒भि । वा॒जं । अ॒र्धे । स्वः॒ऽवित् । को॒शं । दि॒वः । अ॒द्रिऽमा॒तरं ।  
वृ॒षा । प॒वित्रे । अ॒धि । सा॒नौ । अ॒व्यये । सोमः । पु॒नानः । इ॒न्द्रिया॒य । धा॒यसे ॥ ३ ॥

अत्यो नाश्च इव हियानः प्रेर्यमाणो वाजं संग्राममभ्यर्थ । अभिगच्छ । तथा स्वर्वित् सर्ववित् कोशं द्रोण-  
कलशं दिवो युषोकादद्रिमातरं । अद्रिमैवः । तेन तज्जन्यमुदकं लक्ष्यते । तस्य निर्मातारमभ्यर्थ । अथ  
प्रत्यक्षतः । वृषा वर्षकः सोमोऽव्ययेऽविमयेऽधि सानौ । अधीति सप्तम्यर्थानुवादी । समुच्छ्रिते तस्मिन्  
पुनानः पूयमानो भवति । किमर्थं । धायसे धारकायेन्द्रियाय तदर्थं ॥

प्र त॒ आश्वि॑नीः प॒वमान॑ धी॒जुवो॑ दि॒व्या अ॒सृग्म॒न्यसा॒ धरी॑मणि ।  
प्रा॒तर्ऋ॑षयः स्था॒विरी॑रसृ॒क्षत॒ ये त्वा॑ मृ॒जन्त्य॑षिषाण वे॒धसः ॥ ४ ॥  
प्र । ते । आश्वि॑नीः । प॒वमा॑न । धी॒ऽजुवः॑ । दि॒व्याः । अ॒सृग्म॒न् । प॒र्यसा॑ । धरी॑मणि ।  
प्रा॒ऽतः । ऋ॑षयः । स्था॒विरीः । अ॒सृक्ष॑त । ये । त्वा॑ । मृ॒जन्ति॑ । ऋ॒षिऽसा॑न । वे॒धसः ॥ ४ ॥

हे पवमान सोम ते तवाश्विनीर्वाप्राः ॥ अमू व्याप्रावित्यस्मादौणादिको विधिः । ततोऽसृग्मन्यसा धरीमणि धारके द्रोणकलशे  
प्राक्कृतः । गच्छन्ति । ये वेधसो विधातार ऋषयो हे सोमर्षिषाणर्विभिः संभक्त त्वा त्वां मृजन्ति अभिपुण्वन्ति  
त ऋषयः स्थाविरीः स्खविरा धारा अंतर्मेधे पाचक्षांतः प्राक्कृत । प्राक्जन्ति ॥

वि॒श्वा धा॒मानि॑ वि॒श्वच॑क्ष ऋ॒भ्वसः॑ प्र॒भोस्ते॑ स॒तः परि॑ य॒न्ति के॒तवः॑ ।  
व्या॒न॒शिः प॒वसे॑ सोम॒ धर्मे॑भिः प॒तिर्वि॑श्वस्य भु॒वनस्य॑ राज॒सि ॥ ५ ॥  
वि॒श्वा । धा॒मानि॑ । वि॒श्वऽच॑क्षः । ऋ॒भ्वसः॑ । प्र॒ऽभोः । ते । स॒तः । परि॑ । य॒न्ति । के॒तवः॑ ।  
वि॒ऽआ॒न॒शिः । प॒वसे॑ । सो॒म । धर्मे॑ऽभिः । प॒तिः । वि॒श्वस्य॑ । भु॒वनस्य॑ । रा॒ज॒सि ॥ ५ ॥

हे विश्वचक्षः सर्वस्य द्रष्टः सोम प्रभोः परिवृढस्य सतस्ते तवर्भ्वसः । ऋभ्वा इति महत्ताम । महान्तो केतवो  
रश्मयो विश्वा सर्वाणि धामानि तेजःस्थानानि देवशरीराणि परि यन्ति । परिगच्छन्ति । प्रकाशयन्तीत्यर्थः ।  
हे सोम व्यानशिर्वापनशिक्षस्त्वं धर्मनिर्धारकै रसगिह्मदैः पवसे । पूयसे । विश्वस्य भुवनस्य च पतिः स्वामी  
स्वं राजसि । ईश्वरो भवसि ॥ १२ ॥

उ॒भय॑तः प॒वमान॑स्य र॒श्मयो॑ ध्रु॒वस्य॑ स॒तः परि॑ य॒न्ति के॒तवः॑ ।  
यदी॑ प॒वित्रे॑ अ॒धि मृ॒ज्यते॑ हरिः स॒त्ता नि॑ यो॒ना क॒लशेषु॑ सी॒दति॑ ॥ ६ ॥  
उ॒भय॑तः । प॒वमान॑स्य । र॒श्मयः॑ । ध्रु॒वस्य॑ । स॒तः । परि॑ । य॒न्ति । के॒तवः॑ ।  
यदि॑ । प॒वित्रे॑ । अ॒धि । मृ॒ज्यते॑ । हरिः । स॒त्ता । नि॑ । यो॒ना । क॒लशेषु॑ । सी॒दति॑ ॥ ६ ॥

पवमानस्य पूयमानस्य ध्रुवस्य स्वयमविचलितस्य सतो विद्यमानस्य सोमस्य केतवः प्रज्ञापका रश्मय  
उभयत इतस्त्रासुतस्य परि यन्ति । परिगच्छन्ति । अभिषवसमय एवं भवति । यदि यदा पवित्रे दशापवित्रे  
हरिर्हरितवर्णोऽयमधि मृज्यते तदानीं सत्ता सदनशीलोऽयं योनी स्त्रीये स्थाने कलशेषु द्रोणकलशादिषु  
नि सीदति ॥

यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतं ।  
 सहस्रधारः परि कोशमर्षेति वृषा पवित्रमत्येति रोहवत् ॥ ७ ॥  
 यज्ञस्य । केतुः । पवते । सुऽअध्वरः । सोमः । देवानां । उप । याति । निऽकृतं ।  
 सहस्रऽधारः । परि । कोशं । अर्षेति । वृषा । पवित्रं । अति । एति । रोहवत् ॥ ७ ॥

यज्ञस्य केतुः प्रजापकः स्वध्वरः शोभनयागः सोमः पवते । पूयते । अभिपूयते । तादृशः सोमो देवानां निष्कृतं संस्कृतं स्थानमुप याति । उपगच्छति । तदर्थं सहस्रधारः कोशं द्रोणकणशं पर्यर्षति । ततो तदर्थं वृषा सेक्तायं रोहवच्छब्दयन् पवित्रमतिक्रम्य गच्छत्यधोदेशं ॥

राजा समुद्रं नद्योऽ वि गाहतेऽपामूर्मिं संचते सिंधुषु श्रितः ।  
 अर्ध्यास्थात्सानु पर्वमानो अव्ययं नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः ॥ ८ ॥  
 राजा । समुद्रं । नद्यः । वि । गाहते । अपां । ऊर्मिं । संचते । सिंधुषु । श्रितः ।  
 अधि । अस्थात् । सानु । पर्वमानः । अव्ययं । नाभा । पृथिव्याः । धरुणः । महः । दिवः ॥ ८ ॥

अयं सोमो राजा समुद्रमंतरिष्य नवस्तचत्वा अपच वि गाहते । विगाह्य चापामूर्मिं संचते । उदकपूरं स्रवति । सिंधुषूदकेषु ग्रहेषु वा श्रितः सन् । हयमानः सन्नश्मिद्द्वारा सूर्यं प्राप्यांतरिषे मेघेषु वर्तत इत्यर्थः । अस्मैव वृष्टिप्राप्त्यनन्तात् । यद्वा । कुम्भोपममेतत् । समुद्रं नव इव सिंधुषु वसतीवरीषु श्रित आश्रितः सन् समुद्रमभिषुतसोमरसाधारपात्रं वि गाहतेऽभिषवात्पूर्वं । पश्चात्पवमानः पूयमानोऽव्ययं सानु समुच्छितं दशापवित्रमध्यस्थात् । अधितिष्ठति । कुच देशे । नाभा पृथिव्या नाभिस्थानीये यज्ञे । तत्संबन्धिनि हविर्धान इत्यर्थः । यज्ञमाहुर्भुवनस्य नाभिमिति श्रुतेः । कीदृशः । महो दिवो बुलोकस्य धरुणो धर्ता ॥

दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदद्यौश्च यस्य पृथिवी च धर्मभिः ।  
 इंद्रस्य सख्यं पवते विवेविदत्सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ॥ ९ ॥  
 दिवः । न । सानु । स्तनयन् । अचिक्रदत् । द्यौः । च । यस्य । पृथिवी । च । धर्मऽभिः ।  
 इंद्रस्य । सख्यं । पवते । विऽविविदत् । सोमः । पुनानः । कलशेषु । सीदति ॥ ९ ॥

दिवो न सानु स्तनयन् बुलोकस्य समुच्छितं स्थानं शब्दयन्निवाचिक्रदत् । क्रंदति । यस्य सोमस्य धर्मभिर्धारयैर्बौद्ध पृथिवी च धृति स्थातां । वृष्टिप्रदानद्वारौषध्याद्युत्पादनेन देवानां हविर्मात्रेण सोमयधारकत्वं प्रसिद्धं । तादृशः सोमो महानुभावः सोमः पुनानः पूयमान इन्द्रस्य सख्यं विवेविदत्पवते । पूयते पवित्रे । स पुनानः सोमः कलशेषु सीदति । निवसति ॥

ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभुर्वसुः ।  
 दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मर्दितामो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥ १० ॥  
 ज्योतिः । यज्ञस्य । पवते । मधु । प्रियं । पिता । देवानां । जनिता । विभुऽवसुः ।  
 दधाति । रत्नं । स्वधयोः । अपीच्यं । मर्दिन्ऽतमः । मत्सरः । इन्द्रियः । रसः ॥ १० ॥

यज्ञस्य ज्योतिः प्रकाशकः सोमः प्रियं देवानां मधु मधुरं रसं पवते । चरति । यद्वा । ज्योतिर्यज्ञस्येत्येतदपि मधुविशेषणं । तथा सत्युक्तलक्षणं मधु पवते पूयत इत्यर्थः । सोमरसो विशेष्यते । पिता रक्षिता देवानां



जगितोत्पादायता सर्वस्य विभूतसुः प्रभूतधनः । ईदृशः स स्वधयोर्बावापृथिव्योः । स्वधि पुरंधी इति यावा-  
पृथिवीनामसु पठितः । तयोरेपीच्यमंतर्हितं रत्नं रमणीयं धनं दधाति । स्थापयति कोतुषु । पुनः स एव  
विशेष्यते । मदित्तमो मादयितुतमो मत्सरः सोम इन्द्रिय इन्द्रिय सुष्ट इन्द्रस्य वर्धको वा रसो रसरूपः ॥ ११३ ॥

अभिक्रंदं कालं वाज्यं वर्धति पतिर्दिवः शतधारी विचक्षणः ।

हरिर्मिचस्य सदेनेषु सीदति मर्मजानोऽविभिः सिंधुभिर्वृषा ॥ ११॥

अभिऽक्रंदं । कालं । वाजी । अर्धति । पतिः । दिवः । शतऽधारः । विऽचक्षणः ।

हरिः । मिचस्य । सदेनेषु । सीदति । मर्मजानः । अविऽभिः । सिंधुऽभिः । वृषा ॥ ११ ॥

वाजी वेजनावान् गमनवानश्चसदृशो वा सोमोऽभिक्रंदं कालं कुर्वन् कलशमभ्यर्धति । गच्छति । कीदृशो  
वाजी । दिवः पतिर्युजोक्तस्य स्वामी शतधारः शतसंख्याकधारो विचक्षणी विद्वष्टा । हरिर्हरितवर्णो रसात्मकः  
सोमो मिचस्य देवानां मिचभूतस्य यज्ञस्य वा सदेनेषु स्थानेषु सीदति पात्रेषु धृतः सन् । कीदृशो हरिः ।  
सिंधुभिः खंदनसाधनैरविभिर्दशापविचच्छिद्भिर्मनुजानः शोध्यमानो वृषा वर्धकः ॥

अये सिंधूनां पर्वमानो अर्धत्यये वाचो अयियो गोषु गच्छति ।

अये वाजस्य भजते महाधनं स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा ॥ १२ ॥

अये । सिंधूनां । पर्वमानः । अर्धति । अये । वाचः । अयियः । गोषु । गच्छति ।

अये । वाजस्य । भजते । महाऽधनं । सुऽआयुधः । सोतृऽभिः । पूयते । वृषा ॥ १२ ॥

यः सोमः पवमानः सिंधूनां खंदमानागामुदकानामयेऽर्धति गच्छति । तथायियोऽयार्हः श्रेष्ठोऽये वाचो  
माध्यमिकाया अयेऽर्धति । तथा गोषु रश्मिषु गच्छति । तथा वाजस्यैव कलस्य वा नामाय महाधनं  
संयानं भवति । स स्वायुधो वृषा वर्धकः सोमः सोतृभिरभिषवकर्तृभिः पूयते ॥

अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितोऽर्थे ससार पर्वमान ऊर्मिणा ।

तव क्रत्वा रोदसी अंतरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इंद्र ते ॥ १३ ॥

अयं । मतऽवान् । शकुनः । यथा । हितः । अर्थे । ससार । पर्वमानः । ऊर्मिणा ।

तव । क्रत्वा । रोदसी इति । अंतरा । कवे । शुचिः । धिया । पवते । सोमः । इंद्र । ते ॥ १३ ॥

अयं सोमो मतवान् । मतं संमतं प्रियं स्वीकृतं । तद्वान् पवमानः पूयमानः सुयमानः शोध्यमानश्च सन्  
हितः प्रेरितः शकुनः पक्षी यथा शीघ्रं गच्छति तथाश्चे पविष ऊर्मिणा रसेन ससार । गच्छति । हे कवे  
क्रांतप्रज्ञ । अनुचान वा ये वा अनुचानास्ते कवयः । ऐ० ब्रा० २. ३८. । इति श्रुतिः । तादृशं यजमानं यद्वोक्तव्य-  
शर्णेन्द्र ते तव क्रत्वा कर्मणा धिया प्रज्ञया च । यद्वा । विशेषणविशेष्यभावः । धिया भारवेण क्रत्वा कर्मणा ।  
रोदसी अंतरा रोदस्वीर्बावापृथिव्योरंतरा शुचिः सोमः पवते । पूयते ॥

द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृशमंतरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः ।

स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत्प्रत्नमस्य पितरमा विवासति ॥ १४ ॥

द्रापिं । वसानः । यजतः । दिविऽस्पृशं । अंतरिक्षऽप्राः । भुवनेषु । अर्पितः ।

स्वः । जज्ञानः । नभसा । अभि । अक्रमीत् । प्रत्नं । अस्य । पितरं । आ । विवासति ॥ १४ ॥

दिविसृष्टं देवस्पृष्टारं द्रापि कवचं तेजो रूपं वसान आच्छादयन् यजतो यष्टव्योऽंतरिचप्रा अंतरिचस्य  
पूरक उदकेन तादृशः सोमो भुवनेषूदकेष्वपितः स्वः सर्वं स्वेन पाथयितव्यं देवसंघं स्वर्गं वा जज्ञानो जगयन् ।  
अथवा । स्वबद्धं । तज्जगयन् । नमसोदकेनाभ्यक्रमीत् । अभिक्रामति । अस्योदकस्य पितरं पालकं प्रत्नं पुरा-  
णमिंद्रमा विवासति । परिचरति ॥

सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे ।

पदं यदस्य परमे व्योमन्यतो विश्वा अभि सं याति संयतः ॥१५॥

सः । अस्य । विशे । महि । शर्म । यच्छति । यः । अस्य । धाम । प्रथमं । विऽव्यानशे ।

पदं । यत् । अस्य । परमे । विऽव्योमनि । अतः । विश्वाः । अभि । सं । याति । संऽयतः ॥१५॥

स सोमोऽस्येन्द्रस्य विशे प्रवेशनाय महि महच्छर्म सुखं यच्छति । यः सोमोऽस्येन्द्रस्य धाम तेजोयुक्तं  
शरीरं प्रथममितरदेवप्राप्तिः पूर्वं व्यानशे प्राप्तवान् । यद्यस्यास्य सोमस्य परमे महत्पुङ्गवे व्योमनि श्वेषेण  
रक्षके बुल्लोके वेद्यां वा पदं भवति । अतो यस्मात्सोमात्पुङ्गव इन्द्रः सोमः स्वयं वा विश्वाः संयतः सर्वा तया-  
मानभि याति सम्यगभिगच्छति । स सोमो महि शर्म यच्छतीति संबंधः ॥ ॥१४॥

प्रो अयासीदिंदुरिंद्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरं ।

मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाज्ञा पथा ॥१६॥

प्रो इति । अयासीत् । इंदुः । इंद्रस्य । निऽकृतं । सखा । सख्युः । न । प्र । मिनाति । संऽगिरं ।

मर्यः । इव । युवतिऽभिः । सं । अर्षति । सोमः । कलशे । शतऽयाज्ञा । पथा ॥१६॥

इंदुः सोम इंद्रस्य निष्कृतं स्थानमुदरं प्रो अयासीत् । प्रैव गच्छति । गत्वा च सखा सखिभूतः सोमः  
सख्युरिंद्रस्य संगिरं सम्यगिगरणाधारभूतमुदरं न प्र मिनाति । न हिनस्ति । किंच मर्य इव युवतिसिर्मर्त्यौ  
यथा युवतिभिः सह संगतो भवति तद्वदयमपि सोमो युवतिभिर्मिश्रणशोलाभिर्वसतीवरीभिरङ्घ्रिः सह  
समर्षति । संगच्छतेऽभिषवकाले । यस्मात्सोमः शतयाज्ञानेकयानसाधनच्छिद्रोपेतेन पथा मार्गेण दशापविच-  
संबंधिनि कलशे द्रोणकलशे गच्छतीति शेषः । यद्वा । एकमेव वाक्यं । यथा मर्यो युवतिभिः सह संगच्छते  
एवं कलशे शतयाज्ञा पथा संगच्छतेऽङ्घ्रिः ॥

प्र वो धियो मंद्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः ।

सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्नयुः ॥१७॥

प्र । वः । धियः । मंद्रऽयुवः । विपन्युवः । पनस्युवः । संऽवसनेषु । अक्रमुः ।

सोमं । मनीषाः । अभि । अनूषत । स्तुभः । अभि । धेनवः । पयसा । ई । अशिश्नयुः ॥१७॥

हे सोम वो युष्मत्कं धियो ध्यातारो मंद्रयुवो मदकरं शब्दं कामयमानाः पनस्युवः स्तुतिं कामयमाना  
विपन्युवः । स्तोतृनामितत् । स्तोतारः संवसनेषु संवासयोग्येषु यागगृहेषु प्राक्रमुः । प्रक्रमते । तदेवाह । सोमं  
मनीषा मनस ईश्वराः स्तुभः स्तोतारोऽभ्यनूषत । अभिष्टुवंति । धेनवोऽपि पयसा स्त्रीयेवेमेनं सोममभ्यशिश्नयुः ।  
अभिष्टीर्यन्ति ॥

आ नः सोम संयतं पिपुषीमिषमिंदो पवस्व पवमानो अस्मिधं ।

या नो दोहते चिरहृत्तसंशुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यं ॥१८॥



आ । नः । सोम । संऽयत् । पिप्युषी । इव । इंदो इति । पर्वस्व । पर्वमानः । अस्त्रिधै ।  
या । नः । दोहते । चिः । अहन् । असंश्रुषी । सुऽमत् । वाजऽवत् । मधुऽमत् । सुऽवीर्यं ॥ १८ ॥

हे इंदो दीप्त सोम पर्वमानस्त्वं नोऽस्माकं संयतं संगृहीतं पिप्युषीं प्रवृद्धमिषमन्नमस्त्रिधमवीर्यं पर्वस्व । प्रयच्छेत्त्यर्थः । या चादृशी नोऽस्माकमहन्नहन्नहन्नस्त्रिस्त्रिषु सवनेष्वसंयुज्यप्रतिबंधा दोहते चरति । किं । जुमच्छब्दोपेतं सर्वत्र श्रूयमाणं वाजवज्रधुमन्नाधुर्योपेतं सुवीर्यं शोभनसामर्थ्यं पुत्रं दोहते । तामिषं पर्वस्वेति समन्वयः ॥

वृषा मतीनां पवते विचक्ष्णः सोमो अहः प्रतरीतोषसो दिवः ।  
क्राणा सिंधूनां कलशां अवीवशत् इंदस्य हार्दीविशन्मनीषिभिः ॥ १९ ॥  
वृषा । मतीनां । पवते । विऽचक्ष्णः । सोमः । अहः । प्रऽतरीता । उषसः । दिवः ।  
क्राणा । सिंधूनां । कलशान् । अवीवशत् । इंदस्य । हार्दि । आऽविशन् । मनी-  
षिऽभिः ॥ १९ ॥

अयं सोमः पवते । अभिषूयते । कीदृशः सोमः । मतीनां । मतयः स्त्रोतारः । तेषां वृषा वर्षकः कामानां विचक्षयो विद्रष्टा अह उषसो दिवो बुलोकसादित्यस्य वा प्रतरीता प्रवर्धयिता । किंच सिंधूनां खंदमाना-  
नामुदकानां क्राणा कर्ता ॥ करोतेः शानचि ब्रह्म खंदसीति विकरणस्य लुक् । सुः । सुपां सुलुगित्याकारः ॥  
कलशानवीवशत् । कामयते प्रवेष्टुं । किं कुर्वन् । इंदस्य हार्दि हृदयमाविशन् प्रविशन् मनीषिभिः स्तुत इति  
शेषः । यद्वा । व्यवहितमपि मनीषिभिरित्येतत्पवत इत्यनेन संबध्यते ॥

मनीषिभिः पवते पूर्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशां अचिक्रदत् ।  
चित्तस्य नाम जनयन्मधु क्षरदिंदस्य वायोः सख्याय कर्तवे ॥ २० ॥  
मनीषिऽभिः । पवते । पूर्यः । कविः । नृऽभिः । यतः । परि । कोशान् । अचिक्रदत्  
चित्तस्य । नाम । जनयन् । मधु । क्षरत् । इंदस्य । वायोः । सख्याय । कर्तवे ॥ २० ॥

अयं सोमो मनीषिभिर्मैधाविभिरध्वर्षादिभिः पवते । पूर्यते । यद्वा । अयं मनीषिभिर्मैधीषिणीमिर्धा-  
राभिः पवते । चरति । कीदृशोऽयं । पूर्यः पुराणः कविर्मैधावी नृभिर्मैतृभिरध्वर्षादिभिर्यतो नियमितः सन्  
कोशान् कलशान्नाम्नं पर्यचिक्रदत् । परिक्रदते । शब्दं करोति । चित्तस्य चित्तु खानेषु विसृतस्त्रिंशस्य संबंधि  
नाम नामकमुदकं जनयन्नत्यादयन् मधु मधुरं रसं चरत् । चरति । किमर्थं । इंदस्य वायोश्च सख्याय कर्तवे  
सख्यं कर्तुं ॥ १५ ॥

अयं पुनान उषसो वि रोचयद्यं सिंधुभ्यो अभवदु लोककृत् ।  
अयं चिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ २१ ॥  
अयं । पुनानः । उषसः । वि । रोचयत् । अयं । सिंधुऽभ्यः । अभवत् । कुं इति । लोकऽकृत् ।  
अयं । चिः । सप्त । दुदुहानः । आऽशिरं । सोमः । हृदे । पवते । चारु । मत्सरः ॥ २१ ॥

अयं सोमः पुनानः पूयमान उषसो वि रोचयत् । विविधं रोचयति । अयं सिंधुभ्यः खंदमानाभ्योऽश्वो  
यसतीवरीभ्योऽभवत् । समृद्धो भवति । उ इति पूरणः । कीदृशोऽयं । लोकलोकानां कर्ता । वर्षकत्वाद्देतो-  
धारकत्वाच्चास्य लोककृत्त्वं । अयं सोमस्त्रिः सप्तैकविंशतिं गा अस्त्रिंशुखेनाशिरं दुदुहानो दुहानः । दोहस्य

प्रथोऽवकात्कर्तुं पदारः । मत्सरो मदकरबाध रमणीयं पवति । चरति । किमर्थं । हृदे हृदयाय हृदय-  
यमनाय ॥

पवस्व सोम दिव्येषु धामसु सृजान इंदो कलशे पविच आ ।

सीद्विंद्रस्य जठरे कर्निकदन्तृभिर्यतः सूर्यमारोहयो दिवि ॥ २२ ॥

पवस्व । सोम । दिव्येषु । धामसु । सृजानः । इंदो इति । कलशे । पविचै । आ ।

सीदन् । इंद्रस्य । जठरे । कर्निकदन्तृ । नृभिः । यतः । सूर्यै । आ । अरोहयः । दिवि ॥ २२ ॥

हे सोम दिव्येषु धामसु स्थानेषु । देवानां संबंधिषूदरेष्वित्यर्थः । तेषु पवस्व । चर । कीदृशः सन् । हे इंदो  
दीप्त सोम कलशे पविच आ दशापविचे च । आ इति चार्थः । सृजानः सृज्यमानः । अचामिहोषं जुहोति  
यवागूं पचतीतिवदार्थिकः क्रमोऽवगत्यर्थः । किंचेंद्रस्य जठरे सीदज्जठरं गच्छन् कर्निकदच्छब्दं कुर्वन् नृभिर्नै-  
नृभिर्चैस्त्रिभिर्मर्यतः परिगृहीतः । ऊत इत्यर्थः । तथाभूतः सन् दिवि सूर्यमारोहयः । प्रादुर्भूतमकरोः ॥

अद्रिभिः सुतः पवसे पविच आ इंद्विंद्रस्य जठरेष्वाविशन् ।

त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम गोचमंगिरोभ्योऽवृणोरप ॥ २३ ॥

अद्रिऽभिः । सुतः । पवसे । पविचै । आ । इंदो इति । इंद्रस्य । जठरेषु । आऽविशन् ।

त्वं । नृऽचक्षाः । अभवः । विऽचक्षण । सोम । गोचं । अंगिरऽभ्यः । अवृणोः । अप ॥ २३ ॥

हे इंदो सोम अद्रिभिर्योवभिः सुतोऽभिषुतस्त्वं पवसे । चरसि । पवसे वा । पविच आ दशापविचे । आ  
इति पूरणः । यद्वा । अभिषुतो भवसि पवसे चेति चार्थ आकारः । किं कुर्वन् । इंद्रस्य जठरेषु जठरप्र-  
देशेष्वविशन् । जठरप्रवेशित्यर्थः । किंच हे विचक्षण विद्वष्टः सोम त्वं नृचक्षा अभवः । नृणां मनुष्या-  
णामनुग्रहेण द्रष्टा भवसि । किंच हे सोम त्वमंगिरोभ्यो गोचं मेघमुदकं चारयितुं पथिभिरपहृतानां गवामा-  
वरकं पर्वतं चापावृणोः ॥

त्वां सोम पवमानं स्वाध्वोऽनु विप्रासो अमदन्वस्यवः ।

त्वां सुपर्ण आभरहि वस्परीदो विष्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतं ॥ २४ ॥

त्वां । सोम । पवमानं । सुऽआध्यः । अनु । विप्रासः । अमदन् । अवस्यवः ।

त्वां । सुऽपर्णः । आ । अभरत् । दिवः । परि । इंदो इति । विष्वाभिः । मतिऽभिः ।

परिऽकृतं ॥ २४ ॥

हे सोम पवमानं त्वां स्वाध्यः सुमतयः सुकर्माणो वा विप्रासो विप्रा मेधाविनः क्षीतारोऽवस्वो  
रवाकामा अन्वमदन् । अनुपुवंति । हे इंदो त्वां सुपर्णः श्रेण आभरत् । आहरत् । दिवस्परि सुलोकास्त्रोपरि ।  
सुलोकादित्यर्थः । कीदृशं त्वां । विष्वाभिर्मतिभिः सर्वाभिः सुतिभिः परिष्कृतमखंडतं ॥

अथ्ये पुनानं परि वारं ऊर्मिणा हरिं नवंते अभि सप्त धेनवः ।

अपामुपस्थे अध्यायवः कविमृतस्य योना महिषा अहेषत ॥ २५ ॥

अथ्ये । पुनानं । परि । वारं । ऊर्मिणा । हरिं । नवंते । अभि । सप्त । धेनवः ।

अपां । उपऽस्थे । अधि । आयावः । कविं । कृतस्य । योना । महिषाः । अहेषत ॥ २५ ॥



अथेऽविमये वारे वासे दशापविच कर्मिणा रसेन परि परितः पुनानं पवमानं हरिं हरितवर्णं सामभमि  
नवन्ते अभियच्छन्ति सप्त धेनवः प्रीणयिष्यः सप्त गायत्र्याथाः सप्त गंगाया नद्यो वा । नवन्ते चोदत इति  
गतिकर्मस्वयं पठितः । किंच कविं त्वामपासुपस्त्रेऽन्तरिक्षलोत्संगं चतस्र योनी । उदकनामितत् । अतं  
योनिर्धृतस्र योनिरिति तन्नामसु पाठात् । उदके महिषा महांत आयवो मनुष्या अधदेवत । अधिवं  
प्रैरयन्ति ॥ १६ ॥

इदं पुनानो अति गाहते मृधो विश्वानि कृण्वन् सुपथानि यज्यवे ।

गाः कृण्वानो निर्विजं हर्यतः कविरत्यो न क्रीळन्परि वारमर्षति ॥ २६ ॥

इदं । पुनानः । अति । गाहते । मृधः । विश्वानि । कृण्वन् । सुपथानि । यज्यवे ।

गाः । कृण्वानः । निःऽनिजं । हर्यतः । कविः । अत्यः । न । क्रीळन् । परि । वारं ।  
अर्षति ॥ २६ ॥

अयमिदुर्दोषः सोमः पुनानः पूयमानोऽति गाहते अतिक्रम्य गच्छति मृधः शूचून् । किं कुर्वन् । विश्वानि  
यंतव्यानि सुवर्तमानि वैदिकानि लौकिकानि च सुपथानि कृण्वन् कुर्वन् । कक्षी । यज्यवे यामर्षति । यजमानाय  
शूचून्परिहरन् मार्गान्सुपथान्कुर्वन् कलशं प्रविशतीत्यर्थः । किंच निर्विजमात्मीयं रूपं गाः कृण्वानः । रसमया-  
न्कुर्वन् इत्यर्थः । हर्यतः कांतः । हर्य गतिकांत्योः । औणादिकोऽतच् ॥ कविः क्रांतप्रज्ञः एवमुतः सोमोऽखी  
नाश्च इत् न क्रीळन् वारं दशापविचं पर्यर्षति । परिगच्छति ॥

असश्चतः शतधारा अभिश्चियो हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः ।

क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥ २७ ॥

असश्चतः । शतधाराः । अभिऽश्चियः । हरिं । नवन्ते । अव । ताः । उदन्युवः ।

क्षिपः । मृजन्ति । परि । गोभिः । आऽवृतं । तृतीये । पृष्ठे । अधि । रोचने । दिवः ॥ २७ ॥

असश्चतः परस्परमसंगताः शतधारा अभिश्चियोऽमितः सोमं अयंत्वसाः प्रसिद्धाः सूर्यस्य रसमयो हरिमव  
नवन्ते । गच्छन्ति । उदन्युव उदकेच्छावत्यः सत्यः । यदा । धाराशब्देनाच सोमधारा अभिप्रेताः । असश्चतो  
ऽसंबद्धा अभिश्चियोऽमितो गाः अयंत्वो गोभिः श्रितास्ताः प्रसिद्धा उदन्युव इंद्रसंबन्धिवृष्टिकामा हरिमिन्द्रमव  
नवन्ते । संगच्छन्ते । क्षिपोऽंगुलयोऽपि गोभिर्दीप्तिपक्षे गोभी रश्मिभिरावृतं सोमधारापक्षे गोभिः पर्यावृतं  
व्याप्तं सोमं मृजन्ति । अवशोधयन्ति । दिव आदित्याद्रोचने रोचमाने यमादित्यो रोचयति तस्मिन्मृतीये  
चित्पेक्षायां तृतीयभूते बुद्धौकेऽधि वसंतं सोमं मृजन्ति ॥

तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसस्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।

अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिदो प्रथमो धामधा असि ॥ २८ ॥

तव । इमाः । प्रजाः । दिव्यस्य । रेतसः । त्वं । विश्वस्य । भुवनस्य । राजसि ।

अथ । इदं । विश्वं । पवमान । ते । वशे । त्वं । इदो इति । प्रथमः । धामधाः । असि ॥ २८ ॥

तव दिव्यस्य रेतसः सकाशादिमाः प्रजा उत्पद्यमानाः प्राणिन उत्पन्नाः । सोमो वै रेतोधाः । तै० सं० २.  
१. १. ६. । इति श्रुतेः । त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि । इन्द्रो भवसि । अद्यापि चेदं विश्वं हे पवमान ते वशे  
त्वदधीनं वर्तते । हे इदो प्रथमो त्वं धामधा धाम्यो धर्तासि । भवसि ॥

त्वं समुद्रो असि विश्वविकवे तवेमाः पंच प्रदिशो विधर्मणि ।  
 त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः ॥२९॥  
 त्वं समुद्रः । असि । विश्वऽवित् । कवे । तव । इमाः । पंच । प्रऽदिशः । विऽधर्मणि ।  
 त्वं । द्यां । च । पृथिवीं । च । अति । जभिषे । तव । ज्योतींषि । पवमान । सूर्यः ॥२९॥

हे कवे ज्ञातप्रश्न त्वं यस्मात्समुद्रो वर्षसाधनोऽपां अतो विश्वविदसि । यद्वा । समुद्रो द्रवात्मकोऽसि विश्वविज्ञासि । किंच तव विधर्मणि विधारणे पंच प्रदिशः प्रकृष्टा दिशो भवन्तीति शेषः । त्वं द्यां च दिवं च पृथिवीं चाति जभिषे । विमर्षि । हे पवमान सूर्यो देवस्तव ज्योतींष्याप्याययति ॥

त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे ।  
 त्वामुशिजः प्रथमा अगृभ्णत तुभ्येमा विश्वा भुवन्नानि येमिरे ॥३०॥  
 त्वं । पवित्रे । रजसः । विऽधर्मणि । देवेभ्यः । सोम । पवमान । पूयसे ।  
 त्वां । उशिजः । प्रथमाः । अगृभ्णत । तुभ्यं । इमा । विश्वा । भुवन्नानि । येमिरे ॥३०॥

हे सोम पवमान त्वं रजसो लोकस्य रसस्य वा विधर्मणि विधारके दशापवित्रे देवेभ्यो देवार्थं पूयसे । त्वामुशिजः कामयमाना अलिजः प्रथमाः प्रथमा मुख्या अगृभ्णत । गृह्णति । तुभ्यं तुभ्यमिमेमानि विश्वा सर्वानि भुवनानि भूतजातानि येमिरे । यच्छंत्यात्मानं ॥ ॥१७॥

प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रद्वरिः ।  
 सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहन्ति मतयः पनिभ्रतं ॥३१॥  
 प्र । रेभः । एति । अति । वारं । अव्ययं । वृषा । वनेषु । अव । चक्रद्वत् । हरिः ।  
 सं । धीतयः । वावशानाः । अनूषत । शिशुं । रिहन्ति । मतयः । पनिभ्रतं ॥३१॥

रेभः शब्दयिता ॥ रेभु शब्दे ॥ सोमो वारमव्ययमविमयं बालं प्राप्नोति । प्रकर्षेणातिगच्छति । वृषा सेक्ता सोमो वनेषूदकेष्वव चक्रददवक्रंदन हरिर्हरितवर्णः सोमः । समनूषत । संसुवंति । के । धीतयो ध्यातारो वावशाना यागं सोमं वा कामयमानाः । शिशुं शिशुवत्संस्कार्तव्यं सोमं मतयः क्षुतयो रिहन्ति । लिहन्ति । स्पृशन्ति । स्वविषयीकुर्वन्तीत्यर्थः । कीदृशं । पनिभ्रतं शब्दधत्तं ॥

स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तंतुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ।  
 नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतं ॥३२॥  
 सः । सूर्यस्य । रश्मिभिः । परि । व्यत । तंतुं । तन्वानः । त्रिऽवृतं । यथा । विदे ।  
 नयन् । ऋतस्य । प्रऽशिषः । नवीयसीः । पतिः । जनीनां । उप । याति । निऽकृतं ॥३२॥

स सोमः सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत । परिविष्टयत्यात्मानं । किं कुर्वन् । त्रिवृतं सवनैर्देवैर्वा त्रिवृतं तंतुं यज्ञं तन्वानो विस्तारयन् यथा विदे जानाति । येन प्रकारेण संपूर्णमवगच्छति तथा तन्वानः । ऋतस्य सत्यभूतस्य यजमानस्य नवीयसीर्नवतराः प्रशिषः प्रशंसना अभिमतानि नयन् प्रापयन् । तस्मा एव जनीनां पतिः पालकः स्वामी निष्कृतं संस्कृतं पात्रमुप याति । गच्छति ॥



राजा॒ सिं॒धूनां॑ पवते॒ पति॑र्दिव॒ ऋ॒तस्य॑ याति॒ प॒थिभिः॑ कनि॒क्रदत् ।  
 सह॒स्र॒धारः॑ परि॒ विच्यते॑ हरिः॒ पुना॑नो वाचं॒ जनय॑न्नुपा॒वसुः॑ ॥३३॥  
 राजा॑ । सिं॒धूनां॑ । प॒वते॑ । पतिः॑ । दि॒वः । ऋ॒तस्य॑ । या॒ति । प॒थिऽभिः॑ । कनि॒क्रदत् ।  
 सह॒स्रऽधारः॑ । परि॑ । सि॒च्यते॑ । हरिः॑ । पुना॑नः । वाचं॑ । जनय॑न् । उ॒पऽवसुः॑ ॥३३॥

सिंधूनां नदीनामुदकानां रावेश्चरो दिवः पतिर्बुल्लोकस्य स्वाम्युतस्य यज्ञस्य पथिभिर्मार्गैः कनिःक्रदच्छब्दं कुर्वन्त्याति । सहस्रधारो बज्रधारायुक्तः सोमो नृभिर्नैतृभिर्हविर्भिः परि विच्यते पात्रेषु । पुनानः पूयमानो वाचं शब्दं जनयन्नुत्पादयन्नुपावसुः उपागच्छन्नः । परि विच्यत इति समन्वयः ॥

पव॑मान॒ म॒ह्य॒र्णो॒ वि॒ धा॒वसि॑ सू॒रो न चि॒त्रो अ॒व्य॒यानि॑ प॒थ्यया॑ ।  
 गर्भ॑स्ति॒पूतो॑ नृ॒भिर॑द्रि॒भिः सु॒तो म॒हे वाजा॑य॒ धन्या॑य॒ धन्व॑सि ॥३४॥  
 पव॑मान । म॒हि । अ॒र्णैः । वि॑ । धा॒वसि॑ । सू॒रः । न । चि॒त्रः । अ॒व्य॒यानि॑ । प॒थ्यया॑ ।  
 गर्भ॑स्तिऽपूतः । नृऽभिः । अ॒द्रिऽभिः । सु॒तः । म॒हे । वाजा॑य । धन्या॑य । धन्व॑सि ॥३४॥

हे पवमान सोम मह्यर्णो बह्मदत्तं । अर्ण इत्युदकनाम । रसं वा वि धावसि । गमयसि ॥ धावु गति-मुद्योः ॥ किंच सूरौ न चित्रः सूर्य इव चित्रस्यायनीयः पूज्यः सन्नव्ययान्यविमयानि पथ्यया पात्राणि गच्छसि । किंच गमस्तिपूतो बाहुभिरभिर्गोधितो नृभिर्हविर्भिर्गोवभिश्च सुतोऽभिपूतो महे महते वाजाय संयामाय धन्याय धनेभ्यो हिताय धन्वसि । गच्छसि । धन्वतिर्गतिकर्मा ॥

इ॒ष॒मूर्जे॑ पव॒माना॒भ्य॒र्षसि॑ श्ये॒नो न वंसु॑ क॒लशेषु॑ सी॒दसि॑ ।  
 इं॒द्राय॑ म॒द्वा म॒द्यो म॒दः सु॒तो दि॒वो वि॒ष्टं॑ उ॒प॒मो वि॒चक्ष॑णः ॥३५॥  
 इ॒षं । ज॒ज्ञे॑ । प॒व॒मान॑ । अ॒भि । अ॒र्षसि॑ । श्ये॒नः । न । वंसु॑ । क॒लशेषु॑ । सी॒दसि॑ ।  
 इं॒द्राय॑ । म॒द्वा । म॒द्यः । म॒दः । सु॒तः । दि॒वः । वि॒ष्टं॑ । उ॒प॒मः । वि॒चक्ष॑णः ॥३५॥

हे पवमान पूयमान सोम इषमन्नमूर्जे बलं चार्थर्षसि । श्येनो न श्येन इव वंसु वननीयेषु कुलायेषु कलशेषु सीदसि । निषण्णो भवसि । अथ परोक्षतः । इंद्राय मद्वा मदकरो मद्यो मदहेतुर्मदो रसः सुतोऽभिपूतः । कीदृशः । दिवो बुल्लोकस्योपम उपमीयमानो विष्टं विशेषेण क्षमयिता । खूणा यथा गृहं तथा । विचक्षणो विद्वष्टा । खूणैव जगौ उपमित । अ० १. ५९. १. इत्युक्तं ॥ ॥ १८ ॥

स॒प्त स्व॑सारो॒ अभि॑ मा॒तरः॒ शिशुं॑ न॒वं ज॒ज्ञानं॑ जे॒न्यं वि॒पश्चितं॑ ।  
 अ॒पां गंध॑र्वं दि॒व्यं नृ॒चक्ष॑सं सोमं॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य॒ राज॑से ॥३६॥  
 स॒प्त । स्व॑सारः । अ॒भि । मा॒तरः । शिशुं॑ । न॒वं । ज॒ज्ञानं॑ । जे॒न्यं । वि॒पऽचितं॑ ।  
 अ॒पां । गंध॑र्वं । दि॒व्यं । नृ॒चक्ष॑सं । सोमं॑ । विश्व॑स्य । भुव॑नस्य । राज॑से ॥३६॥

सप्त सर्पणस्त्रभावाः सप्तसंख्याका वा मातरो मातृस्थानीया गंगाद्यमुनाद्याः शिशुं शिशुस्थानीयमभि गच्छतीति शेषः । स्वकीयैः पयोभिराच्छादयतीति शेषः । कीदृशं शिशुं । नवं जज्ञानं जायमानं जेन्यं जयशीलं विपश्चितं विद्वांसं अपां जनकं तेषां मध्ये वर्तमानं वा गंधर्वमुदकस्य धातारं दिव्यं दिवि भवं नृचक्षसं नृणां द्रष्टारं सोमं । अभिगच्छति किमर्थं । विश्वस्य भुवनस्य विराजसे विराजनाथं ॥

ईशान इमा भुवनानि वीर्यसे युजान इंदो हरितः सुपर्ण्यः ।  
 तास्ते स्वरंतु मधुमहृतं पयस्त्व व्रते सोम तिष्ठंतु कृष्टयः ॥ ३७ ॥  
 ईशानः । इमा । भुवनानि । वि । ईर्यसे । युजानः । इंदो इति । हरितः । सु० सुपर्ण्यः ।  
 ताः । ते । स्वरंतु । मधु० मत् । घृतं । पयः । तव । व्रते । सोम । तिष्ठंतु । कृष्टयः ॥ ३७ ॥

हे इंदो सोम ईशानः सर्वस्य स्वामी त्वमिमेषां भुवनानि भूतजातानि वीर्यसे । गच्छसि ॥ वी गत्या-  
 दिषु ॥ किं कुर्वन् । हरितो हरितवर्णाः सुपर्णः सुपतनास्त्राश्च रथे युजानो योजयन् । ताः सुपर्ण्यस्य तव  
 संबंधिभ्यो मधुमन्नाधुर्योपेतं घृतं दीप्तं पय उदकं स्वरंतु । हे सोम तव व्रते कर्मणि तिष्ठंतु कृष्टयो मनुष्याः सर्वे ॥

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पर्वमान वृषभ ता वि धावसि ।  
 स नः पवस्व वसुमद्भिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ ३८ ॥  
 त्वं । नृ० चक्षाः । असि । सोम । विश्वतः । पर्वमान । वृषभ । ता । वि । धावसि ।  
 सः । नः । पवस्व । वसु० मत् । हिरण्य० वत् । वयं । स्याम । भुवनेषु । जीवसे ॥ ३८ ॥

हे सोम त्वं विश्वतः सर्वतः सर्वेषु भुवनेषु नृचक्षा नृणां द्रष्टासि । भवसि । हे पवमान वृषभायां वर्षक ता  
 अपो वि धावसि । विविधं गच्छसि । स त्वं नोऽस्माकं पवस्व । शर । किं । वसुमद्भ्योऽभिर्वसुभिर्वासकैर्गवा-  
 दिद्रव्यैर्युक्तं तथा हिरण्यवद्भूमिर्हिरण्यैर्युक्तं धनं । वयं च वसुभिर्हिरण्यैर्युक्ता भुवनेषु लोकेषु जीवसे जीवितुं  
 प्रभवः स्वाम । भवेम ॥

गोवित्पवस्व वसुविद्भिरण्यविद्रेतोधा इंदो भुवनेष्वर्पितः ।  
 त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ॥ ३९ ॥  
 गो० वित् । पवस्व । वसु० वित् । हिरण्य० वित् । रेतः० धाः । इंदो इति । भुवनेषु । अर्पितः ।  
 त्वं । सु० वीरः । असि । सोम । विश्व० वित् । तं । त्वा । विप्राः । उप । गिरा । इमे । आसते ॥ ३९ ॥

हे सोम त्वं पवस्व । शर । कीदृशः । गोविप्राणां संभक्कः वसुविद्यनस्य संभक्कः हिरण्यविद्भिरण्यस्य संभक्कः  
 रेतोधाः । रेत उदकं । तस्य धातौषधीनां । यद्वा । रेतः प्रजननसामर्थ्यं । तस्य धारयिता । भुवनेषूदकेष्व-  
 र्पितः । हे इंदो सोम त्वं सुवीरः सुवीर्योऽसि । भवसि । विश्ववित्सर्वस्य वेत्ता । तं त्वा त्वामिमे विप्रा गिरा  
 कुत्सोपासते ॥

उन्मध्वं ऊर्मिर्वनना अतिष्ठिपदपो वसानो महिषो वि गाहते ।  
 राजा पविचरथो वाजमारुहत्सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ॥ ४० ॥  
 उत् । मध्वः । ऊर्मिः । वननाः । अतिस्थिपत् । अपः । वसानः । महिषः । वि । गाहते ।  
 राजा । पविचरथः । वाजं । आ । अरुहत् । सहस्र० भृष्टिः । जयति । श्रवः । बृहत् ॥ ४० ॥

मध्वो मधुरस्वोर्मो रसो वनना वननीया वाच उदतिष्ठिपत् । उत्थापयति । सोमामिषवकास्ते क्षुतिवाचः  
 प्रवृत्तेः । अपो वसान आच्छादयन् महिषो महान् वि गाहते । पविशति कलशं । राजा सोमः पविचरथः ।  
 दशापविमेष रथो यस्य स तथोक्तः । तादृशः सोमो वाजं संयाममारुहत् । आरोहति । सहस्रभृष्टिर्ब्रह्म-  
 णोऽपरिमितगमनो बृहन्नो महदन्नं जयत्यसदर्थं ॥ १९ ॥



स भ॒न्दना॒ उ॒दिय॑ति॒ प्र॒जाव॑तीर्वि॒श्वायुर्वि॒श्वः सु॒भरा॒ अह॑दि॒वि ।

ब्रह्म॑ प्र॒जाव॑दु॒यिम॑श्वप॒स्त्यं पी॒त इ॒न्द्रवि॑न्द्र॒सस्म॑भ्यं या॒चता॑त् ॥४१॥

सः । भ॒न्दनाः । उ॒त् । इ॒य॒ति॒ । प्र॒जाऽव॑तीः । वि॒श्वऽआ॒युः । वि॒श्वः । सु॒भराः । अ॒हःऽदि॒वि ।

ब्रह्म॑ । प्र॒जाऽव॑त् । र॒यिं । अ॒श्वऽप॑स्त्यं पी॒तः । इ॒न्द्रो इ॒ति॒ । इ॒न्द्रं । अ॒स्मभ्यं॑ । या॒च॒ता॒त् ॥४१॥

स सोमो विश्वायुः सर्वस्य गन्ता सोमः प्रजावतीः प्रजावत्पुत्रपदायीः सुभराः सुष्ठु त्रिचमाणा विश्वाः सर्वा भन्दनाः सुतीरुदियति । उत्कृष्टं प्रेरयति । अस्मिन्काले उच्यते । अहर्दिव्यहोरात्रयोश्च । अथ प्रत्यक्षगतः । ब्रह्म परिपुष्टं कर्म प्रजावत् प्रजामिदुत्तं । प्रजाफलवमित्यर्थः । यद्वा । अन्नं तच्च प्रजावत् प्रजायुपेतं । तथा रयिं धनं । कीदृशं । अश्वपस्त्यं व्याप्तगृहं । तदुभयं हे इन्द्रो दीप्त सोम पीत इन्द्रेण पीतस्त्वं तमेवैन्द्रमश्वभ्यं याचतात् । याचस्व ॥

सो अ॒ये अ॒ह्नां हरि॑र्ह॒र्यतो॒ मदुः प्र॒ चेत्त॑सा चे॒तय॑ते अ॒नु शु॒भिः ।

द्या ज॒ना या॒तय॑न्त॒न्तरी॑यते॒ नरा॑ च॒ शंसं॑ दै॒व्यं च॒ ध॒र्तेरि॑ ॥४२॥

सः । अ॒ये । अ॒ह्नां । हरिः । ह॒र्य॒तः । म॒दः । प्र॒ । चे॒त्त॑सा । चे॒त॒य॑ते । अ॒नु । शु॒भिः ।

द्या । ज॒ना । या॒त॒य॑न् । अ॒न्तः । इ॒य॑ते । न॒रा॒शंसं॑ । च॒ । दै॒व्यं । च॒ । ध॒र्तेरि॑ ॥४२॥

स सोमोऽये सर्वेषां संमुखं चेतसा प्राणिनां चेतनेन सहाह्नां शुभिर्दीप्तिमिरगु प्र चेतयते । अनुप्रज्ञायते । यद्वा । अह्नामयेऽयमग्निः । प्रातरित्यर्थः । सोतृणां चेतसा प्रज्ञानेन शुभिर्दीप्ताग्निः सुतिमिद्वानु प्र चेतयते । कीदृशः सः । हरिर्हरितवर्णो हर्यतः कांतो मदो मदकरः । किंच द्या जना द्यौ जगौ क्षीतारं यष्टारं च यातयन् प्रापयन् स्वविहितेन कर्मणा । लौकिकवेदिकौ द्वौ जनौ द्रष्टव्यौ । एवं कुर्वन्तर्वावापृथिव्योर्मध्य ईयते । गच्छति ॥ ईरु गती ॥ किं कुर्वन् । नराशंसं नरैः शंसनीयं । मानुषमित्यर्थः । दैव्यं च दिवि भवमुस-  
यविधं धनं धर्तेरि धारके यजमाने प्रेरयन्निति शेषः ॥

अ॒जते॒ व्य॑जते॒ सम॑जते॒ क्रतुं॑ रि॒हन्ति॒ मधु॑ना॒भ्य॑जते ।

सि॒न्धो॒रु॒क्ष्वासे॒ प॒तय॑न्त॒मु॒क्ष्णं॑ हि॒रण्य॑पा॒वाः प॒शुमा॑सु गृ॒भ्णते॑ ॥४३॥

अ॒ज॒ते । वि॒ । अ॒ज॒ते । सं । अ॒ज॒ते । क्र॒तुं । रि॒ह॒न्ति॒ । म॒धु॒ना । अ॒भि । अ॒ज॒ते ।

सि॒न्धोः । उ॒त् । अ॒श्वा॒से । प॒त॒य॑न्त॒ । उ॒क्ष्णं॑ । हि॒र॒ण्य॒ऽपा॒वाः । प॒शुं । आ॒सु । गृ॒भ्ण॑ते ॥४३॥

सोममुखिजोऽजते गोभिः । तथा व्यजते । विविधमजन्ति । समजते । सम्यगजन्ति । सुत्यर्थत्वादपुनरुक्तिः । तथा क्रतुं नक्षकर्तारं रिहन्ति । लिहन्ति । आस्तादयन्ति देवाः । तथा पुनर्मधुना गव्येनाभ्यजते । तमेव सोमं सिन्धोरुदकस्य रसस्याधारभूत उक्ष्वास उच्छ्रिते देशे पतयन्तं गच्छन्तं ॥ पशुं गताचिन्त्यास्तास्वार्थे णिचि वृक्ष-  
भावस्कादसः ॥ उच्यन्ते वेत्तारं हिरण्यपावा हिरण्येन पुनतः पशुं द्रष्टारं । पशुः पश्यतेरिति निरुक्तं । ३. १६ । आसु वसतीधरीषु गृभ्णते । गृह्णन्ति ॥

वि॒प॒श्चि॒ते प॑र्व॒माना॑य॒ गाय॑त॒ म॒ही न॒ धारा॑त्य॒धो अ॑र्षेति ।

अ॒हि॒र्न जू॒र्णो॒मति॑ सर्प॑ति॒ त्वच॑म॒त्यो न॒ क्री॒ळन्॑स॒र॒वृषा॑ हरिः ॥४४॥

वि॒पःऽचि॑ते । प॑र्व॒माना॑य । गा॒य॒त॒ । म॒ही । न । धा॒रा । अ॒ति॒ । अ॒धः । अ॒र्षे॒ति॒ ।

अ॒हिः । न । जू॒र्णो॒ । अ॒ति॒ । सर्प॑ति॒ । त्वच॑ । अ॒त्यः । न । क्री॒ळन् । अ॒स॒र॒त् । वृ॒षा॒ । हरिः ॥४४॥

हे ऋत्विजः विपश्चिते मेधाविने पवमानाय पूयमानाय गायत । सुतिं कुरुत । स च विपश्चितोमो महि  
न धारा महती वर्षधारेबांधोऽन्नं रसात्मकमत्यर्षति । अहिर्नोहिरिव जूष्णीं जीष्णीं स्वचमति सर्पति । अति-  
मुंचति । अभिषवादिर्मणा स्वचं मुंचतीत्यर्थः । तद्वदतिसर्पति धारा दशापविचात् । अतो नाथ इव  
क्रौञ्चसरत् । सरति । गच्छति द्रोणकलशं । वृषा वर्षकः कामानां हरिर्हरितवर्णो रसः ॥

अयेगो राजायस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।

हरिर्यृतस्तुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्वः ॥४५॥

अयेऽगः । राजा । अयः । तविष्यते । विऽमानः । अह्नां । भुवनेषु । अर्पितः ।

हरिः । धृतऽस्तुः । सुऽदृशीकः । अर्णवः । ज्योतिःऽरथः । पवते । राये । ओक्वः ॥४५॥

अयेगोऽये गता राजा राजमानोऽप्योऽप्यु संकृतः सोमस्तविष्यते । सूयते । योऽह्नां दिनानां विमानो  
निर्माता चंद्रकलाह्रासवृद्धधीनत्वादहर्व्यवहारस्य । भुवनेषूदकेषु वसतीवरीसंबधिष्वर्पितः स्थापितः स राजा  
तविष्यते । किंच हरिर्हरितवर्णो धृतस्तुः प्रकृतोदकः सुदृशीकः शोभनदर्शनोऽर्णव उदकवान् । अर्ण इत्युदक-  
नाम । ज्योतीरथो ज्योतिर्मयरथो राये धनस्य प्रापयिता । ओक्वः । ओक् इति निवासनाम । तस्य  
हितः ॥ ॥२०॥

असर्जि स्कंभो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।

अंशुं रिहंति मतयः पनिघ्नतं गिरा यदि निर्णिजंमृग्मिणो ययुः ॥४६॥

असर्जि । स्कंभः । दिवः । उत्ऽयतः । मदः । परि । त्रिऽधातुः । भुवनानि । अर्षति ।

अंशुं । रिहंति । मतयः । पनिघ्नतं । गिरा । यदि । निऽनिजं । मृग्मिणः । ययुः ॥४६॥

दिवो बुलोकस्य स्कंभः स्कंभयिता धारक उद्यतः सोमोऽसर्जि । रुज्यते । अभिपूयत इत्यर्थः । किंच  
त्रिधातुः । द्रोणकलशाधावनीचपूतभृदाख्यास्त्रयो धातवो यस्य स तथोक्तः । तादृशो भुवनान्युदकान्यर्षति ।  
गच्छति । अंशुं सोमं पनिघ्नतं शब्दायमानं मतयः पूजका रिहंति । लिहंति । आस्तादयंति । कदा । यदि  
निर्णिजं निर्णिक्तं । यद्वा । निर्णिगिति रूपनाम । रूपवंतमित्यर्थः । तमृग्मिणः स्तोतारो गिरा क्षुत्वा ययुः  
गच्छति तदा ॥

प्र ते धारा अत्यखानि मेथः पुनानस्य संयतो यंति रंहयः ।

यज्ञोभिरिदो चम्बोः समज्यस आ सुवानः सोम कलशेषु सीदसि ॥४७॥

प्र । ते । धाराः । अति । अखानि । मेथः । पुनानस्य । संऽयतः । यंति । रंहयः ।

यत् । गोभिः । इंदो इति । चम्बोः । संऽअज्यसे । आ । सुवानः । सोम । कलशेषु । सीदसि ॥४७॥

पुनानस्य पूयमानस्य संयतः संगृह्यमाणा रंहयो रंहणस्वभावा धारा मेथोऽखान्यगूनि लोमान्यति  
यति । अतिक्रम्य गच्छति । हे इंदो सोम यद्यदा गोभिरुदकैश्चम्बोरधिषवणफलकयोरपरि समज्यसे तदानीं  
हे सोम सुवानः सूयमानस्त्वं कलशेष्वा सीदसि ॥

पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्योऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियं ।

जहि विश्वानक्षस इंदो अचिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥४८॥



पवस्व । सोम । ऋतुऽवित् । नः । उक्थ्यः । अक्थ्यः । वरिः । परिः । धाव । मधु । प्रियं ।  
जहि । विश्वान् । रक्षसः । इंदो इति । अचिणः । बृहत् । वदेम । विदधे । सुऽवीराः ॥ ४८ ॥

हे सोम नोऽस्माकं ऋतुवित् कर्मज्ञः । स्तुतिश्च इत्यर्थः । उक्थ्यः स्तुत्यः । यतः स्तुत्यः अतः ऋतुविदित्वमि-  
प्रायः । ईदृशस्त्वं नोऽस्माकं आगाय पवस्व । सव रसं । अक्थ्यो वरिः दशापवित्रे प्रियं मधु परि धाव ।  
परिचर । हे इंदो दीप्त सोम अचिणो भक्षकान्विश्वान्नक्षसो जहि । सुवीराः सुपुत्रा वयं विदधे यज्ञे बृहत्-  
हृदयं वदेम । उच्चारयेम । आचिमेत्यर्थः । यद्वा । प्रभूतं स्तोत्रं वदेम ॥ २१ ॥

प्र तु द्रवेति नवर्षं द्वितीयं सूक्तं काव्यस्योशनस आर्थं । अनादेशपरिभाषया चैष्टमं पवमानसोमदेवतात्वं ।  
तथा चानुज्ञातं । प्र तु नवोशना इति । जागतमूर्ध्वं प्रागुशनसः । अनु० अ० ९. ६७. इति वचनाज्जगत्त्व-  
धिकारो निवृत्तः ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद् नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।  
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयंतोऽच्छा बर्हि रशनाभिर्नयंति ॥ १ ॥  
प्र । तु । द्रव । परि । कोशं । नि । षीद् । नृभिः । पुनानः । अभि । वाजं । अर्ष ।  
अश्वं । न । त्वा । वाजिनं । मर्जयंतः । अच्छ । बर्हिः । रशनाभिः । नयंति ॥ १ ॥

हे सोम तु अिप्रं प्र द्रव । प्रगच्छ । गत्वा च कोशं द्रोणकलशं परि नि षीद् । निषस्यो भव । नृभिर्नैतुभिः  
पुनानः पूयमानो वाजमर्षं यजमानार्थमुद्दिश्यामर्ष । अभिगच्छ । वाजिनं बलवन्तमश्वं नाशमिव तं यथा  
मार्जयंति तद्वद्वाजिनं त्वां मार्जयंतः शोधयंतो बर्हिर्यज्ञमच्छ प्रति रशनाभी रशनावदायतानिरंगुलीभिर्न-  
यंत्यध्वर्युप्रमुखाः ॥

स्वायुधः पवते देव इंदुरशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः ।  
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टंभो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥ २ ॥  
सुऽआयुधः । पवते । देवः । इंदुः । अशस्तिहा । वृजनं । रक्षमाणः ।  
पिता । देवानां । जनिता । सुऽदक्षः । विष्टंभः । दिवः । धरुणः । पृथिव्याः ॥ २ ॥

स्वायुधः शोभनायुध इंदुः सोमो देवः पवते । स च देवोऽशस्तिहा रक्षोहा वृजनमुपद्रवं रक्षमाणः पिता  
पालको देवानां तथा जनितोत्पादकः सुदक्षः सुवज्रो दिवो विष्टंभो विशेषेण संभयिता पृथिव्याश्च धरुणो  
धारकः । एवमहानुभावः पवते ॥

अधिविप्रः पुरेता जनानामृधिरि उशना काव्येन ।  
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं गुह्यं नाम गोनां ॥ ३ ॥  
अधिः । विप्रः । पुरऽएता । जनानां । अृधुः । धीरः । उशना । काव्येन ।  
सः । चित् । विवेद । निऽहितं । यत् । आसां । अपीच्यं । गुह्यं । नाम । गोनां ॥ ३ ॥

अधिरतींद्रियद्रष्टा विप्रो मेधावी पुरेता पुरतो गता जनानां मनुष्याणामुपद्रव मासमानो धीरो  
धीमानुशनेतज्ञामविषयः स चित् स एव काव्येन कवित्वेन स्तोत्रेण विवेद । जमते । किं । यदासां गोनां गवा-  
मपीच्यं । अंतर्हितगमितत् । अंतर्हितं गुह्यं गोपनीयं नाम नामकमुदकं पयोत्तपणं ॥

एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।

सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बहिरा वाज्यस्यात् ॥४॥

एषः । स्यः । ते । मधुऽमान् । इन्द्र । सोमः । वृषा । वृष्णे । परि । पवित्रे । अक्षारिति ।

सहस्रऽसाः । शतऽसाः । भूरिऽदावा । शश्वत्तमं । बहिः । आ । वाजी । अस्यात् ॥४॥

हे इन्द्र वृष्णे वर्षकाय ते तुभ्येभ्य स्त स सोमो मधुमान् माधुर्योपेतो वृषा वर्षकः पवित्रे पर्यचाः । परि-  
वरति । परतेर्बुद्धि रूपं ॥ स एष सहस्रसाः सहस्रसंख्याकधनस्य दाता शतसाः शतसंख्याकस्य दाता  
भूरिदावा ततोऽपि भूरिदाता वाजी बलवान्शश्वत्तमं नित्यं बहिर्यज्ञमास्यात् । आतिष्ठति ॥

एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि ।

पवित्रेभिः पवमाना असुयञ्छ्वस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥५॥

एते । सोमाः । अभि । गव्या । सहस्रा । महे । वाजाय । अमृताय । श्रवांसि ।

पवित्रेभिः । पवमानाः । असुयन् । अस्वस्यवः । न । पृतनार्जः । अत्याः ॥५॥

एते सोमा गव्या गव्यानि सहस्रा सहस्राणि अवांस्यन्नान्याशिरलक्षणाणि लक्ष्मीकृत्य पवित्रेभिः पवित्र-  
च्छिद्रेः पवमानाः पूयमानः । महे महते वाजायामृतायामृतत्वायाभ्युदयन् । उद्यन्ते । किमिच्छवः ।  
अपस्त्ववोऽन्नेच्छवः पृतनाजः सेनाधितारोऽत्या नास्या इव ॥ ॥२२॥

परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरज्जोर्जना पूयमानः ।

अथा भर श्येनभृत प्रयांसि रयिं तुंजानो अभि वाजमर्ष ॥६॥

परि । हि । स्म । पुरुऽहूतः । जनानां । विश्वा । असरत् । भोजना । पूयमानः ।

अथ । आ । भर । श्येनऽभृत । प्रयांसि । रयिं । तुंजानः । अभि । वाजं । अर्ष ॥६॥

अथ पर्यसरत् परिसरति जनानामर्थाय विश्वा सर्वाणि भोजना भोजनान्यन्नाणि धनानि वा । कीदृशः ।  
पुरुहूतो वज्रनिराकृतः पूयमानः शोधमानः । अथ प्रत्यक्षकृतः । अथेदानीं हे श्येनभृत श्येनाहत सोम त्वं  
प्रयांस्यन्नान्या भर । आहर । रयिं धनं तुंजानो ददानो वाजमर्षं रसमभ्यर्ष । अभिगच्छ ॥

एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदवी ।

तिग्मे शिशानो महिषो न शृंगे गा गव्यक्षभि शूरो न सत्वा ॥७॥

एषः । सुवानः । परि । सोमः । पवित्रे । सर्गः । न । सृष्टः । अदधावत् । अवी ।

तिग्मे इति । शिशानः । महिषः । न । शृंगे इति । गाः । गव्यन् । अभि । शूरः । न ।

सत्वा ॥७॥

एष सुवानः सुयमानोऽवीरणकुशलः सोमः सर्गो न सृष्टो विसृष्टोऽश्च इव पवित्रे पर्यदधावत् । परिधा-  
वति । किंच तिग्मे तीक्ष्णे शृंगे शिशानलक्षणीकुर्वन् महिषो न महान् महिषाख्यो मृग इव । तथान्यदृष्टान्तः ।  
गा गव्यन् प्रमृता गा इच्छन्शूरो न शूर इव । एतौ महिषशूरो यथा प्रतिबुद्धौ शीघ्रं धावतः तद्वत् सत्वा  
सदनशीलोऽयं गच्छतीति शेषः ॥



ए॒षा य॒यौ पर॒माद॑तर॒द्रेः कू॒चि॒त्स॒तीरू॒र्वे गा वि॒वेद॑ ।

दि॒वो न वि॒द्युत्स॒नय॑न्त्य॒भैः सोम॑स्य ते प॒वत॑ इ॒न्द्र धा॒रा ॥ ८ ॥

ए॒षा । आ । य॒यौ । पर॒मात् । अ॒न्तः । अ॒द्रेः । कू॒ऽचि॒त् । स॒तीः । ऊ॒र्वे । गाः । वि॒वेद॑ ।

दि॒वः । न । वि॒ऽद्युत् । स॒नय॑न्ती । अ॒भैः । सोम॑स्य । ते । प॒वते॑ । इ॒न्द्र । धा॒रा ॥ ८ ॥

एषा सोमधारा परमादुच्छ्रितात्स्थानाद्ययी जगाम पात्रं स्वयंप्राप्तव्यं देशं वा । किंचाद्रेः पथीनां निवासस्थानस्य पर्वतस्त्रातः कूचितं क्वचित् कुचचिद्रूढ ऊर्वे देशे सतीर्वर्तमानाः पथिमिरपहता गा विवेद । जन्मवती । यष पथयो गा अपहृत्य स्थापितवन्तः स देश ऊर्वः । ऊर्वं गव्यं महि गुणानः । अ० ६. १७. १. इति हि मंषांतरं । दिवो न विद्युदिवः सक्वाशाद्विद्युदिव स्नयन्ती शब्दयन्ती । विद्युद्विशेष्यते । अभैः प्रेरितेति शेषः । सा यथा शब्दं करोति तदच्छब्दं ऊर्वती । सोमस्य संबन्धिनी सेयं धारा हे इन्द्र ते त्वदर्थं स्वत्पानाय पवते । पूयते । षरति वा ॥

उ॒त स्म॑ रा॒शिं परि॑ या॒सि गो॒नामि॑न्द्रे॒ण सोम॑ स॒रथं॑ पु॒नानः॑ ।

पू॒र्वीरि॑षो बृ॒हती॑र्जी॒रदानो॑ शि॒क्षा श॒चीव॑स्तव॒ ता उ॑प॒ष्टुत् ॥ ९ ॥

उ॒त । स्म॒ । रा॒शिं । परि॑ । या॒सि । गो॒ना । इ॒न्द्रे॒ण । सोम॑ । स॒ऽरथं॑ । पु॒नानः॑ ।

पू॒र्वीः । इ॒षः । बृ॒हतीः । जी॒रदा॑नो॒ इति॑ जी॒रऽदा॑नो । शि॒क्षा । श॒ची॒ऽवः । तव॑ ।

ताः । उ॒प॒ऽस्तुत् ॥ ९ ॥

उत अपि य खलु हे सोम पुनानः पूयमानो गोनां गवां राशिं समूहं पथिमिरपहतं परि यासि । परिगच्छसि । कथंभूतः सन् उच्यते । इन्द्रेण सह सरथमेकमेव रथमास्त्राय । हे जीरदानो चिप्रदान सोम उपसुष्टुपसूयमानस्त्वं पूर्वोर्ध्वीर्बृहतीर्महतीरिष उक्तक्षयान्यज्ञानि शिच । देहि । हे शचीवोऽन्नवन् ता दक्षवन् स्वभूता इति शेषः ॥ २३ ॥

अयं सोम इत्यष्टवर्षं तृतीयं सूक्तं । अथाद्याः पूर्ववत् । अयं सोमोऽष्टावित्यनुकांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

अ॒यं सोम॑ इ॒न्द्र तु॒भ्यं सु॒न्वे तु॒भ्यं प॒वते॑ त्वम॑स्य पा॒हि ।

त्वं ह॒ यं च॑कृ॒षे त्वं व॑वृ॒ष इ॒दं मदा॑य॒ युज्या॑य॒ सोमं॑ ॥ १ ॥

अ॒यं । सोमः॑ । इ॒न्द्र । तु॒भ्यं । सु॒न्वे । तु॒भ्यं । प॒वते॑ । त्वं । अ॒स्य॒ । पा॒हि ।

त्वं । ह॒ । यं । च॑कृ॒षे । त्वं । व॑वृ॒षे । इ॒दं । मदा॑य॒ । युज्या॑य॒ । सोमं॑ ॥ १ ॥

हे इन्द्र अयं सोमसुभ्यं त्वदर्थं सुन्वे । पूयते ॥ सुनोतिः कर्मार्थं लटि लोपस्य आत्मनेपदेऽस्त्विति तत्सोपः ॥ तुभ्यं त्वदर्थमेव पवते । पूयते । त्वं चास्त्रामं पाहि । पिब । त्वं ह यमिदं सोमं चकृषे करोषि । त्वं च यं ववृषे वृतवानसि । किमर्थं । मदाय युज्याय सहायाय । सोम इन्द्राय वलकरत्वात्सहाय इति प्रसिद्धं । यमेवं करोषि त्वं तं पाहीति समन्वयः ॥

स इ॒ रथो॑ न भु॒रिषा॑ळ॒योजि॑ म॒हः पु॒रूणि॑ सा॒तये॑ वसू॒नि ।

आ॒दीं वि॒श्वा नहु॑था॒णि जा॒ता स्व॑र्षा॒ता वन॑ ऊ॒र्ध्वा न॑वंत ॥ २ ॥

सः । इ॒ । रथः॑ । न । भु॒रिषा॑ । अ॒योजि॑ । म॒हः । पु॒रूणि॑ । सा॒तये॑ । वसू॒नि ।

आ॒त् । इ॒ । वि॒श्वा । नहु॑था॒णि । जा॒ता । स्वः॑ऽसा॒ता । वन॑ । ऊ॒र्ध्वा । न॑वंत ॥ २ ॥

स ई सोऽयं सोमो मुरिषाङ्गुरिमारस्य सोढा रथो न रथ एव मुरिषाङ्गु मभूतस्य मारस्य सोढायोवि ।  
युज्यते । कीदृशः सः । महो महान् । किमर्थमयोवि । पुरुषि बह्वि यसूनि धनानि सातयेऽसम्भं दातुं ।  
आदीं योगानंतरं विद्या विद्यानि सर्वाणि नृज्याणि । नृज्यो मनुष्याः । तेषां संयन्धीनि धाता धातान्वस्य-  
द्विरोधादूर्ध्वोऽनुष्ठानि वने वनगीये स्वर्धाता स्वर्धातौ । संयामनामैतत् । स्वर्गसामयुक्ते संयामे ष्वन्त । गच्छन्तु ।  
नवतिर्गतिर्कर्म । यद्वा । सोमं संयामे युज्यार्थिनः संगच्छन्ति ॥

वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शंभविष्ठः ।

विश्ववारो द्रविणोदा इव तमन्पूषेव धीजर्वनोऽसि सोम ॥३॥

वायुः । न । यः । नियुत्वाँ । इष्टयामा । नासत्याऽइव । हवै । आ । शंभविष्ठः ।

विश्वऽवारः । द्रविणोदाऽइव । तमन् । पूषाऽइव । धीऽजर्वनः । असि । सोम ॥३॥

यः सोमो नियुत्वाँ । नियुतो वायोरश्वाः । तद्वाँ वायुर्न वायुरिवेष्टयामेष्टयमनः । नासत्येवाश्विनाविष  
हवमाङ्गानमाकर्ष्य सर्वतः शंभविष्ठः सुखस्य भावयितुमतः । द्रविणोदा इव धनदातेष तन्नात्मनि विश्ववारो  
विश्वैर्वरणीयो भवति तद्विश्ववारोऽसि । पूषेव पोषकः सवितेव धीजर्वनो मनोवेनोऽसि । यद्वा । कर्मणां  
प्रवर्तयितासि हे सोम ॥

इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रिर्हन्ता वृचाणामसि सोम पूभिन्

पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ॥४॥

इन्द्रः । न । यः । महा । कर्माणि । चक्रिः । हन्ता । वृचाणां । असि । सोम । पूऽभिन् ।

पैद्वः । न । हि । त्वं । अहिनाम्नां । हन्ता । विश्वस्य । असि । सोम । दस्योः ॥४॥

इन्द्रो नेन्द्र इव यत्स्वं महा महांति कर्माणि चक्रिः ताच्छीक्षेण करोषि स त्वं हे सोम वृचाणां प्रपूषां  
हन्तासि । भवसि । तथा पूभिन् पुरां भेत्तासि । किंच पैद्वो नास्व इव खल्वहिनाम्नां हन्ता भवसि । आगत्य  
हन्तोत्यहिः । तन्नामकानामित्वर्थः । न केवलं तेषामेव अपि तु विश्वस्यापि सर्वस्यापि दक्षोरपचपचितुः  
प्रचोर्हतासि ॥

अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो वृथा पाजोसि कृणुते नदीषु ।

जनो न युधा महत उपष्टिरियति सोमः पवमान ऊर्मि ॥५॥

अग्निः । न । यः । वने । आ । सृज्यमानः । वृथा । पाजोसि । कृणुते । नदीषु ।

जनः । न । युधा । महतः । उपष्टिः । इयति । सोमः । पवमानः । ऊर्मि ॥५॥

अग्निर्नापिरिव यः सोमो वनेऽरस्य आ सृज्यमानः वनसंबन्धमियथा वनानि कुर्वते एवं यः सोमो  
वृथानायासेन नदीष्वांतरिवाणि पाजोसि कृणुते कुर्वते । किंच युधा युद्धस्य कर्ता जनो न मूरो मनुष्य इव  
महतः प्रचोदपष्टिः । वाङ्मनैतत् । शब्दयिता सन् पवमानः पूयमानः सोम ऊर्मिं प्रवृद्धं रश्मियति ।  
प्रेरयति ॥

एते सोमा अति वाराण्यथा दिव्या न कोशासो अभवर्षाः ।

वृथा समुद्रं सिंधवो न नीचीः सुतासो अभि कलशौ असृयन् ॥६॥



एते । सोमाः । अति । वाराणि । अर्वा । दिव्याः । न । कोशासः । अभऽवर्षाः ।  
वृषा । समुद्रं । सिंधवः । न । नीचीः । सुतासः । अभि । कलशान् । असृयन् ॥ ६ ॥

एते पूयमानाः सोमा अर्वाविमयानि वाराणि वालान्यति गच्छंतीति शेषः । तत्र दृष्टान्तः । दिव्या न कोशासो दिवि भवाः कोशा आप इव । ता विशेयते । अधवर्षा अधिवृष्यमाणाः । किंच वृषानायासेन समुद्रं सिंधवो न नय इव नीचीनीचीनायाः सुतासोऽभिपुताः सोमाः कलशानभ्यसृयन् । अभिगच्छन्ति ॥

शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिश्स्ता दिव्या यथा विद् ।  
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्ताः पृतनाघातन यज्ञः ॥ ७ ॥  
शुष्मी । शर्धेः । न । मारुतं । पवस्व । अनभिऽश्स्ता । दिव्या । यथा । विद् ।  
आपः । न । मक्षू । सुऽमतिः । भव । नः । सहस्रंऽअप्ताः । पृतनाघाद् । न । यज्ञः ॥ ७ ॥

हे सोम शुष्मी । शुष्मं बलं शोषणात् । बलवांस्त्वं मारुतं शर्धो न मरुतां बलमिव पवस्व । तत्र दृष्टान्तमेव स्पष्टयति । यथा दिव्या विद् प्रजानभिश्स्ता । अभिशासो निन्दा । अनिन्दिता पवते । मरुतो वै देवानां विशः । तै० सं० २. २. ५. ७. इति हि ब्राह्मणं । किंचापो नोदकानीव मक्षु चिप्रं पवमानस्त्वं सुमतिर्भव नोऽस्माकं । किंच सहस्राप्ताः । अप्स इति रूपनाम । बद्धरूपस्त्वं पृतनाघाद् पृतनानामभिभविर्तेद्र इव यज्ञो यष्टव्यो भवसीति ॥

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहन्नभीरं तव सोम धाम ।  
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥ ८ ॥  
राज्ञः । नु । ते । वरुणस्य । व्रतानि । बृहत् । गभीरं । तव । सोम । धाम ।  
शुचिः । त्वं । असि । प्रियः । न । मित्रः । दक्षाय्यः । अर्यमाऽइव । असि । सोम ॥ ८ ॥

हे सोम वरुणस्य वारकस्य ते तव व्रतानि कर्माणि नु चिप्रं करोमीति शेषः । हे सोम तव धाम तेजःस्थानं बृहन्नभीरं च । प्रियो मित्र इव त्वं शुचिर्दोषः शुद्धो वासि । अर्यमेवार्यमा देव इव त्वं दक्षाय्योऽसि ॥ २४ ॥

प्रो स्य वह्निरिति सप्तर्चं चतुर्थं सूक्तं । अथाद्याः पूर्ववत् । प्रो स्य सप्तैत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्रो स्य वह्निः पृथ्याभिरस्यान् दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः ।  
सहस्रधारो असद्व्यधस्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः ॥ ९ ॥  
प्रो इति । स्यः । वह्निः । पृथ्याभिः । अस्यान् । दिवः । न । वृष्टिः । पवमानः । अक्षारिति ।  
सहस्रंऽधारः । असद्वत् । नि । अस्मे इति । मातुः । उपऽस्थे । वने । आ । च । सोमः ॥ ९ ॥

प्र ऊ इति निपातद्वयसमुदाय एको निपातितः । प्रो अस्यान् प्रस्यंदते स्य स वह्निर्वोढा पृथ्याभिर्यज्ञमार्गेः । दिवो न वृष्टिर्दिवः सकाशाद्वृष्टिरिव पवमानः सप्तधाः । व्याप्तो वि । सोऽयं सोमः सहस्रधारो बद्धधारः सप्तैव अक्षामु व्यसदत् । निषीदति ॥

राजा सिंधूनाभवसिष्ट वासं ज्ञातस्य नावमारुहद्रजिष्ठां ।  
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जा ॥ १० ॥

राजा । सिंधूनां । अवसिष्ट । दासः । ऋतस्य । नाव । आ । अरुहत् । रजिष्ठां ।  
अप्सु । द्रुप्सः । ववृधे । श्येनऽजूतः । दुहे । ई । पिता । दुहे । ई । पितुः । जां ॥ २ ॥

अयं राजा सोमः सिंधूनामुदकानां चीरादिस्त्रिदिनीनां गवां वा वासो वसनस्थानीयं चीराख्यं अथवा-  
द्रुषमवसिष्ट । आच्छादयति । तथा कृत्वा रजिष्ठाभुजतरामुतस्य यज्ञस्य नावमारुहत् । आरोहति । स द्रुप्सः  
सोमरमः श्येनजूतः श्येनापहतो रसोऽप्सु वसतीवरीषु ववृधे । वर्धते । ई तमिमं पितुः पालकात्पितृस्थानी-  
याद्युलोकाज्जां जातमपत्यं सोममोमयं पिता पालको लोको दुहे । दोग्धि रसं । तथाध्वर्युरपि दुहे । दोग्धि ।  
अथवा । उक्तलक्षणमेतं सोमं पिता पालकः स्वामी यजमानो दोग्धि फलं तथा दुहेऽध्वर्युरपि रसं दुहे ।  
यदा । दुह ईमिति पुनश्चक्रिरादरार्थं ॥

सिंहं नसंत मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पातं ।  
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥ ३ ॥  
सिंहं । नसंत । मध्वः । अयासं । हरिं । अरुषं । दिवः । अस्य । पतिं ।  
शूरः । युत्सु । प्रथमः । पृच्छते । गाः । अस्य । चक्षसा । परि । पाति । उक्षा ॥ ३ ॥

सिंहं शत्रूणां हिंसकं सिंहसदृशं मध्व उदकस्त्रायासं प्रेरकं हरि हरितवर्णमस्य दिवो युलोकस्य पतिं  
पालकं सोमं नसंत । व्याप्नुवन्ति यजमानाः । युत्सु संग्रामेषु शूरः प्रथमो देवानां मध्ये मुख्यः सोमो नाः  
पथिभिरपहताः पृच्छते मार्गज्ञानं । पथीन् इत्या गा लब्धुं गोमार्गं पृच्छतीत्यर्थः । किंचास्य चक्षसा सामर्थ्ये-  
नोवा सेक्ता देवैर्द्रुः परि पाति विश्वं ॥

मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युजंत्युरुचक्रं ऋष्वं ।  
स्वसार ई जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयात ॥ ४ ॥  
मधुऽपृष्ठं । घोरं । अयासं । अश्वं । रथे । युजन्ति । उरुऽचक्रे । ऋष्वं ।  
स्वसारः । ई । जामयः । मर्जयन्ति । सऽनाभयः । वाजिनं । ऊर्जयन्ति ॥ ४ ॥

मधुपृष्ठं मधुरपृष्ठभागं घोरं मयागकमयासं गंतारमृष्वं दर्शनीयमुक्तलक्षणाश्वस्थानीयं व्याप्तं सोममुचक्रे  
प्रभूतचक्रे रथे यथाश्वं रथे युजन्ति रथिकाः तद्वत् प्रभूतचरणे रथे रंहणस्य साधने यज्ञाख्ये रथे युजन्ति ।  
योजयंत्यध्वर्वादयः । किंचेमेनं सोमं स्वसारः स्वयंसारिष्यः परस्परं स्वस्वभूता वा जामयो बंधुभूता  
अंगुलयः । एकहस्तनिष्पन्नत्वात् स्वस्वत्वं जामित्वं च । एवंभूता मार्जयन्ति । शोधयन्ति । तदेवाह । सनाभश्च  
समानबंधना वाजिनं वलवन्तं सोममूर्जयन्ति । बलिनं कर्वन्ति ॥

चतस्र ई घृतदुहः सचन्ते समाने अंतर्धरुणे निषत्ताः ।  
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता ई विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥ ५ ॥  
चतस्रः । ई । घृतऽदुहः । सचन्ते । समाने । अंतः । धरुणे । निऽसत्ताः ।  
ताः । ई । अर्षन्ति । नमसा । पुनानाः । ताः । ई । विश्वतः । परि । संति । पूर्वीः ॥ ५ ॥

चतस्रो घृतदुहो घृतदोग्ध्यो गाव ईमेनं सोमं सचन्ते । सेवन्ते । कीदृशस्याः । समान एकस्मिन्धरुणे सर्वेषां  
धारकेऽंतरिचे निषत्ता निषत्ताः । ता घृतदुह ईमेनमर्षन्ति प्राप्नुवन्ति नमसात्तेन पुनाताः पूयमानाः सत्यः ।  
ताः पूर्वीर्बह्व्यः प्रभूता गावो विश्वतः सर्वतः परि षन्ति । परिमर्षन्ति ॥



विष्टंभो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य ।  
 असत्त उत्सो गृणते नियुत्वान्मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥  
 विष्टंभः । दिवः । धरुणः । पृथिव्याः । विश्वाः । उत । क्षितयः । हस्ते । अस्य ।  
 असत्त । ते । उत्सः । गृणते । नियुत्वान् । मध्वः । अंशुः । पवते । इन्द्रियाय ॥ ६ ॥

अयं सोमो दिवो सुलोकस्य विष्टंभूतः । यथा गृहस्य संभलदत् । तथा पृथिव्या धरुणो धारकः ।  
 उतापि च विश्वाः सर्वाः क्षितयः प्रजा अस्य सोमस्य हस्ते भवन्ति । उत्सः । उत्सरं त्यक्त्वा त्वामा इत्युत्सः सोमः ।  
 स गृणते सुवते ते तुभ्यं नियुत्वानश्च वानसत् । भवतु । स सोमो मध्वो मधु ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ मधुररसोऽंशुः  
 सोमः । अंशुः शमष्टमानो भवतीति यास्कः । नि० २. ५. । इन्द्रियाय पवते । पूयते । अभिपूयते ॥

वृन्वन्नवातो अभि देववीतिमिन्द्राय सोम वृचहा पवस्व ।  
 शृग्धि महः पुरुषंद्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ७ ॥  
 वृन्वन् । अवातः । अभि । देवऽवीति । इन्द्राय । सोम । वृचऽहा । पवस्व ।  
 शृग्धि । महः । पुरुऽचंद्रस्य । रायः । सुऽवीर्यस्य । पतयः । स्याम ॥ ७ ॥ ॥ २५ ॥

प्र हिन्वान इति षड्वचं पंचमं सूक्तं त्रैचावरुणैर्वसिष्ठस्वार्धं त्रैष्टुभं पवमानसोमदेवताक । तथा चाशुक्रांतं ।  
 प्र हिन्वानः षड्वसिष्ठ इति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिष्यन्नयासीत् ।  
 इंद्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥ ९ ॥  
 प्र । हिन्वानः । जनिता । रोदस्योः । रथः । न । वाजं । सनिष्यन् । अयासीत् ।  
 इंद्रं । गच्छन् । आयुधाः । संऽशिशानः । विश्वा । वसु । हस्तयोः । आऽदधानः ॥ ९ ॥

हिन्वानः प्रेर्यमाणोऽध्वर्यादिभिर्जनितोत्पादयिता रोदस्योर्वावापृथिव्योः । तयोर्जनयितुं वृष्टिप्रदान-  
 हविष्प्रापयाम्नां । तादृक्सोमो वाजमन्नं सनिष्यन्दास्त्रन् प्रायासीत् । प्रयच्छति । इंद्रं गच्छन्नामुवन्नायुधायु-  
 धानि संशिशानः सम्यक् तीक्ष्णोर्ज्वन्निद्रसाहाय्यगमनार्थं तीक्ष्णायुधः सन् विश्वा सर्वाणि वसु वसूनि  
 हस्तयोरादधानोऽस्त्रभ्यं दानाय । एवं कुर्वन् प्रायासीत् ॥

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामांगूषाणामवावशंत वाणीः ।  
 वना वसानो वरुणो न सिंधून्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ २ ॥  
 अभि । त्रिऽपृष्ठं । वृषणं । वयःऽधां । आंगूषाणां । अवावशंत । वाणीः ।  
 वना । वसानः । वरुणः । न । सिंधून् । वि । रत्नऽधाः । दयते । वार्याणि ॥ २ ॥

त्रिपृष्ठं । त्रीणि पृष्ठानि स्त्रीवाणि द्रोणकलशादिस्थानानि वा सवनानि वा यस्त स तथोक्तः । तं वृषणं  
 वर्षकं वयोधामन्नस्य दातारं सोममांगूषाणामाघोषवतां सोतुणां वाणीर्वाचोऽभ्यवावशंत । शब्दयते । वना  
 वनाम्युदकानि वसान आच्छादयन् वरुणो न वरुण इव सिंधूनाच्छादयति तद्वत् । रत्नधा रत्नानां दाता  
 सोमो वार्याणि धनानि दयते । प्रयच्छति स्त्रोतुभ्यः ॥

शूरयामः सर्ववीरः सहावाजेता पवस्व सनिता धनानि ।  
 तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वर्षाहः साह्यान्पृतनासु शत्रून् ॥३॥  
 शूरऽयामः । सर्वऽवीरः । सहावान् । जेता । पवस्व । सनिता । धनानि ।  
 तिग्मऽआयुधः । क्षिप्रऽधन्वा । समत्ऽसु । अर्षाहः । सह्यान् । पृतनासु । शत्रून् ॥३॥

हे सोम पवस्व त्वं । कीदृशस्त्वं । शूरयामः । शूराणां यामः संघो यस्य सः । सर्ववीरः । सर्वे वीरा यस्य स तथोक्तः । सहावान् सहनवान् जेता जयशीलः सनिता संभक्ता धनानि तिग्मायुधस्तीक्ष्णप्रहरणसाधनः क्षिप्रधन्वा क्षिप्रसहनशीलधन्वा समत्स संयामेष्वर्षाहोऽसौढः साह्यान्भिभवन् । कुच । पृतनासु शत्रुसेनासु । कान् । शत्रून् ॥

उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्समीचीने आ पवस्वा पुरंधी ।  
 अपः सिषासन्नुषसः स्वर्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥४॥  
 उरुऽगव्यूतिः । अभयानि । कृण्वन् । समीचीने इति संऽईचीने । आ । पवस्व ।  
 पुरंधी इति पुरंऽधी ।

अपः । सिषासन् । उषसः । स्वः । गाः । सं । चिक्रदः । महः । अस्मभ्यं । वाजान् ॥४॥

हे सोम उरुगव्यूतिर्विस्तीर्णमार्गस्त्वमभयानि क्षोतुभ्यः कृण्वन् कुर्वन् पुरंधी । इदं बावापृथिव्योर्नाम । ते समीचीने संगते कुर्वन्ना पवस्व । आचर । अप उषसः स्वरादित्वं गा रश्मींश्च सिषासन् पुथ्यर्थं संभक्तुमिच्छन् सं चिक्रदः । संक्रंदसे । महो महतो महांति वाजानन्नान्यस्मभ्यं दातुमिति शेषः ॥

मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सींद्रमिंदो पवमानं विष्णुं ।  
 मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि महामिंद्रमिंदो मदाय ॥५॥  
 मत्सि । सोम । वरुणं । मत्सि । मित्रं । मत्सि । इंद्रं । इंद्रो इति । पवमानं । विष्णुं ।  
 मत्सि । शर्धः । मारुतं । मत्सि । देवान् । मत्सि । महां । इंद्रं । इंद्रो इति । मदाय ॥५॥

हे पवमान पूयमानेदो सोम त्वं वरुणादीन् मत्सि तर्पय तेषां मदाय । इंद्रस्य प्राधान्याद्विरभिधानं ॥

एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नदुरिता पवस्व ।  
 इंद्रो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥  
 एव । राजाऽइव । क्रतुऽमान् । अमेन । विश्वा । घनिघ्नत् । दुऽइता । पवस्व ।  
 इंद्रो इति । सुऽउक्ताय । वचसे । वयः । धाः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥६॥

अनया क्षुतिमुपसंहरन् फलमाशक्ते । हे सोम एवैव क्षुत इति शेषः । क्रतुमांस्त्वं राजेवामेन बलेन विश्वा सर्वाणि दुरिता दुरितानि घनिघ्नद्विनाशयन् पवस्व । हे इंद्रो दीप्त सोम सूक्ताय शोभनमुदिताय वचसे ऽस्माकं क्षोत्राय तद्वचो विमृष्यार्थवदवगत्य वयो धाः । अन्नं धेहि । अन्नसामस्य क्षुतिनिमित्तकत्वात्तस्य क्षुतिवचसः प्राधान्येनोक्तिः । शिष्टं सिद्धं ॥ ॥२६॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थोऽचतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राधाधिरावपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरनुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण  
 विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे अक्षरंहिताभाष्ये सप्तमाष्टके तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥



यस्य निःश्रुतं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् । निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥  
तुतोयं श्रुतितत्त्वज्ञः सप्तमस्याष्टकस्य सः । व्याख्याय सायणामात्यश्रुतं व्याचिकीर्षति ॥

तथासर्जोति षडृचं षष्ठं सूक्तं मारीचस्य कक्षपस्थार्षं चैष्टुमं पवमानसोमदेवताकं । असर्वि कक्षप इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

असर्जि वक्त्रा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी ।

दश स्वसारो अधि सानो अय्येऽजंति वह्निं सदनं त्यच्छ ॥ १ ॥

असर्जि । वक्त्रा । रथ्ये । यथा । आजौ । धिया । मनोता । प्रथमः । मनीषी ।

दश । स्वसारः । अधि । सानौ । अय्ये । अजंति । वह्निं । सदनानि । अत्यच्छ ॥ १ ॥

वक्त्रा शब्दायमानः ॥ वच परिभाषणे । वनिप ॥ एतादृशः पवमानः सोम आजौ । अजंति कर्मार्थमृत्विज इत्याजिर्यज्ञः । तस्मिन्धिया कर्मणा सोचेण वा साकमसर्वि । ख्यते पावेष्वाति । तच्च दृष्टांतः । रथ्ये यथा रथार्ह आजौ । संयामनमितत् अजंति प्रचिपंत्यानुधान्वचेति । तस्मिन्नश्वो यथा धियांगुल्या ख्यते तद्वत् । कोदृशः । मनोता यस्मिन्देवानां मनांस्थोतानि प्रोतानि सः । तथा च ब्राह्मणं । तस्मिन् हि तेषां मनांस्थोतानि । ऐ० ब्रा० २. १०. । इति । प्रथमः सर्वेषां देवानां मुख्यः मनीषी । मनस ईषा मनीषा श्रुतिः । तद्वान् । दश स्वसारो दशसंख्याका चंगुलयः सदनानि यज्ञगृहाण्यच्छामिमुखीकृत्य वह्निं वोढारं सोमं सानौ समुच्छिते । अधिः सप्तम्यर्थानुवादकः । अय्येऽविभवेऽविवालेन कृते पविचेऽजंति । प्रेरयंति ॥ अच गतिविषययोः ॥

वीती जनस्य दिव्यस्य कथैरधि सुवानो नहुषेभिरिदुः ।

प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिरमर्मृजानोऽविभिर्गोभिरिदुः ॥ २ ॥

वीती । जनस्य । दिव्यस्य । कथैः । अधि । सुवानः । नहुषेभिः । इदुः ।

प्र । यः । नृभिः । अमृतः । मर्त्येभिः । मर्मृजानः । अविभिः । गोभिः । अतुभिः ॥ २ ॥

कथैः साधुभिः स्तोत्रभिर्नृभ्येभिर्मनुष्यैः सुवानोऽभिषूयमाण इदुः सोमो दिव्यस्य दिवि भवस्य जगस्य देवगणस्य वीती ॥ सुपां सुगुणित चतुर्थाः पूर्वसवर्णदोषः ॥ सोमभक्षणां यज्ञमधिगच्छति । किंचामृतो मरणधर्मरहितो यः सोमो नृभिः कर्मेन नृभिर्मर्त्येभिर्मर्त्यैरविभिरविमयैः पविचैः तथा गोभिरागदुहैरधिषवण-चर्मभिः यद्वा गोविकारैः क्षीरादिभिः अङ्गिर्वसतीवर्थादिभिर्दक्षैश्च मर्मृजानो मृशं शोध्यमानः सन् यज्ञं प्रति गच्छति । उपसर्गश्रुतेयौग्यक्रियायाहारः ॥

वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः ।

सहस्रमृक्ता पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूरौ अखं वि याति ॥ ३ ॥

वृषा । वृष्णे । रोरुवत् । अंशुः । अस्मै । पवमानः । रुशत् । ईर्ते । पयः । गोः ।

सहस्रं । मृक्ता । पथिभिः । वचः । अवि । अध्वस्मभिः । सूरः । अखं । वि । याति ॥ ३ ॥

वृषा कामानां वर्षको वृषेवाचरत्वा रोरुवद्वृशं शब्दायमानोऽंशुः सोमः पवमानः पूयमानः सन्नक्षी वृष्णे वर्षकायेंद्राय तदर्थं रुशत् ॥ रोचतेरिदं रूपं ॥ आरोचमाणं श्वेतं गोः पय आश्रयणद्रव्यमीर्ते । गच्छति ॥ ईर गती । आदादिकः ॥ किंच अमृक्ता । छंदसीवनिपाविति मत्वर्थीयो वनिप ॥ सोचयान् अत एव वचोवित श्रुतोनां ज्ञाता सूरः सुवीर्यः सर्वेषामधिष्ठोमादिकर्मणि प्रेरकः सोमोऽध्वस्मभिर्ध्वस्मनवर्जितैर्हिसारहितः सहस्रं पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूक्ष्मच्छिद्रं पविचं वि याति । अतीत्य द्रोणकलशं गच्छति ॥

रुजा दृ॒ह्ना चि॒द्रक्ष॑सः सदा॑सि पुना॒न इ॒द ऊ॒र्णुहि॑ वि वाजा॑न् ।

वृ॒श्चोप॑रि॒ष्टात्तुज॑ता व॒धेन॑ ये अ॒न्ति दू॒रादु॑पनायमे॒षां ॥४॥

रुज । दृ॒ह्ना । चि॒त् । र॒क्ष॑सः । सदा॑सि । पुना॒नः । इ॒दो इति॑ । ऊ॒र्णुहि॑ । वि । वाजा॑न् ।

वृ॒श्च । उ॒परि॑ष्टात् । तुज॑ता । व॒धेन॑ । ये । अ॒न्ति । दू॒रात् । उ॒प॒ऽनाय॑ । ए॒षां ॥४॥

हे सोम दृ॒ह्ना चि॒द्रूढान्यपि॑ परैरगंतव्यत्वेन रक्षसो राक्षसस्य सदा॑सि स्थानानि पुराणि रुज । विनाशय ॥ रुजो मंगे तौदादिकः ॥ किंच हे इ॒दो पव॑मानः पुनानः पवित्रादिभिः पूयमानस्त्वं वाजांस्तस्मान्नानि तस्य वस्त्रानि वोर्णुहि । आच्छादय । आहरेत्यर्थः । तथा ये राक्षसा उपरि॒ष्टादूर्ध्वदेशा॑दागच्छन्ति ये वा॒त्स्य॑तिके समीप आगच्छन्ति ये च दू॒रादूर्ध्वदेशा॑दागच्छन्ति तेषां राक्षसानामुपनायमुपनेतारं स्वामिनं तुजता । तुजति-हिंसाकर्मा । हिंसकेन वधेन हननसाधनेनायुधेन त्वं वृ॒श्च । किं॒धि ॥ औत्र॑सूक्तेन तौदादिकः ॥

स प्र॒त्न॒वन्न॑व्यसे विश्व॒वार॑ सू॒क्ताय॑ प॒थः कृ॒णुहि॑ प्राचः ।

ये दुः॒ऽसहा॑सो व॒नुषा॑ बृ॒हंत॑स्तांस्ते अ॒श्याम॑ पुरु॒कृत्पुरु॑क्षो ॥५॥

सः । प्र॒त्न॒ऽवत् । न॒व्य॑से । वि॒श्व॒ऽवार॑ । सु॒ऽउ॒क्ताय॑ । प॒थः । कृ॒णुहि॑ । प्राचः ।

ये । दुः॒ऽसहा॑सः । व॒नुषा॑ । बृ॒हंतः । ता॒न् । ते । अ॒श्या॒म॒ । पुरु॑कृत् । पुरु॒क्षो इति॑ पुरु॒क्षो ॥५॥

हे विश्व॒वार॑ विश्वैः सर्वैर्वरणीय हे सोम स तादृशस्त्वं प्रत्नवत् पुराण इव स्थितस्त्वं नव्यसे नवोयसे नवतराय ॥ नवशब्दादीयसुनीकारलोपश्छांदसः ॥ तस्मै सूक्ताय शोभनस्तुतिकाय मह्यं पथो मार्गान् प्राचः प्राचीनान् कृणुहि । कुरु । सर्वत्र गमनं प्रयच्छेत्यर्थः ॥ क्वचि हिंसाकरणयोः । धिन्विक्कण्वोरञ्जेत्युप्रत्ययः ॥ हे पुरु॒कृत्कर्म॑ हे पुरु॒षो ॥ दु॒नु शब्दे । मित॒द्रू॒दित्वा॒द्बु॒प्रत्ययः । पा० ३. २. १८०. १. ॥ ब॒ह्वि॒धं शब्दा॑यमान हे सोम दुः॒सहा॑सो रक्षोभिः सोदुमशक्याः अत एव वनुषा । वनर्तिर्हिंसार्थः । हिंसया युक्ता बृ॒हंतो॒ मह॑न्तो ये तदीया अंशाः संति तांस्ते तव स्वभूतानंशान्वयं यज्ञेऽश्याम । प्राप्नुयाम ॥

ए॒वा पुना॑नो अ॒पः स्व॑र्गा अ॒स्मभ्य॑ तो॒का तन॑यानि भूरि॑ ।

शं नः॑ क्षे॒त्र॑मु॒रु ज्योती॑षि सोम॒ ज्यो॒ङ्गः सूर्ये॑ दृ॒श्ये रि॒रीहि॑ ॥६॥

ए॒व । पुना॑नः । अ॒पः । स्वः । गाः । अ॒स्मभ्य॑ । तो॒का । तन॑यानि । भूरि॑ ।

शं । नः॑ । क्षे॒त्रं । उ॒रु । ज्योती॑षि । सोम॒ । ज्यो॒क् । नः॑ । सूर्ये॑ । दृ॒श्ये । रि॒रीहि॑ ॥६॥

हे सोम एवैवं पुनानः पूयमानः पवित्रादिभिरक्षभ्यं रिरीहि । प्राप्य । प्रयच्छ । किं तत् । अपः । अप इत्यंतरिचनाम । आप्नोति सर्वमपि । अंतरिचं स्वः स्वर्गे बुलोकं गाः । सर्वैर्गम्यतेऽचेति गावः पृथिव्यः । ताः पृथिवीश्च भूरि ॥ सुपां सुलुगिति द्वितीयाया लुक् ॥ ब॒ह्वंस्तो॒का पु॒चांस्तन॑यानि । तन्वा॑न्तं कुलमिति तनयाः पांचाः । तांश्च तथा नोऽक्षभ्यं क्षे॒त्रं शं सु॒खकरं॑ कुरु । हे सोम ज्योती॑षि नवचाण्डूकृष्णंतरिक्षे विस्तीर्णानि कुरु । तथा नोऽक्षभ्यं सूर्यमादित्यं ज्योक् । चिरनामैतत् । चिरकालं दृश्ये द्रष्टुं कुरु ॥ ॥१॥

परि सुवा॑न रात पडुचं सप्तमं सूक्तं मारीचस्य कश्चपस्त्वार्धं चैष्टुमं पवमानसोमदेवताकं । परि सुवा॑न इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

परि सुवा॑नो हरि॑रंशुः प॒वित्रे॒ रथो॒ न संजि॑ स॒नये॑ हिया॒नः ।

आप॑च्छो॒र्कमि॑न्द्रि॒यं पू॒यमा॑नः प्र॒ति दे॒वाँ अ॒जुष॑त प्रयो॒भिः ॥१॥



परि । सुवानः । हरिः । अंशुः । पवित्रे । रथः । न । सर्जि । सनये । हियानः ।  
आपत् । शोकं । इन्द्रियं । पूयमानः । प्रति । देवान् । अजुषत् । प्रयःऽभिः ॥ १ ॥

सुवानोऽभिषूयमाणो हियान ऋत्विगिभः प्रेर्यमाणो हरिर्हरितवर्णोऽंशुः सोमः पवित्रेऽविवालेन कृते दशापवित्रे परि सर्जि । परिरुज्यते । किमर्थं । सनये धनलाभाय देवानां संभजनाय वा । तत्र दृष्टान्तः । रथो न रथो यथा युद्धे शत्रुवधार्थं शत्रुधनहरणार्थं वा रुज्यते तद्वत् । किंच पूयमानः पवित्रेण सोऽयं सोम इन्द्रियमिन्द्रलिंगमिन्द्रस्य पर्याप्तं वा शोकं शोचमापत् । आप्नोति ॥ आप् व्याप्नोति । लैक्यङागमः ॥ तथा स सोमः प्रयोभिः प्रीणाथतृभिर्हवीरूपैरर्हदेवान्प्रत्यजुषत । प्रतिसेवते ॥ जुषी प्रीतिसेवनयोः ॥

अच्छा नृचक्षा असरत्पवित्रे नाम दधानः कविरस्य योनौ ।

सीदन्होतेव सदेने चमूषूपेमगमनृषयः सप्त विप्राः ॥ २ ॥

अच्छ । नृऽचक्षाः । असरत् । पवित्रे । नाम । दधानः । कविः । अस्य । योनौ ।

सीदन् । होताऽइव । सदेने । चमूषु । उप । ई । अगमन् । ऋषयः । सप्त । विप्राः ॥ २ ॥

नृचक्षा नृणां दृष्टा कविः क्रांतप्रज्ञः सोमो नाम वसतीवर्याख्यमुदकं दधानो धारयन्नसीतादृशस्यात्मनो योनौ स्थाने पवित्रेऽच्छासरत् । अमितः सरति । ततः सदेने । सीदन्त्यचेति सदेनो यज्ञः । तस्मिन् होतिव होता यथा देवान् सोतुमुपविशति तद्वद्देवानांगंतुमुपविशन् सोमश्चमूषु । चमन्ति चम्बो यद्वा दयः । तेष्वभि-सरति । अनंतरं सप्तसंख्याका विप्रा मेधाविनः भरद्वाजः कश्यपो गीतमोऽचिर्विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठ इत्येते ऋषय ईमेनं सोममुपागमन् । सीचैरुपगच्छन्ति ॥

प्र सुमेधा गातुविद्विश्चदेवः सोमः पुनानः सद एति नित्यं ।

भुवद्विश्चेषु काव्येषु रंतानु जनान्यतते पंच धीरः ॥ ३ ॥

प्र । सुऽमेधाः । गातुऽवित् । विश्वऽदेवः । सोमः । पुनानः । सदः । एति । नित्यं ।

भुवंत् । विश्वेषु । काव्येषु । रन्ता । अनु । जनान् । यतते । पंच । धीरः ॥ ३ ॥

सुमेधाः ॥ नित्यमसिच् प्रजामेधयोः । पा० ५. ४. १२२. इत्यसिच्समासांतः ॥ शोभनप्रज्ञो गातुविश्वागंस्व वेत्ता । यद्वा । गातवः सोतारः । तेषां धनस्य संभयिता । विश्वदेवः सर्वदेवोपगतः । यद्वा । देवो देवचं दीप्तिः । व्यापकदीप्तिरुक्तः । एतादृशः सोमः पुनानः पूयमानः सन्नित्यमविनश्यत् सदः स्थानं द्रोणकलशं प्रैति । प्रगच्छति । ततो विश्वेषु सर्वेषु काव्येषु कविकर्मसु सीचेष रन्ता भुवत् । रमणशीलो भवति ॥ रमेस्ता-ऽलीलिकसृन् ॥ तथा धीरः प्राज्ञः सोऽयं पंच जनान्निषादपंचमांश्चतुरो वर्णाननु यतते । अनुगंतुं प्रयत्नं करोति । अनुगच्छतीति यावत् ॥

तव ते सोम पवमान निरये विश्वे देवास्त्वयं एकादशासः ।

दश स्वधाभिरधि सानो अर्थे मृजंति त्वा नद्यः सप्त यद्भीः ॥ ४ ॥

तव । ते । सोम । पवमान् । निरये । विश्वे । देवाः । चयः । एकादशासः ।

दश । स्वधाभिः । अधि । सानौ । अर्थे । मृजंति । त्वा । नद्यः । सप्त । यद्भीः ॥ ४ ॥

हे पवमान पूयमान हे सोम तव स्वभूतास्थे ते प्रसिद्धास्त्वयं एकादशासः ॥ पुराणार्थे ऋद्धप्रत्ययः ॥ चयस्त्रिं-शत्संख्याका विश्वे सर्वे देवा निष्ते । अंतर्हितनामैतत् । अंतर्हिते स्थाने अलोके वर्तन्ते । तादृशं त्वां दशसंख्याका

अंगुलयोऽधि सागावधिकं समुच्छ्रितेऽद्येऽविमये पवित्रे स्वधाभिद्दकैर्मृजंति । शोधयन्ति । किंच यद्भीः ॥ वा  
कंदसीति पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ यद्भीः मह्यः सप्तसंख्याका गंगाया नवस्त्वा स्वां मृजंति । वसतीवर्यात्मकैरेकध-  
नात्मकैश्च स्त्रीषेद्दकैस्त्वां मार्जयन्तीत्यर्थः ॥

तच्च सत्यं पर्वमानस्यास्तु यच्च विश्वे कारवः संनसंत ।

ज्योतिर्यदहे अकृणोदु लोकं प्रावन्मनुं दस्यवे कारभीकं ॥ ५ ॥

तत् । नु । सत्यं । पर्वमानस्य । अस्तु । यच्च । विश्वे । कारवः । संनसंत ।

ज्योतिः । यत् । अहे । अकृणोत् । ऊं इति । लोकं । प्र । आवत् । मनुं । दस्यवे । कः ।

अभीकं ॥ ५ ॥

सत्यं सत्यभूतं तत्प्रसिद्धस्य पर्वमानस्य सोमस्य स्थानं नु चिप्रमस्त्राकमस्तु । यच्च यस्मिन् स्थाने विश्वे सर्वे  
कारवः स्रोतारः संनसंत स्रोतुं संगच्छन्ति तत् स्थानमस्तु । अस्य सोमस्य गच्छ्योतिरहे दिवसाय लोकमालोकं  
प्रकाशमकरोत् करोति । उ इत्यवधारणे । तच्छ्रुतिर्मनुमेतन्नामानं राजर्षिं प्रावत् । प्रकर्षेणारक्षत् । तथा  
सोमः स्वीयं तेजो दस्यवे सर्वस्वोपचपयिचेऽसुराद्यामीकमभिगमनशीलं कः । अकार्षीत् ॥ करोतेर्बुद्धिं मंचे  
घसेति चूर्चुक् ॥

परि सद्येव पशुमांति होता राजा न सत्यः समितीरियानः ।

सोमः पुनानः कलशां अयासीत्सीदन्मृगो न महिषो वनेषु ॥ ६ ॥

परि । सद्यऽइव । पशुऽमंति । होता । राजा । न । सत्यः । संऽइतीः । इयानः ।

सोमः । पुनानः । कलशान् । अयासीत् । सीदन् । मृगः । न । महिषः । वनेषु ॥ ६ ॥

होता देवानामाह्वातत्विक् पशुमंति पशुमतः सद्येव यच्चगृहान्यथोपगच्छति किंच राजा न यथा राज्ञा  
सत्यः सत्यकर्मा सन् समितोः । संयामनामैतत् सम्यक् प्राप्यते थोद्धुमिरचेति । तात्संयामानियानो गच्छन्  
भवति तथा पुनानः सोमो वनेषु वननीचेषु वसतीवर्याख्येषूदकेषु सीदन् मृगो न महिषो महिषाख्यो  
मृग इवोदकेषु तिष्ठन् कलशान् द्रोणाभिधानानयासीत् । परियाति । यद्वा । महिषो महान्पूज्यो वा सोमः  
कलशान्परिगच्छतीति ॥ ॥ २ ॥

साकमुच इति पंचवर्चमष्टमं सूक्तं । गौतमस्य नोधस आर्षं । पूर्ववच्छंदोदेवते । तथा चानुक्रम्यते । साकमुचः  
पंच नोधा इति ॥ गतो विनियोगः ॥

साकमुक्षो मर्जयंत स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुचीः ।

हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननस्ते अत्यो न वाजी ॥ ७ ॥

साकंऽउक्षः । मर्जयंत । स्वसारः । दश । धीरस्य । धीतयः । धनुचीः ।

हरिः । परि । अद्रवत् । जाः । सूर्यस्य । द्रोणं । ननस्ते । अत्यः । न । वाजी ॥ ७ ॥

साकमुचः सह युगपत्सिंचत्वः ॥ उच सेचने । क्षिपि रूपं ॥ तादृशः स्वसारः कर्मकरणार्थमितसतः सुष्ठु  
गच्छन्त्योऽंगुलयो मर्जयंत । सोमं शोधयन्ति ॥ मृजू शौचालंकारयोः ॥ तथा दश दशसंख्याका धीतयः ।  
अंगुलिनामैतत् । अंगुलयो धीरस्य समर्थस्य प्राज्ञस्य वा देवैर्ध्यातव्यस्य काम्यमानस्य वा सोमस्य धनुचीः  
प्रयिज्यो भवन्ति । ततो हरिर्हरितवर्णः सोमः सूर्यस्य जाः प्रादुर्भूता जाया दिशस्ताः पर्यद्रवत् । परितो



गच्छति । सूर्यतेजसा ह्याविर्भवतीति दिशं तस्य ज्ञात्वं । अत्योऽतनशीलो वाजी नाश्व इव स्थितः सोमो द्रोणं कलशं ननये । व्याप्नोति । नचतिर्व्याप्तिकर्म ॥

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।

मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्तं गच्छते कलशं उस्त्रियाभिः ॥ २ ॥

सं । मातृऽभिः । न । शिशुः । वावशानः । वृषा । दधन्वे । पुरुऽवारः । अतृऽभिः ।

मर्यः । न । योषां । अभि । निऽकृतं । यन् । सं । गच्छते । कलशं । उस्त्रियाभिः ॥ २ ॥

वावशानो देवाङ्कामयमानो वृषा कामानां वर्षकः अत एव पुरुवारो वज्रभिर्वरणीयः सोमोऽग्निर्मातृभूताभिर्वसतीवरीभिः सं दधन्वे । संधार्यते । तच्च दृष्टान्तः । मातृभिर्न शिशुः कामयमानः पुत्री यथा मातृभिः पयःप्रदानेन संधार्यते ॥ धविर्गन्तव्यः । कर्मणि लिटि रूपं ॥ मर्यो न मनुष्यो यथा योषां युवतिमभिगच्छति तद्वत्निष्कृतं संस्कृतं स्वस्थानमभि यत्नभिगच्छन् कलशे द्रोणाभिधान उस्त्रियाभिरग्निर्गोविकारः चीरादिभिर्वा सं गच्छते ॥ गमेरकर्मकात् समो गम्यच्छोऽत्यात्मनेपदं ॥

उत प्र पिप्य ऊधरघ्याया इंदुधाराभिः सचते सुमेधा ।

मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३ ॥

उत । प्र । पिप्ये । ऊधः । अघ्यायाः । इंदुः । धाराभिः । सचते । सुऽमेधाः ।

मूर्धानं । गावः । पयसा । चमूपु । अभि । श्रीणन्ति । वसुऽभिः । न । निक्तैः ॥ ३ ॥

उतापि चाघ्यायाः । अघ्येति गोनाम । अहंतव्याया गोरूधः पयःस्थानं सोमः प्र पिप्ये । आपध्यादिषु सोमः प्रविश्य प्रकर्षेणाप्याययति ॥ प्यायतेर्लिटि लिङ्गङोऽति पीभावः ॥ सुमेधाः शोभनप्रज्ञः सोऽयमिंदुः सोमो धाराभिः सचते । समवेति । संगच्छते । ततो गावश्चमूपु । चमन्ति भक्षयंत्यत्र सोममिति चम्बो ग्रहादयः । तेषु स्थितं मूर्धानं समुच्छ्रितमिमं सोमं पयसा श्येताभि श्रीणन्ति । अभित आच्छादयन्ति । तच्च दृष्टान्तः । निक्तैः प्रचालितैर्वसुभिर्न वस्त्रैर्यथाच्छादयन्ति तद्वत् ॥

स नो देवेभिः पवमान रदंदो रयिमश्विनं वावशानः ।

रथिरायतामुशती पुरंधिरस्मद्वा गा दावने वसूनां ॥ ४ ॥

सः । नः । देवेभिः । पवमान । रद । इंदो इति । रयिं । अश्विनं । वावशानः ।

रथिरायतां । उशती । पुरंऽधिः । अस्मद्वाक् । आ । दावने । वसूनां ॥ ४ ॥

इ पवमान पूयमान सोम स तादृशस्त्वं नोऽस्मभ्यं देवेभिर्देवैः सह रद । प्रयच्छ । किं तत् उच्यत । हे इंदो पात्रेषु चरन् सोम वावशानः कामयमानः सन्नश्चिनमश्चवंतं रयिं धनं प्रयच्छेति । किंच रथिरायतां । रथो येषामस्तीति रथिराः ॥ मेधारथाभ्यामितीरचप्रत्ययः ॥ तद्वदाचरतस्तानिच्छतो वा पुरयानुशती कामयमाना पुरंधिस्त्वदीया वज्रविधा धीर्वसूनां धनानां दावने दानायास्तद्वग्नयस्तदभिमुख्यागच्छतु । यद्वा । रथिरायतामिति धनानां विशेषणं । वसवतां धनानामिति ॥ अस्मद्वाक् । विष्णुदेवयोश्च देरग्रं चतावप्रत्यये । पा० ६. ३. ९२. इत्यङ्गादेशः । अद्रिसधोरंतोदात्तत्वनिपातनाडुदात्तस्वरितयोर्यण इति स्वरितः ॥

नू नो रयिमुप मास्व नृवंतं पुनानो वाताप्यं विश्वस्यंद्रं ।

प्र वैदितुरिंदो तार्यायुः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ५ ॥

नु । नः । रयिं । उप । मास्व । नृऽवंतं । पुनानः । वाताप्यं । विश्वऽचंद्रं ।  
प्र । वंदितुः । इंदो इति । तारि । आयुः । प्रातः । मक्षु । धियाऽवसुः । जगम्यात् ॥ ५ ॥

हे सोम पुनानः पूयमानस्त्वं नोऽस्मभ्यं नू चिप्रं नृवंतं मनुष्यैर्युक्तं ॥ क्वांदसं मतुपो वत्वं ॥ तादृशं रयिं धनमुप मास्व । उपनिर्मिमीष्व । उपकुर्वित्यर्थः । किंच विश्वचंद्रं सर्वेषामाह्लादकं वाताप्यं । उदकनामैतत् । उदकं च कुब । तथा हे इंदो सोम वंदितुस्तव सोतुरायुर्जीवनं प्र तारि । त्वया वर्धितमसु । सोऽयं सोमो धियावसुर्वृद्धा कर्मणा वा प्राप्तधनः प्रातःकाले वा सवने वा मक्षु शीघ्रमस्यदीयं यज्ञं प्रति जगम्यात् । आगच्छेत् ॥ गमेर्लिङि वज्रलं कंदसीति शपः सुः ॥ ३ ॥

अधि यदिति पंचर्वं नवमं सूक्तं । आंगिरसस्य कण्वस्यार्थं । तथानुक्रम्यते । अधि यत्कण्व इति । पूर्ववच्छंदोदेवते ॥ गतो विनियोगः ॥

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धते धियः सूर्ये न विशः ।  
अपो वृणानः पवते कवीयन्वजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ १ ॥  
अधि । यत् । अस्मिन् । वाजिनिऽइव । शुभः । स्पर्धते । धियः । सूर्ये । न । विशः ।  
अपः । वृणानः । पवते । कविऽयन् । व्रजं । न । पशुऽवर्धनाय । मन्म ॥ १ ॥

यवदास्मिन्तोमे वाजिनीव शुभोऽश्वे यथा वस्त्रप्रमृत्त्यलंकारा भवति । यदा वास्मिन्तोमे सूर्ये न यथा सूर्ये विशो रश्मय उदिता भवति । तदा धियोऽंगुलयोऽधि स्पर्धते । अहं पुरस्ताच्छोधयाम्यहं पुरः शोधयामीत्यहमहमिकयोपतिष्ठति । ततोऽयं सोमोऽपो वसतोवरीर्वृणान आच्छादयन् पवते । पात्रेषु क्षरति । कलशानधियच्छति । कीदृशः । कवीयन् कविरिवाचरन् । यद्वा । कवयः सोतारः । तानिच्छन् । तत्र दृष्टान्तः । व्रजं न मय मननीयं गवां गोष्ठं पशुवर्धनाय पशूनां वर्धनाय गोपालः परिगच्छति । तथा देवानां प्रीणनाय पात्राणि प्रति पवत इति ॥

द्विता व्यूर्खन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथंत ।  
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गावं ऋतायंतीरभि वावश्च इंदुं ॥ २ ॥  
द्विता । विऽऊर्खन् । अमृतस्य । धाम । स्वऽविदे । भुवनानि । प्रथंत ।  
धियः । पिन्वानाः । स्वसरे । न । गावः । ऋतऽयंतीः । अभि । वावश्चे । इंदुं ॥ २ ॥

अमृतस्रोदकस्य धाम धारकं स्थानमंतरिचं सोमो द्विता द्विधा व्यूर्खन्नमयतः स्वतेजसाच्छादयन् मध्येन गच्छति । ततः स्वर्विदे सर्वज्ञाय तस्मै सोमाय भुवनानि प्रथंत । विस्तीर्णानि भवन्ति । तस्य रश्मोनां संचरणार्थं प्रथंत इत्यर्थः । अथ पिन्वानाः प्रीणयिष्यो धियः सुतिलक्षणवाच ऋतायंतीर्यज्ञमिच्छत्यः सत्यसमिमिंदुं सोममभिलक्ष्य स्वसरे यागाहनि वावश्चे । शब्दायंति । यद्वा । सोमं कामयंति । तत्र दृष्टान्तः । गावो न यथा पिन्वमानाः पयः चरंत्यो गावः स्वसरे । सुप्लव्यंति प्रयंति गावोऽनेति स्वसरो गोष्ठं । तस्मिन्नच्छामिलक्ष्य शब्दं कुर्वन्ति तद्वत् ॥

परि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा ।  
देवेषु यशो मर्तीय भूषन्दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः ॥ ३ ॥  
परि । यत् । कविः । काव्या । भरते । शूरः । न । रथः । भुवनानि । विश्वा ।  
देवेषु । यशः । मर्तीय । भूषन् । दक्षाय । रायः । पुरुऽभूषु । नव्यः ॥ ३ ॥



कविः क्रांतप्रज्ञः सोमः काव्या काव्यानि कवेः कर्माणि स्तोत्राणि यद्यदा परि भरते परितो विभर्ति । परिगच्छतीति यावत् । कथमिव । मूरो न यथा मूरः शत्रूणां बाधको रथसदीयो विश्वा भुवनानि संघा-  
मिकाणि भूतानि परियाति तद्वत् । तदानो देवेषु स्थितं यज्ञो व्यापकं धनं मर्ताय मनुष्याय स्तोत्रे भूषणं ॥  
भवतेरंतर्भावितत्पर्यात्सनि रूपं ॥ भावयितुमिच्छन् सोमो राय आत्मना दत्तस्य धनस्य दद्याय वृद्धयर्थं पुत्रभूषु  
वज्रसु यज्ञभवनेषु नयः स्तोत्रव्यो भवति ॥ शु सुतो । अचो यत् ॥

श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।

श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवति सत्या समिथा मितद्रौ ॥४॥

श्रिये । जातः । श्रिये । आ । निः । इयाय । श्रियं । वयः । जरितृभ्यः । दधाति ।

श्रियं । वसानाः । अमृतत्वं । आयन् । भवति । सत्या । संऽइथा । मितद्रौ ॥४॥

स सोमः श्रिये जातः संपदर्थं प्रादुर्भूतो भवति । तदेवाह । श्रिये श्रियमेवा निरियाय । अंशुभ्य आभि-  
मुख्येन निर्गच्छति । निर्गतश्च स सोमो जरितृभ्यः स्तोत्रभ्यः श्रियं वयोऽन्नं जीवनं वा दधाति । विदधाति ।  
प्रयच्छति । तेन दत्तां श्रियं वसाना आच्छादयंतः स्तोतारोऽमृतत्वं देवत्वममरणं वायन् । प्राप्नुवन् । तस्मिन्-  
स्थितद्रौ मितगमने सोमे समिथा । युद्धनामैतत् सम्यक् प्राप्यतेऽचेति ॥ समोणः । उ० २. ११. । इत्येतेः सम्पूर्वस्य  
थक्प्रत्ययः ॥ तानि युद्धानि सत्या सत्यानि यथार्थानि भवन्ति न तु वितथानि । तेन सोमेन पराजितानि  
भवन्तीत्यर्थः ॥

इषमूर्जमभ्यर्षां गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।

विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून् ॥५॥

इषं । ऊर्जं । अभि । अर्षं । अश्वं । गां । उरु । ज्योतिः । कृणुहि । मत्सि । देवान् ।

विश्वानि । हि । सुऽसहा । तानि । तुभ्यं । पवमान । बाधसे । सोम । शत्रून् ॥५॥

हे सोम इषमन्नमूर्जमन्नरसं वाक्प्रभमभ्यर्ष । अभिगमय । किंवाश्वं वाहनं गां पयःप्रदानेन यज्ञस्य साध-  
नभूतां गां च । तथोरु महज्ज्योतिः सूर्याख्यं कृणुहि । जगदालोकनार्थं कुरु । किंच देवानिन्द्रादोन् मत्सि ।  
सोमेन तर्पय ॥ मदर्क्षीत वज्रं छंदसीति विकरणस्य लुक् । वाक्प्रभेदादनिघातः ॥ अपि च हे सोम तुभ्यं  
विश्वानि सर्वाणि रक्षांसि सुषहा सुसहान्वनायासेनैवाभिभवितुं शक्यानि भवन्ति । हिरवधारणे । अत एव हे  
पवमान पूयमान हे सोम सर्वाञ्शत्रून्बाधसे । जहि ॥ ॥४॥

कनिक्रंतीति पंचर्चं दशमं सूक्तं कण्वपुत्रस्य प्रस्तुतस्यार्थं । तथानुक्रम्यते । कनिक्रंति प्रस्तुत इति । पूर्वव-  
च्छंदोदेवते ॥ गतो विनियोगः ॥

कनिक्रंति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।

नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो भर्तार्जनयत स्वधाभिः ॥१॥

कनिक्रंति । हरिः । आ । सृज्यमानः । सीदन् । वनस्य । जठरे । पुनानः ।

नृभिः । यतः । कृणुते । निऽनिजं । गाः । अतः । भर्ता । जनयत । स्वधाभिः ॥१॥

सृज्यमान आ समंताद्विद्यमानोऽभिषूयमाणो हरिर्हरितवर्णः सोमः कनिक्रंति । पुनःपुनः शब्दायतं ॥  
क्रंदतेर्गङ्गुकि तिपीडभावे दाधति दर्धतीत्यादिना निपातनादभ्यासस्य निगागमः । अभ्यस्तस्वरः ॥ तथा  
पुनानः पूयमानो वनस्य वननीयस्य द्रोणकलशस्य जठरे सीदन्नुपविशन्शब्दायतं । किंच नृभिः कर्मननुभिर्वा

त्वितिमर्थतः संयतः सोमो ना गोविकारान् जोरादीन्याच्छादयन्निर्जिज्जमानो रूपं कृणुते । ग्रहादिषु करोति । अतोऽस्मै सोमाय मतीर्मनोयाः सुतोः स्वधामिर्हविर्भिः सह जनयत । सोतारोऽजनयन् ॥ अस्मादादेशामावःकांदसः ॥ यद्वा । हे सोतारः अस्मै सोमाय सुतीर्जनयत । उत्पादयत । कृणुतेति यावत् ॥

हरिः सृजानः पृथ्यामृतस्येयंति वाचमरितेव नावं ।

देवो देवानां गुह्यानि नामाविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥२॥

हरिः । सृजानः । पृथ्यां । ऋतस्य । इयंति । वाचं । अरिताऽइव । नावं ।

देवः । देवानां । गुह्यानि । नाम । आविः । कृणोति । बर्हिषि । प्रऽवाचे ॥२॥

सृजानः सृज्यमानो हरिर्हरितवर्णः सोम ऋतस्य सत्यभूतस्य पृथ्यां पथि भवां वाचं दैवीमियति । प्रेरयति । तच्च दृष्टान्तः । अरितेव जनांस्तीरं प्रापयन्नाविको नावं यथा प्रेरयति तद्वत् ॥ ऋ गती जीहो-  
त्यादिकः । अतिपिपथ्योरित्यभ्यासखेलं ॥ ततो देवो दीप्यमानः सोमो देवानामिन्द्रादीनां गुह्यान्वतर्हितानि नाम नामानि शरीराणि प्रवाचे प्रकर्षेण वाचयिचे सोचे बर्हिषि यच्च आविष्कृणोति । सोतुमाविष्करोति ॥

अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।

नमस्यंतीरुप च यंति सं चा च विशंत्युशतीरुशंतं ॥३॥

अपांऽइव । इत् । ऊर्मयः । तर्तुराणाः । प्र । मनीषाः । ईरते । सोमं । अच्छ ।

नमस्यंतीः । उप । च । यंति । सं । च । आ । च । विशंति । उशतीः । उशंतं ॥३॥

अपामिव यथोदकानामूर्मयस्त्वरंते । इदिति पूरणः । तद्वत्तर्तुराणाः कर्मणि देवान्स्तोतुं स्वरमाणाः ॥ तुर स्वरणे जीहोत्यादिकः । यद्गुलुगंतस्य शानचि रूपं । अभ्यासस्यावर्णस्य रेफादेशश्चांदसः । अभ्यासस्वरः ॥ तादृशा ऋत्विजो मनीषा मनस ईशिचीः सुतोः सोममच्छ सोमं प्रति प्रेरते । प्रेरयति । नमस्यंतीर्नमस्यन्तः सोमं पूजयन्तः सत्यसमुप यंति चोपगच्छन्ति तमेव सं यंति च ॥ चवाद्योगे प्रथमेति न निघातः ॥ तत उशतीः कामयमानाः सुतय उशंतं कामयमानं सोममा विशंति च ॥

तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहंत्युक्ष्यं गिरिष्ठां ।

तं वावशानं मतयः सचंते चितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥४॥

तं । मर्मृजानं । महिषं । न । सानौ । अंशुं । दुहंति । उक्ष्यं । गिरिऽस्थ्यां ।

तं । वावशानं । मतयः । सचंते । चितः । बिभर्ति । वरुणं । समुद्रे ॥४॥

मर्मृजानं यष्टृभिः परित्यर्चमाणं महिषं न महिषाख्यं मृगमिव सानौ समुच्छ्रिते देशे वर्तमानमुक्षणं कामानां सेक्तारं गिरिष्ठामभिषवार्थं यावमु निष्ठितं तं तादृशं प्रसिद्धमंशुं सोमं दुहंति । ऋत्विजो दुहते । यावाणो वत्सा ऋत्विजो दुहंति । तै० सं० ६. २. ११. ४. इति तैत्तिरीयब्राह्मणं । तं तादृशं वावशानं कामयमानं सोमं मतयो मंतव्याः सुतयः सचंते । समवयंति । सेवंत इति यावत् । ततस्त्रितस्त्रिषु स्थानेषु वर्तमान इन्द्रो वरुणं शत्रूणां निवारकमेव सोमं समुद्रेऽंतरिक्षे बिभर्ति । अंशुधार्थं धारयति । यद्वा । चितस्त्रिषु स्थानेषु द्रोणाधवनीयपूतमृदाख्येषु कलशेषु ततो विततः सोमः शत्रूणां निवारकमिन्द्रं बुल्लोके बिभर्ति । पोषयति ॥

इथन्वाचमुपवत्तेव होतुः पुनान ईदो वि ष्या मनीषां ।

इंद्रश्च यत्क्षयंथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५॥



इधन् । वाचं । उपवक्ताऽइव । होतुः । पुनानः । इंदो इति । वि । स्य । मनीषां ।  
इंद्रः । च । यत् । क्षयथः । सौभगाय । सुऽवीर्यस्य । पतयः । स्वाम् ॥ ५ ॥

हे इंदो सोमं वाचं क्षुतिमिष्यन् प्रेरयन् होतुस्त्वपवक्तेष्व यथाध्वर्युः प्रतिगरं कुर्वन् प्रोत्साहयति तद्वत्क्षोतृणां  
शंसनाय प्रोत्साहं कुर्वन् पुनानः पूषमाणस्त्वं मनीषां बुद्धिं वि ष्य । विमुंच । किंतु बुद्धिं धनप्रदानामिमुखीं  
कुव । किंच यद्येदं द्रव्यं त्वं सह यज्ञे चयथः निवसथः तदा क्षोतारो वयं सौभगाय सौभाभ्याय स्वाभ्य । किंच  
सुवीर्यस्य शोभनवीर्योपेतस्य धनस्य पतयः स्वामिगः स्वाम । भवेम ॥ ५ ॥

प्र सेनानीरिति चतुर्विंशत्युचमेकादशं सूक्तं दिवोदासपुत्रस्य प्रतर्दनाख्यस्य राजर्षेरेदिदं श्रुतं पवमान-  
सोमदेवताकं । तथा चानुक्रम्यते । प्र सेनानीचतुर्विंशतिर्दिवोदासिः प्रतर्दन इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।

भद्रान्कृण्वन्निंद्रहवान्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥ १ ॥

प्र । सेनाऽनीः । शूरः । अग्रे । रथानां । गव्यन् । एति । हर्षते । अस्य । सेना ।

भद्रान् । कृण्वन् । इंद्रऽहवान् । सखिभ्यः । आ । सोमः । वस्त्रा । रभसानि । दत्ते ॥ १ ॥

सेनानीः सेनानामय उपनेता शूरः शूराणां बाधकः सोमो गव्यञ्चूणां गा इच्छन् । यद् । यजमानानां  
पश्वादिकमिच्छन् । रथानामग्रे रथानां पुरतः प्रेति । प्रकर्षेण संयामं गच्छति । अस्य सोमस्य सेना च हर्षते ।  
हृषति ॥ वाक्यभेदादभिधातः ॥ किंच सखिभ्यः समानस्त्वानेभ्यो यजमानेभ्य इंद्रहवांसैः कृतानींद्रस्याङ्गानानि  
भद्रान्कृष्याणानि यथार्थानि कृण्वन् कुर्वन् । आहृतो हींद्रः सोमं पीत्वा कामान्प्रयच्छतीति रभसान्नींद्रस्य  
वेगेनागमने निमित्तानि वस्त्राणाच्छादकानि पयःप्रमृतीन्याम्रयणान्या दत्ते । आगृह्णाति ॥

समस्य हरिं हरयो मृजंत्यश्वह्यैरनिशितं नमोभिः ।

आ तिष्ठति रथमिंद्रस्य सखा विद्वा एना सुमतिं यात्यच्छ ॥ २ ॥

सं । अस्य । हरिं । हरयः । मृजंति । अश्वऽश्वह्यैः । अनिऽशितं । नमःऽभिः ।

आ । तिष्ठति । रथं । इंद्रस्य । सखा । विद्वान् । एन । सुऽमतिं । याति । अच्छ ॥ २ ॥

हरयः हरंत्यभिषुलंति सोममित्युल्लिखोऽंगुलयो वा हरिं हरितवर्णमस्य सोमस्य कारणमंशुं सं मृजंति ।  
सम्यगभिषुलंति । ततः सोमो नमोभिर्नामयितुमिरश्वह्यैर्वाग्निरप्यनिशितमसंस्कृतमयुक्तमवशुगतं रथं रमण-  
साधनमात्मीयं दशापविचमा तिष्ठति । आजीदति । अगंतरमिंद्रस्य सखा सखिभूतो विद्वान् प्राज्ञः सोम  
एनैतेन रथेन पविचेण सुमतिं शोभनक्षुतिकं क्षोतारमच्छ याति । अभिगच्छति । तस्मिन्कासे तेन क्रियमाणां  
क्षुतिमभिगच्छतीत्यर्थः ॥

स नो देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरस इंद्रपानः ।

कृण्वन्नपो वर्षयन्धामुतेमामुरोरा नो वरिवस्या पुनानः ॥ ३ ॥

सः । नः । देव । देवऽतते । पवस्व । महे । सोम । प्सरसे । इंद्रऽपानः ।

कृण्वन् । अपः । वर्षयन् । द्यां । उत । इमां । उरोः । आ । नः । वरिवस्य । पुनानः ॥ ३ ॥

हे देव क्षोतमान हे सोम स तादृश इंद्रपान इंद्रेण पातव्यस्त्वं सोऽस्माकं स्वभूते देवताते देवैकते वितते  
यज्ञे महे महते प्सरसे मचणयिंद्रस्य पानाय पवस्व । ग्रहादिषु चर । किंचाप चदकानि कृण्वन् कुर्वन् उतापि

च यामिमां बावापृथिवीं वर्धयन् । भूमिं पर्जन्यरूपेण तर्पयति बुजोऽकमप्रिरूपेणेति । भूमिं पर्जन्या जिन्वति दिवं जिन्वत्यप्रयः । अ० १. १६४. ५१. । इति अवणात् । चरोर्विस्तीर्णादंतरिक्षादागच्छंस्त्वं पुनानः पूयमानः सन्नोऽस्मान्परिवस्व । धनादिप्रदानेन परिवरेति ॥

अजीतयेऽहंतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते ।

तदुशंति विश्वे इमे सखायस्तदहं वशिम पवमान सोम ॥ ४ ॥

अजीतये । अहंतये । पवस्व । स्वस्तये । सर्वऽतातये । बृहते ।

तत् । उशंति । विश्वे । इमे । सखायः । तत् । अहं । वशिम । पवमान । सोम ॥ ४ ॥

हे सोम अजीतये यथा वयं शत्रुभिरजिता भवेम तथा तेषामजयाय अहंतये यथा तैरहताः स्वाम तस्मै च अत एव स्वस्तयेऽविनाशाय किंच बृहते सर्वतातये सर्वैरिन्द्रादिभिर्देवैः सूयमानाय यज्ञाय एतदर्थं पवस्व । अस्मदभिमुखमामच्छ । पविर्गतिकर्मा । विश्वे सर्व इमे मदीयाः सखायः स्तोतारस्तत्त्वदीयं रक्षणमुशंति । कामयते । हे पवमान सोम तद्रक्षणमहमपि वशिम । कामये ॥

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।

जनितामेजनिता सूर्यस्य जनितेद्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ ५ ॥

सोमः । पवते । जनिता । मतीनां । जनिता । दिवः । जनिता । पृथिव्याः ।

जनिता । अमेः । जनिता । सूर्यस्य । जनिता । इंद्रस्य । जनिता । उत । विष्णोः ॥ ५ ॥

सोमोऽभिपूयमाणः पवते । पाचेषु चरति । कौटुशः । मतीनां बुद्धीनां यद्वा मननांथानां सुतीनां जनिता जनयिता ॥ जनिता मंचे । पा० ६. ४. ५३. । इति निपातनाखिलोपः ॥ किंच दिवो बुद्धीकस्य जनिता प्रादुर्भावयिता तथा पृथिव्या जनयिता अपेर्जनयिता प्रकाशयिता सूर्यस्य सर्वस्य प्रेरकस्यादित्यस्य जनिता इंद्रस्य जनिता पानेन मदस्य जनयिता उतापि च विष्णोर्व्यापकस्य जनिता जनयिता । एतत्सर्वं सोमेऽभिपूयमाणे भवतीति । सोमो हि देवानाप्याययतीति ॥ ६ ॥

देवसुवां इविषु सोमस्य वनस्यतेर्ब्रह्मा देवानामिति आख्या । सूच्यते च । त्वं च सोम नो वशी ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनां । आ० ४. ११. । इति ॥

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणां ।

श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पविचमत्येति रेभन् ॥ ६ ॥

ब्रह्मा । देवानां । पदऽवीः । कवीनां । ऋषिः । विप्राणां । महिषः । मृगाणां ।

श्येनः । गृध्राणां । स्वऽधितिः । वनानां । सोमः । पविचं । अति । एति । रेभन् ॥ ६ ॥

सोम एवरूपो भवति । देवानां स्तोत्रकारिणामृषिणां ब्रह्मा ब्रह्माख्यत्विक्स्थानीयो भवति । यद्वा । देवानां स्तोतमानानामिन्द्रादीनां ब्रह्मा राजा भवति । तथा कवीनां क्रांतप्रज्ञानां पदवीः । स्वयंति पदानि साधुत्वेन यो योजयति स पदवीः ॥ यो गत्यादिविद्येतस्यात्क्रिय रूपं ॥ तथा विप्राणां मेधाविनां मध्य ऋषिर्भवति । यः परोक्षं पश्यति स ऋषिः ऋषिर्दर्शनात् । नि० २. ११. । इति । मृगाणां महिषो भवति । महिषाख्यो बलवान्राजा भवति । तथा गृध्राणां पक्षिविशेषाणां श्येनः शंसनीयः पक्षिराजो भवति । वनानां । वनतिर्हिंसाकर्मा । हिंसकानां छेदकानां मध्ये स्वधितिरेतन्नामकच्छेदकोऽसि । एवंप्रभावः सोमो रेमञ्छब्दायमानः सन् पविचमूर्णालुकेन छतमत्येति । अतिगच्छति ॥



प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिंधुर्गिरः सोमः पर्वमानो मनीषाः ।

अंतः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥७॥

प्र । अवीविपत् । वाचः । ऊर्मिं । न । सिंधुः । गिरः । सोमः । पर्वमानः । मनीषाः ।

अंतरिति । पश्यन् । वृजना । इमा । अवराणि । आ । तिष्ठति । वृषभः । गोषु । जानन् ॥७॥

पर्वमानः सोमो मनीषा मनस ईशिता इदयंगमा गिरः क्षुतीः प्रावीविपत् । प्रकीर्णं वेपयति । प्रेरयति । कथमिव । सिंधुः स्यंदमाना नदीव वाचः शब्दस्त्रोर्मिं न संधं यथा प्रेरयति तद्वत् । किंच वृषभः कामानासु-  
दकानां वा वर्षकः सोमोऽंतरं तर्हितं वक्षुजातं पञ्चवराणि दुर्बलैर्वारयितुमशक्यानीमा धृजनेमानि बलान्या  
तिष्ठति । आसीदति । किं कुर्वन् । गोषु जानन् गवां जानानः सन् परवसानि प्रविशति ॥

स मत्सरः पृत्सु वन्वन्वातः सहस्रेता अभि वाजंमर्ष ।

इंद्रायेंदो पर्वमानो मनीषं शोर्ऊर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥८॥

सः । मत्सरः । पृत्सु । वन्वन् । अवातः । सहस्रेताः । अभि । वाजं । अर्ष ।

इंद्राय । इंदो इति । पर्वमानः । मनीषी । अंशोः । ऊर्मि । ईरय । गाः । इषण्यन् ॥८॥

मत्सरो मदकरः पृत्सु संयामेषु वन्वच्छेत्तुं हिंसन् अत एवावातोऽन्विर्गुतमशक्यः सहस्रेताः सहस्रोद-  
कधारोपेतः स सोमो वाजं शत्रूणां बलमभ्यर्ष । अभिगच्छ । हे इंदो सोम पर्वमानः पूयमानो मनीषी प्राज्ञस्त्वं  
गा इषण्यच्छन्दान् प्रेरयन् । यद्वा । यजमानानां यज्ञसाधनभृता गाः प्रेरयन् । इंद्रायेंद्रार्थमंशोरभिषूयमाणस्व  
सोमस्त्रोर्मिं संधमीरय । प्रेरय ॥

परि प्रियः कलशे देववात इंद्राय सोमो रण्यो मदाय ।

सहस्रधारः शतवाज इंदुर्वाजी न सप्तिः समना जिगाति ॥९॥

परि । प्रियः । कलशे । देववातः । इंद्राय । सोमः । रण्यः । मदाय ।

सहस्रेधारः । शतवाजः । इंदुः । वाजी । न । सप्तिः । समना । जिगाति ॥९॥

प्रियः प्रीत्ययिता अत एव देववातो देवैरभिगतो रण्यो रमणीयः सोम इंद्रायेंद्रस्य मदाय मदायं  
कलशे द्रोणामिधाने परि जिगाति । परिगच्छति । कीदृशः । सहस्रधारो बज्रविधधारोपेतः शतवाजो  
बज्रवद्य इंदुः पात्रेषु चरन् । तच्च दृष्टांतः । वाजी न यथा वाजी बलवान् सप्तिरश्वः समना । संयामगमितत् ॥  
समं प्रम चवेक्ये ॥ समंति धृष्टा भवंति योद्धारोऽवेति । तस्मिन्संयामे यथाश्वो जिगाति गच्छति तद्वत् ॥

स पूर्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।

अभिश्शस्तिपा भुवनस्य राजा विदन्नातुं ब्रह्मणे पूयमानः ॥१०॥

सः । पूर्यः । वसुऽवित् । जायमानः । मृजानः । अप्सु । दुदुहानः । अद्रौ ।

अभिश्शस्तिपाः । भुवनस्य । राजा । विदत् । गातुं । ब्रह्मणे । पूयमानः ॥१०॥

पूर्यः पुराणो यद्वा पूर्यः कृतोऽभिषुतो वसुविज्जनानां संमको जायमानोऽप्सु वसतीवर्याख्येषूदकेषु  
मृजानो मृज्यमानोऽद्रावभिषवयावणि दुदुहानो दुह्यमानोऽभिश्शस्तिपाः । अभितः शस्तिर्हिंसा येषां ते

ऽमिश्रस्यः श्रवः । तेभ्यः परिरचको भुवनस्य भूतजातस्य राजा स्वामी एवंविधः स तादृशः सोमो ब्रह्मणे  
कर्माद्यं पूयमानः सन् गातुं मार्गं समीचीनं विदत् । यजमानेभ्यः प्रयच्छति ॥ ७॥

महापितृयज्ञे पितरः सोमवन्त इत्यस्य द्वितीयानुवाक्या त्वया हि नः पितर इत्येषा । सूचितं च । पितरो  
ऽपिष्वात्ता यम उदीरतामवर उत्परासस्त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे । आ० २. १९. इति ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।

वन्वन्नवातः परिधीरपोर्णुं वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥ ११ ॥

त्वया । हि । नः । पितरः । सोम । पूर्वे । कर्माणि । चक्रुः । पवमान । धीराः ।

वन्वन् । अवातः । परिधीन् । अप । ऋणुं । वीरेभिः । अश्वैः । मघवा । भव । नः ॥ ११ ॥

हे पवमान पूयमान सोम धीराः कर्माणि कुशलाः प्राज्ञा नोऽस्माकं पितरः पूर्वे पुरातना अग्निरसस्त्वया ।  
हिरवधारणे । त्वया सहायेनैव कर्माणां पिष्टोमादीनि चक्रुः । कृतवन्तः । किंच वन्वन् सोतृन्संभजन् । यद्वा ।  
वनतिर्हिंसार्थः । शत्रून्हिंसन् । अवातक्षीरमिगतत्वं परिधीन् । परिधीयत एभिः सर्वमिति परिधयो राक्षसाः ।  
तामपोर्णुं । अपोर्णुहि । अपच्छादय । जहीति यावत् ॥ ऊर्णोतेर्लोष्टि च्छांदसो हेर्णुक् ॥ एतादृशत्वं नो  
ऽस्माकं पुत्रादियुक्तं धनं प्रयच्छेत्पर्यः ॥

यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविहविष्मान् ।

एवा पवस्व द्रविणं दधानं इंद्रे सं तिष्ठ जनयार्युधानि ॥ १२ ॥

यथा । अपवथाः । मनवे । वयःधाः । अमित्रहा । वरिवः । वित् । हविष्मान् ।

एव । पवस्व । द्रविणं । दधानः । इंद्रे । सं । तिष्ठ । जनय । आर्युधानि ॥ १२ ॥

हे सोम यथा पुरा त्वं मनवे राक्षे वयोधा अस्य धाता तथामित्रहा शत्रूणां हंता वरिवोविहगच्छ  
संमयिता हविष्मान् पुरोडाशादियुक्तः सन्नपवथाः तस्मै धनादिकं प्रदातुं यथागच्छः एवमस्यभ्यमपि द्रविणं  
धनं दधानः प्रयच्छन् पवस्व । अस्यदभिमुखमागच्छ । किंचास्माभिर्दीयमानस्त्वमिन्द्रे सं तिष्ठ । सव्यम् तिष्ठ ।  
अपि चायुधानि स्वदीयानि जनय । तस्मै प्रकाशय ॥ वाक्यभेदादनिघातः ॥

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अर्थे ।

अव द्रोणानि घृतवाँति सीद मदिन्तमो मत्सर इंद्रपानः ॥ १३ ॥

पवस्व । सोम । मधुमान् । ऋतवा । अपः । वसानः । अधि । सानौ । अर्थे ।

अव । द्रोणानि । घृतवाँति । सीद । मदिन्तमः । मत्सरः । इंद्रपानः ॥ १३ ॥

हे सोम मधुमाक्षदकररसोपेत ऋतावा यज्ञवान् ॥ छंदसीवनिपाविति वमिष्मत्सर्वार्थः ॥ तादृशस्त्वमपो  
वसतीवरीरेकधनाद्य वसान आच्छादयन्नध्यधिकं सानौ समुच्छितेऽप्येऽविमवे पवित्रे पवस्व । अर । ततो  
मदिन्तमोऽतिशयेन मदकर इंद्रपान इंद्रेण पातव्यो मत्सरो मादयिता सोमो घृतवन्धुदक्षवतो द्रोणानि  
द्रोणकलशानव सीद । अवतिष्ठस्व ॥

वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ ।

सं सिंधुभिः कलशै वावशानः समुस्रियाभिः प्रतिरन्न आयुः ॥ १४ ॥



वृष्टिं । दिवः । शतधरः । पवस्व । सहस्रसाः । वाजयुः । देववीतौ ।  
सं । सिंधुभिः । कलशे । वावशानः । सं । उस्त्रियाभिः । प्रऽतिरन् । नः । आयुः ॥ १४ ॥

हे सोम शतधरो वज्रधरोपेतस्त्वं दिवोऽंतरिक्षादादित्याद्वा वृष्टिं पवस्व । कुर्व । यद्वा । शतधरो वज्र-  
धात्रीयधरोपेतस्त्वं दिवो द्योतमानात्पवित्रावृष्टिमविच्छिन्नधारां पवस्व । पाचेषु कुर्व । क्रीदृशः । देववीतौ ।  
देवानां वीतिर्हविर्भक्षणं यस्मिन् स देववीतिर्यज्ञः । सस्मिन्सहस्रसा यजमानानां सहस्रस्य धनस्य दाता  
वाजयुस्तेषामन्नं कामयमानस्त्वं सिंधुभिः खंदमानाभिर्वसतीवरीभिः कलशे द्रोण्याभिधाने संगच्छस्व । तथा  
सं नोऽस्माकमायुर्जीवनं प्रतिरन्वर्धयन्नुस्त्रियाभिर्गोविकारैः क्षीरादिभिश्च कलशे संगच्छस्व ॥

एष स्य सोमो मतिभिः पुनानोऽत्यो न वाजी तरतीदरातीः ।  
पयो न दुग्धमदितेरिषिरमुर्विव गातुः सुयमो न वोऽह्ना ॥ १५ ॥  
एषः । स्यः । सोमः । मतिभिः । पुनानः । अत्यः । न । वाजी । तरति । इत् । अरातीः ।  
पयः । न । दुग्धं । अदितेः । इषिरं । उरुऽइव । गातुः । सुऽयमः । न । वोऽह्ना ॥ १५ ॥

एष एतादृशः स्य स सोमो मतिभिर्मनसाधनैः क्षौचैः पुनानः पूयमानो भवति । यः सोमोऽत्यो  
जातनशीलो वाज्यश्च इव संयमेऽरातीररातीञ्चबुंक्षरति । इद्वधधारणे । तरत्येव हिनस्त्येव ॥ यदुत्तयोगा-  
दनिघातः ॥ किंचादितेः । गोनामैतत् ॥ अर्धः ॥ १५ ॥ गोरिषिरमन्वेवशीयं दुग्धं पयो न क्षीरं यथा पूतं भवति  
एवं सोमः परिशुद्धः । अपि क्षौर्विव ॥ सुपां सुनुगिति क्षौर्बुक् ॥ क्षौर्विस्त्रीर्णो गातुर्मार्ग इव सर्वैः समाश्रय-  
शीयस्तथा वोऽह्ना वोढाश्चः सुयमः सुष्ठु नियंतुं शक्नो यथा भवति तद्वदयं सोमः क्षौतुभिर्नियंतव्यो  
भवति ॥ ॥ ८ ॥

स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्षं गुह्यं चारु नाम ।  
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याभि वायुमभि गा देव सोम ॥ १६ ॥  
सुऽआयुधः । सोतृभिः । पूयमानः । अभि । अर्षं । गुह्यं । चारु । नाम ।  
अभि । वाजं । सप्तिऽइव । श्रवस्या । अभि । वायुं । अभि । गाः । देव । सोम ॥ १६ ॥

स्वायुधः शोभनायुधोपेतः । यद्वा । यज्ञे स्पर्शकपालादीनि दद्यायुधानि संति । तद्वान् । सोतुमिरभिषु-  
खस्त्रिः पूयमानस्त्वं गुह्यं गुहायां निहितं चारु कमनीयं नाम त्वदीयं रसात्मकं शरीरं क्षुतिभिः सहाभ्यर्षं ।  
कलशादीन्वभिगमय । किंच सप्तिरिवाश्च इव वर्तमानस्त्वं श्रवस्या ॥ सुपां सुनुगिति सप्तम्या आवादेशः ॥  
अर्षादीनामभिगमय । यथा च हे देव क्षौतव्य हे सोम वायुं प्राणं जीवनमभि-  
गमय । गाः पशून्चास्यमभिगमय ॥

शिर्षु जज्ञानं हर्यतं मृजंति शुभंति वह्निं मरुतो गणेन ।  
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्सोमः पविचमत्येति रेभन् ॥ १७ ॥  
शिर्षु । जज्ञानं । हर्यतं । मृजंति । शुभंति । वह्निं । मरुतः । गणेन ।  
कविः । गीऽभिः । काव्येन । कविः । सन् । सोमः । पविचं । अति । एति । रेभन् ॥ १७ ॥

शिर्षुमिदानीमुत्पन्नत्वाच्छिर्षुवन्तिष्ठतं । यद्वा । पापानि तनुकुर्वतं विनाशयंतं । जज्ञानं प्रादुर्भूतं अत एव  
हर्यतं । हर्यं गतिकाल्योः । मृमुदृशीत्यादिनातच् ॥ सर्वैः काव्यमानं सोमं मृजंति । मरुतः शोधयंति । किंच  
वह्निं वोढारं सोमं गणेनात्मीयेन सप्तसंख्याकेन गणेन शुभंति । असंजुर्वति । ततः कविः क्रांतप्रज्ञः सोमः

कावेन कविकर्मणैव कविः शब्दोपेतः सन्नेमश्चन्द्रायमानो गीर्भिः सुतिभिः सह पविचमत्वेति । अतीत्य गच्छति ॥

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनां ।

तृतीय धाम महिषः सिषासन्तोमो विराजमनु राजति ह्यु ॥१८॥

ऋषिऽमनाः । यः । ऋषिऽकृत् । स्वःऽसाः । सहस्रऽनीथः । पदऽवीः । कवीनां ।

तृतीयं । धाम । महिषः । सिषासन् । सोमः । विऽराजं । अनु । राजति । ह्यु ॥१८॥

ऋषिमनाः सर्वदर्शनशीलमनस्कः अत एवर्षिकृत् सर्वस्य दर्शनकर्ता प्रकाशनस्य कर्ता स्वर्षाः सर्वस्य सूर्यस्य वा संभक्ता सहस्रणीथः । नीथा सुतिः । वज्रविधस्तुतिकः कवीनां क्रांतप्रज्ञानां मध्ये पदवीः स्वलतां पदानां साधुत्वेन संयोजयिता यः सोमो विवर्तते स महिषो महान् पूज्यो वा सोमसृतीयं धाम बुद्धोक्तं सिषासन् संभक्तुमिच्छन् ह्यु प्रसूयमानः सन्विराजं विशेषेण राजतं दीप्यमानमिन्द्रमनु राजति । प्रकाशयति ॥

चमूषच्छेनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुद्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।

अपामूर्मि सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥१९॥

चमूऽसत् । शेनः । शकुनः । विऽभृत्वा । गोऽविन्दुः । द्रप्सः । आयुधानि । बिभ्रत् ।

अपां । ऊर्मि । सचमानः । समुद्रं । तुरीयं । धाम । महिषः । विवक्ति ॥१९॥

चमूषत् । चमंति मच्चयंत्वचेति चम्वचमसाः । तेषु सीदन् । यद्वा । चम्वावधिषवणफलके । तथोर्वर्तमानः । शेनः शंसनीयः शकुनः शक्तः सामर्थ्यकारी विभृत्वा ॥ हरतेरातो मनिन्नित्यादिना कृन्निप ॥ पात्रेषु विहरणशीलः गोविन्दुर्यजमानानां गवां संभक्कः ॥ विन्दुरिच्छुः । पा० ३. २. १६९. । इत्युप्रत्ययांतत्वेन निपातितः ॥ द्रप्सो द्रवणशीलः आयुधानि स्फ्यकपासादौनि बिभ्रद्धारयन् ॥ पासुदकानामूर्मि प्रेरकं समुद्रं । अंतरिक्षनाभितत् । अंतरिक्षलोकां सचमानः सेवमानः महिषो महान् य एवंविधः सोमः स सोमसृतीयं चतुर्थं धाम चांद्रमसं स्थानं विवक्ति । सेवते । सूर्यलोकस्योपरि चंद्रमसो लोको विवर्त इति यमः पृथिव्या अधिपतिः स मावत्वित्यादिभिश्चंद्रमा नचचाणामधिपतिः स मावत्वित्येतैर्नैर्ज्ञायते । तै० सं० ३. ४. ५. १. ॥

मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानां ।

वृषेव यूथा परि कोशमर्षन्कनिःक्रदच्चम्बोऽरा विवेश ॥२०॥

मर्यैः । न । शुभ्रः । तन्वं । मृजानः । अत्यैः । न । सृत्वा । सनये । धनानां ।

वृषाऽइव । यूथा । परि । कोशं । अर्षन् । कनिःक्रदत् । चम्बोः । आ । विवेश ॥२०॥

मुधो दीप्यमानोऽलंकृतो मर्यो न मनुष्य इव तत्त्वमात्मोचं शरीरं मृजानो वसतीवरीभिः शोधयन् किंच धनानां समये संभजनाय सामायात्पो नातनशीलोऽश्च इव सत्त्वा सरणशीलः अपि च वृषेव वृषा यथा यूथानि प्रतिगच्छच्छब्दं करोति तद्वत् कोशमधिषवणचर्मणा कृतं पात्रं पर्यवर्ण प्रतिगच्छन् सोमः कनिःक्रदत् पुनःपुनः शब्दं कुर्वन्समोरधिषवणफलकयोरा विवेश । आविशति ॥ कनिःक्रदत् । क्रदेर्यङ्कुक्ति दाधति । दर्धतीत्यादिना निपातनादभ्यासस्य निगागमः । तस्य शतर्यभक्तानामादिरित्यायुदात्तत्वं ॥ १९॥

पर्वस्वेदो पर्वमानो महोभिः कनिःक्रदत्परि वाराण्यर्ष ।

क्रीळञ्चम्बोऽरा विंश पूयमान इन्द्रं ते रसो मदिरा ममन्तु ॥२१॥



पवस्व । इंदो इति । पवमानः । महःऽभिः । कर्निक्रदत् । परि । वाराणि । अर्षे ।  
क्रीळन् । चम्बोः । आ । विश् । पूयमानः । इंदुः । ते । रसः । म॒दि॒रः । म॒म॒त्तु ॥ २१ ॥

हे इंदो सोम महोभिः पूजकैर्हविमिः पवमानः पूयमानस्त्वं पवस्व । चर । ततः कर्निक्रदन्नुं शब्दं  
पूर्वम् वाराण्यविवाहानि पवित्राणि पर्यर्ष । परिगच्छ । किंच पूयमानस्त्वं चम्बोरधिषवणफलकयोः क्रीळन्  
संकीडमानः सप्ता विश् । पात्राणि प्रविश । अनंतरं मदिरो मदकरसे स्वदीयो रस इंदं ममत्तु । मोदयतु ॥  
मायतिर्वज्रं वंदसीति स्तः ॥

प्रास्य धारा बृहतीरसुयज्ञक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश ।  
सामं कृण्वन्सामन्यो विपश्चित्क्रंदन्त्यभि सख्युर्न जामिं ॥ २२ ॥  
प्र । अस्य । धाराः । बृहतीः । असृपन् । अक्तः । गोभिः । कलशान् । आ । विवेश् ।  
सामं । कृण्वन् । सामन्यः । विपःऽचित् । क्रंदन् । एति । अभि । सख्युः । न । जामिं ॥ २२ ॥

अस्य सोमस्य बृहतीर्बृहत्यो महत्यो धाराः प्रास्यन् । प्रकृष्यते ॥ कृतेः कर्मार्थे लङि आत्ययेन क्षिरना-  
देश्च । वज्रं वंदसीति वज्रागमः ॥ ततः सोऽयं सोमो गोभिर्गोविकारैः क्षीरादिभिरक्तः सन् कलशाद्रोणा-  
भिधानानां पविश । आविशति । साम सामानि कृण्वन् कुर्वन् सोमः सामन्यः सामगानकृशचः । सुष्ठु  
शब्दायमान इत्यर्थः । विपश्चित् सर्वे जानातः सोमः क्रंदन् देवानाद्भयन्नयेति । ग्रहादीनि स्वरयाभिगच्छति ।  
तच्च दृष्टांतः । सख्युर्न सख्युर्जामिं जायां यथेतरो संपटो वेगेनाभिगच्छति तद्वत् ॥

अप॒घ्न॒क्षे॒षि पवमान॒ शचू॒न्प्रि॒यां न जा॒रो अ॒भिगी॑त॒ इंदुः ।  
सीद॒न्वने॑षु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता ॥ २३ ॥  
अप॒घ्नन् । ए॒षि । प॒व॒मा॒न् । शचू॒न् । प्रि॒यां । न । जा॒रः । अ॒भि॒गी॒तः । इंदुः ।  
सीद॒न् । वने॑षु । शकुनः । न । पत्वा । सोमः । पुनानः । कलशेषु । सत्ता ॥ २३ ॥

हे पवमान पूयमान सोम अभिगीतः क्षीरुभिरभिष्टुत इंदुः पात्रेषु चरंस्त्वं शचून्पघ्नपहंसन्नेषि ।  
आगच्छसि । कथमिव । जारः प्रियां न प्रियतमामसतीं स्त्रीमन्यान्वाधमानः सव्यधामिगच्छति तद्वत् । यत्न  
पतनशीलः शकुनो न यथा शकुनो वनेषु वृक्षेषु सीदन्भवति तद्वत् पतनशीलः । पुनानः पूयमानः सोमः  
कलशेषु सत्ता सदनशीलो निषण्णो भवति ॥ संदेसाच्छीलिकक्षृन् । एकाच इतीदमतिषेधः ॥

आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यंति सुदुधाः सुधाराः ।  
हरिरानीतः पुरुवारो अप॒स्वचि॑क्रदत्कलशे देवयूनां ॥ २४ ॥  
आ । ते । रुचः । पवमानस्य । सोम । योषाऽइव । यंति । सु॒दु॒धाः । सु॒धा॒राः ।  
हरिः । आ॒नी॒तः । पु॒रु॒वा॒रः । अप॒सु । अ॒चि॒क्रदत् । कलशे । दे॒व॒यू॒नां ॥ २४ ॥

हे सोम पवमानस्य पूयमानस्य ते तव स्वभूता योषेव स्त्री यथा पुत्राणां पयो दीपति तद्वत्पवमानानां  
धनादिकस्य सुष्ठु दोग्ध्यः सुधाराः शोभनधारोपेता रुचो दीपय आ यंति । पात्रादीन्वागच्छति । किंच  
हरिर्हरितवर्ण आनीत अल्विमिः पुरुवारो वज्रधा वरणीयः सोमोऽप्यु वसतीवरीषु देवयूनां देवानिच्छतां  
यजमानानां स्वभूते कलशे द्रोणाख्ये चाचिक्रदत् । पुनःपुनः क्रंदति । शब्दायते ॥ ॥ १० ॥ ॥ ५ ॥

गृहेऽनुवाके सप्त सूक्तानि । तत्रास्य प्रथित्यापंचाशदृचं प्रथमं सूक्तं चैदुमं पवमानसोमदेवताकं । तत्राद्यम्

तृपत्य भिवावह्यो वसिष्ठ ऋषिः । द्वितीयस्येन्द्रप्रमतिर्नाम । तृतीयस्य वृषगणः । चतुर्थस्य मन्युः । पंचमस्योप-  
मन्युः । षष्ठस्य व्याघ्रपात् । सप्तमस्य शक्तिः । अष्टमस्य कर्णश्रुत । नवमस्य मृळीकः । दशमस्य वसुक्तः । एते सर्वे  
वसिष्ठगोचाः । एवं त्रिंशद्बृचो गताः । अथ चतुर्दशानामृचां शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः । शिष्टानामांगिरसः  
कुत्सः । तथानुक्रम्यते । अस्य प्रेषाष्टापंचाशदाद्यं तृचं वसिष्ठोऽपश्यदुत्तराक्षव पृथग्वसिष्ठा इन्द्रप्रमतिर्वृषगणो  
मन्युपमन्युर्ब्राह्मपाच्छक्तिः कर्णश्रुतको वसुक्त इति चतुर्दश पराशरोऽत्याः कुत्स इति ॥ गतो विनियोगः ॥

अस्य प्रेषा हेमनां पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसं ।

सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्यं पशुभांति होता ॥ १ ॥

अस्य । प्रेषा । हेमनां । पूयमानः । देवः । देवेभिः । सं । अपृक्त । रसं ।

सुतः । पवित्रं । परि । एति । रेभन् । मिताऽइव । सद्यं । पशुऽमंति । होता ॥ १ ॥

अस्य सोमस्य प्रेषा ॥ प्रेषतिर्गत्वर्थः । क्षिपि रूपं । सचिकाच इति विभक्त्यदात्तत्वं ॥ प्रेषा प्रेरकेण हेमना  
हिरण्येन पूयमानः । हिरण्यपाणिरभिषुणोतीति हिरण्यसंबन्धः । तादृशो देवो दीप्यमाणं रसमात्मीयं  
देवेभिर्देवैः सह समपृक्त । संपर्चयति । संयोजयति ॥ पृचो संपर्कं ॥ ततः सुतोऽभिषुतः सोमो रेभन्मन्त्रा-  
मानः सन् पवित्रमूर्णास्तुकेन निर्मितं पर्येति । परिगच्छति । कथमपि । होता देवानामाह्नातर्त्विष्टितेव  
निर्मितान् पशुमंति वक्ष्यन् सद्यं सदनानि यज्ञगृहान्यथा पर्येति तद्वत् ॥

भद्रा वस्त्रा समन्याः वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।

आ वच्यस्व चम्बोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ २ ॥

भद्रा । वस्त्रा । समन्या । वसानः । महान् । कविः । निऽवचनानि । शंसन् ।

आ । वच्यस्व । चम्बोः । पूयमानः । विऽचक्षणः । जागृविः । देवऽवीतौ ॥ २ ॥

भद्रा भद्राणि कल्याणानि समन्या । समनमिति संयामनाम् ॥ तत्र साधुरिति यत् ॥ संयामयोग्यानि  
वस्त्रा वस्त्राणाच्छादकानि तेषां वसान आच्छादयन् महान्कविः क्रांतदर्शी अत एव निवचनानि नितरां  
वक्तव्यान्पुत्रिभूतानि सोचाणि शंसन् विचक्षणो विशेषेण सर्वस्य द्रष्टा जागृविर्जागरणशीलः सोमस्त्वं देववीतौ ।  
देवानां वीतिर्भक्षणं यस्मिन् स देववीतिर्यज्ञः । तस्मिन्चम्बोरधिषवणफलकधोरा वच्यस्व । पाचाण्या विश ॥  
वचिर्गत्वर्थः । व्यत्ययेन ज्ञानं ॥ पूयमानः सन् ॥

समुं प्रियो मृज्यते सानो अय्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।

अभि स्वरं धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

सं । ऊं इति । प्रियः । मृज्यते । सानौ । अय्ये । यशऽतरः । यशसां । क्षैतः । अस्मे इति ।

अभि । स्वर । धन्व । पूयमानः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ३ ॥

यशसां यशस्विनां मध्ये यशस्तरोऽतिशयेन यशसो क्षैतः क्षितौ भवः प्रियः प्रीणयिता सोमः सानौ  
समुच्छितेऽय्येऽविमये पवित्रेऽस्ते अस्मदर्थं सं मृज्यते । अस्तिग्मः परिपूयते । उ अवधारणे । पूयमानस्त्वं  
धन्वांतरिचिऽभि स्वर । अमितः शब्दय । यूयं ॥ पूजायां नञ्प्रवचन ॥ हे सोम त्वं नोऽस्मान् स्वस्तिभिः कल्या-  
णतमैः पालनैः सदा सर्वदा पात । रचत । पालयत ॥



प्र गायताभ्यर्चाम देवान्तोमं हिनोत महते धनाय ।

स्वादुः पवाते अति वारमभ्यमा सीदाति कलशं देवयुनैः ॥४॥

प्र । गायत । अभि । अर्चाम । देवान् । सोमं । हिनोत । महते । धनाय ।

स्वादुः । पवाते । अति । वारं । अभ्यं । आ । सीदाति । कलशं । देवयुः । नः ॥४॥

हे सोमः प्र गायत । सोमं प्रकर्षयामिष्टुत । तथा देवानभ्यर्चाम । अभ्यर्चत ॥ पुरुषव्यत्ययः ॥ यद्वा । यद्यं देवानभिष्टुमः यूयं सोमं कुतेति । किंच महते महत्प्रभूतं धनाय धनं प्राप्तुं सोमं हिनोत । अभिप्रवार्थं प्रेरयत ॥ क्रिद्यार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिज इति धनशब्दस्य चतुर्थी ॥ ततः स्वादुः स्वादुकरः सोमोऽन्वम-  
विभवं वारं वाचं पवित्रमिति पवाते । अतीत्यं पवते । किंच देवयुर्देवान्कामयमानो नोऽसादीयः सोमः कलशं पाचमा सीदाति । आसीदति । प्रविशति ॥ उभयच लेख्यडागमः ॥

इंदुर्देवानामुप सख्यमायन्तसहस्रधारः पवते मदाय ।

नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्वमगच्छिदं महते सौभगाय ॥५॥

इंदुः । देवानां । उप । सख्यं । आऽयन् । सहस्रऽधारः । पवते । मदाय ।

नृभिः । स्तवानः । अनु । धाम । पूर्वं । अगन् । इंदुं । महते । सौभगाय ॥५॥

देवानामिन्द्रादीनां सख्यं सखिभावमुपायत्तुपगच्छन् सहस्रधारो वज्रविधधार इंदुः सोमो मदाय देवानां मदार्थं पवते । कलशादिषु चरति । नृभिः कर्मनेतृभिः स्तवानः सूयमानः सोमः पूर्वं पुरातनं धाम बुलोकमनुगच्छति । तदेवाह । महते प्रभूताय सौभगाय सौभाग्याथिंद्रमगन् । गच्छति । सोम इंद्रेण पीते सति यजमानानां महत्सौभाग्यं भवति खलु ॥ अगन् । गमेर्नुङि मंचे घञेति ध्रुवुक् । सो नो धातोरिति त्वं ॥ ॥११॥

स्तोत्रे राये हरिर्षो पुनान इंदुं मदो गच्छतु ते भराय ।

देवैर्योहि सरथं राधो अर्च्छा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

स्तोत्रे । राये । हरिः । अर्ष । पुनानः । इंदुं । मदः । गच्छतु । ते । भराय ।

देवैः । योहि । सरथं । राधः । अर्च्छ । यूयं । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥६॥

हे सोम हरिर्हरितवर्णः पुनानः पूयमानस्त्वं स्तोत्रेऽस्माभिः क्रियमाणे सति राये धनार्थमर्थं आगच्छ । ततस्ते त्वदीयो मदो मदकरो रसो मराय ॥ मृ मत्सने ॥ भर्त्सयंति शत्रून्च योच्चार इति भरः संगमः । तदर्थमिंद्रं गच्छतु । किंच सरथं देवैः समानं रथमास्त्राय राधोऽर्च्छास्त्राकं धनार्थं योहि । आगच्छ । यूयं नोऽस्मान् स्वस्तिभिः सदा पात । त्वं रथ ॥

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।

महिषतः शुचिबंधुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥७॥

प्र । काव्यं । उशनाऽइव । ब्रुवाणः । देवः । देवानां । जनिम । विवक्ति ।

महिऽषतः । शुचिऽबंधुः । पावकः । पदा । वराहः । अभि । एति । रेभन् ॥७॥

उशनेवितन्नामक अभिरिव काव्यं कविकर्म सोचं ब्रुवाण उच्चारयन् देवः स्तोतायमुषिर्बुवगणो नाम

देवानामिन्द्रादीनां जनिम जन्मानि प्र विवक्ति । प्रकर्षेण ब्रवीति ॥ वच परिभाषणे । व्यत्ययेन विकरणास्त्र सुः । बज्रं कंदसीत्यभ्यासखेत्वं ॥ महिमतः प्रभूतकर्मा शुचिबन्धुः । बध्नाति शत्रुनिति बंधूनि तेजांसि बलानि वा । दीप्तिवस्तुः पावकः पापानां शोधको वराहः । वरं च तदहस्य वराहः ॥ रावाहः सखिभ्यष्टिति टच्स-  
मासांतः ॥ तस्मिन्नहस्यमिषूयमाणत्वेन तद्वान् ॥ अर्शआदित्वान्मलर्थोऽयं ॥ तादृशः सोमो रेमञ्छब्दं  
कुर्वन्पदा पदानि स्थानानि पाचाण्यमिति । अभिगच्छति । यद्वा । यथा कश्चन वराहः पदा पादेन भूमिं  
विक्रममाणः शब्दं करोति तद्वत् ॥

प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।

आंगूथं पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्र वदंति वाणं ॥ ८ ॥

प्र । हंसासः । तृपलं । मन्युं । अच्छं । अमात् । अस्तं । वृषऽगणाः । अयासुः ।

आंगूथं । पवमानं । सखायः । दुऽमर्षं । साकं । प्र । वदंति । वाणं ॥ ८ ॥

हंसासः शत्रुभिर्हन्यमाना हंसा इव चरंतो वा वृषगणा एतन्नामका ऋषयोऽमाच्छत्रूणां बलान्नासिताः  
संततृपलं । तृपलशब्दः चिप्रवाची । तदुक्तं यास्केन । तृपलप्रभर्मा चिप्रप्रहारीति । नि० ५. १२ । चिप्रप्रहारिणं  
मन्युं शत्रुनभिमन्यमानं सोममच्छामिलच्छासं यक्षगृहं प्रायासुः । प्रायासिषुः । प्रगच्छंति । ततः सखायः  
सुखसोतुल्यलक्षणेन संबन्धेन सखिभूताः सोतार आंगूथं सर्वैरभिमंतव्यं । यद्वा ॥ घोशब्दस्य पृषोदरादि-  
त्वाद्गु इत्यादेशः । आच्छ अनुनासिकच्छादसः । सोचाहं दुर्मर्षं शत्रुभिर्दुर्धरं दुःसहं एवंविधं सोमं पवमानमु-  
द्दिश्य वाणं वायविशेषं साकं सहैव प्र वदंति । प्रवादयंति । तदुपलक्षितं गानं कुर्वंतीत्यर्थः ॥

स रंहते उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळंतं मिमते न गावः ।

परीणसं कृणुते तिग्मशृंगो दिवा हरिर्ददृशे नक्तंमृजः ॥ ९ ॥

सः । रंहते । उरुऽगायस्य । जूतिं । वृथा । क्रीळंतं । मिमते । न । गावः ।

परीणसं । कृणुते । तिग्मऽशृंगः । दिवा । हरिः । ददृशे । नक्तं । मृजः ॥ ९ ॥

स सोमो रंहते । अतिशीघ्रं गच्छतीत्यर्थः । उरुगायस्य बज्रभिः सुखस्त्रावणो जूतिं यतिमनुसरन् । तं  
वृथानायासेन क्रीळंतं विहरंतं गच्छंतं सोमं गावोऽन्ये गंतारो न मिमते । न परिच्छिंदंति । तमनुयंतुं न  
शक्नुवन्तीत्यर्थः । किंच तिग्मशृंगः । शृण्वंति हिंसंति तमांसीति शृंगाणि तेजांसि । तीक्ष्णतेजस्तः परीणसं ।  
बज्रनामैतत् । बज्रविधं तेजः कृणुते । करोति । अंतरिक्षे वर्तमानो यः सोमो दिवाहमि हरिर्हरितवर्णो  
ददृशे दृश्यते । न प्रकाशत इत्यर्थः । नक्तं रात्री त्वं अजुगामी विसृष्टः प्रकाशयुक्तो दृश्यते ॥ दृशेः कर्मणि  
लिटि रूपं ॥

इंदुर्वाजी पवते गोन्वोधा इंद्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।

हंति रक्षो बाधते पर्यरातीर्वरिवः कृत्स्नवृजनस्य राजा ॥ १० ॥

इंदुः । वाजी । पवते । गोऽन्वोधाः । इंद्रे । सोमः । सहः । इन्वन् । मदाय ।

हंति । रक्षः । बाधते । परि । अरातीः । वरिवः । कृत्स्न । वृजनस्य । राजा ॥ १० ॥

इंदुः चरणशीलो वाजी बलवान् गोन्वोधा गमनशीलनीचीनायरससंघात इंद्रे सहो बलकररसमिवन्  
प्रेरयन् सोमो मदाय तस्य मदार्थं पवते । सरति । किंच रक्षो रघःकुलं हंति । हिनस्ति । किंचारातीरराती-  
ञ्जानूपरि बाधते । परितः संहरति । कीदृशः । वरिवो वरणीयं धनं कृत्स्नं सोतुणां कुर्वन् वृजनस्य बलस्य  
राजशिता सोम इति ॥ १२ ॥



अध॒ धार॑या॒ मध्वा॑ पृ॒चान॑स्ति॒रो रोमं॑ पव॒ते अ॒द्रि॒दुग्धः॑ ।

इ॒न्दुरि॑न्द्रस्य स॒ख्यं जु॑षा॒णो दे॒वो दे॒वस्य॑ मत्स॒रो मदा॑य ॥११॥

अध॑ । धार॑या । मध्वा॑ । पृ॒चानः॑ । ति॒रः । रोमं॑ । प॒वते॑ । अ॒द्रि॒दुग्धः॑ ।

इ॒न्दुः । इ॒न्द्रस्य॑ । स॒ख्यं । जु॑षा॒णः । दे॒वः । दे॒वस्य॑ । मत्स॒रः । मदा॑य ॥११॥

अधाथागतमद्रिदुग्धो यावमिदुग्धोऽभिपुतः सोमो मध्वा मदकारिणा धारया पृचानो देवान् संपर्चयन् संयोजयन् रोमाविरोमभिः कृतं पवित्रं तिरस्तिरस्कृत्य व्यवधायकं कृत्वा पवते । कलशेषु चरति । किंचिन्द्रस्य सख्यं सखिभावं कर्म वा जुषाणः सेवमानो देवो द्योतमानो मत्सरो मदकर इन्दुः सोमो देवस्येन्द्रस्य मदाय मदार्थं पवते । चरति ॥

अ॒भि प्रि॒याणि॑ पव॒ते पुना॑नो दे॒वो दे॒वान्स्वेन॑ र॒सेन॑ पुं॒चन् ।

इ॒न्दुर्ध॒र्माण्य॑तु॒था वसा॑नो द॒श स्त्रि॑षो अ॒व्यत॑ सानो अ॒र्थे ॥१२॥

अ॒भि । प्रि॒याणि॑ । प॒वते॑ । पुना॑नः । दे॒वः । दे॒वान् । स्वेन॑ । र॒सेन॑ । पुं॒चन् ।

इ॒न्दुः । ध॒र्माणि॑ । अ॒तु॒ऽथा । वसा॑नः । द॒श । स्त्रि॑षः । अ॒व्यत॑ । सानो॑ । अ॒र्थे ॥१२॥

प्रियाणि प्रीणयितुणि धर्माणि धारकाणि तेषांस्तुथा काले वसान आच्छादयद्भिन्दुः सोमः पुनानः पूयमानः सप्तभिः पवते । कलशागमिलस्य चरति । कीदृशः । देवः संक्रीडनशीलः स्नेहात्मीयेन रसेन देवानिन्द्रादीन्पुंचन् संपर्चयन् संयोजयन् । तमिमं दश दशसंख्याकाः क्षिपः । अंगुलिनामैतत् । कर्मार्थं प्रैर्यत इति । तत्संख्याका अंगुलयः सानो समुच्छितेऽन्वेऽविभवे पवित्रेऽव्यत । गमयन्ति । यद्वा । तच्च पवित्रे पूयमाणं सोममव्यत । गच्छन्ति ॥ वी गत्यादिषु । लङि व्यत्ययेनात्मनेपदं ॥

वृषा॑ शो॒णो अ॒भिक॑नि॒क्रद्ग॒न्ना न॒दय॑न्नेति पृ॒थि॒वीमु॑त द्यां ।

इ॒न्द्रस्ये॒व व॒पु॒रा ऋ॒ण आ॒जौ प्र॑चे॒तय॑न्नेति॒ वाच॑मे॒मां ॥१३॥

वृषा॑ । शो॒णः । अ॒भि॒ऽक॑नि॒क्रद॑त् । गाः । न॒दय॑न् । ए॒ति॒ । पृ॒थि॒वीं । उ॒त । द्यां ।

इ॒न्द्रस्य॑ऽइ॒व । व॒पुः । आ॒ । ऋ॒णे । आ॒जौ । प्र॑ऽचे॒तय॑न् । अ॒र्षेति॑ । वाच॑ । इ॒मां ॥१३॥

शोणः शोणवर्णो वृषा कश्चिद्वृषमो गाः पशुगमिकनिक्रदत् । अभिलक्ष्य शब्दं करोति । एवं गाः सुतीर्विश्रयणार्थं पयसो दोग्ध्रीर्धेनुर्वामिकनिक्रदद्भिश्चन्द्रायमाणः । तदेवाह । नदयच्छब्दमुत्पादयन् सोमः पृथिवीमुतापि च द्यां एतौ लोकावेति । गच्छति । किंच वपुः । वाङ्मैतत् । तस्य वाक् शब्द आजौ संयाम इन्द्रस्येव इन्द्रस्य शब्द इवा ऋणे । सर्वैः श्रूयते । ततः प्रचेतयन्नात्मानं सर्वेषां प्रज्ञापयन्निमां वाचमर्षति । समन्ताद्गमयति । उच्चैः शब्दायत इत्यर्थः ॥

र॒साय्यः॑ प॒यसा॑ पि॒न्व॒मान ई॒रय॑न्नेषि मधु॒मंत॑मं॒शु ।

प॒व॒मानः॑ संत॒नि॒र्मे॒षि कृ॒ण्वन्नि॑न्द्रा॒य सोम॑ परि॒षि॒च्यमा॑नः ॥१४॥

र॒साय्यः॑ । प॒यसा॑ । पि॒न्व॒मानः॑ । ई॒रय॑न् । ए॒षि॒ । मधु॑ऽमंतं । अं॒शुं ।

प॒व॒मानः॑ । सं॒ऽत॒निं । ए॒षि॒ । कृ॒ण्वन् । इ॒न्द्रा॒य । सो॒म॒ । परि॑ऽसि॒च्यमा॑नः ॥१४॥

हे सोम रसाय्यः ॥ रसेरीणादिक आश्वप्रत्ययः ॥ आस्तावः पयसा पिन्वमानः चरंस्त्वमीरयच्छब्दं

प्रेरयन् मधुमन्तं माधुर्योपेतमनुं रसभावमेधि । प्राप्नोषि । अंशुः शमष्टमाचो भवतीति यास्कः । नि० २. ५. ।  
अनेन सोमरसोऽभिधीयते । किंच हे सोम परिषिच्यमानोऽग्निः परिषिक्तस्त्वं पवमानः पविचे पूयमानः सन्  
संततिं ॥ तनु विस्तारि । इत्यर्थः ॥ संततां धारां कृत्वा कुर्वन्निद्रायेन्द्रार्थमेधि । गच्छसि ॥

एवा पवस्व मदिरो मदायोदयाभस्य नमयन्वधस्त्रैः ।

परि वरुणं भरमाणो रुशंतं गव्युर्नो अर्षे परि सोम सिक्तः ॥ १५ ॥

एव । पवस्व । मदिरः । मदाय । उदऽयाभस्य । नमयन् । वधऽस्त्रैः ।

परि । वरुणं । भरमाणः । रुशंतं । गव्युः । नः । अर्षे । परि । सोम । सिक्तः ॥ १५ ॥

हे सोम मदिरो मदकरस्त्वमुदयाभस्य ॥ क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानसंज्ञा । पा० १. ४. ३२. १. ।  
चतुर्थ्यर्थे वज्रसं । पा० २. ३. ६२. । इति षष्ठी ॥ उदयाभमुदकराहिणं मेघं वधस्त्रैर्हृजनसाधनैरायुधैर्नमयन्  
वृष्यर्थे प्रह्नीकुर्वन् मदाय मदार्थमेव पवस्व । एवं पाचिषु चर । किंच रुशंतमारोचमानं श्वेतं वरुणं परि  
भरमाणः परितो विधत् सिक्तः पविचे सिच्यमानस्त्वं गव्युर्नोऽस्माकं गा इच्छन् पर्यर्ष । परिगच्छ ॥ ॥ १३ ॥

जुष्टी न इंदो सुपथा सुगान्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन् ।

घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधि णुना धन्व सानो अय्ये ॥ १६ ॥

जुष्टी । नः । इंदो इति । सुऽपथा । सुऽगानि । उरौ । पवस्व । वरिवांसि । कृण्वन् ।

घनाऽइव । विष्वक् । दुऽइतानि । विऽघ्नन् । अधि । णुना । धन्व । सानो । अय्ये ॥ १६ ॥

हे इंदो दीप्त पवमान जुष्टी ॥ स्नात्वाद्यचेति निपातितः ॥ सुतिभिः प्रीतो भूत्वा नोऽस्माकं सुपथानि  
वैदिकमार्गान् तथा वरिवांसि वरणीयानि धनानि सुगा सुगमनानि सुप्राप्तव्यानि कृण्वन्कुर्वन्तुरौ विसीर्ये  
द्रोणकक्षशे पवस्व । चर । किंच घनेव घनीभूतेन सोहमयेनायुधेनेव विष्वक् सर्वतो दुरितानि दुष्प्राप्त-  
व्यानि रणांसि विघ्नन् हिंसन् सानो समुच्छितेऽव्येऽविभवे सुगा स्रवता धारासंचेनाधि धन्व । अधिगच्छ ।  
धविर्गत्वर्थः ॥

वृष्टिं नो अर्षे दिव्यां जिगलुमिळावतीं शंगयीं जीरदानुं ।

स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन्बधूरिमां अवरौ इंदो वायून् ॥ १७ ॥

वृष्टिं । नः । अर्षे । दिव्यां । जिगलुं । इळाऽवतीं । शंऽगयीं । जीरऽदानुं ।

स्तुकाऽइव । वीता । धन्वा । विऽचिन्वन् । बधून् । इमान् । अवरान् । इंदो इति ।

वायून् ॥ १७ ॥

हे सोम नोऽस्माकं वृष्टिमर्ष । गमय । कीदृशीं । दिव्यां दिवि मवां जिगलुं गमनशीलामिळावतीमन्नवतीं  
शंगयीं सुखस्य निवासभूतां जीरदानुं क्षिप्रदानोपेतां । किंच हे इंदो त्वं स्तुकेव वीता कांतानि । स्तुक्शब्दो  
ऽपत्यवचनः । अपत्यानि यथा विचिनोषि तद्वत्तून् स्तुत्यस्तौतुलेन बंधुभूतानवरानवरदेशे स्थितान्यार्थिवा-  
त्पायुंस्त्वामभिगच्छत इमानस्मान्निचिन्वन्नादिप्रदानार्थं गवेषमाणः सन् धन्व । गच्छ ॥

यंथिं न वि थं यथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम ।

अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् ॥ १८ ॥



यंथिं । न । वि । स्य । यथितं । पुनानः । चृजुं । च । गातुं । वृजिनं । च । सोम ।  
अन्यः । न । क्रदुः । हरिः । आ । सृजानः । मर्यैः । देव । धन्व । पस्त्यऽवान् ॥ १८ ॥

पुनानः पुनमानस्त्वं यथितं पापैर्बलं मां वि ष्य । मुंच । पापेभ्यो विक्षेपय । कथमिव । यंथिं न यथा  
कश्चिद्वंथिं विक्षेपयति ॥ यो अंतकर्मणीत्यस्य लोटि रूपं ॥ किंच हे सोम त्वमृचुमवकं गातुं मार्गं च वृजिनं  
बलं च मह्यं देहि । हरिर्हरितवर्णस्त्वमा सृजानः पापेष्वाह्वयमानः सन्नतो नातगशीकोऽश्च इव क्रदुः ।  
क्रंदसि । शब्दाद्यसे । किंच हे देव मर्यौ मनुष्यहितो मारको हिंसको वा शत्रूणां पस्तवान् । पस्त्यं गृहं ।  
तद्वांस्त्वं धन्व । मामभिगच्छ कलशान्वा ॥

जुष्टो मदाय देवतां इंदो परि ष्णुना धन्व सानो अय्ये ।  
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषस्ये ॥ १९ ॥  
जुष्टः । मदाय । देवऽताति । इंदो इति । परि । ष्णुना । धन्व । सानो । अय्ये ।  
सहस्रऽधारः । सुरभिः । अदब्धः । परि । स्रव । वाजऽसातौ । नृऽस्ये ॥ १९ ॥

हे इंदो मदाय जुष्टः पर्याप्तस्त्वं देवतां देवैस्ते यज्ञे सानौ समुच्छितेऽवेऽविमवे पवित्रे ष्णुना स्रव-  
शीलिन धारासंधेन सह परि धन्व । परिगच्छ । सहस्रधारो वज्रधारोपेतः सुरभिः सुगंधिस्त्वमदब्धो न  
कैश्चिद्विहितः सन् वाजसातावन्नलामनिमित्ते नृषस्ये शुभिः सोढव्ये जुष्टे परि स्रव । परितो गच्छ ॥

अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता अत्यासो न संसृजानास आजौ ।  
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा देवासस्ताँ उप याता पिबन्धे ॥ २० ॥  
अरश्मानः । ये । अरथाः । अयुक्ताः । अत्यासः । न । संसृजानासः । आजौ ।  
एते । शुक्रासः । धन्वन्ति । सोमाः । देवासः । तान् । उप । याता । पिबन्धे ॥ २० ॥

अरश्मानो रश्मिबर्जिताः । रञ्जुरहिता इति यावत् । अरथा रथवर्जिता अयुक्ताः कुत्रापि न नियुक्ताः ।  
अवज्ञा इत्यर्थः । एतादृशा य आजौ जुष्टे सृजानासः हव्यमाना अत्यासो नाश्वा यथा स्वरथा बलं  
गच्छन्ति तद्वदाजौ । अजन्ति कर्मकरणार्थमृत्विजोऽवेत्याजिर्यज्ञः । तस्मिन्सृज्यमानाः शुक्रा दीप्यमाना एते  
सोमा धन्वन्ति । क्षिप्रं कलशानभिगच्छन्ति । अथ प्रत्यक्षः । हे देवासो देवाः तागागच्छतः सोमान्पिबन्धे  
यानाथोप यात । उपगच्छत ॥ ॥ १४ ॥

एवा न इंदो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्यैश्चमूषु ।  
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुयं ॥ २१ ॥  
एव । नः । इंदो इति । अभि । देवऽवीतिं । परि । स्रव । नभः । अर्यैः । चमूषु ।  
सोमः । अस्मभ्यं । काम्यं । बृहन्तं । रयिं । ददातु । वीरऽवन्तं । उयं ॥ २१ ॥

हे इंदो सोम नोऽस्मदीयमेव देववीतिं । देवाना वीतिर्मन्त्रणं यमनं वा यस्मिन् स देववीतिर्यज्ञः ।  
तमभिलक्ष्य नभो नभसो शुक्लोकादर्थं उदकं । अनेन पवित्रान्निर्गतः सोमरसोऽभिधीयते । तं रसं चमूषु  
चमसेषु परि स्रव । परितः चर । ततः सोमः काम्यं काम्यमानं बृहन्तं प्रवृत्तं वीरवन्तं पुनयुक्तमुपमुनूष्यवसं  
रयिं धनमस्मभ्यं ददातु । प्रयच्छतु ॥

तक्षद्वादी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।

आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इदुं ॥२२॥

तक्षत् । यदि । मनसः । वेनतः । वाक् । ज्येष्ठस्य । वा । धर्मणि । क्षोः । अनीके ।

आत् । ई । आयन् । वर । आ । वावशानाः । जुष्टं । पतिं । कलशे । गावः । इदुं ॥२२॥

वेनतः । वेनो वेनतेः कांतिकर्मण इति शास्त्रः । नि० १०. ३८. । कामयमानस्य मनसः । मन्यतेः सुति-  
कर्मणः । सोतुर्वाक् सुतिलक्षणा यद्येनं तक्षत् संस्कारोति । वाशब्द उपमार्थे । यथा धर्मणि ॥ निमित्तात्कर्म-  
संयोगे । पा० २. ३. ३६. ६. । इति सप्तमी ॥ धारकं योगक्षेमविषयं कर्मोद्दिष्टं चोः शब्दायमानस्यानीके मुखे  
तत्र स्थितस्य ज्ञानपदिकस्य वाग्ज्येष्ठस्य । द्वितीयार्थे षष्ठी । प्रशस्ततमं राजानं यथा सौति तथा सोतुर्वाक्  
सोमं सौतीत्यर्थः । आदन्तरमेव वरं वरणीयं जुष्टं देवानां मदाय पर्याप्तं पतिं सर्वस्य पालकं कलशे स्थित-  
मिन्दुमीमेनं सोमं वावशानाः कामयमाता गाव आयन् । पयसा स्त्रीयेन मिश्रयितुमागच्छति ॥

प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।

धर्मा भुववृजन्त्यस्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ॥२३॥

प्र । दानुऽदः । दिव्यः । दानुऽपिन्वः । ऋतं । ऋताय । पवते । सुऽमेधाः ।

धर्मा । भुवत् । वृजन्त्यस्य । राजा । प्र । रश्मिऽभिः । दशऽभिः । भारि । भूम ॥२३॥

दिव्यो दिवि भवो दानुदो दानुभ्यो धनादीनां दाता । तदेवाह । दानुपिन्वः ॥ पिवि सेचने । कर्मस्थान  
। पा० ३. २. १. । इत्यण् ॥ दानुभ्यः कामानां चारयिता सुमेधाः शोभनप्रज्ञः सोम ऋताय सत्यमृतार्थेन्द्रायतं  
सत्यमृतमात्मीयं रसं पवते । प्रकर्षेण चरति । राजा दीप्यमानः सोमो वृजन्त्यस्य साधुवलस्य धर्मा धारयिता  
भुवत् । भवति । किंच दशभिरेतत्संख्याकामी रश्मिभिः कर्मकरणार्थमभ्युपगम्यमानाभिरंगुलिभिर्मूम प्रभूतं प्र भारि ।  
प्रधार्यते ॥ चिणि रूपं ॥

पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामृत मर्त्याना ।

द्विता भुवद्रयिपती रयीणामृतं भरत्सुभृतं चार्विदुः ॥२४॥

पवित्रेभिः । पवमानः । नृऽचक्षाः । राजा । देवानां । अत । मर्त्यानां ।

द्विता । भुवत् । रयिऽपतिः । रयीणां । ऋतं । भरत् । सुऽभृतं । चारु । इदुः ॥२४॥

पवित्रेभिः पवित्रैः पवमानः पूयमानो नृचक्षा नृणां फलाफलयोर्द्रष्टा तथा देवानामिन्द्रादीनामृतापि च  
मर्त्यानां मनुष्याणां एवमुभयेषां जनानां राजा रयिपतिर्धनस्य पतिः न त्वल्पस्य पतिः किंतु रयीणां बहूनां  
धनानां स्वामी । वृत्त्यवृत्तिभ्यां स्वामित्वं बाहुभ्यां च विवक्ष्यते । ईदृशः सोमो द्विता द्विधा देवेष्वपि च  
मनुष्येषु भुवत् । भवति । सोऽयमिदुः सोमः सुभृतं संभृतं चाह कक्षाणामृतमुदकं भरत् । विमर्ति ॥

अर्वी इव अर्वसे सातिमच्छेद्रस्य वायोर्भि वीतिमर्ष ।

स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित्पुनानः ॥२५॥

अर्वीन्ऽइव । अर्वसे । सातिं । अच्छे । इद्रस्य । वायोः । अभि । वीतिं । अर्व ।

सः । नः । सहस्रा । बृहतीः । इषः । दाः । भवा । सोम । द्रविणऽवित् । पुनानः ॥२५॥

हे सोम अन्नार्थं युद्धेऽर्धानिवाश्वो यथा गच्छति तद्वत्त्वं अर्वसेऽस्माकमन्नार्थं तथा सातिमच्छेद्रस्य धनस्य



प्रतीन्द्रस्य वायोश्च वीतिं पानमभ्यर्ष । अभिगच्छ । ऐन्द्रवायव्यहे हीन्द्रवायू सह सीमं पिवत इत्यत्र सहोपादानं । स त्वं सहसा सहस्राणि बज्रविधानि बृहतीर्बृहितानि प्रवृज्जानीषोऽज्ञानि नोऽस्माभ्यं दाः । प्रयच्छ । हे सोम पुनानः पूयमानस्त्वं नोऽस्माभ्यं द्रविणोविज्जनस्य संभयिता भव ॥ द्रविणशब्दात्सर्वप्रातिपदिकेभ्यो खालसायां सुप्तत्वात् । का० ७. १. ५१. ३. इति सुगागमः ॥ ॥ १५ ॥

देवा॒भ्यो नः परि॒षिच्य॑मा॒नाः । क्षयं॑ सु॒वीरं॑ ध॒न्व॑न्तु सो॒माः ।

आ॒य॒ज्य॒वः सु॒म॒तिं वि॒श्व॒वा॒रा॒ हो॒ता॒रो न दि॒व्य॒जो म॑न्द्र॒त॒माः ॥ २६ ॥

दे॒वऽअ॒भ्यः । नः । परि॒ऽसि॒च्य॑मा॒नाः । क्षयं॑ । सु॒ऽवी॒रं । ध॒न्व॑न्तु । सो॒माः ।

आ॒ऽय॒ज्य॒वः । सु॒ऽम॒तिं । वि॒श्वऽवा॒राः । हो॒ता॒रः । न । दि॒विऽय॒जः । म॑न्द्र॒ऽत॒माः ॥ २६ ॥

देवाभ्यः ॥ अवतेर्षर्षणार्थस्य अवितृक्षुतं त्रिभ्य ईरितीप्रत्ययः । चदान्तस्वरितयोर्यण इति जसः स्वरितत्वं ॥ देवानां तर्पयितारः परिषिच्यमानाः परितः पात्रेषु सिच्यमानाः सोमा नोऽस्माकं सुवीरं शोभनपुत्रं चयं गृहं धन्वन्तु । प्रेरयन्तु । कीदृशाः । होतारो न होतारो यथा देवानिन्द्रादीन्भुवन्ति एवं दिव्यजो दिवि युक्तेके स्थितानिन्द्रादीन्देवान्यजन्तः ॥ दिव्यशब्दे तत्पुरुषे कृति बज्रलमिति सप्तम्या अलुक् ॥ मन्द्रतमा अत्यन्तं मदकाराः ॥

ए॒वा दे॒व दे॒वता॑ति प॒वस्व॑ म॒हे सो॒म॒ प्सर॑से दे॒व॒पा॒नः ।

म॒हश्चि॒द्धि॒ स्मसि॑ हि॒ताः स॒म॒र्ये कृ॒धि सु॑ष्ठा॒ने रो॒द॒सी पु॒ना॒नः ॥ २७ ॥

ए॒व । दे॒व । दे॒वऽता॑ति । प॒व॒स्व । म॒हे । सो॒म । प्सर॑से । दे॒वऽपा॒नः ।

म॒हः । चि॒त् । हि । स्मसि॑ । हि॒ताः । स॒ऽम॒र्ये । कृ॒धि । सु॒स्था॒ने इति॑ सु॒ऽस्था॒ने । रो॒द॒सी इति॑ । पु॒ना॒नः ॥ २७ ॥

हे देव योतमान स्रोतव्य वा हे सोम देवपानो देवैः पातव्यस्त्वं देवताति देवैस्ते वितते यज्ञे महे महते प्सरसे मक्षणाय देवानां पानाद्यैवैवं पवस्व । चर । ततो चयं हितास्त्वया प्रेरिताः संतः समर्ये मरणधर्मसहिते संयामि महश्चिद्धहतो बलाधिकानपि शत्रून् स्मसि हि । अभिमवेम खलु । किंच पुनानः पूयमानस्त्वं रोदसी बावापृथिव्यौ सुस्थाने अस्माकं शोभनावासस्थाने सखी कृधि । ऊरु ॥

अ॒श्वो न क्र॑दो वृष॑भिर्यु॒जानः॑ सि॒ंहो न भी॒मो मन॑सो ज॒वी॒यान् ।

अ॒र्वा॒ची॒नैः प॒थिभि॑र्ये रजि॑ष्ठा आ प॒वस्व॑ सौम॒न॒सं न इ॑न्दो ॥ २८ ॥

अ॒श्वः । न । क्र॑दः । वृष॑ऽभिः । यु॒जा॒नः । सि॒ंहः । न । भी॒मः । मन॑सः । ज॒वी॒यान् ।

अ॒र्वा॒ची॒नैः । प॒थिऽभिः । ये । रजि॑ष्ठाः । आ । प॒व॒स्व । सौम॒न॒सं । नः । इ॒न्दो इति॑ ॥ २८ ॥

हे सोम वृषभिर्द्धत्विभिः सोममभिषुख्यन्निर्युजानो योष्यमानस्त्वमश्वो नाश इव क्रदः । क्रदसि । शब्दायसे । कीदृशः । सिंहो न सिंह इव भीमः शत्रूणां भयंकरः तथा मनसोऽपि जवीयान् वेगवन्तरः । अर्वाचीनैरभिसुखैः पथिभिर्मार्गैः मार्गा रजिष्ठा अत्यन्तमृजवो भवन्ति ॥ विमाषजोऽर्द्धदसीत्युकारस्य रादेशः ॥ हे इन्दो दीप्यमान सोम तैर्मार्गैर्नोऽस्माकं सौमनसं सौमनसमा पवस्व । आप्रापय ॥

श॒तं शारा॑ दे॒वजा॑ता असृ॒पन्स॒हस्र॑मे॒ताः क॒वयो॑ मृ॒जन्ति॑ ।

इ॒न्दो स॒न्नि॒वं दि॒व आ प॑वस्व पु॒र॒ण॒तासि॑ म॒हतो॑ ध॒न॒स्य ॥ २९ ॥

शतं । धाराः । देवऽजाताः । असृयन् । सहस्रं । एनाः । कवयः । मृजंति ।  
इंदो इति । सनिचं । दिवः । आ । पवस्व । पुरऽएता । असि । महतः । धनस्य ॥ २९ ॥

हे सोम देवजाता देवार्थं प्रादुर्भूताः शतं शतसंख्याकास्त्वदीया धारा असृयन् । सृज्यते । ततः कवयः  
क्रांतदर्शिनश्चत्विजः सहस्रं बहुविधा एनास्त्वदीया धारा मृजंति । अलंकुर्वन्ति । यद्वा । सहस्रमनेकधा  
मृजंति । शोधयन्ति । हे इंदो सनिचं भवनसाधनं धनं दिवो बुल्लोकादस्माकं पुत्रादीनां चा पवस्व । आप्रापय ।  
कृतोऽस्य धनमिति चेत् तच्चाह । महतः प्रभूतस्य धनस्य पुरएता पुरतो गन्तासि । भवसि । तस्माद्दिहीति ॥

दिवो न सर्गा अससृयमहं राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः ।

पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ पवस्व विशे अस्या अजीति ॥ ३० ॥

दिवः । न । सर्गाः । अससृयं । अहं । राजा । न । मित्रं । प्र । मिनाति । धीरः ।

पितुः । न । पुत्रः । क्रतुऽभिः । यतानः । आ । पवस्व । विशे । अस्यै । अजीति ॥ ३० ॥

दिवो न यथा दिवो द्योतमानस्यादित्यस्याह्नां संबन्धिनः सर्गा रश्मयोऽसृज्यं विस्मृत्यते तद्वत्सोमस्य  
सर्गाः । सृज्यंत इति सर्गा धाराः । विस्मृत्यते ॥ सृजेर्वत्येन कर्मार्थे लङि वज्रसं कंदसीति शस्य सुः ।  
क्षेमादेश्छांदसः ॥ धीरः प्राज्ञो राजायं सोमो मित्रं सखायं न प्र मिनाति । न हिंसति । क्रतुभिः  
कर्मभिर्यतानो यतमानः पुत्रः पितुर्न पितुर्यथापरामर्शं करोति तद्वत् कर्मभिर्यतमानस्त्वमस्यै विशे प्रजाया  
अजीतिमपरामर्शमा पवस्व । आप्रापय । यथा न पराजिता भवंति तथा कुर्वित्वर्थः ॥ ॥ १६ ॥

प्र ते धारा मधुमतीरसृयन्वारान्यत्पूतो अत्येथयान् ।

पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्के ॥ ३१ ॥

प्र । ते । धाराः । मधुऽमतीः । असृयन् । वारान् । यत् । पूतः । अतिऽएषि । अथान् ।

पवमान । पवसे । धाम । गोनां । जज्ञानः । सूर्यं । अपिन्वः । अर्के ॥ ३१ ॥

ते तव स्वभूता मधुमतीर्मधुमत्वी धाराः प्रासृयन् तदा प्रसृज्यते यद्यदा पूतो वसतीवरीभिस्त्वमथान-  
विभवात्वारान्वासान्वाविषाण्यत्प्रेषि । अतीत्य गच्छसि । किंच हे पवमान धाम धारकं गोनां गवां पयो  
क्षरीकृत्य पवसे । ततो जज्ञानी जायमानस्त्वमर्के रर्चनीयैः स्वतेजोभिः सूर्यमादित्यमपिन्वः । पूरयसि ॥

कनिक्रददनु पंथांमृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम ।

स इंद्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनां ॥ ३२ ॥

कनिक्रदत् । अनु । पंथां । मृतस्य । शुक्रः । वि । भासि । अमृतस्य । धाम ।

सः । इंद्राय । पवसे । मत्सरऽवान् । हिन्वानः । वाचं । मतिऽभिः । कवीनां ॥ ३२ ॥

अभिषूयमाणः स सोम अतस्य सत्वभूतस्य यज्ञस्य पंथानं मार्गमभि कनिक्रदत् । पुनःपुनः शब्दायते ।  
अथ प्रत्ययः । अमृतस्यामरणधर्मस्य धाम स्नानभूतः । मत्सररहित इत्यर्थः । तादृशः शुक्रः शुक्लवर्णस्त्वं वि  
भासि । विशेषेण राजभिः । मत्सरवान् मदकररसयुक्तः स त्वमिन्द्रार्थेन्द्रार्थं पवसे । चरसि । कीदृशः । कवीनां  
स्तोतॄणां मतिभिः सह वाचं शब्दं हिन्वानः प्रेरयन् पवसे ॥



दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोमं पिबन्धाराः कर्मणा देववीतौ ।

एदो विश कलशं सोमधानं क्रंदन्निहि सूर्यस्योप रश्मिं ॥ ३३ ॥

दिव्यः । सु० पर्णः । अव । चक्षि । सोम । पिबन् । धाराः । कर्मणा । देव० वीतौ ।

आ । इदो इति । विश । कलशं । सोम० धानं । क्रंदन् । इहि । सूर्यस्य । उप । रश्मिं ॥ ३३ ॥

हे सोम दिव्यो दिवि मयः सुपर्णः सुपतनस्त्वमव चक्षि । अवसात्पश ॥ चक्षेर्लेटि सिपि व्यत्ययेन परस्मैपदं ॥ किं कुर्वन् । देववीतौ देवानां हविर्भक्षणस्थाने यज्ञे कर्मणा धाराः पिबन् चरन् । किंच हे इदो सोमधानं कलशमा विश । क्रंदन्ञ्चदायमानस्त्वं सूर्यस्य प्रेरकस्यादित्यस्य रश्मिं कान्तिमुपेहि । उपगच्छ ॥

तिस्रो वाचं ईरयति प्र वह्निर्चतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषां ।

गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ३४ ॥

तिस्रः । वाचः । ईरयति । प्र । वह्निः । चतस्य । धीतिं । ब्रह्मणः । मनीषां ।

गावः । यन्ति । गो० पतिं । पृच्छमानाः । सोमं । यन्ति । मतयः । वावशानाः ॥ ३४ ॥

यद्विर्वोढा यजमानस्तिस्रो वाचं चतस्र्यजुःसामात्मिकाः सुतोः प्रेरयति । तथर्तस्य यज्ञस्य धीतिं धारयिषीं ब्रह्मणः परिपृढस्य सोमस्य मनीषां मनस ईशिषीं कक्षाणीं वाचं च प्रेरयति । किंच गोपतिं वृषमं यथा गावोऽभिगच्छन्ति तद्वज्रपां स्वामिनं सोमं गावः पृच्छमानाः पृच्छन्त्यः सत्यो यन्ति । स्वपयसा मिश्रयितुमभिगच्छन्ति । तथा वावशानाः कामयमाना मतयः सोतारः सोमं यन्ति । सोतुमभिगच्छन्ति ॥

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रां मतिभिः पृच्छमानाः ।

सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥ ३५ ॥

सोमं । गावः । धेनवः । वावशानाः । सोमं । विप्राः । मतिभिः । पृच्छमानाः ।

सोमः । सुतः । पूयते । अज्यमानः । सोमे । अर्काः । त्रि० स्तुभः । सं । नवन्ते ॥ ३५ ॥

धेनवः प्रीणयिष्यो गावः सोमं वावशानाः कामयमाना भवन्ति । विप्रा मेधाविनः सोतारो मतिभिः पृच्छमानाः पृच्छन्तो भवन्ति । अज्यमानो गोभिः सिच्यमानः सुतोऽभिषुतः सोमं चत्विविमः परिपूयते । तथा विष्टमस्त्रिष्टुभ्ना अर्का अक्षामिः क्रियमाणा एते मघाः सोमे सं नवन्ते । संगच्छन्ते ॥ १७ ॥

एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।

इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिं ॥ ३६ ॥

एव । नः । सोम । परि० सिच्यमानः । आ । पवस्व । पूयमानः । स्वस्ति ।

इंद्र । आ । विश । बृहता । रवेण । वर्धय । वाचं । जनय । पुरं० धिं ॥ ३६ ॥

हे सोम परिषिच्यमानः परितः पात्रेषु सिच्यमानः पूयमानस्त्वं नोऽस्माकमेव स्वस्त्वविनाशमा पवस्व । आप्रापय । किंच बृहता महता रवेण शब्देन इहेंद्रमा विश । प्रविश । तथा वाचं सुतिलक्षणां वर्धय । किंच पुरंधिं वज्रधिं प्रज्ञानं जनय । अक्षभ्यमुत्पादय ॥ वाक्यभेदादभिधातः ॥

आ जागृविर्विप्रं ऋता मंतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।  
 सपैति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥३७॥  
 आ । जागृविः । विप्रः । ऋता । मंतीनां । सोमः । पुनानः । असदत् । चमूषु ।  
 सपैति । यं । मिथुनासः । निऽकामाः । अध्वर्यवः । रथिरासः । सुहस्ताः ॥३७॥

जागृविर्जागरणशील ऋता ॥ मुपां मुमुगिति षष्ठा आकारः ॥ ऋताणां सत्यानां मंतीनां सुतीनां विप्रो  
 ज्ञाता स सोमः पुनानः पूयमानः संचमूषु चमसेष्वासदत् । आसीदति । मिथुनासः परस्परं संगता निकामा  
 नितरां कामयमाना रथिरासो यज्ञस्य नेतारः सुहस्ताः कक्षाणपाणयोऽध्वर्यवः पवित्रे यं सोमं सपैति  
 सृष्टिं ॥ यप समवाये । सपतिः सृष्टितिकर्मेति नेष्टताः । नि० ५. १६ ॥

स पुनान उप सूरं न धातोभे अग्रा रोदसी वि ध आवः ।  
 प्रिया चित्स्यं प्रियसासं जती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥३८॥  
 सः । पुनानः । उप । सूरं । न । धाता । आ । उभे इति । अग्राः । रोदसी इति । वि ।  
 सः । आवरित्यावः ।

प्रिया । चित् । यस्य । प्रियसासः । जती । सः । तु । धनं । कारिणे । न । प्र । यंसत् ॥३८॥

पुनानः पूयमानः स सोम इन्द्र उपगच्छति । तत्र दृष्टांतः । सूरं न यथा सूर्यं धाता संवत्सर उपगच्छति ।  
 संवत्सरो वै धाता संवत्सरेणैवास्मै प्रजाः प्रजनयतीत्यन्वयानात् । तै० ब्रा० १. ७. २. १. । किंचोमे रोदसी  
 व्यापापृथिव्यावाप्राः । समहिन्नापूरयति । तथा स सोमो व्यावः । स्वदेजसा तमांसि विवृणोति ॥ पुणो-  
 तेर्मेचे घसेति वृजुंक् । छंदस्यपि दृश्यत इत्याज्ञागमः । पूर्वपदादिति स इत्यस्य सांहितिकं पलं ॥ प्रिया ॥  
 षष्ठा आकारः ॥ प्रियस्य यस्य सोमस्य यद्वा प्रियाणि प्रयच्छतो यस्य भोमस्य प्रियसासोऽत्यंतं प्रियतमा  
 धारा जलूयि रचणाय भवति । स तु चिप्रमसभ्यं धनं प्र यंसत् । प्रयच्छतु ॥ यच्छतेर्लेटि सिष्यडागमः ॥  
 तत्र दृष्टांतः । कारिणे न मृतकाय मृतिं यथा प्रयच्छति तद्वत् ॥

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वो अभि नो ज्योतिषावीत् ।  
 येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥३९॥  
 सः । वर्धिता । वर्धनः । पूयमानः । सोमः । मीढ्वान् । अभि । नः । ज्योतिषा । आवीत् ।  
 येन । नः । पूर्वे । पितरः । पदज्ञाः । स्वः । विदः । अभि । गाः । अद्रि । उष्णन् ॥३९॥

वर्धिता देवानां स्वकलाप्रदानेन वर्धयिता वर्धनः स्वयं वर्धमानः पवित्रेण पूयमानो मीढ्वान् कामानां  
 सेक्ता स सोमो नोऽस्माञ्ज्योतिषा स्वतेजसाभ्यावीत् । अभिरचतु । येन सोमेन पदज्ञाः पणिभिरपहतानां  
 गवां पदानि जानतः स्वर्विदः सर्वज्ञाः सूर्यं जानतो वा नोऽस्माकं पूर्वे चिरंतनाः पितरोऽगिरसो गाः  
 यग्नून्मिलत्वाद्रिमुष्णन्निश्लोचयमुष्णन् । सोमतेजसांधकारावृतं शिशोश्चयं गत्वा यग्नूनाहरन्नित्यर्थः ॥ उषि-  
 रिह मुष्णातिसमानकर्मो । यद्वा । मुष्णातेर्लेटि वर्णलोपः ॥

अक्रान्तमुद्रः प्रथमे विधर्मजनयन्प्रजा भुवनस्य राजा ।  
 वृषा पवित्रे अधि सानो अय्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इंदुः ॥४०॥



अक्रान् । समुद्रः । प्रथमे । विधर्मन् । जनयन् । प्रजाः । भुवनस्य । राजा ।  
वृषा । पवित्रे । अधि । सानौ । अर्थे । बृहत् । सोमः । ववृधे । सुवानः । इंदुः ॥४०॥

समुद्रो यत्पादापः संद्रवंति स समुद्रोऽपां वर्षको राजा सोमः प्रथमे विकृति भुवनस्योदकस्य विधर्मन्  
विधारकेऽन्तरिक्षे प्रजा जनयन्मुत्पादयन्नक्रान् । सर्वमतिक्रामति ॥ क्रमतेर्बुद्धि तिपीडभावे वृद्धौ च कृतायां  
सिञ्चोपि मकारस्य मो नो धातोरिति नकारे रूपं ॥ वृषा कामानां वर्धिता सुवानोऽभिषूयमाण इंदुर्दीप्तः स  
सोमोऽधधिकं सानौ समुच्छितेऽद्यैऽविमवे पवित्रे बृहत्प्रभूतं ववृधे । वर्धते ॥ १८ ॥

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यन्नर्भोऽवृणीत देवान् ।  
अदधादिद्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिंदुः ॥४१॥  
महत् । तत् । सोमः । महिषः । चकार । अपां । यत् । गर्भः । अवृणीत । देवान् ।  
अदधात् । इंद्रे । पवमानः । ओजः । अजनयत् । सूर्ये । ज्योतिः । इंदुः ॥४१॥

महिषो महान्पूष्यो वा सोमो महत्प्रभूतं तत्कर्म चकार । अकरोत् । किं तत् । अपां गर्भं उदकानां  
गर्भभूतो जनयितुं स्वाज्जन्यत्वाच्च स सोमो देवानवृणोत सममजतेति यत्तत्कृतवानिति । किंच पवमानः  
पूयमानः सोम ओजः सोमपानेन जन्यं बलमिंद्रेऽदधात् । व्यदधात् । तथेदुः सोमः सूर्ये ज्योतिस्तेजोऽजनयत् ।

मत्ति वायुमिष्टये राधसे चे मत्ति मित्रावरुणा पूयमानः ।  
मत्ति शर्धो मारुतं मत्ति देवान्मत्ति द्यावापृथिवी देव सोम ॥४२॥  
मत्ति । वायुं । इष्टये । राधसे । च । मत्ति । मित्रावरुणा । पूयमानः ।  
मत्ति । शर्धः । मारुतं । मत्ति । देवान् । मत्ति । द्यावापृथिवी इति । देव । सोम ॥४२॥

हे सोम त्वं वायुं मत्ति । मादय । किमर्थं । इष्टयेऽस्माकनेषणायान्नाय राधसे धनाय च । तथा  
पूयमानः पवित्रेण त्वं मित्रावरुणा मित्रावरुणौ च मत्ति । तर्पयसि । किंच मारुतं मरुतां स्वभूतं शर्धो बलं  
च मत्ति । तथा देवानिन्द्रादीन्मत्ति । हर्षयसि । हे देव स्तौतव्य हे सोम द्यावापृथिवी च मत्ति । मादय ।  
एतान्हर्षयुक्तान्कृत्वास्वभ्यं धनं प्रयच्छेत्त्वर्थः ॥

अजुः पवस्व वृजिनस्य हंतापामीवां बाधमानो मृधश्च ।  
अभिश्चीणपयः पर्यसाभि गोनामिंद्रय त्वं तव वयं सखायः ॥४३॥  
अजुः । पवस्व । वृजिनस्य । हंता । अप । अमीवां । बाधमानः । मृधः । च ।  
अभिऽश्चीणन् । पर्यः । पर्यसा । अभि । गोनां । इंद्रस्य । त्वं । तव । वयं । सखायः ॥४३॥

हे सोम अजुर्जुगमनः सन् पवस्व । चर । किं कुर्वन् । वृजिनस्योपद्रवस्य हंता । अमीवां रोगरूपं  
राक्षसमप बाधमानः । तथास्वदीयाकृधो हिंसकाञ्चूश्च बाधमानः सन् पवस्व । ततः पथ आत्मीयं रसं  
गोनां गवां पर्यसा क्षीरेणाभिश्चीणन्नभिसंयोजयन् पायाण्यभि गच्छसि । अपि च त्वमिंद्रस्य सखासि हे सोम  
तव वयं सखायः क्षुत्यस्तोतृत्वयष्टयत्नलक्षणेन सखिभूताः स्मः ॥

मध्वः सूर्यं पवस्व वस्व उत्तं वीरं च न आ पवस्वा भर्गं च ।  
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इंदो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ॥४४॥

मध्वः । सूदं । पवस्व । वस्वः । उत्सं । वीरं । च । नः । आ । पवस्व । भर्गं । च ।  
स्वदस्व । इंद्राय । पवमानः । इंद्रो इति । रयिं । च । नः । आ । पवस्व । समुद्रात् ॥ ४४ ॥

हे सोम मध्वो माधुर्यस्य सूदं चारयितारं घनीभूतं वा वस्वो वसुनो धनस्योत्समुत्संदकं रसं पवस्व ।  
किंच नोऽस्मभ्यं वीरं पुत्रमा पवस्व । आप्रापय । तथा भर्गं भवनीयं धनं च देहि । हे इंद्रो पवमानः  
पूयमानः सन्निद्राय स्वदस्व । रचितो भव । ततस्त्वं नोऽस्मभ्यं समुद्रादंतरिक्षाद्भयं धनं पुत्रं वा । रात्रि  
ददाति वीरमिति रयिर्गौर्वी । तां वा पवस्व । देहि ॥

सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिंधुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।

आ योनिं वन्यमसदपुनानः समिंदुर्गोभिरसरत्समन्निः ॥ ४५ ॥

सोमः । सुतः । धारया । अत्यः । न । हित्वा । सिंधुः । न । निम्नं । अभि । वाजी । अक्षारिति ।

आ । योनिं । वन्यं । असदत् । पुनानः । सं । इंद्रुः । गोभिः । असरत् । सं । अत् । अभिः ॥ ४५ ॥

सुतोऽभिषुतः सोमो धारया स्त्रीययात्यो नातनशीलोऽस्य इव हित्वा गत्वा ॥ हिनोतिः क्वपिपि रूपं ॥  
किंच वाजी बलवान् सोमः सिंधुर्न यथा सिंधुः खंदमाना नदी निम्नं प्रदेशमभिगच्छति तद्वन्निम्नमधरमाविनं  
कलशमभ्यधाः । अभिषरति । ततः पुनानः पूयमानः सोमो वन्यं वृचमवं योनिं योनिस्थानं कलशमासदत् ।  
आसीदति । सोऽयमिंदुः सोमो गोभिर्गोविकारिः वीरादिभिः अयणैः समसरत् । संसरति । तथा निम्नं वसती-  
वरीमिष्व संगच्छति ॥ १९८ ॥

एष स्य ते पवत इंद्र सोमश्चमूषु धीर उश्ने तवस्वान् ।

स्वर्चक्षा रथिरः सत्यश्रुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ॥ ४६ ॥

एषः । स्यः । ते । पवते । इंद्र । सोमः । चमूषु । धीरः । उश्ने । तवस्वान् ।

स्वः । चक्षाः । रथिरः । सत्यऽश्रुष्मः । कामः । न । यः । देवऽयतां । असर्जि ॥ ४६ ॥

हे इंद्र उश्ने कामयमानाय ते तुभ्यं स्वदर्थं धीरः प्राज्ञसवस्वान्विगवान् स्व स एष सोमश्चमूषु चमसेषु  
पवते । सरति । स्वर्चक्षाः सर्वदर्शनो रथिरो रथवान् सत्यश्रुष्मो यथार्थबलो यः सोमो देवयतां देवानिच्छतां  
यजमानानां कामो न कामद् इवासर्जि । अस्मज्ज्यत । अदीयतेत्यर्थः ॥

एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वर्षीसि दुहितुर्दधानः ।

वसानः शर्मं चिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ॥ ४७ ॥

एषः । प्रत्नेन । वयसा । पुनानः । तिरो । वर्षीसि । दुहितुः । दधानः ।

वसानः । शर्मं । चिवरूथं । अप्सु । होताऽइव । याति । समनेषु । रेभन् ॥ ४७ ॥

प्रत्नेन पूर्वकालीनेन वयसान्नेन पुनानः पूयमानः । अन्नान्निकया धारया चरन्नित्यर्थः । तादृशी दुहितुः  
सर्वस्य दोग्ध्याः पृथिव्या वर्षीसि । वर्ष इति रूपनाम वृणोति शरीरमिति । रूपाणि तिरो दधानः  
स्वतीवसा तिरस्कुर्वन्नाच्छादयन् तथा चिवरूथं चिभूमिकोपेतं । यद्वा । चयः शीतातपवर्षाः । तेषां निवारकं ।  
शर्मं यज्ञगृहं वसान आच्छादयन्नेषु वसतीवरीषु स्थित एष सोमो होतिव यथा होता क्षुतिध्वनिं कुर्वन्नेषु  
याति तद्वद्वैभञ्ज्वायमानः सन् समनेषु । समन्ति कर्माणि धृष्टाः प्रगल्भा यन्त्यपेति समन्ता यज्ञाः । तेषु  
याति । गच्छति ॥



नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्बोः पूयमानः ।

अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ चृतावा देवो न यः संविता सत्यमन्मा ॥४८॥

नु । नः । त्वं । रथिरः । देव । सोम । परि । स्रव । चम्बोः । पूयमानः ।

अप्सु । स्वादिष्ठः । मधुमान् । चृतवा । देवः । न । यः । संविता । सत्यमन्मा ॥४८॥

हे देव काम्यमान हे सोम रथिरो रथवांस्त्वं नोऽस्माकं स्वभूते यज्ञे चम्बोरधिपवणफलकयोः पूयमानः सप्तप्सु वसतीवरीषु नु चिप्रं परि स्रव । परितः सर । स्वादिष्ठः स्वादुतमः अत एव मधुमाश्चाधुर्ययुक्त चृतावा यज्ञवान्सविता सर्वस्य प्रेरको यस्त्वं देवो न देव इव सत्यमन्मा सत्यसुतिको भवसि स त्वं परि-  
स्रवेति ॥

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।

अभी नरं धीजर्वनं रथेष्ठामभीद्रं वृषणं वज्रबाहुं ॥४९॥

अभि । वायुं । वीती । अर्ष । गृणानः । अभि । मित्रावरुणा । पूयमानः ।

अभि । नरं । धीजर्वनं । रथेऽस्थां । अभि । इंद्रं । वृषणं । वज्रबाहुं ॥४९॥

हे सोम गृणानः सूयमानस्त्वं वीती ॥ सुपां सुलुगिति चतुर्थ्याः पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ वीत्ये पानाय वायु-  
मभ्यर्ष । अभिगच्छ । तथा पवित्रेण पूयमानस्त्वं मित्रावरुणा मित्रावरुणौ च पानायामिगच्छ । किंच नरं  
सर्वस्य नेतारं धीजर्वनं बुद्ध्या समं वेगं कुर्वाणं रथेष्ठां रथेष्ठां रथे तिष्ठतं । अनेनाश्विनावभिधीयते । एकवचनं  
प्रत्येकविवक्षया समुदायविवक्षया वा । एतादृशावश्विनौ चाभिगच्छ । तथा वृषणं कामानां वर्षकं वज्रबाहुं  
वज्रयुक्तबाहुमिंद्रं च त्वं पानायामिगच्छ ॥

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।

अभि चंद्रा भर्तृवे नो हिरण्याभ्यश्चावथिनो देव सोम ॥५०॥

अभि । वस्त्रा । सुवसनानि । अर्ष । अभि । धेनूः । सुदुघाः । पूयमानः ।

अभि । चंद्रा । भर्तृवे । नः । हिरण्या । अभि । अश्वान् । रथिनः । देव । सोम ॥५०॥

हे सोम त्वमस्माकं सुवसनानि सुपरिधानानि वस्त्रा वस्त्राण्यभ्यर्ष । अभिगमय । यद्वा । सुवसनानि शोभ-  
नवस्त्रसहितानि वस्त्राच्छादकानि धनान्यभिगमय । किंच पूयमानः पवित्रेण त्वं सुदुघाः सुधु पयसो दोग्ध्रीर्धे-  
नूर्नवप्रसूतिका गा अभिप्रापय । अपि च चंद्रा चंद्राणां हिरण्या हिरण्यानि भर्तृवे मरणाय पोष-  
याच नोऽस्माकमभिगमय । तथा हे देव स्तोतव्य हे सोम रथिनो रथवतोऽश्वानस्माकमभिप्रापय ॥ ॥२०॥

अभी नो अर्ष दिव्या वसून् अभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।

अभि येन द्रविणमश्ववामाभ्यर्षेयं जमदग्निवचनः ॥५१॥

अभि । नः । अर्ष । दिव्या । वसूनि । अभि । विश्वा । पार्थिवा । पूयमानः ।

अभि । येन । द्रविणं । अश्ववाम । अभि । अर्षेयं । जमदग्निवत् । नः ॥५१॥

हे सोम पवित्रेण पूयमानस्त्वं दिव्या दिव्यानि दिवि भवानि वसूनि धनानि नोऽस्माकमभ्यर्ष । अभिगमय ।  
तथा पार्थिवा पार्थिवानि पृथिव्यां भवानि विश्वा सर्वाणि धनान्यभिगमय । तथा येन त्वदीयेन सामर्षेण

द्रविणं धनं वयमभ्यस्रवाम अग्निव्यासुधाम तत्सामर्घ्यमभिगमय । किंचिर्वैद्यमार्वाणागृविपुत्राणां योम्यं धनं  
जमदभिवस्त्रमदभिर्यथा त्वं प्रापयः एवं नोऽस्माकमप्यभ्यर्ष । यद्वा । अर्वैद्यमार्वाणां योम्यं मंचं जमदपेः स्वभूतं  
मंचं यथा स्वादुतममकार्षीः एवमस्माकं तादृशं मंचं स्वादुतमं कुर्विति कुत्सो नामर्षिः प्रार्थयते ॥

अ॒या प॒वा प॒वस्वै॒ना वसू॑नि माँश्च॒त्वे इँदो॑ सर॒सि प्र ध॑न्व ।

ब्र॒ह्म॒श्चि॒द॒च वा॒तो न॒ जूतः॑ पु॒रु॒मेध॑श्चि॒त्त॒क॒वे नर॑ दा॒त् ॥५२॥

अ॒या । प॒वा । प॒वस्व । ए॒ना । वसू॑नि । माँश्च॒त्वे । इँदो॑ इति । सर॒सि । प्र । ध॑न्व ।

ब्र॒ह्मः । चि॒त् । अ॒च । वा॒तः । न । जू॒तः । पु॒रु॒ऽमेधः॑ । चि॒त् । त॒क॒वे । नर॑ । दा॒त् ॥५२॥

हे सोम अयानया पवा पवमानया धारया सहैवैनानि वसूनि धनानि पवस्व । अर ॥ पवा । पूरु  
पवने । अन्वेभ्योऽपि वृश्चंत इति विष्प्रत्ययः । आर्धधातुकलक्षणो गुणः । सवैकाच इति तृतीयाया उदात्तत्वं ॥  
तथा हे इँदो त्वं माँश्चत्वे मन्त्रमानानां चातके सरस्युदके वसतीवर्याख्ये प्र धन्व । प्रगच्छ । ततोऽत्रास्मिन्तोमे  
पूयमाने सति ब्रह्मश्चित् सर्वेषां प्रज्ञापको मूलभूतो वादित्वोऽपि वातो न वात इव जूतो वेगितः सन् किंच  
पुरुमेधश्चिद्विधियश्च इँदश्चिदिँदोऽपि तक्वे ॥ तत्कतिर्गतिकर्मसु पठितः । अस्मादीयादिक उन्मत्त्ययः ॥  
सोममभिगच्छते क्षुतिभिर्मह्यं नरं कर्मनेतारं पुत्रं दात् । प्रयच्छतु । हे सोम त्वया तर्पितो संताविँद्रादित्वो  
मह्यं पुत्रं प्रयच्छतामित्यर्थः ॥

उ॒त न॑ ए॒ना प॒व॒या प॒वस्वा॒धि श्रु॒ते अ॒वाय्य॑स्य ती॒र्थे ।

ष॒ष्टिं स॒हस्रा॑ नै॒गुतो॑ वसू॑नि वृ॒क्षं न॒ प॒क्कं धू॒नव॒द्र॒णाय॑ ॥५३॥

उ॒त । नः॑ । ए॒ना । प॒व॒या । प॒वस्व । अ॒धि । श्रु॒ते । अ॒वाय्य॑स्य । ती॒र्थे ।

ष॒ष्टिं । स॒हस्रा॑ । नै॒गुतः॑ । वसू॑नि । वृ॒क्षं । न । प॒क्कं । धू॒नव॒त् । र॒णाय॑ ॥५३॥

हे सोम उतापि च अवाय्यस्य सर्वैः अवणीयस्य सोमस्य तव श्रुते प्रसिद्धे । यद्वा । षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । श्रुतस्य  
शब्दस्य तीर्थे स्थाने नोऽस्माकं स्वभूते यज्ञ एगानया पवया पूयमानया धारयाधधिकं पवस्व । अर ।  
नैगुतः । नीचीनं वषते शब्दायंत इति निगुतः शचवः । तेषां हंतुत्वेन संबन्धी सोऽयं सोमः षष्टिं सहस्रा षष्टि-  
संस्त्राकानि सहस्राणि वसूनि धनानि रणाय शत्रूणां अयार्थं धूनवत् । अस्माकमकंपयत् । प्रायच्छदिति  
यावत् । कथमिव । वृक्षं न पक्कं पक्कफलं वृक्षं यथा कंपयति फलार्थी तद्वत् ॥

म॒ही॒मे अ॒स्य॑ वृ॒ष॒नाम॑ श्रू॒षे माँश्च॒त्वे वा॒ पृ॒श॒ने वा॒ व॒ध॒चे ।

अ॒स्वा॒प॒य॒न्नि॒गुतः॑ स्ने॒ह॒य॒न्ना॒प॒मि॒त्राँ अ॒पा॒चितो॑ अ॒चेतः॑ ॥५४॥

म॒हि । इ॒मे इति॑ । अ॒स्य॑ । वृ॒ष॒नाम॑ । श्रू॒षे इति॑ । माँश्च॒त्वे । वा॒ । पृ॒श॒ने । वा॒ । व॒ध॒चे इति॑ ।

अ॒स्वा॒प॒य॒त् । नि॒ऽगु॒तः । स्ने॒ह॒य॒त् । च॒ । अ॒प॒ । अ॒मि॒त्रा॒न् । अ॒प॒ । अ॒चि॒तः । अ॒च॒ । इ॒तः ॥५४॥

महि महती प्रभूते वृषणाम ॥ सुपां सुसुगिति सुपो लुक् ॥ वृषणामनी वर्षणनमने । शराणां वर्षणं शत्रूणां  
नमनं । इमे एते द्वे कर्मणी अस्म सोमस्य शूषे सुखकरे भवतः । ये च कर्मणी माँश्चत्वे । अश्वनामेतत् मधु  
चरतीति । अश्वैः क्रियमाणे युधे । तत्साध्यत्वाद्युक्तमिह गृह्यते । वापि वा पृशने स्पर्शनसाध्वे वाङ्मयुधे वधने  
शत्रूणां हिसनशीले भवतः । सोऽयं निगुतो नीचैः शब्दायमानाश्शत्रून्स्थापयत् । ताभ्यामसुषुपत् । अवधो-  
दित्यर्थः । किंच स्नेहयत् प्राद्रवयत्संयामाच्छत्रुन् । अथ प्रत्यक्षतः । हे सोम स त्वमभिचाश्शत्रून्पाप ।  
अपगमय । तथाचितोऽपिचयनमकुर्वतो नास्तिकांश्चेतोऽस्तस्काशादपाच । अपगमय । अचतिर्गतिकर्मा ॥



सं ची पवित्रा विततान्येष्वेकं धावसि पूयमानः ।

असि भगो असि दाचस्य दातासि मघवा मघवश्च इंदो ॥५५॥

सं । ची । पवित्रा । वि॒त॒त॒तानि । ए॒षि । अ॒नु । ए॒कं । धा॒व॒सि । पू॒य॒मा॒नः ।

अ॒सि । भ॒गः । अ॒सि । दा॒च॒स्य । दा॒ता । अ॒सि । म॒घ॒ऽवा । म॒घ॒व॒त्॒ऽभ्यः । इ॒ंदो इति ॥५५॥

हे सोम विततानि विवृतानि ची चीणि पवित्राणि पिवायुसूर्यात्मकानि पवित्राणि समेधि । सम्यक् प्राप्नोषि । किंच पूयमानस्त्वमेकमविवाक्यकृतं पवित्रमनु धावसि । अनुगच्छसि । किंच त्वं भगो भवनीयोऽसि । तथा दाचस्य देयस्य धनस्य दातासि । कथमस्य धनदत्तमिति चेत् तदुच्यते । हे इंदो सोम मघवश्चोऽन्येभ्योऽपि त्वं मघवासि । अतिशयेन धनवान्भवसि ॥ ॥२१॥

एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।

द्रुप्सा ईरयन्विदधेर्ध्विंदुर्वि वारुमव्यं समयाति याति ॥५६॥

ए॒षः । वि॒श्व॒ऽवि॒त् । प॒व॒ते । म॒नी॒षी । सो॒मः । वि॒श्व॒स्य । भु॒व॒न॒स्य । रा॒जा ।

द्रु॒प्सा॒न् । ई॒र॒य॒न् । वि॒द॒धे॒षु । इ॒ंदुः । वि॒ । वा॒रं । अ॒व्यं । स॒म॒या॒ । अ॒ति॒ । या॒ति॒ ॥५६॥

विश्ववित् सर्वस्य वेत्ता अत एव मनीषी मेधावी विश्वस्य भुवनस्य सर्वस्य लोकस्य राजा स्वाम्येव सोमः पवते । चरति । एतदेव विवृणोति । विदधेषु । विदंति ज्ञानं तत्र देवानिति यद्वा विदंति समंत इति विदधा यज्ञाः । तेषु द्रुप्सान्सकृष्णाणीरयन् प्रेरयन्निंदुः सोमोऽव्यमविवर्षं वारं वाक् पवित्रं समयोभयतो अति याति । अतीत्य गच्छति ॥

इंदुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।

हिन्वंति धीरां दशभिः क्षिपाभिः समंजते रूपमपां रसेन ॥५७॥

इ॒ंदुं । रि॒ह॒न्ति॒ । म॒हि॒षाः । अ॒द॒ब्धाः । प॒दे॒ । रे॒भ॒न्ति॒ । क॒व॒यः । न । गृ॒ध्राः ।

हि॒न्वं॒ति॒ । धी॒राः । द॒श॒ऽभिः । क्षि॒पा॒भिः । सं । अं॒ज॒ते॒ । रू॒पं । अ॒पां । र॒से॒न ॥५७॥

महिषा महान्तः पूष्णा वा अत एवादब्धाः केचिदप्यहिंसिता देवा इंदुं सोमं रिहन्ति । रिहन्ति । आत्मादयन्ति । किंच देवाः सोममुग्रतः संतः पदे तस्मात्स सोमस्य धारास्थाने रेभन्ति । शब्दायन्ति । तत्र वृष्टांतः । कवयो न गृध्राः । धनममिकांचमाणाः कवयः सोतारो यथा सुवतः शब्दायन्ति तद्वत् । धीराः कर्मणि कुशला अस्त्रिणो दशभिरेतत्संख्याकाभिः क्षिपाभिरंगुलीभिरुभयमिदं सोमं हिन्वंति । अमिषवाचं प्रेरयन्ति । अपि च रूपं सोमस्य रूपमंगुमपां वसतीवर्याख्यानां रसेन समंजते । सम्यक् सेवयन्ति ॥

त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहंतामदितिः सिंधुः पृथिवी उत द्यौः ॥५८॥

त्व॒या । व॒यं । प॒व॒मा॒ने॒न । सो॒म॒ । भ॒रे॒ । कृ॒तं । वि॒ । चि॒नु॒या॒म॒ । श॒श्व॒त् ।

त॒त् । न॒ः । मि॒त्रः । व॒रु॒णः । म॒म॒हं॒तां । अ॒दि॒तिः । सि॒न्धुः । पृ॒थि॒वी॒ । उ॒त॒ । द्यौः ॥५८॥

हे सोम पवमानेन पवित्रेण पूयमानेन त्वया सहायेन भरे । संयामनाम । संयामे शश्वद्भ्यः कृतं कर्तव्यं वयं वि चिनुयाम । विशेषेण कुर्याम । यस्मात्तव आहायेन कर्माणि कुर्मः तत्तस्मान्नोऽस्मान् मित्रो वरुणो

इदितरेतन्नामकाः सिंधुरितदमिधाना च पृथिव्युतापि च यीः एते मिचादयो नोऽस्माकमहंतां । पूजयंतु धनादिदानेन ॥ २२ ॥

अभि न इति द्वादशर्चं द्वितीयं सूक्तं । वृषागिरो राक्षः पुत्रोऽंबरीषो भरद्वाजपुत्र ऋजिच्योमौ सहिता-  
वक्षर्षी । इदमुत्तराणि च चीष्णानुष्टुभाणि । अथ त्वेकादशी बृहती । पयमानः सोमो देवता । तथा चानु-  
क्रम्यते । अभि नो द्वादशांबरीष ऋजिच्यो चानुष्टुभं ह बृहत्युपात्येति ॥ गतो विनियोगः ॥

अभि नो वाजसातमं रयिमर्षं पुरुस्पृहं । इंदो सहस्रभर्णसं तुविद्युस्त्रं विभ्वसहं ॥ १ ॥

अभि । नः । वाजऽसातमं । रयिं । अर्षं । पुरुऽस्पृहं । इंदो इति । सहस्रऽभर्णसं ।  
तुविऽद्युस्त्रं । विभ्वऽसहं ॥ १ ॥

हे इंदो दीप्त वाजसातममत्यंतं बलप्रदमन्नप्रदं वा रयिं धनं पुत्रं वा नोऽस्माकमभ्यर्षं । अभिगमय ।  
कीदृशं । पुरुस्पृहं बज्रमिः स्युह्ययीयं सहस्रभर्णसं बज्रविधभरणं । अनेकपोषणयुक्तमित्यर्थः । तुविद्युस्त्रं । युस्त्रं  
द्योततेर्यशो वात्रं वेति यास्कः । नि० ५. ५. । बज्रं बज्रयशोयुक्तं वा विभ्वसहं । विभ्व इति महत्ताम ।  
महतोऽभिभवितारं ॥

परि ष्य सुवानो अव्ययं रथे न वर्माव्यत ।

इंदुरभि द्रुणा हितो हियानो धाराभिरक्षाः ॥ २ ॥

परि । स्यः । सुवानः । अव्ययं । रथे । न । वर्मं । अव्यत ।

इंदुः । अभि । द्रुणा । हितः । हियानः । धाराभिः । अक्षारिति ॥ २ ॥

सुवानः सूयमानः स्य स सोमोऽव्ययमविमयं पवित्रं परि पवते । तच्च दृष्टान्तः । रथे न यथा रथे  
स्थितः पुरुषो वर्मं कवचमव्यतं परिव्ययति ॥ व्यतेर्लुङि वर्णलोपश्चादसः ॥ अभि हितोऽभितः प्रेरितः यद्वा  
कोतुभिरभिद्रुतः स इंदुः सोमो द्रुणा द्रुममयेन द्रोणकलशेन हियानः ॥ हि गतौ वृद्धौ च ॥ तेन पूर्यमाणः  
सन् धाराभिरक्षाः । भरति ॥ भरतेर्लुङि रूपं ।

परि ष्य सुवानो अक्षा इंदुरथे मदच्युतः ।

धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः ॥ ३ ॥

परि । स्यः । सुवानः । अक्षारिति । इंदुः । अथे । मदऽच्युतः ।

धारा । यः । ऊर्ध्वः । अध्वरे । भ्राजा । न । एति । गव्यऽयुः ॥ ३ ॥

सुवानः सूयमानः स्य स इंदुः सोमो मदच्युतो मदार्थं देवैः प्रेरितः सन्नव्येऽविमये पवित्रे पर्यक्षाः ।  
परितः भरति । अध्वर ऊर्ध्वः समुच्छितः सर्वेषां मुखो यः सोमो गव्ययुर्वोकामः यद्वा चीरादिकं कामय-  
मानः सन् धारा धारया सहैति गच्छति । भ्राजा न भ्राजमानया दीप्त्या यथांतरिक्षे गच्छति तद्वत् ॥

स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्तीय दाशुषे ।

इंदो सहस्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि ॥ ४ ॥

सः । हि । त्वं । देव । शश्वते । वसु । मर्तीय । दाशुषे ।

इंदो इति । सहस्रिणं । रयिं । शतऽआत्मानं । विवाऽससि ॥ ४ ॥



हे देव सोम स त्वं शंसते पुत्रादिमत्वेन बहवे मर्त्याय मनुष्याय दामुवे हविर्दत्तवते यजमानाय वसु धनं मह्यं च पिपाससि । प्रेरयसि । एकवाक्यतापथे हि तिङन्तस्य हियोनादनिघातः स्यात् ॥

वयं ते अस्य वृत्रहन्वसो वस्वः पुरुस्पृहः ।

नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुखस्याग्निगो ॥ ५ ॥

वयं । ते । अस्य । वृत्रहन् । वसो इति । वस्वः । पुरुस्पृहः ।

नि । नेदिष्ठतमाः । इषः । स्याम । सुखस्य । अग्निगो इत्यग्निऽगो ॥ ५ ॥

हे वृत्रहन्वसूणां हंतः सोम अक्षेतावृत्रस्य ते तव स्वभूता वयं स्याः । ततो हे वसो वासयितः पुष्यसृहो वज्रभिः सृहणीयस्य वसो वसुनो धनस्य त्वया दीयमानस्य वयं नि नितरां नेदिष्ठतमा अत्यंतमंतिकतमाः स्याम । तथेवोऽन्नस्य किंच हे अग्निगो अधृतगमन सोम सुखस्य सुखस्य वयमंतिकतमाः स्याम । भवे०॥

द्विर्ये पंच स्वयंशसं स्वसारो अद्रिसंहतं । प्रियमिंद्रस्य काम्यं प्रज्ञापयंत्यूर्मिर्माणं ॥ ६ ॥

द्विः । यं । पंच । स्वयंशसं । स्वसारः । अद्रिऽसंहतं । प्रियं । इंद्रस्य । काम्यं ।

प्रऽज्ञापयंति । ऊर्मिर्माणं ॥ ६ ॥

द्विः पंच दशसंख्यायाः स्वसारः कर्मकरणार्थमित्यतः ततो गच्छन्तोऽंगुलयः स्वयंशसं स्वभूतयशस्कमद्रिसंहतं यावन्मिरभिषुतमिंद्रस्य प्रियं काम्यं सर्वैः काम्यमानमूर्मिणं धाराभिस्तद्वतं यं सोमं प्रज्ञापयंति वसतीवरीभिः प्रकर्षेण सेचयंति यजमानाः तं पुनंतीत्युत्तरच संबंधः ॥ २३ ॥

परि त्यं हर्यंतं हरिं बभुं पुनंति वारेण । यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ ७ ॥

परि । त्यं । हर्यंतं । हरिं । बभुं । पुनंति । वारेण । यः । देवान् । विश्वान् । इत् ।

परि । मदेन । सह । गच्छति ॥ ७ ॥

हर्यंतं सर्वैः सृहणीयं हरि हरितवर्यं बभुं बभुवर्मां च त्वं तं सोमं वारेण वाक्त्रेण पवित्रेण परि पुनंति । परिशीलयंति । यः सोमो विश्वाण सर्वाग्निद्रादीन्देवानिदेवानेव मदेन मादक्त्रेण रसेन सह परि गच्छति ॥

अस्य वो ह्यवसा पांतो दक्षसाधनं । यः सूरिषु श्रवो बृहद्ध्ये स्वर्णं हर्यंतः ॥ ८ ॥

अस्य । वः । हि । अवसा । पांतः । दक्षऽसाधनं । यः । सूरिषु । श्रवः । बृहत् । दधे ।

स्वः । न । हर्यंतः ॥ ८ ॥

वः ॥ छांदसो वसादेशः ॥ हिरवधारणे । वो यूयमस्य सोमस्यावसा रक्षणेन दक्षसाधनं वसस्य साधनं रसं पांतः पिबंतो भवथ । स्वर्णादित्य एव हर्यंतः सर्वैः काम्यमानो धोऽयं सोमः सूरिषु सोपाणि प्रेरयत्सु सोतृषु बृहन्नहमभूतं श्रवोऽन्नं दधे विदधे । स्नापयतीति यावत् ॥

स वां यज्ञेषु मानवी इंदुर्जनिष्ठ रोदसी । देवो देवी गिरिष्ठा अस्त्रेधनं तुविष्वणि ॥ ९ ॥

सः । वां । यज्ञेषु । मानवी इति । इंदुः । जनिष्ठ । रोदसी इति । देवः । देवी इति ।

गिरिऽस्थाः । अस्त्रेधन् । तं । तुविऽस्वनि ॥ ९ ॥

हे भागवी मानवी मनोः स्मृते हे देवी योतमाने हे रोदसी यावापृथिव्यौ वां युवयोर्यज्ञेषु स इंदुः

सोमो जनिष्ट । जजनि । अंतरिक्षे देवः स्वतेजसा सर्वं प्रकाशयन् पृथिव्यां गिरिष्ठा यावसु तिष्ठन् । न चातं सोमं तुविष्वधि बभूवन् उपरे यज्ञे वासेधन् । अस्त्रिजो यावभिरघ्नन् । अभ्यपुष्वन्निति यावत् ॥

इन्द्राय सोमं पातवे वृचघ्ने परि विच्यसे । नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे ॥१०॥  
इन्द्राय । सोमं । पातवे । वृचऽघ्ने । परि । सिच्यसे । नरे । च । दक्षिणाऽवते । देवाय ।  
सदनाऽसदे ॥१०॥

हे सोम वृचघ्ने वृचस्व ह्यं चन्द्राय । यज्ये चतुर्थी । इन्द्रस्य पातवे पातार्थं परि विच्यसे । परितः पात्रेषु सिच्यसे । वसतीवरीभिर्वा । किंच दक्षिणावत अस्त्रिभ्यो दक्षिणादानेन तद्वत् देवाय देवार्थं हवींषि दातुं सदनासदे यज्ञगृहे सीदते नरे मनुष्याय यजमानाय तस्यै फलप्रदानार्थं परि विच्यसे ॥

ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन् ।

अप्रप्रोथंतः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्तौ अप्रचेतसः ॥११॥

ते । प्रत्नासः । विऽउष्टिषु । सोमाः । पवित्रे । अक्षरन् ।

अपऽप्रोथंतः । सनुतः । हुरऽश्चितः । प्रातरिति । तान् । अप्रऽचेतसः ॥११॥

व्युष्टिषूपसां व्युच्छन्नेषु प्रकाशनेषु प्रत्नासः प्रत्नासो सोमाः पवित्रेऽक्षरन् । चरन्ति । ये सोमाः सनुतरंतर्हि-  
तानप्रचेतसः प्रज्ञानरहितान् ऊरश्चितः । क्षेपणमितत् कौटिल्येन चिन्वतीति । तासां याविनः क्षेपान्प्रातः  
प्रातःकाश एवाप्रोथंतः । अप्रप्रोथनं चाप्रप्रेरणं । अप्रप्रेरयंतः शब्देन निराकुर्वन्तो भवन्ति । ते ऊरन्तीति  
समन्वयः ॥

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः । अश्याम वाजंगंधं सनेम वाजपस्त्यं ॥१२॥

तं । सखायः । पुरऽरुचं । यूयं । वयं । च । सूरयः । अश्याम । वाजऽगंधं । सनेम ।

वाजऽपस्त्यं ॥१२॥

हे सखायः सोतारः सूरयः प्राज्ञा यूयं वयं च यजमानाः पुरोरुचं पुरतो रोचमानं वाजगंधं बलकर-  
साधुगंधोपेतं सोममश्याम । अश्रीयाम । पिबेम । किंच वाजपस्त्यमन्नयुक्तगृहसहितं यद्वा बलकरं सोमं रज्जिम ।  
संभवेमहि । सोमेन बलान्नगृहादीनि भवन्तीत्यर्थः ॥ ॥२४॥

आ हर्यतायै त्वष्टर्यं तृतीयं सूक्तं । कऋपगोची रेमसूनु एतत्संज्ञौ द्वापृषी । आद्या वृहती सप्तानुष्टुभः ।  
पवमानसोमो देवता । तथा चानुक्तांत । आ हर्यतायाष्टौ रेमसूनु काशपी वृहत्यावेति ॥ गतो विनियोगः ॥

आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यं ।

शुक्रां वयंत्यसुराय निर्णिजं विपामये महीयुवः ॥१॥

आ । हर्यताय । धृष्णवे । धनुः । तन्वन्ति । पौंस्यं ।

शुक्रां । वयन्ति । असुराय । निऽनिजं । विपां । अये । महीयुवः ॥१॥

हर्यताय सर्वैः सृष्टणीयाय धृष्णवे शत्रूणां धर्षणाशीलाय सोमाय पौंस्यं पुंस्त्वस्त्राभिर्व्यजकं धनुरा तन्वन्ति ।  
धनुषि आ कुर्वन्तीति । सोमस्य धाराविसर्गार्थं वितायमानं पवित्रमभिधीयते । तदेव विवृणोति । महीयुवः  
पूजाकामा अस्त्रिजो विपां मेधाविनां देवानामग्रे पुरस्ताच्छुक्रां शुक्लवर्णां निर्णिजं यथा सोमो निर्णिज्यते  
तामसुराय बलवते वयन्ति वितन्वन्ति । दशापवित्रं विसारयन्तीत्यर्थः । वयतिर्गतिवर्मा ॥



अथ क्षपा परिष्कृतो वाजो अभि प्र गाहते ।

यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥२॥

अथ । क्षपा । परिऽकृतः । वाजान् । अभि । प्र । गाहते ।

यदि । विवस्वतः । धियः । हरिं । हिन्वन्ति । यातवे ॥२॥

क्षपा ॥ सुपां सुबुगिति पंचम्या आकारः ॥ क्षपाया रात्रिरधानंतरं प्रातःकाले परिष्कृतः ॥ भूपणार्थं संपर्युषेभ्य इति करोतिः सुहागमः ॥ अग्निरसंस्तुतः । यद्वा । अपथिन्त्रां सेनायामसंस्तुतः । सोमो वाजान्नानि बलानि वामिक्षत् प्र गाहते । प्रगच्छति । विवस्वतः परिचरणवतो यजमानस्य धियः कर्मसाधनभूता अंगुलयो हरिं हरितवर्णमेतन्मुं यातवे पात्राण्यभिगमनाय यदि हिन्वन्ति प्रेरयन्ति तर्हि सवनानि गच्छतीति ॥

तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः । यं गावं आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥३॥

तं । अस्य । मर्जयामसि । मदः । यः । इन्द्रऽपातमः । यं । गावं । आसऽभिः । दधुः ।

पुरा । नूनं । च । सूरयः ॥३॥

अस्य सोमस्य तं रसं मर्जयामसि । मर्जयामः । शोधयामः । असंजुर्मो वा । यो मदी मदकरो रस इन्द्रपातम इन्द्रियाल्यंतं पातव्यो भवति । किंच गावो गंतारः सूरयः स्तोतारः पुरा च भूमिदानो च यं सोमरसमासमिरास्तेर्दधुः धारयन्ति । पिबन्तीति यावत् । यद्वा । गावो धेनवो यं सोमं तृणादिष्ववस्थितमासमिरास्तेर्दधुः धारयन्ति तृणरूपेण भक्षयन्ति ॥

तं गार्थया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।

उतो कृपंत धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥४॥

तं । गार्थया । पुराण्या । पुनानं । अभि । अनुषत ।

उतो इति । कृपंत । धीतयः । देवानां । नाम । बिभ्रतीः ॥४॥

पुनानं पूयमानं तं सोमं पुराण्या प्ररा कृतया नाथया सुत्वाभ्यनूषत । स्तोतारोऽभिपुवंति ॥ नू सवने । जुष्टि रूपं ॥ उतो अपि च नाम कर्माथे नमवं बिभ्रतीर्विधाणा धीतयोऽंगुलयो देवानां सोमरूपहविर्अदानाय कृपंत । कक्षयन्ति । समर्था भवन्ति ॥ ऊषू सामर्थ्यं ॥

तमुक्षमाणमव्यये वारं पुनन्ति धर्णसिं । दूतं न पूर्वचित्तये आ शासते मनीषिणः ॥५॥

तं । उक्षमाणं । अव्यये । वारं । पुनन्ति । धर्णसिं । दूतं । न । पूर्वऽचित्तये । आ ।

शासते । मनीषिणः ॥५॥

उक्षमाणमग्निः सिद्धमानं धर्णसिं सर्वस्य धारकं सोममव्ययेऽविमये वारि वाक्वि पविचि पुनन्ति । शोधयन्ति । ततो मनीषिणो मेधाविनो यजमानास्त्वमिमं सोमं दूतं न दूतमिव पूर्वचित्तये देवानां प्रथमेव प्रज्ञापनाया शासते । प्रार्थयते ॥ ॥२५॥

स पुनानो मदितमः सोमश्चमूषु सीदति ।

पशौ न रेत आदधत्पतिर्वचस्यते धियः ॥६॥

सः । पुनानः । मदिन्ऽतमः । सोमः । चमूषु । सीदति ।

पशी । न । रेतः । आऽदधत् । पतिः । वचस्यते । धियः ॥ ६ ॥

मदितमोऽत्यंतं मादयिता स सोमः पुनानः पूयमाणः संक्षमूषु चमसेषु सीदति । ततः पशी न यथा पशी कश्चिद्वृषमो रेत आदधाति तद्वचमसादिषु रेतः स्वीयं रसमादधदादधानो धियः कर्मणः पतिः पाश-  
यितायं सोमो वचस्यते । अभिष्टूयते ॥

स मृज्यते सुकर्मभिर्देवो देवेभ्यः सुतः । विदे यदासु संददिर्महीरपो वि गाहते ॥ ७ ॥

सः । मृज्यते । सुकर्मऽभिः । देवः । देवेभ्यः । सुतः । विदे । यत् । आसु । संऽददिः ।

महीः । अपः । वि । गाहते ॥ ७ ॥

देवेभ्यो देवार्थं सुतोऽभिष्टुतो देवो द्योतमानः स्रोतव्यो वा स सोमः सुकर्मभिर्द्विग्विभृज्यते । परिपूयते । यथादायं सोम आसु प्रजासु संददिः सम्यग्धनदानशील इति विदे आयते तदानीं महीर्महतीरपो वसती-  
वरीर्वि गाहते । विशेषेणामिगच्छति । यदा सोममभिष्टुण्वन्ति तदा तेभ्यो धनं प्रयच्छतीत्यर्थः ॥

सुत इंदो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे । इंद्राय मत्सरितं मश्वमूष्वा नि षीदसि ॥ ८ ॥

सुतः । इंदो इति । पवित्रे । आ । नृऽभिः । यतः । वि । नीयसे । इंद्राय । मत्सरिन्ऽतमः ।

चमूषु । आ । नि । सीदसि ॥ ८ ॥

हे इंदो सुतोऽभिष्टुतो यत आयतः सर्वतो विस्तृतस्त्वं नृभिः कर्मैर्नृभिर्द्विग्विभः पवित्रे वि नीयसे । विशेषेण नीयमानो भवसि । ततो मत्सरितमोऽतिशयेन मादयिता त्वमिंद्रायेंद्रार्थं चमूषु चमसेष्ववा नि षीदसि ॥ २६ ॥

अभी नवंते इति नवर्षे चतुर्थे सूक्तं । पूर्ववद्विदेवते । सर्वा अनुष्टुभः । तथा चानुक्रम्यते । अभी नवंते  
नवेति ॥ गतो विनियोगः ॥

अभी नवंते अदुहः प्रियमिंद्रस्य काम्यं । वत्सं न पूर्वं आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥ ९ ॥

अभि । नवंते । अदुहः । प्रियं । इंद्रस्य । काम्यं । वत्सं । न । पूर्वं । आयुनि । जातं ।

रिहन्ति । मातरः ॥ ९ ॥

यथा मातरो गावः पूर्वं प्रथम आयुनि वयसि जातं वत्सं रिहन्ति जिहन्ति तथाद्रुहोऽद्रोहा वसती-  
वरीर्याया आप इंद्रस्य प्रियं काम्यं सर्वैः काम्यमाणं सोममभि नवंते । अभिगच्छति ॥

पुनान इंदवा भर सोम द्विबर्हसं रयिं । त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ १० ॥

पुनानः । इंदो इति । आ । भर । सोम । द्विऽबर्हसं । रयिं । त्वं । वसूनि । पुष्यसि ।

विश्वानि । दाशुषः । गृहे ॥ १० ॥

हे इंदो दीप्यमान हे सोम पुनानः पूयमाणस्त्वं द्विबर्हसं द्वयोः स्थानयोः परिवृंहणशीलं रयिं धनमसा-  
भमा भर । आहर । देहि । त्वं हि दाशुषो हविर्दत्तवतो यजमानस्य गृहे स्थित्वा विश्वानि सर्वाणि वसूनि  
धनानि पुष्यसि । पोषयसि ॥



त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः ।

त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुण्यसि ॥३॥

त्वं । धियं । मनः । युजं । सृज । वृष्टिं । न । तन्यतुः ।

त्वं । वसूनि । पार्थिवा । दिव्या । च । सोम । पुण्यसि ॥३॥

हे सोम त्वं मनोयुजं मनसा पुण्यमानां मनोवेगां धियं ध्यातव्यां धारां खल्व । पात्रेषु दिक्ख । तच्च दृष्टान्तः । वृष्टिं न तन्यतुः ॥ तनु विस्तारे । अतन्वन्तीत्यादिना यतुचप्रत्ययः ॥ तनोति विस्तारयतीति तन्य-  
तुजैचः । यथा मेघो वृष्टिं क्वजति तद्वत् । ततो हे सोम त्वं पार्थिवा पृथिव्यां भवानि वसूनि धनानि तथा  
दिव्यानि दिवि भवानि धनानि च पुण्यसि । अस्मभ्यं पोषयसि । प्रयच्छसीत्यर्थः ॥

परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति ।

रंहमाणा व्यप्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥४॥

परि । ते । जिग्युषः । यथा । धारा । सुतस्य । धावति ।

रंहमाणा । वि । व्यप्ययं । वारं । वाजीव । सानसिः ॥४॥

सुतस्य ते त्वदीया सानसिः संमज्जनीया यदा सोतुमिः संमज्जनीया रंहमाणा वेगं कुर्वाणा धाराव्यय-  
मविमयं वारं वारं पवित्रं वि परि धावति । विशेषेण परितो गच्छति । तच्च दृष्टान्तः । जिग्युषः शत्रूणां  
क्षेत्रवीरस्य वाजीवाद्यो यथा युद्धं परितो धावति तद्वत् ॥ जयतेः क्रसौ सन्निटोर्जेरिति कुत्वं । यथेति पूरकः ॥

क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया । इंद्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ॥५॥

क्रत्वे । दक्षाय । नः । कवे । पवस्व । सोम । धारया । इंद्राय । पातवे । सुतः । मित्राय । वरुणाय । च ॥५॥

वरुणाय । च ॥५॥

हे कवे क्रांतदर्शन हे सोम नोऽस्मभ्यं क्रत्वे प्रज्ञानाय दक्षाय बलाय च त्वं धारया पवस्व । चर । कीदृशः ।  
इंद्राय पातवे पात्रार्थं तथा मित्राय वरुणाय च सुतोऽभिषुतः खलु ॥ ॥२७॥

पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः । इंद्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥६॥

पवस्व । वाजसातमः । पवित्रे । धारया । सुतः । इंद्राय । सोम । विष्णवे । देवेभ्यः ।

मधुमत्तमः ॥६॥

हे सोम वाजसातमोऽतिशयेनातस्य दाता सुतोऽभिषुतस्त्वं पवित्रे धारया सह पवस्व । चर । ततो हे  
सोम त्वमिंद्राय विष्णवे वान्येभ्यो मित्रादिभ्यो देवेभ्यश्च मधुमत्तमोऽतिशयेन माधुर्योपेतो मधु ॥

त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्दुहः । वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि ॥७॥

त्वां । रिहन्ति । मातरो । हरिं । पवित्रे । अद्दुहः । वत्सं । जातं । न । धेनवः । पवमान ।

विधर्मणि ॥७॥

हे पवमान सोम विधर्मणि विविधं हविषां धारके यज्ञेऽद्दुहो द्रोहवर्जिता मातरो मातृभूता वसती-  
वर्षी हरिं हरितवर्षी त्वां पवित्रे स्तितं रिहन्ति । सिहन्ति । आस्वादयन्ति । कथमिव । यथा धेनवो जातं वत्सं  
सिहन्ति तथा ॥

पर्वमान् महि अवश्चिचेभिर्यासि रश्मिभिः ।

शर्धन्तर्मांसि जिघ्रसे विश्वानि दाशुषो गृहे ॥८॥

पर्वमान । महि । अवः । चिचेभिः । यासि । रश्मिभिः ।

शर्धन् । तर्मांसि । जिघ्रसे । विश्वानि । दाशुषः । गृहे ॥८॥

हे पवमान महि महच्छवः अवशीयमंतरिचं चिचेभिश्चिचेर्मानाविधैश्चायनीयेर्वा रश्मिभिः परि यासि । परिगच्छसि । तथा शर्धन् वेगं कुर्वस्व दाशुषो हविर्दत्तवतो यजमानस्य गृहे स्थित्वा विश्वानि सर्वाधि तर्मांसि तमोरूपाणि रक्षांसि जिघ्रसे । हंसि । एवं यावः पृथिव्योर्ध्वतस इत्यर्थः ॥

त्वं द्यां च महिषत पृथिवीं चाति जग्धिषे ।

प्रति द्रापिममुंचथाः पर्वमान महित्वना ॥९॥

त्वं । द्यां । च । महिऽव्रत । पृथिवीं । च । अति । जग्धिषे ।

प्रति । द्रापिं । अमुंचथाः । पर्वमान । महिऽत्वना ॥९॥

हे महिषत महाकर्मन् वज्रविधकर्मन् सोम त्वं द्यां बुलोकं च पृथिवीं चाति जग्धिषे । अत्यंतं विमर्षि ॥ कुशुभ् धारणपोषणयोः । तस्य च्छांदसे खिटि सर्वविधोनां छंदसि विकल्पितत्वाद्चेडागमः ॥ अंतरिचे सोमात्मनेति पृथिव्यां ज्ञातारूपेणेत्येवं लोकद्वयवर्तित्वं । हे पवमान चरन् सोम त्वं महित्वना महत्त्वेन युक्तः सन् द्रापिं कवचं प्रत्यमुंचथाः । प्रतिमुंचसि । संवृणोषि ॥ ॥२८॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थोऽसुरो देसाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरधरेण सायणाचार्येण  
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये सप्तमाष्टके चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

यस्य निःश्रुतं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् । निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

विज्ञातवेदशांभीर्यसुर्यं आख्याय सप्तमे । सायणार्यसतोऽध्यायं पंचमं व्याचिकीर्षति ॥

तत्र पुरोजिती व इति षोडशर्चमनुवाकापेक्षया पंचमं सूक्तं । आद्यस्य तृचस्य आवाञ्चपुत्रोऽधीगुर्नामर्षिः । द्वितीयस्य नङ्गषस्य राज्ञः पुत्रो ययातिर्नाम । तृतीयस्य मनोः पुत्रो नङ्गषो नाम राजर्षिः । चतुर्थस्य संवरणाख्यस्य राज्ञः पुत्रो मनुः । एवं द्वादश गताः । शिष्टस्य चतुर्हचस्य वाचः पुत्रो वैश्वामित्रो वा प्रजापतिर्हर्षिः । द्वितीयातृतीये गायत्र्या शिष्टाश्चतुर्दशानुष्टुभः । तथा चानुक्रम्यते । पुरोजिती षोडश आवा-  
श्चिरेधीगुर्ययातिर्नाङ्गषो नङ्गषो मानवो मनुः सांवरण इति तृचाः शेषे प्रजापतिरुपाधे गायत्र्याविति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

पुरोजिती वो अंधसः सुताय मादयित्वे ।

अप श्वानं अयिष्टन सखायो दीर्घजिह्वं ॥१॥

पुरऽजिती । वः । अंधसः । सुताय । मादयित्वे ।

अप । श्वानं । अयिष्टन । सखायः । दीर्घऽजिह्वं ॥१॥



हे सखायः सखिभूताः सनानख्याना वा हे स्तोतारः वो यूयं पुरोजिती ॥ यज्याः पूर्वसवर्गदीर्घः ॥ पुरः-  
स्थितवयस्यांधसोऽदीर्घस्य सोमस्य स्वभूताय सुतायामिषुताय मादयितव्येऽत्यंतं मदकराय रसाय दीर्घ-  
पिट्ठं । दीर्घा जिह्वा यस्य सः ॥ दीर्घत्रिष्टुप् च च्छंदसि । पा० ४. १. ५९. इति ङीघंतत्वेन निपातितः ॥ तादृशं  
सागमय अचिष्टम् । अपन्नययत् । अपवाधध्वं । यथा आ रावसा वा सुतं सोमं न निहति तथा कुर्वतेत्यर्थः ॥

पविषिष्यां द्वितीयस्त्राज्यमागम्य सो धारयेत्पिषानुवाक्या । सूचितं च । पावकवंतावाज्यमागावन्ती रसांसि  
केधति यो धारया पावकया । आ० २. ५२. इति ॥

यो धारया पावकया परिप्रस्थंदते सुतः । इंदुरश्वो न कृत्यः ॥ २ ॥

यः । धारया । पावकया । परिऽप्रस्थंदते । सुतः । इंदुः । अश्वः । न । कृत्यः ॥ २ ॥

सुतोऽभिषुतः कृत्यः । कर्त्तव्येति कर्मनाम् । कर्मणि साधुर्यं इंदुः सोमः पावकया पापानां शोधकया  
धारया परिप्रस्थंदते परितः प्रघरति । कथमिव । अश्वो नाश्वो यथा वेगेन प्रगच्छति तद्वत् ॥

तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञं हिन्यंत्यद्रिभिः ॥ ३ ॥

तं । दुरोषं । अभि । नरः । सोमं । विश्वाच्या । धिया । यज्ञं । हिन्यन्ति । अद्रिऽभिः ॥ ३ ॥

नरः कर्मनेतार अस्त्वितो दुरोषं ॥ रोषतेर्हिसार्थस्य रेफलोपि दीर्घाभाव जीवतेर्दाहार्थस्य वा त्वलि  
रूपमिति संदेशादनवयवः ॥ तं दुर्दृष्टं दुर्वधं वा यज्ञं पट्ट्यं तं सोमं विश्वाच्या सर्वाङ्गामानंचिञ्चा धिया  
युष्माद्रिमिर्यावभिरभि हिन्यन्ति । अभिप्रिरयन्ति । अभिपुण्वन्तीति यावत् ॥

पृथक्स्य षष्ठेऽहनि ब्राह्मणाच्छिग्रस्त्रे सुतास इति तिस्रः । सूचितं च । इधिक्राव्योऽकारिपमित्यनुप  
सुतासो मधुमत्तमा इति च तिस्रः । आ० ८. ३. इति ॥

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इंद्राय मंदिनः ।

पविचवंतो अक्षरन्देवान्गच्छंतु वो मदाः ॥ ४ ॥

सुतासः । मधुमत्ऽतमाः । सोमाः । इंद्राय । मंदिनः ।

पविचऽवंतः । अक्षरन् । देवान् । गच्छंतु । वः । मदाः ॥ ४ ॥

मधुमत्तमा अतिशयेन माधुर्योपिताः अत एव मंदिनो मदकराः सुतासोऽभिषुताः सोमाः पविचवंतः  
पविषि वर्तमानाः संत इन्द्रार्थेन्द्रार्थमचरण । पात्रेषु चरन्ति । अथ प्रत्यचक्षतः । वो युष्माकं मदा मदहेतवो  
रसा देवानिन्द्रादीन्गच्छंतु ॥

इंदुरिंद्राय पवतु इति देवासो अब्रुवन् ।

वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान् ओजसा ॥ ५ ॥

इंदुः । इंद्राय । पवते । इति । देवासः । अब्रुवन् ।

वाचः । पतिः । मखस्यते । विश्वस्य । ईशानः । ओजसा ॥ ५ ॥

इंदुः सोम इन्द्रार्थेन्द्रार्थं पवते कलशे चरतीति देवासः स्तुतिकारिणः स्तोतारोऽब्रुवन् । वदन्ति । यदा  
स्तोतार एवं वदन्ति तदानीं वाचः स्तुतेः पतिः पालयिता । यदा । शब्दस्य स्वाम्यत्यंतं शब्दायमान इत्यर्थः ।  
तादृशः सोमो मखस्यते । स्तुतिभिः पूजामिच्छति ॥ वाचसायां सुगागमः ॥ कीदृशः । जीवसा यत्नेन विश्वस्य  
सर्वदेशानः प्रसुः ॥ ११ ॥

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीखयः । सोमः पती रयीणां सखेद्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥  
 सहस्रधारः । पवते । समुद्रः । वाचं ईखयः । सोमः । पतिः । रयीणां । सखा ।  
 इन्द्रस्य । दिवेदिवे ॥ ६ ॥

सहस्रधारो ब्रह्मविधधारोपेतः सोमः पवते । चरति । कीदृशः । समुद्रः । यस्मात्समुद्रवन्ति रसाः ।  
 सरःस्थानीयः वाचमीखयः ॥ ईषतेर्षीतस्य सुयुपपदे खचप्रत्ययः ॥ सुतीनां प्रेरयिता रयीणां धनानां पतिः  
 प्रसुः । यद्वा । रयीणां हविषो दातृणां यजमानानां पतिः पालयिता । दिवेदिवे प्रत्यहमिन्द्रस्य सखा मित्रभूतः  
 सोमः पवते ॥

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।

पतिर्विश्वस्य भूमनो अख्यद्रोदसी उभे ॥ ७ ॥

अयं । पूषा । रयिः । भगः । सोमः । पुनानः । अर्षति ।

पतिः । विश्वस्य । भूमनः । वि । अख्यत् । रोदसी इति । उभे इति ॥ ७ ॥

पूषा पोषकः सर्वेषां भगो भजनीयो रयिर्धनहेतुरयं सोमः पुनानः पवित्रेण पूयमानः सन्नर्षति । कलशम-  
 निगच्छति । तथा विश्वस्य सर्वस्य भूमनो भूतजातस्य पतिः पालयिता सोम उभे रोदसी आवापृथिव्यौ  
 यख्यत् । स्वतेजसा प्रकाशयति । अनेन लोकद्वयवर्तित्वं सूचितं ॥

समु प्रिया अनूषत् गावो मदाय घृष्वयः ।

सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्द्रवः ॥ ८ ॥

सं । ऊं इति । प्रियाः । अनूषत् । गावः । मदाय । घृष्वयः ।

सोमासः । कृण्वते । पथः । पवमानासः । इन्द्रवः ॥ ८ ॥

प्रियाः प्रियतमा घृष्वयोऽत्यंतं दीप्ताः । यद्वा । अहं प्रथमतः सौमि अहं पुरस्तात्सौमीति परस्परं  
 संधमानाः । गावः सुतिलक्षणा वाचः सोमस्य मदार्यं समभूषत । संस्रुवन्ति । उः प्रसिद्धौ । यद्वा । गावो  
 धेनवः सोमस्य मदाय शब्दायते । ततः पवमानासः पूयमाना इन्द्रो दीप्ताः सोमासः सोमाः पथो मार्गा-  
 ष्ठयन्ते । चरणार्थं कुर्वन्ति ॥

य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान अवाय्यं । यः पंच चर्षणीरभि रयिं येन वनामहै ॥ ९ ॥

यः । ओजिष्ठः । तं । आ । भर । पवमान । अवाय्यं । यः । पंच । चर्षणीः । अभि ।

रयिं । येन । वनामहै ॥ ९ ॥

हे पवमान पूयमान सोम ओजिष्ठ ओजस्वितमो यस्त्वदीयो रसोऽस्ति तं अवाय्यं अवाय्यं रसमा भर ।  
 अस्मभ्यमाहर । किंच यो रसः पंच चर्षणीः पंच जनाग्निषादपंचमांस्तुरो वर्णानभि तिष्ठति । अपि च येन  
 रसेन वयं रयिं धनं च वनामहै संजामहे । यद्वा । येन त्वां रयिं आचामहे तमा भर ॥

सोमाः पवन्त इन्द्रोऽस्मभ्यं गातुविज्ञमाः ।

मित्राः सुवाना अरिपसः स्वाध्यः स्वविदः ॥ १० ॥



सोमाः । पवन्ते । इन्दवः । अस्मभ्यं । गातुवित्ऽतमाः ।

मिचाः । सुवानाः । अरेपसः । सुऽआध्यः । स्वऽविदः ॥ १० ॥

गातुवित्तमा अतिशयेन मार्गस्य संमत्ता इन्दवो दीप्ताः सोमाः पवन्तेऽस्मभ्यमसदर्थं चरन्त्यागच्छन्ति वा ।  
वीरुषाः । मिचा देवानां सखिभूताः सुवाना अमिषूयमाणा अरेपसः पापरहिताः अत एव स्वाध्यः शोभन-  
ध्यानाः स्वयिदः सर्वज्ञाः सर्वप्रापका वा ॥ १२ ॥

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।

इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥ ११ ॥

सुस्वानासः । वि । व्यद्रिऽभिः । चितानाः । गोः । अधि । त्वचि ।

इषं । अस्मभ्यं । अभितः । सं । अस्वरन् । वसुऽविदः ॥ ११ ॥

गोरनकुह्योऽधि त्वच्छिपवणचर्मणि चिताना आचमाना व्यद्रिमिर्यावमिर्विविधं सुष्वाणासः सूयमाना  
वसुविदो वसुनो संमत्ता एते सोमा अस्मभ्यमिषसन्नमभितः समस्वरन् । सम्यक् शब्दयन्ति । प्रयच्छन्तीति यावत् ॥

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।

सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो भुवा घृते ॥ १२ ॥

एते । पूताः । विपऽचितः । सोमासः । दधिऽआशिरः ।

सूर्यासः । न । दर्शतासः । जिगत्नवः । भुवाः । घृते ॥ १२ ॥

पूताः पवित्रेण परिपूता विपश्चितो मेधाविनो दध्याशिरो दध्यामिश्रणा घृते वसतीवर्थास्त्य उदके  
जिगत्नवो गमनशीला भुवास्तत्र स्त्रीयेण वर्तमाना एते सोमासः सोमाः सूर्यासो न सूर्या इव दर्शतासः पाविषु  
सर्वेदर्शनीया भवन्ति ॥

प्र सुन्वानस्यांधसो मर्तो न वृत् तद्वचः ।

अप श्वानमराधसं हुता मुखं न भर्गवः ॥ १३ ॥

प्र । सुन्वानस्यं । अंधसः । मर्तः । न । वृत् । तत् । वचः ।

अप । श्वानं । अराधसं । हुत । मुखं । न । भर्गवः ॥ १३ ॥

सुन्वानस्यामिषूयमाणस्यांधसोऽदनीयस्य सोमस्य तत् प्रसिद्धं वचो वचनं घोषं मर्तो मारकः कर्मवि-  
प्रकारी वा न प्र वृत् । न भवतां । न युषीत्विति यावत् । तथा हे सोतारः अराधसं संसाधककर्मरहितं तं  
श्वानमप हुत । तच्च दृष्टांतः । मुखं च यथा पुरापरार्धं मखमेतस्मान्न भृगवोऽपहतवन्तः तथाप्य हतेत्यर्थः ॥

आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।

सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदं ॥ १४ ॥

आ । जामिः । अत्के । अव्यत । भुजे । न । पुत्रः । ओण्योः ।

सरत् । जारः । न । योषणां । वरः । न । योनिं । आऽसदं ॥ १४ ॥

वामिर्बधुभूतो देवानां सोमोऽत्क आच्छादके पवित्र आव्यत । आवृणोति । संबधो भवति । तत्र दृष्टांतः ।  
मुजे न यथौष्णो रचकयोर्मातापिचोमुंजे पुत्र आवृणोति तद्वत् । ततः सोऽयं सोमो योनिं स्वस्थानभूतं  
कलशमासदमासतुं सरत् । सरति । तत्र दृष्टांतद्वयं । जारो न यथा जारो घोषणामसतो स्त्रियं प्राप्तुं  
सरति । यथा वा वरः कन्यां प्राप्तुं गच्छति तद्वत् ॥

स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तंभ रोदसी ।

हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदं ॥ १५ ॥

सः । वीरः । दक्षऽसाधनः । वि । यः । तस्तंभ । रोदसी इति ।

हरिः । पवित्रे । अव्यत । वेधाः । न । योनिं । आऽसदं ॥ १५ ॥

दक्षसाधनो बलसाधनः स सोमो वीरः समर्थो भवति । यः सोमो रोदसी बावापृथिव्यौ वि तस्तंभ  
स्तेजसा व्यसधात् । आच्छादयतीत्यर्थः । किंच हरिर्हरितवर्णः सोमो वेधा न विधाता यजमानो गथा  
स्वगृहमासीदति तद्वयोनिं स्वस्थानं कलशमासदमासतुं पवित्रेऽव्यत । आवृणोति । संबधो भवति ॥

अथो वारैभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि ।

कनिक्कद्वृषा हरिरिंद्रस्याभ्येति निष्कृतं ॥ १६ ॥

अथः । वारैभिः । पवते । सोमः । गव्ये । अधि । त्वचि ।

कनिक्कदत् । वृषा । हरिः । इंद्रस्य । अभि । एति । निऽकृतं ॥ १६ ॥

अयं सोमोऽव्योऽवैर्वारैर्मिवालीः पवित्रैः तैश्च पवते । कलशं प्रति चरति । किंच गव्य आगवुष्टेऽधि  
त्वचि चर्मणि कनिक्कदच्छब्दायमानो वृषा कामानां वर्षको हरिर्हरितवर्णः सोम इंद्रस्य स्वभूतं निष्कृतं  
संस्कृतं स्थानमभ्येति । अभिगच्छति ॥ ३ ॥

क्राणा शिशुरित्यष्टर्चं वष्टं सूक्तं । आप्यस्य चित्तसार्यं । रदमुत्तराणि चत्वारि सूक्तान्यौष्णिहानि । पयमानः  
सोमो देवता । तथा चानुक्रम्यते । क्राणाष्टौ चित औष्णिहं वा इति ॥ गतो विनियोगः ॥

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्तस्य दीधितिं । विश्वा परि प्रिया भुवदधं द्विता ॥ १ ॥

क्राणा । शिशुः । महीनां । हिन्वन् । अतस्य । दीधितिं । विश्वा । परि । प्रिया ।

भुवत् । अध । द्विता ॥ १ ॥

क्राणा ॥ करोतेः शानचि बज्जलं वृंदसीति विकरणस्य लुक् । सुपां सुलुगिति सुप आकारादेशः ॥ यज्ञं  
कुर्वाणो महीनां महतीनां मंहनीयानां वापां शिशुः पुत्रस्थानीयः सोम अतस्य यज्ञस्य दीधितिं प्रकाशकं  
धारकं वा स्त्रीयं रसं हिन्वन् प्रेरयन्विश्वा सर्वाणि प्रिया प्रियाणि हवींषि परि भुवत् । परिभवति । व्याप्नोति ।  
अधापि च द्विता द्विधा भवति । दिवि च पृथिव्यां च वर्तत इत्यर्थः ॥

उप चितस्य पाथोऽर्भक्त यहुहा पदं । यज्ञस्य सप्त धामभिरधं प्रियं ॥ २ ॥

उप । चितस्य । पाथोः । अर्भक्त । यत् । गुहा । पदं । यज्ञस्य । सप्त । धामऽभिः ।

अध । प्रियं ॥ २ ॥

चितस्य सम यज्ञे गुहा गुहायां हविर्धाने वर्तमानयोः पाथोः पापाणवहूदथोरधिष्वणफलकयोः पदं



स्थानं सोमो यद्यदोपाभक्त सममजत अधावन्तरं यज्ञस्य धामभिर्धारकैः सप्त सप्तमिस्कंदोभिर्गायत्र्यादिभिः  
प्रियं प्रीणयितारं सोममभिष्टुवंत्युत्विजः । अपि वा । सप्त सर्पणशीलैर्वसतीवर्यादिभिर्दकैः सोममभिषुष्वन्ति ॥

वीणिं चित्तस्य धारया पृष्ठेध्वेरया रयिं । मिमीति अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥३॥

वीणिं । चित्तस्य । धारया । पृष्ठेषु । आ । ईरय । रयिं । मिमीति । अस्य । योजना  
वि । सुऽक्रतुः ॥३॥

हे सोम चित्तस्य मम यज्ञस्य स्वभूतानि चोणि सवनानि धारयात्वीयया विधारय । किंच पृष्ठेषु सामसु  
रयिं दातारमिन्द्रमेरय । आगमय । सुक्रतुः सुप्रज्ञः स्तोतास्त्रिंशस्य योजना योजनानि योजनकारीणि  
स्तोत्राणि वि मिमीति । करोति । यस्यादेवं तस्यादिन्द्रं सामसु प्रेरयेत्यर्थः ॥

जज्ञानं सप्त मातरो वेधामंशासत श्रिये । अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥४॥

जज्ञानं । सप्त । मातरः । वेधां । अंशासत । श्रिये । अयं । ध्रुवः । रयीणां । चिकेत । यत् ॥४॥

जज्ञानं प्रादुर्भूतं वेधां कर्मणो विधातारं सोमं सप्त सप्तसंख्याका मातरो गंगाया नवाः सप्त च्छंदांसि  
वा श्रिये यजमानानामैश्वर्यार्थमंशासत । अनुशासन्ति । अनुशासनं कुर्वन्ति ॥ शास्त्रैर्लङ्घि व्यत्ययेनात्मनेपदं ॥  
यद्यस्याध्रुवोऽयं सोमो रयीणां धनानि चिकेत जानाति तस्मादस्यानुशासने कृते यजमानानां धनादिस-  
मृद्धिर्भवति ॥

अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः । स्यार्हा भवन्ति रंतयो जुषन्त यत् ॥५॥

अस्य । व्रते । सऽजोषसः । विश्वे । देवासः । अद्रुहः । स्यार्हाः । भवन्ति । रंतयः । जुषन्त । यत् ॥५॥

अद्रुहो द्रोहवर्जिता विश्वे सर्वे देवासो देवा अस्य सोमस्य व्रते कर्मणि सजोषसः संगताः संतः स्यार्हाः  
सृष्टणीया भवन्ति । रंतयो रमणशीला देवाः सुतमेगं सोमं यद्यदि जुषन्त सेवन्ते तर्हि सृष्टणीया भवन्ति ॥ ॥४॥

यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन् । कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहं ॥६॥

यं । ईमिति । गर्भं । ऋतुऽवृधः । दृशे । चारुं । अजीजनन् । कविं । मंहिष्ठं । अध्वरे ।

पुरुऽस्पृहं ॥६॥

ऋतावृधो यज्ञस्य वर्धयित्र्यो वसतीवर्याख्या आपो गर्भं गर्भस्थानीयमीमेनं यं सोममध्वरे यज्ञे दृशे  
दर्शनायाजीजनन् उदपादयन् । कीदृशं । चारुं सर्वेषां कल्याणरूपं कविं क्रांतप्रज्ञं मंहिष्ठं पूज्यतमं दातुतमं  
वा अत एव पुरुस्पृहं वज्रभिः सृष्टणीयं सोमं देवाः सेवन्त इति पूर्वेषु समन्वयः ॥

समीचीने अभि त्मना यद्गी ऋतस्य मातरा । तन्वाना यज्ञमानुषग्यदैजते ॥७॥

समीचीने इति संऽईचीने । अभि । त्मना । यद्गी इति । ऋतस्य । मातरा । तन्वानाः ।

यज्ञं । आनुषक् । यत् । अंजते ॥७॥

स सोमः समीचीने परस्परं संगते यद्गी महत्यावृतस्य यज्ञस्य मातरा निर्मात्र्यो वावापृथिव्या त्मनात्मना  
स्वयमेव तदाभिगच्छति । यद्यदा यज्ञं तन्वाना अध्वर्यव आनुषगनुषक्तं वसतीवरोभिर्नजते सोमं मिश्रयन्ति  
तदा स्वयमभिगच्छति ॥

क्रत्वा शुक्रेभिर्ऋभिर्ऋणोरपं व्रजं दिवः । हिव्वन्तस्य दीधितिं प्राध्वरे ॥ ८ ॥  
 क्रत्वा । शुक्रेभिः । ऋऋभिः । ऋणोः । अपं । व्रजं । दिवः । हिव्वन् । ऋतस्य । दीधितिं ।  
 प्र । अध्वरे ॥ ८ ॥

हे सोम त्वं क्रत्वा कर्मणा ज्ञानेन वा शुक्रेभिः शुक्रैर्दीप्यमानैरऋभिरऋणैरिन्द्रियैरिवामुवानैः स्वतेजोभिर्ऋ-  
 जमंधकारसमूहं दिवोऽन्तरिक्षादपणोः । अपगमय । विनाशय ॥ ऋणु गतौ तानादिकः ॥ किं जुर्वन् । अध्वरे  
 हिंसारहिते यज्ञ ऋतस्य यज्ञस्य दीधितिं धारकं स्वीय रसं प्र हिव्वन् प्रेरयन् । अनेन लोकद्वयवर्तित्वम-  
 मिहितं ॥ ५ ॥

प्र पुनानायेति षडृचं सप्तमं सूक्तमायस्य दितस्त्वार्षं । पूर्ववच्छन्दोदेवते । तथा चानुक्रम्यते । प्र पुनानाय  
 षड् दित आयस्य इति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतं । भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ ९ ॥  
 प्र । पुनानाय । वेधसे । सोमाय । वचः । उत्ऽयतं । भृतिं । न । भर । मतिऽभिः ।  
 जुजोषते ॥ ९ ॥

द्विती नामर्षिः स्वात्मानं प्रत्याह । पुनानाय पवित्रेण पूयमाणाय वेधसे कर्मणो विधाये मतिभिः सुतिभि-  
 र्जुजोषते प्रीयमाणाय यज्ञा मतिभिः स्तोतुभिः सह जुजोषते प्रीययिचे सोमायोद्यतमुद्युक्तं वचः प्र भर ।  
 प्रकर्षेय संपादय । अभिष्टुहीत्यर्थः । तच्च दृष्टान्तः । भृतिं न यथा मृतका भृतिं संपादयन्ति तद्वत् ॥

परि वाराण्यव्यया गोभिरंजानो अर्षेति । ची षधस्था पुनानः कृणुते हरिः ॥ २ ॥  
 परि । वाराणि । अव्यया । गोभिः । अंजानः । अर्षेति । ची । सधऽस्था । पुनानः ।  
 कृणुते । हरिः ॥ २ ॥

गोभिर्गोविकारैः चीरादिभिरंजानोऽज्यमानः सोमोऽव्ययाविमयाणि वाराणि वालानि पवित्राणि  
 पर्यर्षति । परिगच्छति । अपि च हरिर्हरितवर्णः सोमः पुनानः पूयमानः संस्त्री चीणि सधस्था । सह तिष्ठन्त्य-  
 चेति सधस्थं स्थानं । द्रोणकलशधवनीयपूतमृदात्मकाणि चीणि स्थानानि ह्यणुते । करोति ॥

परि कोशं मधुश्चुतमव्यये वारे अर्षेति । अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत ॥ ३ ॥  
 परि । कोशं । मधुऽश्चुतं । अव्यये । वारे । अर्षेति । अभि । वाणीः । ऋषीणां ।  
 सप्त । नूषत ॥ ३ ॥

स सोमोऽव्ययेऽविमये वारे वाक्ते पवित्रे मधुश्चुतं मधुररसस्य आवयितारं द्रोणकलशं प्रत्यात्मीयं रसं  
 पर्यर्षति । गमयति । तमिमं सोममृषीणां सप्त वाणींश्चंदांसमि नूषत । अभिष्टुवन्ति ॥ भू सवने कुटादिः ॥

परि शेता मंतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः । सोमः पुनानश्चम्वोर्विश्वरिः ॥ ४ ॥  
 परि । शेता । मंतीनां । विश्वऽदेवः । अदाभ्यः । सोमः । पुनानः । चम्वोः । विश्वः ।  
 हरिः ॥ ४ ॥

हरिर्हरितवर्णः स सोमः पुनानः पूयमानः संस्त्वोरधिषवणफलकयोः परि विशत् । परिविशन्ति ।



कीदृशः । मतीनां सुतीनां नेता यद्वा मतीनां स्तोतृणां स्वकर्मण्युपनेता विश्वदेवः सर्वदेवः । सोमोऽभिपूयमाणे सतीन्द्रादयः सर्वे देवाः सोमं प्रत्यागच्छन्ति खलु । तस्मात्सर्वदेवोपेतः अत एवादाभ्योऽहिंसितः कैश्चिदपि ॥

परि दैवीरनु स्वधा इंद्रेण याहि सरथं । पुनानो वाघन्नाघञ्जिरमर्त्यः ॥ ५ ॥  
परि । दैवीः । अनु । स्वधाः । इंद्रेण । याहि । सरथं । पुनानः । वाघत् । वाघत् । अभिः ।  
अमर्त्यः ॥ ५ ॥

हे सोम त्वमिंद्रेण सरथं समानं रथमावह्य दैवीर्देवानां संबन्धीनि स्वधा बलान्यनु देवसेनाः परि याहि । परिगच्छ । कीदृशः । पुनानः पूयमानो वाघन्निः । वाघत इत्यृत्विङ्नाम । हविषां प्रेरकैर्हविर्गमिषाघ-  
दूह्यमानोऽमर्त्यो मनुष्यधर्मरहितः । यद्वा । वाघन्निर्हविर्गमिः पुनानः पूयमानो वाघत् स्तोतृणां यष्टृणां  
धनादीनि प्रापयन् परिगच्छ ॥

परि सप्तिर्न वाजयुर्देवो देवेभ्यः सुतः । व्यानशिः पर्वमानो वि धावति ॥ ६ ॥  
परि । सप्तिः । न । वाजऽयुः । देवः । देवेभ्यः । सुतः । वि । व्यानशिः । पर्वमानः ।  
वि । धावति ॥ ६ ॥

सप्तिर्नाथ इव वाजयुर्ब्रह्मिच्छन्देवो दीप्यमानो देवेभ्यो देवार्थं सुतोऽभिपुतो व्यानशिः पाचिषु व्यापी  
पर्वमानः पवित्रेण पूयमानः एतादृशः सोमः परि धावति । परितः पाचाण्यभिगच्छति ॥ व्यानशिः ।  
अभू व्याप्नो । आदृगमहनेत्यचोत्सर्गच्छंदसि सदादिभ्यो दर्शनादिति कित्प्रत्ययः । अप्नोतेत्येति गुडा-  
गमः ॥ ६ ॥ ६ ॥

सप्तमेऽनुवाक एकादश सूक्तानि । तच्च सखाय इति षडृचं प्रथमं सूक्तं । काश्वी पर्वतनारदावृषी । अथवा  
कश्यपस्य पुत्र्यौ शिखंडिन्याख्ये द्वे अप्सरसावस्य सूक्तस्य द्वाभ्याम् । पूर्ववच्छन्दोदेवते । तथा चाशुक्रम्यते । सखायः  
पर्वतनारदौ काश्व्यौ द्वे शिखंडिन्यौ वाप्सरसाविति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥  
सखायः । आ । नि । षीदत । पुनानाय । प्र । गायत । शिशुं । न । यज्ञैः । परि ।  
भूषत । श्रिये ॥ १ ॥

हे सखायः सखिभूताः स्तोतार ऋत्विजः आ नि षीदत । स्तोतृमुपविशत । अथ पुनानाय पूयमानाय  
सोमाय प्र गायत । प्रकर्षेण गायत । तमभिष्टुत । ततोऽभिपुतं सोमं यज्ञैर्यजनीयेर्हविर्मिर्मिष्यणीन् श्रिये  
शोभनार्थं परि भूषत । परितोऽखंजुषत । तच्च दृष्टान्तः । शिशुं न यथा शिशुं बालं पुत्रं पितर आभरणैरनं-  
जुर्वेति तद्वत् ॥

प्रवर्त्येऽभिष्टुते समी वत्समित्येका । सूचितं च । समी वत्सं न मातृभिः सं वत्स इव मातृभिः । आ०  
४. ७. इति ॥

समी वत्सं न मातृभिः सृजतां गयसाधनं । देवाय्यं न मदं मभि द्विशंवसं ॥ २ ॥  
सं । ईमिति । वत्सं । न । मातृभिः । सृजत । गयसाधनं । देवऽअय्यं । मदं ।  
अभि । द्विशंवसं ॥ २ ॥

हे ऋत्विजः गयसाधनं गृहस्य साधनमीमेनं सोमं मातृभिर्मातृभूताभिर्वसतीवरीभिः सं खजत । संमि-  
श्रयत । कथमिव । वत्सं न यथा वत्सं मातृभिर्गौभिः संयोजयन्ति तद्वत् । कीदृशं । देवाद्यं देवानां रचकं  
मदं मदनहेतुं द्विश्रवसं द्विगुणवेगमतिश्रयितवत्सं वा । यद्वा । द्यौर्लोकयोस्तत्र स्थिता देवमनुष्या इत्यर्थः ।  
तेषां हविर्धनप्रदानेन वर्धयितारं । तं सोममभि सं खजत ॥

पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये । यथा मित्राय वरुणाय शंतमः ॥ ३ ॥  
पुनात । दक्षसाधनं । यथा । शर्धाय । वीतये । यथा । मित्राय । वरुणाय ।  
शंतमः ॥ ३ ॥

दक्षसाधनं बलस्य साधनं धनादिवृद्धेर्वा साधकं सोमं पुनात । पवित्रेण पुनीत ॥ पूज् पवने क्रयादिः ।  
तस्मात्क्रोडि तप्तनप्तनयनाश्चेति तस्य तवादेशः । पित्वादीत्याभावः ॥ असौ सोमः शर्धाय वेगार्थं वीतये  
देवानां पानार्थं यथा भवति यथा वा मित्राय वरुणाय च शंतमोऽतिशयेन सुखं करोति तथा पुनीतित्वर्थः ॥

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत । गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ ४ ॥  
अस्मभ्यं । त्वा । वसुविदं । अभि । वाणीः । अनूषत । गोभिः । ते । वर्णं । अभि ।  
वासयामसि ॥ ४ ॥

हे सोम वसुविदं धनस्य दातारं त्वा त्वामस्मभ्यं धनादिप्रदानार्थं वाणीरस्मदीया वाचोऽभ्यनूषत ।  
अभिप्लवन्ति ॥ नू स्तवने ॥ वयं ते तव वर्णमावरकं रसं गोभिर्गोविकारैः चीरादिभिरभि वासयामसि ।  
अभिवासयामः । अमित आच्छादयामः ॥

स नो मदानां पत इंदो देवप्सरा असि । सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥ ५ ॥  
सः । नः । मदानां । पते । इंदो इति । देवप्सराः । असि । सखाऽइव । सख्ये ।  
गातुवित्तमः । भव ॥ ५ ॥

नोऽस्मादीनां मदानां मदकानां पति स्वामिन् हे इंदो सोम स त्वं देवप्सरा असि । प्सर इति  
रूपनाम । दीप्तरूपो भवसि । स त्वं सखेव यथा सखा सुहृत् सख्ये मित्राय सत्यं मार्गं ज्ञापयति तद्वदस्मा-  
कमपि गातुवित्तमोऽत्यंतं मार्गस्य लभको भव । ज्ञापको भव ॥

सनेमि कृध्य । स्पदा रक्षसं कं चिदचिणं । अपादेवं द्युमंहो युयोधि नः ॥ ६ ॥  
सनेमि । कृधि । अस्मत् । आ । रक्षसं । कं । चित् । अचिणं । अप । अदेवं । द्युयुं ।  
अंहः । युयोधि । नः ॥ ६ ॥

हे सोम अस्मदस्मासु सनेमि । पुराणनामैतत् । पुराणं सख्यं कृधि । कव । आ अपि चाचिणमदनशीलं  
कं चिद्रक्षसमपयुध्यस्व । कीदृशं । अदेवमदेवनशीलं द्युयुं द्युयवंतं सत्यानृतयुक्तं वाह्याभ्यंतरमायायुक्तं वा ।  
किंच नोऽस्माकमंहः पापं चाप युयोधि । संप्रहर ॥ युध्यतेर्बहुलं छंदसीति शपः पुः । वा छंदसीति हेर्किन्त्वा-  
भावाद्गुणः । धनोपपन्नांदसः । यौतेर्वा सौ पूर्ववद्भूषं ॥ ७ ॥

तं व इति षष्ठ्यं द्वितीयं सूक्तं । पर्यंतनारदयोराथं । अन्यत्पूर्ववत् । तं व इत्यनुक्रांतं ॥ गतः सूक्तवि-  
नियोगः ॥



तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न यज्ञैः स्वदयंत गूर्तिभिः ॥ १ ॥  
 तं । वः । सखायः । मदाय । पुनानं । अभि । गायत । शिशुं । न । यज्ञैः । स्वदयंत ।  
 गूर्तिभिः ॥ १ ॥

हे सखाय ऋत्विजः वो यूथं मदाय देवानां मदार्थं पुनानं पूजमानं तं सोममभि गायत । अमिष्टत ।  
 तमिमं सोमं शिशुं न शिशुमिवासांकारेः चीरादिभिश्च यथा स्वादूक्येति तद्वच्चैर्हविर्मिर्मिश्रणैर्गूर्तिभिः  
 सुतिभिश्च स्वदयंत । स्वादूक्येति ॥

प्रचर्येऽभिष्टवे सं वत्स इव मातुभिरितिका । यूथं च समी वत्समित्यनया सहोक्तं ॥

सं वत्स इव मातुभिरिंदुहिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥  
 सं । वत्सः । इव । मातुभिः । इंदुः । हिन्वानः । अज्यते । देवः । अवीः । मदः । मतिभिः ।  
 परिष्कृतः ॥ २ ॥

हिन्वानः प्रेर्यमाण इंदुः सोमो वसतीवरीभिः समज्यते । सम्यक् सितो भवति । तच्च वृष्टांतः । वत्स इव  
 वत्सो यथा मातुभिर्गोभिः समक्तो भवति तद्वत् । कीदृशः । देवावीर्देवानां रणको मदो मदकरो मतिभिः  
 सुतिभिः परिष्कृतोऽसंक्रतः ॥ भूषणार्थं संपर्युपेभ्य इति मुडागमः । परिनिविभ्यः । पा० च. ३. ७०. । इति  
 सुटः पलं ॥

अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये । अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥ ३ ॥  
 अयं । दक्षाय । साधनः । अयं । शर्धाय । वीतये । अयं । देवेभ्यः । मधुमत्तमः ।  
 सुतः ॥ ३ ॥

अयं सोमो दक्षाय बलाय वर्धनाय वा साधनः साधयिता भवति । तथायं सोमः शर्धाय वेगार्थं  
 वीतये देवानां भक्षणार्थं च भवाते । सुतोऽभिपुतोऽयं सोमो देवेभ्य इन्द्रादिभ्यो मधुमत्तमोऽतिशयेन  
 माधुर्ययुक्तो भवति । अत्यंतं मत्करो भवतीति वा ॥

गोमन्त्र इंदो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धन्व । शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरं ॥ ४ ॥  
 गोऽमन् । नः । इंदो इति । अश्वऽवत् । सुतः । सुऽदक्ष । धन्व । शुचिं । ते । वर्णं ।  
 अधि । गोषु । दीधरं ॥ ४ ॥

हे सुदक्ष सुबल हे इंदो सोम सुतोऽभिपुतस्त्वं गोऽस्त्राणं गोमन्त्रसाधनगोयुक्तमश्ववत्सुतं धनं धन्व ।  
 गमय ॥ धविर्गत्यर्थो भूवादः ॥ ततोऽहं शुचिं प्रतं दीप्यमाणं वा ते तव वर्णं रसं गोषु गच्छेय चीरादिष्वधि  
 दीधरं । अधिधारयामि । मिश्रयामि ॥

स नो हरीणां पते इंदो देवप्सरस्तमः । सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥ ५ ॥  
 सः । नः । हरीणां । पते । इंदो इति । देवप्सरः । तमः । सखाऽइव । सख्ये । नर्यः ।  
 रुचे । भव ॥ ५ ॥

हे हरीणां पते गोऽसदीयानां हरितवर्णानां पशूनां स्वामिन् हे इंदो सोम देव सरसमोऽतिशयेन

दीप्तरूपोपेतः स त्वं नर्यः कर्मनेतृभ्य ऋत्विग्भ्यो हितः स त्वं नोऽस्याकं रुचे भव । दीप्तिकरो भव । किमिव । सखेव यथा सखा सख्ये मित्राय दीप्तिकरो भवति तद्वत् ॥

सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कं चिदचिर्यं । साह्राँ इंदो परि बाधो अप इयुं ॥ ६ ॥  
सनेमि । त्वं । अस्मात् । आ । अदेवं । कं । चित् । अचिर्यं । सह्रान् । इंदो इति ।  
परि । बाधः । अप । इयुं ॥ ६ ॥

हे सोम त्वं सनेमि पुराणं सख्यमस्मदस्मासु कुष । आ अपि चादेवमदेवनशीलं कं चिदप्यचिरमदनशीलं राक्षसमस्मदस्मातोऽपगमय । किंच हे इंदो साह्राञ्छूनामिवन् बाधो बाधमानान्परि जहि । तथा इयुं इयवंतं सत्यावृतयुक्तं बाह्याभ्यंतरमायाद्वयोपेतं वा राक्षसमस्मातोऽपगमय ॥ ८ ॥

इंद्रमच्छेति चतुर्दशर्चं तृतीयं सूक्तमीषिहं पवमानसोमदेवतात्वं । प्रथमस्य तृचस्य चतुरास्यपुत्रोऽभि-  
र्चयिः । द्वितीयस्य मनुपुत्रस्यतुर्नामा । अप्सुनासः पुत्रो मनुसुतीयस्य । एवं नवर्चो गताः । शिष्टानामपि  
पंचानां चापुत्रोऽभिः । तथा चानुक्रम्यते । इंद्रमच्छेत् षूनामिच्छाशुषस्यतुर्मानवो मशुराप्सव इति तृचाः पंचा-  
भिरिति ॥ गतो विनियोगः ॥

इंद्रमच्छे सुता इमे वृषणं यंतु हरयः । शुष्टी जातास इंदवः स्वविदः ॥ १ ॥  
इंद्रं । अच्छे । सुताः । इमे । वृषणं । यंतु । हरयः । शुष्टी । जातासः । इंदवः ।  
स्वःऽविदः ॥ १ ॥

शुष्टी । शुष्टीति चिप्रनाम । चिप्रं जातासो जाता इंदवः पात्रेषु चरंतः स्वविदः सर्वज्ञा हरयो हरितवर्णाः  
सुता अभिपुता इमे सोमा वृषणं कामानां सेतारमिंद्रमच्छे यंतु । अभिगच्छंतु ॥

अयं भराय सान्सिरिद्राय पवते सुतः । सोमो जैचस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥  
अयं । भराय । सान्सिः । इंद्राय । पवते । सुतः । सोमः । जैचस्य । चेतति । यथा ।  
विदे ॥ २ ॥

भराय संयामाय तदर्थं सान्सिर्मजनीयः सुतोऽभिपुतोऽयं सोम इंद्रयिंद्रार्थं पवते । यथादिषु चरति ।  
ततः सोमो जैचस्य ॥ क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानसंज्ञा चतुर्थ्यर्थे वज्रलमिति षष्ठी ॥ जयशीलमिंद्रं  
चेतति । जानाति । यथेन्द्रो विदे लोकैर्ज्ञायते तथा जानाति ॥

अस्येदिद्रो मदेष्वा याभं गृभ्णीत सान्सिं । वज्रं च वृषणं भरत्समंप्सुजित् ॥ ३ ॥  
अस्य । इत् । इंद्रः । मदेषु । आ । याभं । गृभ्णीत् । सान्सिं । वज्रं । च । वृषणं ।  
भरत् । सं । अप्सुऽजित् ॥ ३ ॥

आ अनंतरमिंद्रोऽस्तेदस्य सोमस्यैव मदेषु संजातेषु सान्सिं सर्वैः संभजनीयं याभं याहं यहीतव्यं धनु-  
गृभ्णीत । गृह्णाति ॥ हयहोर्म इति भलं ॥ किंचाप्सुजिदुदकार्यं वृचस्य जेता । यद्वा । आप इत्यंतरिचनाम ।  
अंतरिचेऽहिनामकस्य जेता । इंद्रो वृषणं वर्पितारं वज्रं च सं भरत् । संविमर्तु ॥ विभर्तेत्येवडागमः ॥

प्र धन्वा सोम जागृविरिद्रयिंदो परि सव । शुमंतं शुष्ममा भरा स्वविदं ॥ ४ ॥  
प्र । धन्व । सोम । जागृविः । इंद्राय । इंदो इति । परि । सव । शुऽमंतं । शुष्मं ।  
आ । भर । स्वःऽविदं ॥ ४ ॥



हे सोम जागृविर्वागरणशीलस्त्वं प्र धन्व । प्रचर । हे इंदो सोम इन्द्राय परि खव । परितः पावेषु चर । किंच युमतं दीप्तियुतं स्वर्विदं सर्वस्य संमकं मुष्णं शूणां शीवकं बलमा मर । आहर ॥

इन्द्राय वृषणं मदं पर्वस्व विश्वदर्शतः । सहस्रयामा पथिकृच्चिक्षणः ॥ ५ ॥  
इन्द्राय । वृषणं । मदं । पर्वस्व । विश्वऽदर्शतः । सहस्रऽयामा । पथिऽकृत् ।  
विऽचक्षिणः ॥ ५ ॥

हे सोम त्वं वृषणं वर्धितारं मदं मदहेतुं रसमिन्द्रायेंद्रार्थं पवस्व । चर । कीदृशः । त्वच्छदर्शतः सर्वेदर्श-  
नीयः सहस्रयामा बलमार्गः पथिह्यलमानाणां सन्नार्गकरणशीलो विचक्षणः सर्वस्य विद्रष्टा ॥ ॥ ५ ॥

अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः । सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्कदत् ॥ ६ ॥  
अस्मभ्यं । गातुवित्ऽतमः । देवेभ्यः । मधुमत्ऽतमः । सहस्रं । याहि । पथिऽभिः ।  
कनिक्कदत् ॥ ६ ॥

हे सोम अस्मभ्यं गातुवित्तमोऽत्यंतं मार्गस्य संमकः तथा देवेभ्यश्च मधुमत्तमोऽत्यंतं स्वादुकारी त्वं  
कनिक्कदच्छब्दं कुर्वन् सहस्रं पथिभिर्वैज्रभिर्मर्गेयाहि । कलशमायच्छ ॥

पर्वस्व देववीतये इंदो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्तोम नः सदः ॥ ७ ॥  
पर्वस्व । देवऽवीतये । इंदो इति । धाराभिः । ओजसा । आ । कलशं । मधुऽमान् ।  
सोम । नः । सदः ॥ ७ ॥

हे इंदो सोम देववीतये देवानां मध्याधीनसा बलेन धाराभिरात्मीयामिः पवस्व । चर । हे सोम  
मधुमान्मदकररसवांस्त्वं नोऽस्मदीयं कलशं द्रोणाभिधानमा सदः ॥ सदेर्बुद्धि रूपं ॥ आसीद् ॥

तव द्रुप्सा उदमुत इंद्रं मदाय वावृधुः । त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ ८ ॥  
तव । द्रुप्साः । उदऽमुतः । इंद्रं । मदाय । वावृधुः । त्वां । देवासः । अमृताय । कं ।  
पपुः ॥ ८ ॥

उदमुतो वसतीवर्षाख्यमुदकं प्रति गच्छंतः । यद्वा । उदकस्य निर्गमयितारः । तव समूता द्रुप्सा द्रुतना-  
मिनो रसा मदाय मदार्थमिंद्रं वावधः । वर्धयन्ति । ततो देवासो देवा इन्द्रादयः कं सुखकरं त्वाममृताया-  
मरणार्थं पपुः । पिबन्ति ॥

आ नः सुतास इंदवः पुनाना धावता रयिं । वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ९ ॥  
आ । नः । सुतासः । इंदवः । पुनानाः । धावत । रयिं । वृष्टिऽद्यावः । रीतिऽआपः ।  
स्वऽविदः ॥ ९ ॥

हे सुतासोऽभिषूयमाणा हे इंदवो दीप्ताः पावेषु चरंतो वा हे रीत्यापः यैः पृथिवीं प्रति स्रवणशीला  
आपः कृताः तादृशा हे सोमाः पुनानाः पूयमाना यूयं नोऽस्मभ्यं रयिमा धावत । आगमयत । कीदृशाः ।  
वृष्टिद्यावो वृष्टिमभि बौधैः क्रियते वृष्ट्यभिमुखयुक्तोक्तवतः स्वर्विदः सर्वस्य संमकाः ॥

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति । अये वाचः पवमानः कर्निकदत् ॥ १० ॥  
 सोमः । पुनानः । ऊर्मिणा । अयः । वारं । वि । धावति । अये । वाचः । पवमानः ।  
 कर्निकदत् ॥ १० ॥

पुनानः पूयमानः सोम ऊर्मिणा स्त्रीयया धारयाव्योऽवेवारं वाचं पविचं वि धावति । विविधं गच्छति । कीदृशः सोमः । पवमानः पूतो वाचः स्त्रीयस्त्रायै कर्निकदत् पुनःपुनः शब्दं कुर्वन्वि धावति ॥ १० ॥

धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळंतमत्यविं । अभि चिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ ११ ॥  
 धीभिः । हिन्वन्ति । वाजिनं । वने । क्रीळंतं । अतिऽअविं । अभि । चिपृष्ठं । मतयः ।  
 सं । अस्वरन् ॥ ११ ॥

वाजिनं वल्लवंतं वने वननीये वसतीवर्याख्य उदके क्रीळंतं संक्रीडमानमत्यविं । अविशब्देन तद्रोमकृतं पविचमभिधीयते । अतिक्रान्तपविचं सोममृत्विजो धीभिः स्तुतिभिर्हिन्वन्ति । वधयन्ति । यद्वा । धीभिः ॥ वर्षासोपम्ह्वांसः ॥ धीतिभिरंगुलीभिर्हिन्वन्ति । प्रेरयन्ति ॥ हि गतौ वृद्धौ च स्वादिः ॥ चिच चिपृष्ठं । चीणि पविषाणि द्रोणकसशाधवनीयपूतभृदाख्यानि पाचाणि सृशतीति चीणि सवनानि वा सृशतीति स तथोक्तः । तं सोमं मतयः स्तुतयोऽभि समस्वरन् । अमितः संसुवन्ति ॥

असर्जि कलशौ अभि मीळे सप्तिर्न वाजयुः । पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ १२ ॥  
 असर्जि । कलशान् । अभि । मीळे । सप्तिः । न । वाजयुः । पुनानः । वाचं । जनयन् ।  
 असिष्यदत् ॥ १२ ॥

वावयुर्यजमानानामन्नमिच्छन् स सोमः कलशानमिलक्ष्य कलशेष्वसर्जि । ख्यते । तच्च दृष्टान्तः । सप्तिर्न यथासौ मीळे । संयामनमेतत् । संयामे ख्यते तद्वत् । ततः पुनानः पूयमानः सोमो वाचं शब्दं जनयन्नु-  
 त्यादयन्नसिष्यदत् । पात्रेषु संदत्ते ॥

पवते हर्यतो हरिरति हूरांसि रंक्षा । अभ्यर्षेन्नस्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ १३ ॥  
 पवते । हर्यतः । हरिः । अति । हूरांसि । रंक्षा । अभिऽअर्षेन् । स्तोतृभ्यः ।  
 वीरऽवत् । यशः ॥ १३ ॥

हर्यतः सृहणीयो हरिर्हरितवर्णः सोमो रंक्षा ॥ तृतीयाया आकारः ॥ साधुवेगेन हूरांसि कुटिलान्व-  
 नृजुनि पविषास्यति पवते । अतोत्य गच्छति । किं कुर्वन् । स्तोतृभ्यो वीरवत् पुत्रयुक्तं यशोऽभ्यर्षन्नभिग-  
 मयन् पवते ॥

अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत । रेभन्पविचं पर्येधि विश्वतः ॥ १४ ॥  
 अया । पवस्व । देवऽयुः । मधोः । धाराः । असृक्षत । रेभन् । पविचं । परि । एधि ।  
 विश्वतः ॥ १४ ॥

हे सोम देवयुर्देवान्कामयमानस्त्वमयानया धारया पवस्व । पर । ततो मधोर्मदकरस्य तव धारा  
 आत्मीया अक्षयत । ख्यते । अनंतरं रेभञ्छब्दायमानः पविचं विश्वतः पर्येधि । अर्धतः परिगच्छसि ॥ १११ ॥



परीत इति षड्विंशत्युचं चतुर्थं सुक्तं । लं सोमासि । अ० ९. ६७. इत्युचोक्ता मरुतावकश्रवायाः सप्तर्वयः । आया बृहती द्वितीया सतोबृहती । अथमेकः प्रगाथः । परि सुवान इत्येवा तृतीयैकविंशत्यचरा सुरिर्विराट् द्विपदा । नुमिर्वैमान इति षोडशी विंशत्यचरा द्विपदा विराट् । चतुर्थ्यादिद्वौ प्रगाथौ । दशम्यादिचयः सप्तदश्यादिपंच प्रगाथाः । पचमानः सोमो देवता । तथा चानुक्रम्यते । परीतः षड्विंशतिः सप्तर्वयः प्रागाथं तृतीयाषोऽश्वौ द्विपदे अष्टम्याये बृहत्याविति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

परीतो विंचता सुतं सोमो य उक्तमं हविः ।

दधन्वाँ यो नर्यो अप्सं०तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥१॥

परि । इतः । सिंचत । सुतं । सोमः । यः । उत्तमं । हविः ।

दधन्वान् । यः । नर्यः । अप्सु । अंतः । आ । सुसार्व । सोमं । अद्रिभिः ॥१॥

हे ऋत्विजः सुतमभिषुतं सोममित अन्नात्कर्मण ऊर्ध्वं अथवास्मात्प्रदेशादूर्ध्वं परि विंचत वसतीवरीभिः ॥ एतो विंचतेत्यत्र संहितायां छंदसीति रोक्तं । आदेशप्रत्यययोरिति षत्वं ॥ यः सोमो देवानामुत्तमं प्रशस्तं धृविर्मवति आ अपि च नर्यो मनुष्यहितो यश्च सोमोऽप्सु वसतीवरीष्वंतरिक्षे वातर्द्धन्वाग्धृम्भवति तं सोममद्रिभिर्ग्रावभिरध्वर्युः सुषाव । अभिषुतं चकार । तं परि विंचतेति समन्वयः ॥

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवाद्व्यः सुरभितरः ।

सुते चिंश्वाप्सु मंदामो अंधसा श्रीणंतो गोभिरुत्तरं ॥२॥

नूनं । पुनानः । अविभिः । परि । स्रव । अद्व्यः । सुरभिः । उत्तरः ।

सुते । चित् । त्वा । अप्सु । मदामः । अंधसा । श्रीणंतः । गोभिः । उत्तरं ॥२॥

हे सोम अद्व्यः कैश्चिदप्यहिंसितः सुरभितरोऽत्यंतं सुगंधिस्त्वं नूनमिदानीं पुनानः पूयमानः सप्तविभि-  
रविषासकृतेः पविषेस्तेभ्यः परि स्रव । परितः चर । सुते चिदभिषुते सत्संधसा सक्तुषण्येनाग्नेन गोभिर्गो-  
विकारैः चीरैः चीरादिभिः श्रीणंतो मिश्रयंतो वयमुत्तरमुन्नततरमप्सु वसतीवरीषु संक्षितं त्वां मदामः ।  
मंदामहे । जुमः ॥

परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिदुर्विचक्षणः ॥३॥

परि । सुवानः । चक्षसे । देवमादनः । क्रतुः । इदुः । विचक्षणः ॥३॥

सुवानोऽभिषूयमाणः सोमश्चक्षसे सर्वेषां दर्शनाय परि स्रवति । कीदृशः । देवमादनो देवानां तर्पयिता  
क्रतुः कर्ता इदुः पविषु चरणशीलो दीप्तो वा विचक्षणः सर्वस्य विद्वष्टा ॥

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षेसि ।

आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्तो देव हिरण्ययः ॥४॥

पुनानः । सोम । धारया । अपः । वसानः । अर्षेसि ।

आ । रत्नधाः । योनिं । मृतस्य । सीदसि । उत्तः । देव । हिरण्ययः ॥४॥

हे सोम पुनानः पूयमानस्त्वमप्य उदकाणि वसतीवर्याख्यानि वसान आच्छादयन् धारयार्षेसि । पविषं गच्छसि । ततो रत्नधा रत्नानां दाता त्वमृतस्य सत्वमृतस्य यज्ञस्य योनिं स्नानमा सीदसि । हे देव योतमान

सोम उक्तः प्रसंदनशीलस्त्वं हिरण्यो हिरण्यो हिरण्योत्वन्तिष्ठानं खणु । यत्ता । देवानां हितरम-  
णीयो भवसि ॥

दुहान ऊर्ध्वं दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।

आपृच्छ्वं धरुणं वाज्यर्षेति नृभिर्धूतो विचक्ष्णः ॥ ५ ॥

दुहानः । ऊर्ध्वः । दिव्यं । मधु । प्रियं । प्रत्नं । सधऽस्थं । आ । असदत् ।

आऽपृच्छ्वं । धरुणं । वाजी । अर्षेति । नृऽभिः । धूतः । विऽचक्ष्णः ॥ ५ ॥

मधु मदकरं प्रियं प्रीणनकारि दिव्यं दिवि भवमूधः सोमवह्नीकण्यं दुहानः सोमः प्रत्नं पुरातनं सधस्थं ।  
सह तिष्ठत्येति सधस्थं स्थानं । अंतरिक्षमासदत् । आसीदति ॥ सदेर्जुंश्चि रूपं ॥ तत आपृच्छ्वं कर्मणाप्रष्टव्यं  
धरुणं कर्मणो धारयितारं यजमानं वाज्यवाप्तोमोऽर्षेति । तस्मा अन्नं दातुमभिगच्छति । कीदृशः । शुभिः  
कर्मणो नृभिर्धूतोऽदाभ्यगृहे परिशोधितः । तैरेनं चतुराधूजोति पंचकलः सप्तकलो वेत्तापसंवेन  
सूचितं । विचक्ष्णः सर्वस्य विद्वष्टा ॥ १२ ॥

पुनानः सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः ।

त्वं विप्रो अभवोऽंगिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥ ६ ॥

पुनानः । सोम । जागृविः । अव्यः । वारे । परि । प्रियः ।

त्वं । विप्रः । अभवः । अंगिरऽतमः । मध्वा । यज्ञं । मिमिक्ष । नः ॥ ६ ॥

हे सोम जागृविर्जागरणशीलः प्रियः प्रीणयिता त्वं पुनानः पूयमाणः सप्तव्योऽर्ध्वरे वासे पथिचि परि  
चरास । किंच विप्रो मेधावी त्वमंगिरस्तमोऽंगिरसां वरिष्ठः पितृणां नेताभवः । भवसि । स त्वं नोऽसादीयं  
यज्ञं मध्वा मधुनात्मीयेन रसेन मिमिक्ष । सिंध ॥ मिहेः सेचनार्थस्य सनि रूपं ॥

सोमो मीढ्वान्पवते गातुवित्तमं ऋषिर्विप्रो विचक्ष्णः ।

त्वं कविरभवो देववीतमं आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥ ७ ॥

सोमः । मीढ्वान् । पवते । गातुवित्ऽतमः । ऋषिः । विप्रः । विऽचक्ष्णः ।

त्वं । कविः । अभवः । देवऽवीतमः । आ । सूर्यं । रोहयः । दिवि ॥ ७ ॥

मीढ्वान् कामानां सेक्ता सोमः पवते । चरति । कीदृशः । गातुवित्तमोऽत्यंतं मार्गस्य संभव ऋषिः सर्वस्य  
प्रदर्शको विप्रो मेधावी विचक्ष्णो विद्वष्टा । किंच कविः ज्ञातप्रज्ञस्त्वं देववीतमोऽत्यंतं देवकामोऽभवः ।  
भवसि । अपि च दिवि शुक्लोके सूर्यमा रोहयः । प्रादुर्भावयसि ।

सोम उ सुवाणः सोतृभिरधि षुभिरवीनां ।

अश्वयेव हरिता याति धारया मंद्रया याति धारया ॥ ८ ॥

सोमः । उ । इति । सुवानः । सोतृऽभिः । अधि । सुऽभिः । अवीनां ।

अश्वयाऽइव । हरिता । याति । धारया । मंद्रया । याति । धारया ॥ ८ ॥

सोतृभिरभिपुस्तमिर्धूतिभिः सुवानोऽभिपुस्तमायः सोमोऽवीनां शुभिः ॥ मांस्तुतूनामुपसंस्थानं । पा०  
६. १. ६३. १. इति सागुशब्दस्य सुभावः ॥ समुच्छितैर्वाहीः पविषैरधि याति । अधिवं गच्छति । उ



एति प्रसिद्धी । अक्षयेव वज्रवेद हरिर्वा हरिर्नदीया चारया याति । मंदया मदपारिजात धारया  
द्रोणकसप्तमभिगच्छति ॥

अनूपे गोमागोभिर्क्षाः सोमो दुग्धाभिर्क्षाः ।

समुद्रं न संवरणान्यग्मन्दी मदाय तोशते ॥९॥

अनूपे । गोऽमान् । गोभिः । अक्षारिति । सोमः । दुग्धाभिः । अक्षारिति ।

समुद्रं । न । संवरणानि । अग्मन् । मंदी । मदाय । तोशते ॥९॥

गोमागोयुक्तः सोमोऽनूपे निक्षेपे देहे कच्छे गोभिर्गोविहारी चोरादिभिः सहायाः । चरति । तदे-  
वोच्यते । स सोम आत्मनो मिश्रणार्थं दुग्धाभिर्गोभिः सहायाः । चरति ॥ चरतेर्बुद्धि रूपं ॥ किंच समुद्रं न  
यथा समुद्रमुदकानि गच्छन्ति तद्वत्संवरणानि संमज्जनीयानि रसरूपास्त्राणि द्रोणकसप्तमग्मन् । गच्छन्ति ॥  
गोभिर्बुद्धि बुद्धि रूपं ॥ किंच मंदी मदकरः सोमो मदाय मदायं तोशते । हन्यते । अभिपूयते । तोश-  
तेर्ध्वकर्मा ॥

आ सोम सुवानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।

जनो न पुरि चम्बोर्विश्वरिः सदो वनेषु दधिषे ॥१०॥

आ । सोम । सुवानः । अद्रिऽभिः । तिरः । वाराणि । अव्यया ।

जनः । न । पुरि । चम्बोः । विश्वत् । हरिः । सदः । वनेषु । दधिषे ॥१०॥

हे सोम अद्रिमिर्भावभिः सुवानोऽभिपूयमाणस्त्वमव्ययाविमयाणि वाराणि वासानि पविषाणि तिर-  
स्कुर्वन् व्यवधायकानि कुर्वीणः सन्ना पवस इति शेषः । हरिर्हरितवर्यः स सोमश्चम्बोरधिपवणफलकयोदपरि-  
स्थिते कक्षत्रे विश्वत् । प्रविशति । तच्च दृष्टान्तः । जनो न यथा जनः पुरि पुरे प्रविशति । स त्वं वनेषु काष्ठनि-  
मितेषु पक्षेषु सदः स्थानं दधिषे । करोषि ॥ ॥१३॥

स मामृजे तिरो अखानि मेथो मीळे सप्तिर्न वाजयुः ।

अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्चक्षुभिः ॥११॥

सः । मामृजे । तिरः । अखानि । मेथः । मीळे । सप्तिः । न । वाजऽयुः ।

अनुऽमाद्यः । पवमानः । मनीषिभिः । सोमः । विप्रेभिः । चक्षुऽभिः ॥११॥

वाजयुरज्ञकामोऽखान्वयूनि सूक्ष्माणि मेथो मेथा अवे रोमाणि पविषाणि तिरस्कुर्वन् स सोमो मामृजे ।  
परिशोधयते । अक्षंक्रियते वा । तच्च दृष्टान्तः । सप्तिर्न यथा अयकानैरसो मीळे संयामेऽक्षंक्रियते । कीदृशः ।  
अनुमाद्योऽनुमोदनीयः सर्वैः पवमानो मनीषिभिर्चक्षुभिः पूयमाणः तथर्क्षभिः ॥ वंदसीवनिपाविति तनिप ।  
क्षुतिमग्निर्विप्रेर्मेधाविभिरभिष्टुतो मृष्यते ॥

प्र सोम देववीतये सिंधुर्न पिप्ये अर्यैसा ।

अंशोः पर्यसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतं ॥१२॥

प्र । सोम । देवऽवीतये । सिंधुः । न । पिप्ये । अर्यैसा ।

अंशोः । पर्यसा । मदिरः । न । जागृविः । अच्छ । कोशं । मधुऽश्चुतं ॥१२॥

हे सोम देववीतये देवानां पानाय तदर्थमर्षसा वसतीवर्याख्येनोदकेन प्र पिबे । प्रप्यायसे । तव वृष्टांतः । सिंधुर्न यथा सिंधुदकेन प्रपिबे प्रप्यायते तद्वत् ॥ प्यायतेर्लिटि लिङ्गलोकेति पीमावः ॥ ततः स त्वं मद्विरो न मदकरः सुरादिरिव जागृविर्जागरणशीलः । यद्वा । नः संप्रत्यर्थे । इदानीं मदकरो जागरणशीलस्त्वं । अंशोर्लताखंडश्च पयसा रसेन मधुसुतं रसस्य चारयितारं कोशं द्रोणकलशमच्छाभिगच्छसि ॥

आ ह॒र्यतो अ॒र्जुने अ॒र्त्के अ॒व्यत प्रि॒यः सूनु॑र्न म॒र्ज्यः ।

तमी॑ हि॒न्वत्य॒पसो॒ यथा॒ रथं॑ न॒दीष्व॑ ग॒भस्त्योः ॥ १३ ॥

आ । ह॒र्यतः । अ॒र्जुने । अ॒र्त्के । अ॒व्यत । प्रि॒यः । सूनुः । न । म॒र्ज्यः ।

तं । ई॒ । हि॒न्वन्ति॒ । अ॒पसः॒ । यथा॑ । रथं॑ । न॒दीषु॑ । आ । ग॒भस्त्योः ॥ १३ ॥

हर्यतः सृहणीयः प्रियः प्रीणयिता सूनुर्न सूनुरिव मर्ज्यो मार्जनीयः सोमोऽर्जुनेऽर्जुनवर्णेऽर्त्के रूपे पवित्र आवृत । आवृणोति । तमीमेन सोममंगुल्यो नदीषु नदमानासु वसतीवरीषु गभस्त्योर्बाह्वोराभिमुख्येन हिन्वन्ति । प्रेरयन्ति । तव वृष्टांतः । अपसो यथा वेगवन्तो जना रथं संयामेषु प्रेरयन्ति तद्वत् ॥

अ॒भि सोमा॑स आ॒यवः॒ पव॑न्ते म॒द्यं म॒दं ।

स॒मुद्र॑स्याधि॒ वि॒ष्टपि॑ म॒नीषि॒णो म॒त्स॒रासः॑ स्व॒र्विदः॑ ॥ १४ ॥

अ॒भि । सोमा॑सः । आ॒यवः॒ । पव॑न्ते । म॒द्यं । म॒दं ।

स॒मुद्र॑स्य । अ॒धि॒ । वि॒ष्टपि॑ । म॒नीषि॒णः । म॒त्स॒रासः॑ । स्वःऽवि॒दः ॥ १४ ॥

आयवो गमनशीलाः सोमासः सोमा मद्यं मदकरं मदमात्मीयं रसमभि पवन्ते । अभितो निर्गमयन्ति । कुपेति उच्यते । समुद्रस्यांतरिक्षस्याधि विष्टप्यधिकं समुच्छिते पवित्रे । यद्वा । समुद्रस्य । समुद्रचत्वकाद्रसाः । तस्य कलशस्याधुपरि विष्टपि स्थाने पवित्रे निर्गमयन्ति । कीदृशाः । मनीषिणो मनस ईशितारो मत्सरासो मदकराः स्वर्विदः सर्वस्य खंकाः ॥

तर॑त्समु॒द्रं प॒वमान॑ ऊ॒र्मिणा॒ राजा॑ दे॒व ऋ॒तं बृ॒हत् ।

अ॒र्षेन्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ धर्मे॑णा॒ प्र हि॒न्वान॒ ऋ॒तं बृ॒हत् ॥ १५ ॥

तर॑त् । स॒मुद्रं॑ । प॒वमानः॑ । ऊ॒र्मिणा॑ । राजा॑ । दे॒वः । ऋ॒तं । बृ॒हत् ।

अ॒र्षेत् । मि॒त्रस्य॑ । वरु॑णस्य । धर्मे॑णा । प्र । हि॒न्वानः॑ । ऋ॒तं । बृ॒हत् ॥ १५ ॥

पवमानः पृथमानो देवो द्योतमानो बृहदत्यंतमृतं सत्यभूतो राजा सोमः समुद्रमंतरिक्षं कलशं चोर्मिणा धारया तरत् । तरति । हिन्वानः प्रियमाण अतं बृहदत्यंतं सत्यभूतः स सोमो मित्रस्य वरुणस्य मित्रावरुणयोर्धर्मणा धारणार्थं प्रार्थत् । प्रगच्छति ॥ १४ ॥

नृ॒भि॒र्येमा॑नो ह॒र्यतो॒ वि॒चक्ष॒णो राजा॑ दे॒वः स॒मुद्रि॑यः ॥ १६ ॥

नृ॒ऽभिः॑ । ये॒मा॒नः । ह॒र्यतः॑ । वि॒ऽचक्ष॒णः । राजा॑ । दे॒वः । स॒मुद्रि॑यः ॥ १६ ॥

शुभिः कर्मेणुभिर्येमानो नियम्यमानो हर्यतः सृहणीयो विचक्षणो विद्रष्टा देवो दीप्यमानः समुद्रियोऽंतरिक्षे भवो राजा सोम इन्द्रार्थं पवत इत्युत्तरेण संबंधः ॥ समुद्राभाह इति भवार्थं घप्रत्ययः ॥



इंद्राय पवते मद्ः सोमो मरुत्वते सुतः ।

सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमीं मृजंत्यायवः ॥१७॥

इंद्राय । पवते । मद्ः । सोमः । मरुत्वते । सुतः ।

सहस्रधारः । अति । अव्यं । अर्षति । तं । इमिति । मृजंति । आयवः ॥१७॥

मदो मादकः सुतोऽभिषुतः सोमो मरुत्वते मरुत्सिद्धत रंद्रार्थेन्द्रार्थं पवते । षरति । ततः सहस्रधारो यज्ञधारेणितः सोमोऽत्यमविमयं पविचमत्यर्षति । अतिगच्छति । तमिमं सोममायवो मनुष्या अतिवो मृजंति । शोधयंति ॥

पुनानश्चमू जनयन्मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति ।

अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन्वनेष्वथ ॥१८॥

पुनानः । चमू इति । जनयन् । मतिं । कविः । सोमः । देवेषु । रण्यति ।

अपः । वसानः । परि । गोभिः । उत्तरः । सीदन् । वनेषु । अथ ॥१८॥

चमू ॥ सप्तम्याः पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ चम्वोरधिषवणफलकयोः पुनानः पूयमानोऽभिषूयमाणो मतिं कुतिं जनयन्त्यादयन् कविः क्रांतप्रज्ञः एतादृशः सोमो देवेष्विन्द्रादिषु रण्यति । किंचाप्यो वसतीवरीर्वसान आच्छादयन् वनेषु काष्ठेषु पात्रेषु सीदन् सोमो गोभिर्गोविकारैः क्षीरादिभिः पर्यव्यत । परिदीयते । आच्छाद्यते ॥

तवाहं सोम रारण सख्य इंदो दिवेदिवे ।

पुरुणि बभ्रो नि चरंति मामव परिधीरति तां इहि ॥१९॥

तव । अहं । सोम । रारण । सख्ये । इंदो इति । दिवेऽदिवे ।

पुरुणि । बभ्रो इति । नि । चरंति । मां । अव । परिधीन् । अति । तान् । इहि ॥१९॥

हे इंदो हे सोम तव सख्ये सखिकर्मण्यहं दिवेदिवेऽन्वहं रारण ॥ रणेर्लियुत्तमे णसि रूपं ॥ हे बभ्रो बहुवर्णं सोम पुरुणि बह्वनि रचांसि मां तव सख्ये स्थितं न्यव चरंति । नीचीनं चरंति । बाधते । ये मां बाधते तान्परिधीन्नाशसांस्त्वमतीहि । अतीत्य गच्छ । गहीति यावत् ॥

उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊर्धनि ।

घृणा तपंतमति सूर्य परः शकुना इव पन्निम ॥२०॥

उत । अहं । नक्तं । उत । सोम । ते । दिवा । सख्याय । बभ्रो इति । ऊर्धनि ।

घृणा । तपंतं । अति । सूर्य । परः । शकुनाऽइव । पन्निम ॥२०॥

हे बभ्रो बहुवर्णं हे सोम उतापि च नक्तमुतापि च दिवाहोराचयोः सख्याय सख्याय तवोर्धनि समीपे इहं रम इति शेषः । ते वयं घृणा दीप्त्या तपंतं ज्वलंतं परः परमस्थानस्थितं सूर्यं तदात्मकं त्वामति पन्निम । तव स्थितं त्वां प्राप्तुमतिपेतिम । कथमिव । शकुना इव यथा सुपर्णादयः पक्षिणः सूर्यमतिगच्छन्ति तद्वत् ॥ पतुं गतो । अस्माच्छांदसे क्षिति तमिपत्योऽच्छंदसीत्युपधाक्षोपः ॥ १५ ॥

वावस्त्वोवेऽभिरूपकरणे सोमे मृज्यमान एकलृचः । तच्च मृज्यमान इत्येषा तृतीया । सूचितं च । मृज्यमानः सुहस्ता दशभिर्विवस्वतः । आ० ५. १२. । इति ॥

मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि ।

रयिं पिशंगं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्धसि ॥ २१ ॥

मृज्यमानः । सुहस्त्य । समुद्रे । वाचं । इन्वसि ।

रयिं । पिशंगं । बहुलं । पुरुस्पृहं । पवमान । अभि । अर्धसि ॥ २१ ॥

हे सुहस्त्य । हस्ते मवा हस्ता अंगुलयः । शोमभांगुलिक सोम मृज्यमानः शोधमानस्त्वं समुद्रेऽन्तरिक्षे कलशे वा वाचं शब्दमिन्वसि । प्रेरयसि । किंच हे पवमान पूयमान सोम पिशंगं हिरण्यैः पिशंगवर्णं बज्रं प्रभूतं पुरुस्पृहं बज्रभिः सुहृणीयं रयिं धनमभ्यर्धसि । सोतृणामभिचरसि । प्रचच्छसि ॥

मृजानो वारे पवमानो अब्यये वृषाव चक्रदो वने ।

देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरंजानो अर्धसि ॥ २२ ॥

मृजानः । वारे । पवमानः । अब्यये । वृषा । अव । चक्रदः । वने ।

देवानां । सोम । पवमान । निःऽकृतं । गोभिः । अंजानः । अर्धसि ॥ २२ ॥

हे सोम वृषा वर्षिता त्वं मृजानो वसतीवरीभिर्मृज्यमानोऽलंक्रियमाणोऽव्ययेऽविमये वारं वासे पवित्रे पवमानः पूयमानः सन् वने वननीय उदके वाष्ठे कलशे वाव चक्रदः । अवक्रोदसि । शब्दावसे । ततो हे सोम हे पवमान त्वं गोभिर्गन्धैः वीरादिभिरंजानोऽव्यमानः सन्निष्कृतं संस्कृतं देवानां स्थानमर्धसि । गच्छसि ॥

पवस्व वाजसातयेऽभि विश्वानि काव्या ।

त्वं समुद्रं प्रथमो वि धारयो देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥ २३ ॥

पवस्व । वाजऽसातये । अभि । विश्वानि । काव्या ।

त्वं । समुद्रं । प्रथमः । वि । धारयः । देवेभ्यः । सोम । मत्सरः ॥ २३ ॥

हे सोम विश्वानि सर्वाणि काव्या कविकर्माणि सोचाख्यमित्यस्य वाजसातयेऽन्नलामाय पवस्व । पर । हे सोम देवेभ्यो देवानां मत्सरो मदकरः प्रथमः सर्वदेवानां मुख्यस्त्वं समुद्रमन्तरिक्षं कलशं वा वि धारयः । विशेषेण धारयसि ॥

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोम धर्मेभिः ।

त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण शुभं हिन्वन्ति धीतिभिः ॥ २४ ॥

सः । तु । पवस्व । परि । पार्थिवं । रजः । दिव्या । च । सोम । धर्मेऽभिः ।

त्वां । विप्रासः । मतिऽभिः । विऽचक्षण । शुभं । हिन्वन्ति । धीतिऽभिः ॥ २४ ॥

हे सोम तावृशस्त्वं पार्थिवं रजो लोकं प्रति दिव्यानि च रजांसि प्रति धर्मेभिर्धारकैः सह तु क्षिप्रं पवि पवस्व । परितः पर । हे विचक्षण विद्वष्टः सोम विप्रासो विप्रा मेधाविनो मतिभिः सुतिभिर्धीतिभिरंगुलीभिश्च शुभं चेतवर्णं त्वां हिन्वन्ति । प्रेरयन्ति ॥



पर्वमाना असृक्षत पविचमति धारया ।

मरुत्वतो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥ २५ ॥

पर्वमानाः । असृक्षत । पविच । अति । धारया ।

मरुत्वतः । मत्सराः । इन्द्रियाः । हयाः । मेधां । अभि । प्रयांसि । च ॥ २५ ॥

पर्वमानाः पूयमानाः सोमा धारयात्मीयथा पविचमतीत्याह्वत । ह्वयति । कीदृशः । मरुत्वतो मरु-  
स्त्रियुक्ता मत्सरा मदकरा इन्द्रिया इन्द्रबुद्धाः । मेधां सुतिं प्रयांसि ज्ञानानि चाभिलष्य सोतुभ्य उभयं कर्तुं व-  
हया गन्तार एते ह्वयन्ते ॥

अपो वसानः परि कोशमर्षतीर्दुर्हियानः सोतृभिः ।

जनयज्ज्योतिर्मंदना अवीवशत्ताः कृण्वानो न निर्णिजै ॥ २६ ॥

अपः । वसानः । परि । कोशं । अर्षति । इंदुः । हियानः । सोतृभिः ।

जनयन् । ज्योतिः । मंदनाः । अवीवशत् । गाः । कृण्वानः । न । निर्निजै ॥ २६ ॥

अपो वसतीचरीर्वसान आच्छादयन् सोतृभिरभिषुष्यन्निर्हियानः प्रेर्यमाण इंदुः सोमः कोशं कलशं  
पर्यर्षति । प्रति गच्छति । किंच ज्योतिर्दीप्तिं जनयन्नुत्पादयन् ना गव्यानि घोरादीनि निर्णिजमात्मनो रूपं  
कृण्वानः कुर्वन् मिश्रयन् सोऽयं सोमः । नः संप्रत्यर्थे । इदानीं मंदनाः सुतीरवीवशत् । कामयते ॥ वश  
कांती । जुष्टि चष्टि रूपं ॥ ॥ १६ ॥

पवस्वेति षोडशर्चं पंचमं सूक्तं । आद्यद्वयस्य गौरिवीतिर्नाम शक्तिपुत्र ऋषिः । तृतीयाद्याः शक्तिर्नाम  
वासिष्ठः । ततः पंचानां वृचानामूर्ध्वार्मांगिरस ऋषिश्चा नाम भारद्वाज ऊर्ध्वसस्या नामांगिरसः छतयशा  
नाम कश्चित् सोऽप्यांगिरस ऋणंचयो नाम राजर्षिरित्येते क्रमेणर्षयः । एवं चयोदश गताः । ततस्त्रिषणां  
वासिष्ठः शक्तिः । प्रथमातृतीयाद्या अयुजः ककुभः । द्वितीयाचतुर्थ्याद्या युजः सतीबृहत्याः । स सुन्वे यो  
वसूनामित्येषा तु यवमध्या गायत्री । पवमानः सोमो देवता । तथा चानुकम्यते । पवस्व षोडश गौरिवी-  
तिर्द्वचं शक्तिरेकामूर्ध्वर्चजिघोर्ध्वसस्या छतयशा ऋणंचय इत्युपयो वृचाक्षिप्तः शक्तिः काकुभाः प्रगाथाः स  
सुन्वे गायत्री यवमध्येति ॥ गतो विनिचोगः ॥

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महिं द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥

पवस्व । मधुमत्तमः । इन्द्राय । सोम । क्रतुवित्तमः । मदः । महिं । द्युक्षतमः ।

मदः ॥ १ ॥

हे सोम मधुमत्तमोऽतिशयेन माधुर्योपेतस्त्वमिन्द्रायेंद्रार्थं मदो मदकरः सन् पवस्व । अर । कीदृशः ।  
क्रतुवित्तमोऽत्यंतं प्रज्ञायाः कर्मणो वा संभको महि महान् मंहनीयो वा युषतमोऽत्यंतं दीप्तो मदो मदहेतुः ॥

यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीता स्वर्विदः ।

स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥ २ ॥

यस्य । ते । पीत्वा । वृषभः । वृषायते । अस्य । पीता । स्वः । विदः ।

सः । सुप्रकेतः । अभि । अक्रमीत् । इषः । अच्छ । वाजं । न । नैतशः ॥ २ ॥

वृषमः कामाणां वर्षकं रंद्रो यस्य ते त्वां पीत्वा वृषायते वृषमवदाचरति । किंच स्वर्दृशः सर्वस्य दर्शक-  
स्वास्त्य ते तव पीता पाने सति सुप्रकेतः सुप्रज्ञः स रंद्र इषः शत्रूणामज्ञान्यभ्यक्रमीत् । अभिक्रामति । तच्च  
वृष्टांतः । वाजं जेतशः । एतश्च इत्यश्वनाम । यथाश्वो वाजं संधाममभिगच्छति तद्वत् ॥

त्वं ह्यं॑ ग॒ दैव्या॒ पर्व॑मान॒ जनि॑मानि शु॒मत्त॑मः । अ॒मृत॑त्वाय॒ घोष॑यः ॥ ३ ॥

त्वं । हि॒ । अंग॑ । दैव्या॑ । पर्व॑मान । जनि॑मानि । शु॒मत्त॑मः । अ॒मृत॑त्वाय॒ घोष॑यः ॥ ३ ॥

हे पर्वमान पूयमान सोम शुमत्तमोऽतिशयेन दीप्तिमांस्त्वं हि स्वमेव दैव्या देवसंबंधीनि जनिमानि  
ब्रह्मानि । देवानित्यर्थः । तानमित्यस्यामृतत्वाय तेषाममरणायां क्षिप्रं घोषयः । शब्दायसे ॥ शुक्ति-  
विशब्दे । अंतस्य खेति रूपं । द्विगोदादनिघातः ॥

येना॒ नव॑ग्वो द॒ध्यङ्क॑पोरु॒णुते॒ येन॒ वि॒प्रा॑स आ॒पिरे॒ ।

दे॒वानां॑ सु॒क्ते अ॒मृत॑स्य॒ चारु॑णो॒ येन॒ अ॒वा॑स्यान्शुः ॥ ४ ॥

येन॑ । नव॑ग्वः । द॒ध्यङ्क॑ । अप॑ऽजु॒णुते॒ । येन॑ । वि॒प्रा॑सः । आ॒पिरे॒ ।

दे॒वानां॑ । सु॒क्ते । अ॒मृत॑स्य । चारु॑णः । येन॑ । अ॒वा॑सि । आ॒न॒शुः ॥ ४ ॥

नवग्वो नवनीयगतिः यद्वा नवमिर्मासैः सत्तस्यानुष्ठाता दध्यङ्कुतन्नामकोऽगिरा येन सोमेन पणिमिरप-  
हृताणां गवां क्षारमपोरुते अपाच्छादयति विवृतमकार्षीत् विप्रासस्तमुखाः सर्वे मेधाविनोऽगिरसो येन च  
सोमेनापिरे एतेरपहृता गा आमुवन् किंच देवानामिन्द्रादीनां सुक्ते सुखे यज्ञेन संजाते सति चारुणः  
कल्याणस्यामृतस्योदकस्य संबंधीनि अवांस्यन्नानि येन च सोमेन यजमाना आनशुः आमुवन् अन्नमंत स त्वं  
देवानाममृतत्वाय शब्दायस इति पूर्वैण समन्वयः ॥

एष॒ स्य धा॑रया सु॒तोऽव्यो॒ वारै॑भिः प॒वते॒ म॒दि॑तमः । क्री॒ळन्मू॑र्मि॒रपा॑र्मिव ॥ ५ ॥

एषः॑ । स्यः॑ । धा॑रया । सु॒तः । अव्यः॑ । वारै॑भिः । प॒वते॒ । म॒दि॑न्ऽत॑मः । क्री॒ळन् ।

ऊ॒र्मिः । अपा॑ऽइ॒व ॥ ५ ॥

स्य स एष सुतोऽभिपुतः सोमोऽव्योऽवेर्वरेभिर्वालिस्तेभ्यः पवित्रेभ्यो धारयात्नीयया पवते । कलशममिलय-  
चरति । कीदृशः । मदितमो मादयितृतमोऽपामिवोदकानामूर्मिः संघात इव क्रीळन्नितस्ततः संक्रीडमानः  
पवते ॥ ॥ १७ ॥

य उ॒स्रिया॒ अ॒प्या अ॒न्तर॑श्मनो॒ निर्गा॑ अ॒कृत॑दो॒जसा॑ ।

अ॒भि व्र॑जं त॒त्ति॒षे ग॒व्यम॒श्वं व॒मी॑व धृ॒ष्णो॒वा रु॑ज ॥ ६ ॥

यः॑ । उ॒स्रियाः॑ । अ॒प्याः॑ । अ॒न्तः॑ । अ॒श्मनः॑ । निः॑ । गाः॑ । अ॒कृत॑त् । ओ॒जसा॑ ।

अ॒भि । व्र॑जं । त॒त्ति॒षे । ग॒व्यं॑ । अ॒श्वं॑ । व॒मी॑ऽइ॒व । धृ॒ष्णो॒ इति॑ । आ॒ । रु॑ज ॥ ६ ॥

यः सोम उस्रिया उत्तरणशीला अप्याः ॥ अप इत्यंतरिचनाम । तस्याज्ञवे कंदसीति यत् ॥ अंतरिचस्था  
अहिप्रभृतिभिरसुरैरपहृत्य निहिता गा अपोऽश्मनः । मेघनामेतत् । मेघादंतरोजसा बलेन निरहंतत  
निरच्छिन्त । अंतरिचावुष्टिमकार्षीदित्यर्थः । स त्वमसुरैरपहृतं गव्यं गोसंबन्धिनमश्वमश्वेषु भवं व्रजं समूहमभि  
तत्तिषे । अभितो व्याप्नोषि ॥ तनु विस्तारि । क्वांदसे खिटि तनिपत्तोऽकंदसीत्युपधातोपः ॥ किंच हे धृष्णो  
शत्रुधर्वणशील सोम स त्वं वमीव कवचीव शूर आ रुज । असुरानाजहि ॥



आ सोता परि पिंचिताम्बं न स्तोममपुं रजस्तुरं । वनक्रक्षमुदप्रुतं ॥ ७ ॥

आ । सोत । परि । सिंचित । अम्बं । न । स्तोमं । अपऽतुरं । रजऽतुरं । वनऽक्रक्षं ।  
उदऽप्रुतं ॥ ७ ॥

हे ऋत्विजः आ सोत । सोममभिषुगुत ॥ पुञ् अभिषवे । चोटि च्छांदसो विकरणस्य शुक् । तप्तगप्तनय-  
नाक्षेति तस्य तवादेशः ॥ किंच परि पिंचित । परितस्तं वसतीवर्यादिभिः सिंचत । कीदृशं । अम्बं नाश्रमिव  
वेनिगं स्तोमं स्तोतव्यमपुंरमंतरिचक्षितानामुदकानां प्रेरकं रजस्तुरं तेजसां च प्रेरकं । वनक्रक्षमुदकानामर्षकं ।  
यद्वा । कष्टेषु पात्रेषु विप्रकीर्णं । उदप्रुतमुदके गच्छंतं ज्वमानं सोममभिषुगुताभिपिंचत च ॥

सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने ।

ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥ ८ ॥

सहस्रऽधारं । वृषभं । पयऽवृधं । प्रियं । देवाय । जन्मने ।

ऋतेन । यः । ऋतऽजातः । विऽवृधे । राजा । देवः । ऋतं । बृहत् ॥ ८ ॥

सहस्रधारं वज्रधारेपितं वृषभं कामानां वर्धकं पयोवृधमुदकानां वर्धकं प्रियं प्रीणयितारं तं सोमं देवाय  
देवसंबन्धिने जन्मने देवेभ्यस्तदर्थमभिषुगुत । ऋतजात उदकाव्यातो यो राजा सोम ऋतेन वसतीवर्याद्येनो-  
दकेन विववृधे विशेषेण वर्धते । कीदृशः । देवो ऋतमानः स्तोतव्यो वा ऋतं सत्यभूतः सन् बृहत्प्रदान ।  
तमाप्नुतेति पूर्वेषां समन्वयः ॥

अभि हुस्मं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुः । वि कोशं मध्यमं युव ॥ ९ ॥

अभि । हुस्मं । बृहत् । यशः । इषः । पते । दिदीहि । देव । देवऽयुः । वि । कोशं ।

मध्यमं । युव ॥ ९ ॥

हे इषस्पतेऽन्नस्य पते हे देव स्तोतव्य सोम देवयुर्देवकामस्त्वं युस्मं ऋतमानं बृहत्प्रभूतं यशोऽन्नमसभ्य-  
मभि दिदीहि । अभिसुखेन प्रकाशय । प्रयच्छेत्पर्यः ॥ आसंचितस्याविद्यमानवत्त्वेन पादादिस्वादिधातः ॥  
किंच मध्यममंतरिचक्षितं कोशं मेघं वि युव । वृष्यर्थं विगमय । विस्रेभय ॥

आ वच्यस्व सुदक्ष चम्बोः सुतो विशां वह्निर्न विशपतिः ।

वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः ॥ १० ॥

आ । वच्यस्व । सुऽदक्ष । चम्बोः । सुतः । विशां । वह्निः । न । विशपतिः ।

वृष्टिं । दिवः । पवस्व । रीतिं । अपां । जिन्व । गोऽइष्टये । धियः ॥ १० ॥

हे सुदक्ष सुबल सोम चम्बोरधिषवणफलकयोः सुतोऽभिषुतस्त्वं विशां प्रजानां वह्निर्न वोढा विशपती  
राजेव सर्वासां प्रजानां वोढा त्वमा वच्यस्व । आगच्छ । कलशमापवस्व ॥ वचेर्गत्यर्थस्य व्यत्ययेन शनि रूप ॥  
किंच त्वं वृष्टिं वृष्यमाणामपासुदकानां रीति गतिं दिवो बुभोकात्मवत् । कुरु । ततो गविष्टये गामात्मन  
इच्छन्ने यजमानाय धियः कर्माणि जिन्व । आपुरय ॥ १० ॥

एतमु त्यं मद्च्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः । विश्वा वसूनि बिभ्रतं ॥ ११ ॥

एतं । जुं इति । त्यं । मद्ऽच्युतं । सहस्रऽधारं । वृषभं । दिवः । दुहुः । विश्वा ।

वसूनि । बिभ्रतं ॥ ११ ॥

दिवः देवाकामयमाणा ऋत्विज एतं त्वं तमिमं सोममेव दुङ्गः । दुङ्गः । दुहंति । यावाणो वत्सा  
 ऋत्विजो दुहंतीति तैत्तिरीयकब्राह्मणे । तै० सं० ६. २. ११. ४. । कीदृशं सोमं । मदच्युतं मदस्य प्रेरकं सहस्रधारं  
 वरुधारं वृषभं कामानां वर्षकं विश्वा सर्वाणि वसूनि धनानि बिभ्रतं धारयतं सोमं दुहंति ॥

वृषा वि जज्ञे जनयन्मर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।

स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे चिधात्वस्य दंससा ॥१२॥

वृषा । वि । जज्ञे । जनयन् । अमर्त्यः । प्रतपन् । ज्योतिषा । तमः ।

सः । सुऽस्तुतः । कविऽभिः । निऽनिजं । दधे । चिऽधातुं । अस्य । दंससा ॥१२॥

वृषा कामानां वर्षकोऽमर्त्यो मनुष्यधर्मरहितः सोमो वि जज्ञे । विश्वायति । किं कुर्वन् । जनयञ्छब्दं  
 ज्योतिर्वीत्यादयन् ज्योतिषा स्त्रोत्रेण तमः प्रतपन् प्रज्वलयन् विनाशयन् प्रादुर्भवति । ततः कविभिर्मेधाविभिः  
 स्तोत्रभिः सुष्टुतः स सोमो निर्णिजं निर्णेज्यनहेतुं मिश्रणं गन्धं दधे । धारयति । अथ चिधातु त्रिषु सवनेषु  
 देवानां पोषकं । यद्वा । त्रयः सोमधारका द्रोणकलशादयो यस्मिन् । तद्यज्ञार्थं कर्मास्त्य सोमस्य दंससा  
 कर्मणा ध्रियते खलु ॥

स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानां । सोमो यः सुक्षितीनां ॥१३॥

सः । सुन्वे । यः । वसूनां । यः । रायां । आऽनेता । यः । इळानां । सोमः । यः ।

सुऽक्षितीनां ॥१३॥

स सोमः सुन्वे । अमिसुषुव ऋत्विभिः । यः सोमो वसूनां धनानामानेता यश्च रायां । रांति प्रयच्छंति  
 श्रीरादिकमिति रायो गावः । तेषामानेता यस्तेषां नामज्ञानां च यश्च सोमः सुक्षितीनां सुनिवासानां शोभ-  
 नमनुष्ययुक्तानां गृहाणामानेता विब्रति सोऽभिषुतोऽमुदिति ॥

यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भर्गः ।

आ येन मिचावरुणा करामहे एन्द्रमवसे महे ॥१४॥

यस्य । नः । इन्द्रः । पिबात् । यस्य । मरुतः । यस्य । वा । अर्यमणा । भर्गः ।

आ । येन । मिचावरुणा । करामहे । आ । इन्द्रं । अवसे । महे ॥१४॥

नोऽस्यदीयं यस्य यं सोममिन्द्रः पिबात् पिबति ॥ पा पाने लेख्यहागमः ॥ यं च सोमं मरुतः पिबन्ति  
 वापि चार्यमणैतस्त्रामकेन देवेन सह मगो देवो यं सोमं पिबति येन सोमेन मिचावरुणा मिचावरुणौ वयमा  
 करामहे अमिसुखीकुर्महे तथा महे महतेऽवसे रक्षणाय येन च सोमेनेन्द्रममिसुखीकुर्महे स सोमोऽभिषूयते ॥

इन्द्राय सोम पातवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिंतमः । पवस्व मधुमत्तमः ॥१५॥

इन्द्राय । सोम । पातवे । नृऽभिः । यतः । सुऽआयुधः । मदिन्ऽतमः । पवस्व ।

मधुमत्ऽतमः ॥१५॥

हे सोम मधुमत्तमोऽतिशयेन माधुर्योपेतस्त्वमिन्द्राय पातवे पानार्थं पवस्व । कलशे चर । कीदृशः ।  
 नृभिः कर्मनेतृभिर्ऋत्विगिभिर्यतः संयतः स्वायुधः शोभनस्त्वकपालावायुधोपेतो मदिंतमो मादितुतमः ॥



इंद्रस्य हादि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिंधवः ।

जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टंभ उत्तमः ॥१६॥

इंद्रस्य । हादि । सोमऽधानं । आ । विश । समुद्रंऽइव । सिंधवः ।

जुष्टः । मित्राय । वरुणाय । वायवे । दिवः । विष्टंभः । उत्तमः ॥१६॥

हे सोम त्वमिन्द्रस्य हादि हृदयंगमं हृदयभूतं वा सोमधानं । सोमो निधीयतेऽस्मिन्निति सोमधानः कलशः । तमा विश । प्रविश । तव दृष्टांतः । समुद्रमिव यथा समुद्रं सिंधवो नद्यः प्रविशन्ति तद्वत् । कीदृशस्त्वं । मित्राय वरुणाय वायवे च तेभ्यो जुष्टो दिवो बुलोकस्य विष्टंभो विष्टंभचिता स्थापयितोत्तमः सर्वेषामुत्कृष्टतमस्त्वं कलशश्चा विश ॥ ॥१६॥

परि प्रेति द्वाविंशत्युचं द्वैपदं षष्ठं सूक्तं । यज्ञे सदस्यवस्थितहोत्रीयादिधिष्ण्योपिता अग्नयो नामेश्वरपुत्रा अग्नयः । विंशतिका द्विपदा विराजः । पवमानः सोमो देवता । तथा चाशुक्रांतं । परि प्र द्वाधिकाग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरा द्वैपदमिति ॥ गतो विनियोगः ॥

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥

परि । प्र । धन्व । इंद्राय । सोम । स्वादुः । मित्राय । पूष्णे । भगाय ॥१॥

हे सोम स्वादुः स्वादुरसस्तमिन्द्राय मित्राय पूष्णे भगावैतेभ्यो देवभ्यः परि प्र धन्व । परितः पाचिषु प्रचर ॥

इंद्रस्ते सोम सुतस्य पेयाः क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥२॥

इंद्रः । ते । सोम । सुतस्य । पेयाः । क्रत्वे । दक्षाय । विश्वे । च । देवाः ॥२॥

हे सोम सुतस्वामिषुतस्य ते तव स्वं भागमिन्द्रः पेयाः । पेयात् । पिबन्तु ॥ पातिराशीर्जिह्वि रूपं । पुरुष-व्यत्ययः ॥ किमर्थं । क्रत्वे क्रतवे प्रज्ञानाय दक्षाय बलाय च । किंचामी विश्वे सर्वे देवाश्च तदीयमंगं पिबन्तु ॥

एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्षे दिव्यः पीयूषः ॥३॥

एव । अमृताय । महे । क्षयाय । सः । शुक्रः । अर्षे । दिव्यः । पीयूषः ॥३॥

हे सोम शुक्रो दीप्तो दिव्यो दिवि मवः पीयूषो देवैः पातव्यः स त्वममृतायामरण्याय महे महते चक्षाय । नेवासाय शिवार्षे । एवं पवस्व । चर ॥

पवस्व सोम महान्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥४॥

पवस्व । सोम । महान् । समुद्रः । पिता । देवानां । विश्वा । अभि । धाम ॥४॥

हे सोम महान् देवेभ्यो दीयमानत्वेन महत्त्वयुक्तः समुद्रः समुदगः । यस्मात्समुद्रं वन्ति रसास्त्रादृशः । पिता सर्वेषां पालयिता त्वं देवानां विश्वा विश्वानि सर्वाणि धाम धामानि शरीराण्यभिजाय पवस्व ॥

शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै ॥५॥

शुक्रः । पवस्व । देवेभ्यः । सोम । दिवे । पृथिव्यै । शं । च । प्रजायै ॥५॥

हे सोम शुक्रो दीप्तस्त्वं देवेभ्यो देवार्थं पवस्व । चर । किंच दिवे पृथिव्यै च वावापृथिवीभ्यां च ततः प्रजायै प्रजाभ्यश्च शं सुखं च कुरु ॥

दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥ ६ ॥

दिवः । धर्ता । असि । शुक्रः । पीयूषः । सत्ये । विधर्मन् । वाजी । पवस्व ॥ ६ ॥

हे सोम शुक्रो दीप्तः पीयूषः पातव्यस्त्वं दिवो युजोक्तस्य धर्ता धारकोऽसि । वाजी वलवान् स त्वं सत्ये सत्यभूते विधर्मन् विधर्मणि । विविधकर्माय ऋत्विजो यक्षिन् । यद्वा । विविधसोमादिहविषां धारके । यक्षिन्वक्षे पवस्व । चर ॥

पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्यः ॥ ७ ॥

पवस्व । सोम । द्युम्नी । सुधारः । महान् । अवीनां । अनु । पूर्यः ॥ ७ ॥

हे सोम द्युम्नी । युजं योततेर्यशो वाहं वेति यास्कः । अत्रवान् यशस्वी वा सुधारः शोभनधारायुक्तः पूर्यः पुरातनस्त्वं महान् महतामवीनां रोम्णां रोमभ्यः सकाशादनुक्रमेण पवस्व । चर ॥

नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वा नि मद्रः स्वर्वित् ॥ ८ ॥

नृभिः । येमानः । जज्ञानः । पूतः । क्षरत् । विश्वानि । मद्रः । स्वःऽवित् ॥ ८ ॥

नृभिः कर्मणेतुभिर्ऋत्विग्भिर्येमानो नियम्यमानो जज्ञानो जायमानः पूतः पवित्रेण शोधितो मद्रो मोदमानः स्वर्वित्सर्वज्ञः एतादृशः सोमो विश्वानि सर्वाणि धनान्यसम्भं चरत् । चरतु । ददातु ॥

इदुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वा नि द्रविणानि नः ॥ ९ ॥

इदुः । पुनानः । प्रजां । उराणः । करत् । विश्वानि । द्रविणानि । नः ॥ ९ ॥

पुनानः पूयमान उराणः । उराण उर ऊर्वाणः । मि० ६. १७. । इति यास्कः । देवान् वज्र ऊर्वाण इदुः सोमो नोऽस्माकं प्रजामपत्यादिकां विश्वानि व्याप्तानि द्रविणानि धनानि च करत् । करोतु ॥ करो-तेषां हि रूपं ॥

पवस्व सोम क्रत्वे दक्षायाश्चो न निक्तो वाजी धनाय ॥ १० ॥

पवस्व । सोम । क्रत्वे । दक्षाय । अश्वः । न । निक्तः । वाजी । धनाय ॥ १० ॥

हे सोम अश्वो नाश्व इव निक्तो वसतीवरीभिरऋत्विक्निक्तो वाजी वेगवांस्त्वं क्रत्वे क्रतवे प्रज्ञानाय दक्षाय वजाय धनाय धनार्थं च पवस्व । चर ॥ ॥ २० ॥

तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥ ११ ॥

तं । ते । सोतारः । रसं । मदाय । पुनन्ति । सोमं । महे । द्युम्नाय ॥ ११ ॥

सोतारोऽभिषोतार ऋत्विजो हे सोम ते तव खभूतं रसं मदाय मदार्थं पुनन्ति । तदेवोच्यते । महे महते द्युम्नाय । युजं योततेर्यशो वाहं वा । अत्राय यशसे वा सोमं पुनन्ति । शोधयति । यद्वा । सोममभिपूयमाणं तं रसं पुनन्तीत्येकवाक्यतया योजनीयं ॥

शिष्टुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इदुं ॥ १२ ॥

शिष्टुं । जज्ञानं । हरिं । मृजन्ति । पवित्रे । सोमं । देवेभ्यः । इदुं ॥ १२ ॥

शिष्टुमेषां पुत्रभूतं जज्ञानं जायमानं हरिं हरितवर्णमिदुं दीप्तं सोमं देवेभ्यो देवार्थं पवित्रे मृजन्ति । ऋत्विजो मार्जयति ॥



इदुः पविष्ट चारुर्मदायामुपस्थे कविर्भगाय ॥१३॥

इदुः । पविष्ट । चारुः । मदाय । अपां । उपस्थे । कविः । भगाय ॥१३॥

चारुः कक्षाण्यरूपः कविः ज्ञातप्रज्ञ इदुस्पासुदकानामुपस्थ उपस्थानिऽतरिषि पविषि वा मदाय मदार्थं भगाय भजनीयधनार्थं च पविष्ट । पवति ॥

विभर्ति चाविद्रस्य नाम येन विश्वानि वृचा जघान ॥१४॥

विभर्ति । चारु । इद्रस्य । नाम । येन । विश्वानि । वृचा । जघान ॥१४॥

स सोमसाय कक्षाण्यमिन्द्रस्य नाम शरीरं विभर्ति । धारयति । पोषयति । येन शरीरेणैन्द्रो विश्वानि सर्वाणि वृचाणि पापकृपाणि रक्षांसि जघान हतवान् ॥

पिबंत्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रितस्य नृभिः सुतस्य ॥१५॥

पिबन्ति । अस्य । विश्वे । देवासः । गोभिः । श्रितस्य । नृभिः । सुतस्य ॥१५॥

विश्वे सर्वे देवासो देवा गोभिर्गोविकारिः श्रितस्य मिश्रितं नृभिः कर्मेतुभिर्हस्तिभिः सुतस्याभिपुत्रमस्यामुं सोमं पिबन्ति । द्वितीयार्थे पयः ॥

प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधारस्तिरः पविचं वि वारमव्यं ॥१६॥

प्र । सुवानः । अक्षारिति । सहस्रधारः । तिरः । पविचं । वि । वारं । अव्यं ॥१६॥

सुवानोऽभिषूयमाणः अत एव सहस्रधारो वज्रधारायुतः सोमोऽव्यमविमवं वारं वाचं पविचं तिरौ व्यवधायकं कुर्वन् प्राचाः । विविधं प्रचरति ॥ चरतेर्बुद्धि रूपं ॥

स वाज्यक्षाः सहस्रेता अज्जिर्मुजानो गोभिः श्रीणानः ॥१७॥

सः । वाजी । अक्षारिति । सहस्रेताः । अतऽभिः । मृजानः । गोभिः । श्रीणानः ॥१७॥

वाजी वेगवान्वेगवान्वा स सोमोऽधाः । चरति । कीदृशः । सहस्रेता वज्रेतस्को वज्रदकोऽज्जिर्वसती-चरीभिर्मुजानो मृज्यमानो गोभिर्गोविकारिः श्रीरादिभिः श्रीणानः श्रीयमाणः ॥

प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥१८॥

प्र । सोम । याहि । इद्रस्य । कुक्षा । नृभिः । येमानः । अद्रिभिः । सुतः ॥१८॥

हे सोम नृभिर्हस्तिभिर्गोभिः मृज्यमानोऽद्रिभिर्वापभिः सुतोऽभिपुत्रस्त्वमिन्द्रस्य कुक्षा ॥ सप्तम्या ङादेशः ॥ कुष्ठाबुदरभूते कक्षे वा प्र याहि । प्रकर्षेण गच्छ ॥

असर्जि वाजी तिरः पविचमिद्राय सोमः सहस्रधारः ॥१९॥

असर्जि । वाजी । तिरः । पविचं । इद्राय । सोमः । सहस्रधारः ॥१९॥

वाजी वज्रवान्वेगवान्वा पविचं तिरस्कुर्वन् सहस्रधारो वज्रधारः सोम इद्रयेंद्रार्थमसर्जि । सज्यति ॥

अंजत्येनं मध्वो रसेनेद्राय वृष्ण इदुं मदाय ॥२०॥

अंजन्ति । एनं । मध्वः । रसेन । इद्राय । वृष्णे । इदुं । मदाय ॥२०॥

वृष्णे कामानां वर्षिष इन्द्रायेंद्रस्य मदाय मदार्थं मध्वो मधुवो रसेन गव्येनैवमिदं सोममृत्विजोऽजंति । संयोजयंति ॥

देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसेऽपो वसानं हरिं मृजंति ॥ २१ ॥

देवेभ्यः । त्वा । वृथा । पाजसे । अपः । वसानं । हरिं । मृजंति ॥ २१ ॥

हे सोम अप उदकानि वसानमाच्छादयंतं हरिं हरितवर्णं त्वा त्वां वृथानायासेनर्त्विजो मृजंति । शोधयंति । किमर्थं । देवेभ्यो देवानां पानार्थं पाजसे तेषां वसार्थं ॥

इंदुरिंद्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुयो रिणन्पः ॥ २२ ॥

इंदुः । इंद्राय । तोशते । नि । तोशते । श्रीणन् । उयः । रिणन् । अपः ॥ २२ ॥

इंदुः सोम इंद्रायेंद्रार्थं तोशते । हन्यते । अभिभूयते । नि तोशते । नितरामभिभूयते । तोशतिर्वधकर्मा । कोदृशः । श्रीणन् प्रेरयन् सोमोऽभिभूयते ॥ २१ ॥

पर्यु ध्विति द्वादशर्चं सप्तमं सूक्तं । अरणचसदसू राजर्षी असू सूक्तस्य द्रष्टारौ । आदितस्त्रिषः पिपी-  
लिकमथा अनुष्टुभो द्वादशकाष्टकद्वादशकवत्यः । ततः षडूर्ध्वबृहत्यो द्वादशकवत्यवत्यः । अथ दशम्याद्यास्त्रिषो  
विराजः । पवमानः सोमो देवता । तथा चानुक्रांतं । पर्यु षु द्वादश अरणचसदसू तिस्रोऽनुष्टुभः पिपीलि-  
कमथाः षडूर्ध्वबृहत्यस्त्रिषश्च विराज इति ॥ गतो विनियोगः ॥

पर्यु षु प्र धन्व वाजसातये परि वृचाणि सृक्षणिः ।

द्विषस्तरध्या ऋण्या न इयसे ॥ १ ॥

परि । ऊं इति । सु । प्र । धन्व । वाजऽसातये । परि । वृचाणि । सृक्षणिः ।

द्विषः । तरध्वे । ऋणऽयाः । नः । इयसे ॥ १ ॥

हे सोम सु सुष्ठु वाजसातयेऽसम्भ्रमन्नदानायैव परि प्र धन्व । परितः प्रगच्छ । यदा । वाजसातये  
ऽन्नलाभाय संपातं प्रगच्छ । किंच सृक्षणिः सहजशीलस्त्वं वृचाणि शत्रून्परि गच्छ । तदेवोच्यते । नोऽस्माक-  
मृण्या अयानां यापयिता त्वं द्विषः शत्रूंस्तरध्वे तरीतुं हंतुमीयसे । परिगच्छसि ॥

अनु हि त्वा सुतं सोम मदांसि महे समर्यराज्ये ।

वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ २ ॥

अनु । हि । त्वा । सुतं । सोम । मदांसि । महे । समर्यऽराज्ये ।

वाजान् । अभि । पवमान् । प्र । गाहसे ॥ २ ॥

हे सोम सुतमभिषुतं त्वा त्वां वयमनु मदांसि हि । अनुमदामः । अनुक्रमेणामिष्टुमः खलु । हे पवमान  
सोम स त्वं महे महति समर्यराज्ये महत्समनुषं त्वदीयं राज्यमनुपालयितुं वाजाञ्शत्रुबलान्यभिलक्ष्य प्र  
गाहसे । प्रगच्छसि ॥

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्रं ना पयः ।

गोजीरया रंहमाणः पुरंध्या ॥ ३ ॥



अजीजनः । हि । पवमान् । सूर्ये । विऽधारे । शक्नना । पर्यः ।  
गोऽजीरया । रंहमाणाः । पुरंऽध्या ॥३॥

हे पवमान सोम त्वं पदः पयस उदकस्य दिधारे विधारेकेऽन्तरिक्षे शक्नना समर्चनं नसेन सूर्यमजी-  
जनो हि । उत्पादितवान्भवसि खनु । कीदृशः । गोजीरया क्षीतृभ्यो बवां प्रेरकेण । क्षीतृणां प्रेरितपशुके-  
नेत्यर्थः । तादृशेण पुरंध्या वज्रविध्वंसकानि वृत्तो रंहमाणा देवं कुर्यात्स्वं सूर्यमजीजनः ॥

अजीजनो अमृतं मर्त्येष्वौ क्षृतस्य धर्मेक्ष्मृतस्य चारुणः ।

सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥४॥

अजीजनः । अमृतं । मर्त्येषु । आ । क्षृतस्य । धर्मेन् । अमृतस्य । चारुणः ।

सदा । असरः । वाजं । अच्छ । सनिष्यदत् ॥४॥

हे अमृत मरणधर्मरहित सोम त्वमृतस्य सञ्जन्तस्य चारुणः कक्षाणस्त्रामृतस्योदकस्य धर्मन्धारकेऽन्तरिक्षे  
सूर्यमजीजनः । किमर्थं । मर्त्येष्वामृतस्य धर्मेक्ष्मृतस्य चारुणः । किं च सनिष्यदत् संभरणं स त्वं वाजमच्छ  
संभारममिक्षच्छ सदासरः । सरसि । गच्छसि ॥

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जानपानमक्षितं ।

शर्याभिर्न भरमाणो गर्भस्थोः ॥५॥

अभिऽअभि । हि । श्रवसा । ततर्दिथ । उत्सं । न । कं । चित् । जन्ऽपानं । अक्षितं ।

शर्याभिः । न । भरमाणः । गर्भस्थोः ॥५॥

हे सोम त्वं श्रवसात्तेन हेतुनाभ्यभि ततर्दिथ हि । पवित्रमभितृणयानसि । क्षिप्तयानसि । तत्र वृष्टांतदर्थं ।  
उत्सं न यथा कश्चिज्जानपानं । अक्षिज्जना उदकं पिबन्ति । तमक्षितमधीयं कं चित् कंचनोत्समुत्तरणशीलं  
वायादिकमभितृणयति । अथवा कश्चिन्नमस्त्योर्वाहोः शर्याभिरंगुलीभिर्भरमाण उदकं संभरणं कंचिदभि-  
तृणयति तद्वत् ॥

आदीं के चित्पश्यमानासु आर्षं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।

वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥६॥

आत् । ईं । के । चित् । पश्यमानासः । आर्षं । वसुऽरुचः । दिव्याः । अभि । अनूषत ।

वारं । न । देवः । सविता । वि । व्यूर्णुते ॥६॥

आदन्तरं पञ्चमानास एनं पञ्चतो दिव्या दिवि मवा वसुरुचो नाम के विद्वान् बंधुं साधुमीमेनं  
सोममभ्यनूषत । अभ्यनुवन् । कक्षादन्तरमिति उच्यते । देवो योतमानः सविता सर्वस्य प्रेरकः सूर्यो वारमा-  
वरकमंधकारं न व्यूर्णुते । नापगमयति । तदेनमनुवन् । सूर्योदयात्प्रागेव हि सोमं व्यूर्णुति खनु ॥ २२ ॥

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।

स त्वं नो वीर वीर्यीय चोदय ॥७॥

त्वे इति । सोम । प्रथमाः । वृक्तऽबर्हिषः । महे । वाजाय । श्रवसे । धियं । दधुः ।

सः । त्वं । नः । वीर । वीर्यीय । चोदय ॥७॥

हे सोम प्रथमाः पुरातनाः । यद्वा । यदृत्तेन सर्वेषां जनानां सुखाः । वृत्तवर्हिषः । वृत्तं क्षिप्रं वर्हिषेय-  
चार्थमिति वृत्तवर्हिषो यजमानाः । महे महते वावाय बलाय अवसेऽन्नाय च धियं बुद्धिं ते त्वयि दधुः ।  
निहितवतः । तस्मात् हे वीर समर्थ सोम स तादृशस्त्वं नोऽस्मानपि संयामे वीर्याय सामर्थ्याय चोदय ।  
प्रेरय । यद्वा । वीर्याय वीरे पुत्रे मवाय सुखायास्मान्प्रेरय ॥

दिवः पी॒यूषं पू॒र्यं यदु॒क्थ्यं म॒हो गा॒हादिव आ॒ निर॑धुक्षत ।

इ॒न्द्रम॒भि जा॒यमानं॒ सम॑स्वरन् ॥ ८ ॥

दिवः । पी॒यूषं । पू॒र्यं । यत् । उ॒क्थ्यं । म॒हः । गा॒हात् । दिवः । आ । निः । अ॒धुक्ष॑त् ।

इ॒न्द्रं । अ॒भि । जा॒यमानं॒ । सं । अ॒स्वर॑न् ॥ ८ ॥

दिवो युक्तोकात् तच्च स्थितिर्देवैः पीयूषं पादत्वं पूर्यं प्रत्नं यत्सोमरूपमन्नमुक्थ्यं प्रशस्त्रमस्ति तं सोमं महो  
महतो गाहाद्वहनादिवो युक्तोकात्तिरधुक्षत । आभिसुक्तेन निर्दुहन्ति । ततो दुग्धमिन्द्रमभिजप्य जायमानं तं  
सोमं समस्वरन् । सोतारः संकुर्वन्ति ॥

अ॒ध॒ यदि॒मे प॑वमान॒ रोद॑सी इ॒मा च॒ विश्वा॒ भुव॑ना॒भि म॒ज्मना॑ ।

यू॒धे न॒ नि॒ष्टा वृ॑ष॒भो वि॒ तिष्ठ॑से ॥ ९ ॥

अ॒ध॒ । यत् । इ॒मे इति॑ । प॒वमा॑न् । रोद॑सी इति॑ । इ॒मा । च॒ । विश्वा॑ । भुव॑ना । अ॒भि ।  
म॒ज्मना॑ ।

यू॒धे । न॒ । निः॒ऽस्थाः । वृ॑ष॒भः । वि॒ । ति॒ष्ठसे॑ ॥ ९ ॥

हे पवमान सोम अधानंतरं यवधेमे रोदसी वावापृथिव्याविमेमानि विश्वा विश्वानि सुवगा मृतवाताणि  
च मज्मना बलेनाभि तिष्ठसि स त्वं तथा कुर्वन् सुपनेषु वि तिष्ठसे । तच्च दृष्टांतः । यूधे न यथा कश्चिदुपमो  
नवां यूधे वृद्धे विष्टा निःष्ठितो वर्तते तद्वयूषस्वाभीयेषु मृतवातेषु निःष्ठितो भवसि ॥

सोमः पुना॒नो अ॒प्यये॒ वारे॒ शि॒शुर्न॒ क्री॒ळन्प॑वमानो अ॒क्षाः ।

स॒हस्र॑धारः श॒तवा॑ज॒ इ॒न्द्रः ॥ १० ॥

सोमः । पुना॒नः । अ॒प्यये॑ । वारे॑ । शि॒शुः । न॒ । क्री॒ळन् । प॑वमानः । अ॒क्षारि॑ति ।

स॒हस्र॑ऽधारः । श॒तऽवा॑जः । इ॒न्द्रः ॥ १० ॥

पुनानः पूयमानः पवमानः पूतः सोमोऽप्ययेऽपिमये वारे वासि पविषि शिशुर्न शिशुरिव क्रीळन्नितस्ततः  
संजीवमानः सप्तधाः । चरति । कीदृशः । सहस्रधारो वज्रधारायुक्तः शतवाजो वज्रबल इन्द्रोऽस्ति ॥

ए॒ष पुना॒नो म॑धुमाँ ऋ॒तावे॑न्द्राये॒न्द्रः प॑वते स्वा॒दुर्मु॑र्मिः ।

वा॒जस॑निर्व॒रिवो॒विद्व॑यो॒धाः ॥ ११ ॥

ए॒षः । पुना॒नः । म॑धुऽमान् । ऋ॒ताऽवा॑ । इ॒न्द्राय॑ । इ॒न्द्रः । प॑वते । स्वा॒दुः । उ॒र्मिः ।

वा॒जऽस॑निः । व॒रिवः॑ऽवित् । व॒यः॑ऽधाः ॥ ११ ॥

पुनानः पूयमानो मधुमान् माधुर्येणैव ऋतवर्तवान् यज्जवाभिन्द्रः चरणशीलः स्वादुः स्वादुकर



अग्निरेव रसधारासंघ इन्द्रार्थेन्द्रार्थं पवते । धरति । कीदृशः । वाक्सगिरसस्तदा दाता वरिषोविजगत्संभक्तो  
वयोधा आयुषो दाता ॥

स पवस्व सहमानः पृतन्यूनसेधजक्षांस्यप दुर्गहाणि ।

स्वायुधः सासहान्तोम शचून् ॥ १२ ॥

सः । पवस्व । सहमानः । पृतन्यून । सेधन् । रक्षांसि । अयं । दुःऽगहानि ।

सुऽआयुधः । ससहान् । सोम । शचून् ॥ १२ ॥

हे सोमं स तावृशस्त्वं पवस्व । किं कुर्वन् । पृतन्यून ॥ कव्यध्वरपृतनस्यार्धं क्षीय इति काचि परतो  
ऽकारक्षोपः ॥ संधामकामाञ्चपून् सहमानोऽभिमवन् तथा दुर्गहाणि कैचिदपि दुर्गमाणि रक्षांस्यप सेधन्नप-  
गमयन् हिंसन् । किंच स्वायुधः शोमनायुधः सञ्चपून्सासहानभिभवन्नमितपन् पवस्व ॥ १२३ ॥

अथा रुचेति तुचमष्टमं सूक्तं पश्यच्छेपपुचक्षानानताख्यस्यार्धमत्यष्टिच्छंदस्कं । पवमानसोमदेवताकं । तथा  
चानुक्रम्यते । अथा रुचा तुचमजानतः पारच्छेपिरात्यष्टमिति ॥ गतो विनियोगः ॥

अथा रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति स्वयुग्वंभिः सूरौ न स्वयुग्वंभिः ।

धारां सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।

विश्वा यदूपा परिंयात्यृक्कभिः सप्तास्येभिर्जृक्कभिः ॥ १ ॥

अथा । रुचा । हरिण्या । पुनानः । विश्वा । द्वेषांसि । तरति । स्वयुग्वंभिः । सूरः ।

न । स्वयुग्वंभिः ।

धारा । सुतस्य । रोचते । पुनानः । अरुषः । हरिः ।

विश्वा । यत् । रूपा । परिंयाति । जृक्कंभिः । सप्तास्येभिः । जृक्कंभिः ॥ १ ॥

पुनानः पूषमानः सोमो हरिण्या हरितवर्णयायागया रुचा रोचमानया धारया विश्वा सर्वाणि  
द्वेषांसि द्वेषुणि रक्षांसि तरति । विनाशयति । तत्र दृष्टान्तः । सूरौ न यथा सूर्यः स्वयुग्वंभिः स्वयं युक्ति  
रस्मिन्मिच्छामांसि हिंसति तद्वत् । स्वयुग्वंभिरिति द्विरस्मिरादरार्था । यद्वा । धारया युक्तः सोमः स्वीयैर्युक्ति-  
क्षेत्रोमी रक्षांसि तरति । तस्य सुतस्याभिपुतस्य सोमस्य धारा रोचते । दीप्यते । पुनानः पूषमानो हरिर्हरि-  
तवर्णः सोमोऽवयव आरोचमानो भवति । यद्यः सोमः सप्तास्येमी रसहरणशीलाक्षैर्जृक्कभिः युक्तिमन्निर्जृक्क-  
मिक्षेत्रोभिर्विश्वा विश्वाणि व्याप्तानि रूपा रूपाणि गणवाणि परिंयाति गच्छति व्याप्नोति ॥

त्वं त्यत्पणीनां विंदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दमं जृतस्य धीतिभिर्दमे ।

परावतो न साम तद्यचा रण्यंति धीतयः ।

चिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ २ ॥

त्वं । त्यत् । पणीनां । विदुः । वसु । सं । मातृभिः । मर्जयसि । स्वे । आ । दमे ।

जृतस्य । धीतिभिः । दमे ।

परावतः । न । साम । तत् । यचं । रण्यंति । धीतयः ।

चिधातुभिः । अरुषीभिः । वयः । दधे । रोचमानः । वयः । दधे ॥ २ ॥

हे सोम त्वं त्वत्पणीनां वसु पणिमिरपहतं गवात्मकं धनं विदः । अलमथाः । आ अपि चर्तस्व यज्ञस्व  
धोतिभिर्धाचोभिर्मातुभिर्वसतीवरीभिः स्व आत्मीये दमे गृहभूते दमे यज्ञे सं मर्जयसि । सम्यक् शुद्धो भवसि ।  
परावतो न दूरस्थाद्देशाद्यथा साम सामध्वनिः श्रूयते तथा तव तत्सामध्वनिः सर्वैः श्रूयते । असौ सोमाभि-  
षवाभिप्रायेणोक्तः । यच्च यस्मिञ्शब्दे धीतयः कर्मणो धर्तारो यजमाना रणन्ति रमन्ति । रोचमानः सोमस्त्रि-  
धातुभिस्त्रयाणां लोकानां धारयित्रीभिर्मातुभिर्वसतीवरीमिरक्षीमिरारोचमानाभिर्दीप्तिभिर्वयोऽन्नं दधे ।  
सोतुभ्यः प्रयच्छति । पुनर्वयो दध इत्यादरार्थं ॥

पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।

अगमन्नुक्थानि पौंस्येद्रं जैचाय हर्षयन् ।

वज्रश्च यज्ञवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥३॥

पूर्वा । अनु । प्रदिशं । याति । चेकितत् । सं । रश्मिऽभिः । यतते । दर्शतः । रथः ।

दैव्यः । दर्शतः । रथः ।

अगमन् । उक्थानि । पौंस्या । इन्द्रं । जैचाय । हर्षयन् ।

वज्रः । च । यत् । भवथः । अनपऽच्युता । समत्ऽसु । अनपऽच्युता ॥३॥

चेकितज्जानानः सोमः पूर्वा प्राचीं प्रदिशं प्रछष्टां दिशमनु याति । अनुगच्छति । किंच दर्शतः सर्वेदर्श-  
नीयो दैव्यो देवेषु भवन्नाथ रथः सूर्यरश्मिभिः सं यतते । संगच्छते । पुनर्दर्शतो रथ इत्यादरार्थं । ततः पौंस्या  
पुंस्त्वावयमान्युक्थानि सोचागमन् । इन्द्रं गच्छति । तथा जैचाय जयार्थं तानि सोचाणीन्द्रं हर्षयन् ।  
हर्षयन्ति । तथा तस्य वज्रश्च तमिन्द्रं गच्छति । यद्यदा समत्सु संग्रामेष्वनपच्युतानपच्युतौ शुभिरपराजितौ  
सोम त्वं चेन्द्रश्च युवां सह भवथः तदा सोचागमनादीनि भवन्ति । पुनरनपच्युतेत्यादरार्थं ॥ ॥२४॥

जानानमिति चतुर्ध्वं नवमं सूक्तमागिरसस्य शिशुनाश्च आर्षं । पंचपदा पंक्तिश्छंदः । पचमानः सोमो  
देवता । तथा चानुक्रांतं । जानानं चतुष्कं शिशुः पांक्तं हीति ॥ गतो विनियोगः ॥

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानां ।

तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वंतमिच्छतीन्द्रायेंदो परि स्रव ॥१॥

नानानं । वै । ऊं इति । नः । धियः । वि । व्रतानि । जनानां ।

तक्षा । रिष्टं । रुतं । भिषक् । ब्रह्मा । सुन्वंतं । इच्छति । इन्द्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥१॥

अधिरतदादिभिस्त्रिभिः सूक्तेरपरिस्रवतः सोमस्याजामित्वाय मनसो विनोदनं कुर्वन्नाह । हे सोम नो  
ऽस्माकं धियः कर्माणि जानानं जानाजातीयकानि बह्वनि भवन्ति । वैशब्दः प्रसिद्धार्थयोतत्तार्थः । उ इति  
पूरणः । तथाप्येषामपि जनानां व्रतानि कर्माणि विविधानि भवन्ति । तथा त्वष्टा रिष्टं दास्यतश्चामिच्छति ।  
तथा भिषक्चिकित्सको रुतं रोगमिच्छति । ब्रह्मा ब्राह्मणः सुन्वंतं सोमामिषं कुर्वन्तं यजमानमिच्छति ।  
तथाह त्वत्परिस्रवणमिच्छामि । तस्मादे इंदो सोमेन्द्रायेंद्रार्थं परि स्रव । परितः चर ॥

जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानां ।

कार्मारो अशमभिर्द्युभिर्हिरण्यघंतमिच्छतीन्द्रायेंदो परि स्रव ॥२॥



जरतीभिः । ओषधीभिः । पर्णेभिः । शकुनानां ।

कार्मारः । अश्मभ्यः । द्युभ्यः । हिरण्यवतं । इच्छति । इंद्राय । इंद्रो इति ।

परि । स्रव ॥ २ ॥

जरतीभिर्जीर्णाभिरोषधीभिरिषवः क्रियन्ते तथा शकुनानां पर्णेभिरिषूणां पचभूतैः पर्णैश्च क्रियन्ते तथा बुभिर्दीप्ताभिरिषूणां तेजनार्थाभिरश्मभिः शिलामिश्च क्रियन्ते । एतैः कार्मारोऽयस्कारो हिरण्यवतमाद्यं पुष्यमिच्छति । तथाहं स्वत्परिस्रवणमिच्छामि । तस्मादिंद्रो इंद्राय परि स्रव ॥

कारूरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणीं नृना ।

नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेंद्रो परि स्रव ॥ ३ ॥

कारूः । अहं । ततः । भिषक् । उपलऽप्रक्षिणी । नृना ।

नानाऽधियः । वसूऽयवः । अनु । गाऽइव । तस्थिम । इंद्राय । इंद्रो इति । परि । स्रव ॥ ३ ॥

अभिः प्रवृत्तसोमयागः सन् दशापविचात्सोमे चरति प्रतिबंधकपापापनुत्तये पुरश्चरितानुकीर्तनपुरः-  
सरमध्विषणां चकार । तावदहं कारूः स्तोमानां कर्तास्मि । तत इति संताननाम । तन्यतेऽस्मादिति ततः  
पिता । तन्यतेऽसाविति वा ततः पुत्रः । भिषग्भेषजज्ञात् । यज्ञस्य ब्रह्मेत्यर्थः । सर्वे चत्वा विषया भिषज्यतीति  
श्रुतेः । तथोपलप्रक्षिणी । उपलेषु बालुकासु प्रक्षिणीति यवान्निहन्ति मृज्यतीति । यद्वा । दृषदादिपुपलेषु  
मृष्टान्यवान्निहन्ति चूर्णयतीति । अथवा धानासक्तुकरमादीनां कारिका वा । असौ नृना माता दुहिता वा ।  
नमनक्रियायोग्यत्वात् । माता खल्वपत्यं प्रति स्ननपानादिना नमनशीला भवति । दुहिता वा सुश्रूषार्थं ।  
एवं सर्वेषां परिचरणेन नानाधियो नानाकर्माणो वसूयवो धनकामा वयमनु तस्थिम । लोकमन्वास्थिताः  
स्मः । तच्च दृष्टान्तः । गा इव ॥ कांदसो जसः शसादेशः ॥ गावो यथा गोष्ठमनुतिष्ठन्ति स्वपयःप्रदानेन  
परिचरन्ति वा एवं वयमपि परिचरामः । एतज्ज्ञात्वा हे इंद्रो सोम इंद्राय परि स्रव । दशापविचात्सर ।  
एवमेषाध्विषणा सत्कारपूर्विका व्यापारणा । अत्र निरुक्तं । उपलप्रक्षिणीत्युपलेषु प्रक्षिणात्युपलप्रक्षेपिणी वा ।  
कारूरहमस्मि कर्ता स्तोमानां ततो भिषक् तत इति संताननाम पितुर्वा पुत्रस्य वा । उपलप्रक्षिणी सक्तुका-  
रिका नृना नमतेर्माता वा दुहिता वा । नानाधियो नानाकर्माणो वसूयवो वसुकामा अन्वास्थिताः स्तो  
माव इव लोकं । नि० ६. ५. इति ॥

अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमंचिणः ।

शेषो रोमखंतो भेदौ वारिन्मंडूक इच्छतींद्रायेंद्रो परि स्रव ॥ ४ ॥

अश्वः । वोळ्हा । सुखं । रथं । हसनां । उपऽमंचिणः ।

शेषः । रोमखंतो । भेदौ । वाः । इत् । मंडूकः । इच्छति । इंद्राय । इंद्रो इति । परि । स्रव ॥ ४ ॥

वोळ्हा अश्वं देशं प्रापयन्नश्वः सुखं कृत्वायं रथमिच्छति । उपमंचिण उपमंचवन्तो नर्मसचिवा हसनामु-  
पहसनां वाचमिच्छन्ति । तथा शेषः । शेषो वैतस इति पुंस्प्रजननश्चेति यास्कः । नि० ३. २१. यथा शेषो  
रोमखंतो भेदाविच्छति । मंडूको वारित् । इदधधारणे । उदकमेवेच्छति । तथाहं स्वत्परिस्रवणमिच्छामि ।  
तस्मादिंद्रायेंद्रो परि स्रवेति ॥ ॥ २५ ॥

शर्यणावतीत्येकादशर्चं दशमं सूक्तं मारोचस्य कश्यपस्यार्थं । पूर्वच हीत्युक्तत्वादियुक्तं च पातं । यवमा-  
नसोमदेवताकं । तथा धानुकम्यते । शर्यणावतीकादश कश्यप इति ॥ गतो विनियोजः ॥

शर्यणावन्ति सोममिन्द्रः पिबतु वृषहा ।

बलं दधान आत्मनि करिषन्वीर्यं महदिन्द्रायेंदो परि स्रव ॥१॥

शर्यणाऽवन्ति । सोमं । इन्द्रः । पिबतु । वृषहा ।

बलं । दधानः । आत्मनि । करिषन् । वीर्यं । महत् । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥१॥

शर्यणावन्ति । शर्यणावन्नाम ऊरुचैवस्य जघनार्धे सरः । तत्र स्थितं सोमं वृषहेन्द्रः पिबतु । कीदृशः । आत्मनि बलं दधानो बलं निदधानः अत एव महदीर्यं करिष्यन्त्यभूति । तस्मादिन्द्रायेंदो परि स्रव ॥

आ पवस्व दिशां पत आजीकात्सोम मीढुः ।

ऋतवाकेन सत्येन अजया तपसा सुत इन्द्रायेंदो परि स्रव ॥२॥

आ । पवस्व । दिशां । पते । आजीकात् । सोम । मीढुः ।

ऋतऽवाकेन । सत्येन । अजया । तपसा । सुतः । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥२॥

हे दिशां पते प्राच्यादीनां दिशां प्रकाशकत्वेन स्वामिन् हे मीढुः कामानां सेतुर्हे सोम आजीकात् । आजीकानामदूरमव आजीको जनपदः । तस्मादा पवस्व । अजया अर्चं प्रत्यागच्छ । यदा । आजीकादृजोरजु-  
टिषात्यविचात्सर । कीदृशः । ऋतवाकेनर्तस्य वचनेन सत्येन । सत्यर्तयोरस्यो भेदो द्रष्टव्यः । अजया तपसा  
युतिर्दीक्षितः सुतोऽभिषुतस्त्वं पवस्व ॥

पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।

तं गंधर्वाः प्रत्यगृभ्णन्तं सोमे रसमादधुरिन्द्रायेंदो परि स्रव ॥३॥

पर्जन्यऽवृद्धं । महिषं । तं । सूर्यस्य । दुहिता । आ । अभरत् ।

तं । गंधर्वाः । प्रति । अगृभ्णन् । तं । सोमे । रसं । आ । अदधुः । इन्द्राय । इन्दो इति ।

परि । स्रव ॥३॥

सूर्यस्य दुहिता । असा वै सूर्यस्य दुहितेति वाजसनेयकं । शत० १२. ७. ३. ११. । सा पर्जन्यवृद्धं पर्जन्यव-  
त्समर्थं । यदा । पर्जन्येव तत्कार्यत्वेनोदकेन प्रवृद्धं । महिषं महान्तं पूज्यं वा तं सोममाभरत् । आहरत् ।  
सुलोकादाहृतवती । तमाद्रियमाणं सोमं गंधर्वा विश्वावसुप्रभृतयः प्रत्यगृभ्णन् । प्रत्यगृह्णन् । प्रतिगृहीतवन्तः ॥  
द्वयहीर्मः ॥ ततो गंधर्वाः प्रतिगृहीतं रसं सोमे प्रत्यचमादधुः ॥ दधातिर्लङि ॥ तस्मात्परि स्रव ॥

ऋतं वदन्ऋतद्युम्न सत्यं वदन्सत्यकर्मन् ।

अज्यां वदन्सोम राजन्धाचा सोम परिष्कृत इन्द्रायेंदो परि स्रव ॥४॥

ऋतं । वदन् । ऋतऽद्युम्न । सत्यं । वदन् । सत्यऽकर्मन् ।

अज्यां । वदन् । सोम । राजन् । धाचा । सोम । परिष्कृतः । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥४॥

हे ऋतद्युम्नेन शीतमान सत्ययशस्क वा सत्यकर्मन्यथार्थकर्मन् हे सोमाभिषूयमाणं राजन् सर्वेषां  
यज्ञनिष्पादकत्वेन स्वामिन् हे सोम ऋतं यज्ञं वदन् सत्यं वदन्नुच्चारयञ्अज्यां यजमानानामात्मनोपेक्षितां  
वदन् धाचा कर्मणां धारकेष देवानां पोषकेष वा यजमानेन परिष्कृतोऽलङ्घ्यतस्त्वमिन्द्राय परि स्रव ॥  
संपर्युपेभ इति श्रूयार्थं करोतिः सुट् ॥



सत्यमुयस्य बृहत्तः सं स्रवन्ति संस्रवाः ।

सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेंदो परि स्रव ॥ ५ ॥

सत्यंऽउयस्य । बृहत्तः । सं । स्रवन्ति । संऽस्रवाः ।

सं । यन्ति । रसिनः । रसाः । पुनानः । ब्रह्मणा । हरे । इन्द्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥ ५ ॥

सत्यमुयस्य संयामे सत्येन शत्रूणामुन्नारयितुः । यदा । उन्नूर्यसत्यस्य । यदा । यथार्थभूतमुन्नूर्यं जनं यस्त  
तस्य ॥ पृषोदरादित्वाद्भूपसिद्धिः ॥ बृहतो महत्तः सोमस्य तव संस्रवाः सत्यकस्रवणशीला धाराः सं स्रवन्ति ।  
सत्यगच्छन्ति । किंच रसिनो रसवतस्तव स्वभूता रसाः सं यन्ति । संगच्छन्ति । तस्मादे हरे हरितवर्णं सोम  
ब्रह्मणा ब्राह्मणेन मंत्रेण वा प्रणानः पूयमानः स त्वमिन्द्रार्थं परि स्रव ॥ ॥ २६ ॥

यच्च ब्रह्मा पवमान छंदस्यां वाचं वदन् ।

याव्णा सोमे महीयते सोमेनानंदं जनयन्निन्द्रायेंदो परि स्रव ॥ ६ ॥

यच्च । ब्रह्मा । पवमान । छंदस्यां । वाचं । वदन् ।

याव्णा । सोमे । महीयते । सोमेन । आऽनंदं । जनयन् । इन्द्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥ ६ ॥

हे पवमान पूयमान सोम त्वदर्थं छंदस्यां सप्तच्छंदोभिः कृतां तेषु भवां वाचं सुतिं वदन्नुच्चारयन् सोमे  
सोमाभिषवार्थं याव्णामिषवं कुर्वता युक्तस्त्रेणामिषुतेन सोमेन देवानामानंदं संतोषं जनयन्नुत्पादयन्ब्रह्मा  
ब्राह्मणो यथ यज्ञिन्देशे महीयते देवैः पूज्यते तच्च हे सोम त्वं परि स्रव ॥

यच्च ज्योतिरजसं यस्मिंस्लोके स्वर्हितं ।

तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेंदो परि स्रव ॥ ७ ॥

यच्च । ज्योतिः । अजसं । यस्मिन् । लोके । स्वः । हितं ।

तस्मिन् । मां । धेहि । पवमान । अमृते । लोके । अक्षिते । इन्द्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥ ७ ॥

हे पवमान यच्च यस्मिंस्लोके ज्योतिः सर्वं तेजोऽजसं सर्वदाविनश्वरं वर्तते । यस्मिंश्च लोके स्वरादित्यास्तं  
ज्योतिर्हितं निहितमस्ति । तस्मिन्मृते मरणधर्मरहिते अत एवाक्षितेऽपीणे लोके मां सोमामिषवं कुर्वन्तं धेहि ।  
निधेहि । तस्मात्सामुत्तमलोकं प्रापयितुं त्वमिन्द्राय परि स्रव ॥

यच्च राजा वैवस्वतो यचावरोधनं दिवः ।

यचामूर्यहतीरापस्तच माममृते कूर्धीन्द्रायेंदो परि स्रव ॥ ८ ॥

यच्च । राजा । वैवस्वतः । यच्च । अचऽरोधनं । दिवः ।

यच्च । अमूः । यहतीः । आपः । तच्च । मां । अमृते । कूर्धि । इन्द्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥ ८ ॥

यथ यस्मिंस्लोके वैवस्वतो विवस्वत्युचो राजा भवति । यच्च च लोके दिव आदित्यस्कावरोधनं मृतानां  
प्रविशणं । किंच यच्च लोके यहतीर्महत्योऽमूरिमा गंगाया आपसिष्ठति । तच्च तादृशे लोके माममृते मरणध-  
र्मरहितं कूर्धि । कृध । मम देवत्वं प्रापयेत्त्वर्थः । ततः कारणात्परि स्रव ॥

यचानुकामं चरणं चिनाके चिदिवे दिवः ।

लोका यच ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रियेदो परि स्रव ॥९॥

यच । अनुऽकामं । चरणं । चिऽनाके । चिऽदिवे । दिवः ।

लोकाः । यच । ज्योतिष्मन्तः । तच । मां । अमृतं । कृधि । इन्द्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥९॥

यच चिदिवे तृतीयस्थां दिवि बुलोके चिनाके । तचाधरमध्यमोत्तमभावेन त्रीणि स्थानाणि संति । तत्र तृतीये जाक उत्तमे स्थाने दिव आदित्यस्यानुकामं कामानुगुणं चरणमस्ति । किंच यच यस्मिँल्लोके लोका ज्योतिष्मन्तो ज्योतिर्युक्तास्तिष्ठन्ति । तत्र तादृशे लोके माममृतं छधि । यथा ममोत्तमलोको भवति तथा त्वमिन्द्राय परि स्रव ॥

यच कामां निकांमाश्च यच ब्रध्नस्य विष्टपं ।

स्वधा च यच तृप्तिश्च तच माममृतं कृधीन्द्रियेदो परि स्रव ॥१०॥

यच । कामाः । निऽकामाः । च । यच । ब्रध्नस्य । विष्टपं ।

स्वधा । च । यच । तृप्तिः । च । तच । मां । अमृतं । कृधि । इन्द्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥१०॥

यच यस्मिँल्लोके कामाः काम्यमाना देवा निकांमा नितरामवशं प्रार्थ्यमाना इन्द्रादयश्च विद्यन्ते । - - - यथा । सूर्येण विना कर्माणि न घटन्ति इति सर्वेषां कर्मणां मूलभूतस्यादित्यस्य विष्टपं सहस्रानं यच विद्यते तत्र लोके । स्वधाज्ञं स्वधाकारेण वा दत्तमन्नं तृप्तिस्वर्पणं हर्षणं हर्षश्च यच विद्यते तत्र लोके माममृतं छधि ।

यचानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसन्ते ।

कामस्य यचाप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रियेदो परि स्रव ॥११॥

यच । आऽनन्दाः । च । मोदाः । च । मुदः । प्रऽमुदः । आसन्ते ।

कामस्य । यच । आप्ताः । कामाः । तच । मां । अमृतं । कृधि । इन्द्राय । इंदो इति ।

परि । स्रव ॥११॥

यच यस्मिँल्लोक आनन्दादय आसन्ते । तेषामन्यो भेदो द्रष्टव्यः । यच च लोके कामस्य काम्यमानस्य देवस्य सर्वे कामा आप्ताः प्राप्ता भवन्ति तत्र माममृतं छधि । एतत्तु स्वधा विना न घटति इति हे सोम त्वं परि स्रव ॥ ॥१०॥

य इंदोरिति चतुर्ध्वजमेकादशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । तथा चाशुक्रम्यते । य इंदोश्चतुष्कमिति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

य इंदोः पर्वमानस्यानु धामान्यक्रमीत् ।

तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रियेदो परि स्रव ॥१॥

यः । इंदोः । पर्वमानस्य । अनु । धामानि । अक्रमीत् ।

तं । आहुः । सुऽप्रजाः । इति । यः । ते । सोम । अविधत् । मनः । इन्द्राय । इंदो इति ।

परि । स्रव ॥१॥



पयमानस्य पूयमानस्येदोः सोमस्य धामानि स्थानानि द्रोणकलशादीनि यद्वा धामानि तेजसां यो  
ब्राह्मणोऽन्वक्रामीत् अनुक्रामति अनुगच्छति तं जनं सुप्रजाः शोभनप्रजननः कल्याणपुत्रादिप्रजायुक्त इत्याहुः ॥  
नित्यमसिच् प्रजामेधयोरित्यसिच् समासांतः ॥ यः सोममभिषुणोति स पुत्रादियुक्तो भवतीत्यर्थः । किंच हे  
सोम यो मनुष्यस्ते त्वदर्थं मनोऽविधत् करोति । यद्वा । ते त्वदीयं मनोऽविधत् परिचरन्ति । विधतिः  
परिचरणकर्मा । तमपि कल्याणजननमित्याहुः । तस्मात्त्वं परि स्रव ॥

ऋषे मंचकृतां स्तोमैः कश्यपोवर्धयन्गिरः ।

सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिंद्रायेंदो परि स्रव ॥ २ ॥

ऋषे । मंचकृतां । स्तोमैः । कश्यप । उत्वर्धयन् । गिरः ।

सोमं । नमस्य । राजानं । यः । जज्ञे । वीरुधां । पतिः । इंद्राय । इंद्रो इति । परि । स्रव ॥ २ ॥

ऋषिः स्वात्मानं प्रत्याह । हे ऋषे सूक्तद्रष्टर्हे कश्यपात्मन् त्वं मंचकृतामृषीणां स्तोमैः स्तोत्रैर्गिरः स्तुतिरूपा  
वाच उवर्धयन्पुण्यपरि वर्धयन्नाजानं सर्वेषां स्वामिनं तं सोमं नमस्य । पूजय ॥ नमसः पूजायां नमोवरिव  
इति कश्च ॥ यः सोमो वीरुधां वनस्पतीनां पतिः पालको जज्ञे जातः तं नमस्य । हे सोम यथात्मना भुतो  
भवसि तथा परि स्रव ॥

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।

देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इंद्रायेंदो परि स्रव ॥ ३ ॥

सप्त । दिशः । नानाऽसूर्याः । सप्त । होतारः । ऋत्विजः ।

देवाः । आदित्याः । ये । सप्त । तेभिः । सोम । अभि । रक्ष । नः । इंद्राय । इंद्रो इति ।  
परि । स्रव ॥ ३ ॥

सप्त दिशः । सोमो यस्यां दिशि वर्तते तद्वतिरिक्ताः सप्त भवंति । ता नानासूर्या नानाविधैः सूर्यैरधि-  
ष्ठिता ऋतवो भवंति । नानालिंगत्वादृतूनां नानासूर्यत्वमित्याह्वानात् । यद्वा । नानासूर्या इति दिग्बिंशेषणं ।  
तथा होतारो वषट्कर्तारो होत्रादयः सप्तर्त्विजो भवंति । किंच सप्तादित्या अदितेः पुत्रा धात्रादयो मार्त-  
ण्डवर्जिता ये सप्त देवाः संति । एतत्त्वष्टी पुत्रासो अदितेः । ऋ० १०. ७२. ८. । इत्यत्र प्रपंचयिष्यते । हे सोम  
तेभिस्तैर्दिगादिभिः सर्वेणोऽह्वानभि रक्ष । एतत्तु त्वया विना न घटत इति तस्मादिंद्रायेंद्रो परि स्रव ॥

उपाकरणोत्सर्जनयोर्मंडलाद्यंतद्गोमे यत्ते राजन्निषेधा । सूचितं च । यत्ते राजञ्जकृतं हविरिति वृचाः  
समानो व आकूतिरित्येका । आ० गृ० ३. ५. ७. । इति ॥

यत्ते राजञ्जकृतं हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः ।

अरातीवा मा नस्तारीन्मो च नः किं चनाममदिंद्रायेंदो परि स्रव ॥ ४ ॥

यत् । ते । राजन् । शृतं । हविः । तेन । सोम । अभि । रक्ष । नः ।

अरातिऽवा । मा । नः । तारीत् । मो इति । च । नः । किं । चन । आममत् । इंद्राय ।  
इंद्रो इति । परि । स्रव ॥ ४ ॥

हे राजन् सर्वेषां कर्मसाधनत्वेन स्वामिन् हे सोम ते त्वदर्थं शृतं पक्कं यद्यविरक्षि ॥ शृतं पाके । या०

६. १. २७.। इति निष्ठायां निपातितः ॥ तेन हविषा नोऽस्मानमि रच । अमिपालय । तस्मात्त्वदमिरचितान-  
स्मानरातीवारातिवाञ्शुनोऽस्मान्मा तारीत् । मा वधोत् । किंच नोऽस्माकं किं चन किंचिदपि धनादिकं  
शुनोर्मा आममत् । मा हिंसोत् । यदेतदेतैः सूक्तैरुक्तं तद्यथास्माकं भवति तथा हे इंदो इंद्राय परि स्रव ।  
एवं स्वादिष्ठयेत्यादिभिरितदतैः सूक्तैर्वज्रविधं सोममाहात्यमभ्यधाधि । तस्मादैहिकामुष्मिकफलसिद्धये सोम-  
यामः करणीय इत्युक्तं भवति ॥ ॥ २८ ॥

॥ इति सायणाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे दाशतय्या नवमे मंडले सप्तमोऽनुवाकः समाप्तं  
च नवमं मंडलं ॥















